श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः

महर्षि वाल्मीकिप्रणीत

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

(सचित्र, हिंदीभाषान्तरसहित)

द्वितीय भाग

(सुन्दरकाण्डसे उत्तरकाण्डतक)

अनुवादक—

साहित्याचार्य पाण्डेय पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः

महर्षि वाल्मीकिप्रणीत

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

(सचित्र, हिंदीभाषान्तरसहित)

द्वितीय भाग

(सुन्दरकाण्डसे उत्तरकाण्डतक)

गीताप्रेस, गोरखपुर

प्रकाशक
गोविन्द भवन कार्यालय,
गीता प्रेस, गोरखपुर

सं० २०१७ से २०३२ तक ४५,०००
सं० २०४० चौथा संस्करण २०,०००
कुल ६५,०००

मूल्य दोनों भागों का पचास रूपये
मूल्य प्रत्येक भाग का पच्चीस रूपये

मिलने का पता—
गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

मुद्रक : किताब महल (होलसेल डिवीजन) प्रा० लि०,
15 थार्नहिल रोड, इलाहाबाद

श्रीहरिः

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण खण्ड २ की विषय-सूची

सर्ग विषय पृष्ठ-संख्या

(सुन्दरकाण्डम्)

१–हनुमान्‌जीके द्वारा समुद्रका लङ्घन, मैनाकके द्वारा उनका स्वागत, सुरसापर उनकी विजय तथा सिंहिकाका वध करके उनका समुद्रके उस पार पहुँचकर लङ्काकी शोभा देखना … ८४७

२–लङ्कापुरीका वर्णन, उसमें प्रवेश करनेके विषयमें हनुमान्‌जीका विचार, उनका लघुरूपसे पुरीमें प्रवेश तथा चन्द्रोदयका वर्णन … ८६१

३–लङ्कापुरीका अवलोकन करके हनुमान्‌जीका विस्मित होना, उसमें प्रवेश करते समय निशाचरी लङ्काका उन्हें रोकना और उनकी मारसे विह्वल होकर उन्हें पुरीमें प्रवेश करनेकी अनुमति देना … … ८६५

४–हनुमान्‌जीका लङ्कापुरी एवं रावणके अन्तःपुरमें प्रवेश … … ८६८

५–हनुमान्‌जीका रावणके अन्तःपुरमें घर-घरमें सीताको ढूँढ़ना और उन्हें न देखकर दुखी होना … … ८७०

६–हनुमान्‌जीका रावण तथा अन्यान्य राक्षसोंके घरोंमें सीताजीकी खोज करना … ८७३

७–रावणके भवन एवं पुष्पकविमानका वर्णन … ८७६

८–हनुमान्‌जीके द्वारा पुनः पुष्पकविमानका दर्शन … … ८७८

९–हनुमान्‌जीका रावणके श्रेष्ठ भवन, पुष्पकविमान तथा रावणके रहनेकी सुन्दर हवेलीको देखकर उसके भीतर सोयी हुई सहस्रों सुन्दरी स्त्रियोंका अवलोकन करना … ८७९

१०–हनुमान्‌जीका अन्तःपुरमें सोये हुए रावण तथा गाढ़ निद्रामें पड़ी हुई उसकी स्त्रियोंको देखना तथा मन्दोदरीको सीता समझकर प्रसन्न होना … … ८८५

११–वह सीता नहीं है—ऐसा निश्चय होनेपर हनुमान्‌जीका पुनः अन्तःपुरमें और उसकी पानभूमिमें सीताका पता लगाना, उनके मनमें धर्मलोपकी आशङ्का और स्वतः उसका निवारण होना … … ८८९

१२–सीताके मरणकी आशङ्कासे हनुमान्‌जीका शिथिल होना; फिर उत्साहका आश्रय लेकर अन्य स्थानोंमें उनकी खोज करना और कहीं भी पता न लगनेसे पुनः उनका चिन्तित होना … ८९२

१३–सीताजीके नाशकी आशङ्कासे हनुमान्‌जीकी चिन्ता, श्रीरामको सीताके न मिलनेकी सूचना देनेसे अनर्थकी सम्भावना देख हनुमान्‌जीका न लौटनेका निश्चय करके पुनः खोजनेका विचार करना और अशोकवाटिकामें घूमनेके विषयमें तरह-तरहकी बातें सोचना … ८९४

१४–हनुमान्‌जीका अशोकवाटिकामें प्रवेश करके उसकी शोभा देखना तथा एक अशोक वृक्षपर छिपे रहकर वहींसे सीताका अनुसन्धान करना ८९९

१५–वनकी शोभा देखते हुए हनुमान्‌जीका एक चैत्यप्रासाद (मन्दिर) के पास सीताको दयनीय अवस्थामें देखना, पहचानना और प्रसन्न होना ९०३

१६–हनुमान्‌जीका मन-ही-मन सीताजीके शील और सौन्दर्यकी सराहना करते हुए उन्हें कष्टमें पड़ी देख स्वयं भी उनके लिये शोक करना … ९०६

१७–भयंकर राक्षसियोंसे घिरी हुई सीताके दर्शनसे हनुमान्‌जीका प्रसन्न होना … … ९०९

१८–अपनी स्त्रियोंसे घिरे हुए रावणका अशोकवाटिकामें आगमन और हनुमान्‌जीका उसे देखना … … … ९११

१९–रावणको देखकर दुःख, भय और चिन्तामें डूबी हुई सीताकी अवस्थाका वर्णन … ९१३

२०–रावणका सीताजीको प्रलोभन … ९१५

२१–सीताजीका रावणको समझाना और उसे श्रीरामके सामने नगण्य बताना … … ९१८

२२–रावणका सीताको दो मासकी अवधि देना, सीताका उसे फटकारना, फिर रावणका उन्हें धमकाकर राक्षसियोंके नियन्त्रणमें रखकर स्त्रियों-सहित पुनः महलको लौट जाना … ९२०

२३–राक्षसियोंका सीताजीको समझाना … ९२३

२४–सीताजीका राक्षसियोंकी बात माननेसे इनकार कर देना तथा राक्षसियोंका उन्हें मारने-काटनेकी धमकी देना … … ९२५

२५–राक्षसियोंकी बात माननेसे इनकार करके शोकसंतप्त सीताका विलाप करना … ९२८

२६–सीताका करुण-विलाप तथा अपने प्राणोंको त्याग देनेका निश्चय करना ९२९
२७–त्रिजटाका स्वप्न, राक्षसोंके विनाश और श्रीरघुनाथजीकी विजयकी शुभ सूचना ... ९३३
२८–विलाप करती हुई सीताका प्राण-त्यागके लिये उद्यत होना ९३६
२९–सीताजीके शुभ शकुन ... ९३८
३०–सीताजीसे वार्तालाप करनेके विषयमें हनुमान्‌जीका विचार करना ९३९
३१–हनुमान्‌जीका सीताको सुनानेके लिये श्रीराम-कथाका वर्णन करना ९४२
३२–सीताजीका तर्क-वितर्क ९४४
३३–सीताजीका हनुमान्‌जीको अपना परिचय देते हुए अपने वनगमन और अपहरणका वृत्तान्त बताना ९४५
३४–सीताजीका हनुमान्‌जीके प्रति संदेह और उसका समाधान तथा हनुमान्‌जीके द्वारा श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका गान ९४७
३५–सीताजीके पूछनेपर हनुमान्‌जीका श्रीरामके शारीरिक चिह्नों और गुणोंका वर्णन करना तथा नर-वानरकी मित्रताका प्रसङ्ग सुनाकर सीताजीके मनमें विश्वास उत्पन्न करना ... ९४९
३६–हनुमान्‌जीका सीताको मुद्रिका देना, सीताका 'श्रीराम कब मेरा उद्धार करेंगे' यह उत्सुक होकर पूछना तथा हनुमान्‌जीका श्रीरामके सीताविषयक प्रेमका वर्णन करके उन्हें सान्त्वना देना ९५५
३७–सीताका हनुमान्‌जीसे श्रीरामको शीघ्र बुलानेका आग्रह, हनुमान्‌जीका सीतासे अपने साथ चलनेका अनुरोध तथा सीताका अस्वीकार करना ९५९
३८–सीताजीका हनुमान्‌जीको पहचानके रूपमें चित्रकूट पर्वतपर घटित हुए एक कौएके प्रसङ्गको सुनाना, भगवान् श्रीरामको शीघ्र बुला लानेके लिये अनुरोध करना और चूड़ामणि देना ९६३
३९–चूड़ामणि लेकर जाते हुए हनुमान्‌जीसे सीताका श्रीराम आदिको उत्साहित करनेके लिये कहना तथा समुद्र-तरणके विषयमें शङ्कित हुई सीताको वानरोंका पराक्रम बताकर हनुमान्‌जीका आश्वासन देना ९६८
४०–सीताका श्रीरामसे कहनेके लिये पुनः संदेश देना तथा हनुमान्‌जीका उन्हें आश्वासन दे उत्तर दिशाकी ओर जाना ९७१
४१–हनुमान्‌जीके द्वारा प्रमदावन (अशोक-वाटिका) का विध्वंस ९७३
४२–राक्षसियोंके मुखसे एक वानरके द्वारा प्रमदावनके विध्वंसका समाचार सुनकर रावणका किंकर नामक राक्षसोंको भेजना और हनुमान्‌जीके द्वारा उन सबका संहार ... ९७५
४३–हनुमान्‌जीके द्वारा चैत्यप्रासादका विध्वंस तथा उसके रक्षकोंका वध ९७८
४४–प्रहस्त-पुत्र जम्बुमालीका वध ... ९७९
४५–मन्त्रीके सात पुत्रोंका वध ९८०
४६–रावणके पाँच सेनापतियोंका वध ... ९८२
४७–रावण-पुत्र अक्षकुमारका पराक्रम और वध ९८४
४८–इन्द्रजित् और हनुमान्‌जीका युद्ध, उसके दिव्यास्त्रके बन्धनमें बँधकर हनुमान्‌जीका रावणके दरबारमें उपस्थित होना ... ९८८
४९–रावणके प्रभावशाली स्वरूपको देखकर हनुमान्‌जीके मनमें अनेक प्रकारके विचारोंका उठना ९९३
५०–रावणका प्रहस्तके द्वारा हनुमान्‌जीसे लङ्कामें आनेका कारण पुछवाना और हनुमान्‌का अपनेको श्रीरामका दूत बताना ... ९९५
५१–हनुमान्‌जीका श्रीरामके प्रभावका वर्णन करते हुए रावणको समझाना ... ९९६
५२–विभीषणका दूतके वधको अनुचित बताकर उसे दूसरा कोई दण्ड देनेके लिये कहना तथा रावणका उनके अनुरोधको स्वीकार कर लेना ९९९
५३–राक्षसोंका हनुमान्‌जीकी पूँछमें आग लगाकर उन्हें नगरमें घुमाना १००२
५४–लङ्कापुरीका दहन और राक्षसोंका विलाप ... १००५
५५–सीताजीके लिये हनुमान्‌जीकी चिन्ता और उसका निवारण १००९
५६–हनुमान्‌जीका पुनः सीताजीसे मिलकर लौटना और समुद्रको लाँघना १०११
५७–हनुमान्‌जीका समुद्रको लाँघकर जाम्बवान् और अङ्गद आदि सुहृदोंसे मिलना ... १०१४
५८–जाम्बवान्‌के पूछनेपर हनुमान्‌जीका अपनी लङ्कायात्राका सारा वृत्तान्त सुनाना ... १०१७
५९–हनुमान्‌जीका सीताकी दुरवस्था बताकर वानरोंको लङ्कापर आक्रमण करनेके लिये उत्तेजित करना १०२८
६०–अङ्गदका लङ्काको जीतकर सीताको ले आनेका उत्साहपूर्ण विचार और जाम्बवान्‌के द्वारा उसका निवारण १०३०

६१–वानरोंका मधुवनमें जाकर वहाँके मधु एवं फलोंका मनमाना उपभोग करना और वन-रक्षकको घसीटना ··· १०३२
६२–वानरोंद्वारा मधुवनके रक्षकों और दधिमुखका पराभव तथा सेवकोंसहित दधिमुखका सुग्रीवके पास जाना ··· ··· १०३४
६३–दधिमुखसे मधुवनके विध्वंसका समाचार सुनकर सुग्रीवका हनुमान् आदि वानरोंकी सफलताके विषयमें अनुमान ··· १०३७
६४–दधिमुखसे सुग्रीवका संदेश सुनकर अङ्गद-हनुमान् आदि वानरोंका किष्किन्धामें पहुँचना और हनुमान्जीका श्रीरामको प्रणाम करके सीतादेवीके दर्शनका समाचार बताना ··· १०३९
६५–हनुमान्जीका श्रीरामको सीताका समाचार सुनाना १०४२
६६–चूड़ामणिको देखकर और सीताका समाचार पाकर श्रीरामका उनके लिये विलाप ··· १०४४
६७–हनुमान्जीका भगवान् श्रीरामको सीताका संदेश सुनाना ··· १०४५
६८–हनुमान्जीका सीताके संदेह और अपने द्वारा उनके निवारणका वृत्तान्त बताना ··· १०४८

(युद्धकाण्डम्)

१–हनुमान्जीकी प्रशंसा करके श्रीरामका उन्हें हृदयसे लगाना और समुद्रको पार करनेके लिये चिन्तित होना ··· १०५१
२–सुग्रीवका श्रीरामको उत्साह प्रदान करना ··· १०५२
३–हनुमान्जीका लंकाके दुर्ग, फाटक, सेना-विभाग और संक्रम आदिका वर्णन करके भगवान् श्रीरामसे सेनाको कूच करनेकी आज्ञा देनेके लिये प्रार्थना करना ··· ··· १०५४
४–श्रीराम आदिके साथ वानर-सेनाका प्रस्थान और समुद्र-तटपर उसका पड़ाव ··· १०५६
५–श्रीरामका सीताके लिये शोक और विलाप ··· १०६४
६–रावणका कर्तव्य-निर्णयके लिये अपने मन्त्रियोंसे समुचित सलाह देनेका अनुरोध करना ··· १०६६
७–राक्षसोंका रावण और इन्द्रजित्के बल-पराक्रमका वर्णन करते हुए उसे रामपर विजय पानेका विश्वास दिलाना ··· ··· १०६७
८–प्रहस्त, दुर्मुख, वज्रदंष्ट्र, निकुम्भ और वज्रहनुका रावणके सामने शत्रु-सेनाको मार गिरानेका उत्साह दिखाना ··· ··· १०६९
९–विभीषणका रावणसे श्रीरामकी अजेयता बताकर सीताको लौटा देनेके लिये अनुरोध करना ··· १०७१
१०–विभीषणका रावणके महलमें जाना, उसे अपशकुनोंका भय दिखाकर सीताको लौटा देनेके लिये प्रार्थना करना और रावणका उनकी बात न मानकर उन्हें वहाँसे विदा कर देना ··· १०७२
११–रावण और उसके सभासदोंका सभाभवनमें एकत्र होना ··· ··· १०७५
१२–नगरकी रक्षाके लिये सैनिकोंकी नियुक्ति, रावणका सीताके प्रति अपनी आसक्ति बताकर उनके हरणका प्रसंग बताना और भावी कर्तव्यके लिये सभासदोंकी सम्मति माँगना, कुम्भकर्णका पहले तो उसे फटकारना, फिर समस्त शत्रुओंके वधका स्वयं ही भार उठाना ··· १०७७
१३–महापार्श्वका रावणको सीतापर बलात्कारके लिये उकसाना और रावणका शापके कारण अपनेको ऐसा करनेमें असमर्थ बताना तथा अपने पराक्रमके गीत गाना ··· १०८०
१४–विभीषणका रामको अजेय बताकर उनके पास सीताको लौटा देनेकी सम्मति देना ··· १०८२
१५–इन्द्रजित्द्वारा विभीषणका उपहास तथा विभीषणका उसे फटकारकर सभामें अपनी उचित सम्मति देना ··· ··· १०८४
१६–रावणके द्वारा विभीषणका तिरस्कार और विभीषणका भी उसे फटकारकर चल देना ··· १०८६
१७–विभीषणका श्रीरामकी शरणमें आना और श्रीरामका अपने मन्त्रियोंके साथ उन्हें आश्रय देनेके विषयमें विचार करना ··· १०८८
१८–भगवान् श्रीरामका शरणागतकी रक्षाका महत्त्व एवं अपना व्रत बताकर विभीषणसे मिलना ··· ··· १०९३
१९–विभीषणका आकाशसे उतरकर भगवान् श्रीरामके चरणोंकी शरण लेना, उनके पूछनेपर रावणकी शक्तिका परिचय देना और श्रीरामका रावण-वधकी प्रतिज्ञा करके विभीषणको लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त कर उनकी सम्मतिसे समुद्र-तटपर धरना देनेके लिये बैठना ··· १०९५
२०–शार्दूलके कहनेसे रावणका शुकको दूत बनाकर सुग्रीवके पास संदेश भेजना, वहाँ वानरोंद्वारा उसकी दुर्दशा, श्रीरामकी कृपासे उसका संकटसे छूटना और सुग्रीवका रावणके लिये उत्तर देना ··· ··· १०९८
२१–श्रीरामका समुद्रके तटपर कुशा बिछाकर तीन दिनोंतक धरना देनेपर भी समुद्रके दर्शन न देनेसे कुपित हो उसे बाण मारकर विक्षुब्ध कर देना ··· ··· ११०१

२२–समुद्रकी सलाहके अनुसार नलके द्वारा सागरपर सौ योजन लंबे पुलका निर्माण तथा उसके द्वारा श्रीराम आदिसहित वानरसेनाका उस पार पहुँचकर पड़ाव डालना ··· ··· ११०३
२३–श्रीरामका लक्ष्मणसे उत्पातसूचक लक्षणोंका वर्णन और लङ्कापर आक्रमण ··· ११०९
२४–श्रीरामका लक्ष्मणसे लङ्काकी शोभाका वर्णन करके सेनाको व्यूहबद्ध खड़ी होनेके लिये आदेश देना, श्रीरामकी आज्ञासे बन्धनमुक्त हुए शुकका रावणके पास जाकर उनकी सैन्यशक्तिकी प्रबलता बताना तथा रावणका अपने बलकी डींग हाँकना ··· १११०
२५–रावणका शुक और सारणको गुप्तरूपसे वानर-सेनामें भेजना, विभीषणद्वारा उनका पकड़ा जाना, श्रीरामकी कृपासे छुटकारा पाना तथा श्रीरामका संदेश लेकर लङ्कामें लौटकर उनका रावणको समझाना ··· १११२
२६–सारणका रावणको पृथक्-पृथक् वानर-यूथपतियोंका परिचय देना ··· १११६
२७–वानरसेनाके प्रधान यूथपतियोंका परिचय ··· १११९
२८–शुकके द्वारा सुग्रीवके मन्त्रियोंका, मैन्द और द्विविदका, हनुमान्‌का, श्रीराम, लक्ष्मण, विभीषण और सुग्रीवका परिचय देकर वानर-सेनाकी संख्याका निरूपण करना ··· ११२२
२९–रावणका शुक और सारणको फटकारकर अपने दरबारसे निकाल देना, उसके भेजे हुए गुप्तचरोंका श्रीरामकी दयासे वानरोंके चंगुलसे छूटकर लङ्कामें आना ··· ··· ११२५
३०–रावणके भेजे हुए गुप्तचरों एवं शार्दूलका उससे वानर-सेनाका समाचार बताना और मुख्य-मुख्य वीरोंका परिचय देना ··· ११२७
३१–मायारचित श्रीरामका कटा मस्तक दिखाकर रावणद्वारा सीताको मोहमें डालनेका प्रयत्न ११२९
३२–श्रीरामके मारे जानेका विश्वास करके सीताका विलाप तथा रावणका सभामें जाकर मन्त्रियोंकी सलाहसे युद्धविषयक उद्योग करना ··· ११३२
३३–सरमाका सीताको सान्त्वना देना, रावणकी मायाका भेद खोलना, श्रीरामके आगमनका प्रिय समाचार सुनाना और उनके विजयी होनेका विश्वास दिलाना ··· ··· ११३५
३४–सीताके अनुरोधसे सरमाका उन्हें मन्त्रियोंसहित रावणका निश्चित विचार बताना ··· ११३८
३५–माल्यवान्‌का रावणको श्रीरामसे संधि करनेके लिये समझाना ··· ··· ११४०
३६–माल्यवान्‌पर आक्षेप और नगरकी रक्षाका प्रबन्ध करके रावणका अपने अन्तःपुरमें जाना ११४२
३७–विभीषणका श्रीरामसे रावणद्वारा किये गये लङ्काकी रक्षाके प्रबन्धका वर्णन तथा श्रीराम-द्वारा लङ्काके विभिन्न द्वारोंपर आक्रमण करनेके लिये अपने सेनापतियोंकी नियुक्ति ··· ११४४
३८–श्रीरामका प्रमुख वानरोंके साथ सुवेल पर्वतपर चढ़कर वहाँ रातमें निवास करना ··· ११४६
३९–वानरोंसहित श्रीरामका सुवेल-शिखरसे लङ्का-पुरीका निरीक्षण करना ··· ··· ११४८
४०–सुग्रीव और रावणका मल्लयुद्ध ··· ११५०
४१–श्रीरामका सुग्रीवको दुःसाहससे रोकना, लङ्काके चारों द्वारोंपर वानरसैनिकोंकी नियुक्ति, रामदूत अङ्गदका रावणके महलमें पराक्रम तथा वानरोंके आक्रमणसे राक्षसोंको भय ··· ११५३
४२–लङ्कापर वानरोंकी चढ़ाई तथा राक्षसोंके साथ उनका घोर युद्ध ··· ··· ११५९
४३–द्वन्द्वयुद्धमें वानरोंद्वारा राक्षसोंकी पराजय ··· ११६२
४४–रातमें वानरों और राक्षसोंका घोर युद्ध, अङ्गदके द्वारा इन्द्रजित्‌की पराजय, मायासे अदृश्य हुए इन्द्रजित्‌का नागमय बाणोंद्वारा श्रीराम और लक्ष्मणको बाँधना ··· ··· ११६५
४५–इन्द्रजित्‌के बाणोंसे श्रीराम और लक्ष्मणका अचेत होना और वानरोंका शोक करना ··· ११६८
४६–श्रीराम और लक्ष्मणको मूर्छित देख वानरोंका शोक, इन्द्रजित्‌का हर्षोद्गार, विभीषणका सुग्रीवको समझाना, इन्द्रजित्‌का लङ्कामें जाकर पिताको शत्रुवधका वृत्तान्त बताना और प्रसन्न हुए रावणके द्वारा अपने पुत्रका अभिनन्दन ··· ११७०
४७–वानरोंद्वारा श्रीराम और लक्ष्मणकी रक्षा, रावणकी आज्ञासे राक्षसियोंका सीताको पुष्पकविमानद्वारा रणभूमिमें ले जाकर श्रीराम और लक्ष्मणका दर्शन कराना और सीताका दुखी होकर रोना ··· ११७३
४८–सीताका विलाप और त्रिजटाका उन्हें समझा-बुझाकर श्रीराम-लक्ष्मणके जीवित होनेका विश्वास दिलाकर पुनः लङ्कामें ही लौटा लाना ··· ११७५
४९–श्रीरामका सचेत होकर लक्ष्मणके लिये विलाप करना और स्वयं प्राणत्यागका विचार करके वानरोंको लौट जानेकी आज्ञा देना ··· ११७७
५०–विभीषणको इन्द्रजित् समझकर वानरोंका पलायन और सुग्रीवकी आज्ञासे जाम्बवान्‌का उन्हें सान्त्वना देना, विभीषणका विलाप और सुग्रीवका उन्हें समझाना, गरुड़का आना और

श्रीराम-लक्ष्मणका नागपाशसे मुक्त करके चला जाना ११८०

५१–श्रीरामके बन्धनमुक्त होनेका पता पाकर चिन्तित हुए रावणका धूम्राक्षको युद्धके लिये भेजना और सेनासहित धूम्राक्षका नगरसे बाहर आना ११८४

५२–धूम्राक्षका युद्ध और हनुमान्‌जीके द्वारा उसका वध ११८६

५३–वज्रदंष्ट्रका सेनासहित युद्धके लिये प्रस्थान, वानरों और राक्षसोंका युद्ध, वज्रदंष्ट्रद्वारा वानरोंका तथा अङ्गदद्वारा राक्षसोंका संहार ... ११८९

५४–वज्रदंष्ट्र और अङ्गदका युद्ध तथा अङ्गदके हाथसे उस निशाचरका वध ... ११९१

५५–रावणकी आज्ञासे अकम्पन आदि राक्षसोंका युद्धमें आना और वानरोंके साथ उनका घोर युद्ध ११९४

५६–हनुमान्‌जीके द्वारा अकम्पनका वध ... ११९६

५७–प्रहस्तका रावणकी आज्ञासे विशाल सेनासहित युद्धके लिये प्रस्थान ११९८

५८–नीलके द्वारा प्रहस्तका वध ... १२०१

५९–प्रहस्तके मारे जानेसे दुखी हुए रावणका स्वयं ही युद्धके लिये पधारना, उसके साथ आये हुए मुख्य वीरोंका परिचय, रावणकी मारसे सुग्रीवका अचेत होना, लक्ष्मणका युद्धमें आना, हनुमान् और रावणमें थप्पड़ोंकी मार, रावणद्वारा नीलका मूर्च्छित होना, लक्ष्मणका शक्तिके आघातसे मूर्च्छित एवं सचेत होना तथा श्रीरामसे परास्त होकर रावणका लङ्कामें घुस जाना १२०५

६०–अपनी पराजयसे दुखी हुए रावणकी आज्ञासे सोये हुए कुम्भकर्णका जगाया जाना और उसे देखकर वानरोंका भयभीत होना ... १२१७

६१–विभीषणका श्रीरामसे कुम्भकर्णका परिचय देना और श्रीरामकी आज्ञासे वानरोंका युद्धके लिये लङ्काके द्वारोंपर डट जाना ... १२२४

६२–कुम्भकर्णका रावणके भवनमें प्रवेश तथा रावणका रामसे भय बताकर उसे शत्रुसेनाके विनाशके लिये प्रेरित करना ... १२२७

६३–कुम्भकर्णका रावणको उसके कुकृत्योंके लिये उपालम्भ देना और उसे धैर्य बँधाते हुए युद्ध-विषयक उत्साह प्रकट करना ... १२२८

६४–महोदरका कुम्भकर्णके प्रति आक्षेप करके रावणको बिना युद्धके ही अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिका उपाय बताना १२३२

६५–कुम्भकर्णकी रणयात्रा १२३५

६६–कुम्भकर्णके भयसे भागे हुए वानरोंका अङ्गद-द्वारा प्रोत्साहन और आवाहन, कुम्भकर्णद्वारा वानरोंका संहार, पुनः वानर-सेनाका पलायन और अंगदका उसे समझा-बुझाकर लौटाना ... १२३९

६७–कुम्भकर्णका भयंकर युद्ध और श्रीरामके हाथसे उसका वध १२४२

६८–कुम्भकर्णके वधका समाचार सुनकर रावणका विलाप १२५५

६९–रावणके पुत्रों और भाइयोंका युद्धके लिये जाना और नरान्तकका अङ्गदके द्वारा वध ... १२५७

७०–हनुमान्‌जीके द्वारा देवान्तक और त्रिशिराका, नीलके द्वारा महोदरका तथा ऋषभके द्वारा महापार्श्वका वध १२६४

७१–अतिकायका भयंकर युद्ध और लक्ष्मणके द्वारा उसका वध १२६८

७२–रावणकी चिन्ता तथा उसका राक्षसोंको पुरीकी रक्षाके लिये सावधान रहनेका आदेश ... १२७६

७३–इन्द्रजित्‌के ब्रह्मास्त्रसे वानरसेनासहित श्रीराम और लक्ष्मणका मूर्च्छित होना ... १२७८

७४–जाम्बवान्‌के आदेशसे हनुमान्‌जीका हिमालयसे दिव्य ओषधियोंके पर्वतको लाना और उन ओषधियोंकी गन्धसे श्रीराम, लक्ष्मण एवं समस्त वानरोंका पुनः स्वस्थ होना ... १२८५

७५–लङ्कापुरीका दहन तथा राक्षसों और वानरोंका भयंकर युद्ध १२९२

७६–अङ्गदके द्वारा कम्पन और प्रजङ्घका, द्विविदके द्वारा शोणिताक्षका, मैन्दके द्वारा यूपाक्षका और सुग्रीवके द्वारा कुम्भका वध ... १२९७

७७–हनुमान्‌के द्वारा निकुम्भका वध ... १३०२

७८–रावणकी आज्ञासे मकराक्षका युद्धके लिये प्रस्थान १३०४

७९–श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा मकराक्षका वध ... १३०६

८०–रावणकी आज्ञासे इन्द्रजित्‌का घोर युद्ध तथा उसके वधके विषयमें श्रीराम और लक्ष्मणकी बातचीत ... १३०८

८१–इन्द्रजित्‌के द्वारा मायामयी सीताका वध ... १३११

८२–हनुमान्‌जीके नेतृत्वमें वानरों और निशाचरोंका युद्ध, हनुमान्‌जीका श्रीरामके पास लौटना और इन्द्रजित्‌का निकुम्भिला-मन्दिरमें जाकर होम करना १३१४

८३–सीताके मारे जानेकी बात सुनकर श्रीरामका शोकसे मूर्च्छित होना और लक्ष्मणका उन्हें समझाते हुए पुरुषार्थके लिये उद्यत होना १३१६

८४–विभीषणका श्रीरामको इन्द्रजित्‌की मायाका रहस्य बताकर सीताके जीवित होनेका विश्वास

दिखाना और लक्ष्मणको सेनासहित निकुम्भिला-मन्दिरमें भेजनेके लिये अनुरोध करना ··· १३१९
८५–विभीषणके अनुरोधसे श्रीरामचन्द्रजीका लक्ष्मणको इन्द्रजित्के वधके लिये जानेकी आज्ञा देना और सेनासहित लक्ष्मणका निकुम्भिला-मन्दिरके पास पहुँचना ··· १३२१
८६–वानरों और राक्षसोंका युद्ध, हनुमान्जीके द्वारा राक्षससेनाका संहार और उनका इन्द्रजित्को द्वन्द्वयुद्धके लिये ललकारना तथा लक्ष्मणका उसे देखना ··· ··· १३२३
८७–इन्द्रजित् और विभीषणकी रोषपूर्ण बातचीत १३२५
८८–लक्ष्मण और इन्द्रजित्की परस्पर रोषभरी बातचीत और घोर युद्ध ··· १३२७
८९–विभीषणका राक्षसोंपर प्रहार, उनका वानर-यूथपतियोंको प्रोत्साहन देना, लक्ष्मणद्वारा इन्द्रजित्के सारथिका और वानरोंद्वारा उसके घोड़ोंका वध ··· ··· १३३३
९०–इन्द्रजित् और लक्ष्मणका भयंकर युद्ध तथा इन्द्रजित्का वध ··· ··· १३३६
९१–लक्ष्मण और विभीषण आदिका श्रीरामचन्द्रजीके पास आकर इन्द्रजित्के वधका समाचार सुनाना, प्रसन्न हुए श्रीरामके द्वारा लक्ष्मणको हृदयसे लगाकर उनकी प्रशंसा तथा सुषेणद्वारा लक्ष्मण आदिकी चिकित्सा ··· १३४२
९२–रावणका शोक तथा सुपार्श्वके समझानेसे उसका सीता-वधसे निवृत्त होना ··· १३४४
९३–श्रीरामद्वारा राक्षससेनाका संहार ··· १३४८
९४–राक्षसियोंका विलाप ··· ··· १३५१
९५–रावणका अपने मन्त्रियोंको बुलाकर शत्रुवध-विषयक अपना उत्साह प्रकट करना और सबके साथ रणभूमिमें आकर पराक्रम दिखाना १३५३
९६–सुग्रीवद्वारा राक्षससेनाका संहार और विरूपाक्षका वध ··· ··· १३५७
९७–सुग्रीवके साथ महोदरका घोर युद्ध तथा वध १३५९
९८–अंगदके द्वारा महापार्श्वका वध ··· १३६२
९९–श्रीराम और रावणका युद्ध ··· १३६३
१००–राम और रावणका युद्ध, रावणकी शक्तिसे लक्ष्मणका मूर्च्छित होना तथा रावणका युद्धसे भागना ··· ··· १३६६
१०१–श्रीरामका विलाप तथा हनुमान्जीकी लायी हुई ओषधिके सुषेणद्वारा किये गये प्रयोगसे लक्ष्मणका सचेत हो उठना ··· १३७०
१०२–इन्द्रके भेजे हुए रथपर बैठकर श्रीरामका रावणके साथ युद्ध करना ··· १३७४
१०३–श्रीरामका रावणको फटकारना और उनके द्वारा घायल किये गये रावणको सारथिका रणभूमिसे बाहर ले जाना ··· १३७८
१०४–रावणका सारथिको फटकारना और सारथिका अपने उत्तरसे रावणको संतुष्ट करके उसके रथको रणभूमिमें पहुँचाना ··· १३८१
१०५–अगस्त्य मुनिका श्रीरामको विजयके लिये 'आदित्यहृदय' के पाठकी सम्मति देना ··· १३८२
१०६–रावणके रथको देख श्रीरामका मातलिको सावधान करना, रावणकी पराजयके सूचक उत्पातों तथा रामकी विजय सूचित करनेवाले शुभ शकुनोंका वर्णन ··· ··· १३८५
१०७–श्रीराम और रावणका घोर युद्ध ··· १३८८
१०८–श्रीरामके द्वारा रावणका वध ··· १३९२
१०९–विभीषणका विलाप और श्रीरामका उन्हें समझाकर रावणके अन्त्येष्टि-संस्कारके लिये आदेश देना ··· ··· १३९४
११०–रावणकी स्त्रियोंका विलाप ··· १३९६
१११–मन्दोदरीका विलाप तथा रावणके शवका दाह-संस्कार ··· ··· १३९८
११२–विभीषणका राज्याभिषेक और श्रीरघुनाथजीका हनुमान्जीके द्वारा सीताके पास संदेश भेजना ··· ··· १४०५
११३–हनुमान्जीका सीताजीसे बातचीत करके लौटना और उनका संदेश श्रीरामको सुनाना १४०७
११४–श्रीरामकी आज्ञासे विभीषणका सीताको उनके समीप लाना और सीताका प्रियतमके मुख-चन्द्रका दर्शन करना ··· ··· १४११
११५–सीताके चरित्रपर संदेह करके श्रीरामका उन्हें ग्रहण करनेसे इन्कार करना और अन्यत्र जानेके लिये कहना ··· ··· १४१३
११६–सीताका श्रीरामको उपालम्भपूर्ण उत्तर देकर अपने सतीत्वकी परीक्षा देनेके लिये अग्निमें प्रवेश करना ··· ··· १४१५
११७–भगवान् श्रीरामके पास देवताओंका आगमन तथा ब्रह्माद्वारा उनकी भगवत्ताका प्रतिपादन एवं स्तवन ··· १४१७
११८–मूर्तिमान् अग्निदेवका सीताको लेकर चितासे प्रकट होना और श्रीरामको समर्पित करके उनकी पवित्रताको प्रमाणित करना तथा श्रीरामका सीताको सहर्ष स्वीकार करना ··· १४१९

११९–महादेवजीकी आज्ञासे श्रीराम और लक्ष्मणका विमानद्वारा आये हुए राजा दशरथको प्रणाम करना और दशरथका दोनों पुत्रों तथा सीताको आवश्यक संदेश दे इन्द्रलोकको जाना १४२१

१२०–श्रीरामके अनुरोधसे इन्द्रका मरे हुए वानरोंको जीवित करना, देवताओंका प्रस्थान और वानरसेनाका विश्राम … १४२३

१२१–श्रीरामका अयोध्या जानेके लिये उद्यत होना और उनकी आज्ञासे विभीषणका पुष्पकविमानको मँगाना … … १४२५

१२२–श्रीरामकी आज्ञासे विभीषणद्वारा वानरोंका विशेष सत्कार तथा सुग्रीव और विभीषणसहित वानरोंको साथ लेकर श्रीरामका पुष्पकविमानद्वारा अयोध्याको प्रस्थान करना … १४२७

१२३–अयोध्याकी यात्रा करते समय श्रीरामका सीताजीको मार्गके स्थान दिखाना … १४२९

१२४–श्रीरामका भरद्वाज-आश्रमपर उतरकर महर्षिसे मिलना और उनसे वर पाना … १४३२

१२५–हनुमान्‌जीका निषादराज गुह तथा भरतजीको श्रीरामके आगमनकी सूचना देना और प्रसन्न हुए भरतका उन्हें उपहार देनेकी घोषणा करना १४३४

१२६–हनुमान्‌जीका भरतको श्रीराम, लक्ष्मण और सीताके वनवाससम्बन्धी सारे वृत्तान्तोंको सुनाना … … १४३७

१२७–अयोध्यामें श्रीरामके स्वागतकी तैयारी, भरतके साथ सबका श्रीरामकी अगवानीके लिये नन्दिग्राममें पहुँचना, श्रीरामका आगमन, भरत आदिके साथ उनका मिलाप तथा पुष्पक विमानको कुबेरके पास भेजना … १४४१

१२८–भरतका श्रीरामको राज्य लौटाना, श्रीरामकी नगरयात्रा, राज्याभिषेक, वानरोंकी विदाई तथा ग्रन्थका माहात्म्य … … १४४५

(उत्तरकाण्डम्)

१–श्रीरामके दरबारमें महर्षियोंका आगमन, उनके साथ उनकी बातचीत तथा श्रीरामके प्रश्न … १४५३

२–महर्षि अगस्त्यके द्वारा पुलस्त्यके गुण और तपस्याका वर्णन तथा उनसे विश्रवा मुनिकी उत्पत्तिका कथन … … १४५५

३–विश्रवासे वैश्रवण (कुबेर) की उत्पत्ति, उनकी तपस्या, वरप्राप्ति तथा लङ्कामें निवास … १४५८

४–राक्षस-वंशका वर्णन—हेति, विद्युत्केश और सुकेशकी उत्पत्ति … … १४६०

५–सुकेशके पुत्र माल्यवान्, सुमाली और मालीकी संतानोंका वर्णन … … १४६२

६–देवताओंका भगवान् शङ्करकी सलाहसे राक्षसोंके वधके लिये भगवान् विष्णुकी शरणमें जाना और उनसे आश्वासन पाकर लौटना, राक्षसोंका देवताओंपर आक्रमण और भगवान् विष्णुका उनकी सहायताके लिये आना … १४६५

७–भगवान् विष्णुद्वारा राक्षसोंका संहार और पलायन १४६९

८–माल्यवान्‌का युद्ध और पराजय तथा सुमाली आदि सब राक्षसोंका रसातलमें प्रवेश … १४७३

९–रावण आदिका जन्म और उनका तपके लिये गोकर्ण-आश्रममें जाना … … १४७५

१०–रावण आदिकी तपस्या और वर-प्राप्ति … १४७८

११–रावणका संदेश सुनकर पिताकी आज्ञासे कुबेरका लङ्काको छोड़कर कैलासपर जाना, लङ्कामें रावणका राज्याभिषेक तथा राक्षसोंका निवास १४८१

१२–शूर्पणखा तथा रावण आदि तीनों भाइयोंका विवाह और मेघनादका जन्म … १४८४

१३–रावणद्वारा बनवाये गये शयनागारमें कुम्भकर्णका सोना, रावणका अत्याचार, कुबेरका दूत भेजकर उसे समझाना तथा कुपित हुए रावणका उस दूतको मार डालना … १४८६

१४–मन्त्रियोंसहित रावणका यक्षोंपर आक्रमण और उनकी पराजय … … १४८९

१५–माणिभद्र तथा कुबेरकी पराजय और रावणद्वारा पुष्पक विमानका अपहरण … १४९०

✓ १६–नन्दीश्वरका रावणको शाप, भगवान् शङ्करद्वारा रावणका मानभङ्ग तथा उनसे चन्द्रहास नामक खड्गकी प्राप्ति … … १४९३ ✓ 1

१७–रावणसे तिरस्कृत ब्रह्मर्षिकन्या वेदवतीका उसे शाप देकर अग्निमें प्रवेश करना और दूसरे जन्ममें सीताके रूपमें प्रादुर्भूत होना … १४९६ ✓ 2

१८–रावणद्वारा मरुत्तकी पराजय तथा इन्द्र आदि देवताओंका मयूर आदि पक्षियोंको वरदान देना १४९९

१९–रावणके द्वारा अनरण्यका वध तथा उनके द्वारा उसे शापकी प्राप्ति … … १५०१ 3

२०–नारदजीका रावणको समझाना, उनके कहनेसे रावणका युद्धके लिये यमलोकको जाना तथा नारदजीका इस युद्धके विषयमें विचार करना १५०३

२१–रावणका यमलोकपर आक्रमण और उसके द्वारा यमराजके सैनिकोंका संहार … १५०५

२२–यमराज और रावणका युद्ध, यमका रावणके वधके लिये उठाये हुए कालदण्डको ब्रह्माजीके कहनेसे लौटा लेना, विजयी रावणका यमलोकसे प्रस्थान … … १५०८

२३–रावणके द्वारा निवातकवचोंसे मैत्री, कालकेयोंका वध तथा वरुणपुत्रोंकी पराजय ··· १५११

४ २४–रावणद्वारा अपहृत हुई देवता आदिकी कन्याओं और स्त्रियोंका विलाप एवं शाप, रावणका रोती हुई शूर्पणखाको आश्वासन देना और उसे खरके साथ दण्डकारण्यमें भेजना ··· १५१५

२५–यज्ञोंद्वारा मेघनादकी सफलता, विभीषणका रावणको पर-स्त्री-हरणके दोष बताना, कुम्भीनसीको आश्वासन दे मधुको साथ ले रावणका देवलोकपर आक्रमण करना ··· १५१७

५ २६–रावणका रम्भापर बलात्कार करना और नलकूबरका रावणको भयंकर शाप देना ··· १५२०

२७–सेनासहित रावणका इन्द्रलोकपर आक्रमण, इन्द्रकी भगवान् विष्णुसे सहायताके लिये प्रार्थना, भविष्यमें रावण-वधकी प्रतिज्ञा करके विष्णुका इन्द्रको लौटाना, देवताओं और राक्षसोंका युद्ध तथा वसुके द्वारा सुमालीका वध १५२४

२८–मेघनाद और जयन्तका युद्ध, पुलोमाका जयन्तको अन्यत्र ले जाना, देवराज इन्द्रका युद्धभूमिमें पदार्पण, रुद्रों तथा मरुद्गणोंद्वारा राक्षससेनाका संहार और इन्द्र तथा रावणका युद्ध ··· १५२७

२९–रावणका देवसेनाके बीचसे होकर निकलना, देवताओंका उसे कैद करनेके लिये प्रयत्न, मेघनादका मायाद्वारा इन्द्रको बन्दी बनाना तथा विजयी होकर सेनासहित लङ्काको लौटना १५३०

३०–ब्रह्माजीका इन्द्रजित्को वरदान देकर इन्द्रको उसकी कैदसे छुड़ाना और उनके पूर्वकृत पापकर्मको याद दिलाकर उनसे वैष्णव यज्ञका अनुष्ठान करनेके लिये कहना, उस यज्ञको पूर्ण करके इन्द्रका स्वर्गलोकमें जाना ··· १५३३

३१–रावणका माहिष्मती पुरीमें जाना और वहाँके राजा अर्जुनको न पाकर मन्त्रियोंसहित उसका विन्ध्यगिरिके समीप नर्मदामें नहाकर भगवान् शिवकी आराधना करना ··· ··· १५३६

३२–अर्जुनकी भुजाओंसे नर्मदाके प्रवाहका अवरुद्ध होना, रावणके पुष्पोपहारका बह जाना, फिर रावण आदि निशाचरोंका अर्जुनके साथ युद्ध तथा अर्जुनका रावणको कैद करके अपने नगरमें ले जाना ··· ··· १५३९

३३–पुलस्त्यजीका रावणको अर्जुनकी कैदसे छुटकारा दिलाना ··· ··· १५४४

३४–वालीके द्वारा रावणका पराभव तथा रावणका उन्हें अपना मित्र बनाना ··· ··· १५४५

३५–हनुमान्जीकी उत्पत्ति, शैशवावस्थामें इनका सूर्य, राहु और ऐरावतपर आक्रमण, इन्द्रके वज्रसे इनकी मूर्छा, वायुके कोपसे संसारके प्राणियोंको कष्ट और उन्हें प्रसन्न करनेके लिये देवताओंसहित ब्रह्माजीका उनके पास जाना १५४८

३६–ब्रह्मा आदि देवताओंका हनुमान्जीको जीवित करके नाना प्रकारके वरदान देना और वायुका उन्हें लेकर अञ्जनाके घर जाना, ऋषियोंके शापसे हनुमान्जीको अपने बलकी विस्मृति, श्रीरामका अगस्त्य आदि ऋषियोंसे अपने यज्ञमें पधारनेके लिये प्रस्ताव करके उन्हें विदा देना १५५२

३७–श्रीरामका सभासदोंके साथ राजसभामें बैठना १५५६

३८–श्रीरामके द्वारा राजा जनक, युधाजित्, प्रतर्दन तथा अन्य नरेशोंकी विदाई ··· १५५८

३९–राजाओंका श्रीरामके लिये भेंट देना और श्रीरामका वह सब लेकर अपने मित्रों, वानरों, रीछों और राक्षसोंको बाँट देना तथा वानर आदिका वहाँ सुखपूर्वक रहना ··· १५६०

४०–वानरों, रीछों और राक्षसोंकी विदाई ··· १५६२

४१–कुबेरके भेजे हुए पुष्पक विमानका आना और श्रीरामसे पूजित एवं अनुगृहीत होकर अदृश्य हो जाना, भरतके द्वारा श्रीरामराज्यके विलक्षण प्रभावका वर्णन ··· ··· १५६४

✓ ४२–अशोकवनिकामें श्रीराम और सीताका विहार, गर्भिणी सीताका तपोवन देखनेकी इच्छा प्रकट करना और श्रीरामका इसके लिये स्वीकृति देना १५६५

✓ ४३–भद्रका पुरवासियोंके मुखसे सीताके विषयमें सुनी हुई अशुभ चर्चासे श्रीरामको अवगत कराना ··· ··· १५६७

४४–श्रीरामके बुलानेसे सब भाइयोंका उनके पास आना ··· ··· १५६९

✓ ४५–श्रीरामका भाइयोंके समक्ष सर्वत्र फैले हुए लोकापवादकी चर्चा करके सीताको वनमें छोड़ आनेके लिये लक्ष्मणको आदेश देना १५७०

४६–लक्ष्मणका सीताको रथपर बिठाकर उन्हें वनमें छोड़नेके लिये ले जाना और गङ्गाजीके तटपर पहुँचना ··· ··· १५७२

✓ ४७–लक्ष्मणका सीताजीको नावसे गङ्गाजीके उस पार पहुँचाकर बड़े दुःखसे उन्हें उनके त्यागे जानेकी बात बताना ··· ··· १५७४

✓ ४८–सीताका दुःखपूर्ण वचन, श्रीरामके लिये उनका संदेश, लक्ष्मणका जाना और सीताका रोना १५७५

✓ ४९–मुनिकुमारोंसे समाचार पाकर वाल्मीकिका सीताके पास आ उन्हें सान्त्वना देना और आश्रममें लिवा ले जाना १५७७

५०–लक्ष्मण और सुमन्त्रकी बातचीत ··· १५७८

✓ ५१–मार्गमें सुमन्त्रका दुर्वासाके मुखसे सुनी हुई भृगुऋषिके शापकी कथा कहकर तथा भविष्यमें होनेवाली कुछ बातें बताकर दुखी लक्ष्मणको शान्त करना ··· ··· १५८०

✓ ५२–अयोध्याके राजभवनमें पहुँचकर लक्ष्मणका दुखी श्रीरामसे मिलना और उन्हें सान्त्वना देना ··· १५८२

✓ ५३–श्रीरामका कार्यार्थी पुरुषोंकी उपेक्षासे राजा नृगको मिलनेवाली शापकी कथा सुनाकर लक्ष्मणको देखभालके लिये आदेश देना ··· १५८३

✓ ५४–राजा नृगका एक सुन्दर गड्ढा बनवाकर अपने पुत्रको राज्य दे स्वयं उसमें प्रवेश करके शाप भोगना ··· ··· १५८५

✓ ५५–राजा निमि और वसिष्ठका एक दूसरेके शापसे देहत्याग ··· ··· १५८६

✓ ५६–ब्रह्माजीके कहनेसे वसिष्ठका वरुणके वीर्यमें आवेश, वरुणका उर्वशीके समीप एक कुम्भमें अपने वीर्यका आधान तथा मित्रके शापसे उर्वशीका भूतलमें राजा पुरूरवाके पास रहकर पुत्र उत्पन्न करना ··· ··· १५८७

५७–वसिष्ठका नूतन शरीर धारण और निमिका प्राणियोंके नयनोंमें निवास ··· १५८९

५८–ययातिको शुक्राचार्यका शाप ··· १५९१

५९–ययातिका अपने पुत्र पूरुको अपना बुढ़ापा देकर बदलेमें उसका यौवन लेना और भोगोंसे तृप्त होकर पुनः दीर्घकालके बाद उसे उसका यौवन लौटा देना, पूरुका अपने पिताकी गद्दीपर अभिषेक तथा यदुको शाप ··· १५९२

X प्रक्षिप्त सर्ग १–श्रीरामके द्वारपर कार्यार्थी कुत्तेका आगमन और श्रीरामका उसे दरबारमें लानेका आदेश ··· १५९४

२–कुत्तेके प्रति श्रीरामका न्याय, उसकी इच्छाके अनुसार उसे मारनेवाले ब्राह्मणको मठाधीश बना देना और कुत्तेका मठाधीश होनेका दोष बताना १५९६

६०–श्रीरामके दरबारमें च्यवन आदि ऋषियोंका शुभागमन, श्रीरामके द्वारा उनका सत्कार करके उनके अभीष्ट कार्यको पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा तथा ऋषियोंद्वारा उनकी प्रशंसा ··· १५९९

६१–ऋषियोंका मधुको प्राप्त हुए वर तथा लवणासुरके बल और अत्याचारका वर्णन करके उससे प्राप्त होनेवाले भयको दूर करनेके लिये श्रीरघुनाथजीसे प्रार्थना करना ··· १६००

६२–श्रीरामका ऋषियोंसे लवणासुरके आहार-विहारके विषयमें पूछना और शत्रुघ्नकी रुचि जानकर उन्हें लवण-वधके कार्यमें नियुक्त करना १६०२

६३–श्रीरामद्वारा शत्रुघ्नका राज्याभिषेक तथा उन्हें लवणासुरके शूलसे बचनेके उपायका प्रतिपादन ··· ··· १६०३ ✓

६४–श्रीरामकी आज्ञाके अनुसार शत्रुघ्नका सेनाको आगे भेजकर एक मासके पश्चात् स्वयं भी प्रस्थान करना ··· ··· १६०५

६५–महर्षि वाल्मीकिका शत्रुघ्नको सुदासपुत्र कल्माषपादकी कथा सुनाना ··· १६०७

६६–सीताके दो पुत्रोंका जन्म, वाल्मीकिद्वारा उनकी रक्षाकी व्यवस्था और इस समाचारसे प्रसन्न हुए शत्रुघ्नका वहाँसे प्रस्थान करके यमुनातटपर पहुँचना ··· ··· १६०९

६७–च्यवन मुनिका शत्रुघ्नको लवणासुरके शूलकी शक्तिका परिचय देते हुए राजा मान्धाताके वधका प्रसंग सुनाना ··· ··· १६१०

६८–लवणासुरका आहारके लिये निकलना, शत्रुघ्नका मधुपुरीके द्वारपर डट जाना और लौटे हुए लवणासुरके साथ उनकी रोषभरी बातचीत ··· ··· १६१२

६९–शत्रुघ्न और लवणासुरका युद्ध तथा लवणका वध ··· ··· ··· १६१३

७०–देवताओंसे वरदान पा शत्रुघ्नका मधुरापुरीको ✓ बसाकर बारहवें वर्षमें वहाँसे श्रीरामके पास जानेका विचार करना ··· ··· १६१६

७१–शत्रुघ्नका थोड़ेसे सैनिकोंके साथ अयोध्याको प्रस्थान, मार्गमें वाल्मीकिके आश्रममें रामचरितका गान सुनकर उन सबका आश्चर्यचकित होना ··· ··· १६१७

७२–वाल्मीकिजीसे विदा ले शत्रुघ्नजीका अयोध्यामें जाकर श्रीराम आदिसे मिलना और सात दिनोंतक वहाँ रहकर पुनः मधुपुरीको प्रस्थान करना ··· ··· ··· १६१८

✓ ७३–एक ब्राह्मणका अपने मरे हुए बालकको राजद्वारपर लाना तथा राजाको ही दोषी बताकर विलाप करना ··· ··· १६२०

✓ ७४–नारदजीका श्रीरामसे एक तपस्वी शूद्रके अधर्माचरणको ब्राह्मणबालककी मृत्युमें कारण बताना ··· ··· ··· १६२१

७५–श्रीरामका पुष्पक विमानद्वारा अपने राज्यकी सभी दिशाओंमें घूमकर दुष्कर्मका पता लगाना; किंतु सर्वत्र सत्कर्म ही देखकर दक्षिण दिशामें एक शूद्र तपस्वीके पास पहुँचना ··· १६२३
७६–श्रीरामके द्वारा शम्बूकका वध, देवताओंद्वारा उनकी प्रशंसा, अगस्त्याश्रमपर महर्षि अगस्त्यके द्वारा उनका सत्कार और उनके लिये आभूषणदान ··· ··· १६२४
७७–महर्षि अगस्त्यका एक स्वर्गीय पुरुषके शव-भक्षणका प्रसंग सुनाना ··· ··· १६२७
७८–राजा श्वेतका अगस्त्यजीको अपने लिये घृणित आहारकी प्राप्तिका कारण बताते हुए ब्रह्माजीके साथ हुई अपनी वार्ताको उपस्थित करना और उन्हें दिव्य आभूषणका दान दे भूख-प्यासके कष्टसे मुक्त होना ··· १६२९
७९–इक्ष्वाकुपुत्र राजा दण्डका राज्य ··· १६३१
८०–राजा दण्डका भार्गव-कन्याके साथ बलात्कार १६३२
८१–शुक्रके शापसे सपरिवार राजा दण्ड और उनके राज्यका नाश ··· ··· १६३३
८२–श्रीरामका अगस्त्य-आश्रमसे अयोध्यापुरीको लौटना ··· ··· १६३४
८३–भरतके कहनेसे श्रीरामका राजसूय यज्ञ करनेके विचारसे निवृत्त होना ··· १६३६
८४–लक्ष्मणका अश्वमेध यज्ञका प्रस्ताव करते हुए इन्द्र और वृत्रासुरकी कथा सुनाना, वृत्रासुरकी तपस्या और इन्द्रका भगवान् विष्णुसे उसके वधके लिये अनुरोध ··· १६३७
८५–भगवान् विष्णुके तेजका इन्द्र और वज्र आदिमें प्रवेश, इन्द्रके वज्रसे वृत्रासुरका वध तथा ब्रह्महत्याग्रस्त इन्द्रका अन्धकारमय प्रदेशमें जाना ··· १६३८
८६–इन्द्रके बिना जगत्में अशान्ति तथा अश्वमेधके अनुष्ठानसे इन्द्रका ब्रह्महत्यासे मुक्त होना १६४०
८७–श्रीरामका लक्ष्मणको राजा इलकी कथा सुनाना—इलको एक-एक मासतक स्त्रीत्व और पुरुषत्वकी प्राप्ति ··· १६४१
८८–इला और बुधका एक दूसरेको देखना तथा बुधका उन सब स्त्रियोंको किंपुरुषी नाम देकर पर्वतपर रहनेके लिये आदेश देना ··· १६४३
८९–बुध और इलाका समागम तथा पुरूरवाकी उत्पत्ति ··· ··· १६४५
९०–अश्वमेधके अनुष्ठानसे इलाको पुरुषत्वकी प्राप्ति ··· ··· १६४६
९१–श्रीरामके आदेशसे अश्वमेध यज्ञकी तैयारी ··· १६४८
९२–श्रीरामके अश्वमेध यज्ञमें दान-मानकी विशेषता ··· ··· १६४९
९३–श्रीरामके यज्ञमें महर्षि वाल्मीकिका आगमन और उनका रामायणगानके लिये कुश और लवको आदेश ··· ··· १६५१
९४–लवकुशद्वारा रामायणकाव्यका गान तथा श्रीरामका उसे भरी सभामें सुनना ··· १६५२
९५–श्रीरामका सीतासे उनकी शुद्धता प्रमाणित करनेके लिये शपथ करानेका विचार ··· १६५४
९६–महर्षि वाल्मीकिद्वारा सीताकी शुद्धताका समर्थन ··· ··· १६५५
९७–सीताका शपथ-ग्रहण और रसातलमें प्रवेश ··· १६५७
९८–सीताके लिये श्रीरामका खेद, ब्रह्माजीका उन्हें समझाना और उत्तरकाण्डका शेष अंश सुननेके लिये प्रेरित करना ··· ··· १६५८
९९–सीताके रसातल-प्रवेशके पश्चात् श्रीरामकी जीवनचर्या, रामराज्यकी स्थिति तथा माताओंके परलोकगमन आदिका वर्णन ··· १६६०
१००–केकयदेशसे ब्रह्मर्षि गार्ग्यका भेंट लेकर आना और उनके संदेशके अनुसार श्रीरामकी आज्ञासे कुमारोंसहित भरतका गन्धर्व देशपर आक्रमण करनेके लिये प्रस्थान ··· ··· १६६१
१०१–भरतका गन्धर्वोंपर आक्रमण और उनका संहार करके वहाँ दो सुन्दर नगर बसाकर अपने दोनों पुत्रोंको सौंपना और फिर अयोध्याको लौट आना ··· ··· १६६२
१०२–श्रीरामकी आज्ञासे भरत और लक्ष्मणद्वारा कुमार अङ्गद और चन्द्रकेतुकी कारुपथदेशके विभिन्न राज्योंपर नियुक्ति ··· ··· १६६४
१०३–श्रीरामके यहाँ कालका आगमन और एक कठोर शर्तके साथ उनका वार्ताके लिये उद्यत होना ··· १६६५
१०४–कालका श्रीरामचन्द्रजीको ब्रह्माजीका संदेश सुनाना और श्रीरामका उसे स्वीकार करना ··· १६६७
१०५–दुर्वासाके शापके भयसे लक्ष्मणका नियम भङ्ग करके श्रीरामके पास इनके आगमनका समाचार देनेके लिये जाना, श्रीरामका दुर्वासा मुनिको भोजन कराना और उनके चले जानेपर लक्ष्मणके लिये चिन्तित होना ··· ··· १६६८

१०६–श्रीरामके त्याग देनेपर लक्ष्मणका सशरीर स्वर्गगमन १६६९
१०७–वसिष्ठजीके कहनेसे श्रीरामका पुरवासियोंको अपने साथ ले जानेका विचार तथा कुश और लवका राज्याभिषेक करना ... १६७०
१०८–श्रीरामचन्द्रजीका भाइयों, सुग्रीव आदि वानरों तथा रीछोंके साथ परमधाम जानेका निश्चय और विभीषण, हनुमान्, जाम्बवान्, मैन्द एवं द्विविदको इस भूतलपर ही रहनेका आदेश देना १६७२
१०९–परमधाम जानेके लिये निकले हुए श्रीरामके साथ समस्त अयोध्यावासियोंका प्रस्थान ... १६७४
११०–भाइयोंसहित श्रीरामका विष्णुस्वरूपमें प्रवेश तथा साथ आये हुए सब लोगोंको सन्तानक लोककी प्राप्ति १६७६
१११–रामायण काव्यका उपसंहार और इसकी महिमा १६७८

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–अशोकवन-विध्वंसके बाद मारुतिका जयघोष ८४७
२–जानकीजीको वनमें छोड़कर लौटे हुए लक्ष्मणकी श्रीरामसे भेंट १५८२

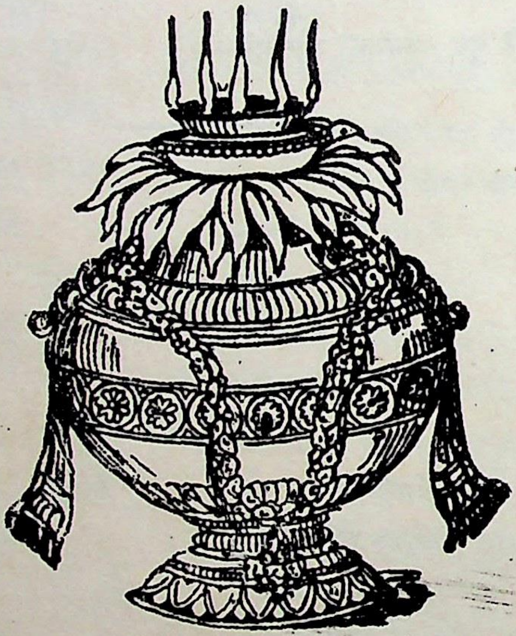

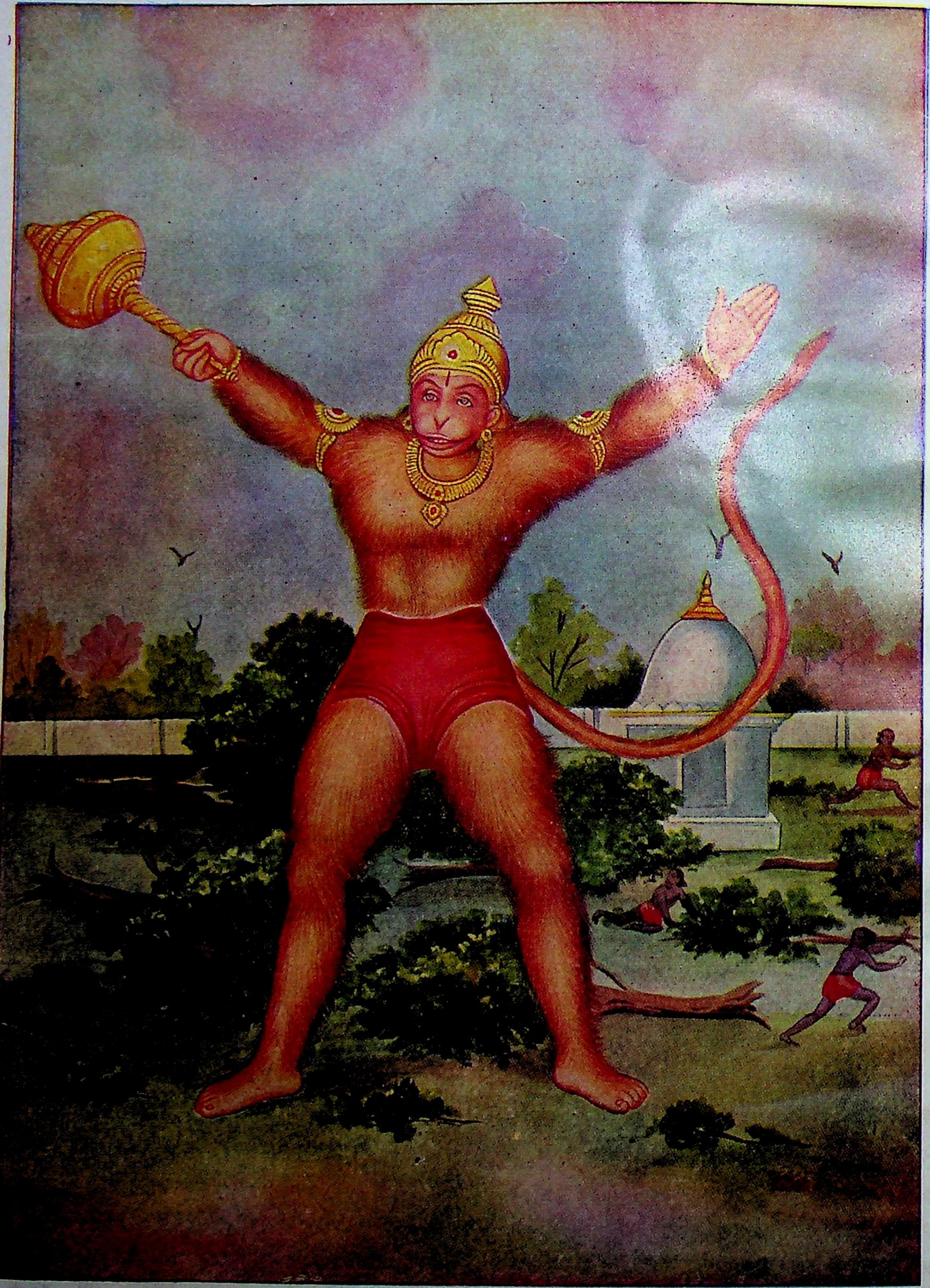

अशोकवन-विध्वंसके बाद मारुतिका जयघोष

रामदेव त्रिपाठी डी० लिट०
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग (बिहार शिक्षा सेवा)
नेतरहाट महाविद्यालय, नेतरहाट, राँची,

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्

सुन्दरकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

हनुमान्‌जीके द्वारा समुद्रका लङ्घन, मैनाकके द्वारा उनका स्वागत, सुरसापर उनकी विजय तथा सिंहिकाका वध करके उनका समुद्रके उस पार पहुँचकर लङ्काकी शोभा देखना

**ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्षणः ।
इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि ॥ १ ॥**

तदनन्तर शत्रुओंका संहार करनेवाले हनुमान्‌जीने रावणद्वारा हरी गयी सीताके निवासस्थानका पता लगानेके लिये उस आकाशमार्गसे जानेका विचार किया, जिसपर चारण (देवजातिविशेष) विचरा करते हैं ॥ १ ॥

**दुष्करं निष्प्रतिद्वन्द्वं चिकीर्षन् कर्म वानरः ।
समुदग्रशिरोग्रीवो गवां पतिरिवाबभौ ॥ २ ॥**

कपिवर हनुमान्‌जी ऐसा कर्म करना चाहते थे, जो दूसरोंके लिये दुष्कर था तथा उस कार्यमें उन्हें किसी औरकी सहायता भी नहीं प्राप्त थी । उन्होंने मस्तक और ग्रीवा ऊँची की । उस समय वे हृष्ट-पुष्ट साँड़के समान प्रतीत होने लगे ॥ २ ॥

**अथ वैदूर्यवर्णेषु शाद्वलेषु महाबलः ।
धीरः सलिलकल्पेषु विचचार यथासुखम् ॥ ३ ॥**

फिर धीर स्वभाववाले वे महाबली पवनकुमार वैदूर्यमणि (नीलम) और समुद्रके जलकी भाँति हरी-हरी घासपर सुखपूर्वक विचरने लगे ॥ ३ ॥

**द्विजान् वित्रासयन् धीमानुरसा पादपान् हरन् ।
मृगांश्च सुबहून् निघ्नन् प्रवृद्ध इव केसरी ॥ ४ ॥**

उस समय बुद्धिमान् हनुमान्‌जी पक्षियोंको त्रास देते, वृक्षोंको वक्षःस्थलके आघातसे धराशायी करते तथा बहुत-से मृगों (वन-जन्तुओं) को कुचलते हुए पराक्रममें बढ़े-चढ़े सिंहके समान शोभा पा रहे थे ॥ ४ ॥

**नीललोहितमाञ्जिष्ठपद्मवर्णैः सितासितैः ।
स्वभावसिद्धैर्विमलैर्धातुभिः समलंकृतम् ॥ ५ ॥**

उस पर्वतका जो तलप्रदेश था, वह पहाड़ोंमें स्वभावसे ही उत्पन्न होनेवाली नीली, लाल, मजीठ और कमलके-से रंगवाली श्वेत तथा श्याम वर्णवाली निर्मल धातुओंसे अच्छी तरह अलंकृत था ॥ ५ ॥

**कामरूपिभिराविष्टमभीक्ष्णं सपरिच्छदैः ।
यक्षकिंनरगन्धर्वैर्देवकल्पैः सपन्नगैः ॥ ६ ॥**

उसपर देवोपम यक्ष, किन्नर, गन्धर्व और नाग, जो इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले थे, निरन्तर परिवारसहित निवास करते थे ॥ ६ ॥

**स तस्य गिरिवर्यस्य तले नागवरायुते ।
तिष्ठन् कपिवरस्तत्र ह्रदे नाग इवाबभौ ॥ ७ ॥**

बड़े-बड़े गजराजोंसे भरे हुए उस पर्वतके समतल प्रदेशमें खड़े हुए कपिवर हनुमान्‌जी वहाँ जलाशयमें स्थित हुए विशालकाय हाथीके समान जान पड़ते थे ॥ ७ ॥

**स सूर्याय महेन्द्राय पवनाय स्वयम्भुवे ।
भूतेभ्यश्चाञ्जलिं कृत्वा चकार गमने मतिम् ॥ ८ ॥**

उन्होंने सूर्य, इन्द्र, पवन, ब्रह्मा और भूतों (देवयोनि-विशेषों) को भी हाथ जोड़कर उस पार जानेका विचार किया ॥ ८ ॥

**अञ्जलिं प्राङ्मुखं कुर्वन् पवनायात्मयोनये ।
ततो हि ववृधे गन्तुं दक्षिणो दक्षिणां दिशम् ॥ ९ ॥**

फिर पूर्वाभिमुख होकर अपने पिता पवनदेवको प्रणाम किया । तत्पश्चात् कार्यकुशल हनुमान्‌जी दक्षिण दिशामें जानेके लिये बढ़ने लगे (अपने शरीरको बढ़ाने लगे) ॥ ९ ॥

**प्लवगप्रवरैर्दृष्टः प्लवने कृतनिश्चयः ।
ववृधे रामवृद्ध्यर्थं समुद्र इव पर्वसु ॥ १० ॥**

बड़े-बड़े वानरोंने देखा जैसे पूर्णिमाके दिन समुद्रमें ज्वार आने लगता है, उसी प्रकार, समुद्र-लङ्घनके लिये दृढ़ निश्चय करनेवाले हनुमान्‌जी श्रीरामकी कार्य-सिद्धिके लिये बढ़ने लगे ॥ १० ॥

**निष्प्रमाणशरीरः सँल्लिलङ्घयिषुरर्णवम् ।
बाहुभ्यां पीडयामास चरणाभ्यां च पर्वतम् ॥ ११ ॥**

समुद्रको लाँघनेकी इच्छासे उन्होंने अपने शरीरको

बेहद बढ़ा लिया और अपनी दोनों भुजाओं तथा चरणोंसे उस पर्वतको दबाया ॥ ११ ॥

स चचालाचलश्चाशु मुहूर्तं कपिपीडितः।
तरूणां पुष्पिताग्राणां सर्वं पुष्पमशातयत् ॥ १२ ॥

कपिवर हनुमान्‌जीके द्वारा दबाये जानेपर तुरंत ही वह पर्वत काँप उठा और दो घड़ीतक डगमगाता रहा। उसके ऊपर जो वृक्ष उगे थे, उनकी डालियोंके अग्रभाग फूलोंसे लदे हुए थे; किंतु उस पर्वतके हिलनेसे उनके वे सारे फूल झड़ गये ॥ १२ ॥

तेन पादपमुक्तेन पुष्पौघेण सुगन्धिना।
सर्वतः संवृतः शैलो बभौ पुष्पमयो यथा ॥ १३ ॥

वृक्षोंसे झड़ी हुई उस सुगन्धित पुष्पराशिके द्वारा सब ओरसे आच्छादित हुआ वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था, मानो वह फूलोंका ही बना हुआ हो ॥ १३ ॥

तेन चोत्तमवीर्येण पीड्यमानः स पर्वतः।
सलिलं सम्प्रसुस्राव मदमत्त इव द्विपः ॥ १४ ॥

महापराक्रमी हनुमान्‌जीके द्वारा दबाया जाता हुआ महेन्द्रपर्वत जलके स्रोत बहाने लगा, मानो कोई मदमत्त गजराज अपने कुम्भस्थलसे मदकी धारा बहा रहा हो ॥ १४ ॥

पीड्यमानस्तु बलिना महेन्द्रस्तेन पर्वतः।
रीतीर्निर्वर्तयामास काञ्चनाञ्जनराजतीः ॥ १५ ॥

बलवान् पवनकुमारके भारसे दबा हुआ महेन्द्रगिरि सुनहरे, रुपहले और काले रंगके जलस्रोत प्रवाहित करने लगा ॥ १५ ॥

मुमोच च शिलाः शैलो विशालाः समनःशिलाः।
मध्यमेनार्चिषा जुष्टो धूमराजीरिवानलः ॥ १६ ॥

इतना ही नहीं, जैसे मध्यम ज्वालासे युक्त अग्नि लगातार धुआँ छोड़ रही हो, उसी प्रकार वह पर्वत मैनसिल-सहित बड़ी-बड़ी शिलाएँ गिराने लगा ॥ १६ ॥

हरिणा पीड्यमानेन पीड्यमानानि सर्वतः।
गुहाविष्टानि सत्त्वानि विनेदुर्विकृतैः स्वरैः ॥ १७ ॥

हनुमान्‌जीके उस पर्वत-पीडनसे पीड़ित होकर वहाँके समस्त जीव गुफाओंमें घुस गये और बुरी तरहसे चिल्लाने लगे ॥ १७ ॥

स महान् सत्त्वसंनादः शैलपीडानिमित्तजः।
पृथिवीं पूरयामास दिशश्चोपवनानि च ॥ १८ ॥

इस प्रकार पर्वतको दबानेके कारण उत्पन्न हुआ वह जीव-जन्तुओंका महान् कोलाहल पृथ्वी, उपवन और सम्पूर्ण दिशाओंमें भर गया ॥ १८ ॥

शिरोभिः पृथुभिर्नागा व्यक्तस्वस्तिकलक्षणैः।
वमन्तः पावकं घोरं ददंशुर्दशनैः शिलाः ॥ १९ ॥

जिनमें स्वस्तिक[1] चिह्न स्पष्ट दिखायी दे रहे थे, उन स्थूल फणोंसे विषकी भयानक आग उगलते हुए बड़े-बड़े सर्प उस पर्वतकी शिलाओंको अपने दाँतोंसे डँसने लगे ॥ १९ ॥

तास्तदा सविषैर्दष्टाः कुपितैस्तैर्महाशिलाः।
जज्वलुः पावकोद्दीप्ता बिभिदुश्च सहस्रधा ॥ २० ॥

क्रोधसे भरे हुए उन विषैले साँपोंके काटनेपर वे बड़ी-बड़ी शिलाएँ इस प्रकार जल उठीं, मानो उनमें आग लग गयी हो। उस समय उन सबके सहस्रों टुकड़े हो गये ॥ २० ॥

यानि त्वौषधजालानि तस्मिञ्जातानि पर्वते।
विषघ्नान्यपि नागानां न शेकुः शमितुं विषम् ॥ २१ ॥

उस पर्वतपर जो बहुत-सी ओषधियाँ उगी हुई थीं, वे विषको नष्ट करनेवाली होनेपर भी उन नागोंके विषको शान्त न कर सकीं ॥ २१ ॥

भिद्यतेऽयं गिरिर्भूतैरिति मत्वा तपस्विनः।
त्रस्ता विद्याधरास्तस्मादुत्पेतुः स्त्रीगणैः सह ॥ २२ ॥

उस समय वहाँ रहनेवाले तपस्वी और विद्याधरोंने समझा कि इस पर्वतको भूतलोग तोड़ रहे हैं, इससे भयभीत होकर वे अपनी स्त्रियोंके साथ वहाँसे ऊपर उठकर अन्तरिक्षमें चले गये ॥ २२ ॥

पानभूमिगतं हित्वा हैममासवभाजनम्।
पात्राणि च महार्हाणि करकांश्च हिरण्मयान् ॥ २३ ॥
लेह्यानुच्चावचान् भक्ष्यान् मांसानि विविधानि च।
आर्षभाणि च चर्माणि खड्गांश्च कनकत्सरून् ॥ २४ ॥
कृतकण्ठगुणाः क्षीबा रक्तमाल्यानुलेपनाः।
रक्ताक्षाः पुष्कराक्षाश्च गगनं प्रतिपेदिरे ॥ ६५ ॥

मधुपानके स्थानमें रक्खे हुए सुवर्णमय आसवपात्र, बहुमूल्य बर्तन, सोनेके कलश, भाँति-भाँतिके भक्ष्य पदार्थ, चटनी, नाना प्रकारके फलोंके गूदे, बैलोंकी खालकी बनी हुई ढालें और सुवर्णजटित मूठवाली तलवारें छोड़कर कण्ठमें माला धारण किये, लाल रंगके फूल और अनुलेपन (चन्दन) लगाये, प्रफुल्ल कमलके सदृश सुन्दर एवं लाल नेत्रवाले वे मतवाले विद्याधरगण भयभीत-से होकर आकाशमें चले गये ॥ २३–२५ ॥

हारनूपुरकेयूरपारिहार्यधराः स्त्रियः।
विस्मिताः सस्मितास्तस्थुराकाशे रमणैः सह ॥ २६ ॥

उनकी स्त्रियाँ गलेमें हार, पैरोंमें नूपुर, भुजाओंमें बाजूबंद और कलाइयोंमें कंगन धारण किये आकाशमें

---

[1] १. साँपके फनोंमें दिखायी देनेवाली नील रेखाको स्वस्तिक कहते हैं।

अपने पतियोंके साथ मन्द-मन्द मुस्कराती हुई चकित-सी खड़ी हो गयीं ॥ २६ ॥

दर्शयन्तो महाविद्यां विद्याधरमहर्षयः ।
सहितास्तस्थुराकाशे वीक्षांचक्रुश्च पर्वतम् ॥ २७ ॥

विद्याधर और महर्षि अपनी महाविद्या (आकाशमें निराधार खड़े होनेकी शक्ति)का परिचय देते हुए अन्तरिक्षमें एक साथ खड़े हो गये और उस पर्वतकी ओर देखने लगे ॥ २७ ॥

शुश्रुवुश्च तदा शब्दमृषीणां भावितात्मनाम् ।
चारणानां च सिद्धानां स्थितानां विमलेऽम्बरे ॥ २८ ॥

उन्होंने उस समय निर्मल आकाशमें खड़े हुए भावितात्मा (पवित्र अन्तःकरणवाले) महर्षियों, चारणों और सिद्धोंकी ये बातें सुनीं—॥ २८ ॥

एष पर्वतसंकाशो हनुमान् मारुतात्मजः ।
तितीर्षति महावेगः समुद्रं वरुणालयम् ॥ २९ ॥

'अहा ! ये पर्वतके समान विशालकाय महान् वेगशाली पवनपुत्र हनुमान्‌जी वरुणालय समुद्रको पार करना चाहते हैं ॥ २९ ॥

रामार्थं वानरार्थं च चिकीर्षन् कर्म दुष्करम् ।
समुद्रस्य परं पारं दुष्प्रापं प्राप्तुमिच्छति ॥ ३० ॥

'श्रीरामचन्द्रजी और वानरोंके कार्यकी सिद्धिके लिये दुष्कर कर्म करनेकी इच्छा रखनेवाले ये पवनकुमार समुद्रके दूसरे तटपर पहुँचना चाहते हैं, जहाँ जाना अत्यन्त कठिन है' ॥ ३० ॥

इति विद्याधरा वाचः श्रुत्वा तेषां तपस्विनाम् ।
तमप्रमेयं ददृशुः पर्वते वानरर्षभम् ॥ ३१ ॥

इस प्रकार विद्याधरोंने उन तपस्वी महात्माओंकी कही हुई ये बातें सुनकर पर्वतके ऊपर अतुलित बलशाली वानरशिरोमणि हनुमान्‌जीको देखा ॥ ३१ ॥

दुधुवे च स रोमाणि चकम्पे चानलोपमः ।
ननाद च महानादं सुमहानिव तोयदः ॥ ३२ ॥

उस समय हनुमान्‌जी अग्निके समान जान पड़ते थे । उन्होंने अपने शरीरको हिलाया और रोएँ झाड़े तथा महान् मेघके समान बड़े जोर-जोरसे गर्जना की ॥ ३२ ॥

आनुपूर्व्या च वृत्तं तल्लाङ्गूलं रोमभिश्चितम् ।
उत्पतिष्यन् विचिक्षेप पक्षिराज इवोरगम् ॥ ३३ ॥

हनुमान्‌जी अब ऊपरको उछलना ही चाहते थे । उन्होंने क्रमशः गोलाकार मुड़ी तथा रोमावलियोंसे भरी हुई अपनी पूँछको उसी प्रकार आकाशमें फेंका, जैसे पक्षिराज गरुड़ सर्पको फेंकते हैं ॥ ३३ ॥

तस्य लाङ्गूलमाविद्धमतिवेगस्य पृष्ठतः ।
ददृशे गरुडेनेव ह्रियमाणो महोरगः ॥ ३४ ॥

अत्यन्त वेगशाली हनुमान्‌जीके पीछे आकाशमें फैली हुई उनकी कुछ-कुछ मुड़ी हुई पूँछ गरुडके द्वारा ले जाये जाते हुए महान् सर्पके समान दिखायी देती थी ॥ ३४ ॥

बाहू संस्तम्भयामास महापरिघसंनिभौ ।
आससाद कपिः कट्यां चरणौ संचुकोच च ॥ ३५ ॥

उन्होंने अपनी विशाल परिघके समान भुजाओंको पर्वतपर जमाया । फिर ऊपरके सब अङ्गोंको इस तरह सिकोड़ लिया कि वे कटिकी सीमामें ही आ गये; साथ ही उन्होंने दोनों पैरोंको भी समेट लिया ॥ ३५ ॥

संहृत्य च भुजौ श्रीमांस्तथैव च शिरोधराम् ।
तेजः सत्त्वं तथा वीर्यमाविवेश स वीर्यवान् ॥ ३६ ॥

तत्पश्चात् तेजस्वी और पराक्रमी हनुमान्‌जीने अपनी दोनों भुजाओं और गर्दनको भी सिकोड़ लिया । इस समय उनमें तेज, बल और पराक्रम—सभीका आवेश हुआ ॥ ३६ ॥

मार्गमालोकयन् दूरादूर्ध्वप्रणिहितेक्षणः ।
रुरोध हृदये प्राणानाकाशमवलोकयन् ॥ ३७ ॥

उन्होंने अपने लंबे मार्गपर दृष्टि दौड़ानेके लिये नेत्रोंको ऊपर उठाया और आकाशकी ओर देखते हुए प्राणोंको हृदयमें रोका ॥ ३७ ॥

पद्भ्यां दृढमवस्थानं कृत्वा स कपिकुञ्जरः ।
निकुञ्च्य कर्णौ हनुमानुत्पतिष्यन् महाबलः ॥ ३८ ॥
वानरान् वानरश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत् ।

इस प्रकार ऊपरको छलाँग मारनेकी तैयारी करते हुए कपिश्रेष्ठ महाबली हनुमान्‌ने अपने पैरोंको अच्छी तरह जमाया और कानोंको सिकोड़कर उन वानरशिरोमणिने अन्य वानरोंसे इस प्रकार कहा—॥ ३८½ ॥

यथा राघवनिर्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः ॥ ३९ ॥
गच्छेत् तद्वद् गमिष्यामि लङ्कां रावणपालिताम् ।

'जैसे श्रीरामचन्द्रजीका छोड़ा हुआ बाण वायुवेगसे चलता है, उसी प्रकार मैं रावणद्वारा पालित लङ्कापुरीमें जाऊँगा ॥ ३९½ ॥

नहि द्रक्ष्यामि यदि तां लङ्कायां जनकात्मजाम् ॥ ४० ॥
अनेनैव हि वेगेन गमिष्यामि सुरालयम् ।

'यदि लङ्कामें जनकनन्दिनी सीताको नहीं देखूँगा तो इसी वेगसे मैं स्वर्गलोकमें चला जाऊँगा ॥ ४०½ ॥

यदि वा त्रिदिवे सीतां न द्रक्ष्यामि कृतश्रमः ॥ ४१ ॥
बद्ध्वा राक्षसराजानमानयिष्यामि रावणम् ।

'इस प्रकार परिश्रम करनेपर यदि मुझे स्वर्गमें भी सीताका दर्शन नहीं होगा तो राक्षसराज रावणको बाँधकर लाऊँगा ॥ ४१½ ॥

सर्वथा कृतकार्योऽहमेष्यामि सह सीतया ॥ ४२ ॥
आनयिष्यामि वा लङ्कां समुत्पाट्य सरावणाम्।

'सर्वथा कृतकृत्य होकर मैं सीताके साथ लौटूँगा अथवा रावणसहित लङ्कापुरीको ही उखाड़कर लाऊँगा' ॥ ४२½ ॥

एवमुक्त्वा तु हनुमान् वानरो वानरोत्तमः ॥ ४३ ॥
उत्पपाताथ वेगेन वेगवानविचारयन्।
सुपर्णमिव चात्मानं मेने स कपिकुञ्जरः ॥ ४४ ॥

ऐसा कहकर वेगशाली वानरप्रवर श्रीहनुमान्‌जीने विघ्न-बाधाओंका कोई विचार न करके बड़े वेगसे ऊपरकी ओर छलाँग मारी। उस समय उन वानरशिरोमणिने अपनेको साक्षात् गरुड़के समान ही समझा ॥ ४३-४४ ॥

समुत्पतति वेगात् तु वेगात् ते नगरोहिणः।
संहृत्य विटपान् सर्वान् समुत्पेतुः समन्ततः ॥ ४५ ॥

जिस समय वे कूदे, उस समय उनके वेगसे आकृष्ट हो पर्वतपर उगे हुए सब वृक्ष उखड़ गये और अपनी सारी डालियोंको समेटकर उनके साथ ही सब ओरसे वेगपूर्वक उड़ चले ॥ ४५ ॥

स मत्तकोयष्टिभकान् पादपान् पुष्पशालिनः।
उद्वहन्नुरुवेगेन जगाम विमलेऽम्बरे ॥ ४६ ॥

वे हनुमान्‌जी मतवाले कोयष्टि आदि पक्षियोंसे युक्त, बहुसंख्यक पुष्पशोभित वृक्षोंको अपने महान् वेगसे ऊपरकी ओर खींचते हुए निर्मल आकाशमें अग्रसर होने लगे ॥ ४६ ॥

ऊरुवेगोत्थिता वृक्षा मुहूर्तं कपिमन्वयुः।
प्रस्थितं दीर्घमध्वानं स्वबन्धुमिव बान्धवाः ॥ ४७ ॥

उनकी जाँघोंके महान् वेगसे ऊपरको उठे हुए वृक्ष एक मुहूर्ततक उनके पीछे-पीछे इस प्रकार गये, जैसे दूर-देशके पथपर जानेवाले अपने भाई-बन्धुको उसके बन्धु-बान्धव पहुँचाने जाते हैं ॥ ४७ ॥

तमूरुवेगोन्मथिताः सालाश्चान्ये नगोत्तमाः।
अनुजग्मुर्हनूमन्तं सैन्या इव महीपतिम् ॥ ४८ ॥

हनुमान्‌जीकी जाँघोंके वेगसे उखड़े हुए साल तथा दूसरे-दूसरे श्रेष्ठ वृक्ष उनके पीछे-पीछे उसी प्रकार चले, जैसे राजाके पीछे उसके सैनिक चलते हैं ॥ ४८ ॥

सुपुष्पिताग्रैर्बहुभिः पादपैरन्वितः कपिः।
हनूमान् पर्वताकारो बभूवाद्भुतदर्शनः ॥ ४९ ॥

जिनकी डालियोंके अग्रभाग फूलोंसे सुशोभित थे, उन बहुतेरे वृक्षोंसे संयुक्त हुए पर्वताकार हनुमान्‌जी अद्भुत शोभासे सम्पन्न दिखायी दिये ॥ ४९ ॥

सारवन्तोऽथ ये वृक्षा न्यमज्जँल्लवणाम्भसि।
भयादिव महेन्द्रस्य पर्वता वरुणालये ॥ ५० ॥

उन वृक्षोंमेंसे जो भारी थे, वे थोड़ी ही देरमें गिरकर क्षारसमुद्रमें डूब गये। ठीक उसी तरह, जैसे कितने ही पंखधारी पर्वत देवराज इन्द्रके भयसे वरुणालयमें निमग्न हो गये थे ॥ ५० ॥

स नानाकुसुमैः कीर्णः कपिः साङ्कुरकोरकैः।
शुशुभे मेघसंकाशः खद्योतैरिव पर्वतः ॥ ५१ ॥

मेघके समान विशालकाय हनुमान्‌जी अपने साथ खींचकर आये हुए वृक्षोंके अङ्कुर और कोरसहित फूलोंसे आच्छादित हो जुगुनुओंकी जगमगाहटसे युक्त पर्वतके समान शोभा पाते थे ॥ ५१ ॥

विमुक्तास्तस्य वेगेन मुक्त्वा पुष्पाणि ते द्रुमाः।
व्यवशीर्यन्त सलिले निवृत्ताः सुहृदो यथा ॥ ५२ ॥

वे वृक्ष जब हनुमान्‌जीके वेगसे मुक्त हो जाते (उनके आकर्षणसे छूट जाते), तब अपने फूल बरसाते हुए इस प्रकार समुद्रके जलमें डूब जाते थे, जैसे सुहृद्‌वर्गके लोग परदेश जानेवाले अपने किसी बन्धुको दूरतक पहुँचाकर लौट आते हैं ॥ ५२ ॥

लघुत्वेनोपपन्नं तद् विचित्रं सागरेऽपतत्।
द्रुमाणां विविधं पुष्पं कपिवायुसमीरितम्।
ताराचितमिवाकाशं प्रबभौ स महार्णवः ॥ ५३ ॥

हनुमान्‌जीके शरीरसे उठी हुई वायुसे प्रेरित हो वृक्षोंके भाँति-भाँतिके पुष्प अत्यन्त हल्के होनेके कारण जब समुद्रमें गिरते थे, तब डूबते नहीं थे। इसलिये उनकी विचित्र शोभा होती थी। उन फूलोंके कारण वह महासागर तारोंसे भरे हुए आकाशके समान सुशोभित होता था ॥ ५३ ॥

पुष्पौघेण सुगन्धेन नानावर्णेन वानरः।
बभौ मेघ इवोद्यन् वै विद्युद्गणविभूषितः ॥ ५४ ॥

अनेक रंगकी सुगन्धित पुष्पराशिसे उपलक्षित वानर-वीर हनुमान्‌जी बिजलीसे सुशोभित होकर उठते हुए मेघके समान जान पड़ते थे ॥ ५४ ॥

तस्य वेगसमुद्धूतैः पुष्पैस्तोयमदृश्यत।
ताराभिरिव रामाभिरुदिताभिरिवाम्बरम् ॥ ५५ ॥

उनके वेगसे झड़े हुए फूलोंके कारण समुद्रका जल उगे हुए रमणीय तारोंसे खचित आकाशके समान दिखायी देता था ॥ ५५ ॥

तस्याम्बरगतौ बाहू ददृशाते प्रसारितौ।
पर्वताग्राद् विनिष्क्रान्तौ पञ्चास्याविव पन्नगौ ॥ ५६ ॥

आकाशमें फैलायी गयी उनकी दोनों भुजाएँ ऐसी दिखायी देती थीं, मानो किसी पर्वतके शिखरसे पाँच फनवाले दो सर्प निकले हुए हों ॥ ५६ ॥

पिबन्निव बभौ चापि सोर्मिजालं महार्णवम्।
पिपासुरिव चाकाशं ददृशे स महाकपिः ॥ ५७ ॥

उस समय महाकपि हनुमान् ऐसे प्रतीत होते थे, मानो तरङ्गमालाओंसहित महासागरको पी रहे हों। वे ऐसे

दिखायी देते थे, मानो आकाशको भी पी जाना चाहते हों ॥ ५७ ॥

तस्य विद्युत्प्रभाकारे वायुमार्गानुसारिणः ।
नयने विप्रकाशेते पर्वतस्थाविवानलौ ॥ ५८ ॥

वायुके मार्गका अनुसरण करनेवाले हनुमान्‌जीके बिजलीकी-सी चमक पैदा करनेवाले दोनों नेत्र ऐसे प्रकाशित हो रहे थे, मानो पर्वतपर दो स्थानोंमें लगे हुए दावानल दहक रहे हों ॥ ५८ ॥

पिङ्गे पिङ्गाक्षमुख्यस्य बृहती परिमण्डले ।
चक्षुषी सम्प्रकाशेते चन्द्रसूर्याविव स्थितौ ॥ ५९ ॥

पिंगल नेत्रवाले वानरोंमें श्रेष्ठ हनुमान्‌जीकी दोनों गोल बड़ी-बड़ी और पीले रंगकी आँखें चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशित हो रही थीं ॥ ५९ ॥

मुखं नासिकया तस्य ताम्रया ताम्रमाबभौ ।
संध्यया समभिस्पृष्टं यथा स्यात् सूर्यमण्डलम् ॥ ६० ॥

लाल-लाल नासिकाके कारण उनका सारा मुँह लाली लिये हुए था, अतः वह संध्याकालसे संयुक्त सूर्यमण्डलके समान सुशोभित होता था ॥ ६० ॥

लाङ्गूलं च समाविद्धं प्लवमानस्य शोभते ।
अम्बरे वायुपुत्रस्य शक्रध्वज इवोच्छ्रितम् ॥ ६१ ॥

आकाशमें तैरते हुए पवनपुत्र हनुमान्‌की उठी हुई टेढ़ी पूँछ इन्द्रकी ऊँची ध्वजाके समान जान पड़ती थी ॥

लाङ्गूलचक्रो हनुमाञ्शुक्लदंष्ट्रोऽनिलात्मजः ।
व्यरोचत महाप्राज्ञः परिवेषीव भास्करः ॥ ६२ ॥

महाबुद्धिमान् पवनपुत्र हनुमान्‌जीकी दाढ़ें सफेद थीं और पूँछ गोलाकार मुड़ी हुई थी। इसलिये वे परिधिसे घिरे हुए सूर्यमण्डलके समान जान पड़ते थे ॥ ६२ ॥

स्फिग्देशेनातिताम्रेण रराज स महाकपिः ।
महता दारितेनेव गिरिर्गैरिकधातुना ॥ ६३ ॥

उनकी कमरके नीचेका भाग बहुत लाल था। इससे वे महाकपि हनुमान् फटे हुए गेरूसे युक्त विशाल पर्वतके समान शोभा पाते थे ॥ ६३ ॥

तस्य वानरसिंहस्य प्लवमानस्य सागरम् ।
कक्षान्तरगतो वायुर्जीमूत इव गर्जति ॥ ६४ ॥

ऊपर-ऊपरसे समुद्रको पार करते हुए वानरसिंह हनुमान्‌की काँखसे होकर निकली हुई वायु बादलके समान गरजती थी ॥ ६४ ॥

खे यथा निपतत्युल्का उत्तरान्ताद् विनिःसृता ।
दृश्यते सानुबन्धा च तथा स कपिकुञ्जरः ॥ ६५ ॥

जैसे ऊपरकी दिशासे प्रकट हुई पुच्छयुक्त उल्का आकाशमें जाती देखी जाती है, उसी प्रकार अपनी पूँछके कारण कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी भी दिखायी देते थे ॥ ६५ ॥

पतत्पतङ्गसंकाशो व्यायतः शुशुभे कपिः ।
प्रवृद्ध इव मातङ्गः कक्ष्यया बध्यमानया ॥ ६६ ॥

चलते हुए सूर्यके समान विशालकाय हनुमान्‌जी अपनी पूँछके कारण ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो कोई बड़ा गजराज अपनी कमरमें बँधी हुई रस्सीसे सुशोभित हो रहा हो ॥ ६६ ॥

उपरिष्टाच्छरीरेण च्छायया चावगाढया ।
सागरे मारुताविष्टा नौरिवासीत् तदा कपिः ॥ ६७ ॥

हनुमान्‌जीका शरीर समुद्रसे ऊपर-ऊपर चल रहा था और उनकी परछाईं जलमें डूबी हुई-सी दिखायी देती थी। इस प्रकार शरीर और परछाईं दोनोंसे उपलक्षित हुए वे कपिवर हनुमान् समुद्रके जलमें पड़ी हुई उस नौकाके समान प्रतीत होते थे, जिसका ऊपरी भाग (पाल) वायुसे परिपूर्ण हो और निम्नभाग समुद्रके जलसे लगा हुआ हो ॥ ६७ ॥

यं यं देशं समुद्रस्य जगाम स महाकपिः ।
स तु तस्याङ्गवेगेन सोन्माद इव लक्ष्यते ॥ ६८ ॥

वे समुद्रके जिस-जिस भागमें जाते थे, वहाँ-वहाँ उनके अङ्गके वेगसे उत्ताल तरङ्गें उठने लगती थीं। अतः वह भाग उन्मत्त (विक्षुब्ध)-सा दिखायी देता था ॥ ६८ ॥

सागरस्योर्मिजालानामुरसा शैलवर्ष्मणाम् ।
अभिघ्नंस्तु महावेगः पुप्लुवे स महाकपिः ॥ ६९ ॥

महान् वेगशाली महाकपि हनुमान् पर्वतोंके समान ऊँची महासागरकी तरङ्गमालाओंको अपनी छातीसे चूर-चूर करते हुए आगे बढ़ रहे थे ॥ ६९ ॥

कपिवातश्च बलवान् मेघवातश्च निर्गतः ।
सागरं भीमनिर्ह्रादं कम्पयामासतुर्भृशम् ॥ ७० ॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌के शरीरसे उठी हुई तथा मेघोंकी घटामें व्याप्त हुई प्रबल वायुने भीषण गर्जना करनेवाले समुद्रमें भारी हलचल मचा दी ॥ ७० ॥

विकर्षन्नूर्मिजालानि बृहन्ति लवणाम्भसि ।
पुप्लुवे कपिशार्दूलो विकिरन्निव रोदसी ॥ ७१ ॥

वे कपिकेसरी अपने प्रचण्ड वेगसे समुद्रमें बहुत-सी ऊँची-ऊँची तरङ्गोंको आकर्षित करते हुए इस प्रकार उड़े जा रहे थे, मानो पृथ्वी और आकाश दोनोंको विक्षुब्ध कर रहे हैं ॥ ७१ ॥

मेरुमन्दरसंकाशानुद्गतान् सुमहार्णवे ।
अत्यक्रामन्महावेगस्तरङ्गान् गणयन्निव ॥ ७२ ॥

वे महान् वेगशाली वानरवीर उस महासमुद्रमें उठी हुई सुमेरु और मन्दराचलके समान उत्ताल तरङ्गोंकी मानो गणना करते हुए आगे बढ़ रहे थे ॥ ७२ ॥

तस्य वेगसमुद्घुष्टं जलं सजलदं तदा ।
अम्बरस्थं विबभ्राजे शरदभ्रमिवाततम् ॥ ७३ ॥

उस समय उनके वेगसे ऊँचे उठकर मेघमण्डलके साथ आकाशमें स्थित हुआ समुद्रका जल शरत्कालके फैले हुए मेघोंके समान जान पड़ता था ॥ ७३ ॥

तिमिनक्रझषाः कूर्मा दृश्यन्ते विवृतास्तदा ।
वस्त्रापकर्षणेनेव शरीराणि शरीरिणाम् ॥ ७४ ॥

जल हट जानेके कारण समुद्रके भीतर रहनेवाले मगर, नाकें, मछलियाँ और कछुए साफ-साफ दिखायी देते थे । जैसे वस्त्र खींच लेनेपर देहधारियोंके शरीर नंगे दीखने लगते हैं ॥ ७४ ॥

क्रममाणं समीक्ष्याथ भुजगाः सागरंगमाः ।
व्योम्नि तं कपिशार्दूलं सुपर्णमिव मेनिरे ॥ ७५ ॥

समुद्रमें विचरनेवाले सर्प आकाशमें जाते हुए कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीको देखकर उन्हें गरुड़के ही समान समझने लगे ॥ ७५ ॥

दशयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता ।
छाया वानरसिंहस्य जवे चारुतराभवत् ॥ ७६ ॥

कपिकेसरी हनुमान्‌जीकी दस योजन चौड़ी और तीस योजन लंबी छाया वेगके कारण अत्यन्त रमणीय जान पड़ती थी ॥ ७६ ॥

श्वेताभ्रघनराजीव वायुपुत्रानुगामिनी ।
तस्य सा शुशुभे छाया पतिता लवणाम्भसि ॥ ७७ ॥

खारे पानीके समुद्रमें पड़ी हुई पवनपुत्र हनुमान्‌का अनुसरण करनेवाली उनकी वह छाया श्वेत बादलोंकी पंक्तिके समान शोभा पाती थी ॥ ७७ ॥

शुशुभे स महातेजा महाकायो महाकपिः ।
वायुमार्गे निरालम्बे पक्षवानिव पर्वतः ॥ ७८ ॥

वे परम तेजस्वी महाकाय महाकपि हनुमान् आलम्बनहीन आकाशमें पंखधारी पर्वतके समान जान पड़ते थे ॥

येनासौ याति बलवान् वेगेन कपिकुञ्जरः ।
तेन मार्गेण सहसा द्रोणीकृत इवार्णवः ॥ ७९ ॥

वे बलवान् कपिश्रेष्ठ जिस मार्गसे वेगपूर्वक निकल जाते थे, उस मार्गसे संयुक्त समुद्र सहसा कठौते या कड़ाहके समान हो जाता था (उनके वेगसे उठी हुई वायुके द्वारा वहाँका जल हट जानेसे वह स्थान कठौते आदिके समान गहरा-सा दिखायी पड़ता था) ॥ ७९ ॥

आपाते पक्षिसङ्घानां पक्षिराज इव व्रजन् ।
हनुमान् मेघजालानि प्रकर्षन् मारुतो यथा ॥ ८० ॥

पक्षी-समूहोंके उड़नेके मार्गमें पक्षिराज गरुड़की भाँति जाते हुए हनुमान् वायुके समान मेघमालाओंको अपनी ओर खींच लेते थे ॥ ८० ॥

पाण्डुरारुणवर्णानि नीलमञ्जिष्ठकानि च ।
कपिनाऽऽकृष्यमाणानि महाभ्राणि चकाशिरे ॥ ८१ ॥

हनुमान्‌जीके द्वारा खींचे जाते हुए वे श्वेत, अरुण, नील और मजीठके-से रंगवाले बड़े-बड़े मेघ वहाँ बड़ी शोभा पाते थे ॥ ८१ ॥

प्रविशन्नभ्रजालानि निष्पतंश्च पुनः पुनः ।
प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च चन्द्रमा इव दृश्यते ॥ ८२ ॥

वे बारंबार बादलोंके समूहमें घुस जाते और बाहर निकल आते थे । इस तरह छिपते और प्रकाशित होते हुए चन्द्रमाके समान दृष्टिगोचर होते थे ॥ ८२ ॥

प्लवमानं तु तं दृष्ट्वा प्लवगं त्वरितं तदा ।
ववृषुस्तत्र पुष्पाणि देवगन्धर्वचारणाः ॥ ८३ ॥

उस समय तीव्रगतिसे आगे बढ़ते हुए वानरवीर हनुमान्‌जीको देखकर देवता, गन्धर्व और चारण उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ८३ ॥

तताप नहि तं सूर्यः प्लवन्तं वानरेश्वरम् ।
सिषेवे च तदा वायू रामकार्यार्थसिद्धये ॥ ८४ ॥

वे श्रीरामचन्द्रजीका कार्य सिद्ध करनेके लिये जा रहे थे, अतः उस समय वेगसे जाते हुए वानरराज हनुमान्‌को सूर्यदेवने ताप नहीं पहुँचाया और वायुदेवने भी उनकी सेवा की ॥ ८४ ॥

ऋषयस्तुष्टुवुश्चैनं प्लवमानं विहायसा ।
जगुश्च देवगन्धर्वाः प्रशंसन्तो वनौकसम् ॥ ८५ ॥

आकाशमार्गसे यात्रा करते हुए वानरवीर हनुमान्‌की ऋषि-मुनि स्तुति करने लगे तथा देवता और गन्धर्व उनकी प्रशंसाके गीत गाने लगे ॥ ८५ ॥

नागाश्च तुष्टुवुर्यक्षा रक्षांसि विविधानि च ।
प्रेक्ष्य सर्वे कपिवरं सहसा विगतक्लमम् ॥ ८६ ॥

उन कपिश्रेष्ठको बिना थकावटके सहसा आगे बढ़ते देख नाग, यक्ष और नाना प्रकारके राक्षस सभी उनकी स्तुति करने लगे ॥ ८६ ॥

तस्मिन् प्लवगशार्दूले प्लवमाने हनूमति ।
इक्ष्वाकुकुलमानार्थी चिन्तयामास सागरः ॥ ८७ ॥

जिस समय कपिकेसरी हनुमान्‌जी उछलकर समुद्र पार कर रहे थे, उस समय इक्ष्वाकुकुलका सम्मान करनेकी इच्छासे समुद्रने विचार किया—॥ ८७ ॥

साहाय्यं वानरेन्द्रस्य यदि नाहं हनूमतः ।
करिष्यामि भविष्यामि सर्ववाच्यो विवक्षताम् ॥ ८८ ॥

'यदि मैं वानरराज हनुमान्‌जीकी सहायता नहीं करूँगा तो बोलनेकी इच्छावाले सभी लोगोंकी दृष्टिमें मैं सर्वथा निन्दनीय हो जाऊँगा ॥ ८८ ॥

अहमिक्ष्वाकुनाथेन सगरेण विवर्धितः ।
इक्ष्वाकुसचिवश्चायं तन्नार्हत्यवसादितुम् ॥ ८९ ॥

'मुझे इक्ष्वाकुकुलके महाराज सगरने बढ़ाया था । इस समय ये हनुमान्‌जी भी इक्ष्वाकुवंशी वीर श्रीरघुनाथजीकी सहायता कर रहे हैं, अतः इन्हें इस यात्रामें किसी प्रकारका कष्ट नहीं होना चाहिये ॥ ८९ ॥

**तथा मया विधातव्यं विश्रमेत यथा कपिः ।
शेषं च मयि विश्रान्तः सुखी सोऽतितरिष्यति ॥ ९० ॥**

'मुझे ऐसा कोई उपाय करना चाहिये, जिससे वानरवीर यहाँ कुछ विश्राम कर लें । मेरे आश्रयमें विश्राम कर लेनेपर मेरे शेष भागको ये सुगमतासे पार कर लेंगे' ॥ ९० ॥

**इति कृत्वा मतिं साध्वीं समुद्रश्छन्नमम्भसि ।
हिरण्यनाभं मैनाकमुवाच गिरिसत्तमम् ॥ ९१ ॥**

यह शुभ विचार करके समुद्रने अपने जलमें छिपे हुए सुवर्णमय गिरिश्रेष्ठ मैनाकसे कहा—॥ ९१ ॥

**त्वमिहासुरसङ्घानां देवराज्ञा महात्मना ।
पातालनिलयानां हि परिघः संनिवेशितः ॥ ९२ ॥**

'शैलप्रवर ! महामना देवराज इन्द्रने तुम्हें यहाँ पातालवासी असुरसमूहोंके निकलनेके मार्गको रोकनेके लिये परिघरूपसे स्थापित किया है ॥ ९२ ॥

**त्वमेषां ज्ञातवीर्याणां पुनरेवोत्पतिष्यताम् ।
पातालस्याप्रमेयस्य द्वारमावृत्य तिष्ठसि ॥ ९३ ॥**

'इन असुरोंका पराक्रम सर्वत्र प्रसिद्ध है । वे फिर पातालसे ऊपरको आना चाहते हैं, अतः उन्हें रोकनेके लिये तुम अप्रमेय पाताललोकके द्वारको बंद करके खड़े हो ॥ ९३ ॥

**तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव शक्तिस्ते शैल वर्धितुम् ।
तस्मात् संचोदयामि त्वामुत्तिष्ठ गिरिसत्तम ॥ ९४ ॥**

'शैल ! ऊपर नीचे और अगल-बगलमें सब ओर बढ़नेकी तुममें शक्ति है । गिरिश्रेष्ठ ! इसीलिये मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम ऊपरकी ओर उठो ॥ ९४ ॥

**स एष कपिशार्दूलस्त्वामुपर्येति वीर्यवान् ।
हनूमान् रामकार्यार्थी भीमकर्मा खमाप्लुतः ॥ ९५ ॥**

'देखो, ये पराक्रमी कपिकेसरी हनुमान् तुम्हारे ऊपर होकर जा रहे हैं । ये बड़ा भयंकर कर्म करनेवाले हैं, इस समय श्रीरामका कार्य सिद्ध करनेके लिये इन्होंने आकाशमें छलाँग मारी है ॥ ९५ ॥

**अस्य साह्यं मया कार्यमिक्ष्वाकुकुलवर्तिनः ।
मम इक्ष्वाकवः पूज्याः परं पूज्यतमास्तव ॥ ९६ ॥**

'ये इक्ष्वाकुवंशी रामके सेवक हैं, अतः मुझे इनकी सहायता करनी चाहिये । इक्ष्वाकुवंशके लोग मेरे पूजनीय हैं और तुम्हारे लिये तो वे परम पूजनीय हैं ॥ ९६ ॥

**कुरु साचिव्यमस्माकं न नः कार्यमतिक्रमेत् ।
कर्तव्यमकृतं कार्यं सतां मन्युमुदीरयेत् ॥ ९७ ॥**

'अतः तुम हमारी सहायता करो । जिससे हमारे कर्तव्य कर्मका (हनुमान्‌जीके सत्कार रूपी कार्यका) अवसर बीत न जाय । यदि कर्तव्यका पालन नहीं किया जाय तो वह सत्पुरुषोंके क्रोधको जगा देता है ॥ ९७ ॥

**सलिलादूर्ध्वमुत्तिष्ठ तिष्ठत्वेष कपिस्त्वयि ।
अस्माकमतिथिश्चैव पूज्यश्च प्लवतां वरः ॥ ९८ ॥**

'इसलिये तुम पानीसे ऊपर उठो, जिससे ये छलाँग मारनेवालोंमें श्रेष्ठ कपिवर हनुमान् तुम्हारे ऊपर कुछ कालतक ठहरें—विश्राम करें । वे हमारे पूजनीय अतिथि भी हैं ॥ ९८ ॥

**चामीकरमहानाभ देवगन्धर्वसेवित ।
हनूमांस्त्वयि विश्रान्तस्ततः शेषं गमिष्यति ॥ ९९ ॥**

'देवताओं और गन्धर्वोंद्वारा सेवित तथा सुवर्णमय विशाल शिखरवाले मैनाक ! तुम्हारे ऊपर विश्राम करनेके पश्चात् हनुमान्‌जी शेष मार्गको सुखपूर्वक तय कर लेंगे ॥ ९९ ॥

**काकुत्स्थस्यानृशंस्यं च मैथिल्याश्च विवासनम् ।
श्रमं च प्लवगेन्द्रस्य समीक्ष्योत्थातुमर्हसि ॥ १०० ॥**

'ककुत्स्थवंशी श्रीरामचन्द्रजीकी दयालुता, मिथिलेशकुमारी सीताका परदेशमें रहनेके लिये विवश होना तथा वानरराज हनुमान्‌का परिश्रम देखकर तुम्हें अवश्य ऊपर उठना चाहिये' ॥ १०० ॥

**हिरण्यगर्भो मैनाको निशम्य लवणाम्भसः ।
उत्पपात जलात् तूर्णं महाद्रुमलतावृतः ॥ १०१ ॥**

यह सुनकर बड़े-बड़े वृक्षों और लताओंसे आवृत सुवर्णमय मैनाक पर्वत तुरंत ही क्षार समुद्रके जलसे ऊपरको उठ गया ॥ १०१ ॥

**स सागरजलं भित्त्वा बभूवात्युच्छ्रितस्तदा ।
यथा जलधरं भित्त्वा दीप्तरश्मिर्दिवाकरः ॥ १०२ ॥**

जैसे उद्दीप्त किरणोंवाले दिवाकर (सूर्य) मेघोंके आवरणको भेदकर उदित होते हैं, उसी प्रकार उस समय महासागरके जलका भेदन करके वह पर्वत बहुत ऊँचा उठ गया ॥ १०२ ॥

**स महात्मा मुहूर्तेन पर्वतः सलिलावृतः ।
दर्शयामास शृङ्गाणि सागरेण नियोजितः ॥ १०३ ॥**

समुद्रकी आज्ञा पाकर जलमें छिपे रहनेवाले उस विशाल काय पर्वतने दो ही घड़ीमें हनुमान्‌जीको अपने शिखरोंका दर्शन कराया ॥ १०३ ॥

**शातकुम्भमयैः शृङ्गैः सकिंनरमहोरगैः ।
आदित्योदयसंकाशैरुल्लिखद्भिरिवाम्बरम् ॥ १०४ ॥**

उस पर्वतके वे शिखर सुवर्णमय थे । उनपर किन्नर और बड़े बड़े नाग निवास करते थे । सूर्योदयके समान तेजःपुञ्जसे विभूषित वे शिखर इतने ऊँचे थे कि आकाशमें रेखा-सी खींच रहे थे ॥ १०४ ॥

**तस्य जाम्बूनदैः शृङ्गैः पर्वतस्य समुत्थितैः ।
आकाशं शस्त्रसंकाशमभवत् काञ्चनप्रभम् ॥ १०५ ॥**

उस पर्वतके उठे हुए सुवर्णमय शिखरोंके कारण [illegible]

समान नील वर्णवाला आकाश सुनहरी प्रभासे उद्भासित होने लगा ॥ १०५ ॥

जातरूपमयैः शृङ्गैर्भ्राजमानैर्महाप्रभैः।
आदित्यशतसंकाशः सोऽभवद् गिरिसत्तमः ॥१०६॥

उन परम कान्तिमान् और तेजस्वी सुवर्णमय शिखरोंसे वह गिरिश्रेष्ठ मैनाक सैकड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान हो रहा था ॥ १०६ ॥

समुत्थितमसङ्गेन हनूमानग्रतः स्थितम्।
मध्ये लवणतोयस्य विघ्नोऽयमिति निश्चितः ॥१०७॥

क्षार समुद्रके बीचमें अविलम्ब उठकर सामने खड़े हुए मैनाकको देखकर हनुमान्‌जीने मन-ही-मन निश्चित किया कि यह कोई विघ्न उपस्थित हुआ है ॥ १०७ ॥

स तमुच्छ्रितमत्यर्थं महावेगो महाकपिः।
उरसा पातयामास जीमूतमिव मारुतः ॥ ॥१०८॥

अतः वायु जैसे बादलको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार महान् वेगशाली महाकपि हनुमान्‌ने बहुत ऊँचे उठे हुए मैनाक पर्वतके उस उच्चतर शिखरको अपनी छातीके धक्केसे नीचे गिरा दिया ॥ १०८ ॥

स तदासादितस्तेन कपिना पर्वतोत्तमः।
बुद्ध्वा तस्य हरेर्वेगं जहर्ष च ननाद च ॥१०९॥

इस प्रकार कपिवर हनुमान्‌जीके द्वारा नीचा देखनेपर उनके उस महान् वेगका अनुभव करके पर्वतश्रेष्ठ मैनाक बड़ा प्रसन्न हुआ और गर्जना करने लगा ॥ १०९ ॥

तमाकाशगतं वीरमाकाशे समुपस्थितः।
प्रीतो हृष्टमना वाक्यमब्रवीत् पर्वतः कपिम् ॥११०॥
मानुषं धारयन् रूपमात्मनः शिखरे स्थितः।

तब आकाशमें स्थित हुए उस पर्वतने आकाशगत वीर वानर हनुमान्‌जीसे प्रसन्नचित्त होकर कहा। वह मनुष्यरूप धारण करके अपने ही शिखरपर स्थित हो इस प्रकार बोला—॥ ११०½ ॥

दुष्करं कृतवान् कर्म त्वमिदं वानरोत्तम ॥१११॥
निपत्य मम शृङ्गेषु सुखं विश्रम्य गम्यताम्।

'वानरशिरोमणे! आपने यह दुष्कर कर्म किया है। अब उतरकर मेरे इन शिखरोंपर सुखपूर्वक विश्राम कर लीजिये, फिर आगेकी यात्रा कीजियेगा ॥ १११½ ॥

राघवस्य कुले जातैरुदधिः परिवर्धितः ॥११२॥
स त्वां रामहिते युक्तं प्रत्यर्चयति सागरः।

'श्रीरघुनाथजीके पूर्वजोंने समुद्रकी वृद्धि की थी, इस समय आप उनका हित करनेमें लगे हैं; अतः समुद्र आपका सत्कार करना चाहता है ॥ ११२½ ॥

कृते च प्रतिकर्तव्यमेष धर्मः सनातनः ॥११३॥
सोऽयं तत्प्रतिकारार्थी त्वत्तः सम्मानमर्हति।

'किसीने उपकार किया हो तो बदलेमें उसका भी उपकार किया जाय—यह सनातन धर्म है। इस दृष्टिसे प्रत्युपकार करनेकी इच्छावाला यह सागर आपसे सम्मान पानेके योग्य है (आप इसका सत्कार ग्रहण करें, इतनेसे ही इसका सम्मान हो जायगा) ॥ ११३½ ॥

त्वन्निमित्तमनेनाहं बहुमानात् प्रचोदितः ॥११४॥
योजनानां शतं चापि कपिरेष खमाप्लुतः।
तव सानुषु विश्रान्तः शेषं प्रक्रमतामिति ॥११५॥

'आपके सत्कारके लिये समुद्रने बड़े आदरसे मुझे नियुक्त किया है और कहा है— 'इन कपिवर हनुमान्‌ने सौ योजन दूर जानेके लिये आकाशमें छलाँग मारी है, अतः कुछ देरतक तुम्हारे शिखरोंपर ये विश्राम कर लें, फिर शेष भागका लङ्घन करेंगे' ॥ ११४-११५ ॥

तिष्ठ त्वं हरिशार्दूल मयि विश्रम्य गम्यताम्।
तदिदं गन्धवत् स्वादु कन्दमूलफलं बहु ॥११६॥
तदास्वाद्य हरिश्रेष्ठ विश्रान्तोऽथ गमिष्यसि।

'अतः कपिश्रेष्ठ! आप कुछ देरतक मेरे ऊपर विश्राम कर लीजिये, फिर जाइयेगा। इस स्थानपर ये बहुत से सुगन्धित और सुस्वादु कन्द, मूल तथा फल हैं। वानरशिरोमणे! इनका आस्वादन करके थोड़ी देरतक सुस्ता लीजिये। उसके बाद आगेकी यात्रा कीजियेगा ॥ ११६½ ॥

अस्माकमपि सम्बन्धः कपिमुख्य त्वयास्ति वै।
प्रख्यातस्त्रिषु लोकेषु महागुणपरिग्रहः ॥११७॥

'कपिवर! आपके साथ हमारा भी कुछ सम्बन्ध है। आप महान् गुणोंका संग्रह करनेवाले और तीनों लोकोंमें विख्यात हैं ॥ ११७ ॥

वेगवन्तः प्लवन्तो ये प्लवगा मारुतात्मज।
तेषां मुख्यतमं मन्ये त्वामहं कपिकुञ्जर ॥११८॥

'कपिश्रेष्ठ पवननन्दन! जो-जो वेगशाली और छलाँग मारनेवाले वानर हैं, उन सबमें मैं आपहीको श्रेष्ठतम मानता हूँ ॥ ११८ ॥

अतिथिः किल पूजार्हः प्राकृतोऽपि विजानता।
धर्मं जिज्ञासमानेन किं पुनर्यादृशो भवान् ॥११९॥

'धर्मकी जिज्ञासा रखनेवाले विज्ञ पुरुषके लिये एक साधारण अतिथि भी निश्चय ही पूजाके योग्य माना गया है। फिर आप-जैसे असाधारण शौर्यशाली पुरुष कितने सम्मानके योग्य हैं, इस विषयमें तो कहना क्या है? ॥११९॥

त्वं हि देववरिष्ठस्य मारुतस्य महात्मनः।
पुत्रस्तस्यैव वेगेन सदृशः कपिकुञ्जर ॥१२०॥

'कपिश्रेष्ठ! आप देवशिरोमणि महात्मा वायुके पुत्र हैं और वेगमें भी उन्हींके समान हैं ॥ १२० ॥

पूजिते त्वयि धर्मज्ञे पूजां प्राप्नोति मारुतः।
तस्मात् त्वं पूजनीयो मे शृणु चाप्यत्र कारणम् ॥१२१॥

'आप धर्मके ज्ञाता हैं। आपकी पूजा होनेपर साक्षात्

वायुदेवका पूजन हो जायगा । इसलिये आप अवश्य ही मेरे पूजनीय हैं । इसमें एक और भी कारण है, उसे सुनिये ॥ १२१ ॥

पूर्वं कृतयुगे तात पर्वताः पक्षिणोऽभवन् ।
तेऽपि जग्मुर्दिशः सर्वा गरुडा इव वेगिनः ॥ १२२ ॥

'तात ! पूर्वकालके सत्ययुगकी बात है । उन दिनों पर्वतोंके भी पंख होते थे । वे भी गरुड़के समान वेगशाली होकर सम्पूर्ण दिशाओंमें उड़ते फिरते थे ॥ १२२ ॥

ततस्तेषु प्रयातेषु देवसङ्घाः सहर्षिभिः ।
भूतानि च भयं जग्मुस्तेषां पतनशङ्कया ॥ १२३ ॥

'उनके इस तरह वेगपूर्वक उड़ने और आने-जानेपर देवता, ऋषि और समस्त प्राणियोंको उनके गिरनेकी आशङ्कासे बड़ा भय होने लगा ॥ १२३ ॥

ततः क्रुद्धः सहस्राक्षः पर्वतानां शतक्रतुः ।
पक्षांश्चिच्छेद वज्रेण ततः शतसहस्रशः ॥ १२४ ॥

'इससे सहस्र नेत्रोंवाले देवराज इन्द्र कुपित हो उठे और उन्होंने अपने वज्रसे लाखों पर्वतोंके पंख काट डाले ॥

स मामुपगतः क्रुद्धो वज्रमुद्यम्य देवराट् ।
ततोऽहं सहसा क्षिप्तः श्वसनेन महात्मना ॥ १२५ ॥

'उस समय कुपित हुए देवराज इन्द्र वज्र उठाये मेरी ओर भी आये, किंतु महात्मा वायुने सहसा मुझे इस समुद्रमें गिरा दिया ॥ १२५ ॥

अस्मिँल्लवणतोये च प्रक्षिप्तः प्लवगोत्तम ।
गुप्तपक्षः समग्रश्च तव पित्राभिरक्षितः ॥ १२६ ॥

'वानरश्रेष्ठ ! इस क्षार समुद्रमें गिराकर आपके पिताने मेरे पंखोंकी रक्षा कर ली और मैं अपने सम्पूर्ण अंशसे सुरक्षित बच गया ॥ १२६ ॥

ततोऽहं मानयामि त्वां मान्योऽसि मम मारुते ।
त्वया ममैष सम्बन्धः कपिमुख्य महागुणः ॥ १२७ ॥

'पवननन्दन ! कपिश्रेष्ठ ! इसीलिये मैं आपका आदर करता हूँ, आप मेरे माननीय हैं । आपके साथ मेरा यह सम्बन्ध महान् गुणोंसे युक्त है ॥ १२७ ॥

अस्मिन्नेवंगते कार्ये सागरस्य ममैव च ।
प्रीतिं प्रीतमनाः कर्तुं त्वमर्हसि महामते ॥ १२८ ॥

'महामते ! इस प्रकार चिरकालके बाद जो यह प्रत्युपकाररूप कार्य (आपके पिताके उपकारका बदला चुकानेका अवसर) प्राप्त हुआ है, इसमें आप प्रसन्नचित्त होकर मेरी और समुद्रकी भी प्रीतिका सम्पादन करें (हमारा आतिथ्य ग्रहण करके हमें संतुष्ट करें) ॥ १२८ ॥

श्रमं मोक्षय पूजां च गृहाण हरिसत्तम ।
प्रीतिं च मम मान्यस्य प्रीतोऽस्मि तव दर्शनात् ॥ १२९ ॥

'वानरशिरोमणे ! आप यहाँ अपनी थकान उतारिये, हमारी पूजा ग्रहण कीजिये और मेरे प्रेमको भी स्वीकार कीजिये । मैं आप-जैसे माननीय पुरुषके दर्शनसे बहुत प्रसन्न हुआ हूँ' ॥ १२९ ॥

एवमुक्तः कपिश्रेष्ठस्तं नगोत्तममब्रवीत् ।
प्रीतोऽस्मि कृतमातिथ्यं मन्युरेषोऽपनीयताम् ॥ १३० ॥

मैनाकके ऐसा कहनेपर कपिश्रेष्ठ हनुमान्जीने उस उत्तम पर्वतसे कहा—'मैनाक ! मुझे भी आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई है । मेरा आतिथ्य हो गया । अब आप अपने मनसे यह दुःख अथवा चिन्ता निकाल दीजिये कि इन्होंने मेरी पूजा ग्रहण नहीं की ॥ १३० ॥

त्वरते कार्यकालो मे अहश्चाप्यतिवर्तते ।
प्रतिज्ञा च मया दत्ता न स्थातव्यमिहान्तरा ॥ १३१ ॥

'मेरे कार्यका समय मुझे बहुत जल्दी करनेके लिये प्रेरित कर रहा है । यह दिन भी बीता जा रहा है । मैंने वानरोंके समीप यह प्रतिज्ञा कर ली है कि मैं यहाँ बीचमें कहीं नहीं ठहर सकता' ॥ १३१ ॥

इत्युक्त्वा पाणिना शैलमालभ्य हरिपुङ्गवः ।
जगामाकाशमाविश्य वीर्यवान् प्रहसन्निव ॥ १३२ ॥

ऐसा कहकर महाबली वानरशिरोमणि हनुमान्ने हँसते हुए-से वहाँ मैनाकका अपने हाथसे स्पर्श किया और आकाशमें ऊपर उठकर चलने लगे ॥ १३२ ॥

स पर्वतसमुद्राभ्यां बहुमानादवेक्षितः ।
पूजितश्चोपपन्नाभिराशीर्भिरभिनन्दितः ॥ १३३ ॥

उस समय पर्वत और समुद्र दोनोंने ही बड़े आदरसे उनकी ओर देखा, उनका सत्कार किया और यथोचित आशीर्वादोंसे उनका अभिनन्दन किया ॥ १३३ ॥

अथोर्ध्वं दूरमागत्य हित्वा शैलमहार्णवौ ।
पितुः पन्थानमासाद्य जगाम विमलेऽम्बरे ॥ १३४ ॥

फिर पर्वत और समुद्रको छोड़कर उनसे दूर ऊपर उठकर अपने पिताके मार्गका आश्रय ले हनुमान्जी निर्मल आकाशमें चलने लगे ॥ १३४ ॥

भूयश्चोर्ध्वं गतिं प्राप्य गिरिं तमवलोकयन् ।
वायुसूनुर्निरालम्बो जगाम कपिकुञ्जरः ॥ १३५ ॥

तत्पश्चात् और भी ऊँचे उठकर उस पर्वतको देखते हुए कपिश्रेष्ठ पवनपुत्र हनुमान्जी बिना किसी आधारके आगे बढ़ने लगे ॥ १३५ ॥

तद् द्वितीयं हनुमतो दृष्ट्वा कर्म सुदुष्करम् ।
प्रशशंसुः सुराः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ १३६ ॥

हनुमान्जीका यह दूसरा अत्यन्त दुष्कर कर्म देखकर सम्पूर्ण देवता, सिद्ध और महर्षिगण उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ १३६ ॥

देवताश्चाभवन् हृष्टास्तत्रस्थास्तस्य कर्मणा ।
काञ्चनस्य सुनाभस्य सहस्राक्षश्च वासवः ॥ १३७ ॥

वहाँ आकाशमें ठहरे हुए देवता तथा सहस्र नेत्रधारी इन्द्र उस सुन्दर मध्य भागवाले सुवर्णमय मैनाक पर्वतके उस कार्यसे बहुत प्रसन्न हुए ॥ १३७ ॥

उवाच वचनं धीमान् परितोषात् सगद्गदम् ।
सुनाभं पर्वतश्रेष्ठं स्वयमेव शचीपतिः ॥ १३८ ॥

उस समय स्वयं बुद्धिमान् शचीपति इन्द्रने अत्यन्त संतुष्ट होकर पर्वतश्रेष्ठ सुनाभ मैनाकसे गद्गद वाणीमें कहा—॥ १३८ ॥

हिरण्यनाभ शैलेन्द्र परितुष्टोऽस्मि ते भृशम् ।
अभयं ते प्रयच्छामि गच्छ सौम्य यथासुखम् ॥ १३९ ॥

'सुवर्णमय शैलराज मैनाक ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ । सौम्य ! तुम्हें अभय दान देता हूँ । तुम सुखपूर्वक जहाँ चाहो, जाओ ॥ १३९ ॥

साह्यं कृतं ते सुमहद् विश्रान्तस्य हनूमतः ।
क्रमतो योजनशतं निर्भयस्य भये सति ॥ १४० ॥

'सौ योजन समुद्रको लाँघते समय जिनके मनमें कोई भय नहीं रहा है, फिर भी जिनके लिये हमारे हृदयमें यह भय था कि पता नहीं इनका क्या होगा ? उन्हीं हनुमान्जीको विश्रामका अवसर देकर तुमने उनकी बहुत बड़ी सहायता की है ॥ १४० ॥

रामस्यैष हितायैव याति दाशरथेः कपिः ।
सत्क्रियां कुर्वता शक्त्या तोषितोऽस्मि दृढं त्वया ॥ १४१ ॥

'ये वानरश्रेष्ठ हनुमान् दशरथनन्दन श्रीरामकी सहायताके लिये ही जा रहे हैं । तुमने यथाशक्ति इनका सत्कार करके मुझे पूर्ण संतोष प्रदान किया है' ॥ १४१ ॥

स तत् प्रहर्षमलभद् विपुलं पर्वतोत्तमः ।
देवतानां पतिं दृष्ट्वा परितुष्टं शतक्रतुम् ॥ १४२ ॥

देवताओंके स्वामी शतक्रतु इन्द्रको संतुष्ट देखकर पर्वतोंमें श्रेष्ठ मैनाकको बड़ा हर्ष प्राप्त हुआ ॥ १४२ ॥

स वै दत्तवरः शैलो बभूवावस्थितस्तदा ।
हनूमांश्च मुहूर्तेन व्यतिचक्राम सागरम् ॥ १४३ ॥

इस प्रकार इन्द्रका दिया हुआ वर पाकर मैनाक उस समय जलमें स्थित हो गया और हनुमान्जी समुद्रके उस प्रदेशको उसी मुहूर्तमें लाँघ गये ॥ १४३ ॥

✓**ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।**
अब्रुवन् सूर्यसंकाशां सुरसां नागमातरम् ॥ १४४ ॥

तब देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षियोंने सूर्यतुल्य तेजस्विनी नागमाता सुरसासे कहा—॥ १४४ ॥

अयं वातात्मजः श्रीमान् प्लवते सागरोपरि ।
हनूमान् नाम तस्य त्वं मुहूर्तं विघ्नमाचर ॥ १४५ ॥

'ये पवननन्दन श्रीमान् हनुमान्जी समुद्रके ऊपर होकर जा रहे हैं । तुम दो घड़ीके लिये इनके मार्गमें विघ्न डाल दो ॥ १४५ ॥

राक्षसं रूपमास्थाय सुघोरं पर्वतोपमम् ।
दंष्ट्राकरालं पिङ्गाक्षं वक्त्रं कृत्वा नभःस्पृशम् ॥ १४६ ॥

'तुम पर्वतके समान अत्यन्त भयंकर राक्षसीका रूप धारण करो । उसमें विकराल दाढ़ें, पीले नेत्र और आकाशको स्पर्श करनेवाला विकट मुँह बनाओ ॥ १४६ ॥

बलमिच्छामहे ज्ञातुं भूयश्चास्य पराक्रमम् ।
त्वां विजेष्यत्युपायेन विषादं वा गमिष्यति ॥ १४७ ॥

'हमलोग पुनः हनुमान्जीके बल और पराक्रमकी परीक्षा लेना चाहते हैं । या तो किसी उपायसे ये तुम्हें जीत लेंगे अथवा विषादमें पड़ जायँगे (इससे इनके बलाबलका ज्ञान हो जायगा)' ॥ १४७ ॥

एवमुक्ता तु सा देवी दैवतैरभिसत्कृता ।
समुद्रमध्ये सुरसा बिभ्रती राक्षसं वपुः ॥ १४८ ॥
विकृतं च विरूपं च सर्वस्य च भयावहम् ।
प्लवमानं हनूमन्तमावृत्येदमुवाच ह ॥ १४९ ॥

देवताओंके सत्कारपूर्वक इस प्रकार कहनेपर देवी सुरसाने समुद्रके बीचमें राक्षसीका रूप धारण किया । उसका वह रूप बड़ा ही विकट, बेडौल और सबके लिये भयावना था । वह समुद्रके पार जाते हुए हनुमान्जीको घेरकर उनसे इस प्रकार बोली—॥ १४८-१४९ ॥

मम भक्ष्यः प्रदिष्टस्त्वमीश्वरैर्वानरर्षभ ।
अहं त्वां भक्षयिष्यामि प्रविशेदं ममाननम् ॥ १५० ॥

'कपिश्रेष्ठ ! देवेश्वरोंने तुम्हें मेरा भक्ष्य बताकर मुझे अर्पित कर दिया है, अतः मैं तुम्हें खाऊँगी । तुम मेरे इस मुँहमें चले आओ ॥ १५० ॥

वर एष पुरा दत्तो मम धात्रेति सत्वरा ।
व्यादाय वक्त्रं विपुलं स्थिता सा मारुतेः पुरः ॥ १५१ ॥

'पूर्वकालमें ब्रह्माजीने मुझे यह वर दिया था ।' ऐसा कहकर वह तुरंत ही अपना विशाल मुँह फैलाकर हनुमान्जीके सामने खड़ी हो गयी ॥ १५१ ॥

एवमुक्तः सुरसया प्रहृष्टवदनोऽब्रवीत् ।
रामो दाशरथिर्नाम प्रविष्टो दण्डकावनम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या चापि भार्यया ॥ १५२ ॥

सुरसाके ऐसा कहनेपर हनुमान्जीने प्रसन्नमुख होकर कहा—'देवि ! दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मण और धर्मपत्नी सीताजीके साथ दण्डकारण्यमें आये थे ॥ १५२ ॥

अन्यकार्यविषक्तस्य बद्धवैरस्य राक्षसैः ।
तस्य सीता हृता भार्या रावणेन यशस्विनी ॥ १५३ ॥

'वहाँ परहित-साधनमें लगे हुए श्रीरामका राक्षसोंके साथ वैर बँध गया । अतः रावणने उनकी यशस्विनी भार्या सीताको हर लिया ॥ १५३ ॥

तस्याः सकाशं दूतोऽहं गमिष्ये रामशासनात्।
कर्तुमर्हसि रामस्य साह्यं विषयवासिनि ॥१५४॥

'मैं श्रीरामकी आज्ञासे उनका दूत बनकर सीताजीके पास जा रहा हूँ। तुम भी श्रीरामके राज्यमें निवास करती हो। अतः तुम्हें उनकी सहायता करनी चाहिये ॥ १५४ ॥

अथवा मैथिलीं दृष्ट्वा रामं चाक्लिष्टकारिणम्। ✓
आगमिष्यामि ते वक्त्रं सत्यं प्रतिशृणोमि ते ॥१५५॥

'अथवा (यदि तुम मुझे खाना ही चाहती हो तो) मैं सीताजीका दर्शन करके अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीसे जब मिल लूँगा, तब तुम्हारे मुखमें आ जाऊँगा—यह तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ' ॥१५५॥

एवमुक्ता हनुमता सुरसा कामरूपिणी।
अब्रवीन्नातिवर्तेन्मां कश्चिदेष वरो मम ॥१५६॥

हनुमान्‌जीके ऐसा कहनेपर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली सुरसा बोली—'मुझे यह वर मिला है कि कोई भी मुझे लाँघकर आगे नहीं जा सकता' ॥ १५६ ॥

तं प्रयान्तं समुद्वीक्ष्य सुरसा वाक्यमब्रवीत्।
बलं जिज्ञासमाना सा नागमाता हनूमतः ॥१५७॥

फिर भी हनुमान्‌जीको जाते देख उनके बलको जाननेकी इच्छा रखनेवाली नागमाता सुरसाने उनसे कहा—॥१५७॥

निविश्य वदनं मेऽद्य गन्तव्यं वानरोत्तम।
वर एष पुरा दत्तो मम धात्रेति सत्वरा ॥१५८॥
व्यादाय विपुलं वक्त्रं स्थिता सा मारुतेः पुरः।

'वानरश्रेष्ठ! आज मेरे मुखमें प्रवेश करके ही तुम्हें आगे जाना चाहिये। पूर्वकालमें विधाताने मुझे ऐसा ही वर दिया था।' ऐसा कहकर सुरसा तुरंत अपना विशाल मुँह फैलाकर हनुमान्‌जीके सामने खड़ी हो गयी ॥ १५८½ ॥

एवमुक्तः सुरसया क्रुद्धो वानरपुंगवः ॥१५९॥
अब्रवीत् कुरु वै वक्त्रं येन मां विषहिष्यसि।
इत्युक्त्वा सुरसां क्रुद्धो दशयोजनमायताम् ॥१६०॥
दशयोजनविस्तारो हनुमानभवत् तदा।
तं दृष्ट्वा मेघसंकाशं दशयोजनमायतम्।
चकार सुरसाप्यास्यं विंशद्योजनमायतम् ॥१६१॥

सुरसाके ऐसा कहनेपर वानरशिरोमणि हनुमान्‌जी कुपित हो उठे और बोले—'तुम अपना मुँह इतना बड़ा बना लो जिससे उसमें मेरा भार सह सको' यों कहकर जब वे मौन हुए, तब सुरसाने अपना मुख दस योजन विस्तृत बना लिया। यह देखकर कुपित हुए हनुमान्‌जी भी तत्काल दस योजन बड़े हो गये। उन्हें मेघके समान दस योजन विस्तृत शरीरसे युक्त हुआ देख सुरसाने भी अपने मुखको बीस योजन बड़ा बना लिया ॥ १५९-१६१ ॥

हनूमांस्तु ततः क्रुद्धस्त्रिंशद्योजनमायतः।
चकार सुरसा वक्त्रं चत्वारिंशत् तथोच्छ्रितम् ॥१६२॥

तब हनुमान्‌जीने क्रुद्ध होकर अपने शरीरको तीस योजन अधिक बढ़ा दिया। फिर तो सुरसाने भी अपने मुँहको चालीस योजन ऊँचा कर लिया ॥ १६२ ॥

बभूव हनुमान् वीरः पञ्चाशद् योजनोच्छ्रितः।
चकार सुरसा वक्त्रं षष्टिं योजनमुच्छ्रितम् ॥१६३॥

यह देख वीर हनुमान् पचास योजन ऊँचे हो गये। तब सुरसाने अपना मुँह साठ योजन ऊँचा बना लिया ॥१६३॥

तदैव हनुमान् वीरः सप्ततिं योजनोच्छ्रितः।
चकार सुरसा वक्त्रमशीतिं योजनोच्छ्रितम् ॥१६४॥

फिर तो वीर हनुमान् उसी क्षण सत्तर योजन ऊँचे हो गये। अब सुरसाने अस्सी योजन ऊँचा मुँह बना लिया ॥

हनूमाननलप्रख्यो नवतिं योजनोच्छ्रितः।
चकार सुरसा वक्त्रं शतयोजनमायतम् ॥१६५॥

तदनन्तर अग्निके समान तेजस्वी हनुमान् नब्बे योजन ऊँचे हो गये। यह देख सुरसाने भी अपने मुँहका विस्तार सौ योजनका कर लिया* ॥ १६५ ॥

तद् दृष्ट्वा व्यादितं त्वास्यं वायुपुत्रः स बुद्धिमान्।
दीर्घजिह्वं सुरसया सुभीमं नरकोपमम् ॥१६६॥
स संक्षिप्यात्मनः कायं जीमूत इव मारुतिः।
तस्मिन् मुहूर्ते हनुमान् बभूवाङ्गुष्ठमात्रकः ॥१६७॥

सुरसाके फैलाये हुए उस विशाल जिह्वासे युक्त और नरकके समान अत्यन्त भयंकर मुँहको देखकर बुद्धिमान् वायुपुत्र हनुमान्‌ने मेघकी भाँति अपने शरीरको संकुचित कर लिया। वे उसी क्षण अंगूठेके बराबर छोटे हो गये ॥१६६-१६७॥

सोऽभिपद्याथ तद्वक्त्रं निष्पत्य च महाबलः।
अन्तरिक्षे स्थितः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥१६८॥

फिर वे महाबली श्रीमान् पवनकुमार सुरसाके उस मुँहमें प्रवेश करके तुरंत निकल आये और आकाशमें खड़े होकर इस प्रकार बोले—॥ १६८ ॥

प्रविष्टोऽस्मि हि ते वक्त्रं दाक्षायणि नमोऽस्तु ते।
गमिष्ये यत्र वैदेही सत्यश्चासीद् वरस्तव ॥१६९॥

'दक्षकुमारी! तुम्हें नमस्कार है। मैं तुम्हारे मुँहमें प्रवेश कर चुका। लो तुम्हारा वर भी सत्य हो गया। अब मैं उस स्थानको जाऊँगा, जहाँ विदेहकुमारी सीता विद्यमान हैं' ॥ १६९ ॥

तं दृष्ट्वा वदनान्मुक्तं चन्द्रं राहुमुखादिव।
अब्रवीत् सुरसा देवी स्वेन रूपेण वानरम् ॥१७०॥

राहुके मुखसे छूटे हुए चन्द्रमाकी भाँति अपने मुखसे

---

* १६२ से लेकर १६५ तकके चार श्लोक कुछ टीकाकारोंने प्रक्षिप्त बताये हैं, किंतु रामायणशिरोमणि नामक टीकामें इनकी व्याख्या उपलब्ध होती है। अतः यहाँ मूलमें इन्हें सम्मिलित कर लिया गया है।

मुक्त हुए हनुमान्‌जीको देखकर सुरसा देवीने अपने असली रूपमें प्रकट होकर उन वानरवीरसे कहा—॥ १७० ॥

अर्थसिद्‍ध्यै हरिश्रेष्ठ गच्छ सौम्य यथासुखम्।
समानय च वैदेहीं राघवेण महात्मना ॥१७१॥

‘कपिश्रेष्ठ ! तुम भगवान् श्रीरामके कार्यकी सिद्धिके लिये सुखपूर्वक जाओ। सौम्य ! विदेहनन्दिनी सीताको महात्मा श्रीरामसे शीघ्र मिलाओ’ ॥ १७१ ॥

तत् तृतीयं हनुमतो दृष्ट्वा कर्म सुदुष्करम्।
साधुसाध्विति भूतानि प्रशशंसुस्तदा हरिम् ॥१७२॥

कपिवर हनुमान्‌जीका यह तीसरा अत्यन्त दुष्कर कर्म देख सब प्राणी वाह-वाह करके उनकी प्रशंसा करने लगे ॥

स सागरमनाधृष्यमभ्येत्य वरुणालयम्।
जगामाकाशमाविश्य वेगेन गरुडोपमः ॥१७३॥

वे वरुणके निवासभूत अलङ्घ्य समुद्रके निकट आकर आकाशका ही आश्रय ले गरुड़के समान वेगसे आगे बढ़ने लगे ॥

सेविते वारिधाराभिः पतगैश्च निषेविते।
चरिते कैशिकाचार्यैरैरावतनिषेविते ॥१७४॥
सिंहकुञ्जरशार्दूलपतगोरगवाहनैः।
विमानैः सम्पतद्भिश्च विमलैः समलंकृते ॥१७५॥
वज्राशनिसमस्पर्शैः पावकैरिव शोभिते।
कृतपुण्यैर्महाभागैः स्वर्गजिद्भिरधिष्ठिते ॥१७६॥
वहता हव्यमत्यन्तं सेविते चित्रभानुना।
ग्रहनक्षत्रचन्द्रार्कतारागणविभूषिते ॥१७७॥
महर्षिगणगन्धर्वनागयक्षसमाकुले।
विविक्ते विमले विश्वे विश्वावसुनिषेविते ॥१७८॥
देवराजगजाक्रान्ते चन्द्रसूर्यपथे शिवे।
विताने जीवलोकस्य वितते ब्रह्मनिर्मिते ॥१७९॥
बहुशः सेविते वीरैर्विद्याधरगणैर्वृते।
जगाम वायुमार्गे च गरुत्मानिव मारुतिः ॥१८०॥

जो जलकी धाराओंसे सेवित, पक्षियोंसे संयुक्त, गानविद्याके आचार्य तुम्बुरु आदि गन्धर्वोंके विचरणका स्थान तथा ऐरावतके आने-जानेका मार्ग है, सिंह, हाथी, बाघ, पक्षी और सर्प आदि वाहनोंसे जुते और उड़ते हुए निर्मल विमान जिसकी शोभा बढ़ाते हैं, जिनका स्पर्श वज्र और अशनिके समान दुःसह तथा तेज अग्निके समान प्रकाशमान है तथा जो स्वर्गलोकपर विजय पा चुके हैं, ऐसे महाभाग पुण्यात्मा पुरुषोंका जो निवासस्थान है, देवताके लिये अधिक मात्रामें हविष्यका भार वहन करनेवाले अग्निदेव जिसका सदा सेवन करते हैं, ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य और तारे आभूषणकी भाँति जिसे सजाते हैं, महर्षियोंके समुदाय, गन्धर्व, नाग और यक्ष जहाँ भरे रहते हैं, जो जगत्‌का आश्रय-स्थान, एकान्त और निर्मल है, गन्धर्वराज विश्वावसु जिसमें निवास करते हैं, देवराज इन्द्रका हाथी जहाँ चलता-फिरता है, जो चन्द्रमा और सूर्यका भी मङ्गलमय मार्ग है, इस जीव-जगत्‌के लिये विमल वितान (चँदोवा) है, साक्षात् परब्रह्म परमात्माने ही जिसकी सृष्टि की है, जो बहुसंख्यक वीरोंसे सेवित और विद्याधरगणोंसे आवृत है, उस वायुपथ आकाशमें पवननन्दन हनुमान्‌जी गरुड़के समान वेगसे चले ॥ १७४—१८० ॥

हनुमान् मेघजालानि प्राकर्षन् मारुतो यथा।
कालागुरुसवर्णानि रक्तपीतसितानि च ॥१८१॥

वायुके समान हनुमान्‌जी अगरके समान काले तथा लाल, पीले और श्वेत बादलोंको खींचते हुए आगे बढ़ने लगे ॥ १८१ ॥

कपिना कृष्यमाणानि महाभ्राणि चकाशिरे।
प्रविशन्नभ्रजालानि निष्पतंश्च पुनः पुनः ॥१८२॥
प्रावृषीन्दुरिवाभाति निष्पतन् प्रविशंस्तदा।

उनके द्वारा खींचे जाते हुए वे बड़े-बड़े बादल अद्भुत शोभा पा रहे थे। वे बारंबार मेघ-समूहोंमें प्रवेश करते और बाहर निकलते थे। उस अवस्थामें बादलोंमें छिपते तथा प्रकट होते हुए वर्षाकालके चन्द्रमाकी भाँति उनकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ १८२½ ॥

प्रदृश्यमानः सर्वत्र हनूमान् मारुतात्मजः ॥१८३॥
भेजेऽम्बरं निरालम्बं पक्षयुक्त इवाद्रिराट्।

सर्वत्र दिखायी देते हुए पवनकुमार हनुमान्‌जी पंखधारी गिरिराजके समान निराधार आकाशका आश्रय लेकर आगे बढ़ रहे थे ॥ १८३½ ॥

प्लवमानं तु तं दृष्ट्वा सिंहिका नाम राक्षसी ॥१८४॥
मनसा चिन्तयामास प्रवृद्धा कामरूपिणी।

इस तरह जाते हुए हनुमान्‌जीको इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली विशालकाया सिंहिका नामवाली राक्षसीने देखा। देखकर वह मन-ही-मन इस प्रकार विचार करने लगी—॥ १८४½ ॥

अद्य दीर्घस्य कालस्य भविष्याम्यहमाशिता ॥१८५॥
इदं मम महासत्त्वं चिरस्य वशमागतम्।

‘आज दीर्घकालके बाद यह विशाल जीव मेरे वशमें आया है। इसे खा लेनेपर बहुत दिनोंके लिये मेरा पेट भर जायगा’ ॥ १८५½ ॥

इति संचिन्त्य मनसा च्छायामस्य समाक्षिपत् ॥१८६॥
छायायां गृह्यमाणायां चिन्तयामास वानरः।
समाक्षिप्तोऽस्मि सहसा पङ्गुकृतपराक्रमः ॥१८७॥
प्रतिलोमेन वातेन महानौरिव सागरे।

अपने हृदयमें ऐसा सोचकर उस राक्षसीने हनुमान्‌जीकी छाया पकड़ ली। छाया पकड़ी जानेपर वानरवीर हनुमान्‌ने

सोचा—‘अहो ! सहसा किसने मुझे पकड़ लिया, इस पकड़के सामने मेरा पराक्रम पङ्गु हो गया है। जैसे प्रतिकूल हवा चलनेपर समुद्रमें जहाजकी गति अवरुद्ध हो जाती है, वैसी ही दशा आज मेरी भी हो गयी है’ ॥ १८६-१८७½ ॥

तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव वीक्षमाणस्तदा कपिः ॥१८८॥
ददर्श स महासत्त्वमुत्थितं लवणाम्भसि।

यही सोचते हुए कपिवर हनुमान्‌ने उस समय अगल-बगलमें, ऊपर और नीचे दृष्टि डाली। इतनेहीमें उन्हें समुद्रके जलके ऊपर उठा हुआ एक विशालकाय प्राणी दिखायी दिया ॥ १८८½ ॥

तद् दृष्ट्वा चिन्तयामास मारुतिर्विकृताननाम् ॥१८९॥
कपिराज्ञा यथाख्यातं सत्त्वमद्भुतदर्शनम्।
छायाग्राहि महावीर्यं तदिदं नात्र संशयः ॥१९०॥

उस विकराल मुखवाली राक्षसीको देखकर पवनकुमार हनुमान् सोचने लगे—वानरराज सुग्रीवने जिस महापराक्रमी छायाग्राही अद्भुत जीवकी चर्चा की थी, वह निःसंदेह यही है ॥ १८९-१९० ॥

स तां बुद्ध्वार्थतत्त्वेन सिंहिकां मतिमान् कपिः।
व्यवर्धत महाकायः प्रावृषीव बलाहकः ॥१९१॥

तब बुद्धिमान् कपिवर हनुमान्‌जीने यह निश्चय करके कि वास्तवमें यही सिंहिका है, वर्षाकालके मेघकी भाँति अपने शरीरको बढ़ाना आरम्भ किया। इस प्रकार वे विशालकाय हो गये ॥ १९१ ॥

तस्य सा कायमुद्वीक्ष्य वर्धमानं महाकपेः।
वक्त्रं प्रसारयामास पातालाम्बरसंनिभम् ॥१९२॥
घनराजीव गर्जन्ती वानरं समभिद्रवत्।

उन महाकपिके शरीरको बढ़ते देख सिंहिकाने अपना मुँह पाताल और आकाशके मध्यभागके समान फैला लिया और मेघोंकी घटाके समान गर्जना करती हुई उन वानरवीरकी ओर दौड़ी ॥ १९२½ ॥

स ददर्श ततस्तस्या विकृतं सुमहन्मुखम् ॥१९३॥
कायमात्रं च मेधावी मर्माणि च महाकपिः।

हनुमान्‌जीने उसका अत्यन्त विकराल और बढ़ा हुआ मुँह देखा। उन्हें अपने शरीरके बराबर ही उसका मुँह दिखायी दिया। उस समय बुद्धिमान् महाकपि हनुमान्‌ने सिंहिकाके मर्मस्थानोंको अपना लक्ष्य बनाया ॥ १९३½ ॥

स तस्या विकृते वक्त्रे वज्रसंहननः कपिः ॥१९४॥
संक्षिप्य मुहुरात्मानं निपपात महाकपिः।

तदनन्तर वज्रोपम शरीरवाले महाकपि पवनकुमार अपने शरीरको संकुचित करके उसके विकराल मुखमें आ गिरे ॥ १९४½ ॥

आस्ये तस्या निमज्जन्तं ददृशुः सिद्धचारणाः ॥१९५॥
ग्रस्यमानं यथा चन्द्रं पूर्णं पर्वणि राहुणा।

उस समय सिद्धों और चारणोंने हनुमान्‌जीको सिंहिकाके मुखमें उसी प्रकार निमग्न होते देखा, जैसे पूर्णिमाकी रातमें पूर्ण चन्द्रमा राहुके ग्रास बन गये हों ॥ १९५½ ॥

ततस्तस्या नखैस्तीक्ष्णैर्मर्माण्युत्कृत्य वानरः ॥१९६॥
उत्पपाताथ वेगेन मनःसम्पातविक्रमः।

मुखमें प्रवेश करके उन वानरवीरने अपने तीखे नखोंसे उस राक्षसीके मर्मस्थानोंको विदीर्ण कर डाला। इसके पश्चात् वे मनके समान गतिसे उछलकर वेगपूर्वक बाहर निकल आये ॥ १९६½ ॥

तां तु दिष्ट्या च धृत्या च दाक्षिण्येन निपात्य सः॥१९७।
कपिप्रवीरो वेगेन ववृधे पुनरात्मवान्।

दैवके अनुग्रह, स्वाभाविक धैर्य तथा कौशलसे उस राक्षसीको मारकर वे मनस्वी वानरवीर पुनः वेगसे बढ़कर बड़े हो गये ॥ १९७½ ॥

हृतहृत्सा हनुमता पपात विधुराम्भसि।
स्वयंभुवैव हनुमान् सृष्टस्तस्या निपातने ॥१९८॥

हनुमान्‌जीने प्राणोंके आश्रयभूत उसके हृदयस्थलको ही नष्ट कर दिया, अतः वह प्राणशून्य होकर समुद्रके जलमें गिर पड़ी। विधाताने ही उसे मार गिरानेके लिये हनुमान्‌जीको निमित्त बनाया था.॥ १९८ ॥

तां हतां वानरेणाशु पतितां वीक्ष्य सिंहिकाम्।
भूतान्याकाशचारीणि तमूचुः प्लवगोत्तमम् ॥१९९॥

उन वानरवीरके द्वारा शीघ्र ही मारी जाकर सिंहिका जलमें गिर पड़ी। यह देख आकाशमें विचरनेवाले प्राणी उन कपिश्रेष्ठसे बोले—॥ १९९ ॥

भीममद्य कृतं कर्म महत्सत्त्वं त्वया हतम्।
साधयार्थमभिप्रेतमरिष्टं प्लवतां वर ॥२००॥

‘कपिवर ! तुमने यह बड़ा ही भयंकर कर्म किया है, जो इस विशालकाय प्राणीको मार गिराया है। अब तुम बिना किसी विघ्न-बाधाके अपना अभीष्ट कार्य सिद्ध करो ॥ २०० ॥

यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव। ✓
धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति ॥२०१॥

‘वानरेन्द्र ! जिस पुरुषमें तुम्हारे समान धैर्य, सूझ, बुद्धि और कुशलता—ये चार गुण होते हैं, उसे अपने कार्यमें कभी असफलता नहीं होती’ ॥ २०१ ॥

स तैः सम्पूजितः पूज्यः प्रतिपन्नप्रयोजनैः।
जगामाकाशमाविश्य पन्नगाशनवत् कपिः ॥२०२॥

इस प्रकार अपना प्रयोजन सिद्ध हो जानेसे उन आकाश-

चारी प्राणियोंने हनुमान्‌जीका बड़ा सत्कार किया। इसके बाद वे आकाशमें चढ़कर गरुड़के समान वेगसे चलने लगे ॥ २०२ ॥

प्राप्तभूयिष्ठपारस्तु सर्वतः परिलोकयन् ।
योजनानां शतस्यान्ते वनराजीं ददर्श सः ॥२०३॥

सौ योजनके अन्तमें प्रायः समुद्रके पार पहुँचकर जब उन्होंने सब ओर दृष्टि डाली, तब उन्हें एक हरी-भरी वन-श्रेणी दिखायी दी ॥ २०३ ॥

ददर्श च पतन्नेव विविधद्रुमभूषितम् ।
द्वीपं शाखामृगश्रेष्ठो मलयोपवनानि च ॥२०४॥

आकाशमें उड़ते हुए ही शाखामृगोंमें श्रेष्ठ हनुमान्‌जीने भाँति-भाँतिके वृक्षोंसे सुशोभित लङ्का नामक द्वीप देखा। उत्तर तटकी भाँति समुद्रके दक्षिण तटपर भी मलय नामक पर्वत और उसके उपवन दिखायी दिये ॥ २०४ ॥

सागरं सागरानूपान् सागरानूपजान् द्रुमान् ।
सागरस्य च पत्नीनां मुखान्यपि विलोकयत् ॥२०५॥

समुद्र, सागरतटवर्ती जलप्राय देश तथा वहाँ उगे हुए वृक्ष एवं सागरपत्नी सरिताओंके मुहानोंको भी उन्होंने देखा ॥ २०५ ॥

स महामेघसंकाशं समीक्ष्यात्मानमात्मवान् ।
निरुन्धन्तमिवाकाशं चकार मतिमान् मतिम् ॥२०६॥

मनको वशमें रखनेवाले बुद्धिमान् हनुमान्‌जीने अपने शरीरको महान् मेघोंकी घटाके समान विशाल तथा आकाशको अवरुद्ध करता-सा देख मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया—॥ २०६ ॥

कायवृद्धिं प्रवेगं च मम दृष्ट्वैव राक्षसाः ।
मयि कौतूहलं कुर्युरिति मेने महामतिः ॥२०७॥

'अहो! मेरे शरीरकी विशालता तथा मेरा यह तीव्र वेग देखते ही राक्षसोंके मनमें मेरे प्रति बड़ा कौतूहल होगा—वे मेरा भेद जाननेके लिये उत्सुक हो जायँगे।' परम बुद्धिमान् हनुमान्‌जीके मनमें यह धारणा पक्की हो गयी ॥ २०७ ॥

ततः शरीरं संक्षिप्य तन्महीधरसंनिभम् ।
पुनः प्रकृतिमापेदे वीतमोह इवात्मवान् ॥२०८॥

मनस्वी हनुमान् अपने पर्वताकार शरीरको संकुचित करके पुनः अपने वास्तविक स्वरूपमें स्थित हो गये। ठीक उसी तरह, जैसे मनको वशमें रखनेवाला मोहरहित पुरुष अपने मूल स्वरूपमें प्रतिष्ठित होता है ॥ २०८ ॥

तद्रूपमतिसंक्षिप्य हनूमान् प्रकृतौ स्थितः ।
त्रीन् क्रमानिव विक्रम्य बलिवीर्यहरो हरिः ॥२०९॥

जैसे बलिके पराक्रमसम्बन्धी अभिमानको हर लेनेवाले श्रीहरिने विराट्‌रूपसे तीन पग चलकर तीनों लोकोंको नाप लेनेके पश्चात् अपने उस स्वरूपको समेट लिया था, उसी प्रकार हनुमान्‌जी समुद्रको लाँघ जानेके बाद अपने उस विशाल रूपको संकुचित करके अपने वास्तविक स्वरूपमें स्थित हो गये ॥ २०९ ॥

स चारुनानाविधरूपधारी
परं समासाद्य समुद्रतीरम् ।
परैरशक्यं प्रतिपन्नरूपः
समीक्षितात्मा समवेक्षितार्थः ॥२१०॥

हनुमान्‌जी बड़े ही सुन्दर और नाना प्रकारके रूप धारण कर लेते थे। उन्होंने समुद्रके दूसरे तटपर, जहाँ दूसरोंका पहुँचना असम्भव था, पहुँचकर अपने विशाल शरीरकी ओर दृष्टिपात किया। फिर अपने कर्तव्यका विचार करके छोटा-सा रूप धारण कर लिया ॥ २१० ॥

ततः स लम्बस्य गिरेः समृद्धे
विचित्रकूटे निपपात कूटे ।
सकेतकोद्दालकनारिकेले
महाभ्रकूटप्रतिमो महात्मा ॥२११॥

महान् मेघ-समूहके समान शरीरवाले महात्मा हनुमान्‌जी केवड़े, लसोड़े और नारियलके वृक्षोंसे विभूषित लम्बपर्वतके विचित्र लघु शिखरोंवाले महान् समृद्धिशाली शृङ्गपर कूद पड़े ॥ २११ ॥

ततस्तु सम्प्राप्य समुद्रतीरं
समीक्ष्य लङ्कां गिरिवर्यमूर्ध्नि ।
कपिस्तु तस्मिन् निपपात पर्वते
विधूय रूपं व्यथयन्मृगद्विजान् ॥२१२॥

तदनन्तर समुद्रके तटपर पहुँचकर वहाँसे उन्होंने एक श्रेष्ठ पर्वतके शिखरपर बसी हुई लङ्काको देखा। देखकर अपने पहले रूपको तिरोहित करके वे वानरवीर वहाँके पशु-पक्षियोंको व्यथित करते हुए उसी पर्वतपर उतर पड़े ॥ २१२ ॥

स सागरं दानवपन्नगायुतं
बलेन विक्रम्य महोर्मिमालिनम् ।
निपत्य तीरे च महोदधेस्तदा
ददर्श लङ्काममरावतीमिव ॥२१३॥

इस प्रकार दानवों और सर्पोंसे भरे हुए तथा बड़ी-बड़ी उत्ताल तरङ्गमालाओंसे अलंकृत महासागरको बलपूर्वक लाँघकर वे उसके तटपर उतर गये और अमरावतीके समान सुशोभित लङ्कापुरीकी शोभा देखने लगे ॥ २१३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें पहला सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

लङ्कापुरीका वर्णन, उसमें प्रवेश करनेके विषयमें हनुमान्‌जीका विचार, उनका लघुरूपसे पुरीमें प्रवेश तथा चन्द्रोदयका वर्णन

स सागरमनाधृष्यमतिक्रम्य महाबलः।
त्रिकूटस्य तटे लङ्कां स्थितः स्वस्थो ददर्श ह ॥ १ ॥

महाबली हनुमान्‌जी अलङ्घनीय समुद्रको पार करके त्रिकूट (लम्ब) नामक पर्वतके शिखरपर स्वस्थ भावसे खड़े हो लङ्कापुरीकी शोभा देखने लगे ॥ १ ॥

ततः पादपमुक्तेन पुष्पवर्षेण वीर्यवान्।
अभिवृष्टस्ततस्तत्र बभौ पुष्पमयो हरिः ॥ २ ॥

उस समय उनके ऊपर वहाँ वृक्षोंसे झड़े हुए फूलोंकी वर्षा होने लगी। इससे वहाँ बैठे हुए पराक्रमी हनुमान् फूलके बने हुए वानरके समान प्रतीत होने लगे ॥ २ ॥

योजनानां शतं श्रीमांस्तीर्त्वाप्युत्तमविक्रमः।
अनिःश्वसन् कपिस्तत्र न ग्लानिमधिगच्छति ॥ ३ ॥

उत्तम पराक्रमी श्रीमान् वानरवीर हनुमान् सौ योजन समुद्र लाँघकर भी वहाँ लंबी साँस नहीं खींच रहे थे और न ग्लानिका ही अनुभव करते थे ॥ ३ ॥

शतान्यहं योजनानां क्रमेयं सुबहून्यपि।
किं पुनः सागरस्यान्तं संख्यातं शतयोजनम् ॥ ४ ॥

उलटे वे यह सोचते थे, मैं सौ-सौ योजनोंके बहुत-से समुद्र लाँघ सकता हूँ; फिर इस गिने-गिनाये सौ योजन समुद्रको पार करना कौन बड़ी बात है ? ॥ ४ ॥

स तु वीर्यवतां श्रेष्ठः प्लवतामपि चोत्तमः।
जगाम वेगवाँल्लङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम् ॥ ५ ॥

बलवानोंमें श्रेष्ठ तथा वानरोंमें उत्तम वे वेगवान् पवनकुमार महासागरको लाँघकर शीघ्र ही लङ्कामें जा पहुँचे ॥ ५ ॥

शाद्वलानि च नीलानि गन्धवन्ति वनानि च।
मधुमन्ति च मध्येन जगाम नगवन्ति च ॥ ६ ॥

रास्तेमें हरी-हरी दूब और वृक्षोंसे भरे हुए मकरन्दपूर्ण सुगन्धित वन देखते हुए वे मध्यमार्गसे जा रहे थे ॥ ६ ॥

शैलांश्च तरुसंछन्नान् वनराजीश्च पुष्पिताः।
अभिचक्राम तेजस्वी हनूमान् प्लवगर्षभः ॥ ७ ॥

तेजस्वी वानरशिरोमणि हनुमान् वृक्षोंसे आच्छादित पर्वतों और फूलोंसे भरी हुई वन-श्रेणियोंमें विचरने लगे ॥ ७ ॥

स तस्मिन्नचले तिष्ठन् वनान्युपवनानि च।
स नगाग्रे स्थितां लङ्कां ददर्श पवनात्मजः ॥ ८ ॥

उस पर्वतपर स्थित हो पवनपुत्र हनुमान्‌ने बहुत-से वन और उपवन देखे तथा उस पर्वतके अग्रभागमें बसी हुई लङ्काका भी अवलोकन किया ॥ ८ ॥

सरलान् कर्णिकारांश्च खर्जूरांश्च सुपुष्पितान्।
प्रियालान् मुचुलिन्दांश्च कुटजान् केतकानपि ॥ ९ ॥
प्रियङ्गून् गन्धपूर्णांश्च नीपान् सप्तच्छदांस्तथा।
असनान् कोविदारांश्च करवीरांश्च पुष्पितान् ॥ १० ॥
पुष्पभारनिबद्धांश्च तथा मुकुलितानपि।
पादपान् विहगाकीर्णान् पवनाधूतमस्तकान् ॥ ११ ॥

उन कपिश्रेष्ठने वहाँ सरल (चीड़), कनेर, खिले हुए खजूर, प्रियाल (चिरौंजी), मुचुलिन्द (जम्बीरी नीबू), कुटज, केतक (केवड़े), सुगन्धपूर्ण प्रियङ्गु (पिप्पली), नीप (कदम्ब या अशोक), छितवन, असन, कोविदार तथा खिले हुए करवीर भी देखे। फूलोंके भारसे लदे हुए तथा मुकुलित (अधखिले) बहुत-से वृक्ष उन्हें दृष्टिगोचर हुए, जिनमें पक्षी भरे हुए थे और हवाके झोंकेसे जिनकी डालियाँ झूम रही थीं ॥ ९—११ ॥

हंसकारण्डवाकीर्णा वापीः पद्मोत्पलावृताः।
आक्रीडान् विविधान् रम्यान् विविधांश्च जलाशयान्॥

हंसों और कारण्डवोंसे व्याप्त तथा कमल और उत्पलसे आच्छादित हुई बहुत-सी बावड़ियाँ, भाँति-भाँतिके रमणीय क्रीडास्थान तथा नाना प्रकारके जलाशय उनके दृष्टिपथमें आये ॥ १२ ॥

संततान् विविधैर्वृक्षैः सर्वर्तुफलपुष्पितैः।
उद्यानानि च रम्याणि ददर्श कपिकुञ्जरः ॥ १३ ॥

उन जलाशयोंके चारों ओर सभी ऋतुओंमें फल-फूल देनेवाले अनेक प्रकारके वृक्ष फैले हुए थे। उन वानरशिरोमणिने वहाँ बहुत-से रमणीय उद्यान भी देखे ॥ १३ ॥

समासाद्य च लक्ष्मीवाँल्लङ्कां रावणपालिताम्।
परिखाभिः सपद्माभिः सोत्पलाभिरलंकृताम् ॥ १४ ॥
सीतापहरणात् तेन रावणेन सुरक्षिताम्।
समन्ताद् विचरद्भिश्च राक्षसैरुग्रधन्वभिः ॥ १५ ॥

अद्भुत शोभासे सम्पन्न हनुमान्‌जी धीरे-धीरे रावणपालित लङ्कापुरीके पास पहुँचे। उसके चारों ओर खुदी हुई खाइयाँ उस नगरीकी शोभा बढ़ा रही थीं। उनमें उत्पल और पद्म आदि कई जातियोंके कमल खिले थे। सीताको हर लानेके कारण रावणने लङ्कापुरीकी रक्षाका विशेष प्रबन्ध कर रक्खा था। उसके चारों ओर भयंकर धनुष धारण करनेवाले राक्षस घूमते रहते थे ॥ १४-१५ ॥

काञ्चनेनावृतां रम्यां प्राकारेण महापुरीम्।
गृहैश्च गिरिसंकाशैः शारदाम्बुदसंनिभैः ॥ १६ ॥

वह महापुरी सोनेकी चहारदीवारीसे घिरी हुई थी तथा पर्वतके समान ऊँचे और शरद्-ऋतुके बादलोंके समान श्वेत भवनोंसे भरी हुई थी ॥ १६ ॥

पाण्डुराभिः प्रतोलीभिरुच्चाभिरभिसंवृताम्।
अट्टालकशताकीर्णां पताकाध्वजशोभिताम् ॥ १७ ॥

श्वेत रंगकी ऊँची-ऊँची सड़कें उस पुरीको सब ओरसे घेरे हुए थीं। सैकड़ों अट्टालिकाएँ वहाँ शोभा पा रही थीं तथा फहराती हुई ध्वजा-पताकाएँ उस नगरीकी शोभा बढ़ा रही थीं ॥ १७ ॥

तोरणैः काञ्चनैर्दिव्यैर्लतापङ्क्तिविराजितैः।
ददर्श हनुमाँल्लङ्कां देवो देवपुरीमिव ॥ १८ ॥

उसके बाहरी फाटक सोनेके बने हुए थे और उनकी दीवारें लता-वेलोंके चित्रसे सुशोभित थीं। हनुमान्‌जीने उन फाटकोंसे सुशोभित लङ्काको उसी प्रकार देखा, जैसे कोई देवता देवपुरीका निरीक्षण कर रहा हो ॥ १८ ॥

गिरिमूर्ध्नि स्थितां लङ्कां पाण्डुरैर्भवनैः शुभैः।
ददर्श स कपिः श्रीमान् पुरीमाकाशगामिव ॥ १९ ॥

तेजस्वी कपि हनुमान्‌ने सुन्दर शुभ्र सदनोंसे सुशोभित और पर्वतके शिखरपर स्थित लङ्काको इस तरह देखा, मानो वह आकाशमें विचरनेवाली नगरी हो ॥ १९ ॥

पालितां राक्षसेन्द्रेण निर्मितां विश्वकर्मणा।
प्लवमानामिवाकाशे ददर्श हनुमान् कपिः ॥ २० ॥

कपिवर हनुमान्‌ने विश्वकर्माद्वारा निर्मित तथा राक्षसराज रावणद्वारा सुरक्षित उस पुरीको आकाशमें तैरती-सी देखा ॥ २० ॥

वप्रप्राकारजघनां विपुलाम्बुवनाम्बराम्।
शतघ्नीशूलकेशान्तामट्टालकावतंसकाम् ॥ २१ ॥
मनसेव कृतां लङ्कां निर्मितां विश्वकर्मणा।

विश्वकर्माकी बनायी हुई लङ्का मानो उनके मानसिक संकल्पसे रची गयी एक सुन्दरी स्त्री थी। चहारदीवारी और उसके भीतरकी वेदी उसकी जघनस्थली जान पड़ती थीं, समुद्रका विशाल जलराशि और वन उसके वस्त्र थे, शतघ्नी और शूल नामक अस्त्र ही उसके केश थे और बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ उसके लिये कर्णभूषण-सी प्रतीत हो रही थीं ॥ २१½ ॥

द्वारमुत्तरमासाद्य चिन्तयामास वानरः ॥ २२ ॥
कैलासनिलयप्रख्यमालिखन्तमिवाम्बरम्।
ध्रियमाणमिवाकाशमुच्छ्रितैर्भवनोत्तमैः ॥ २३ ॥

उस पुरीके उत्तर द्वारपर पहुँचकर वानरवीर हनुमान्‌जी चिन्तामें पड़ गये। वह द्वार कैलास पर्वतपर बसी हुई अलकापुरीके बहिर्द्वारके समान ऊँचा था और आकाशमें रेखा-सी खींचता जान पड़ता था। ऐसा जान पड़ता था मानो अपने ऊँचे-ऊँचे प्रासादोंपर आकाशको उठा रक्खा है ॥ २२-२३ ॥

सम्पूर्णां राक्षसैर्घोरैर्नागैर्भोगवतीमिव।
अचिन्त्यां सुकृतां स्पष्टां कुबेराध्युषितां पुरा ॥ २४ ॥
दंष्ट्रिभिर्बहुभिः शूरैः शूलपट्टिशपाणिभिः।
रक्षितां राक्षसैर्घोरैर्गुहामाशीविषैरिव ॥ २५ ॥

लङ्कापुरी भयानक राक्षसोंसे उसी तरह भरी थी, जैसे पातालकी भोगवतीपुरी नागोंसे भरी रहती है। उसकी निर्माणकला अचिन्त्य थी। उसकी रचना सुन्दर ढंगसे की गयी थी। वह हनुमान्‌जीको स्पष्ट दिखायी देती थी। पूर्वकालमें साक्षात् कुबेर वहाँ निवास करते थे। हाथोंमें शूल और पट्टिश लिये बड़ी-बड़ी दाढ़ोंवाले बहुत-से शूरवीर घोर राक्षस लङ्कापुरीकी उसी प्रकार रक्षा करते थे, जैसे विषधर सर्प अपनी पुरीकी करते हैं ॥ २४-२५ ॥

तस्याश्च महतीं गुप्तिं सागरं च निरीक्ष्य सः।
रावणं च रिपुं घोरं चिन्तयामास वानरः ॥ २६ ॥

उस नगरकी बड़ी भारी चौकसी, उसके चारों ओर समुद्रकी खाई तथा रावण-जैसे भयंकर शत्रुको देखकर हनुमान्‌जी इस प्रकार विचारने लगे—॥ २६ ॥

✓**आगत्यापीह हरयो भविष्यन्ति निरर्थकाः।**
नहि युद्धेन वै लङ्का शक्या जेतुं सुरैरपि ॥ २७ ॥

'यदि वानर यहाँतक आ जायँ तो भी वे व्यर्थ ही सिद्ध होंगे; क्योंकि युद्धके द्वारा देवता भी लङ्कापर विजय नहीं पा सकते ॥ २७ ॥

✓**इमां त्वविषमां लङ्कां दुर्गां रावणपालिताम्।**
प्राप्यापि सुमहाबाहुः किं करिष्यति राघवः ॥ २८ ॥

'जिससे बढ़कर विषम (संकटपूर्ण) स्थान और कोई नहीं है, उस रावणपालित इस दुर्गम लङ्कामें आकर महाबाहु श्रीरघुनाथजी भी क्या करेंगे? ॥ २८ ॥

अवकाशो न साम्नस्तु राक्षसेष्वभिगम्यते।
न दानस्य न भेदस्य नैव युद्धस्य दृश्यते ॥ २९ ॥

'राक्षसोंपर सामनीतिके प्रयोगके लिये तो कोई गुंजाइश ही नहीं है। इनपर दान, भेद और युद्ध (दण्ड) नीतिका प्रयोग भी सफल होता नहीं दिखायी देता ॥ २९ ॥

चतुर्णामेव हि गतिर्वानराणां तरस्विनाम्।
वालिपुत्रस्य नीलस्य मम राज्ञश्च धीमतः ॥ ३० ॥ ✓

'यहाँ चार ही वेगशाली वानरोंकी पहुँच हो सकती है—वालिपुत्र अङ्गदकी, नीलकी, मेरी और बुद्धिमान् राजा सुग्रीवकी ॥ ३० ॥

यावज्जानामि वैदेहीं यदि जीवति वा न वा ।
तत्रैव चिन्तयिष्यामि दृष्ट्वा तां जनकात्मजाम् ॥ ३१ ॥

'अच्छा, पहले यह तो पता लगाऊँ कि विदेहकुमारी सीता जीवित हैं या नहीं । जनककिशोरीका दर्शन करनेके पश्चात् ही मैं इस विषयमें कोई विचार करूँगा' ॥ ३१ ॥

ततः स चिन्तयामास मुहूर्तं कपिकुञ्जरः ।
गिरेः शृङ्गे स्थितस्तस्मिन् रामस्याभ्युदयं ततः ॥ ३२ ॥

तदनन्तर उस पर्वतशिखरपर खड़े हुए कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी श्रीरामचन्द्रजीके अभ्युदयके लिये सीताजीका पता लगानेके उपायपर दो घड़ीतक विचार करते रहे ॥ ३२ ॥

अनेन रूपेण मया न शक्या रक्षसां पुरी ।
प्रवेष्टुं राक्षसैर्गुप्ता क्रूरैर्बलसमन्वितैः ॥ ३३ ॥

उन्होंने सोचा—'मैं इस रूपसे राक्षसोंकी इस नगरीमें प्रवेश नहीं कर सकता; क्योंकि बहुत-से क्रूर और बलवान् राक्षस इसकी रक्षा कर रहे हैं ॥ ३३ ॥

महौजसो महावीर्या बलवन्तश्च राक्षसाः ।
वञ्चनीया मया सर्वे जानकीं परिमार्गता ॥ ३४ ॥

'जानकीकी खोज करते समय मुझे अपनेको छिपानेके लिये यहाँके सभी महातेजस्वी महापराक्रमी और बलवान् राक्षसोंसे आँख बचानी होगी ॥ ३४ ॥

लक्ष्यालक्ष्येण रूपेण रात्रौ लङ्कापुरी मया ।
प्राप्तकालं प्रवेष्टुं मे कृत्यं साधयितुं महत् ॥ ३५ ॥

'अतः मुझे रात्रिके समय ही नगरमें प्रवेश करना चाहिये और सीताका अन्वेषणरूप यह महान् समयोचित कार्य सिद्ध करनेके लिये ऐसे रूपका आश्रय लेना चाहिये, जो आँखसे देखा न जा सके । केवल कार्यसे यह अनुमान हो कि कोई आया था' ॥ ३५ ॥

तां पुरीं तादृशीं दृष्ट्वा दुराधर्षां सुरासुरैः ।
हनूमांश्चिन्तयामास विनिःश्वस्य मुहुर्मुहुः ॥ ३६ ॥

देवताओं और असुरोंके लिये भी दुर्जय वैसी लङ्कापुरीको देखकर हनुमान्‌जी बारंबार लंबी साँस खींचते हुए यों विचार करने लगे—॥ ३६ ॥

केनोपायेन पश्येयं मैथिलीं जनकात्मजाम् ।
अदृष्टो राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ॥ ३७ ॥

'किस उपायसे काम लूँ, जिससे दुरात्मा राक्षसराज रावणकी दृष्टिसे ओझल रहकर मैं मिथिलेशनन्दिनी जनककिशोरी सीताका दर्शन प्राप्त कर सकूँ ॥ ३७ ॥

न विनश्येत् कथं कार्यं रामस्य विदितात्मनः ।
एकामेकस्तु पश्येयं रहिते जनकात्मजाम् ॥ ३८ ॥

'किस रीतिसे कार्य किया जाय, जिससे जगद्विख्यात श्रीरामचन्द्रजीका काम भी न बिगड़े और मैं एकान्तमें अकेली जानकीजीसे भेंट भी कर लूँ ॥ ३८ ॥

भूताश्चार्था विनश्यन्ति देशकालविरोधिताः ।
विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ॥ ३९ ॥

'कई बार कातर अथवा अविवेकपूर्ण कार्य करनेवाले दूतके हाथमें पड़कर देश और कालके विपरीत व्यवहार होनेके कारण बने-बनाये काम भी उसी तरह बिगड़ जाते हैं, जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार नष्ट हो जाता है ॥ ३९ ॥

अर्थानर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चितापि न शोभते ।
घातयन्तीह कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः ॥ ४० ॥

'राजा और मन्त्रियोंके द्वारा निश्चित किया हुआ कर्तव्याकर्तव्यविषयक विचार भी किसी अविवेकी दूतका आश्रय लेनेसे शोभा (सफलता) नहीं पाता है । अपनेको पण्डित माननेवाले अविवेकी दूत सारा काम ही चौपट कर देते हैं ॥ ४० ॥

न विनश्येत् कथं कार्यं वैक्लव्यं न कथं भवेत् ।
लङ्घनं च समुद्रस्य कथं नु न भवेद् वृथा ॥ ४१ ॥

'अच्छा तो किस उपायका अवलम्बन करनेसे स्वामीका कार्य नहीं बिगड़ेगा, मुझे घबराहट या अविवेक नहीं होगा और मेरा यह समुद्रका लाँघना भी व्यर्थ नहीं होने पायेगा ॥ ४१ ॥

मयि दृष्टे तु रक्षोभी रामस्य विदितात्मनः ।
भवेद् व्यर्थमिदं कार्यं रावणानर्थमिच्छतः ॥ ४२ ॥

'यदि राक्षसोंने मुझे देख लिया तो रावणका अनर्थ चाहनेवाले उन विख्यातनामा भगवान् श्रीरामका यह कार्य सफल न हो सकेगा ॥ ४२ ॥

नहि शक्यं क्वचित् स्थातुमविज्ञातेन राक्षसैः ।
अपि राक्षसरूपेण किमुतान्येन केनचित् ॥ ४३ ॥

'यहाँ दूसरे किसी रूपकी तो बात ही क्या है, राक्षसका रूप धारण करके भी राक्षसोंसे अज्ञात रहकर कहीं ठहरना असम्भव है ॥ ४३ ॥

वायुरप्यत्र नाज्ञातश्चरेदिति मतिर्मम ।
नह्यत्राविदितं किंचिद् रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥ ४४ ॥

'मेरा तो ऐसा विश्वास है कि राक्षसोंसे छिपे रहकर वायुदेव भी इस पुरीमें विचरण नहीं कर सकते । यहाँ कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जो इन भयंकर कर्म करनेवाले राक्षसोंको ज्ञात न हो ॥ ४४ ॥

इहाहं यदि तिष्ठामि स्वेन रूपेण संवृतः ।
विनाशमुपयास्यामि भर्तुरर्थश्च हास्यति ॥ ४५ ॥

'यदि यहाँ मैं अपने इस रूपसे छिपकर भी रहूँगा तो मारा जाऊँगा और मेरे स्वामीके कार्यमें भी हानि पहुँचेगी ॥ ४५ ॥

तदहं स्वेन रूपेण रजन्यां ह्रस्वतां गतः ।
लङ्कामभिपतिष्यामि राघवस्यार्थसिद्धये ॥ ४६ ॥

'अतः मैं श्रीरघुनाथजीका कार्य सिद्ध करनेके लिये रातमें अपने इसी रूपसे छोटा-सा शरीर धारण करके लङ्कामें प्रवेश करूँगा ॥ ४६ ॥

रावणस्य पुरीं रात्रौ प्रविश्य सुदुरासदाम् ।
प्रविश्य भवनं सर्वं द्रक्ष्यामि जनकात्मजाम् ॥ ४७ ॥

'यद्यपि रावणकी इस पुरीमें जाना बहुत ही कठिन है तथापि रातको इसके भीतर प्रवेश करके सभी घरोंमें घुसकर मैं जानकीजीकी खोज करूँगा' ॥ ४७ ॥

इति निश्चित्य हनुमान् सूर्यस्यास्तमयं कपिः ।
आचकाङ्क्षे तदा वीरो वैदेह्या दर्शनोत्सुकः ॥ ४८ ॥

ऐसा निश्चय करके वीर वानर हनुमान् विदेहनन्दिनीके दर्शनके लिये उत्सुक हो उस समय सूर्यास्तकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ ४८ ॥

सूर्ये चास्तं गते रात्रौ देहं संक्षिप्य मारुतिः ।
वृषदंशकमात्रोऽथ बभूवाद्भुतदर्शनः ॥ ४९ ॥

सूर्यास्त हो जानेपर रातके समय उन पवनकुमारने अपने शरीरको छोटा बना लिया । वे बिल्लीके बराबर होकर अत्यन्त अद्भुत दिखायी देने लगे ॥ ४९ ॥

प्रदोषकाले हनुमांस्तूर्णमुत्पत्य वीर्यवान् ।
प्रविवेश पुरीं रम्यां प्रविभक्तमहापथाम् ॥ ५० ॥

प्रदोषकालमें पराक्रमी हनुमान् तुरंत ही उछलकर उस रमणीय पुरीमें घुस गये । वह नगरी पृथक्-पृथक् बने हुए चौड़े और विशाल राजमार्गोंसे सुशोभित थी ॥ ५० ॥

प्रासादमालाविततां स्तम्भैः काञ्चनसंनिभैः ।
शातकुम्भनिभैर्जालैर्गन्धर्वनगरोपमाम् ॥ ५१ ॥

उसमें प्रासादोंकी लंबी पंक्तियाँ दूरतक फैली हुई थीं । सुनहरे रंगके खम्भों और सोनेकी जालियोंसे विभूषित वह नगरी गन्धर्वनगरके समान रमणीय प्रतीत होती थी ॥

सप्तभौमाष्टभौमैश्च स ददर्श महापुरीम् ।
तलैः स्फटिकसंकीर्णैः कार्तस्वरविभूषितैः ॥ ५२ ॥
वैदूर्यमणिचित्रैश्च मुक्ताजालविभूषितैः ।
तैस्तैः शुशुभिरे तानि भवनान्यत्र रक्षसाम् ॥ ५३ ॥

हनुमान्‌जीने उस विशाल पुरीको सतमहले, अठमहले मकानों और सुवर्णजटित स्फटिक मणिकी फर्शोंसे सुशोभित देखा । उनमें वैदूर्य (नीलम) भी जड़े गये थे, जिससे उनकी विचित्र शोभा होती थी । मोतियोंकी जालियाँ भी उन महलोंकी शोभा बढ़ाती थीं । उन सबके कारण राक्षसोंके वे भवन बड़ी सुन्दर शोभासे सम्पन्न हो रहे थे ॥ ५२-५३ ॥

काञ्चनानि विचित्राणि तोरणानि च रक्षसाम् ।
लङ्कामुद्योतयामासुः सर्वतः समलंकृताम् ॥ ५४ ॥

सोनेके बने हुए विचित्र फाटक सब ओरसे सजी हुई राक्षसोंकी उस लङ्काको और भी उद्दीप्त कर रहे थे ॥ ५४ ॥

अचिन्त्यामद्भुताकारां दृष्ट्वा लङ्कां महाकपिः ।
आसीद् विषण्णो हृष्टश्च वैदेह्या दर्शनोत्सुकः ॥ ५५ ॥

ऐसी अचिन्त्य और अद्भुत आकारवाली लङ्काको देखकर महाकपि हनुमान् विषादमें पड़ गये; परंतु जानकीजीके दर्शनके लिये उनके मनमें बड़ी उत्कण्ठा थी, इसलिये उनका हर्ष और उत्साह भी कम नहीं हुआ ॥ ५५ ॥

स पाण्डुराविद्धविमानमालिनीं
महार्हजाम्बूनदजालतोरणाम् ।
यशस्विनीं रावणबाहुपालितां
क्षपाचरैर्भीमबलैः सुपालिताम् ॥ ५६ ॥

परस्पर सटे हुए श्वेतवर्णके सतमंजिले महलोंकी पंक्तियाँ लङ्कापुरीकी शोभा बढ़ा रही थीं । बहुमूल्य जाम्बूनद नामक सुवर्णकी जालियों और वन्दनवारोंसे वहाँके घरोंको सजाया गया था । भयंकर बलशाली निशाचर उस पुरीकी अच्छी तरह रक्षा करते थे । रावणके बाहुबलसे भी वह सुरक्षित थी । उसके यशकी ख्याति सुदूरतक फैली हुई थी । ऐसी लङ्कापुरीमें हनुमान्‌जीने प्रवेश किया ॥ ५६ ॥

चन्द्रोऽपि साचिव्यमिवास्य कुर्वं-
स्तारागणैर्मध्यगतो विराजन् ।
ज्योत्स्नावितानेन वितत्य लोका-
नुत्तिष्ठतेऽनेकसहस्ररश्मिः ॥ ५७ ॥

उस समय तारागणोंके साथ उनके बीचमें विराजमान अनेक सहस्र किरणोंवाले चन्द्रदेव भी हनुमान्‌जीकी सहायता-सी करते हुए समस्त लोकोंपर अपनी चाँदनीका चँदोवा-सा तानकर उदित हो गये ॥ ५७ ॥

शङ्खप्रभं क्षीरमृणालवर्ण-
मुद्गच्छमानं व्यवभासमानम् ।
ददर्श चन्द्रं स कपिप्रवीरः
पोप्लूयमानं सरसीव हंसम् ॥ ५८ ॥

वानरोंके प्रमुख वीर श्रीहनुमान्‌जीने शङ्खकी-सी कान्ति तथा दूध और मृणालके-से वर्णवाले चन्द्रमाको आकाशमें इस प्रकार उदित एवं प्रकाशित होते देखा, मानो किसी सरोवरमें कोई हंस तैर रहा हो ॥ ५८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें दूसरा सर्ग पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

लङ्कापुरीका अवलोकन करके हनुमान्‌जीका विस्मित होना, उसमें प्रवेश करते समय निशाचरी लङ्काका उन्हें रोकना और उनकी मारसे विह्वल होकर उन्हें पुरीमें प्रवेश करनेकी अनुमति देना

स लंबशिखरे लंबे लंबतोयदसंनिभे ।
सत्त्वमास्थाय मेधावी हनुमान् मारुतात्मजः ॥ १ ॥
निशि लङ्कां महासत्त्वो विवेश कपिकुञ्जरः ।
रम्यकाननतोयाढ्यां पुरीं रावणपालिताम् ॥ २ ॥

ऊँचे शिखरवाले लंब (त्रिकूट) पर्वतपर जो महान् मेघोंकी घटाके समान जान पड़ता था, बुद्धिमान् महाशक्तिशाली कपिश्रेष्ठ पवनकुमार हनुमान्‌ने सत्त्वगुणका आश्रय ले रातके समय रावणपालित लङ्कापुरीमें प्रवेश किया । वह नगरी सुरम्य वन और जलाशयोंसे सुशोभित थी ॥ १-२ ॥

शारदाम्बुधरप्रख्यैर्भवनैरुपशोभिताम् ।
सागरोपमनिर्घोषां सागरानिलसेविताम् ॥ ३ ॥

शरत्कालके बादलोंकी भाँति श्वेत कान्तिवाले सुन्दर भवन उसकी शोभा बढ़ाते थे । वहाँ समुद्रकी गर्जनाके समान गम्भीर शब्द होता रहता था । सागरकी लहरोंको छूकर बहनेवाली वायु इस पुरीकी सेवा करती थी ॥ ३ ॥

सुपुष्टबलसम्पुष्टां यथैव विटपावतीम् ।
चारुतोरणनिर्यूहां पाण्डुरद्वारतोरणाम् ॥ ४ ॥

वह अलकापुरीके समान शक्तिशालिनी सेनाओंसे सुरक्षित थी । उस पुरीके सुन्दर फाटकोंपर मतवाले हाथी शोभा पाते थे । उस पुरीके अन्तर्द्वार और बहिर्द्वार दोनों ही श्वेत कान्तिसे सुशोभित थे ॥ ४ ॥

भुजगाचरितां गुप्तां शुभां भोगवतीमिव ।
तां सविद्युद्घनाकीर्णां ज्योतिर्गणनिषेविताम् ॥ ५ ॥
चण्डमारुतनिर्ह्रादां यथा चाप्यमरावतीम् ।

उस नगरीकी रक्षाके लिये बड़े-बड़े सर्पोंका संचरण (आना-जाना) होता रहता है, इसलिये वह नागोंसे सुरक्षित सुन्दर भोगवती पुरीके समान जान पड़ती थी । अमरावती पुरीके समान वहाँ आवश्यकताके अनुसार बिजलियोंसहित मेघ छाये रहते थे । ग्रहों और नक्षत्रोंके सदृश विद्युत्-दीपोंके प्रकाशसे वह पुरी प्रकाशित थी तथा प्रचण्ड वायुकी ध्वनि वहाँ सदा होती रहती थी ॥ ५½ ॥

शातकुम्भेन महता प्राकारेणाभिसंवृताम् ॥ ६ ॥
किङ्किणीजालघोषाभिः पताकाभिरलंकृताम् ।

सोनेके बने हुए विशाल परकोटेसे घिरी हुई लङ्कापुरी क्षुद्र घंटिकाओंकी झनकारसे युक्त पताकाओंद्वारा अलंकृत थी ॥ ६½ ॥

आसाद्य सहसा हृष्टः प्राकारमभिपेदिवान् ॥ ७ ॥
विस्मयाविष्टहृदयः पुरीमालोक्य सर्वतः ।

उस पुरीके समीप पहुँचकर हर्ष और उत्साहसे भरे हुए हनुमान्‌जी सहसा उछलकर उसके परकोटेपर चढ़ गये । वहाँ सब ओरसे लङ्कापुरीका अवलोकन करके हनुमान्‌जीका चित्त आश्चर्यसे चकित हो उठा ॥ ७½ ॥

जाम्बूनदमयैर्द्वारैर्वैदूर्यकृतवेदिकैः ॥ ८ ॥
वज्रस्फटिकमुक्ताभिर्मणिकुट्टिमभूषितैः ।
तप्तहाटकनिर्यूहै राजतामलपाण्डुरैः ॥ ९ ॥
वैदूर्यकृतसोपानैः स्फाटिकान्तरपांसुभिः ।
चारुसंजवनोपेतैः खमिवोत्पतितैः शुभैः ॥ १० ॥

सुवर्णके बने हुए द्वारोंसे उस नगरीकी अपूर्व शोभा हो रही थी । उन सभी द्वारोंपर नीलमके चबूतरे बने हुए थे । वे सब द्वार हीरों, स्फटिकों और मोतियोंसे जड़े गये थे । मणिमयी फर्शें उनकी शोभा बढ़ा रही थीं । उनके दोनों ओर तपाये सुवर्णके बने हुए हाथी शोभा पाते थे । उन द्वारोंका ऊपरी भाग चाँदीसे निर्मित होनेके कारण स्वच्छ और श्वेत था । उनकी सीढ़ियाँ नीलमकी बनी हुई थीं । उन द्वारोंके भीतरी भाग स्फटिक मणिके बने हुए और धूलसे रहित थे । वे सभी द्वार रमणीय सभा-भवनोंसे युक्त और सुन्दर थे तथा इतने ऊँचे थे कि आकाशमें उठे हुए-से जान पड़ते थे ॥ ८—१० ॥

क्रौञ्चबर्हिणसंघुष्टै राजहंसनिषेवितैः ।
तूर्याभरणनिर्घोषैः सर्वतः परिनादिताम् ॥ ११ ॥

वहाँ क्रौञ्च और मयूरोंके कलरव गूँजते रहते थे, उन द्वारोंपर राजहंस नामक पक्षी भी निवास करते थे । वहाँ भाँति-भाँतिके वाद्यों और आभूषणोंकी मधुर ध्वनि होती रहती थी, जिससे लङ्कापुरी सब ओरसे प्रतिध्वनित हो रही थी ॥ ११ ॥

वस्वोकसारप्रतिमां समीक्ष्य नगरीं ततः ।
खमिवोत्पतितां लङ्कां जहर्ष हनुमान् कपिः ॥ १२ ॥

कुबेरकी अलकाके समान शोभा पानेवाली लङ्का नगरी त्रिकूटके शिखरपर प्रतिष्ठित होनेके कारण आकाशमें उठी हुई-सी प्रतीत होती थी । उसे देखकर कपिवर हनुमान्‌को बड़ा हर्ष हुआ ॥ १२ ॥

तां समीक्ष्य पुरीं लङ्कां राक्षसाधिपतेः शुभाम् ।
अनुत्तमामृद्धिमतीं चिन्तयामास वीर्यवान् ॥ १३ ॥

राक्षसराजकी वह सुन्दर पुरी लङ्का सबसे उत्तम और समृद्धिशालिनी थी। उसे देखकर पराक्रमी हनुमान् इस प्रकार सोचने लगे—॥ १३ ॥

नेयमन्येन नगरी शक्या धर्षयितुं बलात्।
रक्षिता रावणबलैरुद्यतायुधपाणिभिः ॥ १४ ॥

'रावणके सैनिक हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लिये इस पुरीकी रक्षा करते हैं, अतः दूसरा कोई बलपूर्वक इसे अपने काबूमें नहीं कर सकता ॥ १४ ॥

कुमुदाङ्गदयोर्वापि सुषेणस्य महाकपेः।
प्रसिद्धेयं भवेद् भूमिर्मैन्दद्विविदयोरपि ॥ १५ ॥
विवस्वतस्तनूजस्य हरेश्च कुशपर्वणः।
ऋक्षस्य कपिमुख्यस्य मम चैव गतिर्भवेत् ॥ १६ ॥

'केवल कुमुद, अङ्गद, महाकपि सुषेण; मैन्द, द्विविद, सूर्यपुत्र सुग्रीव, वानर कुशपर्वा और वानरसेनाके प्रमुख वीर ऋक्षराज जाम्बवान्‌की तथा मेरी भी पहुँच इस पुरीके भीतर हो सकती है' ॥ १५-१६ ॥

समीक्ष्य च महाबाहो राघवस्य पराक्रमम्।
लक्ष्मणस्य च विक्रान्तमभवत् प्रीतिमान् कपिः ॥१७॥

फिर महाबाहु श्रीराम और लक्ष्मणके पराक्रमका विचार करके कपिवर हनुमान्‌को बड़ी प्रसन्नता हुई ॥१७॥

तां रत्नवसनोपेतां गोष्ठागारावतंसिकाम्।
यन्त्रागारस्तनीमृद्धां प्रमदामिव भूषिताम् ॥ १८ ॥
तां नष्टतिमिरां दीपैर्भास्वरैश्च महाग्रहैः।
नगरीं राक्षसेन्द्रस्य स ददर्श महाकपिः ॥ १९ ॥

महाकपि हनुमान्‌ने देखा, राक्षसराज रावणकी नगरी लङ्का वस्त्राभूषणोंसे विभूषित सुन्दरी युवतीके समान जान पड़ती है। रत्नमय परकोटे ही इसके वस्त्र हैं, गोष्ठ (गोशाला) तथा दूसरे-दूसरे भवन आभूषण हैं। परकोटोंपर लगे हुए यन्त्रोंके जो गृह हैं, ये ही मानो इस लङ्कारूपी युवतीके स्तन हैं। यह सब प्रकारके समृद्धियोंसे सम्पन्न है। प्रकाशपूर्ण द्वीपों और महान् ग्रहोंने यहाँका अन्धकार नष्ट कर दिया है ॥ १८-१९ ॥

अथ सा हरिशार्दूलं प्रविशन्तं महाकपिम्।
नगरी स्वेन रूपेण ददर्श पवनात्मजम् ॥ २० ॥

तदनन्तर वानरश्रेष्ठ महाकपि पवनकुमार हनुमान् उस पुरीमें प्रवेश करने लगे। इतनेमेंही उस नगरीकी अधिष्ठात्री देवी लङ्काने अपने स्वाभाविक रूपमें प्रकट होकर उन्हें देखा ॥ २० ॥

सा तं हरिवरं दृष्ट्वा लङ्का रावणपालिता।
स्वयमेवोत्थिता तत्र विकृताननदर्शना ॥ २१ ॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌को देखते ही रावणपालित लङ्का स्वयं ही उठ खड़ी हुई। उसका मुँह देखनेमें बड़ा विकट था ॥ २१ ॥

पुरस्तात् तस्य वीरस्य वायुसूनोरतिष्ठत।
मुञ्चमाना महानादमब्रवीत् पवनात्मजम् ॥ २२ ॥

वह उन वीर पवनकुमारके सामने खड़ी हो गयी और बड़े जोरसे गर्जना करती हुई उनसे इस प्रकार बोली—॥२२॥

कस्त्वं केन च कार्येण इह प्राप्तो वनालय।
कथयस्वेह यत् तत्त्वं यावत् प्राणा धरन्ति ते ॥ २३ ॥

'वनचारी वानर! तू कौन है और किस कार्यसे यहाँ आया है? तुम्हारे प्राण जबतक बने हुए हैं, तबतक ही यहाँ आनेका जो यथार्थ रहस्य है, उसे ठीक-ठीक बता दो ॥२३॥

न शक्यं खल्वियं लङ्का प्रवेष्टुं वानर त्वया।
रक्षिता रावणबलैरभिगुप्ता समन्ततः ॥ २४ ॥

'वानर! रावणकी सेना सब ओरसे इस पुरीकी रक्षा करती है, अतः निश्चय ही तू इस लङ्कामें प्रवेश नहीं कर सकता' ॥ २४ ॥

अथ तामब्रवीद् वीरो हनुमानग्रतः स्थिताम्।
कथयिष्यामि तत् तत्त्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसे ॥ २५ ॥
का त्वं विरूपनयना पुरद्वारेऽवतिष्ठसे।
किमर्थं चापि मां क्रोधान्निर्भर्त्सयसि दारुणे ॥ २६ ॥

तब वीरवर हनुमान् अपने सामने खड़ी हुई लङ्कासे बोले—'क्रूर स्वभाववाली नारी! तू मुझसे जो कुछ पूछ रही है, उसे मैं ठीक-ठीक बता दूँगा; किंतु पहले यह तो बता, तू है कौन? तेरी आँखें बड़ी भयंकर हैं। तू इस नगरके द्वारपर खड़ी है। क्या कारण है कि तू इस प्रकार क्रोध करके मुझे डाँट रही है?' ॥ २५-२६ ॥

हनुमद्वचनं श्रुत्वा लङ्का सा कामरूपिणी।
उवाच वचनं क्रुद्धा परुषं पवनात्मजम् ॥ २७ ॥

हनुमान्‌जीकी यह बात सुनकर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली लङ्का कुपित हो उन पवनकुमारसे कठोर वाणीमें बोली—॥ २७ ॥

अहं राक्षसराजस्य रावणस्य महात्मनः।
आज्ञाप्रतीक्षा दुर्धर्षा रक्षामि नगरीमिमाम् ॥ २८ ॥

'मैं महामना राक्षसराज रावणकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करनेवाली उनकी सेविका हूँ। मुझपर आक्रमण करना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन है। मैं इस नगरीकी रक्षा करती हूँ ॥ २८ ॥

न शक्यं मामवज्ञाय प्रवेष्टुं नगरीमिमाम्।
अद्य प्राणैः परित्यक्तः स्वप्स्यसे निहतो मया ॥ २९ ॥

'मेरी अवहेलना करके इस पुरीमें प्रवेश करना किसी

के लिये भी सम्भव नहीं है। आज मेरे हाथसे मारा जाकर तू प्राणहीन हो इस पृथ्वीपर शयन करेगा ॥ २९ ॥

अहं हि नगरी लङ्का स्वयमेव प्लवङ्गम।
सर्वतः परिरक्षामि अतस्ते कथितं मया ॥ ३० ॥

'वानर! मैं स्वयं ही लङ्का नगरी हूँ, अतः सब ओरसे इसकी रक्षा करती हूँ। यही कारण है कि मैंने तेरे प्रति कठोर वाणीका प्रयोग किया है' ॥ ३० ॥

लङ्काया वचनं श्रुत्वा हनूमान् मारुतात्मजः।
यत्नवान् स हरिश्रेष्ठः स्थितः शैल इवापरः ॥ ३१ ॥

लङ्काकी यह बात सुनकर पवनकुमार कपिश्रेष्ठ हनुमान् उसे जीतनेके लिये यत्नशील हो दूसरे पर्वतके समान वहाँ खड़े हो गये ॥ ३१ ॥

स तां स्त्रीरूपविकृतां दृष्ट्वा वानरपुङ्गवः।
आबभाषेऽथ मेधावी सत्त्ववान् प्लवगर्षभः ॥ ३२ ॥

लङ्काको विकराल राक्षसीके रूपमें देखकर बुद्धिमान् वानरशिरोमणि शक्तिशाली कपिश्रेष्ठ हनुमान्ने उससे इस प्रकार कहा—॥ ३२ ॥

द्रक्ष्यामि नगरीं लङ्कां साट्टप्राकारतोरणाम्।
इत्यर्थमिह सम्प्राप्तः परं कौतूहलं हि मे ॥ ३३ ॥

'मैं अट्टालिकाओं, परकोटों और नगरद्वारोंसहित इस लङ्का नगरीको देखूँगा। इसी प्रयोजनसे यहाँ आया हूँ। इसे देखनेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है ॥ ३३ ॥

वनान्युपवनानीह लङ्कायाः काननानि च।
सर्वतो गृहमुख्यानि द्रष्टुमागमनं हि मे ॥ ३४ ॥

'इस लङ्काके जो वन, उपवन, कानन और मुख्य-मुख्य भवन हैं, उन्हें देखनेके लिये ही यहाँ मेरा आगमन हुआ है' ॥ ३४ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा लङ्का सा कामरूपिणी।
भूय एव पुनर्वाक्यं बभाषे परुषाक्षरम् ॥ ३५ ॥

हनुमानजीका यह कथन सुनकर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली लङ्का पुनः कठोर वाणीमें बोली—॥ ३५ ॥

मामनिर्जित्य दुर्बुद्धे राक्षसेश्वरपालिताम्।
न शक्यं ह्यद्य ते द्रष्टुं पुरीयं वानराधम ॥ ३६ ॥

'खोटी बुद्धिवाले नीच वानर! राक्षसेश्वर रावणके द्वारा मेरी रक्षा हो रही है। तू मुझे परास्त किये बिना आज इस पुरीको नहीं देख सकता' ॥ ३६ ॥

ततः स हरिशार्दूलस्तामुवाच निशाचरीम्।
दृष्ट्वा पुरीमिमां भद्रे पुनर्यास्ये यथागतम् ॥ ३७ ॥

तब उन वानरशिरोमणिने उस निशाचरीसे कहा—'भद्रे! इस पुरीको देखकर मैं फिर जैसे आया हूँ, उसी तरह लौट जाऊँगा' ॥ ३७ ॥

ततः कृत्वा महानादं सा वै लङ्का भयंकरम्।
तलेन वानरश्रेष्ठं ताडयामास वेगिता ॥ ३८ ॥

यह सुनकर लङ्काने बड़ी भयंकर गर्जना करके वानरश्रेष्ठ हनुमान्को बड़े जोरसे एक थप्पड़ मारा ॥ ३८ ॥

ततः स हरिशार्दूलो लङ्कया ताडितो भृशम्।
ननाद सुमहानादं वीर्यवान् मारुतात्मजः ॥ ३९ ॥

लङ्काद्वारा इस प्रकार जोरसे पीटे जानेपर उन परम पराक्रमी पवनकुमार कपिश्रेष्ठ हनुमान्ने बड़े जोरसे सिंहनाद किया ॥ ३९ ॥

ततः संवर्तयामास वामहस्तस्य सोऽङ्गुलीः।
मुष्टिनाभिजघानैनां हनुमान् क्रोधमूर्च्छितः ॥ ४० ॥

फिर उन्होंने अपने बायें हाथकी अङ्गुलियोंको मोड़कर मुट्ठी बाँध ली और अत्यन्त कुपित हो उस लङ्काको एक मुक्का जमा दिया ॥ ४० ॥

स्त्री चेति मन्यमानेन नातिक्रोधः स्वयं कृतः।
सा तु तेन प्रहारेण विह्वलाङ्गी निशाचरी।
पपात सहसा भूमौ विकृताननदर्शना ॥ ४१ ॥

उसे स्त्री समझकर हनुमान्जीने स्वयं ही अधिक क्रोध नहीं किया। किंतु उस लघु प्रहारसे ही उस निशाचरीके सारे अङ्ग व्याकुल हो गये। वह सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ी। उस समय उसका मुख बड़ा विकराल दिखायी देता था ॥ ४१ ॥

ततस्तु हनुमान् वीरस्तां दृष्ट्वा विनिपातिताम्।
कृपां चकार तेजस्वी मन्यमानः स्त्रियं च ताम् ॥ ४२ ॥

अपने ही द्वारा गिरायी गयी उस लङ्काकी ओर देखकर और उसे स्त्री समझकर तेजस्वी वीर हनुमान्को उसपर दया आ गयी। उन्होंने उसपर बड़ी कृपा की ॥

ततो वै भृशमुद्विग्ना लङ्का सा गद्गदाक्षरम्।
उवाचागर्वितं वाक्यं हनुमन्तं प्लवङ्गमम् ॥ ४३ ॥

उधर अत्यन्त उद्विग्न हुई लङ्का उन वानरवीर हनुमान्से अभिमानशून्य गद्गदवाणीमें इस प्रकार बोली—॥

प्रसीद सुमहाबाहो त्रायस्व हरिसत्तम।
समये सौम्य तिष्ठन्ति सत्त्ववन्तो महाबलाः ॥ ४४ ॥

'महाबाहो! प्रसन्न होइये। कपिश्रेष्ठ! मेरी रक्षा कीजिये। सौम्य! महाबली सत्त्वगुणशाली वीर पुरुष शास्त्रकी मर्यादापर स्थिर रहते हैं (शास्त्रमें स्त्रीको अवध्य बताया है, इसलिये आप मेरे प्राण न लीजिये) ॥ ४४ ॥

अहं तु नगरी लङ्का स्वयमेव प्लवङ्गम।
निर्जिताहं त्वया वीर विक्रमेण महाबल ॥ ४५ ॥

'महाबली वीर वानर! मैं स्वयं लङ्कापुरी ही हूँ, आपने अपने पराक्रमसे मुझे परास्त कर दिया है ॥ ४५ ॥

इदं च तथ्यं शृणु मे ब्रुवन्त्या वै हरीश्वर।

स्वयं स्वयम्भुवा दत्तं वरदानं यथा मम ॥ ४६ ॥

'वानरेश्वर ! मैं आपसे एक सच्ची बात कहती हूँ। आप इसे सुनिये। साक्षात् स्वयम्भू ब्रह्माजीने मुझे जैसा वरदान दिया था, वह बता रही हूँ ॥ ४६ ॥

यदा त्वां वानरः कश्चिद् विक्रमाद् वशमानयेत्।
तदा त्वया हि विज्ञेयं रक्षसां भयमागतम् ॥ ४७ ॥

'उन्होंने कहा था—'जब कोई वानर तुझे अपने पराक्रमसे वशमें कर ले, तब तुझे यह समझ लेना चाहिये कि अब राक्षसोंपर बड़ा भारी भय आ पहुँचा है' ॥ ४७ ॥

स हि मे समयः सौम्य प्राप्तोऽद्य तव दर्शनात्।
स्वयम्भूविहितः सत्यो न तस्यास्ति व्यतिक्रमः ॥४८॥

'सौम्य ! आपका दर्शन पाकर आज मेरे सामने वही घड़ी आ गयी है। ब्रह्माजीने जिस सत्यका निश्चय कर दिया है, उसमें कोई उलट-फेर नहीं हो सकता ॥ ४८ ॥

सीतानिमित्तं राज्ञस्तु रावणस्य दुरात्मनः।
रक्षसां चैव सर्वेषां विनाशः समुपागतः ॥ ४९ ॥

'अब सीताके कारण दुरात्मा राजा रावण तथा समस्त राक्षसोंके विनाशका समय आ पहुँचा है ॥ ४९ ॥

तत् प्रविश्य हरिश्रेष्ठ पुरीं रावणपालिताम्।
विधत्स्व सर्वकार्याणि यानि यानीह वाञ्छसि ॥ ५० ॥

'कपिश्रेष्ठ ! अतः आप इस रावणपालित पुरीमें प्रवेश कीजिये और यहाँ जो-जो कार्य करना चाहते हों, उन सबको पूर्ण कर लीजिये ॥ ५० ॥

प्रविश्य शापोपहतां हरीश्वर
पुरीं शुभां राक्षसमुख्यपालिताम्।
यदृच्छया त्वं जनकात्मजां सतीं
विमार्ग सर्वत्र गतो यथासुखम् ॥५१॥

'वानरेश्वर ! राक्षसराज रावणके द्वारा पालित यह सुन्दर पुरी अभिशापसे नष्टप्राय हो चुकी है। अतः इसमें प्रवेश करके आप स्वेच्छानुसार सुखपूर्वक सर्वत्र सती-साध्वी जनकनन्दिनी सीताकी खोज कीजिये' ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें तीसरा सर्ग पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

हनुमान्जीका लङ्कापुरी एवं रावणके अन्तःपुरमें प्रवेश

स निर्जित्य पुरीं लङ्कां श्रेष्ठां तां कामरूपिणीम्।
विक्रमेण महातेजा हनूमान् कपिसत्तमः ॥ १ ॥
अद्वारेण महावीर्यः प्राकारमवपुप्लुवे।
निशि लङ्कां महासत्त्वो विवेश कपिकुञ्जरः ॥ २ ॥

इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली श्रेष्ठ राक्षसी लङ्कापुरीको अपने पराक्रमसे परास्त करके महातेजस्वी महाबली महान् सत्त्वशाली वानरशिरोमणि कपिकुञ्जर हनुमान् बिना दरवाजेके ही रातमें चहारदीवारी फाँद गये और लङ्काके भीतर घुस गये ॥ १-२ ॥

प्रविश्य नगरीं लङ्कां कपिराजहितंकरः।
चक्रेऽथ पादं सव्यं च शत्रूणां स तु मूर्धनि ॥ ३ ॥

कपिराज सुग्रीवका हित करनेवाले हनुमान्जीने इस तरह लङ्कापुरीमें प्रवेश करके मानो शत्रुओंके सिरपर अपना बायाँ पैर रख दिया ॥ ३ ॥

प्रविष्टः सत्त्वसम्पन्नो निशायां मारुतात्मजः।
स महापथमास्थाय मुक्तपुष्पविराजितम् ॥ ४ ॥
ततस्तु तां पुरीं लङ्कां रम्यामभिययौ कपिः।

सत्त्वगुणसे संपन्न पवनपुत्र हनुमान् उस रातमें परकोटेके भीतर प्रवेश करके बिखेरे गये फूलोंसे सुशोभित राजमार्गका आश्रय ले उस रमणीय लङ्कापुरीकी ओर चले ॥ ४½ ॥

हसितोत्कृष्टनिनदैस्तूर्यघोषपुरस्कृतैः ॥ ५ ॥
वज्राङ्कुशनिकाशैश्च वज्रजालविभूषितैः।
गृहमेघैः पुरी रम्या बभासे द्यौरिवाम्बुदैः ॥ ६ ॥

जैसे आकाश श्वेत बादलोंसे सुशोभित होता है, उसी प्रकार वह रमणीय पुरी अपने श्वेत मेघसदृश गृहोंसे उत्तम शोभा पा रही थी। वे गृह अट्टहासजनित उत्कृष्ट शब्दों तथा वाद्यघोषोंसे मुखरित थे। उनमें वज्रों तथा अङ्कुशोंके चित्र अङ्कित थे और हीरोंके बने हुए झरोखे उनकी शोभा बढ़ाते थे ॥ ५-६ ॥

प्रजज्वाल तदा लङ्का रक्षोगणगृहैः शुभैः।
सिताभ्रसदृशैश्चित्रैः पद्मस्वस्तिकसंस्थितैः ॥ ७ ॥
वर्धमानगृहैश्चापि सर्वतः सुविभूषितैः।

उस समय लङ्का श्वेत बादलोंके समान सुन्दर एवं विचित्र राक्षस-गृहोंसे प्रकाशित हो रही थी। उन गृहोंमेंसे कोई तो कमलके आकारमें बने हुए थे। कोई स्वस्तिकके चिह्न या आकारसे युक्त थे और किन्हींका निर्माण वर्धमानसंज्ञक गृहोंके रूपमें हुआ था। वे सभी सब ओरसे सजाये गये थे ॥ ७½ ॥

१-२. वाराहमिहिरकी संहितामें गृहोंके विभिन्न संस्थानों (आकृतियों) का वर्णन किया गया है। उन्हीं संस्थानोंके

तां चित्रमाल्याभरणां कपिराजहितंकरः ॥ ८ ॥
राघवार्थे चरञ्श्रीमान् ददर्श च ननन्द च ।

वानरराज सुग्रीवका हित करनेवाले श्रीमान् हनुमान् श्रीरघुनाथजीकी कार्यसिद्धिके लिये विचित्र पुष्पमय आभरणोंसे अलंकृत लङ्कामें विचरने लगे। उन्होंने उस पुरीको अच्छी तरह देखा और देखकर प्रसन्नताका अनुभव किया ॥ ८$\frac{१}{२}$ ॥

भवनाद् भवनं गच्छन् ददर्श कपिकुञ्जरः ॥ ९ ॥
विविधाकृतिरूपाणि भवनानि ततस्ततः ।
शुश्राव रुचिरं गीतं त्रिस्थानस्वरभूषितम् ॥ १० ॥

उन कपिश्रेष्ठने जहाँ-तहाँ एक घरसे दूसरे घरपर जाते हुए विविध आकार-प्रकारके भवन देखे तथा हृदय, कण्ठ और मूर्धा—इन तीन स्थानोंसे निकलनेवाले मन्द, मध्यम और उच्च स्वरसे विभूषित मनोहर गीत सुने ॥ ९-१० ॥

स्त्रीणां मदनविद्धानां दिवि चाप्सरसामिव ।
शुश्राव काञ्चीनिनदं नूपुराणां च निःस्वनम् ॥ ११ ॥

उन्होंने स्वर्गीय अप्सराओंके समान सुन्दरी तथा कामवेदनासे पीड़ित कामिनियोंकी करधनी और पायजेबोंकी झनकार सुनी ॥ ११ ॥

सोपाननिनदांश्चापि भवनेषु महात्मनाम् ।
आस्फोटितनिनादांश्च क्ष्वेडितांश्च ततस्ततः ॥ १२ ॥

इसी तरह जहाँ-तहाँ महामनस्वी राक्षसोंके घरोंमें सीढ़ियोंपर चढ़ते समय स्त्रियोंकी काञ्ची और मंजीरकी मधुरध्वनि तथा पुरुषोंके ताल ठोकने और गर्जनेकी भी आवाजें उन्हें सुनायी दीं ॥ १२ ॥

शुश्राव जपतां तत्र मन्त्रान् रक्षोगृहेषु वै ।
स्वाध्यायनिरतांश्चैव यातुधानान् ददर्श सः ॥ १३ ॥

राक्षसोंके घरोंमें बहुतोंको तो उन्होंने वहाँ मन्त्र जपते हुए सुना और कितने ही निशाचरोंको स्वाध्यायमें तत्पर देखा ॥ १३ ॥

रावणस्तवसंयुक्तान् गर्जतो राक्षसानपि ।
राजमार्गं समावृत्य स्थितं रक्षोगणं महत् ॥ १४ ॥

कई राक्षसोंको उन्होंने रावणकी स्तुतिके साथ गर्जना करते और निशाचरोंकी एक बड़ी भीड़को राजमार्ग रोककर खड़ी हुई देखा ॥ १४ ॥

ददर्श मध्यमे गुल्मे राक्षसस्य चरान् बहून् ।
दीक्षिताञ्जटिलान् मुण्डान् गोजिनाम्बरवाससः ॥ १५ ॥
दर्भमुष्टिप्रहरणानग्निकुण्डायुधांस्तथा ।
कूटमुद्गरपाणींश्च दण्डायुधधरानपि ॥ १६ ॥

नगरके मध्यभागमें उन्हें रावणके बहुत-से गुप्तचर दिखायी दिये। उनमें कोई योगकी दीक्षा लिये हुए, कोई जटा बढ़ाये, कोई मूड़ मुँड़ाये, कोई गोचर्म या मृगचर्म धारण किये और कोई नंग-धड़ंग थे। कोई मुट्ठीभर कुशोंको ही अस्त्ररूपसे धारण किये हुए थे। किन्हींका अग्निकुण्ड ही आयुध था। किन्हींके हाथमें कूट या मुद्गर था। कोई डंडेको ही हथियाररूपमें लिये हुए थे ॥ १५-१६ ॥

एकाक्षानेकवर्णांश्च लंबोदरपयोधरान् ।
करालान् भुग्नवक्त्रांश्च विकटान् वामनांस्तथा ॥ १७ ॥

किन्हींके एक ही आँख थी तो किन्हींके रूप बहुरंगे थे। कितनोंके पेट और स्तन बहुत बड़े थे। कोई बड़े विकराल थे। किन्हींके मुँह टेढ़े-मेढ़े थे। कोई विकट थे तो कोई बौने ॥ १७ ॥

धन्विनः खड्गिनश्चैव शतघ्नीमुसलायुधान् ।
परिघोत्तमहस्तांश्च विचित्रकवचोज्ज्वलान् ॥ १८ ॥

किन्हींके पास धनुष, खड्ग, शतघ्नी और मूसलरूप आयुध थे। किन्हींके हाथोंमें उत्तम परिघ विद्यमान थे और कोई विचित्र कवचोंसे प्रकाशित हो रहे थे ॥ १८ ॥

नातिस्थूलान् नातिकृशान् नातिदीर्घातिह्रस्वकान् ।
नातिगौरान् नातिकृष्णान्नातिकुब्जान्न वामनान् ॥ १९ ॥

कुछ निशाचर न तो अधिक मोटे थे, न अधिक दुर्बल, न बहुत लंबे थे न अधिक छोटे, न बहुत गोरे थे न अधिक काले तथा न अधिक कुबड़े थे न विशेष बौने ही ॥ १९ ॥

विरूपान् बहुरूपांश्च सुरूपांश्च सुवर्चसः ।
ध्वजिनः पताकिनश्चैव ददर्श विविधायुधान् ॥ २० ॥

कोई बड़े कुरूप थे, कोई अनेक प्रकारके रूप धारण कर सकते थे, किन्हींका रूप सुन्दर था, कोई बड़े तेजस्वी थे तथा किन्हींके पास ध्वजा, पताका और अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र थे ॥ २० ॥

अनुसार उनके नाम दिये गये हैं। जहाँ स्वस्तिकसंस्थान और वर्धमानसंज्ञक गृहका उल्लेख हुआ है, इनके लक्षणोंको स्पष्ट करनेवाले वचनोंको यहाँ उद्धृत किया जाता है—

चतुःशालं चतुर्द्वारं सर्वतोभद्रसंज्ञितम् ।
पश्चिमद्वाररहितं नन्द्यावर्ताह्वयन्तु तत् ॥
दक्षिणद्वाररहितं वर्धमानं धनप्रदम् ।
प्राग्द्वाररहितं स्वस्तिकाख्यं पुत्रधनप्रदम् ॥

चार शालाओंसे युक्त गृहको, जिसके प्रत्येक दिशामें एक-एक करके चार द्वार हों, 'सर्वतोभद्र' कहते हैं। जिसमें तीन ही द्वार हों, पश्चिम दिशाकी ओर द्वार न हो, उसका नाम 'नन्द्यावर्त' है। जिसमें दक्षिणके सिवा अन्य तीन दिशाओंमें द्वार हों, उसे 'वर्धमान' गृह कहते हैं। वह धन देनेवाला होता है तथा जिसमें केवल पूर्व दिशाकी ओर द्वार न हो, उस गृहका नाम 'स्वस्तिक' है। वह पुत्र और धन देनेवाला होता है।

शक्तिवृक्षायुधांश्चैव पट्टिशाशनिधारिणः ।
क्षेपणीपाशहस्तांश्च ददर्श स महाकपिः ॥ २१ ॥

कोई शक्ति और वृक्षरूप आयुध धारण किये देखे जाते थे तथा किन्हींके पास पट्टिश, वज्र, गुलेल और पाश थे । महाकपि हनुमान्‌ने उन सबको देखा ॥ २१ ॥

स्रग्विणस्त्वनुलिप्तांश्च वराभरणभूषितान् ।
नानावेषसमायुक्तान् यथास्वैरचरान् बहून् ॥ २२ ॥

किन्हींके गलेमें फूलोंके हार थे और ललाट आदि अङ्ग चन्दनसे चर्चित थे । कोई श्रेष्ठ आभूषणोंसे सजे हुए थे । कितने ही नाना प्रकारके वेषभूषासे संयुक्त थे और बहुतेरे स्वेच्छानुसार विचरनेवाले जान पड़ते थे ॥ २२ ॥

तीक्ष्णशूलधरांश्चैव वज्रिणश्च महाबलान् ।
शतसाहस्रमव्यग्रमारक्षं मध्यमं कपिः ॥ २३ ॥
रक्षोऽधिपतिनिर्दिष्टं ददर्शान्तःपुराग्रतः ।

कितने ही राक्षस तीखे शूल तथा वज्र लिये हुए थे । वे सब-के-सब महान् बलसे सम्पन्न थे । इनके सिवा कपिवर हनुमान्‌ने एक लाख रक्षक सेनाको राक्षसराज रावणकी आज्ञासे सावधान होकर नगरके मध्यभागकी रक्षामें संलग्न देखा । वे सारे सैनिक रावणके अन्तःपुरके अग्रभागमें स्थित थे ॥ २३½ ॥

स तदा तद् गृहं दृष्ट्वा महाहाटकतोरणम् ॥ २४ ॥
राक्षसेन्द्रस्य विख्यातमद्रिमूर्ध्नि प्रतिष्ठितम् ।
पुण्डरीकावतंसाभिः परिखाभिः समावृतम् ॥ २५ ॥
प्राकारावृतमत्यन्तं ददर्श स महाकपिः ।
त्रिविष्टपनिभं दिव्यं दिव्यनादविनादितम् ॥ २६ ॥

रक्षक सेनाके लिये जो विशाल भवन बना था, उसका फाटक बहुमूल्य सुवर्णद्वारा निर्मित हुआ था । उस आरक्षाभवनको देखकर महाकपि हनुमान्‌जीने राक्षसराज रावणके सुप्रसिद्ध राजमहलपर दृष्टिपात किया, जो त्रिकूट पर्वतके एक शिखरपर प्रतिष्ठित था । वह सब ओरसे श्वेत कमलोंद्वारा अलंकृत खाइयोंसे घिरा हुआ था । उसके चारों ओर बहुत ऊँचा परकोटा था, जिसने उस राजभवनको घेर रक्खा था । वह दिव्य भवन स्वर्गलोकके समान मनोहर था और वहाँ संगीत आदिके दिव्य शब्द गूँज रहे थे ॥ २४-२६ ॥

वाजिहेषितसंघुष्टं नादितं भूषणैस्तथा ।
रथैर्यानैर्विमानैश्च तथा हयगजैः शुभैः ॥ २७ ॥
वारणैश्च चतुर्दन्तैः श्वेताभ्रनिचयोपमैः ।
भूषितं रुचिरद्वारं मत्तैश्च मृगपक्षिभिः ॥ २८ ॥

घोड़ोंकी हिनहिनाहटकी आवाज भी वहाँ सब ओर फैली हुई थी । आभूषणोंकी रुनझुन भी कानोंमें पड़ती रहती थी । नाना प्रकारके रथ, पालकी आदि सवारी, विमान, सुन्दर हाथी, घोड़े, श्वेत बादलोंकी घटाके समान दिखायी देनेवाले चार दाँतोंसे युक्त सजे-सजाये मतवाले हाथी तथा मदमत्त पशु-पक्षियोंके संचरणसे उस राजमहलका द्वार बड़ा सुन्दर दिखायी देता था ॥ २७-२८ ॥

रक्षितं सुमहावीर्यैर्यातुधानैः सहस्रशः ।
राक्षसाधिपतेर्गुप्तमाविवेश गृहं कपिः ॥ २९ ॥

सहस्रों महापराक्रमी निशाचर राक्षसराजके उस महलकी रक्षा करते थे । उस गुप्त भवनमें भी कपिवर हनुमान्‌जी जा पहुँचे ॥ २९ ॥

स हेमजाम्बूनदचक्रवालं
महार्हमुक्तामणिभूषितान्तम् ।
परार्ध्यकालागुरुचन्दनार्हं
स रावणान्तःपुरमाविवेश ॥ ३० ॥

तदनन्तर जिसके चारों ओर सुवर्ण एवं जाम्बूनदका परकोटा था, जिसका ऊपरी भाग बहुमूल्य मोती और मणियोंसे विभूषित था तथा अत्यन्त उत्तम काले अगुरु एवं चन्दनसे जिसकी अर्चना की जाती थी, रावणके उस अन्तःपुरमें हनुमान्‌जीने प्रवेश किया ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें चौथा सर्ग पूरा हुआ ॥ ४ ॥

मय
निशावर्णन

पञ्चमः सर्गः

हनुमान्‌जीका रावणके अन्तःपुरमें घर-घरमें सीताको ढूँढ़ना और उन्हें न देखकर दुखी होना

ततः स मध्यंगतमंशुमन्तं
ज्योत्स्नावितानं मुहुरुद्वमन्तम् ।
ददर्श धीमान् भुवि भानुमन्तं
गोष्ठे वृषं मत्तमिव भ्रमन्तम् ॥ १ ॥

तत्पश्चात् बुद्धिमान् हनुमान्‌जीने देखा, जिस प्रकार गोशालाके भीतर गौओंके झुंडमें मतवाला साँड़ विचरता है, उसी प्रकार पृथ्वीके ऊपर बारंबार अपनी चाँदनीका चँदोवा तानते हुए चन्द्रदेव आकाशके मध्यभागमें तारिकाओंके बीच विचरण कर रहे हैं ॥ १ ॥

लोकस्य पापानि विनाशयन्तं
महोदधिं चापि समेधयन्तम् ।

भूतानि सर्वाणि विराजयन्तं
दद‍र्श शीतांशुमथाभियान्तम् ॥ २ ॥

वे शीतरश्मि चन्द्रमा जगत्‌के पाप तापका नाश कर रहे हैं, महासागरमें ज्वार उठा रहे हैं, समस्त प्राणियोंको नयी दीप्ति एवं प्रकाश दे रहे हैं और आकाशमें क्रमशः ऊपरकी ओर उठ रहे हैं ॥ २ ॥

या भाति लक्ष्मीर्भुवि मन्दरस्था
यथा प्रदोषेषु च सागरस्था ।
तथैव तोयेषु च पुष्करस्था
रराज सा चारुनिशाकरस्था ॥ ३ ॥

भूतलपर मन्दराचलमें, संध्याके समय महासागरमें और जलके भीतर कमलोंमें जो लक्ष्मी जिस प्रकार सुशोभित होती हैं, वे ही उसी प्रकार मनोहर चन्द्रमामें शोभा पा रही थीं ॥ ३ ॥

हंसो यथा राजतपञ्जरस्थः
सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः ।
वीरो यथा गर्वितकुञ्जरस्थ-
श्चन्द्रोऽपि बभ्राज तथाम्बरस्थः ॥ ४ ॥

जैसे चाँदीके पिंजरेमें हंस, मन्दराचलकी कन्दरामें सिंह तथा मदमत्त हाथीकी पीठपर वीर पुरुष शोभा पाते हैं, उसी प्रकार आकाशमें चन्द्रदेव सुशोभित हो रहे थे ॥ ४ ॥

स्थितः ककुद्मानिव तीक्ष्णशृङ्गो
महाचलः श्वेत इवोर्ध्वशृङ्गः ।
हस्तीव जाम्बूनदबद्धशृङ्गो
विभाति चन्द्रः परिपूर्णशृङ्गः ॥ ५ ॥

जैसे तीखे सींगवाला बैल खड़ा हो, जैसे ऊपरको उठे शिखरवाला महान् पर्वत श्वेत (हिमालय) शोभा पाता हो और जैसे सुवर्णजटित दाँतोंसे युक्त गजराज सुशोभित होता हो, उसी प्रकार हरिणके शृङ्गरूपी चिह्नसे युक्त परिपूर्ण चन्द्रमा छवि पा रहे थे ॥ ५ ॥

विनष्टशीताम्बुतुषारपङ्को
महाग्रहग्राहविनष्टपङ्कः ।
प्रकाशलक्ष्म्याश्रयनिर्मलाङ्को
रराज चन्द्रो भगवाञ्छशाङ्कः ॥ ६ ॥

जिनका शीतल जल और हिमरूपी पङ्कसे संसर्गका दोष नष्ट हो गया है, अर्थात् जो इनके संसर्गसे बहुत दूर है, सूर्य-किरणोंको ग्रहण करनेके कारण जिन्होंने अपने अन्धकार-रूपी पङ्कको भी नष्ट कर दिया है तथा प्रकाशरूप लक्ष्मी-का आश्रयस्थान होनेके कारण जिनकी कालिमा भी निर्मल प्रतीत होती है, वे भगवान् शशलाञ्छन चन्द्रदेव आकाशमें प्रकाशित हो रहे थे ॥ ६ ॥

शिलातलं प्राप्य यथा मृगेन्द्रो
महारणं प्राप्य यथा गजेन्द्रः ।
राज्यं समासाद्य यथा नरेन्द्र-
स्तथा प्रकाशो विरराज चन्द्रः ॥ ७ ॥

जैसे गुफाके बाहर शिलातलपर बैठा हुआ मृगराज (सिंह) शोभा पाता है, जैसे विशाल वनमें पहुँचकर गजराज सुशोभित होता है तथा जैसे राज्य पाकर राजा अधिक शोभासे सम्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार निर्मल प्रकाशसे युक्त होकर चन्द्रदेव सुशोभित हो रहे थे ॥ ७ ॥

प्रकाशचन्द्रोदयनष्टदोषः
प्रवृद्धरक्षःपिशिताशदोषः ।
रामाभिरामेरितचित्तदोषः
स्वर्गप्रकाशो भगवान् प्रदोषः ॥ ८ ॥

प्रकाशयुक्त चन्द्रमाके उदयसे जिसका अन्धकाररूपी दोष दूर हो गया है, जिसमें राक्षसोंके जीव-हिंसा और मांसभक्षणरूपी दोष बढ़ गये हैं तथा रमणियोंके रमण-विषयक चित्तदोष (प्रणय-कलह) निवृत्त हो गये हैं, वह पूजनीय प्रदोषकाल स्वर्गसदृश सुखका प्रकाश करने लगा ॥ ८ ॥

तन्त्रीस्वराः कर्णसुखाः प्रवृत्ताः
स्वपन्ति नार्यः पतिभिः सुवृत्ताः ।
नक्तंचराश्चापि तथा प्रवृत्ता
विहर्तुमत्यद्भुतरौद्रवृत्ताः ॥ ९ ॥

वीणाके श्रवणसुखद शब्द झङ्कृत हो रहे थे, सदाचारिणी स्त्रियाँ पतियोंके साथ सो रही थीं तथा अत्यन्त अद्भुत और भयंकर शील-स्वभाववाले निशाचर निशीथ कालमें विहार कर रहे थे ॥ ९ ॥

मत्तप्रमत्तानि समाकुलानि
रथाश्वभद्रासनसंकुलानि ।
वीरश्रिया चापि समाकुलानि
ददर्श धीमान् स कपिः कुलानि ॥ १० ॥

बुद्धिमान् वानर हनुमान्‌ने वहाँ बहुत-से घर देखे । किन्हींमें ऐश्वर्य-मदसे मत्त निशाचर निवास करते थे, किन्हींमें मदिरापानसे मतवाले राक्षस भरे हुए थे । कितने ही घर रथ, घोड़े आदि वाहनों और भद्रासनोंसे सम्पन्न थे तथा कितने ही वीर-लक्ष्मीसे व्याप्त दिखायी देते थे । वे सभी गृह एक-दूसरेसे मिले हुए थे ॥ १० ॥

परस्परं चाधिकमाक्षिपन्ति
भुजांश्च पीनानधिविक्षिपन्ति ।
मत्तप्रलापानधिविक्षिपन्ति
मत्तानि चान्योन्यमधिक्षिपन्ति ॥ ११ ॥

राक्षसलोग आपसमें एक-दूसरेपर अधिक आक्षेप करते थे । अपनी मोटी-मोटी भुजाओंको भी हिलाते और

चलाते थे। मतवालोंकी-सी बहकी-बहकी बातें करते थे और मदिरासे उन्मत्त होकर परस्पर कटु वचन बोलते थे ॥ ११ ॥

रक्षांसि वक्षांसि च विक्षिपन्ति
गात्राणि कान्तासु च विक्षिपन्ति।
रूपाणि चित्राणि च विक्षिपन्ति
दृढानि चापानि च विक्षिपन्ति॥ १२॥

इतना ही नहीं, वे मतवाले राक्षस अपनी छाती भी पीटते थे। अपने हाथ आदि अङ्गोंको अपनी प्यारी पत्नियोंपर रख देते थे। सुन्दर रूपवाले चित्रोंका निर्माण करते थे और अपने सुदृढ़ धनुषोंको कानतक खींचा करते थे ॥ १२ ॥

ददर्श कान्ताश्च समालभन्त्य-
स्तथापरास्तत्र पुनः स्वपन्त्यः।
सुरूपवक्त्राश्च तथा हसन्त्यः
क्रुद्धाः पराश्चापि विनिःश्वसन्त्यः॥ १३॥

हनुमान्‌जीने यह भी देखा कि नायिकाएँ अपने अङ्गोंमें चन्दन आदिका अनुलेपन करती हैं। दूसरी वहीं सोती हैं। तीसरी सुन्दर रूप और मनोहर मुखवाली ललनाएँ हँसती हैं तथा अन्य वनिताएँ प्रणय-कलहसे कुपित हो लंबी साँसें खींच रही हैं ॥ १३ ॥

महागजैश्चापि तथा नदद्भिः
सुपूजितैश्चापि तथा सुसद्भिः।
रराज वीरैश्च विनिःश्वसद्भि-
र्ह्रदा भुजंगैरिव निःश्वसद्भिः॥ १४॥

चिग्घाड़ते हुए महान् गजराजों, अत्यन्त सम्मानित श्रेष्ठ सभासदों तथा लंबी साँसें छोड़नेवाले वीरोंके कारण वह लङ्कापुरी फुफकारते हुए सर्पोंसे युक्त सरोवरोंके समान शोभा पा रही थी ॥ १४ ॥

बुद्धिप्रधानान् रुचिराभिधानान्
संश्रद्दधानाञ्जगतः प्रधानान्।
नानाविधानान् रुचिराभिधानान्
ददर्श तस्यां पुरि यातुधानान्॥ १५॥

हनुमान्‌जीने उस पुरीमें बहुत-से उत्कृष्ट बुद्धिवाले, सुन्दर बोलनेवाले, सम्यक् श्रद्धा रखनेवाले, अनेक प्रकारके रूप-रंगवाले और मनोहर नाम धारण करनेवाले विश्वविख्यात राक्षस देखे ॥ १५ ॥

ननन्द दृष्ट्वा स च तान् सुरूपान्
नानागुणानात्मगुणानुरूपान्।
विद्योतमानान् स च तान् सुरूपान्
ददर्श कांश्चिच्च पुनर्विरूपान्॥ १६॥

वे सुन्दर रूपवाले, नाना प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न, अपने गुणोंके अनुरूप व्यवहार करनेवाले और तेजस्वी थे। उन्हें देखकर हनुमान्‌जी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने बहुतेरे राक्षसोंको सुन्दर रूपसे सम्पन्न देखा और कोई-कोई उन्हें बड़े कुरूप दिखायी दिये ॥ १६ ॥

ततो वरार्हाः सुविशुद्धभावा-
स्तेषां स्त्रियस्तत्र महानुभावाः।
प्रियेषु पानेषु च सक्तभावा
ददर्श तारा इव सुस्वभावाः॥ १७॥

तदनन्तर वहाँ उन्होंने सुन्दर वस्त्राभूषण धारण करनेके योग्य सुन्दरी राक्षस-रमणियोंको देखा, जिनका भाव अत्यन्त विशुद्ध था। वे बड़ी प्रभावशालिनी थीं। उनका मन प्रियतममें तथा मधुपानमें आसक्त था। वे तारिकाओंकी भाँति कान्तिमती और सुन्दर स्वभाववाली थीं ॥ १७ ॥

स्त्रियो ज्वलन्तीस्त्रपयोपगूढा
निशीथकाले रमणोपगूढाः।
ददर्श काश्चित् प्रमदोपगूढा
यथा विहंगा विहगोपगूढाः॥ १८॥

हनुमान्‌जीकी दृष्टिमें कुछ ऐसी स्त्रियाँ भी आयीं, जो अपने रूप-सौन्दर्यसे प्रकाशित हो रही थीं। वे बड़ी लजीली थीं और आधी रातके समय अपने प्रियतमके आलिङ्गन-पाशमें इस प्रकार बँधी हुई थीं जैसे पक्षिणी पक्षीके द्वारा आलिङ्गित होती है। वे सब-के-सब आनन्दमें मग्न थीं ॥ १८ ॥

अन्याः पुनर्हर्म्यतलोपविष्टा-
स्तत्र प्रियाङ्केषु सुखोपविष्टाः।
भर्तुः परा धर्मपरा निविष्टा
ददर्श धीमान् मदनोपविष्टाः॥ १९॥

दूसरी बहुत-सी स्त्रियाँ महलोंकी छतोंपर बैठी थीं। वे पतिकी सेवामें तत्पर रहनेवाली, धर्मपरायणा, विवाहिता और कामभावनासे भावित थीं। हनुमान्‌जीने उन सबको अपने प्रियतमके अङ्कमें सुखपूर्वक बैठी देखा ॥ १९ ॥

अप्रावृताः काञ्चनराजिवर्णाः
काश्चित्परार्ध्यास्तपनीयवर्णाः।
पुनश्च काश्चिच्छशलक्ष्मवर्णाः
कान्तप्रहीणा रुचिराङ्गवर्णाः॥ २०॥

कितनी ही कामिनियाँ सुवर्ण-रेखाके समान कान्तिमती दिखायी देती थीं। उन्होंने अपनी ओढ़नी उतार दी थी। कितनी ही उत्तम वनिताएँ तपाये हुए सुवर्णके समान रंगवाली थीं तथा कितनी ही पतिवियोगिनी बालाएँ चन्द्रमाके समान श्वेत वर्णकी दिखायी देती थीं। उनकी अङ्गकान्ति बड़ी ही सुन्दर थी ॥ २० ॥

ततः प्रियान् प्राप्य मनोऽभिरामान्
सुप्रीतियुक्ताः सुमनोऽभिरामाः।
गृहेषु हृष्टाः परमाभिरामा
हरिप्रवीरः स ददर्श रामाः ॥ २१ ॥

तदनन्तर वानरोंके प्रमुख वीर हनुमान्‌जीने विभिन्न गृहोंमें ऐसी परम सुन्दरी रमणियोंका अवलोकन किया, जो मनोभिराम प्रियतमका संयोग पाकर अत्यन्त प्रसन्न हो रही थीं। फूलोंके हारसे विभूषित होनेके कारण उनकी रमणीयता और भी बढ़ गयी थी और वे सब-की-सब हर्षसे उत्फुल्ल दिखायी देती थीं ॥ २१ ॥

चन्द्रप्रकाशाश्च हि वक्त्रमाला
वक्राः सुपक्ष्माश्च सुनेत्रमालाः।
विभूषणानां च ददर्श मालाः
शतह्रदानामिव चारुमालाः ॥ २२ ॥

उन्होंने चन्द्रमाके समान प्रकाशमान मुखोंकी पंक्तियाँ, सुन्दर पलकोंवाले तिरछे नेत्रोंकी पंक्तियाँ और चमचमाती हुई विद्युल्लेखाओंके समान आभूषणोंकी भी मनोहर पंक्तियाँ देखीं ॥ २२ ॥

न त्वेव सीतां परमाभिजातां
पथि स्थिते राजकुले प्रजाताम्।
लतां प्रफुल्लामिव साधुजातां
ददर्श तन्वीं मनसाभिजाताम् ॥ २३ ॥

किंतु जो परमात्माके मानसिक संकल्पसे धर्ममार्गपर स्थिर रहनेवाले राजकुलमें प्रकट हुई थीं, जिनका प्रादुर्भाव परम ऐश्वर्यकी प्राप्ति करानेवाला है, जो परम सुन्दर रूपमें उत्पन्न हुई प्रफुल्ल लताके समान शोभा पाती थीं, उन कृशाङ्गी सीताको उन्होंने वहाँ कहीं नहीं देखा था ॥ २३ ॥

सनातने वर्त्मनि संनिविष्टां
रामेक्षणीं तां मदनाभिविष्टाम्।
भर्तुर्मनः श्रीमदनुप्रविष्टां
स्त्रीभ्यः पराभ्यश्च सदा विशिष्टाम् ॥ २४ ॥

उष्णार्दितां सानुसृतास्रकण्ठीं
पुरा वरार्होत्तमनिष्ककण्ठीम्।
सुजातपक्ष्मामभिरक्तकण्ठीं
वने प्रनृत्तामिव नीलकण्ठीम् ॥ २५ ॥

अव्यक्तरेखामिव चन्द्रलेखां
पांसुप्रदिग्धामिव हेमरेखाम्।
क्षतप्ररूढामिव वर्णरेखां
वायुप्रभुग्नामिव मेघरेखाम् ॥ २६ ॥

सीतामपश्यन्मनुजेश्वरस्य
रामस्य पत्नीं वदतां वरस्य।
बभूव दुःखोपहतश्चिरस्य
प्लवंगमो मन्द इवाचिरस्य ॥ २७ ॥

जो सदा सनातन मार्गपर स्थित रहनेवाली, श्रीरामपर ही दृष्टि रखनेवाली, श्रीरामविषयक काम या प्रेमसे परिपूर्ण, अपने पतिके तेजस्वी मनमें बसी हुई तथा दूसरी सभी स्त्रियोंसे सदा ही श्रेष्ठ थीं; जिन्हें विरहजनित ताप सदा पीड़ा देता रहता था, जिनके नेत्रोंसे निरन्तर आँसुओंकी झड़ी लगी रहती थी और कण्ठ उन आँसुओंसे गद्‌गद रहता था, पहले संयोगकालमें जिनका कण्ठ श्रेष्ठ एवं बहुमूल्य निष्क (पदक) से विभूषित रहा करता था, जिनकी पलकें बहुत ही सुन्दर थीं और कण्ठस्वर अत्यन्त मधुर था तथा जो वनमें नृत्य करनेवाली मयूरीके समान मनोहर लगती थीं, जो मेघ आदिसे आच्छादित होनेके कारण अव्यक्त रेखावाली चन्द्रलेखाके समान दिखायी देती थीं, धूलि-धूसर सुवर्ण-रेखा-सी प्रतीत होती थीं, बाणके आघातसे उत्पन्न हुई रेखा (चिह्न)-सी जान पड़ती थीं तथा वायुके द्वारा उड़ायी जाती हुई बादलोंकी रेखा-सी दृष्टिगोचर होती थीं। वक्ताओंमें श्रेष्ठ नरेश्वर श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी उन सीताजीको बहुत देरतक ढूँढ़नेपर भी जब हनुमान्‌जी न देख सके, तब वे तत्क्षण अत्यन्त दुखी और शिथिल हो गये ॥ २४–२७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५ ॥

* * *

षष्ठः सर्गः

हनुमान्‌जीका रावण तथा अन्यान्य राक्षसोंके घरोंमें सीताजीकी खोज करना

स निकामं विमानेषु विचरन् कामरूपधृक्।
विचचार कपिर्लङ्कां लाघवेन समन्वितः ॥ १ ॥

फिर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले कपिवर हनुमान्‌जी बड़ी शीघ्रताके साथ लङ्काके सतमहले मकानोंमें यथेच्छ विचरने लगे ॥ १ ॥

आससाद च लक्ष्मीवान् राक्षसेन्द्रनिवेशनम्।
प्राकारेणार्कवर्णेन भास्वरेणाभिसंवृतम् ॥ २ ॥

अत्यन्त बल-वैभवसे सम्पन्न वे पवनकुमार राक्षसराज रावणके महलमें पहुँचे, जो चारों ओरसे सूर्यके समान चमचमाते हुए सुवर्णमय परकोटोंसे घिरा हुआ था ॥ २ ॥

रक्षितं राक्षसैर्भीमैः सिंहैरिव महद् वनम्।
समीक्षमाणो भवनं चकाशे कपिकुञ्जरः॥ ३॥

जैसे सिंह विशाल वनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार बहुतेरे भयानक राक्षस रावणके उस महलकी रक्षा कर रहे थे। उस भवनका निरीक्षण करते हुए कपिकुञ्जर हनुमान्‌जी मन-ही-मन हर्षका अनुभव करने लगे॥ ३॥

रूप्यकोपहितैश्चित्रैस्तोरणैर्हेमभूषणैः।
विचित्राभिश्च कक्ष्याभिर्द्वारैश्च रुचिरैर्वृतम्॥ ४॥

वह महल चाँदीसे मढ़े हुए चित्रों, सोने जड़े हुए दरवाजों और बड़ी अद्भुत ड्योढ़ियों तथा सुन्दर द्वारोंसे युक्त था॥ ४॥

गजास्थितैर्महामात्रैः शूरैश्च विगतश्रमैः।
उपस्थितमसंहार्यैर्हयैः स्यन्दनयायिभिः॥ ५॥

हाथीपर चढ़े हुए महावत तथा श्रमहीन शूरवीर वहाँ उपस्थित थे। जिनके वेगको कोई रोक नहीं सकता था, ऐसे रथवाहक अश्व भी वहाँ शोभा पा रहे थे॥ ५॥

सिंहव्याघ्रतनुत्राणैर्दान्तकाञ्चनराजतैः।
घोषवद्भिर्विचित्रैश्च सदा विचरितं रथैः॥ ६॥

सिंहों और बाघोंके चमड़ोंके बने हुए कवचोंसे वे रथ ढके हुए थे, उनमें हाथी-दाँत, सुवर्ण तथा चाँदीकी प्रतिमाएँ रखी हुई थीं। उन रथोंमें लगी हुई छोटी-छोटी घंटिकाओंकी मधुर ध्वनि वहाँ होती रहती थी; ऐसे विचित्र रथ उस रावण-भवनमें सदा आ-जा रहे थे॥ ६॥

बहुरत्नसमाकीर्णं परार्ध्यासनभूषितम्।
महारथसमावापं महारथमहासनम्॥ ७॥

रावणका वह भवन अनेक प्रकारके रत्नोंसे व्याप्त था, बहुमूल्य आसन उसकी शोभा बढ़ाते थे। उसमें सब ओर बड़े-बड़े रथोंके ठहरनेके स्थान बने थे और महारथी वीरोंके लिये विशाल वासस्थान बनाये गये थे॥ ७॥

दृश्यैश्च परमोदारैस्तैस्तैश्च मृगपक्षिभिः।
विविधैर्बहुसाहस्रैः परिपूर्णं समन्ततः॥ ८॥

दर्शनीय एवं परम सुन्दर नाना प्रकारके सहस्रों पशु और पक्षी वहाँ सब ओर भरे हुए थे॥ ८॥

विनीतैरन्तपालैश्च रक्षोभिश्च सुरक्षितम्।
मुख्याभिश्च वरस्त्रीभिः परिपूर्णं समन्ततः॥ ९॥

सीमाकी रक्षा करनेवाले विनयशील राक्षस उस भवनकी रक्षा करते थे। वह सब ओरसे मुख्य-मुख्य सुन्दरियोंसे भरा रहता था॥ ९॥

मुदितप्रमदारत्नं राक्षसेन्द्रनिवेशनम्।
वराभरणसंह्रादैः समुद्रस्वननिःस्वनम्॥ १०॥

वहाँकी रत्नस्वरूपा युवती रमणियाँ सदा प्रसन्न रहा करती थीं। सुन्दर आभूषणोंकी झनकारोंसे झंकृत राक्षसराजका वह महल समुद्रके कलकलनादकी भाँति मुखरित रहता था॥ १०॥

तद् राजगुणसम्पन्नं मुख्यैश्च वरचन्दनैः।
महाजनसमाकीर्णं सिंहैरिव महद् वनम्॥ ११॥

वह भवन राजोचित सामग्रीसे पूर्ण था, श्रेष्ठ एवं सुन्दर चन्दनोंसे चर्चित था तथा सिंहोंसे भरे हुए विशाल वनकी भाँति प्रधान प्रधान पुरुषोंसे परिपूर्ण था॥ ११॥

भेरीमृदङ्गाभिरुतं शङ्खघोषविनादितम्।
नित्यार्चितं पर्वसुतं पूजितं राक्षसैः सदा॥ १२॥

वहाँ भेरी और मृदङ्गकी ध्वनि सब ओर फैली हुई थी। वहाँ शङ्खकी ध्वनि गूँज रही थी। उसकी नित्य पूजा एवं सजावट होती थी। पर्वोंके दिन वहाँ होम किया जाता था। राक्षसलोग सदा ही उस राजभवनकी पूजा करते थे॥ १२॥

समुद्रमिव गम्भीरं समुद्रसमनिःस्वनम्।
महात्मनो महद् वेश्म महारत्नपरिच्छदम्॥ १३॥

वह समुद्रके समान गम्भीर और उसीके समान कोलाहलपूर्ण था। महामना रावणका वह विशाल भवन महान् रत्नमय अलंकारोंसे अलंकृत था॥ १३॥

महारत्नसमाकीर्णं ददर्श स महाकपिः।
विराजमानं वपुषा गजाश्वरथसंकुलम्॥ १४॥

उसमें हाथी-घोड़े और रथ भरे हुए थे तथा वह महान् रत्नोंसे व्याप्त होनेके कारण अपने स्वरूपसे प्रकाशित हो रहा था। महाकपि हनुमान्‌ने उसे देखा॥ १४॥

लङ्काभरणमित्येव सोऽमन्यत महाकपिः।
चचार हनुमांस्तत्र रावणस्य समीपतः॥ १५॥

देखकर कपिवर हनुमान्‌ने उस भवनको लङ्काका आभूषण ही माना। तदनन्तर वे उस रावण-भवनके आस-पास ही विचरने लगे॥ १५॥

गृहाद् गृहं राक्षसानामुद्यानानि च सर्वशः।
वीक्षमाणोऽप्यसंत्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः॥ १६॥

इस प्रकार वे एक घरसे दूसरे घरमें जाकर राक्षसोंके बगीचोंके सभी स्थानोंको देखते हुए बिना किसी भयसे अट्टालिकाओंपर विचरण करने लगे॥ १६॥

अवप्लुत्य महावेगः प्रहस्तस्य निवेशनम्।
ततोऽन्यत् पुप्लुवे वेश्म महापार्श्वस्य वीर्यवान्॥ १७॥

महान् वेगशाली और पराक्रमी वीर हनुमान् वहाँसे कूदकर प्रहस्तके घरमें उतर गये। फिर वहाँसे उछले और महापार्श्वके महलमें पहुँच गये॥ १७॥

अथ मेघप्रतीकाशं कुम्भकर्णनिवेशनम्।
विभीषणस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः॥ १८॥

तदनन्तर वे महाकपि हनुमान् मेघके समान प्रतीत होनेवाले कुम्भकर्णके भवनमें और वहाँसे विभीषणके महलमें कूद गये ॥ १८ ॥

महोदरस्य च तथा विरूपाक्षस्य चैव हि ।
विद्युज्जिह्वस्य भवनं विद्युन्मालेस्तथैव च ॥ १९ ॥

इसी तरह क्रमशः वे महोदर, विरूपाक्ष, विद्युज्जिह्व और विद्युन्मालिके घरमें गये ॥ १९ ॥

वज्रदंष्ट्रस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः ।
शुकस्य च महावेगः सारणस्य च धीमतः ॥ २० ॥

इसके बाद महान् वेगशाली महाकपि हनुमान्ने फिर छलाँग मारी और वे वज्रदंष्ट्र, शुक तथा बुद्धिमान् सारणके घरोंमें जा पहुँचे ॥ २० ॥

तथा चेन्द्रजितो वेश्म जगाम हरियूथपः ।
जम्बुमालेः सुमालेश्च जगाम हरिसत्तमः ॥ २१ ॥

इसके बाद वे वानर-यूथपति कपिश्रेष्ठ इन्द्रजित्के घरमें गये और वहाँसे जम्बुमालि तथा सुमालिके घरमें पहुँच गये ॥ २१ ॥

रश्मिकेतोश्च भवनं सूर्यशत्रोस्तथैव च ।
वज्रकायस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः ॥ २२ ॥

तदनन्तर वे महाकपि उछलते-कूदते हुए रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु और वज्रकायके महलोंमें जा पहुँचे ॥ २२ ॥

धूम्राक्षस्याथ सम्पातेर्भवनं मारुतात्मजः ।
विद्युद्रूपस्य भीमस्य घनस्य विघनस्य च ॥ २३ ॥
शुकनाभस्य चक्रस्य शठस्य कपटस्य च ।
ह्रस्वकर्णस्य दंष्ट्रस्य लोमशस्य च रक्षसः ॥ २४ ॥
युद्धोन्मत्तस्य मत्तस्य ध्वजग्रीवस्य सादिनः ।
विद्युज्जिह्वद्विजिह्वानां तथा हस्तिमुखस्य च ॥ २५ ॥
करालस्य पिशाचस्य शोणिताक्षस्य चैव हि ।
प्लवमानः क्रमेणैव हनुमान् मारुतात्मजः ॥ २६ ॥
तेषु तेषु महार्हेषु भवनेषु महायशाः ।
तेषामृद्धिमतामृद्धिं ददर्श स महाकपिः ॥ २७ ॥

फिर क्रमशः वे कपिवर पवनकुमार धूम्राक्ष, सम्पाति, विद्युद्रूप, भीम, घन, विघन, शुकनाभ, चक्र, शठ, कपट, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्र, लोमश, युद्धोन्मत्त, मत्त, ध्वजग्रीव, विद्युज्जिह्व, द्विजिह्व, हस्तिमुख, कराल, पिशाच और शोणिताक्ष आदिके महलोंमें गये । इस प्रकार क्रमशः कूदते-फाँदते हुए महायशस्वी पवनपुत्र हनुमान् उन-उन बहुमूल्य भवनोंमें पधारे । वहाँ उन महाकपिने उन समृद्धिशाली राक्षसोंकी समृद्धि देखी ॥ २३—२७ ॥

सर्वेषां समतिक्रम्य भवनानि समन्ततः ।
आससादाथ लक्ष्मीवान् राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ॥ २८ ॥

तत्पश्चात् बल-वैभवसे सम्पन्न हनुमान् उन सब भवनोंको लाँघकर पुनः राक्षसराज रावणके महलपर आ गये ॥ २८ ॥

रावणस्योपशायिन्यो ददर्श हरिसत्तमः ।
विचरन् हरिशार्दूलो राक्षसीर्विकृतेक्षणाः ॥ २९ ॥

वहाँ विचरते हुए उन वानरशिरोमणि कपिश्रेष्ठने रावणके निकट सोनेवाली (उसके पलंगकी रक्षा करनेवाली) राक्षसियोंको देखा, जिनकी आँखें बड़ी विकराल थीं ॥ २९ ॥

शूलमुद्गरहस्तांश्च शक्तितोमरधारिणः ।
ददर्श विविधान्गुल्मांस्तस्य रक्षःपतेर्गृहे ॥ ३० ॥

साथ ही, उन्होंने उस राक्षसराजके भवनमें राक्षसियोंके बहुत-से समुदाय देखे, जिनके हाथोंमें शूल, मुद्गर, शक्ति और तोमर आदि अस्त्र-शस्त्र विद्यमान थे ॥ ३० ॥

राक्षसांश्च महाकायान् नानाप्रहरणोद्यतान् ।
रक्ताञ्श्वेतान् सितांश्चापि हरींश्चापि महाजवान् ॥ ३१ ॥

उनके सिवा, वहाँ बहुत-से विशालकाय राक्षस भी दिखायी दिये, जो नाना प्रकारके हथियारोंसे लैस थे । इतना ही नहीं, वहाँ लाल और सफेद रंगके बहुत से अत्यन्त वेगशाली घोड़े भी बँधे हुए थे ॥ ३१ ॥

कुलीनान् रूपसम्पन्नान् गजान् परगजारुजान् ।
शिक्षितान् गजशिक्षायामैरावतसमान् युधि ॥ ३२ ॥
निहन्तॄन् परसैन्यानां गृहे तस्मिन् ददर्श सः ।
क्षरतश्च यथा मेघान् स्रवतश्च यथा गिरीन् ॥ ३३ ॥
मेघस्तनितनिर्घोषान् दुर्धर्षान् समरे परैः ।

साथ ही अच्छी जातिके रूपवान् हाथी भी थे, जो शत्रुसेनाके हाथियोंको मार भगानेवाले थे । वे सब-के-सब गजशिक्षामें सुशिक्षित, युद्धमें ऐरावतके समान पराक्रमी तथा शत्रुसेनाओंका संहार करनेमें समर्थ थे । वे बरसते हुए मेघों और झरने बहाते हुए पर्वतोंके समान मदकी धारा बहा रहे थे । उनकी गर्जना मेघ-गर्जनाके समान जान पड़ती थी । वे समराङ्गणमें शत्रुओंके लिये दुर्जय थे । हनुमान्जीने रावणके भवनमें उन सबको देखा ॥ ३२-३३½ ॥

सहस्रं वाहिनीस्तत्र जाम्बूनदपरिष्कृताः ॥ ३४ ॥
हेमजालैरविच्छिन्नास्तरुणादित्यसंनिभाः ।
ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निवेशने ॥ ३५ ॥

राक्षसराज रावणके उस महलमें उन्होंने सहस्रों ऐसी सेनाएँ देखीं, जो जाम्बूनदके आभूषणोंसे विभूषित थीं । उनके सारे अङ्ग सोनेके गहनोंसे ढके हुए थे तथा वे प्रातःकालके सूर्यकी भाँति उद्दीप्त हो रही थीं ॥ ३४-३५ ॥

शिबिका विविधाकाराः स कपिर्मारुतात्मजः ।
लतागृहाणि चित्राणि चित्रशालागृहाणि च ॥ ३६ ॥
क्रीडागृहाणि चान्यानि दारुपर्वतकानि च ।
कामस्य गृहकं रम्यं दिवागृहकमेव च ॥ ३७ ॥
ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निवेशने ।

पवनपुत्र हनुमान्‌जीने राक्षसराज रावणके उस भवनमें अनेक प्रकारकी पालकियाँ, विचित्र लता-गृह, चित्रशालाएँ, क्रीडाभवन, काष्ठमय क्रीडापर्वत, रमणीय विलासगृह और दिनमें उपयोगमें आनेवाले विलासभवन भी देखे ॥ ३६-३७½ ॥

स मन्दरसमप्रख्यं मयूरस्थानसंकुलम् ॥ ३८ ॥
ध्वजयष्टिभिराकीर्णं ददर्श भवनोत्तमम् ।
अनन्तरत्ननिचयं निधिजालं समन्ततः ।
धीरनिष्ठितकर्माङ्गं गृहं भूतपतेरिव ॥ ३९ ॥

उन्होंने वह महल मन्दराचलके समान ऊँचा, क्रीडा-मयूरोंके रहनेके स्थानोंसे युक्त, ध्वजाओंसे व्याप्त, अनन्त रत्नोंका भण्डार और सब ओरसे निधियोंसे भरा हुआ देखा। उसमें धीर पुरुषोंने निधिरक्षाके उपयुक्त कर्माङ्गोंका अनुष्ठान किया था तथा वह साक्षात् भूतनाथ (महेश्वर या कुबेर) के भवनके समान जान पड़ता था ॥ ३८-३९ ॥

अर्चिर्भिश्चापि रत्नानां तेजसा रावणस्य च ।
विरराज च तद् वेश्म रश्मिवानिव रश्मिभिः ॥ ४० ॥

रत्नोंकी किरणों तथा रावणके तेजके कारण वह घर किरणोंसे युक्त सूर्यके समान जगमगा रहा था ॥ ४० ॥

जाम्बूनदमयान्येव शयनान्यासनानि च ।
भाजनानि च शुभ्राणि ददर्श हरियूथपः ॥ ४१ ॥

वानरयूथपति हनुमान्‌ने वहाँके पलंग, चौकी और पात्र सभी अत्यन्त उज्ज्वल तथा जाम्बूनद सुवर्णके बने हुए ही देखे ॥ ४१ ॥

मध्वासवकृतक्लेदं मणिभाजनसंकुलम् ।
मनोरममसम्बाधं कुबेरभवनं यथा ॥ ४२ ॥
नूपुराणां च घोषेण काञ्चीनां निःस्वनेन च ।
मृदङ्गतलनिर्घोषैर्घोषवद्भिर्विनादितम् ॥ ४३ ॥

उसमें मधु और आसवके गिरनेसे वहाँकी भूमि गीली हो रही थी। मणिमय पात्रोंसे भरा हुआ वह सुविस्तृत महल कुबेर-भवनके समान मनोरम जान पड़ता था। नूपुरोंकी झनकार, करधनियोंकी खनखनाहट, मृदङ्गों और तालियोंकी मधुर ध्वनि तथा अन्य गम्भीर घोष करनेवाले वाद्योंसे वह भवन मुखरित हो रहा था ॥ ४२-४३ ॥

प्रासादसंघातयुतं स्त्रीरत्नशतसंकुलम् ।
सुव्यूढकक्ष्यं हनुमान् प्रविवेश महागृहम् ॥ ४४ ॥

उसमें सैकड़ों अट्टालिकाएँ थीं, सैकड़ों रमणी-रत्नोंसे वह व्याप्त था। उसकी ड्योढ़ियाँ बहुत बड़ी-बड़ी थीं। ऐसे विशाल भवनमें हनुमान्‌जीने प्रवेश किया ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें छठा सर्ग पूरा हुआ ॥ ६ ॥

* * *

सप्तमः सर्गः

रावणके भवन एवं पुष्पक विमानका वर्णन

स वेश्मजालं बलवान् ददर्श
व्यासक्तवैदूर्यसुवर्णजालम् ।
यथा महत्प्रावृषि मेघजालं
विद्युत्पिनद्धं सविहङ्गजालम् ॥ १ ॥

बलवान् वीर हनुमान्‌जीने नीलमसे जड़ी हुई सोनेकी खिड़कियोंसे सुशोभित तथा पक्षि-समूहोंसे युक्त भवनोंका समुदाय देखा, जो वर्षाकालमें बिजलीसे युक्त महती मेघमालाके समान मनोहर जान पड़ता था ॥ १ ॥

निवेशनानां विविधाश्च शालाः
प्रधानशङ्खायुधचापशालाः ।
मनोहराश्चापि पुनर्विशाला
ददर्श वेश्माद्रिषु चन्द्रशालाः ॥ २ ॥

उसमें नाना प्रकारकी बैठकें, शङ्ख, आयुध और धनुषोंकी मुख्य-मुख्य शालाएँ तथा पर्वतोंके समान ऊँचे महलोंके ऊपर मनोहर एवं विशाल चन्द्रशालाएँ (अट्टालिकाएँ) देखीं ॥ २ ॥

गृहाणि नानावसुराजितानि
देवासुरैश्चापि सुपूजितानि ।
सर्वैश्च दोषैः परिवर्जितानि
कपिर्ददर्श स्वबलार्जितानि ॥ ३ ॥

कपिवर हनुमान्‌ने वहाँ नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित ऐसे-ऐसे घर देखे, जिनकी देवता और असुर भी प्रशंसा करते थे। वे गृह सम्पूर्ण दोषोंसे रहित थे तथा रावणने उन्हें अपने पुरुषार्थसे प्राप्त किया था ॥ ३ ॥

तानि प्रयत्नाभिसमाहितानि
मयेन साक्षादिव निर्मितानि ।
महीतले सर्वगुणोत्तराणि
ददर्श लङ्काधिपतेर्गृहाणि ॥ ४ ॥

वे भवन बड़े प्रयत्नसे बनाये गये थे और ऐसे अद्भुत लगते थे, मानो साक्षात् मय दानवने ही उनका निर्माण किया हो। हनुमान्‌जीने उन्हें देखा, लङ्कापति रावणके वे घर इस भूतल पर सभी गुणोंमें सबसे बढ़-चढ़कर थे ॥ ४ ॥

ततो ददर्शोच्छ्रितमेघरूपं
मनोहरं काञ्चनचारुरूपम्।
रक्षोऽधिपस्यात्मबलानुरूपं
गृहोत्तमं ह्यप्रतिरूपरूपम्॥ ५॥

फिर उन्होंने राक्षसराज रावणका उसकी शक्तिके अनुरूप अत्यन्त उत्तम और अनुपम भवन (पुष्पक विमान) देखा, जो मेघके समान ऊँचा, सुवर्णके समान सुन्दर कान्तिवाला तथा मनोहर था॥ ५॥

महीतले स्वर्गमिव प्रकीर्णं
श्रिया ज्वलन्तं बहुरत्नकीर्णम्।
नानातरूणां कुसुमावकीर्णं
गिरेरिवाग्रं रजसावकीर्णम्॥ ६॥

वह इस भूतलपर बिखरे हुए स्वर्गके समान जान पड़ता था। अपनी कान्तिसे प्रज्वलित-सा हो रहा था। अनेकानेक रत्नोंसे व्याप्त, भाँति-भाँतिके वृक्षोंके फूलोंसे आच्छादित तथा पुष्पोंके परागसे भरे हुए पर्वत-शिखरके समान शोभा पाता था॥ ६॥

नारीप्रवेकैरिव दीप्यमानं
तडिद्भिरम्भोधरमर्च्यमानम्।
हंसप्रवेकैरिव वाह्यमानं
श्रिया युतं खे सुकृतं विमानम्॥ ७॥

वह विमानरूप भवन विद्युन्मालाओंसे पूजित मेघके समान रमणी-रत्नोंसे देदीप्यमान हो रहा था और श्रेष्ठ हंसोंद्वारा आकाशमें ढोये जाते हुए विमानकी भाँति जान पड़ता था। उस दिव्य विमानको बहुत सुन्दर ढंगसे बनाया गया था। वह अद्भुत शोभासे सम्पन्न दिखायी देता था॥ ७॥

यथा नगाग्रं बहुधातुचित्रं
यथा नभश्च ग्रहचन्द्रचित्रम्।
ददर्श युक्तीकृतचारुमेघ-
चित्रं विमानं बहुरत्नचित्रम्॥ ८॥

जैसे अनेक धातुओंके कारण पर्वतशिखर, ग्रहों और चन्द्रमाके कारण आकाश तथा अनेक वर्णोंसे युक्त होनेके कारण मनोहर मेघ विचित्र शोभा धारण करते हैं, उसी तरह नाना प्रकारके रत्नोंसे निर्मित होनेके कारण वह विमान भी विचित्र शोभासे सम्पन्न दिखायी देता था॥ ८॥

मही कृता पर्वतराजिपूर्णा
शैलाः कृता वृक्षवितानपूर्णाः।
वृक्षाः कृताः पुष्पवितानपूर्णाः
पुष्पं कृतं केसरपत्रपूर्णम्॥ ९॥

उस विमानकी आधारभूमि (आरोहियोंके खड़े होनेका स्थान) सोने और मणियोंके द्वारा निर्मित कृत्रिम पर्वत-मालाओंसे पूर्ण बनायी गयी थी। वे पर्वत वृक्षोंकी विस्तृत पंक्तियोंसे हरे-भरे रचे गये थे। वे वृक्ष फूलोंके बाहुल्यसे व्याप्त बनाये गये थे तथा वे पुष्प भी केसर एवं पंखुड़ियोंसे पूर्ण निर्मित हुए थे* ॥ ९॥

कृतानि वेश्मानि च पाण्डुराणि
तथा सुपुष्पाण्यपि पुष्कराणि।
पुनश्च पद्मानि सकेसराणि
वनानि चित्राणि सरोवराणि॥ १०॥

उस विमानमें श्वेतभवन बने हुए थे। सुन्दर फूलोंसे सुशोभित पोखरे बनाये गये थे। केसरयुक्त कमल, विचित्र वन और अद्भुत सरोवरोंका भी निर्माण किया गया था॥ १०॥

पुष्पाह्वयं नाम विराजमानं
रत्नप्रभाभिश्च विघूर्णमानम्।
वेश्मोत्तमानामपि चोच्चमानं
महाकपिस्तत्र महाविमानम्॥ ११॥

महाकपि हनुमान्ने जिस सुन्दर विमानको वहाँ देखा, उसका नाम पुष्पक था। वह रत्नोंकी प्रभासे प्रकाशमान था और इधर-उधर भ्रमण करता था। देवताओंके गृहाकार उत्तम विमानोंमें सबसे अधिक आदर उस महाविमान पुष्पकका ही होता था॥ ११॥

कृताश्च वैदूर्यमया विहङ्गा
रूप्यप्रवालैश्च तथा विहङ्गाः।
चित्राश्च नानावसुभिर्भुजङ्गा
जात्यानुरूपास्तुरगाः शुभाङ्गाः॥ १२॥

उसमें नीलम, चाँदी और मूँगोंके आकाशचारी पक्षी बनाये गये थे। नाना प्रकारके रत्नोंसे विचित्र वर्णके सर्पोंका निर्माण किया गया था और अच्छी जातिके घोड़ोंके समान ही सुन्दर अङ्गवाले अश्व भी बनाये गये थे॥ १२॥

प्रवालजाम्बूनदपुष्पपक्षाः
सलीलमावर्जितजिह्मपक्षाः।
कामस्य साक्षादिव भान्ति पक्षाः
कृता विहङ्गाः सुमुखाः सुपक्षाः॥ १३॥

उस विमानपर सुन्दर मुख और मनोहर पंखवाले बहुत-से ऐसे विहङ्गम निर्मित हुए थे, जो साक्षात् कामदेवके

---

* जहाँ पूर्वकथित वस्तुओंके प्रति उत्तरोत्तर कथित वस्तुओंका विशेषण भावसे स्थापन किया जाय, वहाँ 'एकावली' अलंकार माना गया है। इस लक्षणके अनुसार इस श्लोकमें एकावली अलंकार है। यहाँ 'मही' का विशेषण पर्वत, पर्वतका वृक्ष और वृक्षका विशेषण पुष्प आदि समझना चाहिये। गोविन्दराजने यहाँ 'अधिक' नामक अलंकार माना है; परंतु जहाँ आधारसे आधेयकी विशेषता बतायी गयी हो वही इसका विषय है; यहाँ ऐसी बात नहीं है।

सहायक जान पड़ते थे। उनकी पाँखें मूँगे और सुवर्णके बने हुए फूलोंसे युक्त थीं तथा उन्होंने लीलापूर्वक अपने बाँके पंखोंको समेट रक्खा था ॥ १३ ॥

नियुज्यमानाश्च गजाः सुहस्ताः
सकेसराश्चोत्पलपत्रहस्ताः ।
बभूव देवी च कृतासुहस्ता
लक्ष्मीस्तथा पद्मिनि पद्महस्ता ॥ १४ ॥

उस विमानके कमलमण्डित सरोवरमें ऐसे हाथी बनाये गये थे, जो लक्ष्मीके अभिषेक-कार्यमें नियुक्त थे। उनकी सूँड़ बड़ी सुन्दर थी। उनके अङ्गोंमें कमलोंके केसर लगे हुए थे तथा उन्होंने अपनी सूँड़ोंमें कमल-पुष्प धारण किये थे। उनके साथ ही वहाँ तेजस्विनी लक्ष्मी देवीकी प्रतिमा भी विराजमान थी, जिनका उन हाथियोंके द्वारा अभिषेक हो रहा था। उनके हाथ बड़े सुन्दर थे। उन्होंने अपने हाथमें कमलपुष्प धारण कर रक्खा था ॥ १४ ॥

इतीव तद्गृहमभिगम्य शोभनं
सविस्मयो नगमिव चारुकन्दरम् ।
पुनश्च तत्परमसुगन्धि सुन्दरं
हिमात्यये नगमिव चारुकन्दरम् ॥ १५ ॥

इस प्रकार सुन्दर कन्दराओंवाले पर्वतके समान तथा वसन्तऋतुमें सुन्दर कोटरोंवाले परम सुगन्धयुक्त वृक्षके समान उस शोभायमान मनोहर भवन (विमान) में पहुँचकर हनुमान्‌जी बड़े विस्मित हुए ॥ १५ ॥

ततः स तां कपिरभिपत्य पूजितां
चरन् पुरीं दशमुखबाहुपालिताम् ।
अदृश्य तां जनकसुतां सुपूजितां
सुदुःखितां पतिगुणवेगनिर्जिताम् ॥ १६ ॥

तदनन्तर दशमुख रावणके बाहुबलसे पालित उस प्रशंसित पुरीमें जाकर चारों ओर घूमनेपर भी पतिके गुणोंके वेगसे पराजित (विमुग्ध) अत्यन्त दुखिनी और परम पूजनीया जनककिशोरी सीताको न देखकर कपिवर हनुमान् बड़ी चिन्तामें पड़ गये ॥ १६ ॥

ततस्तदा बहुविधभावितात्मनः
कृतात्मनो जनकसुतां सुवर्त्मनः ।
अपश्यतोऽभवदतिदुःखितं मनः
सुचक्षुषः प्रविचरतो महात्मनः ॥ १७ ॥

महात्मा हनुमान्‌जी अनेक प्रकारसे परमार्थ-चिन्तनमें तत्पर रहनेवाले कृतात्मा (पवित्र अन्तःकरणवाले) सन्मार्गगामी तथा उत्तम दृष्टि रखनेवाले थे। इधर-उधर बहुत घूमनेपर भी जब उन महात्माको जानकीजीका पता न लगा, तब उनका मन बहुत दुखी हो गया ॥ १७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें सातवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

हनुमान्‌जीके द्वारा पुनः पुष्पक विमानका दर्शन

स तस्य मध्ये भवनस्य संस्थितो
महद्विमानं मणिरत्नचित्रितम् ।
प्रतप्तजाम्बूनदजालकृत्रिमं
ददर्श धीमान् पवनात्मजः कपिः ॥ १ ॥

रावणके भवनके मध्यभागमें खड़े हुए बुद्धिमान् पवनकुमार कपिवर हनुमान्‌जीने मणि तथा रत्नोंसे जटित एवं तपे हुए सुवर्णमय गवाक्षोंकी रचनासे युक्त उस विशाल विमानको पुनः देखा ॥ १ ॥

तदप्रमेयप्रतिकारकृत्रिमं
कृतं स्वयं साध्विति विश्वकर्मणा ।
दिवं गते वायुपथे प्रतिष्ठितं
व्यराजतादित्यपथस्य लक्ष्म तत् ॥ २ ॥

उसकी रचनाको सौन्दर्य आदिकी दृष्टिसे मापा नहीं जा सकता था। उसका निर्माण अनुपम रीतिसे किया गया था। स्वयं विश्वकर्माने ही उसे बनाया था और बहुत उत्तम कहकर उसकी प्रशंसा की थी। जब वह आकाशमें उठकर वायुमार्गमें स्थित होता था, तब सौर मार्गके चिह्न-सा सुशोभित होता था ॥ २ ॥

न तत्र किंचिन्न कृतं प्रयत्नतो
न तत्र किंचिन्न महार्घरत्नवत् ।
न ते विशेषा नियताः सुरेष्वपि
न तत्र किंचिन्न महाविशेषवत् ॥ ३ ॥

उसमें कोई ऐसी वस्तु नहीं थी, जो अत्यन्त प्रयत्नसे न बनायी गयी हो तथा वहाँ कोई भी ऐसा स्थान या विमानका अङ्ग नहीं था, जो बहुमूल्य रत्नोंसे जटित न हो। उसमें जो विशेषताएँ थीं, वे देवताओंके विमानोंमें भी नहीं थीं। उसमें कोई ऐसी चीज नहीं थी, जो बड़ी भारी विशेषतासे युक्त न हो ॥ ३ ॥

तपःसमाधानपराक्रमार्जितं
मनःसमाधानविचारचारिणम् ।

अनेकसंस्थानविशेषनिर्मितं
ततस्ततस्तुल्यविशेषनिर्मितम् ॥ ४ ॥

रावणने जो निराहार रहकर तप किया था और भगवान्‌के चिन्तनमें चित्तको एकाग्र किया था, इससे मिले हुए पराक्रमके द्वारा उसने उस विमानपर अधिकार प्राप्त किया था। मनमें जहाँ भी जानेका संकल्प उठता; वहीं वह विमान पहुँच जाता था। अनेक प्रकारकी विशिष्ट निर्माण-कलाओंद्वारा उस विमानकी रचना हुई थी तथा जहाँ-तहाँसे प्राप्त की गयी दिव्य विमान-निर्माणोचित विशेषताओंसे उसका निर्माण हुआ था ॥ ४ ॥

मनः समाधाय तु शीघ्रगामिनं
दुरासदं मारुततुल्यगामिनम्।
महात्मनां पुण्यकृतां महर्द्धिनां
यशस्विनामग्र्यमुदामिवालयम् ॥ ५ ॥

वह स्वामीके मनका अनुसरण करते हुए बड़ी शीघ्रतासे चलनेवाला, दूसरोंके लिये दुर्लभ और वायुके समान वेगपूर्वक आगे बढ़नेवाला था तथा श्रेष्ठ आनन्द (महान् सुख) के भागी, बढ़े-चढ़े तपवाले, पुण्यकारी महात्माओंका ही वह आश्रय था ॥ ५ ॥

विशेषमालम्ब्य विशेषसंस्थितं
विचित्रकूटं बहुकूटमण्डितम्।
मनोऽभिरामं शरदिन्दुनिर्मलं
विचित्रकूटं शिखरं गिरेर्यथा ॥ ६ ॥

वह विमान गतिविशेषका आश्रय ले व्योमरूप देशविशेषमें स्थित था। आश्चर्यजनक विचित्र वस्तुओंका समुदाय उसमें एकत्र किया गया था। बहुत-सी शालाओंके कारण उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। वह शरद्-ऋतुके चन्द्रमाके समान निर्मल और मनको आनन्द प्रदान करनेवाला था। विचित्र छोटे-छोटे शिखरोंसे युक्त किसी पर्वतके प्रधान शिखरकी जैसी शोभा होती है, उसी प्रकार अद्भुत शिखरवाले उस पुष्पक विमानकी भी शोभा हो रही थी ॥ ६ ॥

वहन्ति यत्कुण्डलशोभितानना
महाशना व्योमचरा निशाचराः।
विवृत्तविध्वस्तविशाललोचना
महाजवा भूतगणाः सहस्रशः ॥ ७ ॥
वसन्तपुष्पोत्करचारुदर्शनं
वसन्तमासादपि चारुदर्शनम्।
स पुष्पकं तत्र विमानमुत्तमं
ददर्श तद् वानरवीरसत्तमः ॥ ८ ॥

जिनके मुखमण्डल कुण्डलोंसे सुशोभित और नेत्र घूमते या घूरते रहनेवाले, निमेषरहित तथा बड़े-बड़े थे, वे अपरिमित भोजन करनेवाले, महान् वेगशाली, आकाशमें विचरनेवाले तथा रातमें भी दिनके समान ही चलनेवाले सहस्रों भूतगण जिसका भार वहन करते थे, जो वसन्तकालिक पुष्प-पुञ्जके समान रमणीय दिखायी देता था और वसन्त माससे भी अधिक सुहावना दृष्टिगोचर होता था, उस उत्तम पुष्पक विमानको वानरशिरोमणि हनुमान्‌जीने वहाँ देखा ॥ ७-८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें आठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८ ॥

* * *

नवमः सर्गः

हनुमान्‌जीका रावणके श्रेष्ठ भवन पुष्पकविमान तथा रावणके रहनेकी सुन्दर हवेलीको देखकर उसके भीतर सोयी हुई सहस्रों सुन्दरी स्त्रियोंका अवलोकन करना

तस्यालयवरिष्ठस्य मध्ये विमलमायतम्।
ददर्श भवनश्रेष्ठं हनुमान् मारुतात्मजः ॥ १ ॥
अर्धयोजनविस्तीर्णमायतं योजनं महत्।
भवनं राक्षसेन्द्रस्य बहुप्रासादसंकुलम् ॥ २ ॥

लङ्कावर्ती सर्वश्रेष्ठ महान् गृहके मध्यभागमें पवनपुत्र हनुमान्‌जीने देखा एक उत्तम भवन शोभा पा रहा है। वह बहुत ही निर्मल एवं विस्तृत था। उसकी लंबाई एक योजनकी और चौड़ाई आधे योजनकी थी। राक्षसराज रावणका वह विशाल भवन बहुत-सी अट्टालिकाओंसे व्याप्त था ॥ १-२ ॥

मार्गमाणस्तु वैदेहीं सीतामायतलोचनाम्।
सर्वतः परिचक्राम हनूमानरिसूदनः ॥ ३ ॥

विशाललोचना विदेह-नन्दिनी सीताकी खोज करते हुए शत्रुसूदन हनुमान्‌जी उस भवनमें सब ओर चक्कर लगाते फिरे ॥ ३ ॥

उत्तमं राक्षसावासं हनुमानवलोकयन्।
आससादाथ लक्ष्मीवान् राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ॥ ४ ॥

बलवैभवसे सम्पन्न हनुमान् राक्षसोंके उस उत्तम आवासका अवलोकन करते हुए एक ऐसे सुन्दर गृहमें जा पहुँचे, जो राक्षसराज रावणका निजी निवास-स्थान था ॥ ४ ॥

चतुर्विषाणैर्द्विरदैस्त्रिविषाणैस्तथैव च।
परिक्षिप्तमसम्बाधं रक्ष्यमाणमुदायुधैः ॥ ५ ॥

चार दाँत तथा तीन दाँतोंवाले हाथी इस विस्तृत भवनको चारों ओरसे घेरकर खड़े थे और हाथोंमें हथियार लिये बहुत-से राक्षस उसकी रक्षा करते थे ॥ ५ ॥

राक्षसीभिश्च पत्नीभी रावणस्य निवेशनम्।
आहृताभिश्च विक्रम्य राजकन्याभिरावृतम् ॥ ६ ॥

रावणका वह महल उसकी राक्षसजातीय पत्नियों तथा पराक्रमपूर्वक हरकर लायी हुई राजकन्याओंसे भरा हुआ था ॥ ६ ॥

तन्नक्रमकराकीर्णं तिमिंगिलझषाकुलम्।
वायुवेगसमाधूतं पन्नगैरिव सागरम् ॥ ७ ॥

इस प्रकार नर-नारियोंसे भरा हुआ वह कोलाहलपूर्ण भवन नाके और मगरोंसे व्याप्त, तिमिङ्गलों और मत्स्योंसे पूर्ण, वायुवेगसे विक्षुब्ध तथा सर्पोंसे आवृत महासागरके समान प्रतीत होता था ॥ ७ ॥

या हि वैश्रवणे लक्ष्मीर्या चन्द्रे हरिवाहने।
सा रावणगृहे रम्या नित्यमेवानपायिनी ॥ ८ ॥

जो लक्ष्मी कुबेर, चन्द्रमा और इन्द्रके यहाँ निवास करती हैं, वे ही और भी सुरम्य रूपसे रावणके घरमें नित्य ही निश्चल होकर रहती थीं ॥ ८ ॥

या च राज्ञः कुबेरस्य यमस्य वरुणस्य च।
तादृशी तद्विशिष्टा वा ऋद्धी रक्षोगृहेष्विह ॥ ९ ॥

जो समृद्धि महाराज कुबेर, यम और वरुणके यहाँ दृष्टिगोचर होती है, वही अथवा उससे भी बढ़कर राक्षसोंके घरोंमें देखी जाती थी ॥ ९ ॥

तस्य हर्म्यस्य मध्यस्थवेश्म चान्यत् सुनिर्मितम्।
बहुनिर्यूहसंयुक्तं ददर्श पवनात्मजः ॥ १० ॥

उस (एक योजन लंबे और आधे योजन चौड़े) महलके मध्यभागमें एक दूसरा भवन (पुष्पक विमान) था, जिसका निर्माण बड़े सुन्दर ढंगसे किया गया था। 3. वह भवन बहुसंख्यक मतवाले हाथियोंसे युक्त था। पवनकुमार हनुमान्जीने फिर उसे देखा ॥ १० ॥

ब्रह्मणोऽर्थे कृतं दिव्यं दिवि यद् विश्वकर्मणा।
विमानं पुष्पकं नाम सर्वरत्नविभूषितम् ॥ ११ ॥

वह सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित पुष्पक नामक दिव्य विमान स्वर्गलोकमें विश्वकर्माने ब्रह्माजीके लिये बनाया था ॥ ११ ॥

परेण तपसा लेभे यत् कुबेरः पितामहात्।
कुबेरमोजसा जित्वा लेभे तद् राक्षसेश्वरः ॥ १२ ॥

कुबेरने बड़ी भारी तपस्या करके उसे ब्रह्माजीसे प्राप्त किया और फिर कुबेरको बलपूर्वक परास्त करके राक्षसराज रावणने उसे अपने हाथमें कर लिया ॥ १२ ॥

ईहामृगसमायुक्तैः कार्तस्वरहिरण्मयैः।
सुकृतैराचितं स्तम्भैः प्रदीप्तमिव च श्रिया ॥ १३ ॥

उसमें भेड़ियोंकी मूर्तियोंसे युक्त सोने-चाँदीके सुन्दर खम्भे बनाये गये थे, जिनके कारण वह भवन अद्भुत कान्तिसे उद्दीप्त-सा हो रहा था ॥ १३ ॥

मेरुमन्दरसंकाशैरुल्लिखद्भिरिवाम्बरम्।
कूटागारैः शुभागारैः सर्वतः समलंकृतम् ॥ १४ ॥

उसमें सुमेरु और मन्दराचलके समान ऊँचे अनेकानेक गुप्त गृह और मङ्गल भवन बने थे, जो अपनी ऊँचाईसे आकाशमें रेखा-सी खींचते हुए जान पड़ते थे। उनके द्वारा वह विमान सब ओरसे सुशोभित होता था ॥ १४ ॥

ज्वलनार्कप्रतीकाशैः सुकृतं विश्वकर्मणा।
हेमसोपानयुक्तं च चारुप्रवरवेदिकम् ॥ १५ ॥

उनका प्रकाश अग्नि और सूर्यके समान था। विश्वकर्माने बड़ी कारीगरीसे उसका निर्माण किया था। उसमें सोनेकी सीढ़ियाँ और अत्यन्त मनोहर उत्तम वेदियाँ बनायी गयी थीं ॥ १५ ॥

जालवातायनैर्युक्तं काञ्चनैः स्फाटिकैरपि।
इन्द्रनीलमहानीलमणिप्रवरवेदिकम् ॥ १६ ॥

सोने और स्फटिकके झरोखे और खिड़कियाँ लगायी गयी थीं। इन्द्रनील और महानील मणियोंकी श्रेष्ठतम वेदियाँ रची गयी थीं ॥ १६ ॥

विद्रुमेण विचित्रेण मणिभिश्च महाधनैः।
निस्तुलाभिश्च मुक्ताभिस्तलेनाभिविराजितम् ॥ १७ ॥

उसकी फर्श विचित्र मूँगे, बहुमूल्य मणियों तथा अनुपम गोल-गोल मोतियोंसे जड़ी गयी थी, जिससे उस विमानकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ १७ ॥

चन्दनेन च रक्तेन तपनीयनिभेन च।
सुपुण्यगन्धिना युक्तमादित्यतरुणोपमम् ॥ १८ ॥

सुवर्णके समान लाल रंगके सुगन्धयुक्त चन्दनसे संयुक्त होनेके कारण वह बालसूर्यके समान जान पड़ता था ॥ १८ ॥

कूटागारैर्वराकारैर्विविधैः समलंकृतम्।
विमानं पुष्पकं दिव्यमारुरोह महाकपिः।
तत्रस्थः सर्वतो गन्धं पानभक्ष्यान्नसम्भवम् ॥ १९ ॥
दिव्यं सम्मूर्च्छितं जिघ्रन् रूपवन्तमिवानिलम्।

महाकपि हनुमान्जी उस दिव्य पुष्पक विमानपर चढ़ गये, जो नाना प्रकारके सुन्दर कूटागारों (अट्टालिकाओं) से अलंकृत था। वहाँ बैठकर वे सब ओर फैली हुई नाना प्रकारके

पेय, भक्ष्य और अन्नकी दिव्य गन्ध सूँघने लगे। वह गन्ध मूर्तिमान् पवन-सी प्रतीत होती थी ॥ १९½ ॥

स गन्धस्तं महासत्त्वं बन्धुर्बन्धुमिवोत्तमम् ॥ २० ॥
इत एहीत्युवाचेव तत्र यत्र स रावणः ।

जैसे कोई बन्धु-बान्धव अपने उत्तम बन्धुको अपने पास बुलाता है, उसी प्रकार वह सुगन्ध उन महाबली हनुमान्‌जीको मानो यह कहकर कि 'इधर चले आओ' जहाँ रावण था, वहाँ बुला रही थी ॥ २०½ ॥

ततस्तां प्रस्थितः शालां ददर्श महतीं शिवाम् ॥ २१ ॥
रावणस्य महाकान्तां कान्तामिव वरस्त्रियम् ।

तदनन्तर हनुमान्‌जी उस ओर प्रस्थित हुए। आगे बढ़नेपर उन्होंने एक बहुत बड़ी हवेली देखी, जो बहुत ही सुन्दर और सुखद थी। वह हवेली रावणको बहुत ही प्रिय थी; ठीक वैसे ही जैसे पतिको कान्तिमयी सुन्दरी पत्नी अधिक प्रिय होती है ॥ २१½ ॥

मणिसोपानविकृतां हेमजालविराजिताम् ॥ २२ ॥
स्फाटिकैरावृततलां दन्तान्तरितरूपिकाम् ।
मुक्तावज्रप्रवालैश्च रूप्यचामीकरैरपि ॥ २३ ॥

उसमें मणियोंकी सीढ़ियाँ बनी थीं और सोनेकी खिड़कियाँ उसकी शोभा बढ़ाती थीं। उसकी फर्श स्फटिक मणिसे बनायी गयी थी, जहाँ बीच-बीचमें हाथीके दाँतके द्वारा विभिन्न प्रकारकी आकृतियाँ बनी हुई थीं। मोती, हीरे, मूँगे, चाँदी और सोनेके द्वारा भी उसमें अनेक प्रकारके आकार अङ्कित किये गये थे ॥ २२-२३ ॥

विभूषितां मणिस्तम्भैः सुबहुस्तम्भभूषिताम् ।
समैर्ऋजुभिरत्युच्चैः समन्तात् सुविभूषितैः ॥ २४ ॥

मणियोंके बने हुए बहुत-से खंभे, जो समान, सीधे, बहुत ही ऊँचे और सब ओरसे विभूषित थे, आभूषणकी भाँति उस हवेलीकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ २४ ॥

स्तम्भैः पक्षैरिवात्युच्चैर्दिवं सम्प्रस्थितामिव ।
महत्या कुथयाऽऽस्तीर्णां पृथिवीलक्षणाङ्कया ॥ २५ ॥

अपने अत्यन्त ऊँचे स्तम्भरूपी पंखोंसे मानो वह आकाशको उड़ती हुई-सी जान पड़ती थी। उसके भीतर पृथ्वीके वन-पर्वत आदि चिह्नोंसे अङ्कित एक बहुत बड़ा कालीन बिछा हुआ था ॥ २५ ॥

पृथिवीमिव विस्तीर्णां सराष्ट्रगृहशालिनीम् ।
नादितां मत्तविहगैर्दिव्यगन्धाधिवासिताम् ॥ २६ ॥

राष्ट्र और गृह आदिके चित्रोंसे सुशोभित वह शाला पृथ्वीके समान विस्तीर्ण जान पड़ती थी। वहाँ मतवाले विहंगमोंके कलरव गूँजते रहते थे तथा वह दिव्य सुगन्धसे सुवासित थी ॥ २६ ॥

परार्ध्यास्तरणोपेतां रक्षोऽधिपनिषेविताम् ।
धूम्रामगुरुधूपेन विमलां हंसपाण्डुराम् ॥ २७ ॥

उस हवेलीमें बहुमूल्य बिछौने बिछे हुए थे तथा स्वयं राक्षसराज रावण उसमें निवास करता था। वह अगुरु नामक धूपके धूएँसे धूमिल दिखायी देती थी, किंतु वास्तवमें हंसके समान श्वेत एवं निर्मल थी ॥ २७ ॥

पत्रपुष्पोपहारेण कल्माषीमिव सुप्रभाम् ।
मनसो मोदजननीं वर्णस्यापि प्रसाधिनीम् ॥ २८ ॥

पत्र-पुष्पके उपहारसे वह शाला चितकबरी-सी जान पड़ती थी। अथवा वसिष्ठमुनिकी शबला गौकी भाँति सम्पूर्ण कामनाओंकी देनेवाली थी। उसकी कान्ति बड़ी ही सुन्दर थी। वह मनको आनन्द देनेवाली तथा शोभाको भी सुशोभित करनेवाली थी ॥ २८ ॥

तां शोकनाशिनीं दिव्यां श्रियः संजननीमिव ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थैस्तु पञ्च पञ्चभिरुत्तमैः ॥ २९ ॥
तर्पयामास मातेव तदा रावणपालिता ।

वह दिव्य शाला शोकका नाश करनेवाली तथा सम्पत्तिकी जननी-सी जान पड़ती थी। हनुमान्‌जीने उसे देखा। उस रावणपालित शालाने उस समय माताकी भाँति शब्द, स्पर्श आदि पाँच विषयोंसे हनुमान्‌जीकी श्रोत्र आदि पाँचों इन्द्रियोंको तृप्त कर दिया ॥ २९½ ॥

स्वर्गोऽयं देवलोकोऽयमिन्द्रस्यापि पुरी भवेत् ।
सिद्धिर्वेयं परा हि स्यादित्यमन्यत मारुतिः ॥ ३० ॥

उसे देखकर हनुमान्‌जी यह तर्क-वितर्क करने लगे कि सम्भव है, यही स्वर्गलोक या देवलोक हो। यह इन्द्रकी पुरी भी हो सकती है अथवा यह परमसिद्धि (ब्रह्मलोककी प्राप्ति) है ॥ ३० ॥

प्रध्यायत इवापश्यत् प्रदीपांस्तत्र काञ्चनान् ।
धूर्तानिव महाधूर्तैर्देवनेन पराजितान् ॥ ३१ ॥

हनुमान्‌जीने उस शालामें सुवर्णमय दीपकोंको एकतार जलते देखा, मानो वे ध्यानमग्न हो रहे हों; ठीक उसी तरह जैसे किसी बड़े जुआरीसे जुएमें हारे हुए छोटे जुआरी धननाशकी चिन्ताके कारण ध्यानमें डूबे हुए-से दिखायी देते हैं ॥ ३१ ॥

दीपानां च प्रकाशेन तेजसा रावणस्य च ।
अर्चिर्भिर्भूषणानां च प्रदीप्तेत्यभ्यमन्यत ॥ ३२ ॥

दीपकोंके प्रकाश, रावणके तेज और आभूषणोंकी कान्तिसे वह सारी हवेली जलती हुई-सी जान पड़ती थी ॥ ३२ ॥

ततोऽपश्यत् कुथासीनं नानावर्णाम्बरस्रजम् ।
सहस्रं वरनारीणां नानावेषविभूषितम् ॥ ३३ ॥

तदनन्तर हनुमान्‌जीने कालीनपर बैठी हुई सहस्रों

सुन्दरी स्त्रियाँ देखीं, जो रंग-बिरंगे वस्त्र और पुष्पमाला धारण किये अनेक प्रकारकी वेषभूषाओंसे विभूषित थीं ॥ ३३ ॥

परिवृत्तेऽर्धरात्रे तु पाननिद्रावशंगतम् ।
क्रीडित्वोपरतं रात्रौ प्रसुप्तं बलवत् तदा ॥ ३४ ॥

आधी रात बीत जानेपर वे क्रीड़ासे उपरत हो मधुपानके मद और निद्राके वशीभूत हो उस समय गाढ़ी नींदमें सो गयी थीं ॥ ३४ ॥

तत् प्रसुप्तं विरुरुचे निःशब्दान्तरभूषितम् ।
निःशब्दहंसभ्रमरं यथा पद्मवनं महत् ॥ ३५ ॥

उन सोयी हुई सहस्रों नारियोंके कटिभागमें अब करधनीकी खनखनाहटका शब्द नहीं हो रहा था । हंसोंके कलरव तथा भ्रमरोंके गुञ्जारवसे रहित विशाल कमल-वनके समान उन सुप्त सुन्दरियोंका समुदाय बड़ी शोभा पा रहा था ॥ ३५ ॥

तासां संवृतदान्तानि मीलिताक्षीणि मारुतिः ।
अपश्यत् पद्मगन्धीनि वदनानि सुयोषिताम् ॥ ३६ ॥

पवनकुमार हनुमान्‌जीने उन सुन्दरी युवतियोंके मुख देखे, जिनसे कमलोंकी-सी सुगन्ध फैल रही थी । उनके दाँत ढँके हुए थे और आँखें मुँद गयी थीं ॥ ३६ ॥

प्रबुद्धानीव पद्मानि तासां भूत्वा क्षपाक्षये ।
पुनः संवृतपत्राणि रात्राविव बभुस्तदा ॥ ३७ ॥

रात्रिके अन्तमें खिले हुए कमलोंके समान उन सुन्दरियोंके जो मुखारविन्द हर्षसे उत्फुल्ल दिखायी देते थे, वे ही फिर रात आनेपर सो जानेके कारण मुँदे हुए दलवाले कमलोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ ३७ ॥

इमानि मुखपद्मानि नियतं मत्तषट्पदाः ।
अम्बुजानीव फुल्लानि प्रार्थयन्ति पुनः पुनः ॥ ३८ ॥
इति वामन्यत श्रीमानुपपत्त्या महाकपिः ।
मेने हि गुणतस्तानि समानि सलिलोद्भवैः ॥ ३९ ॥

उन्हें देखकर श्रीमान् महाकपि हनुमान् यह सम्भावना करने लगे कि 'मतवाले भ्रमर प्रफुल्ल कमलोंके समान इन मुखारविन्दोंकी प्राप्तिके लिये नित्य ही बारंबार प्रार्थना करते होंगे—उनपर सदा स्थान पानेके लिये तरसते होंगे'; क्योंकि वे गुणकी दृष्टिसे उन मुखारविन्दोंको पानीसे उत्पन्न होनेवाले कमलोंके समान ही समझते थे ॥ ३८-३९ ॥

सा तस्य शुशुभे शाला ताभिः स्त्रीभिर्विराजिता ।
शरदीव प्रसन्ना द्यौस्ताराभिरभिशोभिता ॥ ४० ॥

रावणकी वह हवेली उन स्त्रियोंसे प्रकाशित होकर वैसी ही शोभा पा रही थी, जैसे शरत्कालमें निर्मल आकाश ताराओंसे प्रकाशित एवं सुशोभित होता है ॥ ४० ॥

स च ताभिः परिवृतः शुशुभे राक्षसाधिपः ।
यथा ह्युडुपतिः श्रीमांस्ताराभिरिव संवृतः ॥ ४१ ॥

उन स्त्रियोंसे घिरा हुआ राक्षसराज रावण ताराओंसे घिरे हुए कान्तिमान् नक्षत्रपति चन्द्रमाके समान शोभा पा रहा था ॥ ४१ ॥

याश्च्यवन्तेऽम्बरात् ताराः पुण्यशेषसमावृताः ।
इमास्ताः संगताः कृत्स्ना इति मेने हरिस्तदा ॥ ४२ ॥

उस समय हनुमान्‌जीको ऐसा मालूम हुआ कि आकाश (स्वर्ग) से भोगावशिष्ट पुण्यके साथ जो ताराएँ नीचे गिरती हैं, वे सब-की-सब मानो यहाँ इन सुन्दरियोंके रूपमें एकत्र हो गयी हैं* ॥ ४२ ॥

ताराणामिव सुव्यक्तं महतीनां शुभार्चिषाम् ।
प्रभावर्णप्रसादाश्च विरेजुस्तत्र योषिताम् ॥ ४३ ॥

क्योंकि वहाँ उन युवतियोंके तेज, वर्ण और प्रसाद स्पष्टतः सुन्दर प्रभावाले महान् तारोंके समान ही सुशोभित होते थे ॥ ४३ ॥

व्यावृत्तकचपीनस्रक्प्रकीर्णवरभूषणाः ।
पानव्यायामकालेषु निद्रोपहतचेतसः ॥ ४४ ॥

मधुपानके अनन्तर व्यायाम (नृत्य, गान, क्रीडा आदि) के समय जिनके केश खुलकर बिखर गये थे, पुष्पमालाएँ मर्दित होकर छिन्न-भिन्न हो गयी थीं और सुन्दर आभूषण भी शिथिल होकर इधर-उधर खिसक गये थे, वे सभी सुन्दरियाँ वहाँ निद्रासे अचेत-सी होकर सो रही थीं ॥ ४४ ॥

व्यावृत्ततिलकाः काश्चित् काश्चिदुद्भ्रान्तनूपुराः ।
पार्श्वे गलितहाराश्च काश्चित् परमयोषितः ॥ ४५ ॥

किन्हींके मस्तककी (सिंदूर-कस्तूरी आदिकी) बेंदियाँ पुछ गयी थीं, किन्हींके नूपुर पैरोंसे निकलकर दूर जा पड़े थे तथा किन्हीं सुन्दरी युवतियोंके हार टूटकर उनके बगलमें ही पड़े थे ॥

मुक्ताहारवृताश्चान्याः काश्चित् प्रस्रस्तवाससः ।
व्याविद्धरशनादामाः किशोर्य इव वाहिताः ॥ ४६ ॥

कोई मोतियोंके हार टूट जानेसे उनके बिखरे दानोंसे आवृत थीं, किन्हींके वस्त्र खिसक गये थे और किन्हींकी करधनीकी लड़ टूट गयी थीं । वे युवतियाँ बोझ ढोकर थकी हुई अश्वजातिकी नयी बछेड़ियोंके समान जान पड़ती थीं ॥ ४६ ॥

अकुण्डलधराश्चान्या विच्छिन्नमृदितस्रजः ।
गजेन्द्रमृदिताः फुल्ला लता इव महावने ॥ ४७ ॥

किन्हींके कानोंके कुण्डल गिर गये थे, किन्हींकी पुष्पमालाएँ मसली जाकर छिन्न-भिन्न हो गयी थीं । इससे वे महान् वनमें गजराजद्वारा दली-मली गयी फूली लताओंके समान प्रतीत होती थीं ॥ ४७ ॥

---

* इस श्लोकमें 'अत्युक्ति' अलंकार है ।

चन्द्रांशुकिरणाभाश्च हाराः कासांचिदुद्गताः।
हंसा इव बभुः सुप्ताः स्तनमध्येषु योषिताम् ॥ ४८ ॥

किन्हींके चन्द्रमा और सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशमान हार उनके वक्षःस्थलपर पड़कर उभरे हुए प्रतीत होते थे। वे उन युवतियोंके स्तनमण्डलपर ऐसे जान पड़ते थे मानो वहाँ हंस सो रहे हों ॥ ४८ ॥

अपरासां च वैदूर्याः कादम्बा इव पक्षिणः।
हेमसूत्राणि चान्यासां चक्रवाका इवाभवन् ॥ ४९ ॥

दूसरी स्त्रियोंके स्तनोंपर नीलमके हार पड़े थे, जो कादम्ब (जलकाक) नामक पक्षीके समान शोभा पाते थे तथा अन्य स्त्रियोंके उरोजोंपर जो सोनेके हार थे, वे चक्रवाक (पुरखाब) नामक पक्षियोंके समान जान पड़ते थे ॥ ४९ ॥

हंसकारण्डवोपेताश्चक्रवाकोपशोभिताः ।
आपगा इव ता रेजुर्जघनैः पुलिनैरिव ॥ ५० ॥

इस प्रकार वे हंस, कारण्डव (जलकाक) तथा चक्रवाकोंसे सुशोभित नदियोंके समान शोभा पाती थीं। उनके जघनप्रदेश उन नदियोंके तटोंके समान जान पड़ते थे ॥ ५० ॥

किङ्किणीजालसंकाशास्ता हेमविपुलाम्बुजाः।
भावग्राहा यशस्तीराः सुप्ता नद्य इवाबभुः ॥ ५१ ॥

वे सोयी हुई सुन्दरियाँ वहाँ सरिताओंके समान सुशोभित होती थीं। किङ्किणियों (घुँघुरुओं) के समूह उनमें मुकुलके समान प्रतीत होते थे। सोनेके विभिन्न आभूषण ही वहाँ बहुसंख्यक स्वर्णकमलोंकी शोभा धारण करते थे। भाव (सुप्तावस्थामें भी वासनावश होनेवाली शृङ्गार-चेष्टाएँ) ही मानो ग्राह थे तथा यश (कान्ति) ही तटके समान जान पड़ते थे ॥ ५१ ॥

मृदुष्वङ्गेषु कासांचित् कुचाग्रेषु च संस्थिताः।
बभूवुर्भूषणानीव शुभा भूषणराजयः ॥ ५२ ॥

किन्हीं सुन्दरियोंके कोमल अङ्गोंमें तथा कुचोंके अग्रभागपर उभरी हुई आभूषणोंकी सुन्दर रेखाएँ नये गहनोंके समान ही शोभा पाती थीं ॥ ५२ ॥

अंशुकान्ताश्च कासांचिन्मुखमारुतकम्पिताः।
उपर्युपरि वक्त्राणां व्याधूयन्ते पुनः पुनः ॥ ५३ ॥

किन्हींके मुखपर पड़े हुए उनकी झीनी साड़ीके अञ्चल उनकी नासिकासे निकली हुई साँससे कम्पित हो बारंबार हिल रहे थे ॥ ५३ ॥

ताः पताका इवोद्धूताः पत्नीनां रुचिरप्रभाः।
नानावर्णसुवर्णानां वक्त्रमूलेषु रेजिरे ॥ ५४ ॥

नाना प्रकारके सुन्दर रूप-रंगवाली उन रावणपत्नियोंके मुखोंपर हिलते हुए वे अञ्चल सुन्दर कान्तिवाली फहराती हुई पताकाओंके समान शोभा पा रहे थे ॥ ५४ ॥

ववल्गुश्चात्र कासांचित् कुण्डलानि शुभार्चिषाम्।
मुखमारुतसंकम्पैर्मन्दं मन्दं च योषिताम् ॥ ५५ ॥

वहाँ किन्हीं-किन्हीं सुन्दर कान्तिमती कामिनियोंके कानोंके कुण्डल उनके निःश्वासजनित कम्पनसे धीरे-धीरे हिल रहे थे ॥ ५५ ॥

शर्करासवगन्धः स प्रकृत्या सुरभिः सुखः।
तासां वदननिःश्वासः सिषेवे रावणं तदा ॥ ५६ ॥

उन सुन्दरियोंके मुखसे निकली हुई स्वभावसे ही सुगन्धित श्वासवायु शर्करानिर्मित आसवकी मनोहर गन्धसे युक्त हो और भी सुखद बनकर उस समय रावणकी सेवा करती थी ॥ ५६ ॥

रावणाननशङ्काश्च काश्चिद् रावणयोषितः।
मुखानि च सपत्नीनामुपाजिघ्रन् पुनः पुनः ॥ ५७ ॥

रावणकी कितनी ही तरुणी पत्नियाँ रावणका ही मुख समझकर बारंबार अपनी सौतोंके ही मुखोंको सूँघ रही थीं ॥ ५७ ॥

अत्यर्थं सक्तमनसो रावणे ता वरस्त्रियः।
अस्वतन्त्राः सपत्नीनां प्रियमेवाचरंस्तदा ॥ ५८ ॥

उन सुन्दरियोंका मन रावणमें अत्यन्त आसक्त था, इसलिये वे आसक्ति तथा मदिराके मदसे परवश हो उस समय रावणके मुखके भ्रमसे अपनी सौतोंका मुख सूँघकर उनका प्रिय ही करती थीं (अर्थात् वे भी उस समय अपने मुख-संलग्न हुए उन सौतोंके मुखोंको रावणका ही मुख समझकर उसे सूँघनेका सुख उठाती थीं) ॥ ५८ ॥

बाहूनुपनिधायान्याः पारिहार्यविभूषितान्।
अंशुकानि च रम्याणि प्रमदास्तत्र शिश्यिरे ॥ ५९ ॥

अन्य मदमत्त युवतियाँ अपनी वलयविभूषित भुजाओंका ही तकिया लगाकर तथा कोई-कोई सिरके नीचे अपने सुरम्य वस्त्रोंको ही रखकर वहाँ सो रही थीं ॥ ५९ ॥

अन्या वक्षसि चान्यस्यास्तस्याः काचित् पुनर्भुजम्।
अपरा त्वङ्कमन्यस्यास्तस्याश्चाप्यपरा कुचौ ॥ ६० ॥

एक स्त्री दूसरीकी छातीपर सिर रखकर सोयी थी तो कोई दूसरी स्त्री उसकी भी एक बाँहको ही तकिया बनाकर सो गयी थी। इसी तरह एक अन्य स्त्री दूसरीकी गोदमें सिर रखकर सोयी थी तो कोई दूसरी उसके भी कुचोंका ही तकिया लगाकर सो गयी थी ॥ ६० ॥

ऊरुपार्श्वकटीपृष्ठमन्योन्यस्य समाश्रिताः।
परस्परनिविष्टाङ्ग्यो मदस्नेहवशानुगाः ॥ ६१ ॥

इस तरह रावणविषयक स्नेह और मदिराजनित मदके वशीभूत हुई वे सुन्दरियाँ एक दूसरीके ऊरु, पार्श्वभाग,

कटिप्रदेश तथा पृष्ठभागका सहारा ले आपसमें अङ्गोंसे अङ्ग मिलाये वहाँ बेसुध पड़ी थीं ॥ ६१ ॥

अन्योन्यस्याङ्गसंस्पर्शात् प्रीयमाणाः सुमध्यमाः ।
एकीकृतभुजाः सर्वाः सुषुपुस्तत्र योषितः ॥ ६२ ॥

वे सुन्दर कटिप्रदेशवाली समस्त युवतियाँ एक-दूसरीके अङ्गस्पर्शको प्रियतमका स्पर्श मानकर उससे मन-ही-मन आनन्दका अनुभव करती हुई परस्पर बाँह-से-बाँह मिलाये सो रही थीं ॥ ६२ ॥

अन्योन्यभुजसूत्रेण स्त्रीमाला ग्रथिता हि सा ।
मालेव ग्रथिता सूत्रे शुशुभे मत्तषट्पदा ॥ ६३ ॥

एक-दूसरीके बाहुरूपी सूत्रमें गुँथी हुई काले-काले केशोंवाली स्त्रियोंकी वह माला सूतमें पिरोयी हुई मतवाले भ्रमरोंसे युक्त पुष्पमालाकी भाँति शोभा पा रही थी ॥ ६३ ॥

लतानां माधवे मासि फुल्लानां वायुसेवनात् ।
अन्योन्यमालाग्रथितं संसक्तकुसुमोच्चयम् ॥ ६४ ॥
प्रतिवेष्टितसुस्कन्धमन्योन्यभ्रमराकुलम् ।
आसीद् वनमिवोद्धूतं स्त्रीवनं रावणस्य तत् ॥ ६५ ॥

माधवमास (वसन्त) में मलयानिलके सेवनसे जैसे खिली हुई लताओंका वन कम्पित होता रहता है, उसी प्रकार रावणकी स्त्रियोंका वह समुदाय निःश्वासवायुके चलनेसे अञ्चलोंके हिलनेके कारण कम्पित होता-सा जान पड़ता था। जैसे लताएँ परस्पर मिलकर मालाकी भाँति आबद्ध हो जाती हैं, उनकी सुन्दर शाखाएँ परस्पर लिपट जाती हैं और इसीलिये उनके पुष्पसमूह भी आपसमें मिले हुए-से प्रतीत होते हैं तथा उनपर बैठे हुए भ्रमर भी परस्पर मिल जाते हैं, उसी प्रकार वे सुन्दरियाँ एक-दूसरीसे मिलकर मालाकी भाँति गुँथ गयी थीं। उनकी भुजाएँ और कंधे परस्पर सटे हुए थे। उनकी वेणीमें गुँथे हुए फूल भी आपसमें मिल गये थे तथा उन सबके केशकलाप भी एक-दूसरेसे जुड़ गये थे ॥ ६४-६५ ॥

उचितेष्वपि सुव्यक्तं न तासां योषितां तदा ।
विवेकः शक्य आधातुं भूषणाङ्गाम्बरस्रजाम् ॥ ६६ ॥

यद्यपि उन युवतियोंके वस्त्र, अङ्ग, आभूषण और हार उचित स्थानोंपर ही प्रतिष्ठित थे, यह बात स्पष्ट दिखायी दे रही थी, तथापि उन सबके परस्पर गुँथ जानेके कारण यह विवेक होना असम्भव हो गया था कि कौन वस्त्र, आभूषण, अङ्ग अथवा हार किसके हैं* ॥ ६६ ॥

रावणे सुखसंविष्टे ताः स्त्रियो विविधप्रभाः ।
ज्वलन्तः काञ्चना दीपाः प्रेक्षन्तो निमिषा इव ॥ ६७ ॥

रावणके सुखपूर्वक सो जानेपर वहाँ जलते हुए सुवर्णमय प्रदीप उन अनेक प्रकारकी कान्तिवाली कामिनियोंको मानो एकटक दृष्टिसे देख रहे थे ॥ ६७ ॥

राजर्षिविप्रदैत्यानां गन्धर्वाणां च योषितः ।
रक्षसां चाभवन् कन्यास्तस्य कामवशंगताः ॥ ६८ ॥

राजर्षियों, ब्रह्मर्षियों, दैत्यों, गन्धर्वों तथा राक्षसोंकी कन्याएँ कामके वशीभूत होकर रावणकी पत्नियाँ बन गयी थीं ॥ ६८ ॥

युद्धकामेन ताः सर्वा रावणेन हृताः स्त्रियः ।
समदा मदनेनैव मोहिताः काश्चिदागताः ॥ ६९ ॥

उन सब स्त्रियोंका रावणने युद्धकी इच्छासे अपहरण किया था और कुछ मदमत्त रमणियाँ कामदेवसे मोहित होकर स्वयं ही उसकी सेवामें उपस्थित हो गयी थीं ॥ ६९ ॥

न तत्र काश्चित् प्रमदाः प्रसह्य
वीर्योपपन्नेन गुणेन लब्धाः ।
न चान्यकामापि न चान्यपूर्वा
विना वरार्हां जनकात्मजां तु ॥ ७० ॥

वहाँ ऐसी कोई स्त्रियाँ नहीं थीं, जिन्हें बल-पराक्रमसे सम्पन्न होनेपर भी रावण उनकी इच्छाके विरुद्ध बलात्कारसे हर लाया हो। वे सब-की-सब उसे अपने अलौकिक गुणसे ही उपलब्ध हुई थीं। जो श्रेष्ठतम पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीके ही योग्य थीं, उन जनककिशोरी सीताको छोड़कर दूसरी कोई ऐसी स्त्री वहाँ नहीं थी, जो रावणके सिवा किसी दूसरेकी इच्छा रखनेवाली हो, अथवा जिसका पहले कोई दूसरा पति रहा हो ॥ ७० ॥

न चाकुलीना न च हीनरूपा
नादक्षिणा नानुपचारयुक्ता ।
भार्याभवत् तस्य न हीनसत्त्वा
न चापि कान्तस्य न कामनीया ॥ ७१ ॥

रावणकी कोई भार्या ऐसी नहीं थी, जो उत्तम कुलमें उत्पन्न न हुई हो अथवा जो कुरूप, अनुदार या कौशल-रहित, उत्तम वस्त्राभूषण एवं माला आदिसे वञ्चित, शक्तिहीन तथा प्रियतमको अप्रिय हो ॥ ७१ ॥

बभूव बुद्धिस्तु हरीश्वरस्य
यदीदृशी राघवधर्मपत्नी ।
इमा महाराक्षसराजभार्याः
सुजातमस्येति हि साधुबुद्धेः ॥ ७२ ॥

उस समय श्रेष्ठ बुद्धिवाले वानरराज हनुमान्‌जीके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि ये महान् राक्षसराज रावणकी भार्याएँ जिस तरह अपने पतिके साथ रहकर सुखी हैं, उसी प्रकार यदि रघुनाथजीकी धर्मपत्नी सीताजी

---

* इस श्लोकमें 'भ्रान्तिमान्' नामक अलंकार है ।

भी इन्हींकी भाँति अपने पतिके साथ रहकर सुखका अनुभव करतीं अर्थात् यदि रावण शीघ्र ही उन्हें श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें समर्पित कर देता तो यह इसके लिये परम मङ्गलकारी होता ॥ ७२ ॥

पुनश्च सोऽचिन्तयदात्तरूपो
ध्रुवं विशिष्टा गुणतो हि सीता।
अथायमस्यां कृतवान् महात्मा
लङ्केश्वरः कष्टमनार्यकर्म ॥ ७३ ॥

फिर उन्होंने सोचा निश्चय ही सीता गुणोंकी दृष्टिसे इन सबकी अपेक्षा बहुत ही बढ़-चढ़कर हैं। इस महाबली लङ्कापतिने मायामय रूप धारण करके सीताको धोखा देकर इनके प्रति यह अपहरणरूप महान् कष्टप्रद नीच कर्म किया है॥७३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें नवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः

हनुमान्‌जीका अन्तःपुरमें सोये हुए रावण तथा गाढ़ निद्रामें पड़ी हुई उसकी स्त्रियोंको देखना तथा मन्दोदरीको सीता समझकर प्रसन्न होना

तत्र दिव्योपमं मुख्यं स्फाटिकं रत्नभूषितम्।
अवेक्षमाणो हनुमान् ददर्श शयनासनम् ॥ १ ॥

वहाँ इधर-उधर दृष्टिपात करते हुए हनुमान्‌जीने एक दिव्य एवं श्रेष्ठ वेदी देखी, जिसपर पलंग बिछाया जाता था। वह वेदी स्फटिक मणिकी बनी हुई थी और उसमें अनेक प्रकारके रत्न जड़े गये थे ॥ १ ॥

दान्तकाञ्चनचित्राङ्गैर्वैदूर्यैश्च वरासनैः।
महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्नं महाधनैः ॥ २ ॥

वहाँ वैदूर्यमणि (नीलम) के बने हुए श्रेष्ठ आसन (पलंग) बिछे हुए थे, जिनकी पाटी-पाये आदि अङ्ग हाथी-दाँत और सुवर्णसे जटित होनेके कारण चितकबरे दिखायी देते थे। उन महामूल्यवान् पलंगोंपर बहुमूल्य बिछौने बिछाये गये थे। उन सबके कारण उस वेदीकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ २ ॥

तस्य चैकतमे देशे दिव्यमालोपशोभितम्।
ददर्श पाण्डुरं छत्रं ताराधिपतिसंनिभम् ॥ ३ ॥

उस पलंगके एक भागमें उन्होंने चन्द्रमाके समान एक श्वेत छत्र देखा, जो दिव्य मालाओंसे सुशोभित था ॥ ३ ॥

जातरूपपरिक्षिप्तं चित्रभानोः समप्रभम्।
अशोकमालाविततं ददर्श परमासनम् ॥ ४ ॥

वह उत्तम पलंग सुवर्णसे जटित होनेके कारण अग्निके समान देदीप्यमान हो रहा था। हनुमान्‌जीने उसे अशोक-पुष्पोंकी मालाओंसे अलंकृत देखा ॥ ४ ॥

वालव्यजनहस्ताभिर्वीज्यमानं समन्ततः।
गन्धैश्च विविधैर्जुष्टं वरधूपेन धूपितम् ॥ ५ ॥

उसके चारों ओर खड़ी हुई बहुत-सी स्त्रियाँ हाथोंमें चँवर लिये उसपर हवा कर रही थीं। वह पलंग अनेक प्रकारकी गन्धोंसे सेवित तथा उत्तम धूपसे सुवासित था ॥५॥

परमास्तरणास्तीर्णमाविकाजिनसंवृतम्।
दामभिर्वरमाल्यानां समन्तादुपशोभितम् ॥ ६ ॥

उसपर उत्तमोत्तम बिछौने बिछे हुए थे। उसमें भेड़की खाल मढ़ी हुई थी तथा वह सब ओरसे उत्तम फूलोंकी मालाओंसे सुशोभित था ॥ ६ ॥

तस्मिञ्जीमूतसंकाशं प्रदीप्तोज्ज्वलकुण्डलम्।
लोहिताक्षं महाबाहुं महारजतवाससम् ॥ ७ ॥
लोहितेनानुलिप्ताङ्गं चन्दनेन सुगन्धिना।
संध्यारक्तमिवाकाशे तोयदं सतडिद्गुणम् ॥ ८ ॥
वृतमाभरणैर्दिव्यैः सुरूपं कामरूपिणम्।
सवृक्षवनगुल्माढ्यं प्रसुप्तमिव मन्दरम् ॥ ९ ॥
क्रीडित्वोपरतं रात्रौ वराभरणभूषितम्।
प्रियं राक्षसकन्यानां राक्षसानां सुखावहम् ॥ १० ॥
पीत्वाप्युपरतं चापि ददर्श स महाकपिः।
भास्वरे शयने वीरं प्रसुप्तं राक्षसाधिपम् ॥ ११ ॥

उस प्रकाशमान पलंगपर महाकपि हनुमान्‌जीने वीर राक्षसराज रावणको सोते देखा, जो सुन्दर आभूषणोंसे विभूषित, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला, दिव्य आभरणोंसे अलंकृत और सुरूपवान् था। वह राक्षस-कन्याओंका प्रियतम तथा राक्षसोंको सुख पहुँचानेवाला था। उसके अङ्गोंमें सुगन्धित लाल चन्दनका अनुलेप लगा हुआ था, जिससे वह आकाशमें संध्याकालकी लाली तथा विद्युल्लेखासे युक्त मेघके समान शोभा पाता था। उसकी अङ्गकान्ति मेघके समान श्याम थी। उसके कानोंमें उज्ज्वल कुण्डल झिलमिला रहे थे। आँखें लाल थीं और भुजाएँ बड़ी-बड़ी। उसके वस्त्र सुनहरे रंगके थे। वह रातको स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करके मदिरा पीकर आराम कर रहा था। उसे देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो वृक्ष, वन और लता-गुल्मोंसे सम्पन्न मन्दराचल सो रहा हो ॥ ७—११ ॥

निःश्वसन्तं यथा नागं रावणं वानरोत्तमः ।
आसाद्य परमोद्विग्नः सोपासर्पत् सुभीतवत् ॥ १२ ॥
अथारोहणमासाद्य वेदिकान्तरमाश्रितः ।
क्षीबं राक्षसशार्दूलं प्रेक्षते स्म महाकपिः ॥ १३ ॥

उस समय साँस लेता हुआ रावण फुफकारते हुए सर्पके समान जान पड़ता था । उसके पास पहुँचकर वानर-शिरोमणि हनुमान् अत्यन्त उद्विग्न हो भलीभाँति डरे हुएकी भाँति सहसा दूर हट गये और सीढ़ियोंपर चढ़कर एक दूसरी वेदीपर जाकर खड़े हो गये । वहाँसे उन महाकपिने उस मतवाले राक्षससिंहको देखना आरम्भ किया ॥ १२-१३ ॥

शुशुभे राक्षसेन्द्रस्य स्वपतः शयनं शुभम् ।
गन्धहस्तिनि संविष्टे यथा प्रस्रवणं महत् ॥ १४ ॥

राक्षसराज रावणके सोते समय वह सुन्दर पलंग उसी प्रकार शोभा पा रहा था, जैसे गन्धहस्तीके शयन करनेपर विशाल प्रस्रवणगिरि सुशोभित हो रहा हो ॥ १४ ॥

काञ्चनाङ्गदसंनद्धौ ददर्श स महात्मनः ।
विक्षिप्तौ राक्षसेन्द्रस्य भुजाविन्द्रध्वजोपमौ ॥ १५ ॥

उन्होंने महाकाय राक्षसराज रावणकी फैलायी हुई दो भुजाएँ देखीं, जो सोनेके बाजूबंदसे विभूषित हो इन्द्रध्वजके समान जान पड़ती थीं ॥ १५ ॥

ऐरावतविषाणाग्रैरापीडनकृतव्रणौ ।
वज्रोल्लिखितपीनांसौ विष्णुचक्रपरिक्षतौ ॥ १६ ॥

युद्धकालमें उन भुजाओंपर ऐरावत हाथीके दाँतोंके अग्रभागसे जो प्रहार किये गये थे, उनके आघातका चिह्न बन गया था । उन भुजाओंके मूलभाग या कंधे बहुत मोटे थे और उनपर वज्रद्वारा किये गये आघातके भी चिह्न दिखायी देते थे । भगवान् विष्णुके चक्रसे भी किसी समय वे भुजाएँ क्षत-विक्षत हो चुकी थीं ॥ १६ ॥

पीनौ समसुजातांसौ सङ्गतौ बलसंयुतौ ।
सुलक्षणनखाङ्गुष्ठौ स्वङ्गुलीयकलक्षितौ ॥ १७ ॥

वे भुजाएँ सब ओरसे समान और सुन्दर कंधोंवाली तथा मोटी थीं । उनकी संधियाँ सुदृढ़ थीं । वे बलिष्ठ और उत्तम लक्षणवाले नखों एवं अङ्गुष्ठोंसे सुशोभित थीं । उनकी अङ्गुलियाँ और हथेलियाँ बड़ी सुन्दर दिखायी देती थीं ॥ १७ ॥

संहतौ परिघाकारौ वृत्तौ करिकरोपमौ ।
विक्षिप्तौ शयने शुभ्रे पञ्चशीर्षाविवोरगौ ॥ १८ ॥

वे सुगठित एवं पुष्ट थीं । परिघके समान गोलाकार तथा हाथीके शुण्डदण्डकी भाँति चढ़ाव-उतारवाली एवं लंबी थीं । उस उज्ज्वल पलंगपर फैली वे बाँहें पाँच-पाँच फनवाले दो सर्पोंके समान दृष्टिगोचर होती थीं ॥ १८ ॥

शशक्षतजकल्पेन सुशीतेन सुगन्धिना ।
चन्दनेन परार्ध्येन स्वनुलिप्तौ स्वलंकृतौ ॥ १९ ॥

खरगोशके खूनकी भाँति लाल रंगके उत्तम, सुशीतल एवं सुगन्धित चन्दनसे चर्चित हुई वे भुजाएँ अलंकारोंसे अलंकृत थीं ॥ १९ ॥

उत्तमस्त्रीविमृदितौ गन्धोत्तमनिषेवितौ ।
यक्षपन्नगगन्धर्वदेवदानवराविणौ ॥ २० ॥

सुन्दरी युवतियाँ धीरे-धीरे उन बाँहोंको दबाती थीं । उनपर उत्तम गन्ध-द्रव्यका लेप हुआ था । वे यक्ष, नाग, गन्धर्व, देवता और दानव सभीको युद्धमें रुलानेवाली थीं ॥ २० ॥

ददर्श स कपिस्तस्य बाहू शयनसंस्थितौ । 2 भी
मन्दरस्यान्तरे सुप्तौ महाहीं रुषिताविव ॥ २१ ॥

कपिवर हनुमान्ने पलंगपर पड़ी हुई उन दोनों भुजाओंको देखा । वे मन्दराचलकी गुफामें सोये हुए दो रोषभरे अजगरोंके समान जान पड़ती थीं ॥ २१ ॥

ताभ्यां स परिपूर्णाभ्यामुभाभ्यां राक्षसेश्वरः ।
शुशुभेऽचलसंकाशः शृङ्गाभ्यामिव मन्दरः ॥ २२ ॥

उन बड़ी-बड़ी और गोलाकार दो भुजाओंसे युक्त पर्वताकार राक्षसराज रावण दो शिखरोंसे संयुक्त मन्दराचलके समान शोभा पा रहा था* ॥ २२ ॥

चूतपुंनागसुरभिर्बकुलोत्तमसंयुतः ।
मृष्टान्नरससंयुक्तः पानगन्धपुरःसरः ॥ २३ ॥
तस्य राक्षसराजस्य निश्चक्राम महामुखात् । १ भी मुँह
शयानस्य विनिःश्वासः पूरयन्निव तद् गृहम् ॥ २४ ॥

वहाँ सोये हुए राक्षसराज रावणके विशाल मुखसे आम और नागकेसरकी सुगन्धसे मिश्रित, मौलसिरीके सुवाससे सुवासित और उत्तम अन्नरससे संयुक्त तथा मधुपानकी गन्धसे मिली हुई जो सौरभयुक्त साँस निकल रही थी, वह उस सारे घरको सुगन्धसे परिपूर्ण-सा कर देती थी ॥ २३-२४ ॥

मुक्तामणिविचित्रेण काञ्चनेन विराजिता ।
मुकुटेनापवृत्तेन कुण्डलोज्ज्वलिताननम् ॥ २५ ॥

उसका कुण्डलसे प्रकाशमान मुखारविन्द अपने स्थानसे हटे हुए तथा मुक्तामणिसे जटित होनेके कारण विचित्र आभावाले सुवर्णमय मुकुटसे और भी उद्भासित हो रहा था ॥ २५ ॥

रक्तचन्दनदिग्धेन तथा हारेण शोभिना ।
पीनायतविशालेन वक्षसाभिविराजिता ॥ २६ ॥

---

* यहाँ शयनागारमें सोये हुए रावणके एक ही मुख और दो ही बाँहोंका वर्णन आया है । इससे जान पड़ता है कि वह साधारण स्थितिमें इसी तरह रहता था । युद्ध आदिके विशेष अवसरोंपर ही वह स्वेच्छापूर्वक दस मुख और बीस भुजाओंसे संयुक्त होता था ।

उसकी छाती लाल चन्दनसे चर्चित, हारसे सुशोभित, उभरी हुई तथा लंबी-चौड़ी थी। उसके द्वारा उस राक्षसराजके सम्पूर्ण शरीरकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ २६ ॥

पाण्डुरेणापविद्धेन क्षौमेण क्षतजेक्षणम्।
महार्हेण सुसंवीतं पीतेनोत्तरवाससा ॥ २७ ॥

उसकी आँखें लाल थीं। उसकी कटिके नीचेका भाग ढीलेढाले श्वेत रेशमी वस्त्रसे ढका हुआ था तथा वह पीले रंगकी बहुमूल्य रेशमी चादर ओढ़े हुए था ॥ २७ ॥

माषराशिप्रतीकाशं निःश्वसन्तं भुजङ्गवत्।
गाङ्गे महति तोयान्ते प्रसुप्तमिव कुञ्जरम् ॥ २८ ॥

वह स्वच्छ स्थानमें रक्खे हुए उड़दके ढेरके समान जान पड़ता था और सर्पके समान साँसें ले रहा था। उस उज्ज्वल पलंगपर सोया हुआ रावण गङ्गाकी अगाध जलराशिमें सोये हुए गजराजके समान दिखायी देता था ॥ २८ ॥

चतुर्भिः काञ्चनैर्दीपैर्दीप्यमानं चतुर्दिशम्।
प्रकाशीकृतसर्वाङ्गं मेघं विद्युद्गणैरिव ॥ २९ ॥

उसकी चारों दिशाओंमें चार सुवर्णमय दीपक जल रहे थे, जिनकी प्रभासे वह देदीप्यमान हो रहा था और उसके सारे अङ्ग प्रकाशित होकर स्पष्ट दिखायी दे रहे थे। ठीक उसी तरह, जैसे विद्युद्गणोंसे मेघ प्रकाशित एवं परिलक्षित होता है ॥ २९ ॥

पादमूलगताश्चापि ददर्श सुमहात्मनः।
पत्नीः स प्रियभार्यस्य तस्य रक्षःपतेर्गृहे ॥ ३० ॥

पत्नियोंके प्रेमी उस महाकाय राक्षसराजके घरमें हनुमान्‌जीने उसकी पत्नियोंको भी देखा, जो उसके चरणोंके आसपास ही सो रही थीं ॥ ३० ॥

शशिप्रकाशवदना वरकुण्डलभूषणाः।
अम्लानमाल्याभरणा ददर्श हरियूथपः ॥ ३१ ॥

वानरयूथपति हनुमान्‌जीने देखा, उन रावणपत्नियोंके मुख चन्द्रमाके समान प्रकाशमान थे। वे सुन्दर कुण्डलोंसे विभूषित थीं तथा ऐसे फूलोंके हार पहने हुए थीं, जो कभी मुरझाते नहीं थे ॥ ३१ ॥

नृत्यवादित्रकुशला राक्षसेन्द्रभुजाङ्कगाः।
वराभरणधारिण्यो निषण्णा ददृशे कपिः ॥ ३२ ॥

वे नाचने और बाजे बजानेमें निपुण थीं, राक्षसराज रावणकी बाँहों और अङ्कमें स्थान पानेवाली थीं तथा सुन्दर आभूषण धारण किये हुए थीं। कपिवर हनुमान्‌ने उन सबको वहाँ सोती देखा ॥ ३२ ॥

वज्रवैदूर्यगर्भाणि श्रवणान्तेषु योषिताम्।
ददर्श तापनीयानि कुण्डलान्यङ्गदानि च ॥ ३३ ॥

उन्होंने उन सुन्दरियोंके कानोंके समीप हीरे तथा नीलम जड़े हुए सोनेके कुण्डल और बाजूबंद देखे ॥ ३३ ॥

तासां चन्द्रोपमैर्वक्त्रैः शुभैर्ललितकुण्डलैः।
विरराज विमानं तन्नभस्तारागणैरिव ॥ ३४ ॥

ललित कुण्डलोंसे अलंकृत तथा चन्द्रमाके समान मनोहर उनके सुन्दर मुखोंसे वह विमानाकार पर्यङ्क तारिकाओंसे मण्डित आकाशकी भाँति सुशोभित हो रहा था ॥ ३४ ॥

मदव्यायामखिन्नास्ता राक्षसेन्द्रस्य योषितः।
तेषु तेष्ववकाशेषु प्रसुप्तास्तनुमध्यमाः ॥ ३५ ॥

क्षीण कटिप्रदेशवाली वे राक्षसराजकी स्त्रियाँ मद तथा रतिक्रीड़ाके परिश्रमसे थककर जहाँ-तहाँ जो जिस अवस्थामें थीं वैसे ही सो गयी थीं ॥ ३५ ॥

अङ्गहारैस्तथैवान्या कोमलैर्नृत्यशालिनी।
विन्यस्तशुभसर्वाङ्गी प्रसुप्ता वरवर्णिनी ॥ ३६ ॥

विधाताने जिसके सारे अङ्गोंको सुन्दर एवं विशेष शोभासे सम्पन्न बनाया था, वह कोमलभावसे अङ्गोंके संचालन (चटकाने-मटकाने आदि) द्वारा नाचनेवाली कोई अन्य नृत्यनिपुणा सुन्दरी स्त्री गाढ़ निद्रामें सोकर भी वासनावश जाग्रत्-अवस्थाकी ही भाँति नृत्यके अभिनयसे सुशोभित हो रही थी ॥ ३६ ॥

काचिद् वीणां परिष्वज्य प्रसुप्ता सम्प्रकाशते।
महानदीप्रकीर्णेव नलिनी पोतमाश्रिता ॥ ३७ ॥

कोई वीणाको छातीसे लगाकर सोयी हुई सुन्दरी ऐसी जान पड़ती थी, मानो महानदीमें पड़ी हुई कोई कमलिनी किसी नौकासे सट गयी हो ॥ ३७ ॥

अन्या कक्षगतेनैव मड्डुकेनासितेक्षणा।
प्रसुप्ता भामिनी भाति बालपुत्रेव वत्सला ॥ ३८ ॥

दूसरी कजरारे नेत्रोंवाली भामिनी काँखमें दबे हुए मड्डुक (लघुवाद्य विशेष) के साथ ही सो गयी थी। वह ऐसी प्रतीत होती थी, जैसे कोई पुत्रवत्सला जननी अपने छोटे-से शिशुको गोदमें लिये सो रही हो ॥ ३८ ॥

पटहं चारुसर्वाङ्गी न्यस्य शेते शुभस्तनी।
चिरस्य रमणं लब्ध्वा परिष्वज्येव कामिनी ॥ ३९ ॥

कोई सर्वाङ्गसुन्दरी एवं रुचिर कुचोंवाली कामिनी पटहको अपने नीचे रखकर सो रही थी, मानो चिरकालके पश्चात् प्रियतमको अपने निकट पाकर कोई प्रेयसी उसे हृदयसे लगाये सो रही हो ॥ ३९ ॥

काचिद् वीणां परिष्वज्य सुप्ता कमललोचना।
वरं प्रियतमं गृह्य सकामेव हि कामिनी ॥ ४० ॥

कोई कमललोचना युवती वीणाका आलिङ्गन करके सोयी हुई ऐसी जान पड़ती थी, मानो कामभावसे युक्त कामिनी अपने श्रेष्ठ प्रियतमको भुजाओंमें भरकर सो गयी हो ॥ ४० ॥

विपञ्चीं परिगृह्यान्या नियता नृत्यशालिनी ।
निद्रावशमनुप्राप्ता सहकान्तेव भामिनी ॥ ४१ ॥

नियमपूर्वक नृत्यकलासे सुशोभित होनेवाली एक अन्य युवती विपञ्ची (विशेष प्रकारकी वीणा) को अङ्कमें भरकर प्रियतमके साथ सोयी हुई प्रेयसीकी भाँति निद्राके अधीन हो गयी थी ॥ ४१ ॥

अन्या कनकसंकाशैर्मृदुपीनैर्मनोरमैः ।
मृदङ्गं परिविद्ध्याङ्गैः प्रसुप्ता मत्तलोचना ॥ ४२ ॥

कोई मतवाले नयनोंवाली दूसरी सुन्दरी अपने सुवर्णसदृश गौर, कोमल, पुष्ट और मनोरम अङ्गोंसे मृदङ्गको दबाकर गाढ़ निद्रामें सो गयी थी ॥ ४२ ॥

भुजपाशान्तरस्थेन कक्षगेन कृशोदरी ।
पणवेन सहानिन्द्या सुप्ता मदकृतश्रमा ॥ ४३ ॥

नशेसे थकी हुई कोई कृशोदरी अनिन्द्य सुन्दरी रमणी अपने भुजपाशोंके बीचमें स्थित और काँखमें दबे हुए पणवके साथ ही सो गयी थी ॥ ४३ ॥

डिण्डिमं परिगृह्यान्या तथैवासक्तडिण्डिमा ।
प्रसुप्ता तरुणं वत्समुपगुह्येव भामिनी ॥ ४४ ॥

दूसरी स्त्री डिंडिमको लेकर उसी तरह उससे सटी हुई सो गयी थी, मानो कोई भामिनी अपने बालक पुत्रको हृदयसे लगाये हुए नींद ले रही हो ॥ ४४ ॥

काचिदाडम्बरं नारी भुजसम्भोगपीडितम् ।
कृत्वा कमलपत्राक्षी प्रसुप्ता मदमोहिता ॥ ४५ ॥

मदिराके मदसे मोहित हुई कोई कमलनयनी नारी आडम्बर नामक वाद्यको अपनी भुजाओंके आलिङ्गनसे दबाकर प्रगाढ़ निद्रामें निमग्न हो गयी ॥ ४५ ॥

कलशीमपविद्ध्यान्या प्रसुप्ता भाति भामिनी ।
वसन्ते पुष्पशबला मालेव परिमार्जिता ॥ ४६ ॥

कोई दूसरी युवती निद्रावश जलसे भरी हुई सुराहीको लुढ़काकर भीगी अवस्थामें ही बेसुध सो रही थी । उस अवस्थामें वह वसन्त-ऋतुमें विभिन्न वर्णके पुष्पोंकी बनी और जलके छींटेसे सींची हुई मालाके समान प्रतीत होती थी ॥ ४६ ॥

पाणिभ्यां च कुचौ काचित् सुवर्णकलशोपमौ ।
उपगुह्याबला सुप्ता निद्राबलपराजिता ॥ ४७ ॥

निद्राके बलसे पराजित हुई कोई अबला सुवर्णमय कलशके समान प्रतीत होनेवाले अपने कुचोंको दोनों हाथोंसे दबाकर सो रही थी ॥ ४७ ॥

अन्या कमलपत्राक्षी पूर्णेन्दुसदृशानना ।
अन्यामालिङ्ग्य सुश्रोणीं प्रसुप्ता मदविह्वला ॥ ४८ ॥

पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली दूसरी कमललोचना कामिनी सुन्दर नितम्बवाली किसी अन्य सुन्दरीका आलिङ्गन करके मदसे विह्वल होकर सो गयी थी ॥ ४८ ॥

आतोद्यानि विचित्राणि परिष्वज्य वरस्त्रियः ।
निपीड्य च कुचैः सुप्ताः कामिन्यः कामुकानिव ॥ ४९ ॥

जैसे कामिनियाँ अपने चाहनेवाले कामुकोंको छातीसे लगाकर सोती हैं, उसी प्रकार कितनी ही सुन्दरियाँ विचित्र-विचित्र वाद्योंका आलिङ्गन करके उन्हें कुचोंसे दबाये सो गयी थीं ॥ ४९ ॥

तासामेकान्तविन्यस्ते शयानां शयने शुभे ।
ददर्श रूपसम्पन्नामथ तां स कपिः स्त्रियम् ॥ ५० ॥

उन सबकी शय्याओंसे पृथक् एकान्तमें बिछी हुई सुन्दर शय्यापर सोयी हुई एक रूपवती युवतीको वहाँ हनुमान्‌जीने देखा ॥ ५० ॥

मुक्तामणिसमायुक्तैर्भूषणैः सुविभूषिताम् ।
विभूषयन्तीमिव च स्वश्रिया भवनोत्तमम् ॥ ५१ ॥

वह मोती और मणियोंसे जड़े हुए आभूषणोंसे भली-भाँति विभूषित थी और अपनी शोभासे उस उत्तम भवनको विभूषित-सा कर रही थी ॥ ५१ ॥

गौरीं कनकवर्णाभामिष्टामन्तःपुरेश्वरीम् ।
कपिर्मन्दोदरीं तत्र शयानां चारुरूपिणीम् ॥ ५२ ॥
स तां दृष्ट्वा महाबाहुर्भूषितां मारुतात्मजः ।
तर्कयामास सीतेति रूपयौवनसम्पदा ।
हर्षेण महता युक्तो ननन्द हरियूथपः ॥ ५३ ॥

वह गोरे रंगकी थी । उसकी अङ्गकान्ति सुवर्णके समान दमक रही थी । वह रावणकी प्रियतमा और उसके अन्तःपुरकी स्वामिनी थी । उसका नाम मन्दोदरी था । वह अपने मनोहर रूपसे सुशोभित हो रही थी । वही वहाँ सो रही थी । हनुमान्‌जीने उसीको देखा । रूप और यौवनकी सम्पत्तिसे युक्त और वस्त्राभूषणोंसे विभूषित मन्दोदरीको देखकर महाबाहु पवनकुमारने अनुमान किया कि ये ही सीताजी हैं । फिर तो ये वानरयूथपति हनुमान् महान् हर्षसे युक्त हो आनन्दमग्न हो गये ॥ ५२-५३ ॥

आस्फोटयामास चुचुम्ब पुच्छं
ननन्द चिक्रीड जगौ जगाम ।
स्तम्भानरोहन्निपपात भूमौ
निदर्शयन् स्वां प्रकृतिं कपीनाम् ॥ ५४ ॥

वे अपनी पूँछको पटकने और चूमने लगे । अपनी वानरों-जैसी प्रकृतिका प्रदर्शन करते हुए आनन्दित होने, खेलने और गाने लगे, इधर-उधर आने-जाने लगे । वे कभी खंभोंपर चढ़ जाते और कभी पृथ्वीपर कूद पड़ते थे ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें दसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः

वह सीता नहीं है—ऐसा निश्चय होनेपर हनुमान्‌जीका पुनः अन्तःपुरमें और उसकी पानभूमिमें सीताका पता लगाना, उनके मनमें धर्मलोपकी आशङ्का और स्वतः उसका निवारण होना

अवधूय च तां बुद्धिं बभूवावस्थितस्तदा ।
जगाम चापरां चिन्तां सीतां प्रति महाकपिः ॥ १ ॥

फिर उस समय इस विचारको छोड़कर महाकपि हनुमान्‌जी अपनी स्वाभाविक स्थितिमें स्थित हुए और वे सीताजीके विषयमें दूसरे प्रकारकी चिन्ता करने लगे ॥ १ ॥

न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी ।
न भोक्तुं नाप्यलंकर्तुं न पानमुपसेवितुम् ॥ २ ॥

(उन्होंने सोचा—) 'भामिनी सीता श्रीरामचन्द्रजीसे बिछुड़ गयी हैं । इस दशामें वे न तो सो सकती हैं, न भोजन कर सकती हैं, न शृङ्गार एवं अलंकार धारण कर सकती हैं, फिर मदिरापानका सेवन तो किसी प्रकार भी नहीं कर सकतीं ॥ २ ॥

नान्यं नरमुपस्थातुं सुराणामपि चेश्वरम् ।
न हि रामसमः कश्चिद् विद्यते त्रिदशेष्वपि ॥ ३ ॥

'वे किसी दूसरे पुरुषके पास, वह देवताओंका भी ईश्वर क्यों न हो, नहीं जा सकतीं । देवताओंमें भी कोई ऐसा नहीं है जो श्रीरामचन्द्रजीकी समानता कर सके ॥ ३ ॥

अन्येयमिति निश्चित्य भूयस्तत्र चचार सः ।
पानभूमौ हरिश्रेष्ठः सीतासंदर्शनोत्सुकः ॥ ४ ॥

'अतः अवश्य ही यह सीता नहीं, कोई दूसरी स्त्री है ।' ऐसा निश्चय करके वे कपिश्रेष्ठ सीताजीके दर्शनके लिये उत्सुक हो पुनः वहाँकी मधुशालामें विचरने लगे ॥ ४ ॥

क्रीडितेनापराः क्लान्ता गीतेन च तथापराः ।
नृत्येन चापराः क्लान्ताः पानविप्रहतास्तथा ॥ ५ ॥

वहाँ कोई स्त्रियाँ क्रीड़ा करनेसे थकी हुई थीं तो कोई गीत गानेसे । दूसरी नृत्य करके थक गयी थीं और कितनी ही स्त्रियाँ अधिक मद्यपान करके अचेत हो रही थीं ॥ ५ ॥

मुरजेषु मृदङ्गेषु चेलिकासु च संस्थिताः ।
तथाऽऽस्तरणमुख्येषु संविष्टाश्चापराः स्त्रियः ॥ ६ ॥

बहुत-सी स्त्रियाँ ढोल, मृदङ्ग और चेलिका नामक वाद्योंपर अपने अङ्गोंको टेककर सो गयी थीं तथा दूसरी महिलाएँ अच्छे-अच्छे बिछौनोंपर सोयी हुई थीं ॥ ६ ॥

अङ्गनानां सहस्रेण भूषितेन विभूषणैः ।
रूपसंलापशीलेन युक्तगीतार्थभाषिणा ॥ ७ ॥
देशकालाभियुक्तेन युक्तवाक्याभिधायिना ।
रताधिकेन संयुक्तां ददर्श हरियूथपः ॥ ८ ॥

वानरयूथपति हनुमान्‌जीने उस पानभूमिको ऐसी सहस्रों रमणियोंसे संयुक्त देखा, जो भाँति-भाँतिके आभूषणोंसे विभूषित, रूप-लावण्यकी चर्चा करनेवाली, गीतके समुचित अभिप्रायको अपनी वाणीद्वारा प्रकट करनेवाली, देश और कालको समझनेवाली, उचित बात बोलनेवाली और रतिक्रीड़ामें अधिक भाग लेनेवाली थीं ॥ ७-८ ॥

अन्यत्रापि वरस्त्रीणां रूपसंलापशायिनाम् ।
सहस्रं युवतीनां तु प्रसुप्तं स ददर्श ह ॥ ९ ॥

दूसरे स्थानपर भी उन्होंने ऐसी सहस्रों सुन्दरी युवतियोंको सोते देखा, जो आपसमें रूप-सौन्दर्यकी चर्चा करती हुई लेट रही थीं ॥ ९ ॥

देशकालाभियुक्तं तु युक्तवाक्याभिधायि तत् ।
रताविरतसंसुप्तं ददर्श हरियूथपः ॥ १० ॥

वानरयूथपति पवनकुमारने ऐसी बहुत-सी स्त्रियोंको देखा, जो देश-कालको जाननेवाली, उचित बात कहनेवाली तथा रतिक्रीड़ाके पश्चात् गाढ़ निद्रामें सोयी हुई थीं ॥ १० ॥

तासां मध्ये महाबाहुः शुशुभे राक्षसेश्वरः ।
गोष्ठे महति मुख्यानां गवां मध्ये यथा वृषः ॥ ११ ॥

उन सबके बीचमें महाबाहु राक्षसराज रावण विशाल गोशालामें श्रेष्ठ गौओंके बीच सोये हुए साँड़की भाँति शोभा पा रहा था ॥ ११ ॥

स राक्षसेन्द्रः शुशुभे ताभिः परिवृतः स्वयम् ।
करेणुभिर्यथारण्ये परिकीर्णो महाद्विपः ॥ १२ ॥

जैसे वनमें हाथियोंसे घिरा हुआ कोई महान् गजराज सो रहा हो, उसी प्रकार उस भवनमें उन सुन्दरियोंसे घिरा हुआ स्वयं राक्षसराज रावण सुशोभित हो रहा था ॥ १२ ॥

सर्वकामैरुपेतां च पानभूमिं महात्मनः ।
ददर्श कपिशार्दूलस्तस्य रक्षःपतेर्गृहे ॥ १३ ॥
मृगाणां महिषाणां च वराहाणां च भागशः ।
तत्र न्यस्तानि मांसानि पानभूमौ ददर्श सः ॥ १४ ॥

उस महाकाय राक्षसराजके भवनमें कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने वह पानभूमि देखी, जो सम्पूर्ण मनोवाञ्छित भोगोंसे सम्पन्न थी । उस मधुशालामें अलग-अलग मृगों, भैंसों और सूअरोंके मांस रखे गये थे, जिन्हें हनुमान्‌जीने देखा ॥

रौक्मेषु च विशालेषु भाजनेष्वप्यभक्षितान् ।
ददर्श कपिशार्दूलो मयूरान् कुक्कुटांस्तथा ॥ १५ ॥

वराहवाध्रीणसकान् दधिसौवर्चलायुतान् ।
शल्यान् मृगमयूरांश्च हनुमानन्ववैक्षत ॥ १६ ॥

वानरसिंह हनुमान्ने वहाँ सोनेके बड़े-बड़े पात्रोंमें मोर, मुर्गे, सूअर, गेंडा, साही, हरिण तथा मयूरोंके मांस देखे, जो दही और नमक मिलाकर रखे गये थे। वे अभी खाये नहीं गये थे ॥ १५-१६ ॥

कृकलान् विविधं श्छागाञ्छशकानर्धभक्षितान् ।
महिषानेकशल्यांश्च मेषांश्च कृतनिष्ठितान् ॥ १७ ॥
लेह्यानुच्चावचान् पेयान् भोज्यान्युच्चावचानि च ।
तथाम्ललवणोत्तंसैर्विविधै रागखाण्डवैः ॥ १८ ॥

कृकल नामक पक्षी, भाँति-भाँतिके बकरे, खरगोश, आधे खाये हुए भैंसे, एकशल्य नामक मत्स्य और भेड़े—ये सब-के-सब राँध-पकाकर रक्खे हुए थे। इनके साथ अनेक प्रकारकी चटनियाँ भी थीं। भाँति-भाँतिके पेय तथा भक्ष्य पदार्थ भी विद्यमान थे। जीभकी शिथिलता दूर करनेके लिये खटाई और नमकके साथ भाँति-भाँतिके राग[1] और खाण्डव भी रक्खे गये थे ॥ १७-१८ ॥

महानूपुरकेयूरैरपविद्धैर्महाधनैः ।
पानभाजनविक्षिप्तैः फलैश्च विविधैरपि ॥ १९ ॥
कृतपुष्पोपहारा भूरधिकां पुष्यति श्रियम् ।

बहुमूल्य बड़े-बड़े नूपुर और बाजूबंद जहाँ-तहाँ पड़े हुए थे। मद्यपानके पात्र इधर-उधर लुढ़काये हुए थे। भाँति-भाँतिके फल भी बिखरे पड़े थे। इन सबसे उपलक्षित होनेवाली वह पानभूमि, जिसे फूलोंसे सजाया गया था, अधिक शोभाका पोषण एवं संवर्धन कर रही थी ॥ १९½ ॥

तत्र तत्र च विन्यस्तैः सुश्लिष्टशयनासनैः ॥ २० ॥
पानभूमिर्विना वह्निं प्रदीप्तेवोपलक्ष्यते ।

यत्र-तत्र रक्खी हुई सुदृढ़ शय्याओं और सुन्दर स्वर्णमय सिंहासनोंसे सुशोभित होनेवाली वह मधुशाला ऐसी जगमगा रही थी कि बिना आगके ही जलती हुई-सी दिखायी देती थी ॥ २०½ ॥

बहुप्रकारैर्विविधैर्वरसंस्कारसंस्कृतैः ॥ २१ ॥
मांसैः कुशलसंयुक्तैः पानभूमिगतैः पृथक् ।
दिव्याः प्रसन्ना विविधाः सुराः कृतसुरा अपि ॥ २२ ॥
शर्करासवमाध्वीकाः पुष्पासवफलासवाः ।
वासचूर्णैश्च विविधैर्मृष्टास्तैस्तैः पृथक् पृथक् ॥ २३ ॥

अच्छी छौंक-बघारसे तैयार किये गये नाना प्रकारके विविध मांस चतुर रसोइयोंद्वारा बनाये गये थे और उस पानभूमिमें पृथक्-पृथक् सजाकर रखे गये थे। उनके साथ ही स्वच्छ दिव्य सुराएँ (जो कदम्ब आदि वृक्षोंसे स्वतः उत्पन्न हुई थीं) और कृत्रिम सुराएँ (जिन्हें शराब बनानेवाले लोग तैयार करते हैं) भी वहाँ रक्खी गयी थीं। उनमें शर्करासव[1], मौध्वीक[2], पुष्पासव[3] और फलासव[4] भी थे। इन सबको नाना प्रकारके सुगन्धित चूर्णोंसे पृथक्-पृथक् वासित किया गया था ॥ २१-२३ ॥

संतता शुशुभे भूमिर्माल्यैश्च बहुसंस्थितैः ।
हिरण्मयैश्च कलशैर्भाजनैः स्फाटिकैरपि ॥ २४ ॥
जाम्बूनदमयैश्चान्यैः करकैरभिसंवृता ।

वहाँ अनेक स्थानोंपर रखे हुए नाना प्रकारके फूलों, सुवर्णमय कलशों, स्फटिकमणिके पात्रों तथा जाम्बूनदके बने हुए अन्यान्य कमण्डलुओंसे व्याप्त हुई वह पानभूमि बड़ी शोभा पा रही थी ॥ २४½ ॥

राजतेषु च कुम्भेषु जाम्बूनदमयेषु च ॥ २५ ॥
पानश्रेष्ठां तथा भूमिं कपिस्तत्र ददर्श सः ।

चाँदी और सोनेके घड़ोंमें, जहाँ श्रेष्ठ पेय पदार्थ रखे थे, उस पानभूमिको कपिवर हनुमान्जीने वहाँ अच्छी तरह घूम-घूमकर देखा ॥ २५½ ॥

सोऽपश्यच्छातकुम्भानि सीधोर्मणिमयानि च ॥ २६ ॥
तानि तानि च पूर्णानि भाजनानि महाकपिः ।

महाकपि पवनकुमारने देखा, वहाँ मदिरासे भरे हुए सोने और मणियोंके भिन्न-भिन्न पात्र रखे गये हैं ॥ २६½ ॥

क्वचिदर्धावशेषाणि क्वचित् पीतान्यशेषतः ॥ २७ ॥
क्वचिन्नैव प्रपीतानि पानानि स ददर्श ह ।

किसी घड़ेमें आधी मदिरा शेष थी तो किसी घड़ेकी सारी-की-सारी पी ली गयी थी तथा किन्हीं-किन्हीं घड़ोंमें रक्खे हुए मद्य सर्वथा पीये नहीं गये थे। हनुमान्जीने उन सबको देखा ॥ २७½ ॥

क्वचिद् भक्ष्यांश्च विविधान् क्वचित् पानानि भागशः ।२८।
क्वचिदर्धावशेषाणि पश्यन् वै विचचार ह ।

कहीं नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थ और कहीं पीनेकी वस्तुएँ अलग-अलग रक्खी गयी थीं और कहीं उनमेंसे

---

[1] अंगूर और अनारके रसमें मिश्री और मधु आदि मिलानेसे जो मधुर रस तैयार होता है, वह पतला हो तो 'राग' कहलाता है और गाढ़ा हो जाय तो 'खाण्डव' नाम धारण करता है।

जैसा कि कहा है—

सितामध्वादिमधुरो द्राक्षादाडिमयो रसः ।
विरलश्चेत् कृतो रागः सान्द्रश्चेत् खाण्डवः स्मृतः ॥

[1] शर्करासे तैयार की हुई सुरा 'शर्करासव' कहलाती है। [2] मधुसे बनायी हुई 'मदिरा'। [3] महुआके फूलसे तथा अन्यान्य पुष्पोंके मकरन्दसे बनायी हुई सुराको 'पुष्पासव' कहते हैं। [4] द्राक्षा आदि फलोंके रससे तैयार की हुई 'सुरा'।

आधी-आधी सामग्री ही बची थी। उन सबको देखते हुए वे वहाँ सर्वत्र विचरने लगे ॥ २८½ ॥

शयनान्यत्र नारीणां शून्यानि बहुधा पुनः।
परस्परं समाश्लिष्य काश्चित् सुप्ता वराङ्गनाः ॥ २९ ॥

उस अन्तःपुरमें स्त्रियोंकी बहुत-सी शय्याएँ सूनी पड़ी थीं और कितनी ही सुन्दरियाँ एक ही जगह एक-दूसरीका आलिङ्गन किये सो रही थीं ॥ २९ ॥

काचिच्च वस्त्रमन्यस्या अपहृत्योपगुह्य च।
उपगम्याबला सुप्ता निद्राबलपराजिता ॥ ३० ॥

निद्राके बलसे पराजित हुई कोई अबला दूसरी स्त्रीका वस्त्र उतारकर उसे धारण किये उसके पास जा उसीका आलिङ्गन करके सो गयी थी ॥ ३० ॥

तासामुच्छ्वासवातेन वस्त्रं माल्यं च गात्रजम्।
नात्यर्थं स्पन्दते चित्रं प्राप्य मन्दमिवानिलम् ॥ ३१ ॥

उनकी साँसकी हवासे उनके शरीरके विविध प्रकारके वस्त्र और पुष्पमाला आदि वस्तुएँ उसी तरह धीरे-धीरे हिल रही थीं, जैसे धीमी-धीमी वायुके चलनेसे हिला करती हैं ॥ ३१ ॥

चन्दनस्य च शीतस्य सीधोर्मधुरसस्य च।
विविधस्य च माल्यस्य पुष्पस्य विविधस्य च ॥ ३२ ॥
बहुधा मारुतस्तस्य गन्धं विविधमुद्वहन्।
स्नानानां चन्दनानां च धूपानां चैव मूर्च्छितः ॥ ३३ ॥
प्रववौ सुरभिर्गन्धो विमाने पुष्पके तदा।

उस समय पुष्पकविमानमें शीतल चन्दन, मद्य, मधुरस, विविध प्रकारकी माला, भाँति-भाँतिके पुष्प, स्नान-सामग्री, चन्दन और धूपकी अनेक प्रकारकी गन्धका भार वहन करती हुई सुगन्धित वायु सब ओर प्रवाहित हो रही थी ॥

श्यामावदातास्तत्रान्याः काश्चित् कृष्णा वराङ्गनाः।३४।
काश्चित् काञ्चनवर्णाङ्ग्यः प्रमदा राक्षसालये।

उस राक्षसराजके भवनमें कोई साँवली, कोई गोरी, कोई काली और कोई सुवर्णके समान कान्तिवाली सुन्दरी युवतियाँ सो रही थीं ॥ ३४½ ॥

तासां निद्रावशत्वाच्च मदनेन विमूर्च्छितम् ॥ ३५ ॥
पद्मिनीनां प्रसुप्तानां रूपमासीद् यथैव हि।

निद्राके वशमें होनेके कारण उनका काममोहित रूप मुँदे हुए मुखवाले कमलपुष्पोंके समान जान पड़ता था ॥

एवं सर्वमशेषेण रावणान्तःपुरं कपिः।
ददर्श स महातेजा न ददर्श च जानकीम् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार महातेजस्वी कपिवर हनुमान्‌ने रावणका सारा अन्तःपुर छान डाला तो भी वहाँ उन्हें जनकनन्दिनी सीताका दर्शन नहीं हुआ ॥ ३६ ॥

निरीक्षमाणश्च ततस्ताः स्त्रियः स महाकपिः।
जगाम महतीं शङ्कां धर्मसाध्वसशङ्कितः ॥ ३७ ॥

उन सोती हुई स्त्रियोंको देखते-देखते महाकपि हनुमान् धर्मके भयसे शङ्कित हो उठे। उनके हृदयमें बड़ा भारी संदेह उपस्थित हो गया ॥ ३७ ॥

परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम्।
इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति ॥ ३८ ॥ ✓

वे सोचने लगे कि इस तरह गाढ़ निद्रामें सोयी हुई परायी स्त्रियोंको देखना अच्छा नहीं है। यह तो मेरे धर्मका अत्यन्त विनाश कर डालेगा ॥ ३८ ॥

न हि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी।
अयं चात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः ॥ ३९ ॥ ✓

'मेरी दृष्टि अबतक कभी परायी स्त्रियोंपर नहीं पड़ी थी। यहीं आनेपर मुझे परायी स्त्रियोंका अपहरण करनेवाले इस पापी रावणका भी दर्शन हुआ है (ऐसे पापीको देखना भी धर्मका लोप करनेवाला होता है)' ॥ ३९ ॥

तस्य प्रादुरभूच्चिन्ता पुनरन्या मनस्विनः।
निश्चितैकान्तचित्तस्य कार्यनिश्चयदर्शिनी ॥ ४० ॥

तदनन्तर मनस्वी हनुमान्‌जीके मनमें एक-दूसरी विचार-धारा उत्पन्न हुई। उनका चित्त अपने लक्ष्यमें सुस्थिर था; अतः यह नयी विचारधारा उन्हें अपने कर्तव्यका ही निश्चय करानेवाली थी ॥ ४० ॥

कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः।
न तु मे मनसा किंचिद् वैकृत्यमुपपद्यते ॥ ४१ ॥ ✓

(वे सोचने लगे—) 'इसमें संदेह नहीं कि रावणकी स्त्रियाँ निःशङ्क सो रही थीं और उसी अवस्थामें मैंने उन सबको अच्छी तरह देखा है, तथापि मेरे मनमें कोई विकार नहीं उत्पन्न हुआ है ॥ ४१ ॥

मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम् ॥ ४२ ॥

'सम्पूर्ण इन्द्रियोंको शुभ और अशुभ अवस्थाओंमें लगनेकी प्रेरणा देनेमें मन ही कारण है; किंतु मेरा वह मन पूर्णतः स्थिर है (उसका कहीं राग या द्वेष नहीं है; इसलिये मेरा यह परस्त्री-दर्शन धर्मका लोप करनेवाला नहीं हो सकता) ॥ ४२ ॥

नान्यत्र हि मया शक्या वैदेही परिमार्गितुम्।
स्त्रियो हि स्त्रीषु दृश्यन्ते सदा सम्परिमार्गणे ॥ ४३ ॥

'विदेहनन्दिनी सीताको दूसरी जगह मैं ढूँढ़ भी तो नहीं सकता था; क्योंकि स्त्रियोंको ढूँढ़ते समय उन्हें स्त्रियोंके ही बीचमें देखा जाता है ॥ ४३ ॥

यस्य सत्त्वस्य या योनिस्तस्यां तत् परिमार्गते।
न शक्यं प्रमदा नष्टा मृगीषु परिमार्गितुम् ॥ ४४ ॥

'जिस जीवकी जो जाति होती है, उसीमें उसे खोजा जाता है। खोयी हुई युवती स्त्रीको हरिनियोंके बीचमें नहीं ढूँढ़ा जा सकता है ॥ ४४ ॥

तदिदं मार्गितं तावच्छुद्धेन मनसा मया ।
रावणान्तःपुरं सर्वं दृश्यते न च जानकी ॥ ४५ ॥

'अतः मैंने रावणके इस सारे अन्तःपुरमें शुद्ध हृदयसे ही अन्वेषण किया है; किंतु यहाँ जानकीजी नहीं दिखायी देती हैं' ॥ ४५ ॥

देवगन्धर्वकन्याश्च नागकन्याश्च वीर्यवान् ।
अवेक्षमाणो हनुमान् नैवापश्यत जानकीम् ॥ ४६ ॥

अन्तःपुरका निरीक्षण करते हुए पराक्रमी हनुमान्ने देवताओं, गन्धर्वों और नागोंकी कन्याओंको वहाँ देखा; किंतु जनकनन्दिनी सीताको नहीं देखा ॥ ४६ ॥

तामपश्यन् कपिस्तत्र पश्यंश्चान्या वरस्त्रियः ।
अपक्रम्य तदा वीरः प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥ ४७ ॥

दूसरी सुन्दरियोंको देखते हुए वीर वानर हनुमान्ने जब वहाँ सीताको नहीं देखा, तब वे वहाँसे हटकर अन्यत्र जानेको उद्यत हुए ॥ ४७ ॥

स भूयः सर्वतः श्रीमान् मारुतिर्यत्नमाश्रितः ।
आपानभूमिमुत्सृज्य तां विचेतुं प्रचक्रमे ॥ ४८ ॥

फिर तो श्रीमान् पवनकुमारने उस पानभूमिको छोड़कर अन्य सब स्थानोंमें उन्हें बड़े यत्नका आश्रय लेकर खोजना आरम्भ किया ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः

सीताके मरणकी आशङ्कासे हनुमान्जीका शिथिल होना, फिर उत्साहका आश्रय लेकर अन्य स्थानोंमें उनकी खोज करना और कहीं भी पता न लगनेसे पुनः उनका चिन्तित होना

स तस्य मध्ये भवनस्य संस्थितो
लतागृहांश्चित्रगृहान् निशागृहान् ।
जगाम सीतां प्रतिदर्शनोत्सुको
न चैव तां पश्यति चारुदर्शनाम् ॥ १ ॥

उस राजभवनके भीतर स्थित हुए हनुमान्जी सीताजीके दर्शनके लिये उत्सुक हो क्रमशः लता-मण्डपोंमें, चित्रशालाओंमें तथा रात्रिकालिक विश्राम-गृहोंमें गये; परंतु वहाँ भी उन्हें परम सुन्दरी सीताका दर्शन नहीं हुआ ॥ १ ॥

स चिन्तयामास ततो महाकपिः
प्रियामपश्यन् रघुनन्दनस्य ताम् ।
ध्रुवं न सीता ध्रियते यथा न मे
विचिन्वतो दर्शनमेति मैथिली ॥ २ ॥

रघुनन्दन श्रीरामकी प्रियतमा सीता जब वहाँ भी दिखायी न दीं, तब वे महाकपि हनुमान् इस प्रकार चिन्ता करने लगे—'निश्चय ही अब मिथिलेशकुमारी सीता जीवित नहीं हैं; इसीलिये बहुत खोजनेपर भी वे मेरे दृष्टिपथमें नहीं आ रही हैं ॥ २ ॥

सा राक्षसानां प्रवरेण जानकी
स्वशीलसंरक्षणतत्परा सती ।
अनेन नूनं प्रति दुष्टकर्मणा
हता भवेदार्यपथे परे स्थिता ॥ ३ ॥

'सती-साध्वी सीता उत्तम आर्यमार्गपर स्थित रहनेवाली थीं। वे अपने शील और सदाचारकी रक्षामें तत्पर रही हैं; इसलिये निश्चय ही इस दुराचारी राक्षसराजने उन्हें मार डाला होगा ॥ ३ ॥

विरूपरूपा विकृता विवर्चसो
महानना दीर्घविरूपदर्शनाः ।
समीक्ष्य ता राक्षसराजयोषितो
भयाद् विनष्टा जनकेश्वरात्मजा ॥ ४ ॥

'राक्षसराज रावणके यहाँ जो दास्यकर्म करनेवाली राक्षसियाँ हैं, उनके रूप बड़े बेडौल हैं। वे बड़ी विकट और विकराल हैं। उनकी कान्ति भी भयंकर है। उनके मुँह विशाल और आँखें भी बड़ी-बड़ी एवं भयानक हैं। उन सबको देखकर जनकराजनन्दिनीने भयके मारे प्राण त्याग दिये होंगे ॥ ४ ॥

सीतामदृष्ट्वा ह्यनवाप्य पौरुषं
विहृत्य कालं सह वानरैश्चिरम् ।
न मेऽस्ति सुग्रीवसमीपगा गतिः
सुतीक्ष्णदण्डो बलवांश्च वानरः ॥ ५ ॥

'सीताका दर्शन न होनेसे मुझे अपने पुरुषार्थका फल नहीं प्राप्त हो सका। इधर वानरोंके साथ सुदीर्घकालतक इधर उधर भ्रमण करके मैंने लौटनेकी अवधि भी बिता दी है; अतः अब मेरा सुग्रीवके पास जानेका भी मार्ग बंद हो गया; क्योंकि वह वानर बड़ा बलवान् और अत्यन्त कठोर दण्ड देनेवाला है ॥ ५ ॥

दृष्टमन्तःपुरं सर्वं दृष्टा रावणयोषितः ।

न सीता दृश्यते साध्वी वृथा जातो मम श्रमः ॥ ६ ॥

'मैंने रावणका सारा अन्तःपुर छान डाला, एक-एक करके रावणकी समस्त स्त्रियोंको भी देख लिया; किंतु अभीतक साध्वी सीताका दर्शन नहीं हुआ; अतः मेरा समुद्रलङ्घनका सारा परिश्रम व्यर्थ हो गया ॥ ६ ॥

किं नु मां वानराः सर्वे गतं वक्ष्यन्ति संगताः ।
गत्वा तत्र त्वया वीर किं कृतं तद् वदस्व नः ॥ ७ ॥

'जब मैं लौटकर जाऊँगा, तब सारे वानर मिलकर मुझसे क्या कहेंगे; वे पूछेंगे, वीर ! वहाँ जाकर तुमने क्या किया है—यह मुझे बताओ ॥ ७ ॥

अदृष्ट्वा किं प्रवक्ष्यामि तामहं जनकात्मजाम् ।
ध्रुवं प्रायमुपासिष्ये कालस्य व्यतिवर्तने ॥ ८ ॥

'किंतु जनकनन्दिनी सीताको न देखकर मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा । सुग्रीवके निश्चित किये हुए समयका उल्लङ्घन कर देनेपर अब मैं निश्चय ही आमरण उपवास करूँगा ॥८॥

किं वा वक्ष्यति वृद्धश्च जाम्बवानङ्गदश्च सः ।
गतं पारं समुद्रस्य वानराश्च समागताः ॥ ९ ॥

'बड़े-बूढ़े जाम्बवान् और युवराज अङ्गद मुझसे क्या कहेंगे ? समुद्रके पार जानेपर अन्य वानर भी जब मुझसे मिलेंगे, तब वे क्या कहेंगे ?' ॥ ९ ॥

अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम् ।
भूयस्तत्र विचेष्यामि न यत्र विचयः कृतः ॥ १० ॥

(इस प्रकार थोड़ी देरतक हताश-से होकर वे फिर सोचने लगे—)'हताश न होकर उत्साहको बनाये रखना ही सम्पत्तिका मूल कारण है । उत्साह ही परम सुखका हेतु है; अतः मैं पुनः उन स्थानोंमें सीताकी खोज करूँगा, जहाँ अबतक अनुसंधान नहीं किया गया था ॥ १० ॥

अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः ।
करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः ॥ ११ ॥

'उत्साह ही प्राणियोंको सर्वदा सब प्रकारके कर्मोंमें प्रवृत्त करता है और वही उन्हें वे जो कुछ करते हैं उस कार्यमें सफलता प्रदान करता है ॥ ११ ॥

तस्मादनिर्वेदकरं यत्नं चेष्टेऽहमुत्तमम् ।
अदृष्टांश्च विचेष्यामि देशान् रावणपालितान् ॥ १२ ॥

'इसलिये अब मैं और भी उत्तम एवं उत्साहपूर्वक प्रयत्नके लिये चेष्टा करूँगा। रावणके द्वारा सुरक्षित जिन स्थानोंको अबतक नहीं देखा था, उनमें भी पता लगाऊँगा ॥ १२ ॥

आपानशाला विचितास्तथा पुष्पगृहाणि च ।
चित्रशालाश्च विचिता भूयः क्रीडागृहाणि च ॥ १३ ॥
निष्कुटान्तररथ्याश्च विमानानि च सर्वशः ।
इति संचिन्त्य भूयोऽपि विचेतुमुपचक्रमे ॥ १४ ॥

'आपानशाला, पुष्पगृह, चित्रशाला, क्रीडागृह, गृहोद्यानकी गलियाँ और पुष्पक आदि विमान—इन सबका तो मैंने चप्पा-चप्पा देख डाला (अब अन्यत्र खोज करूँगा) ।' यह सोचकर उन्होंने पुनः खोजना आरम्भ किया ॥ १३-१४ ॥

भूमीगृहांश्चैत्यगृहान् गृहातिगृहकानपि ।
उत्पतन् निपतंश्चापि तिष्ठन् गच्छन् पुनः क्वचित् ॥ १५ ॥

वे भूमिके भीतर बने हुए घरों (तहखानों) में, चौराहोंपर बने हुए मण्डपोंमें तथा घरोंको लाँघकर उनसे थोड़ी ही दूरपर बने हुए विलास-भवनोंमें सीताकी खोज करने लगे । वे किसी घरके ऊपर चढ़ जाते, किसीसे नीचे कूद पड़ते, कहीं ठहर जाते और किसीको चलते-चलते ही देख लेते थे ॥ १५ ॥

अपवृण्वंश्च द्वाराणि कपाटान्यवघट्टयन् ।
प्रविशन् निष्पतंश्चापि प्रपतन्नुत्पतन्निव ॥ १६ ॥

घरोंके दरवाजोंको खोल देते, कहीं किंवाड़ें भिड़का देते, किसीके भीतर घुसकर देखते और फिर निकल आते थे । वे गिरते-पड़ते और उछलते हुए-से सर्वत्र खोज करने लगे ॥ १६ ॥

सर्वमप्यवकाशं स विचचार महाकपिः ।
चतुरङ्गुलमात्रोऽपि नावकाशः स विद्यते ।
रावणान्तःपुरे तस्मिन् यं कपिर्न जगाम सः ॥ १७ ॥

उन महाकपिने वहाँके सभी स्थानोंमें विचरण किया । रावणके अन्तःपुरमें कोई चार अङ्गुलका भी ऐसा स्थान नहीं रह गया, जहाँ कपिवर हनुमान्‌जी न पहुँचे हों ॥१७॥

प्राकारान्तरवीथ्यश्च वेदिकाश्चैत्यसंश्रयाः ।
श्वभ्राश्च पुष्करिण्यश्च सर्वं तेनावलोकितम् ॥ १८ ॥

उन्होंने परकोटेके भीतरकी गलियाँ, चौराहेके वृक्षोंके नीचे बनी हुई वेदियाँ, गड्ढे और पोखरियाँ—सबको छान डाला ॥ १८ ॥

राक्षस्यो विविधाकारा विरूपा विकृतास्तथा ।
दृष्टा हनुमता तत्र न तु सा जनकात्मजा ॥ १९ ॥

हनुमान्‌जीने जगह-जगह नाना प्रकारके आकारवाली, कुरूप और विकट राक्षसियाँ देखीं; किंतु वहाँ उन्हें जानकीजीका दर्शन नहीं हुआ ॥ १९ ॥

रूपेणाप्रतिमा लोके परा विद्याधरस्त्रियः ।
दृष्टा हनुमता तत्र न तु राघवनन्दिनी ॥ २० ॥

संसारमें जिनके रूप-सौन्दर्यकी कहीं तुलना नहीं थी ऐसी बहुत-सी विद्याधरियाँ भी हनुमान्‌जीकी दृष्टिमें आयीं; परंतु वहाँ उन्हें श्रीरघुनाथजीको आनन्द प्रदान करनेवाली सीता नहीं दिखायी दीं ॥ २० ॥

नागकन्या वरारोहाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ।

दृष्टा हनुमता तत्र न तु सा जनकात्मजा ॥ २१ ॥

हनुमान्‌जीने सुन्दर नितम्ब और पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली बहुत-सी नागकन्याएँ भी वहाँ देखीं; किंतु जनककिशोरीका उन्हें दर्शन नहीं हुआ ॥ २१ ॥

प्रमथ्य राक्षसेन्द्रेण नागकन्या बलाद्धृताः ।
दृष्टा हनुमता तत्र न सा जनकनन्दिनी ॥ २२ ॥

राक्षसराजके द्वारा नागसेनाको मथकर बलात्कारसे हरकर लायी हुई नागकन्याओंको तो पवनकुमारने वहाँ देखा; किंतु जानकीजी उन्हें दृष्टिगोचर नहीं हुईं ॥ २२ ॥

सोऽपश्यंस्तां महाबाहुः पश्यंश्चान्या वरस्त्रियः ।
विषसाद महाबाहुर्हनूमान् मारुतात्मजः ॥ २३ ॥

महाबाहु पवनकुमार हनुमान्‌को दूसरी बहुत-सी सुन्दरियाँ दिखायी दीं; परंतु सीताजी उनके देखनेमें नहीं आयीं। इसलिये वे बहुत दुखी हो गये ॥ २३ ॥

उद्योगं वानरेन्द्राणां प्लवनं सागरस्य च ।
व्यर्थं वीक्ष्यानिलसुतश्चिन्तां पुनरुपागतः ॥ २४ ॥

उन वानरशिरोमणि वीरोंके उद्योग और अपनेद्वारा किये गये समुद्रलङ्घनको व्यर्थ हुआ देखकर पवनपुत्र हनुमान् वहाँ पुनः बड़ी भारी चिन्तामें पड़ गये ॥ २४ ॥

अवतीर्य विमानाच्च हनूमान् मारुतात्मजः ।
चिन्तामुपजगामाथ शोकोपहतचेतनः ॥ २५ ॥

उस समय वायुनन्दन हनुमान् विमानसे नीचे उतर आये और बड़ी चिन्ता करने लगे । शोकसे उनकी चेतनाशक्ति शिथिल हो गयी ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः

सीताजीके नाशकी आशङ्कासे हनुमान्‌जीकी चिन्ता, श्रीरामको सीताके न मिलनेकी सूचना देनेसे अनर्थकी सम्भावना देख हनुमान्‌जीका न लौटनेका निश्चय करके पुनः खोजनेका विचार करना और अशोकवाटिकामें ढूँढ़नेके विषयमें तरह-तरहकी बातें सोचना

विमानात् तु स संक्रम्य प्राकारं हरियूथपः ।
हनुमान् वेगवानासीद् यथा विद्युद् घनान्तरे ॥ १ ॥

वानरयूथपति हनुमान् विमानसे उतरकर महलके परकोटेपर चढ़ आये । वहाँ आकर वे मेघमालाके अङ्कमें चमकती हुई बिजलीके समान बड़े वेगसे इधर-उधर घूमने लगे* ॥ १ ॥

सम्परिक्रम्य हनुमान् रावणस्य निवेशनान् ।
अदृष्ट्वा जानकीं सीतामब्रवीद् वचनं कपिः ॥ २ ॥

रावणके सभी घरोंमें एक बार पुनः चक्कर लगाकर जब कपिवर हनुमान्‌जीने जनकनन्दिनी सीताको नहीं देखा, तब वे मन-ही-मन इस प्रकार कहने लगे— ॥ २ ॥

भूयिष्ठं लोलिता लङ्का रामस्य चरता प्रियम् ।
न हि पश्यामि वैदेहीं सीतां सर्वाङ्गशोभनाम् ॥ ३ ॥

'मैंने श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय करनेके लिये कई बार लङ्काको छान डाला; किंतु सर्वाङ्गसुन्दरी विदेहनन्दिनी सीता मुझे कहीं नहीं दिखायी देती हैं ॥ ३ ॥

पल्वलानि तटाकानि सरांसि सरितस्तथा ।
नद्योऽनूपवनान्ताश्च दुर्गाश्च धरणीधराः ॥ ४ ॥
लोलिता वसुधा सर्वा न च पश्यामि जानकीम् ।

'मैंने यहाँके छोटे तालाब, पोखरे, सरोवर, सरिताएँ, नदियाँ, पानीके आस-पासके जंगल. तथा दुर्गम पहाड़—सब देख डाले । इस नगरके आसपासकी सारी भूमि खोज डाली; किंतु कहीं भी मुझे जानकीजीका दर्शन नहीं हुआ ॥ ४½ ॥

इह सम्पातिना सीता रावणस्य निवेशने ।
आख्याता गृध्रराजेन न च सा दृश्यते न किम् ॥ ५ ॥

'गृध्रराज सम्पातिने तो सीताजीको यहाँ रावणके महलमें ही बताया था । फिर भी न जाने क्यों वे यहाँ दिखायी नहीं देती हैं ॥ ५ ॥

किं नु सीताथ वैदेही मैथिली जनकात्मजा ।
उपतिष्ठेत विवशा रावणेन हृता बलात् ॥ ६ ॥

'क्या रावणके द्वारा बलपूर्वक हरकर लायी हुई विदेहकुलनन्दिनी मिथिलेशकुमारी जनकदुलारी सीता कभी विवश होकर रावणकी सेवामें उपस्थित हो सकती हैं (यह असम्भव है) ॥ ६ ॥

क्षिप्रमुत्पततो मन्ये सीतामादाय रक्षसः ।
बिभ्यतो रामबाणानामन्तरा पतिता भवेत् ॥ ७ ॥

'मैं तो समझता हूँ कि श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे भयभीत हो वह राक्षस जब सीताको लेकर शीघ्रतापूर्वक आकाशमें

---

* घनमालामें विद्युत्‌की उपमासे यह ध्वनित होता है कि रावणका वह परकोटा, इन्द्रनीलमणिका बना हुआ था और उसपर सुवर्णके समान गौर कान्तिवाले हनुमान्‌जी विद्युत्‌के समान प्रतीत होते थे ।

उछला है, उस समय कहीं बीचमें ही वे छूटकर गिर पड़ी हैं ॥ ७ ॥

अथवा ह्रियमाणायाः पथि सिद्धनिषेविते ।
मन्ये पतितमार्याया हृदयं प्रेक्ष्य सागरम् ॥ ८ ॥

'अथवा यह भी सम्भव है कि जब आर्या सीता सिद्धसेवित आकाशमार्गसे ले जायी जाती रही हों, उस समय समुद्रको देखकर भयके मारे उनका हृदय ही फटकर नीचे गिर पड़ा हो ॥ ८ ॥

रावणस्योरुवेगेन भुजाभ्यां पीडितेन च ।
तया मन्ये विशालाक्ष्या त्यक्तं जीवितमार्यया ॥ ९ ॥

'अथवा यह भी मालूम होता है कि रावणके प्रबल वेग और उसकी भुजाओंके दृढ़ बन्धनसे पीड़ित होकर विशाललोचना आर्या सीताने अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया है ॥ ९ ॥

उपर्युपरि सा नूनं सागरं क्रमतस्तदा ।
विचेष्टमाना पतिता समुद्रे जनकात्मजा ॥ १० ॥

'ऐसा भी हो सकता है कि जिस समय रावण उन्हें समुद्रके ऊपर होकर ला रहा हो, उस समय जनककुमारी सीता छटपटाकर समुद्रमें गिर पड़ी हों। अवश्य ऐसा ही हुआ होगा ॥ १० ॥

आहो क्षुद्रेण चानेन रक्षन्ती शीलमात्मनः ।
अबन्धुर्भक्षिता सीता रावणेन तपस्विनी ॥ ११ ॥
अथवा राक्षसेन्द्रस्य पत्नीभिरसितेक्षणा ।
अदुष्टा दुष्टभावाभिर्भक्षिता सा भविष्यति ॥ १२ ॥

'अथवा ऐसा तो नहीं हुआ कि अपने शीलकी रक्षामें तत्पर हुई किसी सहायक बन्धुकी सहायतासे वञ्चित तपस्विनी सीताको इस नीच रावणने ही खा लिया हो अथवा मनमें दुष्ट भावना रखनेवाली राक्षसराज रावणकी पत्नियोंने ही कजरारे नेत्रोंवाली साध्वी सीताको अपना आहार बना लिया होगा ॥ ११-१२ ॥

सम्पूर्णचन्द्रप्रतिमं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ।
रामस्य ध्यायती वक्त्रं पञ्चत्वं कृपणा गता ॥ १३ ॥

'हाय! श्रीरामचन्द्रजीके पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर तथा प्रफुल्ल कमलदलके सदृश नेत्रवाले मुखका चिन्तन करती हुई दयनीया सीता इस संसारसे चल बसीं ॥ १३ ॥

हा राम लक्ष्मणेत्येवं हायोध्ये चेति मैथिली ।
विलप्य बहु वैदेही न्यस्तदेहा भविष्यति ॥ १४ ॥

'हा राम! हा लक्ष्मण! हा अयोध्यापुरी! इस प्रकार पुकार-पुकारकर बहुत विलाप करके मिथिलेशकुमारी विदेहनन्दिनी सीताने अपने शरीरको त्याग दिया होगा ॥ १४ ॥

अथवा निहिता मन्ये रावणस्य निवेशने ।
भृशं लालप्यते बाला पञ्जरस्थेव सारिका ॥ १५ ॥

'अथवा मेरी समझमें यह आता है कि वे रावणके ही किसी गुप्त गृहमें छिपाकर रक्खी गयी हैं। हाय! वहाँ वह बाला पींजरेमें बंद हुई मैनाकी तरह बारंबार आर्तनाद करती होगी ॥ १५ ॥

जनकस्य कुले जाता रामपत्नी सुमध्यमा ।
कथमुत्पलपत्राक्षी रावणस्य वशं व्रजेत् ॥ १६ ॥

'जो जनकके कुलमें उत्पन्न हुई हैं और श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नी हैं, वे नील कमलके-से नेत्रोंवाली सुमध्यमा सीता रावणके अधीन कैसे हो सकती हैं? ॥ १६ ॥

विनष्टा वा प्रणष्टा वा मृता वा जनकात्मजा ।
रामस्य प्रियभार्यस्य न निवेदयितुं क्षमम् ॥ १७ ॥

'जनककिशोरी सीता चाहे गुप्त गृहमें अदृश्य करके रखी गयी हों, चाहे समुद्रमें गिरकर प्राणोंसे हाथ धो बैठी हों अथवा श्रीरामचन्द्रजीके विरहका कष्ट न सह सकनेके कारण उन्होंने मृत्युकी शरण ली हो, किसी भी दशामें श्रीरामचन्द्रजीको इस बातकी सूचना देना उचित न होगा; क्योंकि वे अपनी पत्नीको बहुत प्यार करते हैं ॥ १७ ॥

निवेद्यमाने दोषः स्याद् दोषः स्यादनिवेदने ।
कथं नु खलु कर्तव्यं विषमं प्रतिभाति मे ॥ १८ ॥

'इस समाचारके बतानेमें भी दोष है और न बतानेमें भी दोषकी सम्भावना है, ऐसी दशामें किस उपायसे काम लेना चाहिये? मुझे तो बताना और न बताना—दोनों ही दुष्कर प्रतीत होते हैं ॥ १८ ॥

अस्मिन्नेवंगते कार्ये प्राप्तकालं क्षमं च किम् ।
भवेदिति मतिं भूयो हनुमान् प्रविचारयन् ॥ १९ ॥

'ऐसी दशामें जब कोई भी कार्य करना दुष्कर प्रतीत होता है, तब मेरे लिये इस समयके अनुसार क्या करना उचित होगा?' इन्हीं बातोंपर हनुमान्‌जी बारंबार विचार करने लगे ॥ १९ ॥

यदि सीतामदृष्ट्वाहं वानरेन्द्रपुरीमितः ।
गमिष्यामि ततः को मे पुरुषार्थो भविष्यति ॥ २० ॥

(उन्होंने फिर सोचा—) 'यदि मैं सीताजीको देखे बिना ही यहाँसे वानरराजकी पुरी किष्किन्धाको लौट जाऊँगा तो मेरा पुरुषार्थ ही क्या रह जायगा? ॥ २० ॥

ममेदं लङ्घनं व्यर्थं सागरस्य भविष्यति ।
प्रवेशश्चैव लङ्कायां राक्षसानां च दर्शनम् ॥ २१ ॥

'फिर तो मेरा यह समुद्रलङ्घन, लङ्कामें प्रवेश और राक्षसोंको देखना सब व्यर्थ हो जायगा ॥ २१ ॥

किं वा वक्ष्यति सुग्रीवो हरयो वापि संगताः ।
किष्किन्धामनुसम्प्राप्तं तौ वा दशरथात्मजौ ॥ २२ ॥

'किष्किन्धामें पहुँचनेपर मुझसे मिलकर सुग्रीव, दूसरे-दूसरे वानर तथा वे दोनों दशरथराजकुमार भी क्या कहेंगे ? ॥ २२ ॥

गत्वा तु यदि काकुत्स्थं वक्ष्यामि परुषं वचः ।
न दृष्टेति मया सीता ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् ॥ २३ ॥

'यदि वहाँ जाकर मैं श्रीरामचन्द्रजीसे यह कठोर बात कह दूँ कि मुझे सीताका दर्शन नहीं हुआ तो वे प्राणोंका परित्याग कर देंगे ॥ २३ ॥

परुषं दारुणं तीक्ष्णं क्रूरमिन्द्रियतापनम् ।
सीतानिमित्तं दुर्वाक्यं श्रुत्वा स न भविष्यति ॥ २४ ॥

'सीताजीके विषयमें ऐसे रूखे, कठोर, तीखे और इन्द्रियोंको संताप देनेवाले दुर्वचनको सुनकर वे कदापि जीवित नहीं रहेंगे ॥ २४ ॥

तं तु कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा पञ्चत्वगतमानसम् ।
भृशानुरक्तमेधावी न भविष्यति लक्ष्मणः ॥ २५ ॥

'उन्हें संकटमें पड़कर प्राणोंके परित्यागका संकल्प करते देख उनके प्रति अत्यन्त अनुराग रखनेवाले बुद्धिमान् लक्ष्मण भी जीवित नहीं रहेंगे ॥ २५ ॥

विनष्टौ भ्रातरौ श्रुत्वा भरतोऽपि मरिष्यति ।
भरतं च मृतं दृष्ट्वा शत्रुघ्नो न भविष्यति ॥ २६ ॥

'अपने इन दो भाइयोंके विनाशका समाचार सुनकर भरत भी प्राण त्याग देंगे और भरतकी मृत्यु देखकर शत्रुघ्न भी जीवित नहीं रह सकेंगे ॥ २६ ॥

पुत्रान् मृतान् समीक्ष्याथ न भविष्यन्ति मातरः ।
कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च न संशयः ॥ २७ ॥

'इस प्रकार चारों पुत्रोंकी मृत्यु हुई देख कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी—ये तीनों माताएँ भी निस्संदेह प्राण दे देंगी ॥ २७ ॥

कृतज्ञः सत्यसंधश्च सुग्रीवः प्लवगाधिपः ।
रामं तथागतं दृष्ट्वा ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् ॥ २८ ॥

'कृतज्ञ और सत्यप्रतिज्ञ वानरराज सुग्रीव भी जब श्रीरामचन्द्रजीको ऐसी अवस्थामें देखेंगे तो स्वयं भी प्राणविसर्जन कर देंगे ॥ २८ ॥

दुर्मना व्यथिता दीना निरानन्दा तपस्विनी ।
पीडिता भर्तृशोकेन रुमा त्यक्ष्यति जीवितम् ॥ २९ ॥

'तत्पश्चात् पतिशोकसे पीड़ित हो दुखितचित्त, दीन, व्यथित और आनन्दशून्य हुई तपस्विनी रुमा भी जान दे देगी ॥ २९ ॥

वालिजेन तु दुःखेन पीडिता शोककर्शिता ।
पञ्चत्वमागता राज्ञी तारापि न भविष्यति ॥ ३० ॥

'फिर तो रानी तारा भी जीवित नहीं रहेंगी । वे वालीके विरहजनित दुःखसे तो पीड़ित थीं ही, इस नूतन शोकसे कातर हो शीघ्र ही मृत्युको प्राप्त हो जायँगी ॥ ३० ॥

मातापित्रोर्विनाशेन सुग्रीवव्यसनेन च ।
कुमारोऽप्यङ्गदस्तस्माद् विजहिष्यति जीवितम् ॥ ३१ ॥

'माता-पिताके विनाश और सुग्रीवके मरणजनित संकटसे पीड़ित हो कुमार अङ्गद भी अपने प्राणोंका परित्याग कर देंगे ॥ ३१ ॥

भर्तृजेन तु दुःखेन अभिभूता वनौकसः ।
शिरांस्यभिहनिष्यन्ति तलैर्मुष्टिभिरेव च ॥ ३२ ॥
सान्त्वेनानुप्रदानेन मानेन च यशस्विना ।
लालिताः कपिनाथेन प्राणांस्त्यक्ष्यन्ति वानराः ॥ ३३ ॥

'तदनन्तर स्वामीके दुःखसे पीड़ित हुए सारे वानर अपने हाथों और मुक्कोंसे सिर पीटने लगेंगे । यशस्वी वानरराजने सान्त्वनापूर्ण वचनों और दान-मानसे जिनका लालन-पालन किया था, वे वानर अपने प्राणोंका परित्याग कर देंगे ॥ ३२-३३ ॥

न वनेषु न शैलेषु न निरोधेषु वा पुनः ।
क्रीडामनुभविष्यन्ति समेत्य कपिकुञ्जराः ॥ ३४ ॥

'ऐसी अवस्थामें शेष वानर वनों, पर्वतों और गुफाओंमें एकत्र होकर फिर कभी क्रीड़ा-विहारका आनन्द नहीं लेंगे ॥ ३४ ॥

सपुत्रदाराः सामात्या भर्तृव्यसनपीडिताः ।
शैलाग्रेभ्यः पतिष्यन्ति समेषु विषमेषु च ॥ ३५ ॥

'अपने राजाके शोकसे पीड़ित हो सब वानर अपने पुत्र, स्त्री और मन्त्रियोंसहित पर्वतोंके शिखरोंसे नीचे सम अथवा विषम स्थानोंमें गिरकर प्राण दे देंगे ॥ ३५ ॥

विषमुद्बन्धनं वापि प्रवेशं ज्वलनस्य वा ।
उपवासमथो शस्त्रं प्रचरिष्यन्ति वानराः ॥ ३६ ॥

'अथवा सारे विष पी लेंगे या फाँसी लगा लेंगे या जलती आगमें प्रवेश कर जायेंगे । उपवास करने लगेंगे अथवा अपने ही शरीरमें छुरा भोंक लेंगे ॥ ३६ ॥

घोरमारोदनं मन्ये गते मयि भविष्यति ।
इक्ष्वाकुकुलनाशश्च नाशश्चैव वनौकसाम् ॥ ३७ ॥

'मेरे वहाँ जानेपर मैं समझता हूँ बड़ा भयंकर आर्तनाद होने लगेगा । इक्ष्वाकुकुलका नाश और वानरोंका भी विनाश हो जायगा ॥ ३७ ॥

सोऽहं नैव गमिष्यामि किष्किन्धां नगरीमितः ।
नहि शक्ष्याम्यहं द्रष्टुं सुग्रीवं मैथिलीं विना ॥ ३८ ॥

'इसलिये मैं यहाँसे किष्किन्धापुरीको तो नहीं जाऊँगा । मिथिलेशकुमारी सीताको देखे बिना मैं सुग्रीवका भी दर्शन नहीं कर सकूँगा ॥ ३८ ॥

मय्यगच्छति चेहस्थे धर्मात्मानौ महारथौ ।
आशया तौ धरिष्येते वानराश्च तरस्विनः ॥ ३९ ॥

'यदि मैं यहीं रहूँ और वहाँ न जाऊँ तो मेरी आशा लगाये वे दोनों धर्मात्मा महारथी बन्धु प्राण धारण किये रहेंगे और वे वेगशाली वानर भी जीवित रहेंगे ॥ ३९ ॥

हस्तादानो मुखादानो नियतो वृक्षमूलिकः ।
वानप्रस्थो भविष्यामि ह्यदृष्ट्वा जनकात्मजाम् ॥ ४० ॥

'जानकीजीका दर्शन न मिलनेपर मैं यहाँ वानप्रस्थी हो जाऊँगा । मेरे हाथपर अपने-आप जो फल आदि खाद्य वस्तु प्राप्त हो जायगी, उसीको खाकर रहूँगा । या परेच्छासे मेरे मुँहमें जो फल आदि खाद्य वस्तु पड़ जायगी, उसीसे निर्वाह करूँगा तथा शौच, संतोष आदि नियमोंके पालनपूर्वक वृक्षके नीचे निवास करूँगा ॥ ४० ॥

सागरानूपजे देशे बहुमूलफलोदके ।
चितिं कृत्वा प्रवेक्ष्यामि समिद्धमरणीसुतम् ॥ ४१ ॥

'अथवा सागरतटवर्ती स्थानमें, जहाँ फल-मूल और जलकी अधिकता होती है, मैं चिता बनाकर जलती हुई आगमें प्रवेश कर जाऊँगा ॥ ४१ ॥

उपविष्टस्य वा सम्यग् लिङ्गिनं साधयिष्यतः ।
शरीरं भक्षयिष्यन्ति वायसाः श्वापदानि च ॥ ४२ ॥

'अथवा आमरण उपवासके लिये बैठकर लिङ्गशरीरधारी जीवात्माका शरीरसे वियोग करानेके प्रयत्नमें लगे हुए मेरे शरीरको कौवे तथा हिंसक जन्तु अपना आहार बना लेंगे ॥ ४२ ॥

इदमप्यृषिभिर्दृष्टं निर्याणमिति मे मतिः ।
सम्यगापः प्रवेक्ष्यामि न चेत् पश्यामि जानकीम् ॥ ४३ ॥

'यदि मुझे जानकीजीका दर्शन नहीं हुआ तो मैं खुशी-खुशी जल-समाधि ले लूँगा । मेरे विचारसे इस तरह जल-प्रवेश करके परलोकगमन करना ऋषियोंकी दृष्टिमें भी उत्तम ही है ॥ ४३ ॥

सुजातमूला सुभगा कीर्तिमाला यशस्विनी ।
प्रभग्ना चिररात्राय मम सीतामपश्यतः ॥ ४४ ॥

'जिसका प्रारम्भ शुभ है, ऐसी सुभगा, यशस्विनी और मेरी कीर्तिमालारूपा यह दीर्घरात्रि भी सीताजीको देखे बिना ही बीत चली ॥ ४४ ॥

तापसो वा भविष्यामि नियतो वृक्षमूलिकः ।
नेतः प्रतिगमिष्यामि तामदृष्ट्वासितेक्षणाम् ॥ ४५ ॥

'अथवा अब मैं नियमपूर्वक वृक्षके नीचे निवास करनेवाला तपस्वी हो जाऊँगा; किंतु उस असितलोचना सीताको देखे बिना यहाँसे कदापि नहीं लौटूँगा ॥ ४५ ॥

यदि तु प्रतिगच्छामि सीतामनधिगम्य ताम् ।
अङ्गदः सहितः सर्वैर्वानरैर्न भविष्यति ॥ ४६ ॥

'यदि सीताका पता लगाये बिना ही मैं लौट जाऊँ तो समस्त वानरोंसहित अङ्गद जीवित नहीं रहेंगे ॥ ४६ ॥

विनाशे बहवो दोषा जीवन् प्राप्नोति भद्रकम् ।
तस्मात् प्राणान् धरिष्यामि ध्रुवो जीवति संगमः ॥ ४७ ॥

'इस जीवनका नाश कर देनेमें बहुत-से दोष हैं । जो पुरुष जीवित रहता है, वह कभी-न-कभी अवश्य कल्याणका भागी होता है; अतः मैं इन प्राणोंको धारण किये रहूँगा । जीवित रहनेपर अभीष्ट वस्तु अथवा सुखकी प्राप्ति अवश्यम्भावी है' ॥ ४७ ॥

एवं बहुविधं दुःखं मनसा धारयन् बहु ।
नाध्यगच्छत् तदा पारं शोकस्य कपिकुञ्जरः ॥ ४८ ॥

इस तरह मनमें अनेक प्रकारके दुःख धारण किये कपिकुञ्जर हनुमान्‌जी शोकका पार न पा सके ॥ ४८ ॥

ततो विक्रममासाद्य धैर्यवान् कपिकुञ्जरः ।
रावणं वा वधिष्यामि दशग्रीवं महाबलम् ।
काममस्तु हृता सीता प्रत्याचीर्णं भविष्यति ॥ ४९ ॥

तदनन्तर धैर्यवान् कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने पराक्रमका सहारा लेकर सोचा—'अथवा महाबली दशमुख रावणका ही वध क्यों न कर डालूँ । भले ही सीताका अपहरण हो गया हो, इस रावणको मार डालनेसे उस वैरका भरपूर बदला सध जायगा ॥ ४९ ॥

अथवैनं समुत्क्षिप्य उपर्युपरि सागरम् ।
रामायोपहरिष्यामि पशुं पशुपतेरिव ॥ ५० ॥

'अथवा इसे उठाकर समुद्रके ऊपर-ऊपरसे ले जाऊँ और जैसे पशुपति (रुद्र या अग्नि) को पशु अर्पित किया जाय, उसी प्रकार श्रीरामके हाथमें इसको सौंप दूँ' ॥ ५० ॥

इति चिन्तासमापन्नः सीतामनधिगम्य ताम् ।
ध्यानशोकपरीतात्मा चिन्तयामास वानरः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार सीताजीको न पाकर वे चिन्तामें निमग्न हो गये । उनका मन सीताके ध्यान और शोकमें डूब गया । फिर वे वानरवीर इस प्रकार विचार करने लगे— ॥ ५१ ॥

यावत् सीतां न पश्यामि रामपत्नीं यशस्विनीम् ।
तावदेतां पुरीं लङ्कां विचिनोमि पुनः पुनः ॥ ५२ ॥

'जबतक मैं यशस्विनी श्रीराम-पत्नी सीताका दर्शन न कर लूँगा, तबतक इस लङ्कापुरीमें बारंबार उनकी खोज करता रहूँगा ॥ ५२ ॥

सम्पातिवचनाच्चापि रामं यद्यानयाम्यहम् ।
अपश्यन् राघवो भार्यां निर्दहेत् सर्ववानरान् ॥ ५३ ॥

'यदि सम्पातिके कहनेसे भी मैं श्रीरामको यहाँ बुला ले आऊँ तो अपनी पत्नीको यहाँ न देखनेपर श्रीरघुनाथजी समस्त वानरोंको जलाकर भस्म कर देंगे ॥ ५३ ॥

इहैव नियताहारो वत्स्यामि नियतेन्द्रियः ।
न मत्कृते विनश्येयुः सर्वे ते नरवानराः ॥ ५४ ॥

'अतः यहीं नियमित आहार और इन्द्रियोंके संयमपूर्वक निवास करूँगा । मेरे कारण वे समस्त नर और वानर नष्ट न हों ॥ ५४ ॥

अशोकवनिका चापि महतीयं महाद्रुमा ।
इमामधिगमिष्यामि नहीयं विचिता मया ॥ ५५ ॥

'इधर यह बहुत बड़ी अशोकवाटिका है, इसके भीतर बड़े-बड़े वृक्ष हैं । इसमें मैंने अभीतक अनुसंधान नहीं किया है, अतः अब इसीमें चलकर ढूँढ़ूँगा ॥ ५५ ॥

वसून् रुद्रांस्तथाऽऽदित्यानश्विनौ मरुतोऽपि च ।
नमस्कृत्वा गमिष्यामि रक्षसां शोकवर्धनः ॥ ५६ ॥

'राक्षसोंके शोकको बढ़ानेवाला मैं यहाँसे वसु, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार और मरुद्गणोंको नमस्कार करके अशोकवाटिकामें चलूँगा ॥ ५६ ॥

जित्वा तु राक्षसान् देवीमिक्ष्वाकुकुलनन्दिनीम् ।
सम्प्रदास्यामि रामाय सिद्धीमिव तपस्विने ॥ ५७ ॥

'वहाँ समस्त राक्षसोंको जीतकर जैसे तपस्वीको सिद्धि प्रदान की जाती है, इसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके हाथमें इक्ष्वाकुकुलको आनन्दित करनेवाली देवी सीताको सौंप दूँगा' ॥ ५७ ॥

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा चिन्ताविग्रथितेन्द्रियः ।
उदतिष्ठन् महाबाहुर्हनूमान् मारुतात्मजः ॥ ५८ ॥

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो
नमोऽस्तु चन्द्रार्ग्निमरुद्गणेभ्यः ॥ ५९ ॥

इस प्रकार दो घड़ीतक सोच-विचारकर चिन्तासे शिथिल इन्द्रियवाले महाबाहु पवनकुमार हनुमान् सहसा उठकर खड़े हो गये (और देवताओंको नमस्कार करते हुए बोले—) 'लक्ष्मणसहित श्रीरामको नमस्कार है । जनकनन्दिनी सीता देवीको भी नमस्कार है । रुद्र, इन्द्र, यम और वायु देवताको नमस्कार है तथा चन्द्रमा, अग्नि एवं मरुद्गणोंको भी नमस्कार है' ॥ ५८-५९ ॥

स तेभ्यस्तु नमस्कृत्वा सुग्रीवाय च मारुतिः ।
दिशः सर्वाः समालोक्य सोऽशोकवनिकां प्रति ॥ ६० ॥

इस प्रकार उन सबको तथा सुग्रीवको भी नमस्कार करके पवनकुमार हनुमान्‌जी सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर दृष्टिपात करके अशोकवाटिकामें जानेको उद्यत हुए ॥ ६० ॥

स गत्वा मनसा पूर्वमशोकवनिकां शुभाम् ।
उत्तरं चिन्तयामास वानरो मारुतात्मजः ॥ ६१ ॥

उन वानरवीर पवनकुमारने पहले मनके द्वारा ही उस सुन्दर अशोकवाटिकामें जाकर भावी कर्तव्यका इस प्रकार चिन्तन किया—॥ ६१ ॥

ध्रुवं तु रक्षोबहुला भविष्यति वनाकुला ।
अशोकवनिका पुण्या सर्वसंस्कारसंस्कृता ॥ ६२ ॥

'वह पुण्यमयी अशोकवाटिका सींचने-कोड़ने आदि सब प्रकारके संस्कारोंसे सँवारी गयी है । वह दूसरे-दूसरे वनोंसे भी घिरी हुई है; अतः उसकी रक्षाके लिये वहाँ निश्चय ही बहुत-से राक्षस तैनात किये गये होंगे ॥ ६२ ॥

रक्षिणश्चात्र विहिता नूनं रक्षन्ति पादपान् ।
भगवानपि विश्वात्मा नातिक्षोभं प्रवायति ॥ ६३ ॥

'राक्षसराजके नियुक्त किये हुए रक्षक अवश्य ही वहाँके वृक्षोंकी रक्षा करते होंगे; इसलिये जगत्‌के प्राणस्वरूप भगवान् वायुदेव भी वहाँ अधिक वेगसे नहीं बहते होंगे ॥

संक्षिप्तोऽयं मयाऽऽत्मा च रामार्थे रावणस्य च ।
सिद्धिं दिशन्तु मे सर्वे देवाः सर्षिगणास्त्विह ॥ ६४ ॥

'मैंने श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी सिद्धि तथा रावणसे अदृश्य रहनेके लिये अपने शरीरको संकुचित करके छोटा बना लिया है । मुझे इस कार्यमें ऋषियोंसहित समस्त देवता सिद्धि-सफलता प्रदान करें ॥ ६४ ॥

ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् देवाश्चैव तपस्विनः ।
सिद्धिमग्निश्च वायुश्च पुरुहूतश्च वज्रभृत् ॥ ६५ ॥

'स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा, अन्य देवगण, तपोनिष्ठ महर्षि, अग्निदेव, वायु तथा वज्रधारी इन्द्र भी मुझे सफलता प्रदान करें ॥ ६५ ॥

वरुणः पाशहस्तश्च सोमादित्यौ तथैव च ।
अश्विनौ च महात्मानौ मरुतः सर्व एव च ॥ ६६ ॥
सिद्धिं सर्वाणि भूतानि भूतानां चैव यः प्रभुः ।
दास्यन्ति मम ये चान्येऽप्यदृष्टाः पथि गोचराः ॥ ६७ ॥

'पाशधारी वरुण, सोम, आदित्य, महात्मा अश्विनीकुमार, समस्त मरुद्गण, सम्पूर्ण भूत और भूतोंके अधिपति तथा और भी जो मार्गमें दीखनेवाले एवं न दीखनेवाले देवता हैं, वे सब मुझे सिद्धि प्रदान करेंगे ॥ ६६-६७ ॥

तदुन्नसं पाण्डुरदन्तमव्रणं
शुचिस्मितं पद्मपलाशलोचनम् ।
द्रक्ष्ये तदार्यावदनं कदा न्वहं
प्रसन्नताराधिपतुल्यवर्चसम् ॥ ६८ ॥

'जिसकी नाक ऊँची और दाँत सफेद हैं, जिसमें चेचक आदिके दाग नहीं हैं, जहाँ पवित्र मुसकानकी छटा छायी रहती है, जिसके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान सुशोभित होते हैं तथा जो निष्कलङ्क कलाधरके तुल्य कमनीय कान्तिसे युक्त है, वह आर्या सीताका मुख मुझे कब दिखायी देगा?॥

क्षुद्रेण हीनेन नृशंसमूर्तिना
सुदारुणालंकृतवेषधारिणा ।
बलाभिभूता ह्यबला तपस्विनी
कथं नु मे दृष्टिपथेऽद्य सा भवेत् ॥ ६९ ॥

'इस क्षुद्र, नीच, नृशंसरूपधारी और अत्यन्त दारुण होनेपर भी अलंकारयुक्त विश्वसनीय वेष धारण करनेवाले रावणने उस तपस्विनी अबलाको बलात्कारसे अपने अधीन कर लिया है। अब किस प्रकार वह मेरे दृष्टिपथमें आ सकती हैं?' ॥ ६९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः

हनुमान्‌जीका अशोकवाटिकामें प्रवेश करके उसकी शोभा देखना तथा एक अशोकवृक्षपर छिपे रहकर वहींसे सीताका अनुसंधान करना

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा मनसा चाधिगम्य ताम् ।
अवप्लुतो महातेजाः प्राकारं तस्य वेश्मनः ॥ १ ॥

महातेजस्वी हनुमान्‌जी एक मुहूर्ततक इसी प्रकार विचार करते रहे। तत्पश्चात् मन-ही-मन सीताजीका ध्यान करके वे रावणके महलसे कूद पड़े और अशोकवाटिकाकी चहारदीवारीपर चढ़ गये ॥ १ ॥

स तु संहृष्टसर्वाङ्गः प्राकारस्थो महाकपिः ।
पुष्पिताग्रान् वसन्तादौ ददर्श विविधान् द्रुमान् ॥ २ ॥

उस चहारदीवारीपर बैठे हुए महाकपि हनुमान्‌जीके सारे अङ्गोंमें हर्षजनित रोमाञ्च हो आया। उन्होंने वसंतके आरम्भमें वहाँ नाना प्रकारके वृक्ष देखे, जिनकी डालियोंके अग्रभाग फूलोंके भारसे लदे थे ॥ २ ॥

सालानशोकान् भव्यांश्च चम्पकांश्च सुपुष्पितान् ।
उद्दालकान् नागवृक्षांश्चूतान् कपिमुखानपि ॥ ३ ॥
तथाऽऽम्रवणसम्पन्नाँल्लताशतसमन्वितान् ।
ज्यामुक्त इव नाराचः पुप्लुवे वृक्षवाटिकाम् ॥ ४ ॥

वहाँ साल, अशोक, निम्ब और चम्पाके वृक्ष खूब खिले हुए थे। बहुवार, नागकेसर और बन्दरके मुँहकी भाँति लाल फल देनेवाले आम भी पुष्प एवं मञ्जरियोंसे सुशोभित हो रहे थे। अमराइयोंसे युक्त वे सभी वृक्ष शत-शत लताओंसे आवेष्टित थे। हनुमान्‌जी प्रत्यञ्चासे छूटे हुए बाणके समान उछले और उन वृक्षोंकी वाटिकामें जा पहुँचे ॥ ३-४ ॥

स प्रविश्य विचित्रां तां विहगैरभिनादिताम् ।
राजतैः काञ्चनैश्चैव पादपैः सर्वतो वृताम् ॥ ५ ॥
विहगैर्मृगसङ्घैश्च विचित्रां चित्रकाननाम् ।
उदितादित्यसंकाशां ददर्श हनुमान् बली ॥ ६ ॥

वह विचित्र वाटिका सोने और चाँदीके समान वर्णवाले वृक्षोंद्वारा सब ओरसे घिरी हुई थी। उसमें नाना प्रकारके पक्षी कलरव कर रहे थे, जिससे वह सारी वाटिका गूँज रही थी। उसके भीतर प्रवेश करके बलवान् हनुमान्‌जीने उसका निरीक्षण किया। भाँति-भाँतिके विहंगमों और मृगसमूहोंसे उसकी विचित्र शोभा हो रही थी। वह विचित्र काननोंसे अलंकृत थी और नवोदित सूर्यके समान अरुण रंगकी दिखायी देती थी ॥ ५-६ ॥

वृतां नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पोपगफलोपगैः ।
कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च मत्तैर्नित्यनिषेविताम् ॥ ७ ॥

फूलों और फलोंसे लदे हुए नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त हुई उस अशोकवाटिकाका मतवाले कोकिल और भ्रमर सेवन करते थे ॥ ७ ॥

प्रहृष्टमनुजां काले मृगपक्षिमदाकुलाम् ।
मत्तबर्हिणसंघुष्टां नानाद्विजगणायुताम् ॥ ८ ॥

वह वाटिका ऐसी थी, जहाँ जानेसे हर समय लोगोंके मनमें प्रसन्नता होती थी। मृग और पक्षी मदमत्त हो उठते थे। मतवाले मोरोंका कलनाद वहाँ निरन्तर गूँजता रहता था और नाना प्रकारके पक्षी वहाँ निवास करते थे ॥ ८ ॥

मार्गमाणो वरारोहां राजपुत्रीमनिन्दिताम् ।
सुखप्रसुप्तान् विहगान् बोधयामास वानरः ॥ ९ ॥

उस वाटिकामें सती-साध्वी सुन्दरी राजकुमारी सीताकी खोज करते हुए वानरवीर हनुमान्‌ने घोंसलोंमें सुखपूर्वक सोये हुए पक्षियोंको जगा दिया ॥ ९ ॥

उत्पतद्भिर्द्विजगणैः पक्षैर्वातैः समाहताः ।
अनेकवर्णा विविधा मुमुचुः पुष्पवृष्टयः ॥ १० ॥

उड़ते हुए विहंगमोंके पंखोंकी हवा लगनेसे वहाँके वृक्ष अनेक प्रकारके रंग-बिरंगे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ १० ॥

पुष्पावकीर्णः शुशुभे हनूमान् मारुतात्मजः ।
अशोकवनिकामध्ये यथा पुष्पमयो गिरिः ॥ ११ ॥

उस समय पवनकुमार हनुमान्‌जी उन फूलोंसे आच्छादित होकर ऐसी शोभा पाने लगे, मानो उस अशोकवनमें कोई फूलोंका बना हुआ पहाड़ शोभा पा रहा हो ॥ ११ ॥

दिशः सर्वाभिधावन्तं वृक्षखण्डगतं कपिम् ।
दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि वसन्त इति मेनिरे ॥ १२ ॥

सम्पूर्ण दिशाओंमें दौड़ते और वृक्षसमूहोंमें घूमते हुए कपिवर हनुमान्‌जीको देखकर समस्त प्राणी एवं राक्षस ऐसा मानने लगे कि साक्षात् ऋतुराज वसन्त ही यहाँ वानरवेशमें विचर रहा है ॥ १२ ॥

वृक्षेभ्यः पतितैः पुष्पैरवकीर्णा पृथग्विधैः ।
रराज वसुधा तत्र प्रमदेव विभूषिता ॥ १३ ॥

वृक्षोंसे झड़कर गिरे हुए भाँति-भाँतिके फूलोंसे आच्छादित हुई वहाँकी भूमि फूलोंके शृङ्गारसे विभूषित हुई युवती स्त्रीके समान शोभा पाने लगी ॥ १३ ॥

तरस्विना ते तरवस्तरसा बहु कम्पिताः ।
कुसुमानि विचित्राणि ससृजुः कपिना तदा ॥ १४ ॥

उस समय उन वेगशाली वानरवीरके द्वारा वेगपूर्वक बारंबार हिलाये हुए वे वृक्ष विचित्र पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ १४ ॥

निर्धूतपत्रशिखराः शीर्णपुष्पफलद्रुमाः ।
निक्षिप्तवस्त्राभरणा धूर्ता इव पराजिताः ॥ १५ ॥

इस प्रकार डालियोंके पत्ते झड़ जाने तथा फल-फूल और पल्लवोंके टूटकर बिखर जानेसे नंग-धड़ंग दिखायी देनेवाले वे वृक्ष उन हारे हुए जुआरियोंके समान जान पड़ते थे, जिन्होंने अपने गहने और कपड़े भी दाँवपर रख दिये हों ॥ १५ ॥

हनूमता वेगवता कम्पितास्ते नगोत्तमाः ।
पुष्पपत्रफलान्याशु मुमुचुः फलशालिनः ॥ १६ ॥

वेगशाली हनुमान्‌जीके हिलाये हुए वे फलशाली श्रेष्ठ वृक्ष तुरंत ही अपने फल-फूल और पत्तोंका परित्याग कर देते थे ॥ १६ ॥

विहङ्गसङ्घैर्हीनास्ते स्कन्धमात्राश्रया द्रुमाः ।
बभूवुरगमाः सर्वे मारुतेन विनिर्धुताः ॥ १७ ॥

पवनपुत्र हनुमान्‌द्वारा कम्पित किये गये वे वृक्ष फल-फूल आदिके न होनेसे केवल डालियोंके आश्रय बने हुए थे; पक्षियोंके समुदाय भी उन्हें छोड़कर चल दिये थे। उस अवस्थामें वे सब-के-सब प्राणिमात्रके लिये अगम्य (असेवनीय) हो गये थे ॥ १७ ॥

विधूतकेशी युवतिर्यथा मृदितवर्णका ।
निपीतशुभदन्तोष्ठी नखैर्दन्तैश्च विक्षता ॥ १८ ॥
तथा लाङ्गूलहस्तैस्तु चरणाभ्यां च मर्दिता ।
तथैवाशोकवनिका प्रभग्नवनपादपा ॥ १९ ॥

जिसके केश खुल गये हैं, अङ्गराग मिट गये हैं, सुन्दर दन्तावलीसे युक्त अधर-सुधाका पान कर लिया गया है तथा जिसके कतिपय अङ्ग नखक्षत एवं दन्तक्षतसे उपलक्षित हो रहे हैं, प्रियतमके उपभोगमें आयी हुई उस युवतीके समान ही उस अशोकवाटिकाकी भी दशा हो रही थी। हनुमान्‌जीके हाथ-पैर और पूँछसे रौंदी जा चुकी थी तथा उसके अच्छे-अच्छे वृक्ष टूटकर गिर गये थे; इसलिये वह श्रीहीन हो गयी थी ॥ १८-१९ ॥

महालतानां दामानि व्यधमत् तरसा कपिः ।
यथा प्रावृषि वेगेन मेघजालानि मारुतः ॥ २० ॥

जैसे वायु वर्षा-ऋतुमें अपने वेगसे मेघसमूहोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार कपिवर हनुमान्‌ने वहाँ फैली हुई विशाल लता-वल्लरियोंके वितान वेगपूर्वक तोड़ डाले ॥ २० ॥

स तत्र मणिभूमीश्च राजतीश्च मनोरमाः ।
तथा काञ्चनभूमीश्च विचरन् ददृशे कपिः ॥ २१ ॥

वहाँ विचरते हुए उन वानरवीरने पृथक्-पृथक् ऐसी मनोरम भूमियोंका दर्शन किया, जिनमें मणि, चाँदी एवं सोने जड़े गये थे ॥ २१ ॥

वापीश्च विविधाकाराः पूर्णाः परमवारिणा ।
महार्हैर्मणिसोपानैरुपपन्नास्ततस्ततः ॥ २२ ॥
मुक्ताप्रवालसिकताः स्फाटिकान्तरकुट्टिमाः ।
काञ्चनैस्तरुभिश्चित्रैस्तीरजैरुपशोभिताः ॥ २३ ॥

उस वाटिकामें उन्होंने जहाँ-तहाँ विभिन्न आकारोंकी बावड़ियाँ देखीं, जो उत्तम जलसे भरी हुई और मणिमय सोपानोंसे युक्त थीं। उनके भीतर मोती और मूँगोंकी बालुकाएँ थीं। जलके नीचेकी फर्श स्फटिक मणिकी बनी हुई थी और उन बावड़ियोंके तटोंपर तरह-तरहके विचित्र सुवर्णमय वृक्ष शोभा दे रहे थे ॥ २२-२३ ॥

बुद्धपद्मोत्पलवनाश्चक्रवाकोपशोभिताः ।
नत्यूहरुतसंघुष्टा हंससारसनादिताः ॥ २४ ॥

उनमें खिले हुए कमलोंके वन और चक्रवाकोंके जोड़े शोभा बढ़ा रहे थे तथा पपीहा, हंस और सारसोंके कलनाद गूँज रहे थे ॥ २४ ॥

दीर्घाभिर्द्रुमयुक्ताभिः सरिद्भिश्च समन्ततः ।
अमृतोपमतोयाभिः शिवाभिरुपसंस्कृताः ॥ २५ ॥

अनेकानेक विशाल, तटवर्ती वृक्षोंसे सुशोभित, अमृतके समान मधुर जलसे पूर्ण तथा सुखदायिनी सरिताएँ चारों ओरसे उन बावड़ियोंका सदा संस्कार करती थीं (उन्हें स्वच्छ जलसे परिपूर्ण बनाये रखती थीं) ॥ २५ ॥

लताशतैरवतताः संतानकुसुमावृताः ।
नानागुल्मावृतवनाः करवीरकृतान्तराः ॥ २६ ॥

उनके तटोंपर सैकड़ों प्रकारकी लताएँ फैली हुई थीं। खिले हुए कल्पवृक्षोंने उन्हें चारों ओरसे घेर रखा था। उनके जल नाना प्रकारकी झाड़ियोंसे ढके हुए थे तथा बीच-बीचमें खिले हुए कनेरके वृक्ष गवाक्षकी-सी शोभा पाते थे ॥ २६ ॥

ततोऽम्बुधरसंकाशं प्रवृद्धशिखरं गिरिम् ।
विचित्रकूटं कूटैश्च सर्वतः परिवारितम् ॥ २७ ॥
शिलागृहैरवततं नानावृक्षसमावृतम् ।
ददर्श कपिशार्दूलो रम्यं जगति पर्वतम् ॥ २८ ॥

फिर वहाँ कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने एक मेघके समान काला और ऊँचे शिखरोंवाला पर्वत देखा, जिसकी चोटियाँ बड़ी विचित्र थीं। उसके चारों ओर दूसरे-दूसरे भी बहुत-से पर्वत-शिखर शोभा पाते थे। उसमें बहुत-सी पत्थरकी गुफाएँ थीं और उस पर्वतपर अनेकानेक वृक्ष उगे हुए थे। वह पर्वत संसारभरमें बड़ा रमणीय था ॥२७-२८॥

ददर्श च नगात् तस्मान्नदीं निपतितां कपिः ।
अङ्कादिव समुत्पत्य प्रियस्य पतितां प्रियाम् ॥ २९ ॥

कपिवर हनुमान्‌ने उस पर्वतसे गिरी हुई एक नदी देखी, जो प्रियतमके अङ्कसे उछलकर गिरी हुई प्रियतमाके समान जान पड़ती थी ॥ २९ ॥

जले निपतिताग्रैश्च पादपैरुपशोभिताम् ।
वार्यमाणामिव क्रुद्धां प्रमदां प्रियबन्धुभिः ॥ ३० ॥

जिनकी डालियाँ नीचे झुककर पानीसे लग गयी थीं, ऐसे तटवर्ती वृक्षोंसे उस नदीकी वैसी ही शोभा हो रही थी, मानो प्रियतमसे रूठकर अन्यत्र जाती हुई युवतीको उसकी प्यारी सखियाँ उसे आगे बढ़नेसे रोक रही हों ॥ ३० ॥

पुनरावृत्ततोयां च ददर्श स महाकपिः ।
प्रसन्नामिव कान्तस्य कान्तां पुनरुपस्थिताम् ॥ ३१ ॥

फिर उन महाकपिने देखा कि वृक्षोंकी उन डालियोंसे टकराकर उस नदीके जलका प्रवाह पीछेकी ओर मुड़ गया है। मानो प्रसन्न हुई प्रेयसी पुनः प्रियतमकी सेवामें उपस्थित हो रही हो ॥ ३१ ॥

तस्यादूरात् स पद्मिन्यो नानाद्विजगणायुताः ।
ददर्श कपिशार्दूलो हनूमान् मारुतात्मजः ॥ ३२ ॥

उस पर्वतसे थोड़ी ही दूरपर कपिश्रेष्ठ पवनपुत्र हनुमान्‌ने बहुत-से कमलमण्डित सरोवर देखे, जिनमें नाना प्रकारके पक्षी चहचहा रहे थे ॥ ३२ ॥

कृत्रिमां दीर्घिकां चापि पूर्णां शीतेन वारिणा ।
मणिप्रवरसोपानां मुक्तासिकतशोभिताम् ॥ ३३ ॥

उनके सिवा उन्होंने एक कृत्रिम तालाब भी देखा, जो शीतल जलसे भरा हुआ था। उसमें श्रेष्ठ मणियोंकी सीढ़ियाँ बनी थीं और वह मोतियोंकी बालुकाराशिसे सुशोभित था ॥ ३३ ॥

विविधैर्मृगसङ्घैश्च विचित्रां चित्रकाननाम् ।
प्रासादैः सुमहद्भिश्च निर्मितैर्विश्वकर्मणा ॥ ३४ ॥
काननैः कृत्रिमैश्चापि सर्वतः समलंकृताम् ।

उस अशोकवाटिकामें विश्वकर्माके बनाये हुए बड़े-बड़े महल और कृत्रिम कानन सब ओरसे उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। नाना प्रकारके मृगसमूहोंसे उसकी विचित्र शोभा हो रही थी। उस वाटिकामें विचित्र वन-उपवन शोभा दे रहे थे ॥ ३४½ ॥

ये केचित् पादपास्तत्र पुष्पोपगफलोपगाः ॥ ३५ ॥
सच्छत्राः सवितर्दीकाः सर्वे सौवर्णवेदिकाः ।

वहाँ जो कोई भी वृक्ष थे, वे सब फल-फूल देनेवाले थे, छत्रकी भाँति घनी छाया किये रहते थे। उन सबके नीचे चाँदीकी और उसके ऊपर सोनेकी वेदियाँ बनी हुई थीं ॥ ३५½ ॥

लताप्रतानैर्बहुभिः पर्णैश्च बहुभिर्वृताम् ॥ ३६ ॥
काञ्चनीं शिंशपामेकां ददर्श स महाकपिः ।
वृतां हेममयीभिस्तु वेदिकाभिः समन्ततः ॥ ३७ ॥

तदनन्तर महाकपि हनुमान्‌ने एक सुवर्णमयी शिंशपा (अशोक) का वृक्ष देखा, जो बहुत-से लतावितानों और अगणित पत्तोंसे व्याप्त था। वह वृक्ष भी सब ओरसे सुवर्णमयी वेदिकाओंसे घिरा था ॥ ३६-३७ ॥

सोऽपश्यद् भूमिभागांश्च नगप्रस्रवणानि च ।
सुवर्णवृक्षानपरान् ददर्श शिखिसंनिभान् ॥ ३८ ॥

इसके सिवा उन्होंने और भी बहुत-से खुले मैदान, पहाड़ी झरने और अग्निके समान दीप्तिमान् सुवर्णमय वृक्ष देखे ॥ ३८ ॥

तेषां द्रुमाणां प्रभया मेरोरिव महाकपिः ।
अमन्यत तदा वीरः काञ्चनोऽस्मीति सर्वतः ॥ ३९ ॥

उस समय वीर महाकपि हनुमान्‌जीने सुमेरुके समान उन वृक्षोंकी प्रभाके कारण अपनेको भी सब ओरसे सुवर्णमय ही समझा ॥ ३९ ॥

तान् काञ्चनान् वृक्षगणान् मारुतेन प्रकम्पितान् ।
किङ्किणीशतनिर्घोषान् दृष्ट्वा विस्मयमागमत् ॥ ४० ॥
सुपुष्पिताग्रान् रुचिरांस्तरुणाङ्कुरपल्लवान् ।

वे सुवर्णमय वृक्षसमूह जब वायुके झोंके खाकर हिलने लगते, तब उनसे सैकड़ों घुँघुरुओंके बजनेकी-सी मधुर ध्वनि

होती थी। वह सब देखकर हनुमान्‌जीको बड़ा विस्मय हुआ। उन वृक्षोंकी डालियोंमें सुन्दर फूल खिले हुए थे और नये-नये अङ्कुर तथा पल्लव निकले हुए थे, जिससे वे बड़े सुन्दर दिखायी देते थे ॥ ४०½ ॥

तामारुह्य महावेगः शिंशपां पर्णसंवृताम् ॥ ४१ ॥
इतो द्रक्ष्यामि वैदेहीं रामदर्शनलालसाम्।
इतश्चेतश्च दुःखार्तां सम्पतन्तीं यदृच्छया ॥ ४२ ॥

महान् वेगशाली हनुमान्‌जी पत्तोंसे हरी-भरी उस शिंशपापर यह सोचकर चढ़ गये कि 'मैं यहींसे श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लिये उत्सुक हुई उन विदेहनन्दिनी सीताको देखूँगा, जो दुःखसे आतुर हो इच्छानुसार इधर-उधर जाती-आती होंगी ॥ ४१-४२ ॥

अशोकवनिका चेयं दृढं रम्या दुरात्मनः।
चन्दनैश्चम्पकैश्चापि बकुलैश्च विभूषिता ॥ ४३ ॥
इयं च नलिनी रम्या द्विजसङ्घनिषेविता।
इमां सा राजमहिषी नूनमेष्यति जानकी ॥ ४४ ॥

'दुरात्मा रावणकी यह अशोकवाटिका बड़ी ही रमणीय है। चन्दन, चम्पा और मौलसिरीके वृक्ष इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। इधर यह पक्षियोंसे सेवित कमलमण्डित सरोवर भी बड़ा सुन्दर है। राजरानी जानकी इसके तटपर निश्चय ही आती होंगी ॥ ४३-४४ ॥

सा रामा राजमहिषी राघवस्य प्रिया सती।
वनसंचारकुशला ध्रुवमेष्यति जानकी ॥ ४५ ॥

'रघुनाथजीकी प्रियतमा राजरानी रामा सती-साध्वी जानकी वनमें घूमने-फिरनेमें बहुत कुशल हैं। वे अवश्य इधर आयेंगी ॥ ४५ ॥

अथवा मृगशावाक्षी वनस्यास्य विचक्षणा।
वनमेष्यति साद्येह रामचिन्तासुकर्शिता ॥ ४६ ॥

'अथवा इस वनकी विशेषताओंके ज्ञानमें निपुण मृगशावकनयनी सीता आज यहाँ इस तालाबके तटवर्ती वनमें अवश्य पधारेंगी; क्योंकि वे रामचन्द्रजीके वियोगकी चिन्तासे अत्यन्त दुबली हो गयी होंगी (और इस सुन्दर स्थानमें आनेसे उनकी चिन्ता कुछ कम हो सकेगी) ॥ ४६ ॥

रामशोकाभिसंतप्ता सा देवी वामलोचना।
वनवासरता नित्यमेष्यते वनचारिणी ॥ ४७ ॥

'सुन्दर नेत्रवाली देवी सीता भगवान् श्रीरामके विरह-शोकसे बहुत ही संतप्त होंगी। वनवासमें उनका सदा ही प्रेम रहा है, अतः वे वनमें विचरती हुई इधर अवश्य आयेंगी ॥ ४७ ॥

वनेचराणां सततं नूनं स्पृहयते पुरा।
रामस्य दयिता चार्या जनकस्य सुता सती ॥ ४८ ॥

'श्रीरामकी प्यारी पत्नी सती-साध्वी जनकनन्दिनी सीता पहले निश्चय ही वनवासी जन्तुओंसे सदा प्रेम करती रही होंगी। (इसलिये उनके लिये वनमें भ्रमण करना स्वाभाविक है, अतः यहाँ उनके दर्शनकी सम्भावना है ही) ॥ ४८ ॥

संध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शुभजलां संध्यार्थे वरवर्णिनी ॥ ४९ ॥

'यह प्रातःकालकी संध्या (उपासना) का समय है, इसमें मन लगानेवाली और सदा सोलह वर्षकी-सी अवस्थामें रहनेवाली अक्षययौवना जनककुमारी सुन्दरी सीता संध्याकालिक उपासनाके लिये इस पुण्यसलिला नदीके तटपर अवश्य पधारेंगी ॥ ४९ ॥

तस्याश्चाप्यनुरूपेयमशोकवनिका शुभा।
शुभायाः पार्थिवेन्द्रस्य पत्नी रामस्य सम्मता ॥ ५० ॥

'जो राजाधिराज श्रीरामचन्द्रजीकी समादरणीया पत्नी हैं, उन शुभलक्षणा सीताके लिये यह सुन्दर अशोकवाटिका भी सब प्रकारसे अनुकूल ही है ॥ ५० ॥

यदि जीवति सा देवी ताराधिपनिभानना।
आगमिष्यति सावश्यमिमां शीतजलां नदीम् ॥ ५१ ॥

'यदि चन्द्रमुखी सीता देवी जीवित हैं तो वे इस शीतल जलवाली सरिताके तटपर अवश्य पदार्पण करेंगी' ॥ ५१ ॥

एवं तु मत्वा हनुमान् महात्मा
प्रतीक्षमाणो मनुजेन्द्रपत्नीम्।
अवेक्षमाणश्च ददर्श सर्वं
सुपुष्पिते पर्णघने निलीनः ॥ ५२ ॥

ऐसा सोचते हुए महात्मा हनुमान्‌जी नरेन्द्रपत्नी सीताके शुभागमनकी प्रतीक्षामें तत्पर हो सुन्दर फूलोंसे सुशोभित तथा घने पत्तेवाले उस अशोकवृक्षपर छिपे रहकर उस सम्पूर्ण वनपर दृष्टिपात करते रहे ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १४ ॥

* * *

पञ्चदशः सर्गः

वनकी शोभा देखते हुए हनुमान्‌जीका एक चैत्यप्रासाद (मन्दिर) के पास सीताको दयनीय अवस्थामें देखना, पहचानना और प्रसन्न होना

स वीक्षमाणस्तत्रस्थो मार्गमाणश्च मैथिलीम्।
अवेक्षमाणश्च महीं सर्वां तामन्ववैक्षत॥ १॥

उस अशोकवृक्षपर बैठे-बैठे हनुमान्‌जी सम्पूर्ण वनको देखते और सीताको ढूँढ़ते हुए वहाँकी सारी भूमिपर दृष्टिपात करने लगे॥ १॥

संतानकलताभिश्च पादपैरुपशोभिताम्।
दिव्यगन्धरसोपेतां सर्वतः समलंकृताम्॥ २॥

वह भूमि कल्पवृक्षकी लताओं तथा वृक्षोंसे सुशोभित थी, दिव्य गन्ध तथा दिव्य रससे परिपूर्ण थी और सब ओरसे सजायी गयी थी॥ २॥

तां स नन्दनसंकाशां मृगपक्षिभिरावृताम्।
हर्म्यप्रासादसम्बाधां कोकिलाकुलनिःस्वनाम्॥ ३॥

मृगों और पक्षियोंसे व्याप्त होकर वह भूमि नन्दनवनके समान शोभा पा रही थी, अट्टालिकाओं तथा राजभवनोंसे युक्त थी तथा कोकिल-समूहोंकी काकलीसे कोलाहलपूर्ण जान पड़ती थी॥ ३॥

काञ्चनोत्पलपद्माभिर्वापीभिरुपशोभिताम्।
बह्वासनकुथोपेतां बहुभूमिगृहायुताम्॥ ४॥

सुवर्णमय उत्पल और कमलोंसे भरी हुई बावड़ियाँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। बहुत-से आसन और कालीन वहाँ बिछे हुए थे। अनेकानेक भूमिगृह वहाँ शोभा पा रहे थे॥ ४॥

सर्वर्तुकुसुमै रम्यैः फलवद्भिश्च पादपैः।
पुष्पितानामशोकानां श्रिया सूर्योदयप्रभाम्॥ ५॥

सभी ऋतुओंमें फूल देनेवाले और फलोंसे भरे हुए रमणीय वृक्ष उस भूमिको विभूषित कर रहे थे। खिले हुए अशोकोंकी शोभासे सूर्योदयकालकी छटा-सी छिटक रही थी॥ ५॥

प्रदीप्तामिव तत्रस्थो मारुतिः समुदैक्षत।
निष्पत्रशाखां विहगैः क्रियमाणामिवासकृत्॥ ६॥

पवनकुमार हनुमान्‌ने उस अशोकपर बैठे-बैठे ही उस दमकती हुई-सी वाटिकाको देखा। वहाँके पक्षी उस वाटिकाको बारंबार पत्रों और शाखाओंसे हीन कर रहे थे॥ ६॥

विनिष्पतद्भिः शतशश्चित्रैः पुष्पावतंसकैः।
समूलपुष्परचितैरशोकैः शोकनाशनैः॥ ७॥
पुष्पभारातिभारैश्च स्पृशद्भिरिव मेदिनीम्।
कर्णिकारैः कुसुमितैः किंशुकैश्च सुपुष्पितैः॥ ८॥
स देशः प्रभया तेषां प्रदीप्त इव सर्वतः।

वृक्षोंसे झड़ते हुए सैकड़ों विचित्र पुष्प-गुच्छोंसे नीचेसे ऊपरतक मानो फूलसे बने हुए शोकनाशक अशोकोंसे, फूलोंके भारी भारसे झुककर पृथ्वीका स्पर्श-सा करते हुए खिले हुए कनेरोंसे तथा सुन्दर फूलवाले पलाशोंसे उपलक्षित वह भूभाग उनकी प्रभाके कारण सब ओरसे उद्दीप्त-सा हो रहा था॥ ७-८½॥

पुंनागाः सप्तपर्णाश्च चम्पकोद्दालकास्तथा॥ ९॥
विवृद्धमूला बहवः शोभन्ते स्म सुपुष्पिताः।

पुंनाग (श्वेत कमल या नागकेसर), छितवन, चम्पा तथा बहुवार आदि बहुत-से सुन्दर पुष्पवाले वृक्ष, जिनकी जड़ें बहुत मोटी थीं, वहाँ शोभा पा रहे थे॥ ९½॥

शातकुम्भनिभाः केचित् केचिदग्निशिखप्रभाः॥ १०॥
नीलाञ्जननिभाः केचित् तत्राशोकाः सहस्रशः।

वहाँ सहस्रों अशोकके वृक्ष थे, जिनमेंसे कुछ तो सुवर्णके समान कान्तिमान् थे, कुछ आगकी ज्वालाके समान प्रकाशित हो रहे थे और कोई-कोई काले काजलकी-सी कान्तिवाले थे॥ १०½॥

नन्दनं विबुधोद्यानं चित्रं चैत्ररथं यथा॥ ११॥
अतिवृत्तमिवाचिन्त्यं दिव्यं रम्यश्रियायुतम्।

वह अशोकवन देवोद्यान नन्दनके समान आनन्ददायी, कुबेरके चैत्ररथ वनके समान विचित्र तथा उन दोनोंसे भी बढ़कर अचिन्त्य, दिव्य एवं रमणीय शोभासे सम्पन्न था॥ ११½॥

द्वितीयमिव चाकाशं पुष्पज्योतिर्गणायुतम्॥ १२॥
पुष्परत्नशतैश्चित्रं पञ्चमं सागरं यथा।

वह पुष्परूपी नक्षत्रोंसे युक्त दूसरे आकाशके समान सुशोभित होता था तथा पुष्पमय सैकड़ों रत्नोंसे विचित्र शोभा पानेवाले पाँचवें समुद्रके समान जान पड़ता था॥ १२½॥

सर्वर्तुपुष्पैर्निचितं पादपैर्मधुगन्धिभिः॥ १३॥
नानानिनादैरुद्यानं रम्यं मृगगणद्विजैः।
अनेकगन्धप्रवहं पुण्यगन्धं मनोहरम्॥ १४॥
शैलेन्द्रमिव गन्धाढ्यं द्वितीयं गन्धमादनम्।

सब ऋतुओंमें फूल देनेवाले मनोरम गन्धयुक्त वृक्षोंसे भरा हुआ तथा भाँति-भाँतिके कलरव करनेवाले मृगों और पक्षियोंसे सुशोभित वह उद्यान बड़ा रमणीय प्रतीत होता था। वह अनेक प्रकारकी सुगन्धका भार वहन करनेके कारण पवित्र गन्धसे युक्त और मनोहर जान पड़ता था। दूसरे

गिरिराज गन्धमादनके समान उत्तम सुगन्धसे व्याप्त था ॥ १३-१४½ ॥

अशोकवनिकायां तु तस्यां वानरपुङ्गवः ॥ १५ ॥
स ददर्शाविदूरस्थं चैत्यप्रासादमूर्जितम् ।
मध्ये स्तम्भसहस्रेण स्थितं कैलासपाण्डुरम् ॥ १६ ॥
प्रवालकृतसोपानं तप्तकाञ्चनवेदिकम् ।
मुष्णन्तमिव चक्षूंषि द्योतमानमिव श्रिया ॥ १७ ॥
निर्मलं प्रांशुभावत्वादुल्लिखन्तमिवाम्बरम् ।

उस अशोकवाटिकामें वानर-शिरोमणि हनुमान्‌ने थोड़ी ही दूरपर एक गोलाकार ऊँचा मन्दिर देखा, जिसके भीतर एक हजार खंभे लगे हुए थे । वह मन्दिर कैलास पर्वतके समान श्वेत वर्णका था । उसमें मूँगेकी सीढ़ियाँ बनी थीं तथा तपाये हुए सोनेकी वेदियाँ बनायी गयी थीं । वह निर्मल प्रासाद अपनी शोभासे देदीप्यमान-सा हो रहा था । दर्शकोंकी दृष्टिमें चकाचौंध-सा पैदा कर देता था और बहुत ऊँचा होनेके कारण आकाशमें रेखा खींचता-सा जान पड़ता था ॥ १५-१७½ ॥

ततो मलिनसंवीतां राक्षसीभिः समावृताम् ॥ १८ ॥
उपवासकृशां दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः ।
ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम् ॥ १९ ॥

वह चैत्यप्रासाद (मन्दिर) देखनेके अनन्तर उनकी दृष्टि वहाँ एक सुन्दरी स्त्रीपर पड़ी, जो मलिन वस्त्र धारण किये राक्षसियोंसे घिरी हुई बैठी थी । वह उपवास करनेके कारण अत्यन्त दुर्बल और दीन दिखायी देती थी तथा बारंबार सिसक रही थी । शुक्लपक्षके आरम्भमें चन्द्रमाकी कला जैसी निर्मल और कृश दिखायी देती है, वैसी ही वह भी दृष्टिगोचर होती थी ॥ १८-१९ ॥

मन्दप्रख्यायमानेन रूपेण रुचिरप्रभाम् ।
पिनद्धां धूमजालेन शिखामिव विभावसोः ॥ २० ॥

धुँधली-सी स्मृतिके आधारपर कुछ-कुछ पहचाने जानेवाले अपने रूपसे वह सुन्दर प्रभा बिखेर रही थी और धूएँसे ढकी हुई अग्निकी ज्वालाके समान जान पड़ती थी ॥ २० ॥

पीतेनैकेन संवीतां क्लिष्टेनोत्तमवाससा ।
सपङ्कामनलंकारां विपद्मामिव पद्मिनीम् ॥ २१ ॥

एक ही पीले रंगके पुराने रेशमी वस्त्रसे उसका शरीर ढका हुआ था । वह मलिन, अलंकारशून्य होनेके कारण कमलोंसे रहित पुष्करिणीके समान श्रीहीन दिखायी देती थी ॥ २१ ॥

पीडितां दुःखसंतप्तां परिक्षीणां तपस्विनीम् ।
ग्रहेणाङ्गारकेणेव पीडितामिव रोहिणीम् ॥ २२ ॥

वह तपस्विनी मंगलग्रहसे आक्रान्त रोहिणीके समान शोकसे पीड़ित, दुःखसे संतप्त और सर्वथा क्षीणकाय हो रही थी ॥ २२ ॥

अश्रुपूर्णमुखीं दीनां कृशामनशनेन च ।
शोकध्यानपरां दीनां नित्यं दुःखपरायणाम् ॥ २३ ॥

उपवाससे दुर्बल हुई उस दुखिया नारीके मुँहपर आँसुओंकी धारा बह रही थी । वह शोक और चिन्तामें मग्न हो दीन दशामें पड़ी हुई थी एवं निरन्तर दुःखमें ही डूबी रहती थी ॥ २३ ॥

प्रियं जनमपश्यन्तीं पश्यन्तीं राक्षसीगणम् ।
स्वगणेन मृगीं हीनां श्वगणेनावृतामिव ॥ २४ ॥

वह अपने प्रियजनोंको तो देख नहीं पाती थी । उसकी दृष्टिके समक्ष सदा राक्षसियोंका समूह ही बैठा रहता था । जैसे कोई मृगी अपने यूथसे बिछुड़कर कुत्तोंके झुंडसे घिर गयी हो, वही दशा उसकी भी हो रही थी ॥ २४ ॥

नीलनागाभया वेण्या जघनं गतयैकया ।
नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव ॥ २५ ॥

काली नागिनके समान कटिसे नीचेतक लटकी हुई एकमात्र काली वेणीके द्वारा उपलक्षित होनेवाली वह नारी बादलोंके हट जानेपर नीली वनश्रेणीसे घिरी हुई पृथ्वीके समान प्रतीत होती थी ॥ २५ ॥

सुखार्हां दुःखसंतप्तां व्यसनानामकोविदाम् ।
तां विलोक्य विशालाक्षीमधिकं मलिनां कृशाम् ॥ २६ ॥
तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादिभिः ।

वह सुख भोगनेके योग्य थी, किंतु दुःखसे संतप्त हो रही थी । इसके पहले उसे संकटोंका कोई अनुभव नहीं था । उस विशाल नेत्रोंवाली, अत्यन्त मलिन और क्षीणकाय अबलाका अवलोकन करके युक्तियुक्त कारणोंद्वारा हनुमान्‌जीने यह अनुमान किया कि हो-न-हो यही सीता है ॥ २६½ ॥

ह्रियमाणा तदा तेन रक्षसा कामरूपिणा ॥ २७ ॥
यथारूपा हि दृष्टा सा तथारूपेयमङ्गना ।

इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला वह राक्षस जब सीताजीको हरकर ले जा रहा था, उस दिन जिस रूपमें उनका दर्शन हुआ था, कल्याणी नारी भी वैसे ही रूपसे युक्त दिखायी देती है ॥ २७½ ॥

पूर्णचन्द्राननां सुभ्रूं चारुवृत्तपयोधराम् ॥ २८ ॥
कुर्वतीं प्रभया देवीं सर्वा वितिमिरा दिशः ।

देवी सीताका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर था । उनकी भौंहें बड़ी सुन्दर थीं । दोनों स्तन मनोहर और गोलाकार थे । वे अपनी अङ्गकान्तिसे सम्पूर्ण दिशाओंका अन्धकार दूर किये देती थीं ॥ २८½ ॥

तां नीलकण्ठीं बिम्बोष्ठीं सुमध्यां सुप्रतिष्ठिताम् ॥ २९ ॥

उनके केश काले-काले और ओष्ठ बिम्बफलके समान लाल थे। कटिभाग बहुत ही सुन्दर था। सारे अङ्ग सुडौल और सुगठित थे ॥ २९ ॥

सीतां पद्मपलाशाक्षीं मन्मथस्य रतिं यथा।
इष्टां सर्वस्य जगतः पूर्णचन्द्रप्रभामिव ॥ ३० ॥
भूमौ सुतनुमासीनां नियतामिव तापसीम्।
निःश्वासबहुलां भीरुं भुजगेन्द्रवधूमिव ॥ ३१ ॥

कमलनयनी सीता कामदेवकी प्रेयसी रतिके समान सुन्दरी थीं, पूर्ण चन्द्रमाकी प्रभाके समान समस्त जगत्के लिये प्रिय थीं। उनका शरीर बहुत ही सुन्दर था। वे नियमपरायणा तापसीके समान भूमिपर बैठी थीं। यद्यपि वे स्वभावसे ही भीरु और चिन्ताके कारण बारंबार लंबी साँस खींचती थीं तो भी दूसरोंके लिये नागिनके समान भयंकर थीं ॥ ३०-३१ ॥

शोकजालेन महता विततेन न राजतीम्।
संसक्तां धूमजालेन शिखामिव विभावसोः ॥ ३२ ॥

वे विस्तृत महान् शोकजालसे आच्छादित होनेके कारण विशेष शोभा नहीं पा रही थीं। धूएँके समूहसे मिली हुई अग्निशिखाके समान दिखायी देती थीं ॥ ३२ ॥

तां स्मृतीमिव संदिग्धामृद्धिं निपतितामिव।
विहतामिव च श्रद्धामाशां प्रतिहतामिव ॥ ३३ ॥
सोपसर्गां यथा सिद्धिं बुद्धिं सकलुषामिव।
अभूतेनापवादेन कीर्तिं निपतितामिव ॥ ३४ ॥

वे संदिग्ध अर्थवाली स्मृति, भूतलपर गिरी हुई ऋद्धि, टूटी हुई श्रद्धा, भग्न हुई आशा, विघ्नयुक्त सिद्धि, कलुषित बुद्धि और मिथ्या कलंकसे भ्रष्ट हुई कीर्तिके समान जान पड़ती थीं ॥ ३३-३४ ॥

रामोपरोधव्यथितां रक्षोगणनिपीडिताम्।
अबलां मृगशावाक्षीं वीक्षमाणां ततस्ततः ॥ ३५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें रुकावट पड़ जानेसे उनके मनमें बड़ी व्यथा हो रही थी। राक्षसोंसे पीड़ित हुई मृगशावकनयनी अबला सीता असहायकी भाँति इधर-उधर देख रही थीं ॥ ३५ ॥

बाष्पाम्बुपरिपूर्णेन कृष्णवक्राक्षिपक्ष्मणा।
वदनेनाप्रसन्नेन निःश्वसन्तीं पुनः पुनः ॥ ३६ ॥

उनका मुख प्रसन्न नहीं था। उसपर आँसुओंकी धारा बह रही थी और नेत्रोंकी पलकें काली एवं टेढ़ी दिखायी देती थीं। वे बारंबार लंबी साँस खींचती थीं ॥ ३६ ॥

मलपङ्कधरां दीनां मण्डनार्हाममण्डिताम्।
प्रभां नक्षत्रराजस्य कालमेघैरिवावृताम् ॥ ३७ ॥

उनके शरीरपर मैल जम गयी थी। वे दीनताकी मूर्ति बनी बैठी थीं तथा श्रृङ्गार और भूषण धारण करनेके योग्य होनेपर भी अलंकारशून्य थीं, अतः काले बादलोंसे ढकी हुई चन्द्रमाकी प्रभाके समान जान पड़ती थीं ॥ ३७ ॥

तस्य संदिदिहे बुद्धिस्तथा सीतां निरीक्ष्य च।
आम्नायानामयोगेन विद्यां प्रशिथिलामिव ॥ ३८ ॥

अभ्यास न करनेसे शिथिल (विस्मृत) हुई विद्याके समान क्षीण हुई सीताको देखकर हनुमान्जीकी बुद्धि संदेहमें पड़ गयी ॥ ३८ ॥

दुःखेन बुबुधे सीतां हनुमाननलंकृताम्।
संस्कारेण यथा हीनां वाचमर्थान्तरं गताम् ॥ ३९ ॥

अलंकार तथा स्नान-अनुलेपन आदि अङ्गसंस्कारसे रहित हुई सीता व्याकरणादिजनित संस्कारसे शून्य होनेके कारण अर्थान्तरको प्राप्त हुई वाणीके समान पहचानी नहीं जा रही थीं। हनुमान्जीने बड़े कष्टसे उन्हें पहचाना ॥ ३९ ॥

तां समीक्ष्य विशालाक्षीं राजपुत्रीमनिन्दिताम्।
तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादयन् ॥ ४० ॥

उन विशाललोचना सती-साध्वी राजकुमारीको देखकर उन्होंने कारणों (युक्तियों) द्वारा उपपादन करते हुए मनमें निश्चय किया कि यही सीता हैं ॥ ४० ॥

वैदेह्या यानि चाङ्गेषु तदा रामोऽन्वकीर्तयत्।
तान्याभरणजालानि गात्रशोभीन्यलक्षयत् ॥ ४१ ॥

उन दिनों श्रीरामचन्द्रजीने विदेहकुमारीके अङ्गोंमें जिन-जिन आभूषणोंके होनेकी चर्चा की थी, वे ही आभूषण-समूह इस समय उनके अङ्गोंकी शोभा बढ़ा रहे थे। हनुमान्जीने इस बातकी ओर लक्ष्य किया ॥ ४१ ॥

सुकृतौ कर्णवेष्टौ च श्वदंष्ट्रौ च सुसंस्थितौ।
मणिविद्रुमचित्राणि हस्तेष्वाभरणानि च ॥ ४२ ॥

सुन्दर बने हुए कुण्डल और कुत्तेके दाँतोंकी-सी आकृतिवाले त्रिकर्ण नामधारी कर्णफूल कानोंमें सुन्दर ढंगसे सुप्रतिष्ठित एवं सुशोभित थे। हाथोंमें कंगन आदि आभूषण थे, जिनमें मणि और मूँगे जड़े हुए थे ॥ ४२ ॥

श्यामानि चिरयुक्तत्वात् तथा संस्थानवन्ति च।
तान्येवैतानि मन्येऽहं यानि रामोऽन्वकीर्तयत् ॥ ४३ ॥
तत्र यान्यवहीनानि तान्यहं नोपलक्षये।
यान्यस्या नावहीनानि तानीमानि न संशयः ॥ ४४ ॥

यद्यपि बहुत दिनोंसे पहने गये होनेके कारण वे कुछ काले पड़ गये थे, तथापि उनके आकार-प्रकार वैसे ही थे। (हनुमान्जीने सोचा—) 'श्रीरामचन्द्रजीने जिनकी चर्चा की थी, मेरी समझमें ये वे ही आभूषण हैं। सीताजीने जो आभूषण वहाँ गिरा दिये थे, उनको मैं इनके अङ्गोंमें नहीं देख रहा हूँ। इनके जो आभूषण मार्गमें गिराये नहीं गये थे, वे ही ये दिखायी देते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ४३-४४ ॥

पीतं कनकपट्टाभं स्रस्तं तद्वसनं शुभम् ।
उत्तरीयं नगासक्तं तदा दृष्टं प्लवङ्गमैः ॥ ४५ ॥
भूषणानि च मुख्यानि दृष्टानि धरणीतले ।
अनयैवापविद्धानि स्वनवन्ति महान्ति च ॥ ४६ ॥

'उस समय वानरोंने पर्वतपर गिराये हुए सुवर्णपत्रके समान जो सुन्दर पीला वस्त्र और पृथ्वीपर पड़े हुए उत्तमोत्तम बहुमूल्य एवं बजनेवाले आभूषण देखे थे, वे इन्हींके गिराये हुए थे ॥ ४५-४६ ॥

इदं चिरगृहीतत्वाद् वसनं क्लिष्टवत्तरम् ।
तथाप्यनूनं तद्वर्णं तथा श्रीमद्यथेतरत् ॥ ४७ ॥

'यह वस्त्र बहुत दिनोंसे पहने जानेके कारण यद्यपि बहुत पुराना हो गया है, तथापि इसका पीला रंग अभीतक उतरा नहीं है । यह भी वैसा ही कान्तिमान् है, जैसा वह दूसरा वस्त्र था ॥ ४७ ॥

इयं कनकवर्णाङ्गी रामस्य महिषी प्रिया ।
प्रणष्टापि सती यस्य मनसो न प्रणश्यति ॥ ४८ ॥

'ये सुवर्णके समान गौर अङ्गवाली श्रीरामचन्द्रजीकी प्यारी महारानी हैं, जो अदृश्य हो जानेपर भी उनके मनसे विलग नहीं हुई हैं ॥ ४८ ॥

इयं सा यत्कृते रामश्चतुर्भिरिह तप्यते ।
कारुण्येनानृशंस्येन शोकेन मदनेन च ॥ ४९ ॥

'ये वे ही सीता हैं, जिनके लिये श्रीरामचन्द्रजी इस जगत्में करुणा, दया, शोक और प्रेम—इन चार कारणोंसे संतप्त होते रहते हैं ॥ ४९ ॥

स्त्री प्रणष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः ।
पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च ॥ ५० ॥

'एक स्त्री खो गयी, यह सोचकर उनके हृदयमें करुणा भर आती है । वह हमारे आश्रित थी, यह सोचकर वे दयासे द्रवित हो उठते हैं । मेरी पत्नी ही मुझसे बिछुड़ गयी, इसका विचार करके वे शोकसे व्याकुल हो उठते हैं तथा मेरी प्रियतमा मेरे पास नहीं रही, ऐसी भावना करके उनके हृदयमें प्रेमकी वेदना होने लगती है ॥ ५० ॥

अस्या देव्या यथारूपमङ्गप्रत्यङ्गसौष्ठवम् ।
रामस्य च यथारूपं तस्येयमसितेक्षणा ॥ ५१ ॥

जैसा अलौकिक रूप श्रीरामचन्द्रजीका है तथा जैसा मनोहर रूप एवं अङ्ग-प्रत्यङ्गकी सुघड़ता इन देवी सीतामें है; इसे देखते हुए कजरारे नेत्रोंवाली सीता उन्हींके योग्य पत्नी हैं ॥ ५१ ॥

अस्या देव्या मनस्तस्मिंस्तस्य चास्यां प्रतिष्ठितम् ।
तेनेयं स च धर्मात्मा मुहूर्तमपि जीवति ॥ ५२ ॥

'इन देवीका मन श्रीरघुनाथजीमें और श्रीरघुनाथजीका मन इनमें लगा हुआ है, इसीलिये ये तथा धर्मात्मा श्रीराम जीवित हैं । इनके मुहूर्तमात्र जीवनमें भी यही कारण है ॥ ५२ ॥

दुष्करं कृतवान् रामो हीनो यदनया प्रभुः ।
धारयत्यात्मनो देहं न शोकेनावसीदति ॥ ५३ ॥

'इनके बिछुड़ जानेपर भी भगवान् श्रीराम जो अपने शरीरको धारण करते हैं, शोकसे शिथिल नहीं हो जाते हैं, यह उन्होंने अत्यन्त दुष्कर कार्य किया है' ॥ ५३ ॥

एवं सीतां तथा दृष्ट्वा हृष्टः पवनसम्भवः ।
जगाम मनसा रामं प्रशशंस च तं प्रभुम् ॥ ५४ ॥

इस प्रकार उस अवस्थामें सीताका दर्शन पाकर पवनपुत्र हनुमान्जी बहुत प्रसन्न हुए । वे मन-ही-मन भगवान् श्रीरामके पास जा पहुँचे—उनका चिन्तन करने लगे तथा सीता-जैसी साध्वीको पत्नीरूपमें पानेसे उनके सौभाग्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें पंद्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः

हनुमान्जीका मन-ही-मन सीताजीके शील और सौन्दर्यकी सराहना करते हुए उन्हें कष्टमें पड़ी देख स्वयं भी उनके लिये शोक करना

प्रशस्य तु प्रशस्तव्यां सीतां तां हरिपुङ्गवः ।
गुणाभिरामं रामं च पुनश्चिन्तापरोऽभवत् ॥ १ ॥

परम प्रशंसनीया सीता और गुणाभिराम श्रीरामकी प्रशंसा करके वानरश्रेष्ठ हनुमान्जी फिर विचार करने लगे ॥ १ ॥

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पपर्याकुलेक्षणः ।
सीतामाश्रित्य तेजस्वी हनूमान् विललाप ह ॥ २ ॥

लगभग दो घड़ीतक कुछ सोच-विचार करनेपर उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये और वे तेजस्वी हनुमान् सीताके विषयमें इस प्रकार विलाप करने लगे— ॥ २ ॥

मान्या गुरुविनीतस्य लक्ष्मणस्य गुरुप्रिया ।
यदि सीता हि दुःखार्ता कालो हि दुरतिक्रमः ॥ ३ ॥

'अहो ! जिन्होंने गुरुजनोंसे शिक्षा पायी है, उन लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीरामकी प्रियतमा पत्नी सीता भी यदि इस प्रकार दुःखसे आतुर हो रही हैं तो यह कहना पड़ता है कि कालका उल्लङ्घन करना सभीके लिये अत्यन्त कठिन है ॥

रामस्य व्यवसायज्ञा लक्ष्मणस्य च धीमतः ।
नात्यर्थं क्षुभ्यते देवी गङ्गेव जलदागमे ॥ ४ ॥

'जैसे वर्षा-ऋतु आनेपर भी देवी गङ्गा अधिक क्षुब्ध नहीं होती हैं, उसी प्रकार श्रीराम तथा बुद्धिमान् लक्ष्मणके अमोघ पराक्रमका निश्चित ज्ञान रखनेवाली देवी सीता भी शोकसे अधिक विचलित नहीं हो रही हैं ॥ ४ ॥

तुल्यशीलवयोवृत्तां तुल्याभिजनलक्षणाम् ।
राघवोऽर्हति वैदेहीं तं चेयमसितेक्षणा ॥ ५ ॥

'सीताके शील, स्वभाव, अवस्था और बर्ताव श्रीरामके ही समान हैं । उनका कुल भी उन्हींके तुल्य महान् है, अतः श्रीरघुनाथजी विदेहकुमारी सीताके सर्वथा योग्य हैं तथा ये कजरारे नेत्रोंवाली सीता भी उन्हींके योग्य हैं' ॥ ५ ॥

तां दृष्ट्वा नवहेमाभां लोककान्तामिव श्रियम् ।
जगाम मनसा रामं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ६ ॥

नूतन सुवर्णके समान दीप्तिमती और लोककमनीया लक्ष्मीजीके समान शोभामयी श्रीसीताको देखकर हनुमान्‌जीने श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण किया और मन-ही-मन इस प्रकार कहा—॥ ६ ॥

अस्या हेतोर्विशालाक्ष्या हतो वाली महाबलः ।
रावणप्रतिमो वीर्ये कबन्धश्च निपातितः ॥ ७ ॥

'इन्हीं विशाललोचना सीताके लिये भगवान् श्रीरामने महाबली वालीका वध किया और रावणके समान पराक्रमी कबन्धको भी मार गिराया ॥ ७ ॥

विराधश्च हतः संख्ये राक्षसो भीमविक्रमः ।
वने रामेण विक्रम्य महेन्द्रेणेव शम्बरः ॥ ८ ॥

'इन्हींके लिये श्रीरामने वनमें पराक्रम करके भयानक पराक्रमी राक्षस विराधको भी उसी प्रकार युद्धमें मार डाला, जैसे देवराज इन्द्रने शम्बरासुरका वध किया था ॥ ८ ॥

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
निहतानि जनस्थाने शरैरग्निशिखोपमैः ॥ ९ ॥
खरश्च निहतः संख्ये त्रिशिराश्च निपातितः ।
दूषणश्च महातेजा रामेण विदितात्मना ॥ १० ॥

'इन्हींके कारण आत्मज्ञानी श्रीरामचन्द्रजीने जनस्थानमें अपने अग्निशिखाके सदृश तेजस्वी बाणोंद्वारा भयानक कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको कालके गालमें भेज दिया और युद्धमें खर, त्रिशिरा तथा महातेजस्वी दूषणको भी मार गिराया ॥ ९-१० ॥

ऐश्वर्यं वानराणां च दुर्लभं वालिपालितम् ।
अस्या निमित्ते सुग्रीवः प्राप्तवाँल्लोकविश्रुतः ॥ ११ ॥

'वानरोंका वह दुर्लभ ऐश्वर्य, जो वालीके द्वारा सुरक्षित था, इन्हींके कारण विश्वविख्यात सुग्रीवको प्राप्त हुआ है ॥ ११ ॥

सागरश्च मयाऽऽक्रान्तः श्रीमान् नदनदीपतिः ।
अस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः पुरी चेयं निरीक्षिता ॥ १२ ॥

'इन्हीं विशाललोचना सीताके लिये मैंने नदों और नदियोंके स्वामी श्रीमान् समुद्रका उल्लङ्घन किया और इस लङ्कापुरीको छान डाला है ॥ १२ ॥

यदि रामः समुद्रान्तां मेदिनीं परिवर्तयेत् ।
अस्याः कृते जगच्चापि युक्तमित्येव मे मतिः ॥ १३ ॥

'इनके लिये तो यदि भगवान् श्रीराम समुद्रपर्यन्त पृथ्वी तथा सारे संसारको भी उलट देते तो भी वह मेरे विचारसे उचित ही होता ॥ १३ ॥

राज्यं वा त्रिषु लोकेषु सीता वा जनकात्मजा ।
त्रैलोक्यराज्यं सकलं सीताया नाप्नुयात् कलाम् ।१४।

'एक ओर तीनों लोकोंका राज्य और दूसरी ओर जनककुमारी सीताको रखकर तुलना की जाय तो त्रिलोकीका सारा राज्य सीताकी एक कलाके बराबर भी नहीं हो सकता ॥१४॥

इयं सा धर्मशीलस्य जनकस्य महात्मनः ।
सुता मैथिलराजस्य सीता भर्तृदृढव्रता ॥ १५ ॥

'ये धर्मशील मिथिलानरेश महात्मा राजा जनककी पुत्री सीता पतिव्रत-धर्ममें बहुत दृढ़ हैं ॥ १५ ॥

उत्थिता मेदिनीं भित्त्वा क्षेत्रे हलमुखक्षते ।
पद्मरेणुनिभैः कीर्णा शुभैः केदारपांसुभिः ॥ १६ ॥

'जब हलके मुख (फाल) से खेत जोता जा रहा था, उस समय ये पृथ्वीको फाड़कर कमलके परागकी भाँति क्यारीकी सुन्दर धूलोंसे लिपटी हुई प्रकट हुई थीं ॥ १६ ॥

विक्रान्तस्यार्यशीलस्य संयुगेष्वनिवर्तिनः ।
स्नुषा दशरथस्यैषा ज्येष्ठा राज्ञो यशस्विनी ॥ १७ ॥

'जो परम पराक्रमी, श्रेष्ठ शील-स्वभाववाले और युद्धसे कभी पीछे न हटनेवाले थे, उन्हीं महाराज दशरथके ये यशस्विनी ज्येष्ठ पुत्रवधू हैं ॥ १७ ॥

धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य रामस्य विदितात्मनः ।
इयं सा दयिता भार्या राक्षसीवशमागता ॥ १८ ॥

'धर्मज्ञ, कृतज्ञ एवं आत्मज्ञानी भगवान् श्रीरामकी ये प्यारी पत्नी सीता इस समय राक्षसियोंके वशमें पड़ गयी हैं ॥ १८ ॥

सर्वान् भोगान् परित्यज्य भर्तृस्नेहबलात् कृता ।
अचिन्तयित्वा कष्टानि प्रविष्टा निर्जनं वनम् ॥ १९ ॥

'ये केवल पतिप्रेमके कारण सारे भोगोंको लात मारकर विपत्तियोंका कुछ भी विचार न करके श्रीरघुनाथजीके साथ निर्जन वनमें चली आयी थीं ॥ १९ ॥

संतुष्टा फलमूलेन भर्तृशुश्रूषणापरा ।
या परां भजते प्रीतिं वनेऽपि भवने यथा ॥ २० ॥

'यहाँ आकर फल-मूलोंसे ही संतुष्ट रहती हुई पतिदेवकी सेवामें लगी रहीं और वनमें भी उसी प्रकार परम प्रसन्न रहती थीं, जैसे राजमहलोंमें रहा करती थीं ॥ २० ॥

सेयं कनकवर्णाङ्गी नित्यं सुस्मितभाषिणी ।
सहते यातनामेतामनर्थानामभागिनी ॥ २१ ॥

'वे ही ये सुवर्णके समान सुन्दर अङ्गवाली और सदा मुस्कराकर बात करनेवाली सुन्दरी सीता, जो अनर्थ भोगनेके योग्य नहीं थीं, इस यातनाको सहन करती हैं ॥ २१ ॥

इमां तु शीलसम्पन्नां द्रष्टुमिच्छति राघवः ।
रावणेन प्रमथितां प्रपामिव पिपासितः ॥ २२ ॥

'यद्यपि रावणने इन्हें बहुत कष्ट दिये हैं तो भी ये अपने शील, सदाचार एवं सतीत्वसे सम्पन्न हैं। (उसके वशीभूत नहीं हो सकी हैं।) अतएव जैसे प्यासा मनुष्य पौंसलेपर जाना चाहता है, उसी प्रकार श्रीरघुनाथजी इन्हें देखना चाहते हैं ॥ २२ ॥

अस्या नूनं पुनर्लाभाद् राघवः प्रीतिमेष्यति ।
राजा राज्यपरिभ्रष्टः पुनः प्राप्येव मेदिनीम् ॥ २३ ॥

'जैसे राज्यसे भ्रष्ट हुआ राजा पुनः पृथ्वीका राज्य पाकर बहुत प्रसन्न होता है, उसी प्रकार उनकी पुनः प्राप्ति होनेसे श्रीरघुनाथजीको निश्चय ही बड़ी प्रसन्नता होगी ॥ २३ ॥

कामभोगैः परित्यक्ता हीना बन्धुजनेन च ।
धारयत्यात्मनो देहं तत्समागमकाङ्क्षिणी ॥ २४ ॥

'ये अपने बन्धुजनोंसे बिछुड़कर विषयभोगोंको तिलाञ्जलि दे केवल भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके समागमकी आशासे ही अपना शरीर धारण किये हुए हैं ॥ २४ ॥

नैषा पश्यति राक्षस्यो नेमान् पुष्पफलद्रुमान् ।
एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति ॥ २५ ॥

'ये न तो राक्षसियोंकी ओर देखती हैं और न इन फल-फूलवाले वृक्षोंपर ही दृष्टि डालती हैं, सर्वथा एकाग्रचित्त हो मनकी आँखोंसे केवल श्रीरामका ही निरन्तर दर्शन (ध्यान) करती हैं—इसमें संदेह नहीं है ॥ २५ ॥

भर्ता नाम परं नार्याः शोभनं भूषणादपि ।
एषा हि रहिता तेन शोभनार्हा न शोभते ॥ २६ ॥

'निश्चय ही पति नारीके लिये आभूषणकी अपेक्षा भी अधिक शोभाका हेतु है। ये सीता उन्हीं पतिदेवसे बिछुड़ गयी हैं, इसलिये शोभाके योग्य होनेपर भी शोभा नहीं पा रही हैं ॥ २६ ॥

दुष्करं कुरुते रामो हीनो यदनया प्रभुः ।
धारयत्यात्मनो देहं न दुःखेनावसीदति ॥ २७ ॥

'भगवान् श्रीराम इनसे बिछुड़ जानेपर भी जो अपने शरीरको धारण कर रहे हैं, दुःखसे अत्यन्त शिथिल नहीं हो जाते हैं, यह उनका अत्यन्त दुष्कर कर्म है ॥ २७ ॥

इमामसितकेशान्तां शतपत्रनिभेक्षणाम् ।
सुखार्हां दुःखितां ज्ञात्वा ममापि व्यथितं मनः ॥ २८ ॥

'काले केश और कमल-जैसे नेत्रवाली ये सीता वास्तवमें सुख भोगनेके योग्य हैं। इन्हें दुखी जानकर मेरा मन भी व्यथित हो उठता है ॥ २८ ॥

क्षितिक्षमा पुष्करसंनिभेक्षणा
या रक्षिता राघवलक्ष्मणाभ्याम् ।
सा राक्षसीभिर्विकृतेक्षणाभिः
संरक्ष्यते सम्प्रति वृक्षमूले ॥ २९ ॥

'अहो ! जो पृथ्वीके समान क्षमाशील और प्रफुल्ल कमलके समान नेत्रोंवाली हैं तथा श्रीराम और लक्ष्मणने जिनकी सदा रक्षा की है, वे ही सीता आज इस वृक्षके नीचे बैठी हैं और ये विकराल नेत्रोंवाली राक्षसियाँ इनकी रखवाली करती हैं ॥ २९ ॥

हिमहतनलिनीव नष्टशोभा
व्यसनपरम्परया निपीड्यमाना ।
सहचररहितेव चक्रवाकी
जनकसुता कृपणां दशां प्रपन्ना ॥ ३० ॥

'हिमकी मारी हुई कमलिनीके समान इनकी शोभा नष्ट हो गयी है, दुःख-पर-दुःख उठानेके कारण अत्यन्त पीड़ित हो रही हैं तथा अपने सहचरसे बिछुड़ी हुई चकवीके समान पति-वियोगका कष्ट सहन करती हुई ये जनककिशोरी सीता बड़ी दयनीय दशाको पहुँच गयी हैं ॥ ३० ॥

अस्या हि पुष्पावनताग्रशाखाः
शोकं दृढं वै जनयन्त्यशोकाः ।
हिमव्यपायेन च शीतरश्मि-
रभ्युत्थितो नैकसहस्ररश्मिः ॥ ३१ ॥

'फूलोंके भारसे जिनकी डालियोंके अग्रभाग झुक गये हैं, वे अशोकवृक्ष इस समय सीतादेवीके लिये अत्यन्त शोक उत्पन्न कर रहे हैं तथा शिशिरका अन्त हो जानेसे

वसन्तकी रातमें उदित हुए शीतल किरणोंवाले चन्द्रदेव भी इनके लिये अनेक सहस्र किरणोंसे प्रकाशित होनेवाले सूर्यदेवकी भाँति संताप दे रहे हैं' ॥ ३१ ॥

इत्येवमर्थं कपिरन्ववेक्ष्य
सीतेयमित्येव तु जातबुद्धिः।
संश्रित्य तस्मिन् निषसाद वृक्षे
बली हरीणामृषभस्तरस्वी ॥ ३२ ॥

इस प्रकार विचार करते हुए बलवान् वानरश्रेष्ठ वेगशाली हनुमान्‌जी यह निश्चय करके कि 'ये ही सीता हैं' उसी वृक्षपर बैठे रहे ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः

भयंकर राक्षसियोंसे घिरी हुई सीताके दर्शनसे हनुमान्‌जीका प्रसन्न होना

ततः कुमुदखण्डाभो निर्मलं निर्मलोदयः।
प्रजगाम नभश्चन्द्रो हंसो नीलमिवोदकम् ॥ १ ॥

तदनन्तर वह दिन बीतनेके पश्चात् कुमुदसमूहके समान श्वेत वर्णवाले तथा निर्मलरूपसे उदित हुए चन्द्रदेव स्वच्छ आकाशमें कुछ ऊपरको चढ़ आये। उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो कोई हंस किसी नील जलराशिमें तैर रहा हो॥

साचिव्यमिव कुर्वन् स प्रभया निर्मलप्रभः।
चन्द्रमा रश्मिभिः शीतैः सिषेवे पवनात्मजम् ॥ २ ॥

निर्मल कान्तिवाले चन्द्रमा अपनी प्रभासे सीताजीके दर्शन आदिमें पवनकुमार हनुमान्‌जीकी सहायता-सी करते हुए अपनी शीतल किरणोंद्वारा उनकी सेवा करने लगे ॥ २॥

स ददर्श ततः सीतां पूर्णचन्द्रनिभाननाम्।
शोकभारैरिव न्यस्तां भारैर्नावमिवाम्भसि ॥ ३ ॥

उस समय उन्होंने पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली सीताको देखा, जो जलमें अधिक बोझके कारण दबी हुई नौकाकी भाँति शोकके भारी भारसे मानो झुक गयी थीं॥

दिदृक्षमाणो वैदेहीं हनूमान् मारुतात्मजः।
स ददर्शाविदूरस्था राक्षसीर्घोरदर्शनाः ॥ ४ ॥

वायुपुत्र हनुमान्‌जीने जब विदेहकुमारी सीताको देखनेके लिये अपनी दृष्टि दौड़ायी, तब उन्हें उनके पास ही बैठी हुई भयानक दृष्टिवाली बहुत-सी राक्षसियाँ दिखायी दीं॥

एकाक्षीमेककर्णां च कर्णप्रावरणां तथा।
अकर्णां शङ्कुकर्णां च मस्तकोच्छ्वासनासिकाम् ॥५॥

उनमेंसे किसीके एक आँख थी तो दूसरीके एक कान। किसी-किसीके कान इतने बड़े थे कि वह उन्हें चादरकी भाँति ओढ़े हुए थीं। किसीके कान ही नहीं थे और किसीके कान ऐसे दिखायी देते थे मानो खूँटे गड़े हुए हों। किसी-किसीकी साँस लेनेवाली नाक उसके मस्तकपर थी ॥ ५ ॥

अतिकायोत्तमाङ्गीं च तनुदीर्घशिरोधराम्।
ध्वस्तकेशीं तथाकेशीं केशकम्बलधारिणीम् ॥ ६ ॥

किसीका शरीर बहुत बड़ा था और किसीका बहुत उत्तम। किसीकी गर्दन पतली और बड़ी थी। किसीके केश उड़ गये थे और किसी-किसीके माथेपर केश उगे ही नहीं थे। कोई-कोई राक्षसी अपने शरीरके केशोंका ही कम्बल धारण किये हुए थी ॥ ६ ॥

लम्बकर्णललाटां च लम्बोदरपयोधराम्।
लम्बोष्ठीं चिबुकोष्ठीं च लम्बास्यां लम्बजानुकाम् ॥७॥

किसीके कान और ललाट बड़े-बड़े थे तो किसीके पेट और स्तन लंबे थे। किसीके ओठ बड़े होनेके कारण लटक रहे थे तो किसीके ठोढ़ीमें ही सटे हुए थे। किसीका मुँह बड़ा था और किसीके घुटने ॥ ७ ॥

ह्रस्वां दीर्घां च कुब्जां च विकटां वामनां तथा।
करालां भुग्नवक्त्रां च पिङ्गाक्षीं विकृताननाम् ॥ ८ ॥

कोई नाटी, कोई लंबी, कोई कुबड़ी, कोई टेढ़ी-मेढ़ी, कोई बवनी, कोई विकराल, कोई टेढ़े मुँहवाली, कोई पीली आँखवाली और कोई विकट मुँहवाली थीं ॥ ८ ॥

विकृताः पिङ्गलाः कालीः क्रोधनाः कलहप्रियाः।
कालायसमहाशूलकूटमुद्गरधारिणीः ॥ ९ ॥

कितनी ही राक्षसियाँ बिगड़े शरीरवाली, काली, पीली, क्रोध करनेवाली और कलह पसंद करनेवाली थीं। उन सबने काले लोहेके बने हुए बड़े-बड़े शूल, कूट और मुद्गर धारण कर रक्खे थे ॥ ९ ॥

वराहमृगशार्दूलमहिषाजशिवामुखाः।
गजोष्ट्रहयपादाश्च निखातशिरसोऽपराः ॥ १० ॥

कितनी ही राक्षसियोंके मुख सूअर, मृग, सिंह, भैंस, बकरी और सियारिनोंके समान थे। किन्हींके पैर हाथियोंके समान, किन्हींके ऊँटोंके समान और किन्हींके घोड़ोंके समान थे। किन्हीं-किन्हींके सिर कबन्धकी भाँति छातीमें स्थित थे; अतः गड्ढेके समान दिखायी देते थे (अथवा किन्हीं-किन्हींके सिरमें गड्ढे थे) ॥ १० ॥

एकहस्तैकपादाश्च खरकर्ण्यश्वकर्णिकाः ।
गोकर्णीर्हस्तिकर्णीश्च हरिकर्णीस्तथापराः ॥ ११ ॥

किन्हींके एक हाथ थे तो किन्हींके एक पैर। किन्हींके कान गदहोंके समान थे तो किन्हींके घोड़ोंके समान। किन्हीं-किन्हींके कान गौओं, हाथियों और सिंहोंके समान दृष्टिगोचर होते थे ॥ ११ ॥

अतिनासाश्च काश्चिच्च तिर्यङ्नासा अनासिकाः ।
गजसंनिभनासाश्च ललाटोच्छ्वासनासिकाः॥ १२ ॥

किन्हींकी नासिकाएँ बहुत बड़ी थीं और किन्हींकी तिरछी। किन्हीं-किन्हींके नाक ही नहीं थी। कोई-कोई हाथीकी सूँड़के समान नाकवाली थीं और किन्हीं-किन्हींकी नासिकाएँ ललाटमें ही थीं, जिनसे वे साँस लिया करती थीं॥

हस्तिपादा महापादा गोपादाः पादचूलिकाः ।
अतिमात्रशिरोग्रीवा अतिमात्रकुचोदरीः ॥ १३ ॥

किन्हींके पैर हाथियोंके समान थे और किन्हींके गौओंके समान। कोई बड़े-बड़े पैर धारण करती थीं और कितनी ही ऐसी थीं जिनके पैरोंमें चोटीके समान केश उगे हुए थे। बहुत-सी राक्षसियाँ बेहद लंबे सिर और गर्दनवाली थीं और कितनोंके पेट तथा स्तन बहुत बड़े-बड़े थे ॥ १३ ॥

अतिमात्रास्यनेत्राश्च दीर्घजिह्वाननास्तथा ।
अजामुखीर्हस्तिमुखीर्गोमुखीः सूकरीमुखीः ॥ १४ ॥
हयोष्ट्रखरवक्त्राश्च राक्षसीर्घोरदर्शनाः ।

किन्हींके मुँह और नेत्र सीमासे अधिक बड़े थे, किन्हीं-किन्हींके मुखोंमें बड़ी-बड़ी जिह्वाएँ थीं और कितनी ही ऐसी राक्षसियाँ थीं, जो बकरी, हाथी गाय, सूअर, घोड़े, ऊँट और गदहोंके समान मुँह धारण करती थीं। इसीलिये वे देखनेमें बड़ी भयंकर थीं ॥ १४½ ॥

शूलमुद्गरहस्ताश्च क्रोधनाः कलहप्रियाः ॥ १५ ॥
कराला धूम्रकेशिन्यो राक्षसीर्विकृताननाः ।
पिबन्ति सततं पानं सुरामांससदाप्रियाः ॥ १६ ॥

किन्हींके हाथमें शूल थे तो किन्हींके मुद्गर। कोई क्रोधी स्वभावकी थीं तो कोई कलहसे प्रेम रखती थीं। धुएँ-जैसे केश और विकृत मुखवाली कितनी ही विकराल राक्षसियाँ सदा मद्यपान किया करती थीं। मदिरा और मांस उन्हें सदा प्रिय थे ॥ १५-१६ ॥

मांसशोणितदिग्धाङ्गीर्मांसशोणितभोजनाः ।
ता ददर्श कपिश्रेष्ठो रोमहर्षणदर्शनाः ॥ १७ ॥

कितनी ही अपने अङ्गोंमें रक्त और मांसका लेप लगाये रहती थीं। रक्त और मांस ही उनके भोजन थे। उन्हें देखते ही रोंगटे खड़े हो जाते थे। कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीने उन सबको देखा ॥ १७ ॥

स्कन्धवन्तमुपासीनाः परिवार्य वनस्पतिम् ।
तस्याधस्ताच्च तां देवीं राजपुत्रीमनिन्दिताम् ॥ १८ ॥
लक्षयामास लक्ष्मीवान् हनूमाञ्जनकात्मजाम् ।
निष्प्रभां शोकसंतप्तां मलसंकुलमूर्धजाम् ॥ १९ ॥

वे उत्तम शाखावाले उस अशोकवृक्षको चारों ओरसे घेरकर उससे थोड़ी दूरपर बैठी थीं और सती साध्वी राजकुमारी सीता देवी उसी वृक्षके नीचे उसकी जड़से सटी हुई बैठी थीं। उस समय शोभाशाली हनुमान्‌जीने जनककिशोरी जानकीजीकी ओर विशेषरूपसे लक्ष्य किया। उनकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी। वे शोकसे संतप्त थीं और उनके केशोंमें मैल जम गयी थी ॥ १८-१९ ॥

क्षीणपुण्यां च्युतां भूमौ तारां निपतितामिव ।
चारित्रव्यपदेशाढ्यां भर्तृदर्शनदुर्गताम् ॥ २० ॥

जैसे पुण्य क्षीण हो जानेपर कोई तारा स्वर्गसे टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ी हो, उसी तरह वे भी कान्तिहीन दिखायी देती थीं। वे आदर्श चरित्र (पातिव्रत्य) से सम्पन्न तथा इसके लिये सुविख्यात थीं। उन्हें पतिके दर्शनके लिये लाले पड़े थे ॥ २० ॥

भूषणैरुत्तमैर्हीनां भर्तृवात्सल्यभूषिताम् ।
राक्षसाधिपसंरुद्धां बन्धुभिश्च विनाकृताम् ॥ २१ ॥

वे उत्तम भूषणोंसे रहित थीं तो भी पतिके वात्सल्यसे विभूषित थीं (पतिका स्नेह ही उनके लिये शृङ्गार था)। राक्षसराज रावणने उन्हें बंदिनी बना रक्खा था। वे स्वजनोंसे बिछुड़ गयी थीं ॥ २१ ॥

वियूथां सिंहसंरुद्धां बद्धां गजवधूमिव ।
चन्द्ररेखां पयोदान्ते शारदाभ्रैरिवावृताम् ॥ २२ ॥

जैसे कोई हथिनी अपने यूथसे अलग हो गयी हो, यूथपतिके स्नेहसे बँधी हो और उसे किसी सिंहने रोक लिया हो। रावणकी कैदमें पड़ी हुई सीताकी भी वैसी ही दशा थी। वे वर्षाकाल बीत जानेपर शरद्-ऋतुके श्वेत बादलोंसे घिरी हुई चन्द्ररेखाके समान प्रतीत होती थीं ॥ २२ ॥

क्लिष्टरूपामसंस्पर्शादयुक्तामिव वल्लकीम् ।
स तां भर्तृहिते युक्तामयुक्तां रक्षसां वशे ॥ २३ ॥
अशोकवनिकामध्ये शोकसागरमाप्लुताम् ।
ताभिः परिवृतां तत्र सग्रहामिव रोहिणीम् ॥ २४ ॥

जैसे वीणा अपने स्वामीकी अङ्गुलियोंके स्पर्शसे वञ्चित हो वादन आदिकी क्रियासे रहित अयोग्य अवस्थामें मूक पड़ी रहती है, उसी प्रकार सीता पतिके सम्पर्कसे दूर होनेके कारण महान् क्लेशमें पड़कर ऐसी अवस्थाको पहुँच गयी थीं, जो उनके योग्य नहीं थी। पतिके हितमें तत्पर रहनेवाली सीता राक्षसोंके अधीन रहनेके योग्य नहीं थीं; फिर भी वैसी दशामें पड़ी थीं। अशोकवाटिकामें रहकर भी वे शोकके सागरमें डूबी हुई थीं। क्रूर ग्रहसे आक्रान्त हुई रोहिणीकी

भाँति वे वहाँ उन राक्षसियोंसे घिरी हुई थीं। हनुमान्‌जीने उन्हें देखा। वे पुष्पहीन लताकी भाँति श्रीहीन हो रही थीं॥

ददर्श हनुमांस्तत्र लतामकुसुमामिव।
सा मलेन च दिग्धाङ्गी वपुषा चाप्यलंकृता।
मृणाली पङ्कदिग्धेव विभाति च न भाति च॥ २५॥

उनके सारे अङ्गोंमें मैल जम गयी थी। केवल शरीर-सौन्दर्य ही उनका अलंकार था। वे कीचड़से लिपटी हुई कमलनालकी भाँति शोभा और अशोभा दोनोंसे युक्त हो रही थीं॥ २५॥

मलिनेन तु वस्त्रेण परिक्लिष्टेन भामिनीम्।
संवृतां मृगशावाक्षीं ददर्श हनुमान् कपिः॥ २६॥

मैले और पुराने वस्त्रसे ढकी हुई मृगशावकनयनी भामिनी सीताको कपिवर हनुमान्‌ने उस अवस्थामें देखा॥

तां देवीं दीनवदनामदीनां भर्तृतेजसा।
रक्षितां स्वेन शीलेन सीतामसितलोचनाम्॥ २७॥

यद्यपि देवी सीताके मुखपर दीनता छा रही थी तथापि अपने पतिके तेजका स्मरण हो आनेसे उनके हृदयसे वह दैन्य दूर हो जाता था। कजरारे नेत्रोंवाली सीता अपने शीलसे ही सुरक्षित थीं॥ २७॥

तां दृष्ट्वा हनुमान् सीतां मृगशावनिभेक्षणाम्।
मृगकन्यामिव त्रस्तां वीक्षमाणां समन्ततः॥ २८॥
दहन्तीमिव निःश्वासैर्वृक्षान् पल्लवधारिणः।
संघातमिव शोकानां दुःखस्योर्मिमिवोत्थिताम्॥ २९॥
तां क्षमां सुविभक्ताङ्गीं विनाभरणशोभिनीम्।
प्रहर्षमतुलं लेभे मारुतिः प्रेक्ष्य मैथिलीम्॥ ३०॥

उनके नेत्र मृगछौनोंके समान चञ्चल थे। वे डरी हुई मृगकन्याकी भाँति सब ओर सशङ्क दृष्टिसे देख रही थीं। अपने उच्छ्वासोंसे पल्लवधारी वृक्षोंको दग्ध-सी करती जान पड़ती थीं। शोकोंकी मूर्तिमती प्रतिमा-सी दिखायी देती थीं और दुःखकी उठी हुई तरंग-सी प्रतीत होती थीं। उनके सभी अङ्गोंका विभाग सुन्दर था। यद्यपि वे विरह-शोकसे दुर्बल हो गयी थीं तथापि आभूषणोंके बिना ही शोभा पाती थीं। इस अवस्थामें मिथिलेशकुमारी सीताको देखकर पवन-पुत्र हनुमान्‌को उनका पता लग जानेके कारण अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ॥ २८—३०॥

हर्षजानि च सोऽश्रूणि तां दृष्ट्वा मदिरेक्षणाम्।
मुमोच हनुमांस्तत्र नमश्चक्रे च राघवम्॥ ३१॥

मनोहर नेत्रवाली सीताको वहाँ देखकर हनुमान्‌जी हर्षके आँसू बहाने लगे। उन्होंने मन-ही-मन श्रीरघुनाथजीको नमस्कार किया॥ ३१॥

नमस्कृत्वाथ रामाय लक्ष्मणाय च वीर्यवान्।
सीतादर्शनसंहृष्टो हनुमान् संवृतोऽभवत्॥ ३२॥

सीताके दर्शनसे उल्लसित हो श्रीराम और लक्ष्मणको नमस्कार करके पराक्रमी हनुमान् वहीं छिपे रहे॥ ३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तदशः सर्गः॥ १७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १७॥

* * *

अष्टादशः सर्गः

अपनी स्त्रियोंसे घिरे हुए रावणका अशोकवाटिकामें आगमन और हनुमान्‌जीका उसे देखना

तथा विप्रेक्षमाणस्य वनं पुष्पितपादपम्।
विचिन्वतश्च वैदेहीं किंचिच्छेषा निशाभवत्॥ १॥

इस प्रकार फूले हुए वृक्षोंसे सुशोभित उस वनकी शोभा देखते और विदेहनन्दिनीका अनुसंधान करते हुए हनुमान्‌जीकी वह सारी रात प्रायः बीत चली। केवल एक पहर रात बाकी रही॥ १॥

महत्वपूर्ण

षडङ्गवेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम्।
शुश्राव ब्रह्मघोषान् स विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम्॥ २॥

रातके उस पिछले पहरमें छहों अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंके विद्वान् तथा श्रेष्ठ यज्ञोंद्वारा यजन करनेवाले ब्रह्म-राक्षसोंके घरमें वेदपाठकी ध्वनि होने लगी, जिसे हनुमान्‌जीने सुना॥

अथ मङ्गलवादित्रैः शब्दैः श्रोत्रमनोहरैः।
प्राबोध्यत महाबाहुर्दशग्रीवो महाबलः॥ ३॥

तदनन्तर मङ्गल वाद्यों तथा श्रवण-सुखद शब्दोंद्वारा महाबली महाबाहु दशमुख रावणको जगाया गया॥ ३॥

विबुध्य तु महाभागो राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्।
स्रस्तमाल्याम्बरधरो वैदेहीमन्वचिन्तयत्॥ ४॥

जागनेपर महान् भाग्यशाली एवं प्रतापी राक्षसराज रावणने सबसे पहले विदेहनन्दिनी सीताका चिन्तन किया। उस समय नींदके कारण उसके पुष्पहार और वस्त्र अपने स्थानसे खिसक गये थे॥ ४॥

भृशं नियुक्तस्तस्यां च मदनेन मदोत्कटः।
न तु तं राक्षसः कामं शशाकात्मनि गूहितुम्॥ ५॥

वह मदमत्त निशाचर कामसे प्रेरित हो सीताके प्रति अत्यन्त आसक्त हो गया था। अतः उस कामभावको अपने भीतर छिपाये रखनेमें असमर्थ हो गया॥ ५॥

स सर्वाभरणैर्युक्तो बिभ्रच्छ्रियमनुत्तमाम् ।
तां नगैर्विविधैर्जुष्टां सर्वपुष्पफलोपगैः ॥ ६ ॥
वृतां पुष्करिणीभिश्च नानापुष्पोपशोभिताम् ।
सदा मत्तैश्च विहगैर्विचित्रां परमाद्भुतैः ॥ ७ ॥
ईहामृगैश्च विविधैर्वृतां दृष्टिमनोहरैः ।
वीथीः सम्प्रेक्षमाणश्च मणिकाञ्चनतोरणाम् ॥ ८ ॥
नानामृगगणाकीर्णां फलैः प्रपतितैर्वृताम् ।
अशोकवनिकामेव प्राविशत् संततद्रुमाम् ॥ ९ ॥

उसने सब प्रकारके आभूषण धारण किये और परम उत्तम शोभासे सम्पन्न हो उस अशोकवाटिकामें ही प्रवेश किया, जो सब प्रकारके फूल और फल देनेवाले भाँति-भाँतिके वृक्षोंसे सुशोभित थी। नाना प्रकारके पुष्प उसकी शोभा बढ़ा रहे थे । बहुत-से सरोवरोंद्वारा वह वाटिका घिरी हुई थी। सदा मतवाले रहनेवाले परम अद्भुत पक्षियोंके कारण उसकी विचित्र शोभा होती थी । कितने ही नयनाभिराम क्रीडामृगोंसे भरी हुई वह वाटिका भाँति-भाँतिके मृगसमूहोंसे व्याप्त थी। बहुत-से गिरे हुए फलोंके कारण वहाँकी भूमि ढक गयी थी । पुष्पवाटिकामें मणि और सुवर्णके फाटक लगे थे और उसके भीतर पंक्तिबद्ध वृक्ष बहुत दूरतक फैले हुए थे। वहाँकी गलियोंको देखता हुआ रावण उस वाटिकामें घुसा ॥ ६—९ ॥

अङ्गनाः शतमात्रं तु तं व्रजन्तमनुव्रजन् ।
महेन्द्रमिव पौलस्त्यं देवगन्धर्वयोषितः ॥ १० ॥

जैसे देवताओं और गन्धर्वोंकी स्त्रियाँ देवराज इन्द्रके पीछे चलती हैं, उसी प्रकार अशोकवनमें जाते हुए पुलस्त्यनन्दन रावणके पीछे-पीछे लगभग एक सौ सुन्दरियाँ गयीं ॥ १० ॥

दीपिकाः काञ्चनीः काश्चिज्जगृहुस्तत्र योषितः ।
वालव्यजनहस्ताश्च तालवृन्तानि चापराः ॥ ११ ॥

उन युवतियोंमेंसे किन्हींने सुवर्णमय दीपक ले रक्खे थे। किन्हींके हाथोंमें चँवर थे तो किन्हींके हाथोंमें ताड़के पंखे ॥ ११ ॥

काञ्चनैश्चैव भृङ्गारैर्जह्रुः सलिलमग्रतः ।
मण्डलाग्रा बृसीश्चैव गृह्यान्याः पृष्ठतो ययुः ॥ १२ ॥

कुछ सुन्दरियाँ सोनेकी झारियोंमें जल लिये आगे-आगे चल रही थीं और कई दूसरी स्त्रियाँ गोलाकार बृसी नामक आसन लिये पीछे-पीछे जा रही थीं ॥ १२ ॥

काचिद् रत्नमयीं पात्रीं पूर्णां पानस्य भ्राजतीम् ।
दक्षिणा दक्षिणेनैव तदा जग्राह पाणिना ॥ १३ ॥

कोई चतुर-चालाक युवती दाहिने हाथमें पेयरससे भरी हुई रत्ननिर्मित चमचमाती कलशी लिये हुए थी ॥ १३ ॥

राजहंसप्रतीकाशं छत्रं पूर्णशशिप्रभम् ।
सौवर्णदण्डमपरा गृहीत्वा पृष्ठतो ययौ ॥ १४ ॥

कोई दूसरी स्त्री सोनेके डंडेसे युक्त और पूर्ण चन्द्रमा तथा राजहंसके समान श्वेत छत्र लेकर रावणके पीछे-पीछे चल रही थी ॥ १४ ॥

निद्रामदपरीताक्ष्यो रावणस्योत्तमस्त्रियः ।
अनुजग्मुः पतिं वीरं घनं विद्युल्लता इव ॥ १५ ॥

जैसे बादलके साथ-साथ बिजलियाँ चलती हैं, उसी प्रकार रावणकी सुन्दरी स्त्रियाँ अपने वीर पतिके पीछे-पीछे जा रही थीं । उस समय नींदके नशेमें उनकी आँखें झपी जाती थीं ॥ १५ ॥

व्याविद्धहारकेयूराः समामृदितवर्णकाः ।
समागलितकेशान्ताः सस्वेदवदनास्तथा ॥ १६ ॥

उनके हार और बाजूबंद अपने स्थानसे खिसक गये थे। अङ्गराग मिट गये थे। चोटियाँ खुल गयी थीं और मुखपर पसीनेकी बूँदें छा रही थीं ॥ १६ ॥

घूर्णन्त्यो मदशेषेण निद्रया च शुभाननाः ।
स्वेदक्लिष्टाङ्गकुसुमाः समाल्याकुलमूर्धजाः ॥ १७ ॥

वे सुमुखी स्त्रियाँ अवशेष मद और निद्रासे झूमती हुई-सी चल रही थीं। विभिन्न अङ्गोंमें धारण किये गये पुष्प पसीनेसे भींग गये थे और पुष्पमालाओंसे अलंकृत केश कुछ-कुछ हिल रहे थे ॥ १७ ॥

प्रयान्तं नैर्ऋतपतिं नार्यो मदिरलोचनाः ।
बहुमानाच्च कामाच्च प्रियभार्यास्तमन्वयुः ॥ १८ ॥

जिनकी आँखें मदमत्त बना देनेवाली थीं, वे राक्षसराजकी प्यारी पत्नियाँ अशोकवनमें जाते हुए पतिके साथ बड़े आदरसे और अनुरागपूर्वक जा रही थीं ॥ १८ ॥

स च कामपराधीनः पतिस्तासां महाबलः ।
सीतासक्तमना मन्दो मन्दाञ्चितगतिर्बभौ ॥ १९ ॥

उन सबका पति महाबली मन्दबुद्धि रावण कामके अधीन हो रहा था। वह सीतामें मन लगाये मन्दगतिसे आगे बढ़ता हुआ अद्भुत शोभा पा रहा था ॥ १९ ॥

ततः काञ्चीनिनादं च नूपुराणां च निःस्वनम् ।
शुश्राव परमस्त्रीणां कपिर्मारुतनन्दनः ॥ २० ॥

उस समय वायुनन्दन कपिवर हनुमान्‌जीने उन परम सुन्दरी रावणपत्नियोंकी करधनीका कलनाद और नूपुरोंकी झनकार सुनी ॥ २० ॥

तं चाप्रतिमकर्माणमचिन्त्यबलपौरुषम् ।
द्वारदेशमनुप्राप्तं ददर्श हनुमान् कपिः ॥ २१ ॥

साथ ही, अनुपम कर्म करनेवाले तथा अचिन्त्य बलपौरुषसे सम्पन्न रावणको भी कपिवर हनुमान्‌ने देखा, जो अशोकवाटिकाके द्वारतक आ पहुँचा था ॥ २१ ॥

दीपिकाभिरनेकाभिः समन्तादवभासितम् ।
गन्धतैलावसिक्ताभिर्ध्रियमाणाभिरग्रतः ॥ २२ ॥

उसके आगे-आगे सुगन्धित तेलसे भीगी हुई और स्त्रियोंद्वारा हाथोंमें धारण की हुई बहुत-सी मशालें जल रही थीं, जिनके द्वारा वह सब ओरसे प्रकाशित हो रहा था ॥

कामदर्पमदैर्युक्तं जिह्मताम्रायतेक्षणम् ।
समक्षमिव कंदर्पमपविद्धशरासनम् ॥ २३ ॥

वह काम, दर्प और मदसे युक्त था । उसकी आँखें टेढ़ी, लाल और बड़ी-बड़ी थीं । वह धनुषरहित साक्षात् कामदेवके समान जान पड़ता था ॥ २३ ॥

मथितामृतफेनाभमरजोवस्त्रमुत्तमम् ।
सपुष्पमवकर्षन्तं विमुक्तं सक्तमङ्गदे ॥ २४ ॥

उसका वस्त्र मथे हुए दूधके फेनकी भाँति श्वेत, निर्मल और उत्तम था । उसमें मोतीके दाने और फूल टँके हुए थे । वह वस्त्र उसके बाजूबंदमें उलझ गया था और रावण उसे खींचकर सुलझा रहा था ॥ २४ ॥

तं पत्रविटपे लीनः पत्रपुष्पशतावृतः ।
समीपमुपसंक्रान्तं विज्ञातुमुपचक्रमे ॥ २५ ॥

अशोक वृक्षके पत्तों और डालियोंमें छिपे हुए हनुमान्‌जी सैकड़ों पत्रों तथा पुष्पोंसे ढक गये थे । उसी अवस्थामें उन्होंने निकट आये हुए रावणको पहचाननेका प्रयत्न किया ॥ २५ ॥

अवेक्षमाणस्तु तदा ददर्श कपिकुञ्जरः ।
रूपयौवनसम्पन्ना रावणस्य वरस्त्रियः ॥ २६ ॥

उसकी ओर देखते समय कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने रावणकी सुन्दरी स्त्रियोंको भी लक्ष्य किया, जो रूप और यौवनसे सम्पन्न थीं ॥ २६ ॥

ताभिः परिवृतो राजा सुरूपाभिर्महायशाः ।
तन्मृगद्विजसंघुष्टं प्रविष्टः प्रमदावनम् ॥ २७ ॥

उन सुन्दर रूपवाली युवतियोंसे घिरे हुए महायशस्वी राजा रावणने उस प्रमदावनमें प्रवेश किया, जहाँ अनेक प्रकारके पशु-पक्षी अपनी-अपनी बोली बोल रहे थे ॥ २७ ॥

क्षीबो विचित्राभरणः शङ्कुकर्णो महाबलः ।
तेन विश्रवसः पुत्रः स दृष्टो राक्षसाधिपः ॥ २८ ॥

वह मतवाला दिखायी देता था । उसके आभूषण विचित्र थे । उसके कान ऐसे प्रतीत होते थे, मानो वहाँ खूँटे गाड़े गये हैं । इस प्रकार वह विश्रवामुनिका पुत्र महाबली राक्षसराज रावण हनुमान्‌जीके दृष्टिपथमें आया २८

वृतः परमनारीभिस्ताराभिरिव चन्द्रमाः । तेजस्वन्तं ३
तं ददर्श महातेजास्तेजोवन्तं महाकपिः ॥ २९ ॥
रावणोऽयं महाबाहुरिति संचिन्त्य वानरः ।
सोऽयमेव पुरा शेते पुरमध्ये गृहोत्तमे ।
अवप्लुतो महातेजा हनूमान् मारुतात्मजः ॥ ३० ॥

ताराओंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति वह परम सुन्दरी युवतियोंसे घिरा हुआ था । महातेजस्वी महाकपि हनुमान्‌ने उस तेजस्वी राक्षसको देखा और देखकर यह निश्चय किया कि यही महाबाहु रावण है । पहले यही नगरमें उत्तम महलके भीतर सोया हुआ था । ऐसा सोचकर वे वानरवीर महातेजस्वी पवनकुमार हनुमान्‌जी जिस डालीपर बैठे थे, वहाँसे कुछ नीचे उतर आये (क्योंकि वे निकटसे रावणकी सारी चेष्टाएँ देखना चाहते थे) ॥ २९-३० ॥

स तथाप्युग्रतेजाः स निर्धूतस्तस्य तेजसा ।
पत्रे गुह्यान्तरे सक्तो मतिमान् संवृतोऽभवत् ॥ ३१ ॥

यद्यपि मतिमान् हनुमान्‌जी भी बड़े उग्रतेजस्वी थे, तथापि रावणके तेजसे तिरस्कृत-से होकर सघन पत्तोंमें घुसकर छिप गये ॥ ३१ ॥

स तामसितकेशान्तां सुश्रोणीं संहतस्तनीम् ।
दिदृक्षुरसितापाङ्गीमुपावर्तत रावणः ॥ ३२ ॥

उधर रावण काले केश; कजरारे नेत्र, सुन्दर कटिभाग और परस्पर सटे हुए स्तनवाली सुन्दरी सीताको देखनेके लिये उनके पास गया ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः

रावणको देखकर दुःख, भय और चिन्तामें डूबी हुई सीताकी अवस्थाका वर्णन

तस्मिन्नेव ततः काले राजपुत्री त्वनिन्दिता ।
रूपयौवनसम्पन्नं भूषणोत्तमभूषितम् ॥ १ ॥
ततो दृष्ट्वैव वैदेही रावणं राक्षसाधिपम् ।
प्रावेपत वरारोहा प्रवाते कदली यथा ॥ २ ॥

उस समय अनिन्दिता सुन्दरी राजकुमारी सीताने जब उत्तमोत्तम आभूषणोंसे विभूषित तथा रूप-यौवनसे सम्पन्न राक्षसराज रावणको आते देखा, तब वे प्रचण्ड हवामें हिलनेवाली कदलीके समान भयके मारे थर-थर काँपने लगीं ॥ १-२ ॥

ऊरुभ्यामुदरं छाद्य बाहुभ्यां च पयोधरौ ।

उपविष्टा विशालाक्षी रुदती वरवर्णिनी ॥ ३ ॥

सुन्दर कान्तिवाली विशाललोचना जानकीने अपनी जाँघोंसे पेट और दोनों भुजाओंसे स्तन छिपा लिये तथा वहाँ बैठी-बैठी वे रोने लगीं ॥ ३ ॥

दशग्रीवस्तु वैदेहीं रक्षितां राक्षसीगणैः।
ददर्श दीनां दुःखार्तां नावं सन्नामिवार्णवे ॥ ४ ॥
असंवृतायामासीनां धरण्यां संशितव्रताम्।
छिन्नां प्रपतितां भूमौ शाखामिव वनस्पतेः ॥ ५ ॥

राक्षसियोंके पहरेमें रहती हुई विदेहराजकुमारी सीता अत्यन्त दीन और दुखी हो रही थीं। वे समुद्रमें जीर्ण-शीर्ण होकर डूबी हुई नौकाके समान दुःखके सागरमें निमग्न थीं। उस अवस्थामें दशमुख रावणने उनकी ओर देखा। वे बिना बिछौनेके खुली जमीनपर बैठी थीं और कटकर पृथ्वीपर गिरी हुई वृक्षकी शाखाके समान जान पड़ती थीं। उनके द्वारा बड़े कठोर व्रतका पालन किया जा रहा था ॥ ४-५ ॥

मलमण्डनदिग्धाङ्गीं मण्डनार्हाममण्डनाम्।
मृणाली पङ्कदिग्धेव विभाति न विभाति च ॥ ६ ॥

उनके अङ्गोंमें अङ्गरागकी जगह मैल जमी हुई थी। वे आभूषण धारण तथा श्रृङ्गार करने योग्य होनेपर भी उन सबसे वञ्चित थीं और कीचड़में सनी हुई कमलनालकी भाँति शोभा पाती थीं तथा नहीं भी पाती थीं। (कमलनाल जैसे सुकुमारताके कारण शोभा पाती है और कीचड़में सनी रहनेके कारण शोभा नहीं पाती, वैसे ही वे अपने सहज सौन्दर्यसे सुशोभित थीं, किंतु मलिनताके कारण शोभा नहीं देती थीं) ॥ ६ ॥

समीपं राजसिंहस्य रामस्य विदितात्मनः।
संकल्पहयसंयुक्तैर्यान्तीमिव मनोरथैः ॥ ७ ॥

संकल्पोंके घोड़ोंसे जुते हुए मनोमय रथपर चढ़कर आत्मज्ञानी राजसिंह भगवान् श्रीरामके पास जाती हुई-सी प्रतीत होती थीं ॥ ७ ॥

शुष्यन्तीं रुदतीमेकां ध्यानशोकपरायणाम्।
दुःखस्यान्तमपश्यन्तीं रामां राममनुव्रताम् ॥ ८ ॥

उनका शरीर सूखता जा रहा था। वे अकेली बैठकर रोती तथा श्रीरामचन्द्रजीके ध्यान एवं उनके वियोगके शोकमें डूबी रहती थीं। उन्हें अपने दुःखका अन्त नहीं दिखायी देता था। वे श्रीरामचन्द्रजीमें अनुराग रखनेवाली तथा उनकी रमणीय भार्या थीं ॥ ८ ॥

चेष्टमानामथाविष्टां पन्नगेन्द्रवधूमिव।
धूप्यमानां ग्रहेणेव रोहिणीं धूमकेतुना ॥ ९ ॥

जैसे नागराजकी वधू (नागिन) मणि-मन्त्रादिसे अभिभूत हो छटपटाने लगती है, उसी तरह सीता भी पतिके वियोगमें तड़प रही थीं तथा धूमके समान वर्णवाले केतुग्रहसे ग्रस्त हुई रोहिणीके समान संतप्त हो रही थीं ॥ ९ ॥

वृत्तशीले कुले जातामाचारवति धार्मिके।
पुनः संस्कारमापन्नां जातामिव च दुष्कुले ॥ १० ॥

यद्यपि सदाचारी और सुशील कुलमें उनका जन्म हुआ था। फिर धार्मिक तथा उत्तम आचार-विचारवाले कुलमें वे ब्याही गयी थीं—विवाह-संस्कारसे सम्पन्न हुई थीं, तथापि दूषित कुलमें उत्पन्न हुई नारीके समान मलिन दिखायी देती थीं ॥ १० ॥

सन्नामिव महाकीर्तिं श्रद्धामिव विमानिताम्।
प्रज्ञामिव परिक्षीणामाशां प्रतिहतामिव ॥ ११ ॥
आयतीमिव विध्वस्तामाज्ञां प्रतिहतामिव।
दीप्तामिव दिशं काले पूजामपहतामिव ॥ १२ ॥
पौर्णमासीमिव निशां तमोग्रस्तेन्दुमण्डलाम्।
पद्मिनीमिव विध्वस्तां हतशूरां चमूमिव ॥ १३ ॥
प्रभामिव तमोध्वस्तामुपक्षीणामिवापगाम्।
वेदीमिव परामृष्टां शान्तामग्निशिखामिव ॥ १४ ॥

वे क्षीण हुई विशाल कीर्ति, तिरस्कृत हुई श्रद्धा, सर्वथा ह्रासको प्राप्त हुई बुद्धि, टूटी हुई आशा, नष्ट हुए भविष्य, उल्लङ्घित हुई राजाज्ञा, उत्पातकालमें दहकती हुई दिशा, नष्ट हुई देवपूजा, चन्द्रग्रहणसे मलिन हुई पूर्णमासीकी रात, तुषारपातसे जीर्ण-शीर्ण हुई कमलिनी, जिसका शूरवीर सेनापति मारा गया हो, ऐसी सेना, अन्धकारसे नष्ट हुई प्रभा, सूखी हुई सरिता, अपवित्र प्राणियोंके स्पर्शसे अशुद्ध हुई वेदी और बुझी हुई अग्निशिखाके समान प्रतीत होती थीं ॥ ११–१४ ॥

उत्कृष्टपर्णकमलां वित्रासितविहङ्गमाम्।
हस्तिहस्तपरामृष्टामाकुलामिव पद्मिनीम् ॥ १५ ॥

जिसे हाथीने अपनी सूँड़से हुँड़ेर डाला हो; अतएव जिसके पत्ते और कमल उखड़ गये हों तथा जलपक्षी भयसे थर्रा उठे हों, उस मथित एवं मलिन हुई पुष्करिणीके समान सीता श्रीहीन दिखायी देती थीं ॥ १५ ॥

पतिशोकातुरां शुष्कां नदीं विस्रावितामिव।
परया मृजया हीनां कृष्णपक्षे निशामिव ॥ १६ ॥

पतिके विरह-शोकसे उनका हृदय बड़ा व्याकुल था। जिसका जल नहरोंके द्वारा इधर-उधर निकाल दिया गया हो, ऐसी नदीके समान वे सूख गयी थीं तथा उत्तम उबटन आदिके न लगनेसे कृष्णपक्षकी रात्रिके समान मलिन हो रही थीं ॥ १६ ॥

सुकुमारीं सुजाताङ्गीं रत्नगर्भगृहोचिताम्।
तप्यमानामिवोष्णेन मृणालीमचिरोद्धृताम् ॥ १७ ॥

उनके अङ्ग बड़े सुकुमार और सुन्दर थे। वे रत्नजटित राजमहलमें रहनेके योग्य थीं; परंतु गर्मीसे तपी और तुरंत

तोड़कर फेंकी हुई कमलिनीके समान दयनीय दशाको पहुँच गयी थीं ॥ १७ ॥

गृहीतामालितां स्तम्भे यूथपेन विनाकृताम् ।
निःश्वसन्तीं सुदुःखार्तां गजराजवधूमिव ॥ १८ ॥

जिसे यूथपतिसे अलग करके पकड़कर खंभेमें बाँध दिया गया हो, उस हथिनीके समान वे अत्यन्त दुःखमे आतुर होकर लंबी साँस खींच रही थीं ॥ १८ ॥

एकया दीर्घया वेण्या शोभमानामयत्नतः ।
नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव ॥ १९ ॥

बिना प्रयत्नके ही बँधी हुई एक ही लंबी वेणीसे सीताकी वैसी ही शोभा हो रही थी, जैसे वर्षा-ऋतु बीत जानेपर सुदूर-तक फैली हुई हरी-भरी वनश्रेणीसे पृथ्वी सुशोभित होती है ॥ १९ ॥

उपवासेन शोकेन ध्यानेन च भयेन च ।
परिक्षीणां कृशां दीनामल्पाहारां तपोधनाम् ॥ २० ॥

वे उपवास, शोक, चिन्ता और भयसे अत्यन्त क्षीण, कृशकाय और दीन हो गयी थीं। उनका आहार बहुत कम हो गया था तथा एकमात्र तप ही उनका धन था ॥ २० ॥

आयाचमानां दुःखार्तां प्राञ्जलिं देवतामिव ।
भावेन रघुमुख्यस्य दशग्रीवपराभवम् ॥ २१ ॥

वे दुःखसे आतुर हो अपने कुलदेवतासे हाथ जोड़कर मन-ही-मन यह प्रार्थना-सी कर रही थीं कि श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे दशमुख रावणकी पराजय हो ॥ २१ ॥

समीक्षमाणां रुदतीमनिन्दितां
सुपक्ष्मताम्रायतशुक्ललोचनाम् ।
अनुव्रतां राममतीव मैथिलीं
प्रलोभयामास वधाय रावणः ॥ २२ ॥

सुन्दर बरौनियोंसे युक्त, लाल, श्वेत एवं विशाल नेत्रोंवाली सती-साध्वी मिथिलेशकुमारी सीता श्रीरामचन्द्रजी-में अत्यन्त अनुरक्त थीं और इधर-उधर देखती हुई रो रही थीं। इस अवस्थामें उन्हें देखकर राक्षसराज रावण अपने ही वधके लिये उनको लुभानेकी चेष्टा करने लगा ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १९ ॥

◆

विंशः सर्गः

रावणका सीताजीको प्रलोभन

स तां परिवृतां दीनां निरानन्दां तपस्विनीम् ।
साकारैर्मधुरैर्वाक्यैर्न्यदर्शयत रावणः ॥ १ ॥

राक्षसियोंसे घिरी हुई दीन और आनन्दशून्य तपस्विनी सीताको सम्बोधित करके रावण अभिप्राययुक्त मधुर वचनों-द्वारा अपने मनका भाव प्रकट करने लगा— ॥ १ ॥

मां दृष्ट्वा नागनासोरु गूहमाना स्तनोदरम् ।
अदर्शनमिवात्मानं भयान्नेतुं त्वमिच्छसि ॥ २ ॥

'हाथीकी सूँडके समान सुन्दर जाँघोंवाली सीते! मुझे देखते ही तुम अपने स्तन और उदरको इस प्रकार छिपाने लगी हो, मानो डरके मारे अपनेको अदृश्य कर देना चाहती हो ॥ २ ॥

कामये त्वां विशालाक्षि बहु मन्यस्व मां प्रिये ।
सर्वाङ्गगुणसम्पन्ने सर्वलोकमनोहरे ॥ ३ ॥

'किंतु विशाललोचने! मैं तो तुम्हें चाहता हूँ—तुमसे प्रेम करता हूँ। समस्त संसारका मन मोहनेवाली सर्वाङ्गसुन्दरी प्रिये! तुम भी मुझे विशेष आदर दो—मेरी प्रार्थना स्वीकार करो ॥ ३ ॥

नेह किंचिन्मनुष्या वा राक्षसाः कामरूपिणः ।
व्यपसर्पतु ते सीते भयं मत्तः समुत्थितम् ॥ ४ ॥

'यहाँ तुम्हारे लिये कोई भय नहीं है। इस स्थानमें न तो मनुष्य आ सकते हैं, न इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले दूसरे राक्षस ही, केवल मैं आ सकता हूँ। परंतु सीते! मुझसे जो तुम्हें भय हो रहा है, वह तो दूर हो ही जाना चाहिये ॥ ४ ॥

स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वदैव न संशयः ।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं सम्प्रमथ्य वा ॥ ५ ॥

'भीरु! (तुम यह न समझो कि मैंने कोई अधर्म किया है) परायी स्त्रियोंके पास जाना अथवा बलात्कारपूर्वक उन्हें हर लाना यह राक्षसोंका सदा ही अपना धर्म रहा है—इसमें संदेह नहीं है ॥ ५ ॥

एवं चैवमकामां त्वां न च स्प्रक्ष्यामि मैथिलि ।
कामं कामः शरीरे मे यथाकामं प्रवर्तताम् ॥ ६ ॥

'मिथिलेशनन्दिनि! ऐसी अवस्थामें भी जबतक तुम मुझे न चाहोगी, तबतक मैं तुम्हारा स्पर्श नहीं करूँगा। भले ही कामदेव मेरे शरीरपर इच्छानुसार अत्याचार करे ॥ ६ ॥

देवि नेह भयं कार्यं मयि विश्वसिहि प्रिये ।
प्रणयस्व च तत्त्वेन मैवं भूः शोकलालसा ॥ ७ ॥

'देवि ! इस विषयमें तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। प्रिये ! मुझपर विश्वास करो और यथार्थरूपसे प्रेमदान दो। इस तरह शोकसे व्याकुल न हो जाओ ॥ ७ ॥

एकवेणी अधःशय्या ध्यानं मलिनमम्बरम्।
अस्थानेऽप्युपवासश्च नैतान्यौपयिकानि ते ॥ ८ ॥

'एक वेणी धारण करना, नीचे पृथ्वीपर सोना, चिन्तामग्न रहना, मैले वस्त्र पहनना और बिना अवसरके उपवास करना—ये सब बातें तुम्हारे योग्य नहीं हैं ॥ ८ ॥

विचित्राणि च माल्यानि चन्दनान्यगुरूणि च।
विविधानि च वासांसि दिव्यान्याभरणानि च ॥ ९ ॥
महार्हाणि च पानानि शयनान्यासनानि च।
गीतं नृत्यं च वाद्यं च लभ मां प्राप्य मैथिलि ॥ १० ॥

'मिथिलेशकुमारी ! मुझे पाकर तुम विचित्र पुष्प-माला, चन्दन, अगुरु, नाना प्रकारके वस्त्र, दिव्य आभूषण, बहुमूल्य पेय, शय्या, आसन, नाच, गान और वाद्यका सुख भोगो ॥ ९-१० ॥

स्त्रीरत्नमसि मैवं भूः कुरु गात्रेषु भूषणम्।
मां प्राप्य हि कथं वा स्यास्त्वमनर्हा सुविग्रहे ॥ ११ ॥

'तुम स्त्रियोंमें रत्न हो। इस तरह मलिन वेषमें न रहो। अपने अङ्गोंमें आभूषण धारण करो। सुन्दरि ! मुझे पाकर भी तुम भूषण आदिसे असम्मानित कैसे रहोगी ? ॥ ११ ॥

इदं ते चारु संजातं यौवनं ह्यतिवर्तते।
यदतीतं पुनर्नैति स्रोतः स्रोतस्विनामिव ॥ १२ ॥

'यह तुम्हारा नवोदित सुन्दर यौवन बीता जा रहा है। जो बीत जाता है, वह नदियोंके प्रवाहकी भाँति फिर लौटकर नहीं आता ॥ १२ ॥

त्वां कृत्वोपरतो मन्ये रूपकर्ता स विश्वकृत्।
नहि रूपोपमा ह्यन्या तवास्ति शुभदर्शने ॥ १३ ॥

'शुभदर्शने ! मैं तो ऐसा समझता हूँ कि रूपकी रचना करनेवाला लोकस्रष्टा विधाता तुम्हें बनाकर फिर उस कार्यसे विरत हो गया; क्योंकि तुम्हारे रूपकी समता करनेवाली दूसरी कोई स्त्री नहीं है ॥ १३ ॥

त्वां समासाद्य वैदेहि रूपयौवनशालिनीम्।
कः पुनर्नातिवर्तेत साक्षादपि पितामहः ॥ १४ ॥

'विदेहनन्दिनि ! रूप और यौवनसे सुशोभित होनेवाली तुमको पाकर कौन ऐसा पुरुष है, जो धैर्यसे विचलित न होगा। भले ही वह साक्षात् ब्रह्मा क्यों न हो ॥ १४ ॥

यद् यत् पश्यामि ते गात्रं शीतांशुसदृशानने।
तस्मिंस्तस्मिन् पृथुश्रोणि चक्षुर्मम निबध्यते ॥ १५ ॥

'चन्द्रमाके समान मुखवाली सुमध्यमे ! मैं तुम्हारे जिस-जिस अङ्गको देखता हूँ, उसी-उसीमें मेरे नेत्र उलझ जाते हैं॥

भव मैथिलि भार्या मे मोहमेतं विसर्जय।
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां ममाग्रमहिषी भव ॥ १६ ॥

'मिथिलेशकुमारी ! तुम मेरी भार्या बन जाओ। पातिव्रत्यके इस मोहको छोड़ो। मेरे यहाँ बहुत-सी सुन्दरी रानियाँ हैं। तुम उन सबमें श्रेष्ठ पटरानी बनो ॥ १६ ॥

लोकेभ्यो यानि रत्नानि सम्प्रमथ्याहृतानि मे।
तानि ते भीरु सर्वाणि राज्यं चैव ददामि ते ॥ १७ ॥

'भीरु ! मैं अनेक लोकोंसे उन्हें मथकर जो-जो रत्न लाया हूँ, वे सब तुम्हारे ही होंगे और यह राज्य भी मैं तुम्हींको समर्पित कर दूँगा ॥ १७ ॥

विजित्य पृथिवीं सर्वां नानानगरमालिनीम्।
जनकाय प्रदास्यामि तव हेतोर्विलासिनि ॥ १८ ॥

'विलासिनि ! तुम्हारी प्रसन्नताके लिये मैं विभिन्न नगरोंकी मालाओंसे अलंकृत इस सारी पृथ्वीको जीतकर राजा जनकके हाथमें सौंप दूँगा ॥ १८ ॥

नेह पश्यामि लोकेऽन्यं यो मे प्रतिबलो भवेत्।
पश्य मे सुमहद्वीर्यमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥ १९ ॥

'इस संसारमें मैं किसी दूसरे ऐसे पुरुषको नहीं देखता, जो मेरा सामना कर सके। तुम युद्धमें मेरा वह महान् पराक्रम देखना, जिसके सामने कोई प्रतिद्वन्द्वी टिक नहीं पाता॥

असकृत् संयुगे भग्ना मया विमृदितध्वजाः।
अशक्ताः प्रत्यनीकेषु स्थातुं मम सुरासुराः ॥ २० ॥

'मैंने युद्धस्थलमें जिनकी ध्वजाएँ तोड़ डाली थीं, वे देवता और असुर मेरे सामने ठहरनेमें असमर्थ होनेके कारण कई बार पीठ दिखा चुके हैं ॥ २० ॥

इच्छ मां क्रियतामद्य प्रतिकर्म तवोत्तमम्।
सुप्रभाण्यवसज्जन्तां तवाङ्गे भूषणानि हि ॥ २१ ॥

'तुम मुझे स्वीकार करो। आज तुम्हारा उत्तम शृङ्गार किया जाय और तुम्हारे अङ्गोंमें चमकीले आभूषण पहनाये जायँ ॥ २१ ॥

साधु पश्यामि ते रूपं सुयुक्तं प्रतिकर्मणा।
प्रतिकर्माभिसंयुक्ता दाक्षिण्येन वरानने ॥ २२ ॥

'सुमुखि ! आज मैं शृङ्गारसे सुसज्जित हुए तुम्हारे सुन्दर रूपको देख रहा हूँ*। तुम उदारतावश मुझपर कृपा करके शृङ्गारसे सम्पन्न हो जाओ ॥ २२ ॥

भुङ्क्ष्व भोगान् यथाकामं पिब भीरु रमस्व च।
यथेष्टं च प्रयच्छ त्वं पृथिवीं वा धनानि च ॥ २३ ॥

'भीरु ! फिर इच्छानुसार भाँति-भाँतिके भोग भोगो, दिव्य

---

* यहाँ भविष्यका वर्तमानकी भाँति वर्णन होनेसे 'भाविक' अलंकार समझना चाहिये।

रसका पान करो, विहरो तथा पृथ्वी या धनका यथेष्टरूपसे दान करो ॥ २३ ॥

ललस्व मयि विस्रब्धा धृष्टमाज्ञापयस्व च ।
मत्प्रासादाल्ललन्त्याश्च ललतां बान्धवास्तव ॥ २४ ॥

'तुम मुझपर विश्वास करके भोग भोगनेकी इच्छा करो और निर्भय होकर मुझे अपनी सेवाके लिये आज्ञा दो। मुझपर कृपा करके इच्छानुसार भोग भोगती हुई तुम-जैसी पटरानीके भाई-बन्धु भी मनमाने भोग भोग सकते हैं ॥ २४ ॥

ऋद्धिं ममानुपश्य त्वं श्रियं भद्रे यशस्विनि ।
किं करिष्यसि रामेण सुभगे चीरवासिना ॥ २५ ॥

'भद्रे ! यशस्विनि ! तुम मेरी समृद्धि और धन-सम्पत्तिकी ओर तो देखो। सुभगे ! चीर-वस्त्र धारण करनेवाले रामको लेकर क्या करोगी ? ॥ २५ ॥

निक्षिप्तविजयो रामो गतश्रीर्वनगोचरः ।
व्रती स्थण्डिलशायी च शङ्के जीवति वा न वा ॥ २६ ॥

'रामने विजयकी आशा त्याग दी है। वे श्रीहीन होकर वन-वनमें विचर रहे हैं, व्रतका पालन करते हैं और मिट्टीकी वेदीपर सोते हैं। अब तो मुझे यह भी संदेह होने लगा है कि वे जीवित भी हैं या नहीं ॥ २६ ॥

नहि वैदेहि रामस्त्वां द्रष्टुं वाप्युपलप्स्यते ।
पुरोबलाकैरसितैर्मेघैर्ज्योत्स्नामिवावृताम् ॥ २७ ॥

'विदेहनन्दिनि ! जिनके आगे बगुलोंकी पंक्तियाँ चलती हैं, उन काले बादलोंसे छिपी हुई चन्द्रिकाके समान तुमको अब राम पाना तो दूर रहा, देख भी नहीं सकते हैं ॥ २७ ॥

न चापि मम हस्तात् त्वां प्राप्तुमर्हति राघवः ।
हिरण्यकशिपुः कीर्तिमिन्द्रहस्तगतामिव ॥ २८ ॥

'जैसे हिरण्यकशिपु इन्द्रके हाथमें गयी हुई कीर्तिको न पा सका, उसी प्रकार राम भी मेरे हाथसे तुम्हें नहीं पा सकते॥

चारुस्मिते चारुदति चारुनेत्रे विलासिनि ।
मनो हरसि मे भीरु सुपर्णः पन्नगं यथा ॥ २९ ॥

'मनोहर मुस्कान, सुन्दर दन्तावलि तथा रमणीय नेत्रोंवाली विलासिनि ! भीरु ! जैसे गरुड़ सर्पको उठा ले जाते हैं, उसी प्रकार तुम मेरे मनको हर लेती हो ॥ २९ ॥

क्लिष्टकौशेयवसनां तन्वीमप्यनलंकृताम् ।
त्वां दृष्ट्वा स्वेषु दारेषु रतिं नोपलभाम्यहम् ॥ ३० ॥

'तुम्हारा रेशमी पीताम्बर मैला हो गया है। तुम बहुत दुबली-पतली हो गयी हो और तुम्हारे अङ्गोंमें आभूषण भी नहीं हैं तो भी तुम्हें देखकर अपनी दूसरी स्त्रियोंमें मेरा मन नहीं लगता ॥ ३० ॥

अन्तःपुरनिवासिन्यः स्त्रियः सर्वगुणान्विताः ।
यावत्यो मम सर्वासामैश्वर्यं कुरु जानकि ॥ ३१ ॥

'जनकनन्दिनि ! मेरे अन्तःपुरमें निवास करनेवाली जितनी भी सर्वगुणसम्पन्न रानियाँ हैं, उन सबकी तुम स्वामिनी बन जाओ ॥ ३१ ॥

मम ह्यसितकेशान्ते त्रैलोक्यप्रवरस्त्रियः ।
तास्त्वां परिचरिष्यन्ति श्रियमप्सरसो यथा ॥ ३२ ॥

'काले केशोंवाली सुन्दरी ! जैसे अप्सराएँ लक्ष्मीकी सेवा करती हैं, उसी प्रकार त्रिभुवनकी श्रेष्ठ सुन्दरियाँ यहाँ तुम्हारी परिचर्या करेंगी ॥ ३२ ॥

यानि वैश्रवणे सुभ्रु रत्नानि च धनानि च ।
तानि लोकांश्च सुश्रोणि मया भुङ्क्ष्व यथासुखम् ।२३।

'सुभ्रु ! सुश्रोणि ! कुबेरके यहाँ जितने भी अच्छे रत्न और धन हैं, उन सबका तथा सम्पूर्ण लोकोंका तुम मेरे साथ सुखपूर्वक उपभोग करो ॥ ३३ ॥

न रामस्तपसा देवि न बलेन च विक्रमैः ।
न धनेन मया तुल्यस्तेजसा यशसापि वा ॥ ३४ ॥

'देवि ! राम तो न तपसे, न बलसे, न पराक्रमसे, न धनसे और न तेज अथवा यशके द्वारा ही मेरी समानता कर सकते हैं ॥ ३४ ॥

पिब विहर रमस्व भुङ्क्ष्व भोगान्
धननिचयं प्रदिशामि मेदिनीं च ।
मयि लल ललने यथासुखं त्वं
त्वयि च समेत्य ललन्तु बान्धवास्ते ॥ ३५ ॥

'तुम दिव्य रसका पान, विहार एवं रमण करो तथा अभीष्ट भोग भोगो। मैं तुम्हें धनकी राशि और सारी पृथ्वी भी समर्पित किये देता हूँ। ललने ! तुम मेरे पास रहकर मौजसे मनचाही वस्तुएँ ग्रहण करो और तुम्हारे निकट आकर तुम्हारे भाई-बन्धु भी सुखपूर्वक इच्छानुसार भोग आदि प्राप्त करें ॥ ३५ ॥

कुसुमिततरुजालसंततानि
भ्रमरयुतानि समुद्रतीरजानि ।
कनकविमलहारभूषिताङ्गी
विहर मया सह भीरु काननानि ॥ ३६ ॥

'भीरु ! तुम सोनेके निर्मल हारोंसे अपने अङ्गको विभूषित करके मेरे साथ समुद्र-तटवर्ती उन काननोंमें विहार करो, जिनमें खिले हुए वृक्षोंके समुदाय सब ओर फैले हुए हैं और उनपर भ्रमर मँड़रा रहे हैं' ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे विंशः सर्गः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः

सीताजीका रावणको समझाना और उसे श्रीरामके सामने नगण्य बताना

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सीता रौद्रस्य रक्षसः ।
आर्ता दीनस्वरा दीनं प्रत्युवाच ततः शनैः ॥ १ ॥

उस भयंकर राक्षसकी वह बात सुनकर सीताको बड़ी पीड़ा हुई । उन्होंने दीन वाणीमें बड़े दुःखके साथ धीरे-धीरे उत्तर देना आरम्भ किया ॥ १ ॥

दुःखार्ता रुदती सीता वेपमाना तपस्विनी ।
चिन्तयन्ती वरारोहा पतिमेव पतिव्रता ॥ २ ॥

उस समय सुन्दर अङ्गोंवाली पतिव्रता देवी तपस्विनी सीता दुःखसे आतुर होकर रोती हुई काँप रही थीं और अपने पतिदेवका ही चिन्तन कर रही थीं ॥ २ ॥

तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता ।
निवर्तय मनो मत्तः स्वजने प्रीयतां मनः ॥ ३ ॥

पवित्र मुस्कानवाली विदेहनन्दिनीने तिनकेकी ओट करके रावणको इस प्रकार उत्तर दिया—'तुम मेरी ओरसे अपना मन हटा लो और आत्मीय जनों (अपनी ही पत्नियों) पर प्रेम करो ॥ ३ ॥

न मां प्रार्थयितुं युक्तस्त्वं सिद्धिमिव पापकृत् ।
अकार्यं न मया कार्यमेकपत्न्या विगर्हितम् ॥ ४ ॥

'जैसे पापाचारी पुरुष सिद्धिकी इच्छा नहीं कर सकता, उसी प्रकार तुम मेरी इच्छा करनेके योग्य नहीं हो । जो पतिव्रताके लिये निन्दित है, वह न करनेयोग्य कार्य मैं कदापि नहीं कर सकती ॥ ४ ॥

कुलं सम्प्राप्तया पुण्यं कुले महति जातया ।
एवमुक्त्वा तु वैदेही रावणं तं यशस्विनी ॥ ५ ॥
रावणं पृष्ठतः कृत्वा भूयो वचनमब्रवीत् ।
नाहमौपयिकी भार्या परभार्या सती तव ॥ ६ ॥

'क्योंकि मैं एक महान् कुलमें उत्पन्न हुई हूँ और व्याह करके एक पवित्र कुलमें आयी हूँ ।' रावणसे ऐसा कहकर यशस्विनी विदेहराजकुमारीने उसकी ओर अपनी पीठ फेर ली और इस प्रकार कहा—'रावण ! मैं सती और परायी स्त्री हूँ । तुम्हारी भार्या बनने योग्य नहीं हूँ ॥ ५-६ ॥

साधु धर्ममवेक्षस्व साधु साधुव्रतं चर ।
यथा तव तथान्येषां रक्ष्या दारा निशाचर ॥ ७ ॥

'निशाचर ! तुम श्रेष्ठ धर्मकी ओर दृष्टिपात करो और सत्पुरुषोंके व्रतका अच्छी तरह पालन करो । जैसे तुम्हारी स्त्रियाँ तुमसे संरक्षण पाती हैं, उसी प्रकार दूसरोंकी स्त्रियोंकी भी तुम्हें रक्षा करनी चाहिये ॥ ७ ॥

आत्मानमुपमां कृत्वा स्वेषु दारेषु रम्यताम् ।
अतुष्टं स्वेषु दारेषु चपलं चपलेन्द्रियम् ।
नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम् ॥ ८ ॥

'तुम अपनेको आदर्श बनाकर अपनी ही स्त्रियोंमें अनुरक्त रहो । जो अपनी स्त्रियोंसे संतुष्ट नहीं रहता तथा जिसकी बुद्धि धिक्कार देने योग्य है, उस चपल इन्द्रियोंवाले चञ्चल पुरुषको परायी स्त्रियाँ पराभवको पहुँचा देती हैं—उसे फजीहतमें डाल देती हैं ॥ ८ ॥

इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे ।
यथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता ॥ ९ ॥

'क्या यहाँ सत्पुरुष नहीं रहते हैं अथवा रहनेपर भी तुम उनका अनुसरण नहीं करते हो ? जिससे तुम्हारी बुद्धि ऐसी विपरीत एवं सदाचारशून्य हो गयी है ? ॥ ९ ॥

वचो मिथ्याप्रणीतात्मा पथ्यमुक्तं विचक्षणैः ।
राक्षसानामभावाय त्वं वा न प्रतिपद्यसे ॥ १० ॥

'अथवा बुद्धिमान् पुरुष जो तुम्हारे हितकी बात कहते हैं, उसे निःसार मानकर राक्षसोंके विनाशपर तुले रहनेके कारण तुम ग्रहण ही नहीं करते हो ? ॥ १० ॥

अकृतात्मानमासाद्य राजानमनये रतम् ।
समृद्धानि विनश्यन्ति राष्ट्राणि नगराणि च ॥ ११ ॥

'जिसका मन अपवित्र तथा सदुपदेशको नहीं ग्रहण करनेवाला है, ऐसे अन्यायी राजाके हाथमें पड़कर बड़े-बड़े समृद्धिशाली राज्य और नगर नष्ट हो जाते हैं ॥ ११ ॥

तथैव त्वां समासाद्य लङ्का रत्नौघसंकुला ।
अपराधात् तवैकस्य नचिराद् विनशिष्यति ॥ १२ ॥

'इसी प्रकार यह रत्नराशिसे पूर्ण लङ्कापुरी तुम्हारे हाथमें आ जानेसे अब अकेले तुम्हारे ही अपराधसे बहुत जल्द नष्ट हो जायगी ॥ १२ ॥

स्वकृतैर्हन्यमानस्य रावणादीर्घदर्शिनः ।
अभिनन्दन्ति भूतानि विनाशे पापकर्मणः ॥ १३ ॥

'रावण ! जब कोई अदूरदर्शी पापाचारी अपने कुकर्मोंसे मारा जाता है, उस समय उसका विनाश होनेपर समस्त प्राणियोंको प्रसन्नता होती है ॥ १३ ॥

एवं त्वां पापकर्माणं वक्ष्यन्ति निकृता जनाः ।
दिष्ट्यैतद् व्यसनं प्राप्तो रौद्र इत्येव हर्षिताः ॥ १४ ॥

'इसी प्रकार तुमने जिन लोगोंको कष्ट पहुँचाया है, वे तुम्हें पापी कहेंगे और 'बड़ा अच्छा हुआ, जो इस आततायीको यह कष्ट प्राप्त हुआ' ऐसा कहकर हर्ष मनायेंगे ॥ १४ ॥

शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा ।
अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा ॥ १५ ॥

'जैसे प्रभा सूर्यसे अलग नहीं होती, उसी प्रकार मैं श्रीरघुनाथजीसे अभिन्न हूँ। ऐश्वर्य या धनके द्वारा तुम मुझे लुभा नहीं सकते ॥ १५ ॥

उपधाय भुजं तस्य लोकनाथस्य सत्कृतम्।
कथं नामोपधास्यामि भुजमन्यस्य कस्यचित्॥ १६॥

'जगदीश्वर श्रीरामचन्द्रजीकी सम्मानित भुजापर सिर रखकर अब मैं किसी दूसरेकी बाँहकी तकिया कैसे लगा सकती हूँ ? ॥ १६ ॥

अहमौपयिकी भार्या तस्यैव च धरापतेः।
व्रतस्नातस्य विद्येव विप्रस्य विदितात्मनः॥ १७॥

'जिस प्रकार वेदविद्या आत्मज्ञानी स्नातक ब्राह्मणकी ही सम्पत्ति होती है, उसी प्रकार मैं केवल उन पृथ्वीपति रघुनाथजीकी ही भार्या होने योग्य हूँ ॥ १७ ॥

साधु रावण रामेण मां समानय दुःखिताम्।
वने वासितया सार्धं करेण्वेव गजाधिपम्॥ १८॥

'रावण! तुम्हारे लिये यही अच्छा होगा कि जिस प्रकार वनमें समागमकी वासनासे युक्त हथिनीको कोई गजराजसे मिला दे, उसी प्रकार तुम मुझ दुखियाको श्रीरघुनाथजीसे मिला दो ॥ १८ ॥

मित्रमौपयिकं कर्तुं रामः स्थानं परीप्सता।
बन्धं चानिच्छता घोरं त्वयासौ पुरुषर्षभः॥ १९॥

'यदि तुम्हें अपने नगरकी रक्षा और दारुण बन्धनसे बचनेकी इच्छा हो तो पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामको अपना मित्र बना लेना चाहिये; क्योंकि वे ही इसके योग्य हैं ॥ १९ ॥

विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः।
तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि॥ २०॥

'भगवान् श्रीराम समस्त धर्मोंके ज्ञाता और सुप्रसिद्ध शरणागतवत्सल हैं। यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो उनके साथ तुम्हारी मित्रता हो जानी चाहिये ॥ २० ॥

प्रसादयस्व त्वं चैनं शरणागतवत्सलम्।
मां चास्मै प्रयतो भूत्वा निर्यातयितुमर्हसि॥ २१॥

'तुम शरणागतवत्सल श्रीरामकी शरण लेकर उन्हें प्रसन्न करो और शुद्धहृदय होकर मुझे उनके पास लौटा दो ॥ २१ ॥

एवं हि ते भवेत् स्वस्ति सम्प्रदाय रघूत्तमे।
अन्यथा त्वं हि कुर्वाणः परां प्राप्स्यसि चापदम्॥ २२॥

'इस प्रकार मुझे श्रीरघुनाथजीको सौंप देनेपर तुम्हारा भला होगा। इसके विपरीत आचरण करनेपर तुम बड़ी भारी विपत्तिमें पड़ जाओगे ॥ २२ ॥

वर्जयेद् वज्रमुत्सृष्टं वर्जयेदन्तकश्चिरम्।
त्वद्विधं न तु संक्रुद्धो लोकनाथः स राघवः॥ २३॥

'तुम्हारे-जैसे निशाचरको कदाचित् हाथसे छूटा हुआ वज्र बिना मारे छोड़ सकता है और काल भी बहुत दिनोंतक तुम्हारी उपेक्षा कर सकता है; किंतु क्रोधमें भरे हुए लोकनाथ रघुनाथजी कदापि नहीं छोड़ेंगे ॥ २३ ॥

रामस्य धनुषः शब्दं श्रोष्यसि त्वं महास्वनम्।
शतक्रतुविसृष्टस्य निर्घोषमशनेरिव॥ २४॥

'इन्द्रके छोड़े हुए वज्रकी गड़गड़ाहटके समान तुम श्रीरामचन्द्रजीके धनुषकी घोर टंकार सुनोगे ॥ २४ ॥

इह शीघ्रं सुपर्वाणो ज्वलितास्या इवोरगाः।
इषवो निपतिष्यन्ति रामलक्ष्मणलक्षिताः॥ २५॥

'यहाँ श्रीराम और लक्ष्मणके नामोंसे अङ्कित और सुन्दर गाँठवाले बाण प्रज्वलित मुखवाले सर्पोंके समान शीघ्र ही गिरेंगे ॥ २५ ॥

रक्षांसि निहनिष्यन्तः पुर्यामस्यां न संशयः।
असम्पातं करिष्यन्ति पतन्तः कङ्कवाससः॥ २६॥

'वे कङ्कपत्रवाले बाण इस पुरीमें राक्षसोंका संहार करेंगे, इसमें संशय नहीं है। वे इस तरह बरसेंगे कि यहाँ तिल रखनेकी भी जगह नहीं रह जायगी ॥ २६ ॥

राक्षसेन्द्रमहासर्पान् स रामगरुडो महान्।
उद्धरिष्यति वेगेन वैनतेय इवोरगान्॥ २७॥

'जैसे विनतानन्दन गरुड़ सर्पोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार श्रीरामरूपी महान् गरुड़ राक्षसराजरूपी बड़े-बड़े सर्पोंको वेगपूर्वक उच्छिन्न कर डालेंगे ॥ २७ ॥

अपनेष्यति मां भर्ता त्वत्तः शीघ्रमरिंदमः।
असुरेभ्यः श्रियं दीप्तां विष्णुस्त्रिभिरिव क्रमैः॥ २८॥

'जैसे भगवान् विष्णुने अपने तीन ही पगोंद्वारा असुरोंसे उनकी उद्दीप्त राजलक्ष्मी छीन ली थी, उसी प्रकार मेरे स्वामी शत्रुसूदन श्रीराम मुझे शीघ्र ही तेरे यहाँसे निकाल ले जायँगे ॥ २८ ॥

जनस्थाने हतस्थाने निहते रक्षसां बले।
अशक्तेन त्वया रक्षः कृतमेतदसाधु वै॥ २९॥

'राक्षस! जब राक्षसोंकी सेनाका संहार हो जानेसे जनस्थानका तुम्हारा आश्रय नष्ट हो गया और तुम युद्ध करनेमें असमर्थ हो गये, तब तुमने छल और चोरीसे यह नीच कर्म किया है ॥ २९ ॥

आश्रमं तत्तयोः शून्यं प्रविश्य नरसिंहयोः।
गोचरं गतयोर्भ्रात्रोरपनीता त्वयाधम॥ ३०॥

'नीच निशाचर! तुमने पुरुषसिंह श्रीराम और लक्ष्मणके सूने आश्रममें घुसकर मेरा हरण किया था। वे दोनों उस समय मायामृगको मारनेके लिये वनमें गये हुए थे (नहीं तो तभी तुम्हें इसका फल मिल जाता) ॥ ३० ॥

नहि गन्धमुपाघ्राय रामलक्ष्मणयोस्त्वया ।
शक्यं संदर्शने स्थातुं शुना शार्दूलयोरिव ॥ ३१ ॥

'श्रीराम और लक्ष्मणकी तो गन्ध पाकर भी तुम उनके सामने नहीं ठहर सकते । क्या कुत्ता कभी दो-दो बाघोंके सामने टिक सकता है ? ॥ ३१ ॥

तस्य ते विग्रहे ताभ्यां युगग्रहणमस्थिरम् ।
वृत्रस्येवेन्द्रबाहुभ्यां बाहोरेकस्य विग्रहे ॥ ३२ ॥

'जैसे इन्द्रकी दो बाँहोंके साथ युद्ध छिड़नेपर वृत्रासुरकी एक बाँहके लिये संग्रामके बोझको सँभालना असम्भव हो गया, उसी प्रकार समराङ्गणमें उन दोनों भाइयोंके साथ युद्धका जुआ उठाये रखना या टिकना तुम्हारे लिये सर्वथा असम्भव है ॥ ३२ ॥

क्षिप्रं तव स नाथो मे रामः सौमित्रिणा सह ।
तोयमल्पमिवादित्यः प्राणानादास्यते शरैः ॥ ३३ ॥

'वे मेरे प्राणनाथ श्रीराम सुमित्राकुमार लक्ष्मणके साथ आकर अपने बाणोंद्वारा शीघ्र तुम्हारे प्राण हर लेंगे । ठीक उसी तरह, जैसे सूर्य थोड़ेसे जलको अपनी किरणोंद्वारा शीघ्र सुखा देते हैं ॥ ३३ ॥

गिरिं कुबेरस्य गतोऽथवाऽऽलयं
सभां गतो वा वरुणस्य राज्ञः ।
असंशयं दाशरथेर्विमोक्ष्यसे
महाद्रुमः कालहतोऽशनेरिव ॥ ३४ ॥

'तुम कुबेरके कैलासपर्वतपर चले जाओ, अथवा वरुणकी सभामें जाकर छिप रहो, किंतु कालका मारा हुआ विशाल वृक्ष जैसे वज्रका आघात लगते ही नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार तुम दशरथनन्दन श्रीरामके बाणसे मारे जाकर तत्काल प्राणोंसे हाथ धो बैठोगे, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि काल तुम्हें पहलेसे ही मार चुका है' ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः

रावणका सीताको दो मासकी अवधि देना, सीताका उसे फटकारना, फिर रावणका उन्हें धमकाकर राक्षसियोंके नियन्त्रणमें रखकर स्त्रियोंसहित पुनः महलको लौट जाना

सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं राक्षसेश्वरः ।
प्रत्युवाच ततः सीतां विप्रियं प्रियदर्शनाम् ॥ १ ॥

सीताके ये कठोर वचन सुनकर राक्षसराज रावणने उन प्रियदर्शना सीताको यह अप्रिय उत्तर दिया— ॥ १ ॥

यथा यथा सान्त्वयिता वश्यः स्त्रीणां तथा तथा ।
यथा यथा प्रियं वक्ता परिभूतस्तथा तथा ॥ २ ॥

'लोकमें पुरुष जैसे-जैसे स्त्रियोंसे अनुनय-विनय करता है, वैसे-वैसे वह उनका प्रिय होता जाता है; परंतु मैं तुमसे ज्यों-ज्यों मीठे वचन बोलता हूँ, त्यों ही-त्यों तुम मेरा तिरस्कार करती जा रही हो ॥ २ ॥

संनियच्छति मे क्रोधं त्वयि कामः समुत्थितः ।
द्रवतो मार्गमासाद्य हयानिव सुसारथिः ॥ ३ ॥

'किंतु जैसे अच्छा सारथि कुमार्गमें दौड़ते हुए घोड़ोंको रोकता है, वैसे ही तुम्हारे प्रति जो मेरा प्रेम उत्पन्न हो गया है, वही मेरे क्रोधको रोक रहा है ॥ ३ ॥

वामः कामो मनुष्याणां यस्मिन् किल निबध्यते ।
जने तस्मिंस्त्वनुक्रोशः स्नेहश्च किल जायते ॥ ४ ॥

'मनुष्योंमें यह काम (प्रेम) बड़ा टेढ़ा है । वह जिसके प्रति बँध जाता है, उसीके प्रति करुणा और स्नेह उत्पन्न हो जाता है ॥ ४ ॥

एतस्मात् कारणान्न त्वां घातयामि वरानने ।
वधार्हामवमानार्हां मिथ्या प्रव्रजने रताम् ॥ ५ ॥

'सुमुखि ! यही कारण है कि झूठे वैराग्यमें तत्पर तथा वध और तिरस्कारके योग्य होनेपर भी तुम्हारा मैं वध नहीं कर रहा हूँ ॥ ५ ॥

परुषाणि हि वाक्यानि यानि यानि ब्रवीषि माम् ।
तेषु तेषु वधो युक्तस्तव मैथिलि दारुणः ॥ ६ ॥

'मिथिलेशकुमारी ! तुम मुझसे जैसी-जैसी कठोर बातें कह रही हो, उनके बदले तो तुम्हें कठोर प्राणदण्ड देना ही उचित है' ॥ ६ ॥

एवमुक्त्वा तु वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः ।
क्रोधसंरम्भसंयुक्तः सीतामुत्तरमब्रवीत् ॥ ७ ॥

विदेहराजकुमारी सीतासे ऐसा कहकर क्रोधके आवेशमें भरे हुए राक्षसराज रावणने उन्हें फिर इस प्रकार उत्तर दिया— ॥ ७ ॥

द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृतः ।
ततः शयनमारोह मम त्वं वरवर्णिनि ॥ ८ ॥

'सुन्दरि ! मैंने तुम्हारे लिये जो अवधि नियुक्त की है, उसके अनुसार मुझे दो महीने और प्रतीक्षा करनी है । तत्पश्चात् तुम्हें मेरी शय्यापर आना होगा ॥ ८ ॥

द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम्।
मम त्वां प्रातराशार्थे सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः ॥ ९ ॥

'अतः याद रक्खो—यदि दो महीनेके बाद तुम मुझे अपना पति बनाना स्वीकार नहीं करोगी तो रसोइये मेरे कलेवेके लिये तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे' ॥ ९ ॥

तां भर्त्स्यमानां सम्प्रेक्ष्य राक्षसेन्द्रेण जानकीम्।
देवगन्धर्वकन्यास्ता विषेदुर्विकृतेक्षणाः ॥ १० ॥

राक्षसराज रावणके द्वारा जनकनन्दिनी सीताको इस प्रकार धमकायी जाती देख देवताओं और गन्धर्वोंकी कन्याओंको बड़ा विषाद हुआ। उनकी आँखें विकृत हो गयीं॥१०॥

ओष्ठप्रकारैरपरा नेत्रैर्वक्त्रैस्तथापराः।
सीतामाश्वासयामासुस्तर्जितां तेन रक्षसा ॥ ११ ॥

तब उनमेंसे किसीने ओठोंसे, किसीने नेत्रोंसे तथा किसीने मुँहके संकेतसे उस राक्षसद्वारा डाँटी जाती हुई सीताको धैर्य बँधाया ॥ ११ ॥

ताभिराश्वासिता सीता रावणं राक्षसाधिपम्।
उवाचात्महितं वाक्यं वृत्तशौटीर्यगर्वितम् ॥ १२ ॥

उनके धैर्य बँधानेपर सीताने राक्षसराज रावणसे अपने सदाचार (पातिव्रत्य) और पतिके शौर्यके अभिमानसे पूर्ण हितकर वचन कहा—॥ १२ ॥

नूनं न ते जनः कश्चिदस्मिन्निःश्रेयसि स्थितः।
निवारयति यो न त्वां कर्मणोऽस्माद् विगर्हितात् ॥ १३ ॥

'निश्चय ही इस नगरमें कोई भी पुरुष तेरा भला चाहनेवाला नहीं है, जो तुझे इस निन्दित कर्मसे रोके ॥१३॥

मां हि धर्मात्मनः पत्नीं शचीमिव शचीपतेः।
त्वदन्यस्त्रिषु लोकेषु प्रार्थयेन्मनसापि कः ॥ १४ ॥

'जैसे शची इन्द्रकी धर्मपत्नी हैं, उसी प्रकार मैं धर्मात्मा भगवान् श्रीरामकी पत्नी हूँ। त्रिलोकीमें तेरे सिवा दूसरा कौन है, जो मनसे भी मुझे प्राप्त करनेकी इच्छा करे ॥१४॥

राक्षसाधम रामस्य भार्याममिततेजसः।
उक्तवानसि यत् पापं क्व गतस्तस्य मोक्ष्यसे ॥ १५ ॥

'नीच राक्षस! तूने अमित तेजस्वी श्रीरामकी भार्यासे जो पापकी बात कही है, उसके फलस्वरूप दण्डसे तू कहाँ जाकर छुटकारा पायेगा? ॥ १५ ॥

यथा दृप्तश्च मातङ्गः शशश्च सहितौ वने।
तथा द्विरदवद् रामस्त्वं नीच शशवत् स्मृतः॥ १६ ॥

'जिस प्रकार वनमें कोई मतवाला हाथी और कोई खरगोश दैववश एक दूसरेके साथ युद्धके लिये तुल जायँ, वैसे ही भगवान् श्रीराम और तू है। नीच निशाचर! भगवान् राम तो गजराजके समान हैं और तू खरगोशके तुल्य है ॥१६॥

स त्वमिक्ष्वाकुनाथं वै क्षिपन्निह न लज्जसे।
चक्षुषो विषये तस्य न यावदुपगच्छसि ॥ १७ ॥

'अरे! इक्ष्वाकुनाथ श्रीरामका तिरस्कार करते तुझे लज्जा नहीं आती। तू जबतक उनकी आँखोंके सामने नहीं जाता, तबतक जो चाहे कह ले ॥ १७ ॥

इमे ते नयने क्रूरे विकृते कृष्णपिङ्गले।
क्षितौ न पतिते कस्मान्मामनार्य निरीक्षतः ॥ १८ ॥

'अनार्य! मेरी ओर दृष्टि डालते समय तेरी ये क्रूर और विकारयुक्त काली-पीली आँखें पृथ्वीपर क्यों नहीं गिर पड़ीं? ॥ १८ ॥

तस्य धर्मात्मनः पत्नी स्नुषा दशरथस्य च।
कथं व्याहरतो मां ते न जिह्वा पाप शीर्यति ॥ १९ ॥

'मैं धर्मात्मा श्रीरामकी धर्मपत्नी और महाराज दशरथकी पुत्रवधू हूँ। पापी! मुझसे पापकी बातें करते समय तेरी जीभ क्यों नहीं गल जाती है? ॥ १९ ॥

असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा ॥ २० ॥

'दशमुख रावण! मेरा तेज ही तुझे भस्म कर डालनेके लिये पर्याप्त है। केवल श्रीरामकी आज्ञा न होनेसे और अपनी तपस्याको सुरक्षित रखनेके विचारसे मैं तुझे भस्म नहीं कर रही हूँ ॥ २० ॥

नापहर्तुमहं शक्या तस्य रामस्य धीमतः।
विधिस्तव वधार्थाय विहितो नात्र संशयः ॥ २१ ॥

'मैं मतिमान् श्रीरामकी भार्या हूँ, मुझे हर ले आनेकी शक्ति तेरे अंदर नहीं थी। निःसंदेह तेरे वधके लिये ही विधाताने यह विधान रच दिया है ॥ २१ ॥

शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च।
अपोह्य रामं कस्माच्चिद् दारचौर्यं त्वया कृतम् ॥ २२ ॥

'तू तो बड़ा शूरवीर बनता है, कुबेरका भाई है और तेरे पास सेनाएँ भी बहुत हैं, फिर श्रीरामको छलसे दूर हटाकर क्यों तूने उनकी स्त्रीकी चोरी की है?' ॥ २२ ॥

सीताया वचनं श्रुत्वा रावणो राक्षसाधिपः।
विवृत्य नयने क्रूरे जानकीमन्ववैक्षत ॥ २३ ॥

सीताकी ये बातें सुनकर राक्षसराज रावणने उन जनकदुलारीकी ओर आँखें तरेरकर देखा। उसकी दृष्टिसे क्रूरता टपक रही थी ॥ २३ ॥

नीलजीमूतसंकाशो महाभुजशिरोधरः।
सिंहसत्त्वगतिः श्रीमान् दीप्तजिह्वोग्रलोचनः ॥ २४ ॥

वह नीलमेघके समान काला और विशालकाय था। उसकी भुजाएँ और ग्रीवा बड़ी थीं। वह गति और पराक्रममें सिंहके समान था और तेजस्वी दिखायी देता था। उसकी जीभ आगकी लपटके समान लपलपा रही थी तथा नेत्र बड़े भयंकर प्रतीत होते थे ॥ २४ ॥

चलाग्रमुकुटप्रांशुश्चित्रमाल्यानुलेपनः ।
रक्तमाल्याम्बरधरस्तप्ताङ्गदविभूषणः ॥ २५ ॥
श्रोणीसूत्रेण महता मेचकेन सुसंवृतः ।
अमृतोत्पादने नद्धो भुजङ्गेनेव मन्दरः ॥ २६ ॥

क्रोधके कारण उसके मुकुटका अग्रभाग हिल रहा था, जिससे वह बहुत ऊँचा जान पड़ता था। उसने तरह-तरहके हार और अनुलेपन धारण कर रक्खे थे तथा पक्के सोनेके बने हुए बाजूबंद उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह लाल रंगके फूलोंकी माला और लाल वस्त्र पहने हुए था। उसकी कमरके चारों ओर काले रंगका लंबा कटिसूत्र बँधा हुआ था, जिससे वह अमृत-मन्थनके समय वासुकिसे लिपटे हुए मन्दराचलके समान जान पड़ता था ॥ २५-२६॥

ताभ्यां स परिपूर्णाभ्यां भुजाभ्यां राक्षसेश्वरः ।
शुशुभेऽचलसंकाशः शृङ्गाभ्यामिव मन्दरः ॥ २७ ॥

पर्वतके समान विशालकाय राक्षसराज रावण अपनी दोनों परिपुष्ट भुजाओंसे उसी प्रकार शोभा पा रहा था, मानो दो शिखरोंसे मन्दराचल सुशोभित हो रहा हो ।२७।

तरुणादित्यवर्णाभ्यां कुण्डलाभ्यां विभूषितः ।
रक्तपल्लवपुष्पाभ्यामशोकाभ्यामिवाचलः ॥ २८ ॥

प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुण-पीत कान्तिवाले दो कुण्डल उसके कानोंकी शोभा बढ़ा रहे थे, मानो लाल पल्लवों और फूलोंसे युक्त दो अशोक वृक्ष किसी पर्वतको सुशोभित कर रहे हों ॥ २८ ॥

स कल्पवृक्षप्रतिमो वसन्त इव मूर्तिमान् ।
श्मशानचैत्यप्रतिमो भूषितोऽपि भयंकरः ॥ २९ ॥

वह अभिनव शोभासे सम्पन्न होकर कल्पवृक्ष एवं मूर्तिमान् वसन्तके समान जान पड़ता था। आभूषणोंसे विभूषित होनेपर भी श्मशानचैत्य[1] (मरघटमें बने हुए देवालय) की भाँति भयंकर प्रतीत होता था ॥ २९ ॥

अवेक्षमाणो वैदेहीं कोपसंरक्तलोचनः ।
उवाच रावणः सीतां भुजङ्ग इव निःश्वसन् ॥ ३० ॥

रावणने क्रोधसे लाल आँखें करके विदेहकुमारी सीताकी ओर देखा और फुफकारते हुए सर्पके समान लंबी साँसें खींचकर कहा—॥ ३० ॥

अनयेनाभिसम्पन्नमर्थहीनमनुव्रते ।
नाशयाम्यहमद्य त्वां सूर्यः संध्यामिवौजसा ॥ ३१ ॥

'अन्यायी और निर्धन मनुष्यका अनुसरण करनेवाली नारी! जैसे सूर्यदेव अपने तेजसे प्रातःकालिक संध्याके अन्धकारको नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार आज मैं तेरा विनाश किये देता हूँ' ॥ ३१ ॥

इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः ।
संददर्श ततः सर्वा राक्षसीर्घोरदर्शनाः ॥ ३२ ॥

मिथिलेशकुमारीसे ऐसा कहकर शत्रुओंको रुलानेवाले राजा रावणने भयंकर दिखायी देनेवाली समस्त राक्षसियोंकी ओर देखा ॥ ३२ ॥

एकाक्षीमेककर्णां च कर्णप्रावरणां तथा ।
गोकर्णीं हस्तिकर्णीं च लम्बकर्णीमकर्णिकाम् ॥ ३३ ॥
हस्तिपद्यश्वपद्यौ च गोपदीं पादचूलिकाम् ।
एकाक्षीमेकपादीं च पृथुपादीमपादिकाम् ॥ ३४ ॥
अतिमात्रशिरोग्रीवामतिमात्रकुचोदरीम् ।
अतिमात्रास्यनेत्रां च दीर्घजिह्वानखामपि ॥ ३५ ॥
अनासिकां सिंहमुखीं गोमुखीं सूकरीमुखीम् ।
यथा मद्वशगा सीता क्षिप्रं भवति जानकी ॥ ३६ ॥
तथा कुरुत राक्षस्यः सर्वाः क्षिप्रं समेत्य वा ।
प्रतिलोमानुलोमैश्च सामदानादिभेदनैः ॥ ३७ ॥
आवर्जयत वैदेहीं दण्डस्योद्यमनेन च ।

उसने एकाक्षी (एक आँखवाली), एककर्णा (एक कानवाली), कर्णप्रावरणा ('लंबे कानोंसे अपने शरीरको ढक लेनेवाली), गोकर्णी (गौके-से कानोंवाली), हस्तिकर्णी (हाथीके समान कानोंवाली), लंबकर्णी (लंबे कानवाली), अकर्णिका (बिना कानकी), हस्तिपदी (हाथीके-से पैरोंवाली), अश्वपदी (घोड़ेके समान पैरवाली), गोपदी (गायके समान पैरवाली), पादचूलिका (केशयुक्त पैरोंवाली), एकाक्षी, एकपादी (एक पैरवाली), पृथुपादी (मोटे पैरवाली), अपादिका (बिना पैरोंकी), अतिमात्रशिरोग्रीवा (विशाल सिर और गर्दनवाली), अतिमात्रकुचोदरी (बहुत बड़े-बड़े स्तन और पेटवाली), अतिमात्रास्यनेत्रा (विशाल मुख और नेत्रवाली), दीर्घजिह्वानखा (लंबी जीभ और नखोंवाली), अनासिका (बिना नाककी), सिंहमुखी (सिंहके समान मुखवाली), गोमुखी (गौके समान मुखवाली) तथा सूकरीमुखी (सूकरीके समान मुखवाली)—इन सब राक्षसियोंसे कहा—'निशाचरियो! तुम सब लोग मिलकर अथवा अलग-अलग शीघ्र ही ऐसा प्रयत्न करो, जिससे जनककिशोरी सीता बहुत जल्द मेरे वशमें आ जाय।

---

१. प्राचीनकालमें नगरकी श्मशानभूमिके पास एक गोलाकार देवालय-सा बना रहता था, जहाँ राजाकी आज्ञासे प्राणदण्डके अपराधियोंका जल्लादोंके द्वारा वध कराया जाता था। जब वहाँ किसीको प्राणदण्ड देनेका अवसर आता, तब उस देवालयको लीप-पोतकर फूलोंकी बन्दनवारोंसे सजाया जाता था। उस विभूषित श्मशानचैत्यको देखते ही लोग यह सोचकर भयभीत हो उठते थे कि आज यहाँ किसीके जीवनका अन्त होनेवाला है। इस तरह जैसे वह श्मशानचैत्य विभूषित होनेपर भी भयंकर लगता था, उसी प्रकार रावण सुन्दर शृङ्गार करके भी सीताको भयानक प्रतीत होता था; क्योंकि वह उनके सतीत्वको नष्ट करना चाहता था।

अनुकूल-प्रतिकूल उपायोंसे, साम, दान और भेदनीतिसे तथा दण्डका भी भय दिखाकर विदेहकुमारी सीताको वशमें लानेकी चेष्टा करो' ॥ ३३—३७½ ॥

इति प्रतिसमादिश्य राक्षसेन्द्रः पुनः पुनः ॥ ३८ ॥
काममन्युपरीतात्मा जानकीं प्रति गर्जत ।

राक्षसियोंको इस प्रकार बारंबार आज्ञा देकर काम और क्रोधसे व्याकुल हुआ राक्षसराज रावण जानकीजीकी ओर देखकर गर्जना करने लगा ॥ ३८½ ॥

उपगम्य ततः क्षिप्रं राक्षसी धान्यमालिनी ॥ ३९ ॥
परिष्वज्य दशग्रीवमिदं वचनमब्रवीत् ।

तदनन्तर राक्षसियोंकी स्वामिनी मन्दोदरी तथा धान्यमालिनी नामवाली राक्षस-कन्या शीघ्र रावणके पास आयीं और उसका आलिङ्गन करके बोलीं—॥ ३९½ ॥

मया क्रीड महाराज सीतया किं तवानया ॥ ४० ॥
विवर्णया कृपणया मानुष्या राक्षसेश्वर ।

'महाराज राक्षसराज ! आप मेरे साथ क्रीडा कीजिये । इस कान्तिहीन और दीन मानव-कन्या सीतासे आपको क्या प्रयोजन है ? ॥ ४०½ ॥

नूनमस्यां महाराज न देवा भोगसत्तमान् ॥ ४१ ॥
विदधत्यमरश्रेष्ठास्तव बाहुबलार्जितान् ।

'महाराज ! निश्चय ही देवश्रेष्ठ ब्रह्माजीने इसके भाग्यमें आपके बाहुबलसे उपार्जित दिव्य एवं उत्तम भोग नहीं लिखे हैं ॥ ४१½ ॥

अकामां कामयानस्य शरीरमुपतप्यते ॥ ४२ ॥
इच्छतीं कामयानस्य प्रीतिर्भवति शोभना ।

'प्राणनाथ ! जो स्त्री अपनेसे प्रेम नहीं करती, उसकी कामना करनेवाले पुरुषके शरीरमें केवल ताप ही होता है और अपने प्रति अनुराग रखनेवाली स्त्रीकी कामना करनेवालेको उत्तम प्रसन्नता प्राप्त होती है' ॥ ४२½ ॥

एवमुक्तस्तु राक्षस्या समुत्क्षिप्तस्ततो बली ।
प्रहसन् मेघसंकाशो राक्षसः स न्यवर्तत ॥ ४३ ॥

जब राक्षसीने ऐसा कहा और उसे दूसरी ओर वह हटा ले गयी; तब मेघके समान काला और बलवान् राक्षस रावण जोर-जोरसे हँसता हुआ महलकी ओर लौट पड़ा ॥ ४३ ॥

प्रस्थितः स दशग्रीवः कम्पयन्निव मेदिनीम् ।
ज्वलद्भास्करसंकाशं प्रविवेश निवेशनम् ॥ ४४ ॥

अशोकवाटिकासे प्रस्थित होकर पृथ्वीको कम्पित-सी करते हुए दशग्रीवने उद्दीप्त सूर्यके सदृश प्रकाशित होनेवाले अपने भवनमें प्रवेश किया ॥ ४४ ॥

देवगन्धर्वकन्याश्च नागकन्याश्च तास्ततः ।
परिवार्य दशग्रीवं प्रविशुस्ता गृहोत्तमम् ॥ ४५ ॥

तदनन्तर देवता, गन्धर्व और नागोंकी कन्याएँ भी रावणको सब ओरसे घेरकर उसके साथ ही उस उत्तम राजभवनमें चली गयीं ॥ ४५ ॥

स मैथिलीं धर्मपरामवस्थितां
प्रवेपमानां परिभर्त्स्य रावणः ।
विहाय सीतां मदनेन मोहितः
स्वमेव वेश्म प्रविवेश रावणः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार अपने धर्ममें तत्पर, स्थिरचित्त और भयसे काँपती हुई मिथिलेशकुमारी सीताको धमकाकर काममोहित रावण अपने ही महलमें चला गया ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें बाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २२ ॥

* * *

त्रयोविंशः सर्गः

राक्षसियोंका सीताजीको समझाना

इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः ।
संदिश्य च ततः सर्वा राक्षसीर्निर्जगाम ह ॥ १ ॥

शत्रुओंको रुलानेवाला राजा रावण सीताजीसे पूर्वोक्त बातें कहकर तथा सब राक्षसियोंको उन्हें वशमें लानेके लिये आदेश दे वहाँसे निकल गया ॥ १ ॥

निष्क्रान्ते राक्षसेन्द्रे तु पुनरन्तःपुरं गते ।
राक्षस्यो भीमरूपास्ताः सीतां समभिदुद्रुवुः ॥ २ ॥

अशोकवाटिकासे निकलकर जब राक्षसराज रावण अन्तःपुरको चला गया, तब वहाँ जो भयानक रूपवाली राक्षसियाँ थीं, वे सब चारों ओरसे दौड़ी हुई सीताके पास आयीं ॥ २ ॥

ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः ।
परं परुषया वाचा वैदेहीमिदमब्रुवन् ॥ ३ ॥

विदेहकुमारी सीताके समीप आकर क्रोधसे व्याकुल हुई उन राक्षसियोंने अत्यन्त कठोर वाणीद्वारा उनसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया—॥ ३ ॥

पौलस्त्यस्य वरिष्ठस्य रावणस्य महात्मनः ।
दशग्रीवस्य भार्यात्वं सीते न बहु मन्यसे ॥ ४ ॥

'सीते ! तुम पुलस्त्यजीके कुलमें उत्पन्न हुए सर्वश्रेष्ठ दशग्रीव महामना रावणकी भार्या बनना भी कोई बहुत बड़ी बात नहीं समझतीं ?' ॥ ४ ॥

ततस्त्वेकजटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
आमन्त्र्य क्रोधताम्राक्षी सीतां करतलोदरीम् ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् एकजटा नामवाली राक्षसीने क्रोधसे लाल आँखें करके कृशोदरी सीताको पुकारकर कहा—॥ ५ ॥

प्रजापतीनां षण्णां तु चतुर्थोऽयं प्रजापतिः ।
मानसो ब्रह्मणः पुत्रः पुलस्त्य इति विश्रुतः ॥ ६ ॥

'विदेहकुमारी ! पुलस्त्यजी छः[1] प्रजापतियोंमें चौथे हैं और ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं । इस रूपमें उनकी सर्वत्र ख्याति है ॥ ६ ॥

पुलस्त्यस्य तु तेजस्वी महर्षिर्मानसः सुतः ।
नाम्ना स विश्रवा नाम प्रजापतिसमप्रभः ॥ ७ ॥

'पुलस्त्यजीके मानस पुत्र तेजस्वी महर्षि विश्रवा हैं । वे भी प्रजापतिके समान ही प्रकाशित होते हैं ॥ ७ ॥

तस्य पुत्रो विशालाक्षि रावणः शत्रुरावणः ।
तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि ॥ ८ ॥
मयोक्तं चारुसर्वाङ्गि वाक्यं किं नानुमन्यसे ।

'विशाललोचने ! ये शत्रुओंको रुलानेवाले महाराज रावण उन्हींके पुत्र हैं और समस्त राक्षसोंके राजा हैं । तुम्हें इनकी भार्या हो जाना चाहिये । सर्वाङ्गसुन्दरी ! मेरी इस कही हुई बातका तुम अनुमोदन क्यों नहीं करतीं ?' ॥ ८½ ॥

ततो हरिजटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥
विवृत्य नयने कोपान्मार्जारसदृशेक्षणा ।
येन देवास्त्रयस्त्रिंशद् देवराजश्च निर्जितः ॥ १० ॥
तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि ।

इसके बाद बिल्लीके समान भूरे आँखोंवाली हरिजटा नामकी राक्षसीने क्रोधसे आँखें फाड़कर कहना आरम्भ किया—'अरी ! जिन्होंने तैंतीसों[2] देवताओं तथा देवराज इन्द्रको भी परास्त कर दिया है, उन राक्षसराज रावणकी रानी तो तुम्हें अवश्य बन जाना चाहिये ॥ ९-१०½ ॥

वीर्योत्सिक्तस्य शूरस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः ।
बलिनो वीर्ययुक्तस्य भार्यात्वं किं न लिप्ससे ॥ ११ ॥

'उन्हें अपने पराक्रमपर गर्व है । वे युद्धसे पीछे न हटनेवाले शूरवीर हैं । ऐसे बल-पराक्रमसम्पन्न पुरुषकी भार्या बनना तुम क्यों नहीं चाहती हो ? ॥ ११ ॥

प्रियां बहुमतां भार्यां त्यक्त्वा राजा महाबलः ।
सर्वासां च महाभागां त्वामुपैष्यति रावणः ॥ १२ ॥
समृद्धं स्त्रीसहस्रेण नानारत्नोपशोभितम् ।
अन्तःपुरं तदुत्सृज्य त्वामुपैष्यति रावणः ॥ १३ ॥

'महाबली राजा रावण अपनी अधिक प्रिय और सम्मानित भार्या मन्दोदरीको भी, जो सबकी स्वामिनी हैं, छोड़कर तुम्हारे पास पधारेंगे । तुम्हारा कितना महान् सौभाग्य है । वे सहस्रों रमणियोंसे भरे हुए और अनेक प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित उस अन्तःपुरको छोड़कर तुम्हारे पास पधारेंगे (अतः तुम्हें उनकी प्रार्थना मान लेनी चाहिये)' ॥ १२-१३ ॥

अन्या तु विकटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
असकृद् भीमवीर्येण नागा गन्धर्वदानवाः ।
निर्जिताः समरे येन स ते पार्श्वमुपागतः ॥ १४ ॥
तस्य सर्वसमृद्धस्य रावणस्य महात्मनः ।
किमर्थं राक्षसेन्द्रस्य भार्यात्वं नेच्छसेऽधमे ॥ १५ ॥

तदनन्तर विकटा नामवाली दूसरी राक्षसीने कहा—'जिन भयानक पराक्रमी राक्षसराजने नागों, गन्धर्वों और दानवोंको भी समराङ्गणमें बारंबार परास्त किया है, वे ही तुम्हारे पास पधारे थे । नीच नारी ! उन्हीं सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न महामना राक्षसराज रावणकी भार्या बननेके लिये तुम्हें क्यों इच्छा नहीं होती है ?' ॥ १४-१५ ॥

ततस्तां दुर्मुखी नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
यस्य सूर्यो न तपति भीतो यस्य स मारुतः ।
न वाति स्मायतापाङ्गि किं त्वं तस्य न तिष्ठसे ॥ १६ ॥

फिर उनसे दुर्मुखी नामवाली राक्षसीने कहा—'विशाललोचने ! जिनसे भय मानकर सूर्य तपना छोड़ देता है और वायुकी गति रुक जाती है, उनके पास तुम क्यों नहीं रहतीं ? ॥ १६ ॥

पुष्पवृष्टिं च तरवो मुमुचुर्यस्य वै भयात् ।
शैलाः सुस्रुवुः पानीयं जलदाश्च यदेच्छति ॥ १७ ॥
तस्य नैर्ऋतराजस्य राजराजस्य भामिनि ।
किं त्वं न कुरुषे बुद्धिं भार्यार्थे रावणस्य हि ॥ १८ ॥

'भामिनि ! जिनके भयसे वृक्ष फूल बरसाने लगते हैं और जो जब इच्छा करते हैं, तभी पर्वत तथा मेघ जलका स्रोत बहाने लगते हैं । उन्हीं राजाधिराज राक्षसराज रावणकी भार्या बननेके लिये तुम्हारे मनमें क्यों नहीं विचार होता है ? ॥ १७-१८ ॥

साधु ते तत्त्वतो देवि कथितं साधु भामिनि ।

---

[1] मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु—ये छः प्रजापति हैं ।

[2] बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र, आठ वसु और दो अश्विनीकुमार—ये तैंतीस देवता हैं ।

गृहाण सुस्मिते वाक्यमन्यथा न भविष्यसि ॥ १९ ॥

'देवि ! मैंने तुमसे उत्तम, यथार्थ और हितकी बात कही है । सुन्दर मुस्कानवाली सीते ! तुम मेरी बात मान लो, नहीं तो तुम्हें प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा' ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें तेईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः

सीताजीका राक्षसियोंकी बात माननेसे इनकार कर देना तथा राक्षसियोंका उन्हें मारने-काटनेकी धमकी देना

ततः सीतां समस्तास्ता राक्षस्यो विकृताननाः ।
परुषं परुषानर्हामूचुस्तद्वाक्यमप्रियम् ॥ १ ॥

तदनन्तर विकराल मुखवाली उन समस्त राक्षसियोंने जो कटुवचन सुननेके योग्य नहीं थीं, उन सीतासे अप्रिय तथा कठोर वचन कहना आरम्भ किया—॥ १ ॥

किं त्वमन्तःपुरे सीते सर्वभूतमनोरमे ।
महार्हशयनोपेते न वासमनुमन्यसे ॥ २ ॥

'सीते ! रावणका अन्तःपुर समस्त प्राणियोंके लिये मनोरम है । वहाँ बहुमूल्य शय्याएँ बिछी रहती हैं । उस अन्तःपुरमें तुम्हारा निवास हो, इसके लिये तुम क्यों नहीं अनुमति देतीं ? ॥ २ ॥

मानुषी मानुषस्यैव भार्यात्वं बहु मन्यसे ।
प्रत्याहर मनो रामान्नैवं जातु भविष्यति ॥ ३ ॥

'तुम मानुषी हो, इसलिये मनुष्यकी भार्याका जो पद है, उसीको तुम अधिक महत्त्व देती हो; किंतु अब तुम रामकी ओरसे अपना मन हटा लो, अन्यथा कदापि जीवित नहीं रहोगी ॥ ३ ॥

त्रैलोक्यवसुभोक्तारं रावणं राक्षसेश्वरम् ।
भर्तारमुपसंगम्य विहरस्व यथासुखम् ॥ ४ ॥

'तुम त्रिलोकीके ऐश्वर्यको भोगनेवाले राक्षसराज रावणको पतिरूपमें पाकर आनन्दपूर्वक विहार करो ॥ ४ ॥

मानुषी मानुषं तं तु राममिच्छसि शोभने ।
राज्याद् भ्रष्टमसिद्धार्थं विक्लवन्तमनिन्दिते ॥ ५ ॥

'अनिन्द्य सुन्दरि ! तुम मानवी हो, इसीलिये मनुष्य-जातीय रामको ही चाहती हो; परंतु राम इस समय राज्यसे भ्रष्ट हैं । उनका कोई मनोरथ सफल नहीं होता है तथा वे सदा व्याकुल रहते हैं' ॥ ५ ॥

राक्षसीनां वचः श्रुत्वा सीता पद्मनिभेक्षणा ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥

राक्षसियोंकी ये बातें सुनकर कमलनयनी सीताने आँसू-भरे नेत्रोंसे उनकी ओर देखकर इस प्रकार कहा—॥ ६ ॥

यदिदं लोकविद्विष्टमुदाहरत संगताः ।
नैतन्मनसि वाक्यं मे किल्बिषं प्रतितिष्ठति ॥ ७ ॥

'तुम सब मिलकर मुझसे जो यह लोक-विरुद्ध प्रस्ताव कर रही हो, तुम्हारा यह पापपूर्ण वचन मेरे हृदयमें एक क्षणके लिये भी नहीं ठहर पाता है ॥ ७ ॥

न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति ।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ॥ ८ ॥

'एक मानवकन्या किसी राक्षसकी भार्या नहीं हो सकती । तुम सब लोग भले ही मुझे खा जाओ; किंतु मैं तुम्हारी बात नहीं मान सकती ॥ ८ ॥

दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः ।
तं नित्यमनुरक्तास्मि यथा सूर्यं सुवर्चला ॥ ९ ॥ ✓

'मेरे पति दीन हों अथवा राज्यहीन—वे ही मेरे स्वामी हैं, वे ही मेरे गुरु हैं, मैं सदा उन्हींमें अनुरक्त हूँ और रहूँगी । जैसे सुवर्चला सूर्यमें अनुरक्त रहती हैं ॥ ९ ॥

यथा शची महाभागा शक्रं समुपतिष्ठति । ✓
अरुन्धती वसिष्ठं च रोहिणी शशिनं यथा ॥ १० ॥
लोपामुद्रा यथागस्त्यं सुकन्या च्यवनं यथा ।
सावित्री सत्यवन्तं च कपिलं श्रीमती यथा ॥ ११ ॥
सौदासं मदयन्तीव केशिनी सगरं यथा ।
नैषधं दमयन्तीव भैमी पतिमनुव्रता ॥ १२ ॥
तथाहमिक्ष्वाकुवरं रामं पतिमनुव्रता ।

'जैसे महाभागा शची इन्द्रकी सेवामें उपस्थित होती हैं, जैसे देवी अरुन्धती महर्षि वसिष्ठमें, रोहिणी चन्द्रमामें, लोपामुद्रा अगस्त्यमें, सुकन्या च्यवनमें, सावित्री सत्यवान्‌में, श्रीमती कपिलमें, मदयन्ती सौदासमें, केशिनी सगरमें तथा भीमकुमारी दमयन्ती अपने पति निषधनरेश नलमें अनुराग रखती हैं, उसी प्रकार मैं भी अपने पतिदेव इक्ष्वाकुवंश-शिरोमणि भगवान् श्रीराममें अनुरक्त हूँ' ॥ १०—१२½ ॥

सीताया वचनं श्रुत्वा राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः ।
भर्त्सयन्ति स्म परुषैर्वाक्यै रावणचोदिताः ॥ १३ ॥

सीताकी बात सुनकर राक्षसियोंके क्रोधकी सीमा न रही । वे रावणकी आज्ञाके अनुसार कठोर वचनोंद्वारा उन्हें धमकाने लगीं ॥ १३ ॥

अवलीनः स निर्वाक्यो हनुमाञ्शिंशपाद्रुमे ।
सीतां संतर्जयन्तीस्ता राक्षसीरशृणोत् कपिः ॥ १४ ॥

अशोक वृक्षमें चुपचाप छिपे बैठे हुए वानर हनुमान्जी सीताको फटकारती हुई राक्षसियोंकी बातें सुनते रहे ॥ १४ ॥

तामभिक्रम्य संरब्धा वेपमानां समन्ततः ।
भृशं संलिलिहुर्दीप्तान् प्रलम्बान् दशनच्छदान् ॥ १५॥

वे सब राक्षसियाँ कुपित हो वहाँ काँपती हुई सीतापर चारों ओरसे टूट पड़ीं और अपने लंबे एवं चमकीले ओठोंको बारंबार चाटने लगीं ॥ १५ ॥

ऊचुश्च परमक्रुद्धाः प्रगृह्याशु परश्वधान् ।
नेयमर्हति भर्तारं रावणं राक्षसाधिपम् ॥ १६ ॥

उनका क्रोध बहुत बढ़ा हुआ था। वे सब-की-सब तुरंत हाथोंमें फरसे लेकर बोल उठीं—'यह राक्षसराज रावणको पतिरूपमें पाने योग्य है ही नहीं' ॥ १६ ॥

सा भर्त्स्यमाना भीमाभी राक्षसीभिर्वराङ्गना ।
सा बाष्पमपमार्जन्ती शिंशपां तामुपागमत् ॥ १७ ॥

उन भयानक राक्षसियोंके बारंबार डाँटने और धमकानेपर सर्वाङ्गसुन्दरी कल्याणी सीता अपने आँसू पोंछती हुई उसी अशोक वृक्षके नीचे चली आयीं (जिसके ऊपर हनुमान्जी छिपे बैठे थे) ॥ १७ ॥

ततस्तां शिंशपां सीता राक्षसीभिः समावृता।
अभिगम्य विशालाक्षी तस्थौ शोकपरिप्लुता ॥ १८ ॥

विशाललोचना वैदेही शोक-सागरमें डूबी हुई थीं। इसलिये वहाँ चुपचाप बैठ गयीं । किंतु उन राक्षसियोंने वहाँ भी आकर उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ १८ ॥

तां कृशां दीनवदनां मलिनाम्बरवासिनीम् ।
भर्त्सयांचक्रिरे भीमा राक्षस्यस्ताः समन्ततः ॥ १९ ॥

वे बहुत ही दुर्बल हो गयी थीं। उनके मुखपर दीनता छा रही थी और उन्होंने मलिन वस्त्र पहन रक्खा था। उस अवस्थामें उन जनकनन्दिनीको चारों ओर खड़ी हुई भयानक राक्षसियोंने फिर धमकाना आरम्भ किया ॥ १९ ॥

ततस्तु विनता नाम राक्षसी भीमदर्शना ।
अब्रवीत् कुपिताकारा कराला निर्णतोदरी ॥ २० ॥

तदनन्तर विनता नामकी राक्षसी आगे बढ़ी। वह देखनेमें बड़ी भयंकर थी। उसकी देह क्रोधकी सजीव प्रतिमा जान पड़ती थी। उस विकराल राक्षसीके पेट भीतरकी ओर धँसे हुए थे। वह बोली—॥ २० ॥

सीते पर्याप्तमेतावद् भर्तुः स्नेहः प्रदर्शितः ।
सर्वत्रातिकृतं भद्रे व्यसनायोपकल्पते ॥ २१ ॥

'सीते ! तूने अपने पतिके प्रति जितना स्नेह दिखाया है, इतना ही बहुत है। भद्रे ! अति करना तो सब जगह दुःखका ही कारण होता है ॥ २१ ॥

परितुष्टास्मि भद्रं ते मानुषस्ते कृतो विधिः ।
ममापि तु वचः पथ्यं ब्रुवन्त्याः कुरु मैथिलि ॥ २२ ॥

'मिथिलेशकुमारी ! तुम्हारा भला हो। मैं तुमसे बहुत संतुष्ट हूँ; क्योंकि तुमने मानवोचित शिष्टाचारका अच्छी तरह पालन किया है। अब मैं भी तुम्हारे हितके लिये जो बात कहती हूँ, उसपर ध्यान दो—उसका शीघ्र पालन करो ॥ २२ ॥

रावणं भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम्।
विक्रान्तमापतन्तं च सुरेशमिव वासवम् ॥ २३ ॥

'समस्त राक्षसोंका भरण-पोषण करनेवाले महाराज रावणको तुम अपना पति स्वीकार कर लो। वे देवराज इन्द्रके समान बड़े पराक्रमी तथा रूपवान् हैं ॥ २३ ॥

दक्षिणं त्यागशीलं च सर्वस्य प्रियवादिनम् ।
मानुषं कृपणं रामं त्यक्त्वा रावणमाश्रय ॥ २४ ॥

'दीन-हीन मनुष्य रामका परित्याग करके सबसे प्रिय वचन बोलनेवाले, उदार और त्यागी रावणका आश्रय लो ॥ २४ ॥

दिव्याङ्गरागा वैदेहि दिव्याभरणभूषिता ।
अद्यप्रभृति लोकानां सर्वेषामीश्वरी भव ॥ २५ ॥

'विदेहराजकुमारी ! तुम आजसे समस्त लोकोंकी स्वामिनी बन जाओ और दिव्य अङ्गराग तथा दिव्य आभूषण धारण करो ॥ २५ ॥

अग्नेः स्वाहा यथा देवी शची वेन्द्रस्य शोभने ।
किं ते रामेण वैदेहि कृपणेन गतायुषा ॥ २६ ॥

'शोभने ! जैसे अग्निकी प्रिय पत्नी स्वाहा और इन्द्रकी प्राणवल्लभा शची हैं, उसी प्रकार तुम रावणकी प्रेयसी बन जाओ। विदेहकुमारी ! श्रीराम तो दीन हैं। उनकी आयु भी अब समाप्त हो चली है। उनसे तुम्हें क्या मिलेगा ? ॥

एतदुक्तं च मे वाक्यं यदि त्वं न करिष्यसि ।
अस्मिन् मुहूर्ते सर्वास्त्वां भक्षयिष्यामहे वयम्॥ २७ ॥

'यदि तुम मेरी कही हुई इस बातको नहीं मानोगी तो हम सब मिलकर तुम्हें इसी मुहूर्तमें अपना आहार बना लेंगी' ॥ २७ ॥

अन्या तु विकटा नाम लम्बमानपयोधरा ।
अब्रवीत् कुपिता सीतां मुष्टिमुद्यम्य तर्जती ॥ २८ ॥

तदनन्तर दूसरी राक्षसी सामने आयी। उसके लंबे-लंबे स्तन लटक रहे थे। उसका नाम विकटा था। वह कुपित हो मुक्का तानकर डाँटती हुई सीतासे बोली—॥ २८ ॥

बह्वन्यप्रतिरूपाणि वचनानि सुदुर्मते ।
अनुक्रोशान्मृदुत्वाच्च सोढानि तव मैथिलि ॥ २९ ॥

'अत्यन्त खोटी बुद्धिवाली मिथिलेशकुमारी ! अबतक हमलोगोंने अपने कोमल स्वभाववश तुमपर दया आ जानेके कारण तुम्हारी बहुत-सी अनुचित बातें सह ली हैं ॥ २९ ॥

न च नः कुरुषे वाक्यं हितं कालपुरस्कृतम् ।
आनीतासि समुद्रस्य पारमन्यैर्दुरासदम् ॥ ३० ॥
रावणान्तःपुरे घोरे प्रविष्टा चासि मैथिलि ।
रावणस्य गृहे रुद्धा अस्माभिस्त्वभिरक्षिता ॥ ३१ ॥

'इतनेपर भी तुम हमारी बात नहीं मानती हो। हमने तुम्हारे हितके लिये ही समयोचित सलाह दी थी। देखो, तुम्हें समुद्रके इस पार ले आया गया है, जहाँ पहुँचना दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन है। यहाँ भी रावणके भयानक अन्तःपुरमें तुम लाकर रक्खी गयी हो। मिथिलेशकुमारी! याद रक्खो, रावणके घरमें कैद हो और हम-जैसी राक्षसियाँ तुम्हारी चौकसी कर रही हैं ॥ ३०-३१ ॥

न त्वां शक्तः परित्रातुमपि साक्षात् पुरंदरः ।
कुरुष्व हितवादिन्या वचनं मम मैथिलि ॥ ३२ ॥

'मैथिलि! साक्षात् इन्द्र भी यहाँ तुम्हारी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। अतः मेरा कहना मानो, मैं तुम्हारे हितकी बात बता रही हूँ ॥ ३२ ॥

अलमश्रुनिपातेन त्यज शोकमनर्थकम् ।
भज प्रीतिं प्रहर्षं च त्यजन्ती नित्यदैन्यताम् ॥ ३३ ॥

'आँसू बहानेसे कुछ होने-जानेवाला नहीं है। यह व्यर्थका शोक त्याग दो। सदा छायी रहनेवाली दीनताको दूर करके अपने हृदयमें प्रसन्नता और उल्लासको स्थान दो ॥

सीते राक्षसराजेन परिक्रीड यथासुखम् ।
जानीमहे यथा भीरु स्त्रीणां यौवनमध्रुवम् ॥ ३४ ॥

'सीते! राक्षसराज रावणके साथ सुखपूर्वक क्रीडाविहार करो। भीरु! हम सभी स्त्रियाँ जानती हैं कि नारियोंका यौवन टिकनेवाला नहीं होता ॥ ३४ ॥

यावन्न ते व्यतिक्रामेत् तावत् सुखमवाप्नुहि ।
उद्यानानि च रम्याणि पर्वतोपवनानि च ॥ ३५ ॥
सह राक्षसराजेन चर त्वं मदिरेक्षणे ।
स्त्रीसहस्राणि ते देवि वशे स्थास्यन्ति सुन्दरि ॥ ३६ ॥

'जबतक तुम्हारा यौवन नहीं ढल जाता, तबतक सुख भोग लो। मदमत्त बना देनेवाले नेत्रोंसे शोभा पानेवाली सुन्दरी! तुम राक्षसराज रावणके साथ लङ्काके रमणीय उद्यानों और पर्वतीय उपवनोंमें विहार करो। देवि! ऐसा करनेसे सहस्रों स्त्रियाँ सदा तुम्हारी आज्ञाके अधीन रहेंगी ॥ ३५-३६ ॥

रावणं भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम् ।
उत्पाट्य वा ते हृदयं भक्षयिष्यामि मैथिलि ॥ ३७ ॥
यदि मे व्याहृतं वाक्यं न यथावत् करिष्यसि ।

'महाराज रावण समस्त राक्षसोंका भरण-पोषण करनेवाले स्वामी हैं। तुम उन्हें अपना पति बना लो। मैथिलि! याद रक्खो, मैंने जो बात कही है, यदि उसका ठीक-ठीक पालन नहीं करोगी तो मैं अभी तुम्हारा कलेजा निकालकर खा जाऊँगी' ॥ ३७½ ॥

ततश्चण्डोदरी नाम राक्षसी क्रूरदर्शना ॥ ३८ ॥
भ्रामयन्ती महच्छूलमिदं वचनमब्रवीत् ।

अब चण्डोदरी नामवाली राक्षसीकी बारी आयी। उसकी दृष्टिसे ही क्रूरता टपकती थी। उसने विशाल त्रिशूल घुमाते हुए यह बात कही—॥ ३८½ ॥

इमां हरिणशावाक्षीं त्रासोत्कम्पपयोधराम् ॥ ३९ ॥
रावणेन हृतां दृष्ट्वा दौर्हृदो मे महानयम् ।
यकृत्प्लीहं महत् क्रोडं हृदयं च सबन्धनम् ॥ ४० ॥
गात्राण्यपि तथा शीर्षं खादेयमिति मे मतिः ।

'महाराज रावण जब इसे हरकर ले आये थे, उस समय भयके मारे यह थर-थर काँप रही थी, जिससे इसके दोनों स्तन हिल रहे थे। उस दिन इस मृगशावकनयनी मानवकन्याको देखकर मेरे हृदयमें यह बड़ी भारी इच्छा जाग्रत् हुई—इसके जिगर, तिल्ली, विशाल वक्षःस्थल, हृदय, उसके आधारस्थान, अन्यान्य अङ्ग तथा सिरको मैं खा जाऊँ। इस समय भी मेरा ऐसा ही विचार है' ॥ ३९-४०½ ॥

ततस्तु प्रघसा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥ ४१ ॥
कण्ठमस्या नृशंसायाः पीडयामः किमास्यते ।
निवेद्यतां ततो राज्ञे मानुषी सा मृतेति ह ॥ ४२ ॥
नात्र कश्चन संदेहः खादतेति स वक्ष्यति ।

तदनन्तर प्रघसा नामक राक्षसी बोल उठी—'फिर तो हमलोग इस क्रूर-हृदया सीताका गला घोंट दें; अब चुपचाप बैठे रहनेकी क्या आवश्यकता है? इसे मारकर महाराजको सूचना दे दी जाय कि वह मानवकन्या मर गयी। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस समाचारको सुनकर महाराज यह आज्ञा दे देंगे कि तुम सब लोग उसे खा जाओ' ॥ ४१-४२½ ॥

ततस्त्वजामुखी नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥ ४३ ॥
विशस्येमां ततः सर्वान् समान् कुरुत पिण्डकान् ।
विभजाम ततः सर्वा विवादो मे न रोचते ॥ ४४ ॥
पेयमानीयतां क्षिप्रं माल्यं च विविधं बहु ।

तत्पश्चात् राक्षसी अजामुखीने कहा—'मुझे तो व्यर्थका वादविवाद अच्छा नहीं लगता। आओ, पहले इसे काटकर इसके बहुत-से टुकड़े कर डालें। वे सभी टुकड़े बराबर माप-तौलके होने चाहिये। फिर उन टुकड़ोंको हमलोग आपसमें बाँट लेंगी। साथ ही नाना प्रकारकी पेय-सामग्री तथा फूल-माला आदि भी शीघ्र ही प्रचुर मात्रामें मँगा ली जाय' ॥

ततः शूर्पणखा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥ ४५ ॥
अजामुख्या यदुक्तं वै तदेव मम रोचते ।
सुरा चानीयतां क्षिप्रं सर्वशोकविनाशिनी ॥ ४६ ॥
मानुषं मांसमास्वाद्य नृत्यामोऽथ निकुम्भिलाम् ।

तदनन्तर राक्षसी शूर्पणखाने कहा—'अजामुखीने जो बात कही है, वही मुझे भी अच्छी लगती है। समस्त शोकोंको नष्ट कर देनेवाली सुराको भी शीघ्र मँगवा लो। उसके साथ मनुष्यके मांसका आस्वादन करके हम निकुम्भिला देवीके सामने नृत्य करेंगी' ॥ ४५-४६½ ॥

एवं निर्भर्त्स्यमाना सा सीता सुरसुतोपमा ।
राक्षसीभिर्विरूपाभिर्धैर्यमुत्सृज्य रोदिति ॥ ४७ ॥

उन विकराल रूपवाली राक्षसियोंके द्वारा इस प्रकार धमकायी जानेपर देवकन्याके समान सुन्दरी सीता धैर्य छोड़कर फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पञ्चविंशः सर्गः

राक्षसियोंकी बात माननेसे इन्कार करके शोक-संतप्त सीताका विलाप करना

अथ तासां वदन्तीनां परुषं दारुणं बहु ।
राक्षसीनामसौम्यानां रुरोद जनकात्मजा ॥ १ ॥

जब वे क्रूर राक्षसियाँ इस प्रकारकी बहुत-सी कठोर एवं क्रूरतापूर्ण बातें कह रही थीं, उस समय जनकनन्दिनी सीता अधीर हो-होकर रो रही थीं ॥ १ ॥

एवमुक्ता तु वैदेही राक्षसीभिर्मनस्विनी ।
उवाच परमत्रस्ता बाष्पगद्गदया गिरा ॥ २ ॥

उन राक्षसियोंके इस प्रकार कहनेपर अत्यन्त भयभीत हुई मनस्विनी विदेहराजकुमारी सीता नेत्रोंसे आँसू बहाती गद्गद वाणीमें बोलीं—॥ २ ॥

न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति ।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ॥ ३ ॥

'राक्षसियो ! मनुष्यकी कन्या कभी राक्षसकी भार्या नहीं हो सकती। तुम्हारा जी चाहे तो तुम सब लोग मिलकर मुझे खा जाओ, परंतु मैं तुम्हारी बात नहीं मानूँगी' ॥ ३ ॥

सा राक्षसीमध्यगता सीता सुरसुतोपमा ।
न शर्म लेभे शोकार्ता रावणेनेव भर्त्सिता ॥ ४ ॥

राक्षसियोंके बीचमें बैठी हुई देवकन्याके समान सुन्दरी सीता रावणके द्वारा धमकायी जानेके कारण शोकसे आर्त-सी होकर चैन नहीं पा रही थीं ॥ ४ ॥

वेपते स्माधिकं सीता विशन्तीवाङ्गमात्मनः ।
भेड़िया **वने यूथपरिभ्रष्टा मृगी कोकैरिवार्दिता ॥ ५ ॥**

जैसे वनमें अपने यूथसे बिछुड़ी हुई मृगी भेड़ियोंसे पीड़ित होकर भयके मारे काँप रही हो, उसी प्रकार सीता जोर-जोरसे काँप रही थीं और इस तरह सिकुड़ी जा रही थीं, मानो अपने अङ्गोंमें ही समा जायँगी ॥ ५ ॥

✓ **सा त्वशोकस्य विपुलां शाखामालम्ब्य पुष्पिताम् ।**
चिन्तयामास शोकेन भर्तारं भग्नमानसा ॥ ६ ॥

उनका मनोरथ भङ्ग हो गया था। वे हताश-सी होकर अशोकवृक्षकी खिली हुई एक विशाल शाखाका सहारा ले शोकसे पीड़ित हो अपने पतिदेवका चिन्तन करने लगीं ॥

सा स्नापयन्ती विपुलौ स्तनौ नेत्रजलस्रवैः ।
चिन्तयन्ती न शोकस्य तदान्तमधिगच्छति ॥ ७ ॥

आँसुओंके प्रवाहसे अपने स्थूल उरोजोंका अभिषेक करती हुई वे चिन्तामें डूबी थीं और उस समय शोकका पार नहीं पा रही थीं ॥ ७ ॥

सा वेपमाना पतिता प्रवाते कदली यथा ।
राक्षसीनां भयत्रस्ता विवर्णवदनाभवत् ॥ ८ ॥

प्रचण्ड वायुके चलनेपर कम्पित होकर गिरे हुए केलेके वृक्षकी भाँति वे राक्षसियोंके भयसे त्रस्त हो पृथ्वीपर गिर पड़ीं। उस समय उनके मुखकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी॥

तस्याः सा दीर्घबहुला वेपन्त्याः सीतया तदा ।
ददृशे कम्पिता वेणी व्यालीव परिसर्पती ॥ ९ ॥

उस बेलामें काँपती हुई सीताकी विशाल एवं घनीभूत वेणी भी कम्पित हो रही थी, इसलिये वह रेंगती हुई सर्पिणीके समान दिखायी देती थी ॥ ९ ॥

सा निःश्वसन्ती शोकार्ता कोपोपहतचेतना ।
आर्ता व्यसृजदश्रूणि मैथिली विललाप च ॥ १० ॥

वे शोकसे पीड़ित होकर लंबी साँसें खींच रही थीं और क्रोधसे अचेत-सी होकर आर्तभावसे आँसू बहा रही थीं। उस समय मिथिलेशकुमारी इस प्रकार विलाप करने लगीं—॥१०॥

हा रामेति च दुःखार्ता हा पुनर्लक्ष्मणेति च ।
हा श्वश्रूर्मम कौसल्ये हा सुमित्रेति भामिनी ॥ ११ ॥

'हा राम ! हा लक्ष्मण ! हा मेरी सासु कौसल्ये ! हा आर्ये सुमित्रे !' बारंबार ऐसा कहकर दुःखसे पीड़ित हुई भामिनी सीता रोने-बिलखने लगीं ॥ ११ ॥

लोकप्रवादः सत्योऽयं पण्डितैः समुदाहृतः ।
✓ **अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा ॥ १२ ॥**

'हाय ! पण्डितोंने यह लोकोक्ति ठीक ही कही है कि 'किसी भी स्त्री या पुरुषकी मृत्यु बिना समय आये नहीं होती' ॥ १२ ॥

यत्राहमाभिः क्रूराभी राक्षसीभिरिहार्दिता ।
जीवामि हीना रामेण मुहूर्तमपि दुःखिता ॥ १३ ॥

'तभी तो मैं श्रीरामके दर्शनसे वञ्चित तथा इन क्रूर राक्षसियोंद्वारा पीड़ित होनेपर भी यहाँ मुहूर्तभर भी जी रही हूँ ॥ १३ ॥

एषाल्पपुण्या कृपणा विनशिष्याम्यनाथवत् ।
समुद्रमध्ये नौः पूर्णा वायुवेगैरिवाहता ॥ १४ ॥

'मैंने पूर्वजन्ममें बहुत थोड़े पुण्य किये थे, इसीलिये इस दीन दशामें पड़कर मैं अनाथकी भाँति मारी जाऊँगी । जैसे समुद्रके भीतर सामानसे भरी हुई नौका वायुके वेगसे आहत हो डूब जाती है, उसी प्रकार मैं भी नष्ट हो जाऊँगी ॥

भर्तारं तमपश्यन्ती राक्षसीवशमागता ।
सीदामि खलु शोकेन कूलं तोयहतं यथा ॥ १५ ॥

'मुझे पतिदेवके दर्शन नहीं हो रहे हैं। मैं इन राक्षसियोंके चंगुलमें फँस गयी हूँ और पानीके थपेड़ोंसे आहत हो कटते हुए कगारोंके समान शोकसे क्षीण होती जा रही हूँ ॥

तं पद्मदलपत्राक्षं सिंहविक्रान्तगामिनम् ।
धन्याः पश्यन्ति मे नाथं कृतज्ञं प्रियवादिनम् ॥ १६ ॥

'आज जिन लोगोंको सिंहके समान पराक्रमी और सिंहकी-सी चालवाले मेरे कमलदललोचन, कृतज्ञ और प्रियवादी प्राणनाथके दर्शन हो रहे हैं, वे धन्य हैं ॥ १६ ॥

सर्वथा तेन हीनाया रामेण विदितात्मना ।
तीक्ष्णं विषमिवास्वाद्य दुर्लभं मम जीवनम् ॥ १७ ॥

'उन आत्मज्ञानी भगवान् श्रीरामसे बिछुड़कर मेरा जीवित रहना उसी तरह सर्वथा दुर्लभ है, जैसे तेज विषका पान करके किसीका भी जीना अत्यन्त कठिन हो जाता है ॥

कीदृशं तु महापापं मया देहान्तरे कृतम् ।
तेनेदं प्राप्यते घोरं महादुःखं सुदारुणम् ॥ १८ ॥

'पता नहीं, मैंने पूर्व-जन्ममें दूसरे शरीरसे कैसा महान् पाप किया था, जिससे यह अत्यन्त कठोर, घोर और महान् दुःख मुझे प्राप्त हुआ है ! ॥ १८ ॥

जीवितं त्यक्तुमिच्छामि शोकेन महता वृता ।
राक्षसीभिश्च रक्षन्त्या रामो नासाद्यते मया ॥ १९ ॥

'इन राक्षसियोंके संरक्षणमें रहकर तो मैं अपने प्राणाराम श्रीरामको कदापि नहीं पा सकती, इसलिये महान् शोकसे घिर गयी हूँ और इससे तंग आकर अपने जीवनका अन्त कर देना चाहती हूँ ॥ १९ ॥

धिगस्तु खलु मानुष्यं धिगस्तु परवश्यताम् ।
न शक्यं यत् परित्यक्तुमात्मच्छन्देन जीवितम् ॥ २० ॥

'इस मानव-जीवन और परतन्त्रताको धिक्कार है, जहाँ अपनी इच्छाके अनुसार प्राणोंका परित्याग भी नहीं किया जा सकता' ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥ २५ ॥
इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें पचीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः

सीताका करुण-विलाप तथा अपने प्राणोंको त्याग देनेका निश्चय करना

प्रसक्ताश्रुमुखी त्वेवं ब्रुवती जनकात्मजा ।
अधोगतमुखी बाला विलप्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥
उन्मत्तेव प्रमत्तेव भ्रान्तचित्तेव शोचती ।
उपावृत्ता किशोरीव विचेष्टन्ती महीतले ॥ २ ॥

जनकनन्दिनी सीताके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी । उन्होंने अपना मुख नीचेकी ओर झुका लिया था । वे उपर्युक्त बातें कहती हुई ऐसी जान पड़ती थीं मानो उन्मत्त हो गयी हों—उनपर भूत सवार हो गया हो अथवा पित्त बढ़ जानेसे पागलोंका-सा प्रलाप कर रही हों अथवा दिग्भ्रम आदिके कारण, उनका चित्त भ्रान्त हो गया हो । वे शोकमग्न हो धरतीपर लोटती हुई बछेड़ीके समान पड़ी-पड़ी छटपटा रही थीं । उसी अवस्थामें सरलहृदया सीताने इस प्रकार विलाप करना आरम्भ किया—॥ १-२ ॥

राघवस्य प्रमत्तस्य रक्षसा कामरूपिणा ।
रावणेन प्रमथ्याहमानीता क्रोशती बलात् ॥ ३ ॥

'हाय ! इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले राक्षस मारीचके द्वारा जब रघुनाथजी दूर हटा दिये गये और मेरी ओरसे असावधान हो गये, उस अवस्थामें रावण मुझ रोती चिल्लाती हुई अबलाको बलपूर्वक उठाकर यहाँ ले आया ॥ ३ ॥

राक्षसीवशमापन्ना भर्त्स्यमाना च दारुणम् ।
चिन्तयन्ती सुदुःखार्ता नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ४ ॥

'अब मैं राक्षसियोंके वशमें पड़ी हूँ और इनकी कठोर धमकियाँ सुनती एवं सहती हूँ । ऐसी दशामें अत्यन्त दुःखसे आर्त एवं चिन्तित होकर मैं जीवित नहीं रह सकती ॥ ४ ॥

नहि मे जीवितेनार्थो नैवार्थैर्न च भूषणैः ।
वसन्त्या राक्षसीमध्ये विना रामं महारथम् ॥ ५ ॥

'महारथी श्रीरामके बिना राक्षसियोंके बीचमें रहकर

मुझे न तो जीवनसे कोई प्रयोजन है, न धनकी आवश्यकता है और न आभूषणोंसे ही कोई काम है ॥ ५ ॥

अश्मसारमिदं नूनमथवाप्यजरामरम् ।
हृदयं मम येनेदं न दुःखेन विशीर्यते ॥ ६ ॥

'अवश्य ही मेरा यह हृदय लोहेका बना हुआ है अथवा अजर-अमर है, जिससे इस महान् दुःखमें पड़कर भी यह फटता नहीं है ॥ ६ ॥

धिङ्मामनार्यामसतीं याहं तेन विना कृता ।
मुहूर्तमपि जीवामि जीवितं पापजीविका ॥ ७ ॥

'मैं बड़ी ही अनार्य और असती हूँ, मुझे धिक्कार है, जो उनसे अलग होकर मैं एक मुहूर्त भी इस पापी जीवनको धारण किये हूँ। अब तो यह जीवन केवल दुःख देनेके लिये ही है ॥ ७ ॥

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम् ।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम् ॥ ८ ॥

'उस लोकनिन्दित निशाचर रावणको तो मैं बाँयें पैरसे भी नहीं छू सकती, फिर उसे चाहनेकी तो बात ही क्या है ? ॥ ८ ॥

प्रत्याख्यानं न जानाति नात्मानं नात्मनः कुलम् ।
यो नृशंसस्वभावेन मां प्रार्थयितुमिच्छति ॥ ९ ॥

'यह राक्षस अपने क्रूर स्वभावके कारण न तो मेरे इन्कारपर ध्यान देता है, न अपने महत्त्वको समझता है और न अपने कुलकी प्रतिष्ठाका ही विचार करता है। बारंबार मुझे प्राप्त करनेकी ही इच्छा करता है ॥ ९ ॥

छिन्ना भिन्ना प्रभिन्ना वा दीप्ता वाग्नौ प्रदीपिता ।
रावणं नोपतिष्ठेयं किं प्रलापेन वश्चिरम् ॥ १० ॥

'राक्षसियो ! तुम्हारे देरतक बकवाद करनेसे क्या लाभ ? तुम मुझे छेदो, चीरो, टुकड़े-टुकड़े कर डालो, आगमें सेंक दो अथवा सर्वथा जलाकर भस्म कर डालो तो भी मैं रावणके पास नहीं फटक सकती ॥ १० ॥

ख्यातः प्राज्ञः कृतज्ञश्च सानुक्रोशश्च राघवः ।
सद्वृत्तो निरनुक्रोशः शङ्के मद्भाग्यसंक्षयात् ॥ ११ ॥

'श्रीरघुनाथजी विश्वविख्यात ज्ञानी, कृतज्ञ, सदाचारी और परम दयालु हैं तथापि मुझे संदेह हो रहा है कि कहीं वे मेरे भाग्यके नष्ट हो जानेसे मेरे प्रति निर्दय तो नहीं हो गये ? ॥ ११ ॥

राक्षसानां जनस्थाने सहस्राणि चतुर्दश ।
एकेनैव निरस्तानि स मां किं नाभिपद्यते ॥ १२ ॥

'अन्यथा जिन्होंने जनस्थानमें अकेले ही चौदह हजार राक्षसोंको कालके गालमें डाल दिया, वे मेरे पास क्यों नहीं आ रहे हैं ? ॥ १२ ॥

निरुद्धा रावणेनाहमल्पवीर्येण रक्षसा ।
समर्थः खलु मे भर्ता रावणं हन्तुमाहवे ॥ १३ ॥

'इस अल्प बलवाले राक्षस रावणने मुझे कैद कर रक्खा है। निश्चय ही मेरे पतिदेव समराङ्गणमें इस रावणका वध करनेमें समर्थ हैं ॥ १३ ॥

विराधो दण्डकारण्ये येन राक्षसपुङ्गवः ।
रणे रामेण निहतः स मां किं नाभिपद्यते ॥ १४ ॥

'जिन श्रीरामने दण्डकारण्यके भीतर राक्षसशिरोमणि विराधको युद्धमें मार डाला था, वे मेरी रक्षा करनेके लिये यहाँ क्यों नहीं आ रहे हैं ? ॥ १४ ॥

कामं मध्ये समुद्रस्य लङ्केयं दुष्प्रधर्षणा ।
न तु राघवबाणानां गतिरोधो भविष्यति ॥ १५ ॥

'यह लङ्का समुद्रके बीचमें बसी है, अतः किसी दूसरेके लिये यहाँ आक्रमण करना भले ही कठिन हो; किंतु श्रीरघुनाथजीके बाणोंकी गति यहाँ भी कुण्ठित नहीं हो सकती ॥ १५ ॥

किं नु तत् कारणं येन रामो दृढपराक्रमः ।
रक्षसापहृतां भार्यामिष्टां यो नाभिपद्यते ॥ १६ ॥

'वह कौन-सा कारण है, जिससे बाधित होकर सुदृढ़ पराक्रमी श्रीराम राक्षसद्वारा अपहृत हुई अपनी प्राणपत्नी सीताको छुड़ानेके लिये नहीं आ रहे हैं ॥ १६ ॥

इहस्थां मां न जानीते शङ्के लक्ष्मणपूर्वजः ।
जानन्नपि स तेजस्वी धर्षणां मर्षयिष्यति ॥ १७ ॥

'मुझे तो संदेह होता है कि लक्ष्मणजीके ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामचन्द्रजीको मेरे इस लङ्कामें होनेका पता ही नहीं है। मेरे यहाँ होनेकी बात यदि वे जानते होते तो उनके-जैसा तेजस्वी पुरुष अपनी पत्नीका यह तिरस्कार कैसे सह सकता था ? ॥ १७ ॥

हृतेति मां योऽधिगत्य राघवाय निवेदयेत् ।
गृध्रराजोऽपि स रणे रावणेन निपातितः ॥ १८ ॥

'जो श्रीरघुनाथजीको मेरे हरे जानेकी सूचना दे सकते थे, उन गृध्रराज जटायुको भी रावणने युद्धमें मार गिराया था ॥ १८ ॥

कृतं कर्म महत् तेन मां तथाभ्यवपद्यता ।
तिष्ठता रावणवधे वृद्धेनापि जटायुषा ॥ १९ ॥

'जटायु यद्यपि बूढ़े थे तो भी मुझपर अनुग्रह करके रावणका वध करनेके लिये उद्यत हो उन्होंने बहुत बड़ा पुरुषार्थ किया था ॥ १९ ॥

यदि मामिह जानीयाद् वर्तमानां हि राघवः ।
अद्य बाणैरभिक्रुद्धः कुर्याल्लोकमराक्षसम् ॥ २० ॥

'यदि श्रीरघुनाथजीको मेरे यहाँ रहनेका पता लग जाता तो वे आज ही कुपित होकर सारे संसारको राक्षसोंसे शून्य कर डालते ॥ २० ॥

निर्दहेच्च पुरीं लङ्कां निर्दहेच्च महोदधिम् ।
रावणस्य च नीचस्य कीर्तिं नाम च नाशयेत् ॥ २१ ॥

'लङ्कापुरीको भी जला देते, महासागरको भी भस्म कर डालते तथा इस नीच निशाचर रावणके नाम और यशका भी नाश कर देते ॥ २१ ॥

ततो निहतनाथानां राक्षसीनां गृहे गृहे ।
यथाहमेवं रुदती तथा भूयो न संशयः ॥ २२ ॥

'फिर तो निःसंदेह अपने पतियोंका संहार हो जानेसे घर-घरमें राक्षसियोंका इसी प्रकार क्रन्दन होता, जैसे आज मैं रो रही हूँ ॥ २२ ॥

अन्विष्य रक्षसां लङ्कां कुर्याद् रामः सलक्ष्मणः ।
नहि ताभ्यां रिपुर्दृष्टो मुहूर्तमपि जीवति ॥ २३ ॥

'श्रीराम और लक्ष्मण लङ्काका पता लगाकर निश्चय ही राक्षसोंका संहार करेंगे। जिस शत्रुको उन दोनों भाइयोंने एक बार देख लिया, वह दो घड़ी भी जीवित नहीं रह सकता ॥ २३ ॥

चिताधूमाकुलपथा गृध्रमण्डलमण्डिता ।
अचिरेणैव कालेन श्मशानसदृशी भवेत् ॥ २४ ॥

'अब थोड़े ही समयमें यह लङ्कापुरी श्मशान-भूमिके समान हो जायगी। यहाँकी सड़कोंपर चिताका धुआँ फैल रहा होगा और गीधोंकी जमातें इस भूमिकी शोभा बढ़ाती होंगी ॥ २४ ॥

अचिरेणैव कालेन प्राप्स्याम्येनं मनोरथम् ।
दुष्प्रस्थानोऽयमाभाति सर्वेषां वो विपर्ययः ॥ २५ ॥

'वह समय शीघ्र आनेवाला है जब कि मेरा यह मनोरथ पूर्ण होगा। तुम सब लोगोंका यह दुराचार तुम्हारे लिये शीघ्र ही विपरीत परिणाम उपस्थित करेगा, ऐसा स्पष्ट जान पड़ता है ॥ २५ ॥

यादृशानि तु दृश्यन्ते लङ्कायामशुभानि तु ।
अचिरेणैव कालेन भविष्यति हतप्रभा ॥ २६ ॥

'लङ्कामें जैसे-जैसे अशुभ लक्षण दिखायी दे रहे हैं, उनसे जान पड़ता है कि अब शीघ्र ही इसकी चमक-दमक नष्ट हो जायगी ॥ २६ ॥

नूनं लङ्का हते पापे रावणे राक्षसाधिपे ।
शोषमेष्यति दुर्धर्षा प्रमदा विधवा यथा ॥ २७ ॥

'पापाचारी राक्षसराज रावणके मारे जानेपर यह दुर्धर्ष लङ्कापुरी भी निश्चय ही विधवा युवतीकी भाँति सूख जायगी, नष्ट हो जायगी ॥ २७ ॥

पुण्योत्सवसमृद्धा च नष्टभर्त्री सराक्षसा ।
भविष्यति पुरी लङ्का नष्टभर्त्री यथाङ्गना ॥ २८ ॥

'आज जिस लङ्कामें पुण्यमय उत्सव होते हैं, वह राक्षसोंके सहित अपने स्वामीके नष्ट हो जानेपर विधवा स्त्रीके समान श्रीहीन हो जायगी ॥ २८ ॥

नूनं राक्षसकन्यानां रुदतीनां गृहे गृहे ।
श्रोष्यामि नचिरादेव दुःखार्तानामिह ध्वनिम् ॥ २९ ॥

'निश्चय ही मैं बहुत शीघ्र लङ्काके घर-घरमें दुःखसे आतुर होकर रोती हुई राक्षसकन्याओंकी क्रन्दन-ध्वनि सुनूँगी ॥ २९ ॥

सान्धकारा हतद्योता हतराक्षसपुङ्गवा ।
भविष्यति पुरी लङ्का निर्दग्धा रामसायकैः ॥ ३० ॥

'श्रीरामचन्द्रजीके सायकोंसे दग्ध हो जानेके कारण लङ्कापुरीकी प्रभा नष्ट हो जायगी। इसमें अन्धकार छा जायगा और यहाँके सभी प्रमुख राक्षस कालके गालमें चले जायँगे ॥ ३० ॥

यदि नाम स शूरो मां रामो रक्तान्तलोचनः ।
जानीयाद् वर्तमानां यां राक्षसस्य निवेशने ॥ ३१ ॥

'यह सब तभी सम्भव होगा, जब कि लाल नेत्रप्रान्तवाले शूरवीर भगवान् श्रीरामको यह पता लग जाय कि मैं राक्षसके अन्तःपुरमें बंदी बनाकर रक्खी गयी हूँ ॥ ३१ ॥

अनेन तु नृशंसेन रावणेनाधमेन मे ।
समयो यस्तु निर्दिष्टस्तस्य कालोऽयमागतः ॥ ३२ ॥

'इस नीच और नृशंस रावणने मेरे लिये जो समय नियत किया है, उसकी पूर्ति भी निकट भविष्यमें ही हो जायगी ॥ ३२ ॥

स च मे विहितो मृत्युरस्मिन् दुष्टेन वर्तते ।
अकार्यं ये न जानन्ति नैर्ऋताः पापकारिणः ॥ ३३ ॥

'उसी समय दुष्ट रावणने मेरे वधका निश्चय किया है। ये पापाचारी राक्षस इतना भी नहीं जानते हैं कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं ॥ ३३ ॥

अधर्मात् तु महोत्पातो भविष्यति हि साम्प्रतम् ।
नैते धर्मं विजानन्ति राक्षसाः पिशिताशनाः ॥ ३४ ॥

'इस समय अधर्मसे ही महान् उत्पात होनेवाला है। ये मांसभक्षी राक्षस धर्मको बिल्कुल नहीं जानते हैं ॥ ३४ ॥

ध्रुवं मां प्रातराशार्थं राक्षसः कल्पयिष्यति ।
साहं कथं करिष्यामि तं विना प्रियदर्शनम् ॥ ३५ ॥

'वह राक्षस अवश्य ही अपने कलेवेके लिये मेरे शरीरके टुकड़े-टुकड़े करा डालेगा। उस समय अपने प्रियदर्शन पतिके बिना मैं असहाय अबला क्या करूँगी ? ॥ ३५ ॥

रामं रक्तान्तनयनमपश्यन्ती सुदुःखिता ।
क्षिप्रं वैवस्वतं देवं पश्येयं पतिना विना ॥ ३६ ॥

'जिनके नेत्रप्रान्त अरुण वर्णके हैं, उन श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन न पाकर अत्यन्त दुःखमें पड़ी हुई मुझ असहाय

अबलाको पतिका चरणस्पर्श किये बिना ही शीघ्र यमदेवताका दर्शन करना पड़ेगा ॥ ३६ ॥

नाजानाज्जीवतीं रामः स मां भरतपूर्वजः ।
जानन्तौ तु न कुर्यातां नोऽर्व्यां हि परिमार्गणम् ॥ ३७ ॥

'भरतके बड़े भाई भगवान् श्रीराम यह नहीं जानते हैं कि मैं जीवित हूँ । यदि उन्हें इस बातका पता होता तो ऐसा सम्भव नहीं था कि वे पृथ्वीपर मेरी खोज नहीं करते ॥ ३७ ॥

नूनं ममैव शोकेन स वीरो लक्ष्मणाग्रजः ।
देवलोकमितो यातस्त्यक्त्वा देहं महीतले ॥ ३८ ॥

'मुझे तो यह निश्चित जान पड़ता है कि मेरे ही शोकसे लक्ष्मणके बड़े भाई वीरवर श्रीराम भूतलपर अपने शरीरका त्याग करके यहाँसे देवलोकको चले गये हैं ॥ ३८ ॥

धन्या देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
मम पश्यन्ति ये वीरं रामं राजीवलोचनम् ॥ ३९ ॥

'वे देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षिगण धन्य हैं, जो मेरे पतिदेव वीर-शिरोमणि कमलनयन श्रीरामका दर्शन पा रहे हैं ॥ ३९ ॥

अथवा नहि तस्यार्थो धर्मकामस्य धीमतः ।
मया रामस्य राजर्षेर्भार्यया परमात्मनः ॥ ४० ॥

'अथवा केवल धर्मकी कामना रखनेवाले परमात्मस्वरूप बुद्धिमान् राजर्षि श्रीरामको भार्यासे कोई प्रयोजन नहीं है (इसीलिये वे मेरी सुध नहीं ले रहे हैं) ॥ ४० ॥

दृश्यमाने भवेत् प्रीतिः सौहृदं नास्त्यदृश्यतः ।
नाशयन्ति कृतघ्नास्तु न रामो नाशयिष्यति ॥ ४१ ॥

'जो स्वजन अपनी दृष्टिके सामने होते हैं, उन्हींपर प्रीति बनी रहती है । जो आँखसे ओझल होते हैं, उनपर लोगोंका स्नेह नहीं रहता है (शायद इसीलिये श्रीरघुनाथजी मुझे भूल गये हैं, परंतु यह भी सम्भव नहीं है; क्योंकि) कृतघ्न मनुष्य ही पीठ-पीछे प्रेमको ठुकरा देते हैं । भगवान् श्रीराम ऐसा नहीं करेंगे ॥ ४१ ॥

किं वा मय्यगुणाः केचित् किं वा भाग्यक्षयो हि मे ।
या हि सीता वरार्हेण हीना रामेण भामिनी ॥ ४२ ॥

'अथवा मुझमें कोई दुर्गुण हैं या मेरा भाग्य ही फूट गया है, जिससे इस समय मैं मानिनी सीता अपने परम पूजनीय पति श्रीरामसे बिछुड़ गयी हूँ ॥ ४२ ॥

श्रेयो मे जीवितान्मर्तुं विहीनाया महात्मना ।
रामादक्लिष्टचारित्राच्छूराच्छत्रुनिबर्हणात् ॥ ४३ ॥

'मेरे पति भगवान् श्रीरामका सदाचार अक्षुण्ण है । वे शूरवीर होनेके साथ ही शत्रुओंका संहार करनेमें समर्थ हैं । मैं उनसे संरक्षण पानेके योग्य हूँ, परंतु उन महात्मासे बिछुड़ गयी । ऐसी दशामें जीवित रहनेकी अपेक्षा मर जाना ही मेरे लिये श्रेयस्कर है ॥ ४३ ॥

अथवा न्यस्तशस्त्रौ तौ वने मूलफलाशनौ ।
भ्रातरौ हि नरश्रेष्ठौ चरन्तौ वनगोचरौ ॥ ४४ ॥

'अथवा वनमें फल-मूल खाकर विचरनेवाले वे दोनों वनवासी बन्धु नरश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मण अब अहिंसाका व्रत लेकर अपने अस्त्र-शस्त्रोंका परित्याग कर चुके हैं ॥ ४४ ॥

अथवा राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ।
छद्मना घातितौ शूरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४५ ॥

'अथवा दुरात्मा राक्षसराज रावणने उन दोनों शूरवीर बन्धु श्रीराम और लक्ष्मणको छलसे मरवा डाला है ॥ ४५ ॥

साहमेवंविधे काले मर्तुमिच्छामि सर्वतः ।
न च मे विहितो मृत्युरस्मिन् दुःखेऽतिवर्तति ॥ ४६ ॥

'अतः ऐसे समयमें मैं सब प्रकारसे अपने जीवनका अन्त कर देनेकी इच्छा रखती हूँ; परंतु मालूम होता है इस महान् दुःखमें होते हुए भी अभी मेरी मृत्यु नहीं लिखी है ॥ ४६ ॥

धन्याः खलु महात्मानो मुनयः सत्यसम्मताः ।
जितात्मानो महाभागा येषां न स्तः प्रियाप्रिये ॥ ४७ ॥

'सत्यस्वरूप परमात्माको ही अपना आत्मा माननेवाले और अपने अन्तःकरणको वशमें रखनेवाले वे महाभाग महात्मा महर्षिगण धन्य हैं, जिनके कोई प्रिय और अप्रिय नहीं हैं ॥ ४७ ॥

प्रियान्न सम्भवेद् दुःखमप्रियादधिकं भवेत् ।
ताभ्यां हि ते वियुज्यन्ते नमस्तेषां महात्मनाम् ॥ ४८ ॥

'जिन्हें प्रियके वियोगसे दुःख नहीं होता और अप्रियका संयोग प्राप्त होनेपर उससे भी अधिक कष्टका अनुभव नहीं होता—इस प्रकार जो प्रिय और अप्रिय दोनोंसे परे हैं, उन महात्माओंको मेरा नमस्कार है ॥ ४८ ॥

साहं त्यक्ता प्रियेणैव रामेण विदितात्मना ।
प्राणांस्त्यक्ष्यामि पापस्य रावणस्य गता वशम् ॥ ४९ ॥

'मैं अपने प्रियतम आत्मज्ञानी भगवान् श्रीरामसे बिछुड़ गयी हूँ और पापी रावणके चंगुलमें आ फँसी हूँ; अतः अब इन प्राणोंका परित्याग कर दूँगी' ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः

त्रिजटाका स्वप्न—राक्षसोंके विनाश और श्रीरघुनाथजीकी विजयकी शुभ सूचना

इत्युक्ताः सीतया घोरं राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः।
काश्चिज्जग्मुस्तदाख्यातुं रावणस्य दुरात्मनः॥ १॥

सीताने जब ऐसी भयंकर बात कही, तब वे राक्षसियाँ क्रोधसे अचेत-सी हो गयीं और उनमेंसे कुछ उस दुरात्मा रावणसे वह संवाद कहनेके लिये चल दीं॥ १॥

ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यो भीमदर्शनाः।
पुनः परुषमेकार्थमनर्थार्थमथाब्रुवन्॥ २॥

तत्पश्चात् भयंकर दिखायी देनेवाली वे राक्षसियाँ सीताके पास आकर पुनः एक ही प्रयोजनसे सम्बन्ध रखनेवाली कठोर बातें, जो उनके लिये ही अनर्थकारिणी थीं, कहने लगीं—॥ २॥

अद्येदानीं तवानार्ये सीते पापविनिश्चये।
राक्षस्यो भक्षयिष्यन्ति मांसमेतद् यथासुखम्॥ ३॥

‘पापपूर्ण विचार रखनेवाली अनार्ये सीते! आज इसी समय ये सब राक्षसियाँ मौजके साथ तेरा यह मांस खायेंगी’॥

सीतां ताभिरनार्याभिर्दृष्ट्वा संतर्जितां तदा।
राक्षसी त्रिजटा वृद्धा प्रबुद्धा वाक्यमब्रवीत्॥ ४॥

उन दुष्ट निशाचरियोंके द्वारा सीताको इस प्रकार डरायी जाती देख बूढ़ी राक्षसी त्रिजटा, जो तत्काल सोकर उठी थी, उन सबसे कहने लगी—॥ ४॥

आत्मानं खादतानार्या न सीतां भक्षयिष्यथ।
जनकस्य सुतामिष्टां स्नुषां दशरथस्य च॥ ५॥

‘नीच निशाचरियो! तुमलोग अपने-आपको ही खा जाओ। राजा जनककी प्यारी बेटी तथा महाराज दशरथकी प्रिय पुत्रवधू सीताजीको नहीं खा सकोगी॥ ५॥

स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः।
राक्षसानामभावाय भर्तुरस्या भवाय च॥ ६॥

‘आज मैंने बड़ा भयंकर और रोमाञ्चकारी स्वप्न देखा है, जो राक्षसोंके विनाश और सीतापतिके अभ्युदयकी सूचना देनेवाला है’॥ ६॥

एवमुक्तास्त्रिजटया राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः।
सर्वा एवाब्रुवन् भीतास्त्रिजटां तामिदं वचः॥ ७॥

त्रिजटाके ऐसा कहनेपर वे सब राक्षसियाँ, जो पहले क्रोधसे मूर्च्छित हो रही थीं, भयभीत हो उठीं और त्रिजटासे इस प्रकार बोलीं—॥ ७॥

कथयस्व त्वया दृष्टः स्वप्नोऽयं कीदृशो निशि।
तासां श्रुत्वा तु वचनं राक्षसीनां मुखोद्गतम्॥ ८॥
उवाच वचनं काले त्रिजटा स्वप्नसंश्रितम्।

‘अरी! बताओ तो सही, तुमने आज रातमें यह कैसा स्वप्न देखा है?’ उन राक्षसियोंके मुखसे निकली हुई वह बात सुनकर त्रिजटाने उस समय वह स्वप्न-सम्बन्धी बात इस प्रकार कही—॥ ८½॥

गजदन्तमयीं दिव्यां शिबिकामन्तरिक्षगाम्॥ ९॥
युक्तां वाजिसहस्रेण स्वयमास्थाय राघवः।
शुक्लमाल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन समागतः॥ १०॥

‘आज स्वप्नमें मैंने देखा है कि आकाशमें चलनेवाली एक दिव्य शिबिका है। वह हाथीदाँतकी बनी हुई है। उसमें एक हजार घोड़े जुते हुए हैं और श्वेत पुष्पोंकी माला तथा श्वेत वस्त्र धारण किये स्वयं श्रीरघुनाथजी लक्ष्मणके साथ उस शिबिकापर चढ़कर यहाँ पधारे हैं॥ ९-१०॥

स्वप्ने चाद्य मया दृष्टा सीता शुक्लाम्बरावृता।
सागरेण परिक्षिप्तं श्वेतपर्वतमास्थिता॥ ११॥
रामेण संगता सीता भास्करेण प्रभा यथा।

‘आज स्वप्नमें मैंने यह भी देखा है कि सीता श्वेत वस्त्र धारण किये श्वेत पर्वतके शिखरपर बैठी हैं और वह पर्वत समुद्रसे घिरा हुआ है, वहाँ जैसे सूर्यदेवसे उनकी प्रभा मिलती है, उसी प्रकार सीता श्रीरामचन्द्रजीसे मिली हैं॥

राघवश्च पुनर्दृष्टश्चतुर्दन्तं महागजम्॥ १२॥
आरूढः शैलसंकाशं चकास सहलक्ष्मणः।

‘मैंने श्रीरघुनाथजीको फिर देखा, वे चार दाँतवाले विशाल गजराजपर, जो पर्वतके समान ऊँचा था, लक्ष्मणके साथ बैठे हुए बड़ी शोभा पा रहे थे॥ १२½॥

ततस्तु सूर्यसंकाशौ दीप्यमानौ स्वतेजसा॥ १३॥
शुक्लमाल्याम्बरधरौ जानकीं पर्युपस्थितौ।

‘तदनन्तर अपने तेजसे सूर्यके समान प्रकाशित होते तथा श्वेत माला और श्वेत वस्त्र धारण किये वे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण जानकीजीके पास आये॥ १३½॥

ततस्तस्य नगस्याग्रे ह्याकाशस्थस्य दन्तिनः॥ १४॥
भर्त्रा परिगृहीतस्य जानकी स्कन्धमाश्रिता।

‘फिर उस पर्वत-शिखरपर आकाशमें ही खड़े हुए और पतिद्वारा पकड़े गये उस हाथीके कंधेपर जानकीजी भी आ पहुँचीं॥ १४½॥

भर्तुरङ्कात् समुत्पत्य ततः कमललोचना॥ १५॥
चन्द्रसूर्यौ मया दृष्टा पाणिभ्यां परिमार्जती।

‘इसके बाद कमलनयनी सीता अपने पतिके अङ्कसे ऊपरको उछलकर चन्द्रमा और सूर्यके पास पहुँच गयीं।

वहाँ मैंने देखा वे अपने दोनों हाथोंसे चन्द्रमा और सूर्यको पोंछ रही हैं—उनपर हाथ फेर रही हैं* ॥ १५½ ॥

ततस्ताभ्यां कुमाराभ्यामास्थितः स गजोत्तमः ।
सीतया च विशालाक्ष्या लङ्काया उपरि स्थितः ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् जिसपर वे दोनों राजकुमार और विशाललोचना सीताजी विराजमान थीं, वह महान् गजराज लङ्काके ऊपर आकर खड़ा हो गया ॥ १६ ॥

पाण्डुरर्षभयुक्तेन रथेनाष्टयुजा स्वयम् ।
इहोपयातः काकुत्स्थः सीतया सह भार्यया ॥ १७ ॥
शुक्लमाल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन सहागतः ।

'फिर मैंने देखा कि आठ सफेद बैलोंसे जुते हुए एक रथपर आरूढ़ हो ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामचन्द्रजी श्वेत पुष्पोंकी माला और वस्त्र धारण किये अपनी धर्मपत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ यहाँ पधारे हैं ॥ १७½ ॥

ततोऽन्यत्र मया दृष्टो रामः सत्यपराक्रमः ॥ १८ ॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह वीर्यवान् ।
आरुह्य पुष्पकं दिव्यं विमानं सूर्यसंनिभम् ॥ १९ ॥
उत्तरां दिशमालोच्य प्रस्थितः पुरुषोत्तमः ।

'इसके बाद दूसरी जगह मैंने देखा सत्यपराक्रमी और बल-विक्रमशाली पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ सूर्यतुल्य तेजस्वी दिव्य पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो उत्तर दिशाको लक्ष्य करके यहाँसे प्रस्थित हुए हैं ॥ १८-१९½ ॥

एवं स्वप्ने मया दृष्टो रामो विष्णुपराक्रमः ॥ २० ॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह भार्यया ।

'इस प्रकार मैंने स्वप्नमें भगवान् विष्णुके समान पराक्रमी श्रीरामका उनकी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ दर्शन किया ॥ २०½ ॥

न हि रामो महातेजाः शक्यो जेतुं सुरासुरैः ॥ २१ ॥
राक्षसैर्वापि चान्यैर्वा स्वर्गः पापजनैरिव ।

'श्रीरामचन्द्रजी महातेजस्वी हैं । उन्हें देवता, असुर, राक्षस तथा दूसरे लोग भी कदापि जीत नहीं सकते । ठीक उसी तरह, जैसे पापी मनुष्य स्वर्गलोकपर विजय नहीं पा सकते ॥ २१½ ॥

रावणश्च मया दृष्टो मुण्डस्तैलसमुक्षितः ॥ २२ ॥
रक्तवासाः पिबन्मत्तः करवीरकृतस्रजः ।
विमानात् पुष्पकादद्य रावणः पतितः क्षितौ ॥ २३ ॥

'मैंने रावणको भी सपनेमें देखा था । वह मूड़ मुड़ाये तेलसे नहाकर लाल कपड़े पहने हुए था । मदिरा पीकर मतवाला हो रहा था तथा करवीरके फूलोंकी माला पहने हुए था । इसी वेषभूषामें आज रावण पुष्पक विमानसे पृथ्वीपर गिर पड़ा था ॥ २२-२३ ॥

कृष्यमाणः स्त्रिया मुण्डो दृष्टः कृष्णाम्बरः पुनः ।
रथेन खरयुक्तेन रक्तमाल्यानुलेपनः ॥ २४ ॥
पिबंस्तैलं हसन्नृत्यन् भ्रान्तचित्ताकुलेन्द्रियः ।
गर्दभेन ययौ शीघ्रं दक्षिणां दिशमास्थितः ॥ २५ ॥

'एक स्त्री उस मुण्डित-मस्तक रावणको कहीं खींचे लिये जा रही थी । उस समय मैंने फिर देखा रावणने काले कपड़े पहन रक्खे हैं । वह गधे जुते हुए रथसे यात्रा कर रहा था । लाल फूलोंकी माला और लाल चन्दनसे विभूषित था । तेल पीता, हँसता और नाचता था । पागलोंकी तरह उसका चित्त भ्रान्त और इन्द्रियाँ व्याकुल थीं । वह गधेपर सवार हो शीघ्रतापूर्वक दक्षिण दिशाकी ओर जा रहा था ॥ २४-२५ ॥

पुनरेव मया दृष्टो रावणो राक्षसेश्वरः ।
पतितोऽवाक्शिरा भूमौ गर्दभाद् भयमोहितः ॥ २६ ॥

'तदनन्तर मैंने फिर देखा राक्षसराज रावण गधेसे नीचे भूमिपर गिर पड़ा है । उसका सिर नीचेकी ओर है (और पैर ऊपरकी ओर) तथा वह भयसे मोहित हो रहा है ॥ २६ ॥

सहसोत्थाय सम्भ्रान्तो भयार्तो मदविह्वलः ।
उन्मत्तरूपो दिग्वासा दुर्वाक्यं प्रलपन् बहु ॥ २७ ॥
दुर्गन्धं दुःसहं घोरं तिमिरं नरकोपमम् ।
मलपङ्कं प्रविश्याशु मग्नस्तत्र स रावणः ॥ २८ ॥

'फिर वह भयातुर हो घबराकर सहसा उठा और मदसे विह्वल हो पागलके समान नंग-धड़ंग वेषमें बहुत-से दुर्वचन (गाली आदि) बकता हुआ आगे बढ़ गया । सामने ही दुर्गन्धयुक्त दुःसह घोर अन्धकारपूर्ण और नरकतुल्य मलका पङ्क था, रावण उसीमें घुसा और वहीं डूब गया २७-२८

प्रस्थितो दक्षिणामाशां प्रविष्टोऽकर्दमं ह्रदम् ।
कण्ठे बद्ध्वा दशग्रीवं प्रमदा रक्तवासिनी ॥ २९ ॥
काली कर्दमलिप्ताङ्गी दिशं याम्यां प्रकर्षति ।
एवं तत्र मया दृष्टः कुम्भकर्णो महाबलः ॥ ३० ॥

'तदनन्तर फिर देखा रावण दक्षिणकी ओर जा रहा है । उसने एक ऐसे तालाबमें प्रवेश किया है, जिसमें कीचड़का नाम नहीं है । वहाँ एक काले रंगकी स्त्री है, जिसके अङ्गोंमें कीचड़ लिपटी हुई है । वह युवती लाल वस्त्र पहने हुए है और रावणका गला बाँधकर उसे दक्षिण दिशाकी

---

* जो स्त्री या पुरुष स्वप्नमें अपने दोनों हाथोंसे सूर्यमण्डल अथवा चन्द्रमण्डलको छू लेता है, उसे विशाल राज्यकी प्राप्ति होती है । जैसा कि स्वप्नाध्यायका वचन है—

आदित्यमण्डलं वापि चन्द्रमण्डलमेव वा ।
स्वप्ने गृह्णाति हस्ताभ्यां राज्यं सम्प्राप्नुयान्महत् ॥

(गोविन्दराजविरचित रामायणभूषण)

ओर खींच रही है। वहाँ महाबली कुम्भकर्णको भी मैंने इसी अवस्थामें देखा है ॥ २९-३० ॥

रावणस्य सुताः सर्वे मुण्डास्तैलसमुक्षिताः ।
वराहेण दशग्रीवः शिशुमारेण चेन्द्रजित् ॥ ३१ ॥
उष्ट्रेण कुम्भकर्णश्च प्रयातो दक्षिणां दिशम् ।

'रावणके सभी पुत्र भी मूड़ मुड़ाये और तेलमें नहाये दिखायी दिये हैं । यह भी देखनेमें आया कि रावण सूअरपर, इन्द्रजित् सूँसपर और कुम्भकर्ण ऊँटपर सवार हो दक्षिण दिशाको गये हैं ॥ ३१½ ॥

एकस्तत्र मया दृष्टः श्वेतच्छत्रो विभीषणः ॥ ३२ ॥
शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ।

'राक्षसोंमें एकमात्र विभीषण ही ऐसे हैं, जिन्हें मैंने वहाँ श्वेत छत्र लगाये, सफेद माला पहने, श्वेत वस्त्र धारण किये तथा श्वेत चन्दन और अङ्गराग लगाये देखा है॥३२½॥

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्नृत्तगीतैरलंकृतः ॥ ३३ ॥
आरुह्य शैलसंकाशं मेघस्तनितनिःस्वनम् ।
चतुर्दन्तं गजं दिव्यमास्ते तत्र विभीषणः ॥ ३४ ॥
चतुर्भिः सचिवैः सार्धं वैहायसमुपस्थितः ॥ ३५ ॥

'उनके पास शङ्खध्वनि हो रही थी, नगाड़े बजाये जा रहे थे । इनके गम्भीर घोषके साथ ही नृत्य और गीत भी हो रहे थे, जो विभीषणकी शोभा बढ़ा रहे थे । विभीषण वहाँ अपने चार मन्त्रियोंके साथ पर्वतके समान विशालकाय मेघके समान गम्भीर शब्द करनेवाले तथा चार दाँतोंवाले दिव्य गजराजपर आरूढ़ हो आकाशमें खड़े थे ॥३३-३५॥

समाजश्च महान् वृत्तो गीतवादित्रनिःस्वनः ।
पिबतां रक्तमाल्यानां रक्षसां रक्तवाससाम् ॥ ३६ ॥

'यह भी देखनेमें आया कि तेल पीनेवाले तथा लाल माला और लाल वस्त्र धारण करनेवाले राक्षसोंका वहाँ बहुत बड़ा समाज जुटा हुआ है एवं गीतों और वाद्योंकी मधुर ध्वनि हो रही है ॥ ३६ ॥

लङ्का चेयं पुरी रम्या सवाजिरथकुञ्जरा ।
सागरे पतिता दृष्टा भग्नगोपुरतोरणा ॥ ३७ ॥

'यह रमणीय लङ्कापुरी घोड़े, रथ और हाथियोंसहित समुद्रमें गिरी हुई देखी गयी है । इसके बाहरी और भीतरी दरवाजे टूट गये हैं ॥ ३७ ॥

लङ्का दृष्टा मया स्वप्ने रावणेनाभिरक्षिता ।
दग्धा रामस्य दूतेन वानरेण तरस्विना ॥ ३८ ॥

'मैंने स्वप्नमें देखा है कि रावणद्वारा सुरक्षित लङ्कापुरीको श्रीरामचन्द्रजीका दूत बनकर आये हुए एक वेगशाली वानरने जलाकर भस्म कर दिया है ॥ ३८ ॥

पीत्वा तैलं प्रमत्ताश्च प्रहसन्त्यो महास्वनाः ।
लङ्कायां भस्मरूक्षायां सर्वा राक्षसयोषितः ॥ ३९ ॥

'राखसे रूखी हुई लङ्कामें सारी राक्षसरमणियाँ तेल पीकर मतवाली हो बड़े जोर-जोरसे ठहाका मारकर हँसती हैं ॥ ३९ ॥

कुम्भकर्णादयश्चेमे सर्वे राक्षसपुङ्गवाः ।
रक्तं निवसनं गृह्य प्रविष्टा गोमयह्रदम् ॥ ४० ॥

'कुम्भकर्ण आदि ये समस्त राक्षसशिरोमणि वीर लाल कपड़े पहनकर गोबरके कुण्डमें घुस गये हैं ॥ ४० ॥

अपगच्छत पश्यध्वं सीतामाप्नोति राघवः ।
घातयेत् परमामर्षी युष्मान् सार्धं हि राक्षसैः ॥ ४१ ॥

'अतः अब तुमलोग हट जाओ और देखो कि किस तरह श्रीरघुनाथजी सीताको प्राप्त कर रहे हैं। वे बड़े अमर्षशील हैं, राक्षसोंके साथ तुम सबको भी मरवा डालेंगे ॥ ४१ ॥

प्रियां बहुमतां भार्यां वनवासमनुव्रताम् ।
भर्त्सितां तर्जितां वापि नानुमंस्यति राघवः ॥ ४२ ॥

'जिन्होंने वनवासमें भी उनका साथ दिया है, उन अपनी पतिव्रता भार्या और परमादरणीया प्रियतमा सीताका इस तरह धमकाया और डराया जाना श्रीरघुनाथजी कदापि सहन नहीं करेंगे ॥ ४२ ॥

तदलं क्रूरवाक्यैश्च सान्त्वमेवाभिधीयताम् ।
अभियाचाम वैदेहीमेतद्धि मम रोचते ॥ ४३ ॥

'अतः अब इस तरह कठोर बातें सुनाना छोड़ो; क्योंकि इनसे कोई लाभ नहीं होगा । अब तो मधुर वचनका ही प्रयोग करो । मुझे तो यही अच्छा लगता है कि हमलोग विदेहनन्दिनी सीतासे कृपा और क्षमाकी याचना करें ॥ ४३ ॥

यस्या ह्येवंविधः स्वप्नो दुःखितायाः प्रदृश्यते ।
सा दुःखैर्बहुभिर्मुक्ता प्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ४४ ॥

'जिस दुःखिनी नारीके विषयमें ऐसा स्वप्न देखा जाता है, वह बहुसंख्यक दुःखोंसे छुटकारा पाकर परम उत्तम प्रिय वस्तु प्राप्त कर लेती है ॥ ४४ ॥

भर्त्सितामपि याचध्वं राक्षस्यः किं विवक्षया ।
राघवाद्धि भयं घोरं राक्षसानामुपस्थितम् ॥ ४५ ॥

'राक्षसियो ! मैं जानती हूँ, तुम्हें कुछ और कहने या बोलनेकी इच्छा है; किंतु इससे क्या होगा ? यद्यपि तुमने सीताको बहुत धमकाया है तो भी इनकी शरणमें आकर इनसे अभयकी याचना करो; क्योंकि श्रीरघुनाथजीकी ओरसे राक्षसोंके लिये घोर भय उपस्थित हुआ है ॥ ४५ ॥

प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा ।
अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात् ॥ ४६ ॥

'राक्षसियो ! जनकनन्दिनी मिथिलेशकुमारी सीता केवल प्रणाम करनेसे ही प्रसन्न हो जायँगी । ये ही उस महान् भयसे तुम्हारी रक्षा करनेमें समर्थ हैं ॥ ४६ ॥

अपि चास्या विशालाक्ष्या न किंचिदुपलक्षये ।
विरूपमपि चाङ्गेषु सुसूक्ष्ममपि लक्षणम् ॥ ४७ ॥

'इन विशाललोचना सीताके अङ्गोंमें मुझे कोई सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भी विपरीत लक्षण नहीं दिखायी देता (जिससे समझा जाय कि ये सदा कष्टमें ही रहेंगी) ॥ ४७ ॥

छायावैगुण्यमात्रं तु शङ्के दुःखमुपस्थितम् ।
अदुःखार्हामिमां देवीं वैहायसमुपस्थिताम् ॥ ४८ ॥

'मैं तो समझती हूँ कि इन्हें जो वर्तमान दुःख प्राप्त हुआ है, वह ग्रहणके समय चन्द्रमापर पड़ी हुई छायाके समान थोड़ी ही देरका है; क्योंकि ये देवी सीता मुझे स्वप्नमें विमानपर बैठी दिखायी दी हैं, अतः ये दुःख भोगनेके योग्य कदापि नहीं हैं ॥ ४८ ॥

अर्थसिद्धिं तु वैदेह्याः पश्याम्यहमुपस्थिताम् ।
राक्षसेन्द्रविनाशं च विजयं राघवस्य च ॥ ४९ ॥

'मुझे तो अब जानकीजीके अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि उपस्थित दिखायी देती है । राक्षसराज रावणके विनाश और रघुनाथजीकी विजयमें अब अधिक विलम्ब नहीं है ॥४९॥

निमित्तभूतमेतत् तु श्रोतुमस्या महत् प्रियम् ।
दृश्यते च स्फुरच्चक्षुः पद्मपत्रमिवायतम् ॥ ५० ॥

'कमलदलके समान इनका विशाल बायाँ नेत्र फड़कता दिखायी देता है । यह इस बातका सूचक है कि इन्हें शीघ्र ही अत्यन्त प्रिय संवाद सुननेको मिलेगा ॥ ५० ॥

ईषद्धि हृषितो वास्या दक्षिणाया ह्यदक्षिणः ।
अकस्मादेव वैदेह्या बाहुरेकः प्रकम्पते ॥ ५१ ॥

'इन उदारहृदया विदेहराजकुमारीकी एक बाँयी बाँह कुछ रोमाञ्चित होकर सहसा काँपने लगी है (यह भी शुभका ही सूचक है) ॥ ५१ ॥

करेणुहस्तप्रतिमः सव्यश्चोरुरनुत्तमः ।
वेपन् कथयतीवास्या राघवं पुरतः स्थितम् ॥ ५२ ॥

'हाथीकी सूँड़के समान जो इनकी परम उत्तम बाँयीं जाँघ है, वह भी कम्पित होकर मानो यह सूचित कर रही है कि अब श्रीरघुनाथजी शीघ्र ही तुम्हारे सामने उपस्थित होंगे ॥ ५२ ॥

पक्षी च शाखानिलयं प्रविष्टः
पुनः पुनश्चोत्तमसान्त्ववादी ।
सुखागतां वाचमुदीरयाणः
पुनः पुनश्चोदयतीव हृष्टः ॥ ५३ ॥

'देखो, सामने यह पक्षी शाखाके ऊपर अपने घोंसलेमें बैठकर बारंबार उत्तम सान्त्वनापूर्ण मीठी बोली बोल रहा है । इसकी वाणीसे 'सुस्वागतम्'की ध्वनि निकल रही है और इसके द्वारा यह हर्षमें भरकर मानो पुनः-पुनः मङ्गलप्राप्तिकी सूचना दे रहा है अथवा आनेवाले प्रियतमकी अगवानीके लिये प्रेरित कर रहा है' ॥ ५३ ॥

ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुर्विजयहर्षिता ।
अवोचद् यदि तत् तथ्यं भवेयं शरणं हि वः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार पतिदेवकी विजयके संवादसे हर्षमें भरी हुई लजीली सीता उन सबसे बोलीं—'यदि तुम्हारी बात ठीक हुई तो मैं अवश्य ही तुम सबकी रक्षा करूँगी' ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें सत्ताईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २७ ॥

अष्टाविंशः सर्गः

विलाप करती हुई सीताका प्राण-त्यागके लिये उद्यत होना

सा राक्षसेन्द्रस्य वचो निशम्य
तद् रावणस्य प्रियमप्रियार्ता ।
सीता वितत्रास यथा वनान्ते
सिंहाभिपन्ना गजराजकन्या ॥ १ ॥

स्या!

पतिके विरहके दुःखसे व्याकुल हुई सीता राक्षसराज रावणके उन अप्रिय वचनोंको याद करके उसी तरह भयभीत हो गयीं, जैसे वनमें सिंहके पंजेमें पड़ी हुई कोई गजराजकी बच्ची ॥ १ ॥

सा राक्षसीमध्यगता च भीरु-
र्वाग्भिर्भृशं रावणतर्जिता च ।
कान्तारमध्ये विजने विसृष्टा
बालेव कन्या विललाप सीता ॥ २ ॥

राक्षसियोंके बीचमें बैठकर उनके कठोर वचनोंसे बारंबार धमकायी और रावणद्वारा फटकारी गयी भीरु स्वभाववाली सीता निर्जन एवं बीहड़ वनमें अकेली छूटी हुई अल्पवयस्का बालिकाके समान विलाप करने लगीं ॥२॥

सत्यं बतेदं प्रवदन्ति लोके
नाकालमृत्युर्भवतीति सन्तः ।
यत्राहमेवं परिभर्त्स्यमाना
जीवामि यस्मात् क्षणमप्यपुण्या ॥ ३ ॥

वे बोलीं—'संतजन लोकमें यह बात ठीक ही कहते हैं कि बिना समय आये किसीकी मृत्यु नहीं होती, तभी तो इस प्रकार धमकायी जानेपर भी मैं पुण्यहीना नारी क्षणभर भी जीवित रह पाती हूँ ॥ ३ ॥

सुखाद् विहीनं बहुदुःखपूर्ण-
मिदं तु नूनं हृदयं स्थिरं मे ।
विदीर्यते यन्न सहस्रधाद्य
वज्राहतं शृङ्गमिवाचलस्य ॥ ४ ॥

'मेरा यह हृदय सुखसे रहित और अनेक प्रकारके दुःखोंसे भरा होनेपर भी निश्चय ही अत्यन्त दृढ़ है। इसीलिये वज्रके मारे हुए पर्वतशिखरकी भाँति आज इसके सहस्रों टुकड़े नहीं हो जाते ॥ ४ ॥

नैवास्ति नूनं मम दोषमत्र
वध्याहमस्याप्रियदर्शनस्य
भावं न चास्याहमनुप्रदातु-
मलं द्विजो मन्त्रमिवाद्विजाय ॥ ५ ॥

'मैं इस दुष्ट रावणके हाथसे मारी जानेवाली हूँ, इसलिये यहाँ आत्मघात करनेसे भी मुझे कोई दोष नहीं लग सकता। कुछ भी हो, जैसे द्विज किसी शूद्रको वेदमन्त्रका उपदेश नहीं देता, उसी प्रकार मैं भी इस निशाचरको अपने हृदयका अनुराग नहीं दे सकती ॥ ५ ॥

तस्मिन्ननागच्छति लोकनाथे
गर्भस्थजन्तोरिव शल्यकृन्तः ।
नूनं ममाङ्गान्यचिरादनार्यः
शस्त्रैः शितैश्छेत्स्यति राक्षसेन्द्रः ॥ ६ ॥

'हाय! लोकनाथ भगवान् श्रीरामके आनेसे पहले ही यह दुष्ट राक्षसराज निश्चय ही अपने तीखे शस्त्रोंसे मेरे अङ्गोंके शीघ्र ही टुकड़े-टुकड़े कर डालेगा। ठीक वैसे ही, जैसे शल्यचिकित्सक किसी विशेष अवस्थामें गर्भस्थ शिशुके टूक-टूक कर देता है (अथवा जैसे इन्द्रने दितिके गर्भमें स्थित शिशुके उनचास टुकड़े कर डाले थे) ॥ ६ ॥

दुःखं बतेदं ननु दुःखिताया
मासौ चिरायाभिगमिष्यतो द्वौ ।
बद्धस्य वध्यस्य यथा निशान्ते
राजोपरोधादिव तस्करस्य ॥ ७ ॥

'मैं बड़ी दुखिया हूँ। दुःखकी बात है कि मेरी अवधिके ये दो महीने भी जल्दी ही समाप्त हो जायँगे। राजाके कारागारमें कैद हुए और रात्रिके अन्तमें फाँसीकी सजा पानेवाले अपराधी चोरकी जो दशा होती है, वही मेरी भी है ॥ ७ ॥

हा राम हा लक्ष्मण हा सुमित्रे
हा राममातः सह मे जनन्यः ।
एषा विपद्याम्यहमल्पभाग्या
महार्णवे नौरिव मूढवाता ॥ ८ ॥

'हा राम! हा लक्ष्मण! हा सुमित्रे! हा श्रीरामजननी कौसल्ये! और हा मेरी माताओ! जिस प्रकार बवंडरमें पड़ी हुई नौका महासागरमें डूब जाती है, उसी प्रकार आज मैं मन्दभागिनी सीता प्राणसङ्कटकी दशामें पड़ी हुई हूँ ॥ ८ ॥

तरस्विनौ धारयता मृगस्य
सत्त्वेन रूपं मनुजेन्द्रपुत्रौ ।
नूनं विशस्तौ मम कारणात् तौ
सिंहर्षभौ द्वाविव वैद्युतेन ॥ ९ ॥

'निश्चय ही उस मृगरूपधारी जीवने मेरे कारण उन दोनों वेगशाली राजकुमारोंको मार डाला होगा। जैसे दो श्रेष्ठ सिंह बिजलीसे मार दिये जायँ, वही दशा उन दोनों भाइयोंकी हुई होगी ॥ ९ ॥

नूनं स कालो मृगरूपधारी
मामल्पभाग्यां लुलुभे तदानीम् ।
यत्रार्यपुत्रौ विससर्ज मूढा
रामानुजं लक्ष्मणपूर्वजं च ॥ १० ॥

'अवश्य ही उस समय कालने ही मृगका रूप धारण करके मुझ मन्दभागिनीको लुभाया था, जिससे प्रभावित हो मुझ मूढ़ नारीने उन दोनों आर्यपुत्रों—श्रीराम और लक्ष्मणको उसके पीछे भेज दिया था ॥ १० ॥

हा राम सत्यव्रत दीर्घबाहो
हा पूर्णचन्द्रप्रतिमानवक्त्र ।
हा जीवलोकस्य हितः प्रियश्च
वध्यां न मां वेत्सि हि राक्षसानाम् ॥ ११ ॥

'हा सत्यव्रतधारी महाबाहु श्रीराम! हा पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले रघुनन्दन! हा जीवजगत्के हितैषी और प्रियतम! आपको पता नहीं है कि मैं राक्षसोंके हाथसे मारी जानेवाली हूँ ॥ ११ ॥

अनन्यदेवत्वमियं क्षमा च
भूमौ च शय्या नियमश्च धर्मे ।
पतिव्रतात्वं विफलं ममेदं
कृतं कृतघ्नेष्विव मानुषाणाम् ॥ १२ ॥

'मेरी यह अनन्योपासना, क्षमा, भूमिशयन, धर्मसम्बन्धी नियमोंका पालन और पतिव्रतपरायणता—ये सब-के-सब कृतघ्नोंके प्रति किये गये मनुष्योंके उपकारकी भाँति निष्फल हो गये ॥ १२ ॥

मोघो हि धर्मश्चरितो ममायं
तथैकपत्नीत्वमिदं निरर्थकम् ।
या त्वां न पश्यामि कृशा विवर्णा
हीना त्वया सङ्गमने निराशा ॥ १३ ॥

'प्रभो! यदि मैं अत्यन्त कृश और कान्तिहीन होकर आपसे बिछुड़ी ही रह गयी तथा आपसे मिलनेकी आशा खो बैठी, तब तो मैंने जिसका जीवनभर आचरण किया

है, वह धर्म मेरे लिये व्यर्थ हो गया और यह एकपत्नीव्रत भी किसी काम नहीं आया ॥ १३ ॥

3 ✓

पितुर्निदेशं नियमेन कृत्वा
वनान्निवृत्तश्चरितव्रतश्च
स्त्रीभिस्तु मन्ये विपुलेक्षणाभिः
संरंस्यसे वीतभयः कृतार्थः ॥ १४ ॥

'मैं तो समझती हूँ आप नियमानुसार पिताकी आज्ञाका पालन करके अपने व्रतको पूर्ण करनेके पश्चात् जब वनसे लौटेंगे, तब निर्भय एवं सफलमनोरथ हो विशाल नेत्रोंवाली बहुत-सी सुन्दरियोंके साथ विवाह करके उनके साथ रमण करेंगे ॥ १४ ॥

अहं तु राम त्वयि जातकामा
चिरं विनाशाय निबद्धभावा ।
मोघं चरित्वाथ तपो व्रतं च
त्यक्ष्यामि धिग्जीवितमल्पभाग्याम् ॥ १५ ॥

'किंतु श्रीराम ! मैं तो केवल आपमें ही अनुराग रखती हूँ । मेरा हृदय चिरकालतक आपसे ही बँधा रहेगा । मैं अपने विनाशके लिये ही आपसे प्रेम करती हूँ । अबतक मैंने तप और व्रत आदि जो कुछ भी किया है, वह मेरे लिये व्यर्थ सिद्ध हुआ है । उस अभीष्ट फलको न देनेवाले धर्मका आचरण करके अब मुझे अपने प्राणोंका परित्याग करना पड़ेगा । अतः मुझ मन्दभागिनीको धिक्कार है ॥ १५ ॥

संजीवितं क्षिप्रमहं त्यजेयं
विषेण शस्त्रेण शितेन वापि ।
विषस्य दाता न तु मेऽस्ति कश्चि-
च्छस्त्रस्य वा वेश्मनि राक्षसस्य ॥ १६ ॥

'मैं शीघ्र ही किसी तीखे शस्त्र अथवा विषसे अपने प्राण त्याग दूँगी; परंतु इस राक्षसके यहाँ मुझे कोई विष या शस्त्र देनेवाला भी नहीं है' ॥ १६ ॥

शोकाभितप्ता बहुधा विचिन्त्य
सीताथ वेणीग्रथनं गृहीत्वा ।
उद्बद्ध्य वेण्युद्ग्रथनेन शीघ्र-
महं गमिष्यामि यमस्य मूलम् ॥ १७ ॥ ✓

शोकसे संतप्त हुई सीताने इसी प्रकार बहुत कुछ विचार करके अपनी चोटीको पकड़कर निश्चय किया कि मैं शीघ्र ही इस चोटीसे फाँसी लगाकर यमलोकमें पहुँच जाऊँगी ॥ १७ ॥

उपस्थिता सा मृदुसर्वगात्री
शाखां गृहीत्वा च नगस्य तस्य ।
तस्यास्तु रामं परिचिन्तयन्त्या
रामानुजं स्वं च कुलं शुभाङ्ग्याः ॥ १८ ॥
तस्या विशोकानि तदा बहूनि
धैर्यार्जितानि प्रवराणि लोके ।
प्रादुर्निमित्तानि तदा बभूवुः
पुरापि सिद्धान्युपलक्षितानि ॥ १९ ॥

सीताजीके सभी अङ्ग बड़े कोमल थे । वे उस अशोक वृक्षके निकट उसकी शाखा पकड़कर खड़ी हो गयीं । इस प्रकार प्राण-त्यागके लिये उद्यत हो जब वे श्रीराम, लक्ष्मण और अपने कुलके विषयमें विचार करने लगीं, उस समय शुभाङ्गी सीताके समक्ष ऐसे बहुत-से लोकप्रसिद्ध श्रेष्ठ शकुन प्रकट हुए, जो शोककी निवृत्ति करनेवाले और उन्हें ढाढ़स बँधानेवाले थे । उन शकुनोंका दर्शन और उनके शुभ फलोंका अनुभव उन्हें पहले भी हो चुका था ॥ १८-१९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें अट्ठाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः

सीताजीके शुभ शकुन

तथागतां तां व्यथितामनिन्दितां
व्यतीतहर्षां परिदीनमानसाम् ।
शुभां निमित्तानि शुभानि भेजिरे
नरं श्रिया जुष्टमिवोपसेविनः ॥ १ ॥

इस प्रकार अशोकवृक्षके नीचे आनेपर बहुत-से शुभ शकुन प्रकट हो उन व्यथितहृदया, सती-साध्वी, हर्षशून्य, दीनचित्त तथा शुभलक्षणा सीताका उसी तरह सेवन करने लगे, जैसे श्रीसम्पन्न पुरुषके पास सेवा करनेवाले लोग स्वयं पहुँच जाते हैं ॥ १ ॥

तस्याः शुभं वाममरालपक्ष्म-
राज्यावृतं कृष्णविशालशुक्लम् ।
प्रास्पन्दतैकं नयनं सुकेश्या
मीनाहतं पद्ममिवाभिताम्रम् ॥ २ ॥

उस समय सुन्दर केशोंवाली सीताका बाँकी बरौनियोंसे घिरा हुआ परम मनोहर काला, श्वेत और विशाल बाँया नेत्र फड़कने लगा । जैसे मछलीके आघातसे लाल कमल हिलने लगा हो ॥ २ ॥

भुजश्च चार्वञ्चितवृत्तपीनः
परार्ध्यकालागुरुचन्दनार्हः ।
अनुत्तमेनाध्युषितः प्रियेण
चिरेण वामः समवेपताशु ॥ ३ ॥

साथ ही उनकी सुन्दर प्रशंसित गोलाकार मोटी, बहुमूल्य काले अगुरु और चन्दनसे चर्चित होने योग्य तथा परम उत्तम प्रियतमद्वारा चिरकालसे सेवित बाँयीं भुजा भी तत्काल फड़क उठी ॥ ३ ॥

गजेन्द्रहस्तप्रतिमश्च पीन-
स्तयोर्द्वयोः संहतयोस्तु जातः ।
प्रस्पन्दमानः पुनरूरुरस्या
रामं पुरस्तात् स्थितमाचचक्षे ॥ ४ ॥

फिर उनकी परस्पर जुड़ी हुई दोनों जाँघोंमेंसे एक बाँयीं जाँघ, जो गजराजकी सूँड़के समान पीन (मोटी) थी, बारंबार फड़ककर मानो यह सूचना देने लगी कि भगवान् श्रीराम तुम्हारे सामने खड़े हैं ॥ ४ ॥

शुभं पुनर्हेमसमानवर्ण-
मीषद्रजोध्वस्तमिवातुलाक्ष्याः ।
वासः स्थितायाः शिखराग्रदन्त्याः
किंचित् परिस्रंसत चारुगात्र्याः ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् अनारके बीजकी भाँति सुन्दर दाँत, मनोहर गात्र और अनुपम नेत्रवाली सीताका, जो वहाँ वृक्षके नीचे खड़ी थीं, सोनेके समान रंगवाला किंचित् मलिन रेशमी पीताम्बर तनिका-सा खिसक गया और भावी शुभकी सूचना देने लगा ॥ ५ ॥

एतैर्निमित्तैरपरैश्च सुभ्रूः
संचोदिता प्रागपि साधुसिद्धैः ।
वातातपक्लान्तमिव प्रणष्टं
वर्षेण बीजं प्रतिसंजहर्ष ॥ ६ ॥

इनसे तथा और भी अनेक शकुनोंसे, जिनके द्वारा पहले भी मनोरथ-सिद्धिका परिचय मिल चुका था, प्रेरित हुई सुन्दर भौंहोंवाली सीता उसी प्रकार हर्षसे खिल उठीं, जैसे हवा और धूपसे सूखकर नष्ट हुआ बीज वर्षाके जलसे सिंचकर हरा हो गया हो ॥ ६ ॥

तस्याः पुनर्बिम्बफलोपमोष्ठं
स्वक्षिभ्रुकेशान्तमरालपक्ष्म ।
वक्त्रं बभासे सितशुक्लदंष्ट्रं
राहोर्मुखाच्चन्द्र इव प्रमुक्तः ॥ ७ ॥

उनका बिम्बफलके समान लाल ओठों, सुन्दर नेत्रों, मनोहर भौंहों, रुचिर केशों, बाँकी बरौनियों तथा श्वेत उज्ज्वल दाँतोंसे सुशोभित मुख राहुके ग्राससे मुक्त हुए चन्द्रमाकी भाँति प्रकाशित होने लगा ॥ ७ ॥

सा वीतशोका व्यपनीततन्द्रा
शान्तज्वरा हर्षविबुद्धसत्त्वा ।
अशोभतार्या वदनेन शुक्ले
शीतांशुना रात्रिरिवोदितेन ॥ ८ ॥

उनका शोक जाता रहा, सारी थकावट दूर हो गयी, मनका ताप शान्त हो गया और हृदय हर्षसे खिल उठा । उस समय आर्या सीता शुक्लपक्षमें उदित हुए शीतरश्मि चन्द्रमासे सुशोभित रात्रिकी भाँति अपने मनोहर मुखसे अद्भुत शोभा पाने लगीं ॥ ८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें उन्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २९ ॥

* * *

त्रिंशः सर्गः

सीताजीसे वार्तालाप करनेके विषयमें हनुमान्‌जीका विचार करना

हनुमानपि विक्रान्तः सर्वं शुश्राव तत्त्वतः ।
सीतायास्त्रिजटायाश्च राक्षसीनां च तर्जितम् ॥ १ ॥

पराक्रमी हनुमान्‌जीने भी सीताजीका विलाप, त्रिजटाकी स्वप्नचर्चा तथा राक्षसियोंकी डाँट-डपट—ये सब प्रसंग ठीक-ठीक सुन लिये ॥ १ ॥

अवेक्षमाणस्तां देवीं देवतामिव नन्दने ।
ततो बहुविधां चिन्तां चिन्तयामास वानरः ॥ २ ॥

सीताजी ऐसी जान पड़ती थीं मानो नन्दनवनमें कोई देवी हों । उन्हें देखते हुए वानरवीर हनुमान्‌जी तरह-तरहकी चिन्ता करने लगे—॥ २ ॥

यां कपीनां सहस्राणि सुबहून्ययुतानि च ।
दिक्षु सर्वासु मार्गन्ते सेयमासादिता मया ॥ ३ ॥

'जिन सीताजीको हजारों-लाखों वानर समस्त दिशाओंमें ढूँढ़ रहे हैं, आज उन्हें मैंने पा लिया ॥ ३ ॥

चारेण तु सुयुक्तेन शत्रोः शक्तिमवेक्षता ।
गूढेन चरता तावदवेक्षितमिदं मया ॥ ४ ॥
राक्षसानां विशेषश्च पुरी चेयं निरीक्षिता ।
राक्षसाधिपतेरस्य प्रभावो रावणस्य च ॥ ५ ॥

'मैं स्वामीद्वारा नियुक्त दूत बनकर गुप्तरूपसे शत्रुकी शक्तिका पता लगा रहा था । इसी सिलसिलेमें मैंने राक्षसोंके

तारतम्यका, इस पुरीका तथा इस राक्षसराज रावणके प्रभावका भी निरीक्षण कर लिया ॥ ४-५ ॥

यथा तस्याप्रमेयस्य सर्वसत्त्वदयावतः ।
समाश्वासयितुं भार्यां पतिदर्शनकाङ्क्षिणीम् ॥ ६ ॥

'श्रीसीताजी असीम प्रभावशाली तथा सब जीवोंपर दया करनेवाले भगवान् श्रीरामकी भार्या हैं। ये अपने पतिदेवका दर्शन पानेकी अभिलाषा रखती हैं, अतः इन्हें सान्त्वना देना उचित है ॥ ६ ॥

अहमाश्वासयाम्येनां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
अदृष्टदुःखां दुःखस्य न ह्यन्तमधिगच्छतीम् ॥ ७ ॥

'इनका मुख पूर्णचन्द्रमाके समान मनोहर है। इन्होंने पहले कभी ऐसा दुःख नहीं देखा था, परंतु इस समय दुःखका पार नहीं पा रही हैं। अतः मैं इन्हें आश्वासन दूँगा ॥ ७ ॥

यदि ह्यहं सतीमेनां शोकोपहतचेतनाम् ।
अनाश्वास्य गमिष्यामि दोषवद् गमनं भवेत् ॥ ८ ॥

'ये शोकके कारण अचेत-सी हो रही हैं, यदि मैं इन सती-साध्वी सीताको सान्त्वना दिये बिना ही चला जाऊँगा तो मेरा वह जाना दोषयुक्त होगा ॥ ८ ॥

गते हि मयि तत्रेयं राजपुत्री यशस्विनी ।
परित्राणमपश्यन्ती जानकी जीवितं त्यजेत् ॥ ९ ॥

'मेरे चले जानेपर अपनी रक्षाका कोई उपाय न देखकर ये यशस्विनी राजकुमारी जानकी अपने जीवनका अन्त कर देंगी ॥ ९ ॥

यथा च स महाबाहुः पूर्णचन्द्रनिभाननः ।
समाश्वासयितुं न्याय्यः सीतादर्शनलालसः ॥ १० ॥

'पूर्णचन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी भी सीताजीके दर्शनके लिये उत्सुक हैं। जिस प्रकार उन्हें सीताका संदेश सुनाकर सान्त्वना देना उचित है, उसी प्रकार सीताको भी उनका संदेश सुनाकर आश्वासन देना उचित होगा ॥ १० ॥

निशाचरीणां प्रत्यक्षमक्षमं चाभिभाषितम् ।
कथं नु खलु कर्तव्यमिदं कृच्छ्रगतो ह्यहम् ॥ ११ ॥

'परंतु राक्षसियोंके सामने इनसे बात करना मेरे लिये ठीक नहीं होगा। ऐसी अवस्थामें यह कार्य कैसे सम्पन्न करना चाहिये, यही निश्चय करना मेरे लिये सबसे बड़ी कठिनाई है ॥ ११ ॥

अनेन रात्रिशेषेण यदि नाश्वास्यते मया ।
सर्वथा नास्ति संदेहः परित्यक्ष्यति जीवितम् ॥ १२ ॥

'यदि इस रात्रिके बीतते-बीतते मैं सीताको सान्त्वना नहीं दे देता हूँ तो ये सर्वथा अपने जीवनका परित्याग कर देंगी, इसमें संदेह नहीं है ॥ १२ ॥

रामस्तु यदि पृच्छेन्मां किं मां सीताब्रवीद् वचः ।
किमहं तं प्रतिब्रूयामसम्भाष्य सुमध्यमाम् ॥ १३ ॥

'यदि श्रीरामचन्द्रजी मुझसे पूछें कि सीताने मेरे लिये क्या संदेश भेजा है तो इन सुमध्यमा सीतासे बात किये बिना मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा ॥ १३ ॥

सीतासंदेशरहितं मामितस्त्वरया गतम् ।
निर्दहेदपि काकुत्स्थः क्रोधतीव्रेण चक्षुषा ॥ १४ ॥

'यदि मैं सीताका संदेश लिये बिना ही यहाँसे तुरंत लौट गया तो ककुत्स्थकुलभूषण भगवान् श्रीराम अपनी क्रोधभरी दुःसह दृष्टिसे मुझे जलाकर भस्म कर डालेंगे ।१४॥

यदि चोद्योजयिष्यामि भर्तारं रामकारणात् ।
व्यर्थमागमनं तस्य ससैन्यस्य भविष्यति ॥ १५ ॥

'यदि मैं इन्हें सान्त्वना दिये बिना ही लौट जाऊँ और श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी सिद्धिके लिये अपने स्वामी वानरराज सुग्रीवको उत्तेजित करूँ तो वानरसेनाके साथ उनका यहाँतक आना व्यर्थ हो जायगा (क्योंकि सीता इसके पहले ही अपने प्राण त्याग देंगी) ॥ १५ ॥

अन्तरं त्वहमासाद्य राक्षसीनामवस्थितः ।
शनैराश्वासयाम्यद्य संतापबहुलामिमाम् ॥ १६ ॥

'अच्छा तो राक्षसियोंके रहते हुए ही अवसर पाकर आज मैं यहीं बैठे-बैठे इन्हें धीरे-धीरे सान्त्वना दूँगा; क्योंकि इनके मनमें बड़ा संताप है ॥ १६ ॥

अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः ।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम् ॥ १७ ॥

'एक तो मेरा शरीर अत्यन्त सूक्ष्म है, दूसरे मैं वानर हूँ। विशेषतः वानर होकर भी मैं यहाँ मानवोचित संस्कृत भाषामें बोलूँगा ॥ १७ ॥

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम् । ✓
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ॥ १८ ॥

'परंतु ऐसा करनेमें एक बाधा है, यदि मैं द्विजकी भाँति संस्कृत-वाणीका प्रयोग करूँगा तो सीता मुझे रावण समझकर भयभीत हो जायँगी ॥ १८ ॥

अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत् । ✓
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता ॥ १९ ॥

'ऐसी दशामें अवश्य ही मुझे उस सार्थक भाषाका प्रयोग करना चाहिये, जिसे अयोध्याके आस-पासकी साधारण जनता बोलती है, अन्यथा इन सती-साध्वी सीताको मैं उचित आश्वासन नहीं दे सकता ॥ १९ ॥

सेयमालोक्य मे रूपं जानकी भाषितं तथा ।
रक्षोभिस्त्रासिता पूर्वं भूयस्त्रासमुपैष्यति ॥ २० ॥

'यदि मैं सामने जाऊँ तो मेरे इस वानररूपको देखकर

और मेरे मुखसे मानवोचित भाषा सुनकर ये जनकनन्दिनी सीता, जिन्हें पहलेसे ही राक्षसोंने भयभीत कर रक्खा है, और भी डर जायँगी ॥ २० ॥

ततो जातपरित्रासा शब्दं कुर्यान्मनस्विनी ।
जानाना मां विशालाक्षी रावणं कामरूपिणम् ॥ २१ ॥

'मनमें भय उत्पन्न हो जानेपर ये विशाललोचना मनस्विनी सीता मुझे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला रावण समझकर जोर-जोरसे चीखने-चिल्लाने लगेंगी ॥ २१ ॥

सीतया च कृते शब्दे सहसा राक्षसीगणः ।
नानाप्रहरणो घोरः समेयादन्तकोपमः ॥ २२ ॥

'सीताके चिल्लानेपर ये यमराजके समान भयानक राक्षसियाँ तरह-तरहके हथियार लेकर सहसा आ धमकेंगी ॥

ततो मां सम्परिक्षिप्य सर्वतो विकृताननाः ।
वधे च ग्रहणे चैव कुर्युर्यत्नं महाबलाः ॥ २३ ॥

'तदनन्तर ये विकट मुखवाली महाबलवती राक्षसियाँ मुझे सब ओरसे घेरकर मारने या पकड़ लेनेका प्रयत्न करेंगी ॥ २३ ॥

तं मां शाखाः प्रशाखाश्च स्कन्धांश्चोत्तमशाखिनाम् ।
दृष्ट्वा च परिधावन्तं भवेयुः परिशङ्किताः ॥ २४ ॥

'फिर मुझे बड़े-बड़े वृक्षोंकी शाखा-प्रशाखा और मोटी-मोटी डालियोंपर दौड़ता देख ये सब-की-सब सशङ्क हो उठेंगी ॥ २४ ॥

मम रूपं च सम्प्रेक्ष्य वने विचरतो महत् ।
राक्षस्यो भयवित्रस्ता भवेयुर्विकृतस्वराः ॥ २५ ॥

'वनमें विचरते हुए मेरे इस विशाल रूपको देखकर राक्षसियाँ भी भयभीत हो बुरी तरहसे चिल्लाने लगेंगी ॥ २५ ॥

ततः कुर्युः समाह्वानं राक्षस्यो रक्षसामपि ।
राक्षसेन्द्रनियुक्तानां राक्षसेन्द्रनिवेशने ॥ २६ ॥

'इसके बाद वे निशाचरियाँ राक्षसराज रावणके महलमें उसके द्वारा नियुक्त किये गये राक्षसोंको बुला लेंगी ॥ २६ ॥

ते शूलशरनिस्त्रिंशविविधायुधपाणयः ।
आपतेयुर्विमर्देऽस्मिन् वेगेनोद्वेगकारणात् ॥ २७ ॥

'इस हलचलमें वे राक्षस भी उद्विग्न होकर शूल, बाण, तलवार और तरह-तरहके शस्त्रास्त्र लेकर बड़े वेगसे आ धमकेंगे ॥ २७ ॥

संरुद्धस्तैस्तु परितो विधमे राक्षसं बलम् ।
शक्नुयां न तु सम्प्राप्तुं परं पारं महोदधेः ॥ २८ ॥

'उनके द्वारा सब ओरसे घिर जानेपर मैं राक्षसोंकी सेनाका संहार तो कर सकता हूँ; परंतु समुद्रके उस पार नहीं पहुँच सकता ॥ २८ ॥

मां वा गृह्णीयुराप्लुत्य बहवः शीघ्रकारिणः ।
स्यादियं चागृहीतार्था मम च ग्रहणं भवेत् ॥ २९ ॥

'यदि बहुत-से फुर्तीले राक्षस मुझे घेरकर पकड़ लें तो सीताजीका मनोरथ भी पूरा नहीं होगा और मैं भी बंदी बना लिया जाऊँगा ॥ २९ ॥

हिंसाभिरुचयो हिंस्युरिमां वा जनकात्मजाम् ।
विपन्नं स्यात् ततः कार्यं रामसुग्रीवयोरिदम् ॥ ३० ॥

'इसके सिवा हिंसामें रुचि रखनेवाले राक्षस यदि इन जनकदुलारीको मार डालें तो श्रीरघुनाथजी और सुग्रीवका यह सीताकी प्राप्तिरूप अभीष्ट कार्य ही नष्ट हो जायगा ॥ ३० ॥

उद्देशे नष्टमार्गेऽस्मिन् राक्षसैः परिवारिते ।
सागरेण परिक्षिप्ते गुप्ते वसति जानकी ॥ ३१ ॥

'यह स्थान राक्षसोंसे घिरा हुआ है । यहाँ आनेका मार्ग दूसरोंका देखा या जाना हुआ नहीं है तथा इस प्रदेशको समुद्रने चारों ओरसे घेर रक्खा है । ऐसे गुप्त स्थानमें जानकीजी निवास करती हैं ॥ ३१ ॥

विशस्ते वा गृहीते वा रक्षोभिर्मयि संयुगे ।
नाशं पश्यामि रामस्य सहायं कार्यसाधने ॥ ३२ ॥

'यदि राक्षसोंने मुझे संग्राममें मार दिया या पकड़ लिया तो फिर श्रीरघुनाथजीके कार्यको पूर्ण करनेके लिये कोई दूसरा सहायक भी मैं नहीं देख रहा हूँ ॥ ३२ ॥

विमृशंश्च न पश्यामि यो हते मयि वानरः ।
शतयोजनविस्तीर्णं लङ्घयेत महोदधिम् ॥ ३३ ॥

'बहुत विचार करनेपर भी मुझे ऐसा कोई वानर नहीं दिखायी देता है, जो मेरे मारे जानेपर सौ योजन विस्तृत महासागरको लाँघ सके ॥ ३३ ॥

कामं हन्तुं समर्थोऽस्मि सहस्राण्यपि रक्षसाम् ।
न तु शक्ष्याम्यहं प्राप्तुं परं पारं महोदधेः ॥ ३४ ॥

'मैं इच्छानुसार सहस्रों राक्षसोंको मार डालनेमें समर्थ हूँ; परंतु युद्धमें फँस जानेपर महासागरके उस पार नहीं जा सकूँगा ॥ ३४ ॥

असत्यानि च युद्धानि संशयो मे न रोचते ।
कश्च निःसंशयं कार्यं कुर्यात् प्राज्ञः ससंशयम् ॥ ३५ ॥

'युद्ध अनिश्चयात्मक होता है (उसमें किस पक्षकी विजय होगी, यह निश्चित नहीं रहता) और मुझे संशययुक्त कार्य प्रिय नहीं है । कौन ऐसा बुद्धिमान् होगा, जो संशयरहित कार्यको संशययुक्त बनाना चाहेगा ॥ ३५ ॥

एष दोषो महान् हि स्यान्मम सीताभिभाषणे ।
प्राणत्यागश्च वैदेह्या भवेदनभिभाषणे ॥ ३६ ॥

'सीताजीसे बातचीत करनेमें मुझे यही महान् दोष प्रतीत होता है और यदि बातचीत नहीं करता हूँ तो विदेहनन्दिनी सीताका प्राणत्याग भी निश्चित ही है ॥ ३६ ॥

भूताश्चार्था विरुध्यन्ति देशकालविरोधिताः ।
विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ॥ ३७ ॥

'अविवेकी या असावधान दूतके हाथमें पड़नेपर बने-बनाये काम भी देश-कालके विरोधी होकर उसी प्रकार असफल हो जाते हैं, जैसे सूर्यका उदय होनेपर सब ओर फैले हुए अन्धकारका कोई वश नहीं चलता, वह निष्फल हो जाता है ॥ ३७ ॥

अर्थानर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चितापि न शोभते ।
घातयन्ति हि कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः ॥ ३८ ॥

'कर्तव्य और अकर्तव्यके विषयमें स्वामीकी निश्चित बुद्धि भी अविवेकी दूतके कारण शोभा नहीं पाती है; क्योंकि अपनेको बड़ा बुद्धिमान् या पण्डित समझनेवाले दूत अपनी ही नासमझीसे कार्यको नष्ट कर डालते हैं ॥ ३८ ॥

न विनश्येत् कथं कार्यं वैक्लव्यं न कथं मम ।
लङ्घनं च समुद्रस्य कथं नु न वृथा भवेत् ॥ ३९ ॥
कथं नु खलु वाक्यं मे शृणुयान्नोद्विजेत च ।
इति संचिन्त्य हनुमांश्चकार मतिमान् मतिम् ॥ ४० ॥

'फिर किस प्रकार यह काम न बिगड़े, किस तरह मुझसे कोई असावधानी न हो, किस प्रकार मेरा समुद्र लाँघना व्यर्थ न हो जाय और किस तरह सीताजी मेरी सारी बातें सुन लें, किंतु घबराहटमें न पड़ें—इन सब बातोंपर विचार करके बुद्धिमान् हनुमान्‌जीने यह निश्चय किया ॥ ३९-४० ॥

राममक्लिष्टकर्माणं सुबन्धुमनुकीर्तयन् ।
नैनामुद्वेजयिष्यामि तद्बन्धुगतचेतनाम् ॥ ४१ ॥

'जिनका चित्त अपने जीवन-बन्धु श्रीराममें ही लगा है, उन सीताजीको मैं उनके प्रियतम श्रीरामका जो अनायास ही महान् कर्म करनेवाले हैं, गुण गा-गाकर सुनाऊँगा और उन्हें उद्विग्न नहीं होने दूँगा ॥ ४१ ॥

इक्ष्वाकूणां वरिष्ठस्य रामस्य विदितात्मनः ।
शुभानि धर्मयुक्तानि वचनानि समर्पयन् ॥ ४२ ॥

'मैं इक्ष्वाकुकुलभूषण विदितात्मा भगवान् श्रीरामके सुन्दर, धर्मानुकूल वचनोंको सुनाता हुआ यहीं बैठा रहूँगा ॥

श्रावयिष्यामि सर्वाणि मधुरां प्रब्रुवन् गिरम् ।
श्रद्धास्यति यथा सीता तथा सर्वं समादधे ॥ ४३ ॥

'मीठी वाणी बोलकर श्रीरामके सारे संदेशोंको इस प्रकार सुनाऊँगा, जिससे सीताका उन वचनोंपर विश्वास हो । जिस तरह उनके मनका संदेह दूर हो, उसी तरह मैं सब बातोंका समाधान करूँगा' ॥ ४३ ॥

इति स बहुविधं महाप्रभावो
जगतिपतेः प्रमदामवेक्षमाणः ।
मधुरमवितथं जगाद वाक्यं
द्रुमविटपान्तरमास्थितो हनूमान् ॥ ४४ ॥

इस प्रकार भाँति-भाँतिसे विचार करके अशोक-वृक्षकी शाखाओंमें छिपकर बैठे हुए महाप्रभावशाली हनुमान्‌जी पृथ्वीपति श्रीरामचन्द्रजीकी भार्याकी ओर देखते हुए मधुर एवं यथार्थ बात कहने लगे ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः

हनुमान्‌जीका सीताको सुनानेके लिये श्रीराम-कथाका वर्णन करना

एवं बहुविधां चिन्तां चिन्तयित्वा महामतिः ।
संश्रवे मधुरं वाक्यं वैदेह्या व्याजहार ह ॥ १ ॥

इस प्रकार बहुत-सी बातें सोच-विचारकर महामति हनुमान्‌जीने सीताको सुनाते हुए मधुर वाणीमें इस तरह कहना आरम्भ किया—॥ १ ॥

राजा दशरथो नाम रथकुञ्जरवाजिमान् ।
पुण्यशीलो महाकीर्तिरिक्ष्वाकूणां महायशाः ॥ २ ॥

'इक्ष्वाकुवंशमें राजा दशरथ नामसे प्रसिद्ध एक पुण्यात्मा राजा हो गये हैं । वे अत्यन्त कीर्तिमान् और महान् यशस्वी थे । उनके यहाँ रथ, हाथी और घोड़े बहुत अधिक थे ॥ २ ॥

राजर्षीणां गुणश्रेष्ठस्तपसा चर्षिभिः समः ।
चक्रवर्तिकुले जातः पुरंदरसमो बले ॥ ३ ॥

'उन श्रेष्ठ नरेशमें राजर्षियोंके समान गुण थे । तपस्यामें भी वे ऋषियोंकी समानता करते थे । उनका जन्म चक्रवर्ती नरेशोंके कुलमें हुआ था । वे देवराज इन्द्रके समान बलवान् थे ॥ ३ ॥

अहिंसारतिरक्षुद्रो घृणी सत्यपराक्रमः ।
मुख्यस्येक्ष्वाकुवंशस्य लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मिवर्धनः ॥ ४ ॥
पार्थिवव्यञ्जनैर्युक्तः पृथुश्रीः पार्थिवर्षभः ।
पृथिव्यां चतुरन्तायां विश्रुतः सुखदः सुखी ॥ ५ ॥

'उनके मनमें अहिंसा-धर्मके प्रति बड़ा अनुराग था । उनमें क्षुद्रताका नाम नहीं था । वे दयालु, सत्य-पराक्रमी और श्रेष्ठ इक्ष्वाकुवंशकी शोभा बढ़ानेवाले थे । वे लक्ष्मीवान् नरेश राजोचित लक्षणोंसे युक्त, परिपुष्ट शोभासे सम्पन्न और भूपालोंमें श्रेष्ठ थे । चारों समुद्र जिसकी सीमा हैं, उस सम्पूर्ण

भूमण्डलमें सब ओर उनकी बड़ी ख्याति थी। वे स्वयं तो सुखी थे ही। दूसरोंको भी सुख देनेवाले थे ॥ ४–५ ॥

तस्य पुत्रः प्रियो ज्येष्ठस्ताराधिपनिभाननः।
रामो नाम विशेषज्ञः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ ६ ॥

'उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम-नामसे प्रसिद्ध हैं। वे पिताके लाड़ले, चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले, सम्पूर्ण धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ और शस्त्र-विद्याके विशेषज्ञ हैं ॥ ६ ॥

रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य स्वजनस्यापि रक्षिता।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य च परंतपः ॥ ७ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले श्रीराम अपने सदाचारके, स्वजनोंके, इस जीव-जगत्‌के तथा धर्मके भी रक्षक हैं ॥ ७ ॥

तस्य सत्याभिसंधस्य वृद्धस्य वचनात् पितुः।
सभार्यः सह च भ्रात्रा वीरः प्रव्रजितो वनम् ॥ ८ ॥

'उनके बूढ़े पिता महाराज दशरथ बड़े सत्यप्रतिज्ञ थे। उनकी आज्ञासे वीर श्रीरघुनाथजी अपनी पत्नी और भाई लक्ष्मणके साथ वनमें चले आये ॥ ८ ॥

तेन तत्र महारण्ये मृगयां परिधावता।
राक्षसा निहताः शूरा बहवः कामरूपिणः ॥ ९ ॥

'वहाँ विशाल वनमें शिकार खेलते हुए श्रीरामने इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले बहुत-से शूरवीर राक्षसोंका वध कर डाला ॥ ९ ॥

जनस्थानवधं श्रुत्वा निहतौ खरदूषणौ।
ततस्त्वमर्षापहृता जानकी रावणेन तु ॥ १० ॥

'उनके द्वारा जनस्थानके विध्वंस और खरदूषणके वधका समाचार सुनकर रावणने अमर्षवश जनकनन्दिनी सीताका अपहरण कर लिया ॥ १० ॥

वञ्चयित्वा वने रामं मृगरूपेण मायया।
स मार्गमाणस्तां देवीं रामः सीतामनिन्दिताम् ॥ ११ ॥
आससाद वने मित्रं सुग्रीवं नाम वानरम्।

'पहले तो उस राक्षसने मायासे मृग बने हुए मारीचके द्वारा वनमें श्रीरामचन्द्रजीको धोखा दिया और स्वयं जानकीजीको हर ले गया। भगवान् श्रीराम परम साध्वी सीतादेवीकी खोज करते हुए मतंग-वनमें आकर सुग्रीव नामक वानरसे मिले और उनके साथ उन्होंने मैत्री स्थापित कर ली ॥ ११½ ॥

ततः स वालिनं हत्वा रामः परपुरंजयः ॥ १२ ॥
आयच्छत् कपिराज्यं तु सुग्रीवाय महात्मने।

'तदनन्तर शत्रु-नगरीपर विजय पानेवाले श्रीरामने वालीका वध करके वानरोंका राज्य महात्मा सुग्रीवको दे दिया ॥

सुग्रीवेणाभिसंदिष्टा हरयः कामरूपिणः ॥ १३ ॥
दिक्षु सर्वासु तां देवीं विचिन्वन्तः सहस्रशः।

'तत्पश्चात् वानरराज सुग्रीवकी आज्ञासे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले हजारों वानर सीतादेवीका पता लगानेके लिये सम्पूर्ण दिशाओंमें निकले हैं ॥ १३½ ॥

अहं सम्पातिवचनाच्छतयोजनमायतम् ॥ १४ ॥
तस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः समुद्रं वेगवान् प्लुतः।

'उन्हींमेंसे एक मैं भी हूँ। मैं सम्पातिके कहनेसे विशाललोचना विदेहनन्दिनीकी खोजके लिये सौ योजन विस्तृत समुद्रको वेगपूर्वक लाँघकर यहाँ आया हूँ ॥ १४½ ॥

यथारूपां यथावर्णां यथालक्ष्मवतीं च ताम् ॥ १५ ॥
अश्रौषं राघवस्याहं सेयमासादिता मया।
विररामैवमुक्त्वा स वाचं वानरपुङ्गवः ॥ १६ ॥

'मैंने श्रीरघुनाथजीके मुखसे जानकीजीका जैसा रूप, जैसा रंग तथा जैसे लक्षण सुने थे, उनके अनुरूप ही इन्हें पाया है।' इतना ही कहकर वानरशिरोमणि हनुमान्‌जी चुप हो गये ॥ १५-१६ ॥

जानकी चापि तच्छ्रुत्वा विस्मयं परमं गता।
ततः सा वक्रकेशान्ता सुकेशी केशसंवृतम्।
उन्नम्य वदनं भीरुः शिंशपामन्ववैक्षत ॥ १७ ॥

उनकी बातें सुनकर जनकनन्दिनी सीताको बड़ा विस्मय हुआ। उनके केश घुँघराले और बड़े ही सुन्दर थे। भीरु सीताने केशोंसे ढके हुए अपने मुँहको ऊपर उठाकर उस अशोक-वृक्षकी ओर देखा ॥ १७ ॥

निशम्य सीता वचनं कपेश्च
दिशश्च सर्वाः प्रदिशश्च वीक्ष्य।
स्वयं प्रहर्षं परमं जगाम
सर्वात्मना राममनुस्मरन्ती ॥ १८ ॥

कपिके वचन सुनकर सीताको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे सम्पूर्ण वृत्तियोंसे भगवान् श्रीरामका स्मरण करती हुई समस्त दिशाओंमें दृष्टि दौड़ाने लगीं ॥ १८ ॥

सा तिर्यगूर्ध्वं च तथा ह्यधस्ता-
न्निरीक्षमाणा तमचिन्त्यबुद्धिम्।
ददर्श पिङ्गाधिपतेरमात्यं
वातात्मजं सूर्यमिवोदयस्थम् ॥ १९ ॥

उन्होंने ऊपर-नीचे तथा इधर-उधर दृष्टिपात करके उन अचिन्त्य बुद्धिवाले पवनपुत्र हनुमान्‌को, जो वानरराज सुग्रीवके मन्त्री थे, उदयाचलपर विराजमान सूर्यके समान देखा ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें इकतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः

सीताजीका तर्क-वितर्क

ततः शाखान्तरे लीनं दृष्ट्वा चलितमानसा।
वेष्टितार्जुनवस्त्रं तं विद्युत्संघातपिङ्गलम्॥ १॥
सा ददर्श कपिं तत्र प्रश्रितं प्रियवादिनम्।
फुल्लाशोकोत्कराभासं तप्तचामीकरेक्षणम्॥ २॥

तब शाखाके भीतर छिपे हुए, विद्युत्पुञ्जके समान अत्यन्त पिङ्गल वर्णवाले और श्वेत वस्त्रधारी हनुमान्‌जीपर उनकी दृष्टि पड़ी। फिर तो उनका चित्त चञ्चल हो उठा। उन्होंने देखा, फूले हुए अशोकके समान अरुण कान्तिसे प्रकाशित एक विनीत और प्रियवादी वानर डालियोंके बीचमें बैठा है। उसके नेत्र तपाये हुए सुवर्णके समान चमक रहे हैं॥ १-२॥

साथ दृष्ट्वा हरिश्रेष्ठं विनीतवदवस्थितम्।
मैथिली चिन्तयामास विस्मयं परमं गता॥ ३॥

विनीतभावसे बैठे हुए वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जीको देखकर मिथिलेशकुमारीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे मन-ही-मन सोचने लगीं—॥ ३॥

अहो भीममिदं सत्त्वं वानरस्य दुरासदम्।
दुर्निरीक्ष्यमिदं मत्वा पुनरेव मुमोह सा॥ ४॥

'अहो! वानरयोनिका यह जीव तो बड़ा ही भयंकर है। इसे पकड़ना बहुत ही कठिन है। इसकी ओर तो आँख उठाकर देखनेका भी साहस नहीं होता।' ऐसा विचारकर वे पुनः भयसे मूर्च्छित-सी हो गयीं॥ ४॥

विललाप भृशं सीता करुणं भयमोहिता।
रामरामेति दुःखार्ता लक्ष्मणेति च भामिनी॥ ५॥

भयसे मोहित हुई भामिनी सीता अत्यन्त करुणाजनक स्वरमें 'हा राम! हा राम! हा लक्ष्मण!' ऐसा कहकर दुःखसे आतुर हो अत्यन्त विलाप करने लगीं॥ ५॥

रुरोद सहसा सीता मन्दमन्दस्वरा सती।
साथ दृष्ट्वा हरिवरं विनीतवदुपागतम्।
मैथिली चिन्तयामास स्वप्नोऽयमिति भामिनी॥ ६॥

उस समय सीता मन्द स्वरमें सहसा रो पड़ीं। इतनेहीमें उन्होंने देखा, वह श्रेष्ठ वानर बड़ी विनयके साथ निकट आ बैठा है। तब भामिनी मिथिलेशकुमारीने सोचा—'यह कोई स्वप्न तो नहीं है'॥ ६॥

सा वीक्षमाणा पृथुभुग्नवक्त्रं
शाखामृगेन्द्रस्य यथोक्तकारम्।
ददर्श पिङ्गप्रवरं महार्हं
वातात्मजं बुद्धिमतां वरिष्ठम्॥ ७॥

उधर दृष्टिपात करते हुए उन्होंने वानरराज सुग्रीवके आज्ञापालक विशाल और टेढ़े मुखवाले, परम आदरणीय, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ, वानरप्रवर पवनपुत्र हनुमान्‌जीको देखा॥ ७॥

सा तं समीक्ष्यैव भृशं विपन्ना
गतासुकल्पेव बभूव सीता।
चिरेण संज्ञां प्रतिलभ्य चैवं
विचिन्तयामास विशालनेत्रा॥ ८॥

उन्हें देखते ही सीताजी अत्यन्त व्यथित होकर ऐसी दशाको पहुँच गयीं, मानो उनके प्राण निकल गये हों। फिर बड़ी देरमें चेत होनेपर विशाललोचना विदेह-राजकुमारीने इस प्रकार विचार किया—॥ ८॥

स्वप्नो मयायं विकृतोऽद्य दृष्टः
शाखामृगः शास्त्रगणैर्निषिद्धः।
स्वस्त्यस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
तथा पितुर्मे जनकस्य राज्ञः॥ ९॥

'आज मैंने यह बड़ा बुरा स्वप्न देखा है। सपनेमें वानरको देखना शास्त्रोंने निषिद्ध बताया है। मेरी भगवान्‌से प्रार्थना है कि श्रीराम, लक्ष्मण और मेरे पिता जनकका मङ्गल हो (उनपर इस दुःस्वप्नका प्रभाव न पड़े)॥ ९॥

स्वप्नो हि नायं नहि मेऽस्ति निद्रा
शोकेन दुःखेन च पीडितायाः।
सुखं हि मे नास्ति यतो विहीना
तेनेन्दुपूर्णप्रतिमाननेन॥ १०॥

'परंतु यह स्वप्न तो हो नहीं सकता; क्योंकि शोक और दुःखसे पीड़ित रहनेके कारण मुझे कभी नींद आती ही नहीं है (नींद उसे आती है, जिसे सुख हो)। मुझे तो उन पूर्णचन्द्रके समान मुखवाले श्रीरघुनाथजीसे बिछुड़ जानेके कारण अब सुख सुलभ ही नहीं है॥ १०॥

रामेति रामेति सदैव बुद्ध्या
विचिन्त्य वाचा ब्रुवती तमेव।
तस्यानुरूपं च कथां तदर्था-
मेवं प्रपश्यामि तथा शृणोमि॥ ११॥

'मैं बुद्धिसे सर्वदा 'राम! राम!' ऐसा चिन्तन करके वाणीद्वारा भी राम-नामका ही उच्चारण करती रहती हूँ; अतः उस विचारके अनुरूप वैसे ही अर्थवाली यह कथा देख और सुन रही हूँ॥ ११॥

अहं हि तस्याद्य मनोभवेन
सम्पीडिता तद्गतसर्वभावा।
विचिन्तयन्ती सततं तमेव
तथैव पश्यामि तथा शृणोमि॥ १२॥

'मेरा हृदय सर्वदा श्रीरघुनाथमें ही लगा हुआ है;

अतः श्रीराम-दर्शनकी लालसासे अत्यन्त पीड़ित हो सदा उन्हींका चिन्तन करती हुई उन्हींको देखती और उन्हींकी कथा सुनती हूँ ॥ १२ ॥

मनोरथः स्यादिति चिन्तयामि
तथापि बुद्ध्यापि वितर्कयामि ।
किं कारणं तस्य हि नास्ति रूपं
सुव्यक्तरूपश्च वदत्ययं माम् ॥ १३ ॥

'सोचती हूँ कि सम्भव है यह मेरे मनकी ही कोई भावना हो तथापि बुद्धिसे भी तर्क-वितर्क करती हूँ कि यह जो कुछ दिखायी देता है, इसका क्या कारण है ? मनोरथ या मनकी भावनाका कोई स्थूल रूप नहीं होता; परंतु इस वानरका रूप तो स्पष्ट दिखायी दे रहा है और यह मुझसे बातचीत भी करता है ॥ १३ ॥

नमोऽस्तु वाचस्पतये सवज्रिणे
स्वयम्भुवे चैव हुताशनाय ।
अनेन चोक्तं यदिदं ममाग्रतो
वनौकसा तच्च तथास्तु नान्यथा ॥ १४ ॥

'मैं वाणीके स्वामी बृहस्पतिको, वज्रधारी इन्द्रको, स्वयम्भू ब्रह्माजीको तथा वाणीके अधिष्ठातृ-देवता अग्निको भी नमस्कार करती हूँ । इस वनवासी वानरने मेरे सामने यह जो कुछ कहा है, वह सब सत्य हो, उसमें कुछ भी अन्यथा न हो' ॥ १४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः

सीताजीका हनुमान्‌जीको अपना परिचय देते हुए अपने वनगमन और अपहरणका वृत्तान्त बताना

सोऽवतीर्य द्रुमात् तस्माद् विद्रुमप्रतिमाननः ।
विनीतवेषः कृपणः प्रणिपत्योपसृत्य च ॥ १ ॥
तामब्रवीन्महातेजा हनूमान् मारुतात्मजः ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय सीतां मधुरया गिरा ॥ २ ॥

उधर मूँगेके समान लाल मुखवाले महातेजस्वी पवनकुमार हनुमान्‌जीने उस अशोक-वृक्षसे नीचे उतरकर माथेपर अञ्जलि बाँध ली और विनीतभावसे दीनतापूर्वक निकट आकर प्रणाम करनेके अनन्तर सीताजीसे मधुर वाणीमें कहा—॥ १-२ ॥

का नु पद्मपलाशाक्षि क्लिष्टकौशेयवासिनि ।
द्रुमस्य शाखामालम्ब्य तिष्ठसि त्वमनिन्दिते ॥ ३ ॥
किमर्थं तव नेत्राभ्यां वारि स्रवति शोकजम् ।
पुण्डरीकपलाशाभ्यां विप्रकीर्णमिवोदकम् ॥ ४ ॥

'प्रफुल्लकमलदलके समान विशालनेत्रोंवाली देवि ! यह मलिन रेशमी पीताम्बर धारण किये आप कौन हैं ? अनिन्दिते ! इस वृक्षकी शाखाका सहारा लिये आप यहाँ क्यों खड़ी हैं ? कमलके पत्तोंसे झरते हुए जल-बिन्दुओंके समान आपकी आँखोंसे ये शोकके आँसू क्यों गिर रहे हैं ? ॥ ३-४ ॥

सुराणामसुराणां च नागगन्धर्वरक्षसाम् ।
यक्षाणां किंनराणां च का त्वं भवसि शोभने ॥ ५ ॥
का त्वं भवसि रुद्राणां मरुतां वा वरानने ।
वसूनां वा वरारोहे देवता प्रतिभासि मे ॥ ६ ॥

'शोभने ! आप देवता, असुर, नाग, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, किंनर, रुद्र, मरुद्गण अथवा वसुओंमेंसे कौन हैं ? इनमेंसे किसकी कन्या अथवा पत्नी हैं ? सुमुखि ! वरारोहे ! मुझे तो आप कोई देवता-सी जान पड़ती हैं ॥ ५-६ ॥

किं नु चन्द्रमसा हीना पतिता विबुधालयात् ।
रोहिणी ज्योतिषां श्रेष्ठा श्रेष्ठा सर्वगुणाधिका ॥ ७ ॥

'क्या आप चन्द्रमासे बिछुड़कर देवलोकसे गिरी हुई नक्षत्रोंमें श्रेष्ठ और गुणोंमें सबसे बढ़ी-चढ़ी रोहिणी देवी हैं ? ॥

कोपाद् वा यदि वा मोहाद् भर्तारमसितेक्षणे ।
वसिष्ठं कोपयित्वा त्वं वासि कल्याण्यरुन्धती ॥ ८ ॥

'अथवा कजरारे नेत्रोंवाली देवि ! आप कोप या मोहसे अपने पति वसिष्ठजीको कुपित करके यहाँ आयी हुई कल्याणस्वरूपा सतीशिरोमणि अरुन्धती तो नहीं हैं ॥ ८ ॥

को नु पुत्रः पिता भ्राता भर्ता वा ते सुमध्यमे ।
अस्माल्लोकादमुं लोकं गतं त्वमनुशोचसि ॥ ९ ॥

'सुमध्यमे ! आपका पुत्र, पिता, भाई अथवा पति कौन इस लोकसे चलकर परलोकवासी हो गया है, जिसके लिये आप शोक करती हैं ॥ ९ ॥

रोदनादतिनिःश्वासाद् भूमिसंस्पर्शनादपि ।
न त्वां देवीमहं मन्ये राज्ञः संज्ञावधारणात् ॥ १० ॥
व्यञ्जनानि हि ते यानि लक्षणानि च लक्षये ।
महिषी भूमिपालस्य राजकन्या च मे मता ॥ ११ ॥

'रोने, लंबी साँस खींचने तथा पृथ्वीका स्पर्श करनेके कारण मैं आपको देवी नहीं मानता । आप बारंबार किसी राजाका नाम ले रही हैं तथा आपके चिह्न और लक्षण जैसे दिखायी देते हैं, उन सबपर दृष्टिपात करनेसे यही अनुमान होता है कि आप किसी राजाकी महारानी तथा किसी नरेशकी कन्या हैं ॥ १०-११ ॥

रावणेन जनस्थानाद् बलात् प्रमथिता यदि ।
सीता त्वमसि भद्रं ते तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ १२ ॥

'रावण जनस्थानसे जिन्हें बलपूर्वक हर लाया था, वे सीताजी ही यदि आप हों तो आपका कल्याण हो । आप ठीक-ठीक मुझे बताइये । मैं आपके विषयमें जानना चाहता हूँ ॥ १२ ॥

यथा हि तव वै दैन्यं रूपं चाप्यतिमानुषम् ।
तपसा चान्वितो वेषस्त्वं राममहिषी ध्रुवम् ॥ १३ ॥

'दुःखके कारण आपमें जैसी दीनता आ गयी है, जैसा आपका अलौकिक रूप है तथा जैसा तपस्विनीका-सा वेष है, इन सबके द्वारा निश्चय ही आप श्रीरामचन्द्रजीकी महारानी जान पड़ती हैं' ॥ १३ ॥

सा तस्य वचनं श्रुत्वा रामकीर्तनहर्षिता ।
उवाच वाक्यं वैदेही हनूमन्तं द्रुमाश्रितम् ॥ १४ ॥

हनुमान्‌जीकी बात सुनकर विदेहनन्दिनी सीता श्रीरामचन्द्रजीकी चर्चासे बहुत प्रसन्न थीं; अतः वृक्षका सहारा लिये खड़े हुए उन पवनकुमारसे इस प्रकार बोलीं—॥ १४ ॥

पृथिव्यां राजसिंहानां मुख्यस्य विदितात्मनः ।
स्नुषा दशरथस्याहं शत्रुसैन्यप्रणाशिनः ॥ १५ ॥
दुहिता जनकस्याहं वैदेहस्य महात्मनः ।
सीतेति नाम्ना चोक्ताहं भार्या रामस्य धीमतः ॥ १६ ॥

'कपिवर ! जो भूमण्डलके श्रेष्ठ राजाओंमें प्रधान थे, जिनकी सर्वत्र प्रसिद्धि थी तथा जो शत्रुओंकी सेनाका संहार करनेमें समर्थ थे, उन महाराज दशरथकी मैं पुत्रवधू हूँ, विदेहराज महात्मा जनककी पुत्री हूँ और परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामकी धर्मपत्नी हूँ । मेरा नाम सीता है ॥ १५-१६ ॥

समा द्वादश तत्राहं राघवस्य निवेशने ।
भुञ्जाना मानुषान् भोगान् सर्वकामसमृद्धिनी ॥ १७ ॥

'अयोध्यामें श्रीरघुनाथजीके अन्तःपुरमें बारह वर्षोंतक मैं सब प्रकारके मानवीय भोग भोगती रही और मेरी सारी अभिलाषाएँ सदैव पूर्ण होती रहीं ॥ १७ ॥

ततस्त्रयोदशे वर्षे राज्ये चेक्ष्वाकुनन्दनम् ।
अभिषेचयितुं राजा सोपाध्यायः प्रचक्रमे ॥ १८ ॥

'तदनन्तर तेरहवें वर्षमें महाराज दशरथने राजगुरु वसिष्ठजीके साथ इक्ष्वाकुकुलभूषण भगवान् श्रीरामके राज्याभिषेककी तैयारी आरम्भ की ॥ १८ ॥

तस्मिन् सम्भ्रियमाणे तु राघवस्याभिषेचने ।
कैकेयी नाम भर्तारमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥

'जब वे श्रीरघुनाथजीके अभिषेकके लिये आवश्यक सामग्रीका संग्रह कर रहे थे, उस समय उनकी कैकेयी नामवाली भार्याने पतिसे इस प्रकार कहा—॥ १९ ॥

न पिबेयं न खादेयं प्रत्यहं मम भोजनम् ।
एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते ॥ २० ॥

''अब न तो मैं जलपान करूँगी और न प्रतिदिनका भोजन ही ग्रहण करूँगी । यदि श्रीरामका राज्याभिषेक हुआ तो यही मेरे जीवनका अन्त होगा ॥ २० ॥

यत् तदुक्तं त्वया वाक्यं प्रीत्या नृपतिसत्तम ।
तच्चेन्न वितथं कार्यं वनं गच्छतु राघवः ॥ २१ ॥

''नृपश्रेष्ठ ! आपने प्रसन्नतापूर्वक मुझे जो वचन दिया है, उसे यदि असत्य नहीं करना है तो श्रीराम वनको चले जायँ' ॥ २१ ॥

स राजा सत्यवाग् देव्या वरदानमनुस्मरन् ।
मुमोह वचनं श्रुत्वा कैकेय्याः क्रूरमप्रियम् ॥ २२ ॥

'महाराज दशरथ बड़े सत्यवादी थे । उन्होंने कैकेयीदेवीको दो वर देनेके लिये कहा था । उस वरदानका स्मरण करके कैकेयीके क्रूर एवं अप्रिय वचनको सुनकर वे मूर्छित हो गये ॥ २२ ॥

ततस्तं स्थविरो राजा सत्यधर्मे व्यवस्थितः ।
ज्येष्ठं यशस्विनं पुत्रं रुदन् राज्यमयाचत ॥ २३ ॥

'तदनन्तर सत्यधर्ममें स्थित हुए बूढ़े महाराजने अपने यशस्वी ज्येष्ठ पुत्र श्रीरघुनाथजीसे भरतके लिये राज्य माँगा ॥ २३ ॥

स पितुर्वचनं श्रीमानभिषेकात् परं प्रियम् ।
मनसा पूर्वमासाद्य वाचा प्रतिगृहीतवान् ॥ २४ ॥

'श्रीमान् रामको पिताके वचन राज्याभिषेकसे भी बढ़कर प्रिय थे । इसलिये उन्होंने पहले उन वचनोंको मनसे ग्रहण किया, फिर वाणीसे भी स्वीकार कर लिया ॥ २४ ॥

दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात् सत्यं ब्रूयान्न चानृतम् ।
अपि जीवितहेतोर्हि रामः सत्यपराक्रमः ॥ २५ ॥

'सत्य-पराक्रमी भगवान् श्रीराम केवल देते हैं, लेते नहीं । वे सदा सत्य बोलते हैं, अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये भी कभी झूठ नहीं बोल सकते ॥ २५ ॥

स विहायोत्तरीयाणि महार्हाणि महायशाः ।
विसृज्य मनसा राज्यं जनन्यै मां समादिशत् ॥ २६ ॥

'उन महायशस्वी श्रीरघुनाथजीने बहुमूल्य उत्तरीय वस्त्र उतार दिये और मनसे राज्यका त्याग करके मुझे अपनी माताके हवाले कर दिया ॥ २६ ॥

साहं तस्याग्रतस्तूर्णं प्रस्थिता वनचारिणी ।
नहि मे तेन हीनाया वासः स्वर्गेऽपि रोचते ॥ २७ ॥

'किंतु मैं तुरंत ही उनके आगे-आगे वनकी ओर चल दी; क्योंकि उनके बिना मुझे स्वर्गमें भी रहना अच्छा नहीं लगता ॥ २७ ॥

प्रागेव तु महाभागः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ।
पूर्वजस्यानुयात्रार्थे कुशचीरैरलंकृतः ॥ २८ ॥

'अपने सुहृदोंको आनन्द देनेवाले सुमित्राकुमार महा-

भाग लक्ष्मण भी अपने बड़े भाईका अनुसरण करनेके लिये उनसे भी पहले कुश तथा चीर-वस्त्र धारण करके तैयार हो गये ॥ २८ ॥

ते वयं भर्तुरादेशं बहुमान्य दृढव्रताः ।
प्रविष्टाः स्म पुरादृष्टं वनं गम्भीरदर्शनम् ॥ २९ ॥

'इस प्रकार हम तीनोंने अपने स्वामी महाराज दशरथकी आज्ञाको अधिक आदर देकर दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करते हुए उस सघन वनमें प्रवेश किया, जिसे पहले कभी नहीं देखा था ॥ २९ ॥

वसतो दण्डकारण्ये तस्याहममितौजसः ।
रक्षसापहृता भार्या रावणेन दुरात्मना ॥ ३० ॥

'वहाँ दण्डकारण्यमें रहते समय उन अमिततेजस्वी भगवान् श्रीरामकी भार्या मुझ सीताको दुरात्मा राक्षस रावण यहाँ हर लाया है ॥ ३० ॥

द्वौ मासौ तेन मे कालो जीवितानुग्रहः कृतः ।
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां तु मासाभ्यां ततस्त्यक्ष्यामि जीवितम् ॥

'उसने अनुग्रहपूर्वक मेरे जीवन-धारणके लिये दो मासकी अवधि निश्चित कर दी है । उन दो महीनोंके बाद मुझे अपने प्राणोंका परित्याग करना पड़ेगा' ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें तैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः

सीताजीका हनुमान्‌जीके प्रति संदेह और उसका समाधान तथा हनुमान्‌जीके द्वारा श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका गान

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा हनूमान् हरिपुङ्गवः ।
दुःखाद् दुःखाभिभूतायाः सान्त्वमुत्तरमब्रवीत् ॥ १ ॥

दुःख-पर-दुःख उठानेके कारण पीड़ित हुई सीताका उपर्युक्त वचन सुनकर वानरशिरोमणि हनुमान्‌जीने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—॥ १ ॥

अहं रामस्य संदेशाद् देवि दूतस्तवागतः ।
वैदेहि कुशली रामः स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥ २ ॥

'देवि ! मैं श्रीरामचन्द्रजीका दूत हूँ और आपके लिये उनका संदेश लेकर आया हूँ । विदेहनन्दिनी! श्रीरामचन्द्रजी सकुशल हैं और उन्होंने आपका कुशल-समाचार पूछा है ॥ २ ॥

यो ब्राह्ममस्त्रं वेदांश्च वेद वेदविदां वरः ।
स त्वां दाशरथी रामो देवि कौशलमब्रवीत् ॥ ३ ॥

'देवि ! जिन्हें ब्रह्मास्त्र और वेदोंका भी पूर्ण ज्ञान है, वे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ दशरथनन्दन श्रीराम स्वयं सकुशल रहकर आपकी भी कुशल पूछ रहे हैं ॥ ३ ॥

लक्ष्मणश्च महातेजा भर्तुस्तेऽनुचरः प्रियः ।
कृतवाञ्छोकसंतप्तः शिरसा तेऽभिवादनम् ॥ ४ ॥

'आपके पतिके अनुचर तथा प्रिय महातेजस्वी लक्ष्मणने भी शोकसे संतप्त हो आपके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम कहलाया है' ॥ ४ ॥

सा तयोः कुशलं देवी निशम्य नरसिंहयोः ।
प्रतिसंहृष्टसर्वाङ्गी हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ ५ ॥

पुरुषसिंह श्रीराम और लक्ष्मणका समाचार सुनकर देवी सीताके सम्पूर्ण अङ्गोंमें हर्षजनित रोमाञ्च हो आया और वे हनुमान्‌जीसे बोलीं—॥ ५ ॥

कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मा ।
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥ ६ ॥

'यदि मनुष्य जीवित रहे तो उसे सौ वर्ष बाद भी आनन्द प्राप्त होता ही है, यह लौकिक कहावत आज मुझे बिलकुल सत्य एवं कल्याणमयी जान पड़ती है' ॥ ६ ॥

तयोः समागमे तस्मिन् प्रीतिरुत्पादिताद्भुता ।
परस्परेण चालापं विश्वस्तौ तौ प्रचक्रतुः ॥ ७ ॥

सीता और हनुमान्‌के इस मिलाप (परस्पर दर्शन) से दोनोंको ही अद्भुत प्रसन्नता प्राप्त हुई । वे दोनों विश्वस्त होकर एक-दूसरेसे वार्तालाप करने लगे ॥ ७ ॥

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा हनूमान् मारुतात्मजः ।
सीतायाः शोकतप्तायाः समीपमुपचक्रमे ॥ ८ ॥

शोकसंतप्त सीताकी वे बातें सुनकर पवनकुमार हनुमान्‌जी उनके कुछ निकट चले गये ॥ ८ ॥

यथा यथा समीपं स हनूमानुपसर्पति ।
तथा तथा रावणं सा तं सीता परिशङ्कते ॥ ९ ॥

हनुमान्‌जी ज्यों-ज्यों निकट आते, त्यों-ही-त्यों सीताको यह शङ्का होती कि यह कहीं रावण न हो ॥ ९ ॥

अहो धिग् धिक्कृतमिदं कथितं हि यदस्य मे ।
रूपान्तरमुपागम्य स एवायं हि रावणः ॥ १० ॥

ऐसा विचार आते ही वे मन-ही-मन कहने लगीं—'अहो ! धिक्कार है, जो इसके सामने मैंने अपने मनकी बात कह दी । यह दूसरा रूप धारण करके आया हुआ वह रावण ही है' ॥ १० ॥

तामशोकस्य शाखां तु विमुक्त्वा शोककर्शिता ।
तस्यामेवानवद्याङ्गी धरण्यां समुपाविशत् ॥ ११ ॥

फिर तो निर्दोष अङ्गोंवाली सीता उस अशोक वृक्षकी शाखाको छोड़ शोकसे कातर हो वहीं जमीनपर बैठ गयीं ॥

अवन्दत महाबाहुस्ततस्तां जनकात्मजाम् ।
सा चैनं भयसंत्रस्ता भूयो नैनमुदैक्षत ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् महाबाहु हनुमान्‌ने जनकनन्दिनी सीताके चरणोंमें प्रणाम किया, किंतु वे भयभीत होनेके कारण फिर उनकी ओर देख न सकीं ॥ १२ ॥

तं दृष्ट्वा वन्दमानं च सीता शशिनिभानना ।
अब्रवीद् दीर्घमुच्छ्वस्य वानरं मधुरस्वरा ॥ १३ ॥

वानर हनुमान्‌को बारंबार वन्दना करते देख चन्द्रमुखी सीता लंबी साँस खींचकर उनसे मधुर वाणीमें बोलीं—॥ १३ ॥

मायां प्रविष्टो मायावी यदि त्वं रावणः स्वयम् ।
उत्पादयसि मे भूयः संतापं तन्न शोभनम् ॥ १४ ॥

'यदि तुम स्वयं मायावी रावण हो और मायामय शरीरमें प्रवेश करके फिर मुझे कष्ट दे रहे हो तो यह तुम्हारे लिये अच्छी बात नहीं है ॥ १४ ॥

स्वं परित्यज्य रूपं यः परिव्राजकरूपवान् ।
जनस्थाने मया दृष्टस्त्वं स एव हि रावणः ॥ १५ ॥

'जिसे मैंने जनस्थानमें देखा था तथा जो अपने यथार्थ रूपको छोड़कर संन्यासीका रूप धारण करके आया था, तुम वही रावण हो ॥ १५ ॥

उपवासकृशां दीनां कामरूप निशाचर ।
संतापयसि मां भूयः संतापं तन्न शोभनम् ॥ १६ ॥

'इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले निशाचर ! मैं उपवास करते-करते दुबली हो गयी हूँ और मन-ही-मन दुखी रहती हूँ । इतनेपर भी जो तुम फिर मुझे संताप दे रहे हो, यह तुम्हारे लिये अच्छी बात नहीं है ॥ १६ ॥

अथवा नैतदेवं हि यन्मया परिशङ्कितम् ।
मनसो हि मम प्रीतिरुत्पन्ना तव दर्शनात् ॥ १७ ॥

'अथवा जिस बातकी मेरे मनमें शङ्का हो रही है, वह न भी हो; क्योंकि तुम्हें देखनेसे मेरे मनमें प्रसन्नता हुई है॥

यदि रामस्य दूतस्त्वमागतो भद्रमस्तु ते ।
पृच्छामि त्वां हरिश्रेष्ठ प्रिया रामकथा हि मे ॥ १८ ॥

'वानरश्रेष्ठ ! सचमुच ही यदि तुम भगवान् श्रीरामके दूत हो तो तुम्हारा कल्याण हो । मैं तुमसे उनकी बातें पूछती हूँ; क्योंकि श्रीरामकी चर्चा मुझे बहुत ही प्रिय है ॥ १८ ॥

गुणान् रामस्य कथय प्रियस्य मम वानर ।
चित्तं हरसि मे सौम्य नदीकूलं यथा रयः ॥ १९ ॥

'वानर ! मेरे प्रियतम श्रीरामके गुणोंका वर्णन करो । सौम्य ! जैसे जलका वेग नदीके तटको हर लेता है, उसी प्रकार तुम श्रीरामकी चर्चासे मेरे चित्तको चुराये लेते हो ॥

अहो स्वप्नस्य सुखता याहमेव चिराहृता ।
प्रेषितं नाम पश्यामि राघवेण वनौकसम् ॥ २० ॥

'अहो ! यह स्वप्न कैसा सुखद हुआ ? जिससे यहाँ चिरकालसे हरकर लायी गयी मैं आज भगवान् श्रीरामके भेजे हुए दूत वानरको देख रही हूँ ॥ २० ॥

स्वप्नेऽपि यद्यहं वीरं राघवं सहलक्ष्मणम् ।
पश्येयं नावसीदेयं स्वप्नोऽपि मम मत्सरी ॥ २१ ॥

'यदि मैं लक्ष्मणसहित वीरवर श्रीरघुनाथजीको स्वप्नमें भी देख लिया करूँ तो मुझे इतना कष्ट न हो; परंतु स्वप्न भी मुझसे डाह करता है ॥ २१ ॥

नाहं स्वप्नमिमं मन्ये स्वप्ने दृष्ट्वा हि वानरम् ।
न शक्योऽभ्युदयः प्राप्तुं प्राप्तश्चाभ्युदयो मम ॥ २२ ॥

'मैं इसे स्वप्न नहीं समझती; क्योंकि स्वप्नमें वानरको देख लेनेपर किसीका अभ्युदय नहीं हो सकता और मैंने यहाँ अभ्युदय प्राप्त किया है (अभ्युदयकालमें जैसी प्रसन्नता होती है, वैसी ही प्रसन्नता मेरे मनमें छा रही है ।) ॥२२॥

किं नु स्याच्चित्तमोहोऽयं भवेद् वातगतिस्त्वियम् ।
उन्मादजो विकारो वा स्यादयं मृगतृष्णिका ॥ २३ ॥

'अथवा यह मेरे चित्तका मोह तो नहीं है । वात-विकारसे होनेवाला भ्रम तो नहीं है । उन्मादका विकार तो नहीं उमड़ आया अथवा यह मृगतृष्णा तो नहीं है ॥ २३ ॥

अथवा नायमुन्मादो मोहोऽप्युन्मादलक्षणः ।
सम्बुध्ये चाहमात्मानमिमं चापि वनौकसम् ॥ २४ ॥

'अथवा यह उन्मादजनित विकार नहीं है । उन्मादके समान लक्षणवाला मोह भी नहीं है; क्योंकि मैं अपने-आपको देख और समझ रही हूँ तथा इस वानरको भी ठीक-ठीक देखती और समझती हूँ (उन्माद आदिकी अवस्थाओंमें इस तरह ठीक-ठीक ज्ञान होना सम्भव नहीं है ।)' ॥२४॥

इत्येवं बहुधा सीता सम्प्रधार्य बलाबलम् ।
रक्षसां कामरूपत्वान्मेने तं राक्षसाधिपम् ॥ २५ ॥
एतां बुद्धिं तदा कृत्वा सीता सा तनुमध्यमा ।
न प्रतिव्याजहाराथ वानरं जनकात्मजा ॥ २६ ॥

इस तरह सीता अनेक प्रकारसे राक्षसोंकी प्रबलता और वानरकी निर्बलताका निश्चय करके उन्हें राक्षसराज रावण ही माना; क्योंकि राक्षसोंमें इच्छानुसार रूप धारण करनेकी शक्ति होती है । ऐसा विचारकर सूक्ष्म कटिप्रदेशवाली जनककुमारी सीताने कपिवर हनुमान्‌जीसे फिर कुछ नहीं कहा ॥

सीताया निश्चितं बुद्ध्वा हनूमान् मारुतात्मजः ।
श्रोत्रानुकूलैर्वचनैस्तदा तां सम्प्रहर्षयन् ॥ २७ ॥ त

सीताके इस निश्चयको समझकर पवनकुमार हनुमान्‌जी उस समय कानोंको सुख पहुँचानेवाले अनुकूल वचनोंद्वारा उनका हर्ष बढ़ाते हुए बोले—॥ २७ ॥

आदित्य इव तेजस्वी लोककान्तः शशी यथा ।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवो वैश्रवणो यथा ॥ २८ ॥

'भगवान् श्रीराम सूर्यके समान तेजस्वी, चन्द्रमाके

समान लोककमनीय तथा देव कुबेरकी भाँति सम्पूर्ण जगत्‌के राजा हैं ॥ २८ ॥

विक्रमेणोपपन्नश्च यथा विष्णुर्महायशाः ।
सत्यवादी मधुरवाग् देवो वाचस्पतिर्यथा ॥ २९ ॥

'महायशस्वी भगवान् विष्णुके समान पराक्रमी तथा बृहस्पतिजीकी भाँति सत्यवादी एवं मधुरभाषी हैं ॥

रूपवान् सुभगः श्रीमान् कंदर्प इव मूर्तिमान् ।
स्थानक्रोधे प्रहर्ता च श्रेष्ठो लोके महारथः ॥ ३० ॥

'रूपवान्, सौभाग्यशाली और कान्तिमान् तो वे इतने हैं, मानो मूर्तिमान् कामदेव हों । वे क्रोधके पात्रपर ही प्रहार करनेमें समर्थ और संसारके श्रेष्ठ महारथी हैं ॥ ३० ॥

बाहुच्छायामवष्टब्धो यस्य लोको महात्मनः ।
अपक्रम्याश्रमपदान्मृगरूपेण राघवम् ॥ ३१ ॥
शून्ये येनापनीतासि तस्य द्रक्ष्यसि तत्फलम् ।

'सम्पूर्ण विश्व उन महात्माकी भुजाओंके आश्रयमें—उन्हींकी छत्रछायामें विश्राम करता है । मृगरूपधारी निशाचरद्वारा श्रीरघुनाथजीको आश्रमसे दूर हटाकर जिसने सूने आश्रममें पहुँचकर आपका अपहरण किया है, उसे उस पापका जो फल मिलनेवाला है, उसको आप अपनी आँखों देखेंगी ॥ ३१½ ॥

अचिराद् रावणं संख्ये यो वधिष्यति वीर्यवान् ॥ ३२ ॥
क्रोधप्रमुक्तैरिषुभिर्ज्वलद्भिरिव पावकैः ।

'पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी क्रोधपूर्वक छोड़े गये प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा समराङ्गणमें शीघ्र ही रावणका वध करेंगे ॥ ३२½ ॥

तेनाहं प्रेषितो दूतस्त्वत्सकाशमिहागतः ॥ ३३ ॥
त्वद्वियोगेन दुःखार्तः स त्वां कौशलमब्रवीत् ।

'मैं उन्हींका भेजा हुआ दूत होकर यहाँ आपके पास आया हूँ । भगवान् श्रीराम आपके वियोगजनित दुःखसे पीड़ित हैं । उन्होंने आपके पास अपनी कुशल कहलायी है और आपकी भी कुशल पूछी है ॥ ३३½ ॥

लक्ष्मणश्च महातेजाः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ ३४ ॥
अभिवाद्य महाबाहुः स त्वां कौशलमब्रवीत् ।

'सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले महातेजस्वी महाबाहु लक्ष्मणने भी आपको प्रणाम करके आपकी कुशल पूछी है ॥

रामस्य च सखा देवि सुग्रीवो नाम वानरः ॥ ३५ ॥
राजा वानरमुख्यानां स त्वां कौशलमब्रवीत् ।
नित्यं स्मरति ते रामः ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ॥ ३६ ॥

'देवि ! श्रीरघुनाथजीके सखा एक सुग्रीव नामक वानर हैं, जो मुख्य-मुख्य वानरोंके राजा हैं, उन्होंने भी आपसे कुशल पूछी है । सुग्रीव और लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजी प्रतिदिन आपका स्मरण करते हैं ॥ ३५-३६ ॥

दिष्ट्या जीवसि वैदेहि राक्षसीवशमागता ।
नचिराद् द्रक्ष्यसे रामं लक्ष्मणं च महारथम् ॥ ३७ ॥

'विदेहनन्दिनि ! राक्षसियोंके चंगुलमें फँसकर भी आप अभीतक जीवित हैं, यह बड़े सौभाग्यकी बात है । अब आप शीघ्र ही महारथी श्रीराम और लक्ष्मणका दर्शन करेंगी ॥

मध्ये वानरकोटीनां सुग्रीवं चामितौजसम् ।
अहं सुग्रीवसचिवो हनूमान् नाम वानरः ॥ ३८ ॥

'साथ ही करोड़ों वानरोंसे घिरे हुए अमिततेजस्वी सुग्रीवको भी आप देखेंगी । मैं सुग्रीवका मन्त्री हनुमान् नामक वानर हूँ ॥ ३८ ॥

प्रविष्टो नगरीं लङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम् ।
कृत्वा मूर्ध्नि पदन्यासं रावणस्य दुरात्मनः ॥ ३९ ॥

'मैंने महासागरको लाँघकर और दुरात्मा रावणके सिरपर पैर रखकर लङ्कापुरीमें प्रवेश किया है ॥ ३९ ॥

त्वां द्रष्टुमुपयातोऽहं समाश्रित्य पराक्रमम् ।
नाहमस्मि तथा देवि यथा मामवगच्छसि ।
विशङ्का त्यज्यतामेषा श्रद्धत्स्व वदतो मम ॥ ४० ॥

'मैं अपने पराक्रमका भरोसा करके आपका दर्शन करनेके लिये यहाँ उपस्थित हुआ हूँ । देवि ! आप मुझे जैसा समझ रही हैं, मैं वैसा नहीं हूँ । आप यह विपरीत आशङ्का छोड़ दीजिये और मेरी बातपर विश्वास कीजिये' ॥ ४० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें चौंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशः सर्गः

सीताजीके पूछनेपर हनुमान्‌जीका श्रीरामके शारीरिक चिह्नों और गुणोंका वर्णन करना तथा नर-वानरकी मित्रताका प्रसङ्ग सुनाकर सीताजीके मनमें विश्वास उत्पन्न करना

तां तु रामकथां श्रुत्वा वैदेही वानरर्षभात् ।
उवाच वचनं सान्त्वमिदं मधुरया गिरा ॥ १ ॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जीके मुखसे श्रीरामचन्द्रजीकी चर्चा सुनकर विदेहराजकुमारी सीता शान्तिपूर्वक मधुर वाणीमें बोलीं— ॥ १ ॥

क्व ते रामेण संसर्गः कथं जानासि लक्ष्मणम् ।

वानराणां नराणां च कथमासीत् समागमः ॥ २ ॥

'कपिवर ! तुम्हारा श्रीरामचन्द्रजीके साथ सम्बन्ध कहाँ हुआ ? तुम लक्ष्मणको कैसे जानते हो ? मनुष्यों और वानरोंका यह मेल किस प्रकार सम्भव हुआ ॥ २ ॥ ?

यानि रामस्य चिह्नानि लक्ष्मणस्य च वानर ।
तानि भूयः समाचक्ष्व न मां शोकः समाविशेत् ॥ ३ ॥

'वानर ! श्रीराम और लक्ष्मणके जो चिह्न हैं, उनका फिरसे वर्णन करो, जिससे मेरे मनमें किसी प्रकारके शोकका समावेश न हो ॥ ३ ॥

कीदृशं तस्य संस्थानं रूपं तस्य च कीदृशम् ।
कथमूरू कथं बाहू लक्ष्मणस्य च शंस मे ॥ ४ ॥

'मुझे बताओ भगवान् श्रीराम और लक्ष्मणकी आकृति कैसी है ? उनका रूप किस तरहका है ? उनकी जाँघें और भुजाएँ कैसी हैं ?' ॥ ४ ॥

एवमुक्तस्तु वैदेह्या हनूमान् मारुतात्मजः ।
ततो रामं यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ५ ॥

विदेहराजकुमारी सीताके इस प्रकार पूछनेपर पवनकुमार हनुमान्‌जीने श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपका यथावत् वर्णन आरम्भ किया—॥ ५ ॥

जानन्ती बत दिष्ट्या मां वैदेहि परिपृच्छसि ।
भर्तुः कमलपत्राक्षि संस्थानं लक्ष्मणस्य च ॥ ६ ॥

'कमलके समान सुन्दर नेत्रोंवाली विदेहराजकुमारी ! आप अपने पतिदेव श्रीरामके तथा देवर लक्ष्मणजीके शरीरके विषयमें जानती हुई भी जो मुझसे पूछ रही हैं, यह मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात है ॥ ६ ॥

यानि रामस्य चिह्नानि लक्ष्मणस्य च यानि वै ।
लक्षितानि विशालाक्षि वदतः शृणु तानि मे ॥ ७ ॥

'विशाललोचने ! श्रीराम और लक्ष्मणके जिन-जिन चिह्नोंको मैंने लक्ष्य किया है, उन्हें बताता हूँ। मुझसे सुनिये ॥ ७ ॥

रामः कमलपत्राक्षः पूर्णचन्द्रनिभाननः ।
रूपदाक्षिण्यसम्पन्नः प्रसूतो जनकात्मजे ॥ ८ ॥

'जनकनन्दिनि ! श्रीरामचन्द्रजीके नेत्र प्रफुल्लकमलदलके समान विशाल एवं सुन्दर हैं। मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान मनोहर है। वे जन्मकालसे ही रूप और उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न हैं ॥ ८ ॥

तेजसाऽऽदित्यसंकाशः क्षमया पृथिवीसमः ।
बृहस्पतिसमो बुद्ध्या यशसा वासवोपमः ॥ ९ ॥
रक्षिता जीवलोकस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।
रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य धर्मस्य च परंतपः ॥ १० ॥

'वे तेजमें सूर्यके समान, क्षमामें पृथ्वीके तुल्य, बुद्धिमें बृहस्पतिके सदृश और यशमें इन्द्रके समान हैं। वे सम्पूर्ण जीव-जगत्‌के तथा स्वजनोंके भी रक्षक हैं। शत्रुओंको संताप देनेवाले श्रीराम अपने सदाचार और धर्मकी रक्षा करते हैं ॥ ९-१० ॥

रामो भामिनि लोकस्य चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ।
मर्यादानां च लोकस्य कर्ता कारयिता च सः ॥ ११ ॥

'भामिनि ! श्रीरामचन्द्रजी जगत्‌के चारों वर्णोंकी रक्षा करते हैं। लोकमें धर्मकी मर्यादाओंको बाँधकर उनका पालन करने और करानेवाले भी वे ही हैं ॥ ११ ॥

अर्चिष्मानर्चितोऽत्यर्थं ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः ।
साधूनामुपकारज्ञः प्रचारज्ञश्च कर्मणाम् ॥ १२ ॥

'सर्वत्र अत्यन्त भक्तिभावसे उनकी पूजा होती है। ये कान्तिमान् एवं परम प्रकाशस्वरूप हैं, ब्रह्मचर्य-व्रतके पालनमें लगे रहते हैं, साधु पुरुषोंका उपकार मानते और आचरणोंद्वारा सत्कर्मोंके प्रचारका ढंग जानते हैं ॥ १२ ॥

राजनीत्यां विनीतश्च ब्राह्मणानामुपासकः ।
ज्ञानवाञ्शीलसम्पन्नो विनीतश्च परंतपः ॥ १३ ॥

'वे राजनीतिमें पूर्ण शिक्षित, ब्राह्मणोंके उपासक, ज्ञानवान्, शीलवान्, विनम्र तथा शत्रुओंको संताप देनेमें समर्थ हैं ॥ १३ ॥

यजुर्वेदविनीतश्च वेदविद्भिः सुपूजितः ।
धनुर्वेदे च वेदे च वेदाङ्गेषु च निष्ठितः ॥ १४ ॥

'उन्हें यजुर्वेदकी भी अच्छी शिक्षा मिली है। वेदवेत्ता विद्वानोंने उनका बड़ा सम्मान किया है। वे चारों वेद, धनुर्वेद और छहों वेदाङ्गोंके भी परिनिष्ठित विद्वान् हैं ॥ १४ ॥

विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवः शुभाननः ।
गूढजत्रुः सुताम्राक्षो रामो नाम जनैः श्रुतः ॥ १५ ॥

'उनके कंधे मोटे, भुजाएँ बड़ी-बड़ी, गला शङ्खके समान और मुख सुन्दर है। गलेकी हँसली मांससे ढकी हुई है तथा नेत्रोंमें कुछ-कुछ लालिमा है। वे लोगोंमें 'श्रीराम' के नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ १५ ॥

दुन्दुभिस्वननिर्घोषः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
समश्च सुविभक्ताङ्गो वर्णं श्यामं समाश्रितः ॥ १६ ॥

'उनका स्वर दुन्दुभिके समान गम्भीर और शरीरका रंग सुन्दर एवं चिकना है। उनका प्रताप बहुत बढ़ा-चढ़ा है। उनके सभी अङ्ग सुडौल और बराबर हैं। उनकी कान्ति श्याम है ॥ १६ ॥

त्रिस्थिरस्त्रिप्रलम्बश्च त्रिसमस्त्रिषु चोन्नतः ।
त्रिताम्रस्त्रिषु च स्निग्धो गम्भीरस्त्रिषु नित्यशः ॥ १७ ॥

'उनके तीन अङ्ग (वक्षःस्थल, कलाई और मुट्ठी) स्थिर (सुदृढ़) हैं। भौंहें, भुजाएँ और मेढ़्—ये तीन अङ्ग लंबे हैं। केशोंका अग्रभाग, अण्डकोष और घुटने—ये तीन समान—बराबर हैं। वक्षःस्थल, नाभिके किनारेका भाग और उदर—ये तीन उभरे हुए हैं। नेत्रोंके कोने, नख और हाथ-पैरके तलवे—ये तीन लाल हैं। शिश्नका

अग्रभाग, दोनों पैरोंकी रेखाएँ और सिरके बाल—ये तीन चिकने हैं तथा स्वर, चाल और नाभि—ये तीन गम्भीर हैं ॥ १७ ॥

त्रिवलीमांस्त्र्यवनतश्चतुर्व्यङ्गस्त्रिशीर्षवान् ।
चतुष्कलश्चतुर्लेखश्चतुष्किष्कुश्चतुःसमः ॥ १८ ॥

‘उनके उदर तथा गलेमें तीन रेखाएँ हैं। तलवोंके मध्यभाग, पैरोंकी रेखाएँ और स्तनोंके अग्रभाग—ये तीन धँसे हुए हैं। गला, पीठ तथा दोनों पिण्डलियाँ—ये चार अङ्ग छोटे हैं। मस्तकमें तीन भँवरें हैं। पैरोंके अँगूठेके नीचे तथा ललाटमें चार-चार रेखाएँ हैं। वे चार हाथ ऊँचे हैं। उनके कपोल, भुजाएँ, जाँघें और घुटने—ये चार अङ्ग बराबर हैं ॥ १८ ॥

चतुर्दशसमद्वन्द्वश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्गतिः ।
महोष्ठहनुनासश्च पञ्चस्निग्धोऽष्टवंशवान् ॥ १९ ॥

‘शरीरमें जो दो-दोकी संख्यामें चौदह[१] अङ्ग होते हैं, वे भी उनके परस्पर सम हैं। उनकी चारों कोनोंकी चारों दाढ़ें शास्त्रीय लक्षणोंसे युक्त हैं। वे सिंह, बाघ, हाथी और साँड़—इन चारके समान चार प्रकारकी गतिसे चलते हैं। उनके ओठ, ठोढ़ी और नासिका—सभी प्रशस्त हैं। केश, नेत्र, दाँत, त्वचा और पैरके तलवे—इन पाँचों अङ्गोंमें स्निग्धता भरी है। दोनों भुजाएँ, दोनों जाँघें, दोनों पिंडलियाँ, हाथ और पैरोंकी अँगुलियाँ—ये आठ अङ्ग उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न (लंबे) हैं ॥ १९ ॥

दशपद्मो दशबृहत्त्रिभिर्व्याप्तो द्विशुक्लवान् ।
षडुन्नतो नवतनुस्त्रिभिर्व्याप्नोति राघवः ॥ २० ॥

‘उनके नेत्र, मुख-विवर, मुख-मण्डल, जिह्वा, ओठ, तालु, स्तन, नख, हाथ और पैर—ये दस अङ्ग कमलके समान हैं। छाती, मस्तक, ललाट, गला, भुजाएँ, कंधे, नाभि, चरण, पीठ और कान—ये दस अङ्ग विशाल हैं। वे श्री, यश और प्रताप—इन तीनोंसे व्याप्त हैं। उनके मातृकुल और पितृकुल दोनों अत्यन्त शुद्ध हैं। पार्श्वभाग, उदर, वक्षःस्थल, नासिका, कंधे और ललाट—ये छः अङ्ग ऊँचे हैं। केश, नख, लोम, त्वचा, अंगुलियोंके पोर, शिश्न, बुद्धि और दृष्टि आदि नौ सूक्ष्म (पतले) हैं तथा वे श्रीरघुनाथजी पूर्वाह्न, मध्याह्न और अपराह्न—इन तीन कालोंद्वारा क्रमशः धर्म, अर्थ और कामका अनुष्ठान करते हैं ॥ २० ॥

सत्यधर्मरतः श्रीमान् संग्रहानुग्रहे रतः ।
देशकालविभागज्ञः सर्वलोकप्रियंवदः ॥ २१ ॥

‘श्रीरामचन्द्रजी सत्यधर्मके अनुष्ठानमें संलग्न, श्रीसम्पन्न, न्यायसङ्गत धनका संग्रह और प्रजापर अनुग्रह करनेमें तत्पर, देश और कालके विभागको समझनेवाले तथा सब लोगोंसे प्रिय वचन बोलनेवाले हैं ॥ २१ ॥

भ्राता चास्य च वैमात्रः सौमित्रिरमितप्रभः ।
अनुरागेण रूपेण गुणैश्चापि तथाविधः ॥ २२ ॥

‘उनके सौतेले भाई सुमित्राकुमार लक्ष्मण भी बड़े तेजस्वी हैं। अनुराग, रूप और सद्गुणोंकी दृष्टिसे भी वे श्रीरामचन्द्रजीके ही समान हैं ॥ २२ ॥

स सुवर्णच्छविः श्रीमान् रामः श्यामो महायशाः ।
तावुभौ नरशार्दूलौ त्वद्दर्शनकृतोत्सवौ ॥ २३ ॥
विचिन्वन्तौ महीं कृत्स्नामस्माभिः सह संगतौ ।

‘उन दोनों भाइयोंमें अन्तर इतना ही है कि लक्ष्मणके शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान गौर है और महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजीका विग्रह श्याम-सुन्दर है। वे दोनों नरश्रेष्ठ आपके दर्शनके लिये उत्कण्ठित हो सारी पृथ्वीपर आपकी ही खोज करते हुए हमलोगोंसे मिले थे ॥ २३½ ॥

त्वामेव मार्गमाणौ तौ विचरन्तौ वसुंधराम् ॥ २४ ॥
ददर्शतुर्मृगपतिं पूर्वजेनावरोपितम् ।

‘आपको ही ढूँढ़नेके लिये पृथ्वीपर विचरते हुए उन दोनों भाइयोंने वानरराज सुग्रीवका साक्षात्कार किया, जो अपने बड़े भाईके द्वारा राज्यसे उतार दिये गये थे ॥ २४½ ॥

ऋष्यमूकस्य मूले तु बहुपादपसंकुले ॥ २५ ॥
भ्रातुर्भयार्तमासीनं सुग्रीवं प्रियदर्शनम् ।

‘ऋष्यमूक पर्वतके मूलभागमें जो बहुत-से वृक्षोंद्वारा घिरा हुआ है, भाईके भयसे पीड़ित हो बैठे हुए प्रियदर्शन सुग्रीवसे वे दोनों भाई मिले ॥ २५½ ॥

वयं च हरिराजं तं सुग्रीवं सत्यसङ्गरम् ॥ २६ ॥
परिचर्यामहे राज्यात् पूर्वजेनावरोपितम् ।

‘उन दिनों जिन्हें बड़े भाईने राज्यसे उतार दिया था, उन सत्यप्रतिज्ञ वानरराज सुग्रीवकी सेवामें हम सब लोग रहा करते थे ॥ २६½ ॥

ततस्तौ चीरवसनौ धनुःप्रवरपाणिनौ ॥ २७ ॥
ऋष्यमूकस्य शैलस्य रम्यं देशमुपागतौ ।
स तौ दृष्ट्वा नरव्याघ्रौ धन्विनौ वानरर्षभः ॥ २८ ॥
अभिप्लुतो गिरेस्तस्य शिखरं भयमोहितः ।

‘शरीरपर वल्कलवस्त्र तथा हाथमें धनुष धारण किये वे दोनों भाई जब ऋष्यमूक पर्वतके रमणीय प्रदेशमें आये, तब धनुष धारण करनेवाले उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंको वहाँ उपस्थित देख वानरशिरोमणि सुग्रीव भयसे घबरा उठे और उछलकर उस पर्वतके उच्चतम शिखरपर जा चढ़े ॥ २७-२८½ ॥

ततः स शिखरे तस्मिन् वानरेन्द्रो व्यवस्थितः ॥ २९ ॥
तयोः समीपं मामेव प्रेषयामास सत्वरम् ।

‘उस शिखरपर बैठनेके पश्चात् वानरराज सुग्रीवने मुझे ही शीघ्रतापूर्वक उन दोनों बन्धुओंके पास भेजा ॥ २९½ ॥

---

[१] भौंह, नथुने, नेत्र, कान, ओठ, स्तन, कोहनी, कलाई, जाँघ, घुटने, अण्डकोष, कमरके दोनों भाग, हाथ और पैर।

तावहं पुरुषव्याघ्रौ सुग्रीववचनात् प्रभू ॥ ३० ॥
रूपलक्षणसम्पन्नौ कृताञ्जलिरुपस्थितः ।

‘सुग्रीवकी आज्ञासे उन प्रभावशाली रूपवान् तथा शुभलक्षणसम्पन्न दोनों पुरुषसिंह वीरोंकी सेवामें मैं हाथ जोड़कर उपस्थित हुआ ॥ ३०½ ॥

तौ परिज्ञाततत्त्वार्थौ मया प्रीतिसमन्वितौ ॥ ३१ ॥
पृष्ठमारोप्य तं देशं प्रापितौ पुरुषर्षभौ ।

‘मुझसे यथार्थ बातें जानकर उन दोनोंको बड़ी प्रसन्नता हुई । फिर मैं अपनी पीठपर चढ़ाकर उन दोनों पुरुषोत्तम बन्धुओंको उस स्थानपर ले गया (जहाँ वानरराज सुग्रीव थे)॥

निवेदितौ च तत्त्वेन सुग्रीवाय महात्मने ॥ ३२ ॥
तयोरन्योन्यसम्भाषाद् भृशं प्रीतिरजायत ।

‘वहाँ महात्मा सुग्रीवको मैंने इन दोनों बन्धुओंका यथार्थ परिचय दिया । तत्पश्चात् श्रीराम और सुग्रीवने परस्पर बातें कीं, इससे उन दोनोंमें बड़ा प्रेम हो गया ॥ ३२½ ॥

तत्र तौ कीर्तिसम्पन्नौ हरीश्वरनरेश्वरौ ॥ ३३ ॥
परस्परकृताश्वासौ कथया पूर्ववृत्तया ।

‘वहाँ उन दोनों यशस्वी वानरेश्वर और नरेश्वरोंने अपने ऊपर बीती हुई पहलेकी घटनाएँ सुनायीं तथा दोनोंने दोनोंको आश्वासन दिया ॥ ३३½ ॥

तं ततः सान्त्वयामास सुग्रीवं लक्ष्मणाग्रजः ॥ ३४ ॥
स्त्रीहेतोर्वालिना भ्रात्रा निरस्तं पुरुतेजसा ।

‘उस समय लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीरघुनाथजीने स्त्रीके लिये अपने महातेजस्वी भाई वालीद्वारा घरसे निकाले हुए सुग्रीवको सान्त्वना दी ॥ ३४½ ॥

ततस्त्वन्नाशजं शोकं रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ३५ ॥
लक्ष्मणो वानरेन्द्राय सुग्रीवाय न्यवेदयत् ।

‘तत्पश्चात् अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भगवान् श्रीरामको आपके वियोगमे जो शोक हो रहा था, उसे लक्ष्मणने वानरराज सुग्रीवको सुनाया ॥ ३५½ ॥

स श्रुत्वा वानरेन्द्रस्तु लक्ष्मणेनेरितं वचः ॥ ३६ ॥
तदासीन्निष्प्रभोऽत्यर्थं ग्रहग्रस्त इवांशुमान् ।

‘लक्ष्मणजीकी कही हुई वह बात सुनकर वानरराज सुग्रीव उस समय ग्रहग्रस्त सूर्यके समान अत्यन्त कान्तिहीन हो गये ॥ ३६½ ॥

ततस्त्वद्गात्रशोभीनि रक्षसा ह्रियमाणया ॥ ३७ ॥
यान्याभरणजालानि पातितानि महीतले ।
तानि सर्वाणि रामाय आनीय हरियूथपाः ॥ ३८ ॥
संहृष्टा दर्शयामासुर्गतिं तु न विदुस्तव ।

‘तदनन्तर वानर-यूथपतियोंने आपके शरीरपर शोभा पानेवाले उन सब आभूषणोंको ले आकर बड़ी प्रसन्नताके साथ श्रीरामचन्द्रजीको दिखाया, जिन्हें आपने उस समय पृथ्वीपर गिराया था, जब कि राक्षस आपको हरकर लिये जा रहा था । वानरोंने आभूषण तो दिखाये, किंतु उन्हें आपका पता कुछ भी मालूम नहीं था ॥ ३७-३८½ ॥

तानि रामाय दत्तानि मयैवोपहृतानि च ॥ ३९ ॥
स्वनवन्त्यवकीर्णानि तस्मिन् विहतचेतसि ।
तान्यङ्के दर्शनीयानि कृत्वा बहुविधं तदा ॥ ४० ॥
तेन देवप्रकाशेन देवेन परिदेवितम् ।

‘आपके द्वारा गिराये जानेपर वे सब आभूषण झनझनकी आवाजके साथ जमीनपर गिरे और बिखर गये थे । मैं ही उन सबको बटोरकर ले आया था । उस दिन जब वे गहने श्रीरामचन्द्रजीको दिये गये, उस समय वे उन्हें अपनी गोदमें लेकर अचेत-से हो गये थे । उन दर्शनीय आभूषणोंको छातीसे लगाकर देवतुल्य आभावाले भगवान् श्रीरामने बहुत विलाप किया ॥ ३९-४०½ ॥

पश्यतस्तानि रुदतस्ताम्यतश्च पुनः पुनः ॥ ४१ ॥
प्रादीपयद् दाशरथेस्तदा शोकहुताशनम् ॥ ४२ ॥
शायितं च चिरं तेन दुःखार्तेन महात्मना ।
मयापि विविधैर्वाक्यैः कृच्छ्रादुत्थापितः पुनः॥ ४३ ॥

‘उन आभूषणोंको बारंबार देखते, रोते और तिलमिला उठते थे । उस समय दशरथनन्दन श्रीरामकी शोकाग्नि प्रज्वलित हो उठी । उस दुःखसे आतुर हो वे महात्मा रघुवीर बहुत देरतक मूर्छित अवस्थामें पड़े रहे । तब मैंने नाना प्रकारके सान्त्वनापूर्ण वचन कहकर बड़ी कठिनाईसे उन्हें उठाया ॥ ४१–४३ ॥

तानि दृष्ट्वा महार्हाणि दर्शयित्वा मुहुर्मुहुः ।
राघवः सहसौमित्रिः सुग्रीवे संन्यवेशयत् ॥ ४४ ॥

‘लक्ष्मणसहित श्रीरघुनाथजीने उन बहुमूल्य आभूषणोंको बारंबार देखा और दिखाया । फिर वे मब सुग्रीवको दे दिये ॥

स तवादर्शनादार्ये राघवः परितप्यते ।
महता ज्वलता नित्यमग्निनेवाग्निपर्वतः ॥ ४५ ॥

‘आर्ये ! आपको न देख पानेके कारण श्रीरघुनाथजीको बड़ा दुःख और संताप हो रहा है । जैसे ज्वालामुखी पर्वत जलती हुई बड़ी भारी आगसे सदा तपता रहता है, उसी प्रकार वे आपकी विरहाग्निसे जल रहे हैं ॥ ४५ ॥

त्वत्कृते तमनिद्रा च शोकश्चिन्ता च राघवम् ।
तापयन्ति महात्मानमग्न्यगारमिवाग्नयः ॥ ४६ ॥

‘आपके लिये महात्मा श्रीरघुनाथजीको अनिद्रा (निरन्तर जागरण), शोक और चिन्ता—ये तीनों उसी प्रकार संताप देते हैं, जैसे आहवनीय आदि त्रिविध अग्नियाँ अग्निशालाको तपाती रहती हैं ॥ ४६ ॥

तवादर्शनशोकेन राघवः परिचाल्यते ।
महता भूमिकम्पेन महानिव शिलोच्चयः ॥ ४७ ॥

‘देवि ! आपको न देख पानेका शोक श्रीरघुनाथजीको

उसी प्रकार विचलित कर देता है, जैसे भारी भूकम्पसे महान् पर्वत भी हिल जाता है ॥ ४७ ॥

काननानि सुरम्याणि नदीप्रस्रवणानि च ।
चरन् न रतिमाप्नोति त्वामपश्यन् नृपात्मजे ॥ ४८ ॥

'राजकुमारि ! आपको न देखनेके कारण रमणीय काननों, नदियों और झरनोंके पास विचरनेपर भी श्रीरामको सुख नहीं मिलता है ॥ ४८ ॥

स त्वां मनुजशार्दूलः क्षिप्रं प्राप्स्यति राघवः ।
समित्रबान्धवं हत्वा रावणं जनकात्मजे ॥ ४९ ॥

'जनकनन्दिनि ! पुरुषसिंह भगवान् श्रीराम रावणको उसके मित्र और बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर शीघ्र ही आपसे मिलेंगे ॥ ४९ ॥

सहितौ रामसुग्रीवावुभावकुरुतां तदा ।
समयं वालिनं हन्तुं तव चान्वेषणं प्रति ॥ ५० ॥

'उन दिनों श्रीराम और सुग्रीव जब मित्रभावसे मिले, तब दोनोंने एक-दूसरेकी सहायताके लिये प्रतिज्ञा की। श्रीरामने वालीको मारनेका और सुग्रीवने आपकी खोज करानेका वचन दिया ॥ ५० ॥

ततस्ताभ्यां कुमाराभ्यां वीराभ्यां स हरीश्वरः ।
किष्किन्धां समुपागम्य वाली युद्धे निपातितः ॥ ५१ ॥

'इसके बाद उन दोनों वीर राजकुमारोंने किष्किन्धामें जाकर वानरराज वालीको युद्धमें मार गिराया ॥ ५१ ॥

ततो निहत्य तरसा रामो वालिनमाहवे ।
सर्वर्क्षहरिसङ्घानां सुग्रीवमकरोत् पतिम् ॥ ५२ ॥

'युद्धमें वेगपूर्वक वालीको मारकर श्रीरामने सुग्रीवको समस्त भालुओं और वानरोंका राजा बना दिया ॥ ५२ ॥

रामसुग्रीवयोरैक्यं देव्येवं समजायत ।
हनूमन्तं च मां विद्धि तयोर्दूतमुपागतम् ॥ ५३ ॥

'देवि ! श्रीराम और सुग्रीवमें इस प्रकार मित्रता हुई है। मैं उन दोनोंका दूत बनकर यहाँ आया हूँ। आप मुझे हनुमान् समझें ॥ ५३ ॥

स्वं राज्यं प्राप्य सुग्रीवः स्वानानीय महाकपीन् ।
त्वदर्थं प्रेषयामास दिशो दश महाबलान् ॥ ५४ ॥

'अपना राज्य पानेके अनन्तर सुग्रीवने अपने आश्रयमें रहनेवाले बड़े-बड़े बलवान् वानरोंको बुलाया और उन्हें आपकी खोजके लिये दसों दिशाओंमें भेजा ॥ ५४ ॥

आदिष्टा वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण महौजसः ।
अद्रिराजप्रतीकाशाः सर्वतः प्रस्थिता महीम् ॥ ५५ ॥

'वानरराज सुग्रीवकी आज्ञा पाकर गिरिराजके समान विशालकाय महाबली वानर पृथ्वीपर सब ओर चल दिये ॥

ततस्ते मार्गमाणा वै सुग्रीववचनातुराः ।
चरन्ति वसुधां कृत्स्नां वयमन्ये च वानराः ॥ ५६ ॥

'सुग्रीवकी आज्ञासे भयभीत हो हम तथा अन्य वानर आपकी खोज करते हुए समस्त भूमण्डलमें विचर रहे हैं ॥

अङ्गदो नाम लक्ष्मीवान् वालिसूनुर्महाबलः ।
प्रस्थितः कपिशार्दूलस्त्रिभागबलसंवृतः ॥ ५७ ॥

'वालीके शोभाशाली पुत्र महाबली कपिश्रेष्ठ अंगद वानरोंकी एक तिहाई सेना साथ लेकर आपकी खोजमें निकले थे (उन्हींके दलमें मैं भी था) ॥ ५७ ॥

तेषां नो विप्रणष्टानां विन्ध्ये पर्वतसत्तमे ।
भृशं शोकपरीतानामहोरात्रगणा गताः ॥ ५८ ॥

'पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्यमें आकर खो जानेके कारण हमने वहाँ बड़ा कष्ट उठाया और वहीं हमारे बहुत दिन बीत गये ॥

ते वयं कार्यनैराश्यात् कालस्यातिक्रमेण च ।
भयाच्च कपिराजस्य प्राणांस्त्यक्तुमुपस्थिताः ॥ ५९ ॥

'अब हमें कार्य-सिद्धिकी कोई आशा नहीं रह गयी और निश्चित अवधिसे भी अधिक समय बिता देनेके कारण वानरराज सुग्रीवका भी भय था, इसलिये हम सब लोग अपने प्राण त्याग देनेके लिये उद्यत हो गये ॥ ५९ ॥

विचित्य गिरिदुर्गाणि नदीप्रस्रवणानि च ।
अनासाद्य पदं देव्याः प्राणांस्त्यक्तुं व्यवस्थिताः ॥ ६० ॥

'पर्वतके दुर्गम स्थानोंमें, नदियोंके तटोंपर और झरनोंके आस-पासकी सारी भूमि छान डाली तो भी जब हमें देवी सीता (आप) के स्थानका पता न चला; तब हम प्राण त्याग देनेको तैयार हो गये ॥ ६० ॥

ततस्तस्य गिरेर्मूर्ध्नि वयं प्रायमुपास्महे ।
दृष्ट्वा प्रायोपविष्टांश्च सर्वान् वानरपुङ्गवान् ॥ ६१ ॥
भृशं शोकार्णवे मग्नः पर्यदेवयदङ्गदः ।

'मरणान्त उपवासका निश्चय करके हम सब-के-सब उस पर्वतके शिखरपर बैठ गये। उस समय समस्त वानरशिरोमणियोंको प्राण त्याग देनेके लिये बैठे देख कुमार अङ्गद अत्यन्त शोकके समुद्रमें डूब गये और विलाप करने लगे ॥ ६१½ ॥

तव नाशं च वैदेहि वालिनश्च तथा वधम् ॥ ६२ ॥
प्रायोपवेशमस्माकं मरणं च जटायुषः ।

'विदेहनन्दिनि ! आपका पता न लगने, वालीके मारे जाने, हमलोगोंके मरणान्त उपवास करने तथा जटायुके मरनेकी बातपर विचार करके कुमार अङ्गदको बड़ा दुःख हुआ था ॥ ६२½ ॥

तेषां नः स्वामिसंदेशान्निराशानां मुमूर्षताम् ॥ ६३ ॥
कार्यहेतोरिहायातः शकुनिर्वीर्यवान् महान् ।
गृध्रराजस्य सोदर्यः सम्पातिर्नाम गृध्रराट् ॥ ६४ ॥

'स्वामीके आज्ञापालनसे निराश होकर हम मरना ही चाहते थे कि दैववश हमारा कार्य सिद्ध करनेके लिये गृध्रराज जटायुके बड़े भाई सम्पाति, जो स्वयं भी गीधोंके राजा और महान् बलवान् पक्षी हैं, वहाँ आ पहुँचे ॥ ६३-६४ ॥

श्रुत्वा भ्रातृवधं कोपादिदं वचनमब्रवीत्।
यवीयान् केन मे भ्राता हतः क्व च निपातितः॥ ६५॥
एतदाख्यातुमिच्छामि भवद्भिर्वानरोत्तमाः।

'हमारे मुँहसे अपने भाईके वधकी चर्चा सुनकर वे कुपित हो उठे और बोले—'वानरशिरोमणियो! बताओ, मेरे छोटे भाई जटायुका वध किसने किया है? वह कहाँ मारा गया है? यह सब वृत्तान्त मैं तुमलोगोंसे सुनना चाहता हूँ' ॥ ६५½ ॥

अङ्गदोऽकथयत् तस्य जनस्थाने महद्वधम्॥ ६६॥
रक्षसा भीमरूपेण त्वामुद्दिश्य यथार्थतः।

'तब अंगदने जनस्थानमें आपकी रक्षाके उद्देश्यसे जूझते समय जटायुका उस भयानक रूपधारी राक्षसके द्वारा जो महान् वध किया गया था, वह सब प्रसंग ज्यों-का-त्यों कह सुनाया॥ ६६½ ॥

जटायोस्तु वधं श्रुत्वा दुःखितः सोऽरुणात्मजः॥ ६७॥
त्वामाह स वरारोहे वसन्तीं रावणालये।

'जटायुके वधका वृत्तान्त सुनकर अरुणपुत्र सम्पातिको बड़ा दुःख हुआ। वरारोहे! उन्होंने ही हमे बताया कि आप रावणके घरमें निवास कर रही हैं॥ ६७½ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सम्पातेः प्रीतिवर्धनम्॥ ६८॥
अङ्गदप्रमुखाः सर्वे ततः प्रस्थापिता वयम्।
विन्ध्यादुत्थाय सम्प्राप्ताः सागरस्यान्तमुत्तमम्॥ ६९॥
त्वद्दर्शने कृतोत्साहा हृष्टाः पुष्टाः प्लवङ्गमाः।
अङ्गदप्रमुखाः सर्वे वेलोपान्तमुपागताः॥ ७०॥

'सम्पातिका वह वचन वानरोंके लिये बड़ा हर्षवर्धक था। उसे सुनकर उन्हींके भेजनेसे अङ्गद आदि हम सभी वानर आपके दर्शनकी आशासे उत्साहित हो विन्ध्यपर्वतसे उठकर समुद्रके उत्तम तटपर आये। इस प्रकार अङ्गद आदि सभी हृष्ट-पुष्ट वानर समुद्रके किनारे आ पहुँचे॥ ६८—७०॥

चिन्तां जग्मुः पुनर्भीमां त्वद्दर्शनसमुत्सुकाः।
अथाहं हरिसैन्यस्य सागरं दृश्य सीदतः॥ ७१॥
व्यवधूय भयं तीव्रं योजनानां शतं प्लुतः।

'आपके दर्शनके लिये उत्सुक होनेपर भी सामने अपार समुद्रको देखकर सब वानर फिर भयानक चिन्तामें पड़ गये। समुद्रको देखकर वानर-सेना कष्टमें पड़ गयी है, यह जानकर मैं उन सबके तीव्र भयको दूर करता हुआ सौ योजन समुद्रको लाँघकर यहाँ आ गया॥ ७१½ ॥

लङ्का चापि मया रात्रौ प्रविष्टा राक्षसाकुला॥ ७२॥
रावणश्च मया दृष्टस्त्वं च शोकनिपीडिता।

'राक्षसोंसे भरी हुई लङ्कामें मैंने रातमें ही प्रवेश किया है। यहाँ आकर रावणको देखा है और शोकसे पीड़ित हुई आपका भी दर्शन किया है॥ ७२½ ॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं यथावृत्तमनिन्दिते॥ ७३॥
अभिभाषस्व मां देवि दूतो दाशरथेरहम्।

'सतीशिरोमणे! यह सारा वृत्तान्त मैंने ठीक-ठीक आपके सामने रक्खा है। देवि! मैं दशरथनन्दन श्रीरामका दूत हूँ, अतः आप मुझसे बात कीजिये॥ ७३½ ॥

तन्मां रामकृतोद्योगं त्वन्निमित्तमिहागतम्॥ ७४॥
सुग्रीवसचिवं देवि बुद्ध्यस्व पवनात्मजम्।

'मैंने श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी सिद्धिके लिये ही यह सारा उद्योग किया है और आपके दर्शनके निमित्त मैं यहाँ आया हूँ। देवि! आप मुझे सुग्रीवका मन्त्री तथा वायुदेवताका पुत्र हनुमान् समझें॥ ७४½ ॥

कुशली तव काकुत्स्थः सर्वशस्त्रभृतां वरः॥ ७५॥
गुरोराराधने युक्तो लक्ष्मणः शुभलक्षणः।
तस्य वीर्यवतो देवि भर्तुस्तव हिते रतः॥ ७६॥

'देवि! आपके पतिदेव समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामचन्द्रजी सकुशल हैं तथा बड़े भाईकी सेवामें संलग्न रहनेवाले शुभलक्षण लक्ष्मण भी प्रसन्न हैं। वे आपके उन पराक्रमी पतिदेवके हित-साधनमें ही तत्पर रहते हैं॥ ७५-७६॥

अहमेकस्तु सम्प्राप्तः सुग्रीववचनादिह।
मयेयमसहायेन चरता कामरूपिणा॥ ७७॥
दक्षिणा दिगनुक्रान्ता त्वन्मार्गविचयैषिणा।

'मैं सुग्रीवकी आज्ञासे अकेला ही यहाँ आया हूँ। इच्छानुसार रूप धारण करनेकी शक्ति रखता हूँ। आपका पता लगानेकी इच्छासे मैंने बिना किसी सहायकके अकेले ही घूम-फिरकर इस दक्षिण दिशाका अनुसंधान किया है॥ ७७½ ॥

दिष्ट्याहं हरिसैन्यानां त्वन्नाशमनुशोचताम्॥ ७८॥
अपनेष्यामि संतापं तवाधिगमशासनात्।

'आपके विनाशकी सम्भावनासे जो निरन्तर शोकमें डूबे रहते हैं, उन वानरसैनिकोंको यह बताकर कि आप मिल गयीं, मैं उनका संताप दूर करूँगा। यह मेरे लिये बड़े हर्षकी बात होगी॥ ७८½ ॥

दिष्ट्या हि न मम व्यर्थं सागरस्येह लङ्घनम्॥ ७९॥
प्राप्स्याम्यहमिदं देवि त्वद्दर्शनकृतं यशः।

'देवि! मेरा समुद्रको लाँघकर यहाँतक आना व्यर्थ नहीं हुआ। सबसे पहले आपके दर्शनका यह यश मुझे ही मिलेगा। यह मेरे लिये सौभाग्यकी बात है॥ ७९½ ॥

राघवश्च महावीर्यः क्षिप्रं त्वामभिपत्स्यते॥ ८०॥
सपुत्रबान्धवं हत्वा रावणं राक्षसाधिपम्।

'महापराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी राक्षसराज रावणको उसके पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर शीघ्र ही आपसे आ मिलेंगे॥ ८०½ ॥

माल्यवान् नाम वैदेहि गिरीणामुत्तमो गिरिः ॥ ८१ ॥
ततो गच्छति गोकर्णं पर्वतं केसरी हरिः ।
स च देवर्षिभिर्दिष्टः पिता मम महाकपिः ।
तीर्थे नदीपतेः पुण्ये शम्बसादनमुद्धरन् ॥ ८२ ॥
यस्याहं हरिणः क्षेत्रे जातो वातेन मैथिलि ।
हनूमानिति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा ॥ ८३ ॥

'विदेहनन्दिनि ! पर्वतोंमें माल्यवान् नामसे प्रसिद्ध एक उत्तम पर्वत है । वहाँ केसरी नामक वानर निवास करते थे । एक दिन वे वहाँसे गोकर्ण पर्वतपर गये। महाकपि केसरी मेरे पिता हैं । उन्होंने समुद्रके तटपर विद्यमान उस पवित्र गोकर्ण तीर्थमें देवर्षियोंकी आज्ञासे शम्बसादन नामक दैत्यका संहार किया था । मिथिलेशकुमारी ! उन्हीं कपिराज केसरीकी स्त्रीके गर्भसे वायुदेवताके द्वारा मेरा जन्म हुआ है । मैं लोकमें अपने ही कर्मद्वारा 'हनुमान्' नामसे विख्यात हूँ ॥ ८१-८३ ॥

विश्वासार्थं तु वैदेहि भर्तुरुक्ता मया गुणाः ।
अचिरात् त्वामितो देवि राघवो नयिता ध्रुवम् ॥ ८४ ॥

'विदेहनन्दिनि ! आपको विश्वास दिलानेके लिये मैंने आपके स्वामीके गुणोंका वर्णन किया है । देवि ! श्रीरघुनाथजी शीघ्र ही आपको यहाँसे ले चलेंगे—यह निश्चित बात है' ॥ ८४ ॥

एवं विश्वासिता सीता हेतुभिः शोककर्शिता ।
उपपन्नैरभिज्ञानैर्दूतं तमधिगच्छति ॥ ८५ ॥

इस प्रकार युक्तियुक्त एवं विश्वसनीय कारणों तथा पहचानके रूपमें बताये गये श्रीराम और लक्ष्मणके शारीरिक चिह्नोंद्वारा हनुमान्जीने शोकसे दुर्बल हुई सीताको अपना विश्वास दिलाया । तब उन्होंने हनुमान्जीको श्रीरामका दूत समझा ॥ ८५ ॥

अतुलं च गता हर्षं प्रहर्षेण तु जानकी ।
नेत्राभ्यां वक्रपक्ष्माभ्यां मुमोचानन्दजं जलम् ॥ ८६ ॥

उस समय जनकनन्दिनी सीताको अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ । उस महान् हर्षके कारण वे कुटिल बरौनियोंवाले दोनों नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाने लगीं ॥ ८६ ॥

चारु तद् वदनं तस्यास्ताम्रशुक्लायतेक्षणम् ।
अशोभत विशालाक्ष्या राहुमुक्त इवोडुराट् ॥ ८७ ॥

उस अवसरपर विशाललोचना सीताका मनोहर मुख, जो लाल, सफेद और बड़े-बड़े नेत्रोंसे युक्त था, राहुके ग्रहणसे मुक्त हुए चन्द्रमाके समान शोभा पा रहा था ॥ ८७ ॥

हनूमन्तं कपिं व्यक्तं मन्यते नान्यथेति सा ।
अथोवाच हनूमांस्तामुत्तरं प्रियदर्शनाम् ॥ ८८ ॥

अब वे हनुमान्को वास्तविक वानर मानने लगीं । इसके विपरीत मायामय रूपधारी राक्षस नहीं । तदनन्तर हनुमान्जीने प्रियदर्शना सीतासे फिर कहा—॥ ८८ ॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं समाश्वसिहि मैथिलि ।
किं करोमि कथं वा ते रोचते प्रतियाम्यहम् ॥ ८९ ॥

'मिथिलेशकुमारी ! इस प्रकार आपने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने बता दिया । अब आप धैर्य धारण करें । बताइये, मैं आपकी कैसी और क्या सेवा करूँ । इस समय आपकी रुचि क्या है, आज्ञा हो तो अब मैं लौट जाऊँ ॥

हतेऽसुरे संयति शम्बसादने
कपिप्रवीरेण महर्षिचोदनात् ।
ततोऽस्मि वायुप्रभवो हि मैथिलि
प्रभावतस्तत्प्रतिमश्च वानरः ॥ ९० ॥

'महर्षियोंकी प्रेरणासे कपिवर केसरीद्वारा युद्धमें शम्बसादन नामक असुरके मारे जानेपर मैंने पवनदेवताके द्वारा जन्म ग्रहण किया । अतः मैथिलि ! मैं उन वायुदेवताके समान ही प्रभावशाली वानर हूँ' ॥ ९० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः

हनुमान्जीका सीताको मुद्रिका देना, सीताका 'श्रीराम कब मेरा उद्धार करेंगे' यह उत्सुक होकर पूछना तथा हनुमान्जीका श्रीरामके सीताविषयक प्रेमका वर्णन करके उन्हें सान्त्वना देना

भूय एव महातेजा हनूमान् पवनात्मजः ।
अब्रवीत् प्रश्रितं वाक्यं सीताप्रत्ययकारणात् ॥ १ ॥

तदनन्तर महातेजस्वी पवनकुमार हनुमान्जी सीताजीको विश्वास दिलानेके लिये पुनः विनययुक्त वचन बोले—॥ १॥

वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः ।
रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम् ॥ २ ॥

'महाभागे ! मैं परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामका दूत वानर हूँ । देवि ! यह श्रीरामनामसे अङ्कित मुद्रिका है, इसे लेकर देखिये ॥ २ ॥

प्रत्ययार्थं तवानीतं तेन दत्तं महात्मना ।
समाश्वसिहि भद्रं ते क्षीणदुःखफला ह्यसि ॥ ३ ॥

'आपको विश्वास दिलानेके लिये ही मैं इसे लेता आया

हूँ। महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने स्वयं यह अंगूठी मेरे हाथमें दी थी। आपका कल्याण हो। अब आप धैर्य धारण करें। आपको जो दुःखरूपी फल मिल रहा था, वह अब समाप्त हो चला है' ॥ ३ ॥

गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः करविभूषितम्।
भर्तारमिव सम्प्राप्तं जानकी मुदिताभवत् ॥ ४ ॥

पतिके हाथको सुशोभित करनेवाली उस मुद्रिकाको लेकर सीताजी उसे ध्यानसे देखने लगीं। उस समय जानकीजीको इतनी प्रसन्नता हुई, मानो स्वयं उनके पतिदेव ही उन्हें मिल गये हों ॥ ४ ॥

चारु तद् वदनं तस्यास्ताम्रशुक्लायतेक्षणम्।
बभूव हर्षोदग्रं च राहुमुक्त इवोडुराट् ॥ ५ ॥

उनका लाल, सफेद और विशाल नेत्रोंसे युक्त मनोहर मुख हर्षसे खिल उठा, मानो चन्द्रमा राहुके ग्रहणसे मुक्त हो गया हो ॥ ५ ॥

ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुः संदेशहर्षिता।
परितुष्टा प्रियं कृत्वा प्रशशंस महाकपिम् ॥ ६ ॥

वे लजीली विदेहबाला प्रियतमका संदेश पाकर बहुत प्रसन्न हुईं। उनके मनको बड़ा संतोष हुआ। वे महाकपि हनूमान्‌जीका आदर करके उनकी प्रशंसा करने लगीं— ॥ ६ ॥

विक्रान्तस्त्वं समर्थस्त्वं प्राज्ञस्त्वं वानरोत्तम।
येनेदं राक्षसपदं त्वयैकेन प्रधर्षितम् ॥ ७ ॥

'वानरश्रेष्ठ! तुम बड़े पराक्रमी, शक्तिशाली और बुद्धिमान् हो; क्योंकि तुमने अकेले ही इस राक्षसपुरीको पददलित कर दिया है ॥ ७ ॥

शतयोजनविस्तीर्णः सागरो मकरालयः।
विक्रमश्लाघनीयेन क्रमता गोष्पदीकृतः ॥ ८ ॥

'तुम अपने पराक्रमके कारण प्रशंसाके योग्य हो; क्योंकि तुमने मगर आदि जन्तुओंसे भरे हुए सौ योजन विस्तारवाले महासागरको लाँघते समय उसे गायकी खुरीके बराबर समझा है। इसलिये प्रशंसाके पात्र हो ॥ ८ ॥

नहि त्वां प्राकृतं मन्ये वानरं वानरर्षभ।
यस्य ते नास्ति संत्रासो रावणादपि सम्भ्रमः ॥ ९ ॥

'वानरशिरोमणे! मैं तुम्हें कोई साधारण वानर नहीं मानती हूँ; क्योंकि तुम्हारे मनमें रावण-जैसे राक्षससे भी न तो भय होता है और न घबराहट ही ॥ ९ ॥

अर्हसे च कपिश्रेष्ठ मया समभिभाषितुम्।
यद्यसि प्रेषितस्तेन रामेण विदितात्मना ॥ १० ॥

'कपिश्रेष्ठ! यदि तुम्हें आत्मज्ञानी भगवान् श्रीरामने भेजा है तो तुम अवश्य इस योग्य हो कि मैं तुमसे बातचीत करूँ ॥ १० ॥

प्रेषयिष्यति दुर्धर्षो रामो नह्यपरीक्षितम्।
पराक्रममविज्ञाय मत्सकाशं विशेषतः ॥ ११ ॥

'दुर्धर्ष वीर श्रीरामचन्द्रजी विशेषतः मेरे निकट ऐसे किसी पुरुषको नहीं भेजेंगे, जिसके पराक्रमका उन्हें ज्ञान न हो तथा जिसके शीलस्वभावकी उन्होंने परीक्षा न कर ली हो ॥ ११ ॥

दिष्ट्या च कुशली रामो धर्मात्मा सत्यसंगरः।
लक्ष्मणश्च महातेजाः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ १२ ॥

'सत्यप्रतिज्ञ एवं धर्मात्मा भगवान् श्रीराम सकुशल हैं तथा सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले महातेजस्वी लक्ष्मण भी स्वस्थ एवं सुखी हैं, यह जानकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ है और यह शुभ संवाद मेरे लिये सौभाग्यका सूचक है ॥ १२ ॥

कुशली यदि काकुत्स्थः किं न सागरमेखलाम्।
महीं दहति कोपेन युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥ १३ ॥

'यदि ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम सकुशल हैं तो वे प्रलयकालमें उठे हुए प्रलयंकर अग्निके समान कुपित हो समुद्रोंसे घिरी हुई सारी पृथ्वीको दग्ध क्यों नहीं कर देते हैं? ॥ १३ ॥

अथवा शक्तिमन्तौ तौ सुराणामपि निग्रहे।
ममैव तु न दुःखानामस्ति मन्ये विपर्ययः ॥ १४ ॥

'अथवा वे दोनों भाई देवताओंको भी दण्ड देनेकी शक्ति रखते हैं (तो भी अबतक जो चुप बैठे हैं, इसमें उनका नहीं मेरे ही भाग्यका दोष है)। मैं समझती हूँ कि अभी मेरे ही दुःखोंका अन्त नहीं आया है ॥ १४ ॥

कच्चिन्न व्यथते रामः कच्चिन्न परितप्यते।
उत्तराणि च कार्याणि कुरुते पुरुषोत्तमः ॥ १५ ॥

'अच्छा, यह तो बताओ, पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीके मनमें कोई व्यथा तो नहीं है? वे संतप्त तो नहीं होते? उन्हें आगे जो कुछ करना है, उसे वे करते हैं या नहीं? ॥ १५ ॥

कच्चिन्न दीनः सम्भ्रान्तः कार्येषु च न मुह्यति।
कच्चित् पुरुषकार्याणि कुरुते नृपतेः सुतः ॥ १६ ॥

'उन्हें किसी प्रकारकी दीनता या घबराहट तो नहीं है? वे काम करते-करते मोहके वशीभूत तो नहीं हो जाते? क्या राजकुमार श्रीराम पुरुषोचित कार्य (पुरुषार्थ) करते हैं? ॥ १६ ॥

द्विविधं त्रिविधोपायमुपायमपि सेवते।
विजिगीषुः सुहृत् कच्चिन्मित्रेषु च परंतपः ॥ १७ ॥

'क्या शत्रुओंको संताप देनेवाले श्रीराम मित्रोंके प्रति मित्रभाव रखकर साम और दान रूप दो उपायोंका ही अवलम्बन करते हैं? तथा शत्रुओंके प्रति उन्हें जीतनेकी इच्छा रखकर दान, भेद और दण्ड—इन तीन प्रकारके उपायोंका ही आश्रय लेते हैं? ॥ १७ ॥

कच्चिन्मित्राणि लभतेऽमित्रैश्चाप्यभिगम्यते।
कच्चित् कल्याणमित्रश्च मित्रैश्चापि पुरस्कृतः ॥ १८ ॥

'क्या श्रीराम स्वयं प्रयत्नपूर्वक मित्रोंका संग्रह करते

हैं ? क्या उनके शत्रु भी शरणागत होकर अपनी रक्षाके लिये उनके पास आते हैं ? क्या उन्होंने मित्रोंका उपकार करके उन्हें अपने लिये कल्याणकारी बना लिया है ? क्या वे कभी अपने मित्रोंसे भी उपकृत या पुरस्कृत होते हैं ? ॥१८॥

कच्चिदाशास्ति देवानां प्रसादं पार्थिवात्मजः।
कच्चित् पुरुषकारं च दैवं च प्रतिपद्यते ॥ १९ ॥

'क्या राजकुमार श्रीराम कभी देवताओंका भी कृपा-प्रसाद चाहते हैं—उनकी कृपाके लिये प्रार्थना करते हैं ? क्या वे पुरुषार्थ और दैव दोनोंका आश्रय लेते हैं ? ॥१९॥

कच्चिन्न विगतस्नेहो विवासान्मयि राघवः।
कच्चिन्मां व्यसनादस्मान्मोक्षयिष्यति राघवः ॥ २० ॥

'दुर्भाग्यवश मैं उनसे दूर हो गयी हूँ। इस कारण श्रीरघुनाथजी मुझपर स्नेहहीन तो नहीं हो गये हैं ? क्या वे मुझे कभी इस संकटसे छुड़ायेंगे ॥ २० ॥

सुखानामुचितो नित्यमसुखानामनूचितः।
दुःखमुत्तरमासाद्य कच्चिद् रामो न सीदति ॥ २१ ॥

'वे सदा सुख भोगनेके ही योग्य हैं, दुःख भोगनेके योग्य कदापि नहीं हैं; परंतु इन दिनों दुःख-पर-दुःख उठानेके कारण श्रीराम अधिक खिन्न और शिथिल तो नहीं हो गये हैं ? ॥ २१ ॥

कौसल्यायास्तथा कच्चित् सुमित्रायास्तथैव च।
अभीक्ष्णं श्रूयते कच्चित् कुशलं भरतस्य च ॥ २२ ॥

'क्या उन्हें माता कौसल्या, सुमित्रा तथा भरतका कुशल-समाचार बराबर मिलता रहता है ? ॥ २२ ॥

मन्निमित्तेन मानार्हः कच्चिच्छोकेन राघवः।
कच्चिन्नान्यमना रामः कच्चिन्मां तारयिष्यति ॥ २३ ॥

'क्या सम्माननीय श्रीरघुनाथजी मेरे लिये होनेवाले शोकसे अधिक संतप्त हैं ? वे मेरी ओरसे अन्यमनस्क तो नहीं हो गये हैं ? क्या श्रीराम मुझे इस संकटसे उबारेंगे ? ॥ २३ ॥

कच्चिदक्षौहिणीं भीमां भरतो भ्रातृवत्सलः।
ध्वजिनीं मन्त्रिभिर्गुप्तां प्रेषयिष्यति मत्कृते ॥ २४ ॥

'क्या भाईपर अनुराग रखनेवाले भरतजी मेरे उद्धारके लिये मन्त्रियोंद्वारा सुरक्षित भयंकर अक्षौहिणी सेना भेजेंगे ? ॥ २४ ॥

वानराधिपतिः श्रीमान् सुग्रीवः कच्चिदेष्यति।
मत्कृते हरिभिर्वीरैर्वृतो दन्तनखायुधैः ॥ २५ ॥

'क्या श्रीमान् वानरराज सुग्रीव दाँत और नखोंसे प्रहार करनेवाले वीर वानरोंको साथ ले मुझे छुड़ानेके लिये यहाँतक आनेका कष्ट करेंगे ? ॥ २५ ॥

कच्चिच्च लक्ष्मणः शूरः सुमित्रानन्दवर्धनः।
अस्त्रविच्छरजालेन राक्षसान् विधमिष्यति ॥ २६ ॥

'क्या सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले शूरवीर लक्ष्मण, जो अनेक अस्त्रोंके ज्ञाता हैं, अपने बाणोंकी वर्षासे राक्षसोंका संहार करेंगे ? ॥ २६ ॥

रौद्रेण कच्चिदस्त्रेण रामेण निहतं रणे।
द्रक्ष्याम्यल्पेन कालेन रावणं ससुहृज्जनम् ॥ २७ ॥

'क्या मैं रावणको उसके बन्धु-बान्धवोंसहित थोड़े ही दिनोंमें श्रीरघुनाथजीके द्वारा युद्धमें भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंसे मारा गया देखूँगी ? ॥ २७ ॥

कच्चिन्न तद्धेमसमानवर्णं
तस्याननं पद्मसमानगन्धि।
मया विना शुष्यति शोकदीनं
जलक्षये पद्ममिवातपेन ॥ २८ ॥

'जैसे पानी सूख जानेपर धूपसे कमल सूख जाता है, उसी प्रकार मेरे बिना शोकसे दुखी हुआ श्रीरामका वह सुवर्णके समान कान्तिमान् और कमलके सदृश सुगन्धित मुख सूख तो नहीं गया है ? ॥ २८ ॥

धर्मापदेशात् त्यजतः स्वराज्यं
मां चाप्यरण्यं नयतः पदातेः।
नासीद् यथा यस्य न भीर्न शोकः
कच्चित् स धैर्यं हृदये करोति ॥ २९ ॥

'धर्मपालनके उद्देश्यसे अपने राज्यका त्याग करते और मुझे पैदल ही वनमें लाते समय जिन्हें तनिक भी भय और शोक नहीं हुआ, वे श्रीरघुनाथजी इस संकटके समय हृदयमें धैर्य तो धारण करते हैं न ? ॥ २९ ॥

न चास्य माता न पिता न चान्यः
स्नेहाद् विशिष्टोऽस्ति मया समो वा।
तावद्ध्यहं दूत जिजीविषेयं
यावत् प्रवृत्तिं शृणुयां प्रियस्य ॥ ३० ॥

'दूत ! उनके माता-पिता तथा अन्य कोई सम्बन्धी भी ऐसे नहीं हैं, जिन्हें उनका स्नेह मुझसे अधिक अथवा मेरे बराबर भी मिला हो। मैं तो तभीतक जीवित रहना चाहती हूँ, जबतक यहाँ आनेके सम्बन्धमें अपने प्रियतमकी प्रवृत्ति सुन रही हूँ' ॥ ३० ॥

इतीव देवी वचनं महार्थं
तं वानरेन्द्रं मधुरार्थमुक्त्वा।
श्रोतुं पुनस्तस्य वचोऽभिरामं
रामार्थयुक्तं विरराम रामा ॥ ३१ ॥

देवी सीता वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌के प्रति इस प्रकार महान् अर्थसे युक्त मधुर वचन कहकर श्रीरामचन्द्रजीसे सम्बन्ध रखनेवाली उनकी मनोहर वाणी पुनः सुननेके लिये चुप हो गयीं ॥ ३१ ॥

सीताया वचनं श्रुत्वा मारुतिर्भीमविक्रमः।
शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ ३२ ॥

सीताजीका वचन सुनकर भयंकर पराक्रमी पवनकुमार

हनुमान् मस्तकपर अञ्जलि बाँधे उन्हें इस प्रकार उत्तर देने लगे—॥ ३२ ॥

न त्वामिहस्थां जानीते रामः कमललोचनः।
तेन त्वां नानयत्याशु शचीमिव पुरंदरः ॥ ३३ ॥

'देवि! कमलनयन भगवान् श्रीरामको यह पता ही नहीं है कि आप लङ्कामें रह रही हैं। इसीलिये जैसे इन्द्र दानवोंके यहाँसे शचीको उठा ले गये, उस प्रकार वे शीघ्र यहाँसे आपको नहीं ले जा रहे हैं ॥ ३३ ॥

श्रुत्वैव च वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः।
चमूं प्रकर्षन् महतीं हर्यृक्षगणसंयुताम् ॥ ३४ ॥

'जब मैं यहाँसे लौटकर जाऊँगा, तब मेरी बात सुनते ही श्रीरघुनाथजी वानर और भालुओंकी विशाल सेना लेकर तुरंत वहाँसे चल देंगे ॥ ३४ ॥

विष्टम्भयित्वा बाणौघैरक्षोभ्यं वरुणालयम्।
करिष्यति पुरीं लङ्कां काकुत्स्थः शान्तराक्षसाम् ॥ ३५ ॥

'ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम अपने बाण-समूहोंद्वारा अक्षोभ्य महासागरको भी स्तब्ध करके उसपर सेतु बाँधकर लङ्कापुरीमें पहुँच जायँगे और उसे राक्षसोंसे सूनी कर देंगे ॥ ३५ ॥

तत्र यद्यन्तरा मृत्युर्यदि देवा महासुराः।
स्थास्यन्ति पथि रामस्य स तानपि वधिष्यति ॥ ३६ ॥

'उस समय श्रीरामके मार्गमें यदि मृत्यु, देवता अथवा बड़े-बड़े असुर भी विघ्न बनकर खड़े होंगे तो वे उन सबका भी संहार कर डालेंगे ॥ ३६ ॥

तवादर्शनजेनार्ये शोकेन परिपूरितः।
न शर्म लभते रामः सिंहार्दित इव द्विपः ॥ ३७ ॥

'आर्ये! आपको न देखनेके कारण उत्पन्न हुए शोकसे उनका हृदय भरा रहता है; अतः श्रीराम सिंहसे पीड़ित हुए हाथीकी भाँति क्षणभरको भी चैन नहीं पाते हैं ॥ ३७ ॥

मन्दरेण च ते देवि शपे मूलफलेन च।
मलयेन च विन्ध्येन मेरुणा दर्दुरेण च ॥ ३८ ॥
यथा सुनयनं वल्गु बिम्बोष्ठं चारुकुण्डलम्।
मुखं द्रक्ष्यसि रामस्य पूर्णचन्द्रमिवोदितम् ॥ ३९ ॥

'देवि! मन्दर आदि पर्वत हमारे वासस्थान हैं और फल-मूल भोजन। अतः मैं मन्दराचल, मलय, विन्ध्य, मेरु तथा दर्दुर पर्वतकी और अपनी जीविकाके साधन फल-मूलकी सौगंध खाकर कहता हूँ कि आप शीघ्र ही श्रीरामका नवोदित पूर्ण चन्द्रमाके समान वह मनोहर मुख देखेंगी, जो सुन्दर नेत्र, बिम्बफलके समान लाल लाल ओठ और सुन्दर कुण्डलोंसे अलंकृत एवं चित्ताकर्षक है ॥ ३८-३९ ॥

क्षिप्रं द्रक्ष्यसि वैदेहि रामं प्रस्रवणे गिरौ।
शतक्रतुमिवासीनं नागपृष्ठस्य मूर्धनि ॥ ४० ॥

'विदेहनन्दिनि! ऐरावतकी पीठपर बैठे हुए देवराज इन्द्रके समान प्रस्रवण गिरिके शिखरपर विराजमान श्रीरामका आप शीघ्र दर्शन करेंगी ॥ ४० ॥

न मांसं राघवो भुङ्क्ते न चैव मधु सेवते। ✓
वन्यं सुविहितं नित्यं भक्तमश्नाति पञ्चमम् ॥ ४१ ॥

'कोई भी रघुवंशी न तो मांस खाता है और न मधुका ही सेवन करता है; फिर भगवान् श्रीराम इन वस्तुओंका सेवन क्यों करते? वे सदा चार समय उपवास करके पाँचवें समय शास्त्रविहित जंगली फल-मूल और नीवार आदि भोजन करते हैं ॥ ४१ ॥

नैव दंशान् न मशकान् न कीटान् न सरीसृपान्।
राघवोऽपनयेद् गात्रात् त्वद्गतेनान्तरात्मना ॥ ४२ ॥

'श्रीरघुनाथजीका चित्त सदा आपमें लगा रहता है, अतः उन्हें अपने शरीरपर चढ़े हुए डाँस, मच्छर, कीड़ों और सर्पोंको हटानेकी भी सुधि नहीं रहती ॥ ४२ ॥

नित्यं ध्यानपरो रामो नित्यं शोकपरायणः।
नान्यच्चिन्तयते किंचित् स तु कामवशं गतः ॥ ४३ ॥

'श्रीराम आपके प्रेमके वशीभूत हो सदा आपका ही ध्यान करते और निरन्तर आपके ही विरह-शोकमें डूबे रहते हैं। आपको छोड़कर दूसरी कोई बात वे सोचते ही नहीं हैं ॥

अनिद्रः सततं रामः सुप्तोऽपि च नरोत्तमः।
सीतेति मधुरां वाणीं व्याहरन् प्रतिबुध्यते ॥ ४४ ॥

'नरश्रेष्ठ! श्रीरामको सदा आपकी चिन्ताके कारण कभी नींद नहीं आती है। यदि कभी आँख लगी भी तो 'सीता-सीता' इस मधुर वाणीका उच्चारण करते हुए वे जल्दी ही जाग उठते हैं ॥ ४४ ॥

दृष्ट्वा फलं वा पुष्पं वा यच्चान्यत् स्त्रीमनोहरम्।
बहुशो हा प्रियेत्येवं श्वसंस्त्वामभिभाषते ॥ ४५ ॥

'किसी फल, फूल अथवा स्त्रियोंके मनको लुभानेवाली दूसरी वस्तुको भी जब वे देखते हैं, तब लंबी साँस लेकर बारंबार 'हा प्रिये! हा प्रिये!' कहते हुए आपको पुकारने लगते हैं ॥ ४५ ॥

स देवि नित्यं परितप्यमान-
स्त्वामेव सीतेत्यभिभाषमाणः।
धृतव्रतो राजसुतो महात्मा
तवैव लाभाय कृतप्रयत्नः ॥ ४६ ॥

'देवि! राजकुमार महात्मा श्रीराम आपके लिये सदा दुखी रहते हैं, सीता-सीता कहकर आपकी ही रट लगाते हैं तथा उत्तम व्रतका पालन करते हुए आपकी ही प्राप्तिके प्रयत्नमें लगे हुए हैं' ॥ ४६ ॥

सा रामसंकीर्तनवीतशोका
रामस्य शोकेन समानशोका।

शरन्मुखेनाम्बुदशेषचन्द्रा
निशेव वैदेहसुता बभूव ॥ ४७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी चर्चासे सीताका अपना शोक तो दूर हो गया; किंतु श्रीरामके शोककी बात सुनकर वे पुनः उन्हींके समान शोकमें निमग्न हो गयीं। उस समय विदेहनन्दिनी सीता शरद्-ऋतु आनेपर मेघोंकी घटा और चन्द्रमा— दोनोंसे युक्त (अन्धकार और प्रकाशपूर्ण) रात्रिके समान हर्ष और शोकसे युक्त प्रतीत होती थीं ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें छत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः

सीताका हनुमान्‌जीसे श्रीरामको शीघ्र बुलानेका आग्रह, हनुमान्‌जीका सीतासे अपने साथ चलनेका अनुरोध तथा सीताका अस्वीकार करना

**सा सीता वचनं श्रुत्वा पूर्णचन्द्रनिभानना।
हनूमन्तमुवाचेदं धर्मार्थसहितं वचः ॥ १ ॥**

हनुमान्‌जीका पूर्वोक्त वचन सुनकर पूर्णचन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली सीताने उनसे धर्म और अर्थसे युक्त बात कही—॥ १ ॥

**अमृतं विषसम्पृक्तं त्वया वानर भाषितम्।
यच्च नान्यमना रामो यच्च शोकपरायणः ॥ २ ॥**

'वानर! तुमने जो कहा कि श्रीरघुनाथजीका चित्त दूसरी ओर नहीं जाता और वे शोकमें डूबे रहते हैं, तुम्हारा यह कथन मुझे विषमिश्रित अमृतके समान लगा है ॥ २ ॥

**ऐश्वर्ये वा सुविस्तीर्णे व्यसने वा सुदारुणे।
रज्ज्वेव पुरुषं बद्ध्वा कृतान्तः परिकर्षति ॥ ३ ॥**

'कोई बड़े भारी ऐश्वर्यमें स्थित हो अथवा अत्यन्त भयंकर विपत्तिमें पड़ा हो, काल मनुष्यको इस तरह खींच लेता है, मानो उसे रस्सीमें बाँध रक्खा हो ॥ ३ ॥

**विधिर्नूनमसंहार्यः प्राणिनां प्लवगोत्तम।
सौमित्रिं मां च रामं च व्यसनैः पश्य मोहितान् ॥ ४ ॥**

'वानरशिरोमणे! दैवके विधानको रोकना प्राणियोंके वशकी बात नहीं है। उदाहरणके लिये सुमित्राकुमार लक्ष्मणको, मुझको और श्रीरामको भी देख लो। हमलोग किस तरह वियोग-दुःखसे मोहित हो रहे हैं ॥ ४ ॥

**शोकस्यास्य कथं पारं राघवोऽधिगमिष्यति।
प्लवमानः परिक्रान्तो हतनौः सागरे यथा ॥ ५ ॥**

'समुद्रमें नौकाके नष्ट हो जानेपर अपने हाथोंसे तैरनेवाले पराक्रमी पुरुषकी भाँति श्रीरघुनाथजी कैसे इस शोकसागरसे पार होंगे? ॥ ५ ॥

**राक्षसानां वधं कृत्वा सूदयित्वा च रावणम्।
लङ्कामुन्मथितां कृत्वा कदा द्रक्ष्यति मां पतिः ॥ ६ ॥**

'राक्षसोंका वध, रावणका संहार और लङ्कापुरीका विध्वंस करके मेरे पतिदेव मुझे कब देखेंगे? ॥ ६ ॥

**स वाच्यः संत्वरस्वेति यावदेव न पूर्यते।
अयं संवत्सरः कालस्तावद्धि मम जीवितम् ॥ ७ ॥**

'तुम उनसे जाकर कहना, वे शीघ्रता करें। यह वर्ष जबतक पूरा नहीं हो जाता, तभीतक मेरा जीवन शेष है ॥ ७ ॥

**वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवङ्गम।
रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम ॥ ८ ॥**

'वानर! यह दसवाँ महीना चल रहा है। अब वर्ष पूरा होनेमें दो ही मास शेष हैं। निर्दयी रावणने मेरे जीवनके लिये जो अवधि निश्चित की है, उसमें इतना ही समय बाकी रह गया है ॥ ८ ॥

**विभीषणेन च भ्रात्रा मम निर्यातनं प्रति।
अनुनीतः प्रयत्नेन न च तत् कुरुते मतिम् ॥ ९ ॥**

'रावणके भाई विभीषणने मुझे लौटा देनेके लिये उससे यत्नपूर्वक बड़ी अनुनय-विनय की थी, किंतु वह उनकी बात नहीं मानता है ॥ ९ ॥

**मम प्रतिप्रदानं हि रावणस्य न रोचते।
रावणं मार्गते संख्ये मृत्युः कालवशंगतम् ॥ १० ॥**

'मेरा लौटाया जाना रावणको अच्छा नहीं लगता; क्योंकि वह कालके अधीन हो रहा है और युद्धमें मौत उसे ढूँढ़ रही है ॥ १० ॥

**ज्येष्ठा कन्या कला नाम विभीषणसुता कपे।
तया ममैतदाख्यातं मात्रा प्रहितया स्वयम् ॥ ११ ॥**

'कपे! विभीषणकी ज्येष्ठ पुत्रीका नाम कला है। उसकी माताने स्वयं उसे मेरे पास भेजा था। उसीने ये सारी बातें मुझसे कही हैं ॥ ११ ॥

**अविन्ध्यो नाम मेधावी विद्वान् राक्षसपुङ्गवः।
धृतिमाञ्छीलवान् वृद्धो रावणस्य सुसम्मतः ॥ १२ ॥**

'अविन्ध्य नामका एक श्रेष्ठ राक्षस है, जो बड़ा ही बुद्धिमान्, विद्वान्, धीर, सुशील, वृद्ध तथा रावणका सम्मानपात्र है ॥ १२ ॥

**रामात् क्षयमनुप्राप्तं रक्षसां प्रत्यचोदयत्।
न च तस्य स दुष्टात्मा शृणोति वचनं हितम् ॥ १३ ॥**

'उसने रावणको यह बताकर कि श्रीरामके हाथसे राक्षसोंके विनाशका अवसर आ पहुँचा है, मुझे लौटा देनेके

लिये प्रेरित किया था, किंतु वह दुष्टात्मा उसके हितकारी वचनोंको भी नहीं सुनता है ॥ १३ ॥

आशंसेयं हरिश्रेष्ठ क्षिप्रं मां प्राप्स्यते पतिः ।
अन्तरात्मा हि मे शुद्धस्तस्मिंश्च बहवो गुणाः ॥ १४ ॥

'कपिश्रेष्ठ ! मुझे तो यह आशा हो रही है कि मेरे पतिदेव मुझसे शीघ्र ही आ मिलेंगे; क्योंकि मेरी अन्तरात्मा शुद्ध है और श्रीरघुनाथजीमें बहुत-से गुण हैं ॥ १४ ॥

उत्साहः पौरुषं सत्त्वमानृशंस्यं कृतज्ञता ।
विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानर राघवे ॥ १५ ॥

'वानर ! श्रीरामचन्द्रजीमें उत्साह, पुरुषार्थ, बल, दयालुता, कृतज्ञता, पराक्रम और प्रभाव आदि सभी गुण विद्यमान हैं ॥ १५ ॥

चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां जघान यः ।
जनस्थाने विना भ्रात्रा शत्रुः कस्तस्य नोद्विजेत्॥ १६ ॥

'जिन्होंने जनस्थानमें अपने भाईकी सहायता लिये बिना ही चौदह हजार राक्षसोंका संहार कर डाला, उनसे कौन शत्रु भयभीत न होगा ? ॥ १६ ॥

न स शक्यस्तुलयितुं व्यसनैः पुरुषर्षभः ।
अहं तस्यानुभावज्ञा शक्रस्येव पुलोमजा ॥ १७ ॥

'श्रीरामचन्द्रजी पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं । वे संकटोंसे तोले या विचलित किये जायँ, यह सर्वथा असम्भव है । जैसे पुलोम-कन्या शची इन्द्रके प्रभावको जानती हैं, उसी तरह मैं श्रीरघुनाथजीकी शक्ति-सामर्थ्यको अच्छी तरह जानती हूँ ॥१७॥

शरजालांशुमाञ्छूरः कपे रामदिवाकरः ।
शत्रुरक्षोमयं तोयमुपशोषं नयिष्यति ॥ १८ ॥

'कपिवर ! शूरवीर भगवान् श्रीराम सूर्यके समान हैं । उनके बाणसमूह ही उनकी किरणें हैं । वे उनके द्वारा शत्रुभूत राक्षसरूपी जलको शीघ्र ही सोख लेंगे' ॥ १८ ॥

इति संजल्पमानां तां रामार्थे शोककर्शिताम् ।
अश्रुसम्पूर्णवदनामुवाच हनुमान् कपिः ॥ १९ ॥

इतना कहते-कहते सीताके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली । वे श्रीरामचन्द्रजीके लिये शोकसे पीड़ित हो रही थीं । उस समय कपिवर हनुमान्‌जीने उनसे कहा—॥१९॥

श्रुत्वैव च वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः ।
चमूं प्रकर्षन् महतीं हर्यृक्षगणसंकुलाम् ॥ २० ॥

'देवि ! आप धैर्य धारण करें । मेरा वचन सुनते ही श्रीरघुनाथजी वानर और भालुओंकी विशाल सेना लेकर शीघ्र यहाँके लिये प्रस्थान कर देंगे ॥ २० ॥

अथवा मोचयिष्यामि त्वामद्यैव सराक्षसात् । ✓
अस्माद् दुःखादुपारोह मम पृष्ठमनिन्दिते ॥ २१ ॥

'अथवा मैं अभी आपको इस राक्षसजनित दुःखसे छुटकारा दिला दूँगा । सती-साध्वी देवि ! आप मेरी पीठपर बैठ जाइये ॥ २१ ॥

त्वां तु पृष्ठगतां कृत्वा संतरिष्यामि सागरम् ।
शक्तिरस्ति हि मे वोढुं लङ्कामपि सरावणाम्॥ २२ ॥

'आपको पीठपर बैठाकर मैं समुद्रको लाँघ जाऊँगा । मुझमें रावणसहित सारी लङ्काको भी ढो ले जानेकी शक्ति है ॥ २२ ॥

अहं प्रस्रवणस्थाय राघवायाद्य मैथिलि ।
प्रापयिष्यामि शक्राय हव्यं हुतमिवानलः ॥ २३ ॥

'मिथिलेशकुमारी ! रघुनाथजी प्रस्रवणगिरिपर रहते हैं । मैं आज ही आपको उनके पास पहुँचा दूँगा । ठीक उसी तरह, जैसे अग्निदेव हवन किये गये हविष्यको इन्द्रकी सेवामें ले जाते हैं ॥ २३ ॥

द्रक्ष्यस्यद्यैव वैदेहि राघवं सहलक्ष्मणम् ।
व्यवसायसमायुक्तं विष्णुं दैत्यवधे यथा ॥ २४ ॥

'विदेहनन्दिनि ! दैत्योंके वधके लिये उत्साह रखनेवाले भगवान् विष्णुकी भाँति राक्षसोंके संहारके लिये सचेष्ट हुए श्रीराम और लक्ष्मणका आप आज ही दर्शन करेंगी ॥ २४ ॥

त्वद्दर्शनकृतोत्साहमाश्रमस्थं महाबलम् ।
पुरंदरमिवासीनं नगराजस्य मूर्धनि ॥ २५ ॥

'आपके दर्शनका उत्साह मनमें लिये महाबली श्रीराम पर्वत-शिखरपर अपने आश्रममें उसी प्रकार बैठे हैं, जैसे देवराज इन्द्र गजराज ऐरावतकी पीठपर विराजमान होते हैं ॥ २५ ॥

पृष्ठमारोह मे देवि मा विकाङ्क्षस्व शोभने । ✓
योगमन्विच्छ रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी ॥ २६ ॥

'देवि ! आप मेरी पीठपर बैठिये । शोभने ! मेरे कथन-की उपेक्षा न कीजिये । चन्द्रमासे मिलनेवाली रोहिणीकी भाँति आप श्रीरामचन्द्रजीके साथ मिलनेका निश्चय कीजिये ॥

कथयन्तीव शशिना संगमिष्यसि रोहिणी ।
मत्पृष्ठमधिरोह त्वं तराकाशं महार्णवम् ॥ २७ ॥

'मुझे भगवान् श्रीरामसे मिलना है, इतना कहते ही आप चन्द्रमासे रोहिणीकी भाँति श्रीरघुनाथजीसे मिल जायँगी । आप मेरी पीठपर आरूढ़ होइये और आकाशमार्गसे ही महासागरको पार कीजिये ॥ २७ ॥

नहि मे सम्प्रयातस्य त्वामितो नयतोऽङ्गने ।
अनुगन्तुं गतिं शक्ताः सर्वे लङ्कानिवासिनः ॥ २८ ॥

'कल्याणि ! मैं आपको लेकर जब यहाँसे चलूँगा, उस समय समूचे लङ्का-निवासी मिलकर भी मेरा पीछा नहीं कर सकते ॥ २८ ॥

यथैवाहमिह प्राप्तस्तथैवाहमसंशयम् ।
यास्यामि पश्य वैदेहि त्वामुद्यम्य विहायसम्॥ २९ ॥

'विदेहनन्दिनि ! जिस प्रकार मैं यहाँ आया हूँ, उसी तरह आपको लेकर आकाशमार्गसे चला जाऊँगा, इसमें संदेह नहीं है । आप मेरा पराक्रम देखिये' ॥ २९ ॥

मैथिली तु हरिश्रेष्ठाच्छ्रुत्वा वचनमद्भुतम् ।
हर्षविस्मितसर्वाङ्गी हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ ३० ॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌के मुखसे यह अद्भुत वचन सुनकर मिथिलेशकुमारी सीताके सारे शरीरमें हर्ष और विस्मयके कारण रोमाञ्च हो आया । उन्होंने हनुमान्‌जीसे कहा—॥ ३० ॥

हनूमन् दूरमध्वानं कथं मां नेतुमिच्छसि ।
तदेव खलु ते मन्ये कपित्वं हरियूथप ॥ ३१ ॥

'वानरयूथपति हनुमान् ! तुम इतने दूरके मार्गपर मुझे कैसे ले चलना चाहते हो ? तुम्हारे इस दुःसाहसको मैं वानरोचित चपलता ही समझती हूँ ॥ ३१ ॥

कथं चाल्पशरीरस्त्वं मामितो नेतुमिच्छसि ।
सकाशं मानवेन्द्रस्य भर्तुर्मे प्लवगर्षभ ॥ ३२ ॥

'वानरशिरोमणे ! तुम्हारा शरीर तो बहुत छोटा है । फिर तुम मुझे मेरे स्वामी महाराज श्रीरामके पास ले जानेकी इच्छा कैसे करते हो ?' ॥ ३२ ॥

सीतायास्तु वचः श्रुत्वा हनूमान् मारुतात्मजः ।
चिन्तयामास लक्ष्मीवान् नवं परिभवं कृतम् ॥ ३३ ॥

सीताजीकी यह बात सुनकर शोभाशाली पवनकुमार हनुमान्‌ने इसे अपने लिये नया तिरस्कार ही माना ॥ ३३ ॥

न मे जानाति सत्त्वं वा प्रभावं वासितेक्षणा ।
तस्मात् पश्यतु वैदेही यद् रूपं मम कामतः ॥ ३४ ॥

वे सोचने लगे—'कजरारे नेत्रोंवाली विदेहनन्दिनी सीता मेरे बल और प्रभावको नहीं जानतीं । इसलिये आज मेरे उस रूपको, जिसे मैं इच्छानुसार धारण कर लेता हूँ, ये देख लें' ॥ ३४ ॥

इति संचिन्त्य हनुमांस्तदा प्लवगसत्तमः ।
दर्शयामास सीतायाः स्वरूपमरिमर्दनः ॥ ३५ ॥

ऐसा विचार करके शत्रुमर्दन वानरशिरोमणि हनुमान्‌ने उस समय सीताको अपना स्वरूप दिखाया ॥ ३५ ॥

स तस्मात् पादपाद् धीमानाप्लुत्य प्लवगर्षभः ।
ततो वर्धितुमारेभे सीताप्रत्ययकारणात् ॥ ३६ ॥

वे बुद्धिमान् कपिवर उस वृक्षसे नीचे कूद पड़े और सीताजीको विश्वास दिलानेके लिये बढ़ने लगे ॥ ३६ ॥

मेरुमन्दरसंकाशो बभौ दीप्तानलप्रभः ।
अग्रतो व्यवतस्थे च सीताया वानरर्षभः ॥ ३७ ॥

बात-की-बातमें उनका शरीर मेरुपर्वतके समान ऊँचा हो गया । वे प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी प्रतीत होने लगे । इस तरह विशाल रूप धारण करके वे वानरश्रेष्ठ हनुमान् सीताजीके सामने खड़े हो गये ॥ ३७ ॥

हरिः पर्वतसंकाशस्ताम्रवक्त्रो महाबलः ।
वज्रदंष्ट्रनखो भीमो वैदेहीमिदमब्रवीत् ॥ ३८ ॥

तत्पश्चात् पर्वतके समान विशालकाय, तामेके समान लाल मुख तथा वज्रके समान दाढ़ और नखवाले भयानक महाबली वानरवीर हनुमान् विदेहनन्दिनीसे इस प्रकार बोले—॥ ३८ ॥

सपर्वतवनोद्देशां साट्टप्राकारतोरणाम् ।
लङ्कामिमां सनाथां वा नयितुं शक्तिरस्ति मे ॥ ३९ ॥

'देवि ! मुझमें पर्वत, वन, अट्टालिका, चहारदिवारी और नगरद्वारसहित इस लङ्कापुरीको रावणके साथ ही उठा ले जानेकी शक्ति है ॥ ३९ ॥

तदवस्थाप्यतां बुद्धिरलं देवि विकाङ्क्षया ।
विशोकं कुरु वैदेहि राघवं सहलक्ष्मणम् ॥ ४० ॥

'अतः आप मेरे साथ चलनेका निश्चय कर लीजिये । आपकी आशङ्का व्यर्थ है । देवि ! विदेहनन्दिनि ! आप मेरे साथ चलकर लक्ष्मणसहित श्रीरघुनाथजीका शोक दूर कीजिये' ॥ ४० ॥

तं दृष्ट्वाचलसंकाशमुवाच जनकात्मजा ।
पद्मपत्रविशालाक्षी मारुतस्यौरसं सुतम् ॥ ४१ ॥

वायुके औरस पुत्र हनुमान्‌जीको पर्वतके समान विशाल शरीर धारण किये देख प्रफुल्ल कमलदलके समान बड़े-बड़े नेत्रोंवाली जनककिशोरीने उनसे कहा—॥ ४१ ॥

तव सत्त्वं बलं चैव विजानामि महाकपे ।
वायोरिव गतिश्चापि तेजश्चाग्नेरिवाद्भुतम् ॥ ४२ ॥

'महाकपे ! मैं तुम्हारी शक्ति और पराक्रमको जानती हूँ । वायुके समान तुम्हारी गति और अग्निके समान तुम्हारा अद्भुत तेज है ॥ ४२ ॥

प्राकृतोऽन्यः कथं चेमां भूमिमागन्तुमर्हति ।
उदधेरप्रमेयस्य पारं वानरयूथप ॥ ४३ ॥

'वानरयूथपते ! दूसरा कोई साधारण वानर अपार महासागरके पारकी इस भूमिमें कैसे आ सकता है ? ॥ ४३ ॥

जानामि गमने शक्तिं नयने चापि ते मम ।
अवश्यं सम्प्रधार्याशु कार्यसिद्धिरिवात्मनः ॥ ४४ ॥

'मैं जानती हूँ, तुम समुद्र पार करने और मुझे ले जानेमें भी समर्थ हो, तथापि तुम्हारी तरह मुझे भी अपनी कार्यसिद्धिके विषयमें अवश्य भलीभाँति विचार कर लेना चाहिये ॥ ४४ ॥

अयुक्तं तु कपिश्रेष्ठ मया गन्तुं त्वया सह ।
वायुवेगसवेगस्य वेगो मां मोहयेत् तव ॥ ४५ ॥

'कपिश्रेष्ठ ! तुम्हारे साथ मेरा जाना किसी भी दृष्टिसे उचित नहीं है; क्योंकि तुम्हारा वेग वायुके वेगके समान तीव्र है । जाते समय यह वेग मुझे मूर्छित कर सकता है ॥ ४५ ॥

अहमाकाशमासक्ता उपर्युपरि सागरम् ।
प्रपतेयं हि ते पृष्ठाद् भूयो वेगेन गच्छतः ॥ ४६ ॥

'मैं समुद्रके ऊपर-ऊपर आकाशमें पहुँच जानेपर अधिक वेगसे चलते हुए तुम्हारे पृष्ठभागसे नीचे गिर सकती हूँ ॥

पतिता सागरे चाहं तिमिनक्रझषाकुले ।
भवेयमाशु विवशा यादसामन्नमुत्तमम् ॥ ४७ ॥

'इस तरह समुद्रमें, जो तिमि नामक बड़े-बड़े मत्स्यों, नाकों और मछलियोंसे भरा हुआ है, गिरकर विवश हो मैं शीघ्र ही जल-जन्तुओंका उत्तम आहार बन जाऊँगी ॥ ४७ ॥

न च शक्ष्ये त्वया सार्धं गन्तुं शत्रुविनाशन ।
कलत्रवति संदेहस्त्वयि स्यादप्यसंशयम् ॥ ४८ ॥

'इसलिये शत्रुनाशन वीर ! मैं तुम्हारे साथ नहीं चल सकूँगी । एक स्त्रीको साथ लेकर जब तुम जाने लगोगे, उस समय राक्षसोंको तुमपर संदेह होगा, इसमें संशय नहीं है ॥

ह्रियमाणां तु मां दृष्ट्वा राक्षसा भीमविक्रमाः ।
अनुगच्छेयुरादिष्टा रावणेन दुरात्मना ॥ ४९ ॥

'मुझे हरकर ले जायी जाती देख दुरात्मा रावणकी आज्ञासे भयंकर पराक्रमी राक्षस तुम्हारा पीछा करेंगे ॥४९॥

तैस्त्वं परिवृतः शूरैः शूलमुद्गरपाणिभिः ।
भवेस्त्वं संशयं प्राप्तो मया वीर कलत्रवान् ॥ ५० ॥

'वीर ! उस समय मुझ-जैसी रक्षणीया अबलाके साथ होनेके कारण तुम हाथोंमें शूल और मुद्गर धारण करनेवाले उन शौर्यशाली राक्षसोंसे घिरकर प्राणसंशयकी अवस्थामें पहुँच जाओगे ॥ ५० ॥

सायुधा बहवो व्योम्नि राक्षसास्त्वं निरायुधः ।
कथं शक्ष्यसि संयातुं मां चैव परिरक्षितुम् ॥ ५१ ॥

'आकाशमें अस्त्र-शस्त्रधारी बहुत-से राक्षस तुमपर आक्रमण करेंगे और तुम्हारे हाथमें कोई भी अस्त्र न होगा । उस दशामें तुम उन सबके साथ युद्ध और मेरी रक्षा दोनों कार्य कैसे कर सकोगे ? ॥ ५१ ॥

युध्यमानस्य रक्षोभिस्ततस्तैः क्रूरकर्मभिः ।
प्रपतेयं हि ते पृष्ठाद् भयार्ता कपिसत्तम ॥ ५२ ॥

'कपिश्रेष्ठ ! उन क्रूरकर्मा राक्षसोंके साथ जब तुम युद्ध करने लगोगे, उस समय मैं भयसे पीड़ित होकर तुम्हारी पीठसे अवश्य ही गिर जाऊँगी ॥ ५२ ॥

अथ रक्षांसि भीमानि महान्ति बलवन्ति च ।
कथंचित् साम्पराये त्वां जयेयुः कपिसत्तम ॥ ५३ ॥
अथवा युध्यमानस्य पतेयं विमुखस्य ते ।
पतितां च गृहीत्वा मां नयेयुः पापराक्षसाः ॥ ५४ ॥

'कपिश्रेष्ठ ! यदि कहीं वे महान् बलवान् भयानक राक्षस किसी तरह तुम्हें युद्धमें जीत लें अथवा युद्ध करते समय मेरी रक्षाकी ओर तुम्हारा ध्यान न रहनेसे यदि मैं गिर गयी तो वे पापी राक्षस मुझ गिरी हुई अबलाको फिर पकड़ ले जायँगे ॥ ५३-५४ ॥

मां वा हरेयुस्त्वद्धस्ताद् विशसेयुरथापि वा ।
अनवस्थौ हि दृश्येते युद्धे जयपराजयौ ॥ ५५ ॥

'अथवा यह भी सम्भव है कि वे निशाचर मुझे तुम्हारे हाथसे छीन ले जायँ या मेरा वध ही कर डालें; क्योंकि युद्धमें विजय और पराजयको अनिश्चित ही देखा जाता है ॥५५॥

अहं वापि विपद्येयं रक्षोभिरभितर्जिता ।
त्वत्प्रयत्नो हरिश्रेष्ठ भवेन्निष्फल एव तु ॥ ५६ ॥

'अथवा वानरशिरोमणे ! यदि राक्षसोंकी अधिक डाँट पड़नेपर मेरे प्राण निकल गये तो फिर तुम्हारा यह सारा प्रयत्न निष्फल ही हो जायगा ॥ ५६ ॥

कामं त्वमपि पर्याप्तो निहन्तुं सर्वराक्षसान् ।
राघवस्य यशो हीयेत् त्वया शस्तैस्तु राक्षसैः ॥५७॥

'यद्यपि तुम भी सम्पूर्ण राक्षसोंका संहार करनेमें समर्थ हो तथापि तुम्हारे द्वारा राक्षसोंका वध हो जानेपर श्रीरघुनाथजीके सुयशमें बाधा आयेगी (लोग यही कहेंगे कि श्रीराम स्वयं कुछ भी न कर सके) ॥ ५७ ॥

अथवाऽऽदाय रक्षांसि न्यसेयुः संवृते हि माम् ।
यत्र ते नाभिजानीयुर्हरयो नापि राघवः ॥ ५८ ॥

'अथवा यह भी सम्भव है कि राक्षसलोग मुझे ले जाकर किसी ऐसे गुप्त स्थानमें रख दें, जहाँ न तो वानरोंको मेरा पता लगे और न श्रीरघुनाथजीको ही ॥ ५८ ॥

आरम्भस्तु मदर्थोऽयं ततस्तव निरर्थकः ।
त्वया हि सह रामस्य महानागमने गुणः ॥ ५९ ॥

'यदि ऐसा हुआ तो मेरे लिये किया गया तुम्हारा यह सारा उद्योग व्यर्थ हो जायगा । यदि तुम्हारे साथ श्रीरामचन्द्रजी यहाँ पधारें तो उनके आनेसे बहुत बड़ा लाभ होगा॥

मयि जीवितमायत्तं राघवस्यामितौजसः ।
भ्रातॄणां च महाबाहो तव राजकुलस्य च ॥ ६० ॥

'महाबाहो ! अमित पराक्रमी श्रीरघुनाथजीका, उनके भाइयोंका, तुम्हारा तथा वानरराज सुग्रीवके कुलका जीवन मुझपर ही निर्भर है ॥ ६० ॥

तौ निराशौ मदर्थं च शोकसंतापकर्शितौ ।
सह सर्वर्क्षहरिभिस्त्यक्ष्यतः प्राणसंग्रहम् ॥ ६१ ॥

'शोक और संतापसे पीड़ित हुए वे दोनों भाई जब मेरी प्राप्तिकी ओरसे निराश हो जायँगे, तब सम्पूर्ण रीछों और वानरोंके साथ अपने प्राणोंका परित्याग कर देंगे ॥ ६१ ॥

भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर ।
नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम ॥ ६२ ॥

'वानरश्रेष्ठ ! (तुम्हारे साथ न चल सकनेका एक प्रधान कारण और भी है—) वानरवीर ! पतिभक्तिकी ओर दृष्टि रखकर मैं भगवान् श्रीरामके सिवा दूसरे किसी पुरुषके शरीरका स्वेच्छासे स्पर्श करना नहीं चाहती ॥६२॥

यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य गता बलात् ।
अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती॥ ६३ ॥

'रावणके शरीरसे जो मेरा स्पर्श हो गया है, वह तो उसके बलात्कारके कारण हुआ है । उस समय मैं असमर्थ, अनाथ और बेबस थी, क्या करती ॥ ६३ ॥

यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सराक्षसम् ।

मामितो गृह्य गच्छेत तत् तस्य सदृशं भवेत् ॥ ६४॥

'यदि श्रीरघुनाथजी यहाँ राक्षसोंसहित दशमुख रावणका वध करके मुझे यहाँसे ले चलें तो वह उनके योग्य कार्य होगा ॥ ६४ ॥

श्रुताश्च दृष्टा हि मया पराक्रमा
महात्मनस्तस्य रणावमर्दिनः ।
न देवगन्धर्वभुजङ्गराक्षसा
भवन्ति रामेण समा हि संयुगे ॥ ६५ ॥

'मैंने युद्धमें शत्रुओंका मर्दन करनेवाले महात्मा श्रीरामके पराक्रम अनेक बार देखे और सुने हैं। देवता, गन्धर्व, नाग और राक्षस सब मिलकर भी संग्राममें उनकी समानता नहीं कर सकते ॥ ६५ ॥

समीक्ष्य तं संयति चित्रकार्मुकं
महाबलं वासवतुल्यविक्रमम् ।
सलक्ष्मणं को विषहेत राघवं
हुताशनं दीप्तमिवानिलेरितम् ॥ ६६ ॥

'युद्धस्थलमें विचित्र धनुष धारण करनेवाले इन्द्रतुल्य पराक्रमी महाबली श्रीरघुनाथजी लक्ष्मणके साथ रह वायुका सहारा पाकर प्रज्वलित हुए अग्निकी भाँति उद्दीप्त हो उठते हैं। उस समय उन्हें देखकर उनका वेग कौन सह सकता है ? ॥ ६६ ॥

सलक्ष्मणं राघवमाजिमर्दनं
दिशागजं मत्तमिव व्यवस्थितम् ।
सहेत को वानरमुख्य संयुगे
युगान्तसूर्यप्रतिमं शरार्चिषम् ॥ ६७ ॥

'वानरशिरोमणे ! समराङ्गणमें अपने बाणरूपी तेजसे प्रलयकालीन सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले और मतवाले दिग्गजकी भाँति खड़े हुए रणमर्दन श्रीराम और लक्ष्मणका सामना कौन कर सकता है ? ॥ ६७ ॥

स मे कपिश्रेष्ठ सलक्ष्मणं प्रियं
सयूथपं क्षिप्रमिहोपपादय ।
चिराय रामं प्रति शोककर्शितां
कुरुष्व मां वानरवीर हर्षिताम् ॥ ६८ ॥

'इसलिये कपिश्रेष्ठ ! वानरवीर ! तुम प्रयत्न करके यूथपति सुग्रीव और लक्ष्मणसहित मेरे प्रियतम श्रीरामचन्द्रजीको शीघ्र यहाँ बुला ले आओ। मैं श्रीरामके लिये चिरकालसे शोकाकुल हो रही हूँ। तुम उनके शुभागमनसे मुझे हर्ष प्रदान करो' ॥ ६८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंशः सर्गः

सीताजीका हनुमान्‌जीको पहचानके रूपमें चित्रकूट पर्वतपर घटित हुए एक कौएके प्रसंगको सुनाना, भगवान् श्रीरामको शीघ्र बुला लानेके लिये अनुरोध करना और चूड़ामणि देना

ततः स कपिशार्दूलस्तेन वाक्येन तोषितः ।
सीतामुवाच तच्छ्रुत्वा वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ १ ॥

सीताके इस वचनसे कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे बातचीतमें कुशल थे। उन्होंने पूर्वोक्त बातें सुनकर सीतासे कहा—॥ १ ॥

युक्तरूपं त्वया देवि भाषितं शुभदर्शने ।
सदृशं स्त्रीस्वभावस्य साध्वीनां विनयस्य च ॥ २ ॥

'देवि ! आपका कहना बिल्कुल ठीक और युक्तिसंगत है। शुभदर्शने ! आपकी यह बात नारी-स्वभावके तथा पतिव्रताओंकी विनयशीलताके अनुरूप है ॥ २ ॥

स्त्रीत्वान्न त्वं समर्थासि सागरं व्यतिवर्तितुम् ।
मामधिष्ठाय विस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ॥ ३ ॥

'इसमें संदेह नहीं कि आप अबला होनेके कारण मेरी पीठपर बैठकर सौ योजन विस्तृत समुद्रके पार जानेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ३ ॥

द्वितीयं कारणं यच्च ब्रवीषि विनयान्विते ।
रामादन्यस्य नार्हामि संसर्गमिति जानकि ॥ ४ ॥

एतत् ते देवि सदृशं पत्न्यास्तस्य महात्मनः ।
का ह्यन्या त्वामृते देवि ब्रूयाद् वचनमीदृशम् ॥ ५ ॥

'जनकनन्दिनि ! आपने जो दूसरा कारण बताते हुए कहा है कि मेरे लिये श्रीरामचन्द्रजीके सिवा दूसरे किसी पुरुषका स्वेच्छापूर्वक स्पर्श करना उचित नहीं है, यह आपके ही योग्य है। देवि ! महात्मा श्रीरामकी धर्मपत्नीके मुखसे ऐसी बात निकल सकती है। आपको छोड़कर दूसरी कौन स्त्री ऐसा वचन कह सकती है ॥ ४—५ ॥

श्रोष्यते चैव काकुत्स्थः सर्वं निरवशेषतः ।
चेष्टितं यत् त्वया देवि भाषितं च ममाग्रतः ॥ ६ ॥

'देवि ! मेरे सामने आपने जो-जो पवित्र चेष्टाएँ कीं और जैसी-जैसी उत्तम बातें कही हैं, वे सब पूर्णरूपसे श्रीरामचन्द्रजी मुझसे सुनेंगे ॥ ६ ॥

कारणैर्बहुभिर्देवि रामप्रियचिकीर्षया ।
स्नेहप्रस्कन्नमनसा मयैतत् समुदीरितम् ॥ ७ ॥

'देवि ! मैंने जो आपको अपने साथ ले जानेका आग्रह किया, उसके बहुतसे कारण हैं। एक तो मैं श्रीरामचन्द्रजीका

शीघ्र ही प्रिय करना चाहता था। अतः स्नेहपूर्ण हृदयसे ही मैंने ऐसी बात कही है ॥ ७ ॥

लङ्काया दुष्प्रवेशत्वाद् दुस्तरत्वान्महोदधेः ।
सामर्थ्यादात्मनश्चैव मयैतत् समुदीरितम् ॥ ८ ॥

'दूसरा कारण यह है कि लङ्कामें प्रवेश करना सबके लिये अत्यन्त कठिन है। तीसरा कारण है, महासागरको पार करनेकी कठिनाई। इन सब कारणोंसे तथा अपनेमें आपको ले जानेकी शक्ति होनेसे मैंने ऐसा प्रस्ताव किया था॥

इच्छामि त्वां समानेतुमद्यैव रघुनन्दिना ।
गुरुस्नेहेन भक्त्या च नान्यथा तदुदाहृतम् ॥ ९ ॥

'मैं आज ही आपको श्रीरघुनाथजीसे मिला देना चाहता था। अतः अपने परमाराध्य गुरु श्रीरामके प्रति स्नेह और आपके प्रति भक्तिके कारण ही मैंने ऐसी बात कही थी, किसी और उद्देश्यसे नहीं ॥ ९ ॥

यदि नोत्सहसे यातुं मया सार्धमनिन्दिते ।
अभिज्ञानं प्रयच्छ त्वं जानीयाद् राघवो हि यत् ॥ १० ॥

'किंतु सती-साध्वी देवि! यदि आपके मनमें मेरे साथ चलनेका उत्साह नहीं है तो आप अपनी कोई पहचान ही दे दीजिये, जिससे श्रीरामचन्द्रजी यह जान लें कि मैंने आपका दर्शन किया है' ॥ १० ॥

एवमुक्ता हनुमता सीता सुरसुतोपमा ।
उवाच वचनं मन्दं बाष्पप्रग्रथिताक्षरम् ॥ ११ ॥

हनुमान्‌जीके ऐसा कहनेपर देवकन्याके समान तेजस्विनी सीता अश्रुगद्गदवाणीमें धीरे-धीरे इस प्रकार बोलीं— ॥ ११ ॥

इदं श्रेष्ठमभिज्ञानं ब्रूयास्त्वं तु मम प्रियम् ।
शैलस्य चित्रकूटस्य पादे पूर्वोत्तरे पदे ॥ १२ ॥
तापसाश्रमवासिन्याः प्राज्यमूलफलोदके ।
तस्मिन् सिद्धाश्रिते देशे मन्दाकिन्यविदूरतः ॥ १३ ॥
तस्योपवनखण्डेषु नानापुष्पसुगन्धिषु ।
विहृत्य सलिले क्लिन्नो ममाङ्के समुपाविशः ॥ १४ ॥

'वानरश्रेष्ठ! तुम मेरे प्रियतमसे यह उत्तम पहचान बताना—'नाथ! चित्रकूट पर्वतके उत्तर-पूर्ववाले भागपर, जो मन्दाकिनी नदीके समीप है तथा जहाँ फल-मूल और जलकी अधिकता है, उस सिद्धसेवित प्रदेशमें तापसाश्रमके भीतर जब मैं निवास करती थी, उन्हीं दिनों नाना प्रकारके फूलोंकी सुगन्धसे वासित उस आश्रमके उपवनोंमें जलविहार करके आप भीगे हुए आये और मेरी गोदमें बैठ गये ॥ १२–१४ ॥

ततो मांससमायुक्तो वायसः पर्यतुण्डयत् ।
तमहं लोष्टमुद्यम्य वारयामि स्म वायसम् ॥ १५ ॥
दारयन् स च मां काकस्तत्रैव परिलीयते ।
न चाप्युपारमन्मांसाद् भक्षार्थी बलिभोजनः ॥ १६ ॥

'तदनन्तर (किसी दूसरे समय) एक मांसलोलुप कौआ आकर मुझपर चोंच मारने लगा। मैंने ढेला उठाकर उसे हटानेकी चेष्टा की, परंतु मुझे बार-बार चोंच मारकर वह कौआ वहीं कहीं छिप जाता था। उस बलिभोजी कौएको खानेकी इच्छा थी, इसलिये वह मेरा मांस नोचनेसे निवृत्त नहीं होता था ॥ १५-१६ ॥

उत्कर्षन्त्यां च रशनां क्रुद्धायां मयि पक्षिणे ।
स्रंसमाने च वसने ततो दृष्टा त्वया ह्यहम् ॥ १७ ॥

"मैं उस पक्षीपर बहुत कुपित थी। अतः अपने लहँगेको दृढ़तापूर्वक कसनेके लिये कटिसूत्र (नारे) को खींचने लगी। उस समय मेरा वस्त्र कुछ नीचे खिसक गया और उसी अवस्थामें आपने मुझे देख लिया ॥ १७ ॥

त्वया विहसिता चाहं क्रुद्धा संलज्जिता तदा ।
भक्ष्यगृद्धेन काकेन दारिता त्वामुपागता ॥ १८ ॥

"देखकर आपने मेरी हँसी उड़ायी। इससे मैं पहले तो कुपित हुई और फिर लज्जित हो गयी। इतनेहीमें उस भक्ष्य-लोलुप कौएने फिर चोंच मारकर मुझे क्षत-विक्षत कर दिया और उसी अवस्थामें मैं आपके पास आयी ॥ १८ ॥

ततः श्रान्ताहमुत्सङ्गमासीनस्य तवाविशम् ।
क्रुध्यन्तीव प्रहृष्टेन त्वयाहं परिसान्त्विता ॥ १९ ॥

"आप वहाँ बैठे हुए थे। मैं उस कौएकी हरकतसे तंग आ गयी थी। अतः थककर आपकी गोदमें आ बैठी। उस समय मैं कुपित-सी हो रही थी और आपने प्रसन्न होकर मुझे सान्त्वना दी ॥ १९ ॥

बाष्पपूर्णमुखी मन्दं चक्षुषी परिमार्जती ।
लक्षिताहं त्वया नाथ वायसेन प्रकोपिता ॥ २० ॥

"नाथ! कौएने मुझे कुपित कर दिया था। मेरे मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी और मैं धीरे-धीरे आँखें पोंछ रही थी। आपने मेरी उस अवस्थाको लक्ष्य किया'॥

परिश्रमाच्च सुप्ता हे राघवाङ्केऽस्म्यहं चिरम् ।
पर्यायेण प्रसुप्तश्च ममाङ्के भरताग्रजः ॥ २१ ॥

'हनुमान्! मैं थक जानेके कारण उस दिन बहुत देरतक श्रीरघुनाथजीकी गोदमें सोयी रही। फिर उनकी बारी आयी और वे भरतके बड़े भाई मेरी गोदमें सिर रखकर सो रहे ॥ २१ ॥

स तत्र पुनरेवाथ वायसः समुपागमत् ।
ततः सुप्तप्रबुद्धां मां राघवाङ्कात् समुत्थिताम् ।
वायसः सहसागम्य विददार स्तनान्तरे ॥ २२ ॥

'इसी समय वह कौआ फिर वहाँ आया। मैं सोकर जगनेके बाद श्रीरघुनाथजीकी गोदसे उठकर बैठी ही थी कि उस कौएने सहसा झपटकर मेरी छातीमें चोंच मार दी ॥ २२ ॥

पुनः पुनरथोत्पत्य विददार स मां भृशम् ।
ततः समुत्थितो रामो मुक्तैः शोणितबिन्दुभिः ॥ २३ ॥

'उसने बारंबार उड़कर मुझे अत्यन्त घायल कर दिया।

मेरे शरीरसे रक्तकी बूँदें झरने लगीं, इससे श्रीरामचन्द्रजीकी नींद खुल गयी और वे जागकर उठ बैठे ॥ २३ ॥

स मां दृष्ट्वा महाबाहुर्वितुन्नां स्तनयोस्तदा ।
आशीविष इव क्रुद्धः श्वसन् वाक्यमभाषत ॥ २४ ॥

'मेरी छातीमें घाव हुआ देख महाबाहु श्रीराम उस समय कुपित हो उठे और फुफकारते हुए विषधर सर्पके समान जोर-जोरसे साँस लेते हुए बोले—॥ २४ ॥

केन ते नागनासोरु विक्षतं वै स्तनान्तरम् ।
कः क्रीडति सरोषेण पञ्चवक्त्रेण भोगिना ॥ २५ ॥

''हाथीकी सूँड़के समान जाँघोंवाली सुन्दरी! किसने तुम्हारी छातीको क्षत-विक्षत किया है? कौन रोषसे भरे हुए पाँच मुखवाले सर्पके साथ खेल रहा है?' ॥ २५ ॥

वीक्षमाणस्ततस्तं वै वायसं समवैक्षत ।
नखैः सरुधिरैस्तीक्ष्णैर्मामेवाभिमुखं स्थितम् ॥ २६ ॥

'इतना कहकर जब उन्होंने इधर-उधर दृष्टि डाली, तब उस कौएको देखा, जो मेरी ओर ही मुँह किये बैठा था। उसके तीखे पंजे खूनसे रँग गये थे ॥ २६ ॥

पुत्रः किल स शक्रस्य वायसः पततां वरः ।
धरान्तरं गतः शीघ्रं पवनस्य गतौ समः ॥ २७ ॥

'वह पक्षियोंमें श्रेष्ठ कौआ इन्द्रका पुत्र था। उसकी गति वायुके समान तीव्र थी। वह शीघ्र ही स्वर्गसे उड़कर पृथ्वीपर आ पहुँचा था ॥ २७ ॥

ततस्तस्मिन् महाबाहुः कोपसंवर्तितेक्षणः ।
वायसे कृतवान् क्रूरां मतिं मतिमतां वरः ॥ २८ ॥

'उस समय बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ महाबाहु श्रीरामके नेत्र क्रोधसे घूमने लगे। उन्होंने उस कौएको कठोर दण्ड देनेका विचार किया ॥ २८ ॥

स दर्भसंस्तराद् गृह्य ब्रह्मणोऽस्त्रेण योजयत् ।
स दीप्त इव कालाग्निर्जज्वालाभिमुखो द्विजम् ॥ २९ ॥

'श्रीरामने कुशकी चटाईसे एक कुश निकाला और उसे ब्रह्मास्त्रके मन्त्रसे अभिमन्त्रित किया। अभिमन्त्रित करते ही वह कालाग्निके समान प्रज्वलित हो उठा। उसका लक्ष्य वह पक्षी ही था ॥ २९ ॥

स तं प्रदीप्तं चिक्षेप दर्भं तं वायसं प्रति ।
ततस्तु वायसं दर्भः सोऽम्बरेऽनुजगाम ह ॥ ३० ॥

'श्रीरघुनाथजीने वह प्रज्वलित कुश उस कौएकी ओर छोड़ा। फिर तो वह आकाशमें उसका पीछा करने लगा ॥ ३० ॥

अनुसृष्टस्तदा काको जगाम विविधां गतिम् ।
त्राणकाम इमं लोकं सर्वं वै विचचार ह ॥ ३१ ॥

'वह कौआ कई प्रकारकी उड़ानें लगाता अपने प्राण बचानेके लिये इस सम्पूर्ण जगत्‌में भागता फिरा, किंतु उस बाणने कहीं भी उसका पीछा न छोड़ा ॥ ३१ ॥

स पित्रा च परित्यक्तः सर्वैश्च परमर्षिभिः ।
त्रींल्लोकान् सम्परिक्रम्य तमेव शरणं गतः ॥ ३२ ॥

'उसके पिता इन्द्र तथा समस्त श्रेष्ठ महर्षियोंने भी उसका परित्याग कर दिया। तीनों लोकोंमें घूमकर अन्तमें वह पुनः भगवान् श्रीरामकी ही शरणमें आया ॥ ३२ ॥

स तं निपतितं भूमौ शरण्यः शरणागतम् ।
वधार्हमपि काकुत्स्थः कृपया पर्यपालयत् ॥ ३३ ॥

'रघुनाथजी शरणागतवत्सल हैं। उनकी शरणमें आकर जब वह पृथ्वीपर गिर पड़ा, तब उन्हें उसपर दया आ गयी; अतः वधके योग्य होनेपर भी उस कौएको उन्होंने मारा नहीं, उबारा ॥ ३३ ॥

परिद्यूनं विवर्णं च पतमानं तमब्रवीत् ।
मोघमस्त्रं न शक्यं तु ब्राह्मं कर्तुं तदुच्यताम् ॥ ३४ ॥

'उसकी शक्ति क्षीण हो चुकी थी और वह उदास होकर सामने गिरा था। इस अवस्थामें उसको लक्ष्य करके भगवान् बोले—'ब्रह्मास्त्रको तो व्यर्थ किया नहीं जा सकता। अतः बताओ, इसके द्वारा तुम्हारा कौन-सा अङ्ग-भङ्ग किया जाय' ॥ ३४ ॥

ततस्तस्याक्षि काकस्य हिनस्ति स्म स दक्षिणम् ।
दत्त्वा तु दक्षिणं नेत्रं प्राणेभ्यः परिरक्षितः ॥ ३५ ॥

'फिर उसकी सम्मतिके अनुसार श्रीरामने उस अस्त्रसे उस कौएकी दाहिनी आँख नष्ट कर दी। इस प्रकार दायाँ नेत्र देकर वह अपने प्राण बचा सका ॥ ३५ ॥

स रामाय नमस्कृत्वा राज्ञे दशरथाय च ।
विसृष्टस्तेन वीरेण प्रतिपेदे स्वमालयम् ॥ ३६ ॥

'तदनन्तर दशरथनन्दन राजा रामको नमस्कार करके उन वीरशिरोमणिसे विदा लेकर वह अपने निवासस्थानको चला गया ॥ ३६ ॥

मत्कृते काकमात्रेऽपि ब्रह्मास्त्रं समुदीरितम् ।
कस्माद् यो माहरत् त्वत्तः क्षमसे तं महीपते ॥ ३७ ॥

'कपिश्रेष्ठ! तुम मेरे स्वामीसे जाकर कहना—'प्राणनाथ! पृथ्वीपते! आपने मेरे लिये एक साधारण अपराध करनेवाले कौएपर भी ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया था; फिर जो आपके पाससे मुझे हर ले आया, उसको आप कैसे क्षमा कर रहे हैं? ॥ ३७ ॥

स कुरुष्व महोत्साहां कृपां मयि नरर्षभ ।
त्वया नाथवती नाथ ह्यनाथा इव दृश्यते ॥ ३८ ॥

''नरश्रेष्ठ! मेरे ऊपर महान् उत्साहसे पूर्ण कृपा कीजिये। प्राणनाथ! जो सदा आपसे सनाथ है, वह सीता आज अनाथ-सी दिखायी देती है ॥ ३८ ॥

आनृशंस्यं परो धर्मस्त्वत्त एव मया श्रुतम् ।
जानामि त्वां महावीर्यं महोत्साहं महाबलम् ॥ ३९ ॥

''दया करना सबसे बड़ा धर्म है, यह मैंने आपसे ही

सुना है । मैं आपको अच्छी तरह जानती हूँ । आपका बल, पराक्रम और उत्साह महान् है ॥ ३९ ॥

अपारवारमक्षोभ्यं गाम्भीर्यात् सागरोपमम् ।
भर्तारं ससमुद्राया धरण्या वासवोपमम् ॥ ४० ॥

''आपका कहीं आर-पार नहीं है—आप असीम हैं। आपको कोई क्षुब्ध या पराजित नहीं कर सकता। आप गम्भीरतामें समुद्रके समान हैं। समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीके स्वामी हैं तथा इन्द्रके समान तेजस्वी हैं। मैं आपके प्रभावको जानती हूँ ॥ ४० ॥

एवमस्त्रविदां श्रेष्ठो बलवान् सत्त्ववानपि ।
किमर्थमस्त्रं रक्षःसु न योजयसि राघव ॥ ४१ ॥

''रघुनन्दन ! इस प्रकार अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, बलवान् और शक्तिशाली होते हुए भी आप राक्षसोंपर अपने अस्त्रोंका प्रयोग क्यों नहीं करते हैं ?' ॥ ४१ ॥

न नागा नापि गन्धर्वा न सुरा न मरुद्गणाः ।
रामस्य समरे वेगं शक्ताः प्रतिसमीहितुम् ॥ ४२ ॥

'पवनकुमार ! नाग, गन्धर्व, देवता और मरुद्गण—कोई भी समराङ्गणमें श्रीरामचन्द्रजीका वेग नहीं सह सकते॥ ४२ ॥

तस्य वीर्यवतः कच्चिद् यद्यस्ति मयि सम्भ्रमः ।
किमर्थं न शरैस्तीक्ष्णैः क्षयं नयति राक्षसान् ॥ ४३ ॥

'उन परम पराक्रमी श्रीरामके हृदयमें यदि मेरे लिये कुछ व्याकुलता है तो वे अपने तीखे सायकोंसे इन राक्षसोंका संहार क्यों नहीं कर डालते ?॥४३ ॥

भ्रातुरादेशमादाय लक्ष्मणो वा परंतपः ।
कस्य हेतोर्न मां वीरः परित्राति महाबलः ॥ ४४ ॥

'अथवा शत्रुओंको संताप देनेवाले महाबली वीर लक्ष्मण ही अपने बड़े भाईकी आज्ञा लेकर मेरा उद्धार क्यों नहीं करते हैं ? ॥ ४४ ॥

यदि तौ पुरुषव्याघ्रौ वाय्विन्द्रसमतेजसौ ।
सुराणामपि दुर्धर्षौ किमर्थं मामुपेक्षतः ॥ ४५ ॥

'वे दोनों पुरुषसिंह वायु तथा इन्द्रके समान तेजस्वी हैं। यदि वे देवताओंके लिये भी दुर्जय हैं तो किस लिये मेरी उपेक्षा करते हैं ? ॥ ४५ ॥

✓ **ममैव दुष्कृतं किंचिन्महदस्ति न संशयः ।**
समर्थावपि तौ यन्मां नावेक्षेते परंतपौ ॥ ४६ ॥

'निःसंदेह मेरा ही कोई महान् पाप उदित हुआ है, जिससे वे दोनों शत्रुसंतापी वीर मेरा उद्धार करनेमें समर्थ होते हुए भी मुझपर कृपादृष्टि नहीं कर रहे हैं' ॥ ४६ ॥

वैदेह्या वचनं श्रुत्वा करुणं साश्रु भाषितम् ।
अथाब्रवीन्महातेजा हनूमान् हरियूथपः ॥ ४७ ॥

विदेहकुमारी सीताने आँसू बहाते हुए जब यह करुणायुक्त बात कही, तब इसे सुनकर वानरयूथपति महातेजस्वी हनुमान् इस प्रकार बोले—॥ ४७ ॥

त्वच्छोकविमुखो रामो देवि सत्येन ते शपे ।
रामे दुःखाभिपन्ने तु लक्ष्मणः परितप्यते ॥ ४८ ॥

'देवि ! मैं सत्यकी शपथ खाकर आपसे कहता हूँ कि श्रीरामचन्द्रजी आपके विरह-शोकसे पीड़ित हो अन्य सब कार्योंसे विमुख हो गये हैं—केवल आपका ही चिन्तन करते रहते हैं। श्रीरामके दुखी होनेसे लक्ष्मण भी सदा संतप्त रहते हैं ॥ ४८ ॥

कथंचिद् भवती दृष्टा न कालः परिशोचितुम् ।
इमं मुहूर्तं दुःखानामन्तं द्रक्ष्यसि शोभने ॥ ४९ ॥

'किसी तरह आपका दर्शन हो गया। अब शोक करनेका अवसर नहीं है। शोभने ! इसी घड़ीसे आप अपने दुःखोंका अन्त होता देखेंगी ॥ ४९ ॥

तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ राजपुत्रौ महाबलौ ।
त्वद्दर्शनकृतोत्साहौ लोकान् भस्मीकरिष्यतः॥ ५० ॥

'वे दोनों पुरुषसिंह राजकुमार बड़े बलवान् हैं तथा आपको देखनेके लिये उनके मनमें विशेष उत्साह है। अतः वे समस्त राक्षस-जगत्को भस्म कर डालेंगे ॥ ५० ॥

हत्वा च समरक्रूरं रावणं सहबान्धवम् ।
राघवस्त्वां विशालाक्षि स्वां पुरीं प्रति नेष्यति ॥ ५१ ॥

'विशाललोचने ! रघुनाथजी समराङ्गणमें क्रूरता प्रकट करनेवाले रावणको उसके बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर आपको अपनी पुरीमें ले जायँगे ॥ ५१ ॥

ब्रूहि यद् राघवो वाच्यो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
सुग्रीवो वापि तेजस्वी हरयो वा समागताः ॥ ५२ ॥

'अब भगवान् श्रीराम, महाबली लक्ष्मण, तेजस्वी सुग्रीव तथा वहाँ एकत्र हुए वानरोंके प्रति आपको जो कुछ कहना हो, वह कहिये' ॥ ५२ ॥

इत्युक्तवति तस्मिंश्च सीता पुनरथाब्रवीत् ।
कौसल्या लोकभर्तारं सुषुवे यं मनस्विनी ॥ ५३ ॥
तं ममार्थे सुखं पृच्छ शिरसा चाभिवादय ।

हनुमान्जीके ऐसा कहनेपर देवी सीताने फिर कहा—'कपिश्रेष्ठ ! मनस्विनी कौसल्या देवीने जिन्हें जन्म दिया है तथा जो सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं, उन श्रीरघुनाथजीको मेरी ओरसे मस्तक झुकाकर प्रणाम करना और उनका कुशल-समाचार पूछना ॥ ५३½ ॥

स्रजश्च सर्वरत्नानि प्रिया याश्च वराङ्गनाः ॥ ५४ ॥
ऐश्वर्यं च विशालायां पृथिव्यामपि दुर्लभम् ।
पितरं मातरं चैव सम्मान्याभिप्रसाद्य च ॥ ५५ ॥
अनुप्रव्रजितो रामं सुमित्रा येन सुप्रजाः ।
आनुकूल्येन धर्मात्मा त्यक्त्वा सुखमनुत्तमम् ॥ ५६ ॥
अनुगच्छति काकुत्स्थं भ्रातरं पालयन् वने ।

सिंहस्कन्धो महाबाहुर्मनस्वी प्रियदर्शनः ॥ ५७ ॥
पितृवद् वर्तते रामे मातृवन्मां समाचरन् ।
ह्रियमाणां तदा वीरो न तु मां वेद लक्ष्मणः ॥ ५८ ॥
वृद्धोपसेवी लक्ष्मीवाञ्शक्तो न बहुभाषिता ।
राजपुत्रप्रियश्रेष्ठः सदृशः श्वशुरस्य मे ॥ ५९ ॥
मत्तः प्रियतरो नित्यं भ्राता रामस्य लक्ष्मणः ।
नियुक्तो धुरि यस्यां तु तामुद्वहति वीर्यवान् ॥ ६० ॥
यं दृष्ट्वा राघवो नैव वृत्तमार्यमनुस्मरत् ।
स ममार्थाय कुशलं वक्तव्यो वचनान्मम ॥ ६१ ॥
मृदुर्नित्यं शुचिर्दक्षः प्रियो रामस्य लक्ष्मणः ।
यथा हि वानरश्रेष्ठ दुःखक्षयकरो भवेत् ॥ ६२ ॥

तत्पश्चात् विशाल भूमण्डलमें भी जिसका मिलना कठिन है ऐसे उत्तम ऐश्वर्यका, भाँति-भाँतिके हारों, सब प्रकारके रत्नों तथा मनोहर सुन्दरी स्त्रियोंका भी परित्याग कर पिता-माताको सम्मानित एवं राजी करके जो श्रीरामचन्द्रजीके साथ वनमें चले आये, जिनके कारण सुमित्रा देवी उत्तम संतानवाली कही जाती हैं, जिनका चित्त सदा धर्ममें लगा रहता है, जो सर्वोत्तम सुखको त्यागकर वनमें बड़े भाई श्रीरामकी रक्षा करते हुए सदा उनके अनुकूल चलते हैं, जिनके कंधे सिंहके समान और भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं, जो देखनेमें प्रिय लगते और मनको वशमें रखते हैं, जिनका श्रीरामके प्रति पिताके समान और मेरे प्रति माताके समान भाव तथा बर्ताव रहता है, जिन वीर लक्ष्मणको उस समय मेरे हरे जानेकी बात नहीं मालूम हो सकी थी, जो बड़े-बूढ़ोंकी सेवामें संलग्न रहनेवाले, शोभाशाली, शक्तिमान् तथा कम बोलनेवाले हैं, राजकुमार श्रीरामके प्रिय व्यक्तियोंमें जिनका सबसे ऊँचा स्थान है, जो मेरे श्वशुरके सदृश पराक्रमी हैं तथा श्रीरघुनाथजीका जिन छोटे भाई लक्ष्मणके प्रति सदा मुझसे भी अधिक प्रेम रहता है, जो पराक्रमी वीर अपने ऊपर डाले हुए कार्यभारको बड़ी योग्यताके साथ वहन करते हैं तथा जिन्हें देखकर श्रीरघुनाथजी अपने मरे हुए पिताको भी भूल गये हैं (अर्थात् जो पिताके समान श्रीरामके पालनमें दत्तचित्त रहते हैं) । उन लक्ष्मणसे भी तुम मेरी ओरसे कुशल पूछना और वानरश्रेष्ठ ! मेरे कथनानुसार उनसे ऐसी बातें कहना, जिन्हें सुनकर नित्य कोमल, पवित्र, दक्ष तथा श्रीरामके प्रिय बन्धु लक्ष्मण मेरा दुःख दूर करनेको तैयार हो जायँ ॥

त्वमस्मिन् कार्यनिर्वाहे प्रमाणं हरियूथप ।
राघवस्त्वत्समारम्भान्मयि यत्नपरो भवेत् ॥ ६३ ॥

'वानरयूथपते ! अधिक क्या कहूँ ? जिस तरह यह कार्य सिद्ध हो सके, वही उपाय तुम्हें करना चाहिये । इस विषयमें तुम्हीं प्रमाण हो—इसका सारा भार तुम्हारे ही ऊपर है । तुम्हारे प्रोत्साहन देनेसे ही श्रीरघुनाथजी मेरे उद्धारके लिये प्रयत्नशील हो सकते हैं ॥ ६३ ॥

इदं ब्रूयाश्च मे नाथं शूरं रामं पुनः पुनः ।
जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज ॥ ६४ ॥
ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं सत्येनाहं ब्रवीमि ते ।

'तुम मेरे स्वामी शूरवीर भगवान् श्रीरामसे बारंबार कहना—'दशरथनन्दन ! मेरे जीवनकी अवधिके लिये जो मास नियत है, उनमेंसे जितना शेष है, उतने ही समयतक मैं जीवन धारण करूँगी । उन अवशिष्ट दो महीनोंके बाद मैं जीवित नहीं रह सकती । यह मैं आपसे सत्यकी शपथ खाकर कह रही हूँ ॥ ६४½ ॥

रावणेनोपरुद्धां मां निकृत्या पापकर्मणा ।
त्रातुमर्हसि वीर त्वं पातालादिव कौशिकीम् ॥ ६५ ॥

'वीर ! पापाचारी रावणने मुझे कैद कर रक्खा है । अतः राक्षसियोंद्वारा शठतापूर्वक मुझे बड़ी पीड़ा दी जाती है । जैसे भगवान् विष्णुने इन्द्रकी लक्ष्मीका पातालसे उद्धार किया था, उसी प्रकार आप यहाँसे मेरा उद्धार करें' ॥ ६५ ॥

ततो वस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूडामणिं शुभम् ।
प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ ॥ ६६ ॥

ऐसा कहकर सीताने कपड़ेमें बँधी हुई सुन्दर दिव्य चूड़ामणिको खोलकर निकाला और 'इसे श्रीरामचन्द्रजीको दे देना' ऐसा कहकर हनुमान्जीके हाथपर रख दिया ॥

प्रतिगृह्य ततो वीरो मणिरत्नमनुत्तमम् ।
अङ्गुल्या योजयामास न ह्यस्य प्राभवद् भुजः ॥ ६७ ॥

उस परम उत्तम मणिरत्नको लेकर वीर हनुमान्जीने उसे अपनी अङ्गुलीमें डाल लिया । उनकी बाँह अत्यन्त सूक्ष्म होनेपर भी उसके छेदमें न आ सकी (इससे जान पड़ता है कि हनुमान्जीने अपना विशाल रूप दिखानेके बाद फिर सूक्ष्म रूप धारण कर लिया था) ॥ ६७ ॥

मणिरत्नं कपिवरः प्रतिगृह्याभिवाद्य च ।
सीतां प्रदक्षिणं कृत्वा प्रणतः पार्श्वतः स्थितः ॥ ६८ ॥

वह मणिरत्न लेकर कपिवर हनुमान्ने सीताको प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा करके वे विनीतभावसे उनके पास खड़े हो गये ॥ ६८ ॥

हर्षेण महता युक्तः सीतादर्शनजेन सः ।
हृदयेन गतो रामं लक्ष्मणं च सलक्षणम् ॥ ६९ ॥

सीताजीका दर्शन होनेसे उन्हें महान् हर्ष प्राप्त हुआ था । वे मन-ही-मन भगवान् श्रीराम और शुभ-लक्षणसम्पन्न लक्ष्मणके पास पहुँच गये थे । उन दोनोंका चिन्तन करने लगे थे ॥

मणिवरमुपगृह्य तं महार्हं
जनकनृपात्मजया धृतं प्रभावात् ।
गिरिवरपवनावधूतमुक्तः
सुखितमनाः प्रतिसंक्रमं प्रपेदे ॥ ७० ॥

राजा जनककी पुत्री सीताने अपने विशेष प्रभावसे जिसे

छिपाकर धारण कर रक्खा था, उस बहुमूल्य मणि-रत्नको लेकर हनुमान्‌जी मन-ही-मन उस पुरुषके समान सुखी एवं प्रसन्न हुए, जो किसी श्रेष्ठ पर्वतके ऊपरी भागसे उठी हुई प्रबल वायुके वेगसे कम्पित होकर पुनः उसके प्रभावसे मुक्त हो गया हो। तदनन्तर उन्होंने वहाँसे लौट जानेकी तैयारी की ॥ ७० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टात्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें अड़तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः

चूडामणि लेकर जाते हुए हनुमान्‌जीसे सीताका श्रीराम आदिको उत्साहित करनेके लिये कहना तथा समुद्र-तरणके विषयमें शङ्कित हुई सीताको वानरोंका पराक्रम बताकर हनुमान्‌जीका आश्वासन देना

मणिं दत्त्वा ततः सीता हनूमन्तमथाब्रवीत्।
अभिज्ञानमभिज्ञातमेतद् रामस्य तत्त्वतः ॥ १ ॥

मणि देनेके पश्चात् सीता हनुमान्‌जीसे बोलीं—'मेरे इस चिह्नको भगवान् श्रीरामचन्द्रजी भलीभाँति पहचानते हैं॥

मणिं दृष्ट्वा तु रामो वै त्रयाणां संस्मरिष्यति।
वीरो जनन्या मम च राज्ञो दशरथस्य च ॥ २ ॥

'इस मणिको देखकर वीर श्रीराम निश्चय ही तीन व्यक्तियोंका—मेरी माताका, मेरा तथा महाराज दशरथका एक साथ ही स्मरण करेंगे ॥ २ ॥

स भूयस्त्वं समुत्साहचोदितो हरिसत्तम।
अस्मिन् कार्यसमुत्साहे प्रचिन्तय यदुत्तरम् ॥ ३ ॥

'कपिश्रेष्ठ! तुम पुनः विशेष उत्साहसे प्रेरित हो इस कार्यकी सिद्धिके लिये जो भावी कर्तव्य हो, उसे सोचो ॥३॥

त्वमस्मिन् कार्यनिर्योगे प्रमाणं हरिसत्तम।
तस्य चिन्तय यो यत्नो दुःखक्षयकरो भवेत् ॥ ४ ॥

'वानरशिरोमणे! इस कार्यको निभानेमें तुम्हीं प्रमाण हो—तुमपर ही सारा भार है। तुम इसके लिये कोई ऐसा उपाय सोचो, जो मेरे दुःखका निवारण करनेवाला हो॥

हनूमन् यत्नमास्थाय दुःखक्षयकरो भव।
स तथेति प्रतिज्ञाय मारुतिर्भीमविक्रमः॥ ५ ॥
शिरसाऽऽवन्द्य वैदेहीं गमनायोपचक्रमे।

'हनूमन्! तुम विशेष प्रयत्न करके मेरा दुःख दूर करनेमें सहायक बनो।' तब 'बहुत अच्छा' कहकर सीताजीकी आज्ञाके अनुसार कार्य करनेकी प्रतिज्ञा करके वे भयंकर पराक्रमी पवनकुमार विदेहनन्दिनीके चरणोंमें मस्तक झुकाकर वहाँसे जानेको तैयार हुए ॥ ५½ ॥

ज्ञात्वा सम्प्रस्थितं देवी वानरं पवनात्मजम् ॥ ६ ॥
बाष्पगद्गदया वाचा मैथिली वाक्यमब्रवीत्।

पवनपुत्र वानरवीर हनुमान्‌को वहाँसे लौटनेके लिये उद्यत जान मिथिलेशकुमारीका गला भर आया और वे अश्रु-गद्गद वाणीमें बोलीं—॥ ६½ ॥

हनूमन् कुशलं ब्रूयाः सहितौ रामलक्ष्मणौ ॥ ७ ॥
सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान् वृद्धांश्च वानरान्।
ब्रूयास्त्वं वानरश्रेष्ठ कुशलं धर्मसंहितम् ॥ ८ ॥

'हनूमन्! तुम श्रीराम और लक्ष्मण दोनोंको एक साथ ही मेरा कुशल-समाचार बताना और उनका कुशल-मङ्गल पूछना। वानरश्रेष्ठ! फिर मन्त्रियोंसहित सुग्रीव तथा अन्य सब बड़े-बूढ़े वानरोंसे धर्मयुक्त कुशल-समाचार कहना और पूछना ॥ ७-८ ॥

यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः।
अस्माद् दुःखाम्बुसंरोधात् त्वं समाधातुमर्हसि॥ ९ ॥

'महाबाहु श्रीरघुनाथजी जिस प्रकार इस दुःखके समुद्रसे मेरा उद्धार करें, वैसा ही यत्न तुम्हें करना चाहिये ॥

जीवन्तीं मां यथा रामः सम्भावयति कीर्तिमान्।
तत् त्वया हनुमन् वाच्यं वाचा धर्ममवाप्नुहि ॥ १० ॥

'हनुमन्! यशस्वी रघुनाथजी जिस प्रकार मेरे जीते-जी यहाँ आकर मुझसे मिलें—मुझे सँभालें वैसी ही बातें तुम उनसे कहो और ऐसा करके वाणीके द्वारा धर्माचरणका फल प्राप्त करो ॥ १० ॥

नित्यमुत्साहयुक्तस्य वाचः श्रुत्वा मयेरिताः।
वर्धिष्यते दाशरथेः पौरुषं मदवाप्तये ॥ ११ ॥

'यों तो दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम सदा ही उत्साहसे भरे रहते हैं, तथापि मेरी कही हुई बातें सुनकर मेरी प्राप्तिके लिये उनका पुरुषार्थ और भी बढ़ेगा ॥ ११ ॥

मत्संदेशयुता वाचस्त्वत्तः श्रुत्वैव राघवः।
पराक्रमे मतिं वीरो विधिवत् संविधास्यति ॥ १२ ॥

'तुम्हारे मुखसे मेरे संदेशसे युक्त बातें सुनकर ही वीर रघुनाथजी पराक्रम करनेमें विधिवत् अपना मन लगायेंगे' ॥

सीतायास्तद् वचः श्रुत्वा हनूमान् मारुतात्मजः।
शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ १३ ॥

सीताकी यह बात सुनकर पवनकुमार हनुमान्‌ने माथेपर अञ्जलि बाँधकर विनयपूर्वक उनकी बातका उत्तर दिया—।१३।

क्षिप्रमेष्यति काकुत्स्थो हर्यृक्षप्रवरैर्वृतः ।
यस्ते युधि विजित्यारीञ्शोकं व्यपनयिष्यति ॥ १४ ॥

'देवि ! जो युद्धमें सारे शत्रुओंको जीतकर आपके शोकका निवारण करेंगे, वे ककुत्स्थकुलभूषण भगवान् श्रीराम श्रेष्ठ वानरों और भालुओंके साथ शीघ्र ही यहाँ पधारेंगे ।१४।

नहि पश्यामि मर्त्येषु नासुरेषु सुरेषु वा ।
यस्तस्य वमतो बाणान् स्थातुमुत्सहतेऽग्रतः ॥ १५ ॥

'मैं मनुष्यों, असुरों अथवा देवताओंमें भी किसीको ऐसा नहीं देखता, जो बाणोंकी वर्षा करते हुए भगवान् श्रीरामके सामने ठहर सके ॥ १५ ॥

अप्यर्कमपि पर्जन्यमपि वैवस्वतं यमम् ।
स हि सोढुं रणे शक्तस्तव हेतोर्विशेषतः ॥ १६ ॥

'भगवान् श्रीराम विशेषतः आपके लिये तो युद्धमें सूर्य, इन्द्र और सूर्यपुत्र यमका भी सामना कर सकते हैं ॥ १६ ॥

स हि सागरपर्यन्तां महीं साधितुमर्हति ।
त्वन्निमित्तो हि रामस्य जयो जनकनन्दिनि ॥ १७ ॥

'वे समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीको भी जीत लेने योग्य हैं । जनकनन्दिनि ! आपके लिये युद्ध करते समय श्रीरामचन्द्रजीको निश्चय ही विजय प्राप्त होगी' ॥ १७ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सम्यक् सत्यं सुभाषितम् ।
जानकी बहु मेने तं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १८ ॥

हनुमान्‌जीका कथन युक्तियुक्त, सत्य और सुन्दर था । उसे सुनकर जनकनन्दिनीने उनका बड़ा आदर किया और वे उनसे फिर कुछ कहनेको उद्यत हुईं ॥ १८ ॥

ततस्तं प्रस्थितं सीता वीक्षमाणा पुनः पुनः ।
भर्तृस्नेहान्वितं वाक्यं सौहार्दादनुमानयत् ॥ १९ ॥

तदनन्तर वहाँसे प्रस्थित हुए हनुमान्‌जीकी ओर बार-बार देखती हुई सीताने सौहार्दवश स्वामीके प्रति स्नेहसे युक्त सम्मानपूर्ण बात कही— ॥ १९ ॥

यदि वा मन्यसे वीर वसैकाहमरिंदम ।
कस्मिंश्चित् संवृते देशे विश्रान्तः श्वो गमिष्यसि ॥२०॥

'शत्रुओंका दमन करनेवाले वीर ! यदि तुम ठीक समझो तो यहाँ एक दिन किसी गुप्त स्थानमें निवास करो । इस तरह एक दिन विश्राम करके कल चले जाना ॥२०॥

मम चैवाल्पभाग्यायाः सांनिध्यात् तव वानर ।
अस्य शोकस्य महतो मुहूर्तं मोक्षणं भवेत् ॥ २१ ॥

'वानरवीर ! तुम्हारे निकट रहनेसे मुझ मन्दभागिनीके महान् शोकका थोड़ी देरके लिये निवारण हो जायगा ॥२१॥

ततो हि हरिशार्दूल पुनरागमनाय तु ।
प्राणानामपि संदेहो मम स्यान्नात्र संशयः ॥ २२ ॥

'कपिश्रेष्ठ ! विश्रामके पश्चात् यहाँसे यात्रा करनेके अनन्तर यदि फिर तुमलोगोंके आनेमें संदेह या विलम्ब हुआ तो मेरे प्राणोंपर भी संकट आ जायगा, इसमें संशय नहीं है ॥

तवादर्शनजः शोको भूयो मां परितापयेत् ।
दुःखादुःखपरामृष्टां दीपयन्निव वानर ॥ २३ ॥

'वानरवीर ! मैं दुःख-पर-दुःख उठा रही हूँ । तुम्हारे चले जानेपर तुम्हें न देख पानेका शोक मुझे पुनः दग्ध करता हुआ-सा संताप देता रहेगा ॥ २३ ॥

अयं च वीर संदेहस्तिष्ठतीव ममाग्रतः ।
सुमहांस्त्वत्सहायेषु हर्यृक्षेषु हरीश्वर ॥ २४ ॥
कथं नु खलु दुष्पारं तरिष्यन्ति महोदधिम् ।
तानि हर्यृक्षसैन्यानि तौ वा नरवरात्मजौ ॥ २५ ॥

'वीर वानरेश्वर ! तुम्हारे साथी रीछों और वानरोंके विषयमें मेरे सामने अब भी यह महान् संदेह तो विद्यमान ही है कि वे रीछ और वानरोंकी सेनाएँ तथा वे दोनों राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण इस दुष्पार महासागरको कैसे पार करेंगे ॥ २४-२५ ॥

त्रयाणामेव भूतानां सागरस्येह लङ्घने ।
शक्तिः स्याद् वैनतेयस्य तव वा मारुतस्य वा ॥ २६ ॥

'इस संसारमें समुद्रको लाँघनेकी शक्ति तो केवल तीन प्राणियोंमें ही देखी गयी है । तुममें, गरुड़में अथवा वायुदेवतामें ॥ २६ ॥

तदस्मिन् कार्यनियोगे वीरैवं दुरतिक्रमे ।
किं पश्यसे समाधानं त्वं हि कार्यविदां वरः ॥ २७ ॥

'वीर ! इस प्रकार इस समुद्रलङ्घनरूपी कार्यको निभाना अत्यन्त कठिन हो गया है । ऐसी दशामें तुम्हें कार्यसिद्धिका कौन-सा उपाय दिखायी देता है ? यह बताओ; क्योंकि कार्यसिद्धिका उपाय जाननेवाले लोगोंमें तुम सबसे श्रेष्ठ हो ॥२७॥

काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने ।
पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते फलोदयः ॥ २८ ॥

'शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले पवनकुमार ! इसमें संदेह नहीं कि तुम अकेले ही मेरे उद्धाररूपी कार्यको सिद्ध करनेमें पूर्णतः समर्थ हो; परंतु ऐसा करनेसे जो विजयरूप फल प्राप्त होगा, उसका यश केवल तुम्हींको मिलेगा, भगवान् श्रीरामको नहीं ॥ २८ ॥

बलैः समग्रैर्युधि मां रावणं जित्य संयुगे ।
विजयी स्वपुरं यायात् तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥ २९ ॥

'यदि रघुनाथजी सारी सेनाके साथ रावणको युद्धमें पराजित करके विजयी हो मुझे साथ ले अपनी पुरीको पधारें तो वह उनके अनुरूप कार्य होगा ॥ २९ ॥

बलैस्तु संकुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः ।
मां नयेद् यदि काकुत्स्थस्तत् तस्य सदृशं भवेत् ॥ ३० ॥

'शत्रुसेनाका संहार करनेवाले श्रीराम यदि अपनी सेनाओंद्वारा लङ्काको पददलित करके मुझे अपने साथ ले चलें तो वही उनके योग्य होगा ॥ ३० ॥

तद्यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः ।

भवेदाहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय ॥ ३१ ॥

'अतः तुम ऐसा उपाय करो जिससे समरशूर महात्मा श्रीरामका उनके अनुरूप पराक्रम प्रकट हो' ॥ ३१ ॥

तदर्थोपहितं वाक्यं प्रश्रितं हेतुसंहितम् ।
निशम्य हनुमाञ्शेषं वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ ३२ ॥

देवी सीताकी उपर्युक्त बात अर्थयुक्त, स्नेहयुक्त तथा युक्तियुक्त थी। उनकी उस अवशिष्ट बातको सुनकर हनुमान्‌जीने इस प्रकार उत्तर दिया—॥ ३२ ॥

देवि हर्यृक्षसैन्यानामीश्वरः प्लवतां वरः ।
सुग्रीवः सत्यसम्पन्नस्तवार्थे कृतनिश्चयः ॥ ३३ ॥

'देवि ! वानर और भालुओंकी सेनाके स्वामी कपिश्रेष्ठ सुग्रीव सत्यवादी हैं। वे आपके उद्धारके लिये दृढ़ निश्चय कर चुके हैं ॥ ३३ ॥

स वानरसहस्राणां कोटीभिरभिसंवृतः ।
क्षिप्रमेष्यति वैदेहि राक्षसानां निबर्हणः ॥ ३४ ॥

'विदेहनन्दिनि ! उनमें राक्षसोंका संहार करनेकी शक्ति है। वे सहस्रों कोटि वानरोंकी सेना साथ लेकर शीघ्र ही लङ्कापर चढ़ाई करेंगे ॥ ३४ ॥

तस्य विक्रमसम्पन्नाः सत्त्ववन्तो महाबलाः ।
मनःसंकल्पसम्पाता निदेशे हरयः स्थिताः ॥ ३५ ॥

'उनके पास पराक्रमी, धैर्यशाली, महाबली और मानसिक संकल्पके समान बहुत दूरतक उछलकर जानेवाले बहुत-से वानर हैं, जो उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये सदा तैयार रहते हैं ॥ ३५ ॥

येषां नोपरि नाधस्तान्न तिर्यक् सज्जते गतिः ।
न च कर्मसु सीदन्ति महत्स्वमिततेजसः ॥ ३६ ॥

'जिनकी ऊपर-नीचे तथा इधर-उधर कहीं भी गति नहीं रुकती। वे बड़े-से-बड़े कार्योंके आ पड़नेपर भी कभी हिम्मत नहीं हारते। उनमें महान् तेज है ॥ ३६ ॥

असकृत् तैर्महोत्साहैः ससागरधराधरा ।
प्रदक्षिणीकृता भूमिर्वायुमार्गानुसारिभिः ॥ ३७ ॥

'उन्होंने अत्यन्त उत्साहसे पूर्ण होकर वायुपथ (आकाश) का अनुसरण करते हुए समुद्र और पर्वतोंसहित इस पृथ्वीकी अनेक बार परिक्रमा की है ॥ ३७ ॥

मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति तत्र वनौकसः ।
मत्तः प्रत्यवरः कश्चिन्नास्ति सुग्रीवसंनिधौ ॥ ३८ ॥

'सुग्रीवकी सेनामें मेरे समान तथा मुझसे भी बढ़कर पराक्रमी वानर हैं। उनके पास कोई भी ऐसा वानर नहीं है जो बल-पराक्रममें मुझसे कम हो ॥ ३८ ॥

अहं तावदिह प्राप्तः किं पुनस्ते महाबलाः ।
नहि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः ॥ ३९ ॥

'जब मैं ही यहाँ आ गया, तब अन्य महाबली वीरोंके आनेमें क्या संदेह है ? जो श्रेष्ठ पुरुष होते हैं, उन्हें संदेशवाहक दूत बनाकर नहीं भेजा जाता। साधारण कोटिके लोग ही भेजे जाते हैं ॥ ३९ ॥

तदलं परितापेन देवि शोको व्यपैतु ते ।
एकोत्पातेन ते लङ्कामेष्यन्ति हरियूथपाः ॥ ४० ॥

'अतः देवि ! आपको संताप करनेकी आवश्यकता नहीं है। आपका शोक दूर हो जाना चाहिये। वानरयूथपति एक ही छलाँगमें लङ्का पहुँच जायँगे ॥ ४० ॥

मम पृष्ठगतौ तौ च चन्द्रसूर्याविवोदितौ ।
त्वत्सकाशं महासङ्घौ नृसिंहावागमिष्यतः ॥ ४१ ॥

'उदयकालके सूर्य और चन्द्रमाकी भाँति शोभा पानेवाले और महान् वानर-समुदायके साथ रहनेवाले वे दोनों पुरुषसिंह श्रीराम और लक्ष्मण मेरी पीठपर बैठकर आपके पास आ पहुँचेंगे ॥ ४१ ॥

तौ हि वीरौ नरवरौ सहितौ रामलक्ष्मणौ ।
आगम्य नगरीं लङ्कां सायकैर्विधमिष्यतः ॥ ४२ ॥

'वे दोनों नरश्रेष्ठ वीर श्रीराम और लक्ष्मण एक साथ आकर अपने सायकोंसे लङ्कापुरीका विध्वंस कर डालेंगे ॥ ४२ ॥

सगणं रावणं हत्वा राघवो रघुनन्दनः ।
त्वामादाय वरारोहे स्वपुरीं प्रति यास्यति ॥ ४३ ॥

'वरारोहे ! रघुकुलको आनन्दित करनेवाले श्रीरघुनाथजी रावणको उसके सैनिकोंसहित मारकर आपको साथ ले अपनी पुरीको लौटेंगे ॥ ४३ ॥

तदाश्वसिहि भद्रं ते भव त्वं कालकाङ्क्षिणी ।
नचिराद् द्रक्ष्यसे रामं प्रज्वलन्तमिवानलम् ॥ ४४ ॥

'इसलिये आप धैर्य धारण करें। आपका कल्याण हो। आप समयकी प्रतीक्षा करें। प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी श्रीरघुनाथजी आपको शीघ्र ही दर्शन देंगे ॥ ४४ ॥

निहते राक्षसेन्द्रे च सपुत्रामात्यबान्धवे ।
त्वं समेष्यसि रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी ॥ ४५ ॥

'पुत्र, मन्त्री और बन्धु-बान्धवोंसहित राक्षसराज रावणके मारे जानेपर आप श्रीरामचन्द्रजीसे उसी प्रकार मिलेंगी, जैसे रोहिणी चन्द्रमासे मिलती है ॥ ४५ ॥

क्षिप्रं त्वं देवि शोकस्य पारं द्रक्ष्यसि मैथिलि ।
रावणं चैव रामेण द्रक्ष्यसे निहतं बलात् ॥ ४६ ॥

'देवि ! मिथिलेशकुमारी ! आप शीघ्र ही अपने शोकका अन्त हुआ देखेंगी। आपको यह भी दृष्टिगोचर होगा कि श्रीरामचन्द्रजीने रावणको बलपूर्वक मार डाला है' ॥ ४६ ॥

एवमाश्वास्य वैदेहीं हनूमान् मारुतात्मजः ।
गमनाय मतिं कृत्वा वैदेहीं पुनरब्रवीत् ॥ ४७ ॥

विदेहनन्दिनी सीताको इस प्रकार आश्वासन दे पवनकुमार हनुमान्‌जीने वहाँसे लौटनेका निश्चय करके उनसे फिर कहा—॥ ४७ ॥

तमरिघ्नं कृतात्मानं क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम् ।

लक्ष्मणं च धनुष्पाणिं लङ्काद्वारमुपागतम् ॥ ४८ ॥

'देवि ! आप शीघ्र ही देखेंगी कि शुद्ध हृदयवाले शत्रुनाशक श्रीरघुनाथजी तथा लक्ष्मण हाथमें धनुष लिये लङ्काके द्वारपर आ पहुँचे हैं ॥ ४८ ॥

नखदंष्ट्रायुधान् वीरान् सिंहशार्दूलविक्रमान् ।
वानरान् वारणेन्द्राभान् क्षिप्रं द्रक्ष्यसि संगतान् ॥ ४९ ॥

'नख और दाढ़ ही जिनके अस्त्र-शस्त्र हैं तथा जो सिंह और व्याघ्रके समान पराक्रमी एवं गजराजोंके समान विशालकाय हैं, ऐसे वानरोंको भी आप शीघ्र ही एकत्र हुआ देखेंगी ॥ ४९ ॥

शैलाम्बुदनिकाशानां लङ्कामलयसानुषु ।
नर्दतां कपिमुख्यानामार्ये यूथान्यनेकशः ॥ ५० ॥

'आर्ये ! पर्वत और मेघके समान विशालकाय मुख्य-मुख्य वानरोंके बहुत-से झुंड लङ्कावर्ती मलयपर्वतके शिखरोंपर गर्जते दिखायी देंगे ॥ ५० ॥

स तु मर्मणि घोरेण ताडितो मन्मथेषुणा ।
न शर्म लभते रामः सिंहार्दित इव द्विपः ॥ ५१ ॥

'श्रीरामचन्द्रजीके मर्मस्थलमें कामदेवके भयंकर बाणोंसे चोट पहुँची है । इसलिये वे सिंहसे पीड़ित हुए गजराजकी भाँति चैन नहीं पाते हैं ॥ ५१ ॥

रुद मा देवि शोकेन मा भूत् ते मनसो भयम् ।
शचीव भर्त्रा शक्रेण सङ्गमिष्यसि शोभने ॥ ५२ ॥

'देवि ! आप शोकके कारण रोदन न करें । आपके मनका भय दूर हो जाय । शोभने ! जैसे शची देवराज इन्द्रसे मिलती हैं, उसी प्रकार आप अपने पतिदेवसे मिलेंगी ॥ ५२ ॥

रामाद् विशिष्टः कोऽन्योऽस्ति कश्चित् सौमित्रिणा समः ।
अग्निमारुतकल्पौ तौ भ्रातरौ तव संश्रयौ ॥ ५३ ॥

'भला, श्रीरामचन्द्रजीसे बढ़कर दूसरा कौन है ? तथा लक्ष्मणजीके समान भी कौन हो सकता है ? अग्नि और वायुके तुल्य तेजस्वी वे दोनों भाई आपके आश्रय हैं (आपको कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये) ॥ ५३ ॥

नास्मिंश्चिरं वत्स्यसि देवि देशे
रक्षोगणैरध्युषितेऽतिरौद्रे ।
न ते चिरादागमनं प्रियस्य
क्षमस्व मत्संगमकालमात्रम् ॥ ५४ ॥

'देवि ! राक्षसोंद्वारा सेवित इस अत्यन्त भयंकर देशमें आपको अधिक दिनोंतक नहीं रहना पड़ेगा । आपके प्रियतमके आनेमें विलम्ब नहीं होगा । जबतक मेरी उनसे भेंट न हो, उतने समय तकके विलम्बको आप क्षमा करें' ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें उन्तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशः सर्गः

सीताका श्रीरामसे कहनेके लिये पुनः संदेश देना तथा हनुमान्जीका उन्हें आश्वासन दे उत्तर दिशाकी ओर जाना

श्रुत्वा तु वचनं तस्य वायुसूनोर्महात्मनः ।
उवाचात्महितं वाक्यं सीता सुरसुतोपमा ॥ १ ॥

वायुपुत्र महात्मा हनुमान्जीका वचन सुनकर देवकन्याके समान तेजस्विनी सीताने अपने हितके विचारसे इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

त्वां दृष्ट्वा प्रियवक्तारं सम्प्रहृष्यामि वानर ।
अर्धसंजातसस्येव वृष्टिं प्राप्य वसुंधरा ॥ २ ॥

'वानरवीर ! तुमने मुझे बड़ा ही प्रिय संवाद सुनाया है । तुम्हें देखकर हर्षके मारे मेरे शरीरमें रोमाञ्च हो आया है । ठीक उसी तरह, जैसे वर्षाका पानी पड़नेसे आधी जमी हुई खेतीवाली भूमि हरी-भरी हो जाती है ॥

यथा तं पुरुषव्याघ्रं गात्रैः शोकाभिकर्शितैः ।
संस्पृशेयं सकामाहं तथा कुरु दयां मयि ॥ ३ ॥

'मुझपर ऐसी दया करो, जिससे मैं शोकके कारण दुर्बल हुए अपने अङ्गोंद्वारा नरश्रेष्ठ श्रीरामका प्रेमपूर्वक स्पर्श कर सकूँ ॥ ३ ॥

अभिज्ञानं च रामस्य दद्या हरिगणोत्तम ।
क्षिप्तामिषीकां काकस्य कोपादेकाक्षिशातनीम् ॥ ४ ॥

'वानरश्रेष्ठ ! श्रीरामने क्रोधवश जो कौएकी एक आँखको फोड़नेवाली सींकका बाण चलाया था, उस प्रसङ्गकी तुम पहचानके रूपमें उन्हें याद दिलाना ॥ ४ ॥

मनःशिलायास्तिलको गण्डपार्श्वे निवेशितः ।
त्वया प्रणष्टे तिलके तं किल स्मर्तुमर्हसि ॥ ५ ॥

'मेरी ओरसे यह भी कहना कि प्राणनाथ ! पहलेकी उस बातको भी याद कीजिये, जब कि मेरे कपोलमें लगे हुए तिलकके मिट जानेपर आपने अपने हाथसे मैन्सिलका तिलक लगाया था ॥ ५ ॥

स वीर्यवान् कथं सीतां हृतां समनुमन्यसे ।
वसन्तीं रक्षसां मध्ये महेन्द्रवरुणोपम ॥ ६ ॥

'महेन्द्र और वरुणके समान पराक्रमी प्रियतम ! आप बलवान् होकर भी अपहृत होकर राक्षसोंके घरमें निवास करनेवाली मुझ सीताका तिरस्कार कैसे सहन करते हैं ? ॥ ६ ॥

एष चूडामणिर्दिव्यो मया सुपरिरक्षितः ।
एतं दृष्ट्वा प्रहृष्यामि व्यसने त्वामिवानघ ॥ ७ ॥

‘निष्पाप प्राणेश्वर ! इस दिव्य चूड़ामणिको मैंने बड़े यत्नसे सुरक्षित रक्खा था और संकटके समय इसे देखकर मानो मुझे आपका ही दर्शन हो गया हो, इस तरह मैं हर्षका अनुभव करती थी ॥ ७ ॥

एष निर्यातितः श्रीमान् मया ते वारिसम्भवः ।
अतः परं न शक्ष्यामि जीवितुं शोकलालसा ॥ ८ ॥

‘समुद्रके जलसे उत्पन्न हुआ यह कान्तिमान् मणिरत्न आज आपको लौटा रही हूँ । अब शोकसे आतुर होनेके कारण मैं अधिक समयतक जीवित नहीं रह सकूँगी ॥ ८ ॥

असह्यानि च दुःखानि वाचश्च हृदयच्छिदः ।
राक्षसैः सह संवासं त्वत्कृते मर्षयाम्यहम् ॥ ९ ॥

‘दुःसह दुःख, हृदयको छेदनेवाली बातें और राक्षसियोंके साथ निवास—यह सब कुछ मैं आपके लिये ही सह रही हूँ ॥ ९ ॥

धारयिष्यामि मासं तु जीवितं शत्रुसूदन ।
मासादूर्ध्वं न जीविष्ये त्वया हीना नृपात्मज ॥ १० ॥

‘राजकुमार ! शत्रुसूदन ! मैं आपकी प्रतीक्षामें किसी तरह एक मासतक जीवन धारण करूँगी । इसके बाद आपके बिना मैं जीवित नहीं रह सकूँगी ॥ १० ॥

घोरो राक्षसराजोऽयं दृष्टिश्च न सुखा मयि ।
त्वां च श्रुत्वा विषज्जन्तं न जीवेयमपि क्षणम् ॥ ११ ॥

‘यह राक्षसराज रावण बड़ा क्रूर है । मेरे प्रति इसकी दृष्टि भी अच्छी नहीं है । अब यदि आपको भी विलम्ब करते सुन लूँगी तो मैं क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकती’ ॥ ११ ॥

वैदेह्या वचनं श्रुत्वा करुणं साश्रुभाषितम् ।
अथाब्रवीन्महातेजा हनूमान् मारुतात्मजः ॥ १२ ॥

सीताजीके यह आँसू बहाते कहे हुए करुणाजनक वचन सुनकर महातेजस्वी पवनकुमार हनुमान्‌जी बोले—॥

त्वच्छोकविमुखो रामो देवि सत्येन ते शपे ।
रामे शोकाभिभूते तु लक्ष्मणः परितप्यते ॥ १३ ॥

‘देवि ! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि श्रीरघुनाथजी आपके शोकसे ही सब कामोंसे विमुख हो रहे हैं । श्रीरामके शोकातुर होनेसे लक्ष्मण भी बहुत दुखी रहते हैं ॥ १३ ॥

दृष्टा कथंचिद् भवती न कालः परिदेवितुम् ।
इमं मुहूर्तं दुःखानामन्तं द्रक्ष्यसि भामिनि ॥ १४ ॥

‘अब किसी तरह आपका दर्शन हो गया, इसलिये रोने-धोने या शोक करनेका अवसर नहीं रहा । भामिनि ! आप इसी मुहूर्तमें अपने सारे दुःखोंका अन्त हुआ देखेंगी ॥ १४ ॥

तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ राजपुत्रावनिन्दितौ ।
त्वद्दर्शनकृतोत्साहौ लङ्कां भस्मीकरिष्यतः ॥ १५ ॥

‘वे दोनों भाई पुरुषसिंह राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण सर्वत्र प्रशंसित वीर हैं । आपके दर्शनके लिये उत्साहित होकर वे लङ्कापुरीको भस्म कर डालेंगे ॥ १५ ॥

हत्वा तु समरे रक्षो रावणं सहबान्धवैः ।
राघवौ त्वां विशालाक्षि स्वां पुरीं प्रति नेष्यतः ॥ १६ ॥

‘विशाललोचने राक्षस रावणको समराङ्गणमें उसके बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर वे दोनों रघुवंशी बन्धु आपको अपनी पुरीमें ले जायँगे ॥ १६ ॥

यत्तु रामो विजानीयादभिज्ञानमनिन्दिते ।
प्रीतिसंजननं भूयस्तस्य त्वं दातुमर्हसि ॥ १७ ॥

‘सती-साध्वी देवि ! जिसे श्रीरामचन्द्रजी जान सकें और जो उनके हृदयमें प्रेम एवं प्रसन्नताका संचार करनेवाली हो, ऐसी कोई और भी पहचान आपके पास हो तो वह उनके लिये आप मुझे दें’ ॥ १७ ॥

साब्रवीद् दत्तमेवाहो मयाभिज्ञानमुत्तमम् ।
एतदेव हि रामस्य दृष्ट्वा यत्नेन भूषणम् ॥ १८ ॥
श्रद्धेयं हनुमन् वाक्यं तव वीर भविष्यति ।

तब सीताजीने कहा—‘कपिश्रेष्ठ ! मैंने तुम्हें उत्तम-से-उत्तम पहचान तो दे ही दी । वीर हनुमन् ! इसी आभूषणको यत्नपूर्वक देख लेनेपर श्रीरामके लिये तुम्हारी सारी बातें विश्वसनीय हो जायँगी’ ॥ १८½ ॥

स तं मणिवरं गृह्य श्रीमान् प्लवगसत्तमः ॥ १९ ॥
प्रणम्य शिरसा देवीं गमनायोपचक्रमे ।

उस श्रेष्ठ मणिको लेकर वानरशिरोमणि श्रीमान् हनुमान् देवी सीताको सिर झुका प्रणाम करनेके पश्चात् वहाँसे जानेको उद्यत हुए ॥ १९½ ॥

तमुत्पातकृतोत्साहमवेक्ष्य हरियूथपम् ॥ २० ॥
वर्धमानं महावेगमुवाच जनकात्मजा ।
अश्रुपूर्णमुखी दीना बाष्पगद्गदया गिरा ॥ २१ ॥

वानरयूथपति महावेगशाली हनुमान्‌को वहाँसे छलाँग मारनेके लिये उत्साहित हो बढ़ते देख जनकनन्दिनी सीताके मुखपर आँसुओंकी धारा बहने लगी । वे दुखी हो अश्रुगद्‌गद वाणीमें बोलीं—॥ २०-२१ ॥

हनूमन् सिंहसंकाशौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान् ब्रूया अनामयम् ॥ २२ ॥

‘हनूमन् ! सिंहके समान पराक्रमी दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणसे तथा मन्त्रियोंसहित सुग्रीव एवं अन्य सब वानरोंसे मेरा कुशल-मङ्गल कहना ॥ २२ ॥

यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः ।
अस्माद् दुःखाम्बुसंरोधात् त्वं समाधातुमर्हसि ॥ २३ ॥

‘महाबाहु श्रीरघुनाथजीको तुम्हें इस प्रकार समझाना

चाहिये, जिससे वे दुःखके इस महासागरसे मेरा उद्धार करें ॥

इदं च तीव्रं मम शोकवेगं
रक्षोभिरेभिः परिभर्त्सनं च ।
ब्रूयास्तु रामस्य गतः समीपं
शिवश्च तेऽध्वास्तु हरिप्रवीर ॥ २४ ॥

'वानरोंके प्रमुख वीर ! मेरा यह दुःसह शोक-वेग और इन राक्षसोंकी यह डाँट-डपट भी तुम श्रीरामके समीप जाकर कहना । जाओ, तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो' ॥ २४ ॥

स राजपुत्र्या प्रतिवेदितार्थः
कपिः कृतार्थः परिहृष्टचेताः ।
तदल्पशेषं प्रसमीक्ष्य कार्यं
दिशं ह्युदीचीं मनसा जगाम ॥ २५ ॥

राजकुमारी सीताके उक्त अभिप्रायको जानकर कपिवर हनुमान्ने अपनेको कृतार्थ समझा और प्रसन्नचित्त होकर थोड़े-से शेष रहे कार्यका विचार करते हुए वहाँसे उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान किया ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें चालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः

हनुमान्जीके द्वारा प्रमदावन (अशोकवाटिका) का विध्वंस

स च वाग्भिः प्रशस्ताभिर्गमिष्यन् पूजितस्तया ।
तस्माद् देशादपाक्रम्य चिन्तयामास वानरः ॥ १ ॥

सीताजीसे उत्तम वचनोंद्वारा समादर पाकर वानरवीर हनुमान्जी जब वहाँसे जाने लगे, तब उस स्थानसे दूसरी जगह हटकर वे इस प्रकार विचार करने लगे— ॥ १ ॥

अल्पशेषमिदं कार्यं दृष्टेयमसितेक्षणा ।
त्रीनुपायानतिक्रम्य चतुर्थ इह दृश्यते ॥ २ ॥

'मैंने कजरारे नेत्रोंवाली सीताजीका दर्शन तो कर लिया, अब मेरे इस कार्यका थोड़ा-सा अंश (शत्रुकी शक्तिका पता लगाना) शेष रह गया है । इसके लिये चार उपाय हैं—साम, दान, भेद और दण्ड । यहाँ साम आदि तीन उपायोंको लाँघकर केवल चौथे उपाय (दण्ड) का प्रयोग ही उपयोगी दिखायी देता है ॥ २ ॥

न साम रक्षःसु गुणाय कल्पते
न दानमर्थोपचितेषु युज्यते ।
न भेदसाध्या बलदर्पिता जनाः
पराक्रमस्त्वेष ममेह रोचते ॥ ३ ॥

'राक्षसोंके प्रति सामनीतिका प्रयोग करनेसे कोई लाभ नहीं होता । इनके पास धन भी बहुत है, अतः इन्हें दान देनेका भी कोई उपयोग नहीं है । इसके सिवा, ये बलके अभिमानमें चूर रहते हैं, अतः भेदनीतिके द्वारा भी इन्हें वशमें नहीं किया जा सकता । ऐसी दशामें मुझे यहाँ पराक्रम दिखाना ही उचित जान पड़ता है ॥ ३ ॥

न चास्य कार्यस्य पराक्रमादृते
विनिश्चयः कश्चिदिहोपपद्यते ।
हतप्रवीराश्च रणे तु राक्षसाः
कथंचिदीयुर्यदिहाद्य मार्दवम् ॥ ४ ॥

'इस कार्यकी सिद्धिके लिये पराक्रमके सिवा यहाँ और किसी उपायका अवलम्बन ठीक नहीं जँचता । यदि युद्धमें राक्षसोंके मुख्य-मुख्य वीर मारे जायँ तो ये लोग किसी तरह कुछ नरम पड़ सकते हैं ॥ ४ ॥

कार्ये कर्मणि निर्वृत्ते यो बहून्यपि साधयेत् ।
पूर्वकार्याविरोधेन स कार्यं कर्तुमर्हति ॥ ५ ॥

'जो पुरुष प्रधान कार्यके सम्पन्न हो जानेपर दूसरे-दूसरे बहुत-से कार्योंको भी सिद्ध कर लेता है और पहलेके कार्योंमें बाधा नहीं आने देता, वही कार्यको सुचारु रूपमें कर सकता है ॥ ५ ॥

न ह्येकः साधको हेतुः स्वल्पस्यापीह कर्मणः ।
यो ह्यर्थं बहुधा वेद स समर्थोऽर्थसाधने ॥ ६ ॥

'छोटे-से-छोटे कर्मकी भी सिद्धिके लिये कोई एक ही साधक हेतु नहीं हुआ करता । जो पुरुष किसी कार्य या प्रयोजनको अनेक प्रकारसे सिद्ध करनेकी कला जानता हो, वही कार्य-साधनमें समर्थ हो सकता है ॥ ६ ॥

इहैव तावत्कृतनिश्चयो ह्यहं
व्रजेयमद्य प्लवगेश्वरालयम् ।
परात्मसम्मर्दविशेषतत्त्ववित्
ततः कृतं स्यान्मम भर्तृशासनम् ॥ ७ ॥

'यदि इसी यात्रामें मैं इस बातको ठीक-ठीक समझ लूँ कि अपने और शत्रुपक्षमें युद्ध होनेपर कौन प्रबल होगा और कौन निर्बल, तत्पश्चात् भविष्यके कार्यका भी निश्चय करके आज सुग्रीवके पास चलूँ तो मेरे द्वारा स्वामीकी आज्ञाका पूर्णरूपसे पालन हुआ समझा जायगा ॥ ७ ॥

कथं नु खल्वद्य भवेत् सुखागतं
प्रसह्य युद्धं मम राक्षसैः सह ।
तथैव खल्वात्मबलं च सारवत्
समानयेन्मां च रणे दशाननः ॥ ८ ॥

'परंतु आज मेरा यहाँतक आना सुखद अथवा शुभ परिणामका जनक कैसे होगा ? राक्षसोंके साथ हठात्

युद्ध करनेका अवसर मुझे कैसे प्राप्त होगा ? तथा दशमुख रावण समरमें अपनी सेनाको और मुझे भी तुलनात्मक दृष्टिसे देखकर कैसे यह समझ सकेगा कि कौन सबल है ? ॥

ततः समासाद्य रणे दशाननं
समन्त्रिवर्गं सबलं सयायिनम् ।
हृदि स्थितं तस्य मतं बलं च
सुखेन मत्वाहमितः पुनर्व्रजे ॥ ९ ॥

'उस युद्धमें मन्त्री, सेना और सहायकोंसहित रावणका सामना करके मैं उसके हार्दिक अभिप्राय तथा सैनिक-शक्तिका अनायास ही पता लगा लूँगा । उसके बाद यहाँसे जाऊँगा ॥ ९ ॥

इदमस्य नृशंसस्य नन्दनोपममुत्तमम् ।
वनं नेत्रमनःकान्तं नानाद्रुमलतायुतम् ॥ १० ॥

'इस निर्दयी रावणका यह सुन्दर उपवन नेत्रोंको आनन्द देनेवाला और मनोरम है । नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे व्याप्त होनेके कारण यह नन्दनवनके समान उत्तम प्रतीत होता है ॥ १० ॥

इदं विध्वंसयिष्यामि शुष्कं वनमिवानलः ।
अस्मिन् भग्ने ततः कोपं करिष्यति स रावणः ॥ ११ ॥

'जैसे आग सूखे वनको जला डालती है, उसी प्रकार मैं भी आज इस उपवनका विध्वंस कर डालूँगा । इसके भग्न हो जानेपर रावण अवश्य मुझपर क्रोध करेगा ॥ ११ ॥

ततो महत्साश्वमहारथद्विपं
बलं समानेष्यति राक्षसाधिपः ।
त्रिशूलकालायसपट्टिशायुधं
ततो महद्युद्धमिदं भविष्यति ॥ १२ ॥

'तत्पश्चात् वह राक्षसराज हाथी, घोड़े तथा विशाल रथोंसे युक्त और त्रिशूल, कालायस एवं पट्टिश आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित बहुत बड़ी सेना लेकर आयेगा । फिर तो यहाँ महान् संग्राम छिड़ जायगा' ॥ १२ ॥

अहं च तैः संयति चण्डविक्रमैः
समेत्य रक्षोभिरभङ्गविक्रमः ।
निहत्य तद् रावणचोदितं बलं
सुखं गमिष्यामि हरीश्वरालयम् ॥ १३ ॥

'उस युद्धमें मेरी गति रुक नहीं सकती । मेरा पराक्रम कुण्ठित नहीं हो सकता । मैं प्रचण्ड पराक्रम दिखानेवाले उन राक्षसोंसे भिड़ जाऊँगा और रावणकी भेजी हुई उस सारी सेनाको मौतके घाट उतारकर सुखपूर्वक सुग्रीवके निवासस्थान किष्किन्धापुरीको लौट जाऊँगा' ॥ १३ ॥

ततो मारुतवत् क्रुद्धो मारुतिर्भीमविक्रमः ।
ऊरुवेगेन महता द्रुमान् क्षेप्तुमथारभत् ॥ १४ ॥

ऐसा सोचकर भयानक पुरुषार्थ प्रकट करनेवाले पवनकुमार हनुमान्‌जी क्रोधसे भर गये और वायुके समान बड़े भारी वेगसे वृक्षोंको उखाड़-उखाड़कर फेंकने लगे ॥ १४ ॥

ततस्तद्धनुमान् वीरो बभञ्ज प्रमदावनम् ।
मत्तद्विजसमाघुष्टं नानाद्रुमलतायुतम् ॥ १५ ॥

तदनन्तर वीर हनुमान्‌ने मतवाले पक्षियोंके कलरवसे मुखरित और नाना प्रकारके वृक्षों एवं लताओंसे भरे-पूरे उस प्रमदावन (अन्तःपुरके उपवन) को उजाड़ डाला । १५ ।

तद्वनं मथितैर्वृक्षैर्भिन्नैश्च सलिलाशयैः ।
चूर्णितैः पर्वताग्रैश्च बभूवाप्रियदर्शनम् ॥ १६ ॥

वहाँके वृक्षोंको खण्ड-खण्ड कर दिया । जलाशयोंको मथ डाला और पर्वत-शिखरोंको चूर-चूर कर डाला । इससे वह सुन्दर वन कुछ ही क्षणोंमें अभव्य दिखायी देने लगा ॥ १६ ॥

नानाशकुन्तविरुतैः प्रभिन्नसलिलाशयैः ।
ताम्रैः किसलयैः क्लान्तैः क्लान्तद्रुमलतायुतैः ॥ १७ ॥
न बभौ तद् वनं तत्र दावानलहतं यथा ।
व्याकुलावरणा रेजुर्विह्वला इव ता लताः ॥ १८ ॥

नाना प्रकारके पक्षी वहाँ भयके मारे चें-चें करने लगे, जलाशयोंके घाट टूट-फूट गये, तामेके समान वृक्षोंके लाल-लाल पल्लव मुरझा गये तथा वहाँके वृक्ष और लताएँ भी रौंद डाली गयीं । इन सब कारणोंसे वह प्रमदावन वहाँ ऐसा जान पड़ता था, मानो दावानलसे झुलस गया हो । वहाँकी लताएँ अपने आवरणोंके नष्ट-भ्रष्ट हो जानेसे घबरायी हुई स्त्रियोंके समान प्रतीत होती थीं ॥ १७-१८ ॥

लतागृहैश्चित्रगृहैश्च सादितै-
र्व्यालैर्मृगैरार्तरवैश्च पक्षिभिः ।
शिलागृहैरुन्मथितैस्तथा गृहैः
प्रणष्टरूपं तदभून्महद् वनम् ॥ १९ ॥

लतामण्डप और चित्रशालाएँ उजाड़ हो गयीं । पाले हुए हिंसक जन्तु, मृग तथा तरह-तरहके पक्षी आर्तनाद करने लगे । प्रस्तरनिर्मित प्रासाद तथा अन्य साधारण गृह भी तहस-नहस हो गये । इससे उस महान् प्रमदावनका सारा रूप-सौन्दर्य नष्ट हो गया ॥ १९ ॥

सा विह्वलाशोकलताप्रताना
वनस्थली शोकलताप्रताना ।
जाता दशास्यप्रमदावनस्य
कपेर्बलाद्धि प्रमदावनस्य ॥ २० ॥

दशमुख रावणकी स्त्रियोंकी रक्षा करनेवाले तथा अन्तःपुरके क्रीडाविहारके लिये उपयोगी उस विशाल कानन-की भूमि, जहाँ चञ्चल अशोक-लताओंके समूह शोभा पाते थे, कपिवर हनुमान्‌जीके बलप्रयोगसे श्रीहीन होकर शोचनीय लताओंके विस्तारसे युक्त हो गयी (उसकी दुरवस्था देख-

कर दर्शकके मनमें दुःख होता था) ॥ २० ॥

ततः स कृत्वा जगतीपतेर्महान्
महद् व्यलीकं मनसो महात्मनः ।
युयुत्सुरेको बहुभिर्महाबलैः
श्रिया ज्वलंस्तोरणमाश्रितः कपिः॥ २१ ॥

इस प्रकार महामना राजा रावणके मनको विशेष कष्ट पहुँचानेवाला कार्य करके अनेक महाबलियोंके साथ अकेले ही युद्ध करनेका हौसला लेकर कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी प्रमदावनके फाटकपर आ गये । उस समय वे अपने अद्भुत तेजसे प्रकाशित हो रहे थे ॥ २१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें इकतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः

राक्षसियोंके मुखसे एक वानरके द्वारा प्रमदावनके विध्वंसका समाचार सुनकर रावणका किंकर नामक राक्षसोंको भेजना और हनुमान्‌जीके द्वारा उन सबका संहार

ततः पक्षिनिनादेन वृक्षभङ्गस्वनेन च ।
बभूवुस्त्राससम्भ्रान्ताः सर्वे लङ्कानिवासिनः ॥ १ ॥

उधर पक्षियोंके कोलाहल और वृक्षोंके टूटनेकी आवाज सुनकर समस्त लङ्कानिवासी भयसे घबरा उठे ॥ १ ॥

विद्रुताश्च भयत्रस्ता विनेदुर्मृगपक्षिणः ।
रक्षसां च निमित्तानि क्रूराणि प्रतिपेदिरे ॥ २ ॥

पशु और पक्षी भयभीत होकर भागने तथा आर्तनाद करने लगे । राक्षसोंके सामने भयंकर अपशकुन प्रकट होने लगे ॥ २ ॥

ततो गतायां निद्रायां राक्षस्यो विकृताननाः ।
तद् वनं ददृशुर्भग्नं तं च वीरं महाकपिम् ॥ ३ ॥

प्रमदावनमें सोयी हुई विकराल मुखवाली राक्षसियोंकी निद्रा टूट गयी । उन्होंने उठनेपर उस वनको उजड़ा हुआ देखा । साथ ही उनकी दृष्टि उन वीर महाकपि हनुमान्‌जीपर भी पड़ी ॥ ३ ॥

स ता दृष्ट्वा महाबाहुर्महासत्त्वो महाबलः ।
चकार सुमहद्रूपं राक्षसीनां भयावहम् ॥ ४ ॥

महाबली, महान् साहसी एवं महाबाहु हनुमान्‌जीने जब उन राक्षसियोंको देखा, तब उन्हें डरानेवाला विशाल रूप धारण कर लिया ॥ ४ ॥

ततस्तु गिरिसंकाशमतिकायं महाबलम् ।
राक्षस्यो वानरं दृष्ट्वा पप्रच्छुर्जनकात्मजाम् ॥ ५ ॥

पर्वतके समान बड़े शरीरवाले महाबली वानरको देखकर वे राक्षसियाँ जनकनन्दिनी सीतासे पूछने लगीं—॥ ५ ॥

कोऽयं कस्य कुतो वायं किंनिमित्तमिहागतः ।
कथं त्वया सहानेन संवादः कृत इत्युत ॥ ६ ॥
आचक्ष्व नो विशालाक्षि मा भूत्ते सुभगे भयम् ।
संवादमसितापाङ्गि त्वया किं कृतवानयम् ॥ ७ ॥

'विशाललोचने ! यह कौन है ? किसका है ? और कहाँसे किसलिये यहाँ आया है ? इसने तुम्हारे साथ क्यों बातचीत की है ? कजरारे नेत्रप्रान्तवाली सुन्दरि ! ये सब बातें हमें बताओ । तुम्हें डरना नहीं चाहिये । इसने तुम्हारे साथ क्या बातें की थीं ?' ॥ ६-७ ॥

अथाब्रवीत् तदा साध्वी सीता सर्वाङ्गशोभना ।
रक्षसां कामरूपाणां विज्ञाने का गतिर्मम ॥ ८ ॥

तब सर्वाङ्गसुन्दरी साध्वी सीताने कहा—'इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले राक्षसोंको समझने या पहचाननेका मेरे पास क्या उपाय है ?॥ ८ ॥

यूयमेवास्य जानीत योऽयं यद् वा करिष्यति ।
अहिरेव ह्यहेः पादान् विजानाति न संशयः ॥ ९ ॥

'तुम्हीं जानो यह कौन है और क्या करेगा ? साँपके पैरोंको साँप ही पहचानता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ९ ॥

अहमप्यतिभीतास्मि नैव जानामि को ह्ययम् ।
वेद्मि राक्षसमेवैनं कामरूपिणमागतम् ॥ १० ॥

'मैं भी इसे देखकर बहुत डरी हुई हूँ । मुझे नहीं मालूम कि यह कौन है ? मैं तो इसे इच्छानुसार रूप धारण करके आया हुआ कोई राक्षस ही समझती हूँ' ॥ १० ॥

वैदेह्या वचनं श्रुत्वा राक्षस्यो विद्रुता द्रुतम् ।
स्थिताः काश्चिद्गताः काश्चिद् रावणाय निवेदितुम् ॥ ११ ॥

विदेहनन्दिनी सीताकी यह बात सुनकर राक्षसियाँ बड़े वेगसे भागीं । उनमेंसे कुछ तो वहीं खड़ी हो गयीं और कुछ रावणको सूचना देनेके लिये चली गयीं ॥ ११ ॥

रावणस्य समीपे तु राक्षस्यो विकृताननाः ।
विरूपं वानरं भीमं रावणाय न्यवेदिषुः ॥ १२ ॥

रावणके समीप जाकर उन विकराल मुखवाली राक्षसियोंने रावणको यह सूचना दी कि कोई विकटरूपधारी भयंकर वानर प्रमदावनमें आ पहुँचा है ॥ १२ ॥

अशोकवनिकामध्ये राजन् भीमवपुः कपिः ।
सीतया कृतसंवादस्तिष्ठत्यमितविक्रमः ॥ १३ ॥

वे बोलीं— 'राजन् ! अशोकवाटिकामें एक वानर आया है, जिसका शरीर बड़ा भयंकर है । उसने सीतासे बातचीत की है । वह महापराक्रमी वानर अभी वहीं मौजूद है ॥

न च तं जानकी सीता हरिं हरिणलोचना।
अस्माभिर्बहुधा पृष्टा निवेदयितुमिच्छति॥ १४॥

'हमने बहुत पूछा तो भी जनककिशोरी मृगनयनी सीता उस वानरके विषयमें हमें कुछ बताना नहीं चाहती हैं॥१४॥

वासवस्य भवेद् दूतो दूतो वैश्रवणस्य वा।
प्रेषितो वापि रामेण सीतान्वेषणकाङ्क्षया॥ १५॥

'सम्भव है वह इन्द्र या कुबेरका दूत हो अथवा श्रीरामने ही उसे सीताकी खोजके लिये भेजा हो॥ १५॥

तेनैवाद्भुतरूपेण यत्तत्तव मनोहरम्।
नानामृगगणाकीर्णं प्रमृष्टं प्रमदावनम्॥ १६॥

'अद्भुत रूप धारण करनेवाले उस वानरने आपके मनोहर प्रमदावनको, जिसमें नाना प्रकारके पशु-पक्षी रहा करते थे, उजाड़ दिया॥ १६॥

न तत्र कश्चिदुद्देशो यस्तेन न विनाशितः।
यत्र सा जानकी देवी स तेन न विनाशितः॥ १७॥

'प्रमदावनका कोई भी ऐसा भाग नहीं है, जिसको उसने नष्ट न कर डाला हो। केवल वह स्थान, जहाँ जानकी देवी रहती हैं, उसने नष्ट नहीं किया है॥ १७॥

जानकीरक्षणार्थं वा श्रमाद् वा नोपलक्ष्यते।
अथवा कः श्रमस्तस्य सैव तेनाभिरक्षिता॥ १८॥

'जानकीजीकी रक्षाके लिये उसने उस स्थानको बचा दिया है या परिश्रमसे थककर—यह निश्चित रूपसे नहीं जान पड़ता है। अथवा उसे परिश्रम तो क्या हुआ होगा? उसने उस स्थानको बचाकर सीताकी ही रक्षा की है॥ १८॥

चारुपल्लवपत्राढ्यं यं सीता स्वयमास्थिता।
प्रवृद्धः शिंशपावृक्षः स च तेनाभिरक्षितः॥ १९॥

'मनोहर पल्लवों और पत्तोंसे भरा हुआ वह विशाल अशोक वृक्ष, जिसके नीचे सीताका निवास है, उसने सुरक्षित रख छोड़ा है॥ १९॥

तस्योग्ररूपस्योग्रं त्वं दण्डमाज्ञातुमर्हसि।
सीता सम्भाषिता येन वनं तेन विनाशितम्॥ २०॥

'जिसने सीतासे वार्तालाप किया और उस वनको उजाड़ डाला, उस उग्र रूपधारी वानरको आप कोई कठोर दण्ड देनेकी आज्ञा प्रदान करें॥ २०॥

मनःपरिगृहीतां तां तव रक्षोगणेश्वर।
कः सीतामभिभाषेत यो न स्यात् त्यक्तजीवितः॥ २१॥

'राक्षसराज! जिन्हें आपने अपने हृदयमें स्थान दिया है, उन सीता देवीसे कौन बातें कर सकता है? जिसने अपने प्राणोंका मोह नहीं छोड़ा है, वह उनसे वार्तालाप कैसे कर सकता है?'॥ २१॥

राक्षसीनां वचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः।
चिताग्निरिव जज्वाल कोपसंवर्तितेक्षणः॥ २२॥

राक्षसियोंकी यह बात सुनकर राक्षसोंका राजा रावण प्रज्वलित चिताकी भाँति क्रोधसे जल उठा। उसके नेत्र रोषसे घूमने लगे॥ २२॥

तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः।
दीप्ताभ्यामिव दीपाभ्यां सार्चिषः स्नेहबिन्दवः॥ २३॥

क्रोधमें भरे हुए रावणकी आँखोंसे आँसूकी बूँदें टपकने लगीं, मानो जलते हुए दो दीपकोंसे आगकी लपटोंके साथ तेलकी बूँदें झर रही हों॥ २३॥

आत्मनः सदृशान् वीरान् किंकरान्नाम राक्षसान्।
व्यादिदेश महातेजा निग्रहार्थं हनूमतः॥ २४॥

उस महातेजस्वी निशाचरने हनुमान्‌जीको कैद करनेके लिये अपने ही समान वीर किंकर नामधारी राक्षसोंको जानेकी आज्ञा दी॥ २४॥

तेषामशीतिसाहस्रं किंकराणां तरस्विनाम्।
निर्ययुर्भवनात् तस्मात् कूटमुद्गरपाणयः॥ २५॥

राजाकी आज्ञा पाकर असी हजार वेगवान् किंकर हाथोंमें कूट और मुद्गर लिये उस महलसे बाहर निकले॥ २५॥

महोदरा महादंष्ट्रा घोररूपा महाबलाः।
युद्धाभिमनसः सर्वे हनूमद्ग्रहणोन्मुखाः॥ २६॥

उनकी दाढ़ें विशाल, पेट बड़ा और रूप भयानक था। वे सब-के-सब महान् बली, युद्धके अभिलाषी और हनुमान्‌जीको पकड़नेके लिये उत्सुक थे॥ २६॥

ते कपिं तं समासाद्य तोरणस्थमवस्थितम्।
अभिपेतुर्महावेगाः पतङ्गा इव पावकम्॥ २७॥

प्रमदावनके फाटकपर खड़े हुए उन वानरवीरके पास पहुँचकर वे महान् वेगशाली निशाचर उनपर चारों ओरसे इस प्रकार झपटे, जैसे फतिंगे आगपर टूट पड़े हों॥ २७॥

ते गदाभिर्विचित्राभिः परिघैः काञ्चनाङ्गदैः।
आजग्मुर्वानरश्रेष्ठं शरैरादित्यसंनिभैः॥ २८॥

वे विचित्र गदाओं, सोनेसे मढ़े हुए परिघों और सूर्यके समान प्रज्वलित बाणोंके साथ वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌पर चढ़ आये॥ २८॥

मुद्गरैः पट्टिशैः शूलैः प्रासतोमरपाणयः।
परिवार्य हनूमन्तं सहसा तस्थुरग्रतः॥ २९॥

हाथमें प्रास और तोमर लिये मुद्गर, पट्टिश और शूलोंसे सुसज्जित हो वे सहसा हनुमान्‌को चारों ओरसे घेरकर उनके सामने खड़े हो गये॥ २९॥

हनूमानपि तेजस्वी श्रीमान् पर्वतसंनिभः।
क्षितावाविद्ध्य लाङ्गूलं ननाद च महाध्वनिम्॥ ३०॥

तब पर्वतके समान विशाल शरीरवाले तेजस्वी श्रीमान् हनुमान् भी अपनी पूँछको पृथ्वीपर पटककर बड़े जोरसे गर्जने लगे॥ ३०॥

स भूत्वा तु महाकायो हनूमान् मारुतात्मजः।
पुच्छमास्फोटयामास लङ्कां शब्देन पूरयन्॥ ३१॥

पवनपुत्र हनुमान् अत्यन्त विशाल शरीर धारण करके अपनी पूँछ फटकारने और उसके शब्दसे लङ्काको प्रतिध्वनित करने लगे ॥ ३१ ॥

तस्यास्फोटितशब्देन महता चानुनादिना।
पेतुर्विहङ्गा गगनादुच्चैश्चेदमघोषयत् ॥ ३२ ॥

उनकी पूँछ फटकारनेका गम्भीर घोष बहुत दूरतक गूँज उठता था। उससे भयभीत हो पक्षी आकाशसे गिर पड़ते थे। उस समय हनुमान्जीने उच्च स्वरसे इस प्रकार घोषणा की—॥ ३२ ॥

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥ ३३ ॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनूमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः ॥ ३४ ॥
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः ॥ ३५ ॥
अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥ ३६ ॥

'अत्यन्त बलवान् भगवान् श्रीराम तथा महाबली लक्ष्मणकी जय हो। श्रीरघुनाथजीके द्वारा सुरक्षित राजा सुग्रीवकी भी जय हो। मैं अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले कोसलनरेश श्रीरामचन्द्रजीका दास हूँ। मेरा नाम हनुमान् है। मैं वायुका पुत्र तथा शत्रुसेनाका संहार करनेवाला हूँ। जब मैं हजारों वृक्ष और पत्थरोंसे प्रहार करने लगूँगा, उस समय सहस्रों रावण मिलकर भी युद्धमें मेरे बलकी समानता अथवा मेरा सामना नहीं कर सकते। मैं लङ्कापुरीको तहस-नहस कर डालूँगा और मिथिलेशकुमारी सीताको प्रणाम करनेके अनन्तर सब राक्षसोंके देखते-देखते अपना कार्य सिद्ध करके जाऊँगा' ॥ ३३—३६ ॥

तस्य संनादशब्देन तेऽभवन् भयशङ्किताः।
ददृशुश्च हनूमन्तं संध्यामेघमिवोन्नतम् ॥ ३७ ॥

हनुमान्जीकी इस गर्जनासे समस्त राक्षसोंपर भय एवं आतङ्क छा गया। उन सबने हनुमान्जीको देखा। वे संध्याकालके ऊँचे मेघके समान लाल एवं विशालकाय दिखायी देते थे ॥ ३७ ॥

स्वामिसंदेशनिःशङ्कास्ततस्ते राक्षसाः कपिम्।
चित्रैः प्रहरणैर्भीमैरभिपेतुस्ततस्ततः ॥ ३८ ॥

हनुमान्जीने अपने स्वामीका नाम लेकर स्वयं ही अपना परिचय दे दिया था, इसलिये राक्षसोंको उन्हें पहचाननेमें कोई संदेह नहीं रहा। वे नाना प्रकारके भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए चारों ओरसे उनपर टूट पड़े ॥ ३८ ॥

स तैः परिवृतः शूरैः सर्वतः स महाबलः।
आससादायसं भीमं परिघं तोरणाश्रितम् ॥ ३९ ॥

उन शूरवीर राक्षसोंद्वारा सब ओरसे घिर जानेपर महाबली हनुमान्ने फाटकपर रखा हुआ एक भयंकर लोहेका परिघ उठा लिया ॥ ३९ ॥

स तं परिघमादाय जघान रजनीचरान्।
सपन्नगमिवादाय स्फुरन्तं विनतासुतः ॥ ४० ॥

जैसे विनतानन्दन गरुड़ने छटपटाते हुए सर्पको पंजोंमें दाब रक्खा हो, उसी प्रकार उस परिघको हाथमें लेकर हनुमान्जीने उन निशाचरोंका संहार आरम्भ किया ॥ ४० ॥

विचचाराम्बरे वीरः परिगृह्य च मारुतिः।
सूदयामास वज्रेण दैत्यानिव सहस्रदृक् ॥ ४१ ॥

वीर पवनकुमार उस परिघको लेकर आकाशमें विचरने लगे। जैसे सहस्रनेत्रधारी इन्द्र अपने वज्रसे दैत्योंका वध करते हैं, उसी प्रकार उन्होंने उस परिघसे सामने आये हुए समस्त राक्षसोंको मार डाला ॥ ४१ ॥

स हत्वा राक्षसान् वीरः किंकरान् मारुतात्मजः।
युद्धाकाङ्क्षी महावीरस्तोरणं समवस्थितः ॥ ४२ ॥

उन किंकर नामधारी राक्षसोंका वध करके महावीर पवनपुत्र हनुमान्जी युद्धकी इच्छासे पुनः उस फाटकपर खड़े हो गये ॥ ४२ ॥

ततस्तस्माद् भयान्मुक्ताः कतिचित्तत्र राक्षसाः।
निहतान् किंकरान् सर्वान् रावणाय न्यवेदयन् ॥ ४३ ॥

तदनन्तर वहाँ उस भयसे मुक्त हुए कुछ राक्षसोंने जाकर रावणको यह समाचार निवेदन किया कि समस्त किंकर नामक राक्षस मार डाले गये ॥ ४३ ॥

स राक्षसानां निहतं महाबलं
निशम्य राजा परिवृत्तलोचनः।
समादिदेशाप्रतिमं पराक्रमे
प्रहस्तपुत्रं समरे सुदुर्जयम् ॥ ४४ ॥

राक्षसोंकी उस विशाल सेनाको मारी गयी सुनकर राक्षसराज रावणकी आँखें चढ़ गयीं और उसने प्रहस्तके पुत्रको जिसके पराक्रमकी कहीं तुलना नहीं थी तथा युद्धमें जिसे परास्त करना नितान्त कठिन था, हनुमान्जीका सामना करनेके लिये भेजा ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें बयालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः

हनुमान्‌जीके द्वारा चैत्यप्रासादका विध्वंस तथा उसके रक्षकोंका वध

ततः स किंकरान् हत्वा हनूमान् ध्यानमास्थितः।
वनं भग्नं मया चैत्यप्रासादो न विनाशितः ॥ १ ॥

इधर किंकरोंका वध करके हनुमान्‌जी यह सोचने लगे कि 'मैंने वनको तो उजाड़ दिया, परंतु इस चैत्यप्रासादको नष्ट नहीं किया है ॥ १ ॥

तस्मात् प्रासादमप्येवमिमं विध्वंसयाम्यहम्।
इति संचिन्त्य हनुमान् मनसा दर्शयन् बलम् ॥ २ ॥
चैत्यप्रासादमुत्प्लुत्य मेरुशृङ्गमिवोन्नतम्।
आरुरोह हरिश्रेष्ठो हनूमान् मारुतात्मजः ॥ ३ ॥

'अतः आज इस चैत्यप्रासादका भी विध्वंस किये देता हूँ। मन-ही-मन ऐसा विचारकर पवनपुत्र वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जी अपने बलका प्रदर्शन करते हुए मेरुपर्वतके शिखरकी भाँति ऊँचे उस चैत्यप्रासादपर उछलकर चढ़ गये ॥ २-३ ॥

आरुह्य गिरिसंकाशं प्रासादं हरियूथपः।
बभौ स सुमहातेजाः प्रतिसूर्य इवोदितः ॥ ४ ॥

उस पर्वताकार प्रासादपर चढ़कर महातेजस्वी वानर-यूथपति हनुमान् तुरंतके उगे हुए दूसरे सूर्यकी भाँति शोभा पाने लगे ॥ ४ ॥

सम्प्रधृष्य तु दुर्धर्षश्चैत्यप्रासादमुन्नतम्।
हनूमान् प्रज्वलँल्लक्ष्म्या पारियात्रोपमोऽभवत्॥ ५ ॥

उस ऊँचे प्रासादपर आक्रमण करके दुर्धर्ष वीर हनुमान्‌जी अपनी सहज शोभासे उद्भासित होते हुए पारियात्र पर्वतके समान प्रतीत होने लगे ॥ ५ ॥

स भूत्वा सुमहाकायः प्रभावान् मारुतात्मजः।
धृष्टमास्फोटयामास लङ्कां शब्देन पूरयन् ॥ ६ ॥

वे तेजस्वी पवनकुमार विशाल शरीर धारण करके लङ्काको प्रतिध्वनित करते हुए धृष्टतापूर्वक उस प्रासादको तोड़ने-फोड़ने लगे ॥ ६ ॥

तस्यास्फोटितशब्देन महता श्रोत्रघातिना।
पेतुर्विहंगमास्तत्र चैत्यपालाश्च मोहिताः ॥ ७ ॥

जोर-जोरसे होनेवाला वह तोड़-फोड़का शब्द कानोंसे टकराकर उन्हें बहरा किये देता था। इससे मूर्छित हो वहाँके पक्षी और प्रासादरक्षक भी पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ७ ॥

अस्त्रविज्जयतां रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥ ८ ॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनूमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः ॥ ९ ॥
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः ॥ १० ॥
धर्षयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥ ११ ॥

उस समय हनुमान्‌जीने पुनः यह घोषणा की—'अस्त्रवेत्ता भगवान् श्रीराम तथा महाबली लक्ष्मणकी जय हो। श्रीरघुनाथजीके द्वारा सुरक्षित राजा सुग्रीवकी भी जय हो। मैं अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले कोसलनरेश श्रीरामचन्द्रजीका दास हूँ। मेरा नाम हनुमान् है। मैं वायुका पुत्र तथा शत्रुसेनाका संहार करनेवाला हूँ। जब मैं हजारों वृक्षों और पत्थरोंसे प्रहार करने लगूँगा, उस समय सहस्रों रावण मिलकर भी युद्धमें मेरे बलकी समानता अथवा मेरा सामना नहीं कर सकते। मैं लङ्कापुरीको तहस-नहस कर डालूँगा और मिथिलेशकुमारी सीताको प्रणाम करनेके अनन्तर सब राक्षसोंके देखते-देखते अपना कार्य सिद्ध करके जाऊँगा' ८-११

एवमुक्त्वा महाकायश्चैत्यस्थो हरियूथपः।
ननाद भीमनिर्ह्रादो रक्षसां जनयन् भयम् ॥ १२ ॥

ऐसा कहकर चैत्यप्रासादपर खड़े हुए विशालकाय वानरयूथपति हनुमान् राक्षसोंके मनमें भय उत्पन्न करते हुए भयानक आवाजमें गर्जना करने लगे ॥ १२ ॥

तेन नादेन महता चैत्यपालाः शतं ययुः।
गृहीत्वा विविधानस्त्रान् प्रासान् खड्गान् परश्वधान् १३

उस भीषण गर्जनासे प्रभावित हो सैकड़ों प्रासादरक्षक नाना प्रकारके प्रास, खड्ग और फरसे लिये वहाँ आये ॥ १३ ॥

विसृजन्तो महाकाया मारुतिं पर्यवारयन्।
ते गदाभिर्विचित्राभिः परिघैः काञ्चनाङ्गदैः ॥ १४ ॥
आजग्मुर्वानरश्रेष्ठं बाणैश्चादित्यसंनिभैः।

उन विशालकाय राक्षसोंने उन सब अस्त्रोंका प्रहार करते हुए वहाँ पवनकुमार हनुमान्‌जीको घेर लिया। विचित्र गदाओं, सोनेके पत्र जड़े हुए परिघों और सूर्यतुल्य तेजस्वी बाणोंसे सुसज्जित हो वे सब-के-सब उन वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌पर चढ़ आये ॥ १४½ ॥

आवर्त इव गङ्गायास्तोयस्य विपुलो महान् ॥ १५ ॥
परिक्षिप्य हरिश्रेष्ठं स बभौ रक्षसां गणः।

वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌को चारों ओरसे घेरकर खड़ा हुआ राक्षसोंका वह महान् समुदाय गङ्गाजीके जलमें उठी हुई बड़ी भारी भँवरके समान जान पड़ता था ॥ १५½ ॥

ततो वातात्मजः क्रुद्धो भीमरूपं समास्थितः ॥ १६ ॥
प्रासादस्य महांस्तस्य स्तम्भं हेमपरिष्कृतम्।
उत्पाटयित्वा वेगेन हनूमान् मारुतात्मजः ॥ १७ ॥
ततस्तं भ्रामयामास शतधारं महाबलः।

---

१. लङ्कामें राक्षसोंके कुलदेवताका जो स्थान था, उसीका नाम चैत्यप्रासाद रक्खा गया था।

तत्र चाग्निः समभवत् प्रासादश्चाप्यदह्यत ॥ १८ ॥

तब राक्षसोंको इस प्रकार आक्रमण करते देख पवनकुमार हनुमान्‌ने कुपित हो बड़ा भयंकर रूप धारण किया। उन महावीरने उस प्रासादके एक सुवर्णभूषित खंभेको, जिसमें सौ धारें थीं, बड़े वेगसे उखाड़ लिया। उखाड़कर उन महाबली वीरने उसे घुमाना आरम्भ किया। घुमानेपर उससे आग प्रकट हो गयी, जिससे वह प्रासाद जलने लगा ।१६-१८।

दह्यमानं ततो दृष्ट्वा प्रासादं हरियूथपः।
स राक्षसशतं हत्वा वज्रेणेन्द्र इवासुरान् ॥ १९ ॥
अन्तरिक्षस्थितः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत्।

प्रासादको जलते देख वानरयूथपति हनुमान्‌ने वज्रसे असुरोंका संहार करनेवाले इन्द्रकी भाँति उन सैकड़ों राक्षसोंको उस खंभेसे ही मार डाला और आकाशमें खड़े होकर उन तेजस्वी वीरने इस प्रकार कहा— ॥ १९½ ॥

मादृशानां सहस्राणि विसृष्टानि महात्मनाम् ॥ २० ॥
बलिनां वानरेन्द्राणां सुग्रीववशवर्तिनाम्।

'राक्षसो ! सुग्रीवके वशमें रहनेवाले मेरे-जैसे सहस्रों विशालकाय बलवान् वानरश्रेष्ठ सब ओर भेजे गये हैं ॥ २०½ ॥

अटन्ति वसुधां कृत्स्नां वयमन्ये च वानराः॥ २१ ॥
दशनागबलाः केचित् केचिद् दशगुणोत्तराः।
केचिन्नागसहस्रस्य बभूवुस्तुल्यविक्रमाः ॥ २२ ॥

'हम तथा दूसरे सभी वानर समूची पृथ्वीपर घूम रहे हैं। किन्हींमें दस हाथियोंका बल है तो किन्हींमें सौ हाथियोंका। कितने ही वानर एक सहस्र हाथियोंके समान बल-विक्रमसे सम्पन्न हैं ॥ २१-२२ ॥

सन्ति चौघबलाः केचित् सन्ति वायुबलोपमाः।
अप्रमेयबलाः केचित् तत्रासन् हरियूथपाः ॥ २३ ॥

'किन्हींका बल जलके महान् प्रवाहकी भाँति असह्य है। कितने ही वायुके समान बलवान् हैं और कितने ही वानरयूथपति अपने भीतर असीम बल धारण करते हैं ॥ २३ ॥

ईदृग्विधैस्तु हरिभिर्वृतो दन्तनखायुधैः।
शतैः शतसहस्रैश्च कोटिभिश्चायुतैरपि ॥ २४ ॥
आगमिष्यति सुग्रीवः सर्वेषां वो निषूदनः।

'दाँत और नख ही जिनके आयुध हैं ऐसे अनन्त बलशाली सैकड़ों, हजारों, लाखों और करोड़ों वानरोंसे घिरे हुए वानरराज सुग्रीव यहाँ पधारेंगे, जो तुम सब निशाचरोंका संहार करनेमें समर्थ हैं ॥ २४½ ॥

नेयमस्ति पुरी लङ्का न यूयं न च रावणः।
यस्य त्विक्ष्वाकुवीरेण बद्धं वैरं महात्मना ॥ २५ ॥

'अब न तो यह लङ्कापुरी रहेगी; न तुमलोग रहोगे और न वह रावण ही रह सकेगा, जिसने इक्ष्वाकुवंशी वीर महात्मा श्रीरामके साथ वैर बाँध रक्खा है' ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें तैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः

प्रहस्त-पुत्र जम्बुमालीका वध

संदिष्टो राक्षसेन्द्रेण प्रहस्तस्य सुतो बली।
जम्बुमाली महादंष्ट्रो निर्जगाम धनुर्धरः ॥ १ ॥

राक्षसराज रावणकी आज्ञा पाकर प्रहस्तका बलवान् पुत्र जम्बुमाली, जिसकी दाढ़ें बहुत बड़ी थीं, हाथमें धनुष लिये राजमहलसे बाहर निकला ॥ १ ॥

रक्तमाल्याम्बरधरः स्रग्वी रुचिरकुण्डलः।
महान् विवृत्तनयनश्चण्डः समरदुर्जयः ॥ २ ॥

वह लाल रंगके फूलोंकी माला और लाल रंगके ही वस्त्र पहने हुए था। उसके गलेमें हार और कानोंमें सुन्दर कुण्डल शोभा दे रहे थे। उसकी आँखें घूम रही थीं। वह विशालकाय, क्रोधी और संग्राममें दुर्जय था ॥ २ ॥

धनुः शक्रधनुःप्रख्यं महद् रुचिरसायकम्।
विस्फारयाणो वेगेन वज्राशनिसमस्वनम् ॥ ३ ॥

उसका धनुष इन्द्रधनुषके समान विशाल था। उसके द्वारा छोड़े जानेवाले बाण भी बड़े सुन्दर थे। जब वह वेगसे उस धनुषको खींचता, तब उससे वज्र और अशनिके समान गड़गड़ाहट पैदा होती थी ॥ ३ ॥

तस्य विस्फारघोषेण धनुषो महता दिशः।
प्रदिशश्च नभश्चैव सहसा समपूर्यत ॥ ४ ॥

उस धनुषकी महती टंकार-ध्वनिसे सम्पूर्ण दिशाएँ, विदिशाएँ और आकाश सभी सहसा गूँज उठे ॥ ४ ॥

रथेन खरयुक्तेन तमागतमुदीक्ष्य सः।
हनूमान् वेगसम्पन्नो जहर्ष च ननाद च ॥ ५ ॥

वह गधे जुते हुए रथपर बैठकर आया था। उसे देखकर वेगशाली हनुमान्‌जी बड़े प्रसन्न हुए और जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ५ ॥

तं तोरणविटङ्कस्थं हनूमन्तं महाकपिम्।
जम्बुमाली महातेजा विव्याध निशितैः शरैः ॥ ६ ॥

महातेजस्वी जम्बुमालीने महाकपि हनुमान्‌जीको फाटकके छज्जेपर खड़ा देख उन्हें तीखे बाणोंसे बींधना आरम्भ कर दिया ॥ ६ ॥

अर्धचन्द्रेण वदने शिरस्येकेन कर्णिना।
बाह्वोर्विव्याध नाराचैर्दशभिस्तु कपीश्वरम् ॥ ७ ॥

उसने अर्द्धचन्द्रनामक बाणसे उनके मुखपर, कर्णीनामक

एक बाणसे मस्तकपर और दस नाराचोंसे उन कपीश्वरकी दोनों भुजाओंपर गहरी चोट की ॥ ७ ॥

तस्य तच्छुशुभे ताम्रं शरेणाभिहतं मुखम् ।
शरदीवाम्बुजं फुल्लं विद्धं भास्कररश्मिना ॥ ८ ॥

उसके बाणसे घायल हुआ हनुमान्‌जीका लाल मुँह शरद्-ऋतुमें सूर्यकी किरणोंसे विद्ध हो खिले हुए लाल कमलके समान शोभा पा रहा था ॥ ८ ॥

तत्तस्य रक्तं रक्तेन रञ्जितं शुशुभे मुखम् ।
यथाऽऽकाशे महापद्मं सिक्तं काञ्चनबिन्दुभिः ॥ ९ ॥

रक्तसे रञ्जित हुआ उनका वह रक्तवर्णका मुख ऐसी शोभा पा रहा था, मानो आकाशमें लाल रंगके विशाल कमलको सुवर्णमय जलकी बूँदोंसे सींच दिया गया हो—उस पर सोनेका पानी चढ़ा दिया गया हो ॥ ९ ॥

चुकोप बाणाभिहतो राक्षसस्य महाकपिः ।
ततः पार्श्वेऽतिविपुलां ददर्श महतीं शिलाम् ॥ १० ॥
तरसा तां समुत्पाट्य चिक्षेप जववद् बली ।

राक्षस जम्बुमालीके बाणोंकी चोट खाकर महाकपि हनुमान्‌जी कुपित हो उठे । उन्होंने अपने पास ही पत्थरकी एक बहुत बड़ी चट्टान पड़ी देखी और उसे वेगसे उठाकर उन बलवान् वीरने बड़े जोरसे उस राक्षसकी ओर फेंका ॥ १०½ ॥

तां शरैर्दशभिः क्रुद्धस्ताडयामास राक्षसः ॥ ११ ॥
विपन्नं कर्म तद् दृष्ट्वा हनूमांश्चण्डविक्रमः ।
सालं विपुलमुत्पाट्य भ्रामयामास वीर्यवान् ॥ १२ ॥

किंतु क्रोधमें भरे उस राक्षसने दस बाण मारकर उस प्रस्तर-शिलाको तोड़-फोड़ डाला । अपने उस कर्मको व्यर्थ हुआ देख प्रचण्ड पराक्रमी और बलशाली हनुमान्‌ने एक विशाल सालका वृक्ष उखाड़कर उसे घुमाना आरम्भ किया ॥ ११-१२ ॥

भ्रामयन्तं कपिं दृष्ट्वा सालवृक्षं महाबलम् ।
चिक्षेप सुबहून् बाणाञ्जम्बुमाली महाबलः ॥ १३ ॥

उन महान् बलशाली वानरवीरको सालका वृक्ष घुमाते देख महाबली जम्बुमालीने उनके ऊपर बहुत-से बाणोंकी वर्षा की ॥ १३ ॥

सालं चतुर्भिश्चिच्छेद वानरं पञ्चभिर्भुजे ।
उरस्येकेन बाणेन दशभिस्तु स्तनान्तरे ॥ १४ ॥

उसने चार बाणोंसे सालवृक्षको काट गिराया, पाँचसे हनुमान्‌जीकी भुजाओंमें, एक बाणसे उनकी छातीमें और दस बाणोंसे उनके दोनों स्तनोंके मध्यभागमें चोट पहुँचायी ॥

स शरैः पूरिततनुः क्रोधेन महता वृतः ।
तमेव परिघं गृह्य भ्रामयामास वेगितः ॥ १५ ॥

बाणोंसे हनुमान्‌जीका सारा शरीर भर गया । फिर तो उन्हें बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने उसी परिघको उठाकर उसे बड़े वेगसे घुमाना आरम्भ किया ॥ १५ ॥

अतिवेगोऽतिवेगेन भ्रामयित्वा बलोत्कटः ।
परिघं पातयामास जम्बुमालेर्महोरसि ॥ १६ ॥

अत्यन्त वेगवान् और उत्कट बलशाली हनुमान्‌ने बड़े वेगसे घुमाकर उस परिघको जम्बुमालीकी विशाल छातीपर दे मारा ॥ १६ ॥

तस्य चैव शिरो नास्ति न बाहू जानुनी न च ।
न धनुर्न रथो नाश्वास्तत्रादृश्यन्त नेषवः ॥ १७ ॥

फिर तो न उसके मस्तकका पता लगा और न दोनों भुजाओं तथा घुटनोंका ही । न धनुष बचा न रथ, न वहाँ घोड़े दिखायी दिये और न बाण ही ॥ १७ ॥

स हतस्तरसा तेन जम्बुमाली महारथः ।
पपात निहतो भूमौ चूर्णिताङ्ग इव द्रुमः ॥ १८ ॥

उस परिघसे वेगपूर्वक मारा गया महारथी जम्बुमाली चूर-चूर हुए वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १८ ॥

जम्बुमालिं सुनिहतं किंकरांश्च महाबलान् ।
चुक्रोध रावणः श्रुत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १९ ॥

जम्बुमाली तथा महाबली किंकरोंके मारे जानेका समाचार सुनकर रावणको बड़ा क्रोध हुआ । उसकी आँखें रोषसे रक्तवर्णकी हो गयीं ॥ १९ ॥

स रोषसंवर्तितताम्रलोचनः
प्रहस्तपुत्रे निहते महाबले ।
अमात्यपुत्रानतिवीर्यविक्रमान्
समादिदेशाशु निशाचरेश्वरः ॥ २० ॥

महाबली प्रहस्तपुत्र जम्बुमालीके मारे जानेपर निशाचरराज रावणके नेत्र रोषसे लाल होकर घूमने लगे । उसने तुरंत ही अपने मन्त्रीके पुत्रोंको, जो बड़े बलवान् और पराक्रमी थे, युद्धके लिये जानेकी आज्ञा दी ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें चौवालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः

मन्त्रीके सात पुत्रोंका वध

ततस्ते राक्षसेन्द्रेण चोदिता मन्त्रिणः सुताः ।
निर्ययुर्भवनात् तस्मात् सप्त सप्तार्चिवर्चसः ॥ १ ॥

राक्षसोंके राजा रावणकी आज्ञा पाकर मन्त्रीके सात बेटे, जो अग्निके समान तेजस्वी थे, उस राजमहलसे बाहर निकले ॥ १ ॥

महद्बलपरीवारा धनुष्मन्तो महाबलाः ।

कृतास्त्रास्त्रविदां श्रेष्ठाः परस्परजयैषिणः ॥ २ ॥

उनके साथ बहुत बड़ी सेना थी। वे अत्यन्त बलवान्, धनुर्धर, अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ तथा परस्पर होड़ लगाकर शत्रुपर विजय पानेकी इच्छा रखनेवाले थे ॥ २ ॥

हेमजालपरिक्षिप्तैर्ध्वजवद्भिः पताकिभिः।
तोयदस्वननिर्घोषैर्वाजियुक्तैर्महारथैः ॥ ३ ॥
तप्तकाञ्चनचित्राणि चापान्यमितविक्रमाः।
विस्फारयन्तः संहृष्टास्तडिद्वन्त इवाम्बुदाः ॥ ४ ॥

उनके घोड़े जुते हुए विशाल रथ सोनेकी जालीसे ढके हुए थे। उनपर ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही थीं और उनके पहियोंके चलनेसे मेघोंकी गम्भीर गर्जनाके समान ध्वनि होती थी। ऐसे रथोंपर सवार हो वे अमित पराक्रमी मन्त्रिकुमार तपाये हुए सोनेसे चित्रित अपने धनुषोंकी टङ्कार करते हुए बड़े हर्ष और उत्साहके साथ आगे बढ़े। उस समय वे सब-के-सब विद्युत्सहित मेघके समान शोभा पाते थे ॥ ३-४ ॥

जनन्यस्तास्ततस्तेषां विदित्वा किंकरान् हतान्।
बभूवुः शोकसम्भ्रान्ताः सबान्धवसुहृज्जनाः ॥ ५ ॥

तब, पहले जो किंकरनामक राक्षस मारे गये थे, उनकी मृत्युका समाचार पाकर इन सबकी माताएँ अमङ्गलकी आशङ्कासे भाई-बन्धु और सुहृदोंसहित शोकसे घबरा उठीं ॥ ५ ॥

ते परस्परसंघर्षात् तप्तकाञ्चनभूषणाः।
अभिपेतुर्हनूमन्तं तोरणस्थमवस्थितम् ॥ ६ ॥

तपाये हुए सोनेके आभूषणोंसे विभूषित वे सातों वीर परस्पर होड़-सी लगाकर फाटकपर खड़े हुए हनुमान्जी-पर टूट पड़े ॥ ६ ॥

सृजन्तो बाणवृष्टिं ते रथगर्जितनिःस्वनाः।
प्रावृट्काल इवाम्भोदा विचेरुर्नैर्ऋताम्बुदाः ॥ ७ ॥

जैसे वर्षाकालमें मेघ वर्षा करते हुए विचरते हैं, उसी प्रकार वे राक्षसरूपी बादल बाणोंकी वर्षा करते हुए वहाँ विचरण करने लगे। रथोंकी घर्घराहट ही उनकी गर्जना थी ॥ ७ ॥

अवकीर्णस्ततस्ताभिर्हनूमाञ्शरवृष्टिभिः।
अभवत् संवृताकारः शैलराडिव वृष्टिभिः ॥ ८ ॥

तदनन्तर राक्षसोंद्वारा की गयी उस बाण-वर्षासे हनुमान्जी उसी तरह आच्छादित हो गये, जैसे कोई गिरिराज जलकी वर्षासे ढक गया हो ॥ ८ ॥

स शरान् वञ्चयामास तेषामाशुचरः कपिः।
रथवेगांश्च वीराणां विचरन् विमलेऽम्बरे ॥ ९ ॥

उस समय निर्मल आकाशमें शीघ्रतापूर्वक विचरते हुए कपिवर हनुमान् उन राक्षसवीरोंके बाणों तथा रथके वेगोंको व्यर्थ करते हुए अपने-आपको बचाने लगे ॥ ९ ॥

स तैः क्रीडन् धनुष्मद्भिर्व्योम्नि वीरः प्रकाशते।
धनुष्मद्भिर्यथा मेघैर्मारुतः प्रभुरम्बरे ॥ १० ॥

जैसे व्योममण्डलमें शक्तिशाली वायुदेव इन्द्रधनुष-युक्त मेघोंके साथ क्रीडा करते हैं, उसी प्रकार वीर पवन-कुमार उन धनुर्धर वीरोंके साथ खेल-सा करते हुए आकाशमें अद्भुत शोभा पा रहे थे ॥ १० ॥

स कृत्वा निनदं घोरं त्रासयंस्तां महाचमूम्।
चकार हनुमान् वेगं तेषु रक्षःसु वीर्यवान् ॥ ११ ॥

पराक्रमी हनुमान्ने राक्षसोंकी उस विशाल वाहिनीको भयभीत करते हुए घोर गर्जना की और उन राक्षसोंपर बड़े वेगसे आक्रमण किया ॥ ११ ॥

तलेनाभिहनत् कांश्चित् पादैः कांश्चित् परंतपः।
मुष्टिभिश्चाहनत् कांश्चिन्नखैः कांश्चिद् व्यदारयत् ॥ १२ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले उन वानरवीरने किन्हींको थप्पड़से ही मार गिराया, किन्हींको पैरोंसे कुचल डाला, किन्हींका घूँसोंसे काम तमाम किया और किन्हींको नखोंसे फाड़ डाला ॥ १२ ॥

प्रममाथोरसा कांश्चिदूरुभ्यामपरानपि।
केचित् तस्यैव नादेन तत्रैव पतिता भुवि ॥ १३ ॥

कुछ लोगोंको छातीसे दबाकर उनका कचूमर निकाल दिया और किन्हीं-किन्हींको दोनों जाँघोंसे दबोचकर मसल डाला। कितने ही निशाचर उनकी गर्जनासे ही प्राणहीन होकर वहीं पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १३ ॥

ततस्तेष्ववपन्नेषु भूमौ निपतितेषु च।
तत्सैन्यमगमत् सर्वं दिशो दश भयार्दितम् ॥ १४ ॥

इस प्रकार जब मन्त्रीके सारे पुत्र मारे जाकर धराशायी हो गये, तब उनकी बची-खुची सारी सेना भयभीत होकर दसों दिशाओंमें भाग गयी ॥ १४ ॥

विनेदुर्विस्वरं नागा निपेतुर्भुवि वाजिनः।
भग्ननीडध्वजच्छत्रैर्भूश्च कीर्णाभवद् रथैः ॥ १५ ॥

उस समय हाथी वेदनाके मारे बुरी तरहसे चिग्घाड़ रहे थे, घोड़े धरतीपर मरे पड़े थे तथा जिनके बैठक, ध्वज और छत्र आदि खण्डित हो गये थे, ऐसे टूटे हुए रथोंसे समूची रणभूमि पट गयी थी ॥ १५ ॥

स्रवता रुधिरेणाथ स्रवन्त्यो दर्शिताः पथि।
विविधैश्च स्वनैर्लङ्का ननाद विकृतं तदा ॥ १६ ॥

मार्गमें खूनकी नदियाँ बहती दिखायी दीं तथा लङ्कापुरी राक्षसोंके विविध शब्दोंके कारण मानो उस समय विकृत स्वरसे चीत्कार कर रही थी ॥ १६ ॥

स तान् प्रवृद्धान् विनिहत्य राक्षसान्
महाबलश्चण्डपराक्रमः कपिः।
युयुत्सुरन्यैः पुनरेव राक्षसै-
स्तदेव वीरोऽभिजगाम तोरणम् ॥ १७ ॥

प्रचण्ड पराक्रमी और महाबली वानरवीर हनुमान्‌जी उन बढ़े-चढ़े राक्षसोंको मौतके घाट उतारकर दूसरे राक्षसोंके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे फिर उसी फाटकपर जा पहुँचे ॥ १७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें पैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः

रावणके पाँच सेनापतियोंका वध

हतान् मन्त्रिसुतान् बुद्ध्वा वानरेण महात्मना।
रावणः संवृताकारश्चकार मतिमुत्तमाम् ॥ १ ॥

महात्मा हनुमान्‌जीके द्वारा मन्त्रीके पुत्र भी मारे गये—यह जानकर रावणने भयभीत होनेपर भी अपने आकारको प्रयत्नपूर्वक छिपाया और उत्तम बुद्धिका आश्रय ले आगेके कर्तव्यका निश्चय किया ॥ १ ॥

स विरूपाक्षयूपाक्षौ दुर्धरं चैव राक्षसम्।
प्रघसं भासकर्णं च पञ्च सेनाग्रनायकान् ॥ २ ॥
संदिदेश दशग्रीवो वीरान् नयविशारदान्।
हनूमद्ग्रहणेऽव्यग्रान् वायुवेगसमान् युधि ॥ ३ ॥

दशग्रीवने विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर, प्रघस और भासकर्ण—इन पाँच सेनापतियोंको, जो बड़े वीर, नीतिनिपुण, धैर्यवान् तथा युद्धमें वायुके समान वेगशाली थे, हनुमान्‌जीको पकड़नेके लिये आज्ञा दी ॥ २-३ ॥

यात सेनाग्रगाः सर्वे महाबलपरिग्रहाः।
सवाजिरथमातङ्गाः स कपिः शास्यतामिति ॥ ४ ॥

उसने कहा—'सेनाके अग्रगामी वीरो! तुमलोग घोड़े, रथ और हाथियोंसहित बड़ी भारी सेना साथ लेकर जाओ और उस वानरको बलपूर्वक पकड़कर उसे अच्छी तरह शिक्षा दो ॥ ४ ॥

यत्तैश्च खलु भाव्यं स्यात् तमासाद्य वनालयम्।
कर्म चापि समाधेयं देशकालाविरोधितम् ॥ ५ ॥

'उस वनचारी वानरके पास पहुँचकर तुम सब लोगोंको सावधान और अत्यन्त प्रयत्नशील हो जाना चाहिये तथा काम वही करना चाहिये, जो देश और कालके अनुरूप हो ॥ ५ ॥

न ह्यहं तं कपिं मन्ये कर्मणा प्रति तर्कयन्।
सर्वथा तन्महद् भूतं महाबलपरिग्रहम् ॥ ६ ॥

'जब मैं उसके अलौकिक कर्मको देखते हुए उसके स्वरूपपर विचार करता हूँ, तब वह मुझे वानर नहीं जान पड़ता है। वह सर्वथा कोई महान् प्राणी है, जो महान् बलसे सम्पन्न है ॥ ६ ॥

वानरोऽयमिति ज्ञात्वा नहि शुद्ध्यति मे मनः।
नैवाहं तं कपिं मन्ये यथेयं प्रस्तुता कथा ॥ ७ ॥

''यह वानर है' ऐसा समझकर मेरा मन उसकी ओरसे शुद्ध (विश्वस्त) नहीं हो रहा है। यह जैसा प्रसङ्ग उपस्थित है, या जैसी बातें चल रही हैं. उन्हें देखते हुए मैं उसे वानर नहीं मानता हूँ ॥ ७ ॥

भवेदिन्द्रेण वा सृष्टमस्मदर्थं तपोबलात्।
सनागयक्षगन्धर्वदेवासुरमहर्षयः ॥ ८ ॥
युष्माभिः प्रहितैः सर्वैर्मया सह विनिर्जिताः।
तैरवश्यं विधातव्यं व्यलीकं किंचिदेव नः ॥ ९ ॥

'सम्भव है इन्द्रने हमलोगोंका विनाश करनेके लिये अपने तपोबलसे इसकी सृष्टि की हो। मेरी आज्ञासे तुम सब लोगोंने मेरे साथ रहकर नागोंसहित यक्षों, गन्धर्वों, देवताओं, असुरों और महर्षियोंको भी अनेक बार पराजित किया है; अतः वे अवश्य हमारा कुछ अनिष्ट करना चाहेंगे ॥

तदेव नात्र संदेहः प्रसह्य परिगृह्यताम्।
यात सेनाग्रगाः सर्वे महाबलपरिग्रहाः ॥ १० ॥
सवाजिरथमातङ्गाः स कपिः शास्यतामिति।

'अतः यह उन्हींका रचा हुआ प्राणी है, इसमें संदेह नहीं। तुमलोग उसे हठपूर्वक पकड़ ले आओ। मेरी सेनाके अग्रगामी वीरो! तुम हाथी, घोड़े और रथोंसहित बड़ी भारी सेना साथ लेकर जाओ और उस वानरको अच्छी तरह शिक्षा दो ॥ १०½ ॥

नावमन्यो भवद्भिश्च कपिर्धीरपराक्रमः ॥ ११ ॥
दृष्टा हि हरयः पूर्वं मया विपुलविक्रमाः।

'वानर समझकर तुम्हें उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वह धीर और पराक्रमी है। मैंने पहले बड़े-बड़े पराक्रमी वानर और भालू देखे हैं ॥ ११½ ॥

वाली च सह सुग्रीवो जाम्बवांश्च महाबलः ॥ १२ ॥
नीलः सेनापतिश्चैव ये चान्ये द्विविदादयः।

'जिनके नाम इस प्रकार हैं—वाली, सुग्रीव, महाबली जाम्बवान्, सेनापति नील तथा द्विविद आदि अन्य वानर ॥ १२½ ॥

नैव तेषां गतिर्भीमा न तेजो न पराक्रमः ॥ १३ ॥
न मतिर्न बलोत्साहौ न रूपपरिकल्पनम्।

'किंतु उनका वेग ऐसा भयंकर नहीं है और न उनमें ऐसा तेज, पराक्रम, बुद्धि, बल, उत्साह तथा रूप धारण करनेकी शक्ति ही है ॥ १३½ ॥

महत्सत्त्वमिदं ज्ञेयं कपिरूपं व्यवस्थितम् ॥ १४ ॥
प्रयत्नं महदास्थाय क्रियतामस्य निग्रहः ।

'वानरके रूपमें यह कोई बड़ा शक्तिशाली जीव प्रकट हुआ है, ऐसा जानना चाहिये । अतः तुमलोग महान् प्रयत्न करके उसे कैद करो ॥ १४½ ॥

कामं लोकास्त्रयः सेन्द्राः ससुरासुरमानवाः ॥ १५ ॥
भवतामग्रतः स्थातुं न पर्याप्ता रणाजिरे ।

'भले ही इन्द्रसहित देवता, असुर, मनुष्य एवं तीनों लोक उतर आयें, वे रणभूमिमें तुम्हारे सामने ठहर नहीं सकते ॥ १५½ ॥

तथापि तु नयज्ञेन जयमाकाङ्क्षता रणे ॥ १६ ॥
आत्मा रक्ष्यः प्रयत्नेन युद्धसिद्धिर्हि चञ्चला ।

'तथापि समराङ्गणमें विजयकी इच्छा रखनेवाले नीतिज्ञ पुरुषको यत्नपूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि युद्धमें सफलता अनिश्चित होती है' ॥ १६½ ॥

ते स्वामिवचनं सर्वे प्रतिगृह्य महौजसः ॥ १७ ॥
समुत्पेतुर्महावेगा हुताशसमतेजसः ।
रथैश्च मत्तैर्नागैश्च वाजिभिश्च महाजवैः ॥ १८ ॥
शस्त्रैश्च विविधैस्तीक्ष्णैः सर्वैश्चोपचिता बलैः ।

स्वामीकी आज्ञा स्वीकार करके वे सब-के-सब अग्निके समान तेजस्वी, महान् वेगशाली और अत्यन्त बलवान् राक्षस तेज चलनेवाले घोड़ों, मतवाले हाथियों तथा विशाल रथोंपर बैठकर युद्धके लिये चल दिये । वे सब प्रकारके तीखे शस्त्रों और सेनाओंसे सम्पन्न थे ॥१७-१८½॥

ततस्तु ददृशुर्वीरा दीप्यमानं महाकपिम् ॥ १९ ॥
रश्मिमन्तमिवोद्यन्तं स्वतेजोरश्मिमालिनम् ।
तोरणस्थं महावेगं महासत्त्वं महाबलम् ॥ २० ॥
महामतिं महोत्साहं महाकायं महाभुजम् ।

आगे जानेपर उन वीरोंने देखा महाकपि हनुमान्जी फाटकपर खड़े हैं और अपनी तेजोमयी किरणोंसे मण्डित हो उदयकालके सूर्यकी भाँति देदीप्यमान हो रहे हैं । उनकी शक्ति, बल, वेग, बुद्धि, उत्साह, शरीर और भुजाएँ सभी महान् थीं ॥ १९-२०½ ॥

तं समीक्ष्यैव ते सर्वे दिक्षु सर्वास्ववस्थिताः ॥ २१ ॥
तैस्तैः प्रहरणैर्भीमैरभिपेतुस्ततस्ततः ।

उन्हें देखते ही वे सब राक्षस, जो सभी दिशाओंमें खड़े थे, भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए चारों ओरसे उनपर टूट पड़े ॥ २१½ ॥

तस्य पञ्चायसास्तीक्ष्णाः सिताः पीतमुखाः शराः ।
शिरस्युत्पलपत्राभा दुर्धरेण निपातिताः ॥ २२ ॥

निकट पहुँचनेपर पहले दुर्धरने हनुमान्जीके मस्तकपर लोहेके बने हुए पाँच बाण मारे । वे सभी बाण मर्मभेदी और पैनी धारवाले थे । उनके अग्रभागपर सोनेका पानी दिया गया था । जिससे वे पीतमुख दिखायी देते थे । वे पाँचों बाण उनके सिरपर प्रफुल्लकमलदलके समान शोभा पा रहे थे ॥ २२ ॥

स तैः पञ्चभिराविद्धः शरैः शिरसि वानरः ।
उत्पपात नदन् व्योम्नि दिशो दश विनादयन् ॥ २३ ॥

मस्तकमें उन पाँच बाणोंसे गहरी चोट खाकर वानरवीर हनुमान्जी अपनी भीषण गर्जनासे दसों दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए आकाशमें ऊपरकी ओर उछल पड़े ॥

ततस्तु दुर्धरो वीरः सरथः सज्जकार्मुकः ।
किरञ्शरशतैर्नैकैरभिपेदे महाबलः ॥ २४ ॥

तब रथमें बैठे हुए महाबली वीर दुर्धरने धनुष चढ़ाये कई सौ बाणोंकी वर्षा करते हुए उनका पीछा किया ॥ २४ ॥

स कपिर्वारयामास तं व्योम्नि शरवर्षिणम् ।
वृष्टिमन्तं पयोदान्ते पयोदमिव मारुतः ॥ २५ ॥

आकाशमें खड़े हुए उन वानरवीरने बाणोंकी वर्षा करते हुए दुर्धरको अपने हुंकारमात्रसे उसी प्रकार रोक दिया, जैसे वर्षा-ऋतुके अन्तमें वृष्टि करनेवाले बादलको वायु रोक देती है ॥ २५ ॥

अर्द्यमानस्ततस्तेन दुर्धरेणानिलात्मजः ।
चकार निनदं भूयो व्यवर्धत च वीर्यवान् ॥ २६ ॥

जब दुर्धर अपने बाणोंसे अधिक पीड़ा देने लगा, तब वे परम पराक्रमी पवनकुमार पुनः विकट गर्जना करने और अपने शरीरको बढ़ाने लगे ॥ २६ ॥

स दूरं सहसोत्पत्य दुर्धरस्य रथे हरिः ।
निपपात महावेगो विद्युद्राशिर्गिराविव ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् वे महावेगशाली वानरवीर बहुत दूरतक ऊँचे उछलकर सहसा दुर्धरके रथपर कूद पड़े, मानो किसी पर्वतपर बिजलीका समूह गिर पड़ा हो ॥ २७ ॥

ततः स मथिताष्टाश्वं रथं भग्नाक्षकूबरम् ।
विहाय न्यपतद् भूमौ दुर्धरस्त्यक्तजीवितः ॥ २८ ॥

उनके भारसे रथके आठों घोड़ोंका कचूमर निकल गया, धुरी और कूबर टूट गये तथा दुर्धर प्राणहीन हो उस रथको छोड़कर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २८ ॥

तं विरूपाक्षयूपाक्षौ दृष्ट्वा निपतितं भुवि ।
तौ जातरोषौ दुर्धर्षावुत्पेततुररिंदमौ ॥ २९ ॥

दुर्धरको धराशायी हुआ देख शत्रुओंका दमन करनेवाले दुर्धर्ष वीर विरूपाक्ष और यूपाक्षको बड़ा क्रोध हुआ । वे दोनों आकाशमें उछले ॥ २९ ॥

स ताभ्यां सहसोत्प्लुत्य विष्ठितो विमलेऽम्बरे ।
मुद्गराभ्यां महाबाहुर्वक्षस्यभिहतः कपिः ॥ ३० ॥

उन दोनोंने सहसा उछलकर निर्मल आकाशमें खड़े हुए महाबाहु कपिवर हनुमान्जीकी छातीमें मुद्गरोंसे प्रहार किया ॥ ३० ॥

तयोर्वेगवतोर्वेगं निहत्य स महाबलः।
निपपात पुनर्भूमौ सुपर्ण इव वेगितः॥ ३१॥

उन दोनों वेगवान् वीरोंके वेगको विफल करके महाबली हनुमान्‌जी वेगशाली गरुड़के समान पुनः पृथ्वीपर कूद पड़े॥ ३१॥

स सालवृक्षमासाद्य समुत्पाट्य च वानरः।
तावुभौ राक्षसौ वीरौ जघान पवनात्मजः॥ ३२॥

वहाँ वानरशिरोमणि पवनकुमारने एक साल-वृक्षके पास जाकर उसे उखाड़ लिया और उसीके द्वारा उन दोनों राक्षसवीरोंको मार डाला॥ ३२॥

ततस्तांस्त्रीन् हताञ्ज्ञात्वा वानरेण तरस्विना।
अभिपेदे महावेगः प्रहस्य प्रघसो बली॥ ३३॥
भासकर्णश्च संक्रुद्धः शूलमादाय वीर्यवान्।
एकतः कपिशार्दूलं यशस्विनमवस्थितौ॥ ३४॥

उन वेगशाली वानरवीरके द्वारा उन तीनों राक्षसोंको मारा गया देख महान् वेगसे युक्त बलवान् वीर प्रघस हँसता हुआ उनके पास आया। दूसरी ओरसे पराक्रमी वीर भासकर्ण भी अत्यन्त क्रोधमें भरकर शूल हाथमें लिये वहाँ आ पहुँचा। वे दोनों यशस्वी कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीके निकट एक ही ओर खड़े हो गये॥ ३३-३४॥

पट्टिशेन शिताग्रेण प्रघसः प्रत्यपोथयत्।
भासकर्णश्च शूलेन राक्षसः कपिकुञ्जरम्॥ ३५॥

प्रघसने तेज धारवाले पट्टिशसे तथा राक्षस भासकर्णने शूलसे कपिकुञ्जर हनुमान्‌जीपर प्रहार किया॥ ३५॥

स ताभ्यां विक्षतैर्गात्रैरसृग्दिग्धतनूरुहः।
अभवद् वानरः क्रुद्धो बालसूर्यसमप्रभः॥ ३६॥

उन दोनोंके प्रहारोंसे हनुमान्‌जीके शरीरमें कई जगह घाव हो गये और उनके शरीरकी रोमावली रक्तसे रँग गयी। उस समय क्रोधमें भरे हुए वानरवीर हनुमान् प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुण कान्तिसे प्रकाशित हो रहे थे॥

समुत्पाट्य गिरेः शृङ्गं समृगव्यालपादपम्।
जघान हनुमान् वीरो राक्षसौ कपिकुञ्जरः।
गिरिशृङ्गसुनिष्पिष्टौ तिलशस्तौ बभूवतुः॥ ३७॥

तब मृग, सर्प और वृक्षोंसहित एक पर्वत-शिखरको उखाड़कर कपिश्रेष्ठ वीर हनुमान्‌ने उन दोनों राक्षसोंपर दे मारा। पर्वत-शिखरके आघातसे वे—दोनों पिस गये और उनके शरीर तिलके समान खण्ड-खण्ड हो गये॥ ३७॥

ततस्तेष्ववसन्नेषु सेनापतिषु पञ्चसु।
बलं तदवशेषं तु नाशयामास वानरः॥ ३८॥

इस प्रकार उन पाँचों सेनापतियोंके नष्ट हो जानेपर हनुमान्‌जीने उनकी बची-खुची सेनाका भी संहार आरम्भ किया॥ ३८॥

अश्वैरश्वान् गजैर्नागान् योधैर्योधान् रथै रथान्।
स कपिर्नाशयामास सहस्राक्ष इवासुरान्॥ ३९॥

जैसे देवराज इन्द्र असुरोंका विनाश करते हैं, उसी प्रकार उन वानरवीरने घोड़ोंसे घोड़ोंका, हाथियोंसे हाथियोंका, योद्धाओंसे योद्धाओंका और रथोंसे रथोंका संहार कर डाला॥ ३९॥

हयैर्नागैस्तुरंगैश्च भग्नाक्षैश्च महारथैः।
हतैश्च राक्षसैर्भूमी रुद्धमार्गा समन्ततः॥ ४०॥

मरे हुए हाथियों और तीव्रगामी घोड़ोंसे, टूटी हुई धुरीवाले विशाल रथोंसे तथा मारे गये राक्षसोंकी लाशोंसे वहाँकी सारी भूमि चारों ओरसे इस तरह पट गयी थी कि आने-जानेका रास्ता बंद हो गया था॥ ४०॥

ततः कपिस्तान् ध्वजिनीपतीन् रणे
निहत्य वीरान् सबलान् सवाहनान्।
तथैव वीरः परिगृह्य तोरणं
कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये॥ ४१॥

इस प्रकार सेना और वाहनोंसहित उन पाँचों वीर सेनापतियोंको रणभूमिमें मौतके घाट उतारकर महावीर वानर हनुमान्‌जी पुनः युद्धके लिये अवसर पाकर पहलेकी ही भाँति फाटकपर जाकर खड़े हो गये। उस समय वे प्रजाका संहार करनेके लिये उद्यत हुए कालके समान जान पड़ते थे॥ ४१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः॥ ४६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें छियालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ४६॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः

रावणपुत्र अक्षकुमारका पराक्रम और वध

सेनापतीन् पञ्च स तु प्रमापितान्
हनूमता सानुचरान् सवाहनान्।
निशम्य राजा समरोद्धतोन्मुखं
कुमारमक्षं प्रसमैक्षताक्षम्॥ १॥

हनुमान्‌जीके द्वारा अपने पाँच सेनापतियोंको सेवकों और वाहनोंसहित मारा गया सुनकर राजा रावणने अपने सामने बैठे हुए पुत्र अक्षकुमारकी ओर देखा, जो युद्धमें उद्धत और उसके लिये उत्कण्ठित रहनेवाला था॥ १॥

स तस्य दृष्टयर्पणसम्प्रचोदितः
प्रतापवान् काञ्चनचित्रकार्मुकः।
समुत्पपाताथ सदस्युदीरितो
द्विजातिमुख्यैर्हविषेव पावकः॥ २॥

पिताके दृष्टिपात मात्रसे प्रेरित हो वह प्रतापी वीर युद्धके लिये उत्साहपूर्वक उठा। उसका धनुष सुवर्णजटित होनेके कारण विचित्र शोभा धारण करता था। जैसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा यज्ञशालामें हविष्यकी आहुति देनेपर अग्निदेव प्रज्वलित हो उठते हैं, उसी प्रकार वह भी सभामें उठकर खड़ा हो गया ॥ २ ॥

ततो महान् बालदिवाकरप्रभं
प्रतप्तजाम्बूनदजालसंततम् ।
रथं समास्थाय ययौ स वीर्यवान्
महाहरिं तं प्रति नैर्ऋतर्षभः ॥ ३ ॥

वह महापराक्रमी राक्षसशिरोमणि अक्ष प्रातःकालीन सूर्यके समान कान्तिमान् तथा तपाये हुए सुवर्णके जालसे आच्छादित रथपर आरूढ़ हो उन महाकपि हनुमान्‌जीके पास चल दिया ॥ ३ ॥

ततस्तपःसंग्रहसंचयार्जितं
प्रतप्तजाम्बूनदजालचित्रितम् ।
पताकिनं रत्नविभूषितध्वजं
मनोजवाष्टाश्ववरैः सुयोजितम् ॥ ४ ॥
सुरासुराधृष्यमसङ्गचारिणं
तडित्प्रभं व्योमचरं समाहितम् ।
सतूणमष्टासिनिबद्धबन्धुरं
यथाक्रमावेशितशक्तितोमरम् ॥ ५ ॥
विराजमानं प्रतिपूर्णवस्तुना
सहेमदाम्ना शशिसूर्यवर्चसा ।
दिवाकराभं रथमास्थितस्ततः
स निर्जगामामरतुल्यविक्रमः ॥ ६ ॥

वह रथ उसे बड़ी भारी तपस्याओंके संग्रहसे प्राप्त हुआ था। उसमें तपे हुए जाम्बूनद (सुवर्ण) की जाली जड़ी हुई थी। पताका फहरा रही थी। उसका ध्वजदण्ड रत्नोंसे विभूषित था। उसमें मनके समान वेगवाले आठ घोड़े अच्छी तरह जुते हुए थे। देवता और असुर कोई भी उस रथको नष्ट नहीं कर सकते थे। उसकी गति कहीं रुकती नहीं थी। वह बिजलीके समान प्रकाशित होता और आकाशमें भी चलता था। उस रथको सब सामग्रियोंसे सुसज्जित किया गया था। उसमें तरकस रक्खे गये थे। आठ तलवारोंके बँधे रहनेसे वह और भी सुन्दर दिखायी देता था। उसमें यथास्थान शक्ति और तोमर आदि अस्त्र-शस्त्र क्रमसे रक्खे गये थे। चन्द्रमा और सूर्यके समान दीप्तिमान् तथा सोनेकी रस्सीसे युक्त युद्धके समस्त उपकरणोंसे सुशोभित उस सूर्यतुल्य तेजस्वी रथपर बैठकर देवताओंके तुल्य पराक्रमी अक्षकुमार राजमहलसे बाहर निकला ॥ ४—६ ॥

स पूरयन् खं च महीं च साचलां
तुरङ्गमातङ्गमहारथस्वनैः ।
बलैः समेतैः स हि तोरणस्थितं
समर्थमासीनमुपागमत् कपिम् ॥ ७ ॥

घोड़े, हाथी और बड़े-बड़े रथोंकी भयंकर आवाजसे पर्वतोंसहित पृथ्वी तथा आकाशको गुँजाता हुआ वह बड़ी भारी सेना साथ लेकर वाटिकाके द्वारपर बैठे हुए शक्तिशाली वीर वानर हनुमान्‌जीके पास जा पहुँचा ॥ ७ ॥

स तं समासाद्य हरिं हरीक्षणो
युगान्तकालाग्निमिव प्रजाक्षये ।
अवस्थितं विस्मितजातसम्भ्रमं
समैक्षताक्षो बहुमानचक्षुषा ॥ ८ ॥

सिंहके समान भयंकर नेत्रवाले अक्षने वहाँ पहुँचकर लोकसंहारके समय प्रज्वलित हुई प्रलयाग्निके समान स्थित और विस्मय एवं सम्भ्रममें पड़े हुए हनुमान्‌जीको अत्यन्त गर्वभरी दृष्टिसे देखा ॥ ८ ॥

स तस्य वेगं च कपेर्महात्मनः
पराक्रमं चारिषु रावणात्मजः ।
विचारयन् स्वं च बलं महाबलो
युगक्षये सूर्य इवाभिवर्धत ॥ ९ ॥

उन महात्मा कपिश्रेष्ठके वेग तथा शत्रुओंके प्रति उनके पराक्रमका और अपने बलका भी विचार करके वह महाबली रावणकुमार प्रलयकालके सूर्यकी भाँति बढ़ने लगा ॥ ९ ॥

स जातमन्युः प्रसमीक्ष्य विक्रमं
स्थितः स्थिरः संयति दुर्निवारणम् ।
समाहितात्मा हनुमन्तमाहवे
प्रचोदयामास शितैः शरैस्त्रिभिः ॥ १० ॥

हनुमान्‌जीके पराक्रमपर दृष्टिपात करके उसे क्रोध आ गया। अतः स्थिरतापूर्वक स्थित हो उसने एकाग्रचित्तसे तीन तीखे बाणोंद्वारा रणदुर्जय हनुमान्‌जीको युद्धके लिये प्रेरित किया ॥ १० ॥

ततः कपिं तं प्रसमीक्ष्य गर्वितं
जितश्रमं शत्रुपराजयोचितम् ।
अवैक्षताक्षः समुदीर्णमानसं
सबाणपाणिः प्रगृहीतकार्मुकः ॥ ११ ॥

तदनन्तर हाथमें धनुष और बाण लिये अक्षने यह जानकर कि 'ये खेद या थकावटको जीत चुके हैं, शत्रुओंको पराजित करनेकी योग्यता रखते हैं और युद्धके लिये इनके मनका उत्साह बढ़ा हुआ है; इसीलिये ये गर्वीले दिखायी देते हैं' उनकी ओर दृष्टिपात किया ॥ ११ ॥

स हेमनिष्काङ्गदचारुकुण्डलः
समाससादाशुपराक्रमः कपिम् ।
तयोर्बभूवाप्रतिमः समागमः
सुरासुराणामपि सम्भ्रमप्रदः ॥ १२ ॥

गलेमें सुवर्णके निष्क (पदक), बाँहोंमें बाजूबंद और

कानोंमें मनोहर कुण्डल धारण किये वह शीघ्रपराक्रमी रावणकुमार हनुमान्‌जीके पास आया । उस समय उन दोनों वीरोंमें जो टक्कर हुई, उसकी कहीं तुलना नहीं थी । उनका युद्ध देवताओं और असुरोंके मनमें भी घबराहट पैदा कर देनेवाला था ॥ १२ ॥

ररास भूमिर्न तताप भानुमान्
ववौ न वायुः प्रचचाल चाचलः ।
कपेः कुमारस्य च वीर्यसंयुगं
ननाद च द्यौरुदधिश्च चुक्षुभे ॥ १३ ॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान् और अक्षकुमारका वह संग्राम देखकर भूतलके सारे प्राणी चीख उठे । सूर्यका ताप कम हो गया । वायुकी गति रुक गयी । पर्वत हिलने लगे । आकाशमें भयंकर शब्द होने लगा और समुद्रमें तूफान आ गया ॥ १३ ॥

स तस्य वीरः सुमुखान् पतत्रिणः
सुवर्णपुङ्खान् सविषानिवोरगान् ।
समाधिसंयोगविमोक्षतत्त्ववि-
च्छरानथ त्रीन् कपिमूर्ध्न्यताडयत् ॥ १४ ॥

अक्षकुमार निशाना साधने, बाणको धनुषपर चढ़ाने और उसे लक्ष्यकी ओर छोड़नेमें बड़ा प्रवीण था । उस वीरने विषधर सर्पोंके समान भयंकर, सुवर्णमय पंखोंसे युक्त, सुन्दर अग्रभागवाले तथा पत्रयुक्त तीन बाण हनुमान्‌जीके मस्तकमें मारे ॥ १४ ॥

स तैः शरैर्मूर्ध्नि समं निपातितैः
क्षरन्नसृग्दिग्धविवृत्तनेत्रः ।
नवोदितादित्यनिभः शरांशुमान्
व्यराजतादित्य इवांशुमालिकः ॥ १५ ॥

उन तीनोंकी चोट हनुमान्‌जीके माथेमें एक साथ ही लगी, इससे खूनकी धारा गिरने लगी । वे उस रक्तसे नहा उठे और उनकी आँखें घूमने लगीं । उस समय बाणरूपी किरणोंसे युक्त हो वे तुरंतके उगे हुए अंशुमाली सूर्यके समान शोभा पाने लगे ॥ १५ ॥

ततः प्लवङ्गाधिपमन्त्रिसत्तमः
समीक्ष्य तं राजवरात्मजं रणे ।
उदग्रचित्रायुधचित्रकार्मुकं
जहर्ष चापूर्यत चाहवोन्मुखः ॥ १६ ॥

तदनन्तर वानरराजके श्रेष्ठ मन्त्री हनुमान्‌जी राक्षसराज रावणके राजकुमार अक्षको अति उत्तम विचित्र आयुध एवं अद्भुत धनुष धारण किये देख हर्ष और उत्साहसे भर गये और युद्धके लिये उत्कण्ठित हो अपने शरीरको बढ़ाने लगे ॥

स मन्दराग्रस्थ इवांशुमाली
विवृद्धकोपो बलवीर्यसंवृतः ।
कुमारमक्षं सबलं सवाहनं
ददाह नेत्राग्निमरीचिभिस्तदा ॥ १७ ॥

हनुमान्‌जीका क्रोध बहुत बढ़ा हुआ था । वे बल और पराक्रमसे सम्पन्न थे, अतः मन्दराचलके शिखरपर प्रकाशित होनेवाले सूर्यदेवके समान वे अपनी नेत्राग्निमयी किरणोंसे उस समय सेना और सवारियोंसहित राजकुमार अक्षको दग्ध-सा करने लगे ॥ १७ ॥

ततः स बाणासनशक्रकार्मुकः
शरप्रवर्षो युधि राक्षसाम्बुदः ।
शरान् मुमोचाशु हरीश्वराचले
बलाहको वृष्टिमिवाचलोत्तमे ॥ १८ ॥

तब जैसे बादल श्रेष्ठ पर्वतपर जल बरसाता है, उसी प्रकार युद्धस्थलमें अपने शरासनरूपी इन्द्र-धनुषसे युक्त वह राक्षसरूपी मेघ बाणवर्षी होकर कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌रूपी पर्वतपर बड़े वेगसे बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥ १८ ॥

कपिस्ततस्तं रणचण्डविक्रमं
प्रवृद्धतेजोबलवीर्यसायकम् ।
कुमारमक्षं प्रसमीक्ष्य संयुगे
ननाद हर्षाद् घनतुल्यनिःस्वनः ॥ १९ ॥

रणभूमिमें अक्षकुमारका पराक्रम बड़ा प्रचण्ड दिखायी देता था । उसके तेज, बल, पराक्रम और बाण सभी बढ़े-चढ़े थे । युद्धस्थलमें उसकी ओर दृष्टिपात करके हनुमान्‌जीने हर्ष और उत्साहमें भरकर मेघके समान भयानक गर्जना की ॥ १९ ॥

स बालभावाद् युधि वीर्यदर्पितः
प्रवृद्धमन्युः क्षतजोपमेक्षणः ।
समाससादाप्रतिमं रणे कपिं
गजो महाकूपमिवावृतं तृणैः ॥ २० ॥

समराङ्गणमें बलके घमंडमें भरे हुए अक्षकुमारको उनकी गर्जना सुनकर बड़ा क्रोध हुआ । उसकी आँखें रक्तके समान लाल हो गयीं । वह अपने बालोचित अज्ञानके कारण अनुपम पराक्रमी हनुमान्‌जीका सामना करनेके लिये आगे बढ़ा । ठीक उसी तरह, जैसे कोई हाथी तिनकोंसे ढके हुए विशाल कूपकी ओर अग्रसर होता है ॥ २० ॥

स तेन बाणैः प्रसभं निपातितै-
श्चकार नादं घननादनिःस्वनः ।
समुत्सहेनाशु नभः समारुजन्
भुजोरुविक्षेपणघोरदर्शनः ॥ २१ ॥

उसके बलपूर्वक चलाये हुए बाणोंसे विद्ध होकर हनुमान्‌जीने तुरंत ही उत्साहपूर्वक आकाशको विदीर्ण करते हुए-से मेघके समान गम्भीर स्वरसे भीषण गर्जना की । उस समय दोनों भुजाओं और जाँघोंको चलानेके कारण वे बड़े भयंकर दिखायी देते थे ॥ २१ ॥

तमुत्पतन्तं समभिद्रवद् बली
स राक्षसानां प्रवरः प्रतापवान् ।

रथी रथश्रेष्ठतरः किरञ्छरैः
पयोधरः शैलमिवाश्मवृष्टिभिः ॥ २२ ॥

उन्हें आकाशमें उछलते देख रथियोंमें श्रेष्ठ और रथपर चढ़े हुए उस बलवान्, प्रतापी एवं राक्षसशिरोमणि वीरने बाणोंकी वर्षा करते हुए उनका पीछा किया। उस समय वह ऐसा जान पड़ता था मानो कोई मेघ किसी पर्वतपर ओले और पत्थरोंकी वर्षा कर रहा हो ॥ २२ ॥

स ताञ्छरांस्तस्य हरिर्विमोक्षयं-
श्चचार वीरः पथि वायुसेविते ।
शरान्तरे मारुतवद् विनिष्पतन्
मनोजवः संयति भीमविक्रमः ॥ २३ ॥

उस युद्धस्थलमें मनके समान वेगवाले वीर हनुमान्‌जी भयंकर पराक्रम प्रकट करने लगे। वे अक्षकुमारके उन बाणोंको व्यर्थ करते हुए वायुके पथपर विचरते और दो बाणोंके बीचसे हवाकी भाँति निकल जाते थे ॥ २३ ॥

तमात्तबाणासनमाहवोन्मुखं
खमास्तृणन्तं विविधैः शरोत्तमैः ।
अवैक्षताक्षं बहुमानचक्षुषा
जगाम चिन्तां स च मारुतात्मजः ॥ २४ ॥

अक्षकुमार हाथमें धनुष लिये युद्धके लिये उन्मुख हो नाना प्रकारके उत्तम बाणोंद्वारा आकाशको आच्छादित किये देता था। पवनकुमार हनुमान्‌ने उसे बड़े आदरकी दृष्टिसे देखा और वे मन-ही-मन कुछ सोचने लगे ॥ २४ ॥

ततः शरैर्भिन्नभुजान्तरः कपिः
कुमारवर्येण महात्मना नदन् ।
महाभुजः कर्मविशेषतत्त्ववित्
विचिन्तयामास रणे पराक्रमम् ॥ २५ ॥

इतनेहीमें महामना वीर अक्षकुमारने अपने बाणोंद्वारा कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीकी दोनों भुजाओंके मध्यभाग—छातीमें गहरा आघात किया। वे महाबाहु वानरवीर समयोचित कर्तव्यविशेषको ठीक-ठीक जानते थे; अतः वे रणक्षेत्रमें उस चोटको सहकर सिंहनाद करते हुए उसके पराक्रमके विषयमें इस प्रकार विचार करने लगे—॥ २५ ॥

अबालवद् बालदिवाकरप्रभः
करोत्ययं कर्म महन्महाबलः ।
न चास्य सर्वाहवकर्मशालिनः
प्रमापणे मे मतिरत्र जायते ॥ २६ ॥

'यह महाबली अक्षकुमार बालसूर्यके समान तेजस्वी है और बालक होकर भी बड़ोंके समान महान् कर्म कर रहा है। युद्धसम्बन्धी समस्त कर्मोंमें कुशल होनेके कारण अद्भुत शोभा पानेवाले इस वीरको यहाँ मार डालनेकी मेरी इच्छा नहीं हो रही है ॥ २६ ॥

अयं महात्मा च महांश्च वीर्यतः
समाहितश्चातिसहश्च संयुगे ।
असंशयं कर्मगुणोदयादयं
सनागयक्षैर्मुनिभिश्च पूजितः ॥ २७ ॥

'यह महामनस्वी राक्षसकुमार बल-पराक्रमकी दृष्टिसे महान् है। युद्धमें सावधान एवं एकाग्रचित्त है तथा शत्रुके वेगको सहन करनेमें अत्यन्त समर्थ है। अपने कर्म और गुणोंकी उत्कृष्टताके कारण यह नागों, यक्षों और मुनियोंके द्वारा भी प्रशंसित हुआ होगा, इसमें संशय नहीं है ॥ २७ ॥

पराक्रमोत्साहविवृद्धमानसः
समीक्षते मां प्रमुखोऽग्रतः स्थितः ।
पराक्रमो ह्यस्य मनांसि कम्पयेत्
सुरासुराणामपि शीघ्रकारिणः ॥ २८ ॥

'पराक्रम और उत्साहसे इसका मन बढ़ा हुआ है। यह युद्धके मुहानेपर मेरे सामने खड़ा हो मुझे ही देख रहा है। शीघ्रतापूर्वक युद्ध करनेवाले इस वीरका पराक्रम देवताओं और असुरोंके हृदयको भी कम्पित कर सकता है ॥ २८ ॥

न खल्वयं नाभिभवेदुपेक्षितः
पराक्रमो ह्यस्य रणे विवर्धते ।
प्रमापणं ह्यस्य ममाद्य रोचते
न वर्धमानोऽग्निरुपेक्षितुं क्षमः ॥ २९ ॥

'किंतु यदि इसकी उपेक्षा की गयी तो यह मुझे परास्त किये बिना नहीं रहेगा; क्योंकि संग्राममें इसका पराक्रम बढ़ता जा रहा है। अतः अब इसे मार डालना ही मुझे अच्छा जान पड़ता है। बढ़ती हुई आगकी उपेक्षा करना कदापि उचित नहीं है' ॥ २९ ॥

इति प्रवेगं तु परस्य तर्कयन्
स्वकर्मयोगं च विधाय वीर्यवान् ।
चकार वेगं तु महाबलस्तदा
मतिं च चक्रेऽस्य वधे तदानीम् ॥ ३० ॥

इस प्रकार शत्रुके वेगका विचार कर उसके प्रतीकारके लिये अपने कर्तव्यका निश्चय करके महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न हनुमान्‌जीने उस समय अपना वेग बढ़ाया और उस शत्रुको मार डालनेका विचार किया ॥ ३० ॥

स तस्य तानष्ट वरान् महाहयान्
समाहितान् भारसहान् विवर्तने ।
जघान वीरः पथि वायुसेविते
तलप्रहारैः पवनात्मजः कपिः ॥ ३१ ॥

तत्पश्चात् आकाशमें विचरते हुए वीर वानर पवनकुमारने थप्पड़ोंकी मारसे अक्षकुमारके उन आठों उत्तम और विशाल घोड़ोंको, जो भार सहन करनेमें समर्थ और नाना प्रकारके पैंतरे बदलनेकी कलामें सुशिक्षित थे, यमलोक पहुँचा दिया ॥

ततस्तलेनाभिहतो महारथः
स तस्य पिङ्गाधिपमन्त्रिनिर्जितः ।
स भग्ननीडः परिवृत्तकूबरः
पपात भूमौ हतवाजिरम्बरात् ॥ ३२ ॥

तदनन्तर वानरराज सुग्रीवके मन्त्री हनुमान्‌जीने अक्षकुमारके उस विशाल रथको भी अभिभूत कर दिया, उन्होंने हाथसे ही पीटकर रथकी बैठक तोड़ डाली और उसके हरसेको उलट दिया। घोड़े तो पहले ही मर चुके थे, अतः वह महान् रथ आकाशसे पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३२ ॥

स तं परित्यज्य महारथो रथं
सकार्मुकः खड्गधरः खमुत्पतन् ।
ततोऽभियोगादृषिरुग्रवीर्यवान्
विहाय देहं मरुतामिवालयम् ॥ ३३ ॥

उस समय महारथी अक्षकुमार धनुष और तलवार ले रथ छोड़कर अन्तरिक्षमें ही उड़ने लगा। ठीक वैसे ही, जैसे कोई उग्रशक्तिसे सम्पन्न महर्षि योगमार्गसे शरीर त्यागकर स्वर्गलोककी ओर चला जा रहा हो ॥ ३३ ॥

कपिस्ततस्तं विचरन्तमम्बरे
पतत्रिराजानिलसिद्धसेविते ।
समेत्य तं मारुततुल्यविक्रमः
क्रमेण जग्राह स पादयोर्दृढम् ॥ ३४ ॥

तब वायुके समान वेग और पराक्रमवाले कपिवर हनुमान्‌जीने पक्षिराज गरुड, वायु तथा सिद्धोंसे सेवित व्योममार्गमें विचरते हुए उस राक्षसके पास पहुँचकर क्रमशः उसके दोनों पैर दृढ़तापूर्वक पकड़ लिये ॥ ३४ ॥

स तं समाविध्य सहस्रशः कपि-
र्महोरगं गृह्य इवाण्डजेश्वरः ।
मुमोच वेगात् पितृतुल्यविक्रमो
महीतले संयति वानरोत्तमः ॥ ३५ ॥

फिर तो अपने पिता वायु देवताके तुल्य पराक्रमी वानरशिरोमणि हनुमान्‌ने जिस प्रकार गरुड़ बड़े-बड़े सर्पोंको घुमाते हैं, उसी तरह उसे हजारों बार घुमाकर बड़े वेगसे उस युद्धभूमिमें पटक दिया ॥ ३५ ॥

स भग्नबाहूरुकटीपयोधरः
क्षरन्नसृङ्निर्मथितास्थिलोचनः ।
सम्भिन्नसंधिः प्रविकीर्णबन्धनो
हतः क्षितौ वायुसुतेन राक्षसः ॥ ३६ ॥

नीचे गिरते ही उसकी भुजा, जाँघ, कमर और छातीके टुकड़े-टुकड़े हो गये, खूनकी धारा बहने लगी, शरीरकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं, आँखें बाहर निकल आयीं, अस्थियोंके जोड़ टूट गये और नस-नाड़ियोंके बन्धन शिथिल हो गये। इस तरह वह राक्षस पवनकुमार हनुमान्‌जीके हाथसे मारा गया ॥ ३६ ॥

महाकपिर्भूमितले निपीड्य तं
चकार रक्षोऽधिपतेर्महद्भयम् ।
महर्षिभिश्चक्रचरैः समागतैः
समेत्य भूतैश्च सयक्षपन्नगैः ।
सुरैश्च सेन्द्रैर्भृशजातविस्मयै-
र्हते कुमारे स कपिर्निरीक्षितः ॥ ३७ ॥

अक्षकुमारको पृथ्वीपर पटककर महाकपि हनुमान्‌जीने राक्षसराज रावणके हृदयमें बहुत बड़ा भय उत्पन्न कर दिया। उसके मारे जानेपर नक्षत्र-मण्डलमें विचरनेवाले महर्षियों, यक्षों, नागों, भूतों तथा इन्द्रसहित देवताओंने वहाँ एकत्र होकर बड़े विस्मयके साथ हनुमान्‌जीका दर्शन किया ॥ ३७ ॥

निहत्य तं वज्रिसुतोपमं रणे
कुमारमक्षं क्षतजोपमेक्षणम् ।
तदेव वीरोऽभिजगाम तोरणं
कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये ॥ ३८ ॥

युद्धमें इन्द्रपुत्र जयन्तके समान पराक्रमी और लाल-लाल आँखोंवाले अक्षकुमारका काम तमाम करके वीरवर हनुमान्‌जी प्रजाके संहारके लिये उद्यत हुए कालकी भाँति पुनः युद्धकी प्रतीक्षा करते हुए वाटिकाके उसी द्वारपर जा पहुँचे ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें सैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः

इन्द्रजित् और हनुमान्‌जीका युद्ध, उसके दिव्यास्त्रके बन्धनमें बँधकर हनुमान्‌जीका रावणके दरबारमें उपस्थित होना

ततस्तु रक्षोऽधिपतिर्महात्मा
हनूमताक्षे निहते कुमारे ।
मनः समाधाय स देवकल्पं
समादिदेशेन्द्रजितं सरोषः ॥ १ ॥

तदनन्तर हनुमान्‌जीके द्वारा अक्षकुमारके मारे जानेपर राक्षसोंका स्वामी महाकाय रावण अपने मनको किसी तरह सुस्थिर करके रोषसे जल उठा और देवताओंके तुल्य पराक्रमी कुमार इन्द्रजित् (मेघनाद) को इस प्रकार आज्ञा दी— ॥

त्वमस्त्रविच्छस्त्रभृतां वरिष्ठः
सुरासुराणामपि शोकदाता ।
सुरेषु सेन्द्रेषु च दृष्टकर्मा
पितामहाराधनसंचितास्त्रः ॥ २ ॥

'बेटा ! तुमने ब्रह्माजीकी आराधना करके अनेक प्रकारके अस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया है । तुम अस्त्रवेत्ता, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तथा देवताओं और असुरोंको भी शोक प्रदान करनेवाले हो । इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंके समुदायमें तुम्हारा पराक्रम देखा गया है । २ ॥

त्वदस्त्रबलमासाद्य ससुराः समरुद्गणाः ।
न शेकुः समरे स्थातुं सुरेश्वरसमाश्रिताः ॥ ३ ॥

'इन्द्रके आश्रयमें रहनेवाले देवता और मरुद्गण भी समरभूमिमें तुम्हारे अस्त्र-बलका सामना होनेपर टिक नहीं सके हैं ॥ ३ ॥

न कश्चित् त्रिषु लोकेषु संयुगेन गतश्रमः ।
भुजवीर्याभिगुप्तश्च तपसा चाभिरक्षितः ।
देशकालप्रधानश्च त्वमेव मतिसत्तमः ॥ ४ ॥

'तीनों लोकोंमें तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो युद्धसे थकता न हो । तुम अपने बाहुबलसे तो सुरक्षित हो ही, तपस्याकें बलसे भी पूर्णतः निरापद हो । देशकालका ज्ञान रखनेवालोंमें प्रधान और बुद्धिकी दृष्टिसे भी सर्वश्रेष्ठ तुम्हीं हो ॥ ४ ॥

न तेऽस्त्यशक्यं समरेषु कर्मणां
न तेऽस्त्यकार्यं मतिपूर्वमन्त्रणे ।
न सोऽस्ति कश्चित् त्रिषु संग्रहेषु
न वेद यस्तेऽस्त्रबलं बलं च ॥ ५ ॥

'युद्धमें तुम्हारे वीरोचित कर्मोंके द्वारा कुछ भी असाध्य नहीं है । शास्त्रानुकूल बुद्धिपूर्वक राजकार्यका विचार करते समय तुम्हारे लिये कुछ भी असम्भव नहीं है । तुम्हारा कोई भी विचार ऐसा नहीं होता, जो कार्यका साधक न हो । त्रिलोकीमें एक भी ऐसा वीर नहीं है, जो तुम्हारी शारीरिक शक्ति और अस्त्र-बलको न जानता हो ॥ ५ ॥

ममानुरूपं तपसो बलं च ते
पराक्रमश्चास्त्रबलं च संयुगे ।
न त्वां समासाद्य रणावमर्दे
मनः श्रमं गच्छति निश्चितार्थम् ॥ ६ ॥

'तुम्हारा तपोबल, युद्धविषयक पराक्रम और अस्त्रबल मेरे ही समान है । युद्धस्थलमें तुमको पाकर मेरा मन कभी खेद या विषादको नहीं प्राप्त होता; क्योंकि इसे यह निश्चित विश्वास रहता है कि विजय तुम्हारे पक्षमें होगी ॥६॥

निहताः किंकराः सर्वे जम्बुमाली च राक्षसः ।
अमात्यपुत्रा वीराश्च पञ्च सेनाग्रगामिनः ॥ ७ ॥

'देखो, किंकर नामवाले समस्त राक्षस मार डाले गये । जम्बुमाली नामका राक्षस भी जीवित न रह सका, मन्त्रीके सातों वीर पुत्र तथा मेरे पाँच सेनापति भी कालके गालमें चले गये ॥ ७ ॥

बलानि सुसमृद्धानि साश्वनागरथानि च ।
सहोदरस्ते दयितः कुमारोऽक्षश्च सूदितः ।
न तु तेष्वेव मे सारो यस्त्वय्यरिनिषूदन ॥ ८ ॥

'उनके साथ ही हाथी, घोड़े और रथोंसहित मेरी बहुत-सी बल-वीर्यसे सम्पन्न सेनाएँ भी नष्ट हो गयीं और तुम्हारा प्रिय बन्धु कुमार अक्ष भी मार डाला गया । शत्रुसूदन ! मुझमें जो तीनों लोकोंपर विजय पानेकी शक्ति है, वह तुम्हींमें है । पहले जो लोग मारे गये हैं, उनमें वह शक्ति नहीं थी (इसलिये तुम्हारी विजय निश्चित है) ॥ ८ ॥

इदं च दृष्ट्वा निहतं महद् बलं
कपेः प्रभावं च पराक्रमं च ।
त्वमात्मनश्चापि निरीक्ष्य सारं
कुरुष्व वेगं स्वबलानुरूपम् ॥ ९ ॥

'इस प्रकार अपनी विशाल सेनाका संहार और उस वानरका प्रभाव एवं पराक्रम देखकर तुम अपने बलका भी विचार कर लो; फिर अपनी शक्तिके अनुसार उद्योग करो ॥

बलावमर्दस्त्वयि संनिकृष्टे
यथा गते शाम्यति शान्तशत्रौ ।
तथा समीक्ष्यात्मबलं परं च
समारभस्वास्त्रभृतां वरिष्ठ ॥ १० ॥

'शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ वीर ! तुम्हारे सब शत्रु शान्त हो चुके हैं । तुम अपने और पराये बलका विचार करके ऐसा प्रयत्न करो, जिससे युद्धभूमिके निकट तुम्हारे पहुँचते ही मेरी सेनाका विनाश रुक जाय ॥ १० ॥

न वीर सेना गणशो च्यवन्ति
न वज्रमादाय विशालसारम् ।
न मारुतस्यास्ति गतिप्रमाणं
न चाग्निकल्पः करणेन हन्तुम् ॥ ११ ॥

'वीरवर ! तुम्हें अपने साथ सेना नहीं ले जानी चाहिये; क्योंकि वे सेनाएँ समूह-की-समूह या तो भाग जाती हैं या मारी जाती हैं । इसी तरह अधिक तीक्ष्णता और कठोरतासे युक्त वज्र लेकर भी जानेकी कोई आवश्यकता नहीं है (क्योंकि उसके ऊपर वह भी व्यर्थ सिद्ध हो चुका है) । उस वायुपुत्र हनुमान्की गति अथवा शक्तिका कोई माप-तोल या सीमा नहीं है । वह अग्नि-तुल्य तेजस्वी वानर किसी साधनविशेषसे नहीं मारा जा सकता ॥ ११ ॥

तमेवमर्थं प्रसमीक्ष्य सम्यक्
स्वकर्मसाम्याद्धि समाहितात्मा ।
स्मरंश्च दिव्यं धनुषोऽस्य वीर्यं
व्रजाक्षतं कर्म समारभस्व ॥ १२ ॥

'इन सब बातोंका अच्छी तरह विचार करके प्रतिपक्षीमें अपने समान ही पराक्रम समझकर तुम अपने चित्तको एकाग्र कर लो—सावधान हो जाओ । अपने इस धनुषके दिव्य प्रभावको याद रखते हुए आगे बढ़ो और ऐसा पराक्रम करके दिखाओ, जो खाली न जाय ॥ १२ ॥

न खल्वियं मतिश्रेष्ठ यत्त्वां सम्प्रेषयाम्यहम् ।
इयं च राजधर्माणां क्षत्रस्य च मतिर्मता ॥ १३ ॥

'उत्तम बुद्धिवाले वीर ! मैं तुम्हें जो ऐसे संकटमें भेज रहा हूँ, यह यद्यपि (स्नेहकी दृष्टिसे) उचित नहीं है, तथापि मेरा यह विचार राजनीति और क्षत्रिय-धर्मके अनुकूल है ॥ १३ ॥

नानाशास्त्रेषु संग्रामे वैशारद्यमरिंदम ।
अवश्यमेव बोद्धव्यं काम्यश्च विजयो रणे ॥ १४ ॥

'शत्रुदमन ! वीर पुरुषको संग्राममें नाना प्रकारके शस्त्रोंकी कुशलता अवश्य प्राप्त करनी चाहिये, साथ ही युद्धमें विजय पानेकी भी अभिलाषा रखनी चाहिये' ॥ १४ ॥

ततः पितुस्तद्वचनं निशम्य
प्रदक्षिणं दक्षसुतप्रभावः ।
चकार भर्तारमतित्वरेण
रणाय वीरः प्रतिपन्नबुद्धिः ॥ १५ ॥

अपने पिता राक्षसराज रावणके इस वचनको सुनकर देवताओंके समान प्रभावशाली वीर मेघनादने युद्धके लिये निश्चित विचार करके जल्दीसे अपने स्वामी रावणकी परिक्रमा की ॥ १५ ॥

ततस्तैः स्वगणैरिष्टैरिन्द्रजित् प्रतिपूजितः ।
युद्धोद्धतकृतोत्साहः संग्रामं सम्प्रपद्यत ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् सभामें बैठे हुए अपने दलके प्रिय राक्षसोंद्वारा भूरि-भूरि प्रशंसित हो इन्द्रजित् विकट युद्धके लिये मनमें उत्साह भरकर संग्रामभूमिकी ओर जानेको उद्यत हुआ॥

श्रीमान् पद्मविशालाक्षो राक्षसाधिपतेः सुतः।
निर्जगाम महातेजाः समुद्र इव पर्वणि ॥ १७ ॥

उस समय प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाला राक्षसराज रावणका पुत्र महातेजस्वी श्रीमान् इन्द्रजित् पर्वके दिन उमड़े हुए समुद्रके समान विशेष हर्ष और उत्साहसे पूर्ण हो राजमहलसे बाहर निकला ॥ १७ ॥

स पक्षिराजोपमतुल्यवेगै-
र्व्याघ्रैश्चतुर्भिः स तु तीक्ष्णदंष्ट्रैः ।
रथं समायुक्तमसह्यवेगः
समारुरोहेन्द्रजिदिन्द्रकल्पः ॥ १८ ॥

जिसका वेग शत्रुओंके लिये असह्य था, वह इन्द्रके समान पराक्रमी मेघनाद पक्षिराज गरुड़के समान तीव्र गति तथा तीखे दाढ़ोंवाले चार सिंहोंसे जुते हुए उत्तम रथपर आरूढ़ हुआ ॥ १८ ॥

स रथी धन्विनां श्रेष्ठः शस्त्रज्ञोऽस्त्रविदां वरः ।
रथेनाभिययौ क्षिप्रं हनूमान् यत्र सोऽभवत् ॥ १९ ॥

अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञाता, अस्त्रवेत्ताओंमें अग्रगण्य और धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ वह रथी वीर रथके द्वारा शीघ्र उस स्थानपर गया, जहाँ हनुमान्‌जी उसकी प्रतीक्षामें बैठे थे ॥ १९ ॥

स तस्य रथनिर्घोषं ज्यास्वनं कार्मुकस्य च ।
निशम्य हरिवीरोऽसौ सम्प्रहृष्टतरोऽभवत् ॥ २० ॥

उसके रथकी घर्घराहट और धनुषकी प्रत्यञ्चाका गम्भीर घोष सुनकर वानरवीर हनुमान्‌जी अत्यन्त हर्ष और उत्साहसे भर गये ॥ २० ॥

इन्द्रजिच्चापमादाय शितशल्यांश्च सायकान् ।
हनूमन्तमभिप्रेत्य जगाम रणपण्डितः ॥ २१ ॥

इन्द्रजित् युद्धकी कलामें प्रवीण था । वह धनुष और तीखे अग्रभागवाले सायकोंको लेकर हनुमान्‌जीको लक्ष्य करके आगे बढ़ा ॥ २१ ॥

तस्मिंस्ततः संयति जातहर्षे
रणाय निर्गच्छति बाणपाणौ ।
दिशश्च सर्वाः कलुषा बभूवु-
र्मृगाश्च रौद्रा बहुधा विनेदुः ॥ २२ ॥

हृदयमें हर्ष और उत्साह तथा हाथोंमें बाण लेकर वह ज्यों ही युद्धके लिये निकला, त्यों ही सम्पूर्ण दिशाएँ मलिन हो गयीं और भयानक पशु नाना प्रकारसे आर्तनाद करने लगे ॥ २२ ॥

समागतास्तत्र तु नागयक्षा
महर्षयश्चक्रचराश्च सिद्धाः ।
नभः समावृत्य च पक्षिसङ्घा
विनेदुरुच्चैः परमप्रहृष्टाः ॥ २३ ॥

उस समय वहाँ नाग, यक्ष, महर्षि और नक्षत्र-मण्डलमें विचरनेवाले सिद्धगण भी आ गये । साथ ही पक्षियोंके समुदाय भी आकाशको आच्छादित करके अत्यन्त हर्षमें भरकर उच्चस्वरसे चहचहाने लगे ॥ २३ ॥

आयान्तं स रथं दृष्ट्वा तूर्णमिन्द्रध्वजं कपिः ।
ननाद च महानादं व्यवर्धत च वेगवान् ॥ २४ ॥

इन्द्राकार चिह्नवाली ध्वजासे सुशोभित रथपर बैठकर शीघ्रतापूर्वक आते हुए मेघनादको देखकर वेगशाली वानरवीर हनुमान्‌ने बड़े जोरसे गर्जना की और अपने शरीरको बढ़ाया ॥ २४ ॥

इन्द्रजित् स रथं दिव्यमाश्रितश्चित्रकार्मुकः ।
धनुर्विस्फारयामास तडिदूर्जितनिःस्वनम् ॥ २५ ॥

उस दिव्य रथपर बैठकर विचित्र धनुष धारण करनेवाले इन्द्रजित्‌ने बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान टंकार करनेवाले अपने धनुषको खींचा ॥ २५ ॥

ततः समेतावतितीक्ष्णवेगौ
महाबलौ तौ रणनिर्विशङ्कौ ।
कपिश्च रक्षोऽधिपतेस्तनूजः
सुरासुरेन्द्राविव बद्धवैरौ ॥ २६ ॥

फिर तो अत्यन्त दुःसह वेग और महान् बलसे सम्पन्न हो युद्धमें निर्भय होकर आगे बढ़नेवाले वे दोनों वीर कपिवर हनुमान् तथा राक्षसराजकुमार मेघनाद परस्पर वैर बाँधकर देवराज इन्द्र और दैत्यराज बलिकी भाँति एक दूसरेसे भिड़ गये ॥ २६ ॥

स तस्य वीरस्य महारथस्य
धनुष्मतः संयति सम्मतस्य ।
शरप्रवेगं व्यहनत् प्रवृद्ध-
श्चचार मार्गे पितुरप्रमेयः ॥ २७ ॥

अप्रमेय शक्तिशाली हनुमान्‌जी विशाल शरीर धारण करके अपने पिता वायुके मार्गपर विचरने और युद्धमें सम्मानित होनेवाले उस धनुर्धर महारथी राक्षसवीरके बाणोंके महान् वेगको व्यर्थ करने लगे ॥ २७ ॥

ततः शरानायततीक्ष्णशल्यान्
सुपत्रिणः काञ्चनचित्रपुङ्खान् ।
मुमोच वीरः परवीरहन्ता
सुसंततान् वज्रसमानवेगान् ॥ २८ ॥

इतनेहीमें शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले इन्द्रजित्‌ने बड़ी और तीखी नोक तथा सुन्दर परोंवाले, सोनेकी विचित्र पंखोंसे सुशोभित और वज्रके समान वेगशाली बाणोंको लगातार छोड़ना आरम्भ किया ॥ २८ ॥

ततः स तत्स्यन्दननिःस्वनं च
मृदङ्गभेरीपटहस्वनं च ।
विकृष्यमाणस्य च कार्मुकस्य
निशम्य घोषं पुनरुत्पपात ॥ २९ ॥

उस समय उसके रथकी घर्घराहट, मृदङ्ग, भेरी और पटह आदि बाजोंके शब्द एवं खींचे जाते हुए धनुषकी टंकार सुनकर हनुमान्‌जी फिर ऊपरकी ओर उछले ॥२९॥

शराणामन्तरेष्वाशु व्यावर्तत महाकपिः ।
हरिस्तस्याभिलक्ष्यस्य मोक्षयंल्लक्ष्यसंग्रहम् ॥ ३० ॥

ऊपर जाकर वे महाकपि वानरवीर लक्ष्य बेधनेमें प्रसिद्ध मेघनादके साधे हुए निशानेको व्यर्थ करते हुए उसके छोड़े हुए बाणोंके बीचसे शीघ्रतापूर्वक निकलकर अपनेको बचाने लगे ॥ ३० ॥

शराणामग्रतस्तस्य पुनः समभिवर्तत ।
प्रसार्य हस्तौ हनुमानुत्पपातानिलात्मजः ॥ ३१ ॥

वे पवनकुमार हनुमान् बारंबार उसके बाणोंके सामने आकर खड़े हो जाते और फिर दोनों हाथ फैलाकर बात-की-बातमें उड़ जाते थे ॥ ३१ ॥

तावुभौ वेगसम्पन्नौ रणकर्मविशारदौ ।
सर्वभूतमनोग्राहि चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

वे दोनों वीर महान् वेगसे सम्पन्न तथा युद्ध करनेकी कलामें चतुर थे । वे सम्पूर्ण भूतोंके चित्तको आकर्षित करनेवाला उत्तम युद्ध करने लगे ॥ ३२ ॥

हनूमतो वेद न राक्षसोऽन्तरं
न मारुतिस्तस्य महात्मनोऽन्तरम् ।
परस्परं निर्विषहौ बभूवतुः
समेत्य तौ देवसमानविक्रमौ ॥ ३३ ॥

वह राक्षस हनुमान्‌जीपर प्रहार करनेका अवसर नहीं पाता था और पवनकुमार हनुमान्‌जी भी उस महामनस्वी वीरको धर दबानेका मौका नहीं पाते थे । देवताओंके समान पराक्रमी वे दोनों वीर परस्पर भिड़कर एक दूसरेके लिये दुःसह हो उठे थे ॥ ३३ ॥

ततस्तु लक्ष्ये स विहन्यमाने
शरेष्वमोघेषु च सम्पतत्सु ।
जगाम चिन्तां महतीं महात्मा
समाधिसंयोगसमाहितात्मा ॥ ३४ ॥

लक्ष्यवेधके लिये चलाये हुए मेघनादके वे अमोघ बाण भी जब व्यर्थ होकर गिर पड़े, तब लक्ष्यपर बाणोंका संधान करनेमें सदा एकाग्रचित्त रहनेवाले उस महामनस्वी वीरको बड़ी चिन्ता हुई ॥ ३४ ॥

ततो मतिं राक्षसराजसूनु-
श्चकार तस्मिन् हरिवीरमुख्ये ।
अवध्यतां तस्य कपेः समीक्ष्य
कथं निगच्छेदिति निग्रहार्थम् ॥ ३५ ॥

उन कपिश्रेष्ठको अवध्य समझकर राक्षसराजकुमार मेघनाद वानरवीरोंमें प्रमुख हनुमान्‌जीके विषयमें यह विचार करने लगा कि 'इन्हें किसी तरह कैद कर लेना चाहिये, परंतु ये मेरी पकड़में आ कैसे सकते हैं ?' ॥ ३५ ॥

ततः पैतामहं वीरः सोऽस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
संदधे सुमहातेजास्तं हरिप्रवरं प्रति ॥ ३६ ॥

फिर तो अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ उस महातेजस्वी वीरने उन कपिश्रेष्ठको लक्ष्य करके अपने धनुषपर ब्रह्माजीके दिये हुए अस्त्रका संधान किया ॥ ३६ ॥

अवध्योऽयमिति ज्ञात्वा तमस्त्रेणास्त्रतत्त्ववित् ।
निजग्राह महाबाहुं मारुतात्मजमिन्द्रजित् ॥ ३७ ॥

अस्त्रतत्त्वके ज्ञाता इन्द्रजित्‌ने महाबाहु पवनकुमारको अवध्य जानकर उन्हें उस अस्त्रसे बाँध लिया ॥ ३७ ॥

तेन बद्धस्ततोऽस्त्रेण राक्षसेन स वानरः ।
अभवन्निर्विचेष्टश्च पपात च महीतले ॥ ३८ ॥

राक्षसद्वारा उस अस्त्रसे बाँध लिये जानेपर वानरवीर हनुमान्‌जी निश्चेष्ट होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३८ ॥

ततोऽथ बुद्ध्वा स तदस्त्रबन्धं
प्रभोः प्रभावाद् विगताल्पवेगः ।
पितामहानुग्रहमात्मनश्च
विचिन्तयामास हरिप्रवीरः ॥ ३९ ॥

अपनेको ब्रह्मास्त्रसे बँधा हुआ जानकर भी उन्हीं भगवान् ब्रह्माके प्रभावसे हनुमान्जीको थोड़ी-सी भी पीड़ाका अनुभव नहीं हुआ । वे प्रमुख वानरवीर अपने ऊपर ब्रह्माजीके महान् अनुग्रहका विचार करने लगे ॥ ३९ ॥

ततः स्वायम्भुवैर्मन्त्रैर्ब्रह्मास्त्रं चाभिमन्त्रितम् ।
हनूमांश्चिन्तयामास वरदानं पितामहात् ॥ ४० ॥

जिन मन्त्रोंके देवता साक्षात् स्वयम्भू ब्रह्मा हैं, उनसे अभिमन्त्रित हुए उस ब्रह्मास्त्रको देखकर हनुमान्जीको पितामह ब्रह्मासे अपने लिये मिले हुए वरदानका स्मरण हो आया (ब्रह्माजीने उन्हें वर दिया था कि मेरा अस्त्र तुम्हें एक ही मुहूर्तमें अपने बन्धनसे मुक्त कर देगा) ॥ ४० ॥

न मेऽस्य बन्धस्य च शक्तिरस्ति
विमोक्षणे लोकगुरोः प्रभावात् ।
इत्येवमेवं विहितोऽस्त्रबन्धो
मयाऽऽत्मयोनेरनुवर्तितव्यः ॥ ४१ ॥

फिर वे सोचने लगे 'लोकगुरु ब्रह्माके प्रभावसे मुझमें इस अस्त्रके बन्धनसे छुटकारा पानेकी शक्ति नहीं है—ऐसा मानकर ही इन्द्रजित्ने मुझे इस प्रकार बाँधा है, तथापि मुझे भगवान् ब्रह्माके सम्मानार्थ इस अस्त्रबन्धनका अनुसरण करना चाहिये' ॥ ४१ ॥

स वीर्यमस्त्रस्य कपिर्विचार्य
पितामहानुग्रहमात्मनश्च ।
विमोक्षशक्तिं परिचिन्तयित्वा
पितामहाज्ञामनुवर्तते स ॥ ४२ ॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान्जीने उस अस्त्रकी शक्ति, अपने ऊपर पितामहकी कृपा तथा अपनेमें उसके बन्धनसे छूट जानेकी सामर्थ्य—इन तीनोंपर विचार करके अन्तमें ब्रह्माजीकी आज्ञाका ही अनुसरण किया ॥ ४२ ॥

अस्त्रेणापि हि बद्धस्य भयं मम न जायते ।
पितामहमहेन्द्राभ्यां रक्षितस्यानिलेन च ॥ ४३ ॥

उनके मनमें यह बात आयी कि 'इस अस्त्रसे बँध जानेपर भी मुझे कोई भय नहीं है; क्योंकि ब्रह्मा, इन्द्र और वायुदेवता तीनों मेरी रक्षा करते हैं ॥ ४३ ॥

ग्रहणे चापि रक्षोभिर्महन्मे गुणदर्शनम् ।
राक्षसेन्द्रेण संवादस्तस्माद् गृह्णन्तु मां परे ॥ ४४ ॥

'राक्षसोंद्वारा पकड़े जानेमें भी मुझे महान् लाभ ही दिखायी देता है; क्योंकि इससे मुझे राक्षसराज रावणके साथ बातचीत करनेका अवसर मिलेगा । अतः शत्रु मुझे पकड़कर ले चलें' ॥ ४४ ॥

स निश्चितार्थः परवीरहन्ता
समीक्ष्यकारी विनिवृत्तचेष्टः ।
परैः प्रसह्याभिगतैर्निगृह्य
ननाद तैस्तैः परिभर्त्स्यमानः ॥ ४५ ॥

ऐसा निश्चय करके विचारपूर्वक कार्य करनेवाले शत्रुवीरोंके संहारक हनुमान्जी निश्चेष्ट हो गये । फिर तो सभी शत्रु निकट आकर उन्हें बलपूर्वक पकड़ने और डाँट बताने लगे । उस समय हनुमान्जी, मानो कष्ट पा रहे हों, इस प्रकार चीखते और कटकटाते थे ॥ ४५ ॥

ततस्ते राक्षसा दृष्ट्वा विनिश्चेष्टमरिंदमम् ।
बबन्धुः शणवल्कैश्च द्रुमचीरैश्च संहतैः ॥ ४६ ॥

राक्षसोंने देखा अब यह हाथ-पैर नहीं हिलाता, तब वे शत्रुहन्ता हनुमान्जीको सुतरी और वृक्षोंके वल्कलको बटकर बनाये गये रस्सोंसे बाँधने लगे ॥ ४६ ॥

स रोचयामास परैश्च बन्धं
प्रसह्य वीरैरभिगर्हणं च ।
कौतूहलान्मां यदि राक्षसेन्द्रो
द्रष्टुं व्यवस्येदिति निश्चितार्थः ॥ ४७ ॥

शत्रुवीरोंने जो उन्हें हठपूर्वक बाँधा और उनका तिरस्कार किया, यह सब कुछ उस समय उन्हें अच्छा लगा । उनके मनमें यह निश्चित विचार हो गया था कि ऐसी अवस्थामें राक्षसराज रावण सम्भवतः कौतूहलवश मुझे देखनेकी इच्छा करेगा (इसीलिये वे सब कुछ सह रहे थे) ॥ ४७ ॥

स बद्धस्तेन वल्केन विमुक्तोऽस्त्रेण वीर्यवान् ।
अस्त्रबन्धः स चान्यं हि न बन्धमनुवर्तते ॥ ४८ ॥

वल्कलके रस्सेसे बँध जानेपर पराक्रमी हनुमान् ब्रह्मास्त्रके बन्धनसे मुक्त हो गये; क्योंकि उस अस्त्रका बन्धन किसी दूसरे बन्धनके साथ नहीं रहता ॥ ४८ ॥

अथेन्द्रजित् तं द्रुमचीरबद्धं
विचार्य वीरः कपिसत्तमं तम् ।
विमुक्तमस्त्रेण जगाम चिन्ता-
मन्येन बद्धोऽप्यनुवर्ततेऽस्त्रम् ॥ ४९ ॥

अहो महत् कर्म कृतं निरर्थं
न राक्षसैर्मन्त्रगतिर्विमृष्टा ।
पुनश्च नास्त्रे विहतेऽस्त्रमन्यत्
प्रवर्तते संशयिताः स्म सर्वे ॥ ५० ॥

वीर इन्द्रजित्ने जब देखा कि यह वानरशिरोमणि तो केवल वृक्षोंके वल्कलसे बँधा है, दिव्यास्त्रके बन्धनसे मुक्त हो चुका है, तब उसे बड़ी चिन्ता हुई । वह सोचने लगा—'दूसरी वस्तुओंसे बँधा हुआ होनेपर भी यह अस्त्रबन्धनमें बँधे हुएकी भाँति बर्ताव कर रहा है । ओह ! इन राक्षसोंने मेरा किया हुआ बहुत बड़ा काम चौपट कर दिया । इन्होंने मन्त्रकी शक्तिपर विचार नहीं किया ।

यह अस्त्र जब एक बार व्यर्थ हो जाता है, तब पुनः दूसरी बार इसका प्रयोग नहीं हो सकता। अब तो विजयी होकर भी हम सब लोग संशयमें पड़ गये ॥ ४९-५० ॥

अस्त्रेण हनुमान् मुक्तो नात्मानमवबुध्यते ।
कृष्यमाणस्तु रक्षोभिस्तैश्च बन्धैर्निपीडितः ॥ ५१ ॥
हन्यमानस्ततः क्रूरै राक्षसैः कालमुष्टिभिः ।
समीपं राक्षसेन्द्रस्य प्राकृष्यत स वानरः ॥ ५२ ॥

हनुमान्‌जी यद्यपि अस्त्रके बन्धनसे मुक्त हो गये थे तो भी उन्होंने ऐसा बर्ताव किया, मानो वे इस बातको जानते ही न हों। क्रूर राक्षस उन्हें बन्धनोंसे पीड़ा देते और कठोर मुक्कोंसे मारते हुए खींचकर ले चले। इस तरह वे वानरवीर राक्षसराज रावणके पास पहुँचाये गये॥५१-५२॥

अथेन्द्रजित् तं प्रसमीक्ष्य मुक्त-
मस्त्रेण बद्धं द्रुमचीरसूत्रैः ।
व्यदर्शयत् तत्र महाबलं तं
हरिप्रवीरं सगणाय राज्ञे ॥ ५३ ॥

तब इन्द्रजित्‌ने उन महाबली वानरवीरको ब्रह्मास्त्रसे मुक्त तथा वृक्षके वल्कलोंकी रस्सियोंसे बँधा देख उन्हें वहाँ सभासद्‌गणोंसहित राजा रावणको दिखाया ॥ ५३ ॥

तं मत्तमिव मातङ्गं बद्धं कपिवरोत्तमम् ।
राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ॥ ५४ ॥

मतवाले हाथीके समान बँधे हुए उन वानरशिरोमणिको राक्षसोंने राक्षसराज रावणकी सेवामें समर्पित कर दिया ॥५४॥

कोऽयं कस्य कुतो वापि किं कार्यं कोऽभ्युपाश्रयः ।
इति राक्षसवीराणां दृष्ट्वा संजज्ञिरे कथाः ॥ ५५ ॥

उन्हें देखकर राक्षसवीर आपसमें कहने लगे—'यह कौन है? किसका पुत्र या सेवक है? कहाँसे आया है? यहाँ इसका क्या काम है? तथा इसे सहारा देनेवाला कौन है?॥ ५५ ॥

हन्यतां दह्यतां वापि भक्ष्यतामिति चापरे ।
राक्षसास्तत्र संक्रुद्धाः परस्परमथाब्रुवन् ॥ ५६ ॥

कुछ दूसरे राक्षस जो अत्यन्त क्रोधसे भरे थे, परस्पर इस प्रकार बोले—'इस वानरको मार डालो, जला डालो या खा डालो' ॥ ५६ ॥

अतीत्य मार्गं सहसा महात्मा
स तत्र रक्षोऽधिपपादमूले ।
ददर्श राज्ञः परिचारवृद्धान्
गृहं महारत्नविभूषितं च ॥ ५७ ॥

महात्मा हनुमान्‌जी सारा रास्ता तै करके जब सहसा राक्षसराज रावणके पास पहुँच गये, तब उन्होंने उसके चरणोंके समीप बहुत-से बड़े-बूढ़े सेवकोंको और बहुमूल्य रत्नोंसे विभूषित सभाभवनको भी देखा ॥ ५७ ॥

स ददर्श महातेजा रावणः कपिसत्तमम् ।
रक्षोभिर्विकृताकारैः कृष्यमाणमितस्ततः ॥ ५८ ॥

उस समय महातेजस्वी रावणने विकट आकारवाले राक्षसोंके द्वारा इधर-उधर घसीटे जाते हुए कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीको देखा ॥ ५८ ॥

राक्षसाधिपतिं चापि ददर्श कपिसत्तमः ।
तेजोबलसमायुक्तं तपन्तमिव भास्करम् ॥ ५९ ॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने भी राक्षसराज रावणको तपते हुए सूर्यके समान तेज और बलसे सम्पन्न देखा ॥ ५९ ॥

स रोषसंवर्तितताम्रदृष्टि-
र्दशाननस्तं कपिमन्ववेक्ष्य ।
अथोपविष्टान् कुलशीलवृद्धान्
समादिशत् तं प्रति मुख्यमन्त्रीन्॥६०॥

हनुमान्‌जीको देखकर दशमुख रावणकी आँखें रोषसे चञ्चल और लाल हो गयीं। उसने वहाँ बैठे हुए कुलीन, सुशील और मुख्य मन्त्रियोंको उनसे परिचय पूछनेके लिये आज्ञा दी ॥ ६० ॥

यथाक्रमं तैः स कपिश्च पृष्टः
कार्यार्थमर्थस्य च मूलमादौ ।
निवेदयामास हरीश्वरस्य
दूतः सकाशादहमागतोऽस्मि ॥ ६१ ॥

उन सबने पहले क्रमशः कपिवर हनुमान्‌से उनका कार्य, प्रयोजन तथा उसके मूल कारणके विषयमें पूछा। तब उन्होंने यह बताया कि 'मैं वानरराज सुग्रीवके पाससे उनका दूत होकर आया हूँ' ॥ ६१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें अड़तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशः सर्गः

रावणके प्रभावशाली स्वरूपको देखकर हनुमान्‌जीके मनमें अनेक प्रकारके विचारोंका उठना

ततः स कर्मणा तस्य विस्मितो भीमविक्रमः ।
हनुमान् क्रोधताम्राक्षो रक्षोऽधिपमवैक्षत ॥ १ ॥

इन्द्रजित्‌के उस नीतिपूर्ण कर्मसे विस्मित तथा रावणके सीताहरण आदि कर्मोंसे कुपित हो रोषसे लाल आँखें

किये भयंकर पराक्रमी हनुमान्‌जीने राक्षसराज रावणकी ओर देखा ॥ १ ॥

भ्राजमानं महार्हेण काञ्चनेन विराजता।
मुक्ताजालवृतेनाथ मुकुटेन महाद्युतिम् ॥ २ ॥

वह महातेजस्वी राक्षसराज सोनेके बने हुए बहुमूल्य एवं दीप्तिमान् मुकुटसे, जिसमें मोतियोंका काम किया हुआ था, उद्भासित हो रहा था ॥ २ ॥

वज्रसंयोगसंयुक्तैर्महार्हमणिविग्रहैः ।
हैमैराभरणैश्चित्रैर्मनसेव प्रकल्पितैः ॥ ३ ॥

उसके विभिन्न अङ्गोंमें सोनेके विचित्र आभूषण ऐसे सुन्दर लगते थे मानो मानसिक संकल्पद्वारा बनाये गये हों। उनमें हीरे तथा बहुमूल्य मणिरत्न जड़े हुए थे, उन आभूषणोंसे रावणकी अद्भुत शोभा होती थी ॥ ३ ॥

महार्हक्षौमसंवीतं रक्तचन्दनरूषितम् ।
स्वनुलिप्तं विचित्राभिर्विविधाभिश्च भक्तिभिः ॥ ४ ॥

बहुमूल्य रेशमी वस्त्र उसके शरीरकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह लाल चन्दनसे चर्चित था और भाँति-भाँतिकी विचित्र रचनाओंसे युक्त सुन्दर अङ्गरागोंसे उसका सारा अङ्ग सुशोभित हो रहा था ॥ ४ ॥

विचित्रं दर्शनीयैश्च रक्ताक्षैर्भीमदर्शनैः ।
दीप्ततीक्ष्णमहादंष्ट्रं प्रलम्बं दशनच्छदैः ॥ ५ ॥

उसकी आँखें देखने योग्य, लाल-लाल और भयावनी थीं; उनसे और चमकीली तीखी एवं बड़ी-बड़ी दाढ़ों तथा लंबे-लंबे ओठोंके कारण उसकी विचित्र शोभा होती थी ॥ ५ ॥

शिरोभिर्दशभिर्वीरो भ्राजमानं महौजसम् ।
नानाव्यालसमाकीर्णैः शिखरैरिव मन्दरम् ॥ ६ ॥

वीर हनुमान्‌जीने देखा, अपने दस मस्तकोंसे सुशोभित महाबली रावण नाना प्रकारके सर्पोंसे भरे हुए अनेक शिखरोंद्वारा शोभा पानेवाले मन्दराचलके समान प्रतीत हो रहा है ॥ ६ ॥

नीलाञ्जनचयप्रख्यं हारेणोरसि राजता ।
पूर्णचन्द्राभवक्त्रेण सबालार्कमिवाम्बुदम् ॥ ७ ॥

उसका शरीर काले कोयलेके ढेरकी भाँति काला था और वक्षःस्थल चमकीले हारसे विभूषित था। वह पूर्ण चन्द्रके समान मनोरम मुखद्वारा प्रातःकालके सूर्यसे युक्त मेघकी भाँति शोभा पा रहा था ॥ ७ ॥

बाहुभिर्बद्धकेयूरैश्चन्दनोत्तमरूषितैः ।
भ्राजमानाङ्गदैर्भीमैः पञ्चशीर्षैरिवोरगैः ॥ ८ ॥

जिनमें केयूर बँधे थे, उत्तम चन्दनका लेप हुआ था और चमकीले अङ्गद शोभा दे रहे थे, उन भयंकर भुजाओंसे सुशोभित रावण ऐसा जान पड़ता था, मानो पाँच सिरवाले अनेक सर्पोंसे सेवित हो रहा हो ॥ ८ ॥

महति स्फाटिके चित्रे रत्नसंयोगचित्रिते ।
उत्तमास्तरणास्तीर्णे सूपविष्टं वरासने ॥ ९ ॥

वह स्फटिकमणिके बने हुए विशाल एवं सुन्दर सिंहासनपर, जो नाना प्रकारके रत्नोंके संयोगसे चित्रित, विचित्र तथा सुन्दर बिछौनोंसे आच्छादित था, बैठा हुआ था ॥ ९ ॥

अलंकृताभिरत्यर्थं प्रमदाभिः समन्ततः ।
वालव्यजनहस्ताभिरारात्समुपसेवितम् ॥ १० ॥

वस्त्र और आभूषणोंसे खूब सजी हुई बहुत-सी युवतियाँ हाथमें चँवर लिये सब ओरसे आसपास खड़ी हो उसकी सेवा करती थीं ॥ १० ॥

दुर्धरेण प्रहस्तेन महापार्श्वेन रक्षसा ।
मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वज्ञैर्निकुम्भेन च मन्त्रिणा ॥ ११ ॥
उपोपविष्टं रक्षोभिश्चतुर्भिर्बलदर्पितम् ।
कृत्स्नं परिवृतं लोकं चतुर्भिरिव सागरैः ॥ १२ ॥

मन्त्र-तत्त्वको जाननेवाले दुर्धर, प्रहस्त, महापार्श्व तथा निकुम्भ— ये चार राक्षसजातीय मन्त्री उसके पास बैठे थे। उन चारों राक्षसोंसे घिरा हुआ बलाभिमानी रावण चार समुद्रोंसे घिरे हुए समस्त भूलोककी भाँति शोभा पा रहा था ॥ ११-१२ ॥

मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वज्ञैरन्यैश्च शुभदर्शिभिः ।
आश्वास्यमानं सचिवैः सुरैरिव सुरेश्वरम् ॥ १३ ॥

जैसे देवता देवराज इन्द्रको सान्त्वना देते हैं, उसी प्रकार मन्त्रतत्त्वके ज्ञाता मन्त्री तथा दूसरे-दूसरे शुभचिन्तक सचिव उसे आश्वासन दे रहे थे ॥ १३ ॥

अपश्यद् राक्षसपतिं हनूमानतितेजसम् ।
वेष्टितं मेरुशिखरे सतोयमिव तोयदम् ॥ १४ ॥

इस प्रकार हनुमान्‌जीने मन्त्रियोंसे घिरे हुए अत्यन्त तेजस्वी, सिंहासनारूढ राक्षसराज रावणको मेरुशिखरपर विराजमान सजल जलधरके समान देखा ॥ १४ ॥

स तैः सम्पीड्यमानोऽपि रक्षोभिर्भीमविक्रमैः ।
विस्मयं परमं गत्वा रक्षोऽधिपमवैक्षत ॥ १५ ॥

उन भयानक पराक्रमी राक्षसोंसे पीड़ित होनेपर भी हनुमान्‌जी अत्यन्त विस्मित होकर राक्षसराज रावणको बड़े गौरसे देखते रहे ॥ १५ ॥

भ्राजमानं ततो दृष्ट्वा हनुमान् राक्षसेश्वरम् ।
मनसा चिन्तयामास तेजसा तस्य मोहितः ॥ १६ ॥

उस दीप्तिशाली राक्षसराजको अच्छी तरह देखकर उसके तेजसे मोहित हो हनुमान्‌जी मन-ही-मन इस प्रकार विचार करने लगे— ॥ १६ ॥

अहो रूपमहो धैर्यमहो सत्त्वमहो द्युतिः ।
अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता ॥ १७ ॥

‘अहो ! इस राक्षसराजका रूप कैसा अद्भुत है ! कैसा अनोखा धैर्य है ! कैसी अनुपम शक्ति है ! और कैसा आश्चर्यजनक तेज है ! इसका सम्पूर्ण राजोचित लक्षणोंसे सम्पन्न होना कितने आश्चर्यकी बात है ! ॥ १७ ॥

यद्यधर्मो न बलवान् स्यादयं राक्षसेश्वरः ।
स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता ॥ १८ ॥

‘यदि इसमें प्रबल अधर्म न होता तो यह राक्षसराज रावण इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवलोकका संरक्षक हो सकता था ॥

अस्य क्रूरैर्नृशंसैश्च कर्मभिर्लोककुत्सितैः ।
सर्वे बिभ्यति खल्वस्माल्लोकाः सामरदानवाः ॥ १९ ॥
अयं ह्युत्सहते क्रुद्धः कर्तुमेकार्णवं जगत् ।
इति चिन्तां बहुविधामकरोन्मतिमान् कपिः ।
दृष्ट्वा राक्षसराजस्य प्रभावममितौजसः ॥ २० ॥

‘इसके लोकनिन्दित क्रूरतापूर्ण निष्ठुर कर्मोंके कारण देवताओं और दानवोंसहित सम्पूर्ण लोक इससे भयभीत रहते हैं । यह कुपित होनेपर समस्त जगत्‌को एकार्णवमें निमग्न कर सकता है— संसारमें प्रलय मचा सकता है ।’ अमिततेजस्वी राक्षसराजके प्रभावको देखकर वे बुद्धिमान् वानरवीर ऐसी अनेक प्रकारकी चिन्ताएँ करते रहे ॥ १९-२० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें उनचासवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४०. ॥

पञ्चाशः सर्गः

रावणका प्रहस्तके द्वारा हनुमान्‌जीसे लङ्कामें आनेका कारण पुछवाना और हनुमान्‌का अपनेको श्रीरामका दूत बताना

तमुद्वीक्ष्य महाबाहुः पिङ्गाक्षं पुरतः स्थितम् ।
रोषेण महताऽऽविष्टो रावणो लोकरावणः ॥ १ ॥

समस्त लोकोंको रुलानेवाला महाबाहु रावण भूरी आँखोंवाले हनुमान्‌जीको सामने खड़ा देख महान् रोषसे भर गया ॥ १ ॥

शङ्काहतात्मा दध्यौ स कपीन्द्रं तेजसा वृतम् ।
किमेष भगवान् नन्दी भवेत् साक्षादिहागतः ॥ २ ॥
येन शप्तोऽस्मि कैलासे मया प्रहसिते पुरा ।
सोऽयं वानरमूर्तिः स्यात्किंस्विद् बाणोऽपि वासुरः ॥३॥

साथ ही तरह-तरहकी आशङ्काओंसे उसका दिल बैठ गया । अतः वह तेजस्वी वानरराजके विषयमें विचार करने लगा—‘क्या इस वानरके रूपमें साक्षात् भगवान् नन्दी यहाँ पधारे हुए हैं, जिन्होंने पूर्वकालमें कैलास पर्वतपर जब कि मैंने उनका उपहास किया था, मुझे शाप दे दिया था ! वे ही तो वानरका स्वरूप धारण करके यहाँ नहीं आये हैं ! अथवा इस रूपमें बाणासुरका आगमन तो नहीं हुआ है !’ ॥ २ ३ ॥

स राजा रोषताम्राक्षः प्रहस्तं मन्त्रिसत्तमम् ।
कालयुक्तमुवाचेदं वचो विपुलमर्थवत् ॥ ४ ॥

इस तरह तर्क-वितर्क करते हुए राजा रावणने क्रोधसे लाल आँखें करके मन्त्रिवर प्रहस्तसे समयानुकूल गम्भीर एवं अर्थयुक्त बात कही—॥ ४ ॥

दुरात्मा पृच्छ्यतामेष कुतः किं वास्य कारणम्।
वनभङ्गे च कोऽस्यार्थो राक्षसानां च तर्जने ॥ ५ ॥

‘अमात्य ! इस दुरात्मासे पूछो तो सही, यह कहाँसे आया है ? इसके आनेका क्या कारण है ? प्रमदावनको उजाड़ने तथा राक्षसोंको मारनेमें इसका क्या उद्देश्य था ? ॥

मत्पुरीमप्रधृष्यां वै गमने किं प्रयोजनम् ।
आयोधने वा किं कार्यं पृच्छ्यतामेष दुर्मतिः ॥ ६ ॥

‘मेरी दुर्जय पुरीमें जो इसका आना हुआ है, इसमें इसका क्या प्रयोजन है ? अथवा इसने जो राक्षसोंके साथ युद्ध छेड़ दिया है, उसमें इसका क्या उद्देश्य है ? ये सारी बातें इस दुर्बुद्धि वानरसे पूछो’ ॥ ६ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्तो वाक्यमब्रवीत् ।
समाश्वसिहि भद्रं ते न भीः कार्या त्वया कपे ॥ ७ ॥

रावणकी बात सुनकर प्रहस्तने हनुमान्‌जीसे कहा—‘वानर ! तुम घबराओ न, धैर्य रक्खो । तुम्हारा भला हो । तुम्हें डरनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ७ ॥

यदि तावत् त्वमिन्द्रेण प्रेषितो रावणालयम् ।
तत्त्वमाख्याहि मा ते भूद् भयं वानर मोक्ष्यसे ॥ ८ ॥

‘यदि तुम्हें इन्द्रने महाराज रावणकी नगरीमें भेजा है तो ठीक-ठीक बता दो । वानर ! डरो न । छोड़ दिये जाओगे ॥ ८ ॥

यदि वैश्रवणस्य त्वं यमस्य वरुणस्य च ।
चारुरूपमिदं कृत्वा प्रविष्टो नः पुरीमिमाम् ॥ ९ ॥

‘अथवा यदि तुम कुबेर, यम या वरुणके दूत हो और

यह सुन्दर रूप धारण करके हमारी इस पुरीमें घुस आये हो तो यह भी बता दो ॥ ९ ॥

विष्णुना प्रेषितो वापि दूतो विजयकाङ्क्षिणा।
नहि ते वानरं तेजो रूपमात्रं तु वानरम् ॥ १० ॥

'अथवा विजयकी अभिलाषा रखनेवाले विष्णुने तुम्हें दूत बनाकर भेजा है? तुम्हारा तेज वानरोंका-सा नहीं है। केवल रूपमात्र वानरका है ॥ १० ॥

तत्त्वतः कथयस्वाद्य ततो वानर मोक्ष्यसे।
अनृतं वदतश्चापि दुर्लभं तव जीवितम् ॥ ११ ॥

'वानर! इस समय सच्ची बात कह दो, फिर तुम छोड़ दिये जाओगे। यदि झूठ बोलोगे तो तुम्हारा जीना असम्भव हो जायगा ॥ ११ ॥

अथ वा यन्निमित्तस्ते प्रवेशो रावणालये।
एवमुक्तो हरिवरस्तदा रक्षोगणेश्वरम् ॥ १२ ॥
अब्रवीन्नास्मि शक्रस्य यमस्य वरुणस्य च।
धनदेन न मे सख्यं विष्णुना नास्मि चोदितः ॥ १३ ॥

'अथवा और सब बातें छोड़ो। तुम्हारा इस रावणके नगरमें आनेका क्या उद्देश्य है? यही बता दो।' प्रहस्तके इस प्रकार पूछनेपर उस समय वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌ने राक्षसोंके स्वामी रावणसे कहा—'मैं इन्द्र, यम अथवा वरुणका दूत नहीं हूँ। कुबेरके साथ भी मेरी मैत्री नहीं है और भगवान् विष्णुने भी मुझे यहाँ नहीं भेजा है ॥ १२-१३ ॥

जातिरेव मम त्वेषा वानरोऽहमिहागतः।
दर्शने राक्षसेन्द्रस्य तदिदं दुर्लभं मया ॥ १४ ॥
वनं राक्षसराजस्य दर्शनार्थे विनाशितम्।
ततस्ते राक्षसाः प्राप्ता बलिनो युद्धकाङ्क्षिणः ॥ १५ ॥
रक्षणार्थं च देहस्य प्रतियुद्धा मया रणे।

'मैं जन्मसे ही वानर हूँ और राक्षस रावणसे मिलनेके उद्देश्यसे ही मैंने उनके इस दुर्लभ वनको उजाड़ा है। इसके बाद तुम्हारे बलवान् राक्षस युद्धकी इच्छासे मेरे पास आये और मैंने अपने शरीरकी रक्षाके लिये रणभूमिमें उनका सामना किया ॥ १४-१५½ ॥

अस्त्रपाशैर्न शक्योऽहं बद्धुं देवासुरैरपि ॥ १६ ॥
पितामहादेष वरो ममापि हि समागतः।

'देवता अथवा असुर भी मुझे अस्त्र अथवा पाशसे बाँध नहीं सकते। इसके लिये मुझे भी ब्रह्माजीसे वरदान मिल चुका है ॥ १६½ ॥

राजानं द्रष्टुकामेन मयास्त्रमनुवर्तितम् ॥ १७ ॥
विमुक्तोऽप्यहमस्त्रेण राक्षसैस्त्वभिवेदितः।

'राक्षसराजको देखनेकी इच्छासे ही मैंने अस्त्रसे बँधना स्वीकार किया है। यद्यपि इस समय मैं अस्त्रसे मुक्त हूँ तथापि इन राक्षसोंने मुझे बँधा समझकर ही यहाँ लाकर तुम्हें सौंपा है ॥ १७½ ॥

केनचिद् रामकार्येण आगतोऽस्मि तवान्तिकम् ॥ १८ ॥
दूतोऽहमिति विज्ञाय राघवस्यामितौजसः।
श्रूयतामेव वचनं मम पथ्यमिदं प्रभो ॥ १९ ॥

'भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका कुछ कार्य है, जिसके लिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ। प्रभो! मैं अमित तेजस्वी श्रीरघुनाथजीका दूत हूँ, ऐसा समझकर मेरे इस हितकारी वचनको अवश्य सुनो' ॥ १८-१९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चाशः सर्गः ॥ ५० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें पचासवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशः सर्गः

हनुमान्‌जीका श्रीरामके प्रभावका वर्णन करते हुए रावणको समझाना

तं समीक्ष्य महासत्त्वं सत्त्ववान् हरिसत्तमः।
वाक्यमर्थवदव्यग्रस्तमुवाच दशाननम् ॥ १ ॥

महाबली दशमुख रावणकी ओर देखते हुए शक्तिशाली वानरशिरोमणि हनुमान्‌ने शान्तभावसे यह अर्थयुक्त बात कही— ॥ १ ॥

अहं सुग्रीवसंदेशादिह प्राप्तस्तवान्तिके।
राक्षसेश हरीशस्त्वां भ्राता कुशलमब्रवीत् ॥ २ ॥

'राक्षसराज! मैं सुग्रीवका संदेश लेकर यहाँ तुम्हारे पास आया हूँ। वानरराज सुग्रीव तुम्हारे भाई हैं। इसी नाते उन्होंने तुम्हारा कुशल-समाचार पूछा है ॥ २ ॥

भ्रातुः शृणु समादेशं सुग्रीवस्य महात्मनः।
धर्मार्थसहितं वाक्यमिह चामुत्र च क्षमम् ॥ ३ ॥

'अब तुम अपने भाई महात्मा सुग्रीवका संदेश—धर्म और अर्थयुक्त वचन, जो इहलोक और परलोकमें भी लाभदायक है, सुनो ॥ ३ ॥

राजा दशरथो नाम रथकुञ्जरवाजिमान्।
पितेव बन्धुर्लोकस्य सुरेश्वरसमद्युतिः ॥ ४ ॥

'अभी हालमें ही दशरथनामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं, जो पिताकी भाँति प्रजाके हितैषी, इन्द्रके समान तेजस्वी तथा रथ, हाथी, घोड़े आदिसे सम्पन्न थे ॥ ४ ॥

ज्येष्ठस्तस्य महाबाहुः पुत्रः प्रियतरः प्रभुः ।
पितुर्निदेशान्निष्क्रान्तः प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥ ५ ॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह भार्यया ।
रामो नाम महातेजा धर्म्यं पन्थानमाश्रितः ॥ ६ ॥

'उनके परम प्रिय ज्येष्ठ पुत्र, महातेजस्वी, प्रभावशाली महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी पिताकी आज्ञासे धर्ममार्गका आश्रय लेकर अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्यमें आये थे ॥ ५-६ ॥

तस्य भार्या जनस्थाने भ्रष्टा सीतेति विश्रुता ।
वैदेहस्य सुता राज्ञो जनकस्य महात्मनः ॥ ७ ॥

'सीता विदेहदेशके राजा महात्मा जनककी पुत्री हैं। जनस्थानमें आनेपर श्रीरामपत्नी सीता कहीं खो गयी हैं ॥ ७ ॥

मार्गमाणस्तु तां देवीं राजपुत्रः सहानुजः ।
ऋष्यमूकमनुप्राप्तः सुग्रीवेण च संगतः ॥ ८ ॥

'राजकुमार श्रीराम अपने भाईके साथ उन्हीं सीतादेवीकी खोज करते हुए ऋष्यमूक पर्वतपर आये और सुग्रीवसे मिले ॥ ८ ॥

तस्य तेन प्रतिज्ञातं सीतायाः परिमार्गणम् ।
सुग्रीवस्यापि रामेण हरिराज्यं निवेदितुम् ॥ ९ ॥

'सुग्रीवने उनसे सीताको ढूँढ़ निकालनेकी प्रतिज्ञा की और श्रीरामने सुग्रीवको वानरोंका राज्य दिलानेका वचन दिया ॥ ९ ॥

ततस्तेन मृधे हत्वा राजपुत्रेण वालिनम् ।
सुग्रीवः स्थापितो राज्ये हर्यृक्षाणां गणेश्वरः ॥ १० ॥

'तत्पश्चात् राजकुमार श्रीरामचन्द्रजीने युद्धमें वालीको मारकर सुग्रीवको किष्किन्धाके राज्यपर स्थापित कर दिया। इस समय सुग्रीव वानरों और भालुओंके समुदायके स्वामी हैं ॥ १० ॥

त्वया विज्ञातपूर्वश्च वाली वानरपुङ्गवः । ✓
स तेन निहतः संख्ये शरेणैकेन वानरः ॥ ११ ॥

'वानरराज वालीको तो तुम पहलेसे ही जानते हो। उस वानरवीरको युद्धभूमिमें श्रीरामने एक ही बाणसे मार गिराया था ॥ ११ ॥

स सीतामार्गणे व्यग्रः सुग्रीवः सत्यसंगरः ।
हरीन् सम्प्रेषयामास दिशः सर्वा हरीश्वरः ॥ १२ ॥

'अब सत्यप्रतिज्ञ सुग्रीव सीताको खोज निकालनेके लिये व्यग्र हो उठे हैं। उन वानरराजने समस्त दिशाओंमें वानरोंको भेजा है ॥ १२ ॥

तां हरीणां सहस्राणि शतानि नियुतानि च ।
दिक्षु सर्वासु मार्गन्ते ह्यधश्चोपरि चाम्बरे ॥ १३ ॥

'इस समय सैकड़ों, हजारों और लाखों वानर सम्पूर्ण दिशाओं तथा आकाश और पातालमें भी सीताजीकी खोज कर रहे हैं ॥ १३ ॥

वैनतेयसमाः केचित् केचित् तत्रानिलोपमाः ।
असङ्गगतयः शीघ्रा हरिवीरा महाबलाः ॥ १४ ॥

'उन वानरवीरोंमेंसे कोई गरुड़के समान वेगवान् हैं तो कोई वायुके समान। उनकी गति कहीं नहीं रुकती। वे कपिवीर शीघ्रगामी और महान् बली हैं ॥ १४ ॥

अहं तु हनुमान्नाम मारुतस्यौरसः सुतः ।
सीतायास्तु कृते तूर्णं शतयोजनमायतम् ॥ १५ ॥
समुद्रं लङ्घयित्वैव त्वां दिदृक्षुरिहागतः ।
भ्रमता च मया दृष्टा गृहे ते जनकात्मजा ॥ १६ ॥

'मेरा नाम हनुमान् है। मैं वायुदेवताका औरस पुत्र हूँ। सीताका पता लगाने और तुमसे मिलनेके लिये सौ योजन विस्तृत समुद्रको लाँघकर तीव्र गतिसे यहाँ आया हूँ। घूमते-घूमते तुम्हारे अन्तःपुरमें मैंने जनकनन्दिनी सीताको देखा है ॥ १५-१६ ॥

तद् भवान् दृष्टधर्मार्थस्तपःकृतपरिग्रहः ।
परदारान् महाप्राज्ञ नोपरोद्धुं त्वमर्हसि ॥ १७ ॥

'महामते! तुम धर्म और अर्थके तत्त्वको जानते हो। तुमने बड़े भारी तपका संग्रह किया है। अतः दूसरेकी स्त्रीको अपने घरमें रोक रखना तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है ॥ १७ ॥

नहि धर्मविरुद्धेषु बह्वपायेषु कर्मसु । ✓
मूलघातिषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः ॥ १८ ॥

'धर्मविरुद्ध कार्योंमें बहुत-से अनर्थ भरे रहते हैं। वे कर्ताका जड़मूलसे नाश कर डालते हैं। अतः तुम-जैसे बुद्धिमान् पुरुष ऐसे कार्योंमें नहीं प्रवृत्त होते ॥ १८ ॥

कश्च लक्ष्मणमुक्तानां रामकोपानुवर्तिनाम् ।
शराणामग्रतः स्थातुं शक्तो देवासुरेष्वपि ॥ १९ ॥ ✓

'देवताओं और असुरोंमें भी कौन ऐसा वीर है, जो श्रीरामचन्द्रजीके क्रोध करनेके पश्चात् लक्ष्मणके छोड़े हुए बाणोंके सामने ठहर सके ॥ १९ ॥

न चापि त्रिषु लोकेषु राजन् विद्येत कश्चन ।
राघवस्य व्यलीकं यः कृत्वा सुखमवाप्नुयात् ॥ २० ॥

'राजन्! तीनों लोकोंमें एक भी ऐसा प्राणी नहीं है, जो भगवान् श्रीरामका अपराध करके सुखी रह सके ॥ २० ॥

तत् त्रिकालहितं वाक्यं धर्म्यमर्थानुयायि च ।
मन्यस्व नरदेवाय जानकी प्रतिदीयताम् ॥ २१ ॥

'इसलिये मेरी धर्म और अर्थके अनुकूल बात, जो तीनों कालोंमें हितकर है, मान लो और जानकीजीको श्रीरामचन्द्रजीके पास लौटा दो ॥ २१ ॥

दृष्टा हीयं मया देवी लब्धं यदिह दुर्लभम्।
उत्तरं कर्म यच्छेषं निमित्तं तत्र राघवः ॥ २२ ॥

'मैंने इन देवी सीताका दर्शन कर लिया। जो दुर्लभ वस्तु थी, उसे यहाँ पा लिया। इसके बाद जो कार्य शेष है, उसके साधनमें श्रीरघुनाथजी ही निमित्त हैं ॥ २२ ॥

लक्षितेयं मया सीता तथा शोकपरायणा।
गृहे यां नाभिजानासि पञ्चास्यामिव पन्नगीम् ॥ २३ ॥

'मैंने यहाँ सीताकी अवस्थाको लक्ष्य किया है। वे निरन्तर शोकमें डूबी रहती हैं। सीता तुम्हारे घरमें पाँच फनवाली नागिनके समान निवास करती हैं, जिन्हें तुम नहीं जानते हो ॥ २३ ॥

नेयं जरयितुं शक्या सासुरैरमरैरपि।
विषसंसृष्टमत्यर्थं भुक्तमन्नमिवौजसा ॥ २४ ॥

'जैसे अत्यन्त विषमिश्रित अन्नको खाकर कोई उसे बलपूर्वक नहीं पचा सकता, उसी प्रकार सीताजीको अपनी शक्तिसे पचा लेना देवताओं और असुरोंके लिये भी असम्भव है ॥ २४ ॥

तपःसंतापलब्धस्ते सोऽयं धर्मपरिग्रहः।
न स नाशयितुं न्याय्य आत्मप्राणपरिग्रहः ॥ २५ ॥

'तुमने तपस्याका कष्ट उठाकर धर्मके फलस्वरूप जो यह ऐश्वर्यका संग्रह किया है तथा शरीर और प्राणोंको चिरकालतक धारण करनेकी शक्ति प्राप्त की है, उसका विनाश करना उचित नहीं ॥ २५ ॥

अवध्यतां तपोभिर्यां भवान् समनुपश्यति।
आत्मनः सासुरैर्देवैर्हेतुस्तत्राप्ययं महान् ॥ २६ ॥

'तुम तपस्याके प्रभावसे देवताओं और असुरोंद्वारा जो अपनी अवध्यता देख रहे हो, उसमें भी तपस्याजनित यह धर्म ही महान् कारण है (अथवा उस अवध्यताके होते हुए भी तुम्हारे वधका दूसरा महान् कारण उपस्थित है) ॥ २६ ॥

सुग्रीवो न च देवोऽयं न यक्षो न च राक्षसः।
मानुषो राघवो राजन् सुग्रीवश्च हरीश्वरः।
तस्मात् प्राणपरित्राणं कथं राजन् करिष्यसि ॥ २७ ॥

'राक्षसराज! सुग्रीव और श्रीरामचन्द्रजी न तो देवता हैं, न यक्ष हैं और न राक्षस ही हैं। श्रीरघुनाथजी मनुष्य हैं और सुग्रीव वानरोंके राजा। अतः उनके हाथसे तुम अपने प्राणोंकी रक्षा कैसे करोगे? ॥ २७ ॥

न तु धर्मोपसंहारमधर्मफलसंहितम्।
तदेव फलमन्वेति धर्मश्चाधर्मनाशनः ॥ २८ ॥

'जो पुरुष प्रबल अधर्मके फलसे बँधा हुआ है, उसे धर्मका फल नहीं मिलता। वह उस अधर्मफलको ही पाता है। हाँ, यदि उस अधर्मके बाद किसी प्रबल धर्मका अनुष्ठान किया गया हो तो वह पहलेके अधर्मका नाशक होता है* ॥ २८ ॥

प्राप्तं धर्मफलं तावद् भवता नात्र संशयः।
फलमस्याप्यधर्मस्य क्षिप्रमेव प्रपत्स्यसे ॥ २९ ॥

'तुमने पहले जो धर्म किया था, उसका पूरा-पूरा फल तो यहाँ पा लिया, अब इस सीताहरणरूपी अधर्मका फल भी तुम्हें शीघ्र ही मिलेगा ॥ २९ ॥

जनस्थानवधं बुद्ध्वा वालिनश्च वधं तथा।
रामसुग्रीवसख्यं च बुद्ध्यस्व हितमात्मनः ॥ ३० ॥

'जनस्थानके राक्षसोंका संहार, वालीका वध और श्रीराम तथा सुग्रीवकी मैत्री—इन तीनों कार्योंको अच्छी तरह समझ लो। उसके बाद अपने हितका विचार करो ॥ ३० ॥

कामं खल्वहमप्येकः सवाजिरथकुञ्जराम्।
लङ्कां नाशयितुं शक्तस्तस्यैष तु न निश्चयः ॥ ३१ ॥

'यद्यपि मैं अकेला ही हाथी, घोड़े और रथोंसहित समूची लङ्काका नाश कर सकता हूँ, तथापि श्रीरघुनाथजीका ऐसा विचार नहीं है—उन्होंने मुझे इस कार्यके लिये आज्ञा नहीं दी है ॥ ३१ ॥

रामेण हि प्रतिज्ञातं हर्यृक्षगणसंनिधौ।
उत्सादनममित्राणां सीता यैस्तु प्रधर्षिता ॥ ३२ ॥

'जिन लोगोंने सीताका तिरस्कार किया है, उन शत्रुओंका स्वयं ही संहार करनेके लिये श्रीरामचन्द्रजीने वानरों और भालुओंके सामने प्रतिज्ञा की है ॥ ३२ ॥

अपकुर्वन् हि रामस्य साक्षादपि पुरंदरः।
न सुखं प्राप्नुयादन्यः किं पुनस्त्वद्विधो जनः ॥ ३३ ॥

'भगवान् श्रीरामका अपराध करके साक्षात् इन्द्र भी सुख नहीं पा सकते, फिर तुम्हारे-जैसे साधारण लोगोंकी तो बात ही क्या है? ॥ ३३ ॥

यां सीतेत्यभिजानासि येयं तिष्ठति ते गृहे।
कालरात्रीति तां विद्धि सर्वलङ्काविनाशिनीम् ॥ ३४ ॥

'जिनको तुम सीताके नामसे जानते हो और जो इस समय तुम्हारे अन्तःपुरमें मौजूद हैं, उन्हें सम्पूर्ण लङ्काका विनाश करनेवाली कालरात्रि समझो ॥ ३४ ॥

तदलं कालपाशेन सीताविग्रहरूपिणा।
स्वयं स्कन्धावसक्तेन क्षेममात्मनि चिन्त्यताम् ॥ ३५ ॥

'सीताका शरीर धारण करके तुम्हारे पास कालकी फाँसी आ पहुँची है, उसमें स्वयं गला फँसाना ठीक नहीं है; अतः अपने कल्याणकी चिन्ता करो ॥ ३५ ॥

---

* जैसा कि श्रुतिका वचन है—'धर्मेण पापमपनुदति।' अर्थात् धर्मसे मनुष्य अपने पापको दूर करता है। स्मृतियोंमें बताये गये प्रायश्चित्त कृच्छ्रव्रत आदि भी इसी बातके समर्थक हैं।

सीतायास्तेजसा दग्धां रामकोपप्रदीपिताम्।
दह्यमानामिमां पश्य पुरीं साट्टप्रतोलिकाम्॥ ३६॥

'देखो, अट्टालिकाओं और गलियोंसहित यह लङ्कापुरी सीताजीके तेज और श्रीरामकी क्रोधाग्निसे जलकर भस्म होने जा रही है (बचा सको तो बचाओ)॥ ३६॥

स्वानि मित्राणि मन्त्रींश्च ज्ञातीन् भ्रातॄन् सुतान् हितान्।
भोगान् दारांश्च लङ्कां च मा विनाशमुपानय॥ ३७॥

'इन मित्रों, मन्त्रियों, कुटुम्बीजनों, भाइयों, पुत्रों, हितकारियों, स्त्रियों, सुख-भोगके साधनों तथा समूची लङ्काको मौतके मुखमें न झोंको॥ ३७॥

सत्यं राक्षसराजेन्द्र शृणुष्व वचनं मम।
रामदासस्य दूतस्य वानरस्य विशेषतः॥ ३८॥

'राक्षसोंके राजाधिराज! मैं भगवान् श्रीरामका दास हूँ, दूत हूँ और विशेषतः वानर हूँ। मेरी सच्ची बात सुनो—॥

सर्वांल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् सचराचरान्।
पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः॥ ३९॥

'महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजी चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण लोकोंका संहार करके फिर उनका नये सिरेसे निर्माण करनेकी शक्ति रखते हैं॥ ३९॥

देवासुरनरेन्द्रेषु यक्षरक्षोरगेषु च।
विद्याधरेषु नागेषु गन्धर्वेषु मृगेषु च॥ ४०॥
सिद्धेषु किंनरेन्द्रेषु पतत्रिषु च सर्वतः।
सर्वत्र सर्वभूतेषु सर्वकालेषु नास्ति सः॥ ४१॥
यो रामं प्रति युध्येत विष्णुतुल्यपराक्रमम्।

'भगवान् श्रीराम श्रीविष्णुके तुल्य पराक्रमी हैं। देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, सर्प, विद्याधर, नाग, गन्धर्व, मृग, सिद्ध, किंनर, पक्षी एवं अन्य समस्त प्राणियोंमें कहीं किसी समय कोई भी ऐसा नहीं है, जो श्रीरघुनाथजीके साथ लोहा ले सके॥ ४०-४१½॥

सर्वलोकेश्वरस्येह कृत्वा विप्रियमीदृशम्।
रामस्य राजसिंहस्य दुर्लभं तव जीवितम्॥ ४२॥

'सम्पूर्ण लोकोंके अधीश्वर राजसिंह श्रीरामका ऐसा महान् अपराध करके तुम्हारा जीवित रहना कठिन है॥ ४२॥

देवाश्च दैत्याश्च निशाचरेन्द्र
गन्धर्वविद्याधरनागयक्षाः।
रामस्य लोकत्रयनायकस्य
स्थातुं न शक्ताः समरेषु सर्वे॥ ४३॥

'निशाचरराज! श्रीरामचन्द्रजी तीनों लोकोंके स्वामी हैं। देवता, दैत्य, गन्धर्व, विद्याधर, नाग तथा यक्ष—ये सब मिलकर भी युद्धमें उनके सामने नहीं टिक सकते॥ ४३॥

ब्रह्मा स्वयम्भूश्चतुराननो वा
रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा।
इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा
स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य॥ ४४॥

'चार मुखोंवाले स्वयम्भू ब्रह्मा, तीन नेत्रोंवाले त्रिपुरनाशक रुद्र अथवा देवताओंके स्वामी महान् ऐश्वर्यशाली इन्द्र भी समराङ्गणमें श्रीरघुनाथजीके सामने नहीं ठहर सकते'॥ ४४॥

स सौष्ठवोपेतमदीनवादिनः
कपेर्निशम्याप्रतिमोऽप्रियं वचः।
दशाननः कोपविवृत्तलोचनः
समादिशत् तस्य वधं महाकपेः॥ ४५॥

वीरभावसे निर्भयतापूर्वक भाषण करनेवाले महाकपि हनुमान्‌जीकी बातें बड़ी सुन्दर एवं युक्तियुक्त थीं, तथापि वे रावणको अप्रिय लगीं। उन्हें सुनकर अनुपम शक्तिशाली दशानन रावणने क्रोधसे आँखें तरेरकर सेवकोंको उनके वधके लिये आज्ञा दी॥ ४५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकपञ्चाशः सर्गः॥ ५१॥
इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें इक्यावनवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ५१॥

द्विपञ्चाशः सर्गः

विभीषणका दूतके वधको अनुचित बताकर उसे दूसरा कोई दण्ड देनेके लिये कहना तथा रावणका उनके अनुरोधको स्वीकार कर लेना

स तस्य वचनं श्रुत्वा वानरस्य महात्मनः।
आज्ञापयद् वधं तस्य रावणः क्रोधमूर्च्छितः॥ १॥

वानरशिरोमणि महात्मा हनुमान्‌जीका वचन सुनकर क्रोधसे तमतमाये हुए रावणने अपने सेवकोंको आज्ञा दी—'इस वानरका वध कर डालो'॥ १॥

वधे तस्य समाज्ञप्ते रावणेन दुरात्मना।
निवेदितवतो दौत्यं नानुमेने विभीषणः॥ २॥

दुरात्मा रावणने जब उनके वधकी आज्ञा दी, तब विभीषण भी वहीं थे। उन्होंने उस आज्ञाका अनुमोदन नहीं किया; क्योंकि हनुमान्‌जी अपनेको सुग्रीव एवं श्रीरामका दूत बता चुके थे॥ २॥

तं रक्षोऽधिपतिं क्रुद्धं तच्च कार्यमुपस्थितम्।

विदित्वा चिन्तयामास कार्यं कार्यविधौ स्थितः ॥ ३ ॥

एक ओर राक्षसराज रावण क्रोधसे भरा हुआ था, दूसरी ओर वह दूतके वधका कार्य उपस्थित था। यह सब जानकर यथोचित कार्यके सम्पादनमें लगे हुए विभीषणने समयोचित कर्तव्यका निश्चय किया ॥ ३ ॥

निश्चितार्थस्ततः साम्ना पूज्यं शत्रुजिदग्रजम् ।
उवाच हितमत्यर्थं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ४ ॥

निश्चय हो जानेपर वार्तालापकुशल विभीषणने पूजनीय ज्येष्ठ भ्राता शत्रुविजयी रावणसे शान्तिपूर्वक यह हितकर वचन कहा—॥ ४ ॥

क्षमस्व रोषं त्यज राक्षसेन्द्र
प्रसीद मे वाक्यमिदं शृणुष्व ।
वधं न कुर्वन्ति परावरज्ञा
दूतस्य सन्तो वसुधाधिपेन्द्राः ॥ ५ ॥

'राक्षसराज! क्षमा कीजिये, क्रोधको त्याग दीजिये, प्रसन्न होइये और मेरी यह बात सुनिये। ऊँच-नीचका ज्ञान रखनेवाले श्रेष्ठ राजालोग दूतका वध नहीं करते हैं ॥ ५ ॥

राजन् धर्मविरुद्धं च लोकवृत्तेश्च गर्हितम् ।
तव चासदृशं वीर कपेरस्य प्रमापणम् ॥ ६ ॥

'वीर महाराज! इस वानरको मारना धर्मके विरुद्ध और लोकाचारकी दृष्टिसे भी निन्दित है। आप-जैसे वीरके लिये तो यह कदापि उचित नहीं है ॥ ६ ॥

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च राजधर्मविशारदः ।
परावरज्ञो भूतानां त्वमेव परमार्थवित् ॥ ७ ॥
गृह्यन्ते यदि रोषेण त्वादृशोऽपि विचक्षणाः ।
ततः शास्त्रविपश्चित्त्वं श्रम एव हि केवलम् ॥ ८ ॥

'आप धर्मके ज्ञाता, उपकारको माननेवाले और राजधर्मके विशेषज्ञ हैं; भले-बुरेका ज्ञान रखनेवाले और परमार्थके ज्ञाता हैं। यदि आप-जैसे विद्वान् भी रोषके वशीभूत हो जायँ तब तो समस्त शास्त्रोंका पाण्डित्य प्राप्त करना केवल श्रम ही होगा ॥ ७-८ ॥

तस्मात् प्रसीद शत्रुघ्न राक्षसेन्द्र दुरासद ।
युक्तायुक्तं विनिश्चित्य दूतदण्डो विधीयताम् ॥ ९ ॥

'अतः शत्रुओंका संहार करनेवाले दुर्जय राक्षसराज! आप प्रसन्न होइये और उचित-अनुचितका विचार करके दूतके योग्य किसी दण्डका विधान कीजिये' ॥ ९ ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
कोपेन महताऽऽविष्टो वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ १० ॥

विभीषणकी बात सुनकर राक्षसोंका स्वामी रावण महान् कोपसे भरकर उन्हें उत्तर देता हुआ बोला—॥ १० ॥

न पापानां वधे पापं विद्यते शत्रुसूदन ।
तस्मादिमं वधिष्यामि वानरं पापकारिणम् ॥ ११ ॥

'शत्रुसूदन! पापियोंका वध करनेमें पाप नहीं है। इस वानरने वाटिकाका विध्वंस तथा राक्षसोंका वध करके पाप किया है। इसलिये अवश्य ही इसका वध करूँगा' ॥ ११ ॥

अधर्ममूलं बहुदोषयुक्त-
मनार्यजुष्टं वचनं निशम्य ।
उवाच वाक्यं परमार्थतत्त्वं
विभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः ॥ १२ ॥

रावणका वचन अनेक दोषोंसे युक्त और पापका मूल था। वह श्रेष्ठ पुरुषोंके योग्य नहीं था। उसे सुनकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विभीषणने उत्तम कर्तव्यका निश्चय करानेवाली बात कही—॥ १२ ॥

प्रसीद लङ्केश्वर राक्षसेन्द्र
धर्मार्थतत्त्वं वचनं शृणुष्व ।
दूता न वध्याः समयेषु राजन्
सर्वेषु सर्वत्र वदन्ति सन्तः ॥ १३ ॥

'लङ्केश्वर! प्रसन्न होइये। राक्षसराज! मेरे धर्म और अर्थतत्त्वसे युक्त वचनको ध्यान देकर सुनिये। राजन्! सत्पुरुषोंका कथन है कि दूत कहीं किसी समय भी वध करने योग्य नहीं होते ॥ १३ ॥

असंशयं शत्रुरयं प्रवृद्धः
कृतं ह्यनेनाप्रियमप्रमेयम् ।
न दूतवध्यां प्रवदन्ति सन्तो
दूतस्य दृष्टा बहवो हि दण्डाः ॥ १४ ॥

'इसमें संदेह नहीं कि यह बहुत बड़ा शत्रु है; क्योंकि इसने वह अपराध किया है जिसकी कहीं तुलना नहीं है, तथापि सत्पुरुष दूतका वध करना उचित नहीं बताते हैं। दूतके लिये अन्य प्रकारके बहुत-से दण्ड देखे गये हैं ॥ १४ ॥

वैरूप्यमङ्गेषु कशाभिघातो
मौण्ड्यं तथा लक्षणसंनिपातः ।
एतान् हि दूते प्रवदन्ति दण्डान्
वधस्तु दूतस्य न नः श्रुतोऽस्ति ॥ १५ ॥

'किसी अङ्गको भङ्ग या विकृत कर देना, कोड़ेसे पिटवाना, सिर मुड़वा देना तथा शरीरमें कोई चिह्न दाग देना—ये ही दण्ड दूतके लिये उचित बताये गये हैं। उसके लिये वधका दण्ड तो मैंने कभी नहीं सुना है ॥ १५ ॥

कथं च धर्मार्थविनीतबुद्धिः
परावरप्रत्ययनिश्चितार्थः ।
भवद्विधः कोपवशे हि तिष्ठेत्
कोपं न गच्छन्ति हि सत्त्ववन्तः ॥ १६ ॥

'आपकी बुद्धि धर्म और अर्थकी शिक्षासे युक्त है। आप ऊँच-नीचका विचार करके कर्तव्यका निश्चय करनेवाले हैं। आप-जैसा नीतिज्ञ पुरुष कोपके अधीन कैसे हो सकता है? क्योंकि शक्तिशाली पुरुष क्रोध नहीं करते हैं ॥ १६ ॥

न धर्मवादे न च लोकवृत्ते
न शास्त्रबुद्धिग्रहणेषु वापि।
विद्येत कश्चित्तव वीर तुल्य-
स्त्वं ह्युत्तमः सर्वसुरासुराणाम् ॥ १७ ॥

'वीर! धर्मकी व्याख्या करने, लोकाचारका पालन करने अथवा शास्त्रीय सिद्धान्तको समझनेमें आपके समान दूसरा कोई नहीं है। आप सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ १७ ॥

पराक्रमोत्साहमनस्विनां च
सुरासुराणामपि दुर्जयेन।
त्वयाप्रमेयेण सुरेन्द्रसंघा
जिताश्च युद्धेष्वसकृन्नरेन्द्राः ॥ १८ ॥

'पराक्रम और उत्साहसे सम्पन्न जो मनस्वी देवता और असुर हैं, उनके लिये भी आपपर विजय पाना अत्यन्त कठिन है। आप अप्रमेय शक्तिशाली हैं। आपने अनेक युद्धोंमें बारंबार देवेश्वरों तथा नरेशोंको पराजित किया है ॥

इत्थंविधस्यामरदैत्यशत्रोः
शूरस्य वीरस्य तवाजितस्य।
कुर्वन्ति वीरा मनसाप्यलीकं
प्राणैर्विमुक्ता न तु भोः पुरा ते ॥ १९ ॥

'देवताओं और दैत्योंसे भी शत्रुता रखनेवाले ऐसे आप अपराजित शूरवीरका पहले कभी शत्रुपक्षी वीर मनसे भी पराभव नहीं कर सके हैं। जिन्होंने सिर उठाया, वे तत्काल प्राणोंसे हाथ धो बैठे ॥ १९ ॥

न चाप्यस्य कपेर्घाते कंचित् पश्याम्यहं गुणम्।
तेष्वयं पात्यतां दण्डो यैरयं प्रेषितः कपिः ॥ २० ॥

'इस वानरको मारनेमें मुझे कोई लाभ नहीं दिखायी देता। जिन्होंने इसे भेजा है, उन्हींको यह प्राणदण्ड दिया जाय ॥ २० ॥

साधुर्वा यदि वासाधुः परैरेष समर्पितः।
ब्रुवन् परार्थं परवान् न दूतो वधमर्हति ॥ २१ ॥

'यह भला हो या बुरा, शत्रुओंने इसे भेजा है; अतः यह उन्हींके स्वार्थकी बात करता है। दूत सदा पराधीन होता है, अतः वह वधके योग्य नहीं होता है ॥ २१ ॥

अपि चास्मिन् हते नान्यं राजन् पश्यामि खेचरम्।
इह यः पुनरागच्छेत् परं पारं महोदधेः ॥ २२ ॥

'राजन्! इसके मारे जानेपर मैं दूसरे किसी ऐसे आकाशचारी प्राणीको नहीं देखता, जो शत्रुके समीपसे महासागरके इस पार फिर आ सके (ऐसी दशामें शत्रुकी गति-विधिका आपको पता नहीं लग सकेगा) ॥ २२ ॥

तस्मान्नास्य वधे यत्नः कार्यः परपुरंजय।
भवान् सेन्द्रेषु देवेषु यत्नमास्थातुमर्हति ॥ २३ ॥

'अतः शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले महाराज! आपको इस दूतके वधके लिये कोई प्रयत्न नहीं करना चाहिये। आप तो इस योग्य हैं कि इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंपर चढ़ाई कर सकें ॥ २३ ॥

अस्मिन् विनष्टे नहि भूतमन्यं
पश्यामि यस्तौ नरराजपुत्रौ।
युद्धाय युद्धप्रिय दुर्विनीता-
वुद्योजयेद् वै भवता विरुद्धौ ॥ २४ ॥

'युद्धप्रेमी महाराज! इसके नष्ट हो जानेपर मैं दूसरे किसी प्राणीको ऐसा नहीं देखता, जो आपसे विरोध करनेवाले उन दोनों स्वतन्त्र प्रकृतिके राजकुमारोंको युद्धके लिये तैयार कर सके ॥ २४ ॥

पराक्रमोत्साहमनस्विनां च
सुरासुराणामपि दुर्जयेन।
त्वया मनोनन्दन नैर्ऋतानां
युद्धाय निर्नाशयितुं न युक्तम् ॥ २५ ॥

'राक्षसोंके हृदयको आनन्दित करनेवाले वीर! आप देवताओं और दैत्योंके लिये भी दुर्जय हैं; अतः पराक्रम और उत्साहसे भरे हुए हृदयवाले इन राक्षसोंके मनमें जो युद्ध करनेका हौसला बढ़ा हुआ है, उसे नष्ट कर देना आपके लिये कदापि उचित नहीं है ॥ २५ ॥

हिताश्च शूराश्च समाहिताश्च
कुलेषु जाताश्च महागुणेषु।
मनस्विनः शस्त्रभृतां वरिष्ठाः
कोपप्रशस्ताः सुभृताश्च योधाः ॥ २६ ॥
तदेकदेशेन बलस्य तावत्
केचित् तवादेशकृतोऽद्य यान्तु।
तौ राजपुत्रावुपगृह्य मूढौ
परेषु ते भावयितुं प्रभावम् ॥ २७ ॥

'मेरी राय तो यह है कि उन विरह-दुःखसे विकलचित्त राजकुमारोंको कैद करके शत्रुओंपर आपका प्रभाव डालने—दबदबा जमानेके लिये आपकी आज्ञासे थोड़ी-सी सेनाके साथ कुछ ऐसे योद्धा यहाँसे यात्रा करें, जो हितैषी, शूरवीर, सावधान, अधिक गुणवाले महान् कुलमें उत्पन्न, मनस्वी, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, अपने रोष और जोशके लिये प्रशंसित तथा अधिक वेतन देकर अच्छी तरह पाले-पोसे गये हों' ॥

निशाचराणामधिपोऽनुजस्य
विभीषणस्योत्तमवाक्यमिष्टम् ।
जग्राह बुद्ध्या सुरलोकशत्रु-
र्महाबलो राक्षसराजमुख्यः ॥ २८ ॥

अपने छोटे भाई विभीषणके इस उत्तम और प्रिय वचनको सुनकर निशाचरोंके स्वामी तथा देवलोकके शत्रु महाबली राक्षसराज रावणने बुद्धिसे सोच-विचारकर उसे स्वीकार कर लिया ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें बावनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशः सर्गः

राक्षसोंका हनुमान्‌जीकी पूँछमें आग लगाकर उन्हें नगरमें घुमाना

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा दशग्रीवो महात्मनः ।
देशकालहितं वाक्यं भ्रातुरुत्तरमब्रवीत् ॥ १ ॥

छोटे भाई महात्मा विभीषणकी बात देश और कालके लिये उपयुक्त एवं हितकर थी। उसको सुनकर दशाननने इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १ ॥

सम्यगुक्तं हि भवता दूतवध्या विगर्हिता ।
अवश्यं तु वधादन्यः क्रियतामस्य निग्रहः ॥ २ ॥

'विभीषण ! तुम्हारा कहना ठीक है। वास्तवमें दूतके वधकी बड़ी निन्दा की गयी है; परंतु वधके अतिरिक्त दूसरा कोई दण्ड इसे अवश्य देना चाहिये ॥ २ ॥

कपीनां किल लाङ्गूलमिष्टं भवति भूषणम् ।
तदस्य दीप्यतां शीघ्रं तेन दग्धेन गच्छतु ॥ ३ ॥

'वानरोंको अपनी पूँछ बड़ी प्यारी होती है। वही इनका आभूषण है। अतः जितना जल्दी हो सके, इसकी पूँछ जला दो। जली पूँछ लेकर ही यह यहाँसे जाय ॥ ३ ॥

ततः पश्यन्त्वमुं दीनमङ्गवैरूप्यकर्शितम् ।
समित्रज्ञातयः सर्वे बान्धवाः ससुहृज्जनाः ॥ ४ ॥

'वहाँ इसके मित्र, कुटुम्बी, भाई-बन्धु तथा हितैषी सुहृद् इसे अङ्ग-भङ्गके कारण पीड़ित एवं दीन अवस्थामें देखें' ॥ ४ ॥

आज्ञापयद् राक्षसेन्द्रः पुरं सर्वं सचत्वरम् ।
लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन रक्षोभिः परिणीयताम् ॥ ५ ॥

फिर राक्षसराज रावणने यह आज्ञा दी कि 'राक्षसगण इसकी पूँछमें आग लगाकर इसे सड़कों और चौराहोंसहित समूचे नगरमें घुमावें' ॥ ५ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राक्षसाः कोपकर्कशाः ।
वेष्टन्ते तस्य लाङ्गूलं जीर्णैः कार्पासिकैः पटैः ॥ ६ ॥

स्वामीका यह आदेश सुनकर क्रोधके कारण कठोरतापूर्ण बर्ताव करनेवाले राक्षस हनुमान्‌जीकी पूँछमें पुराने सूती कपड़े लपेटने लगे ॥ ६ ॥

संवेष्ट्यमाने लाङ्गूले व्यवर्धत महाकपिः ।
शुष्कमिन्धनमासाद्य वनेष्विव हुताशनम् ॥ ७ ॥

जब उनकी पूँछमें वस्त्र लपेटा जाने लगा, उस समय वनोंमें सूखी लकड़ी पाकर भभक उठनेवाली आगकी भाँति उन महाकपिका शरीर बढ़कर बहुत बड़ा हो गया ॥ ७ ॥

तैलेन परिषिच्याथ तेऽग्निं तत्रोपपादयन् ।
लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन राक्षसांस्तानताडयत् ॥ ८ ॥
रोषामर्षपरीतात्मा बालसूर्यसमाननः ।

राक्षसोंने वस्त्र लपेटनेके पश्चात् उनकी पूँछपर तेल छिड़क दिया और आग लगा दी। तब हनुमान्‌जीका हृदय रोषसे भर गया। उनका मुख प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुण आभासे उद्भासित हो उठा और वे अपनी जलती हुई पूँछसे ही राक्षसोंको पीटने लगे ॥ ८½ ॥

स भूयः संगतैः क्रूरै राक्षसैर्हरिपुङ्गवः ॥ ९ ॥
सहस्त्रीबालवृद्धाश्च जग्मुः प्रीतिं निशाचराः ।

तब क्रूर राक्षसोंने मिलकर पुनः उन वानरशिरोमणिको कसकर बाँध दिया। यह देख स्त्रियों, बालकों और वृद्धोंसहित समस्त निशाचर बड़े प्रसन्न हुए ॥ ९½ ॥

निबद्धः कृतवान् वीरस्तत्कालसदृशीं मतिम् ॥ १० ॥
कामं खलु न मे शक्ता निबद्धस्यापि राक्षसाः ।
छित्त्वा पाशान् समुत्पत्य हन्यामहमिमान् पुनः ॥ ११ ॥

तब वीरवर हनुमान्‌जी बँधे-बँधे ही उस समयके योग्य विचार करने लगे—'यद्यपि मैं बँधा हुआ हूँ तो भी इन राक्षसोंका मुझपर जोर नहीं चल सकता। इन बन्धनोंको तोड़कर मैं ऊपर उछल जाऊँगा और पुनः इन्हें मार सकूँगा ॥ १०-११ ॥

यदि भर्तृहितार्थाय चरन्तं भर्तृशासनात् ।
निबध्नन्ते दुरात्मानो न तु मे निष्कृतिः कृता ॥ १२ ॥

'मैं अपने स्वामी श्रीरामके हितके लिये विचर रहा हूँ, तो भी ये दुरात्मा राक्षस यदि अपने राजाके आदेशसे मुझे बाँध रहे हैं तो इससे मैं जो कुछ कर चुका हूँ, उसका बदला नहीं पूरा हो सका है ॥ १२ ॥

सर्वेषामेव पर्याप्तो राक्षसानामहं युधि ।
किं तु रामस्य प्रीत्यर्थं विषहिष्येऽहमीदृशम् ॥ १३ ॥

'मैं युद्धस्थलमें अकेला ही इन समस्त राक्षसोंका संहार करनेमें पूर्णतः समर्थ हूँ, किंतु इस समय श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्नताके लिये मैं ऐसे बन्धनको चुपचाप सह लूँगा ॥

लङ्का चारयितव्या मे पुनरेव भवेदिति ।
रात्रौ नहि सुदृष्टा मे दुर्गकर्मविधानतः ॥ १४ ॥

'ऐसा करनेसे मुझे पुनः समूची लङ्कामें विचरने और इसके निरीक्षण करनेका अवसर मिलेगा; क्योंकि रातमें घूमनेके कारण मैंने दुर्गरचनाकी विधिपर दृष्टि रखते हुए इसका अच्छी तरह अवलोकन नहीं किया था ॥ १४ ॥

अवश्यमेव द्रष्टव्या मया लङ्का निशाक्षये ।
कामं बध्नन्तु मे भूयः पुच्छस्योद्दीपनेन च ॥ १५ ॥
पीडां कुर्वन्ति रक्षांसि न मेऽस्ति मनसः श्रमः ।

'अतः सबेरा हो जानेपर मुझे अवश्य ही लङ्का देखनी है । भले ही ये राक्षस मुझे बारंबार बाँधें और पूँछमें आग लगाकर पीड़ा पहुँचायें । मेरे मनमें इसके कारण तनिक भी कष्ट नहीं होगा' ॥ १५½ ॥

ततस्ते संवृताकारं सत्त्ववन्तं महाकपिम् ॥ १६ ॥
परिगृह्य ययुर्हृष्टा राक्षसाः कपिकुञ्जरम् ।
शङ्खभेरीनिनादैश्च घोषयन्तः स्वकर्मभिः ॥ १७ ॥
राक्षसाः क्रूरकर्माणश्चारयन्ति स्म तां पुरीम् ।

तदनन्तर वे क्रूरकर्मा राक्षस अपने दिव्य आकारको छिपाये रखनेवाले सत्त्वगुणशाली महान् वानरवीर कपिकुञ्जर हनुमान्जीको पकड़कर बड़े हर्षके साथ ले चले और शङ्ख एवं भेरी बजाकर उनके (रावण-द्रोह आदि) अपराधोंकी घोषणा करते हुए उन्हें लङ्कापुरीमें सब ओर घुमाने लगे ॥ १६-१७½ ॥

अन्वीयमानो रक्षोभिर्ययौ सुखमरिंदमः ॥ १८ ॥
हनूमांश्चारयामास राक्षसानां महापुरीम् ।
अथापश्यद् विमानानि विचित्राणि महाकपिः ॥ १९ ॥

शत्रुदमन हनुमान्जी बड़ी मौजसे आगे बढ़ने लगे । समस्त राक्षस उनके पीछे-पीछे चल रहे थे । महाकपि हनुमान्जी राक्षसोंकी उस विशाल पुरीमें विचरते हुए उसे देखने लगे । उन्होंने वहाँ बड़े विचित्र विमान देखे ॥ १८-१९ ॥

संवृतान् भूमिभागांश्च सुविभक्तांश्च चत्वरान् ।
रथ्याश्च गृहसम्बाधाः कपिः शृङ्गाटकानि च ॥ २० ॥
तथा रथ्योपरथ्याश्च तथैव च गृहान्तरान् ।

परकोटेसे घिरे हुए कितने ही भूभाग, पृथक्-पृथक् बने हुए सुन्दर चबूतरे, घनीभूत गृहपंक्तियोंसे घिरी हुई सड़कें, चौराहे, छोटी-बड़ी गलियाँ और घरोंके मध्यभाग—इन सबको वे बड़े गौरसे देखने लगे ॥ २०½ ॥

चत्वरेषु चतुष्केषु राजमार्गे तथैव च ॥ २१ ॥
घोषयन्ति कपिं सर्वे चार इत्येव राक्षसाः ।

सब राक्षस उन्हें चौराहोंपर, चार खंभेवाले मण्डपोंमें तथा सड़कोंपर घुमाने और जासूस कहकर उनका परिचय देने लगे ॥ २१½ ॥

स्त्रीबालवृद्धा निर्जग्मुस्तत्र तत्र कुतूहलात् ॥ २२ ॥
तं प्रदीपितलाङ्गूलं हनूमन्तं दिदृक्षवः ।

भिन्न-भिन्न स्थानोंमें जलती पूँछवाले हनुमान्जीको देखनेके लिये वहाँ बहुत-से बालक, वृद्ध और स्त्रियाँ कौतूहलवश घरसे बाहर निकल आती थीं ॥ २२½ ॥

दीप्यमाने ततस्तस्य लाङ्गूलाग्रे हनूमतः ॥ २३ ॥
राक्षस्यस्ता विरूपाक्ष्यः शंसुर्देव्यास्तदप्रियम् ।

हनुमान्जीकी पूँछमें जब आग लगायी जा रही थी, उस समय भयंकर नेत्रोंवाली राक्षसियोंने सीतादेवीके पास जाकर उनसे यह अप्रिय समाचार कहा—॥ २३½ ॥

यस्त्वया कृतसंवादः सीते ताम्रमुखः कपिः ॥ २४ ॥
लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन स एष परिणीयते ।

'सीते ! जिस लाल मुँहवाले बन्दरने तुम्हारे साथ बातचीत की थी, उसकी पूँछमें आग लगाकर उसे सारे नगरमें घुमाया जा रहा है' ॥ २४½ ॥

श्रुत्वा तद् वचनं क्रूरमात्मापहरणोपमम् ॥ २५ ॥
वैदेही शोकसंतप्ता हुताशनमुपागमत् ।

अपने अपहरणकी ही भाँति दुःख देनेवाली यह क्रूरतापूर्ण बात सुनकर विदेहनन्दिनी सीता शोकसे संतप्त हो उठीं और मन-ही-मन अग्निदेवकी उपासना करने लगीं ॥ २५½ ॥

मङ्गलाभिमुखी तस्य सा तदासीन्महाकपेः ॥ २६ ॥
उपतस्थे विशालाक्षी प्रयता हव्यवाहनम् ।

उस समय विशाललोचना पवित्रहृदया सीता महाकपि हनुमान्जीके लिये मङ्गलकामना करती हुई अग्निदेवकी उपासनामें संलग्न हो गयीं और इस प्रकार बोलीं—॥ २६½ ॥

यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः ।
यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः ॥ २७ ॥ ✓

'अग्निदेव ! यदि मैंने पतिकी सेवा की है और यदि मुझमें कुछ भी तपस्या तथा पातिव्रत्यका बल है तो तुम हनुमान्के लिये शीतल हो जाओ ॥ २७ ॥

यदि किंचिदनुक्रोशस्तस्य मय्यस्ति धीमतः ।
यदि वा भाग्यशेषो मे शीतो भव हनूमतः ॥ २८ ॥ ✓

'यदि बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामके मनमें मेरे प्रति

किंचिन्मात्र भी दया है अथवा यदि मेरा सौभाग्य शेष है तो तुम हनुमान्‌के लिये शीतल हो जाओ ॥ २८ ॥

यदि मां वृत्तसम्पन्नां तत्समागमलालसाम् ।
स विजानाति धर्मात्मा शीतो भव हनूमतः ॥ २९ ॥

‘यदि धर्मात्मा श्रीरघुनाथजी मुझे सदाचारसे सम्पन्न और अपनेसे मिलनेके लिये उत्सुक जानते हैं तो तुम हनुमान्‌के लिये शीतल हो जाओ ॥ २९ ॥

यदि मां तारयेदार्यः सुग्रीवः सत्यसंगरः ।
अस्माद् दुःखाम्बुसंरोधाच्छीतो भव हनूमतः ॥ ३० ॥

‘यदि सत्यप्रतिज्ञ आर्य सुग्रीव इस दुःखके महासागरसे मेरा उद्धार कर सकें तो तुम हनुमान्‌के लिये शीतल हो जाओ’ ॥ ३० ॥

ततस्तीक्ष्णार्चिरव्यग्रः प्रदक्षिणशिखोऽनलः ।
जज्वाल मृगशावाक्ष्याः शंसन्निव शुभं कपेः ॥ ३१ ॥

मृगनयनी सीताके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर तीखी लपटोंवाले अग्निदेव मानो उन्हें हनुमान्‌के मङ्गलकी सूचना देते हुए शान्तभावसे जलने लगे। उनकी शिखा प्रदक्षिण-भावसे उठने लगी ॥ ३१ ॥

हनूमज्जनकश्चैव पुच्छानलयुतोऽनिलः ।
नौ **ववौ स्वास्थ्यकरो देव्याः प्रालेयानिलशीतलः ॥ ३२ ॥**

हनुमान्‌के पिता वायुदेवता भी उनकी पूँछमें लगी हुई आगसे युक्त हो बर्फीली हवाके समान शीतल और देवी सीताके लिये स्वास्थ्यकारी (सुखद) होकर बहने लगे ॥ ३२ ॥

दह्यमाने च लाङ्गूले चिन्तयामास वानरः ।
प्रदीप्तोऽग्निरयं कस्मान्न मां दहति सर्वतः ॥ ३३ ॥

उधर पूँछमें आग लगायी जानेपर हनुमान्‌जी सोचने लगे—‘अहो ! यह आग सब ओरसे प्रज्वलित होनेपर भी मुझे जलाती क्यों नहीं है ? ॥ ३३ ॥

दृश्यते च महाज्वालः करोति च न मे रुजम् ।
शिशिरस्येव सम्पातो लाङ्गूलाग्रे प्रतिष्ठितः ॥ ३४ ॥

‘इसमें इतनी ऊँची ज्वाला उठती दिखायी देती है, तथापि यह आग मुझे पीड़ा नहीं दे रही है। मालूम होता है मेरी पूँछके अग्रभागमें बर्फका ढेर-सा रख दिया गया है। ३४।

अथ वा तदिदं व्यक्तं यद् दृष्टं प्लवता मया ।
रामप्रभावादाश्चर्यं पर्वतः सरितां पतौ ॥ ३५ ॥

‘अथवा उस दिन समुद्रको लाँघते समय मैंने सागरमें श्रीरामचन्द्रजीके प्रभावसे पर्वतके प्रकट होनेकी जो आश्चर्यजनक घटना देखी थी, उसी तरह आज यह अग्निकी शीतलता भी व्यक्त हुई है ॥ ३५ ॥

यदि तावत् समुद्रस्य मैनाकस्य च धीमतः ।
रामार्थं सम्भ्रमस्तादृक्किमग्निर्न करिष्यति ॥ ३६ ॥

‘यदि श्रीरामके उपकारके लिये समुद्र और बुद्धिमान् मैनाकके मनमें वैसी आदरपूर्ण उतावली देखी गयी तो क्या अग्निदेव उन भगवान्‌के उपकारके लिये शीतलता नहीं प्रकट करेंगे ? ॥ ३६ ॥

सीतायाश्चानृशंस्येन तेजसा राघवस्य च ।
पितुश्च मम सख्येन न मां दहति पावकः ॥ ३७ ॥

‘निश्चय ही भगवती सीताकी दया, श्रीरघुनाथजीके तेज तथा मेरे पिताकी मैत्रीके प्रभावसे अग्निदेव मुझे जला नहीं रहे हैं’ ॥ ३७ ॥

भूयः स चिन्तयामास मुहूर्तं कपिकुञ्जरः ।
कथमस्मद्विधस्येह बन्धनं राक्षसाधमैः ॥ ३८ ॥
प्रतिक्रियास्य युक्ता स्यात् सति मह्यं पराक्रमे ।

तदनन्तर कपिकुञ्जर हनुमान्‌ने पुनः एक मुहूर्ततक इस प्रकार विचार किया ‘मेरे-जैसे पुरुषका यहाँ इन नीच निशाचरोंद्वारा बाँधा जाना कैसे उचित हो सकता है ? पराक्रम रहते हुए मुझे अवश्य इसका प्रतीकार करना चाहिये’ ३८½

ततश्छित्त्वा च तान् पाशान् वेगवान् वै महाकपिः ॥ ३९ ॥
उत्पपाताथ वेगेन ननाद च महाकपिः ।

यह सोचकर वे वेगशाली महाकपि हनुमान् (जिन्हें राक्षसोंने पकड़ रखा था) उन बन्धनोंको तोड़कर बड़े वेगसे ऊपरको उछले और गर्जना करने लगे (उस समय भी उनका शरीर रस्सियोंमें बँधा हुआ ही था) ॥ ३९½ ॥

पुरद्वारं ततः श्रीमाञ्शैलशृङ्गमिवोन्नतम् ॥ ४० ॥
विभक्तरक्षःसम्बाधमाससादानिलात्मजः ।

उछलकर वे श्रीमान् पवनकुमार पर्वत-शिखरके समान ऊँचे नगरद्वारपर जा पहुँचे, जहाँ राक्षसोंकी भीड़ नहीं थी ॥ ४०½ ॥

स भूत्वा शैलसंकाशः क्षणेन पुनरात्मवान् ॥ ४१ ॥
ह्रस्वतां परमां प्राप्तो बन्धनान्यवशातयत् ।
विमुक्तश्चाभवच्छ्रीमान् पुनः पर्वतसंनिभः ॥ ४२ ॥

पर्वताकार होकर भी वे मनस्वी हनुमान् पुनः क्षणभरमें बहुत ही छोटे और पतले हो गये। इस प्रकार उन्होंने अपने सारे बन्धनोंको निकाल फेंका। उन बन्धनोंसे मुक्त होते ही तेजस्वी हनुमान्‌जी फिर पर्वतके समान विशालकाय हो गये ॥ ४१-४२ ॥

वीक्षमाणश्च ददृशे परिघं तोरणाश्रितम् ।
स तं गृह्य महाबाहुः कालायसपरिष्कृतम् ।
रक्षिणस्तान् पुनः सर्वान् सूदयामास मारुतिः ॥ ४३ ॥

उस समय उन्होंने जब इधर-उधर दृष्टि डाली, तब उन्हें फाटकके सहारे रक्खा हुआ एक परिघ दिखायी दिया।

काले लोहेके बने हुए उस परिघको लेकर महाबाहु पवनपुत्रने वहाँके समस्त रक्षकोंको फिर मार गिराया ॥ ४३ ॥

स तान् निहत्वा रणचण्डविक्रमः
समीक्षमाणः पुनरेव लङ्काम् ।
प्रदीप्तलाङ्गूलकृतार्चिमाली
प्रकाशितादित्य इवार्चिमाली ॥ ४४ ॥

उन राक्षसोंको मारकर रणभूमिमें प्रचण्ड पराक्रम प्रकट करनेवाले हनुमान्जी पुनः लङ्कापुरीका निरीक्षण करने लगे। उस समय जलती हुई पूँछसे जो ज्वालाओंकी माला-सी उठ रही थी, उससे अलंकृत हुए वे वानरवीर तेजःपुञ्जसे देदीप्यमान सूर्यदेवके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें तिरपनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशः सर्गः

लङ्कापुरीका दहन और राक्षसोंका विलाप

वीक्षमाणस्ततो लङ्कां कपिः कृतमनोरथः ।
वर्धमानसमुत्साहः कार्यशेषमचिन्तयत् ॥ १ ॥

हनुमान्जीके सभी मनोरथ पूर्ण हो गये थे। उनका उत्साह बढ़ता जा रहा था। अतः वे लङ्काका निरीक्षण करते हुए शेष कार्यके सम्बन्धमें विचार करने लगे—॥ १ ॥

किं नु खल्ववशिष्टं मे कर्तव्यमिह साम्प्रतम् ।
यदेषां रक्षसां भूयः संतापजननं भवेत् ॥ २ ॥

'अब इस समय लङ्कामें मेरे लिये कौन-सा ऐसा कार्य बाकी रह गया है, जो इन राक्षसोंको अधिक संताप देनेवाला हो ॥ २ ॥

वनं तावत्प्रमथितं प्रकृष्टा राक्षसा हताः ।
बलैकदेशः क्षपितः शेषं दुर्गविनाशनम् ॥ ३ ॥

'प्रमदावनको तो मैंने पहले ही उजाड़ दिया था, बड़े-बड़े राक्षसोंको भी मौतके घाट उतार दिया और रावणकी सेनाके भी एक अंशका संहार कर डाला। अब दुर्गका विध्वंस करना शेष रह गया ॥ ३ ॥

दुर्गे विनाशिते कर्म भवेत् सुखपरिश्रमम् ।
अल्पयत्नेन कार्येऽस्मिन् मम स्यात् सफलः श्रमः ॥ ४ ॥

'दुर्गका विनाश हो जानेपर मेरे द्वारा समुद्र-लङ्घन आदि कर्मके लिये किया गया प्रयास सुखद एवं सफल होगा। मैंने सीताजीकी खोजके लिये जो परिश्रम किया है, वह थोड़े-से ही प्रयत्नद्वारा सिद्ध होनेवाले लङ्कादहनसे सफल हो जायगा ॥ ४ ॥

यो ह्ययं मम लाङ्गूले दीप्यते हव्यवाहनः ।
अस्य संतर्पणं न्याय्यं कर्तुमेभिर्गृहोत्तमैः ॥ ५ ॥

'मेरी पूँछमें जो ये अग्निदेव देदीप्यमान हो रहे हैं, इन्हें इन श्रेष्ठ गृहोंकी आहुति देकर तृप्त करना न्यायसंगत जान पड़ता है' ॥ ५ ॥

ततः प्रदीप्तलाङ्गूलः सविद्युदिव तोयदः ।
भवनाग्रेषु लङ्काया विचचार महाकपिः ॥ ६ ॥

ऐसा सोचकर जलती हुई पूँछके कारण बिजलीसहित मेघकी भाँति शोभा पानेवाले कपिश्रेष्ठ हनुमान्जी लङ्काके महलोंपर घूमने लगे ॥ ६ ॥

गृहाद् गृहं राक्षसानामुद्यानानि च वानरः ।
वीक्षमाणो ह्यसंत्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः ॥ ७ ॥

वे वानरवीर राक्षसोंके एक घरसे दूसरे घरपर पहुँचकर उद्यानों और राजभवनोंको देखते हुए निर्भय होकर विचरने लगे ॥ ७ ॥

अवप्लुत्य महावेगः प्रहस्तस्य निवेशनम् ।
अग्निं तत्र विनिक्षिप्य श्वसनेन समो बली ॥ ८ ॥
ततोऽन्यत् पुप्लुवे वेश्म महापार्श्वस्य वीर्यवान् ।
मुमोच हनुमानग्निं कालानलशिखोपमम् ॥ ९ ॥

घूमते-घूमते वायुके समान बलवान् और महान् वेगशाली हनुमान् उछलकर प्रहस्तके महलपर जा पहुँचे और उसमें आग लगाकर दूसरे घरपर कूद पड़े। वह महापार्श्वका निवासस्थान था। पराक्रमी हनुमान्ने उसमें भी कालाग्निकी लपटोंके समान प्रज्वलित होनेवाली आग फैला दी ॥ ८-९ ॥

वज्रदंष्ट्रस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः ।
शुकस्य च महातेजाः सारणस्य च धीमतः ॥ १० ॥

तत्पश्चात् वे महातेजस्वी महाकपि क्रमशः वज्रदंष्ट्र, शुक और बुद्धिमान् सारणके घरोंपर कूदे और उनमें आग लगाकर आगे बढ़ गये ॥ १० ॥

तथा चेन्द्रजितो वेश्म ददाह हरियूथपः ।
जम्बुमालेः सुमालेश्च ददाह भवनं ततः ॥ ११ ॥

इसके बाद वानरयूथपति हनुमान्ने इन्द्रविजयी मेघनादका घर जलाया। फिर जम्बुमाली और सुमालीके घरोंको फूँक दिया ॥ ११ ॥

रश्मिकेतोश्च भवनं सूर्यशत्रोस्तथैव च।
ह्रस्वकर्णस्य दंष्ट्रस्य रोमशस्य च रक्षसः ॥ १२ ॥
युद्धोन्मत्तस्य मत्तस्य ध्वजग्रीवस्य रक्षसः।
विद्युज्जिह्वस्य घोरस्य तथा हस्तिमुखस्य च ॥ १३ ॥
करालस्य विशालस्य शोणिताक्षस्य चैव हि।
कुम्भकर्णस्य भवनं मकराक्षस्य चैव हि ॥ १४ ॥
नरान्तकस्य कुम्भस्य निकुम्भस्य दुरात्मनः।
यज्ञशत्रोश्च भवनं ब्रह्मशत्रोस्तथैव च ॥ १५ ॥

तदनन्तर रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्र, राक्षस रोमश, रणोन्मत्त मत्त, ध्वजग्रीव, भयानक विद्युज्जिह्व, हस्तिमुख, कराल, विशाल, शोणिताक्ष, कुम्भकर्ण, मकराक्ष, नरान्तक, कुम्भ, दुरात्मा निकुम्भ, यज्ञशत्रु और ब्रह्मशत्रु आदि राक्षसोंके घरोंमें जा-जाकर उन्होंने आग लगायी ॥

वर्जयित्वा महातेजा विभीषणगृहं प्रति।
क्रममाणः क्रमेणैव ददाह हरिपुङ्गवः ॥ १६ ॥

उस समय महातेजस्वी कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने केवल विभीषणका घर छोड़कर अन्य सब घरोंमें क्रमशः पहुँचकर उन सबमें आग लगा दी ॥ १६ ॥

तेषु तेषु महार्हेषु भवनेषु महायशाः।
गृहेष्वृद्धिमतामृद्धिं ददाह कपिकुञ्जरः ॥ १७ ॥

महायशस्वी कपिकुञ्जर पवनकुमारने विभिन्न बहुमूल्य भवनोंमें जा-जाकर समृद्धिशाली राक्षसोंके घरोंकी सारी सम्पत्ति जलाकर भस्म कर डाली ॥ १७ ॥

सर्वेषां समतिक्रम्य राक्षसेन्द्रस्य वीर्यवान्।
आससादाथ लक्ष्मीवान् रावणस्य निवेशनम् ॥ १८ ॥

सबके घरोंको लाँघते हुए शोभाशाली पराक्रमी हनुमान् राक्षसराज रावणके महलपर जा पहुँचे ॥ १८ ॥

ततस्तस्मिन् गृहे मुख्ये नानारत्नविभूषिते।
मेरुमन्दरसंकाशे नानामङ्गलशोभिते ॥ १९ ॥
प्रदीप्तमग्निमुत्सृज्य लाङ्गूलाग्रे प्रतिष्ठितम्।
ननाद हनुमान् वीरो युगान्तजलदो यथा ॥ २० ॥

वही लङ्काके सब महलोंमें श्रेष्ठ, भाँति-भाँतिके रत्नोंसे विभूषित, मेरुपर्वतके समान ऊँचा और नाना प्रकारके माङ्गलिक उत्सवोंसे सुशोभित था। अपनी पूँछके अग्रभागमें प्रतिष्ठित हुई प्रज्वलित अग्निको उस महलमें छोड़कर वीरवर हनुमान् प्रलयकालके मेघकी भाँति भयानक गर्जना करने लगे ॥ १९-२० ॥

श्वसनेन च संयोगादतिवेगो महाबलः।
कालाग्निरिव जज्वाल प्रावर्धत हुताशनः ॥ २१ ॥

हवाका सहारा पाकर वह प्रबल आग बड़े वेगसे बढ़ने लगी और कालाग्निके समान प्रज्वलित हो उठी ॥ २१ ॥

प्रदीप्तमग्निं पवनस्तेषु वेश्मसु चारयन्।
तानि काञ्चनजालानि मुक्तामणिमयानि च ॥ २२ ॥
भवनानि व्यशीर्यन्त रत्नवन्ति महान्ति च।
तानि भग्नविमानानि निपेतुर्वसुधातले ॥ २३ ॥

वायु उस प्रज्वलित अग्निको सभी घरोंमें फैलाने लगी। सोनेकी खिड़कियोंसे सुशोभित, मोती और मणियोंद्वारा निर्मित तथा रत्नोंसे विभूषित ऊँचे-ऊँचे प्रासाद एवं सतमहले भवन फट-फटकर पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ २२-२३ ॥

भवनानीव सिद्धानामम्बरात् पुण्यसंक्षये।
संजज्ञे तुमुलः शब्दो राक्षसानां प्रधावताम् ॥ २४ ॥
स्वे स्वे गृहपरित्राणे भग्नोत्साहोज्झितश्रियाम्।

वे गिरते हुए भवन पुण्यका क्षय होनेपर आकाशसे नीचे गिरनेवाले सिद्धोंके घरोंके समान जान पड़ते थे। उस समय राक्षस अपने-अपने घरोंको बचाने—उनकी आग बुझानेके लिये इधर-उधर दौड़ने लगे। उनका उत्साह जाता रहा और उनकी श्री नष्ट हो गयी थी। उन सबका तुमुल आर्तनाद चारों ओर गूँजने लगा ॥ २४½ ॥

नूनमेषोऽग्निरायातः कपिरूपेण हा इति ॥ २५ ॥
क्रन्दन्त्यः सहसा पेतुः स्तनंधयधराः स्त्रियः।

वे कहते थे—'हाय! यह वानरके रूपमें साक्षात् अग्नि देवता ही आ पहुँचा है।' कितनी ही स्त्रियाँ गोदमें बच्चे लिये सहसा क्रन्दन करती हुई नीचे गिर पड़ीं ॥ २५½ ॥

काश्चिदग्निपरीताङ्ग्यो हर्म्येभ्यो मुक्तमूर्धजाः ॥ २६ ॥
पतन्त्यो रेजिरेऽभ्रेभ्यः सौदामन्य इवाम्बरात्।

कुछ राक्षसियोंके सारे अङ्ग आगकी लपटमें आ गये, वे बाल बिखेरे अट्टालिकाओंसे नीचे गिर पड़ीं। गिरते समय वे आकाशमें स्थित मेघोंसे गिरनेवाली बिजलियोंके समान प्रकाशित होती थीं ॥ २६½ ॥

वज्रविद्रुमवैदूर्यमुक्तारजतसंहतान् ॥ २७ ॥
विचित्रान् भवनाद्धातूंस्यन्दमानान् ददर्श सः।

हनुमान्‌जीने देखा जलते हुए घरोंसे हीरा, मूँगा, नीलम, मोती तथा सोने, चाँदी आदि विचित्र-विचित्र धातुओंकी राशि पिघल-पिघलकर बही जा रही है ॥ २७½ ॥

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां तृणानां च यथा तथा ॥ २८ ॥
हनूमान् राक्षसेन्द्राणां वधे किंचिन्न तृप्यति।
न हनूमद्विशस्तानां राक्षसानां वसुन्धरा ॥ २९ ॥

जैसे आग सूखे काठ और तिनकोंको जलानेसे कभी तृप्त नहीं होती, उसी प्रकार हनुमान् बड़े-बड़े राक्षसोंके वध करनेसे तनिक भी तृप्त नहीं होते थे और हनुमान्‌जीके मारे हुए राक्षसोंको अपनी गोदमें धारण करनेसे इस वसुन्धराका भी जी नहीं भरता था ॥ २८-२९ ॥

हनूमता वेगवता वानरेण महात्मना ।
लङ्कापुरं प्रदग्धं तद् रुद्रेण त्रिपुरं यथा ॥ ३० ॥

जैसे भगवान् रुद्रने पूर्वकालमें त्रिपुरको दग्ध किया था, उसी प्रकार वेगशाली वानरवीर महात्मा हनुमान्‌जीने लङ्कापुरीको जला दिया ॥ ३० ॥

ततः स लङ्कापुरपर्वताग्रे
समुत्थितो भीमपराक्रमोऽग्निः ।
प्रसार्य चूडावलयं प्रदीप्तो
हनूमता वेगवतोपसृष्टः ॥ ३१ ॥

तत्पश्चात् लङ्कापुरीके पर्वत-शिखरपर आग लगी, वहाँ अग्निदेवका बड़ा भयानक पराक्रम प्रकट हुआ। वेगशाली हनुमान्‌जीकी लगायी हुई वह आग चारों ओर अपने ज्वाला-मण्डलको फैलाकर बड़े जोरसे प्रज्वलित हो उठी ॥ ३१ ॥

युगान्तकालानलतुल्यरूपः
समारुतोऽग्निर्ववृधे दिवस्पृक् ।
विधूमरश्मिर्भवनेषु सक्तो
रक्षःशरीराज्यसमर्पितार्चिः ॥ ३२ ॥

हवाका सहारा पाकर वह आग इतनी बढ़ गयी कि उसका रूप प्रलयकालीन अग्निके समान दिखायी देने लगा। उसकी ऊँची लपटें मानो स्वर्गलोकका स्पर्श कर रही थीं। लङ्काके भवनोंमें लगी हुई उस आगकी ज्वालामें धूमका नाम भी नहीं था। राक्षसोंके शरीररूपी घीकी आहुति पाकर उसकी ज्वालाएँ उत्तरोत्तर बढ़ रही थीं ॥ ३२ ॥

आदित्यकोटीसदृशः सुतेजा
लङ्कां समस्तां परिवार्य तिष्ठन् ।
शब्दैरनेकैरशनिप्ररूढै-
र्भिन्दन्निवाण्डं प्रबभौ महाग्निः ॥ ३३ ॥

समूची लङ्कापुरीको अपनी लपटोंमें लपेटकर फैली हुई वह प्रचण्ड आग करोड़ों सूर्योंके समान प्रज्वलित हो रही थी। मकानों और पर्वतोंके फटने आदिसे होनेवाले नाना प्रकारके धड़ाकोंके शब्द बिजलीकी कड़कको भी मात करते थे, उस समय वह विशाल अग्नि ब्रह्माण्डको फोड़ती हुई-सी प्रकाशित हो रही थी ॥ ३३ ॥

तत्राम्बरादग्निरतिप्रवृद्धो
रूक्षप्रभः किंशुकपुष्पचूडः ।
निर्वाणधूमाकुलराजयश्च
नीलोत्पलाभाः प्रचकाशिरेऽभ्राः ॥ ३४ ॥

वहाँ धरतीसे आकाशतक फैली हुई अत्यन्त बढ़ी-चढ़ी आगकी प्रभा बड़ी तीखी प्रतीत होती थी। उसकी लपटें टेसूके फूलकी भाँति लाल दिखायी देती थीं। नीचेसे जिनका सम्बन्ध टूट गया था, वे आकाशमें फैली हुई धूम-पंक्तियाँ नील कमलके समान रंगवाले मेघोंकी भाँति प्रकाशित हो रही थीं ॥ ३४ ॥

वज्री महेन्द्रस्त्रिदशेश्वरो वा
साक्षाद् यमो वा वरुणोऽनिलो वा ।
रौद्रोऽग्निरर्को धनदश्च सोमो
न वानरोऽयं स्वयमेव कालः ॥ ३५ ॥
किं ब्रह्मणः सर्वपितामहस्य
लोकस्य धातुश्चतुराननस्य ।
इहागतो वानररूपधारी
रक्षोपसंहारकरः प्रकोपः ॥ ३६ ॥
किं वैष्णवं वा कपिरूपमेत्य
रक्षोविनाशाय परं सुतेजः ।
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तमेकं
स्वमायया साम्प्रतमागतं वा ॥ ३७ ॥
इत्येवमूचुर्बहवो विशिष्टा
रक्षोगणास्तत्र समेत्य सर्वे ।
सप्राणिसङ्घां सगृहां सवृक्षां
दग्धां पुरीं तां सहसा समीक्ष्य ॥ ३८ ॥

प्राणियोंके समुदाय, गृह और वृक्षोंसहित समस्त लङ्कापुरीको सहसा दग्ध हुई देख बड़े-बड़े राक्षस झुंड-के-झुंड एकत्र हो गये और वे सब-के-सब परस्पर इस प्रकार कहने लगे—'यह देवताओंका राजा वज्रधारी इन्द्र अथवा साक्षात् यमराज तो नहीं है ? वरुण, वायु, रुद्र, अग्नि, सूर्य, कुबेर या चन्द्रमामेंसे तो कोई नहीं है ? यह वानर नहीं साक्षात् काल ही है। क्या सम्पूर्ण जगत्‌के पितामह चतुर्मुख ब्रह्माजीका प्रचण्ड कोप ही वानरका रूप धारण करके राक्षसोंका संहार करनेके लिये यहाँ उपस्थित हुआ है ? अथवा भगवान् विष्णुका महान् तेज जो अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्त और अद्वितीय है, अपनी मायासे वानरका शरीर ग्रहण करके राक्षसोंके विनाशके लिये तो इस समय नहीं आया है ?' ॥

ततस्तु लङ्का सहसा प्रदग्धा
सराक्षसा साश्वरथा सनागा ।
सपक्षिसङ्घा समृगा सवृक्षा
रुरोद दीना तुमुलं सशब्दम् ॥ ३९ ॥

इस प्रकार घोड़े, हाथी, रथ, पशु, पक्षी, वृक्ष तथा कितने ही राक्षसोंसहित लङ्कापुरी सहसा दग्ध हो गयी। वहाँके निवासी दीनभावसे तुमुल नाद करते हुए फूट-फूटकर रोने लगे ॥ ३९ ॥

हा तात हा पुत्रक कान्त मित्र
हा जीवितेशाङ्ग हतं सुपुण्यम् ।
रक्षोभिरेवं बहुधा ब्रुवद्भिः
शब्दः कृतो घोरतरः सुभीमः ॥ ४० ॥

वे बोले—'हाय रे बप्पा! हाय बेटा! हा स्वामिन्! हा मित्र! हा प्राणनाथ! हमारे सब पुण्य नष्ट हो गये।' इस तरह भाँति-भाँतिसे विलाप करते हुए राक्षसोंने बड़ा भयंकर एवं घोर आर्तनाद किया ॥ ४० ॥

हुताशनज्वालसमावृता सा
हतप्रवीरा परिवृत्तयोधा।
हनूमतः क्रोधबलाभिभूता
बभूव शापोपहतेव लङ्का ॥ ४१ ॥

हनुमान्‌जीके क्रोध-बलसे अभिभूत हुई लङ्कापुरी आगकी ज्वालासे घिर गयी थी। उसके प्रमुख-प्रमुख वीर मार डाले गये थे। समस्त योद्धा तितर-बितर और उद्विग्न हो गये थे। इस प्रकार वह पुरी शापसे आक्रान्त हुई-सी जान पड़ती थी ॥ ४१ ॥

ससम्भ्रमं त्रस्तविषण्णराक्षसां
समुज्ज्वलज्ज्वालहुताशनाङ्कितताम्।
ददर्श लङ्कां हनुमान् महामनाः
स्वयंभुरोषोपहतामिवावनिम् ॥ ४२ ॥

महामनस्वी हनुमान्‌ने लङ्कापुरीको स्वयम्भू ब्रह्माजीके रोषसे नष्ट हुई पृथ्वीके समान देखा। वहाँके समस्त राक्षस बड़ी घबराहटमें पड़कर त्रस्त और विषादग्रस्त हो गये थे। अत्यन्त प्रज्वलित ज्वालामालाओंसे अलंकृत अग्निदेवने उसपर अपनी छाप लगा दी थी ॥ ४२ ॥

भङ्क्त्वा वनं पादपरत्नसंकुलं
हत्वा तु रक्षांसि महान्ति संयुगे।
दग्ध्वा पुरीं तां गृहरत्नमालिनीं
तस्थौ हनूमान् पवनात्मजः कपिः॥४३॥

पवनकुमार वानरवीर हनुमान्‌जी उत्तमोत्तम वृक्षोंसे भरे हुए वनको उजाड़कर, युद्धमें बड़े-बड़े राक्षसोंको मारकर तथा सुन्दर महलोंसे सुशोभित लङ्कापुरीको जलाकर शान्त हो गये ॥ ४३ ॥

स राक्षसांस्तान् सुबहूंश्च हत्वा
वनं च भङ्क्त्वा बहुपादपं तत्।
विसृज्य रक्षोभवनेषु चाग्निं
जगाम रामं मनसा महात्मा ॥ ४४ ॥

महात्मा हनुमान् बहुत-से राक्षसोंका वध और बहुसंख्यक वृक्षोंसे भरे हुए प्रमदावनका विध्वंस करके निशाचरोंके घरोंमें आग लगाकर मन-ही-मन श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करने लगे ॥ ४४ ॥

ततस्तु तं वानरवीरमुख्यं
महाबलं मारुततुल्यवेगम्।
महामतिं वायुसुतं वरिष्ठं
प्रतुष्टुवुर्देवगणाश्च सर्वे ॥ ४५ ॥

तदनन्तर सम्पूर्ण देवताओंने वानरवीरोंमें प्रधान, महाबलवान्, वायुके समान वेगवान्, परम बुद्धिमान् और वायुदेवताके श्रेष्ठ पुत्र हनुमान्‌जीका स्तवन किया ॥ ४५ ॥

देवाश्च सर्वे मुनिपुङ्गवाश्च
गन्धर्वविद्याधरपन्नगाश्च ।
भूतानि सर्वाणि महान्ति तत्र
जग्मुः परां प्रीतिमतुल्यरूपाम् ॥ ४६ ॥

उनके इस कार्यसे सभी देवता, मुनिवर, गन्धर्व, विद्याधर, नाग तथा सम्पूर्ण महान् प्राणी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनके उस हर्षकी कहीं तुलना नहीं थी ॥ ४६ ॥

भङ्क्त्वा वनं महातेजा हत्वा रक्षांसि संयुगे।
दग्ध्वा लङ्कापुरीं भीमां रराज स महाकपिः ॥ ४७ ॥

महातेजस्वी महाकपि पवनकुमार प्रमदावनको उजाड़कर, युद्धमें राक्षसोंको मारकर और भयंकर लङ्कापुरीको जलाकर बड़ी शोभा पाने लगे ॥ ४७ ॥

गृहाग्र्यशृङ्गाग्रतले विचित्रे
प्रतिष्ठितो वानरराजसिंहः।
प्रदीप्तलाङ्गूलकृतार्चिमाली
व्यराजतादित्य इवार्चिमाली ॥ ४८ ॥

श्रेष्ठ भवनोंके विचित्र शिखरपर खड़े हुए वानरराजसिंह हनुमान् अपनी जलती पूँछसे उठती हुई ज्वालामालाओंसे अलंकृत हो तेजःपुञ्जसे देदीप्यमान सूर्यदेवके समान प्रकाशित होने लगे ॥ ४८ ॥

लङ्कां समस्तां सम्पीड्य लाङ्गूलाग्निं महाकपिः।
निर्वापयामास तदा समुद्रे हरिपुङ्गवः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार सारी लङ्कापुरीको पीड़ा दे वानरशिरोमणि महाकपि हनुमान्‌ने उस समय समुद्रके जलमें अपनी पूँछकी आग बुझायी ॥ ४९ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
दृष्ट्वा लङ्कां प्रदग्धां तां विस्मयं परमं गताः ॥ ५० ॥

तत्पश्चात् लङ्कापुरीको दग्ध हुई देख देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि बड़े विस्मित हुए ॥ ५० ॥

तं दृष्ट्वा वानरश्रेष्ठं हनूमन्तं महाकपिम्।
कालाग्निरिति संचिन्त्य सर्वभूतानि तत्रसुः॥ ५१ ॥

उस समय वानरश्रेष्ठ महाकपि हनुमान्‌को देख 'ये कालाग्नि हैं' ऐसा मानकर समस्त प्राणी भयसे थर्रा उठे ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें चौवनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः

सीताजीके लिये हनुमान्‌जीकी चिन्ता और उसका निवारण

संदीप्यमानां वित्रस्तां त्रस्तरक्षोगणां पुरीम् ।
अवेक्ष्य हनुमाँल्लङ्कां चिन्तयामास वानरः ॥ १ ॥

वानरवीर हनुमान्‌जीने जब देखा कि सारी लङ्कापुरी जल रही है, वहाँके निवासियोंपर त्रास छा गया है और राक्षसगण अत्यन्त भयभीत हो गये हैं, तब उनके मनमें सीताके दग्ध होनेकी आशङ्कासे बड़ी चिन्ता हुई ॥ १ ॥

तस्याभूत् सुमहांस्त्रासः कुत्सा चात्मन्यजायत ।
लङ्कां प्रदहता कर्म किंस्वित् कृतमिदं मया ॥ २ ॥

साथ ही उनपर महान् त्रास छा गया और उन्हें अपने प्रति घृणा-सी होने लगी । वे मन-ही-मन कहने लगे—'हाय ! मैंने लङ्काको जलाते समय यह कैसा कुत्सित कर्म कर डाला ? ॥ २ ॥

धन्याः खलु महात्मानो ये बुद्ध्या कोपमुत्थितम् ।
निरुन्धन्ति महात्मानो दीप्तमग्निमिवाम्भसा ॥ ३ ॥

'जो महामनस्वी महात्मा पुरुष उठे हुए कोपको अपनी बुद्धिके द्वारा उसी प्रकार रोक देते हैं, जैसे साधारण लोग जलसे प्रज्वलित अग्निको शान्त कर देते हैं, वे ही इस संसारमें धन्य हैं ॥ ३ ॥

क्रुद्धः पापं न कुर्यात् कः क्रुद्धो हन्याद् गुरूनपि ।
क्रुद्धः परुषया वाचा नरः साधूनधिक्षिपेत् ॥ ४ ॥

'क्रोधसे भर जानेपर कौन पुरुष पाप नहीं करता ? क्रोधके वशीभूत हुआ मनुष्य गुरुजनोंकी भी हत्या कर सकता है । क्रोधी मानव साधु पुरुषोंपर भी कटुवचनोंद्वारा आक्षेप करने लगता है ॥ ४ ॥

वाच्यावाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित् ।
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते क्वचित् ॥ ५ ॥

'अधिक कुपित हुआ मनुष्य कभी इस बातका विचार नहीं करता कि मुँहसे क्या कहना चाहिये और क्या नहीं ! क्रोधीके लिये कोई ऐसा बुरा काम नहीं, जिसे वह न कर सके और कोई ऐसी बुरी बात नहीं, जिसे वह मुँहसे न निकाल सके ॥ ५ ॥

यः समुत्पतितं क्रोधं क्षमयैव निरस्यति ।
यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते ॥ ६ ॥

'जो हृदयमें उत्पन्न हुए क्रोधको क्षमाके द्वारा उसी तरह निकाल देता है, जैसे साँप अपनी पुरानी केंचुलको छोड़ देता है, वही पुरुष कहलाता है ॥ ६ ॥

धिगस्तु मां सुदुर्बुद्धिं निर्लज्जं पापकृत्तमम् ।
अचिन्तयित्वा तां सीतामग्निदं स्वामिघातकम् ॥ ७ ॥

'मेरी बुद्धि बड़ी खोटी है, मैं निर्लज्ज और महान् पापाचारी हूँ । मैंने सीताकी रक्षाका कोई विचार न करके लङ्कामें आग लगा दी और इस तरह अपने स्वामीकी ही हत्या कर डाली । मुझे धिक्कार है ॥ ७ ॥

यदि दग्धा त्वियं सर्वा नूनमार्यापि जानकी ।
दग्धा तेन मया भर्तुर्हतं कार्यमजानता ॥ ८ ॥

'यदि यह सारी लङ्का जल गयी तो आर्या जानकी भी निश्चय ही उसमें दग्ध हो गयी होंगी । ऐसा करके मैंने अनजानमें अपने स्वामीका सारा काम ही चौपट कर डाला ॥ ८ ॥

यदर्थमयमारम्भस्तत्कार्यमवसादितम् ।
मया हि दहता लङ्कां न सीता परिरक्षिता ॥ ९ ॥

'जिस कार्यकी सिद्धिके लिये यह सारा उद्योग किया गया था, वह कार्य ही मैंने नष्ट कर दिया; क्योंकि लङ्का जलाते समय मैंने सीताकी रक्षा नहीं की ॥ ९ ॥

ईषत्कार्यमिदं कार्यं कृतमासीन्न संशयः ।
तस्य क्रोधाभिभूतेन मया मूलक्षयः कृतः ॥ १० ॥

'इसमें संदेह नहीं कि यह लङ्का-दहन एक छोटा-सा कार्य शेष रह गया था, जिसे मैंने पूर्ण किया; परंतु क्रोधसे पागल होनेके कारण मैंने श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी तो जड़ ही काट डाली ॥ १० ॥

विनष्टा जानकी व्यक्तं न ह्यदग्धः प्रदृश्यते ।
लङ्कायाः कश्चिदुद्देशः सर्वा भस्मीकृता पुरी ॥ ११ ॥

'लङ्काका कोई भी भाग ऐसा नहीं दिखायी देता, जहाँ आग न लगी हो । सारी पुरी ही मैंने भस्म कर डाली है, अतः जानकी नष्ट हो गयी, यह बात स्वतः स्पष्ट हो जाती है ॥ ११ ॥

यदि तद्विहतं कार्यं मया प्रज्ञाविपर्ययात् ।
इहैव प्राणसंन्यासो ममापि ह्यद्य रोचते ॥ १२ ॥

'यदि अपनी विपरीत बुद्धिके कारण मैंने सारा काम चौपट कर दिया तो यहीं आज मेरे प्राणोंका भी विसर्जन हो जाना चाहिये । यही मुझे अच्छा जान पड़ता है ॥ १२ ॥

किमग्नौ निपताम्यद्य आहोस्विद् वडवामुखे ।
शरीरमिह सत्त्वानां दद्मि सागरवासिनाम् ॥ १३ ॥

'क्या मैं अब जलती आगमें कूद पड़ूँ या वडवानलके मुखमें ? अथवा समुद्रमें निवास करनेवाले जल-जन्तुओंको ही यहाँ अपना शरीर समर्पित कर दूँ ॥ १३ ॥

कथं नु जीवता शक्यो मया द्रष्टुं हरीश्वरः ।
तौ वा पुरुषशार्दूलौ कार्यसर्वस्वघातिना ॥ १४ ॥

'जब मैंने सारा कार्य ही नष्ट कर दिया, तब अब जीते-जी कैसे वानरराज सुग्रीव अथवा उन दोनों पुरुषसिंह श्रीराम और लक्ष्मणका दर्शन कर सकता हूँ या उन्हें अपना मुँह दिखा सकता हूँ ? ॥ १४ ॥

मया खलु तदेवेदं रोषदोषात् प्रदर्शितम्।
प्रथितं त्रिषु लोकेषु कपित्वमनवस्थितम् ॥ १५ ॥

'मैंने रोषके दोषसे तीनों लोकोंमें विख्यात इस वानरोचित चपलताका ही यहाँ प्रदर्शन किया है ॥ १५ ॥

धिगस्तु राजसं भावमनीशमनवस्थितम्।
ईश्वरेणापि यद् रागान्मया सीता न रक्षिता ॥ १६ ॥

'यह राजस भाव कार्य-साधनमें असमर्थ और अव्यवस्थित है, इसे धिक्कार है; क्योंकि इस रजोगुणमूलक क्रोधके ही कारण समर्थ होते हुए भी मैंने सीताकी रक्षा नहीं की ॥ १६ ॥

विनष्टायां तु सीतायां तावुभौ विनशिष्यतः।
तयोर्विनाशे सुग्रीवः सबन्धुर्विनशिष्यति ॥ १७ ॥

'सीताके नष्ट हो जानेसे वे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण भी नष्ट हो जायँगे। उन दोनोंका नाश होनेपर बन्धु-बान्धवोंसहित सुग्रीव भी जीवित नहीं रहेंगे ॥ १७ ॥

एतदेव वचः श्रुत्वा भरतो भ्रातृवत्सलः।
धर्मात्मा सहशत्रुघ्नः कथं शक्ष्यति जीवितुम् ॥ १८ ॥

'फिर इसी समाचारको सुन लेनेपर भ्रातृवत्सल धर्मात्मा भरत और शत्रुघ्न भी कैसे जीवन धारण कर सकेंगे? ॥ १८ ॥

इक्ष्वाकुवंशे धर्मिष्ठे गते नाशमसंशयम्।
भविष्यन्ति प्रजाः सर्वाः शोकसंतापपीडिताः ॥ १९ ॥

'इस प्रकार धर्मनिष्ठ इक्ष्वाकुवंशके नष्ट हो जानेपर सारी प्रजा भी शोक-संतापसे पीड़ित हो जायगी, इसमें संशय नहीं है ॥ १९ ॥

तदहं भाग्यरहितो लुप्तधर्मार्थसंग्रहः।
रोषदोषपरीतात्मा व्यक्तं लोकविनाशनः ॥ २० ॥

'अतः सीताकी रक्षा न करनेके कारण मैंने धर्म और अर्थके संग्रहको नष्ट कर दिया, अतएव मैं बड़ा भाग्यहीन हूँ। मेरा हृदय रोषदोषके वशीभूत हो गया है, इसलिये मैं अवश्य ही समस्त लोकका विनाशक हो गया हूँ—मुझे सम्पूर्ण जगत्‌के विनाशके पापका भागी होना पड़ेगा' ॥ २० ॥

इति चिन्तयतस्तस्य निमित्तान्युपपेदिरे।
पूर्वमप्युपलब्धानि साक्षात् पुनरचिन्तयत् ॥ २१ ॥

इस प्रकार चिन्तामें पड़े हुए हनुमान्‌जीको कई शुभ शकुन दिखायी पड़े, जिनके अच्छे फलोंका वे पहले भी प्रत्यक्ष अनुभव कर चुके थे; अतः वे फिर इस प्रकार सोचने लगे— ॥ २१ ॥

अथ वा चारुसर्वाङ्गी रक्षिता स्वेन तेजसा।
न नशिष्यति कल्याणी नाग्निरग्नौ प्रवर्तते ॥ २२ ॥

'अथवा सम्भव है सर्वाङ्गसुन्दरी सीता अपने ही तेजसे सुरक्षित हों। कल्याणी जनकनन्दिनीका नाश कदापि नहीं होगा; क्योंकि आग आगको नहीं जलाती है ॥ २२ ॥

नहि धर्मात्मनस्तस्य भार्याममिततेजसः।
स्वचरित्राभिगुप्तां तां स्प्रष्टुमर्हति पावकः ॥ २३ ॥

'सीता अमिततेजस्वी धर्मात्मा भगवान् श्रीरामकी पत्नी हैं। वे अपने चरित्रके बलसे—पातिव्रत्यके प्रभावसे सुरक्षित हैं। आग उन्हें छू भी नहीं सकती ॥ २३ ॥

नूनं रामप्रभावेण वैदेह्याः सुकृतेन च।
यन्मां दहनकर्मायं नादहद्धव्यवाहनः ॥ २४ ॥

'अवश्य श्रीरामके प्रभाव तथा विदेहनन्दिनी सीताके पुण्यबलसे ही यह दाहक अग्नि मुझे नहीं जला सकी है ॥ २४ ॥

त्रयाणां भरतादीनां भ्रातॄणां देवता च या।
रामस्य च मनःकान्ता सा कथं विनशिष्यति ॥ २५ ॥

'फिर जो भरत आदि तीनों भाइयोंकी आराध्य देवी और श्रीरामचन्द्रजीकी हृदयवल्लभा हैं, वे आगसे कैसे नष्ट हो सकेंगी ॥ २५ ॥

यद् वा दहनकर्मायं सर्वत्र प्रभुरव्ययः।
न मे दहति लाङ्गूलं कथमार्यां प्रधक्ष्यति ॥ २६ ॥

'यह दाहक एवं अविनाशी अग्नि सर्वत्र अपना प्रभाव रखती है, सबको जला सकती है, तो भी यह जिनके प्रभावसे मेरी पूँछको नहीं जला पाती है, उन्हीं साक्षात् माता जानकीको कैसे जला सकेगी ?' ॥ २६ ॥

पुनश्चाचिन्तयत् तत्र हनूमान् विस्मितस्तदा।
हिरण्यनाभस्य गिरेर्जलमध्ये प्रदर्शनम् ॥ २७ ॥

उस समय हनुमान्‌जीने वहाँ विस्मित होकर पुनः उस घटनाको स्मरण किया, जब कि समुद्रके जलमें उन्हें मैनाक पर्वतका दर्शन हुआ था ॥ २७ ॥

तपसा सत्यवाक्येन अनन्यत्वाच्च भर्तरि।
असौ विनिर्दहेदग्निं न तामग्निः प्रधक्ष्यति ॥ २८ ॥

वे सोचने लगे—'तपस्या, सत्यभाषण तथा पतिमें अनन्य भक्तिके कारण आर्या सीता ही अग्निको जला सकती हैं, आग उन्हें नहीं जला सकती' ॥ २८ ॥

स तथा चिन्तयंस्तत्र देव्या धर्मपरिग्रहम्।
शुश्राव हनुमांस्तत्र चारणानां महात्मनाम् ॥ २९ ॥

इस प्रकार भगवती सीताकी धर्मपरायणताका विचार करते हुए हनुमान्‌जीने वहाँ महात्मा चारणोंके मुखसे निकली हुई ये बातें सुनीं— ॥ २९ ॥

अहो खलु कृतं कर्म दुर्विगाहं हनूमता।
अग्नि विसृजता तीक्ष्णं भीमं राक्षससद्मनि ॥ ३० ॥

'अहो! हनुमान्‌जीने राक्षसोंके घरोंमें दुःसह एवं भयंकर आग लगाकर बड़ा ही अद्भुत और दुष्कर कार्य किया है ॥ ३० ॥

प्रपलायितरक्षःस्त्रीबालवृद्धसमाकुला
जनकोलाहलाध्माता क्रन्दन्तीवाद्रिकन्दरैः ॥ ३१ ॥
दग्धेयं नगरी लङ्का साट्टप्राकारतोरणा।
जानकी न च दग्धेति विस्मयोऽद्भुत एव नः ॥ ३२ ॥

'घरमेंसे भागे हुए राक्षसों, स्त्रियों, बालकों और वृद्धोंसे

भरी हुई सारी लङ्का जन-कोलाहलसे परिपूर्ण हो चीत्कार करती हुई-सी जान पड़ती है। पर्वतकी कन्दराओं अटारियों, परकोटों और नगरके फाटकोंसहित यह सारी लङ्का नगरी दग्ध हो गयी; परंतु सीतापर आँच नहीं आयी। यह हमारे लिये बड़ी अद्भुत और आश्चर्यकी बात है' ॥ ३१-३२ ॥

इति शुश्राव हनुमान् वाचंताममृतोपमाम्।
बभूव चास्य मनसो हर्षस्तत्कालसम्भवः ॥ ३३ ॥

हनुमान्‌जीने जब चारणोंके कहे हुए ये अमृतके समान मधुर वचन सुने, तब उनके हृदयमें तत्काल हर्षोल्लास छा गया ॥ ३३ ॥

स निमित्तैश्च दृष्टार्थैः कारणैश्च महागुणैः।
ऋषिवाक्यैश्च हनुमानभवत् प्रीतमानसः ॥ ३४ ॥

अनेक बारके प्रत्यक्ष अनुभव किये हुए शुभ शकुनों, महान् गुणदायक कारणों तथा चारणोंके कहे हुए पूर्वोक्त वचनोंद्वारा सीताजीके जीवित होनेका निश्चय करके हनुमान्‌जीके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ३४ ॥

ततः कपिः प्राप्तमनोरथार्थ-
स्तामक्षतां राजसुतां विदित्वा।
प्रत्यक्षतस्तां पुनरेव दृष्ट्वा
प्रतिप्रयाणाय मतिं चकार ॥ ३५ ॥

राजकुमारी सीताको कोई क्षति नहीं पहुँची है, यह जानकर कपिवर हनुमान्‌जीने अपना सम्पूर्ण मनोरथ सफल समझा और पुनः उनका प्रत्यक्ष दर्शन करके लौट जानेका विचार किया ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें पचपनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशः सर्गः

हनुमान्‌जीका पुनः सीताजीसे मिलकर लौटना और समुद्रको लाँघना

ततस्तु शिंशपामूले जानकीं पर्यवस्थिताम्।
अभिवाद्याब्रवीद् दिष्ट्या पश्यामि त्वामिहाक्षताम् ॥ १ ॥

तदनन्तर हनुमान्‌जी अशोकवृक्षके नीचे बैठी हुई जानकीजीके पास गये और उन्हें प्रणाम करके बोले—'आर्ये! सौभाग्यकी बात है कि इस समय मैं आपको सकुशल देख रहा हूँ' ॥ १ ॥

ततस्तं प्रस्थितं सीता वीक्षमाणा पुनः पुनः।
भर्तुः स्नेहान्विता वाक्यं हनूमन्तमभाषत ॥ २ ॥

सीता अपने पतिके स्नेहमें डूबी हुई थीं। वे हनुमान्‌जीको प्रस्थान करनेके लिये उद्यत जान उन्हें बारंबार देखती हुई बोलीं—॥ २ ॥

यदि त्वं मन्यसे तात वसैकाहमिहानघ।
क्वचित् सुसंवृते देशे विश्रान्तः श्वो गमिष्यसि ॥ ३ ॥

'तात! निष्पाप वानरवीर! यदि तुम उचित समझो तो एक दिन और यहाँ किसी गुप्त स्थानमें ठहर जाओ, आज विश्राम करके कल चले जाना ॥ ३ ॥

मम चैवाल्पभाग्यायाः सांनिध्यात् तव वानर।
शोकस्यास्याप्रमेयस्य मुहूर्तं स्यादपि क्षयः ॥ ४ ॥

'वानरप्रवर! तुम्हारे निकट रहनेसे मुझ मन्दभागिनीका अपार शोक भी थोड़ी देरके लिये कम हो जायगा ॥ ४ ॥

गते हि हरिशार्दूल पुनः सम्प्राप्तये त्वयि।
प्राणेष्वपि न विश्वासो मम वानरपुङ्गव ॥ ५ ॥

'कपिश्रेष्ठ! वानरशिरोमणे! जब तुम चले जाओगे, तब फिर तुम्हारे आनेतक मेरे प्राण रहेंगे या नहीं, इसका कोई विश्वास नहीं है ॥ ५ ॥

अदर्शनं च ते वीर भूयो मां दारयिष्यति।
दुःखाद् दुःखतरं प्राप्तां दुर्मनःशोककर्शिताम् ॥ ६ ॥

'वीर! मुझपर दुःख-पर-दुःख पड़ते गये हैं। मैं मानसिक शोकसे दिन-दिन दुर्बल होती जा रही हूँ। अब तुम्हारा दर्शन न होना मेरे हृदयको और भी विदीर्ण करता रहेगा ॥

अयं च वीर संदेहस्तिष्ठतीव ममाग्रतः।
सुमहत्सु सहायेषु हर्यृक्षेषु महाबलः ॥ ७ ॥
कथं नु खलु दुष्पारं संतरिष्यति सागरम्।
तानि हर्यृक्षसैन्यानि तौ वा नरवरात्मजौ ॥ ८ ॥

'वीर! मेरे सामने यह संदेह अभीतक बना ही हुआ है कि बड़े-बड़े वानरों और रीछोंके सहायक होनेपर भी महाबली सुग्रीव इस दुर्लङ्घ्य समुद्रको कैसे पार करेंगे? उनकी सेनाके वे वानर और भालू तथा वे दोनों राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण भी इस महासागरको कैसे लाँघ सकेंगे? ॥ ७-८ ॥

त्रयाणामेव भूतानां सागरस्यापि लङ्घने।
शक्तिः स्याद् वैनतेयस्य तव वा मारुतस्य वा ॥ ९ ॥

'तीन ही प्राणियोंमें इस समुद्रको लाँघनेकी शक्ति है—तुममें, गरुड़में अथवा वायुदेवतामें ॥ ९ ॥

तदत्र कार्यनिर्बन्धे समुत्पन्ने दुरासदे।
किं पश्यसि समाधानं त्वं हि कार्यविशारदः ॥ १० ॥

'इस कार्यसम्बन्धी दुष्कर प्रतिबन्धके उपस्थित होनेपर तुम्हें क्या समाधान दिखायी देता है? बताओ, क्योंकि तुम कार्यकुशल हो ॥ १० ॥

काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने।

पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते फलोदयः ॥ ११ ॥

'शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले कपिश्रेष्ठ ! इसमें संदेह नहीं कि इस कार्यको सिद्ध करनेमें तुम अकेले ही पूर्ण समर्थ हो; परंतु तुम्हारेद्वारा जो विजयरूप फलकी प्राप्ति होगी, उससे तुम्हारा ही यश बढ़ेगा, भगवान् श्रीरामका नहीं ॥ ११ ॥

बलैस्तु संकुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः ।
मां नयेद् यदि काकुत्स्थस्तत् तस्य सदृशं भवेत् ॥ १२ ॥

'परंतु शत्रुसेनाको पीड़ा देनेवाले श्रीरामचन्द्रजी यदि लङ्काको अपनी सेनासे पददलित करके मुझे यहाँसे ले चलें तो वह उनके योग्य पराक्रम होगा ॥ १२ ॥

तद् यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः ।
भवत्याहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय ॥ १३ ॥

'अतः तुम ऐसा उपाय करो, जिससे युद्धवीर महात्मा श्रीरामचन्द्रजीका उनके योग्य पराक्रम प्रकट हो' ॥ १३ ॥

तदर्थोपहितं वाक्यं प्रश्रितं हेतुसंहितम् ।
निशम्य हनुमान् वीरो वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ १४ ॥

सीताजीकी यह बात स्नेहयुक्त तथा विशेष अभिप्रायसे भरी हुई थी । इसे सुनकर वीर हनुमान्‌ने इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १४ ॥

देवि हर्यृक्षसैन्यानामीश्वरः प्लवतां वरः ।
सुग्रीवः सत्त्वसम्पन्नस्तवार्थे कृतनिश्चयः ॥ १५ ॥

'देवि ! वानर और भालुओंकी सेनाओंके स्वामी कपिश्रेष्ठ सुग्रीव बड़े शक्तिशाली पुरुष हैं । वे तुम्हारे उद्धारके लिये प्रतिज्ञा कर चुके हैं ॥ १५ ॥

स वानरसहस्राणां कोटीभिरभिसंवृतः ।
क्षिप्रमेष्यति वैदेहि सुग्रीवः प्लवगाधिपः ॥ १६ ॥

'विदेहनन्दिनि ! अतः वे वानरराज सुग्रीव सहस्रों कोटि वानरोंसे घिरे हुए तुरंत यहाँ आयेंगे ॥ १६ ॥

तौ च वीरौ नरवरौ सहितौ रामलक्ष्मणौ ।
✓ **आगम्य नगरीं लङ्कां सायकैर्विधमिष्यतः ॥ १७ ॥**

'साथ ही वे दोनों वीर नरश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मण भी एक साथ आकर अपने सायकोंसे इस लङ्कापुरीका विध्वंस कर डालेंगे ॥ १७ ॥

सगणं राक्षसं हत्वा नचिराद् रघुनन्दनः ।
त्वामादाय वरारोहे स्वां पुरीं प्रति यास्यति ॥ १८ ॥

'वरारोहे ! राक्षसराज रावणको उसके सैनिकोंसहित कालके गालमें डालकर श्रीरघुनाथजी आपको साथ ले शीघ्र ही अपनी पुरीको पधारेंगे ॥ १८ ॥

समाश्वसिहि भद्रं ते भव त्वं कालकाङ्क्षिणी ।
क्षिप्रं द्रक्ष्यसि रामेण निहतं रावणं रणे ॥ १९ ॥

'इसलिये आप धैर्य धारण करें । आपका भला हो । आप समयकी प्रतीक्षा करें । रावण शीघ्र ही रणभूमिमें श्रीरामके हाथसे मारा जायगा, यह आप अपनी आँखों देखेंगी ॥ १९ ॥

निहते राक्षसेन्द्रे च सपुत्रामात्यबान्धवे ।
त्वं समेष्यसि रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी ॥ २० ॥

'पुत्र, मन्त्री और भाई-बन्धुओंसहित राक्षसराज रावणके मारे जानेपर आप श्रीरामचन्द्रजीके साथ उसी प्रकार मिलेंगी, जैसे रोहिणी चन्द्रमासे मिलती है ॥ २० ॥

क्षिप्रमेष्यति काकुत्स्थो हर्यृक्षप्रवरैर्युतः ।
यस्ते युधि विजित्यारीञ्छोकं व्यपनयिष्यति ॥ २१ ॥

'वानरों और भालुओंके प्रमुख वीरोंके साथ श्रीरामचन्द्रजी शीघ्र ही यहाँ पधारेंगे और युद्धमें शत्रुओंको जीतकर आपका सारा शोक दूर कर देंगे' ॥ २१ ॥

एवमाश्वास्य वैदेहीं हनूमान् मारुतात्मजः ।
गमनाय मतिं कृत्वा वैदेहीमभ्यवादयत् ॥ २२ ॥

विदेहनन्दिनी सीताको इस प्रकार आश्वासन दे वहाँसे जानेका विचार करके पवनकुमार हनुमान्‌ने उन्हें प्रणाम किया ॥ २२ ॥

राक्षसान् प्रवरान् हत्वा नाम विश्राव्य चात्मनः ।
समाश्वास्य च वैदेहीं दर्शयित्वा परं बलम् ॥ २३ ॥
नगरीमाकुलां कृत्वा वञ्चयित्वा च रावणम् ।
दर्शयित्वा बलं घोरं वैदेहीमभिवाद्य च ॥ २४ ॥
प्रतिगन्तुं मनश्चक्रे पुनर्मध्येन सागरम् ।

वे बड़े-बड़े राक्षसोंको मारकर अपने महान् बलका परिचय दे वहाँ ख्याति प्राप्त कर चुके थे । उन्होंने सीताको आश्वासन दे, लङ्कापुरीको व्याकुल करके, रावणको चकमा देकर, उसे अपना भयानक बल दिखा, वैदेहीको प्रणाम करके पुनः समुद्रके बीचसे होकर लौट जानेका विचार किया ॥

ततः स कपिशार्दूलः स्वामिसंदर्शनोत्सुकः ॥ २५ ॥
आरुरोह गिरिश्रेष्ठमरिष्टमरिमर्दनः ।

(अब यहाँ उनके लिये कोई कार्य बाकी नहीं रह गया था; अतः) अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लिये उत्सुक हो वे शत्रुमर्दन कपिश्रेष्ठ हनुमान् पर्वतोंमें उत्तम अरिष्ट गिरिपर चढ़ गये ॥ २५½ ॥

तुङ्गपद्मकजुष्टाभिर्नीलाभिर्वनराजिभिः ॥ २६ ॥
सोत्तरीयमिवाम्भोदैः शृङ्गान्तरविलम्बिभिः ।

ऊँचे-ऊँचे पद्मकों—पद्मके समान वर्णवाले वृक्षोंसे सेवित नीली वनश्रेणियाँ मानो उस पर्वतका परिधान वस्त्र थीं । शिखरोंपर लटके हुए श्याम मेघ उसके लिये उत्तरीय वस्त्र (चादर)-से प्रतीत होते थे ॥ २६½ ॥

बोध्यमानमिव प्रीत्या दिवाकरकरैः शुभैः ॥ २७ ॥
उन्मिषन्तमिवोद्धूतैर्लोचनैरिव धातुभिः ।
तोयौघनिःस्वनैर्मन्द्रैः प्राधीतमिव पर्वतम् ॥ २८ ॥

सूर्यकी कल्याणमयी किरणें प्रेमपूर्वक उसे जगाती-सी

जान पड़ती थीं। नाना प्रकारके धातु मानो उसके खुले हुए नेत्र थे, जिनसे वह सब कुछ देखता हुआ-सा स्थित था। पर्वतीय नदियोंकी जलराशिके गम्भीर घोषसे ऐसा लगता था, मानो वह पर्वत सस्वर वेदपाठ कर रहा हो ॥२७-२८॥

प्रगीतमिव विस्पष्टं नानाप्रस्रवणस्वनैः।
देवदारुभिरुद्धूतैरूर्ध्वबाहुमिव स्थितम् ॥ २९ ॥

अनेकानेक झरनोंके कलकल नादसे वह अरिष्टगिरि स्पष्टतया गीत-सा गा रहा था। ऊँचे-ऊँचे देवदारु वृक्षोंके कारण मानो हाथ ऊपर उठाये खड़ा था ॥ २९ ॥

प्रपातजलनिर्घोषैः प्राक्रुष्टमिव सर्वतः।
वेपमानमिव श्यामैः कम्पमानैः शरद्घनैः ॥ ३० ॥

सब ओर जल-प्रपातोंकी गम्भीर ध्वनिसे व्याप्त होनेके कारण चिल्लाता या हल्ला मचाता-सा जान पड़ता था। झूमते हुए सरकंडोंके श्याम वनोंसे वह काँपता-सा प्रतीत होता था ॥ ३० ॥

वेणुभिर्मारुतोद्धूतैः कूजन्तमिव कीचकैः।
निःश्वसन्तमिवामर्षाद् घोरैराशीविषोत्तमैः ॥ ३१ ॥

वायुके झोंके खाकर हिलते और मधुरध्वनि करते बाँसोंसे उपलक्षित होनेवाला वह पर्वत मानो बाँसुरी बजा रहा था। भयानक विषधर सर्पोंके फुंकारसे लंबी साँस खींचता-सा जान पड़ता था ॥ ३१ ॥

नीहारकृतगम्भीरैर्ध्यायन्तमिव गह्वरैः।
मेघपादनिभैः पादैः प्रक्रान्तमिव सर्वतः ॥ ३२ ॥

कुहरेके कारण गहरी प्रतीत होनेवाली निश्चल गुफाओंद्वारा वह ध्यान-सा कर रहा था। उठते हुए मेघोंके समान शोभा पानेवाले पार्श्ववर्ती पर्वतोंद्वारा सब ओर विचरता-सा प्रतीत होता था ॥ ३२ ॥

जृम्भमाणमिवाकाशे शिखरैरभ्रमालिभिः।
कूटैश्च बहुधा कीर्णं शोभितं बहुकन्दरैः ॥ ३३ ॥

मेघमालाओंसे अलंकृत शिखरोंद्वारा वह आकाशमें अँगड़ाई-सी ले रहा था। अनेकानेक शृङ्गोंसे व्याप्त तथा बहुत-सी कन्दराओंसे सुशोभित था ॥ ३३ ॥

सालतालैश्च कर्णैश्च वंशैश्च बहुभिर्वृतम्।
लतावितानैर्विततैः पुष्पवद्भिरलंकृतम् ॥ ३४ ॥

साल, ताल, कर्ण और बहुसंख्यक बाँसके वृक्ष उसे सब ओरसे घेरे हुए थे। फूलोंके भारसे लदे और फैले हुए लता-वितान उस पर्वतके अलंकार थे ॥ ३४ ॥

नानामृगगणैः कीर्णं धातुनिष्यन्दभूषितम्।
बहुप्रस्रवणोपेतं शिलासंचयसंकटम् ॥ ३५ ॥

नाना प्रकारके पशु वहाँ सब ओर भरे हुए थे। विविध धातुओंके पिघलनेसे उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। वह पर्वत बहुसंख्यक झरनोंसे विभूषित तथा राशि-राशि शिलाओंसे भरा हुआ था ॥ ३५ ॥

महर्षियक्षगन्धर्वकिंनरोरगसेवितम् ।
लतापादपसम्बाधं सिंहाधिष्ठितकन्दरम् ॥ ३६ ॥

महर्षि, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और नागगण वहाँ निवास करते थे। लताओं और वृक्षोंद्वारा वह सब ओरसे आच्छादित था। उसकी कन्दराओंमें सिंह दहाड़ रहे थे ॥

व्याघ्रादिभिः समाकीर्णं स्वादुमूलफलद्रुमम्।
आरुरोहानिलसुतः पर्वतं प्लवगोत्तमः ॥ ३७ ॥
रामदर्शनशीघ्रेण प्रहर्षेणाभिचोदितः।

व्याघ्र आदि हिंसक जन्तु भी वहाँ सब ओर फैले हुए थे। स्वादिष्ट फलोंसे लदे हुए वृक्ष और मधुर कन्द-मूल आदिकी वहाँ बहुतायत थी। ऐसे रमणीय पर्वतपर वानर-शिरोमणि पवनकुमार हनुमान्‌जी श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकी शीघ्रता और अत्यन्त हर्षसे प्रेरित होकर चढ़ गये ॥३७½॥

तेन पादतलक्रान्ता रम्येषु गिरिसानुषु ॥ ३८ ॥
सघोषाः समशीर्यन्त शिलाश्चूर्णीकृतास्ततः।

उस पर्वतके रमणीय शिखरोंपर जो शिलाएँ थीं, वे उनके पैरोंके आघातसे भारी आवाजके साथ चूर-चूर होकर बिखर जाती थीं ॥ ३८½ ॥

स तमारुह्य शैलेन्द्रं व्यवर्धत महाकपिः ॥ ३९ ॥
दक्षिणादुत्तरं पारं प्रार्थयँल्लवणाम्भसः।

उस शैलराज अरिष्टपर आरूढ़ हो महाकपि हनुमान्‌जीने समुद्रके दक्षिण तटसे उत्तर तटपर जानेकी इच्छासे अपने शरीरको बहुत बड़ा बना लिया ॥ ३९½ ॥

अधिरुह्य ततो वीरः पर्वतं पवनात्मजः ॥ ४० ॥
ददर्श सागरं भीमं भीमोरगनिषेवितम्।

उस पर्वतपर आरूढ़ होनेके पश्चात् वीरवर पवनकुमारने भयानक सर्पोंसे सेवित उस भीषण महासागरकी ओर दृष्टिपात किया ॥ ४०½ ॥

स मारुत इवाकाशं मारुतस्यात्मसम्भवः ॥ ४१ ॥
प्रपेदे हरिशार्दूलो दक्षिणादुत्तरां दिशम्।

वायुदेवताके औरस पुत्र कपिश्रेष्ठ हनुमान् जैसे वायु आकाशमें तीव्रगतिसे प्रवाहित होती है, उसी प्रकार दक्षिणसे उत्तर दिशाकी ओर बड़े वेगसे (उछलकर) चले ॥४१½॥

स तदा पीडितस्तेन कपिना पर्वतोत्तमः ॥ ४२ ॥
रराास विविधैर्भूतैः प्राविशद् वसुधातलम्।
कम्पमानैश्च शिखरैः पतद्भिरपि च द्रुमैः ॥ ४३ ॥

हनुमान्‌जीके पैरोंका दबाव पड़नेके कारण उस श्रेष्ठ पर्वतसे बड़ी भयंकर आवाज हुई और वह अपने काँपते हुए शिखरों, टूटकर गिरते हुए वृक्षों तथा भाँति-भाँतिके प्राणियोंसहित तत्काल धरतीमें धँस गया ॥ ४२-४३ ॥

तस्योरुवेगोन्मथिताः पादपाः पुष्पशालिनः।
निपेतुर्भूतले भग्नाः शक्रायुधहता इव ॥ ४४ ॥

उनके महान् वेगसे कम्पित हो फूलोंसे लदे हुए बहुसंख्यक वृक्ष इस प्रकार पृथ्वीपर गिर पड़े, मानो उन्हें वज्र मार गया हो ॥ ४४ ॥

कन्दरोदरसंस्थानां पीडितानां महौजसाम् ।
सिंहानां निनदो भीमो नभो भिन्दन् हि शुश्रुवे ॥ ४५ ॥

उस समय उस पर्वतकी कन्दराओंमें रहकर दबे हुए महाबली सिंहोंका भयंकर नाद आकाशको फाड़ता हुआ-सा सुनायी दे रहा था ॥ ४५ ॥

त्रस्तव्याविद्धवसना व्याकुलीकृतभूषणाः ।
विद्याधर्यः समुत्पेतुः सहसा धरणीधरात् ॥ ४६ ॥

भयके कारण जिनके वस्त्र ढीले पड़ गये थे और आभूषण उलट-पलट गये थे, वे विद्याधरियाँ सहसा उस पर्वतसे ऊपरकी ओर उड़ चलीं ॥ ४६ ॥

अतिप्रमाणा बलिनो दीप्तजिह्वा महाविषाः ।
निपीडितशिरोग्रीवा व्यवेष्टन्त महाहयः ॥ ४७ ॥

बड़े-बड़े आकार और चमकीली जीभवाले महाविषैले बलवान् सर्प अपने फन तथा गलेको दबाकर कुण्डलाकार हो गये ॥ ४७ ॥

किंनरोरगगन्धर्वयक्षविद्याधरास्तथा
पीडितं तं नगवरं त्यक्त्वा गगनमास्थिताः ॥ ४८ ॥

किंनर, नाग, गन्धर्व, यक्ष और विद्याधर उस धँसते हुए पर्वतको छोड़कर आकाशमें स्थित हो गये ॥ ४८ ॥

स च भूमिधरः श्रीमान् बलिना तेन पीडितः ।
सवृक्षशिखरोदग्रः प्रविवेश रसातलम् ॥ ४९ ॥

बलवान् हनुमान्‌जीके वेगसे दबकर वह शोभाशाली महीधर वृक्षों और ऊँचे शिखरोंसहित रसातलमें चला गया ॥

दशयोजनविस्तारस्त्रिंशद्योजनमुच्छ्रितः ।
धरण्यां समतां यातः स बभूव धराधरः ॥ ५० ॥

अरिष्ट पर्वत तीस योजन ऊँचा और दस योजन चौड़ा था। फिर भी उनके पैरोंसे दबकर भूमिके बराबर हो गया ॥ ५० ॥

स लिलङ्घयिषुर्भीमं सलीलं लवणार्णवम् ।
कल्लोलास्फालवेलान्तमुत्पपात नभो हरिः ॥ ५१ ॥

जिसकी ऊँची-ऊँची तरङ्गें उठकर अपने किनारोंका चुम्बन करती थीं, उस खारे पानीके भयानक समुद्रको लीलापूर्वक लाँघ जानेकी इच्छासे हनुमान्‌जी आकाशमें उड़ चले ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षट्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें छप्पनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

* * *

सप्तपञ्चाशः सर्गः

हनुमान्‌जीका समुद्रको लाँघकर जाम्बवान् और अङ्गद आदि सुहृदोंसे मिलना

आप्लुत्य च महावेगः पक्षवानिव पर्वतः ।
भुजङ्गयक्षगन्धर्वप्रबुद्धकमलोत्पलम् ॥ १ ॥
स चन्द्रकुमुदं रम्यं सार्ककारण्डवं शुभम् ।
तिष्यश्रवणकादम्बमभ्रशैवलशाद्वलम् ॥ २ ॥
पुनर्वसुमहामीनं लोहिताङ्गमहाग्रहम् ।
ऐरावतमहाद्वीपं स्वातीहंसविलासितम् ॥ ३ ॥
वातसंघातजालोर्मिचन्द्रांशुशिशिराम्बुमत् ।
हनूमानपरिश्रान्तः पुप्लुवे गगनार्णवम् ॥ ४ ॥

पङ्खधारी पर्वतके समान महान् वेगशाली हनुमान्‌जी बिना थके-माँदे उस सुन्दर एवं रमणीय आकाशरूपी समुद्रको पार करने लगे, जिसमें नाग, यक्ष और गन्धर्व खिले हुए कमल और उत्पलके समान थे। चन्द्रमा कुमुद और सूर्य जलकुक्कुटके समान थे। पुष्य और श्रवण नक्षत्र कलहंस तथा बादल सेवार और घासके तुल्य थे। पुनर्वसु विशाल मत्स्य और मंगल बड़े भारी ग्राहके सदृश थे। ऐरावत हाथी वहाँ महान् द्वीप-सा प्रतीत होता था। वह आकाशरूपी समुद्र स्वातीरूपी हंसके विलाससे सुशोभित था तथा वायुसमूहरूप तरङ्गों और चन्द्रमाकी किरणरूप शीतल जलसे भरा हुआ था ॥ १–४ ॥

ग्रसमान इवाकाशं ताराधिपमिवोल्लिखन् ।
हरन्निव सनक्षत्रं गगनं सार्कमण्डलम् ॥ ५ ॥
अपारमपरिश्रान्तश्चाम्बुधिं समगाहत ।
हनूमान् मेघजालानि विकर्षन्निव गच्छति ॥ ६ ॥

हनुमान्‌जी आकाशको अपना ग्रास बनाते हुए, चन्द्रमण्डलको नखोंसे खरोंचते हुए, नक्षत्रों तथा सूर्यमण्डलसहित अन्तरिक्षको समेटते हुए और बादलोंके समूहको खींचते हुए-से अनायास ही अपार महासागरके पार चले जा रहे थे ॥ ५-६ ॥

पाण्डुरारुणवर्णानि नीलमाञ्जिष्ठकानि च ।
हरितारुणवर्णानि महाभ्राणि चकाशिरे ॥ ७ ॥

उस समय आसमानमें सफेद, लाल, नीले, मंजीठके रंगके, हरे और अरुण वर्णके बड़े-बड़े मेघ शोभा पा रहे थे ॥ ७ ॥

प्रविशन्नभ्रजालानि निष्क्रमंश्च पुनः पुनः ।

प्रकाशश्चाप्रकाशश्च चन्द्रमा इव दृश्यते ॥ ८ ॥

वे कभी उन मेघ-समूहोंमें प्रवेश करते और कभी बाहर निकलते थे। बारंबार ऐसा करते हुए हनुमान्‌जी छिपते और प्रकाशित होते हुए चन्द्रमाके समान दृष्टिगोचर हो रहे थे ॥ ८ ॥

विविधाभ्रघनापन्नगोचरो धवलाम्बरः।
दृश्यादृश्यतनुर्वीरस्तथा चन्द्रायतेऽम्बरे ॥ ९ ॥

नाना प्रकारके मेघोंकी घटाओंके भीतर होकर जाते हुए धवलाम्बरधारी वीरवर हनुमान्‌जीका शरीर कभी दीखता था और कभी अदृश्य हो जाता था; अतः वे आकाशमें बादलोंकी आड़में छिपते और प्रकाशित होते चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे ॥ ९ ॥

तार्क्ष्यायमाणो गगने स बभौ वायुनन्दनः।
दारयन् मेघवृन्दानि निष्पतंश्च पुनः पुनः ॥ १० ॥

बारंबार मेघ-समूहोंको विदीर्ण करने और उनमें होकर निकलनेके कारण वे पवनकुमार हनुमान् आकाशमें गरुड़के समान प्रतीत होते थे ॥ १० ॥

नदन् नादेन महता मेघस्वनमहास्वनः।
प्रवरान् राक्षसान् हत्वा नाम विश्राव्य चात्मनः ॥ ११ ॥
आकुलां नगरीं कृत्वा व्यथयित्वा च रावणम्।
अर्दयित्वा महावीरान् वैदेहीमभिवाद्य च ॥ १२ ॥
आजगाम महातेजाः पुनर्मध्येन सागरम्।

इस प्रकार महातेजस्वी हनुमान् अपने महान् सिंहनादसे मेघोंकी गम्भीर गर्जनाको भी मात करते हुए आगे बढ़ रहे थे। वे प्रमुख राक्षसोंको मारकर अपना नाम प्रसिद्ध कर चुके थे। बड़े-बड़े वीरोंको रौंदकर उन्होंने लङ्कानगरीको व्याकुल तथा रावणको व्यथित कर दिया था। तत्पश्चात् विदेहनन्दिनी सीताको नमस्कार करके वे चले और तीव्र गतिसे पुनः समुद्रके मध्यभागमें आ पहुँचे ॥ ११-१२½ ॥

पर्वतेन्द्रं सुनाभं च समुपस्पृश्य वीर्यवान् ॥ १३ ॥
ज्यामुक्त इव नाराचो महावेगोऽभ्युपागमत्।

वहाँ पर्वतराज सुनाभ (मैनाक) का स्पर्श करके वे पराक्रमी एवं महान् वेगशाली वानर-वीर धनुषसे छूटे हुए बाणकी भाँति आगे बढ़ गये ॥ १३½ ॥

स किंचिदारात् सम्प्राप्तः समालोक्य महागिरिम् ॥ १४ ॥
महेन्द्रं मेघसंकाशं ननाद स महाकपिः।

उत्तर तटके कुछ निकट पहुँचनेपर महागिरि महेन्द्रपर दृष्टि पड़ते ही उन महाकपिने मेघके समान बड़े जोरसे गर्जना की ॥ १४½ ॥

स पूरयामास कपिर्दिशो दश समन्ततः ॥ १५ ॥
नदन् नादेन महता मेघस्वनमहास्वनः।

उस समय मेघकी भाँति गम्भीर स्वरसे बड़ी भारी गर्जना करके उन वानरवीरने सब ओरसे दसों दिशाओंको कोलाहलपूर्ण कर दिया ॥ १५½ ॥

स तं देशमनुप्राप्तः सुहृद्दर्शनलालसः ॥ १६ ॥
ननाद सुमहानादं लाङ्गूलं चाप्यकम्पयत्।

फिर वे अपने मित्रोंको देखनेके लिये उत्सुक होकर उनके विश्रामस्थानकी ओर बढ़े और पूँछ हिलाने एवं जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ १६½ ॥

तस्य नानद्यमानस्य सुपर्णाचरिते पथि ॥ १७ ॥
फलतीवास्य घोषेण गगनं सार्कमण्डलम्।

जहाँ गरुड़ चलते हैं, उसी मार्गपर बारंबार सिंहनाद करते हुए हनुमान्‌जीके गम्भीर घोषसे सूर्यमण्डलसहित आकाश मानो फटा जा रहा था ॥ १७½ ॥

ये तु तत्रोत्तरे कूले समुद्रस्य महाबलाः ॥ १८ ॥
पूर्वं संविष्ठिताः शूरा वायुपुत्रदिदृक्षवः।
महतो वायुनुन्नस्य तोयदस्येव निःस्वनम्।
शुश्रुवुस्ते तदा घोषमूरुवेगं हनूमतः ॥ १९ ॥

उस समय वायुपुत्र हनुमान्‌के दर्शनकी इच्छासे जो शूरवीर महाबली वानर समुद्रके उत्तर तटपर पहलेसे ही बैठे थे, उन्होंने वायुसे टकराये हुए महान् मेघकी गर्जनाके समान हनुमान्‌जीका जोर-जोरसे सिंहनाद सुना ॥ १८-१९ ॥

ते दीनमनसः सर्वे शुश्रुवुः काननौकसः।
वानरेन्द्रस्य निर्घोषं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ २० ॥

अनिष्टकी आशङ्कासे जिनके मनमें दीनता छा गयी थी, उन समस्त वनवासी वानरोंने उन वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌का मेघ-गर्जनाके समान सिंहनाद सुना ॥ २० ॥

निशम्य नदतो नादं वानरास्ते समन्ततः।
बभूवुरुत्सुकाः सर्वे सुहृद्दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ २१ ॥

गर्जते हुए पवनकुमारका वह सिंहनाद सुनकर सब ओर बैठे हुए वे समस्त वानर अपने सुहृद् हनुमान्‌जीको देखनेकी अभिलाषासे उत्कण्ठित हो गये ॥ २१ ॥

जाम्बवान् स हरिश्रेष्ठः प्रीतिसंहृष्टमानसः।
उपामन्त्र्य हरीन् सर्वानिदं वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥

वानर-भालुओंमें श्रेष्ठ जाम्बवान्‌के मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे हर्षसे खिल उठे और सब वानरोंको निकट बुलाकर इस प्रकार बोले— ॥ २२ ॥

सर्वथा कृतकार्योऽसौ हनूमान् नात्र संशयः।
न ह्यस्याकृतकार्यस्य नाद एवंविधो भवेत् ॥ २३ ॥

'इसमें संदेह नहीं कि हनुमान्‌जी सब प्रकारसे अपना कार्य सिद्ध करके आ रहे हैं। कृतकार्य हुए बिना इनकी ऐसी गर्जना नहीं हो सकती ॥ २३ ॥

तस्य बाहूरुवेगं च निनादं च महात्मनः।
निशम्य हरयो हृष्टाः समुत्पेतुर्यतस्ततः ॥ २४ ॥

महात्मा हनुमान्‌जीकी भुजाओं और जाँघोंका महान् वेग देख तथा उनका सिंहनाद सुन सभी वानर हर्षमें भरकर इधर-उधर उछलने-कूदने लगे ॥ २४ ॥

ते नगाग्रान्नगाग्राणि शिखराच्छिखराणि च।
प्रहृष्टाः समपद्यन्त हनूमन्तं दिदृक्षवः ॥ २५ ॥

हनुमान्‌जीको देखनेकी इच्छासे वे प्रसन्नतापूर्वक एक वृक्षसे दूसरे वृक्षोंपर तथा एक शिखरसे दूसरे शिखरोंपर चढ़ने लगे ॥

ते प्रीताः पादपाग्रेषु गृह्य शाखामवस्थिताः।
वासांसि च प्रकाशानि समाविध्यन्त वानराः ॥ २६ ॥

वृक्षोंकी सबसे ऊँची शाखापर खड़े होकर वे प्रीति-युक्त वानर अपने स्पष्ट दिखायी देनेवाले वस्त्र हिलाने लगे ॥ २६ ॥

गिरिगह्वरसंलीनो यथा गर्जति मारुतः।
एवं जगर्ज बलवान् हनूमान् मारुतात्मजः ॥ २७ ॥

जैसे पर्वतकी गुफाओंमें अवरुद्ध हुई वायु बड़े जोरसे शब्द करती है, उसी प्रकार बलवान् पवनकुमार हनुमान्‌ने गर्जना की ॥ २७ ॥

तमभ्रघनसंकाशमापतन्तं महाकपिम्।
दृष्ट्वा ते वानराः सर्वे तस्थुः प्राञ्जलयस्तदा ॥ २८ ॥

मेघोंकी घटाके समान पास आते हुए महाकपि हनुमान्‌को देखकर वे सब वानर उस समय हाथ जोड़कर खड़े हो गये ॥ २८ ॥

ततस्तु वेगवान् वीरो गिरेर्गिरिनिभः कपिः।
निपपात गिरेस्तस्य शिखरे पादपाकुले ॥ २९ ॥

तत्पश्चात् पर्वतके समान विशाल शरीरवाले वेगशाली वीरवानर हनुमान् जो अरिष्ट पर्वतसे उछलकर चले थे, वृक्षोंसे भरे हुए महेन्द्र गिरिके शिखरपर कूद पड़े ॥ २९ ॥

हर्षेणापूर्यमाणोऽसौ रम्ये पर्वतनिर्झरे।
छिन्नपक्ष इवाकाशात् पपात धरणीधरः ॥ ३० ॥

हर्षसे भरे हुए हनुमान्‌जी पर्वतके रमणीय झरनेके निकट पंख कटे हुए पर्वतके समान आकाशसे नीचे आ गये ॥ ३० ॥

ततस्ते प्रीतमनसः सर्वे वानरपुङ्गवाः।
हनूमन्तं महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे ॥ ३१ ॥

उस समय वे सभी श्रेष्ठ वानर प्रसन्नचित्त हो महात्मा हनुमान्‌जीको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ ३१ ॥

परिवार्य च ते सर्वे परां प्रीतिमुपागताः।
प्रहृष्टवदनाः सर्वे तमागतमुपागमन् ॥ ३२ ॥

उपायनानि चादाय मूलानि च फलानि च।
प्रत्यर्चयन् हरिश्रेष्ठं हरयो मारुतात्मजम् ॥ ३३ ॥

उन्हें घेरकर खड़े होनेसे उन सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे सब वानर प्रसन्नमुख होकर तुरंतके आये हुए पवनकुमार कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌के पास भाँति-भाँतिकी भेंट-सामग्री तथा फल-मूल लेकर आये और उनका स्वागत-सत्कार करने लगे ॥ ३२-३३ ॥

विनेदुर्मुदिताः केचित् केचित् किलकिलां तथा।
हृष्टाः पादपशाखाश्च आनिन्युर्वानरर्षभाः ॥ ३४ ॥

कोई आनन्दमग्न होकर गर्जने लगे, कोई किलकारियाँ भरने लगे और कितने ही श्रेष्ठ वानर हर्षसे भरकर हनुमान्‌जीके बैठनेके लिये वृक्षोंकी शाखाएँ तोड़ लाये ॥ ३४ ॥

हनूमांस्तु गुरून् वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखांस्तदा।
कुमारमङ्गदं चैव सोऽवन्दत महाकपिः ॥ ३५ ॥

महाकपि हनुमान्‌जीने जाम्बवान् आदि वृद्ध गुरुजनों तथा कुमार अङ्गदको प्रणाम किया ॥ ३५ ॥

स ताभ्यां पूजितः पूज्यः कपिभिश्च प्रसादितः।
दृष्टा देवीति विक्रान्तः संक्षेपेण न्यवेदयत् ॥ ३६ ॥

फिर जाम्बवान् और अङ्गदने भी आदरणीय हनुमान्‌जीका आदर-सत्कार किया तथा दूसरे-दूसरे वानरोंने भी उनका सम्मान करके उनको संतुष्ट किया। तत्पश्चात् उन पराक्रमी वानरवीरने संक्षेपमें निवेदन किया—'मुझे सीतादेवीका दर्शन हो गया' ॥ ३६ ॥

निषसाद च हस्तेन गृहीत्वा वालिनः सुतम्।
रमणीये वनोद्देशे महेन्द्रस्य गिरेस्तदा ॥ ३७ ॥
हनूमानब्रवीत् पृष्टस्तदा तान् वानरर्षभान्।
अशोकवनिकासंस्था दृष्टा सा जनकात्मजा ॥ ३८ ॥

तदनन्तर वालिकुमार अङ्गदका हाथ अपने हाथमें लेकर हनुमान्‌जी महेन्द्रगिरिके रमणीय वनप्रान्तमें जा बैठे और सबके पूछनेपर उन वानरशिरोमणियोंसे इस प्रकार बोले—'जनकनन्दिनी सीता लङ्काके अशोकवनमें निवास करती हैं। वहीं मैंने उनका दर्शन किया है ॥ ३७-३८ ॥

रक्ष्यमाणा सुघोराभी राक्षसीभिरनिन्दिता।
एकवेणीधरा बाला रामदर्शनलालसा ॥ ३९ ॥
उपवासपरिश्रान्ता मलिना जटिला कृशा।

'अत्यन्त भयंकर आकारवाली राक्षसियाँ उनकी रखवाली करती हैं। साध्वी सीता बड़ी भोली-भाली हैं। वे एक वेणी धारण किये वहाँ रहती हैं और श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लिये बहुत ही उत्सुक हैं। उपवासके कारण बहुत थक गयी हैं, दुर्बल और मलिन हो रही हैं तथा उनके केश जटाके रूपमें परिणत हो गये हैं' ॥ ३९½ ॥

ततो दृष्टेति वचनं महार्थममृतोपमम् ॥ ४० ॥
निशम्य मारुतेः सर्वे मुदिता वानराभवन् ।

उस समय 'सीताका दर्शन हो गया' यह वचन वानरोंको अमृतके समान प्रतीत हुआ । यह उनके महान् प्रयोजनकी सिद्धिका सूचक था । हनुमान्‌जीके मुखसे यह शुभ संवाद सुनकर सब वानर बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४०½ ॥

क्ष्वेडन्त्यन्ये नदन्त्यन्ये गर्जन्त्यन्ये महाबलाः ॥ ४१ ॥
चक्रुः किलकिलामन्ये प्रतिगर्जन्ति चापरे ।

कोई हर्षनाद और कोई सिंहनाद करने लगे । दूसरे महाबली वानर गर्जने लगे । कितने ही किलकारियाँ भरने लगे और दूसरे वानर एककी गर्जनाके उत्तरमें स्वयं भी गर्जना करने लगे ॥ ४१½ ॥

केचिदुच्छ्रितलाङ्गूलाः प्रहृष्टाः कपिकुञ्जराः ॥ ४२ ॥
आयताञ्चितदीर्घाणि लाङ्गूलानि प्रविव्यधुः ।

बहुत-से कपिकुञ्जर हर्षसे उल्लसित हो अपनी पूँछ ऊपर उठाकर नाचने लगे । कितने ही अपनी लंबी और मोटी पूँछें घुमाने या हिलाने लगे ॥ ४२½॥

अपरे तु हनूमन्तं श्रीमन्तं वानरोत्तमम् ॥ ४३ ॥
आप्लुत्य गिरिशृङ्गेषु संस्पृशन्ति स्म हर्षिताः ।

कितने ही वानर हर्षोल्लाससे भरकर छलाँगे भरते हुए पर्वतशिखरोंपर वानरशिरोमणि श्रीमान् हनुमान्‌को छूने लगे ॥ ४३½ ॥

उक्तवाक्यं हनूमन्तमङ्गदस्तु तदाब्रवीत् ॥ ४४ ॥
सर्वेषां हरिवीराणां मध्ये वाचमनुत्तमाम् ।

हनुमान्‌जीकी उपर्युक्त बात सुनकर अङ्गदने उस समय समस्त वानरवीरोंके बीचमें यह परम उत्तम बात कही—॥ ४४½॥

सत्त्वे वीर्ये न ते कश्चित् समो वानर विद्यते ॥ ४५ ॥
यदवप्लुत्य विस्तीर्णं सागरं पुनरागतः ।

'वानरश्रेष्ठ ! बल और पराक्रममें तुम्हारे समान कोई नहीं है; क्योंकि तुम इस विशाल समुद्रको लाँघकर फिर इस पार लौट आये ॥ ४५½ ॥

जीवितस्य प्रदाता नस्त्वमेको वानरोत्तम ॥ ४६ ॥
त्वत्प्रसादात् समेष्यामः सिद्धार्था राघवेण ह ।

'कपिशिरोमणे ! एकमात्र तुम्हीं हमलोगोंके जीवनदाता हो । तुम्हारे प्रसादसे ही हम सब लोग सफलमनोरथ होकर श्रीरामचन्द्रजीसे मिलेंगे ॥ ४६½ ॥

अहो स्वामिनि ते भक्तिरहो वीर्यमहो धृतिः ॥ ४७ ॥
दिष्ट्या दृष्टा त्वया देवी रामपत्नी यशस्विनी ।
दिष्ट्या त्यक्ष्यति काकुत्स्थः शोकं सीतावियोगजम् ॥ ४८ ॥

'अपने स्वामी श्रीरघुनाथजीके प्रति तुम्हारी भक्ति अद्भुत है । तुम्हारा पराक्रम और धैर्य भी आश्चर्यजनक है । बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम श्रीरामचन्द्रजीकी यशस्विनी पत्नी सीतादेवीका दर्शन कर आये, अब भगवान् श्रीराम सीताके वियोगसे उत्पन्न हुए शोकको त्याग देंगे, यह भी सौभाग्यका ही विषय है' ॥ ४७-४८ ॥

ततोऽङ्गदं हनूमन्तं जाम्बवन्तं च वानराः ।
परिवार्य प्रमुदिता भेजिरे विपुलाः शिलाः ॥ ४९ ॥
उपविष्टा गिरेस्तस्य शिलासु विपुलासु ते ।
श्रोतुकामाः समुद्रस्य लङ्घनं वानरोत्तमाः ॥ ५० ॥
दर्शनं चापि लङ्कायाः सीताया रावणस्य च ।
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे हनूमद्वदनोन्मुखाः ॥ ५१ ॥

तत्पश्चात् सभी श्रेष्ठ वानर समुद्रलङ्घन, लङ्का, रावण एवं सीताके दर्शनका समाचार सुननेके लिये एकत्र हुए तथा अङ्गद, हनुमान् और जाम्बवान्‌को चारों ओरसे घेरकर पर्वतकी बड़ी-बड़ी शिलाओंपर आनन्दपूर्वक बैठ गये । वे सब-के-सब हाथ जोड़े हुए थे और उन सबकी आँखें हनुमान्‌जीके मुखपर लगी थीं ॥ ४९—५१ ॥

तस्थौ तत्राङ्गदः श्रीमान् वानरैर्बहुभिर्वृतः ।
उपास्यमानो विबुधैर्दिवि देवपतिर्यथा ॥ ५२ ॥

जैसे देवराज इन्द्र स्वर्गमें देवताओंद्वारा सेवित होकर बैठते हैं, उसी प्रकार बहुतेरे वानरोंसे घिरे हुए श्रीमान् अङ्गद वहाँ बीचमें विराजमान हुए ॥ ५२ ॥

हनूमता कीर्तिमता यशस्विना
तथाङ्गदेनाङ्गदबद्धबाहुना ।
मुदा तदाध्यासितमुन्नतं मह-
न्महीधराग्रं ज्वलितं श्रियाभवत् ॥ ५३ ॥

कीर्तिमान् एवं यशस्वी हनुमान्‌जी तथा बाँहोंमें भुजबंद धारण किये अङ्गदके प्रसन्नतापूर्वक बैठनेसे वह ऊँचा एवं महान् पर्वतशिखर दिव्य कान्तिसे प्रकाशित हो उठा ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें सत्तावनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशः सर्गः

जाम्बवान्‌के पूछनेपर हनुमान्‌जीका अपनी लङ्कायात्राका सारा वृत्तान्त सुनाना

ततस्तस्य गिरेः शृङ्गे महेन्द्रस्य महाबलाः ।
हनुमत्प्रमुखाः प्रीतिं हरयो जग्मुरुत्तमाम् ॥ १ ॥

तदनन्तर हनुमान् आदि महाबली वानर महेन्द्रगिरिके शिखरपर परस्पर मिलकर बड़े प्रसन्न हुए ॥ १ ॥

प्रीतिमत्सूपविष्टेषु वानरेषु महात्मसु ।
तं ततः प्रतिसंहृष्टः प्रीतियुक्तं महाकपिम् ॥ २ ॥
जाम्बवान् कार्यवृत्तान्तमपृच्छदनिलात्मजम् ।
कथं दृष्टा त्वया देवी कथं वा तत्र वर्तते ॥ ३ ॥
तस्यां चापि कथं वृत्तः क्रूरकर्मा दशाननः ।
तत्त्वतः सर्वमेतन्नः प्रब्रूहि त्वं महाकपे ॥ ४ ॥

जब सभी महामनस्वी वानर वहाँ प्रसन्नतापूर्वक बैठ गये, तब हर्षमें भरे हुए जाम्बवान्ने उन पवनकुमार महाकपि हनुमान्से प्रेमपूर्वक कार्यसिद्धिका समाचार पूछा— 'महाकपे! तुमने देवी सीताको कैसे देखा? वे वहाँ किस प्रकार रहती हैं? और क्रूरकर्मा दशानन उनके प्रति कैसा बर्ताव करता है? ये सब बातें तुम हमें ठीक-ठीक बताओ ॥ २—४ ॥

सम्मार्गिता कथं देवी किं च सा प्रत्यभाषत ।
श्रुतार्थाश्चिन्तयिष्यामो भूयः कार्यविनिश्चयम् ॥ ५ ॥

'तुमने देवी सीताको किस प्रकार ढूँढ़ निकाला और उन्होंने तुमसे क्या कहा? इन सब बातोंको सुनकर हम लोग आगेके कार्यक्रमका निश्चितरूपसे विचार करेंगे ॥ ५ ॥

यश्चार्थस्तत्र वक्तव्यो गतैरस्माभिरात्मवान् ।
रक्षितव्यं च यत्तत्र तद् भवान् व्याकरोतु नः ॥ ६ ॥

'वहाँ किष्किन्धामें चलनेपर हमलोगोंको कौन-सी बात कहनी चाहिये और किस बातको गुप्त रखना चाहिये? तुम बुद्धिमान् हो, इसलिये तुम्हीं इन सब बातोंपर प्रकाश डालो' ॥ ६ ॥

स नियुक्तस्ततस्तेन सम्प्रहृष्टतनूरुहः ।
नमस्यञ्शिरसा देव्यै सीतायै प्रत्यभाषत ॥ ७ ॥

जाम्बवान्के इस प्रकार पूछनेपर हनुमान्जीके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने सीतादेवीको मन-ही-मन मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—॥ ७ ॥

प्रत्यक्षमेव भवतां महेन्द्राग्रात् खमाप्लुतः ।
उदधेर्दक्षिणं पारं काङ्क्षमाणः समाहितः ॥ ८ ॥

'मैं आपलोगोंके सामने ही समुद्रके दक्षिण तटपर जानेकी इच्छासे सावधान हो महेन्द्रपर्वतके शिखरसे आकाशमें उछला था ॥ ८ ॥

गच्छतश्च हि मे घोरं विघ्नरूपमिवाभवत् ।
काञ्चनं शिखरं दिव्यं पश्यामि सुमनोहरम् ॥ ९ ॥
स्थितं पन्थानमावृत्य मेने विघ्नं च तं नगम् ।

'आगे बढ़ते ही मैंने देखा एक परम मनोहर दिव्य सुवर्णमय शिखर प्रकट हुआ है, जो मेरी राह रोककर खड़ा है। वह मेरी यात्राके लिये भयानक विघ्न-सा प्रतीत हुआ। मैंने उसे मूर्तिमान् विघ्न ही माना ॥ ९½ ॥

उपसंगम्य तं दिव्यं काञ्चनं नगमुत्तमम् ॥ १० ॥
कृता मे मनसा बुद्धिर्भेत्तव्योऽयं मयेति च ।

'उस दिव्य उत्तम सुवर्णमय पर्वतके निकट पहुँचनेपर मैंने मन-ही-मन यह विचार किया कि मैं इसे विदीर्ण कर डालूँ ॥ १०½ ॥

प्रहतस्य मया तस्य लाङ्गूलेन महागिरेः ॥ ११ ॥
शिखरं सूर्यसंकाशं व्यशीर्यत सहस्रधा ।

'फिर तो मैंने अपनी पूँछसे उसपर प्रहार किया। उसकी टक्कर लगते ही उस महान् पर्वतके सूर्यतुल्य तेजस्वी शिखरके सहस्रों टुकड़े हो गये ॥ ११½ ॥

व्यवसायं च तं बुद्ध्वा स होवाच महागिरिः ॥ १२ ॥
पुत्रेति मधुरां वाणीं मनः प्रह्लादयन्निव ।
पितृव्यं चापि मां विद्धि सखायं मातरिश्वनः ॥ १३ ॥

'मेरे उस निश्चयको समझकर महागिरि मैनाकने मनको आह्लादित-सा करते हुए मधुर वाणीमें 'पुत्र' कहकर मुझे पुकारा और कहा—'मुझे अपना चाचा समझो। मैं तुम्हारे पिता वायुदेवताका मित्र हूँ ॥ १२-१३ ॥

मैनाकमिति विख्यातं निवसन्तं महोदधौ ।
पक्षवन्तः पुरा पुत्र बभूवुः पर्वतोत्तमाः ॥ १४ ॥

''मेरा नाम मैनाक है और मैं यहाँ महासागरमें निवास करता हूँ। बेटा! पूर्वकालमें सभी श्रेष्ठ पर्वत पङ्खधारी हुआ करते थे ॥ १४ ॥

छन्दतः पृथिवीं चेरुर्बाधमानाः समन्ततः ।
श्रुत्वा नगानां चरितं महेन्द्रः पाकशासनः ॥ १५ ॥
वज्रेण भगवान् पक्षौ चिच्छेदैषां सहस्रशः ।
अहं तु मोचितस्तस्मात् तव पित्रा महात्मना ॥ १६ ॥

''वे समस्त प्रजाको पीड़ा देते हुए अपनी इच्छाके अनुसार सब ओर विचरते रहते थे। पर्वतोंका ऐसा आचरण सुनकर पाकशासन भगवान् इन्द्रने वज्रसे इन सहस्रों पर्वतोंके पङ्ख काट डाले; परंतु उस समय तुम्हारे महात्मा पिताने मुझे इन्द्रके हाथसे बचा लिया ॥ १५-१६ ॥

मारुतेन तदा वत्स प्रक्षिप्तो वरुणालये ।
राघवस्य मया साह्ये वर्तितव्यमरिंदम ॥ १७ ॥
रामो धर्मभृतां श्रेष्ठो महेन्द्रसमविक्रमः ।

''बेटा! उस समय वायुदेवताने मुझे समुद्रमें लाकर डाल दिया था (जिससे मेरे पङ्ख बच गये); अतः शत्रुदमन वीर! मुझे श्रीरघुनाथजीकी सहायताके कार्यमें अवश्य तत्पर होना चाहिये; क्योंकि भगवान् श्रीराम धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ तथा इन्द्रतुल्य पराक्रमी हैं' ॥ १७½ ॥

एतच्छ्रुत्वा मया तस्य मैनाकस्य महात्मनः ॥ १८ ॥
कार्यमावेद्य च गिरेरुद्यतं वै मनो मम ।
तेन चाहमनुज्ञातो मैनाकेन महात्मना ॥ १९ ॥

‘महामना मैनाककी यह बात सुनकर मैंने अपना कार्य उन्हें बताया और उनकी आज्ञा लेकर फिर मेरा मन वहाँसे आगे जानेको उत्साहित हुआ ! महाकाय मैनाकने उस समय मुझे जानेकी आज्ञा दे दी ॥ १८-१९ ॥

स चाप्यन्तर्हितः शैलो मानुषेण वपुष्मता ।
शरीरेण महाशैलः शैलेन च महोदधौ ॥ २० ॥

‘वह महान् पर्वत भी अपने मानवशरीरसे तो अन्तर्हित हो गया; परंतु पर्वतरूपसे महासागरमें ही स्थित रहा ॥ २० ॥

उत्तमं जवमास्थाय शेषमध्वानमास्थितः ।
ततोऽहं सुचिरं कालं जवेनाभ्यगमं पथि ॥ २१ ॥

‘फिर मैं उत्तम वेगका आश्रय ले शेष मार्गपर आगे बढ़ा और दीर्घकालतक बड़े वेगसे उस पथपर चलता रहा ॥ २१ ॥

ततः पश्याम्यहं देवीं सुरसां नागमातरम् ।
समुद्रमध्ये सा देवी वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २२ ॥

‘तत्पश्चात् बीच समुद्रमें मुझे नागमाता सुरसा देवीका दर्शन हुआ । देवी सुरसा मुझसे इसप्रकार बोलीं—॥ २२ ॥

मम भक्ष्यः प्रदिष्टस्त्वममरैर्हरिसत्तम ।
ततस्त्वां भक्षयिष्यामि विहितस्त्वं हि मे सुरैः ॥ २३ ॥

‘“कपिश्रेष्ठ ! देवताओंने तुम्हें मेरा भक्ष्य बताया है, इसलिये मैं तुम्हें भक्षण करूँगी; क्योंकि सारे देवताओंने आज तुम्हें ही मेरा आहार नियत किया है’ ॥ २३ ॥

एवमुक्तः सुरसया प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः ।
विवर्णवदनो भूत्वा वाक्यं चेदमुदीरयम् ॥ २४ ॥

‘सुरसाके ऐसा कहनेपर मैं हाथ जोड़कर विनीतभावसे उसके सामने खड़ा हो गया और उदासमुख होकर यों बोला—॥ २४ ॥

रामो दाशरथिः श्रीमान् प्रविष्टो दण्डकावनम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया च परंतपः ॥ २५ ॥

‘“देवि ! शत्रुओंको संताप देनेवाले दशरथनन्दन श्रीमान् राम अपने भाई लक्ष्मण और पत्नी सीताके साथ दण्डकारण्यमें आये थे ॥ २५ ॥

तस्य सीता हृता भार्या रावणेन दुरात्मना ।
तस्याः सकाशं दूतोऽहं गमिष्ये रामशासनात् ॥ २६ ॥

‘“वहाँ दुरात्मा रावणने उनकी पत्नी सीताको हर लिया । मैं इस समय श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे दूत होकर उन्हीं सीतादेवीके पास जा रहा हूँ ॥ २६ ॥

कर्तुमर्हसि रामस्य साहाय्यं विषये सती ।
अथवा मैथिलीं दृष्ट्वा रामं चाक्लिष्टकारिणम् ॥ २७ ॥
आगमिष्यामि ते वक्त्रं सत्यं प्रतिशृणोमि ते ।

‘“तुम भी श्रीरामचन्द्रजीके ही राज्यमें रहती हो, इसलिये तुम्हें उनकी सहायता करनी चाहिये । अथवा मैं मिथिलेशकुमारी सीता तथा अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करके तुम्हारे मुखमें आ जाऊँगा, यह तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ’ ॥ २७½ ॥

एवमुक्ता मया सा तु सुरसा कामरूपिणी ॥ २८ ॥
अब्रवीन्नातिवर्तेत कश्चिदेष वरो मम ।

‘मेरे ऐसा कहनेपर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली सुरसा बोली—‘मुझे यह वर मिला हुआ है कि मेरे आहारके रूपमें निकट आया हुआ कोई भी प्राणी मुझे टालकर आगे नहीं जा सकता’ ॥ २८½ ॥

एवमुक्तः सुरसया दशयोजनमायतः ॥ २९ ॥
ततोऽर्धगुणविस्तारो बभूवाहं क्षणेन तु ।
मत्प्रमाणाधिकं चैव व्यादितं तु मुखं तया ॥ ३० ॥

‘जब सुरसाने ऐसा कहा—उस समय मेरा शरीर दस योजन बड़ा था, किंतु एक ही क्षणमें मैं उससे ड्योढ़ा बड़ा हो गया । तब सुरसाने भी अपने मुँहको मेरे शरीरकी अपेक्षा अधिक फैला लिया ॥ २९-३० ॥

तद् दृष्ट्वा व्यादितं त्वास्यं ह्रस्वं ह्यकरवं पुनः ।
तस्मिन् मुहूर्ते च पुनर्बभूवाङ्गुष्ठसम्मितः ॥ ३१ ॥

‘उसके फैले हुए मुँहको देखकर मैंने फिर अपने स्वरूपको छोटा कर लिया । उसी मुहूर्तमें मेरा शरीर अँगूठेके बराबर हो गया ॥ ३१ ॥

अभिपत्याशु तद्वक्त्रं निर्गतोऽहं ततः क्षणात् ।
अब्रवीत् सुरसा देवी स्वेन रूपेण मां पुनः ॥ ३२ ॥

‘फिर तो मैं सुरसाके मुँहमें शीघ्र ही घुस गया और तत्क्षण बाहर निकल आया । उस समय सुरसा देवीने अपने दिव्य रूपमें स्थित होकर मुझसे कहा—॥ ३२ ॥

अर्थसिद्ध्यै हरिश्रेष्ठ गच्छ सौम्य यथासुखम् ।
समानय च वैदेहीं राघवेण महात्मना ॥ ३३ ॥

‘“सौम्य ! कपिश्रेष्ठ ! अब तुम कार्यसिद्धिके लिये सुखपूर्वक यात्रा करो और विदेहनन्दिनी सीताको महात्मा रघुनाथजीसे मिलाओ ॥ ३३ ॥

सुखी भव महाबाहो प्रीतास्मि तव वानर ।
ततोऽहं साधुसाध्वीति सर्वभूतैः प्रशंसितः ॥ ३४ ॥

‘“महाबाहु वानर ! तुम सुखी रहो । मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ ।’ उस समय सभी प्राणियोंने ‘साधु-साधु’ कहकर मेरी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ३४ ॥

ततोऽन्तरिक्षं विपुलं प्लुतोऽहं गरुडो यथा ।
छाया मे निगृहीता च न च पश्यामि किंचन ॥ ३५ ॥

'तत्पश्चात् मैं गरुड़की भाँति उस विशाल आकाशमें फिर उड़ने लगा। उस समय किसीने मेरी परछाईं पकड़ ली, किंतु मैं किसीको देख नहीं पाता था॥ ३५॥

सोऽहं विगतवेगस्तु दिशो दश विलोकयन्।
न किंचित् तत्र पश्यामि येन मे विहता गतिः॥ ३६॥

'छाया पकड़ी जानेसे मेरा वेग अवरुद्ध हो गया, अतः मैं दसों दिशाओंकी ओर देखने लगा; परंतु जिसने मेरी गति रोक दी थी, ऐसा कोई प्राणी मुझे वहाँ नहीं दिखायी दिया॥ ३६॥

अथ मे बुद्धिरुत्पन्ना किंनाम गमने मम।
ईदृशो विघ्न उत्पन्नो रूपमत्र न दृश्यते॥ ३७॥

'तब मेरे मनमें यह चिन्ता हुई कि मेरी यात्रामें ऐसा कौन-सा विघ्न पैदा हो गया, जिसका यहाँ रूप नहीं दिखायी दे रहा है॥ ३७॥

अधोभागे तु मे दृष्टिः शोचतः पतिता तदा।
तत्राद्राक्षमहं भीमां राक्षसीं सलिलेशयाम्॥ ३८॥

'इसी सोचमें पड़े-पड़े मैंने जब नीचेकी ओर दृष्टि डाली, तब मुझे एक भयानक राक्षसी दिखायी दी, जो जलमें निवास करती थी॥ ३८॥

प्रहस्य च महानादमुक्तोऽहं भीमया तया।
अवस्थितमसम्भ्रान्तमिदं वाक्यमशोभनम्॥ ३९॥

'उस भीषण निशाचरीने बड़े जोरसे अट्टहास करके निर्भय खड़े हुए मुझसे गरज-गरजकर यह अमङ्गलजनक बात कही—॥ ३९॥

क्वासि गन्ता महाकाय क्षुधिताया ममेप्सितः।
भक्षः प्रीणय मे देहं चिरमाहारवर्जितम्॥ ४०॥

''विशालकाय वानर! कहाँ जाओगे? मैं भूखी हुई हूँ। तुम मेरे लिये मनोवाञ्छित भोजन हो। आओ, चिरकालसे निराहार पड़े हुए मेरे शरीर और प्राणोंको तृप्त करो' ॥४०॥

बाढमित्येव तां वाणीं प्रत्यगृह्णामहं ततः।
आस्यप्रमाणादधिकं तस्याः कायमपूरयम्॥ ४१॥

'तब मैंने 'बहुत अच्छा' कहकर उसकी बात मान ली और अपने शरीरको उसके मुखके प्रमाणसे बहुत अधिक बढ़ा लिया॥ ४१॥

तस्याश्चास्यं महद् भीमं वर्धते मम भक्षणे।
न तु मां सा नु बुबुधे मम वा विकृतं कृतम्॥ ४२॥

'परंतु उसका विशाल और भयानक मुख भी मुझे भक्षण करनेके लिये बढ़ने लगा। उसने मुझे या मेरे प्रभावको नहीं जाना तथा मैंने जो छल किया था, वह भी उसकी समझमें नहीं आया॥ ४२॥

ततोऽहं विपुलं रूपं संक्षिप्य निमिषान्तरात्।
तस्या हृदयमादाय प्रपतामि नभःस्थलम्॥ ४३॥

'फिर तो पलक मारते-मारते मैंने अपने विशाल रूपको अत्यन्त छोटा बना लिया और उसका कलेजा निकालकर आकाशमें उड़ गया॥ ४३॥

सा विसृष्टभुजा भीमा पपात लवणाम्भसि।
मया पर्वतसंकाशा निकृत्तहृदया सती॥ ४४॥

'मेरे द्वारा कलेजेके काट लिये जानेपर पर्वतके समान भयानक शरीरवाली वह दुष्टा राक्षसी अपनी दोनों बाँहें शिथिल हो जानेके कारण समुद्रके जलमें गिर पड़ी॥ ४४॥

शृणोमि खगतानां च वाचः सौम्या महात्मनाम्।
राक्षसी सिंहिका भीमा क्षिप्रं हनुमता हता॥ ४५॥

'उस समय मुझे आकाशचारी सिद्ध महात्माओंकी यह सौम्य वाणी सुनायी दी—'अहो! इस सिंहिका नामवाली भयानक राक्षसीको हनुमान्‌जीने शीघ्र ही मार डाला' ॥४५॥

तां हत्वा पुनरेवाहं कृत्यमात्ययिकं स्मरन्।
गत्वा च महदध्वानं पश्यामि नगमण्डितम्॥ ४६॥
दक्षिणं तीरमुदधेर्लङ्का यत्र गता पुरी।

'उसे मारकर मैंने फिर अपने उस आवश्यक कार्यपर ध्यान दिया, जिसकी पूर्तिमें अधिक विलम्ब हो चुका था। उस विशाल मार्गको समाप्त करके मैंने पर्वतमालाओंसे मण्डित समुद्रका वह दक्षिण किनारा देखा, जहाँ लङ्कापुरी बसी हुई है॥ ४६$\frac{१}{२}$॥

अस्तं दिनकरे याते रक्षसां निलयं पुरीम्॥ ४७॥
प्रविष्टोऽहमविज्ञातो रक्षोभिर्भीमविक्रमैः।

'सूर्यदेवके अस्ताचलको चले जानेपर मैंने राक्षसोंकी निवासस्थानभूता लङ्कापुरीमें प्रवेश किया, किंतु वे भयानक पराक्रमी राक्षस मेरे विषयमें कुछ भी जान न सके॥ ४७$\frac{१}{२}$॥

तत्र प्रविशतश्चापि कल्पान्तघनसप्रभा॥ ४८॥
अट्टहासं विमुञ्चन्ती नारी काप्युत्थिता पुरः।

'मेरे प्रवेश करते ही प्रलयकालके मेघकी भाँति काली कान्तिवाली एक स्त्री अट्टहास करती हुई मेरे सामने खड़ी हो गयी॥ ४८$\frac{१}{२}$॥

जिघांसन्तीं ततस्तां तु ज्वलदग्निशिरोरुहाम्॥ ४९॥
सव्यमुष्टिप्रहारेण पराजित्य सुभैरवाम्।
प्रदोषकाले प्रविशं भीतयाहं तयोदितः॥ ५०॥

'उसके सिरके बाल प्रज्वलित अग्निके समान दिखायी देते थे। वह मुझे मार डालना चाहती थी। यह देख मैंने बायें हाथके मुक्केसे प्रहार करके उस भयंकर निशाचरीको परास्त कर दिया और प्रदोषकालमें पुरीके

भीतर प्रविष्ट हुआ। उस समय उस डरी हुई निशाचरीने मुझसे इस प्रकार कहा—॥ ४९-५० ॥

अहं लङ्कापुरी वीर निर्जिता विक्रमेण ते।
यस्मात् तस्माद् विजेतासि सर्वरक्षांस्यशेषतः ॥ ५१ ॥

'वीर! मैं साक्षात् लङ्कापुरी हूँ। तुमने अपने पराक्रमसे मुझे जीत लिया है, इसलिये तुम समस्त राक्षसोंपर पूर्णतः विजय प्राप्त कर लोगे'॥ ५१ ॥

तत्राहं सर्वरात्रं तु विचरञ्जनकात्मजाम्।
रावणान्तःपुरगतो न चापश्यं सुमध्यमाम् ॥ ५२ ॥

'वहाँ सारी रात नगरमें घर-घर घूमने और रावणके अन्तःपुरमें पहुँचनेपर भी मैंने सुन्दर कटिप्रदेशवाली जनकनन्दिनी सीताको नहीं देखा॥ ५२ ॥

ततः सीतामपश्यंस्तु रावणस्य निवेशने।
शोकसागरमासाद्य न पारमुपलक्षये ॥ ५३ ॥

'रावणके महलमें सीताको न देखनेपर मैं शोक-सागरमें डूब गया। उस समय मुझे उस शोकका कहीं पार नहीं दिखायी देता था॥ ५३ ॥

शोचता च मया दृष्टं प्राकारेणाभिसंवृतम्।
काञ्चनेन विकृष्टेन गृहोपवनमुत्तमम् ॥ ५४ ॥

'सोचमें पड़े-पड़े ही मैंने एक उत्तम गृहोद्यान देखा, जो सोनेके बने हुए सुन्दर परकोटेसे घिरा हुआ था॥ ५४ ॥

सप्राकारमवप्लुत्य पश्यामि बहुपादपम्।
अशोकवनिकामध्ये शिंशपापादपो महान् ॥ ५५ ॥

'तब उस परकोटेको लाँघकर मैंने उस गृहोद्यानको देखा, जो बहुसंख्यक वृक्षोंसे भरा हुआ था। उस अशोकवाटिकाके बीचमें मुझे एक बहुत ऊँचा अशोक वृक्ष दिखायी दिया॥ ५५ ॥

तमारुह्य च पश्यामि काञ्चनं कदलीवनम्।
अदूराच्छिंशपावृक्षात् पश्यामि वरवर्णिनीम् ॥ ५६ ॥

'उसपर चढ़कर मैंने सुवर्णमय कदलीवन देखा तथा उस अशोक वृक्षके पास ही मुझे सर्वाङ्गसुन्दरी सीताजीका दर्शन हुआ॥ ५६ ॥

श्यामां कमलपत्राक्षीमुपवासकृशाननाम्।
तदेकवासःसंवीतां रजोध्वस्तशिरोरुहाम् ॥ ५७ ॥

'वे सदा सोलह वर्षकी-सी अवस्थासे युक्त दिखायी देती हैं। उनके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान सुन्दर हैं। सीताजी उपवास करनेके कारण अत्यन्त दुर्बल हो गयी हैं और उनकी यह दुर्बलता उनका मुख देखते ही स्पष्ट हो जाती है। वे एक ही वस्त्र पहने हुए हैं और उनके केश धूलसे धूसर हो गये हैं॥ ५७ ॥

शोकसंतापदीनाङ्गीं सीतां भर्तृहिते स्थिताम्।
राक्षसीभिर्विरूपाभिः क्रूराभिरभिसंवृताम् ॥ ५८ ॥
मांसशोणितभक्ष्याभिर्व्याघ्रीभिर्हरिणीं यथा।

'उनके सारे अङ्ग शोक-संतापसे दीन दिखायी देते हैं। वे अपने स्वामीके हित-चिन्तनमें तत्पर हैं। रक्त-मांसका भोजन करनेवाली क्रूर एवं कुरूप राक्षसियाँ उन्हें चारों ओरसे घेरकर उनकी रखवाली करती हैं। ठीक उसी तरह जैसे बहुत-सी बाघिनें किसी हरिणीको घेरे हुए खड़ी हों॥

सा मया राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ५९ ॥
एकवेणीधरा दीना भर्तृचिन्तापरायणा।
भूमिशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे ॥ ६० ॥

'मैंने देखा, वे राक्षसियोंके बीचमें बैठी थीं और राक्षसियाँ उन्हें बारंबार धमका रही थीं। वे सिरपर एक ही वेणी धारण किये दीनभावसे अपने पतिके चिन्तनमें तल्लीन हो रही थीं। धरती ही उनकी शय्या है। जैसे हेमन्त-ऋतु आनेपर कमलिनी सूखकर श्रीहीन हो जाती है, उसी प्रकार उनके सारे अङ्ग कान्तिहीन हो गये हैं॥ ५९-६० ॥

रावणाद् विनिवृत्तार्था मर्तव्ये कृतनिश्चया।
कथंचिन्मृगशावाक्षी तूर्णमासादिता मया ॥ ६१ ॥

'रावणकी ओरसे उनका हार्दिक भाव सर्वथा दूर है। वे मरनेका निश्चय कर चुकी हैं। उसी अवस्थामें मैं किसी तरह शीघ्रतापूर्वक मृगनयनी सीताके पास पहुँच सका॥ ६१ ॥

तां दृष्ट्वा तादृशीं नारीं रामपत्नीं यशस्विनीम्।
तत्रैव शिंशपावृक्षे पश्यन्नहमवस्थितः ॥ ६२ ॥

'वैसी अवस्थामें पड़ी हुई उन यशस्विनी नारी श्रीरामपत्नी सीताको अशोकवृक्षके नीचे बैठी देख मैं भी उस वृक्षपर स्थित हो गया और उन्हें वहींसे निहारने लगा॥ ६२ ॥

ततो हलहलाशब्दं काञ्चीनूपुरमिश्रितम्।
शृणोम्यधिकगम्भीरं रावणस्य निवेशने ॥ ६३ ॥

'इतनेहीमें रावणके महलमें करधनी और नूपुरोंकी झनकारसे मिला हुआ अधिक गम्भीर कोलाहल सुनायी पड़ा॥ ६३ ॥

ततोऽहं परमोद्विग्नः स्वरूपं प्रत्यसंहरम्।
अहं च शिंशपावृक्षे पक्षीव गहने स्थितः ॥ ६४ ॥

'फिर तो मैंने अत्यन्त उद्विग्न होकर अपने स्वरूपको समेट लिया—छोटा बना लिया और पक्षीके समान उस गहन शिंशपा (अशोक) वृक्षमें छिपा बैठा रहा॥ ६४ ॥

ततो रावणदाराश्च रावणश्च महाबलः।
तं देशमनुसम्प्राप्तो यत्र सीताभवत् स्थिता ॥ ६५ ॥

'इतनेहीमें रावणकी स्त्रियाँ और महाबली रावण—ये

सब-के-सब उस स्थानपर आ पहुँचे, जहाँ सीतादेवी विराजमान थीं ॥ ६५ ॥

तं दृष्ट्वाथ वरारोहा सीता रक्षोगणेश्वरम् ।
संकुच्योरू स्तनौ पीनौ बाहुभ्यां परिरभ्य च ॥ ६६ ॥

'राक्षसोंके स्वामी रावणको देखते ही सुन्दर कटि-प्रदेशवाली सीता अपनी जाँघोंको सिकोड़कर और उभरे हुए दोनों स्तनोंको भुजाओंसे ढककर बैठ गयीं ॥ ६६ ॥

वित्रस्तां परमोद्विग्नां वीक्ष्यमाणामितस्ततः ।
त्राणं कंचिदपश्यन्तीं वेपमानां तपस्विनीम् ॥ ६७ ॥
तामुवाच दशग्रीवः सीतां परमदुःखिताम् ।
अवाक्शिराः प्रपतितो बहुमन्यस्व मामिति ॥ ६८ ॥

'वे अत्यन्त भयभीत और उद्विग्न होकर इधर-उधर देखने लगीं । उन्हें कोई भी अपना रक्षक नहीं दिखायी देता था । भयसे काँपती हुई अत्यन्त दुःखिनी तपस्विनी सीताके सामने जा दशमुख रावण नीचे सिर किये उनके चरणोंमें गिर पड़ा और इस प्रकार बोला—'विदेहकुमारी ! मैं तुम्हारा सेवक हूँ । तुम मुझे अधिक आदर दो' ॥६७-६८॥

यदि चेत्त्वं तु मां दर्पान्नाभिनन्दसि गर्विते ।
द्विमासानन्तरं सीते पास्यामि रुधिरं तव ॥ ६९ ॥

'(इतनेपर भी अपने प्रति उनकी उपेक्षा देख वह कुपित होकर बोला—) 'गर्वीली सीते ! यदि तू घमंडमें आकर मेरा अभिनन्दन नहीं करेगी तो आजसे दो महीनेके बाद मैं तेरा खून पी जाऊँगा' ॥ ६९ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य रावणस्य दुरात्मनः ।
उवाच परमक्रुद्धा सीता वचनमुत्तमम् ॥ ७० ॥

'दुरात्मा रावणकी यह बात सुनकर सीताने अत्यन्त कुपित हो यह उत्तम वचन कहा—॥ ७० ॥

राक्षसाधम रामस्य भार्याममिततेजसः ।
इक्ष्वाकुवंशनाथस्य स्नुषां दशरथस्य च ॥ ७१ ॥
अवाच्यं वदतो जिह्वा कथं न पतिता तव ।

''नीच निशाचर ! अमिततेजस्वी भगवान् श्रीरामकी पत्नी और इक्ष्वाकुकुलके स्वामी महाराज दशरथकी पुत्र-वधूसे यह न कहने योग्य बात कहते समय तेरी जीभ क्यों नहीं गिर गयी ? ॥ ७१½ ॥

किंस्विद्वीर्य तवानार्य यो मां भर्तुरसंनिधौ ॥ ७२ ॥
अपहृत्यागतः पाप तेनादृष्टो महात्मना ।

''दुष्ट पापी ! तुझमें क्या पराक्रम है ? मेरे पतिदेव जब निकट नहीं थे, तब तू उन महात्माकी दृष्टिसे छिपकर चोरी-चोरी मुझे हर लाया ॥ ७२½ ॥

न त्वं रामस्य सदृशो दास्येऽप्यस्य न युज्यसे ॥ ७३ ॥
अजेयः सत्यवाक् शूरो रणश्लाघी च राघवः ।

''तू भगवान् श्रीरामकी समानता नहीं कर सकता । तू तो उनका दास होने योग्य भी नहीं है । श्रीरघुनाथजी सर्वथा अजेय, सत्यभाषी, शूरवीर और युद्धके अभिलाषी एवं प्रशंसक हैं' ॥ ७३½ ॥

जानक्या परुषं वाक्यमेवमुक्तो दशाननः ॥ ७४ ॥
जज्वाल सहसा कोपाच्चितास्थ इव पावकः ।
विवृत्य नयने क्रूरे मुष्टिमुद्यम्य दक्षिणम् ॥ ७५ ॥
मैथिलीं हन्तुमारब्धः स्त्रीभिर्हाहाकृतं तदा ।
स्त्रीणां मध्यात् समुत्पत्य तस्य भार्या दुरात्मनः ॥ ७६ ॥
वरा मन्दोदरी नाम तया स प्रतिषेधितः ।
उक्तश्च मधुरां वाणीं तया स मदनार्दितः ॥ ७७ ॥

'जनकनन्दिनीके ऐसी कठोर बात कहनेपर दशमुख रावण चितामें लगी हुई आगकी भाँति सहसा क्रोधसे जल उठा और अपनी क्रूर आँखें फाड़-फाड़कर देखता हुआ दाहिना मुक्का तानकर मिथिलेशकुमारीको मारनेके लिये तैयार हो गया । यह देख उस समय वहाँ खड़ी हुई स्त्रियाँ हाहाकार करने लगीं । इतनेहीमें उन स्त्रियोंके बीचसे उस दुरात्माकी सुन्दरी भार्या मन्दोदरी झपटकर आगे आयी और उसने रावणको ऐसा करनेसे रोका । साथ ही, उस कामपीड़ित निशाचरसे मधुर वाणीमें कहा—॥ ७४–७७ ॥

सीतया तव किं कार्यं महेन्द्रसमविक्रम ।
मया सह रमस्वाद्य मद्विशिष्टा न जानकी ॥ ७८ ॥

''महेन्द्रके समान पराक्रमी राक्षसराज ! सीतासे तुम्हें क्या काम है ? आज मेरे साथ रमण करो । जनकनन्दिनी सीता मुझसे अधिक सुन्दरी नहीं है ॥ ७८ ॥

देवगन्धर्वकन्याभिर्यक्षकन्याभिरेव च ।
सार्धं प्रभो रमस्वेति सीतया किं करिष्यसि ॥ ७९ ॥

''प्रभो ! देवताओं, गन्धर्वों और यक्षोंकी कन्याएँ हैं, इनके साथ रमण करो; सीताको लेकर क्या करोगे ?' ॥

ततस्ताभिः समेताभिर्नारीभिः स महाबलः ।
उत्थाप्य सहसा नीतो भवनं स्वं निशाचरः ॥ ८० ॥

'तदनन्तर वे सब स्त्रियाँ मिलकर उस महाबली निशाचर रावणको सहसा वहाँसे उठाकर अपने महलमें ले गयीं ॥ ८० ॥

याते तस्मिन् दशग्रीवे राक्षस्यो विकृताननाः ।
सीतां निर्भर्त्सयामासुर्वाक्यैः क्रूरैः सुदारुणैः ॥ ८१ ॥

'दशमुख रावणके चले जानेपर विकराल मुखवाली राक्षसियाँ अत्यन्त दारुण क्रूरतापूर्ण वचनोंद्वारा सीताको डराने-धमकाने लगीं ॥ ८१ ॥

तृणवद् भाषितं तासां गणयामास जानकी ।
गर्जितं च तथा तासां सीतां प्राप्य निरर्थकम् ॥ ८२ ॥

'परंतु जानकीने उनकी बातोंको तिनकेके समान तुच्छ समझा। उनका सारा गर्जन-तर्जन सीताके पास पहुँचकर व्यर्थ हो गया ॥ ८२ ॥

वृथा गर्जितनिश्चेष्टा राक्षस्यः पिशिताशनाः।
रावणाय शशंसुस्ताः सीताव्यवसितं महत् ॥ ८३ ॥

'इस प्रकार गर्जना और सारी चेष्टाओंके व्यर्थ हो जानेपर उन मांसभक्षिणी राक्षसियोंने रावणके पास जाकर उसे सीताजीका महान् निश्चय कह सुनाया ॥ ८३ ॥

ततस्ताः सहिताः सर्वा विहताशा निरुद्यमाः।
परिक्लिश्य समस्तास्ता निद्रावशमुपागताः ॥ ८४ ॥

'फिर वे सब-की-सब उन्हें अनेक प्रकारसे कष्ट दे हताश तथा उद्योगशून्य हो निद्राके वशीभूत होकर सो गयीं ॥ ८४ ॥

तासु चैव प्रसुप्तासु सीता भर्तृहिते रता।
विलप्य करुणं दीना प्रशुशोच सुदुःखिता ॥ ८५ ॥

'उन सबके सो जानेपर पतिके हितमें तत्पर रहनेवाली सीताजी करुणापूर्वक विलापकर अत्यन्त दीन और दुखी हो शोक करने लगीं ॥ ८५ ॥

तासां मध्यात् समुत्थाय त्रिजटा वाक्यमब्रवीत्।
आत्मानं खादत क्षिप्रं न सीतामसितेक्षणाम् ॥ ८६ ॥
जनकस्यात्मजां साध्वीं स्नुषां दशरथस्य च।

'उन राक्षसियोंके बीचसे त्रिजटा नामवाली राक्षसी उठी और अन्य निशाचरियोंसे इस प्रकार बोली—'अरी ! तुम सब अपने आपको ही जल्दी-जल्दी खा जाओ, कजरारे नेत्रोंवाली सीताको नहीं; ये राजा दशरथकी पुत्रवधू और जनककी लाड़ली सती-साध्वी सीता इस योग्य नहीं हैं ॥ ८६½ ॥

स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः ॥ ८७ ॥
रक्षसां च विनाशाय भर्तुरस्या जयाय च।

''आज अभी मैंने बड़ा भयंकर तथा रोंगटे खड़े कर देनेवाला स्वप्न देखा है; वह राक्षसोंके विनाश तथा इन सीतादेवीके पतिकी विजयका सूचक है ॥ ८७½ ॥

अलमस्मान् परित्रातुं राघवाद् राक्षसीगणम् ॥ ८८ ॥
अभियाचाम वैदेहीमेतद्धि मम रोचते।

''ये सीता ही श्रीरघुनाथजीके रोषसे हमारी और इन सब राक्षसियोंकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं; अतः हमलोग विदेहनन्दिनीसे अपने अपराधोंके लिये क्षमा-याचना करें—यही मुझे अच्छा लगता है ॥ ८८½ ॥

यदि ह्येवंविधः स्वप्नो दुःखितायाः प्रदृश्यते ॥ ८९ ॥
सा दुःखैर्विविधैर्मुक्ता सुखमाप्नोत्यनुत्तमम्।

''यदि किसी दुःखिनीके विषयमें ऐसा स्वप्न देखा जाता है तो वह अनेक विध दुःखोंसे छूटकर परम उत्तम सुख पाती है ८९½

प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा ॥ ९० ॥
अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात्।

''राक्षसियो ! केवल प्रणाम करनेमात्रसे मिथिलेशकुमारी जानकी प्रसन्न हो जायँगी और ये महान् भयसे मेरी रक्षा करेंगी' ॥ ९०½ ॥

ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुर्विजयहर्षिता ॥ ९१ ॥
अवोचद् यदि तत् तथ्यं भवेयं शरणं हि वः।

'तब लज्जावती बाला सीता पतिकी विजयकी सम्भावनासे प्रसन्न हो बोलीं—'यदि यह बात सच होगी तो मैं अवश्य तुमलोगोंकी रक्षा करूँगी' ॥ ९१½ ॥

तां चाहं तादृशीं दृष्ट्वा सीताया दारुणां दशाम् ॥ ९२ ॥
चिन्तयामास विश्रान्तो न च मे निर्वृतं मनः।
सम्भाषणार्थे च मया जानक्याश्चिन्तितो विधिः॥ ९३ ॥

'कुछ विश्रामके पश्चात् मैं सीताकी वैसी दारुण दशा देखकर बड़ी चिन्तामें पड़ गया। मेरे मनको शान्ति नहीं मिलती थी। फिर मैंने जानकीजीके साथ वार्तालाप करनेके लिये एक उपाय सोचा ॥ ९२-९३ ॥

इक्ष्वाकुकुलवंशस्तु स्तुतो मम पुरस्कृतः।
श्रुत्वा तु गदितां वाचं राजर्षिगणभूषिताम् ॥ ९४ ॥
प्रत्यभाषत मां देवी बाष्पैः पिहितलोचना।

'पहले मैंने इक्ष्वाकुवंशकी प्रशंसा की। राजर्षियोंकी स्तुतिसे विभूषित मेरी वह वाणी सुनकर देवी सीताके नेत्रोंमें आँसू भर आया और वे मुझसे बोलीं—॥ ९४½ ॥

कस्त्वं केन कथं चेह प्राप्तो वानरपुङ्गव ॥ ९५ ॥
का च रामेण ते प्रीतिस्तन्मे शंसितुमर्हसि।

''कपिश्रेष्ठ ! तुम कौन हो ? किसने तुम्हें भेजा है ? यहाँ कैसे आये हो ? और भगवान् श्रीरामके साथ तुम्हारा कैसा प्रेम है ? यह सब मुझे बताओ' ॥ ९५½ ॥

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा अहमप्यब्रुवं वचः ॥ ९६ ॥
देवि रामस्य भर्तुस्ते सहायो भीमविक्रमः।
सुग्रीवो नाम विक्रान्तो वानरेन्द्रो महाबलः ॥ ९७ ॥

'उनका वह वचन सुनकर मैंने भी कहा—'देवि ! तुम्हारे पतिदेव श्रीरामके सहायक एक भयंकर पराक्रमी बलविक्रमसम्पन्न महाबली वानरराज हैं, जिनका नाम सुग्रीव है ॥ ९६-९७ ॥

तस्य मां विद्धि भृत्यं त्वं हनूमन्तमिहागतम्।
भर्त्रा सम्प्रहितस्तुभ्यं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ९८ ॥

''उन्हींका मुझे सेवक समझो। मेरा नाम हनुमान् है। अनायास ही महान् कर्म करनेवाले तुम्हारे पति श्रीरामने भेजा है। इसलिये मैं यहाँ आया हूँ ॥ ९८ ॥

इदं तु पुरुषव्याघ्रः श्रीमान् दाशरथिः स्वयम्।
अङ्गुलीयमभिज्ञानमदात् तुभ्यं यशस्विनि ॥ ९९ ॥

''यशस्विनि ! पुरुषसिंह दशरथनन्दन साक्षात् श्रीमान् रामने पहचानके लिये यह अँगूठी तुम्हें दी है ॥ ९९ ॥

तदिच्छामि त्वयाज्ञप्तं देवि किं करवाण्यहम् ।
रामलक्ष्मणयोः पार्श्वं नयामि त्वां किमुत्तरम् ॥ १००॥

''देवि ! मैं चाहता हूँ कि आप मुझे आज्ञा दें कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? आप कहें तो मैं अभी आपको श्रीराम और लक्ष्मणके पास पहुँचा दूँ । इस विषयमें आपका क्या उत्तर है ?' ॥ १०० ॥

एतच्छ्रुत्वा विदित्वा च सीता जनकनन्दिनी ।
आह रावणमुत्पाट्य राघवो मां नयत्विति ॥ १०१॥

'मेरी यह बात सुनकर और सोच-समझकर जनकनन्दिनी सीताने कहा—'मेरी इच्छा है कि श्रीरघुनाथजी रावणका संहार करके मुझे यहाँसे ले चलें' ॥ १०१ ॥

प्रणम्य शिरसा देवीमहमार्यामनिन्दिताम् ।
राघवस्य मनोह्लादमभिज्ञानमयाचिषम् ॥ १०२॥

'तब मैंने उन सती-साध्वी देवी आर्या सीताको सिर झुकाकर प्रणाम किया और कोई ऐसी पहचान माँगी, जो श्रीरघुनाथजीके मनको आनन्द प्रदान करनेवाली हो ॥ १०२॥

अथ मामब्रवीत् सीता गृह्यतामयमुत्तमः ।
मणिर्येन महाबाहू रामस्त्वां बहु मन्यते ॥ १०३॥

'मेरे माँगनेपर सीताजीने कहा—'लो, यह उत्तम चूडामणि है, जिसे पाकर महाबाहु श्रीराम तुम्हारा विशेष आदर करेंगे' ॥ १०३ ॥

इत्युक्त्वा तु वरारोहा मणिप्रवरमुत्तमम् ।
प्रायच्छत् परमोद्विग्ना वाचा मां संदिदेश ह ॥ १०४॥

'ऐसा कहकर सुन्दरी सीताने मुझे वह परम उत्तम चूडामणि दी और अत्यन्त उद्विग्न होकर वाणीद्वारा अपना संदेश कहा ॥ १०४ ॥

ततस्तस्यै प्रणम्याहं राजपुत्र्यै समाहितः ।
प्रदक्षिणं परिक्रामममिहाभ्युद्गतमानसः ॥ १०५॥

'तब मन-ही-मन यहाँ आनेके लिये उत्सुक हो एकाग्रचित्त होकर मैंने राजकुमारी सीताको प्रणाम किया और उनकी दक्षिणावर्त परिक्रमा की ॥ १०५ ॥

उत्तरं पुनरेवाह निश्चित्य मनसा तदा ।
हनूमन् मम वृत्तान्तं वक्तुमर्हसि राघवे ॥ १०६॥
यथा श्रुत्वैव नचिरात् तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
सुग्रीवसहितौ वीरावुपेयातां तथा कुरु ॥ १०७॥

'उस समय उन्होंने मनसे कुछ निश्चय करके पुनः मुझे उत्तर दिया—'हनुमन् ! तुम श्रीरघुनाथजीको मेरा सारा वृत्तान्त सुनाना और ऐसा प्रयत्न करना, जिससे सुग्रीवसहित वे दोनों वीरबन्धु श्रीराम और लक्ष्मण मेरा हाल सुनते ही अविलम्ब यहाँ आ जायँ ॥ १०६-१०७ ॥

यदन्यथा भवेदेतद् द्वौ मासौ जीवितं मम ।
न मां द्रक्ष्यति काकुत्स्थो म्रिये साहमनाथवत् ॥ १०८॥

''यदि इसके विपरीत हुआ तो दो महीनेतक मेरा जीवन और शेष है । उसके बाद श्रीरघुनाथजी मुझे नहीं देख सकेंगे । मैं अनाथकी भाँति मर जाऊँगी' ॥ १०८ ॥

तच्छ्रुत्वा करुणं वाक्यं क्रोधो मामभ्यवर्तत ।
उत्तरं च मया दृष्टं कार्यशेषमनन्तरम् ॥ १०९॥

'उनका यह करुणाजनक वचन सुनकर राक्षसोंके प्रति मेरा क्रोध बहुत बढ़ गया । फिर मैंने शेष बचे हुए भावी कार्यपर विचार किया ॥ १०९ ॥

ततोऽवर्धत मे कायस्तदा पर्वतसंनिभः ।
युद्धाकाङ्क्षी वनं तस्य विनाशयितुमारभे ॥ ११०॥

'तदनन्तर मेरा शरीर बढ़ने लगा और तत्काल पर्वतके समान हो गया । मैंने युद्धकी इच्छासे रावणके उस वनको उजाड़ना आरम्भ किया ॥ ११० ॥

तद् भग्नं वनखण्डं तु भ्रान्तत्रस्तमृगद्विजम् ।
प्रतिबुद्ध्य निरीक्षन्ते राक्षस्यो विकृताननाः ॥ १११॥

'जहाँके पशु और पक्षी घबराये और डरे हुए थे, उस उजड़े हुए वनखण्डको वहाँ सोकर उठी हुई विकराल मुखवाली राक्षसियोंने देखा ॥ १११ ॥

मां च दृष्ट्वा वने तस्मिन् समागम्य ततस्ततः ।
ताः समभ्यागताः क्षिप्रं रावणायाचचक्षिरे ॥ ११२॥

'उस वनमें मुझे देखकर वे सब इधर-उधरसे जुट गयीं और तुरंत रावणके पास जाकर उन्होंने वनविध्वंसका सारा समाचार कहा—॥ ११२ ॥

राजन् वनमिदं दुर्गं तव भग्नं दुरात्मना ।
वानरेण ह्यविज्ञाय तव वीर्यं महाबल ॥ ११३॥

''महाबली राक्षसराज ! एक दुरात्मा वानरने आपके बल-पराक्रमको कुछ भी न समझकर इस दुर्गम प्रमदावनको उजाड़ डाला है ॥ ११३ ॥

तस्य दुर्बुद्धिता राजंस्तव विप्रियकारिणः ।
वधमाज्ञापय क्षिप्रं यथासौ न पुनर्व्रजेत् ॥ ११४॥

''महाराज ! यह उसकी दुर्बुद्धि ही है, जो उसने आपका अपराध किया । आप शीघ्र ही उसके वधकी आज्ञा दें, जिससे वह फिर बचकर चला न जाय' ॥ ११४ ॥

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रेण विसृष्टा बहुदुर्जयाः ।
राक्षसाः किंकरा नाम रावणस्य मनोऽनुगाः ॥ ११५॥

'यह सुनकर राक्षसराजने अपने मनके अनुकूल चलनेवाले किंकर नामक राक्षसोंको भेजा, जिनपर विजय पाना अत्यन्त कठिन था ॥ ११५ ॥

तेषामशीतिसाहस्रं शूलमुद्गरपाणिनाम् ।
मया तस्मिन् वनोद्देशे परिघेण निषूदितम् ॥११६॥

'वे हाथोंमें शूल और मुद्गर लेकर आये थे। उनकी संख्या अस्सी हजार थी; परंतु मैंने उस वनप्रान्तमें एक परिघसे ही उन सबका संहार कर डाला ॥ ११६ ॥

तेषां तु हतशिष्टा ये ते गता लघुविक्रमाः ।
निहतं च मया सैन्यं रावणायाचचक्षिरे ॥११७॥

'उनमें जो मरनेसे बच गये, वे जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाते हुए भाग गये। उन्होंने रावणको मेरेद्वारा सारी सेनाके मारे जानेका समाचार बताया ॥ ११७ ॥

ततो मे बुद्धिरुत्पन्ना चैत्यप्रासादमुत्तमम् ।
तत्रस्थान् राक्षसान् हत्वा शतं स्तम्भेन वै पुनः ॥११८॥
ललामभूतो लङ्काया मया विध्वंसितो रुषा ।

'तत्पश्चात् मेरे मनमें एक नया विचार उत्पन्न हुआ और मैंने क्रोधपूर्वक वहाँके उत्तम चैत्यप्रासादको, जो लङ्काका सबसे सुन्दर भवन था तथा जिसमें सौ खम्भे लगे हुए थे, वहाँके राक्षसोंका संहार करके तोड़-फोड़ डाला ॥ ११८½ ॥

ततः प्रहस्तस्य सुतं जम्बुमालिनमादिशत् ॥११९॥
राक्षसैर्बहुभिः सार्धं घोररूपैर्भयानकैः ।

'तब रावणने घोर रूपवाले भयानक राक्षसोंके साथ जिनकी संख्या बहुत अधिक थी, प्रहस्तके बेटे जम्बुमालीको युद्धके लिये भेजा ॥ ११९½ ॥

तमहं बलसम्पन्नं राक्षसं रणकोविदम् ॥१२०॥
परिघेणातिघोरेण सूदयामि सहानुगम् ।

'वह राक्षस बड़ा बलवान् तथा युद्धकी कलामें कुशल था तो भी मैंने अत्यन्त घोर परिघसे मारकर सेवकोंसहित उसे कालके गालमें डाल दिया ॥ १२०½ ॥

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्तु मन्त्रिपुत्रान् महाबलान् ॥१२१॥
पदातिबलसम्पन्नान् प्रेषयामास रावणः ।
परिघेणैव तान् सर्वान् नयामि यमसादनम् ॥१२२॥

'यह सुनकर राक्षसराज रावणने पैदल सेनाके साथ अपने मन्त्रीके पुत्रोंको भेजा, जो बड़े बलवान् थे; किंतु मैंने परिघसे ही उन सबको यमलोक भेज दिया ॥ १२१-१२२ ॥

मन्त्रिपुत्रान् हताञ्श्रुत्वा समरे लघुविक्रमान् ।
पञ्च सेनाग्रगाञ्छूरान् प्रेषयामास रावणः ॥१२३॥

'समराङ्गणमें शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाले मन्त्रिकुमारोंको मारा गया सुनकर रावणने पाँच शूरवीर सेनापतियोंको भेजा ॥ १२३ ॥

तानहं सहसैन्यान् वै सर्वानेवाभ्यसूदयम् ।
ततः पुनर्दशग्रीवः पुत्रमक्षं महाबलम् ॥१२४॥
बहुभी राक्षसैः सार्धं प्रेषयामास संयुगे ।

'उन सबको भी मैंने सेनासहित मौतके घाट उतार दिया। तब दशमुख रावणने अपने पुत्र महाबली अक्षकुमारको बहुसंख्यक राक्षसोंके साथ युद्धके लिये भेजा ॥ १२४½ ॥

तं तु मन्दोदरीपुत्रं कुमारं रणपण्डितम् ॥१२५॥
सहसा खं समुद्यन्तं पादयोश्च गृहीतवान् ।
तमासीनं शतगुणं भ्रामयित्वा व्यपेषयम् ॥१२६॥

'मन्दोदरीका वह पुत्र युद्धकी कलामें बड़ा प्रवीण था। वह आकाशमें उड़ रहा था। उसी समय मैंने सहसा उसके दोनों पैर पकड़ लिये और सौ बार घुमाकर उसे पृथ्वीपर पटक दिया। इस तरह वहाँ पड़े हुए कुमार अक्षको मैंने पीस डाला ॥ १२५-१२६ ॥

तमक्षमागतं भग्नं निशम्य स दशाननः ।
ततश्चेन्द्रजितं नाम द्वितीयं रावणः सुतम् ॥१२७॥
व्यादिदेश सुसंक्रुद्धो बलिनं युद्धदुर्मदम् ।

'अक्षकुमार युद्धभूमिमें आया और मारा गया—यह सुनकर दशमुख रावणने अत्यन्त कुपित हो अपने दूसरे पुत्र इन्द्रजित्को, जो बड़ा ही रणदुर्मद और बलवान् था, भेजा ॥ १२७½ ॥

तच्चाप्यहं बलं सर्वं तं च राक्षसपुङ्गवम् ॥१२८॥
नष्टौजसं रणे कृत्वा परं हर्षमुपागतः ।

'उसके साथ आयी हुई सारी सेनाको और उस राक्षसशिरोमणिको भी युद्धमें हतोत्साह करके मुझे बड़ा हर्ष हुआ ॥ १२८½ ॥

महतापि महाबाहुः प्रत्ययेन महाबलः ॥१२९॥
प्रहितो रावणेनैष सह वीरैर्मदोद्धतैः ।

'रावणने इस महाबली महाबाहु वीरको अनेक मदमत्त वीरोंके साथ बड़े विश्वाससे भेजा था ॥ १२९½ ॥

सोऽविषह्यं हि मां बुद्ध्वा स्वसैन्यं चावमर्दितम् ॥१३०॥
ब्राह्मणोऽस्त्रेण स तु मां प्रबद्ध्वा चातिवेगिनः ।
रज्जुभिश्चापि बध्नन्ति ततो मां तत्र राक्षसाः ॥१३१॥

'इन्द्रजित्ने देखा, मेरी सारी सेना कुचल डाली गयी, तब उसने समझ लिया कि इस वानरका सामना करना असम्भव है। अतः उसने बड़े वेगसे ब्रह्मास्त्र चलाकर मुझे बाँध लिया। फिर तो वहाँ राक्षसोंने मुझे रस्सियोंसे भी बाँधा ॥ १३०-१३१ ॥

रावणस्य समीपं च गृहीत्वा मामुपागमन् ।
दृष्ट्वा सम्भाषितश्चाहं रावणेन दुरात्मना ॥१३२॥

पृष्टश्च लङ्कागमनं राक्षसानां च तं वधम् ।
तत्सर्वं च रणे तत्र सीतार्थमुपजल्पितम् ॥१३३॥

‘इस तरह मुझे पकड़कर वे सब रावणके समीप ले आये । दुरात्मा रावणने मुझे देखकर वार्तालाप आरम्भ किया और पूछा—‘तू लङ्कामें क्यों आया ? तथा राक्षसोंका वध तूने क्यों किया ?’ मैंने वहाँ उत्तर दिया, ‘यह सब कुछ मैंने सीताजीके लिये किया है’ ॥ १३२-१३३ ॥

तस्यास्तु दर्शनाकाङ्क्षी प्राप्तस्त्वद्भवनं विभो ।
मारुतस्यौरसः पुत्रो वानरो हनुमानहम् ॥१३४॥
रामदूतं च मां विद्धि सुग्रीवसचिवं कपिम् ।
सोऽहं दौत्येन रामस्य त्वत्सकाशमिहागतः ॥१३५॥

‘प्रभो ! जनकनन्दिनीके दर्शनकी इच्छासे ही मैं तुम्हारे महलमें आया हूँ । मैं वायुदेवताका औरस पुत्र हूँ, जातिका वानर हूँ और हनुमान् मेरा नाम है । मुझे श्रीरामचन्द्रजीका दूत और सुग्रीवका मन्त्री समझो । श्रीरामचन्द्रजीका दूत-कार्य करनेके लिये ही मैं यहाँ तुम्हारे पास आया हूँ ॥ १३४-१३५ ॥

शृणु चापि समादेशं यदहं प्रब्रवीमि ते ।
राक्षसेश हरीशस्त्वां वाक्यमाह समाहितम् ॥१३६॥

‘तुम मेरे स्वामीका संदेश, जो मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो । राक्षसराज ! वानरराज सुग्रीवने तुमसे एकाग्रतापूर्वक जो बात कही है, उसपर ध्यान दो ॥ १३६ ॥

सुग्रीवश्च महाभागः स त्वां कौशलमब्रवीत् ।
धर्मार्थकामसहितं हितं पथ्यमुवाच ह ॥१३७॥

‘महाभाग सुग्रीवने तुम्हारी कुशल पूछी है और तुम्हें सुनानेके लिये यह धर्म, अर्थ एवं कामसे युक्त हितकर तथा लाभदायक बात कही है—॥ १३७ ॥

वसतो ऋष्यमूके मे पर्वते विपुलद्रुमे ।
राघवो रणविक्रान्तो मित्रत्वं समुपागतः ॥१३८॥

‘‘जब मैं बहुसंख्यक वृक्षोंसे हरे-भरे ऋष्यमूक पर्वतपर निवास करता था, उन दिनों रणमें महान् पराक्रम प्रकट करनेवाले रघुनाथजीने मेरे साथ मित्रता स्थापित की थी ॥ १३८ ॥

तेन मे कथितं राजन् भार्या मे रक्षसा हृता ।
तत्र साहाय्यहेतोर्मे समयं कर्तुमर्हसि ॥१३९॥

‘‘राजन् ! उन्होंने मुझे बताया कि ‘राक्षस रावणने मेरी पत्नीको हर लिया है । उसके उद्धारके कार्यमें सहायता करनेके लिये तुम मेरे सामने प्रतिज्ञा करो’ ॥ १३९ ॥

वालिना हृतराज्येन सुग्रीवेण सह प्रभुः ।
चक्रेऽग्निसाक्षिकं सख्यं राघवः सहलक्ष्मणः ॥१४०॥

‘वालीने जिनका राज्य छीन लिया था, उन सुग्रीवके साथ (अर्थात् मेरे साथ) लक्ष्मणसहित भगवान् श्रीरामने अग्निको साक्षी बनाकर मित्रता की है ॥ १४० ॥

तेन वालिनमाहत्य शरेणैकेन संयुगे ।
वानराणां महाराजः कृतः सम्प्लवतां प्रभुः ॥१४१॥

‘‘श्रीरघुनाथजीने युद्धस्थलमें एक ही बाणसे वालीको मारकर सुग्रीवको (मुझको) उछलने-कूदनेवाले वानरोंका महाराज बना दिया है ॥ १४१ ॥

तस्य साहाय्यमस्माभिः कार्यं सर्वात्मना त्विह ।
तेन प्रस्थापितस्तुभ्यं समीपमिह धर्मतः ॥१४२॥

‘‘अतः हमलोगोंको सम्पूर्ण हृदयसे उनकी सहायता करनी है । यही सोचकर सुग्रीवने धर्मानुसार मुझे तुम्हारे पास भेजा है ॥ १४२ ॥

क्षिप्रमानीयतां सीता दीयतां राघवस्य च ।
यावन्न हरयो वीरा विधमन्ति बलं तव ॥१४३॥

‘‘उनका कहना है कि तुम तुरंत सीताको ले आओ और जबतक वीर वानर तुम्हारी सेनाका संहार नहीं करते हैं तभीतक उन्हें श्रीरघुनाथजीको सौंप दो ॥ १४३ ॥

वानराणां प्रभावोऽयं न केन विदितः पुरा ।
देवतानां सकाशं च ये गच्छन्ति निमन्त्रिताः ॥१४४॥

‘‘कौन ऐसा वीर है जिसे वानरोंका यह प्रभाव पहलेसे ही ज्ञात नहीं है । ये वे ही वानर हैं, जो युद्धके लिये निमन्त्रित होकर देवताओंके पास भी उनकी सहायताके लिये जाते हैं’ ॥ १४४ ॥

इति वानरराजस्त्वामाहेत्यभिहितो मया ।
मामैक्षत ततो रुष्टश्चक्षुषा प्रदहन्निव ॥१४५॥

‘इस प्रकार वानरराज सुग्रीवने तुमसे संदेश कहा है । मेरे इतना कहते ही रावणने रुष्ट होकर मुझे इस तरह देखा, मानो अपनी दृष्टिसे मुझे दग्ध कर डालेगा ॥ १४५ ॥

तेन वध्योऽहमाज्ञप्तो रक्षसा रौद्रकर्मणा ।
मत्प्रभावमविज्ञाय रावणेन दुरात्मना ॥१४६॥

‘भयंकर कर्म करनेवाले दुरात्मा राक्षस रावणने मेरे प्रभावको न जानकर अपने सेवकोंको आज्ञा दे दी कि इस वानरका (मेरा) वध कर दिया जाय ॥ १४६ ॥

ततो विभीषणो नाम तस्य भ्राता महामतिः ।
तेन राक्षसराजश्च याचितो मम कारणात् ॥१४७॥

‘तब उसके परम बुद्धिमान् भाई विभीषणने मेरे लिये राक्षसराज रावणसे प्रार्थना करते हुए कहा—॥ १४७ ॥

नैवं राक्षसशार्दूल त्यज्यतामेष निश्चयः ।
राजशास्त्रव्यपेतो हि मार्गः संलक्ष्यते त्वया ॥१४८॥

‘‘राक्षसशिरोमणे ! ऐसा करना उचित नहीं है । आप

अपने इस निश्चयको त्याग दीजिये । आपकी दृष्टि इस समय राजनीतिके विरुद्ध मार्गपर जा रही है ॥ १४८ ॥

दूतवध्या न दृष्टा हि राजशास्त्रेषु राक्षस ।
दूतेन वेदितव्यं च यथाभिहितवादिना ॥१४९॥

''राक्षसराज ! राजनीति-सम्बन्धी शास्त्रोंमें कहीं भी दूतके वधका विधान नहीं है । दूत तो वही कहता है, जैसा कहनेके लिये उसे बताया गया होता है । उसका कर्तव्य है कि वह अपने स्वामीके अभिप्रायका ज्ञान करा दे ॥ १४९ ॥

सुमहत्यपराधेऽपि दूतस्यातुलविक्रम ।
विरूपकरणं दृष्टं न वधोऽस्ति हि शास्त्रतः ॥१५०॥

''अनुपम पराक्रमी वीर ! दूतका महान् अपराध होनेपर भी शास्त्रमें उसके वधका दण्ड नहीं देखा गया है । उसके किसी अङ्गको विकृत कर देनामात्र ही बताया गया है' ॥१५०॥

विभीषणेनैवमुक्तो रावणः संदिदेश तान् ।
राक्षसानेतदेवाद्य लाङ्गूलं दह्यतामिति ॥१५१॥

''विभीषणके ऐसा कहनेपर रावणने उन राक्षसोंको आज्ञा दी—'अच्छा तो आज इसकी यह पूँछ ही जला दो' ॥१५१॥

ततस्तस्य वचः श्रुत्वा मम पुच्छं समन्ततः ।
वेष्टितं शणवल्कैश्च पट्टैः कार्पासकैस्तथा ॥१५२॥

'उसकी यह आज्ञा सुनकर राक्षसोंने मेरी पूँछमें सब ओरसे सुतरीकी रस्सियाँ तथा रेशमी और सूती कपड़े लपेट दिये ॥ १५२ ॥

राक्षसाः सिद्धसंनाहास्ततस्ते चण्डविक्रमाः ।
तदादीप्यन्त मे पुच्छं हनन्तः काष्ठमुष्टिभिः ॥१५३॥

'इस प्रकार बाँध देनेके पश्चात् उन प्रचण्ड पराक्रमी राक्षसोंने काठके डंडों और मुक्कोंसे मारते हुए मेरी पूँछमें आग लगा दी ॥ १५३ ॥

बद्धस्य बहुभिः पाशैर्यन्त्रितस्य च राक्षसैः ।
न मे पीडाभवत् काचिद् दिदृक्षोर्नगरीं दिवा ॥१५४॥

'मैं दिनमें लङ्कापुरीको अच्छी तरह देखना चाहता था, इसलिये राक्षसोंद्वारा बहुत-सी रस्सियोंसे बाँधे और कसे जानेपर भी मुझे कोई पीड़ा नहीं हुई ॥ १५४ ॥

ततस्ते राक्षसाः शूरा बद्धं मामग्निसंवृतम् ।
अघोषयन् राजमार्गे नगरद्वारमागताः ॥१५५॥

'तत्पश्चात् नगरद्वारपर आकर वे शूरवीर राक्षस पूँछमें लगी हुई आगसे घिरे और बँधे हुए मुझको सड़कपर घुमाते हुए सब ओर मेरे अपराधकी घोषणा करने लगे ॥ १५५ ॥

ततोऽहं सुमहद्रूपं संक्षिप्य पुनरात्मनः । ✓
विमोचयित्वा तं बन्धं प्रकृतिस्थः स्थितः पुनः ॥१५६॥

'इतनेहीमें अपने उस विशाल रूपको संकुचित करके मैंने अपने आपको उस बन्धनसे छुड़ा लिया और फिर स्वाभाविक रूपमें आकर मैं वहाँ खड़ा हो गया ॥ १५६ ॥

आयसं परिघं गृह्य तानि रक्षांस्यसूदयम् ।
ततस्तन्नगरद्वारं वेगेन प्लुतवानहम् ॥१५७॥

'फिर फाटकपर रक्खे हुए एक लोहेके परिघको उठाकर मैंने उन सब राक्षसोंको मार डाला इसके बाद बड़े वेगसे कूदकर मैं उस नगरद्वारपर चढ़ गया ॥ १५७ ॥

पुच्छेन च प्रदीप्तेन तां पुरीं साट्टगोपुराम् ।
दहाम्यहमसम्भ्रान्तो युगान्ताग्निरिव प्रजाः ॥१५८॥

'तत्पश्चात् समस्त प्रजाको दग्ध करनेवाली प्रलयाग्निके समान मैं बिना किसी घबराहटके अट्टालिका और गोपुरसहित उस पुरीको अपनी जलती हुई पूँछकी आगसे जलाने लगा ॥ १५८ ॥

विनष्टा जानकी व्यक्तं न ह्यदग्धः प्रदृश्यते ।
लङ्कायाः कश्चिदुद्देशः सर्वा भस्मीकृता पुरी ॥१५९॥
दहता च मया लङ्कां दग्धा सीता न संशयः ।
रामस्य च महत्कार्यं मयेदं विफलीकृतम् ॥१६०॥

'फिर मैंने सोचा 'लङ्काका कोई भी स्थान ऐसा नहीं दिखायी देता है, जो जला हुआ न हो, सारी नगरी जलकर भस्म हो गयी है । अतः अवश्य ही जानकीजी भी नष्ट हो गयी होंगी । इसमें संदेह नहीं कि लङ्काको जलाते-जलाते मैंने सीताजीको भी जला दिया और इस प्रकार भगवान् श्रीरामके इस महान् कार्यको मैंने निष्फल कर दिया' ॥ १५९-१६० ॥

इति शोकसमाविष्टश्चिन्तामहमुपागतः ।
ततोऽहं वाचमश्रौषं चारणानां शुभाक्षराम् ॥१६१॥
जानकी न च दग्धेति विस्मयोदन्तभाषिणाम् ।

'इस तरह शोकाकुल होकर मैं बड़ी चिन्तामें पड़ गया । इतनेहीमें आश्चर्ययुक्त वृत्तान्तका वर्णन करनेवाले चारणोंकी शुभ अक्षरोंसे विभूषित यह वाणी मेरे कानोंमें पड़ी कि जानकीजी इस आगसे नहीं जली हैं ॥ १६१½ ॥

ततो मे बुद्धिरुत्पन्ना श्रुत्वा तामद्भुतां गिरम् ॥१६२॥
अदग्धा जानकीत्येव निमित्तैश्चोपलक्षितम् ।
दीप्यमाने तु लाङ्गूले न मां दहति पावकः ॥१६३॥
हृदयं च प्रहृष्टं मे वाताः सुरभिगन्धिनः ।

'उस अद्भुत वाणीको सुनकर मेरे मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ—'शुभ शकुनोंसे भी यही जान पड़ता है कि जानकीजी नहीं जली हैं; क्योंकि पूँछमें आग लग जानेपर भी अग्निदेव मुझे जला नहीं रहे हैं । मेरे हृदयमें महान् हर्ष

भरा हुआ है और उत्तम सुगन्धसे युक्त मन्द-मन्द वायु चल रही है' ॥ १६२ १६३½ ॥

तैर्निमित्तैश्च दृष्टार्थैः कारणैश्च महागुणैः ॥१६४॥
ऋषिवाक्यैश्च दृष्टार्थैरभवं हृष्टमानसः ।

'जिनके फलोंका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हो चुका था, उन उत्तम शकुनों, महान् गुणशाली कारणों तथा ऋषियों (चारणों) की प्रत्यक्ष देखी हुई बातोंसे भी सीताजीके सकुशल होनेका विश्वास करके मेरा मन हर्षसे भर गया ॥ १६४½ ॥

पुनर्दृष्टा च वैदेही विसृष्टश्च तया पुनः ॥१६५॥
ततः पर्वतमासाद्य तत्रारिष्टमहं पुनः ।
प्रतिप्लवनमारेभे युष्मद्दर्शनकाङ्क्षया ॥१६६॥

'तत्पश्चात् मैंने पुनः विदेहनन्दिनीका दर्शन किया और फिर उनसे विदा लेकर मैं अरिष्ट पर्वतपर आ गया । वहींसे आपलोगोंके दर्शनकी इच्छासे मैंने प्रतिप्लवन (दुबारा आकाशमें उड़ना) आरम्भ किया ॥ १६५-१६६ ॥

ततः श्वसनचन्द्रार्कसिद्धगन्धर्वसेवितम् ।
पन्थानमहमाक्रम्य भवतो दृष्टवानिह ॥१६७॥

'तत्पश्चात् वायु, चन्द्रमा, सूर्य, सिद्ध और गन्धर्वोंसे सेवित मार्गका आश्रय ले यहाँ पहुँचकर मैंने आपलोगोंका दर्शन किया है ॥ १६७ ॥

राघवस्य प्रसादेन भवतां चैव तेजसा ।
सुग्रीवस्य च कार्यार्थं मया सर्वमनुष्ठितम् ॥१६८॥

'श्रीरामचन्द्रजीकी कृपा और आपलोगोंके प्रभावसे मैंने सुग्रीवके कार्यकी सिद्धिके लिये सब कुछ किया है ॥ १६८ ॥

एतत् सर्वं मया तत्र यथावदुपपादितम् ।
तत्र यन्न कृतं शेषं तत् सर्वं क्रियतामिति ॥१६९॥

'यह सारा कार्य मैंने वहाँ यथोचित रूपसे सम्पन्न किया है । जो कार्य नहीं किया है अथवा जो शेष रह गया है, वह सब आपलोग पूर्ण करें' ॥ १६९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें अट्ठावनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः

हनुमान्‌जीका सीताकी दुरवस्था बताकर वानरोंको लङ्कापर आक्रमण करनेके लिये उत्तेजित करना

एतदाख्याय तत् सर्वं हनूमान् मारुतात्मजः ।
भूयः समुपचक्राम वचनं वक्तुमुत्तरम् ॥ १ ॥

यह सब वृत्तान्त बताकर पवनकुमार हनुमान्‌जीने पुनः उत्तम बातें कहनी आरम्भ कीं—॥ १ ॥

सफलो राघवोद्योगः सुग्रीवस्य च सम्भ्रमः ।
शीलमासाद्य सीताया मम च प्रीणितं मनः ॥ २ ॥

'कपिवरो ! श्रीरामचन्द्रजीका उद्योग और सुग्रीवका उत्साह सफल हुआ । सीताजीका उत्तम शील-स्वभाव (पातिव्रत्य) देखकर मेरा मन अत्यन्त संतुष्ट हुआ है ॥२॥

आर्यायाः सदृशं शीलं सीतायाः प्लवगर्षभाः ।
तपसा धारयेल्लोकान् क्रुद्धा वा निर्दहेदपि ॥ ३ ॥

'वानरशिरोमणियो ! जिस नारीका शील-स्वभाव आर्या सीताके समान होगा, वह अपनी तपस्यासे सम्पूर्ण लोकोंको धारण कर सकती है अथवा कुपित होनेपर तीनों लोकोंको जला सकती है ॥ ३ ॥

सर्वथातिप्रकृष्टोऽसौ रावणो राक्षसेश्वरः ।
यस्य तां स्पृशतो गात्रं तपसा न विनाशितम् ॥ ४ ॥

'राक्षसराज रावण सर्वथा महान् तपोबलसे सम्पन्न जान पड़ता है । जिसका अङ्ग सीताका स्पर्श करते समय उनकी तपस्यासे नष्ट नहीं हो गया ॥ ४ ॥

न तदग्निशिखा कुर्यात् संस्पृष्टा पाणिना सती ।
जनकस्य सुता कुर्याद् यत् क्रोधकलुषीकृता ॥ ५ ॥

'हाथसे छू जानेपर आगकी लपट भी वह काम नहीं कर सकती, जो क्रोध दिलानेपर जनकनन्दिनी सीता कर सकती हैं ॥ ५ ॥

जाम्बवत्प्रमुखान् सर्वाननुज्ञाप्य महाकपीन् ।
अस्मिन्नेवंगते कार्ये भवतां च निवेदिते ।
न्याय्यं स्म सह वैदेह्या द्रष्टुं तौ पार्थिवात्मजौ ॥ ६ ॥

'इस कार्यमें मुझे जहाँतक सफलता मिली है, वह सब इस रूपमें मैंने आपलोगोंको बता दिया । अब जाम्बवान् आदि सभी महाकपियोंकी सम्मति लेकर हम (सीताको रावणके कारावाससे लौटाकर) सीताके साथ ही श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणका दर्शन करें, यही न्यायसङ्गत जान पड़ता है ॥ ६ ॥

अहमेकोऽपि पर्याप्तः सराक्षसगणां पुरीम् ।
तां लङ्कां तरसा हन्तुं रावणं च महाबलम् ॥ ७ ॥
किं पुनः सहितो वीरैर्बलवद्भिः कृतात्मभिः ।
कृतास्त्रैः प्लवगैः शक्तैर्भवद्भिर्विजयैषिभिः ॥ ८ ॥

'मैं अकेला भी राक्षसगणोंसहित समस्त लङ्कापुरीका

वेगपूर्वक विध्वंस करने तथा महाबली रावणको मार डालनेके लिये पर्याप्त हूँ। फिर यदि सम्पूर्ण अस्त्रोंको जाननेवाले आप-जैसे वीर, बलवान्, शुद्धात्मा, शक्तिशाली और विजयाभिलाषी वानरोंकी सहायता मिल जाय, तब तो कहना ही क्या है ॥ ७-८ ॥

अहं तु रावणं युद्धे ससैन्यं सपुरःसरम्। ✓
सहपुत्रं वधिष्यामि सहोदरयुतं युधि ॥ ९ ॥

'युद्धस्थलमें सेना, अग्रगामी सैनिक, पुत्र और सगे भाइयोंसहित रावणका तो मैं ही वध कर डालूँगा ॥ ९ ॥

ब्राह्ममस्त्रं च रौद्रं च वायव्यं वारुणं तथा।
यदि शक्रजितोऽस्त्राणि दुर्निरीक्ष्याणि संयुगे।
तान्यहं निहनिष्यामि विधमिष्यामि राक्षसान् ॥ १० ॥

'यद्यपि इन्द्रजित्के ब्राह्म अस्त्र, रौद्र, वायव्य तथा वारुण आदि अस्त्र युद्धमें दुर्लक्ष्य होते हैं—किसीकी दृष्टिमें नहीं आते हैं, तथापि मैं ब्रह्माजीके वरदानसे उनका निवारण कर दूँगा और राक्षसोंका संहार कर डालूँगा ॥ १० ॥

भवतामभ्यनुज्ञातो विक्रमो मे रुणद्धि तम्।
मयातुला विसृष्टा हि शैलवृष्टिर्निरन्तरा ॥ ११ ॥
देवानपि रणे हन्यात् किं पुनस्तान् निशाचरान्।

'यदि आपलोगोंकी आज्ञा मिल जाय तो मेरा पराक्रम रावणको कुण्ठित कर देगा। मेरेद्वारा लगातार बरसाये जानेवाले पत्थरोंकी अनुपम वृष्टि रणभूमिमें देवताओंको भी मौतके घाट उतार देगी; फिर उन निशाचरोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ ११½ ॥

भवतामननुज्ञातो विक्रमो मे रुणद्धि माम् ॥ १२ ॥
सागरोऽप्यतियाद् वेलां मन्दरः प्रचलेदपि।
न जाम्बवन्तं समरे कम्पयेदरिवाहिनी ॥ १३ ॥

'आपलोगोंकी आज्ञा न होनेके कारण ही मेरा पुरुषार्थ मुझे रोक रहा है। समुद्र अपनी मर्यादाको लाँघ जाय और मन्दराचल अपने स्थानसे हट जाय, परंतु समराङ्गणमें शत्रुओंकी सेना जाम्बवान्को विचलित कर दे, यह कभी सम्भव नहीं है ॥ १२-१३ ॥

सर्वराक्षससङ्घानां राक्षसा ये च पूर्वजाः।
अलमेकोऽपि नाशाय वीरो वालिसुतः कपिः ॥ १४ ॥

'सम्पूर्ण राक्षसों और उनके पूर्वजोंको भी यमलोक पहुँचानेके लिये वालीके वीर पुत्र कपिश्रेष्ठ अङ्गद अकेले ही काफी हैं ॥ १४ ॥

प्लवगस्योरुवेगेन नीलस्य च महात्मनः।
मन्दरोऽप्यवशीर्येत किं पुनर्युधि राक्षसाः ॥ १५ ॥

'वानरवीर महात्मा नीलके महान् वेगसे मन्दराचल भी विदीर्ण हो सकता है; फिर युद्धमें राक्षसोंका नाश करना उनके लिये कौन बड़ी बात है ? ॥ १५ ॥

सदेवासुरयक्षेषु गन्धर्वोरगपक्षिषु।
मैन्दस्य प्रतियोद्धारं शंसत द्विविदस्य वा ॥ १६ ॥

'तुम सब-के-सब बताओ तो सही—देवता, असुर, यक्ष, गन्धर्व, नाग और पक्षियोंमें भी कौन ऐसा वीर है, जो मैन्द अथवा द्विविदके साथ लोहा ले सके ? ॥ १६ ॥

अश्विपुत्रौ महावेगावेतौ प्लवगसत्तमौ।
एतयोः प्रतियोद्धारं न पश्यामि रणाजिरे ॥ १७ ॥

'ये दोनों वानरशिरोमणि महान् वेगशाली तथा अश्विनीकुमारोंके पुत्र हैं। समराङ्गणमें इन दोनोंका सामना करनेवाला मुझे कोई नहीं दिखायी देता ॥ १७ ॥

मयैव निहता लङ्का दग्धा भस्मीकृता पुरी।
राजमार्गेषु सर्वेषु नाम विश्रावितं मया ॥ १८ ॥

'मैंने अकेले ही लङ्कावासियोंको मार गिराया, नगरमें आग लगा दी और सारी पुरीको जलाकर भस्म कर दिया। इतना ही नहीं, वहाँकी सब सड़कोंपर मैंने अपने नामका डंका पीट दिया ॥ १८ ॥

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥ १९ ॥ ✓
अहं कोसलराजस्य दासः पवनसम्भवः।
हनूमानिति सर्वत्र नाम विश्रावितं मया ॥ २० ॥

'अत्यन्त बलशाली श्रीराम और महाबली लक्ष्मणकी जय हो। श्रीरघुनाथजीके द्वारा सुरक्षित राजा सुग्रीवकी भी जय हो। मैं कोसलनरेश श्रीरामचन्द्रजीका दास और वायुदेवताका पुत्र हूँ। हनुमान् मेरा नाम है—इस प्रकार सर्वत्र अपने नामकी घोषणा कर दी है ॥ १९-२० ॥

अशोकवनिकामध्ये रावणस्य दुरात्मनः।
अधस्ताच्छिंशपामूले साध्वी करुणमास्थिता ॥ २१ ॥ ✓

'दुरात्मा रावणकी अशोकवाटिकाके मध्यभागमें एक अशोक वृक्षके नीचे साध्वी सीता बड़ी दयनीय अवस्थामें रहती हैं ॥ २१ ॥

राक्षसीभिः परिवृता शोकसंतापकर्शिता।
मेघरेखापरिवृता चन्द्ररेखेव निष्प्रभा ॥ २२ ॥

'राक्षसियोंसे घिरी हुई होनेके कारण वे शोक-संतापसे दुर्बल होती जा रही हैं। बादलोंकी पंक्तिसे घिरी हुई चन्द्रलेखाकी भाँति श्रीहीन हो गयी हैं ॥ २२ ॥

अचिन्तयन्ती वैदेही रावणं बलदर्पितम्।
पतिव्रता च सुश्रोणी अवष्टब्धा च जानकी ॥ २३ ॥

'सुन्दर कटिप्रदेशवाली विदेहनन्दिनी जानकी पतिव्रता हैं। वे बलके घमंडमें भरे रहनेवाले रावणको कुछ भी नहीं समझती हैं तो भी उसीकी कैदमें पड़ी हैं ॥ २३ ॥

अनुरक्ता हि वैदेही रामे सर्वात्मना शुभा।
अनन्यचित्ता रामेण पौलोमीव पुरन्दरे ॥ २४ ॥

'कल्याणी सीता श्रीराममें सम्पूर्ण हृदयसे अनुरक्त हैं, जैसे शची देवराज इन्द्रमें अनन्य प्रेम रखती हैं, उसी प्रकार सीताका चित्त अनन्यभावसे श्रीरामके ही चिन्तनमें लगा हुआ है ॥ २४ ॥

तदेकवासःसंवीता रजोध्वस्ता तथैव च।
सा मया राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ २५ ॥
राक्षसीभिर्विरूपाभिर्दृष्टा हि प्रमदावने।
एकवेणीधरा दीना भर्तृचिन्तापरायणा ॥ २६ ॥

'वे एक ही साड़ी पहने धूलि-धूसरित हो रही हैं। राक्षसियोंके बीचमें रहती हैं और उन्हें बारंबार उनकी डाँट-फटकार सुननी पड़ती है। इस अवस्थामें कुरूप राक्षसियोंसे घिरी हुई सीताको मैंने प्रमदावनमें देखा है। वे एक ही वेणी धारण किये दीनभावसे केवल अपने पतिदेवके चिन्तनमें लगी रहती हैं ॥ २५-२६ ॥

अधःशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमोदये।
रावणाद् विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया ॥ २७ ॥

'वे नीचे भूमिपर सोती हैं। हेमन्तऋतुमें कमलिनीकी भाँति उनके अङ्गोंकी कान्ति फीकी पड़ गयी है। रावणसे उनका कोई प्रयोजन नहीं है। वे मरनेका निश्चय किये बैठी हैं ॥ २७ ॥

कथंचिन्मृगशावाक्षी विश्वासमुपपादिता।
ततः सम्भाषिता चैव सर्वमर्थं प्रकाशिता ॥ २८ ॥

'उन मृगनयनी सीताको मैंने बड़ी कठिनाईसे किसी तरह अपना विश्वास दिलाया। तब उनसे बातचीतका अवसर मिला और सारी बातें मैं उनके समक्ष रख सका ॥

रामसुग्रीवसख्यं च श्रुत्वा प्रीतिमुपागता।
नियतः समुदाचारो भक्तिर्भर्तरि चोत्तमा ॥ २९ ॥

'श्रीराम और सुग्रीवकी मित्रताकी बात सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। सीताजीमें सुदृढ़ सदाचार (पातिव्रत्य) विद्यमान है। अपने पतिके प्रति उनके हृदयमें उत्तम भक्ति है ॥ २९ ॥

यन्न हन्ति दशग्रीवं स महात्मा दशाननः।
निमित्तमात्रं रामस्तु वधे तस्य भविष्यति ॥ ३० ॥

'सीता स्वयं ही जो रावणको नहीं मार डालती हैं, इससे जान पड़ता है कि दशमुख रावण महात्मा है—तपोबलसे सम्पन्न होनेके कारण शाप पानेके अयोग्य है (तथापि सीताहरणके पापसे वह नष्टप्राय ही है)। श्रीरामचन्द्रजी उसके वधमें केवल निमित्तमात्र होंगे ॥ ३० ॥

सा प्रकृत्यैव तन्वङ्गी तद्वियोगाच्च कर्शिता।
प्रतिपत्पाठशीलस्य विद्येव तनुतां गता ॥ ३१ ॥

'भगवती सीता एक तो स्वभावसे ही दुबली-पतली हैं, दूसरे श्रीरामचन्द्रजीके वियोगसे और भी कृश हो गयी हैं। जैसे प्रतिपदाके दिन स्वाध्याय करनेवाले विद्यार्थीकी विद्या क्षीण हो जाती है, उसी प्रकार उनका शरीर भी अत्यन्त दुर्बल हो गया है ॥ ३१ ॥

एवमास्ते महाभागा सीता शोकपरायणा।
यदत्र प्रतिकर्तव्यं तत् सर्वमुपकल्प्यताम् ॥ ३२ ॥

'इस प्रकार महाभागा सीता सदा शोकमें डूबी रहती हैं। अतः इस समय जो प्रतीकार करना हो, वह सब आपलोग करें' ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें उनसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः

अङ्गदका लङ्काको जीतकर सीताको ले आनेका उत्साहपूर्ण विचार और जाम्बवान्‌के द्वारा उसका निवारण

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा वालिसूनुरभाषत।
अश्विपुत्रौ महावेगौ बलवन्तौ प्लवंगमौ ॥ १ ॥

हनुमान्‌जीकी यह बात सुनकर वालिपुत्र अङ्गदने कहा—'अश्विनीकुमारके पुत्र ये मैन्द और द्विविद दोनों वानर अत्यन्त वेगशाली और बलवान् हैं ॥ १ ॥

पितामहवरोत्सेकात् परमं दर्पमास्थितौ।
अश्विनोर्माननार्थं हि सर्वलोकपितामहः ॥ २ ॥
सर्वावध्यत्वमतुलमनयोर्दत्तवान् पुरा।
वरोत्सेकेन मत्तौ च प्रमथ्य महतीं चमूम् ॥ ३ ॥
सुराणाममृतं वीरौ पीतवन्तौ महाबलौ।

'पूर्वकालमें ब्रह्माजीका वर मिलनेसे इनका अभिमान बढ़ गया और ये बड़े घमंडमें भर गये थे। सम्पूर्ण लोकोंके पितामह ब्रह्माजीने अश्विनीकुमारोंका मान रखनेके लिये पहले इन दोनोंको यह अनुपम वरदान दिया था कि

तुम्हें कोई भी मार नहीं सकता। उस वरके अभिमानसे मत्त हो इन दोनों महाबली वीरोंने देवताओंकी विशाल सेनाको मथकर अमृत पी लिया था॥ २-३½॥

एतावेव हि संक्रुद्धौ सवाजिरथकुञ्जराम्॥ ४॥
लङ्कां नाशयितुं शक्तौ सर्वे तिष्ठन्तु वानराः।

'ये ही दोनों यदि क्रोधमें भर जायँ तो हाथी, घोड़े और रथोंसहित समूची लङ्काका नाश कर सकते हैं। भले ही और सब वानर बैठे रहें॥ ४½॥

अहमेकोऽपि पर्याप्तः सराक्षसगणां पुरीम्॥ ५॥
तां लङ्कां तरसा हन्तुं रावणं च महाबलम्।
किं पुनः सहितो वीरैर्बलवद्भिः कृतात्मभिः॥ ६॥
कृतास्त्रैः प्लवगैः शक्तैर्भवद्भिर्विजयैषिभिः।

'मैं अकेला भी राक्षसगणोंसहित समस्त लङ्कापुरीका वेगपूर्वक विध्वंस करने तथा महाबली रावणको मार डालनेके लिये पर्याप्त हूँ। फिर यदि सम्पूर्ण अस्त्रोंको जाननेवाले आप-जैसे वीर, बलवान्, शुद्धात्मा, शक्तिशाली और विजयाभिलाषी वानरोंकी सहायता मिल जाय, तब तो कहना ही क्या है?॥ ५-६½॥

वायुसूनोर्बलेनैव दग्धा लङ्केति नः श्रुतम्॥ ७॥
दृष्ट्वा देवी न चानीता इति तत्र निवेदितुम्।
न युक्तमिव पश्यामि भवद्भिः ख्यातपौरुषैः॥ ८॥

'वायुपुत्र हनुमान्‌जीने अकेले जाकर अपने पराक्रमसे ही लङ्काको फूँक डाला—यह बात हम सब लोगोंने सुन ही ली। आप-जैसे ख्यातनामा पुरुषार्थी वीरोंके रहते हुए मुझे भगवान् श्रीरामके सामने यह निवेदन करना उचित नहीं जान पड़ता कि 'हमने सीतादेवीका दर्शन तो किया; किंतु उन्हें ला नहीं सके'॥ ७-८॥

नहि वः प्लवने कश्चिन्नापि कश्चित् पराक्रमे।
तुल्यः सामरदैत्येषु लोकेषु हरिसत्तमाः॥ ९॥

'वानरशिरोमणियो! देवताओं और दैत्योंसहित सम्पूर्ण लोकोंमें कोई भी ऐसा वीर नहीं है, जो दूरतककी छलाँग मारने और पराक्रम दिखानेमें आपलोगोंकी समानता कर सके॥ ९॥

जित्वा लङ्कां सरक्षौघां हत्वा तं रावणं रणे।
सीतामादाय गच्छामः सिद्धार्था हृष्टमानसाः॥ १०॥

'अतः निशाचरसमुदायसहित लङ्काको जीतकर, युद्धमें रावणका वध करके, सीताको साथ ले, सफलमनोरथ एवं प्रसन्नचित्त होकर हमलोग श्रीरामचन्द्रजीके पास चलें॥ १०॥

तेष्वेवं हतवीरेषु राक्षसेषु हनूमता।
किमन्यदत्र कर्तव्यं गृहीत्वा याम जानकीम्॥ ११॥

'जब हनुमान्‌जीने राक्षसोंके प्रमुख वीरोंको मार डाला है, ऐसी परिस्थितिमें हमारा इसके सिवा और क्या कर्तव्य हो सकता है कि हम जनकनन्दिनी सीताको साथ लेकर ही चलें॥ ११॥

रामलक्ष्मणयोर्मध्ये न्यस्याम जनकात्मजाम्।
किं व्यलीकैस्तु तान् सर्वान् वानरान् वानरर्षभान्॥
वयमेव हि गत्वा तान् हत्वा राक्षसपुङ्गवान्।
राघवं द्रष्टुमर्हामः सुग्रीवं सहलक्ष्मणम्॥ १२॥

'कपिवरो! हम जनककिशोरीको ले चलकर श्रीराम और लक्ष्मणके बीचमें खड़ी कर दें। किष्किन्धामें जुटे हुए उन सब वानरोंको कष्ट देनेकी क्या आवश्यकता है। हमलोग ही लङ्कामें चलकर वहाँके मुख्य-मुख्य राक्षसोंका वध कर डालें, उसके बाद लौटकर श्रीराम, लक्ष्मण तथा सुग्रीवका दर्शन करें'॥ १२-१३॥

तमेवं कृतसंकल्पं जाम्बवान् हरिसत्तमः।
उवाच परमप्रीतो वाक्यमर्थवदर्थवित्॥ १४॥

अङ्गदका ऐसा संकल्प जानकर वानर-भालुओंमें श्रेष्ठ और अर्थतत्त्वके ज्ञाता जाम्बवान्‌ने अत्यन्त प्रसन्न होकर यह सार्थक बात कही—॥ १४॥

नैषा बुद्धिर्महाबुद्धे यद् ब्रवीषि महाकपे।
विचेतुं वयमाज्ञप्ता दक्षिणां दिशमुत्तमाम्॥ १५॥
नानेतुं कपिराजेन नैव रामेण धीमता।

'महाकपे! तुम बड़े बुद्धिमान् हो तथापि इस समय जो कुछ कह रहे हो, यह बुद्धिमानीकी बात नहीं है; क्योंकि वानरराज सुग्रीव तथा परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामने हमें उत्तम दक्षिण दिशामें केवल सीताको खोजनेकी आज्ञा दी है, साथ ले आनेकी नहीं॥ १५½॥

कथंचिन्निर्जितां सीतामस्माभिर्नाभिरोचयेत्॥ १६॥
राघवो नृपशार्दूलः कुलं व्यपदिशन् स्वकम्।

'यदि हमलोग किसी तरह सीताको जीतकर उनके पास ले भी चलें तो नृपश्रेष्ठ श्रीराम अपने कुलके व्यवहारका स्मरण करते हुए हमारे इस कार्यको पसंद नहीं करेंगे १६½

प्रतिज्ञाय स्वयं राजा सीताविजयमग्रतः॥ १७॥
सर्वेषां कपिमुख्यानां कथं मिथ्या करिष्यति।

'राजा श्रीरामने सभी प्रमुख वानरवीरोंके सामने स्वयं ही सीताको जीतकर लानेकी प्रतिज्ञा की है, उसे वे मिथ्या कैसे करेंगे?॥ १७½॥

विफलं कर्म च कृतं भवेत् तुष्टिर्न तस्य च॥ १८॥
वृथा च दर्शितं वीर्यं भवेद् वानरपुङ्गवाः।

'अतः वानरशिरोमणियो! ऐसी अवस्थामें हमारा किया-कराया कार्य निष्फल हो जायगा। भगवान् श्रीरामको संतोष भी नहीं होगा और हमारा पराक्रम दिखाना भी व्यर्थ सिद्ध होगा॥ १८½॥

तस्माद् गच्छाम वै सर्वे यत्र रामः सलक्ष्मणः।
सुग्रीवश्च महातेजाः कार्यस्यास्य निवेदने ॥ १९ ॥

'इसलिये हम सब लोग इस कार्यकी सूचना देनेके लिये वहीं चलें, जहाँ लक्ष्मणसहित भगवान् श्रीराम और महातेजस्वी सुग्रीव विद्यमान हैं ॥ १९ ॥

न तावदेषा मतिरक्षमा नो
यथा भवान् पश्यति राजपुत्र।
यथा तु रामस्य मतिर्निविष्टा
तथा भवान् पश्यतु कार्यसिद्धिम् ॥ २० ॥

'राजकुमार! तुम जैसा देखते या सोचते हो, यह विचार हमलोगोंके योग्य ही है—हम इसे न कर सकें, ऐसी बात नहीं है; तथापि इस विषयमें भगवान् श्रीरामका जैसा निश्चय हो, उसीके अनुसार तुम्हें कार्यसिद्धिपर दृष्टि रखनी चाहिये' ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें साठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः

वानरोंका मधुवनमें जाकर वहाँके मधु एवं फलोंका मनमाना उपभोग करना और वनरक्षकको घसीटना

ततो जाम्बवतो वाक्यमगृह्णन्त वनौकसः।
अङ्गदप्रमुखा वीरा हनूमांश्च महाकपिः ॥ १ ॥

तदनन्तर अङ्गद आदि सभी वीर वानरों और महाकपि हनुमान्‌ने भी जाम्बवान्‌की बात मान ली ॥ १ ॥

प्रीतिमन्तस्ततः सर्वे वायुपुत्रपुरःसराः।
महेन्द्राग्रात् समुत्पत्य पुप्लुवुः प्लवगर्षभाः ॥ २ ॥

फिर वे सब श्रेष्ठ वानर पवनपुत्र हनुमान्‌को आगे करके मन-ही-मन प्रसन्नताका अनुभव करते हुए महेन्द्रगिरिके शिखरसे उछलते-कूदते चल दिये ॥ २ ॥

मेरुमन्दरसंकाशा मत्ता इव महागजाः।
छादयन्त इवाकाशं महाकाया महाबलाः ॥ ३ ॥

वे मेरु पर्वतके समान विशालकाय और बड़े-बड़े मदमत्त गजराजोंके समान महाबली वानर आकाशको आच्छादित करते हुए-से जा रहे थे ॥ ३ ॥

सभाज्यमानं भूतैस्तमात्मवन्तं महाबलम्।
हनुमन्तं महावेगं वहन्त इव दृष्टिभिः ॥ ४ ॥

उस समय सिद्ध आदि भूतगण अत्यन्त वेगशाली महाबली बुद्धिमान् हनुमान्‌जीकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे और अपलक नेत्रोंसे उनकी ओर इस तरह देख रहे थे, मानो अपनी दृष्टियोंद्वारा ही उन्हें ढो रहे हों ॥ ४ ॥

राघवे चार्थनिर्वृत्तिं कर्तुं च परमं वशः। य
समाधाय समृद्धार्थाः कर्मसिद्धिभिरुन्नताः ॥ ५ ॥
प्रियाख्यानोन्मुखाः सर्वे सर्वे युद्धाभिनन्दिनः।
सर्वे रामप्रतीकारे निश्चितार्था मनस्विनः ॥ ६ ॥

श्रीरघुनाथजीके कार्यकी सिद्धि करनेका उत्तम यश पाकर उन वानरोंका मनोरथ सफल हो गया था। उस कार्यकी सिद्धि हो जानेसे उनका उत्साह बढ़ा हुआ था। वे सभी भगवान् श्रीरामको प्रिय संवाद सुनानेके लिये उत्सुक थे। सभी युद्धका अभिनन्दन करनेवाले थे। श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा रावणका पराभव हो—ऐसा सबने निश्चय कर लिया था तथा वे सब-के-सब मनस्वी वीर थे ॥ ५-६ ॥

प्लवमानाः खमाप्लुत्य ततस्ते काननौकसः।
नन्दनोपममासेदुर्वनं द्रुमशतायुतम् ॥ ७ ॥

आकाशमें छलाँग मारते हुए वे वनवासी वानर सैकड़ों वृक्षोंसे भरे हुए एक सुन्दर वनमें जा पहुँचे, जो नन्दनवनके समान मनोहर था ॥ ७ ॥

यत् तन्मधुवनं नाम सुग्रीवस्याभिरक्षितम्।
अधृष्यं सर्वभूतानां सर्वभूतमनोहरम् ॥ ८ ॥

उसका नाम मधुवन था। सुग्रीवका वह मधुवन सर्वथा सुरक्षित था। समस्त प्राणियोंमेंसे कोई भी उसको हानि नहीं पहुँचा सकता था। उसे देखकर सभी प्राणियोंका मन लुभा जाता था ॥ ८ ॥

यद् रक्षति महावीरः सदा दधिमुखः कपिः।
मातुलः कपिमुख्यस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ॥ ९ ॥

कपिश्रेष्ठ महात्मा सुग्रीवके मामा महावीर दधिमुख नामक वानर सदा उस वनकी रक्षा करते थे ॥ ९ ॥

ते तद् वनमुपागम्य बभूवुः परमोत्कटाः।
वानरा वानरेन्द्रस्य मनःकान्तं महावनम् ॥ १० ॥

वानरराज सुग्रीवके उस मनोरम महावनके पास पहुँचकर वे सभी वानर वहाँका मधु पीने और फल खाने आदिके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो गये ॥ १० ॥

ततस्ते वानरा हृष्टा दृष्ट्वा मधुवनं महत्।
कुमारमभ्ययाचन्त मधूनि मधुपिङ्गलाः ॥ ११ ॥

तब हर्षसे भरे हुए तथा मधुके समान पिङ्गल वर्णवाले उन वानरोंने उस महान् मधुवनको देखकर कुमार अङ्गदसे मधुपान करनेकी आज्ञा माँगी ॥ ११ ॥

ततः कुमारस्तान् वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखान् कपीन्।
अनुमान्य ददौ तेषां निसर्गं मधुभक्षणे ॥ १२ ॥

उस समय कुमार अङ्गदने जाम्बवान् आदि बड़े-बूढ़े वानरोंकी अनुमति लेकर उन सबको मधु पीनेकी आज्ञा दे दी ॥ १२ ॥

ते निसृष्टाः कुमारेण धीमता वालिसूनुना।
हरयः समपद्यन्त द्रुमान् मधुकराकुलान् ॥ १३ ॥

बुद्धिमान् वालिपुत्र राजकुमार अङ्गदकी आज्ञा पाकर वे वानर भौंरोंके झुंडसे भरे हुए वृक्षोंपर चढ़ गये ॥ १३ ॥

भक्षयन्तः सुगन्धीनि मूलानि च फलानि च।
जग्मुः प्रहर्षं ते सर्वे बभूवुश्च मदोत्कटाः ॥ १४ ॥

वहाँके सुगन्धित फल-मूलोंका भक्षण करते हुए उन सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे सभी मदसे उन्मत्त हो गये ॥ १४ ॥

ततश्चानुमताः सर्वे सुसंहृष्टा वनौकसः।
मुदिताश्च ततस्ते च प्रनृत्यन्ति ततस्ततः ॥ १५ ॥

युवराजकी अनुमति मिल जानेसे सभी वानरोंको बड़ा हर्ष हुआ। वे आनन्दमग्न होकर इधर-उधर नाचने लगे ॥

गायन्ति केचित् प्रहसन्ति केचि-
न्नृत्यन्ति केचित् प्रणमन्ति केचित्।
पतन्ति केचित् प्रचरन्ति केचित्
प्लवन्ति केचित् प्रलपन्ति केचित् ॥ १६ ॥

कोई गाते, कोई हँसते, कोई नाचते, कोई नमस्कार करते, कोई गिरते-पड़ते, कोई जोर-जोरसे चलते, कोई उछलते-कूदते और कोई प्रलाप करते थे ॥ १६ ॥

परस्परं केचिदुपाश्रयन्ति
परस्परं केचिदतिब्रुवन्ति।
द्रुमाद् द्रुमं केचिदभिद्रवन्ति
क्षितौ नगाग्रान्निपतन्ति केचित् ॥ १७ ॥

कोई एक दूसरेके पास जाकर मिलते, कोई आपसमें विवाद करते, कोई एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर दौड़ जाते और कोई वृक्षोंकी डालियोंसे पृथ्वीपर कूद पड़ते थे ॥ १७ ॥

महीतलात् केचिदुदीर्णवेगा
महाद्रुमाग्राण्यभिसम्पतन्ति।
गायन्तमन्यः प्रहसन्नुपैति
हसन्तमन्यः प्ररुदन्नुपैति ॥ १८ ॥

कितने ही प्रचण्ड वेगवाले वानर पृथ्वीसे दौड़कर बड़े-बड़े वृक्षोंकी चोटियोंतक पहुँच जाते थे। कोई गाता तो दूसरा उसके पास हँसता हुआ जाता था। कोई हँसते हुएके पास जोर-जोरसे रोता हुआ पहुँचता था ॥ १८ ॥

तुदन्तमन्यः प्रणदन्नुपैति
समाकुलं तत् कपिसैन्यमासीत्।
न चात्र कश्चिन्न बभूव मत्तो
न चात्र कश्चिन्न बभूव दृप्तः ॥ १९ ॥

कोई दूसरेको पीड़ा देता तो दूसरा उसके पास बड़े जोरसे गर्जना करता हुआ आता था। इस प्रकार वह सारी वानरसेना मदोन्मत्त होकर उसके अनुरूप चेष्टा कर रही थी। वानरोंके उस समुदायमें कोई भी ऐसा नहीं था, जो मतवाला न हो गया हो और कोई भी ऐसा नहीं था, जो दर्पसे भर न गया हो ॥ १९ ॥

ततो वनं तत् परिभक्ष्यमाणं
द्रुमांश्च विध्वंसितपत्रपुष्पान्।
समीक्ष्य कोपाद् दधिवक्त्रनामा
निवारयामास कपिः कपींस्तान् ॥ २० ॥

तदनन्तर मधुवनके फल-मूल आदिका भक्षण होता और वहाँके वृक्षोंके पत्तों एवं फूलोंको नष्ट किया जाता देख दधिमुख नामक वानरको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने उन वानरोंको वैसा करनेसे रोका ॥ २० ॥

स तैः प्रवृद्धैः परिभर्त्स्यमानो
वनस्य गोप्ता हरिवृद्धवीरः।
चकार भूयो मतिमुग्रतेजा
वनस्य रक्षां प्रति वानरेभ्यः ॥ २१ ॥

जिनपर अधिक नशा चढ़ गया था, उन बड़े-बड़े वानरोंने वनकी रक्षा करनेवाले उस वृद्ध वानरवीरको उलटे डाँट बतानी शुरू की, तथापि उग्र तेजस्वी दधिमुखने पुनः उन वानरोंसे वनकी रक्षा करनेका विचार किया ॥ २१ ॥

उवाच कांश्चित् परुषाण्यभीत-
मसक्तमन्यांश्च तलैर्जघान।
समेत्य कैश्चित् कलहं चकार
तथैव साम्नोपजगाम कांश्चित् ॥ २२ ॥

उन्होंने निर्भय होकर किन्हीं-किन्हींको कड़ी बातें सुनायीं। कितनोंको थप्पड़ोंसे मारा। बहुतोंके साथ भिड़कर झगड़ा किया और किन्हीं-किन्हींके प्रति शान्तिपूर्ण उपायसे ही काम लिया ॥ २२ ॥

स तैर्मदादप्रतिवार्यवेगै-
र्बलाच्च तेन प्रतिवार्यमाणैः।

प्रधर्षणे त्यक्तभयैः समेत्य
प्रकृष्यते चाप्यनवेक्ष्य दोषम् ॥ २३ ॥

मदके कारण जिनके वेगको रोकना असम्भव हो गया था, उन वानरोंको जब दधिमुख बलपूर्वक रोकनेकी चेष्टा करने लगे, तब वे सब मिलकर उन्हें बलपूर्वक इधर-उधर घसीटने लगे। वनरक्षकपर आक्रमण करनेसे राजदण्ड प्राप्त होगा, इसकी ओर उनकी दृष्टि नहीं गयी। अतएव वे सब निर्भय होकर उन्हें इधर-उधर खींचने लगे ॥ २३ ॥

नखैस्तुदन्तो दशनैर्दशन्त-
स्तलैश्च पादैश्च समापयन्तः।
मदात् कपिं ते कपयः समन्ता-
न्महावनं निर्विषयं च चक्रुः ॥ २४ ॥

मदके प्रभावसे वे वानर कपिवर दधिमुखको नखोंसे बकोटने, दाँतोंसे काटने और थप्पड़ों तथा लातोंसे मार-मारकर अधमरा करने लगे। इस प्रकार उन्होंने उस विशाल वनको सब ओरसे फल आदिसे शून्य कर दिया ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें इकसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः

वानरोंद्वारा मधुवनके रक्षकों और दधिमुखका पराभव तथा सेवकोंसहित दधिमुखका सुग्रीवके पास जाना

तानुवाच हरिश्रेष्ठो हनूमान् वानरर्षभः।
अव्यग्रमनसो यूयं मधु सेवत वानराः ॥ १ ॥
अहमावर्जयिष्यामि युष्माकं परिपन्थिनः।

उस समय वानरशिरोमणि कपिवर हनुमान्‌ने अपने साथियोंसे कहा—'वानरो! तुम सब लोग बेखटके मधुका पान करो। मैं तुम्हारे विरोधियोंको रोकूँगा' ॥ १½ ॥

श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं हरीणां प्रवरोऽङ्गदः ॥ २ ॥
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पिबन्तु हरयो मधु।
अवश्यं कृतकार्यस्य वाक्यं हनुमतो मया ॥ ३ ॥
अकार्यमपि कर्तव्यं किमङ्ग पुनरीदृशम्।

हनुमान्‌जीकी बात सुनकर वानरप्रवर अङ्गदने भी प्रसन्नचित्त होकर कहा—'वानरगण अपनी इच्छाके अनुसार मधुपान करें। हनुमान्‌जी इस समय कार्य सिद्ध करके लौटे हैं, अतः इनकी बात स्वीकार करनेके योग्य न हो तो भी मुझे अवश्य माननी चाहिये। फिर ऐसी बातके लिये तो कहना ही क्या है?' ॥ २-३½ ॥

अङ्गदस्य मुखाच्छ्रुत्वा वचनं वानरर्षभाः ॥ ४ ॥
साधु साध्विति संहृष्टा वानराः प्रत्यपूजयन्।

अङ्गदके मुखसे ऐसी बात सुनकर सभी श्रेष्ठ वानर हर्षसे खिल उठे और 'साधु-साधु' कहते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४½ ॥

पूजयित्वाङ्गदं सर्वे वानरा वानरर्षभम् ॥ ५ ॥
जग्मुर्मधुवनं यत्र नदीवेग इव द्रुमम्।

वानरशिरोमणि अङ्गदको प्रशंसा करके वे सब वानर जहाँ मधुवन था, उस मार्गपर उसी तरह दौड़े गये, जैसे नदीके जलका वेग तटवर्ती वृक्षकी ओर जाता है ॥ ५½ ॥

ते प्रविष्टा मधुवनं पालानाक्रम्य शक्तितः ॥ ६ ॥
अतिसर्गाच्च पटवो दृष्ट्वा श्रुत्वा च मैथिलीम्।
पपुः सर्वे मधु तदा रसवत् फलमाददुः ॥ ७ ॥

मिथिलेशकुमारी सीताको हनुमान्‌जी तो देखकर आये थे और अन्य वानरोंने उन्हींके मुखसे यह सुन लिया था कि वे लङ्कामें हैं, अतः उन सबका उत्साह बढ़ा हुआ था। इधर युवराज अङ्गदका आदेश भी मिल गया था, इसलिये वे सामर्थ्यशाली सभी वानर वनरक्षकोंपर पूरी शक्तिसे आक्रमण करके मधुवनमें घुस गये और वहाँ इच्छानुसार मधु पीने तथा रसीले फल खाने लगे ॥ ६-७ ॥

उत्पत्य च ततः सर्वे वनपालान् समागतान्।
ते ताडयन्तः शतशः सक्ता मधुवने तदा ॥ ८ ॥

रोकनेके लिये अपने पास आये हुए रक्षकोंको वे सब वानर सैकड़ोंकी संख्यामें जुटकर उछल-उछलकर मारते थे और मधुवनके मधु पीने एवं फल खानेमें लगे हुए थे ॥ ८ ॥

मधूनि द्रोणमात्राणि बाहुभिः परिगृह्य ते।
पिबन्ति कपयः केचित् सङ्घशस्तत्र हृष्टवत् ॥ ९ ॥

कितने ही वानर झुंड-के-झुंड एकत्र हो वहाँ अपनी भुजाओंद्वारा एक-एक द्रोण[1] मधुसे भरे हुए छत्तोंको पकड़ लेते और सहर्ष पी जाते थे ॥ ९ ॥

---

[1] आठ आढक या बत्तीस सेरके मापको द्रोण कहते हैं। यह प्राचीनकालमें प्रचलित था।

घ्नन्ति स्म सहिताः सर्वे भक्षयन्ति तथापरे ।
केचित् पीत्वापविध्यन्ति मधूनि मधुपिङ्गलाः ॥ १० ॥
मधूच्छिष्टेन केचिच्च जघ्नुरन्योन्यमुत्कटाः ।
अपरे वृक्षमूलेषु शाखा गृह्य व्यवस्थिताः ॥ ११ ॥

मधुके समान पिङ्गल वर्णवाले वे सब वानर एक साथ होकर मधुके छत्तोंको पीटते, दूसरे वानर उस मधुको पीते और कितने ही पीकर बचे हुए मधुको फेंक देते थे। कितने ही मदमत्त हो एक दूसरेको मोमसे मारते थे और कितने ही वानर वृक्षोंके नीचे डालियाँ पकड़कर खड़े हो गये थे ॥ १०-११ ॥

अत्यर्थं च मदग्लानाः पर्णान्यास्तीर्य शेरते ।
उन्मत्तवेगाः प्लवगा मधुमत्ताश्च हृष्टवत् ॥ १२ ॥

कितने ही वानर मदके कारण अत्यन्त ग्लानिका अनुभव कर रहे थे। उनका वेग उन्मत्त पुरुषोंके समान देखा जाता था। वे मधु पी-पीकर मतवाले हो गये थे, अतः बड़े हर्षके साथ पत्ते बिछाकर सो गये ॥ १२ ॥

क्षिपन्त्यपि तथान्योन्यं स्खलन्ति च तथापरे ।
केचित् क्ष्वेडान् प्रकुर्वन्ति केचित् कूजन्ति हृष्टवत् ॥ १३ ॥

कोई एक दूसरेपर मधु फेंकते, कोई लड़खड़ाकर गिरते, कोई गरजते और कोई हर्षके साथ पक्षियोंकी भाँति कलरव करते थे ॥ १३ ॥

हरयो मधुना मत्ताः केचित् सुप्ता महीतले ।
धृष्टाः केचिद्धसन्त्यन्ये केचित् कुर्वन्ति चेतरत् ॥ १४ ॥

मधुसे मतवाले हुए कितने ही वानर पृथ्वीपर सो गये थे। कुछ ढीठ वानर हँसते और कुछ रोदन करते थे ॥ १४ ॥

कृत्वा केचिद् वदन्त्यन्ये केचिद् बुध्यन्ति चेतरत् ।
येऽप्यत्र मधुपालाः स्युः प्रेष्या दधिमुखस्य तु ॥ १५ ॥
तेऽपि तैर्वानरैर्भीमैः प्रतिषिद्धा दिशो गताः ।
जानुभिश्च प्रघृष्टाश्च देवमार्गं च दर्शिताः ॥ १६ ॥

कुछ वानर दूसरा काम करके दूसरा बताते थे और कुछ उस बातका दूसरा ही अर्थ समझते थे। उस वनमें जो दधिमुखके सेवक मधुकी रक्षामें नियुक्त थे, वे भी उन भयंकर वानरोंद्वारा रोके या पीटे जानेपर सभी दिशाओंमें भाग गये। उनमेंसे कई रखवालोंको अङ्गदके दलवालोंने जमीनपर पटककर घुटनोंसे खूब रगड़ा और कितनोंको पैर पकड़कर आकाशमें उछाल दिया था अथवा उन्हें पीठके बल गिराकर आकाश दिखा दिया था ॥ १५-१६ ॥

अब्रुवन् परमोद्विग्ना गत्वा दधिमुखं वचः ।
हनूमता दत्तवरैर्हतं मधुवनं बलात् ।
वयं च जानुभिर्घृष्टा देवमार्गं च दर्शिताः ॥ १७ ॥

वे सब सेवक अत्यन्त उद्विग्न हो दधिमुखके पास जाकर बोले—'प्रभो! हनुमान्‌जीके बढ़ावा देनेसे उनके दलके सभी वानरोंने बलपूर्वक मधुवनका विध्वंस कर डाला, हमलोगोंको गिराकर घुटनोंसे रगड़ा और हमें पीठके बल पटककर आकाशका दर्शन करा दिया' ॥ १७ ॥

तदा दधिमुखः क्रुद्धो वनपस्तत्र वानरः ।
हतं मधुवनं श्रुत्वा सान्त्वयामास तान् हरीन् ॥ १८ ॥

तब उस वनके प्रधान रक्षक दधिमुख नामक वानर मधुवनके विध्वंसका समाचार सुनकर वहाँ कुपित हो उठे और उन वानरोंको सान्त्वना देते हुए बोले— ॥ १८ ॥

एतागच्छत गच्छामो वानरानतिदर्पितान् ।
बलेनावारयिष्यामि प्रभुञ्जानान् मधूत्तमम् ॥ १९ ॥

'आओ-आओ, चलें इन वानरोंके पास। इनका घमंड बहुत बढ़ गया है। मधुवनके उत्तम मधुको लूटकर खानेवाले इन सबको मैं बलपूर्वक रोकूँगा' ॥ १९ ॥

श्रुत्वा दधिमुखस्येदं वचनं वानरर्षभाः ।
पुनर्वीरा मधुवनं तेनैव सहिता ययुः ॥ २० ॥

दधिमुखका यह वचन सुनकर वे वीर कपिश्रेष्ठ पुनः उन्हींके साथ मधुवनको गये ॥ २० ॥

मध्ये चैषां दधिमुखः सुप्रगृह्य महातरुम् ।
समभ्यधावन् वेगेन सर्वे ते च प्लवंगमाः ॥ २१ ॥

इनके बीचमें खड़े हुए दधिमुखने एक विशाल वृक्ष हाथमें लेकर बड़े वेगसे हनुमान्‌जीके दलपर धावा किया। साथ ही वे सब वानर भी उन मधु पीनेवाले वानरोंपर टूट पड़े ॥ २१ ॥

ते शिलाः पादपांश्चैव पाषाणानपि वानराः ।
गृहीत्वाभ्यागमन् क्रुद्धा यत्र ते कपिकुञ्जराः ॥ २२ ॥

क्रोधसे भरे हुए वे वानर शिला, वृक्ष और पाषाण लिये उस स्थानपर आये, जहाँ वे हनुमान् आदि कपिश्रेष्ठ मधुका सेवन कर रहे थे ॥ २२ ॥

बलान्निवारयन्तश्च आसेदुर्हरयो हरीन् ।
संदष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा भर्त्सयन्तो मुहुर्मुहुः ॥ २३ ॥

अपने ओठोंको दाँतोंसे दबाते और क्रोधपूर्वक बारंबार धमकाते हुए ये सब वानर उन वानरोंको बलपूर्वक रोकनेके लिये उनके पास आ पहुँचे ॥ २३ ॥

अथ दृष्ट्वा दधिमुखं क्रुद्धं वानरपुङ्गवाः ।
अभ्यधावन्त वेगेन हनुमत्प्रमुखास्तदा ॥ २४ ॥

दधिमुखको कुपित हुआ देख हनुमान् आदि सभी श्रेष्ठ वानर उस समय बड़े वेगसे उनकी ओर दौड़े ॥ २४ ॥

सवृक्षं तं महाबाहुमापतन्तं महाबलम् ।

वेगवन्तं विजग्राह बाहुभ्यां कुपितोऽङ्गदः ॥ २५ ॥

वृक्ष लेकर आते हुए वेगशाली महाबली महाबाहु दधिमुखको कुपित हुए अङ्गदने दोनों हाथोंसे पकड़ लिया ॥ २५ ॥

मदान्धो न कृपां चक्रे आर्यकोऽयं ममेति सः ।
अथैनं निष्पिपेषाशु वेगेन वसुधातले ॥ २६ ॥

वे मधु पीकर मदान्ध हो रहे थे, अतः 'ये मेरे नाना हैं' ऐसा समझकर उन्होंने उनपर दया नहीं दिखायी । वे तुरंत बड़े वेगसे पृथ्वीपर पटककर उन्हें रगड़ने लगे ॥ २६ ॥

स भग्नबाहूरुमुखो विह्वलः शोणितोक्षितः ।
प्रमुमोह महावीरो मुहूर्तं कपिकुञ्जरः ॥ २७ ॥

उनकी भुजाएँ, जाँघें और मुँह सभी टूट-फूट गये । वे खूनसे नहा गये और व्याकुल हो उठे । वे महावीर कपिकुञ्जर दधिमुख वहाँ दो घड़ीतक मूर्छित पड़े रहे ॥ २७ ॥

स कथंचिद् विमुक्तस्तैर्वानरैर्वानरर्षभः ।
उवाचैकान्तमागत्य स्वान् भृत्यान् समुपागतान् ॥ २८ ॥

उन वानरोंके हाथसे किसी तरह छुटकारा मिलनेपर वानरश्रेष्ठ दधिमुख एकान्तमें आये और वहाँ एकत्र हुए अपने सेवकोंसे बोले— ॥ २८ ॥

एतागच्छत गच्छामो भर्ता नो यत्र वानरः ।
सुग्रीवो विपुलग्रीवः सह रामेण तिष्ठति ॥ २९ ॥

'आओ-आओ, अब वहाँ चलें, जहाँ हमारे स्वामी मोटी गर्दनवाले सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीके साथ विराजमान हैं ॥ २९ ॥

सर्वं चैवाङ्गदे दोषं श्रावयिष्याम पार्थिवे ।
अमर्षी वचनं श्रुत्वा घातयिष्यति वानरान् ॥ ३० ॥

'राजाके पास चलकर सारा दोष अङ्गदके माथे मढ़ देंगे । सुग्रीव बड़े क्रोधी हैं । मेरी बात सुनकर वे इन सभी वानरोंको मरवा डालेंगे ॥ ३० ॥

इष्टं मधुवनं ह्येतत् सुग्रीवस्य महात्मनः ।
पितृपैतामहं दिव्यं देवैरपि दुरासदम् ॥ ३१ ॥

'महात्मा सुग्रीवको यह मधुवन बहुत ही प्रिय है । यह उनके बाप-दादोंका दिव्य वन है । इसमें प्रवेश करना देवताओंके लिये भी कठिन है ॥ ३१ ॥

स वानरानिमान् सर्वान् मधुलुब्धान् गतायुषः ।
घातयिष्यति दण्डेन सुग्रीवः ससुहृज्जनान् ॥ ३२ ॥

'मधुके लोभी इन सभी वानरोंकी आयु समाप्त हो चली है । सुग्रीव इन्हें कठोर दण्ड देकर इनके सुहृदोंसहित इन सबको मरवा डालेंगे ॥ ३२ ॥

वध्या ह्येते दुरात्मानो नृपाज्ञापरिपन्थिनः ।
अमर्षप्रभवो रोषः सफलो मे भविष्यति ॥ ३३ ॥

'राजाकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाले ये दुरात्मा राजद्रोही वानर वधके ही योग्य हैं । इनका वध होनेपर ही मेरा अमर्षजनित रोष सफल होगा' ॥ ३३ ॥

एवमुक्त्वा दधिमुखो वनपालान् महाबलः ।
जगाम सहसोत्पत्य वनपालैः समन्वितः ॥ ३४ ॥

वनके रक्षकोंसे ऐसा कहकर उन्हें साथ ले महाबली दधिमुख सहसा उछलकर आकाशमार्गसे चले ॥ ३४ ॥

निमेषान्तरमात्रेण स हि प्राप्तो वनालयः ।
सहस्रांशुसुतो धीमान् सुग्रीवो यत्र वानरः ॥ ३५ ॥

और पलक मारते-मारते वे उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ बुद्धिमान् सूर्यपुत्र वानरराज सुग्रीव विराजमान थे ॥ ३५ ॥

रामं च लक्ष्मणं चैव दृष्ट्वा सुग्रीवमेव च ।
समप्रतिष्ठां जगतीमाकाशान्निपपात ह ॥ ३६ ॥

श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीवको दूरसे ही देखकर वे आकाशसे समतल भूमिपर कूद पड़े ॥ ३६ ॥

स निपत्य महावीरः सर्वैस्तैः परिवारितः ।
हरिर्दधिमुखः पालैः पालानां परमेश्वरः ॥ ३७ ॥
स दीनवदनो भूत्वा कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम् ।
सुग्रीवस्याशु तौ मूर्ध्ना चरणौ प्रत्यपीडयत् ॥ ३८ ॥

वनरक्षकोंके स्वामी महावीर वानर दधिमुख पृथ्वीपर उतरकर उन रक्षकोंसे घिरे हुए उदास मुख किये सुग्रीवके पास गये और सिरपर अञ्जलि बाँधे उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर उन्होंने प्रणाम किया ॥ ३७-३८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें बासठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६२ ॥

* * *

त्रिषष्टितमः सर्गः

दधिमुखसे मधुवनके विध्वंसका समाचार सुनकर सुग्रीवका हनुमान् आदि वानरोंकी सफलताके विषयमें अनुमान

ततो मूर्ध्ना निपतितं वानरं वानरर्षभः।
दृष्ट्वैवोद्विग्नहृदयो वाक्यमेतदुवाच ह॥ १॥

वानर दधिमुखको माथा टेक प्रणाम करते देख वानरशिरोमणि सुग्रीवका हृदय उद्विग्न हो उठा। वे उनसे इस प्रकार बोले—॥ १॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ कस्मात् त्वं पादयोः पतितो मम।
अभयं ते प्रदास्यामि सत्यमेवाभिधीयताम्॥ २॥

'उठो-उठो। तुम मेरे पैरोंपर कैसे पड़े हो? मैं तुम्हें अभयदान देता हूँ। तुम सच्ची बात बताओ॥ २॥

किं सम्भ्रमाद्धितं कृत्स्नं ब्रूहि यद् वक्तुमर्हसि।
कच्चिन्मधुवने स्वस्ति श्रोतुमिच्छामि वानर॥ ३॥

'कहो, किसके भयसे यहाँ आये हो। जो पूर्णतः हितकर बात हो, उसे बताओ; क्योंकि तुम सब कुछ कहनेके योग्य हो। मधुवनमें कुशल तो है न? वानर! मैं तुम्हारे मुखसे यह सब सुनना चाहता हूँ'॥ ३॥

स समाश्वासितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना।
उत्थाय स महाप्राज्ञो वाक्यं दधिमुखोऽब्रवीत्॥ ४॥

महात्मा सुग्रीवके इस प्रकार आश्वासन देनेपर महाबुद्धिमान् दधिमुख खड़े होकर बोले—॥ ४॥

नैवर्क्षरजसा राजन् न त्वया न च वालिना।
वनं निसृष्टपूर्वं ते नाशितं तत्तु वानरैः॥ ५॥

'राजन्! आपके पिता ऋक्षरजाने, वालीने और आपने भी पहले कभी जिस वनके मनमाने उपभोगके लिये किसीको आज्ञा नहीं दी थी, उसीका हनूमान् आदि वानरोंने आज नाश कर दिया॥ ५॥

न्यवारयमहं सर्वान् सहैभिर्वनचारिभिः।
अचिन्तयित्वा मां हृष्टा भक्षयन्ति पिबन्ति च॥ ६॥

'मैंने इन वनरक्षक वानरोंके साथ उन सबको रोकनेकी बहुत चेष्टा की, परंतु वे मुझे कुछ भी न समझकर बड़े हर्षके साथ फल खाते और मधु पीते हैं॥ ६॥

एभिः प्रधर्षणायां च वारितं वनपालकैः।
मामप्यचिन्तयन् देव भक्षयन्ति वनौकसः॥ ७॥

'देव! इन हनुमान् आदि वानरोंने जब मधुवनमें लूट मचाना आरम्भ किया, तब हमारे इन वनरक्षकोंने उन सबको रोकनेकी चेष्टा की; परंतु वे वानर इनको और मुझे भी कुछ नहीं गिनते हुए वहाँके फल आदिका भक्षण कर रहे हैं॥ ७॥

शिष्टमत्रापविध्यन्ति भक्षयन्ति तथापरे।
निवार्यमाणास्ते सर्वे भ्रुकुटिं दर्शयन्ति हि॥ ८॥

'दूसरे, वानर वहाँ खाते-पीते तो हैं ही, उनके सामने जो कुछ बच जाता है, उसे उठाकर फेंक देते हैं और जब हमलोग रोकते हैं, तब वे सब हमें टेढ़ी भौंहें दिखाते हैं॥ ८॥

इमे हि संरब्धतरास्तदा तैः सम्प्रधर्षिताः।
निवार्यन्ते वनात् तस्मात् क्रुद्धैर्वानरपुङ्गवैः॥ ९॥

'जब ये रक्षक उनपर अधिक कुपित हुए, तब उन्होंने इनपर आक्रमण कर दिया। इतना ही नहीं, क्रोधसे भरे हुए उन वानरपुङ्गवोंने इन रक्षकोंको उस वनसे बाहर निकाल दिया॥ ९॥

ततस्तैर्बहुभिर्वीरैर्वानरैर्वानरर्षभाः।
संरक्तनयनैः क्रोधाद्धरयः सम्प्रधर्षिताः॥ १०॥

'बाहर निकालकर उन बहुसंख्यक वीर वानरोंने क्रोधसे लाल आँखें करके वनकी रक्षा करनेवाले इन श्रेष्ठ वानरोंको धर दबाया॥ १०॥

पाणिभिर्निहताः केचित् केचिज्जानुभिराहताः।
प्रकृष्टाश्च तदा कामं देवमार्गं च दर्शिताः॥ ११॥

'किन्हींको थप्पड़ोंसे मारा, किन्हींको घुटनोंसे रगड़ दिया, बहुतोंको इच्छानुसार घसीटा और कितनोंको पीठके बल पटककर आसमान दिखा दिया॥ ११॥

एवमेते हताः शूरास्त्वयि तिष्ठति भर्तरि।
कृत्स्नं मधुवनं चैव प्रकामं तैश्च भक्ष्यते॥ १२॥

'प्रभो! आप-जैसे स्वामीके रहते हुए ये शूरवीर वनरक्षक उनके द्वारा इस तरह मारे-पीटे गये हैं और, वे अपराधी वानर अपनी इच्छाके अनुसार सारे मधुवनका उपभोग कर रहे हैं'॥ १२॥

एवं विज्ञाप्यमानं तं सुग्रीवं वानरर्षभम्।
अपृच्छत् तं महाप्राज्ञो लक्ष्मणः परवीरहा॥ १३॥

वानरशिरोमणि सुग्रीवको जब इस प्रकार मधुवनके लूटे जानेका वृत्तान्त बताया जा रहा था, उस समय शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले परम बुद्धिमान् लक्ष्मणने उनसे पूछा—॥ १३॥

किमयं वानरो राजन् वनपः प्रत्युपस्थितः।

किं चार्थमभिनिर्दिश्य दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥ १४ ॥

'राजन्! वनकी रक्षा करनेवाला यह वानर यहाँ किस लिये उपस्थित हुआ है? और किस विषयकी ओर संकेत करके इसने दुखी होकर बात की है?' ॥ १४ ॥

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना।
लक्ष्मणं प्रत्युवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ १५ ॥

महात्मा लक्ष्मणके इस प्रकार पूछनेपर बातचीत करनेमें कुशल सुग्रीवने उन्हें यों उत्तर दिया—॥ १५ ॥

आर्य लक्ष्मण सम्प्राह वीरो दधिमुखः कपिः।
अङ्गदप्रमुखैर्वीरैर्भक्षितं मधु वानरैः ॥ १६ ॥

'आर्य लक्ष्मण! वीर वानर दधिमुखने मुझसे यह कहा है कि 'अङ्गद आदि वीर वानरोंने मधुवनका सारा मधु खा-पी लिया है' ॥ १६ ॥

नैषामकृतकार्याणामीदृशः स्याद् व्यतिक्रमः।
वनं यदभिपन्नास्ते साधितं कर्म तद् ध्रुवम् ॥ १७ ॥

'इसकी बात सुनकर मुझे यह अनुमान होता है कि वे जिस कार्यके लिये गये थे, उसे अवश्य ही उन्होंने पूरा कर लिया है। तभी उन्होंने मधुवनपर आक्रमण किया है। यदि वे अपना कार्य सिद्ध करके न आये होते तो उनके द्वारा ऐसा अपराध नहीं बना होता—वे मेरे मधुवनको लूटनेका साहस नहीं कर सकते थे ॥ १७ ॥

वारयन्तो भृशं प्राप्ताः पाला जानुभिराहताः।
तथा न गणितश्चायं कपिर्दधिमुखो बली ॥ १८ ॥
पतिर्मम वनस्यायमस्माभिः स्थापितः स्वयम्।
दृष्टा देवी न संदेहो न चान्येन हनूमता ॥ १९ ॥

'जब रक्षक उन्हें बारंबार रोकनेके लिये आये, तब उन्होंने इन सबको पटककर घुटनोंसे रगड़ा है तथा इन बलवान् वानर दधिमुखको भी कुछ नहीं समझा है। ये ही मेरे उस वनके मालिक या प्रधान रक्षक हैं। मैंने स्वयं ही इन्हें इस कार्यमें नियुक्त किया है (फिर भी उन्होंने इनकी बात नहीं मानी है)। इससे जान पड़ता है, उन्होंने देवी सीताका दर्शन अवश्य कर लिया। इसमें कोई संदेह नहीं है। यह काम और किसीका नहीं, हनुमान्‌जीका ही है (उन्होंने ही सीताका दर्शन किया है) ॥ १८-१९ ॥

न ह्यन्यः साधने हेतुः कर्मणोऽस्य हनूमतः।
कार्यसिद्धिर्हनुमति मतिश्च हरिपुङ्गवे ॥ २० ॥
व्यवसायश्च वीर्यं च श्रुतं चापि प्रतिष्ठितम्।

'इस कार्यको सिद्ध करनेमें हनुमान्‌जीके सिवा और कोई कारण बना हो, ऐसा सम्भव नहीं है। वानरशिरोमणि हनुमान्‌में ही कार्य-सिद्धिकी शक्ति और बुद्धि है। उन्हींमें उद्योग, पराक्रम और शास्त्रज्ञान भी प्रतिष्ठित है ॥ २०½ ॥

जाम्बवान् यत्र नेता स्यादङ्गदश्च महाबलः ॥ २१ ॥
हनूमांश्चाप्यधिष्ठाता न तत्र गतिरन्यथा।

'जिस दलके नेता जाम्बवान् और महाबली अङ्गद हों तथा अधिष्ठाता हनुमान् हों, उस दलको विपरीत परिणाम—असफलता मिले, यह सम्भव नहीं है ॥ २१½ ॥

अङ्गदप्रमुखैर्वीरैर्हतं मधुवनं किल ॥ २२ ॥
विचित्य दक्षिणामाशामागतैर्हरिपुङ्गवैः।
आगतैश्चाप्रधृष्यं तद्धतं मधुवनं हि तैः ॥ २३ ॥
धर्षितं च वनं कृत्स्नमुपयुक्तं तु वानरैः।
पातिता वनपालास्ते तदा जानुभिराहताः ॥ २४ ॥
एतदर्थमयं प्राप्तो वक्तुं मधुरवागिह।
नाम्ना दधिमुखो नाम हरिः प्रख्यातविक्रमः ॥ २५ ॥

'दक्षिण दिशासे सीताजीका पता लगाकर लौटे हुए अङ्गद आदि वीर वानरपुङ्गवोंने उस मधुवनपर प्रहार किया है, जिसे पददलित करना किसीके लिये भी असम्भव था। उन्होंने मधुवनको नष्ट किया, उजाड़ा और सब वानरोंने मिलकर समूचे वनका मनमाने ढंगसे उपभोग किया। इतना ही नहीं, उन्होंने वनके रक्षकोंको भी दे मारा और उन्हें अपने घुटनोंसे मार-मारकर घायल किया। इसी बातको बतानेके लिये ये विख्यात पराक्रमी वानर दधिमुख, जो बड़े मधुरभाषी हैं, यहाँ आये हैं ॥ २२-२५ ॥

दृष्टा सीता महाबाहो सौमित्रे पश्य तत्त्वतः।
अभिगम्य यथा सर्वे पिबन्ति मधु वानराः ॥ २६ ॥

'महाबाहु सुमित्रानन्दन! इस बातको आप ठीक समझें कि अब सीताका पता लग गया; क्योंकि वे सभी वानर उस वनमें जाकर मधु पी रहे हैं ॥ २६ ॥

न चाप्यदृष्ट्वा वैदेहीं विश्रुताः पुरुषर्षभ।
वनं दत्तवरं दिव्यं धर्षयेयुर्वनौकसः ॥ २७ ॥

'पुरुषप्रवर! विदेहनन्दिनीका दर्शन किये बिना उस दिव्य वनका, जो देवताओंसे मेरे पूर्वजको वरदानके रूपमें प्राप्त हुआ है, वे विख्यात वानर कभी विध्वंस नहीं कर सकते थे' ॥ २७ ॥

ततः प्रहृष्टो धर्मात्मा लक्ष्मणः सहराघवः।
श्रुत्वा कर्णसुखां वाणीं सुग्रीववदनाच्च्युताम् ॥ २८ ॥
प्राहृष्यत भृशं रामो लक्ष्मणश्च महायशाः।

सुग्रीवके मुखसे निकली हुई कानोंको सुख देनेवाली यह बात सुनकर धर्मात्मा लक्ष्मण श्रीरामचन्द्रजीके साथ बहुत प्रसन्न हुए। श्रीरामके हर्षकी सीमा न रही और महायशस्वी लक्ष्मण भी हर्षसे खिल उठे ॥ २८½ ॥

श्रुत्वा दधिमुखस्यैवं सुग्रीवस्तु प्रहृष्य च ॥ २९ ॥
वनपालं पुनर्वाक्यं सुग्रीवः प्रत्यभाषत।

दधिमुखकी उपर्युक्त बात सुनकर सुग्रीवको बड़ा हर्ष हुआ । उन्होंने अपने वनरक्षकको फिर इस प्रकार उत्तर दिया—॥ २९½ ॥

प्रीतोऽस्मि सोऽहं यद्भुक्तं वनं तैः कृतकर्मभिः ॥ ३० ॥
धर्षितं मर्षणीयं च चेष्टितं कृतकर्मणाम् ।
गच्छ शीघ्रं मधुवनं संरक्षस्व त्वमेव हि ।
शीघ्रं प्रेषय सर्वांस्तान् हनूमत्प्रमुखान् कपीन् ॥ ३१ ॥

'मामा ! अपना कार्य सिद्ध करके लौटे हुए उन वानरोंने जो मेरे मधुवनका उपभोग किया है, उससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ; अतः तुम्हें भी कृतकृत्य होकर आये हुए उन कपियोंकी ढिठाई तथा उद्दण्डतापूर्ण चेष्टाओंको क्षमा कर देना चाहिये । अब शीघ्र जाओ और तुम्हीं उस मधुवनकी रक्षा करो । साथ ही हनुमान् आदि सब वानरोंको जल्दी यहाँ भेजो ॥ ३०-३१ ॥

इच्छामि शीघ्रं हनुमत्प्रधाना-
न्शाखामृगांस्तान् मृगराजदर्पान् ।
प्रष्टुं कृतार्थान् सह राघवाभ्यां
श्रोतुं च सीताधिगमे प्रयत्नम् ॥ ३२ ॥

'मैं सिंहके समान दर्पसे भरे हुए उन हनुमान् आदि वानरोंसे शीघ्र मिलना चाहता हूँ और इन दोनों रघुवंशी बन्धुओंके साथ मैं उन कृतार्थ होकर लौटे हुए वीरोंसे यह पूछना तथा सुनना चाहता हूँ कि सीताकी प्राप्तिके लिये क्या प्रयत्न किया जाय' ॥ ३२ ॥

प्रीतिस्फीताक्षौ सम्प्रहृष्टौ कुमारौ
दृष्ट्वा सिद्धार्थौ वानराणां च राजा ।
अङ्गैः प्रहृष्टैः कार्यसिद्धिं विदित्वा
बाह्वोरासन्नामतिमात्रं ननन्द ॥ ३३ ॥

वे दोनों राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण पूर्वोक्त समाचारसे अपनेको सफलमनोरथ मानकर हर्षसे पुलकित हो गये थे । उनकी आँखें प्रसन्नतासे खिल उठी थीं । उन्हें इस तरह प्रसन्न देख तथा अपने हर्षोत्फुल्ल अङ्गोंसे कार्यसिद्धिको हाथोंमें आयी हुई जान वानरराज सुग्रीव अत्यन्त आनन्दमें निमग्न हो गये ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें तिरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः

दधिमुखसे सुग्रीवका संदेश सुनकर अङ्गद-हनुमान् आदि वानरोंका किष्किन्धामें पहुँचना और हनुमान्‌जीका श्रीरामको प्रणाम करके सीता देवीके दर्शनका समाचार बताना

सुग्रीवेणैवमुक्तस्तु हृष्टो दधिमुखः कपिः ।
राघवं लक्ष्मणं चैव सुग्रीवं चाभ्यवादयत् ॥ १ ॥

सुग्रीवके ऐसा कहनेपर प्रसन्नचित्त वानर दधिमुखने श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीवको प्रणाम किया ॥ १ ॥

स प्रणम्य च सुग्रीवं राघवौ च महाबलौ ।
वानरैः सहितः शूरैर्दिवमेवोत्पपात ह ॥ २ ॥

सुग्रीव तथा उन महाबली रघुवंशी बन्धुओंको प्रणाम करके वे शूरवीर वानरोंके साथ आकाशमार्गसे उड़ चले ॥२॥

स यथैवागतः पूर्वं तथैव त्वरितं गतः ।
निपत्य गगनाद् भूमौ तद् वनं प्रविवेश ह ॥ ३ ॥

जैसे पहले आये थे, उतनी ही शीघ्रतासे वे वहाँ जा पहुँचे और आकाशसे पृथ्वीपर उतरकर उन्होंने उस मधुवनमें प्रवेश किया ॥ ३ ॥

स प्रविष्टो मधुवनं ददर्श हरियूथपान् ।
विमदानुद्धतान् सर्वान् मेहमानान् मधूदकम् ॥ ४ ॥

मधुवनमें प्रविष्ट होकर उन्होंने देखा कि समस्त वानरयूथपति जो पहले उद्दण्ड हो रहे थे, अब मदरहित हो गये हैं—इनका नशा उतर गया है और ये मधुमिश्रित जलका मेहन (मूत्रेन्द्रियद्वारा त्याग) कर रहे हैं ॥ ४ ॥

स तानुपागमद् वीरो बद्ध्वा करपुटाञ्जलिम् ।
उवाच वचनं श्लक्ष्णमिदं हृष्टवदङ्गदम् ॥ ५ ॥

वीर दधिमुख उनके पास गये और दोनों हाथोंकी अञ्जलि बाँध अङ्गदसे हर्षयुक्त मधुर वाणीमें इस प्रकार बोले—॥ ५ ॥

सौम्य रोषो न कर्तव्यो यदेभिः परिवारणम् ।
अज्ञानाद् रक्षिभिः क्रोधाद् भवन्तः प्रतिषेधिताः ॥ ६ ॥

'सौम्य ! इन रक्षकोंने जो अज्ञानवश आपको रोका था, क्रोधपूर्वक आपलोगोंको मधु पीनेसे मना किया था, इसके लिये आप अपने मनमें क्रोध न करें ॥ ६ ॥

श्रान्तो दूरादनुप्राप्तो भक्षयस्व स्वकं मधु ।
युवराजस्त्वमीशश्च वनस्यास्य महाबल ॥ ७ ॥

'आपलोग दूरसे थके-माँदे आये हैं, अतः फल खाइये

और मधु पीजिये। यह सब आपकी ही सम्पत्ति है। महाबली वीर! आप हमारे युवराज और इस वनके स्वामी हैं॥ ७॥

मौर्ख्यात् पूर्वं कृतो रोषस्तद् भवान् क्षन्तुमर्हति।
यथैव हि पिता तेऽभूत् पूर्वं हरिगणेश्वरः॥ ८॥
तथा त्वमपि सुग्रीवो नान्यस्तु हरिसत्तम।

'कपिश्रेष्ठ! मैंने पहले मूर्खतावश जो रोष प्रकट किया था, उसे आप क्षमा करें; क्योंकि पूर्वकालमें जैसे आपके पिता वानरोंके राजा थे, उसी प्रकार आप और सुग्रीव भी हैं। आपलोगोंके सिवा दूसरा कोई हमारा स्वामी नहीं है।८½।

आख्यातं हि मया गत्वा पितृव्यस्य तवानघ॥ ९॥
इहोपयानं सर्वेषामेतेषां वनचारिणाम्।
भवदागमनं श्रुत्वा सहैभिर्वनचारिभिः॥ १०॥
प्रहृष्टो न तु रुष्टोऽसौ वनं श्रुत्वा प्रधर्षितम्।

'निष्पाप युवराज! मैंने यहाँसे जाकर आपके चाचा सुग्रीवसे इन सब वानरोंके यहाँ पधारनेका हाल कहा था। इन वानरोंके साथ आपका आगमन सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए। इस वनके विध्वंसका समाचार सुनकर भी उन्हें रोष नहीं हुआ॥ ९-१०½॥

प्रहृष्टो मां पितृव्यस्ते सुग्रीवो वानरेश्वरः॥ ११॥
शीघ्रं प्रेषय सर्वांस्तानिति होवाच पार्थिवः।

'आपके चाचा वानरराज सुग्रीवने बड़े हर्षके साथ मुझसे कहा है कि उन सबको शीघ्र यहाँ भेजो'॥ ११½॥

श्रुत्वा दधिमुखस्यैतद् वचनं श्लक्ष्णमङ्गदः॥ १२॥
अब्रवीत् तान् हरिश्रेष्ठो वाक्यं वाक्यविशारदः।

दधिमुखकी यह बात सुनकर बातचीत करनेमें कुशल कपिश्रेष्ठ अङ्गदने उन सबसे मधुर वाणीमें कहा—॥ १२½॥

शङ्के श्रुतोऽयं वृत्तान्तो रामेण हरियूथपाः॥ १३॥
अयं च हर्षादाख्याति तेन जानामि हेतुना।
तत् क्षमं नेह नः स्थातुं कृते कार्ये परंतपाः॥ १४॥

'वानरयूथपतियो! जान पड़ता है भगवान् श्रीरामने हम लोगोंके लौटनेका समाचार सुन लिया; क्योंकि ये बहुत प्रसन्न होकर वहाँकी बात सुना रहे हैं। इसीसे मुझे ऐसा ज्ञात होता है। अतः शत्रुओंको संताप देनेवाले वीरो! कार्य पूरा हो जानेपर अब हमलोगोंको यहाँ अधिक नहीं ठहरना चाहिये॥ १३-१४॥

पीत्वा मधु यथाकामं विक्रान्ता वनचारिणः।
किं शेषं गमनं तत्र सुग्रीवो यत्र वानरः॥ १५॥

'पराक्रमी वानर इच्छानुसार मधु पी चुके। अब यहाँ कौन-सा कार्य शेष है। इसलिये वहीं चलना चाहिये, जहाँ वानरराज सुग्रीव हैं॥ १५॥

सर्वे यथा मां वक्ष्यन्ति समेत्य हरिपुङ्गवाः।
तथास्मि कर्ता कर्तव्ये भवद्भिः परवानहम्॥ १६॥

'वानरपुङ्गवो! आप सब लोग मिलकर मुझसे जैसा कहेंगे, मैं वैसा ही करूँगा; क्योंकि कर्तव्यके विषयमें मैं आप लोगोंके अधीन हूँ॥ १६॥

नाज्ञापयितुमीशोऽहं युवराजोऽस्मि यद्यपि।
अयुक्तं कृतकर्माणो यूयं धर्षयितुं बलात्॥ १७॥

'यद्यपि मैं युवराज हूँ तो भी आपलोगोंपर हुक्म नहीं चला सकता। आपलोग बहुत बड़ा कार्य पूरा करके आये हैं, अतः बलपूर्वक आपपर शासन चलाना कदापि उचित नहीं है'॥ १७॥

ब्रुवतश्चाङ्गदस्यैवं श्रुत्वा वचनमुत्तमम्।
प्रहृष्टमनसो वाक्यमिदमूचुर्वनौकसः॥ १८॥

उस समय इस तरह बोलते हुए अङ्गदका उत्तम वचन सुनकर सब वानरोंका चित्त प्रसन्न हो गया और वे इस प्रकार बोले—॥ १८॥

एवं वक्ष्यति को राजन् प्रभुः सन् वानरर्षभ।
ऐश्वर्यमदमत्तो हि सर्वोऽहमिति मन्यते॥ १९॥

'राजन्! कपिश्रेष्ठ! स्वामी होकर भी अपने अधीन रहनेवाले लोगोंसे कौन इस तरहकी बात करेगा? प्रायः सब लोग ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हो अहंकारवश अपनेको ही सर्वोपरि मानने लगते हैं॥ १९॥

तव चेदं सुसदृशं वाक्यं नान्यस्य कस्यचित्।
सन्नतिर्हि तवाख्याति भविष्यच्छुभयोग्यताम्॥ २०॥

'आपकी यह बात आपके ही योग्य है। दूसरे किसीके मुँहसे प्रायः ऐसी बात नहीं निकलती। यह नम्रता आपकी भावी शुभयोग्यताका परिचय दे रही है॥ २०॥

सर्वे वयमपि प्राप्तास्तत्र गन्तुं कृतक्षणाः।
स यत्र हरिवीराणां सुग्रीवः पतिरव्ययः॥ २१॥

'हम सब लोग भी जहाँ वानरवीरोंके अविनाशी पति सुग्रीव विराजमान हैं, वहाँ चलनेके लिये उत्साहित हो यहाँ आपके समीप आये हैं॥ २१॥

त्वया ह्यनुक्तैर्हरिभिर्नैव शक्यं पदात् पदम्।
क्वचिद् गन्तुं हरिश्रेष्ठ ब्रूमः सत्यमिदं तु ते॥ २२॥

'वानरश्रेष्ठ! आपकी आज्ञा प्राप्त हुए बिना हम वानरगण कहीं एक पग भी नहीं जा सकते, यह आपसे सच्ची बात कहते हैं'॥ २२॥

एवं तु वदतां तेषामङ्गदः प्रत्यभाषत।
साधु गच्छाम इत्युक्त्वा खमुत्पेतुर्महाबलाः॥ २३॥

वे वानरगण जब ऐसी बातें कहने लगे, तब अङ्गद

बोले—'बहुत अच्छा, अब हमलोग चलें ।' इतना कहकर वे महाबली वानर आकाशमें उड़ चले ॥ २३ ॥

उत्पतन्तमनूत्पेतुः सर्वे ते हरियूथपाः ।
कृत्वाऽऽकाशं निराकाशं यन्त्रोत्क्षिप्ता इवोपलाः ॥ २४ ॥

आगे-आगे अङ्गद और उनके पीछे वे समस्त वानर-यूथपति उड़ने लगे । वे आकाशको आच्छादित करके गुलेलसे फेंके गये पत्थरोंकी भाँति तीव्रगतिसे जा रहे थे ॥ २४ ॥

अङ्गदं पुरतः कृत्वा हनूमन्तं च वानरम् ।
तेऽम्बरं सहसोत्पत्य वेगवन्तः प्लवङ्गमाः ॥ २५ ॥
विनदन्तो महानादं घना वातेरिता यथा ।

अङ्गद और वानरवीर हनुमान्‌को आगे करके सभी वेगवान् वानर सहसा आकाशमें उछलकर वायुसे उड़ाये गये बादलोंकी भाँति बड़े जोर-जोरसे गर्जना करते हुए किष्किन्धाके निकट जा पहुँचे ॥ २५½ ॥

अङ्गदे समनुप्राप्ते सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥ २६ ॥
उवाच शोकसंतप्तं रामं कमललोचनम् ।

अङ्गदके निकट पहुँचते ही वानरराज सुग्रीवने शोक-संतप्त कमलनयन श्रीरामसे कहा—॥ २६½ ॥

समाश्वसिहि भद्रं ते दृष्टा देवी न संशयः ॥ २७ ॥
नागन्तुमिह शक्यं तैरतीतसमयैरिह ।

'प्रभो ! धैर्य धारण कीजिये । आपका कल्याण हो । सीतादेवीका पता लग गया है, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि कृतकार्य हुए बिना दिये हुए समयकी अवधिको बिताकर ये वानर कदापि यहाँ नहीं आ सकते थे ॥ २७½ ॥

अङ्गदस्य प्रहर्षाच्च जानामि शुभदर्शन ॥ २८ ॥
न मत्सकाशमागच्छेत् कृत्ये हि विनिपातिते ।
युवराजो महाबाहुः प्लवतामङ्गदो वरः ॥ २९ ॥

'शुभदर्शन श्रीराम ! अङ्गदकी अत्यन्त प्रसन्नतासे भी मुझे इसी बातकी सूचना मिल रही है । यदि काम बिगाड़ दिया गया होता तो वानरोंमें श्रेष्ठ युवराज महाबाहु अङ्गद मेरे पास कदापि लौटकर नहीं आते ॥ २८-२९ ॥

यद्यप्यकृतकृत्यानामीदृशः स्यादुपक्रमः ।
भवेत्तु दीनवदनो भ्रान्तविप्लुतमानसः ॥ ३० ॥

'यद्यपि कार्य सिद्ध न होनेपर भी इस तरह लोगोंका अपने घर लौटना देखा गया है, तथापि उस दशामें अङ्गदके मुखपर उदासी छायी होती और उनके चित्तमें घबराहटके कारण उथल-पुथल मचा होता ॥ ३० ॥

पितृपैतामहं चैतत् पूर्वकैरभिरक्षितम् ।
न मे मधुवनं हन्याददृष्ट्वा जनकात्मजाम् ॥ ३१ ॥

'मेरे बाप-दादोंके इस मधुवनका, जिसकी पूर्वजोंने भी सदा रक्षा की है, कोई जनककिशोरीका दर्शन किये बिना विध्वंस नहीं कर सकता था ॥ ३१ ॥

कौसल्या सुप्रजा राम समाश्वसिहि सुव्रत ।
दृष्टा देवी न संदेहो न चान्येन हनूमता ॥ ३२ ॥ ✓

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले श्रीराम ! आपको पाकर माता कौसल्या उत्तम संतानकी जननी हुई हैं । आप धैर्य धारण कीजिये । इसमें कोई संदेह नहीं कि देवी सीताका दर्शन हो गया । किसी औरने नहीं, हनुमान्‌जीने ही उनका दर्शन किया है ॥ ३२ ॥

नह्यन्यः कर्मणो हेतुः साधनेऽस्य हनूमतः ।
हनूमतीह सिद्धिश्च मतिश्च मतिसत्तम ॥ ३३ ॥ ✓
व्यवसायश्च शौर्यं च श्रुतं चापि प्रतिष्ठितम् ।
जाम्बवान् यत्र नेता स्यादङ्गदश्च हरीश्वरः ॥ ३४ ॥
हनूमांश्चाप्यधिष्ठाता न तत्र गतिरन्यथा ।

'मतिमानोंमें श्रेष्ठ रघुनन्दन ! इस कार्यको सिद्ध करनेमें हनुमान्‌जीके सिवा और कोई कारण बना हो, ऐसा सम्भव नहीं है । वानरशिरोमणि हनुमान्‌में ही कार्यसिद्धिकी शक्ति और बुद्धि है । उन्हींमें उद्योग, पराक्रम और शास्त्रज्ञान भी प्रतिष्ठित है । जिस दलके नेता जाम्बवान् और महाबली अङ्गद हों तथा अधिष्ठाता हनुमान् हों, उस दलको विपरीत परिणाम—असफलता मिले, यह सम्भव नहीं है ॥ ३३-३४½ ॥

मा भूश्चिन्तासमायुक्तः सम्प्रत्यमितविक्रम ॥ ३५ ॥
यदा हि दर्पितोदग्राः संगताः काननौकसः ।
नैषामकृतकार्याणामीदृशः स्यादुपक्रमः ॥ ३६ ॥
वनभङ्गेन जानामि मधूनां भक्षणेन च ।

'अमित पराक्रमी श्रीराम ! अब आप चिन्ता न करें । ये वनवासी वानर जो इतने अहंकारमें भरे हुए आ रहे हैं, कार्य सिद्ध हुए बिना इनका इस तरह आना सम्भव नहीं था । इनके मधु पीने और वन उजाड़नेसे भी मुझे ऐसा ही प्रतीत होता है' ॥ ३५-३६½ ॥

ततः किलकिलाशब्दं शुश्रावासन्नमम्बरे ॥ ३७ ॥
हनूमत्कर्मदृप्तानां नदतां काननौकसाम् ।
किष्किन्धामुपयातानां सिद्धिं कथयतामिव ॥ ३८ ॥

वे इस प्रकार कह ही रहे थे कि उन्हें आकाशमें निकटसे वानरोंकी किलकारियाँ सुनायी दीं । हनुमान्‌जीके पराक्रमपर गर्व करके किष्किन्धाके पास आ गर्जना करनेवाले वे वनवासी वानर मानो सिद्धिकी सूचना दे रहे थे ॥ ३७-३८ ॥

ततः श्रुत्वा निनादं तं कपीनां कपिसत्तमः ।
आयताञ्चितलाङ्गूलः सोऽभवद्धृष्टमानसः ॥ ३९ ॥

उन वानरोंका वह सिंहनाद सुनकर कपिश्रेष्ठ सुग्रीवका

हृदय हर्षसे खिल उठा। उन्होंने अपनी पूँछ लंबी एवं ऊँची कर दी ॥ ३९ ॥

आजग्मुस्तेऽपि हरयो रामदर्शनकाङ्क्षिणः।
अङ्गदं पुरतः कृत्वा हनूमन्तं च वानरम् ॥ ४० ॥

इतनेमें ही श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकी इच्छासे अङ्गद और वानरवीर हनुमान्‌को आगे करके वे सब वानर वहाँ आ पहुँचे ॥ ४० ॥

तेऽङ्गदप्रमुखा वीराः प्रहृष्टाश्च मुदान्विताः।
निपेतुर्हरिराजस्य समीपे राघवस्य च ॥ ४१ ॥

वे अङ्गद आदि वीर आनन्द और उत्साहसे भरकर वानरराज सुग्रीव तथा रघुनाथजीके समीप आकाशसे नीचे उतरे ॥ ४१ ॥

हनूमांश्च महाबाहुः प्रणम्य शिरसा ततः।
नियतामक्षतां देवीं राघवाय न्यवेदयत् ॥ ४२ ॥

महाबाहु हनुमान्‌ने श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया और उन्हें यह बताया कि 'देवी सीता पातिव्रत्यके कठोर नियमोंका पालन करती हुई शरीरसे सकुशल हैं' ॥ ४२ ॥

दृष्टा देवीति हनुमद्वदनादमृतोपमम्।
आकर्ण्य वचनं रामो हर्षमाप सलक्ष्मणः ॥ ४३ ॥

'मैंने देवी सीताका दर्शन किया है' हनुमान्‌जीके मुखसे यह अमृतके समान मधुर वचन सुनकर लक्ष्मणसहित श्रीरामको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ४३ ॥

निश्चितार्थं ततस्तस्मिन् सुग्रीवं पवनात्मजे।
लक्ष्मणः प्रीतिमान् प्रीतं बहुमानादवैक्षत ॥ ४४ ॥

पवनपुत्र हनुमान्‌के विषयमें सुग्रीवने पहलेसे ही निश्चय कर लिया था कि उन्हींके द्वारा कार्य सिद्ध हुआ है। इसलिये प्रसन्न हुए लक्ष्मणने प्रीतियुक्त सुग्रीवकी ओर बड़े आदरसे देखा ॥ ४४ ॥

प्रीत्या च परयोपेतो राघवः परवीरहा।
बहुमानेन महता हनूमन्तमवैक्षत ॥ ४५ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले श्रीरघुनाथजीने परम प्रीति और महान् सम्मानके साथ हनुमान्‌जीकी ओर देखा ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें चौंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

◆

पञ्चषष्टितमः सर्गः

हनुमान्‌जीका श्रीरामको सीताका समाचार सुनाना

ततः प्रस्रवणं शैलं ते गत्वा चित्रकाननम्।
प्रणम्य शिरसा रामं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥ १ ॥
युवराजं पुरस्कृत्य सुग्रीवमभिवाद्य च।
प्रवृत्तिमथ सीतायाः प्रवक्तुमुपचक्रमुः ॥ २ ॥

तदनन्तर विचित्र काननोंसे सुशोभित प्रस्रवण पर्वतपर जाकर युवराज अङ्गदको आगे करके श्रीराम, महाबली लक्ष्मण तथा सुग्रीवको मस्तक झुकाकर प्रणाम करनेके अनन्तर सब वानरोंने सीताका समाचार बताना आरम्भ किया—॥ १-२ ॥

रावणान्तःपुरे रोधं राक्षसीभिश्च तर्जनम्।
रामे समनुरागं च यथा च नियमः कृतः ॥ ३ ॥
एतदाख्याय ते सर्वं हरयो रामसंनिधौ।
वैदेहीमक्षता श्रुत्वा रामस्तूत्तरमब्रवीत् ॥ ४ ॥

'सीता देवी रावणके अन्तःपुरमें रोक रक्खी गयी हैं। राक्षसियाँ उन्हें धमकाती रहती हैं। श्रीरामके प्रति उनका अनन्य अनुराग है। रावणने सीताके जीवित रहनेके लिये केवल दो मासकी अवधि दे रक्खी है। इस समय विदेहकुमारीको कोई क्षति नहीं पहुँची है—वे सकुशल हैं।' श्रीरामचन्द्रजीके निकट ये सब बातें बताकर वे वानर चुप हो गये। विदेहकुमारीके सकुशल होनेका वृत्तान्त सुनकर श्रीरामने आगेकी बात पूछते हुए कहा—॥ ३-४ ॥

क्व सीता वर्तते देवी कथं च मयि वर्तते।
एतन्मे सर्वमाख्यात वैदेहीं प्रति वानराः ॥ ५ ॥

'वानरो! देवी सीता कहाँ हैं? मेरे प्रति उनका कैसा भाव है? विदेहकुमारीके विषयमें ये सारी बातें मुझसे कहो' ॥ ५ ॥

रामस्य गदितं श्रुत्वा हरयो रामसंनिधौ।
चोदयन्ति हनूमन्तं सीतावृत्तान्तकोविदम् ॥ ६ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह कथन सुनकर वे वानर श्रीरामके निकट सीताके वृत्तान्तको अच्छी तरह जाननेवाले हनुमान्‌जीको उत्तर देनेके लिये प्रेरित करने लगे ॥ ६ ॥

श्रुत्वा तु वचनं तेषां हनूमान् मारुतात्मजः।
प्रणम्य शिरसा देव्यै सीतायै तां दिशं प्रति ॥ ७ ॥

उन वानरोंकी बात सुनकर पवनपुत्र हनुमान्‌जीने पहले देवी सीताके उद्देश्यसे दक्षिण दिशाकी ओर मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ॥ ७ ॥

उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः सीताया दर्शनं यथा ।
तं मणिं काञ्चनं दिव्यं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ ८ ॥
दत्त्वा रामाय हनुमांस्ततः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।

फिर बातचीतकी कलाको जाननेवाले उन वानरवीरने सीताजीका दर्शन जिस प्रकार हुआ था, वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया । तत्पश्चात् अपने तेजसे प्रकाशित होनेवाली उस दिव्य काञ्चनमणिको भगवान् श्रीरामके हाथमें देकर हनुमान्‌जी हाथ जोड़कर बोले—॥ ८½ ॥

समुद्रं लङ्घयित्वाहं शतयोजनमायतम् ॥ ९ ॥
अगच्छं जानकीं सीतां मार्गमाणो दिदृक्षया ।

'प्रभो ! मैं जनकनन्दिनी सीताके दर्शनकी इच्छासे उनका पता लगाता हुआ सौ योजन विस्तृत समुद्रको लाँघकर उसके दक्षिण किनारेपर जा पहुँचा ॥ ९½ ॥

तत्र लङ्केति नगरी रावणस्य दुरात्मनः ॥ १० ॥
दक्षिणस्य समुद्रस्य तीरे वसति दक्षिणे ।

'वहीं दुरात्मा रावणकी नगरी लङ्का है । वह समुद्रके दक्षिण तटपर ही बसी हुई है ॥ १०½ ॥

तत्र सीता मया दृष्टा रावणान्तःपुरे सती ॥ ११ ॥
त्वयि संन्यस्य जीवन्ती रामा राम मनोरथम् ।
दृष्टा मे राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ १२ ॥
राक्षसीभिर्विरूपाभी रक्षिता प्रमदावने ।

'श्रीराम ! लङ्कामें पहुँचकर मैंने रावणके अन्तःपुरमें प्रमदावनके भीतर राक्षसियोंके बीचमें बैठी हुई सती-साध्वी सुन्दरी देवी सीताका दर्शन किया । वे अपनी सारी अभिलाषाओंको आपमें ही केन्द्रित करके किसी तरह जीवन धारण कर रही हैं । विकराल रूपवाली राक्षसियाँ उनकी रखवाली करती हैं और बारंबार उन्हें डाँटती-फटकारती रहती हैं ॥ ११-१२½ ॥

दुःखमापद्यते देवी त्वया वीर सुखोचिता ॥ १३ ॥
रावणान्तःपुरे रुद्धा राक्षसीभिः सुरक्षिता ।
एकवेणीधरा दीना त्वयि चिन्तापरायणा ॥ १४ ॥

'वीरवर ! देवी सीता आपके साथ सुख भोगनेके योग्य हैं, परंतु इस समय बड़े दुःखसे दिन बिता रही हैं । उन्हें रावणके अन्तःपुरमें रोक रक्खा गया है और वे राक्षसियोंके पहरेमें रहती हैं । सिरपर एक वेणी धारण किये दुखी हो सदा आपकी चिन्तामें डूबी रहती हैं ॥

अधःशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे ।
रावणाद् विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया ॥ १५ ॥

'वे नीचे भूमिपर सोती हैं । जैसे जाड़ेके दिनोंमें पाला पड़नेके कारण कमलिनी सूख जाती है, उसी प्रकार उनके अङ्गोंकी कान्ति फीकी पड़ गयी है । रावणसे उनका कोई प्रयोजन नहीं है । उन्होंने प्राण त्याग देनेका निश्चय कर लिया है ॥ १५ ॥

देवी कथंचित् काकुत्स्थ त्वन्मना मार्गिता मया ।
इक्ष्वाकुवंशविख्यातिं शनैः कीर्तयतानघ ॥ १६ ॥
सा मया नरशार्दूल शनैर्विश्वासिता तदा ।
ततः सम्भाषिता देवी सर्वमर्थं च दर्शिता ॥ १७ ॥

'ककुत्स्थकुलभूषण ! उनका मन निरन्तर आपमें ही लगा रहता है । निष्पाप नरश्रेष्ठ ! मैंने बड़ा प्रयत्न करके किसी तरह महारानी सीताका पता लगाया और धीरे-धीरे इक्ष्वाकुवंशकी कीर्तिका वर्णन करते हुए किसी प्रकार उनके हृदयमें अपने प्रति विश्वास उत्पन्न किया । तत्पश्चात् देवीसे वार्तालाप करके मैंने यहाँकी सब बातें उन्हें बतलायीं ॥

रामसुग्रीवसख्यं च श्रुत्वा हर्षमुपागता ।
नियतः समुदाचारो भक्तिश्चास्याः सदा त्वयि ॥ १८ ॥

'आपकी सुग्रीवके साथ मित्रताका समाचार सुनकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ । उनका उच्चकोटिका आचार-विचार (पातिव्रत्य) सुदृढ़ है । वे सदा आपमें ही भक्ति रखती हैं ॥ १८ ॥

एवं मया महाभाग दृष्टा जनकनन्दिनी ।
उग्रेण तपसा युक्ता त्वद्भक्त्या पुरुषर्षभ ॥ १९ ॥

'महाभाग ! पुरुषोत्तम ! इस प्रकार जनकनन्दिनीको मैंने आपकी भक्तिसे प्रेरित होकर कठोर तपस्या करते देखा है ॥ १९ ॥

अभिज्ञानं च मे दत्तं यथावृत्तं तवान्तिके ।
चित्रकूटे महाप्राज्ञ वायसं प्रति राघव ॥ २० ॥

'महामते ! रघुनन्दन ! चित्रकूटमें आपके पास देवीके रहते समय एक कौएको लेकर जो घटना घटित हुई थी, उस वृत्तान्तको उन्होंने पहचानके रूपमें मुझसे कहा था ॥ २० ॥

विज्ञाप्यः पुनरप्येष रामो वायुसुत त्वया ।
अखिलेन यथा दृष्टमिति मामाह जानकी ॥ २१ ॥
अयं चास्मै प्रदातव्यो यत्नात् सुपरिरक्षितः ।

'जानकीजीने आते समय मुझसे कहा—'वायुनन्दन ! तुम यहाँ जैसी मेरी हालत देख चुके हो, वह सब भगवान् श्रीरामको बताना और इस मणिको बड़े यत्नसे सुरक्षितरूपमें ले जाकर उनके हाथमें देना ॥ २१½ ॥

ब्रुवता वचनान्येवं सुग्रीवस्योपशृण्वतः ॥ २२ ॥
एष चूडामणिः श्रीमान् मया ते यत्नरक्षितः ।

मनःशिलायास्तिलकं तत् स्मरस्वेति चाब्रवीत् ।२३।
एष निर्यातितः श्रीमान् मया ते वारिसम्भवः ।
एनं दृष्ट्वा प्रमोदिष्ये व्यसने त्वामिवानघ ॥ २४ ॥

''ऐसे समयमें देना, जब कि सुग्रीव भी निकट बैठकर तुम्हारी कही हुई बातें सुन रहे हों। साथ ही मेरी ये बातें भी उनसे निवेदन करना—'प्रभो! आपकी दी हुई यह कान्तिमती चूडामणि मैंने बड़े यत्नसे सुरक्षित रक्खी थी। जलसे प्रकट हुए इस दीप्तिमान् रत्नको मैंने आपकी सेवामें लौटाया है। निष्पाप रघुनन्दन! संकटके समय इसे देखकर मैं उसी प्रकार आनन्दमग्न हो जाती थी, जैसे आपके दर्शनसे आनन्दित होती हूँ। आपने मेरे ललाटमें जो मैनसिलका तिलक लगाया था, इसको स्मरण कीजिये।' ये बातें जानकीजीने कही थीं ॥ २२-२४ ॥

जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज ।
ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं रक्षसां वशमागता ॥ २५ ॥

'उन्होंने यह भी कहा—'दशरथनन्दन! मैं एक मास और जीवन धारण करूँगी। उसके बाद राक्षसोंके वशमें पड़कर प्राण त्याग दूँगी—किसी तरह जीवित नहीं रह सकूँगी' ॥ २५ ॥

इति मामब्रवीत् सीता कृशाङ्गी धर्मचारिणी ।
रावणान्तःपुरे रुद्धा मृगीवोत्फुल्ललोचना ॥ ३६ ॥

'इस प्रकार दुबले-पतले शरीरवाली धर्मपरायणा सीताने मुझे आपसे कहनेके लिये यह संदेश दिया था। वे रावणके अन्तःपुरमें कैद हैं और भयके मारे आँख फाड़-फाड़कर इधर-उधर देखनेवाली हरिणीके समान वे सशङ्क दृष्टिसे सब ओर देखा करती हैं ॥ २६ ॥

एतदेव मयाऽऽख्यातं सर्वं राघव यद् यथा ।
सर्वथा सागरजले संतारः प्रविधीयताम् ॥ २७ ॥

'रघुनन्दन! यही वहाँका वृत्तान्त है, जो सब-का-सब मैंने आपकी सेवामें निवेदन कर दिया। अब सब प्रकारसे समुद्रको पार करनेका प्रयत्न कीजिये' ॥ २७ ॥

तौ जाताश्वासौ राजपुत्रौ विदित्वा
तच्चाभिज्ञानं राघवाय प्रदाय ।
देव्या चाख्यातं सर्वमेवानुपूर्व्याद्
वाचा सम्पूर्णं वायुपुत्रः शशंस ॥ २८ ॥

राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मणको कुछ आश्वासन मिल गया, ऐसा जानकर तथा वह पहचान श्रीरघुनाथजीके हाथमें देकर वायुपुत्र हनुमान्ने देवी सीताकी कही हुई सारी बातें क्रमशः अपनी वाणीद्वारा पूर्णरूपसे कह सुनायीं ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें पैंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः

चूडामणिको देखकर और सीताका समाचार पाकर श्रीरामका उनके लिये विलाप

एवमुक्तो हनुमता रामो दशरथात्मजः ।
तं मणिं हृदये कृत्वा रुरोद सहलक्ष्मणः ॥ १ ॥

हनुमान्जीके ऐसा कहनेपर दशरथनन्दन श्रीराम उस मणिको अपनी छातीसे लगाकर रोने लगे। साथ ही लक्ष्मण भी रो पड़े ॥ १ ॥

तं तु दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं राघवः शोककर्शितः ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥

उस श्रेष्ठ मणिकी ओर देखकर शोकसे व्याकुल हुए श्रीरघुनाथजी अपने दोनों नेत्रोंमें आँसू भरकर सुग्रीवसे इस प्रकार बोले—॥ २ ॥

यथैव धेनुः स्रवति स्नेहाद् वत्सस्य वत्सला।
तथा ममापि हृदयं मणिश्रेष्ठस्य दर्शनात् ॥ ३ ॥

'मित्र! जैसे वत्सला धेनु अपने बछड़ेके स्नेहसे थनोंसे दूध झरने लगती है, उसी प्रकार इस उत्तम मणिको देखकर आज मेरा हृदय भी द्रवीभूत हो रहा है ॥ ३ ॥

मणिरत्नमिदं दत्तं वैदेह्याः श्वशुरेण मे ।
वधूकाले यथा बद्धमधिकं मूर्ध्नि शोभते ॥ ४ ॥

'मेरे श्वशुर राजा जनकने विवाहके समय वैदेहीको यह मणिरत्न दिया था, जो उसके मस्तकपर आबद्ध होकर बड़ी शोभा पाता था ॥ ४ ॥

अयं हि जलसम्भूतो मणिः प्रवरपूजितः ।
यज्ञे परमतुष्टेन दत्तः शक्रेण धीमता ॥ ५ ॥

'जलसे प्रकट हुई यह मणि श्रेष्ठ देवताओंद्वारा पूजित है। किसी यज्ञमें बहुत संतुष्ट हुए बुद्धिमान् इन्द्रने राजा जनकको यह मणि दी थी ॥ ५ ॥

इमं दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं तथा तातस्य दर्शनम् ।
अद्यास्म्यवगतः सौम्य वैदेहस्य तथा विभोः ॥ ६ ॥

'सौम्य! इस मणिरत्नका दर्शन करके आज मुझे मानो

अपने पूज्य पिताका और विदेहराज महाराज जनकका भी दर्शन मिल गया हो, ऐसा अनुभव हो रहा है ॥ ६ ॥

अयं हि शोभते तस्याः प्रियाया मूर्ध्नि मे मणिः ।
अद्यास्य दर्शनेनाहं प्राप्तां तामिव चिन्तये ॥ ७ ॥

'यह मणि सदा मेरी प्रिया सीताके सीमन्तपर शोभा पाती थी। आज इसे देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो सीता ही मुझे मिल गयी ॥ ७ ॥

किमाह सीता वैदेही ब्रूहि सौम्य पुनः पुनः ।
परासुमिव तोयेन सिञ्चन्ती वाक्यवारिणा ॥ ८ ॥

'सौम्य पवनकुमार! जैसे बेहोश हुए मनुष्यको होशमें लानेके लिये उसपर जलके छींटे दिये जाते हैं, उसी प्रकार विदेहनन्दिनी सीताने मूर्च्छित हुए-से मुझ रामको अपने वाक्यरूपी शीतल जलसे सींचते हुए क्या-क्या कहा है? यह बारंबार बताओ' ॥ ८ ॥

इतस्तु किं दुःखतरं यदिमं वारिसम्भवम् ।
मणिं पश्यामि सौमित्रे वैदेहीमागतां विना ॥ ९ ॥

(अब वे लक्ष्मणसे बोले—) 'सुमित्रानन्दन! सीताके यहाँ आये बिना ही जो जलसे उत्पन्न हुई इस मणिको मैं देख रहा हूँ। इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या हो सकती है' ॥ ९ ॥

चिरं जीवति वैदेही यदि मासं धरिष्यति ।
क्षणं वीर न जीवेयं विना तामसितेक्षणाम् ॥ १० ॥

(फिर वे हनुमान्‌जीसे बोले—) 'वीर पवनकुमार! यदि विदेहनन्दिनी सीता एक मासतक जीवन धारण कर लेगी, तब तो वह बहुत समयतक जी रही है। मैं तो कजरारे नेत्रोंवाली जानकीके बिना अब एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता ॥ १० ॥

नय मामपि तं देशं यत्र दृष्टा मम प्रिया ।
न तिष्ठेयं क्षणमपि प्रवृत्तिमुपलभ्य च ॥ ११ ॥

'तुमने जहाँ मेरी प्रियाको देखा है, उसी देशमें मुझे भी ले चलो। उसका समाचार पाकर अब मैं एक क्षण भी यहाँ नहीं रुक सकता ॥ ११ ॥

कथं सा मम सुश्रोणी भीरुभीरुः सती तदा ।
भयावहानां घोराणां मध्ये तिष्ठति रक्षसाम् ॥ १२ ॥

'हाय! मेरी सती-साध्वी सुमध्यमा सीता बड़ी भीरु है। वह उन घोर रूपधारी भयंकर राक्षसोंके बीचमें कैसे रहती होगी? ॥ १२ ॥

शारदस्तिमिरोन्मुक्तो नूनं चन्द्र इवाम्बुदैः ।
आवृतो वदनं तस्या न विराजति साम्प्रतम् ॥ १३ ॥

'निश्चय ही अन्धकारसे मुक्त किंतु बादलोंसे ढके हुए शरत्कालीन चन्द्रमाके समान सीताका मुख इस समय शोभा नहीं पा रहा होगा ॥ १३ ॥

किमाह सीता हनुमंस्तत्त्वतः कथयस्व मे ।
एतेन खलु जीविष्ये भेषजेनातुरो यथा ॥ १४ ॥

'हनुमन्! मुझे ठीक-ठीक बताओ, सीताने क्या-क्या कहा है? जैसे रोगी दवा लेनेसे जीता है, उसी प्रकार मैं सीताके इस संदेश-वाक्यको सुनकर ही जीवन धारण करूँगा ॥ १४ ॥

मधुरा मधुरालापा किमाह मम भामिनी ।
मद्विहीना वरारोहा हनुमन् कथयस्व मे ।
दुःखाद् दुःखतरं प्राप्य कथं जीवति जानकी ॥ १५ ॥

'हनुमन्! मुझसे बिछुड़ी हुई मेरी सुन्दर कटिप्रदेशवाली मधुरभाषिणी सुन्दरी प्रियतमा जनकनन्दिनी सीताने मेरे लिये कौन-सा संदेश दिया है? वह दुःख-पर-दुःख उठाकर भी कैसे जीवन धारण कर रही है?' ॥ १५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें छाछठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६६ ॥

* * *

सप्तषष्टितमः सर्गः

हनुमान्‌जीका भगवान् श्रीरामको सीताका संदेश सुनाना

एवमुक्तस्तु हनुमान् राघवेण महात्मना ।
सीताया भाषितं सर्वं न्यवेदयत राघवे ॥ १ ॥

महात्मा श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनेपर हनुमान्‌जीने सीताजीकी कही हुई सब बातें उनसे निवेदन कर दीं ॥ १ ॥

इदमुक्तवती देवी जानकी पुरुषर्षभ ।
पूर्ववृत्तमभिज्ञानं चित्रकूटे यथातथम् ॥ २ ॥

वे बोले—'पुरुषोत्तम! जानकीदेवीने पहले चित्रकूटपर बीती हुई एक घटनाका यथावत् रूपसे वर्णन किया था। उसे उन्होंने पहचानके तौरपर इस प्रकार कहा था ॥ २ ॥

सुखसुप्ता त्वया सार्धं जानकी पूर्वमुत्थिता ।
वायसः सहसोत्पत्य विददार स्तनान्तरम् ॥ ३ ॥

'पहले चित्रकूटमें कभी जानकी देवी आपके साथ सुख-

पूर्वक सोयी थीं। वे सोकर आपसे पहले उठ गयीं। उस समय किसी कौएने सहसा उड़कर उनकी छातीमें चोंच मार दी॥ ३॥

पर्यायेण च सुप्तस्त्वं देव्यङ्के भरताग्रज।
पुनश्च किल पक्षी स देव्या जनयति व्यथा॥ ४॥

'भरताग्रज! आपलोग बारी-बारीसे एक दूसरेके अङ्कमें सिर रखकर सोते थे। जब आप देवीके अङ्कमें मस्तक रखकर सोये थे, उस समय पुनः उसी पक्षीने आकर देवीको कष्ट देना आरम्भ किया॥ ४॥

ततः पुनरुपागम्य विददार भृशं किल।
ततस्त्वं बोधितस्तस्याः शोणितेन समुक्षितः॥ ५॥

'कहते हैं उसने फिर आकर जोरसे चोंच मार दी। तब देवीके शरीरसे रक्त बहने लगा और उससे भीग जानेके कारण आप जाग उठे॥ ५॥

वायसेन च तेनैवं सततं बाध्यमानया।
बोधितः किल देव्या त्वं सुखसुप्तः परंतप॥ ६॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले रघुनन्दन! उस कौएने जब लगातार इस तरह पीड़ा दी, तब देवी सीताने सुखसे सोये हुए आपको जगा दिया॥ ६॥

तां च दृष्ट्वा महाबाहो दारितां च स्तनान्तरे।
आशीविष इव क्रुद्धस्ततो वाक्यं त्वमूचिवान्॥ ७॥

'महाबाहो! उनकी छातीमें घाव हुआ देख आप विषधर सर्पके समान कुपित हो उठे और इस प्रकार बोले—॥ ७॥

नखाग्रैः केन ते भीरु दारितं वै स्तनान्तरम्।
कः क्रीडति सरोषेण पञ्चवक्त्रेण भोगिना॥ ८॥

''भीरु! किसने अपने नखोंके अग्रभागसे तुम्हारी छातीमें घाव कर दिया है? कौन कुपित हुए पाँच मुँहवाले सर्पके साथ खेल रहा है?'॥ ८॥

निरीक्षमाणः सहसा वायसं समुदैक्षथाः।
नखैः सरुधिरैस्तीक्ष्णैस्तामेवाभिमुखं स्थितम्॥ ९॥

'ऐसा कहकर आपने जब सहसा इधर-उधर दृष्टि डाली, तब उस कौएको देखा। उसके तीखे पंजे खूनमें रँगे हुए थे और वह सीता देवीकी ओर मुँह करके ही कहीं बैठा था॥ ९॥

सुतः किल स शक्रस्य वायसः पततां वरः।
धरान्तरगतः शीघ्रं पवनस्य गतौ समः॥ १०॥

सुना है, उड़नेवालोंमें श्रेष्ठ वह कौआ साक्षात् इन्द्रका पुत्र था, जो उन दिनों पृथ्वीपर विचर रहा था। वह वायुदेवताके समान शीघ्रगामी था॥ १०॥

ततस्तस्मिन् महाबाहो कोपसंवर्तितेक्षणः।
वायसे त्वं व्यधाः क्रूरां मतिं मतिमतां वर॥ ११॥

'मतिमानोंमें श्रेष्ठ महाबाहो! उस समय आपके नेत्र क्रोधसे घूमने लगे और आपने उस कौएको कठोर दण्ड देनेका विचार किया॥ ११॥

स दर्भसंस्तराद् गृह्य ब्रह्मास्त्रेण न्ययोजयः।
स दीप्त इव कालाग्निर्जज्वालाभिमुखं खगम्॥ १२॥

'आपने अपनी चटाईमेंसे एक कुशा निकालकर हाथमें ले लिया और उसे ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित किया। फिर तो वह कुश प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्वलित हो उठा। उसका लक्ष्य वह कौआ ही था॥ १२॥

स त्वं प्रदीप्तं चिक्षेप दर्भं तं वायसं प्रति।
ततस्तु वायसं दीप्तः स दर्भोऽनुजगाम ह॥ १३॥

'आपने उस जलते हुए कुशको कौएकी ओर छोड़ दिया। फिर तो वह दीप्तिमान् दर्भ उस कौएका पीछा करने लगा॥ १३॥

भीतैश्च सम्परित्यक्तः सुरैः सर्वैश्च वायसः।
त्रींल्लोकान् सम्परिक्रम्य त्रातारं नाधिगच्छति॥ १४॥

'आपके भयसे डरे हुए समस्त देवताओंने भी उस कौएको त्याग दिया। वह तीनों लोकोंमें चक्कर लगाता फिरा, किंतु कहीं भी उसे कोई रक्षक नहीं मिला॥ १४॥

पुनरप्यागतस्तत्र त्वत्सकाशमरिंदम।
त्वं तं निपतितं भूमौ शरण्यः शरणागतम्॥ १५॥
वधार्हमपि काकुत्स्थ कृपया परिपालयः।

'शत्रुदमन श्रीराम! सब ओरसे निराश होकर वह कौआ फिर वहीं आपकी शरणमें आया। शरणमें आकर पृथ्वीपर पड़े हुए उस कौएको आपने शरणमें ले लिया; क्योंकि आप शरणागतवत्सल हैं। यद्यपि वह वधके योग्य था तो भी आपने कृपापूर्वक उसकी रक्षा की॥ १५½॥

मोघमस्त्रं न शक्यं तु कर्तुमित्येव राघव॥ १६॥
भवांस्तस्याक्षि काकस्य हिनस्ति स्म स दक्षिणम्।

'रघुनन्दन! उस ब्रह्मास्त्रको व्यर्थ नहीं किया जा सकता था, इसलिये आपने उस कौएकी दाहिनी आँख फोड़ डाली॥ १६½॥

राम त्वां स नमस्कृत्य राज्ञो दशरथस्य च॥ १७॥
विसृष्टस्तु तदा काकः प्रतिपेदे स्वमालयम्।

'श्रीराम! तदनन्तर आपसे विदा ले वह कौआ भूतलपर आपको और स्वर्गमें राजा दशरथको नमस्कार करके अपने घरको चला गया॥ १७½॥

एवमस्त्रविदां श्रेष्ठः सत्त्ववाञ्छीलवानपि ॥ १८ ॥
किमर्थमस्त्रं रक्षःसु न योजयसि राघव ।

'(सीता कहती हैं—) 'रघुनन्दन ! इस प्रकार अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, शक्तिशाली और शीलवान् होते हुए भी आप राक्षसोंपर अपने अस्त्रका प्रयोग क्यों नहीं करते हैं ? ॥ १८½ ॥

न दानवा न गन्धर्वा नासुरा न मरुद्गणाः ॥ १९ ॥
तव राम रणे शक्तास्तथा प्रतिसमासितुम् ।

''श्रीराम ! दानव, गन्धर्व, असुर और देवता कोई भी समराङ्गणमें आपका सामना नहीं कर सकते ॥ १९½ ॥

तव वीर्यवतः कश्चिन्मयि यद्यस्ति सम्भ्रमः ॥ २० ॥
क्षिप्रं सुनिशितैर्बाणैर्हन्यतां युधि रावणः ।

''आप बल-पराक्रमसे सम्पन्न हैं । यदि मेरे प्रति आपका कुछ भी आदर है तो आप शीघ्र ही अपने तीखे बाणोंसे रणभूमिमें रावणको मार डालिये ॥ २०½ ॥

भ्रातुरादेशमाज्ञाय लक्ष्मणो वा परंतपः ॥ २१ ॥
स किमर्थं नरवरो न मां रक्षति राघवः ।

''हनुमन् ! अथवा अपने भाईकी आज्ञा लेकर शत्रुओंको संताप देनेवाले रघुकुलतिलक नरश्रेष्ठ लक्ष्मण क्यों नहीं मेरी रक्षा करते हैं ? ॥ २१½ ॥

शक्तौ तौ पुरुषव्याघ्रौ वाय्वग्निसमतेजसौ ॥ २२ ॥
सुराणामपि दुर्धर्षौ किमर्थं मामुपेक्षतः ।

''वे दोनों पुरुषसिंह श्रीराम और लक्ष्मण वायु तथा अग्निके तुल्य तेजस्वी एवं शक्तिशाली हैं, देवताओंके लिये भी दुर्जय हैं; फिर किसलिये मेरी उपेक्षा कर रहे हैं ?॥२२½॥

ममैव दुष्कृतं किंचिन्महदस्ति न संशयः ॥ २३ ॥
समर्थौ सहितौ यन्मां न रक्षेते परंतपौ ।

''इसमें संदेह नहीं कि मेरा ही कोई ऐसा महान् पाप है, जिसके कारण वे दोनों शत्रुसंतापी वीर एक साथ रहकर समर्थ होते हुए मेरी रक्षा नहीं कर रहे हैं' ॥ २३½ ॥

वैदेह्या वचनं श्रुत्वा करुणं साधुभाषितम् ॥ २४ ॥
पुनरप्यहमार्यां तामिदं वचनमब्रुवम् ।

'रघुनन्दन ! विदेहनन्दिनीका करुणाजनक उत्तम वचन सुनकर मैंने पुनः आर्या सीतासे यह बात कही—॥२४½॥

त्वच्छोकविमुखो रामो देवि सत्येन ते शपे ॥ २५ ॥
रामे दुःखाभिभूते च लक्ष्मणः परितप्यते ।

'देवि ! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे शोकके कारण ही सब कार्योंसे विरत हो रहे हैं । श्रीरामके दुखी होनेसे लक्ष्मण भी संतप्त हो रहे हैं ॥ २५½ ॥

कथंचिद् भवती दृष्टा न कालः परिशोचितुम् ॥ २६ ॥
अस्मिन् मुहूर्ते दुःखानामन्तं द्रक्ष्यसि भामिनि ।

'किसी तरह आपका दर्शन हो गया (आपके निवासस्थानका पता लग गया), अतः अब शोक करनेका अवसर नहीं है । भामिनि ! आप इसी मुहूर्तमें अपने सारे दुःखोंका अन्त हुआ देखेंगी ॥ २६½ ॥

तावुभौ नरशार्दूलौ राजपुत्रौ परंतपौ ॥ २७ ॥
त्वद्दर्शनकृतोत्साहौ लङ्कां भस्मीकरिष्यतः ।

'शत्रुओंको संताप देनेवाले वे दोनों नरश्रेष्ठ राजकुमार आपके दर्शनके लिये उत्साहित हो लङ्कापुरीको जलाकर भस्म कर देंगे ॥ २७½ ॥

हत्वा च समरे रौद्रं रावणं सहबान्धवम् ॥ २८ ॥
राघवस्त्वां वरारोहे स्वपुरीं नयिता ध्रुवम् ।

'वरारोहे ! समराङ्गणमें रौद्र राक्षस रावणको बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर रघुनाथजी अवश्य ही आपको अपनी पुरीमें ले जायँगे ॥ २८½ ॥

यत् तु रामो विजानीयादभिज्ञानमनिन्दिते ॥ २९ ॥
प्रीतिसंजननं तस्य प्रदातुं तत् त्वमर्हसि ।

'सती-साध्वी देवि ! अब आप मुझे कोई ऐसी पहचान दीजिये, जिसे श्रीरामचन्द्रजी जानते हों और जो उनके मनको प्रसन्न करनेवाला हो ॥ २९½ ॥

साभिवीक्ष्य दिशः सर्वा वेण्युद्ग्रथनमुत्तमम् ॥ ३० ॥
मुक्त्वा वस्त्राद् ददौ मह्यं मणिमेतं महाबल ।

'महाबली वीर ! तब उन्होंने चारों ओर देखकर वेणीमें बाँधने योग्य इस उत्तम मणिको अपने वस्त्रसे खोलकर मुझे दे दिया ॥ ३०½ ॥

प्रतिगृह्य मणिं दोर्भ्यां तव हेतो रघुप्रिय ॥ ३१ ॥
शिरसा सम्प्रणम्यैनामहमागमने त्वरे ।

'रघुवंशियोंके प्रियतम श्रीराम ! आपके लिये इस मणिको दोनों हाथोंमें लेकर मैंने सीतादेवीको मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और यहाँ आनेके लिये मैं उतावला हो उठा ॥ ३१½ ॥

गमने च कृतोत्साहमवेक्ष्य वरवर्णिनी ॥ ३२ ॥
विवर्धमानं च हि मामुवाच जनकात्मजा ।
अश्रुपूर्णमुखी दीना बाष्पगद्गदभाषिणी ॥ ३३ ॥
ममोत्पतनसम्भ्रान्ता शोकवेगसमाहता ।
मामुवाच ततः सीता सभाग्योऽसि महाकपे ॥ ३४ ॥
यद् द्रक्ष्यसि महाबाहुं रामं कमललोचनम् ।
लक्ष्मणं च महाबाहुं देवरं मे यशस्विनम् ॥ ३५ ॥

'लौटनेके लिये उत्साहित हो मुझे अपने शरीरको बढ़ाते

देख सुन्दरी जनकनन्दिनी सीता बहुत दुखी हो गयीं । उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली । मेरी उछलनेकी तैयारीसे वे घबरा गयीं और शोकके वेगसे आहत हो उठीं । उस समय उनका स्वर अश्रुगद्गद हो गया था । वे मुझसे कहने लगीं—'महाकपे ! तुम बड़े सौभाग्यशाली हो, जो मेरे महाबाहु प्रियतम कमलनयन श्रीरामको तथा मेरे यशस्वी देवर महाबाहु लक्ष्मणको भी अपनी आँखोंसे देखोगे' ॥ ३२—३५ ॥

सीतयाप्येवमुक्तोऽहमब्रुवं मैथिलीं तथा ।
पृष्ठमारोह मे देवि क्षिप्रं जनकनन्दिनि ॥ ३६ ॥
यावत्ते दर्शयाम्यद्य ससुग्रीवं सलक्ष्मणम् ।
राघवं च महाभागे भर्तारमसितेक्षणे ॥ ३७ ॥

'सीताजीके ऐसा कहनेपर मैंने उन मिथिलेशकुमारीसे कहा—'देवि ! जनकनन्दिनी ! आप शीघ्र मेरी पीठपर चढ़ जाइये । महाभागे ! श्यामलोचने ! मैं अभी सुग्रीव और लक्ष्मणसहित आपके पतिदेव श्रीरघुनाथजीका आपको दर्शन कराता हूँ' ॥ ३६-३७ ॥

साब्रवीन्मां ततो देवी नैष धर्मो महाकपे ।
यत्ते पृष्ठं सिषेवेऽहं स्ववशा हरिपुङ्गव ॥ ३८ ॥

'यह सुनकर सीता देवी मुझसे बोलीं—'महाकपे ! वानरशिरोमणे ! मेरा यह धर्म नहीं है कि मैं अपने वशमें होती हुई भी स्वेच्छासे तुम्हारी पीठका आश्रय लूँ ॥ ३८ ॥

पुरा च यदहं वीर स्पृष्टा गात्रेषु रक्षसा ।
तत्राहं किं करिष्यामि कालेनोपनिपीडिता ॥ ३९ ॥
गच्छ त्वं कपिशार्दूल यत्र तौ नृपतेः सुतौ ।

''वीर ! पहले जो राक्षस रावणके द्वारा मेरे अङ्गोंका स्पर्श हो गया, उस समय वहाँ मैं क्या कर सकती थी ? मुझे तो कालने ही पीड़ित कर रक्खा था । अतः वानरप्रवर ! जहाँ वे दोनों राजकुमार हैं, वहाँ तुम जाओ' ॥ ३९½ ॥

इत्येवं सा समाभाष्य भूयः संदेष्टुमास्थिता ॥ ४० ॥
हनूमन् सिंहसंकाशौ तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान् ब्रूया अनामयम् ॥ ४१ ॥

'ऐसा कहकर वे फिर मुझे संदेश देने लगीं—'हनुमन् ! सिंहके समान पराक्रमी उन दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणसे, मन्त्रियोंसहित सुग्रीवसे तथा अन्य सब लोगोंसे भी मेरा कुशल-समाचार कहना और उनका पूछना ॥ ४०-४१ ॥

यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः ।
अस्माद् दुःखाम्बुसंरोधात् तत् त्वमाख्यातुमर्हसि ॥४२॥

''तुम वहाँ ऐसी बात कहना, जिससे महाबाहु रघुनाथजी इस दुःखसागरसे मेरा उद्धार करें ॥ ४२ ॥

इदं च तीव्रं मम शोकवेगं
रक्षोभिरेभिः परिभर्त्सनं च ।
ब्रूयास्तु रामस्य गतः समीपं
शिवश्च तेऽध्वास्तु हरिप्रवीर ॥ ४३ ॥

''वानरोंके प्रमुख वीर ! मेरे इस तीव्र शोक-वेगको तथा इन राक्षसोंद्वारा जो मुझे डराया-धमकाया जाता है, इसको भी उन श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर कहना । तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो' ॥ ४३ ॥

एतत् तवार्या नृप संयता सा
सीता वचः प्राह विषादपूर्वम् ।
एतच्च बुद्ध्वा गदितं यथा त्वं
श्रद्धत्स्व सीतां कुशलां समग्राम् ॥४४ ॥

'नरेश्वर ! आपकी प्रियतमा संयमशीला आर्या सीताने बड़े विषादके साथ ये सारी बातें कही हैं । मेरी कही हुई इन सब बातोंपर विचार करके आप विश्वास करें कि सतीशिरोमणि सीता सकुशल हैं' ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें सरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः

हनुमान्‌जीका सीताके संदेह और अपनेद्वारा उनके निवारणका वृत्तान्त बताना

अथाहमुत्तरं देव्या पुनरुक्तः ससम्भ्रमम् ।
तव स्नेहान्नरव्याघ्र सौहार्दादनुमान्य च ॥ १ ॥

'पुरुषसिंह रघुनन्दन ! आपके प्रति स्नेह और सौहार्दके कारण देवी सीताने मेरा सत्कार करके जानेके लिये उतावले हुए मुझसे पुनः यह उत्तम बात कही— ॥ १ ॥

एवं बहुविधं वाच्यो रामो दाशरथिस्त्वया ।

यथा मां प्राप्नुयाच्छीघ्रं हत्वा रावणमाहवे ॥ २ ॥

“पवनकुमार ! तुम दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामसे अनेक प्रकारसे ऐसी बातें कहना, जिससे वे समराङ्गणमें शीघ्र ही रावणका वध करके मुझे प्राप्त कर लें ॥ २ ॥

यदि वा मन्यसे वीर वसैकाहमरिंदम ।
कस्मिंश्चित् संवृते देशे विश्रान्तः श्वो गमिष्यसि ॥ ३ ॥

“शत्रुओंका दमन करनेवाले वीर ! यदि तुम ठीक समझो तो यहाँ किसी गुप्त स्थानमें एक दिनके लिये ठहर जाओ । आज विश्राम करके कल सबेरे यहाँसे चले जाना ॥ ३ ॥

मम चाप्यल्पभाग्यायाः सांनिध्यात् तव वानर ।
अस्य शोकविपाकस्य मुहूर्तं स्याद् विमोक्षणम् ॥ ४ ॥

“वानर ! तुम्हारे निकट रहनेसे मुझ मन्दभागिनीको इस शोकविपाकसे थोड़ी देरके लिये भी छुटकारा मिल जाय ॥ ४ ॥

गते हि त्वयि विक्रान्ते पुनरागमनाय वै ।
प्राणानामपि संदेहो मम स्यान्नात्र संशयः ॥ ५ ॥

“तुम पराक्रमी वीर हो । जब पुनः आनेके लिये यहाँसे चले जाओगे, तब मेरे प्राणोंके लिये भी संदेह उपस्थित हो जायगा । इसमें संशय नहीं है ॥ ५ ॥

तवादर्शनजः शोको भूयो मां परितापयेत् ।
दुःखाद् दुःखपराभूतां दुर्गतां दुःखभागिनीम् ॥ ६ ॥

“तुम्हें न देखनेसे होनेवाला शोक दुःख-पर-दुःख उठानेसे पराभव तथा दुर्गतिमें पड़ी हुई मुझ दुखियाको और भी संताप देता रहेगा ॥ ६ ॥

अयं च वीर संदेहस्तिष्ठतीव ममाग्रतः ।
सुमहांस्त्वत्सहायेषु हर्यृक्षेषु हरीश्वर ॥ ७ ॥
कथं नु खलु दुष्पारं तरिष्यन्ति महोदधिम् ।
तानि हर्यृक्षसैन्यानि तौ वा नरवरात्मजौ ॥ ८ ॥

“वीर ! वानरराज ! मेरे सामने यह महान् संदेह-सा खड़ा हो गया है कि तुम जिनके सहायक हो, उन वानरों और भालुओंके होते हुए भी रीछों और वानरोंकी वे सेनाएँ तथा वे दोनों राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण इस अपार पारावारको कैसे पार करेंगे ? ॥ ७-८ ॥

त्रयाणामेव भूतानां सागरस्यास्य लङ्घने ।
शक्तिः स्याद् वैनतेयस्य वायोर्वा तव चानघ ॥ ९ ॥

“निष्पाप पवनकुमार ! तीन ही भूतोंमें इस समुद्रको लाँघनेकी शक्ति देखी जाती है—विनतानन्दन गरुड़में, वायुदेवतामें और तुममें ॥ ९ ॥

तदस्मिन् कार्यनिर्योगे वीरैवं दुरतिक्रमे ।
किं पश्यसि समाधानं ब्रूहि कार्यविदां वर ॥ १० ॥

“वीर ! जब इस प्रकार इस कार्यका साधन दुष्कर हो गया है, तब इसकी सिद्धिके लिये तुम कौन-सा समाधान (उपाय) देखते हो । कार्यसिद्धिके उपाय जाननेवालोंमें तुम श्रेष्ठ हो, अतः मेरी बातका उत्तर दो ॥ १० ॥

काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने ।
पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते बलोदयः ॥ ११ ॥

“विपक्षी वीरोंका नाश करनेवाले कपिश्रेष्ठ ! इसमें संदेह नहीं कि इस कार्यकी सिद्धिके लिये तुम अकेले ही बहुत हो, तथापि तुम्हारे बलका यह उद्रेक तुम्हारे लिये ही यशकी वृद्धि करनेवाला होगा (श्रीरामके लिये नहीं) ॥ ११ ॥

बलैः समग्रैर्यदि मां हत्वा रावणमाहवे ।
विजयी स्वपुरीं रामो नयेत् तत् स्याद् यशस्करम् ॥ १२ ॥

“यदि श्रीराम अपनी सम्पूर्ण सेनाके साथ यहाँ आकर युद्धमें रावणको मार डालें और विजयी होकर मुझे अपनी पुरीको ले चलें तो यह उनके लिये यशकी वृद्धि करनेवाला होगा ॥ १२ ॥

यथाहं तस्य वीरस्य वनादुपधिना हृता ।
रक्षसा तद्भयादेव तथा नार्हति राघवः ॥ १३ ॥

“जिस प्रकार राक्षस रावणने वीरवर भगवान् श्रीरामके भयसे ही उनके सामने न जाकर छलपूर्वक वनसे मेरा अपहरण किया था, उस तरह श्रीरघुनाथजीको मुझे नहीं प्राप्त करना चाहिये (वे रावणको मारकर ही मुझे ले चलें) ॥ १३ ॥

बलैस्तु संकुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः ।
मां नयेद् यदि काकुत्स्थस्तत् तस्य सदृशं भवेत् ॥ १४ ॥

“शत्रुसेनाका संहार करनेवाले ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम यदि अपने सैनिकोंद्वारा लङ्काको पददलित करके मुझे अपने साथ ले जायँ तो यह उनके योग्य पराक्रम होगा ॥ १४ ॥

तद् यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः ।
भवत्याहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय ॥ १५ ॥

“महात्मा श्रीराम संग्राममें शौर्य प्रकट करनेवाले हैं, अतः जिस प्रकार उनके अनुरूप पराक्रम प्रकट हो सके, वैसा ही उपाय तुम करो’ ॥ १५ ॥

तदर्थोपहितं वाक्यं प्रश्रितं हेतुसंहितम् ।
निशम्याहं ततः शेषं वाक्यमुत्तरमब्रवम् ॥ १६ ॥

‘सीतादेवीके उस अभिप्राययुक्त, विनयपूर्ण और युक्तिसंगत वचनको सुनकर अन्तमें मैंने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १६ ॥

देवि हर्यृक्षसैन्यानामीश्वरः प्लवतां वरः ।
सुग्रीवः सत्त्वसम्पन्नस्त्वदर्थे कृतनिश्चयः ॥ १७ ॥

“देवि ! वानर और भालुओंकी सेनाके स्वामी कपिश्रेष्ठ

सुग्रीव बड़े शक्तिशाली हैं। वे आपका उद्धार करनेके लिये दृढ़ निश्चय कर चुके हैं ॥ १७ ॥

तस्य विक्रमसम्पन्नाः सत्त्ववन्तो महाबलाः ।
मनःसंकल्पसदृशा निदेशे हरयः स्थिताः ॥ १८ ॥

''उनके पास पराक्रमी, शक्तिशाली और महाबली वानर हैं, जो मनके संकल्पके समान तीव्र गतिसे चलते हैं। वे सब-के-सब सदा उनकी आज्ञाके अधीन रहते हैं ॥ १८ ॥

येषां नोपरि नाधस्तान्न तिर्यक् सज्जते गतिः ।
न च कर्मसु सीदन्ति महत्स्वमिततेजसः ॥ १९ ॥

''नीचे, ऊपर और अगल-बगलमें कहीं भी उनकी गति नहीं रुकती है। वे अमिततेजस्वी वानर बड़े-से-बड़े कार्य आ पड़नेपर भी कभी शिथिल नहीं होते हैं ॥ १९ ॥

असकृत् तैर्महाभागैर्वानरैर्बलसंयुतैः ।
प्रदक्षिणीकृता भूमिर्वायुमार्गानुसारिभिः ॥ २० ॥

''वायुमार्ग (आकाश) का अनुसरण करनेवाले उन महाभाग बलवान् वानरोंने अनेक बार इस पृथ्वीकी परिक्रमा की है ॥ २० ॥

मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति तत्र वनौकसः ।
मत्तः प्रत्यवरः कश्चिन्नास्ति सुग्रीवसंनिधौ ॥ २१ ॥

''वहाँ मुझसे बढ़कर तथा मेरे समान शक्तिशाली बहुत-से वानर हैं। सुग्रीवके पास कोई ऐसा वानर नहीं है, जो मुझसे किसी बातमें कम हो ॥ २१ ॥

अहं तावदिह प्राप्तः किं पुनस्ते महाबलाः ।
नहि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः ॥ २२ ॥

''जब मैं ही यहाँ आ गया, तब फिर उन महाबली वानरोंके आनेमें क्या संदेह हो सकता है? आप जानती होंगी कि दूत या धावन बनाकर वे ही लोग भेजे जाते हैं, जो निम्न-श्रेणीके होते हैं। अच्छी श्रेणीके लोग नहीं भेजे जाते ॥२२॥

तदलं परितापेन देवि मन्युरपैतु ते ।
एकोत्पातेन ते लङ्कामेष्यन्ति हरियूथपाः ॥ २३ ॥

''अतः देवि! अब संताप करनेकी आवश्यकता नहीं है। आपका मानसिक दुःख दूर हो जाना चाहिये। वे वानर-यूथपति एक ही छलाँगमें लङ्कामें पहुँच जायँगे ॥ २३ ॥

मम पृष्ठगतौ तौ च चन्द्रसूर्याविवोदितौ ।
त्वत्सकाशं महाभागे नृसिंहावागमिष्यतः ॥ २४ ॥

''महाभागे! वे पुरुषसिंह श्रीराम और लक्ष्मण भी उदयाचलपर उदित होनेवाले चन्द्रमा और सूर्यकी भाँति मेरी पीठपर बैठकर आपके पास आ जायँगे ॥ २४ ॥

अरिघ्नं सिंहसंकाशं क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम् ।
लक्ष्मणं च धनुष्मन्तं लङ्काद्वारमुपागतम् ॥ २५ ॥

''आप शीघ्र ही देखेंगी कि सिंहके समान पराक्रमी शत्रुनाशक श्रीराम और लक्ष्मण हाथमें धनुष लिये लङ्काके द्वारपर आ पहुँचे हैं ॥ २५ ॥

नखदंष्ट्रायुधान् वीरान् सिंहशार्दूलविक्रमान् ।
वानरान् वारणेन्द्राभान् क्षिप्रं द्रक्ष्यसि संगतान् ।२६।

''नख और दाढ़ें ही जिनके आयुध हैं, जो सिंह और बाघके समान पराक्रमी हैं तथा बड़े-बड़े गजराजोंके समान जिनकी विशाल काया है, उन वीर वानरोंको आप शीघ्र ही यहाँ एकत्र हुआ देखेंगी ॥ २६ ॥

शैलाम्बुदनिकाशानां लङ्कामलयसानुषु ।
नर्दतां कपिमुख्यानां नचिराच्छ्रोष्यसे स्वनम् ॥ २७ ॥

''लङ्कावर्ती मलयपर्वतके शिखरोंपर पहाड़ों और मेघोंके समान विशाल शरीरवाले प्रधान-प्रधान वानर आकर गर्जना करेंगे और आप शीघ्र ही उनका सिंहनाद सुनेंगी ॥ २७ ॥

निवृत्तवनवासं च त्वया सार्धमरिंदमम् ।
अभिषिक्तमयोध्यायां क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम् ॥ २८ ॥

''आपको जल्दी ही यह देखनेका भी सौभाग्य प्राप्त होगा कि शत्रुओंका दमन करनेवाले श्रीरघुनाथजी वनवासकी अवधि पूरी करके आपके साथ अयोध्यामें जाकर वहाँके राज्यपर अभिषिक्त हो गये हैं' ॥ २८ ॥

ततो मया वाग्भिरदीनभाषिणी
शिवाभिरिष्टाभिरभिप्रसादिता ।
उवाह शान्तिं मम मैथिलात्मजा
तवातिशोकेन तथातिपीडिता ॥ २९ ॥

''आपके अत्यन्त शोकसे बहुत ही पीड़ित होनेपर भी जिनकी वाणीमें कभी दीनता नहीं आने पाती, उन मिथिलेश-कुमारीको जब मैंने प्रिय एवं मङ्गलमय वचनोंद्वारा सान्त्वना देकर प्रसन्न किया, तब उनके मनको कुछ शान्ति मिली' ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें अड़सठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६८ ॥

◆

सुन्दरकाण्डं सम्पूर्णम्

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्

युद्धकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

हनुमान्‌जीकी प्रशंसा करके श्रीरामका उन्हें हृदयसे लगाना और समुद्रको पार करनेके लिये चिन्तित होना

श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं यथावदभिभाषितम् ।
रामः प्रीतिसमायुक्तो वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ १ ॥

हनुमान्‌जीके द्वारा यथावत्‌रूपसे कहे हुए इन वचनोंको सुनकर भगवान् श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए और इस प्रकार उत्तम वचन बोले—॥ १ ॥

कृतं हनूमता कार्यं सुमहद् भुवि दुर्लभम् ।
मनसापि यदन्येन न शक्यं धरणीतले ॥ २ ॥

'हनुमान्‌ने बड़ा भारी कार्य किया है। भूतलपर ऐसा कार्य होना कठिन है। इस भूमण्डलमें दूसरा कोई तो ऐसा कार्य करनेकी बात मनके द्वारा सोच भी नहीं सकता ॥ २ ॥

नहि तं परिपश्यामि यस्तरेत महोदधिम् ।
अन्यत्र गरुडाद् वायोरन्यत्र च हनूमतः ॥ ३ ॥

'गरुड़, वायु और हनुमान्‌को छोड़कर दूसरे किसीको मैं ऐसा नहीं देखता, जो महासागरको लाँघ सके ॥ ३ ॥

देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
अप्रधृष्यां पुरीं लङ्कां रावणेन सुरक्षिताम् ॥ ४ ॥
प्रविष्टः सत्त्वमाश्रित्य जीवन् को नाम निष्क्रमेत् ।

'देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग और राक्षस—इनमेंसे किसीके लिये भी जिसपर आक्रमण करना असम्भव है तथा जो रावणके द्वारा भलीभाँति सुरक्षित है, उस लङ्कापुरीमें अपने बलके भरोसे प्रवेश करके कौन वहाँसे जीवित निकल सकता है ? ॥ ४½ ॥

को विशेत् सुदुराधर्षां राक्षसैश्च सुरक्षिताम् ॥ ५ ॥
यो वीर्यबलसम्पन्नो न समः स्याद्धनूमतः ।

'जो हनुमान्‌के समान बल-पराक्रमसे सम्पन्न न हो, ऐसा कौन पुरुष राक्षसोंद्वारा सुरक्षित अत्यन्त दुर्जय लङ्कामें प्रवेश कर सकता है ॥ ५½ ॥

भृत्यकार्यं हनुमता सुग्रीवस्य कृतं महत् ।
एवं विधाय स्वबलं सदृशं विक्रमस्य च ॥ ६ ॥

'हनुमान्‌ने समुद्र-लङ्घन आदि कार्योंके द्वारा अपने पराक्रमके अनुरूप बल प्रकट करके एक सच्चे सेवकके योग्य सुग्रीवका बहुत बड़ा कार्य सम्पन्न किया है ॥ ६ ॥

यो हि भृत्यो नियुक्तः सन् भर्त्रा कर्मणि दुष्करे ।
कुर्यात् तदनुरागेण तमाहुः पुरुषोत्तमम् ॥ ७ ॥

'जो सेवक स्वामीके द्वारा किसी दुष्कर कार्यमें नियुक्त होनेपर उसे पूरा करके तदनुरूप दूसरे कार्यको भी (यदि वह मुख्य कार्यका विरोधी न हो) सम्पन्न करता है, वह सेवकोंमें उत्तम कहा गया है ॥ ७ ॥

यो नियुक्तः परं कार्यं न कुर्यान्नृपतेः प्रियम् ।
भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुर्मध्यमं नरम् ॥ ८ ॥

'जो एक कार्यमें नियुक्त होकर योग्यता और सामर्थ्य होनेपर भी स्वामीके दूसरे प्रिय कार्यको नहीं करता (स्वामीने जितना कहा है, उतना ही करके लौट आता है) वह मध्यम श्रेणीका सेवक बताया गया है ॥ ८ ॥

नियुक्तो नृपतेः कार्यं न कुर्याद् यः समाहितः ।
भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुः पुरुषाधमम् ॥ ९ ॥

'जो सेवक मालिकके किसी कार्यमें नियुक्त होकर अपनेमें योग्यता और सामर्थ्यके होते हुए भी उसे सावधानीसे पूरा नहीं करता, वह अधम कोटिका कहा गया है ॥ ९ ॥

तन्नियोगे नियुक्तेन कृतं कृत्यं हनूमता ।
न चात्मा लघुतां नीतः सुग्रीवश्चापि तोषितः ॥ १० ॥

'हनुमान्‌ने स्वामीके एक कार्यमें नियुक्त होकर उसके साथ ही दूसरे महत्त्वपूर्ण कार्योंको भी पूरा किया, अपने गौरवमें भी कमी नहीं आने दी—अपने-आपको दूसरोंकी दृष्टिमें छोटा नहीं बनने दिया और सुग्रीवको भी पूर्णतः संतुष्ट कर दिया ॥ १० ॥

अहं च रघुवंशश्च लक्ष्मणश्च महाबलः ।
वैदेह्या दर्शनेनाद्य धर्मतः परिरक्षिताः ॥ ११ ॥

'आज हनुमान्‌ने विदेहनन्दिनी सीताका पता लगाकर—उन्हें अपनी आँखों देखकर धर्मके अनुसार मेरी, समस्त रघुवंशकी और महाबली लक्ष्मणकी भी रक्षा की है ॥ ११ ॥

इदं तु मम दीनस्य मनो भूयः प्रकर्षति ।
यदिहास्य प्रियाख्यातुर्न कुर्मि सदृशं प्रियम् ॥ १२ ॥

'आज मेरे पास पुरस्कार देने योग्य वस्तुका अभाव है, यह बात मेरे मनमें बड़ी कसक पैदा कर रही है कि यहाँ जिसने मुझे ऐसा प्रिय संवाद सुनाया, उसका मैं कोई वैसा ही प्रिय कार्य नहीं कर पा रहा हूँ ॥ १२ ॥

एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः ।
मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनः ॥ १३ ॥

'इस समय इन महात्मा हनुमान्‌को मैं केवल अपना प्रगाढ़ आलिङ्गन प्रदान करता हूँ, क्योंकि यही मेरा सर्वस्व है' ॥ १३ ॥

इत्युक्त्वा प्रीतिहृष्टाङ्गो रामस्तं परिषस्वजे ।
हनूमन्तं कृतात्मानं कृतकार्यमुपागतम् ॥ १४ ॥

ऐसा कहते-कहते रघुनाथजीके अङ्ग-प्रत्यङ्ग प्रेमसे पुलकित हो गये और उन्होंने अपनी आज्ञाके पालनमें सफलता पाकर लौटे हुए पवित्रात्मा हनुमान्‌जीको हृदयसे लगा लिया ॥१४॥

ध्यात्वा पुनरुवाचेदं वचनं रघुसत्तमः ।
हरीणामीश्वरस्यापि सुग्रीवस्योपशृण्वतः ॥ १५ ॥

फिर थोड़ी देरतक विचार करके रघुवंशशिरोमणि श्रीरामने वानरराज सुग्रीवको सुनाकर यह बात कही—॥ १५ ॥

सर्वथा सुकृतं तावत् सीतायाः परिमार्गणम् ।
सागरं तु समासाद्य पुनर्नष्टं मनो मम ॥ १६ ॥

'बन्धुओ ! सीताकी खोजका काम तो सुचारुरूपसे सम्पन्न हो गया; किंतु समुद्रतककी दुस्तरताका विचार करके मेरे मनका उत्साह फिर नष्ट हो गया ॥ १६ ॥

कथं नाम समुद्रस्य दुष्पारस्य महाम्भसः ।
हरयो दक्षिणं पारं गमिष्यन्ति समागताः ॥ १७ ॥

'महान् जलराशिसे परिपूर्ण समुद्रको पार करना तो बड़ा ही कठिन काम है । यहाँ एकत्र हुए ये वानर समुद्रके दक्षिण तटपर कैसे पहुँचेंगे ॥ १७ ॥

यद्यप्येष तु वृत्तान्तो वैदेह्या गदितो मम ।
समुद्रपारगमने हरीणां किमिवोत्तरम् ॥ १८ ॥

'मेरी सीताने भी यही संदेह उठाया था, जिसका वृत्तान्त अभी-अभी मुझसे कहा गया है । इन वानरोंके समुद्रके पार जानेके विषयमें जो प्रश्न खड़ा हुआ है, उसका वास्तविक उत्तर क्या है ?' ॥ १८ ॥

इत्युक्त्वा शोकसम्भ्रान्तो रामः शत्रुनिबर्हणः ।
हनूमन्तं महाबाहुस्ततो ध्यानमुपागमत् ॥ १९ ॥

हनुमान्‌जीसे ऐसा कहकर शत्रुसूदन महाबाहु श्रीराम शोकाकुल होकर बड़ी चिन्तामें पड़ गये ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पहला सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

सुग्रीवका श्रीरामको उत्साह प्रदान करना

तं तु शोकपरिद्यूनं रामं दशरथात्मजम् ।
उवाच वचनं श्रीमान् सुग्रीवः शोकनाशनम् ॥ १ ॥

इस प्रकार शोकसे संतप्त हुए दशरथनन्दन श्रीरामसे सुग्रीवने उनके शोकका निवारण करनेवाली बात कही—॥१॥

किं त्वया तप्यते वीर यथान्यः प्राकृतस्तथा ।
मैवं भूस्त्यज संतापं कृतघ्न इव सौहृदम् ॥ २ ॥

'वीरवर ! आप दूसरे साधारण मनुष्योंकी भाँति क्यों संताप कर रहे हैं ? आप इस तरह चिन्तित न हों । जैसे कृतघ्न पुरुष सौहार्दको त्याग देता है, उसी तरह आप भी इस संतापको छोड़ दें ॥ २ ॥

संतापस्य च ते स्थानं नहि पश्यामि राघव ।
प्रवृत्तावुपलब्धायां ज्ञाते च निलये रिपोः ॥ ३ ॥

'रघुनन्दन ! जब सीताका समाचार मिल गया और शत्रुके निवास-स्थानका पता लग गया, तब मुझे आपके इस दुःख और चिन्ताका कोई कारण नहीं दिखायी देता ॥ ३ ॥

मतिमाञ्शास्त्रवित् प्राज्ञः पण्डितश्चासि राघव ।
त्यजेमां प्राकृतां बुद्धिं कृतात्मेवार्थदूषिणीम् ॥ ४ ॥

'रघुकुलभूषण ! आप बुद्धिमान्, शास्त्रोंके ज्ञाता, विचारकुशल और पण्डित हैं, अतः कृतात्मा पुरुषकी भाँति इस अर्थदूषक प्राकृत बुद्धिका परित्याग कर दीजिये ॥ ४ ॥

समुद्रं लङ्घयित्वा तु महानक्रसमाकुलम् ।
लङ्कामारोहयिष्यामो हनिष्यामश्च ते रिपुम् ॥ ५ ॥

'बड़े-बड़े नाकोंसे भरे हुए समुद्रको लाँघकर हमलोग लङ्कापर चढ़ाई करेंगे और आपके शत्रुको नष्ट कर डालेंगे ॥

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः ।
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति ॥ ६ ॥

'जो पुरुष उत्साहशून्य, दीन और मन-ही-मन शोकसे व्याकुल रहता है, उसके सारे काम बिगड़ जाते हैं और वह बड़ी विपत्तिमें पड़ जाता है ॥ ६ ॥

इमे शूराः समर्थाश्च सर्वतो हरियूथपाः ।
त्वत्प्रियार्थं कृतोत्साहाः प्रवेष्टुमपि पावकम् ।
एषां हर्षेण जानामि तर्कश्चापि दृढो मम ॥ ७ ॥

'ये वानरयूथपति सब प्रकारसे समर्थ एवं शूरवीर हैं। आपका प्रिय करनेके लिये इनके मनमें बड़ा उत्साह है। ये आपके लिये जलती आगमें भी प्रवेश कर सकते हैं। समुद्रको लाँघने और रावणको मारनेका प्रसंग चलनेपर इनका मुँह प्रसन्नतासे खिल जाता है। इनके इस हर्ष और उत्साहसे ही मैं इस बातको जानता हूँ तथा इस विषयमें मेरा अपना तर्क (निश्चय) भी सुदृढ़ है ॥ ७ ॥

विक्रमेण समानेष्ये सीतां हत्वा यथा रिपुम् ।
रावणं पापकर्माणं तथा त्वं कर्तुमर्हसि ॥ ८ ॥

'आप ऐसा कीजिये, जिससे हमलोग पराक्रमपूर्वक अपने शत्रु पापाचारी रावणका वध करके सीताको यहाँ ले आवें ॥

सेतुरत्र यथा बद्ध्येद् यथा पश्येम तां पुरीम् ।
तस्य राक्षसराजस्य तथा त्वं कुरु राघव ॥ ९ ॥

'रघुनन्दन ! आप ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे समुद्रपर सेतु बँध सके और हम उस राक्षसराजकी लङ्कापुरीको देख सकें ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा तां हि पुरीं लङ्कां त्रिकूटशिखरे स्थिताम् ।
हतं च रावणं युद्धे दर्शनादवधारय ॥ १० ॥

'त्रिकूटपर्वतके शिखरपर बसी हुई लङ्कापुरी एक बार दीख जाय तो आप यह निश्चित समझिये कि युद्धमें रावण दिखायी दिया और मारा गया ॥ १० ॥

अबद्ध्वा सागरे सेतुं घोरे च वरुणालये ।
लङ्का न मर्दितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ ११ ॥

'वरुणके निवासभूत घोर समुद्रपर पुल बाँधे बिना तो इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर भी लङ्काको पददलित नहीं कर सकते ॥ ११ ॥

सेतुबन्धः समुद्रे च यावल्लङ्कासमीपतः ।
सर्वं तीर्णं च मे सैन्यं जितमित्युपधारय ।
इमे हि समरे वीरा हरयः कामरूपिणः ॥ १२ ॥

'अतः जब लङ्काके निकटतक समुद्रपर पुल बँध जायगा, तब हमारी सारी सेना उस पार चली जायगी। फिर तो आप यही समझिये कि अपनी जीत हो गयी; क्योंकि इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले ये वानर युद्धमें बड़ी वीरता दिखानेवाले हैं ॥ १२ ॥

तदलं विक्लवां बुद्धिं राजन् सर्वार्थनाशिनीम् ।
पुरुषस्य हि लोकेऽस्मिञ्छोकः शौर्यापकर्षणः ॥ १३ ॥

'अतः राजन् ! आप इस व्याकुल बुद्धिका आश्रय न लें—बुद्धिकी इस व्याकुलताको त्याग दें; क्योंकि यह समस्त कार्योंको बिगाड़ देनेवाली है और शोक इस जगत्में पुरुषके शौर्यको नष्ट कर देता है ॥ १३ ॥

यत् तु कार्यं मनुष्येण शौटीर्यमवलम्ब्यताम् ।
तदलंकरणायैव कर्तुर्भवति सत्वरम् ॥ १४ ॥

'मनुष्यको जिसका आश्रय लेना चाहिये, उस शौर्यका ही वह अवलम्बन करे; क्योंकि वह कर्ताको शीघ्र ही अलंकृत कर देता है—उसके अभीष्ट फलकी सिद्धि करा देता है ॥ १४ ॥

अस्मिन् काले महाप्राज्ञ सत्त्वमातिष्ठ तेजसा ।
शूराणां हि मनुष्याणां त्वद्विधानां महात्मनाम् ।
विनष्टे वा प्रणष्टे वा शोकः सर्वार्थनाशनः ॥ १५ ॥

'अतः महाप्राज्ञ श्रीराम ! आप इस समय तेजके साथ ही धैर्यका आश्रय लें। कोई वस्तु खो गयी हो या नष्ट हो गयी हो, उसके लिये आप-जैसे शूरवीर महात्मा पुरुषोंको शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि शोक सब कामोंको बिगाड़ देता है ॥ १५ ॥

तत्त्वं बुद्धिमतां श्रेष्ठः सर्वशास्त्रार्थकोविदः ।
मद्विधैः सचिवैः सार्धमरिं जेतुं समर्हसि ॥ १६ ॥

'आप बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण शास्त्रोंके मर्मज्ञ हैं। अतः हम-जैसे मन्त्रियों एवं सहायकोंके साथ रहकर अवश्य ही शत्रुपर विजय प्राप्त कर सकते हैं ॥ १६ ॥

नहि पश्याम्यहं कंचित् त्रिषु लोकेषु राघव ।
गृहीतधनुषो यस्ते तिष्ठेदभिमुखो रणे ॥ १७ ॥

'रघुनन्दन ! मुझे तो तीनों लोकोंमें ऐसा कोई वीर नहीं दिखायी देता, जो रणभूमिमें धनुष लेकर खड़े हुए आपके सामने ठहर सके ॥ १७ ॥

वानरेषु समासक्तं न ते कार्यं विपत्स्यते ।
अचिराद् द्रक्ष्यसे सीतां तीर्त्वा सागरमक्षयम् ॥ १८ ॥

'वानरोंपर जिसका भार रक्खा गया है, आपका वह कार्य बिगड़ने नहीं पायेगा। आप शीघ्र ही इस अक्षय समुद्रको पार करके सीताका दर्शन करेंगे ॥ १८ ॥

तदलं शोकमालम्ब्य क्रोधमालम्ब भूपते ।
निश्चेष्टाः क्षत्रिया मन्दाः सर्वे चण्डस्य बिभ्यति ॥ १९ ॥

'पृथ्वीनाथ ! अपने हृदयमें शोकको स्थान देना व्यर्थ है। इस समय तो आप शत्रुओंके प्रति क्रोध धारण कीजिये।

जो क्षत्रिय मन्द (क्रोधशून्य) होते हैं, उनसे कोई चेष्टा नहीं बन पाती; परंतु जो शत्रुके प्रति आवश्यक रोषसे भरा होता है, उससे सब डरते हैं ॥ १९ ॥

लङ्घनार्थं च घोरस्य समुद्रस्य नदीपतेः ।
सहास्माभिरिहोपेतः सूक्ष्मबुद्धिर्विचारय ॥ २० ॥

'नदियोंके स्वामी घोर समुद्रको पार करनेके लिये क्या उपाय किया जाय, इस विषयमें आप हमारे साथ बैठकर विचार कीजिये; क्योंकि आपकी बुद्धि बड़ी सूक्ष्म है ॥ २० ॥

लङ्घिते तत्र तैः सैन्यैर्जितमित्येव निश्चिनु ।
सर्वं तीर्णं च मे सैन्यं जितमित्यवधार्यताम् ॥ २१ ॥

'यदि हमारे सैनिक समुद्रको लाँघ गये तो यही निश्चय रखिये कि अपनी जीत अवश्य होगी । सारी सेनाका समुद्रके उस पार पहुँच जाना ही अपनी विजय समझिये ॥ २१ ॥

इमे हि हरयः शूराः समरे कामरूपिणः ।
तानरीन् विधमिष्यन्ति शिलापादपवृष्टिभिः ॥ २२ ॥

'ये वानर संग्राममें बड़े शूरवीर हैं और इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं । ये पत्थरों और पेड़ोंकी वर्षा करके ही उन शत्रुओंका संहार कर डालेंगे ॥ २२ ॥

कथंचित् परिपश्यामि लङ्घितं वरुणालयम् ।
हतमित्येव तं मन्ये युद्धे शत्रुनिबर्हण ॥ २३ ॥

'शत्रुसूदन श्रीराम ! यदि किसी प्रकार मैं इस वानर-सेनाको समुद्रके उस पार पहुँची देख सकूँ तो मैं रावणको युद्धमें मरा हुआ ही समझता हूँ ॥ २३ ॥

किमुक्त्वा बहुधा चापि सर्वथा विजयी भवान् ।
निमित्तानि च पश्यामि मनो मे सम्प्रहृष्यति ॥ २४ ॥

'बहुत कहनेसे क्या लाभ ? मेरा तो विश्वास है कि आप सर्वथा विजयी होंगे; क्योंकि मुझे ऐसे ही शकुन दिखायी देते हैं और मेरा हृदय भी हर्ष एवं उत्साहसे भरा है' ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें दूसरा सर्ग पूरा हुआ ॥ २ ॥

◆

तृतीयः सर्गः

हनुमान्‌जीका लंकाके दुर्ग, फाटक, सेना-विभाग और संक्रम आदिका वर्णन करके भगवान् श्रीरामसे सेनाको कूच करनेकी आज्ञा देनेके लिये प्रार्थना करना

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा हेतुमत् परमार्थवत् ।
प्रतिजग्राह काकुत्स्थो हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

सुग्रीवके ये युक्तियुक्त और उत्तम अभिप्रायसे पूर्ण वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें स्वीकार किया और फिर हनुमान्‌जीसे कहा—॥ १ ॥

तपसा सेतुबन्धेन सागरोच्छोषणेन च ।
सर्वथापि समर्थोऽस्मि सागरस्यास्य लङ्घने ॥ २ ॥

'मैं तपस्यासे पुल बाँधकर और समुद्रको सुखाकर सब प्रकारसे महासागरको लाँघ जानेमें समर्थ हूँ ॥ २ ॥

कति दुर्गाणि दुर्गाया लङ्कायास्तद् ब्रवीष्व मे ।
ज्ञातुमिच्छामि तत् सर्वं दर्शनादिव वानर ॥ ३ ॥

'वानरवीर ! तुम मुझे यह तो बताओ कि उस दुर्गम लङ्कापुरीके कितने दुर्ग हैं । मैं देखे हुएके समान उसका सारा विवरण स्पष्टरूपसे जानना चाहता हूँ ॥ ३ ॥

बलस्य परिमाणं च द्वारदुर्गक्रियामपि ।
गुप्तिकर्म च लङ्काया रक्षसां सदनानि च ॥ ४ ॥
यथासुखं यथावच्च लङ्कायामसि दृष्टवान् ।
सर्वमाचक्ष्व तत्त्वेन सर्वथा कुशलो ह्यसि ॥ ५ ॥

'तुमने रावणकी सेनाका परिमाण, पुरीके दरवाजोंको दुर्गम बनानेके साधन, लङ्काकी रक्षाके उपाय तथा राक्षसोंके भवन—इन सबको सुखपूर्वक यथावत्‌रूपसे वहाँ देखा है । अतः इन सबका ठीक-ठीक वर्णन करो; क्योंकि तुम सब प्रकारसे कुशल हो' ॥ ४-५ ॥

श्रुत्वा रामस्य वचनं हनूमान् मारुतात्मजः ।
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठो रामं पुनरथाब्रवीत् ॥ ६ ॥

श्रीरघुनाथजीका यह वचन सुनकर वाणीके मर्मको समझनेवाले विद्वानोंमें श्रेष्ठ पवनकुमार हनुमान्‌ने श्रीरामसे फिर कहा—॥ ६ ॥

श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये दुर्गकर्म विधानतः ।
गुप्ता पुरी यथा लङ्का रक्षिता च यथा बलैः ॥ ७ ॥
राक्षसाश्च यथा स्निग्धा रावणस्य च तेजसा ।
परां समृद्धिं लङ्कायाः सागरस्य च भीमताम् ॥ ८ ॥
विभागं च बलौघस्य निर्देशं वाहनस्य च ।
एवमुक्त्वा कपिश्रेष्ठः कथयामास तत्त्वतः ॥ ९ ॥

'भगवन् ! सुनिये । मैं सब बातें बता रहा हूँ । लङ्काके दुर्ग किस विधिसे बने हैं, किस प्रकार लङ्कापुरीकी रक्षाकी व्यवस्था की गयी है, किस तरह वह सेनाओंसे सुरक्षित है, रावणके तेजसे प्रभावित हो राक्षस उसके प्रति कैसा स्नेह रखते

हैं, लङ्काकी समृद्धि कितनी उत्तम है, समुद्र कितना भयंकर है, पैदल सैनिकोंका विभाग करके कहाँ कितने सैनिक रखे गये हैं और वहाँके वाहनोंकी कितनी संख्या है—इन सब बातोंका मैं वर्णन करूँगा। ऐसा कहकर कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने वहाँकी बातोंको ठीक-ठीक बताना आरम्भ किया ॥ ७–९ ॥

हृष्टप्रमुदिता लङ्का मत्तद्विपसमाकुला।
महती रथसम्पूर्णा रक्षोगणनिषेविता ॥ १० ॥

'प्रभो! लङ्कापुरी हर्ष और आमोद-प्रमोदसे पूर्ण है। वह विशाल पुरी मतवाले हाथियोंसे व्याप्त तथा असंख्य रथोंसे भरी हुई है। राक्षसोंके समुदाय सदा उसमें निवास करते हैं ॥

दृढबद्धकपाटानि महापरिघवन्ति च।
चत्वारि विपुलान्यस्या द्वाराणि सुमहान्ति च ॥ ११ ॥

'उस पुरीके चार बड़े-बड़े दरवाजे हैं, जो बहुत लंबे-चौड़े हैं। उनमें बहुत मजबूत किवाड़ लगे हैं और मोटी-मोटी अर्गलाएँ हैं ॥ ११ ॥

तत्रेषूपलयन्त्राणि बलवन्ति महान्ति च।
आगतं प्रतिसैन्यं तैस्तत्र प्रतिनिवार्यते ॥ १२ ॥

'उन दरवाजोंपर बड़े विशाल और प्रबल यन्त्र लगे हैं। जो तीर और पत्थरोंके गोले बरसाते हैं। उनके द्वारा आक्रमण करनेवाली शत्रुसेनाको आगे बढ़नेसे रोका जाता है ॥ १२ ॥

द्वारेषु संस्कृता भीमाः कालायसमयाः शिताः।
शतशो रचिता वीरैः शतघ्न्यो रक्षसां गणैः ॥ १३ ॥

'जिन्हें वीर राक्षसगणोंने बनाया है, जो काले लोहेकी बनी हुई, भयंकर और तीखी हैं तथा जिनका अच्छी तरह संस्कार किया गया है, ऐसी सैकड़ों शतघ्नियाँ[1] (लोहेके काँटोंसे भरी हुई चार हाथ लंबी गदाएँ) उन दरवाजोंपर सजाकर रक्खी गयी हैं ॥ १३ ॥

सौवर्णस्तु महांस्तस्याः प्राकारो दुष्प्रधर्षणः।
मणिविद्रुमवैदूर्यमुक्ताविरचितान्तरः ॥ १४ ॥

'उस पुरीके चारों ओर सोनेका बना हुआ बहुत ऊँचा परकोटा है, जिसको तोड़ना बहुत ही कठिन है। उसमें मणि, मूँगे, नीलम और मोतियोंका काम किया गया है ॥ १४ ॥

सर्वतश्च महाभीमाः शीततोया महाशुभाः।
अगाधा ग्राहवत्यश्च परिखा मीनसेविताः ॥ १५ ॥

'परकोटोंके चारों ओर महाभयंकर, शत्रुओंका महान् अमङ्गल करनेवाली, ठंडे जलसे भरी हुई और अगाध गहराईसे युक्त कई खाइयाँ बनी हुई हैं, जिनमें ग्राह और बड़े-बड़े मत्स्य निवास करते हैं ॥ १५ ॥

द्वारेषु तासां चत्वारः संक्रमाः परमायताः।
यन्त्रैरुपेता बहुभिर्महद्भिर्गृहपङ्क्तिभिः ॥ १६ ॥

'उक्त चारों दरवाजोंके सामने उन खाइयोंपर मचानोंके रूपमें चार संक्रम[1] (लकड़ीके पुल) हैं, जो बहुत ही विस्तृत हैं। उनमें बहुत-से बड़े-बड़े यन्त्र लगे हुए हैं और उनके आस-पास परकोटेपर बने हुए मकानोंकी पंक्तियाँ हैं ॥ १६ ॥

त्रायन्ते संक्रमास्तत्र परसैन्यागते सति।
यन्त्रैस्तैरवकीर्यन्ते परिखासु समन्ततः ॥ १७ ॥

'जब शत्रुकी सेना आती है, तब यन्त्रोंके द्वारा उन संक्रमोंकी रक्षा की जाती है तथा उन यन्त्रोंके द्वारा ही उन्हें सब ओर खाइयोंमें गिरा दिया जाता है और वहाँ पहुँची हुई शत्रु-सेनाओंको भी सब ओर फेंक दिया जाता है ॥ १७ ॥

एकस्त्वकम्प्यो बलवान् संक्रमः सुमहादृढः।
काञ्चनैर्बहुभिः स्तम्भैर्वेदिकाभिश्च शोभितः ॥ १८ ॥

'उनमेंसे एक संक्रम तो बड़ा ही सुदृढ़ और अभेद्य है। वहाँ बहुत बड़ी सेना रहती है और वह सोनेके अनेक खंभों तथा चबूतरोंसे सुशोभित है ॥ १८ ॥

स्वयं प्रकृतिमापन्नो युयुत्सू राम रावणः।
उत्थितश्चाप्रमत्तश्च बलानामनुदर्शने ॥ १९ ॥

'रघुनाथजी! रावण युद्धके लिये उत्सुक होता हुआ स्वयं कभी क्षुब्ध नहीं होता—स्वस्थ एवं धीर बना रहता है। वह सेनाओंके बारंबार निरीक्षणके लिये सदा सावधान एवं उद्यत रहता है ॥ १९ ॥

लङ्का पुनर्निरालम्बा देवदुर्गा भयावहा।
नादेयं पार्वतं वान्यं कृत्रिमं च चतुर्विधम् ॥ २० ॥

'लङ्कापर चढ़ाई करनेके लिये कोई अवलम्ब नहीं है। वह पुरी देवताओंके लिये भी दुर्गम और बड़ी भयावनी है। उसके चारों ओर नदी, पर्वत, वन और कृत्रिम (खाई, परकोटा आदि)—ये चार प्रकारके दुर्ग हैं ॥ २० ॥

स्थिता पारे समुद्रस्य दूरपारस्य राघव।
नौपथश्चापि नास्त्यत्र निरुद्देशश्च सर्वतः ॥ २१ ॥

'रघुनन्दन! वह बहुत दूरतक फैले हुए समुद्रके दक्षिण किनारेपर बसी हुई है। वहाँ जानेके लिये नावका भी मार्ग नहीं है; क्योंकि उसमें लक्ष्यका भी किसी प्रकार पता रहना सम्भव नहीं है ॥ २१ ॥

शैलाग्रे रचिता दुर्गा सा पूर्देवपुरोपमा।

---

[1] शतघ्नी च चतुर्हस्ता लोहकंटकिनी गदा। इति वैजयन्ती।

[1] मालूम होता है 'संक्रम' इस प्रकारके पुल थे, जिन्हें जब आवश्यकता होती, तभी यन्त्रोंद्वारा गिरा दिया जाता था। इसीसे शत्रुकी सेना आनेपर उसे खाईमें गिरा देनेकी बात कही गयी है।

वाजिवारणसम्पूर्णा लङ्का परमदुर्जया ॥ २२ ॥

'वह दुर्गम पुरी पर्वतके शिखरपर बसायी गयी है और देवपुरीके समान सुन्दर दिखायी देती है, हाथी, घोड़ोंसे भरी हुई वह लङ्का अत्यन्त दुर्जय है ॥ २२ ॥

परिखाश्च शतघ्न्यश्च यन्त्राणि विविधानि च ।
शोभयन्ति पुरीं लङ्कां रावणस्य दुरात्मनः ॥ २३ ॥

'खाइयाँ, शतघ्नियाँ और तरह-तरहके यन्त्र दुरात्मा रावणकी उस लङ्कानगरीकी शोभा बढ़ाते हैं ॥ २३ ॥

अयुतं रक्षसामत्र पूर्वद्वारं समाश्रितम् ।
शूलहस्ता दुराधर्षाः सर्वे खड्गाग्रयोधिनः ॥ २४ ॥

'लङ्काके पूर्व द्वारपर दस हजार राक्षस रहते हैं, जो सब-के-सब हाथोंमें शूल धारण करते हैं । वे अत्यन्त दुर्जय और युद्धके मुहानेपर तलवारोंसे जूझनेवाले हैं ॥ २४ ॥

नियुतं रक्षसामत्र दक्षिणद्वारमाश्रितम् ।
चतुरङ्गेण सैन्येन योधास्तत्राप्यनुत्तमाः ॥ २५ ॥

'लङ्काके दक्षिण द्वारपर चतुरंगिणी सेनाके साथ एक लाख राक्षस योद्धा डटे रहते हैं । वहाँके सैनिक भी बड़े बहादुर हैं ॥ २५ ॥

प्रयुतं रक्षसामत्र पश्चिमद्वारमाश्रितम् ।
चर्मखड्गधराः सर्वे तथा सर्वास्त्रकोविदाः ॥ २६ ॥

'पुरीके पश्चिम द्वारपर दस लाख राक्षस निवास करते हैं । वे सब-के-सब ढाल और तलवार धारण करते हैं तथा सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञानमें निपुण हैं ॥ २६ ॥

न्यर्बुदं रक्षसामत्र उत्तरद्वारमाश्रितम् ।
रथिनश्चाश्ववाहाश्च कुलपुत्राः सुपूजिताः ॥ २७ ॥

'उस पुरीके उत्तर द्वारपर एक अर्बुद (दस करोड़) राक्षस रहते हैं । जिनमेंसे कुछ तो रथी हैं और कुछ घुड़सवार । वे सभी उत्तम कुलमें उत्पन्न और अपनी वीरताके लिये प्रशंसित हैं ॥ २७ ॥

शतशोऽथ सहस्राणि मध्यमं स्कन्धमाश्रिताः ।
यातुधाना दुराधर्षाः साग्रकोटिश्च रक्षसाम् ॥ २८ ॥

'लङ्काके मध्यभागकी छावनीमें सैकड़ों सहस्र दुर्जय राक्षस रहते हैं, जिनकी संख्या एक करोड़से अधिक है ॥

ते मया संक्रमा भग्नाः परिखाश्चावपूरिताः ।
दग्धा च नगरी लङ्का प्राकाराश्चावसादिताः ।
बलैकदेशः क्षपितो राक्षसानां महात्मनाम् ॥ २९ ॥

'किंतु मैंने उन सब संक्रमोंको तोड़ डाला है, खाइयाँ पाट दी हैं, लङ्कापुरीको जला दिया है और उसके परकोटोंको भी धराशायी कर दिया है । इतना ही नहीं, वहाँके विशालकाय राक्षसोंकी सेनाका एक चौथाई भाग नष्ट कर डाला है ॥

येन केन तु मार्गेण तराम वरुणालयम् ।
हतेति नगरी लङ्का वानरैरुपधार्यताम् ॥ ३० ॥

'हमलोग किसी-न-किसी मार्ग या उपायसे एक बार समुद्रको पार कर लें; फिर तो लङ्काको वानरोंके द्वारा नष्ट हुई ही समझिये ॥ ३० ॥

अङ्गदो द्विविदो मैन्दो जाम्बवान् पनसो नलः ।
नीलः सेनापतिश्चैव बलशेषेण किं तव ॥ ३१ ॥

'अङ्गद, द्विविद, मैन्द, जाम्बवान्, पनस, नल और सेनापति नील—इतने ही वानर लङ्काविजय करनेके लिये पर्याप्त हैं । बाकी सेना लेकर आपको क्या करना है ? ॥ ३१ ॥

प्लवमाना हि गत्वा तां रावणस्य महापुरीम् ।
सपर्वतवनां भित्त्वा सखातां च सतोरणाम् ।
सप्राकारां सभवनामानयिष्यन्ति राघव ॥ ३२ ॥

'रघुनन्दन ! ये अङ्गद आदि वीर आकाशमें उछलते-कूदते हुए रावणकी महापुरी लङ्कामें पहुँचकर उसे पर्वत, वन, खाई, दरवाजे, परकोटे और मकानोंसहित नष्ट करके सीताजीको यहाँ ले आयेंगे ॥ ३२ ॥

एवमाज्ञापय क्षिप्रं बलानां सर्वसंग्रहम् ।
मुहूर्तेन तु युक्तेन प्रस्थानमभिरोचय ॥ ३३ ॥

'ऐसा समझकर आप शीघ्र ही समस्त सैनिकोंको सम्पूर्ण आवश्यक वस्तुओंका संग्रह करके कूच करनेकी आज्ञा दीजिये और उचित मुहूर्तसे प्रस्थानकी इच्छा कीजिये' ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तीसरा सर्ग पूरा हुआ ॥ ३ ॥

* * *

चतुर्थः सर्गः

श्रीराम आदिके साथ वानर-सेनाका प्रस्थान और समुद्र-तटपर उसका पड़ाव

श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं यथावदनुपूर्वशः ।
ततोऽब्रवीन्महातेजा रामः सत्यपराक्रमः ॥ १ ॥

हनुमान्जीके वचनोंको क्रमशः यथावत्रूपसे सुनकर सत्यपराक्रमी महातेजस्वी भगवान् श्रीरामने कहा—॥ १ ॥

यन्निवेदयसे लङ्कां पुरीं भीमस्य रक्षसः।
क्षिप्रमेनां वधिष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ २ ॥

'हनुमन् ! मैं तुमसे सच कहता हूँ—तुमने उस भयानक राक्षसकी जिस लङ्कापुरीका वर्णन किया है, उसे मैं शीघ्र ही नष्ट कर डालूँगा ॥ २ ॥

अस्मिन् मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचय।
युक्तो मुहूर्ते विजये प्राप्तो मध्यं दिवाकरः ॥ ३ ॥

'सुग्रीव ! तुम इसी मुहूर्तमें प्रस्थानकी तैयारी करो। सूर्यदेव दिनके मध्य भागमें जा पहुँचे हैं। इसलिये इस विजय नामक मुहूर्तमें हमारी यात्रा उपयुक्त होगी ॥ ३ ॥

सीतां हृत्वा तु तद् यातु क्वासौ यास्यति जीवितः।
सीता श्रुत्वाभियानं मे आशामेष्यति जीविते।
जीवितान्तेऽमृतं स्पृष्ट्वा पीत्वामृतमिवातुरः ॥ ४ ॥

'रावण सीताको हरकर ले जाय; किंतु वह जीवित बचकर कहाँ जायगा ? सिद्ध आदिके मुँहसे लङ्कापर मेरी चढ़ाईका समाचार सुनकर सीताको अपने जीवनकी आशा बँध जायगी; ठीक उसी तरह जैसे जीवनका अन्त उपस्थित होनेपर यदि रोगी अमृतका (अमृतत्वके साधनभूत दिव्य ओषधिका) स्पर्श कर ले अथवा अमृतोपम द्रवभूत ओषधिको पी ले तो उसे जीनेकी आशा हो जाती है ॥ ४ ॥

उत्तराफाल्गुना ह्यद्य श्वस्तु हस्तेन योक्ष्यते।
अभिप्रयाम सुग्रीव सर्वानीकसमावृताः ॥ ५ ॥

'आज उत्तराफाल्गुनी नामक नक्षत्र है। कल चन्द्रमाका हस्त नक्षत्रसे योग होगा। इसलिये सुग्रीव ! हमलोग आज ही सारी सेनाओंके साथ यात्रा कर दें ॥ ५ ॥

निमित्तानि च पश्यामि यानि प्रादुर्भवन्ति वै।
निहत्य रावणं सीतामानयिष्यामि जानकीम् ॥ ६ ॥

'इस समय जो शकुन प्रकट हो रहे हैं और जिन्हें मैं देख रहा हूँ, उनसे यह विश्वास होता है कि मैं अवश्य ही रावणका वध करके जनकनन्दिनी सीताको ले आऊँगा ॥६॥

उपरिष्टाद्धि नयनं स्फुरमाणमिमं मम।
विजयं समनुप्राप्तं शंसतीव मनोरथम् ॥ ७ ॥

'इसके सिवा मेरी दाहिनी आँखका ऊपरी भाग फड़क रहा है। वह भी मानो मेरी विजय-प्राप्ति और मनोरथसिद्धिको सूचित कर रहा है' ॥ ७ ॥

ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन सुपूजितः।
उवाच रामो धर्मात्मा पुनरप्यर्थकोविदः ॥ ८ ॥

यह सुनकर वानरराज सुग्रीव तथा लक्ष्मणने भी उनका बड़ा आदर किया। तत्पश्चात् अर्थवेत्ता (नीतिनिपुण) धर्मात्मा श्रीरामने फिर कहा— ॥ ८ ॥

अग्रे यातु बलस्यास्य नीलो मार्गमवेक्षितुम्।
वृतः शतसहस्रेण वानराणां तरस्विनाम् ॥ ९ ॥

'इस सेनाके आगे-आगे एक लाख वेगवान् वानरोंसे घिरे हुए सेनापति नील मार्ग देखनेके लिये चलें ॥ ९ ॥

फलमूलवता नील शीतकाननवारिणा।
पथा मधुमता चाशु सेनां सेनापते नय ॥ १० ॥

'सेनापति नील ! तुम सारी सेनाको ऐसे मार्गसे शीघ्रतापूर्वक ले चलो, जिसमें फल-मूलकी अधिकता हो, शीतल छायासे युक्त सघन वन हो, ठंडा जल मिल सके और मधु भी उपलब्ध हो सके ॥ १० ॥

दूषयेयुर्दुरात्मानः पथि मूलफलोदकम्।
राक्षसाः पथि रक्षेथास्तेभ्यस्त्वं नित्यमुद्यतः ॥ ११ ॥

'सम्भव है दुरात्मा राक्षस रास्तेके फल-मूल और जलको विष आदिसे दूषित कर दें, अतः तुम मार्गमें सतत सावधान रहकर उनसे इन वस्तुओंकी रक्षा करना ॥ ११ ॥

निम्नेषु वनदुर्गेषु वनेषु च वनौकसः।
अभिप्लुत्याभिपश्येयुः परेषां निहितं बलम् ॥ १२ ॥

'वानरोंको चाहिये कि जहाँ गड्ढे, दुर्गम वन और साधारण जंगल हों, वहाँ सब ओर कूद-फाँदकर यह देखते रहें कि कहीं शत्रुओंकी सेना तो नहीं छिपी है (ऐसा न हो कि हम आगे निकल जायँ और शत्रु अकस्मात् पीछेसे आक्रमण कर दे)॥

यत्तु फल्गु बलं किंचित् तदत्रैवोपपद्यताम्।
एतद्धि कृत्यं घोरं नो विक्रमेण प्रयुज्यताम् ॥ १३ ॥

'जिस सेनामें बाल, वृद्ध आदिके कारण दुर्बलता हो, वह यहाँ किष्किन्धामें ही रह जाय; क्योंकि हमारा यह युद्धरूपी कृत्य बड़ा भयंकर है, अतः इसके लिये बल-विक्रमसम्पन्न सेनाको ही यात्रा करनी चाहिये ॥ १३ ॥

सागरौघनिभं भीममग्रानीकं महाबलाः।
कपिसिंहाः प्रकर्षन्तु शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १४ ॥

'सैकड़ों और हजारों महाबली कपिकेसरी वीर महासागरकी जलराशिके समान भयंकर एवं अपार वानर-सेनाके अग्रभागको अपने साथ आगे बढ़ाये चलें ॥ १४ ॥

गजश्च गिरिसंकाशो गवयश्च महाबलः।
गवाक्षश्चाग्रतो यातु गवां दृप्त इवर्षभः ॥ १५ ॥

---

१. दिनमें दोपहरीके समय अभिजित् मुहूर्त होता है, इसीको विजय-मुहूर्त भी कहते हैं। यह यात्राके लिये बहुत उत्तम माना गया है। यद्यपि—'भुक्तौ दक्षिणयात्रायां प्रतिष्ठायां द्विजन्मनि। आधाने च ध्वजारोहे मृत्युदः स्याद् सदाभिजित् ॥' इस ज्योतिष-रत्नाकरके वचनके अनुसार उक्त मुहूर्तमें दक्षिणयात्रा निषिद्ध है, तथापि किष्किन्धासे लङ्का दक्षिणपूर्वके कोणमें होनेके कारण वह दोष यहाँ नहीं प्राप्त होता है।

'पर्वतके समान विशालकाय गज, महाबली गवय तथा मतवाले साँड़की भाँति पराक्रमी गवाक्ष सेनाके आगे-आगे चलें ॥

यातु वानरवाहिन्या वानरः प्लवतां पतिः ।
पालयन् दक्षिणं पार्श्वमृषभो वानरर्षभः ॥ १६ ॥

'उछल-कूदकर चलनेवाले कपियोंके पालक वानर-शिरोमणि ऋषभ इस वानर-सेनाके दाहिने भागकी रक्षा करते हुए चलें ॥ १६ ॥

गन्धहस्तीव दुर्धर्षस्तरस्वी गन्धमादनः ।
यातु वानरवाहिन्याः सव्यं पार्श्वमधिष्ठितः ॥ १७ ॥

'गन्धहस्तीके समान दुर्जय और वेगशाली वानर गन्धमादन इस वानर-वाहिनीके वामभागमें रहकर इसकी रक्षा करते हुए आगे बढ़ें ॥ १७ ॥

यास्यामि बलमध्येऽहं बलौघमभिहर्षयन् ।
अधिरुह्य हनूमन्तमैरावतमिवेश्वरः ॥ १८ ॥

'जैसे देवराज इन्द्र ऐरावत हाथीपर आरूढ़ होते हैं, उसी प्रकार मैं हनुमान्‌के कंधेपर चढ़कर सेनाके बीचमें रहकर सारी सेनाका हर्ष बढ़ाता हुआ चलूँगा ॥ १८ ॥

अङ्गदेनैष संयातु लक्ष्मणश्चान्तकोपमः ।
सार्वभौमेन भूतेशो द्रविणाधिपतिर्यथा ॥ १९ ॥

'जैसे धनाध्यक्ष कुबेर सार्वभौम नामक दिग्गजकी पीठपर बैठकर यात्रा करते हैं, उसी प्रकार कालके समान पराक्रमी लक्ष्मण अंगदपर आरूढ़ होकर यात्रा करें ॥ १९ ॥

जाम्बवांश्च सुषेणश्च वेगदर्शी च वानरः ।
ऋक्षराजो महाबाहुः कुक्षिं रक्षन्तु ते त्रयः ॥ २० ॥

'महाबाहु ऋक्षराज जाम्बवान्, सुषेण और वानर वेगदर्शी—ये तीनों वानर सेनाके पृष्ठभागकी रक्षा करें' ॥ २० ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाहिनीपतिः ।
व्यादिदेश महावीर्यो वानरान् वानरर्षभः ॥ २१ ॥

रघुनाथजीका यह वचन सुनकर महापराक्रमी वानर-शिरोमणि सेनापति सुग्रीवने उन वानरोंको यथोचित आज्ञा दी॥

ते वानरगणाः सर्वे समुत्पत्य महौजसः ।
गुहाभ्यः शिखरेभ्यश्च आशु पुप्लुविरे तदा ॥ २२ ॥

तब वे समस्त महाबली वानरगण अपनी गुफाओं और शिखरोंसे शीघ्र ही निकलकर उछलते-कूदते हुए चलने लगे ॥

ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन च पूजितः ।
जगाम रामो धर्मात्मा ससैन्यो दक्षिणां दिशम् ॥ २३ ॥

तत्पश्चात् वानरराज सुग्रीव और लक्ष्मणके सादर अनुरोध करनेपर सेनासहित धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थित हुए ॥ २३ ॥

शतैः शतसहस्रैश्च कोटिभिश्चायुतैरपि ।
वारणाभैश्च हरिभिर्ययौ परिवृतस्तदा ॥ २४ ॥

उस समय सैकड़ों, हजारों, लाखों और करोड़ों वानरोंसे, जो हाथीके समान विशालकाय थे, घिरे हुए श्रीरघुनाथजी आगे बढ़ने लगे ॥ २४ ॥

तं यान्तमनुयान्ती सा महती हरिवाहिनी ।
हृष्टाः प्रमुदिताः सर्वे सुग्रीवेणापि पालिताः ॥ २५ ॥

यात्रा करते हुए श्रीरामके पीछे वह विशाल वानर-वाहिनी चलने लगी । उस सेनाके सभी वीर सुग्रीवसे पालित होनेके कारण हृष्ट-पुष्ट एवं प्रसन्न थे ॥ २५ ॥

आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः ।
क्ष्वेलन्तो निनदन्तश्च जग्मुर्वै दक्षिणां दिशम् ॥ २६ ॥

उनमेंसे कुछ वानर उस सेनाकी रक्षाके लिये उछलते-कूदते हुए चारों ओर चक्कर लगाते थे, कुछ मार्गशोधनके लिये कूदते-फाँदते आगे बढ़ जाते थे, कुछ वानर मेघोंके समान गर्जते, कुछ सिंहोंके समान दहाड़ते और कुछ किलकारियाँ भरते हुए दक्षिण दिशाकी ओर अग्रसर हो रहे थे ॥

भक्षयन्तः सुगन्धीनि मधूनि च फलानि च ।
उद्वहन्तो महावृक्षान् मञ्जरीपुञ्जधारिणः ॥ २७ ॥

वे सुगन्धित मधु पीते और मीठे फल खाते हुए मञ्जरी-पुञ्ज धारण करनेवाले विशाल वृक्षोंको उखाड़कर कंधोंपर लिये चल रहे थे ॥ २७ ॥

अन्योन्यं सहसा दृप्ता निर्वहन्ति क्षिपन्ति च ।
पतन्तश्चोत्पतन्त्यन्ये पातयन्त्यपरे परान् ॥ २८ ॥

कुछ मतवाले वानर विनोदके लिये एक दूसरेको ढो रहे थे । कोई अपने ऊपर चढ़े हुए वानरको झटककर दूर फेंक देते थे । कोई चलते-चलते ऊपरको उछल पड़ते थे और दूसरे वानर दूसरों-दूसरोंको ऊपरसे धक्के देकर नीचे गिरा देते थे ॥ २८ ॥

रावणो नो निहन्तव्यः सर्वे च रजनीचराः ।
इति गर्जन्ति हरयो राघवस्य समीपतः ॥ २९ ॥

श्रीरघुनाथजीके समीप चलते हुए वानर यह कहते हुए गर्जना करते थे कि 'हमें रावणको मार डालना चाहिये । समस्त निशाचरोंका भी संहार कर देना चाहिये' ॥ २९ ॥

पुरस्तादृषभो नीलो वीरः कुमुद एव च ।
पन्थानं शोधयन्ति स्म वानरैर्बहुभिः सह ॥ ३० ॥

सबसे आगे ऋषभ, नील और वीर कुमुद—ये बहुसंख्यक वानरोंके साथ रास्ता ठीक करते जाते थे ॥ ३० ॥

मध्ये तु राजा सुग्रीवो रामो लक्ष्मण एव च ।
बलिभिर्बहुभिर्भीमैर्वृतः शत्रुनिबर्हणः ॥ ३१ ॥

सेनाके मध्यभागमें राजा सुग्रीव, श्रीराम और लक्ष्मण—

ये तीनों शत्रुसूदन वीर अनेक बलशाली एवं भयंकर वानरोंसे घिरे हुए चल रहे थे ॥ ३१ ॥

हरिः शतबलिर्वीरः कोटिभिर्दशभिर्वृतः ।
सर्वामेको ह्यवष्टभ्य ररक्ष हरिवाहिनीम् ॥ ३२ ॥

शतबलि नामका एक वीर वानर दस करोड़ वानरोंके साथ अकेला ही सारी सेनाको अपने नियन्त्रणमें रखकर उसकी रक्षा करता था ॥ ३२ ॥

कोटीशतपरीवारः केसरी पनसो गजः ।
अर्कश्च बहुभिः पार्श्वमेकं तस्याभिरक्षति ॥ ३३ ॥

सौ करोड़ वानरोंसे घिरे हुए केसरी और पनस—ये सेनाके एक (दक्षिण) भागकी तथा बहुतसे वानर सैनिकोंको साथ लिये गज और अर्क—ये उस वानर-सेनाके दूसरे (वाम) भागकी रक्षा करते थे ॥ ३३ ॥

सुषेणो जाम्बवांश्चैव ऋक्षैर्बहुभिरावृतौ ।
सुग्रीवं पुरतः कृत्वा जघनं संररक्षतुः ॥ ३४ ॥

बहुसंख्यक भालुओंसे घिरे हुए सुषेण और जाम्बवान्—ये दोनों सुग्रीवको आगे करके सेनाके पिछले भागकी रक्षा कर रहे थे ॥ ३४ ॥

तेषां सेनापतिर्वीरो नीलो वानरपुंगवः ।
सम्पतन् प्लवतां श्रेष्ठस्तद् बलं पर्यवारयत् ॥ ३५ ॥

उन सबके सेनापति कपिश्रेष्ठ वानरशिरोमणि वीरवर नील उस सेनाकी सब ओरसे रक्षा एवं नियन्त्रण कर रहे थे ॥३५॥

दरीमुखः प्रजङ्घश्च जम्भोऽथ रभसः कपिः ।
सर्वतश्च ययुर्वीरास्त्वरयन्तः प्लवंगमान् ॥ ३६ ॥

दरीमुख, प्रजङ्घ, जम्भ और रभस—ये वीर सब ओरसे वानरोंको शीघ्र आगे बढ़नेकी प्रेरणा देते हुए चल रहे थे ॥

एवं ते हरिशार्दूला गच्छन्ति बलदर्पिताः ।
अपश्यन्त गिरिश्रेष्ठं सह्यं गिरिशतायुतम् ॥ ३७ ॥

इस प्रकार वे बलोन्मत्त कपि-केसरी वीर बराबर आगे बढ़ते गये । चलते-चलते उन्होंने पर्वतश्रेष्ठ सह्यगिरिको देखा, जिसके आस-पास और भी सैकड़ों पर्वत थे ॥ ३७ ॥

सरांसि च सुफुल्लानि तटाकानि वराणि च ।
रामस्य शासनं ज्ञात्वा भीमकोपस्य भीतवत् ॥ ३८ ॥
वर्जयन् नागराभ्याशांस्तथा जनपदानपि ।
सागरौघनिभं भीमं तद् वानरबलं महत् ॥ ३९ ॥
निःससर्प महाघोरं भीमघोषमिवार्णवम् ।

रास्तेमें उन्हें बहुत-से सुन्दर सरोवर और तालाब दिखायी दिये, जिनमें मनोहर कमल खिले हुए थे । श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा थी कि रास्तेमें कोई किसी प्रकारका उपद्रव न करे । भयंकर कोपवाले श्रीरामचन्द्रजीके इस आदेशको जानकर समुद्रके जलप्रवाहकी भाँति अपार एवं भयंकर दिखायी देनेवाली वह विशाल वानर-सेना भयभीत-सी होकर नगरोंके समीपवर्ती स्थानों और जनपदोंको दूरसे ही छोड़ती चली जा रही थी । विकट गर्जना करनेके कारण भयानक शब्दवाले समुद्रकी भाँति वह महाघोर जान पड़ती थी ॥ ३८-३९½ ॥

तस्य दाशरथेः पार्श्वे शूरास्ते कपिकुञ्जराः ॥ ४० ॥
तूर्णमापुप्लुवुः सर्वे सदश्वा इव चोदिताः ।

वे सभी शूरवीर कपिकुञ्जर हाँके गये अच्छे घोड़ोंकी भाँति उछलते-कूदते हुए तुरंत ही दशरथनन्दन श्रीरामके पास पहुँच जाते थे ॥ ४०½ ॥

कपिभ्यामुह्यमानौ तौ शुशुभाते नरर्षभौ ॥ ४१ ॥
महद्भ्यामिव संस्पृष्टौ ग्रहाभ्यां चन्द्रभास्करौ ।

हनुमान् और अंगद—इन दो वानर वीरोंद्वारा ढोये जाते हुए वे नरश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मण शुक्र और बृहस्पति - इन दो महाग्रहोंसे संयुक्त हुए चन्द्रमा और सूर्यके समान शोभा पा रहे थे ॥ ४१½ ॥

ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन सुपूजितः ॥ ४२ ॥
जगाम रामो धर्मात्मा ससैन्यो दक्षिणां दिशम् ।

उस समय वानरराज सुग्रीव और लक्ष्मणसे सम्मानित हुए धर्मात्मा श्रीराम सेनासहित दक्षिण दिशाकी ओर बढ़े जा रहे थे ॥ ४२½ ॥

तमङ्गदगतो रामं लक्ष्मणः शुभया गिरा ॥ ४३ ॥
उवाच परिपूर्णार्थं पूर्णार्थप्रतिभानवान् ।

लक्ष्मणजी अंगदके कंधेपर बैठे हुए थे। वे शकुनोंके द्वारा कार्यसिद्धिकी बात अच्छी तरह जान लेते थे । उन्होंने पूर्णकाम भगवान् श्रीरामसे मङ्गलमयी वाणीमें कहा—॥ ४३½ ॥

हृतामवाप्य वैदेहीं क्षिप्रं हत्वा च रावणम् ॥ ४४ ॥
समृद्धार्थः समृद्धार्थामयोध्यां प्रतियास्यसि ।
महान्ति च निमित्तानि दिवि भूमौ च राघव ॥ ४५ ॥
शुभानि तव पश्यामि सर्वाण्येवार्थसिद्धये ।

'रघुनन्दन ! मुझे पृथ्वी और आकाशमें बहुत अच्छे-अच्छे शकुन दिखायी देते हैं । ये सब आपके मनोरथकी सिद्धिको सूचित करते हैं । इनसे निश्चय होता है कि आप शीघ्र ही रावणको मारकर हरी हुई सीताजीको प्राप्त करेंगे और सफलमनोरथ होकर समृद्धिशालिनी अयोध्याको पधारेंगे ॥

अनुवाति शिवो वायुः सेनां मृदुहितः सुखः ॥ ४६ ॥
पूर्णवल्गुस्वराश्चेमे प्रवदन्ति मृगद्विजाः ।
प्रसन्नाश्च दिशः सर्वा विमलश्च दिवाकरः ॥ ४७ ॥
उशना च प्रसन्नार्चिरनु त्वां भार्गवो गतः ।
ब्रह्मराशिर्विशुद्धश्च शुद्धाश्च परमर्षयः ।
अर्चिष्मन्तः प्रकाशन्ते ध्रुवं सर्वे प्रदक्षिणम् ॥ ४८ ॥

'देखिये सेनाके पीछे शीतल, मन्द, हितकर और सुखमय समीर चल रहा है। ये पशु और पक्षी पूर्ण मधुर स्वरमें अपनी-अपनी बोली बोल रहे हैं। सब दिशाएँ प्रसन्न हैं। सूर्यदेव निर्मल दिखायी दे रहे हैं। भृगुनन्दन शुक्र भी अपनी उज्ज्वल प्रभासे प्रकाशित हो आपके पीछेकी दिशामें प्रकाशित हो रहे हैं। जहाँ सप्तर्षियोंका समुदाय शोभा पाता है, वह ध्रुवतारा भी निर्मल दिखायी देता है। शुद्ध और प्रकाशमान समस्त सप्तर्षिगण ध्रुवको अपने दाहिने रखकर उनकी परिक्रमा करते हैं ॥ ४६-४८ ॥

✓**त्रिशङ्कुर्विमलो भाति राजर्षिः सपुरोहितः।**
पितामहः पुरोऽस्माकमिक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ॥ ४९ ॥

'हमारे साथ ही महामना इक्ष्वाकुवंशियोंके पितामह राजर्षि त्रिशंकु अपने पुरोहित वसिष्ठजीके साथ हमलोगोंके सामने ही निर्मल कान्तिसे प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ४९ ॥

विमले च प्रकाशेते विशाखे निरुपद्रवे।
नक्षत्रं परमस्माकमिक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ॥ ५० ॥

'हम महामनस्वी इक्ष्वाकुवंशियोंके लिये जो सबसे उत्तम है, वह विशाखानामक युगल नक्षत्र निर्मल एवं उपद्रवशून्य (मंगल आदि दुष्ट ग्रहोंकी आक्रान्तिसे रहित) होकर प्रकाशित हो रहा है ॥ ५० ॥

नैर्ऋतं नैर्ऋतानां च नक्षत्रमतिपीड्यते।
मूलो मूलवता स्पृष्टो धूप्यते धूमकेतुना ॥ ५१ ॥

'राक्षसोंका नक्षत्र मूल, जिसके देवता निर्ऋति हैं, अत्यन्त पीड़ित हो रहा है। उस मूलके नियामक धूमकेतुसे आक्रान्त होकर वह संतापका भागी हो रहा है ॥ ५१ ॥

सर्वं चैतद् विनाशाय राक्षसानामुपस्थितम्।
काले कालगृहीतानां नक्षत्रं ग्रहपीडितम् ॥ ५२ ॥

'यह सब कुछ राक्षसोंके विनाशके लिये ही उपस्थित हुआ है; क्योंकि जो लोग कालपाशमें बँधे होते हैं, उन्हींका नक्षत्र समयानुसार ग्रहोंसे पीड़ित होता है ॥ ५२ ॥

प्रसन्नाः सुरसाश्चापो वनानि फलवन्ति च।
प्रवान्ति नाधिका गन्धा यथर्तुकुसुमा द्रुमाः ॥ ५३ ॥

'जल स्वच्छ और उत्तम रससे पूर्ण दिखायी देता है, जंगलोंमें पर्याप्त फल उपलब्ध होते हैं, सुगन्धित वायु अधिक तीव्रगतिसे नहीं बह रही है और वृक्षोंमें ऋतुओंके अनुसार फूल लगे हुए हैं ॥ ५३ ॥

व्यूढानि कपिसैन्यानि प्रकाशन्तेऽधिकं प्रभो।
देवानामिव सैन्यानि संग्रामे तारकामये।
एवमार्य समीक्ष्यैतत् प्रीतो भवितुमर्हसि ॥ ५४ ॥

'प्रभो! व्यूहबद्ध वानरी सेना बड़ी शोभासम्पन्न जान पड़ती है। तारकामय संग्रामके अवसरपर देवताओंकी सेनाएँ जिस तरह उत्साहसे सम्पन्न थीं, इसी प्रकार आज ये वानर-सेनाएँ भी हैं। आर्य! ऐसे शुभ लक्षण देखकर आपको प्रसन्न होना चाहिये' ॥ ५४ ॥

इति भ्रातरमाश्वास्य हृष्टः सौमित्रिरब्रवीत्।
अथावृत्य महीं कृत्स्नां जगाम हरिवाहिनी ॥ ५५ ॥

अपने भाई श्रीरामको आश्वासन देते हुए हर्षसे भरे सुमित्राकुमार लक्ष्मण जब इस प्रकार कह रहे थे, उस समय वानरोंकी सेना वहाँकी सारी भूमिको घेरकर आगे बढ़ने लगी ॥ ५५ ॥

ऋक्षवानरशार्दूलैर्नखदंष्ट्रायुधैरपि।
कराग्रैश्चरणाग्रैश्च वानरैरुद्धतं रजः ॥ ५६ ॥

उस सेनामें कुछ रीछ थे और कुछ सिंहके समान पराक्रमी वानर। नख और दाँत ही उनके शस्त्र थे। वे सभी वानर सैनिक हाथों और पैरोंकी अंगुलियोंसे बड़ी धूल उड़ा रहे थे ॥ ५६ ॥

भीममन्तर्दधे लोकं निवार्य सवितुः प्रभाम्।
सपर्वतवनाकाशां दक्षिणां हरिवाहिनी ॥ ५७ ॥
छादयन्ती ययौ भीमा द्यामिवाम्बुदसंततिः।

उनकी उड़ायी हुई उस भयंकर धूलने सूर्यकी प्रभाको ढककर सम्पूर्ण जगत्को छिपा-सा दिया। वह भयानक वानरसेना पर्वत, वन और आकाशसहित दक्षिण दिशाको आच्छादित-सी करती हुई उसी तरह आगे बढ़ रही थी, जैसे मेघोंकी घटा आकाशको ढककर अग्रसर होती है ॥ ५७½ ॥

उत्तरन्त्याश्च सेनायाः सततं बहुयोजनम् ॥ ५८ ॥
नदीस्रोतांसि सर्वाणि सस्यन्दुर्विपरीतवत्।

वह वानरी सेना जब किसी नदीको पार करती थी, उस समय लगातार कई योजनोंतक उसकी समस्त धाराएँ उल्टी बहने लगती थीं ॥ ५८½ ॥

सरांसि विमलाम्भांसि द्रुमाकीर्णांश्च पर्वतान् ॥ ५९ ॥
समान् भूमिप्रदेशांश्च वनानि फलवन्ति च।
मध्येन च समन्ताच्च तिर्यक् चाधश्च साविशत् ॥ ६० ॥
समावृत्य महीं कृत्स्नां जगाम महती चमूः।

वह विशाल सेना निर्मल जलवाले सरोवर, वृक्षोंसे ढके हुए पर्वत, भूमिके समतल प्रदेश और फलोंसे भरे हुए वन—इन सभी स्थानोंके मध्यमें, इधर-उधर तथा ऊपर-नीचे सब ओरकी सारी भूमिको घेरकर चल रही थी ॥ ५९-६०½ ॥

ते हृष्टवदनाः सर्वे जग्मुर्मारुतरंहसः ॥ ६१ ॥
हरयो राघवस्यार्थे समारोपितविक्रमाः।

उस सेनाके सभी वानर प्रसन्नमुख तथा वायुके समान वेगवाले थे। रघुनाथजीकी कार्यसिद्धिके लिये उनका पराक्रम उबला पड़ता था ॥ ६१½ ॥

हर्षं वीर्यं बलोद्रेकान् दर्शयन्तः परस्परम् ॥ ६२ ॥
यौवनोत्सेकजाद् दर्पाद् विविधांश्चक्रुरध्वनि ।

वे जवानीके जोश और अभिमानजनित दर्पके कारण रास्तेमें एक दूसरेको उत्साह, पराक्रम तथा नाना प्रकारके बल-सम्बन्धी उत्कर्ष दिखा रहे थे ॥ ६२½ ॥

तत्र केचिद् द्रुतं जग्मुरुत्पेतुश्च तथापरे ॥ ६३ ॥
केचित् किलकिलां चक्रुर्वानरा वनगोचराः ।
प्रास्फोटयंश्च पुच्छानि संनिजघ्नुः पदान्यपि ॥ ६४ ॥

उनमेंसे कोई तो बड़ी तेजीसे भूतलपर चलते थे और दूसरे उछलकर आकाशमें उड़ जाते थे । कितने ही वनवासी वानर किलकारियाँ भरते, पृथ्वीपर अपनी पूँछ फटकारते और पैर पटकते थे ॥ ६३-६४ ॥

भुजान् विक्षिप्य शैलांश्च द्रुमानन्ये बभञ्जिरे ।
आरोहन्तश्च शृङ्गाणि गिरीणां गिरिगोचराः ॥ ६५ ॥

कितने ही अपनी बाँहें फैलाकर पर्वत-शिखरों और वृक्षोंको तोड़ डालते थे तथा पर्वतोंपर विचरनेवाले बहुतेरे वानर पहाड़ोंकी चोटियोंपर चढ़ जाते थे ॥ ६५ ॥

महानादान् प्रमुञ्चन्ति क्ष्वेडामन्ये प्रचक्रिरे ।
ऊरुवेगैश्च ममृदुर्लताजालान्यनेकशः ॥ ६६ ॥

कोई बड़े जोरसे गर्जते और कोई सिंहनाद करते थे । कितने ही अपनी जाँघोंके वेगसे अनेकानेक लता-समूहोंको मसल डालते थे ॥ ६६ ॥

जृम्भमाणाश्च विक्रान्ता विचिक्रीडुः शिलाद्रुमैः ।
ततः शतसहस्रैश्च कोटिभिश्च सहस्रशः ॥ ६७ ॥
वानराणां सुघोराणां श्रीमत्परिवृता मही ।

वे सभी वानर बड़े पराक्रमी थे । अँगड़ाई लेते हुए पत्थरकी चट्टानों और बड़े-बड़े वृक्षोंसे खेल करते थे । उन सहस्रों, लाखों और करोड़ों वानरोंसे घिरी हुई सारी पृथ्वी बड़ी शोभा पाती थी ॥ ६७½ ॥

सा स्म याति दिवारात्रं महती हरिवाहिनी ॥ ६८ ॥
प्रहृष्टमुदिताः सर्वे सुग्रीवेणाभिपालिताः ।
वानरास्त्वरिता यान्ति सर्वे युद्धाभिनन्दिनः ।
प्रमोक्षयिषवः सीतां मुहूर्तं क्वापि नावसन् ॥ ६९ ॥

इस प्रकार वह विशाल वानरसेना दिन-रात चलती रही । सुग्रीवसे सुरक्षित सभी वानर हृष्ट-पुष्ट और प्रसन्न थे । सभी बड़ी उतावलीके साथ चल रहे थे । सभी युद्धका अभिनन्दन करनेवाले थे और सभी सीताजीको रावणकी कैदसे छुड़ाना चाहते थे । इसलिये उन्होंने रास्तेमें कहीं दो घड़ी भी विश्राम नहीं लिया ॥ ६८-६९ ॥

ततः पादपसम्बाधं नानावनसमायुतम् ।
सह्यपर्वतमासाद्य वानरास्ते समारुहन् ॥ ७० ॥

चलते-चलते घने वृक्षोंसे व्याप्त और अनेकानेक काननोंसे संयुक्त सह्य पर्वतके पास पहुँचकर वे सब वानर उसके ऊपर चढ़ गये ॥ ७० ॥

काननानि विचित्राणि नदीप्रस्रवणानि च ।
पश्यन्नपि ययौ रामः सह्यस्य मलयस्य च ॥ ७१ ॥

श्रीरामचन्द्रजी सह्य और मलयके विचित्र काननों, नदियों तथा झरनोंकी शोभा देखते हुए यात्रा कर रहे थे ॥ ७१ ॥

चम्पकांस्तिलकांश्चूतानशोकान् सिन्दुवारकान् ।
तिनिशान् करवीरांश्च भञ्जन्ति स्म प्लवंगमाः ॥ ७२ ॥

वे वानर मार्गमें मिले हुए चम्पा, तिलक, आम, अशोक, सिन्दुवार, तिनिश और करवीर आदि वृक्षोंको तोड़ देते थे ॥ ७२ ॥

अङ्कोलांश्च करञ्जांश्च प्लक्षन्यग्रोधपादपान् ।
जम्बूकामलकान् नीपान् भञ्जन्ति स्म प्लवंगमाः ॥ ७३ ॥

उछल-उछलकर चलनेवाले वे वानरसैनिक रास्तेके अंकोल, करंज, पाकर, बरगद, जामुन, आँवले और नीप आदि वृक्षोंको भी तोड़ डालते थे ॥ ७३ ॥

प्रस्तरेषु च रम्येषु विविधाः काननद्रुमाः ।
वायुवेगप्रचलिताः पुष्पैरवकिरन्ति तान् ॥ ७४ ॥

रमणीय पत्थरोंपर उगे हुए नाना प्रकारके जंगली वृक्ष वायुके झोंकेसे झूम-झूमकर उन वानरोंपर फूलोंकी वर्षा करते थे ॥ ७४ ॥

मारुतः सुखसंस्पर्शो वाति चन्दनशीतलः ।
षट्पदैरनुकूजद्भिर्वनेषु मधुगन्धिषु ॥ ७५ ॥

मधुसे सुगन्धित वनोंमें गुनगुनाते हुए भौंरोंके साथ चन्दनके समान शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चल रही थी ॥

अधिकं शैलराजस्तु धातुभिस्तु विभूषितः ।
धातुभ्यः प्रसृतो रेणुर्वायुवेगेन घट्टितः ॥ ७६ ॥
सुमहद्वानरानीकं छादयामास सर्वतः ।

वह पर्वतराज गैरिक आदि धातुओंसे विभूषित हो बड़ी शोभा पा रहा था । उन धातुओंसे फैली हुई धूल वायुके वेगसे उड़कर उस विशाल वानरसेनाको सब ओरसे आच्छादित कर देती थी ॥ ७६½ ॥

गिरिप्रस्थेषु रम्येषु सर्वतः सम्प्रपुष्पिताः ॥ ७७ ॥
केतक्यः सिन्दुवाराश्च वासन्त्यश्च मनोरमाः ।
माधव्यो गन्धपूर्णाश्च कुन्दगुल्माश्च पुष्पिताः ॥ ७८ ॥

रमणीय पर्वतशिखरोंपर सब ओर खिली हुई केतकी, सिन्दुवार और वासन्ती लताएँ बड़ी मनोरम जान पड़ती थीं । प्रफुल्ल माधवी लताएँ सुगन्धसे भरी थीं और कुन्दकी झाड़ियाँ भी फूलोंसे लदी हुई थीं ॥ ७७-७८ ॥

चिरिबिल्वा मधूकाश्च वञ्जुला बकुलास्तथा ।
रञ्जकास्तिलकाश्चैव नागवृक्षाश्च पुष्पिताः ॥ ७९ ॥

चिरिबिल्व, मधूक (महुआ), वञ्जुल, बकुल, रंजक, तिलक और नागकेसरके वृक्ष भी वहाँ खिले हुए थे ॥७९॥

चूताः पाटलिकाश्चैव कोविदाराश्च पुष्पिताः ।
मुचुलिन्दार्जुनाश्चैव शिंशपाः कुटजास्तथा ॥ ८० ॥
हिन्तालास्तिनिशाश्चैव चूर्णका नीपकास्तथा ।
नीलाशोकाश्च सरला अङ्कोलाः पद्मकास्तथा ॥ ८१ ॥

आम, पाडर और कोविदार भी फूलोंसे लदे थे । मुचुलिन्द, अर्जुन, शिंशपा, कुटज, हिंताल, तिनिश, चूर्णक, कदम्ब, नीलाशोक, सरल, अंकोल और पद्मक भी सुन्दर फूलोंसे सुशोभित थे ॥ ८०-८१ ॥

प्रीयमाणैः प्लवंगैस्तु सर्वे पर्याकुलीकृताः ।
वाप्यस्तस्मिन् गिरौ रम्याः पल्वलानि तथैव च ॥ ८२ ॥
चक्रवाकानुचरिताः कारण्डवनिषेविताः ।
प्लवैः क्रौञ्चैश्च संकीर्णा वराहमृगसेविताः ॥ ८३ ॥

प्रसन्नतासे भरे हुए वानरोंने उन सब वृक्षोंको घेर लिया था । उस पर्वतपर बहुत-सी रमणीय बावड़ियाँ तथा छोटे-छोटे जलाशय थे, जहाँ चकवे विचरते और जलकुक्कुट निवास करते थे । जलकाक और क्रौञ्च भरे हुए थे तथा सूअर और हिरन उनमें पानी पीते थे ॥ ८२-८३ ॥

ऋक्षैस्तरक्षुभिः सिंहैः शार्दूलैश्च भयावहैः ।
व्यालैश्च बहुभिर्भीमैः सेव्यमानाः समन्ततः ॥ ८४ ॥

रीछ, तरक्षु (लकड़बग्घे), सिंह, भयंकर बाघ तथा बहुसंख्यक दुष्ट हाथी, जो बड़े भीषण थे, सब ओरसे आ-आकर उन जलाशयोंका सेवन करते थे ॥ ८४ ॥

पद्मैः सौगन्धिकैः फुल्लैः कुमुदैश्चोत्पलैस्तथा ।
वारिजैर्विविधैः पुष्पै रम्यास्तत्र जलाशयाः ॥ ८५ ॥

खिले हुए सुगन्धित कमल, कुमुद, उत्पल तथा जलमें होनेवाले भाँति-भाँतिके अन्य पुष्पोंसे वहाँके जलाशय बड़े रमणीय दिखायी देते थे ॥ ८५ ॥

तस्य सानुषु कूजन्ति नानाद्विजगणास्तथा ।
स्नात्वा पीत्वोदकान्यत्र जले क्रीडन्ति वानराः ॥ ८६ ॥

उस पर्वतके शिखरोंपर नाना प्रकारके पक्षी कलरव करते थे । वानर उन जलाशयोंमें नहाते, पानी पीते और जलमें क्रीड़ा करते थे ॥ ८६ ॥

अन्योन्यं प्लावयन्ति स्म शैलमारुह्य वानराः ।
फलान्यमृतगन्धीनि मूलानि कुसुमानि च ॥ ८७ ॥
बभञ्जुर्वानरास्तत्र पादपानां मदोत्कटाः ।
द्रोणमात्रप्रमाणानि लम्बमानानि वानराः ॥ ८८ ॥
ययुः पिबन्तः स्वस्थास्ते मधूनि मधुपिङ्गलाः ।

वे आपसमें एक दूसरेपर पानी भी उछालते थे । कुछ वानर पर्वतपर चढ़कर वहाँके वृक्षोंके अमृततुल्य मीठे फलों, मूलों और फूलोंको तोड़ते थे । मधुके समान वर्णवाले कितने ही मदमत्त वानर वृक्षोंमें लटके और एक-एक द्रोण शहदसे भरे हुए मधुके छत्तोंको तोड़कर उनका मधु पी लेते और स्वस्थ (संतुष्ट) होकर चलते थे ॥ ८७-८८½ ॥

पादपानवभञ्जन्तो विकर्षन्तस्तथा लताः ॥ ८९ ॥
विधमन्तो गिरिवरान् प्रययुः प्लवगर्षभाः ।

पेड़ोंको तोड़ते, लताओंको खींचते और बड़े-बड़े पर्वतोंको प्रतिध्वनित करते हुए वे श्रेष्ठ वानर तीव्र गतिसे आगे बढ़ रहे थे ॥ ८९½ ॥

वृक्षेभ्योऽन्ये तु कपयो नदन्तो मधुदर्पिताः ॥ ९० ॥
अन्ये वृक्षान् प्रपद्यन्ते प्रपिबन्त्यपि चापरे ।

दूसरे वानर दर्पमें भरकर वृक्षोंसे मधुके छत्ते उतार लेते और जोर-जोरसे गर्जना करते थे । कुछ वानर वृक्षोंपर चढ़ जाते और कुछ मधु पीने लगते थे ॥ ९०½ ॥

बभूव वसुधा तैस्तु सम्पूर्णा हरिपुङ्गवैः ।
यथा कलमकेदारैः पक्वैरिव वसुंधरा ॥ ९१ ॥

उन वानरशिरोमणियोंसे भरी हुई वहाँकी भूमि पके हुए बालवाले कलमी धानोंकी क्यारियोंसे ढकी हुई धरतीके समान सुशोभित हो रही थी ॥ ९१ ॥

महेन्द्रमथ सम्प्राप्य रामो राजीवलोचनः ।
आरुरोह महाबाहुः शिखरं द्रुमभूषितम् ॥ ९२ ॥

कमलनयन महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी महेन्द्र पर्वतके पास पहुँचकर भाँति-भाँतिके वृक्षोंसे सुशोभित उसके शिखरपर चढ़ गये ॥ ९२ ॥

ततः शिखरमारुह्य रामो दशरथात्मजः ।
कूर्ममीनसमाकीर्णमपश्यत् सलिलाशयम् ॥ ९३ ॥

महेन्द्र पर्वतके शिखरपर आरूढ़ हो दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामने कछुओं और मत्स्योंसे भरे हुए समुद्रको देखा ॥

ते सह्यं समतिक्रम्य मलयं च महागिरिम् ।
आसेदुरानुपूर्व्येण समुद्रं भीमनिःस्वनम ॥ ९४ ॥

इस प्रकार वे सह्य तथा मलयको लाँघकर क्रमशः महेन्द्र पर्वतके समीपवर्ती समुद्रके तटपर जा पहुँचे, जहाँ बड़ा भयंकर शब्द हो रहा था ॥ ९४ ॥

अवरुह्य जगामाशु वेलावनमनुत्तमम् ।
रामो रमयतां श्रेष्ठः ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ॥ ९५ ॥

उस पर्वतसे उतरकर भक्तोंके मनको रमानेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीराम सुग्रीव और लक्ष्मणके साथ शीघ्र ही सागरतटवर्ती परम उत्तम वनमें जा पहुँचे ॥ ९५ ॥

अथ धौतोपलतलां तोयौघैः सहसोत्थितैः ।
वेलामासाद्य विपुलां रामो वचनमब्रवीत् ॥ ९६ ॥

जहाँ सहसा उठी हुई जलकी तरङ्गोंसे प्रस्तरकी शिलाएँ धुल गयी थीं, उस विस्तृत सिन्धुतटपर पहुँचकर श्रीरामने कहा—॥ ९६ ॥

एते वयमनुप्राप्ताः सुग्रीव वरुणालयम् ।
इहेदानीं विचिन्ता सा या नः पूर्वमुपस्थिता ॥ ९७ ॥

'सुग्रीव ! लो, हम सब लोग समुद्रके किनारे तो आ गये । अब यहाँ मनमें फिर वही चिन्ता उत्पन्न हो गयी, जो हमारे सामने पहले उपस्थित थी ॥ ९७ ॥

अतः परमतीरोऽयं सागरः सरितां पतिः ।
न चायमनुपायेन शक्यस्तरितुमर्णवः ॥ ९८ ॥

'इससे आगे तो यह सरिताओंका स्वामी महासागर ही विद्यमान है, जिसका कहीं पार नहीं दिखायी देता । अब बिना किसी समुचित उपायके सागरको पार करना असम्भव है॥

तदिहैव निवेशोऽस्तु मन्त्रः प्रस्तूयतामिह ।
यथेदं वानरबलं परं पारमवाप्नुयात् ॥ ९९ ॥

'इसलिये यहीं सेनाका पड़ाव पड़ जाय और हमलोग यहाँ बैठकर यह विचार आरम्भ करें कि किस प्रकार यह वानर-सेना समुद्रके उस पारतक पहुँच सकती है' ॥ ९९ ॥

इतीव स महाबाहुः सीताहरणकर्शितः ।
रामः सागरमासाद्य वासमाज्ञापयत् तदा ॥ १०० ॥

इस प्रकार सीताहरणके शोकसे दुर्बल हुए महाबाहु श्रीरामने समुद्रके किनारे पहुँचकर उस समय सारी सेनाको वहाँ ठहरनेकी आज्ञा दी ॥ १०० ॥

सर्वाः सेना निवेश्यन्तां वेलायां हरिपुङ्गव ।
सम्प्राप्तो मन्त्रकालो नः सागरस्येह लङ्घने ॥ १०१ ॥

वे बोले—'कपिश्रेष्ठ ! समस्त सेनाओंको समुद्रके तटपर ठहराया जाय । अब यहाँ हमारे लिये समुद्र-लङ्घनके उपायपर विचार करनेका अवसर प्राप्त हुआ है ॥ १०१ ॥

स्वां स्वां सेनां समुत्सृज्य मा च कश्चित् कुतो व्रजेत् ।
गच्छन्तु वानराः शूरा ज्ञेयं छन्नं भयं च नः ॥ १०२ ॥

'इस समय कोई भी सेनापति किसी भी कारणसे अपनी-अपनी सेनाको छोड़कर कहीं अन्यत्र न जाय । समस्त शूर-वीर वानर-सेनाकी रक्षाके लिये यथास्थान चले जायँ । सबको यह जान लेना चाहिये कि हमलोगोंपर राक्षसोंकी मायासे गुप्त भय आ सकता है' ॥ १०२ ॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा सुग्रीवः सहलक्ष्मणः ।
सेनां निवेशयत् तीरे सागरस्य द्रुमायुते ॥ १०३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह वचन सुनकर लक्ष्मणसहित सुग्रीवने वृक्षावलियोंसे सुशोभित सागर-तटपर सेनाको ठहरा दिया ॥

विरराज समीपस्थं सागरस्य च तद् बलम् ।
मधुपाण्डुजलः श्रीमान् द्वितीय इव सागरः ॥ १०४ ॥

समुद्रके पास ठहरी हुई वह विशाल वानर-सेना मधुके समान पिङ्गलवर्णके जलसे भरे हुए दूसरे सागरकी-सी शोभा धारण करती थी ॥ १०४ ॥

वेलावनमुपागम्य ततस्ते हरिपुङ्गवाः ।
निविष्टाश्च परं पारं काङ्क्षमाणा महोदधेः ॥ १०५ ॥

सागर-तटवर्ती वनमें पहुँचकर वे सभी श्रेष्ठ वानर समुद्रके उस पार जानेकी अभिलाषा मनमें लिये वहीं ठहर गये॥ १०५॥

तेषां निविशमानानां सैन्यसंनाहनिःस्वनः ।
अन्तर्धाय महानादमर्णवस्य प्रशुश्रुवे ॥ १०६ ॥

वहाँ डेरा डालते हुए उन श्रीराम आदिकी सेनाओंके संचरणसे जो महान् कोलाहल हुआ, वह महासागरकी गम्भीर गर्जनाको भी दबाकर सुनायी देने लगा ॥ १०६ ॥

सा वानराणां ध्वजिनी सुग्रीवेणाभिपालिता ।
त्रिधा निविष्टा महती रामस्यार्थपराभवत् ॥ १०७ ॥

सुग्रीवद्वारा सुरक्षित वह वानरोंकी विशाल सेना श्रीरामचन्द्रजीके कार्य-साधनमें तत्पर हो रीछ, लंगूर और वानरोंके भेदसे तीन भागोंमें विभक्त होकर ठहर गयी ॥ १०७ ॥

सा महार्णवमासाद्य हृष्टा वानरवाहिनी ।
वायुवेगसमाधूतं पश्यमाना महार्णवम् ॥ १०८ ॥

महासागरके तटपर पहुँचकर वह वानर-सेना वायुके वेगसे कम्पित हुए समुद्रकी शोभा देखती हुई बड़े हर्षका अनुभव करती थी ॥ १०८ ॥

दूरपारमसम्बाधं रक्षोगणनिषेवितम् ।
पश्यन्तो वरुणावासं निषेदुर्हरियूथपाः ॥ १०९ ॥

जिसका दूसरा तट बहुत दूर था और बीचमें कोई आश्रय नहीं था तथा जिसमें राक्षसोंके समुदाय निवास करते थे, उस वरुणालय समुद्रको देखते हुए वे वानर-यूथपति उसके तटपर बैठे रहे ॥ १०९ ॥

चण्डनक्रग्राहघोरं क्षपादौ दिवसक्षये ।
हसन्तमिव फेनौघैर्नृत्यन्तमिव चोर्मिभिः ॥ ११० ॥
चन्द्रोदये समुद्भूतं प्रतिचन्द्रसमाकुलम् ।
चण्डानिलमहाग्राहैः कीर्णं तिमितिमिंगिलैः ॥ १११ ॥

क्रोधमें भरे हुए नाकोंके कारण समुद्र बड़ा भयंकर दिखायी देता था । दिनके अन्त और रातके आरम्भमें—प्रदोषके समय चन्द्रोदय होनेपर उसमें ज्वार आ गया था । उस समय वह फेन-समूहोंके कारण हँसता और उत्ताल तरङ्गोंके कारण नाचता-सा प्रतीत होता था । चन्द्रमाके प्रतिबिम्बोंसे भरा-सा जान पड़ता था । प्रचण्ड वायुके समान वेगशाली बड़े-बड़े ग्राहोंसे और तिमि नामक महामत्स्योंको भी निगल

जानेवाले महाभयंकर जलजन्तुओंसे व्याप्त दिखायी देता था ॥

दीप्तभोगैरिवाकीर्णं भुजङ्गैर्वरुणालयम् ।
अवगाढं महासत्त्वैर्नानाशैलसमाकुलम् ॥११२॥

वह वरुणालय प्रदीप्त फणोंवाले सर्पों, विशालकाय जलचरों और नाना पर्वतोंसे व्याप्त जान पड़ता था ॥ ११२ ॥

सुदुर्गं दुर्गमार्गं तमगाधमसुरालयम् ।
मकरैर्नागभोगैश्च विगाढा वातलोलिताः ।
उत्पेतुश्च निपेतुश्च प्रहृष्टा जलराशयः ॥११३॥

राक्षसोंका निवासभूत वह अगाध महासागर अत्यन्त दुर्गम था । उसे पार करनेका कोई मार्ग या साधन दुर्लभ था । उसमें वायुकी प्रेरणासे उठी हुई चञ्चल तरङ्गें, जो मगरों और विशालकाय सर्पोंसे व्याप्त थीं, बड़े उल्लाससे ऊपरको उठती और नीचेको उतर आती थीं ॥ ११३ ॥

अग्निचूर्णमिवाविद्धं भास्वराम्बुमहोरगम् ।
सुरारिनिलयं घोरं पातालविषयं सदा ॥११४॥
सागरं चाम्बरप्रख्यमम्बरं सागरोपमम् ।
सागरं चाम्बरं चेति निर्विशेषमदृश्यत ॥११५॥

समुद्रके जल-कण बड़े चमकीले दिखायी देते थे । उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो सागरमें आगकी चिनगारियाँ बिखेर दी गयी हों । (फैले हुए नक्षत्रोंके कारण आकाश भी वैसा ही दिखायी देता था ।) समुद्रमें बड़े-बड़े सर्प थे (आकाशमें भी राहु आदि सर्पाकार ही देखे जाते थे) । समुद्र देवद्रोही दैत्यों और राक्षसोंका आवास-स्थान था (आकाश भी वैसा ही था; क्योंकि वहाँ भी उनका संचरण देखा जाता था) । दोनों ही देखनेमें भयंकर और पातालके समान गम्भीर थे । इस प्रकार समुद्र आकाशके समान और आकाश समुद्रके समान जान पड़ता था । समुद्र और आकाशमें कोई अन्तर नहीं दिखायी देता था ॥ ११४-११५ ॥

सम्पृक्तं नभसाप्यम्भः सम्पृक्तं च नभोऽम्भसा ।
तादृग्रूपे स्म दृश्येते तारारत्नसमाकुले ॥११६॥

जल आकाशसे मिला हुआ था और आकाश जलसे, आकाशमें तारे छिटके हुए थे और समुद्रमें मोती । इसलिये दोनों एक-से दिखायी देते थे ॥ ११६ ॥

समुत्पतितमेघस्य वीचिमालाकुलस्य च ।
विशेषो न द्वयोरासीत् सागरस्याम्बरस्य च ॥११७॥

आकाशमें मेघोंकी घटा घिर आयी थी और समुद्र तरङ्गमालाओंसे व्याप्त हो रहा था । अतः समुद्र और आकाश दोनोंमें कोई अन्तर नहीं रह गया था ॥ ११७ ॥

अन्योन्यैरहताः सक्ताः सस्वनुर्भीमनिःस्वनाः ।
ऊर्मयः सिन्धुराजस्य महाभेर्य इवाम्बरे ॥११८॥

परस्पर टकराकर और सटकर सिन्धुराज़की लहरें आकाशमें बजनेवाली देवताओंकी बड़ी-बड़ी भेरियोंके समान भयानक शब्द करती थीं ॥ ११८ ॥

रत्नौघजलसंनादं विषक्तमिव वायुना ।
उत्पतन्तमिव क्रुद्धं यादोगणसमाकुलम् ॥११९॥

वायुसे प्रेरित हो रत्नोंको उछालनेवाली जलकी तरङ्गोंके कलकल नादसे युक्त और जल-जन्तुओंसे भरा हुआ समुद्र इस प्रकार ऊपरको उछल रहा था, मानो रोषसे भरा हुआ हो ॥ ११९ ॥

ददृशुस्ते महात्मानो वाताहतजलाशयम् ।
अनिलोद्धूतमाकाशे प्रवलान्तमिवोर्मिभिः ॥१२०॥

उन महामनस्वी वानरवीरोंने देखा, समुद्र वायुके थपेड़े खाकर पवनकी प्रेरणासे आकाशमें ऊँचे उठकर उत्ताल तरङ्गोंके द्वारा नृत्य-सा कर रहा था ॥ १२० ॥

ततो विस्मयमापन्ना हरयो ददृशुः स्थिताः ।
भ्रान्तोर्मिजालसंनादं प्रलोलमिव सागरम् ॥१२१॥

तदनन्तर वहाँ खड़े हुए वानरोंने यह भी देखा कि चक्कर काटते हुए तरङ्ग-समूहोंके कल-कल नादसे युक्त महासागर अत्यन्त चञ्चल-सा हो गया है । यह देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ १२१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चौथा सर्ग पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

श्रीरामका सीताके लिये शोक और विलाप

सा तु नीलेन विधिवत्स्वारक्षा सुसमाहिता ।
सागरस्योत्तरे तीरे साधु सा विनिवेशिता ॥ १ ॥

नीलने, जिसकी विधिवत् रक्षाकी व्यवस्था की गयी थी, उस परम सावधान वानर-सेनाको समुद्रके उत्तर तटपर अच्छे ढंगसे ठहराया ॥ १ ॥

मैन्दश्च द्विविदश्चोभौ तत्र वानरपुङ्गवौ ।
विचेरतुश्च तां सेनां रक्षार्थं सर्वतोदिशम् ॥ २ ॥

मैन्द और द्विविद—ये दो प्रमुख वानरवीर उस सेनाकी रक्षाके लिये सब ओर विचरते रहते थे ॥ २ ॥

निविष्टायां तु सेनायां तीरे नदनदीपतेः ।
पार्श्वस्थं लक्ष्मणं दृष्ट्वा रामो वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥

समुद्रके किनारे सेनाका पड़ाव पड़ जानेपर श्रीरामचन्द्रजीने अपने पास बैठे हुए लक्ष्मणकी ओर देखकर कहा—॥

शोकश्च किल कालेन गच्छता ह्यपगच्छति ।
मम चापश्यतः कान्तामहन्यहनि वर्धते ॥ ४ ॥

'सुमित्रानन्दन ! कहा जाता है कि शोक बीतते हुए समयके साथ स्वयं भी दूर हो जाता है; परंतु मेरा शोक तो अपनी प्राणवल्लभाको न देखनेके कारण दिनोंदिन बढ़ रहा है ॥ ४ ॥

न मे दुःखं प्रिया दूरे न मे दुःखं हृतेति च ।
एतदेवानुशोचामि वयोऽस्या ह्यतिवर्तते ॥ ५ ॥

'मुझे इस बातका दुःख नहीं है कि मेरी प्रिया मुझसे दूर है । उसका अपहरण हुआ—इसका भी दुःख नहीं है । मैं तो बारंबार इसीलिये शोकमें डूबा रहता हूँ कि उसके जीवित रहनेके लिये जो अवधि नियत कर दी गयी है, वह शीघ्रतापूर्वक बीती जा रही है ॥ ५ ॥

वाहि वात यतः कान्ता तां स्पृष्ट्वा मामपि स्पृश ।
त्वयि मे गात्रसंस्पर्शश्चन्द्रे दृष्टिसमागमः ॥ ६ ॥

'हवा ! तुम वहाँ बह, जहाँ मेरी प्राणवल्लभा है । उसका स्पर्श करके मेरा भी स्पर्श कर । उस दशामें तुझसे जो मेरे अङ्गोंका स्पर्श होगा, वह चन्द्रमासे होनेवाले दृष्टिसंयोगकी भाँति मेरे सारे संतापको दूर करनेवाला और आह्लादजनक होगा ॥ ६ ॥

तन्मे दहति गात्राणि विषं पीतमिवाशये ।
हा नाथेति प्रिया सा मां ह्रियमाणा यदब्रवीत् ॥ ७ ॥

'अपहरण होते समय मेरी प्यारी सीताने जो मुझे 'हा नाथ !' कहकर पुकारा था, वह पीये हुए उदरस्थित विषकी भाँति मेरे सारे अङ्गोंको दग्ध किये देता है ॥ ७ ॥

तद्वियोगेन्धनवता तच्चिन्ताविमलार्चिषा ।
रात्रिंदिवं शरीरं मे दह्यते मदनाग्निना ॥ ८ ॥

'प्रियतमाका वियोग ही जिसका ईंधन है, उसकी चिन्ता ही जिसकी दीप्तिमती लपटें हैं, वह प्रेमाग्नि मेरे शरीरको रात-दिन जलाती रहती है ॥ ८ ॥

अवगाह्यार्णवं स्वप्स्ये सौमित्रे भवता विना ।
एवं च प्रज्वलन् कामो न मा सुप्तं जले दहेत् ॥ ९ ॥

'सुमित्रानन्दन ! तुम यहीं रहो । मैं तुम्हारे बिना अकेला ही समुद्रके भीतर घुसकर सोऊँगा । इस तरह जलमें शयन करनेपर यह प्रज्वलित प्रेमाग्नि मुझे दग्ध नहीं कर सकेगी ॥

बह्वेतत् कामयानस्य शक्यमेतेन जीवितुम् ।
यदहं सा च वामोरुरेकां धरणिमाश्रितौ ॥ १० ॥

'मैं और वह वामोरु सीता एक ही भूतलपर सोते हैं । प्रियतमाके संयोगकी इच्छा रखनेवाले मुझ विरहीके लिये इतना ही बहुत है । इतनेसे भी मैं जीवित रह सकता हूँ ॥ १० ॥

केदारस्येव केदारः सोदकस्य निरूदकः ।
उपस्नेहेन जीवामि जीवन्तीं यच्छृणोमि ताम् ॥ ११ ॥

'जैसे जलसे भरी हुई क्यारीके सम्पर्कसे बिना जलकी क्यारीका धान भी जीवित रहता है—सूखता नहीं है, उसी प्रकार मैं जो यह सुनता हूँ कि सीता अभी जीवित है, इसीसे जी रहा हूँ ॥ ११ ॥

कदा नु खलु सुश्रोणीं शतपत्रायतेक्षणाम् ।
विजित्य शत्रून् द्रक्ष्यामि सीतां स्फीतामिव श्रियम् ॥ १२ ॥

'कब वह समय आयेगा, जब शत्रुओंको परास्त करके मैं समृद्धिशालिनी राजलक्ष्मीके समान कमलनयनी सुमध्यमा सीताको देखूँगा ॥ १२ ॥

कदा सुचारुदन्तोष्ठं तस्याः पद्ममिवाननम् ।
ईषदुन्नाम्य पास्यामि रसायनमिवातुरः ॥ १३ ॥

'जैसे रोगी रसायनका पान करता है, उसी प्रकार मैं कब सुन्दर दाँतों और बिम्बसदृश मनोहर ओठोंसे युक्त सीताके प्रफुल्लकमल-जैसे मुखको कुछ ऊपर उठाकर चूमूँगा ॥ १३ ॥

तौ तस्याः सहितौ पीनौ स्तनौ तालफलोपमौ ।
कदा नु खलु सोत्कम्पौ श्लिष्यन्त्या मां भजिष्यतः ॥ १४ ॥

'मेरा आलिङ्गन करती हुई प्रिया सीताके वे परस्पर सटे हुए, तालफलके समान गोल और मोटे दोनों स्तन कब किंचित् कम्पनके साथ मेरा स्पर्श करेंगे ॥ १४ ॥

सा नूनमसितापाङ्गी रक्षोमध्यगता सती ।
मन्नाथा नाथहीनेव त्रातारं नाधिगच्छति ॥ १५ ॥

'कजरारे नेत्रप्रान्तवाली वह सती-साध्वी सीता, जिसका मैं ही नाथ हूँ, आज अनाथकी भाँति राक्षसोंके बीचमें पड़कर निश्चय ही कोई रक्षक नहीं पा रही होगी ॥ १५ ॥

कथं जनकराजस्य दुहिता मम च प्रिया ।
राक्षसीमध्यगा शेते स्नुषा दशरथस्य च ॥ १६ ॥

'राजा जनककी पुत्री, महाराज दशरथकी पुत्रवधू और मेरी प्रियतमा सीता राक्षसियोंके बीचमें कैसे सोती होगी ?॥ १६ ॥

अविक्षोभ्याणि रक्षांसि सा विधूयोत्पतिष्यति ।
विधूय जलदान् नीलाञ्शशिलेखा शरत्स्विव ॥ १७ ॥

'वह समय कब आयेगा, जब कि सीता मेरे द्वारा उन दुर्धर्ष राक्षसोंका विनाश करके उसी प्रकार अपना उद्धार करेगी, जैसे शरत्कालमें चन्द्रलेखा काले बादलोंका निवारण करके उनके आवरणसे मुक्त हो जाती है ॥ १७ ॥

स्वभावतनुका नूनं शोकेनानशनेन च ।
भूयस्तनुतरा सीता देशकालविपर्ययात् ॥ १८ ॥

'स्वभावसे ही दुबले-पतले शरीरवाली सीता विपरीत देश-कालमें पड़ जानेके कारण निश्चय ही शोक और उपवास करके और भी लट गयी होगी ॥ १८ ॥

कदा नु राक्षसेन्द्रस्य निधायोरसि सायकान् ।
शोकं प्रत्याहरिष्यामि शोकमुत्सृज्य मानसम् ॥ १९ ॥

'मैं राक्षसराज रावणकी छातीमें अपने सायकोंको धँसाकर अपने मानसिक शोकका निराकरण करके कब सीताका शोक दूर करूँगा ॥ १९ ॥

कदा नु खलु मे साध्वी सीतामरसुतोपमा ।
सोत्कण्ठा कण्ठमालम्ब्य मोक्ष्यत्यानन्दजं जलम् ॥२०॥

'देवकन्याके समान सुन्दरी मेरी सती-साध्वी सीता कब उत्कण्ठापूर्वक मेरे गलेसे लगकर अपने नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहायेगी ॥ २० ॥

कदा शोकमिमं घोरं मैथिलीविप्रयोगजम् ।
सहसा विप्रमोक्ष्यामि वासः शुक्लेतरं यथा ॥ २१ ॥

'ऐसा समय कब आयेगा, जब मैं मिथिलेशकुमारीके वियोगसे होनेवाले इस भयंकर शोकको मलिन वस्त्रकी भाँति सहसा त्याग दूँगा ?' ॥२१॥

एवं विलपतस्तस्य तत्र रामस्य धीमतः ।
दिनक्षयान्मन्दवपुर्भास्करोऽस्तमुपागमत् ॥ २२ ॥

बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजी वहाँ इस प्रकार विलाप कर ही रहे थे कि दिनका अन्त होनेके कारण मन्द किरणोंवाले सूर्यदेव अस्ताचलको जा पहुँचे ॥ २२ ॥

आश्वासितो लक्ष्मणेन रामः संध्यामुपासत ।
स्मरन् कमलपत्राक्षीं सीतां शोकाकुलीकृतः ॥ २३ ॥

उस समय लक्ष्मणके धैर्य बँधानेपर शोकसे व्याकुल हुए श्रीरामने कमलनयनी सीताका चिन्तन करते हुए संध्योपासना की ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

रावणका कर्तव्य-निर्णयके लिये अपने मन्त्रियोंसे समुचित सलाह देनेका अनुरोध करना

लङ्कायां तु कृतं कर्म घोरं दृष्ट्वा भयावहम् ।
राक्षसेन्द्रो हनुमता शक्रेणेव महात्मना ।
अब्रवीद् राक्षसान् सर्वान् ह्रिया किंचिदवाङ्मुखः ॥ १ ॥

इधर इन्द्रतुल्य पराक्रमी महात्मा हनुमान्‌जीने लङ्कामें जो अत्यन्त भयावह घोर कर्म किया था, उसे देखकर राक्षसराज रावणका मुख लज्जासे कुछ नीचेको झुक गया और उसने समस्त राक्षसोंसे इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

धर्षिता च प्रविष्टा च लङ्का दुष्प्रसहा पुरी ।
तेन वानरमात्रेण दृष्टा सीता च जानकी ॥ २ ॥

'निशाचरो ! वह हनुमान्, जो एक वानरमात्र है, अकेला इस दुर्धर्ष पुरीमें घुस आया । उसने इसे तहस-नहस कर डाला और जनककुमारी सीतासे भेंट भी कर लिया ॥ २ ॥

प्रासादो धर्षितश्चैत्यः प्रवरा राक्षसा हताः ।
आविला च पुरी लङ्का सर्वा हनुमता कृता ॥ ३ ॥

'इतना ही नहीं, हनुमान्‌ने चैत्यप्रासादको धराशायी कर दिया, मुख्य-मुख्य राक्षसोंको मार गिराया और सारी लङ्कापुरीमें खलबली मचा दी ॥ ३ ॥

किं करिष्यामि भद्रं वः किं वो युक्तमनन्तरम् ।
उच्यतां नः समर्थं यत् कृतं च सुकृतं भवेत् ॥ ४ ॥

'तुमलोगोंका भला हो । अब मैं क्या करूँ ? तुम्हें जो कार्य उचित और समर्थ जान पड़े तथा जिसे करनेपर कोई अच्छा परिणाम निकले, उसे बताओ ॥ ४ ॥

मन्त्रमूलं च विजयं प्रवदन्ति मनस्विनः ।
तस्माद् वै रोचये मन्त्रं रामं प्रति महाबलाः ॥ ५ ॥

'महाबली वीरो ! मनस्वी पुरुषोंका कहना है कि विजयका मूल कारण मन्त्रियोंकी दी हुई अच्छी सलाह ही है । इसलिये मैं श्रीरामके विषयमें आपलोगोंसे सलाह लेना अच्छा समझता हूँ ॥ ५ ॥

त्रिविधाः पुरुषा लोके उत्तमाधममध्यमाः ।
तेषां तु समवेतानां गुणदोषौ वदाम्यहम् ॥ ६ ॥

'संसारमें उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकारके पुरुष होते हैं । मैं उन सबके गुण-दोषोंका वर्णन करता हूँ ॥ ६ ॥

मन्त्रस्त्रिभिर्हि संयुक्तः समर्थैर्मन्त्रनिर्णये ।
मित्रैर्वापि समानार्थैर्बान्धवैरपि वाधिकैः ॥ ७ ॥
सहितो मन्त्रयित्वा यः कर्मारम्भान् प्रवर्तयेत् ।
दैवे च कुरुते यत्नं तमाहुः पुरुषोत्तमम् ॥ ८ ॥

'जिसका मन्त्र आगे बताये जानेवाले तीन लक्षणोंसे युक्त होता है तथा जो पुरुष मन्त्रनिर्णयमें समर्थ मित्रों, समान

दुःख-सुखवाले बान्धवों और उनसे भी बढ़कर अपने हितकारियोंके साथ सलाह करके कार्यका आरम्भ करता है तथा दैवके सहारे प्रयत्न करता है, उसे उत्तम पुरुष कहते हैं ॥ ७-८ ॥

एकोऽर्थं विमृशेदेको धर्मे प्रकुरुते मनः ।
एकः कार्याणि कुरुते तमाहुर्मध्यमं नरम् ॥ ९ ॥

'जो अकेला ही अपने कर्तव्यका विचार करता है, अकेला ही धर्ममें मन लगाता है और अकेला ही सब काम करता है, उसे मध्यम श्रेणीका पुरुष कहा जाता है ॥ ९ ॥

गुणदोषौ न निश्चित्य त्यक्त्वा दैवव्यपाश्रयम् ।
करिष्यामीति यः कार्यमुपेक्षेत् स नराधमः ॥ १० ॥

'जो गुण-दोषका विचार न करके दैवका भी आश्रय छोड़कर केवल 'करूँगा' इसी बुद्धिसे कार्य आरम्भ करता है और फिर उसकी उपेक्षा कर देता है, वह पुरुषोंमें अधम है ॥ १० ॥

यथेमे पुरुषा नित्यमुत्तमाधममध्यमाः ।
एवं मन्त्रोऽपि विज्ञेय उत्तमाधममध्यमः ॥ ११ ॥

'जैसे ये पुरुष सदा उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकारके होते हैं, वैसे ही मन्त्र (निश्चित किया हुआ विचार) भी उत्तम, मध्यम और अधम भेदसे तीन प्रकारका समझना चाहिये ॥ ११ ॥

ऐकमत्यमुपागम्य शास्त्रदृष्टेन चक्षुषा ।
मन्त्रिणो यत्र निरतास्तमाहुर्मन्त्रमुत्तमम् ॥ १२ ॥

'जिसमें शास्त्रोक्त दृष्टिसे सब मन्त्री एकमत होकर प्रवृत्त होते हैं, उसे उत्तम मन्त्र कहते हैं ॥ १२ ॥

बह्वीरपि मतीर्गत्वा मन्त्रिणामर्थनिर्णयः ।
पुनर्यत्रैकतां प्राप्तः स मन्त्रो मध्यमः स्मृतः ॥ १३ ॥

'जहाँ प्रारम्भमें कई प्रकारका मतभेद होनेपर भी अन्तमें सब मन्त्रियोंका कर्तव्यविषयक निर्णय एक हो जाता है, वह मन्त्र मध्यम माना गया है ॥ १३ ॥

अन्योन्यमतिमास्थाय यत्र सम्प्रतिभाष्यते ।
न चैकमत्ये श्रेयोऽस्ति मन्त्रः सोऽधम उच्यते ॥ १४ ॥

'जहाँ भिन्न-भिन्न बुद्धिका आश्रय ले सब ओरसे स्पर्धापूर्वक भाषण किया जाय और एकमत होनेपर भी जिससे कल्याणकी सम्भावना न हो, वह मन्त्र या निश्चय अधम कहलाता है ॥ १४ ॥

तस्मात् सुमन्त्रितं साधु भवन्तो मतिसत्तमाः ।
कार्यं सम्प्रतिपद्यन्तमेतत् कृत्यं मतं मम ॥ १५ ॥

'आप सब लोग परम बुद्धिमान् हैं; इसलिये अच्छी तरह सलाह करके कोई एक कार्य निश्चित करें । उसीको मैं अपना कर्तव्य समझूँगा ॥ १५ ॥

वानराणां हि धीराणां सहस्रैः परिवारितः ।
रामोऽभ्येति पुरीं लङ्कामस्माकमुपरोधकः ॥ १६ ॥

'(ऐसे निश्चयकी आवश्यकता इसलिये पड़ी है कि) राम सहस्रों धीरवीर वानरोंके साथ हमारी लङ्कापुरीपर चढ़ाई करनेके लिये आ रहे हैं ॥ १६ ॥

तरिष्यति च सुव्यक्तं राघवः सागरं सुखम् ।
तरसा युक्तरूपेण सानुजः सबलानुगः ॥ १७ ॥

'यह बात भी भलीभाँति स्पष्ट हो चुकी है कि वे रघुवंशी राम अपने समुचित बलके द्वारा भाई, सेना और सेवकोंसहित सुखपूर्वक समुद्रको पार कर लेंगे ॥ १७ ॥

समुद्रमुच्छोषयति वीर्येणान्यत्करोति वा ।
तस्मिन्नेवंविधे कार्ये विरुद्धे वानरैः सह ।
हितं पुरे च सैन्ये च सर्वं सम्मन्त्र्यतां मम ॥ १८ ॥

'वे या तो समुद्रको ही सुखा डालेंगे या अपने पराक्रमसे कोई दूसरा ही उपाय करेंगे । ऐसी स्थितिमें वानरोंसे विरोध आ पड़नेपर नगर और सेनाके लिये जो भी हितकर हो, वैसी सलाह आपलोग दीजिये' ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें छठा सर्ग पूरा हुआ ॥ ६ ॥

* * *

सप्तमः सर्गः

राक्षसोंका रावण और इन्द्रजित्के बल-पराक्रमका वर्णन करते हुए उसे रामपर विजय पानेका विश्वास दिलाना

इत्युक्ता राक्षसेन्द्रेण राक्षसास्ते महाबलाः ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ १ ॥
द्विषत्पक्षमविज्ञाय नीतिबाह्यास्त्वबुद्धयः ।

राक्षसोंको न तो नीतिका ज्ञान था और न वे शत्रुपक्षके बलाबलको ही समझते थे । वे बलवान् तो बहुत थे; किंतु नीतिकी दृष्टिसे महामूर्ख थे । इसलिये जब राक्षसराज रावणने उनसे पूर्वोक्त बातें कहीं, तब वे सब-के-सब हाथ जोड़कर उससे बोले— ॥ १½ ॥

राजन् परिघशक्त्यृष्टिशूलपट्टिशकुन्तलम् ॥ २ ॥
सुमहन्नो बलं कस्माद् विषादं भजते भवान् ।

'राजन् ! हमारे पास परिघ, शक्ति, ऋष्टि, शूल, पट्टिश और भालोंसे लैस बहुत बड़ी सेना मौजूद है; फिर आप विषाद क्यों करते हैं ॥ २½ ॥

त्वया भोगवतीं गत्वा निर्जिताः पन्नगा युधि ॥ ३ ॥
कैलासशिखरावासी यक्षैर्बहुभिरावृतः ।
सुमहत्कदनं कृत्वा वश्यस्ते धनदः कृतः ॥ ४ ॥

'आपने तो भोगवती पुरीमें जाकर नागोंको भी युद्धमें परास्त कर दिया था । बहुसंख्यक यक्षोंसे घिरे हुए कैलासशिखरके निवासी कुबेरको भी युद्धमें भारी मार-काट मचाकर वशमें कर लिया था ॥ ३-४ ॥

स महेश्वरसख्येन श्लाघमानस्त्वया विभो ।
निर्जितः समरे रोषाल्लोकपालो महाबलः ॥ ५ ॥

'प्रभो ! महाबली लोकपाल कुबेर महादेवजीके साथ मित्रता होनेके कारण आपके साथ बड़ी स्पर्धा रखते थे; परंतु आपने समराङ्गणमें रोषपूर्वक उन्हें हरा दिया ॥ ५ ॥

विनिपात्य च यक्षौघान् विक्षोभ्य विनिगृह्य च ।
त्वया कैलासशिखराद् विमानमिदमाहृतम् ॥ ६ ॥

'यक्षोंकी सेनाको विचलित करके बंदी बना लिया और कितनोंको धराशायी करके कैलासशिखरसे आप उनका यह विमान छीन लाये थे ॥ ६ ॥

मयेन दानवेन्द्रेण त्वद्भयात् सख्यमिच्छता ।
दुहिता तव भार्यार्थे दत्ता राक्षसपुङ्गव ॥ ७ ॥

'राक्षसशिरोमणे ! दानवराज मयने आपसे भयभीत होकर ही आपको अपना मित्र बना लेनेकी इच्छा की और इसी उद्देश्यसे आपको धर्मपत्नीके रूपमें अपनी पुत्री समर्पित कर दी ॥ ७ ॥

दानवेन्द्रो महाबाहो वीर्योत्सिक्तो दुरासदः ।
विगृह्य वशमानीतः कुम्भीनस्याः सुखावहः ॥ ८ ॥

'महाबाहो ! अपने पराक्रमका घमंड रखनेवाले दुर्जय दानवराज मधुको भी, जो आपकी बहिन कुम्भीनसीको सुख देनेवाला उसका पति है, आपने युद्ध छेड़कर वशमें कर लिया॥

निर्जितास्ते महाबाहो नागा गत्वा रसातलम् ।
वासुकिस्तक्षकः शङ्खो जटी च वशमाहृताः ॥ ९ ॥

'विशालबाहु वीर ! आपने रसातलपर चढ़ाई करके वासुकि, तक्षक, शङ्ख और जटी आदि नागोंको युद्धमें जीता और अपने अधीन कर लिया ॥ ९ ॥

अक्षया बलवन्तश्च शूरा लब्धवराः पुनः ।
त्वया संवत्सरं युद्ध्वा समरे दानवा विभो ॥ १० ॥
स्वबलं समुपाश्रित्य नीता वशमरिंदम ।
मायाश्चाधिगतास्तत्र बह्व्यो वै राक्षसाधिप ॥ ११ ॥

'प्रभो ! शत्रुदमन राक्षसराज ! दानवलोग बड़े ही बलवान्, किसीसे नष्ट न होनेवाले, शूरवीर तथा वर पाकर अद्भुत शक्तिसे सम्पन्न हो गये थे; परंतु आपने समराङ्गणमें एक वर्षतक युद्ध करके अपने ही बलके भरोसे उन सबको अपने अधीन कर लिया और वहाँ उनसे बहुत-सी मायाएँ भी प्राप्त कीं ॥ १०-११ ॥

शूराश्च बलवन्तश्च वरुणस्य सुता रणे ।
निर्जितास्ते महाभाग चतुर्विधबलानुगाः ॥ १२ ॥

'महाभाग ! आपने वरुणके शूरवीर और बलवान् पुत्रोंको भी उनकी चतुरंगिणी सेनासहित युद्धमें परास्त कर दिया था ॥ १२ ॥

मृत्युदण्डमहाग्राहं शाल्मलीद्रुममण्डितम् ।
कालपाशमहावीचिं यमकिंकरपन्नगम् ॥ १३ ॥
महाज्वरेण दुर्धर्षं यमलोकमहार्णवम् ।
अवगाह्य त्वया राजन् यमस्य बलसागरम् ॥ १४ ॥
जयश्च विपुलः प्राप्तो मृत्युश्च प्रतिषेधितः ।
सुयुद्धेन च ते सर्वे लोकास्तत्र सुतोषिताः ॥ १५ ॥

'राजन् ! मृत्युका दण्ड ही जिसमें महान् ग्राहके समान है, जो यम-यातना-सम्बन्धी शाल्मलि आदि वृक्षोंसे मण्डित है, कालपाशरूपी उत्ताल तरङ्गें जिसकी शोभा बढ़ाती हैं, यमदूतरूपी सर्प जिसमें निवास करते हैं तथा जो महान् ज्वरके कारण दुर्जय है, उस यमलोकरूपी महासागरमें प्रवेश करके आपने यमराजकी सागर-जैसी सेनाको मथ डाला, मृत्युको रोक दिया और महान् विजय प्राप्त की । यही नहीं, युद्धकी उत्तम कलासे आपने वहाँके सब लोगोंको पूर्ण संतुष्ट कर दिया था ॥

क्षत्रियैर्बहुभिर्वीरैः शक्रतुल्यपराक्रमैः ।
आसीद् वसुमती पूर्णा महद्भिरिव पादपैः ॥ १६ ॥

'पहले यह पृथ्वी विशाल वृक्षोंकी भाँति इन्द्रतुल्य पराक्रमी बहुसंख्यक क्षत्रिय वीरोंसे भरी हुई थी ॥ १६ ॥

तेषां वीर्यगुणोत्साहैर्न समो राघवो रणे ।
प्रसह्य ते त्वया राजन् हताः समरदुर्जयाः ॥ १७ ॥

'उन वीरोंमें जो पराक्रम, गुण और उत्साह थे, उनकी दृष्टिसे राम रणभूमिमें उनके समान कदापि नहीं हैं; राजन् ! जब आपने उन समरदुर्जय वीरोंको भी बलपूर्वक मार डाला, तब रामपर विजय पाना आपके लिये कौन बड़ी बात है ! ॥

तिष्ठ वा किं महाराज श्रमेण तव वानरान् ।
अयमेको महाबाहुरिन्द्रजित् क्षपयिष्यति ॥ १८ ॥

'अथवा महाराज ! आप चुपचाप यहीं बैठे रहें । आपको परिश्रम करनेकी क्या आवश्यकता है । अकेले ये

महाबाहु इन्द्रजित् ही सब वानरोंका संहार कर डालेंगे ॥ १८ ॥

अनेन च महाराज माहेश्वरमनुत्तमम् ।
इष्ट्वा यज्ञं वरो लब्धो लोके परमदुर्लभः ॥ १९ ॥

'महाराज ! इन्होंने परम उत्तम माहेश्वर यज्ञका अनुष्ठान करके वह वर प्राप्त किया है, जो संसारमें दूसरेके लिये अत्यन्त दुर्लभ है ॥ १९ ॥

शक्तितोमरमीनं च विनिकीर्णान्त्रशैवलम् ।
गजकच्छपसम्बाधमश्वमण्डूकसंकुलम् ॥ २० ॥
रुद्रादित्यमहाग्राहं मरुद्वसुमहोरगम् ।
रथाश्वगजतोयौघं पदातिपुलिनं महत् ॥ २१ ॥
अनेन हि समासाद्य देवानां बलसागरम् ।
गृहीतो दैवतपतिर्लङ्कां चापि प्रवेशितः ॥ २२ ॥

'देवताओंकी सेना समुद्रके समान थी । शक्ति और तोमर ही उसमें मत्स्य थे । निकालकर फेंकी हुई आँतें सेवारका काम देती थीं । हाथी ही उस सैन्य-सागरमें कछुओंके समान भरे थे । घोड़े मेढकोंके समान उसमें सब ओर व्याप्त थे । रुद्रगण और आदित्यगण उस सेनारूपी समुद्रके बड़े-बड़े ग्राह थे । मरुद्गण और वसुगण वहाँके विशाल नाग थे । रथ, हाथी और घोड़े जलराशिके समान थे और पैदल सैनिक उसके विशाल तट थे; परंतु इस इन्द्रजित्ने देवताओंके उस सैन्य-समुद्रमें घुसकर देवराज इन्द्रको कैद कर लिया और उन्हें लङ्कापुरीमें लाकर बंद कर दिया ॥ २०–२२ ॥

पितामहनियोगाच्च मुक्तः शम्बरवृत्रहा ।
गतस्त्रिविष्टपं राजन् सर्वदेवनमस्कृतः ॥ २३ ॥

'राजन् ! फिर ब्रह्माजीके कहनेसे इन्होंने शम्बर और वृत्रासुरको मारनेवाले सर्वदेववन्दित इन्द्रको मुक्त किया । तब वे स्वर्गलोकमें गये ॥ २३ ॥

तमेव त्वं महाराज विसृजेन्द्रजितं सुतम् ।
यावद् वानर सेनां तां सरामां नयति क्षयम् । २४ ॥

'अतः महाराज ! इस कामके लिये आप राजकुमार इन्द्रजित्को ही भेजिये, जिससे ये रामसहित वानर-सेनाका यहाँ आनेसे पहले ही संहार कर डालें ॥ २४ ॥

राजन्नापदयुक्तेयमागता प्राकृताज्जनात् ।
हृदि नैव त्वया कार्या त्वं वधिष्यसि राघवम् ॥ २५ ॥

'राजन् ! साधारण नर और वानरोंसे प्राप्त हुई इस आपत्तिके विषयमें चिन्ता करना आपके लिये उचित नहीं है । आपको तो अपने हृदयमें इसे स्थान ही नहीं देना चाहिये । आप अवश्य ही रामका वध कर डालेंगे' ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सातवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

प्रहस्त, दुर्मुख, वज्रदंष्ट्र, निकुम्भ और वज्रहनुका रावणके सामने शत्रु-सेनाको मार गिरानेका उत्साह दिखाना

ततो नीलाम्बुदप्रख्यः प्रहस्तो नाम राक्षसः ।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं शूरः सेनापतिस्तदा ॥ १ ॥

इसके बाद नील मेघके समान श्यामवर्णवाले शूर सेनापति प्रहस्त नामक राक्षसने हाथ जोड़कर कहा—॥ १ ॥

देवदानवगन्धर्वाः पिशाचपतगोरगाः ।
सर्वे धर्षयितुं शक्याः किं पुनर्मानवौ रणे ॥ २ ॥

'महाराज ! हमलोग देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पक्षी और सर्प सभीको पराजित कर सकते हैं; फिर उन दो मनुष्योंको रणभूमिमें हराना कौन बड़ी बात है ॥ २ ॥

सर्वे प्रमत्ता विश्वस्ता वञ्चिताः स्म हनूमता ।
नहि मे जीवतो गच्छेज्जीवन् स वनगोचरः ॥ ३ ॥

'पहले हमलोग असावधान थे । हमारे मनमें शत्रुओंकी ओरसे कोई खटका नहीं था । इसीलिये हम निश्चिन्त बैठे थे । यही कारण है कि हनुमान् हमें धोखा दे गया । नहीं तो मेरे जीते-जी वह वानर यहाँसे जीता-जागता नहीं जा सकता था ॥ ३ ॥

सर्वां सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम् ।
करोम्यवानरां भूमिमाज्ञापयतु मां भवान् ॥ ४ ॥

'यदि आपकी आज्ञा हो तो पर्वत, वन और काननोंसहित समुद्रतककी सारी भूमिको मैं वानरोंसे सूनी कर दूँ ॥ ४ ॥

रक्षां चैव विधास्यामि वानराद् रजनीचर ।
नागमिष्यति ते दुःखं किंचिदात्मापराधजम् ॥ ५ ॥

'राक्षसराज ! मैं वानरमात्रसे आपकी रक्षा करूँगा, अतः अपनेद्वारा किये गये सीता-हरणरूपी अपराधके कारण कोई दुःख आपपर नहीं आने पायेगा' ॥ ५ ॥

अब्रवीत् तु सुसंक्रुद्धो दुर्मुखो नाम राक्षसः ।
इदं न क्षमणीयं हि सर्वेषां नः प्रधर्षणम् ॥ ६ ॥

तत्पश्चात् दुर्मुख नामक राक्षसने अत्यन्त कुपित होकर

कहा—'यह क्षमा करनेयोग्य अपराध नहीं है, क्योंकि इसके द्वारा हम सब लोगोंका तिरस्कार हुआ है ॥ ६ ॥

अयं परिभवो भूयः पुरस्यान्तःपुरस्य च ।
श्रीमतो राक्षसेन्द्रस्य वानरेण प्रधर्षणम् ॥ ७ ॥

'वानरके द्वारा हमलोगोंपर जो आक्रमण हुआ है, यह समस्त लङ्कापुरीका, महाराजके अन्तःपुरका और श्रीमान् राक्षसराज रावणका भी भारी पराभव है ॥ ७ ॥

अस्मिन् मुहूर्ते गत्वैको निवर्तिष्यामि वानरान् ।
प्रविष्टान् सागरं भीममम्बरं वा रसातलम् ॥ ८ ॥

'मैं अभी इसी मुहूर्तमें अकेला ही जाकर सारे वानरोंको मार भगाऊँगा । भले ही वे भयंकर समुद्रमें, आकाशमें अथवा रसातलमें ही क्यों न घुस गये हों' ॥ ८ ॥

ततोऽब्रवीत् सुसंक्रुद्धो वज्रदंष्ट्रो महाबलः ।
प्रगृह्य परिघं घोरं मांसशोणितरूषितम् ॥ ९ ॥

इतनेहीमें महाबली वज्रदंष्ट्र अत्यन्त क्रोधसे भरकर रक्त, मांससे सने हुए भयानक परिघको हाथमें लिये हुए बोला—॥

किं नो हनूमता कार्यं कृपणेन तपस्विना ।
रामे तिष्ठति दुर्धर्षे सुग्रीवेऽपि सलक्ष्मणे ॥ १० ॥

'दुर्जय वीर राम, सुग्रीव और लक्ष्मणके रहते हुए हमें उस बेचारे तपस्वी हनुमान्से क्या काम है ? ॥ १० ॥

अद्य रामं ससुग्रीवं परिघेण सलक्ष्मणम् ।
आगमिष्यामि हत्वैको विक्षोभ्य हरिवाहिनीम् ॥ ११ ॥

'आज मैं अकेला ही वानर-सेनामें तहलका मचा दूँगा और इस परिघसे सुग्रीव तथा लक्ष्मणसहित रामका भी काम तमाम करके लौट आऊँगा ॥ ११ ॥

इदं ममापरं वाक्यं शृणु राजन् यदिच्छसि ।
उपायकुशलो ह्येव जयेच्छत्रूनतन्द्रितः ॥ १२ ॥

'राजन् ! यदि आपकी इच्छा हो तो आप यह मेरी दूसरी बात सुनें । उपायकुशल पुरुष ही यदि आलस्य छोड़कर प्रयत्न करे तो वह शत्रुओंपर विजय पा सकता है ॥ १२ ॥

कामरूपधराः शूराः सुभीमा भीमदर्शनाः ।
राक्षसा वा सहस्राणि राक्षसाधिप निश्चिताः ॥ १३ ॥
काकुत्स्थमुपसंगम्य बिभ्रतो मानुषं वपुः ।
सर्वे ह्यसम्भ्रमा भूत्वा ब्रुवन्तु रघुसत्तमम् ॥ १४ ॥
प्रेषिता भरतेनैव भ्रात्रा तव यवीयसा ।
स हि सेनां समुत्थाप्य क्षिप्रमेवोपयास्यति ॥ १५ ॥

'अतः राक्षसराज ! मेरी दूसरी राय यह है कि इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, अत्यन्त भयानक तथा भयंकर दृष्टिवाले सहस्रों शूरवीर राक्षस एक निश्चित विचार करके मनुष्यका रूप धारण कर श्रीरामके पास जायँ और सब लोग बिना किसी घबराहटके उन रघुवंशशिरोमणिसे कहें कि हम आपके सैनिक हैं । हमें आपके छोटे भाई भरतने भेजा है । इतना सुनते ही वे वानर-सेनाको उठाकर तुरंत लङ्कापर आक्रमण करनेके लिये वहाँसे चल देंगे ॥ १३—१५ ॥

ततो वयमितस्तूर्णं शूलशक्तिगदाधराः ।
चापबाणासिहस्ताश्च त्वरितास्तत्र यामहे ॥ १६ ॥

'तत्पश्चात् हमलोग यहाँसे शूल, शक्ति, गदा, धनुष, बाण और खड्ग धारण किये शीघ्र ही मार्गमें उनके पास जा पहुँचें ॥ १६ ॥

आकाशे गणशः स्थित्वा हत्वा तां हरिवाहिनीम् ।
अश्मशस्त्रमहावृष्ट्या प्रापयाम यमक्षयम् ॥ १७ ॥

'फिर आकाशमें अनेक यूथ बनाकर खड़े हो जायँ और पत्थरों तथा शस्त्र-समूहोंकी बड़ी भारी वर्षा करके उस वानर-सेनाको यमलोक पहुँचा दें ॥ १७ ॥

एवं चेदुपसर्पेतामनयं रामलक्ष्मणौ ।
अवश्यमपनीतेन जहतामेव जीवितम् ॥ १८ ॥

'यदि इस प्रकार हमारी बातें सुनकर वे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण सेनाको कूच करनेकी आज्ञा दे देंगे और वहाँसे चल देंगे तो उन्हें हमारी अनीतिका शिकार होना पड़ेगा; उन्हें हमारे छलपूर्ण प्रहारसे पीड़ित होकर अपने प्राणोंका परित्याग करना पड़ेगा ॥ १८ ॥

कौम्भकर्णिस्ततो वीरो निकुम्भो नाम वीर्यवान् ।
अब्रवीत् परमक्रुद्धो रावणं लोकरावणम् ॥ १९ ॥

तदनन्तर पराक्रमी वीर कुम्भकर्णकुमार निकुम्भने अत्यन्त कुपित होकर समस्त लोकोंको रुलानेवाले रावणसे कहा—॥ १९ ॥

सर्वे भवन्तस्तिष्ठन्तु महाराजेन संगताः ।
अहमेको हनिष्यामि राघवं सहलक्ष्मणम् ॥ २० ॥
सुग्रीवं सहनूमन्तं सर्वांश्चैवात्र वानरान् ।

'आप सब लोग यहाँ महाराजके साथ चुपचाप बैठे रहें । मैं अकेला ही राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान् तथा अन्य सब वानरोंको भी यहाँ मौतके घाट उतार दूँगा' ॥ २०½ ॥

ततो वज्रहनुर्नाम राक्षसः पर्वतोपमः ॥ २१ ॥
क्रुद्धः परिलिहन् सृक्कां जिह्वया वाक्यमब्रवीत् ।

तब पर्वतके समान विशालकाय वज्रहनु नामक राक्षस कुपित हो जीभसे अपने जबड़ेको चाटता हुआ बोला—॥

स्वैरं कुर्वन्तु कार्याणि भवन्तो विगतज्वराः ॥ २२ ॥
एकोऽहं भक्षयिष्यामि तां सर्वां हरिवाहिनीम् ।

'आप सब लोग निश्चिन्त होकर इच्छानुसार अपना-अपना काम करें । मैं अकेला ही सारी वानर-सेनाको खा जाऊँगा ॥

स्वस्थाः क्रीडन्तु निश्चिन्ताः पिबन्तु मधु वारुणीम्॥ २३ ॥
अहमेको वधिष्यामि सुग्रीवं सहलक्ष्मणम्।
साङ्गदं च हनूमन्तं सर्वांश्चैवात्र वानरान्॥ २४ ॥

'आपलोग स्वस्थ रहकर क्रीडा करें और निश्चिन्त हो वारुणी मदिराको पियें। मैं अकेला ही सुग्रीव, लक्ष्मण, अंगद, हनुमान् और अन्य सब वानरोंका भी यहाँ वध कर डालूँगा'॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टमः सर्गः॥ ८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें आठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८॥

नवमः सर्गः

विभीषणका रावणसे श्रीरामकी अजेयता बताकर सीताको लौटा देनेके लिये अनुरोध करना

ततो निकुम्भो रभसः सूर्यशत्रुर्महाबलः।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च महापार्श्वमहोदरौ॥ १ ॥
अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च राक्षसः।
इन्द्रजिच्च महातेजा बलवान् रावणात्मजः॥ २ ॥
प्रहस्तोऽथ विरूपाक्षो वज्रदंष्ट्रो महाबलः।
धूम्राक्षश्चातिकायश्च दुर्मुखश्चैव राक्षसः॥ ३ ॥
परिघान् पट्टिशाञ्शूलान् प्रासाञ्शक्तिपरश्वधान्।
चापानि च सुबाणानि खड्गांश्च विपुलाम्बुभान्॥ ४ ॥
प्रगृह्य परमक्रुद्धाः समुत्पत्य च राक्षसाः।
अब्रुवन् रावणं सर्वे प्रदीप्ता इव तेजसा॥ ५ ॥

तत्पश्चात् निकुम्भ, रभस, महाबली सूर्यशत्रु, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, महापार्श्व, महोदर, दुर्जय अग्निकेतु, राक्षस रश्मिकेतु, महातेजस्वी बलवान् रावणकुमार इन्द्रजित्, प्रहस्त, विरूपाक्ष, महाबली वज्रदंष्ट्र, धूम्राक्ष, अतिकाय और निशाचर दुर्मुख—ये सब राक्षस अत्यन्त कुपित हो हाथोंमें परिघ, पट्टिश, शूल, प्रास, शक्ति, फरसे, धनुष, बाण तथा पैनी धारवाले बड़े-बड़े खड्ग लिये उछलकर रावणके सामने आये और अपने तेजसे उद्दीप्त-से होकर वे सब-के-सब उससे बोले—॥ १-५ ॥

अद्य रामं वधिष्यामः सुग्रीवं च सलक्ष्मणम्।
कृपणं च हनूमन्तं लङ्का येन प्रधर्षिता॥ ६ ॥

'हमलोग आज ही राम, सुग्रीव, लक्ष्मण और उस कायर हनुमान्को भी मार डालेंगे, जिसने लङ्कापुरी जलायी है'॥ ६ ॥

तान् गृहीतायुधान् सर्वान् वारयित्वा विभीषणः।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं पुनः प्रत्युपवेश्य तान्॥ ७ ॥

हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लिये खड़े हुए उन सब राक्षसोंको जानेके लिये उद्यत देख विभीषणने रोका और पुनः उन्हें बिठाकर दोनों हाथ जोड़ रावणसे कहा—॥ ७ ॥

अप्युपायैस्त्रिभिस्तात योऽर्थः प्राप्तुं न शक्यते।
तस्य विक्रमकालांस्तान् युक्तानाहुर्मनीषिणः॥ ८ ॥

'तात! जो मनोरथ साम, दान और भेद—इन तीन उपायोंसे प्राप्त न हो सके, उसीकी प्राप्तिके लिये नीतिशास्त्रके ज्ञाता मनीषी विद्वानोंने पराक्रम करनेके योग्य अवसर बताये हैं॥ ८ ॥

प्रमत्तेष्वभियुक्तेषु दैवेन प्रहतेषु च।
विक्रमास्तात सिद्ध्यन्ति परीक्ष्य विधिना कृताः॥ ९ ॥

'तात! जो शत्रु असावधान हों, जिनपर दूसरे-दूसरे शत्रुओंने आक्रमण किया हो तथा जो महारोग आदिसे ग्रस्त होनेके कारण दैवसे मारे गये हों, उन्हींपर भलीभाँति परीक्षा करके विधिपूर्वक किये गये पराक्रम सफल होते हैं॥ ९ ॥

अप्रमत्तं कथं तं तु विजिगीषुं बले स्थितम्।
जितरोषं दुराधर्षं तं धर्षयितुमिच्छथ॥ १० ॥

'श्रीरामचन्द्रजी बेखबर नहीं हैं। वे विजयकी इच्छासे आ रहे हैं और उनके साथ सेना भी है। उन्होंने क्रोधको सर्वथा जीत लिया है। अतः वे सर्वथा दुर्जय हैं। ऐसे अजेय वीरको तुमलोग परास्त करना चाहते हो॥ १० ॥

समुद्रं लङ्घयित्वा तु घोरं नदनदीपतिम्।
गतिं हनूमतो लोके को विद्यात् तर्कयेत वा॥ ११ ॥
बलान्यपरिमेयानि वीर्याणि च निशाचराः।
परेषां सहसावज्ञा न कर्तव्या कथंचन॥ १२ ॥

'निशाचरो! नदों और नदियोंके स्वामी भयंकर महासागरको जो एक ही छलाँगमें लाँघकर यहाँतक आ पहुँचे थे, उन हनुमान्जीकी गतिको इस संसारमें कौन जान सकता है अथवा कौन उसका अनुमान लगा सकता है? शत्रुओंके पास असंख्य सेनाएँ हैं, उनमें असीम बल और पराक्रम है; इस बातको तुमलोग अच्छी तरह जान लो। दूसरोंकी शक्तिको भुलाकर किसी तरह भी सहसा उनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये॥ ११-१२ ॥

किं च राक्षसराजस्य रामेणापकृतं पुरा।
आजहार जनस्थानाद् यस्य भार्यां यशस्विनः॥ १३ ॥

'श्रीरामचन्द्रजीने पहले राक्षसराज रावणका कौन-सा अपराध किया था, जिससे उन यशस्वी महात्माकी पत्नीको ये जनस्थानसे हर लाये?॥ १३ ॥

खरो यद्यतिवृत्तस्तु स रामेण हतो रणे।
अवश्यं प्राणिनां प्राणा रक्षितव्या यथाबलम्॥ १४॥

'यदि कहें कि उन्होंने खरको मारा था तो यह ठीक नहीं है; क्योंकि खर अत्याचारी था। उसने स्वयं ही उन्हें मार डालनेके लिये उनपर आक्रमण किया था। इसलिये श्रीरामने रणभूमिमें उसका वध किया; क्योंकि प्रत्येक प्राणीको यथाशक्ति अपने प्राणोंकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये॥

एतन्निमित्तं वैदेही भयं नः सुमहद् भवेत्।
आहृता सा परित्याज्या कलहार्थे कृते नु किम्॥ १५॥

'यदि इसी कारणसे सीताको हरकर लाया गया हो तो उन्हें जल्दी ही लौटा देना चाहिये; अन्यथा हमलोगोंपर महान् भय आ सकता है। जिस कर्मका फल केवल कलह है, उसे करनेसे क्या लाभ?॥ १५॥

न तु क्षमं वीर्यवता तेन धर्मानुवर्तिना।
वैरं निरर्थकं कर्तुं दीयतामस्य मैथिली॥ १६॥

'श्रीराम बड़े धर्मात्मा और पराक्रमी हैं। उनके साथ व्यर्थ वैर करना उचित नहीं है। मिथिलेशकुमारी सीताको उनके पास लौटा देना चाहिये॥ १६॥

यावन्न सगजां साश्वां बहुरत्नसमाकुलाम्।
पुरीं दारयते बाणैर्दीयतामस्य मैथिली॥ १७॥

'जबतक हाथी, घोड़े और अनेकों रत्नोंसे भरी हुई लङ्कापुरीका श्रीराम अपने बाणोंद्वारा विध्वंस नहीं कर डालते, तबतक ही मैथिलीको उन्हें लौटा दिया जाय॥ १७॥

यावत् सुघोरा महती दुर्धर्षा हरिवाहिनी।
नावस्कन्दति नो लङ्कां तावत् सीता प्रदीयताम्॥ १८॥

'जबतक अत्यन्त भयंकर, विशाल और दुर्जय वानरवाहिनी हमारी लङ्काको पददलित नहीं कर देती, तभीतक सीताको वापस कर दिया जाय॥ १८॥

विनश्येद्धि पुरी लङ्का शूराः सर्वे च राक्षसाः।
रामस्य दयिता पत्नी न स्वयं यदि दीयते॥ १९॥

'यदि श्रीरामकी प्राणवल्लभा सीताको हमलोग स्वयं ही नहीं लौटा देते हैं तो यह लङ्कापुरी नष्ट हो जायगी और समस्त शूरवीर राक्षस मार डाले जायँगे॥ १९॥

प्रसादये त्वां बन्धुत्वात् कुरुष्व वचनं मम।
हितं तथ्यं त्वहं ब्रूमि दीयतामस्य मैथिली॥ २०॥

'आप मेरे बड़े भाई हैं। अतः मैं आपको विनयपूर्वक प्रसन्न करना चाहता हूँ। आप मेरी बात मान लें। मैं आपके हितके लिये सच्ची बात कहता हूँ—आप श्रीरामचन्द्रजीको उनकी सीता वापस कर दें॥ २०॥

पुरा शरत्सूर्यमरीचिसंनिभान्
नवाग्रपुङ्खान् सुदृढान् नृपात्मजः।
सृजत्यमोघान् विशिखान् वधाय ते
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली॥ २१॥

'राजकुमार श्रीराम जबतक आपके वधके लिये शरत्कालके सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी, उज्ज्वल अग्रभाग एवं पंखोंसे सुशोभित, सुदृढ़ तथा अमोघ बाणोंकी वर्षा करें; उसके पहले ही आप उन दशरथनन्दनकी सेवामें मिथिलेशकुमारी सीताको सौंप दें॥ २१॥

त्यजाशु कोपं सुखधर्मनाशनं
भजस्व धर्मं रतिकीर्तिवर्धनम्।
प्रसीद जीवेम सपुत्रबान्धवाः
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली॥ २२॥

'भैया! आप क्रोधको त्याग दें; क्योंकि वह सुख और धर्मका नाश करनेवाला है। धर्मका सेवन कीजिये; क्योंकि वह सुख और सुयशको बढ़ानेवाला है। हमपर प्रसन्न होइये, जिससे हम पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसहित जीवित रह सकें। इसी दृष्टिसे मेरी प्रार्थना है कि आप दशरथनन्दन श्रीरामके हाथमें मिथिलेशकुमारी सीताको लौटा दें'॥ २२॥

विभीषणवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः।
विसर्जयित्वा तान् सर्वान् प्रविवेश स्वकं गृहम्॥ २३॥

विभीषणकी यह बात सुनकर राक्षसराज रावण उन सब सभासदोंको विदा करके अपने महलमें चला गया॥ २३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे नवमः सर्गः॥ ९॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें नवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९॥

* * *

दशमः सर्गः

विभीषणका रावणके महलमें जाना, उसे अपशकुनोंका भय दिखाकर सीताको लौटा देनेके लिये प्रार्थना करना और रावणका उनकी बात न मानकर उन्हें वहाँसे विदा कर देना

ततः प्रत्युषसि प्राप्ते प्राप्तधर्मार्थनिश्चयः।
राक्षसाधिपतेर्वेश्म भीमकर्मा विभीषणः॥ १॥
शैलाग्रचयसंकाशं शैलशृङ्गमिवोन्नतम्।
सुविभक्तमहाकक्षं महाजनपरिग्रहम्॥ २॥

मतिमद्भिर्महामात्रैरनुरक्तैरधिष्ठितम् ।
राक्षसैराप्तपर्याप्तैः सर्वतः परिरक्षितम् ॥ ३ ॥
मत्तमातङ्गनिःश्वासैर्व्याकुलीकृतमारुतम् ।
शङ्खघोषमहाघोषं तूर्यसम्बाधनादितम् ॥ ४ ॥
प्रमदाजनसम्बाधं प्रजल्पितमहापथम् ।
तप्तकाञ्चननिर्यूहं भूषणोत्तमभूषितम् ॥ ५ ॥
गन्धर्वाणामिवावासमालयं मरुतामिव ।
रत्नसंचयसम्बाधं भवनं भोगिनामिव ॥ ६ ॥
तं महाभ्रमिवादित्यस्तेजोविस्तृतरश्मिवान् ।
अग्रजस्यालयं वीरः प्रविवेश महाद्युतिः ॥ ७ ॥

दूसरे दिन सबेरा होते ही धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाले भीमकर्मा महातेजस्वी वीर विभीषण अपने बड़े भाई राक्षसराज रावणके घर गये । वह घर अनेक प्रासादोंके कारण पर्वतशिखरोंके समूहकी भाँति शोभा पाता था । उसकी ऊँचाई भी पहाड़की चोटीको लज्जित करती थी । उसमें अलग-अलग बड़ी-बड़ी कक्षाएँ (ड्योढ़ियाँ) सुन्दर ढंगसे बनी हुई थीं । बहुतेरे श्रेष्ठ पुरुषोंका वहाँ आना-जाना लगा रहता था ; अनेकानेक बुद्धिमान् महामन्त्री, जो राजाके प्रति अनुराग रखनेवाले थे, उसमें बैठे थे । विश्वसनीय, हितैषी तथा कार्यसाधनमें कुशल बहुसंख्यक राक्षस सब ओरसे उस भवनकी रक्षा करते थे । वहाँकी वायु मतवाले हाथियोंके निःश्वाससे मिश्रित हो बवंडर-सी जान पड़ती थी । शंख-ध्वनिके समान राक्षसोंका गम्भीर घोष वहाँ गूँजता रहता था । नाना प्रकारके वाद्योंके मनोरम शब्द उस भवनको निनादित करते थे । रूप और यौवनके मदसे मतवाली युवतियोंकी वहाँ भीड़-सी लगी रहती थी । वहाँके बड़े-बड़े मार्ग लोगोंके वार्तालापसे मुखरित जान पड़ते थे । उसके फाटक तपाये हुए सुवर्णके बने हुए थे । उत्तम सजावटकी वस्तुओंसे वह महल अच्छी तरह सजा हुआ था, अतएव वह गन्धर्वोंके आवास और देवताओंके निवासस्थान-सा मनोरम प्रतीत होता था । रत्नराशिसे परिपूर्ण होनेके कारण वह नागभवनके समान उद्भासित होता था । जैसे तेजसे विस्तृत किरणोंवाले सूर्य महान् मेघोंकी घटामें प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार तेजस्वी विभीषणने रावणके उस भवनमें पदार्पण किया ॥ १–७ ॥

पुण्यान् पुण्याहघोषांश्च वेदविद्भिरुदाहृतान् ।
शुश्राव सुमहातेजा भ्रातुर्विजयसंश्रितान् ॥ ८ ॥

वहाँ पहुँचकर उन महातेजस्वी विभीषणने अपने भाईकी विजयके उद्देश्यसे वेदवेत्ता ब्राह्मणोंद्वारा किये गये पुण्याहवाचनके पवित्र घोष सुने ॥ ८ ॥

पूजितान् दधिपात्रैश्च सर्पिर्भिः सुमनोक्षतैः ।
मन्त्रवेदविदो विप्रान् ददर्श स महाबलः ॥ ९ ॥

तत्पश्चात् उन महाबली विभीषणने वेदमन्त्रोंके ज्ञाता ब्राह्मणोंका दर्शन किया, जिनके हाथोंमें दही और घीके पात्र थे । फूलों और अक्षतोंसे उन सबकी पूजा की गयी थी ॥ ९ ॥

स पूज्यमानो रक्षोभिर्दीप्यमानं स्वतेजसा ।
आसनस्थं महाबाहुर्ववन्दे धनदानुजम् ॥ १० ॥

वहाँ जानेपर राक्षसोंने उनका स्वागत-सत्कार किया । फिर उन महाबाहु विभीषणने अपने तेजसे देदीप्यमान और सिंहासनपर विराजमान कुबेरके छोटे भाई रावणको प्रणाम किया ॥ १० ॥

स राजदृष्टिसम्पन्नमासनं हेमभूषितम् ।
जगाम समुदाचारं प्रयुज्याचारकोविदः ॥ ११ ॥

तदनन्तर शिष्टाचारके ज्ञाता विभीषण 'विजयतां महाराजः (महाराजकी जय हो)' इत्यादि रूपसे राजाके प्रति परम्पराप्राप्त शुभाशंसासूचक वचनका प्रयोग करके राजाके द्वारा दृष्टिके संकेतसे बताये गये सुवर्णभूषित सिंहासनपर बैठ गये ॥ ११ ॥

स रावणं महात्मानं विजने मन्त्रिसंनिधौ ।
उवाच हितमत्यर्थं वचनं हेतुनिश्चितम् ॥ १२ ॥
प्रसाद्य भ्रातरं ज्येष्ठं सान्त्वेनोपस्थितक्रमः ।
देशकालार्थसंवादि दृष्टलोकपरावरः ॥ १३ ॥

विभीषण जगत्‌की भली-बुरी बातोंको अच्छी तरह जानते थे । उन्होंने प्रणाम आदि व्यवहारका यथार्थरूपसे निर्वाह करके सान्त्वनापूर्ण वचनोंद्वारा अपने बड़े भाई महामना रावणको प्रसन्न किया और उससे एकान्तमें मन्त्रियोंके निकट देश, काल और प्रयोजनके अनुरूप, युक्तियोंद्वारा निश्चित तथा अत्यन्त हितकारक बात कही—॥ १२-१३ ॥

यदाप्रभृति वैदेही सम्प्राप्तेह परंतप ।
तदाप्रभृति दृश्यन्ते निमित्तान्यशुभानि नः ॥ १४ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले महाराज ! जबसे विदेहकुमारी सीता यहाँ आयी हैं, तभीसे हमलोगोंको अनेक प्रकारके अमङ्गलसूचक अपशकुन दिखायी दे रहे हैं ॥ १४ ॥

सस्फुलिङ्गः सधूमार्चिः सधूमकलुषोदयः ।
मन्त्रसंधुक्षितोऽप्यग्निर्न सम्यगभिवर्धते ॥ १५ ॥

'मन्त्रोंद्वारा विधिपूर्वक धधकानेपर भी आग अच्छी तरह प्रज्वलित नहीं हो रही है । उससे चिनगारियाँ निकलने लगती हैं ; उसकी लपटके साथ धुआँ उठने लगता है और मन्थनकालमें जब अग्नि प्रकट होती है, उस समय भी वह धूएँसे मलिन ही रहती है ॥ १५ ॥

अग्निष्टेष्वग्निशालासु तथा ब्रह्मस्थलीषु च ।
सरीसृपाणि दृश्यन्ते हव्येषु च पिपीलिकाः ॥ १६ ॥

'रसोई-घरोंमें, अग्निशालाओंमें तथा वेदाध्ययनके स्थानोंमें भी साँप देखे जाते हैं और हवन-सामग्रियोंमें चींटियाँ पड़ी दिखायी देती हैं ॥ १६ ॥

गवां पयांसि स्कन्नानि विमदा वरकुञ्जराः ।
दीनमश्वाः प्रहेषन्ते नवग्रासाभिनन्दिनः ॥ १७ ॥

'गायोंका दूध सूख गया है, बड़े-बड़े गजराज मदरहित हो गये हैं, घोड़े नये ग्राससे आनन्दित (भोजनसे संतुष्ट) होनेपर भी दीनतापूर्ण स्वरमें हिनहिनाते हैं ॥ १७ ॥

खरोष्ट्राश्वतरा राजन् भिन्नरोमाः स्रवन्ति च ।
न स्वभावेऽवतिष्ठन्ते विधानैरपि चिन्तिताः ॥ १८ ॥

'राजन् ! गधों, ऊँटों और खच्चरोंके रोंगटे खड़े हो जाते हैं । उनके नेत्रोंसे आँसू गिरने लगते हैं । विधिपूर्वक चिकित्सा की जानेपर भी वे पूर्णतः स्वस्थ हो नहीं पाते हैं ॥

वायसाः संघशः क्रूरा व्याहरन्ति समन्ततः ।
समवेताश्च दृश्यन्ते विमानाग्रेषु संघशः ॥ १९ ॥

'क्रूर कौए झुंड-के-झुंड एकत्र होकर कर्कश स्वरमें काँव-काँव करने लगते हैं तथा वे सतमहले मकानोंपर समूह-के-समूह इकट्ठे हुए देखे जाते हैं ॥ १९ ॥

गृध्राश्च परिलीयन्ते पुरीमुपरि पिण्डिताः ।
उपपन्नाश्च संध्ये द्वे व्याहरन्त्यशिवं शिवाः ॥ २० ॥

'लङ्कापुरीके ऊपर झुंड-के-झुंड गीध उसका स्पर्श करते हुए-से मड़राते रहते हैं । दोनों संध्याओंके समय सियारिनें नगरके समीप आकर अमङ्गलसूचक शब्द करती हैं ॥ २० ॥

क्रव्यादानां मृगाणां च पुरीद्वारेषु संघशः ।
श्रूयन्ते विपुला घोषाः सविस्फूर्जितनिःस्वनाः ॥ २१ ॥

'नगरके सभी फाटकोंपर समूह-के-समूह एकत्र हुए मांस-भक्षी पशुओंके जोर-जोरसे किये जानेवाले चीत्कार बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान सुनायी पड़ते हैं ॥ २१ ॥

तदेवं प्रस्तुते कार्ये प्रायश्चित्तमिदं क्षमम् ।
रोचये वीर वैदेही राघवाय प्रदीयताम् ॥ २२ ॥

'वीरवर ! ऐसी परिस्थितिमें मुझे तो यही प्रायश्चित्त अच्छा जान पड़ता है कि विदेहकुमारी सीता श्रीरामचन्द्रजीको लौटा दी जायँ ॥ २२ ॥

इदं च यदि वा मोहाल्लोभाद् वा व्याहृतं मया ।
तत्रापि च महाराज न दोषं कर्तुमर्हसि ॥ २३ ॥

'महाराज ! यदि यह बात मैंने मोह या लोभसे कही हो तो भी आपको मुझमें दोषदृष्टि नहीं करनी चाहिये ॥ २३ ॥

अयं हि दोषः सर्वस्य जनस्यास्योपलक्ष्यते ।
रक्षसां राक्षसीनां च पुरस्यान्तःपुरस्य च ॥ २४ ॥

'सीताका अपहरण तथा इससे होनेवाला अपशकुनरूपी दोष यहाँकी सारी जनता, राक्षस-राक्षसी तथा नगर और अन्तः-पुर—सभीके लिये उपलक्षित होता है ॥ २४ ॥

प्रापणे चास्य मन्त्रस्य निवृत्ताः सर्वमन्त्रिणः ।
अवश्यं च मया वाच्यं यद् दृष्टमथवा श्रुतम् ।
सम्प्रधार्य यथान्यायं तद् भवान् कर्तुमर्हति ॥ २५ ॥

'यह बात आपके कानोंतक पहुँचानेमें प्रायः सभी मन्त्री संकोच करते हैं; परंतु जो बात मैंने देखी या सुनी है, वह मुझे तो आपके आगे अवश्य निवेदन कर देनी चाहिये; अतः उसपर यथोचित विचार करके आप जैसा उचित समझें, वैसा करें' ॥ २५ ॥

इति स्वमन्त्रिणां मध्ये भ्राता भ्रातरमूचिवान् ।
रावणं रक्षसां श्रेष्ठं पथ्यमेतद् विभीषणः ॥ २६ ॥

इस प्रकार भाई विभीषणने अपने मन्त्रियोंके बीचमें बड़े भाई राक्षसराज रावणसे ये हितकारी वचन कहे ॥ २६ ॥

हितं महार्थं मृदु हेतुसंहितं
व्यतीतकालायतिसम्प्रतिक्षमम् ।
निशम्य तद्वाक्यमुपस्थितज्वरः
प्रसङ्गवानुत्तरमेतदब्रवीत् ॥ २७ ॥
भयं न पश्यामि कुतश्चिदप्यहं
न राघवः प्राप्स्यति जातु मैथिलीम् ।
सुरैः सहेन्द्रैरपि संगरे कथं
ममाग्रतः स्थास्यति लक्ष्मणाग्रजः ॥ २८ ॥

विभीषणकी ये हितकर, महान् अर्थकी साधक, कोमल, युक्तिसंगत तथा भूत, भविष्य और वर्तमान-कालमें भी कार्य-साधनमें समर्थ बातें सुनकर रावणको बुखार चढ़ आया । श्रीरामके साथ वैर बढ़ानेमें उसकी आसक्ति हो गयी थी । इसलिये उसने इस प्रकार उत्तर दिया—'विभीषण ! मैं तो कहींसे भी कोई भय नहीं देखता । राम मिथिलेशकुमारी सीताको कभी नहीं पा सकते । इन्द्रसहित देवताओंकी सहायता प्राप्त कर लेनेपर भी लक्ष्मणके बड़े भाई राम मेरे सामने संग्राममें कैसे टिक सकेंगे ?' ॥ २७-२८ ॥

इत्येवमुक्त्वा सुरसैन्यनाशनो
महाबलः संयति चण्डविक्रमः ।
दशाननो भ्रातरमाप्तवादिनं
विसर्जयामास तदा विभीषणम् ॥ २९ ॥

ऐसा कहकर देवसेनाके नाशक और समराङ्गणमें प्रचण्ड पराक्रम प्रकट करनेवाले महाबली दशाननने अपने यथार्थवादी भाई विभीषणको तत्काल विदा कर दिया ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

—इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें दसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः

रावण और उसके सभासदोंका सभाभवनमें एकत्र होना

स बभूव कृशो राजा मैथिलीकाममोहितः ।
असन्मानाच्च सुहृदां पापः पापेन कर्मणा ॥ १ ॥

राक्षसोंका राजा रावण मिथिलेशकुमारी सीताके प्रति कामसे मोहित हो रहा था, उसके हितैषी सुहृद् विभीषण आदि उसका अनादर करने लगे थे—उसके कुकृत्योंकी निन्दा करते थे तथा वह सीताहरणरूपी जघन्य पाप-कर्मके कारण पापी घोषित किया गया था—इन सब कारणोंसे वह अत्यन्त कृश (चिन्तायुक्त एवं दुर्बल) हो गया था ॥ १ ॥

अतीव कामसम्पन्नो वैदेहीमनुचिन्तयन् ।
अतीतसमये काले तस्मिन् वै युधि रावणः ।
अमात्यैश्च सुहृद्भिश्च प्राप्तकालममन्यत ॥ २ ॥

वह अत्यन्त कामसे पीड़ित होकर बारंबार विदेहकुमारीका चिन्तन करता था, इसलिये युद्धका अवसर बीत जानेपर भी उसने उस समय मन्त्रियों और सुहृदोंके साथ सलाह करके युद्धको ही समयोचित कर्तव्य माना ॥ २ ॥

स हेमजालविततं मणिविद्रुमभूषितम् ।
उपगम्य विनीताश्वमारुरोह महारथम् ॥ ३ ॥

वह सोनेकी जालीसे आच्छादित तथा मणि एवं मूँगोंसे विभूषित एक विशाल रथपर, जिसमें सुशिक्षित घोड़े जुते हुए थे; जा चढ़ा ॥ ३ ॥

तमास्थाय रथश्रेष्ठं महामेघसमस्वनम् ।
प्रययौ रक्षसां श्रेष्ठो दशग्रीवः सभां प्रति ॥ ४ ॥

महान् मेघोंकी गर्जनाके समान घर्घराहट पैदा करनेवाले उस उत्तम रथपर आरूढ़ हो राक्षसशिरोमणि दशग्रीव सभाभवनकी ओर प्रस्थित हुआ ॥ ४ ॥

असिचर्मधरा योधाः सर्वायुधधरास्ततः ।
राक्षसा राक्षसेन्द्रस्य पुरस्तात् सम्प्रतस्थिरे ॥ ५ ॥

उस समय राक्षसराज रावणके आगे-आगे ढाल-तलवार एवं सब प्रकारके आयुध धारण करनेवाले बहुसंख्यक राक्षस योद्धा जा रहे थे ॥ ५ ॥

नानाविकृतवेषाश्च नानाभूषणभूषिताः ।
पार्श्वतः पृष्ठतश्चैनं परिवार्य ययुस्तदा ॥ ६ ॥

इसी तरह भाँति-भाँतिके आभूषणोंसे विभूषित और नाना प्रकारके विकराल वेषवाले अगणित निशाचर उसे दायें-बायें और पीछेकी ओरसे घेरकर चल रहे थे ॥ ६ ॥

रथैश्चातिरथाः शीघ्रं मत्तैश्च वरवारणैः ।
अनूत्पेतुर्दशग्रीवमाक्रीडद्भिश्च वाजिभिः ॥ ७ ॥

रावणके प्रस्थान करते ही बहुत-से अतिरथी वीर रथों, मतवाले गजराजों और खेल-खेलमें तरह-तरहकी चालें दिखानेवाले घोड़ोंपर सवार हो तुरंत उसके पीछे चल दिये ॥ ७ ॥

गदापरिघहस्ताश्च शक्तितोमरपाणयः ।
परश्वधधराश्चान्ये तथान्ये शूलपाणयः ।
ततस्तूर्यसहस्राणां संजज्ञे निःस्वनो महान् ॥ ८ ॥

किन्हींके हाथोंमें गदा और परिघ शोभा पा रहे थे। कोई शक्ति और तोमर लिये हुए थे। कुछ लोगोंने फरसे धारण कर रक्खे थे तथा अन्य राक्षसोंके हाथोंमें शूल चमक रहे थे, फिर तो वहाँ सहस्रों वाद्योंका महान् घोष होने लगा ॥

तुमुलः शङ्खशब्दश्च सभां गच्छति रावणे ।
स नेमिघोषेण महान् सहसाभिनिनादयन् ॥ ९ ॥
राजमार्गं श्रिया जुष्टं प्रतिपेदे महारथः ।

रावणके सभाभवनकी ओर यात्रा करते समय तुमुल शङ्खध्वनि होने लगी। उसका वह विशाल रथ अपने पहियोंकी घर्घराहटसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करता हुआ सहसा शोभाशाली राजमार्गपर जा पहुँचा ॥ ९½ ॥

विमलं चातपत्रं च प्रगृहीतमशोभत ॥ १० ॥
पाण्डुरं राक्षसेन्द्रस्य पूर्णस्ताराधिपो यथा ।

उस समय राक्षसराज रावणके ऊपर तना हुआ निर्मल श्वेत छत्र पूर्ण चन्द्रमाके समान शोभा पा रहा था ॥ १०½ ॥

हेममञ्जरिगर्भे च शुद्धस्फटिकविग्रहे ॥ ११ ॥
चामरव्यजने तस्य रेजतुः सव्यदक्षिणे ।

उसके दाहिने और बायें भागमें शुद्ध स्फटिकके डंडेवाले चँवर और व्यजन, जिनमें सोनेकी मञ्जरियाँ बनी हुई थीं, बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ ११½ ॥

ते कृताञ्जलयः सर्वे रथस्थं पृथिवीस्थिताः ॥ १२ ॥
राक्षसा राक्षसश्रेष्ठं शिरोभिस्तं ववन्दिरे ।

मार्गमें पृथ्वीपर खड़े हुए सभी राक्षस दोनों हाथ जोड़ रथपर बैठे हुए राक्षसशिरोमणि रावणकी सिर झुकाकर वन्दना करते थे ॥ १२½ ॥

राक्षसैः स्तूयमानः सञ्जयाशीर्भिररिंदमः ॥ १३ ॥
आससाद महातेजाः सभां विरचितां तदा ।

राक्षसोंद्वारा की गयी स्तुति, जय-जयकार और आशीर्वाद सुनता हुआ शत्रुदमन महातेजस्वी रावण उस समय विश्वकर्माद्वारा निर्मित राजसभामें पहुँचा ॥ १३½ ॥

सुवर्णरजतास्तीर्णां विशुद्धस्फटिकान्तराम् ॥ १४ ॥

विराजमानो वपुषा रुक्मपट्टोत्तरच्छदाम् ।
तां पिशाचशतैः षड्भिरभिगुप्तां सदाप्रभाम् ॥ १५ ॥
प्रविवेश महातेजाः सुकृतां विश्वकर्मणा ।

उस सभाके फर्शमें सोने-चाँदीका काम किया हुआ था तथा बीच-बीचमें विशुद्ध स्फटिक भी जड़ा गया था । उसमें सोनेके कामवाले रेशमी वस्त्रोंकी चादरें बिछी हुई थीं । वह सभा सदा अपनी प्रभासे उद्भासित होती रहती थी । छः सौ पिशाच उसकी रक्षा करते थे । विश्वकर्माने उसे बहुत ही सुन्दर बनाया था । अपने शरीरसे सुशोभित होनेवाले महातेजस्वी रावणने उस सभामें प्रवेश किया ॥ १४-१५½ ॥

तस्यां तु वैदूर्यमयं प्रियकाजिनसंवृतम् ॥ १६ ॥
महत्सोपाश्रयं भेजे रावणः परमासनम् ।
ततः शशासेश्वरवद्दूताँल्लघुपराक्रमान् ॥ १७ ॥

उस सभाभवनमें वैदूर्यमणि (नीलम) का बना हुआ एक विशाल और उत्तम सिंहासन था, जिसपर अत्यन्त मुलायम चमड़ेवाले 'प्रियक' नामक मृगका चर्म बिछा था और उसपर मसनँद भी रखा हुआ था । रावण उसीपर बैठ गया । फिर उसने अपने शीघ्रगामी दूतोंको आज्ञा दी—॥

समानयत मे क्षिप्रमिहैतान् राक्षसानिति ।
कृत्यमस्ति महज्जाने कर्तव्यमिति शत्रुभिः ॥ १८ ॥

'तुमलोग शीघ्र ही यहाँ बैठनेवाले सुविख्यात राक्षसोंको मेरे पास बुला ले आओ; क्योंकि शत्रुओंके साथ करने योग्य महान् कार्य मुझपर आ पड़ा है । इस बातको मैं अच्छी तरह समझ रहा हूँ (अतः इसपर विचार करनेके लिये सब सभासदोंका यहाँ आना अत्यन्त आवश्यक है)' ॥ १८ ॥

राक्षसास्तद्वचः श्रुत्वा लङ्कायां परिचक्रमुः ।
अनुगेहमवस्थाय विहारशयनेषु च ।
उद्यानेषु च रक्षांसि चोदयन्तो ह्यभीतवत् ॥ १९ ॥

रावणका यह आदेश सुनकर वे राक्षस लङ्कामें सब ओर चक्कर लगाने लगे । वे एक-एक घर, विहारस्थान, शयनागार और उद्यानमें जा-जाकर बड़ी निर्भयतासे उन सब राक्षसोंको राजसभामें चलनेके लिये प्रेरित करने लगे ॥ १९ ॥

ते रथान्तचरा एके दृप्तानेके दृढान् हयान् ।
नागानेकेऽधिरुरुहुर्जग्मुश्चैके पदातयः ॥ २० ॥

तब उन राक्षसोंमेंसे कोई रथपर चढ़कर चले, कोई मतवाले हाथियोंपर और कोई मजबूत घोड़ोंपर सवार होकर अपने-अपने स्थानसे प्रस्थित हुए । बहुत-से राक्षस पैदल ही चल दिये ॥ २० ॥

सा पुरी परमाकीर्णा रथकुञ्जरवाजिभिः ।
सम्पतद्भिर्विरुरुचे गरुत्मद्भिरिवाम्बरम् ॥ २१ ॥

उस समय दौड़ते हुए रथों, हाथियों और घोड़ोंसे व्याप्त हुई वह पुरी बहुसंख्यक गरुड़ोंसे आच्छादित हुए आकाशकी भाँति शोभा पा रही थी ॥ २१ ॥

ते वाहनान्यवस्थाय यानानि विविधानि च ।
सभां पद्भिः प्रविविशुः सिंहा गिरिगुहामिव ॥ २२ ॥

गन्तव्य स्थानतक पहुँचकर अपने-अपने वाहनों और नाना प्रकारकी सवारियोंको बाहर ही रखकर वे सब सभासद् पैदल ही उस सभाभवनमें प्रविष्ट हुए, मानो बहुत-से सिंह किसी पर्वतकी कन्दरामें घुस रहे हों ॥ २२ ॥

राज्ञः पादौ गृहीत्वा तु राज्ञा ते प्रतिपूजिताः ।
पीठेष्वन्ये बृसीष्वन्ये भूमौ केचिदुपाविशन् ॥ २३ ॥

वहाँ पहुँचकर उन सबने राजाके पाँव पकड़े तथा राजाने भी उनका सत्कार किया । तत्पश्चात् कुछ लोग सोनेके सिंहासनोंपर, कुछ लोग कुशकी चटाइयोंपर और कुछ लोग साधारण बिछौनोंसे ढकी हुई भूमिपर ही बैठ गये ॥ २३ ॥

ते समेत्य सभायां वै राक्षसा राजशासनात् ।
यथार्हमुपतस्थुस्ते रावणं राक्षसाधिपम् ॥ २४ ॥

राजाकी आज्ञासे उस सभामें एकत्र होकर वे सब राक्षस राक्षसराज रावणके आसपास यथायोग्य आसनोंपर बैठ गये ॥

मन्त्रिणश्च यथामुख्या निश्चितार्थेषु पण्डिताः ।
अमात्याश्च गुणोपेताः सर्वज्ञा बुद्धिदर्शनाः ॥ २५ ॥
समीयुस्तत्र शतशः शूराश्च बहवस्तथा ।
सभायां हेमवर्णायां सर्वार्थस्य सुखाय वै ॥ २६ ॥

यथायोग्य भिन्न-भिन्न विषयोंके लिये उचित सम्मति देनेवाले मुख्य-मुख्य मन्त्री, कर्तव्य-निश्चयमें पाण्डित्यका परिचय देनेवाले सचिव, बुद्धिदर्शी, सर्वज्ञ, सद्गुण-सम्पन्न उपमन्त्री तथा और भी बहुत-से शूरवीर सम्पूर्ण अर्थोंके निश्चयके लिये और सुखप्राप्तिके उपायपर विचार करनेके लिये उस सुनहरी कान्तिवाली सभाके भीतर सैकड़ोंकी संख्यामें उपस्थित थे ॥

ततो महात्मा विपुलं सुयुग्यं
रथं वरं हेमविचित्रिताङ्गम् ।
शुभं समास्थाय ययौ यशस्वी
विभीषणः संसदमग्रजस्य ॥ २७ ॥

तत्पश्चात्-यशस्वी महात्मा विभीषण भी एक सुवर्णजटित, सुन्दर अश्वोंसे युक्त, विशाल, श्रेष्ठ एवं शुभकारक रथपर आरूढ़ हो अपने बड़े भाईकी सभामें जा पहुँचे ॥ २७ ॥

स पूर्वजायावरजः शशंस
नामाथ पश्चाच्चरणौ ववन्दे ।
शुकः प्रहस्तश्च तथैव तेभ्यो
ददौ यथार्हं पृथगासनानि ॥ २८ ॥

छोटे भाई विभीषणने पहले अपना नाम बताया, फिर बड़े भाईके चरणोंमें मस्तक झुकाया । इसी तरह शुक और

प्रहस्तने भी किया । तब रावणने उन सबको यथायोग्य पृथक्-पृथक आसन दिये ॥ २८ ॥

सुवर्णनानामणिभूषणानां
सुवाससां संसदि राक्षसानाम् ।
तेषां परार्ध्यागुरुचन्दनानां
स्रजां च गन्धाः प्रववुः समन्तात् ॥ २९ ॥

सुवर्ण एवं नाना प्रकारकी मणियोंके आभूषणोंसे विभूषित उन सुन्दर वस्त्रधारी राक्षसोंकी उस सभामें सब ओर बहुमूल्य अगुरु, चन्दन तथा पुष्पहारोंकी सुगन्ध छा रही थी ॥ २९ ॥

न चुक्रुशुर्नानृतमाह कश्चित्
सभासदो नापि जजल्पुरुच्चैः ।
संसिद्धार्थाः सर्वे एवोग्रवीर्या
भर्तुः सर्वे ददृशुश्चाननं ते ॥ ३० ॥

उस समय उस सभाका कोई भी सदस्य असत्य नहीं बोलता था । वे सभी सभासद् न तो चिल्लाते थे और न जोर-जोरसे बातें ही करते थे । वे सब-के-सब सफलमनोरथ एवं भयंकर पराक्रमी थे और सभी अपने स्वामी रावणके मुँह-की ओर देख रहे थे ॥ ३० ॥

स रावणः शस्त्रभृतां मनस्विनां
महाबलानां समितौ मनस्वी ।
तस्यां सभायां प्रभया चकाशे
मध्ये वसूनामिव वज्रहस्तः ॥ ३१ ॥

उस सभामें शस्त्रधारी महाबली मनस्वी वीरोंका समागम होनेपर उनके बीचमें बैठा हुआ मनस्वी रावण अपनी प्रभासे उसी प्रकार प्रकाशित हो रहा था, जैसे वसुओंके बीचमें वज्रधारी इन्द्र देदीप्यमान होते हैं ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः

नगरकी रक्षाके लिये सैनिकोंकी नियुक्ति, रावणका सीताके प्रति अपनी आसक्ति बताकर उनके हरणका प्रसंग बताना और भावी कर्तव्यके लिये सभासदोंकी सम्मति माँगना, कुम्भकर्णका पहले तो उसे फटकारना, फिर समस्त शत्रुओंके वधका स्वयं ही भार उठाना

स तां परिषदं कृत्स्नां समीक्ष्य समितिंजयः ।
प्रचोदयामास तदा प्रहस्तं वाहिनीपतिम् ॥ १ ॥

शत्रुविजयी रावणने उस सम्पूर्ण सभाकी ओर दृष्टिपात करके सेनापति प्रहस्तको उस समय इस प्रकार आदेश दिया—॥ १ ॥

सेनापते यथा ते स्युः कृतविद्याश्चतुर्विधाः ।
योधा नगररक्षायां तथा व्यादेष्टुमर्हसि ॥ २ ॥

‘सेनापते ! तुम सैनिकोंको ऐसी आज्ञा दो, जिससे तुम्हारे अस्त्रविद्यामें पारंगत रथी, घुड़सवार, हाथीसवार और पैदल योद्धा नगरकी रक्षामें तत्पर रहें’ ॥ २ ॥

स प्रहस्तः प्रणीतात्मा चिकीर्षन् राजशासनम् ।
विनिक्षिपद् बलं सर्वं बहिरन्तश्च मन्दिरे ॥ ३ ॥

अपने मनको वशमें रखनेवाले प्रहस्तने राजाके आदेशका पालन करनेकी इच्छासे सारी सेनाको नगरके बाहर और भीतर यथायोग्य स्थानोंपर नियुक्त कर दिया ॥ ३ ॥

ततो विनिक्षिप्य बलं सर्वं नगरगुप्तये ।
प्रहस्तः प्रमुखे राज्ञो निषसाद जगाद च ॥ ४ ॥

नगरकी रक्षाके लिये सारी सेनाके तैनात करके प्रहस्त राजा रावणके सामने आ बैठा और इस प्रकार बोला—॥४॥

विहितं बहिरन्तश्च बलं बलवतस्तव ।
कुरुष्वाविमनाः क्षिप्रं यदभिप्रेतमस्ति ते ॥ ५ ॥

‘राक्षसराज ! आप महाबली महाराजकी सेनाको मैंने नगरके बाहर और भीतर यथास्थान नियुक्त कर दिया है। अब आप स्वस्थचित्त होकर शीघ्र ही अपने अभीष्ट कार्यका सम्पादन कीजिये’ ॥ ५ ॥

प्रहस्तस्य वचः श्रुत्वा राजा राज्यहितैषिणः ।
सुखेप्सुः सुहृदां मध्ये व्याजहार स रावणः ॥ ६ ॥

राज्यका हित चाहनेवाले प्रहस्तकी यह बात सुनकर अपने सुखकी इच्छा रखनेवाले रावणने सुहृदोंके बीचमें यह बात कही—॥ ६ ॥

प्रियाप्रिये सुखे दुःखे लाभालाभे हिताहिते ।
धर्मकामार्थकृच्छ्रेषु यूयमर्हथ वेदितुम् ॥ ७ ॥

‘सभासदो ! धर्म, अर्थ और कामविषयक संकट उपस्थित होनेपर आपलोग प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख, लाभ-हानि और हिताहितका विचार करनेमें समर्थ हैं ॥ ७ ॥

सर्वकृत्यानि युष्माभिः समारब्धानि सर्वदा ।
मन्त्रकर्मनियुक्तानि न जातु विफलानि मे ॥ ८ ॥

‘आपलोगोंने सदा परस्पर विचार करके जिन-जिन कार्यों-

का आरम्भ किया है, वे सब-के-सब मेरे लिये कभी निष्फल नहीं हुए हैं ॥ ८ ॥

ससोमग्रहनक्षत्रैर्मरुद्भिरिव वासवः ।
भवद्भिरहमत्यर्थं वृतः श्रियमवाप्नुयाम् ॥ ९ ॥

'जैसे चन्द्रमा, ग्रह और नक्षत्रोंसहित मरुद्गणोंसे घिरे हुए इन्द्र स्वर्गकी सम्पत्तिका उपभोग करते हैं, उसी भाँति आपलोगोंसे घिरा रहकर मैं भी लङ्काकी प्रचुर राजलक्ष्मीका सुख भोगता रहूँ—यही मेरी अभिलाषा है ॥ ९ ॥

अहं तु खलु सर्वान् वः समर्थयितुमुद्यतः ।
कुम्भकर्णस्य तु स्वप्नान्नेममर्थमचोदयम् ॥ १० ॥

'मैंने जो काम किया है, उसे मैं पहले ही आप सबके सामने रखकर आपके द्वारा उसका समर्थन चाहता था, परंतु उस समय कुम्भकर्ण सोये हुए थे, इसलिये मैंने इसकी चर्चा नहीं चलायी ॥ १० ॥

अयं हि सुप्तः षण्मासान् कुम्भकर्णो महाबलः ।
सर्वशस्त्रभृतां मुख्यः स इदानीं समुत्थितः ॥ ११ ॥

'समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबली कुम्भकर्ण छः महीनेसे सो रहे थे । अभी इनकी नींद खुली है ॥ ११ ॥

इयं च दण्डकारण्याद् रामस्य महिषी प्रिया ।
रक्षोभिश्चरितोद्देशादानीता जनकात्मजा ॥ १२ ॥

'मैं दण्डकारण्यसे, जो राक्षसोंके विचरनेका स्थान है, रामकी प्यारी रानी जनकदुलारी सीताको हर लाया हूँ ॥ १२ ॥

सा मे न शय्यामारोढुमिच्छत्यलसगामिनी ।
त्रिषु लोकेषु चान्या मे न सीतासदृशी तथा ॥ १३ ॥

'किंतु वह मन्दगामिनी सीता मेरी शय्यापर आरूढ़ होना नहीं चाहती है । मेरी दृष्टिमें तीनों लोकोंके भीतर सीताके समान सुन्दरी दूसरी कोई स्त्री नहीं है ॥ १३ ॥

तनुमध्या पृथुश्रोणी शरदिन्दुनिभानना ।
हेमबिम्बनिभा सौम्या मायेव मयनिर्मिता ॥ १४ ॥

'उसके शरीरका मध्यभाग अत्यन्त सूक्ष्म है, कटिके पीछेका भाग स्थूल है, मुख शरत्कालके चन्द्रमाको लज्जित करता है, वह सौम्य रूप और स्वभाववाली सीता सोनेकी बनी हुई प्रतिमा-सी जान पड़ती है । ऐसा लगता है, जैसे वह मयासुरकी रची हुई कोई माया हो ॥ १४ ॥

सुलोहिततलौ श्लक्ष्णौ चरणौ सुप्रतिष्ठितौ ।
दृष्ट्वा ताम्रनखौ तस्या दीप्यते मे शरीरजः ॥ १५ ॥

'उसके चरणोंके तलवे लाल रंगके हैं । दोनों पैर सुन्दर, चिकने और सुडौल हैं तथा उनके नख ताँबे-जैसे लाल हैं । सीताके उन चरणोंको देखकर मेरी कामाग्नि प्रज्वलित हो उठती है ॥ १५ ॥

हुताग्नेरर्चिसंकाशामेनां सौरीमिव प्रभाम् ।
उन्नसं विमलं वल्गु वदनं चारुलोचनम् ॥ १६ ॥
पश्यंस्तदवशस्तस्याः कामस्य वशमेयिवान् ।

'जिसमें घीकी आहुति डाली गयी हो, उस अग्निकी लपट और सूर्यकी प्रभाके समान इस तेजस्विनी सीताको देखकर तथा ऊँची नाक और विशाल नेत्रोंसे सुशोभित उसके निर्मल एवं मनोहर मुखका अवलोकन करके मैं अपने वशमें नहीं रह गया हूँ । कामने मुझे अपने अधीन कर लिया है ॥ १६½ ॥

क्रोधहर्षसमानेन दुर्वर्णकरणेन च ॥ १७ ॥
शोकसंतापनित्येन कामेन कलुषीकृतः ।

'जो क्रोध और हर्ष दोनों अवस्थाओंमें समानरूपसे बना रहता है, शरीरकी कान्तिको फीकी कर देता है और शोक तथा संतापके समय भी कभी मनसे दूर नहीं होता, उस कामने मेरे हृदयको कलुषित (व्याकुल) कर दिया है ॥ १७½ ॥

सा तु संवत्सरं कालं मामयाचत भामिनी ॥ १८ ॥
प्रतीक्षमाणा भर्तारं राममायतलोचना ।
तन्मया चारुनेत्रायाः प्रतिज्ञातं वचः शुभम् ॥ १९ ॥

'विशाल नेत्रोंवाली माननीय सीताने मुझसे एक वर्षका समय माँगा है । इस बीचमें वह अपने पति श्रीरामकी प्रतीक्षा करेगी । मैंने मनोहर नेत्रोंवाली सीताके उस सुन्दर वचनको सुनकर उसे पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा कर ली है* ॥ १८-१९ ॥

श्रान्तोऽहं सततं कामाद् यातो हय इवाध्वनि ।
कथं सागरमक्षोभ्यं तरिष्यन्ति वनौकसः ॥ २० ॥
बहुसत्त्वझषाकीर्णं तौ वा दशरथात्मजौ ।

'जैसे बड़े मार्गमें चलते-चलते घोड़ा थक जाता है, उसी प्रकार मैं भी कामपीड़ासे थकावटका अनुभव कर रहा हूँ । वैसे तो मुझे शत्रुओंकी ओरसे कोई डर नहीं है; क्योंकि वे वनवासी वानर अथवा वे दोनों दशरथकुमार श्रीराम और लक्ष्मण असंख्य जल-जन्तुओं तथा मत्स्योंसे भरे हुए अलङ्घ्य महासागरको कैसे पार कर सकेंगे ? ॥ २०½ ॥

अथवा कपिनैकेन कृतं नः कदनं महत् ॥ २१ ॥
दुर्ज्ञेयाः कार्यगतयो ब्रूत यस्य यथामति ।
मानुषान्नो भयं नास्ति तथापि तु विमृश्यताम् ॥ २२ ॥

'अथवा एक ही वानरने आकर हमारे यहाँ महान्

---

* यहाँ रावणने सभासदोंके सामने अपनी झूठी उदारता दिखानेके लिये सर्वथा असत्य कहा है । सीताजीने कभी अपने मुँहसे यह नहीं कहा था कि 'मुझे एक वर्षका समय दो । यदि इतने दिनोंतक श्रीराम नहीं आये तो मैं तुम्हारी हो जाऊँगी ।' सीताने तो सदा तिरस्कारपूर्वक उसके जघन्य प्रस्तावको ठुकराया ही था । इसने स्वयं ही अपनी ओरसे उन्हें एक वर्षका अवसर दिया था । (देखिये अरण्यकाण्ड सर्ग ५६ श्लोक २४-२५)

संहार मचा दिया था। इसलिये कार्यसिद्धिके उपायोंको समझ लेना अत्यन्त कठिन है। अतः जिसको अपनी बुद्धिके अनुसार जैसा उचित जान पड़े, वह वैसा ही बतावे। तुम सब लोग अपने विचार अवश्य व्यक्त करो। यद्यपि हमें मनुष्यसे कोई भय नहीं है, तथापि तुम्हें विजयके उपायपर विचार तो करना ही चाहिये ॥ २१-२२ ॥

तदा देवासुरे युद्धे युष्माभिः सहितोऽजयम्।
ते मे भवन्तश्च तथा सुग्रीवप्रमुखान् हरीन् ॥ २३ ॥
परे पारे समुद्रस्य पुरस्कृत्य नृपात्मजौ।
सीतायाः पदवीं प्राप्य सम्प्राप्तौ वरुणालयम् ॥ २४ ॥

'उन दिनों जब देवताओं और असुरोंका युद्ध चल रहा था, उसमें आप सब लोगोंकी सहायतासे ही मैंने विजय प्राप्त की थी। आज भी आप मेरे उसी प्रकार सहायक हैं। वे दोनों राजकुमार सीताका पता पाकर सुग्रीव आदि वानरोंको साथ लिये समुद्रके उस तटतक पहुँच चुके हैं ॥ २३-२४ ॥

अदेया च यथा सीता वध्यौ दशरथात्मजौ।
भवद्भिर्मन्त्र्यतां मन्त्रः सुनीतं चाभिधीयताम् ॥ २५ ॥

'अब आपलोग आपसमें सलाह कीजिये और कोई ऐसी सुन्दर नीति बताइये, जिससे सीताको लौटाना न पड़े तथा वे दोनों दशरथकुमार मारे जायँ ॥ २५ ॥

नहि शक्तिं प्रपश्यामि जगत्यन्यस्य कस्यचित्।
सागरं वानरैस्तीर्त्वा निश्चयेन जयो मम ॥ २६ ॥

'वानरोंके साथ समुद्रको पार करके यहाँतक आनेकी शक्ति जगत्‌में रामके सिवा और किसीमें नहीं देखता हूँ (किंतु राम और वानर यहाँ आकर भी मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकते), अतः यह निश्चय है कि जीत मेरी ही होगी' ॥ २६ ॥

तस्य कामपरीतस्य निशम्य परिदेवितम्।
कुम्भकर्णः प्रचुक्रोध वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २७ ॥

कामातुर रावणका यह खेदपूर्ण प्रलाप सुनकर कुम्भकर्णको क्रोध आ गया और उसने इस प्रकार कहा— ॥ २७ ॥

यदा तु रामस्य सलक्ष्मणस्य
प्रसह्य सीता खलु सा इहाहृता।
सकृत् समीक्ष्यैव सुनिश्चितं तदा
भजेत चित्तं यमुनेव यामुनम् ॥ २८ ॥

'जब तुम लक्ष्मणसहित श्रीरामके आश्रमसे एक बार स्वयं ही मनमाना विचार करके सीताको यहाँ बलपूर्वक हर लाये थे, उसी समय तुम्हारे चित्तको हमलोगोंके साथ इस विषयमें सुनिश्चित विचार कर लेना चाहिये था। ठीक उसी तरह जैसे यमुना जब पृथ्वीपर उतरनेको उद्यत हुई, तभी उन्होंने यमनोत्री पर्वतके कुण्डविशेषको अपने जलसे पूर्ण किया था (पृथ्वीपर उतर जानेके बाद उनका वेग जब समुद्रमें जाकर शान्त हो गया, तब वे पुनः उस कुण्डको नहीं भर सकतीं; उसी प्रकार तुमने भी जब विचार करनेका अवसर था, तब तो हमारे साथ बैठकर विचार किया नहीं। अब अवसर बिताकर सारा काम बिगड़ जानेके बाद तुम विचार करने चले हो) ॥ २८ ॥

सर्वमेतन्महाराज कृतमप्रतिमं तव। ✓
विधीयेत सहास्माभिरादावेवास्य कर्मणः ॥ २९ ॥

'महाराज ! तुमने जो यह छलपूर्वक छिपकर परस्त्री-हरण आदि कार्य किया है, यह सब तुम्हारे लिये बहुत अनुचित है। इस पापकर्मको करनेसे पहले ही आपको हमारे साथ परामर्श कर लेना चाहिये था ॥ २९ ॥

न्यायेन राजकार्याणि यः करोति दशानन।
न स संतप्यते पश्चान्निश्चितार्थमतिर्नृपः ॥ ३० ॥

'दशानन ! जो राजा सब राजकार्य न्यायपूर्वक करता है, उसकी बुद्धि निश्चयपूर्ण होनेके कारण उसे पीछे पछताना नहीं पड़ता है ॥ ३० ॥

अनुपायेन कर्माणि विपरीतानि यानि च।
क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्यप्रयतेष्विव ॥ ३१ ॥

'जो कर्म उचित उपायका अवलम्बन किये बिना ही किये जाते हैं तथा जो लोक और शास्त्रके विपरीत होते हैं, वे पापकर्म उसी तरह दोषकी प्राप्ति कराते हैं, जैसे अपवित्र आभिचारिक यज्ञोंमें होमे गये हविष्य ॥ ३१ ॥

यः पश्चात् पूर्वकार्याणि कर्माण्यभिचिकीर्षति।
पूर्वं चापरकार्याणि स न वेद नयानयौ ॥ ३२ ॥

'जो पहले करने योग्य कार्योंको पीछे करना चाहता है और पीछे करने योग्य काम पहले ही कर डालता है, वह नीति और अनीतिको नहीं जानता ॥ ३२ ॥

चपलस्य तु कृत्येषु प्रसमीक्ष्याधिकं बलम्।
छिद्रमन्ये प्रपद्यन्ते क्रौञ्चस्य खमिव द्विजाः ॥ ३३ ॥

'शत्रुलोग अपने विपक्षीके बलको अपनेसे अधिक देखकर भी यदि वह हर काममें चपल (जल्दबाज) है तो उसका दमन करनेके लिये उसी तरह उसके छिद्र ढूँढ़ते रहते हैं, जैसे पक्षी दुर्लङ्घ्य क्रौञ्च पर्वतको लाँघकर आगे बढ़नेके लिये उसके (उस) छिद्रका आश्रय लेते हैं (जिसे कुमार कार्तिकेयने अपनी शक्तिका प्रहार करके बनाया था) ॥ ३३ ॥

त्वयेदं महदारब्धं कार्यमप्रतिचिन्तितम्।
दिष्ट्या त्वां नावधीद् रामो विषमिश्रमिवामिषम् ॥ ३४ ॥ ✓

'महाराज ! तुमने भावी परिणामका विचार किये बिना

---

१. कुमार कार्तिकेयने अपनी शक्तिके द्वारा क्रौञ्चपर्वतको विदीर्ण करके उसमें छेद कर दिया था—यह प्रसंग महाभारतमें आया है। (देखिये शल्यप० ४६ । ८४)

ही यह बहुत बड़ा दुष्कर्म आरम्भ किया है। जैसे विषमिश्रित भोजन खानेवालेके प्राण हर लेता है, उसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारा वध कर डालेंगे। उन्होंने अभीतक तुम्हें मार नहीं डाला, इसे अपने लिये सौभाग्यकी बात समझो॥ ३४॥

तस्मात् त्वया समारब्धं कर्म ह्यप्रतिमं परैः।
अहं समीकरिष्यामि हत्वा शत्रूंस्तवानघ॥ ३५॥

'अनघ! यद्यपि तुमने शत्रुओंके साथ अनुचित कर्म आरम्भ किया है, तथापि मैं तुम्हारे शत्रुओंका संहार करके सबको ठीक कर दूँगा॥ ३५॥

अहमुत्सादयिष्यामि शत्रूंस्तव निशाचर।
यदि शक्रविवस्वन्तौ यदि पावकमारुतौ।
तावहं योधयिष्यामि कुबेरवरुणावपि॥ ३६॥

'निशाचर! तुम्हारे शत्रु यदि इन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु, कुबेर और वरुण भी हों तो मैं उनके साथ युद्ध करूँगा और तुम्हारे सभी शत्रुओंको उखाड़ फेंकूँगा॥ ३६॥

गिरिमात्रशरीरस्य महापरिघयोधिनः।
नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्य बिभीयाद् वै पुरंदरः॥ ३७॥

'मैं पर्वतके समान विशाल एवं तीखी दाढ़ोंसे युक्त शरीर धारण करके महान् परिघ हाथमें ले समरभूमिमें जूझता हुआ जब गर्जना करूँगा, उस समय देवराज इन्द्र भी भयभीत हो जायँगे॥ ३७॥

पुनर्मां स द्वितीयेन शरेण निहनिष्यति।
ततोऽहं तस्य पास्यामि रुधिरं काममाश्वस॥ ३८॥

'राम मुझे एक बाणसे मारकर दूसरे बाणसे मारने लगेंगे, उसी बीचमें मैं उनका खून पी लूँगा। इसलिये तुम पूर्णतः निश्चिन्त हो जाओ॥ ३८॥

वधेन वै दाशरथेः सुखावहं
जयं तवाहर्तुमहं यतिष्ये।
हत्वा च रामं सह लक्ष्मणेन
खादामि सर्वान् हरियूथमुख्यान्॥ ३९॥

'मैं दशरथनन्दन श्रीरामका वध करके तुम्हारे लिये सुखदायिनी विजय सुलभ करानेका प्रयत्न करूँगा। लक्ष्मणसहित रामको मारकर समस्त वानरयूथपतियोंको खा जाऊँगा॥ ३९॥

रमस्व कामं पिब चाग्र्यवारुणीं
कुरुष्व कार्याणि हितानि विज्वरः।
मया तु रामे गमिते यमक्षयं
चिराय सीता वशगा भविष्यति॥ ४०॥

'तुम मौजसे विहार करो। उत्तम वारुणीका पान करो और निश्चिन्त होकर अपने लिये हितकर कार्य करते रहो। मेरे द्वारा रामके यमलोक भेज दिये जानेपर सीता चिरकालके लिये तुम्हारे अधीन हो जायगी'॥ ४०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्वादशः सर्गः॥ १२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १२॥

त्रयोदशः सर्गः

महापार्श्वका रावणको सीतापर बलात्कारके लिये उकसाना और रावणका शापके कारण अपनेको ऐसा करनेमें असमर्थ बताना तथा अपने पराक्रमके गीत गाना

रावणं क्रुद्धमाज्ञाय महापार्श्वो महाबलः।
मुहूर्तमनुसंचिन्त्य प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥ १॥

तब रावणको कुपित हुआ जान महाबली महापार्श्वने दो घड़ीतक कुछ सोच-विचार करनेके बाद हाथ जोड़कर कहा—॥ १॥

यः खल्वपि वनं प्राप्य मृगव्यालनिषेवितम्।
न पिबेन्मधु सम्प्राप्य स नरो बालिशो भवेत्॥ २॥

'जो हिंसक पशुओं और सर्पोंसे भरे हुए दुर्गम वनमें जाकर वहाँ पीने योग्य मधु पाकर भी उसे पीता नहीं है, वह पुरुष मूर्ख ही है॥ २॥

ईश्वरस्येश्वरः कोऽस्ति तव शत्रुनिबर्हण।
रमस्व सह वैदेह्या शत्रूनाक्रम्य मूर्धसु॥ ३॥

'शत्रुसूदन महाराज! आप तो स्वयं ही ईश्वर हैं। आपका ईश्वर कौन है? आप शत्रुओंके सिरपर पैर रखकर विदेहकुमारी सीताके साथ रमण कीजिये॥ ३॥

बलात् कुक्कुटवृत्तेन प्रवर्तस्व महाबल।
आक्रम्याक्रम्य सीतां वै तां भुङ्क्ष्व च रमस्व च॥ ४॥

'महाबली वीर! आप कुक्कुटोंके बर्तावको अपनाकर सीताके साथ बलात्कार कीजिये। बारंबार आक्रमण करके उनके साथ रमण एवं उपभोग कीजिये॥ ४॥

लब्धकामस्य ते पश्चादागमिष्यति किं भयम्।
प्राप्तमप्राप्तकालं वा सर्वं प्रतिविधास्यसे॥ ५॥

'जब आपका मनोरथ सफल हो जायगा, तब फिर आपपर कौन-सा भय आयेगा? यदि वर्तमान एवं भविष्यकालमें कोई भय आया भी तो उस समस्त भयका यथोचित प्रतीकार किया जायगा॥ ५॥

कुम्भकर्णः सहास्माभिरिन्द्रजिच्च महाबलः ।
प्रतिषेधयितुं शक्तौ सवज्रमपि वज्रिणम् ॥ ६ ॥

'हमलोगोंके साथ यदि महाबली कुम्भकर्ण और इन्द्रजित् खड़े हो जायँ तो ये दोनों वज्रधारी इन्द्रको भी आगे बढ़नेसे रोक सकते हैं ॥ ६ ॥

उपप्रदानं सान्त्वं वा भेदं वा कुशलैः कृतम् ।
समतिक्रम्य दण्डेन सिद्धिमर्थेषु रोचये ॥ ७ ॥

'मैं तो नीतिनिपुण पुरुषोंके द्वारा प्रयुक्त साम, दान और भेदको छोड़कर केवल दण्डके द्वारा काम बना लेना ही अच्छा समझता हूँ ॥ ७ ॥

इह प्राप्तान् वयं सर्वाञ्छत्रूंस्तव महाबल ।
वशे शस्त्रप्रतापेन करिष्यामो न संशयः ॥ ८ ॥

'महाबली राक्षसराज ! यहाँ आपके जो भी शत्रु आयेंगे, उन्हें हमलोग अपने शस्त्रोंके प्रतापसे वशमें कर लेंगे, इसमें संशय नहीं है' ॥ ८ ॥

एवमुक्तस्तदा राजा महापार्श्वेन रावणः ।
तस्य सम्पूजयन् वाक्यमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥

महापार्श्वके ऐसा कहनेपर उस समय लङ्काके राजा रावणने उसके वचनोंकी प्रशंसा करते हुए इस प्रकार कहा—॥

महापार्श्व निबोध त्वं रहस्यं किंचिदात्मनः ।
चिरवृत्तं तदाख्यास्ये यदवाप्तं पुरा मया ॥ १० ॥

'महापार्श्व ! बहुत दिन हुए पूर्वकालमें एक गुप्त घटना घटित हुई थी—मुझे शाप प्राप्त हुआ था । अपने जीवनके उस गुप्त रहस्यको आज मैं बता रहा हूँ, उसे सुनो ॥ १० ॥

पितामहस्य भवनं गच्छन्तीं पुञ्जिकस्थलाम् ।
चञ्चूर्यमाणामद्राक्षमाकाशेऽग्निशिखामिव ॥ ११ ॥

'एक बार मैंने आकाशमें अग्नि-शिखाके समान प्रकाशित होती हुई पुञ्जिकस्थला नामकी अप्सराको देखा, जो पितामह ब्रह्माजीके भवनकी ओर जा रही थी । वह अप्सरा मेरे भयसे लुकती-छिपती आगे बढ़ रही थी ॥ ११ ॥

सा प्रसह्य मया भुक्ता कृता विवसना ततः ।
स्वयम्भूभवनं प्राप्ता लोलिता नलिनी यथा ॥ १२ ॥

'मैंने बलपूर्वक उसके वस्त्र उतार दिये और हठात् उसका उपभोग किया । इसके बाद वह ब्रह्माजीके भवनमें गयी । उसकी दशा हाथीद्वारा मसलकर फेंकी हुई कमलिनीके समान हो रही थी ॥ १२ ॥

तच्च तस्य तथा मन्ये ज्ञातमासीन्महात्मनः ।
अथ संकुपितो वेधा मामिदं वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥

'मैं समझता हूँ कि मेरेद्वारा उसकी जो दुर्दशा की गयी थी, वह पितामह ब्रह्माजीको ज्ञात हो गयी । इससे वे अत्यन्त कुपित हो उठे और मुझसे इस प्रकार बोले—॥ १३ ॥

अद्यप्रभृति यामन्यां बलान्नारीं गमिष्यसि ।
तदा ते शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ॥ १४ ॥

''आजसे यदि तू किसी दूसरी नारीके साथ बलपूर्वक समागम करेगा तो तेरे मस्तकके सौ टुकड़े हो जायँगे, इसमें संशय नहीं है' ॥ १४ ॥

इत्यहं तस्य शापस्य भीतः प्रसभमेव ताम् ।
नारोहये बलात् सीतां वैदेहीं शयने शुभे ॥ १५ ॥

'इस तरह मैं ब्रह्माजीके शापसे भयभीत हूँ । इसीलिये अपनी शुभ-शय्यापर विदेहकुमारी सीताको हठात् एवं बलपूर्वक नहीं चढ़ाता हूँ ॥ १५ ॥

सागरस्येव मे वेगो मारुतस्येव मे गतिः ।
नैतद् दाशरथिर्वेद ह्यासादयति तेन माम् ॥ १६ ॥

'मेरा वेग समुद्रके समान है और मेरी गति वायुके तुल्य है । इस बातको दशरथनन्दन राम नहीं जानते हैं, इसीसे वे मुझपर चढ़ाई करते हैं ॥ १६ ॥

को हि सिंहमिवासीनं सुप्तं गिरिगुहाशये ।
क्रुद्धं मृत्युमिवासीनं प्रबोधयितुमिच्छति ॥ १७ ॥

'अन्यथा पर्वतकी कन्दरामें सुखपूर्वक सोये हुए सिंहके समान तथा कुपित होकर बैठी हुई मृत्युके तुल्य भयंकर मुझ रावणको कौन जगाना चाहेगा ? ॥ १७ ॥

न मत्तो निर्गतान् बाणान् द्विजिह्वान् पन्नगानिव ।
रामः पश्यति संग्रामे तेन मामभिगच्छति ॥ १८ ॥

'मेरे धनुषसे छूटे हुए दो जीभवाले सर्पोंके समान भयंकर बाणोंको समराङ्गणमें श्रीरामने कभी देखा नहीं है, इसीलिये वे मुझपर चढ़े आ रहे हैं ॥ १८ ॥

क्षिप्रं वज्रसमैर्बाणैः शतधा कार्मुकच्युतैः ।
राममादीपयिष्यामि उल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ १९ ॥

'मैं अपने धनुषसे शीघ्रतापूर्वक छूटे हुए सैकड़ों वज्र-सदृश बाणोंद्वारा रामको उसी प्रकार जला डालूँगा, जैसे लोग उल्काओंद्वारा हाथीको उसे भगानेके लिये जलाते हैं ॥ १९ ॥

तच्चास्य बलमादास्ये बलेन महता वृतः ।
उदितः सविता काले नक्षत्राणां प्रभामिव ॥ २० ॥

'जैसे प्रातःकाल उदित हुए सूर्यदेव नक्षत्रोंकी प्रभाको छीन लेते हैं, उसी प्रकार अपनी विशाल सेनासे घिरा हुआ मैं उनकी उस वानर-सेनाको आत्मसात् कर लूँगा ॥ २० ॥

न वासवेनापि सहस्रचक्षुषा
युधास्मि शक्यो वरुणेन वा पुनः ।
मया त्वियं बाहुबलेन निर्जिता
पुरा पुरी वैश्रवणेन पालिता ॥ २१ ॥

'युद्धमें तो हजार नेत्रोंवाले इन्द्र और वरुण भी मेरा सामना नहीं कर सकते। पूर्वकालमें कुबेरके द्वारा पालित हुई इस लङ्कापुरीको मैंने अपने बाहुबलसे ही जीता था' ॥ २१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः

विभीषणका रामको अजेय बताकर उनके पास सीताको लौटा देनेकी सम्मति देना

निशाचरेन्द्रस्य निशम्य वाक्यं
स कुम्भकर्णस्य च गर्जितानि ।
विभीषणो राक्षसराजमुख्य-
मुवाच वाक्यं हितमर्थयुक्तम् ॥ १ ॥

राक्षसराज रावणके इन वचनों और कुम्भकर्णकी गर्जनाओंको सुनकर विभीषणने रावणसे ये सार्थक और हितकारी वचन कहे—॥ १ ॥

वृतो हि बाह्वन्तरभोगराशि-
श्चिन्ताविषः सुस्मिततीक्ष्णदंष्ट्रः ।
पञ्चाङ्गुलीपञ्चशिरोऽतिकायः
सीतामहाहिस्तव केन राजन् ॥ २ ॥

'राजन्! सीता नामधारी विशालकाय महान् सर्पको किसने आपके गलेमें बाँध दिया है? उसके हृदयका भाग ही उस सर्पका शरीर है, चिन्ता ही विष है, सुन्दर मुस्कान ही तीखी दाढ़ें हैं और प्रत्येक हाथकी पाँच-पाँच अङ्गुलियाँ ही इस सर्पके पाँच सिर हैं ॥ २ ॥

यावन्न लङ्कां समभिद्रवन्ति
बलीमुखाः पर्वतकूटमात्राः ।
दंष्ट्रायुधाश्चैव नखायुधाश्च
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥ ३ ॥

'जबतक पर्वत-शिखरके समान ऊँचे वानर, जिनके दाँत और नख ही आयुध हैं, लङ्कापर चढ़ाई नहीं करते, तभीतक आप दशरथनन्दन श्रीरामके हाथमें मिथिलेशकुमारी सीताको सौंप दीजिये ॥ ३ ॥

यावन्न गृह्णन्ति शिरांसि बाणा
रामेरिता राक्षसपुंगवानाम् ।
वज्रोपमा वायुसमानवेगाः
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥ ४ ॥

'जबतक श्रीरामचन्द्रजीके चलाये हुए वायुके समान वेगशाली तथा वज्रतुल्य बाण राक्षसशिरोमणियोंके सिर नहीं काट रहे हैं, तभीतक आप दशरथनन्दन श्रीरामकी सेवामें सीताजीको समर्पित कर दीजिये ॥ ४ ॥

न कुम्भकर्णेन्द्रजितौ च राजं-
स्तथा महापार्श्वमहोदरौ वा ।
निकुम्भकुम्भौ च तथातिकायः
स्थातुं समर्था युधि राघवस्य ॥ ५ ॥

'राजन्! ये कुम्भकर्ण, इन्द्रजित्, महापार्श्व, महोदर, निकुम्भ, कुम्भ और अतिकाय—कोई भी समराङ्गणमें श्रीरघुनाथजीके सामने नहीं ठहर सकते हैं ॥ ५ ॥

जीवंस्तु रामस्य न मोक्ष्यसे त्वं
गुप्तः सवित्राप्यथवा मरुद्भिः ।
न वासवस्याङ्कगतो न मृत्यो-
र्नभो न पातालमनुप्रविष्टः ॥ ६ ॥

'यदि सूर्य या वायु आपकी रक्षा करें, इन्द्र या यम आपको गोदमें छिपा लें अथवा आप आकाश या पातालमें घुस जायँ तो भी श्रीरामके हाथसे जीवित नहीं बच सकेंगे' ॥

निशम्य वाक्यं तु विभीषणस्य
ततः प्रहस्तो वचनं बभाषे ।
न नो भयं विद्म न दैवतेभ्यो
न दानवेभ्योऽप्यथवा कदाचित् ॥ ७ ॥

विभीषणकी यह बात सुनकर प्रहस्तने कहा—'हम देवताओं अथवा दानवोंसे कभी नहीं डरते। भय क्या वस्तु है? यह हम जानते ही नहीं हैं ॥ ७ ॥

न यक्षगन्धर्वमहोरगेभ्यो
भयं न संख्ये पतगोरगेभ्यः ।
कथं नु रामाद् भविता भयं नो
नरेन्द्रपुत्रात् समरे कदाचित् ॥ ८ ॥

'हमें युद्धमें यक्षों, गन्धर्वों, बड़े-बड़े नागों, पक्षियों और सर्पोंसे भी भय नहीं होता है; फिर समराङ्गणमें राजकुमार रामसे हमें कभी भी कैसे भय होगा?' ॥ ८ ॥

प्रहस्तवाक्यं त्वहितं निशम्य
विभीषणो राजहितानुकाङ्क्षी ।
ततो महार्थं वचनं बभाषे
धर्मार्थकामेषु निविष्टबुद्धिः ॥ ९ ॥

विभीषण राजा रावणके सच्चे हितैषी थे । उनकी बुद्धिका धर्म, अर्थ और काममें अच्छा प्रवेश था । उन्होंने प्रहस्तके अहितकर वचन सुनकर यह महान् अर्थसे युक्त बात कही—॥ ९ ॥

प्रहस्त राजा च महोदरश्च
त्वं कुम्भकर्णश्च यथार्थजातम् ।
ब्रवीत रामं प्रति तन्न शक्यं
यथा गतिः स्वर्गमधर्मबुद्धेः ॥ १० ॥

'प्रहस्त ! महाराज रावण, महोदर, तुम और कुम्भकर्ण—श्रीरामके प्रति जो कुछ कह रहे हो, वह सब तुम्हारे किये नहीं हो सकता । ठीक उसी तरह, जैसे पापात्मा पुरुषकी स्वर्गमें पहुँच नहीं हो सकती है ॥ १० ॥

वधस्तु रामस्य मया त्वया च
प्रहस्त सर्वैरपि राक्षसैर्वा ।
कथं भवेदर्थविशारदस्य
महार्णवं तर्तुमिवाप्लवस्य ॥ ११ ॥

'प्रहस्त ! श्रीराम अर्थविशारद हैं—समस्त कार्योंके साधनमें कुशल हैं । जैसे बिना जहाज या नौकाके कोई महासागरको पार नहीं कर सकता, उसी प्रकार मुझसे, तुमसे अथवा समस्त राक्षसोंसे भी श्रीरामका वध होना कैसे सम्भव है ? ॥ ११ ॥

धर्मप्रधानस्य महारथस्य
इक्ष्वाकुवंशप्रभवस्य राज्ञः ।
पुरोऽस्य देवाश्च तथाविधस्य
कृत्येषु शक्तस्य भवन्ति मूढाः ॥ १२ ॥

'श्रीराम धर्मको ही प्रधान वस्तु मानते हैं । उनका प्रादुर्भाव इक्ष्वाकुकुलमें हुआ है । वे सभी कार्योंके सम्पादनमें समर्थ और महारथी वीर हैं (उन्होंने विराध, कबन्ध और वाली-जैसे वीरोंको बात-की-बातमें यमलोक भेज दिया था)। ऐसे प्रसिद्ध पराक्रमी राजा श्रीरामसे सामना पड़नेपर तो देवता भी अपनी हेकड़ी भूल जायँगे (फिर हमारी-तुम्हारी तो बात ही क्या है ?) ॥ १२ ॥

तीक्ष्णा न तावत् तव कङ्कपत्रा
दुरासदा राघवविप्रमुक्ताः ।
भित्त्वा शरीरं प्रविशन्ति बाणाः
प्रहस्त तेनैव विकत्थसे त्वम् ॥ १३ ॥

'प्रहस्त ! अभीतक श्रीरामके चलाये हुए कङ्कपत्रयुक्त, दुर्जय एवं तीखे बाण तुम्हारे शरीरको विदीर्ण करके भीतर नहीं घुसे हैं; इसीलिये तुम बढ़-बढ़कर बोल रहे हो ॥ १३ ॥

भित्त्वा न तावत् प्रविशन्ति कायं
प्राणान्तिकास्तेऽशनितुल्यवेगाः ।
शिताः शरा राघवविप्रमुक्ताः
प्रहस्त तेनैव विकत्थसे त्वम् ॥ १४ ॥

'प्रहस्त ! श्रीरामके बाण वज्रके समान वेगशाली होते हैं । वे प्राणोंका अन्त करके ही छोड़ते हैं । श्रीरघुनाथजीके धनुषसे छूटे हुए वे तीखे बाण तुम्हारे शरीरको फोड़कर अंदर नहीं घुसे हैं; इसीलिये तुम इतनी शेखी बघारते हो ॥ १४ ॥

न रावणो नातिबलस्त्रिशीर्षो
न कुम्भकर्णस्य सुतो निकुम्भः ।
न चेन्द्रजिद् दाशरथिं प्रवोढुं
त्वं वा रणे शक्रसमं समर्थः ॥ १५ ॥

'रावण, महाबली त्रिशिरा, कुम्भकर्णकुमार निकुम्भ और इन्द्रविजयी मेघनाद भी समराङ्गणमें इन्द्रतुल्य तेजस्वी दशरथनन्दन श्रीरामका वेग सहन करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ १५ ॥

देवान्तको वापि नरान्तको वा
तथातिकायोऽतिरथो महात्मा ।
अकम्पनश्चाद्रिसमानसारः
स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य ॥ १६ ॥

'देवान्तक, नरान्तक, अतिकाय, महाकाय अतिरथ तथा पर्वतके समान शक्तिशाली अकम्पन भी युद्धभूमिमें श्रीरघुनाथजीके सामने नहीं ठहर सकते हैं ॥ १६ ॥

अयं च राजा व्यसनाभिभूतो
मित्रैरमित्रप्रतिमैर्भवद्भिः ।
अन्वास्यते राक्षसनाशनार्थं
तीक्ष्णः प्रकृत्या ह्यसमीक्ष्यकारी ॥ १७ ॥

'ये महाराज रावण तो व्यसनों[1]के वशीभूत हैं, इसलिये सोच-विचारकर काम नहीं करते हैं । इसके सिवा ये स्वभावसे ही कठोर हैं तथा राक्षसोंके सत्यानाशके लिये तुम-जैसे शत्रुतुल्य मित्रकी सेवामें उपस्थित रहते हैं ॥ १७ ॥

अनन्तभोगेन सहस्रमूर्ध्ना
नागेन भीमेन महाबलेन ।
बलात् परिक्षिप्तमिमं भवन्तो
राजानमुत्क्षिप्य विमोचयन्तु ॥ १८ ॥

'अनन्त शारीरिक बलसे सम्पन्न, सहस्र फनवाले और महान् बलशाली भयंकर नागने इस राजाको बलपूर्वक अपने

---

[1] राजाओंमें सात व्यसन माने गये हैं—

वाग्दण्डयोस्तु पारुष्यमर्थदूषणमेव च ।
पानं स्त्री मृगया द्यूतं व्यसनं सप्तधा प्रभो ॥

(कामन्दक नीतिका वचन गोविन्दराजकी टीका रामायणभूषणसे)

वाणी और दण्डकी कठोरता, धनका अपव्यय, मद्यपान, स्त्री, मृगया और द्यूत—ये राजाके सात प्रकारके व्यसन हैं ।

शरीरसे आवेष्टित कर रक्खा है। तुम सब लोग मिलकर इसे बन्धनसे बाहर करके प्राणसंकटसे बचाओ (अर्थात् श्रीरामचन्द्रजीके साथ वैर बाँधना महान् सर्पके शरीरसे आवेष्टित होनेके समान है। इस भावको व्यक्त करनेके कारण यहाँ निदर्शना अलङ्कार व्यंग्य है) ॥ १८ ॥

यावद्धि केशग्रहणात् सुहृद्भिः
समेत्य सर्वैः परिपूर्णकामैः।
निगृह्य राजा परिरक्षितव्यो
भूतैर्यथा भीमबलैर्गृहीतः ॥ १९ ॥

'इस राजासे अबतक आपलोगोंकी सभी कामनाएँ पूर्ण हुई हैं। आप सब लोग इसके हितैषी सुहृद् हैं। अतः जैसे भयंकर बलशाली भूतोंसे गृहीत हुए पुरुषको उसके हितैषी आत्मीयजन उसके प्रति बलात्कार करके भी उसकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप सब लोग एकमत होकर—आवश्यकता हो तो इसके केश पकड़कर भी इसे अनुचित मार्गपर जानेसे रोकें और सब प्रकारसे इसकी रक्षा करें ॥ १९ ॥

सुवारिणा राघवसागरेण
प्रच्छाद्यमानस्तरसा भवद्भिः।
युक्तस्त्वयं तारयितुं समेत्य
काकुत्स्थपातालमुखे पतन् सः ॥ २० ॥

'उत्तम चरित्ररूपी जलसे परिपूर्ण श्रीरघुनाथरूपी समुद्र इसे डुबो रहा है अथवा यों समझो कि यह श्रीरामरूपी पातालके गहरे गर्तमें गिर रहा है। ऐसी दशामें तुम सब लोगोंको मिलकर इसका उद्धार करना चाहिये ॥ २० ॥

इदं पुरस्यास्य सराक्षसस्य
राज्ञश्च पथ्यं ससुहृज्जनस्य।
सम्यग्घि वाक्यं स्वमतं ब्रवीमि
नरेन्द्रपुत्राय ददातु मैथिलीम् ॥ २१ ॥

'मैं तो राक्षसोंसहित इस सारे नगरके और सुहृदोंसहित स्वयं महाराजके हितके लिये अपनी यही उत्तम सम्मति देता हूँ कि 'ये राजकुमार श्रीरामके हाथोंमें मिथिलेशकुमारी सीताको सौंप दें' ॥ २१ ॥

परस्य वीर्यं स्वबलं च बुद्ध्वा
स्थानं क्षयं चैव तथैव वृद्धिम्।
तथा स्वपक्षेऽप्यनुमृश्य बुद्ध्या
वदेत् क्षमं स्वामिहितं स मन्त्री ॥ २२ ॥

'वास्तवमें सच्चा मन्त्री वही है जो अपने और शत्रु-पक्षके बल-पराक्रमको समझकर तथा दोनों पक्षोंकी स्थिति, हानि और वृद्धिका अपने बुद्धिके द्वारा विचार करके जो स्वामीके लिये हितकर और उचित हो वही बात कहे' ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः

इन्द्रजित्द्वारा विभीषणका उपहास तथा विभीषणका उसे फटकारकर सभामें अपनी उचित सम्मति देना

बृहस्पतेस्तुल्यमतेर्वचस्त-
न्निशम्य यत्नेन विभीषणस्य।
ततो महात्मा वचनं बभाषे
तत्रेन्द्रजिन्नैर्ऋतयूथमुख्यः ॥ १ ॥

विभीषण बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् थे। उनके वचनोंको जैसे-तैसे बड़े कष्टसे सुनकर राक्षसयूथपतियोंमें प्रधान महाकाय इन्द्रजित्ने वहाँ यह बात कही— ॥ १ ॥

किं नाम ते तात कनिष्ठ वाक्य-
मनर्थकं वै बहुभीतवच्च।
अस्मिन् कुले योऽपि भवेन्न जातः
सोऽपीदृशं नैव वदेन्न कुर्यात् ॥ २ ॥

'मेरे छोटे चाचा! आप बहुत डरे हुएकी भाँति यह कैसी निरर्थक बात कह रहे हैं? जिसने इस कुलमें जन्म न लिया होगा, वह पुरुष भी न तो ऐसी बात कहेगा और न ऐसा काम ही करेगा ॥ २ ॥

सत्त्वेन वीर्येण पराक्रमेण
धैर्येण शौर्येण च तेजसा च।
एकः कुलेऽस्मिन् पुरुषो विमुक्तो
विभीषणस्तात कनिष्ठ एषः ॥ ३ ॥

'पिताजी! हमारे इस राक्षसकुलमें एकमात्र ये छोटे चाचा विभीषण ही बल, वीर्य, पराक्रम, धैर्य, शौर्य और तेजसे रहित हैं ॥ ३ ॥

किं नाम तौ मानुषराजपुत्रा-
वस्माकमेकेन हि राक्षसेन।
सुप्राकृतेनापि निहन्तुमेतौ
शक्यौ कुतो भीषयसे स्म भीरो ॥ ४ ॥

'वे दोनों मानव राजकुमार क्या हैं? उन्हें तो हमारा एक साधारण-सा राक्षस भी मार सकता है; फिर मेरे डरपोक चाचा! आप हमें क्यों डरा रहे हैं?॥ ४॥

त्रिलोकनाथो ननु देवराजः
शक्रो मया भूमितले निविष्टः।
भयार्पिताश्चापि दिशः प्रपन्नाः
सर्वे तथा देवगणाः समग्राः॥ ५॥

'मैंने तीनों लोकोंके स्वामी देवराज इन्द्रको भी स्वर्गसे हटाकर इस भूतलपर ला बिठाया था। उस समय सारे देवताओंने भयभीत हो भागकर सम्पूर्ण दिशाओंकी शरण ली थी॥ ५॥

ऐरावतो निःस्वनमुन्नदन् स
निपातितो भूमितले मया तु।
विकृष्य दन्तौ तु मया प्रसह्य
वित्रासिता देवगणाः समग्राः॥ ६॥

'मैंने हठपूर्वक ऐरावत हाथीके दोनों दाँत उखाड़कर उसे स्वर्गसे पृथ्वीपर गिरा दिया था। उस समय वह जोर-जोरसे चिग्घाड़ रहा था। अपने इस पराक्रमद्वारा मैंने सम्पूर्ण देवताओंको आतङ्कमें डाल दिया था॥ ६॥

सोऽहं सुराणामपि दर्पहन्ता
दैत्योत्तमानामपि शोककर्ता।
कथं नरेन्द्रात्मजयोर्न शक्तो
मनुष्ययोः प्राकृतयोः सुवीर्यः॥ ७॥

'जो देवताओंके भी दर्पका दलन कर सकता है, बड़े-बड़े दैत्योंको भी शोकमग्न कर देनेवाला है तथा जो उत्तम बल-पराक्रमसे सम्पन्न है, वही मुझ-जैसा वीर मनुष्य-जातिके दो साधारण राजकुमारोंका सामना कैसे नहीं कर सकता है?'॥ ७॥

अथेन्द्रकल्पस्य दुरासदस्य
महौजसस्तद् वचनं निशम्य।
ततो महार्थं वचनं बभाषे
विभीषणः शस्त्रभृतां वरिष्ठः॥ ८॥

इन्द्रतुल्य तेजस्वी महापराक्रमी दुर्जय वीर इन्द्रजित्‌की यह बात सुनकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ विभीषणने ये महान् अर्थसे युक्त वचन कहे—॥ ८॥

न तात मन्त्रे तव निश्चयोऽस्ति
बालस्त्वमद्याप्यविपक्वबुद्धिः।
तस्मात् त्वयाप्यात्मविनाशनाय
वचोऽर्थहीनं बहु विप्रलप्तम्॥ ९॥

'तात! अभी तुम बालक हो। तुम्हारी बुद्धि कच्ची है। तुम्हारे मनमें कर्तव्य और अकर्तव्यका यथार्थ निश्चय नहीं हुआ है। इसीलिये तुम भी अपने ही विनाशके लिये बहुत-सी निरर्थक बातें बक गये हो॥ ९॥

पुत्रप्रवादेन तु रावणस्य
त्वमिन्द्रजिन्मित्रमुखोऽसि शत्रुः।
यस्येदृशं राघवतो विनाशं
निशम्य मोहादनुमन्यसे त्वम्॥ १०॥

'इन्द्रजित्! तुम रावणके पुत्र कहलाकर भी ऊपरसे ही उसके मित्र हो। भीतरसे तो तुम पिताके शत्रु ही जान पड़ते हो। यही कारण है कि तुम श्रीरघुनाथजीके द्वारा राक्षसराजके विनाशकी बातें सुनकर भी मोहवश उन्हींकी हाँ-में-हाँ मिला रहे हो॥ १०॥

त्वमेव वध्यश्च सुदुर्मतिश्च
स चापि वध्यो य इहानयत् त्वाम्।
बालं दृढं साहसिकं च योऽद्य
प्रावेशयन्मन्त्रकृतां समीपम्॥ ११॥

'तुम्हारी बुद्धि बहुत ही खोटी है। तुम स्वयं तो मार डालनेके योग्य हो ही, जो तुम्हें यहाँ बुला लाया है, वह भी वधके ही योग्य है। जिसने आज तुम-जैसे अत्यन्त दुःसाहसी बालकको इन सलाहकारोंके समीप आने दिया है, वह प्राणदण्डका ही अपराधी है॥ ११॥

मूढोऽप्रगल्भोऽविनयोपपन्न-
स्तीक्ष्णस्वभावोऽल्पमतिर्दुरात्मा।
मूर्खस्त्वमत्यन्तसुदुर्मतिश्च
त्वमिन्द्रजिद् बालतया ब्रवीषि॥ १२॥

'इन्द्रजित्! तुम अविवेकी हो। तुम्हारी बुद्धि परिपक्व नहीं है। विनय तो तुम्हें छूतक नहीं गयी है। तुम्हारा स्वभाव बड़ा तीखा और बुद्धि बहुत थोड़ी है। तुम अत्यन्त दुर्बुद्धि, दुरात्मा और मूर्ख हो। इसीलिये बालकोंकी-सी वे सिर-पैरकी बातें करते हो॥ १२॥

को ब्रह्मदण्डप्रतिमप्रकाशा-
नर्चिष्मतः कालनिकाशरूपान्।
सहेत बाणान् यमदण्डकल्पान्
समक्षमुक्तान् युधि राघवेण॥ १३॥

'भगवान् श्रीरामके द्वारा युद्धके मुहानेपर शत्रुओंके समक्ष छोड़े गये तेजस्वी बाण साक्षात् ब्रह्मदण्डके समान प्रकाशित होते हैं, कालके समान जान पड़ते हैं और यमदण्डके समान भयंकर होते हैं। भला, उन्हें कौन सह सकता है?॥ १३॥

धनानि रत्नानि सुभूषणानि
वासांसि दिव्यानि मणींश्च चित्रान्।
सीतां च रामाय निवेद्य देवीं
वसेम राजन्निह वीतशोकाः॥ १४॥

'अतः राजन् ! हमलोग धन, रत्न, सुन्दर आभूषण, दिव्य वस्त्र, विचित्र मणि और देवी सीताको श्रीरामकी सेवामें समर्पित करके ही शोकरहित होकर इस नगरमें निवास कर सकते हैं' ॥ १४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पंद्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः

रावणके द्वारा विभीषणका तिरस्कार और विभीषणका भी उसे फटकारकर चल देना

सुनिविष्टं हितं वाक्यमुक्तवन्तं विभीषणम् ।
अब्रवीत् परुषं वाक्यं रावणः कालचोदितः ॥ १ ॥

रावणके सिरपर काल मँडरा रहा था, इसलिये उसने सुन्दर अर्थसे युक्त और हितकर बात कहनेपर भी विभीषणसे कठोर वाणीमें कहा— ॥ १ ॥

वसेत् सह सपत्नेन क्रुद्धेनाशीविषेण च ।
न तु मित्रप्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना ॥ २ ॥

'भाई ! शत्रु और कुपित विषधर सर्पके साथ रहना पड़े तो रह ले; परंतु जो मित्र कहलाकर भी शत्रुकी सेवा कर रहा हो, उसके साथ कदापि न रहे ॥ २ ॥

जानामि शीलं ज्ञातीनां सर्वलोकेषु राक्षस ।
हृष्यन्ति व्यसनेष्वेते ज्ञातीनां ज्ञातयः सदा ॥ ३ ॥

'राक्षस ! सम्पूर्ण लोकोंमें सजातीय बन्धुओंका जो स्वभाव होता है, उसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ । जातिवाले सर्वदा अपने अन्य सजातीयोंकी आपत्तियोंमें ही हर्ष मानते हैं ॥ ३ ॥

प्रधानं साधकं वैद्यं धर्मशीलं च राक्षस ।
ज्ञातयोऽप्यवमन्यन्ते शूरं परिभवन्ति च ॥ ४ ॥

'निशाचर ! जो ज्येष्ठ होनेके कारण राज्य पाकर सबमें प्रधान हो गया हो, राज्यकार्यको अच्छी तरह चला रहा हो और विद्वान्, धर्मशील तथा शूरवीर हो, उसे भी कुटुम्बीजन अपमानित करते हैं और अवसर पाकर उसे नीचा दिखानेकी भी चेष्टा करते हैं ॥ ४ ॥

नित्यमन्योन्यसंहृष्टा व्यसनेष्वाततायिनः ।
प्रच्छन्नहृदया घोरा ज्ञातयस्तु भयावहाः ॥ ५ ॥

'जातिवाले सदा एक दूसरेपर संकट आनेपर हर्षका अनुभव करते हैं । वे बड़े आततायी होते हैं—मौका पड़नेपर आग लगाने, जहर देने, शस्त्र चलाने, धन हड़पने और क्षेत्र तथा स्त्रीका अपहरण करनेमें भी नहीं हिचकते हैं । अपना मनोभाव छिपाये रहते हैं; अतएव क्रूर और भयंकर होते हैं ॥ ५ ॥

श्रूयन्ते हस्तिभिर्गीताः श्लोकाः पद्मवने पुरा ।
पाशहस्तान् नरान् दृष्ट्वा शृणुष्व गदतो मम ॥ ६ ॥

'पूर्वकालकी बात है, पद्मवनमें हाथियोंने अपने हृदयके उद्गार प्रकट किये थे, जो अब भी श्लोकोंके रूपमें गाये और सुने जाते हैं । एक बार कुछ लोगोंको हाथमें फंदा लिये आते देख हाथियोंने जो बातें कही थीं, उन्हें बता रहा हूँ, मुझसे सुनो ॥ ६ ॥

नाग्निर्नान्यानि शस्त्राणि न नः पाशा भयावहाः ।
घोराः स्वार्थप्रयुक्तास्तु ज्ञातयो नो भयावहाः ॥ ७ ॥

''हमें अग्नि, दूसरे-दूसरे शस्त्र तथा पाश भय नहीं दे सकते । हमारे लिये तो अपने स्वार्थी जाति-भाई ही भयानक और खतरेकी वस्तु हैं ॥ ७ ॥

उपायमेते वक्ष्यन्ति ग्रहणे नात्र संशयः ।
कृत्स्नाद् भयाज्ज्ञातिभयं कुकष्टं विहितं च नः ॥ ८ ॥

''ये ही हमारे पकड़े जानेका उपाय बता देंगे, इसमें संशय नहीं; अतः सम्पूर्ण भयोंकी अपेक्षा हमें अपने जाति-भाइयोंसे प्राप्त होनेवाला भय ही अधिक कष्टदायक जान पड़ता है' ॥ ८ ॥

विद्यते गोषु सम्पन्नं विद्यते ज्ञातितो भयम् ।
विद्यते स्त्रीषु चापल्यं विद्यते ब्राह्मणे तपः ॥ ९ ॥

'जैसे गौओंमें हव्य-कव्यकी सम्पत्ति दूध होता है, स्त्रियोंमें चपलता होती है और ब्राह्मणमें तपस्या रहा करती है, उसी प्रकार जाति-भाइयोंसे भय अवश्य प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

ततो नेष्टमिदं सौम्य यदहं लोकसत्कृतः ।
ऐश्वर्यमभिजातश्च रिपूणां मूर्ध्नि च स्थितः ॥ १० ॥

'अतः सौम्य ! आज जो सारा संसार मेरा सम्मान करता है और मैं जो ऐश्वर्यवान्, कुलीन और शत्रुओंके सिरपर स्थित हूँ, यह सब तुम्हें अभीष्ट नहीं है ॥ १० ॥

यथा पुष्करपत्रेषु पतितास्तोयबिन्दवः ।
न श्लेषमभिगच्छन्ति तथानार्येषु सौहृदम् ॥ ११ ॥

'जैसे कमलके पत्तेपर गिरी हुई पानीकी बूँदें उसमें सटती नहीं हैं, उसी प्रकार अनार्योंके हृदयमें सौहार्द नहीं टिकता है ॥ ११ ॥

यथा शरदि मेघानां सिञ्चतामपि गर्जताम् ।

न भवत्यम्बुसंक्लेदस्तथानार्येषु सौहृदम् ॥ १२ ॥

'जैसे शरद् ऋतुमें गर्जते और बरसते हुए मेघोंके जलसे धरती गीली नहीं होती है, उसी प्रकार अनार्योंके हृदयमें स्नेहजनित आर्द्रता नहीं होती है ॥ १२ ॥

यथा मधुकरस्तर्षाद् रसं विन्दन्न तिष्ठति ।
तथा त्वमपि तत्रैव तथानार्येषु सौहृदम् ॥ १३ ॥

'जैसे भौंरा बड़ी चाहसे फूलोंका रस पीता हुआ भी वहाँ ठहरता नहीं है, उसी प्रकार अनार्योंमें सुहृज्जनोचित स्नेह नहीं टिक पाता है । तुम भी ऐसे ही अनार्य हो ॥ १३ ॥

यथा मधुकरस्तर्षात् काशपुष्पं पिबन्नपि ।
रसमत्र न विन्देत तथानार्येषु सौहृदम् ॥ १४ ॥

'जैसे भ्रमर रसकी इच्छासे काशके फूलका पान करे तो उसमें रस नहीं पा सकता, उसी प्रकार अनार्योंमें जो स्नेह होता है, वह किसीके लिये लाभदायक नहीं होता ॥ १४ ॥

यथा पूर्वं गजः स्नात्वा गृह्य हस्तेन वै रजः ।
दूषयत्यात्मनो देहं तथानार्येषु सौहृदम् ॥ १५ ॥

'जैसे हाथी पहले स्नान करके फिर सूँड़से धूल उछालकर अपने शरीरको गँदला कर लेता है, उसी प्रकार दुर्जनोंकी मैत्री दूषित होती है ॥ १५ ॥

योऽन्यस्त्वेवंविधं ब्रूयाद् वाक्यमेतन्निशाचर ।
अस्मिन् मुहूर्ते न भवेत् त्वां तु धिक् कुलपांसन ॥ १६ ॥

'कुलकलङ्क निशाचर ! तुझे धिक्कार है । यदि तेरे सिवा दूसरा कोई ऐसी बातें कहता तो उसे इसी मुहूर्तमें अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ता' ॥ १६ ॥

इत्युक्तः परुषं वाक्यं न्यायवादी विभीषणः ।
उत्पपात गदापाणिश्चतुर्भिः सह राक्षसैः ॥ १७ ॥

विभीषण न्यायानुकूल बातें कह रहे थे तो भी रावणने जब उनसे ऐसे कठोर वचन कहे, तब वे हाथमें गदा लेकर अन्य चार राक्षसोंके साथ उसी समय उछलकर आकाशमें चले गये ॥ १७ ॥

अब्रवीच्च तदा वाक्यं जातक्रोधो विभीषणः ।
अन्तरिक्षगतः श्रीमान् भ्राता वै राक्षसाधिपम् ॥ १८ ॥

उस समय अन्तरिक्षमें खड़े हुए तेजस्वी भ्राता विभीषणने कुपित होकर राक्षसराज रावणसे कहा— ॥ १८ ॥

स त्वं भ्रान्तोऽसि मे राजन् ब्रूहि मां यद् यदिच्छसि ।
ज्येष्ठो मान्यः पितृसमो न च धर्मपथे स्थितः ।
इदं हि परुषं वाक्यं न क्षमाम्यग्रजस्य ते ॥ १९ ॥

'राजन् ! तुम्हारी बुद्धि भ्रममें पड़ी हुई है । तुम धर्मके मार्गपर नहीं हो । यों तो मेरे बड़े भाई होनेके कारण तुम पिताके समान आदरणीय हो । इसलिये मुझे जो-जो चाहो, कह लो; परंतु अग्रज होनेपर भी तुम्हारे इस कठोर वचनको कदापि नहीं सह सकता ॥ १९ ॥

सुनीतं हितकामेन वाक्यमुक्तं दशानन ।
न गृह्णन्त्यकृतात्मानः कालस्य वशमागताः ॥ २० ॥

'दशानन ! जो अजितेन्द्रिय पुरुष कालके वशीभूत हो जाते हैं, वे हितकी कामनासे कहे हुए सुन्दर नीतियुक्त वचनोंको भी नहीं ग्रहण करते हैं ॥ २० ॥

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ २१ ॥

'राजन् ! सदा प्रिय लगनेवाली मीठी-मीठी बातें कहनेवाले लोग तो सुगमतासे मिल सकते हैं; परंतु जो सुननेमें अप्रिय किंतु परिणाममें हितकर हो, ऐसी बात कहने और सुननेवाले दुर्लभ होते हैं ॥ २१ ॥

बद्धं कालस्य पाशेन सर्वभूतापहारिणः ।
न नश्यन्तमुपेक्षे त्वां प्रदीप्तं शरणं यथा ॥ २२ ॥

'तुम समस्त प्राणियोंका संहार करनेवाले कालके पाशमें बँध चुके हो । जिसमें आग लग गयी हो, उस घरकी भाँति नष्ट हो रहे हो । ऐसी दशामें मैं तुम्हारी उपेक्षा नहीं कर सकता था, इसीलिये तुम्हें हितकी बात सुझा दी थी ॥ २२॥

दीप्तपावकसंकाशैः शितैः काञ्चनभूषणैः ।
न त्वामिच्छाम्यहं द्रष्टुं रामेण निहतं शरैः ॥ २३ ॥

'श्रीरामके सुवर्णभूषित बाण प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी और तीखे हैं । मैं श्रीरामके द्वारा उन बाणोंसे तुम्हारी मृत्यु नहीं देखना चाहता था, इसीलिये तुम्हें समझानेकी चेष्टा की थी ॥ २३ ॥

शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्राश्च नरा रणे ।
कालाभिपन्नाः सीदन्ति यथा वालुकसेतवः ॥ २४ ॥

'कालके वशीभूत होनेपर बड़े-बड़े शूर-वीर, बलवान् और अस्त्रवेत्ता भी बालूकी भीत या बाँधके समान नष्ट हो जाते हैं ॥

तन्मर्षयतु यच्चोक्तं गुरुत्वाद्धितमिच्छता ।
आत्मानं सर्वथा रक्ष पुरीं चेमां सराक्षसाम् ।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि सुखी भव मया विना॥ २५॥

'राक्षसराज ! मैं तुम्हारा हित चाहता हूँ । इसीलिये जो कुछ भी कहा है, वह यदि तुम्हें अच्छा नहीं लगा तो उसके लिये मुझे क्षमा कर दो; क्योंकि तुम मेरे बड़े भाई हो । अब तुम अपनी तथा राक्षसोंसहित इस समस्त लङ्कापुरीकी सब प्रकारसे रक्षा करो । तुम्हारा कल्याण हो । अब मैं यहाँसे चला जाऊँगा । तुम मेरे बिना सुखी हो जाओ ॥ २५ ॥

निवार्यमाणस्य मया हितैषिणा
न रोचते ते वचनं निशाचर ।
परान्तकाले हि गतायुषो नरा
हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम् ॥ २६ ॥

'निशाचरराज ! मैं तुम्हारा हितैषी हूँ । इसीलिये मैंने

तुम्हें बार-बार अनुचित मार्गपर चलनेसे रोका है, किंतु तुम्हें मेरी बात अच्छी नहीं लगती है। वास्तवमें जिन लोगोंकी आयु समाप्त हो जाती है, वे जीवनके अन्तकालमें अपने सुहृदोंकी कही हुई हितकर बात भी नहीं मानते हैं' ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः

विभीषणका श्रीरामकी शरणमें आना और श्रीरामका अपने मन्त्रियोंके साथ उन्हें आश्रय देनेके विषयमें विचार करना

इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणं रावणानुजः।
आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥ १ ॥

रावणसे ऐसे कठोर वचन कहकर उसके छोटे भाई विभीषण दो ही घड़ीमें उस स्थानपर आ गये, जहाँ लक्ष्मण-सहित श्रीराम विराजमान थे ॥ १ ॥

✓ **तं मेरुशिखराकारं दीप्तामिव शतह्रदाम्।**
गगनस्थं महीस्थास्ते ददृशुर्वानराधिपाः ॥ २ ॥

विभीषणका शरीर सुमेरु पर्वतके शिखरके समान ऊँचा था। वे आकाशमें चमकती हुई बिजलीके समान जान पड़ते थे। पृथ्वीपर खड़े हुए वानरयूथपतियोंने उन्हें आकाशमें स्थित देखा ॥ २ ॥

ते चाप्यनुचरास्तस्य चत्वारो भीमविक्रमाः।
तेऽपि वर्मायुधोपेता भूषणोत्तमभूषिताः ॥ ३ ॥

उनके साथ जो चार अनुचर थे। वे भी बड़ा भयंकर पराक्रम प्रकट करनेवाले थे। उन्होंने भी कवच धारण करके अस्त्र-शस्त्र ले रक्खे थे और वे सब-के-सब उत्तम आभूषणोंसे विभूषित थे ॥ ३ ॥

स च मेघाचलप्रख्यो वज्रायुधसमप्रभः।
वरायुधधरो वीरो दिव्याभरणभूषितः ॥ ४ ॥

वीर विभीषण भी मेघ और पर्वतके समान जान पड़ते थे। वज्रधारी इन्द्रके समान तेजस्वी, उत्तम आयुधधारी और दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत थे ॥ ४ ॥

तमात्मपञ्चमं दृष्ट्वा सुग्रीवो वानराधिपः।
वानरैः सह दुर्धर्षश्चिन्तयामास बुद्धिमान् ॥ ५ ॥

उन चारों राक्षसोंके साथ पाँचवें विभीषणको देखकर दुर्धर्ष एवं बुद्धिमान् वीर वानरराज सुग्रीवने वानरोंके साथ विचार किया ॥ ५ ॥

चिन्तयित्वा मुहूर्तं तु वानरांस्तानुवाच ह।
हनुमत्प्रमुखान् सर्वानिदं वचनमुत्तमम् ॥ ६ ॥

थोड़ी देरतक सोचकर उन्होंने हनुमान् आदि सब वानरोंसे यह उत्तम बात कही— ॥ ६ ॥

एष सर्वायुधोपेतश्चतुर्भिः सह राक्षसैः।
राक्षसोऽभ्येति पश्यध्वमस्मान् हन्तुं न संशयः ॥ ७ ॥

'देखो, सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न यह राक्षस दूसरे चार निशाचरोंके साथ आ रहा है। इसमें संदेह नहीं कि यह हमें मारनेके लिये ही आता है' ॥ ७ ॥

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा सर्वे ते वानरोत्तमाः।
शालानुद्यम्य शैलांश्च इदं वचनमब्रुवन् ॥ ८ ॥

सुग्रीवकी यह बात सुनकर वे सभी श्रेष्ठ वानर सालवृक्ष और पर्वतकी शिलाएँ उठाकर इस प्रकार बोले— ॥ ८ ॥

शीघ्रं व्यादिश नो राजन् वधायैषां दुरात्मनाम्।
निपतन्ति हता यावद् धरण्यामल्पचेतनाः ॥ ९ ॥

'राजन्! आप शीघ्र ही हमें इन दुरात्माओंके वधकी आज्ञा दीजिये, जिससे ये मन्दमति निशाचर मरकर ही इस पृथ्वीपर गिरें' ॥ ९ ॥

तेषां सम्भाषमाणानामन्योन्यं स विभीषणः।
उत्तरं तीरमासाद्य खस्थ एव व्यतिष्ठत ॥ १० ॥

आपसमें वे इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि विभीषण समुद्रके उत्तर तटपर आकर आकाशमें ही खड़े हो गये ॥ १० ॥

स उवाच महाप्राज्ञः स्वरेण महता महान्।
सुग्रीवं तांश्च सम्प्रेक्ष्य खस्थ एव विभीषणः ॥ ११ ॥

महाबुद्धिमान् महापुरुष विभीषणने आकाशमें ही स्थित रहकर सुग्रीव तथा उन वानरोंकी ओर देखते हुए उच्च स्वरसे कहा— ॥ ११ ॥

रावणो नाम दुर्वृत्तो राक्षसो राक्षसेश्वरः।
तस्याहमनुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः ॥ १२ ॥

'रावण नामका जो दुराचारी राक्षस निशाचरोंका राजा है, उसीका मैं छोटा भाई हूँ। मेरा नाम विभीषण है ॥ १२ ॥

तेन सीता जनस्थानाद्धृता हत्वा जटायुषम्।
रुद्धा च विवशा दीना राक्षसीभिः सुरक्षिता ॥ १३ ॥

'रावणने जटायुको मारकर जनस्थानसे सीताका अपहरण

किया था। उसीने दीन एवं असहाय सीताको रोक रक्खा है। इन दिनों सीता राक्षसियोंके पहरेमें रहती हैं ॥ १३ ॥

तमहं हेतुभिर्वाक्यैर्विविधैश्च न्यदर्शयम्।
साधु निर्यात्यतां सीता रामायेति पुनः पुनः ॥ १४ ॥

'मैंने भाँति-भाँतिके युक्तिसंगत वचनोंद्वारा उसे बारंबार समझाया कि तुम श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें सीताको सादर लौटा दो—इसीमें भलाई है ॥ १४ ॥

स च न प्रतिजग्राह रावणः कालचोदितः।
उच्यमानं हितं वाक्यं विपरीत इवौषधम् ॥ १५ ॥

'यद्यपि मैंने यह बात उसके हितके लिये ही कही थी, तथापि कालसे प्रेरित होनेके कारण रावणने मेरी बात नहीं मानी। ठीक उसी प्रकार, जैसे मरणासन्न पुरुष औषध नहीं लेता ॥ १५ ॥

सोऽहं परुषितस्तेन दासवच्चावमानितः।
त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः ॥ १६ ॥

'यही नहीं, उसने मुझे बहुत-सी कठोर बातें सुनायीं और दासकी भाँति मेरा अपमान किया। इसलिये मैं अपने स्त्री-पुत्रोंको वहीं छोड़कर श्रीरघुनाथजीकी शरणमें आया हूँ ॥ १६ ॥

निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महात्मने।
सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम् ॥ १७ ॥

'वानरो! जो समस्त लोकोंको शरण देनेवाले हैं, उन महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर शीघ्र मेरे आगमनकी सूचना दो और उनसे कहो—'शरणार्थी विभीषण सेवामें उपस्थित हुआ है' ॥ १७ ॥

एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो लघुविक्रमः।
लक्ष्मणस्याग्रतो रामं संरब्धमिदमब्रवीत् ॥ १८ ॥

विभीषणकी यह बात सुनकर शीघ्रगामी सुग्रीवने तुरंत ही भगवान् श्रीरामके पास जाकर लक्ष्मणके सामने ही कुछ आवेशके साथ इस प्रकार कहा— ॥ १८ ॥

प्रविष्टः शत्रुसैन्यं हि प्राप्तः शत्रुरतर्कितः।
निहन्यादन्तरं लब्ध्वा उलूको वायसानिव ॥ १९ ॥

'प्रभो! आज कोई वैरी, जो राक्षस होनेके कारण पहले हमारे शत्रु रावणकी सेनामें सम्मिलित हुआ था, अब अकस्मात् हमारी सेनामें प्रवेश पानेके लिये आ गया है। वह मौका पाकर हमें उसी तरह मार डालेगा, जैसे उल्लू कौओंका काम तमाम कर देता है ॥ १९ ॥

मन्त्रे व्यूहे नये चारे युक्तो भवितुमर्हसि।
वानराणां च भद्रं ते परेषां च परंतप ॥ २० ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले रघुनन्दन! अतः आपको अपने वानरसैनिकोंपर अनुग्रह और शत्रुओंका निग्रह करनेके लिये कार्याकार्यके विचार, सेनाकी मोर्चेबंदी, नीतियुक्त उपायोंके प्रयोग तथा गुप्तचरोंकी नियुक्ति आदिके विषयमें सतत सावधान रहना चाहिये। ऐसा करनेसे ही आपका भला होगा ॥ २० ॥

अन्तर्धानगता ह्येते राक्षसाः कामरूपिणः।
शूराश्च निकृतिज्ञाश्च तेषां जातु न विश्वसेत् ॥ २१ ॥

'ये राक्षसलोग मनमाना रूप धारण कर सकते हैं। इनमें अन्तर्धान होनेकी भी शक्ति होती है। शूरवीर और मायावी तो ये होते ही हैं। इसलिये इनका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ २१ ॥

प्रणिधी राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य भवेदयम्।
अनुप्रविश्य सोऽस्मासु भेदं कुर्यान्न संशयः ॥ २२ ॥

'सम्भव है यह राक्षसराज रावणका कोई गुप्तचर हो। यदि ऐसा हुआ तो हमलोगोंमें घुसकर यह फूट पैदा कर देगा, इसमें संदेह नहीं ॥ २२ ॥

अथ वा स्वयमेवैष च्छिद्रमासाद्य बुद्धिमान्।
अनुप्रविश्य विश्वस्ते कदाचित् प्रहरेदपि ॥ २३ ॥

'अथवा यह बुद्धिमान् राक्षस छिद्र पाकर हमारी विश्वस्त सेनाके भीतर घुसकर कभी स्वयं ही हमलोगोंपर प्रहार कर बैठेगा, इस बातकी भी सम्भावना है ॥ २३ ॥

मित्राटविबलं चैव मौलभृत्यबलं तथा।
सर्वमेतद् बलं ग्राह्यं वर्जयित्वा द्विषद्बलम् ॥ २४ ॥

'मित्रोंकी, जंगली जातियोंकी तथा परम्परागत भृत्योंकी जो सेनाएँ हैं, इन सबका संग्रह तो किया जा सकता है; किंतु जो शत्रुपक्षसे मिले हुए हों, ऐसे सैनिकोंका संग्रह कदापि नहीं करना चाहिये ॥ २४ ॥

प्रकृत्या राक्षसो ह्येष भ्रातामित्रस्य वै प्रभो।
आगतश्च रिपुः साक्षात् कथमस्मिश्च विश्वसेत् ॥ २५ ॥

'प्रभो! यह स्वभावसे तो राक्षस है ही, अपनेको शत्रुका भाई भी बता रहा है। इस दृष्टिसे यह साक्षात् हमारा शत्रु ही यहाँ आ पहुँचा है; फिर इसपर कैसे विश्वास किया जा सकता है ॥ २५ ॥

रावणस्यानुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः।
चतुर्भिः सह रक्षोभिर्भवन्तं शरणं गतः ॥ २६ ॥

'रावणका छोटा भाई, जो विभीषणके नामसे प्रसिद्ध है, चार राक्षसोंके साथ आपकी शरणमें आया है ॥ २६ ॥

रावणेन प्रणीतं हि तमवेहि विभीषणम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये क्षमं क्षमवतां वर ॥ २७ ॥

'आप उस विभीषणको रावणका भेजा हुआ ही समझें। उचित व्यापार करनेवालोंमें श्रेष्ठ रघुनन्दन! मैं तो उसको कैद कर लेना ही उचित समझता हूँ ॥ २७ ॥

राक्षसो जिह्मया बुद्ध्या संदिष्टोऽयमिहागतः ।
प्रहर्तुं मायया छन्नो विश्वस्ते त्वयि चानघ ॥ २८ ॥

'निष्पाप श्रीराम ! मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यह राक्षस रावणके कहनेसे ही यहाँ आया है । इसकी बुद्धिमें कुटिलता भरी है । यह मायासे छिपा रहेगा तथा जब आप इसपर पूरा विश्वास करके इसकी ओरसे निश्चिन्त हो जायँगे, तब यह आपहीपर चोट कर बैठेगा । इसी उद्देश्यसे इसका यहाँ आना हुआ है ॥ २८ ॥

वध्यतामेष तीव्रेण दण्डेन सचिवैः सह ।
रावणस्य नृशंसस्य भ्राता ह्येष विभीषणः ॥ २९ ॥

'यह महाक्रूर रावणका भाई है, इसलिये इसे कठोर दण्ड देकर इसके मन्त्रियोंसहित मार डालना चाहिये' ॥ २९ ॥

एवमुक्त्वा तु तं रामं संरब्धो वाहिनीपतिः ।
वाक्यज्ञो वाक्यकुशलं ततो मौनमुपागमत् ॥ ३० ॥

बातचीतकी कला जाननेवाले एवं रोषमें भरे हुए सेनापति सुग्रीव प्रवचनकुशल श्रीरामसे ऐसी बातें कहकर चुप हो गये ॥ ३० ॥

सुग्रीवस्य तु तद् वाक्यं श्रुत्वा रामो महाबलः ।
समीपस्थानुवाचेदं हनुमत्प्रमुखान् कपीन् ॥ ३१ ॥

सुग्रीवका वह वचन सुनकर महाबली श्रीराम अपने निकट बैठे हुए हनुमान् आदि वानरोंसे इस प्रकार बोले—॥ ३१ ॥

यदुक्तं कपिराजेन रावणावरजं प्रति ।
वाक्यं हेतुमदत्यर्थं भवद्भिरपि च श्रुतम् ॥ ३२ ॥

'वानरो ! वानरराज सुग्रीवने रावणके छोटे भाई विभीषणके विषयमें जो अत्यन्त युक्तियुक्त बातें कही हैं, वे तुम लोगोंने भी सुनी हैं ॥ ३२ ॥

सुहृदामर्थकृच्छ्रेषु युक्तं बुद्धिमता सदा ।
समर्थेनोपसंदेष्टुं शाश्वतीं भूतिमिच्छता ॥ ३३ ॥

'मित्रोंकी स्थायी उन्नति चाहनेवाले बुद्धिमान् एवं समर्थ पुरुषको कर्तव्याकर्तव्यके विषयमें संशय उपस्थित होनेपर सदा ही अपनी सम्मति देनी चाहिये' ॥ ३३ ॥

इत्येवं परिपृष्टास्ते स्वं स्वं मतमतन्द्रिताः ।
सोपचारं तदा राममूचुः प्रियचिकीर्षवः ॥ ३४ ॥

इस प्रकार सलाह पूछी जानेपर श्रीरामका प्रिय करनेकी इच्छा रखनेवाले वे सब वानर आलस्य छोड़ उत्साहित हो सादर अपना-अपना मत प्रकट करने लगे—॥ ३४ ॥

अज्ञातं नास्ति ते किंचित् त्रिषु लोकेषु राघव ।
आत्मानं पूजयन् राम पृच्छस्यस्मान् सुहृत्तया ॥ ३५ ॥

'रघुनन्दन ! तीनों लोकोंमें कोई ऐसी बात नहीं है, जो आपको ज्ञात न हो; तथापि हम आपके अपने ही अङ्ग हैं, अतः आप मित्रभावसे हमारा सम्मान बढ़ाते हुए हमसे सलाह पूछते हैं ॥ ३५ ॥

त्वं हि सत्यव्रतः शूरो धार्मिको दृढविक्रमः ।
परीक्ष्यकारी स्मृतिमान् निसृष्टात्मा सुहृत्सु च ॥ ३६ ॥

'आप सत्यव्रती, शूरवीर, धर्मात्मा, सुदृढ़ पराक्रमी, जाँच-बूझकर काम करनेवाले, स्मरणशक्तिसे सम्पन्न और मित्रोंपर विश्वास करके उन्हींके हाथोंमें अपने-आपको सौंप देनेवाले हैं ॥ ३६ ॥

तस्मादेकैकशस्तावद् ब्रुवन्तु सचिवास्तव ।
हेतुतो मतिसम्पन्नाः समर्थाश्च पुनः पुनः ॥ ३७ ॥

'इसलिये आपके सभी बुद्धिमान् एवं सामर्थ्यशाली सचिव एक-एक करके बारी-बारीसे अपने युक्तियुक्त विचार प्रकट करें' ॥ ३७ ॥

इत्युक्ते राघवायाथ मतिमानङ्गदोऽग्रतः ।
विभीषणपरीक्षार्थमुवाच वचनं हरिः ॥ ३८ ॥

वानरोंके ऐसा कहनेपर सबसे पहले बुद्धिमान् वानर अङ्गद विभीषणकी परीक्षाके लिये सुझाव देते हुए श्रीरघुनाथजीसे बोले—॥ ३८ ॥

शत्रोः सकाशात् सम्प्राप्तः सर्वथा तर्क्य एव हि ।
विश्वासनीयः सहसा न कर्तव्यो विभीषणः ॥ ३९ ॥

'भगवन् ! विभीषण शत्रुके पाससे आया है, इसलिये उसपर अभी शङ्का ही करनी चाहिये । उसे सहसा विश्वासपात्र नहीं बना लेना चाहिये ॥ ३९ ॥

छादयित्वाऽऽत्मभावं हि चरन्ति शठबुद्धयः ।
प्रहरन्ति च रन्ध्रेषु सोऽनर्थः सुमहान् भवेत् ॥ ४० ॥

'बहुत-से शठतापूर्ण विचार रखनेवाले लोग अपने मनोभावको छिपाकर विचरते रहते हैं और मौका पाते ही प्रहार कर बैठते हैं । इससे बहुत बड़ा अनर्थ हो जाता है ॥ ४० ॥

अर्थानर्थौ विनिश्चित्य व्यवसायं भजेत ह ।
गुणतः संग्रहं कुर्याद् दोषतस्तु विसर्जयेत् ॥ ४१ ॥

'अतः गुण-दोषका विचार करके पहले यह निश्चय कर लेना चाहिये कि इस व्यक्तिसे अर्थकी प्राप्ति होगी या अनर्थकी (यह हितका साधन करेगा या अहितका) । यदि उसमें गुण हों तो उसे स्वीकार करें और यदि दोष दिखायी दें तो त्याग दे ॥ ४१ ॥

यदि दोषो महांस्तस्मिंस्त्यज्यतामविशङ्कितम् ।
गुणान् वापि बहून् ज्ञात्वा संग्रहः क्रियतां नृप ॥ ४२ ॥

'महाराज ! यदि उसमें महान् दोष हो तो निःसंदेह उसका त्याग कर देना ही उचित है । गुणोंकी दृष्टिसे यदि उसमें बहुत-से सद्गुणोंके होनेका पता लगे, तभी उस व्यक्तिको अपनाना चाहिये' ॥ ४२ ॥

शरभस्त्वथ निश्चित्य सार्थं वचनमब्रवीत् ।
क्षिप्रमस्मिन् नरव्याघ्र चारः प्रतिविधीयताम् ॥ ४३ ॥

तदनन्तर शरभने सोच-विचारकर यह सार्थक बात कही—'पुरुषसिंह ! इस विभीषणके ऊपर शीघ्र ही कोई गुप्तचर नियुक्त कर दिया जाय ॥ ४३ ॥

प्रणिधाय हि चारेण यथावत् सूक्ष्मबुद्धिना ।
परीक्ष्य च ततः कार्यो यथान्यायं परिग्रहः ॥ ४४ ॥

'सूक्ष्म बुद्धिवाले गुप्तचरको भेजकर उसके द्वारा यथावत्-रूपसे उसकी परीक्षा कर ली जाय । इसके बाद यथोचित रीतिसे उसका संग्रह करना चाहिये' ॥ ४४ ॥

जाम्बवांस्त्वथ सम्प्रेक्ष्य शास्त्रबुद्ध्या विचक्षणः ।
वाक्यं विज्ञापयामास गुणवद् दोषवर्जितम् ॥ ४५ ॥

इसके बाद परम चतुर जाम्बवान्ने शास्त्रीय बुद्धिसे विचार करके ये गुणयुक्त दोषरहित वचन कहे—॥ ४५ ॥

बद्धवैराच्च पापाच्च राक्षसेन्द्राद् विभीषणः ।
अदेशकाले सम्प्राप्तः सर्वथा शङ्क्यतामयम् ॥ ४६ ॥

'राक्षसराज रावण बड़ा पापी है । उसने हमारे साथ वैर बाँध रक्खा है और यह विभीषण उसीके पाससे आ रहा है । वास्तवमें न तो इसके आनेका यह समय है और न स्थान ही । इसलिये इसके विषयमें सब प्रकारसे सशङ्क ही रहना चाहिये' ॥

ततो मैन्दस्तु सम्प्रेक्ष्य नयापनयकोविदः ।
वाक्यं वचनसम्पन्नो बभाषे हेतुमत्तरम् ॥ ४७ ॥

तदनन्तर नीति और अनीतिके ज्ञाता तथा वाग्वैभवसे सम्पन्न मैन्दने सोच-विचारकर यह युक्तियुक्त उत्तम बात कही—॥ ४७ ॥

अनुजो नाम तस्यैष रावणस्य विभीषणः ।
पृच्छ्यतां मधुरेणायं शनैर्नरपतीश्वर ॥ ४८ ॥

'महाराज ! यह विभीषण रावणका छोटा भाई ही तो है, इसलिये इससे मधुर व्यवहारके साथ धीरे-धीरे सब बातें पूछनी चाहिये ॥ ४८ ॥

भावमस्य तु विज्ञाय तत्त्वतस्तं करिष्यसि ।
यदि दुष्टो न दुष्टो वा बुद्धिपूर्वं नरर्षभ ॥ ४९ ॥

'नरश्रेष्ठ ! फिर इसके भावको समझकर आप बुद्धिपूर्वक यह ठीक-ठीक निश्चय करें कि यह दुष्ट है या नहीं । उसके बाद जैसा उचित हो, वैसा करना चाहिये' ॥ ४९ ॥

अथ संस्कारसम्पन्नो हनूमान् सचिवोत्तमः ।
उवाच वचनं श्लक्ष्णमर्थवन्मधुरं लघु ॥ ५० ॥

तत्पश्चात् सचिवोंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानजनित संस्कारसे युक्त हनुमान्जीने ये श्रवणमधुर, सार्थक, सुन्दर और संक्षिप्त वचन कहे—॥ ५० ॥

न भवन्तं मतिश्रेष्ठं समर्थं वदतां वरम् ।
अतिशाययितुं शक्तो बृहस्पतिरपि ब्रुवन् ॥ ५१ ॥

'प्रभो ! आप बुद्धिमानोंमें उत्तम, सामर्थ्यशाली और वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं । यदि बृहस्पति भी भाषण दें तो वे अपनेको आपसे बढ़कर वक्ता नहीं सिद्ध कर सकते ॥ ५१ ॥

न वादान्नापि संघर्षान्नाधिक्यान्न च कामतः ।
वक्ष्यामि वचनं राजन् यथार्थं राम गौरवात् ॥ ५२ ॥

'महाराज श्रीराम ! मैं जो कुछ निवेदन करूँगा, वह वाद-विवाद या तर्क, स्पर्धा, अधिक बुद्धिमत्ताके अभिमान अथवा किसी प्रकारकी कामनासे नहीं करूँगा । मैं तो कार्यकी गुरुतापर दृष्टि रखकर जो यथार्थ समझूँगा, वही बात कहूँगा ॥ ५२ ॥

अर्थानर्थनिमित्तं हि यदुक्तं सचिवैस्तव ।
तत्र दोषं प्रपश्यामि क्रिया नह्युपपद्यते ॥ ५३ ॥

'आपके मन्त्रियोंने जो अर्थ और अनर्थके निर्णयके लिये गुण-दोषकी परीक्षा करनेका सुझाव दिया है, उसमें मुझे दोष दिखायी देता है; क्योंकि इस समय परीक्षा लेना कदापि सम्भव नहीं है ॥ ५३ ॥

ऋते नियोगात् सामर्थ्यमवबोद्धुं न शक्यते ।
सहसा विनियोगोऽपि दोषवान् प्रतिभाति मे ॥ ५४ ॥

'विभीषण आश्रय देनेके योग्य हैं या नहीं—इसका निर्णय उसे किसी काममें नियुक्त किये बिना नहीं हो सकता और सहसा उसे किसी काममें लगा देना भी मुझे सदोष ही प्रतीत होता है ॥ ५४ ॥

चारप्रणिहितं युक्तं यदुक्तं सचिवैस्तव ।
अर्थस्यासम्भवात् तत्र कारणं नोपपद्यते ॥ ५५ ॥

'आपके मन्त्रियोंने जो गुप्तचर नियुक्त करनेकी बात कही है, उसका कोई प्रयोजन न होनेसे वैसा करनेका कोई युक्तियुक्त कारण नहीं दिखायी देता । (जो दूर रहता हो और जिसका वृत्तान्त ज्ञात न हो, उसीके लिये गुप्तचरकी नियुक्ति की जाती है । जो सामने खड़ा है और स्पष्टरूपसे अपना वृत्तान्त बता रहा है, उसके लिये गुप्तचर भेजनेकी क्या आवश्यकता है) ॥ ५५ ॥

अदेशकाले सम्प्राप्त इत्ययं यद् विभीषणः ।
विवक्षा तत्र मेऽस्तीयं तां निबोध यथामति ॥ ५६ ॥

'इसके सिवा जो यह कहा गया है कि विभीषणका इस समय यहाँ आना देश-कालके अनुरूप नहीं है । उसके विषयमें भी मैं अपनी बुद्धिके अनुसार कुछ कहना चाहता हूँ । आप सुनें ॥ ५६ ॥

एष देशश्च कालश्च भवतीह यथा तथा ।
पुरुषात् पुरुषं प्राप्य तथा दोषगुणावपि ॥ ५७ ॥

दौरात्म्यं रावणे दृष्ट्वा विक्रमं च तथा त्वयि ।
युक्तमागमनं ह्यत्र सदृशं तस्य बुद्धितः ॥ ५८ ॥

'उसके यहाँ आनेका यही उत्तम देश और काल है, यह बात जिस तरह सिद्ध होती है, वैसा बता रहा हूँ । विभीषण एक नीच पुरुषके पाससे चलकर एक श्रेष्ठ पुरुषके पास आया है । उसने दोनोंके दोषों और गुणोंका भी विवेचन किया है । तत्पश्चात् रावणमें दुष्टता और आपमें पराक्रम देख वह रावणको छोड़कर आपके पास आ गया है । इसलिये उसका यहाँ आगमन सर्वथा उचित और उसकी उत्तम बुद्धिके अनुरूप है ॥ ५७-५८ ॥

अज्ञातरूपैः पुरुषैः स राजन् पृच्छ्यतामिति ।
यदुक्तमत्र मे प्रेक्षा काचिदस्ति समीक्षिता ॥ ५९ ॥

'राजन् ! किसी मन्त्रीके द्वारा जो यह कहा गया है कि अपरिचित पुरुषोंद्वारा इससे सारी बातें पूछी जायँ । उसके विषयमें मेरा जाँच-बूझकर निश्चित किया हुआ विचार है, जिसे आपके सामने रखता हूँ ॥ ५९ ॥

पृच्छ्यमानो विशङ्केत सहसा बुद्धिमान् वचः ।
तत्र मित्रं प्रदुष्येत मिथ्या पृष्टं सुखागतम् ॥ ६० ॥

'यदि कोई अपरिचित व्यक्ति यह पूछेगा कि तुम कौन हो, कहाँसे आये हो ? किसलिये आये हो ? इत्यादि, तब कोई बुद्धिमान् पुरुष सहसा उस पूछनेवालेपर संदेह करने लगेगा और यदि उसे यह मालूम हो जायगा कि सब कुछ जानते हुए भी मुझसे झूठे ही पूछा जा रहा है, तब सुखके लिये आये हुए उस नवागत मित्रका हृदय कलुषित हो जायगा (इस प्रकार हमें एक मित्रके लाभसे वञ्चित होना पड़ेगा) ॥ ६० ॥

अशक्यं सहसा राजन् भावो बोद्धुं परस्य वै ।
अन्तरेण स्वरैर्भिन्नैर्नैपुण्यं पश्यतां भृशम् ॥ ६१ ॥

'इसके सिवा महाराज ! किसी दूसरेके मनकी बातको सहसा समझ लेना असम्भव है । बीच-बीचमें स्वरभेदसे आप अच्छी तरह यह निश्चय कर लें कि यह साधुभावसे आया है या असाधुभावसे ॥ ६१ ॥

✓**न त्वस्य ब्रुवतो जातु लक्ष्यते दुष्टभावता ।**
प्रसन्नं वदनं चापि तस्मान्मे नास्ति संशयः ॥ ६२ ॥

'इसकी बातचीतसे भी कभी इसका दुर्भाव नहीं लक्षित होता । इसका मुख भी प्रसन्न है । इसलिये मेरे मनमें इसके प्रति कोई संदेह नहीं है ॥ ६२ ॥

✓**अशङ्कितमतिः स्वस्थो न शठः परिसर्पति ।**
न चास्य दुष्टवागस्ति तस्मान्मे नास्ति संशयः ॥ ६३ ॥

'दुष्ट पुरुष कभी निःशङ्क एवं स्वस्थचित्त होकर सामने नहीं आ सकता । इसके सिवा इसकी वाणी भी दोषयुक्त नहीं है । अतः मुझे इसके विषयमें कोई संदेह नहीं है ॥ ६३ ॥

✓**आकारश्छाद्यमानोऽपि न शक्यो विनिगूहितुम् ।**
बलाद्धि विवृणोत्येव भावमन्तर्गतं नृणाम् ॥ ६४ ॥

'कोई अपने आकारको कितना ही क्यों न छिपाये, उसके भीतरका भाव कभी छिप नहीं सकता । बाहरका आकार पुरुषोंके आन्तरिक भावको बलात् प्रकट कर देता है ॥ ६४ ॥

देशकालोपपन्नं च कार्यं कार्यविदां वर ।
सफलं कुरुते क्षिप्रं प्रयोगेणाभिसंहितम् ॥ ६५ ॥

'कार्यवेत्ताओंमें श्रेष्ठ रघुनन्दन ! विभीषणका यहाँ आगमनरूप जो कार्य है, वह देश-कालके अनुरूप ही है । ऐसा कार्य यदि योग्य पुरुषके द्वारा सम्पादित हो तो अपने-आपको शीघ्र सफल बनाता है ॥ ६५ ॥

✓**उद्योगं तव सम्प्रेक्ष्य मिथ्यावृत्तं च रावणम् ।**
वालिनं च हतं श्रुत्वा सुग्रीवं चाभिषेचितम् ॥ ६६ ॥
राज्यं प्रार्थयमानस्तु बुद्धिपूर्वमिहागतः ।
एतावत् तु पुरस्कृत्य युज्यते तस्य संग्रहः ॥ ६७ ॥

'आपके उद्योग, रावणके मिथ्याचार, वालीके वध और सुग्रीवके राज्याभिषेकका समाचार जान-सुनकर राज्य पानेकी इच्छासे यह समझ-बूझकर ही यहाँ आपके पास आया है (इसके मनमें यह विश्वास है कि शरणागतवत्सल दयालु श्रीराम अवश्य ही मेरी रक्षा करेंगे और राज्य भी दे देंगे) । इन्हीं सब बातोंको दृष्टिमें रखकर विभीषणका संग्रह करना—उसे अपना लेना मुझे उचित जान पड़ता है ॥ ६६-६७ ॥

यथाशक्ति मयोक्तं तु राक्षसस्यार्जवं प्रति ।
प्रमाणं त्वं हि शेषस्य श्रुत्वा बुद्धिमतां वर ॥ ६८ ॥

'बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ रघुनाथ ! इस प्रकार इस राक्षसकी सरलता और निर्दोषताके विषयमें मैंने यथाशक्ति निवेदन किया । इसे सुनकर आगे आप जैसा उचित समझें, वैसा करें' ॥ ६८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें
सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः

भगवान् श्रीरामका शरणागतकी रक्षाका महत्त्व एवं अपना व्रत बताकर विभीषणसे मिलना

अथ रामः प्रसन्नात्मा श्रुत्वा वायुसुतस्य ह ।
प्रत्यभाषत दुर्धर्षः श्रुतवानात्मनि स्थितम् ॥ १ ॥

वायुनन्दन हनुमान्‌जीके मुखसे अपने मनमें बैठी हुई बात सुनकर दुर्जय वीर भगवान् श्रीरामका चित्त प्रसन्न हो गया । वे इस प्रकार बोले—॥ १ ॥

ममापि च विवक्षास्ति काचित् प्रति विभीषणम् ।
श्रोतुमिच्छामि तत् सर्वं भवद्भिः श्रेयसि स्थितैः ॥ २ ॥

'मित्रो ! विभीषणके सम्बन्धमें मैं भी कुछ कहना चाहता हूँ । आप सब लोग मेरे हितसाधनमें संलग्न रहनेवाले हैं । अतः मेरी इच्छा है कि आप भी उसे सुन लें ॥ २ ॥

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथंचन ।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम् ॥ ३ ॥

'जो मित्रभावसे मेरे पास आ गया हो, उसे मैं किसी तरह त्याग नहीं सकता । सम्भव है उसमें कुछ दोष भी हों, परंतु दोषीको आश्रय देना भी सत्पुरुषोंके लिये निन्दित नहीं है (अतः विभीषणको मैं अवश्य अपनाऊँगा)' ॥ ३ ॥

सुग्रीवस्त्वथ तद्वाक्यमाभाष्य च विमृश्य च ।
ततः शुभतरं वाक्यमुवाच हरिपुङ्गवः ॥ ४ ॥

वानरराज सुग्रीवने भगवान् श्रीरामके इस कथनको सुनकर स्वयं भी उसे दोहराया और उसपर विचार करके यह परम सुन्दर बात कही—॥ ४ ॥

स दुष्टो वाप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः ।
ईदृशं व्यसनं प्राप्तं भ्रातरं यः परित्यजेत् ॥ ५ ॥
को नाम स भवेत् तस्य यमेष न परित्यजेत् ।

'प्रभो ! यह दुष्ट हो या अदुष्ट, इससे क्या ? है तो यह निशाचर ही । फिर जो पुरुष ऐसे संकटमें पड़े हुए अपने भाईको छोड़ सकता है, उसका दूसरा ऐसा कौन सम्बन्धी होगा, जिसे वह त्याग न सके' ॥ ५½ ॥

वानराधिपतेर्वाक्यं श्रुत्वा सर्वानुदीक्ष्य तु ॥ ६ ॥
ईषदुत्स्मयमानस्तु लक्ष्मणं पुण्यलक्षणम् ।
इति होवाच काकुत्स्थो वाक्यं सत्यपराक्रमः ॥ ७ ॥

वानरराज सुग्रीवकी यह बात सुनकर सत्यपराक्रमी श्रीरघुनाथजी सबकी ओर देखकर कुछ मुस्कराये और पवित्र लक्षणवाले लक्ष्मणसे इस प्रकार बोले—॥ ६-७ ॥

अनधीत्य च शास्त्राणि वृद्धाननुपसेव्य च ।
न शक्यमीदृशं वक्तुं यदुवाच हरीश्वरः ॥ ८ ॥

'सुमित्रानन्दन ! इस समय वानरराजने जैसी बात कही है, वैसी कोई भी पुरुष शास्त्रोंका अध्ययन और गुरुजनोंकी सेवा किये बिना नहीं कह सकता ॥ ८ ॥

अस्ति सूक्ष्मतरं किंचिद् यथात्र प्रतिभाति मा ।
प्रत्यक्षं लौकिकं चापि वर्तते सर्वराजसु ॥ ९ ॥

'परंतु सुग्रीव ! तुमने विभीषणमें जो भाईके परित्यागरूप दोषकी उद्भावना की है, उस विषयमें मुझे एक ऐसे अत्यन्त सूक्ष्म अर्थकी प्रतीति हो रही है, जो समस्त राजाओंमें प्रत्यक्ष देखा गया है और सभी लोगोंमें प्रसिद्ध है (मैं उसीको तुम सब लोगोंसे कहना चाहता हूँ) ॥ ९ ॥

अमित्रास्तत्कुलीनाश्च प्रातिदेश्याश्च कीर्तिताः ।
व्यसनेषु प्रहर्तारस्तस्मादयमिहागतः ॥ १० ॥

'राजाओंके छिद्र दो प्रकारके बताये गये हैं—एक तो उसी कुलमें उत्पन्न हुए जाति-भाई और दूसरे पड़ोसी देशोंके निवासी । ये संकटमें पड़नेपर अपने विरोधी राजा या राजपुत्रपर प्रहार कर बैठते हैं । इसी भयसे यह विभीषण यहाँ आया है (इसे भी अपने जाति-भाइयोंसे भय है) ॥ १० ॥

अपापास्तत्कुलीनाश्च मानयन्ति स्वकान् हितान् ।
एष प्रायो नरेन्द्राणां शङ्कनीयस्तु शोभनः ॥ ११ ॥

'जिनके मनमें पाप नहीं है, ऐसे एक कुलमें उत्पन्न हुए भाई-बन्धु अपने कुटुम्बीजनोंको हितैषी मानते हैं, परंतु यही सजातीय बन्धु अच्छा होनेपर भी प्रायः राजाओंके लिये शङ्कनीय होता है (रावण भी विभीषणको शङ्काकी दृष्टिसे देखने लगा है; इसलिये इसका अपनी रक्षाके लिये यहाँ आना अनुचित नहीं है । अतः तुम्हें इसके ऊपर भाईके त्यागका दोष नहीं लगाना चाहिये) ॥ ११ ॥

यस्तु दोषस्त्वया प्रोक्तो ह्यादानेऽरिबलस्य च ।
तत्र ते कीर्तयिष्यामि यथाशास्त्रमिदं शृणु ॥ १२ ॥

'तुमने शत्रुपक्षीय सैनिकको अपनानेमें जो यह दोष बताया है कि वह अवसर देखकर प्रहार कर बैठता है, उसके विषयमें मैं तुम्हें यह नीतिशास्त्रके अनुकूल उत्तर दे रहा हूँ, सुनो ॥ १२ ॥

न वयं तत्कुलीनाश्च राज्यकाङ्क्षी च राक्षसः ।
पण्डिता हि भविष्यन्ति तस्माद् ग्राह्यो विभीषणः ॥ १३ ॥

'हमलोग इसके कुटुम्बी तो हैं नहीं (अतः हमसे स्वार्थहानिकी आशङ्का इसे नहीं है) और यह राक्षस राज्य पानेका अभिलाषी है (इसलिये भी यह हमारा त्याग नहीं कर सकता) । इन राक्षसोंमें बहुत-से लोग बड़े विद्वान् भी होते

(अतः वे मित्र होनेपर बड़े कामके सिद्ध होंगे) इसलिये ीषणको अपने पक्षमें मिला लेना चाहिये ॥१३॥

अव्यग्राश्च प्रहृष्टाश्च ते भविष्यन्ति संगताः ।
प्रणादश्च महानेषोऽन्योन्यस्य भयमागतम् ।
इति भेदं गमिष्यन्ति तस्माद् ग्राह्यो विभीषणः ॥ १४ ॥

'हमसे मिल जानेपर ये विभीपण आदि निश्चिन्त एवं प्रसन्न हो जायँगे । इनकी जो यह शरणागतिके लिये प्रबल पुकार है, इससे मालूम होता है, राक्षसोंमें एक दूसरेसे भय बना हुआ है । इसी कारणसे इनमें परस्पर फूट होगी और ये नष्ट हो जायँगे । इसलिये भी विभीषणको ग्रहण कर लेना चाहिये ॥ १४ ॥

न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः ।
मद्विधा वा पितुः पुत्राः सुहृदो वा भवद्विधाः ॥ १५ ॥

'तात सुग्रीव ! संसारमें सब भाई भरतके ही समान नहीं होते । बापके सब बेटे मेरे ही-जैसे नहीं होते और सभी मित्र तुम्हारे ही समान नहीं हुआ करते हैं' ॥ १५ ॥

एवमुक्तस्तु रामेण सुग्रीवः सहलक्ष्मणः ।
उत्थायेदं महाप्राज्ञः प्रणतो वाक्यमब्रवीत् ॥ १६ ॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणसहित महाबुद्धिमान् सुग्रीवने उठकर उन्हें प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—॥

रावणेन प्रणिहितं तमवेहि निशाचरम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये क्षमं क्षमवतां वर ॥ १७ ॥

'उचित कार्य करनेवालोंमें श्रेष्ठ रघुनन्दन ! आप उस राक्षसको रावणका भेजा हुआ ही समझें । मैं तो उसे कैद कर लेना ही ठीक समझता हूँ ॥ १७ ॥

राक्षसो जिह्मया बुद्ध्या संदिष्टोऽयमिहागतः ।
प्रहर्तुं त्वयि विश्वस्ते विश्वस्ते मयि वानघ ॥ १८ ॥
लक्ष्मणे वा महाबाहो स वध्यः सचिवैः सह ।
रावणस्य नृशंसस्य भ्राता ह्येष विभीषणः ॥ १९ ॥

'निष्पाप श्रीराम ! यह निशाचर रावणके कहनेसे मनमें कुटिल विचार लेकर ही यहाँ आया है । जब हमलोग इसपर विश्वास करके इसकी ओरसे निश्चिन्त हो जायँगे, उस समय यह आपपर, मुझपर अथवा लक्ष्मणपर भी प्रहार कर सकता है । इसलिये महाबाहो ! क्रूर रावणके भाई इस विभीषणका मन्त्रियोंसहित वध कर देना ही उचित है' ॥ १८-१९ ॥

एवमुक्त्वा रघुश्रेष्ठं सुग्रीवो वाहिनीपतिः ।
वाक्यज्ञो वाक्यकुशलं ततो मौनमुपागमत् ॥ २० ॥

प्रवचनकुशल रघुकुलतिलक श्रीरामसे ऐसा कहकर बातचीतकी कला जाननेवाले सेनापति सुग्रीव मौन हो गये ॥ २० ॥

स सुग्रीवस्य तद् वाक्यं रामः श्रुत्वा विमृश्य च ।
ततः शुभतरं वाक्यमुवाच हरिपुङ्गवम् ॥ २१ ॥

सुग्रीवका वह वचन सुनकर और उसपर भलीभाँति विचार करके श्रीरामने उन वानरशिरोमणिसे यह परम मङ्गलमयी बात कही—॥ २१ ॥

स दुष्टो वाप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः ।
सूक्ष्ममप्यहितं कर्तुं मम शक्तः कथंचन ॥ २२ ॥

'वानरराज ! विभीषण दुष्ट हो या साधु । क्या यह निशाचर किसी तरह भी मेरा सूक्ष्म-से-सूक्ष्मरूपमें भी अहित कर सकता है ? ॥ २२ ॥

पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान् ।
अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर ॥ २३ ॥

'वानरयूथपते ! यदि मैं चाहूँ तो पृथ्वीपर जितने भी पिशाच, दानव, यक्ष और राक्षस हैं, उन सबको एक अंगुलिके अग्रभागसे मार सकता हूँ ॥ २३ ॥

श्रूयते हि कपोतेन शत्रुः शरणमागतः ।
अर्चितश्च यथान्यायं स्वैश्च मांसैर्निमन्त्रितः ॥ २४ ॥

'सुना जाता है कि एक कबूतरने अपनी शरणमें आये हुए अपने ही शत्रु एक व्याधका यथोचित आतिथ्य-सत्कार किया था और उसे निमन्त्रण दे अपने शरीरके मांसका भोजन कराया था ॥ २४ ॥

स हि तं प्रतिजग्राह भार्याहर्तारमागतम् ।
कपोतो वानरश्रेष्ठ किं पुनर्मद्विधो जनः ॥ २५ ॥

'उस व्याधने उस कबूतरकी भार्या कबूतरीको पकड़ लिया था तो भी अपने घर आनेपर कबूतरने उसका आदर किया; फिर मेरे-जैसा मनुष्य शरणागतपर अनुग्रह करे, इसके लिये तो कहना ही क्या है ? ॥ २५ ॥

ऋषेः कण्वस्य पुत्रेण कण्डुना परमर्षिणा ।
शृणु गाथा पुरा गीता धर्मिष्ठा सत्यवादिना ॥ २६ ॥

'पूर्वकालमें कण्व मुनिके पुत्र सत्यवादी महर्षि कण्डुने एक धर्मविषयक गाथाका गान किया था । उसे बताता हूँ, सुनो ॥ २६ ॥

बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम् ।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परंतप ॥ २७ ॥

'परंतप ! यदि शत्रु भी शरणमें आये और दीनभावसे हाथ जोड़कर दयाकी याचना करे तो उसपर प्रहार नहीं करना चाहिये ॥ २७ ॥

आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणं गतः ।
अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना ॥ २८ ॥

'शत्रु दुखी हो या अभिमानी, यदि वह अपने विपक्षीकी शरणमें जाय तो शुद्ध हृदयवाले श्रेष्ठ पुरुषको अपने प्राणोंका मोह छोड़कर उसकी रक्षा करनी चाहिये ॥ २८ ॥

स चेद् भयाद् वा मोहाद् वा कामाद् वापि न रक्षति ।
स्वया शक्त्या यथान्यायं तत् पापं लोकगर्हितम् ॥ २९ ॥

'यदि वह भय, मोह अथवा किसी कामनासे न्यायानुसार यथाशक्ति उसकी रक्षा नहीं करता तो उसके उस पाप-कर्मकी लोकमें बड़ी निन्दा होती है ॥ २९ ॥

विनष्टः पश्यतस्तस्य रक्षिणः शरणं गतः ।
आनाय सुकृतं तस्य सर्वं गच्छेदरक्षितः ॥ ३० ॥

'यदि शरणमें आया हुआ पुरुष संरक्षण न पाकर उस रक्षकके देखते-देखते नष्ट हो जाय तो वह उसके सारे पुण्यको अपने साथ ले जाता है ॥ ३० ॥

एवं दोषो महानत्र प्रपन्नानामरक्षणे ।
अस्वर्ग्यं चायशस्यं च बलवीर्यविनाशनम् ॥ ३१ ॥

'इस प्रकार शरणागतकी रक्षा न करनेमें महान् दोष बताया गया है । शरणागतका त्याग स्वर्ग और सुयशकी प्राप्तिको मिटा देता है और मनुष्यके बल और वीर्यका नाश करता है ॥ ३१ ॥

करिष्यामि यथार्थं तु कण्डोर्वचनमुत्तमम् ।
धर्मिष्ठं च यशस्यं च स्वर्ग्यं स्यात् तु फलोदये ॥ ३२ ॥

'इसलिये मैं तो महर्षि कण्डुके उस यथार्थ और उत्तम वचनका ही पालन करूँगा; क्योंकि वह परिणाममें धर्म, यश और स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला है ॥ ३२ ॥

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । ✓
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥ ३३ ॥

'जो एक बार भी शरणमें आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ । यह मेरा सदाके लिये व्रत है ॥ ३३ ॥

आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया ।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम् ॥ ३४ ॥

'अतः कपिश्रेष्ठ सुग्रीव ! वह विभीषण हो या स्वयं रावण आ गया हो । तुम उसे ले आओ । मैंने उसे अभयदान दे दिया' ॥ ३४ ॥

रामस्य तु वचः श्रुत्वा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः ।
प्रत्यभाषत काकुत्स्थं सौहार्देनाभिपूरितः ॥ ३५ ॥

भगवान् श्रीरामका यह वचन सुनकर वानरराज सुग्रीवने सौहार्दसे भरकर उनसे कहा— ॥ ३५ ॥

किमत्र चित्रं धर्मज्ञ लोकनाथशिखामणे ।
यत् त्वमार्यं प्रभाषेथाः सत्त्ववान् सत्पथे स्थितः ॥ ३६ ॥

'धर्मज्ञ ! लोकेश्वरशिरोमणे ! आपने जो यह श्रेष्ठ धर्मकी बात कही है, इसमें क्या आश्चर्य है ? क्योंकि आप महान् शक्तिशाली और सन्मार्गपर स्थित हैं ॥ ३६ ॥

मम चाप्यन्तरात्मायं शुद्धं वेत्ति विभीषणम् ।
अनुमानाच्च भावाच्च सर्वतः सुपरीक्षितः ॥ ३७ ॥ ✓

'यह मेरी अन्तरात्मा भी विभीषणको शुद्ध समझती है । हनुमान्‌जीने भी अनुमान और भावसे उनकी भीतर-बाहर सब ओरसे भलीभाँति परीक्षा कर ली है ॥ ३७ ॥

तस्मात् क्षिप्रं सहास्माभिस्तुल्यो भवतु राघव ।
विभीषणो महाप्राज्ञः सखित्वं चाभ्युपैतु नः ॥ ३८ ॥

'अतः रघुनन्दन ! अब विभीषण शीघ्र ही यहाँ हमारे-जैसे होकर रहें और हमारी मित्रता प्राप्त करें' ॥ ३८ ॥

ततस्तु सुग्रीववचो निशम्य त-
द्धरीश्वरेणाभिहितं नरेश्वरः ।
विभीषणेनाशु जगाम संगमं
पतत्रिराजेन यथा पुरंदरः ॥ ३९ ॥

तदनन्तर वानरराज सुग्रीवकी कही हुई वह बात सुनकर राजा श्रीराम शीघ्र आगे बढ़कर विभीषणसे मिले, मानो देवराज इन्द्र पक्षिराज गरुड़से मिल रहे हों ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १८ ॥

* * *

एकोनविंशः सर्गः

विभीषणका आकाशसे उतरकर भगवान् श्रीरामके चरणोंकी शरण लेना, उनके पूछनेपर रावणकी शक्तिका परिचय देना और श्रीरामका रावण-वधकी प्रतिज्ञा करके विभीषणको लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त कर उनकी सम्मतिसे समुद्रतटपर धरना देनेके लिये बैठना

राघवेणाभये दत्ते संनतो रावणानुजः ।
विभीषणो महाप्राज्ञो भूमिं समवलोकयत् ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीरघुनाथजीके अभय देनेपर विनयशील महाबुद्धिमान् विभीषणने नीचे उतरनेके लिये पृथ्वीकी ओर देखा ॥ १ ॥

खात् पपातावनिं हृष्टो भक्तैरनुचरैः सह ।

स तु रामस्य धर्मात्मा निपपात विभीषणः ॥ २ ॥
पादयोर्निपपाताथ चतुर्भिः सह राक्षसैः ।

वे अपने भक्त सेवकोंके साथ हर्षसे भरकर आकाशसे पृथ्वीपर उतर आये । उतरकर चारों राक्षसोंके साथ धर्मात्मा विभीषण श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें गिर पड़े ॥ २½ ॥

अब्रवीच्च तदा वाक्यं रामं प्रति विभीषणः ॥ ३ ॥
धर्मयुक्तं च युक्तं च साम्प्रतं सम्प्रहर्षणम् ।

उस समय विभीषणने श्रीरामसे धर्मानुकूल, युक्तियुक्त, समयोचित और हर्षवर्द्धक बात कही—॥ ३½ ॥

अनुजो रावणस्याहं तेन चास्म्यवमानितः ॥ ४ ॥
भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः ।

'भगवन् ! मैं रावणका छोटा भाई हूँ । रावणने मेरा अपमान किया है । आप समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाले हैं, इसलिये मैंने आपकी शरण ली है ॥ ४½ ॥

परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि च ॥ ५ ॥
भवद्गतं हि मे राज्यं जीवितं च सुखानि च ।

'अपने सभी मित्र, धन और लङ्कापुरीको मैं छोड़ आया हूँ । अब मेरा राज्य, जीवन और सुख सब आपके ही अधीन है' ॥ ५½ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा रामो वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥
वचसा सान्त्वयित्वैनं लोचनाभ्यां पिबन्निव ।

विभीषणके ये वचन सुनकर श्रीरामने मधुर वाणीद्वारा उन्हें सान्त्वना दी और नेत्रोंसे मानो उन्हें पी जायँगे, इस प्रकार प्रेमपूर्वक उनकी ओर देखते हुए कहा—॥ ६½ ॥

आख्याहि मम तत्त्वेन राक्षसानां बलाबलम् ॥ ७ ॥
एवमुक्तं तदा रक्षो रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
रावणस्य बलं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ८ ॥

'विभीषण ! तुम मुझे ठीक-ठीक राक्षसोंका बलाबल बताओ ।' अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामके ऐसा कहनेपर राक्षस विभीषणने रावणके सम्पूर्ण बलका परिचय देना आरम्भ किया—॥ ७-८ ॥

अवध्यः सर्वभूतानां गन्धर्वोरगपक्षिणाम् ।
राजपुत्र दशग्रीवो वरदानात् स्वयम्भुवः ॥ ९ ॥

'राजकुमार ! ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसे दशमुख रावण (केवल मनुष्यको छोड़कर) गन्धर्व, नाग और पक्षी आदि सभी प्राणियोंके लिये अवध्य है ॥ ९ ॥

रावणानन्तरो भ्राता मम ज्येष्ठश्च वीर्यवान् ।
कुम्भकर्णो महातेजाः शक्रप्रतिबलो युधि ॥ १० ॥

'रावणसे छोटा और मुझसे बड़ा जो मेरा भाई कुम्भकर्ण है, वह महातेजस्वी और पराक्रमी है । युद्धमें वह इन्द्रके समान बलशाली है ॥ १० ॥

राम सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो यदि ते श्रुतः ।
कैलासे येन समरे मणिभद्रः पराजितः ॥ ११ ॥

'श्रीराम ! रावणके सेनापतिका नाम प्रहस्त है । शायद आपने भी उसका नाम सुना होगा । उसने कैलासपर घटित हुए युद्धमें कुबेरके सेनापति मणिभद्रको भी पराजित कर दिया था ॥ ११ ॥

बद्धगोधाङ्गुलित्राणस्त्ववध्यकवचो युधि ।
धनुरादाय यस्तिष्ठन्नदृश्यो भवतीन्द्रजित् ॥ १२ ॥

'रावणका पुत्र जो इन्द्रजित् है, वह गोहके चमड़ेके बने हुए दस्ताने पहनकर अवध्य कवच धारण करके हाथमें धनुष ले जब युद्धमें खड़ा होता है, उस समय अदृश्य हो जाता है ॥ १२ ॥

संग्रामे सुमहद्व्यूहे तर्पयित्वा हुताशनम् । ✓
अन्तर्धानगतः श्रीमानिन्द्रजिद्धन्ति राघव ॥ १३ ॥

'रघुनन्दन ! श्रीमान् इन्द्रजित्ने अग्निदेवको तृप्त करके ऐसी शक्ति प्राप्त कर ली है कि वह विशाल व्यूहसे युक्त संग्राममें अदृश्य होकर शत्रुओंपर प्रहार करता है ॥ १३ ॥

महोदरमहापार्श्वौ राक्षसश्चाप्यकम्पनः ।
अनीकपास्तु तस्यैते लोकपालसमा युधि ॥ १४ ॥

'महोदर, महापार्श्व और अकम्पन—ये तीनों राक्षस रावणके सेनापति हैं और युद्धमें लोकपालोंके समान पराक्रम प्रकट करते हैं ॥ १४ ॥

दशकोटिसहस्राणि रक्षसां कामरूपिणाम् ।
मांसशोणितभक्ष्याणां लङ्कापुरनिवासिनाम् ॥ १५ ॥
स तैस्तु सहितो राजा लोकपालानयोधयत् ।
सह देवैस्तु ते भग्ना रावणेन दुरात्मना ॥ १६ ॥

'लङ्कामें रक्त और मांसका भोजन करनेवाले और इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ जो दस कोटि सहस्र (एक खरब) राक्षस निवास करते हैं, उन्हें साथ लेकर राजा रावणने लोकपालोंसे युद्ध किया था । उस समय देवताओंसहित वे सब लोकपाल दुरात्मा रावणसे पराजित हो भाग खड़े हुए' १५-१६

विभीषणस्य तु वचस्तच्छ्रुत्वा रघुसत्तमः ।
अन्वीक्ष्य मनसा सर्वमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥

विभीषणकी वह बात सुनकर रघुकुलतिलक श्रीरामने मन-ही-मन उस सबपर बारंबार विचार किया और इस प्रकार कहा—॥ १७ ॥

यानि कर्मापदानानि रावणस्य विभीषण ।
आख्यातानि च तत्त्वेन ह्यवगच्छामि तान्यहम् ॥ १८ ॥

'विभीषण ! तुमने रावणके युद्धविषयक जिन-जिन पराक्रमोंका वर्णन किया है, उन्हें मैं अच्छी तरह जानता हूँ ॥ १८ ॥

अहं हत्वा दशग्रीवं सप्रहस्तं सहात्मजम् ।
राजानं त्वां करिष्यामि सत्यमेतच्छृणोतु मे ॥ १९ ॥

'परंतु सुनो । मैं सच कहता हूँ कि प्रहस्त और पुत्रोंके सहित रावणका वध करके मैं तुम्हें लङ्काका राजा बनाऊँगा ॥ १९ ॥

रसातलं वा प्रविशेत् पातालं वापि रावणः ।
पितामहसकाशं वा न मे जीवन् विमोक्ष्यते ॥ २० ॥

'रावण रसातल या पातालमें प्रवेश कर जाय अथवा पितामह ब्रह्माजीके पास चला जाय तो भी वह अब मेरे हाथसे जीवित नहीं छूट सकेगा ॥ २० ॥

अहत्वा रावणं संख्ये सपुत्रजनबान्धवम् ।
अयोध्यां न प्रवेक्ष्यामि त्रिभिस्तैर्भ्रातृभिः शपे ॥ २१ ॥

'मैं अपने तीनों भाइयोंकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि युद्धमें पुत्र, भृत्यजन और बन्धु-बान्धवोंसहित रावणका वध किये बिना अयोध्यापुरीमें प्रवेश नहीं करूँगा' ॥ २१ ॥

श्रुत्वा तु वचनं तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
शिरसाऽऽवन्द्य धर्मात्मा वक्तुमेवं प्रचक्रमे ॥ २२ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके ये वचन सुनकर धर्मात्मा विभीषणने मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और फिर इस प्रकार कहना आरम्भ किया— ॥ २२ ॥

राक्षसानां वधे साह्यं लङ्कायाश्च प्रधर्षणे ।
करिष्यामि यथाप्राणं प्रवेक्ष्यामि च वाहिनीम् ॥ २३ ॥

'प्रभो ! राक्षसोंके संहारमें और लङ्कापुरीपर आक्रमण करके उसे जीतनेमें मैं आपकी यथाशक्ति सहायता करूँगा तथा प्राणोंकी बाजी लगाकर युद्धके लिये रावणकी सेनामें भी प्रवेश करूँगा' ॥ २३ ॥

इति ब्रुवाणं रामस्तु परिष्वज्य विभीषणम् ।
अब्रवील्लक्ष्मणं प्रीतः समुद्राज्जलमानय ॥ २४ ॥
तेन चेमं महाप्राज्ञमभिषिञ्च विभीषणम् ।
राजानं रक्षसां क्षिप्रं प्रसन्ने मयि मानद ॥ २५ ॥

विभीषणके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीरामने उन्हें हृदयसे लगा लिया और प्रसन्न होकर लक्ष्मणसे कहा—'दूसरोंको मान देनेवाले सुमित्रानन्दन ! तुम समुद्रसे जल ले आओ और उसके द्वारा इन परम बुद्धिमान् राक्षसराज विभीषणका लङ्काके राज्यपर शीघ्र ही अभिषेक कर दो । मेरे प्रसन्न होनेपर इन्हें यह लाभ मिलना ही चाहिये' ॥ २४-२५ ॥

एवमुक्तस्तु सौमित्रिरभ्यषिञ्चद् विभीषणम् ।
मध्ये वानरमुख्यानां राजानं राजशासनात् ॥ २६ ॥

उनके ऐसा कहनेपर सुमित्राकुमार लक्ष्मणने मुख्य-मुख्य वानरोंके बीच महाराज श्रीरामके आदेशसे विभीषणका राक्षसोंके राजाके पदपर अभिषेक कर दिया ॥ २६ ॥

तं प्रसादं तु रामस्य दृष्ट्वा सद्यः प्लवङ्गमाः ।
प्रचुक्रुशुर्महात्मानं साधुसाध्विति चाब्रुवन् ॥ २७ ॥

भगवान् श्रीरामका यह तात्कालिक प्रसाद(अनुग्रह)देखकर सब वानर हर्षध्वनि करने और महात्मा श्रीरामको साधुवाद देने लगे ॥ २७ ॥

अब्रवीच्च हनूमांश्च सुग्रीवश्च विभीषणम् ।
कथं सागरमक्षोभ्यं तराम वरुणालयम् ।
सैन्यैः परिवृताः सर्वे वानराणां महौजसाम् ॥ २८ ॥

तत्पश्चात् हनुमान् और सुग्रीवने विभीषणसे पूछा—'राक्षसराज ! हम सब लोग इस अक्षोभ्य समुद्रको महाबली वानरोंकी सेनाओंके साथ किस प्रकार पार कर सकेंगे ? ॥ २८ ॥

उपायैरभिगच्छाम यथा नदनदीपतिम् ।
तराम तरसा सर्वे ससैन्या वरुणालयम् ॥ २९ ॥

'जिस उपायसे हम सब लोग सेनासहित नदों और नदियोंके स्वामी वरुणालय समुद्रके पार जा सकें, वह बताओ' ॥२९॥

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा प्रत्युवाच विभीषणः ।
समुद्रं राघवो राजा शरणं गन्तुमर्हति ॥ ३० ॥

उनके इस प्रकार पूछनेपर धर्मात्मा विभीषणने यों उत्तर दिया—'रघुवंशी राजा श्रीरामको समुद्रकी शरण लेनी चाहिये ॥

खानितः सगरेणायमप्रमेयो महोदधिः ।
कर्तुमर्हति रामस्य ज्ञातेः कार्यं महोदधिः ॥ ३१ ॥

'इस अपार महासागरको राजा सगरने खुदवाया था । श्रीरामचन्द्रजी सगरके वंशज हैं । इसलिये समुद्रको इनका काम अवश्य करना चाहिये' ॥ ३१ ॥

एवं विभीषणेनोक्तो राक्षसेन विपश्चिता ।
आजगामाथ सुग्रीवो यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥ ३२ ॥

विद्वान् राक्षस विभीषणके ऐसा कहनेपर सुग्रीव उस स्थानपर आये, जहाँ लक्ष्मणसहित श्रीराम विद्यमान थे ॥ ३२ ॥

ततश्चाख्यातुमारेभे विभीषणवचः शुभम् ।
सुग्रीवो विपुलग्रीवः सागरस्योपवेशनम् ॥ ३३ ॥

वहाँ विशाल ग्रीवावाले सुग्रीवने समुद्रपर धरना देनेके विषयमें जो विभीषणका शुभ वचन था, उसे कहना आरम्भ किया ॥ ३३ ॥

प्रकृत्या धर्मशीलस्य रामस्यास्याप्यरोचत ।
सलक्ष्मणं महातेजाः सुग्रीवं च हरीश्वरम् ॥ ३४ ॥
सत्क्रियार्थं क्रियादक्षं स्मितपूर्वमभाषत ।

भगवान् श्रीराम स्वभावसे ही धर्मशील थे, अतः उन्हें भी विभीषणकी यह बात अच्छी लगी । वे महातेजस्वी रघुनाथजी लक्ष्मणसहित कार्यदक्ष वानरराज सुग्रीवका सत्कार करते हुए उनसे मुसकराकर बोले— ॥ ३४½ ॥

विभीषणस्य मन्त्रोऽयं मम लक्ष्मण रोचते ॥ ३५ ॥

सुग्रीवः पण्डितो नित्यं भवान् मन्त्रविचक्षणः ।
उभाभ्यां सम्प्रधार्यार्थं रोचते यत् तदुच्यताम् ॥ ३६ ॥

'लक्ष्मण ! विभीषणकी यह सम्मति मुझे भी अच्छी लगती है; परंतु सुग्रीव राजनीतिके बड़े पण्डित हैं और तुम भी समयोचित सलाह देनेमें सदा ही कुशल हो । इसलिये तुम दोनों प्रस्तुत कार्यपर अच्छी तरह विचार करके जो ठीक जान पड़े, वह बताओ' ॥ ३५-३६ ॥

एवमुक्तौ ततो वीरावुभौ सुग्रीवलक्ष्मणौ ।
समुदाचारसंयुक्तमिदं वचनमूचतुः ॥ ३७ ॥

भगवान् श्रीरामके ऐसा कहनेपर वे दोनों वीर सुग्रीव और लक्ष्मण उनसे आदरपूर्वक बोले— ॥ ३७ ॥

किमर्थं नौ नरव्याघ्र न रोचिष्यति राघव ।
विभीषणेन यत् तूक्तमस्मिन् काले सुखावहम् ॥ ३८ ॥

'पुरुषसिंह रघुनन्दन ! इस समय विभीषणने जो सुखदायक बात कही है, वह हम दोनोंको क्यों नहीं अच्छी लगेगी ? ॥ ३८ ॥

अबद्ध्वा सागरे सेतुं घोरेऽस्मिन् वरुणालये ।
लङ्का नासादितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ ३९ ॥

'इस भयंकर समुद्रमें पुल बाँधे बिना इन्द्रसहित देवता और असुर भी इधरसे लङ्कापुरीमें नहीं पहुँच सकते ॥ ३९ ॥

विभीषणस्य शूरस्य यथार्थं क्रियतां वचः ।
अलं कालात्ययं कृत्वा सागरोऽयं नियुज्यताम् ।
यथा सैन्येन गच्छाम पुरीं रावणपालिताम् ॥ ४० ॥

'इसलिये आप शूरवीर विभीषणके यथार्थ वचनके अनुसार ही कार्य करें । अब अधिक विलम्ब करना ठीक नहीं है । इस समुद्रसे यह अनुरोध किया जाय कि वह हमारी सहायता करे, जिससे हम सेनाके साथ रावणपालित लङ्कापुरीमें पहुँच सकें' ॥ ४० ॥

एवमुक्तः कुशास्तीर्णे तीरे नदनदीपतेः ।
संविवेश तदा रामो वेद्यामिव हुताशनः ॥ ४१ ॥

उन दोनोंके ऐसा कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी उस समय समुद्रके तटपर कुश बिछाकर उसके ऊपर उसी तरह बैठे, जैसे वेदीपर अग्निदेव प्रतिष्ठित होते हैं ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १९ ॥

◆

विंशः सर्गः

शार्दूलके कहनेसे रावणका शुकको दूत बनाकर सुग्रीवके पास संदेश भेजना, वहाँ वानरोंद्वारा उसकी दुर्दशा, श्रीरामकी कृपासे उसका संकटसे छूटना और सुग्रीवका रावणके लिये उत्तर देना

निविष्टां

ततो विनिष्टां ध्वजिनीं सुग्रीवेणाभिपालिताम् ।
ददर्श राक्षसोऽभ्येत्य शार्दूलो नाम वीर्यवान् ॥ १ ॥
चारो राक्षसराजस्य रावणस्य दुरात्मनः ।
तां दृष्ट्वा सर्वतोऽव्यग्रां प्रतिगम्य स राक्षसः ॥ २ ॥
आविश्य लङ्कां वेगेन राजानमिदमब्रवीत् ।

इसी बीचमें दुरात्मा राक्षसराज रावणके गुप्तचर पराक्रमी राक्षस शार्दूलने वहाँ आकर सागर-तटपर छावनी डाले पड़ी हुई सुग्रीवद्वारा सुरक्षित वानरी सेनाको देखा । सब ओर शान्तभावसे स्थित हुई उस विशाल सेनाको देखकर वह राक्षस लौट गया और जल्दीसे लङ्कापुरीमें जाकर राजा रावणसे यों बोला— ॥ १-२½ ॥

एष वै वानरर्क्षौघो लङ्कां समभिवर्तते ॥ ३ ॥
अगाधश्चाप्रमेयश्च द्वितीय इव सागरः ।

'महाराज ! लङ्काकी ओर वानरों और भालुओंका एक प्रवाह-सा बढ़ा चला आ रहा है । वह दूसरे समुद्रके समान अगाध और असीम है ॥ ३½ ॥

पुत्रौ दशरथस्येमौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४ ॥
उत्तमौ रूपसम्पन्नौ सीतायाः पदमागतौ ।

'राजा दशरथके ये पुत्र दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण बड़े ही रूपवान् और श्रेष्ठ वीर हैं । वे सीताका उद्धार करनेके लिये आ रहे हैं ॥ ४½ ॥

एतौ सागरमासाद्य संनिविष्टौ महाद्युते ॥ ५ ॥
बलं चाकाशमावृत्य सर्वतो दशयोजनम् ।
तत्त्वभूतं महाराज क्षिप्रं वेदितुमर्हसि ॥ ६ ॥

'महातेजस्वी महाराज ! ये दोनों रघुवंशी बन्धु भी इस समय समुद्र-तटपर ही आकर ठहरे हुए हैं । वानरोंकी वह सेना सब ओरसे दस योजन तकके खाली स्थानको घेरकर वहाँ ठहरी हुई है । यह बिल्कुल ठीक बात है । आप शीघ्र ही इस विषयमें विशेष जानकारी प्राप्त करें ॥ ५-६ ॥

तव दूता महाराज क्षिप्रमर्हन्ति वेदितुम् ।
उपप्रदानं सान्त्वं वा भेदो वात्र प्रयुज्यताम् ॥ ७ ॥

'राक्षससम्राट् ! आपके दूत शीघ्र सारी बातोंका पता लगा लेनेके योग्य हैं; अतः उन्हें भेजें । तत्पश्चात् जैसा उचित समझें, वैसा करें—चाहे उन्हें सीताको लौटा दें, चाहे सुग्रीवसे मीठी-मीठी बातें करके उन्हें अपने पक्षमें मिला लें अथवा सुग्रीव और श्रीराममें फूट डलवा दें' ॥ ७ ॥

शार्दूलस्य वचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
उवाच सहसा व्यग्रः सम्प्रधार्यार्थमात्मनः ।
शुकं साधु तदा रक्षो वाक्यमर्थविदां वरम् ॥ ८ ॥

शार्दूलकी बात सुनकर राक्षसराज रावण सहसा व्यग्र हो उठा और अपने कर्तव्यका निश्चय करके अर्थवेत्ताओंमें श्रेष्ठ शुक नामक राक्षससे यह उत्तम वचन बोला—॥ ८ ॥

सुग्रीवं ब्रूहि गत्वाऽऽशु राजानं वचनान्मम ।
यथासंदेशमक्लीबं श्लक्ष्णया परया गिरा ॥ ९ ॥

'दूत ! तुम मेरे कहनेसे शीघ्र ही वानरराज सुग्रीवके पास जाओ और मधुर एवं उत्तम वाणीद्वारा निर्भीकतापूर्वक उनसे मेरा यह संदेश कहो—॥ ९ ॥

त्वं वै महाराजकुलप्रसूतो
महाबलश्चर्क्षरजःसुतश्च ।
न कश्चनार्थस्तव नास्त्यनर्थ-
स्तथापि मे भ्रातृसमो हरीश ॥ १० ॥

''वानरराज ! आप वानरोंके महाराजके कुलमें उत्पन्न हुए हैं । आदरणीय ऋक्षरजाके पुत्र हैं और स्वयं भी बड़े बलवान् हैं । मैं आपको अपने भाईके समान समझता हूँ । यदि मुझसे आपका कोई लाभ नहीं हुआ है तो मेरे द्वारा आपकी कोई हानि भी नहीं हुई है ॥ १० ॥

अहं यद्यहरं भार्यां राजपुत्रस्य धीमतः ।
किं तत्र तव सुग्रीव किष्किन्धां प्रति गम्यताम् ॥ ११ ॥

''सुग्रीव ! यदि मैं बुद्धिमान् राजपुत्र रामकी स्त्रीको हर लाया हूँ तो इसमें आपकी क्या हानि है ? अतः आप किष्किन्धाको लौट जाइये ॥ ११ ॥

नहीयं हरिभिर्लङ्का प्राप्तुं शक्या कथंचन ।
देवैरपि सगन्धर्वैः किं पुनर्नरवानरैः ॥ १२ ॥

''हमारी इस लङ्कामें वानरलोग किसी तरह भी नहीं पहुँच सकते । यहाँ देवताओं और गन्धर्वोंका भी प्रवेश होना असम्भव है; फिर मनुष्यों और वानरोंकी तो बात ही क्या है ?'' ॥ १२ ॥

स तदा राक्षसेन्द्रेण संदिष्टो रजनीचरः ।
शुको विहंगमो भूत्वा तूर्णमाप्लुत्य चाम्बरम् ॥ १३ ॥

राक्षसराज रावणके इस प्रकार संदेश देनेपर उस समय निशाचर शुक तोता नामक पक्षीका रूप धारण करके तुरंत आकाशमें उड़ चला ॥ १३ ॥

स गत्वा दूरमध्वानमुपर्युपरि सागरम् ।
संस्थितो ह्यम्बरे वाक्यं सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ १४ ॥
सर्वमुक्तं यथाऽऽदिष्टं रावणेन दुरात्मना ।

समुद्रके ऊपर-ही-ऊपर बहुत दूरका रास्ता तै करके वह सुग्रीवके पास जा पहुँचा और आकाशमें ही ठहरकर उसने दुरात्मा रावणकी आज्ञाके अनुसार वे सारी बातें सुग्रीवसे कहीं ॥ १४½ ॥

तत् प्रापयन्तं वचनं तूर्णमाप्लुत्य वानराः ॥ १५ ॥
प्रापद्यन्त तदा क्षिप्रं लोप्तुं हन्तुं च मुष्टिभिः ।

जिस समय वह संदेश सुना रहा था, उसी समय वानर उछलकर तुरंत उसके पास जा पहुँचे । वे चाहते थे कि हम शीघ्र ही इसकी पाँखें नोच लें और इसे घूसोंसे ही मार डालें ॥ १५½ ॥

सर्वैः प्लवंगैः प्रसभं निगृहीतो निशाचरः ॥ १६ ॥
गगनाद् भूतले चाशु प्रतिगृह्यावतारितः ।

इस निश्चयके साथ सारे वानरोंने उस निशाचरको बलपूर्वक पकड़ लिया और उसे कैद करके तुरंत आकाशसे भूतलपर उतारा ॥ १६½ ॥

वानरैः पीड्यमानस्तु शुको वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥
न दूतान् घ्नन्ति काकुत्स्थ वार्यन्तां साधु वानराः ।
यस्तु हित्वा मतं भर्तुः स्वमतं सम्प्रधारयेत् ।
अनुक्तवादी दूतः सन् स दूतो वधमर्हति ॥ १८ ॥

इस प्रकार वानरोंके पीड़ा देनेपर शुक पुकार उठा—'रघुनन्दन ! राजालोग दूतोंका वध नहीं करते हैं; अतः आप इन वानरोंको भलीभाँति रोकिये । जो स्वामीके अभिप्रायको छोड़कर अपना मत प्रकट करने लगता है, वह दूत बिना कही हुई बात कहनेका अपराधी है; अतः वही वधके योग्य होता है' ॥ १७-१८ ॥

शुकस्य वचनं रामः श्रुत्वा तु परिदेवितम् ।
उवाच मावधिष्टेति घ्नतः शाखामृगर्षभान् ॥ १९ ॥

शुकके वचन और विलापको सुनकर भगवान् श्रीरामने उसे पीटनेवाले प्रमुख वानरोंको पुकारकर कहा—'इसे मत मारो' ॥ १९ ॥

स च पत्रलघुर्भूत्वा हरिभिर्दर्शितेऽभये ।
अन्तरिक्षे स्थितो भूत्वा पुनर्वचनमब्रवीत् ॥ २० ॥

उस समयतक शुकके पंखोंका भार कुछ हल्का हो गया था; (क्योंकि वानरोंने उन्हें नोच डाला था) फिर उनके अभय देनेपर शुक आकाशमें खड़ा हो गया और पुनः बोला—॥ २० ॥

सुग्रीव सत्त्वसम्पन्न महाबलपराक्रम ।
किं मया खलु वक्तव्यो रावणो लोकरावणः ॥ २१ ॥

'महान् बल और पराक्रमसे युक्त शक्तिशाली सुग्रीव ! समस्त लोकोंको रुलानेवाले रावणको मुझे आपकी ओरसे क्या उत्तर देना चाहिये' ॥ २१ ॥

स एवमुक्तः प्लवगाधिपस्तदा
प्लवंगमानामृषभो महाबलः ।
उवाच वाक्यं रजनीचरस्य
चारं शुकं शुद्धमदीनसत्त्वः ॥ २२ ॥

शुकके इस प्रकार पूछनेपर उस समय कपिशिरोमणि महाबली उदारचेता वानरराज सुग्रीवने उस निशाचरके दूतसे यह स्पष्ट एवं निश्छल बात कही—॥ २२ ॥

न मेऽसि मित्रं न तथानुकम्प्यो
न चोपकर्तासि न मे प्रियोऽसि ।
अरिश्च रामस्य सहानुबन्ध-
स्ततोऽसि वालीव वधार्ह वध्यः ॥२३॥

'(दूत ! तुम रावणसे इस प्रकार कहना—) वधके योग्य दशानन ! तुम न तो मेरे मित्र हो, न दयाके पात्र हो, न मेरे उपकारी हो और न मेरे प्रिय व्यक्तियोंमेंसे ही कोई हो । भगवान् श्रीरामके शत्रु हो, इस कारण अपने सगे-सम्बन्धियोंसहित तुम वालीकी भाँति ही मेरे लिये वध्य हो ॥ २३ ॥

निहन्म्यहं त्वां ससुतं सबन्धुं
सज्ञातिवर्गं रजनीचरेश ।
लङ्कां च सर्वां महता बलेन
सर्वैः करिष्यामि समेत्य भस्म ॥ २४ ॥

'निशाचरराज ! मैं पुत्र, बन्धु और कुटुम्बीजनोंसहित तुम्हारा संहार करूँगा और बड़ी भारी सेनाके साथ आकर समस्त लङ्कापुरीको भस्म कर डालूँगा ॥ २४ ॥

न मोक्ष्यसे रावण राघवस्य
सुरैः सहेन्द्रैरपि मूढ गुप्तः ।
अन्तर्हितः सूर्यपथं गतोऽपि
तथैव पातालमनुप्रविष्टः ।
गिरीशपादाम्बुजसंगतो वा
हतोऽसि रामेण सहानुजस्त्वम् ॥ २५ ॥

'मूर्ख रावण ! यदि इन्द्र आदि समस्त देवता तुम्हारी रक्षा करें तो भी श्रीरघुनाथजीके हाथसे अब तुम जीवित नहीं छूट सकोगे । तुम अन्तर्धान हो जाओ, आकाशमें चले जाओ, पातालमें घुस जाओ अथवा महादेवजीके चरणारविन्दोंका आश्रय लो; फिर भी अपने भाइयोंसहित तुम अवश्य श्रीरामचन्द्रजीके हाथोंसे मारे जाओगे ॥ २५ ॥

तस्य ते त्रिषु लोकेषु न पिशाचं न राक्षसम् ।
त्रातारं नानुपश्यामि न गन्धर्वं न चासुरम् ॥ २६ ॥

'तीनों लोकोंमें मुझे कोई भी पिशाच, राक्षस, गन्धर्व या असुर ऐसा नहीं दिखायी देता, जो तुम्हारी रक्षा कर सके ॥

अवधीस्त्वं जरावृद्धं गृध्रराजं जटायुषम् ।
✓ किं नु ते रामसांनिध्ये सकाशे लक्ष्मणस्य च ।
हृता सीता विशालाक्षी यां त्वं गृह्य न बुध्यसे ॥ २७ ॥ ✓

'चिरकालके बूढ़े गृध्रराज जटायुको तुमने क्यों मारा ? यदि तुममें बड़ा बल था तो श्रीराम और लक्ष्मणके पाससे तुमने विशाललोचना सीताका अपहरण क्यों नहीं किया ? तुम सीताजीको ले जाकर अपने सिरपर आयी हुई विपत्तिको क्यों नहीं समझ रहे हो ? ॥ २७ ॥

महाबलं महात्मानं दुराधर्षं सुरैरपि ।
न बुध्यसे रघुश्रेष्ठं यस्ते प्राणान् हरिष्यति ॥ २८ ॥

'रघुकुलतिलक श्रीराम महाबली, महात्मा और देवताओंके लिये भी दुर्जय हैं, किंतु तुम उन्हें अभीतक समझ नहीं सके । (तुमने छिपकर सीताका हरण किया है, परंतु) वे (सामने आकर) तुम्हारे प्राणोंका अपहरण करेंगे' ॥ २८ ॥

ततोऽब्रवीद् वालिसुतोऽप्यङ्गदो हरिसत्तमः ।
नायं दूतो महाराज चारकः प्रतिभाति मे ॥ २९ ॥
तुलितं हि बलं सर्वमनेन तव तिष्ठता ।
गृह्यतां मागमल्लङ्कामेतद्धि मम रोचते ॥ ३० ॥

तत्पश्चात् वानरशिरोमणि वालिकुमार अङ्गदने कहा—'महाराज ! मुझे तो यह दूत नहीं, कोई गुप्तचर प्रतीत होता है । इसने यहाँ खड़े-खड़े आपकी सारी सेनाका माप-तौल कर लिया है—पूरा-पूरा अंदाजा लगा लिया है । अतः इसे पकड़ लिया जाय, लङ्काको न जाने पाये । मुझे यही ठीक जान पड़ता है' ॥ २९-३० ॥

ततो राज्ञा समादिष्टाः समुत्पत्य वलीमुखाः ।
जगृहुश्च बबन्धुश्च विलपन्तमनाथवत् ॥ ३१ ॥

फिर तो राजा सुग्रीवके आदेशसे वानरोंने उछलकर उसे पकड़ लिया और बाँध दिया । वह बेचारा अनाथकी भाँति विलाप करता रहा ॥ ३१ ॥

शुकस्तु वानरैश्चण्डैस्तत्र तैः सम्प्रपीडितः ।
व्याचुक्रोश महात्मानं रामं दशरथात्मजम् ।
लुप्येते मे बलात् पक्षौ भिद्येते मे तथाक्षिणी ॥ ३२ ॥
यां च रात्रिं मरिष्यामि जाये रात्रिं च यामहम् ।
एतस्मिन्नन्तरे काले यन्मया ह्यशुभं कृतम् ।
सर्वं तदुपपद्येथा जह्यां चेद् यदि जीवितम् ॥ ३३ ॥

उन प्रचण्ड वानरोंसे पीड़ित हो शुकने दशरथनन्दन महात्मा श्रीरामको बड़े जोरसे पुकारा और कहा—'प्रभो ! बलपूर्वक मेरी पाँखें नोची और आँखें फोड़ी जा रही हैं । यदि आज मैंने प्राणोंका त्याग किया तो जिस रातमें मेरा जन्म

हुआ था और जिस रातको मैं मरूँगा, जन्म और मरणके इस मध्यवर्ती कालमें, मैंने जो भी पाप किया है, वह सब आपको ही लगेगा' ॥ ३२-३३ ॥

नाघातयत् तदा रामः श्रुत्वा तत्परिदेवितम् ।
वानरानब्रवीद् रामो मुच्यतां दूत आगतः ॥ ३४ ॥

उस समय उसका वह विलाप सुनकर श्रीरामने उसका वध नहीं होने दिया । उन्होंने वानरोंसे कहा—'छोड़ दो । यह दूत होकर ही आया था' ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे विंशः सर्गः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः

श्रीरामका समुद्रके तटपर कुशा बिछाकर तीन दिनोंतक धरना देनेपर भी समुद्रके दर्शन न देनेसे कुपित हो उसे बाण मारकर विक्षुब्ध कर देना

ततः सागरवेलायां दर्भानास्तीर्य राघवः ।
अञ्जलिं प्राङ्मुखः कृत्वा प्रतिशिश्ये महोदधेः ॥ १ ॥

तदनन्तर श्रीरघुनाथजी समुद्रके तटपर कुशा बिछा महासागरके समक्ष हाथ जोड़ पूर्वाभिमुख हो वहाँ लेट गये ॥ १ ॥

बाहुं भुजङ्गभोगाभमुपधायारिसूदनः ।
जातरूपमयैश्चैव भूषणैर्भूषितं पुरा ॥ २ ॥

उस समय शत्रुसूदन श्रीरामने सर्पके शरीरकी भाँति कोमल और वनवासके पहले सोनेके बने हुए सुन्दर आभूषणोंसे सदा विभूषित रहनेवाली अपनी एक (दाहिनी) बाँहको तकिया बना रक्खा था ॥ २ ॥

मणिकाञ्चनकेयूरमुक्ताप्रवरभूषणैः ।
भुजैः परमनारीणामभिमृष्टमनेकधा ॥ ३ ॥

अयोध्यामें रहते समय मातृकोटिकी अनेक उत्तम नारियाँ (धायें) मणि और सुवर्णके बने हुए केयूरों तथा मोतीके श्रेष्ठ आभूषणोंसे विभूषित अपने कर-कमलोंद्वारा नहलाने-धुलाने आदिके समय अनेक बार श्रीरामके उस बाँहको सहलाती और दबाती थीं ॥ ३ ॥

चन्दनागुरुभिश्चैव पुरस्तादभिसेवितम् ।
बालसूर्यप्रकाशैश्च चन्दनैरुपशोभितम् ॥ ४ ॥

पहले चन्दन और अगुरुसे उस बाँहकी सेवा होती थी । प्रातःकालके सूर्यकी-सी कान्तिवाले लाल चन्दन उसकी शोभा बढ़ाते थे ॥ ४ ॥

शयने चोत्तमाङ्गेन सीतायाः शोभितं पुरा ।
तक्षकस्येव सम्भोगं गङ्गाजलनिषेवितम् ॥ ५ ॥

सीताहरणसे पहले शयनकालमें सीताका सिर उस बाँहकी शोभा बढ़ाता था और श्वेत शय्यापर स्थित एवं लाल चन्दनसे चर्चित हुई वह बाँह गङ्गाजलमें निवास करनेवाले तक्षकके[1] शरीरकी भाँति सुशोभित होती थी ॥ ५ ॥

संयुगे युगसंकाशं शत्रूणां शोकवर्धनम् ।
सुहृदां नन्दनं दीर्घं सागरान्तव्यपाश्रयम् ॥ ६ ॥

युद्धस्थलमें जूएके समान वह विशाल भुजा शत्रुओंका शोक बढ़ानेवाली और सुहृदोंको दीर्घकालतक आनन्दित करनेवाली थी । समुद्रपर्यन्त अखण्ड भूमण्डलकी रक्षाका भार उनकी उसी भुजापर प्रतिष्ठित था ॥ ६ ॥

अस्यता च पुनः सव्यं ज्याघातविहतत्वचम् ।
दक्षिणो दक्षिणं बाहुं महापरिघसंनिभम् ॥ ७ ॥
गोसहस्रप्रदातारं ह्युपधाय भुजं महत् ।
अद्य मे तरणं वाथ मरणं सागरस्य वा ॥ ८ ॥
इति रामो धृतिं कृत्वा महाबाहुर्महोदधिम् ।
अधिशिश्ये च विधिवत् प्रयतो नियतो मुनिः ॥ ९ ॥

बायीं ओरको बारंबार बाण चलानेके कारण प्रत्यञ्चाके आघातसे जिसकी त्वचापर रगड़ पड़ गयी थी, जो विशाल परिघके समान सुदृढ़ एवं बलिष्ठ थी तथा जिसके द्वारा उन्होंने सहस्रों गौओंका दान किया था, उस विशाल दाहिनी भुजाका तकिया लगाकर उदारता आदि गुणोंसे युक्त महाबाहु श्रीराम 'आज या तो मैं समुद्रके पार जाऊँगा या मेरेद्वारा समुद्रका संहार होगा' ऐसा निश्चय करके मौन हो मन, वाणी और शरीरको संयममें रखकर महासागरको अनुकूल करनेके उद्देश्यसे विधिपूर्वक धरना देते हुए उस कुशासनपर सो गये ॥ ७–९ ॥

तस्य रामस्य सुप्तस्य कुशास्तीर्णे महीतले ।
नियमादप्रमत्तस्य निशास्तिस्रोऽभिजग्मतुः ॥ १० ॥

कुशा बिछी हुई भूमिपर सोकर नियमसे असावधान न होते हुए श्रीरामकी वहाँ तीन रातें व्यतीत हो गयीं ॥ १० ॥

स त्रिरात्रोषितस्तत्र नयज्ञो धर्मवत्सलः ।
उपासत तदा रामः सागरं सरितां पतिम् ॥ ११ ॥
न च दर्शयते रूपं मन्दो रामस्य सागरः ।
प्रयतेनापि रामेण यथार्हमभिपूजितः ॥ १२ ॥

---

[1] तक्षकनागका रंग लाल माना गया है । (देखिये महाभारत, आदिपर्व ४४ । २-३)

इस प्रकार उस समय वहाँ तीन रात लेटे रहकर नीतिके ज्ञाता, धर्मवत्सल श्रीरामचन्द्रजी सरिताओंके स्वामी समुद्रकी उपासना करते रहे; परंतु नियमपूर्वक रहते हुए श्रीरामके द्वारा यथोचित पूजा और सत्कार पाकर भी उस मन्दमति महासागरने उन्हें अपने आधिदैविक रूपका दर्शन नहीं कराया—वह उनके समक्ष प्रकट नहीं हुआ ॥११-१२॥

समुद्रस्य ततः क्रुद्धो रामो रक्तान्तलोचनः ।
समीपस्थमुवाचेदं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ १३ ॥

तब अरुणनेत्रप्रान्तवाले भगवान् श्रीराम समुद्रपर कुपित हो उठे और पास ही खड़े हुए शुभलक्षणयुक्त लक्ष्मणसे इस प्रकार बोले—॥ १३ ॥

अवलेपः समुद्रस्य न दर्शयति यः स्वयम् ।
प्रशमश्च क्षमा चैव आर्जवं प्रियवादिता ॥ १४ ॥
असामर्थ्यफला ह्येते निर्गुणेषु सतां गुणाः ।

'समुद्रको अपने ऊपर बड़ा अहङ्कार है, जिससे वह स्वयं मेरे सामने प्रकट नहीं हो रहा है। शान्ति, क्षमा, सरलता और मधुर भाषण—ये जो सत्पुरुषोंके गुण हैं, इनका गुणहीनोंके प्रति प्रयोग करनेपर यही परिणाम होता है कि वे उस गुणवान् पुरुषको भी असमर्थ समझ लेते हैं ॥

आत्मप्रशंसिनं दुष्टं धृष्टं विपरिधावकम् ॥ १५ ॥
सर्वत्रोत्सृष्टदण्डं च लोकः सत्कुरुते नरम् ।

'जो अपनी प्रशंसा करनेवाला, दुष्ट, धृष्ट, सर्वत्र धावा करनेवाला और अच्छे-बुरे सभी लोगोंपर कठोर दण्डका प्रयोग करनेवाला होता है, उस मनुष्यका सब लोग सत्कार करते हैं ॥ १५½ ॥

न साम्ना शक्यते कीर्तिर्न साम्ना शक्यते यशः ॥ १६ ॥
प्राप्तुं लक्ष्मण लोकेऽस्मिञ्जयो वा रणमूर्धनि ।

'लक्ष्मण ! सामनीति (शान्ति) के द्वारा इस लोकमें न तो कीर्ति प्राप्त की जा सकती है, न यशका प्रसार हो सकता है और न संग्राममें विजय ही पायी जा सकती है ॥

अद्य मद्बाणनिर्भग्नैर्मकरैर्मकरालयम् ॥ १७ ॥
निरुद्धतोयं सौमित्रे प्लवद्भिः पश्य सर्वतः ।

'सुमित्रानन्दन ! आज मेरे बाणोंसे खण्ड-खण्ड हो मगर और मत्स्य सब ओर उतराकर बहने लगेंगे और उनकी लाशोंसे इस मकरालय (समुद्र) का जल आच्छादित हो जायगा। तुम यह दृश्य आज अपनी आँखों देख लो ॥ १७½॥

भोगिनां पश्य भोगानि मया भिन्नानि लक्ष्मण ॥ १८ ॥
महाभोगानि मत्स्यानां करिणां च करानिह ।

'लक्ष्मण ! तुम देखो कि मैं यहाँ जलमें रहनेवाले सर्पोंके शरीर, मत्स्योंके विशाल कलेवर और जल-हस्तियोंके शुण्ड-दण्डके किस तरह टुकड़े-टुकड़े कर डालता हूँ ॥

सशङ्खशुक्तिकाजालं समीनमकरं तथा ॥ १९ ॥
अद्य युद्धेन महता समुद्रं परिशोषये ।

'आज महान् युद्ध ठानकर शङ्खों और सीपियोंके समुदाय तथा मत्स्यों और मगरोंसहित समुद्रको मैं अभी सुखाये देता हूँ ॥ १९½ ॥

क्षमया हि समायुक्तं मामयं मकरालयः ॥ २० ॥
असमर्थं विजानाति धिक् क्षमामीदृशे जने ।

'मगरोंका निवासभूत यह समुद्र मुझे क्षमासे युक्त देख असमर्थ समझने लगा है। ऐसे मूर्खोंके प्रति की गयी क्षमाको धिक्कार है ॥ २०½ ॥

न दर्शयति साम्ना मे सागरो रूपमात्मनः ॥ २१ ॥
चापमानय सौमित्रे शरांश्चाशीविषोपमान् ।
समुद्रं शोषयिष्यामि पद्भ्यां यान्तु प्लवंगमाः ॥ २२ ॥

'सुमित्रानन्दन ! सामनीतिका आश्रय लेनेसे यह समुद्र मेरे सामने अपना रूप नहीं प्रकट कर रहा है, इसलिये धनुष तथा विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाण ले आओ। मैं समुद्रको सुखा डालूँगा; फिर वानरलोग पैदल ही लङ्कापुरीको चलें ॥ २१-२२ ॥

अद्याक्षोभ्यमपि क्रुद्धः क्षोभयिष्यामि सागरम् ।
वेलासु कृतमर्यादं सहस्रोर्मिसमाकुलम् ॥ २३ ॥
निर्मर्यादं करिष्यामि सायकैर्वरुणालयम् ।
महार्णवं क्षोभयिष्ये महादानवसंकुलम् ॥ २४ ॥

'यद्यपि समुद्रको अक्षोभ्य कहा गया है; फिर भी आज कुपित होकर मैं इसे विक्षुब्ध कर दूँगा। इसमें सहस्रों तरङ्गें उठती रहती हैं; फिर भी यह सदा अपने तटकी मर्यादा (सीमा) में ही रहता है। किंतु अपने बाणोंसे मारकर मैं इसकी मर्यादा नष्ट कर दूँगा। बड़े-बड़े दानवोंसे भरे हुए इस महासागरमें हलचल मचा दूँगा—तूफान ला दूँगा' ॥

एवमुक्त्वा धनुष्पाणिः क्रोधविस्फारितेक्षणः ।
बभूव रामो दुर्धर्षो युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥ २५ ॥

यों कहकर दुर्धर्ष वीर भगवान् श्रीरामने हाथमें धनुष ले लिया। वे क्रोधसे आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे और प्रलयाग्निके समान प्रज्वलित हो उठे ॥ २५ ॥

सम्पीड्य च धनुर्घोरं कम्पयित्वा शरैर्जगत् ।
मुमोच विशिखानुग्रान् वज्रानिव शतक्रतुः ॥ २६ ॥

उन्होंने अपने भयंकर धनुषको धीरेसे दबाकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी और उसकी टङ्कारसे सारे जगत्‌को कम्पित करते हुए बड़े भयंकर बाण छोड़े, मानो इन्द्रने बहुत-से वज्रोंका प्रहार किया हो ॥ २६ ॥

ते ज्वलन्तो महावेगास्तेजसा सायकोत्तमाः ।
प्रविशन्ति समुद्रस्य जलं वित्रस्तपन्नगम् ॥ २७ ॥

तेजसे प्रज्वलित होते हुए वे महान् वेगशाली श्रेष्ठ बाण समुद्रके जलमें घुस गये । वहाँ रहनेवाले सर्प भयसे थर्रा उठे ॥ २७ ॥

तोयवेगः समुद्रस्य समीनमकरो महान् ।
स बभूव महाघोरः समारुतरवस्तथा ॥ २८ ॥

'मत्स्यों और मगरोंसहित महासागरके जलका महान् वेग सहसा अत्यन्त भयंकर हो गया । वहाँ तूफानका कोलाहल छा गया ॥ २८ ॥

महोर्मिमालाविततः शङ्खशुक्तिसमावृतः ।
सधूमः परिवृत्तोर्मिः सहसासीन्महोदधिः ॥ २९ ॥

बड़ी-बड़ी तरङ्ग-मालाओंसे सारा समुद्र व्याप्त हो उठा । शङ्ख और सीपियाँ पानीके ऊपर छा गयीं । वहाँ धुआँ उठने लगा और सारे महासागरमें सहसा बड़ी-बड़ी लहरें चक्कर काटने लगीं ॥ २९ ॥

व्यथिताः पन्नगाश्चासन् दीप्तास्या दीप्तलोचनाः ।
दानवाश्च महावीर्याः पातालतलवासिनः ॥ ३० ॥

चमकीले फन और दीप्तिशाली नेत्रोंवाले सर्प व्यथित हो उठे तथा पातालमें रहनेवाले महापराक्रमी दानव भी व्याकुल हो गये ॥ ३० ॥

ऊर्मयः सिन्धुराजस्य सनक्रमकरास्तथा ।
विन्ध्यमन्दरसंकाशाः समुत्पेतुः सहस्रशः ॥ ३१ ॥

सिन्धुराजकी सहस्रों लहरें जो विन्ध्याचल और मन्दराचलके समान विशाल एवं विस्तृत थीं, नाकों और मकरोंको साथ लिये ऊपरको उठने लगीं ॥ ३१ ॥

आघूर्णिततरङ्गौघः सम्भ्रान्तोरगराक्षसः ।
उद्वर्तितमहाग्राहः सघोषो वरुणालयः ॥ ३२ ॥

सागरकी उत्ताल तरङ्ग-मालाएँ झूमने और चक्कर काटने लगीं । वहाँ निवास करनेवाले नाग और राक्षस घबरा गये । बड़े-बड़े ग्राह ऊपरको उछलने लगे तथा वरुणके निवासभूत उस समुद्रमें सब ओर भारी कोलाहल मच गया ॥ ३२ ॥

ततस्तु तं राघवमुग्रवेगं
प्रकर्षमाणं धनुरप्रमेयम् ।
सौमित्रिरुत्पत्य विनिःश्वसन्तं
मामेति चोक्त्वा धनुराललम्बे ॥ ३३ ॥

तदनन्तर श्रीरघुनाथजी रोषसे लंबी साँस लेते हुए अपने भयंकर वेगशाली अनुपम धनुषको पुनः खींचने लगे । यह देख सुमित्राकुमार लक्ष्मण उछलकर उनके पास जा पहुँचे और 'बस, बस, अब नहीं, अब नहीं' ऐसा कहते हुए उन्होंने उनका धनुष पकड़ लिया ॥ ३३ ॥

एतद्विनापि ह्युदधेस्तवाद्य
सम्पत्स्यते वीरतमस्य कार्यम् ।
भवद्विधाः क्रोधवशं न यान्ति
दीर्घं भवान् पश्यतु साधुवृत्तम् ॥ ३४ ॥

(फिर वे बोले—) 'भैया ! आप वीर-शिरोमणि हैं । इस समुद्रको नष्ट किये बिना भी आपका कार्य सम्पन्न हो जायगा । आप-जैसे महापुरुष क्रोधके अधीन नहीं होते हैं । अब आप सुदीर्घकालतक उपयोगमें लाये जानेवाले किसी अच्छे उपायपर दृष्टि डालें—कोई दूसरी उत्तम युक्ति सोचें' ॥

अन्तर्हितैश्चापि तथान्तरिक्षे
ब्रह्मर्षिभिश्चैव सुरर्षिभिश्च ।
शब्दः कृतः कष्टमिति ब्रुवद्भि-
र्मामेति चोक्त्वा महता स्वरेण ॥ ३५ ॥

इसी समय अन्तरिक्षमें अव्यक्तरूपसे स्थित महर्षियों और देवर्षियोंने भी 'हाय ! यह तो बड़े कष्टकी बात है' ऐसा कहते हुए 'अब नहीं, अब नहीं' कहकर बड़े जोरसे कोलाहल किया ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें इकीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २१ ॥

* * *

द्वाविंशः सर्गः

समुद्रकी सलाहके अनुसार नलके द्वारा सागरपर सौ योजन लंबे पुलका निर्माण तथा उसके द्वारा श्रीराम आदिसहित वानरसेनाका उस पार पहुँचकर पड़ाव डालना

अथोवाच रघुश्रेष्ठः सागरं दारुणं वचः ।
अद्य त्वां शोषयिष्यामि सपातालं महार्णव ॥ १ ॥

तब रघुकुलतिलक श्रीरामने समुद्रसे कठोर शब्दोंमें कहा—'महासागर ! आज मैं पातालसहित तुझे सुखा डालूँगा ॥ १ ॥

शरनिर्दग्धतोयस्य परिशुष्कस्य सागर ।
मया निहतसत्त्वस्य पांसुरुत्पद्यते महान् ॥ २ ॥

'सागर ! मेरे बाणोंसे तुम्हारी सारी जलराशि दग्ध हो जायगी, तू सूख जायगा और तेरे भीतर रहनेवाले सब जीव

नष्ट हो जायँगे। उस दशामें तेरे यहाँ जलके स्थानमें विशाल बालुकाराशि पैदा हो जायगी ॥ २ ॥

मत्कार्मुकविसृष्टेन शरवर्षेण सागर।
परं तीरं गमिष्यन्ति पद्भिरेव प्लवंगमाः ॥ ३ ॥

'समुद्र! मेरे धनुषद्वारा की गयी बाण-वर्षासे जब तेरी ऐसी दशा हो जायगी, तब वानरलोग पैदल ही चलकर तेरे उस पार पहुँच जायँगे ॥ ३ ॥

विचिन्वन्नाभिजानासि पौरुषं नापि विक्रमम्।
दानवालय संतापं मत्तो नाम गमिष्यसि ॥ ४ ॥

'दानवोंके निवासस्थान! तू केवल चारों ओरसे बहकर आयी हुई जलराशिका संग्रह करता है। तुझे मेरे बल और पराक्रमका पता नहीं है। किंतु याद रख, (इस उपेक्षाके कारण) तुझे मुझसे भारी संताप प्राप्त होगा' ॥ ४ ॥

ब्राह्मेणास्त्रेण संयोज्य ब्रह्मदण्डनिभं शरम्।
संयोज्य धनुषि श्रेष्ठे विचकर्ष महाबलः ॥ ५ ॥

यों कहकर महाबली श्रीरामने एक ब्रह्मदण्डके समान भयंकर बाणको ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित करके अपने श्रेष्ठ धनुष-पर चढ़ाकर खींचा ॥ ५ ॥

तस्मिन् विकृष्टे सहसा राघवेण शरासने।
रोदसी सम्पफालेव पर्वताश्च चकम्पिरे ॥ ६ ॥

श्रीरघुनाथजीके द्वारा सहसा उस धनुषके खींचे जाते ही पृथ्वी और आकाश मानो फटने लगे और पर्वत डगमगा उठे ॥ ६ ॥

तमश्च लोकमावव्रे दिशश्च न चकाशिरे।
प्रतिचुक्षुभिरे चाशु सरांसि सरितस्तथा ॥ ७ ॥

सारे संसारमें अन्धकार छा गया। किसीको दिशाओंका ज्ञान न रहा। सरिताओं और सरोवरोंमें तत्काल हलचल पैदा हो गयी ॥ ७ ॥

तिर्यक् च सह नक्षत्रैः संगतौ चन्द्रभास्करौ।
भास्करांशुभिरादीप्तं तमसा च समावृतम् ॥ ८ ॥

चन्द्रमा और सूर्य नक्षत्रोंके साथ तिर्यक्-गतिसे चलने लगे। सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित होनेपर भी आकाशमें अन्धकार छा गया ॥ ८ ॥

प्रचकाशे तदाऽऽकाशमुल्काशतविदीपितम्।
अन्तरिक्षाच्च निर्घाता निर्जग्मुरतुलस्वनाः ॥ ९ ॥

उस समय आकाशमें सैकड़ों उल्काएँ प्रज्वलित होकर उसे प्रकाशित करने लगीं तथा अन्तरिक्षसे अनुपम एवं भारी गड़गड़ाहटके साथ वज्रपात होने लगे ॥ ९ ॥

वपुःप्रकर्षेण ववुर्दिव्यमारुतपङ्क्तयः।
बभञ्ज च तदा वृक्षाञ्जलदानुद्वहन्मुहुः ॥ १० ॥
आरुजंश्चैव शैलाग्राञ्छिखराणि बभञ्ज च।

परिवह आदि वायुभेदोंका समूह बड़े वेगसे बहने लगा। वह मेघोंकी घटाको उड़ाता हुआ बारंबार वृक्षोंको तोड़ने, बड़े-बड़े पर्वतोंसे टकराने और उनके शिखरोंको खण्डित करके गिराने लगा ॥ १०½ ॥

दिवि च स्म महामेघाः संहताः समहास्वनाः ॥ ११ ॥
मुमुचुर्वैद्युतानग्नींस्ते महाशनयस्तदा।
यानि भूतानि दृश्यानि चुक्रुशुश्चाशनेः समम् ॥ १२ ॥
अदृश्यानि च भूतानि मुमुचुर्भैरवस्वनम्।

आकाशमें महान् वेगशाली विशाल वज्र भारी गड़गड़ाहट-के साथ टकराकर उस समय वैद्युत अग्निकी वर्षा करने लगे। जो प्राणी दिखायी दे रहे थे और जो नहीं दिखायी देते थे, वे सब बिजलीकी कड़कके समान भयंकर शब्द करने लगे ॥ ११-१२½ ॥

शिश्यिरे चाभिभूतानि संत्रस्तान्युद्विजन्ति च ॥ १३ ॥
सम्प्रविव्यथिरे चापि न च पस्पन्दिरे भयात्।

उनमेंसे कितने ही अभिभूत होकर धराशायी हो गये। कितने ही भयभीत और उद्विग्न हो उठे। कोई व्यथासे व्याकुल हो गये और कितने ही भयके मारे जडवत् हो गये ॥ १३½ ॥

सह भूतैः सतोयोर्मिः सनागः सहराक्षसः ॥ १४ ॥
सहसाभूत् ततो वेगाद् भीमवेगो महोदधिः।
योजनं व्यतिचक्राम वेलामन्यत्र सम्प्लवात् ॥ १५ ॥

समुद्र अपने भीतर रहनेवाले प्राणियों, तरङ्गों, सर्पों और राक्षसोंसहित सहसा भयानक वेगसे युक्त हो गया और प्रलय-कालके बिना ही तीव्रगतिसे अपनी मर्यादा लाँघकर एक-एक योजन आगे बढ़ गया ॥ १४-१५ ॥

तं तथा समतिक्रान्तं नातिचक्राम राघवः।
समुद्धतममित्रघ्नो रामो नदनदीपतिम् ॥ १६ ॥

इस प्रकार नदों और नदियोंके स्वामी उस उद्धत समुद्रके मर्यादा लाँघकर बढ़ जानेपर भी शत्रुसूदन श्रीरामचन्द्रजी अपने स्थानसे पीछे नहीं हटे ॥ १६ ॥

ततो मध्यात् समुद्रस्य सागरः स्वयमुत्थितः।
उदयाद्रिमहाशैलान्मेरोरिव दिवाकरः ॥ १७ ॥

तब समुद्रके बीचसे सागर स्वयं मूर्तिमान् होकर प्रकट हुआ, मानो महाशैल मेरुपर्वतके अङ्गभूत उदयाचलसे सूर्यदेव उदित हुए हों ॥ १७ ॥

पन्नगैः सह दीप्तास्यैः समुद्रः प्रत्यदृश्यत।
स्निग्धवैदूर्यसंकाशो जाम्बूनदविभूषणः ॥ १८ ॥

चमकीले मुखवाले सर्पोंके साथ समुद्रका दर्शन हुआ। उसका वर्ण स्निग्ध वैदूर्यमणिके समान श्याम था। उसने जाम्बूनदनामक सुवर्णके बने हुए आभूषण पहन रक्खे थे ॥

रक्तमाल्याम्बरधरः पद्मपत्रनिभेक्षणः ।
सर्वपुष्पमयीं दिव्यां शिरसा धारयन् स्रजम् ॥ १९ ॥

लाल रंगके फूलोंकी माला तथा लाल ही वस्त्र धारण किये थे । उसके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान सुन्दर थे । उसने सिरपर एक दिव्य पुष्पमाला धारण कर रक्खी थी, जो सब प्रकारके फूलोंसे बनायी गयी थी ॥ १९ ॥

जातरूपमयैश्चैव तपनीयविभूषणैः ।
आत्मजानां च रत्नानां भूषितो भूषणोत्तमैः ॥ २० ॥

सुवर्ण और तपे हुए काञ्चनके आभूषण उसकी शोभा बढ़ाते थे । वह अपने ही भीतर उत्पन्न हुए रत्नोंके उत्तम आभूषणोंसे विभूषित था ॥ २० ॥

धातुभिर्मण्डितः शैलो विविधैर्हिमवानिव ।
एकावलीमध्यगतं तरलं पाण्डरप्रभम् ॥ २१ ॥
विपुलेनोरसा बिभ्रत्कौस्तुभस्य सहोदरम् ।

इसीलिये नाना प्रकारके धातुओंसे अलंकृत हिमवान् पर्वतके समान शोभा पाता था । वह अपने विशाल वक्षःस्थलपर कौस्तुभ मणिके सहोदर (सदृश) एक श्वेत प्रभासे युक्त मुख्य रत्न धारण किये हुए था, जो मोतियोंकी इकहरी मालाके मध्यभागमें प्रकाशित हो रहा था ॥ २१½ ॥

आघूर्णिततरङ्गौघः कालिकानिलसंकुलः ॥ २२ ॥
गङ्गासिन्धुप्रधानाभिरापगाभिः समावृतः ।

चञ्चल तरङ्गें उसे घेरे हुए थीं । मेघमाला और वायुसे वह व्याप्त था तथा गङ्गा और सिन्धु आदि नदियाँ उसे सब ओरसे घेरकर खड़ी थीं ॥ २२½ ॥

उद्वर्तितमहाग्राहः सम्भ्रान्तोरगराक्षसः ॥ २३ ॥
देवतानां सुरूपाभिर्नानारूपाभिरीश्वरः ।
सागरः समुपक्रम्य पूर्वमामन्त्र्य वीर्यवान् ॥ २४ ॥
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं राघवं शरपाणिनम् ॥ २५ ॥

उसके भीतर बड़े-बड़े ग्राह उद्भ्रान्त हो रहे थे, नाग और राक्षस घबराये हुए थे । देवताओंके समान सुन्दर रूप धारण करके आयी हुई विभिन्न रूपवाली नदियोंके साथ शक्तिशाली नदीपति समुद्रने निकट आकर पहले धनुर्धर श्रीरघुनाथजीको सम्बोधित किया और फिर हाथ जोड़कर कहा—२३-२५

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च राघव ।
स्वभावे सौम्य तिष्ठन्ति शाश्वतं मार्गमाश्रिताः ॥ २६ ॥

'सौम्य रघुनन्दन ! पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तेज—ये सर्वदा अपने स्वभावमें स्थित रहते हैं, अपने सनातन मार्गको कभी नहीं छोड़ते—सदा उसीके आश्रित रहते हैं ॥ २६ ॥

तत्स्वभावो ममाप्येष यदगाधोऽहमप्लवः ।
विकारस्तु भवेद् गाध एतत् ते प्रवदाम्यहम् ॥ २७ ॥

'मेरा भी यह स्वभाव ही है जो मैं अगाध और अथाह हूँ—कोई मेरे पार नहीं जा सकता । यदि मेरी थाह मिल जाय तो यह विकार—मेरे स्वभावका व्यतिक्रम ही होगा । इसलिये मैं आपसे पार होनेका यह उपाय बताता हूँ ॥ २७ ॥

न कामान्न च लोभाद् वा न भयात् पार्थिवात्मज ।
ग्राहनक्राकुलजलं स्तम्भयेयं कथंचन ॥ २८ ॥

'राजकुमार ! मैं मगर और नाके आदिसे भरे हुए अपने जलको किसी कामनासे, लोभसे अथवा भयसे किसी तरह स्तम्भित नहीं होने दूँगा ॥ २८ ॥

विधास्ये येन गन्तासि विषहिष्येऽप्यहं तथा ।
न ग्राहा विधमिष्यन्ति यावत्सेना तरिष्यति ।
हरीणां तरणे राम करिष्यामि यथा स्थलम् ॥ २९ ॥

'श्रीराम ! मैं ऐसा उपाय बताऊँगा, जिससे आप मेरे पार चले जायँगे, ग्राह वानरोंको कष्ट नहीं देंगे, सारी सेना पार उतर जायगी और मुझे भी खेद नहीं होगा । मैं आसानीसे सब कुछ सह लूँगा । वानरोंके पार जानेके लिये जिस प्रकार पुल बन जाय, वैसा प्रयत्न मैं करूँगा' ॥ २९ ॥

तमब्रवीत् तदा रामः शृणु मे वरुणालय ।
अमोघोऽयं महाबाणः कस्मिन् देशे निपात्यताम् ॥ ३० ॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने उससे कहा—'वरुणालय ! मेरी बात सुनो । मेरा यह विशाल बाण अमोघ है । बताओ, इसे किस स्थानपर छोड़ा जाय' ॥ ३० ॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा तं च दृष्ट्वा महाशरम् ।
महोदधिर्महातेजा राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह वचन सुनकर और उस महान् बाणको देखकर महातेजस्वी महासागरने रघुनाथजीसे कहा—॥

उत्तरेणावकाशोऽस्ति कश्चित् पुण्यतरो मम ।
द्रुमकुल्य इति ख्यातो लोके ख्यातो यथा भवान् ॥ ३२ ॥

'प्रभो ! जैसे जगत्‌में आप सर्वत्र विख्यात एवं पुण्यात्मा हैं, उसी प्रकार मेरे उत्तरकी ओर द्रुमकुल्य नामसे विख्यात एक बड़ा ही पवित्र देश है ॥ ३२ ॥

उग्रदर्शनकर्माणो बहवस्तत्र दस्यवः ।
आभीरप्रमुखाः पापाः पिबन्ति सलिलं मम ॥ ३३ ॥

'वहाँ आभीर आदि जातियोंके बहुत-से मनुष्य निवास करते हैं, जिनके रूप और कर्म बड़े ही भयानक हैं । वे सब-के-सब पापी और लुटेरे हैं । वे लोग मेरा जल पीते हैं ॥ ३३ ॥

तैर्न तत्स्पर्शनं पापं सहेयं पापकर्मभिः ।
अमोघः क्रियतां राम अयं तत्र शरोत्तमः ॥ ३४ ॥

'उन पापाचारियोंका स्पर्श मुझे प्राप्त होता रहता है, इस

पापको मैं नहीं सह सकता । श्रीराम ! आप अपने इस उत्तम बाणको वहीं सफल कीजिये' ॥ ३४ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सागरस्य महात्मनः ।
मुमोच तं शरं दीप्तं परं सागरदर्शनात् ॥ ३५ ॥

महामना समुद्रका यह वचन सुनकर सागरके दिखाये अनुसार उसी देशमें श्रीरामचन्द्रजीने वह अत्यन्त प्रज्वलित बाण छोड़ दिया ॥ ३५ ॥

तेन तन्मरुकान्तारं पृथिव्यां किल विश्रुतम् ।
निपातितः शरो यत्र वज्राशनिसमप्रभः ॥ ३६ ॥

वह वज्र और अशनिके समान तेजस्वी बाण जिस स्थानपर गिरा था, वह स्थान उस बाणके कारण ही पृथ्वीमें दुर्गम मरुभूमिके नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ३६ ॥

ननाद च तदा तत्र वसुधा शल्यपीडिता ।
तस्माद् व्रणमुखात् तोयमुत्पपात रसातलात् ॥ ३७ ॥

उस बाणसे पीड़ित होकर उस समय वसुधा आर्तनाद कर उठी । उसकी चोटसे जो छेद हुआ, उसमें होकर रसातलका जल ऊपरको उछलने लगा ॥ ३७ ॥

स बभूव तदा कूपो व्रण इत्येव विश्रुतः ।
सततं चोत्थितं तोयं समुद्रस्येव दृश्यते ॥ ३८ ॥

वह छिद्र कुएँके समान हो गया और व्रणके नामसे प्रसिद्ध हुआ । उस कुएँसे सदा निकलता हुआ जल समुद्रके जलकी भाँति ही दिखायी देता है ॥ ३८ ॥

अवदारणशब्दश्च दारुणः समपद्यत ।
तस्मात् तद् बाणपातेन अपः कुक्षिष्वशोषयत् ॥ ३९ ॥

उस समय वहाँ भूमिके विदीर्ण होनेका भयंकर शब्द सुनायी पड़ा । उस बाणको गिराकर वहाँके भूतलकी कुक्षिमें (तालाब-पोखरे आदिमें) वर्तमान जलको श्रीरामने सुखा दिया ॥ ३९ ॥

विख्यातं त्रिषु लोकेषु मरुकान्तारमेव च ।
शोषयित्वा तु तं कुक्षिं रामो दशरथात्मजः ॥ ४० ॥
वरं तस्मै ददौ विद्वान् मरवेऽमरविक्रमः ॥ ४१ ॥

तबसे वह स्थान तीनों लोकोंमें मरुकान्तारके नामसे ही विख्यात हो गया । जो पहले समुद्रका कुक्षिप्रदेश था, उसे सुखाकर देवोपम पराक्रमी विद्वान् दशरथनन्दन श्रीरामने उस मरुभूमिको वरदान दिया ॥ ४०-४१ ॥

पशव्यश्चाल्परोगश्च फलमूलरसायुतः ।
बहुस्नेहो बहुक्षीरः सुगन्धिर्विविधौषधिः ॥ ४२ ॥

'यह मरुभूमि पशुओंके लिये हितकारी होगी । यहाँ रोग कम होंगे । यह भूमि फल, मूल और रसोंसे सम्पन्न होगी । यहाँ घी आदि चिकने पदार्थ अधिक सुलभ होंगे, दूधकी भी बहुतायत होगी । यहाँ सुगन्ध छायी रहेगी और अनेक प्रकारकी ओषधियाँ उत्पन्न होंगी' ॥ ४२ ॥

एवमेतैश्च संयुक्तो बहुभिः संयुतो मरुः ।
रामस्य वरदानाच्च शिवः पन्था बभूव ह ॥ ४३ ॥

इस प्रकार भगवान् श्रीरामके वरदानसे वह मरुप्रदेश इस तरहके बहुसंख्यक गुणोंसे सम्पन्न हो सबके लिये मङ्गलकारी मार्ग बन गया ॥ ४३ ॥

तस्मिन् दग्धे तदा कुक्षौ समुद्रः सरितां पतिः ।
राघवं सर्वशास्त्रज्ञमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४४ ॥

उस कुक्षिस्थानके दग्ध हो जानेपर सरिताओंके स्वामी समुद्रने सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता श्रीरघुनाथजीसे कहा—॥४४॥

अयं सौम्य नलो नाम तनयो विश्वकर्मणः ।
पित्रा दत्तवरः श्रीमान् प्रीतिमान् विश्वकर्मणः ॥ ४५ ॥

'सौम्य ! आपकी सेनामें जो यह नल नामक कान्तिमान् वानर है, साक्षात् विश्वकर्माका पुत्र है । इसे इसके पिताने यह वर दिया है कि 'तुम मेरे ही समान समस्त शिल्पकलामें निपुण होओगे ।' प्रभो ! आप भी तो इस विश्वके स्रष्टा विश्वकर्मा हैं । इस नलके हृदयमें आपके प्रति बड़ा प्रेम है ॥४५॥

एष सेतुं महोत्साहः करोतु मयि वानरः ।
तमहं धारयिष्यामि यथा ह्येष पिता तथा ॥ ४६ ॥

'यह महान् उत्साही वानर अपने पिताके समान ही शिल्पकर्ममें समर्थ है, अतः यह मेरे ऊपर पुलका निर्माण करे । मैं उस पुलको धारण करूँगा' ॥ ४६ ॥

एवमुक्त्वोदधिर्नष्टः समुत्थाय नलस्ततः ।
अब्रवीद् वानरश्रेष्ठो वाक्यं रामं महाबलम् ॥ ४७ ॥

यों कहकर समुद्र अदृश्य हो गया । तब वानरश्रेष्ठ नल उठकर महाबली भगवान् श्रीरामसे बोला—॥ ४७ ॥

अहं सेतुं करिष्यामि विस्तीर्णे मकरालये ।
पितुः सामर्थ्यमासाद्य तत्त्वमाह महोदधिः ॥ ४८ ॥

'प्रभो ! मैं पिताकी दी हुई शक्तिको पाकर इस विस्तृत समुद्रपर सेतुका निर्माण करूँगा । महासागरने ठीक कहा है ॥ ४८ ॥

दण्ड एव वरो लोके पुरुषस्येति मे मतिः ।
धिक् क्षमामकृतज्ञेषु सान्त्वं दानमथापि वा ॥ ४९ ॥

'संसारमें पुरुषके लिये अकृतज्ञोंके प्रति दण्डनीतिका प्रयोग ही सबसे बड़ा अर्थसाधक है, ऐसा मेरा विश्वास होता है । वैसे लोगोंके प्रति क्षमा, सान्त्वना और दाननीतिके प्रयोगको धिक्कार है ॥ ४९ ॥

अयं हि सागरो भीमः सेतुकर्मदिदृक्षया ।
ददौ दण्डभयाद् गाधं राघवाय महोदधिः ॥ ५० ॥

'इस भयानक समुद्रको राजा सगरके पुत्रोंने ही बढ़ाया है। फिर भी इसने कृतज्ञतासे नहीं, दण्डके भयसे ही सेतुकर्म देखनेकी इच्छा मनमें लाकर श्रीरघुनाथजीको अपनी थाह दी है ॥ ५० ॥

मम मातुर्वरो दत्तो मन्दरे विश्वकर्मणा।
मया तु सदृशः पुत्रस्तव देवि भविष्यति ॥ ५१ ॥

'मन्दराचलपर विश्वकर्माजीने मेरी माताको यह वर दिया था कि 'देवि ! तुम्हारे गर्भसे मेरे ही समान पुत्र होगा' ॥५१॥

औरसस्तस्य पुत्रोऽहं सदृशो विश्वकर्मणा।
स्मारितोऽस्म्यहमेतेन तत्त्वमाह महोदधिः।
न चाप्यहमनुक्तो वः प्रब्रूयामात्मनो गुणान् ॥ ५२ ॥

'इस प्रकार मैं विश्वकर्माका औरस पुत्र हूँ और शिल्पकर्ममें उन्हींके समान हूँ। इस समुद्रने आज मुझे इन सब बातोंका स्मरण दिला दिया है। महासागरने जो कुछ कहा है, ठीक है। मैं बिना पूछे आपलोगोंसे अपने गुणोंको नहीं बता सकता था, इसीलिये अबतक चुप था ॥ ५२ ॥

समर्थश्चाप्यहं सेतुं कर्तुं वै वरुणालये।
तस्मादद्यैव बध्नन्तु सेतुं वानरपुङ्गवाः ॥ ५३ ॥

'मैं महासागरपर पुल बाँधनेमें समर्थ हूँ, अतः सब वानर आज ही पुल बाँधनेका कार्य आरम्भ कर दें' ॥५३॥

ततो विसृष्टा रामेण सर्वतो हरिपुङ्गवाः।
उत्पेततुर्महारण्यं हृष्टाः शतसहस्रशः ॥ ५४ ॥

तब भगवान् श्रीरामके भेजनेसे लाखों बड़े-बड़े वानर हर्ष और उत्साहमें भरकर सब ओर उछलते हुए गये और बड़े-बड़े जंगलोंमें घुस गये ॥ ५४ ॥

ते नगान् नगसंकाशाः शाखामृगगणर्षभाः।
बभञ्जुः पादपांस्तत्र प्रचकर्षुश्च सागरम् ॥ ५५ ॥

वे पर्वतके समान विशालकाय वानरशिरोमणि पर्वत-शिखरों और वृक्षोंको तोड़ देते और उन्हें समुद्रतक खींच लाते थे ॥ ५५ ॥

ते सालैश्चाश्वकर्णैश्च धवैर्वंशैश्च वानराः।
कुटजैरर्जुनैस्तालैस्तिलकैस्तिनिशैरपि ॥ ५६ ॥
बिल्वकैः सप्तपर्णैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितैः।
चूतैश्चाशोकवृक्षैश्च सागरं समपूरयन् ॥ ५७ ॥

वे साल, अश्वकर्ण, धव, बाँस, कुटज, अर्जुन, ताल, तिलक, तिनिश, बेल, छितवन, खिले हुए कनेर, आम और अशोक आदि वृक्षोंसे समुद्रको पाटने लगे ॥ ५६-५७ ॥

समूलांश्च विमूलांश्च पादपान् हरिसत्तमाः।
इन्द्रकेतूनिवोद्यम्य प्रजह्रुर्वानरास्तरून् ॥ ५८ ॥

वे श्रेष्ठ वानर वहाँके वृक्षोंको जड़से उखाड़ लाते या जड़के ऊपरसे भी तोड़ लाते थे। इन्द्रध्वजके समान ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंको उठाये लिये चले आते थे ॥ ५८ ॥

तालान् दाडिमगुल्मांश्च नारिकेलविभीतकान्।
करीरान् बकुलान् निम्बान् समाजह्रुरितस्ततः ॥ ५९ ॥

ताड़ों, अनारकी झाड़ियों, नारियल और बहेड़ेके वृक्षों, करीर, बकुल तथा नीमको भी इधर-उधरसे तोड़-तोड़कर लाने लगे ॥ ५९ ॥

हस्तिमात्रान् महाकायाः पाषाणांश्च महाबलाः।
पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः परिवहन्ति च ॥ ६० ॥

महाकाय महाबली वानर हाथीके समान बड़ी-बड़ी शिलाओं और पर्वतोंको उखाड़कर यन्त्रों (विभिन्न साधनों) द्वारा समुद्रतटपर ले आते थे ॥ ६० ॥

प्रक्षिप्यमाणैरचलैः सहसा जलमुद्धृतम्।
समुत्ससर्प चाकाशमवासर्पत् ततः पुनः ॥ ६१ ॥

शिलाखण्डोंको फेंकनेसे समुद्रका जल सहसा आकाशमें उठ जाता और फिर वहाँसे नीचेको गिर जाता था ॥ ६१ ॥

समुद्रं क्षोभयामासुर्निपतन्तः समन्ततः।
सूत्राण्यन्ये प्रगृह्णन्ति ह्यायतं शतयोजनम् ॥ ६२ ॥

उन वानरोंने सब ओर पत्थर गिराकर समुद्रमें हलचल मचा दी। कुछ दूसरे वानर सौ योजन लंबा सूत पकड़े हुए थे ॥ ६२ ॥

नलश्चक्रे महासेतुं मध्ये नदनदीपतेः।
स तदा क्रियते सेतुर्वानरैर्घोरकर्मभिः ॥ ६३ ॥

नल नदों और नदियोंके स्वामी समुद्रके बीचमें महान् सेतुका निर्माण कर रहे थे। भयंकर कर्म करनेवाले वानरोंने मिल-जुलकर उस समय सेतुनिर्माणका कार्य आरम्भ किया था ॥ ६३ ॥

दण्डानन्ये प्रगृह्णन्ति विचिन्वन्ति तथापरे।
वानरैः शतशस्तत्र रामस्याज्ञापुरःसरैः ॥ ६४ ॥
मेघाभैः पर्वताभैश्च तृणैः काष्ठैर्बबन्धिरे।
पुष्पिताग्रैश्च तरुभिः सेतुं बध्नन्ति वानराः ॥ ६५ ॥

कोई नापनेके लिये दण्ड पकड़ते थे तो कोई सामग्री जुटाते थे। श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा शिरोधार्य करके सैकड़ों वानर जो पर्वतों और मेघोंके समान प्रतीत होते थे, वहाँ तिनकों और काष्ठोंद्वारा भिन्न-भिन्न स्थानोंमें पुल बाँध रहे थे। जिनके अग्रभाग फूलोंसे लदे थे, ऐसे वृक्षोंद्वारा भी वे वानर सेतु बाँधते थे ॥ ६४-६५ ॥

पाषाणांश्च गिरिप्रख्यान् गिरीणां शिखराणि च।
दृश्यन्ते परिधावन्तो गृह्य दानवसंनिभाः ॥ ६६ ॥

पर्वतों-जैसी बड़ी-बड़ी चट्टानें और पर्वत-शिखर लेकर सब ओर दौड़ते वानर दानवोंके समान दिखायी देते थे ॥

शिलानां क्षिप्यमाणानां शैलानां तत्र पात्यताम् ।
बभूव तुमुलः शब्दस्तदा तस्मिन् महोदधौ ॥ ६७ ॥

उस समय उस महासागरमें फेंकी जाती हुई शिलाओं और गिराये जाते हुए पहाड़ोंके गिरनेसे बड़ा भीषण शब्द हो रहा था ॥ ६७ ॥

कृतानि प्रथमेनाह्ना योजनानि चतुर्दश ।
प्रहृष्टैर्गजसंकाशैस्त्वरमाणैः प्लवङ्गमैः ॥ ६८ ॥

हाथीके समान विशालकाय वानर बड़े उत्साह और तेजीके साथ काममें लगे हुए थे । पहले दिन उन्होंने चौदह योजन लंबा पुल बाँधा ॥ ६८ ॥

द्वितीयेन तथैवाह्ना योजनानि तु विंशतिः ।
कृतानि प्लवगैस्तूर्णं भीमकायैर्महाबलैः ॥ ६९ ॥

फिर दूसरे दिन भयंकर शरीरवाले महाबली वानरोंने तेजीसे काम करके बीस योजन लंबा पुल बाँध दिया ॥ ६९ ॥

अह्ना तृतीयेन तथा योजनानि तु सागरे ।
त्वरमाणैर्महाकायैरेकविंशतिरेव च ॥ ७० ॥

तीसरे दिन शीघ्रतापूर्वक काममें जुटे हुए महाकाय कपियोंने समुद्रमें इक्कीस योजन लंबा पुल बाँध दिया ॥७०॥

चतुर्थेन तथा चाह्ना द्वाविंशतिरथापि वा ।
योजनानि महावेगैः कृतानि त्वरितैस्ततः ॥ ७१ ॥

चौथे दिन महान् वेगशाली और शीघ्रकारी वानरोंने बाईस योजन लंबा पुल और बाँध दिया ॥ ७१ ॥

पञ्चमेन तथा चाह्ना प्लवगैः क्षिप्रकारिभिः ।
योजनानि त्रयोविंशत् सुवेलमधिकृत्य वै ॥ ७२ ॥

तथा पाँचवें दिन शीघ्रता करनेवाले उन वानर वीरोंने सुवेल पर्वतके निकटतक तेईस योजन लंबा पुल बाँधा ॥७२॥

स वानरवरः श्रीमान् विश्वकर्मात्मजो बली ।
बबन्ध सागरे सेतुं यथा चास्य पिता तथा ॥ ७३ ॥

इस प्रकार विश्वकर्माके बलवान् पुत्र कान्तिमान् कपिश्रेष्ठ नलने समुद्रमें सौ योजन लंबा पुल तैयार कर दिया । इस कार्यमें वे अपने पिताके समान ही प्रतिभाशाली थे ॥ ७३ ॥

स नलेन कृतः सेतुः सागरे मकरालये ।
शुशुभे सुभगः श्रीमान् स्वातीपथ इवाम्बरे ॥ ७४ ॥

मकरालय समुद्रमें नलके द्वारा निर्मित हुआ वह सुन्दर और शोभाशाली सेतु आकाशमें स्वातीपथ (छायापथ) के समान सुशोभित होता था ॥ ७४ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
आगम्य गगने तस्थुर्द्रष्टुकामास्तदद्भुतम् ॥ ७५ ॥

उस समय देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि उस अद्भुत कार्यको देखनेके लिये आकाशमें आकर खड़े थे ॥

दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ।
ददृशुर्देवगन्धर्वा नलसेतुं सुदुष्करम् ॥ ७६ ॥

नलके बनाये हुए सौ योजन लंबे और दस योजन चौड़े उस पुलको देवताओं और गन्धर्वोंने देखा, जिसे बनाना बहुत ही कठिन काम था ॥ ७६ ॥

आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः ।
तमचिन्त्यमसह्यं च ह्यद्भुतं लोमहर्षणम् ॥ ७७ ॥
ददृशुः सर्वभूतानि सागरे सेतुबन्धनम् ।

वानरलोग भी इधर-उधर उछल-कूदकर गर्जना करते हुए उस अचिन्त्य, असह्य, अद्भुत और रोमाञ्चकारी पुलको देख रहे थे । समस्त प्राणियोंने ही समुद्रमें सेतु बाँधनेका वह कार्य देखा ॥ ७७½ ॥

तानि कोटिसहस्राणि वानराणां महौजसाम् ॥ ७८ ॥
बध्नन्तः सागरे सेतुं जग्मुः पारं महोदधेः ।

इस प्रकार उन सहस्र कोटि (एक खरब) महाबली एवं उत्साही वानरोंका दल पुल बाँधते-बाँधते ही समुद्रके उस पार पहुँच गया ॥ ७८½ ॥

विशालः सुकृतः श्रीमान् सुभूमिः सुसमाहितः ॥ ७९ ॥
अशोभत महान् सेतुः सीमन्त इव सागरे ।

वह पुल बड़ा ही विशाल, सुन्दरतासे बनाया हुआ, शोभासम्पन्न, समतल और सुसम्बद्ध था । वह महान् सेतु सागरमें सीमन्तके समान शोभा पाता था ॥ ७९½ ॥

ततः पारे समुद्रस्य गदापाणिर्विभीषणः ॥ ८० ॥
परेषामभिघातार्थमतिष्ठत् सचिवैः सह ।

पुल तैयार हो जानेपर अपने सचिवोंके साथ विभीषण गदा हाथमें लेकर समुद्रके दूसरे तटपर खड़े हो गये, जिससे शत्रुपक्षीय राक्षस यदि पुल तोड़नेके लिये आवें तो उन्हें दण्ड दिया जा सके ॥ ८०½ ॥

सुग्रीवस्तु ततः प्राह रामं सत्यपराक्रमम् ॥ ८१ ॥
हनूमन्तं त्वमारोह अङ्गदं त्वथ लक्ष्मणः ।
अयं हि विपुलो वीर सागरो मकरालयः ॥ ८२ ॥
वैहायसौ युवामेतौ वानरौ धारयिष्यतः ।

तदनन्तर सुग्रीवने सत्यपराक्रमी श्रीरामसे कहा— 'वीरवर ! आप हनुमान्के कंधेपर चढ़ जाइये और लक्ष्मण अङ्गदकी पीठपर सवार हो लें; क्योंकि यह मकरालय समुद्र बहुत लंबा-चौड़ा है । ये दोनों वानर आकाश-मार्गसे चलनेवाले हैं । अतः ये ही दोनों आप दोनों भाइयोंको धारण कर सकेंगे' ॥ ८१-८२½ ॥

अग्रतस्तस्य सैन्यस्य श्रीमान् रामः सलक्ष्मणः ॥ ८३ ॥
जगाम धन्वी धर्मात्मा सुग्रीवेण समन्वितः ।

इस प्रकार धनुर्धर एवं धर्मात्मा भगवान् श्रीराम

लक्ष्मण और सुग्रीवके साथ उस सेनाके आगे-आगे चले ॥

अन्ये मध्येन गच्छन्ति पार्श्वतोऽन्ये प्लवंगमाः ॥ ८४ ॥
सलिलं प्रपतन्त्यन्ये मार्गमन्ये प्रपेदिरे ।
केचिद् वैहायसगताः सुपर्णा इव पुप्लुवुः ॥ ८५ ॥

दूसरे वानर सेनाके बीचमें और अगल-बगलमें होकर चलने लगे। कितने ही वानर जलमें कूद पड़ते और तैरते हुए चलते थे। दूसरे पुलका मार्ग पकड़कर जाते थे और कितने ही आकाशमें उछलकर गरुड़के समान उड़ते थे॥८४-८५॥

घोषेण महता घोषं सागरस्य समुच्छ्रितम् ।
भीममन्तर्दधे भीमा तरन्ती हरिवाहिनी ॥ ८६ ॥

इस प्रकार पार जाती हुई उस भयंकर वानर-सेनाने अपने महान् घोषसे समुद्रकी बढ़ी हुई भीषण गर्जनाको भी दबा दिया ॥ ८६ ॥

वानराणां हि सा तीर्णा वाहिनी नलसेतुना ।
तीरे निविविशे राज्ञो बहुमूलफलोदके ॥ ८७ ॥

धीरे-धीरे वानरोंकी सारी सेना नलके बनाये हुए पुलसे समुद्रके उस पार पहुँच गयी। राजा सुग्रीवने फल, मूल और जलकी अधिकता देख सागरके तटपर ही सेनाका पड़ाव डाला ॥ ८७ ॥

तदद्भुतं राघवकर्म दुष्करं
समीक्ष्य देवाः सह सिद्धचारणैः ।
उपेत्य रामं सहसा महर्षिभि-
स्तमभ्यषिञ्चन् सुशुभैर्जलैः पृथक् ॥ ८८ ॥

भगवान् श्रीरामका वह अद्भुत और दुष्कर कर्म देखकर सिद्ध, चारण और महर्षियोंके साथ देवतालोग उनके पास आये तथा उन्होंने अलग-अलग पवित्र एवं शुभ जलसे उनका अभिषेक किया ॥ ८८ ॥

जयस्व शत्रून् नरदेव मेदिनीं
ससागरां पालय शाश्वतीः समाः ।
इतीव रामं नरदेवसत्कृतं
शुभैर्वचोभिर्विविधैरपूजयन् ॥ ८९ ॥

फिर बोले—'नरदेव ! तुम शत्रुओंपर विजय प्राप्त करो और समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीका सदा पालन करते रहो।' इस प्रकार भाँति-भाँतिके मङ्गलसूचक वचनोंद्वारा राजसम्मानित श्रीरामका उन्होंने अभिनन्दन किया ॥ ८९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें बाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २२ ॥

* * *

त्रयोविंशः सर्गः

श्रीरामका लक्ष्मणसे उत्पातसूचक लक्षणोंका वर्णन और लङ्कापर आक्रमण

निमित्तानि निमित्तज्ञो दृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः ।
सौमित्रिं सम्परिष्वज्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

उत्पातसूचक लक्षणोंके ज्ञाता तथा लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीरामने बहुत-से अपशकुन देखकर सुमित्राकुमार लक्ष्मणको हृदयसे लगाया और इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

परिगृह्योदकं शीतं वनानि फलवन्ति च ।
बलौघं संविभज्येमं व्यूह्य तिष्ठेम लक्ष्मण ॥ २ ॥

'लक्ष्मण ! जहाँ शीतल जलकी सुविधा हो और फलोंसे भरे हुए जंगल हों, उन स्थानोंका आश्रय लेकर हम अपने सैन्यसमूहको कई भागोंमें बाँट दें और इसे व्यूहबद्ध करके इसकी रक्षाके लिये सदा सावधान रहें ॥ २ ॥

लोकक्षयकरं भीमं भयं पश्याम्युपस्थितम् ।
प्रबर्हणं प्रवीराणामृक्षवानररक्षसाम् ॥ ३ ॥

'मैं देखता हूँ समस्त लोकोंका संहार करनेवाला भीषण भय उपस्थित हुआ है, जो रीछों, वानरों और राक्षसोंके प्रमुख वीरोंके विनाशका सूचक है॥ ३ ॥

वाताश्च कलुषा वान्ति कम्पते च वसुंधरा ।
पर्वताग्राणि वेपन्ते पतन्ति च महीरुहाः ॥ ४ ॥

'धूलसे भरी हुई प्रचण्ड वायु चल रही है। धरती काँपती है । पर्वतोंके शिखर हिल रहे हैं और पेड़ गिर रहे हैं ॥ ४ ॥

मेघाः क्रव्यादसंकाशाः परुषाः परुषस्वनाः ।
क्रूराः क्रूरं प्रवर्षन्ति मिश्रं शोणितबिन्दुभिः ॥ ५ ॥

'मेघोंकी घटा घिर आयी है, जो मांसभक्षी राक्षसोंके समान दिखायी देती है। वे मेघ देखनेमें तो क्रूर हैं, ही इनकी गर्जना भी बड़ी कठोर है। ये क्रूरतापूर्वक रक्तकी बूँदोंसे मिले हुए जलकी वर्षा करते हैं ॥ ५ ॥

रक्तचन्दनसंकाशा संध्या परमदारुणा ।
ज्वलतः प्रपतत्येतदादित्यादग्निमण्डलम् ॥ ६ ॥

'यह संध्या लाल चन्दनके समान कान्ति धारण करके बड़ी भयंकर दिखायी देती है। प्रज्वलित सूर्यसे ये आगकी ज्वालाएँ टूट-टूटकर गिर रही हैं॥ ६ ॥

दीना दीनस्वराः क्रूराः सर्वतो मृगपक्षिणः ।
प्रत्यादित्यं विनर्दन्ति जनयन्तो महद्भयम् ॥ ७ ॥

'क्रूर पशु और पक्षी दीन आकार धारण कर सूर्यकी ओर मुँह करके दीनतापूर्ण स्वरमें चीत्कार करते हुए महान् भय उत्पन्न कर रहे हैं ॥ ७ ॥

रजन्यामप्रकाशस्तु संतापयति चन्द्रमाः।
कृष्णरक्तांशुपर्यन्तो लोकक्षय इवोदितः ॥ ८ ॥

'रातमें भी चन्द्रमा पूर्णतः प्रकाशित नहीं होते और अपने स्वभावके विपरीत ताप दे रहे हैं। ये काली और लाल किरणोंसे व्याप्त हो इस तरह उदित हुए हैं, मानो जगत्के प्रलयका काल आ पहुँचा हो ॥ ८ ॥

ह्रस्वो रूक्षोऽप्रशस्तश्च परिवेषस्तु लोहितः।
आदित्ये विमले नीलं लक्ष्म लक्ष्मण दृश्यते ॥ ९ ॥

'लक्ष्मण! निर्मल सूर्यमण्डलमें नीला चिह्न दिखायी देता है। सूर्यके चारों ओर ऐसा घेरा पड़ा है, जो छोटा, रूखा, अशुभ तथा लाल है ॥ ९ ॥

रजसा महता चापि नक्षत्राणि हतानि च।
युगान्तमिव लोकानां पश्य शंसन्ति लक्ष्मण ॥ १० ॥

'सुमित्रानन्दन! देखो ये तारे बड़ी भारी धूलिराशिसे आच्छादित हो हतप्रभ हो गये हैं; अतएव जगत्के भावी संहारकी सूचना दे रहे हैं ॥ १० ॥

काकाः श्येनास्तथा नीचा गृध्राः परिपतन्ति च।
शिवाश्चाप्यशुभान् नादान् नदन्ति सुमहाभयान् ॥ ११ ॥

'कौए, बाज तथा अधम गीध चारों ओर उड़ रहे हैं और सियारिनें अशुभसूचक महाभयंकर बोली बोल रही हैं ॥ ११ ॥

शैलैः शूलैश्च खड्गैश्च विमुक्तैः कपिराक्षसैः।
भविष्यत्यावृता भूमिर्मांसशोणितकर्दमा ॥ १२ ॥

'जान पड़ता है वानरों और राक्षसोंके चलाये हुए शिला-खण्डों, शूलों और तलवारोंसे यह सारी भूमि पट जायगी तथा यहाँ मांस और रक्तकी कीच जम जायगी ॥ १२ ॥

क्षिप्रमद्यैव दुर्धर्षां पुरीं रावणपालिताम्।
अभियाम जवेनैव सर्वैर्हरिभिरावृताः ॥ १३ ॥

'हमलोग आज ही जितनी जल्दी हो सके, इस रावण-पालित दुर्जय नगरी लङ्कापर समस्त वानरोंके साथ वेगपूर्वक धावा बोल दें' ॥ १३ ॥

इत्येवमुक्त्वा धन्वी स रामः संग्रामधर्षणः।
प्रतस्थे पुरतो रामो लङ्कामभिमुखो विभुः ॥ १४ ॥

ऐसा कहकर संग्रामविजयी भगवान् श्रीराम हाथमें धनुष लिये सबसे आगे लङ्कापुरीकी ओर प्रस्थित हुए ॥ १४ ॥

सविभीषणसुग्रीवाः सर्वे ते वानरर्षभाः।
प्रतस्थिरे विनर्दन्तो धृतानां द्विषतां वधे ॥ १५ ॥

फिर विभीषण और सुग्रीवके साथ वे सभी श्रेष्ठ वानर गर्जना करते हुए युद्धका ही निश्चय रखनेवाले शत्रुओंका वध करनेके लिये आगे बढ़े ॥ १५ ॥

राघवस्य प्रियार्थं तु सुतरां वीर्यशालिनाम्।
हरीणां कर्मचेष्टाभिस्तुतोष रघुनन्दनः ॥ १६ ॥

वे सब-के-सब रघुनाथजीका प्रिय करना चाहते थे। उन बलशाली वानरोंके कर्मों और चेष्टाओंसे रघुकुलनन्दन श्रीराम-को बड़ा संतोष हुआ ॥ १६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तेईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः

श्रीरामका लक्ष्मणसे लङ्काकी शोभाका वर्णन करके सेनाको व्यूहबद्ध खड़ी होनेके लिये आदेश देना, श्रीरामकी आज्ञासे बन्धनमुक्त हुए शुकका रावणके पास जाकर उनकी सैन्यशक्तिकी प्रबलता बताना तथा रावणका अपने बलकी डींग हाँकना

सा वीरसमिती राज्ञा विरराज व्यवस्थिता।
शशिना शुभनक्षत्रा पौर्णमासीव शारदी ॥ १ ॥

सुग्रीवने उस वीर वानरसेनाकी यथोचित व्यवस्था की थी। उनके कारण वह वैसी ही शोभा पाती थी, जैसे चन्द्रमा और शुभ नक्षत्रोंसे युक्त शरत्कालकी पूर्णिमा सुशोभित हो रही हो ॥ १ ॥

प्रचचाल च वेगेन त्रस्ता चैव वसुंधरा।
पीड्यमाना बलौघेन तेन सागरवर्चसा ॥ २ ॥

वह विशाल सैन्य-समूह समुद्रके समान जान पड़ता था। उसके भारसे दबी हुई वसुधा भयभीत हो उठी और उसके वेगसे डोलने लगी ॥ २ ॥

ततः शुश्रुवुराकृष्टं लङ्कायां काननौकसः।
भेरीमृदङ्गसंघुष्टं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ ३ ॥

तदनन्तर वानरोंने लङ्कामें महान् कोलाहल सुना, जो भेरी और मृदङ्गके गम्भीर घोषसे मिलकर बड़ा ही भयंकर और रोमाञ्चकारी जान पड़ता था ॥ ३ ॥

बभूवुस्तेन घोषेण संहृष्टा हरियूथपाः ।
अमृष्यमाणास्तद् घोषं विनेदुर्घोषवत्तरम् ॥ ४ ॥

उस तुमुलनादको सुनकर वानरयूथपति हर्ष और उत्साहमें भर गये और उसे न सह सकनेके कारण उससे भी बढ़कर जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ४ ॥

राक्षसास्तत् प्लवंगानां शुश्रुवुस्तेऽपि गर्जितम् ।
नर्दतामिव दृप्तानां मेघानामम्बरे स्वनम् ॥ ५ ॥

राक्षसोंने वानरोंकी वह गर्जना सुनी, जो दर्पमें भरकर सिंहनाद कर रहे थे । उनकी आवाज आकाशमें मेघोंकी गर्जनाके समान जान पड़ती थी ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा दाशरथिर्लङ्कां चित्रध्वजपताकिनीम् ।
जगाम मनसा सीतां दूयमानेन चेतसा ॥ ६ ॥

दशरथनन्दन श्रीरामने विचित्र ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित लङ्कापुरीको देखकर व्यथितचित्तसे मन-ही-मन सीताका स्मरण किया ॥ ६ ॥

अत्र सा मृगशावाक्षी रावणेनोपरुध्यते ।
अभिभूता ग्रहेणेव लोहिताङ्गेन रोहिणी ॥ ७ ॥

वे भीतर-ही-भीतर कहने लगे—'हाय ! यहीं वह मृगलोचना सीता रावणके कैदमें पड़ी है । उसकी दशा मंगलग्रहसे आक्रान्त हुई रोहिणीके समान हो रही है' ॥ ७ ॥

दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य समुद्वीक्ष्य च लक्ष्मणम् ।
उवाच वचनं वीरस्तत्कालहितमात्मनः ॥ ८ ॥

मन-ही-मन ऐसा कहकर वीर श्रीराम गरम-गरम लंबी साँस खींचकर लक्ष्मणकी ओर देखते हुए अपने लिये समयानुकूल हितकर वचन बोले—॥ ८ ॥

आलिखन्तीमिवाकाशमुत्थितां पश्य लक्ष्मण ।
मनसेव कृतां लङ्कां नगाग्रे विश्वकर्मणा ॥ ९ ॥

'लक्ष्मण ! इस लङ्काकी ओर तो देखो । यह अपनी ऊँचाईसे आकाशमें रेखा खींचती हुई-सी जान पड़ती है । जान पड़ता है पूर्वकालमें विश्वकर्माने अपने मनसे ही इस पर्वत-शिखरपर लङ्कापुरीका निर्माण किया है ॥ ९ ॥

विमानैर्बहुभिर्लङ्का संकीर्णा रचिता पुरा ।
विष्णोः पदमिवाकाशं छादितं पाण्डुभिर्घनैः ॥ १० ॥

'पूर्वकालमें यह पुरी अनेक सतमंजले मकानोंसे भरी-पूरी बनायी गयी थी । इसके श्वेत एवं सघन विमानाकार भवनोंसे भगवान् विष्णुके चरणस्थापनका स्थानभूत आकाश आच्छादित-सा हो गया ॥ १० ॥

पुष्पितैः शोभिता लङ्का वनैश्चित्ररथोपमैः ।
नानापतगसंघुष्टफलपुष्पोपगैः शुभैः ॥ ११ ॥

'फूलोंसे भरे हुए चैत्ररथ वनके सदृश सुन्दर काननोंसे लङ्कापुरी सुशोभित हो रही है । उन काननोंमें नाना प्रकारके पक्षी कलरव कर रहे हैं तथा फलों और फूलोंकी प्राप्ति करानेके कारण वे बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं ॥ ११ ॥

पश्य मत्तविहंगानि प्रलीनभ्रमराणि च ।
कोकिलाकुलखण्डानि दोधवीति शिवोऽनिलः ॥ १२ ॥

'देखो, यह शीतल सुखद वायु इन वनोंको, जिनमें मतवाले पक्षी चहचहा रहे हैं, भौंरे पत्तों और फूलोंमें लीन हो रहे हैं तथा जिनके प्रत्येक खण्ड कोकिलोंके समूह एवं संगीतसे व्याप्त हैं, बारंबार कम्पित कर रहा है' ॥ १२ ॥

इति दाशरथी रामो लक्ष्मणं समभाषत ।
बलं च तत्र विभजच्छास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ १३ ॥

दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणसे ऐसा कहा और युद्धके शास्त्रीय नियमानुसार सेनाका विभाग किया ॥ १३ ॥

शशास कपिसेनां तां बलादादाय वीर्यवान् ।
अङ्गदः सह नीलेन तिष्ठेदुरसि दुर्जयः ॥ १४ ॥

उस समय श्रीरामने वानरसैनिकोंको यह आदेश दिया—'इस विशाल सेनामेंसे अपनी सेनाको साथ लेकर दुर्जय एवं पराक्रमी वीर अङ्गद नीलके साथ वानरसेनाके पुरुषव्यूहमें हृदयके स्थानमें स्थित हों ॥ १४ ॥

तिष्ठेद् वानरवाहिन्या वानरौघसमावृतः ।
आश्रितो दक्षिणं पार्श्वमृषभो नाम वानरः ॥ १५ ॥

'इसी तरह ऋषभ नामक वानर कपियोंके समुदायसे घिरे रहकर इस वानर-वाहिनीके दाहिने पार्श्वमें खड़े रहें ॥ १५ ॥

गन्धहस्तीव दुर्धर्षस्तरस्वी गन्धमादनः ।
तिष्ठेद् वानरवाहिन्याः सव्यं पार्श्वमधिष्ठितः ॥ १६ ॥

'जो गन्धहस्तीके समान दुर्जय एवं वेगशाली हैं, वे कपिश्रेष्ठ गन्धमादन वानरसेनाके वाम पार्श्वमें खड़े हों ॥ १६ ॥

मूर्ध्नि स्थास्याम्यहं यत्तो लक्ष्मणेन समन्वितः ।
जाम्बवांश्च सुषेणश्च वेगदर्शी च वानरः ॥ १७ ॥
ऋक्षमुख्या महात्मानः कुक्षिं रक्षन्तु ते त्रयः ।

'मैं लक्ष्मणके साथ सावधान रहकर इस व्यूहके मस्तकके स्थानमें खड़ा होऊँगा । जाम्बवान्, सुषेण और वानर वेगदर्शी—ये तीन महामनस्वी वीर जो रीछोंकी सेनाके प्रधान हैं, वे सैन्यव्यूहके कुक्षिभागकी रक्षा करें ॥ १७½ ॥

जघनं कपिसेनायाः कपिराजोऽभिरक्षतु ।
पश्चार्धमिव लोकस्य प्रचेतास्तेजसा वृतः ॥ १८ ॥

'वानरराज सुग्रीव वानरवाहिनीके पिछले भागकी रक्षामें उसी प्रकार लगे रहें, जैसे तेजस्वी वरुण इस जगत्की पश्चिम दिशाका संरक्षण करते हैं' ॥ १८ ॥

सुविभक्तमहाव्यूहा महावानररक्षिता ।

अनीकिनी सा विबभौ यथा द्यौः साभ्रसम्प्लवा ॥ १९ ॥

इस प्रकार सुन्दरतासे विभक्त हो विशाल व्यूहमें बद्ध हुई वह सेना, जिसकी बड़े-बड़े वानर रक्षा करते थे, मेघोंसे घिरे हुए आकाशके समान जान पड़ती थी ॥ १९ ॥

प्रगृह्य गिरिशृङ्गाणि महतश्च महीरुहान् ।
आसेदुर्वानरा लङ्कां मिमर्दयिषवो रणे ॥ २० ॥

वानरलोग पर्वतोंके शिखर और बड़े-बड़े वृक्ष लेकर युद्धके लिये लङ्कापर चढ़ आये । वे उस पुरीको पददलित करके धूलमें मिला देना चाहते थे ॥ २० ॥

शिखरैर्विकिरामैनां लङ्कां मुष्टिभिरेव वा ।
इति स्म दधिरे सर्वे मनांसि हरिपुङ्गवाः ॥ २१ ॥

सभी वानरयूथपति ये ही मनसूबे बाँधते थे कि हम लङ्कापर पर्वत-शिखरोंकी वर्षा करें और लङ्कावासियोंको मुक्कोंसे मार-मारकर यमलोक पहुँचा दें ॥ २१ ॥

ततो रामो महातेजाः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ।
सुविभक्तानि सैन्यानि शुक एष विमुच्यताम् ॥ २२ ॥

तदनन्तर महातेजस्वी रामने सुग्रीवसे कहा—'हमलोगोंने अपनी सेनाओंको सुन्दर ढंगसे विभक्त करके उन्हें व्यूहबद्ध कर लिया है, अतः अब इस शुकको छोड़ दिया जाय' ॥२२॥

रामस्य तु वचः श्रुत्वा वानरेन्द्रो महाबलः ।
मोचयामास तं दूतं शुकं रामस्य शासनात् ॥ २३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह वचन सुनकर महाबली वानरराजने उनके आदेशसे रावणदूत शुकको बन्धनमुक्त करा दिया ॥

मोचितो रामवाक्येन वानरैश्च निपीडितः ।
शुकः परमसंत्रस्तो रक्षोधिपमुपागमत् ॥ २४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे छुटकारा पाकर वानरोंसे पीड़ित होनेके कारण अत्यन्त भयभीत हुआ शुक राक्षसराजके पास गया ॥ २४ ॥

रावणः प्रहसन्नेव शुकं वाक्यमुवाच ह ।
किमिमौ ते सितौ पक्षौ लूनपक्षश्च दृश्यसे ॥ २५ ॥
कच्चिन्नानेकचित्तानां तेषां त्वं वशमागतः ।

उस समय रावणने हँसते हुए-से ही शुकसे कहा—'ये तुम्हारी दोनों पाँखें बाँध क्यों दी गयी हैं । इससे तुम इस तरह दिखायी देते हो मानो तुम्हारे पंख नोच लिये गये हों । कहीं तुम उन चञ्चलचित्तवाले वानरोंके चंगुलमें तो नहीं फँस गये थे ?' ॥ २५½ ॥

ततः स भयसंविग्नस्तेन राज्ञाभिचोदितः ।
वचनं प्रत्युवाचेदं राक्षसाधिपमुत्तमम् ॥ २६ ॥

राजा रावणके इस प्रकार पूछनेपर भयसे घबराये हुए शुकने उस समय उस श्रेष्ठ राक्षसराजको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ २६ ॥

सागरस्योत्तरे तीरेऽब्रुवं ते वचनं तथा ।
यथा संदेशमक्लिष्टं सान्त्वयञ्श्लक्ष्णया गिरा ॥ २७ ॥

'महाराज ! मैंने समुद्रके उत्तर तटपर पहुँचकर आपका संदेश बहुत स्पष्ट शब्दोंमें मधुर वाणीद्वारा सान्त्वना देते हुए सुनाया ॥ २७ ॥

क्रुद्धैस्तैरहमुत्प्लुत्य दृष्टमात्रः प्लवंगमैः ।
गृहीतोऽस्म्यपि चारब्धो हन्तुं लोप्तुं च मुष्टिभिः ॥ २८ ॥

'किंतु मुझपर दृष्टि पड़ते ही कुपित हुए वानरोंने उछलकर मुझे पकड़ लिया और घूसोंसे मारना एवं पाँखें नोचना आरम्भ किया ॥ २८ ॥

न ते संभाषितुं शक्याः सम्प्रश्नोऽत्र न विद्यते ।
प्रकृत्या कोपनास्तीक्ष्णा वानरा राक्षसाधिप ॥ २९ ॥

'राक्षसराज ! ये वानर स्वभावसे ही क्रोधी और तीखे हैं । उनसे बात भी नहीं की जा सकती थी । फिर यह पूछनेका अवसर कहाँ था कि तुम मुझे क्यों मार रहे हो ? ॥ २९ ॥

स च हन्ता विराधस्य कबन्धस्य खरस्य च ।
सुग्रीवसहितो रामः सीतायाः पदमागतः ॥ ३० ॥

'जो विराध, कबन्ध और खरका वध कर चुके हैं, वे श्रीराम सुग्रीवके साथ सीताके स्थानका पता पाकर उनका उद्धार करनेके लिये आये हैं ॥ ३० ॥

स कृत्वा सागरे सेतुं तीर्त्वा च लवणोदधिम् ।
एष रक्षांसि निर्धूय धन्वी तिष्ठति राघवः ॥ ३१ ॥

'वे रघुनाथजी समुद्रपर पुल बाँध लवणसागरको पार करके राक्षसोंको तिनकोंके समान समझकर धनुष हाथमें लिये यहाँ पास ही खड़े हैं ॥ ३१ ॥

ऋक्षवानरसङ्घानामनीकानि सहस्रशः ।
गिरिमेघनिकाशानां छादयन्ति वसुंधराम् ॥ ३२ ॥

'पर्वत और मेघोंके समान विशालकाय रीछों और वानर-समूहोंकी सहस्रों सेनाएँ इस पृथ्वीपर छा गयी हैं ॥३२॥

राक्षसानां बलौघस्य वानरेन्द्रबलस्य च ।
नैतयोर्विद्यते संधिर्देवदानवयोरिव ॥ ३३ ॥

'देवता और दानवोंमें जैसे मेल होना असम्भव है, उसी प्रकार राक्षसों और वानरराज सुग्रीवके सैनिकोंमें संधि नहीं हो सकती ॥ ३३ ॥

पुरा प्राकारमायान्ति क्षिप्रमेकतरं कुरु ।
सीतां चास्मै प्रयच्छाशु युद्धं वापि प्रदीयताम् ॥ ३४ ॥

'अतः जबतक वे लङ्कापुरीकी चहारदिवारीपर नहीं चढ़ आते, उसके पहले ही आप शीघ्रतापूर्वक दोमेंसे एक काम कर डालिये—या तो तुरंत ही उन्हें सीताको लौटा दीजिये या फिर सामने खड़े होकर युद्ध कीजिये' ॥ ३४ ॥

शुकस्य वचनं श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत्।
रोषसंरक्तनयनो निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ ३५॥

शुककी यह बात सुनकर रावणकी आँखें रोषसे लाल हो गयीं। वह इस तरह घूर-घूरकर देखने लगा, मानो अपनी दृष्टिसे उसको दग्ध कर देगा। वह बोला—॥ ३५॥

यदि मां प्रति युध्येरन् देवगन्धर्वदानवाः।
नैव सीतां प्रदास्यामि सर्वलोकभयादपि ॥ ३६॥

'यदि देवता, गन्धर्व और दानव भी मुझसे युद्ध करनेको तैयार हो जायँ तथा सारे संसारके लोग मुझे भय दिखाने लगें तो भी मैं सीताको नहीं लौटाऊँगा॥ ३६॥

कदा समभिधावन्ति मामका राघवं शराः।
वसन्ते पुष्पितं मत्ता भ्रमरा इव पादपम्॥ ३७॥

'जैसे मतवाले भ्रमर वसन्त ऋतुमें फूलोंसे भरे हुए वृक्षपर टूट पड़ते हैं, उसी प्रकार मेरे बाण कब उस रघुवंशीपर धावा करेंगे? ॥ ३७॥

कदा शोणितदिग्धाङ्गं दीप्तैः कार्मुकविच्युतैः।
शरैरादीपयिष्यामि उल्काभिरिव कुञ्जरम्॥ ३८॥

'वह अवसर कब आयेगा जब मेरे धनुषसे छूटे हुए तेजस्वी बाणोंद्वारा घायल होकर रामका शरीर लहूलुहान हो जायगा और जैसे जलती हुई लुकारीसे लोग हाथीको जलाते हैं, उसी तरह मैं उन बाणोंसे रामको दग्ध कर डालूँगा॥

तच्चास्य बलमादास्ये बलेन महता वृतः।
ज्योतिषामिव सर्वेषां प्रभामुद्यन् दिवाकरः॥ ३९॥

'जैसे सूर्य अपने उदयके साथ ही समस्त नक्षत्रोंकी प्रभा हर लेते हैं, उसी प्रकार मैं विशाल सेनाके साथ रणभूमिमें खड़ा हो रामकी समस्त वानर-सेनाको आत्मसात् कर लूँगा॥ ३९॥

सागरस्येव मे वेगो मारुतस्येव मे बलम्।
न च दाशरथिर्वेद तेन मां योद्धुमिच्छति॥ ४०॥

दशरथकुमार रामने अभी समरभूमिमें समुद्रके समान मेरे वेग और वायुके समान मेरे बलका अनुभव नहीं किया है, इसलिये वह मेरे साथ युद्ध करना चाहता है॥ ४०॥

न मे तूणीशयान् बाणान् सविषानिव पन्नगान्।
रामः पश्यति संग्रामे तेन मां योद्धुमिच्छति॥ ४१॥

'मेरे तरकसमें सोये हुए बाण विषधर सर्पोंके समान भयंकर हैं। रामने संग्राममें उन बाणोंको देखा ही नहीं है; इसलिये वह मुझसे जूझना चाहता है॥ ४१॥

न जानाति पुरा वीर्यं मम युद्धे स राघवः।
मम चापमयीं वीणां शरकोणैः प्रवादिताम्॥ ४२॥
ज्याशब्दतुमुलां घोरामार्तगीतमहास्वनाम्।
नाराचतलसंनादां नदीमहितवाहिनीम्।
अवगाह्य महारङ्गं वादयिष्याम्यहं रणे॥ ४३॥

'पहले कभी युद्धमें रामका मेरे बल-पराक्रमसे पाला नहीं पड़ा है, इसीलिये वह मेरे साथ लड़नेका हौसला रखता है। मेरा धनुष एक सुन्दर वीणा है, जो बाणोंके कोनोंसे बजायी जाती है। उसकी प्रत्यञ्चासे जो टङ्कारध्वनि उठती है, वही उसकी भयंकर स्वरलहरी है। आर्तोंकी चीत्कार और पुकार ही उसपर उच्चस्वरसे गाया जानेवाला गीत है। नाराचोंको छोड़ते समय जो चट-चट शब्द होता है, वही मानो हथेलीपर दिया जानेवाला ताल है। बहती हुई नदीके समान जो शत्रुओंकी वाहिनी है, वही मानो उस संगीतोत्सवके लिये विशाल रंगभूमि है। मैं समराङ्गणमें उस रंगभूमिके भीतर प्रवेश करके अपनी वह भयंकर वीणा बजाऊँगा॥ ४२-४३॥

न वासवेनापि सहस्रचक्षुषा
युद्धेऽस्मि शक्यो वरुणेन वा स्वयम्।
यमेन वा धर्षयितुं शराग्निना
महाहवे वैश्रवणेन वा पुनः॥ ४४॥

'यदि महासमरमें सहस्रनेत्रधारी इन्द्र अथवा साक्षात् वरुण या स्वयं यमराज अथवा मेरे बड़े भाई कुबेर ही आ जायँ तो वे भी अपनी बाणाग्निसे मुझे पराजित नहीं कर सकते'॥ ४४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २४॥

पञ्चविंशः सर्गः

रावणका शुक और सारणको गुप्तरूपसे वानरसेनामें भेजना, विभीषणद्वारा उनका पकड़ा जाना, श्रीरामकी कृपासे छुटकारा पाना तथा श्रीरामका संदेश लेकर लङ्कामें लौटकर उनका रावणको समझाना

सबले सागरं तीर्णे रामे दशरथात्मजे।
अमात्यौ रावणः श्रीमानब्रवीच्छुकसारणौ॥ १॥

दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम जब सेनासहित समुद्र पार कर चुके, तब श्रीमान् रावणने अपने दोनों

मन्त्री शुक और सारणसे फिर कहा—॥ १ ॥

समग्रं सागरं तीर्णं दुस्तरं वानरं बलम् ।
अभूतपूर्वं रामेण सागरे सेतुबन्धनम् ॥ २ ॥

'यद्यपि समुद्रको पार करना अत्यन्त कठिन था तो भी सारी वानरसेना उसे लाँघकर इस पार चली आयी। रामके द्वारा सागरपर सेतुका बाँधा जाना अभूतपूर्व कार्य है ॥ २ ॥

सागरे सेतुबन्धं तं न श्रद्दध्यां कथंचन ।
अवश्यं चापि संख्येयं तन्मया वानरं बलम् ॥ ३ ॥

'लोगोंके मुँहसे सुननेपर भी मुझे किसी तरह यह विश्वास नहीं होता कि समुद्रपर पुल बाँधा गया होगा। वानरसेना कितनी है ? इसका ज्ञान मुझे अवश्य प्राप्त करना चाहिये ॥३॥

भवन्तौ वानरं सैन्यं प्रविश्यानुपलक्षितौ ।
परिमाणं च वीर्यं च ये च मुख्याः प्लवंगमाः ॥ ४ ॥
मन्त्रिणो ये च रामस्य सुग्रीवस्य च सम्मताः ।
ये पूर्वमभिवर्तन्ते ये च शूराः प्लवंगमाः ॥ ५ ॥
स च सेतुर्यथा बद्धः सागरे सलिलार्णवे ।
निवेशं च यथा तेषां वानराणां महात्मनाम् ॥ ६ ॥
रामस्य व्यवसायं च वीर्यं प्रहरणानि च ।
लक्ष्मणस्य च वीरस्य तत्त्वतो ज्ञातुमर्हथः ॥ ७ ॥
कश्च सेनापतिस्तेषां वानराणां महात्मनाम् ।
तच्च ज्ञात्वा यथातत्त्वं शीघ्रमागन्तुमर्हथः ॥ ८ ॥

'तुम दोनों इस तरह वानर-सेनामें प्रवेश करो कि तुम्हें कोई पहचान न सके। वहाँ जाकर यह पता लगाओ कि वानरोंकी संख्या कितनी है ? उनकी शक्ति कैसी है ? उनमें मुख्य-मुख्य वानर कौन-कौनसे हैं। श्रीराम और सुग्रीवके मनोऽनुकूल मन्त्री कौन-कौन हैं ? कौन-कौन शूरवीर वानर-सेनाके आगे रहते हैं ? अगाध जलराशिसे भरे हुए समुद्रमें वह पुल किस तरह बाँधा गया ? महामनस्वी वानरोंकी छावनी कैसे पड़ी है ? श्रीराम और वीर लक्ष्मणका निश्चय क्या है ?—वे क्या करना चाहते हैं ? उनके बल-पराक्रम कैसे हैं ? उन दोनोंके पास कौन-कौनसे अस्त्र-शस्त्र हैं ? और उन महामना वानरोंका प्रधान सेनापति कौन है ? इन सब बातोंकी तुमलोग ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त करो और सबका यथार्थ ज्ञान हो जानेपर शीघ्र लौट आओ' ॥४-८॥

इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ ।
हरिरूपधरौ वीरौ प्रविष्टौ वानरं बलम् ॥ ९ ॥

ऐसा आदेश पाकर दोनों वीर राक्षस शुक और सारण वानररूप धारण करके उस वानरी सेनामें घुस गये ॥ ९ ॥

ततस्तद् वानरं सैन्यमचिन्त्यं लोमहर्षणम् ।
संख्यातुं नाध्यगच्छेतां तदा तौ शुकसारणौ ॥ १० ॥

वानरोंकी वह सेना कितनी है ? यह गिनना तो दूर रहा; मनसे उसका अंदाजा लगाना भी असम्भव था। उस अपार सेनाको देखकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। उस समय शुक और सारण किसी तरह भी उसकी गणना नहीं कर सके ॥

तत् स्थितं पर्वताग्रेषु निर्झरेषु गुहासु च ।
समुद्रस्य च तीरेषु वनेषूपवनेषु च ।
तरमाणं च तीर्णं च तर्तुकामं च सर्वशः ॥ ११ ॥

वह सेना पर्वतके शिखरोंपर, झरनोंके आसपास, गुफाओंमें, समुद्रके किनारे तथा वनों और उपवनोंमें भी फैली हुई थी। उसका कुछ भाग समुद्र पार कर रहा था, कुछ पार कर चुका था और कुछ सब प्रकारसे समुद्रको पार करनेकी तैयारीमें लगा था ॥ ११ ॥

निविष्टं निविशच्चैव भीमनादं महाबलम् ।
तद्बलार्णवमक्षोभ्यं ददृशाते निशाचरौ ॥ १२ ॥

भयंकर कोलाहल करनेवाली वह विशाल सेना कुछ स्थानोंपर छावनी डाल चुकी थी और कुछ जगहोंपर डालती जा रही थी। दोनों निशाचरोंने देखा, वह वानर-वाहिनी समुद्रके समान अक्षोभ्य थी ॥ १२ ॥

तौ ददर्श महातेजाः प्रतिच्छन्नौ विभीषणः ।
आचचक्षे स रामाय गृहीत्वा शुकसारणौ ॥ १३ ॥

वानरवेशमें छिपकर सेनाका निरीक्षण करते हुए दोनों राक्षस शुक और सारणको महातेजस्वी विभीषणने देखा, देखते ही पहचाना और उन दोनोंको पकड़कर श्रीरामचन्द्र-जीसे कहा—॥ १३ ॥

तस्यैतौ राक्षसेन्द्रस्य मन्त्रिणौ शुकसारणौ ।
लङ्कायाः समनुप्राप्तौ चारौ परपुरंजय ॥ १४ ॥

'शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले नरेश्वर ! ये दोनों लङ्कासे आये हुए गुप्तचर एवं राक्षसराज रावणके मन्त्री शुक तथा सारण हैं' ॥ १४ ॥

तौ दृष्ट्वा व्यथितौ रामं निराशौ जीविते तथा ।
कृताञ्जलिपुटौ भीतौ वचनं चेदमूचतुः ॥ १५ ॥

वे दोनों राक्षस श्रीरामचन्द्रजीको देखकर अत्यन्त व्यथित हुए और जीवनसे निराश हो गये। उन दोनोंके मनमें भय समा गया। वे हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले—॥ १५ ॥

आवामिहागतौ सौम्य रावणप्रहितावुभौ ।
परिज्ञातुं बलं सर्वं तदिदं रघुनन्दन ॥ १६ ॥

'सौम्य ! रघुनन्दन ! हम दोनोंको रावणने भेजा है और हम इस सारी सेनाके विषयमें आवश्यक जानकारी प्राप्त करनेके लिये आये हैं' ॥ १६ ॥

तयोस्तद् वचनं श्रुत्वा रामो दशरथात्मजः ।

अब्रवीत् प्रहसन् वाक्यं सर्वभूतहिते रतः ॥ १७ ॥

उन दोनोंकी वह बात सुनकर सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें लगे रहनेवाले दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम हँसते हुए बोले—॥ १७ ॥

यदि दृष्टं बलं सर्वं वयं वा सुसमाहिताः ।
यथोक्तं वा कृतं कार्यं छन्दतः प्रतिगम्यताम् ॥ १८ ॥

'यदि तुमने सारी सेना देख ली हो, हमारी सैनिक शक्तिका ज्ञान प्राप्त कर लिया हो तथा रावणके कथनानुसार सब काम पूरा कर लिया हो तो अब तुम दोनों अपनी इच्छाके अनुसार प्रसन्नतापूर्वक लौट जाओ ॥ १८ ॥

अथ किंचिददृष्टं वा भूयस्तद् द्रष्टुमर्हथः ।
विभीषणो वा कार्त्स्न्येन पुनः संदर्शयिष्यति ॥ १९ ॥

'अथवा यदि अभी कुछ देखना बाकी रह गया हो तो फिर देख लो । विभीषण तुम्हें सब कुछ पुनः पूर्णरूपसे दिखा देंगे ॥१९ ॥

न चेदं ग्रहणं प्राप्य भेतव्यं जीवितं प्रति ।
न्यस्तशस्त्रौ गृहीतौ च न दूतौ वधमर्हथः ॥ २० ॥

'इस समय जो तुम पकड़ लिये गये हो, इससे तुम्हें अपने जीवनके विषयमें कोई भय नहीं होना चाहिये; क्योंकि शस्त्रहीन अवस्थामें पकड़े गये तुम दोनों दूत वधके योग्य नहीं हो ॥ २० ॥

प्रच्छन्नौ च विमुञ्चेमौ चारौ रात्रिंचरावुभौ ।
शत्रुपक्षस्य सततं विभीषण विकर्षिणौ ॥ २१ ॥

'विभीषण ! ये दोनों राक्षस रावणके गुप्तचर हैं और छिपकर यहाँका भेद लेनेके लिये आये हैं । ये अपने शत्रुपक्ष (वानरसेना) में फूट डालनेका प्रयास कर रहे हैं । अब तो इनका भण्डा फूट ही गया; अतः इन्हें छोड़ दो ॥ २१ ॥

प्रविश्य महतीं लङ्कां भवद्भ्यां धनदानुजः ।
वक्तव्यो रक्षसां राजा यथोक्तं वचनं मम ॥ २२ ॥

'शुक और सारण ! जब तुम दोनों लङ्कामें पहुँचो, तब कुबेरके छोटे भाई राक्षसराज रावणको मेरी ओरसे यह संदेश सुना देना—॥ २२ ॥

यद् बलं त्वं समाश्रित्य सीतां मे हृतवानसि ।
तद् दर्शय यथाकामं ससैन्यश्च सबान्धवः ॥ २३ ॥

'रावण ! जिस बलके भरोसे तुमने मेरी सीताका अपहरण किया है, उसे अब सेना और बन्धुजनोंसहित आकर इच्छानुसार दिखाओ ॥ २३ ॥

श्वः काल्ये नगरीं लङ्कां सप्राकारां सतोरणाम् ।
रक्षसां च बलं पश्य शरैर्विध्वंसितं मया ॥ २४ ॥

'कल प्रातःकाल ही तुम परकोटे और दरवाजोंके सहित लङ्कापुरी तथा राक्षसी सेनाका मेरे बाणोंसे विध्वंस होता देखोगे ॥

क्रोधं भीममहं मोक्ष्ये ससैन्ये त्वयि रावण ।
श्वः काल्ये वज्रवान् वज्रं दानवेष्विव वासवः ॥ २५ ॥

'रावण ! जैसे वज्रधारी इन्द्र दानवोंपर अपना वज्र छोड़ते हैं, उसी प्रकार मैं कल सबेरे ही सेनासहित तुमपर अपना भयंकर क्रोध छोड़ूँगा' ॥ २५ ॥

इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ ।
जयेति प्रतिनन्द्यैनं राघवं धर्मवत्सलम् ॥ २६ ॥
आगम्य नगरीं लङ्कामब्रूतां राक्षसाधिपम् ।

भगवान् श्रीरामका यह संदेश पाकर दोनों राक्षस शुक और सारण धर्मवत्सल श्रीरघुनाथजीका 'आपकी जय हो' 'आप चिरंजीवी हों' इत्यादि वचनोंद्वारा अभिनन्दन करके लङ्कापुरीमें आकर राक्षसराज रावणसे बोले—॥ २६½ ॥

विभीषणगृहीतौ तु वधार्थं राक्षसेश्वर ॥ २७ ॥
दृष्ट्वा धर्मात्मना मुक्तौ रामेणामिततेजसा ।

'राक्षसेश्वर ! हमें तो विभीषणने वध करनेके लिये पकड़ लिया था; किंतु जब अमित तेजस्वी धर्मात्मा श्रीरामने देखा, तब हमें छुड़वा दिया ॥ २७½ ॥

एकस्थानगता यत्र चत्वारः पुरुषर्षभाः ॥ २८ ॥
लोकपालसमाः शूराः कृतास्त्रा दृढविक्रमाः ।
रामो दाशरथिः श्रीमाँल्लक्ष्मणश्च विभीषणः ॥ २९ ॥
सुग्रीवश्च महातेजा महेन्द्रसमविक्रमः ।
एते शक्ताः पुरीं लङ्कां सप्राकारां सतोरणाम् ॥ ३० ॥
उत्पाट्य संक्रामयितुं सर्वे तिष्ठन्तु वानराः ।

'दशरथनन्दन श्रीराम, श्रीमान् लक्ष्मण, विभीषण तथा महेन्द्रतुल्य पराक्रमी महातेजस्वी सुग्रीव—ये चारों वीर लोकपालोंके समान शौर्यशाली, दृढ़ पराक्रमी और अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता हैं । जहाँ ये चारों पुरुषप्रवर एक जगह एकत्र हो गये हैं, वहाँ विजय निश्चित है । और सब वानर अलग रहें तो भी ये चार ही परकोटे और दरवाजोंके सहित सारी लङ्कापुरीको उखाड़कर फेंक सकते हैं ॥ २८-३०½ ॥

यादृशं तद्धि रामस्य रूपं प्रहरणानि च ॥ ३१ ॥
वधिष्यति पुरीं लङ्कामेकस्तिष्ठन्तु ते त्रयः ।

'श्रीरामचन्द्रजीका जैसा रूप है और जैसे उनके अस्त्र-शस्त्र हैं, उनसे तो यही मालूम होता है कि वे अकेले ही सारी लङ्कापुरीका वध कर डालेंगे । भले ही वे बाकी तीन वीर भी बैठे ही रहें ॥ ३१½ ॥

रामलक्ष्मणगुप्ता सा सुग्रीवेण च वाहिनी ।
बभूव दुर्धर्षतरा सर्वैरपि सुरासुरैः ॥ ३२ ॥

'महाराज ! श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीवसे सुरक्षित वह वानरोंकी सेना तो समस्त देवताओं और असुरोंके लिये भी अत्यन्त दुर्जय है ॥ ३२ ॥

प्रहृष्टयोधा ध्वजिनी महात्मनां
वनौकसां सम्प्रति योद्धुमिच्छताम्।
अलं विरोधेन शमो विधीयतां
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली॥ ३३॥

'महामनस्वी वानर इस समय युद्ध करनेके लिये उत्सुक हैं। उनकी सेनाके सभी वीर योद्धा बड़े प्रसन्न हैं। अतः उनके साथ विरोध करनेसे आपको कोई लाभ नहीं होगा। इसलिये संधि कर लीजिये और श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें सीताको लौटा दीजिये' ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पचीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः

सारणका रावणको पृथक्-पृथक् वानरयूथपतियोंका परिचय देना

तद्वचः सत्यमक्लीबं सारणेनाभिभाषितम्।
निशम्य रावणो राजा प्रत्यभाषत सारणम्॥ १॥

(शुक और) सारणके ये सच्चे और जोशीले शब्द सुनकर रावणने सारणसे कहा— ॥ १॥

यदि मामभियुञ्जीरन् देवगन्धर्वदानवाः।
नैव सीतामहं दद्यां सर्वलोकभयादपि॥ २॥

'यदि देवता, गन्धर्व और दानव भी मुझसे युद्ध करने आ जायँ और समस्त लोक भय दिखाने लगे तो भी मैं सीताको नहीं दूँगा ॥ २ ॥

त्वं तु सौम्य परित्रस्तो हरिभिः पीडितो भृशम्।
प्रतिप्रदानमद्यैव सीतायाः साधु मन्यसे॥ ३॥
को हि नाम सपत्नो मां समरे जेतुमर्हति।

'सौम्य! जान पड़ता है कि तुम्हें बंदरोंने बहुत तंग किया है। इसीसे भयभीत होकर तुम आज ही सीताको लौटा देना ठीक समझने लगे हो। भला कौन ऐसा शत्रु है, जो समराङ्गणमें मुझे जीत सके' ॥ ३½ ॥

इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः॥ ४॥
आरुरोह ततः श्रीमान् प्रासादं हिमपाण्डुरम्।
बहुतालसमुत्सेधं रावणोऽथ दिदृक्षया॥ ५॥

ऐसा कठोर वचन कहकर श्रीमान् राक्षसराज रावण वानरोंकी सेनाका निरीक्षण करनेके लिये अपनी कई ताल ऊँची और बर्फके समान श्वेत रंगकी अट्टालिकापर चढ़ गया।४-५।

ताभ्यां चराभ्यां सहितो रावणः क्रोधमूर्च्छितः।
पश्यमानः समुद्रं तं पर्वतांश्च वनानि च॥ ६॥
ददर्श पृथिवीदेशं सुसम्पूर्णं प्लवंगमैः।

उस समय रावण क्रोधसे तमतमा उठा था। उसने उन दोनों गुप्तचरोंके साथ जब समुद्र, पर्वत और वनोंपर दृष्टिपात किया, तब पृथ्वीका सारा प्रदेश वानरोंसे भरा दिखायी दिया ॥ ६½ ॥

तदपारमसह्यं च वानराणां महाबलम्॥ ७॥
आलोक्य रावणो राजा परिपप्रच्छ सारणम्।

वानरोंकी वह विशाल सेना अपार और असह्य थी। उसे देखकर राजा रावणने सारणसे पूछा— ॥ ७½ ॥

एषां के वानरा मुख्याः के शूराः के महाबलाः॥ ८॥

'सारण! इन वानरोंमें कौन-कौनसे मुख्य हैं? कौन शूर-वीर हैं और कौन बलमें बहुत बढ़े-चढ़े हैं? ॥ ८ ॥

के पूर्वमभिवर्तन्ते महोत्साहाः समन्ततः।
केषां शृणोति सुग्रीवः के वा यूथपयूथपाः॥ ९॥
सारणाचक्ष्व मे सर्वं किंप्रभावाः प्लवंगमाः।

'कौन-कौनसे वानर महान् उत्साहसे सम्पन्न होकर युद्धमें आगे-आगे रहते हैं? सुग्रीव किनकी बातें सुनते हैं और कौन यूथपतियोंके भी यूथपति हैं? सारण! ये सारी बातें मुझे बताओ। साथ ही यह भी कहो कि इन वानरोंका प्रभाव कैसा है?' ॥ ९½ ॥

सारणो राक्षसेन्द्रस्य वचनं परिपृच्छतः॥ १०॥
आबभाषेऽथ मुख्यज्ञो मुख्यांस्तत्र वनौकसः।

इस प्रकार पूछते हुए राक्षसराज रावणका वचन सुनकर मुख्य-मुख्य वानरोंको जाननेवाले सारणने उन मुख्य वानरोंका परिचय देते हुए कहा— ॥ १०½ ॥

एष योऽभिमुखो लङ्कां नर्दंस्तिष्ठति वानरः॥ ११॥
यूथपानां सहस्राणां शतेन परिवारितः।
यस्य घोषेण महता सप्राकारा सतोरणा॥ १२॥
लङ्का प्रतिहता सर्वा सशैलवनकानना।
सर्वशाखामृगेन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः॥ १३॥
बलाग्रे तिष्ठते वीरो नीलो नामैष यूथपः।

'महाराज! यह जो लङ्काकी ओर मुख करके खड़ा है और गरज रहा है, एक लाख यूथपोंसे घिरा हुआ है तथा जिसकी गर्जनाके अत्यन्त गम्भीर घोषसे परकोटे, दरवाजे, पर्वत और वनोंके सहित सारी लङ्का प्रतिहत हो गूँज उठी है,

इसका नाम नील है। यह वीर यूथपतियोंमेंसे है। समस्त वानरोंके राजा महामना सुग्रीवकी सेनाके आगे यही खड़ा होता है ॥ ११-१३½ ॥

बाहू प्रगृह्य यः पद्भ्यां महीं गच्छति वीर्यवान् ॥ १४ ॥
लङ्कामभिमुखः कोपादभीक्ष्णं च विजृम्भते ।
गिरिशृङ्गप्रतीकाशः पद्मकिंजल्कसंनिभः ॥ १५ ॥
स्फोटयत्यतिसंरब्धो लाङ्गूलं च पुनः पुनः ।
यस्य लाङ्गूलशब्देन स्वनन्ति प्रदिशो दश ॥ १६ ॥
एष वानरराजेन सुग्रीवेणाभिषेचितः ।
युवराजोऽङ्गदो नाम त्वामाह्वयति संयुगे ॥ १७ ॥

'जो पराक्रमी वानर दोनों उठी हुई बाँहोंको एक दूसरीसे पकड़कर दोनों पैरोंसे पृथ्वीपर टहल रहा है, लङ्काकी ओर मुख करके क्रोधपूर्वक देखता है और बारंबार अँगड़ाई लेता है, जिसका शरीर पर्वतशिखरके समान ऊँचा है, जिसकी कान्ति कमलकेसरके समान सुनहले रंगकी है, जो रोषसे भरकर बारंबार अपनी पूँछ पटक रहा है तथा जिसकी पूँछके पटकनेकी आवाजसे दसों दिशाएँ गूँज उठती हैं, यह युवराज अङ्गद है। वानरराज सुग्रीवने इसका युवराजके पदपर अभिषेक किया है। यह अपने साथ युद्धके लिये आपको ललकारता है ॥ १४–१७ ॥

वालिनः सदृशः पुत्रः सुग्रीवस्य सदा प्रियः ।
राघवार्थे पराक्रान्तः शक्रार्थे वरुणो यथा ॥ १८ ॥

'वालीका यह पुत्र अपने पिताके समान ही बलशाली है। सुग्रीवको यह सदा ही प्रिय है। जैसे वरुण इन्द्रके लिये पराक्रम प्रकट करते हैं, उसी प्रकार यह श्रीरामचन्द्रजीके लिये अपना पुरुषार्थ प्रकट करनेके लिये उद्यत है ॥ १८ ॥

एतस्य सा मतिः सर्वा यद् दृष्टा जनकात्मजा ।
हनूमता वेगवता राघवस्य हितैषिणा ॥ १९ ॥

'श्रीरघुनाथजीका हित चाहनेवाले वेगशाली हनुमान्‌जीने जो यहाँ आकर जनकनन्दिनी सीताका दर्शन किया, उसके भीतर इस अङ्गदकी ही सारी बुद्धि काम कर रही थी ॥ १९ ॥

बहूनि वानरेन्द्राणामेष यूथानि वीर्यवान् ।
परिगृह्याभियाति त्वां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ॥ २० ॥

'पराक्रमी अङ्गद वानरशिरोमणियोंके बहुत-से यूथ लिये अपनी सेनाके साथ आपको कुचल डालनेके लिये आ रहा है ॥ २० ॥

अनुवालिसुतस्यापि बलेन महता वृतः ।
वीरस्तिष्ठति संग्रामे सेतुहेतुरयं नलः ॥ २१ ॥

'अङ्गदके पीछे संग्रामभूमिमें जो वीर विशाल सेनासे घिरा हुआ खड़ा है, इसका नाम नल है। यही सेतु-निर्माणका प्रधान हेतु है ॥ २१ ॥

ये तु विष्टभ्य गात्राणि क्ष्वेडयन्ति नदन्ति च ।
उत्थाय च विजृम्भन्ते क्रोधेन हरिपुङ्गवाः ॥ २२ ॥
एते दुष्प्रसहा घोराश्चण्डाश्चण्डपराक्रमाः ।
अष्टौ शतसहस्राणि दशकोटिशतानि च ।
य एनमनुगच्छन्ति वीराश्चन्दनवासिनः ॥ २३ ॥
एषैवाशंसते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ।

'जो अपने अङ्गोंको सुस्थिर करके सिंहनाद करते और गर्जते हैं तथा जो कपिश्रेष्ठ वीर अपने आसनोंसे उठकर क्रोधपूर्वक अँगड़ाई लेते हैं, इनके वेगको सह लेना अत्यन्त कठिन है। ये बड़े भयंकर, अत्यन्त क्रोधी और प्रचण्ड पराक्रमी हैं। इनकी संख्या दस अरब और आठ लाख है। ये सब वानर तथा चन्दनवनमें निवास करनेवाले वीर वानर इस यूथपति नलका ही अनुसरण करते हैं। यह नल भी अपनी सेनाद्वारा लङ्कापुरीको कुचल देनेका हौसला रखता है ॥२२-२३½॥

श्वेतो रजतसंकाशश्चपलो भीमविक्रमः ॥ २४ ॥
बुद्धिमान् वानरः शूरस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
तूर्णं सुग्रीवमागम्य पुनर्गच्छति वानरः ॥ २५ ॥
विभजन् वानरीं सेनामनीकानि प्रहर्षयन् ।

'यह जो चाँदीके समान सफेद रंगका चञ्चल वानर दिखायी देता है, इसका नाम श्वेत है। यह भयंकर पराक्रम करनेवाला, बुद्धिमान्, शूरवीर और तीनों लोकोंमें विख्यात है। श्वेत बड़ी तेजीसे सुग्रीवके पास आकर फिर लौट जाता है। यह वानरीसेनाका विभाग करता और सैनिकोंमें हर्ष तथा उत्साह भरता है ॥ २४-२५½ ॥

यः पुरा गोमतीतीरे रम्यं पर्येति पर्वतम् ॥ २६ ॥
नाम्ना संरोचनो नाम नानानगयुतो गिरिः ।
तत्र राज्यं प्रशास्त्येष कुमुदो नाम यूथपः ॥ २७ ॥

'गोमतीके तटपर जो नाना प्रकारके वृक्षोंसे युक्त संरोचन नामक पर्वत है, उसी रमणीय पर्वतके चारों ओर जो पहले विचरा करता था और वहीं अपने वानरराज्यका शासन करता था, वही यह कुमुदनामक यूथपति है ॥ २६-२७ ॥

योऽसौ शतसहस्राणि सहर्षं परिकर्षति ।
यस्य वाला बहुव्यामा दीर्घलाङ्गूलमाश्रिताः ॥ २८ ॥
ताम्राः पीताः सिताः श्वेताः प्रकीर्णा घोरदर्शनाः ।
अदीनो वानरश्चण्डः संग्राममभिकाङ्क्षति ।
एषोऽप्याशंसते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ॥ २९ ॥

'वह जो लाखों वानर सैनिकोंको सहर्ष अपने साथ खींचे लाता है, जिसकी लंबी दुममें बहुत बड़े-बड़े लाल, पीले, भूरे और सफेद रंगके बाल फैले हुए हैं और देखनेमें बड़े भयंकर हैं तथा जो कभी दीनता न दिखाकर सदा युद्धकी ही इच्छा रखता है, उस वानरका नाम चण्ड है। यह चण्ड भी अपनी सेनाद्वारा लङ्काको कुचल देनेकी इच्छा रखता है ॥ २८-२९ ॥

यस्त्वेष सिंहसंकाशः कपिलो दीर्घकेसरः।
निभृतः प्रेक्षते लङ्कां दिधक्षन्निव चक्षुषा ॥ ३० ॥
विन्ध्यं कृष्णगिरिं सह्यं पर्वतं च सुदर्शनम्।
राजन् सततमध्यास्ते स रम्भो नाम यूथपः।
शतं शतसहस्राणां त्रिंशच्च हरिपुङ्गवाः ॥ ३१ ॥
यं यान्तं वानरा घोराश्चण्डाश्चण्डपराक्रमाः।
परिवार्यानुगच्छन्ति लङ्कां मर्दितुमोजसा ॥ ३२ ॥

'राजन्! जो सिंहके समान पराक्रमी और कपिल वर्णका है; जिसकी गर्दनमें लंबे-लंबे बाल हैं और जो ध्यान लगाकर लङ्काकी ओर इस प्रकार देख रहा है, मानो इसे भस्म कर देगा, वह रम्भनामक यूथपति है। वह निरन्तर विन्ध्य, कृष्णगिरि, सह्य और सुदर्शन आदि पर्वतोंपर रहा करता है। जब वह युद्धके लिये चलता है, उस समय उसके पीछे एक करोड़ तीस श्रेष्ठ भयंकर, अत्यन्त क्रोधी और प्रचण्ड पराक्रमी वानर चलते हैं। वे सब-के-सब अपने बलसे लङ्काको मसल डालनेके लिये रम्भको सब ओरसे घेरे हुए आ रहे हैं ॥ ३०–३२ ॥

यस्तु कर्णौ विवृणुते जृम्भते च पुनः पुनः।
न तु संविजते मृत्योर्न च सेनां प्रधावति ॥ ३३ ॥
प्रकम्पते च रोषेण तिर्यक् च पुनरीक्षते।
पश्य लाङ्गूलविक्षेपं क्ष्वेडत्येष महाबलः ॥ ३४ ॥

'जो कानोंको फैलाता है, बारंबार जँभाई लेता है, मृत्युसे भी नहीं डरता है और सेनाके पीछे न जाकर अर्थात् सेनाका भरोसा न करके अकेले ही युद्ध करना चाहता है, रोषसे काँप रहा है, तिरछी नजरसे देखता है और पूँछ फटकारकर सिंहनाद करता है, इसका नाम शरभ है। देखिये, यह महाबली वानर कैसी गर्जना करता है ॥३३-३४॥

महाजवो वीतभयो रम्यं साल्वेयपर्वतम्।
राजन् सततमध्यास्ते शरभो नाम यूथपः ॥ ३५ ॥

'इसका वेग महान् है। भय तो इसे छू तक नहीं गया है। राजन्! यह यूथपति शरभ सदा रमणीय साल्वेय पर्वतपर निवास करता है ॥ ३५ ॥

एतस्य बलिनः सर्वे विहारा नाम यूथपाः।
राजञ्छतसहस्राणि चत्वारिंशत्तथैव च ॥ ३६ ॥

'इसके पास जो यूथपति हैं, उन सबकी 'विहार' संज्ञा है। वे बड़े बलवान् हैं। राजन्! उनकी संख्या एक लाख चालीस हजार है ॥ ३६ ॥

यस्तु मेघ इवाकाशं महानावृत्य तिष्ठति।
मध्ये वानरवीराणां सुराणामिव वासवः ॥ ३७ ॥
भेरीणामिव संनादो यस्यैष श्रूयते महान्।
घोषः शाखामृगेन्द्राणां संग्राममभिकाङ्क्षताम् ॥ ३८ ॥
एष पर्वतमध्यास्ते पारियात्रमनुत्तमम्।
युद्धे दुष्प्रसहो नित्यं पनसो नाम यूथपः ॥ ३९ ॥
एनं शतसहस्राणां शतार्धं पर्युपासते।
यूथपा यूथपश्रेष्ठं येषां यूथानि भागशः ॥ ४० ॥

'जो विशाल वानर मेघके समान आकाशको घेरे हुए खड़ा है तथा वानरवीरोंके बीचमें ऐसा जान पड़ता है, जैसे देवताओंमें इन्द्र हों, युद्धकी इच्छावाले वानरोंके बीचमें जिसकी गम्भीर गर्जना ऐसी सुनायी देती है, मानो बहुत-सी भेरियोंका तुमुल नाद हो रहा हो, तथा जो युद्धमें दुःसह है; वह 'पनस' नामसे प्रसिद्ध यूथपति है। यह पनस परम उत्तम परियात्र पर्वतपर निवास करता है। यूथपतियोंमें श्रेष्ठ पनसकी सेवामें पचास लाख यूथपति रहते हैं, जिनके अपने-अपने यूथ अलग-अलग हैं ॥ ३७–४० ॥

यस्तु भीमां प्रवल्गन्तीं चमूं तिष्ठति शोभयन्।
स्थितां तीरे समुद्रस्य द्वितीय इव सागरः ॥ ४१ ॥
एष दर्दुरसंकाशो विनतो नाम यूथपः।
पिबंश्चरति यो वेणां नदीनामुत्तमां नदीम् ॥ ४२ ॥
षष्टिः शतसहस्राणि बलमस्य प्लवंगमाः।

'जो समुद्रके तटपर स्थित हुई इस उछलती-कूदती भीषण सेनाको दूसरे मूर्तिमान् समुद्रकी भाँति सुशोभित करता हुआ खड़ा है, वह दर्दुर पर्वतके समान विशालकाय वानर विनत नामसे प्रसिद्ध यूथपति है। वह नदियोंमें श्रेष्ठ वेणा नदीका पानी पीता हुआ विचरता है। साठ लाख वानर उसके सैनिक हैं ॥ ४१-४२½ ॥

त्वामाह्वयति युद्धाय क्रोधनो नाम वानरः ॥ ४३ ॥
विक्रान्ता बलवन्तश्च यथा यूथानि भागशः।

'जो युद्धके लिये सदा आपको ललकारता रहता है तथा जिसके पास बल-विक्रमशाली अनेक यूथपति रहते हैं और उन यूथपतियोंके पास पृथक्-पृथक् बहुत-से यूथ हैं, वह 'क्रोधन' नामसे प्रसिद्ध वानर है ॥ ४३½ ॥

यस्तु गैरिकवर्णाभं वपुः पुष्यति वानरः ॥ ४४ ॥
अवमत्य सदा सर्वान् वानरान् बलदर्पितः।
गवयो नाम तेजस्वी त्वां क्रोधादभिवर्तते ॥ ४५ ॥
एनं शतसहस्राणि सप्ततिः पर्युपासते।
एषैवाशंसते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ॥ ४६ ॥

'वह जो गेरुके समान लाल रंगके शरीरका पोषण करता है, उस तेजस्वी वानरका नाम 'गवय' है। उसे अपने बलपर बड़ा घमंड है। वह सदा सब वानरोंका तिरस्कार किया करता है। देखिये, कितने रोषसे वह आपकी ओर बढ़ा आ रहा है। इसकी सेवामें सत्तर लाख वानर रहते हैं। यह भी अपनी सेनाके द्वारा लङ्काको धूलमें मिला देनेकी इच्छा रखता है ॥ ४४–४६ ॥

एते दुष्प्रसहा वीरा येषां संख्या न विद्यते।

यूथपा यूथपश्रेष्ठास्तेषां यूथानि भागशः ॥ ४७ ॥

'ये सारे-के-सारे वानर दुःसह वीर हैं। इनकी गणना करना भी असम्भव है। यूथपतियोंमें श्रेष्ठ जो यूथप हैं, उन सबके अलग-अलग यूथ हैं' ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः

वानरसेनाके प्रधान यूथपतियोंका परिचय

तांस्तु ते सम्प्रवक्ष्यामि प्रेक्षमाणस्य यूथपान्।
राघवार्थे पराक्रान्ता ये न रक्षन्ति जीवितम् ॥ १ ॥

(सारणने कहा—) 'राक्षसराज! आप वानरसेनाका निरीक्षण कर रहे हैं, इसलिये मैं आपको उन यूथपतियोंका परिचय दे रहा हूँ, जो श्रीरघुनाथजीके लिये पराक्रम करनेको उद्यत हैं और अपने प्राणोंका मोह नहीं रखते हैं ॥ १ ॥

स्निग्धा यस्य बहुव्यामा दीर्घलाङ्गूलमाश्रिताः।
ताम्राः पीताः सिताः श्वेताः प्रकीर्णा घोरकर्मणः॥ २ ॥
प्रगृहीताः प्रकाशन्ते सूर्यस्येव मरीचयः।
पृथिव्यां चानुकृष्यन्ते हरो नामैष वानरः ॥ ३ ॥
यं पृष्ठतोऽनुगच्छन्ति शतशोऽथ सहस्रशः।
वृक्षानुद्यम्य सहसा लङ्कारोहणतत्पराः ॥ ४ ॥
यूथपा हरिराजस्य किंकराः समुपस्थिताः।

'इधर यह हर नामका वानर है। भयंकर कर्म करनेवाले इस वानरकी लंबी पूँछपर लाल, पीले, भूरे और सफेद रंगके साढ़े तीन-तीन हाथ बड़े-बड़े चिकने रोएँ हैं। ये इधर-उधर फैले हुए रोम उठे होनेके कारण सूर्यकी किरणोंके समान चमक रहे हैं तथा चलते समय भूमिपर लोटते रहते हैं। इसके पीछे वानरराजके किंकर रूप सैकड़ों और हजारों यूथपति उपस्थित हो वृक्ष उठाये सहसा लङ्कापर आक्रमण करनेके लिये चले आ रहे हैं ॥ २-४½ ॥

नीलानिव महामेघांस्तिष्ठतो यांस्तु पश्यसि ॥ ५ ॥
असिताञ्जनसंकाशान् युद्धे सत्यपराक्रमान्।
असंख्येयाननिर्देशान् परं पारमिवोदधेः ॥ ६ ॥
पर्वतेषु च ये केचिद् विषयेषु नदीषु च।
एते त्वामभिवर्तन्ते राजन्नृक्षाः सुदारुणाः ॥ ७ ॥
एषां मध्ये स्थितो राजन् भीमाक्षो भीमदर्शनः।
पर्जन्य इव जीमूतैः समन्तात् परिवारितः ॥ ८ ॥
ऋक्षवन्तं गिरिश्रेष्ठमध्यास्ते नर्मदां पिबन्।
सर्वर्क्षाणामधिपतिर्धूम्रो नामैष यूथपः ॥ ९ ॥

'उधर नील महामेघ और अञ्जनके समान काले रंगके जिन रीछोंको आप खड़े देख रहे हैं, वे युद्धमें सच्चा पराक्रम प्रकट करनेवाले हैं। समुद्रके दूसरे तटपर स्थित हुए बालुका-कणोंके समान इनकी गणना नहीं की जा सकती, इसीलिये पृथक्-पृथक् नाम लेकर इनके विषयमें कुछ बताना सम्भव नहीं है। ये सब पर्वतों, विभिन्न देशों और नदियोंके तटोंपर रहते हैं। राजन्! ये अत्यन्त भयंकर स्वभाववाले रीछ आपपर चढ़े आ रहे हैं। इनके बीचमें इनका राजा खड़ा है, जिसकी आँखें बड़ी भयानक और जो दूसरोंके देखनेमें भी बड़ा भयंकर जान पड़ता है। वह काले मेघोंसे घिरे हुए इन्द्रकी भाँति चारों ओरसे इन रीछोंद्वारा घिरा हुआ है। इसका नाम धूम्र है। यह समस्त रीछोंका राजा और यूथपति है। यह रीछराज धूम्र पर्वतश्रेष्ठ ऋक्षवान्पर रहता और नर्मदाका जल पीता है ॥ ५-९ ॥

यवीयानस्य तु भ्राता पश्यैनं पर्वतोपमम्।
भ्रात्रा समानो रूपेण विशिष्टस्तु पराक्रमे ॥ १० ॥
स एष जाम्बवान् नाम महायूथपयूथपः।
प्रशान्तो गुरुवर्ती च सम्प्रहारेष्वमर्षणः ॥ ११ ॥

'इस धूम्रके छोटे भाई जाम्बवान् हैं, जो महान् यूथपतियोंके भी यूथपति हैं। देखिये ये कैसे पर्वताकार दिखायी देते हैं। ये रूपमें तो अपने भाईके समान ही हैं; किंतु पराक्रममें उससे भी बढ़कर हैं। इनका स्वभाव शान्त है। ये बड़े भाई तथा गुरुजनोंकी आज्ञाके अधीन रहते हैं और उनकी सेवा करते हैं। युद्धके अवसरोंपर इनका रोष और अमर्ष बहुत बढ़ जाता है ॥ १०-११ ॥

एतेन साह्यं तु महत् कृतं शक्रस्य धीमता।
देवासुरे जाम्बवता लब्धाश्च बहवो वराः ॥ १२ ॥

'इन बुद्धिमान् जाम्बवान्ने देवासुर-संग्राममें इन्द्रकी बहुत बड़ी सहायता की थी और उनसे इन्हें बहुत-से वर भी प्राप्त हुए थे ॥ १२ ॥

आरुह्य पर्वताग्रेभ्यो महाभ्रविपुलाः शिलाः।
मुञ्चन्ति विपुलाकारा न मृत्योरुद्विजन्ति च ॥ १३ ॥
राक्षसानां च सदृशाः पिशाचानां च रोमशाः।
एतस्य सैन्या बहवो विचरन्त्यमितौजसः ॥ १४ ॥

'इनके बहुत-से सैनिक विचरते हैं, जिनके बल-पराक्रमकी कोई सीमा नहीं है। इन सबके शरीर बड़ी-बड़ी रोमावलियोंसे

भरे हुए हैं। ये राक्षसों और पिशाचोंके समान क्रूर हैं और बड़े-बड़े पर्वत-शिखरोंपर चढ़कर वहाँसे महान् मेघोंके समान विशाल एवं विस्तृत शिलाखण्ड शत्रुओंपर छोड़ते हैं। इन्हें मृत्युसे कभी भय नहीं होता ॥ १३-१४ ॥

य एनमभिसंरब्धं प्लवमानमवस्थितम्।
प्रेक्षन्ते वानराः सर्वे स्थिता यूथपयूथपम् ॥ १५ ॥
एष राजन् सहस्राक्षं पर्युपास्ते हरीश्वरः।
बलेन बलसंयुक्तो दम्भो नामैष यूथपः ॥ १६ ॥

'जो खेल-खेलमें ही कभी उछलता और कभी खड़ा होता है, वहाँ खड़े हुए सब वानर जिसकी ओर आश्चर्यपूर्वक देखते हैं, जो यूथपतियोंका भी सरदार है और रोषसे भरा दिखायी देता है, यह दम्भ नामसे प्रसिद्ध यूथपति है। इसके पास बहुत बड़ी सेना है। राजन्! यह वानरराज दम्भ अपनी सेनाद्वारा ही सहस्राक्ष इन्द्रकी उपासना करता है—उनकी सहायताके लिये सेनाएँ भेजता रहता है ॥१५-१६॥

यः स्थितं योजने शैलं गच्छन् पार्श्वेन सेवते।
ऊर्ध्वं तथैव कायेन गतः प्राप्नोति योजनम् ॥ १७ ॥
यस्मात् तु परमं रूपं चतुष्पात्सु न विद्यते।
श्रुतः संनादनो नाम वानराणां पितामहः ॥ १८ ॥
येन युद्धं तदा दत्तं रणे शक्रस्य धीमता।
पराजयश्च न प्राप्तः सोऽयं यूथपयूथपः ॥ १९ ॥

'जो चलते समय एक योजन दूर खड़े हुए पर्वतको भी अपने पार्श्वभागसे छू लेता है और एक योजन ऊँचेकी वस्तुतक अपने शरीरसे ही पहुँचकर उसे ग्रहण कर लेता है, चौपायोंमें जिससे बड़ा रूप कहीं नहीं है, वह वानर संनादन नामसे विख्यात है। उसे वानरोंका पितामह कहा जाता है। उस बुद्धिमान् वानरने किसी समय इन्द्रको अपने साथ युद्धका अवसर दिया था, किंतु वह उनसे परास्त नहीं हुआ था, वही यह यूथपतियोंका भी सरदार है ॥१७—१९॥

यस्य विक्रममाणस्य शक्रस्येव पराक्रमः।
एष गन्धर्वकन्यायामुत्पन्नः कृष्णवर्त्मना ॥ २० ॥
तदा देवासुरे युद्धे साह्यार्थं त्रिदिवौकसाम्।
यत्र वैश्रवणो राजा जम्बूमुपनिषेवते ॥ २१ ॥
यो राजा पर्वतेन्द्राणां बहुकिंनरसेविनाम्।
विहारसुखदो नित्यं भ्रातुस्ते राक्षसाधिप ॥ २२ ॥
तत्रैष रमते श्रीमान् बलवान् वानरोत्तमः।
युद्धेष्वकत्थनो नित्यं क्रथनो नाम यूथपः ॥ २३ ॥
वृतः कोटिसहस्रेण हरीणां समवस्थितः।
एषैवाशंसते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ॥ २४ ॥

'युद्धके लिये जाते समय जिसका पराक्रम इन्द्रके समान दृष्टिगोचर होता है तथा देवताओं और असुरोंके युद्धमें देवताओंकी सहायताके लिये जिसे अग्निदेवने एक गन्धर्व-कन्याके गर्भसे उत्पन्न किया था, वही यह क्रथन नामक यूथपति है। राक्षसराज! बहुत-से किंनर जिनका सेवन करते हैं, उन बड़े-बड़े पर्वतोंका जो राजा है और आपके भाई कुबेरको सदा विहारका सुख प्रदान करता है तथा जिसपर उगे हुए जामुनके वृक्षके नीचे राजाधिराज कुबेर बैठा करते हैं, उसी पर्वतपर यह तेजस्वी बलवान् वानरशिरोमणि श्रीमान् क्रथन भी रमण करता है। यह युद्धमें कभी अपनी प्रशंसा नहीं करता और दस अरब वानरोंसे घिरा रहता है। यह भी अपनी सेनाके द्वारा लङ्काको रौंद डालनेका हौसला रखता है ॥ २०—२४ ॥

यो गङ्गामनुपर्येति त्रासयन् गजयूथपान्।
हस्तिनां वानराणां च पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २५ ॥
एष यूथपतिर्नेता गर्जन् गिरिगुहाशयः।
गजान् रोधयते वन्यानारुजंश्च महीरुहान् ॥ २६ ॥
हरीणां वाहिनीमुख्यो नदीं हैमवतीमनु।
उशीरबीजमाश्रित्य मन्दरं पर्वतोत्तमम् ॥ २७ ॥
रमते वानरश्रेष्ठो दिवि शक्र इव स्वयम्।

एनं शतसहस्राणां सहस्रमभिवर्तते ॥ २८ ॥
वीर्यविक्रमदृप्तानां नर्दतां बाहुशालिनाम्।
स एष नेता चैतेषां वानराणां महात्मनाम् ॥ २९ ॥
स एष दुर्धरो राजन् प्रमाथी नाम यूथपः।
वातेनेवोद्धतं मेघं यमेनमनुपश्यसि ॥ ३० ॥
अनीकमपि संरब्धं वानराणां तरस्विनाम्।
उद्धूतमरुणाभासं पवनेन समन्ततः ॥ ३१ ॥

विवर्तमानं बहुशो यत्रैतद्बहुलं रजः।

'जो हाथियों और वानरोंके पुराने वैरका स्मरण करके गज-यूथपतियोंको भयभीत करता हुआ गङ्गाके किनारे विचरा करता है, जंगली पेड़ोंको तोड़-उखाड़कर उनके द्वारा हाथियोंको आगे बढ़नेसे रोक देता है, पर्वतोंकी कन्दरामें सोता और जोर-जोरसे गर्जना करता है, वानरयूथोंका स्वामी तथा संचालक है, वानरोंकी सेनामें जिसे प्रमुख वीर माना जाता है, जो गङ्गातटपर विद्यमान उशीरबीज नामक पर्वत तथा गिरिश्रेष्ठ मन्दराचलका आश्रय लेकर रहता एवं रमण करता है और जो वानरोंमें उसी प्रकार श्रेष्ठ स्थान रखता है जैसे स्वर्गके देवताओंमें साक्षात् इन्द्र, वही यह दुर्जय वीर प्रमाथी नामक यूथपति है। इसके साथ बल और पराक्रमपर गर्व रखकर गर्जना करनेवाले दस करोड़ वानर रहते हैं, जो अपने बाहुबलसे सुशोभित होते हैं।

---

१. हनुमान्‌जीके पिता वानरराज केसरीने शम्बसादन नामक राक्षसको, जो हाथीका रूप धारण करके आया था, मार डाला था। इसीसे पूर्वकालमें हाथियोंसे वानरोंका वैर बँध गया था।

यह प्रमाथी इन सभी महात्मा वानरोंका नेता है। वायुके वेगसे उठे हुए मेघकी भाँति जिस वानरकी ओर आप बारंबार देख रहे हैं, जिससे सम्बन्ध रखनेवाले वेगशाली वानरोंकी सेना भी रोषसे भरी दिखायी देती है तथा जिसकी सेनाद्वारा उड़ायी गयी धूमिल रंगकी बहुत बड़ी धूलिराशि वायुसे सब ओर फैलकर जिसके निकट गिर रही है, वही यह प्रमाथी नामक वीर है॥ २५-३१½॥

एतेऽसितमुखा घोरा गोलाङ्गूला महाबलाः॥ ३२॥
शतं शतसहस्राणि दृष्ट्वा वै सेतुबन्धनम्।
गोलाङ्गूलं महाराज गवाक्षं नाम यूथपम्॥ ३३॥
परिवार्याभिनर्दन्ते लङ्कां मर्दितुमोजसा।

'ये काले मुँहवाले लंगूरजातिके वानर हैं। इनमें महान् बल है। इन भयंकर वानरोंकी संख्या एक करोड़ है। महाराज! जिसने सेतु बाँधनेमें सहायता की है, उस लंगूरजातिके गवाक्ष नामक यूथपतिको चारों ओरसे घेरकर ये वानर चल रहे हैं और लङ्काको बलपूर्वक कुचल डालनेके लिये जोर-जोरसे गर्जना करते हैं॥ ३२-३३½॥

भ्रमराचरिता यत्र सर्वकालफलद्रुमाः॥ ३४॥
यं सूर्यस्तुल्यवर्णाभमनुपर्येति पर्वतम्।
यस्य भासा सदा भान्ति तद्वर्णा मृगपक्षिणः॥ ३५॥
यस्य प्रस्थं महात्मानो न त्यजन्ति महर्षयः।
सर्वकामफला वृक्षाः सदा फलसमन्विताः॥ ३६॥
मधूनि च महार्हाणि यस्मिन् पर्वतसत्तमे।
तत्रैष रमते राजन् रम्ये काञ्चनपर्वते॥ ३७॥
मुख्यो वानरमुख्यानां केसरी नाम यूथपः।

'जिस पर्वतपर सभी ऋतुओंमें फल देनेवाले वृक्ष भ्रमरोंसे सेवित दिखायी देते हैं, सूर्यदेव अपने ही समान वर्णवाले जिस पर्वतकी प्रतिदिन परिक्रमा करते हैं, जिसकी कान्तिसे वहाँके मृग और पक्षी सदा सुनहरे रंगके प्रतीत होते हैं, महात्मा महर्षिगण जिसके शिखरका कभी त्याग नहीं करते हैं, जहाँके सभी वृक्ष सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओंको फलके रूपमें प्रदान करते हैं और उनमें सदा फल लगे रहते हैं, जिस श्रेष्ठ शैलपर बहुमूल्य मधु उपलब्ध होते हैं, उसी रमणीय सुवर्णमय पर्वत महामेरुपर ये प्रमुख वानरोंमें प्रधान यूथपति केसरी रमण करते हैं॥ ३४-३७½॥

षष्टिर्गिरिसहस्राणि रम्याः काञ्चनपर्वताः॥ ३८॥
तेषां मध्ये गिरिवरस्त्वमिवानघ रक्षसाम्।

'साठ हजार जो रमणीय सुवर्णमय पर्वत हैं, उनके बीचमें एक श्रेष्ठ पर्वत है, जिसका नाम है सावर्णिमेरु। निष्पाप निशाचरपते! जैसे राक्षसोंमें आप श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार पर्वतोंमें वह सावर्णिमेरु उत्तम है॥ ३८½॥

तत्रैके कपिलाः श्वेतास्ताम्रास्या मधुपिङ्गलाः॥ ३९॥
निवसन्त्यन्तिमगिरौ तीक्ष्णदंष्ट्रा नखायुधाः।
सिंहा इव चतुर्दंष्ट्रा व्याघ्रा इव दुरासदाः॥ ४०॥
सर्वे वैश्वानरसमा ज्वलदाशीविषोपमाः।
सुदीर्घाञ्चितलाङ्गूला मत्तमातङ्गसंनिभाः॥ ४१॥
महापर्वतसंकाशा महाजीमूतनिःस्वनाः।
वृत्तपिङ्गलनेत्रा हि महाभीमगतिस्वनाः॥ ४२॥
मर्दयन्तीव ते सर्वे तस्थुर्लङ्कां समीक्ष्य ते।

'वहाँ जो पर्वतका अन्तिम शिखर है, उसपर कपिल (भूरे), श्वेत, लाल मुँहवाले और मधुके समान पिङ्गल वर्णवाले वानर निवास करते हैं, जिनके दाँत बड़े तीखे हैं और नख ही उनके आयुध हैं। वे सब सिंहके समान चार दाँतोंवाले, व्याघ्रके समान दुर्जय, अग्निके समान तेजस्वी और प्रज्वलित मुखवाले विषधर सर्पके समान क्रोधी होते हैं। उनकी पूँछ बहुत बड़ी ऊपरको उठी हुई और सुन्दर होती है। वे मतवाले हाथीके समान पराक्रमी, महान् पर्वतके समान, ऊँचे और सुदृढ़ शरीरवाले तथा महान् मेघके समान गम्भीर गर्जना करनेवाले हैं। उनके नेत्र गोल-गोल एवं पिङ्गल वर्णके होते हैं। उनके चलनेपर बड़ा भयानक शब्द होता है। वे सभी वानर यहाँ आकर इस तरह खड़े हैं, मानो आपकी लङ्काको देखते ही मसल डालेंगे॥ ३९-४२½॥

एष चैषामधिपतिर्मध्ये तिष्ठति वीर्यवान्॥ ४३॥
जयार्थी नित्यमादित्यमुपतिष्ठति वीर्यवान्।
नाम्ना पृथिव्यां विख्यातो राजञ्शतवलीति यः॥ ४४॥

'देखिये उनके बीचमें यह उनका पराक्रमी सेनापति खड़ा है। यह बड़ा बलवान् है और विजयकी प्राप्तिके लिये सदा सूर्यदेवकी उपासना करता है। राजन्! यह वीर इस भूमण्डलमें शतबलिके नामसे विख्यात है॥ ४३-४४॥

एषैवाशंसते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम्।
विक्रान्तो बलवाञ्छूरः पौरुषे स्वे व्यवस्थितः॥ ४५॥
रामप्रियार्थं प्राणानां दयां न कुरुते हरिः।

'बलवान्, पराक्रमी तथा शूरवीर यह शतबलि भी अपने ही पुरुषार्थके भरोसे युद्धके लिये खड़ा है और अपनी सेनाद्वारा लङ्कापुरीको मसल डालना चाहता है। यह वानरवीर श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय करनेके लिये अपने प्राणोंपर भी दया नहीं करता है॥ ४५½॥

गजो गवाक्षो गवयो नलो नीलश्च वानरः॥ ४६॥
एकैकमेव योधानां कोटिभिर्दशभिर्वृतः।

'गज, गवाक्ष, गवय, नल और नील—इनमेंसे एक-एक सेनापति दस-दस करोड़ योद्धाओंसे घिरा हुआ है॥ ४६½॥

तथान्ये वानरश्रेष्ठा विन्ध्यपर्वतवासिनः।
न शक्यन्ते बहुत्वात् तु संख्यातुं लघुविक्रमाः॥ ४७॥

'इसी तरह विन्ध्यपर्वतपर निवास करनेवाले और भी बहुत-से शीघ्र पराक्रमी श्रेष्ठ वानर हैं, जो अधिक होनेके कारण गिने नहीं जा सकते॥ ४७॥

सर्वे महाराज महाप्रभावाः
सर्वे महाशैलनिकाशकायाः ।
सर्वे समर्थाः पृथिवीं क्षणेन
कर्तुं प्रविध्वस्तविकीर्णशैलाम् ॥ ४८ ॥

'महाराज ! ये सभी वानर बड़े प्रभावशाली हैं । सभीके शरीर बड़े-बड़े पर्वतोंके समान विशाल हैं और सभी क्षणभरमें भूमण्डलके समस्त पर्वतोंको चूर-चूर करके सब ओर बिखेर देनेकी शक्ति रखते हैं' ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सत्ताईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २७ ॥

◆

अष्टाविंशः सर्गः

शुकके द्वारा सुग्रीवके मन्त्रियोंका, मैन्द और द्विविदका, हनुमान्‌का, श्रीराम, लक्ष्मण, विभीषण और सुग्रीवका परिचय देकर वानरसेनाकी संख्याका निरूपण करना

सारणस्य वचः श्रुत्वा रावणं राक्षसाधिपम् ।
बलमादिश्य तत् सर्वं शुको वाक्यमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

उस सारी वानरीसेनाका परिचय देकर जब सारण चुप हो गया, तब उसका कथन सुनकर शुकने राक्षसराज रावणसे कहा—॥ १ ॥

स्थितान् पश्यसि यानेतान् मत्तानिव महाद्विपान् ।
न्यग्रोधानिव गाङ्गेयान् सालान् हैमवतानिव ॥ २ ॥
एते दुष्प्रसहा राजन् बलिनः कामरूपिणः ।
दैत्यदानवसंकाशा युद्धे देवपराक्रमाः ॥ ३ ॥

'राजन् ! जिन्हें आप मतवाले महागजराजोंके समान वहाँ खड़ा देख रहे हैं, जो गङ्गातटके वटवृक्षों और हिमालयके शालवृक्षोंके समान जान पड़ते हैं, इनका वेग दुस्सह है । ये इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले और बलवान् हैं । दैत्यों और दानवोंके समान शक्तिशाली तथा युद्धमें देवताओंके समान पराक्रम प्रकट करनेवाले हैं ॥ २-३ ॥

एषां कोटिसहस्राणि नव पञ्च च सप्त च ।
तथा शङ्कुसहस्राणि तथा वृन्दशतानि च ॥ ४ ॥
एते सुग्रीवसचिवाः किष्किन्धानिलयाः सदा ।
हरयो देवगन्धर्वैरुत्पन्नाः कामरूपिणः ॥ ५ ॥

'इनकी संख्या इक्कीस कोटि सहस्र, सहस्र शङ्कु और सौ वृन्द है* । ये सब-के-सब वानर सदा किष्किन्धामें रहनेवाले सुग्रीवके मन्त्री हैं । इनकी उत्पत्ति देवताओं और गन्धर्वोंसे हुई है । ये सभी इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ हैं ॥ ४-५ ॥

यौ तौ पश्यसि तिष्ठन्तौ कुमारौ देवरूपिणौ ।
मैन्दश्च द्विविदश्चैव ताभ्यां नास्ति समो युधि ॥ ६ ॥
ब्रह्मणा समनुज्ञातावमृतप्राशिनावुभौ ।
आशंसेते यथा लङ्कामेतौ मर्दितुमोजसा ॥ ७ ॥

'राजन् ! आप इन वानरोंमें देवताओंके समान रूपवाले जिन दो वानरोंको खड़ा देख रहे हैं उनके नाम हैं मैन्द और द्विविद । युद्धमें उनकी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है । ब्रह्माजीकी आज्ञासे उन दोनोंने अमृतपान किया है । ये दोनों वीर अपने बल-पराक्रमसे लङ्काको कुचल डालनेकी इच्छा रखते हैं ॥ ६-७ ॥

यं तु पश्यसि तिष्ठन्तं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम् ।
यो बलात् क्षोभयेत् क्रुद्धः समुद्रमपि वानरः ॥ ८ ॥
एषोऽभिगन्ता लङ्कायां वैदेह्यास्तव च प्रभो ।
एनं पश्य पुरा दृष्टं वानरं पुनरागतम् ॥ ९ ॥
ज्येष्ठः केसरिणः पुत्रो वातात्मज इति श्रुतः ।
हनूमानिति विख्यातो लङ्घितो येन सागरः ॥ १० ॥

'इधर जिसे आप मदकी धारा बहानेवाले मतवाले हाथीकी भाँति खड़ा देख रहे हैं, जो वानर कुपित होनेपर समुद्रको भी विक्षुब्ध कर सकता है, जो लङ्कामें आपके पास आया था और विदेहनन्दिनी सीतासे भी मिलकर गया था, उसे देखिये । पहलेका देखा हुआ यह वानर फिर आया है । यह केसरीका बड़ा पुत्र है । पवनपुत्रके भी नामसे विख्यात है । उसे लोग हनुमान् कहते हैं । इसीने पहले समुद्र लाँघा था ॥ ८—१० ॥

कामरूपो हरिश्रेष्ठो बलरूपसमन्वितः ।
अनिवार्यगतिश्चैव यथा सततगः प्रभुः ॥ ११ ॥

'बल और रूपसे सम्पन्न यह श्रेष्ठ वानर अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारण कर सकता है । इसकी गति कहीं नहीं रुकती । यह वायुके समान सर्वत्र जा सकता है ॥ ११ ॥

उद्यन्तं भास्करं दृष्ट्वा बालः किल बुभुक्षितः ।
त्रियोजनसहस्रं तु अध्वानमवतीर्य हि ॥ १२ ॥
आदित्यमाहरिष्यामि न मे क्षुत् प्रतियास्यति ।
इति निश्चित्य मनसा पुप्लुवे बलदर्पितः ॥ १३ ॥

'जब यह बालक था उस समयकी बात है, एक दिन इसको बहुत भूख लगी थी । उस समय उगते हुए सूर्यको

---

* इन संख्याओंका स्पष्टीकरण इसी सर्गके अन्तमें दी हुई परिभाषाके अनुसार समझना चाहिये ।

देखकर यह तीन हजार योजन ऊँचा उछल गया था। उस समय मन-ही-मन यह निश्चय करके कि 'यहाँके फल आदिसे मेरी भूख नहीं जायगी, इसलिये सूर्यको (जो आकाशका दिव्य फल है) ले आऊँगा' यह बलाभिमानी वानर ऊपरको उछला था ॥ १२-१३ ॥

अनाधृष्यतमं देवमपि देवर्षिराक्षसैः ।
अनासाद्यैव पतितो भास्करोदयने गिरौ ॥ १४ ॥

'देवर्षि और राक्षस भी जिन्हें परास्त नहीं कर सकते, उन सूर्यदेवतक न पहुँचकर यह वानर उदयगिरिपर ही गिर पड़ा ॥ १४ ॥

पतितस्य कपेरस्य हनुरेका शिलातले ।
किंचिद् भिन्ना दृढहनुर्हनूमानेष तेन वै ॥ १५ ॥

'वहाँके शिलाखण्डपर गिरनेके कारण इस वानरकी एक हनु (ठोढ़ी) कुछ कट गयी; साथ ही अत्यन्त दृढ़ हो गयी, इसलिये यह 'हनुमान्' नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ १५ ॥

सत्यमागमयोगेन ममैष विदितो हरिः ।
नास्य शक्यं बलं रूपं प्रभावो वानुभाषितुम् ॥ १६ ॥
एष आशंसते लङ्कामेको मथितुमोजसा ।
येन जाज्वल्यतेऽसौ वै धूमकेतुस्तवाद्य वै ।
लङ्कायां निहितश्चापि कथं विस्मरसे कपिम् ॥ १७ ॥

'विश्वसनीय व्यक्तियोंके सम्पर्कसे मैंने इस वानरका वृत्तान्त ठीक-ठीक जाना है। इसके बल, रूप और प्रभावका पूर्णरूपसे वर्णन करना किसीके लिये भी असम्भव है। यह अकेला ही सारी लङ्काको मसल देना चाहता है। जिसे आपने लङ्कामें रोक रक्खा था, उस अग्निको भी जिसने अपनी पूँछद्वारा प्रज्वलित करके सारी लङ्का जला डाली, उस वानरको आप भूलते कैसे हैं ? ॥ १६-१७ ॥

यश्चैषोऽनन्तरः शूरः श्यामः पद्मनिभेक्षणः ।
इक्ष्वाकूणामतिरथो लोके विश्रुतपौरुषः ॥ १८ ॥

'हनुमान्‌जीके पास ही जो कमलके समान नेत्रवाले साँवले शूरवीर विराज रहे हैं, वे इक्ष्वाकुवंशके अतिरथी हैं। इनका पौरुष सम्पूर्ण लोकोंमें प्रसिद्ध है ॥ १८ ॥

यस्मिन् न चलते धर्मो यो धर्मं नातिवर्तते ।
यो ब्राह्ममस्त्रं वेदांश्च वेद वेदविदां वरः ॥ १९ ॥

'धर्म उनसे कभी अलग नहीं होता। ये धर्मका कभी उल्लङ्घन नहीं करते तथा ब्रह्मास्त्र और वेद दोनोंके ज्ञाता हैं। वेदवेत्ताओंमें इनका बहुत ऊँचा स्थान है ॥ १९ ॥

यो भिन्द्याद् गगनं बाणैर्मेदिनीं वापि दारयेत् ।
यस्य मृत्योरिव क्रोधः शक्रस्येव पराक्रमः ॥ २० ॥

'ये अपने बाणोंसे आकाशका भी भेदन कर सकते हैं, पृथ्वीको भी विदीर्ण करनेकी क्षमता रखते हैं। इनका क्रोध मृत्युके समान और पराक्रम इन्द्रके तुल्य है ॥ २० ॥

यस्य भार्या जनस्थानात् सीता चापि हृता त्वया ।
स एष रामस्त्वां राजन् योद्धुं समभिवर्तते ॥ २१ ॥

'राजन्! जिनकी भार्या सीताको आप जनस्थानसे हर लाये हैं, वे ही ये श्रीराम आपसे युद्ध करनेके लिये सामने आकर खड़े हैं ॥ २१ ॥

यस्यैष दक्षिणे पार्श्वे शुद्धजाम्बूनदप्रभः ।
विशालवक्षास्ताम्राक्षो नीलकुञ्चितमूर्धजः ॥ २२ ॥
एषो हि लक्ष्मणो नाम भ्रातुः प्रियहिते रतः ।
नये युद्धे च कुशलः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ २३ ॥

'उनके दाहिने भागमें जो ये शुद्ध सुवर्णके समान कान्तिमान्, विशाल वक्षःस्थलसे सुशोभित, कुछ-कुछ लाल नेत्रवाले तथा मस्तकपर काले-काले घुँघराले केश धारण करनेवाले हैं, इनका नाम लक्ष्मण है। ये अपने भाईके प्रिय और हितमें लगे रहनेवाले हैं, राजनीति और युद्धमें कुशल हैं तथा सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ २२-२३ ॥

अमर्षी दुर्जयो जेता विक्रान्तश्च जयी बली ।
रामस्य दक्षिणो बाहुर्नित्यं प्राणो बहिश्चरः ॥ २४ ॥

'ये अमर्षशील, दुर्जय, विजयी, पराक्रमी, शत्रुको पराजित करनेवाले तथा बलवान् हैं। लक्ष्मण सदा ही श्रीरामके दाहिने हाथ और बाहर विचरनेवाले प्राण हैं ॥ २४ ॥

नह्येष राघवस्यार्थे जीवितं परिरक्षति ।
एषैवाशंसते युद्धे निहन्तुं सर्वराक्षसान् ॥ २५ ॥

'इन्हें श्रीरघुनाथजीके लिये अपने प्राणोंकी रक्षाका भी ध्यान नहीं रहता। ये अकेले ही युद्धमें सम्पूर्ण राक्षसोंका संहार कर देनेकी इच्छा रखते हैं ॥ २५ ॥

यस्तु सव्यमसौ पक्षं रामस्याश्रित्य तिष्ठति ।
रक्षोगणपरिक्षिप्तो राजा ह्येष विभीषणः ॥ २६ ॥
श्रीमता राजराजेन लङ्कायामभिषेचितः ।
त्वामसौ प्रतिसंरब्धो युद्धायैषोऽभिवर्तते ॥ २७ ॥

'श्रीरामचन्द्रजीकी बायीं ओर जो राक्षसोंसे घिरे हुए खड़े हैं, ये राजा विभीषण हैं। राजाधिराज श्रीरामने इन्हें लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया है। अब ये आपपर कुपित होकर युद्धके लिये सामने आ गये हैं ॥ २६-२७ ॥

यं तु पश्यसि तिष्ठन्तं मध्ये गिरिमिवाचलम् ।
सर्वशाखामृगेन्द्राणां भर्तारममितौजसम् ॥ २८ ॥

'जिन्हें आप सब वानरोंके बीचमें पर्वतके समान अविचल भावसे खड़ा देखते हैं, वे समस्त वानरोंके स्वामी अमित तेजस्वी सुग्रीव हैं ॥ २८ ॥

तेजसा यशसा बुद्ध्या बलेनाभिजनेन च ।
यः कपीनतिबभ्राज हिमवानिव पर्वतः ॥ २९ ॥

'जैसे हिमालय सब पर्वतोंमें श्रेष्ठ है, उसी प्रकार वे तेज, यश, बुद्धि, बल और कुलकी दृष्टिसे समस्त वानरोंमें सर्वोपरि विराजमान हैं ॥ २९ ॥

किष्किन्धां यः समध्यास्ते गुहां सगहनद्रुमाम् ।
दुर्गां पर्वतदुर्गम्यां प्रधानैः सह यूथपैः ॥ ३० ॥

'ये गहन वृक्षोंसे युक्त किष्किन्धा नामक दुर्गम गुफामें निवास करते हैं । पर्वतोंके कारण उसमें प्रवेश करना अत्यन्त कठिन है । इनके साथ वहाँ प्रधान-प्रधान यूथपति भी रहते हैं ॥ ३० ॥

यस्यैषा काञ्चनी माला शोभते शतपुष्करा ।
कान्ता देवमनुष्याणां यस्यां लक्ष्मीः प्रतिष्ठिता ॥ ३१ ॥

'इनके गलेमें जो सौ कमलोंकी सुवर्णमयी माला सुशोभित है, उसमें सर्वदा लक्ष्मीदेवीका निवास है । उसे देवता और मनुष्य सभी पाना चाहते हैं ॥ ३१ ॥

एतां मालां च तारां च कपिराज्यं च शाश्वतम् ।
सुग्रीवो वालिनं हत्वा रामेण प्रतिपादितः ॥ ३२ ॥

'भगवान् श्रीरामने वालीको मारकर यह माला, तारा और वानरोंका राज्य—ये सब वस्तुएँ सुग्रीवको समर्पित कर दीं ॥ ३२ ॥

शतं शतसहस्राणां कोटिमाहुर्मनीषिणः ।
शतं कोटिसहस्राणां शङ्कुरित्यभिधीयते ॥ ३३ ॥

'मनीषी पुरुष सौ लाखकी संख्याको एक कोटि कहते हैं और सौ सहस्र कोटि (एक नील) को एक शङ्कु कहा जाता है ॥ ३३ ॥

शतं शङ्कुसहस्राणां महाशङ्कुरिति स्मृतः ।
महाशङ्कुसहस्राणां शतं वृन्दमिहोच्यते ॥ ३४ ॥

'एक लाख शङ्कुको महाशङ्कु नाम दिया गया है । एक लाख महाशङ्कुको वृन्द कहते हैं ॥ ३४ ॥

शतं वृन्दसहस्राणां महावृन्दमिति स्मृतम् ।
महावृन्दसहस्राणां शतं पद्ममिहोच्यते ॥ ३५ ॥

'एक लाख वृन्दका नाम महावृन्द है । एक लाख महावृन्दको पद्म कहते हैं ॥ ३५ ॥

शतं पद्मसहस्राणां महापद्ममिति स्मृतम् ।
महापद्मसहस्राणां शतं खर्वमिहोच्यते ॥ ३६ ॥

'एक लाख पद्मको महापद्म माना गया है । एक लाख महापद्मको खर्व कहते हैं ॥ ३६ ॥

शतं खर्वसहस्राणां महाखर्वमिति स्मृतम् ।
महाखर्वसहस्राणां समुद्रमभिधीयते ।
शतं समुद्रसाहस्रमोघ इत्यभिधीयते ॥ ३७ ॥
शतमोघसहस्राणां महौघा इति विश्रुतः ।

'एक लाख खर्वका महाखर्व होता है । एक सहस्र महाखर्वको समुद्र कहते हैं । एक लाख समुद्रको ओघ कहते हैं और एक लाख ओघकी महौघ संज्ञा है ॥ ३७½ ॥

एवं कोटिसहस्रेण शङ्कूनां च शतेन च ।
महाशङ्कुसहस्रेण तथा वृन्दशतेन च ॥ ३८ ॥
महावृन्दसहस्रेण तथा पद्मशतेन च ।
महापद्मसहस्रेण तथा खर्वशतेन च ॥ ३९ ॥
समुद्रेण च तेनैव महौघेन तथैव च ।
एष कोटिमहौघेन समुद्रसदृशेन च ॥ ४० ॥
विभीषणेन वीरेण सचिवैः परिवारितः ।
सुग्रीवो वानरेन्द्रस्त्वां युद्धार्थमनुवर्तते ।
महाबलवृतो नित्यं महाबलपराक्रमः ॥ ४१ ॥

'इस प्रकार सहस्र कोटि, सौ शङ्कु, सहस्र महाशङ्कु, सौ वृन्द, सहस्र महावृन्द, सौ पद्म, सहस्र महापद्म, सौ खर्व, सौ समुद्र, सौ महौघ तथा समुद्र-सदृश (सौ) कोटि महौघ सैनिकोंसे, वीर विभीषणसे तथा अपने सचिवोंसे घिरे हुए वानरराज सुग्रीव आपको युद्धके लिये ललकारते हुए सामने आ रहे हैं । विशाल सेनासे घिरे हुए सुग्रीव महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न हैं ॥ ३८—४१ ॥

इमां महाराज समीक्ष्य वाहिनी-
मुपस्थितां प्रज्वलितग्रहोपमाम् ।
ततः प्रयत्नः परमो विधीयतां
यथा जयः स्यान्न परैः पराभवः ॥ ४२ ॥

'महाराज ! यह सेना एक प्रकाशमान ग्रहके समान है । इसे उपस्थित देख आप कोई ऐसा उपाय करें, जिससे आपकी विजय हो और शत्रुओंके सामने आपको नीचा न देखना पड़े' ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें अट्ठाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २८ ॥

* * *

एकोनत्रिंशः सर्गः

रावणका शुक और सारणको फटकारकर अपने दरबारसे निकाल देना, उसके भेजे हुए गुप्तचरोंका श्रीरामकी दयासे वानरोंके चंगुलसे छूटकर लङ्कामें आना

शुकेन तु समादिष्टान् दृष्ट्वा स हरियूथपान्।
लक्ष्मणं च महावीर्यं भुजं रामस्य दक्षिणम्॥ १॥
समीपस्थं च रामस्य भ्रातरं च विभीषणम्।
सर्ववानरराजं च सुग्रीवं भीमविक्रमम्॥ २॥
अङ्गदं चापि बलिनं वज्रहस्तात्मजात्मजम्।
हनूमन्तं च विक्रान्तं जाम्बवन्तं च दुर्जयम्॥ ३॥
सुषेणं कुमुदं नीलं नलं च प्लवगर्षभम्।
गजं गवाक्षं शरभं मैन्दं च द्विविदं तथा॥ ४॥

शुकके बताये अनुसार रावणने समस्त यूथपतियोंको देखकर श्रीरामकी दाहिनी बाँह महापराक्रमी लक्ष्मणको, श्रीरामके निकट बैठे हुए अपने भाई विभीषणको, समस्त वानरोंके राजा भयंकर पराक्रमी सुग्रीवको, इन्द्रपुत्र वालीके बेटे बलवान् अङ्गदको, बल-विक्रमशाली हनुमान्‌को, दुर्जय वीर जाम्बवान्‌को तथा सुषेण, कुमुद, नील, वानरश्रेष्ठ नल, गज, गवाक्ष, शरभ, मैन्द एवं द्विविदको भी देखा॥ १—४॥

किंचिदाविग्नहृदयो जातक्रोधश्च रावणः।
भर्त्सयामास तौ वीरौ कथान्ते शुकसारणौ॥ ५॥

उन सबको देखकर रावणका हृदय कुछ उद्विग्न हो उठा। उसे क्रोध आ गया और उसने बात समाप्त होनेपर वीर शुक और सारणको फटकारा॥ ५॥

अधोमुखौ तौ प्रणतावब्रवीच्छुकसारणौ।
रोषगद्गदया वाचा संरब्धं परुषं तथा॥ ६॥

बेचारे शुक और सारण विनीत भावसे नीचे मुँह किये खड़े रहे और रावणने रोषगद्गद वाणीमें क्रोधपूर्वक यह कठोर बात कही—॥ ६॥

न तावत् सदृशं नाम सचिवैरुपजीविभिः।
विप्रियं नृपतेर्वक्तुं निग्रहे प्रग्रहे प्रभोः॥ ७॥

'राजा निग्रह और अनुग्रह करनेमें भी समर्थ होता है। उसके सहारे जीविका चलानेवाले मन्त्रियोंको ऐसी कोई बात नहीं कहनी चाहिये, जो उसे अप्रिय लगे॥ ७॥

रिपूणां प्रतिकूलानां युद्धार्थमभिवर्तताम्।
उभाभ्यां सदृशं नाम वक्तुमप्रस्तवे स्तवम्॥ ८॥

'जो शत्रु अपने विरोधी हैं और युद्धके लिये सामने आये हैं; उनकी बिना किसी प्रसङ्गके ही स्तुति करना क्या तुम दोनोंके लिये उचित था?॥ ८॥

आचार्या गुरवो वृद्धा वृथा वां पर्युपासिताः।
सारं यद् राजशास्त्राणामनुजीव्यं न गृह्यते॥ ९॥

'तुमलोगोंने आचार्य, गुरु और वृद्धोंकी व्यर्थ ही सेवा की है; क्योंकि राजनीतिका जो संग्रहणीय सार है, उसे तुम नहीं ग्रहण कर सके॥ ९॥

गृहीतो वा न विज्ञातो भारोऽज्ञानस्य वाह्यते।
ईदृशैः सचिवैर्युक्तो मूर्खैर्दिष्ट्या धराम्यहम्॥ १०॥

'यदि तुमने उसे ग्रहण भी किया हो तो भी इस समय तुम्हें उसका ज्ञान नहीं रह गया है—तुमने उसे भुला दिया है। तुमलोग केवल अज्ञानका बोझ ढो रहे हो। ऐसे मूर्ख मन्त्रियोंके सम्पर्कमें रहते हुए भी जो मैं अपने राज्यको सुरक्षित रख सका हूँ, यह सौभाग्यकी ही बात है॥ १०॥

किं नु मृत्योर्भयं नास्ति मां वक्तुं परुषं वचः। ✓
यस्य मे शासतो जिह्वा प्रयच्छति शुभाशुभम्॥ ११॥

'मैं इस राज्यका शासक हूँ। मेरी जिह्वा ही तुम्हें शुभ या अशुभकी प्राप्ति करा सकती है—मैं वाणीमात्रसे तुमपर निग्रह और अनुग्रह कर सकता हूँ; फिर भी तुम दोनोंने मेरे सामने कठोर बात कहनेका साहस किया। क्या तुम्हें मृत्युका भय नहीं है?॥ ११॥

अप्येव दहनं स्पृष्ट्वा वने तिष्ठन्ति पादपाः।
राजदण्डपरामृष्टास्तिष्ठन्ते नापराधिनः॥ १२॥

'वनमें दावानलका स्पर्श करके भी वहाँके वृक्ष खड़े रह जायँ, यह सम्भव है; परंतु राजदण्डके अधिकारी अपराधी नहीं टिक सकते। वे सर्वथा नष्ट हो जाते हैं॥ १२॥

हन्यामहं त्विमौ पापौ शत्रुपक्षप्रशंसिनौ।
यदि पूर्वोपकारैर्मे क्रोधो न मृदुतां व्रजेत्॥ १३॥

'यदि इनके पहलेके उपकारोंको याद करके मेरा क्रोध नरम न पड़ जाता तो शत्रुपक्षकी प्रशंसा करनेवाले इन दोनों पापियोंको मैं अभी मार डालता॥ १३॥

अपध्वंसत नश्यध्वं संनिकर्षादितो मम।
नहि वां हन्तुमिच्छामि स्मराम्युपकृतानि वाम्।
हतावेव कृतघ्नौ द्वौ मयि स्नेहपराङ्मुखौ॥ १४॥

'अब तुम दोनों मेरी सभामें प्रवेशके अधिकारसे वञ्चित हो। मेरे पाससे चले जाओ; फिर कभी मुझे अपना मुँह न दिखाना। मैं तुम दोनोंका वध करना नहीं चाहता; क्योंकि तुम दोनोंके किये हुए उपकारोंको सदा स्मरण रखता हूँ। तुम दोनों मेरे स्नेहसे विमुख और कृतघ्न हो, अतः मरे हुएके ही समान हो'॥ १४॥

एवमुक्तौ तु सव्रीडौ तौ दृष्ट्वा शुकसारणौ।

रावणं जयशब्देन प्रतिनन्द्याभिनिःसृतौ ॥ १५ ॥

उसके ऐसा कहनेपर शुक और सारण बहुत लज्जित हुए और जय-जयकारके द्वारा रावणका अभिनन्दन करके वहाँसे निकल गये ॥ १५ ॥

अब्रवीच्च दशग्रीवः समीपस्थं महोदरम् ।
उपस्थापय मे शीघ्रं चारानिति निशाचरः ।
महोदरस्तथोक्तस्तु शीघ्रमाज्ञापयच्चरान् ॥ १६ ॥

इसके पश्चात् दशमुख रावणने अपने पास बैठे हुए महोदरसे कहा—'मेरे सामने शीघ्र ही गुप्तचरोंको उपस्थित होनेकी आज्ञा दो।' यह आदेश पाकर निशाचर महोदरने शीघ्र ही गुप्तचरोंको हाजिर होनेकी आज्ञा दी ॥ १६ ॥

ततश्चाराः संत्वरिताः प्राप्ताः पार्थिवशासनात् ।
उपस्थिताः प्राञ्जलयो वर्धयित्वा जयाशिषः ॥ १७ ॥

राजाकी आज्ञा पाकर गुप्तचर उसी समय विजयसूचक आशीर्वाद दे हाथ जोड़े सेवामें उपस्थित हुए ॥ १७ ॥

तानब्रवीत् ततो वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः ।
चारान् प्रत्यायिकाञ्शूरान् धीरान् विगतसाध्वसान्।१८।

वे सभी गुप्तचर विश्वासपात्र, शूरवीर, धीर एवं निर्भय थे। राक्षसराज रावणने उनसे यह बात कही—॥ १८ ॥

इतो गच्छत रामस्य व्यवसायं परीक्षितुम् ।
मन्त्रेष्वभ्यन्तरा येऽस्य प्रीत्या तेन समागताः ॥ १९ ॥

'तुमलोग अभी वानरसेनामें रामका क्या निश्चय है, यह जाननेके लिये तथा गुप्तमन्त्रणामें भाग लेनेवाले जो उनके अन्तरङ्ग मन्त्री हैं और जो लोग प्रेमपूर्वक उनसे मिले हैं—उनके मित्र हो गये हैं; उन सबके भी निश्चित विचार क्या हैं, इसकी जाँच करनेके लिये यहाँसे जाओ ॥१९॥

कथं स्वपिति जागर्ति किमद्य च करिष्यति ।
विज्ञाय निपुणं सर्वमागन्तव्यमशेषतः ॥ २० ॥

'वे कैसे सोते हैं? किस तरह जागते हैं और आज क्या करेंगे?—इन सब बातोंका पूर्णरूपसे अच्छी तरह पता लगाकर लौट आओ ॥ २० ॥

चारेण विदितः शत्रुः पण्डितैर्वसुधाधिपैः ।
युद्धे स्वल्पेन यत्नेन समासाद्य निरस्यते ॥ २१ ॥

'गुप्तचरके द्वारा यदि शत्रुकी गति-विधिका पता चल जाय तो बुद्धिमान् राजा थोड़े-से ही प्रयत्नके द्वारा युद्धमें उसे धर दबाते और मार भगाते हैं' ॥ २१ ॥

चारास्तु ते तथेत्युक्त्वा प्रहृष्टा राक्षसेश्वरम् ।
शार्दूलमग्रतः कृत्वा ततश्चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥ २२ ॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर हर्षमें भरे हुए गुप्तचरोंने शार्दूलको आगे करके राक्षसराज रावणकी परिक्रमा की ॥२२॥

ततस्तं तु महात्मानं चारा राक्षससत्तमम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं जग्मुर्यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥ २३ ॥

इस प्रकार वे गुप्तचर राक्षसशिरोमणि महाकाय रावणकी परिक्रमा करके उस स्थानपर गये, जहाँ लक्ष्मणसहित श्रीराम विराजमान थे ॥ २३ ॥

ते सुवेलस्य शैलस्य समीपे रामलक्ष्मणौ ।
प्रच्छन्ना ददृशुर्गत्वा ससुग्रीवविभीषणौ ॥ २४ ॥

सुवेल पर्वतके निकट जाकर उन गुप्तचरोंने छिपे रहकर श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषणको देखा ॥ २४ ॥

प्रेक्षमाणाश्चमूं तां च बभूवुर्भयविह्वलाः ।
ते तु धर्मात्मना दृष्टा राक्षसेन्द्रेण राक्षसाः ॥ २५ ॥

वानरोंकी उस सेनाको देखकर वे भयसे व्याकुल हो उठे। इतनेहीमें धर्मात्मा राक्षसराज विभीषणने उन सब राक्षसोंको देख लिया ॥ २५ ॥

विभीषणेन तत्रस्था निगृहीता यदृच्छया ।
शार्दूलो ग्राहितस्त्वेकः पापोऽयमिति राक्षसः ॥ २६ ॥

तब उन्होंने अकस्मात् वहाँ आये हुए राक्षसोंको फटकारा और अकेले शार्दूलको यह सोचकर पकड़वा लिया कि यह राक्षस बड़ा पापी है ॥ २६ ॥

मोचितः सोऽपि रामेण वध्यमानः प्लवंगमैः ।
आनृशंस्येन रामेण मोचिता राक्षसाः परे ॥ २७ ॥

फिर तो वानर उसे पीटने लगे। तब भगवान् श्रीरामने दयावश उसे तथा अन्य राक्षसोंको भी छुड़ा दिया ॥ २७ ॥

वानरैरर्दितास्ते तु विक्रान्तैर्लघुविक्रमैः ।
पुनर्लङ्कामनुप्राप्ताः श्वसन्तो नष्टचेतसः ॥ २८ ॥

बल-विक्रमसम्पन्न शीघ्र पराक्रमी वानरोंसे पीड़ित हो उन राक्षसोंके होश उड़ गये और वे हाँफते-हाँफते फिर लङ्कामें जा पहुँचे ॥ २८ ॥

ततो दशग्रीवमुपस्थितास्ते
चारा बहिर्नित्यचरा निशाचराः ।
गिरेः सुवेलस्य समीपवासिनं
न्यवेदयन् रामबलं महाबलाः ॥ २९ ॥

तदनन्तर रावणकी सेवामें उपस्थित हो चरके वेशमें सदा बाहर विचरनेवाले उन महाबली निशाचरोंने यह सूचना दी कि श्रीरामचन्द्रजीकी सेना सुवेल पर्वतके निकट डेरा डाले पड़ी है ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें उन्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्गः

रावणके भेजे हुए गुप्तचरों एवं शार्दूलका उससे वानर-सेनाका समाचार बताना और मुख्य-मुख्य वीरोंका परिचय देना

ततस्तमक्षोभ्यबलं लङ्काधिपतये चराः।
सुवेले राघवं शैले निविष्टं प्रत्यवेदयन्॥ १॥

गुप्तचरोंने लङ्कापति रावणको यह बताया कि श्रीरामचन्द्रजीकी सेना सुवेल पर्वतके पास आकर ठहरी है और वह सर्वथा अजेय है॥ १॥

चाराणां रावणः श्रुत्वा प्राप्तं रामं महाबलम्।
जातोद्वेगोऽभवत् किंचिच्छार्दूलं वाक्यमब्रवीत्॥ २॥

गुप्तचरोंके मुँहसे यह सुनकर कि महाबली श्रीराम आ पहुँचे हैं, रावणको कुछ भय हो गया। वह शार्दूलसे बोला—॥

अयथावच्च ते वर्णो दीनश्चासि निशाचर।
नासि कच्चिदमित्राणां क्रुद्धानां वशमागतः॥ ३॥

'निशाचर! तुम्हारे शरीरकी कान्ति पहले-जैसी नहीं रह गयी है। तुम दीन (दुखी) दिखायी दे रहे हो। कहीं कुपित हुए शत्रुओंके वशमें तो नहीं पड़ गये थे?'॥ ३॥

इति तेनानुशिष्टस्तु वाचं मन्दमुदीरयन्।
तदा राक्षसशार्दूलं शार्दूलो भयविक्लवः॥ ४॥

उसके इस प्रकार पूछनेपर भयसे घबराये हुए शार्दूलने राक्षसप्रवर रावणसे मन्द स्वरमें कहा—॥ ४॥

न ते चारयितुं शक्या राजन् वानरपुङ्गवाः।
विक्रान्ता बलवन्तश्च राघवेण च रक्षिताः॥ ५॥

'राजन्! उन श्रेष्ठ वानरोंकी गति-विधिका पता गुप्तचरोंद्वारा नहीं लगाया जा सकता। वे बड़े पराक्रमी, बलवान् तथा श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा सुरक्षित हैं॥ ५॥

नापि सम्भाषितुं शक्याः सम्प्रश्नोऽत्र न लभ्यते।
सर्वतो रक्ष्यते पन्था वानरैः पर्वतोपमैः॥ ६॥

'उनसे वार्तालाप करना भी असम्भव है; अतः 'आप कौन हैं, आपका क्या विचार है' इत्यादि प्रश्नोंके लिये वहाँ अवकाश ही नहीं मिलता। पर्वतोंके समान विशालकाय वानर सब ओरसे मार्गकी रक्षा करते हैं; अतः वहाँ प्रवेश होना भी कठिन ही है॥ ६॥

प्रविष्टमात्रे ज्ञातोऽहं बले तस्मिन् विचारिते।
बलाद् गृहीतो रक्षोभिर्बहुधास्मि विचारितः॥ ७॥

'उस सेनामें प्रवेश करके ज्यों ही उसकी गतिविधिका विचार करना आरम्भ किया, त्यों ही विभीषणके साथी राक्षसोंने मुझे पहचानकर बलपूर्वक पकड़ लिया और बारंबार इधर-उधर घुमाया॥ ७॥

जानुभिर्मुष्टिभिर्दन्तैस्तलैश्चाभिहतो भृशम्।
परिणीतोऽस्मि हरिभिर्बलमध्ये अमर्षणैः॥ ८॥

'उस सेनाके बीच अमर्षसे भरे हुए वानरोंने घुटनों, मुक्कों, दाँतों और थप्पड़ोंसे मुझे बहुत मारा और सारी सेनामें मेरे अपराधकी घोषणा करते हुए सब ओर मुझे घुमाया॥ ८॥

परिणीय च सर्वत्र नीतोऽहं रामसंसदि।
रुधिरस्राविदीनाङ्गो विह्वलश्चलितेन्द्रियः॥ ९॥

'सर्वत्र घुमाकर मुझे श्रीरामके दरबारमें ले जाया गया। उस समय मेरे शरीरसे खून निकल रहा था और अङ्ग-अङ्गमें दीनता छा रही थी। मैं व्याकुल हो गया था। मेरी इन्द्रियाँ विचलित हो रही थीं॥ ९॥

हरिभिर्वध्यमानश्च याचमानः कृताञ्जलिः।
राघवेण परित्रातो मा मेति च यदृच्छया॥ १०॥

'वानर पीट रहे थे और मैं हाथ जोड़कर रक्षाके लिये याचना कर रहा था। उस दशामें श्रीरामने अकस्मात् 'मत मारो, मत मारो' कहकर मेरी रक्षा की॥ १०॥

एष शैलशिलाभिस्तु पूरयित्वा महार्णवम्।
द्वारमाश्रित्य लङ्काया रामस्तिष्ठति सायुधः॥ ११॥

'श्रीराम पर्वतीय शिलाखण्डोंद्वारा समुद्रको पाटकर लङ्काके दरवाजेपर आ धमके हैं और हाथमें धनुष लिये खड़े हैं॥ ११॥

गरुडव्यूहमास्थाय सर्वतो हरिभिर्वृतः।
मां विसृज्य महातेजा लङ्कामेवातिवर्तते॥ १२॥

'वे महातेजस्वी रघुनाथजी गरुड़व्यूहका आश्रय ले वानरोंके बीचमें विराजमान हैं और मुझे विदा करके वे लङ्कापर चढ़े चले आ रहे हैं॥ १२॥

पुरा प्राकारमायाति क्षिप्रमेकतरं कुरु।
सीतां वापि प्रयच्छाशु युद्धं वापि प्रदीयताम्॥ १३॥

'जबतक वे लङ्काके परकोटेतक पहुँचें, उसके पहले ही आप शीघ्रतापूर्वक दोमेंसे एक काम अवश्य कर डालिये—या तो उन्हें सीताजीको लौटा दीजिये या युद्धस्थलमें खड़े होकर उनका सामना कीजिये'॥ १३॥

मनसा तत् तदा प्रेक्ष्य तच्छ्रुत्वा राक्षसाधिपः।
शार्दूलं सुमहद्वाक्यमथोवाच स रावणः॥ १४॥

उसकी बात सुनकर मन-ही-मन उसपर विचार करनेके

पश्चात् राक्षसराज रावणने शार्दूलसे यह महत्त्वपूर्ण बात कही—॥ १४ ॥

यदि मां प्रतियुध्यन्ते देवगन्धर्वदानवाः ।
नैव सीतां प्रदास्यामि सर्वलोकभयादपि ॥ १५ ॥

'यदि देवता, गन्धर्व और दानव मुझसे युद्ध करें और सम्पूर्ण लोक मुझे भय देने लगे तो भी मैं सीताको नहीं लौटाऊँगा' ॥ १५ ॥

एवमुक्त्वा महातेजा रावणः पुनरब्रवीत् ।
चरिता भवता सेना केऽत्र शूराः प्लवंगमाः ॥ १६ ॥

ऐसा कहकर महातेजस्वी रावण फिर बोला—'तुम तो वानरोंकी सेनामें विचरण कर चुके हो; उसमें कौन-कौन-से वानर अधिक शूरवीर हैं ? ॥ १६ ॥

किंप्रभाः कीदृशाः सौम्य वानरा ये दुरासदाः ।
कस्य पुत्राश्च पौत्राश्च तत्त्वमाख्याहि राक्षस ॥ १७ ॥

'सौम्य ! जो दुर्जय वानर हैं, वे कैसे हैं ? उनका प्रभाव कैसा है ? तथा वे किसके पुत्र और पौत्र हैं ? राक्षस ! ये सब बातें ठीक-ठीक बताओ ॥ १७ ॥

तथात्र प्रतिपत्स्यामि ज्ञात्वा तेषां बलाबलम् ।
अवश्यं खलु संख्यानं कर्तव्यं युद्धमिच्छता ॥ १८ ॥

'उन वानरोंका बलाबल जानकर तदनुसार कर्तव्यका निश्चय करूँगा । युद्धकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको अपने तथा शत्रुपक्षकी सेनाकी गणना—उसके विषयकी आवश्यक जानकारी अवश्य करनी चाहिये' ॥ १८ ॥

अथैवमुक्तः शार्दूलो रावणेनोत्तमश्चरः ।
इदं वचनमारेभे वक्तुं रावणसंनिधौ ॥ १९ ॥

रावणके इस प्रकार पूछनेपर श्रेष्ठ गुप्तचर शार्दूलने उसके समीप यों कहना आरम्भ किया—॥ १९ ॥

अथर्क्षरजसः पुत्रो युधि राजन् सुदुर्जयः ।
गद्गदस्याथ पुत्रोऽत्र जाम्बवानिति विश्रुतः ॥ २० ॥

'राजन् ! उस वानरसेनामें जाम्बवान् नामसे प्रसिद्ध एक वीर है, जिसको युद्धमें परास्त करना बहुत ही कठिन है। वह ऋक्षरजा तथा गद्गदका पुत्र है ॥ २० ॥

गद्गदस्याथ पुत्रोऽन्यो गुरुपुत्रः शतक्रतोः ।
कदनं यस्य पुत्रेण कृतमेकेन रक्षसाम् ॥ २१ ॥

'गद्गदका एक दूसरा पुत्र भी है (जिसका नाम धूम्र है) । इन्द्रके गुरु बृहस्पतिका पुत्र केसरी है, जिसके पुत्र हनुमान्ने अकेले ही यहाँ आकर पहले बहुत-से राक्षसोंका संहार कर डाला था ॥ २१ ॥

सुषेणश्चात्र धर्मात्मा पुत्रो धर्मस्य वीर्यवान् ।
सौम्यः सोमात्मजश्चात्र राजन् दधिमुखः कपिः ॥ २२ ॥

'धर्मात्मा और पराक्रमी सुषेण धर्मका पुत्र है । राजन् ! दधिमुख नामक सौम्य वानर चन्द्रमाका बेटा है ॥ २२ ॥

सुमुखो दुर्मुखश्चात्र वेगदर्शी च वानरः ।
मृत्युर्वानररूपेण नूनं सृष्टः स्वयंभुवा ॥ २३ ॥

'सुमुख, दुर्मुख और वेगदर्शी नामक वानर—ये मृत्युके पुत्र हैं । निश्चय ही स्वयम्भू ब्रह्माने मृत्युकी ही इन वानरोंके रूपमें सृष्टि की है ॥ २३ ॥

पुत्रो हुतवहस्यात्र नीलः सेनापतिः स्वयम् ।
अनिलस्य तु पुत्रोऽत्र हनूमानिति विश्रुतः ॥ २४ ॥

'स्वयं सेनापति नील अग्निका पुत्र है । सुविख्यात वीर हनुमान् वायुका बेटा है ॥ २४ ॥

नप्ता शक्रस्य दुर्धर्षो बलवानङ्गदो युवा ।
मैन्दश्च द्विविदश्चोभौ बलिनावश्विसम्भवौ ॥ २५ ॥

'बलवान् एवं दुर्जय वीर अङ्गद इन्द्रका नाती है । वह अभी नौजवान है । बलवान् वानर मैन्द और द्विविद—ये दोनों अश्विनीकुमारोंके पुत्र हैं ॥ २५ ॥

पुत्रा वैवस्वतस्याथ पञ्च कालान्तकोपमाः ।
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ॥ २६ ॥

'गज, गवाक्ष, गवय, शरभ और गन्धमादन—ये पाँच यमराजके पुत्र हैं और काल एवं अन्तकके समान पराक्रमी हैं ॥ २६ ॥

दश वानरकोट्यश्च शूराणां युद्धकाङ्क्षिणाम् ।
श्रीमतां देवपुत्राणां शेषं नाख्यातुमुत्सहे ॥ २७ ॥

'इस प्रकार देवताओंसे उत्पन्न हुए तेजस्वी शूरवीर वानरोंकी संख्या दस करोड़ है । वे सब-के-सब युद्धकी इच्छा रखनेवाले हैं । इनके अतिरिक्त जो शेष वानर हैं, उनके विषयमें मैं कुछ नहीं कह सकता; क्योंकि उनकी गणना असम्भव है ॥ २७ ॥

पुत्रो दशरथस्यैष सिंहसंहननो युवा ।
दूषणो निहतो येन खरश्च त्रिशिरास्तथा ॥ २८ ॥

'दशरथनन्दन श्रीरामका श्रीविग्रह सिंहके समान सुगठित है । इनकी युवावस्था है । इन्होंने अकेले ही खर-दूषण और त्रिशिराका संहार किया था ॥ २८ ॥

नास्ति रामस्य सदृशो विक्रमे भुवि कश्चन ।
विराधो निहतो येन कबन्धश्चान्तकोपमः ॥ २९ ॥

'इस भूमण्डलमें श्रीरामचन्द्रजीके समान पराक्रमी वीर दूसरा कोई नहीं है । इन्होंने ही विराधका और कालके समान विकराल कबन्धका भी वध किया था ॥ २९ ॥

वक्तुं न शक्तो रामस्य गुणान् कश्चिन्नरः क्षितौ ।
जनस्थानगता येन तावन्तो राक्षसा हताः ॥ ३० ॥

'इस भूतलपर कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो श्रीरामके गुणोंका पूर्णरूपसे वर्णन कर सके। श्रीरामने ही जनस्थानमें उतने राक्षसोंका संहार किया था ॥ ३० ॥

लक्ष्मणश्चात्र धर्मात्मा मातंगानामिवर्षभः।
यस्य बाणपथं प्राप्य न जीवेदपि वासवः ॥ ३१ ॥

'धर्मात्मा लक्ष्मण भी श्रेष्ठ गजराजके समान पराक्रमी हैं, उनके बाणोंका निशाना बन जानेपर देवराज इन्द्र भी जीवित नहीं रह सकते ॥ ३१ ॥

श्वेतो ज्योतिर्मुखश्चात्र भास्करस्यात्मसम्भवौ।
वरुणस्याथ पुत्रोऽथ हेमकूटः प्लवंगमः ॥ ३२ ॥

'इनके सिवा उस सेनामें श्वेत और ज्योतिर्मुख—ये दो वानर भगवान् सूर्यके औरस पुत्र हैं। हेमकूट नामका वानर वरुणका पुत्र बताया जाता है ॥ ३२ ॥

विश्वकर्मसुतो वीरो नलः प्लवगसत्तमः।
विक्रान्तो वेगवानत्र वसुपुत्रः स दुर्धरः ॥ ३३ ॥

'वानरशिरोमणि वीरवर नल विश्वकर्माके पुत्र हैं। वेगशाली और पराक्रमी दुर्धर वसु देवताका पुत्र है ॥ ३३ ॥

राक्षसानां वरिष्ठश्च तव भ्राता विभीषणः।
प्रतिगृह्य पुरीं लङ्कां राघवस्य हिते रतः ॥ ३४ ॥

'आपके भाई राक्षसशिरोमणि विभीषण भी लङ्कापुरीका राज्य लेकर श्रीरघुनाथजीके ही हितसाधनमें तत्पर रहते हैं ॥

इति सर्वं समाख्यातं तथा वै वानरं बलम्।
सुवेलेऽधिष्ठितं शैले शेषकार्ये भवान् गतिः ॥ ३५ ॥

'इस प्रकार मैंने सुवेल पर्वतपर ठहरी हुई वानर-सेनाका पूरा-पूरा वर्णन कर दिया। अब जो शेष कार्य है, वह आपके ही हाथ है'* ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः

मायारचित श्रीरामका कटा मस्तक दिखाकर रावणद्वारा सीताको मोहमें डालनेका प्रयत्न

ततस्तमक्षोभ्यबलं लङ्कायां नृपतेश्चराः।
सुवेले राघवं शैले निविष्टं प्रत्यवेदयन् ॥ १ ॥
चाराणां रावणः श्रुत्वा प्राप्तं रामं महाबलम्।
जातोद्वेगोऽभवत् किंचित् सचिवानिदमब्रवीत् ॥ २ ॥

राक्षसराज रावणके गुप्तचरोंने जब लङ्कामें लौटकर यह बताया कि श्रीरामचन्द्रजीकी सेना सुवेल पर्वतपर आकर ठहरी है और उसपर विजय पाना असम्भव है, तब उन गुप्तचरोंकी बात सुनकर और महाबली श्रीराम आ गये, यह जानकर रावणको कुछ उद्वेग हुआ। उसने अपने मन्त्रियोंसे इस प्रकार कहा— ॥ १-२ ॥

मन्त्रिणः शीघ्रमायान्तु सर्वे वै सुसमाहिताः।
अयं नो मन्त्रकालो हि सम्प्राप्त इति राक्षसाः ॥ ३ ॥

'मेरे सभी मन्त्री एकाग्रचित्त होकर शीघ्र यहाँ आ जायँ। राक्षसो! यह हमारे लिये गुप्त मन्त्रणा करनेका अवसर आ गया है' ॥ ३ ॥

तस्य तच्छासनं श्रुत्वा मन्त्रिणोऽभ्यागमन् द्रुतम्।
ततः स मन्त्रयामास राक्षसैः सचिवैः सह ॥ ४ ॥

रावणका आदेश सुनकर समस्त मन्त्री शीघ्रतापूर्वक वहाँ आ गये। तब रावणने उन राक्षसजातीय सचिवोंके साथ बैठकर आवश्यक कर्तव्यपर विचार किया ॥ ४ ॥

मन्त्रयित्वा तु दुर्धर्षः क्षमं यत् तदनन्तरम्।
विसर्जयित्वा सचिवान् प्रविवेश स्वमालयम् ॥ ५ ॥

दुर्धर्ष वीर रावणने जो उचित कर्तव्य था, उसके विषयमें शीघ्र ही विचार-विमर्श करके उन सचिवोंको विदा कर दिया और अपने भवनमें प्रवेश किया ॥ ५ ॥

ततो राक्षसमादाय विद्युज्जिह्वं महाबलम्।
मायाविनं महामायं प्राविशद् यत्र मैथिली ॥ ६ ॥

फिर उसने महाबली, महामायावी, मायाविशारद राक्षस विद्युज्जिह्वको साथ लेकर उस प्रमदावनमें प्रवेश किया, जहाँ मिथिलेशकुमारी सीता विद्यमान थीं ॥ ६ ॥

---

* इस सर्गमें जो वानरोंके जन्मका वर्णन किया गया है, वह प्रायः बालकाण्डके सत्रहवें सर्गमें किये गये वर्णनसे विरुद्ध है। वहाँ वरुणसे सुषेण, पर्जन्यसे शरभ और कुबेरसे गन्धमादनकी उत्पत्ति कही गयी है। परंतु इस सर्गमें सुषेणको धर्मका तथा शरभ और गन्धमादनको वैवस्वत यमका पुत्र कहा गया है। इस विरोधका परिहार यही है कि यहाँ कहे गये सुषेण आदि बालकाण्डवर्णित सुषेण आदिसे भिन्न हैं।

विद्युज्जिह्वं च मायाज्ञमब्रवीद् राक्षसाधिपः ।
मोहयिष्यावहे सीतां मायया जनकात्मजाम् ॥ ७ ॥

उस समय राक्षसराज रावणने माया जाननेवाले विद्युज्जिह्वसे कहा—'हम दोनों मायाद्वारा जनकनन्दिनी सीताको मोहित करेंगे ॥ ७ ॥

शिरो मायामयं गृह्य राघवस्य निशाचर ।
मां त्वं समुपतिष्ठस्व महच्च सशरं धनुः ॥ ८ ॥

'निशाचर ! तुम श्रीरामचन्द्रजीका मायानिर्मित मस्तक लेकर एक महान् धनुष-बाणके साथ मेरे पास आओ' ॥८॥

एवमुक्तस्तथेत्याह विद्युज्जिह्वो निशाचरः ।
दर्शयामास तां मायां सुप्रयुक्तां स रावणे ॥ ९ ॥

रावणकी यह आज्ञा पाकर निशाचर विद्युज्जिह्वने कहा—'बहुत अच्छा' । फिर उसने रावणको बड़ी कुशलतासे प्रकट की हुई अपनी माया दिखायी ॥ ९ ॥

तस्य तुष्टोऽभवद् राजा प्रददौ च विभूषणम् ।
अशोकवनिकायां च सीतादर्शनलालसः ॥ १० ॥
नैर्ऋतानामधिपतिः संविवेश महाबलः ।

इससे राजा रावण उसपर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे अपना आभूषण उतारकर दे दिया । फिर वह महाबली राक्षसराज सीताजीको देखनेके लिये अशोकवाटिकामें गया ॥

ततो दीनामदैन्यार्हां ददर्श धनदानुजः ॥ ११ ॥
अधोमुखीं शोकपरामुपविष्टां महीतले ।
भर्तारं समनुध्यान्तीमशोकवनिकां गताम् ॥ १२ ॥

कुबेरके छोटे भाई रावणने वहाँ सीताको दीन दशामें पड़ी देखा, जो उस दीनताके योग्य नहीं थीं । वे अशोकवाटिकामें रहकर भी शोकमग्न थीं और सिर नीचा किये पृथ्वीपर बैठकर अपने पतिदेवका चिन्तन कर रही थीं॥ ११-१२॥

उपास्यमानां घोराभी राक्षसीभिरदूरतः ।
उपसृत्य ततः सीतां प्रहर्षं नाम कीर्तयन् ॥ १३ ॥
इदं च वचनं धृष्टमुवाच जनकात्मजाम् ।

उनके आसपास बहुत-सी भयंकर राक्षसियाँ बैठी थीं । रावणने बड़े हर्षके साथ अपना नाम बताते हुए जनककिशोरी सीताके पास जाकर धृष्टतापूर्ण वचनोंमें कहा—॥ १३½ ॥

सान्त्व्यमाना मया भद्रे यमाश्रित्य विमन्यसे ॥ १४ ॥
खरहन्ता स ते भर्ता राघवः समरे हतः ।

'भद्रे ! मेरे बार-बार सान्त्वना देने और प्रार्थना करनेपर भी तुम जिनका आश्रय लेकर मेरी बात नहीं मानती थीं, खरका वध करनेवाले वे तुम्हारे पतिदेव श्रीराम समरभूमिमें मारे गये ॥ १४½ ॥

छिन्नं ते सर्वथा मूलं दर्पश्च निहतो मया ॥ १५ ॥
व्यसनेनात्मनः सीते मम भार्या भविष्यसि ।
विसृजैतां मतिं मूढे किं मृतेन करिष्यसि ॥ १६ ॥

'तुम्हारी जो जड़ थी, सर्वथा कट गयी । तुम्हारे दर्पको मैंने चूर्ण कर दिया । अब अपने ऊपर आये हुए इस संकटसे ही विवश होकर तुम स्वयं मेरी भार्या बन जाओगी । मूढ़ सीते ! अब यह रामविषयक चिन्तन छोड़ दो । उस मरे हुए रामको लेकर क्या करोगी ॥ १५-१६ ॥

भवस्व भद्रे भार्याणां सर्वासामीश्वरी मम ।
अल्पपुण्ये निवृत्तार्थे मूढे पण्डितमानिनि ।
शृणु भर्तृवधं सीते घोरं वृत्रवधं यथा ॥ १७ ॥

'भद्रे ! मेरी सब रानियोंकी स्वामिनी बन जाओ । मूढ़े ! तुम अपनेको बड़ी बुद्धिमती समझती थी न । तुम्हारा पुण्य बहुत कम हो गया था । इसीलिये ऐसा हुआ है । अब रामके मारे जानेसे तुम्हारा जो उनकी प्राप्तिरूप प्रयोजन था, वह समाप्त हो गया । सीते ! यदि सुनना चाहो तो वृत्रासुरके वधकी भयंकर घटनाके समान अपने पतिके मारे जानेका घोर समाचार सुन लो ॥ १७ ॥

समायातः समुद्रान्तं हन्तुं मां किल राघवः ।
वानरेन्द्रप्रणीतेन बलेन महता वृतः ॥ १८ ॥

'कहा जाता है राम मुझे मारनेके लिये समुद्रके किनारेतक आये थे । उनके साथ वानरराज सुग्रीवकी लायी हुई विशाल सेना भी थी ॥१८ ॥

संनिविष्टः समुद्रस्य पीड्य तीरमथोत्तरम् ।
बलेन महता रामो व्रजत्यस्तं दिवाकरे ॥ १९ ॥

'उस विशाल सेनाके द्वारा राम समुद्रके उत्तर तटको दबाकर ठहरे । उस समय सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये थे ॥

अथाध्वनि परिश्रान्तमर्धरात्रे स्थितं बलम् ।
सुखसुप्तं समासाद्य चरितं प्रथमं चरैः ॥ २० ॥

'जब आधी रात हुई, उस समय रास्तेकी थकी-माँदी सारी सेना सुखपूर्वक सो गयी थी । उस अवस्थामें वहाँ पहुँचकर मेरे गुप्तचरोंने पहले तो उसका भलीभाँति निरीक्षण किया ॥ २० ॥

तत्प्रहस्तप्रणीतेन बलेन महता मम ।
बलमस्य हतं रात्रौ यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥ २१ ॥

'फिर प्रहस्तके सेनापतित्वमें वहाँ गयी हुई मेरी बहुत बड़ी सेनाने रातमें, जहाँ राम और लक्ष्मण थे, उस वानरसेनाको नष्ट कर दिया ॥ २१ ॥

पट्टिशान् परिघांश्चक्रानृष्टीन् दण्डान् महायुधान् ।
बाणजालानि शूलानि भास्वरान् कूटमुद्गरान् ॥ २२ ॥
यष्टीश्च तोमरान् प्रासांश्चक्राणि मुसलानि च ।
उद्यम्योद्यम्य रक्षोभिर्वानरेषु निपातिताः ॥ २३ ॥

'उस समय राक्षसोंने पट्टिश, परिघ, चक्र, ऋष्टि, दण्ड, बड़े-बड़े आयुध, बाणोंके समूह, त्रिशूल, चमकीले कूट और मुद्गर, डंडे, तोमर, प्रास तथा मूसल उठा-उठाकर वानरोंपर प्रहार किया था ॥ २२-२३ ॥

अथ सुप्तस्य रामस्य प्रहस्तेन प्रमाथिना ।
असक्तं कृतहस्तेन शिरश्छिन्नं महासिना ॥ २४ ॥

'तदनन्तर शत्रुओंको मथ डालनेवाले प्रहस्तने, जिसके हाथ खूब सधे हुए हैं, बहुत बड़ी तलवार हाथमें लेकर उससे बिना किसी रुकावटके रामका मस्तक काट डाला ॥ २४ ॥

विभीषणः समुत्पत्य निगृहीतो यदृच्छया ।
दिशः प्रव्राजितः सैन्यैर्लक्ष्मणः प्लवगैः सह ॥ २५ ॥

'फिर अकस्मात् उछलकर उसने विभीषणको पकड़ लिया और वानरसैनिकोंसहित लक्ष्मणको विभिन्न दिशाओंमें भाग जानेको विवश किया ॥ २५ ॥

सुग्रीवो ग्रीवया सीते भग्नया प्लवगाधिपः ।
निरस्तहनुकः सीते हनूमान् राक्षसैर्हतः ॥ २६ ॥

'सीते ! वानरराज सुग्रीवकी ग्रीवा काट दी गयी, हनुमान्‌की हनु (ठोढ़ी) नष्ट करके उसे राक्षसोंने मार डाला ॥ २६ ॥

जाम्बवानथ जानुभ्यामुत्पतन् निहतो युधि ।
पट्टिशैर्बहुभिश्छिन्नो निकृत्तः पादपो यथा ॥ २७ ॥

'जाम्बवान् ऊपरको उछल रहे थे, उसी समय युद्धस्थलमें राक्षसोंने बहुत-से पट्टिशोंद्वारा उनके दोनों घुटनोंपर प्रहार किया। वे छिन्न-भिन्न होकर कटे हुए पेड़की भाँति धराशायी हो गये ॥ २७ ॥

मैन्दश्च द्विविदश्चोभौ तौ वानरवरर्षभौ ।
निःश्वसन्तौ रुदन्तौ च रुधिरेण परिप्लुतौ ॥ २८ ॥
असिना व्यायतौ छिन्नौ मध्ये ह्यरिनिषूदनौ ।

'मैन्द और द्विविद दोनों श्रेष्ठ वानर खूनसे लथपथ होकर पड़े हैं। वे लंबी साँसें खींचते और रोते थे। उसी अवस्थामें उन दोनों विशालकाय शत्रुसूदन वानरोंको तलवारद्वारा बीचसे ही काट डाला गया है ॥ २८½ ॥

अनुश्वसिति मेदिन्यां पनसः पनसो यथा ॥ २९ ॥
नाराचैर्बहुभिश्छिन्नः शेते दर्यां दरीमुखः ।
कुमुदस्तु महातेजा निष्कूजन् सायकैर्हतः ॥ ३० ॥

'पनस नामका वानर पककर फटे हुए पनस (कटहल) के समान पृथ्वीपर पड़ा-पड़ा अन्तिम साँसें ले रहा है। दरीमुख अनेक नाराचोंसे छिन्न-भिन्न हो किसी दरी (कन्दरा) में पड़ा सो रहा है। महातेजस्वी कुमुद सायकोंसे घायल हो चीखता-चिल्लाता हुआ मर गया ॥ २९-३० ॥

अङ्गदो बहुभिश्छिन्नः शरैरासाद्य राक्षसैः ।
परितो रुधिरोद्गारी क्षितौ निपतितोऽङ्गदः ॥ ३१ ॥

'अङ्गदधारी अङ्गदपर आक्रमण करके बहुत-से राक्षसोंने उन्हें बाणोंद्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया है। वे सब अङ्गोंसे रक्त बहाते हुए पृथ्वीपर पड़े हैं ॥ ३१ ॥

हरयो मथिता नागै रथजालैस्तथापरे ।
शयाना मृदितास्तत्र वायुवेगैरिवाम्बुदाः ॥ ३२ ॥

'जैसे बादल वायुके वेगसे फट जाते हैं, उसी प्रकार बड़े-बड़े हाथियों तथा रथसमूहोंने वहाँ सोये हुए वानरोंको रौंदकर मथ डाला ॥ ३२ ॥

प्रसृताश्च परे त्रस्ता हन्यमाना जघन्यतः ।
अनुद्रुतास्तु रक्षोभिः सिंहैरिव महाद्विपाः ॥ ३३ ॥

'जैसे सिंहके खदेड़नेसे बड़े-बड़े हाथी भागते हैं, उसी प्रकार राक्षसोंके पीछा करनेपर बहुत-से वानर पीठपर बाणोंकी मार खाते हुए भाग गये हैं ॥ ३३ ॥

सागरे पतिताः केचित् केचिद् गगनमाश्रिताः ।
ऋक्षा वृक्षानुपारूढा वानरीं वृत्तिमाश्रिताः ॥ ३४ ॥

'कोई समुद्रमें कूद पड़े और कोई आकाशमें उड़ गये हैं। बहुत-से रीछ वानरी वृत्तिका आश्रय ले पेड़ोंपर चढ़ गये हैं ॥ ३४ ॥

सागरस्य च तीरेषु शैलेषु च वनेषु च ।
पिङ्गलास्ते विरूपाक्षै राक्षसैर्बहवो हताः ॥ ३५ ॥

'विकराल नेत्रोंवाले राक्षसोंने इन बहुसंख्यक भूरे बंदरोंको समुद्रतट, पर्वत और वनोंमें खदेड़-खदेड़कर मार डाला है ॥ ३५ ॥

एवं तव हतो भर्ता ससैन्यो मम सेनया ।
क्षतजार्द्रं रजोध्वस्तमिदं चास्याहृतं शिरः ॥ ३६ ॥

'इस प्रकार मेरी सेनाने सैनिकोंसहित तुम्हारे पतिको मौतके घाट उतार दिया। खूनसे भीगा और धूलमें सना हुआ उनका यह मस्तक यहाँ लाया गया है' ॥ ३६ ॥

ततः परमदुर्धर्षो रावणो राक्षसेश्वरः ।
सीतायामुपशृण्वत्यां राक्षसीमिदमब्रवीत् ॥ ३७ ॥

ऐसा कहकर अत्यन्त दुर्जय राक्षसराज रावणने सीताके सुनते-सुनते एक राक्षसीसे कहा— ॥ ३७ ॥

राक्षसं क्रूरकर्माणं विद्युज्जिह्वं समानय ।
येन तद्राघवशिरः संग्रामात् स्वयमाहृतम् ॥ ३८ ॥

'तुम क्रूरकर्मा राक्षस विद्युज्जिह्वको बुला ले आओ, जो स्वयं संग्रामभूमिसे रामका सिर यहाँ ले आया है' ॥ ३८ ॥

विद्युज्जिह्वस्तदा गृह्य शिरस्तत्सशरासनम् ।
प्रणामं शिरसा कृत्वा रावणस्याग्रतः स्थितः ॥ ३९ ॥
तमब्रवीत् ततो राजा रावणो राक्षसं स्थितम् ।
विद्युज्जिह्वं महाजिह्वं समीपपरिवर्तिनम् ॥ ४० ॥

तब विद्युज्जिह्व धनुषसहित उस मस्तकको लेकर आया और सिर झुका रावणको प्रणाम करके उसके सामने खड़ा हो गया । उस समय अपने पास खड़े हुए विशाल जिह्वावाले राक्षस विद्युज्जिह्वसे राजा रावण यों बोला—॥ ३९-४० ॥

अग्रतः कुरु सीतायाः शीघ्रं दाशरथेः शिरः ।
अवस्थां पश्चिमां भर्तुः कृपणा साधु पश्यतु ॥ ४१ ॥

'तुम दशरथकुमार रामका मस्तक शीघ्र ही सीताके आगे रख दो, जिससे यह बेचारी अपने पतिकी अन्तिम अवस्थाका अच्छी तरह दर्शन कर ले' ॥ ४१ ॥

एवमुक्तं तु तद् रक्षः शिरस्तत् प्रियदर्शनम् ।
उपनिक्षिप्य सीतायाः क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ ४२ ॥

रावणके ऐसा कहनेपर वह राक्षस उस सुन्दर मस्तकको सीताके निकट रखकर तत्काल अदृश्य हो गया ॥ ४२ ॥

रावणश्चापि चिक्षेप भास्वरं कार्मुकं महत् ।
त्रिषु लोकेषु विख्यातं रामस्यैतदिति ब्रुवन् ॥ ४३ ॥

रावणने भी उस विशाल चमकीले धनुषको यह कहकर सीताके सामने डाल दिया कि यही रामका त्रिभुवनविख्यात धनुष है ॥ ४३ ॥

इदं तत् तव रामस्य कार्मुकं ज्यासमावृतम् ।
इह प्रहस्तेनानीतं तं हत्वा निशि मानुषम् ॥ ४४ ॥

फिर बोला—'सीते ! यही तुम्हारे रामका प्रत्यञ्चासहित धनुष है । रातके समय उस मनुष्यको मारकर प्रहस्त इस धनुषको यहाँ ले आया है' ॥ ४४ ॥

स विद्युज्जिह्वेन सहैव तच्छिरो
धनुश्च भूमौ विनिकीर्यमाणः ।
विदेहराजस्य सुतां यशस्विनीं
ततोऽब्रवीत् तां भव मे वशानुगा ॥ ४५ ॥

जब विद्युज्जिह्वने मस्तक वहाँ रक्खा, उसके साथ ही रावणने वह धनुष पृथ्वीपर डाल दिया । तत्पश्चात् वह विदेहराजकुमारी यशस्विनी सीतासे बोला—'अब तुम मेरे वशमें हो जाओ' ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें इकतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः

श्रीरामके मारे जानेका विश्वास करके सीताका विलाप तथा रावणका सभामें जाकर मन्त्रियोंके सलाहसे युद्धविषयक उद्योग करना

सा सीता तच्छिरो दृष्ट्वा तच्च कार्मुकमुत्तमम् ।
सुग्रीवप्रतिसंसर्गमाख्यातं च हनूमता ॥ १ ॥
नयने मुखवर्णं च भर्तुस्तत्सदृशं मुखम् ।
केशान् केशान्तदेशं च तं च चूडामणिं शुभम् ॥ २ ॥
एतैः सर्वैरभिज्ञानैरभिज्ञाय सुदुःखिता ।
विजगर्हेऽत्र कैकेयीं क्रोशन्ती कुररी यथा ॥ ३ ॥

सीताजीने उस मस्तक और उस उत्तम धनुषको देखकर तथा हनुमान्‌जीकी कही हुई सुग्रीवके साथ मैत्री-सम्बन्ध होनेकी बात याद करके अपने पतिके-जैसे ही नेत्र, मुखका वर्ण, मुखाकृति, केश, ललाट और उस सुन्दर चूडामणिको लक्ष्य किया । इन सब चिह्नोंसे पतिको पहचानकर वे बहुत दुखी हुईं और कुररीकी भाँति रो-रोकर कैकेयीकी निन्दा करने लगीं—॥ १—३ ॥

सकामा भव कैकेयि हतोऽयं कुलनन्दनः ।
कुलमुत्सादितं सर्वं त्वया कलहशीलया ॥ ४ ॥

'कैकेयि ! अब तुम सफलमनोरथ हो जाओ, रघुकुलको आनन्दित करनेवाले ये मेरे पतिदेव मारे गये । तुम स्वभावसे ही कलहकारिणी हो । तुमने समस्त रघुकुलका संहार कर डाला ॥ ४ ॥

आर्येण किं नु कैकेय्याः कृतं रामेण विप्रियम् ।
यन्मया चीरवसनं दत्त्वा प्रव्राजितो वनम् ॥ ५ ॥

'आर्य श्रीरामने कैकेयीका कौन-सा अपराध किया था,

जिससे उसने इन्हें चीरवस्त्र देकर मेरे साथ वनमें भेज दिया था' ॥ ५ ॥

एवमुक्त्वा तु वैदेही वेपमाना तपस्विनी ।
जगाम जगतीं बाला छिन्ना तु कदली यथा ॥ ६ ॥

ऐसा कहकर दुःखकी मारी तपस्विनी वैदेही बाला थरथर काँपती हुई कटी कदलीके समान पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ ६ ॥

सा मुहूर्तात् समाश्वस्य परिलभ्याथ चेतनाम् ।
तच्छिरः समुपास्थाय विललापायतेक्षणा ॥ ७ ॥

फिर दो घड़ीमें उनकी चेतना लौटी और वे विशाललोचना सीता कुछ धीरज धारणकर उस मस्तकको अपने निकट रखकर विलाप करने लगीं— ॥ ७ ॥

हा हतास्मि महाबाहो वीरव्रतमनुव्रत ।
इमां ते पश्चिमावस्थां गतास्मि विधवा कृता ॥ ८ ॥

'हाय ! महाबाहो ! मैं मारी गयी । आप वीरव्रतका पालन करनेवाले थे । आपकी इस अन्तिम अवस्थाको मुझे अपनी आँखोंसे देखना पड़ा । आपने मुझे विधवा बना दिया ॥ ८ ॥

प्रथमं मरणं नार्या भर्तुर्वैगुण्यमुच्यते ।
सुवृत्तः साधुवृत्तायाः संवृत्तस्त्वं ममाग्रतः ॥ ९ ॥

'स्त्रीसे पहले पतिका मरना उसके लिये महान् अनर्थकारी दोष बताया जाता है । मुझ सती-साध्वीके रहते हुए मेरे सामने आप-जैसे सदाचारी पतिका निधन हुआ, यह मेरे लिये महान् दुःखकी बात है ॥ ९ ॥

महद् दुःखं प्रपन्नाया मग्नायाः शोकसागरे ।
यो हि मामुद्यतस्त्रातुं सोऽपि त्वं विनिपातितः ॥ १० ॥

'मैं महान् संकटमें पड़ी हूँ, शोकके समुद्रमें डूबी हूँ, जो मेरा उद्धार करनेके लिये उद्यत थे, उन आप-जैसे वीरको भी शत्रुओंने मार गिराया ॥ १० ॥

सा श्वश्रूर्मम कौसल्या त्वया पुत्रेण राघव ।
वत्सेनेव यथा धेनुर्विवत्सा वत्सला कृता ॥ ११ ॥

'रघुनन्दन ! जैसे कोई बछड़ेके प्रति स्नेहसे भरी हुई गायको उस बछड़ेसे विलग कर दे, यही दशा मेरी सास कौसल्याकी हुई है । वे दयामयी जननी आप-जैसे पुत्रसे बिछुड़ गयीं ॥ ११ ॥

उद्दिष्टं दीर्घमायुस्ते दैवज्ञैरपि राघव ।
अनृतं वचनं तेषामल्पायुरसि राघव ॥ १२ ॥

'रघुवीर ! ज्योतिषियोंने तो आपकी आयु बहुत बड़ी बतायी थी, किंतु उनकी बात झूठी सिद्ध हुई । रघुनन्दन ! आप बड़े अल्पायु निकले ॥ १२ ॥

अथवा नश्यति प्रज्ञा प्राज्ञस्यापि सतस्तव ।
पचत्येनं तथा कालो भूतानां प्रभवो ह्ययम् ॥ १३ ॥

'अथवा बुद्धिमान् होकर भी आपकी बुद्धि मारी गयी । तभी तो आप सोते हुए ही शत्रुके वशमें पड़ गये अथवा यह काल ही समस्त प्राणियोंके उद्भवमें हेतु है । अतः वही प्राणिमात्रको पकाता है—उन्हें शुभाशुभ कर्मोंके फलसे संयुक्त करता है ॥ १३ ॥

अदृष्टं मृत्युमापन्नः कस्मात् त्वं नयशास्त्रवित् ।
व्यसनानामुपायज्ञः कुशलो ह्यसि वर्जने ॥ १४ ॥

'आप तो नीतिशास्त्रके विद्वान् थे । संकटसे बचनेके उपायोंको जानते थे और व्यसनोंके निवारणमें कुशल थे तो भी कैसे आपको ऐसी मृत्यु प्राप्त हुई, जो दूसरे किसी वीर पुरुषको प्राप्त होती नहीं देखी गयी थी ? ॥ १४ ॥

तथा त्वं सम्परिष्वज्य रौद्रयातिनृशंसया ।
कालरात्र्या ममाच्छिद्य हृतः कमललोचन ॥ १५ ॥

'कमलनयन ! भीषण और अत्यन्त क्रूर कालरात्रि आपको हृदयसे लगाकर मुझसे हठात् छीन ले गयी ॥ १५ ॥

इह शेषे महाबाहो मां विहाय तपस्विनीम् ।
प्रियामिव यथा नारीं पृथिवीं पुरुषर्षभ ॥ १६ ॥

'पुरुषोत्तम ! महाबाहो ! आप मुझ तपस्विनीको त्यागकर अपनी प्रियतमा नारीकी भाँति इस पृथ्वीका आलिङ्गन करके यहाँ सो रहे हैं ॥ १६ ॥

अर्चितं सततं यत्नाद् गन्धमाल्यैर्मया तव ।
इदं ते मत्प्रियं वीर धनुः काञ्चनभूषितम् ॥ १७ ॥

'वीर ! जिसका मैं प्रयत्नपूर्वक गन्ध और पुष्पमाला आदिके द्वारा नित्यप्रति पूजन करती थी तथा जो मुझे बहुत प्रिय था, यह आपका वही स्वर्णभूषित धनुष है ॥ १७ ॥

पित्रा दशरथेन त्वं श्वशुरेण ममानघ ।
सर्वैश्च पितृभिः सार्धं नूनं स्वर्गे समागतः ॥ १८ ॥

'निष्पाप रघुनन्दन ! निश्चय ही आप स्वर्गमें जाकर मेरे श्वशुर तथा अपने पिता महाराज दशरथसे और अन्य सब पितरोंसे भी मिले होंगे ॥ १८ ॥

दिवि नक्षत्रभूतं च महत्कर्मकृतं तथा ।
पुण्यं राजर्षिवंशं त्वमात्मनः समुपेक्षसे ॥ १९ ॥

'आप पिताकी आज्ञाका पालनरूपी महान् कर्म करके अद्भुत पुण्यका उपार्जन कर यहाँसे अपने उस राजर्षिकुलकी उपेक्षा करके (उसे छोड़कर) जा रहे हैं, जो आकाशमें

नक्षत्र[1] बनकर प्रकाशित होता है (आपको ऐसा नहीं करना चाहिये) ॥ १९ ॥

किं मां न प्रेक्षसे राजन् किं वा न प्रतिभाषसे ।
बालां बालेन सम्प्राप्तां भार्यां मां सहचारिणीम् ॥ २० ॥

'राजन्! आपने अपनी छोटी अवस्थामें ही जब कि मेरी भी छोटी ही अवस्था थी, मुझे पत्नीरूपमें प्राप्त किया। मैं सदा आपके साथ विचरनेवाली सहधर्मिणी हूँ। आप मेरी ओर क्यों नहीं देखते हैं अथवा मेरी बातका उत्तर क्यों नहीं देते हैं? ॥

संश्रुतं गृह्णता पाणिं चरिष्यामीति यत् त्वया ।
स्मर तन्नाम काकुत्स्थ नय मामपि दुःखिताम् ॥ २१ ॥

'काकुत्स्थ! मेरा पाणिग्रहण करते समय जो आपने प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारे साथ धर्माचरण करूँगा, उसका स्मरण कीजिये और मुझ दुःखिनीको भी साथ ही ले चलिये ॥२१॥

कस्मान्मामपहाय त्वं गतो गतिमतां वर ।
अस्माल्लोकादमुं लोकं त्यक्त्वा मामपि दुःखिताम् ॥ २२ ॥

'गतिमानोंमें श्रेष्ठ रघुनन्दन! आप मुझे अपने साथ वनमें लाकर और यहाँ मुझ दुःखिनीको छोड़कर इस लोकसे परलोकको क्यों चले गये? ॥ २२ ॥

कल्याणै रुचिरं गात्रं परिष्वक्तं मयैव तु ।
क्रव्यादैस्तच्छरीरं ते नूनं विपरिकृष्यते ॥ २३ ॥

'मैंने ही अनेक मङ्गलमय उपचारोंसे सुन्दर आपके जिस श्रीविग्रहका आलिङ्गन किया था, आज उसीको मांसभक्षी हिंसक जन्तु अवश्य इधर-उधर घसीट रहे होंगे ॥ २३ ॥

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवानाप्तदक्षिणैः ।
अग्निहोत्रेण संस्कारं केन त्वं न तु लप्स्यसे ॥ २४ ॥

'आपने तो पर्याप्त दक्षिणाओंसे युक्त अग्निष्टोम आदि यज्ञोंद्वारा भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना की है; फिर क्या कारण है कि अग्निहोत्रकी अग्निसे दाह-संस्कारका सुयोग आपको नहीं मिल रहा है ॥ २४ ॥

प्रव्रज्यामुपपन्नानां त्रयाणामेकमागतम् ।
परिप्रेक्ष्यति कौसल्या लक्ष्मणं शोकलालसा ॥ २५ ॥

'हम तीन व्यक्ति एक साथ वनमें आये थे; परंतु अब शोकाकुल हुई माता कौसल्या केवल एक व्यक्ति लक्ष्मणको ही घर लौटा हुआ देख सकेंगी ॥ २५ ॥

स तस्याः परिपृच्छन्त्या वधं मित्रबलस्य ते ।
तव चाख्यास्यते नूनं निशायां राक्षसैर्वधम् ॥ २६ ॥

'उनके पूछनेपर लक्ष्मण उन्हें रात्रिके समय राक्षसोंके हाथसे आपके मित्रकी सेनाके तथा सोते हुए आपके भी वधका समाचार अवश्य सुनायेंगे ॥ २६ ॥

सा त्वां सुप्तं हतं ज्ञात्वा मां च रक्षोगृहं गताम् ।
हृदयेनावदीर्णेन न भविष्यति राघव ॥ २७ ॥

'रघुनन्दन! जब उन्हें यह ज्ञात होगा कि आप सोते समय मारे गये और मैं राक्षसके घरमें हर लायी गयी हूँ तो उनका हृदय विदीर्ण हो जायगा और वे अपने प्राण त्याग देंगी ॥ २७ ॥

मम हेतोरनार्याया अनघः पार्थिवात्मजः ।
रामः सागरमुत्तीर्य वीर्यवान् गोष्पदे हतः ॥ २८ ॥

'हाय! मुझ अनार्याके लिये निष्पाप राजकुमार श्रीराम, जो महान् पराक्रमी थे, समुद्रलङ्घन-जैसा महान् कर्म करके भी गायकी खुरीके बराबर जलमें डूब गये—विना युद्ध किये सोते समय मारे गये ॥ २८ ॥

अहं दाशरथेनोढा मोहात् स्वकुलपांसनी ।
आर्यपुत्रस्य रामस्य भार्या मृत्युरजायत ॥ २९ ॥

'हाय! दशरथनन्दन श्रीराम मुझ-जैसी कुलकलङ्किनी नारीको मोहवश ब्याह लाये। पत्नी ही आर्यपुत्र श्रीरामके लिये मृत्युरूप बन गयी ॥ २९ ॥

नूनमन्यां मया जातिं वारितं दानमुत्तमम् ।
याहमद्यैव शोचामि भार्या सर्वातिथेरिह ॥ ३० ॥

'जिनके यहाँ सब लोग याचक बनकर आते थे एवं सभी अतिथि जिन्हें प्रिय थे, उन्हीं श्रीरामकी पत्नी होकर जो मैं आज शोक कर रही हूँ, इससे जान पड़ता है कि मैंने दूसरे जन्ममें निश्चय ही उत्तम दानधर्ममें बाधा डाली थी ॥ ३० ॥

साधु घातय मां क्षिप्रं रामस्योपरि रावण ।
समानय पतिं पत्न्या कुरु कल्याणमुत्तमम् ॥ ३१ ॥

'रावण! मुझे भी श्रीरामके शवके ऊपर रखकर मेरा वध करा डालो; इस प्रकार पतिको पत्नीसे मिला दो; यह उत्तम कल्याणकारी कार्य है, इसे अवश्य करो ॥ ३१ ॥

शिरसा मे शिरश्चास्य कायं कायेन योजय ।
रावणानुगमिष्यामि गतिं भर्तुर्महात्मनः ॥ ३२ ॥

'रावण! मेरे सिरसे पतिके सिरका और मेरे शरीरसे उनके शरीरका संयोग करा दो। इस प्रकार मैं अपने महात्मा पतिकी गतिका ही अनुसरण करूँगी' ॥ ३२ ॥

इतीव दुःखसंतप्ता विललापायतेक्षणा ।
भर्तुः शिरो धनुश्चैव ददर्श जनकात्मजा ॥ ३३ ॥

इस प्रकार दुःखसे संतप्त हुई विशाललोचना जनकनन्दिनी

---

[1] इक्ष्वाकुवंशके राजा त्रिशंकु आकाशमें नक्षत्र होकर प्रकाशित होते हैं, उन्हींके कारण क्षत्रिन्यायसे समस्त कुलको ही नक्षत्रकुल बताया है।

सीता पतिके मस्तक तथा धनुषको देखने और विलाप करने लगीं ॥ ३३ ॥

एवं लालप्यमानायां सीतायां तत्र राक्षसः ।
अभिचक्राम भर्तारमनीकस्थः कृताञ्जलिः ॥ ३४ ॥

जब सीता इस तरह विलाप कर रही थीं, उसी समय वहाँ रावणकी सेनाका एक राक्षस हाथ जोड़े हुए अपने स्वामीके पास आया ॥ ३४ ॥

विजयस्वार्यपुत्रेति सोऽभिवाद्य प्रसाद्य च ।
न्यवेदयदनुप्राप्तं प्रहस्तं वाहिनीपतिम् ॥ ३५ ॥

उसने 'आर्यपुत्र महाराजकी जय हो' कहकर रावणका अभिवादन किया और उसे प्रसन्न करके यह सूचना दी कि 'सेनापति प्रहस्त पधारे हैं ॥ ३५ ॥

अमात्यैः सहितः सर्वैः प्रहस्तस्त्वामुपस्थितः ।
तेन दर्शनकामेन अहं प्रस्थापितः प्रभो ॥ ३६ ॥

'प्रभो ! सब मन्त्रियोंके साथ प्रहस्त महाराजकी सेवामें उपस्थित हुए हैं । वे आपका दर्शन करना चाहते हैं, इसीलिये उन्होंने मुझे यहाँ भेजा है ॥ ३६ ॥

नूनमस्ति महाराज राजभावात् क्षमान्वित ।
किंचिदात्ययिकं कार्यं तेषां त्वं दर्शनं कुरु ॥ ३७ ॥

'क्षमाशील महाराज ! निश्चय ही कोई अत्यन्त आवश्यक राजकीय कार्य आ पड़ा है, अतः आप उन्हें दर्शन देनेका कष्ट करें !' ॥ ३७ ॥

एतच्छ्रुत्वा दशग्रीवो राक्षसप्रतिवेदितम् ।
अशोकवनिकां त्यक्त्वा मन्त्रिणां दर्शनं ययौ ॥ ३८ ॥

राक्षसकी कही हुई यह बात सुनकर दशग्रीव रावण अशोकवाटिका छोड़कर मन्त्रियोंसे मिलनेके लिये चला गया ॥ ३८ ॥

स तु सर्वं समर्थ्यैव मन्त्रिभिः कृत्यमात्मनः ।
सभां प्रविश्य विदधे विदित्वा रामविक्रमम् ॥ ३९ ॥

उसने मन्त्रियोंसे अपने सारे कृत्यका समर्थन कराया और श्रीरामचन्द्रजीके पराक्रमका पता लगाकर सभाभवनमें प्रवेश करके वह प्रस्तुत कार्यकी व्यवस्था करने लगा ॥ ३९ ॥

अन्तर्धानं तु तच्छीर्षं तच्च कार्मुकमुत्तमम् ।
जगाम रावणस्यैव निर्याणसमनन्तरम् ॥ ४० ॥

रावणके वहाँसे निकलते ही वह सिर और उत्तम धनुष दोनों अदृश्य हो गये ॥ ४० ॥

राक्षसेन्द्रस्तु तैः सार्धं मन्त्रिभिर्भीमविक्रमैः ।
समर्थयामास तदा रामकार्यविनिश्चयम् ॥ ४१ ॥

राक्षसराज रावणने अपने उन भयानक मन्त्रियोंके साथ बैठकर रामके प्रति किये जानेवाले तत्कालोचित कर्तव्यका निश्चय किया ॥ ४१ ॥

अविदूरस्थितान् सर्वान् बलाध्यक्षान् हितैषिणः ।
अब्रवीत् कालसदृशं रावणो राक्षसाधिपः ॥ ४२ ॥

फिर राक्षसराज रावणने पास ही खड़े हुए अपने हितैषी सेनापतियोंसे इस प्रकार समयानुकूल बात कही— ॥ ४२ ॥

शीघ्रं भेरीनिनादेन स्फुटं कोणाहतेन मे ।
समानयध्वं सैन्यानि वक्तव्यं च न कारणम् ॥ ४३ ॥

'तुम सब लोग शीघ्र ही डंडेसे पीट-पीटकर धौंसा बजाते हुए समस्त सैनिकोंको एकत्र करो; परंतु उन्हें इसका कारण नहीं बताना चाहिये' ॥ ४३ ॥

ततस्तथेति प्रतिगृह्य तद्वच-
स्तदैव दूताः सहसा महद् बलम् ।
समानयंश्चैव समागतं च
न्यवेदयन् भर्तरि युद्धकाङ्क्षिणि ॥ ४४ ॥

तब दूतोंने 'तथास्तु' कहकर रावणकी आज्ञा स्वीकार की और उसी समय सहसा विशाल सेनाको एकत्र कर दिया; फिर युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले अपने स्वामीको यह सूचना दी कि 'सारी सेना आ गयी' ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः

सरमाका सीताको सान्त्वना देना, रावणकी मायाका भेद खोलना, श्रीरामके आगमनका प्रिय समाचार सुनाना और उनके विजयी होनेका विश्वास दिलाना

सीतां तु मोहितां दृष्ट्वा सरमा नाम राक्षसी ।
आससादाथ वैदेहीं प्रियां प्रणयिनी सखीम् ॥ १ ॥

विदेहनन्दिनी सीताको मोहमें पड़ी हुई देख सरमा नामकी राक्षसी उनके पास उसी तरह आयी, जैसे प्रेम रखनेवाली सखी अपनी प्यारी सखीके पास जाती है ॥ १ ॥

मोहितां राक्षसेन्द्रेण सीतां परमदुःखिताम् ।

आश्वासयामास तदा सरमा मृदुभाषिणी ॥ २ ॥

सीता राक्षसराजकी मायासे मोहित हो बड़े दुःखमें पड़ गयी थीं। उस समय मृदुभाषिणी सरमाने उन्हें अपने वचनोंद्वारा सान्त्वना दी ॥ २ ॥

सा हि तत्र कृता मित्रं सीतया रक्ष्यमाणया ।
रक्षन्ती रावणादिष्टा सानुक्रोशा दृढव्रता ॥ ३ ॥

सरमा रावणकी आज्ञासे सीताजीकी रक्षा करती थी। उसने अपनी रक्षणीया सीताके साथ मैत्री कर ली थी। वह बड़ी दयालु और दृढ़-संकल्प थी ॥ ३ ॥

सा ददर्श सखीं सीतां सरमा नष्टचेतनाम् ।
उपावृत्योत्थितां ध्वस्तां वडवामिव पांसुषु ॥ ४ ॥

सरमाने सखी सीताको देखा। उनकी चेतना नष्ट-सी हो रही थी। जैसे परिश्रमसे थकी हुई घोड़ी धरतीकी धूलमें लोटकर खड़ी हुई हो, उसी प्रकार सीता भी पृथ्वीपर लोटकर रोने और विलाप करनेके कारण धूलिधूसरित हो रही थीं ॥

तां समाश्वासयामास सखीस्नेहेन सुव्रताम् ।
समाश्वसिहि वैदेहि मा भूत् ते मनसो व्यथा ।
उक्ता यद् रावणेन त्वं प्रत्युक्तश्च स्वयं त्वया ॥ ५ ॥
सखीस्नेहेन तद् भीरु मया सर्वं प्रतिश्रुतम् ।
लीनया गहने शून्ये भयमुत्सृज्य रावणात् ।
तव हेतोर्विशालाक्षि नहि मे रावणाद् भयम् ॥ ६ ॥

उसने एक सखीके स्नेहसे उत्तम व्रतका पालन करनेवाली सीताको आश्वासन दिया—'विदेहनन्दिनी ! धैर्य धारण करो। तुम्हारे मनमें व्यथा नहीं होनी चाहिये। भीरु ! रावणने तुमसे जो कुछ कहा है और स्वयं तुमने उसे जो उत्तर दिया है, वह सब मैंने सखीके प्रति स्नेह होनेके कारण सुन लिया है। विशाललोचने ! तुम्हारे लिये मैं रावणका भय छोड़कर अशोकवाटिकाके सूने गहन स्थानमें छिपकर सारी बातें सुन रही थी। मुझे रावणसे कोई डर नहीं है ॥ ५-६ ॥

स सम्भ्रान्तश्च निष्क्रान्तो यत्कृते राक्षसेश्वरः ।
तत्र मे विदितं सर्वमभिनिष्क्रम्य मैथिलि ॥ ७ ॥

'मिथिलेशकुमारी ! राक्षसराज रावण जिस कारण यहाँसे घबराकर निकल गया है, उसका भी मैं वहाँ जाकर पूर्णरूपसे पता लगा आयी हूँ ॥ ७ ॥

न शक्यं सौप्तिकं कर्तुं रामस्य विदितात्मनः ।
वधश्च पुरुषव्याघ्रे तस्मिन् नैवोपपद्यते ॥ ८ ॥

'भगवान् श्रीराम अपने स्वरूपको जाननेवाले सर्वज्ञ परमात्मा हैं। उनका सोते समय वध करना किसीके लिये भी सर्वथा असम्भव है। पुरुषसिंह श्रीरामके विषयमें इस तरह उनके वध होनेकी बात युक्तिसंगत नहीं जान पड़ती ॥ ८ ॥

न त्वेवं वानरा हन्तुं शक्याः पादपयोधिनः ।
सुरा देवर्षभेणेव रामेण हि सुरक्षिताः ॥ ९ ॥

'वानरलोग वृक्षोंके द्वारा युद्ध करनेवाले हैं। उनका भी इस तरह मारा जाना कदापि सम्भव नहीं है; क्योंकि जैसे देवतालोग देवराज इन्द्रसे पालित होते हैं, उसी प्रकार ये वानर श्रीरामचन्द्रजीसे भलीभाँति सुरक्षित हैं ॥ ९ ॥

दीर्घवृत्तभुजः श्रीमान् महोरस्कः प्रतापवान् ।
धन्वी संनहनोपेतो धर्मात्मा भुवि विश्रुतः ॥ १० ॥
विक्रान्तो रक्षिता नित्यमात्मनश्च परस्य च ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा कुलीनो नयशास्त्रवित् ॥ ११ ॥
हन्ता परबलौघानामचिन्त्यबलपौरुषः ।
न हतो राघवः श्रीमान् सीते शत्रुनिबर्हणः ॥ १२ ॥

'सीते ! श्रीमान् राम गोलाकार बड़ी-बड़ी भुजाओंसे सुशोभित, चौड़ी छातीवाले, प्रतापी, धनुर्धर, सुगठित शरीरसे युक्त और भूमण्डलमें सुविख्यात धर्मात्मा हैं। उनमें महान् पराक्रम है। वे भाई लक्ष्मणकी सहायतासे अपनी तथा दूसरेकी भी रक्षा करनेमें समर्थ हैं। नीतिशास्त्रके ज्ञाता और कुलीन हैं। उनके बल और पौरुष अचिन्त्य हैं। वे शत्रुपक्षके सैन्यसमूहोंका संहार करनेकी शक्ति रखते हैं। शत्रुसूदन श्रीराम कदापि मारे नहीं गये हैं ॥ १०—१२ ॥

अयुक्तबुद्धिकृत्येन सर्वभूतविरोधिना ।
एवं प्रयुक्ता रौद्रेण माया मायाविना त्वयि ॥ १३ ॥

'रावणकी बुद्धि और कर्म दोनों ही बुरे हैं। वह समस्त प्राणियोंका विरोधी, क्रूर और मायावी है। उसने तुमपर यह मायाका प्रयोग किया था (वह मस्तक और धनुष मायाद्वारा रचे गये थे) ॥ १३ ॥

शोकस्ते विगतः सर्वकल्याणं त्वामुपस्थितम् ।
ध्रुवं त्वां भजते लक्ष्मीः प्रियं ते भवति शृणु ॥ १४ ॥

'अब तुम्हारे शोकके दिन बीत गये। सब प्रकारसे कल्याणका अवसर उपस्थित हुआ है। निश्चय ही लक्ष्मी तुम्हारा सेवन करती हैं। तुम्हारा प्रिय कार्य होने जा रहा है। उसे बताती हूँ, सुनो ॥ १४ ॥

उत्तीर्य सागरं रामः सह वानरसेनया ।
संनिविष्टः समुद्रस्य तीरमासाद्य दक्षिणम् ॥ १५ ॥

'श्रीरामचन्द्रजी वानरसेनाके साथ समुद्रको लाँघकर इस पार आ गये हैं। उन्होंने सागरके दक्षिणतटपर पड़ाव डाला है ॥ १५ ॥

दृष्टो मे परिपूर्णार्थः काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः ।
सहितैः सागरान्तस्थैर्बलैस्तिष्ठति रक्षितः ॥ १६ ॥

'मैंने स्वयं लक्ष्मणसहित पूर्णकाम श्रीरामका दर्शन किया है। वे समुद्रतटपर ठहरी हुई अपनी संगठित सेनाओंद्वारा सर्वथा सुरक्षित हैं ॥ १६ ॥

अनेन प्रेषिता ये च राक्षसा लघुविक्रमाः ।
राघवस्तीर्ण इत्येवं प्रवृत्तिस्तैरिहाहृता ॥ १७ ॥

'रावणने जो-जो शीघ्रगामी राक्षस भेजे थे, वे सब यहाँ यही समाचार लाये हैं कि 'श्रीरघुनाथजी समुद्रको पार करके आ गये' ॥ १७ ॥

स तां श्रुत्वा विशालाक्षि प्रवृत्तिं राक्षसाधिपः ।
एष मन्त्रयते सर्वैः सचिवैः सह रावणः ॥ १८ ॥

'विशाललोचने ! इस समाचारको सुनकर यह राक्षसराज रावण अपने सभी मन्त्रियोंके साथ गुप्त परामर्श कर रहा है' ॥ १८ ॥

इति ब्रुवाणा सरमा राक्षसी सीतया सह ।
सर्वोद्योगेन सैन्यानां शब्दं शुश्राव भैरवम् ॥ १९ ॥

जब राक्षसी सरमा सीतासे ये बातें कह रही थी, उसी समय उसने युद्धके लिये पूर्णतः उद्योगशील सैनिकोंका भैरव नाद सुना ॥

दण्डनिर्घातवादिन्याः श्रुत्वा भेर्या महास्वनम् ।
उवाच सरमा सीतामिदं मधुरभाषिणी ॥ २० ॥

डंडेकी चोटसे बजनेवाले धौंसेका गम्भीर नाद सुनकर मधुरभाषिणी सरमाने सीतासे कहा—॥ २० ॥

संनाहजननी ह्येषा भैरवा भीरु भेरिका ।
भेरीनादं च गम्भीरं शृणु तोयदनिःस्वनम् ॥ २१ ॥

'भीरु ! यह भयानक भेरीनाद युद्धके लिये तैयारीकी सूचना दे रहा है । मेघकी गर्जनाके समान रणभेरीका गम्भीर घोष तुम भी सुन लो ॥ २१ ॥

कल्प्यन्ते मत्तमातङ्गा युज्यन्ते रथवाजिनः ।
दृश्यन्ते तुरगारूढाः प्रासहस्ताः सहस्रशः ॥ २२ ॥

'मतवाले हाथी सजाये जा रहे हैं । रथमें घोड़े जोते जा रहे हैं और हजारों घुड़सवार हाथमें भाला लिये दृष्टिगोचर हो रहे हैं ॥ २२ ॥

तत्र तत्र च संनद्धाः सम्पतन्ति सहस्रशः ।
आपूर्यन्ते राजमार्गाः सैन्यैरद्भुतदर्शनैः ॥ २३ ॥
वेगवद्भिर्नदद्भिश्च तोयौघैरिव सागरः ।

'जहाँ-तहाँसे युद्धके लिये संनद्ध हुए सहस्रों सैनिक दौड़े चले आ रहे हैं । सारी सड़कें अद्भुत वेषमें सजे और बड़े वेगसे गर्जना करते हुए सैनिकोंसे उसी तरह भरती जा रही हैं जैसे जलके असंख्य प्रवाह सागरमें मिल रहे हों ॥ २३½ ॥

शस्त्राणां च प्रसन्नानां चर्मणां वर्मणां तथा ॥ २४ ॥
रथवाजिगजानां च राक्षसेन्द्रानुयायिनाम् ।
सम्भ्रमो रक्षसामेष हृषितानां तरस्विनाम् ॥ २५ ॥
प्रभां विसृजतां पश्य नानावर्णसमुत्थिताम् ।
वनं निर्दहतो घर्मे यथा रूपं विभावसोः ॥ २६ ॥

'नाना प्रकारकी प्रभा बिखेरनेवाले चमचमाते हुए अस्त्र-शस्त्रों, ढालों और कवचोंकी वह चमक देखो । राक्षसराज रावणका अनुगमन करनेवाले रथों, घोड़ों, हाथियों तथा रोमाञ्चित हुए वेगशाली राक्षसोंमें इस समय यह बड़ी हड़बड़ी दिखायी देती है । ग्रीष्म ऋतुमें वनको जलाते हुए दावानलका जैसा जाज्वल्यमान रूप होता है, वैसी ही प्रभा इन अस्त्र-शस्त्र आदिकी दिखायी देती है ॥ २४—२६ ॥

घण्टानां शृणु निर्घोषं रथानां शृणु निःस्वनम् ।
हयानां हेषमाणानां शृणु तूर्यध्वनिं तथा ॥ २७ ॥

'हाथियोंपर बजते हुए घण्टोंका गम्भीर घोष सुनो, रथोंकी घर्घराहट सुनो और हिनहिनाते हुए घोड़ों तथा भाँति-भाँतिके बाजोंकी आवाज भी सुन लो ॥ २७ ॥

उद्यतायुधहस्तानां राक्षसेन्द्रानुयायिनाम् ।
सम्भ्रमो रक्षसामेष तुमुलो लोमहर्षणम् ॥ २८ ॥
श्रीस्त्वां भजति शोकघ्नी रक्षसां भयमागतम् ।

'हाथोंमें हथियार लिये रावणके अनुगामी राक्षसोंमें इस समय बड़ी घबराहट है । इससे यह जान लो कि उनपर कोई बड़ा भारी रोमाञ्चकारी भय उपस्थित हुआ है और शोकका निवारण करनेवाली लक्ष्मी तुम्हारी सेवामें उपस्थित हो रही है ॥

रामः कमलपत्राक्षो दैत्यानामिव वासवः ॥ २९ ॥
अवजित्य जितक्रोधस्तमचिन्त्यपराक्रमः ।
रावणं समरे हत्वा भर्ता त्वाधिगमिष्यति ॥ ३० ॥

'तुम्हारे पति कमलनयन श्रीराम क्रोधको जीत चुके हैं । उनका पराक्रम अचिन्त्य है । वे दैत्योंको परास्त करनेवाले इन्द्रकी भाँति राक्षसोंको हराकर समराङ्गणमें रावणका वध करके तुम्हें प्राप्त कर लेंगे ॥ २९-३० ॥

विक्रमिष्यति रक्षःसु भर्ता ते सहलक्ष्मणः ।
यथा शत्रुषु शत्रुघ्नो विष्णुना सह वासवः ॥ ३१ ॥

'जैसे शत्रुसूदन इन्द्रने उपेन्द्रकी सहायतासे शत्रुओंपर पराक्रम प्रकट किया था, उसी प्रकार तुम्हारे पतिदेव श्रीराम अपने भाई लक्ष्मणके सहयोगसे राक्षसोंपर अपने बल-विक्रमका प्रदर्शन करेंगे ॥ ३१ ॥

आगतस्य हि रामस्य क्षिप्रमङ्कागतां सतीम् ।
अहं द्रक्ष्यामि सिद्धार्थां त्वां शत्रौ विनिपातिते ॥ ३२ ॥

'शत्रु रावणका संहार हो जानेपर मैं शीघ्र ही तुम-जैसी सती-साध्वीको यहाँ पधारे हुए श्रीरघुनाथजीकी गोदमें समोद बैठी देखूँगी । अब शीघ्र ही तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा ॥ ३२ ॥

अस्राण्यानन्दजानि त्वं वर्तयिष्यसि जानकि ।
समागम्य परिष्वक्ता तस्योरसि महोरसः ॥ ३३ ॥

'जनकनन्दिनि ! विशाल वक्षःस्थलसे विभूषित श्रीरामके मिलनेपर उनकी छातीसे लगकर तुम शीघ्र ही नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाओगी ॥ ३३ ॥

अचिरान्मोक्ष्यते सीते देवि ते जघनं गताम्।
धृतामेकां बहून् मासान् वेणीं रामो महाबलः ॥ ३४ ॥

'देवि सीते! कई महीनोंसे तुम्हारे केशोंकी एक ही वेणी जटाके रूपमें परिणत हो जो कटिप्रदेशतक लटक रही है, उसे महाबली श्रीराम शीघ्र ही अपने हाथोंसे खोलेंगे ॥ ३४ ॥

तस्य दृष्ट्वा मुखं देवि पूर्णचन्द्रमिवोदितम्।
मोक्ष्यसे शोकजं वारि निर्मोकमिव पन्नगी ॥ ३५ ॥

'देवि! जैसे नागिन केंचुल छोड़ती है, उसी प्रकार तुम उदित हुए पूर्णचन्द्रके समान अपने पतिका मुदित मुख देखकर शोकके आँसू बहाना छोड़ दोगी ॥ ३५ ॥

रावणं समरे हत्वा नचिरादेव मैथिलि।
त्वया समग्रः प्रियया सुखार्हो लप्स्यते सुखम् ॥ ३६ ॥

'मिथिलेशकुमारी! समराङ्गणमें शीघ्र ही रावणका वध करके सुख भोगनेके योग्य श्रीराम सफलमनोरथ हो तुझ प्रियतमाके साथ मनोवाञ्छित सुख प्राप्त करेंगे ॥ ३६ ॥

सभाजिता त्वं रामेण मोदिष्यसि महात्मना।
सुवर्षेण समायुक्ता यथा सस्येन मेदिनी ॥ ३७ ॥

'जैसे पृथ्वी उत्तम वर्षासे अभिषिक्त होनेपर हरी-भरी खेतीसे लहलहा उठती है, उसी प्रकार तुम महात्मा श्रीरामसे सम्मानित हो आनन्दमग्न हो जाओगी ॥ ३७ ॥

गिरिवरमभितो विवर्तमानो
हय इव मण्डलमाशु यः करोति।
तमिह शरणमभ्युपैहि देवि
दिवसकरं प्रभवो ह्ययं प्रजानाम् ॥ ३८ ॥

'देवि! जो गिरिवर मेरुके चारों ओर घूमते हुए अश्वकी भाँति शीघ्रतापूर्वक मण्डलाकार-गतिसे चलते हैं, उन्हीं भगवान् सूर्यकी (जो तुम्हारे कुलके देवता हैं) तुम यहाँ शरण लो; क्योंकि ये प्रजाजनोंको सुख देने तथा उनका दुःख दूर करनेमें समर्थ हैं' ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके सुन्दरकाण्डमें तैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः

सीताके अनुरोधसे सरमाका उन्हें मन्त्रियोंसहित रावणका निश्चित विचार बताना

अथ तां जातसंतापां तेन वाक्येन मोहिताम्।
सरमा ह्लादयामास महीं दग्धामिवाम्भसा ॥ १ ॥

रावणके पूर्वोक्त वचनसे मोहित एवं संतप्त हुई सीताको सरमाने अपनी वाणीद्वारा उसी प्रकार आह्लाद प्रदान किया, जैसे ग्रीष्मऋतुके तापसे दग्ध हुई पृथ्वीको वर्षाकालकी मेघमाला अपने जलसे आह्लादित कर देती है ॥ १ ॥

ततस्तस्या हितं सख्याश्चिकीर्षन्ती सखी वचः।
उवाच काले कालज्ञा स्मितपूर्वाभिभाषिणी ॥ २ ॥

तदनन्तर समयको पहचानने और मुसकराकर बात करनेवाली सखी सरमा अपनी प्रिय सखी सीताका हित करनेकी इच्छा रखकर यह समयोचित वचन बोली—॥ २ ॥

उत्सहेयमहं गत्वा त्वद्वाक्यमसितेक्षणे।
निवेद्य कुशलं रामे प्रतिच्छन्ना निवर्तितुम् ॥ ३ ॥

'कजरारे नेत्रोंवाली सखी! मुझमें यह साहस और उत्साह है कि मैं श्रीरामके पास जाकर तुम्हारा संदेश और कुशल-समाचार निवेदन कर दूँ और फिर छिपी हुई वहाँसे लौट आऊँ ॥ ३ ॥

नहि मे क्रममाणाया निरालम्बे विहायसि।
समर्थो गतिमन्वेतुं पवनो गरुडोऽपि वा ॥ ४ ॥

'निराधार आकाशमें तीव्र वेगसे जाती हुई मेरी गतिका अनुसरण करनेमें वायु अथवा गरुड़ भी समर्थ नहीं हैं' ॥ ४ ॥

एवं ब्रुवाणां तां सीता सरमामिदमब्रवीत्।
मधुरं श्लक्ष्णया वाचा पूर्वशोकाभिपन्नया ॥ ५ ॥

ऐसी बात कहती हुई सरमासे सीताने उस स्नेहभरी मधुर वाणीद्वारा जो पहले शोकसे व्याप्त थी, इस प्रकार कहा—॥ ५ ॥

समर्था गगनं गन्तुमपि च त्वं रसातलम्।
अवगच्छाद्य कर्तव्यं कर्तव्यं ते मदन्तरे ॥ ६ ॥

'सरमे! तुम आकाश और पाताल सभी जगह जानेमें समर्थ हो। मेरे लिये जो कर्तव्य तुम्हें करना है, उसे अब बता रही हूँ, सुनो और समझो ॥ ६ ॥

मत्प्रियं यदि कर्तव्यं यदि बुद्धिः स्थिरा तव।
ज्ञातुमिच्छामि तं गत्वा किं करोतीति रावणः ॥ ७ ॥

'यदि तुम्हें मेरा प्रिय कार्य करना है और यदि इस विषयमें तुम्हारी बुद्धि स्थिर है तो मैं यह जानना चाहती हूँ कि रावण यहाँसे जाकर क्या कर रहा है? ॥ ७ ॥

स हि मायाबलः क्रूरो रावणः शत्रुरावणः।
मां मोहयति दुष्टात्मा पीतमात्रेव वारुणी ॥ ८ ॥

'शत्रुओंको रुलानेवाला रावण मायाबलसे सम्पन्न है। वह दुष्टात्मा मुझे उसी प्रकार मोहित कर रहा है, जैसे वारुणी अधिक मात्रामें पी लेनेपर वह पीनेवालेको मोहित (अचेत) कर देती है ॥ ८ ॥

तर्जापयति मां नित्यं भर्त्सापयति चासकृत् ।
राक्षसीभिः सुघोराभिर्यो मां रक्षति नित्यशः ॥ ९ ॥

'वह राक्षस अत्यन्त भयानक राक्षसियोंद्वारा प्रतिदिन मुझे डाँट बताता है, धमकाता है और सदा मेरी रखवाली करता है ॥ ९ ॥

उद्विग्ना शङ्किता चास्मि न स्वस्थं च मनो मम ।
तद्भयाच्चाहमुद्विग्ना अशोकवनिकां गता ॥ १० ॥

'मैं सदा उससे उद्विग्न और शङ्कित रहती हूँ । मेरा चित्त स्वस्थ नहीं हो पाता । मैं उसीके भयसे व्याकुल होकर अशोकवाटिकामें चली आयी थी ॥ १० ॥

यदि नाम कथा तस्य निश्चितं वापि यद् भवेत् ।
निवेदयेथाः सर्वं तद् वरो मे स्यादनुग्रहः ॥ ११ ॥

'यदि मन्त्रियोंके साथ उसकी बातचीत चल रही है तो वहाँ जो कुछ निश्चय हो अथवा रावणका जो निश्चित विचार हो, वह सब मुझे बताती रहो । यह मुझपर तुम्हारी बहुत बड़ी कृपा होगी' ॥ ११ ॥

साप्येवं ब्रुवतीं सीतां सरमा मृदुभाषिणी ।
उवाच वदनं तस्याः स्पृशन्ती बाष्पविक्लवम् ॥ १२ ॥

ऐसी बातें कहती हुई सीतासे मधुरभाषिणी सरमाने उनके आँसुओंसे भीगे हुए मुखमण्डलको हाथसे पोंछते हुए इस प्रकार कहा—॥ १२ ॥

एष ते यद्यभिप्रायस्तस्माद् गच्छामि जानकि ।
गृह्य शत्रोरभिप्रायमुपावर्तामि मैथिलि ॥ १३ ॥

'मिथिलेशकुमारी जनकनन्दिनि ! यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं जाती हूँ और शत्रुके अभिप्रायको जानकर अभी लौटती हूँ' ॥ १३ ॥

एवमुक्त्वा ततो गत्वा समीपं तस्य रक्षसः ।
शुश्राव कथितं तस्य रावणस्य समन्त्रिणः ॥ १४ ॥

ऐसा कहकर सरमाने उस राक्षसके समीप जाकर मन्त्रियोंसहित रावणकी कही हुई सारी बातें सुनीं ॥ १४ ॥

सा श्रुत्वा निश्चयं तस्य निश्चयज्ञा दुरात्मनः ।
पुनरेवागमत् क्षिप्रमशोकवनिकां शुभाम् ॥ १५ ॥

उस दुरात्माके निश्चयको सुनकर उसने अच्छी तरह समझ लिया और फिर वह शीघ्र ही सुन्दर अशोकवाटिकामें लौट आयी ॥ १५ ॥

सा प्रविष्टा ततस्तत्र ददर्श जनकात्मजाम् ।
प्रतीक्षमाणां स्वामेव भ्रष्टपद्मामिव श्रियम् ॥ १६ ॥

वहाँ प्रवेश करके उसने अपनी ही प्रतीक्षामें बैठी हुई जनककिशोरीको देखा, जो उस लक्ष्मीके समान जान पड़ती थीं, जिसके हाथका कमल कहीं गिर गया हो ॥ १६ ॥

तां तु सीता पुनः प्राप्तां सरमां प्रियभाषिणीम् ।
परिष्वज्य च सुस्निग्धं ददौ च स्वयमासनम् ॥ १७ ॥

फिर लौटकर आयी हुई प्रियभाषिणी सरमाको बड़े स्नेहसे गले लगाकर सीताने स्वयं उसे बैठनेके लिये आसन दिया और कहा—॥ १७ ॥

इहासीना सुखं सर्वमाख्याहि मम तत्त्वतः ।
क्रूरस्य निश्चयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥ १८ ॥

'सखी ! यहाँ सुखसे बैठकर सारी बातें ठीक-ठीक बताओ । उस क्रूर एवं दुरात्मा रावणने क्या निश्चय किया' ॥

एवमुक्ता तु सरमा सीतया वेपमानया ।
कथितं सर्वमाचष्ट रावणस्य समन्त्रिणः ॥ १९ ॥

काँपती हुई सीताके इस प्रकार पूछनेपर सरमाने मन्त्रियोंसहित रावणकी कही हुई सारी बातें बतायीं—॥ १९ ॥

जनन्या राक्षसेन्द्रो वै त्वन्मोक्षार्थं बृहद्वचः ।
अतिस्निग्धेन वैदेहि मन्त्रिवृद्धेन चोदितः ॥ २० ॥

'विदेहनन्दिनि ! राक्षसराज रावणकी माताने तथा रावणके प्रति अत्यन्त स्नेह रखनेवाले एक बूढ़े मन्त्रीने भी बड़ी-बड़ी बातें कहकर तुम्हें छोड़ देनेके लिये रावणको प्रेरित किया ॥ २० ॥

दीयतामभिसत्कृत्य मनुजेन्द्राय मैथिली ।
निदर्शनं ते पर्याप्तं जनस्थाने यदद्भुतम् ॥ २१ ॥

'राक्षसराज ! तुम महाराज श्रीरामको सत्कारपूर्वक उनकी पत्नी सीता लौटा दो । जनस्थानमें जो अद्भुत घटना घटित हुई थी, वही श्रीरामके पराक्रमको समझनेके लिये पर्याप्त प्रमाण एवं उदाहरण है ॥ २१ ॥

लङ्घनं च समुद्रस्य दर्शनं च हनूमतः ।
वधं च रक्षसां युद्धे कः कुर्यान्मानुषो युधि ॥ २२ ॥

'(उनके सेवकोंमें भी अद्भुत शक्ति है) हनुमान्‌ने जो समुद्रको लाँघा, सीतासे भेंट की और युद्धमें बहुत-से राक्षसोंका वध किया—यह सब कार्य दूसरा कौन मनुष्य कर सकता है ?' ॥ २२ ॥

एवं स मन्त्रिवृद्धैश्च मात्रा च बहुबोधितः ।
न त्वामुत्सहते मोक्तुमर्थमर्थपरो यथा ॥ २३ ॥

'इस प्रकार बूढ़े मन्त्रियों तथा माताके बहुत समझानेपर भी वह तुम्हें उसी तरह छोड़नेकी इच्छा नहीं करता है, जैसे धनका लोभी धनको त्यागना नहीं चाहता है ॥ २३ ॥

नोत्सहत्यमृतो मोक्तुं युद्धे त्वामिति मैथिलि ।
सामात्यस्य नृशंसस्य निश्चयो ह्येष वर्तते ॥ २४ ॥

'मिथिलेशकुमारी ! वह युद्धमें मरे बिना तुम्हें छोड़नेका साहस नहीं कर सकता । मन्त्रियोंसहित उस नृशंस निशाचरका यही निश्चय है ॥ २४ ॥

तदेषा सुस्थिरा बुद्धिर्मृत्युलोभादुपस्थिता ।
भयान्न शक्तस्त्वां मोक्तुमनिरस्तः स संयुगे ॥ २५ ॥
राक्षसानां च सर्वेषामात्मनश्च वधेन हि ।

'रावणके सिरपर काल नाच रहा है। इसलिये उसके मनमें मृत्युके प्रति लोभ पैदा हो गया है। यही कारण है कि तुम्हें न लौटानेके निश्चयपर उसकी बुद्धि सुस्थिर हो गयी है। वह जबतक युद्धमें राक्षसोंके संहार और अपने वधके द्वारा (नष्ट) नहीं हो जायगा; केवल भय दिखानेसे तुम्हें नहीं छोड़ सकता ॥ २५½ ॥

निहत्य रावणं संख्ये सर्वथा निशितैः शरैः ।
प्रतिनेष्यति रामस्त्वामयोध्यामसितेक्षणे ॥ २६ ॥

'कजरारे नेत्रोंवाली सीते ! इसका परिणाम यही होगा कि भगवान् श्रीराम अपने सर्वथा तीखे बाणोंसे युद्धस्थलमें रावणका वध करके तुम्हें अयोध्याको ले जायँगे' ॥ २६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शब्दो भेरीशङ्खसमाकुलः ।
श्रुतो वै सर्वसैन्यानां कम्पयन् धरणीतलम् ॥ २७ ॥

इसी समय भेरीनाद और शङ्खध्वनिसे मिला हुआ समस्त सैनिकोंका महान् कोलाहल सुनायी दिया, जो भूकम्प पैदा कर रहा था ॥ २७ ॥

श्रुत्वा तु तं वानरसैन्यनादं
लङ्कागता राक्षसराजभृत्याः ।
हतौजसो दैन्यपरीतचेष्टाः
श्रेयो न पश्यन्ति नृपस्य दोषात् ॥ २८ ॥

वानरसैनिकोंके उस भीषण सिंहनादको सुनकर लङ्कामें रहनेवाले राक्षसराज रावणके सेवक हतोत्साह हो गये। उनकी सारी चेष्टा दीनतासे व्याप्त हो गयी। रावणके दोषसे उन्हें भी कोई कल्याणका उपाय नहीं दिखायी देता था ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चौंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशः सर्गः

माल्यवान्‌का रावणको श्रीरामसे संधि करनेके लिये समझाना

तेन शङ्खविमिश्रेण भेरीशब्देन नादिना ।
उपयाति महाबाहू रामः परपुरंजयः ॥ १ ॥

शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले महाबाहु श्रीरामने शङ्खध्वनिसे मिश्रित हो तुमुल नाद करनेवाली भेरीकी आवाजके साथ लङ्कापर आक्रमण किया ॥ १ ॥

तं निनादं निशम्याथ रावणो राक्षसेश्वरः ।
मुहूर्तं ध्यानमास्थाय सचिवानभ्युदैक्षत ॥ २ ॥

उस भेरीनादको सुनकर राक्षसराज रावणने दो घड़ीतक कुछ सोच-विचार करनेके पश्चात् अपने मन्त्रियोंकी ओर देखा ॥ २ ॥

अथ तान् सचिवांस्तत्र सर्वानाभाष्य रावणः ।
सभां संनादयन् सर्वामित्युवाच महाबलः ॥ ३ ॥
जगत्संतापनः क्रूरोऽगर्हयन् राक्षसेश्वरः ।

उन सब मन्त्रियोंको सम्बोधित करके जगत्‌को संताप देनेवाले, महाबली, क्रूर राक्षसराज रावणने सारी सभाको प्रतिध्वनित करके किसीपर आक्षेप न करते हुए कहा— ॥ ३½ ॥

तरणं सागरस्यास्य विक्रमं बलपौरुषम् ॥ ४ ॥
यदुक्तवन्तो रामस्य भवन्तस्तन्मया श्रुतम् ।
भवतश्चाप्यहं वेद्मि युद्धे सत्यपराक्रमान् ।
तूष्णीकानीक्षतोऽन्योन्यं विदित्वा रामविक्रमम् ॥ ५ ॥

'आपलोगोंने रामके पराक्रम, बल-पौरुष तथा समुद्र-लङ्घनकी जो बात बतायी है, वह सब मैंने सुन ली; परंतु मैं तो आपलोगोंको भी, जो इस समय रामके पराक्रमकी बातें जानकर चुपचाप एक दूसरेका मुँह देख रहे हैं, संग्रामभूमिमें सत्यपराक्रमी वीर समझता हूँ' ॥ ४-५ ॥

ततस्तु सुमहाप्राज्ञो माल्यवान् नाम राक्षसः ।
रावणस्य वचः श्रुत्वा इति मातामहोऽब्रवीत् ॥ ६ ॥

रावणके इस आक्षेपपूर्ण वचनको सुननेके पश्चात् महाबुद्धिमान् माल्यवान् नामक राक्षसने, जो रावणका नाना था, इस प्रकार कहा— ॥ ६ ॥

विद्यास्वभिविनीतो यो राजा राजन् नयानुगः ।
स शास्ति चिरमैश्वर्यमरींश्च कुरुते वशे ॥ ७ ॥

'राजन् ! जो राजा चौदहों विद्याओंमें सुशिक्षित और नीतिका अनुसरण करनेवाला होता है, वह दीर्घकालतक राज्यका शासन करता है। वह शत्रुओंको भी वशमें कर लेता है ॥ ७ ॥

संदधानो हि कालेन विगृह्णंश्चारिभिः सह ।
स्वपक्षे वर्धनं कुर्वन्महदैश्वर्यमश्नुते ॥ ८ ॥

'जो समयके अनुसार आवश्यक होनेपर शत्रुओंके साथ संधि और विग्रह करता है तथा अपने पक्षकी वृद्धिमें लगा रहता है, वह महान् ऐश्वर्यका भागी होता है ॥ ८ ॥

हीयमानेन कर्तव्यो राज्ञा संधिः समेन च ।
न शत्रुमवमन्येत ज्यायान् कुर्वीत विग्रहम् ॥ ९ ॥

'जिस राजाकी शक्ति क्षीण हो रही हो अथवा जो शत्रुके समान ही शक्ति रखता हो, उसे संधि कर लेनी चाहिये। अपनेसे अधिक या समान शक्तिवाले शत्रुका कभी अपमान न करे। यदि स्वयं ही शक्तिमें बढ़ा-चढ़ा हो, तभी शत्रुके साथ वह युद्ध ठाने ॥ ९ ॥

तन्मह्यं रोचते संधिः सह रामेण रावण ।
यदर्थमभियुक्तोऽसि सीता तस्मै प्रदीयताम् ॥ १० ॥

'इसलिये रावण ! मुझे तो श्रीरामके साथ संधि करना ही अच्छा लगता है। जिसके लिये तुम्हारे ऊपर आक्रमण हो रहा है, वह सीता तुम श्रीरामको लौटा दो ॥ १० ॥

तस्य देवर्षयः सर्वे गन्धर्वाश्च जयैषिणः ।
विरोधं मा गमस्तेन संधिस्ते तेन रोचताम् ॥ ११ ॥

'देखो, देवता, ऋषि और गन्धर्व सभी श्रीरामकी विजय चाहते हैं, अतः तुम उनसे विरोध न करो। उनके साथ संधि कर लेनेकी ही इच्छा करो ॥ ११ ॥

असृजद् भगवान् पक्षौ द्वावेव हि पितामहः ।
सुराणामसुराणां च धर्माधर्मौ तदाश्रयौ ॥ १२ ॥

'भगवान् ब्रह्माने सुर और असुर दो ही पक्षोंकी सृष्टि की है। धर्म और अधर्म ही इनके आश्रय हैं ॥१२॥

धर्मो हि श्रूयते पक्ष अमराणां महात्मनाम् ।
अधर्मो रक्षसां पक्षो ह्यसुराणां च राक्षस ॥ १३ ॥

'सुना जाता है महात्मा देवताओंका पक्ष धर्म है। राक्षसराज ! राक्षसों और असुरोंका पक्ष अधर्म है ॥ १३ ॥

धर्मो वै ग्रसतेऽधर्मं यदा कृतमभूद् युगम् ।
अधर्मो ग्रसते धर्मं यदा तिष्यः प्रवर्तते ॥ १४ ॥

'जब सत्ययुग होता है, तब धर्म बलवान् होकर अधर्मको ग्रस लेता है और जब कलियुग आता है, तब अधर्म ही धर्मको दबा देता है ॥ १४ ॥

तत् त्वया चरता लोकान् धर्मोऽपि निहतो महान् ।
अधर्मः प्रगृहीतश्च तेनास्मद् बलिनः परे ॥ १५ ॥

'तुमने दिग्विजयके लिये सब लोकोंमें भ्रमण करते हुए महान् धर्मका नाश किया है और अधर्मको गले लगाया है, इसलिये हमारे शत्रु हमसे प्रबल हैं ॥ १५ ॥

स प्रमादात् प्रवृद्धस्तेऽधर्मोऽहिर्ग्रसते हि नः ।
विवर्धयति पक्षं च सुराणां सुरभावनः ॥ १६ ॥

'तुम्हारे प्रमादसे बढ़ा हुआ अधर्मरूपी अजगर अब हमें निगल जाना चाहता है और देवताओंद्वारा पालित धर्म उनके पक्षकी वृद्धि कर रहा है ॥ १६ ॥

विषयेषु प्रसक्तेन यत्किंचित्कारिणा त्वया ।
ऋषीणामग्निकल्पानामुद्वेगो जनितो महान् ॥ १७ ॥

'विषयोंमें आसक्त होकर जो कुछ भी कर डालनेवाले तुमने जो मनमाना आचरण किया है, इससे अग्निके समान तेजस्वी ऋषियोंको बड़ा ही उद्वेग प्राप्त हुआ है ॥ १७ ॥

तेषां प्रभावो दुर्धर्षः प्रदीप्त इव पावकः ।
तपसा भावितात्मानो धर्मस्यानुग्रहे रताः ॥ १८ ॥

'उनका प्रभाव प्रज्वलित अग्निके समान दुर्धर्ष है। वे ऋषि-मुनि तपस्याके द्वारा अपने अन्तःकरणको शुद्ध करके धर्मके ही संग्रहमें तत्पर रहते हैं ॥ १८ ॥

मुख्यैर्यज्ञैर्यजन्त्येते तैस्तैर्यत्ते द्विजातयः ।
जुह्वत्यग्नींश्च विधिवद् वेदांश्चोच्चैरधीयते ॥ १९ ॥

'ये द्विजगण मुख्य-मुख्य यज्ञोंद्वारा यजन करते, विधिवत् अग्निमें आहुति देते और उच्चस्वरसे वेदोंका पाठ करते हैं ॥ १९ ॥

अभिभूय च रक्षांसि ब्रह्मघोषानुदीरयन् ।
दिशो विप्रद्रुताः सर्वाः स्तनयित्नुरिवोष्णगे ॥ २० ॥

'उन्होंने राक्षसोंको अभिभूत करके वेदमन्त्रोंकी ध्वनिका विस्तार किया है, इसलिये ग्रीष्म ऋतुमें मेघकी भाँति राक्षस सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग खड़े हुए हैं ॥ २० ॥

ऋषीणामग्निकल्पानामग्निहोत्रसमुत्थितः ।
आदत्ते रक्षसां तेजो धूमो व्याप्य दिशो दश ॥ २१ ॥

'अग्नितुल्य तेजस्वी ऋषियोंके अग्निहोत्रसे प्रकट हुआ धूम दसों दिशाओंमें व्याप्त होकर राक्षसोंके तेजको हर लेता है॥

तेषु तेषु च देशेषु पुण्येष्वेव दृढव्रतैः ।
चर्यमाणं तपस्तीव्रं संतापयति राक्षसान् ॥ २२ ॥

'भिन्न भिन्न देशोंमें पुण्य कर्मोंमें ही लगे रहकर दृढतापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ऋषिलोग जो तीव्र तपस्या करते हैं, वही राक्षसोंको संताप दे रही है ॥२२॥

देवदानवयक्षेभ्यो गृहीतश्च वरस्त्वया ।
मनुष्या वानरा ऋक्षा गोलाङ्गूला महाबलाः ।
बलवन्त इहागम्य गर्जन्ति दृढविक्रमाः ॥ २३ ॥

'तुमने देवताओं, दानवों और यक्षोंसे ही अवध्य होनेका वर प्राप्त किया है, मनुष्य आदिसे नहीं। परंतु यहाँ तो मनुष्य, वानर, रीछ और लंगूर आकर गरज रहे हैं। वे सब-के-सब हैं भी बड़े बलवान्, सैनिकशक्तिसे सम्पन्न तथा सुदृढ़ पराक्रमी ॥ २३ ॥

उत्पातान् विविधान् दृष्ट्वा घोरान् बहुविधान् बहून् ।
विनाशमनुपश्यामि सर्वेषां रक्षसामहम् ॥ २४ ॥

'नाना प्रकारके बहुत-से भयंकर उत्पातोंको लक्ष्य करके मैं तो इन समस्त राक्षसोंके विनाशका ही अवसर उपस्थित देख रहा हूँ ॥ २४ ॥

खराभिस्तनिता घोरा मेघाः प्रतिभयंकराः ।

शोणितेनाभिवर्षन्ति लङ्कामुष्णेन सर्वतः ॥ २५ ॥

'घोर एवं भयंकर मेघ प्रचण्ड गर्जन-तर्जनके साथ लङ्कापर सब ओरसे गर्म खूनकी वर्षा कर रहे हैं ॥ २५ ॥

रुदतां वाहनानां च प्रपतन्त्यश्रुबिन्दवः ।
रजोध्वस्ता विवर्णाश्च न प्रभान्ति यथापुरम् ॥ २६ ॥

'घोड़े-हाथी आदि वाहन रो रहे हैं और उनके नेत्रोंसे अश्रुबिन्दु झर रहे हैं। दिशाएँ धूल भर जानेसे मलिन हो अब पहलेकी भाँति प्रकाशित नहीं हो रही हैं ॥ २६ ॥

व्याला गोमायवो गृध्रा वाश्यन्ति च सुभैरवम् ।
प्रविश्य लङ्कामारामे समवायांश्च कुर्वते ॥ २७ ॥

मांसभक्षी हिंसक पशु, गीदड़ और गीध भयंकर बोली बोलते हैं तथा लङ्काके उपवनमें घुसकर झुंड बनाकर बैठते हैं ॥ २७ ॥

कालिकाः पाण्डुरैर्दन्तैः प्रहसन्त्यग्रतः स्थिताः ।
स्त्रियः स्वप्नेषु मुष्णन्त्यो गृहाणि प्रतिभाष्य च ॥ २८ ॥

'सपनेमें काले रंगकी स्त्रियाँ अपने पीले दाँत दिखाती हुई सामने आकर खड़ी हो जाती और प्रतिकूल बातें कहकर घरके सामान चुराती हुई जोर-जोरसे हँसती हैं ॥ २८ ॥

गृहाणां बलिकर्माणि श्वानः पर्युपभुञ्जते ।
खरा गोषु प्रजायन्ते मूषका नकुलेषु च ॥ २९ ॥

'घरोंमें जो बलिकर्म किये जाते हैं, उस बलि-सामग्रीको कुत्ते खा जाते हैं। गौओंसे गधे और नेवलोंसे चूहे पैदा होते हैं ॥ २९ ॥

मार्जारा द्वीपिभिः सार्धं सूकराः शुनकैः सह ।
किंनरा राक्षसैश्चापि समेयुर्मानुषैः सह ॥ ३० ॥

'बाघोंके साथ बिलाव, कुत्तोंके साथ सूअर तथा राक्षसों और मनुष्योंके साथ किन्नर समागम करते हैं ॥ ३० ॥

पाण्डुरा रक्तपादाश्च विहगाः कालचोदिताः ।
राक्षसानां विनाशाय कपोता विचरन्ति च ॥ ३१ ॥

'जिनकी पाँखें सफेद और पंजे लाल हैं, वे कबूतर पक्षी दैवसे प्रेरित हो राक्षसोंका भावी विनाश सूचित करनेके लिये यहाँ सब ओर विचरते हैं ॥ ३१ ॥

चीचीकूचीति वाशन्त्यः शारिका वेश्मसु स्थिताः ।
पतन्ति ग्रथिताश्चापि निर्जिताः कलहैषिभिः ॥ ३२ ॥

'घरोंमें रहनेवाली सारिकाएँ कलहकी इच्छावाले दूसरे पक्षियोंसे चें-चें करती हुई गुँथ जाती हैं और उनसे पराजित हो पृथ्वीपर गिर पड़ती हैं ॥ ३२ ॥

पक्षिणश्च मृगाः सर्वे प्रत्यादित्यं रुदन्ति ते ।
करालो विकटो मुण्डः पुरुषः कृष्णपिङ्गलः ॥ ३३ ॥
कालो गृहाणि सर्वेषां काले कालेऽन्ववेक्षते ।

'पक्षी और मृग सभी सूर्यकी ओर मुँह करके रोते हैं। विकराल, विकट, काले और भूरे रंगके मूड़ मुड़ाये हुए पुरुषका रूप धारण करके काल समय-समयपर हम सबके घरोंकी ओर देखता है ॥ ३३½ ॥

एतान्यन्यानि दुष्टानि निमित्तान्युत्पतन्ति च ॥ ३४ ॥
विष्णुं मन्यामहे रामं मानुषं रूपमास्थितम् ।
नहि मानुषमात्रोऽसौ राघवो दृढविक्रमः ॥ ३५ ॥
येन बद्धः समुद्रे च सेतुः स परमाद्भुतः ।
कुरुष्व नरराजेन संधिं रामेण रावण ।
ज्ञात्वावधार्य कर्माणि क्रियतामायतिक्षमम् ॥ ३६ ॥

'ये तथा और भी बहुत-से अपशकुन हो रहे हैं। मैं ऐसा समझता हूँ कि साक्षात् भगवान् विष्णु ही मानवरूप धारण करके राम होकर आये हैं। जिन्होंने समुद्रमें अत्यन्त अद्भुत सेतु बाँधा है, वे दृढपराक्रमी रघुवीर साधारण मनुष्यमात्र नहीं हैं। रावण ! तुम नरराज श्रीरामके साथ संधि कर लो। श्रीरामके अलौकिक कर्मों और लङ्कामें होनेवाले उत्पातोंको जानकर जो कार्य भविष्यमें सुख देनेवाला हो, उसका निश्चय करके वही करो' ॥ ३४—३६ ॥

इदं वचस्तस्य निगद्य माल्यवान्
परीक्ष्य रक्षोधिपतेर्मनः पुनः ।
अनुत्तमेषूत्तमपौरुषो बली
बभूव तूष्णीं समवेक्ष्य रावणम् ॥ ३७ ॥

यह बात कहकर तथा राक्षसराज रावणके मनोभावकी परीक्षा करके उत्तम मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ पौरुषशाली महाबली माल्यवान् रावणकी ओर देखता हुआ चुप हो गया ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः

माल्यवान्पर आक्षेप और नगरकी रक्षाका प्रबन्ध करके रावणका अपने अन्तःपुरमें जाना

तत् तु माल्यवतो वाक्यं हितमुक्तं दशाननः ।
न मर्षयति दुष्टात्मा कालस्य वशमागतः ॥ १ ॥

दुष्टात्मा दशमुख रावण कालके अधीन हो रहा था, इसलिये माल्यवान्की कही हुई हितकर बातको भी वह सहन नहीं कर सका ॥ १ ॥

स बद्ध्वा भ्रुकुटिं वक्त्रे क्रोधस्य वशमागतः ।

अमर्षात् परिवृत्ताक्षो माल्यवन्तमथाब्रवीत् ॥ २ ॥

वह क्रोधके वशीभूत हो गया। अमर्षसे उसके नेत्र घूमने लगे। उसने भौंहें टेढ़ी करके माल्यवान्‌से कहा—॥

हितबुद्ध्या यदहितं वचः परुषमुच्यते।
परपक्षं प्रविश्यैव नैतच्छ्रोत्रगतं मम ॥ ३ ॥

'तुमने शत्रुका पक्ष लेकर हित-बुद्धिसे जो मेरे अहित-की कठोर बात कही है, वह पूरी तौरसे मेरे कानोंतक नहीं पहुँची ॥ ३ ॥

मानुषं कृपणं राममेकं शाखामृगाश्रयम्।
समर्थं मन्यसे केन त्यक्तं पित्रा वनाश्रयम् ॥ ४ ॥

'बेचारा राम एक मनुष्य ही तो है, जिसने सहारा लिया है कुछ बंदरोंका। पिताके त्याग देनेसे उसने वनकी शरण ली है। उसमें कौन-सी ऐसी विशेषता है, जिससे तुम उसे बड़ा सामर्थ्यशाली मान रहे हो ॥ ४ ॥

रक्षसामीश्वरं मां च देवानां च भयंकरम्।
हीनं मां मन्यसे केन अहीनं सर्वविक्रमैः ॥ ५ ॥

'मैं राक्षसोंका स्वामी तथा सभी प्रकारके पराक्रमोंसे सम्पन्न हूँ, देवताओंके मनमें भी भय उत्पन्न करता हूँ; फिर किस कारणसे तुम मुझे रामकी अपेक्षा हीन समझते हो ? ॥ ५ ॥

वीरद्वेषेण वा शङ्के पक्षपातेन वा रिपोः।
त्वयाहं परुषाण्युक्तो परप्रोत्साहनेन वा ॥ ६ ॥

'तुमने जो मुझे कठोर बातें सुनायी हैं, उनके विषयमें मुझे शङ्का है कि तुम या तो मुझ-जैसे वीरसे द्वेष रखते हो या शत्रुसे मिले हुए हो अथवा शत्रुओंने ऐसा कहने या करनेके लिये तुम्हें प्रोत्साहन दिया है ॥ ६ ॥

प्रभवन्तं पदस्थं हि परुषं कोऽभिभाषते।
पण्डितः शास्त्रतत्त्वज्ञो विना प्रोत्साहनेन वा ॥ ७ ॥

'जो प्रभावशाली होनेके साथ ही अपने राज्यपर प्रतिष्ठित है, ऐसे पुरुषको कौन शास्त्रतत्त्वज्ञ विद्वान् शत्रुका प्रोत्साहन पाये बिना कटुवचन सुना सकता है ? ॥ ७ ॥

आनीय च वनात् सीतां पद्महीनामिव श्रियम्।
किमर्थं प्रतिदास्यामि राघवस्य भयादहम् ॥ ८ ॥

'कमलहीन कमलाकी भाँति सुन्दरी सीताको वनसे ले आकर अब केवल रामके भयसे मैं कैसे लौटा दूँ ? ॥ ८ ॥

वृतं वानरकोटीभिः ससुग्रीवं सलक्ष्मणम्।
पश्य कैश्चिदहोभिश्च राघवं निहतं मया ॥ ९ ॥

'करोड़ों वानरोंसे घिरे हुए सुग्रीव और लक्ष्मणसहित रामको मैं कुछ ही दिनोंमें मार डालूँगा, यह तुम अपनी आँखों देख लेना ॥ ९ ॥

द्वन्द्वे यस्य न तिष्ठन्ति दैवतान्यपि संयुगे।
स कस्माद् रावणो युद्धे भयमाहारयिष्यति ॥ १० ॥

'जिसके सामने द्वन्द्वयुद्धमें देवता भी नहीं ठहर पाते हैं, वही रावण युद्धमें किससे भयभीत होगा ॥ १० ॥

द्विधा भज्येयमप्येवं न नमेयं तु कस्यचित्।
एष मे सहजो दोषः स्वभावो दुरतिक्रमः ॥ ११ ॥

'मैं बीचसे दो टूक हो जाऊँगा, पर किसीके सामने झुक नहीं सकूँगा, यह मेरा सहज दोष है और स्वभाव किसीके लिये भी दुर्लङ्घ्य होता है ॥ ११ ॥

यदि तावत् समुद्रे तु सेतुर्बद्धो यदृच्छया।
रामेण विस्मयः कोऽत्र येन ते भयमागतम् ॥ १२ ॥

'यदि रामने दैववश समुद्रपर सेतु बाँध लिया तो इसमें विस्मयकी कौन बात है, जिससे तुम्हें इतना भय हो गया है ? ॥ १२ ॥

स तु तीर्त्वार्णवं रामः सह वानरसेनया।
प्रतिजानामि ते सत्यं न जीवन् प्रतियास्यति ॥ १३ ॥

'मैं तुम्हारे आगे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि समुद्र पार करके वानरसेनासहित आये हुए राम यहाँसे जीवित नहीं लौट सकेंगे' ॥ १३ ॥

एवं ब्रुवाणं संरब्धं रुष्टं विज्ञाय रावणम्।
व्रीडितो माल्यवान् वाक्यं नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥ १४ ॥

ऐसी बातें कहते हुए रावणको क्रोधसे भरा हुआ एवं रुष्ट जानकर माल्यवान् बहुत लज्जित हुआ और उसने कोई उत्तर नहीं दिया ॥ १४ ॥

जयाशिषा तु राजानं वर्धयित्वा यथोचितम्।
माल्यवानभ्यनुज्ञातो जगाम स्वं निवेशनम् ॥ १५ ॥

माल्यवान्‌ने 'महाराजकी जय हो' इस विजयसूचक आशीर्वादसे राजाको यथोचित बढ़ावा दिया और उससे आज्ञा लेकर वह अपने घर चला गया ॥ १५ ॥

रावणस्तु सहामात्यो मन्त्रयित्वा विमृश्य च।
लङ्कायास्तु तदा गुप्तिं कारयामास राक्षसः ॥ १६ ॥

तदनन्तर मन्त्रियोंसहित राक्षस रावणने परस्पर विचार-विमर्श करके तत्काल लङ्काकी रक्षाका प्रबन्ध किया ॥ १६ ॥

व्यादिदेश च पूर्वस्यां प्रहस्तं द्वारि राक्षसम्।
दक्षिणस्यां महावीर्यौ महापार्श्वमहोदरौ ॥ १७ ॥
पश्चिमायामथ द्वारि पुत्रमिन्द्रजितं तदा।
व्यादिदेश महामायं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ॥ १८ ॥

उसने पूर्व द्वारपर उसकी रक्षाके लिये राक्षस प्रहस्तको तैनात किया, दक्षिण द्वारपर महापराक्रमी महापार्श्व और महोदरको नियुक्त किया तथा पश्चिम द्वारपर अपने पुत्र इन्द्रजित्‌को

रक्खा, जो महान् मायावी था। वह बहुत-से राक्षसोंद्वारा घिरा हुआ था ॥ १७-१८ ॥

उत्तरस्यां पुरद्वारि व्यादिश्य शुकसारणौ ।
स्वयं चात्र गमिष्यामि मन्त्रिणस्तानुवाच ह ॥ १९ ॥

तदनन्तर नगरके उत्तर द्वारपर शुक और सारणको रक्षाके लिये जानेकी आज्ञा दे मन्त्रियोंसे रावणने कहा—'मैं स्वयं भी उत्तर द्वारपर जाऊँगा' ॥ १९ ॥

राक्षसं तु विरूपाक्षं महावीर्यपराक्रमम् ।
मध्यमेऽस्थापयद् गुल्मे बहुभिः सह राक्षसैः ॥ २० ॥

नगरके बीचकी छावनीपर उसने बहुसंख्यक राक्षसोंके साथ महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न राक्षस विरूपाक्षको स्थापित किया ॥ २० ॥

एवं विधानं लङ्कायां कृत्वा राक्षसपुंगवः ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यते कालचोदितः ॥ २१ ॥

इस प्रकार लङ्कामें पुरीकी रक्षाका प्रबन्ध करके काल-प्रेरित राक्षसशिरोमणि रावण अपने आपको कृतकृत्य मानने लगा ॥ २१ ॥

विसर्जयामास ततः स मन्त्रिणो
विधानमाज्ञाप्य पुरस्य पुष्कलम् ।
जयाशिषा मन्त्रिगणेन पूजितो
विवेश सोऽन्तःपुरमृद्धिमन्महत् ॥ २२ ॥

इस तरह नगरके संरक्षणकी प्रचुर व्यवस्थाके लिये आज्ञा देकर रावणने सब मन्त्रियोंको विदा कर दिया और स्वयं भी उनके विजयसूचक आशीर्वादसे सम्मानित हो अपने समृद्धिशाली एवं विशाल अन्तःपुरमें चला गया ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें छत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः

विभीषणका श्रीरामसे रावणद्वारा किये गये लङ्काकी रक्षाके प्रबन्धका वर्णन तथा श्रीरामद्वारा लङ्काके विभिन्न द्वारोंपर आक्रमण करनेके लिये अपने सेनापतियोंकी नियुक्ति

नरवानरराजानौ स तु वायुसुतः कपिः ।
जाम्बवानृक्षराजश्च राक्षसश्च विभीषणः ॥ १ ॥
अङ्गदो वालिपुत्रश्च सौमित्रिः शरभः कपिः ।
सुषेणः सहदायादो मैन्दो द्विविद एव च ॥ २ ॥
गजो गवाक्षः कुमुदो नलोऽथ पनसस्तथा ।
अमित्रविषयं प्राप्ताः समवेताः समर्थयन् ॥ ३ ॥

शत्रुके देशमें पहुँचे हुए नरराज श्रीराम, सुमित्राकुमार लक्ष्मण, वानरराज सुग्रीव, वायुपुत्र हनुमान्, ऋक्षराज जाम्बवान् राक्षस विभीषण, वालिपुत्र अङ्गद, शरभ, बन्धु-बान्धवोंसहित सुषेण, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, कुमुद, नल और पनस-ये सब आपसमें मिलकर विचार करने लगे— ॥ १-३ ॥

इयं सा लक्ष्यते लङ्का पुरी रावणपालिता । ✓
सासुरोरगगन्धर्वैरमरैरपि दुर्जया ॥ ४ ॥

'यही वह लङ्कापुरी दिखायी देती है, जिसका पालन रावण करता है। असुर, नाग और गन्धर्वोंसहित सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी इसपर विजय पाना अत्यन्त कठिन है ॥ ४ ॥

कार्यसिद्धिं पुरस्कृत्य मन्त्रयध्वं विनिर्णये ।
नित्यं संनिहितो यत्र रावणो राक्षसाधिपः ॥ ५ ॥

'राक्षसराज रावण इस पुरीमें सदा निवास करता है। अब आपलोग इसपर विजय पानेके उपायोंका निर्णय करनेके लिये परस्पर विचार करें' ॥ ५ ॥

अथ तेषु ब्रुवाणेषु रावणावरजोऽब्रवीत् ।
वाक्यमग्राम्यपदवत् पुष्कलार्थं विभीषणः ॥ ६ ॥

उन सबके इस प्रकार कहनेपर रावणके छोटे भाई विभीषण-ने संस्कारयुक्त पद और प्रचुर अर्थसे भरी हुई वाणीमें कहा— ॥ ६ ॥

अनलः पनसश्चैव सम्पातिः प्रमतिस्तथा । ✓
गत्वा लङ्कां ममामात्याः पुरीं पुनरिहागताः ॥ ७ ॥

'मेरे मन्त्री अनल, पनस, सम्पाति और प्रमति—ये चारों लङ्कापुरीमें जाकर फिर यहाँ लौट आये हैं ॥ ७ ॥

भूत्वा शकुनयः सर्वे प्रविष्टाश्च रिपोर्बलम् ।
विधानं विहितं यच्च तद् दृष्ट्वा समुपस्थिताः ॥ ८ ॥

'ये सब लोग पक्षीका रूप धारण करके शत्रुकी सेनामें गये थे और वहाँ जो व्यवस्था की गयी है, उसे अपनी आँखों देखकर फिर यहाँ उपस्थित हुए हैं ॥ ८ ॥

संविधानं यथाहुस्ते रावणस्य दुरात्मनः ।
राम तद् ब्रुवतः सर्वं याथातथ्येन मे शृणु ॥ ९ ॥

'श्रीराम! इन्होंने दुरात्मा रावणके द्वारा किये गये नगर-रक्षाके प्रबन्धका जैसा वर्णन किया है, उसे मैं ठीक-ठीक बताता हूँ। आप वह सब मुझसे सुनिये ॥ ९ ॥

पूर्वं प्रहस्तः सबलो द्वारमासाद्य तिष्ठति ।
दक्षिणं च महावीर्यौ महापार्श्वमहोदरौ ॥ १० ॥

'सेनासहित प्रहस्त नगरके पूर्वद्वारका आश्रय लेकर खड़ा

है। महापराक्रमी महापार्श्व और महोदर दक्षिण द्वारपर खड़े हैं ॥ १० ॥

इन्द्रजित् पश्चिमं द्वारं राक्षसैर्बहुभिर्वृतः।
पट्टिशासिधनुष्मद्भिः शूलमुद्गरपाणिभिः ॥ ११ ॥
नानाप्रहरणैः शूरैरावृतो रावणात्मजः।

'बहुसंख्यक राक्षसोंसे घिरा हुआ इन्द्रजित् नगरके पश्चिम द्वारपर खड़ा है। उसके साथी राक्षस पट्टिश, खड्ग, धनुष, शूल और मुद्गर आदि अस्त्र-शस्त्र हाथोंमें लिये हुए हैं। नाना प्रकारके आयुध धारण करनेवाले शूरवीरोंसे घिरा हुआ वह रावणकुमार पश्चिमद्वारकी रक्षाके लिये डटा है ॥ ११½ ॥

राक्षसानां सहस्रैस्तु बहुभिः शस्त्रपाणिभिः ॥ १२ ॥
युक्तः परमसंविग्नो राक्षसैः सह मन्त्रवित्।
उत्तरं नगरद्वारं रावणः स्वयमास्थितः ॥ १३ ॥

'स्वयं मन्त्रवेत्ता रावण शुक, सारण आदि कई सहस्र शस्त्रधारी राक्षसोंके साथ नगरके उत्तर द्वारपर सावधानीके साथ खड़ा है। वह मन-ही-मन अत्यन्त उद्विग्न जान पड़ता है ॥१२-१३॥

विरूपाक्षस्तु महता शूलखड्गधनुष्मता।
बलेन राक्षसैः सार्धं मध्यमं गुल्ममाश्रितः ॥ १४ ॥

'विरूपाक्ष शूल, खड्ग और धनुष धारण करनेवाली विशाल राक्षससेनाके साथ नगरके बीचकी छावनीपर खड़ा है ॥ १४ ॥

एतानेवंविधान् गुल्माँल्लङ्कायां समुदीक्ष्य ते।
मामका मन्त्रिणः सर्वे शीघ्रं पुनरिहागताः ॥ १५ ॥

'इस प्रकार मेरे सारे मन्त्री लङ्कामें विभिन्न स्थानोंपर नियुक्त हुई इन सेनाओंका निरीक्षण करके फिर शीघ्र यहाँ लौटे हैं ॥१५ ॥

गजानां दशसाहस्रं रथानामयुतं तथा।
हयानामयुते द्वे च साग्रकोटिश्च रक्षसाम् ॥ १६ ॥

'रावणकी सेनामें दस हजार हाथी, दस हजार रथ, बीस हजार घोड़े और एक करोड़से भी ऊपर पैदल राक्षस हैं ॥

विक्रान्ता बलवन्तश्च संयुगेष्वाततायिनः।
इष्टा राक्षसराजस्य नित्यमेते निशाचराः ॥ १७ ॥

'वे सभी बड़े वीर, बल-पराक्रमसे सम्पन्न और युद्धमें आततायी हैं। ये सभी निशाचर राक्षसराज रावणको सदा ही प्रिय हैं ॥ १७ ॥

एकैकस्यात्र युद्धार्थे राक्षसस्य विशाम्पते।
परीवारः सहस्राणां सहस्रमुपतिष्ठते ॥ १८ ॥

'प्रजानाथ ! इनमेंसे एक-एक राक्षसके पास युद्धके लिये दस-दस लाखका परिवार उपस्थित है' ॥ १८ ॥

एतां प्रवृत्तिं लङ्कायां मन्त्रिप्रोक्तां विभीषणः।
एवमुक्त्वा महाबाहू राक्षसांस्तानदर्शयत् ॥ १९ ॥
लङ्कायां सचिवैः सर्वं रामाय प्रत्यवेदयत्।

महाबाहु विभीषणने मन्त्रियोंद्वारा बताये गये लङ्काविषयक समाचारको इस प्रकार बताकर उन मन्त्रीस्वरूप राक्षसोंको भी श्रीरामसे मिलाया और उनके द्वारा लङ्काका सारा वृत्तान्त पुनः उनसे कहलाया ॥ १९½ ॥

रामं कमलपत्राक्षमिदमुत्तरमब्रवीत् ॥ २० ॥
रावणावरजः श्रीमान् रामप्रियचिकीर्षया।

तदनन्तर रावणके छोटे भाई श्रीमान् विभीषणने कमलनयन श्रीरामसे उनका प्रिय करनेके लिये स्वयं भी यह उत्तम बात कही--॥ २०½ ॥

कुबेरं तु यदा राम रावणः प्रतियुद्ध्यति ॥ २१ ॥
षष्टिः शतसहस्राणि तदा निर्यान्ति राक्षसाः।
पराक्रमेण वीर्येण तेजसा सत्त्वगौरवात्।
सदृशा ह्यत्र दर्पेण रावणस्य दुरात्मनः ॥ २२ ॥

'श्रीराम ! जब रावणने कुबेरके साथ युद्ध किया था, उस समय साठ लाख राक्षस उसके साथ गये थे। वे सब-के-सब बल, पराक्रम, तेज, धैर्यकी अधिकता और दर्पकी दृष्टिसे दुरात्मा रावणके ही समान थे ॥ २१-२२ ॥

अत्र मन्युर्न कर्तव्यः कोपये त्वां न भीषये।
समर्थो ह्यसि वीर्येण सुराणामपि निग्रहे ॥ २३ ॥

'मैंने जो रावणकी शक्तिका वर्णन किया है, इसको लेकर न तो आपको अपने मनमें दीनता लानी चाहिये और न मुझपर रोष ही करना चाहिये। मैं आपको डराता नहीं, शत्रुके प्रति आपके क्रोधको उभाड़ रहा हूँ; क्योंकि आप अपने बल-पराक्रमद्वारा देवताओंका भी दमन करनेमें समर्थ हैं ॥२३॥

तद्भवांश्चतुरङ्गेण बलेन महता वृतम्।
व्यूह्येदं वानरानीकं निर्मथिष्यसि रावणम् ॥ २४ ॥

'इसलिये आप इस वानरसेनाका व्यूह बनाकर ही विशाल चतुरङ्गिणी सेनासे घिरे हुए रावणका विनाश कर सकेंगे'।२४।

रावणावरजे वाक्यमेवं ब्रुवति राघवः।
शत्रूणां प्रतिघातार्थमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २५ ॥

विभीषणके ऐसी बात कहनेपर भगवान् श्रीरामने शत्रुओंको परास्त करनेके लिये इस प्रकार कहा—॥ २५ ॥

पूर्वद्वारं तु लङ्काया नीलो वानरपुङ्गवः।
प्रहस्तं प्रतियोद्धा स्याद् वानरैर्बहुभिर्वृतः ॥ २६ ॥

'बहुसंख्यक वानरोंसे घिरे हुए कपिश्रेष्ठ नील पूर्व द्वारपर जाकर प्रहस्तका सामना करें ॥ २६ ॥

अङ्गदो वालिपुत्रस्तु बलेन महता वृतः।
दक्षिणे बाधतां द्वारे महापार्श्वमहोदरौ ॥ २७ ॥

'विशाल वाहिनीसे युक्त वालिकुमार अङ्गद दक्षिण द्वारपर स्थित हो महापार्श्व और महोदरके कार्यमें बाधा दें ॥ २७ ॥

हनूमान् पश्चिमद्वारं निष्पीड्य पवनात्मजः ।
प्रविशत्वप्रमेयात्मा बहुभिः कपिभिर्वृतः ॥ २८ ॥

'पवनकुमार हनुमान् अप्रमेय आत्मबलसे सम्पन्न हैं । ये बहुत-से वानरोंके साथ लङ्काके पश्चिम फाटकमें प्रवेश करें ॥ २८ ॥

दैत्यदानवसङ्घानामृषीणां च महात्मनाम् ।
विप्रकारप्रियः क्षुद्रो वरदानबलान्वितः ॥ २९ ॥
परिक्रमति यः सर्वाँल्लोकान् संतापयन् प्रजाः ।
तस्याहं राक्षसेन्द्रस्य स्वयमेव वधे धृतः ॥ ३० ॥
उत्तरं नगरद्वारमहं सौमित्रिणा सह ।
निपीड्याभिप्रवेक्ष्यामि सबलो यत्र रावणः ॥ ३१ ॥

'दैत्यों, दानवसमूहों तथा महात्मा ऋषियोंका अपकार करना ही जिसे प्रिय लगता है, जिसका स्वभाव क्षुद्र है, जो वरदानकी शक्तिसे सम्पन्न है और प्रजाजनोंको संताप देता हुआ सम्पूर्ण लोकोंमें घूमता रहता है, उस राक्षसराज रावणके वधका दृढ़ निश्चय लेकर मैं स्वयं ही सुमित्राकुमार लक्ष्मणके साथ नगरके उत्तर फाटकपर आक्रमण करके उसके भीतर प्रवेश करूँगा,—जहाँ सेनासहित रावण विद्यमान है ॥ २९—३१ ॥

वानरेन्द्रश्च बलवानृक्षराजश्च वीर्यवान् ।
राक्षसेन्द्रानुजश्चैव गुल्मे भवतु मध्यमे ॥ ३२ ॥

'बलवान् वानरराज सुग्रीव, रीछोंके पराक्रमी राजा जाम्बवान् तथा राक्षसराज रावणके छोटे भाई विभीषण—ये लोग नगरके बीचके मोर्चेपर आक्रमण करें ॥ ३२ ॥

न चैव मानुषं रूपं कार्यं हरिभिराहवे ।
एषा भवतु नः संज्ञा युद्धेऽस्मिन् वानरे बले ॥ ३३ ॥

'वानरोंको युद्धमें मनुष्यका रूप नहीं धारण करना चाहिये । इस युद्धमें वानरोंकी सेनाका हमारे लिये यही संकेत या चिह्न होगा ॥ ३३ ॥

वानरा एव नश्चिह्नं स्वजनेऽस्मिन् भविष्यति ।
वयं तु मानुषेणैव सप्त योत्स्यामहे परान् ॥ ३४ ॥

'इस स्वजनवर्गमें वानर ही हमारे चिह्न होंगे । केवल हम सात व्यक्ति ही मनुष्यरूपमें रहकर शत्रुओंके साथ युद्ध करेंगे ॥ ३४ ॥

अहमेव सह भ्रात्रा लक्ष्मणेन महौजसा ।
आत्मना पञ्चमश्चायं सखा मम विभीषणः ॥ ३५ ॥

'मैं अपने महातेजस्वी भाई लक्ष्मणके साथ रहूँगा और ये मेरे मित्र विभीषण अपने चार मन्त्रियोंके साथ पाँचवें होंगे (इस प्रकार हम सात व्यक्ति मनुष्यरूपमें रहकर युद्ध करेंगे)'

स रामः कृत्यसिद्ध्यर्थमेवमुक्त्वा विभीषणम् ।
सुवेलारोहणे बुद्धिं चकार मतिमान् प्रभुः ।
रमणीयतरं दृष्ट्वा सुवेलस्य गिरेस्तटम् ॥ ३६ ॥

अपने विजयरूपी प्रयोजनकी सिद्धिके लिये विभीषणसे ऐसा कहकर बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामने सुवेल पर्वतपर चढ़नेका विचार किया । सुवेलपर्वतका तटप्रान्त बड़ा ही रमणीय था, उसे देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ३६ ॥

ततस्तु रामो महता बलेन
प्रच्छाद्य सर्वां पृथिवीं महात्मा ।
प्रहृष्टरूपोऽभिजगाम लङ्कां
कृत्वा मतिं सोऽरिवधे महात्मा ॥ ३७ ॥

तदनन्तर महामना महात्मा श्रीराम अपनी विशाल सेनाके द्वारा वहाँकी सारी पृथ्वीको आच्छादित करके शत्रुवधका निश्चय किये बड़े हर्ष और उत्साहसे लङ्काकी ओर चले ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंशः सर्गः

श्रीरामका प्रमुख वानरोंके साथ सुवेल पर्वतपर चढ़कर वहाँ रातमें निवास करना

स तु कृत्वा सुवेलस्य मतिमारोहणं प्रति ।
लक्ष्मणानुगतो रामः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
विभीषणं च धर्मज्ञमनुरक्तं निशाचरम् ।
मन्त्रज्ञं च विधिज्ञं च श्लक्ष्णया परया गिरा ॥ २ ॥

सुवेल पर्वतपर चढ़नेका विचार करके जिनके पीछे लक्ष्मणजी चल रहे थे, वे भगवान् श्रीराम सुग्रीवसे और धर्मके ज्ञाता, मन्त्रवेत्ता, विधिज्ञ एवं अनुरागी निशाचर विभीषणसे भी उत्तम एवं मधुर वाणीमें बोले—॥ १-२ ॥

सुवेलं साधु शैलेन्द्रमिमं धातुशतैश्चितम् ।
अध्यारोहामहे सर्वे वत्स्यामोऽत्र निशामिमाम् ॥ ३ ॥

'मित्रो ! यह पर्वतराज सुवेल सैकड़ों धातुओंसे भलीभाँति भरा हुआ है । हम सब लोग इसपर चढ़ें और आजकी इस रातमें यहीं निवास करें ॥ ३ ॥

लङ्कां चालोकयिष्यामो निलयं तस्य रक्षसः ।
येन मे मरणान्ताय हृता भार्या दुरात्मना ॥ ४ ॥

'यहाँसे हमलोग उस राक्षसकी निवासभूत लङ्कापुरीका भी अवलोकन करेंगे, जिस दुरात्माने अपनी मृत्युके लिये ही मेरी भार्याका अपहरण किया है ॥ ४ ॥

येन धर्मो न विज्ञातो न वृत्तं न कुलं तथा ।
राक्षस्या नीचया बुद्ध्या येन तद् गर्हितं कृतम् ॥ ५ ॥

'जिसने न तो धर्मको जाना है, न सदाचारको ही कुछ समझा है और न कुलका ही विचार किया है; केवल राक्षसोचित नीच बुद्धिके कारण ही वह निन्दित कर्म किया है ॥५॥

तस्मिन् मे वर्तते रोषः कीर्तिते राक्षसाधमे ।
यस्यापराधान्नीचस्य वधं द्रक्ष्यामि रक्षसाम् ॥ ६ ॥

'उस नीच राक्षसका नाम लेते ही उसपर मेरा रोष जाग उठता है । केवल उसी अधम निशाचरके अपराधसे मैं समस्त राक्षसोंका वध देखूँगा ॥ ६ ॥

एको हि कुरुते पापं कालपाशवशं गतः ।
नीचेनात्मापचारेण कुलं तेन विनश्यति ॥ ७ ॥

'कालके पाशमें बँधा हुआ एक ही पुरुष पाप करता है, किंतु उस नीचके अपने ही दोषसे सारा कुल नष्ट हो जाता है' ॥ ७ ॥

एवं सम्मन्त्रयन्नेव सक्रोधो रावणं प्रति ।
रामः सुवेलं वासाय चित्रसानुमुपारुहत् ॥ ८ ॥

इस प्रकार चिन्तन करते हुए ही श्रीराम रावणके प्रति कुपित हो विचित्र शिखरवाले सुवेल पर्वतपर निवास करनेके लिये चढ़ गये ॥ ८ ॥

पृष्ठतो लक्ष्मणश्चैनमन्वगच्छत् समाहितः ।
सशरं चापमुद्यम्य सुमहद्विक्रमे रतः ॥ ९ ॥

उनके पीछे लक्ष्मण भी महान् पराक्रममें तत्पर एवं एकाग्रचित्त हो धनुष-बाण लिये हुए उस पर्वतपर आरूढ़ हो गये ॥ ९ ॥

तमन्वारोहत् सुग्रीवः सामात्यः सविभीषणः ।
हनुमानङ्गदो नीलो मैन्दो द्विविद एव च ॥ १० ॥
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ।
पनसः कुमुदश्चैव हरो रम्भश्च यूथपः ॥ ११ ॥
जाम्बवांश्च सुषेणश्च ऋषभश्च महामतिः ।
दुर्मुखश्च महातेजास्तथा शतवलिः कपिः ॥ १२ ॥
एते चान्ये च बहवो वानराः शीघ्रगामिनः ।
ते वायुवेगप्रवणास्तं गिरिं गिरिचारिणः ॥ १३ ॥

तत्पश्चात् सुग्रीव, मन्त्रियोंसहित विभीषण, हनुमान्, अङ्गद, नील, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, पनस, कुमुद, हर, यूथपति रम्भ, जाम्बवान्, सुषेण, महामति ऋषभ, महातेजस्वी दुर्मुख तथा कपिवर शतवलि—ये और दूसरे भी बहुत-से शीघ्रगामी वानर जो वायुके समान वेगसे चलनेवाले तथा पर्वतोंपर ही विचरनेवाले थे, उस सुवेलगिरिपर चढ़ गये ॥१०—१३॥

अध्यारोहन्त शतशः सुवेलं यत्र राघवः ।
ते त्वदीर्घेण कालेन गिरिमारुह्य सर्वतः ॥ १४ ॥

सुवेल पर्वतपर जहाँ श्रीरघुनाथजी विराजमान थे, वे सैकड़ों वानर थोड़ी ही देरमें चढ़ गये और चढ़कर सब ओर विचरने लगे ॥ १४ ॥

ददृशुः शिखरे तस्य विषक्तामिव खे पुरीम् ।
तां शुभां प्रवरद्वारां प्राकारवरशोभिताम् ॥ १५ ॥
लङ्कां राक्षससम्पूर्णां ददृशुर्हरियूथपाः ।

उन वानर-यूथपतियोंने सुवेलपर्वतके शिखरपर खड़े हो उस सुन्दर लङ्कापुरीका निरीक्षण किया, जो आकाशमें ही बनी हुई-सी जान पड़ती थी । उसके फाटक बड़े मनोहर थे । उत्तम परकोटे उस नगरीकी शोभा बढ़ाते थे तथा वह पुरी राक्षसोंसे भरी-पूरी थी ॥ १५½ ॥

प्राकारवरसंस्थैश्च तथा नीलैश्च राक्षसैः ॥ १६ ॥
ददृशुस्ते हरिश्रेष्ठाः प्राकारमपरं कृतम् ॥ १७ ॥

उत्तम परकोटोंपर खड़े हुए नीलवर्णके राक्षस ऐसे जान पड़ते थे, मानो उन परकोटोंपर दूसरा परकोटा बना दिया गया हो । उन श्रेष्ठ वानरोंने वह सब कुछ देखा ॥ १६-१७ ॥

ते दृष्ट्वा वानराः सर्वे राक्षसान् युद्धकाङ्क्षिणः ।
मुमुचुर्विविधान् नादांस्तस्य रामस्य पश्यतः ॥ १८ ॥

युद्धकी इच्छा रखनेवाले राक्षसोंको देखकर वे सब वानर श्रीरामके देखते-देखते नाना प्रकारसे सिंहनाद करने लगे ॥

ततोऽस्तमगमत् सूर्यः संध्यया प्रतिरञ्जितः ।
पूर्णचन्द्रप्रदीप्ता च क्षपा समतिवर्तत ॥ १९ ॥

तदनन्तर संध्याकी लालीसे रँगे हुए सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये और पूर्णचन्द्रमासे प्रकाशित उजेली रात वहाँ सब ओर छा गयी ॥ १९ ॥

ततः स रामो हरिवाहिनीपति-
र्विभीषणेन प्रतिनन्द्य सत्कृतः ।
सलक्ष्मणो यूथपयूथसंयुतः
सुवेलपृष्ठे न्यवसद् यथासुखम् ॥२०॥

तत्पश्चात् विभीषणद्वारा सादर सम्मानित हो वानरसेनाके स्वामी श्रीरामने अपने भाई लक्ष्मण और यूथपतियोंके समुदायके साथ सुवेलपर्वतके पृष्ठभागपर सुखपूर्वक निवास किया ।२०।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टात्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें अड़तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः

वानरोंसहित श्रीरामका सुवेल-शिखरसे लङ्कापुरीका निरीक्षण करना

तां रात्रिमुषितास्तत्र सुवेले हरियूथपाः ।
लङ्कायां ददृशुर्वीरा वनान्युपवनानि च ॥ १ ॥

वानर-यूथपतियोंने वह रात उस सुवेलपर्वतपर ही बितायी और वहाँसे उन वीरोंने लङ्काके वन और उपवन भी देखे ॥ १ ॥

समसौम्यानि रम्याणि विशालान्यायतानि च ।
दृष्टिरम्याणि ते दृष्ट्वा बभूवुर्जातविस्मयाः ॥ २ ॥

वे बड़े ही चौरस, शान्त, सुन्दर, विशाल और विस्तृत थे तथा देखनेमें अत्यन्त रमणीय जान पड़ते थे । उन्हें देखकर उन सब वानरोंको बड़ा विस्मय हुआ ॥ २ ॥

चम्पकाशोकबकुलशालतालसमाकुला ।
तमालवनसंछन्ना नागमालासमावृता ॥ ३ ॥
हिन्तालैरर्जुनैर्नीपैः सप्तपर्णैः सुपुष्पितैः ।
तिलकैः कर्णिकारैश्च पाटलैश्च समन्ततः ॥ ४ ॥
शुशुभे पुष्पिताग्रैश्च लतापरिगतैर्द्रुमैः ।
लङ्का बहुविधैर्दिव्यैर्यथेन्द्रस्यामरावती ॥ ५ ॥

चम्पा, अशोक, वकुल, शाल-और ताल वृक्षोंसे व्याप्त, तमाल-वनसे आच्छादित और नागकेसरोंसे आवृत लङ्कापुरी हिंताल, अर्जुन, नीप (कदम्ब), खिले हुए छितवन, तिलक, कनेर तथा पाटल आदि नाना प्रकारके दिव्य वृक्षोंसे जिनके अग्रभाग फूलोंके भारसे लदे थे तथा जिनपर लता-बल्लरियाँ फैली हुई थीं, इन्द्रकी अमरावतीके समान शोभा पाती थी ॥ ३–५ ॥

विचित्रकुसुमोपेतै रक्तकोमलपल्लवैः ।
शाद्वलैश्च तथा नीलैश्चित्राभिर्वनराजिभिः ॥ ६ ॥

विचित्र फूलोंसे युक्त लाल कोमल पल्लवों, हरी-हरी घासों तथा विचित्र वनश्रेणियोंसे भी उस पुरीकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ६ ॥

गन्धाढ्यान्यतिरम्याणि पुष्पाणि च फलानि च ।
धारयन्त्यगमास्तत्र भूषणानीव मानवाः ॥ ७ ॥

जैसे मनुष्य आभूषण धारण करते हैं, उसी प्रकार वहाँके वृक्ष सुगन्धित फूल और अत्यन्त रमणीय फल धारण करते थे ॥ ७ ॥

तच्चैत्ररथसंकाशं मनोज्ञं नन्दनोपमम् ।
वनं सर्वर्तुकं रम्यं शुशुभे षट्पदायुतम् ॥ ८ ॥

चैत्ररथ और नन्दनवनके समान वहाँका मनोहर वन सभी ऋतुओंमें भ्रमरोंसे व्याप्त हो रमणीय शोभा धारण करता था ॥ ८ ॥

दात्यूहकोयष्टिबकैर्नृत्यमानैश्च बर्हिणैः ।
रुतं परभृतानां च शुश्रुवे वननिर्झरे ॥ ९ ॥

दात्यूह, कोयष्टि, बक और नाचते हुए मोर उस वनको सुशोभित करते थे । वनमें झरनोंके आसपास कोकिलकी कूक सुनायी पड़ती थी ॥ ९ ॥

नित्यमत्तविहंगानि भ्रमराचरितानि च ।
कोकिलाकुलखण्डानि विहंगाभिरुतानि च ॥ १० ॥
भृङ्गराजाधिगीतानि कुररस्वनितानि च ।
कोणालकविघुष्टानि सारसाभिरुतानि च ।
विविशुस्ते ततस्तानि वनान्युपवनानि च ॥ ११ ॥

लङ्काके वन और उपवन नित्य मतवाले विहङ्गमोंसे विभूषित थे । वहाँ वृक्षोंकी डालियोंपर भौंरे मँडराते रहते थे । उनके प्रत्येक खण्डमें कोकिलाएँ कुहू-कुहू बोला करती थीं । पक्षी चहचहाते रहते थे । भृङ्गराजके गीत मुखरित होते थे । कुररके शब्द गूँजा करते थे । कोणालकके कलरव होते रहते थे तथा सारसोंकी स्वरलहरी सब ओर छायी रहती थी । कुछ वानरवीर उन वनों और उपवनोंमें घुस गये ॥ १०-११ ॥

हृष्टाः प्रमुदिता वीरा हरयः कामरूपिणः ।
तेषां प्रविशतां तत्र वानराणां महौजसाम् ॥ १२ ॥
पुष्पसंसर्गसुरभिर्ववौ घ्राणसुखोऽनिलः ।
अन्ये तु हरिवीराणां यूथान्निष्क्रम्य यूथपाः ।
सुग्रीवेणाभ्यनुज्ञाता लङ्कां जग्मुः पताकिनीम् ॥ १३ ॥

वे सभी वीर वानर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, उत्साही और आनन्दमग्न थे । उन महातेजस्वी वानरोंके वहाँ प्रवेश करते ही फूलोंके संसर्गसे सुगन्धित तथा घ्राणेन्द्रियको सुख देनेवाली मन्द वायु चलने लगी । दूसरे बहुत-से यूथपति उन वानर वीरोंके समूहसे निकलकर सुग्रीवकी आज्ञा ले ध्वजा-पताकाओंसे अलंकृत लङ्कापुरीमें गये ॥ १२-१३ ॥

वित्रासयन्तो विहगान् ग्लापयन्तो मृगद्विपान् ।
कम्पयन्तश्च तां लङ्कां नादैः स्वैर्नदतां वराः ॥ १४ ॥

गर्जनेवाले लोगोंमेंसे श्रेष्ठ वे वानरवीर अपने सिंहनादसे पक्षियोंको डराते, मृगों और हाथियोंके हर्ष छीनते तथा लङ्काको कम्पित करते हुए आगे बढ़ रहे थे ॥ १४ ॥

कुर्वन्तस्ते महावेगा महीं चरणपीडिताम् ।
रजश्च सहसैवोर्ध्वं जगाम चरणोत्थितम् ॥ १५ ॥

वे महान् वेगशाली वानर पृथ्वीको जब चरणोंसे दबाते थे, उस समय उनके पैरोंसे उठी हुई धूल सहसा ऊपरको उड़ जाती थी ॥ १५ ॥

ऋक्षाः सिंहाश्च महिषा वारणाश्च मृगाः खगाः ।
तेन शब्देन वित्रस्ता जग्मुर्भीता दिशो दश ॥ १६ ॥

वानरोंके उस सिंहनादसे त्रस्त एवं भयभीत हुए रीछ, सिंह, भैंसे, हाथी, मृग और पक्षी दसों दिशाओंकी ओर भाग गये ॥ १६ ॥

शिखरं तु त्रिकूटस्य प्रांशु चैकं दिविस्पृशम् ।
समन्तात् पुष्पसंछन्नं महारजतसंनिभम् ॥ १७ ॥

त्रिकूट पर्वतका एक शिखर बहुत ऊँचा था। वह ऐसा जान पड़ता था, मानो स्वर्गलोकको छू रहा हो। उसपर सब ओर पीले रंगके फूल खिले हुए थे, जिनसे वह सोनेका-सा जान पड़ता था ॥ १७ ॥

शतयोजनविस्तीर्णं विमलं चारुदर्शनम् ।
श्लक्ष्णं श्रीमन्महच्चैव दुष्प्रापं शकुनैरपि ॥ १८ ॥

उस शिखरका विस्तार सौ योजन था। वह देखनेमें बड़ा ही सुन्दर, स्वच्छ, स्निग्ध, कान्तिमान् और विशाल था। पक्षियोंके लिये भी उसकी चोटीतक पहुँचना कठिन होता था ॥ १८ ॥

मनसापि दुरारोहं किं पुनः कर्मणा जनैः ।
निविष्टा तस्य शिखरे लङ्का रावणपालिता ॥ १९ ॥

लोग त्रिकूटके उस शिखरपर मनके द्वारा चढ़नेकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे। फिर क्रियाद्वारा उसपर आरूढ़ होनेकी तो बात ही क्या है? रावणद्वारा पालित लङ्का त्रिकूटके उसी शिखरपर बसी हुई थी ॥ १९ ॥

दशयोजनविस्तीर्णा विंशद्योजनमायता ।
सा पुरी गोपुरैरुच्चैः पाण्डुराम्बुदसंनिभैः ।
काञ्चनेन च शालेन राजतेन च शोभते ॥ २० ॥

वह पुरी दस योजन चौड़ी और बीस योजन लंबी थी। सफेद बादलोंके समान ऊँचे-ऊँचे गोपुर तथा सोने और चाँदीके परकोटे उसकी शोभा बढ़ाते थे ॥ २० ॥

प्रासादैश्च विमानैश्च लङ्का परमभूषिता ।
घनैरिवातपापाये मध्यमं वैष्णवं पदम् ॥ २१ ॥

जैसे ग्रीष्मके अन्तकाल—वर्षा ऋतुमें घनीभूत बादल आकाशकी शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार प्रासादों[1] और विमानों[2]से लङ्कापुरी अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥ २१ ॥

यस्यां स्तम्भसहस्रेण प्रासादः समलंकृतः ।
कैलासशिखराकारो दृश्यते खमिवोल्लिखन् ॥ २२ ॥

उस पुरीमें सहस्र खम्भोंसे अलंकृत एक चैत्यप्रासाद था, जो कैलास-शिखरके समान दिखायी देता था। वह आकाशको मापता हुआ-सा जान पड़ता था ॥ २२ ॥

चैत्यः स राक्षसेन्द्रस्य बभूव पुरभूषणम् ।
शतेन रक्षसां नित्यं यः समग्रेण रक्ष्यते ॥ २३ ॥

राक्षसराज रावणका वह चैत्यप्रासाद लङ्कापुरीका आभूषण था। कई सौ राक्षस रक्षाके सभी साधनोंसे सम्पन्न होकर प्रतिदिन उसकी रक्षा करते थे ॥ २३ ॥

मनोज्ञां काञ्चनवतीं पर्वतैरुपशोभिताम् ।
नानाधातुविचित्रैश्च उद्यानैरुपशोभिताम् ॥ २४ ॥

इस प्रकार वह पुरी बड़ी ही मनोहर, सुवर्णमयी, अनेकानेक पर्वतोंसे अलंकृत, नाना प्रकारकी विचित्र धातुओंसे चित्रित और अनेक उद्यानोंसे सुशोभित थी ॥ २४ ॥

नानाविहगसंघुष्टां नानामृगनिषेविताम् ।
नानाकुसुमसम्पन्नां नानाराक्षससेविताम् ॥ २५ ॥

भाँति-भाँतिके विहङ्गम वहाँ अपनी मधुर बोली बोल रहे थे। नाना प्रकारके मृग आदि पशु उसका सेवन करते थे। अनेक प्रकारके फूलोंकी सम्पत्तिसे वह सम्पन्न थी और विविध

---

[1] अमरकोशके अनुसार देवताओंके मन्दिरों तथा राजाओंके महलोंको प्रासाद कहते हैं। प्राचीन वास्तुविद्याके अनुसार बहुत ऊंचा, चौड़ा, ऊँचा और कई भूमियोंका पक्का या पत्थरका बना हुआ भव्य भवन जिसमें अनेक शृङ्ग, शृङ्खला और अण्डक आदि हों 'प्रासाद' कहा गया है उसमें बहुत-से गवाक्षोंसे युक्त त्रिकोण, चतुष्कोण, आयत और वृत्तशालाएँ बनी होती हैं। आकृतिके भेदसे पुराणोंमें प्रासादके पाँच भेद किये गये हैं—चतुरस्र, चतुरायत, वृत्त, वृत्तायत और अष्टास्र। इनका नाम क्रमशः वैराज, पुष्पक, कैलास, मालक और त्रिविष्टप है। भूमि, अण्डक और शिखर आदिकी न्यूनता-अधिकताके कारण इन पाँचोंके नौ-नौ भेद माने गये हैं। जैसे वैराजके मेरु, मन्दर, विमान, भद्रक, सर्वतोभद्र, रुचक, नन्दन, नन्दिवर्धन और श्रीवत्स; पुष्पकके वलभी, गृहराज, शालागृह, मन्दिर, विमान, ब्रह्ममन्दिर, भवन, उत्तम्भ और शिविकावेश्म; कैलासके वलय, दुन्दुभि, पद्म, महापद्म, भद्रक, सर्वतोभद्र, रुचक, नन्दन, गवाक्ष और गवावृत्त; मालकके गज, वृषभ, हंस, गरुड, सिंह, भूमुख, भूधर, श्रीजय और पृथ्वीधर तथा त्रिविष्टपके वज्र, चक्र मुष्टिक या बभ्रु, वक्र, स्वस्तिक, खड्ग, गदा, श्रीवृक्ष और विजय।

[2] आकाशमार्गसे गमन करनेवाला रथ जो देवता आदिके पास होता है 'विमान' कहलाता है। सात मंजिलके मकानको भी विमान कहते हैं। प्राचीन वास्तुविद्याके अनुसार उस देवमन्दिरको विमानकी संज्ञा दी गयी है जो ऊपरकी ओर पतला होता चला गया हो। मानसार नामक प्राचीन ग्रन्थके अनुसार विमान गोल, चौपहला और अठपहला होता है। गोलको बेसर, चौपहलेको नागर और अठपहलेको द्रावि कहते हैं (हिंदी-शब्दसागरसे)।

प्रकारके आकारवाले राक्षस वहाँ निवास करते थे ॥ २५ ॥

तां समृद्धां समृद्धार्थो लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणाग्रजः ।
रावणस्य पुरीं रामो ददर्श सह वानरैः ॥ २६ ॥

धन-धान्यसे सम्पन्न तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओंसे भरी-पूरी उस रावण-पुरीको लक्ष्मणके बड़े भाई लक्ष्मीवान् श्रीरामने वानरोंके साथ देखा ॥ २६ ॥

तां महागृहसम्बाधां दृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः ।
नगरीं त्रिदिवप्रख्यां विस्मयं प्राप वीर्यवान् ॥ २७ ॥

बड़े-बड़े महलोंसे सघन बसी हुई उस स्वर्गतुल्य नगरीको देखकर पराक्रमी श्रीराम बड़े विस्मित हुए ॥२७॥

तां रत्नपूर्णां बहुसंविधानां
प्रासादमालाभिरलंकृतां च ।
पुरीं महायन्त्रकवाटमुख्यां
ददर्श रामो महता बलेन ॥ २८ ॥

इस प्रकार अपनी विशाल सेनाके साथ श्रीरघुनाथजीने अनेक प्रकारके रत्नोंसे पूर्ण, तरह-तरहकी रचनाओंसे सुसज्जित, ऊँचे-ऊँचे महलोंकी पंक्तिसे अलंकृत और बड़े-बड़े यन्त्रोंसे युक्त मजबूत किवाड़ोंवाली वह अद्भुत पुरी देखी ।२८।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें उन्तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशः सर्गः

सुग्रीव और रावणका मल्लयुद्ध

ततो रामः सुवेलाग्रं योजनद्वयमण्डलम् ।
उपारोहत् ससुग्रीवो हरियूथैः समन्वितः ॥ १ ॥

तदनन्तर वानरयूथोंसे युक्त सुग्रीवसहित श्रीराम सुवेल-पर्वतके सबसे ऊँचे शिखरपर चढ़े, जिसका विस्तार दो योजनका था ॥ १ ॥

स्थित्वा मुहूर्तं तत्रैव दिशो दश विलोकयन् ।
त्रिकूटशिखरे रम्ये निर्मितां विश्वकर्मणा ॥ २ ॥
ददर्श लङ्कां सुन्यस्तां रम्यकाननशोभिताम् ।

वहाँ दो घड़ी ठहरकर दसों दिशाओंकी ओर दृष्टिपात करते हुए श्रीरामने त्रिकूट पर्वतके रमणीय शिखरपर सुन्दर ढंगसे बसी हुई विश्वकर्माद्वारा निर्मित लङ्कापुरीको देखा, जो मनोहर काननोंसे सुशोभित थी ॥ २½ ॥

तस्य गोपुरशृङ्गस्थं राक्षसेन्द्रं दुरासदम् ॥ ३ ॥
श्वेतचामरपर्यन्तं विजयच्छत्रशोभितम् ।
रक्तचन्दनसंलिप्तं रत्नाभरणभूषितम् ॥ ४ ॥

उस नगरके गोपुरकी छतपर उन्हें दुर्जय राक्षसराज रावण बैठा दिखायी दिया, जिसके दोनों ओर श्वेत चँवर डुलाये जा रहे थे, सिरपर विजय-छत्र शोभा दे रहा था। रावणका सारा शरीर रक्तचन्दनसे चर्चित था। उसके अङ्ग लाल रंगके आभूषणोंसे विभूषित थे ॥ ३-४ ॥

नीलजीमूतसंकाशं हेमसंछादिताम्बरम् ।
ऐरावतविषाणाग्रैरुत्कृष्टकिणवक्षसम् ॥ ५ ॥

वह काले मेघके समान जान पड़ता था। उसके वस्त्रोंपर सोनेके काम किये गये थे। ऐरावत हाथीके दाँतोंके अग्रभागसे आहत होनेके कारण उसके वक्षःस्थलमें आघात-चिह्न बन गया था ॥ ५ ॥

शशलोहितरागेण संवीतं रक्तवाससा ।
संध्यातपेन संछन्नं मेघराशिमिवाम्बरे ॥ ६ ॥

खरगोशके रक्तके समान लाल रंगसे रँगे हुए वस्त्रसे आच्छादित होकर वह आकाशमें संध्याकालकी धूपसे ढकी हुई मेघमालाके समान दिखायी देता था ॥ ६ ॥

पश्यतां वानरेन्द्राणां राघवस्यापि पश्यतः ।
दर्शनाद् राक्षसेन्द्रस्य सुग्रीवः सहसोत्थितः ॥ ७ ॥

मुख्य-मुख्य वानरों तथा श्रीरघुनाथजीके सामने ही राक्षसराज रावणपर दृष्टि पड़ते ही सुग्रीव सहसा खड़े हो गये ॥ ७ ॥

क्रोधवेगेन संयुक्तः सत्त्वेन च बलेन च ।
अचलाग्रादथोत्थाय पुप्लुवे गोपुरस्थले ॥ ८ ॥

वे क्रोधके वेगसे युक्त और शारीरिक एवं मानसिक बलसे प्रेरित हो सुवेलके शिखरसे उठकर उस गोपुरकी छतपर कूद पड़े ॥ ८ ॥

स्थित्वा मुहूर्तं सम्प्रेक्ष्य निर्भयेनान्तरात्मना ।
तृणीकृत्य च तद् रक्षः सोऽब्रवीत् परुषं वचः ॥ ९ ॥

वहाँ खड़े होकर वे कुछ देर तो रावणको देखते रहे। फिर निर्भयचित्तसे उस राक्षसको तिनकेके समान समझकर वे कठोर वाणीमें बोले— ॥ ९ ॥

लोकनाथस्य रामस्य सखा दासोऽस्मि राक्षस ।
न मया मोक्ष्यसेऽद्य त्वं पार्थिवेन्द्रस्य तेजसा ॥ १० ॥

'राक्षस! मैं लोकनाथ भगवान् श्रीरामका सखा और दास हूँ। महाराज श्रीरामके तेजसे आज तू मेरे हाथसे छूट नहीं सकेगा' ॥ १० ॥

इत्युक्त्वा सहसोत्पत्य पुप्लुवे तस्य चोपरि ।
आकृष्य मुकुटं चित्रं पातयामास तद् भुवि ॥ ११ ॥

ऐसा कहकर वे अकस्मात् उछलकर रावणके ऊपर जा कूदे और उसके विचित्र मुकुटोंको खींचकर उन्होंने पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ११ ॥

समीक्ष्य तूर्णमायान्तं बभाषे तं निशाचरः ।
सुग्रीवस्त्वं परोक्षं मे हीनग्रीवो भविष्यसि ॥ १२ ॥

उन्हें इस प्रकार तीव्र गतिसे अपने ऊपर आक्रमण करते देख रावणने कहा—'अरे! जबतक तू मेरे सामने नहीं आया था, तभीतक सुग्रीव (सुन्दर कण्ठसे युक्त) था । अब तो तू अपनी इस ग्रीवासे रहित हो जायगा' ॥ १२ ॥

इत्युक्त्वोत्थाय तं क्षिप्रं बाहुभ्यामाक्षिपत् तले ।
कन्दुवत् स समुत्थाय बाहुभ्यामाक्षिपद्धरिः ॥ १३ ॥

ऐसा कहकर रावणने अपनी दो भुजाओंद्वारा उन्हें शीघ्र ही उठाकर उस छतकी फर्शपर दे मारा । फिर वानरराज सुग्रीवने भी गेंदकी तरह उछलकर रावणको दोनों भुजाओंसे उठा लिया और उसी फर्शपर जोरसे पटक दिया ॥ १३ ॥

परस्परं स्वेदविदिग्धगात्रौ
परस्परं शोणितरक्तदेहौ ।
परस्परं श्लिष्टनिरुद्धचेष्टौ
परस्परं शाल्मलिकिंशुकाविव ॥ १४ ॥

फिर तो वे दोनों आपसमें गुँथ गये । दोनोंके ही शरीर पसीनेसे तर और खूनसे लथपथ हो गये तथा दोनों ही एक दूसरेकी पकड़में आनेके कारण निश्चेष्ट होकर खिले हुए सेमल और पलाश नामक वृक्षोंके समान दिखायी देने लगे ॥ १४ ॥

मुष्टिप्रहारैश्च तलप्रहारै-
ररत्निघातैश्च कराग्रघातैः ।
तौ चक्रतुर्युद्धमसह्यरूपं
महाबलौ राक्षसवानरेन्द्रौ ॥ १५ ॥

राक्षसराज रावण और वानरराज सुग्रीव दोनों ही बड़े बलवान् थे, अतः दोनों घूँसे, थप्पड़, कोहनी और पंजोंकी मारके साथ बड़ा असह्य युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥

कृत्वा नियुद्धं भृशमुग्रवेगौ
कालं चिरं गोपुरवेदिमध्ये ।
उत्क्षिप्य चोत्क्षिप्य विनम्य देहौ
पादक्रमाद् गोपुरवेदिलग्नौ ॥ १६ ॥

गोपुरके चबूतरेपर बहुत देरतक भारी मल्लयुद्ध करके वे भयानक वेगवाले दोनों वीर बार-बार एक दूसरेको उछालते और झुकाते हुए पैरोंको विशेष दाँव-पेंचके साथ चलाते-चलाते उस चबूतरेसे जा लगे ॥ १६ ॥

अन्योन्यमापीड्य विलग्नदेहौ
तौ पेततुः सालनिखातमध्ये ।
उत्पेततुर्भूमितलं स्पृशन्तौ
स्थित्वा मुहूर्तं त्वभिनिःश्वसन्तौ ॥ १७ ॥

एक दूसरेको दबाकर परस्पर सटे हुए शरीरवाले वे दोनों योद्धा किलेके परकोटे और खाईंके बीचमें गिर गये । वहाँ हाँफते हुए दो घड़ीतक पृथ्वीका आलिङ्गन किये पड़े रहे । तत्पश्चात् उछलकर खड़े हो गये ॥ १७ ॥

आलिङ्ग्य चालिङ्ग्य च बाहुयोक्त्रैः
संयोजयामासतुराहवे तौ ।
संरम्भशिक्षाबलसम्प्रयुक्तौ
सुचेरतुः सम्प्रति युद्धमार्गैः ॥ १८ ॥

फिर वे एक दूसरेका बार-बार आलिङ्गन करके उसे बाहुपाशमें जकड़ने लगे । दोनों ही क्रोध, शिक्षा (मल्लयुद्ध-विषयक अभ्यास) तथा शारीरिक बलसे सम्पन्न थे; अतः उस युद्धस्थलमें कुश्तीके अनेक दाँव-पेंच दिखाते हुए भ्रमण करने लगे ॥ १८ ॥

शार्दूलसिंहाविव जातदंष्ट्रौ
गजेन्द्रपोताविव सम्प्रयुक्तौ ।
संहत्य संवेद्य च तौ कराभ्यां
तौ पेततुर्वै युगपद् धरायाम् ॥ १९ ॥

जिनके नये-नये दाँत निकले हों, ऐसे बाघ और सिंहके बच्चों तथा परस्पर लड़ते हुए गजराजके छोटे छौनोंके समान वे दोनों वीर अपने वक्षःस्थलसे एक दूसरेको दबाते और हाथोंसे परस्पर बल आजमाते हुए एक साथ ही पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १९ ॥

उद्यम्य चान्योन्यमधिक्षिपन्तौ
संचक्रमाते बहु युद्धमार्गे ।
व्यायामशिक्षाबलसम्प्रयुक्तौ
क्लमं न तौ जग्मतुराशु वीरौ ॥ २० ॥

दोनों ही कसरती जवान थे और युद्धकी शिक्षा तथा बलसे सम्पन्न थे । अतः युद्ध जीतनेके लिये उद्यमशील हो एक दूसरेपर आक्षेप करते हुए युद्धमार्गपर अनेक प्रकारसे विचरण करते थे तथापि उन वीरोंको जल्दी थकावट नहीं होती थी ॥

बाहूत्तमैर्वारणवारणाभै-
र्निवारयन्तौ परवारणाभौ ।
चिरेण कालेन भृशं प्रयुद्धौ
संचेरतुर्मण्डलमार्गमाशु ॥ २१ ॥

मतवाले हाथियोंके समान सुग्रीव और रावण गजराजके शुण्ड-दण्डकी भाँति मोटे एवं बलिष्ठ बाहुदण्डोंद्वारा एक दूसरेके दाँवको रोकते हुए बहुत देरतक बड़े आवेशके साथ युद्ध करते और शीघ्रतापूर्वक पैंतरे बदलते रहे ॥ २१ ॥

तौ परस्परमासाद्य यत्तावन्योन्यसूदने ।
मार्जाराविव भक्षार्थेऽवतस्थाते मुहुर्मुहुः ॥ २२ ॥

वे परस्पर भिड़कर एक दूसरेको मार डालनेका प्रयत्न कर रहे थे। जैसे दो बिलाव किसी भक्ष्य वस्तुके लिये क्रोधपूर्वक स्थित हो परस्पर दृष्टिपात कर बारंबार गुर्राते रहते हैं, उसी तरह रावण और सुग्रीव भी लड़ रहे थे ॥ २२ ॥

मण्डलानि विचित्राणि स्थानानि विविधानि च ।
गोमूत्रकाणि चित्राणि गतप्रत्यागतानि च ॥ २३ ॥

विचित्र मण्डल[1] और भाँति-भाँतिके स्थानों[2]का प्रदर्शन करते हुए गोमूत्रकी रेखाके समान कुटिल गतिसे चलते और विचित्र रीतिसे कभी आगे बढ़ते और कभी पीछे हटते थे ॥ २३ ॥

तिरश्चीनगतान्येव तथा वक्रगतानि च ।
परिमोक्षं प्रहाराणां वर्जनं परिधावनम् ॥ २४ ॥
अभिद्रवणमाप्लावमवस्थानं सविग्रहम् ।
परावृत्तमपावृत्तमपद्रुतमवप्लुतम् ॥ २५ ॥
उपन्यस्तमपन्यस्तं युद्धमार्गविशारदौ ।
तौ विचेरतुरन्योन्यं वानरेन्द्रश्च रावणः ॥ २६ ॥

वे कभी तिरछी चालसे चलते, कभी टेढ़ी चालसे दायें-बायें घूम जाते, कभी अपने स्थानसे हटकर शत्रुके प्रहारको व्यर्थ कर देते, कभी बदलेमें स्वयं भी दाँव-पेंचका प्रयोग करके शत्रुके आक्रमणसे अपनेको बचा लेते, कभी एक खड़ा रहता तो दूसरा उसके चारों ओर दौड़ लगाता, कभी दोनों एक दूसरेके सम्मुख शीघ्रतापूर्वक दौड़कर आक्रमण करते, कभी झुककर या मेढककी भाँति धीरेसे उछलकर चलते, कभी लड़ते हुए एक ही जगहपर स्थिर रहते, कभी पीछेकी ओर लौट पड़ते, कभी सामने खड़े-खड़े ही पीछे हटते, कभी विपक्षीको पकड़नेकी इच्छासे अपने शरीरको सिकोड़कर या झुकाकर उसकी ओर दौड़ते, कभी प्रतिद्वन्द्वीपर पैरसे प्रहार करनेके लिये नीचे मुँह किये उसपर टूट पड़ते, कभी प्रतिपक्षी योद्धाकी बाँह पकड़नेके लिये अपनी बाँह फैला देते और कभी विरोधीकी पकड़से बचनेके लिये अपनी बाँहोंको पीछे खींच लेते। इस प्रकार मल्लयुद्धकी कलामें परम प्रवीण वानरराज सुग्रीव तथा रावण एक दूसरेपर आघात करनेके लिये मण्डलाकार विचर रहे थे ॥ २४–२६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे रक्षो मायाबलमथात्मनः ।
आरब्धुमुपसम्पेदे ज्ञात्वा तं वानराधिपः ॥ २७ ॥
उत्पपात तदाऽऽकाशं जितकाशी जितक्लमः ।
रावणः स्थित एवात्र हरिराजेन वञ्चितः ॥ २८ ॥

इसी बीचमें राक्षस रावणने अपनी मायाशक्तिसे काम लेनेका विचार किया। वानरराज सुग्रीव इस बातको ताड़ गये; इसलिये सहसा आकाशमें उछल पड़े। वे विजयोल्लाससे सुशोभित होते थे और थकावटको जीत चुके थे। वानरराज रावणको चकमा देकर निकल गये और वह खड़ा-खड़ा देखता ही रह गया ॥ २७-२८ ॥

अथ हरिवरनाथः प्राप्तसंग्रामकीर्ति-
र्निशिचरपतिमाजौ योजयित्वा श्रमेण ।
गगनमतिविशालं लङ्घयित्वार्कसूनु-
र्हरिगणबलमध्ये रामपार्श्वं जगाम ॥ २९ ॥

जिन्हें संग्राममें कीर्ति प्राप्त हुई थी, वे वानरराज सूर्यपुत्र सुग्रीव निशाचरपति रावणको युद्धमें थकाकर अत्यन्त विशाल आकाशमार्गका लङ्घन करके वानरोंकी सेनाके बीच श्रीरामचन्द्रजीके पास आ पहुँचे ॥ २९ ॥

इति स सवितृसूनुस्तत्र तत् कर्म कृत्वा
पवनगतिरनीकं प्राविशत् सम्प्रहृष्टः ।
रघुवरनृपसूनोर्वर्धयन् युद्धहर्षं
तरुमृगगणमुख्यैः पूज्यमानो हरीन्द्रः ॥ ३० ॥

इस प्रकार वहाँ अद्भुत कर्म करके वायुके समान शीघ्रगामी सूर्यपुत्र सुग्रीवने दशरथराजकुमार श्रीरामके युद्धविषयक उत्साहको बढ़ाते हुए बड़े हर्षके साथ वानरसेनामें प्रवेश किया। उस समय प्रधान-प्रधान वानरोंने वानरराजका अभिनन्दन किया ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४० ॥

---

[1] भरतने मल्लयुद्धमें चार प्रकारके मण्डल बताये हैं। इनके नाम है—चारिमण्डल, करणमण्डल, खण्डमण्डल और महामण्डल। इनके लक्षण इस प्रकार हैं—एक पैरसे आगे बढ़कर चक्कर काटते हुए शत्रुपर आक्रमण करना चारिमण्डल कहलाता है। दो पैरसे मण्डलाकार घूमते हुए आक्रमण करना करणमण्डल कहा गया है। अनेक करणमण्डलोंका संयोग होनेसे खण्डमण्डल होता है और तीन या चार खण्डमण्डलोंके संयोगसे महामण्डल कहा गया है।

[2] भरतमुनिने मल्लयुद्धमें छः स्थानोंका उल्लेख किया है—वैष्णव, समपाद, वैशाख, मण्डल, प्रत्यालीढ़ और अनालीढ़। पैरोंको आगे-पीछे अगल-बगलमें चलाते हुए विशेष प्रकारसे उन्हें यथास्थान स्थापित करना ही स्थान कहलाता है। कोई-कोई बाघ, सिंह आदि जन्तुओंके समान खड़े होनेकी रीतिको ही स्थान कहते हैं।

एकचत्वारिंशः सर्गः

श्रीरामका सुग्रीवको दुःसाहससे रोकना, लङ्काके चारों द्वारोंपर वानरसैनिकोंकी नियुक्ति, रामदूत अङ्गदका रावणके महलमें पराक्रम तथा वानरोंके आक्रमणसे राक्षसोंको भय

अथ तस्मिन् निमित्तानि दृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः ।
सुग्रीवं सम्परिष्वज्य रामो वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

सुग्रीवके शरीरमें युद्धके चिह्न देखकर लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीरामने उन्हें हृदयसे लगा लिया और इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

असम्मन्त्र्य मया सार्धं तदिदं साहसं कृतम् ।
एवं साहसयुक्तानि न कुर्वन्ति जनेश्वराः ॥ २ ॥

‘सुग्रीव ! तुमने मुझसे सलाह लिये बिना ही यह बड़े साहसका काम कर डाला । राजालोग ऐसे दुःसाहसपूर्ण कार्य नहीं किया करते हैं ॥ २ ॥

संशये स्थाप्य मां चेदं बलं चेमं विभीषणम् ।
कष्टं कृतमिदं वीर साहसं साहसप्रिय ॥ ३ ॥

‘साहसप्रिय वीर ! तुमने मुझको, इस वानरसेनाको और विभीषणको भी संशयमें डालकर जो यह साहसपूर्ण कार्य किया है, इससे हमें बड़ा कष्ट हुआ ॥ ३ ॥

इदानीं मा कृथा वीर एवंविधमरिंदम ।
त्वयि किंचित्समापन्ने किं कार्यं सीतया मम ॥ ४ ॥
भरतेन महाबाहो लक्ष्मणेन यवीयसा ।
शत्रुघ्नेन च शत्रुघ्न स्वशरीरेण वा पुनः ॥ ५ ॥

‘शत्रुओंका दमन करनेवाले वीर ! अब फिर तुम ऐसा दुःसाहस न करना । शत्रुसूदन महाबाहो ! यदि तुम्हें कुछ हो गया तो मैं सीता, भरत, लक्ष्मण, छोटे भाई शत्रुघ्न तथा अपने इस शरीरको भी लेकर क्या करूँगा ? ॥ ४-५ ॥

त्वयि चानागते पूर्वमिति मे निश्चिता मतिः ।
जानतश्चापि ते वीर्यं महेन्द्रवरुणोपम ॥ ६ ॥
हत्वाहं रावणं युद्धे सपुत्रबलवाहनम् ।
अभिषिच्य च लङ्कायां विभीषणमथापि च ॥ ७ ॥
भरते राज्यमारोप्य त्यक्ष्ये देहं महाबल ।

‘महेन्द्र और वरुणके समान महाबली ! यद्यपि मैं तुम्हारे बल-पराक्रमको जानता था, तथापि जबतक तुम यहाँ लौटकर नहीं आये थे, उससे पहले मैंने यह निश्चित विचार कर लिया था कि युद्धमें पुत्र, सेना और वाहनोंसहित रावणका वध करके लङ्काके राज्यपर विभीषणका अभिषेक कर दूँगा और अयोध्याका राज्य भरतको देकर अपने इस शरीरको त्याग दूँगा’ ॥ ६-७½ ॥

तमेवं वादिनं रामं सुग्रीवः प्रत्यभाषत ॥ ८ ॥
तव भार्यापहर्तारं दृष्ट्वा राघव रावणम् ।
मर्षयामि कथं वीर जानन् विक्रममात्मनः ॥ ९ ॥

ऐसी बातें कहते हुए श्रीरामको सुग्रीवने यों उत्तर दिया—‘वीर रघुनन्दन ! अपने पराक्रमका ज्ञान रखते हुए मैं आपकी भार्याका अपहरण करनेवाले रावणको देखकर कैसे क्षमा कर सकता था ?’ ॥ ८-९ ॥

इत्येवं वादिनं वीरमभिनन्द्य च राघवः ।
लक्ष्मणं लक्ष्मिसम्पन्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १० ॥

वीर सुग्रीवने जब ऐसी बात कही, तब उनका अभिनन्दन करके श्रीरामचन्द्रजीने शोभासम्पन्न लक्ष्मणसे कहा—॥ १० ॥

परिगृह्योदकं शीतं वनानि फलवन्ति च ।
बलौघं संविभज्येमं व्यूह्य तिष्ठाम लक्ष्मण ॥ ११ ॥

‘लक्ष्मण ! शीतल जलसे भरे हुए जलाशय और फलोंसे सम्पन्न वनका आश्रय ले हमलोग इस विशाल वानरसेनाका विभाग करके व्यूहरचना कर लें और युद्धके लिये उद्यत हो जायँ ॥ ११ ॥

लोकक्षयकरं भीमं भयं पश्याम्युपस्थितम् ।
निबर्हणं प्रवीराणामृक्षवानररक्षसाम् ॥ १२ ॥

‘इस समय मैं लोकसंहारकी सूचना देनेवाला भयानक अपशकुन उपस्थित देखता हूँ, जिससे सिद्ध होता है रीछों, वानरों और राक्षसोंके मुख्य-मुख्य वीरोंका संहार होगा ॥१२॥

वाता हि परुषं वान्ति कम्पते च वसुंधरा ।
पर्वताग्राणि वेपन्ते नदन्ति धरणीधराः ॥ १३ ॥

‘प्रचण्ड आँधी चल रही है, पृथ्वी काँपने लगी है, पर्वतोंके शिखर हिलने लगे हैं और दिग्गज चीत्कार करते हैं ॥

मेघाः क्रव्यादसंकाशाः परुषाः परुषस्वराः ।
क्रूराः क्रूरं प्रवर्षन्ते मिश्रं शोणितबिन्दुभिः ॥ १४ ॥

‘मेघ हिंसक जीवोंके समान क्रूर हो गये हैं । वे कठोर स्वरमें विकट गर्जना करते हैं तथा रक्त-बिन्दुओंसे मिले हुए जलकी क्रूरतापूर्ण वर्षा कर रहे हैं ॥ १४ ॥

रक्तचन्दनसंकाशा संध्या परमदारुणा ।
ज्वलच्च निपतत्येतदादित्यादग्निमण्डलम् ॥ १५ ॥

‘अत्यन्त दारुण संध्या रक्त-चन्दनके समान लाल दिखायी देती है । सूर्यसे यह जलती आगका पुञ्ज गिर रहा है ॥१५॥

आदित्यमभिवाश्यन्ति जनयन्तो महद्भयम् ।
दीना दीनस्वरा घोरा अप्रशस्ता मृगद्विजाः ॥ १६ ॥

‘निषिद्ध पशु और पक्षी दीन हो दीनतासूचक स्वरमें सूर्यकी ओर देखते हुए चीत्कार करते हैं, इससे वे बड़े भयंकर लगते और महान् भय उत्पन्न करते हैं ॥ १६ ॥

रजन्यामप्रकाशश्च संतापयति चन्द्रमाः ।
कृष्णरक्तांशुपर्यन्तो यथा लोकस्य संक्षये ॥ १७ ॥

'रातमें चन्द्रमाका प्रकाश क्षीण हो जाता है। वे शीतलताकी जगह संताप देते हैं। उनके किनारेका भाग काला और लाल दिखायी देता है। समस्त लोकोंके संहारकालमें चन्द्रमाका जैसा रूप रहता है, वैसा ही इस समय भी देखा जाता है ॥ १७ ॥

ह्रस्वो रूक्षोऽप्रशस्तश्च परिवेषः सुलोहितः ।
आदित्यमण्डले नीलं लक्ष्म लक्ष्मण दृश्यते ॥ १८ ॥

'लक्ष्मण ! सूर्यमण्डलमें छोटा, रूखा, अमङ्गलकारी और अत्यन्त लाल घेरा दिखायी देता है। साथ ही वहाँ काला चिह्न भी दृष्टिगोचर होता है ॥ १८ ॥

दृश्यन्ते न यथावच्च नक्षत्राण्यभिवर्तते ।
युगान्तमिव लोकस्य पश्य लक्ष्मण शंसति ॥ १९ ॥

'लक्ष्मण ! ये नक्षत्र अच्छी तरह प्रकाशित नहीं हो रहे हैं—मलिन दिखायी देते हैं। यह अशुभ लक्षण संसारका प्रलय-सा सूचित करता हुआ मेरे सामने प्रकट हो रहा है ॥ १९ ॥

काकाः श्येनास्तथा गृध्रा नीचैः परिपतन्ति च ।
शिवाश्चाप्यशुभा वाचः प्रवदन्ति महास्वनाः ॥ २० ॥

'कौए, बाज और गीध नीचे गिरते हैं—भूतलपर आ-आ बैठते हैं और गीदड़ियाँ बड़े जोर-जोरसे अमङ्गल-सूचक बोली बोलती हैं ॥ २० ॥

शैलैः शूलैश्च खड्गैश्च विमुक्तैः कपिराक्षसैः ।
भविष्यत्यावृता भूमिर्मांसशोणितकर्दमा ॥ २१ ॥

'इससे सूचित होता है कि वानरों और राक्षसोंद्वारा चलाये गये शिलाखण्डों, शूलों और खड्गोंसे यह धरती पट जायगी और यहाँ रक्त-मांसकी कीच जम जायगी ॥ २१ ॥

क्षिप्रमद्य दुराधर्षां पुरीं रावणपालिताम् ।
अभियाम जवेनैव सर्वतो हरिभिर्वृताः ॥ २२ ॥

'रावणके द्वारा पालित यह लङ्कापुरी शत्रुओंके लिये दुर्जय है, तथापि अब हम शीघ्र ही वानरोंके साथ इसपर सब ओरसे वेगपूर्वक आक्रमण करें' ॥ २२ ॥

इत्येवं तु वदन् वीरो लक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजः ।
तस्मादवातरच्छीघ्रं पर्वताग्रान्महाबलः ॥ २३ ॥

लक्ष्मणसे ऐसा कहते हुए वीर महाबली श्रीरामचन्द्रजी उस पर्वत-शिखरसे तत्काल नीचे उतर आये ॥ २३ ॥

अवतीर्य तु धर्मात्मा तस्माच्छैलात् स राघवः ।
परैः परमदुर्धर्षं ददर्श बलमात्मनः ॥ २४ ॥

उस पर्वतसे उतरकर धर्मात्मा श्रीरघुनाथजीने अपनी सेनाका निरीक्षण किया, जो शत्रुओंके लिये अत्यन्त दुर्जय थी ॥ २४ ॥

संनह्य तु ससुग्रीवः कपिराजबलं महत् ।
कालज्ञो राघवः काले संयुगायाभ्यचोदयत् ॥ २५ ॥

फिर सुग्रीवकी सहायतासे कपिराजकी उस विशाल सेनाको सुसज्जित करके समयका ज्ञान रखनेवाले श्रीरामने ज्योतिषशास्त्रोक्त शुभ समयमें उसे युद्धके लिये कूच करनेकी आज्ञा दी ॥ २५ ॥

ततः काले महाबाहुर्बलेन महता वृतः ।
प्रस्थितः पुरतो धन्वी लङ्कामभिमुखः पुरीम् ॥ २६ ॥

तदनन्तर महाबाहु धनुर्धर श्रीरघुनाथजी उस विशाल सेनाके साथ शुभ मुहूर्तमें आगे-आगे लङ्कापुरीकी ओर प्रस्थित हुए ॥ २६ ॥

तं विभीषणसुग्रीवौ हनूमाञ्जाम्बवान् नलः ।
ऋक्षराजस्तथा नीलो लक्ष्मणश्चान्वयुस्तदा ॥ २७ ॥

उस समय विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, ऋक्षराज जाम्बवान्, नल, नील तथा लक्ष्मण उनके पीछे-पीछे चले ॥

ततः पश्चात् सुमहती पृतनर्क्षवनौकसाम् ।
प्रच्छाद्य महतीं भूमिमनुयाति स्म राघवम् ॥ २८ ॥

तत्पश्चात् रीछों और वानरोंकी वह विशाल सेना बहुत बड़ी भूमिको आच्छादित करके श्रीरघुनाथजीके पीछे-पीछे चली ॥ २८ ॥

शैलशृङ्गाणि शतशः प्रवृद्धांश्च महीरुहान् ।
जगृहुः कुञ्जरप्रख्या वानराः परवारणाः ॥ २९ ॥

शत्रुओंको आगे बढ़नेसे रोकनेवाले हाथीके समान विशालकाय वानरोंने सैकड़ों शैलशिखरों और बड़े-बड़े वृक्षोंको हाथमें ले रक्खा था ॥ २९ ॥

तौ त्वदीर्घेण कालेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
रावणस्य पुरीं लङ्कामासेदतुररिंदमौ ॥ ३० ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण थोड़ी ही देरमें लङ्कापुरीके पास पहुँच गये ॥ ३० ॥

पताकामालिनीं रम्यामुद्यानवनशोभिताम् ।
चित्रवप्रां सुदुष्प्रापामुच्चैः प्राकारतोरणाम् ॥ ३१ ॥

वह रमणीय ध्वजा-पताकाओंसे अलंकृत थी। अनेकानेक उद्यान और वन उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उसके चारों ओर बड़ा ही अद्भुत और ऊँचा परकोटा था। उस परकोटेसे मिला हुआ ही नगरका सदर फाटक था। उन परकोटोंके कारण लङ्कापुरीमें पहुँचना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन था ॥ ३१ ॥

तां सुरैरपि दुर्धर्षां रामवाक्यप्रचोदिताः ।

यथानिर्देशं सम्पीड्य न्यविशन्त वनौकसः ॥ ३२ ॥

यद्यपि देवताओंके लिये भी लङ्कापर आक्रमण करना कठिन काम था तो भी श्रीरामकी आज्ञासे प्रेरित हो वानर यथास्थान रहकर उस पुरीपर घेरा डालकर उसके भीतर प्रवेश करने लगे ॥ ३२ ॥

लङ्कायास्तूत्तरद्वारं शैलशृङ्गमिवोन्नतम् ।
रामः सहानुजो धन्वी जुगोप च रुरोध च ॥ ३३ ॥

लङ्काका उत्तर द्वार पर्वतशिखरके समान ऊँचा था । श्रीराम और लक्ष्मणने धनुष हाथमें लेकर उसका मार्ग रोक लिया और वहीं रहकर वे अपनी सेनाकी रक्षा करने लगे ॥

लङ्कामुपनिविष्टस्तु रामो दशरथात्मजः ।
लक्ष्मणानुचरो वीरः पुरीं रावणपालिताम् ॥ ३४ ॥
उत्तरद्वारमासाद्य यत्र तिष्ठति रावणः ।
नान्यो रामाद्धि तद् द्वारं समर्थः परिरक्षितुम् ॥ ३५ ॥

दशरथनन्दन वीर श्रीराम लक्ष्मणको साथ ले रावणपालित लङ्कापुरीके पास जा उत्तर द्वारपर पहुँचकर जहाँ स्वयं रावण खड़ा था, वहीं डट गये। श्रीरामके सिवा दूसरा कोई उस द्वारपर अपने सैनिकोंकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हो सकता था ॥ ३४-३५ ॥

रावणाधिष्ठितं भीमं वरुणेनेव सागरम् ।
सायुधै राक्षसैर्भीमैरभिगुप्तं समन्ततः ॥ ३६ ॥

अस्त्र-शस्त्रधारी भयंकर राक्षसोंद्वारा सब ओरसे सुरक्षित उस भयानक द्वारपर रावण उसी तरह खड़ा था, जैसे वरुण देवता समुद्रमें अधिष्ठित होते हैं ॥ ३६ ॥

लघूनां त्रासजननं पातालमिव दानवैः ।
विन्यस्तानि च योधानां बहूनि विविधानि च ॥ ३७ ॥
ददर्शायुधजालानि तथैव कवचानि च ।

वह उत्तर द्वार अल्प बलशाली पुरुषोंके मनमें उसी प्रकार भय उत्पन्न करता था, जैसे दानवोंद्वारा सुरक्षित पाताल भयदायक जान पड़ता है । उस द्वारके भीतर योद्धाओंके बहुत-से भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र और कवच रक्खे गये थे, जिन्हें भगवान् श्रीरामने देखा ॥ ३७½ ॥

पूर्वं तु द्वारमासाद्य नीलो हरिचमूपतिः ॥ ३८ ॥
अतिष्ठत् सह मैन्देन द्विविदेन च वीर्यवान् ।

वानरसेनापति पराक्रमी नील मैन्द और द्विविदके साथ लङ्काके पूर्वद्वारपर जाकर डट गये ॥ ३८½ ॥

अङ्गदो दक्षिणद्वारं जग्राह सुमहाबलः ॥ ३९ ॥
ऋषभेण गवाक्षेण गजेन गवयेन च ।

महाबली अङ्गदने ऋषभ, गवाक्ष, गज और गवयके साथ दक्षिण द्वारपर अधिकार जमा लिया ॥ ३९½ ॥

हनूमान् पश्चिमद्वारं ररक्ष बलवान् कपिः ॥ ४० ॥
प्रमाथिप्रघसाभ्यां च वीरैरन्यैश्च संगतः ।

प्रमाथी, प्रघस तथा अन्य वानरवीरोंके साथ बलवान् कपिश्रेष्ठ हनुमान्ने पश्चिम द्वारका मार्ग रोक लिया ॥ ४०½ ॥

मध्यमे च स्वयं गुल्मे सुग्रीवः समतिष्ठत ॥ ४१ ॥
सह सर्वैर्हरिश्रेष्ठैः सुपर्णपवनोपमैः ।

उत्तर और पश्चिमके मध्यभागमें (वायव्यकोणमें) जो राक्षससेनाकी छावनी थी, उसपर गरुड़ और वायुके समान वेगशाली श्रेष्ठ वानरवीरोंके साथ सुग्रीवने आक्रमण किया ॥

वानराणां तु षट्त्रिंशत्कोट्यः प्रख्यातयूथपाः ॥ ४२ ॥
निपीड्योपनिविष्टाश्च सुग्रीवो यत्र वानरः ।

जहाँ वानरराज सुग्रीव थे, वहाँ वानरोंके छत्तीस करोड़ विख्यात यूथपति राक्षसोंको पीड़ा देते हुए उपस्थित रहते थे ॥ ४२½ ॥

शासनेन तु रामस्य लक्ष्मणः सविभीषणः ॥ ४३ ॥
द्वारे द्वारे हरीणां तु कोटिं कोटीर्न्यवेशयत् ।

श्रीरामकी आज्ञासे विभीषणसहित लक्ष्मणने लङ्काके प्रत्येक द्वारपर एक-एक करोड़ वानरोंको नियुक्त कर दिया ॥

पश्चिमेन तु रामस्य सुषेणः सहजाम्बवान् ॥ ४४ ॥
अदूरान्मध्यमे गुल्मे तस्थौ बहुबलानुगः ।

सुषेण और जाम्बवान् बहुत-सी सेनाके साथ श्रीरामचन्द्रजीके पीछे थोड़ी ही दूरपर रहकर बीचके मोर्चेकी रक्षा करते रहे ॥ ४४½ ॥

ते तु वानरशार्दूलाः शार्दूला इव दंष्ट्रिणः ।
गृहीत्वा द्रुमशैलाग्रान् हृष्टा युद्धाय तस्थिरे ॥ ४५ ॥

वे वानरसिंह बाघोंके समान बड़े-बड़े दाढ़ोंसे युक्त थे । वे हर्ष और उत्साहमें भरकर हाथोंमें वृक्ष और पर्वत-शिखर लिये युद्धके लिये डट गये ॥ ४५ ॥

सर्वे विकृतलाङ्गूलाः सर्वे दंष्ट्रानखायुधाः ।
सर्वे विकृतचित्राङ्गाः सर्वे च विकृताननाः ॥ ४६ ॥

सभी वानरोंकी पूँछें क्रोधके कारण अस्वाभाविक रूपसे हिल रही थीं । दाढ़ें और नख ही उन सबके आयुध थे । उन सबके मुख आदि अङ्गोंपर क्रोधरूप विकारके विचित्र चिह्न परिलक्षित होते थे तथा सबके मुख विकट एवं विकराल दिखायी देते थे ॥ ४६ ॥

दशनागबलाः केचित् केचिद् दशगुणोत्तराः ।
केचिन्नागसहस्रस्य बभूवुस्तुल्यविक्रमाः ॥ ४७ ॥

इनमेंसे किन्हीं वानरोंमें दस हाथियोंका बल था, कोई उनसे भी दसगुने अधिक बलवान् थे तथा किन्हींमें एक हजार हाथियोंके समान बल था ॥ ४७ ॥

सन्ति चौघबलाः केचित् केचिच्छतगुणोत्तराः ।
अप्रमेयबलाश्चान्ये तत्रासन् हरियूथपाः ॥ ४८ ॥

किन्हींमें दस हजार हाथियोंकी शक्ति थी, कोई इनसे भी सौ गुने बलवान् थे तथा अन्य बहुतेरे वानर-यूथपतियोंमें तो बलका परिमाण ही नहीं था । वे असीम बलशाली थे ॥

अद्भुतश्च विचित्रश्च तेषामासीत् समागमः ।
तत्र वानरसैन्यानां शलभानामिवोद्गमः ॥ ४९ ॥

वहाँ उन वानरसेनाओंका टिड्डीदलके उद्‍गमके समान अद्‍भुत एवं विचित्र समागम हुआ था ॥ ४९ ॥

परिपूर्णमिवाकाशं सम्पूर्णेव च मेदिनी ।
लङ्कामुपनिविष्टैश्च सम्पतद्भिश्च वानरैः ॥ ५० ॥

लङ्कामें उछल-उछलकर आते हुए वानरोंसे आकाश भर गया था और पुरीमें प्रवेश करके खड़े हुए कपिसमूहोंसे वहाँकी सारी पृथ्वी आच्छादित हो गयी थी ॥ ५० ॥

शतं शतसहस्राणां पृतनर्क्षवनौकसाम् ।
लङ्काद्वाराण्युपाजग्मुरन्ये योद्धुं समन्ततः ॥ ५१ ॥

रीछों और वानरोंकी एक करोड़ सेना तो लङ्काके चारों द्वारोंपर आकर डटी थी और अन्य सैनिक सब ओर युद्धके लिये चले गये थे ॥ ५१ ॥

आवृतः स गिरिः सर्वैस्तैः समन्तात् प्लवङ्गमैः ।
अयुतानां सहस्रं च पुरीं तामभ्यवर्तत ॥ ५२ ॥

समस्त वानरोंने चारों ओरसे उस त्रिकूट पर्वतको (जिसपर लङ्का बसी थी) घेर लिया था । सहस्र अयुत (एक करोड़) वानर तो उस पुरीमें सभी द्वारोंपर लड़ती हुई सेनाका समाचार लेनेके लिये नगरमें सब ओर घूमते रहते थे ॥ ५२ ॥

वानरैर्बलवद्भिश्च बभूव द्रुमपाणिभिः ।
सर्वतः संवृता लङ्का दुष्प्रवेशापि वायुना ॥ ५३ ॥

हाथोंमें वृक्ष लिये बलवान् वानरोंद्वारा सब ओरसे घिरी हुई लङ्कामें वायुके लिये भी प्रवेश पाना कठिन हो गया था ॥

राक्षसा विस्मयं जग्मुः सहसाभिनिपीडिताः ।
वानरैर्मेघसंकाशैः शक्रतुल्यपराक्रमैः ॥ ५४ ॥

मेघके समान काले एवं भयंकर तथा इन्द्रतुल्य पराक्रमी वानरोंद्वारा सहसा पीड़ित होनेके कारण राक्षसोंको बड़ा विस्मय हुआ ॥ ५४ ॥

महाञ्छब्दोऽभवत् तत्र बलौघस्याभिवर्ततः ।
सागरस्येव भिन्नस्य यथा स्यात् सलिलस्वनः ॥ ५५ ॥

जैसे सेतुको विदीर्ण कर अथवा मर्यादाको तोड़कर बहनेवाले समुद्रके जलका महान् शब्द होता है, उसी प्रकार वहाँ आक्रमण करती हुई विशाल वानरसेनाका महान् कोलाहल हो रहा था ॥ ५५ ॥

तेन शब्देन महता सप्राकारा सतोरणा ।
लङ्का प्रचलिता सर्वा सशैलवनकानना ॥ ५६ ॥

उस महान् कोलाहलसे परकोटों, फाटकों, पर्वतों, वनों तथा काननोंसहित समूची लङ्कापुरीमें हलचल मच गयी ॥

रामलक्ष्मणगुप्ता सा सुग्रीवेण च वाहिनी ।
बभूव दुर्धर्षतरा सर्वैरपि सुरासुरैः ॥ ५७ ॥

श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीवसे सुरक्षित वह विशाल वानर-वाहिनी समस्त देवताओं और असुरोंके लिये भी अत्यन्त दुर्जय हो गयी थी ॥ ५७ ॥

राघवः संनिवेश्यैवं स्वसैन्यं रक्षसां वधे ।
सम्मन्त्र्य मन्त्रिभिः सार्धं निश्चित्य च पुनः पुनः ॥ ५८ ॥
आनन्तर्यमभिप्रेप्सुः क्रमयोगार्थतत्त्ववित् ।
✓**विभीषणस्यानुमते राजधर्ममनुस्मरन् ॥ ५९ ॥**
अङ्गदं वालितनयं समाहूयेदमब्रवीत् ।

इस प्रकार राक्षसोंके वधके लिये अपनी सेनाको यथास्थान खड़ी करके उसके बादके कर्तव्यको जाननेकी इच्छासे श्रीरघुनाथजीने मन्त्रियोंके साथ बारंबार सलाह की और एक निश्चयपर पहुँचकर साम, दान आदि उपायोंके क्रमशः प्रयोगसे सुलभ होनेवाले अर्थतत्त्वके ज्ञाता श्रीराम विभीषणकी अनुमति ले राजधर्मका विचार करते हुए वालिपुत्र अङ्गदको बुलाकर उनसे इस प्रकार बोले—॥ ५८-५९½ ॥

गत्वा सौम्य दशग्रीवं ब्रूहि मद्वचनात् कपे ॥ ६० ॥
लङ्घयित्वा पुरीं लङ्कां भयं त्यक्त्वा गतव्यथः ।
भ्रष्टश्रीकं गतैश्वर्यं मुमूर्षानष्टचेतनम् ॥ ६१ ॥

'सौम्य ! कपिप्रवर ! दशमुख रावण राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट हो गया, अब उसका ऐश्वर्य समाप्त हो चला, वह मरना ही चाहता है, इसलिये उसकी चेतना (विचार-शक्ति) नष्ट हो गयी है । तुम परकोटा लाँघकर लङ्कापुरीमें भय छोड़कर जाओ और व्यथारहित हो उससे मेरी ओरसे ये बातें कहो——६०-६१

ऋषीणां देवतानां च गन्धर्वाप्सरसां तथा ।
नागानामथ यक्षाणां राज्ञां च रजनीचर ॥ ६२ ॥
यच्च पापं कृतं मोहादवलिप्तेन राक्षस ।
नूनं ते विगतो दर्पः स्वयंभूवरदानजः ।
तस्य पापस्य सम्प्राप्ता व्युष्टिरद्य दुरासदा ॥ ६३ ॥

''निशाचर ! राक्षसराज ! तुमने मोहवश घमंडमें आकर ऋषि, देवता, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष और राजाओंका बड़ा अपराध किया है ! ब्रह्माजीका वरदान पाकर तुम्हें जो अभिमान हो गया था, निश्चय ही उसके नष्ट होनेका अब समय आ गया है । तुम्हारे उस पापका दुःसह फल आज उपस्थित है ॥ ६२-६३ ॥

यस्य दण्डधरस्तेऽहं दाराहरणकर्शितः ।
दण्डं धारयमाणस्तु लङ्काद्वारे व्यवस्थितः ॥ ६४ ॥

"मैं अपराधियोंको दण्ड देनेवाला शासक हूँ। तुमने जो मेरी भार्याका अपहरण किया है, इससे मुझे बड़ा कष्ट पहुँचा है; अतः तुम्हें उसका दण्ड देनेके लिये मैं लङ्काके द्वारपर आकर खड़ा हूँ ॥ ६४ ॥

पदवीं देवतानां च महर्षीणां च राक्षस ।
राजर्षीणां च सर्वेषां गमिष्यसि युधि स्थिरः ॥ ६५ ॥

"राक्षस! यदि तुम युद्धमें स्थिरतापूर्वक खड़े रहे तो उन समस्त देवताओं, महर्षियों और राजर्षियोंकी पदवीको पहुँच जाओगे—उन्हींकी भाँति तुम्हें परलोकवासी होना पड़ेगा ॥ ६५ ॥

बलेन येन वै सीतां मायया राक्षसाधम ।
मामतिक्रमयित्वा त्वं हृतवांस्तन्निदर्शय ॥ ६६ ॥

"नीच निशाचर! जिस बलके भरोसे तुमने मुझे धोखा देकर मायासे सीताका हरण किया है, उसे आज युद्धके मैदानमें दिखाओ ॥ ६६ ॥

अराक्षसमिमं लोकं कर्तास्मि निशितैः शरैः ।
न चेच्छरणमभ्येषि तामादाय तु मैथिलीम् ॥ ६७ ॥

"यदि तुम मिथिलेशकुमारीको लेकर मेरी शरणमें नहीं आये तो मैं अपने तीखे बाणोंद्वारा इस संसारको राक्षसोंसे सूना कर दूँगा ॥ ६७ ॥

धर्मात्मा राक्षसश्रेष्ठः सम्प्राप्तोऽयं विभीषणः ।
लङ्कैश्वर्यमिदं श्रीमान् ध्रुवं प्राप्नोत्यकण्टकम् ॥ ६८ ॥

"राक्षसोंमें श्रेष्ठ ये श्रीमान् धर्मात्मा विभीषण भी मेरे साथ यहाँ आये हैं, निश्चय ही लङ्काका निष्कण्टक राज्य इन्हें ही प्राप्त होगा ॥ ६८ ॥

नहि राज्यमधर्मेण भोक्तुं क्षणमपि त्वया ।
शक्यं मूर्खसहायेन पापेनाविदितात्मना ॥ ६९ ॥

"तुम पापी हो। तुम्हें अपने स्वरूपका ज्ञान नहीं है और तुम्हारे संगी-साथी भी मूर्ख हैं; अतः इस प्रकार अधर्मपूर्वक अब तुम एक क्षण भी इस राज्यको नहीं भोग सकोगे ॥ ६९ ॥

युध्यस्व मा धृतिं कृत्वा शौर्यमालम्ब्य राक्षस ।
मच्छरैस्त्वं रणे शान्तस्ततः पूतो भविष्यसि ॥ ७० ॥

"राक्षस! शूरताका आश्रय ले धैर्य धारण करके मेरे साथ युद्ध करो। रणभूमिमें मेरे बाणोंसे शान्त (प्राणशून्य) होकर तुम पूत (शुद्ध एवं निष्पाप) हो जाओगे ॥ ७० ॥

यद्याविशसि लोकांस्त्रीन् पक्षीभूतो निशाचर ।
मम चक्षुःपथं प्राप्य न जीवन् प्रतियास्यसि ॥ ७१ ॥

"निशाचर! मेरे दृष्टिपथमें आनेके पश्चात् यदि तुम पक्षी होकर तीनों लोकोंमें उड़ते और छिपते फिरो तो भी अपने घरको जीवित नहीं लौट सकोगे ॥ ७१ ॥

ब्रवीमि त्वां हितं वाक्यं क्रियतामौर्ध्वदेहिकम् ।
सुदृष्टा क्रियतां लङ्का जीवितं ते मयि स्थितम् ॥ ७२ ॥

"अब मैं तुम्हें हितकी बात बताता हूँ। तुम अपना श्राद्ध कर डालो—परलोकमें सुख देनेवाले दान-पुण्य कर लो और लङ्काको जी भरकर देख लो; क्योंकि तुम्हारा जीवन मेरे अधीन हो चुका है" ॥ ७२ ॥

इत्युक्तः स तु तारेयो रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
जगामाकाशमाविश्य मूर्तिमानिव हव्यवाट् ॥ ७३ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भगवान् श्रीरामके ऐसा कहनेपर ताराकुमार अङ्गद मूर्तिमान् अग्निकी भाँति आकाशमार्गसे चल दिये ॥ ७३ ॥

सोऽतिपत्य मुहूर्तेन श्रीमान् रावणमन्दिरम् ।
ददर्शासीनमव्यग्रं रावणं सचिवैः सह ॥ ७४ ॥

श्रीमान् अङ्गद एक ही मुहूर्तमें परकोटा लाँघकर रावणके राजभवनमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने मन्त्रियोंके साथ शान्तभावसे बैठे हुए रावणको देखा ॥ ७४ ॥

ततस्तस्याविदूरेण निपत्य हरिपुंगवः ।
दीप्ताग्निसदृशस्तस्थावङ्गदः कनकाङ्गदः ॥ ७५ ॥

वानरश्रेष्ठ अङ्गद सोनेके बाजूबंद पहने हुए थे और प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे, वे रावणके निकट पहुँचकर खड़े हो गये ॥ ७५ ॥

तद् रामवचनं सर्वमन्यूनाधिकमुत्तमम् ।
सामात्यं श्रावयामास निवेद्यात्मानमात्मना ॥ ७६ ॥

उन्होंने पहले अपना परिचय दिया और मन्त्रियोंसहित रावणको श्रीरामचन्द्रजीकी कही हुई सारी उत्तम बातें ज्यों-की-त्यों सुना दीं। न तो एक भी शब्द कम किया और न बढ़ाया ॥ ७६ ॥

दूतोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
वालिपुत्रोऽङ्गदो नाम यदि ते श्रोत्रमागतः ॥ ७७ ॥

वे बोले—'मैं अनायास ही बड़े-बड़े उत्तम कर्म करनेवाले कोसलनरेश महाराज श्रीरामका दूत और वालीका पुत्र अङ्गद हूँ। सम्भव है कभी मेरा नाम भी तुम्हारे कानोंमें पड़ा हो ॥ ७७ ॥

आह त्वां राघवो रामः कौसल्यानन्दवर्धनः ।
निष्पत्य प्रतियुध्यस्व नृशंस पुरुषो भव ॥ ७८ ॥

'माता कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले रघुकुलतिलक श्रीरामने तुम्हारे लिये यह संदेश दिया है—'नृशंस रावण! जरा मर्द बनो और घरसे बाहर निकलकर युद्धमें मेरा सामना करो ॥ ७८ ॥

हन्तास्मि त्वां सहामात्यं सपुत्रज्ञातिबान्धवम् ।

निरुद्विग्नास्त्रयो लोका भविष्यन्ति हते त्वयि ॥ ७९ ॥

"मैं मन्त्री, पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसहित तुम्हारा वध करूँगा; क्योंकि तुम्हारे मारे जानेसे तीनों लोकोंके प्राणी निर्भय हो जायँगे ॥ ७९ ॥

देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
शत्रुमद्योद्धरिष्यामि त्वामृषीणां च कण्टकम् ॥ ८० ॥

"तुम देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग और राक्षस—सभीके शत्रु हो । ऋषियोंके लिये तो कंटकरूप ही हो; अतः आज मैं तुम्हें उखाड़ फेंकूँगा ॥ ८० ॥

विभीषणस्य चैश्वर्यं भविष्यति हते त्वयि ।
न चेत् सत्कृत्य वैदेहीं प्रणिपत्य प्रदास्यसि ॥ ८१ ॥

"अतः यदि तुम मेरे चरणोंमें गिरकर आदरपूर्वक सीताको नहीं लौटाओगे तो मेरे हाथसे मारे जाओगे और तुम्हारे मारे जानेपर लङ्काका सारा ऐश्वर्य विभीषणको प्राप्त होगा" ॥८१॥

इत्येवं परुषं वाक्यं ब्रुवाणे हरिपुङ्गवे ।
अमर्षवशमापन्नो निशाचरगणेश्वरः ॥ ८२ ॥

वानरशिरोमणि अङ्गदके ऐसे कठोर वचन कहनेपर निशाचरगणोंका राजा रावण अत्यन्त अमर्षसे भर गया॥८२॥

ततः स रोषमापन्नः शशास सचिवांस्तदा ।
गृह्यतामिति दुर्मेधा वध्यतामिति चासकृत् ॥ ८३ ॥

रोषसे भरे हुए रावणने उस समय अपने मन्त्रियोंसे बारंबार कहा—'पकड़ लो इस दुर्बुद्धि वानरको और मार डालो' ॥ ८३ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा दीप्ताग्निमिव तेजसा ।
जगृहुस्तं ततो घोराश्चत्वारो रजनीचराः ॥ ८४ ॥

रावणकी यह बात सुनकर चार भयंकर निशाचरोंने प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी अङ्गदको पकड़ लिया ॥८४॥

ग्राहयामास तारेयः स्वयमात्मानमात्मवान् ।
बलं दर्शयितुं वीरो यातुधानगणे तदा ॥ ८५ ॥

आत्मबलसे सम्पन्न ताराकुमार अङ्गदने उस समय राक्षसोंको अपना बल दिखानेके लिये स्वयं ही अपने-आपको पकड़ा दिया ॥ ८५ ॥

स तान् बाहुद्वयासक्तानादाय पतगानिव ।
प्रासादं शैलसंकाशमुत्पपाताङ्गदस्तदा ॥ ८६ ॥

फिर वे पक्षियोंकी तरह अपनी दोनों भुजाओंसे जकड़े हुए उन चारों राक्षसोंको लिये-दिये ही उछले और उस महलकी छतपर, जो पर्वतशिखरके समान ऊँची थी, चढ़ गये॥ ८६ ॥

तस्योत्पतनवेगेन निर्धूतास्तत्र राक्षसाः ।
भूमौ निपतिताः सर्वे राक्षसेन्द्रस्य पश्यतः ॥ ८७ ॥

उनके उछलनेके वेगसे झटका खाकर वे सब राक्षस राक्षसराज रावणके देखते-देखते पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८७ ॥

ततः प्रासादशिखरं शैलशृङ्गमिवोन्नतम् ।
चक्राम राक्षसेन्द्रस्य वालिपुत्रः प्रतापवान् ॥ ८८ ॥

तदनन्तर प्रतापी वालिकुमार अङ्गद राक्षसराजके उस महलकी चोटीपर, जो पर्वतशिखरके समान ऊँची थी, पैर पटकते हुए घूमने लगे ॥ ८८ ॥

पफाल च तदाक्रान्तं दशग्रीवस्य पश्यतः ।
पुरा हिमवतः शृङ्गं वज्रेणेव विदारितम् ॥ ८९ ॥

उनके पैरोंसे आक्रान्त होकर वह छत रावणके देखते-देखते फट गयी । ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें वज्रके आघातसे हिमालयका शिखर विदीर्ण हो गया था ॥ ८९ ॥

भङ्क्त्वा प्रासादशिखरं नाम विश्राव्य चात्मनः ।
विनद्य सुमहानादमुत्पपात विहायसा ॥ ९० ॥

इस प्रकार महलकी छत तोड़कर उन्होंने अपना नाम सुनाते हुए बड़े जोरसे सिंहनाद किया और वे आकाशमार्गसे उड़ चले ॥ ९० ॥

व्यथयन् राक्षसान् सर्वान् हर्षयंश्चापि वानरान् ।
स वानराणां मध्ये तु रामपार्श्वमुपागतः ॥ ९१ ॥

राक्षसोंको पीड़ा देते और समस्त वानरोंका हर्ष बढ़ाते हुए वे वानरसेनाके बीच श्रीरामचन्द्रजीके पास लौट आये ॥ ९१ ॥

रावणस्तु परं चक्रे क्रोधं प्रासादधर्षणात् ।
विनाशं चात्मनः पश्यन् निःश्वासपरमोऽभवत् ॥ ९२ ॥

अपने महलके टूटनेसे रावणको बड़ा क्रोध हुआ, परंतु विनाशकी घड़ी आयी देख वह लंबी साँस छोड़ने लगा ॥९२॥

रामस्तु बहुभिर्हृष्टैर्विनदद्भिः प्लवङ्गमैः ।
वृतो रिपुवधाकाङ्क्षी युद्धायैवाभ्यवर्तत ॥ ९३ ॥

इधर श्रीरामचन्द्रजी हर्षसे भरकर गर्जना करते हुए बहुसंख्यक वानरोंसे घिरे रहकर युद्धके लिये ही डटे रहे । वे अपने शत्रुका वध करना चाहते थे ॥ ९३ ॥

सुषेणस्तु महावीर्यो गिरिकूटोपमो हरिः ।
बहुभिः संवृतस्तत्र वानरैः कामरूपिभिः ॥ ९४ ॥
स तु द्वाराणि संयम्य सुग्रीववचनात् कपिः ।
पर्यक्रामत दुर्धर्षो नक्षत्राणीव चन्द्रमाः ॥ ९५ ॥

इसी समय पर्वतशिखरके समान विशालकाय महापराक्रमी दुर्जय वानर वीर सुषेणने इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले बहुसंख्यक वानरोंके साथ लङ्काके सभी दरवाजोंको काबूमें कर लिया और सुग्रीवकी आज्ञाके अनुसार वे (अपने सैनिकोंकी रक्षा करने एवं सभी द्वारोंका समाचार जाननेके लिये) बारी-बारीसे उन सबपर विचरने लगे, जैसे चन्द्रमा क्रमशः सब नक्षत्रोंपर गमन करते हैं ॥ ९४-९५ ॥

तेषामक्षौहिणिशतं समवेक्ष्य वनौकसाम् ।
लङ्कामुपनिविष्टानां सागरं चाभिवर्ततताम् ॥ ९६ ॥
राक्षसा विस्मयं जग्मुस्त्रासं जग्मुस्तथापरे ।
अपरे समरे हर्षाद्धर्षमेवोपपेदिरे ॥ ९७ ॥

लङ्कापर घेरा डालकर समुद्रतक फैले हुए उन वनवासी वानरोंकी सौ अक्षौहिणी सेनाओंको देख राक्षसोंको बड़ा विस्मय हुआ । बहुत-से निशाचर भयभीत हो गये तथा अन्य कितने ही राक्षस समराङ्गणमें हर्ष और उत्साहसे भर गये ॥९६-९७॥

कृत्स्नं हि कपिभिर्व्याप्तं प्राकारपरिखान्तरम् ।
ददृशू राक्षसा दीनाः प्राकारं वानरीकृतम् ।
हाहाकारमकुर्वन्त राक्षसा भयमागताः ॥ ९८ ॥

उस समय लङ्काकी चहारदीवारी और खाईं सारी-की-सारी वानरोंसे व्याप्त हो रही थी । इस तरह राक्षसोंने चहारदीवारीको जब वानराकार हुई देखा, तब वे दीन-दुखी और भयभीत हो हाहाकार करने लगे ॥ ९८ ॥

तस्मिन् महाभीषणके प्रवृत्ते
कोलाहले राक्षसराजयोधाः ।
प्रगृह्य रक्षांसि महायुधानि
युगान्तवाता इव संविचेरुः ॥ ९९ ॥

वह महाभीषण कोलाहल आरम्भ होनेपर राक्षसराज रावणके योद्धा निशाचर बड़े-बड़े आयुध हाथोंमें लेकर प्रलयकालकी प्रचण्ड वायुके समान सब ओर विचरने लगे ॥ ९९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें इकतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

* * *

द्विचत्वारिंशः सर्गः

लङ्कापर वानरोंकी चढ़ाई तथा राक्षसोंके साथ उनका घोर युद्ध

ततस्ते राक्षसास्तत्र गत्वा रावणमन्दिरम् ।
न्यवेदयन् पुरीं रुद्धां रामेण सह वानरैः ॥ १ ॥

तदनन्तर उन राक्षसोंने रावणके महलमें जाकर यह निवेदन किया कि 'वानरोंके साथ श्रीरामने लङ्कापुरीको चारों ओरसे घेर लिया है' ॥ १ ॥

रुद्धां तु नगरीं श्रुत्वा जातक्रोधो निशाचरः ।
विधानं द्विगुणं कृत्वा प्रासादं चाप्यरोहत ॥ २ ॥

लङ्काके घेरे जानेकी बात सुनकर रावणको बड़ा क्रोध हुआ और वह नगरकी रक्षाका पहलेसे भी दुगुना प्रबन्ध करके महलकी अटारीपर चढ़ गया ॥ २ ॥

स ददर्श वृतां लङ्कां सशैलवनकाननाम् ।
असंख्येयैर्हरिगणैः सर्वतो युद्धकाङ्क्षिभिः ॥ ३ ॥

वहींसे उसने देखा कि पर्वत, वन और काननोंसहित सारी लङ्का सब ओरसे असंख्य युद्धाभिलाषी वानरोंद्वारा घिरी हुई है ॥ ३ ॥

स दृष्ट्वा वानरैः सर्वैर्वसुधां कपिलीकृताम् ।
कथं क्षपयितव्याः स्युरिति चिन्तापरोऽभवत् ॥ ४ ॥

इस प्रकार समस्त वानरोंसे आच्छादित वसुधाको कपिल वर्णकी हुई देख वह इस चिन्तामें पड़ गया कि इन सबका विनाश कैसे होगा ? ॥ ४ ॥

स चिन्तयित्वा सुचिरं धैर्यमालम्ब्य रावणः ।
राघवं हरियूथांश्च ददर्शायतलोचनः ॥ ५ ॥

बहुत देरतक चिन्ता करनेके पश्चात् धैर्य धारण करके विशाल नेत्रोंवाले रावणने श्रीराम और वानरसेनाओंकी ओर पुनः देखा ॥ ५ ॥

राघवः सह सैन्येन मुदितो नाम पुप्लुवे ।
लङ्कां ददर्श गुप्तां वै सर्वतो राक्षसैर्वृताम् ॥ ६ ॥

इधर श्रीरामचन्द्रजी अपनी सेनाके साथ प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़े । उन्होंने देखा, लङ्का सब ओरसे राक्षसोंद्वारा आवृत और सुरक्षित है ॥ ६ ॥

दृष्ट्वा दाशरथिर्लङ्कां चित्रध्वजपताकिनीम् ।
जगाम सहसा सीतां दूयमानेन चेतसा ॥ ७ ॥

विचित्र ध्वजा-पताकाओंसे अलंकृत लङ्कापुरीको देखकर दशरथनन्दन श्रीराम व्यथित चित्तसे मन-ही-मन सीताका स्मरण करने लगे—॥ ७ ॥

अत्र सा मृगशावाक्षी मत्कृते जनकात्मजा ।
पीड्यते शोकसंतप्ता कृशा स्थण्डिलशायिनी ॥ ८ ॥

'हाय ! वह मृगशावकनयनी जनकनन्दिनी सीता यहीं मेरे लिये शोकसंतप्त हो पीड़ा सहन करती है और पृथ्वीकी वेदीपर सोती है । सुनता हूँ, बहुत दुर्बल हो गयी है' ॥ ८ ॥

निपीड्यमानां धर्मात्मा वैदेहीमनुचिन्तयन् ।
क्षिप्रमाज्ञापयद् रामो वानरान् द्विषतां वधे ॥ ९ ॥

इस प्रकार राक्षसियोंद्वारा पीड़ित विदेहनन्दिनीका बारंबार चिन्तन करते हुए धर्मात्मा श्रीरामने तत्काल वानरोंको शत्रुभूत राक्षसोंका वध करनेके लिये आज्ञा दी ॥९॥

एवमुक्ते तु वचसि रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।

संघर्षमाणाः प्लवगाः सिंहनादैरनादयन् ॥ १० ॥

अक्लिष्टकर्मा श्रीरामके इस प्रकार आज्ञा देते ही आगे बढ़नेके लिये परस्पर होड़-सी लगानेवाले वानरोंने अपने सिंहनादोंसे वहाँकी धरती और आकाशको गुँजा दिया ॥

शिखरैर्विकिरामैतां लङ्कां मुष्टिभिरेव वा ।
इति स्म दधिरे सर्वे मनांसि हरियूथपाः ॥ ११ ॥

वे समस्त वानर-यूथपति अपने मनमें यह निश्चय किये खड़े थे कि हमलोग पर्वत-शिखरोंकी वर्षा करके लङ्काके महलोंको चूर-चूर कर देंगे अथवा मुक्कोंसे ही मार-मारकर ढहा देंगे ॥ ११ ॥

उद्यम्य गिरिशृङ्गाणि महान्ति शिखराणि च ।
तरूंश्चोत्पाट्य विविधांस्तिष्ठन्ति हरियूथपाः ॥ १२ ॥

वे वानरसेनापति पर्वतोंके बड़े-बड़े शिखर उठाकर और नाना प्रकारके वृक्षोंको उखाड़कर प्रहार करनेके लिये खड़े थे ॥

प्रेक्षतो राक्षसेन्द्रस्य तान्यनीकानि भागशः ।
राघवप्रियकामार्थं लङ्कामारुरुहुस्तदा ॥ १३ ॥

राक्षसराज रावणके देखते-देखते विभिन्न भागोंमें बँटे हुए वे वानर-सैनिक श्रीरघुनाथजीका प्रिय करनेकी इच्छासे तत्काल लङ्काके परकोटोंपर चढ़ गये ॥ १३ ॥

ते ताम्रवक्त्रा हेमाभा रामार्थे त्यक्तजीविताः ।
लङ्कामेवाभ्यवर्तन्त सालभूधरयोधिनः ॥ १४ ॥

ताँबे-जैसे लाल मुँह और सुवर्णकी-सी कान्तिवाले वे वानर श्रीरामचन्द्रजीके लिये प्राण निछावर करनेको तैयार थे । वे सब-के-सब साल वृक्ष और शैल-शिखरोंसे युद्ध करनेवाले थे; इसलिये उन्होंने लङ्कापर ही आक्रमण किया ॥१४॥

ते द्रुमैः पर्वताग्रैश्च मुष्टिभिश्च प्लवंगमाः ।
प्राकाराग्राण्यसंख्यानि ममन्थुस्तोरणानि च ॥ १५ ॥

वे सभी वानर वृक्षों, पर्वत-शिखरों और मुक्कोंसे असंख्य परकोटों और दरवाजोंको तोड़ने लगे ॥ १५ ॥

परिखान् पूरयन्तश्च प्रसन्नसलिलाशयान् ।
पांसुभिः पर्वताग्रैश्च तृणैः काष्ठैश्च वानराः ॥ १६ ॥

उन वानरोंने स्वच्छ जलसे भरी हुई खाइयोंको धूल, पर्वत-शिखर, घास-फूस और काठोंसे पाट दिया ॥ १६ ॥

ततः सहस्रयूथाश्च कोटियूथाश्च यूथपाः ।
कोटियूथशताश्चान्ये लङ्कामारुरुहुस्तदा ॥ १७ ॥

फिर तो सहस्र यूथ, कोटि यूथ और सौ कोटि यूथोंको साथ लिये अनेक यूथपति उस समय लङ्काके किलेपर चढ़ गये ॥१७॥

काञ्चनानि प्रमर्दन्तस्तोरणानि प्लवंगमाः ।
कैलासशिखराग्राणि गोपुराणि प्रमथ्य च ॥ १८ ॥
आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः ।
लङ्कां तामभिधावन्ति महावारणसंनिभाः ॥ १९ ॥

बड़े-बड़े गजराजोंके समान विशालकाय वानर सोनेके बने हुए दरवाजोंको धूलमें मिलाते, कैलासशिखरके समान ऊँचे-ऊँचे गोपुरोंको भी ढहाते, उछलते-कूदते एवं गर्जते हुए लङ्कापर धावा बोलने लगे ॥ १८-१९ ॥

जयत्युरुबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥ २० ॥
इत्येवं घोषयन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः ।
अभ्यधावन्त लङ्कायाः प्राकारं कामरूपिणः ॥ २१ ॥

'अत्यन्त बलशाली श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो, महाबली लक्ष्मणकी जय हो और श्रीरघुनाथजीके द्वारा सुरक्षित राजा सुग्रीवकी भी जय हो' ऐसी घोषणा करते और गर्जते हुए इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानर लङ्काके परकोटेपर टूट पड़े ॥ २०-२१ ॥

वीरबाहुः सुबाहुश्च नलश्च पनसस्तथा ।
निपीड्योपनिविष्टास्ते प्राकारं हरियूथपाः ।
एतस्मिन्नन्तरे चक्रुः स्कन्धावारनिवेशनम् ॥ २२ ॥

इसी समय वीरबाहु, सुबाहु, नल और पनस—ये वानरयूथपति लङ्काके परकोटेपर चढ़कर बैठ गये और उसी बीचमें उन्होंने वहाँ अपनी सेनाका पड़ाव डाल दिया ॥२२॥

पूर्वद्वारं तु कुमुदः कोटिभिर्दशभिर्वृतः ।
आवृत्य बलवांस्तस्थौ हरिभिर्जितकाशिभिः ॥ २३ ॥

बलवान् कुमुद विजयश्रीसे सुशोभित होनेवाले दस करोड़ वानरोंके साथ (ईशानकोणमें रहकर) लङ्काके पूर्व[1] द्वारको घेरकर खड़ा हो गया ॥ २३ ॥

सहायार्थे तु तस्यैव निविष्टः प्रघसो हरिः ।
पनसश्च महाबाहुर्वानरैरभिसंवृतः ॥ २४ ॥

उसीकी सहायताके लिये अन्य वानरोंके साथ महाबाहु पनस और प्रघस भी आकर डट गये ॥ २४ ॥

दक्षिणद्वारमासाद्य वीरः शतबलिः कपिः ।
आवृत्य बलवांस्तस्थौ विंशत्या कोटिभिर्वृतः ॥ २५ ॥

वीर शतबलिने (आग्नेयकोणमें स्थित हो) दक्षिण[2] द्वारपर आकर बीस करोड़ वानरोंके साथ उसे घेर लिया और वहीं पड़ाव डाल दिया ॥ २५ ॥

सुषेणः पश्चिमद्वारं गत्वा तारापिता बली ।
आवृत्य बलवांस्तस्थौ कोटिकोटिभिरावृतः ॥ २६ ॥

ताराके बलवान् पिता सुषेण (नैर्ऋत्यकोणमें स्थित हो) कोटि-कोटि वानरोंके साथ पश्चिम[3] द्वारपर आक्रमण करके उसे घेरकर खड़े हो गये ॥ २६ ॥

उत्तरद्वारमागम्य रामः सौमित्रिणा सह ।
आवृत्य बलवांस्तस्थौ सुग्रीवश्च हरीश्वरः ॥ २७ ॥

सुमित्राकुमार लक्ष्मणसहित महाबलवान् श्रीराम तथा वानरराज सुग्रीव उत्तर[4] द्वारको घेरकर खड़े हुए (सुग्रीव पूर्ववर्णनके

१, २, ३, ४—यहाँ जो पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर शब्द आये हैं, वे क्रमशः ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य और वायव्यकोणका लक्ष्य करानेवाले हैं; क्योंकि पहले (४१ वें सर्गमें) पूर्व आदि

अनुसार वायव्यकोणमें स्थित हो उत्तर द्वारवर्ती श्रीरामकी सहायता करते थे) ॥ २७ ॥

गोलाङ्गूलो महाकायो गवाक्षो भीमदर्शनः ।
वृतः कोट्या महावीर्यैस्तस्थौ रामस्य पार्श्वतः ॥ २८ ॥

लंगूर जातिके विशालकाय महापराक्रमी वानर गवाक्ष, जो देखनेमें बड़े भयंकर थे, एक करोड़ वानरोंके साथ श्रीरामचन्द्रजीके एक बगलमें खड़े हो गये ॥ २८ ॥

ऋक्षाणां भीमकोपानां धूम्रः शत्रुनिवर्हणः ।
वृतः कोट्या महावीर्यैस्तस्थौ रामस्य पार्श्वतः ॥ २९ ॥

इसी तरह महाबली शत्रुसूदन ऋक्षराज धूम्र एक करोड़ भयानक क्रोधी रीछोंको साथ लेकर श्रीरामचन्द्रजीके दूसरी ओर खड़े हुए ॥ २९ ॥

संनद्धस्तु महावीर्यो गदापाणिर्विभीषणः ।
वृतो यत्तैस्तु सचिवैस्तस्थौ यत्र महाबलः ॥ ३० ॥

कवच आदिसे सुसज्जित महान् पराक्रमी विभीषण हाथमें गदा लिये अपने सावधान मन्त्रियोंके साथ वहीं आकर डट गये, जहाँ महाबली श्रीराम विद्यमान थे ॥ ३० ॥

गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ।
समन्तात् परिधावन्तो ररक्षुर्हरिवाहिनीम् ॥ ३१ ॥

गज, गवाक्ष, गवय, शरभ और गन्धमादन—सब ओर घूम-घूमकर वानर-सेनाकी रक्षा करने लगे ॥ ३१ ॥

ततः कोपपरीतात्मा रावणो राक्षसेश्वरः ।
निर्याणं सर्वसैन्यानां द्रुतमाज्ञापयत् तदा ॥ ३२ ॥

इसी समय अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए राक्षसराज रावणने अपनी सारी सेनाको तुरंत ही बाहर निकलनेकी आज्ञा दी ॥ ३२ ॥

एतच्छ्रुत्वा तदा वाक्यं रावणस्य मुखेरितम् ।
सहसा भीमनिर्घोषमुद्घुष्टं रजनीचरैः ॥ ३३ ॥

रावणके मुखसे बाहर निकलनेका आदेश सुनते ही राक्षसोंने सहसा बड़ी भयानक गर्जना की ॥ ३३ ॥

ततः प्रबोधिता भेर्यश्चन्द्रपाण्डुरपुष्कराः ।
हेमकोणैरभिहता राक्षसानां समन्ततः ॥ ३४ ॥

फिर तो राक्षसोंके यहाँ जिनके मुखभाग चन्द्रमाके समान उज्ज्वल थे और जो सोनेके डंडेसे बजाये या पीटे जाते थे, वे बहुत-से धौंसे एक साथ बज उठे ॥ ३४ ॥

विनेदुश्च महाघोषाः शङ्खाः शतसहस्रशः ।
राक्षसानां सुघोराणां मुखमारुतपूरिताः ॥ ३५ ॥

साथ ही भयानक राक्षसोंके मुखकी वायुसे पूरित हो लाखों गम्भीर घोषवाले शङ्ख बजने लगे ॥ ३५ ॥

ते बभुः शुभनीलाङ्गाः सशङ्खा रजनीचराः ।
विद्युन्मण्डलसंनद्धाः सबलाका इवाम्बुदाः ॥ ३६ ॥

आभूषणोंकी प्रभासे सुशोभित काले शरीरवाले वे निशाचर शङ्ख बजाते समय विद्युत्प्रभासे उद्भासित तथा वक-पंक्तियोंसे युक्त नील मेघोंके समान जान पड़ते थे ॥ ३६ ॥

निष्पतन्ति ततः सैन्या हृष्टा रावणचोदिताः ।
समये पूर्यमाणस्य वेगा इव महोदधेः ॥ ३७ ॥

तदनन्तर रावणकी प्रेरणासे उसके सैनिक बड़े हर्षके साथ युद्धके लिये निकलने लगे, मानो प्रलयकालमें महान् मेघोंके जलसे भरे जाते हुए समुद्रके वेग आगे बढ़ रहे हों ॥

ततो वानरसैन्येन मुक्तो नादः समन्ततः ।
मलयः पूरितो येन ससानुप्रस्थकन्दरः ॥ ३८ ॥

तत्पश्चात् वानर सैनिकोंने सब ओर बड़े जोरसे सिंहनाद किया, जिससे छोटे-बड़े शिखरों और कन्दराओंसहित मलय-पर्वत गूँज उठा ॥ ३८ ॥

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषः सिंहनादस्तरस्विनाम् ।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च सागरं चाभ्यनादयत् ॥ ३९ ॥
गजानां बृंहितैः सार्धं हयानां ह्रेषितैरपि ।
रथानां नेमिनिर्घोषै रक्षसां वदनस्वनैः ॥ ४० ॥

इस प्रकार हाथियोंके चिग्घाड़ने, घोड़ोंके हिनहिनाने, रथोंके पहियोंकी घर्घराहट एवं राक्षसोंके मुखसे प्रकट हुई आवाजके साथ ही शङ्ख और दुन्दुभियोंके शब्द तथा वेगवान् वानरोंके निनादसे पृथ्वी, आकाश और समुद्र निनादित हो उठे ॥ ३९-४० ॥

एतस्मिन्नन्तरे घोरः संग्रामः समपद्यत ।
रक्षसां वानराणां च यथा देवासुरे पुरा ॥ ४१ ॥

इतनेहीमें पूर्वकालमें घटित हुए देवासुर-संग्रामकी भाँति राक्षसों और वानरोंमें घोर युद्ध होने लगा ॥ ४१ ॥

ते गदाभिः प्रदीप्ताभिः शक्तिशूलपरश्वधैः ।
निजघ्नुर्वानरान् सर्वान् कथयन्तः स्वविक्रमान् ॥ ४२ ॥

वे राक्षस दमकती हुई गदाओं तथा शक्ति, शूल और फरसोंसे समस्त वानरोंको मारने एवं अपने पराक्रमकी घोषणा करने लगे ॥ ४२ ॥

तथा वृक्षैर्महाकायाः पर्वताग्रैश्च वानराः ।
निजघ्नुस्तानि रक्षांसि नखैर्दन्तैश्च वेगिनः ॥ ४३ ॥

उसी प्रकार वेगशाली विशालकाय वानर भी राक्षसोंपर बड़े-बड़े वृक्षों, पर्वत-शिखरों, नखों और दाँतोंसे चोट करने लगे ॥

दरवाजोंपर नील आदि यूथपतियोंके आक्रमणकी बात कह दी गयी है वे कुमुद आदि वानर निकटवर्ती ईशान आदि कोणोंमें रहकर पूर्वादि द्वारोंपर आक्रमण करके नील आदिकी सहायता करते थे ।

राजा जयति सुग्रीव इति शब्दो महानभूत् ।
राजञ्जयजयेत्युक्त्वा स्वस्वनामकथां ततः ॥ ४४ ॥

वानरसेनामें 'वानरराज सुग्रीवकी जय हो' यह महान् शब्द होने लगा । उधर राक्षसलोग भी 'महाराज रावणकी जय हो' ऐसा कहकर अपने-अपने नामका उल्लेख करने लगे ॥ ४४ ॥

राक्षसास्त्वपरे भीमाः प्राकारस्था महीं गतान् ।
वानरान् भिन्दिपालैश्च शूलैश्चैव व्यदारयन् ॥ ४५ ॥

दूसरे बहुत-से भयानक राक्षस जो परकोटेपर चढ़े हुए थे, पृथ्वीपर खड़े हुए वानरोंको भिन्दिपालों और शूलोंसे विदीर्ण करने लगे ॥ ४५ ॥

वानराश्चापि संक्रुद्धाः प्राकारस्थान् महीं गताः ।
राक्षसान् पातयामासुः खमाप्लुत्य स्वबाहुभिः॥ ४६ ॥

तब पृथ्वीपर खड़े हुए वानर भी अत्यन्त कुपित हो उठे और आकाशमें उछलकर परकोटेपर बैठे हुए राक्षसोंको अपनी बाँहोंसे पकड़-पकड़कर गिराने लगे ॥ ४६ ॥

स सम्प्रहारस्तुमुलो मांसशोणितकर्दमः ।
रक्षसां वानराणां च सम्बभूवाद्भुतोपमः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार राक्षसों और वानरोंमें बड़ा ही अद्भुत घमासान युद्ध हुआ, जिससे वहाँ रक्त और मांसकी कीच जम गयी ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें बयालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः

द्वन्द्वयुद्धमें वानरोंद्वारा राक्षसोंकी पराजय

युध्यतां तु ततस्तेषां वानराणां महात्मनाम् ।
रक्षसां सम्बभूवाथ बलरोषः सुदारुणः ॥ १ ॥

तदनन्तर परस्पर युद्ध करते हुए महामना वानरों और राक्षसोंको एक दूसरेकी सेनाको देखकर बड़ा भयंकर रोष हुआ ॥ १ ॥

ते हयैः काञ्चनापीडैर्गजैश्चाग्निशिखोपमैः ।
रथैश्चादित्यसंकाशैः कवचैश्च मनोरमैः ॥ २ ॥
निर्ययू राक्षसा वीरा नादयन्तो दिशो दश ।
राक्षसा भीमकर्माणो रावणस्य जयैषिणः ॥ ३ ॥

सोनेके आभूषणोंसे विभूषित घोड़ों, हाथियों, अग्निकी ज्वालाके समान देदीप्यमान रथों तथा सूर्यतुल्य तेजस्वी मनोरम कवचोंसे युक्त वे वीर राक्षस दसों दिशाओंको अपनी गर्जनासे गुँजाते हुए निकले । भयानक कर्म करनेवाले वे सभी निशाचर रावणकी विजय चाहते थे ॥ २-३ ॥

वानराणामपि चमूर्बृहती जयमिच्छताम् ।
अभ्यधावत तां सेनां रक्षसां घोरकर्मणाम् ॥ ४ ॥

भगवान् श्रीरामकी विजय चाहनेवाले वानरोंकी उस विशाल सेनाने भी घोर कर्म करनेवाले राक्षसोंकी सेनापर धावा किया ॥ ४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तेषामन्योन्यमभिधावताम् ।
रक्षसां वानराणां च द्वन्द्वयुद्धमवर्तत ॥ ५ ॥

इसी समय एक दूसरेपर धावा बोलते हुए राक्षसों और वानरोंमें द्वन्द्वयुद्ध छिड़ गया ॥ ५ ॥

अङ्गदेनेन्द्रजित्सार्धं वालिपुत्रेण राक्षसः ।
अयुध्यत महातेजास्त्र्यम्बकेण यथान्धकः ॥ ६ ॥

वालिपुत्र अङ्गदके साथ महातेजस्वी राक्षस इन्द्रजित् उसी तरह भिड़ गया, जैसे त्रिनेत्रधारी महादेवजीके साथ अन्धकासुर लड़ रहा हो ॥ ६ ॥

प्रजङ्घेन च सम्पातिर्नित्यं दुर्धर्षणो रणे ।
जम्बुमालिनमारब्धो हनूमानपि वानरः ॥ ७ ॥

प्रजंघ नामक राक्षसके साथ सदा ही रणदुर्जय वीर सम्पातिने और जम्बुमालीके साथ वानर वीर हनुमान्‌जीने युद्ध आरम्भ किया ॥ ७ ॥

संगतस्तु महाक्रोधो राक्षसो रावणानुजः ।
समरे तीक्ष्णवेगेन शत्रुघ्नेन विभीषणः ॥ ८ ॥

अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए रावणानुज राक्षस विभीषण समराङ्गणमें प्रचण्ड वेगशाली शत्रुघ्नके साथ उलझ गये ॥ ८ ॥

तपनेन गजः सार्धं राक्षसेन महाबलः ।
निकुम्भेन महातेजा नीलोऽपि समयुध्यत ॥ ९ ॥

महाबली गज तपन नामक राक्षसके साथ लड़ने लगे । महातेजस्वी नील भी निकुम्भसे जूझने लगे ॥ ९ ॥

वानरेन्द्रस्तु सुग्रीवः प्रघसेन सुसंगतः ।
संगतः समरे श्रीमान् विरूपाक्षेण लक्ष्मणः ॥ १० ॥

वानरराज सुग्रीव प्रघसके साथ और श्रीमान् लक्ष्मण समरभूमिमें विरूपाक्षके साथ युद्ध करने लगे ॥ १० ॥

अग्निकेतुः सुदुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च राक्षसः ।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च रामेण सह संगताः ॥ ११ ॥

दुर्जय वीर अग्निकेतु, रश्मिकेतु, सुप्तघ्न और यज्ञकोप-- ये सब राक्षस श्रीरामचन्द्रजीके साथ जूझने लगे ॥ ११ ॥

वज्रमुष्टिश्च मैन्देन द्विविदेनाशनिप्रभः ।
राक्षसाभ्यां सुघोराभ्यां कपिमुख्यौ समागतौ ॥ १२ ॥

मैन्दके साथ वज्रमुष्टि और द्विविदके साथ अशनिप्रभ युद्ध करने लगे । इस प्रकार इन दोनों भयानक राक्षसोंके साथ वे दोनों कपिशिरोमणि वीर भिड़े हुए थे ॥ १२ ॥

वीरः प्रतपनो घोरो राक्षसो रणदुर्धरः ।
समरे तीक्ष्णवेगेन नलेन समयुध्यत ॥ १३ ॥

प्रतपन नामसे प्रसिद्ध एक घोर राक्षस था, जिसे रणभूमिमें परास्त करना अत्यन्त कठिन था । वह वीर निशाचर समराङ्गणमें प्रचण्ड वेगशाली नलके साथ युद्ध करने लगा ।१३।

धर्मस्य पुत्रो बलवान् सुषेण इति विश्रुतः ।
स विद्युन्मालिना सार्धमयुध्यत महाकपिः ॥ १४ ॥

धर्मके बलवान् पुत्र महाकपि सुषेण राक्षस विद्युन्मालीके साथ लोहा लेने लगे ॥ १४ ॥

वानराश्चापरे घोरा राक्षसैरपरैः सह ।
द्वन्द्वं समीयुः सहसा युद्ध्वा च बहुभिः सह ॥ १५ ॥

इसी प्रकार अन्यान्य भयानक वानर बहुतोंके साथ युद्ध करनेके पश्चात् दूसरे-दूसरे राक्षसोंके साथ सहसा द्वन्द्वयुद्ध करने लगे ॥ १५ ॥

तत्रासीत् सुमहद् युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ।
रक्षसां वानराणां च वीराणां जयमिच्छताम् ॥ १६ ॥

वहाँ राक्षस और वानरवीर अपनी-अपनी विजय चाहते थे । उनमें बड़ा भयंकर और रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा ॥

हरिराक्षसदेहेभ्यः प्रभूताः केशशाद्वलाः ।
शरीरसंघाटवहाः प्रसुस्रुः शोणितापगाः ॥ १७ ॥

वानरों और राक्षसोंके शरीरोंसे निकलकर बहुत-सी खूनकी नदियाँ बहने लगीं । उनके सिरके बाल ही वहाँ शैवाल (सेवार) के समान जान पड़ते थे । वे नदियाँ सैनिकोंकी लाशरूपी काष्ठसमूहोंको बहाये लिये जाती थीं ॥ १७ ॥

आजघानेन्द्रजित् क्रुद्धो वज्रेणेव शतक्रतुः ।
अङ्गदं गदया वीरं शत्रुसैन्यविदारणम् ॥ १८ ॥

जिस प्रकार इन्द्र वज्रसे प्रहार करते हैं, उसी तरह इन्द्रजित् मेघनादने शत्रुसेनाको विदीर्ण करनेवाले वीर अङ्गदपर गदासे आघात किया ॥१८॥

तस्य काञ्चनचित्राङ्गं रथं साश्वं ससारथिम् ।
जघान गदया श्रीमानङ्गदो वेगवान् हरिः ॥ १९ ॥

किंतु वेगशाली वानर श्रीमान् अङ्गदने उसकी गदा हाथसे पकड़ ली और उसी गदासे इन्द्रजित्के सुवर्णजटित रथको सारथि और घोड़ोंसहित चूर-चूर कर डाला ॥ १९ ॥

सम्पातिस्तु प्रजङ्घेन त्रिभिर्बाणैः समाहतः ।
निजघानाश्वकर्णेन प्रजङ्घं रणमूर्धनि ॥ २० ॥

प्रजङ्घने सम्पातिको तीन बाणोंसे घायल कर दिया । तब सम्पातिने भी अश्वकर्ण नामक वृक्षसे युद्धके मुहानेपर प्रजङ्घको मार डाला ॥ २० ॥

जम्बुमाली रथस्थस्तु रथशक्त्या महाबलः ।
बिभेद समरे क्रुद्धो हनूमन्तं स्तनान्तरे ॥ २१ ॥

महाबली जम्बुमाली रथपर बैठा हुआ था । उसने कुपित होकर समराङ्गणमें एक रथ-शक्तिके द्वारा हनुमान्जीकी छातीपर चोट की ॥ २१ ॥

तस्य तं रथमास्थाय हनूमान् मारुतात्मजः ।
प्रममाथ तलेनाशु सह तेनैव रक्षसा ॥ २२ ॥

परंतु पवननन्दन हनुमान् उछलकर उसके उस रथपर चढ़ गये और तुरंत ही थप्पड़से मारकर उन्होंने उस राक्षसके साथ ही उस रथको भी चौपट कर दिया (जम्बुमाली मर गया) ॥ २२ ॥

नदन् प्रतपनो घोरो नलं सोऽभ्यनुधावत ।
नलः प्रतपनस्याशु पातयामास चक्षुषी ॥ २३ ॥
भिन्नगात्रः शरैस्तीक्ष्णैः क्षिप्रहस्तेन रक्षसा ।

दूसरी ओर भयानक राक्षस प्रतपन भीषण गर्जना करके नलकी ओर दौड़ा । शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले उस राक्षसने अपने तीखे बाणोंसे नलके शरीरको क्षत-विक्षत कर दिया । तब नलने तत्काल ही उसकी दोनों आँखें निकाल लीं ॥२३½॥

ग्रसन्तमिव सैन्यानि प्रघसं वानराधिपः ॥ २४ ॥
सुग्रीवः सप्तपर्णेन निजघान जवेन च ।

उधर राक्षस प्रघस वानरसेनाको कालका ग्रास बना रहा था । यह देख वानरराज सुग्रीवने सप्तपर्णनामक वृक्षसे उसे वेगपूर्वक मार गिराया ॥ २४½ ॥

प्रपीड्य शरवर्षेण राक्षसं भीमदर्शनम् ॥ २५ ॥
निजघान विरूपाक्षं शरेणैकेन लक्ष्मणः ।

लक्ष्मणने पहले बाणोंकी वर्षा करके भयंकर दृष्टिवाले राक्षस विरूपाक्षको बहुत पीड़ा दी । फिर एक बाणसे मारकर उसे मौतके घाट उतार दिया ॥ २५½ ॥

अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च राक्षसः ।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च रामं निर्बिभिदुः शरैः ॥ २६ ॥

अग्निकेतु, दुर्जय रश्मिकेतु, सुप्तघ्न और यज्ञकोप नामक राक्षसोंने श्रीरामचन्द्रजीको अपने बाणोंसे घायल कर दिया ॥

तेषां चतुर्णां रामस्तु शिरांसि समरे शरैः ।
क्रुद्धश्चतुर्भिश्चिच्छेद घोरैरग्निशिखोपमैः ॥ २७ ॥

तब श्रीरामने कुपित हो अग्निशिखाके समान भयंकर बाणोंद्वारा समराङ्गणमें उन चारोंके सिर काट लिये ॥ २७ ॥

वज्रमुष्टिस्तु मैन्देन मुष्टिना निहतो रणे ।
पपात सरथः साश्वः सुराट्ट इव भूतले ॥ २८ ॥

उस युद्धस्थलमें मैन्दने वज्रमुष्टिपर मुक्केका प्रहार किया, जिससे वह रथ और घोड़ोंसहित उसी तरह पृथ्वीपर गिर पड़ा, मानो देवताओंका विमान धराशायी हो गया हो ॥ २८ ॥

निकुम्भस्तु रणे नीलं नीलाञ्जनचयप्रभम् ।
निर्बिभेद शरैस्तीक्ष्णैः करैर्मेघमिवांशुमान् ॥ २९ ॥

निकुम्भने काले कोयलेके समूहकी भाँति नील वर्णवाले नीलको रणक्षेत्रमें अपने पैने बाणोंद्वारा उसी तरह छिन्न-भिन्न कर दिया, जैसे सूर्यदेव अपनी प्रचण्ड किरणोंद्वारा बादलोंको फाड़ देते हैं ॥ २९ ॥

पुनः शरशतेनाथ क्षिप्रहस्तो निशाचरः ।
बिभेद समरे नीलं निकुम्भः प्रजहास च ॥ ३० ॥

परंतु शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले उस निशाचरने समराङ्गणमें नीलको पुनः सौ बाणोंसे घायल कर दिया । ऐसा करके निकुम्भ जोर-जोरसे हँसने लगा ॥ ३० ॥

तस्यैव रथचक्रेण नीलो विष्णुरिवाहवे ।
शिरश्चिच्छेद समरे निकुम्भस्य च सारथेः ॥ ३१ ॥

यह देख नीलने उसीके रथके पहियेसे युद्धस्थलमें निकुम्भ तथा उसके सारथिका उसी तरह सिर काट लिया, जैसे भगवान् विष्णु संग्रामभूमिमें अपने चक्रसे दैत्योंके मस्तक उड़ा देते हैं ॥ ३१ ॥

वज्राशनिसमस्पर्शो द्विविदोऽप्यशनिप्रभम् ।
जघान गिरिशृङ्गेण मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥ ३२ ॥

द्विविदका स्पर्श वज्र और अशनिके समान दुःसह था । उन्होंने सब राक्षसोंके देखते-देखते अशनिप्रभ नामक निशाचरपर एक पर्वतशिखरसे प्रहार किया ॥ ३२ ॥

द्विविदं वानरेन्द्रं तु द्रुमयोधिनमाहवे ।
शरैरशनिसंकाशैः स विव्याधाशनिप्रभः ॥ ३३ ॥

तब अशनिप्रभने युद्धस्थलमें वृक्ष लेकर युद्ध करनेवाले वानरराज द्विविदको वज्रतुल्य तेजस्वी बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ ३३ ॥

स शरैरभिविद्धाङ्गो द्विविदः क्रोधमूर्च्छितः ।
सालेन सरथं साश्वं निजघानाशनिप्रभम् ॥ ३४ ॥

द्विविदका सारा शरीर बाणोंसे क्षत-विक्षत हो गया था, इससे उन्हें बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने एक सालवृक्षसे रथ और घोड़ोंसहित अशनिप्रभको मार गिराया ॥ ३४ ॥

विद्युन्माली रथस्थस्तु शरैः काञ्चनभूषणैः ।
सुषेणं ताडयामास ननाद च मुहुर्मुहुः ॥ ३५ ॥

रथपर बैठे हुए विद्युन्मालीने अपने सुवर्णभूषित बाणोंद्वारा सुषेणको बारंबार घायल किया । फिर वह जोर-जोरसे गर्जना करने लगा ॥ ३५ ॥

तं रथस्थमथो दृष्ट्वा सुषेणो वानरोत्तमः ।
गिरिशृङ्गेण महता रथमाशु न्यपातयत् ॥ ३६ ॥

उसे रथपर बैठा देख वानरशिरोमणि सुषेणने एक विशाल पर्वत-शिखर चलाकर उसके रथको शीघ्र ही चूर-चूर कर डाला ॥ ३६ ॥

लाघवेन तु संयुक्तो विद्युन्माली निशाचरः ।
अपक्रम्य रथात् तूर्णं गदापाणिः क्षितौ स्थितः ॥ ३७ ॥

निशाचर विद्युन्माली तुरंत ही बड़ी फुर्तीके साथ रथसे नीचे कूद पड़ा और हाथमें गदा लेकर पृथ्वीपर खड़ा हो गया ॥ ३७ ॥

ततः क्रोधसमाविष्टः सुषेणो हरिपुङ्गवः ।
शिलां सुमहतीं गृह्य निशाचरमभिद्रवत् ॥ ३८ ॥

तदनन्तर क्रोधसे भरे हुए वानरशिरोमणि सुषेण एक बहुत बड़ी शिला लेकर उस निशाचरकी ओर दौड़े ॥ ३८ ॥

तमापतन्तं गदया विद्युन्माली निशाचरः ।
वक्षस्यभिजघानाशु सुषेणं हरिपुङ्गवम् ॥ ३९ ॥

कपिश्रेष्ठ सुषेणको आक्रमण करते देख निशाचर विद्युन्मालीने तत्काल ही गदासे उनकी छातीपर प्रहार किया ॥ ३९ ॥

गदाप्रहारं तं घोरमचिन्त्य प्लवगोत्तमः ।
तां तूर्णीं पातयामास तस्योरसि महामृधे ॥ ४० ॥

गदाके उस भीषण प्रहारकी कुछ भी परवा न करके वानरप्रवर सुषेणने उसी पहलेवाली शिलाको चुपचाप उठा लिया और उस महासमरमें उसे विद्युन्मालीकी छातीपर दे मारा ॥ ४० ॥

शिलाप्रहाराभिहतो विद्युन्माली निशाचरः ।
निष्पिष्टहृदयो भूमौ गतासुर्निपपात ह ॥ ४१ ॥

शिलाके प्रहारसे घायल हुए निशाचर विद्युन्मालीकी छाती चूर-चूर हो गयी और वह प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४१ ॥

एवं तैर्वानरैः शूरैः शूरास्ते रजनीचराः ।
द्वन्द्वे विमथितास्तत्र दैत्या इव दिवौकसैः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार वे शूरवीर निशाचर शौर्यसम्पन्न वानर वीरोंद्वारा वहाँ द्वन्द्वयुद्धमें उसी तरह कुचल दिये गये जैसे देवताओंद्वारा दैत्य मथ डाले गये थे ॥ ४२ ॥

भल्लैश्चान्यैर्गदाभिश्च शक्तितोमरसायकैः ।
अपविद्धैश्चापि रथैस्तथा सांग्रामिकैर्हयैः ॥ ४३ ॥
निहतैः कुञ्जरैर्मत्तैस्तथा वानरराक्षसैः ।

चक्राक्षयुगदण्डैश्च भग्नैर्धरणिसंश्रितैः ॥ ४४ ॥
बभूवायोधनं घोरं गोमायुगणसेवितम् ।
कबन्धानि समुत्पेतुर्दिक्षु वानररक्षसाम् ।
विमर्दे तुमुले तस्मिन् देवासुररणोपमे ॥ ४५ ॥

उस समय भालों, अन्यान्य बाणों, गदाओं, शक्तियों, तोमरों, सायकों, टूटे और फेंके हुए रथों, फौजी घोड़ों, मरे हुए मतवाले हाथियों, वानरों, राक्षसों, पहियों तथा टूटे हुए जूओंसे, जो धरतीपर बिखरे पड़े थे, वह युद्धभूमि बड़ी भयानक हो रही थी। गीदड़ोंके समुदाय वहाँ सब ओर विचर रहे थे। देवासुर-संग्रामके समान उस भयानक मार-काटमें वानरों और राक्षसोंके कबन्ध (मस्तकरहित धड़) सम्पूर्ण दिशाओंमें उछल रहे थे ॥ ४३-४५ ॥

निहन्यमाना हरिपुङ्गवैस्तदा
निशाचराः शोणितगन्धमूर्च्छिताः ।
पुनः सुयुद्धं तरसा समाश्रिता
दिवाकरस्यास्तमयाभिकाङ्क्षिणः ॥ ४६ ॥

उस समय उन वानरशिरोमणियोंद्वारा मारे जाते हुए निशाचर रक्तकी गन्धसे मतवाले हो रहे थे। वे सूर्यके अस्त होनेकी प्रतीक्षा करते हुए पुनः बड़े वेगसे घमासान युद्धमें तत्पर हो गये* ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः

रातमें वानरों और राक्षसोंका घोर युद्ध, अङ्गदके द्वारा इन्द्रजित्की पराजय, मायासे अदृश्य हुए इन्द्रजित्का नागमय बाणोंद्वारा श्रीराम और लक्ष्मणको बाँधना

युध्यतामेव तेषां तु तदा वानररक्षसाम् ।
रविरस्तं गतो रात्रिः प्रवृत्ता प्राणहारिणी ॥ १ ॥

इस प्रकार उन वानर और राक्षसोंमें युद्ध चल ही रहा था कि सूर्यदेव अस्त हो गये तथा प्राणोंका संहार करनेवाली रात्रिका आगमन हुआ ॥ १ ॥

अन्योन्यं बद्धवैराणां घोराणां जयमिच्छताम् ।
सम्प्रवृत्तं निशायुद्धं तदा वानररक्षसाम् ॥ २ ॥

वानरों और राक्षसोंमें परस्पर वैर बँध गया था। दोनों ही पक्षोंके योद्धा बड़े भयंकर थे तथा अपनी-अपनी विजय चाहते थे; अतः उस समय उनमें रात्रियुद्ध होने लगा ॥ २ ॥

राक्षसोऽसीति हरयो वानरोऽसीति राक्षसाः ।
अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥ ३ ॥

उस दारुण अन्धकारमें वानरलोग अपने विपक्षीसे पूछते थे, क्या तुम राक्षस हो? और राक्षसलोग भी पूछते थे, क्या तुम वानर हो? इस प्रकार पूछ-पूछकर समराङ्गणमें वे एक दूसरेपर प्रहार करते थे ॥ ३ ॥

हत दारय चैहीति कथं विद्रवसीति च ।
एवं सुतुमुलः शब्दस्तस्मिन् सैन्ये तु शुश्रुवे ॥ ४ ॥

सेनामें सब ओर 'मारो, काटो, आओ तो, क्यों भागे जाते हो'—ये भयंकर शब्द सुनायी दे रहे थे ॥ ४ ॥

कालाः काञ्चनसंनाहास्तस्मिंस्तमसि राक्षसाः ।
सम्प्रदृश्यन्त शैलेन्द्रा दीप्तौषधिवना इव ॥ ५ ॥

काले-काले राक्षस सुवर्णमय कवचोंसे विभूषित होकर उस अन्धकारमें ऐसे दिखायी देते थे, मानो चमकती हुई ओषधियोंके वनसे युक्त काले पहाड़ हों ॥ ५ ॥

तस्मिंस्तमसि दुष्पारे राक्षसाः क्रोधमूर्च्छिताः ।
परिपेतुर्महावेगा भक्षयन्तः प्लवङ्गमान् ॥ ६ ॥

उस अन्धकारसे पार पाना कठिन हो रहा था। उसमें क्रोधसे अधीर हुए महान् वेगशाली राक्षस वानरोंको खाते हुए उनपर सब ओरसे टूट पड़े ॥ ६ ॥

ते हयान् काञ्चनापीडान् ध्वजांश्चाशीविषोपमान् ।
आप्लुत्य दशनैस्तीक्ष्णैर्भीमकोपा व्यदारयन् ॥ ७ ॥

तब वानरोंका कोप बड़ा भयानक हो उठा। वे उछल-उछलकर अपने तीखे दाँतोंद्वारा सुनहरे साजसे सजे हुए राक्षस-दलके घोड़ोंको और विषधर सर्पोंके समान दिखायी देनेवाले उनके ध्वजोंको भी विदीर्ण कर देते थे ॥ ७ ॥

वानरा बलिनो युद्धेऽक्षोभयन् राक्षसीं चमूम् ।
कुञ्जरान् कुञ्जरारोहान् पताकाध्वजिनो रथान् ॥ ८ ॥
चकर्षुश्च ददंशुश्च दशनैः क्रोधमूर्च्छिताः ।

बलवान् वानरोंने युद्धमें राक्षस-सेनाके भीतर हलचल मचा दी। वे सब-के-सब क्रोधसे पागल हो रहे थे; अतः हाथियों एवं हाथीसवारोंको तथा ध्वजा-पताकासे सुशोभित

---

* सूर्यास्तके बाद प्रदोषकालसे लेकर पूरी रातभर राक्षसोंका बल अधिक बढ़ा होता है, इसीलिये वे सूर्यास्त होनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

रथोंको भी खींच लेते और दाँतोंसे काट-काटकर क्षत-विक्षत कर देते थे ॥ ८½ ॥

लक्ष्मणश्चापि रामश्च शरैराशीविषोपमैः ॥ ९ ॥
दृश्यादृश्यानि रक्षांसि प्रवराणि निजघ्नतुः ।

बड़े-बड़े राक्षस कभी प्रकट होकर युद्ध करते थे और कभी अदृश्य हो जाते थे; परंतु श्रीराम और लक्ष्मण विषधर सर्पोंके समान अपने बाणोंद्वारा दृश्य और अदृश्य सभी राक्षसोंको मार डालते थे ॥ ९½ ॥

तुरंगखुरविध्वस्तं रथनेमिसमुत्थितम् ॥ १० ॥
रुरोध कर्णनेत्राणि युध्यतां धरणीरजः ।

घोड़ोंकी टापसे चूर्ण होकर रथके पहियोंसे उड़ायी हुई धरतीकी धूल योद्धाओंके कान और नेत्र बंद कर देती थी ॥

वर्तमाने तथा घोरे संग्रामे लोमहर्षणे ।
रुधिरौघा महाघोरा नद्यस्तत्र विसुस्रुवुः ॥ ११ ॥

इस प्रकार रोमाञ्चकारी भयंकर संग्रामके छिड़ जानेपर वहाँ रक्तके प्रवाहको बहानेवाली खूनकी बड़ी भयंकर नदियाँ बहने लगीं ॥ ११ ॥

ततो भेरीमृदङ्गानां पणवानां च निःस्वनः ।
शङ्खनेमिस्वनोन्मिश्रः सम्बभूवाद्भुतोपमः ॥ १२ ॥

तदनन्तर भेरी, मृदङ्ग और पणव आदि बाजोंकी ध्वनि होने लगी, जो शङ्खोंके शब्द तथा रथके पहियोंकी घर्घराहटसे मिलकर बड़ी अद्भुत जान पड़ती थी ॥ १२ ॥

हतानां स्तनमानानां राक्षसानां च निःस्वनः ।
शस्तानां वानराणां च सम्बभूवात्र दारुणः ॥ १३ ॥

घायल होकर कराहते हुए राक्षसों और शस्त्रोंसे क्षत-विक्षत हुए वानरोंका आर्तनाद वहाँ बड़ा भयंकर प्रतीत होता था ॥ १३ ॥

हतैर्वानरमुख्यैश्च शक्तिशूलपरश्वधैः ।
निहतैः पर्वताकारै राक्षसैः कामरूपिभिः ॥ १४ ॥
शस्त्रपुष्पोपहारा च तत्रासीद् युद्धमेदिनी ।
दुर्ज्ञेया दुर्निवेशा च शोणितास्रावकर्दमा ॥ १५ ॥

शक्ति, शूल और फरसोंसे मारे गये मुख्य-मुख्य वानरों तथा वानरोंद्वारा कालके गालमें डाले गये इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ पर्वताकार राक्षसोंसे उपलक्षित उस युद्धभूमिमें रक्तके प्रवाहसे कीच हो गयी थी । उसे पहचानना कठिन हो रहा था तथा वहाँ ठहरना तो और मुश्किल हो गया था । ऐसा जान पड़ता था उस भूमिको शस्त्ररूपी पुष्पोंका उपहार अर्पित किया गया है ॥ १४-१५ ॥

सा बभूव निशा घोरा हरिराक्षसहारिणी ।
कालरात्रीव भूतानां सर्वेषां दुरतिक्रमा ॥ १६ ॥

वानरों और राक्षसोंका संहार करनेवाली वह भयंकर रजनी कालरात्रिके समान समस्त प्राणियोंके लिये दुर्लङ्घ्य हो गयी थी ॥ १६ ॥

ततस्ते राक्षसास्तत्र तस्मिंस्तमसि दारुणे ।
राममेवाभ्यवर्तन्त संहृष्टाः शरवृष्टिभिः ॥ १७ ॥

तदनन्तर उस दारुण अन्धकारमें वहाँ वे सब राक्षस हर्ष और उत्साहमें भरकर बाणोंकी वर्षा करते हुए श्रीरामपर ही धावा करने लगे ॥ १७ ॥

तेषामापततां शब्दः क्रुद्धानामपि गर्जताम् ।
उद्वर्त इव सप्तानां समुद्राणामभूत् स्वनः ॥ १८ ॥

उस समय कुपित हो गर्जना करते हुए उन आक्रमणकारी राक्षसोंका शब्द प्रलयके समय सातों समुद्रोंके महान् कोलाहल-सा जान पड़ता था ॥ १८ ॥

तेषां रामः शरैः षड्भिः षड् जघान निशाचरान् ।
निमेषान्तरमात्रेण शरैरग्निशिखोपमैः ॥ १९ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने पलक मारते-मारते अग्निज्वालाके समान छः भयानक बाणोंसे निम्नाङ्कित छः निशाचरोंको घायल कर दिया ॥ १९ ॥

यज्ञशत्रुश्च दुर्धर्षो महापार्श्वमहोदरौ ।
वज्रदंष्ट्रो महाकायस्तौ चोभौ शुकसारणौ ॥ २० ॥

उनके नाम इस प्रकार हैं—दुर्धर्ष वीर यज्ञशत्रु, महापार्श्व, महोदर, महाकाय, वज्रदंष्ट्र तथा वे दोनों शुक और सारण ॥

ते तु रामेण बाणौघैः सर्वमर्मसु ताडिताः ।
युद्धादपसृतास्तत्र सावशेषायुषोऽभवन् ॥ २१ ॥

श्रीरामके बाणसमूहोंसे सारे मर्मस्थानोंमें चोट पहुँचनेके कारण वे छहों राक्षस युद्ध छोड़कर भाग गये; इसीलिये उनकी आयु शेष रह गयी—जान बच गयी ॥ २१ ॥

निमेषान्तरमात्रेण घोरैरग्निशिखोपमैः ।
दिशश्चकार विमलाः प्रदिशश्च महारथः ॥ २२ ॥

महारथी श्रीरामने अग्नि-शिखाके समान प्रज्वलित भयंकर बाणोंद्वारा पलक मारते-मारते सम्पूर्ण दिशाओं और उनके कोणोंको निर्मल (प्रकाशपूर्ण) कर दिया ॥ २२ ॥

ये त्वन्ये राक्षसा वीरा रामस्याभिमुखे स्थिताः ।
तेऽपि नष्टाः समासाद्य पतङ्गा इव पावकम् ॥ २३ ॥

दूसरे भी जो-जो राक्षसवीर श्रीरामके सामने खड़े थे, वे भी उसी प्रकार नष्ट हो गये, जैसे आगमें पड़कर पतिंगे जल जाते हैं ॥ २३ ॥

सुवर्णपुङ्खैर्विशिखैः सम्पतद्भिः समन्ततः ।
बभूव रजनी चित्रा खद्योतैरिव शारदी ॥ २४ ॥

चारों ओर सुवर्णमय पङ्खवाले बाण गिर रहे थे । उनकी

प्रभासे वह रजनी जुगुनुओंसे विचित्र दिखायी देनेवाली शरद् ऋतुकी रात्रिके समान अद्भुत प्रतीत होती थी ॥ २४॥

राक्षसानां च निनदैर्भेरीणां चैव निःस्वनैः ।
सा बभूव निशा घोरा भूयो घोरतराभवत् ॥ २५ ॥

राक्षसोंके सिंहनादों और भेरियोंकी आवाजोंसे वह भयानक रात्रि और भी भयंकर हो उठी थी ॥ २५ ॥

तेन शब्देन महता प्रवृद्धेन समन्ततः ।
त्रिकूटः कंदराकीर्णः प्रव्याहरदिवाचलः ॥ २६ ॥

सब ओर फैले हुए उस महान् शब्दसे प्रतिध्वनित हो कन्दराओंसे व्याप्त त्रिकूट पर्वत मानो किसीकी बातका उत्तर देता-सा जान पड़ता था ॥ २६ ॥

गोलाङ्गूला महाकायास्तमसा तुल्यवर्चसः ।
सम्परिष्वज्य बाहुभ्यां भक्षयन् रजनीचरान् ॥ २७ ॥

लंगूर जातिके विशालकाय वानर जो अन्धकारके समान काले थे, निशाचरोंको दोनों भुजाओंमें कसकर मार डालते और उन्हें कुत्ते आदिको खिला देते थे ॥ २७ ॥

अङ्गदस्तु रणे शत्रून् निहन्तुं समुपस्थितः ।
रावणिं निजघानाशु सारथिं च हयानपि ॥ २८ ॥

दूसरी ओर अङ्गद रणभूमिमें शत्रुओंका संहार करनेके लिये आगे बढ़े । उन्होंने रावणपुत्र इन्द्रजित्को घायल कर दिया तथा उसके सारथि और घोड़ोंको भी यमलोक पहुँचा दिया ॥ २८ ॥

इन्द्रजित् तु रथं त्यक्त्वा हताश्वो हतसारथिः ।
अङ्गदेन महायस्तस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ २९ ॥

अङ्गदके द्वारा घोड़े और सारथिके मारे जानेपर महान् कष्टमें पड़ा हुआ इन्द्रजित् रथको छोड़कर वहीं अन्तर्धान हो गया ॥ २९ ॥

तत् कर्म वालिपुत्रस्य सर्वे देवाः सहर्षिभिः ।
तुष्टुवुः पूजनार्हस्य तौ चोभौ रामलक्ष्मणौ ॥ ३० ॥

प्रशंसाके योग्य वालिकुमार अङ्गदके उस पराक्रमकी ऋषियोंसहित देवताओं तथा दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणने भी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ३० ॥

प्रभावं सर्वभूतानि विदुरिन्द्रजितो युधि ।
ततस्ते तं महात्मानं दृष्ट्वा तुष्टाः प्रधर्षितम् ॥ ३१ ॥

सम्पूर्ण प्राणी युद्धमें इन्द्रजित्के प्रभावको जानते थे; अतः अङ्गदके द्वारा उसको पराजित हुआ देख उन महात्मा अङ्गदपर दृष्टिपात करके सबको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ३१ ॥

ततः प्रहृष्टाः कपयः ससुग्रीवविभीषणाः ।
साधुसाध्विति नेदुश्च दृष्ट्वा शत्रुं पराजितम् ॥ ३२ ॥

शत्रुको पराजित हुआ देख सुग्रीव और विभीषणसहित सब वानर बड़े प्रसन्न हुए और अङ्गदको साधुवाद देने लगे ॥

इन्द्रजित् तु तदानेन निर्जितो भीमकर्मणा ।
संयुगे वालिपुत्रेण क्रोधं चक्रे सुदारुणम् ॥ ३३ ॥

युद्धस्थलमें भयानक कर्म करनेवाले वालिपुत्र अङ्गदसे पराजित होकर इन्द्रजित्ने बड़ा भयकर क्रोध प्रकट किया ॥ ३३ ॥

सोऽन्तर्धानगतः पापो रावणी रणकर्शितः ।
ब्रह्मदत्तवरो वीरो रावणिः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ३४ ॥
अदृश्यो निशितान् बाणान् मुमोचाशनिवर्चसः ।

रावणकुमार वीर इन्द्रजित् ब्रह्माजीसे वर प्राप्त कर चुका था । युद्धमें अधिक कष्ट पानेके कारण वह पापी रावणपुत्र क्रोधसे अचेत-सा हो रहा था; अतः अन्तर्धान-विद्याका आश्रय ले अदृश्य हो उसने वज्रके समान तेजस्वी और तीखे बाण बरसाने आरम्भ किये ॥ ३४½ ॥

रामं च लक्ष्मणं चैव घोरैर्नागमयैः शरैः ॥ ३५ ॥
बिभेद समरे क्रुद्धः सर्वगात्रेषु राक्षसः ।

समराङ्गणमें कुपित हुए इन्द्रजित्ने घोर सर्पमय बाणोंद्वारा श्रीराम और लक्ष्मणको घायल कर दिया । वे दोनों रघुवंशी बन्धु अपने सभी अङ्गोंमें चोट खाकर क्षत-विक्षत हो रहे थे ॥ ३५½ ॥

मायया संवृतस्तत्र मोहयन् राघवौ युधि ॥ ३६ ॥
अदृश्यः सर्वभूतानां कूटयोधी निशाचरः ।
बबन्ध शरबन्धेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ३७ ॥

मायासे आवृत हो समस्त प्राणियोंके लिये अदृश्य होकर वहाँ कूटयुद्ध करनेवाले उस निशाचरने युद्धस्थलमें दोनों रघुवंशी बन्धु श्रीराम और लक्ष्मणको मोहमें डालते हुए उन्हें सर्पाकार बाणोंके बन्धनमें बाँध लिया ॥ ३६-३७ ॥

तौ तेन पुरुषव्याघ्रौ क्रुद्धेनाशीविषैः शरैः ।
सहसाभिहतौ वीरौ तदा प्रेक्षन्त वानराः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार क्रोधसे भरे हुए इन्द्रजित्ने उन दोनों पुरुषप्रवर वीरोंको सहसा सर्पाकार बाणोंद्वारा बाँध लिया । उस समय वानरोंने उन्हें नागपाशमें बद्ध देखा ॥ ३८ ॥

प्रकाशरूपस्तु यदा न शक्त-
स्तौ बाधितुं राक्षसराजपुत्रः ।
मायां प्रयोक्तुं समुपाजगाम
बबन्ध तौ राजसुतौ दुरात्मा ॥ ३९ ॥

प्रकटरूपसे युद्ध करते समय जब राक्षसराजकुमार इन्द्रजित् उन दोनों राजकुमारोंको बाधा देनेमें समर्थ न हो सका, तब उनपर मायाका प्रयोग करनेको उतारू हो गया और उन दोनों भाइयोंको उस दुरात्माने बाँध लिया ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चौवालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः

इन्द्रजित्के बाणोंसे श्रीराम और लक्ष्मणका अचेत होना और वानरोंका शोक करना

स तस्य गतिमन्विच्छन् राजपुत्रः प्रतापवान् ।
दिदेशातिबलो रामो दश वानरयूथपान् ॥ १ ॥

तदनन्तर अत्यन्त बलशाली प्रतापी राजकुमार श्रीरामने इन्द्रजित्का पता लगानेके लिये दस वामर-यूथपतियोंको आज्ञा दी ॥ १ ॥

द्वौ सुषेणस्य दायादौ नीलं च प्लवगाधिपम् ।
अङ्गदं वालिपुत्रं च शरभं च तरस्विनम् ॥ २ ॥
द्विविदं च हनूमन्तं सानुप्रस्थं महाबलम् ।
ऋषभं चर्षभस्कन्धमादिदेश परंतपः ॥ ३ ॥

उनमें दो तो सुषेणके पुत्र थे और शेष आठ वानरराज नील, वालिपुत्र अङ्गद, वेगशाली वानर शरभ, द्विविद, हनुमान्, महाबली सानुप्रस्थ, ऋषभ तथा ऋषभस्कन्ध थे। शत्रुओंको संताप देनेवाले इन दसोंको उसका अनुसंधान करनेके लिये आज्ञा दी ॥ २-३ ॥

ते सम्प्रहृष्टा हरयो भीमानुद्यम्य पादपान् ।
आकाशं विविशुः सर्वे मार्गमाणा दिशो दश ॥ ४ ॥

तब वे सभी वानर भयंकर वृक्ष उठाकर दसों दिशाओंमें खोजते हुए बड़े हर्षके साथ आकाशमार्गसे चले ॥ ४ ॥

तेषां वेगवतां वेगमिषुभिर्वेगवत्तरैः ।
अस्त्रवित् परमास्त्रैस्तु वारयामास रावणिः ॥ ५ ॥

किंतु अस्त्रोंके ज्ञाता रावणकुमार इन्द्रजित्ने अत्यन्त वेगशाली बाणोंकी वर्षा करके अपने उत्तम अस्त्रोंद्वारा उन वेगवान् वानरोंके वेगको रोक दिया ॥ ५ ॥

तं भीमवेगा हरयो नाराचैः क्षतविक्षताः ।
अन्धकारे न ददृशुर्मेघैः सूर्यमिवावृतम् ॥ ६ ॥

बाणोंसे क्षत-विक्षत हो जानेपर भी वे भयानक वेगशाली वानर अन्धकारमें मेघोंसे ढके हुए सूर्यकी भाँति इन्द्रजित्को न देख सके ॥ ६ ॥

रामलक्ष्मणयोरेव सर्वदेहभिदः शरान् ।
भृशमावेशयामास रावणिः समितिंजयः ॥ ७ ॥

तत्पश्चात् युद्धविजयी रावणपुत्र इन्द्रजित् फिर श्रीराम और लक्ष्मणपर ही उनके सम्पूर्ण अङ्गोंको विदीर्ण करनेवाले बाणोंकी बारंबार वर्षा करने लगा ॥ ७ ॥

निरन्तरशरीरौ तु तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
क्रुद्धेनेन्द्रजिता वीरौ पन्नगैः शरतां गतैः ॥ ८ ॥

कुपित हुए इन्द्रजित्ने उन दोनों वीर श्रीराम और लक्ष्मणको बाणरूपधारी सर्पोंद्वारा इस तरह बींधा कि उनके शरीरमें थोड़ा-सा भी ऐसा स्थान नहीं रह गया, जहाँ बाण न लगे हों ॥ ८ ॥

तयोः क्षतजमार्गेण सुस्राव रुधिरं बहु ।
तावुभौ च प्रकाशेते पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ९ ॥

उन दोनोंके अङ्गोंमें जो घाव हो गये थे, उनके मार्गसे बहुत रक्त बहने लगा। उस समय वे दोनों भाई खिले हुए दो पलाश वृक्षोंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ९ ॥

ततः पर्यन्तरक्ताक्षो भिन्नाञ्जनचयोपमः ।
रावणिर्भ्रातरौ वाक्यमन्तर्धानगतोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

इसी समय जिसके नेत्रप्रान्त कुछ लाल थे और शरीर खानसे काटकर निकाले गये कोयलोंके ढेरकी भाँति काला था, वह रावणकुमार इन्द्रजित् अन्तर्धान-अवस्थामें ही उन दोनों भाइयोंसे इस प्रकार बोला—॥ १० ॥

युध्यमानमनालक्ष्यं शक्रोऽपि त्रिदशेश्वरः ।
द्रष्टुमासादितुं वापि न शक्तः किं पुनर्युवाम् ॥ ११ ॥

'युद्धके समय अलक्ष्य हो जानेपर तो मुझे देवराज इन्द्र भी नहीं देख या पा सकता; फिर तुम दोनोंकी क्या बिसात है ? ॥ ११ ॥

प्रापिताविषुजालेन राघवौ कङ्कपत्रिणा ।
एष रोषपरीतात्मा नयामि यमसादनम् ॥ १२ ॥

'मैंने तुम दोनों रघुवंशियोंको कंकपत्रयुक्त बाणके जालमें फँसा लिया है। अब रोषसे भरकर मैं अभी तुम दोनोंको यमलोक भेजे देता हूँ' ॥ १२ ॥

एवमुक्त्वा तु धर्मज्ञौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
निर्बिभेद शितैर्बाणैः प्रजहर्ष ननाद च ॥ १३ ॥

ऐसा कहकर वह धर्मके ज्ञाता दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणको पैने बाणोंसे बींधने लगा और हर्षका अनुभव करते हुए जोर-जोरसे गर्जना करने लगा ॥ १३ ॥

भिन्नाञ्जनचयश्यामो विस्फार्य विपुलं धनुः ।
भूय एव शरान् घोरान् विससर्ज महामृधे ॥ १४ ॥

कटे-छटे कोयलेकी राशिके समान काला इन्द्रजित् फिर अपने विशाल धनुषको फैलाकर उस महासमरमें घोर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १४ ॥

ततो मर्मसु मर्मज्ञो मज्जयन् निशिताञ्शरान् ।
रामलक्ष्मणयोर्वीरो ननाद च मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥

मर्मस्थलको जाननेवाला वह वीर श्रीराम और लक्ष्मणके मर्मस्थानोंमें अपने पैने बाणोंको डुबोता हुआ बारंबार गर्जना करने लगा ॥ १५ ॥

बद्धौ तु शरबन्धेन तावुभौ रणमूर्धनि।
निमेषान्तरमात्रेण न शेकतुरवेक्षितुम् ॥ १६ ॥

युद्धके मुहानेपर बाणके बन्धनसे बँधे हुए वे दोनों बन्धु पलक मारते-मारते ऐसी दशाको पहुँच गये कि उनमें आँख उठाकर देखनेकी भी शक्ति नहीं रह गयी (वास्तवमें यह उनकी मनुष्यताका नाट्य करनेवाली लीलामात्र थी। वे तो कालके भी काल हैं। उन्हें कौन बाँध सकता था ?)॥ १६ ॥

ततो विभिन्नसर्वाङ्गौ शरशल्याचितौ कृतौ।
ध्वजाविव महेन्द्रस्य रज्जुमुक्तौ प्रकम्पितौ ॥ १७ ॥

इस प्रकार उनके सारे अङ्ग बिंध गये थे। बाणोंसे व्याप्त हो गये थे। वे रस्सीसे मुक्त हुए देवराज इन्द्रके दो ध्वजोंके समान कम्पित होने लगे॥ १७ ॥

तौ सम्प्रचलितौ वीरौ मर्मभेदेन कर्शितौ।
निपेततुर्महेष्वासौ जगत्यां जगतीपती ॥ १८ ॥

वे महान् धनुर्धर वीर भूपाल मर्मस्थलके भेदनसे विचलित एवं कृशकाय हो पृथ्वीपर गिर पड़े॥ १८ ॥

तौ वीरशयने वीरौ शयानौ रुधिरोक्षितौ।
शरवेष्टितसर्वाङ्गावार्तौ परमपीडितौ ॥ १९ ॥

युद्धभूमिमें वीरशय्यापर सोये हुए वे दोनों वीर रक्तसे नहा उठे थे। उनके सारे अङ्गोंमें बाणरूपधारी नाग लिपटे हुए थे तथा वे अत्यन्त पीड़ित एवं व्यथित हो रहे थे॥१९॥

नह्यविद्धं तयोर्गात्रे बभूवाङ्गुलमन्तरम्।
नानिर्विण्णं न चाध्वस्तमाकराग्रादजिह्मगैः ॥ २० ॥

उनके शरीरमें एक अङ्गुल भी जगह ऐसी नहीं थी, जो बाणोंसे बिंधी न हो तथा हाथोंके अग्रभागतक कोई भी अङ्ग ऐसा नहीं था, जो बाणोंसे विदीर्ण अथवा क्षुब्ध न हुआ हो॥ २० ॥

तौ तु क्रूरेण निहतौ रक्षसा कामरूपिणा।
असृक्सुस्रुवतुस्तीव्रं जलं प्रस्रवणाविव ॥ २१ ॥

जैसे झरने जल गिराते रहते हैं, उसी प्रकार वे दोनों भाई इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले उस क्रूर राक्षसके बाणोंसे घायल हो तीव्र वेगसे रक्तकी धारा बहा रहे थे॥ २१ ॥

पपात प्रथमं रामो विद्धो मर्मसु मार्गणैः। ✓
क्रोधादिन्द्रजिता येन पुरा शक्रो विनिर्जितः ॥ २२ ॥

जिसने पूर्वकालमें इन्द्रको परास्त किया था, उस इन्द्रजित्के क्रोधपूर्वक चलाये हुए बाणोंद्वारा मर्मस्थलमें आहत होनेके कारण पहले श्रीराम ही धराशायी हुए॥ २२ ॥

रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैः रजोगतिभिराशुगैः।
नाराचैरर्धनाराचैर्भल्लैरञ्जलिकैरपि ।
विव्याध वत्सदन्तैश्च सिंहदंष्ट्रैः क्षुरैस्तथा ॥ २३ ॥

इन्द्रजित्ने उन्हें सोनेके पंख, स्वच्छ अग्रभाग और धूलके समान गतिवाले (अर्थात् धूलकी भाँति छिद्ररहित स्थानमें भी प्रवेश करनेवाले) शीघ्रगामी नाराच[1], अर्धनाराच[2], भल्ल[3], अञ्जलिक[4], वत्सदन्त[5], सिंहदंष्ट्र[6] और क्षुर[7] जातिके बाणोंद्वारा घायल कर दिया था॥ २३ ॥

स वीरशयने शिश्ये विज्यमाविध्य कार्मुकम्।
भिन्नमुष्टिपरीणाहं त्रिनतं रुक्मभूषितम् ॥ २४ ॥

जिसकी प्रत्यञ्चा चढ़ी हुई थी, किंतु मुट्ठीका बन्धन ढीला पड़ गया था, जो दोनों पार्श्वभाग और मध्यभाग तीनों स्थानोंमें झुका हुआ तथा सुवर्णसे भूषित था, उस धनुषको त्यागकर भगवान् श्रीराम वीरशय्यापर सोये हुए थे॥

बाणपातान्तरे रामं पतितं पुरुषर्षभम्।
स तत्र लक्ष्मणो दृष्ट्वा निराशो जीवितेऽभवत् ॥ २५ ॥

फेंका हुआ बाण जितनी दूरीपर गिरता है, अपनेसे उतनी ही दूरीपर धरतीपर पड़े हुए पुरुषप्रवर श्रीरामको देखकर लक्ष्मण वहाँ अपने जीवनसे निराश हो गये॥ २५ ॥

रामं कमलपत्राक्षं शरण्यं रणतोषिणम्।
शुशोच भ्रातरं दृष्ट्वा पतितं धरणीतले ॥ २६ ॥

सबको शरण देनेवाले और युद्धसे संतुष्ट होनेवाले अपने भाई कमलनयन श्रीरामको पृथ्वीपर पड़ा देख लक्ष्मणको बड़ा शोक हुआ॥ २६ ॥

हरयश्चापि तं दृष्ट्वा संतापं परमं गताः।
शोकार्ताश्चुक्रुशुर्घोरमश्रुपूरितलोचनाः ॥ २७ ॥

उन्हें उस अवस्थामें देखकर वानरोंको भी बड़ा संताप हुआ। वे शोकसे आतुर हो नेत्रोंमें आँसू भरकर घोर आर्तनाद करने लगे॥ २७ ॥

बद्धौ तु तौ वीरशये शयानौ
ते वानराः सम्परिवार्य तस्थुः।
समागता वायुसुतप्रमुख्या
विषादमार्ताः परमं च जग्मुः ॥ २८ ॥

---

[1] जिसका अग्रभाग सीधा और गोल हो, उस बाणको 'नाराच' कहते हैं। [2] अर्धभागमें नाराचकी समानता रखनेवाले बाण 'अर्धनाराच' कहलाते हैं। [3] जिनका अग्रभाग फरसेके समान हो, उस बाणकी 'भल्ल' संज्ञा है। आधुनिक भालेको भी भल्ल कहते हैं [4] जिसका मुखभाग दोनों हाथोंकी अञ्जलिके समान हो, वह बाण 'अञ्जलिक' कहा गया है। [5] जिसका अग्रभाग बछड़ेके दाँतोंके समान दिखायी देता हो, उस बाणकी 'वत्सदन्त' संज्ञा होती है। [6] सिंहकी दाढ़के समान अग्रभागवाला बाण। [7] जिसका अग्रभाग क्षुरेकी धारके समान हो, उस बाणको 'क्षुर' कहते हैं।

नागपाशमें बँधकर वीरशय्यापर सोये हुए उन दोनों भाइयोंको चारों ओरसे घेरकर सब वानर खड़े हो गये । वहाँ आये हुए हनुमान् आदि मुख्य-मुख्य वानर व्यथित हो बड़े विषादमें पड़ गये ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः

श्रीराम और लक्ष्मणको मूर्छित देख वानरोंका शोक, इन्द्रजित्‌का हर्षोद्गार, विभीषणका सुग्रीवको समझाना, इन्द्रजित्‌का लङ्कामें जाकर पिताको शत्रुवधका वृत्तान्त बताना और प्रसन्न हुए रावणके द्वारा अपने पुत्रका अभिनन्दन

ततो द्यां पृथिवीं चैव वीक्षमाणा वनौकसः ।
ददृशुः संततौ बाणैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ १ ॥

तदनन्तर जब उपर्युक्त दस वानर पृथ्वी और आकाशकी छानबीन करके लौटे, तब उन्होंने दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणको बाणोंसे बिंधा हुआ देखा ॥ १ ॥

वृष्ट्वेवोपरते देवे कृतकर्मणि राक्षसे ।
आजगामाथ तं देशं ससुग्रीवो विभीषणः ॥ २ ॥

जैसे वर्षा करके देवराज इन्द्र शान्त हो गये हों, उसी प्रकार वह राक्षस इन्द्रजित् जब अपना काम बनाकर बाणवर्षासे विरत हो गया, तब सुग्रीवसहित विभीषण भी उस स्थानपर आये ॥ २ ॥

नीलश्च द्विविदो मैन्दः सुषेणः कुमुदोऽङ्गदः ।
तूर्णं हनुमता सार्धमन्वशोचन्त राघवौ ॥ ३ ॥

हनुमान्‌जीके साथ नील, द्विविद, मैन्द, सुषेण, कुमुद और अङ्गद तुरंत ही श्रीरघुनाथजीके लिये शोक करने लगे ।३।

अचेष्टौ मन्दनिःश्वासौ शोणितेन परिप्लुतौ ।
शरजालाचितौ स्तब्धौ शयानौ शरतल्पगौ ॥ ४ ॥

उस समय वे दोनों भाई खूनसे लथपथ होकर बाणशय्यापर पड़े थे । बाणोंसे उनका सारा शरीर व्याप्त हो रहा था । वे निश्चल होकर धीरे-धीरे साँस ले रहे थे । उनकी चेष्टाएँ बंद हो गयी थीं ॥ ४ ॥

निःश्वसन्तौ यथा सर्पौ निश्चेष्टौ मन्दविक्रमौ ।
रुधिरस्रावदिग्धाङ्गौ तपनीयाविव ध्वजौ ॥ ५ ॥

सर्पोंके समान साँस खींचते और निश्चेष्ट पड़े हुए उन दोनों भाइयोंका पराक्रम मन्द हो गया था । उनके सारे अङ्ग रक्त बहाकर उसीमें सन गये थे । वे दोनों टूटकर गिरे हुए दो सुवर्णमय ध्वजोंके समान जान पड़ते थे ॥ ५ ॥

तौ वीरशयने वीरौ शयानौ मन्दचेष्टितौ ।
यूथपैः स्वैः परिवृतौ बाष्पव्याकुललोचनैः ॥ ६ ॥

वीरशय्यापर सोये हुए मन्द चेष्टावाले वे दोनों वीर आँसू भरे नेत्रोंवाले अपने यूथपतियोंसे घिरे हुए थे ॥ ६ ॥

राघवौ पतितौ दृष्ट्वा शरजालसमन्वितौ ।
बभूवुर्व्यथिताः सर्वे वानराः सविभीषणाः ॥ ७ ॥

बाणोंके जालसे आवृत होकर पृथ्वीपर पड़े हुए उन दोनों रघुवंशी बन्धुओंको देखकर विभीषणसहित सब वानर व्यथित हो उठे ॥ ७ ॥

अन्तरिक्षं निरीक्षन्तो दिशः सर्वाश्च वानराः ।
न चैनं मायया छन्नं ददृशू रावणिं रणे ॥ ८ ॥

समस्त वानर सम्पूर्ण दिशाओं और आकाशमें बारंबार दृष्टिपात करनेपर भी मायाच्छन्न रावणकुमार इन्द्रजित्‌को रणभूमिमें नहीं देख पाते थे ॥ ८ ॥

तं तु मायाप्रतिच्छन्नं माययैव विभीषणः ।
वीक्षमाणो ददर्शाग्रे भ्रातुः पुत्रमवस्थितम् ।
तमप्रतिमकर्माणमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥ ९ ॥

तब विभीषणने मायासे ही देखना आरम्भ किया । उस समय उन्होंने मायासे ही छिपे हुए अपने उस भतीजेको सामने खड़ा देखा, जिसके कर्म अनुपम थे और युद्धस्थलमें जिसका सामना करनेवाला कोई योद्धा नहीं था ॥ ९ ॥

ददर्शान्तर्हितं वीर वरदानाद् विभीषणः ।
तेजसा यशसा चैव विक्रमेण च संयुतः ॥ १० ॥

तेज, यश और पराक्रमसे युक्त विभीषणने मायाके द्वारा ही वरदानके प्रभावसे छिपे हुए वीर इन्द्रजित्‌को देख लिया ॥ १० ॥

इन्द्रजित् त्वात्मनः कर्म तौ शयानौ समीक्ष्य च ।
उवाच परमप्रीतो हर्षयन् सर्वराक्षसान् ॥ ११ ॥

श्रीराम और लक्ष्मणको युद्धभूमिमें सोते देख इन्द्रजित्‌को बड़ी प्रसन्नता हुई । उसने समस्त राक्षसोंका हर्ष बढ़ाते हुए अपने पराक्रमका वर्णन आरम्भ किया— ॥ ११ ॥

दूषणस्य च हन्तारौ खरस्य च महाबलौ ।
सादितौ मामकैर्बाणैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ १२ ॥

'वह देखो, जिन्होंने खर और दूषणका वध किया था, वे दोनों भाई महाबली श्रीराम और लक्ष्मण मेरे बाणोंसे मारे गये ॥ १२ ॥

नेमौ मोक्षयितुं शक्यावेतस्मादिषुबन्धनात् ।
सर्वैरपि समागम्य सर्षिसङ्घैः सुरासुरैः ॥ १३ ॥

'यदि सारे मुनिसमूहोंसहित समस्त देवता और असुर भी आ जायँ तो वे इस बाण-बन्धनसे इन दोनोंको छुटकारा नहीं दिला सकते ॥ १३ ॥

यत्कृते चिन्तयानस्य शोकार्तस्य पितुर्मम ।
अस्पृष्ट्वा शयनं गात्रैस्त्रियामा याति शर्वरी ॥ १४ ॥
कृत्स्नेयं यत्कृते लङ्का नदी वर्षास्विवाकुला ।
सोऽयं मूलहरोऽनर्थः सर्वेषां शमितो मया ॥ १५ ॥

'जिसके कारण चिन्ता और शोकसे पीड़ित हुए मेरे पिताको सारी रात शय्याका स्पर्श किये बिना ही बितानी पड़ती थी तथा जिसके कारण यह सारी लङ्का वर्षाकालमें नदीकी भाँति व्याकुल रहा करती थी, हम सबकी जड़को काटनेवाले उस अनर्थको आज मैंने शान्त कर दिया ॥ १४-१५ ॥

रामस्य लक्ष्मणस्यैव सर्वेषां च वनौकसाम् ।
विक्रमा निष्फलाः सर्वे यथा शरदि तोयदाः ॥ १६ ॥

'जैसे शरद्ऋतुके सारे बादल पानी न बरसानेके कारण व्यर्थ होते हैं, उसी प्रकार श्रीराम, लक्ष्मण और सम्पूर्ण वानरोंके सारे बल-विक्रम निष्फल हो गये' ॥ १६ ॥

एवमुक्त्वा तु तान् सर्वान् राक्षसान् परिपश्यतः ।
यूथपानपि तान् सर्वांस्ताडयत् स च रावणिः ॥ १७ ॥

अपनी ओर देखते हुए उन सब राक्षसोंसे ऐसा कहकर रावणकुमार इन्द्रजित्‌ने वानरोंके उन समस्त सुप्रसिद्ध यूथपतियोंको भी मारना आरम्भ किया ॥ १७ ॥

नीलं नवभिराहत्य मैन्दं सद्विविदं तथा ।
त्रिभिस्त्रिभिरमित्रघ्नस्तताप परमेषुभिः ॥ १८ ॥

उस शत्रुसूदन निशाचर वीरने नीलको नौ बाणोंसे घायल करके मैन्द और द्विविदको तीन-तीन उत्तम सायकोंद्वारा मारकर संतप्त कर दिया ॥ १८ ॥

जाम्बवन्तं महेष्वासो विद्ध्वा बाणेन वक्षसि ।
हनूमतो वेगवतो विससर्ज शरान् दश ॥ १९ ॥

महाधनुर्धर इन्द्रजित्‌ने जाम्बवान्‌की छातीमें एक बाणसे गहरी चोट पहुँचाकर वेगशाली हनुमान्‌जीको भी दस बाण मारे ॥ १९ ॥

गवाक्षं शरभं चैव तावप्यमितविक्रमौ ।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां महावेगो विव्याध युधि रावणिः ॥ २० ॥

रावणकुमारका वेग उस समय बहुत बढ़ा हुआ था। उसने युद्धस्थलमें अमित पराक्रमी गवाक्ष और शरभको भी दो-दो बाण मारकर घायल कर दिया ॥ २० ॥

गोलाङ्गूलेश्वरं चैव वालिपुत्रमथाङ्गदम् ।
विव्याध बहुभिर्बाणैस्त्वरमाणोऽथ रावणिः ॥ २१ ॥

तदनन्तर बड़ी उतावलीके साथ बाण चलाते हुए रावणकुमार इन्द्रजित्‌ने पुनः बहुसंख्यक बाणोंद्वारा लंगूरोंके राजा (गवाक्ष) को और वालिपुत्र अङ्गदको भी गहरी चोट पहुँचायी ॥ २१ ॥

तान् वानरवरान् भित्त्वा शरैरग्निशिखोपमैः ।
ननाद बलवांस्तत्र महासत्त्वः स रावणिः ॥ २२ ॥

इस प्रकार अग्नितुल्य तेजस्वी सायकोंसे उन मुख्य-मुख्य वानरोंको घायल करके महान् धैर्यशाली और बलवान् रावणकुमार वहाँ जोर-जोरसे गर्जना करने लगा ॥ २२ ॥

तानर्दयित्वा बाणौघैस्त्रासयित्वा च वानरान् ।
प्रजहास महाबाहुर्वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २३ ॥

अपने बाणसमूहोंसे उन वानरोंको पीड़ित तथा भयभीत करके महाबाहु इन्द्रजित् अट्टहास करने लगा और इस प्रकार बोला—॥ २३ ॥

शरबन्धेन घोरेण मया बद्धौ चमूमुखे ।
सहितौ भ्रातरावेतौ निशामयत राक्षसाः ॥ २४ ॥

'राक्षसो ! देख लो, मैंने युद्धके मुहानेपर भयंकर बाणोंके पाशसे इन दोनों भाइयों श्रीराम और लक्ष्मणको एक साथ ही बाँध लिया है' ॥ २४ ॥

एवमुक्तास्तु ते सर्वे राक्षसाः कूटयोधिनः ।
परं विस्मयमापन्नाः कर्मणा तेन हर्षिताः ॥ २५ ॥

इन्द्रजित्‌के ऐसा कहनेपर कूट-युद्ध करनेवाले वे सब राक्षस बड़े चकित हुए और उसके उस कर्मसे उन्हें बड़ा हर्ष भी हुआ ॥ २५ ॥

विनेदुश्च महानादान् सर्वे ते जलदोपमाः ।
हतो राम इति ज्ञात्वा रावणिं समपूजयन् ॥ २६ ॥

वे सब-के-सब मेघोंके समान गम्भीर स्वरसे महान् सिंहनाद करने लगे तथा यह समझकर कि श्रीराम मारे गये, उन्होंने रावणकुमारका बड़ा अभिनन्दन किया ॥ २६ ॥

निष्पन्दौ तु तदा दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
वसुधायां निरुच्छ्वासौ हतावित्यन्वमन्यत ॥ २७ ॥

इन्द्रजित्‌ने भी जब यह देखा कि श्रीराम और लक्ष्मण—दोनों भाई पृथ्वीपर निश्चेष्ट पड़े हैं तथा उनका श्वास भी नहीं चल रहा है, तब उन दोनोंको मरा हुआ ही समझा ॥ २७ ॥

हर्षेण तु समाविष्ट इन्द्रजित् समितिञ्जयः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां हर्षयन् सर्वनैर्ऋतान् ॥ २८ ॥

इससे युद्धविजयी इन्द्रजित्को बड़ा हर्ष हुआ तथा वह समस्त राक्षसोंका हर्ष बढ़ाता हुआ लङ्कापुरीमें चला गया ॥ २८ ॥

रामलक्ष्मणयोर्दृष्ट्वा शरीरे सायकैश्चिते ।
सर्वाणि चाङ्गोपाङ्गानि सुग्रीवं भयमाविशत् ॥ २९ ॥

श्रीराम और लक्ष्मणके शरीरों तथा सभी अङ्ग-उपाङ्गोंको बाणोंसे व्याप्त देख सुग्रीवके मनमें भय समा गया ॥ २९ ॥

तमुवाच परित्रस्तं वानरेन्द्रं विभीषणः ।
सबाष्पवदनं दीनं शोकव्याकुललोचनम् ॥ ३० ॥
अलं त्रासेन सुग्रीव बाष्पवेगो निगृह्यताम् ।

उनके मुखपर दीनता छा गयी, आँसुओंकी धारा बह चली और नेत्र शोकसे व्याकुल हो उठे । उस समय अत्यन्त भयभीत हुए वानरराजसे विभीषणने कहा—'सुग्रीव ! डरो मत। डरनेसे कोई लाभ नहीं । आँसुओंका यह वेग रोको ३०½

एवंप्रायाणि युद्धानि विजयो नास्ति नैष्ठिकः ॥ ३१ ॥
सभाग्यशेषतास्माकं यदि वीर भविष्यति ।
मोहमेतौ प्रहास्येते महात्मानौ महाबलौ ॥ ३२ ॥
पर्यवस्थापयात्मानमनाथं मां च वानर ।
सत्यधर्माभिरक्तानां नास्ति मृत्युकृतं भयम् ॥ ३३ ॥

'वीर ! सभी युद्धोंकी प्रायः ऐसी ही स्थिति होती है, उनमें विजय निश्चित नहीं हुआ करती । यदि हमलोगोंका भाग्य शेष होगा तो ये दोनों महाबली महात्मा अवश्य मूर्छा त्याग देंगे । वानरराज ! तुम अपनेको और मुझ अनाथको भी सँभालो । जो लोग सत्य-धर्ममें अनुराग रखते हैं, उन्हें मृत्युका भय नहीं होता है' ॥ ३१—३३ ॥

एवमुक्त्वा ततस्तस्य जलक्लिन्नेन पाणिना ।
सुग्रीवस्य शुभे नेत्रे प्रममार्ज विभीषणः ॥ ३४ ॥

ऐसा कहकर विभीषणने जलसे भीगे हुए हाथसे सुग्रीवके दोनों सुन्दर नेत्र पोंछ दिये ॥ ३४ ॥

ततः सलिलमादाय विद्यया परिजप्य च ।
सुग्रीवनेत्रे धर्मात्मा प्रममार्ज विभीषणः ॥ ३५ ॥

तत्पश्चात् हाथमें जल लेकर उसे मन्त्रपूत करके धर्मात्मा विभीषणने सुग्रीवके नेत्रोंमें लगाया ॥ ३५ ॥

विमृज्य वदनं तस्य कपिराजस्य धीमतः ।
अब्रवीत् कालसम्प्राप्तमसम्भ्रान्तमिदं वचः ॥ ३६ ॥

फिर बुद्धिमान् वानरराजके भीगे हुए मुखको पोंछकर उन्होंने बिना किसी घबराहटके यह समयोचित बात कही—॥ ३६ ॥

न कालः कपिराजेन्द्र वैक्लव्यमवलम्बितुम् ।
अतिस्नेहोऽपि कालेऽस्मिन् मरणायोपकल्पते ॥ ३७ ॥

'वानरसम्राट् ! यह समय घबरानेका नहीं है । ऐसे समयमें अधिक स्नेहका प्रदर्शन भी मौतका भय उपस्थित कर देता है ॥ ३७ ॥

तस्मादुत्सृज्य वैक्लव्यं सर्वकार्यविनाशनम् ।
हितं रामपुरोगाणां सैन्यानामनुचिन्तय ॥ ३८ ॥

'इसलिये सब कामोंको बिगाड़ देनेवाली इस घबराहटको छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी जिनके अगुआ अथवा स्वामी हैं, उन सेनाओंके हितका विचार करो ॥ ३८ ॥

अथ वा रक्ष्यतां रामो यावत्संज्ञाविपर्ययः ।
लब्धसंज्ञौ हि काकुत्स्थौ भयं नौ व्यपनेष्यतः ॥ ३९ ॥

'अथवा जबतक श्रीरामचन्द्रजीको चेत न हो, तबतक इनकी रक्षा करनी चाहिये । होशमें आ जानेपर ये दोनों रघुवंशी वीर हमारा सारा भय दूर कर देंगे ॥ ३९ ॥

नैतत् किंचन रामस्य न च रामो मुमूर्षति ।
नह्येनं हास्यते लक्ष्मीर्दुर्लभा या गतायुषाम् ॥ ४० ॥

'श्रीरामके लिये यह संकट कुछ भी नहीं है । ये मर नहीं सकते हैं; क्योंकि जिनकी आयु समाप्त हो चली है, उनके लिये जो दुर्लभ लक्ष्मी (शोभा) है, वह इनका त्याग नहीं कर रही है ॥ ४० ॥

तस्मादाश्वासयात्मानं बलं चाश्वासय स्वकम् ।
यावत् सैन्यानि सर्वाणि पुनः संस्थापयाम्यहम् ॥ ४१ ॥

'अतः तुम अपनेको सँभालो और अपनी सेनाको आश्वासन दो । तबतक मैं इस घबरायी हुई सेनाको फिरसे धैर्य बँधाकर सुस्थिर करता हूँ ॥ ४१ ॥

एते हि फुल्लनयनास्त्रासादागतसाध्वसाः ।
कर्णे कर्णे प्रकथिता हरयो हरिसत्तम ॥ ४२ ॥

'कपिश्रेष्ठ ! देखो, इन वानरोंके मनमें भय समा गया है, इसीलिये ये आँखें फाड़-फाड़कर देखते हैं और आपसमें कानाफूँसी करते हैं ॥ ४२ ॥

मां तु दृष्ट्वा प्रधावन्तमनीकं सम्प्रहर्षितम् ।
त्यजन्तु हरयस्त्रासं भुक्तपूर्वामिव स्रजम् ॥ ४३ ॥

'(अतः मैं इन्हें आश्वासन देने जाता हूँ) मुझे हर्षपूर्वक इधर-उधर दौड़ते देख और मेरे द्वारा धैर्य बँधायी हुई सेनाको प्रसन्न होती जान ये सभी वानर पहलेकी भोगी हुई मालाकी भाँति अपनी सारी भय-शङ्काको त्याग दें' ॥ ४३ ॥

समाश्वास्य तु सुग्रीवं राक्षसेन्द्रो विभीषणः ।
विद्रुतं वानरानीकं तत् समाश्वासयत् पुनः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार सुग्रीवको आश्वासन दे राक्षसराज विभीषणने भागनेके लिये उद्यत हुई वानर-सेनाको फिरसे सान्त्वना दी ॥ ४४ ॥

इन्द्रजित् तु महामायः सर्वसैन्यसमावृतः ।
विवेश नगरीं लङ्कां पितरं चाभ्युपागमत् ॥ ४५ ॥

इधर महामायावी इन्द्रजित् सारी सेनाके साथ लङ्कापुरीमें लौटा और अपने पिताके पास आया ॥ ४५ ॥

तत्र रावणमासाद्य अभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
आचचक्षे प्रियं पित्रे निहतौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४६ ॥

वहाँ रावणके पास पहुँचकर उसने उसे हाथ जोड़कर प्रणाम किया और श्रीराम-लक्ष्मणके मारे जानेका प्रिय संवाद सुनाया ॥ ४६ ॥

उत्पपात ततो हृष्टः पुत्रं च परिषस्वजे ।
रावणो रक्षसां मध्ये श्रुत्वा शत्रू निपातितौ ॥ ४७ ॥

राक्षसोंके बीचमें अपने दोनों शत्रुओंके मारे जानेका समाचार सुनकर रावण हर्षसे उछल पड़ा और उसने अपने पुत्रको हृदयसे लगा लिया ॥ ४७ ॥

उपाघ्राय च तं मूर्ध्नि पप्रच्छ प्रीतमानसः ।
पृच्छते च यथावृत्तं पित्रे तस्मै न्यवेदयत् ॥ ४८ ॥
यथा तौ शरबन्धेन निश्चेष्टौ निष्प्रभौ कृतौ ॥ ४९ ॥

फिर उसका मस्तक सूँघकर उसने प्रसन्नचित्त होकर उस घटनाका पूरा विवरण पूछा । पूछनेपर इन्द्रजित्‌ने पिताको सारा वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों निवेदन किया और यह बताया कि किस प्रकार बाणोंके बन्धनमें बाँधकर श्रीराम और लक्ष्मणको निश्चेष्ट एवं निस्तेज किया गया है ॥ ४८-४९ ॥

स हर्षवेगानुगतान्तरात्मा
श्रुत्वा गिरं तस्य महारथस्य ।
जहौ ज्वरं दाशरथेः समुत्थं
प्रहृष्टवाचाभिननन्द पुत्रम् ॥ ५० ॥

महारथी इन्द्रजित्‌की उस बातको सुनकर रावणकी अन्तरात्मा हर्षके उद्रेकसे खिल उठी। दशरथनन्दन श्रीरामकी ओरसे जो उसे भय और चिन्ता प्राप्त हुई थी, उसे उसने त्याग दिया और प्रसन्नतापूर्ण वचनोंद्वारा अपने पुत्रका अभिनन्दन किया ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें छियालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः

वानरोंद्वारा श्रीराम और लक्ष्मणकी रक्षा, रावणकी आज्ञासे राक्षसियोंका सीताको पुष्पकविमानद्वारा रणभूमिमें ले जाकर श्रीराम और लक्ष्मणका दर्शन कराना और सीताका दुखी होकर रोना

तस्मिन् प्रविष्टे लङ्कायां कृतार्थे रावणात्मजे ।
राघवं परिवार्याथ ररक्षुर्वानरर्षभाः ॥ १ ॥

रावणकुमार इन्द्रजित् जब अपना काम बनाकर लङ्कामें चला गया, तब सभी श्रेष्ठ वानर श्रीरघुनाथजीको चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षा करने लगे ॥ १ ॥

हनुमानङ्गदो नीलः सुषेणः कुमुदो नलः ।
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ॥ २ ॥
जाम्बवानृषभः स्कन्धो रम्भः शतबलिः पृथुः ।
व्यूढानीकाश्च यत्ताश्च द्रुमानादाय सर्वतः ॥ ३ ॥

हनुमान्, अङ्गद, नील, सुषेण, कुमुद, नल, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, जाम्बवान्, ऋषभ, स्कन्ध, रम्भ, शतबलि और पृथु—ये सब सावधान हो अपनी सेनाकी व्यूहरचना करके हाथोंमें वृक्ष लिये सब ओरसे पहरा देने लगे ॥ २-३ ॥

वीक्षमाणा दिशः सर्वास्तिर्यगूर्ध्वं च वानराः ।
तृणेष्वपि च चेष्टत्सु राक्षसा इति मेनिरे ॥ ४ ॥

वे सब वानर सम्पूर्ण दिशाओंमें ऊपर-नीचे और अगल-बगलमें भी देखते रहते थे तथा तिनकोंके भी हिल जानेपर यही समझते थे कि राक्षस आ गये ॥ ४ ॥

रावणश्चापि संहृष्टो विसृज्येन्द्रजितं सुतम् ।
आजुहाव ततः सीतारक्षणी राक्षसीस्तदा ॥ ५ ॥

उधर हर्षसे भरे हुए रावणने भी अपने पुत्र इन्द्रजित्‌को बिदा करके उस समय सीताजीकी रक्षा करनेवाली राक्षसियोंको बुलवाया ॥ ५ ॥

राक्षस्यस्त्रिजटा चापि शासनात् तमुपस्थिताः ।
ता उवाच ततो हृष्टो राक्षसी राक्षसाधिपः ॥ ६ ॥

आज्ञा पाते ही त्रिजटा तथा अन्य राक्षसियाँ उसके पास आयीं । तब हर्षमें भरे हुए राक्षसराजने उन राक्षसियोंसे कहा—॥ ६ ॥

हताविन्द्रजिताख्यात वैदेह्या रामलक्ष्मणौ ।
पुष्पकं तत्समारोप्य दर्शयध्वं रणे हतौ ॥ ७ ॥

'तुमलोग विदेहकुमारी सीतासे जाकर कहो कि इन्द्रजित्‌ने राम और लक्ष्मणको मार डाला । फिर पुष्पकविमानपर सीताको चढ़ाकर रणभूमिमें ले जाओ और उन मारे गये दोनों बन्धुओंको उसे दिखा दो ॥ ७ ॥

यदाश्रयादवष्टब्धा नेयं मामुपतिष्ठते ।
सोऽस्या भर्ता सह भ्रात्रा निहतो रणमूर्धनि ॥ ८ ॥

'जिसके आश्रयसे गर्वमें भरकर यह मेरे पास नहीं आती थी, वह इसका पति अपने भाईके साथ युद्धके मुहानेपर मारा गया ॥ ८ ॥

निर्विशङ्का निरुद्विग्ना निरपेक्षा च मैथिली ।
मामुपस्थास्यते सीता सर्वाभरणभूषिता ॥ ९ ॥

'अब मिथिलेशकुमारी सीताको उसकी अपेक्षा नहीं रहेगी । वह समस्त आभूषणोंसे विभूषित हो भय और शङ्काको त्यागकर मेरी सेवामें उपस्थित होगी ॥ ९ ॥

अद्य कालवशं प्राप्तं रणे रामं सलक्ष्मणम् ।
अवेक्ष्य विनिवृत्ता सा चान्यां गतिमपश्यती ॥ १० ॥
अनपेक्षा विशालाक्षी मामुपस्थास्यते स्वयम् ।

आज रणभूमिमें कालके अधीन हुए राम और लक्ष्मणको देखकर वह उनकी ओरसे अपना मन हटा लेगी तथा अपने लिये दूसरा कोई आश्रय न देखकर उधरसे निराश हो विशाललोचना सीता स्वयं ही मेरे पास चली आयेगी' ॥ १०½ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा रावणस्य दुरात्मनः ॥ ११ ॥
राक्षस्यस्तास्तथेत्युक्त्वा जग्मुर्वै यत्र पुष्पकम् ।

दुरात्मा रावणकी वह बात सुनकर वे सब राक्षसियाँ 'बहुत अच्छा' कह उस स्थानपर गयीं, जहाँ पुष्पकविमान था ॥ ११½ ॥

ततः पुष्पकमादाय राक्षस्यो रावणाज्ञया ॥ १२ ॥
अशोकवनिकास्थां तां मैथिलीं समुपानयन् ।

रावणकी आज्ञासे उस पुष्पकविमानको वे राक्षसियाँ अशोकवाटिकामें बैठी हुई मिथिलेशकुमारीके पास ले आयीं ॥

तामादाय तु राक्षस्यो भर्तृशोकपराजिताम् ॥ १३ ॥
सीतामारोपयामासुर्विमानं पुष्पकं तदा ।

उन राक्षसियोंने पतिके शोकसे व्याकुल हुई सीताको तत्काल पुष्पकविमानपर चढ़ाया ॥ १३½ ॥

ततः पुष्पकमारोप्य सीतां त्रिजटया सह ॥ १४ ॥
जग्मुर्दर्शयितुं तस्यै राक्षस्यो रामलक्ष्मणौ ।
रावणश्चारयामास पताकाध्वजमालिनीम् ॥ १५ ॥

सीताको पुष्पकविमानपर बिठाकर त्रिजटासहित वे राक्षसियाँ उन्हें राम-लक्ष्मणका दर्शन करानेके लिये चलीं । इस प्रकार रावणने उन्हें ध्वजा-पताकाओंसे अलंकृत लङ्कापुरीके ऊपर विचरण करवाया ॥ १४-१५ ॥

प्राघोषयत हृष्टश्च लङ्कायां राक्षसेश्वरः ।
राघवो लक्ष्मणश्चैव हताविन्द्रजिता रणे ॥ १६ ॥

इधर हर्षसे भरे हुए राक्षसराज रावणने लङ्कामें सर्वत्र यह घोषणा करा दी कि राम और लक्ष्मण रणभूमिमें इन्द्रजित्के हाथसे मारे गये ॥ १६ ॥

विमानेनापि गत्वा तु सीता त्रिजटया सह ।
ददर्श वानराणां तु सर्वं सैन्यं निपातितम् ॥ १७ ॥

त्रिजटाके साथ उस विमानद्वारा वहाँ जाकर सीताने रणभूमिमें जो वानरोंकी सेनाएँ मारी गयी थीं, उन सबको देखा ॥ १७ ॥

प्रहृष्टमनसश्चापि ददर्श पिशिताशनान् ।
वानरांश्चातिदुःखार्तान् रामलक्ष्मणपार्श्वतः ॥ १८ ॥

उन्होंने मांसभक्षी राक्षसोंको तो भीतरसे प्रसन्न देखा और श्रीराम तथा लक्ष्मणके पास खड़े हुए वानरोंको अत्यन्त दुःखसे पीड़ित पाया ॥ १८ ॥

ततः सीता ददर्शोभौ शयानौ शरतल्पगौ ।
लक्ष्मणं चैव रामं च विसंज्ञौ शरपीडितौ ॥ १९ ॥

तदनन्तर सीताने बाणशय्यापर सोये हुए दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणको भी देखा, जो बाणोंसे पीड़ित हो संज्ञाशून्य होकर पड़े थे ॥ १९ ॥

विध्वस्तकवचौ वीरौ विप्रविद्धशरासनौ ।
सायकैश्छिन्नसर्वाङ्गौ शरस्तम्बमयौ क्षितौ ॥ २० ॥

उन दोनों वीरोंके कवच टूट गये थे, धनुष-बाण अलग पड़े थे, सायकोंसे सारे अङ्ग छिद गये थे और वे बाणसमूहोंके बने हुए पुतलोंकी भाँति पृथ्वीपर पड़े थे ॥ २० ॥

तौ दृष्ट्वा भ्रातरौ तत्र प्रवीरौ पुरुषर्षभौ ।
शयानौ पुण्डरीकाक्षौ कुमाराविव पावकी ॥ २१ ॥
शरतल्पगतौ वीरौ तथाभूतौ नरर्षभौ ।
दुःखार्ता करुणं सीता सुभृशं विललाप ह ॥ २२ ॥

जो प्रमुख वीर और समस्त पुरुषोंमें उत्तम थे, वे दोनों भाई कमलनयन राम और लक्ष्मण अग्निपुत्र कुमार शाख और विशाखकी भाँति शरसमूहमें सो रहे थे । उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंको उस अवस्थामें बाणशय्यापर पड़ा देख दुःखसे पीड़ित हुई सीता करुणाजनक स्वरमें जोर-जोरसे विलाप करने लगीं ॥ २१–२२ ॥

भर्तारमनवद्याङ्गी लक्ष्मणं चासितेक्षणा ।
प्रेक्ष्य पांसुषु चेष्टन्तौ रुरोद जनकात्मजा ॥ २३ ॥

निर्दोष अङ्गोंवाली श्यामलोचना जनकनन्दिनी सीता अपने पति श्रीराम और देवर लक्ष्मणको धूलमें लोटते देख फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ २३ ॥

सबाष्पशोकाभिहता समीक्ष्य
तौ भ्रातरौ देवसुतप्रभावौ ।
वितर्कयन्ती निधनं तयोः सा
दुःखान्विता वाक्यमिदं जगाद ॥ २४ ॥

उनके नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे और हृदय शोकके

आघातसे पीड़ित था। देवताओंके तुल्य प्रभावशाली उन दोनों भाइयोंको उस अवस्थामें देखकर उनके मरणकी आशङ्का करती हुई वे दुःख एवं चिन्तामें डूब गयीं और इस प्रकार बोलीं॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

* * *

अष्टचत्वारिंशः सर्गः

सीताका विलाप और त्रिजटाका उन्हें समझा-बुझाकर श्रीराम-लक्ष्मणके जीवित होनेका विश्वास दिलाकर पुनः लङ्कामें ही लौटा लाना

भर्तारं निहतं दृष्ट्वा लक्ष्मणं च महाबलम्।
विललाप भृशं सीता करुणं शोककर्शिता ॥ १ ॥

अपने स्वामी श्रीरामको तथा महाबली लक्ष्मणको भी मारा गया देख शोकसे पीड़ित हुई सीता बारंबार करुणाजनक विलाप करने लगीं—॥ १ ॥

ऊचुर्लाक्षणिका ये मां पुत्रिण्यविधवेति च।
तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ २ ॥

'सामुद्रिक लक्षणोंके ज्ञाता विद्वानोंने मुझे पुत्रवती और सधवा बताया था। आज श्रीरामके मारे जानेसे वे सब लक्षण-ज्ञानी पुरुष असत्यवादी हो गये ॥ २ ॥

यज्वनो महिषीं ये मामूचुः पत्नीं च सत्रिणः।
तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ३ ॥

'जिन्होंने मुझे यज्ञपरायण तथा विविध सत्रोंका सचालन करनेवाले राजाधिराजकी पत्नी बताया था, आज श्रीरामके मारे जानेसे वे सभी लक्षणवेत्ता पुरुष झूठे हो गये ॥ ३ ॥

वीरपार्थिवपत्नीनां ये विदुर्भर्तृपूजिताम्।
तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ४ ॥

'जिन लोगोंने लक्षणोंद्वारा मुझे वीर राजाओंकी पत्नियोंमें पूजनीय और पतिके द्वारा सम्मानित समझा था, आज श्रीरामके न रहनेसे वे सभी लक्षणज्ञ पुरुष मिथ्यावादी हो गये ॥ ४ ॥

ऊचुः संश्रवणे ये मां द्विजाः कार्तान्तिकाः शुभाम्।
तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ५ ॥

'ज्योतिषशास्त्रके सिद्धान्तको जाननेवाले जिन ब्राह्मणोंने मेरे सामने ही मुझे नित्य मङ्गलमयी कहा था, वे सभी लक्षणवेत्ता पुरुष आज श्रीरामके मारे जानेपर असत्यवादी सिद्ध हो गये ॥ ५ ॥

इमानि खलु पद्मानि पादयोर्वै कुलस्त्रियः।
आधिराज्येऽभिषिच्यन्ते नरेन्द्रैः पतिभिः सह ॥ ६ ॥

'जिन लक्षणभूत कमलोंके हाथ-पैर आदिमें होनेपर कुलवती स्त्रियाँ अपने पति राजाधिराजके साथ सम्राज्ञीके पदपर अभिषिक्त होती हैं, वे मेरे दोनों पैरोंमें निश्चित रूपसे विद्यमान हैं ॥ ६ ॥

वैधव्यं यान्ति यैर्नार्योऽलक्षणैर्भाग्यदुर्लभाः।
नात्मनस्तानि पश्यामि पश्यन्ती हतलक्षणा ॥ ७ ॥

'जिन अशुभ लक्षणोंके कारण सौभाग्य दुर्लभ होता है और स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं, मैं बहुत देखनेपर भी अपने अङ्गोंमें ऐसे लक्षणोंको नहीं देख पाती, तथापि मेरे सारे शुभ लक्षण निष्फल हो गये ॥ ७ ॥

सत्यनामानि पद्मानि स्त्रीणामुक्तानि लक्षणैः।
तान्यद्य निहते रामे वितथानि भवन्ति मे ॥ ८ ॥

'स्त्रियोंके हाथ-पैरोंमें जो कमलके चिह्न होते हैं, उन्हें लक्षणवेत्ता विद्वानोंने अमोघ बताया है; किंतु आज श्रीरामके मारे जानेसे वे सारे शुभ लक्षण मेरे लिये व्यर्थ हो गये ॥ ८ ॥

केशाः सूक्ष्माः समा नीला भ्रुवौ चासंहते मम।
वृत्ते चारोमके जङ्घे दन्ताश्चाविरला मम ॥ ९ ॥

'मेरे सिरके बाल महान, बराबर और काले हैं। भौंहें परस्पर जुड़ी हुई नहीं हैं। मेरी पिंडलियाँ (घुटनोंसे नीचेके भाग) गोल-गोल तथा रोमरहित हैं तथा मेरे दाँत भी परस्पर सटे हुए हैं ॥ ९ ॥

शङ्खे नेत्रे करौ पादौ गुल्फावूरू समौ चितौ।
अनुवृत्तनखाः स्निग्धाः समाश्चाङ्गुलयो मम ॥ १० ॥

'मेरे नेत्रोंके आसपासके भाग, दोनों नेत्र, दोनों हाथ, दोनों पैर, दोनों गुल्फ (टखने) और जाँघें बराबर, विशाल एवं मांसल (पुष्ट) हैं। दोनों हाथोंकी अँगुलियाँ बराबर एवं चिकनी हैं और उनके नख गोल एवं उतार-चढ़ाववाले हैं ॥ १० ॥

स्तनौ चाविरलौ पीनौ मामकौ मग्नचूचुकौ।
मग्ना चोत्सेधनी नाभिः पार्श्वोरस्कं च मे चितम् ॥ ११ ॥

'मेरे दोनों स्तन परस्पर सटे हुए और स्थूल हैं। इनके अग्रभाग भीतरकी ओर दबे हुए हैं। मेरी नाभि

गहरी और उसके आसपासके भाग ऊँचे हैं। मेरे पार्श्वभाग तथा छाती मांसल हैं ॥ ११ ॥

मम वर्णो मणिनिभो मृदून्यङ्गरुहाणि च।
प्रतिष्ठितां द्वादशभिर्मामूचुः शुभलक्षणाम् ॥ १२ ॥

'मेरी अङ्गकान्ति खरादी हुई मणिके समान उज्ज्वल है। शरीरके रोएँ कोमल हैं तथा पैरोंकी दसों अँगुलियाँ और दोनों तलवे—ये बारहों पृथ्वीसे अच्छी तरह सट जाते हैं। इन सबके कारण लक्षणज्ञोंने मुझे शुभलक्षणा बताया था ॥

समग्रयवमच्छिद्रं पाणिपादं च वर्णवत्।
मन्दस्मितेत्येव च मां कन्यालाक्षणिका विदुः ॥ १३ ॥

'मेरे हाथ-पैर लाल एवं उत्तम कान्तिसे युक्त हैं। उनमें जौकी समूची रेखाएँ हैं तथा मेरे हाथोंकी अँगुलियाँ जब परस्पर सटी होती हैं, उस समय उनमें तनिक भी छिद्र नहीं रह जाता है। कन्याके शुभलक्षणोंको जाननेवाले विद्वानोंने मुझे मन्द-मुस्कानवाली बताया था ॥ १३ ॥

आधिराज्येऽभिषेको मे ब्राह्मणैः पतिना सह।
कृतान्तकुशलैरुक्तं तत् सर्वं वितथीकृतम् ॥ १४ ॥

'ज्योतिषके सिद्धान्तको जाननेवाले निपुण ब्राह्मणोंने यह बताया था कि मेरा पतिके साथ राज्याभिषेक होगा, किंतु आज वे सारी बातें झूठी हो गयीं ॥ १४ ॥

शोधयित्वा जनस्थानं प्रवृत्तिमुपलभ्य च।
तीर्त्वा सागरमक्षोभ्यं भ्रातरौ गोष्पदे हतौ ॥ १५ ॥

'इन दोनों भाइयोंने मेरे लिये जनस्थानको छान डाला तथा मेरा समाचार पाकर अक्षोभ्य समुद्रको पार किया, किंतु हाय! इतना सब कर लेनेके बाद थोड़ी-सी राक्षससेनाके द्वारा जिसे हराना इनके लिये गोपदको लाँघनेके समान था, वे दोनों मारे गये ॥ १५ ॥

ननु वारुणमाग्नेयमैन्द्रं वायव्यमेव च।
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव राघवौ प्रत्यपद्यत ॥ १६ ॥

'परंतु ये दोनों रघुवंशी बन्धु तो वारुण, आग्नेय, ऐन्द्र, वायव्य और ब्रह्मशिर आदि अस्त्रोंको भी जानते थे। मरनेसे पहले इन्होंने उन अस्त्रोंका प्रयोग क्यों नहीं किया? ॥

अदृश्यमानेन रणे मायया वासवोपमौ।
मम नाथावनाथाया निहतौ रामलक्ष्मणौ ॥ १७ ॥

'मुझ अनाथाके रक्षक श्रीराम और लक्ष्मण इन्द्रतुल्य पराक्रमी थे, किंतु इन्द्रजित्ने स्वयं मायासे अदृश्य रहकर ही इन्हें रणभूमिमें मार डाला है ॥ १७ ॥

नहि दृष्टिपथं प्राप्य राघवस्य रणे रिपुः।
जीवन् प्रतिनिवर्तेत यद्यपि स्यान्मनोजवः ॥ १८ ॥

'अन्यथा युद्धस्थलमें इन श्रीरघुनाथजीके दृष्टिपथमें आकर कोई भी शत्रु, वह मनके समान वेगशाली क्यों न हो, जीवित नहीं लौट सकता था ॥ १८ ॥

न कालस्यातिभारोऽस्ति कृतान्तश्च सुदुर्जयः।
यत्र रामः सह भ्रात्रा शेते युधि निपातितः ॥ १९ ॥

'परंतु कालके लिये कुछ भी अधिक बोझ नहीं है (वह सब कुछ कर सकता है)। उसके लिये दैवको भी जीतना विशेष कठिन नहीं है। इस कालके ही वशमें पड़कर आज श्रीराम अपने भाईके साथ मारे जाकर युद्धभूमिमें सो रहे हैं ॥ १९ ॥

न शोचामि तथा रामं लक्ष्मणं च महारथम्।
नात्मानं जननीं चापि यथा श्वश्रूं तपस्विनीम् ॥ २० ॥
सा तु चिन्तयते नित्यं समाप्तव्रतमागतम्।
कदा द्रक्ष्यामि सीतां च लक्ष्मणं च सराघवम् ॥ २१ ॥

'मैं श्रीराम, महारथी लक्ष्मण, अपने और अपनी माताके लिये भी उतना शोक नहीं करती हूँ जितना अपनी तपस्विनी सासुजीके लिये कर रही हूँ। वे तो प्रतिदिन यही सोचती होंगी कि वह दिन कब आयेगा जब कि वनवासका व्रत समाप्त करके वनसे लौटे हुए श्रीराम, लक्ष्मण और सीताको मैं देखूँगी' ॥ २०-२१ ॥

परिदेवयमानां तां राक्षसी त्रिजटाब्रवीत्।
मा विषादं कृथा देवि भर्तायं तव जीवति ॥ २२ ॥

इस प्रकार विलाप करती हुई सीतासे राक्षसी त्रिजटाने कहा—'देवि! विषाद न करो। तुम्हारे ये पतिदेव जीवित हैं ॥ २२ ॥

कारणानि च वक्ष्यामि महान्ति सदृशानि च।
यथेमौ जीवतो देवि भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ २३ ॥

'देवि! मैं तुम्हें कई ऐसे महान् और उचित कारण बताऊँगी, जिनसे यह सूचित होता है कि ये दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण जीवित हैं ॥ २३ ॥

नहि कोपपरीतानि हर्षपर्युत्सुकानि च।
भवन्ति युधि योधानां मुखानि निहते पतौ ॥ २४ ॥

'युद्धमें स्वामीके मारे जानेपर योद्धाओंके मुँह क्रोध और हर्षकी उत्सुकतासे युक्त नहीं रहते (किंतु यहाँ वे दोनों बातें पायी जाती हैं। इसलिये ये दोनों जीवित हैं) ॥ २४ ॥

इदं विमानं वैदेहि पुष्पकं नाम नामतः।
दिव्यं त्वां धारयेन्नेदं यद्येतौ गतजीवितौ ॥ २५ ॥

'विदेहनन्दिनि! यह पुष्पक नामक विमान दिव्य है। यदि इन दोनोंके प्राण चले गये होते तो (वैधव्यावस्थामें) यह तुम्हें धारण न करता ॥ २५ ॥

हतवीरप्रधाना हि गतोत्साहा निरुद्यमा।
सेना भ्रमति संख्येषु हतकर्णेव नौर्जले ॥ २६ ॥

इयं पुनरसम्भ्रान्ता निरुद्विग्ना तपस्विनि ।
सेना रक्षति काकुत्स्थौ मया प्रीत्या निवेदितौ ॥ २७ ॥

'इसके सिवा जब प्रधान वीर मारा जाता है, तब उसकी सेना उत्साह और उद्योगसे हीन हो युद्धस्थलमें उसी तरह मारी मारी फिरती है, जैसे कर्णधारके नष्ट हो जानेपर नौका जलमें ही बहती रहती है । परंतु तपस्विनि ! इस सेनामें किसी प्रकारकी घबराहट या उद्वेग नहीं है । यह इन दोनों राजकुमारोंकी रक्षा कर रही है । इस प्रकार मैंने प्रेमपूर्वक तुम्हें यह बताया है कि ये दोनों भाई जीवित हैं ॥ २६-२७ ॥

सा त्वं भव सुविस्रब्धा अनुमानैः सुखोदयैः ।
अहतौ पश्य काकुत्स्थौ स्नेहादेतद् ब्रवीमि ते ॥ २८ ॥

'इसलिये अब तुम इन भावी सुखकी सूचना देनेवाले अनुमानों (हेतुओं) से निश्चिन्त हो जाओ—विश्वास करो कि ये जीवित हैं । तुम इन दोनों रघुवंशी राजकुमारोंको इसी रूपमें देखो कि ये मारे नहीं गये हैं । यह बात मैं तुमसे स्नेहवश कह रही हूँ ॥ २८ ॥

अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्यामि मैथिलि । ✓
चारित्रसुखशीलत्वात् प्रविष्टासि मनो मम ॥ २९ ॥

'मिथिलेशकुमारी ! तुम्हारा शील-स्वभाव तुम्हारे निर्मल चरित्रके कारण बड़ा सुखदायक जान पड़ता है, इसीलिये तुम मेरे मनमें घर कर गयी हो । अतएव मैंने तुमसे न तो पहले कभी झूठ कहा है और न आगे ही कहूँगी ॥ २९ ॥

नेमौ शक्यौ रणे जेतुं सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।
तादृशं दर्शनं दृष्ट्वा मया चोदीरितं तव ॥ ३० ॥

'इन दोनों वीरोंको रणभूमिमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर भी नहीं जीत सकते । वैसा लक्षण देखकर ही मैंने तुमसे ये बातें कही हैं ॥ ३० ॥

इदं तु सुमहच्चित्रं शरैः पश्यस्व मैथिलि । ✓
विसंज्ञौ पतितावेतौ नैव लक्ष्मीर्विमुञ्चति ॥ ३१ ॥

'मिथिलेशकुमारी ! यह महान् आश्चर्यकी बात तो देखो । बाणोंके लगनेसे ये अचेत होकर पड़े हैं तो भी लक्ष्मी (शरीरकी सहज कान्ति) इनका त्याग नहीं कर रही है ॥ ३१ ॥

प्रायेण गतसत्त्वानां पुरुषाणां गतायुषाम् ।
दृश्यमानेषु वक्त्रेषु परं भवति वैकृतम् ॥ ३२ ॥ ✓

'जिनके प्राण निकल जाते हैं अथवा जिनकी आयु समाप्त हो जाती है, उनके मुखोंपर यदि दृष्टिपात किया जाय तो प्रायः वहाँ बड़ी विकृति दिखायी देती है (इन दोनोंके मुखोंकी शोभा ज्यों-की-त्यों बनी हुई है; इसलिये ये जीवित हैं) ॥ ३२ ॥

त्यज शोकं च दुःखं च मोहं च जनकात्मजे ।
रामलक्ष्मणयोरर्थे नाद्य शक्यमजीवितुम् ॥ ३३ ॥

'जनककिशोरी ! तुम श्रीराम और लक्ष्मणके लिये शोक, दुःख और मोह त्याग दो । ये अब मर नहीं सकते' ॥ ३३ ॥

श्रुत्वा तु वचनं तस्याः सीता सुरसुतोपमा ।
कृताञ्जलिरुवाचेमामेवमस्त्विति मैथिली ॥ ३४ ॥

त्रिजटाकी यह बात सुनकर देवकन्याके समान सुन्दरी मिथिलेशकुमारी सीताने हाथ जोड़कर उससे कहा—'बहिन ! ऐसा ही हो' ॥ ३४ ॥

विमानं पुष्पकं तत्तु संनिवर्त्य मनोजवम् ।
दीना त्रिजटया सीता लङ्कामेव प्रवेशिता ॥ ३५ ॥

फिर मनके समान वेगवाले पुष्पकविमानको लौटाकर त्रिजटा दुःखिनी सीताको लङ्कापुरीमें ही ले आयी ॥ ३५ ॥

ततस्त्रिजटया सार्धं पुष्पकादवरुह्य सा ।
अशोकवनिकामेव राक्षसीभिः प्रवेशिता ॥ ३६ ॥

तत्पश्चात् त्रिजटाके साथ विमानसे उतरनेपर राक्षसियोंने उन्हें पुनः अशोकवाटिकामें ही पहुँचा दिया ॥ ३६ ॥

प्रविश्य सीता बहुवृक्षखण्डां
तां राक्षसेन्द्रस्य विहारभूमिम् ।
सम्प्रेक्ष्य संचिन्त्य च राजपुत्रौ
परं विषादं समुपाजगाम ॥ ३७ ॥

बहुसंख्यक वृक्षसमूहोंसे सुशोभित राक्षसराजकी उस विहारभूमिमें पहुँचकर सीताने उसे देखा और उन दोनों राजकुमारोंका चिन्तन करके वे महान् शोकमें डूब गयीं ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें अड़तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

* * *

एकोनपञ्चाशः सर्गः

श्रीरामका सचेत होकर लक्ष्मणके लिये विलाप करना और स्वयं प्राणत्यागका विचार करके वानरोंको लौट जानेकी आज्ञा देना

घोरेण शरबन्धेन बद्धौ दशरथात्मजौ ।
निःश्वसन्तौ यथा नागौ शयानौ रुधिरोक्षितौ ॥ १ ॥

दशरथकुमार श्रीराम और लक्ष्मण भयंकर सर्पाकार बाणके बन्धनमें बँधे हुए-से पड़े थे । वे लहूलुहान हो रहे थे

और फुफकारते हुए सर्पोंके समान साँस ले रहे थे ॥ १ ॥

सर्वे ते वानरश्रेष्ठाः ससुग्रीवमहाबलाः ।
परिवार्य महात्मानौ तस्थुः शोकपरिप्लुताः ॥ २ ॥

उन दोनों महात्माओंको चारों ओरसे घेरकर सुग्रीव आदि सभी श्रेष्ठ महाबली वानर शोकमें डूबे खड़े थे ॥ २ ॥

✓ **एतस्मिन्नन्तरे रामः प्रत्यबुध्यत वीर्यवान् ।**
स्थिरत्वात् सत्त्वयोगाच्च शरैः संदानितोऽपि सन् ॥ ३ ॥

इसी बीचमें पराक्रमी श्रीराम नागपाशसे बँधे होनेपर भी अपने शरीरकी दृढ़ता और शक्तिमत्ताके कारण मूर्छासे जाग उठे ॥ ३ ॥

ततो दृष्ट्वा सरुधिरं निषण्णं गाढमर्पितम् ।
भ्रातरं दीनवदनं पर्यदेवयदातुरः ॥ ४ ॥

उन्होंने देखा कि भाई लक्ष्मण बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर खूनसे लथपथ हुए पड़े हैं और उनका चेहरा बहुत उतर गया है; अतः वे आतुर होकर विलाप करने लगे—॥ ४ ॥

किं नु मे सीतया कार्यं लब्धया जीवितेन वा ।
शयानं योऽद्य पश्यामि भ्रातरं युधि निर्जितम् ॥ ५ ॥

'हाय ! यदि मुझे सीता मिल भी गयीं तो मैं उन्हें लेकर क्या करूँगा ? अथवा इस जीवनको ही रखकर क्या करना है ? जब कि आज मैं अपने पराजित हुए भाईको युद्धस्थलमें पड़ा हुआ देख रहा हूँ ॥ ५ ॥

✓ **शक्या सीतासमा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता ।**
न लक्ष्मणसमो भ्राता सचिवः साम्परायिकः ॥ ६ ॥

'मर्त्यलोकमें ढूँढ़नेपर मुझे सीता-जैसी दूसरी स्त्री मिल सकती है; परंतु लक्ष्मणके समान सहायक और युद्धकुशल भाई नहीं मिल सकता ॥ ६ ॥

परित्यक्ष्याम्यहं प्राणान् वानराणां तु पश्यताम् ।
यदि पञ्चत्वमापन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ ७ ॥

'सुमित्राके आनन्दको बढ़ानेवाले लक्ष्मण यदि जीवित न रहे तो मैं वानरोंके देखते-देखते अपने प्राणोंका परित्याग कर दूँगा ॥ ७ ॥

किं नु वक्ष्यामि कौसल्यां मातरं किं नु कैकयीम् ।
कथमम्बां सुमित्रां च पुत्रदर्शनलालसाम् ॥ ८ ॥
विवत्सां वेपमानां च वेपन्तीं कुररीमिव ।
कथमाश्वासयिष्यामि यदि यास्यामि तं विना ॥ ९ ॥

'लक्ष्मणके बिना यदि मैं अयोध्याको लौटूँ तो माता कौसल्या और कैकेयीको क्या जवाब दूँगा तथा अपने पुत्रको देखनेके लिये उत्सुक हो बछड़ेसे बिछुड़ी गायके समान काँपती और कुररीकी भाँति रोती-बिलखती माता सुमित्रासे क्या कहूँगा ? उन्हें किस तरह धैर्य बँधाऊँगा ? ॥ ८-९ ॥

कथं वक्ष्यामि शत्रुघ्नं भरतं च यशस्विनम् ।
मया सह वनं यातो विना तेनाहमागतः ॥ १० ॥

'मैं यशस्वी भरत और शत्रुघ्नसे किस तरह यह कह सकूँगा कि लक्ष्मण मेरे साथ वनको गये थे; किंतु मैं उन्हें वहीं खोकर उनके बिना ही लौट आया हूँ ॥ १० ॥

उपालम्भं न शक्ष्यामि सोढुमम्बासुमित्रया ।
इहैव देहं त्यक्ष्यामि नहि जीवितुमुत्सहे ॥ ११ ॥

'दोनों माताओंसहित सुमित्राका उपालम्भ मैं नहीं सह सकूँगा; अतः यहीं इस देहको त्याग दूँगा । अब मुझमें जीवित रहनेका उत्साह नहीं है ॥ ११ ॥

धिङ्मां दुष्कृतकर्माणमनार्यं यत्कृते ह्यसौ । ✓
लक्ष्मणः पतितः शेते शरतल्पे गतासुवत् ॥ १२ ॥

'मुझ-जैसे दुष्कर्मी और अनार्यको धिक्कार है, जिसके कारण लक्ष्मण मरे हुएके समान बाण-शय्यापर सो रहे हैं ॥ १२ ॥

त्वं नित्यं सुविषण्णं मामाश्वासयसि लक्ष्मण ।
गतासुर्नाद्य शक्तोऽसि मामार्तमभिभाषितुम् ॥ १३ ॥

'लक्ष्मण ! जब मैं अत्यन्त विषादमें डूब जाता था, उस समय तुम्हीं सदा मुझे आश्वासन देते थे; परंतु आज तुम्हारे प्राण नहीं रहे, इसलिये आज तुम मुझ दुखियासे बात करनेमें भी असमर्थ हो ॥ १३ ॥

येनाद्य बहवो युद्धे निहता राक्षसाः क्षितौ ।
तस्यामेवाद्य शूरस्त्वं शेषे विनिहतः शरैः ॥ १४ ॥

'भैया ! जिस रणभूमिमें आज तुमने बहुत-से राक्षसोंको मार गिराया था, उसीमें शूरवीर होकर भी तुम बाणोंद्वारा मारे जाकर सो रहे हो ॥ १४ ॥

शयानः शरतल्पेऽस्मिन् सशोणितपरिस्रुतः ।
शरभूतस्ततो भासि भास्करोऽस्तमिव व्रजन् ॥ १५ ॥

'इस बाण-शय्यापर तुम खूनसे लथपथ होकर पड़े हो और बाणोंसे व्याप्त होकर अस्ताचलको जाते हुए सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे हो ॥ १५ ॥

बाणाभिहतमर्मत्वान्न शक्नोषीह भाषितुम् ।
रुजा चाब्रुवतो यस्य दृष्टिरागेण सूच्यते ॥ १६ ॥

'बाणोंसे तुम्हारा मर्मस्थल विदीर्ण हो गया, इसलिये तुम यहाँ बात भी नहीं कर सकते । यद्यपि तुम बोल नहीं रहे हो, तथापि तुम्हारे नेत्रोंकी लालीसे तुम्हारी मार्मिक पीड़ा सूचित हो रही है ॥ १६ ॥

यथैव मां वनं यान्तमनुयातो महाद्युतिः ।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम् ॥ १७ ॥

'जिस तरह वनकी यात्रा करते समय महातेजस्वी लक्ष्मण

मेरे पीछे-पीछे चले आये थे, उसी प्रकार मैं भी यमलोकमें इनका अनुसरण करूँगा ॥ १७ ॥

इष्टबन्धुजनो नित्यं मां च नित्यमनुव्रतः ।
इमामद्य गतोऽवस्थां ममानार्यस्य दुर्नयैः ॥ १८ ॥

'जो मेरे प्रिय बन्धुजन थे और सदा मुझमें अनुराग एवं भक्तिभाव रखते थे, वे ही लक्ष्मण आज मुझ अनार्यकी दुर्नीतियोंके कारण इस अवस्थाको पहुँच गये ॥ १८ ॥

सुरुष्टेनापि वीरेण लक्ष्मणेन न संस्मरे ।
परुषं विप्रियं चापि श्रावितं तु कदाचन ॥ १९ ॥

'मुझे ऐसा कोई प्रसंग याद नहीं आता, जब कि वीर लक्ष्मणने अत्यन्त कुपित होनेपर भी मुझे कभी कोई कठोर या अप्रिय बात सुनायी हो ॥ १९ ॥

विससर्जैकवेगेन पञ्च बाणशतानि यः ।
इष्वस्त्रेष्वधिकस्तस्मात् कार्तवीर्याच्च लक्ष्मणः ॥ २० ॥

'लक्ष्मण एक ही वेगसे पाँच सौ बाणोंकी वर्षा करते थे; इसलिये धनुर्विद्यामें कार्तवीर्य अर्जुनसे भी बढ़कर थे ॥ २० ॥

अस्त्रैरस्त्राणि यो हन्याच्छक्रस्यापि महात्मनः ।
सोऽयमुर्व्यां हतः शेते महार्हशयनोचितः ॥ २१ ॥

'जो अपने अस्त्रोंद्वारा महात्मा इन्द्रके भी अस्त्रोंको काट सकते थे, वे ही बहुमूल्य शय्यापर सोने योग्य लक्ष्मण आज स्वयं मारे जाकर पृथ्वीपर सो रहे हैं ॥ २१ ॥

तत्तु मिथ्या प्रलप्तं मां प्रधक्ष्यति न संशयः ।
यन्मया न कृतो राजा राक्षसानां विभीषणः ॥ २२ ॥

'मैं विभीषणको राक्षसोंका राजा न बना सका; अतः मेरा वह झूठा प्रलाप मुझे सदा जलाता रहेगा, इसमें संशय नहीं है ॥

अस्मिन् मुहूर्ते सुग्रीव प्रतियातुमितोऽर्हसि ।
मत्वा हीनं मया राजन् रावणोऽभिभविष्यति ॥ २३ ॥

'वानरराज सुग्रीव ! तुम इसी मुहूर्तमें यहाँसे लौट जाओ; क्योंकि मेरे बिना तुम्हें असहाय समझकर रावण तुम्हारा तिरस्कार करेगा ॥ २३ ॥

अङ्गदं तु पुरस्कृत्य ससैन्यं सपरिच्छदम् ।
सागरं तर सुग्रीव नीलेन च नलेन च ॥ २४ ॥

'मित्र सुग्रीव ! सेना और सामग्रियोंसहित अङ्गदको आगे करके नल और नीलके साथ तुम समुद्रके पार चले जाओ ॥ २४ ॥

कृतं हि सुमहत्कर्म यदन्यैर्दुष्करं रणे ।
ऋक्षराजेन तुष्यामि गोलाङ्गूलाधिपेन च ॥ २५ ॥

'मैं लंगूरोंके स्वामी गवाक्ष तथा ऋक्षराज जाम्बवान्से भी बहुत संतुष्ट हूँ । तुम सब लोगोंने युद्धमें वह महान् पुरुषार्थ कर दिखाया है, जो दूसरोंके लिये अत्यन्त दुष्कर था ॥ २५ ॥

अङ्गदेन कृतं कर्म मैन्देन द्विविदेन च ।
युद्धं केसरिणा संख्ये घोरं सम्पातिना कृतम् ॥ २६ ॥

'अङ्गद, मैन्द और द्विविदने भी महान् पराक्रम प्रकट किया है । केसरी और सम्पातिने भी समराङ्गणमें घोर युद्ध किया है ॥ २६ ॥

गवयेन गवाक्षेण शरभेण गजेन च ।
अन्यैश्च हरिभिर्युद्धं मदर्थे त्यक्तजीवितैः ॥ २७ ॥

'गवय, गवाक्ष, शरभ, गज तथा अन्य वानरोंने भी मेरे लिये प्राणोंका मोह छोड़कर संग्राम किया है ॥ २७ ॥

न चातिक्रमितुं शक्यं दैवं सुग्रीव मानुषैः ।
यत्तु शक्यं वयस्येन सुहृदा वा परं मम ॥ २८ ॥
कृतं सुग्रीव तत् सर्वं भवता धर्मभीरुणा ।
मित्रकार्यं कृतमिदं भवद्भिर्वानरर्षभाः ॥ २९ ॥
अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं गन्तुमर्हथ ।

'किंतु सुग्रीव ! मनुष्योंके लिये दैवके विधानको लाँघना असम्भव है । मेरे परम मित्र अथवा उत्तम सुहृद्के नाते तुम-जैसे धर्मभीरु पुरुषके द्वारा जो कुछ किया जा सकता था, वह सब तुमने किया है । वानरशिरोमणियो ! तुम सबने मिलकर मित्रके इस कार्यको सम्पन्न किया है । अब मैं आज्ञा देता हूँ—तुम सब जहाँ इच्छा हो, वहाँ चले जाओ' ॥२८-२९½॥

शुश्रुवुस्तस्य ये सर्वे वानराः परिदेवितम् ॥ ३० ॥
वर्तयांचक्रिरेऽश्रूणि नेत्रैः कृष्णेतरेक्षणाः ॥ ३१ ॥

भगवान् श्रीरामका यह विलाप भूरी आँखोंवाले जिन-जिन वानरोंने सुना, वे सब अपने नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे ॥

ततः सर्वाण्यनीकानि स्थापयित्वा विभीषणः ।
आजगाम गदापाणिस्त्वरितं यत्र राघवः ॥ ३२ ॥

तदनन्तर समस्त सेनाओंको स्थिरतापूर्वक स्थापित करके विभीषण हाथमें गदा लिये तुरंत उस स्थानपर लौट आये, जहाँ श्रीरामचन्द्रजी विद्यमान थे ॥ ३२ ॥

तं दृष्ट्वा त्वरितं यान्तं नीलाञ्जनचयोपमम् ।
वानरा दुद्रुवुः सर्वे मन्यमानास्तु रावणिम् ॥ ३३ ॥

काले कोयलोंकी राशिके समान कृष्ण कान्तिवाले विभीषणको शीघ्रतापूर्वक आते देख सब वानर उन्हें रावणपुत्र इन्द्रजित् समझकर इधर-उधर भागने लगे ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें उनचासवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

पञ्चाशः सर्गः

विभीषणको इन्द्रजित् समझकर वानरोंका पलायन और सुग्रीवकी आज्ञासे जाम्बवान्‌का उन्हें सान्त्वना देना, विभीषणका विलाप और सुग्रीवका उन्हें समझाना, गरुड़का आना और श्रीराम-लक्ष्मणको नागपाशसे मुक्त करके चला जाना

अथोवाच महातेजा हरिराजो महाबलः ।
किमियं व्यथिता सेना मूढवातेव नौर्जले ॥ १ ॥

उस समय महातेजस्वी महाबली वानरराज सुग्रीवने पूछा—'वानरो ! जैसे जलमें बवंडरकी मारी हुई नौका डगमगाने लगती है, उसी प्रकार जो यह हमारी सेना सहसा व्यथित हो उठी है, इसका क्या कारण है ?' ॥ १ ॥

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा वालिपुत्रोऽङ्गदोऽब्रवीत् ।
न त्वं पश्यसि रामं च लक्ष्मणं च महारथम् ॥ २ ॥

सुग्रीवकी यह बात सुनकर वालिपुत्र अङ्गदने कहा—'क्या आप श्रीराम और महारथी लक्ष्मणकी दशा नहीं देख रहे हैं ? ॥ २ ॥

शरजालाचितौ वीरावुभौ दशरथात्मजौ ।
शरतल्पे महात्मानौ शयानौ रुधिरोक्षितौ ॥ ३ ॥

'ये दोनों वीर महात्मा दशरथकुमार रक्तसे भीगे हुए बाण-शय्यापर पड़े हैं और बाणोंके समूहसे व्याप्त हो रहे हैं' ॥

अथाब्रवीद् वानरेन्द्रः सुग्रीवः पुत्रमङ्गदम् ।
नानिमित्तमिदं मन्ये भवितव्यं भयेन तु ॥ ४ ॥

तब वानरराज सुग्रीवने पुत्र अङ्गदसे कहा—'बेटा ! मैं ऐसा नहीं मानता कि सेनामें अकारण ही भगदड़ मच गयी है । किसी-न-किसी भयके कारण ऐसा होना चाहिये ॥ ४ ॥

विषण्णवदना ह्येते त्यक्तप्रहरणा दिशः ।
पलायन्तेऽत्र हरयस्त्रासादुत्फुल्ललोचनाः ॥ ५ ॥

'ये वानर उदास मुँहसे अपने-अपने हथियार फेंककर सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग रहे हैं और भयके कारण आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे हैं ॥ ५ ॥

अन्योन्यस्य न लज्जन्ते न निरीक्षन्ति पृष्ठतः ।
विप्रकर्षन्ति चान्योन्यं पतितं लङ्घयन्ति च ॥ ६ ॥

'पलायन करते समय उन्हें एक दूसरेसे लज्जा नहीं होती है । वे पीछेकी ओर नहीं देखते हैं । एक दूसरेको घसीटते हैं और जो गिर जाता है, उसे लाँघकर चल देते हैं (भयके मारे उठातेतक नहीं हैं)' ॥ ६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरो गदापाणिर्विभीषणः ।
सुग्रीवं वर्धयामास राघवं च जयाशिषा ॥ ७ ॥

इसी बीचमें वीर विभीषण हाथमें गदा लिये वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने विजयसूचक आशीर्वाद देकर सुग्रीव तथा श्रीरघुनाथजीकी अभ्युदय-कामना की ॥ ७ ॥

विभीषणं च सुग्रीवो दृष्ट्वा वानरभीषणम् ।
ऋक्षराजं महात्मानं समीपस्थमुवाच ह ॥ ८ ॥

वानरोंको भयभीत करनेवाले विभीषणको देखकर सुग्रीवने अपने पास ही खड़े हुए महात्मा ऋक्षराज जाम्बवान्‌से कहा—॥ ८ ॥

विभीषणोऽयं सम्प्राप्तो यं दृष्ट्वा वानरर्षभाः ।
द्रवन्त्यायतसंत्रासा रावणात्मजशङ्कया ॥ ९ ॥

'ये विभीषण आये हैं, जिन्हें देखकर वानरशिरोमणियोंको यह संदेह हुआ है कि रावणका बेटा इन्द्रजित् आ गया । इसीलिये इनका भय बहुत बढ़ गया है और वे भागे जा रहे हैं ॥ ९ ॥

शीघ्रमेतान् सुसंत्रस्तान् बहुधा विप्रधावितान् ।
पर्यवस्थापयाख्याहि विभीषणमुपस्थितम् ॥ १० ॥

'तुम शीघ्र जाकर यह बताओ कि इन्द्रजित् नहीं, विभीषण आये हैं । ऐसा कहकर बहुधा भयभीत हो पलायन करते हुए इन सब वानरोंको सुस्थिर करो—भागनेसे रोको' ॥

सुग्रीवेणैवमुक्तस्तु जाम्बवानृक्षपार्थिवः ।
वानरान् सान्त्वयामास संनिवर्त्य प्रधावतः ॥ ११ ॥

सुग्रीवके ऐसा कहनेपर ऋक्षराज जाम्बवान्‌ने भागते हुए वानरोंको लौटाकर उन्हें सान्त्वना दी ॥ ११ ॥

ते निवृत्ताः पुनः सर्वे वानरास्त्यक्तसाध्वसाः ।
ऋक्षराजवचः श्रुत्वा तं च दृष्ट्वा विभीषणम् ॥ १२ ॥

ऋक्षराजकी बात सुनकर और विभीषणको अपनी आँखों देखकर वानरोंने भयको त्याग दिया तथा वे सब-के-सब फिर लौट आये ॥ १२ ॥

विभीषणस्तु रामस्य दृष्ट्वा गात्रं शरैश्चितम् ।
लक्ष्मणस्य तु धर्मात्मा बभूव व्यथितस्तदा ॥ १३ ॥

श्रीराम और लक्ष्मणके शरीरको बाणोंसे व्याप्त हुआ देख धर्मात्मा विभीषणको उस समय बड़ी व्यथा हुई ॥ १३ ॥

जलक्लिन्नेन हस्तेन तयोर्नेत्रे विमृज्य च ।
शोकसम्पीडितमना रुरोद विललाप च ॥ १४ ॥

उन्होंने जलसे भीगे हुए उन दोनों भाइयोंके नेत्र पोंछे और मन-ही-मन शोकसे पीड़ित हो वे रोने और विलाप करने लगे—॥ १४ ॥

इमौ तौ सत्त्वसम्पन्नौ विक्रान्तौ प्रियसंयुगौ ।
इमामवस्थां गमितौ राक्षसैः कूटयोधिभिः ॥ १५ ॥

'हाय ! जिन्हें युद्ध अधिक प्रिय था और जो बल-विक्रमसे सम्पन्न थे, वे ही ये दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण मायासे युद्ध करनेवाले राक्षसोंद्वारा इस अवस्थाको पहुँचा दिये गये ॥ १५ ॥

भ्रातृपुत्रेण चैतेन दुष्पुत्रेण दुरात्मना ।
राक्षस्या जिह्मया बुद्ध्या वञ्चितावृजुविक्रमौ ॥ १६ ॥

'ये दोनों वीर सरलतापूर्वक पराक्रम प्रकट कर रहे थे। परंतु भाईके इस दुरात्मा कुपुत्रने अपनी कुटिल राक्षसी बुद्धिके द्वारा इन दोनोंके साथ धोखा किया ॥ १६ ॥

शरैरिमावलं विद्धौ रुधिरेण समुक्षितौ ।
वसुधायामिमौ सुप्तौ दृश्येते शल्यकाविव ॥ १७ ॥

'इन दोनोंके शरीर बाणोंद्वारा पूर्णतः छिद गये हैं। ये दोनों भाई खूनसे नहा उठे हैं और इस अवस्थामें पृथ्वीपर सोये हुए ये दोनों राजकुमार काँटोंसे भरे हुए साही नामक जन्तुके समान दिखायी देते हैं ॥ १७ ॥

ययोर्वीर्यमुपाश्रित्य प्रतिष्ठा काङ्क्षिता मया । ✓
ताविमौ देहनाशाय प्रसुप्तौ पुरुषर्षभौ ॥ १८ ॥

'जिनके बल-पराक्रमका आश्रय लेकर मैंने लङ्काके राज्यपर प्रतिष्ठित होनेकी अभिलाषा की थी; वे ही दोनों भाई पुरुषशिरोमणि श्रीराम और लक्ष्मण देह-त्यागके लिये सोये हुए हैं ॥ १८ ॥

जीवन्नद्य विपन्नोऽस्मि नष्टराज्यमनोरथः । ✓
प्राप्तप्रतिज्ञश्च रिपुः सकामो रावणः कृतः ॥ १९ ॥

'आज मैं जीते-जी मर गया। मेरा राज्यविषयक मनोरथ नष्ट हो गया। शत्रु रावणने जो सीताको न लौटानेकी प्रतिज्ञा की थी, उसकी वह प्रतिज्ञा पूरी हुई। उसके पुत्रने उसे सफलमनोरथ बना दिया' ॥ १९ ॥

एवं विलपमानं तं परिष्वज्य विभीषणम् ।
सुग्रीवः सत्त्वसम्पन्नो हरिराजोऽब्रवीदिदम् ॥ २० ॥

इस प्रकार विलाप करते हुए विभीषणको हृदयसे लगाकर शक्तिशाली वानरराज सुग्रीवने उनसे यों कहा—॥ २० ॥

राज्यं प्राप्स्यसि धर्मज्ञ लङ्कायां नेह संशयः । ✓
रावणः सह पुत्रेण सकामं नेह लप्स्यते ॥ २१ ॥

'धर्मज्ञ ! तुम्हें लङ्काका राज्य प्राप्त होगा, इसमें संशय नहीं है। पुत्रसहित रावण यहाँ अपनी कामना पूरी नहीं कर सकेगा ॥ २१ ॥

गरुडाधिष्ठितावेतावुभौ राघवलक्ष्मणौ ।
त्यक्त्वा मोहं वधिष्येते सगणं रावणं रणे ॥ २२ ॥

'ये दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण मूर्छा त्यागनेके पश्चात् गरुड़की पीठपर बैठकर रणभूमिमें राक्षसगणोंसहित रावणका वध करेंगे' ॥ २२ ॥

तमेवं सान्त्वयित्वा तु समाश्वास्य तु राक्षसम् ।
सुषेणं श्वशुरं पार्श्वे सुग्रीवस्तमुवाच ह ॥ २३ ॥ ✓

राक्षस विभीषणको इस प्रकार सान्त्वना और आश्वासन देकर सुग्रीवने अपने बगलमें खड़े हुए श्वशुर सुषेणसे कहा—॥ २३ ॥

सह शूरैर्हरिगणैर्लब्धसंज्ञावरिंदमौ ।
गच्छ त्वं भ्रातरौ गृह्य किष्किन्धां रामलक्ष्मणौ ॥ २४ ॥

'आप होशमें आ जानेपर इन दोनों शत्रुदमन श्रीराम और लक्ष्मणको साथ ले शूरवीर वानरगणोंके साथ किष्किन्धाको चले जाइये ॥ २४ ॥

अहं तु रावणं हत्वा सपुत्रं सहबान्धवम् । ✓
मैथिलीमानयिष्यामि शक्रो नष्टामिव श्रियम् ॥ २५ ॥

'मैं रावणको पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर उसके हाथसे मिथिलेशकुमारी सीताको उसी प्रकार छीन लाऊँगा, जैसे देवराज इन्द्र अपनी खोयी हुई राजलक्ष्मीको दैत्योंके यहाँसे हर लाये थे' ॥ २५ ॥

श्रुत्वैतद् वानरेन्द्रस्य सुषेणो वाक्यमब्रवीत् ।
देवासुरं महायुद्धमनुभूतं पुरातनम् ॥ २६ ॥

वानरराज सुग्रीवकी यह बात सुनकर सुषेणने कहा—'पूर्वकालमें जो देवासुर-महायुद्ध हुआ था, उसे हमने देखा था ॥ २६ ॥

तदा स्म दानवा देवाञ्शरसंस्पर्शकोविदान् ।
निजघ्नु शस्त्रविदुषश्छादयन्तो मुहुर्मुहुः ॥ २७ ॥

'उस समय अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता तथा लक्ष्यवेधमें कुशल देवताओंको बारंबार बाणोंसे आच्छादित करते हुए दानवोंने बहुत घायल कर दिया था ॥ २७ ॥

तानार्तान् नष्टसंज्ञांश्च गतासूंश्च बृहस्पतिः ।
विद्याभिर्मन्त्रयुक्ताभिरोषधीभिश्चिकित्सति ॥ २८ ॥

'उस युद्धमें जो देवता अस्त्र-शस्त्रोंसे पीड़ित, अचेत और प्राणशून्य हो जाते थे, उन सबकी रक्षाके लिये बृहस्पतिजी मन्त्रयुक्त विद्याओं तथा दिव्य ओषधियोंद्वारा उनकी चिकित्सा करते थे ॥ २८ ॥

तान्यौषधान्यानयितुं क्षीरोदं यान्तु सागरम् ।
जवेन वानराः शीघ्रं सम्पातिपनसादयः ॥ २९ ॥

'मेरी राय है कि उन ओषधियोंको ले आनेके लिये सम्पाति और पनस आदि वानर शीघ्र ही वेगपूर्वक क्षीरसागरके तट-पर जायँ ॥ २९ ॥

हरयस्तु विजानन्ति पार्वती ते महौषधी ।
संजीवकरणीं दिव्यां विशल्यां देवनिर्मिताम् ॥ ३० ॥

'सम्पाति आदि वानर वहाँ पर्वतपर प्रतिष्ठित हुई दो

प्रसिद्ध महौषधियोंको जानते हैं। उनमेंसे एकका नाम है संजीवकरणी और दूसरीका नाम है विशल्यकरणी। इन दोनों दिव्य ओषधियोंका निर्माण साक्षात् ब्रह्माजीने किया है ॥३०॥

चन्द्रश्च नाम द्रोणश्च क्षीरोदे सागरोत्तमे।
अमृतं यत्र मथितं तत्र ते परमौषधी ॥ ३१ ॥
तौ तत्र विहितौ देवैः पर्वतौ तौ महोदधौ।
अयं वायुसुतो राजन् हनूमांस्तत्र गच्छतु ॥ ३२ ॥

'सागरोंमें उत्तम क्षीरसमुद्रके तटपर चन्द्र और द्रोण नामक दो पर्वत हैं, जहाँ पूर्वकालमें अमृतका मन्थन किया गया था। उन्हीं दोनों पर्वतोंपर वे श्रेष्ठ ओषधियाँ वर्तमान हैं। महासागरमें देवताओंने ही उन दोनों पर्वतोंको प्रतिष्ठित किया था। राजन्! ये वायुपुत्र हनुमान् उन दिव्य ओषधियोंको लानेके लिये वहाँ जायँ' ॥ ३१-३२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वायुर्मेघाश्चापि सविद्युतः।
पर्यस्य सागरे तोयं कम्पयन्निव पर्वतान् ॥ ३३ ॥

ओषधियोंको लानेकी वार्ता वहाँ चल ही रही थी कि बड़े जोरसे वायु प्रकट हुई, मेघोंकी घटा घिर आयी और बिजलियाँ चमकने लगीं। वह वायु सागरके जलमें हलचल मचाकर पर्वतोंको कम्पित-सी करने लगी ॥ ३३ ॥

महता पक्षवातेन सर्वद्वीपमहाद्रुमाः।
निपेतुर्भग्नविटपाः सलिले लवणाम्भसि ॥ ३४ ॥

गरुड़के पंखसे उठी हुई प्रचण्ड वायुने सम्पूर्ण द्वीपके बड़े-बड़े वृक्षोंकी डालियाँ तोड़ डालीं और उन्हें लवणसमुद्रके जलमें गिरा दिया ॥ ३४ ॥

अभवन् पन्नगास्त्रस्ता भोगिनस्तत्रवासिनः।
शीघ्रं सर्वाणि यादांसि जग्मुश्च लवणार्णवम् ॥ ३५ ॥

लङ्कावासी महाकाय सर्प भयसे थर्रा उठे। सम्पूर्ण जलजन्तु शीघ्रतापूर्वक समुद्रके जलमें घुस गये ॥ ३५ ॥

✓ **ततो मुहूर्ताद् गरुडं वैनतेयं महाबलम्।**
वानरा ददृशुः सर्वे ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ३६ ॥

तदनन्तर दो ही घड़ीमें समस्त वानरोंने प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी महाबली विनतानन्दन गरुडको वहाँ उपस्थित देखा ॥ ३६ ॥

तमागतमभिप्रेक्ष्य नागास्ते विप्रदुद्रुवुः।
यैस्तु तौ पुरुषौ बद्धौ शरभूतैर्महाबलैः ॥ ३७ ॥

उन्हें आया देख जिन महाबली नागोंने बाणके रूपमें आकर उन दोनों महापुरुषोंको बाँध रक्खा था, वे सब-के-सब वहाँसे भाग खड़े हुए ॥ ३७ ॥

ततः सुपर्णः काकुत्स्थौ स्पृष्ट्वा प्रत्यभिनन्द्य च।
विममर्श च पाणिभ्यां मुखे चन्द्रसमप्रभे ॥ ३८ ॥

तत्पश्चात् गरुड़ने उन दोनों रघुवंशी बन्धुओंको स्पर्श करके अभिनन्दन किया और अपने हाथोंसे उनके चन्द्रमाके समान कान्तिमान् मुखोंको पोंछा ॥ ३८ ॥

वैनतेयेन संस्पृष्टास्तयोः संरुरुहुर्व्रणाः।
सुवर्णे च तनू स्निग्धे तयोराशु बभूवतुः ॥ ३९ ॥

गरुड़जीका स्पर्श प्राप्त होते ही श्रीराम और लक्ष्मणके सारे घाव भर गये और उनके शरीर तत्काल ही सुन्दर कान्तिसे युक्त एवं स्निग्ध हो गये ॥ ३९ ॥

तेजो वीर्यं बलं चौज उत्साहश्च महागुणाः। ✓
प्रदर्शनं च बुद्धिश्च स्मृतिश्च द्विगुणा तयोः ॥ ४० ॥

उनमें तेज, वीर्य, बल, ओज, उत्साह, दृष्टिशक्ति, बुद्धि और स्मरणशक्ति आदि महान् गुण पहलेसे भी दुगुने हो गये ॥ ४० ॥

तावुत्थाप्य महातेजा गरुडो वासवोपमौ।
उभौ च सस्वजे हृष्टो रामश्चैनमुवाच ह ॥ ४१ ॥

फिर महातेजस्वी गरुड़ने उन दोनों भाइयोंको, जो साक्षात् इन्द्रके समान थे, उठाकर हृदयसे लगा लिया। तब श्रीरामजीने प्रसन्न होकर उनसे कहा—॥ ४१ ॥

भवत्प्रसादाद् व्यसनं रावणिप्रभवं महत्।
उपायेन व्यतिक्रान्तौ शीघ्रं च बलिनौ कृतौ ॥ ४२ ॥

'इन्द्रजित्के कारण हमलोगोंपर जो महान् संकट आ गया था, उसे हम आपकी कृपासे लाँघ गये। आप विशिष्ट उपायके ज्ञाता हैं; अतः आपने हम दोनोंको शीघ्र ही पूर्ववत् बलसे सम्पन्न कर दिया ॥ ४२ ॥

यथा तातं दशरथं यथाजं च पितामहम्। ✓
तथा भवन्तमासाद्य हृदयं मे प्रसीदति ॥ ४३ ॥

'जैसे पिता दशरथ और पितामह अजके पास जानेसे मेरा मन प्रसन्न हो सकता था, वैसे ही आपको पाकर मेरा हृदय हर्षसे खिल उठा है ॥ ४३ ॥

को भवान् रूपसम्पन्नो दिव्यस्रगनुलेपनः। ✓
वसानो विरजे वस्त्रे दिव्याभरणभूषितः ॥ ४४ ॥

'आप बड़े रूपवान् हैं, दिव्य पुष्पोंकी माला और दिव्य अङ्गरागसे विभूषित हैं। आपने दो स्वच्छ वस्त्र धारण कर रक्खे हैं तथा दिव्य आभूषण आपकी शोभा बढ़ाते हैं। हम जानना चाहते हैं कि आप कौन हैं?' (सर्वज्ञ होते हुए भी भगवान्ने मानवभावका आश्रय लेकर गरुड़से ऐसा प्रश्न किया) ॥ ४४ ॥

तमुवाच महातेजा वैनतेयो महाबलः।
पतत्रिराजः प्रीतात्मा हर्षपर्याकुलेक्षणम् ॥ ४५ ॥

तब महातेजस्वी महाबली पक्षिराज विनतानन्दन गरुड़ने मन-ही-मन प्रसन्न हो आनन्दके आँसुओंसे भरे हुए नेत्रवाले श्रीरामसे कहा—॥ ४५ ॥

अहं सखा ते काकुत्स्थ प्रियः प्राणो बहिश्चरः ।
गरुत्मानिह सम्प्राप्तो युवयोः साह्यकारणात् ॥ ४६ ॥

'काकुत्स्थ ! मैं आपका प्रिय मित्र गरुड़ हूँ । बाहर विचरनेवाला आपका प्राण हूँ । आप दोनोंकी सहायताके लिये ही मैं इस समय यहाँ आया हूँ ॥ ४६ ॥

असुरा वा महावीर्या दानवा वा महाबलाः ।
सुराश्चापि सगन्धर्वाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम् ॥ ४७ ॥
नेमं मोक्षयितुं शक्ताः शरबन्धं सुदारुणम् ।

'महापराक्रमी असुर, महाबली दानव, देवता तथा गन्धर्व भी यदि इन्द्रको आगे करके यहाँ आते तो वे भी इस भयंकर सर्पाकार बाणके बन्धनसे आपको छुड़ानेमें समर्थ नहीं हो सकते थे ॥ ४७$\frac{1}{2}$ ॥

मायाबलादिन्द्रजिता निर्मितं क्रूरकर्मणा ॥ ४८ ॥
एते नागाः काद्रवेयास्तीक्ष्णदंष्ट्रा विषोल्बणाः ।
रक्षोमायाप्रभावेण शरभूतास्त्वदाश्रयाः ॥ ४९ ॥

'क्रूरकर्मा इन्द्रजित्‌ने मायाके बलसे जिन नागरूपी बाणोंका बन्धन तैयार किया था, वे नाग ये कद्रूके पुत्र ही थे । इनके दाँत बड़े तीखे होते हैं । इन नागोंका विष बड़ा भयंकर होता है । ये राक्षसकी मायाके प्रभावसे बाण बनकर आपके शरीरमें लिपट गये थे ॥ ४८-४९ ॥

सभाग्यश्चासि धर्मज्ञ राम सत्यपराक्रम ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा समरे रिपुघातिना ॥ ५० ॥

'धर्मके ज्ञाता सत्यपराक्रमी श्रीराम ! समराङ्गणमें शत्रुओंका संहार करनेवाले अपने भाई लक्ष्मणके साथ ही आप बड़े सौभाग्यशाली हैं (जो अनायास ही इस नागपाशसे मुक्त हो गये) ॥ ५० ॥

इमं श्रुत्वा तु वृत्तान्तं त्वरमाणोऽहमागतः ।
सहसैवावयोः स्नेहात् सखित्वमनुपालयन् ॥ ५१ ॥

'मैं देवताओंके मुखसे आपलोगोंके नागपाशमें बँधनेका समाचार सुनकर बड़ी उतावलीके साथ यहाँ आया हूँ । हम दोनोंमें जो स्नेह है, उससे प्रेरित हो मित्रधर्मका पालन करता हुआ सहसा आ पहुँचा हूँ ॥ ५१ ॥

मोक्षितौ च महाघोरादस्मात् सायकबन्धनात् ।
अप्रमादश्च कर्तव्यो युवाभ्यां नित्यमेव हि ॥ ५२ ॥

'आकर मैंने इस महाभयंकर बाण-बन्धनसे आप दोनोंको छुड़ा दिया । अब आपको सदा ही सावधान रहना चाहिये ॥ ५२ ॥

प्रकृत्या राक्षसाः सर्वे संग्रामे कूटयोधिनः ।
शूराणां शुद्धभावानां भवतामार्जवं बलम् ॥ ५३ ॥

'समस्त राक्षस स्वभावसे ही संग्राममें कपटपूर्वक युद्ध करनेवाले होते हैं, परन्तु शुद्धभाववाले आप-जैसे शूरवीरोंका सरलता ही बल है ॥ ५३ ॥

तन्न विश्वसनीयं वो राक्षसानां रणाजिरे ।
एतेनैवोपमानेन नित्यं जिह्मा हि राक्षसाः ॥ ५४ ॥

'इसलिये इसी दृष्टान्तको सामने रखकर आपको रणक्षेत्रमें राक्षसोंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि राक्षस सदा ही कुटिल होते हैं' ॥ ५४ ॥

एवमुक्त्वा तदा रामं सुपर्णः स महाबलः ।
परिष्वज्य च सुस्निग्धमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥ ५५ ॥

ऐसा कहकर महाबली गरुड़ने उस समय परम स्नेही श्रीरामको हृदयसे लगाकर उनसे जानेकी आज्ञा लेनेका विचार किया ॥ ५५ ॥

सखे राघव धर्मज्ञ रिपूणामपि वत्सल ।
अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि गमिष्यामि यथासुखम् ॥ ५६ ॥

वे बोले—'शत्रुओंपर भी दया दिखानेवाले धर्मज्ञ मित्र रघुनन्दन ! अब मैं सुखपूर्वक यहाँसे प्रस्थान करूँगा । इसके लिये आपकी आज्ञा चाहता हूँ ॥ ५६ ॥

न च कौतूहलं कार्यं सखित्वं प्रति राघव ।
कृतकर्मा रणे वीर सखित्वं प्रतिवेत्स्यसि ॥ ५७ ॥

'वीर रघुनन्दन ! मैंने जो अपनेको आपका सखा बताया है, इसके विषयमें आपको अपने मनमें कोई कौतूहल नहीं रखना चाहिये । आप युद्धमें सफलता प्राप्त कर लेनेपर मेरे इस सख्यभावको स्वयं समझ लेंगे' ॥ ५७ ॥

बालवृद्धावशेषां तु लङ्कां कृत्वा शरोर्मिभिः ।
रावणं तु रिपुं हत्वा सीतां त्वमुपलप्स्यसे ॥ ५८ ॥

'आप समुद्रकी लहरोंके समान अपने बाणोंकी परम्परासे लङ्काकी ऐसी दशा कर देंगे कि यहाँ केवल बालक और बूढ़े ही शेष रह जायँगे । इस तरह अपने शत्रु रावणका संहार करके आप सीताको अवश्य प्राप्त कर लेंगे' ॥ ५८ ॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं सुपर्णः शीघ्रविक्रमः ।
रामं च नीरुजं कृत्वा मध्ये तेषां वनौकसाम् ॥ ५९ ॥
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा परिष्वज्य च वीर्यवान् ।
जगामाकाशमाविश्य सुपर्णः पवनो यथा ॥ ६० ॥

ऐसी बातें कहकर शीघ्रगामी एवं शक्तिशाली गरुड़ने श्रीरामको नीरोग करके उन वानरोंके बीचमें उनकी परिक्रमा की और उन्हें हृदयसे लगाकर वे वायुके समान गतिसे आकाशमें चले गये ॥ ५९-६० ॥

नीरुजौ राघवौ दृष्ट्वा ततो वानरयूथपाः ।
सिंहनादं तदा नेदुर्लाङ्गूलं दुधुवुश्च ते ॥ ६१ ॥

श्रीराम और लक्ष्मणको नीरोग हुआ देख उस समय

सारे वानर-यूथपति सिंहनाद करने और पूँछ हिलाने लगे ॥ ६१ ॥

ततो भेरीः समाजघ्नुर्मृदङ्गांश्चाप्यवादयन् ।
दध्मुः शङ्खान् सम्प्रहृष्टाः क्ष्वेलन्त्यपि यथापुरम्॥ ६२ ॥

फिर तो वानरोंने डंके पीटे, मृदंग बजाये, शङ्खनाद किये और हर्षोल्लाससे भरकर पहलेकी भाँति वे गर्जने और ताल ठोंकने लगे ॥ ६२ ॥

अपरे स्फोट्य विक्रान्ता वानरा नगयोधिनः ।
द्रुमानुत्पाट्य विविधांस्तस्थुः शतसहस्रशः ॥ ६३ ॥

दूसरे पराक्रमी वानर जो वृक्षों और पर्वत-शिखरोंको हाथमें लेकर युद्ध करते थे, नाना प्रकारके वृक्ष उखाड़कर लाखोंकी संख्यामें युद्धके लिये खड़े हो गये ॥ ६३ ॥

विसृजन्तो महानादांस्त्रासयन्तो निशाचरान् ।
लङ्काद्वाराण्युपाजग्मुर्योद्धुकामाः प्लवंगमाः ॥ ६४ ॥

जोर-जोरसे गर्जते और निशाचरोंको डराते हुए सारे वानर युद्धकी इच्छासे लङ्काके दरवाजोंपर आकर डट गये ॥

तेषां सुभीमस्तुमुलो निनादो
बभूव शाखामृगयूथपानाम् ।
क्षये निदाघस्य यथा घनानां
नादः सुभीमो नदतां निशीथे ॥ ६५ ॥

उस समय उन वानरयूथपतियोंका बड़ा भयंकर एवं तुमुल सिंहनाद सब ओर गूँजने लगा, मानो ग्रीष्म ऋतुके अन्तमें आधी रातके समय गर्जते हुए मेघोंकी गम्भीर गर्जना सब ओर व्याप्त हो रही हो ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चाशः सर्गः ॥ ५० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पचासवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशः सर्गः

श्रीरामके बन्धनमुक्त होनेका पता पाकर चिन्तित हुए रावणका धूम्राक्षको युद्धके लिये भेजना और सेनासहित धूम्राक्षका नगरसे बाहर आना

तेषां तु तुमुलं शब्दं वानराणां महौजसाम् ।
नर्दतां राक्षसैः सार्धं तदा शुश्राव रावणः ॥ १ ॥

उस समय भीषण गर्जना करते हुए महाबली वानरोंका वह तुमुलनाद राक्षसोंसहित रावणने सुना ॥ १ ॥

स्निग्धगम्भीरनिर्घोषं श्रुत्वा तं निनदं भृशम् ।
सचिवानां ततस्तेषां मध्ये वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

मन्त्रियोंके बीचमें बैठे हुए रावणने जब वह स्निग्ध गम्भीर घोष, वह उच्चस्वरसे किया हुआ सिंहनाद सुना, तब वह इस प्रकार बोला—॥ २ ॥

यथासौ सम्प्रहृष्टानां वानराणामुपस्थितः ।
बहूनां सुमहान् नादो मेघानामिव गर्जताम् ॥ ३ ॥
सुव्यक्तं महती प्रीतिरेतेषां नात्र संशयः ।
तथाहि विपुलैर्नादैश्चुक्षुभे लवणार्णवः ॥ ४ ॥

'इस समय गर्जते हुए मेघोंके समान जो अधिक हर्षमें भरे हुए बहुसंख्यक वानरोंका यह महान् कोलाहल प्रकट हो रहा है, इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि इन सबको बड़ा भारी हर्ष प्राप्त हुआ है; इसमें संशय नहीं है। तभी इस तरह बारंबार की गयी गर्जनाओंसे यह खारे पानीका समुद्र विक्षुब्ध हो उठा है ॥ ३-४ ॥

तौ तु बद्धौ शरैस्तीक्ष्णैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
अयं च सुमहान् नादः शङ्कां जनयतीव मे ॥ ५ ॥

'परंतु वे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण तो तीखे बाणोंसे बँधे हुए हैं। इधर यह महान् हर्षनाद भी हो रहा है, जो मेरे मनमें शङ्का-सी उत्पन्न कर रहा है' ॥ ५ ॥

एवं च वचनं चोक्त्वा मन्त्रिणो राक्षसेश्वरः ।
उवाच नैर्ऋतांस्तत्र समीपपरिवर्तिनः ॥ ६ ॥

मन्त्रियोंसे ऐसा कहकर राक्षसराज रावणने अपने पास ही खड़े हुए राक्षसोंसे कहा—॥ ६ ॥

ज्ञायतां तूर्णमेतेषां सर्वेषां च वनौकसाम् ।
शोककाले समुत्पन्ने हर्षकारणमुत्थितम् ॥ ७ ॥

'तुमलोग शीघ्र ही जाकर इस बातका पता लगाओ कि शोकका अवसर उपस्थित होनेपर भी इन सब वानरोंके हर्षका कौन-सा कारण प्रकट हो गया है' ॥ ७ ॥

तथोक्तास्ते सुसम्भ्रान्ताः प्राकारमधिरुह्य च ।
ददृशुः पालितां सेनां सुग्रीवेण महात्मना ॥ ८ ॥

रावणके इस प्रकार आदेश देनेपर वे राक्षस घबराये हुए गये और परकोटेपर चढ़कर महात्मा सुग्रीवके द्वारा पालित वानरसेनाकी ओर देखने लगे ॥ ८ ॥

तौ च मुक्तौ सुघोरेण शरबन्धेन राघवौ ।
समुत्थितौ महाभागौ विषेदुः सर्वराक्षसाः ॥ ९ ॥

जब ~~उन्हें मालूम हुआ~~ कि महाभाग श्रीराम और लक्ष्मण उस अत्यन्त भयंकर नागरूपी बाणोंके बन्धनसे मुक्त होकर उठ गये हैं, तब समस्त राक्षसोंको बड़ा दुःख हुआ ॥ ९ ॥

संत्रस्तहृदयाः सर्वे प्राकारादवरुह्य ते ।
विवर्णा राक्षसा घोरा राक्षसेन्द्रमुपस्थिताः ॥ १० ॥

उनका हृदय भयसे थर्रा उठा । वे सब भयानक राक्षस परकोटेसे उतरकर उदास हो राक्षसराज रावणकी सेवामें उपस्थित हुए ॥ १० ॥

तदप्रियं दीनमुखा रावणस्य च राक्षसाः ।
कृत्स्नं निवेदयामासुर्यथावद् वाक्यकोविदाः ॥ ११ ॥

वे बातचीतकी कलामें कुशल थे । उनके मुखपर दीनता छा रही थी । उन निशाचरोंने वह सारा अप्रिय समाचार रावणको यथावत् रूपसे बताया ॥ ११ ॥

यौ ताविन्द्रजिता युद्धे भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
निबद्धौ शरबन्धेन निष्प्रकम्पभुजौ कृतौ ॥ १२ ॥
विमुक्तौ शरबन्धेन दृश्येते तौ रणाजिरे ।
पाशानिव गजौ छित्त्वा गजेन्द्रसमविक्रमौ ॥ १३ ॥

(वे बोले—) 'महाराज ! कुमार इन्द्रजित्ने जिन राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको युद्धस्थलमें नागरूपी बाणोंके बन्धनसे बाँधकर हाथ हिलानेमें भी असमर्थ कर दिया था, वे गजराजके समान पराक्रमी दोनों वीर जैसे हाथी रस्सेको तोड़कर स्वतन्त्र हो जायँ, उसी तरह बाणबन्धनसे मुक्त हो समराङ्गणमें खड़े दिखायी देते हैं' ॥ १२-१३ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां राक्षसेन्द्रो महाबलः ।
चिन्ताशोकसमाक्रान्तो विवर्णवदनोऽभवत् ॥ १४ ॥

उनका वह वचन सुनकर महाबली राक्षसराज रावण चिन्ता तथा शोकके वशीभूत हो गया और उसका चेहरा उतर गया ॥ १४ ॥

घोरैर्दत्तवरैर्बद्धौ शरैराशीविषोपमैः ।
अमोघैः सूर्यसंकाशैः प्रमथ्येन्द्रजिता युधि ॥ १५ ॥
तदस्त्रबन्धमासाद्य यदि मुक्तौ रिपू मम ।
संशयस्थमिदं सर्वमनुपश्याम्यहं बलम् ॥ १६ ॥

(वह मन-ही-मन सोचने लगा—) 'जो विषधर सर्पोंके समान भयंकर, वरदानमें प्राप्त हुए और अमोघ थे तथा जिनका तेज सूर्यके समान था, उन्हींके द्वारा युद्धस्थलमें इन्द्रजित्ने जिन्हें बाँध दिया था, वे मेरे दोनों शत्रु यदि उस अस्त्रबन्धनमें पड़कर भी उससे छूट गये, तब तो अब मैं अपनी सारी सेनाको संशयापन्न ही देखता हूँ ॥ १५-१६ ॥

निष्फलाः खलु संवृत्ताः शराः पावकतेजसः ।
आदत्तं यैस्तु संग्रामे रिपूणां जीवितं मम ॥ १७ ॥

'जिन्होंने पहले युद्धस्थलमें मेरे शत्रुओंके प्राण ले लिये थे, वे अग्नितुल्य तेजस्वी बाण निश्चय ही आज निष्फल हो गये' ॥ १७ ॥

एवमुक्त्वा तु संक्रुद्धो निःश्वसन्नुरगो यथा ।
अब्रवीद् रक्षसां मध्ये धूम्राक्षं नाम राक्षसम् ॥ १८ ॥

ऐसा कहकर अत्यन्त कुपित हुआ रावण फुफकारते हुए सर्पके समान जोर-जोरसे साँस लेने लगा और राक्षसोंके बीचमें धूम्राक्ष नामक निशाचरसे बोला—॥ १८ ॥

बलेन महता युक्तो रक्षसां भीमविक्रम ।
त्वं वधायाशु निर्याहि रामस्य सह वानरैः ॥ १९ ॥

'भयानक पराक्रमी वीर ! तुम राक्षसोंकी बहुत बड़ी सेना साथ लेकर वानरोंसहित रामका वध करनेके लिये शीघ्र जाओ' ॥ १९ ॥

एवमुक्तस्तु धूम्राक्षो राक्षसेन्द्रेण धीमता ।
परिक्रम्य ततः शीघ्रं निर्जगाम नृपालयात् ॥ २० ॥

बुद्धिमान् राक्षसराजके इस प्रकार आज्ञा देनेपर धूम्राक्षने उसकी परिक्रमा की तथा वह तुरंत राजभवनसे बाहर निकल गया ॥ २० ॥

अभिनिष्क्रम्य तद् द्वारं बलाध्यक्षमुवाच ह ।
त्वरयस्व बलं शीघ्रं किं चिरेण युयुत्सतः ॥ २१ ॥

रावणके गृहद्वारपर पहुँचकर उसने सेनापतिसे कहा— 'सेनाको उतावलीके साथ शीघ्र तैयार करो । युद्धकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको विलम्ब करनेसे क्या लाभ ?' ॥ २१ ॥

धूम्राक्षवचनं श्रुत्वा बलाध्यक्षो बलानुगः ।
बलमुद्योजयामास रावणस्याज्ञया भृशम् ॥ २२ ॥

धूम्राक्षकी बात सुनकर रावणकी आज्ञाके अनुसार सेनापतिने जिनके पीछे बहुत बड़ी सेना थी, भारी संख्यामें सैनिकोंको तैयार कर दिया ॥ २२ ॥

ते बद्धघण्टा बलिनो घोररूपा निशाचराः ।
विनर्दमानाः संहृष्टा धूम्राक्षं पर्यवारयन् ॥ २३ ॥

वे भयानक रूपधारी बलवान् निशाचर प्रास और शक्ति आदि अस्त्रोंमें घण्टे बाँधकर हर्ष और उत्साहसे युक्त हो जोर-जोरसे गर्जते हुए आये और धूम्राक्षको घेरकर खड़े हो गये ॥

विविधायुधहस्ताश्च शूलमुद्गरपाणयः ।
गदाभिः पट्टिशैर्दण्डैरायसैर्मुसलैरपि ॥ २४ ॥
परिघैर्भिन्दिपालैश्च भल्लैः पाशैः परश्वधैः ।
निर्ययू राक्षसा घोरा नर्दन्तो जलदा यथा ॥ २५ ॥

उनके हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र थे । कुछ लोगोंने अपने हाथोंमें शूल और मुद्गर ले रक्खे थे । गदा, पट्टिश, लोहदण्ड, मूसल, परिघ, भिन्दिपाल, भाले, पाश और फरसे लिये बहुतेरे भयानक राक्षस युद्धके लिये निकले । वे सभी मेघोंके समान गम्भीर गर्जना करते थे ॥ २४-२५ ॥

रथैः कवचिनस्त्वन्ये ध्वजैश्च समलंकृतैः ।
सुवर्णजालविहितैः खरैश्च विविधाननैः ॥ २६ ॥

हयैः परमशीघ्रैश्च गजैश्चैव मदोत्कटैः ।
निर्ययुर्नैर्ऋतव्याघ्रा व्याघ्रा इव दुरासदाः ॥ २७ ॥

कितने ही निशाचर ध्वजोंसे अलंकृत तथा सोनेकी जालीसे आच्छादित रथोंद्वारा युद्धके लिये बाहर आये । वे सब-के-सब कवच धारण किये हुए थे । कितने ही श्रेष्ठ राक्षस नाना प्रकारके मुखवाले गधों, परम शीघ्रगामी घोड़ों तथा मदमत्त हाथियोंपर सवार हो दुर्जय व्याघ्रोंके समान युद्धके लिये नगरसे बाहर निकले ॥ २६-२७ ॥

वृकसिंहमुखैर्युक्तं खरैः कनकभूषितैः ।
आरुरोह रथं दिव्यं धूम्राक्षः खरनिःस्वनः ॥ २८ ॥

धूम्राक्षके रथमें सोनेके आभूषणोंसे विभूषित ऐसे गधे नधे हुए थे जिनके मुँह भेड़ियों और सिंहोंके समान थे । गधेकी भाँति रेंकनेवाला धूम्राक्ष उस दिव्य रथपर सवार हुआ ॥ २८ ॥

स निर्यातो महावीर्यो धूम्राक्षो राक्षसैर्वृतः ।
हसन् वै पश्चिमद्वाराद्धनूमान् यत्र तिष्ठति ॥ २९ ॥

इस प्रकार बहुत-से राक्षसोंके साथ महापराक्रमी धूम्राक्ष हँसता हुआ पश्चिम द्वारसे, जहाँ हनुमान्‌जी शत्रुका सामना करनेके लिये खड़े थे, युद्धके लिये निकला ॥ २९ ॥

रथप्रवरमास्थाय खरयुक्तं खरस्वनम् ।
प्रयान्तं तु महाघोरं राक्षसं भीमदर्शनम् ॥ ३० ॥
अन्तरिक्षगताः क्रूराः शकुनाः प्रत्यषेधयन् ।

गदहोंसे जुते और गदहोंकी-सी आवाज करनेवाले उस श्रेष्ठ रथपर बैठकर युद्धके लिये जाते हुए महाघोर राक्षस धूम्राक्षको, जो बड़ा भयानक दिखायी देता था, आकाशचारी क्रूर पक्षियोंने अशुभसूचक बोली बोलकर आगे बढ़नेसे मना किया ॥ ३०½ ॥

रथशीर्षे महाभीमो गृध्रश्च निपपात ह ॥ ३१ ॥
ध्वजाग्रे ग्रथिताश्चैव निपेतुः कुणपाशनाः ।
रुधिरार्द्रो महाञ्श्वेतः कबन्धः पतितो भुवि ॥ ३२ ॥

उसके रथके ऊपरी भागपर एक महाभयानक गीध आ गिरा । ध्वजके अग्रभागपर बहुत-से मुर्दाखोर पक्षी परस्पर गुँथे हुए-से गिर पड़े । उसी समय एक बहुत बड़ा श्वेत कबन्ध (धड़) खूनसे लथपथ होकर पृथ्वीपर गिरा ॥

विस्वरं चोत्सृजन्नादान् धूम्राक्षस्य निपातितः ।
ववर्ष रुधिरं देवः संचचाल च मेदिनी ॥ ३३ ॥

वह कबन्ध बड़े जोर-जोरसे चीत्कार करता हुआ धूम्राक्षके पास ही गिरा था । बादल रक्तकी वर्षा करने लगे और पृथ्वी डोलने लगी ॥ ३३ ॥

प्रतिलोमं ववौ वायुर्निर्घातसमनिःस्वनः ।
तिमिरौघावृतास्तत्र दिशश्च न चकाशिरे ॥ ३४ ॥

वायु प्रतिकूल दिशाकी ओरसे बहने लगी । उसमें वज्रपातके समान गड़गड़ाहट पैदा होती थी । सम्पूर्ण दिशाएँ अन्धकारसे आच्छन्न हो जानेके कारण प्रकाशित नहीं होती थीं ॥ ३४ ॥

स तूत्पातांस्ततो दृष्ट्वा राक्षसानां भयावहान् ।
प्रादुर्भूतान् सुघोरांश्च धूम्राक्षो व्यथितोऽभवत् ।
मुमुहू राक्षसाः सर्वे धूम्राक्षस्य पुरःसराः ॥ ३५ ॥

राक्षसोंके लिये भय देनेवाले वहाँ प्रकट हुए उन भयंकर उत्पातोंको देखकर धूम्राक्ष व्यथित हो उठा और उसके आगे चलनेवाले सभी राक्षस अचेत-से हो गये ॥ ३५ ॥

ततः सुभीमो बहुभिर्निशाचरै-
र्वृतोऽभिनिष्क्रम्य रणोत्सुको बली ।
ददर्श तां राघवबाहुपालितां
महौघकल्पां बहु वानरीं चमूम् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार बहुसंख्यक निशाचरोंसे घिरे हुए और युद्धके लिये उत्सुक रहनेवाले महाभयंकर बलवान् राक्षस धूम्राक्षने नगरसे बाहर निकलकर श्रीरामचन्द्रजीके बाहुबलसे सुरक्षित एवं प्रलयकालिक समुद्रके समान विशाल वानरी सेनाको देखा ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें इक्यावनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

* * *

द्विपञ्चाशः सर्गः

धूम्राक्षका युद्ध और हनुमान्‌जीके द्वारा उसका वध

धूम्राक्षं प्रेक्ष्य निर्यान्तं राक्षसं भीमविक्रमम् ।
विनेदुर्वानराः सर्वे प्रहृष्टा युद्धकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥

भयंकर पराक्रमी निशाचर धूम्राक्षको निकलते देख युद्धकी इच्छा रखनेवाले समस्त वानर हर्ष और उत्साहसे भरकर सिंहनाद करने लगे ॥ १ ॥

तेषां सुतुमुलं युद्धं संजज्ञे कपिरक्षसाम् ।
अन्योन्यं पादपैर्घोरैर्निघ्नतां शूलमुद्गरैः ॥ २ ॥

उस समय उन वानरों और राक्षसोंमें अत्यन्त भयंकर युद्ध छिड़ गया । वे घोर वृक्षों तथा शूलों और मुद्गरोंसे एक दूसरेको चोट पहुँचाने लगे ॥ २ ॥

राक्षसैर्वानरा घोरा विनिकृत्ताः समन्ततः ।
वानरै राक्षसाश्चापि द्रुमैर्भूमिसमीकृताः ॥ ३ ॥

राक्षसोंने चारों ओरसे घोर वानरोंको काटना आरम्भ किया तथा वानरोंने भी राक्षसोंको वृक्षोंसे मार-मारकर धराशायी कर दिया ॥ ३ ॥

राक्षसास्त्वभिसंक्रुद्धा वानरान् निशितैः शरैः ।
विव्यधुर्घोरसंकाशैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ ४ ॥

क्रोधसे भरे हुए राक्षसोंने अपने कङ्कपत्रयुक्त, सीधे जानेवाले, घोर एवं तीखे बाणोंसे वानरोंको गहरी चोट पहुँचायी ॥ ४ ॥

ते गदाभिश्च भीमाभिः पट्टिशैः कूटमुद्गरैः ।
घोरैश्च परिघैश्चित्रैस्त्रिशूलैश्चापि संश्रितैः ॥ ५ ॥
विदार्यमाणा रक्षोभिर्वानरास्ते महाबलाः ।
अमर्षजनितोद्धर्षाश्चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥ ६ ॥

राक्षसोंद्वारा भयंकर गदाओं, पट्टिशों, कूट, मुद्गरों, घोर परिघों और हाथमें लिये हुए विचित्र त्रिशूलोंसे विदीर्ण किये जाते हुए वे महाबली वानर अमर्षजनित उत्साहसे निर्भयकी भाँति महान् कर्म करने लगे ॥ ५-६ ॥

शरनिर्भिन्नगात्रास्ते शूलनिर्भिन्नदेहिनः ।
जगृहुस्ते द्रुमांस्तत्र शिलाश्च हरियूथपाः ॥ ७ ॥

बाणोंकी चोटसे उनके शरीर छिद गये थे । शूलोंकी मारसे देह विदीर्ण हो गयी थी । इस अवस्थामें उन वानर-यूथपतियोंने हाथोंमें वृक्ष और शिलाएँ उठायीं ॥ ७ ॥

ते भीमवेगा हरयो नर्दमानास्ततस्ततः ।
ममन्थू राक्षसान् वीरान् नामानि च बभाषिरे ॥ ८ ॥

उस समय उनका वेग बड़ा भयंकर था । वे जोर-जोरसे गर्जना करते हुए जहाँ-तहाँ वीर राक्षसोंको पटक-पटककर मारने लगे और अपने नामोंकी भी घोषणा करने लगे ॥ ८ ॥

तद् बभूवाद्भुतं घोरं युद्धं वानररक्षसाम् ।
शिलाभिर्विविधाभिश्च बहुशाखैश्च पादपैः ॥ ९ ॥

नाना प्रकारकी शिलाओं और बहुत-सी शाखावाले वृक्षोंके प्रहारसे वहाँ वानरों और राक्षसोंमें घोर एवं अद्भुत युद्ध होने लगा ॥ ९ ॥

राक्षसा मथिताः केचिद् वानरैर्जितकाशिभिः ।
ववमू रुधिरं केचिन्मुखै रुधिरभोजनाः ॥ १० ॥

विजयोल्लाससे सुशोभित होनेवाले वानरोंने कितने ही राक्षसोंको मसल डाला । कितने ही रक्तभोजी राक्षस उनकी मार खाकर अपने मुखोंसे रक्त वमन करने लगे ॥ १० ॥

पार्श्वेषु दारिताः केचित् केचिद् राशीकृता द्रुमैः ।
शिलाभिश्चूर्णिताः केचित् केचिद् दन्तैर्विदारिताः ॥ ११ ॥

कुछ राक्षसोंकी पसलियाँ फाड़ डाली गयीं । कितने ही वृक्षोंकी चोट खाकर ढेर हो गये, किन्हींका पत्थरोंकी चोटोंसे चूर्ण बन गया और कितने ही दाँतोंसे विदीर्ण कर दिये गये ॥

ध्वजैर्विमथितैर्भग्नैः खड्गैश्च विनिपातितैः ।
रथैर्विध्वंसितैः केचिद् व्यथिता रजनीचराः ॥ १२ ॥

कितनोंके ध्वज खण्डित करके मसल डाले गये । तलवारें छीनकर नीचे गिरा दी गयीं और रथ चौपट कर दिये गये । इस प्रकार दुर्दशामें पड़कर बहुत-से राक्षस व्यथित हो गये ॥ १२ ॥

गजेन्द्रैः पर्वताकारैः पर्वताग्रैर्वनौकसाम् ।
मथितैर्वाजिभिः कीर्णं सारोहैर्वसुधातलम् ॥ १३ ॥

वानरोंके चलाये हुए पर्वत-शिखरोंसे कुचल डाले गये पर्वताकार गजराजों, घोड़ों और घुड़सवारोंसे वह सारी रणभूमि पट गयी ॥ १३ ॥

वानरैर्भीमविक्रान्तैराप्लुत्योत्प्लुत्य वेगितैः ।
राक्षसाः करजैस्तीक्ष्णैर्मुखेषु विनिदारिताः ॥ १४ ॥

भयानक पराक्रम प्रकट करनेवाले वेगशाली वानर उछल-उछलकर अपने पंजोंसे राक्षसोंके मुँह नोच लेते या विदीर्ण कर देते थे ॥ १४ ॥

विषण्णवदना भूयो विप्रकीर्णशिरोरुहाः ।
मूढाः शोणितगन्धेन निपेतुर्धरणीतले ॥ १५ ॥

उन राक्षसोंके मुखोंपर विषाद छा जाता । उनके बाल सब ओर बिखर जाते और रक्तकी गन्धसे मूर्च्छित हो पृथ्वीपर पड़ जाते थे ॥ १५ ॥

अन्ये तु परमक्रुद्धा राक्षसा भीमविक्रमाः ।
तलैरेवाभिधावन्ति वज्रस्पर्शसमैर्हरीन् ॥ १६ ॥

दूसरे भीषण पराक्रमी राक्षस अत्यन्त क्रुद्ध हो अपने वज्रसदृश कठोर तमाचोंसे मारते हुए वहाँ वानरोंपर धावा करते थे ॥ १६ ॥

वानरैः पातयन्तस्ते वेगिता वेगवत्तरैः ।
मुष्टिभिश्चरणैर्दन्तैः पादपैश्चावपोथिताः ॥ १७ ॥

प्रतिपक्षीको वेगपूर्वक गिरानेवाले उन राक्षसोंका बहुत-से अत्यन्त वेगशाली वानरोंने लातों, मुक्कों, दाँतों और वृक्षोंकी मारसे कचूमर निकाल दिया ॥ १७ ॥

सैन्यं तु विद्रुतं दृष्ट्वा धूम्राक्षो राक्षसर्षभः ।
रोषेण कदनं चक्रे वानराणां युयुत्सताम् ॥ १८ ॥

अपनी सेनाको वानरोंद्वारा भगायी गयी देख राक्षस-शिरोमणि धूम्राक्षने युद्धकी इच्छासे सामने आये हुए वानरोंका रोषपूर्वक संहार आरम्भ किया ॥ १८ ॥

प्रासैः प्रमथिताः केचिद् वानराः शोणितस्रवाः ।
मुद्गरैराहताः केचित् पतिता धरणीतले ॥ १९ ॥

कुछ वानरोंको उसने भालोंसे गाँथ दिया, जिससे वे खूनकी धारा बहाने लगे । कितने ही वानर उसके मुद्गरोंसे आहत होकर धरतीपर लोट गये ॥ १९ ॥

परिघैर्मथिताः केचिद् भिन्दिपालैश्च दारिताः ।
पट्टिशैर्मथिताः केचिद् विह्वलन्तो गतासवः ॥ २० ॥

कुछ वानर परिघोंसे कुचल डाले गये । कुछ भिन्दिपालोंसे चीर दिये गये और कुछ पट्टिशोंसे मथे जाकर व्याकुल हो अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठे ॥ २० ॥

केचिद् विनिहता भूमौ रुधिरार्द्रा वनौकसः ।
केचिद् विद्राविता नष्टाः संक्रुद्धै राक्षसैर्युधि ॥ २१ ॥

कितने ही वानर राक्षसोंद्वारा मारे जाकर खूनसे लथपथ हो पृथ्वीपर सो गये और कितने ही क्रोधभरे राक्षसोंद्वारा युद्धस्थलमें खदेड़े जानेपर कहीं भागकर छिप गये ॥ २१ ॥

विभिन्नहृदयाः केचिदेकपार्श्वेन शायिताः ।
विदारितास्त्रिशूलैश्च केचिदान्त्रैर्विनिःसृताः ॥ २२ ॥

कितनोंके हृदय विदीर्ण हो गये । कितने ही एक करवटसे सुला दिये गये तथा कितनोंको त्रिशूलसे विदीर्ण करके धूम्राक्षने उनकी आँतें बाहर निकाल दीं ॥ २२ ॥

तत् सुभीमं महद्युद्धं हरिराक्षससंकुलम् ।
प्रबभौ शस्त्रबहुलं शिलापादपसंकुलम् ॥ २३ ॥

वानरों और राक्षसोंसे भरा हुआ वह महान् युद्ध बड़ा भयानक प्रतीत होता था । उसमें अस्त्र-शस्त्रोंकी बहुलता थी तथा शिलाओं और वृक्षोंकी वर्षासे सारी रणभूमि भर गयी थी ॥ २३ ॥

धनुर्ज्यातन्त्रिमधुरं हिक्कातालसमन्वितम् ।
मन्दस्तनितगीतं तद् युद्धगान्धर्वमाबभौ ॥ २४ ॥

वह युद्धरूपी गान्धर्व (संगीत-महोत्सव) अद्भुत प्रतीत होता था । धनुषकी प्रत्यञ्चासे जो टंकार-ध्वनि होती थी, वही मानो वीणाका मधुर नाद था, हिचकियाँ तालका काम देती थीं और मन्दस्वरसे घायलोंका जो कराहना होता था वही गीतका स्थान ले रहा था ॥ २४ ॥

धूम्राक्षस्तु धनुष्पाणिर्वानरान् रणमूर्धनि ।
हसन् विद्रावयामास दिशस्ताञ्छरवृष्टिभिः ॥ २५ ॥

इस प्रकार धनुष हाथमें लिये धूम्राक्षने युद्धके मुहानेपर बाणोंकी वर्षा करके वानरोंको हँसते-हँसते सम्पूर्ण दिशाओंमें मार भगाया ॥ २५ ॥

धूम्राक्षेणार्दितं सैन्यं व्यथितं प्रेक्ष्य मारुतिः ।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः प्रगृह्य विपुलां शिलाम् ॥ २६ ॥

धूम्राक्षकी मारसे अपनी सेनाको पीड़ित एवं व्यथित हुई देख पवनकुमार हनुमान्जी अत्यन्त कुपित हो उठे और एक विशाल शिला हाथमें ले उसके सामने आये ॥ २६ ॥

क्रोधाद् द्विगुणताम्राक्षः पितुस्तुल्यपराक्रमः ।
शिलां तां पातयामास धूम्राक्षस्य रथं प्रति ॥ २७ ॥

उस समय क्रोधके कारण उनके नेत्र दुगुने लाल हो रहे थे । उनका पराक्रम अपने पिता वायुदेवताके ही समान था । उन्होंने धूम्राक्षके रथपर वह विशाल शिला दे मारी ॥ २७ ॥

आपतन्तीं शिलां दृष्ट्वा गदामुद्यम्य सम्भ्रमात् ।
रथादाप्लुत्य वेगेन वसुधायां व्यतिष्ठत ॥ २८ ॥

उस शिलाको रथकी ओर आती देख धूम्राक्ष हड़बड़ीमें गदा लिये उठा और वेगपूर्वक रथसे कूदकर पृथ्वीपर खड़ा हो गया ॥ २८ ॥

सा प्रमथ्य रथं तस्य निपपात शिला भुवि ।
सचक्रकूबरं साश्वं सध्वजं सशरासनम् ॥ २९ ॥

वह शिला पहिये, कूबर, अश्व, ध्वज और धनुषसहित उसके रथको चूर-चूर करके पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ २९ ॥

स भङ्क्त्वा तु रथं तस्य हनूमान् मारुतात्मजः ।
रक्षसां कदनं चक्रे सस्कन्धविटपैर्द्रुमैः ॥ ३० ॥

इस प्रकार धूम्राक्षके रथको चौपट करके पवनपुत्र हनुमान्ने छोटी-बड़ी डालियोंसहित वृक्षोंद्वारा राक्षसोंका संहार आरम्भ किया ॥ ३० ॥

विभिन्नशिरसो भूत्वा राक्षसा रुधिरोक्षिताः ।
द्रुमैः प्रमथिताश्चान्ये निपेतुर्धरणीतले ॥ ३१ ॥

बहुतेरे राक्षसोंके सिर फूट गये और वे रक्तसे नहा उठे । दूसरे बहुत-से निशाचर वृक्षोंकी मारसे कुचले जाकर धरतीपर लोट गये ॥ ३१ ॥

विद्राव्य राक्षसं सैन्यं हनूमान् मारुतात्मजः ।
गिरेः शिखरमादाय धूम्राक्षमभिदुद्रुवे ॥ ३२ ॥

इस प्रकार राक्षससेनाको खदेड़कर पवनकुमार हनुमान्ने एक पर्वतका शिखर उठा लिया और धूम्राक्षपर धावा किया ॥ ३२ ॥

तमापतन्तं धूम्राक्षो गदामुद्यम्य वीर्यवान् ।
विनर्दमानः सहसा हनूमन्तमभिद्रवत् ॥ ३३ ॥

उन्हें आते देख पराक्रमी धूम्राक्षने भी गदा उठा ली और गर्जना करता हुआ वह सहसा हनुमान्जीकी ओर दौड़ा ॥ ३३ ॥

तस्य क्रुद्धस्य रोषेण गदां तां बहुकण्टकाम् ।
पातयामास धूम्राक्षो मस्तकेऽथ हनूमतः ॥ ३४ ॥

धूम्राक्षने कुपित हुए हनुमान्जीके मस्तकपर बहुसंख्यक काँटोंसे भरी हुई वह गदा दे मारी ॥ ३४ ॥

ताडितः स तया तत्र गदया भीमवेगया ।
स कपिर्मारुतबलस्तं प्रहारमचिन्तयन् ॥ ३५ ॥
धूम्राक्षस्य शिरोमध्ये गिरिशृङ्गमपातयत् ।

भयानक वेगवाली उस गदाकी चोट खाकर भी वायुके समान बलशाली कपिवर हनुमान्‌ने वहाँ इस प्रहारको कुछ भी नहीं गिना और धूम्राक्षके मस्तकपर वह पर्वतशिखर चला दिया ॥ ३५½ ॥

स विस्फारितसर्वाङ्गो गिरिशृङ्गेण ताडितः ॥ ३६ ॥
पपात सहसा भूमौ विकीर्ण इव पर्वतः ।

पर्वतशिखरकी गहरी चोट खाकर धूम्राक्षके सारे अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये और वह बिखरे हुए पर्वतकी भाँति सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३६½ ॥

धूम्राक्षं निहतं दृष्ट्वा हतशेषा निशाचराः ।
त्रस्ताः प्रविविशुर्लङ्कां वध्यमानाः प्लवंगमैः ॥ ३७ ॥

धूम्राक्षको मारा गया देख मरनेसे बचे हुए निशाचर भयभीत हो वानरोंकी मार खाते हुए लङ्कामें घुस गये ॥ ३७ ॥

स तु पवनसुतो निहत्य शत्रून्
क्षतजवहाः सरितश्च संविकीर्य ।
रिपुवधजनितश्रमो महात्मा
मुदमगमत् कपिभिः सुपूज्यमानः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार शत्रुओंको मारकर और रक्तकी धारा बहानेवाली बहुत-सी नदियोंको प्रवाहित करके महात्मा पवनकुमार हनुमान् यद्यपि शत्रुवधजनित परिश्रमसे थक गये थे, तथापि वानरोंद्वारा पूजित एवं प्रशंसित होनेसे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें बावनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशः सर्गः

वज्रदंष्ट्रका सेनासहित युद्धके लिये प्रस्थान, वानरों और राक्षसोंका युद्ध, वज्रदंष्ट्रद्वारा वानरोंका तथा अङ्गदद्वारा राक्षसोंका संहार

धूम्राक्षं निहतं श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो निःश्वसन्नुरगो यथा ॥ १ ॥

धूम्राक्षके मारे जानेका समाचार सुनकर राक्षसराज रावणको महान् क्रोध हुआ । वह फुफकारते हुए सर्पके समान जोर-जोरसे साँस लेने लगा ॥ १ ॥

दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य क्रोधेन कलुषीकृतः ।
अब्रवीद् राक्षसं क्रूरं वज्रदंष्ट्रं महाबलम् ॥ २ ॥

क्रोधसे कलुषित हो गर्म-गर्म लंबी साँस खींचकर उसने क्रूर निशाचर महाबली वज्रदंष्ट्रसे कहा—॥ २ ॥

गच्छ त्वं वीर निर्याहि राक्षसैः परिवारितः ।
जहि दाशरथिं रामं सुग्रीवं वानरैः सह ॥ ३ ॥

‘वीर ! तुम राक्षसोंके साथ जाओ और दशरथकुमार राम और वानरोंसहित सुग्रीवको मार डालो’ ॥ ३ ॥

तथेत्युक्त्वा द्रुततरं मायावी राक्षसेश्वरः ।
निर्जगाम बलैः सार्धं बहुभिः परिवारितः ॥ ४ ॥

तब वह मायावी राक्षस ‘बहुत अच्छा’ कहकर बहुत बड़ी सेनाके साथ तुरंत युद्धके लिये चल दिया ॥ ४ ॥

नागैरश्वैः खरैरुष्ट्रैः संयुक्तः सुसमाहितः ।
पताकाध्वजचित्रैश्च बहुभिः समलंकृतः ॥ ५ ॥

वह हाथी, घोड़े, गदहे और ऊँट आदि सवारियोंसे युक्त था, चित्तको पूर्णतः एकाग्र किये हुए था और पताका, ध्वज आदिसे विचित्र शोभा पानेवाले बहुत-से सेनाध्यक्ष उसकी शोभा बढ़ाते थे ॥ ५ ॥

ततो विचित्रकेयूरमुकुटेन विभूषितः ।
तनुत्रं च समावृत्य सधनुर्निर्ययौ द्रुतम् ॥ ६ ॥

विचित्र भुजबंद और मुकुटसे विभूषित हो कवच धारण करके हाथमें धनुष लिये वह शीघ्र ही निकला ॥ ६ ॥

पताकालंकृतं दीप्तं तप्तकाञ्चनभूषितम् ।
रथं प्रदक्षिणं कृत्वा समारोहच्चमूपतिः ॥ ७ ॥

ध्वजा-पताकाओंसे अलंकृत, दीप्तिमान् तथा सोनेके साज-बाजसे सुसज्जित रथकी परिक्रमा करके सेनापति वज्रदंष्ट्र उसपर आरूढ़ हुआ ॥ ७ ॥

ऋष्टिभिस्तोमरैश्चित्रैः श्लक्ष्णैश्च मुसलैरपि ।
भिन्दिपालैश्च चापैश्च शक्तिभिः पट्टिशैरपि ॥ ८ ॥
खड्गैश्चक्रैर्गदाभिश्च निशितैश्च परश्वधैः ।
पदातयश्च निर्यान्ति विविधाः शस्त्रपाणयः ॥ ९ ॥

उसके साथ ऋष्टि, विचित्र तोमर, चिकने मुसल, भिन्दिपाल, धनुष, शक्ति, पट्टिश, खड्ग, चक्र, गदा और तीखे फरसोंसे सुसज्जित बहुत-से पैदल योद्धा चले । उनके हाथोंमें अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र शोभा पा रहे थे ॥ ८-९ ॥

विचित्रवाससः सर्वे दीप्ता राक्षसपुङ्गवाः ।
गजा महोत्कटाः शूराश्चलन्त इव पर्वताः ॥ १० ॥

विचित्र वस्त्र धारण करनेवाले सभी राक्षस वीर अपने तेजसे उद्भासित हो रहे थे । शौर्यसम्पन्न मदमत्त गजराज चलते-फिरते पर्वतोंके समान जान पड़ते थे ॥ १० ॥

ते युद्धकुशला रूढास्तोमराङ्कुशपाणिभिः ।
अन्ये लक्षणसंयुक्ताः शूरारूढा महाबलाः ॥ ११ ॥

हाथोंमें तोमर, अंकुश धारण करनेवाले महावत जिनकी गर्दनपर सवार थे तथा जो युद्धकी कलामें कुशल थे, वे हाथी युद्धके लिये आगे बढ़े । उत्तम लक्षणोंसे युक्त जो दूसरे-दूसरे महाबली घोड़े थे, जिनके ऊपर शूरवीर सैनिक सवार थे, वे भी युद्धके लिये निकले ॥ ११ ॥

तद् राक्षसबलं सर्वं विप्रस्थितमशोभत ।
प्रावृट्काले यथा मेघा नर्दमानाः सविद्युतः ॥ १२ ॥

युद्धके उद्देश्यसे प्रस्थित हुई राक्षसोंकी वह सारी सेना वर्षाकालमें गर्जते हुए बिजलियोंसहित मेघके समान शोभा पा रही थी ॥ १२ ॥

निःसृता दक्षिणद्वारादङ्गदो यत्र यूथपः ।
तेषां निष्क्रममाणानामशुभं समजायत ॥ १३ ॥

वह सेना लङ्काके दक्षिणद्वारसे निकली, जहाँ वानरयूथपति अङ्गद राह रोके खड़े थे । उधरसे निकलते ही उन राक्षसोंके सामने अशुभसूचक अपशकुन होने लगा ॥ १३ ॥

आकाशाद् विघनात् तीव्रा उल्काश्चाभ्यपतंस्तदा ।
वमन्तः पावकज्वालाः शिवा घोरा ववाशिरे ॥ १४ ॥

मेघरहित आकाशसे तत्काल दुःसह उल्कापात होने लगे । भयानक गीदड़ मुँहसे आगकी ज्वाला उगलते हुए अपनी बोली बोलने लगे ॥ १४ ॥

व्याहरन्त मृगा घोरा रक्षसां निधनं तदा ।
समापतन्तो योधास्तु प्रास्खलंस्तत्र दारुणम् ॥ १५ ॥

घोर पशु ऐसी बोली बोलने लगे, जिससे राक्षसोंके संहारकी सूचना मिल रही थी । युद्धके लिये आते हुए योद्धा बुरी तरह लड़खड़ाकर गिर पड़ते थे । इससे उनकी बड़ी दारुण अवस्था हो जाती थी ॥ १५ ॥

एतानौत्पातिकान् दृष्ट्वा वज्रदंष्ट्रो महाबलः ।
धैर्यमालम्ब्य तेजस्वी निर्जगाम रणोत्सुकः ॥ १६ ॥

इन उत्पातसूचक लक्षणोंको देखकर भी महाबली वज्रदंष्ट्रने धैर्य नहीं छोड़ा । वह तेजस्वी वीर युद्धके लिये उत्सुक होकर निकला ॥ १६ ॥

तांस्तु विद्रवतो दृष्ट्वा वानरा जितकाशिनः ।
प्रणेदुः सुमहानादान् दिशः शब्देन पूरयन् ॥ १७ ॥

तीव्रगतिसे आते हुए उन राक्षसोंको देखकर विजयलक्ष्मीसे सुशोभित होनेवाले वानर बड़े जोर-जोरसे गर्जना करने लगे । उन्होंने अपने सिंहनादसे सम्पूर्ण दिशाओंको गुँजा दिया ॥ १७ ॥

ततः प्रवृत्तं तुमुलं हरीणां राक्षसैः सह ।
घोराणां भीमरूपाणामन्योन्यवधकाङ्क्षिणाम् ॥ १८ ॥

तदनन्तर भयानक रूप धारण करनेवाले घोर वानरोंका राक्षसोंके साथ तुमुल युद्ध आरम्भ हुआ । दोनों दलोंके योद्धा एक दूसरेका वध करना चाहते थे ॥ १८ ॥

निष्पतन्तो महोत्साहा भिन्नदेहशिरोधराः ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गा न्यपतन् धरणीतले ॥ १९ ॥

वे बड़े उत्साहसे युद्धके लिये निकलते; परंतु देह और गर्दन कट जानेसे पृथ्वीपर गिर पड़ते थे । उस समय उनके सारे अङ्ग रक्तसे भीग जाते थे ॥ १९ ॥

केचिदन्योन्यमासाद्य शूराः परिघबाहवः ।
चिक्षिपुर्विविधाञ्शस्त्रान् समरेष्वनिवर्तिनः ॥ २० ॥

युद्धसे कभी पीछे न हटनेवाले और परिघ-जैसी बाँहोंवाले कितने ही शूरवीर एक दूसरेके निकट पहुँचकर परस्पर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते थे ॥ २० ॥

द्रुमाणां च शिलानां च शस्त्राणां चापि निःस्वनः ।
श्रूयते सुमहांस्तत्र घोरो हृदयभेदनः ॥ २१ ॥

उस युद्धस्थलमें प्रयुक्त होनेवाले वृक्षों, शिलाओं और शस्त्रोंका महान् एवं घोर शब्द जब कानोंमें पड़ता था, तब वह हृदयको विदीर्ण-सा कर देता था ॥ २१ ॥

रथनेमिस्वनस्तत्र धनुषश्चापि घोरवत् ।
शङ्खभेरीमृदङ्गानां बभूव तुमुलः स्वनः ॥ २२ ॥

वहाँ रथके पहियोंकी घर्घराहट, धनुषकी भयानक टंकार तथा शङ्ख, भेरी और मृदङ्गोंका शब्द एकमें मिलकर बड़ा भयंकर प्रतीत होता था ॥ २२ ॥

केचिदस्त्राणि संत्यज्य बाहुयुद्धमकुर्वत ॥ २३ ॥
तलैश्च चरणैश्चापि मुष्टिभिश्च द्रुमैरपि ।
जानुभिश्च हताः केचिद् भग्नदेहाश्च राक्षसाः ।
शिलाभिश्चूर्णिताः केचिद् वानरैर्युद्धदुर्मदैः ॥ २४ ॥

कुछ योद्धा अपने हथियार फेंककर बाहुयुद्ध करने लगते थे । थप्पड़ों, लातों, मुक्कों, वृक्षों और घुटनोंकी मार खाकर कितने ही राक्षसोंके शरीर चूर-चूर हो गये थे । रणदुर्मद वानरोंने शिलाओंसे मार-मारकर कितने ही राक्षसोंका चूरा बना दिया था ॥ २३-२४ ॥

वज्रदंष्ट्रो भृशं बाणै रणे वित्रासयन् हरीन् ।
चचार लोकसंहारे पाशहस्त इवान्तकः ॥ २५ ॥

उस समय वज्रदंष्ट्र अपने बाणोंकी मारसे वानरोंको अत्यन्त भयभीत करता हुआ तीनों लोकोंके संहारके लिये उठे हुए पाशधारी यमराजके समान रणभूमिमें विचरने लगा ॥ २५ ॥

बलवन्तोऽस्त्रविदुषो नानाप्रहरणा रणे ।
जघ्नुर्वानरसैन्यानि राक्षसाः क्रोधमूर्च्छिताः ॥ २६ ॥

साथ ही क्रोधसे भरे तथा नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये अन्य अस्त्रवेत्ता बलवान् राक्षस भी वानरसेनाओंका रणभूमिमें संहार करने लगे ॥ २६ ॥

जघ्ने तान् राक्षसान् सर्वान् धृष्टो वालिसुतो रणे ।
क्रोधेन द्विगुणाविष्टः संवर्तक इवानलः ॥ २७ ॥

किंतु प्रलयकालमें संवर्तक अग्नि जैसे प्राणियोंका संहार करती है, उसी तरह वालिपुत्र अङ्गद और भी निर्भय हो दूने क्रोधसे भरकर उन सब राक्षसोंका वध करने लगे ॥ २७ ॥

तान् राक्षसगणान् सर्वान् वृक्षमुद्यम्य वीर्यवान् ।
अङ्गदः क्रोधताम्राक्षः सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ २८ ॥
चकार कदनं घोरं शक्रतुल्यपराक्रमः ।

उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं । वे इन्द्रके तुल्य पराक्रमी थे । जैसे सिंह छोटे वन्य-पशुओंको अनायास ही नष्ट कर देता है, उसी तरह पराक्रमी अङ्गदने एक वृक्ष उठाकर उन समस्त राक्षसगणोंका घोर संहार आरम्भ किया ॥ २८½ ॥

अङ्गदाभिहतास्तत्र राक्षसा भीमविक्रमाः ॥ २९ ॥
विभिन्नशिरसः पेतुर्निकृत्ता इव पादपाः ।

अङ्गदकी मार खाकर वे भयानक पराक्रमी राक्षस सिर फट जानेके कारण कटे हुए वृक्षोंके समान पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ २९½ ॥

रथैश्चित्रैर्ध्वजैरश्वैः शरीरैर्हरिरक्षसाम् ॥ ३० ॥
रुधिरौघेण संछन्ना भूमिर्भयकरी तदा ।

उस समय रथों, चित्र-विचित्र ध्वजों, घोड़ों, राक्षस और वानरोंके शरीरों तथा रक्तकी धाराओंसे भर जानेके कारण वह रणभूमि बड़ी भयानक जान पड़ती थी ॥ ३०½ ॥

हारकेयूरवस्त्रैश्च शस्त्रैश्च समलंकृता ॥ ३१ ॥
भूमिर्भाति रणे तत्र शारदीव यथा निशा ।

योद्धाओंके हार, केयूर (बाजूबंद), वस्त्र और शस्त्रोंसे अलंकृत हुई रणभूमि शरत्कालकी रात्रिके समान शोभा पाती थी ॥ ३१½ ॥

अङ्गदस्य च वेगेन तद् राक्षसबलं महत् ।
प्राकम्पत तदा तत्र पवनेनाम्बुदो यथा ॥ ३२ ॥

अङ्गदके वेगसे वहाँ वह विशाल राक्षससेना उस समय उसी तरह काँपने लगी, जैसे वायुके वेगसे मेघ कम्पित हो उठता है ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तिरपनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

* * *

चतुःपञ्चाशः सर्गः

वज्रदंष्ट्र और अङ्गदका युद्ध तथा अङ्गदके हाथसे उस निशाचरका वध

स्वबलस्य च घातेन अङ्गदस्य बलेन च ।
राक्षसः क्रोधमाविष्टो वज्रदंष्ट्रो महाबलः ॥ १ ॥

अङ्गदके पराक्रमसे अपनी सेनाका संहार होता देख महाबली राक्षस वज्रदंष्ट्र अत्यन्त कुपित हो उठा ॥ १ ॥

विस्फार्य च धनुर्घोरं शक्राशनिसमप्रभम् ।
वानराणामनीकानि प्राकिरच्छरवृष्टिभिः ॥ २ ॥

वह इन्द्रके वज्रके समान तेजस्वी अपना भयंकर धनुष खींचकर वानरोंकी सेनापर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २ ॥

राक्षसाश्चापि मुख्यास्ते रथेषु समवस्थिताः ।
नानाप्रहरणाः शूराः प्रायुध्यन्त तदा रणे ॥ ३ ॥

उसके साथ अन्य प्रधान-प्रधान शूरवीर राक्षस भी रथोंपर बैठकर हाथोंमें तरह-तरहके हथियार लिये संग्रामभूमिमें युद्ध करने लगे ॥ ३ ॥

वानराणां च शूरास्तु ते सर्वे प्लवगर्षभाः ।
अयुध्यन्त शिलाहस्ताः समवेताः समन्ततः ॥ ४ ॥

वानरोंमें भी जो विशेष शूरवीर थे, वे सभी वानरशिरोमणि सब ओरसे एकत्र हो हाथोंमें शिलाएँ लिये जूझने लगे ॥ ४ ॥

तत्रायुधसहस्राणि तस्मिन्नायोधने भृशम् ।
राक्षसाः कपिमुख्येषु पातयांचक्रिरे तदा ॥ ५ ॥

उस समय इस रणभूमिमें राक्षसोंने मुख्य-मुख्य वानरोंपर हजारों अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा की ॥ ५ ॥

वानराश्चैव रक्षःसु गिरिवृक्षान् महाशिलाः ।
प्रवीराः पातयामासुर्मत्तवारणसंनिभाः ॥ ६ ॥

मतवाले हाथीके समान विशालकाय वीर वानरोंने भी राक्षसोंपर अनेकानेक पर्वत, वृक्ष और बड़ी-बड़ी शिलाएँ गिरायीं ॥ ६ ॥

शूराणां युध्यमानानां समरेष्वनिवर्तिनाम् ।
तद् राक्षसगणानां च सुयुद्धं समवर्तत ॥ ७ ॥

युद्धमें पीठ न दिखानेवाले और उत्साहपूर्वक जूझनेवाले शूरवीर वानरों और राक्षसोंका वह युद्ध उत्तरोत्तर बढ़ता गया ॥ ७ ॥

प्रभिन्नशिरसः केचिच्छिन्नैः पादैश्च बाहुभिः ।
शस्त्रैरर्दितदेहास्तु रुधिरेण समुक्षिताः ॥ ८ ॥

किन्हींके सिर फूटे, किन्हींके हाथ और पैर कट गये और बहुत-से योद्धाओंके शरीर शस्त्रोंके आघातसे पीड़ित हो रक्तसे नहा गये ॥ ८ ॥

हरयो राक्षसाश्चैव शेरते गां समाश्रिताः ।
कङ्कगृध्रबलाढ्याश्च गोमायुकुलसंकुलाः ॥ ९ ॥

वानर और राक्षस दोनों ही धराशायी हो गये । उनपर कङ्क, गीध और कौए टूट पड़े । गीदड़ोंकी जमातें छा गयीं ॥ ९ ॥

कबन्धानि समुत्पेतुर्भीरूणां भीषणानि वै ।
भुजपाणिशिरश्छिन्नाश्छिन्नकायाश्च भूतले ॥ १० ॥

वहाँ जिनके मस्तक कट गये थे, ऐसे धड़ सब ओर उछलने लगे, जो भीरु स्वभाववाले सैनिकोंको भयभीत करते थे । योद्धाओंकी कटी हुई भुजाएँ, हाथ, सिर तथा शरीरके मध्यभाग पृथ्वीपर पड़े हुए थे ॥ १० ॥

वानरा राक्षसाश्चापि निपेतुस्तत्र भूतले ।
ततो वानरसैन्येन हन्यमानं निशाचरम् ॥ ११ ॥
प्राभज्यत बलं सर्वं वज्रदंष्ट्रस्य पश्यतः ।

वानर और राक्षस दोनों ही दलोंके लोग वहाँ धराशायी हो रहे थे । तत्पश्चात् कुछ ही देरमें वानर-सैनिकोंके प्रहारोंसे पीड़ित हो सारी निशाचरसेना वज्रदंष्ट्रके देखते-देखते भाग चली ॥ ११½ ॥

राक्षसान् भयवित्रस्तान् हन्यमानान् प्लवंगमैः ॥ १२ ॥
दृष्ट्वा स रोषताम्राक्षो वज्रदंष्ट्रः प्रतापवान् ।

वानरोंकी मारसे राक्षसोंको भयभीत हुआ देख प्रतापी वज्रदंष्ट्रकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं ॥ १२½ ॥

प्रविवेश धनुष्पाणिस्त्रासयन् हरिवाहिनीम् ॥ १३ ॥
शरैर्विदारयामास कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ।

वह हाथमें धनुष ले वानरसेनाको भयभीत करता हुआ उसके भीतर घुस गया और सीधे जानेवाले कङ्कपत्रयुक्त बाणोंद्वारा शत्रुओंको विदीर्ण करने लगा ॥ १३½ ॥

बिभेद वानरांस्तत्र सप्ताष्टौ नव पञ्च च ॥ १४ ॥
विव्याध परमक्रुद्धो वज्रदंष्ट्रः प्रतापवान् ।

अत्यन्त क्रोधसे भरा हुआ प्रतापी वज्रदंष्ट्र वहाँ एक-एक प्रहारसे पाँच, सात, आठ और नौ-नौ वानरोंको घायल कर देता था । इस तरह उसने वानर-सैनिकोंको गहरी चोट पहुँचायी ॥ १४½ ॥

त्रस्ताः सर्वे हरिगणाः शरैः संकृत्तदेहिनः ।
अङ्गदं सम्प्रधावन्ति प्रजापतिमिव प्रजाः ॥ १५ ॥

बाणोंसे जिनके शरीर छिन्न-भिन्न हो गये थे, वे समस्त वानरगण भयभीत हो अङ्गदकी ओर दौड़े, मानो प्रजा प्रजापतिकी शरणमें जा रही हो ॥ १५ ॥

ततो हरिगणान् भग्नान् दृष्ट्वा वालिसुतस्तदा ।
क्रोधेन वज्रदंष्ट्रं तमुदीक्षन्तमुदैक्षत ॥ १६ ॥

उस समय वानरोंको भागते देख वालिकुमार अङ्गदने अपनी ओर देखते हुए वज्रदंष्ट्रको क्रोधपूर्वक देखा ॥१६॥

वज्रदंष्ट्रोऽङ्गदश्चोभौ योयुध्येते परस्परम् ।
चेरतुः परमक्रुद्धौ हरिमत्तगजाविव ॥ १७ ॥

फिर तो वज्रदंष्ट्र और अङ्गद अत्यन्त कुपित हो एक दूसरेसे वेगपूर्वक युद्ध करने लगे । वे दोनों रणभूमिमें बाघ और मतवाले हाथीके समान विचर रहे थे ॥ १७ ॥

ततः शतसहस्रेण हरिपुत्रं महाबलम् ।
जघान मर्मदेशेषु शरैरग्निशिखोपमैः ॥ १८ ॥

उस समय वज्रदंष्ट्रने महाबली वालिपुत्र अङ्गदके मर्मस्थानोंमें अग्नि-शिखाके समान तेजस्वी एक लाख बाण मारे ॥ १८ ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गो वालिसूनुर्महाबलः ।
चिक्षेप वज्रदंष्ट्राय वृक्षं भीमपराक्रमः ॥ १९ ॥

इससे उनके सारे अङ्ग लहू-लुहान हो उठे । तब भयानक पराक्रमी महाबली वालिकुमारने वज्रदंष्ट्रपर एक वृक्ष चलाया ॥

दृष्ट्वा पतन्तं तं वृक्षमसम्भ्रान्तश्च राक्षसः ।
चिच्छेद बहुधा सोऽपि मथितः प्रापतद् भुवि ॥ २० ॥

उस वृक्षको अपनी ओर आते देखकर भी वज्रदंष्ट्रके मनमें घबराहट नहीं हुई । उसने बाण मारकर उस वृक्षके कई टुकड़े कर दिये । इस प्रकार खण्डित होकर वह वृक्ष पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २० ॥

तं दृष्ट्वा वज्रदंष्ट्रस्य विक्रमं प्लवगर्षभः ।
प्रगृह्य विपुलं शैलं चिक्षेप च ननाद च ॥ २१ ॥

वज्रदंष्ट्रके उस पराक्रमको देखकर वानरशिरोमणि अङ्गदने एक विशाल चट्टान लेकर उसके ऊपर दे मारी और बड़े जोरसे गर्जना की ॥ २१ ॥

तमापतन्तं दृष्ट्वा स रथादाप्लुत्य वीर्यवान् ।
गदापाणिरसम्भ्रान्तः पृथिव्यां समतिष्ठत ॥ २२ ॥

उस चट्टानको आती देख वह पराक्रमी राक्षस बिना किसी घबराहटके रथसे कूद पड़ा और केवल गदा हाथमें लेकर पृथ्वीपर खड़ा हो गया ॥ २२ ॥

अङ्गदेन शिला क्षिप्ता गत्वा तु रणमूर्धनि ।
सचक्रकूबरं साश्वं प्रममाथ रथं तदा ॥ २३ ॥

अङ्गदकी फेंकी हुई वह चट्टान उसके रथपर पहुँच

गयी और युद्धके मुहानेपर उसने पहिये, कूबर तथा घोड़ों-सहित उस रथको तत्काल चूर-चूर कर डाला ॥ २३ ॥

ततोऽन्यच्छिखरं गृह्य विपुलं द्रुमभूषितम्।
वज्रदंष्ट्रस्य शिरसि पातयामास वानरः ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् वानरवीर अङ्गदने वृक्षोंसे अलंकृत दूसरा विशाल शिखर हाथमें लेकर उसे वज्रदंष्ट्रके मस्तकपर दे मारा ॥ २४ ॥

अभवच्छोणितोद्गारी वज्रदंष्ट्रः सुमूर्च्छितः।
मुहूर्तमभवन्मूढो गदामालिङ्ग्य निःश्वसन् ॥ २५ ॥

वज्रदंष्ट्र उसकी चोटसे मूर्च्छित हो गया और रक्त वमन करने लगा। वह गदाको हृदयसे लगाये दो घड़ीतक अचेत पड़ा रहा। केवल उसकी साँस चलती रही ॥ २५ ॥

स लब्धसंज्ञो गदया वालिपुत्रमवस्थितम्।
जघान परमक्रुद्धो वक्षोदेशे निशाचरः ॥ २६ ॥

होशमें आनेपर उस निशाचरने अत्यन्त कुपित हो सामने खड़े हुए वालिपुत्रकी छातीमें गदासे प्रहार किया ॥

गदां त्यक्त्वा ततस्तत्र मुष्टियुद्धमकुर्वत।
अन्योन्यं जघ्नतुस्तत्र तावुभौ हरिराक्षसौ ॥ २७ ॥

फिर गदा त्यागकर वह वहाँ मुक्केसे युद्ध करने लगा। वे वानर और राक्षस दोनों वीर एक दूसरेको मुक्कोंसे मारने लगे ॥ २७ ॥

रुधिरोद्गारिणौ तौ तु प्रहारैर्जनितश्रमौ।
बभूवतुः सुविक्रान्तावङ्गारकबुधाविव ॥ २८ ॥

दोनों ही बड़े पराक्रमी थे और परस्पर जूझते हुए मङ्गल एवं बुधके समान जान पड़ते थे। आपसके प्रहारोंसे पीड़ित हो दोनों ही थक गये और मुँहसे रक्त वमन करने लगे ॥ २८ ॥

ततः परमतेजस्वी अङ्गदः प्लवगर्षभः।
उत्पाट्य वृक्षं स्थितवानासीत् पुष्पफलैर्युतः ॥ २९ ॥

तत्पश्चात् परम तेजस्वी वानरशिरोमणि अङ्गद एक वृक्ष उखाड़कर खड़े हो गये। वे वहाँ उस वृक्षसम्बन्धी फल-फूलोंके कारण स्वयं भी फल और फूलोंसे युक्त दिखायी देते थे ॥ २९ ॥

जग्राह चार्षभं चर्म खड्गं च विपुलं शुभम्।
किङ्किणीजालसंछन्नं चर्मणा च परिष्कृतम् ॥ ३० ॥

उधर वज्रदंष्ट्रने ऋषभके चर्मकी बनी हुई ढाल और सुन्दर एवं विशाल तलवार ले ली। वह तलवार छोटी-छोटी घण्टियोंके जालसे आच्छादित तथा चमड़ेकी म्यानसे सुशोभित थी ॥ ३० ॥

चित्रांश्च रुचिरान् मार्गांश्चेरतुः कपिराक्षसौ।
जघ्नतुश्च तदान्योन्यं नर्दन्तौ जयकाङ्क्षिणौ ॥ ३१ ॥

उस समय परस्पर विजयकी इच्छा रखनेवाले वे वानर और राक्षस वीर सुन्दर एवं विचित्र पैंतरे बदलने तथा गर्जते हुए एक दूसरेपर चोट करने लगे ॥ ३१ ॥

व्रणैः सास्रैरशोभेतां पुष्पिताविव किंशुकौ।
युध्यमानौ परिश्रान्तौ जानुभ्यामवनीं गतौ ॥ ३२ ॥

दोनोंके घावोंसे रक्तकी धारा बहने लगी, जिससे वे खिले हुए पलाश वृक्षोंके समान शोभा पाने लगे। लड़ते-लड़ते थक जानेके कारण दोनोंने ही पृथ्वीपर घुटने टेक दिये ॥ ३२ ॥

निमेषान्तरमात्रेण अङ्गदः कपिकुञ्जरः।
उदतिष्ठत दीप्ताक्षो दण्डाहत इवोरगः ॥ ३३ ॥

किंतु पलक मारते-मारते कपिश्रेष्ठ अङ्गद उठकर खड़े हो गये। उनके नेत्र रोषसे उद्दीप्त हो उठे थे और वे डंडेकी चोट खाये हुए सर्पके समान उत्तेजित हो रहे थे ॥ ३३ ॥

निर्मलेन सुधौतेन खड्गेनास्य महच्छिरः।
जघान वज्रदंष्ट्रस्य वालिसूनुर्महाबलः ॥ ३४ ॥

महाबली वालिकुमारने अपनी निर्मल एवं तेज धारवाली चमकीली तलवारसे वज्रदंष्ट्रका विशाल मस्तक काट डाला ॥

रुधिरोक्षितगात्रस्य बभूव पतितं द्विधा।
तच्च तस्य परीताक्षं शुभं खड्गहतं शिरः ॥ ३५ ॥

खूनसे लथपथ शरीरवाले उस राक्षसका वह खड्गसे कटा हुआ सुन्दर मस्तक, जिसके नेत्र उलट गये थे, धरतीपर गिरकर दो टुकड़ोंमें विभक्त हो गया ॥ ३५ ॥

वज्रदंष्ट्रं हतं दृष्ट्वा राक्षसा भयमोहिताः।
त्रस्ता ह्यभ्यद्रवँल्लङ्कां वध्यमानाः प्लवङ्गमैः।
विषण्णवदना दीना ह्रिया किंचिदवाङ्मुखाः ॥ ३६ ॥

वज्रदंष्ट्रको मारा गया देख राक्षस भयसे अचेत हो गये। वे वानरोंकी मार खाकर भयके मारे लङ्कामें भाग गये। उनके मुखपर विषाद छा रहा था। वे बहुत दुखी थे और लज्जाके कारण उन्होंने अपना मुँह कुछ नीचा कर लिया था ॥ ३६ ॥

निहत्य तं वज्रधरः प्रतापवान्
स वालिसूनुः कपिसैन्यमध्ये।
जगाम हर्षं महितो महाबलः
सहस्रनेत्रस्त्रिदशैरिवावृतः ॥ ३७ ॥

वज्रधारी इन्द्रके समान प्रतापी महाबली वालिकुमार अङ्गद उस निशाचर वज्रदंष्ट्रको मारकर वानरसेनामें सम्मानित हो देवताओंसे घिरे हुए सहस्र नेत्रधारी इन्द्रके समान बड़े हर्षको प्राप्त हुए ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चौवनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः

रावणकी आज्ञासे अकम्पन आदि राक्षसोंका युद्धमें आना और वानरोंके साथ उनका घोर युद्ध

वज्रदंष्ट्रं हतं श्रुत्वा वालिपुत्रेण रावणः ।
बलाध्यक्षमुवाचेदं कृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥ १ ॥

वालिपुत्र अङ्गदके हाथसे वज्रदंष्ट्रके मारे जानेका समाचार सुनकर रावणने हाथ जोड़कर अपने पास खड़े हुए सेनापति प्रहस्तसे कहा—॥ १ ॥

शीघ्रं निर्यान्तु दुर्धर्षा राक्षसा भीमविक्रमाः ।
अकम्पनं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रास्त्रकोविदम् ॥ २ ॥

'अकम्पन सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता हैं, अतः उन्हींको आगे करके भयंकर पराक्रमी दुर्धर्ष राक्षस शीघ्र यहाँसे युद्धके लिये जायँ ॥ २ ॥

एष शास्ता च गोप्ता च नेता च युधि सत्तमः ।
भूतिकामश्च मे नित्यं नित्यं च समरप्रियः ॥ ३ ॥

'अकम्पनको युद्ध सदा ही प्रिय है। ये सर्वदा मेरी उन्नति चाहते हैं। इन्हें युद्धमें एक श्रेष्ठ योद्धा माना गया है। ये शत्रुओंको दण्ड देने, अपने सैनिकोंकी रक्षा करने तथा रणभूमिमें सेनाका संचालन करनेमें समर्थ हैं ॥ ३ ॥

एष जेष्यति काकुत्स्थौ सुग्रीवं च महाबलम् ।
वानरांश्चापरान् घोरान् हनिष्यति न संशयः ॥ ४ ॥

'अकम्पन दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणको तथा महाबली सुग्रीवको भी परास्त कर देंगे और दूसरे-दूसरे भयानक वानरोंका भी संहार कर डालेंगे, इसमें संशय नहीं है' ॥ ४ ॥

परिगृह्य स तामाज्ञां रावणस्य महाबलः ।
बलं सम्प्रेरयामास तदा लघुपराक्रमः ॥ ५ ॥

रावणकी उस आज्ञाको शिरोधार्य करके शीघ्रपराक्रमी महाबली सेनाध्यक्षने उस समय युद्धके लिये सेना भेजी ॥ ५ ॥

ततो नानाप्रहरणा भीमाक्षा भीमदर्शनाः ।
निष्पेतू राक्षसा मुख्या बलाध्यक्षप्रचोदिताः ॥ ६ ॥

सेनापतिसे प्रेरित हो भयानक नेत्रोंवाले मुख्य-मुख्य भयंकर राक्षस नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये नगरसे बाहर निकले ॥ ६ ॥

रथमास्थाय विपुलं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।
मेघाभो मेघवर्णश्च मेघस्वनमहास्वनः ॥ ७ ॥
राक्षसैः संवृतो घोरैस्तदा निर्यात्यकम्पनः ।

उसी समय तपे हुए सोनेसे विभूषित विशाल रथपर आरूढ़ हो घोर राक्षसोंसे घिरा हुआ अकम्पन भी निकला। वह मेघके समान विशाल था, मेघके समान ही उसका रंग था और मेघके ही तुल्य उसकी गर्जना थी ॥ ७½ ॥

नहि कम्पयितुं शक्यः सुरैरपि महामृधे ॥ ८ ॥
अकम्पनस्ततस्तेषामादित्य इव तेजसा ।

महासमरमें देवता भी उसे कम्पित नहीं कर सकते थे, इसीलिये वह अकम्पन नामसे विख्यात था और राक्षसोंमें सूर्यके समान तेजस्वी था ॥ ८½ ॥

तस्य निर्धावमानस्य संरब्धस्य युयुत्सया ॥ ९ ॥
अकस्माद् दैन्यमागच्छद्धयानां रथवाहिनाम् ।

रोषावेशसे भरकर युद्धकी इच्छासे धावा करनेवाले अकम्पनके रथमें जुते हुए घोड़ोंका मन अकस्मात् दीनभावको प्राप्त हो गया ॥ ९½ ॥

व्यस्फुरन्नयनं चास्य सव्यं युद्धाभिनन्दिनः ॥ १० ॥
विवर्णो मुखवर्णश्च गद्गदश्चाभवत् स्वनः ।

यद्यपि अकम्पन युद्धका अभिनन्दन करनेवाला था, तथापि उस समय उसकी बायीं आँख फड़कने लगी। मुखकी कान्ति फीकी पड़ गयी और वाणी गद्गद हो गयी ॥ १०½ ॥

अभवत् सुदिने काले दुर्दिनं रूक्षमारुतम् ॥ ११ ॥
ऊचुः खगमृगाः सर्वे वाचः क्रूरा भयावहाः ।

यद्यपि वह समय सुदिनका था, तथापि सहसा रूखी हवासे युक्त दुर्दिन छा गया। सभी पशु और पक्षी क्रूर एवं भयदायक बोली बोलने लगे ॥ ११½ ॥

स सिंहोपचितस्कन्धः शार्दूलसमविक्रमः ॥ १२ ॥
तानुत्पातानचिन्त्यैव निर्जगाम रणाजिरम् ।

अकम्पनके कंधे सिंहके समान पुष्ट थे। उसका पराक्रम व्याघ्रके समान था। वह पूर्वोक्त उत्पातोंकी कोई परवा न करके रणभूमिकी ओर चला ॥ १२½ ॥

तथा निर्गच्छतस्तस्य रक्षसः सह राक्षसैः ॥ १३ ॥
बभूव सुमहान् नादः क्षोभयन्निव सागरम् ।

जिस समय वह राक्षस दूसरे राक्षसोंके साथ लङ्कासे निकला, उस समय ऐसा महान् कोलाहल हुआ कि समुद्रमें भी हलचल-सी मच गयी ॥ १३½ ॥

तेन शब्देन वित्रस्ता वानराणां महाचमूः ॥ १४ ॥
द्रुमशैलप्रहाराणां योद्धुं समुपतिष्ठताम् ।
तेषां युद्धं महारौद्रं संजज्ञे कपिरक्षसाम् ॥ १५ ॥

उस महान् कोलाहलसे वानरोंकी वह विशाल सेना भयभीत हो गयी। युद्धके लिये उपस्थित हो वृक्षों और शैल-शिखरोंका प्रहार करनेवाले उन वानरों और राक्षसोंमें महाभयंकर युद्ध होने लगा ॥ १४-१५ ॥

रामरावणयोरर्थे समभित्यक्तदेहिनः।
सर्वे ह्यतिबलाः शूराः सर्वे पर्वतसंनिभाः ॥ १६ ॥

श्रीराम और रावणके निमित्त आत्मत्यागके लिये उद्यत हुए वे समस्त शूरवीर अत्यन्त बलशाली और पर्वतके समान विशालकाय थे ॥ १६ ॥

हरयो राक्षसाश्चैव परस्परजिघांसया।
तेषां विनर्दतां शब्दः संयुगेऽतितरस्विनाम् ॥ १७ ॥
शुश्रुवे सुमहान् कोपादन्योन्यमभिगर्जताम्।

वानर तथा राक्षस एक दूसरेके वधकी इच्छासे वहाँ एकत्र हुए थे। वे युद्धस्थलमें अत्यन्त वेगशाली थे। कोलाहल करते और एक दूसरेको लक्ष्य करके क्रोधपूर्वक गर्जते थे। उनका महान् शब्द सुदूरतक सुनायी देता था ॥ १७½ ॥

रजश्चारुणवर्णाभं सुभीममभवद् भृशम् ॥ १८ ॥
उद्धूतं हरिरक्षोभिः संरुरोध दिशो दश।

वानरों और राक्षसोंद्वारा उड़ायी गयी लाल रंगकी धूल बड़ी भयंकर जान पड़ती थी। उसने दसों दिशाओंको आच्छादित कर लिया था ॥ १८½ ॥

अन्योन्यं रजसा तेन कौशेयोद्धतपाण्डुना ॥ १९ ॥
संवृतानि च भूतानि ददृशुर्न रणाजिरे।

परस्पर उड़ायी हुई वह धूल हिलते हुए रेशमी वस्त्रके समान पाण्डुवर्णकी दिखायी देती थी। उसके द्वारा समराङ्गणमें समस्त प्राणी ढक गये थे। अतः वानर और राक्षस उन्हें देख नहीं पाते थे ॥ १९½ ॥

न ध्वजो न पताका वा चर्म वा तुरगोऽपि वा ॥ २० ॥
आयुधं स्यन्दनो वापि ददृशे तेन रेणुना।

उस धूलसे आच्छादित होनेके कारण ध्वज, पताका, ढाल, घोड़ा, अस्त्र-शस्त्र अथवा रथ कोई भी वस्तु दिखायी नहीं देती थी ॥ २०½ ॥

शब्दश्च सुमहांस्तेषां नर्दतामभिधावताम् ॥ २१ ॥
श्रूयते तुमुलो युद्धे न रूपाणि चकाशिरे।

उन गर्जते और दौड़ते हुए प्राणियोंका महाभयंकर शब्द युद्धस्थलमें सबको सुनायी पड़ता था, परंतु उनके रूप नहीं दिखायी देते थे ॥ २१½ ॥

हरीनेव सुसंरुष्टा हरयो जघ्नुराहवे ॥ २२ ॥
राक्षसा राक्षसांश्चापि निजघ्नुस्तिमिरे तदा।

अन्धकारसे आच्छादित युद्धस्थलमें अत्यन्त कुपित हुए वानर वानरोंपर ही प्रहार कर बैठते थे तथा राक्षस राक्षसोंको ही मारने लगते थे ॥ २२½ ॥

ते परांश्च विनिघ्नन्तः स्वांश्च वानरराक्षसाः ॥ २३ ॥
रुधिरार्द्रां तदा चक्रुर्महीं पङ्कानुलेपनाम्।

अपने तथा शत्रुपक्षके योद्धाओंको मारते हुए वानरों तथा राक्षसोंने उस रणभूमिको रक्तकी धारासे भिगो दिया और वहाँ कीच मचा दी ॥ २३½ ॥

ततस्तु रुधिरौघेण सिक्तं ह्यपगतं रजः ॥ २४ ॥
शरीरशवसंकीर्णा बभूव च वसुंधरा।

तदनन्तर रक्तके प्रवाहसे सिंच जानेके कारण वहाँकी धूल बैठ गयी और सारी युद्धभूमि लाशोंसे भर गयी ॥ २४½ ॥

द्रुमशक्तिगदाप्रासैः शिलापरिघतोमरैः ॥ २५ ॥
राक्षसा हरयस्तूर्णं जघ्नुरन्योन्यमोजसा।

वानर और राक्षस एक दूसरेपर वृक्ष, शक्ति, गदा, प्रास, शिला, परिघ और तोमर आदिसे बलपूर्वक जल्दी-जल्दी प्रहार करने लगे ॥ २५½ ॥

बाहुभिः परिघाकारैर्युध्यन्तः पर्वतोपमान् ॥ २६ ॥
हरयो भीमकर्माणो राक्षसाञ्जघ्नुराहवे।

भयंकर कर्म करनेवाले वानर अपनी परिघके समान भुजाओंद्वारा पर्वताकार राक्षसोंके साथ युद्ध करते हुए रणभूमिमें उन्हें मारने लगे ॥ २६½ ॥

राक्षसास्त्वभिसंक्रुद्धाः प्रासतोमरपाणयः ॥ २७ ॥
कपीन् निजघ्निरे तत्र शस्त्रैः परमदारुणैः।

उधर राक्षसलोग भी अत्यन्त कुपित हो हाथोंमें प्रास और तोमर लिये अत्यन्त भयंकर शस्त्रोंद्वारा वानरोंका वध करने लगे ॥ २७½ ॥

अकम्पनः सुसंक्रुद्धो राक्षसानां चमूपतिः ॥ २८ ॥
संहर्षयति तान् सर्वान् राक्षसान् भीमविक्रमान्।

इस समय अधिक रोषसे भरा हुआ राक्षस-सेनापति अकम्पन भी भयानक पराक्रम प्रकट करनेवाले उन सभी राक्षसोंका हर्ष बढ़ाने लगा ॥ २८½ ॥

हरयस्त्वपि रक्षांसि महाद्रुममहाश्मभिः ॥ २९ ॥
विदारयन्त्यभिक्रम्य शस्त्राण्याच्छिद्य वीर्यतः।

वानर भी बलपूर्वक आक्रमण करके राक्षसोंके अस्त्र-शस्त्र छीनकर बड़े-बड़े वृक्षों और शिलाओंद्वारा उन्हें विदीर्ण करने लगे ॥ २९½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरा हरयः कुमुदो नलः ॥ ३० ॥
मैन्दश्च द्विविदः क्रुद्धाश्चक्रुर्वेगमनुत्तमम्।

इसी समय वीर वानर कुमुद, नल, मैन्द और द्विविदने कुपित हो अपना परम उत्तम वेग प्रकट किया ॥ ३०½ ॥

ते तु वृक्षैर्महावीरा राक्षसानां चमूमुखे ॥ ३१ ॥
कदनं सुमहच्चक्रुर्लीलया हरिपुंगवाः।
ममन्थू राक्षसान् सर्वे नानाप्रहरणैर्भृशम् ॥ ३२ ॥

उन महावीर वानरशिरोमणियोंने युद्धके मुहानेपर वृक्षोंद्वारा खेल-खेलमें ही राक्षसोंका बड़ा भारी संहार किया । उन सबने नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा राक्षसोंको भलीभाँति मथ डाला ॥ ३१-३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पचपनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशः सर्गः

हनुमान्जीके द्वारा अकम्पनका वध

तद् दृष्ट्वा सुमहत् कर्म कृतं वानरसत्तमैः ।
क्रोधमाहारयामास युधि तीव्रमकम्पनः ॥ १ ॥

उन वानरशिरोमणियोंद्वारा किये गये उस महान् पराक्रमको देखकर युद्धस्थलमें अकम्पनको बड़ा भारी एवं दुःसह क्रोध हुआ ॥ १ ॥

क्रोधमूर्च्छितरूपस्तु धुन्वन् परमकार्मुकम् ।
दृष्ट्वा तु कर्म शत्रूणां सारथिं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

शत्रुओंका कर्म देख रोषसे उसका सारा शरीर व्याप्त हो गया और अपने उत्तम धनुषको हिलाते हुए उसने सारथिसे कहा—॥ २ ॥

तत्रैव तावत् त्वरितो रथं प्रापय सारथे ।
एते च बलिनो घ्नन्ति सुबहून् राक्षसान् रणे ॥ ३ ॥

'सारथे ! ये बलवान् वानर युद्धमें बहुतेरे राक्षसोंका वध कर रहे हैं, अतः पहले वहीं शीघ्रतापूर्वक मेरा रथ पहुँचाओ ॥ ३ ॥

एते च बलवन्तो वा भीमकोपाश्च वानराः ।
द्रुमशैलप्रहरणास्तिष्ठन्ति प्रमुखे मम ॥ ४ ॥

'ये वानर बलवान् तो हैं ही, इनका क्रोध भी बड़ा भयानक है । ये वृक्षों और शिलाओंका प्रहार करते हुए मेरे सामने खड़े हैं ॥ ४ ॥

एतान् निहन्तुमिच्छामि समरश्लाघिनो ह्यहम् ।
एतैः प्रमथितं सर्वं रक्षसां दृश्यते बलम् ॥ ५ ॥

'ये युद्धकी स्पृहा रखनेवाले हैं; अतः मैं इन सबका वध करना चाहता हूँ । इन्होंने सारी राक्षससेनाको मथ डाला है । यह साफ दिखायी देता है' ॥ ५ ॥

ततः प्रचलिताश्वेन रथेन रथिनां वरः ।
हरीनभ्यपतद् दूराच्छरजालैरकम्पनः ॥ ६ ॥

तदनन्तर तेज चलनेवाले घोड़ोंसे जुते हुए रथके द्वारा रथियोंमें श्रेष्ठ अकम्पन दूरसे ही बाणसमूहोंकी वर्षा करता हुआ उन वानरोंपर टूट पड़ा ॥ ६ ॥

न स्थातुं वानराः शेकुः किं पुनर्योद्धुमाहवे ।
अकम्पनशरैर्भग्नाः सर्वे एवाभिदुद्रुवुः ॥ ७ ॥

अकम्पनके बाणोंसे घायल हो सभी वानर भाग चले । वे युद्धस्थलमें खड़े भी न रह सके; फिर युद्ध करनेकी तो बात ही क्या है ? ॥ ७ ॥

तान् मृत्युवशमापन्नानकम्पनशरानुगान् ।
समीक्ष्य हनुमाञ्ज्ञातीनुपतस्थे महाबलः ॥ ८ ॥

अकम्पनके बाण वानरोंके पीछे लगे थे और वे मृत्युके अधीन होते जाते थे । अपने जाति-भाइयोंकी यह दशा देखकर महाबली हनुमान्जी अकम्पनके पास आये ॥ ८ ॥

तं महाप्लवगं दृष्ट्वा सर्वे ते प्लवगर्षभाः ।
समेत्य समरे वीराः संहृष्टाः पर्यवारयन् ॥ ९ ॥

महाकपि हनुमान्जीको आया देख वे समस्त वीर वानरशिरोमणि एकत्र हो हर्षपूर्वक उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ ९ ॥

व्यवस्थितं हनूमन्तं ते दृष्ट्वा प्लवगर्षभाः ।
बभूवुर्बलवन्तो हि बलवन्तमुपाश्रिताः ॥ १० ॥

हनुमान्जीको युद्धके लिये डटा हुआ देख वे सभी श्रेष्ठ वानर उन बलवान् वीरका आश्रय ले स्वयं भी बलवान् हो गये ॥ १० ॥

अकम्पनस्तु शैलाभं हनूमन्तमवस्थितम् ।
महेन्द्र इव धाराभिः शरैरभिववर्ष ह ॥ ११ ॥

पर्वतके समान विशालकाय हनुमान्जीको अपने सामने उपस्थित देख अकम्पन उनपर बाणोंकी फिर वर्षा करने लगा, मानो देवराज इन्द्र जलकी धारा बरसा रहे हों ॥ ११ ॥

अचिन्तयित्वा बाणौघाञ्शरीरे पातितान् कपिः ।
अकम्पनवधार्थाय मनो दध्रे महाबलः ॥ १२ ॥

अपने शरीरपर गिराये गये उन बाण-समूहोंकी परवा न करके महाबली हनुमान्ने अकम्पनको मार डालनेका विचार किया ॥ १२ ॥

स प्रहस्य महातेजा हनूमान् मारुतात्मजः ।
अभिदुद्राव तद्रक्षः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ १३ ॥

फिर तो महातेजस्वी पवनकुमार हनुमान् महान् अट्टहास करके पृथ्वीको कँपाते हुए-से उस राक्षसकी ओर दौड़े ॥ १३ ॥

तस्याथ नर्दमानस्य दीप्यमानस्य तेजसा ।
बभूव रूपं दुर्धर्षं दीप्तस्येव विभावसोः ॥ १४ ॥

उस समय वहाँ गर्जते और तेजसे देदीप्यमान होते हुए हनुमान्‌जीका रूप प्रज्वलित अग्निके समान दुर्धर्ष हो गया था ॥ १४ ॥

आत्मानं त्वप्रहरणं ज्ञात्वा क्रोधसमन्वितः ।
शैलमुत्पाटयामास वेगेन हरिपुङ्गवः ॥ १५ ॥

अपने हाथमें कोई हथियार नहीं है, यह जानकर क्रोधसे भरे हुए वानरशिरोमणि हनुमान्‌ने बड़े वेगसे पर्वत उखाड़ लिया ॥ १५ ॥

गृहीत्वा सुमहाशैलं पाणिनैकेन मारुतिः ।
स विनद्य महानादं भ्रामयामास वीर्यवान् ॥ १६ ॥

उस महान् पर्वतको एक ही हाथसे लेकर पराक्रमी पवनकुमार बड़े जोर-जोरसे गर्जना करते हुए उसे घुमाने लगे ॥

ततस्तमभिदुद्राव राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ।
पुरा हि नमुचिं संख्ये वज्रेणेव पुरंदरः ॥ १७ ॥

फिर उन्होंने राक्षसराज अकम्पनपर धावा किया, ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें देवेन्द्रने वज्र लेकर युद्धस्थलमें नमुचिपर आक्रमण किया था ॥ १७ ॥

अकम्पनस्तु तद् दृष्ट्वा गिरिशृङ्गं समुद्यतम् ।
दूरादेव महाबाणैरर्धचन्द्रैर्व्यदारयत् ॥ १८ ॥

अकम्पनने उस उठे हुए पर्वतशिखरको देख अर्धचन्द्राकार विशाल बाणोंके द्वारा उसे दूरसे ही विदीर्ण कर दिया ॥ १८ ॥

तं पर्वताग्रमाकाशे रक्षोबाणविदारितम् ।
विकीर्णं पतितं दृष्ट्वा हनूमान् क्रोधमूर्च्छितः ॥ १९ ॥

उस राक्षसके बाणसे विदीर्ण हो वह पर्वतशिखर आकाशमें ही बिखरकर गिर पड़ा । यह देख हनुमान्‌जीके क्रोधकी सीमा न रही ॥ १९ ॥

सोऽश्वकर्णं समासाद्य रोषदर्पान्वितो हरिः ।
तूर्णमुत्पाटयामास महागिरिमिवोच्छ्रितम् ॥ २० ॥

फिर रोष और दर्पसे उन वानरवीरने महान् पर्वतके समान ऊँचे अश्वकर्ण नामक वृक्षके पास जाकर उसे शीघ्रतापूर्वक उखाड़ लिया ॥ २० ॥

तं गृहीत्वा महास्कन्धं सोऽश्वकर्णं महाद्युतिः ।
प्रगृह्य परया प्रीत्या भ्रामयामास संयुगे ॥ २१ ॥

विशाल तनेवाले उस अश्वकर्णको हाथमें लेकर महातेजस्वी हनुमान्‌ने बड़ी प्रसन्नताके साथ उसे युद्धभूमिमें घुमाना आरम्भ किया ॥ २१ ॥

प्रधावन्नुरुवेगेन बभञ्ज तरसा द्रुमान् ।
हनूमान् परमक्रुद्धश्चरणैर्दारयन् महीम् ॥ २२ ॥

प्रचण्ड क्रोधसे भरे हुए हनुमान्‌ने बड़े वेगसे दौड़कर कितने ही वृक्षोंको तोड़ डाला और पैरोंकी धमकसे वे पृथ्वीको भी विदीर्ण-सी करने लगे ॥ २२ ॥

गजांश्च सगजारोहान् सरथान् रथिनस्तथा ।
जघान हनुमान् धीमान् राक्षसांश्च पदातिगान् ॥ २३ ॥

सवारोंसहित हाथियों, रथोंसहित रथियों तथा पैदल राक्षसोंको भी बुद्धिमान् हनुमान्‌जी मौतके घाट उतारने लगे ॥ २३ ॥

तमन्तकमिव क्रुद्धं सद्रुमं प्राणहारिणम् ।
हनूमन्तमभिप्रेक्ष्य राक्षसा विप्रदुद्रुवुः ॥ २४ ॥

क्रोधसे भरे हुए यमराजकी भाँति वृक्ष हाथमे लिये प्राणहारी हनुमान्‌को देख राक्षस भागने लगे ॥ २४ ॥

तमापतन्तं संक्रुद्धं राक्षसानां भयावहम् ।
ददर्शाकम्पनो वीरश्चुक्षोभ च ननाद च ॥ २५ ॥

राक्षसोंको भय देनेवाले हनुमान् अत्यन्त कुपित होकर शत्रुओंपर आक्रमण कर रहे थे । उस समय वीर अकम्पनने उन्हें देखा । देखते ही वह क्षोभसे भर गया और जोर-जोरसे गर्जना करने लगा ॥ २५ ॥

स चतुर्दशभिर्बाणैर्निशितैर्देहदारणैः ।
निर्बिभेद महावीर्यं हनूमन्तमकम्पनः ॥ २६ ॥

अकम्पनने देहको विदीर्ण कर देनेवाले चौदह पैने बाण मारकर महापराक्रमी हनुमान्‌को घायल कर दिया ॥ २६ ॥

स तथा विप्रकीर्णस्तु नाराचैः शितशक्तिभिः ।
हनूमान् ददृशे वीरः प्ररूढ इव सानुमान् ॥ २७ ॥

इस प्रकार नाराचों और तीखी शक्तियोंसे छिदे हुए वीर हनुमान् उस समय वृक्षोंसे व्याप्त पर्वतके समान दिखायी देते थे ॥ २७ ॥

विरराज महावीर्यो महाकायो महाबलः ।
पुष्पिताशोकसंकाशो विधूम इव पावकः ॥ २८ ॥

उनका सारा शरीर रक्तसे रँग गया था, इसलिये वे महापराक्रमी महाबली और महाकाय हनुमान् खिले हुए अशोक एवं धूमरहित अग्निके समान शोभा पा रहे थे ॥

ततोऽन्यं वृक्षमुत्पाट्य कृत्वा वेगमनुत्तमम् ।
शिरस्यभिजघानाशु राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ॥ २९ ॥

तदनन्तर महान् वेग प्रकट करके हनुमान्‌जीने एक दूसरा वृक्ष उखाड़ लिया और तुरंत ही उसे राक्षसराज अकम्पनके सिरपर दे मारा ॥ २९ ॥

स वृक्षेण हतस्तेन सक्रोधेन महात्मना ।
राक्षसो वानरेन्द्रेण पपात च ममार च ॥ ३०

क्रोधसे भरे वानरश्रेष्ठ महात्मा हनुमान्‌के चलाये हुए उस वृक्षकी गहरी चोट खाकर राक्षस अकम्पन पृथ्वीपर गिरा और मर गया ॥ ३० ॥

तं दृष्ट्वा निहतं भूमौ राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ।
व्यथिता राक्षसाः सर्वे क्षितिकम्प इव द्रुमाः ॥ ३१ ॥

जैसे भूकम्प आनेपर सारे वृक्ष काँपने लगते हैं, उसी प्रकार राक्षसराज अकम्पनको रणभूमिमें मारा गया देख समस्त राक्षस व्यथित हो उठे ॥ ३१ ॥

त्यक्तप्रहरणाः सर्वे राक्षसास्ते पराजिताः ।
लङ्कामभिययुस्त्रासाद् वानरैस्तैरभिद्रुताः ॥ ३२ ॥

वानरोंके खदेड़नेपर वहाँ परास्त हुए वे सब राक्षस अपने अस्त्र-शस्त्र फेंककर डरके मारे लङ्कामें भाग गये ॥ ३२ ॥

ते मुक्तकेशाः सम्भ्रान्ता भग्नमानाः पराजिताः ।
भयाच्छ्रमजलैरङ्गैः प्रस्रवद्भिर्विदुद्रुवुः ॥ ३३ ॥

उनके केश खुले हुए थे । वे घबरा गये थे और पराजित होनेसे उनका घमंड चूर-चूर हो गया था । भयके कारण उनके अङ्गोंसे पसीने चू रहे थे और इसी अवस्थामें वे भाग रहे थे ॥ ३३ ॥

अन्योन्यं ते प्रमथ्नन्तो विविशुर्नगरं भयात् ।
पृष्ठतस्ते तु सम्मूढाः प्रेक्षमाणा मुहुर्मुहुः ॥ ३४ ॥

भयके कारण एक दूसरेको कुचलते हुए वे भागकर लङ्कापुरीमें घुस गये । भागते समय वे बारंबार पीछे घूम-घूमकर देखते रहते थे ॥ ३४ ॥

तेषु लङ्कां प्रविष्टेषु राक्षसेषु महाबलाः ।
समेत्य हरयः सर्वे हनूमन्तमपूजयन् ॥ ३५ ॥

उन राक्षसोंके लङ्कामें घुस जानेपर समस्त महाबली वानरोंने एकत्र हो वहाँ हनुमान्‌जीका अभिनन्दन किया ॥ ३५ ॥

सोऽपि प्रवृद्धस्तान् सर्वान् हरीन् सम्प्रत्यपूजयत् ।
हनूमान् सत्त्वसम्पन्नो यथार्हमनुकूलतः ॥ ३६ ॥

उन शक्तिशाली हनुमान्‌जीने भी उत्साहित हो यथायोग्य अनुकूल बर्ताव करते हुए उन समस्त वानरोंका समादर किया ॥ ३६ ॥

विनेदुश्च यथाप्राणं हरयो जितकाशिनः ।
चकृषुश्च पुनस्तत्र सप्राणानेव राक्षसान् ॥ ३७ ॥

तत्पश्चात् विजयोल्लाससे सुशोभित होनेवाले वानरोंने पूरा बल लगाकर उच्चस्वरसे गर्जना की और वहाँ जीवित राक्षसोंको ही पकड़-पकड़कर घसीटना आरम्भ किया ॥ ३७ ॥

स वीरशोभामभजन्महाकपिः
समेत्य रक्षांसि निहत्य मारुतिः ।
महासुरं भीमममित्रनाशनं
विष्णुर्यथैवोरुबलं चमूमुखे ॥ ३८ ॥

जैसे भगवान् विष्णुने शत्रुनाशन, महाबली, भयंकर एवं महान् असुर मधुकैटभ आदिका वध करके वीर-शोभा (विजयलक्ष्मी) का वरण किया था, उसी प्रकार महाकपि हनुमान्‌ने राक्षसोंके पास पहुँचकर उन्हें मौतके घाट उतार वीरोचित शोभाको धारण किया ॥ ३८ ॥

अपूजयन् देवगणास्तदा कपिं
स्वयं च रामोऽतिबलश्च लक्ष्मणः ।
तथैव सुग्रीवमुखाः प्लवंगमा
विभीषणश्चैव महाबलस्तदा ॥ ३९ ॥

उस समय देवता, महाबली श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि वानर तथा अत्यन्त बलशाली विभीषणने भी कपिवर हनुमान्‌जीका यथोचित सत्कार किया ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षट्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें छप्पनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशः सर्गः

प्रहस्तका रावणकी आज्ञासे विशाल सेनासहित युद्धके लिये प्रस्थान

अकम्पनवधं श्रुत्वा क्रुद्धो वै राक्षसेश्वरः ।
किंचिद् दीनमुखश्चापि सचिवांस्तानुदैक्षत ॥ १ ॥

अकम्पनके वधका समाचार पाकर राक्षसराज रावणको बड़ा क्रोध हुआ । उसके मुखपर कुछ दीनता छा गयी और वह मन्त्रियोंकी ओर देखने लगा ॥ १ ॥

स तु ध्यात्वा मुहूर्तं तु मन्त्रिभिः संविचार्य च ।
ततस्तु रावणः पूर्वदिवसे राक्षसाधिपः ।
पुरीं परिययौ लङ्कां सर्वान् गुल्मानवेक्षितुम् ॥ २ ॥

पहले तो दो घड़ीतक वह कुछ सोचता रहा । फिर उसने मन्त्रियोंके साथ विचार किया और उसके बाद दिनके पूर्वभागमें राक्षसराज रावण स्वयं लङ्काके सब मोरचोंका निरीक्षण करनेके लिये गया ॥ २ ॥

तां राक्षसगणैर्गुप्तां गुल्मैर्बहुभिरावृताम् ।
ददर्श नगरीं राजा पताकाध्वजमालिनीम् ॥ ३ ॥

राक्षसगणोंसे सुरक्षित और बहुत-सी छावनियोंसे घिरी हुई, ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित उस नगरीको राजा रावणने अच्छी तरह देखा ॥ ३ ॥

रुद्धां तु नगरीं दृष्ट्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
उवाचात्महितं काले प्रहस्तं युद्धकोविदम् ॥ ४ ॥

लङ्कापुरी चारों ओरसे शत्रुओंद्वारा घेर ली गयी थी । यह देखकर राक्षसराज रावणने अपने हितैषी युद्धकलाकोविद प्रहस्तसे यह समयोचित बात कही—॥ ४ ॥

पुरस्योपनिविष्टस्य सहसा पीडितस्य ह ।
नान्ययुद्धात् प्रपश्यामि मोक्षं युद्धविशारद ॥ ५ ॥

'युद्धविशारद वीर ! नगरके अत्यन्त निकट शत्रुओंकी सेना छावनी डाले पड़ी है, इसीलिये सारा नगर सहसा व्यथित हो उठा है । अब मैं दूसरे किसीके युद्ध करनेसे इसका छुटकारा होता नहीं देखता हूँ ॥ ५ ॥

अहं वा कुम्भकर्णो वा त्वं वा सेनापतिर्मम ।
इन्द्रजिद् वा निकुम्भो वा वहेयुर्भारमीदृशम् ॥ ६ ॥

'अब तो इस तरहके युद्धका भार मैं, कुम्भकर्ण मेरे सेनापति तुम, बेटा इन्द्रजित् अथवा निकुम्भ ही उठा सकते हैं ॥ ६ ॥

स त्वं बलमतः शीघ्रमादाय परिगृह्य च ।
विजयायाभिनिर्याहि यत्र सर्वे वनौकसः ॥ ७ ॥

'अतः तुम शीघ्र ही सेना लेकर विजयके लिये प्रस्थान करो और जहाँ ये सब वानर जुटे हुए हैं, वहाँ जाओ ॥७॥

निर्याणादेव तूर्णं च चलिता हरिवाहिनी ।
नर्दतां राक्षसेन्द्राणां श्रुत्वा नादं द्रविष्यति ॥ ८ ॥

'तुम्हारे निकलते ही सारी वानरसेना तुरंत विचलित हो उठेगी और गर्जते हुए राक्षसशिरोमणियोंका सिंहनाद सुनकर भाग खड़ी होगी ॥ ८ ॥

चपला ह्यविनीताश्च चलचित्ताश्च वानराः ।
न सहिष्यन्ति ते नादं सिंहनादमिव द्विपाः ॥ ९ ॥

'वानरलोग बड़े चञ्चल, ढीठ और डरपोक होते हैं, जैसे हाथी सिंहकी गर्जना नहीं सह सकते, उसी प्रकार वे वानर तुम्हारा सिंहनाद नहीं सह सकेंगे ॥ ९ ॥

विद्रुते च बले तस्मिन् रामः सौमित्रिणा सह ।
अवशस्ते निरालम्बः प्रहस्त वशमेष्यति ॥ १० ॥

'प्रहस्त ! जब वानरसेना भाग जायगी, तब कोई सहारा न रहनेके कारण लक्ष्मणसहित श्रीराम विवश होकर तुम्हारे अधीन हो जायँगे ॥ १० ॥

आपत्संशयिता श्रेयो नात्र निःसंशयीकृता ।
प्रतिलोमानुलोमं वा यत् तु नो मन्यसे हितम् ॥ ११ ॥

'युद्धमें मृत्यु संदिग्ध होती है, हो भी सकती है और न भी हो । किंतु ऐसी मृत्यु ही श्रेष्ठ है । (इसके विपरीत) जीवनको बिना संशय (जोखिम) में डाले (बिना युद्धस्थलके) जो मृत्यु होती है, वह श्रेष्ठ नहीं होती (ऐसा मेरा विचार है) । इसके अनुकूल या प्रतिकूल जो कुछ तुम हमारे लिये हितकर समझते हो, उसे बताओ' ॥ ११ ॥

रावणेनैवमुक्तस्तु प्रहस्तो वाहिनीपतिः ।
राक्षसेन्द्रमुवाचेदमसुरेन्द्रमिवोशना ॥ १२ ॥

रावणके ऐसा कहनेपर सेनापति प्रहस्तने उस राक्षसराजके समक्ष उसी तरह अपना विचार व्यक्त किया, जैसे शुक्राचार्य असुरराज बलिको अपनी सलाह दिया करते हैं ॥ १२ ॥

राजन् मन्त्रितपूर्वं नः कुशलैः सह मन्त्रिभिः ।
विवादश्चापि नो वृत्तः समवेक्ष्य परस्परम् ॥ १३ ॥

(उसने कहा—) 'राजन् ! हमलोगोंने कुशल मन्त्रियोंके साथ पहले भी इस विषयपर विचार किया है । उन दिनों एक दूसरेके मतकी आलोचना करके हमलोगोंमें विवाद भी खड़ा हो गया था (हमलोग सर्वसम्मतिसे किसी एक निर्णयपर नहीं पहुँच सके थे) ॥ १३ ॥

प्रदानेन तु सीतायाः श्रेयो व्यवसितं मया । ✓
अप्रदाने पुनर्युद्धं दृष्टमेव तथैव नः ॥ १४ ॥

'मेरा पहलेसे ही यह निश्चय रहा है कि सीताजीको लौटा देनेसे ही हमलोगोंका कल्याण होगा और न लौटानेपर युद्ध अवश्य होगा । उस निश्चयके अनुसार ही हमें आज यह युद्धका संकट दिखायी दिया है ॥ १४ ॥

सोऽहं दानैश्च मानैश्च सततं पूजितस्त्वया ।
सान्त्वैश्च विविधैः काले किं न कुर्यां हितं तव ॥ १५ ॥

'परंतु आपने दान, मान और विविध सान्त्वनाओंके द्वारा समय-समयपर सदा ही मेरा सत्कार किया है । फिर मैं आपका हितसाधन क्यों नहीं करूँगा ? (अथवा आपके हितके लिये कौन-सा कार्य नहीं कर सकूँगा) ॥१५ ॥

नहि मे जीवितं रक्ष्यं पुत्रदारधनानि च ।
त्वं पश्य मां जुहूषन्तं त्वदर्थे जीवितं युधि ॥ १६ ॥

'मुझे अपने जीवन, स्त्री, पुत्र और धन आदिकी रक्षा नहीं करनी है—इनकी रक्षाके लिये मुझे कोई चिन्ता नहीं । आप देखिये कि मैं किस तरह आपके लिये युद्धकी ज्वालामें अपने जीवनकी आहुति देता हूँ' ॥ १६ ॥

एवमुक्त्वा तु भर्तारं रावणं वाहिनीपतिः ।
उवाचेदं बलाध्यक्षान् प्रहस्तः पुरतः स्थितान् ॥ १७ ॥

अपने स्वामी रावणसे ऐसा कहकर प्रधान सेनापति प्रहस्तने अपने सामने खड़े हुए सेनाध्यक्षोंसे इस प्रकार कहा—॥ १७ ॥

समानयत मे शीघ्रं राक्षसानां महाबलम् ।
मद्बाणानां तु वेगेन हतानां च रणाजिरे ॥ १८ ॥
अद्य तृप्यन्तु मांसादाः पक्षिणः काननौकसाम् ।

'तुमलोग शीघ्र मेरे पास राक्षसोंकी विशाल सेना ले आओ। आज मांसाहारी पक्षी समराङ्गणमें मेरे बाणोंके वेगसे मारे गये वानरोंके मांस खाकर तृप्त हो जायँ' ॥ १८½ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा बलाध्यक्षा महाबलाः ॥ १९ ॥
बलमुद्योजयामासुस्तस्मिन् राक्षसमन्दिरे ।

प्रहस्तकी यह बात सुनकर महाबली सेनाध्यक्षोंने रावणके उस महलके पास विशाल सेनाको युद्धके लिये तैयार किया ॥ १९½ ॥

सा बभूव मुहूर्तेन भीमैर्नानाविधायुधैः ॥ २० ॥
लङ्का राक्षसवीरैस्तैर्गजैरिव समाकुला ।

दो ही घड़ीमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये हाथी-जैसे भयानक राक्षसवीरोंसे लङ्कापुरी भर गयी ॥ २०½ ॥

हुताशनं तर्पयतां ब्राह्मणांश्च नमस्यताम् ॥ २१ ॥
आज्यगन्धप्रतिवहः सुरभिर्मारुतो ववौ ।

कितने ही राक्षस घीकी आहुति देकर अग्निदेवको तृप्त करने लगे और ब्राह्मणोंको नमस्कार करके आशीर्वाद लेने लगे। उस समय घीकी गन्ध लेकर सुगन्धित वायु सब ओर बहने लगी ॥ २१½ ॥

स्रजश्च विविधाकारा जगृहुस्त्वभिमन्त्रिताः ॥ २२ ॥
संग्रामसज्जाः संहृष्टा धारयन् राक्षसास्तदा ।

राक्षसोंने मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित नाना प्रकारकी मालाएँ ग्रहण कीं और हर्ष एवं उत्साहसे युक्त हो युद्धोपयोगी वेश-भूषा धारण की ॥ २२½ ॥

सधनुष्काः कवचिनो वेगादाप्लुत्य राक्षसाः ॥ २३ ॥
रावणं प्रेक्ष्य राजानं प्रहस्तं पर्यवारयन् ।

धनुष और कवच धारण किये राक्षस वेगसे उछलकर आगे बढ़े और राजा रावणका दर्शन करते हुए प्रहस्तको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ २३½ ॥

अथामन्त्र्य तु राजानं भेरीमाहत्य भैरवाम् ॥ २४ ॥
आरुरोह रथं युक्तः प्रहस्तः सज्जकल्पितम् ।

तदनन्तर राजाकी आज्ञा ले भयंकर भेरी बजवाकर कवच आदि धारण करके युद्धके लिये उद्यत हुआ प्रहस्त अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित रथपर आरूढ़ हुआ ॥ २४½ ॥

हयैर्महाजवैर्युक्तं सम्यक्सूतं सुसंयतम् ॥ २५ ॥
महाजलदनिर्घोषं साक्षाच्चन्द्रार्कभास्वरम् ।

प्रहस्तके उस रथमें बड़े वेगशाली घोड़े जुते हुए थे, उसका सारथि भी अपने कार्यमें कुशल था। वह रथ पूर्णतः सारथिके नियन्त्रणमें था। उसके चलनेपर महान् मेघोंकी गर्जनाके समान घर्घर-ध्वनि होती थी। वह रथ साक्षात् चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशमान था ॥ २५½ ॥

उरगध्वजदुर्धर्षं सुवरूथं स्वपस्करम् ॥ २६ ॥
सुवर्णजालसंयुक्तं प्रहसन्तमिव श्रिया ।

सर्पाकार या सर्पचिह्नित ध्वजके कारण वह दुर्धर्ष प्रतीत होता था। उस रथकी रक्षाके लिये जो कवच था, वह बहुत ही सुन्दर दिखायी देता था। उसके सारे अङ्ग सुन्दर थे और उसमें अच्छी-अच्छी सामग्रियाँ रक्खी गयी थीं। उस रथमें सोनेकी जाली लगी थी। वह अपनी कान्तिसे हँसता-सा प्रतीत होता था (अथवा दूसरे कान्तिमान् पदार्थोंका उपहास-सा कर रहा था) ॥ २६½ ॥

ततस्तं रथमास्थाय रावणार्पितशासनः ॥ २७ ॥
लङ्काया निर्ययौ तूर्णं बलेन महता वृतः ।

उस रथपर बैठकर रावणकी आज्ञा शिरोधार्य करके विशाल सेनासे घिरा हुआ प्रहस्त तुरंत लङ्कासे बाहर निकला ॥ २७½ ॥

ततो दुन्दुभिनिर्घोषः पर्जन्यनिनदोपमः ।
वादित्राणां च निनदः पूरयन्निव मेदिनीम् ॥ २८ ॥

उसके निकलते ही मेघकी गम्भीर गर्जनाके समान धौंसा बजने लगा। अन्य रणवाद्योंका निनाद भी पृथ्वीको परिपूर्ण करता-सा प्रतीत होने लगा ॥ २८ ॥

शुश्रुवे शङ्खशब्दश्च प्रयाते वाहिनीपतौ ।
निनदन्तः स्वरान् घोरान् राक्षसा जग्मुरग्रतः ॥ २९ ॥
भीमरूपा महाकायाः प्रहस्तस्य पुरःसराः ।

सेनापतिके प्रस्थानकालमें शङ्खोंकी ध्वनि भी सुनायी देने लगी। प्रहस्तके आगे चलनेवाले भयानक रूपधारी विशालकाय राक्षस भयंकर स्वरसे गर्जना करते हुए आगे बढ़े ॥ २९½ ॥

नरान्तकः कुम्भहनुर्महानादः समुन्नतः ।
प्रहस्तसचिवा ह्येते निर्ययुः परिवार्य तम् ॥ ३० ॥

नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद और समुन्नत—ये प्रहस्तके चार सचिव उसे चारों ओरसे घेरकर निकले ॥ ३० ॥

व्यूढेनैव सुघोरेण पूर्वद्वारात् स निर्ययौ ।
गजयूथनिकाशेन बलेन महता वृतः ॥ ३१ ॥

प्रहस्तकी वह विशाल सेना हाथियोंके समूह-सी अत्यन्त भयंकर जान पड़ती थी। उसकी व्यूह-रचना हो चुकी थी। उस व्यूहबद्ध सेनाके साथ ही प्रहस्त लङ्काके पूर्वद्वारसे निकला ॥ ३१ ॥

सागरप्रतिमौघेन वृतस्तेन बलेन सः ।
प्रहस्तो निर्ययौ क्रुद्धः कालान्तकयमोपमः ॥ ३२ ॥

समुद्रके समान उस अपार सेनाके साथ जब प्रहस्त बाहर निकला, उस समय वह क्रोधसे भरे हुए प्रलयकालके संहारकारी यमराजके समान जान पड़ता था ॥ ३२ ॥

तस्य निर्याणघोषेण राक्षसानां च नर्दताम् ।
लङ्कायां सर्वभूतानि विनेदुर्विकृतैः स्वरैः ॥ ३३ ॥

उसके प्रस्थान करते समय जो भेरी आदि बाजों और गर्जते हुए राक्षसोंका गम्भीर घोष हुआ, उससे भयभीत हो लङ्काके सब प्राणी विकृत स्वरमें चीत्कार करने लगे ॥ ३३ ॥

व्यभ्रमाकाशमाविश्य मांसशोणितभोजनाः ।
मण्डलान्यपसव्यानि खगाश्चक्रू रथं प्रति ॥ ३४ ॥

उस समय बिना बादलके आकाशमें उड़कर रक्त-मांसका भोजन करनेवाले पक्षी मण्डल बनाकर प्रहस्तके रथकी दक्षिणावर्त परिक्रमा करने लगे ॥ ३४ ॥

वमन्त्यः पावकज्वालाः शिवा घोरा ववाशिरे ।
अन्तरिक्षात् पपातोल्का वायुश्च परुषं ववौ ॥ ३५ ॥

भयानक गीदड़ियाँ मुँहसे आगकी ज्वाला उगलती हुई अशुभसूचक बोली बोलने लगीं । आकाशसे उल्कापात होने लगा और प्रचण्ड वायु चलने लगी ॥ ३५ ॥

अन्योन्यमभिसंरब्धा ग्रहाश्च न चकाशिरे ।
मेघाश्च खरनिर्घोषा रथस्योपरि रक्षसः ॥ ३६ ॥
ववर्षू रुधिरं चास्य सिषिचुश्च पुरःसरान् ।
केतुमूर्धनि गृध्रस्तु विलीनो दक्षिणामुखः ॥ ३७ ॥
नदन्नुभयतः पार्श्वं समग्रां श्रियमाहरत् ।

ग्रह रोषपूर्वक आपसमें युद्ध करने लगे, जिससे उनका प्रकाश मन्द पड़ गया तथा मेघ उस राक्षसके रथके ऊपर गधोंकी-सी आवाजमें गर्जना करने लगे, रक्त बरसाने लगे और आगे चलनेवाले सैनिकोंको सींचने लगे । उसके ध्वजके ऊपर गीध दक्षिणकी ओर मुँह करके आ बैठा । उसने दोनों ओर अपनी अशुभ बोली बोलकर उस राक्षसकी सारी शोभा-सम्पत्ति हर ली ॥ ३६-३७½ ॥

सारथेर्बहुशश्चास्य संग्राममवगाहतः ॥ ३८ ॥
प्रतोदो न्यपतद्धस्तात् सूतस्य हयसादिनः ।

संग्रामभूमिमें प्रवेश करते समय घोड़ेको काबूमें रखनेवाले उसके सारथिके हाथसे कई बार चाबुक गिर पड़ा ॥ ३८½ ॥

निर्याणश्रीश्च या च स्याद् भास्वरा च सुदुर्लभा ॥ ३९ ॥
सा ननाश मुहूर्तेन समे च स्खलिता हयाः ।

युद्धके लिये निकलते समय प्रहस्तकी जो परम दुर्लभ और प्रकाशमान शोभा थी, वह दो ही घड़ीमें नष्ट हो गयी । उसके घोड़े समतल भूमिमें भी लड़खड़ाकर गिर पड़े ॥ ३९½ ॥

प्रहस्तं तं हि निर्यान्तं प्रख्यातगुणपौरुषम् ।
युधि नानाप्रहरणा कपिसेनाभ्यवर्तत ॥ ४० ॥

जिसके गुण और पौरुष विख्यात थे, वह प्रहस्त ज्यों ही युद्धभूमिमें उपस्थित हुआ, त्यों ही शिला, वृक्ष आदि नाना प्रकारके प्रहार-साधनोंसे सम्पन्न वानरसेना उसका सामना करनेके लिये आ गयी ॥ ४० ॥

अथ घोषः सुतुमुलो हरीणां समजायत ।
वृक्षानारुजतां चैव गुर्वीर्वै गृह्णतां शिलाः ॥ ४१ ॥

तदनन्तर वृक्षोंको तोड़ते और भारी शिलाओंको उठाते हुए वानरोंका अत्यन्त भयंकर कोलाहल वहाँ सब ओर छा गया ॥ ४१ ॥

नदतां राक्षसानां च वानराणां च गर्जताम् ।
उभे प्रमुदिते सैन्ये रक्षोगणवनौकसाम् ॥ ४२ ॥

एक ओर राक्षस सिंहनाद कर रहे थे तो दूसरी ओर वानर गरज रहे थे । उन सबका तुमुल नाद वहाँ फैल गया । राक्षसों और वानरोंकी वे दोनों सेनाएँ हर्ष और उल्लाससे भरी थीं ॥ ४२ ॥

वेगितानां समर्थानामन्योन्यवधकाङ्क्षिणाम् ।
परस्परं चाह्वयतां निनादः श्रूयते महान् ॥ ४३ ॥

अत्यन्त वेगशाली, समर्थ तथा एक दूसरेके वधकी इच्छावाले योद्धा परस्पर ललकार रहे थे । उनका महान् कोलाहल सबको सुनायी देता था ॥ ४३ ॥

ततः प्रहस्तः कपिराजवाहिनी-
मभिप्रतस्थे विजयाय दुर्मतिः ।
विवृद्धवेगां च विवेश तां चमूं
यथा मुमूर्षुः शलभो विभावसुम् ॥ ४४ ॥

इसी समय दुर्बुद्धि प्रहस्त विजयकी अभिलाषासे वानरराज सुग्रीवकी सेनाकी ओर बढ़ा और जैसे पतंग मरनेके लिये आगपर टूट पड़ता है, उसी प्रकार वह बढ़े हुए वेगवाली उस वानरसेनामें घुसनेकी चेष्टा करने लगा ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सत्तावनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशः सर्गः

नीलके द्वारा प्रहस्तका वध

ततः प्रहस्तं निर्यान्तं दृष्ट्वा रणकृतोद्यमम् ।
उवाच सस्मितं रामो विभीषणमरिंदमः ॥ १ ॥

(इसके पूर्व) प्रहस्तको युद्धकी तैयारी करके लङ्कासे बाहर निकलते देख शत्रुसूदन श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणसे मुस्कराकर कहा—॥ १ ॥

क एष सुमहाकायो बलेन महता वृतः ।

आगच्छति महावेगः किंरूपबलपौरुषः ॥ २ ॥
आचक्ष्व मे महाबाहो वीर्यवन्तं निशाचरम् ।

'महाबाहो ! यह बड़े शरीर और महान् वेगवाला तथा बड़ी भारी सेनासे घिरा हुआ कौन योद्धा आ रहा है ? इसका रूप, बल और पौरुष कैसा है ? इस पराक्रमी निशाचरका मुझे परिचय दो' ॥ २½ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच विभीषणः ॥ ३ ॥
एष सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो नाम राक्षसः ।
लङ्कायां राक्षसेन्द्रस्य त्रिभागबलसंवृतः ।
वीर्यवानस्त्रविच्छूरः सुप्रख्यातपराक्रमः ॥ ४ ॥

श्रीरघुनाथजीका वचन सुनकर विभीषणने इस प्रकार उत्तर दिया—'प्रभो ! इस राक्षसका नाम प्रहस्त है । यह राक्षसराज रावणका सेनापति है और लङ्काकी एक तिहाई सेनासे घिरा हुआ है । इसका पराक्रम भलीभाँति विख्यात है । यह नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञाता, बल-विक्रमसे सम्पन्न और शूरवीर है' ॥ ३-४ ॥

ततः प्रहस्तं निर्यान्तं भीमं भीमपराक्रमम् ।
गर्जन्तं सुमहाकायं राक्षसैरभिसंवृतम् ॥ ५ ॥
ददर्श महती सेना वानराणां बलीयसाम् ।
अभिसंजातघोषाणां प्रहस्तमभिगर्जताम् ॥ ६ ॥

इसी समय महाबलवान् वानरोंकी विशाल सेनाने भी भयानक पराक्रमी, भीषण रूपधारी तथा महाकाय प्रहस्तको बड़े गर्जन-तर्जनके साथ लङ्कासे बाहर निकलते देखा । वह बहुसंख्यक राक्षसोंसे घिरा हुआ था । उसे देखते ही वानरोंके दलमें भी महान् कोलाहल होने लगा और वे प्रहस्तकी ओर देख-देखकर गर्जने लगे ॥ ५-६ ॥

✓**खड्गशक्त्यृष्टिशूलाश्च बाणानि मुसलानि च ।**
गदाश्च परिघाः प्रासा विविधाश्च परश्वधाः ॥ ७ ॥
धनूंषि च विचित्राणि राक्षसानां जयैषिणाम् ।
प्रगृहीतान्यराजन्त वानरानभिधावताम् ॥ ८ ॥

विजयकी इच्छावाले राक्षस वानरोंकी ओर दौड़े । उनके हाथोंमें खड्ग, शक्ति, ऋष्टि, शूल, बाण, मुसल, गदा, परिघ, प्रास, नाना प्रकारके फरसे और विचित्र-विचित्र धनुष शोभा पा रहे थे ॥ ७-८ ॥

जगृहुः पादपांश्चापि पुष्पितांस्तु गिरींस्तथा ।
शिलाश्च विपुला दीर्घा योद्धुकामाः प्लवंगमाः ॥ ९ ॥

तब वानरोंने भी युद्धकी इच्छासे खिले हुए वृक्ष, पर्वत तथा बड़े-बड़े पत्थर उठा लिये ॥ ९ ॥

तेषामन्योन्यमासाद्य संग्रामः सुमहानभूत् ।
बहूनामश्मवृष्टिं च शरवर्षं च वर्षताम् ॥ १० ॥

फिर दोनों पक्षोंके बहुसंख्यक वीरोंमें पत्थरों और बाणोंकी वर्षाके साथ-साथ आपसमें बड़ा भारी संग्राम छिड़ गया ॥

बहवो राक्षसा युद्धे बहून् वानरपुङ्गवान् ।
वानरा राक्षसांश्चापि निजघ्नुर्बहवो बहून् ॥ ११ ॥

उस युद्धस्थलमें बहुत-से राक्षसोंने बहुतेरे वानरोंका और बहुसंख्यक वानरोंने बहुत-से राक्षसोंका संहार कर डाला ॥

शूलैः प्रमथिताः केचित् केचित् तु परमायुधैः ।
परिघैराहताः केचित् केचिच्छिन्नाः परश्वधैः ॥ १२ ॥

वानरोंमेंसे कोई शूलोंसे और कोई चक्रोंसे मथ डाले गये । कितने ही परिघोंकी मारसे आहत हो गये और कितनोंके फरसोंसे टुकड़े-टुकड़े कर डाले गये ॥ १२ ॥

निरुच्छ्वासाः पुनः केचित् पतिता जगतीतले ।
विभिन्नहृदयाः केचिदिषुसंधानसाधिताः ॥ १३ ॥

कितने ही योद्धा साँसरहित हो पृथ्वीपर गिर पड़े और कितने ही बाणोंके लक्ष्य बन गये, जिससे उनके हृदय विदीर्ण हो गये ॥ १३ ॥

केचिद् द्विधा कृताः खड्गैः स्फुरन्तः पतिता भुवि ।
वानरा राक्षसैः शूरैः पार्श्वतश्च विदारिताः ॥ १४ ॥

कितने ही वानर तलवारोंकी मारसे दो टूक होकर पृथ्वीपर गिर पड़े और तड़फड़ाने लगे । कितने ही शूरवीर राक्षसोंने वानरोंकी पसलियाँ फाड़ डालीं ॥ १४ ॥

वानरैश्चापि संक्रुद्धै राक्षसौघाः समन्ततः ।
पादपैर्गिरिशृङ्गैश्च सम्पिष्टा वसुधातले ॥ १५ ॥

इसी तरह वानरोंने भी अत्यन्त कुपित हो वृक्षों और पर्वत-शिखरोंद्वारा सब ओर भूतलपर झुंड-के-झुंड राक्षसोंको पीस डाला ॥ १५ ॥

वज्रस्पर्शतलैर्हस्तैर्मुष्टिभिश्च हता भृशम् ।
वमञ्शोणितमास्येभ्यो विशीर्णदशनेक्षणाः ॥ १६ ॥

वानरोंके वज्रतुल्य कठोर थप्पड़ों और मुक्कोंसे भलीभाँति पीटे गये राक्षस मुँहसे रक्त वमन करने लगे । उनके दाँत और नेत्र छिन्न-भिन्न होकर बिखर गये ॥ १६ ॥

आर्तस्वनं च स्वनतां सिंहनादं च नर्दताम् ।
बभूव तुमुलः शब्दो हरीणां रक्षसामपि ॥ १७ ॥

कोई आर्तनाद करते तो कोई सिंहोंके समान दहाड़ते थे । इस प्रकार वानरों और राक्षसोंका भयंकर कोलाहल वहाँ सब ओर गूँज उठा ॥ १७ ॥

वानरा राक्षसाः क्रुद्धा वीरमार्गमनुव्रताः ।
विवृत्तवदनाः क्रूराश्चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥ १८ ॥

क्रोधसे भरे हुए वानर और राक्षस वीरोचित मार्गका अनुसरण करके युद्धमें पीठ नहीं दिखाते थे । वे मुँह बा-बाकर निर्भयके समान क्रूरतापूर्ण कर्म करते थे ॥ १८ ॥

नरान्तकः कुम्भहनुर्महानादः समुन्नतः ।
एते प्रहस्तसचिवाः सर्वे जघ्नुर्वनौकसः ॥ १९ ॥

नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद और समुन्नत—ये प्रहस्तके सारे सचिव वानरोंका वध करने लगे ॥ १९ ॥

तेषां निपततां शीघ्रं निघ्नतां चापि वानरान् ।
द्विविदो गिरिशृङ्गेण जघानैकं नरान्तकम् ॥ २० ॥

शीघ्रतापूर्वक आक्रमण करते और वानरोंको मारते हुए प्रहस्तके सचिवोंमेंसे एकको, जिसका नाम नरान्तक था, द्विविदने एक पर्वतके शिखरसे मार डाला ॥ २० ॥

दुर्मुखः पुनरुत्थाय कपिः सविपुलद्रुमम् ।
राक्षसं क्षिप्रहस्तं तु समुन्नतमपोथयत् ॥ २१ ॥

फिर दुर्मुखने एक विशाल वृक्ष लिये उठकर शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले राक्षस समुन्नतको कुचल डाला ॥२१॥

जाम्बवांस्तु सुसंक्रुद्धः प्रगृह्य महतीं शिलाम् ।
पातयामास तेजस्वी महानादस्य वक्षसि ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् अत्यन्त कुपित हुए तेजस्वी जाम्बवान्ने एक बड़ी भारी शिला उठा ली और उसे महानादकी छातीपर दे मारा ॥ २२ ॥

अथ कुम्भहनुस्तत्र तारेणासाद्य वीर्यवान् ।
३ **वृक्षेण महता सद्यः प्राणान् संत्याजयद् रणे ॥ २३ ॥**

बाकी रहा पराक्रमी कुम्भहनु । वह तार नामक वानरसे भिड़ा और अन्तमें एक विशाल वृक्षकी चपेटमें आकर उसे भी रणभूमिमें अपने प्राणोंसे हाथ धोने पड़े ॥ २३ ॥

अमृष्यमाणस्तत्कर्म प्रहस्तो रथमास्थितः ।
चकार कदनं घोरं धनुष्पाणिर्वनौकसाम् ॥ २४ ॥

रथपर बैठे हुए प्रहस्तसे वानरोंका यह अद्भुत पराक्रम नहीं सहा गया । उसने हाथमें धनुष लेकर वानरोंका घोर संहार आरम्भ किया ॥ २४ ॥

आवर्त इव संजज्ञे सेनयोरुभयोस्तदा ।
क्षुभितस्याप्रमेयस्य सागरस्येव निःस्वनः ॥ २५ ॥

उस समय दोनों सेनाएँ जलके भँवरकी भाँति चक्कर काट रही थीं । विक्षुब्ध अपार महासागरकी गर्जनाके समान उनकी गर्जना सुनायी दे रही थी ॥ २५ ॥

महता हि शरौघेण राक्षसो रणदुर्मदः ।
अर्दयामास संक्रुद्धो वानरान् परमाहवे ॥ २६ ॥

अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए रणदुर्मद राक्षस प्रहस्तने अपने बाण-समूहोंद्वारा उस महासमरमें वानरोंको पीड़ित करना आरम्भ किया ॥ २६ ॥

वानराणां शरीरैस्तु राक्षसानां च मेदिनी ।
बभूवातिचिता घोरैः पर्वतैरिव संवृता ॥ २७ ॥

पृथ्वीपर वानरों और राक्षसोंकी लाशोंके ढेर लग गये । उनसे आच्छादित हुई रणभूमि भयानक पर्वतोंसे ढकी हुई-सी जान पड़ती थी ॥ २७ ॥

सा मही रुधिरौघेण प्रच्छन्ना सम्प्रकाशते ।
संछन्ना माधवे मासि पलाशैरिव पुष्पितैः ॥ २८ ॥

रक्तके प्रवाहसे आच्छादित हुई वह युद्धभूमि वैशाखमासमें खिले हुए पलाश-वृक्षोंसे ढकी हुई वन्य भूमि-सी सुशोभित होती थी ॥ २८ ॥

हतवीरौघवप्रां तु भग्नायुधमहाद्रुमाम् । ✓
शोणितौघमहातोयां यमसागरगामिनीम् ॥ २९ ॥
यकृत्प्लीहमहापङ्कां विनिकीर्णान्त्रशैवलाम् ।
भिन्नकायशिरोमीनामङ्गावयवशाद्वलाम् ॥ ३० ॥
गृध्रहंसवराकीर्णां कङ्कसारससेविताम् ।
मेदःफेनसमाकीर्णामार्तस्तनितनिःस्वनाम् ॥ ३१ ॥
तां कापुरुषदुस्तारां युद्धभूमिमयीं नदीम् । -साङ्गरूपक
नदीमिव घनापाये हंससारससेविताम् ॥ ३२ ॥
राक्षसाः कपिमुख्यास्ते तेरुस्तां दुस्तरां नदीम् ।
यथा पद्मरजोध्वस्तां नलिनीं गजयूथपाः ॥ ३३ ॥

मारे गये वीरोंकी लाशें ही जिसके दोनों तट थे । रक्तका प्रवाह ही जिसकी महान् जलराशि थी । टूटे-फूटे अस्त्र-शस्त्र ही जिसके तटवर्ती विशाल वृक्षोंके समान जान पड़ते थे । जो यमलोकरूपी समुद्रसे मिली हुई थी । सैनिकोंके यकृत् और प्लीहा (हृदयके दाहिने और बायें भाग) जिसके महान् पंक थे । निकली हुई आँतें जहाँ सेवारका काम देती थीं । कटे हुए सिर और धड़ जहाँ मत्स्य-से प्रतीत होते थे । शरीरके छोटे-छोटे अवयव एवं केश जिसमें घासका भ्रम उत्पन्न करते थे । जहाँ गीध ही हंस बनकर बैठे थे । कङ्करूपी सारस जिसका सेवन करते थे । मेदे ही फेन बनकर जहाँ सब ओर फैले थे । पीड़ितोंकी कराह जिसकी कलकल ध्वनि थी और कायरोंके लिये जिसे पार करना अत्यन्त कठिन था, उस युद्धभूमिरूपिणी नदीको प्रवाहित करके राक्षस और श्रेष्ठ वानर वर्षाके अन्तमें हंसों और सारसोंसे सेवित सरिताकी भाँति उस दुस्तर नदीको उसी तरह पार कर रहे थे, जैसे गजयूथपति कमलोंके परागसे आच्छादित किसी पुष्करिणीको पार करते हैं॥

ततः सृजन्तं बाणौघान् प्रहस्तं स्यन्दने स्थितम् ।
ददर्श तरसा नीलो विधमन्तं प्लवंगमान् ॥ ३४ ॥

तदनन्तर नीलने देखा, रथपर बैठा हुआ प्रहस्त बाण-समूहोंकी वर्षा करके वेगपूर्वक वानरोंका संहार कर रहा है ॥

उद्धूत इव वायुः खे महदभ्रबलं बलात् ।
समीक्ष्याभिद्रुतं युद्धे प्रहस्तो वाहिनीपतिः ॥ ३५ ॥
रथेनादित्यवर्णेन नीलमेवाभिदुद्रुवे ।

तब जैसे उठी हुई प्रचण्ड वायु आकाशमें महान् मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न करके उड़ा देती है, उसी प्रकार नील भी बलपूर्वक राक्षस-सेनाका संहार करने लगे। इससे उस युद्धस्थलमें राक्षसी सेना भाग खड़ी हुई। सेनापति प्रहस्तने जब अपनी सेनाकी ऐसी दुरवस्था देखी, तब उसने सूर्यतुल्य तेजस्वी रथके द्वारा नीलपर ही धावा किया ॥ ३५½ ॥

स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठो विकृष्य परमाहवे ॥ ३६ ॥
नीलाय व्यसृजद् बाणान् प्रहस्तो वाहिनीपतिः।

धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ और निशाचरोंकी सेनाके नायक प्रहस्तने उस महासमरमें अपने धनुषको खींचकर नीलपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३६½ ॥

ते प्राप्य विशिखा नीलं विनिर्भिद्य समाहिताः ॥ ३७ ॥
महीं जग्मुर्महावेगा रोषिता इव पन्नगाः।

रोषसे भरे हुए सर्पोंके समान वे महान् वेगशाली बाण नीलतक पहुँचकर उन्हें विदीर्ण करके बड़ी सावधानीके साथ धरतीमें समा गये ॥ ३७½ ॥

नीलः शरैरभिहतो निशितैर्ज्वलनोपमैः ॥ ३८ ॥
स तं परमदुर्धर्षमापतन्तं महाकपिः।
प्रहस्तं ताडयामास वृक्षमुत्पाट्य वीर्यवान् ॥ ३९ ॥

प्रहस्तके पैने बाण प्रज्वलित अग्निके समान जान पड़ते थे। उनकी चोटसे नील बहुत घायल हो गये। इस तरह उस परम दुर्जय राक्षस प्रहस्तको अपने ऊपर आक्रमण करते देख बल-विक्रमशाली महाकपि नीलने एक पेड़ उखाड़कर उसीके द्वारा उसपर आघात किया ॥ ३८-३९ ॥

स तेनाभिहतः क्रुद्धो नर्दन् राक्षसपुंगवः।
ववर्ष शरवर्षाणि प्लवंगानां चमूपतौ ॥ ४० ॥

नीलकी चोट खाकर कुपित हुआ राक्षसशिरोमणि प्रहस्त बड़े जोरसे गर्जता हुआ उन वानर-सेनापतिपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ४० ॥

स्त०

तस्य बाणगणानेव राक्षसस्य दुरात्मनः।
अपारयन् वारयितुं प्रत्यगृह्णान्निमीलितः।
यथैव गोवृषो वर्षं शारदं शीघ्रमागतम् ॥ ४१ ॥
एवमेव प्रहस्तस्य शरवर्षान् दुरासदान्।
निमीलिताक्षः सहसा नीलः सेहे दुरासदान् ॥ ४२ ॥

उस दुरात्मा राक्षसके बाण-समूहोंका निवारण करनेमें समर्थ न हो सकनेपर नील आँख बंद करके उन सब बाणोंको अपने अङ्गोंपर ही ग्रहण करने लगे। जैसे साँड़ सहसा आयी हुई शरद्-ऋतुकी वर्षाको चुपचाप अपने शरीरपर ही सह लेता है, उसी प्रकार प्रहस्तकी उस दुःसह बाणवर्षाको नील चुपचाप नेत्र बंद करके सहन करते रहे ॥ ४१-४२ ॥

रोषितः शरवर्षेण सालेन महता महान्।
प्रजघान हयान् नीलः प्रहस्तस्य महाबलः ॥ ४३ ॥

प्रहस्तकी बाणवर्षासे कुपित हो महाबली महाकपि नीलने एक विशाल सालवृक्षके द्वारा उसके घोड़ोंको मार डाला ॥

ततो रोषपरीतात्मा धनुस्तस्य दुरात्मनः।
बभञ्ज तरसा नीलो ननाद च पुनः पुनः ॥ ४४ ॥

तत्पश्चात् रोषसे भरे हुए नीलने उस दुरात्माके धनुषको भी वेगपूर्वक तोड़ दिया और बारंबार वे गर्जना करने लगे ॥

विधनुः स कृतस्तेन प्रहस्तो वाहिनीपतिः।
प्रगृह्य मुसलं घोरं स्यन्दनादवपुप्लुवे ॥ ४५ ॥

नीलके द्वारा धनुषरहित किया गया सेनापति प्रहस्त एक भयानक मुसल हाथमें लेकर अपने रथसे कूद पड़ा ॥ ४५ ॥

तावुभौ वाहिनीमुख्यौ जातवैरौ तरस्विनौ।
स्थितौ क्षतजसिक्ताङ्गौ प्रभिन्नाविव कुञ्जरौ ॥ ४६ ॥

वे दोनों वीर अपनी-अपनी सेनाके प्रधान थे। दोनों ही एक दूसरेके वैरी और वेगशाली थे। वे मदकी धारा बहानेवाले दो गजराजोंके समान खूनसे नहा उठे थे ॥ ४६ ॥

उल्लिखन्तौ सुतीक्ष्णाभिर्दंष्ट्राभिरितरेतरम्।
सिंहशार्दूलसदृशौ सिंहशार्दूलचेष्टितौ ॥ ४७ ॥

दोनों ही अपनी तीखी दाढ़ोंसे काट-काटकर एक-दूसरेके अङ्गोंको घायल किये देते थे। वे दोनों सिंह और बाघके समान शक्तिशाली और उन्हींके समान विजयके लिये सचेष्ट थे ॥

विक्रान्तविजयौ वीरौ समरेष्वनिवर्तिनौ।
काङ्क्षमाणौ यशः प्राप्तुं वृत्रवासवयोरिव ॥ ४८ ॥

दोनों वीर पराक्रमी, विजयी और युद्धमें कभी पीठ न दिखानेवाले थे तथा वृत्रासुर और इन्द्रके समान युद्धमें यश पानेकी अभिलाषा रखते थे ॥ ४८ ॥

आजघान तदा नीलं ललाटे मुसलेन सः।
प्रहस्तः परमायत्तस्ततः सुस्राव शोणितम् ॥ ४९ ॥

उस समय परम उद्योगी प्रहस्तने नीलके ललाटमें मुसलसे आघात किया। इससे उनके ललाटसे रक्तकी धारा बह चली ॥

ततः शोणितदिग्धाङ्गः प्रगृह्य च महातरुम्।
प्रहस्तस्योरसि क्रुद्धो विससर्ज महाकपिः ॥ ५० ॥

उनके सारे अङ्ग रक्तसे भीग गये। तब क्रोधसे भरे हुए महाकपि नीलने एक विशाल वृक्ष उठाकर प्रहस्तकी छातीपर दे मारा ॥ ५० ॥

तमचिन्त्यप्रहारं स प्रगृह्य मुसलं महत्।
अभिदुद्राव बलिनं बलान्नीलं प्लवंगमम् ॥ ५१ ॥ 3

उस प्रहारकी कोई परवा न करके प्रहस्त महान् मुसल हाथमें लिये बलवान् वानर नीलकी ओर बड़े वेगसे दौड़ा ॥

तमुग्रवेगं संरब्धमापतन्तं महाकपिः ।
ततः सम्प्रेक्ष्य जग्राह महावेगो महाशिलाम् ॥ ५२ ॥

उस भयंकर वेगशाली राक्षसको रोषसे भरकर आक्रमण करते देख महान् वेगशाली महाकपि नीलने एक बड़ी भारी शिला हाथमें ले ली ॥ ५२ ॥

तस्य युद्धाभिकामस्य मृधे मुसलयोधिनः ।
प्रहस्तस्य शिलां नीलो मूर्ध्नि तूर्णमपातयत् ॥ ५३ ॥

उस शिलाको नीलने रणभूमिमें संग्रामकी इच्छावाले मुसलयोधी निशाचर प्रहस्तके मस्तकपर तत्काल दे मारा ॥

नीलेन कपिमुख्येन विमुक्ता महती शिला ।
बिभेद बहुधा घोरा प्रहस्तस्य शिरस्तदा ॥ ५४ ॥

कपिप्रवर नीलके द्वारा चलायी गयी उस भयंकर एवं विशाल शिलाने प्रहस्तके मस्तकको कुचलकर उसके कई टुकड़े कर डाले ॥ ५४ ॥

स गतासुर्गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः ।
पपात सहसा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ ५५ ॥

उसके प्राण-पखेरू उड़ गये । उसकी कान्ति, उसका बल और उसकी सारी इन्द्रियाँ भी चली गयीं । वह राक्षस जड़से कटे हुए वृक्षकी भाँति सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ५५ ॥

विभिन्नशिरसस्तस्य बहु सुस्राव शोणितम् ।
शरीरादपि सुस्राव गिरेः प्रस्रवणं यथा ॥ ५६ ॥

उसके छिन्न-भिन्न हुए मस्तकसे और शरीरसे भी बहुत खून गिरने लगा, मानो पर्वतसे पानीका झरना झर रहा हो ॥

हते प्रहस्ते नीलेन तदकम्प्यं महाबलम् ।
राक्षसानामहृष्टानां लङ्कामभिजगाम ह ॥ ५७ ॥

नीलके द्वारा प्रहस्तके मारे जानेपर दुखी हुए राक्षसोंकी वह अकम्पनीय विशाल सेना लङ्काको लौट गयी ॥ ५७ ॥

न शेकुः समवस्थातुं निहते वाहिनीपतौ ।
सेतुबन्धं समासाद्य विशीर्णं सलिलं यथा ॥ ५८ ॥

सेनापतिके मारे जानेपर वह सेना ठहर न सकी । जैसे बाँध टूट जानेपर नदीका पानी रुक नहीं पाता ॥ ५८ ॥

हते तस्मिंश्चमूमुख्ये राक्षसास्ते निरुद्यमाः ।
रक्षःपतिगृहं गत्वा ध्यानमूकत्वमागताः ॥ ५९ ॥
प्राप्ताः शोकार्णवं तीव्रं विसंज्ञा इव तेऽभवन् ॥ ६० ॥

सेनानायकके मारे जानेसे वे सारे राक्षस अपना युद्ध-विषयक उत्साह खो बैठे और राक्षसराज रावणके भवनमें जाकर चिन्ताके कारण चुपचाप खड़े हो गये । तीव्र शोक-समुद्रमें डूब जानेके कारण वे सब-के-सब अचेत-से हो गये थे ॥ ५९-६० ॥

ततस्तु नीलो विजयी महाबलः
प्रशस्यमानः सुकृतेन कर्मणा ।
समेत्य रामेण सलक्ष्मणेन
प्रहृष्टरूपस्तु बभूव यूथपः ॥ ६१ ॥

तदनन्तर विजयी सेनापति महाबली नील अपने इस महान् कर्मके कारण प्रशंसित होते हुए श्रीराम और लक्ष्मणसे आकर मिले और बड़े हर्षका अनुभव करने लगे ॥ ६१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें अट्ठावनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः

प्रहस्तके मारे जानेसे दुखी हुए रावणका स्वयं ही युद्धके लिये पधारना, उसके साथ आये हुए मुख्य वीरोंका परिचय, रावणकी मारसे सुग्रीवका अचेत होना, लक्ष्मणका युद्धमें आना, हनुमान् और रावणमें थप्पड़ोंकी मार, रावणद्वारा नीलका मूर्च्छित होना, लक्ष्मणका शक्तिके आघातसे मूर्च्छित एवं सचेत होना तथा श्रीरामसे परास्त होकर रावणका लङ्कामें घुस जाना

तस्मिन् हते राक्षससैन्यपाले
प्लवंगमानामृषभेण युद्धे ।
भीमायुधं सागरवेगतुल्यं
विदुद्रुवे राक्षसराजसैन्यम् ॥ १ ॥

वानरश्रेष्ठ नीलके द्वारा युद्धस्थलमें उस राक्षस-सेनापति प्रहस्तके मारे जानेपर समुद्रके समान वेगशालिनी और भयानक आयुधोंसे युक्त वह राक्षसराजकी सेना भाग चली ॥ १ ॥

गत्वा तु रक्षोधिपतेः शशंसुः
सेनापतिं पावकसूनुशस्तम् ।
तच्चापि तेषां वचनं निशम्य
रक्षोधिपः क्रोधवशं जगाम ॥ २ ॥

राक्षसोंने निशाचरराज रावणके पास जाकर अग्निपुत्र नीलके हाथसे प्रहस्तके मारे जानेका समाचार सुनाया । उनकी वह बात सुनकर राक्षसराज रावणको बड़ा क्रोध हुआ ॥२॥

संख्ये प्रहस्तं निहतं निशम्य
क्रोधार्दितः शोकपरीतचेताः ।
उवाच तान् राक्षसयूथमुख्या-
निन्द्रो यथा निर्जरयूथमुख्यान् ॥ ३ ॥

'युद्धस्थलमें प्रहस्त मारा गया' यह सुनते ही वह क्रोधसे तमतमा उठा; किंतु थोड़ी ही देरमें उसका चित्त उसके लिये शोकसे व्याकुल हो गया । अतः वह मुख्य-मुख्य देवताओंसे बातचीत करनेवाले इन्द्रकी भाँति राक्षससेनाके मुख्य अधिकारियोंसे बोला—॥ ३ ॥

नावज्ञा रिपवे कार्या यैरिन्द्रबलसादनः ।
सूदितः सैन्यपालो मे सानुयात्रः सकुञ्जरः ॥ ४ ॥

'शत्रुओंको नगण्य समझकर उनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये । मैं जिन्हें बहुत छोटा समझता था, उन्हीं शत्रुओंने मेरे उस सेनापतिको सेवकों और हाथियोंसहित मार गिराया, जो इन्द्रकी सेनाका भी संहार करनेमें समर्थ था ॥ ४ ॥

सोऽहं रिपुविनाशाय विजयायाविचारयन् ।
स्वयमेव गमिष्यामि रणशीर्षं तदद्भुतम् ॥ ५ ॥

'अब मैं शत्रुओंके संहार और अपनी विजयके लिये बिना कोई विचार किये स्वयं ही उस अद्भुत युद्धके मुहानेपर जाऊँगा ॥ ५ ॥

अद्य तद् वानरानीकं रामं च सहलक्ष्मणम् ।
निर्दहिष्यामि बाणौघैर्वनं दीप्तैरिवाग्निभिः ।
अद्य संतर्पयिष्यामि पृथिवीं कपिशोणितैः ॥ ६ ॥

'जैसे प्रज्वलित आग वनको जला देती है, उसी तरह आज अपने बाणसमूहोंसे वानरोंकी सेना तथा लक्ष्मणसहित श्रीरामको मैं भस्म कर डालूँगा ! आज वानरोंके रक्तसे मैं इस पृथ्वीको तृप्त करूँगा' ॥ ६ ॥

स एवमुक्त्वा ज्वलनप्रकाशं
रथं तुरंगोत्तमराजियुक्तम् ।
प्रकाशमानं वपुषा ज्वलन्तं
समारुरोहामरराजशत्रुः ॥ ७ ॥

ऐसा कहकर वह देवराजका शत्रु रावण अग्निके समान प्रकाशमान रथपर सवार हुआ । उसके रथमें उत्तम घोड़ोंके समूह जुते हुए थे । वह अपने शरीरसे भी प्रज्वलित अग्निके समान उद्भासित हो रहा था ॥ ७ ॥

स शङ्खभेरीपणवप्रणादै-
रास्फोटितक्ष्वेडितसिंहनादैः ।
पुण्यैः स्तवैश्चापि सुपूज्यमान-
स्तदा ययौ राक्षसराजमुख्यः ॥ ८ ॥

उसके प्रस्थान करते समय शङ्ख, भेरी और पणव आदि बाजे बजने लगे । योद्धालोग ताल ठोकने, गर्जने और सिंहनाद करने लगे । वन्दीजन पवित्र स्तुतियोंद्वारा राक्षसराज-शिरोमणि रावणकी भलीभाँति समाराधना करने लगे । इस प्रकार उसने यात्रा की ॥ ८ ॥

स शैलजीमूतनिकाशरूपै-
र्मांसाशनैः पावकदीप्तनेत्रैः ।
बभौ वृतो राक्षसराजमुख्यो
भूतैर्वृतो रुद्र इवामरेशः ॥ ९ ॥

पर्वत और मेघोंके समान काले एवं विशाल रूपवाले मांसाहारी राक्षसोंसे, जिनके नेत्र प्रज्वलित अग्निके समान उद्दीप्त हो रहे थे, घिरा हुआ राक्षसराजाधिराज रावण भूतगणोंसे घिरे हुए देवेश्वर रुद्रके समान शोभा पाता था ॥ ९ ॥

ततो नगर्याः सहसा महौजा
निष्क्रम्य तद् वानरसैन्यमुग्रम् ।
महार्णवाभ्रस्तनितं ददर्श
समुद्यतं पादपशैलहस्तम् ॥ १० ॥

महातेजस्वी रावणने लङ्कापुरीसे सहसा निकलकर महासागर और मेघोंके समान गर्जना करनेवाली उस भयंकर वानर-सेनाको देखा, जो हाथोंमें पर्वत-शिखर एवं वृक्ष लिये युद्धके लिये तैयार थी ॥ १० ॥

तद् राक्षसानीकमतिप्रचण्ड-
मालोक्य रामो भुजगेन्द्रबाहुः ।
विभीषणं शस्त्रभृतां वरिष्ठ-
मुवाच सेनानुगतः पृथुश्रीः ॥ ११ ॥

उस अत्यन्त प्रचण्ड राक्षससेनाको देखकर नागराज शेषके समान भुजावाले, वानर-सेनासे घिरे हुए तथा पुष्ट शोभा-सम्पत्तिसे युक्त श्रीरामचन्द्रजीने शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ विभीषणसे पूछा—॥ ११ ॥

नानापताकाध्वजछत्रजुष्टं
प्रासासिशूलायुधशस्त्रजुष्टम् ।
कस्येदमक्षोभ्यमभीरुजुष्टं
सैन्यं महेन्द्रोपमनागजुष्टम् ॥ १२ ॥

'जो नाना प्रकारकी ध्वजा-पताकाओं और छत्रोंसे सुशोभित, प्रास, खड्ग और शूल आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न, अजेय, निडर योद्धाओंसे सेवित और महेन्द्रपर्वत-जैसे विशालकाय हाथियोंसे भरी हुई है, ऐसी यह सेना किसकी है ?' ॥ १२ ॥

ततस्तु रामस्य निशम्य वाक्यं
विभीषणः शक्रसमानवीर्यः ।
शशंस रामस्य बलप्रवेकं
महात्मनां राक्षसपुंगवानाम् ॥ १३ ॥

इन्द्रके समान बलशाली विभीषण श्रीरामकी उपर्युक्त बात सुनकर महामना राक्षसशिरोमणियोंके बल एवं सैनिक-शक्तिका परिचय देते हुए उनसे बोले—॥ १३ ॥

योऽसौ गजस्कन्धगतो महात्मा
नवोदितार्कोपमताम्रवक्त्रः ।
संकम्पयन्नागशिरोऽभ्युपैति
ह्यकम्पनं त्वेनमवेहि राजन् ॥ १४ ॥

'राजन् ! यह जो महामनस्वी वीर हाथीकी पीठपर बैठा है, जिसका मुख नवोदित सूर्यके समान लाल रंगका है तथा जो अपने भारसे हाथीके मस्तकमें कम्पन उत्पन्न करता हुआ इधर आ रहा है, इसे आप अकम्पन[1] समझें ॥ १४ ॥

योऽसौ रथस्थो मृगराजकेतु-
र्धुन्वन् धनुः शक्रधनुःप्रकाशम् ।
करीव भात्युग्रविवृत्तदंष्ट्रः
स इन्द्रजिन्नाम वरप्रधानः ॥ १५ ॥

'वह जो रथपर चढ़ा हुआ है, जिसकी ध्वजापर सिंहका चिह्न है, जिसके दाँत हाथीके समान उग्र और बाहर निकले हुए हैं तथा जो इन्द्रधनुषके समान कान्तिमान् धनुष हिलाता हुआ आ रहा है, उसका नाम इन्द्रजित् है । वह वरदानके प्रभावसे बड़ा प्रबल हो गया है ॥ १५ ॥

यश्चैष विन्ध्यास्तमहेन्द्रकल्पो
धन्वी रथस्थोऽतिरथोऽतिवीरः ।
विस्फारयंश्चापमतुल्यमानं
नाम्नातिकायोऽतिविवृद्धकायः ॥ १६ ॥

'यह जो विन्ध्याचल, अस्ताचल और महेन्द्रगिरिके समान विशालकाय, अतिरथी एवं अतिशय वीर धनुष लिये रथपर बैठा है तथा अपने अनुपम धनुषको बारंबार खींच रहा है, इसका नाम अतिकाय है । इसकी काया बहुत बड़ी है॥१६॥

योऽसौ नवार्कोदितताम्रचक्षु-
रारुह्य घण्टानिनदप्रणादम् ।
गजं खरं गर्जति वै महात्मा
महोदरो नाम स एष वीरः ॥ १७ ॥

'जिसके नेत्र प्रातःकाल उदित हुए सूर्यके समान लाल हैं तथा जिसकी आवाज घण्टाकी ध्वनिसे भी उत्कृष्ट है, ऐसे क्रूरस्वभाववाले गजराजपर आरूढ़ होकर जो जोर-जोरसे गर्जना कर रहा है, वह महामनस्वी वीर महोदर नामसे प्रसिद्ध है ॥ १७ ॥

योऽसौ हयं काञ्चनचित्रभाण्ड-
मारुह्य संध्याभ्रगिरिप्रकाशम् ।
प्रासं समुद्यम्य मरीचिनद्धं
पिशाच एषोऽशनितुल्यवेगः ॥ १८ ॥

'जो सायंकालीन मेघसे युक्त पर्वतकी-सी आभावाले और सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित घोड़ेपर चढ़कर चमकीले प्रास (भाले) को हाथमें लिये इधर आ रहा है, इसका नाम पिशाच है । यह वज्रके समान वेगशाली योद्धा है ॥ १८ ॥

यश्चैष शूलं निशितं प्रगृह्य
विद्युत्प्रभं किंकरवज्रवेगम् ।
वृषेन्द्रमास्थाय शशिप्रकाश-
मायाति योऽसौ त्रिशिरा यशस्वी ॥ १९ ॥

'जिसने वज्रके वेगको भी अपना दास बना लिया है और जिससे बिजलीकी-सी प्रभा छिटकती रहती है, ऐसे तीखे त्रिशूलको हाथमें लिये जो यह चन्द्रमाके समान श्वेत कान्तिवाले साँड़पर चढ़कर युद्धभूमिमें आ रहा है, यह यशस्वी वीर त्रिशिरा[1] है ॥ १९ ॥

असौ च जीमूतनिकाशरूपः
कुम्भः पृथुव्यूढसुजातवक्षाः ।
समाहितः पन्नगराजकेतु-
र्विस्फारयन् याति धनुर्विधुन्वन् ॥ २० ॥

'जिसका रूप मेघके समान काला है, जिसकी छाती उभरी हुई, चौड़ी और सुन्दर है, जिसकी ध्वजापर नागराज वासुकिका चिह्न बना हुआ है तथा जो एकाग्रचित्त हो अपने धनुषको हिलाता और खींचता आ रहा है, वह कुम्भ नामक योद्धा है ॥ २० ॥

यश्चैष जाम्बूनदवज्रजुष्टं
दीप्तं सधूमं परिघं प्रगृह्य ।
आयाति रक्षोबलकेतुभूतो
योऽसौ निकुम्भोऽद्भुतघोरकर्मा ॥ २१ ॥

'जो सुवर्ण और वज्रसे जटित होनेके कारण दीप्तिमान् तथा इन्द्रनीलमणिसे मण्डित होनेके कारण धूमयुक्त अग्नि-सा प्रकाशित होता है, ऐसे परिघको हाथमें लेकर जो राक्षससेनाकी ध्वजाके समान आ रहा है, उसका नाम निकुम्भ है । उसका पराक्रम घोर एवं अद्भुत है ॥ २१ ॥

यश्चैष चापासिशरौघजुष्टं
पताकिनं पावकदीप्तरूपम् ।
रथं समास्थाय विभात्युदग्रो
नरान्तकोऽसौ नगशृङ्गयोधी ॥ २२ ॥

'यह जो धनुष, खड्ग और बाणसमूहसे भरे हुए, ध्वजा-पताकासे अलंकृत तथा प्रज्वलित अग्निके समान देदीप्यमान रथपर आरूढ़ हो अतिशय शोभा पा रहा है, वह ऊँचे कदका योद्धा नरान्तक[2] है । वह पहाड़ोंकी चोटियोंसे युद्ध करता है ॥ २२ ॥

---

[1] यह अकम्पन हनुमान्जीके द्वारा मारे गये अकम्पनसे भिन्न है ।

[1] यह त्रिशिरा जनस्थानमें मारे गये त्रिशिरासे भिन्न है । यह रावणका पुत्र है और वह भाई था ।

[2] यह नरान्तक रावणका पुत्र है ।

यश्चैष नानाविधघोररूपै-
र्व्याघ्रोष्ट्रनागेन्द्रमृगाश्ववक्त्रैः ।
भूतैर्वृतो भाति विवृत्तनेत्रै-
र्योऽसौ सुराणामपि दर्पहन्ता ॥ २३ ॥
यत्रैतदिन्दुप्रतिमं विभाति
च्छत्रं सितं सूक्ष्मशलाकमग्र्यम् ।
अत्रैष रक्षोधिपतिर्महात्मा
भूतैर्वृतो रुद्र इवावभाति ॥ २४ ॥

'यह जो व्याघ्र, ऊँट, हाथी, हिरन और घोड़ेके-से मुँहवाले, चढ़ी हुई आँखवाले तथा अनेक प्रकारके भयंकर रूपवाले भूतोंसे घिरा हुआ है, जो देवताओंका भी दर्प दलन करनेवाला है तथा जहाँ, जिसके ऊपर पूर्ण चन्द्रमाके समान श्वेत एवं पतली कमानीवाला सुन्दर छत्र शोभा पाता है, वही यह राक्षसराज महामना रावण है, जो भूतोंसे घिरे हुए रुद्रदेवके समान सुशोभित होता है ॥ २३-२४ ॥

असौ किरीटी चलकुण्डलास्यो
नगेन्द्रविन्ध्योपमभीमकायः ।
महेन्द्रवैवस्वतदर्पहन्ता
रक्षोधिपः सूर्य इवावभाति ॥ २५ ॥

'यह सिरपर मुकुट धारण किये है । इसका मुख कानोंमें हिलते हुए कुण्डलोंसे अलंकृत है । इसका शरीर गिरिराज हिमालय और विन्ध्याचलके समान विशाल एवं भयंकर है तथा यह इन्द्र और यमराजके भी घमंडको चूर करनेवाला है । देखिये, यह राक्षसराज साक्षात् सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा है' ॥ २५ ॥

प्रत्युवाच ततो रामो विभीषणमरिंदमः ।
अहो दीप्तमहातेजा रावणो राक्षसेश्वरः ॥ २६ ॥

तब शत्रुदमन श्रीरामने विभीषणको इस प्रकार उत्तर दिया—'अहो ! राक्षसराज रावणका तेज तो बहुत ही बढ़ा-चढ़ा और देदीप्यमान है ॥ २६ ॥

✓ आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिभिर्भाति रावणः ।
न व्यक्तं लक्षये ह्यस्य रूपं तेजःसमावृतम् ॥ २७ ॥

'रावण अपनी प्रभासे सूर्यकी ही भाँति ऐसी शोभा पा रहा है कि इसकी ओर देखना कठिन हो रहा है । तेजोमण्डलसे व्याप्त होनेके कारण इसका रूप मुझे स्पष्ट नहीं दिखायी देता ॥ २७ ॥

✓ देवदानववीराणां वपुर्नैवंविधं भवेत् ।
यादृशं राक्षसेन्द्रस्य वपुरेतद् विराजते ॥ २८ ॥

'इस राक्षसराजका शरीर जैसा सुशोभित हो रहा है, ऐसा तो देवता और दानव वीरोंका भी नहीं होगा ॥ २८ ॥

सर्वे पर्वतसंकाशाः सर्वे पर्वतयोधिनः ।
सर्वे दीप्तायुधधरा योधास्तस्य महात्मनः ॥ २९ ॥

'इस महाकाय राक्षसके सभी योद्धा पर्वतोंके समान विशाल हैं । सभी पर्वतोंसे युद्ध करनेवाले हैं और सब-के-सब चमकीले अस्त्र-शस्त्र लिये हुए हैं ॥ २९ ॥

विभाति रक्षोराजोऽसौ प्रदीप्तैर्भीमदर्शनैः ।
भूतैः परिवृतस्तीक्ष्णैर्देहवद्भिरिवान्तकः ॥ ३० ॥

'जो दीप्तिमान्, भयंकर दिखायी देनेवाले और तीखे स्वभाववाले हैं, उन राक्षसोंसे घिरा हुआ यह राक्षसराज रावण देहधारी भूतोंसे घिरे हुए यमराजके समान जान पड़ता है ॥

दिष्ट्यायमद्य पापात्मा मम दृष्टिपथं गतः ।
अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि सीताहरणसम्भवम् ॥ ३१ ॥

'सौभाग्यकी बात है कि यह पापात्मा मेरी आँखोंके सामने आ गया । सीताहरणके कारण मेरे मनमें जो क्रोध संचित हुआ है, उसे आज इसके ऊपर छोड़ूँगा' ॥ ३१ ॥

एवमुक्त्वा ततो रामो धनुरादाय वीर्यवान् ।
लक्ष्मणानुचरस्तस्थौ समुद्धृत्य शरोत्तमम् ॥ ३२ ॥

ऐसा कहकर बल-विक्रमशाली श्रीराम धनुष लेकर उत्तम बाण निकालकर युद्धके लिये डट गये । इस कार्यमें लक्ष्मणने भी उनका साथ दिया ॥ ३२ ॥

ततः स रक्षोधिपतिर्महात्मा
रक्षांसि तान्याह महाबलानि ।
द्वारेषु चर्यागृहगोपुरेषु
सुनिर्वृतास्तिष्ठत निर्विशङ्काः ॥ ३३ ॥

तदनन्तर महामना राक्षसराज रावणने अपने साथ आये हुए उन महाबली राक्षसोंसे कहा—'तुमलोग निर्भय और सुप्रसन्न होकर नगरके द्वारों तथा राजमार्गके मकानोंकी ड्योढ़ियोंपर खड़े हो जाओ ॥ ३३ ॥

इहागतं मां सहितं भवद्भि-
र्वनौकसश्छिद्रमिदं विदित्वा ।
शून्यां पुरीं दुष्प्रसहां प्रमथ्य
प्रधर्षयेयुः सहसा समेताः ॥ ३४ ॥

'क्योंकि वानरलोग मेरे साथ तुम सबको यहाँ आया देख इसे अपने लिये अच्छा मौका समझकर सहसा एकत्र हो मेरी सूनी नगरीमें, जिसके भीतर प्रवेश होना दूसरोंके लिये बहुत कठिन है, घुस जायँगे और इसे मथकर चौपट कर डालेंगे' ॥ ३४ ॥

विसर्जयित्वा सचिवांस्ततस्तान्
गतेषु रक्षःसु यथानियोगम् ।
व्यदारयद् वानरसागरौघं
महाझषः पूर्णमिवार्णवौघम् ॥ ३५ ॥

इस प्रकार जब अपने मन्त्रियोंको विदा कर दिया और वे राक्षस उसकी आज्ञाके अनुसार उन-उन स्थानोंपर चले गये, तब रावण जैसे महामत्स्य (तिमिङ्गिल) पूरे महासागरको विक्षुब्ध कर देता है, उसी प्रकार समुद्र-जैसी वानरसेनाको विदीर्ण करने लगा ॥ ३५ ॥

तमापतन्तं सहसा समीक्ष्य
दीप्तेषुचापं युधि राक्षसेन्द्रम् ।
महत् समुत्पाट्य महीधराग्रं
दुद्राव रक्षोधिपतिं हरीशः ॥ ३६ ॥

चमकीले धनुष-बाण लिये राक्षसराज रावणको युद्धस्थलमें सहसा आया देख वानरराज सुग्रीवने एक बड़ा भारी पर्वत-शिखर उखाड़ लिया और उसे लेकर उस निशाचरराजपर आक्रमण किया ॥ ३६ ॥

तच्छैलशृङ्गं बहुवृक्षसानुं
प्रगृह्य चिक्षेप निशाचराय ।
तमापतन्तं सहसा समीक्ष्य
चिच्छेद बाणैस्तपनीयपुङ्खैः ॥ ३७ ॥

अनेक वृक्षों और शिखरोंसे युक्त उस महान् शैल-शिखरको सुग्रीवने रावणपर दे मारा । उस शिखरको अपने ऊपर आता देख रावणने सहसा सुवर्णमय पंखवाले बहुत-से बाण मारकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ३७ ॥

तस्मिन् प्रवृद्धोत्तमसानुवृक्षे
शृङ्गे विदीर्णे पतिते पृथिव्याम् ।
महाहिकल्पं शरमन्तकाभं
समादधे राक्षसलोकनाथः ॥ ३८ ॥

उत्तम वृक्ष और शिखरवाला वह महान् शैलशृङ्ग जब विदीर्ण होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा, तब राक्षसलोकके स्वामी रावणने महान् सर्प और यमराजके समान एक भयंकर बाणका संधान किया ॥ ३८ ॥

स तं गृहीत्वानिलतुल्यवेगं
सविस्फुलिङ्गज्वलनप्रकाशम् ।
बाणं महेन्द्राशनितुल्यवेगं
चिक्षेप सुग्रीववधाय रुष्टः ॥ ३९ ॥

उस बाणका वेग वायुके समान था । उससे चिनगारियाँ छूटती थीं और प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाश फैलता था । इन्द्रके वज्रकी भाँति भयंकर वेगवाले उस बाणको रावणने रुष्ट होकर सुग्रीवके वधके लिये चलाया ॥ ३९ ॥

स सायको रावणबाहुमुक्तः
शक्राशनिप्रख्यवपुःप्रकाशम् ।
सुग्रीवमासाद्य बिभेद वेगाद्
गुहेरिता क्रौञ्चमिवोग्रशक्तिः ॥ ४० ॥

रावणके हाथोंसे छूटे हुए उस सायकने इन्द्रके वज्रकी भाँति कान्तिमान् शरीरवाले सुग्रीवके पास पहुँचकर उसी तरह वेगपूर्वक उन्हें घायल कर दिया, जैसे स्वामी कार्तिकेयकी चलायी हुई भयानक शक्तिने क्रौञ्चपर्वतको विदीर्ण कर डाला था ॥ ४० ॥

स सायकार्तो विपरीतचेताः
कूजन् पृथिव्यां निपपात वीरः ।
तं वीक्ष्य भूमौ पतितं विसंज्ञं
नेदुः प्रहृष्टा युधि यातुधानाः ॥ ४१ ॥

उस बाणकी चोटसे वीर सुग्रीव अचेत हो गये और आर्तनाद करते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े । सुग्रीवको बेहोश हो घूमकर गिरा देख उस युद्धस्थलमें आये हुए सब राक्षस बड़े हर्षके साथ सिंहनाद करने लगे ॥ ४१ ॥

ततो गवाक्षो गवयः सुषेण-
स्त्वथर्षभो ज्योतिमुखो नलश्च ।
शैलान् समुत्पाट्य विवृद्धकायाः
प्रदुद्रुवुस्तं प्रति राक्षसेन्द्रम् ॥ ४२ ॥

तब गवाक्ष, गवय, सुषेण, ऋषभ, ज्योतिर्मुख और नल—ये विशालकाय वानर पर्वतशिखरोंको उखाड़कर राक्षसराज रावणपर टूट पड़े ॥ ४२ ॥

तेषां प्रहारान् स चकार मोघान्
रक्षोधिपो बाणशतैः शिताग्रैः ।
तान् वानरेन्द्रानपि बाणजालै-
र्बिभेद जाम्बूनदचित्रपुङ्खैः ॥ ४३ ॥
ते वानरेन्द्रास्त्रिदशारिबाणै-
र्भिन्ना निपेतुर्भुवि भीमकायाः ।

परंतु निशाचरोंके राजा रावणने सैकड़ों तीखे बाण छोड़कर उन सबके प्रहारोंको व्यर्थ कर दिया और उन वानरेश्वरोंको भी सोनेके विचित्र पंखवाले बाण-समूहोंद्वारा क्षत-विक्षत कर दिया । देवद्रोही रावणके बाणोंसे घायल हो वे भीमकाय वानरेन्द्रगण धरतीपर गिर पड़े ॥ ४३½ ॥

ततस्तु तद् वानरसैन्यमुग्रं
प्रच्छादयामास स बाणजालैः ॥ ४४ ॥
ते वध्यमानाः पतिताश्च वीरा
नानद्यमाना भयशल्यविद्धाः ।

फिर तो रावणने अपने बाण-समूहोंद्वारा उस भयंकर वानरसेनाको आच्छादित कर दिया । रावणके बाणोंसे पीड़ित और डरे हुए वीर वानर उसकी मार खा-खाकर जोर-जोरसे चीत्कार करते हुए धराशायी होने लगे ॥ ४४½ ॥

शाखामृगा रावणसायकार्ता
जग्मुः शरण्यं शरणं स्म रामम् ॥ ४५ ॥

ततो महात्मा स धनुर्धनुष्मा-
नादाय रामः सहसा जगाम।
तं लक्ष्मणः प्राञ्जलिरभ्युपेत्य
उवाच रामं परमार्थयुक्तम् ॥ ४६ ॥

रावणके सायकोंसे पीड़ित हो बहुत-से वानर शरणागत-वत्सल भगवान् श्रीरामकी शरणमें गये। तब धनुर्धर महात्मा श्रीराम सहसा धनुष लेकर आगे बढ़े। उसी समय लक्ष्मणजीने उनके सामने आकर हाथ जोड़ उनसे ये यथार्थ वचन कहे—॥

काममार्य सुपर्याप्तो वधायास्य दुरात्मनः।
विधमिष्याम्यहं चैतमनुजानीहि मां विभो ॥ ४७ ॥

'आर्य! इस दुरात्माका वध करनेके लिये तो मैं ही पर्याप्त हूँ। प्रभो! आप मुझे आज्ञा दीजिये। मैं इसका नाश करूँगा' ॥ ४७ ॥

तमब्रवीन्महातेजा रामः सत्यपराक्रमः।
गच्छ यत्नपरश्चापि भव लक्ष्मण संयुगे ॥ ४८ ॥

उनकी बात सुनकर महातेजस्वी सत्यपराक्रमी श्रीरामने कहा—'अच्छा लक्ष्मण! जाओ। किंतु संग्राममें विजय पानेके लिये पूर्ण प्रयत्नशील रहना ॥ ४८ ॥

रावणो हि महावीर्यो रणेऽद्भुतपराक्रमः।
त्रैलोक्येनापि संक्रुद्धो दुष्प्रसह्यो न संशयः ॥ ४९ ॥

'क्योंकि रावण महान् बल-विक्रमसे सम्पन्न है। यह युद्धमें अद्भुत पराक्रम दिखाता है। रावण यदि अधिक कुपित होकर युद्ध करने लगे तो तीनों लोकोंके लिये इसके वेगको सहन करना कठिन हो जायगा ॥ ४९ ॥

तस्य च्छिद्राणि मार्गस्व स्वच्छिद्राणि च लक्षय।
चक्षुषा धनुषाऽऽत्मानं गोपायस्व समाहितः ॥ ५० ॥

'तुम युद्धमें रावणके छिद्र देखना। उसकी कमजोरियोंसे लाभ उठाना और अपने छिद्रोंपर भी दृष्टि रखना (कहीं शत्रु उनसे लाभ न उठाने पाये)। एकाग्रचित्त हो पूरी सावधानीके साथ अपनी दृष्टि और धनुषसे भी आत्मरक्षा करना' ॥ ५० ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा सम्परिष्वज्य पूज्य च।
अभिवाद्य च रामाय ययौ सौमित्रिराहवे ॥ ५१ ॥

श्रीरघुनाथजीकी यह बात सुनकर सुमित्राकुमार लक्ष्मण उनके हृदयसे लग गये और श्रीरामका पूजन एवं अभिवादन करके वे युद्धके लिये चल दिये ॥ ५१ ॥

स रावणं वारणहस्तबाहुं
ददर्श भीमोद्यतदीप्तचापम्।
प्रच्छादयन्तं शरवृष्टिजालै-
स्तान् वानरान् भिन्नविकीर्णदेहान् ॥ ५२ ॥

उन्होंने देखा, रावणकी भुजाएँ हाथीके शुण्ड-दण्डके समान हैं। उसने बड़ा भयंकर एवं दीप्तिमान् धनुष उठा रक्खा है और बाण-समूहोंकी वर्षा करके वानरोंको ढकता तथा उनके शरीरोंको छिन्न-भिन्न किये डालता है ॥ ५२ ॥

तमालोक्य महातेजा हनूमान् मारुतात्मजः।
निवार्य शरजालानि विदुद्राव स रावणम् ॥ ५३ ॥

रावणको इस प्रकार पराक्रम करते देख महातेजस्वी पवनपुत्र हनुमान्जी उसके बाण-समूहोंका निवारण करते हुए उसकी ओर दौड़े ॥ ५३ ॥

रथं तस्य समासाद्य बाहुमुद्यम्य दक्षिणम्।
त्रासयन् रावणं धीमान् हनूमान् वाक्यमब्रवीत् ॥ ५४ ॥

उसके रथके पास पहुँचकर अपना दायाँ हाथ उठा बुद्धिमान् हनुमान्ने रावणको भयभीत करते हुए कहा—॥

देवदानवगन्धर्वैर्यक्षैश्च सह राक्षसैः।
अवध्यत्वं त्वया प्राप्तं वानरेभ्यस्तु ते भयम् ॥ ५५ ॥

'निशाचर! तुमने देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष और राक्षसोंसे न मारे जानेका वर प्राप्त कर लिया है; परंतु वानरोंसे तो तुम्हें भय है ही ॥ ५५ ॥

एष मे दक्षिणो बाहुः पञ्चशाखः समुद्यतः।
विधमिष्यति ते देहे भूतात्मानं चिरोषितम् ॥ ५६ ॥

'देखो, पाँच अँगुलियोंसे युक्त यह मेरा दाहिना हाथ उठा हुआ है। तुम्हारे शरीरमें चिरकालसे जो जीवात्मा निवास करता है, उसे आज यह इस देहसे अलग कर देगा' ॥ ५६॥

श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं रावणो भीमविक्रमः।
संरक्तनयनः क्रोधादिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५७ ॥

हनुमान्जीका यह वचन सुनकर भयानक पराक्रमी रावणके नेत्र क्रोधसे लाल हो उठे और उसने रोषपूर्वक कहा—॥ ५७ ॥

क्षिप्रं प्रहर निःशङ्कं स्थिरां कीर्तिमवाप्नुहि।
ततस्त्वां ज्ञातविक्रान्तं नाशयिष्यामि वानर ॥ ५८ ॥

'वानर! तुम निःशङ्क होकर शीघ्र मेरे ऊपर प्रहार करो और सुस्थिर यश प्राप्त कर लो। तुममें कितना पराक्रम है, यह जान लेनेपर ही मैं तुम्हारा नाश करूँगा' ॥ ५८ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा वायुसूनुर्वचोऽब्रवीत्।
प्रहतं हि मया पूर्वमक्षं तव सुतं स्मर ॥ ५९ ॥

रावणकी बात सुनकर पवनपुत्र हनुमान्जी बोले—'मैंने तो पहले ही तुम्हारे पुत्र अक्षको मार डाला है। इस बातको याद तो करो' ॥ ५९ ॥

एवमुक्तो महातेजा रावणो राक्षसेश्वरः।
आजघानानिलसुतं तलेनोरसि वीर्यवान् ॥ ६० ॥

उनके इतना कहते ही बल-विक्रमसम्पन्न महातेजस्वी

राक्षसराज रावणने उन पवनकुमारकी छातीमें एक तमाचा जड़ दिया ॥ ६० ॥

**स तलाभिहतस्तेन चचाल च मुहुर्मुहुः ।
स्थितो मुहूर्तं तेजस्वी स्थैर्यं कृत्वा महामतिः ॥ ६१ ॥
आजघान च संक्रुद्धस्तलेनैवामरद्विषम् ।**

उस थप्पड़की चोटसे हनुमान्‌जी बारंबार इधर-उधर चक्कर काटने लगे; परंतु वे बड़े बुद्धिमान् और तेजस्वी थे, अतः दो ही घड़ीमें अपनेको सुस्थिर करके खड़े हो गये। फिर उन्होंने भी अत्यन्त कुपित होकर उस देवद्रोहीको थप्पड़से ही मारा ॥ ६१½ ॥

**ततः स तेनाभिहतो वानरेण महात्मना ॥ ६२ ॥
दशग्रीवः समाधूतो यथा भूमितलेऽचलः ।**

उन महात्मा वानरके थप्पड़की मार खाकर दशमुख रावण उसी तरह काँप उठा, जैसे भूकम्प आनेपर पर्वत हिलने लगता है ॥ ६२½ ॥

**संग्रामे तं तथा दृष्ट्वा रावणं तलताडितम् ॥ ६३ ॥
ऋषयो वानराः सिद्धा नेदुर्देवाः सहासुरैः ।**

संग्रामभूमिमें रावणको थप्पड़ खाते देख ऋषि, वानर, सिद्ध, देवता और असुर सभी हर्षध्वनि करने लगे ॥ ६३½ ॥

**अथाश्वस्य महातेजा रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६४ ॥
साधु वानर वीर्येण श्लाघनीयोऽसि मे रिपुः ।**

तदनन्तर महातेजस्वी रावणने सँभलकर कहा—'शाबाश वानर! शाबाश, तुम पराक्रमकी दृष्टिसे मेरे प्रशंसनीय प्रतिद्वन्द्वी हो' ॥ ६४½ ॥

**रावणेनैवमुक्तस्तु मारुतिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ६५ ॥
धिगस्तु मम वीर्यस्य यत् त्वं जीवसि रावण ।**

रावणके ऐसा कहनेपर पवनकुमार हनुमान्‌ने कहा—'रावण! तू अब भी जीवित है, इसलिये मेरे पराक्रमको धिक्कार है! ॥ ६५½ ॥

**सकृत् तु प्रहरेदानीं दुर्बुद्धे किं विकत्थसे ॥ ६६ ॥
ततस्त्वां मामको मुष्टिर्नयिष्यति यमक्षयम् ।**

'दुर्बुद्धे! अब तुम एक बार और मुझपर प्रहार करो। बढ़-बढ़कर बातें क्यों बना रहे हो। तुम्हारे प्रहारके पश्चात् जब मेरा मुक्का पड़ेगा, तब वह तुम्हें तत्काल यमलोक पहुँचा देगा' ॥ ६६½ ॥

**ततो मारुतिवाक्येन कोपस्तस्य प्रजज्वले ॥ ६७ ॥
संरक्तनयनो यत्नान्मुष्टिमावृत्य दक्षिणम् ।
पातयामास वेगेन वानरोरसि वीर्यवान् ॥ ६८ ॥**

हनुमान्‌जीकी इस बातसे रावणका क्रोध प्रज्वलित हो उठा। उसकी आँखें लाल हो गयीं। उस पराक्रमी राक्षसने बड़े यत्नसे दाहिना मुक्का तानकर हनुमान्‌जीकी छातीमें वेगपूर्वक प्रहार किया ॥ ६७-६८ ॥

**हनूमान् वक्षसि व्यूढे संचचाल पुनः पुनः ।
विह्वलं तु तदा दृष्ट्वा हनूमन्तं महाबलम् ॥ ६९ ॥
रथेनातिरथः शीघ्रं नीलं प्रति समभ्यगात् ।**

छातीमें चोट लगनेपर हनुमान्‌जी पुनः विचलित हो उठे। महाबली हनुमान्‌जीको उस समय विह्वल देख अतिरथी रावण रथके द्वारा शीघ्र ही नीलपर जा चढ़ा ॥ ६९½ ॥

**राक्षसानामधिपतिर्दशग्रीवः प्रतापवान् ॥ ७० ॥
पन्नगप्रतिमैर्भीमैः परमर्माभिभेदनैः ।
शरैरादीपयामास नीलं हरिचमूपतिम् ॥ ७१ ॥**

राक्षसोंके राजा प्रतापी दशग्रीवने शत्रुओंके मर्मको विदीर्ण करनेवाले सर्पतुल्य भयंकर बाणोंद्वारा वानर-सेनापति नीलको संताप देना आरम्भ किया ॥ ७०-७१ ॥

**स शरौघसमायस्तो नीलो हरिचमूपतिः ।
करेणैकेन शैलाग्रं रक्षोधिपतयेऽसृजत् ॥ ७२ ॥**

उसके बाण-समूहोंसे पीड़ित हुए वानर-सेनापति नीलने उस राक्षसराजपर एक ही हाथसे पर्वतका एक शिखर उठाकर चलाया ॥ ७२ ॥

**हनूमानपि तेजस्वी समाश्वस्तो महामनाः ।
विप्रेक्षमाणो युद्धेप्सुः सरोषमिदमब्रवीत् ॥ ७३ ॥
नीलेन सह संयुक्तं रावणं राक्षसेश्वरम् ।
अन्येन युध्यमानस्य न युक्तमभिधावनम् ॥ ७४ ॥**

इतनेहीमें तेजस्वी महामना हनुमान्‌जी भी सँभल गये और पुनः युद्धकी इच्छासे रावणकी ओर देखने लगे। उस समय राक्षसराज रावण नीलके साथ उलझा हुआ था। हनुमान्‌जीने उससे रोषपूर्वक कहा—'ओ निशाचर! इस समय तुम दूसरेके साथ युद्ध कर रहे हो, अतः अब तुमपर धावा करना मेरे लिये उचित न होगा' ॥ ७३-७४ ॥

**रावणोऽथ महातेजास्तं शृङ्गं सप्तभिः शरैः ।
आजघान सुतीक्ष्णाग्रैस्तद् विकीर्णं पपात ह ॥ ७५ ॥**

उधर महातेजस्वी रावणने नीलके चलाये हुए पर्वत-शिखरपर तीखे अग्रभागवाले सात बाण मारे, जिससे वह टूट-फूटकर पृथ्वीपर बिखर गया ॥ ७५ ॥

**तद् विकीर्णं गिरेः शृङ्गं दृष्ट्वा हरिचमूपतिः ।
कालाग्निरिव जज्वाल कोपेन परवीरहा ॥ ७६ ॥**

उस पर्वतशिखरको बिखरा हुआ देख शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले वानर-सेनापति नील प्रलयकालकी अग्निके समान क्रोधसे प्रज्वलित हो उठे ॥ ७६ ॥

**सोऽश्वकर्णद्रुमाञ्शालांश्चूतांश्चापि सुपुष्पितान् ।
अन्यांश्च विविधान् वृक्षान् नीलश्चिक्षेप संयुगे ॥ ७७ ॥**

उन्होंने युद्धस्थलमें अश्वकर्ण, साल, खिले हुए आम्र तथा अन्य नाना प्रकारके वृक्षोंको उखाड़-उखाड़कर रावणपर चलाना आरम्भ किया ॥ ७७ ॥

स तान् वृक्षान् समासाद्य प्रतिचिच्छेद रावणः।
अभ्यवर्षच्च घोरेण शरवर्षेण पावकिम् ॥ ७८ ॥

रावणने उन सब वृक्षोंको सामने आनेपर काट गिराया और अग्निपुत्र नीलपर बाणोंकी भयानक वर्षा की ॥ ७८ ॥

अभिवृष्टः शरौघेण मेघेनेव महाचलः।
ह्रस्वं कृत्वा ततो रूपं ध्वजाग्रे निपपात ह ॥ ७९ ॥

जैसे मेघ किसी महान् पर्वतपर जलकी वर्षा करता है, उसी तरह रावणने जब नीलपर बाणसमूहोंकी वर्षा की, तब वे छोटा-सा रूप बनाकर रावणकी ध्वजाके शिखरपर चढ़ गये ॥

पावकात्मजमालोक्य ध्वजाग्रे समवस्थितम्।
जज्वाल रावणः क्रोधात् ततो नीलो ननाद च ॥ ८० ॥

अपनी ध्वजाके ऊपर बैठे हुए अग्निपुत्र नीलको देखकर रावण क्रोधसे जल उठा और उधर नील जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ८० ॥

ध्वजाग्रे धनुषश्चाग्रे किरीटाग्रे च तं हरिम्।
लक्ष्मणोऽथ हनूमांश्च रामश्चापि सुविस्मिताः ॥ ८१ ॥

नीलको कभी रावणकी ध्वजापर, कभी धनुषपर और कभी मुकुटपर बैठा देख श्रीराम, लक्ष्मण और हनुमान्जीको भी बड़ा विस्मय हुआ ॥ ८१ ॥

रावणोऽपि महातेजाः कपिलाघवविस्मितः।
अस्त्रमाहारयामास दीप्तमाग्नेयमद्भुतम् ॥ ८२ ॥

वानर नीलकी वह फुर्ती देखकर महातेजस्वी रावणको भी बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने अद्भुत तेजस्वी आग्नेयास्त्र हाथमें लिया ॥ ८२ ॥

ततस्ते चुक्रुशुर्हृष्टा लब्धलक्षाः प्लवंगमाः।
नीललाघवसम्भ्रान्तं दृष्ट्वा रावणमाहवे ॥ ८३ ॥

नीलकी फुर्तीसे रावणको घबराया हुआ देख हर्षका अवसर पाकर सब वानर बड़ी प्रसन्नताके साथ किलकारियाँ भरने लगे ॥ ८३ ॥

वानराणां च नादेन संरब्धो रावणस्तदा।
सम्भ्रमाविष्टहृदयो न किंचित् प्रत्यपद्यत ॥ ८४ ॥

उस समय वानरोंके हर्षनादसे रावणको बड़ा क्रोध हुआ। साथ ही हृदयमें घबराहट छा गयी थी, इसलिये वह कर्तव्यका कुछ निश्चय नहीं कर सका ॥ ८४ ॥

✓**आग्नेयेनापि संयुक्तं गृहीत्वा रावणः शरम्।**
ध्वजशीर्षस्थितं नीलमुदैक्षत निशाचरः ॥ ८५ ॥

तदनन्तर निशाचर रावणने आग्नेयास्त्रसे अभिमन्त्रित बाण हाथमें लेकर ध्वजके अग्रभागपर बैठे हुए नीलको देखा ॥ ८५ ॥

ततोऽब्रवीन्महातेजा रावणो राक्षसेश्वरः।
कपे लाघवयुक्तोऽसि मायया परया सह ॥ ८६ ॥

देखकर महातेजस्वी राक्षसराज रावणने उनसे कहा—'वानर! तुम उच्चकोटिकी मायाके साथ ही अपने भीतर बड़ी फुर्ती भी रखते हो ॥ ८६ ॥

जीवितं खलु रक्षस्व यदि शक्तोऽसि वानर।
तानि तान्यात्मरूपाणि सृजसि त्वमनेकशः ॥ ८७ ॥
तथापि त्वां मया मुक्तः सायकोऽस्त्रप्रयोजितः।
जीवितं परिरक्षन्तं जीविताद् भ्रंशयिष्यति ॥ ८८ ॥

'वानर! यदि शक्तिशाली हो तो मेरे बाणसे अपने जीवनकी रक्षा करो। यद्यपि तुम अपने पराक्रमके योग्य ही भिन्न-भिन्न प्रकारके कर्म कर रहे हो तथापि मेरा छोड़ा हुआ दिव्यास्त्र-प्रेरित बाण जीवन-रक्षाकी चेष्टा करनेपर भी तुम्हें प्राणहीन कर देगा' ॥ ८७-८८ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहू रावणो राक्षसेश्वरः।
संधाय बाणमस्त्रेण चमूपतिमताडयत् ॥ ८९ ॥

ऐसा कहकर महाबाहु राक्षसराज रावणने आग्नेयास्त्रयुक्त बाणका संधान करके उसके द्वारा सेनापति नीलको मारा ।८९।

सोऽस्त्रमुक्तेन बाणेन नीलो वक्षसि ताडितः।
निर्दह्यमानः सहसा स पपात महीतले ॥ ९० ॥

उसके धनुषसे छूटे हुए उस बाणने नीलकी छातीपर गहरी चोट की। वे उसकी आँचसे जलते हुए सहसा पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ९० ॥

पितृमाहात्म्यसंयोगादात्मनश्चापि तेजसा।
जानुभ्यामपतद् भूमौ न तु प्राणैर्वियुज्यत ॥ ९१ ॥

यद्यपि नीलने पृथ्वीपर घुटने टेक दिये, तथापि पिता अग्निदेवके माहात्म्यसे और अपने तेजके प्रभावसे उनके प्राण नहीं निकले ॥ ९१ ॥

विसंज्ञं वानरं दृष्ट्वा दशग्रीवो रणोत्सुकः।
रथेनाम्बुदनादेन सौमित्रिमभिदुद्रुवे ॥ ९२ ॥

वानर नीलको अचेत हुआ देख रणोत्सुक रावणने मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले रथके द्वारा सुमित्राकुमार लक्ष्मणपर धावा किया ॥ ९२ ॥

आसाद्य रणमध्ये तं वारयित्वा स्थितो ज्वलन्।
धनुर्विस्फारयामास राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥ ९३ ॥

युद्धभूमिमें सारी वानरसेनाको आगे बढ़नेसे रोककर वह लक्ष्मणके पास पहुँच गया और प्रज्वलित अग्निके समान सामने खड़ा हो प्रतापी राक्षसराज रावण अपने धनुषकी टंकार करने लगा ॥ ९३ ॥

तमाह सौमित्रिरदीनसत्त्वो
विस्फारयन्तं धनुरप्रमेयम् ।
अवेहि मामद्य निशाचरेन्द्र
न वानरांस्त्वं प्रतियोद्धुमर्हसि ॥ ९४ ॥

उस समय अपने अनुपम धनुषको खींचते हुए रावणसे उदार शक्तिशाली लक्ष्मणने कहा—'निशाचरराज ! समझ लो, मैं आ गया । अतः अब तुम्हें वानरोंके साथ युद्ध नहीं करना चाहिये' ॥ ९४ ॥

स तस्य वाक्यं प्रतिपूर्णघोषं
ज्याशब्दमुग्रं च निशम्य राजा ।
आसाद्य सौमित्रिमुपस्थितं तं
रोषान्वितं वाचमुवाच रक्षः ॥ ९५ ॥

लक्ष्मणकी यह बात गम्भीर ध्वनिसे युक्त थी और उनकी प्रत्यञ्चासे भी भयानक टंकार-ध्वनि हो रही थी । उसे सुनकर युद्धके लिये उपस्थित हुए सुमित्राकुमारके निकट जा राक्षसोंके राजा रावणने रोषपूर्वक कहा—॥ ९५ ॥

दिष्ट्यासि मे राघव दृष्टिमार्गं
प्राप्तोऽन्तगामी विपरीतबुद्धिः ।
अस्मिन् क्षणे यास्यसि मृत्युलोकं
संसाद्यमानो मम बाणजालैः ॥ ९६ ॥

'रघुवंशी राजकुमार ! सौभाग्यकी बात है कि तुम मेरी आँखोंके सामने आ गये । तुम्हारा शीघ्र ही अन्त होनेवाला है, इसीलिये तुम्हारी बुद्धि विपरीत हो गयी है । अब तुम मेरे बाणसमूहोंसे पीड़ित हो इसी क्षण यमलोककी यात्रा करोगे' ॥

तमाह सौमित्रिरविस्मयानो
गर्जन्तमुद्वृत्तशिताग्रदंष्ट्रम् ।
राजन् न गर्जन्ति महाप्रभावा
विकत्थसे पापकृतां वरिष्ठ ॥ ९७ ॥

सुमित्राकुमार लक्ष्मणको उसकी बात सुनकर कोई विस्मय नहीं हुआ । उसके दाँत बड़े ही तीखे और उत्कट थे और वह जोर-जोरसे गर्जना कर रहा था । उस समय सुमित्राकुमारने उससे कहा—'राजन् ! महान् प्रभावशाली पुरुष तुम्हारी तरह केवल गर्जना नहीं करते हैं (कुछ पराक्रम करके दिखाते हैं) । पापाचारियोंमें अग्रगण्य रावण ! तुम तो झूठे ही डींग हाँकते हो ॥ ९७ ॥

जानामि वीर्यं तव राक्षसेन्द्र
बलं प्रतापं च पराक्रमं च ।
अवस्थितोऽहं शरचापपाणि-
रागच्छ किं मोघविकत्थनेन ॥ ९८ ॥

'राक्षसराज ! (तुमने सूने घरसे जो चोरी-चोरी एक असहाय नारीका अपहरण किया, इसीसे) मैं तुम्हारे बल, वीर्य, प्रताप और पराक्रमको अच्छी तरह जानता हूँ; इसीलिये हाथमें धनुष-बाण लेकर सामने खड़ा हूँ । आओ युद्ध करो । व्यर्थ बातें बनानेसे क्या होगा ?' ॥ ९८ ॥

स एवमुक्तः कुपितः ससर्ज
रक्षोधिपः सप्त शरान् सुपुङ्खान् ।
ताँल्लक्ष्मणः काञ्चनचित्रपुङ्खै-
श्चिच्छेद बाणैर्निशिताग्रधारैः ॥ ९९ ॥

उनके ऐसा कहनेपर कुपित हुए राक्षसराजने उनपर सुन्दर पंखवाले सात बाण छोड़े; परंतु लक्ष्मणने सोनेके बने हुए विचित्र पंखोंसे सुशोभित और तेज धारवाले बाणोंसे उन सबको काट डाला ॥ ९९ ॥

तान् प्रेक्षमाणः सहसा निकृत्तान्
निकृत्तभोगानिव पन्नगेन्द्रान् ।
लङ्केश्वरः क्रोधवशं जगाम
ससर्ज चान्यान् निशितान् पृषत्कान् ॥ १०० ॥

जैसे बड़े-बड़े सर्पोंके शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर दिये जायँ, उसी प्रकार अपने समस्त बाणोंको सहसा खण्डित हुआ देख लङ्कापति रावण क्रोधके वशीभूत हो गया और उसने दूसरे तीखे बाण छोड़े ॥ १०० ॥

स बाणवर्षं तु ववर्ष तीव्रं
रामानुजः कार्मुकसम्प्रयुक्तम् ।
क्षुरार्धचन्द्रोत्तमकर्णिभल्लैः
शरांश्च चिच्छेद न चुक्षुभे च ॥ १०१ ॥

परंतु श्रीरामके छोटे भाई लक्ष्मण इससे विचलित नहीं हुए । उन्होंने अपने धनुषसे बाणोंकी भयंकर वर्षा की और क्षुर, अर्धचन्द्र, उत्तम कर्णी तथा भल्ल जातिके बाणोंद्वारा रावणके छोड़े हुए उन सब बाणोंको काट डाला ॥ १०१ ॥

स बाणजालान्यपि तानि तानि
मोघानि पश्यंस्त्रिदशारिराजः ।
विसिस्मिये लक्ष्मणलाघवेन
पुनश्च बाणान् निशितान् मुमोच ॥ १०२ ॥

उन सभी बाणसमूहोंको निष्फल हुआ देख राक्षसराज रावण लक्ष्मणकी फुर्तीसे आश्चर्यचकित रह गया और उनपर पुनः तीखे बाण छोड़ने लगा ॥ १०२ ॥

स लक्ष्मणश्चापि शिताञ्शिताग्रान्
महेन्द्रतुल्योऽशनिभीमवेगान् ।
संधाय चापे ज्वलनप्रकाशान्-
ससर्ज रक्षोधिपतेर्वधाय ॥ १०३ ॥

देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी लक्ष्मणने भी रावणके वधके लिये वज्रके समान भयानक वेग और तीखी धारवाले पैने बाणोंको, जो अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे, धनुषपर रक्खा ॥ १०३ ॥

स तान् प्रचिच्छेद हि राक्षसेन्द्रः
शिताञ्शरांल्लक्ष्मणमाजघान ।
शरेण कालाग्निसमप्रभेण
स्वयंभुदत्तेन ललाटदेशे ॥१०४॥

परंतु राक्षसराजने उन सभी तीखे बाणोंको काट डाला और ब्रह्माजीके दिये हुए कालाग्निके समान तेजस्वी बाणसे लक्ष्मणजीके ललाटपर चोट की ॥ १०४ ॥

स लक्ष्मणो रावणसायकार्त-
श्चचाल चापं शिथिलं प्रगृह्य ।
पुनश्च संज्ञां प्रतिलभ्य कृच्छ्रा-
च्चिच्छेद चापं त्रिदशेन्द्रशत्रोः ॥१०५॥

रावणके उस बाणसे पीड़ित हो लक्ष्मणजी विचलित हो उठे । उन्होंने हाथमें जो धनुष ले रक्खा था, उसकी मुट्ठी ढीली पड़ गयी । फिर उन्होंने बड़े कष्टसे होश सँभाला और देवद्रोही रावणके धनुषको काट दिया ॥ १०५ ॥

निकृत्तचापं त्रिभिराजघान
बाणैस्तदा दाशरथिः शिताग्रैः ।
स सायकार्तो विचचाल राजा
कृच्छ्राच्च संज्ञां पुनराससाद ॥१०६॥

धनुष कट जानेपर रावणको लक्ष्मणने तीन बाण मारे, जो बहुत ही तीखे थे । उन बाणोंसे पीड़ित हो राजा रावण व्याकुल हो गया और बड़ी कठिनाईसे वह फिर सचेत हो सका ॥ १०६ ॥

स कृत्तचापः शरताडितश्च
मेदार्द्रगात्रो रुधिरावसिक्तः ।
जग्राह शक्तिं स्वयमुग्रशक्तिः
स्वयंभुदत्तां युधि देवशत्रुः ॥१०७॥

जब धनुष कट गया और बाणोंकी गहरी चोट खानी पड़ी, तब रावणका सारा शरीर मेदे और रक्तसे भीग गया । उस अवस्थामें उस भयंकर शक्तिशाली देवद्रोही राक्षसने युद्धस्थलमें ब्रह्माजीकी दी हुई शक्ति उठा ली ॥ १०७ ॥

स तां सधूमानलसंनिकाशां
वित्रासनां संयति वानराणाम् ।
चिक्षेप शक्तिं तरसा ज्वलन्तीं
सौमित्रये राक्षसराष्ट्रनाथः ॥१०८॥

वह शक्ति धूमयुक्त अग्निके समान दिखायी देती थी और युद्धमें वानरोंको भयभीत करनेवाली थी । राक्षसराजके स्वामी रावणने वह जलती हुई शक्ति बड़े वेगसे सुमित्राकुमारपर चलायी ॥ १०८ ॥

तामापतन्तीं भरतानुजोऽस्त्रै-
र्जघान बाणैश्च हुताग्निकल्पैः ।
तथापि सा तस्य विवेश शक्ति-
र्भुजान्तरं दाशरथेर्विशालम् ॥१०९॥

अपनी ओर आती हुई उस शक्तिपर लक्ष्मणने अग्नितुल्य तेजस्वी बहुत-से बाणों तथा अस्त्रोंका प्रहार किया; तथापि वह शक्ति दशरथकुमार लक्ष्मणके विशाल वक्षःस्थलमें घुस गयी ॥ १०९ ॥

स शक्तिमाञ्शक्तिसमाहतः सन्
जज्वाल भूमौ स रघुप्रवीरः ।
तं विह्वलन्तं सहसाभ्युपेत्य
जग्राह राजा तरसा भुजाभ्याम् ॥११०॥

रघुकुलके प्रधान वीर लक्ष्मण यद्यपि बड़े शक्तिशाली थे, तथापि उस शक्तिसे आहत हो पृथ्वीपर गिर पड़े और जलने-से लगे । उन्हें विह्वल हुआ देख राजा रावण सहसा उनके पास जा पहुँचा और उनको वेगपूर्वक अपनी दोनों भुजाओंसे उठाने लगा ॥ ११० ॥

हिमवान् मन्दरो मेरुस्त्रैलोक्यं वा सहामरैः ।
शक्यं भुजाभ्यामुद्धर्तुं न शक्यो भरतानुजः ॥१११॥

जिस रावणमें देवताओंसहित हिमालय, मन्दराचल, मेरुगिरि अथवा तीनों लोकोंको भुजाओंद्वारा उठा लेनेकी शक्ति थी, वही भरतके छोटे भाई लक्ष्मणको उठानेमें समर्थ न हो सका ॥ १११ ॥

शक्त्या ब्राह्म्या तु सौमित्रिस्ताडितोऽपि स्तनान्तरे ।
विष्णोरमीमांस्यभागमात्मानं प्रत्यनुस्मरत् ॥११२॥

ब्रह्माकी शक्तिसे छातीमें चोट खानेपर भी लक्ष्मणजीने भगवान् विष्णुके अचिन्त्य अंशरूपसे अपना चिन्तन किया ॥ ११२ ॥

ततो दानवदर्पघ्नं सौमित्रिं देवकण्टकः ।
तं पीडयित्वा बाहुभ्यां न प्रभुर्लङ्घनेऽभवत् ॥११३॥

अतः देवशत्रु रावण दानवोंका दर्प चूर्ण करनेवाले लक्ष्मणको अपनी दोनों भुजाओंमें दबाकर हिलानेमें भी समर्थ न हो सका ॥ ११३ ॥

ततः क्रुद्धो वायुसुतो रावणं समभिद्रवत् ।
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥११४॥

इसी समय क्रोधसे भरे हुए वायुपुत्र हनुमान्जी रावणकी ओर दौड़े और अपने वज्र-सरीखे मुक्केसे रावणकी छातीमें मारा ॥ ११४ ॥

तेन मुष्टिप्रहारेण रावणो राक्षसेश्वरः ।
जानुभ्यामगमद् भूमौ चचाल च पपात च ॥११५॥

उस मुक्केकी मारसे राक्षसराज रावणने धरतीपर घुटने टेक दिये । वह काँपने लगा और अन्ततोगत्वा गिर पड़ा ॥

आस्यैश्च नेत्रैः श्रवणैः पपात रुधिरं बहु ।
विघूर्णमानो निश्चेष्टो रथोपस्थ उपाविशत् ॥११६॥

उसके मुख, नेत्र और कानोंसे बहुत-सा रक्त गिरने लगा और वह चक्कर काटता हुआ रथके पिछले भागमें निश्चेष्ट होकर जा बैठा ॥ ११६ ॥

विसंज्ञो मूर्च्छितश्चासीन्न च स्थानं समालभत् ।
विसंज्ञं रावणं दृष्ट्वा समरे भीमविक्रमम् ॥११७॥
ऋषयो वानराश्चैव नेदुर्देवाश्च सासुराः ।

वह मूर्च्छित होकर अपनी सुध-बुध खो बैठा । वहाँ भी वह स्थिर न रह सका—तड़पता और छटपटाता रहा । समराङ्गणमें भयंकर पराक्रमी रावणको अचेत हुआ देख ऋषि, देवता, असुर और वानर हर्षनाद करने लगे ॥ ११७½ ॥

हनूमानथ तेजस्वी लक्ष्मणं रावणार्दितम् ॥११८॥
आनयद् राघवाभ्याशं बाहुभ्यां परिगृह्य तम् ।

इसके पश्चात् तेजस्वी हनुमान् रावणपीड़ित लक्ष्मणको दोनों हाथोंसे उठाकर श्रीरघुनाथजीके निकट ले आये ११८½

वायुसूनोः सुहृत्त्वेन भक्त्या परमया च सः ।
शत्रूणामप्यकम्प्योऽपि लघुत्वमगमत् कपेः ॥११९॥

हनुमान्‌जीके सौहार्द और उत्कट भक्तिभावके कारण लक्ष्मणजी उनके लिये हल्के हो गये । शत्रुओंके लिये तो वे अब भी अकम्पनीय थे—वे उन्हें हिला नहीं सकते थे॥११९॥

तं समुत्सृज्य सा शक्तिः सौमित्रिं युधि निर्जितम् ।
रावणस्य रथे तस्मिन् स्थानं पुनरुपागमत् ॥१२०॥

युद्धमें पराजित हुए लक्ष्मणको छोड़कर वह शक्ति पुनः रावणके रथपर लौट आयी ॥ १२० ॥

रावणोऽपि महातेजाः प्राप्य संज्ञां महाहवे ।
आददे निशितान् बाणाञ्जग्राह च महद्धनुः ॥१२१॥

थोड़ी देरमें होशमें आनेपर महातेजस्वी रावणने फिर विशाल धनुष उठाया और पैने बाण हाथमें लिये ॥ १२१ ॥

आश्वस्तश्च विशल्यश्च लक्ष्मणः शत्रुसूदनः ।
विष्णोर्भागममीमांस्यमात्मानं प्रत्यनुस्मरन् ॥१२२॥

शत्रुसूदन लक्ष्मणजी भी भगवान् विष्णुके अचिन्तनीय अंशरूपसे अपना चिन्तन करके स्वस्थ और नीरोग हो गये ॥ १२२ ॥

निपातितमहावीरां वानराणां महाचमूम् ।
राघवस्तु रणे दृष्ट्वा रावणं समभिद्रवत् ॥१२३॥

वानरोंकी विशाल वाहिनीके बड़े-बड़े वीर मार गिराये गये, यह देखकर रणभूमिमें रघुनाथजीने रावणपर धावा किया ॥ १२३ ॥

अथैनमनुसंक्रम्य हनूमान् वाक्यमब्रवीत् ।
मम पृष्ठं समारुह्य राक्षसं शास्तुमर्हसि ॥१२४॥
विष्णुर्यथा गरुत्मन्तमारुह्यामरवैरिणम् ।

उस समय हनुमान्‌जीने उनके पास आकर कहा—'प्रभो ! जैसे भगवान् विष्णु गरुड़पर चढ़कर दैत्योंका संहार करते हैं, उसी प्रकार आप मेरी पीठपर चढ़कर इस राक्षसको दण्ड दें' ॥ १२४½ ॥

तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्यं वायुपुत्रेण भाषितम् ॥१२५॥
अथारुरोह सहसा हनूमन्तं महाकपिम् ।

पवनकुमारकी कही हुई यह बात सुनकर श्रीरघुनाथजी सहसा उन महाकपि हनुमान्‌की पीठपर चढ़ गये॥१२५½॥

रथस्थं रावणं संख्ये ददर्श मनुजाधिपः ॥१२६॥
तमालोक्य महातेजाः प्रदुद्राव स रावणम् ।
वैरोचनमिव क्रुद्धो विष्णुरभ्युद्यतायुधः ॥१२७॥

महाराज श्रीरामने समराङ्गणमें रावणको रथपर बैठा देखा। उसे देखते ही महातेजस्वी श्रीराम रावणकी ओर उसी प्रकार दौड़े, जैसे कुपित हुए भगवान् विष्णु अपना चक्र उठाये विरोचनकुमार बलिपर टूट पड़े थे ॥ १२६-१२७ ॥

ज्याशब्दमकरोत् तीव्रं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ।
गिरा गम्भीरया रामो राक्षसेन्द्रमुवाच ह ॥१२८॥

उन्होंने अपने धनुषकी तीव्र टंकार प्रकट की, जो वज्रकी गड़गड़ाहटसे भी अधिक कठोर थी । इसके बाद श्रीरामचन्द्रजी राक्षसराज रावणसे गम्भीर वाणीमें बोले—॥ १२८ ॥

तिष्ठ तिष्ठ मम त्वं हि कृत्वा विप्रियमीदृशम ।
क्व नु राक्षसशार्दूल गत्वा मोक्षमवाप्स्यसि ॥१२९॥

'राक्षसोंमें बाघ बने हुए रावण ! खड़ा रह, खड़ा रह । मेरा ऐसा अपराध करके तू कहाँ जाकर प्राणसंकटसे छुटकारा पा सकेगा ॥ १२९ ॥

यदीन्द्रवैवस्वतभास्करान् वा
स्वयंभुवैश्वानरशंकरान् वा ।
गमिष्यसि त्वं दशधा दिशो वा
तथापि मे नाद्य गतो विमोक्ष्यसे ॥१३०॥

'यदि तू इन्द्र, यम अथवा सूर्यके पास, ब्रह्मा, अग्नि या शंकरके समीप अथवा दसों दिशाओंमें भागकर जायगा तो भी अब मेरे हाथसे बच नहीं सकेगा ॥ १३० ॥

यश्चैष शक्त्या निहतस्त्वयाद्य
गच्छन् विषादं सहसाभ्युपेत्य ।
स एष रक्षोगणराज मृत्युः
सपुत्रपौत्रस्य तवाद्य युद्धे ॥१३१॥

'तूने आज अपनी शक्तिके द्वारा युद्धमें जाते हुए जिन लक्ष्मणको आहत किया और जो उस शक्तिकी चोटसे सहसा

मूर्च्छित हो गये थे, उन्हींके उस तिरस्कारका बदला लेनेके लिये आज मैं युद्धभूमिमें उपस्थित हुआ हूँ। राक्षसरोज ! मैं पुत्र-पौत्रोंसहित तेरी मौत बनकर आया हूँ ॥ १३१ ॥

एतेन चात्यद्भुतदर्शनानि
शरैर्जनस्थानकृतालयानि ।
चतुर्दशान्यात्तवरायुधानि
रक्षःसहस्राणि निषूदितानि ॥१३२॥

'रावण ! तेरे सामने खड़े हुए इस रघुवंशी राजकुमारने ही अपने बाणोंद्वारा जनस्थाननिवासी उन चौदह हजार राक्षसोंका संहार कर डाला था, जो अद्भुत एवं दर्शनीय योद्धा थे और उत्तमोत्तम अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न थे' ॥ १३२ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रो महाबलः ।
वायुपुत्रं महावेगं वहन्तं राघवं रणे ॥१३३॥
रोषेण महताऽऽविष्टः पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
आजघान शरैर्दीप्तैः कालानलशिखोपमैः ॥१३४॥

श्रीरामचन्द्रजीकी यह बात सुनकर महाबली राक्षसराज रावण महान् रोषसे भर गया। उसे पहलेके वैरका स्मरण हो आया और उसने कालाग्निकी शिखाके समान दीप्तिशाली बाणोंद्वारा रणभूमिमें श्रीरघुनाथजीका वाहन बने हुए महान् वेगशाली वायुपुत्र हनुमान्‌को अत्यन्त घायल कर दिया ॥ १३३-१३४ ॥

राक्षसेनाहवे तस्य ताडितस्यापि सायकैः ।
स्वभावतेजोयुक्तस्य भूयस्तेजोऽभ्यवर्धत ॥१३५॥

युद्धस्थलमें उस राक्षसके सायकोंसे आहत होनेपर भी स्वाभाविक तेजसे सम्पन्न हनुमान्‌जीका शौर्य और भी बढ़ गया ॥ १३५ ॥

ततो रामो महातेजा रावणेन कृतव्रणम् ।
दृष्ट्वा प्लवगशार्दूलं क्रोधस्य वशमेयिवान् ॥१३६॥

वानरशिरोमणि हनुमान्‌को रावणने घायल कर दिया, यह देखकर महातेजस्वी श्रीराम क्रोधके वशीभूत हो गये ॥

तस्याभिसंक्रम्य रथं सचक्रं
साश्वध्वजच्छत्रमहापताकम् ।
ससारथिं साशनिशूलखड्गं
रामः प्रचिच्छेद शितैः शराग्रैः ॥१३७॥

फिर तो उन भगवान् श्रीरामने आक्रमण करके पहिये, घोड़े, ध्वजा, छत्र, पताका, सारथि, अशनि, शूल और खड्ग-सहित उसके रथको अपने पैने बाणोंसे तिल-तिल करके काट डाला ॥

अथेन्द्रशत्रुं तरसा जघान
बाणेन वज्राशनिसंनिभेन ।
भुजान्तरे व्यूढसुजातरूपे
वज्रेण मेरुं भगवानिवेन्द्रः ॥१३८॥

जैसे भगवान् इन्द्रने वज्रके द्वारा मेरु पर्वतपर आघात किया हो, उसी प्रकार प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने वज्र और अशनिके समान तेजस्वी बाणसे इन्द्रशत्रु रावणकी विशाल एवं सुन्दर छातीमें वेगपूर्वक आघात किया ॥ १३८ ॥

यो वज्रपाताशनिसंनिपाता-
न्न चुक्षुभे नापि चचाल राजा ।
स रामबाणाभिहतो भृशार्त-
श्चचाल चापं च मुमोच वीरः ॥१३९॥

जो राजा रावण वज्र और अशनिके आघातसे भी कभी क्षुब्ध एवं विचलित नहीं हुआ था, वही वीर उस समय श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे घायल हो अत्यन्त आर्त एवं कम्पित हो उठा और उसके हाथसे धनुष छूटकर गिर पड़ा ॥१३९॥

तं विह्वलन्तं प्रसमीक्ष्य रामः
समाददे दीप्तमथार्धचन्द्रम् ।
तेनार्कवर्णं सहसा किरीटं
चिच्छेद रक्षोधिपतेर्महात्मा ॥१४०॥

रावणको व्याकुल हुआ देख महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने एक चमचमाता हुआ अर्धचन्द्राकार बाण हाथमें लिया और उसके द्वारा राक्षसराजका सूर्यके समान देदीप्यमान मुकुट सहसा काट डाला ॥ १४० ॥

तं निर्विषाशीविषसंनिकाशं
शान्तार्चिषं सूर्यमिवाप्रकाशम् ।
गतश्रियं कृत्तकिरीटकूट-
मुवाच रामो युधि राक्षसेन्द्रम् ॥१४१॥

उस समय धनुष न होनेसे रावण विषहीन सर्पके समान अपना प्रभाव खो बैठा था। सायंकालमें जिसकी प्रभा शान्त हो गयी हो, उस सूर्यदेवके समान निस्तेज हो गया था तथा मुकुटोंका समूह कट जानेसे श्रीहीन दिखायी देता था। उस अवस्थामें श्रीरामने युद्धभूमिमें राक्षसराजसे कहा—॥ १४१ ॥

कृतं त्वया कर्म महत् सुभीमं
हतप्रवीरश्च कृतस्त्वयाहम् ।
तस्मात् परिश्रान्त इति व्यवस्य
न त्वां शरैर्मृत्युवशं नयामि ॥१४२॥

'रावण ! तुमने आज बड़ा भयंकर कर्म किया है, मेरी सेनाके प्रधान-प्रधान वीरोंको मार डाला है। इतनेपर भी थका हुआ समझकर मैं बाणोंद्वारा तुझे मौतके अधीन नहीं कर रहा हूँ ॥ १४२ ॥

प्रयाहि जानामि रणार्दितस्त्वं
प्रविश्य रात्रिंचरराज लङ्काम् ।
आश्वस्य निर्याहि रथी च धन्वी
तदा बलं प्रेक्ष्यसि मे रथस्थः ॥१४३॥

'निशाचरराज ! मैं जानता हूँ तू युद्धसे पीड़ित है । इसलिये आज्ञा देता हूँ, जा, लङ्कामें प्रवेश करके कुछ देर विश्राम कर ले । फिर रथ और धनुषके साथ निकलना । उस समय रथारूढ़ रहकर तू फिर मेरा बल देखना' ॥ १४३ ॥

स एवमुक्तो हतदर्पहर्षो
निकृत्तचापः स हताश्वसूतः ।
शरार्दितो भग्नमहाकिरीटो
विवेश लङ्कां सहसा स्म राजा ॥ १४४ ॥

भगवान् श्रीरामके ऐसा कहनेपर राजा रावण सहसा लङ्कामें घुस गया । उसका हर्ष और अभिमान मिट्टीमें मिल चुका था, धनुष काट दिया गया था, घोड़े तथा सारथि मार डाले गये थे, महान् किरीट खण्डित हो चुका था और वह स्वयं भी बाणोंसे बहुत पीड़ित था ॥ १४४ ॥

तस्मिन् प्रविष्टे रजनीचरेन्द्रे
महाबले दानवदेवशत्रौ ।
हरीन् विशल्यान् सह लक्ष्मणेन
चकार रामः परमाहवाग्रे ॥ १४५ ॥

देवताओं और दानवोंके शत्रु महाबली निशाचरराज रावणके लङ्कामें चले जानेपर लक्ष्मणसहित श्रीरामने उस महायुद्धके मुहानेपर वानरोंके शरीरसे बाण निकाले ॥ १४५ ॥

तस्मिन् प्रभग्ने त्रिदशेन्द्रशत्रौ
सुरासुरा भूतगणा दिशश्च ।
ससागराः सर्षिमहोरगाश्च
तथैव भूम्यम्बुचराः प्रहृष्टाः ॥ १४६ ॥

देवराज इन्द्रका शत्रु रावण जब युद्धस्थलसे भाग गया, तब उसके पराभवका विचार करके देवता, असुर, भूत, दिशाएँ, समुद्र, ऋषिगण, बड़े-बड़े नाग तथा भूचर और जलचर प्राणी भी बहुत प्रसन्न हुए ॥ १४६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें उनसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५९ ॥

* * *

षष्टितमः सर्गः

अपनी पराजयसे दुखी हुए रावणकी आज्ञासे सोये हुए कुम्भकर्णका जगाया जाना और उसे देखकर वानरोंका भयभीत होना

स प्रविश्य पुरीं लङ्कां रामबाणभयार्दितः ।
भग्नदर्पस्तदा राजा बभूव व्यथितेन्द्रियः ॥ १ ॥

भगवान् श्रीरामके बाणों और भयसे पीड़ित हो राक्षसराज रावण जब लङ्कापुरीमें पहुँचा, तब उसका अभिमान चूर-चूर हो गया था । उसकी सारी इन्द्रियाँ व्यथासे व्याकुल थीं ॥ १ ॥

मातंग इव सिंहेन गरुडेनेव पन्नगः ।
अभिभूतोऽभवद् राजा राघवेण महात्मना ॥ २ ॥

जैसे सिंह गजराजको और गरुड़ विशाल नागको पीड़ित एवं पराजित कर देता है, उसी प्रकार महात्मा रघुनाथजीने राजा रावणको अभिभूत कर दिया था ॥ २ ॥

ब्रह्मदण्डप्रतीकानां विद्युच्चलितवर्चसाम् ।
स्मरन् राघवबाणानां विव्यथे राक्षसेश्वरः ॥ ३ ॥

भगवान् श्रीरामके बाण ब्रह्मदण्डके प्रतीक जान पड़ते थे । उनकी दीप्ति चपलाके समान चञ्चल थी । उन्हें याद करके राक्षसराज रावणके मनमें बड़ी व्यथा हुई ॥ ३ ॥

स काञ्चनमयं दिव्यमाश्रित्य परमासनम् ।
विप्रेक्षमाणो रक्षांसि रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥

सोनेके बने हुए दिव्य एवं श्रेष्ठ सिंहासनपर बैठकर राक्षसोंकी ओर देखता हुआ रावण उस समय इस प्रकार कहने लगा—॥ ४ ॥

सर्वं तत् खलु मे मोघं यत् तप्तं परमं तपः ।
यत् समानो महेन्द्रेण मानुषेण विनिर्जितः ॥ ५ ॥

'मैंने जो बहुत बड़ी तपस्या की थी, वह सब अवश्य ही व्यर्थ हो गयी; क्योंकि आज महेन्द्रतुल्य पराक्रमी मुझ रावणको एक मनुष्यने परास्त कर दिया ॥ ५ ॥

इदं तद् ब्रह्मणो घोरं वाक्यं मामभ्युपस्थितम् ।
मानुषेभ्यो विजानीहि भयं त्वमिति तत्तथा ॥ ६ ॥

'ब्रह्माजीने मुझसे कहा था कि 'तुम्हें मनुष्योंसे भय प्राप्त होगा । इस बातको अच्छी तरह जान लो' । उनका कहा हुआ यह घोर वचन इस समय सफल होकर मेरे समक्ष उपस्थित हुआ है ॥ ६ ॥

देवदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः ।
अवध्यत्वं मया प्रोक्तं मानुषेभ्यो न याचितम् ॥ ७ ॥

'मैंने तो देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सर्पोंसे ही अवध्य होनेका वर माँगा था, मनुष्योंसे अभय होनेकी वर-याचना नहीं की थी ॥ ७ ॥

तमिमं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम् ।

इक्ष्वाकुकुलजातेन अनरण्येन यत् पुरा ॥ ८ ॥
उत्पत्स्यति हि मद्वंशपुरुषो राक्षसाधम ।
यस्त्वां सपुत्रं सामात्यं सबलं साश्वसारथिम् ॥ ९ ॥
निहनिष्यति संग्रामे त्वां कुलाधम दुर्मते ।

‘पूर्वकालमें इक्ष्वाकुवंशी राजा अनरण्यने मुझे शाप देते हुए कहा था कि ‘राक्षसाधम ! कुलाङ्गार ! दुर्मते ! मेरे ही वंशमें एक ऐसा श्रेष्ठ पुरुष उत्पन्न होगा, जो तुझे पुत्र, मन्त्री, सेना, अश्व और सारथिके सहित समराङ्गणमें मार डालेगा ।’ मालूम होता है कि अनरण्यने जिसकी ओर संकेत किया था, यह दशरथकुमार राम वही मनुष्य है ॥ ८-९½ ॥

शप्तोऽहं वेदवत्या च यथा सा धर्षिता पुरा ॥ १० ॥
सेयं सीता महाभागा जाता जनकनन्दिनी ।

‘इसके सिवा पूर्वकालमें मुझे वेदवतीने भी शाप दिया था; क्योंकि मैंने उसके साथ बलात्कार किया था । जान पड़ता है वही यह महाभागा जनकनन्दिनी सीता होकर प्रकट हुई है ॥ १०½ ॥

उमा नन्दीश्वरश्चापि रम्भा वरुणकन्यका ॥ ११ ॥
यथोक्तास्तन्मया प्राप्तं न मिथ्या ऋषिभाषितम् ।

‘इसी तरह उमा, नन्दीश्वर, रम्भा और वरुण-कन्याने भी जैसा-जैसा कहा था, वैसा ही परिणाम मुझे प्राप्त हुआ है ।* सच है ऋषियोंकी बात कभी झूठी नहीं होती ॥११½॥

एतदेव समागम्य यत्नं कर्तुमिहार्हथ ॥ १२ ॥
राक्षसाश्चापि तिष्ठन्तु चर्यागोपुरमूर्धसु ।

‘ये शाप ही मुझपर भय अथवा संकट लानेमें कारण हुए हैं । इस बातको जानकर अब तुमलोग आये हुए संकटको टालनेका प्रयत्न करो । राक्षसलोग राजमार्गों तथा गोपुरोंके शिखरोंपर उनकी रक्षाके लिये डटे रहें ॥ १२½ ॥

स चाप्रतिमगाम्भीर्यो देवदानवदर्पहा ॥ १३ ॥
ब्रह्मशापाभिभूतस्तु कुम्भकर्णो विबोध्यताम् ।

‘साथ ही जिसके गाम्भीर्यकी कहीं तुलना नहीं है, जो देवताओं और दानवोंका दर्प दलन करनेवाला है तथा ब्रह्माजीके शापसे प्राप्त हुई निद्रा जिसे सदा अभिभूत किये रहती है, उस कुम्भकर्णको भी जगाया जाय’ ॥ १३½ ॥

समरे जितमात्मानं प्रहस्तं च निषूदितम् ॥ १४ ॥
ज्ञात्वा रक्षोबलं भीममादिदेश महाबलः ।
द्वारेषु यत्नः क्रियतां प्राकारश्चाधिरुह्यताम् ॥ १५ ॥
निद्रावशसमाविष्टः कुम्भकर्णो विबोध्यताम् ।

‘प्रहस्त मारा गया और मैं भी समराङ्गणमें परास्त हो गया’ ऐसा जानकर महाबली रावणने राक्षसोंकी भयानक सेनाको आदेश दिया कि ‘तुमलोग नगरके दरवाजोंपर रहकर उनकी रक्षाके लिये यत्न करो । परकोटोंपर भी चढ़ जाओ और निद्राके अधीन हुए कुम्भकर्णको जगा दो’॥

सुखं स्वपिति निश्चिन्तः कामोपहतचेतनः ॥ १६ ॥
नव सप्त दशाष्टौ च मासान् स्वपिति राक्षसः ।
मन्त्रं कृत्वा प्रसुप्तोऽयमितस्तु नवमेऽहनि ॥ १७ ॥

‘(मैं तो दुखी, चिन्तित और अपूर्णकाम होकर जाग रहा हूँ और) वह राक्षस कामभोगसे अचेत हो बड़ी निश्चिन्तताके साथ सुखपूर्वक सो रहा है । वह कभी नौ, कभी सात, कभी दस और कभी आठ मासतक सोता रहता है । यह आजसे नौ महीने पहले मुझसे सलाह करके सोया था ॥

तं तु बोधयत क्षिप्रं कुम्भकर्णं महाबलम् ।
स हि संख्ये महाबाहुः ककुदं सर्वरक्षसाम् ।
वानरान् राजपुत्रौ च क्षिप्रमेव हनिष्यति ॥ १८ ॥

‘अतः तुमलोग महाबली कुम्भकर्णको शीघ्र जगा दो । महाबाहु कुम्भकर्ण सभी राक्षसोंमें श्रेष्ठ है । वह युद्धस्थलमें वानरों और उन राजकुमारोंको भी शीघ्र ही मार डालेगा ॥१८॥

एष केतुः परं संख्ये मुख्यो वै सर्वरक्षसाम् ।
कुम्भकर्णः सदा शेते मूढो ग्राम्यसुखे रतः ॥ १९ ॥

‘समस्त राक्षसोंमें प्रधान यह कुम्भकर्ण समरभूमिमें हमारे लिये सर्वोत्तम विजय-वैजयन्तीके समान है; किंतु खेदकी बात है कि वह मूर्ख ग्राम्यसुखमें आसक्त होकर सदा सोता रहता है ॥ १९ ॥

रामेणाभिनिरस्तस्य संग्रामेऽस्मिन् सुदारुणे ।
भविष्यति न मे शोकः कुम्भकर्णे विबोधिते ॥ २० ॥

‘यदि कुम्भकर्णको जगा दिया जाय तो इस भयंकर संग्राममें मुझे रामसे पराजित होनेका शोक नहीं होगा ॥ २० ॥

किं करिष्याम्यहं तेन शक्रतुल्यबलेन हि ।
ईदृशे व्यसने घोरे यो न साह्याय कल्पते ॥ २१ ॥

‘यदि इस घोर संकटके समय भी कुम्भकर्ण मेरी सहायता करनेमें समर्थ नहीं हो रहा है तो इन्द्रके तुल्य बलशाली होनेपर भी उससे मेरा प्रयोजन ही क्या है—मैं उसे लेकर क्या करूँगा ?’ ॥ २१ ॥

ते तु तद् वचनं श्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः ।
जग्मुः परमसम्भ्रान्ताः कुम्भकर्णनिवेशनम् ॥ २२ ॥

---

* उमाने कैलास उठानेके समय भयभीत होनेसे रावणको शाप दिया था कि ‘तेरी मृत्यु स्त्रीके कारण होगी ।’ नन्दीश्वरकी वानर-मूर्ति देखकर रावण हँसा था, इसलिये उन्होंने कहा था—‘मेरे समान रूप और पराक्रमवाले ही तेरे कुलका नाश करेंगे ।’ रम्भाके निमित्तसे नल-कूबरने और वरुण-कन्या पुञ्जिकस्थलाके निमित्तसे ब्रह्माजीने शाप दिया था कि ‘अनिच्छासे किसी स्त्रीके साथ सम्भोग करनेपर तेरी मृत्यु हो जायगी ।’

राक्षसराज रावणकी वह बात सुनकर समस्त राक्षस बड़ी घबराहटमें पड़कर कुम्भकर्णके घर गये ॥ २२ ॥

ते रावणसमादिष्टा मांसशोणितभोजनाः ।
गन्धं माल्यं महद्भक्ष्यमादाय सहसा ययुः ॥ २३ ॥

रक्त-मांसका भोजन करनेवाले वे राक्षस रावणकी आज्ञा पाकर गन्ध, माल्य तथा खाने-पीनेकी बहुत-सी सामग्री लिये सहसा कुम्भकर्णके पास गये ॥ २३ ॥

तां प्रविश्य महाद्वारां सर्वतो योजनायताम् ।
कुम्भकर्णगुहां रम्यां पुष्पगन्धप्रवाहिनीम् ॥ २४ ॥
कुम्भकर्णस्य निःश्वासादवधूता महाबलाः ।
प्रतिष्ठमानाः कृच्छ्रेण यत्नात् प्रविविशुर्गुहाम् ॥ २५ ॥

कुम्भकर्ण एक गुफामें रहता था, जो बड़ी ही सुन्दर थी और वहाँके वातावरणमें फूलोंकी सुगन्ध छायी रहती थी। उसकी लंबाई-चौड़ाई सब ओरसे एक-एक योजनकी थी तथा उसका दरवाजा बहुत बड़ा था। उसमें प्रवेश करते ही वे महाबली राक्षस कुम्भकर्णकी साँसके वेगसे सहसा पीछेको ठेल दिये गये। फिर बड़ी कठिनाईसे पैर जमाते हुए वे पूरा प्रयत्न करके उस गुफाके भीतर घुसे ॥ २४-२५ ॥

तां प्रविश्य गुहां रम्यां रत्नकाञ्चनकुट्टिमाम् ।
ददृशुर्नैर्ऋतव्याघ्राः शयानं भीमविक्रमम् ॥ २६ ॥

उस गुफाकी फर्शमें रत्न और सुवर्ण जड़े गये थे, जिससे उसकी रमणीयता बहुत बढ़ गयी थी। उसके भीतर प्रवेश करके उन श्रेष्ठ राक्षसोंने देखा, भयानक पराक्रमी कुम्भकर्ण सो रहा है ॥ २६ ॥

ते तु तं विकृतं सुप्तं विकीर्णमिव पर्वतम् ।
कुम्भकर्णं महानिद्रं समेताः प्रत्यबोधयन् ॥ २७ ॥

महानिद्रामें निमग्न हुआ कुम्भकर्ण बिखरे हुए पर्वतके समान विकृतावस्थामें सोकर खुर्राटे ले रहा था, अतः वे सब राक्षस एकत्र हो उसे जगानेकी चेष्टा करने लगे ॥ २७ ॥

ऊर्ध्वलोमाञ्चिततनुं श्वसन्तमिव पन्नगम् ।
भ्रामयन्तं विनिःश्वासैः शयानं भीमविक्रमम् ॥ २८ ॥

उसका सारा शरीर ऊपर उठी हुई रोमावलियोंसे भरा था। वह सर्पके समान साँस लेता और अपने निःश्वासोंसे लोगोंको चक्करमें डाल देता था। वहाँ सोया हुआ वह राक्षस भयानक बल-विक्रमसे सम्पन्न था ॥ २८ ॥

भीमनासापुटं तं तु पातालविपुलाननम् ।
शयने न्यस्तसर्वाङ्गं मेदोरुधिरगन्धिनम् ॥ २९ ॥

उसकी नासिकाके दोनों छिद्र बड़े भयंकर थे। मुँह पातालके समान विशाल था। उसने अपना सारा शरीर शय्यापर डाल रक्खा था और उसकी देहसे रक्त और चर्बीकी-सी गन्ध प्रकट होती थी ॥ २९ ॥

काञ्चनाङ्गदनद्धाङ्गं किरीटेनार्कवर्चसम् ।
ददृशुर्नैर्ऋतव्याघ्रं कुम्भकर्णमरिंदमम् ॥ ३० ॥

उसकी भुजाओंमें बाजूबन्द शोभा पाते थे। मस्तकपर तेजस्वी किरीट धारण करनेके कारण वह सूर्यदेवके समान प्रभापुञ्जसे प्रकाशित हो रहा था। इस रूपमें निशाचरश्रेष्ठ शत्रुदमन कुम्भकर्णको उन राक्षसोंने देखा ॥ ३० ॥

ततश्चक्रुर्महात्मानः कुम्भकर्णस्य चाग्रतः ।
भूतानां मेरुसंकाशं राशिं परमतर्पणम् ॥ ३१ ॥

तदनन्तर उन महाकाय निशाचरोंने कुम्भकर्णके सामने प्राणियोंके मेरुपर्वत-जैसे ढेर लगा दिये, जो उसे अत्यन्त तृप्ति प्रदान करनेवाले थे ॥ ३१ ॥

मृगाणां महिषाणां च वराहाणां च संचयान् ।
चक्रुर्नैर्ऋतशार्दूला राशिमन्नस्य चाद्भुतम् ॥ ३२ ॥

उन श्रेष्ठ राक्षसोंने वहाँ मृगों, भैंसों और सूअरोंके समूह खड़े कर दिये तथा अन्नकी भी अद्भुत राशि एकत्र कर दी ॥ ३२ ॥

ततः शोणितकुम्भांश्च मांसानि विविधानि च ।
पुरस्तात् कुम्भकर्णस्य चक्रुस्त्रिदशशत्रवः ॥ ३३ ॥

इतना ही नहीं, उन देवद्रोहियोंने कुम्भकर्णके आगे रक्तसे भरे हुए बहुतेरे घड़े और नाना प्रकारके मांस भी रख दिये ॥ ३३ ॥

लिलिपुश्च परार्ध्येन चन्दनेन परंतपम् ।
दिव्यैराश्वासयामासुर्माल्यैर्गन्धैश्च गन्धिभिः ॥ ३४ ॥
धूपगन्धांश्च ससृजुस्तुष्टुवुश्च परंतपम् ।
जलदा इव चानेदुर्यातुधानास्ततस्ततः ॥ ३५ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने शत्रुसंतापी कुम्भकर्णके शरीरमें बहुमूल्य चन्दनका लेप किया। दिव्य सुगन्धित पुष्प और चन्दन सुघाँये। धूपोंकी सुगन्ध फैलायी। उस शत्रुदमन वीरकी स्तुति की तथा जहाँ-तहाँ खड़े हुए राक्षस मेघोंके समान गम्भीर ध्वनिसे गर्जना करने लगे ॥ ३४-३५ ॥

शङ्खांश्च पूरयामासुः शशाङ्कसदृशप्रभान् ।
तुमुलं युगपच्चापि विनेदुश्चाप्यमर्षिताः ॥ ३६ ॥

(इतनेपर भी जब कुम्भकर्ण नहीं उठा, तब) अमर्षसे भरे हुए राक्षस चन्द्रमाके समान श्वेत रंगके बहुत-से शङ्ख फूँकने तथा एक साथ तुमुल-ध्वनिसे गर्जना करने लगे ॥ ३६ ॥

नेदुरास्फोटयामासुश्चिक्षिपुस्ते निशाचराः ।
कुम्भकर्णविबोधार्थं चक्रुस्ते विपुलं स्वरम् ॥ ३७ ॥

वे निशाचर सिंहनाद करने, ताल ठोंकने और कुम्भकर्णके विभिन्न अङ्गोंको झकझोरने लगे। उन्होंने कुम्भकर्णको जगानेके लिये बड़े जोर-जोरसे गम्भीर ध्वनि की ॥ ३७ ॥

सशङ्खभेरीपणवप्रणादं
सास्फोटितक्ष्वेलितसिंहनादम् ।
दिशो द्रवन्तस्त्रिदिवं किरन्तः
श्रुत्वा विहंगाः सहसा निपेतुः ॥ ३८ ॥

शङ्ख, भेरी और पणव बजने लगे । ताल ठोंकने, गर्जने और सिंहनादका शब्द सब ओर गूँज उठा । वह तुमुल नाद सुनकर पक्षी समस्त दिशाओंकी ओर भागने और आकाशमें उड़ने लगे । उड़ते-उड़ते वे सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ते थे ॥

यदा भृशं तैर्निनदैर्महात्मा
न कुम्भकर्णो बुबुधे प्रसुप्तः ।
ततो भुशुण्डीर्मुसलानि सर्वे
रक्षोगणास्ते जगृहुर्गदाश्च ॥ ३९ ॥

जब उस महान् कोलाहलसे भी सोया हुआ विशालकाय कुम्भकर्ण नहीं जग सका, तब उन समस्त राक्षसोंने अपने हाथोंमें भुशुण्डी, मुसल और गदाएँ ले लीं ॥ ३९ ॥

तं शैलशृङ्गैर्मुसलैर्गदाभि-
र्वक्षःस्थले मुद्गरमुष्टिभिश्च ।
सुखप्रसुप्तं भुवि कुम्भकर्णं
रक्षांस्युदग्राणि तदा निजघ्नुः ॥ ४० ॥

कुम्भकर्ण भूतलपर ही सुखसे सो रहा था । उसी अवस्थामें उन प्रचण्ड राक्षसोंने उस समय उसकी छातीपर पर्वतशिखरों, मुसलों, गदाओं, मुद्गरों और मुक्कोंसे मारना आरम्भ किया ॥ ४० ॥

तस्य निःश्वासवातेन कुम्भकर्णस्य रक्षसः ।
राक्षसाः कुम्भकर्णस्य स्थातुं शेकुर्न चाग्रतः ॥ ४१ ॥

किंतु राक्षस कुम्भकर्णकी निःश्वास-वायुसे प्रेरित हो वे सब निशाचर उसके आगे ठहर नहीं पाते थे ॥ ४१ ॥

ततः परिहिता गाढं राक्षसा भीमविक्रमाः ।
मृदङ्गपणवान् भेरीः शङ्खकुम्भगणांस्तथा ॥ ४२ ॥
दश राक्षससाहस्रं युगपत्पर्यवारयत् ।
नीलाञ्जनचयाकारं ते तु तं प्रत्यबोधयन् ॥ ४३ ॥

तदनन्तर अपने वस्त्रोंको खूब कसकर बाँध लेनेके पश्चात् वे भयानक पराक्रमी राक्षस जिनकी संख्या लगभग दस हजार थी, एक ही समय कुम्भकर्णको घेरकर खड़े हो गये और काले कोयलेके ढेरके समान पड़े हुए उस निशाचरको जगानेका प्रयत्न करने लगे । उन सबने एक साथ मृदंग, पणव, भेरी, शङ्ख और कुम्भ (धौंसे) बजाने आरम्भ किये ४२-४३

अभिघ्नन्तो नदन्तश्च न च सम्बुबुधे तदा ।
यदा चैनं न शेकुस्ते प्रतिबोधयितुं तदा ॥ ४४ ॥
ततो गुरुतरं यत्नं दारुणं समुपाक्रमन् ।

इस तरह वे राक्षस बाजे बजाते और गर्जते रहे तो भी कुम्भकर्णकी निद्रा नहीं टूटी । जब वे उसे किसी तरह जगा न सके, तब उन्होंने पहलेसे भी भारी प्रयत्न आरम्भ किया ॥ ४४½ ॥

अश्वानुष्ट्रान् खरान् नागाञ्जघ्नुर्दण्डकशाङ्कुशैः ॥ ४५ ॥
भेरीशङ्खमृदङ्गांश्च सर्वप्राणैरवादयन् ।
निजघ्नुश्चास्य गात्राणि महाकाष्ठकटंकरैः ॥ ४६ ॥
मुद्गरैर्मुसलैश्चापि सर्वप्राणसमुद्यतैः ।
तेन नादेन महता लङ्का सर्वा प्रपूरिता ।
सपर्वतवना सर्वा सोऽपि नैव प्रबुध्यते ॥ ४७ ॥

वे घोड़ों, ऊँटों, गदहों और हाथियोंको डंडों, कोड़ों तथा अङ्कुशोंसे मार-मारकर उसके ऊपर ठेलने लगे । सारी शक्ति लगाकर भेरी, मृदङ्ग और शङ्ख बजाने लगे तथा पूरा बल लगाकर उठाये गये बड़े-बड़े काष्ठोंके समूहों, मुद्गरों और मुसलोंसे भी उसके अङ्गोंपर प्रहार करने लगे । उस महान् कोलाहलसे पर्वतों और वनोंसहित सारी लङ्का गूँज उठी, परंतु कुम्भकर्ण नहीं जागा, नहीं जागा ॥ ४५-४७ ॥

ततो भेरीसहस्रं तु युगपत् समहन्यत ।
मृष्टकाञ्चनकोणानामसक्तानां समन्ततः ॥ ४८ ॥

तदनन्तर सब ओर सहस्रों धौंसे एक साथ बजाये जाने लगे । वे सब-के-सब लगातार बजते रहे । उन्हें बजानेके लिये जो डंडे थे, वे सुन्दर सुवर्णके बने हुए थे ॥ ४८ ॥

एवमप्यतिनिद्रस्तु यदा नैव प्रबुध्यते ।
शापस्य वशमापन्नस्ततः क्रुद्धा निशाचराः ॥ ४९ ॥

इतनेपर भी शापके अधीन हुआ वह अतिशय निद्रालु निशाचर नहीं जागा । इससे वहाँ आये हुए सब राक्षसोंको बड़ा क्रोध हुआ ॥ ४९ ॥

ततः कोपसमाविष्टाः सर्वे भीमपराक्रमाः ।
तद् रक्षो बोधयिष्यन्तश्चक्रुरन्ये पराक्रमम् ॥ ५० ॥

फिर वे रोषसे भरे हुए सभी भयानक पराक्रमी निशाचर उस राक्षसको जगानेके लिये पराक्रम करने लगे ॥ ५० ॥

अन्ये भेरीः समाजघ्नुरन्ये चक्रुर्महास्वनम् ।
केशानन्ये प्रलुलुपुः कर्णानन्ये दशन्ति च ॥ ५१ ॥

कोई धौंसे बजाने लगे, कोई महान् कोलाहल करने लगे, कोई कुम्भकर्णके सिरके बाल नोचने लगे और कोई दाँतोंसे उसके कान काटने लगे ॥ ५१ ॥

उदकुम्भशतानन्ये समसिञ्चन्त कर्णयोः ।
न कुम्भकर्णः पस्पन्दे महानिद्रावशं गतः ॥ ५२ ॥

दूसरे राक्षसोंने उसके दोनों कानोंमें सौ घड़े पानी डाल दिये तो भी महानिद्राके वशमें पड़ा हुआ कुम्भकर्ण टस-से-मस नहीं हुआ ॥ ५२ ॥

अन्ये च बलिनस्तस्य कूटमुद्गरपाणयः ।
मूर्ध्नि वक्षसि गात्रेषु पातयन् कूटमुद्गरान् ॥ ५३ ॥

दूसरे बलवान् राक्षस काँटेदार मुद्गर हाथमें लेकर उन्हें उसके मस्तक, छाती तथा अन्य अङ्गोंपर गिराने लगे ॥ ५३ ॥

रज्जुबन्धनबद्धाभिः शतघ्नीभिश्च सर्वतः ।
वध्यमानो महाकायो न प्राबुध्यत राक्षसः ॥ ५४ ॥

तत्पश्चात् रस्सियोंसे बँधी हुई शतघ्नियोंद्वारा उसपर सब ओरसे चोटें पड़ने लगीं। फिर भी उस महाकाय राक्षसकी नींद नहीं टूटी ॥ ५४ ॥

वारणानां सहस्रं च शरीरेऽस्य प्रधावितम् ।
कुम्भकर्णस्तदा बुद्ध्वा स्पर्शं परमबुध्यत ॥ ५५ ॥

इसके बाद उसके शरीरपर हजारों हाथी दौड़ाये गये। तब उसे कुछ स्पर्श मालूम हुआ और वह जाग उठा ॥५५॥

स पात्यमानैर्गिरिशृङ्गवृक्षै-
रचिन्तयंस्तान् विपुलान् प्रहारान् ।
निद्राक्षयात् क्षुद्भयपीडितश्च
विजृम्भमाणः सहसोत्पपात ॥ ५६ ॥

यद्यपि उसके ऊपर पर्वतशिखर और वृक्ष गिराये जाते थे, तथापि उसने उन भारी प्रहारोंको कुछ भी नहीं गिना। हाथियोंके स्पर्शसे जब उसकी नींद टूटी, तब वह भूखके भयसे पीड़ित हो अँगड़ाई लेता हुआ सहसा उछलकर खड़ा हो गया ॥ ५६ ॥

स नागभोगाचलशृङ्गकल्पौ
विक्षिप्य बाहू जितवज्रसारौ ।
विवृत्य वक्त्रं वडवामुखाभं
निशाचरोऽसौ विकृतं जजृम्भे ॥ ५७ ॥

उसकी दोनों भुजाएँ नागोंके शरीर और पर्वतशिखरोंके समान जान पड़ती थीं। उन्होंने वज्रकी शक्तिको पराजित कर दिया था। उन दोनों बाँहों और मुँहको फैलाकर जब वह निशाचर जम्हाई लेने लगा, उस समय उसका मुख बड़वानलके समान विकराल जान पड़ता था ॥ ५७ ॥

तस्य जाजम्भमाणस्य वक्त्रं पातालसंनिभम् ।
ददृशे मेरुशृङ्गाग्रे दिवाकर इवोदितः ॥ ५८ ॥

जम्हाई लेते समय कुम्भकर्णका पाताल-जैसा मुख मेरुपर्वतके शिखरपर उगे हुए सूर्यके समान दिखायी देता था ॥ ५८ ॥

स जृम्भमाणोऽतिबलः प्रबुद्धस्तु निशाचरः ।
निःश्वासश्चास्य संजज्ञे पर्वतादिव मारुतः ॥ ५९ ॥

इस तरह जम्हाई लेता हुआ वह अत्यन्त बलशाली निशाचर जब जगा, तब उसके मुखसे जो साँस निकलती थी, वह पर्वत-से चली हुई वायुके समान प्रतीत होती थी ॥ ५९ ॥

रूपमुत्तिष्ठतस्तस्य कुम्भकर्णस्य तद् बभौ ।
युगान्ते सर्वभूतानि कालस्येव दिधक्षतः ॥ ६० ॥

नींदसे उठे हुए कुम्भकर्णका वह रूप प्रलयकालमें समस्त प्राणियोंके संहारकी इच्छा रखनेवाले कालके समान जान पड़ता था ॥ ६० ॥

तस्य दीप्ताग्निसदृशे विद्युत्सदृशवर्चसी ।
ददृशाते महानेत्रे दीप्ताविव महाग्रहौ ॥ ६१ ॥

उसकी दोनों बड़ी-बड़ी आँखें प्रज्वलित अग्नि और विद्युत्के समान दीप्तिमती दिखायी देती थीं। वे ऐसी लगती थीं मानो दो महान् ग्रह प्रकाशित हो रहे हों ॥ ६१ ॥

ततस्त्वदर्शयन् सर्वान् भक्ष्यांश्च विविधान् बहून् ।
वराहान् महिषांश्चैव बभक्ष स महाबलः ॥ ६२ ॥

तदनन्तर राक्षसोंने वहाँ जो अनेक प्रकारकी खाने-पीनेकी वस्तुएँ प्रचुर मात्रामें रखी गयी थीं, वे सब-की-सब कुम्भकर्णको दिखायीं। वह महाबली राक्षस बात-की-बातमें बहुतेरे भैंसों और सूअरोंको चट कर गया ॥ ६२ ॥

आदद् बुभुक्षितो मांसं शोणितं तृषितोऽपिबत् ।
मेदःकुम्भांश्च मद्यांश्च पपौ शक्ररिपुस्तदा ॥ ६३ ॥

उसे बड़ी भूख लगी थी, अतः उसने भरपेट मांस खाया और प्यास बुझानेके लिये रक्त पान किया। तदनन्तर उस इन्द्रद्रोही निशाचरने चर्बीसे भरे हुए कितने ही घड़े साफ कर दिये और वह कई घड़े मदिरा भी पी गया ॥ ६३ ॥

ततस्तृप्त इति ज्ञात्वा समुत्पेतुर्निशाचराः ।
शिरोभिश्च प्रणम्यैनं सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ६४ ॥

तब उसे तृप्त जानकर राक्षस उछल-उछलकर उसके सामने आये और उसे सिर झुका प्रणाम करके उसके चारों ओर खड़े हो गये ॥ ६४ ॥

निद्राविशदनेत्रस्तु कलुषीकृतलोचनः ।
चारयन् सर्वतो दृष्टिं तान् ददर्श निशाचरान् ॥ ६५ ॥

उस समय उसके नेत्र निद्राके कारण अप्रसन्न—कुछ-कुछ खुले हुए थे और मलिन जान पड़ते थे। उसने सब ओर दृष्टि डालकर वहाँ खड़े हुए निशाचरोंको देखा ॥ ६५ ॥

स सर्वान् सान्त्वयामास नैर्ऋतान् नैर्ऋतर्षभः ।
बोधनाद् विस्मितश्चापि राक्षसानिदमब्रवीत् ॥ ६६ ॥

निशाचरोंमें श्रेष्ठ कुम्भकर्णने उन सब राक्षसोंको सान्त्वना दी और अपने जगाये जानेके कारण विस्मित हो उनसे इस प्रकार पूछा— ॥ ६६ ॥

किमर्थमहमादृत्य भवद्भिः प्रतिबोधितः ।

कच्चित् सुकुशलं राज्ञो भयं वा नेह किंचन ॥ ६७ ॥

'तुमलोगोंने इस प्रकार आदर करके मुझे किस लिये जगाया है ? राक्षसराज रावण कुशलसे हैं न ? यहाँ कोई भय तो नहीं उपस्थित हुआ है ? ॥ ६७ ॥

अथवा ध्रुवमन्येभ्यो भयं परमुपस्थितम् ।
यदर्थमेव त्वरितैर्भवद्भिः प्रतिबोधितः ॥ ६८ ॥

'अथवा निश्चय ही यहाँ दूसरोंसे कोई महान् भय उपस्थित हुआ है, जिसके निवारणके लिये तुमलोगोंने इतनी उतावलीके साथ मुझे जगाया है ॥ ६८ ॥

अद्य राक्षसराजस्य भयमुत्पाटयाम्यहम् ।
दारयिष्ये महेन्द्रं वा शीतयिष्ये तथानलम् ॥ ६९ ॥

'अच्छा तो आज मैं राक्षसराजके भयको उखाड़ फेंकूँगा। महेन्द्र (पर्वत या इन्द्र) को भी चीर डालूँगा और अग्निको भी ठंडा कर दूँगा ॥ ६९ ॥

न ह्यल्पकारणे सुप्तं बोधयिष्यति मादृशम् ।
तदाख्यातार्थतत्त्वेन मत्प्रबोधनकारणम् ॥ ७० ॥

'मुझ-जैसे पुरुषको किसी छोटे-मोटे कारणवश नींदसे नहीं जगाया जायगा । अतः तुमलोग ठीक-ठीक बताओ, मेरे जगाये जानेका क्या कारण है ?' ॥ ७० ॥

एवं ब्रुवाणं संरब्धं कुम्भकर्णमरिंदमम् ।
यूपाक्षः सचिवो राज्ञः कृताञ्जलिरभाषत ॥ ७१ ॥

शत्रुसूदन कुम्भकर्ण जब रोषमें भरकर इस प्रकार पूछने लगा, तब राजा रावणके सचिव यूपाक्षने हाथ जोड़कर कहा— ॥ ७१ ॥

न नो देवकृतं किंचिद् भयमस्ति कदाचन ।
मानुषान्नो भयं राजंस्तुमुलं सम्प्रबाधते ॥ ७२ ॥

'महाराज ! हमें देवताओंकी ओरसे तो कभी कोई भय हो ही नहीं सकता । इस समय केवल एक मनुष्यसे तुमुल भय प्राप्त हुआ है, जो हमें सता रहा है ॥ ७२ ॥

न दैत्यदानवेभ्यो वा भयमस्ति न नः क्वचित् ।
यादृशं मानुषं राजन् भयमस्मानुपस्थितम् ॥ ७३ ॥

'राजन् ! इस समय एक मनुष्यसे हमारे लिये जैसा भय उपस्थित हो गया है, वैसा तो कभी दैत्यों और दानवोंसे भी नहीं हुआ था ॥ ७३ ॥

वानरैः पर्वताकारैर्लङ्केयं परिवारिता ।
सीताहरणसंतप्ताद् रामान्नस्तुमुलं भयम् ॥ ७४ ॥

'पर्वताकार वानरोंने आकर इस लङ्कापुरीको चारों ओरसे घेर लिया है । सीताहरणसे संतप्त हुए श्रीरामकी ओरसे हमें तुमुल भयकी प्राप्ति हुई है ॥ ७४ ॥

एकेन वानरेणेयं पूर्वं दग्धा महापुरी ।
कुमारो निहतश्चाक्षः सानुयात्रः सकुञ्जरः ॥ ७५ ॥

'पहले एक ही वानरने यहाँ आकर इस महापुरीको जला दिया था और हाथियों तथा साथियोंसहित राजकुमार अक्षको भी मार डाला था ॥ ७५ ॥

स्वयं रक्षोधिपश्चापि पौलस्त्यो देवकण्टकः ।
व्रजेति संयुगे मुक्तो रामेणादित्यवर्चसा ॥ ७६ ॥ ✓

'श्रीराम सूर्यके समान तेजस्वी हैं । उन्होंने देवशत्रु पुलस्त्यकुलनन्दन साक्षात् राक्षसराज रावणको भी युद्धमें हराकर जीवित छोड़ दिया और कहा—'लङ्काको लौट जाओ' ॥

यन्न देवैः कृतो राजा नापि दैत्यैर्न दानवैः ।
कृतः स इह रामेण विमुक्तः प्राणसंशयात् ॥ ७७ ॥ ✓

'महाराजकी जो दशा देवता, दैत्य और दानव भी नहीं कर सके थे, वह रामने कर दी । उनके प्राण बड़े संकटसे बचे हैं' ॥ ७७ ॥

स यूपाक्षवचः श्रुत्वा भ्रातुर्युधि पराभवम् ।
कुम्भकर्णो विवृत्ताक्षो यूपाक्षमिदमब्रवीत् ॥ ७८ ॥

युद्धमें भाईकी पराजयसे सम्बन्ध रखनेवाली यूपाक्षकी यह बात सुनकर कुम्भकर्ण आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा और यूपाक्षसे इस प्रकार बोला— ॥ ७८ ॥

सर्वमद्यैव यूपाक्ष हरिसैन्यं सलक्ष्मणम् ।
राघवं च रणे जित्वा ततो द्रक्ष्यामि रावणम् ॥ ७९ ॥

'यूपाक्ष ! मैं अभी सारी वानरसेनाको तथा लक्ष्मणसहित रामको भी रणभूमिमें परास्त करके रावणका दर्शन करूँगा ॥

राक्षसांस्तर्पयिष्यामि हरीणां मांसशोणितैः ।
रामलक्ष्मणयोश्चापि स्वयं पास्यामि शोणितम् ॥ ८० ॥

'आज वानरोंके मांस और रक्तसे राक्षसोंको तृप्त करूँगा और स्वयं भी राम और लक्ष्मणके खून पीऊँगा' ॥ ८० ॥

तत् तस्य वाक्यं ब्रुवतो निशम्य
सगर्वितं रोषविवृद्धदोषम् ।
महोदरो नैर्ऋतयोधमुख्यः
कृताञ्जलिर्वाक्यमिदं बभाषे ॥ ८१ ॥

कुम्भकर्णके बढ़े हुए रोष-दोषसे युक्त अहङ्कारपूर्ण वचन सुनकर राक्षस-योद्धाओंमें प्रधान महोदरने हाथ जोड़कर यह बात कही— ॥ ८१ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा गुणदोषौ विमृश्य च ।
पश्चादपि महाबाहो शत्रून् युधि विजेष्यसि ॥ ८२ ॥

'महाबाहो ! पहले चलकर महाराज रावणकी बात सुन लीजिये । फिर गुण-दोषका विचार करनेके पश्चात् युद्धमें शत्रुओंको परास्त कीजियेगा' ॥ ८२ ॥

महोदरवचः श्रुत्वा राक्षसैः परिवारितः ।
कुम्भकर्णो महातेजाः सम्प्रतस्थे महाबलः ॥ ८३ ॥

महोदरकी यह बात सुनकर राक्षसोंसे घिरा हुआ महातेजस्वी महाबली कुम्भकर्ण वहाँसे चलनेकी तैयारी करने लगा ॥ ८३ ॥

सुप्तमुत्थाप्य भीमाक्षं भीमरूपपराक्रमम् ।
राक्षसास्त्वरिता जग्मुर्दशग्रीवनिवेशनम् ॥ ८४ ॥

इस तरह सोये हुए भयानक नेत्र, रूप और पराक्रमवाले कुम्भकर्णको उठाकर वे राक्षस शीघ्र ही दशमुख रावणके महलमें गये ॥ ८४ ॥

तेऽभिगम्य दशग्रीवमासीनं परमासने ।
ऊचुर्बद्धाञ्जलिपुटाः सर्व एव निशाचराः ॥ ८५ ॥

दशग्रीव उत्तम सिंहासनपर बैठा हुआ था, उसके पास जा सभी निशाचर हाथ जोड़कर बोले—॥ ८५ ॥

कुम्भकर्णः प्रबुद्धोऽसौ भ्राता ते राक्षसेश्वर ।
कथं तत्रैव निर्यातु द्रक्ष्यसे तमिहागतम् ॥ ८६ ॥

'राक्षसेश्वर ! आपके भाई कुम्भकर्ण जाग उठे हैं । कहिये, वे क्या करें ? सीधे युद्धस्थलमें ही पधारें या आप उन्हें यहाँ उपस्थित देखना चाहते हैं ?' ॥ ८६ ॥

रावणस्त्वब्रवीद्धृष्टो राक्षसांस्तानुपस्थितान् ।
द्रष्टुमेनमिहेच्छामि यथान्यायं च पूज्यताम् ॥ ८७ ॥

तब रावणने बड़े हर्षके साथ उन उपस्थित हुए राक्षसोंसे कहा—'मैं कुम्भकर्णको यहाँ देखना चाहता हूँ, उनका यथोचित सत्कार किया जाय' ॥ ८७ ॥

तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे पुनरागम्य राक्षसाः ।
कुम्भकर्णमिदं वाक्यमूचू रावणचोदिताः ॥ ८८ ॥

तब 'जो आज्ञा' कहकर रावणके भेजे हुए वे सब राक्षस पुनः कुम्भकर्णके पास आ इस प्रकार बोले—॥ ८८ ॥

द्रष्टुं त्वां काङ्क्षते राजा सर्वराक्षसपुङ्गवः ।
गमने क्रियतां बुद्धिर्भ्रातरं सम्प्रहर्षय ॥ ८९ ॥

'प्रभो ! सर्वराक्षसशिरोमणि महाराज रावण आपको देखना चाहते हैं । अतः आप वहाँ चलनेका विचार करें और पधारकर अपने भाईका हर्ष बढ़ावें' ॥ ८९ ॥

कुम्भकर्णस्तु दुर्धर्षो भ्रातुराज्ञाय शासनम् ।
तथेत्युक्त्वा महावीर्यः शयनादुत्पपात ह ॥ ९० ॥

भाईका यह आदेश पाकर महापराक्रमी दुर्जय वीर कुम्भकर्ण 'बहुत अच्छा' कहकर शय्यासे उठकर खड़ा हो गया ॥

प्रक्षाल्य वदनं हृष्टः स्नातः परमहर्षितः ।
पिपासुस्त्वरयामास पानं बलसमीरणम् ॥ ९१ ॥

उसने बड़े हर्ष और प्रसन्नताके साथ मुँह धोकर स्नान किया और पीनेकी इच्छासे तुरंत बलवर्धक पेय ले आनेकी आज्ञा दी ॥ ९१ ॥

ततस्ते त्वरितास्तत्र राक्षसा रावणाज्ञया ।
मद्यं भक्ष्यांश्च विविधान् क्षिप्रमेवोपहारयन् ॥ ९२ ॥

तब रावणके आदेशसे वे सब राक्षस तुरंत मद्य तथा नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थ ले आये ॥ ९२ ॥

पीत्वा घटसहस्रे द्वे गमनायोपचक्रमे ।
ईषत्समुत्कटो मत्तस्तेजोबलसमन्वितः ॥ ९३ ॥

कुम्भकर्ण दो हजार घड़े मद्य गटककर चलनेको उद्यत हुआ । इससे उसमें कुछ ताजगी आ गयी तथा वह मतवाला, तेजस्वी और शक्तिसम्पन्न हो गया ॥ ९३ ॥

कुम्भकर्णो बभौ रुष्टः कालान्तकयमोपमः ।
भ्रातुः स भवनं गच्छन् रक्षोबलसमन्वितः ।
कुम्भकर्णः पदन्यासैरकम्पयत मेदिनीम् ॥ ९४ ॥

फिर जब राक्षसोंकी सेनाके साथ कुम्भकर्ण भाईके महलकी ओर चला, उस समय वह रोषसे भरे हुए प्रलयकालके विनाशकारी यमराजके समान जान पड़ता था । कुम्भकर्ण अपने पैरोंकी धमकसे सारी पृथ्वीको कम्पित कर रहा था ॥

स राजमार्गं वपुषा प्रकाशयन्
सहस्ररश्मिर्धरणीमिवांशुभिः ।
जगाम तत्राञ्जलिमालया वृतः
शतक्रतुर्गेहमिव स्वयंभुवः ॥ ९५ ॥

जैसे सूर्यदेव अपनी किरणोंसे भूतलको प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार वह अपने तेजस्वी शरीरसे राजमार्गको उद्भासित करता हुआ हाथ जोड़े अपने भाईके महलमें गया । ठीक उसी तरह, जैसे देवराज इन्द्र ब्रह्माजीके धाममें जाते हैं ॥ ९५ ॥

तं राजमार्गस्थममित्रघातिनं
वनौकसस्ते सहसा बहिःस्थिताः ।
दृष्ट्वाप्रमेयं गिरिशृङ्गकल्पं
वितत्रसुस्ते सह यूथपालैः ॥ ९६ ॥

राजमार्गपर चलते समय शत्रुघाती कुम्भकर्ण पर्वतशिखरके समान जान पड़ता था । नगरके बाहर खड़े हुए वानर सहसा उस विशालकाय राक्षसको देखकर सेनापतियोंसहित सहम गये ॥ ९६ ॥

केचिच्छरण्यं शरणं स्म रामं
व्रजन्ति केचिद् व्यथिताः पतन्ति ।
केचिद् दिशश्च व्यथिताः पतन्ति
केचिद् भयार्ता भुवि शेरते स्म ॥ ९७ ॥

उनमेंसे कुछ वानरोंने शरणागतवत्सल भगवान् श्रीरामकी शरण ली । कुछ व्यथित होकर गिर पड़े । कोई पीड़ित हो सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये और जहाँ-तहाँ धराशायी हो गये और कितने ही वानर भयसे पीड़ित हो धरतीपर लेट गये ॥ ९७ ॥

तमद्रिशृङ्गप्रतिमं किरीटिनं
स्पृशन्तमादित्यमिवात्मतेजसा ।
वनौकसः प्रेक्ष्य विवृद्धमद्भुतं
भयार्दिता दुद्रुविरे यतस्ततः ॥ ९८ ॥

वह पर्वतशिखरके समान ऊँचा था । उसके मस्तकपर मुकुट शोभा देता था । वह अपने तेजसे सूर्यका स्पर्श करता-सा जान पड़ता था । उस बढ़े हुए विशालकाय एवं अद्भुत राक्षसको देखकर सभी वनवासी वानर भयसे पीड़ित हो इधर-उधर भागने लगे ॥ ९८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें साठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः

विभीषणका श्रीरामसे कुम्भकर्णका परिचय देना और श्रीरामकी आज्ञासे वानरोंका युद्धके लिये लङ्काके द्वारोंपर डट जाना

ततो रामो महातेजा धनुरादाय वीर्यवान् ।
किरीटिनं महाकायं कुम्भकर्णं ददर्श ह ॥ १ ॥

तदनन्तर हाथमें धनुष लेकर बल-विक्रमसे सम्पन्न महातेजस्वी श्रीरामने किरीटधारी महाकाय राक्षस कुम्भकर्णको देखा ॥ १ ॥

तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं पर्वताकारदर्शनम् ।
क्रममाणमिवाकाशं पुरा नारायणं यथा ॥ २ ॥
सतोयाम्बुदसंकाशं काञ्चनाङ्गदभूषणम् ।
दृष्ट्वा पुनः प्रदुद्राव वानराणां महाचमूः ॥ ३ ॥

वह पर्वतके समान दिखायी देता था और राक्षसोंमें सबसे बड़ा था। जैसे पूर्वकालमें भगवान् नारायणने आकाशको नापनेके लिये डग भरे थे, उसी प्रकार वह भी डग बढ़ाता जा रहा था । सजल जलधरके समान काला कुम्भकर्ण सोनेके बाजूबन्दसे विभूषित था । उसे देखकर वानरोंकी वह विशाल सेना पुनः बड़े वेगसे भागने लगी ॥ २-३ ॥

विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा वर्धमानं च राक्षसम् ।
सविस्मितमिदं रामो विभीषणमुवाच ह ॥ ४ ॥

अपनी सेनाको भागते तथा राक्षस कुम्भकर्णको बढ़ते देख श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने विभीषणसे पूछा—॥ ४ ॥

कोऽसौ पर्वतसंकाशः किरीटी हरिलोचनः ।
लङ्कायां दृश्यते वीरः सविद्युदिव तोयदः ॥ ५ ॥

'यह लङ्कापुरीमें पर्वतके समान विशालकाय वीर कौन है, जिसके मस्तकपर किरीट शोभा पाता है और नेत्र भूरे हैं ? यह ऐसा दिखायी देता है मानो बिजलीसहित मेघ हो ॥ ५ ॥

पृथिव्यां केतुभूतोऽसौ महानेकोऽत्र दृश्यते ।
यं दृष्ट्वा वानराः सर्वे विद्रवन्ति ततस्ततः ॥ ६ ॥

'इस भूतलपर यह एकमात्र महान् ध्वज-सा दृष्टिगोचर होता है । इसे देखकर सारे वानर इधर-उधर भाग चले हैं ॥

आचक्ष्व सुमहान् कोऽसौ रक्षो वा यदि वासुरः ।
न मयैवंविधं भूतं दृष्टपूर्वं कदाचन ॥ ७ ॥

'विभीषण ! बताओ । यह इतने बड़े डील-डौलका कौन पुरुष है ? कोई राक्षस है या असुर ? मैंने ऐसे प्राणीको पहले कभी नहीं देखा था' ॥ ७ ॥

सम्पृष्टो राजपुत्रेण रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
विभीषणो महाप्राज्ञः काकुत्स्थमिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥

अनायास ही बड़े-बड़े कर्म करनेवाले राजकुमार श्रीरामने जब इस प्रकार पूछा, तब परम बुद्धिमान् विभीषणने उन ककुत्स्थकुलभूषण रघुनाथजीसे इस प्रकार कहा—॥ ८ ॥

येन वैवस्वतो युद्धे वासवश्च पराजितः ।
सैष विश्रवसः पुत्रः कुम्भकर्णः प्रतापवान् ।
अस्य प्रमाणसदृशो राक्षसोऽन्यो न विद्यते ॥ ९ ॥

'भगवन् ! जिसने युद्धमें वैवस्वत यम और देवराज इन्द्रको भी पराजित किया था, वही यह विश्रवाका प्रतापी पुत्र कुम्भकर्ण है । इसके बराबर लंबा दूसरा कोई राक्षस नहीं है ॥ ९ ॥

एतेन देवा युधि दानवाश्च
यक्षा भुजंगाः पिशिताशनाश्च ।
गन्धर्वविद्याधरकिंनराश्च
सहस्रशो राघव सम्प्रभग्नाः ॥ १० ॥

'रघुनन्दन ! इसने देवता, दानव, यक्ष, नाग, राक्षस, गन्धर्व, विद्याधर और किन्नरोंको सहस्रों बार युद्धमें मार भगाया है ॥ १० ॥

शूलपाणिं विरूपाक्षं कुम्भकर्णं महाबलम् ।
हन्तुं न शेकुस्त्रिदशाः कालोऽयमिति मोहिताः ॥ ११ ॥

'इसके नेत्र बड़े भयंकर हैं । यह महाबली कुम्भकर्ण जब हाथमें शूल लेकर युद्धमें खड़ा हुआ, उस समय देवता

भी इसे मारनेमें समर्थ न हो सके। यह कालरूप है, ऐसा समझकर वे सब-के-सब मोहित हो गये थे ॥ ११ ॥

प्रकृत्या ह्येष तेजस्वी कुम्भकर्णो महाबलः।
अन्येषां राक्षसेन्द्राणां वरदानकृतं बलम् ॥ १२ ॥

'कुम्भकर्ण स्वभावसे ही तेजस्वी और महाबलवान् है। अन्य राक्षसपतियोंके पास जो बल है, वह वरदानसे प्राप्त हुआ है ॥ १२ ॥

बालेन जातमात्रेण क्षुधार्तेन महात्मना।
भक्षितानि सहस्राणि प्रजानां सुबहून्यपि ॥ १३ ॥

'इस महाकाय राक्षसने जन्म लेते ही बाल्यावस्थामें भूखसे पीड़ित हो कई सहस्र प्रजाजनोंको खा डाला था ॥ १३ ॥

तेषु सम्भक्ष्यमाणेषु प्रजा भयनिपीडिताः।
यान्ति स्म शरणं शक्रं तमप्यर्थं न्यवेदयन् ॥ १४ ॥

'जब सहस्रों प्रजाजन इसका आहार बनने लगे, तब भयसे पीड़ित हो वे सब-के-सब देवराज इन्द्रकी शरणमें गये और उन सबने उनके समक्ष अपना कष्ट निवेदन किया ॥१४॥

स कुम्भकर्णं कुपितो महेन्द्रो
जघान वज्रेण शितेन वज्री।
स शक्रवज्राभिहतो महात्मा
चचाल कोपाच्च भृशं ननाद ॥ १५ ॥

'इससे वज्रधारी देवराज इन्द्रको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने अपने तीखे वज्रसे कुम्भकर्णको घायल कर दिया। इन्द्रके वज्रकी चोट खाकर यह महाकाय राक्षस क्षुब्ध हो उठा और रोषपूर्वक जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगा ॥ १५ ॥

तस्य नानद्यमानस्य कुम्भकर्णस्य रक्षसः।
श्रुत्वा निनादं वित्रस्ताः प्रजा भूयो वितत्रसुः ॥ १६ ॥

'राक्षस कुम्भकर्णके बारंबार गर्जना करनेपर उसका भयंकर सिंहनाद सुनकर प्रजावर्गके लोग भयभीत हो और भी डर गये ॥ १६ ॥

ततः क्रुद्धो महेन्द्रस्य कुम्भकर्णो महाबलः।
निष्कृष्यैरावताद् दन्तं जघानोरसि वासवम् ॥ १७ ॥

'तदनन्तर कुपित हुए महाबली कुम्भकर्णने इन्द्रके ऐरावतके मुँहसे एक दाँत उखाड़ लिया और उसीसे देवेन्द्रकी छातीपर प्रहार किया ॥ १७ ॥

कुम्भकर्णप्रहारार्तो विजज्वाल स वासवः।
ततो विषेदुः सहसा देवा ब्रह्मर्षिदानवाः ॥ १८ ॥

'कुम्भकर्णके प्रहारसे इन्द्र व्याकुल हो गये और उनके हृदयमें जलन होने लगी। यह देखकर सब देवता, ब्रह्मर्षि और दानव सहसा विषादमें डूब गये ॥ १८ ॥

प्रजाभिः सह शक्रश्च ययौ स्थानं स्वयंभुवः।
कुम्भकर्णस्य दौरात्म्यं शशंसुस्ते प्रजापतेः ॥ १९ ॥

'तत्पश्चात् इन्द्र उन प्रजाजनोंके साथ ब्रह्माजीके धाममें गये। वहाँ जाकर उन सबने प्रजापतिके समक्ष कुम्भकर्णकी दुष्टताका विस्तारपूर्वक वर्णन किया ॥ १९ ॥

प्रजानां भक्षणं चापि देवानां चापि धर्षणम्।
आश्रमध्वंसनं चापि परस्त्रीहरणं भृशम् ॥ २० ॥

'इसके द्वारा प्रजाके भक्षण, देवताओंके धर्षण (तिरस्कार), ऋषियोंके आश्रमोंके विध्वंस तथा परायी स्त्रियोंके बारंबार हरण होनेकी भी बात बतायी ॥ २० ॥

एवं प्रजा यदि त्वेष भक्षयिष्यति नित्यशः।
अचिरेणैव कालेन शून्यो लोको भविष्यति ॥ २१ ॥

'इन्द्रने कहा—'भगवन्! यदि यह नित्यप्रति इसी प्रकार प्रजाजनोंका भक्षण करता रहा तो थोड़े ही समयमें सारा संसार सूना हो जायगा' ॥ २१ ॥

वासवस्य वचः श्रुत्वा सर्वलोकपितामहः।
रक्षांस्यावाहयामास कुम्भकर्णं ददर्श ह ॥ २२ ॥

'इन्द्रकी यह बात सुनकर सर्वलोकपितामह ब्रह्माने सब राक्षसोंको बुलाया और कुम्भकर्णसे भी भेंट की ॥ २२ ॥

कुम्भकर्णं समीक्ष्यैव वितत्रास प्रजापतिः।
कुम्भकर्णमथाश्वास्तः स्वयंभूरिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥

'कुम्भकर्णको देखते ही स्वयम्भू प्रजापति थर्रा उठे। फिर अपनेको सँभालकर वे उस राक्षससे बोले—॥ २३ ॥

ध्रुवं लोकविनाशाय पौलस्त्येनासि निर्मितः।
तस्मात् त्वमद्यप्रभृति मृतकल्पः शयिष्यसे ॥ २४ ॥

''कुम्भकर्ण! निश्चय ही इस जगत्का विनाश करनेके लिये ही विश्रवाने तुझे उत्पन्न किया है; अतः मैं शाप देता हूँ, आजसे तू मुर्देके समान सोता रहेगा' ॥ २४ ॥

ब्रह्मशापाभिभूतोऽथ निपपाताग्रतः प्रभोः।
ततः परमसम्भ्रान्तो रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ २५ ॥

'ब्रह्माजीके शापसे अभिभूत होकर वह रावणके सामने ही गिर पड़ा। इससे रावणको बड़ी घबराहट हुई और उसने कहा—॥ २५ ॥

प्रवृद्धः काञ्चनो वृक्षः फलकाले निकृत्यते।
न नप्तारं स्वकं न्याय्यं शप्तुमेवं प्रजापते ॥ २६ ॥

''प्रजापते! अपने द्वारा लगाया और बढ़ाया हुआ सुवर्णरूप फल देनेवाला वृक्ष फल देनेके समय नहीं काटा जाता है। यह आपका नाती है, इसे इस प्रकार शाप देना कदापि उचित नहीं है ॥ २६ ॥

न मिथ्यावचनश्च त्वं स्वप्स्यत्येव न संशयः ।
कालस्तु क्रियतामस्य शयने जागरे तथा ॥ २७ ॥

''आपकी बात कभी झूठी नहीं होती, इसलिये अब इसे सोना ही पड़ेगा, इसमें संशय नहीं है; परंतु आप इसके सोने और जागनेका कोई समय नियत कर दें' ॥ २७ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा स्वयंभूरिदमब्रवीत् ।
शयिता ह्येष षण्मासमेकाहं जागरिष्यति ॥ २८ ॥

'रावणका यह कथन सुनकर स्वयम्भू ब्रह्माने कहा--'यह छः मासतक सोता रहेगा और एक दिन जगेगा ॥ २८ ॥

एकेनाह्ना त्वसौ वीरश्चरन् भूमिं बुभुक्षितः ।
व्यात्तास्यो भक्षयेल्लोकान् संवृद्ध इव पावकः ॥ २९ ॥

''उस एक दिन ही यह वीर भूखा होकर पृथ्वीपर विचरेगा और प्रज्वलित अग्निके समान मुँह फैलाकर बहुत-से लोगोंको खा जायगा' ॥ २९ ॥

सोऽसौ व्यसनमापन्नः कुम्भकर्णमबोधयत् ।
त्वत्पराक्रमभीतश्च राजा सम्प्रति रावणः ॥ ३० ॥

'महाराज ! इस समय आपत्तिमें पड़कर और आपके पराक्रमसे भयभीत होकर राजा रावणने कुम्भकर्णको जगाया है ॥ ३० ॥

स एष निर्गतो वीरः शिबिराद् भीमविक्रमः ।
वानरान् भृशसंक्रुद्धो भक्षयन् परिधावति ॥ ३१ ॥

'यह भयानक पराक्रमी वीर अपने शिबिरसे निकला है और अत्यन्त कुपित हो वानरोंको खा जानेके लिये सब ओर दौड़ रहा है ॥ ३१ ॥

कुम्भकर्णं समीक्ष्यैव हरयोऽद्य प्रदुद्रुवुः ।
कथमेनं रणे क्रुद्धं वारयिष्यन्ति वानराः ॥ ३२ ॥

'जब कुम्भकर्णको देखकर ही आज सारे वानर भाग चले, तब रणभूमिमें कुपित हुए इस वीरको ये आगे बढ़नेसे कैसे रोक सकेंगे ? ॥ ३२ ॥

उच्यन्तां वानराः सर्वे यन्त्रमेतत् समुच्छ्रितम् ।
इति विज्ञाय हरयो भविष्यन्तीह निर्भयाः ॥ ३३ ॥

'सब वानरोंसे यह कह दिया जाय कि यह कोई व्यक्ति नहीं, कायाद्वारा निर्मित ऊँचा यन्त्रमात्र है । ऐसा जानकर वानर निर्भय हो जायँगे' ॥ ३३ ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा हेतुमत् सुमुखोद्गतम् ।
उवाच राघवो वाक्यं नीलं सेनापतिं तदा ॥ ३४ ॥

विभीषणके सुन्दर मुखसे निकली हुई यह युक्तियुक्त बात सुनकर श्रीरघुनाथजीने सेनापति नीलसे कहा—॥ ३४ ॥

गच्छ सैन्यानि सर्वाणि व्यूह्य तिष्ठस्व पावके ।
द्वाराण्यादाय लङ्कायाश्चर्याश्चास्याथ संक्रमान् ॥ ३५ ॥

'अग्निनन्दन ! जाओ, समस्त सेनाओंकी मोर्चेबंदी करके युद्धके लिये तैयार रहो और लङ्काके द्वारों तथा राजमार्गोंपर अधिकार जमाकर वहीं डटे रहो ॥ ३५ ॥

शैलशृङ्गाणि वृक्षांश्च शिलाश्चाप्युपसंहरन् ।
भवन्तः सायुधाः सर्वे वानराः शैलपाणयः ॥ ३६ ॥

'पर्वतोंके शिखर, वृक्ष और शिलाएँ एकत्र कर लो तथा तुम और सब वानर अस्त्र-शस्त्र एवं पत्थर लिये तैयार रहो' ॥

राघवेण समादिष्टो नीलो हरिचमूपतिः ।
शशास वानरानीकं यथावत् कपिकुञ्जरः ॥ ३७ ॥

श्रीरघुनाथजीकी यह आज्ञा पाकर वानरसेनापति कपिश्रेष्ठ नीलने वानरसैनिकोंको यथोचित कार्यके लिये आदेश दिया ॥ ३७ ॥

ततो गवाक्षः शरभो हनूमानङ्गदस्तथा ।
शैलशृङ्गाणि शैलाभा गृहीत्वा द्वारमभ्ययुः ॥ ३८ ॥

तदनन्तर गवाक्ष, शरभ, हनुमान् और अङ्गद आदि पर्वताकार वानर पर्वतशिखर लिये लङ्काके द्वारपर डट गये ॥ ३८ ॥

रामवाक्यमुपश्रुत्य हरयो जितकाशिनः ।
पादपैरर्दयन् वीरा वानराः परवाहिनीम् ॥ ३९ ॥

विजयोल्लाससे सुशोभित होनेवाले वीर वानर श्रीरामचन्द्रजीकी पूर्वोक्त आज्ञा सुनकर वृक्षोंद्वारा शत्रुसेनाको पीड़ित करने लगे ॥ ३९ ॥

ततो हरीणां तदनीकमुग्रं
रराज शैलोद्यतवृक्षहस्तम् ।
गिरेः समीपानुगतं यथैव
महन्महाम्भोधरजालमुग्रम् ॥ ४० ॥

तदनन्तर हाथोंमें शैल-शिखर और वृक्ष लिये वानरोंकी वह भयंकर सेना पर्वतके समीप घिरी हुई मेघोंकी बड़ी भारी उग्र घटाके समान सुशोभित होने लगी ॥ ४० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें इकसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः

कुम्भकर्णका रावणके भवनमें प्रवेश तथा रावणका रामसे भय बताकर उसे शत्रुसेनाके विनाशके लिये प्रेरित करना

स तु राक्षसशार्दूलो निद्रामदसमाकुलः ।
राजमार्गं श्रिया जुष्टं ययौ विपुलविक्रमः ॥ १ ॥

महापराक्रमी राक्षसशिरोमणि कुम्भकर्ण निद्रा और मदसे व्याकुल हो अलसाया हुआ-सा शोभाशाली राजमार्गसे जा रहा था ॥ १ ॥

राक्षसानां सहस्रैश्च वृतः परमदुर्जयः ।
गृहेभ्यः पुष्पवर्षेण कीर्यमाणस्तदा ययौ ॥ २ ॥

वह परम दुर्जय वीर हजारों राक्षसोंसे घिरा हुआ यात्रा कर रहा था। सड़कके किनारेपर जो मकान थे, उनमेंसे उसके ऊपर फूल बरसाये जा रहे थे ॥ २ ॥

स हेमजालविततं भानुभास्वरदर्शनम् ।
ददर्श विपुलं रम्यं राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ॥ ३ ॥

उसने राक्षसराज रावणके रमणीय एवं विशाल भवनका दर्शन किया, जो सोनेकी जालीसे आच्छादित होनेके कारण सूर्यदेवके समान दीप्तिमान् दिखायी देता था ॥ ३ ॥

स तत्तदा सूर्य इवाभ्रजालं
प्रविश्य रक्षोधिपतेर्निवेशनम् ।
ददर्श दूरेऽग्रजमासनस्थं
स्वयंभुवं शक्र इवासनस्थम् ॥ ४ ॥

जैसे सूर्य मेघोंकी घटामें छिप जायँ, उसी प्रकार कुम्भकर्णने राक्षसराजके महलमें प्रवेश किया और राजसिंहासनपर बैठे हुए अपने भाईको दूरसे ही देखा, मानो देवराज इन्द्रने दिव्य कमलासनपर विराजमान स्वयम्भू ब्रह्माका दर्शन किया हो ॥ ४ ॥

भ्रातुः स भवनं गच्छन् रक्षोगणसमन्वितः ।
कुम्भकर्णः पदन्यासैरकम्पयत मेदिनीम् ॥ ५ ॥

राक्षसोंसहित कुम्भकर्ण अपने भाईके भवनमें जाते समय जब-जब एक-एक पैर आगे बढ़ाता था, तब-तब पृथ्वी काँप उठती थी ॥ ५ ॥

सोऽभिगम्य गृहं भ्रातुः कक्ष्यामभिविगाह्य च ।
ददर्शोद्विग्नमासीनं विमाने पुष्पके गुरुम् ॥ ६ ॥

भाईके भवनमें जाकर जब वह भीतरकी कक्षामें प्रविष्ट हुआ, तब उसने अपने बड़े भाईको उद्विग्न अवस्थामें पुष्पक विमानपर विराजमान देखा ॥ ६ ॥

अथ दृष्ट्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णमुपस्थितम् ।
तूर्णमुत्थाय संहृष्टः संनिकर्षमुपानयत् ॥ ७ ॥

कुम्भकर्णको उपस्थित देख दशमुख रावण तुरंत उठकर खड़ा हो गया और बड़े हर्षके साथ उसे अपने समीप बुला लिया ॥ ७ ॥

अथासीनस्य पर्यङ्के कुम्भकर्णो महाबलः ।
भ्रातुर्ववन्दे चरणौ किं कृत्यमिति चाब्रवीत् ॥ ८ ॥

महाबली कुम्भकर्णने सिंहासनपर बैठे हुए अपने भाईके चरणोंमें प्रणाम किया और पूछा—'कौन-सा कार्य आ पड़ा है ?' ॥ ८ ॥

उत्पत्य चैनं मुदितो रावणः परिषस्वजे ।
स भ्रात्रा सम्परिष्वक्तो यथावच्चाभिनन्दितः ॥ ९ ॥

रावणने उछलकर बड़ी प्रसन्नताके साथ कुम्भकर्णको हृदयसे लगा लिया। भाई रावणने उसका आलिंगन करके यथावत्‌रूपसे अभिनन्दन किया ॥ ९ ॥

कुम्भकर्णः शुभं दिव्यं प्रतिपेदे वरासनम् ।
स तदासनमाश्रित्य कुम्भकर्णो महाबलः ॥ १० ॥
संरक्तनयनः क्रोधाद् रावणं वाक्यमब्रवीत् ।

इसके बाद कुम्भकर्ण सुन्दर दिव्य सिंहासनपर बैठा। उस आसनपर बैठकर महाबली कुम्भकर्णने क्रोधसे लाल आँखें किये रावणसे पूछा—॥ १०½ ॥

किमर्थमहमादृत्य त्वया राजन् प्रबोधितः ॥ ११ ॥
शंस कस्माद् भयं तेऽत्र को वा प्रेतो भविष्यति ।

'राजन् ! किस लिये तुमने बड़े आदरके साथ मुझे जगाया है ? बताओ, यहाँ तुम्हें किससे भय प्राप्त हुआ है ? अथवा कौन परलोकका पथिक होनेवाला है ?' ॥ ११½ ॥

भ्रातरं रावणः क्रुद्धं कुम्भकर्णमवस्थितम् ॥ १२ ॥
रोषेण परिवृत्ताभ्यां नेत्राभ्यां वाक्यमब्रवीत् ।

तब रावण अपने पास बैठे हुए कुपित भाई कुम्भकर्णसे रोषसे चञ्चल आँखें किये बोला—॥ १२½ ॥

अद्य ते सुमहान् कालः शयानस्य महाबल ॥ १३ ॥
सुषुप्तस्त्वं न जानीषे मम रामकृतं भयम् ।

'महाबली वीर ! तुम्हारे सोये-सोये दीर्घकाल व्यतीत हो गया। तुम गाढ़ निद्रामें निमग्न होनेके कारण नहीं जानते कि मुझे रामसे भय प्राप्त हुआ है ॥ १३½ ॥

एष दाशरथिः श्रीमान् सुग्रीवसहितो बली ॥ १४ ॥
समुद्रं लङ्घयित्वा तु मूलं नः परिकृन्तति ।

'ये दशरथकुमार बलवान् श्रीमान् राम सुग्रीवके साथ

समुद्र लाँघकर यहाँ आये हैं और हमारे कुलका विनाश कर रहे हैं ॥ १४½ ॥

हन्त पश्यस्व लङ्कायां वनान्युपवनानि च ॥ १५ ॥
सेतुना सुखमागत्य वानरैकार्णवं कृतम् ।

'हाय ! देखो तो सही, समुद्रमें पुल बाँधकर सुखपूर्वक यहाँ आये हुए वानरोंने लङ्काके समस्त वनों और उपवनोंको एकार्णवमय बना दिया है—यहाँ वानररूपी जलका समुद्र-सा लहरा रहा है ॥ १५½ ॥

ये राक्षसा मुख्यतमा हतास्ते वानरैर्युधि ॥ १६ ॥
वानराणां क्षयं युद्धे न पश्यामि कथंचन ।
न चापि वानरा युद्धे जितपूर्वाः कदाचन ॥ १७ ॥

'हमारे जो मुख्य-मुख्य राक्षस वीर थे, उन्हें वानरोंने युद्धमे मार डाला; किंतु रणभूमिमें वानरोंका संहार होता मुझे किसी तरह नहीं दिखायी देता । युद्धमें कभी कोई वानर पहले जीते नहीं गये हैं ॥ १६-१७ ॥

तदेतद् भयमुत्पन्नं त्रायस्वेह महाबल ।
नाशय त्वमिमानद्य तदर्थं बोधितो भवान् ॥ १८ ॥

'महाबली वीर ! इस समय हमारे ऊपर यही भय उपस्थित हुआ है । तुम इससे हमारी रक्षा करो और आज इन वानरोंको नष्ट कर दो । इसीलिये हमने तुम्हें जगाया है ॥ १८ ॥

सर्वक्षपितकोशं च स त्वमभ्युपपद्य माम् ।
त्रायस्वेमां पुरीं लङ्कां बालवृद्धावशेषिताम् ॥ १९ ॥

'हमारा सारा खजाना खाली हो गया है; अतः मुझपर अनुग्रह करके तुम इस लङ्कापुरीकी रक्षा करो; अब यहाँ केवल बालक और वृद्ध ही शेष रह गये हैं ॥ १९ ॥

भ्रातुरर्थे महाबाहो कुरु कर्म सुदुष्करम् ।
मयैवं नोक्तपूर्वो हि भ्राता कश्चित् परंतप ॥ २० ॥

'महाबाहो ! तुम अपने इस भाईके लिये अत्यन्त दुष्कर पराक्रम करो । परंतप ! आजसे पहले कभी किसी भाईसे मैंने ऐसी अनुनय-विनय नहीं की थी ॥ २० ॥

त्वय्यस्ति मम च स्नेहः परा सम्भावना च मे ।
देवासुरेषु युद्धेषु बहुशो राक्षसर्षभ ॥ २१ ॥
त्वया देवाः प्रतिव्यूह्य निर्जिताश्चासुरा युधि ॥ २२ ॥

'तुम्हारे ऊपर मेरा बड़ा स्नेह है और मुझे तुमसे बड़ी आशा है । राक्षसशिरोमणे ! तुमने देवासुर-संग्रामके अवसरोंपर अनेक बार प्रतिद्वन्द्वीका स्थान लेकर रणभूमिमें देवताओं और असुरोंको भी परास्त किया है ॥ २१-२२ ॥

तदेतत् सर्वमातिष्ठ वीर्यं भीमपराक्रम ।
नहि ते सर्वभूतेषु दृश्यते सदृशो बली ॥ २३ ॥

'अतः भयंकर पराक्रमी वीर ! तुम्हीं यह सारा पराक्रमपूर्ण कार्य सम्पन्न करो; क्योंकि समस्त प्राणियोंमें तुम्हारे समान बलवान् मुझे दूसरा कोई नहीं दिखायी देता है ॥ २३ ॥

कुरुष्व मे प्रियहितमेतदुत्तमं
यथाप्रियं प्रियरण बान्धवप्रिय ।
स्वतेजसा व्यथय सपत्नवाहिनीं
शरद्घनं पवन इवोद्यतो महान् ॥ २४ ॥

'तुम युद्धप्रेमी तो हो ही, अपने बन्धु-बान्धवोंसे भी बड़ा प्रेम रखते हो । इस समय तुम मेरा यही प्रिय और उत्तम हित करो । अपने तेजसे शत्रुओंकी सेनाको उसी तरह व्यथित कर दो, जैसे वेगसे उठी हुई प्रचण्ड वायु शरद्-ऋतुके बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है' ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें बासठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः

कुम्भकर्णका रावणको उसके कुकृत्योंके लिये उपालम्भ देना और उसे धैर्य बँधाते हुए युद्धविषयक उत्साह प्रकट करना

तस्य राक्षसराजस्य निशम्य परिदेवितम् ।
कुम्भकर्णो बभाषेदं वचनं प्रजहास च ॥ १ ॥

राक्षसराज रावणका यह विलाप सुनकर कुम्भकर्ण ठहाका मारकर हँसने लगा और इस प्रकार बोला— ॥ १ ॥

दृष्टो दोषो हि योऽस्माभिः पुरा मन्त्रविनिर्णये ।
हितेष्वनभियुक्तेन सोऽयमासादितस्त्वया ॥ २ ॥

'भाईसाहब ! पहले (विभीषण आदिके साथ) विचार करते समय हमलोगोंने जो दोष देखा था, वही तुम्हें इस समय प्राप्त हुआ है; क्योंकि तुमने हितैषी पुरुषों और उनकी बातोंपर विश्वास नहीं किया था ॥ २ ॥

शीघ्रं खल्वभ्युपेतं त्वां फलं पापस्य कर्मणः ।
निरयेष्वेव पतनं यथा दुष्कृतकर्मणः ॥ ३ ॥

'तुम्हें शीघ्र ही अपने पापकर्मका फल मिल गया । जैसे कुकर्मी पुरुषोंका नरकोंमें पड़ना निश्चित है, उसी प्रकार

तुम्हें भी अपने दुष्कर्मका फल मिलना अवश्यम्भावी था ॥

प्रथमं वै महाराज कृत्यमेतदचिन्तितम्।
केवलं वीर्यदर्पेण नानुबन्धो विचारितः ॥ ४ ॥

'महाराज! केवल बलके घमंडसे तुमने पहले इस पापकर्मकी कोई परवा नहीं की। इसके परिणामका कुछ भी विचार नहीं किया था ॥ ४ ॥

यः पश्चात्पूर्वकार्याणि कुर्यादैश्वर्यमास्थितः।
पूर्वं चोत्तरकार्याणि न स वेद नयानयौ ॥ ५ ॥

'जो ऐश्वर्यके अभिमानमें आकर पहले करनेयोग्य कार्योंको पीछे करता है और पीछे करनेयोग्य कार्योंको पहले कर डालता है, वह नीति तथा अनीतिको नहीं जानता है ॥५॥

देशकालविहीनानि कर्माणि विपरीतवत्।
क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्यप्रयतेष्विव ॥ ६ ॥

'जो कार्य उचित देश-काल न होनेपर विपरीत स्थितिमें किये जाते हैं, वे संस्कारहीन अग्नियोंमें होमे गये हविष्यकी भाँति केवल दुःखके ही कारण होते हैं ॥ ६ ॥

त्रयाणां पञ्चधा योगं कर्मणां यः प्रपद्यते।
सचिवैः समयं कृत्वा स सम्यग् वर्तते पथि ॥ ७ ॥

'जो राजा सचिवोंके साथ विचार करके क्षय, वृद्धि और स्थानरूपसे उपलक्षित साम, दान और दण्ड—इन तीनों कर्मोंके पाँच[1] प्रकारके प्रयोगको काममें लाता है, वही उत्तम नीति-मार्गपर विद्यमान है, ऐसा समझना चाहिये ॥ ७ ॥

यथागमं च यो राजा समयं च चिकीर्षति।
बुध्यते सचिवैर्बुद्ध्या सुहृदश्चानुपश्यति ॥ ८ ॥

'जो नरेश नीतिशास्त्रके अनुसार मन्त्रियोंके साथ क्षय[2] आदिके लिये उपयुक्त समयका विचार करके तदनुरूप कार्य करता है और अपनी बुद्धिसे सुहृदोंकी भी पहचान कर लेता है, वही कर्तव्य और अकर्तव्यका विवेक कर पाता है ॥ ८ ॥

धर्ममर्थं हि कामं वा सर्वान् वा रक्षसां पते।
भजेत पुरुषः काले त्रीणि द्वन्द्वानि वा पुनः ॥ ९ ॥

'राक्षसराज! नीतिज्ञ पुरुषको चाहिये कि धर्म, अर्थ या कामका अथवा सबका अपने समयपर सेवन करे अथवा तीनों द्वन्द्वोंका—धर्म-अर्थ, अर्थ-धर्म और काम-अर्थ इन सबका भी उपयुक्त समयमें ही सेवन करे* ॥ ९ ॥

त्रिषु चैतेषु यच्छ्रेष्ठं श्रुत्वा तन्नावबुध्यते।
राजा वा राजमात्रो वा व्यर्थं तस्य बहुश्रुतम् ॥ १० ॥

'धर्म, अर्थ और काम—इन तीनोंमें धर्म ही श्रेष्ठ है; अतः विशेष अवसरोंपर अर्थ और कामकी उपेक्षा करके भी धर्मका ही सेवन करना चाहिये—इस बातको विश्वसनीय पुरुषोंसे सुनकर भी जो राजा या राजपुरुष नहीं समझता अथवा समझकर भी स्वीकार नहीं करता, उसका अनेक शास्त्रोंका अध्ययन व्यर्थ ही है ॥ १० ॥

उपप्रदानं सान्त्वं च भेदं काले च विक्रमम्।
योगं च रक्षसां श्रेष्ठ तावुभौ च नयानयौ ॥ ११ ॥
काले धर्मार्थकामान् यः सम्मन्त्र्य सचिवैः सह।
निषेवेतात्मवाँल्लोके न स व्यसनमाप्नुयात् ॥ १२ ॥

'राक्षसशिरोमणे! जो मनस्वी राजा मन्त्रियोंसे अच्छी तरह सलाह करके समयके अनुसार दान, भेद और पराक्रमका, इनके पूर्वोक्त पाँच प्रकारके योगका, नय और अनयका तथा ठीक समयपर धर्म, अर्थ और कामका सेवन करता है, वह इस लोकमें कभी दुःख या विपत्तिका भागी नहीं होता ११-१२

हितानुबन्धमालोक्य कुर्यात् कार्यमिहात्मनः।
राजा सहार्थतत्त्वज्ञैः सचिवैर्बुद्धिजीविभिः ॥ १३ ॥

'राजाको चाहिये कि वह अर्थतत्त्वज्ञ एवं बुद्धिजीवी मन्त्रियोंकी सलाह लेकर जो अपने लिये परिणाममें हितकर दिखायी देता हो, वही कार्य करे ॥ १३ ॥

अनभिज्ञाय शास्त्रार्थान् पुरुषाः पशुबुद्धयः।
प्रागल्भ्याद् वक्तुमिच्छन्ति मन्त्रिष्वभ्यन्तरीकृताः ॥ १४ ॥

'जो पशुके समान बुद्धिवाले किसी तरह मन्त्रियोंके भीतर सम्मिलित कर लिये गये हैं, वे शास्त्रके अर्थको तो जानते नहीं, केवल धृष्टतावश बातें बनाना चाहते हैं ॥ १४ ॥

अशास्त्रविदुषां तेषां कार्यं नाभिहितं वचः।
अर्थशास्त्रानभिज्ञानां विपुलां श्रियमिच्छताम् ॥ १५ ॥

'शास्त्रके ज्ञानसे शून्य और अर्थशास्त्रसे अनभिज्ञ होते हुए भी प्रचुर सम्पत्ति चाहनेवाले उन अयोग्य मन्त्रियोंकी कही हुई बात कभी नहीं माननी चाहिये ॥ १५ ॥

---

[1] कार्यको आरम्भ करनेका उपाय, पुरुष और द्रव्यरूप सम्पत्ति, देश-कालका विभाग, विपत्तिको टालनेका उपाय और कार्यकी सिद्धि—ये पाँच प्रकारके योग हैं।

[2] जब अपनी वृद्धि और शत्रुकी हानिका समय हो तब दण्डोपयोगी यान (युद्धयात्रा) उचित है। अपनी और शत्रुकी समान स्थिति हो तो सामपूर्वक संधि कर लेना उचित है। तथा जब अपनी हानि और शत्रुकी वृद्धिका समय हो, तब उसे कुछ देकर उसका आश्रय ग्रहण करना उचित होता है।

* यहाँ यह बात कही गयी है कि शास्त्रके अनुसार प्रातःकाल धर्मका, मध्याह्नकालमें अर्थका और रात्रिमें कामसेवनका विधान है; अतः उन-उन समयोंमें धर्म आदिका सेवन करना चाहिये अथवा प्रातःकालमें धर्म और अर्थरूप द्वन्द्वका, मध्याह्नकालमें अर्थ और धर्मका और रात्रिमें काम और अर्थका सेवन करे। जो हर समय केवल कामका ही सेवन करता है, वह पुरुषोंमें अधम कोटिका है।

अहितं च हिताकारं धाष्टर्याज्जल्पन्ति ये नराः ।
अवश्यं मन्त्रबाह्यास्ते कर्तव्याः कृत्यदूषकाः ॥ १६ ॥

'जो लोग धृष्टताके कारण अहितकर बातको हितका रूप देकर कहते हैं, वे निश्चय ही सलाह लेने योग्य नहीं हैं। अतः उन्हें इस कार्यसे अलग कर देना चाहिये । वे तो काम बिगाड़नेवाले ही होते हैं ॥ १६ ॥

विनाशयन्तो भर्तारं सहिताः शत्रुभिर्बुधैः ।
विपरीतानि कृत्यानि कारयन्तीह मन्त्रिणः ॥ १७ ॥

'कुछ बुरे मन्त्री साम आदि उपायोंके ज्ञाता शत्रुओंके साथ मिल जाते हैं और अपने स्वामीका विनाश करनेके लिये ही उससे विपरीत कर्म करवाते हैं ॥ १७ ॥

तान् भर्ता मित्रसंकाशानमित्रान् मन्त्रनिर्णये ।
व्यवहारेण जानीयात् सचिवानुपसंहितान् ॥ १८ ॥

'जब किसी वस्तु या कार्यके निश्चयके लिये मन्त्रियोंकी सलाह ली जा रही हो, उस समय राजा व्यवहारके द्वारा ही उन मन्त्रियोंको पहचाननेका प्रयत्न करे, जो घूस आदि लेकर शत्रुओंसे मिल गये हैं और अपने मित्र-से बने रहकर वास्तवमें शत्रुका काम करते हैं ॥ १८॥

चपलस्येह कृत्यानि सहसानुप्रधावतः ।
छिद्रमन्ये प्रपद्यन्ते क्रौञ्चस्य खमिव द्विजाः ॥ १९ ॥

'जो राजा चञ्चल है—आपातरमणीय वचनोंको सुनकर ही संतुष्ट हो जाता है और सहसा बिना सोचे-विचारे ही किसी भी कार्यकी ओर दौड़ पड़ता है, उसके इस छिद्र (दुर्बलता) को शत्रुलोग उसी तरह ताड़ जाते हैं, जैसे क्रौञ्च पर्वतके छेदको पक्षी । (क्रौञ्चपर्वतके छेदसे होकर पक्षी जैसे पर्वतके उस पार आते-जाते हैं, उसी तरह शत्रु भी राजाके उस छिद्र या कमजोरीसे लाभ उठाते हैं) ॥ १९ ॥

यो हि शत्रुमवज्ञाय आत्मानं नाभिरक्षति ।
अवाप्नोति हि सोऽनर्थान् स्थानाच्च व्यवरोप्यते ॥ २० ॥

'जो राजा शत्रुकी अवहेलना करके अपनी रक्षाका प्रबन्ध नहीं करता है, वह अनेक अनर्थोंका भागी होता और अपने स्थान (राज्य) से नीचे उतार दिया जाता है ॥ २० ॥

✓ **यदुक्तमिह ते पूर्वं प्रियया मेऽनुजेन च ।**
तदेव नो हितं वाक्यं यथेच्छसि तथा कुरु ॥ २१ ॥

'तुम्हारी प्रिय पत्नी मन्दोदरी और मेरे छोटे भाई विभीषणने पहले तुमसे जो कुछ कहा था, वही हमारे लिये हितकर था । यों तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो' ॥ २१ ॥

तत् तु श्रुत्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णस्य भाषितम् ।
भ्रुकुटिं चैव संचक्रे क्रुद्धश्चैनमभाषत ॥ २२ ॥

कुम्भकर्णकी यह बात सुनकर दशमुख रावणने भौंहें टेढ़ी कर लीं और कुपित होकर उससे कहा—॥ २२ ॥

मान्यो गुरुरिवाचार्यः किं मां त्वमनुशाससे ।
किमेवं वाक्श्रमं कृत्वा यद् युक्तं तद् विधीयताम् ॥ २३ ॥

'तुम माननीय गुरु और आचार्यकी भाँति मुझे उपदेश क्यों दे रहे हो ? इस तरह भाषण देनेका परिश्रम करनेसे क्या लाभ होगा ? इस समय जो उचित और आवश्यक हो, वह काम करो ॥ २३ ॥

विभ्रमाच्चित्तमोहाद् वा बलवीर्याश्रयेण वा ।
नाभिपन्नमिदानीं यद् व्यर्था तस्य पुनः कथा ॥ २४ ॥

'मैंने भ्रमसे, चित्तके मोहसे अथवा अपने बल-पराक्रमके भरोसे पहले जो तुमलोगोंकी बात नहीं मानी थी, उसकी इस समय पुनः चर्चा करना व्यर्थ है ॥ २४ ॥

अस्मिन् काले तु यद् युक्तं तदिदानीं विचिन्त्यताम् ।
गतं तु नानुशोचन्ति गतं तु गतमेव हि ॥ २५ ॥ ✓
ममापनयजं दोषं विक्रमेण समीकुरु ।

'जो बात बीत गयी, सो तो बीत ही गयी । बुद्धिमान् लोग बीती बातके लिये बारंबार शोक नहीं करते हैं । अब इस समय हमें क्या करना चाहिये, इसका विचार करो । अपने पराक्रमसे मेरे अनीतिजनित दुःखको शान्त कर दो ॥ २५½ ॥

यदि खल्वस्ति मे स्नेहो विक्रमं वाधिगच्छसि ॥ २६ ॥
यदि कार्यं ममैतत्ते हृदि कार्यतमं मतम् ।

'यदि मुझपर तुम्हारा स्नेह है, यदि अपने भीतर यथेष्ट पराक्रम समझते हो और यदि मेरे इस कार्यको परम कर्तव्य समझकर हृदयमें स्थान देते हो तो युद्ध करो ॥ २६½ ॥

स सुहृद् यो विपन्नार्थं दीनमभ्युपपद्यते ॥ २७ ॥
स बन्धुर्योऽपनीतेषु साहाय्यायोपकल्पते ।

'वही सुहृद् है, जो सारा कार्य नष्ट हो जानेसे दुखी हुए स्वजनपर अकारण अनुग्रह करता है तथा वही बन्धु है, जो अनीतिके मार्गपर चलनेसे संकटमें पड़े हुए पुरुषोंकी सहायता करता है' ॥ २७½ ॥

तमथैवं ब्रुवाणं स वचनं धीरदारुणम् ॥ २८ ॥
रुष्टोऽयमिति विज्ञाय शनैः श्लक्ष्णमुवाच ह ।

रावणको इस प्रकार धीर एवं दारुण वचन बोलते देख उसे रुष्ट समझकर कुम्भकर्ण धीरे-धीरे मधुर वाणीमें कुछ कहनेको उद्यत हुआ ॥ २८½ ॥

अतीव हि समालक्ष्य भ्रातरं क्षुभितेन्द्रियम् ॥ २९ ॥
कुम्भकर्णः शनैर्वाक्यं बभाषे परिसान्त्वयन् ।

उसने देखा मेरे भाईकी सारी इन्द्रियाँ अत्यन्त विक्षुब्ध हो उठी हैं; अतः कुम्भकर्णने धीरे-धीरे उसे सान्त्वना देते हुए कहा—॥ २९½ ॥

शृणु राजन्नवहितो मम वाक्यमरिंदम ॥ ३० ॥
अलं राक्षसराजेन्द्र संतापमुपपद्य ते ।

रोषं च सम्परित्यज्य स्वस्थो भवितुमर्हसि ॥ ३१ ॥

'शत्रुदमन महाराज ! सावधान होकर मेरी बात सुनो । राक्षसराज ! संताप करना व्यर्थ है । अब तुम्हें रोष त्यागकर स्वस्थ हो जाना चाहिये ॥ ३०-३१ ॥

नैतन्मनसि कर्तव्यं मयि जीवति पार्थिव ।
तमहं नाशयिष्यामि यत् कृते परितप्यते ॥ ३२ ॥

'पृथ्वीनाथ ! मेरे जीते-जी तुम्हें मनमें ऐसा भाव नहीं लाना चाहिये । तुम्हें जिसके कारण संतप्त होना पड़ रहा है, उसे मैं नष्ट कर दूँगा ॥ ३२ ॥

अवश्यं तु हितं वाच्यं सर्वावस्थं मया तव ।
बन्धुभावादभिहितं भ्रातृस्नेहाच्च पार्थिव ॥ ३३ ॥

'महाराज ! अवश्य ही सब अवस्थाओंमें मुझे तुम्हारे हितकी बात कहनी चाहिये । अतः मैंने बन्धुभाव और भ्रातृस्नेहके कारण ही ये बातें कही हैं ॥ ३३॥

सदृशं यच्च कालेऽस्मिन् कर्तुं स्नेहेन बन्धुना ।
शत्रूणां कदनं पश्य क्रियमाणं मया रणे ॥ ३४ ॥

'इस समय एक भाईको स्नेहवश जो कुछ करना उचित है, वही करूँगा । अब रणभूमिमें मेरे द्वारा किया जानेवाला शत्रुओंका संहार देखो ॥ ३४ ॥

अद्य पश्य महाबाहो मया समरमूर्धनि ।
हते रामे सह भ्रात्रा द्रवन्तीं हरिवाहिनीम् ॥ ३५ ॥

'महाबाहो ! आज युद्धके मुहानेपर मेरे द्वारा भाईसहित रामके मारे जानेके पश्चात् तुम देखोगे कि वानरोंकी सेना किस तरह भागी जा रही है ॥ ३५ ॥

अद्य रामस्य तद् दृष्ट्वा मयाऽऽनीतं रणाच्छिरः ।
सुखी भव महाबाहो सीता भवतु दुःखिता ॥ ३६ ॥

'महाबाहो ! आज मैं संग्रामभूमिसे रामका सिर काट लाऊँगा । उसे देखकर तुम सुखी होना और सीता दुःखमें डूब जायगी ॥ ३६ ॥

अद्य रामस्य पश्यन्तु निधनं सुमहत् प्रियम् ।
लङ्कायां राक्षसाः सर्वे ये ते निहतबान्धवाः ॥ ३७ ॥

'लङ्कामें जिन राक्षसोंके सगे-सम्बन्धी मारे गये हैं, वे भी आज रामकी मृत्यु देख लें । यह उनके लिये बहुत ही प्रिय बात होगी ॥ ३७ ॥

अद्य शोकपरीतानां स्वबन्धुवधशोचिनाम् ।
शत्रोर्युधि विनाशेन करोम्यश्रुप्रमार्जनम् ॥ ३८ ॥

'अपने भाई-बन्धुओंके मारे जानेसे जो लोग अत्यन्त शोकमें डूबे हुए हैं; आज युद्धमें शत्रुका नाश करके मैं उनके आँसू पोंछूँगा ॥ ३८ ॥

अद्य पर्वतसंकाशं ससूर्यमिव तोयदम् ।
विकीर्णं पश्य समरे सुग्रीवं प्लवगेश्वरम् ॥ ३९ ॥

'आज पर्वतके समान विशालकाय वानरराज सुग्रीवको समराङ्गणमें खूनसे लथपथ होकर गिरे हुए देखोगे, जो सूर्यसहित मेघके समान दृष्टिगोचर होंगे ॥ ३९ ॥

कथं च राक्षसैरेभिर्मया च परिसान्त्वितः ।
जिघांसुभिर्दाशरथिं व्यथसे त्वं सदानघ ॥ ४० ॥

'निष्पाप निशाचरराज ! ये राक्षस तथा मैं—सब लोग दशरथपुत्र रामको मार डालनेकी इच्छा रखते हैं और तुम्हें इस बातके लिये आश्वासन देते हैं तो भी तुम सदा व्यथित क्यों रहते हो ? ॥ ४० ॥

मां निहत्य किल त्वां हि निहनिष्यति राघवः ।
नाहमात्मनि संतापं गच्छेयं राक्षसाधिप ॥ ४१ ॥

'राक्षसराज ! पहले मेरा वध करके ही राम तुम्हें मार सकेंगे; किंतु मैं अपने विषयमें रामसे संताप या भय नहीं मानता ॥ ४१ ॥

कामं त्विदानीमपि मां व्यादिश त्वं परंतप ।
न परः प्रेक्षणीयस्ते युद्धायातुलविक्रम ॥ ४२ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले अनुपम पराक्रमी वीर ! इस समय तुम इच्छानुसार मुझे युद्धके लिये आदेश दो । शत्रुओंसे जूझनेके लिये तुम्हें दूसरे किसीकी ओर देखनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ४२ ॥

अहमुत्सादयिष्यामि शत्रूंस्तव महाबलान् ।
यदि शक्रो यदि यमो यदि पावकमारुतौ ॥ ४३ ॥
तानहं योधयिष्यामि कुबेरवरुणावपि ।

'तुम्हारे महाबली शत्रु यदि इन्द्र, यम, अग्नि, वायु, कुबेर और वरुण भी हों तो मैं उनसे भी युद्ध करूँगा तथा उन सबको उखाड़ फेंकूँगा ॥ ४३½ ॥

गिरिमात्रशरीरस्य शितशूलधरस्य मे ॥ ४४ ॥
नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्य बिभीयाद् वै पुरंदरः ।

'मेरा पर्वतके समान विशाल शरीर है । मैं हाथमें तीखा त्रिशूल धारण करता हूँ और मेरी दाढ़ें भी बहुत तीखी हैं । मेरे सिंहनाद करनेपर इन्द्र भी भयसे थर्रा उठेंगे ॥ ४४½ ॥

अथ वा त्यक्तशस्त्रस्य मृद्नतस्तरसा रिपून् ॥ ४५ ॥
न मे प्रतिमुखः कश्चित् स्थातुं शक्तो जिजीविषुः ।

'अथवा यदि मैं शस्त्र त्याग करके भी वेगपूर्वक शत्रुओंको रौंदता हुआ रणभूमिमें विचरने लगूँ तो कोई भी जीवित रहनेकी इच्छावाला पुरुष मेरे सामने नहीं ठहर सकता ॥ ४५½ ॥

नैव शक्त्या न गदया नासिना निशितैः शरैः ॥ ४६ ॥
हस्ताभ्यामेव संरभ्य हनिष्यामि सवज्रिणम् ।

'मैं न तो शक्तिसे, न गदासे, न तलवारसे और न पैने बाणोंसे ही काम लूँगा । रोषसे भरकर केवल दोनों हाथोंसे ही वज्रधारी इन्द्र-जैसे शत्रुको भी मौतके घाट उतार दूँगा ॥ ४६½ ॥

यदि मे मुष्टिवेगं स राघवोऽद्य सहिष्यति ॥ ४७ ॥
ततः पास्यन्ति बाणौघा रुधिरं राघवस्य मे ।

'यदि राम आज मेरी मुट्ठीका वेग सह लेंगे तो मेरे बाण-समूह अवश्य ही उनका रक्त पान करेंगे ॥ ४७½ ॥

चिन्तया तप्यसे राजन् किमर्थं मयि तिष्ठति ॥ ४८ ॥
सोऽहं शत्रुविनाशाय तव निर्यातुमुद्यतः ।

'राजन्! मेरे रहते हुए तुम किसलिये चिन्ताकी आगसे झुलस रहे हो? मैं तुम्हारे शत्रुओंका विनाश करनेके लिये अभी रणभूमिमें जानेको उद्यत हूँ ॥ ४८½ ॥

मुञ्च रामाद् भयं घोरं निहनिष्यामि संयुगे ॥ ४९ ॥
राघवं लक्ष्मणं चैव सुग्रीवं च महाबलम् ।

'तुम्हें रामसे जो घोर भय हो रहा है, उसे त्याग दो। मैं रणभूमिमें राम, लक्ष्मण और महाबली सुग्रीवको अवश्य मार डालूँगा ॥ ४९½ ॥

हनूमन्तं च रक्षोघ्नं येन लङ्का प्रदीपिता ॥ ५० ॥
हरींश्च भक्षयिष्यामि संयुगे समुपस्थिते ।
असाधारणमिच्छामि तव दातुं महद् यशः ॥ ५१ ॥

'युद्ध उपस्थित होनेपर मैं राक्षसोंका संहार करनेवाले उस हनुमान्‌को भी जीवित नहीं छोड़ूँगा, जिसने लङ्का जलायी थी। साथ ही अन्य वानरोंको भी खा जाऊँगा। आज मैं तुम्हें अलौकिक एवं महान् यश प्रदान करना चाहता हूँ ॥ ५०-५१ ॥

यदि चेन्द्राद् भयं राजन् यदि चापि स्वयंभुवः ।
ततोऽहं नाशयिष्यामि नैशं तम इवांशुमान् ॥ ५२ ॥

'राजन्! यदि तुम्हें इन्द्र अथवा स्वयम्भू ब्रह्मासे भी भय है तो मैं उस भयको भी उसी तरह नष्ट कर दूँगा, जैसे सूर्य रात्रिके अन्धकारको ॥ ५२ ॥

अपि देवाः शयिष्यन्ते मयि क्रुद्धे महीतले ।
यमं च शमयिष्यामि भक्षयिष्यामि पावकम् ॥ ५३ ॥

'मेरे कुपित होनेपर देवता भी धराशायी हो जायँगे। (फिर मनुष्यों और वानरोंकी तो बात ही क्या है?) मैं यमराजको भी शान्त कर दूँगा। सर्वभक्षी अग्निका भी भक्षण कर जाऊँगा ॥ ५३ ॥

आदित्यं पातयिष्यामि सनक्षत्रं महीतले ।
शतक्रतुं वधिष्यामि पास्यामि वरुणालयम् ॥ ५४ ॥

'नक्षत्रोंसहित सूर्यको भी पृथ्वीपर मार गिराऊँगा, इन्द्रका भी वध कर डालूँगा और समुद्रको भी पी जाऊँगा ॥ ५४ ॥

पर्वतांश्चूर्णयिष्यामि दारयिष्यामि मेदिनीम् ।
दीर्घकालं प्रसुप्तस्य कुम्भकर्णस्य विक्रमम् ॥ ५५ ॥
अद्य पश्यन्तु भूतानि भक्ष्यमाणानि सर्वशः ।
न त्विदं त्रिदिवं सर्वमाहारो मम पूर्यते ॥ ५६ ॥

'पर्वतोंको चूर-चूर कर दूँगा। भूमण्डलको विदीर्ण कर डालूँगा। आज मेरे द्वारा खाये जानेवाले सब प्राणी दीर्घकालतक सोकर उठे हुए मुझ कुम्भकर्णका पराक्रम देखें। यह सारी त्रिलोकी आहार बन जाय तो भी मेरा पेट नहीं भर सकता ॥ ५५-५६ ॥

वधेन ते दाशरथेः सुखावहं
सुखं समाहर्तुमहं व्रजामि ।
निहत्य रामं सह लक्ष्मणेन
खादामि सर्वान् हरियूथमुख्यान् ॥ ५७ ॥

'दशरथकुमार श्रीरामका वध करके मैं तुम्हें उत्तरोत्तर सुखकी प्राप्ति करानेवाले सुख-सौभाग्यको देना चाहता हूँ। लक्ष्मणसहित रामका वध करके सभी प्रधान-प्रधान वानरयूथपतियोंको खा जाऊँगा ॥ ५७ ॥

रमस्व राजन् पिब चाद्य वारुणीं
कुरुष्व कृत्यानि विनीय दुःखम् ।
मयाद्य रामे गमिते यमक्षयं
चिराय सीता वशगा भविष्यति ॥ ५८ ॥

'राजन्! अब मौज करो, मदिरा पीओ और मानसिक दुःखको दूर करके सब कार्य करो। आज मेरे द्वारा राम यमलोक पहुँचा दिये जायँगे; फिर तो सीता चिरकाल (सदा) के लिये तुम्हारे अधीन हो जायगी' ॥ ५८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तिरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

◆

चतुःषष्टितमः सर्गः

महोदरका कुम्भकर्णके प्रति आक्षेप करके रावणको बिना युद्धके ही अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिका उपाय बताना

तदुक्तमतिकायस्य बलिनो बाहुशालिनः ।
कुम्भकर्णस्य वचनं श्रुत्वोवाच महोदरः ॥ १ ॥

अपनी भुजाओंसे सुशोभित होनेवाले विशालकाय एवं बलवान् राक्षस कुम्भकर्णका यह वचन सुनकर महोदरने कहा— ॥ १ ॥

कुम्भकर्ण कुले जातो धृष्टः प्राकृतदर्शनः।
अवलिप्तो न शक्नोषि कृत्यं सर्वत्र वेदितुम् ॥ २ ॥

'कुम्भकर्ण ! तुम उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हो; परंतु तुम्हारी दृष्टि (बुद्धि) निम्नश्रेणीके लोगोंके समान है। तुम ढीठ और घमंडी हो, इसलिये सभी विषयोंमें क्या कर्तव्य है—इस बातको नहीं जान सकते ॥ २ ॥

नहि राजा न जानीते कुम्भकर्ण नयानयौ।
त्वं तु कैशोरकाद् धृष्टः केवलं वक्तुमिच्छसि ॥ ३ ॥

'कुम्भकर्ण ! हमारे महाराज नीति और अनीतिको नहीं जानते हैं, ऐसी बात नहीं है। तुम केवल अपने बचपनके कारण धृष्टतापूर्वक इस तरहकी बातें कहना चाहते हो ॥ ३ ॥

स्थानं वृद्धिं च हानिं च देशकालविधानवित्।
आत्मनश्च परेषां च बुध्यते राक्षसर्षभः ॥ ४ ॥

'राक्षसशिरोमणि रावण देश-कालके लिये उचित कर्तव्यको जानते हैं और अपने तथा शत्रुपक्षके स्थान, वृद्धि एवं क्षयको अच्छी तरह समझते हैं ॥ ४ ॥

यत् त्वशक्यं बलवता वक्तुं प्राकृतबुद्धिना।
अनुपासितवृद्धेन कः कुर्यात् तादृशं बुधः ॥ ५ ॥

'जिसने वृद्ध पुरुषोंकी उपासना या सत्संग नहीं किया है और जिसकी बुद्धि गँवारोंके समान है, ऐसा बलवान् पुरुष भी जिस कर्मको नहीं कर सकता—जिसे अनुचित समझता है, वैसे कर्मको कोई बुद्धिमान् पुरुष कैसे कर सकता है ? ॥

यांस्तु धर्मार्थकामांस्त्वं ब्रवीषि पृथगाश्रयान्।
अवबोद्धुं स्वभावेन नहि लक्षणमस्ति तान् ॥ ६ ॥

'जिन अर्थ, धर्म और कामको तुम पृथक्-पृथक् आश्रयवाले बता रहे हो, उन्हें ठीक-ठीक समझनेकी तुम्हारे भीतर शक्ति ही नहीं है ॥ ६ ॥

कर्म चैव हि सर्वेषां कारणानां प्रयोजनम्।
श्रेयः पापीयसां चात्र फलं भवति कर्मणाम् ॥ ७ ॥

'सुखके साधनभूत जो त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ एवं काम) हैं, उन सबका एकमात्र कर्म ही प्रयोजक है (क्योंकि जो कर्मानुष्ठानसे रहित है, उसका धर्म, अर्थ अथवा काम—कोई भी पुरुषार्थ सफल नहीं होता) । इसी तरह एक पुरुषके प्रयत्नसे सिद्ध होनेवाले सभी शुभाशुभ व्यापारोंका फल यहाँ एक ही कर्ताको प्राप्त होता है (इस प्रकार जब परस्पर विरुद्ध होनेपर भी धर्म और कामका अनुष्ठान एक ही पुरुषके द्वारा होता देखा जाता है, तब तुम्हारा यह कहना कि केवल धर्मका ही अनुष्ठान करना चाहिये, धर्मविरोधी कामका नहीं, कैसे संगत हो सकता है ?) ॥ ७ ॥

निःश्रेयसफलावेव धर्मार्थावितरावपि।
अधर्मानर्थयोः प्राप्तं फलं च प्रात्यवायिकम् ॥ ८ ॥

'निष्कामभावसे किये गये धर्म (जप, ध्यान आदि) और अर्थ (धनसाध्य यज्ञ, दान आदि)—ये चित्तशुद्धिके द्वारा यद्यपि निःश्रेयस (मोक्ष) रूप फलकी प्राप्ति करानेवाले हैं तथापि कामना-विशेषसे स्वर्ग एवं अभ्युदय आदि अन्य फलोंकी भी प्राप्ति कराते हैं। पूर्वोक्त जपादिरूप या क्रियामय नित्य-धर्मका लोप होनेपर अधर्म और अनर्थ प्राप्त होते हैं और उनके रहते हुए प्रत्यवायजनित फल भोगना पड़ता है (परंतु काम्य-कर्म न करनेसे प्रत्यवाय नहीं होता, यह धर्म और अर्थकी अपेक्षा कामकी विशेषता है) ॥ ८ ॥

ऐहलौकिकपारक्यं कर्म पुंभिर्निषेव्यते।
कर्माण्यपि तु कल्यानि लभते काममास्थितः ॥ ९ ॥

'जीवोंको धर्म और अधर्मके फल इस लोक और परलोकमें भी भोगने पड़ते हैं। परंतु जो कामना-विशेषके उद्देश्यसे यत्नपूर्वक कर्मोंका अनुष्ठान करता है, उसे यहाँ भी उसके सुख-मनोरथकी प्राप्ति हो जाती है। धर्म आदिके फलकी भाँति उसके लिये कालान्तर या लोकान्तरकी अपेक्षा नहीं होती है (इस तरह काम धर्म और अर्थसे विलक्षण सिद्ध होता है)॥

तत्र क्लृप्तमिदं राज्ञा हृदि कार्यं मतं च नः।
शत्रौ हि साहसं यत् तत् किमिवात्रापनीयते ॥ १० ॥

'यहाँ राजाके लिये कामरूपी पुरुषार्थका सेवन उचित है ही*। ऐसा ही राक्षसराजने अपने हृदयमें निश्चित किया है और यही हम मन्त्रियोंकी भी सम्मति है। शत्रुके प्रति साहसपूर्ण कार्य करना कौन-सी अनीति है (अतः इन्होंने जो कुछ किया है, उचित ही किया है) ॥ १० ॥

एकस्यैवाभियाने तु हेतुर्यः प्राहृतस्त्वया।
तत्राप्यनुपपन्नं ते वक्ष्यामि यदसाधु च ॥ ११ ॥

'तुमने युद्धके लिये अकेले अपने ही प्रस्थान करनेके विषयमें जो हेतु दिया है (अपने महान् बलके द्वारा शत्रुको परास्त कर देनेकी जो घोषणा की है) उसमें भी जो असंगत एवं अनुचित बात कही गयी है, उसे मैं तुम्हारे सामने रखता हूँ ॥ ११ ॥

येन पूर्वं जनस्थाने बहवोऽतिबला हताः।
राक्षसा राघवं तं त्वं कथमेको जयिष्यसि ॥ १२ ॥

'जिन्होंने पहले जनस्थानमें बहुत-से अत्यन्त बलशाली राक्षसोंको मार डाला था, उन्हीं रघुवंशी वीर श्रीरामको तुम अकेले ही कैसे परास्त करोगे ? ॥ १२ ॥

---

* यहाँ महोदरने रावणकी चापलूसी करनेके लिये 'कामवाद' की स्थापना या प्रशंसा की है। यह आदर्श मत नहीं है। वास्तवमें धर्म, अर्थ और काममें धर्म ही प्रधान है; अतः उसीके सेवनसे प्राणिमात्रका कल्याण हो सकता है।

ये पूर्वं निर्जितास्तेन जनस्थाने महौजसः।
राक्षसांस्तान् पुरे सर्वान् भीतानद्य न पश्यसि ॥१३॥

'जनस्थानमें श्रीरामने पहले जिन महान् बलशाली निशाचरोंको मार भगाया था, वे आज भी इस लङ्कापुरीमें विद्यमान हैं और उनका वह भय अबतक दूर नहीं हुआ है। क्या तुम उन राक्षसोंको नहीं देखते हो ? ॥ १३ ॥

तं सिंहमिव संक्रुद्धं रामं दशरथात्मजम्।
सर्पं सुप्तमहो बुद्ध्वा प्रबोधयितुमिच्छसि ॥ १४ ॥

'दशरथकुमार श्रीराम अत्यन्त कुपित हुए सिंहके समान पराक्रमी एवं भयंकर हैं, क्या तुम उनसे भिड़नेका साहस करते हो ? क्या जान-बूझकर सोये हुए सर्पको जगाना चाहते हो ? तुम्हारी मूर्खतापर आश्चर्य होता है ! ॥ १४ ॥

✓**ज्वलन्तं तेजसा नित्यं क्रोधेन च दुरासदम्।**
कस्तं मृत्युमिवासह्यमासादयितुमर्हति ॥ १५ ॥

'श्रीराम सदा ही अपने तेजसे देदीप्यमान हैं। वे क्रोध करनेपर अत्यन्त दुर्जय और मृत्युके समान असह्य हो उठते हैं। भला कौन योद्धा उनका सामना कर सकता है ? ॥१५॥

संशयस्थमिदं सर्वं शत्रोः प्रतिसमासने।
एकस्य गमनं तात नहि मे रोचते भृशम् ॥ १६ ॥

'हमारी यह सारी सेना भी यदि उस अजेय शत्रुका सामना करनेके लिये खड़ी हो तो उसका जीवन भी संशयमें पड़ सकता है। अतः तात ! युद्धके लिये तुम्हारा अकेले जाना मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता है ॥ १६ ॥

हीनार्थस्तु समृद्धार्थं को रिपुं प्राकृतं यथा।
निश्चितं जीवितत्यागे वशमानेतुमिच्छति ॥ १७ ॥

'जो सहायकोंसे सम्पन्न और प्राणोंकी बाजी लगाकर शत्रुओंका संहार करनेके लिये निश्चित विचार रखनेवाला हो, ऐसे शत्रुको अत्यन्त साधारण मानकर कौन असहाय योद्धा वशमें लानेकी इच्छा कर सकता है ? ॥ १७ ॥

✓**यस्य नास्ति मनुष्येषु सदृशो राक्षसोत्तम।**
कथमाशंससे योद्धुं तुल्येनेन्द्रविवस्वतोः ॥ १८ ॥

'राक्षसशिरोमणे ! मनुष्योंमें जिनकी समता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है तथा जो इन्द्र और सूर्यके समान तेजस्वी हैं, उन श्रीरामके साथ युद्ध करनेका हौसला तुम्हें कैसे हो रहा है ?' ॥ १८ ॥

एवमुक्त्वा तु संरब्धं कुम्भकर्णं महोदरः।
उवाच रक्षसां मध्ये रावणं लोकरावणम् ॥ १९ ॥

रोषके आवेशसे युक्त कुम्भकर्णसे ऐसा कहकर महोदरने समस्त राक्षसोंके बीचमें बैठे हुए लोकोंको रुलानेवाले रावणसे कहा—॥ १९ ॥

लब्ध्वा पुरस्ताद् वैदेहीं किमर्थं त्वं विलम्बसे।
यदीच्छसि तदा सीता वशगा ते भविष्यति ॥ २० ॥

'महाराज ! आप विदेहकुमारीको अपने सामने पाकर भी किसलिये विलम्ब कर रहे हैं ? आप जब चाहें तभी सीता आपके वशमें हो जायगी ॥ २० ॥

दृष्टः कश्चिदुपायो मे सीतोपस्थानकारकः।
रुचितश्चेत् त्वया बुद्ध्या राक्षसेन्द्र ततः शृणु ॥ २१॥

'राक्षसराज ! मुझे एक ऐसा उपाय सूझा है, जो सीताको आपकी सेवामें उपस्थित करके ही रहेगा। आप उसे सुनिये। सुनकर अपनी बुद्धिसे उसपर विचार कीजिये और ठीक जँचे तो उसे काममें लाइये ॥ २१ ॥

अहं द्विजिह्वः संह्रादी कुम्भकर्णो वितर्दनः।
पञ्च रामवधायैते निर्यान्तीत्यवघोषय ॥ २२ ॥

'आप नगरमें यह घोषित करा दें कि महोदर, द्विजिह्व, संह्रादी, कुम्भकर्ण और वितर्दन—ये पाँच राक्षस रामका वध करनेके लिये जा रहे हैं ॥ २२ ॥

ततो गत्वा वयं युद्धं दास्यामस्तस्य यत्नतः।
जेष्यामो यदि ते शत्रून् नोपायैः कार्यमस्ति नः ॥ २३ ॥

'हमलोग रणभूमिमें जाकर प्रयत्नपूर्वक श्रीरामके साथ युद्ध करेंगे। यदि आपके शत्रुओंपर हम विजय पा गये तो हमारे लिये सीताको वशमें करनेके निमित्त दूसरे किसी उपायकी आवश्यकता ही नहीं रह जायगी ॥ २३ ॥

अथ जीवति नः शत्रुर्वयं च कृतसंयुगाः।
ततः समभिपत्स्यामो मनसा यत् समीक्षितम् ॥ २४ ॥

'यदि हमारा शत्रु अजेय होनेके कारण जीवित ही रह गया और हम भी युद्ध करते-करते मारे नहीं गये तो हम उस उपायको काममें लायेंगे, जिसे हमने मनसे सोचकर निश्चित किया है ॥ २४ ॥

वयं युद्धादिहैष्यामो रुधिरेण समुक्षिताः।
विदार्य स्वतनुं बाणै रामनामाङ्कितैः शरैः ॥ २५ ॥
भक्षितो राघवोऽस्माभिर्लक्ष्मणश्चेति वादिनः।
ततः पादौ ग्रहीष्यामस्त्वं नः कामं प्रपूरय ॥ २६ ॥

'रामनामसे अङ्कित बाणोंद्वारा अपने शरीरको घायल कराकर खूनसे लथपथ हो हम यह कहते हुए युद्धभूमिसे यहाँ लौटेंगे कि हमने राम और लक्ष्मणको खा लिया है। उस समय हम आपके पैर पकड़कर यह भी कहेंगे कि हमने शत्रुको मारा है। इसलिये आप हमारी इच्छा पूरी कीजिये ॥

ततोऽवघोषय पुरे गजस्कन्धेन पार्थिव।
हतो रामः सह भ्रात्रा ससैन्य इति सर्वतः ॥ २७ ॥

'पृथ्वीनाथ ! तब आप हाथीकी पीठपर किसीको बिठाकर

सारे नगरमें यह घोषणा करा दें कि भाई और सेनाके सहित राम मारा गया ॥ २७ ॥

प्रीतो नाम ततो भूत्वा भृत्यानां त्वमरिंदम।
भोगांश्च परिवारांश्च कामान् वसु च दापय ॥ २८ ॥
ततो माल्यानि वासांसि वीराणामनुलेपनम्।
पेयं च बहु योधेभ्यः स्वयं च मुदितः पिब ॥ २९ ॥

'शत्रुदमन ! इतना ही नहीं, आप प्रसन्नता दिखाते हुए अपने वीर सेवकोंको उनकी अभीष्ट वस्तुएँ, तरह-तरहकी भोग-सामग्रियाँ, दास-दासी आदि, धन-रत्न, आभूषण, वस्त्र और अनुलेपन दिलावें। अन्य योद्धाओंको भी बहुत-से उपहार दें तथा स्वयं भी खुशी मनाते हुए मद्यपान करें ॥२८-२९॥

ततोऽस्मिन् बहुलीभूते कौलीने सर्वतो गते।
भक्षितः ससुहृद् रामो राक्षसैरिति विश्रुते ॥ ३० ॥
प्रविश्याश्वास्य चापि त्वं सीतां रहसि सान्त्वयन्।
धनधान्यैश्च कामैश्च रत्नैश्चैनां प्रलोभय ॥ ३१ ॥

'तदनन्तर जब लोगोंमें सब ओर यह चर्चा फैल जाय कि राम अपने सुहृदोंसहित राक्षसोंके आहार बन गये और सीताके कानोंमें भी यह बात पड़ जाय, तब आप सीताको समझानेके लिये एकान्तमें उसके वासस्थानपर जायँ और तरह-तरहसे धीरज बँधाकर उसे धन-धान्य, भाँति-भाँतिके भोग और रत्न आदिका लोभ दिखावें ॥ ३०-३१ ॥

अनयोपधया राजन् भूयः शोकानुबन्धया।
अकामा त्वद्वशं सीता नष्टनाथा गमिष्यति ॥ ३२ ॥

'राजन् ! इस प्रवञ्चनासे अपनेको अनाथ माननेवाली सीताका शोक और भी बढ़ जायगा और वह इच्छा न होनेपर भी आपके अधीन हो जायगी ॥ ३२ ॥

रमणीयं हि भर्तारं विनष्टमधिगम्य सा।
नैराश्यात् स्त्रीलघुत्वाच्च त्वद्वशं प्रतिपत्स्यते॥ ३३ ॥

'अपने रमणीय पतिको विनष्ट हुआ जान वह निराशा तथा नारी-सुलभ चपलताके कारण आपके वशमें आ जायगी॥

सा पुरा सुखसंवृद्धा सुखार्हा दुःखकर्शिता।
त्वय्यधीनं सुखं ज्ञात्वा सर्वथैव गमिष्यति ॥ ३४ ॥

'वह पहले सुखमें पली हुई है और सुख भोगनेके योग्य है; परंतु इन दिनों दुःखसे दुर्बल हो गयी है। ऐसी दशामें अब आपके ही अधीन अपना सुख समझकर सर्वथा आपकी सेवामें आ जायगी ॥ ३४ ॥

एतत् सुनीतं मम दर्शनेन
रामं हि दृष्ट्वैव भवेदनर्थः।
इहैव ते सेत्स्यति मोत्सुको भू-
र्महानयुद्धेन सुखस्य लाभः ॥ ३५ ॥

'मेरे देखनेमें यही सबसे सुन्दर नीति है। युद्धमें तो श्रीरामका दर्शन करते ही आपको अनर्थ (मृत्यु) की प्राप्ति हो सकती है; अतः आप युद्धस्थलमें जानेके लिये उत्सुक न हों, यहीं आपके अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि हो जायगी। बिना युद्धके ही आपको सुखका महान् लाभ होगा ॥ ३५ ॥

अनष्टसैन्यो ह्यनवाप्तसंशयो
रिपुं त्वयुद्धेन जयञ्जनाधिपः।
यशश्च पुण्यं च महान्महीपते
श्रियं च कीर्तिं च चिरं समश्नुते ॥ ३६ ॥

'महाराज ! जो राजा बिना युद्धके ही शत्रुपर विजय पाता है, उसकी सेना नष्ट नहीं होती। उसका जीवन भी संशयमें नहीं पड़ता, वह पवित्र एवं महान् यश पाता तथा दीर्घकालतक लक्ष्मी एवं उत्तम कीर्तिका उपभोग करता है' ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चौंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमः सर्गः

कुम्भकर्णकी रणयात्रा

स तथोक्तस्तु निर्भर्त्स्य कुम्भकर्णो महोदरम्।
अब्रवीद् राक्षसश्रेष्ठं भ्रातरं रावणं ततः ॥ १ ॥

महोदरके ऐसा कहनेपर कुम्भकर्णने उसे डाँटा और अपने भाई राक्षसशिरोमणि रावणसे कहा—॥ १ ॥

सोऽहं तव भयं घोरं वधात् तस्य दुरात्मनः।
रामस्याद्य प्रमार्जामि निर्वैरो हि सुखी भव ॥ २ ॥

'राजन् ! आज मैं उस दुरात्मा रामका वध करके तुम्हारे घोर भयको दूर कर दूँगा। तुम वैरभावसे मुक्त होकर सुखी हो जाओ ॥ २ ॥

गर्जन्ति न वृथा शूरा निर्जला इव तोयदाः।
पश्य सम्पद्यमानं तु गर्जितं युधि कर्मणा ॥ ३ ॥

'शूरवीर जलहीन बादलके समान व्यर्थ गर्जना नहीं किया करते। तुम देखना, अब युद्धस्थलमें मैं अपने पराक्रमके द्वारा ही गर्जना करूँगा ॥ ३ ॥

न मर्षयन्ति चात्मानं सम्भावयितुमात्मना।
अदर्शयित्वा शूरास्तु कर्म कुर्वन्ति दुष्करम् ॥ ४ ॥

'शूरवीरोंको अपने ही मुँहसे अपनी तारीफ करना सहन नहीं होता। वे वाणीके द्वारा प्रदर्शन न करके चुपचाप दुष्कर पराक्रम प्रकट करते हैं ॥ ४ ॥

विक्लवानां ह्यबुद्धीनां राज्ञां पण्डितमानिनाम् ।
रोचते त्वद्वचो नित्यं कथ्यमानं महोदर ॥ ५ ॥

'महोदर ! जो भीरु, मूर्ख और झूठे ही अपनेको पण्डित माननेवाले होंगे, उन्हीं राजाओंको तुम्हारे द्वारा कही जानेवाली ये चिकनी-चुपड़ी बातें सदा अच्छी लगेंगी ॥ ५ ॥

युद्धे कापुरुषैर्नित्यं भवद्भिः प्रियवादिभिः ।
राजानमनुगच्छद्भिः सर्वं कृत्यं विनाशितम् ॥ ६ ॥

'युद्धमें कायरता दिखानेवाले तुम-जैसे चापलूसोंने ही सदा राजाकी हाँ-में-हाँ मिलाकर सारा काम चौपट किया है ॥

✓ राजशेषा कृता लङ्का क्षीणः कोशो बलं हतम् ।
राजानमिममासाद्य सुहृच्चिह्नममित्रकम् ॥ ७ ॥

'अब तो लङ्कामें केवल राजा शेष रह गये हैं । खजाना खाली हो गया और सेना मार डाली गयी । इस राजाको पाकर तुमलोगोंने मित्रके रूपमें शत्रुका काम किया है ॥ ७ ॥

एष निर्यास्यहं युद्धमुद्यतः शत्रुनिर्जये ।
दुर्नयं भवतामद्य समीकर्तुं महाहवे ॥ ८ ॥

'यह देखो, अब मैं शत्रुको जीतनेके लिये उद्यत होकर समरभूमिमें जा रहा हूँ । तुमलोगोंने अपनी खोटी नीतिके कारण जो विषम परिस्थिति उत्पन्न कर दी है, उसका आज महासमरमें समीकरण करना है—इस विषम संकटको सर्वदाके लिये टाल देना है' ॥ ८ ॥

एवमुक्तवतो वाक्यं कुम्भकर्णस्य धीमतः ।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं प्रहसन् राक्षसाधिपः ॥ ९ ॥

बुद्धिमान् कुम्भकर्णने जब ऐसी वीरोचित बात कही, तब राक्षसराज रावणने हँसते हुए उत्तर दिया—॥ ९ ॥

महोदरोऽयं रामात् तु परित्रस्तो न संशयः ।
न हि रोचयते तात युद्धं युद्धविशारद ॥ १० ॥

'युद्धविशारद तात ! यह महोदर श्रीरामसे बहुत डर गया है, इसमें संशय नहीं है । इसीलिये यह युद्धको पसंद नहीं करता है ॥ १० ॥

कश्चिन्मे त्वत्समो नास्ति सौहृदेन बलेन च ।
गच्छ शत्रुवधाय त्वं कुम्भकर्ण जयाय च ॥ ११ ॥

'कुम्भकर्ण ! मेरे आत्मीयजनोंमें सौहार्द और बलकी दृष्टिसे कोई भी तुम्हारी समानता करनेवाला नहीं है । तुम शत्रुओंका वध करने और विजय पानेके लिये युद्धभूमिमें जाओ ॥ ११ ॥

शयानः शत्रुनाशार्थं भवान् सम्बोधितो मया ।
अयं हि कालः सुमहान् राक्षसानामरिंदम ॥ १२ ॥

'शत्रुदमन वीर ! तुम सो रहे थे । तुम्हारे द्वारा शत्रुओंका नाश करानेके लिये ही मैंने तुम्हें जगाया है । राक्षसोंकी युद्धयात्राके लिये यह सबसे उत्तम समय है ॥ १२ ॥

संगच्छ शूलमादाय पाशहस्त इवान्तकः ।
वानरान् राजपुत्रौ च भक्षयादित्यतेजसौ ॥ १३ ॥

'तुम पाशधारी यमराजकी भाँति शूल लेकर जाओ और सूर्यके समान तेजस्वी उन दोनों राजकुमारों तथा वानरोंको मारकर खा जाओ ॥ १३ ॥

समालोक्य तु ते रूपं विद्रविष्यन्ति वानराः ।
रामलक्ष्मणयोश्चापि हृदये प्रस्फुटिष्यतः ॥ १४ ॥

'वानर तुम्हारा रूप देखते ही भाग जायँगे तथा राम और लक्ष्मणके हृदय भी विदीर्ण हो जायँगे' ॥ १४ ॥

एवमुक्त्वा महातेजाः कुम्भकर्णं महाबलम् ।
पुनर्जातमिवात्मानं मेने राक्षसपुङ्गवः ॥ १५ ॥

महाबली कुम्भकर्णसे ऐसा कहकर महातेजस्वी राक्षसराज रावणने अपना पुनः नया जन्म हुआ-सा माना ॥ १५ ॥

कुम्भकर्णबलाभिज्ञो जानंस्तस्य पराक्रमम् ।
बभूव मुदितो राजा शशाङ्क इव निर्मलः ॥ १६ ॥

राजा रावण कुम्भकर्णके बलको अच्छी तरह जानता था, उसके पराक्रमसे भी पूर्ण परिचित था; इसलिये वह निर्मल चन्द्रमाके समान परम आह्लादसे भर गया ॥ १६ ॥

इत्येवमुक्तः संहृष्टो निर्जगाम महाबलः ।
राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा योद्धुमुद्युक्तवांस्तदा ॥ १७ ॥

रावणके ऐसा कहनेपर महाबली कुम्भकर्ण बहुत प्रसन्न हुआ । वह राजा रावणकी बात सुनकर उस समय युद्धके लिये उद्यत हो गया और लङ्कापुरीसे बाहर निकला ॥ १७ ॥

आददे निशितं शूलं वेगाच्छत्रुनिबर्हणः ।
सर्वं कालायसं दीप्तं तप्तकाञ्चनभूषणम् ॥ १८ ॥

शत्रुओंका संहार करनेवाले उस वीरने बड़े वेगसे तीखा शूल हाथमें लिया, जो सब-का-सब काले लोहेका बना हुआ, चमकीला और तपाये हुए सुवर्णसे विभूषित था ॥ १८ ॥

इन्द्राशनिसमप्रख्यं वज्रप्रतिमगौरवम् ।
देवदानवगन्धर्वयक्षपन्नगसूदनम् ॥ १९ ॥

उसकी कान्ति इन्द्रके अशनिके समान थी । वह वज्रके समान भारी था तथा देवताओं, दानवों, गन्धर्वों, यक्षों और नागोंका संहार करनेवाला था ॥ १९ ॥

रक्तमाल्यमहादामं स्वतश्चोद्गतपावकम् ।
आदाय विपुलं शूलं शत्रुशोणितरञ्जितम् ॥ २० ॥
कुम्भकर्णो महातेजा रावणं वाक्यमब्रवीत् ।
गमिष्याम्यहमेकाकी तिष्ठत्विह बलं मम ॥ २१ ॥

उसमें लाल फूलोंकी बहुत बड़ी माला लटक रही थी और उससे आगकी चिनगारियाँ झड़ रही थीं । शत्रुओंके रक्तसे रँगे हुए उस विशाल शूलको हाथमें लेकर महातेजस्वी कुम्भकर्ण

रावणसे बोला—'मैं अकेला ही युद्धके लिये जाऊँगा । अपनी यह सारी सेना यहीं रहे ॥ २०-२१ ॥

अद्य तान् क्षुधितः क्रुद्धो भक्षयिष्यामि वानरान् ।
कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥

'आज मैं भूखा हूँ और मेरा क्रोध भी बढ़ा हुआ है । इसलिये समस्त वानरोंको भक्षण कर जाऊँगा ।' कुम्भकर्णकी यह बात सुनकर रावण बोला—॥ २२ ॥

सैन्यैः परिवृतो गच्छ शूलमुद्गरपाणिभिः ।
वानरा हि महात्मानः शूराः सुव्यवसायिनः ॥ २३ ॥
एकाकिनं प्रमत्तं वा नयेयुर्दशनैः क्षयम् ।
तस्मात् परमदुर्धर्षः सैन्यैः परिवृतो व्रज ।
रक्षसामहितं सर्वं शत्रुपक्षं निषूदय ॥ २४ ॥

'कुम्भकर्ण ! तुम हाथोंमें शूल और मुद्गर धारण करनेवाले सैनिकोंसे घिरे रहकर युद्धके लिये यात्रा करो, क्योंकि महामनस्वी वानर बड़े वीर और अत्यन्त उद्योगी हैं । वे तुम्हें अकेला या असावधान देख दाँतोंसे काट-काटकर नष्ट कर डालेंगे; इसलिये सेनासे घिरकर सब ओरसे सुरक्षित हो यहाँसे जाओ । उस दशामें तुम्हें परास्त करना शत्रुओंके लिये बहुत कठिन होगा । तुम राक्षसोंका अहित करनेवाले समस्त शत्रुदलका संहार करो' ॥ २३-२४ ॥

अथासनात् समुत्पत्य स्रजं मणिकृतान्तराम् ।
आबबन्ध महातेजाः कुम्भकर्णस्य रावणः ॥ २५ ॥

यों कहकर महातेजस्वी रावण अपने आसनसे उठा और एक सोनेकी माला, जिसके बीच-बीचमें मणियाँ पिरोयी हुई थीं, लेकर उसने कुम्भकर्णके गलेमें पहना दी ॥ २५ ॥

अङ्गदान्यङ्गुलीवेष्टान् वराण्याभरणानि च ।
हारं च शशिसंकाशमाबबन्ध महात्मनः ॥ २६ ॥

बाजूबंद, अँगूठियाँ, अच्छे-अच्छे आभूषण और चन्द्रमाके समान चमकीला हार—इन सबको उसने महाकाय कुम्भकर्णके अङ्गोंमें पहनाया ॥ २६ ॥

दिव्यानि च सुगन्धीनि माल्यदामानि रावणः ।
गात्रेषु सज्जयामास श्रोत्रयोश्चास्य कुण्डले ॥ २७ ॥

उतना ही नहीं, रावणने उसके विभिन्न अङ्गोंमें दिव्य सुगन्धित फूलोंकी मालाएँ भी बँधवा दीं और दोनों कानोंमें कुण्डल पहना दिये ॥ २७ ॥

काञ्चनाङ्गदकेयूरनिष्काभरणभूषितः ।
कुम्भकर्णो बृहत्कर्णः सुहुतोऽग्निरिवाबभौ ॥ २८ ॥

सोनेके अङ्गद, केयूर और पदक आदि आभूषणोंसे भूषित तथा घड़ेके समान विशाल कानोंवाला कुम्भकर्ण घीकी उत्तम आहुति पाकर प्रज्वलित हुई अग्निके समान प्रकाशित हो उठा ॥ २८ ॥

श्रोणीसूत्रेण महता मेचकेन व्यराजत ।
अमृतोत्पादने नद्धो भुजङ्गेनेव मन्दरः ॥ २९ ॥

उसके कटिप्रदेशमें काले रंगकी एक विशाल करधनी थी, जिससे वह अमृतकी उत्पत्तिके लिये किये गये समुद्रमन्थनके समय नागराज वासुकिसे लिपटे हुए मन्दराचलके समान शोभा पाता था ॥ २९ ॥

स काञ्चनं भारसहं निवातं
विद्युत्प्रभं दीप्तमिवात्मभासा ।
आबध्यमानः कवचं रराज
संध्याभ्रसंवीत इवाद्रिराजः ॥ ३० ॥

तदनन्तर कुम्भकर्णकी छातीमें एक सोनेका कवच बाँधा गया, जो भारी-से-भारी आघात सहन करनेमें समर्थ, अस्त्र-शस्त्रोंसे अभेद्य तथा अपनी प्रभासे विद्युत्के समान देदीप्यमान था । उसे धारण करके कुम्भकर्ण संध्याकालके लाल बादलोंसे संयुक्त गिरिराज अस्ताचलके समान सुशोभित हो रहा था ॥ ३० ॥

सर्वाभरणसर्वाङ्गः शूलपाणिः स राक्षसः ।
त्रिविक्रमकृतोत्साहो नारायण इवाबभौ ॥ ३१ ॥

सारे अङ्गोंमें सभी आवश्यक आभूषण धारण करके हाथोंमें शूल लिये वह राक्षस कुम्भकर्ण जब आगे बढ़ा, उस समय त्रिलोकीको नापनेके लिये तीन डग बढ़ानेको उत्साहित हुए भगवान् नारायण (वामन) के समान जान पड़ा ॥ ३१ ॥

भ्रातरं सम्परिष्वज्य कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
प्रणम्य शिरसा तस्मै प्रतस्थे स महाबलः ॥ ३२ ॥

भाईको हृदयसे लगाकर उसकी परिक्रमा करके उस महाबली वीरने उसे मस्तक झुकाकर प्रणाम किया । तत्पश्चात् वह युद्धके लिये चला ॥ ३२ ॥

तमाशीर्भिः प्रशस्ताभिः प्रेषयामास रावणः ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैः सैन्यैश्चापि वरायुधैः ॥ ३३ ॥

उस समय रावणने उत्तम आशीर्वाद देकर श्रेष्ठ आयुधोंसे सुसज्जित सेनाओंके साथ उसे युद्धके लिये बिदा किया । यात्राके समय उसने शङ्ख और दुन्दुभि आदि बाजे भी बजवाये ॥ ३३ ॥

तं गजैश्च तुरंगैश्च स्यन्दनैश्चाम्बुदस्वनैः ।
अनुजग्मुर्महात्मानो रथिनो रथिनां वरम् ॥ ३४ ॥

हाथी, घोड़े और मेघोंकी गर्जनाके समान घर्घराहट पैदा करनेवाले रथोंपर सवार हो अनेकानेक महामनस्वी रथी वीर रथियोंमें श्रेष्ठ कुम्भकर्णके साथ गये ॥ ३४ ॥

सर्पैरुष्ट्रैः खरैश्चैव सिंहद्विपमृगद्विजैः ।
अनुजग्मुश्च तं घोरं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ ३५ ॥

कितने ही राक्षस साँप, ऊँट, गधे, सिंह, हाथी, मृग और

पक्षियोंपर सवार हो-होकर उस भयंकर महाबली कुम्भकर्णके पीछे-पीछे गये ॥ ३५ ॥

स पुष्पवर्षैरवकीर्यमाणो
धृतातपत्रः शितशूलपाणिः ।
मदोत्कटः शोणितगन्धमत्तो
विनिर्ययौ दानवदेवशत्रुः ॥ ३६ ॥

उस समय उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा हो रही थी। सिरपर श्वेत छत्र तना हुआ था और उसने हाथमें तीखा त्रिशूल ले रक्खा था। इस प्रकार देवताओं और दानवोंका शत्रु तथा रक्तकी गन्धसे मतवाला कुम्भकर्ण, जो स्वाभाविक मदसे भी उन्मत्त हो रहा था, युद्धके लिये निकला ॥ ३६ ॥

पदातयश्च बहवो महानादा महाबलाः ।
अन्वयू राक्षसा भीमा भीमाक्षाः शस्त्रपाणयः ॥ ३७ ॥

उसके साथ बहुत-से पैदल राक्षस भी गये, जो बड़े बलवान्, जोर-जोरसे गर्जना करनेवाले, भीषण नेत्रधारी और भयानक रूपवाले थे। उन सबके हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र थे ॥ ३७ ॥

रक्ताक्षाः सुबहुव्यामा नीलाञ्जनचयोपमाः ।
शूलानुद्यम्य खड्गांश्च निशितांश्च परश्वधान् ॥ ३८ ॥
भिन्दिपालांश्च परिघान् गदाश्च मुसलानि च ।
तालस्कन्धांश्च विपुलान् क्षेपणीयान् दुरासदान् ॥ ३९ ॥

उनके नेत्र रोषसे लाल हो रहे थे। वे सभी कई व्याम[1] ऊँचे और काले कोयलेके ढेरकी भाँति काले थे। उन्होंने अपने हाथोंमें शूल, तलवार, तीखी धारवाले फरसे, भिन्दिपाल, परिघ, गदा, मुसल, बड़े-बड़े ताड़के वृक्षोंके तने और जिन्हें कोई काट न सके, ऐसी गुलेलें ले रक्खी थीं ॥ ३८-३९ ॥

अथान्यद्वपुरादाय दारुणं घोरदर्शनम् ।
निष्पपात महातेजाः कुम्भकर्णो महाबलः ॥ ४० ॥

तदनन्तर महातेजस्वी महाबली कुम्भकर्णने बड़ा उग्र रूप धारण किया, जिसे देखनेपर भय मालूम होता था। ऐसा रूप धारण करके वह युद्धके लिये चल पड़ा ॥ ४० ॥

धनुःशतपरीणाहः स षट्शतसमुच्छ्रितः ।
रौद्रः शकटचक्राक्षो महापर्वतसंनिभः ॥ ४१ ॥

उस समय वह छः सौ धनुषके बराबर विस्तृत और सौ धनुषके बराबर ऊँचा हो गया। उसकी आँखें दो गाड़ीके पहियोंके समान जान पड़ती थीं। वह विशाल पर्वतके समान भयंकर दिखायी देता था ॥ ४१ ॥

संनिपत्य च रक्षांसि दग्धशैलोपमो महान् ।
कुम्भकर्णो महावक्त्रः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४२ ॥

पहले तो उसने राक्षस-सेनाकी व्यूह-रचना की। फिर दावानलसे दग्ध हुए पर्वतके समान महाकाय कुम्भकर्ण अपना विशाल मुख फैलाकर अट्टहास करता हुआ इस प्रकार बोला—॥ ४२ ॥

अद्य वानरमुख्यानां तानि यूथानि भागशः ।
निर्दहिष्यामि संक्रुद्धः पतङ्गानिव पावकः ॥ ४३ ॥

'राक्षसो! जैसे आग पतंगोंको जलाती है, उसी प्रकार मैं भी कुपित होकर आज प्रधान-प्रधान वानरोंके एक-एक झुंडको भस्म कर डालूँगा ॥ ४३ ॥

नापराध्यन्ति मे कामं वानरा वनचारिणः ।
जातिरस्मद्विधानां सा पुरोद्यानविभूषणम् ॥ ४४ ॥

'यों तो वनमें विचरनेवाले बेचारे वानर स्वेच्छासे मेरा कोई अपराध नहीं कर रहे हैं; अतः वे वधके योग्य नहीं हैं। वानरोंकी जाति तो हम-जैसे लोगोंके नगरोद्यानका आभूषण है॥

पुररोधस्य मूलं तु राघवः सहलक्ष्मणः ।
हते तस्मिन् हतं सर्वं तं वधिष्यामि संयुगे ॥ ४५ ॥

'वास्तवमें लङ्कापुरीपर घेरा डालनेके प्रधान कारण हैं—लक्ष्मणसहित राम। अतः सबसे पहले मैं उन्हींको युद्धमें मारूँगा। उनके मारे जानेपर सारी वानर-सेना स्वतः मरी हुई-सी हो जायगी' ॥ ४५ ॥

एवं तस्य ब्रुवाणस्य कुम्भकर्णस्य राक्षसाः ।
नादं चक्रुर्महाघोरं कम्पयन्त इवार्णवम् ॥ ४६ ॥

कुम्भकर्णके ऐसा कहनेपर राक्षसोंने समुद्रको कम्पित-सा करते हुए बड़ी भयानक गर्जना की ॥ ४६ ॥

तस्य निष्पततस्तूर्णं कुम्भकर्णस्य धीमतः ।
बभूवुर्घोररूपाणि निमित्तानि समन्ततः ॥ ४७ ॥

बुद्धिमान् राक्षस कुम्भकर्णके रणभूमिकी ओर पैर बढ़ाते ही चारों ओर घोर अपशकुन होने लगे ॥ ४७ ॥

उल्काशनियुता मेघा बभूवुर्गर्दभारुणाः ।
ससागरवना चैव वसुधा समकम्पत ॥ ४८ ॥

गदहोंके समान भूरे रंगवाले बादल घिर आये। साथ ही उल्कापात हुआ और बिजलियाँ गिरीं। समुद्र और वनोंसहित सारी पृथ्वी काँपने लगी ॥ ४८ ॥

घोररूपाः शिवा नेदुः सज्वालकवलैर्मुखैः ।
मण्डलान्यपसव्यानि बबन्धुश्च विहंगमाः ॥ ४९ ॥

भयानक गीदड़ियाँ मुँहसे आग उगलती हुई अमङ्गल-सूचक बोली बोलने लगीं। पक्षी मण्डल बाँधकर उसकी दक्षिणावर्त परिक्रमा करने लगे ॥ ४९ ॥

---

[1] लंबाईका एक नाप। दोनों भुजाओंको दोनों ओर फैलानेपर एक हाथकी उँगलियोंके सिरेसे दूसरे हाथकी उँगलियोंके सिरेतक जितनी दूरी होती है, उसे 'व्याम' कहते हैं।

निष्पपात च गृध्रोऽस्य शूले वै पथि गच्छतः ।
प्रास्फुरन्नयनं चास्य सव्यो बाहुरकम्पत ॥ ५० ॥

रास्तेमें चलते समय कुम्भकर्णके शूलपर गीध आ बैठा। उसकी बायीं आँख फड़कने लगी और बायीं भुजा कम्पित होने लगी ॥ ५० ॥

निष्पपात तदा चोल्का ज्वलन्ती भीमनिःस्वना ।
आदित्यो निष्प्रभश्चासीन्न वाति च सुखोऽनिलः ॥५१॥

फिर उसी समय जलती हुई उल्का भयंकर आवाजके साथ गिरी। सूर्यकी प्रभा क्षीण हो गयी और हवा इतने वेगसे चल रही थी कि सुखद नहीं जान पड़ती थी ॥ ५१ ॥

अचिन्तयन् महोत्पातानुदितान् रोमहर्षणान् ।
निर्ययौ कुम्भकर्णस्तु कृतान्तबलचोदितः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार रोंगटे खड़े कर देनेवाले बहुत-से बड़े-बड़े उत्पात प्रकट हुए; किंतु उनकी कुछ भी परवा न करके कालकी शक्तिसे प्रेरित हुआ कुम्भकर्ण युद्धके लिये निकल पड़ा ॥ ५२ ॥

स लङ्घयित्वा प्राकारं पद्भ्यां पर्वतसंनिभः ।
ददर्शाभ्रघनप्रख्यं वानरानीकमद्भुतम् ॥ ५३ ॥

वह पर्वतके समान ऊँचा था। उसने लङ्काकी चहारदीवारीको दोनों पैरोंसे लाँघकर देखा कि वानरोंकी अद्भुत सेना मेघोंकी घनीभूत घटाके समान छा रही है ॥ ५३ ॥

ते दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं वानराः पर्वतोपमम् ।
वायुनुन्ना इव घना ययुः सर्वा दिशस्तदा ॥ ५४ ॥

उस पर्वताकार श्रेष्ठ राक्षसको देखते ही समस्त वानर हवासे उड़ाये गये बादलोंके समान तत्काल सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग चले ॥ ५४ ॥

तद् वानरानीकमतिप्रचण्डं
दिशो द्रवद्भिन्नमिवाभ्रजालम् ।
स कुम्भकर्णः समवेक्ष्य हर्षा-
न्ननाद भूयो घनवद्घनाभः ॥ ५५ ॥

छिन्न-भिन्न हुए बादलोंके समूहकी भाँति उस अतिशय प्रचण्ड वानर-वाहिनीको सम्पूर्ण दिशाओंमें भागती देख मेघोंके समान काला कुम्भकर्ण बड़े हर्षके साथ सजल जलधरके सदृश गम्भीर स्वरमें बारंबार गर्जना करने लगा ॥ ५५ ॥

ते तस्य घोरं निनदं निशम्य
यथा निनादं दिवि वारिदस्य ।
पेतुर्धरण्यां बहवः प्लवङ्गा
निकृत्तमूला इव शालवृक्षाः ॥ ५६ ॥

आकाशमें जैसी मेघोंकी गर्जना होती है, उसीके समान उस राक्षसका घोर सिंहनाद सुनकर बहुत-से वानर जड़से कटे हुए सालवृक्षोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५६ ॥

विपुलपरिघवान् स कुम्भकर्णो
रिपुनिधनाय विनिःसृतो महात्मा ।
कपिगणभयमाददत् सुभीमं
प्रभुरिव किंकरदण्डवान् युगान्ते ॥ ५७ ॥

महाकाय कुम्भकर्णने शूलकी ही भाँति अपने एक हाथमें विशाल परिघ भी ले रक्खा था। वह वानर-समूहोंको अत्यन्त घोर भय प्रदान करता हुआ प्रलयकालमें संहारके साधनभूत कालदण्डोंसे युक्त भगवान् कालरुद्रके समान शत्रुओंका विनाश करनेके लिये पुरीसे बाहर निकला ॥ ५७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पैंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः

कुम्भकर्णके भयसे भागे हुए वानरोंका अंगदद्वारा प्रोत्साहन और आवाहन, कुम्भकर्णद्वारा वानरोंका संहार, पुनः वानर-सेनाका पलायन और अंगदका उसे समझा-बुझाकर लौटाना

स लङ्घयित्वा प्राकारं गिरिकूटोपमो महान् ।
निर्ययौ नगरात् तूर्णं कुम्भकर्णो महाबलः ॥ १ ॥

महाबली कुम्भकर्ण पर्वत-शिखरके समान ऊँचा और विशालकाय था। वह परकोटा लाँघकर बड़ी तेजीके साथ नगरसे बाहर निकला ॥ १ ॥

ननाद च महानादं समुद्रमभिनादयन् ।
जनयन्निव निर्घातान् विधमन्निव पर्वतान् ॥ २ ॥

बाहर आकर पर्वतोंको कँपाता और समुद्रको गुँजाता हुआ-सा वह उच्च स्वरसे गम्भीर नाद करने लगा। उसकी वह गर्जना बिजलीकी कड़कको भी मात कर रही थी ॥ २ ॥

तमवध्यं मघवता यमेन वरुणेन वा ।
प्रेक्ष्य भीमाक्षमायान्तं वानरा विप्रदुद्रुवुः ॥ ३ ॥

इन्द्र, यम अथवा वरुणके द्वारा भी उसका वध होना असम्भव था। उस भयानक नेत्रवाले निशाचरको आते देख सभी वानर भाग खड़े हुए ॥ ३ ॥

तांस्तु विप्रद्रुतान् दृष्ट्वा राजपुत्रोऽङ्गदोऽब्रवीत् ।

नलं नीलं गवाक्षं च कुमुदं च महाबलम् ॥ ४ ॥

उन सबको भागते देख राजकुमार अंगदने नल, नील, गवाक्ष और महाबली कुमुदको सम्बोधित करके कहा—॥ ४ ॥

आत्मनस्तानि विस्मृत्य वीर्याण्यभिजनानि च ।
क्व गच्छत भयत्रस्ताः प्राकृता हरयो यथा ॥ ५ ॥

‘वानर वीरो ! अपने उत्तम कुलों और उन अलौकिक पराक्रमोंको भुलाकर साधारण बंदरोंकी भाँति भयभीत हो तुम कहाँ भागे जा रहे हो ? ॥ ५ ॥

साधु सौम्या निवर्तध्वं किं प्राणान् परिरक्षथ ।
नालं युद्धाय वै रक्षो महतीयं विभीषिका ॥ ६ ॥

‘सौम्य स्वभाववाले बहादुरो ! अच्छा होगा कि तुम लौट आओ । क्यों जान बचानेके फेरमें पड़े हो ? यह राक्षस हमारे साथ युद्ध करनेकी शक्ति नहीं रखता । यह तो इसकी बड़ी भारी विभीषिका है—इसने मायासे विशाल रूप धारण करके तुम्हें डरानेके लिये व्यर्थ घटाटोप फैला रक्खा है ॥ ६ ॥

महतीमुत्थितामेनां राक्षसानां विभीषिकाम् ।
विक्रमाद् विधमिष्यामो निवर्तध्वं प्लवङ्गमाः ॥ ७ ॥

‘अपने सामने उठी हुई राक्षसोंकी इस बड़ी भारी विभीषिकाको हम अपने पराक्रमसे नष्ट कर देंगे । अतः वानर-वीरो ! लौट आओ’ ॥ ७ ॥

कृच्छ्रेण तु समाश्वस्य संगम्य च ततस्ततः ।
वृक्षान् गृहीत्वा हरयः सम्प्रतस्थू रणाजिरे ॥ ८ ॥

तब वानरोंने बड़ी कठिनाईसे धैर्य धारण किया और जहाँ-तहाँसे एकत्र हो हाथोंमें वृक्ष लेकर वे रणभूमिकी ओर चले ॥ ८ ॥

ते निवर्त्य तु संरब्धाः कुम्भकर्णं वनौकसः ।
निजघ्नुः परमक्रुद्धाः समदा इव कुञ्जराः ॥ ९ ॥
प्रांशुभिर्गिरिशृङ्गैश्च शिलाभिश्च महाबलाः ।
पादपैः पुष्पिताग्रैश्च हन्यमानो न कम्पते ॥ १० ॥

लौटनेपर वे महाबली वानर मतवाले हाथियोंकी भाँति अत्यन्त क्रोध और रोषसे भर गये और कुम्भकर्णके ऊपर ऊँचे-ऊँचे पर्वतीय-शिखरों, शिलाओं तथा खिले हुए वृक्षोंसे प्रहार करने लगे । उनकी मार खाकर भी कुम्भकर्ण विचलित नहीं होता था ॥ ९-१० ॥

तस्य गात्रेषु पतिता भिद्यन्ते बहवः शिलाः ।
पादपाः पुष्पिताग्राश्च भग्नाः पेतुर्महीतले ॥ ११ ॥

उसके अङ्गोंपर गिरी हुई बहुतेरी शिलाएँ चूर-चूर हो जाती थीं और वे खिले हुए वृक्ष भी उसके शरीरसे टकराते ही टूक-टूक होकर पृथ्वीपर गिर पड़ते थे ॥ ११ ॥

सोऽपि सैन्यानि संक्रुद्धो वानराणां महौजसाम् ।
ममन्थ परमायत्तो वनान्यग्निरिवोत्थितः ॥ १२ ॥

उधर क्रोधसे भरा हुआ कुम्भकर्ण भी अत्यन्त सावधान हो महाबली वानरोंकी सेनाओंको उसी प्रकार रौंदने लगा, जैसे बढ़ा हुआ दावानल बड़े-बड़े जंगलोंको जलाकर भस्म कर देता है ॥ १२ ॥

लोहितार्द्रास्तु बहवः शेरते वानरर्षभाः ।
निरस्ताः पतिता भूमौ ताम्रपुष्पा इव द्रुमाः ॥ १३ ॥

बहुत-से श्रेष्ठ वानर खूनसे लथपथ हो धरतीपर सो गये । जिन्हें उठाकर उसने ऊपर फेंक दिया, वे लाल फूलोंसे लदे हुए वृक्षोंकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १३ ॥

लङ्घयन्तः प्रधावन्तो वानरा नावलोकयन् ।
केचित् समुद्रे पतिताः केचिद् गगनमाश्रिताः ॥ १४ ॥

वानर ऊँची-नीची भूमिको लाँघते हुए जोर-जोरसे भागने लगे । वे आगे-पीछे और अगल-बगलमें कहीं भी दृष्टि नहीं डालते थे । कोई समुद्रमें गिर पड़े और कोई आकाशमें ही उड़ते रह गये ॥ १४ ॥

वध्यमानास्तु ते वीरा राक्षसेन च लीलया ।
सागरं येन ते तीर्णाः पथा तेनैव दुद्रुवुः ॥ १५ ॥

उस राक्षसने खेल-खेलमें ही जिन्हें मारा, वे वीर वानर जिस मार्गसे समुद्र पार करके लङ्कामें आये थे, उसी मार्गसे भागने लगे ॥ १५ ॥

ते स्थलानि तदा निम्नं विवर्णवदना भयात् ।
ऋक्षा वृक्षान् समारूढाः केचित् पर्वतमाश्रिताः॥ १६ ॥

भयके मारे वानरोंके मुखकी कान्ति फीकी पड़ गयी । वे नीची जगह देख-देखकर भागने और छिपने लगे । कितने ही रीछ वृक्षोंपर जा चढ़े और कितनोंने पर्वतोंकी शरण ली ॥

ममज्जुरर्णवे केचिद् गुहाः केचित् समाश्रिताः ।
निपेतुः केचिदपरे केचिन्नैवावतस्थिरे ।
केचिद् भूमौ निपतिताः केचित् सुप्ता मृता इव ॥ १७ ॥

कितने ही वानर और भालू समुद्रमें डूब गये । कितनोंने पर्वतोंकी गुफाओंका आश्रय लिया । कोई गिरे, कोई एक स्थानपर खड़े न रह सके, इसलिये भागे । कुछ धराशायी हो गये और कोई-कोई मुर्दोंके समान साँस रोककर पड़ गये ॥

तान् समीक्ष्याङ्गदो भग्नान् वानरानिदमब्रवीत् ।
अवतिष्ठत युध्यामो निवर्तध्वं प्लवंगमाः ॥ १८ ॥

उन वानरोंको भागते देख अंगदने इस प्रकार कहा—‘वानरवीरो ! ठहरो, लौट आओ । हम सब मिलकर युद्ध करेंगे ॥ १८ ॥

भग्नानां वो न पश्यामि परिक्रम्य महीमिमाम् ।
स्थानं सर्वे निवर्तध्वं किं प्राणान् परिरक्षथ ॥ १९ ॥

'यदि तुम भाग गये तो सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करके भी कहीं तुम्हें ठहरनेके लिये स्थान मिल सके, ऐसा मुझे नहीं दिखायी देता (सुग्रीवकी आज्ञाके बिना कहीं भी जानेपर तुम जीवित नहीं बच सकोगे)। इसलिये सब लोग लौट आओ। क्यों अपने ही प्राण बचानेकी फिक्रमें पड़े हो? ॥१९॥

निरायुधानां क्रमतामसङ्गगतिपौरुषाः।
दारा ह्युपहसिष्यन्ति स वै घातः सुजीवताम् ॥ २० ॥

'तुम्हारे वेग और पराक्रमको कोई रोकनेवाला नहीं है। यदि तुम हथियार डालकर भाग जाओगे तो तुम्हारी स्त्रियाँ ही तुमलोगोंका उपहास करेंगी और वह उपहास जीवित रहनेपर भी तुम्हारे लिये मृत्युके समान दुःखदायी होगा ॥

कुलेषु जाताः सर्वेऽस्मिन् विस्तीर्णेषु महत्सु च।
क्व गच्छत भयत्रस्ताः प्राकृता हरयो यथा।
अनार्याः खलु यद्भीतास्त्यक्त्वा वीर्यं प्रधावत ॥ २१ ॥

'तुम सब लोग महान् और बहुत दूरतक फैले हुए श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुए हो। फिर साधारण वानरोंकी भाँति भयभीत होकर कहाँ भागे जा रहे हो? यदि तुम पराक्रम छोड़कर भयके कारण भागते हो तो निश्चय ही अनार्य समझे जाओगे ॥ २१ ॥

विकत्थनानि वो यानि भवद्भिर्जनसंसदि।
तानि वः क्व नु यातानि सोदग्राणि हितानि च ॥ २२ ॥

'तुम जन-समुदायमें बैठकर जो डींग हाँका करते थे कि हम बड़े प्रचण्ड वीर हैं और स्वामीके हितैषी हैं, तुम्हारी वे सब बातें आज कहाँ चली गयीं? ॥ २२ ॥

भीरोः प्रवादाः श्रूयन्ते यस्तु जीवति धिक्कृतः।
मार्गः सत्पुरुषैर्जुष्टः सेव्यतां त्यज्यतां भयम् ॥ २३ ॥

'जो सत्पुरुषोंद्वारा धिक्कृत होकर भी जीवन धारण करता है; उसके उस जीवनको धिक्कार है, इस तरहके निन्दात्मक वचन कायरोंको सदा सुनने पड़ते हैं। इसलिये तुमलोग भय छोड़ो और सत्पुरुषोंद्वारा सेवित मार्गका आश्रय लो ॥ २३ ॥

शयामहे वा निहताः पृथिव्यामल्पजीविताः।
प्राप्नुयामो ब्रह्मलोकं दुष्प्रापं च कुयोधिभिः ॥ २४ ॥

'यदि हमलोग अल्पजीवी हों और शत्रुके द्वारा मारे जाकर रणभूमिमें सो जायँ तो हमें उस ब्रह्मलोककी प्राप्ति होगी, जो कुयोगियोंके लिये परम दुर्लभ है ॥ २४ ॥

अवाप्नुयाम कीर्तिं वा निहत्वा शत्रुमाहवे।
निहता वीरलोकस्य भोक्ष्यामो वसु वानराः ॥ २५ ॥

'वानरो! यदि युद्धमें हमने शत्रुको मार गिराया तो हमें उत्तम कीर्ति मिलेगी और यदि स्वयं ही मारे गये तो हम वीरलोकके वैभवका उपभोग करेंगे ॥ २५ ॥

न कुम्भकर्णः काकुत्स्थं दृष्ट्वा जीवन् गमिष्यति।
दीप्यमानमिवासाद्य पतङ्गो ज्वलनं यथा ॥ २६ ॥

'श्रीरघुनाथजीके सामने जानेपर कुम्भकर्ण जीवित नहीं लौट सकेगा; ठीक उसी तरह, जैसे प्रज्वलित अग्निके पास पहुँचकर पतङ्ग भस्म हुए बिना नहीं रह सकता ॥ २६ ॥

पलायनेन चोद्दिष्टाः प्राणान् रक्षामहे वयम्।
एकेन बहवो भग्ना यशो नाशं गमिष्यति ॥ २७ ॥

'यदि हमलोग प्रख्यात वीर होकर भी भागकर अपने प्राण बचायेंगे और अधिक संख्यामें होकर भी एक योद्धाका सामना नहीं कर सकेंगे तो हमारा यश मिट्टीमें मिल जायगा' ॥

एवं ब्रुवाणं तं शूरमङ्गदं कनकाङ्गदम्।
द्रवमाणास्ततो वाक्यमूचुः शूरविगर्हितम् ॥ २८ ॥

सोनेका बाजूबंद धारण करनेवाले शूरवीर अङ्गद जब ऐसा कह रहे थे, उस समय उन भागते हुए वानरोंने उन्हें ऐसा उत्तर दिया, जिसकी शौर्य-सम्पन्न योद्धा सदा निन्दा करते हैं ॥ २८ ॥

कृतं नः कदनं घोरं कुम्भकर्णेन रक्षसा।
न स्थानकालो गच्छामो दयितं जीवितं हि नः ॥ २९ ॥

वे बोले—'राक्षस कुम्भकर्णने हमारा घोर संहार मचा रखा है; अतः यह ठहरनेका समय नहीं है। हम जा रहे हैं; क्योंकि हमें अपनी जान प्यारी है' ॥ २९ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं सर्वे ते भेजिरे दिशः।
भीमं भीमाक्षमायान्तं दृष्ट्वा वानरयूथपाः ॥ ३० ॥

इतनी बात कहकर भयानक नेत्रवाले भीषण कुम्भकर्णको आते देख उन सब वानर-यूथपतियोंने विभिन्न दिशाओंकी शरण ली ॥ ३० ॥

द्रवमाणास्तु ते वीरा अङ्गदेन वलीमुखाः।
सान्त्वनैश्चानुमानैश्च ततः सर्वे निवर्तिताः ॥ ३१ ॥

तब उन भागते हुए सभी वीर वानरोंको अङ्गदने सान्त्वना और आदर-सम्मानके द्वारा लौटाया ॥ ३१ ॥

प्रहर्षमुपनीताश्च वालिपुत्रेण धीमता।
आज्ञाप्रतीक्षास्तस्थुश्च सर्वे वानरयूथपाः ॥ ३२ ॥

बुद्धिमान् वालिपुत्रने उन सबको प्रसन्न कर लिया। वे सब वानरयूथपति सुग्रीवकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते हुए खड़े हो गये ॥ ३२ ॥

ऋषभशरभमैन्दधूम्रनीलाः
कुमुदसुषेणगवाक्षरम्भताराः।
द्विविदपनसवायुपुत्रमुख्याः
स्त्वरिततराभिमुखं रणं प्रयाताः ॥ ३३ ॥

तदनन्तर ऋषभ, शरभ, मैन्द, धूम्र, नील, कुमुद, सुषेण, गवाक्ष, रम्भ, तार, द्विविद, पनस और वायुपुत्र हनुमान् आदि श्रेष्ठ वानर-वीर तुरंत ही कुम्भकर्णका सामना करनेके लिये रणक्षेत्रकी ओर बढ़े ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें छाछठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः

कुम्भकर्णका भयंकर युद्ध और श्रीरामके हाथसे उसका वध

ते निवृत्ता महाकायाः श्रुत्वाङ्गदवचस्तदा ।
नैष्ठिकीं बुद्धिमास्थाय सर्वे संग्रामकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥

अङ्गदके पूर्वोक्त वचन सुनकर वे सब विशालकाय वानर मरने-मारनेका निश्चय करके युद्धकी इच्छासे लौटे थे ॥ १ ॥

समुदीरितवीर्यास्ते समारोपितविक्रमाः ।
पर्यवस्थापिता वाक्यैरङ्गदेन बलीयसा ॥ २ ॥

महाबली अङ्गदने उनके पूर्व-पराक्रमोंका वर्णन करके अपने वचनोंद्वारा उन्हें सुदृढ़ एवं बल-विक्रमसम्पन्न बनाकर खड़ा कर दिया था ॥ २ ॥

प्रयाताश्च गता हर्षं मरणे कृतनिश्चयाः ।
चक्रुः सुतुमुलं युद्धं वानरास्त्यक्तजीविताः ॥ ३ ॥

अब वे वानर मरनेका निश्चय करके बड़े हर्षके साथ आगे बढ़े और जीवनका मोह छोड़कर अत्यन्त भयंकर युद्ध करने लगे ॥ ३ ॥

अथ वृक्षान् महाकायाः सानूनि सुमहान्ति च ।
वानरास्तूर्णमुद्यम्य कुम्भकर्णमभिद्रवन् ॥ ४ ॥

उन विशालकाय वानर-वीरोंने वृक्ष तथा बड़े-बड़े पर्वत-शिखर लेकर तुरंत ही कुम्भकर्णपर धावा किया ॥ ४ ॥

कुम्भकर्णः सुसंक्रुद्धो गदामुद्यम्य वीर्यवान् ।
धर्षयन् स महाकायः समन्ताद् व्यक्षिपद् रिपून् ॥ ५ ॥

परंतु अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए विक्रमशाली महाकाय कुम्भकर्णने गदा उठाकर शत्रुओंको घायल करके उन्हें चारों ओर बिखेर दिया ॥ ५ ॥

शतानि सप्त चाष्टौ च सहस्राणि च वानराः ।
प्रकीर्णाः शेरते भूमौ कुम्भकर्णेन ताडिताः ॥ ६ ॥

कुम्भकर्णकी मार खाकर आठ हजार सात सौ वानर तत्काल धराशायी हो गये ॥ ६ ॥

षोडशाष्टौ च दश च विंशत्त्रिंशत्तथैव च ।
परिक्षिप्य च बाहुभ्यां खादन् स परिधावति ।
भक्षयन् भृशसंक्रुद्धो गरुडः पन्नगानिव ॥ ७ ॥

वह सोलह, आठ, दस, बीस और तीस-तीस वानरोंको अपनी दोनों भुजाओंसे समेट लेता और जैसे गरुड़ सर्पोंको खाता है, उसी प्रकार अत्यन्त क्रोधपूर्वक उनका भक्षण करता हुआ सब ओर दौड़ता-फिरता था ॥ ७ ॥

कृच्छ्रेण च समाश्वस्ताः संगम्य च ततस्ततः ।
वृक्षाद्रिहस्ता हरयस्तस्थुः संग्राममूर्धनि ॥ ८ ॥

उस समय वानर बड़ी कठिनाईसे धैर्य धारण करके इधर-उधरसे एकत्र हुए और वृक्ष तथा पर्वतशिखर हाथमें लेकर संग्रामभूमिमें डटे रहे ॥ ८ ॥

ततः पर्वतमुत्पाट्य द्विविदः प्लवगर्षभः ।
दुद्राव गिरिशृङ्गाभं विलम्ब इव तोयदः ॥ ९ ॥

तत्पश्चात् मेघके समान विशाल शरीरवाले वानरशिरोमणि द्विविदने एक पर्वत उखाड़कर पर्वतशिखरके समान ऊँचे कुम्भकर्णपर आक्रमण किया ॥ ९ ॥

तं समुत्पाट्य चिक्षेप कुम्भकर्णाय वानरः ।
तमप्राप्य महाकायं तस्य सैन्येऽपतत् ततः ॥ १० ॥

उस पर्वतको उखाड़कर द्विविदने कुम्भकर्णके ऊपर फेंका; किंतु वह उस विशालकाय राक्षसतक न पहुँचकर उसकी सेनामें जा गिरा ॥ १० ॥

ममर्दाश्वान् गजांश्चापि रथांश्चापि गजोत्तमान् ।
तानि चान्यानि रक्षांसि एवं चान्यद्गिरेः शिरः ॥ ११ ॥

उस पर्वत-शिखरने राक्षससेनाके कितने ही घोड़ों, हाथियों, रथों, गजराजों तथा दूसरे-दूसरे राक्षसोंको भी कुचल डाला ॥

तच्छैलवेगाभिहतं हताश्वं हतसारथिम् ।
रक्षसां रुधिरक्लिन्नं बभूवायोधनं महत् ॥ १२ ॥

उस समय वह महान् युद्धस्थल, जिसमें शैल-शिखरके वेगसे कितने ही घोड़े और सारथि कुचल गये थे, राक्षसोंके रुधिरसे गीला हो गया ॥ १२ ॥

रथिनो वानरेन्द्राणां शरैः कालान्तकोपमैः ।
शिरांसि नर्दतां जह्रुः सहसा भीमनिःस्वनाः ॥ १३ ॥

तब भयानक सिंहनाद करनेवाले राक्षस-सेनाके रथियोंने प्रलयकालीन यमराजके समान भयंकर बाणोंसे गर्जते हुए वानर-यूथपतियोंके मस्तकोंको सहसा काटना आरम्भ किया ॥

वानराश्च महात्मानः समुत्पाट्य महाद्रुमान् ।
रथानश्वान् गजानुष्ट्रान् राक्षसानभ्यसूदयन् ॥ १४ ॥

महामनस्वी वानर भी बड़े-बड़े पेड़ उखाड़कर शत्रुसेनाके रथ, घोड़े, हाथी, ऊँट और राक्षसोंका संहार करने लगे १४

हनूमाञ्शैलशृङ्गाणि शिलाश्च विविधान् द्रुमान् ।
ववर्ष कुम्भकर्णस्य शिरस्यम्बरमास्थितः ॥ १५ ॥

हनुमान्‌जी आकाशमें पहुँचकर कुम्भकर्णके मस्तकपर पर्वत-शिखरों, शिलाओं और नाना प्रकारके वृक्षोंकी वर्षा करने लगे ॥ १५ ॥

तानि पर्वतशृङ्गाणि शूलेन स बिभेद ह ।
बभञ्ज वृक्षवर्षं च कुम्भकर्णो महाबलः ॥ १६ ॥

परंतु महाबली कुम्भकर्णने अपने शूलसे उन पर्वतशिखरोंको फोड़ डाला और बरसाये जानेवाले वृक्षोंके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ १६ ॥

ततो हरीणां तदनीकमुग्रं
दुद्राव शूलं निशितं प्रगृह्य ।
तस्थौ स तस्यापततः परस्ता-
न्महीधराग्रं हनुमान् प्रगृह्य ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् उसने अपने तीक्ष्ण शूलको हाथमें लेकर वानरोंकी उस भयंकर सेनापर आक्रमण किया । यह देख हनुमान्‌जी एक पर्वत-शिखर हाथमें लेकर उस आक्रमणकारी राक्षसका सामना करनेके लिये खड़े हो गये ॥ १७ ॥

✓**स कुम्भकर्णं कुपितो जघान**
वेगेन शैलोत्तमभीमकायम् ।
संचुक्षुभे तेन तदाभिभूतो
मेदार्द्रगात्रो रुधिरावसिक्तः ॥ १८ ॥

उन्होंने कुपित हो श्रेष्ठ पर्वतके समान भयानक शरीरवाले कुम्भकर्णपर बड़े वेगसे प्रहार किया । उनकी उस मारसे कुम्भकर्ण व्याकुल हो उठा । उसका सारा शरीर चर्बीसे गीला हो गया और वह रक्तसे नहा गया ॥ १८ ॥

स शूलमाविध्य तडित्प्रकाशं
गिरिं यथा प्रज्वलिताग्निशृङ्गम् ।
बाह्वन्तरे मारुतिमाजघान
गुहोऽचलं क्रौञ्चमिवोग्रशक्त्या ॥ १९ ॥

फिर तो उसने भी बिजलीके समान चमकते हुए शूलको घुमाकर जिसके शिखरपर आग जल रही हो, उस पर्वतके समान हनुमान्‌जीकी छातीमें उसी तरह मारा, जैसे स्वामी कार्तिकेयने अपनी भयानक शक्तिसे क्रौञ्चपर्वतपर आघात किया था ॥ १९ ॥

✓**स शूलनिर्भिन्नमहाभुजान्तरः**
प्रविह्वलः शोणितमुद्वमन् मुखात् ।
ननाद भीमं हनुमान् महाहवे
युगान्तमेघस्तनितस्वनोपमम् ॥ २० ॥

उस महासमरमें शूलकी चोटसे हनुमान्‌जीकी दोनों भुजाओंके बीचका भाग (वक्षःस्थल) विदीर्ण हो गया । वे व्याकुल हो गये और मुँहसे रक्त वमन करने लगे । उस समय पीड़ाके मारे उन्होंने बड़ा भयंकर आर्तनाद किया, जो प्रलयकालके मेघोंकी गर्जनाके समान जान पड़ता था ॥ २० ॥

ततो विनेदुः सहसा प्रहृष्टा
रक्षोगणास्तं व्यथितं समीक्ष्य ।
प्लवंगमास्तु व्यथिता भयार्ताः
प्रदुद्रुवुः संयति कुम्भकर्णात् ॥ २१ ॥

हनुमान्‌जीको आघातसे पीड़ित देख राक्षसोंके हर्षकी सीमा न रही । वे सहसा जोर-जोरसे कोलाहल करने लगे । इधर कुम्भकर्णके भयसे पीड़ित एवं व्यथित हुए वानर युद्धभूमि छोड़कर भागने लगे ॥ २१ ॥

ततस्तु नीलो बलवान् पर्यवस्थापयन् बलम् ।
प्रविचिक्षेप शैलाग्रं कुम्भकर्णाय धीमते ॥ २२ ॥

यह देख बलवान् नीलने वानरसेनाको धैर्य बँधाने एवं सुस्थिर रखनेके लिये बुद्धिमान् कुम्भकर्णपर एक पर्वतका शिखर चलाया ॥ २२ ॥

तदापतन्तं सम्प्रेक्ष्य मुष्टिनाभिजघान ह ।
मुष्टिप्रहाराभिहतं तच्छैलाग्रं व्यशीर्यत ।
सविस्फुलिङ्गं सज्वालं निपपात महीतले ॥ २३ ॥

उस पर्वतशिखरको अपने ऊपर आता देख कुम्भकर्णने उसपर मुक्केसे आघात किया । उसका मुक्का लगते ही वह शिखर चूर-चूर होकर बिखर गया और आगकी चिनगारियाँ तथा लपटें निकालता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २३ ॥

ऋषभः शरभो नीलो गवाक्षो गन्धमादनः ।
पञ्च वानरशार्दूलाः कुम्भकर्णमुपाद्रवन् ॥ २४ ॥

इसके बाद ऋषभ, शरभ, नील, गवाक्ष और गन्धमादन—इन पाँच प्रमुख वानरवीरोंने कुम्भकर्णपर धावा किया ॥ २४॥

शैलैर्वृक्षैस्तलैः पादैर्मुष्टिभिश्च महाबलाः ।
कुम्भकर्णं महाकायं निजघ्नुः सर्वतो युधि ॥ २५ ॥

वे महाबली वीर चारों ओरसे घेरकर युद्धस्थलमें महाकाय कुम्भकर्णको पर्वतों, वृक्षों, थप्पड़ों, लातों और मुक्कोंसे मारने लगे ॥ २५ ॥

स्पर्शानिव प्रहारांस्तान् वेदयानो न विव्यथे ।
ऋषभं तु महावेगं बाहुभ्यां परिषस्वजे ॥ २६ ॥

यद्यपि ये लोग बड़े जोर-जोरसे प्रहार करते थे, तथापि उसे ऐसा जान पड़ता था मानो कोई धीरेसे छू रहा हो । अतः इनकी मारसे उसे तनिक भी पीड़ा नहीं हुई । उसने महान् वेगशाली ऋषभको अपनी दोनों भुजाओंमें भर लिया ॥२६॥

कुम्भकर्णभुजाभ्यां तु पीडितो वानरर्षभः ।
निपपातर्षभो भीमः प्रमुखागतशोणितः ॥ २७ ॥

कुम्भकर्णकी दोनों भुजाओंसे दबकर पीड़ित हुए भयंकर वानरशिरोमणि ऋषभके मुँहसे खून निकलने लगा और वे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २७ ॥

मुष्टिना शरभं हत्वा जानुना नीलमाहवे ।
आजघान गवाक्षं तु तलेनेन्द्ररिपुस्तदा ।
पादेनाभ्यहनत् क्रुद्धस्तरसा गन्धमादनम् ॥ २८ ॥

तदनन्तर उस समरभूमिमें इन्द्रद्रोही कुम्भकर्णने शरभको मुक्केसे मारकर नीलको घुटनेसे रगड़ दिया और गवाक्षको थप्पड़से मारा । फिर क्रोधसे भरकर उसने गन्धमादनको बड़े वेगसे लात मारी ॥ २८ ॥

दत्तप्रहारव्यथिता मुमुहुः शोणितोक्षिताः ।
निपेतुस्ते तु मेदिन्यां निकृत्ता इव किंशुकाः ॥ २९ ॥

उसके प्रहारसे व्यथित हुए वानर मूर्च्छित हो गये और रक्तसे नहा उठे । फिर कटे हुए पलाश-वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २९ ॥

तेषु वानरमुख्येषु पातितेषु महात्मसु ।
वानराणां सहस्राणि कुम्भकर्णं प्रदुद्रुवुः ॥ ३० ॥

उन महामनस्वी प्रमुख वानरोंके धराशायी हो जानेपर हजारों वानर एक साथ कुम्भकर्णपर टूट पड़े ॥ ३० ॥

तं शैलमिव शैलाभाः सर्वे तु प्लवगर्षभाः ।
समारुह्य समुत्पत्य ददंशुश्च महाबलाः ॥ ३१ ॥

पर्वतके समान प्रतीत होनेवाले वे समस्त महाबली वानर-यूथपति उस पर्वताकार राक्षसके ऊपर चढ़ गये और उछल-उछलकर उसे दाँतोंसे काटने लगे ॥ ३१ ॥

तं नखैर्दशनैश्चापि मुष्टिभिर्बाहुभिस्तथा ।
कुम्भकर्णं महाबाहुं निजघ्नुः प्लवगर्षभाः ॥ ३२ ॥

वे वानरशिरोमणि नखों, दाँतों, मुक्कों और हाथोंसे महाबाहु कुम्भकर्णको मारने लगे ॥ ३२ ॥

स वानरसहस्रैस्तु विचितः पर्वतोपमः ।
रराज राक्षसव्याघ्रो गिरिरात्मरुहैरिव ॥ ३३ ॥

जैसे पर्वत अपने ऊपर उगे हुए वृक्षोंसे सुशोभित होता है, उसी प्रकार सहस्रों वानरोंसे व्याप्त हुआ वह पर्वताकार राक्षस वीर अद्भुत शोभा पाने लगा ॥ ३३ ॥

बाहुभ्यां वानरान् सर्वान् प्रगृह्य स महाबलः ।
भक्षयामास संक्रुद्धो गरुडः पन्नगानिव ॥ ३४ ॥

जैसे गरुड़ सर्पोंको अपना आहार बनाते हैं, उसी तरह अत्यन्त कुपित हुआ वह महाबली राक्षस समस्त वानरोंको दोनों हाथोंसे पकड़-पकड़कर भक्षण करने लगा ॥ ३४ ॥

प्रक्षिप्ताः कुम्भकर्णेन वक्त्रे पातालसंनिभे ।
नासापुटाभ्यां संजग्मुः कर्णाभ्यां चैव वानराः ॥ ३५ ॥

कुम्भकर्ण अपने पातालके समान मुखमें वानरोंको झोंकता जाता था और वे उसके कानों तथा नाकोंकी राहसे बाहर निकलते जाते थे ॥ ३५ ॥

भक्षयन् भृशसंक्रुद्धो हरीन् पर्वतसंनिभः ।
बभञ्ज वानरान् सर्वान् संक्रुद्धो राक्षसोत्तमः ॥ ३६ ॥

अत्यन्त क्रोधसे भरकर वानरोंका भक्षण करते हुए पर्वतके समान विशालकाय उस राक्षसराजने समस्त वानरोंके अङ्ग-भङ्ग कर डाले ॥ ३६ ॥

मांसशोणितसंक्लेदां कुर्वन् भूमिं स राक्षसः ।
चचार हरिसैन्येषु कालाग्निरिव मूर्च्छितः ॥ ३७ ॥

रणभूमिमें रक्त और मांसकी कीच मचाता हुआ वह राक्षस बढ़ी हुई प्रलयाग्निके समान वानरसेनामें विचरने लगा ॥ ३७ ॥

वज्रहस्तो यथा शक्रः पाशहस्त इवान्तकः ।
शूलहस्तो बभौ युद्धे कुम्भकर्णो महाबलः ॥ ३८ ॥

शूल हाथमें लेकर संग्रामभूमिमें विचरता हुआ महाबली कुम्भकर्ण वज्रधारी इन्द्र और पाशधारी यमराजके समान जान पड़ता था ॥ ३८ ॥

यथा शुष्काण्यरण्यानि ग्रीष्मे दहति पावकः ।
तथा वानरसैन्यानि कुम्भकर्णो ददाह सः ॥ ३९ ॥

जैसे ग्रीष्म ऋतुमें दावानल सूखे जंगलोंको जला देता है, उसी प्रकार कुम्भकर्ण वानरसेनाओंको दग्ध करने लगा ॥

ततस्ते वध्यमानास्तु हतयूथाः प्लवंगमाः ।
वानरा भयसंविग्ना विनेदुर्विकृतैः स्वरैः ॥ ४० ॥

जिनके यूथ-के-यूथ नष्ट हो गये थे, वे वानर कुम्भकर्णकी मार खाकर भयसे उद्विग्न हो उठे और विकृत स्वरमें चीत्कार करने लगे ॥ ४० ॥

अनेकशो वध्यमानाः कुम्भकर्णेन वानराः ।
राघवं शरणं जग्मुर्व्यथिता भिन्नचेतसः ॥ ४१ ॥

कुम्भकर्णके हाथसे मारे जाते हुए बहुत-से वानर, जिनका दिल टूट गया था, व्यथित हो श्रीरघुनाथजीकी शरणमें गये ॥

प्रभग्नान् वानरान् दृष्ट्वा वज्रहस्तात्मजात्मजः ।
अभ्यधावत वेगेन कुम्भकर्णं महाहवे ॥ ४२ ॥

वानरोंको भागते देख वालिकुमार अङ्गद उस महासमरमें कुम्भकर्णकी ओर बड़े वेगसे दौड़े ॥ ४२ ॥

शैलशृङ्गं महद् गृह्य विनदन् स मुहुर्मुहुः ।
त्रासयन् राक्षसान् सर्वान् कुम्भकर्णपदानुगान् ॥ ४३ ॥
चिक्षेप शैलशिखरं कुम्भकर्णस्य मूर्धनि ।

उन्होंने बारंबार गर्जना करके एक विशाल शैल-शिखर

हाथमें ले लिया और कुम्भकर्णके पीछे चलनेवाले समस्त राक्षसोंको भयभीत करते हुए उस पर्वतशिखरको उसके मस्तकपर दे मारा ॥ ४३½ ॥

स तेनाभिहतो मूर्ध्नि शैलेनेन्द्ररिपुस्तदा ॥ ४४ ॥
कुम्भकर्णः प्रजज्वाल क्रोधेन महता तदा ।
सोऽभ्यधावत वेगेन वालिपुत्रममर्षणः ॥ ४५ ॥

मस्तकपर उस पर्वत-शिखरकी चोट खाकर इन्द्रद्रोही कुम्भकर्ण उस समय महान् क्रोधसे जल उठा और उस प्रहारको सहन न कर सकनेके कारण बड़े वेगसे वालिपुत्रकी ओर दौड़ा ॥ ४४-४५ ॥

कुम्भकर्णो महानादस्त्रासयन् सर्ववानरान् ।
शूलं ससर्ज वै रोषादङ्गदे तु महाबलः ॥ ४६ ॥

बड़े जोरसे गर्जना करनेवाले महाबली कुम्भकर्णने समस्त वानरोंको संत्रस्त करते हुए अङ्गदपर बड़े रोषसे शूलका प्रहार किया ॥ ४६ ॥

तदापतन्तं बलवान् युद्धमार्गविशारदः ।
लाघवान्मोक्षयामास बलवान् वानरर्षभः ॥ ४७ ॥

किंतु युद्धमार्गके ज्ञाता बलवान् वानरशिरोमणि अङ्गदने फुर्तीसे हटकर अपनी ओर आते हुए उस शूलसे अपने-आपको बचा लिया ॥ ४७ ॥

✓ **उत्पत्य चैनं तरसा तलेनोरस्यताडयत् ।**
स तेनाभिहतः कोपात् प्रमुमोहाचलोपमः ॥ ४८ ॥

साथ ही बड़े वेगसे उछलकर उन्होंने उसकी छातीमें एक थप्पड़ मारा । क्रोधपूर्वक चलाये हुए उस थप्पड़की मार खाकर वह पर्वताकार राक्षस मूर्च्छित हो गया ॥ ४८ ॥

✓ **स लब्धसंज्ञोऽतिबलो मुष्टिं संगृह्य राक्षसः ।**
अपहस्तेन चिक्षेप विसंज्ञः स पपात ह ॥ ४९ ॥

थोड़ी देरमें जब उसे होश हुआ, तब उस अत्यन्त बलशाली राक्षसने भी बायें हाथसे मुक्का बाँधकर अङ्गदपर प्रहार किया, जिससे वे अचेत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४९ ॥

तस्मिन् प्लवगशार्दूले विसंज्ञे पतिते भुवि ।
तच्छूलं समुपादाय सुग्रीवमभिदुद्रुवे ॥ ५० ॥

वानरप्रवर अङ्गदके अचेत एवं धराशायी हो जानेपर कुम्भकर्ण वही शूल लेकर सुग्रीवकी ओर दौड़ा ॥ ५० ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य कुम्भकर्णं महाबलम् ।
उत्पपात तदा वीरः सुग्रीवो वानराधिपः ॥ ५१ ॥

महाबली कुम्भकर्णको अपनी ओर आते देख वीर वानरराज सुग्रीव तत्काल ऊपरकी ओर उछले ॥ ५१ ॥

स पर्वताग्रमुत्क्षिप्य समाविध्य महाकपिः ।
अभिदुद्राव वेगेन कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ ५२ ॥

महाकपि सुग्रीवने एक पर्वत-शिखरको उठा लिया और उसे घुमाकर महाबली कुम्भकर्णपर वेगपूर्वक धावा किया ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य कुम्भकर्णः प्लवंगमम् ।
तस्थौ विवृत्तसर्वाङ्गो वानरेन्द्रस्य सम्मुखः ॥ ५३ ॥

वानर सुग्रीवको आक्रमण करते देख कुम्भकर्ण अपने सारे अङ्गोंको फैलाकर उन वानरराजके सामने खड़ा हो गया ॥

कपिशोणितदिग्धाङ्गं भक्षयन्तं महाकपीन् ।
कुम्भकर्णं स्थितं दृष्ट्वा सुग्रीवो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५४ ॥

कुम्भकर्णका सारा शरीर वानरोंके रक्तसे नहा उठा था । वह बड़े-बड़े वानरोंको खाता हुआ उनके सामने खड़ा था । उसे देखकर सुग्रीवने कहा— ॥ ५४ ॥

पातिताश्च त्वया वीराः कृतं कर्म सुदुष्करम् ।
भक्षितानि च सैन्यानि प्राप्तं ते परमं यशः ॥ ५५ ॥
त्यज तद् वानरानीकं प्राकृतैः किं करिष्यसि ।
सहस्वैकं निपातं मे पर्वतस्यास्य राक्षस ॥ ५६ ॥

'राक्षस ! तुमने बहुत-से वीरोंको मार गिराया, अत्यन्त दुष्कर कर्म कर दिखाया और कितने ही सैनिकोंको अपना आहार बना लिया । इससे तुम्हें शौर्यका महान् यश प्राप्त हुआ है । अब इन वानरोंकी सेनाको छोड़ दो । इन साधारण बंदरोंसे लड़कर क्या करोगे ? यदि शक्ति हो तो मेरे चलाये हुए इस पर्वतकी एक ही चोट सह लो' ॥ ५५-५६ ॥

तद् वाक्यं हरिराजस्य सत्त्वधैर्यसमन्वितम् ।
श्रुत्वा राक्षसशार्दूलः कुम्भकर्णोऽब्रवीद् वचः ॥ ५७ ॥

वानरराजकी यह सत्त्व और धैर्यसे युक्त बात सुनकर राक्षसप्रवर कुम्भकर्ण बोला— ॥ ५७ ॥

प्रजापतेस्तु पौत्रस्त्वं तथैवर्क्षरजःसुतः ।
धृतिपौरुषसम्पन्नस्तस्माद् गर्जसि वानर ॥ ५८ ॥

'वानर ! तुम प्रजापतिके पौत्र, ऋक्षरजाके पुत्र तथा धैर्य एवं पौरुषसे सम्पन्न हो । इसीलिये इस तरह गरज रहे हो' ॥ ५८ ॥

स कुम्भकर्णस्य वचो निशम्य
व्याविध्य शैलं सहसा मुमोच ।
तेनाजघानोरसि कुम्भकर्णं
शैलेन वज्राशनिसंनिभेन ॥ ५९ ॥

कुम्भकर्णकी यह बात सुनकर सुग्रीवने उस शैल-शिखरको घुमाकर सहसा उसके ऊपर छोड़ दिया । वह वज्र और अशनिके समान था । उसके द्वारा उन्होंने कुम्भकर्णकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ५९ ॥

तच्छैलशृङ्गं सहसा विभिन्नं
भुजान्तरे तस्य तदा विशाले ।
ततो विषेदुः सहसा प्लवंगा
रक्षोगणाश्चापि मुदा विनेदुः ॥ ६० ॥

किंतु उसके विशाल वक्षःस्थलसे टकराकर वह शैलशिखर सहसा चूर-चूर हो गया । यह देख वानर तत्काल विषादमें डूब गये और राक्षस बड़े हर्षके साथ गर्जना करने लगे ॥

स शैलशृङ्गाभिहतश्चुकोप
ननाद रोषाच्च विवृत्य वक्त्रम् ।
व्याविध्य शूलं स तडित्प्रकाशं
चिक्षेप हर्यृक्षपतेर्वधाय ॥ ६१ ॥

उस पर्वत-शिखरकी चोट खाकर कुम्भकर्णको बड़ा क्रोध हुआ । वह रोषसे मुँह फैलाकर जोर-जोरसे गर्जना करने लगा । फिर उसने बिजलीके समान चमकनेवाले उस शूलको घुमाकर सुग्रीवके वधके लिये चलाया ॥ ६१ ॥

तत् कुम्भकर्णस्य भुजप्रणुन्नं
शूलं शितं काञ्चनधामयष्टिम् ।
क्षिप्रं समुत्पत्य निगृह्य दोर्भ्यां
बभञ्ज वेगेन सुतोऽनिलस्य ॥ ६२ ॥

कुम्भकर्णके हाथसे छूटे हुए उस तीखे शूलको, जिसके डंडेमें सोनेकी लड़ियाँ लगी हुई थीं, वायुपुत्र हनुमान्‌ने शीघ्र उछलकर दोनों हाथोंसे पकड़ लिया और उसे वेगपूर्वक तोड़ डाला ॥ ६२ ॥

कृतं भारसहस्रस्य शूलं कालायसं महत् ।
बभञ्ज जानुमारोप्य तदा हृष्टः प्लवंगमः ॥ ६३ ॥

वह महान् शूल हजार भार काले लोहेका बना हुआ था, जिसे हनुमान्‌जीने बड़े हर्षके साथ अपने घुटनोंमें लगाकर तत्काल तोड़ दिया ॥ ६३ ॥

शूलं भग्नं हनुमता दृष्ट्वा वानरवाहिनी ।
हृष्टा ननाद बहुशः सर्वतश्चापि दुद्रुवे ॥ ६४ ॥

हनुमान्‌जीके द्वारा शूलको तोड़ा गया देख वानर-सेना बड़े हर्षसे भरकर बारंबार सिंहनाद करने लगी और चारों ओर दौड़ लगाने लगी ॥ ६४ ॥

✓ बभूवाथ परित्रस्तो राक्षसो, विमुखोऽभवत् ।
सिंहनादं च ते चक्रुः प्रहृष्टा वनगोचराः ।
मारुतिं पूजयांचक्रुर्दृष्ट्वा शूलं तथागतम् ॥ ६५ ॥

परंतु वह राक्षस भयसे थर्रा उठा । उसके मुखपर उदासी छा गयी और वनचारी वानर अत्यन्त प्रसन्न हो सिंहनाद करने लगे । उन सबने शूलको खण्डित हुआ देख पवनकुमार हनुमान्‌जीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ६५ ॥

स तत् तथा भग्नमवेक्ष्य शूलं
चुकोप रक्षोधिपतिर्महात्मा ।
उत्पाट्य लङ्कामलयात् स शृङ्गं
जघान सुग्रीवमुपेत्य तेन ॥ ६६ ॥

इस प्रकार उस शूलको भग्न हुआ देख महाकाय राक्षसराज कुम्भकर्णको बड़ा क्रोध हुआ और उसने लङ्काके निकटवर्ती मलय पर्वतका शिखर उठाकर सुग्रीवके निकट जा उनपर दे मारा ॥ ६६ ॥

✓ स शैलशृङ्गाभिहतो विसंज्ञः
पपात भूमौ युधि वानरेन्द्रः ।
तं वीक्ष्य भूमौ पतितं विसंज्ञं
नेदुः प्रहृष्टा युधि यातुधानाः ॥ ६७ ॥

उस शैलशिखरसे आहत हो वानरराज सुग्रीव अपनी सुध-बुध खो बैठे और युद्धभूमिमें गिर पड़े । उन्हें अचेत होकर पृथ्वीपर पड़ा देख निशाचरोंको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे रणक्षेत्रमें सिंहनाद करने लगे ॥ ६७ ॥

समभ्युपेत्याद्भुतघोरवीर्यं
स कुम्भकर्णो युधि वानरेन्द्रम् ।
जहार सुग्रीवमभिप्रगृह्य
यथानिलो मेघमिव प्रचण्डः ॥ ६८ ॥

तदनन्तर कुम्भकर्णने युद्धस्थलमें अद्भुत एवं भयानक पराक्रम प्रकट करनेवाले वानरराज सुग्रीवके पास जाकर उन्हें उठा लिया और जैसे प्रचण्ड वायु बादलोंको उड़ा ले जाती है, उसी तरह वह उन्हें हर ले गया ॥ ६८ ॥

स तं महामेघनिकाशरूप-
मुत्पाट्य गच्छन् युधि कुम्भकर्णः ।
रराज मेरुप्रतिमानरूपो
मेरुर्यथा व्युच्छ्रितघोरशृङ्गः ॥ ६९ ॥

कुम्भकर्णका स्वरूप मेरु पर्वतके समान जान पड़ता था । वह महान् मेघके समान रूपवाले सुग्रीवको उठाकर जब युद्धस्थलसे चला, उस समय भयानक ऊँचे शिखरोंवाले मेरुगिरिके समान ही शोभा पाने लगा ॥ ६९ ॥

ततस्तमादाय जगाम वीरः
संस्तूयमानो युधि राक्षसेन्द्रः ।
शृण्वन् निनादं त्रिदिवालयानां
प्लवङ्गराजग्रहविस्मितानाम् ॥ ७० ॥

उन्हें लेकर वह वीर राक्षसराज लङ्काकी ओर चल दिया । उस समय युद्धस्थलमें सभी राक्षस उसकी स्तुति कर रहे थे । वानरराजके पकड़े जानेसे आश्चर्यचकित हुए देवताओंका दुःखजनित शब्द उसे स्पष्ट सुनायी दे रहा था ॥ ७० ॥

ततस्तमादाय तदा स मेने
हरीन्द्रमिन्द्रोपममिन्द्रवीर्यः ।
अस्मिन् हते सर्वमिदं हतं स्यात्
सराघवं सैन्यमितीन्द्रशत्रुः ॥ ७१ ॥

इन्द्रके समान पराक्रमी इन्द्रद्रोही कुम्भकर्णने उस समय देवेन्द्रतुल्य तेजस्वी वानरराज सुग्रीवको पकड़कर मन-ही-मन

यह मान लिया कि इनके मारे जानेसे श्रीरामसहित यह सारी वानर-सेना स्वतः नष्ट हो जायगी ॥ ७१ ॥

विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा वानराणामितस्ततः ।
कुम्भकर्णेन सुग्रीवं गृहीतं चापि वानरम् ॥ ७२ ॥
हनूमांश्चिन्तयामास मतिमान् मारुतात्मजः ।
एवं गृहीते सुग्रीवे किं कर्तव्यं मया भवेत् ॥ ७३ ॥

'वानरोंकी सेना इधर-उधर भाग रही है और वानरराज सुग्रीवको कुम्भकर्णने पकड़ लिया है', यह देखकर बुद्धिमान् पवनकुमार हनुमान्ने सोचा—'सुग्रीवके इस प्रकार पकड़ लिये जानेपर मुझे क्या करना चाहिये ? ॥ ७२-७३ ॥

यद्धि न्याय्यं मया कर्तुं तत् करिष्याम्यसंशयम् ।
भूत्वा पर्वतसंकाशो नाशयिष्यामि राक्षसम् ॥ ७४ ॥

'मेरे लिये जो भी करना उचित होगा, उसे मैं निःसंदेह करूँगा। पर्वताकार रूप धारण करके उस राक्षसका नाश कर डालूँगा ॥७४॥

मया हते संयति कुम्भकर्णे
महाबले मुष्टिविशीर्णदेहे ।
विमोचिते वानरपार्थिवे च
भवन्तु हृष्टाः प्लवगाः समग्राः ॥

'युद्धस्थलमें अपने मुक्कोंसे मार-मारकर महाबली कुम्भकर्णके शरीरको चूर-चूर कर दूँगा; इस प्रकार जब वह मेरे हाथसे मारा जायगा तथा वानरराज सुग्रीवको उसकी कैदसे छुड़ा लिया जायगा, तब सारे वानर हर्षसे खिल उठेंगे; अच्छा ऐसा ही हो॥

अथवा स्वयमप्येष मोक्षं प्राप्स्यति वानरः ।
✓**गृहीतोऽयं यदि भवेत् त्रिदशैः सासुरोरगैः ॥ ७६ ॥**

'अथवा ये सुग्रीव स्वयं ही उसकी पकड़से छूट जायँगे। यदि इन्हें देवता, असुर अथवा नाग भी पकड़ लें तो ये अपने ही प्रयत्नसे उनकी कैदसे भी छुटकारा पा जायँगे ॥

✓**मन्ये न तावदात्मानं बुध्यते वानराधिपः ।**
शैलप्रहाराभिहतः कुम्भकर्णेन संयुगे ॥ ७७ ॥

'मैं समझता हूँ कि युद्धमें कुम्भकर्णने शिलाके प्रहारसे सुग्रीवको जो गहरी चोट पहुँचायी है, उससे अचेत हुए वानरराजको अभीतक होश नहीं हुआ है ॥ ७७ ॥

✓**अयं मुहूर्तात् सुग्रीवो लब्धसंज्ञो महाहवे ।**
आत्मनो वानराणां च यत् पथ्यं तत् करिष्यति ॥ ७८ ॥

'एक ही मुहूर्तमें जब सुग्रीव सचेत होंगे, तब महासमरमें अपने और वानरोंके लिये जो हितकर कर्म होगा, उसे करेंगे ॥

✓**मया तु मोक्षितस्यास्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।**
अप्रीतिश्च भवेत् कष्टा कीर्तिनाशश्च शाश्वतः ॥ ७९ ॥

'यदि मैं इन्हें छुड़ाऊँ तो महात्मा सुग्रीवको प्रसन्नता नहीं होगी, उल्टे इनके मनमें खेद होगा और सदाके लिये इनके यशका नाश हो जायगा ॥ ७९ ॥

तस्मान्मुहूर्तं काङ्क्षिष्ये विक्रमं मोक्षितस्य तु ।
भिन्नं च वानरानीकं तावदाश्वासयाम्यहम् ॥ ८० ॥

'अतः मैं एक मुहूर्ततक उनके छूटनेकी प्रतीक्षा करूँगा। फिर वे छूट जायँगे तो उनका पराक्रम देखूँगा। तबतक भागी हुई वानर-सेनाको धैर्य बँधाता हूँ' ॥ ८० ॥

इत्येवं चिन्तयित्वाथ हनूमान् मारुतात्मजः ।
भूयः संस्तम्भयामास वानराणां महाचमूम् ॥ ८१ ॥

ऐसा विचारकर पवनकुमार हनुमान्ने वानरोंकी उस विशाल वाहिनीको पुनः आश्वासन दे स्थिरतापूर्वक स्थापित किया॥

स कुम्भकर्णोऽथ विवेश लङ्कां
स्फुरन्तमादाय महाहरिं तम् ।
विमानचर्यागृहगोपुरस्थैः
पुष्पाग्र्यवर्षैरभिपूज्यमानः ॥ ८२ ॥

उधर कुम्भकर्ण हाथ-पैर हिलाते हुए महावानर सुग्रीवको लिये-दिये लङ्कामें घुस गया। उस समय विमानों (सतमहले मकानों) सड़कके दोनों ओर बनी हुई गृहपंक्तियों तथा गोपुरोंमें रहनेवाले स्त्री-पुरुष उत्तम फूलोंकी वर्षा करके कुम्भकर्णका स्वागत-सत्कार कर रहे थे ॥ ८२ ॥

लाजगन्धोदवर्षैस्तु सेच्यमानः शनैः शनैः ।
राजवीथ्यास्तु शीतत्वात् संज्ञां प्राप महाबलः ॥ ८३ ॥

लावा और गन्धयुक्त जलकी वर्षाद्वारा अभिषिक्त हो राजमार्गकी शीतलताके कारण महाबली सुग्रीवको धीरे-धीरे होश आ गया ॥ ८३ ॥

ततः स संज्ञामुपलभ्य कृच्छ्राद्
बलीयसस्तस्य भुजान्तरस्थः ।
अवेक्षमाणः पुरराजमार्गं
विचिन्तयामास मुहुर्महात्मा ॥ ८४ ॥

तब बड़ी कठिनाईसे सचेत हो बलवान् कुम्भकर्णकी भुजाओंमें दबे हुए महात्मा सुग्रीव नगर और राजमार्गकी ओर देखकर बारंबार इस प्रकार विचार करने लगे—॥ ८४ ॥

एवं गृहीतेन कथं नु नाम
शक्यं मया सम्प्रतिकर्तुमद्य ।
तथा करिष्यामि यथा हरीणां
भविष्यतीष्टं च हितं च कार्यम् ॥ ८५ ॥

'इस प्रकार इस राक्षसकी पकड़में आकर अब मैं किस तरह इससे भरपूर बदला ले सकता हूँ ? मैं वही करूँगा, जिससे वानरोंका अभीष्ट और हितकर कार्य हो' ॥ ८५ ॥

ततः कराग्रैः सहसा समेत्य
राजा हरीणाममरेन्द्रशत्रोः ।
खरैश्च कर्णौ दशनैश्च नासां
ददंश पादैर्विददार पार्श्वौ ॥ ८६ ॥

ऐसा निश्चय करके वानरोंके राजा सुग्रीवने सहसा हाथोंके

तीखे नखोंद्वारा इन्द्रशत्रु कुम्भकर्णके दोनों कान नोच लिये, दाँतोंसे उसकी नाक काट ली और अपने पैरोंके नखोंसे उस राक्षसकी दोनों पसलियाँ फाड़ डालीं ॥ ८६ ॥

स कुम्भकर्णो हृतकर्णनासो
विदारितस्तेन रदैर्नखैश्च ।
रोशाभिभूतः क्षतजार्द्रगात्रः
सुग्रीवमाविध्य पिपेष भूमौ ॥ ८७ ॥

सुग्रीवके दाँतों और नखोंसे दोनों कानोंका निम्न भाग और नाक कट जाने तथा पार्श्वभागके विदीर्ण हो जानेसे कुम्भकर्णका सारा शरीर लहूलुहान हो गया। तब उसे बड़ा रोष हुआ और उसने सुग्रीवको घुमाकर भूमिपर पटक दिया। पटककर वह उन्हें भूमिपर रगड़ने लगा ॥ ८७ ॥

✓ स भूतले भीमबलाभिपिष्टः
सुरारिभिस्तैरभिहन्यमानः ।
जगाम खं कन्दुकवज्जवेन
पुनश्च रामेण समाजगाम ॥ ८८ ॥

भयानक बलशाली कुम्भकर्ण जब उन्हें पृथ्वीपर रगड़ रहा था और वे देवद्रोही राक्षस उनपर सब ओरसे चोट कर रहे थे, उसी समय सुग्रीव सहसा गेंदकी भाँति वेगपूर्वक आकाशमें उछले और पुनः श्रीरामचन्द्रजीसे आ मिले ॥८८॥

कर्णनासाविहीनस्तु कुम्भकर्णो महाबलः ।
रराज शोणितोत्सिक्तो गिरिः प्रस्रवणैरिव ॥ ८९ ॥

महाबली कुम्भकर्ण अपनी नाक और कान खो बैठा। उसके अङ्गोंसे इस तरह खून बहने लगा, जैसे पर्वतसे पानीके झरने गिरते हैं। वह रक्तसे नहा उठा और झरनोंसे युक्त शैलशिखरकी भाँति शोभा पाने लगा ॥ ८९ ॥

शोणिताद्रों महाकायो राक्षसो भीमदर्शनः ।
युद्धायाभिमुखो भूयो मनश्चक्रे निशाचरः ॥ ९० ॥

महाकाय राक्षस रक्तसे नहाकर और भी भयानक दिखायी देने लगा। उस निशाचरने पुनः शत्रुके सामने जाकर युद्ध करनेका विचार किया ॥ ९० ॥

अमर्षाच्छोणितोद्गारी शुशुभे रावणानुजः ।
नीलाञ्जनचयप्रख्यः ससंध्य इव तोयदः ॥ ९१ ॥

अमर्षपूर्वक रक्त वमन करता हुआ रावणका छोटा भाई कुम्भकर्ण, जिसके शरीरका रंग काले मेघके समान था, संध्याकालके बादलकी भाँति सुशोभित हो रहा था ॥ ९१ ॥

गते च तस्मिन् सुरराजशत्रुः
क्रोधात् प्रदुद्राव रणाय भूयः ।
अनायुधोऽस्मीति विचिन्त्य रौद्रो
घोरं तदा मुद्गरमाससाद ॥ ९२ ॥

सुग्रीवके निकल भागनेपर वह इन्द्रद्रोही राक्षस फिर युद्धके लिये दौड़ा। उस समय यह सोचकर कि 'मेरे पास कोई हथियार नहीं है' उसने एक बड़ा भयंकर मुद्गर ले लिया ॥

ततः स पुर्याः सहसा महौजा
निष्क्रम्य तद् वानरसैन्यमुग्रम् ।
बभक्ष रक्षो युधि कुम्भकर्णः
प्रजा युगान्ताग्निरिव प्रवृद्धः ॥ ९३ ॥

तदनन्तर महाबलशाली राक्षस कुम्भकर्ण सहसा लङ्कापुरीसे निकलकर प्रजाका भक्षण करनेवाली प्रलयकालकी प्रज्वलित अग्निके समान उस भयंकर वानर-सेनाको युद्धस्थलमें अपना आहार बनाने लगा ॥ ९३ ॥

बुभुक्षितः शोणितमांसगृध्नुः
प्रविश्य तद् वानरसैन्यमुग्रम् ।
चखाद रक्षांसि हरीन् पिशाचा-
न्नृक्षांश्च मोहाद् युधि कुम्भकर्णः ।
यथैव मृत्युर्हरते युगान्ते
स भक्षयामास हरींश्च मुख्यान् ॥ ९४ ॥

उस समय कुम्भकर्णको भूख सता रही थी, अतएव वह रक्त और मांसके लिये लालायित हो रहा था। उसने उस भयंकर वानर-सेनामें प्रवेश करके मोहवश वानरों और भालुओंके साथ-साथ राक्षसों तथा पिशाचोंको भी खाना आरम्भ कर दिया। वह प्रधान-प्रधान वानरोंको उसी प्रकार अपना ग्रास बना रहा था, जैसे प्रलयकालमें मृत्यु प्राणियोंके प्राणोंका अपहरण करती है ॥९४॥

एकं द्वौ त्रीन् बहून् क्रुद्धो वानरान् सह राक्षसैः ।
समादायैकहस्तेन प्रचिक्षेप त्वरन् मुखे ॥ ९५ ॥

वह बड़ी उतावलीके साथ एक हाथसे क्रोधपूर्वक एक, दो, तीन तथा बहुत-बहुत राक्षसों और वानरोंको समेटकर अपने मुँहमें झोंक लेता था ॥ ९५ ॥

सम्प्रस्रवंस्तदा मेदः शोणितं च महाबलः ।
वध्यमानो नगेन्द्राग्रैर्भक्षयामास वानरान् ॥ ९६ ॥

उस समय वह महाबली निशाचर पर्वत-शिखरोंकी मार खाता हुआ भी मुँहसे वानरोंकी चर्बी और रक्त गिराता हुआ उन सबका भक्षण कर रहा था ॥ ९६ ॥

ते भक्ष्यमाणा हरयो रामं जग्मुस्तदा गतिम् ।
कुम्भकर्णो भृशं क्रुद्धः कपीन् खादन् प्रधावति ॥ ९७ ॥

उसके द्वारा खाये जाते हुए वानर भयभीत हो उस समय भगवान् श्रीरामकी शरणमें गये। उधर कुम्भकर्ण अत्यन्त कुपित हो वानरोंको अपना आहार बनाता हुआ सब ओर उनपर धावा करने लगा ॥ ९७ ॥

शतानि सप्त चाष्टौ च विंशत्त्रिंशत् तथैव च ।
सम्परिष्वज्य बाहुभ्यां खादन् विपरिधावति ॥ ९८ ॥

वह सात, आठ, बीस, तीस तथा सौ-सौ वानरोंको अपनी दोनों भुजाओंमें भर लेता और उन्हें खाता हुआ रणभूमिमें दौड़ता-फिरता था ॥ ९८ ॥

मेदोवसाशोणितदिग्धगात्रः
कर्णावसक्तग्रथितान्त्रमालः ।
ववर्ष शूलानि सुतीक्ष्णदंष्ट्रः
कालो युगान्तस्थ इव प्रवृद्धः ॥ ९९ ॥

उसके शरीरमें मेद, चर्बी और रक्त लिपटे हुए थे। उसके कानोंमें आँतोंकी मालाएँ उलझी हुई थीं तथा उसकी दाढ़ें बहुत तीखी थीं । वह महाप्रलयके समय प्राणियोंका संहार करनेवाले विशाल रूपधारी कालके समान वानरोंपर शूलोंकी वर्षा कर रहा था ॥ ९९ ॥

तस्मिन् काले सुमित्रायाः पुत्रः परबलार्दनः ।
चकार लक्ष्मणः क्रुद्धो युद्धं परपुरंजयः ॥१००॥

उस समय शत्रुनगरीपर विजय पाने तथा शत्रुओंका संहार करनेवाले सुमित्राकुमार लक्ष्मण कुपित होकर उस राक्षसके साथ युद्ध करने लगे ॥ १०० ॥

स कुम्भकर्णस्य शरान्शरीरे सप्त वीर्यवान् ।
निचखानाददे चान्यान् विससर्ज च लक्ष्मणः ॥१०१॥

उन पराक्रमी लक्ष्मणने कुम्भकर्णके शरीरमें सात बाण धँसा दिये । फिर दूसरे बाण लिये और उन्हें भी उसपर छोड़ दिया ॥ १०१ ॥

पीड्यमानस्तदस्त्रं तु विशेषं तत् स राक्षसः ।
ततश्चुकोप बलवान् सुमित्रानन्दवर्धनः ॥१०२॥

उनसे पीड़ित हुए उस राक्षसने लक्ष्मणके उस अस्त्रको निःशेष कर दिया । तब सुमित्राके आनन्दको बढ़ानेवाले बलवान् लक्ष्मणको बड़ा क्रोध हुआ ॥ १०२ ॥

अथास्य कवचं शुभ्रं जाम्बूनदमयं शुभम् ।
प्रच्छादयामास शरैः संध्याभ्रमिव मारुतः ॥१०३॥

उन्होंने कुम्भकर्णके सुवर्णनिर्मित सुन्दर एवं दीप्तिमान् कवचको अपने बाणोंसे ढककर उसी तरह अदृश्य कर दिया, जैसे हवाने संध्याकालके बादलको उखाड़कर अदृश्य कर दिया हो ॥ १०३ ॥

नीलाञ्जनचयप्रख्यः शरैः काञ्चनभूषणैः ।
आपीड्यमानः शुशुभे मेघैः सूर्य इवांशुमान् ॥१०४॥

काले कोयलेके ढेरकी-सी कान्तिवाला कुम्भकर्ण लक्ष्मणके सुवर्णभूषित बाणोंसे आच्छादित हो मेघोंसे ढके हुए अंशुमाली सूर्यके समान शोभा पा रहा था ॥ १०४ ॥

ततः स राक्षसो भीमः सुमित्रानन्दवर्धनम् ।
सावज्ञमेव प्रोवाच वाक्यं मेघौघनिःस्वनः ॥१०५॥

तब उस भयंकर राक्षसने मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर स्वरसे सुमित्रानन्दन लक्ष्मणका तिरस्कार करते हुए कहा—॥

अन्तकस्याप्यकष्टेन युधि जेतारमाहवे ।
युध्यता मामभीतेन ख्यापिता वीरता त्वया ॥१०६॥

'लक्ष्मण ! मैं युद्धमें यमराजको भी बिना कष्ट उठाये ही जीत लेनेकी शक्ति रखता हूँ । तुमने मेरे साथ निर्भय होकर युद्ध करते हुए अपनी अद्भुत वीरताका परिचय दिया है ॥ १०६ ॥

प्रगृहीतायुधस्येह मृत्योरिव महामृधे ।
तिष्ठन्नप्यग्रतः पूज्यः किमु युद्धप्रदायकः ॥१०७॥

'जब मैं महासमरमें मृत्युके समान हथियार लेकर युद्धके लिये उद्यत होऊँ, उस समय जो मेरे सामने खड़ा रह जाय, वह भी प्रशंसाका पात्र है । फिर जो मुझे युद्ध प्रदान कर रहा हो, उसके लिये तो कहना ही क्या है ? ॥ १०७ ॥

ऐरावतं समारूढो वृतः सर्वामरैः प्रभुः ।
नैव शक्रोऽपि समरे स्थितपूर्वः कदाचन ॥१०८॥

'ऐरावतपर आरूढ़ हो सम्पूर्ण देवताओंसे घिरे हुए शक्तिशाली इन्द्र भी पहले मेरे सामने युद्धमें नहीं ठहर सके हैं ॥ १०८ ॥

अद्य त्वयाहं सौमित्रे बालेनापि पराक्रमैः ।
तोषितो गन्तुमिच्छामि त्वामनुज्ञाप्य राघवम् ॥१०९॥

'सुमित्रानन्दन ! तुमने बालक होकर भी आज अपने पराक्रमसे मुझे संतुष्ट कर दिया, अतः मैं तुम्हारी अनुमति लेकर युद्धके लिये श्रीरामके पास जाना चाहता हूँ ॥ १०९ ॥

यत् तु वीर्यबलोत्साहैस्तोषितोऽहं रणे त्वया ।
राममेवैकमिच्छामि हन्तुं यस्मिन् हते हतम् ॥११०॥

'तुमने अपने वीर्य, बल और उत्साहसे रणभूमिमें मुझे संतोष प्रदान किया है; इसलिये अब मैं केवल रामको ही मारना चाहता हूँ, जिनके मारे जानेपर सारी शत्रुसेना स्वतः मर जायगी ॥ ११० ॥

रामे मयात्र निहते येऽन्ये स्थास्यन्ति संयुगे ।
तानहं योधयिष्यामि स्वबलेन प्रमाथिना ॥१११॥

'मेरे द्वारा रामके मारे जानेपर जो दूसरे लोग युद्धभूमिमें खड़े रहेंगे, उन सबके साथ मैं अपने संहारकारी बलके द्वारा युद्ध करूँगा' ॥ १११ ॥

इत्युक्तवाक्यं तद् रक्षः प्रोवाच स्तुतिसंहितम् ।
मृधे घोरतरं वाक्यं सौमित्रिः प्रहसन्निव ॥११२॥

वह राक्षस जब पूर्वोक्त बात कह चुका, तब सुमित्राकुमार लक्ष्मण रणभूमिमें ठठाकर हँस पड़े और उससे प्रशंसामिश्रित कठोर वाणीमें बोले—॥ ११२ ॥

यस्त्वं शक्रादिभिर्देवैरसह्यः प्राप्य पौरुषम् ।
तत् सत्यं नान्यथा वीर दृष्टस्तेऽद्य पराक्रमः ॥११३॥
एष दाशरथी रामस्तिष्ठत्यद्रिरिवाचलः ।

'वीर कुम्भकर्ण ! तुम महान् पौरुष पाकर जो इन्द्र आदि देवताओंके लिये भी असह्य हो उठे हो, वह तुम्हारा कथन बिल्कुल ठीक है, झूठ नहीं है । मैंने स्वयं अपनी आँखोंसे आज तुम्हारा

पराक्रम देख लिया। ये रहे दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम, जो पर्वतके समान अविचल भावसे खड़े हैं' ॥ ११३$\frac{१}{२}$ ॥

इति श्रुत्वा ह्यनादृत्य लक्ष्मणं स निशाचरः ॥११४॥
अतिक्रम्य च सौमित्रिं कुम्भकर्णो महाबलः।
राममेवाभिदुद्राव कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥११५॥

लक्ष्मणकी यह बात सुनकर उसका आदर न करते हुए महाबली निशाचर कुम्भकर्णने सुमित्राकुमारको लाँघकर श्रीराम-पर ही धावा किया। उस समय वह अपने पैरोंकी धमकसे पृथ्वीको कम्पित-सी किये देता था ॥ ११४-११५ ॥

अथ दाशरथी रामो रौद्रमस्त्रं प्रयोजयन्।
कुम्भकर्णस्य हृदये ससर्ज निशिताञ्शरान् ॥११६॥

उसे आते देख दशरथनन्दन श्रीरामने रौद्रास्त्रका प्रयोग करके कुम्भकर्णके हृदयमें अनेक तीखे बाण मारे ॥ ११६ ॥

तस्य रामेण विद्धस्य सहसाभिप्रधावतः।
अङ्गारमिश्राः क्रुद्धस्य मुखान्निश्चेरुरर्चिषः ॥११७॥

श्रीरामके बाणोंसे घायल हो वह सहसा उनपर टूट पड़ा। उस समय क्रोधसे भरे हुए कुम्भकर्णके मुखसे अङ्गारमिश्रित आगकी लपटें निकल रही थीं ॥ ११७ ॥

रामास्त्रविद्धो घोरं वै नर्दन् राक्षसपुङ्गवः।
अभ्यधावत संक्रुद्धो हरीन् विद्रावयन् रणे ॥ ११८॥

भगवान् श्रीरामके अस्त्रसे पीड़ित हो राक्षसप्रवर कुम्भकर्ण घोर गर्जना करता और रणभूमिमें वानरोंको खदेड़ता हुआ क्रोधपूर्वक उनकी ओर दौड़ा ॥ ११८ ॥

तस्योरसि निमग्नास्ते शरा बर्हिणवाससः।
हस्ताच्चास्य परिभ्रष्टा गदा चोर्व्यां पपात ह ॥११९॥

श्रीरामके बाणोंमें मोरके पंख लगे हुए थे। वे कुम्भकर्ण-की छातीमें धँस गये। अतः व्याकुलताके कारण उसके हाथसे गदा छूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ११९ ॥

आयुधानि च सर्वाणि विप्रकीर्यन्त भूतले।
स निरायुधमात्मानं यदा मेने महाबलः ॥१२०॥
मुष्टिभ्यां च कराभ्यां च चकार कदनं महत्।

इतना ही नहीं, उसके, अन्य सब आयुध भी भूमिपर बिखर गये। जब उसने समझ लिया कि अब मेरे पास कोई हथियार नहीं है, तब उस महाबली निशाचरने दोनों मुक्कों और हाथोंसे ही वानरोंका महान् संहार आरम्भ किया ॥१२०$\frac{१}{२}$॥

स बाणैरतिविद्धाङ्गः क्षतजेन समुक्षितः।
रुधिरं परिसुस्राव गिरिः प्रस्रवणं यथा ॥१२१॥

बाणोंसे उसके सारे अङ्ग अत्यन्त घायल हो गये थे, इसलिये वह खूनसे नहा उठा और जैसे पर्वत झरने बहाता है, उसी तरह वह अपनी देहसे रक्तकी धारा बहाने लगा ॥१२१॥

स तीव्रेण च कोपेन रुधिरेण च मूर्च्छितः।
वानरान् राक्षसानृक्षान् खादन् स परिधावति ॥१२२॥

वह खूनसे लथपथ और दुःसह क्रोधसे व्याकुल होकर वानरों, भालुओं तथा राक्षसोंको भी खाता हुआ चारों ओर दौड़ने लगा ॥ १२२ ॥

अथ शृङ्गं समाविध्य भीमं भीमपराक्रमः।
चिक्षेप राममुद्दिश्य बलवानन्तकोपमः ॥१२३॥

इसी बीचमें यमराजके समान प्रतीत होनेवाले उस बलवान् एवं भयानक पराक्रमी निशाचरने एक भयंकर पर्वतका शिखर उठाया और उसे घुमाकर श्रीरामचन्द्रजीको लक्ष्य करके चला दिया ॥ १२३ ॥

अप्राप्तमन्तरा रामः सप्तभिस्तमजिह्मगैः।
चिच्छेद गिरिशृङ्गं तं पुनः संधाय कार्मुकम् ॥१२४॥

परंतु श्रीरामने पुनः धनुषका संधान करके सीधे जानेवाले सात बाण मारकर उस पर्वत-शिखरको बीचमें ही टूक-टूक कर डाला, अपने पासतक नहीं आने दिया ॥ १२४ ॥

ततस्तु रामो धर्मात्मा तस्य शृङ्गं महत् तदा।
शरैः काञ्चनचित्राङ्गैश्चिच्छेद भरताग्रजः ॥१२५॥
तन्मेरुशिखराकारं द्योतमानमिव श्रिया।
द्वे शते वानराणां च पतमानमपातयत् ॥१२६॥

भरतके बड़े भाई धर्मात्मा श्रीरामने सुवर्णभूषित विचित्र बाणोंद्वारा जब उस महान् पर्वतशिखरको काट दिया, उस समय अपनी प्रभासे प्रकाशित-सा होते हुए उस मेरुपर्वतके शृङ्गसदृश शिखरने भूमिपर गिरते-गिरते दो सौ वानरोंको धराशायी कर दिया ॥ १२५-१२६ ॥

तस्मिन् काले स धर्मात्मा लक्ष्मणो राममब्रवीत्।
कुम्भकर्णवधे युक्तो योगान् परिमृशन् बहून् ॥१२७॥

उस समय धर्मात्मा लक्ष्मणने, जो कुम्भकर्णके वधके लिये नियुक्त थे, उसके वधकी अनेक युक्तियोंका विचार करते हुए श्रीरामसे कहा—॥ १२७ ॥

नैवायं वानरान् राजन् न विजानाति राक्षसान्।
मत्तः शोणितगन्धेन स्वान् परांश्चैव खादति ॥१२८॥

'राजन्! यह राक्षस शोणितकी गन्धसे मतवाला हो गया है; अतः न वानरोंको पहचानता है न राक्षसोंको। अपने और पराये दोनों ही पक्षोंके योद्धाओंको खा रहा है ॥ १२८ ॥

साध्वेनमधिरोहन्तु सर्वतो वानरर्षभाः।
यूथपाश्च यथा मुख्यास्तिष्ठन्त्वस्मिन् समन्ततः ॥१२९॥

'अतः श्रेष्ठ वानर-यूथपतियोंमें जो प्रधान लोग हैं, वे सब ओरसे इसके ऊपर चढ़ जायँ और इसके शरीरपर ही बैठे रहें ॥ १२९ ॥

अद्यायं दुर्मतिः काले गुरुभारप्रपीडितः।
प्रचरन् राक्षसो भूमौ नान्यान् हन्यात् प्लवंगमान् ॥१३०॥

'ऐसा होनेसे यह दुर्बुद्धि निशाचर इस समय भारी भारसे पीड़ित हो रणभूमिमें विचरण करते समय दूसरे वानरोंको नहीं मार सकेगा' ॥ १३० ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः ।
ते समारुरुहुर्हृष्टाः कुम्भकर्णं महाबलाः ॥१३१॥

बुद्धिमान् राजकुमार लक्ष्मणकी यह बात सुनकर वे महाबली वानर-यूथपति बड़े हर्षके साथ कुम्भकर्णपर चढ़ गये ॥

कुम्भकर्णस्तु संक्रुद्धः समारूढः प्लवंगमैः ।
व्यधूनयत् तान् वेगेन दुष्टहस्तीव हस्तिपान् ॥१३२॥

वानरोंके चढ़ जानेपर कुम्भकर्ण अत्यन्त कुपित हो उठा और जैसे बिगड़ैल हाथी महावतोंको गिरा देता है, उसी प्रकार उसने वेगपूर्वक वानरोंको अपनी देह हिलाकर गिरा दिया ॥

तान् दृष्ट्वा निर्धुतान् रामो रुष्टोऽयमिति राक्षसम् ।
समुत्पपात वेगेन धनुरुत्तममाददे ॥१३३॥

उन सबको गिराया गया देख श्रीरामने यह समझ लिया कि कुम्भकर्ण रुष्ट हो गया है । फिर वे बड़े वेगसे उछलकर उस राक्षसकी ओर दौड़े और एक उत्तम धनुष हाथमें ले लिया ॥ १३३ ॥

क्रोधरक्तेक्षणो धीरो निर्दहन्निव चक्षुषा ।
राघवो राक्षसं वेगादभिदुद्राव वेगितः ।
यूथपान् हर्षयन् सर्वान् कुम्भकर्णबलार्दितान् ॥१३४॥

उस समय उनके नेत्र क्रोधसे लाल हो रहे थे । वे धीर-वीर श्रीरघुनाथजी उसकी ओर इस प्रकार देखने लगे, मानो उसे अपनी दृष्टिसे दग्ध कर डालेंगे । उन्होंने कुम्भकर्णके बलसे पीड़ित समस्त वानरयूथपतियोंका हर्ष बढ़ाते हुए बड़े वेगसे उस राक्षसपर धावा किया ॥ १३४ ॥

स चापमादाय भुजंगकल्पं
दृढज्यमुग्रं तपनीयचित्रम् ।
हरीन् समाश्वास्य समुत्पपात
रामो निबद्धोत्तमतूणबाणः ॥१३५॥

सुदृढ़ प्रत्यञ्चासे संयुक्त, सर्पके समान भयंकर और सुवर्णसे जटित होनेके कारण विचित्र शोभासे सम्पन्न उग्र धनुषको हाथमें लेकर श्रीरामने उत्तम तरकस और बाण बाँध लिये और वानरोंको आश्वासन देकर उन्होंने कुम्भकर्णपर बड़े वेगसे आक्रमण किया ॥ १३५ ॥

स वानरगणैस्तैस्तु वृतः परमदुर्जयैः ।
लक्ष्मणानुचरो वीरः सम्प्रतस्थे महाबलः ॥१३६॥

उस समय अत्यन्त दुर्जय वानरसमूहोंने उन्हें चारों ओरसे घेर रक्खा था । लक्ष्मण उनके पीछे-पीछे चल रहे थे । इस प्रकार वे महाबली वीर श्रीराम आगे बढ़े ॥ १३६ ॥

स ददर्श महात्मानं किरीटिनमरिंदमम् ।
शोणिताप्लुतरक्ताक्षं कुम्भकर्णं महाबलः ॥१३७॥
सर्वान् समभिधावन्तं यथा रुष्टं दिशागजम् ।
मार्गमाणं हरीन् क्रुद्धं राक्षसैः परिवारितम् ॥१३८॥

उन महान् बलशाली श्रीरामने देखा, महाकाय शत्रुदमन कुम्भकर्ण मस्तकपर किरीट धारण किये सब ओर धावा कर रहा है । उसके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो रहे हैं । वह रोषसे भरे हुए दिग्गजकी भाँति क्रोधपूर्वक वानरोंको खोज रहा है और उन सबपर आक्रमण करता है । बहुत-से राक्षस उसे घेरे हुए हैं ॥ १३७-१३८ ॥

विन्ध्यमन्दरसंकाशं काञ्चनाङ्गदभूषणम् ।
स्रवन्तं रुधिरं वक्त्राद् वर्षमेघमिवोत्थितम् ॥१३९॥

वह विन्ध्य और मन्दराचलके समान जान पड़ता है । सोनेके बाजूबंद उसकी भुजाओंको विभूषित किये हुए हैं तथा वह (वर्षाकालमें) उमड़े हुए जलवर्षी मेघकी भाँति मुँहसे रक्तकी वर्षा कर रहा है ॥ १३९ ॥

जिह्वया परिलिह्यन्तं सृक्किणी शोणितोक्षिते ।
मृद्नन्तं वानरानीकं कालान्तकयमोपमम् ॥१४०॥

जिह्वाके द्वारा रक्तसे भीगे हुए जबड़े चाट रहा है और प्रलयकालके संहारकारी यमराजकी भाँति वानरोंकी सेनाको रौंद रहा है ॥ १४० ॥

तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं प्रदीप्तानलवर्चसम् ।
विस्फारयामास तदा कार्मुकं पुरुषर्षभः ॥१४१॥

इस प्रकार प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी राक्षसशिरोमणि कुम्भकर्णको देखकर पुरुषप्रवर श्रीरामने तत्काल अपना धनुष खींचा ॥ १४१ ॥

स तस्य चापनिर्घोषात् कुपितो राक्षसर्षभः ।
अमृष्यमाणस्तं घोषमभिदुद्राव राघवम् ॥१४२॥

उनके धनुषकी टंकार सुनकर राक्षसश्रेष्ठ कुम्भकर्ण कुपित हो उठा और उस टंकारध्वनिको सहन न करके श्रीरघुनाथजीकी ओर दौड़ा* ॥ १४२ ॥

---

* इस श्लोकके बाद कुछ प्रतियोंमें निम्नाङ्कित श्लोक अधिक उपलब्ध होते हैं, जो उपयोगी होनेसे यहाँ अर्थसहित दिये जा रहे हैं—

पुरस्ताद् राघवस्यार्थे गदायुक्तो विभीषणः ।
अभिदुद्राव वेगेन भ्राता भ्रातरमाहवे ॥
विभीषणं पुरो दृष्ट्वा कुम्भकर्णोऽब्रवीदिदम् ।
प्रहरस्व रणे शीघ्रं क्षत्रधर्मे स्थिरो भव ॥
भ्रातृस्नेहं परित्यज्य राघवस्य प्रियं कुरु ।
अस्मत्कार्यं कृतं वत्स यस्त्वं राममुपागतः ॥
त्वमेको रक्षसां लोके सत्यधर्माभिरक्षिता ।
नास्ति धर्माभिरक्तानां व्यसनं तु कदाचन ॥
संतानार्थं त्वमेवैकः कुलस्यास्य भविष्यसि ।
राघवस्य प्रसादात् त्वं रक्षसां राज्यमाप्स्यसि ॥
प्रकृत्या मम दुर्धर्ष शीघ्रं मार्गादपक्रम ।
न स्थातव्यं पुरस्तान्मे सम्भ्रान्तनष्टचेतसः ॥

ततस्तु वातोद्धतमेघकल्पं
भुजंगराजोत्तमभोगबाहुः ।
तमापतन्तं धरणीधराभ-
मुवाच रामो युधि कुम्भकर्णम् ॥१४३॥

तदनन्तर जिनकी भुजाएँ नागराज वासुकिके समान विशाल और मोटी थीं, उन भगवान् श्रीरामने पवनकी प्रेरणासे उमड़े हुए मेघके समान काले और पर्वतके समान ऊँचे शरीरवाले कुम्भकर्णको आक्रमण करते देख रणभूमिमें उससे कहा—॥ १४३ ॥

आगच्छ रक्षोऽधिप मा विषाद-
मवस्थितोऽहं प्रगृहीतचापः ।
अवेहि मां राक्षसवंशनाशनं
यस्त्वं मुहूर्ताद् भविता विचेताः ॥१४४॥

'राक्षसराज ! आओ, विषाद न करो । मैं धनुष लेकर खड़ा हूँ । मुझे राक्षसवंशका विनाश करनेवाला समझो । अब तुम भी दो ही घड़ीमें अपनी चेतना खो बैठोगे (मर जाओगे)' ॥ १४४ ॥

रामोऽयमिति विज्ञाय जहास विकृतस्वनम् ।
अभ्यधावत संक्रुद्धो हरीन् विद्रावयन् रणे ॥१४५॥

'यही राम हैं'—यह जानकर वह राक्षस विकृत स्वरमें अट्टहास करने लगा और अत्यन्त कुपित हो रणक्षेत्रमें वानरोंको भगाता हुआ उनकी ओर दौड़ा ॥ १४५ ॥

दारयन्निव सर्वेषां हृदयानि वनौकसाम् ।
प्रहस्य विकृतं भीमं स मेघस्तनितोपमम् ॥१४६॥
कुम्भकर्णो महातेजा राघवं वाक्यमब्रवीत् ।
नाहं विराधो विज्ञेयो न कबन्धः खरो न च । ✓
न वाली न च मारीचः कुम्भकर्णः समागतः ॥१४७॥

महातेजस्वी कुम्भकर्ण समस्त वानरोंके हृदयको विदीर्ण-सा करता हुआ विकृत स्वरमें जोर-जोरसे हँसकर मेघ-गर्जनाके समान गम्भीर एवं भयंकर वाणीमें श्रीरघुनाथजीसे बोला—'राम ! मुझे विराध, कबन्ध और खर नहीं समझना चाहिये । मैं मारीच और वाली भी नहीं हूँ । यह कुम्भकर्ण तुमसे लड़ने आया है ॥ १४६-१४७॥

पश्य मे मुद्गरं भीमं सर्वं कालायसं महत् ।
अनेन निर्जिता देवा दानवाश्च पुरा मया ॥१४८॥

'मेरे इस भयंकर एवं विशाल मुद्गरकी ओर देखो । यह सब-का-सब काले लोहेका बना हुआ है । मैंने पूर्वकालमें इसीके द्वारा समस्त देवताओं और दानवोंको परास्त किया है ॥ १४८ ॥

विकर्णनास इति मां नावज्ञातुं त्वमर्हसि । ✓
स्वल्पापि हि न मे पीडा कर्णनासाविनाशनात् ॥१४९॥

'मेरे नाक-कान नीचेसे कट गये हैं, ऐसा समझकर तुम्हें मेरी अवहेलना नहीं करनी चाहिये । इन दोनों अङ्गोंके नष्ट होनेसे मुझे थोड़ी-सी भी पीड़ा नहीं होती है ॥ १४९ ॥

दर्शयेक्ष्वाकुशार्दूल वीर्यं गात्रेषु मेऽनघ ।
ततस्त्वां भक्षयिष्यामि दृष्टपौरुषविक्रमम् ॥१५०॥

'निष्पाप रघुनन्दन ! तुम इक्ष्वाकुवंशके वीर पुरुष

न वेद्मि संयुगे सक्तः स्वान् परान् वा निशाचर ।
रक्षणीयोऽसि मे वत्स सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥
एवमुक्तो वचस्तेन कुम्भकर्णेन धीमता ।
विभीषणो महाबाहुः कुम्भकर्णमुवाच ह ॥
गदितं मे कुलस्यास्य रक्षणार्थमरिंदम ।
न श्रुतं सर्वरक्षोभिस्ततोऽहं राममागतः ॥
कृतं तु तन्महाभाग सुकृतं दुष्कृतं तु वा ।
एवमुक्त्वाश्रुपूर्णाक्षो गदापाणिर्विभीषणः ।
एकान्तमाश्रितो भूत्वा चिन्तयामास संस्थितः ॥

तब श्रीरामचन्द्रजीके लिये युद्ध करनेके निमित्त गदा हाथमें लिये विभीषण उनके आगे आकर खड़े हो गये और उस युद्धस्थलमें भाई होकर भाईका सामना करनेके लिये बड़े वेगसे आगे बढ़े । विभीषणको सामने देखकर कुम्भकर्णने इस प्रकार कहा—'वत्स ! तुम भाईका स्नेह छोड़कर श्रीरघुनाथजीका प्रिय करो और रणभूमिमें शीघ्र मेरे ऊपर गदा चलाओ । इस समय तुम क्षात्रधर्ममें दृढ़तापूर्वक स्थिर रहो । तुम जो श्रीरामकी शरणमें आ गये, इससे तुमने हमलोगोंका काम बना दिया । राक्षसोंमें एक तुम्हीं ऐसे हो, जिसने इस जगत्में सत्य और धर्मकी रक्षा की है । जो धर्ममें अनुरक्त होते हैं, उन्हें कभी कोई दुःख नहीं भोगना पड़ता है । अब एकमात्र तुम्हीं इस कुलकी संतानपरम्पराको सुरक्षित रखनेके लिये जीवित रहोगे । श्रीरघुनाथजीकी कृपासे तुम्हें राक्षसोंका राज्य प्राप्त होगा । दुर्जय वीर ! मेरी प्रकृतिसे तो तुम परिचित ही हो; अतः शीघ्र मेरा रास्ता छोड़कर दूर हट जाओ । इस समय सम्भ्रमके कारण मेरी विचारशक्ति नष्ट हो गयी है; अतः तुम्हें मेरे सामने नहीं खड़ा होना चाहिये । निशाचर ! इस समय युद्धमें आसक्त होनेके कारण मुझे अपने अथवा परायेकी पहचान नहीं हो रही है, तथापि वत्स ! तुम मेरे लिये रक्षणीय हो—मैं तुम्हारा वध करना नहीं चाहता । यह तुमसे सच्ची बात कहता हूँ ।' बुद्धिमान् कुम्भकर्णके ऐसा कहनेपर महाबाहु विभीषणने उससे कहा—'शत्रुओंका दमन करनेवाले वीर ! मैंने इस कुलकी रक्षाके लिये बहुत कुछ कहा था; किंतु समस्त राक्षसोंने मेरी बात नहीं सुनी; अतः मैं निराश होकर श्रीरामकी शरणमें आ गया । महाभाग ! यह मेरे लिये पुण्य हो या पाप । अब मैंने श्रीरामका आश्रय तो ग्रहण कर ही लिया ।' ऐसा कहकर गदाधारी विभीषणके नेत्रोंमें आँसू भर आये और वे एकान्तका आश्रय ले खड़े होकर चिन्ता करने लगे ।

हो, अतः मेरे अङ्गोंपर अपना पराक्रम दिखाओ। तुम्हारे पौरुष एवं बल-विक्रमको देख लेनेके बाद ही मैं तुम्हें खाऊँगा' ॥ १५० ॥

स कुम्भकर्णस्य वचो निशम्य
रामः सपुङ्खान् विससर्ज बाणान्।
तैराहतो वज्रसमप्रवेगै-
र्न चुक्षुभे न व्यथते सुरारिः ॥१५१॥

कुम्भकर्णकी यह बात सुनकर श्रीरामने उसके ऊपर सुन्दर पंखवाले बहुत-से बाण मारे। वज्रके समान वेगवाले उन बाणोंकी गहरी चोट खानेपर भी वह देवद्रोही राक्षस न तो क्षुब्ध हुआ और न व्यथित ही ॥ १५१ ॥

यैः सायकैः सालवरा निकृत्ता
वाली हतो वानरपुङ्गवश्च।
ते कुम्भकर्णस्य तदा शरीरं
वज्रोपमा न व्यथयाम्प्रचक्रुः ॥१५२॥

जिन बाणोंसे श्रेष्ठ सालवृक्ष काटे गये और वानरराज वालीका वध हुआ, वे ही वज्रोपम बाण उस समय कुम्भकर्णके शरीरको व्यथा न पहुँचा सके ॥ १५२ ॥

स वारिधारा इव सायकांस्तान्
पिबञ्शरीरेण महेन्द्रशत्रुः।
जघान रामस्य शरप्रवेगं
व्याविध्य तं मुद्गरमुग्रवेगम् ॥१५३॥

देवराज इन्द्रका शत्रु कुम्भकर्ण जलकी धाराके समान श्रीरामकी बाणवर्षाको अपने शरीरसे पीने लगा और भयंकर वेगशाली मुद्गरको चारों ओरसे घुमा-घुमाकर उनके बाणोंके महान् वेगको नष्ट करने लगा ॥ १५३ ॥

ततस्तु रक्षः क्षतजानुलिप्तं
वित्रासनं देवमहाचमूनाम्।
व्याविध्य तं मुद्गरमुग्रवेगं
विद्रावयामास चमूं हरीणाम् ॥१५४॥

तदनन्तर वह राक्षस देवताओंकी विशाल सेनाको भयभीत करनेवाले और खूनसे लिपटे हुए उस उग्र वेगशाली मुद्गरको घुमा-घुमाकर वानरोंकी वाहिनीको खदेड़ने लगा ॥ १५४ ॥

वायव्यमादाय ततोऽपरास्त्रं
रामः प्रचिक्षेप निशाचराय।
समुद्गरं तेन जहार बाहुं
स कृत्तबाहुस्तुमुलं ननाद ॥१५५॥

यह देख भगवान् श्रीरामने वायव्य नामक दूसरे अस्त्र-का संधान करके उसे कुम्भकर्णपर चलाया और उसके द्वारा उस निशाचरकी मुद्गरसहित दाहिनी बाँह काट डाली। बाँह कट जानेपर वह राक्षस भयानक आवाजमें चीत्कार करने लगा ॥ १५५ ॥

स तस्य बाहुर्गिरिशृङ्गकल्पः
समुद्गरो राघवबाणकृत्तः।
पपात तस्मिन् हरिराजसैन्ये
जघान तां वानरवाहिनीं च ॥१५६॥

श्रीरघुनाथजीके बाणसे कटी हुई वह बाँह, जो पर्वत-शिखरके समान जान पड़ती थी, मुद्गरके साथ ही वानरोंकी सेनामें गिरी। उसके नीचे दबकर कितने ही वानर-सैनिक अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठे ॥ १५६ ॥

ते वानरा भग्नहतावशेषाः
पर्यन्तमाश्रित्य तदा विषण्णाः।
प्रपीडिताङ्गा ददृशुः सुघोरं
नरेन्द्ररक्षोऽधिपसंनिपातम् ॥१५७॥

जो अङ्ग-भङ्ग होने या मरनेसे बचे, वे खिन्नचित्त हो किनारे जाकर खड़े हो गये। उनके शरीरमें बड़ी पीड़ा हो रही थी और वे चुपचाप महाराज श्रीराम और राक्षस कुम्भकर्णके घोर संग्रामको देखने लगे ॥ १५७ ॥

स कुम्भकर्णोऽस्त्रनिकृत्तबाहु-
र्महानिकृत्ताग्र इवाचलेन्द्रः।
उत्पाटयामास करेण वृक्षं
ततोऽभिदुद्राव रणे नरेन्द्रम् ॥१५८॥

'वायव्यास्त्रसे एक बाँह कट जानेपर कुम्भकर्ण शिखरहीन पर्वतके समान प्रतीत होने लगा। उसने एक ही हाथसे एक ताड़का वृक्ष उखाड़ लिया और उसे लेकर रणभूमिमें महाराज श्रीरामपर धावा किया ॥ १५८ ॥

तं तस्य बाहुं सहतालवृक्षं
समुद्यतं पन्नगभोगकल्पम्।
ऐन्द्रास्त्रयुक्तेन जघान रामो
बाणेन जाम्बूनदचित्रितेन ॥१५९॥

तब श्रीरामने एक सुवर्णभूषित बाण निकालकर उसे ऐन्द्रास्त्रसे अभिमन्त्रित किया और उसके द्वारा सर्पके समान उठी हुई राक्षसकी दूसरी बाँहको भी वृक्षसहित काट गिराया ॥ १५९ ॥

स कुम्भकर्णस्य भुजो निकृत्तः
पपात भूमौ गिरिसंनिकाशः।
विचेष्टमानो निजघान वृक्षा-
ञ्शैलाञ्शिलावानरराक्षसांश्च ॥१६०॥

कुम्भकर्णकी वह कटी हुई बाँह पर्वतशिखरके समान पृथ्वीपर गिरी और छटपटाने लगी। उसने कितने ही वृक्षों, शैलशिखरों, शिलाओं, वानरों और राक्षसोंको भी कुचल डाला ॥ १६० ॥

तं छिन्नबाहुं समवेक्ष्य रामः
समापतन्तं सहसा नदन्तम्।

द्वावर्धचन्द्रौ निशितौ प्रगृह्य
चिच्छेद पादौ युधि राक्षसस्य ॥१६१॥

उन दोनों भुजाओंके कट जानेपर वह राक्षस सहसा आर्तनाद करता हुआ श्रीरामपर टूट पड़ा। उसे आक्रमण करते देख श्रीरामने दो तीखे अर्धचन्द्राकार बाण लेकर उनके द्वारा युद्धस्थलमें उस राक्षसके दोनों पैर भी उड़ा दिये॥

तौ तस्य पादौ प्रदिशो दिशश्च
गिरेर्गुहाश्चैव महार्णवं च।
लङ्कां च सेनां कपिराक्षसानां
विनादयन्तौ विनिपेततुश्च ॥१६२॥

उसके दोनों पैर दिशा-विदिशा, पर्वतकी कन्दरा, महासागर, लङ्कापुरी तथा वानरों और राक्षसोंकी सेनाओंको भी प्रतिध्वनित करते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १६२ ॥

निकृत्तबाहुर्विनिकृत्तपादो
विदार्य वक्त्रं वडवामुखाभम्।
दुद्राव रामं सहसाभिगर्जन्
राहुर्यथा चन्द्रमिवान्तरिक्षे ॥१६३॥

दोनों बाँहों और पैरोंके कट जानेपर उसने वडवानलके समान अपने विकराल मुखको फैलाया और जैसे राहु आकाशमें चन्द्रमाको ग्रस लेता है, उसी प्रकार वह श्रीरामको ग्रसनेके लिये भयानक गर्जना करता हुआ सहसा उनके ऊपर टूट पड़ा॥

अपूरयत् तस्य मुखं शिताग्रै
रामः शरैर्हेमपिनद्धपुङ्खैः।
सम्पूर्णवक्त्रो न शशाक वक्तुं
चुकूज कृच्छ्रेण मुमूर्च्छ चापि ॥१६४॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने सुवर्णजटित पंखवाले अपने तीखे बाणोंसे उसका मुँह भर दिया। मुँह भर जानेपर वह बोलनेमें भी असमर्थ हो गया और बड़ी कठिनाईसे आर्तनाद करके मूर्छित हो गया ॥ १६४ ॥

अथाददे सूर्यमरीचिकल्पं
स ब्रह्मदण्डान्तककालकल्पम्।
अरिष्टमैन्द्रं निशितं सुपुङ्खं
रामः शरं मारुततुल्यवेगम् ॥१६५॥
तं वज्रजाम्बूनदचारुपुङ्खं
प्रदीप्तसूर्यज्वलनप्रकाशम्।
महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगं
रामः प्रचिक्षेप निशाचराय ॥१६६॥

इसके बाद भगवान् श्रीरामने ब्रह्मदण्ड तथा विनाशकारी कालके समान भयंकर एवं तीखा बाण, जो सूर्यकी किरणोंके समान उद्दीप्त, इन्द्रास्त्रसे अभिमन्त्रित, शत्रुनाशक, तेजस्वी सूर्य और प्रज्वलित अग्निके समान देदीप्यमान, हीरे और सुवर्णसे विभूषित सुन्दर पंखसे युक्त, वायु तथा इन्द्रके वज्र और अशनिके समान वेगशाली था, हाथमें लिया और उस निशाचरको लक्ष्य करके छोड़ दिया ॥ १६५-१६६ ॥

स सायको राघवबाहुचोदितो
दिशः स्वभासा दश सम्प्रकाशयन्।
विधूमवैश्वानरभीमदर्शनो
जगाम शक्राशनिभीमविक्रमः ॥१६७॥

श्रीरघुनाथजीकी भुजाओंसे प्रेरित होकर वह बाण अपनी प्रभासे दसों दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ इन्द्रके वज्रकी भाँति भयंकर वेगसे चला। वह धूमरहित अग्निके समान भयानक दिखायी देता था ॥ १६७ ॥

स तन्महापर्वतकूटसंनिभं
सुवृत्तदंष्ट्रं चलचारुकुण्डलम्।
चकर्त रक्षोऽधिपतेः शिरस्तदा
यथैव वृत्रस्य पुरा पुरंदरः ॥१६८॥

जैसे पूर्वकालमें देवराज इन्द्रने वृत्रासुरका मस्तक काट डाला था, उसी प्रकार उस बाणने राक्षसराज कुम्भकर्णके महान् पर्वतशिखरके समान ऊँचे, सुन्दर गोलाकार दाढ़ोंसे युक्त तथा हिलते हुए मनोहर कुण्डलोंसे अलंकृत मस्तकको धड़से अलग कर दिया ॥ १६८ ॥

कुम्भकर्णशिरो भाति कुण्डलालंकृतं महत्।
आदित्येऽभ्युदिते रात्रौ मध्यस्थ इव चन्द्रमाः ॥१६९॥

कुम्भकर्णका वह कुण्डलोंसे अलंकृत विशाल मस्तक प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर आकाशके मध्यमें विराजमान चन्द्रमाकी भाँति निस्तेज प्रतीत होता था ॥ १६९ ॥

तद् रामबाणाभिहतं पपात
रक्षःशिरः पर्वतसंनिकाशम्।
बभञ्ज चर्यागृहगोपुराणि
प्राकारमुच्चं तमपातयच्च ॥१७०॥

श्रीरामके बाणोंसे कटा हुआ राक्षसका वह पर्वताकार मस्तक लङ्कामें जा गिरा। उसने अपने धक्केसे सड़कके आस-पासके कितने ही मकानों, दरवाजों और ऊँचे परकोटेको भी धराशायी कर दिया ॥ १७० ॥

तच्चातिकायं हिमवत्प्रकाशं
रक्षस्तदा तोयनिधौ पपात।
ग्राहान् परान् मीनवरान् भुजंगमान्
ममर्द भूमिं च तथा विवेश ॥१७१॥

इसी प्रकार उस राक्षसका विशाल धड़ भी, जो हिमालयके समान जान पड़ता था, तत्काल समुद्रके जलमें गिर पड़ा और बड़े-बड़े ग्राहों, मत्स्यों तथा साँपोंको पीसता हुआ पृथ्वीके भीतर समा गया ॥ १७१ ॥

तस्मिन् हते ब्राह्मणदेवशत्रौ
महाबले संयति कुम्भकर्णे ।
चचाल भूर्भूमिधराश्च सर्वे
हर्षाच्च देवास्तुमुलं प्रणेदुः ॥१७२॥

ब्राह्मणों और देवताओंके शत्रु महाबली कुम्भकर्णके युद्धमें मारे जानेपर पृथ्वी डोलने लगी, पर्वत हिलने लगे और सम्पूर्ण देवता हर्षसे भरकर तुमुल नाद करने लगे ॥ १७२ ॥

ततस्तु देवर्षिमहर्षिपन्नगाः
सुराश्च भूतानि सुपर्णगुह्यकाः ।
सयक्षगन्धर्वगणा नभोगताः
प्रहर्षिता रामपराक्रमेण ॥१७३॥

उस समय आकाशमें खड़े हुए देवर्षि, महर्षि, सर्प, देवता, भूतगण, गरुड़, गुह्यक, यक्ष और गन्धर्वगण श्रीरामका पराक्रम देखकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ १७३ ॥

ततस्तु ते तस्य वधेन भूरिणा
मनस्विनो नैर्ऋतराजबान्धवाः ।
विनेदुरुच्चैर्व्यथिता रघूत्तमं
हरिं समीक्ष्यैव यथा मतंगजाः ॥१७४॥

कुम्भकर्णके महान् वधसे राक्षसराज रावणके मनस्वी बन्धुओंको बड़ा दुःख हुआ। वे रघुकुलतिलक श्रीरामकी ओर देखकर उसी तरह उच्च स्वरसे रोने-कलपने लगे, जैसे सिंहपर दृष्टि पड़ते ही मतवाले हाथी चीत्कार कर उठते हैं ॥

स देवलोकस्य तमो निहत्य
सूर्यो यथा राहुमुखाद् विमुक्तः ।
तथा व्यभासीद्धरिसैन्यमध्ये
निहत्य रामो युधि कुम्भकर्णम् ॥१७५॥

देवसमूहको दुःख देनेवाले कुम्भकर्णका युद्धमें वध करके वानर-सेनाके बीचमें खड़े हुए भगवान् श्रीराम अन्धकारका नाश करके राहुके मुखसे छूटे हुए सूर्यदेवके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ १७५ ॥

प्रहर्षमीयुर्बहवश्च वानराः
प्रबुद्धपद्मप्रतिमैरिवाननैः ।
अपूजयन् राघवमिष्टभागिनं
हते रिपौ भीमबले नृपात्मजम् ॥१७६॥

भयानक बलशाली शत्रुके मारे जानेसे बहुसंख्यक वानरोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके मुख विकसित कमलकी भाँति हर्षोल्लाससे खिल उठे तथा उन्होंने सफलमनोरथ हुए राजकुमार भगवान् श्रीरामकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥१७६॥

स कुम्भकर्णं सुरसैन्यमर्दनं
महत्सु युद्धेषु कदाचनाजितम् ।
ननन्द हत्वा भरताग्रजो रणे
महासुरं वृत्रमिवामराधिपः ॥१७७॥

जो बड़े-बड़े युद्धोंमें कभी पराजित नहीं हुआ था तथा देवताओंकी सेनाको भी कुचल डालनेवाला था, उस महान् राक्षस कुम्भकर्णको रणभूमिमें मारकर रघुनाथजीको वैसी ही प्रसन्नता हुई जैसी वृत्रासुरका वध करके देवराज इन्द्रको हुई थी ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः

कुम्भकर्णके वधका समाचार सुनकर रावणका विलाप

कुम्भकर्णं हतं दृष्ट्वा राघवेण महात्मना ।
राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ॥ १ ॥

महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा कुम्भकर्णको मारा गया देख राक्षसोंने अपने राजा रावणसे जाकर कहा—॥ १ ॥

राजन् स कालसंकाशः संयुक्तः कालकर्मणा ।
विद्राव्य वानरीं सेनां भक्षयित्वा च वानरान् ॥ २ ॥

'महाराज ! कालके समान भयंकर पराक्रमी कुम्भकर्ण वानरसेनाको भगाकर तथा बहुत-से वानरोंको अपना आहार बनाकर स्वयं भी कालके गालमें चले गये ॥ २ ॥

प्रतपित्वा मुहूर्तं तु प्रशान्तो रामतेजसा ।
कायेनार्धप्रविष्टेन समुद्रं भीमदर्शनम् ॥ ३ ॥

निकृत्तनासाकर्णेन विक्षरद्रुधिरेण च ।
रुद्ध्वा द्वारं शरीरेण लङ्कायाः पर्वतोपमः ॥ ४ ॥
कुम्भकर्णस्तव भ्राता काकुत्स्थशरपीडितः ।
अगण्डभूतो विवृतो दावदग्ध इव द्रुमः ॥ ५ ॥

'वे दो घड़ीतक अपने प्रतापसे तपकर अन्तमें श्रीरामके तेजसे शान्त हो गये। उनका आधा शरीर (धड़) भयानक दिखायी देनेवाले समुद्रमें घुस गया और आधा शरीर (मस्तक) नाक-कान कट जानेसे खून बहाता हुआ लङ्काके द्वारपर पड़ा है। उस शरीरके द्वारा आपके भाई पर्वताकार कुम्भकर्ण लङ्काका द्वार रोककर पड़े हैं। वे श्रीरामके बाणोंसे पीड़ित हो हाथ, पैर और मस्तकसे हीन नंग-धड़ंग धड़के रूपमें परिणत हो दावानलसे दग्ध हुए वृक्षकी भाँति नष्ट हो गये' ॥ ३–५ ॥

श्रुत्वा विनिहतं संख्ये कुम्भकर्णं महाबलम् ।
रावणः शोकसंतप्तो मुमोह च पपात च ॥ ६ ॥

'महाबली कुम्भकर्ण युद्धस्थलमें मारा गया!' यह सुनकर रावण शोकसे संतप्त एवं मूर्छित हो गया और तत्काल पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ६ ॥

पितृव्यं निहतं श्रुत्वा देवान्तकनरान्तकौ ।
त्रिशिराश्चातिकायश्च रुरुदुः शोकपीडिताः ॥ ७ ॥

अपने चाचाके निधनका समाचार सुनकर देवान्तक, नरान्तक, त्रिशिरा और अतिकाय दुःखसे पीड़ित हो फूट-फूटकर रोने लगे ॥ ७ ॥

भ्रातरं निहतं श्रुत्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
महोदरमहापार्श्वौ शोकाक्रान्तौ बभूवतुः ॥ ८ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामके द्वारा भाई कुम्भकर्ण मारे गये, यह सुनकर उसके सौतेले भाई महोदर और महापार्श्व शोकसे व्याकुल हो गये ॥ ८ ॥

ततः कृच्छ्रात् समासाद्य संज्ञां राक्षसपुङ्गवः ।
कुम्भकर्णवधाद् दीनो विललापाकुलेन्द्रियः ॥ ९ ॥

तदनन्तर बड़े कष्टसे होशमें आनेपर राक्षसराज रावण कुम्भकर्णके वधसे दुखी हो विलाप करने लगा । उसकी सारी इन्द्रियाँ शोकसे व्याकुल हो उठी थीं ॥ ९ ॥

हा वीर रिपुदर्पघ्न कुम्भकर्ण महाबल ।
त्वं मां विहाय वै दैवाद् यातोऽसि यमसादनम् ॥ १० ॥

(वह रो-रोकर कहने लगा—) 'हा वीर ! हा महाबली कुम्भकर्ण ! तुम शत्रुओंके दर्पका दलन करनेवाले थे; किंतु दुर्भाग्यवश मुझे असहाय छोड़कर यमलोकको चल दिये ॥

मम शल्यमनुद्धृत्य बान्धवानां महाबल ।
शत्रुसैन्यं प्रताप्यैकः क्व मां संत्यज्य गच्छसि ॥ ११ ॥

'महाबली वीर ! तुम मेरा तथा इन भाई-बन्धुओंका कण्टक दूर किये बिना शत्रुसेनाको संतप्त करके मुझे छोड़ अकेले कहाँ चले जा रहे हो ? ॥ ११ ॥

इदानीं खल्वहं नास्मि यस्य मे पतितो भुजः ।
दक्षिणोऽयं समाश्रित्य न बिभेमि सुरासुरात् ॥ ५२ ॥

'इस समय मैं अवश्य ही नहींके बराबर हूँ; क्योंकि मेरी दाहिनी बाँह कुम्भकर्ण धराशायी हो गया । जिसका भरोसा करके मैं देवता और असुर किसीसे नहीं डरता था ॥

कथमेवंविधो वीरो देवदानवदर्पहा ।
कालाग्निप्रतिमो ह्यद्य राघवेण रणे हतः ॥ १३ ॥

'देवताओं और दानवोंका दर्प चूर करनेवाला ऐसा वीर, जो कालाग्निके समान प्रतीत होता था, आज रणक्षेत्रमें रामके हाथसे कैसे मारा गया ? ॥ १३ ॥

यस्य ते वज्रनिष्पेषो न कुर्याद् व्यसनं सदा ।
स कथं रामबाणार्तः प्रसुप्तोऽसि महीतले ॥ १४ ॥

'भाई ! तुम्हें तो वज्रका प्रहार भी कभी कष्ट नहीं पहुँचा सकता था । वही तुम आज रामके बाणोंसे पीड़ित हो भूतलपर कैसे सो रहे हो ? ॥ १४ ॥

एते देवगणाः सार्धमृषिभिर्गगने स्थिताः ।
निहतं त्वां रणे दृष्ट्वा निनदन्ति प्रहर्षिताः ॥ १५ ॥

'आज समराङ्गणमें तुम्हें मारा गया देख आकाशमें खड़े हुए ये ऋषियोंसहित देवता हर्षनाद कर रहे हैं ॥ १५ ॥

ध्रुवमद्यैव संहृष्टा लब्धलक्षाः प्लवंगमाः ।
आरोक्ष्यन्तीह दुर्गाणि लङ्काद्वाराणि सर्वशः ॥ १६ ॥

'निश्चय ही अब अवसर पाकर हर्षसे भरे हुए वानर आज ही लङ्काके समस्त दुर्गम द्वारोंपर चढ़ जायँगे ॥ १६ ॥

राज्येन नास्ति मे कार्यं किं करिष्यामि सीतया ।
कुम्भकर्णविहीनस्य जीविते नास्ति मे मतिः ॥ १७ ॥

'अब मुझे राज्यसे कोई प्रयोजन नहीं है । सीताको लेकर भी मैं क्या करूँगा ? कुम्भकर्णके बिना जीनेका मेरा मन नहीं है ॥ १७ ॥

यद्यहं भ्रातृहन्तारं न हन्मि युधि राघवम् ।
ननु मे मरणं श्रेयो न चेदं व्यर्थजीवितम् ॥ १८ ॥

'यदि मैं 'युद्धस्थलमें अपने भाईका वध करनेवाले रामको नहीं मार सकता तो मेरा मर जाना ही अच्छा है । इस निरर्थक जीवनको सुरक्षित रखना कदापि अच्छा नहीं है ॥

अद्यैव तं गमिष्यामि देशं यत्रानुजो मम ।
नहि भ्रातॄन् समुत्सृज्य क्षणं जीवितुमुत्सहे ॥ १९ ॥

'मैं आज ही उस देशको जाऊँगा, जहाँ मेरा छोटा भाई कुम्भकर्ण गया है । मैं अपने भाइयोंको छोड़कर क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता ॥ १९ ॥

देवा हि मां हसिष्यन्ति दृष्ट्वा पूर्वापकारिणम् ।
कथमिन्द्रं जयिष्यामि कुम्भकर्ण हते त्वयि ॥ २० ॥

'मैंने पहले देवताओंका अपकार किया था । अब वे मुझे देखकर हँसेंगे । हा कुम्भकर्ण ! तुम्हारे मारे जानेपर अब मैं इन्द्रको कैसे जीत सकूँगा ? ॥ २० ॥

तदिदं मामनुप्राप्तं विभीषणवचः शुभम् ।
यदज्ञानान्मया तस्य न गृहीतं महात्मनः ॥ २१ ॥

'मैंने महात्मा विभीषणकी कही हुई जिन उत्तम बातोंको अज्ञानवश स्वीकार नहीं किया था, वे मेरे ऊपर आज प्रत्यक्षरूपसे घटित हो रही हैं ॥ २१ ॥

विभीषणवचस्तावत् कुम्भकर्णप्रहस्तयोः ।
विनाशोऽयं समुत्पन्नो मां व्रीडयति दारुणः ॥ २२ ॥

'जबसे कुम्भकर्ण और प्रहस्तका यह दारुण विनाश उत्पन्न हुआ है, तभीसे विभीषणकी बात याद आकर मुझे लज्जित कर रही है ॥ २२ ॥

तस्यायं कर्मणः प्राप्तो विपाको मम शोकदः ।
यन्मया धार्मिकः श्रीमान् स निरस्तो विभीषणः ॥ २३ ॥

'मैंने धर्मपरायण श्रीमान् विभीषणको जो घरसे निकाल दियां था, उसी कर्मका यह शोकदायक परिणाम अब मुझे भोगना पड़ रहा है' ॥ २३ ॥

इति बहुविधमाकुलान्तरात्मा
कृपणमतीव विलप्य कुम्भकर्णम् ।
न्यपतदपि दशाननो भृशार्त-
स्तमनुजमिन्द्ररिपुं हतं विदित्वा ॥ २४ ॥

इस प्रकार भाँति-भाँतिसे दीनतापूर्वक अत्यन्त विलाप करके व्याकुलचित्त हुआ दशमुख रावण अपने छोटे भाई इन्द्र-शत्रु कुम्भकर्णके वधका स्मरण करके बहुत ही व्यथित हो पुनः पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें अड़सठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६८ ॥

* * *

एकोनसप्ततितमः सर्गः

रावणके पुत्रों और भाइयोंका युद्धके लिये जाना और नरान्तकका अङ्गदके द्वारा वध

एवं विलपमानस्य रावणस्य दुरात्मनः ।
श्रुत्वा शोकाभिभूतस्य त्रिशिरा वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

दुरात्मा रावण जब शोकसे पीड़ित हो इस प्रकार विलाप करने लगा, तब त्रिशिराने कहा—॥ १ ॥

एवमेव महावीर्यो हतो नस्तातमध्यमः ।
न तु सत्पुरुषा राजन् विलपन्ति यथा भवान् ॥ २ ॥

'राजन् ! इसमें संदेह नहीं कि हमारे मझले चाचा, जो इस समय युद्धमें मारे गये हैं, ऐसे ही महान् पराक्रमी थे; परंतु आप जिस प्रकार रोते-कलपते हैं, उस तरह श्रेष्ठ पुरुष किसीके लिये विलाप नहीं करते हैं ॥ २ ॥

नूनं त्रिभुवनस्यापि पर्याप्तस्त्वमसि प्रभो ।
स कस्मात् प्राकृत इव शोचस्यात्मानमीदृशम् ॥ ३ ॥

'प्रभो ! निश्चय आप अकेले ही तीनों लोकोंसे भी लोहा लेनेमें समर्थ हैं; फिर इस तरह साधारण पुरुषकी भाँति क्यों अपने-आपको शोकमें डाल रहे हैं ? ॥ ३ ॥

ब्रह्मदत्तास्ति ते शक्तिः कवचं सायको धनुः ।
सहस्रखरसंयुक्तो रथो मेघसमस्वनः ॥ ४ ॥

'आपके पास ब्रह्माजीकी दी हुई शक्ति, कवच, धनुष तथा बाण हैं; साथ ही मेघ-गर्जनाके समान शब्द करनेवाला रथ भी है, जिसमें एक हजार गदहे जोते जाते हैं ॥ ४ ॥

त्वयासकृद्धि शस्त्रेण विशस्ता देवदानवाः ।
स सर्वायुधसम्पन्नो राघवं शास्तुमर्हसि ॥ ५ ॥

'आपने एक ही शस्त्रसे देवताओं और दानवोंको अनेक बार पछाड़ा है; अतः सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित होनेपर आप रामको भी दण्ड दे सकते हैं ॥ ५ ॥

कामं तिष्ठ महाराज निर्गमिष्याम्यहं रणे ।
उद्धरिष्यामि ते शत्रून् गरुडः पन्नगानिव ॥ ६ ॥

'अथवा महाराज ! आपकी इच्छा हो तो यहीं रहें । मैं स्वयं युद्धके लिये जाऊँगा और जैसे गरुड़ सर्पोंका संहार करते हैं, उसी तरह मैं आपके शत्रुओंको जड़से उखाड़ फेंकूँगा ॥

शम्बरो देवराजेन नरको विष्णुना यथा ।
तथाद्य शयिता रामो मया युधि निपातितः ॥ ७ ॥

'जैसे इन्द्रने शम्बरासुरको और भगवान् विष्णुने नरकासुरको[1] मार गिराया था, उसी प्रकार युद्धस्थलमें आज मेरे द्वारा मारे जाकर राम सदाके लिये सो जायँगे' ॥ ७ ॥

श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः ।
पुनर्जातमिवात्मानं मन्यते कालचोदितः ॥ ८ ॥

त्रिशिराकी यह बात सुनकर राक्षसराज रावणको इतना संतोष हुआ कि वह अपना नया जन्म हुआ-सा मानने लगा । कालसे प्रेरित होकर ही उसकी ऐसी बुद्धि हो गयी ॥ ८ ॥

श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्यं देवान्तकनरान्तकौ ।
अतिकायश्च तेजस्वी बभूवुर्युद्धहर्षिताः ॥ ९ ॥

त्रिशिराका उपर्युक्त कथन सुनकर देवान्तक, नरान्तक

---

[1] यहाँ जिस नरकासुरका नाम आया है, वह विप्रचित्ति नामक दानवके द्वारा सिंहिकाके गर्भसे उत्पन्न हुए वातापि आदि सात पुत्रोंमेंसे एक था । उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—वातापि, नमुचि, इल्वल, सृमर, अन्धक, नरक और कालनाभ । भगवान् श्रीकृष्णने द्वापरमें जिस भूमिपुत्र नरकासुरका वध किया था, वह यहाँ उल्लिखित नरकासुरसे भिन्न था । त्रिशिरा और रावणके समयमें तो उसका जन्म ही नहीं हुआ था।

और तेजस्वी अतिकाय—ये तीनों युद्धके लिये उत्साहित हो गये ॥ ९ ॥

ततोऽहमहमित्येवं गर्जन्तो नैर्ऋतर्षभाः ।
✓**रावणस्य सुता वीराः शक्रतुल्यपराक्रमाः ॥ १० ॥**

'मैं युद्धके लिये जाऊँगा, मैं जाऊँगा' ऐसा कहते और गर्जते हुए वे तीनों श्रेष्ठ निशाचर युद्धके लिये तैयार हो गये। रावणके वे वीर पुत्र इन्द्रके समान पराक्रमी थे ॥ १० ॥

अन्तरिक्षगताः सर्वे सर्वे मायाविशारदाः ।
सर्वे त्रिदशदर्पघ्नाः सर्वे समरदुर्मदाः ॥ ११ ॥

वे सब-के-सब आकाशमें विचरण करनेवाले, मायाविशारद, रणदुर्मद तथा देवताओंका भी दर्प दलन करनेवाले थे ॥ ११ ॥

सर्वे सुबलसम्पन्नाः सर्वे विस्तीर्णकीर्तयः ।
सर्वे समरमासाद्य न श्रूयन्ते स्म निर्जिताः ॥ १२ ॥
देवैरपि सगन्धर्वैः सकिंनरमहोरगैः ।
सर्वेऽस्त्रविदुषो वीराः सर्वे युद्धविशारदाः ।
सर्वे प्रवरविज्ञानाः सर्वे लब्धवरास्तथा ॥ १३ ॥

वे सभी उत्तम बलसे सम्पन्न थे। उन सबकी कीर्ति तीनों लोकोंमें फैली हुई थी और समरभूमिमें आनेपर गन्धर्वों, किन्नरों तथा बड़े-बड़े नागोंसहित देवताओंसे भी कभी उन सबकी पराजय नहीं सुनी गयी थी। वे सभी अस्त्रवेत्ता सभी वीर और सभी युद्धकी कलामें निपुण थे। उन सबको शस्त्रों और शास्त्रोंका उत्तम ज्ञान प्राप्त था और सबने तपस्याके द्वारा वरदान प्राप्त किया था ॥ १२-१३ ॥

स तैस्तथा भास्करतुल्यवर्चसैः
सुतैर्वृतः शत्रुबलश्रियार्दनैः ।
रराज राजा मघवान् यथामरै-
र्वृतो महादानवदर्पनाशनैः ॥ १४ ॥

सूर्यके समान तेजस्वी तथा शत्रुओंकी सेना और सम्पत्तिको रौंद डालनेवाले उन पुत्रोंसे घिरा हुआ राक्षसोंका राजा रावण बड़े-बड़े दानवोंका दर्प चूर्ण करनेवाले देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रकी भाँति शोभा पा रहा था ॥ १४ ॥

स पुत्रान् सम्परिष्वज्य भूषयित्वा च भूषणैः ।
आशीर्भिश्च प्रशस्ताभिः प्रेषयामास वै रणे ॥ १५ ॥

उसने अपने पुत्रोंको हृदयसे लगाकर नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित किया और उत्तम आशीर्वाद देकर रणभूमिमें भेजा ॥ १५ ॥

✓**युद्धोन्मत्तं च मत्तं च भ्रातरौ चापि रावणः ।**
रक्षणार्थं कुमाराणां प्रेषयामास संयुगे ॥ १६ ॥

रावणने अपने दोनों भाई युद्धोन्मत्त (महापार्श्व) और मत्त (महोदर) को भी युद्धमें कुमारोंकी रक्षाके लिये भेजा ॥ १६ ॥

तेऽभिवाद्य महात्मानं रावणं लोकरावणम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं चैव महाकायाः प्रतस्थिरे ॥ १७ ॥

वे सभी महाकाय राक्षस समस्त लोकोंको रुलानेवाले महामना रावणको प्रणाम और उसकी परिक्रमा करके युद्धके लिये प्रस्थित हुए ॥ १७ ॥

सर्वौषधीभिर्गन्धैश्च समालभ्य महाबलाः ।
निर्जग्मुर्नैर्ऋतश्रेष्ठाः षडेते युद्धकाङ्क्षिणः ॥ १८ ॥
त्रिशिराश्चातिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ ।
महोदरमहापार्श्वौ निर्जग्मुः कालचोदिताः ॥ १९ ॥

सब प्रकारकी ओषधियों तथा गन्धोंका स्पर्श करके युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक, नरान्तक, महोदर और महापार्श्व—ये छः महाबली श्रेष्ठ निशाचर कालसे प्रेरित हो युद्धके लिये पुरीसे बाहर निकले ॥ १८-१९ ॥

✓**ततः सुदर्शनं नागं नीलजीमूतसंनिभम् ।**
ऐरावतकुले जातमारुरोह महोदरः ॥ २० ॥

उस समय महोदर ऐरावतके कुलमें उत्पन्न हुए काले मेघके समान रंगवाले 'सुदर्शन' नामक हाथीपर सवार हुआ ॥

सर्वायुधसमायुक्तस्तूणीभिश्चाप्यलंकृतः ।
रराज गजमास्थाय सवितेवास्तमूर्धनि ॥ २१ ॥

समस्त आयुधोंसे सम्पन्न और तूणीरोंसे अलंकृत महोदर उस हाथीकी पीठपर बैठकर अस्ताचलके शिखरपर विराजमान सूर्यदेवके समान शोभा पा रहा था ॥ २१ ॥

हयोत्तमसमायुक्तं सर्वायुधसमाकुलम् ।
आरुरोह रथश्रेष्ठं त्रिशिरा रावणात्मजः ॥ २२ ॥

रावणकुमार त्रिशिरा एक उत्तम रथपर आरूढ़ हुआ, जिसमें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र रक्खे गये थे और उत्तम घोड़े जुते हुए थे ॥ २२ ॥

त्रिशिरा रथमास्थाय विरराज धनुर्धरः ।
सविद्युदुल्कः सज्वालः सेन्द्रचाप इवाम्बुदः ॥ २३ ॥

उस रथमें बैठकर धनुष धारण किये त्रिशिरा विद्युत्, उल्का, ज्वाला और इन्द्रधनुषसे युक्त मेघके समान शोभा पाने लगा ॥ २३ ॥

त्रिभिः किरीटैस्त्रिशिराः शुशुभे स रथोत्तमे ।
हिमवानिव शैलेन्द्रस्त्रिभिः काञ्चनपर्वतैः ॥ २४ ॥

उस उत्तम रथमें सवार हो तीन किरीटोंसे युक्त त्रिशिरा तीन सुवर्णमय शिखरोंसे युक्त गिरिराज हिमालयके समान शोभा पा रहा था ॥ २४ ॥

अतिकायोऽतितेजस्वी राक्षसेन्द्रसुतस्तदा । ✓
आरुरोह रथश्रेष्ठं श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ २५ ॥

राक्षसराज रावणका अत्यन्त तेजस्वी पुत्र अतिकाय समस्त

धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ था। वह भी उस समय एक उत्तम रथपर आरूढ़ हुआ॥ २५॥

सुचक्राक्षं सुसंयुक्तं स्वनुकर्षं सुकूबरम्।
तूणीबाणासनैर्दीप्तं प्रासासिपरिघाकुलम्॥ २६॥

उस रथके पहिये और धुरे बहुत सुन्दर थे। उसमें उत्तम घोड़े जुते हुए थे तथा उसके अनुकर्ष[1] और कूबर[2] भी सुदृढ़ थे। तूणीर, बाण और धनुषके कारण वह रथ उद्दीप्त हो रहा था। प्रास, खड्ग और परिघोंसे वह भरा हुआ था॥२६॥

स काञ्चनविचित्रेण किरीटेन विराजता।
भूषणैश्च बभौ मेरुः प्रभाभिरिव भासयन्॥ २७॥

वह सुवर्णनिर्मित विचित्र एवं दीप्तिशाली किरीट तथा अन्य आभूषणोंसे विभूषित हो अपनी प्रभासे प्रकाशका विस्तार करते हुए मेरुपर्वतके समान सुशोभित होता था॥ २७॥

स रराज रथे तस्मिन् राजसूनुर्महाबलः।
वृतो नैर्ऋतशार्दूलैर्वज्रपाणिरिवामरैः॥ २८॥

उस रथपर श्रेष्ठ निशाचरोंसे घिरकर बैठा हुआ वह महाबली राक्षसराजकुमार देवताओंसे घिरे हुए वज्रपाणि इन्द्रके समान शोभा पाता था॥ २८॥

हयमुच्चैःश्रवःप्रख्यं श्वेतं कनकभूषणम्।
मनोजवं महाकायमारुरोह नरान्तकः॥ २९॥

नरान्तक उच्चैःश्रवाके समान श्वेत वर्णवाले एक सुवर्णभूषित विशालकाय और मनके समान वेगशाली अश्वपर आरूढ़ हुआ॥ २९॥

गृहीत्वा प्रासमुल्काभं विरराज नरान्तकः।
शक्तिमादाय तेजस्वी गुहः शिखिगतो यथा॥ ३०॥

उल्काके समान दीप्तिमान् प्रास हाथमें लेकर तेजस्वी नरान्तक शक्ति लिये मोरपर बैठे हुए तेजःपुञ्जसे सम्पन्न कुमार कार्तिकेयके समान सुशोभित हो रहा था॥ ३०॥

देवान्तकः समादाय परिघं हेमभूषणम्।
परिगृह्य गिरिं दोर्भ्यां वपुर्विष्णोर्विडम्बयन्॥ ३१॥

देवान्तक स्वर्णभूषित परिघ लेकर समुद्रमन्थनके समय दोनों हाथोंसे मन्दराचल उठाये हुए भगवान् विष्णुके स्वरूपका अनुकरण-सा कर रहा था॥ ३१॥

महापार्श्वो महातेजा गदामादाय वीर्यवान्।
विरराज गदापाणिः कुबेर इव संयुगे॥ ३२॥

महातेजस्वी और पराक्रमी महापार्श्व हाथमें गदा लेकर युद्धस्थलमें गदाधारी कुबेरके समान शोभा पाने लगा॥३२॥

ते प्रतस्थुर्महात्मानोऽमरावत्याः सुरा इव।
तान् गजैश्च तुरङ्गैश्च रथैश्चाम्बुदनिःस्वनैः॥ ३३॥
अनूत्पेतुर्महात्मानो राक्षसाः प्रवरायुधाः।

अमरावतीपुरीसे निकलनेवाले देवताओंके समान वे सभी महाकाय निशाचर लङ्कापुरीसे चले। उनके पीछे श्रेष्ठ आयुध धारण किये विशालकाय राक्षस हाथी, घोड़ों तथा मेघकी गर्जनाके समान घर्घराहट पैदा करनेवाले रथोंपर सवार हो युद्धके लिये निकले॥ ३३½॥

ते विरेजुर्महात्मानः कुमाराः सूर्यवर्चसः॥ ३४॥
किरीटिनः श्रिया जुष्टा ग्रहा दीप्ता इवाम्बरे।

वे सूर्यतुल्य तेजस्वी, महामनस्वी राक्षसराजकुमार मस्तकपर किरीट धारण करके उत्तम शोभा-सम्पत्तिसे सेवित हो आकाशमें प्रकाशित होनेवाले ग्रहोंके समान सुशोभित हो रहे थे॥ ३४½॥

प्रगृहीता बभौ तेषां शस्त्राणामावलिः सिता॥ ३५॥
शरदभ्रप्रतीकाशा हंसावलिरिवाम्बरे।

उनके द्वारा धारण की हुई अस्त्र-शस्त्रोंकी श्वेत पङ्क्ति आकाशमें शरद्ऋतुके बादलोंकी भाँति उज्ज्वल कान्तिसे युक्त हंसोंकी श्रेणीके समान शोभा पा रही थी॥ ३५½॥

मरणं वापि निश्चित्य शत्रूणां वा पराजयम्॥ ३६॥ ✓
इति कृत्वा मतिं वीराः संजग्मुः संयुगार्थिनः।

आज या तो हम शत्रुओंको परास्त कर देंगे, या स्वयं ही मृत्युकी गोदमें सदाके लिये सो जायँगे—ऐसा निश्चय करके वे वीर राक्षस युद्धके लिये आगे बढ़े॥ ३६½॥

जगर्जुश्च प्रणेदुश्च चिक्षिपुश्चापि सायकान्॥ ३७॥
जगृहुश्च महात्मानो निर्यान्तो युद्धदुर्मदाः।

वे युद्धदुर्मद महामनस्वी निशाचर गर्जते, सिंहनाद करते, बाण हाथमें लेते और उन्हें शत्रुओंपर छोड़ देते थे॥३७½॥

क्ष्वेडितास्फोटितानां वै संचचालेव मेदिनी॥ ३८॥
रक्षसां सिंहनादैश्च संस्फोटितमिवाम्बरम्।

उन राक्षसोंके गर्जने, ताल ठोंकने और सिंहनाद करनेसे पृथ्वी कम्पित-सी होने लगी और आकाश फटने-सा लगा॥३८½॥

तेऽभिनिष्क्रम्य मुदिता राक्षसेन्द्रा महाबलाः॥ ३९॥
ददृशुर्वानरानीकं समुद्यतशिलानगम्।

उन महाबली राक्षसशिरोमणि वीरोंने प्रसन्नतापूर्वक नगरकी सीमासे बाहर निकलकर देखा, वानरोंकी सेना पर्वतशिखर और बड़े-बड़े वृक्ष उठाये युद्धके लिये तैयार खड़ी है॥३९½॥

हरयोऽपि महात्मानो ददृशू राक्षसं बलम्॥ ४०॥
हस्त्यश्वरथसम्बाधं किङ्किणीशतनादितम्।
नीलजीमूतसंकाशं समुद्यतमहायुधम्॥ ४१॥

---

[1] रथके धुरेपर कूबरके आधाररूपसे स्थापित काष्ठविशेषको अनुकर्ष कहते हैं। [2] कूबर उस काष्ठको कहते हैं, जिसपर जुआ रक्खा जाता है। गाड़ीके हरसोंको भी प्राचीनकालमें कूबर कहा जाता था।

महामना वानरोंने भी राक्षससेनापर दृष्टिपात किया। वह हाथी, घोड़े और रथोंसे भरी थी, सैकड़ों-हजारों घुँघुरुओंकी रुनझुनसे निनादित थी, काले मेघोंकी घटा-जैसी दिखायी देती थी और हाथोंमें बड़े-बड़े आयुध लिये हुए थी ॥ ४०-४१ ॥

दीप्तानलरविप्रख्यैर्नैर्ऋतैः सर्वतो वृतम्।
तद् दृष्ट्वा बलमायातं लब्धलक्षाः प्लवङ्गमाः ॥ ४२ ॥
समुद्यतमहाशैलाः सम्प्रणेदुर्मुहुर्मुहुः।
अमृष्यमाणा रक्षांसि प्रतिनर्दन्त वानराः ॥ ४३ ॥

प्रज्वलित अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी राक्षसोंने उसे सब ओरसे घेर रखा था। निशाचरोंकी उस सेनाको आती देख वानर प्रहार करनेका अवसर पाकर महान् पर्वतशिखर उठाये बारंबार गर्जना करने लगे। वे राक्षसोंका सिंहनाद सहन न करनेके कारण बदलेमें जोर-जोरसे दहाड़ने लगे थे ।४२-४३।

ततः समुत्कृष्टरवं निशम्य
रक्षोगणा वानरयूथपानाम्।
अमृष्यमाणाः परहर्षमुग्रं
महाबला भीमतरं प्रणेदुः ॥ ४४ ॥

वानरयूथपतियोंका वह उच्च स्वरसे किया हुआ गर्जन-तर्जन सुनकर भयंकर एवं महान् बलसे सम्पन्न राक्षसगण शत्रुओंका हर्ष सहन न कर सके; अतः स्वयं भी अत्यन्त भीषण सिंहनाद करने लगे ॥ ४४ ॥

ते राक्षसबलं घोरं प्रविश्य हरियूथपाः।
विचेरुरुद्यतैः शैलैर्नगाः शिखरिणो यथा ॥ ४५ ॥

तब वानर-यूथपति राक्षसोंकी उस भयंकर सेनामें घुस गये और शैलशृङ्ग उठाये शिखरोंवाले पर्वतोंकी भाँति वहाँ विचरण करने लगे ॥ ४५ ॥

केचिदाकाशमाविश्य केचिदुर्व्यां प्लवङ्गमाः।
रक्षःसैन्येषु संक्रुद्धाः केचिद् द्रुमशिलायुधाः ॥ ४६ ॥
द्रुमांश्च विपुलस्कन्धान् गृह्य वानरपुङ्गवाः।

वृक्षों और शिलाओंको आयुधके रूपमें धारण किये वानर योद्धा राक्षससैनिकोंपर अत्यन्त कुपित हो आकाशमें उड़-उड़कर विचरने लगे। कितने ही वानरशिरोमणि वीर मोटी-मोटी शाखाओंवाले वृक्षोंको हाथमें लेकर पृथ्वीपर विचरण करने लगे ॥ ४६½ ॥

तद् युद्धमभवद् घोरं रक्षोवानरसंकुलम् ॥ ४७ ॥
ते पादपशिलाशैलैश्चक्रुर्वृष्टिमनूपमाम्।
बाणौघैर्वार्यमाणाश्च हरयो भीमविक्रमाः ॥ ४८ ॥

उस समय राक्षसों और वानरोंके उस युद्धने बड़ा भयंकर रूप धारण किया। राक्षसोंने बाणसमूहोंकी वर्षाद्वारा जब वानरोंको आगे बढ़नेसे रोका, उस समय वे भयंकर पराक्रमी वानर उनपर वृक्षों, शिलाओं तथा शैलशिखरोंकी अनुपम वृष्टि करने लगे ॥ ४७-४८ ॥

सिंहनादान् विनेदुश्च रणे राक्षसवानराः।
शिलाभिश्चूर्णयामासुर्यातुधानान् प्लवङ्गमाः ॥ ४९ ॥
निर्जघ्नुः संयुगे क्रुद्धाः कवचाभरणावृतान्।

राक्षस और वानर दोनों ही वहाँ रणक्षेत्रमें सिंहोंके समान दहाड़ रहे थे। कुपित हुए वानरोंने कवचों और आभूषणोंसे विभूषित बहुतेरे राक्षसोंको युद्धस्थलमें शिलाओंकी मारसे कुचल दिया—मार डाला ॥ ४९½ ॥

केचिद् रथगतान् वीरान् गजवाजिगतानपि ॥ ५० ॥
निर्जघ्नुः सहसाऽऽप्लुत्य यातुधानान् प्लवङ्गमाः।

कितने ही वानर रथ, हाथी और घोड़ेपर बैठे हुए वीर राक्षसोंको भी सहसा उछलकर मार डालते थे ॥ ५०½ ॥

शैलशृङ्गान्विताङ्गास्ते मुष्टिभिर्वान्तलोचनाः ॥ ५१ ॥
चेलुः पेतुश्च नेदुश्च तत्र राक्षसपुङ्गवाः।

वहाँ प्रधान-प्रधान राक्षसोंके शरीर पर्वत-शिखरोंसे आच्छादित हो गये थे। वानरोंके मुक्कोंकी मार खाकर कितनोंकी आँखें बाहर निकल आयी थीं। वे निशाचर भागते, गिरते-पड़ते और चीत्कार करते थे ॥ ५१½ ॥

राक्षसाश्च शरैस्तीक्ष्णैर्बिभिदुः कपिकुञ्जरान् ॥ ५२ ॥
शूलमुद्गरखड्गैश्च जघ्नुः प्रासैश्च शक्तिभिः।

राक्षसोंने भी पैने बाणोंसे कितने ही वानर-शिरोमणियोंको विदीर्ण कर दिया था तथा शूलों, मुद्गरों, खड्गों, प्रासों और शक्तियोंसे बहुतोंको मार गिराया था ॥ ५२½ ॥

अन्योन्यं पातयामासुः परस्परजयैषिणः ॥ ५३ ॥
रिपुशोणितदिग्धाङ्गास्तत्र वानरराक्षसाः।

शत्रुओंके रक्त जिनके शरीरोंमें लिपटे हुए थे, वे वानर और राक्षस वहाँ परस्पर विजय पानेकी इच्छासे एक दूसरेको धराशायी कर रहे थे ॥ ५३½ ॥

ततः शैलैश्च खड्गैश्च विसृष्टैर्हरिराक्षसैः ॥ ५४ ॥
मुहूर्तेनावृता भूमिरभवच्छोणितोक्षिता।

थोड़ी ही देरमें वह युद्धभूमि वानरों और राक्षसोंद्वारा चलाये गये पर्वत-शिखरों तथा तलवारोंसे आच्छादित हो रक्तके प्रवाहसे सिंच उठी ॥ ५४½ ॥

विकीर्णैः पर्वताकारै रक्षोभिरभिमर्दितैः।
आसीद् वसुमती पूर्णा तदा युद्धमदान्वितैः ॥ ५५ ॥

युद्धके मदसे उन्मत्त हुए पर्वताकार राक्षस जो शिलाओंकी मारसे कुचल दिये गये थे, सब ओर बिखरे पड़े थे। उनसे वहाँकी सारी भूमि पट गयी थी ॥ ५५ ॥

आक्षिप्ताः क्षिप्यमाणाश्च भग्नशैलाश्च वानराः।
पुनरङ्गैस्तदा चक्रुरासन्ना युद्धमद्भुतम् ॥ ५६ ॥

राक्षसोंने जिनके युद्धके साधनभूत शैल-शिखरोंको तोड़-फोड़ डाला था, वे वानर उनके प्रहारोंसे विचलित किये

जानेपर उन राक्षसोंके अत्यन्त निकट जा अपने हाथ-पैर आदि अङ्गोंद्वारा ही अद्भुत युद्ध करने लगे ॥ ५६ ॥

वानरान् वानरैरेव जघ्नुस्ते नैर्ऋतर्षभाः।
राक्षसान् राक्षसैरेव जघ्नुस्ते वानरा अपि ॥ ५७ ॥

राक्षसोंके प्रधान-प्रधान वीर वानरोंको पकड़कर उन्हें दूसरे वानरोंपर पटक देते थे। इसी प्रकार वानर भी राक्षसोंसे ही राक्षसोंको मार रहे थे ॥ ५७ ॥

आक्षिप्य च शिलाः शैलाञ्जघ्नुस्ते राक्षसास्तदा।
तेषां चाच्छिद्य शस्त्राणि जघ्नू रक्षांसि वानराः ॥ ५८ ॥

उस समय राक्षस अपने शत्रुओंके हाथसे शिलाओं और शैल-शिखरोंको छीनकर उन्हींसे उनपर प्रहार करने लगे तथा वानर भी राक्षसोंके हथियार छीनकर उन्हींके द्वारा उनका वध करने लगे ॥ ५८ ॥

निर्जघ्नुः शैलशृङ्गैश्च बिभिदुश्च परस्परम्।
सिंहनादान् विनेदुश्च रणे राक्षसवानराः ॥ ५९ ॥

इस तरह राक्षस और वानर दोनों ही दलोंके योद्धा एक-दूसरेको पर्वत-शिखरसे मारने, अस्त्र-शस्त्रोंसे विदीर्ण करने तथा रणभूमिमें सिंहोंके समान दहाड़ने लगे ॥ ५९ ॥

छिन्नवर्मतनुत्राणा राक्षसा वानरैर्हताः।
रुधिरं प्रस्रुतास्तत्र रससारमिव द्रुमाः ॥ ६० ॥

राक्षसोंकी शरीर-रक्षाके साधनभूत कवच आदि छिन्न-भिन्न हो गये। वानरोंकी मार खाकर वे अपने शरीरसे उसी प्रकार रक्त बहाने लगे, जैसे वृक्ष अपने तनोंसे गोंद बहाया करते हैं ॥ ६० ॥

रथेन च रथं चापि वारणेनापि वारणम्।
हयेन च हयं केचिन्निर्जघ्नुर्वानरा रणे ॥ ६१ ॥

कितने ही वानर रणभूमिमें रथसे रथको, हाथीसे हाथीको और घोड़ेसे घोड़ेको मार गिराते थे ॥ ६१ ॥

क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च भल्लैश्च निशितैः शरैः।
राक्षसा वानरेन्द्राणां बिभिदुः पादपाञ्शिलाः ॥ ६२ ॥

वानर-यूथपतियोंके चलाये हुए वृक्षों और शिलाओंको निशाचर योद्धा तीखे क्षुरप्र, अर्धचन्द्र और भल्ल नामक बाणोंसे तोड़-फोड़ डालते थे ॥ ६२ ॥

विकीर्णाः पर्वतास्तैश्च द्रुमच्छिन्नैश्च संयुगे।
हतैश्च कपिरक्षोभिर्दुर्गमा वसुधाभवत् ॥ ६३ ॥

टूट-फूटकर गिरे हुए पर्वतों, कटे हुए वृक्षों तथा राक्षसों और वानरोंकी लाशोंसे पट जानेके कारण उस भूमिमें चलना-फिरना कठिन हो गया ॥ ६३ ॥

ते बानरा गर्वितहृष्टचेष्टाः
संग्राममासाद्य भय विमुच्य।
युद्धं स्म सर्वे सह राक्षसैस्ते
नानायुधाश्चक्रुरदीनसत्त्वाः ॥ ६४ ॥

वानरोंकी सारी चेष्टाएँ गर्वसे भरी हुई तथा हर्ष और उत्साहसे युक्त थीं। उनके हृदयमें दीनता नहीं थी तथा उन्होंने राक्षसोंके ही नाना प्रकारके आयुध छीनकर हस्तगत कर लिये थे, अतः वे सब संग्राममें पहुँचकर राक्षसोंके साथ भयं छोड़कर युद्ध कर रहे थे ॥ ६४ ॥

तस्मिन् प्रवृत्ते तुमुले विमर्दे
प्रहृष्यमाणेषु वलीमुखेषु ।
निपात्यमानेषु च राक्षसेषु
महर्षयो देवगणाश्च नेदुः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार जब भयंकर मारकाट मची हुई थी, वानर प्रसन्न थे और राक्षसोंकी लाशें गिर रही थीं, उस समय महर्षि तथा देवगण हर्षनाद करने लगे ॥ ६५ ॥

ततो हयं मारुततुल्यवेग-
मारुह्य शक्तिं निशितां प्रगृह्य।
नरान्तको वानरसैन्यमुग्रं
महार्णवं मीन इवाविवेश ॥ ६६ ॥

तदनन्तर वायुके समान तीव्र वेगवाले घोड़ेपर सवार हो हाथमें तीखी शक्ति लिये नरान्तक वानरोंकी भयंकर सेनामें उसी तरह घुसा, जैसे कोई मत्स्य महासागरमें प्रवेश कर रहा हो ॥ ६६ ॥

स वानरान् सप्त शतानि वीरः
प्रासेन दीप्तेन विनिर्बिभेद।
एकः क्षणेनेन्द्ररिपुर्महात्मा
जघान सैन्यं हरिपुङ्गवानाम् ॥ ६७ ॥

उस महाकाय इन्द्रद्रोही वीर निशाचरने चमचमाते हुए भालेसे अकेले ही सात सौ वानरोंको चीर डाला और क्षणभरमें वानर-यूथपतियोंकी एक बहुत बड़ी सेनाका संहार कर डाला॥

ददृशुश्च महात्मानं हयपृष्ठप्रतिष्ठितम्।
चरन्तं हरिसैन्येषु विद्याधरमहर्षयः ॥ ६८ ॥

घोड़ेकी पीठपर बैठे हुए उस महामनस्वी वीरको विद्याधरों और महर्षियोंने वानरोंकी सेनामें विचरते देखा ॥ ६८ ॥

स तस्य ददृशे मार्गो मांसशोणितकर्दमः।
पतितैः पर्वताकारैर्वानरैरभिसंवृतः ॥ ६९ ॥

वह जिस मार्गसे निकल जाता, वही धराशायी हुए पर्वताकार वानरोंसे ढका दिखायी देता था और वहाँ रक्त एवं मांसकी कीच मच जाती थी ॥ ६९ ॥

यावद् विक्रमितुं बुद्धिं चक्रुः प्लवगपुङ्गवाः।
तावदेतानतिक्रम्य निर्बिभेद नरान्तकः ॥ ७० ॥

बानरोंके प्रधान-प्रधान वीर जबतक पराक्रम करनेका

विचार करते, तबतक ही नरान्तक इन सबको लाँघकर भालेकी मारसे घायल कर देता था ॥ ७० ॥

ज्वलन्तं प्रासमुद्यम्य संग्रामाग्रे नरान्तकः ।
ददाह हरिसैन्यानि वनानीव विभावसुः ॥ ७१ ॥

जैसे दावानल सूखे जंगलोंको जलाता है, उसी प्रकार प्रज्वलित प्रास लिये नरान्तक युद्धके मुहानेपर वानर-सेनाओंको दग्ध करने लगा ॥ ७१ ॥

यावदुत्पाटयामासुर्वृक्षाञ्शैलान् वनौकसः ।
तावत् प्रासहताः पेतुर्वज्रकृत्ता इवाचलाः ॥ ७२ ॥

वानरलोग जबतक वृक्ष और पर्वत-शिखरोंको उखाड़ते, तबतक ही उसके भालेकी चोट खाकर वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति ढह जाते थे ॥ ७२ ॥

दिक्षु सर्वासु बलवान् विचचार नरान्तकः ।
प्रमृद्नन् सर्वतो युद्धे प्रावृट्काले यथानिलः ॥ ७३ ॥

जैसे वर्षाकालमें प्रचण्ड वायु सब ओर वृक्षोंको तोड़ती-उखाड़ती हुई विचरती है, उसी प्रकार बलवान् नरान्तक रणभूमिमें वानरोंको रौंदता हुआ सम्पूर्ण दिशाओंमें विचरने लगा ॥ ७३ ॥

न शेकुर्धावितुं वीरा न स्थातुं स्पन्दितुं भयात् ।
उत्पतन्तं स्थितं यान्तं सर्वान् विव्याध वीर्यवान् ॥ ७४ ॥

वानर वीर भयके मारे न तो भाग पाते थे, न खड़े रह पाते थे और न उनसे दूसरी ही कोई चेष्टा करते बनती थी। पराक्रमी नरान्तक उछलते हुए, पड़े हुए और जाते हुए सभी वानरोंपर भालेकी चोट कर देता था ॥ ७४ ॥

एकेनान्तककल्पेन प्रासेनादित्यतेजसा ।
भग्नानि हरिसैन्यानि निपेतुर्धरणीतले ॥ ७५ ॥

उसका प्रास (भाला) अपनी प्रभासे सूर्यके समान उद्दीप्त हो रहा था और यमराजके समान भयंकर जान पड़ता था। उस एक ही भालेकी मारसे घायल होकर झुंड-के-झुंड वानर धरतीपर सो गये ॥ ७५ ॥

वज्रनिष्पेषसदृशं प्रासस्याभिनिपातनम् ।
न शेकुर्वानराः सोढुं ते विनेदुर्महास्वनम् ॥ ७६ ॥

वज्रके आघातको भी मात करनेवाले उस प्रासके दारुण प्रहारको वानर नहीं सह सके। वे जोर-जोरसे चीत्कार करने लगे ॥ ७६ ॥

पततां हरिवीराणां रूपाणि प्रचकाशिरे ।
वज्रभिन्नाग्रकूटानां शैलानां पततामिव ॥ ७७ ॥

वहाँ गिरते हुए वानर-वीरोंके रूप उन पर्वतोंके समान दिखायी देते थे, जो वज्रके आघातसे शिखरोंके विदीर्ण हो जानेसे धराशायी हो रहे हों ॥ ७७ ॥

ये तु पूर्वं महात्मानः कुम्भकर्णेन पातिताः ।
ते स्वस्था वानरश्रेष्ठाः सुग्रीवमुपतस्थिरे ॥ ७८ ॥

पहले कुम्भकर्णने जिन्हें रणभूमिमें गिरा दिया था, वे महामनस्वी श्रेष्ठ वानर उस समय स्वस्थ हो सुग्रीवकी सेवामें उपस्थित हुए ॥ ७८ ॥

प्रेक्षमाणः स सुग्रीवो ददृशे हरिवाहिनीम् ।
नरान्तकभयत्रस्तां विद्रवन्तीं यतस्ततः ॥ ७९ ॥

सुग्रीवने जब सब ओर दृष्टिपात किया, तब देखा कि वानरोंकी सेना नरान्तकसे भयभीत होकर इधर-उधर भाग रही है ॥ ७९ ॥

विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा स ददर्श नरान्तकम् ।
गृहीतप्रासमायान्तं हयपृष्ठप्रतिष्ठितम् ॥ ८० ॥

सेनाको भागती देख उन्होंने नरान्तकपर भी दृष्टि डाली, जो घोड़ेकी पीठपर बैठकर हाथमें भाला लिये आ रहा था ॥

दृष्ट्वोवाच महातेजाः सुग्रीवो वानराधिपः ।
कुमारमङ्गदं वीरं शक्रतुल्यपराक्रमम् ॥ ८१ ॥

उसे देखकर महातेजस्वी वानरराज सुग्रीवने इन्द्रतुल्य पराक्रमी वीर कुमार अङ्गदसे कहा—॥ ८१ ॥

गच्छैनं राक्षसं वीरं योऽसौ तुरगमास्थितः ।
क्षोभयन्तं हरिबलं क्षिप्रं प्राणैर्वियोजय ॥ ८२ ॥

'बेटा ! वह जो घोड़ेपर बैठा हुआ वानर-सेनामें हलचल मचा रहा है, उस वीर राक्षसका सामना करनेके लिये जाओ और उसके प्राणोंका शीघ्र ही अन्त कर दो' ॥ ८२ ॥

स भर्तुर्वचनं श्रुत्वा निष्पपाताङ्गदस्तदा ।
अनीकान्मेघसंकाशादंशुमानिव वीर्यवान् ॥ ८३ ॥

स्वामीकी यह आज्ञा सुनकर पराक्रमी अङ्गद उस समय मेघोंकी घटाके समान प्रतीत होनेवाली वानर-सेनासे उसी तरह निकले, जैसे सूर्यदेव बादलोंके ओटसे प्रकट हो रहे हों ॥ ८३ ॥

शैलसंघातसंकाशो हरीणामुत्तमोऽङ्गदः ।
रराजाङ्गदसंनद्धः सधातुरिव पर्वतः ॥ ८४ ॥

वानरोंमें श्रेष्ठ अङ्गद शैल-समूहके समान विशालकाय थे। वे अपनी बाँहोंमें बाजूबंद धारण किये हुए थे, इसलिये सुवर्ण आदि धातुओंसे युक्त पर्वतके समान शोभा पाते थे ॥

निरायुधो महातेजाः केवलं नखदंष्ट्रवान् ।
नरान्तकमभिक्रम्य वालिपुत्रोऽब्रवीद् वचः ॥ ८५ ॥

वालिपुत्र अङ्गद महातेजस्वी थे। उनके पास कोई हथियार नहीं था। केवल नख और दाढ़ ही उनके अस्त्र-शस्त्र थे। वे नरान्तकके पास पहुँचकर इस प्रकार बोले—॥ ८५ ॥

तिष्ठ किं प्राकृतैरेभिर्हरिभिस्त्वं करिष्यसि ।
अस्मिन् वज्रसमस्पर्शं प्रासं क्षिप ममोरसि ॥ ८६ ॥

'ओ निशाचर ! ठहर जा । इन साधारण बंदरोंको मारकर तू क्या करेगा ? तेरे भालेकी चोट वज्रके समान असह्य है; किंतु जरा इसे मेरी इस छातीपर तो मार' ॥ ८६ ॥

अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा प्रचुक्रोध नरान्तकः।
संदश्य दशनैरोष्ठं निःश्वस्य च भुजंगवत् ।
अभिगम्याङ्गदं क्रुद्धो वालिपुत्रं नरान्तकः ॥ ८७ ॥

अङ्गदकी यह बात सुनकर नरान्तकको बड़ा क्रोध हुआ। वह कुपित हो, दाँतोंसे ओठ दबा सर्पकी भाँति लंबी साँस ले, वालिपुत्र अङ्गदके पास आकर खड़ा हो गया ॥ ८७ ॥

स प्रासमाविध्य तदाङ्गदाय
समुज्ज्वलन्तं सहसोत्ससर्ज।
स वालिपुत्रोरसि वज्रकल्पे
बभूव भग्नो न्यपतच्च भूमौ ॥ ८८ ॥

उसने उस चमकते हुए भालेको घुमाकर सहसा उसे अङ्गदपर दे मारा। वालिपुत्र अङ्गदका वक्षःस्थल वज्रके समान कठोर था। नरान्तकका भाला उसपर टकराकर टट गया और जमीनपर जा पड़ा ॥ ८८ ॥

तं प्रासमालोक्य तदा विभग्नं
सुपर्णकृत्तोरगभोगकल्पम्।
तलं समुद्यम्य स वालिपुत्र-
स्तुरंगमस्याभिजघान मूर्ध्नि ॥ ८९ ॥

उस भालेको गरुड़के द्वारा खण्डित किये गये सर्पके शरीरकी भाँति टूक-टूक होकर पड़ा देख वालिपुत्र अङ्गदने हथेली ऊँची करके नरान्तकके घोड़ेके मस्तकपर बड़े जोरसे थप्पड़ मारा ॥ ८९ ॥

निमग्नपादः स्फुटिताक्षितारो
निष्क्रान्तजिह्वोऽचलसंनिकाशः ।
स तस्य वाजी निपपात भूमौ
तलप्रहारेण विकीर्णमूर्धा ॥ ९० ॥

उस प्रहारसे घोड़ेका सिर फट गया; पैर नीचेको धँस गये, आँखें फूट गयीं और जीभ बाहर निकल आयी। वह पर्वताकार अश्व प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ९० ॥

नरान्तकः क्रोधवशं जगाम
हतं तुरंगं पतितं समीक्ष्य।
स मुष्टिमुद्यम्य महाप्रभावो
जघान शीर्षे युधि वालिपुत्रम् ॥ ९१ ॥

घोड़ेको मरकर पृथ्वीपर पड़ा देख नरान्तकके क्रोधकी सीमा न रही। उस महाप्रभावशाली निशाचरने युद्धस्थलमें मुक्का तानकर वालिकुमारके मस्तकपर मारा ॥ ९१ ॥

अथाङ्गदो मुष्टिविशीर्णमूर्धा
सुस्राव तीव्रं रुधिरं भृशोष्णम्।
मुहुर्विजज्वाल मुमोह चापि
संज्ञां समासाद्य विसिस्मिये च ॥ ९२ ॥

मुक्केकी मारसे अङ्गदका सिर फूट गया। उससे वेगपूर्वक गर्म-गर्म रक्तकी धारा बहने लगी। उनके माथेमें बड़ी जलन हुई। वे मूर्च्छित हो गये और थोड़ी देरमें जब होश हुआ, तब उस राक्षसकी शक्ति देखकर आश्चर्यचकित हो उठे ॥ ९२ ॥

अथाङ्गदो मृत्युसमानवेगं
संवर्त्य मुष्टिं गिरिशृङ्गकल्पम्।
निपातयामास तदा महात्मा
नरान्तकस्योरसि वालिपुत्रः ॥ ९३ ॥

फिर अङ्गदने पर्वत-शिखरके समान अपना मुक्का ताना, जिसका वेग मृत्युके समान था। फिर उन महात्मा वालिकुमारने उससे नरान्तककी छातीमें प्रहार किया ॥ ९३ ॥

स मुष्टिनिर्भिन्ननिमग्नवक्षा
ज्वाला वमञ्शोणितदिग्धगात्रः।
नरान्तको भूमितले पपात
यथाचलो वज्रनिपातभग्नः ॥ ९४ ॥

मुक्केके आघातसे नरान्तकका हृदय विदीर्ण हो गया। वह मुँहसे आगकी ज्वाला-सी उगलने लगा। उसके सारे अङ्ग लहूलुहान हो गये और वह वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ९४ ॥

तदान्तरिक्षे त्रिदशोत्तमानां
वनौकसां चैव महाप्रणादः।
बभूव तस्मिन् निहतेऽग्र्यवीर्ये
नरान्तके वालिसुतेन संख्ये ॥ ९५ ॥

वालिकुमारके द्वारा युद्धस्थलमें उत्तम पराक्रमी नरान्तकके मारे जानेपर उस समय आकाशमें देवताओंने और भूतलपर वानरोंने बड़े जोरसे हर्षनाद किया ॥ ९५ ॥

अथाङ्गदो राममनःप्रहर्षणं
सुदुष्करं तं कृतवान् हि विक्रमम्।
विसिस्मिये सोऽप्यथ भीमकर्मा
पुनश्च युद्धे स बभूव हर्षितः ॥ ९६ ॥

अङ्गदने श्रीरामचन्द्रजीके मनको अत्यन्त हर्ष प्रदान करनेवाला वह परम दुष्कर पराक्रम किया था। उससे श्रीरामचन्द्रजीको भी बड़ा विस्मय हुआ। तत्पश्चात् भीषण कर्म करनेवाले अङ्गद पुनः युद्धके लिये हर्ष और उत्साहसे भर गये॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें उनहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः

हनुमान्‌जीके द्वारा देवान्तक और त्रिशिराका, नीलके द्वारा महोदरका तथा ऋषभके द्वारा महापार्श्वका वध

नरान्तकं हतं दृष्ट्वा चुक्रुशुर्नैर्ऋतर्षभाः।
देवान्तकस्त्रिमूर्धा च पौलस्त्यश्च महोदरः॥ १॥

नरान्तकको मारा गया देख देवान्तक, पुलस्त्यकुलनन्दन त्रिशिरा और महोदर—ये श्रेष्ठ राक्षस हाहाकार करने लगे॥ १॥

आरूढो मेघसंकाशं वारणेन्द्रं महोदरः।
वालिपुत्रं महावीर्यमभिदुद्राव वेगवान्॥ २॥

महोदरने मेघके समान गजराजपर बैठकर महापराक्रमी अङ्गदके ऊपर बड़े वेगसे धावा किया॥ २॥

भ्रातृव्यसनसंतप्तस्तदा देवान्तको बली।
आदाय परिघं घोरमङ्गदं समभिद्रवत्॥ ३॥

भाईके मारे जानेसे संतप्त हुए बलवान् देवान्तकने भयानक परिघ हाथमें लेकर अङ्गदपर आक्रमण किया॥ ३॥

रथमादित्यसंकाशं युक्तं परमवाजिभिः।
आस्थाय त्रिशिरा वीरो वालिपुत्रमथाभ्यगात्॥ ४॥

इस प्रकार वीर त्रिशिरा उत्तम घोड़ोंसे जुते हुए सूर्यतुल्य तेजस्वी रथपर बैठकर वालिकुमारका सामना करनेके लिये आया॥ ४॥

स त्रिभिर्देवदर्पघ्नै राक्षसेन्द्रैरभिद्रुतः।
वृक्षमुत्पाटयामास महाविटपमङ्गदः॥ ५॥
देवान्तकाय तं वीरश्चिक्षेप सहसाङ्गदः।
महावृक्षं महाशाखं शक्रो दीप्तामिवाशनिम्॥ ६॥

देवताओंका दर्प दलन करनेवाले उन तीनों निशाचरपतियोंके आक्रमण करनेपर वीर. अङ्गदने विशाल शाखाओंसे युक्त एक वृक्षको उखाड़ लिया और जैसे इन्द्र प्रज्वलित वज्रका प्रहार करते हैं, उसी प्रकार उन वालिकुमारने बड़ी-बड़ी शाखाओंसे युक्त उस महान् वृक्षको सहसा देवान्तकपर दे मारा॥ ५-६॥

त्रिशिरास्तं प्रचिच्छेद शरैराशीविषोपमैः।
स वृक्षं कृत्तमालोक्य उत्पपात तदाङ्गदः॥ ७॥
स ववर्ष ततो वृक्षाञ्शिलाश्च कपिकुञ्जरः।
तान् प्रचिच्छेद संक्रुद्धस्त्रिशिरा निशितैः शरैः॥ ८॥

परंतु त्रिशिराने विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाण मारकर उस वृक्षके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। वृक्षको खण्डित हुआ देख कपिकुञ्जर अङ्गद तत्काल आकाशमें उछले और त्रिशिरापर वृक्षों तथा शिलाओंकी वर्षा करने लगे; किंतु क्रोधसे भरे हुए त्रिशिराने पैने बाणोंद्वारा उनको भी काट गिराया।७-८।

परिघाग्रेण तान् वृक्षान् बभञ्ज स महोदरः।
त्रिशिराश्चाङ्गदं वीरमभिदुद्राव सायकैः॥ ९॥

महोदरने अपने परिघके अग्रभागसे उन वृक्षोंको तोड़-फोड़ डाला। तत्पश्चात् सायकोंकी वर्षा करते हुए त्रिशिराने वीर अङ्गदपर धावा किया॥ ९॥

गजेन समभिद्रुत्य वालिपुत्रं महोदरः।
जघानोरसि संक्रुद्धस्तोमरैर्वज्रसंनिभैः॥ १०॥

साथ ही कुपित हुए महोदरने हाथीके द्वारा आक्रमण करके वालिकुमारकी छातीमें वज्रतुल्य तोमरोंका प्रहार किया॥ १०॥

देवान्तकश्च संक्रुद्धः परिघेण तदाङ्गदम्।
उपगम्याभिहत्याशु व्यपचक्राम वेगवान्॥ ११॥

इसी प्रकार देवान्तक भी अङ्गदके निकट आ अत्यन्त क्रोधपूर्वक परिघके द्वारा उन्हें चोट पहुँचाकर तुरंत वेगपूर्वक वहाँसे दूर हट गया॥ ११॥

स त्रिभिर्नैर्ऋतश्रेष्ठैर्युगपत् समभिद्रुतः।
न विव्यथे महातेजा वालिपुत्रः प्रतापवान्॥ १२॥

उन तीनों प्रमुख निशाचरोंने एक साथ ही धावा किया था, तो भी महातेजस्वी और प्रतापी वालिकुमार अङ्गदके मनमें तनिक भी व्यथा नहीं हुई॥१२॥

स वेगवान् महावेगं कृत्वा परमदुर्जयः।
तलेन समभिद्रुत्य जघानास्य महागजम्॥ १३॥

वे अत्यन्त दुर्जय और बड़े वेगशाली थे। उन्होंने महान् वेग प्रकट करके महोदरके महान् गजराजपर आक्रमण किया और उसके मस्तकपर जोरसे थप्पड़ मारा॥ १३॥

तस्य तेन प्रहारेण नागराजस्य संयुगे।
पेततुर्नयने तस्य विननाश स कुञ्जरः॥ १४॥

युद्धस्थलमें उनके उस प्रहारसे गजराजकी दोनों आँखें निकलकर पृथ्वीपर गिर गयीं और वह तत्काल मर गया॥१४॥

विषाणं चास्य निष्कृष्य वालिपुत्रो महाबलः।
देवान्तकमभिद्रुत्य ताडयामास संयुगे॥ १५॥

फिर महाबली वालिकुमारने उस हाथीका एक दाँत उखाड़ लिया और युद्धस्थलमें दौड़कर उसीके द्वारा देवान्तकपर चोट की॥ १५॥

स विह्वलस्तु तेजस्वी वातोद्धूत इव द्रुमः।
लाक्षारससवर्णं च सुस्राव रुधिरं महत्॥ १६॥

तेजस्वी देवान्तक उस प्रहारसे व्याकुल हो गया और वायुके हिलाये हुए वृक्षकी भाँति काँपने लगा। उसके शरीरसे महावरके समान रंगवाला रक्तका महान् प्रवाह बह चला ॥

अथाश्वस्य महातेजाः कृच्छ्राद् देवान्तको बली।
आविध्य परिघं वेगादाजघान तदाङ्गदम् ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् महातेजस्वी बलवान् देवान्तकने बड़ी कठिनाईसे अपनेको सँभालकर परिघ उठाया और उसे वेगपूर्वक घुमाकर अङ्गदपर दे मारा ॥ १७ ॥

परिघाभिहतश्चापि वानरेन्द्रात्मजस्तदा।
जानुभ्यां पतितो भूमौ पुनरेवोत्पपात ह ॥ १८ ॥

उस परिघकी चोट खाकर वानरराजकुमार अङ्गदने भूमिपर घुटने टेक दिये। फिर तुरंत ही उठकर वे ऊपरकी ओर उछले ॥ १८ ॥

तमुत्पतन्तं त्रिशिरास्त्रिभिर्बाणैरजिह्मगैः।
घोरैर्हरिपतेः पुत्रं ललाटेऽभिजघान ह ॥ १९ ॥

उछलते समय त्रिशिराने तीन सीधे जानेवाले भयंकर बाणोंद्वारा वानरराजकुमारके ललाटमें गहरी चोट पहुँचायी ॥

ततोऽङ्गदं परिक्षिप्तं त्रिभिर्नैर्ऋतपुङ्गवैः।
हनूमानथ विज्ञाय नीलश्चापि प्रतस्थतुः ॥ २० ॥

तदनन्तर अङ्गदको तीन प्रमुख निशाचरोंसे घिरा हुआ जान हनुमान् और नील भी उनकी सहायताके लिये अग्रसर हुए ॥ २० ॥

ततश्चिक्षेप शैलाग्रं नीलस्त्रिशिरसे तदा।
तद् रावणसुतो धीमान् बिभेद निशितैः शरैः ॥ २१ ॥

उस समय नीलने त्रिशिरापर एक पर्वतशिखर चलाया; किंतु उस बुद्धिमान् रावणपुत्रने तीखे बाण मारकर उसे तोड़-फोड़ डाला ॥ २१ ॥

तद्बाणशतनिर्भिन्नं विदारितशिलातलम्।
सविस्फुलिङ्गं सज्वालं निपपात गिरेः शिरः ॥ २२ ॥

उसके सैकड़ों बाणोंसे विदीर्ण होकर उसकी एक-एक शिला बिखर गयी और वह पर्वतशिखर आगकी चिनगारियों तथा ज्वालाके साथ पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २२ ॥

स विजृम्भितमालोक्य हर्षाद् देवान्तको बली।
परिघेणाभिदुद्राव मारुतात्मजमाहवे ॥ २३ ॥

अपने भाईका पराक्रम बढ़ता देख बलवान् देवान्तकको बड़ा हर्ष हुआ और उसने परिघ लेकर युद्धस्थलमें हनुमान्जीपर धावा किया ॥ २३ ॥

तमापतन्तमुत्पत्य हनूमान् कपिकुञ्जरः।
आजघान तदा मूर्ध्नि वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥ २४ ॥

उसे आते देख कपिकुञ्जर हनुमान्जीने उछलकर अपने वज्र-सरीखे मुक्केसे उसके सिरपर मारा ॥ २४ ॥

शिरसि प्राहरद् वीरस्तदा वायुसुतो बली।
नादेनाकम्पयच्चैव राक्षसान् स महाकपिः ॥ २५ ॥

बलवान् वायुकुमार महाकपि हनुमान्जीने उस समय देवान्तकके मस्तकपर प्रहार किया और अपनी भीषण गर्जनासे राक्षसोंको कम्पित कर दिया ॥ २५ ॥

स मुष्टिनिष्पिष्टविभिन्नमूर्धा
निर्वान्तदन्ताक्षिविलम्बिजिह्वः।
देवान्तको राक्षसराजसूनु-
र्गतासुरुर्व्यां सहसा पपात ॥ २६ ॥

उनके मुष्टि-प्रहारसे देवान्तकका मस्तक फट गया और पिस उठा। दाँत, आँखें और लंबी जीभ बाहर निकल आयीं तथा वह राक्षसराजकुमार प्राणशून्य होकर सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २६ ॥

तस्मिन् हते राक्षसयोधमुख्ये
महाबले संयति देवशत्रौ।
क्रुद्धस्त्रिशीर्षा निशितास्त्रमुग्रं
ववर्ष नीलोरसि बाणवर्षम् ॥ २७ ॥

राक्षस-योद्धाओंमें प्रधान महाबली देवद्रोही देवान्तकके युद्धमें मारे जानेपर त्रिशिराको बड़ा क्रोध हुआ और उसने नीलकी छातीपर पैने बाणोंकी भयंकर वर्षा आरम्भ कर दी ॥ २७ ॥

महोदरस्तु संक्रुद्धः कुञ्जरं पर्वतोपमम्।
भूयः समधिरुह्याशु मन्दरं रश्मिवानिव ॥ २८ ॥

तदनन्तर अत्यन्त क्रोधसे भरा हुआ महोदर पुनः शीघ्र ही एक पर्वताकार हाथीपर सवार हुआ, मानो सूर्यदेव मन्दराचलपर आरूढ़ हुए हों ॥ २८ ॥

ततो बाणमयं वर्षं नीलस्योपर्यपातयत्।
गिरौ वर्षं तडिच्चक्रचापवानिव तोयदः ॥ २९ ॥

हाथीपर चढ़कर उसने नीलके ऊपर बाणोंकी विकट वर्षा की, मानो इन्द्रधनुष एवं विद्युन्मण्डलसे युक्त मेघ किसी पर्वतपर जलकी वर्षा कर रहा हो ॥ २९ ॥

ततः शरौघैरभिवृष्यमाणो
विभिन्नगात्रः कपिसैन्यपालः।
नीलो बभूवाथ विसृष्टगात्रो
विष्टम्भितस्तेन महाबलेन ॥ ३० ॥

बाण-समूहोंकी निरन्तर वर्षा होनेसे वानरसेनापति नीलके सारे अङ्ग क्षत-विक्षत हो गये। उनका शरीर शिथिल हो गया। इस प्रकार महाबली महोदरने उन्हें मूर्छित करके उनके बल-विक्रमको कुण्ठित कर दिया ॥ ३० ॥

ततस्तु नीलः प्रतिलब्धसंज्ञः
शैलं समुत्पाट्य सवृक्षखण्डम्।

ततः समुत्पत्य महोग्रवेगो
महोदरं तेन जघान मूर्ध्नि ॥ ३१ ॥

तत्पश्चात् होशमें आनेपर नीलने वृक्ष-समूहोंसे युक्त एक शैल-शिखरको उखाड़ लिया। उनका वेग बड़ा भयंकर था। उन्होंने उछलकर उस वृक्षको महोदरके मस्तकपर दे मारा॥३१॥

ततः स शैलाभिनिपातभग्नो
महोदरस्तेन महाद्विपेन। ✓
व्यामोहितो भूमितले गतासुः
पपात वज्राभिहतो यथाद्रिः ॥ ३२ ॥

उस पर्वतशिखरके आघातसे महोदर उस महान् गजराजके साथ ही चूर-चूर हो गया और मूर्च्छित एवं प्राणशून्य हो वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३२ ॥

पितृव्यं निहतं दृष्ट्वा त्रिशिराश्चापमाददे।
हनूमन्तं च संक्रुद्धो विव्याध निशितैः शरैः ॥ ३३ ॥

पिताके भाईको मारा गया देख त्रिशिराके क्रोधकी सीमा न रही। उसने धनुष हाथमें ले लिया और हनुमान्‌जीको पैने बाणोंसे बींधना आरम्भ किया ॥ ३३ ॥

स वायुसूनुः कुपितश्चिक्षेप शिखरं गिरेः।
त्रिशिरास्तच्छरैस्तीक्ष्णैर्बिभेद बहुधा बली ॥ ३४ ॥

तब पवनकुमारने कुपित होकर उस राक्षसके ऊपर पर्वतका शिखर चलाया, परंतु बलवान् त्रिशिराने अपने तीखे सायकोंसे उसके कई टुकड़े कर डाले ॥ ३४ ॥

तद् व्यर्थं शिखरं दृष्ट्वा द्रुमवर्षं तदा कपिः।
विससर्ज रणे तस्मिन् रावणस्य सुतं प्रति ॥ ३५ ॥

उस पर्वतशिखरके प्रहारको व्यर्थ हुआ देख कपिवर हनुमान्‌ने उस रणभूमिमें रावणपुत्र त्रिशिराके ऊपर वृक्षोंकी वर्षा आरम्भ की ॥ ३५ ॥

तमापतन्तमाकाशे द्रुमवर्षं प्रतापवान्।
त्रिशिरा निशितैर्बाणैश्चिच्छेद च ननाद च ॥ ३६ ॥

किंतु प्रतापी त्रिशिराने आकाशमें होनेवाली वृक्षोंकी उस वृष्टिको अपने पैने बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर दिया और बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ३६ ॥

हनूमांस्तु समुत्पत्य हयं त्रिशिरसस्तदा।
विददार नखैः क्रुद्धो नागेन्द्रं मृगराडिव ॥ ३७ ॥

तब हनुमान्‌जी कूदकर त्रिशिराके पास जा पहुँचे और जैसे कुपित सिंह गजराजको अपने पंजोंसे चीर डालता है, उसी प्रकार रोषसे भरे हुए उन पवनकुमारने त्रिशिराके घोड़ेको-अपने नखोंसे विदीर्ण कर डाला ॥ ३७ ॥

अथ शक्तिं समासाद्य कालरात्रिमिवान्तकः।
चिक्षेपानिलपुत्राय त्रिशिरा रावणात्मजः ॥ ३८ ॥

यह देख रावणकुमार त्रिशिराने शक्ति हाथमें ली, मानो यमराजने कालरात्रिको साथ ले लिया हो, वह शक्ति लेकर उसने पवनकुमार हनुमान्पर चलायी ॥ ३८ ॥

दिवः क्षिप्तामिवोल्कां तां शक्तिं क्षिप्तामसङ्गताम्।
गृहीत्वा हरिशार्दूलो बभञ्ज च ननाद च ॥ ३९ ॥

जैसे आकाशसे उल्कापात हुआ हो, उसी प्रकार वह शक्ति, जिसकी गति कहीं कुण्ठित नहीं होती थी, चली; परंतु वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जीने उसे अपने शरीरमें लगनेसे पहले ही हाथसे पकड़ लिया और तोड़ डाला, तोड़नेके बाद उन्होंने भयंकर गर्जना की ॥ ३९ ॥

तां दृष्ट्वा घोरसंकाशां शक्तिं भग्नां हनूमता।
प्रहृष्टा वानरगणा विनेदुर्जलदा यथा ॥ ४० ॥

हनुमान्‌जीने वह भयानक शक्ति तोड़ दी, यह देख वानरवृन्द अत्यन्त हर्षसे उल्लसित हो मेघोंके समान गम्भीर गर्जना करने लगे ॥ ४० ॥

ततः खड्गं समुद्यम्य त्रिशिरा राक्षसोत्तमः।
निचखान तदा खड्गं वानरेन्द्रस्य वक्षसि ॥ ४१ ॥

तब राक्षसशिरोमणि त्रिशिराने तलवार उठायी और कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीकी छातीपर उसकी भरपूर चोट की ॥ ४१ ॥

खड्गप्रहाराभिहतो हनूमान् मारुतात्मजः।
आजघान त्रिमूर्धानं तलेनोरसि वीर्यवान् ॥ ४२ ॥

तलवारकी चोटसे घायल हो पराक्रमी पवनकुमार हनुमान्‌ने त्रिशिराकी छातीमें एक तमाचा जड़ दिया ॥ ४२ ॥

स तलाभिहतस्तेन स्रस्तहस्तायुधो भुवि।
निपपात महातेजास्त्रिशिरास्त्यक्तचेतनः ॥ ४३ ॥

उनका थप्पड़ लगते ही महातेजस्वी त्रिशिरा अपनी चेतना खो बैठा। उसके हाथसे हथियार खिसक गया और वह स्वयं भी पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४३ ॥

स तस्य पततः खड्गं तमाच्छिद्य महाकपिः।
ननाद गिरिसंकाशस्त्रासयन् सर्वराक्षसान् ॥ ४४ ॥

गिरते समय उस राक्षसके खड्गको छीनकर पर्वताकार महाकपि हनुमान्‌जी सब राक्षसोंको भयभीत करते हुए जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ४४ ॥

अमृष्यमाणस्तं घोषमुत्पपात निशाचरः।
उत्पत्य च हनूमन्तं ताडयामास मुष्टिना ॥ ४५ ॥

उनकी वह गर्जना उस निशाचरसे सही नहीं गयी, अतः वह सहसा उछलकर खड़ा हो गया। उठते ही उसने हनुमान्‌जीको एक मुक्का मारा ॥ ४५ ॥

तेन मुष्टिप्रहारेण संचुकोप महाकपिः।
कुपितश्च निजग्राह किरीटे राक्षसर्षभम् ॥ ४६ ॥

उसके मुक्केकी चोट खाकर महाकपि हनुमान्‌जीको बड़ा क्रोध हुआ। कुपित होनेपर उन्होंने उस राक्षसका मुकुटमण्डित मस्तक पकड़ लिया ॥ ४६ ॥

स तस्य शीर्षाण्यसिना शितेन
किरीटजुष्टानि सकुण्डलानि।
क्रुद्धः प्रचिच्छेद सुतोऽनिलस्य
त्वष्टुः सुतस्येव शिरांसि शक्रः ॥ ४७ ॥

फिर तो जैसे पूर्वकालमें इन्द्रने त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपके तीनों मस्तकोंको वज्रसे काट गिराया था, उसी प्रकार कुपित हुए पवनपुत्र हनुमान्‌ने रावणपुत्र त्रिशिराके किरीट और कुण्डलोंसहित तीनों मस्तकोंको तीखी तलवारसे काट डाला ॥

तान्यायताक्षाण्यगसंनिभानि
प्रदीप्तवैश्वानरलोचनानि।
पेतुः शिरांसीन्द्ररिपोः पृथिव्यां
ज्योतींषि मुक्तानि यथार्कमार्गात् ॥ ४८ ॥

उन मस्तकोंकी सभी इन्द्रियाँ विशाल थीं। उनकी आँखें प्रज्वलित अग्निके समान उद्दीप्त हो रही थीं। उस इन्द्रद्रोही त्रिशिराके वे तीनों सिर उसी प्रकार पृथ्वीपर गिरे, जैसे आकाशसे तारे टूटकर गिरते हैं ॥ ४८ ॥

तस्मिन् हते देवरिपौ त्रिशीर्षे
हनूमता शक्रपराक्रमेण।
नेदुः प्लवंगाः प्रचचाल भूमी
रक्षांस्यथो दुद्रुविरे समन्तात् ॥ ४९ ॥

देवद्रोही त्रिशिरा जब इन्द्रतुल्य पराक्रमी हनुमान्‌जीके हाथसे मारा गया, तब समस्त वानर हर्षनाद करने लगे, धरती काँपने लगी तथा राक्षस चारों दिशाओंकी ओर भाग चले ॥ ४९ ॥

हतं त्रिशिरसं दृष्ट्वा तथैव च महोदरम्।
हतौ प्रेक्ष्य दुराधर्षौ देवान्तकनरान्तकौ ॥ ५० ॥
चुकोप परमामर्षी मत्तो राक्षसपुङ्गवः।
जग्राहार्चिष्मतीं चापि गदां सर्वायसीं तदा ॥ ५१ ॥

त्रिशिरा तथा महोदरको मारा गया देख और दुर्जय वीर देवान्तक एवं नरान्तकको भी कालके गालमें गया हुआ जान अत्यन्त अमर्षशील राक्षसशिरोमणि मत्त (महापार्श्व) कुपित हो उठा। उसने एक तेजस्विनी गदा हाथमें ली, जो सम्पूर्णतः लोहेकी बनी हुई थी ॥ ५०-५१ ॥

हेमपट्टपरिक्षिप्तां मांसशोणितफेनिलाम्।
विराजमानां विपुलां शत्रुशोणिततर्पिताम् ॥ ५२ ॥

उसपर सोनेका पत्र जड़ा हुआ था। युद्धस्थलमें पहुँचनेपर वह शत्रुओंके रक्त और मांसमें सन जाती थी। उसका आकार विशाल था। वह सुन्दर शोभासे सम्पन्न तथा शत्रुओंके रक्तसे तृप्त होनेवाली थी ॥ ५२ ॥

तेजसा सम्प्रदीप्ताग्रां रक्तमाल्यविभूषिताम्।
ऐरावतमहापद्मसार्वभौमभयावहाम् ॥ ५३ ॥

उसका अग्रभाग तेजसे प्रज्वलित होता था। वह लाल रंगके फूलोंसे सजायी गयी थी तथा ऐरावत, पुण्डरीक और सार्वभौम नामक दिग्गजोंको भी भयभीत करनेवाली थी ॥ ५३ ॥

गदामादाय संक्रुद्धो मत्तो राक्षसपुङ्गवः।
हरीन् समभिदुद्राव युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥ ५४ ॥

उस गदाको हाथमें लेकर क्रोधसे भरा हुआ राक्षसशिरोमणि मत्त (महापार्श्व) प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्वलित हो उठा और वानरोंकी ओर दौड़ा ॥ ५४ ॥

अथर्षभः समुत्पत्य वानरो रावणानुजम्।
मत्तानीकमुपागम्य तस्थौ तस्याग्रतो बली ॥ ५५ ॥

तब ऋषभ नामक बलवान् वानर उछलकर रावणके छोटे भाई मत्तानीक (महापार्श्व) के पास आ पहुँचे और उसके सामने खड़े हो गये ॥ ५५ ॥

तं पुरस्तात् स्थितं दृष्ट्वा वानरं पर्वतोपमम्।
आजघानोरसि क्रुद्धो गदया वज्रकल्पया ॥ ५६ ॥

पर्वताकार वानरवीर ऋषभको सामने खड़ा देख कुपित हुए महापार्श्वने अपनी वज्रतुल्य गदासे उनकी छातीपर प्रहार किया ॥ ५६ ॥

स तयाभिहतस्तेन गदया वानरर्षभः।
भिन्नवक्षाः समाधूतः सुस्राव रुधिरं बहु ॥ ५७ ॥

उसकी उस गदाके आघातसे वानरशिरोमणि ऋषभका वक्षःस्थल क्षत-विक्षत हो गया। वे काँप उठे और अधिक मात्रामें खूनकी धारा बहाने लगे ॥ ५७ ॥

स सम्प्राप्य चिरात् संज्ञामृषभो वानरेश्वरः।
क्रुद्धो विस्फुरमाणौष्ठो महापार्श्वमुदैक्षत ॥ ५८ ॥

बहुत देरके बाद होशमें आनेपर वानरराज ऋषभ कुपित हो उठे और महापार्श्वकी ओर देखने लगे। उस समय उनके ओठ फड़क रहे थे ॥ ५८ ॥

स वेगवान् वेगवदभ्युपेत्य
तं राक्षसं वानरवीरमुख्यः।
संवर्त्य मुष्टिं सहसा जघान
बाह्वन्तरे शैलनिकाशरूपः ॥ ५९ ॥

वानरवीरोंमें प्रधान ऋषभका रूप पर्वतके समान जान पड़ता था। वे बड़े वेगशाली थे। उन्होंने वेगपूर्वक उस राक्षसके पास पहुँचकर मुक्का ताना और सहसा उसकी छातीपर प्रहार किया ॥ ५९ ॥

स कृत्तमूलः सहसेव वृक्षः
क्षितौ पपात क्षतजोक्षिताङ्गः।

तां चास्य घोरां यमदण्डकल्पां
गदां प्रगृह्याशु तदा ननाद ॥ ६० ॥

फिर तो महापार्श्व जड़से कटे हुए वृक्षकी भाँति सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा । उसके सारे अङ्ग रक्तसे नहा उठे । इधर ऋषभ उस निशाचरकी यमदण्डके समान भयंकर गदाको शीघ्र ही हाथमें लेकर जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ६० ॥

मुहूर्तमासीत् स गतासुकल्पः
प्रत्यागतात्मा सहसा सुरारिः ।
उत्पत्य संध्याभ्रसमानवर्ण-
स्तं वारिराजात्मजमाजघान ॥ ६१ ॥

देवद्रोही महापार्श्व दो घड़ीतक मुर्देकी भाँति पड़ा रहा । फिर होशमें आनेपर वह सहसा उछलकर खड़ा हो गया । उसका रक्तरञ्जित शरीर संध्याकालके बादलोंके समान लाल दिखायी देता था । उसने वरुणपुत्र ऋषभको गहरी चोट पहुँचायी ॥ ६१ ॥

स मूर्च्छितो भूमितले पपात
मुहूर्तमुत्पत्य पुनः ससंज्ञः ।
तामेव तस्याद्रिवराद्रिकल्पां
गदां समाविध्य जघान संख्ये ॥ ६२ ॥

उस चोटसे ऋषभ मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े । दो घड़ीके बाद होशमें आनेपर वे पुनः उछलकर सामने आ गये और उन्होंने युद्धस्थलमें महापार्श्वकी उसी गदाको, जो किसी पर्वतराजकी चट्टानके समान जान पड़ती थी, घुमाकर उस निशाचरपर दे मारा ॥ ६२ ॥

सा तस्य रौद्रा समुपेत्य देहं
रौद्रस्य देवाध्वरविप्रशत्रोः ।
बिभेद वक्षः क्षतजं च भूरि
सुस्राव धात्वम्भ इवाद्रिराजः ॥ ६३ ॥

उसकी उस भयंकर गदाने देवता, यज्ञ और ब्राह्मणसे शत्रुता रखनेवाले उस रौद्र-राक्षसके शरीरपर चोट करके उसके वक्षःस्थलको विदीर्ण कर दिया । फिर तो जैसे पर्वतराज हिमालय गेरु आदि धातुओंसे मिला हुआ जल बहाता है, उसी प्रकार वह भी अधिक मात्रामें रक्त बहाने लगा ॥ ६३ ॥

अभिदुद्राव वेगेन गदां तस्य महात्मनः ।
तां गृहीत्वा गदां भीमामाविध्य च पुनः पुनः ॥ ६४ ॥
मत्तानीकं महात्मा स जघान रणमूर्धनि ।

उस समय उस राक्षसने महामना ऋषभके हाथसे अपनी गदा लेनेके लिये उनपर धावा किया; किंतु ऋषभने उस भयानक गदाको हाथमें लेकर बारंबार घुमाया और बड़े वेगसे महापार्श्वपर आक्रमण किया । इस तरह उन महामनस्वी वानर-वीरने युद्धके मुहानेपर उस निशाचरकी जीवन-लीला समाप्त कर दी थी ॥ ६४½ ॥

स स्वया गदया भग्नो विशीर्णदशनेक्षणः ॥ ६५ ॥
निपपात तदा मत्तो वज्राहत इवाचलः ।

अपनी ही गदाकी चोट खाकर महापार्श्वके दाँत टूट गये और आँखें फूट गयीं । वह वज्रके मारे हुए पर्वत-शिखरकी भाँति तत्काल धराशायी हो गया ॥ ६५½ ॥

विशीर्णनयने भूमौ गतसत्त्वे गतायुषि ।
पतिते राक्षसे तस्मिन् विद्रुतं राक्षसं बलम् ॥ ६६ ॥

जिसकी आँखें नष्ट और चेतना विलुप्त हो गयी थी, वह राक्षस महापार्श्व जब गतायु होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा, तब राक्षसोंकी सेना सब ओर भाग चली ॥ ६६ ॥

तस्मिन् हते भ्रातरि रावणस्य
तन्नैर्ऋतानां बलमर्णवाभम् ।
त्यक्तायुधं केवलजीवितार्थं
दुद्राव भिन्नार्णवसंनिकाशम् ॥ ६७ ॥

रावणके भाई महापार्श्वका वध हो जानेपर राक्षसोंकी वह समुद्रके समान विशाल सेना हथियार फेंककर केवल जान बचानेके लिये सब ओर भागने लगी, मानो महासागर फूटकर सब ओर बहने लगा हो ॥ ६७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७० ॥

* * *

एकसप्ततितमः सर्गः

अतिकायका भयंकर युद्ध और लक्ष्मणके द्वारा उसका वध

स्वबल व्यथितं दृष्ट्वा तुमुलं लोमहर्षणम् ।
भ्रातॄंश्च निहतान् दृष्ट्वा शक्रतुल्यपराक्रमान् ॥ १ ॥
पितृव्यौ चापि संदृश्य समरे संनिपातितौ ।
युद्धोन्मत्तं च मत्तं च भ्रातरौ राक्षसोत्तमौ ॥ २ ॥
चुकोप च महातेजा ब्रह्मदत्तवरो युधि ।
अतिकायोऽद्रिसंकाशो देवदानवदर्पहा ॥ ३ ॥

अतिकायने देखा, शत्रुओंके रोंगटे खड़े कर देनेवाली मेरी भयंकर सेना व्यथित हो उठी है, इन्द्रके तुल्य पराक्रमी मेरे भाइयोंका संहार हो गया है तथा मेरे चाचा—दोनों भाई युद्धोन्मत्त (महोदर) और मत्त (महापार्श्व) भी समराङ्गण-

में मार गिराये गये हैं, तब उस महातेजस्वी निशाचरको बड़ा क्रोध हुआ। उसे ब्रह्माजीसे वरदान प्राप्त हो चुका था। अतिकाय पर्वतके समान विशालकाय तथा देवता और दानवोंके दर्पका दलन करनेवाला था ॥ १–३ ॥

स भास्करसहस्रस्य संघातमिव भास्वरम् ।
रथमारुह्य शक्रारिरभिदुद्राव वानरान् ॥ ४ ॥

वह इन्द्रका शत्रु था। उसने सहस्रों सूर्योंके समूहकी भाँति देदीप्यमान तेजस्वी रथपर आरूढ़ होकर वानरोंपर धावा किया ॥ ४ ॥

स विस्फार्य तदा चापं किरीटी मृष्टकुण्डलः ।
नाम संश्रावयामास ननाद च महास्वनम् ॥ ५ ॥

उसके मस्तकपर किरीट और कानोंमें शुद्ध सुवर्णके बने हुए कुण्डल झलमला रहे थे। उसने धनुषकी टङ्कार करके अपना नाम सुनाया और बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ५ ॥

तेन सिंहप्रणादेन नामविश्रावणेन च ।
ज्याशब्देन च भीमेन त्रासयामास वानरान् ॥ ६ ॥

उस सिंहनादसे, अपने नामकी घोषणासे और प्रत्यञ्चाकी भयानक टङ्कारसे उसने वानरोंको भयभीत कर दिया ॥

ते दृष्ट्वा देहमाहात्म्यं कुम्भकर्णोऽयमुत्थितः ।
भयार्ता वानराः सर्वे संश्रयन्ते परस्परम् ॥ ७ ॥

उसके शरीरकी विशालता देखकर वे वानर ऐसा मानने लगे कि यह कुम्भकर्ण ही फिर उठकर खड़ा हो गया। यह सोचकर सब वानर भयसे पीड़ित हो एक-दूसरेका सहारा लेने लगे ॥ ७ ॥

ते तस्य रूपमालोक्य यथा विष्णोस्त्रिविक्रमे ।
भयाद् वानरयोधास्ते विद्रवन्ति ततस्ततः ॥ ८ ॥

त्रिविक्रम-अवतारके समय बढ़े हुए भगवान् विष्णुके विराट् रूपकी भाँति उसका शरीर देखकर वे वानर-सैनिक भयके मारे इधर-उधर भागने लगे ॥ ८ ॥

तेऽतिकायं समासाद्य वानरा मूढचेतसः ।
शरण्यं शरणं जग्मुर्लक्ष्मणाग्रजमाहवे ॥ ९ ॥

अतिकायके निकट जाते ही वानरोंके चित्तपर मोह छा गया। वे युद्धस्थलमें लक्ष्मणके बड़े भाई शरणागतवत्सल भगवान् श्रीरामकी शरणमें गये ॥ ९ ॥

ततोऽतिकायं काकुत्स्थो रथस्थं पर्वतोपमम् ।
ददर्श धन्विनं दूराद् गर्जन्तं कालमेघवत् ॥ १० ॥

रथपर बैठे हुए पर्वताकार अतिकायको श्रीरामचन्द्रजीने भी देखा। वह हाथमें धनुष लिये कुछ दूरपर प्रलयकालके मेघकी भाँति गर्जना कर रहा था ॥ १० ॥

स तं दृष्ट्वा महाकायं राघवस्तु सुविस्मितः ।
वानरान् सान्त्वयित्वा च विभीषणमुवाच ह ॥ ११ ॥

उस महाकाय निशाचरको देखकर श्रीरामचन्द्रजीको भी बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने वानरोंको सान्त्वना देकर विभीषणसे पूछा—॥ ११ ॥

कोऽसौ पर्वतसंकाशो धनुष्मान् हरिलोचनः ।
युक्ते हयसहस्रेण विशाले स्यन्दने स्थितः ॥ १२ ॥

'विभीषण! हजार घोड़ोंसे जुते हुए विशाल रथपर बैठा हुआ वह पर्वताकार निशाचर कौन है? उसके हाथमें धनुष है और आँखें सिंहके समान तेजस्विनी दिखायी देती हैं ॥

य एष निशितैः शूलैः सुतीक्ष्णैः प्रासतोमरैः ।
अर्चिष्मद्भिर्वृतो भाति भूतैरिव महेश्वरः ॥ १३ ॥

'यह भूतोंसे घिरे हुए भूतनाथ महादेवजीके समान तीखे शूल तथा अत्यन्त तेजधारवाले तेजस्वी प्रासों और तोमरोंसे घिरकर अद्भुत शोभा पा रहा है ॥ १३ ॥

कालजिह्वाप्रकाशाभिर्य एषोऽभिविराजते ।
आवृतो रथशक्तीभिर्विद्युद्भिरिव तोयदः ॥ १४ ॥

'इतना ही नहीं, कालकी जिह्वाके समान प्रकाशित होनेवाली रथशक्तियोंसे घिरा हुआ यह वीर निशाचर विद्युन्मालाओंसे आवृत मेघके समान प्रकाशित हो रहा है ॥ १४॥

धनूंषि चास्य सज्जानि हेमपृष्ठानि सर्वशः ।
शोभयन्ति रथश्रेष्ठं शक्रचापमिवाम्बरम् ॥ १५ ॥

'जिनके पृष्ठभागमें सोने मढ़े हुए हैं, ऐसे अनेकानेक सुसज्जित धनुष उसके श्रेष्ठ रथकी सब ओरसे उसी तरह शोभा बढ़ा रहे हैं, जैसे इन्द्रधनुष आकाशको सुशोभित करता है ॥

य एष रक्षःशार्दूलो रणभूमिं विराजयन् ।
अभ्येति रथिनां श्रेष्ठो रथेनादित्यवर्चसा ॥ १६ ॥

'यह राक्षसोंमें सिंहके समान पराक्रमी और रथियोंमें श्रेष्ठ वीर अपने सूर्यतुल्य तेजस्वी रथके द्वारा रणभूमिकी शोभा बढ़ाता हुआ मेरे सामने आ रहा है ॥ १६ ॥

ध्वजशृङ्गप्रतिष्ठेन राहुणाभिविराजते ।
सूर्यरश्मिप्रभैर्बाणैर्दिशो दश विराजयन् ॥ १७ ॥

'इसके ध्वजके शिखरपर पताकामें राहुका चिह्न अङ्कित है, जिससे रथकी बड़ी शोभा हो रही है। यह सूर्यकी किरणोंके समान चमकीले बाणोंसे दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रहा है ॥ १७ ॥

त्रिनतं मेघनिर्ह्रादं हेमपृष्ठमलंकृतम् ।
शतक्रतुधनुःप्रख्यं धनुश्चास्य विराजते ॥ १८ ॥

'इसके धनुषका पृष्ठभाग सोनेसे मढ़ा हुआ तथा पुष्प आदिसे अलंकृत है। वह आदि, मध्य और अन्त तीन स्थानोंमें झुका हुआ है। उसकी प्रत्यञ्चासे मेघोंकी गर्जनाके

समान टंकार-ध्वनि प्रकट होती है। इस निशाचरका धनुष इन्द्र-धनुषके समान शोभा पाता है ॥ १८ ॥

सध्वजः सपताकश्च सानुकर्षो महारथः ।
चतुःसादिसमायुक्तो मेघस्तनितनिःस्वनः ॥ १९ ॥

'इसका विशाल रथ ध्वजा, पताका और अनुकर्ष (रथके नीचे लगे हुए आधारभूत काष्ठ) से युक्त, चार सारथियोंसे नियन्त्रित और मेघकी गर्जनाके समान घर्घराहट पैदा करनेवाला है ॥ १९ ॥

विंशतिर्दश चाष्टौ च तूणास्य रथमास्थिताः ।
कार्मुकाणि च भीमानि ज्याश्च काञ्चनपिङ्गलाः ॥ २० ॥

'इसके रथपर बीस तरकस, दस भयंकर धनुष और आठ सुनहरे एवं पिङ्गलवर्णकी प्रत्यञ्चाएँ रखी हुई हैं ॥२०॥

द्वौ च खड्गौ च पार्श्वस्थौ प्रदीप्तौ पार्श्वशोभितौ ।
चतुर्हस्तत्सरुचितौ व्यक्तहस्तदशायतौ ॥ २१ ॥

'दोनों बगलमें दो चमकीली तलवारें शोभा पा रही हैं, जिनकी मूँठें चार हाथकी और लंबाई दस हाथकी है ॥२१॥

रक्तकण्ठगुणो धीरो महापर्वतसंनिभः ।
कालः कालमहावक्त्रो मेघस्थ इव भास्करः ॥ २२ ॥

'गलेमें लाल रंगकी माला धारण किये महान् पर्वतके समान आकारवाला यह धीरवीर निशाचर काले रंगका दिखायी देता है। इसका विशाल मुख कालके मुखके समान भयंकर है तथा यह मेघोंकी ओटमें स्थित हुए सूर्यके समान प्रकाशित होता है ॥ २२ ॥

काञ्चनाङ्गदनद्धाभ्यां भुजाभ्यामेष शोभते ।
शृङ्गाभ्यामिव तुङ्गाभ्यां हिमवान् पर्वतोत्तमः ॥ २३ ॥

'इसकी बाँहोंमें सोनेके बाजूबंद बँधे हुए हैं। उन भुजाओंके द्वारा यह विशालकाय निशाचर दो ऊँचे शिखरोंसे युक्त गिरिराज हिमालयके समान शोभा पाता है ॥ २३ ॥

कुण्डलाभ्यामुभाभ्यां च भाति वक्त्रं सुभीषणम् ।
पुनर्वस्वन्तरगतं परिपूर्णो निशाकरः ॥ २४ ॥

'इसका अत्यन्त भीषण मुखमण्डल दोनों कुण्डलोंसे मण्डित हो पुनर्वसु नामक दो नक्षत्रोंके बीच स्थित हुए परिपूर्ण चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा है ॥ २४ ॥

आचक्ष्व मे महाबाहो त्वमेनं राक्षसोत्तमम् ।
यं दृष्ट्वा वानराः सर्वे भयार्ता विद्रुता दिशः ॥ २५ ॥

'महाबाहो ! तुम मुझे इस श्रेष्ठ राक्षसका परिचय दो, जिसे देखते ही सब वानर भयभीत हो सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर भाग चले हैं' ॥ २५ ॥

स पृष्टो राजपुत्रेण रामेणामिततेजसा ।
आचचक्षे महातेजा राघवाय विभीषणः ॥ २६ ॥

अमित तेजस्वी राजकुमार श्रीरामके इस प्रकार पूछनेपर महातेजस्वी विभीषणने रघुनाथजीसे इस प्रकार कहा—॥२६॥

दशग्रीवो महातेजा राजा वैश्रवणानुजः ।
भीमकर्मा महात्मा हि रावणो राक्षसेश्वरः ॥ २७ ॥
तस्यासीद् वीर्यवान् पुत्रो रावणप्रतिमो बले ।
वृद्धसेवी श्रुतिधरः सर्वास्त्रविदुषां वरः ॥ २८ ॥

'भगवन् ! जो कुबेरका छोटा भाई, महातेजस्वी, महाकाय, भयानक कर्म करनेवाला तथा राक्षसोंका स्वामी दशमुख राजा रावण है, उसके एक बड़ा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ, जो बलमें रावणके ही समान है। वह वृद्ध पुरुषोंका सेवन करनेवाला, वेद-शास्त्रोंका ज्ञाता तथा सम्पूर्ण अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ है ॥ २७–२८ ॥

अश्वपृष्ठे नागपृष्ठे खड्गे धनुषि कर्षणे ।
भेदे सान्त्वे च दाने च नये मन्त्रे च सम्मतः ॥ २९ ॥

'हाथी-घोड़ोंकी सवारी करने, तलवार चलाने, धनुषपर बाणोंका संधान करने, प्रत्यञ्चा खींचने, लक्ष्य बेधने, साम और दानका प्रयोग करने तथा न्याययुक्त बर्ताव एवं मन्त्रणा देनेमें वह सबके द्वारा सम्मानित है ॥ २९ ॥

यस्य बाहुं समाश्रित्य लङ्का भवति निर्भया ।
तनयं धान्यमालिन्या अतिकायमिमं विदुः ॥ ३० ॥

'उसीके बाहुबलका आश्रय लेकर लङ्कापुरी सदा निर्भय रहती आयी है। वही यह वीर निशाचर है। यह रावणकी दूसरी पत्नी धान्यमालिनीका पुत्र है। इसे लोग अतिकायके नामसे जानते हैं ॥ ३० ॥

एतेनाराधितो ब्रह्मा तपसा भावितात्मना ।
अस्त्राणि चाप्यवाप्तानि रिपवश्च पराजिताः ॥ ३१ ॥

'तपस्यासे विशुद्ध अन्तःकरणवाले इस अतिकायने दीर्घकालतक ब्रह्माजीकी आराधना की थी। इसने ब्रह्माजीसे अनेक दिव्यास्त्र प्राप्त किये हैं और उनके द्वारा बहुत-से शत्रुओंको पराजित किया है ॥ ३१ ॥

सुरासुरैरवध्यत्वं दत्तमस्मै स्वयंभुवा ।
एतच्च कवचं दिव्यं रथश्च रविभास्वरः ॥ ३२ ॥

'ब्रह्माजीने इसे देवताओं और असुरोंसे न मारे जानेका वरदान दिया है। ये दिव्य कवच और सूर्यके समान तेजस्वी रथ भी उन्हींके दिये हुए हैं ॥ ३२ ॥

एतेन शतशो देवा दानवाश्च पराजिताः ।
रक्षितानि च रक्षांसि यक्षाश्चापि निषूदिताः ॥ ३३ ॥

'इसने देवता और दानवोंको सैकड़ों बार पराजित किया है, राक्षसोंकी रक्षा की है और यक्षोंको मार भगाया है ॥

वज्रं विष्टम्भितं येन बाणैरिन्द्रस्य धीमता ।
पाशः सलिलराजस्य युद्धे प्रतिहतस्तथा ॥ ३४ ॥

'इस बुद्धिमान् राक्षसने अपने बाणोंद्वारा इन्द्रके वज्रको भी कुण्ठित कर दिया है तथा युद्धमें जलके स्वामी वरुणके पाशको भी सफल नहीं होने दिया है ॥ ३४ ॥

एषोऽतिकायो बलवान् राक्षसानामथर्षभः ।
स रावणसुतो धीमान् देवदानवदर्पहा ॥ ३५ ॥

'राक्षसोंमें श्रेष्ठ यह बुद्धिमान् रावणकुमार अतिकाय बड़ा बलवान् तथा देवताओं और दानवोंके दर्पको भी दलन करनेवाला है ॥ ३५ ॥

तदस्मिन् क्रियतां यत्नः क्षिप्रं पुरुषपुङ्गव ।
पुरा वानरसैन्यानि क्षयं नयति सायकैः ॥ ३६ ॥

'पुरुषोत्तम ! अपने सायकोंसे यह सारी वानर-सेनाका संहार कर डाले, इसके पहले ही आप इस राक्षसको परास्त करनेका शीघ्र प्रयत्न कीजिये' ॥ ३६ ॥

ततोऽतिकायो बलवान् प्रविश्य हरिवाहिनीम् ।
विस्फारयामास धनुर्ननाद च पुनः पुनः ॥ ३७ ॥

विभीषण और भगवान् श्रीराममें इस प्रकार बातें हो ही रही थीं कि बलवान् अतिकाय वानरोंकी सेनामें घुस आया और बारंबार गर्जना करता हुआ अपने धनुषपर टंकार देने लगा ॥ ३७ ॥

तं भीमवपुषं दृष्ट्वा रथस्थं रथिनां वरम् ।
अभिपेतुर्महात्मानः प्रधाना ये वनौकसः ॥ ३८ ॥
कुमुदो द्विविदो मैन्दो नीलः शरभ एव च ।
पादपैर्गिरिशृङ्गैश्च युगपत् समभिद्रवन् ॥ ३९ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ और भयंकर शरीरवाले उस राक्षसको रथपर बैठकर आते देख कुमुद, द्विविद, मैन्द, नील और शरभ आदि जो प्रधान-प्रधान महामनस्वी वानर थे, वे वृक्ष तथा पर्वतशिखर धारण किये एक साथ ही उसपर टूट पड़े ३८-३९

तेषां वृक्षांश्च शैलांश्च शरैः कनकभूषणैः ।
अतिकायो महातेजाश्चिच्छेदास्त्रविदां वरः ॥ ४० ॥

परंतु अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी अतिकायने अपने सुवर्णभूषित बाणोंसे वानरोंके चलाये हुए वृक्षों और पर्वतशिखरोंको काट गिराया ॥ ४० ॥

तांश्चैव सर्वान् स हरीञ्शरैः सर्वायसैर्बली ।
विव्याधाभिमुखान् संख्ये भीमकायो निशाचरः ॥ ४१ ॥

साथ ही उस बलवान् और भीमकाय निशाचरने युद्धस्थलमें सामने आये हुए उन समस्त वानरोंको लोहेके बाणोंसे बींध डाला ॥ ४१ ॥

तेऽर्दिता बाणवर्षेण भिन्नगात्राः पराजिताः ।
न शेकुरतिकायस्य प्रतिकर्तुं महाहवे ॥ ४२ ॥

उसकी बाणवर्षासे आहत हो सबके शरीर क्षत-विक्षत हो गये । सबने हार मान ली और कोई भी उस महासमरमें अतिकायका सामना करनेमें समर्थ न हो सके ॥ ४२ ॥

तत् सैन्यं हरिवीराणां त्रासयामास राक्षसः ।
मृगयूथमिव क्रुद्धो हरिर्यौवनदर्पितः ॥ ४३ ॥

जैसे जवानीके जोशसे भरा हुआ कुपित सिंह मृगोंके झुंडको भयभीत कर देता है, उसी प्रकार वह राक्षस वानरवीरोंकी उस सेनाको त्रास देने लगा ॥ ४३ ॥

स राक्षसेन्द्रो हरियूथमध्ये
नायुध्यमानं निजघान कंचित् ।
उत्पत्य रामं स धनुःकलापी
सगर्वितं वाक्यमिदं बभाषे ॥ ४४ ॥

वानरोंके झुंडमें विचरते हुए राक्षसराज अतिकायने किसी भी ऐसे योद्धाको नहीं मारा, जो उसके साथ युद्ध न कर रहा हो । धनुष और तरकस धारण किये वह निशाचर उछलकर श्रीरामके पास आ गया तथा बड़े गर्वसे इस प्रकार बोला—॥ ४४ ॥

रथे स्थितोऽहं शरचापपाणि-
र्न प्राकृतं कंचन योधयामि ।
यस्यास्ति शक्तिर्व्यवसाययुक्तो
ददातु मे शीघ्रमिहाद्य युद्धम् ॥ ४५ ॥

'मैं धनुष और बाण लेकर रथपर बैठा हूँ । किसी साधारण प्राणीसे युद्ध करनेका मेरा विचार नहीं है। जिसके अंदर शक्ति हो, साहस और उत्साह हो, वह शीघ्र यहाँ आकर मुझे युद्धका अवसर दे' ॥ ४५ ॥

तत् तस्य वाक्यं ब्रुवतो निशम्य
चुकोप सौमित्रिरमित्रहन्ता ।
अमृष्यमाणश्च समुत्पपात
जग्राह चापं च ततः स्मयित्वा ॥ ४६ ॥

उसके ये अहंकारपूर्ण वचन सुनकर शत्रुहन्ता सुमित्राकुमार लक्ष्मणको बड़ा क्रोध हुआ । उसकी बातोंको सहन न कर सकनेके कारण वे आगे बढ़ आये और किंचित् मुस्कराकर उन्होंने अपना धनुष उठाया ॥ ४६ ॥

क्रुद्धः सौमित्रिरुत्पत्य तूणादाक्षिप्य सायकम् ।
पुरस्तादतिकायस्य विचकर्ष महद्धनुः ॥ ४७ ॥

कुपित हुए लक्ष्मण उछलकर आगे आये और तरकससे बाण खींचकर अतिकायके सामने आ अपने विशाल धनुषको खींचने लगे ॥ ४७ ॥

पूरयन् स महीं सर्वामाकाशं सागरं दिशः ।
ज्याशब्दो लक्ष्मणस्योग्रस्त्रासयन् रजनीचरान् ॥ ४८ ॥

लक्ष्मणके धनुषकी प्रत्यञ्चाका वह शब्द बड़ा भयंकर

था । वह सारी पृथ्वी, आकाश, समुद्र तथा सम्पूर्ण दिशाओंमें गूँज उठा और निशाचरोंको त्रास देने लगा ॥ ४८ ॥

सौमित्रेश्चापनिर्घोषं श्रुत्वा प्रतिभयं तदा ।
विसिस्मिये महातेजा राक्षसेन्द्रात्मजो बली ॥ ४९ ॥

सुमित्राकुमारके धनुषकी वह भयानक टंकार सुनकर उस समय महातेजस्वी बलवान् राक्षसराजकुमार अतिकायको बड़ा विस्मय हुआ ॥ ४९ ॥

तदातिकायः कुपितो दृष्ट्वा लक्ष्मणमुत्थितम् ।
आदाय निशितं बाणमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५० ॥

लक्ष्मणको अपना सामना करनेके लिये उठा देख अतिकाय रोषसे भर गया और तीखा बाण हाथमें लेकर इस प्रकार बोला—॥ ५० ॥

✓बालस्त्वमसि सौमित्रे विक्रमेष्वविचक्षणः ।
गच्छ किं कालसंकाशं मां योधयितुमिच्छसि ॥ ५१ ॥

'सुमित्राकुमार ! तुम अभी बालक हो । पराक्रम करनेमें कुशल नहीं हो, अतः लौट जाओ । मैं तुम्हारे लिये कालके समान हूँ । मुझसे जूझनेकी इच्छा क्यों करते हो ? ॥ ५१ ॥

नहि मद्बाहुसृष्टानां बाणानां हिमवानपि ।
सोढुमुत्सहते वेगमन्तरिक्षमथो मही ॥ ५२ ॥

'मेरे हाथसे छूटे हुए बाणोंका वेग गिरिराज हिमालय भी नहीं सह सकता । पृथ्वी और आकाश भी उसे नहीं सहन कर सकते ॥ ५२ ॥

सुखप्रसुप्तं कालाग्निं विबोधयितुमिच्छसि ।
न्यस्य चापं निवर्तस्व प्राणान्न जहि मद्गतः ॥ ५३ ॥

'तुम सुखसे सोयी (शान्त) हुई प्रलयाग्निको क्यों जगाना (प्रज्वलित करना) चाहते हो ? धनुषको यहीं छोड़कर लौट जाओ । मुझसे भिड़कर अपने प्राणोंका परित्याग न करो ॥

अथवा त्वं प्रतिस्तब्धो न निवर्तितुमिच्छसि ।
तिष्ठ प्राणान् परित्यज्य गमिष्यसि यमक्षयम् ॥ ५४ ॥

'अथवा तुम बड़े अहंकारी हो, इसीलिये लौटना नहीं चाहते । अच्छा, खड़े रहो । अभी अपने प्राणोंसे हाथ धोकर यमलोककी यात्रा करोगे ॥ ५४ ॥

पश्य मे निशितान् बाणान् रिपुदर्पनिषूदनान् ।
ईश्वरायुधसंकाशांस्तप्तकाञ्चनभूषणान् ॥ ५५ ॥

'शत्रुओंका दर्प चूर्ण करनेवाले मेरे इन तीखे बाणोंको, जो तपे हुए सुवर्णसे भूषित हैं, देखो; ये भगवान् शंकरके त्रिशूलकी समानता करते हैं ॥ ५५ ॥

एष ते सर्पसंकाशो बाणः पास्यति शोणितम् ।
मृगराज इव क्रुद्धो नागराजस्य शोणितम् ।
इत्येवमुक्त्वा संक्रुद्धः शरं धनुषि संदधे ॥ ५६ ॥

'जैसे कुपित हुआ सिंह गजराजका खून पीता है, उसी प्रकार यह सर्पके समान भयंकर बाण तुम्हारे रक्तका पान करेगा ।' ऐसा कहकर अतिकायने अत्यन्त कुपित हो अपने धनुषपर बाणका संधान किया ॥ ५६ ॥

श्रुत्वातिकायस्य वचः सरोषं
सगर्वितं संयति राजपुत्रः ।
स संचुकोपातिबलो मनस्वी
उवाच वाक्यं च ततो महार्थम् ॥ ५७ ॥

युद्धस्थलमें अतिकायके रोष और गर्वसे भरे हुए इस वचनको सुनकर अत्यंन्त बलशाली एवं मनस्वी राजकुमार लक्ष्मणको बड़ा क्रोध हुआ । वे यह महान् अर्थसे युक्त वचन बोले—॥ ५७ ॥

न वाक्यमात्रेण भवान् प्रधानो
न कत्थनात् सत्पुरुषा भवन्ति ।
मयि स्थिते धन्विनि बाणपाणौ
निदर्शयस्वात्मबलं दुरात्मन् ॥ ५८ ॥

'दुरात्मन् ! केवल बातें बनानेसे तू बड़ा नहीं हो सकता । सिर्फ डींग हाँकनेसे कोई श्रेष्ठ पुरुष नहीं होते । मैं हाथमें धनुष और बाण लेकर तेरे सामने खड़ा हूँ । तू अपना सारा बल मुझे दिखा ॥ ५८ ॥

कर्मणा सूचयात्मानं न विकत्थितुमर्हसि ।
पौरुषेण तु यो युक्तः स तु शूर इति स्मृतः ॥ ५९ ॥

'पराक्रमके द्वारा अपनी वीरताका परिचय दे । झूठी शेखी बघारना तेरे लिये उचित नहीं है । शूर वही माना गया है, जिसमें पुरुषार्थ हो ॥ ५९ ॥

सर्वायुधसमायुक्तो धन्वी त्वं रथमास्थितः ।
शरैर्वा यदि वाप्यस्त्रैर्दर्शयस्व पराक्रमम् ॥ ६० ॥

'तेरे पास सब तरहके हथियार मौजूद हैं । तू धनुष लेकर रथपर बैठा हुआ है; अतः बाणों अथवा अन्य अस्त्र-शस्त्रोंके द्वारा पहले अपना पराक्रम दिखा ले ॥ ६० ॥

ततः शिरस्ते निशितैः पातयिष्याम्यहं शरैः ।
मारुतः कालसम्पक्वं वृन्तात् तालफलं यथा ॥ ६१ ॥

'उसके बाद मैं अपने तीखे बाणोंसे तेरा मस्तक उसी तरह काट गिराऊँगा, जैसे वायु कालक्रमसे पके हुए ताड़के फलको उसके वृन्त (बौंडी) से नीचे गिरा देती है ॥ ६१ ॥

अद्य ते मामका बाणास्तप्तकाञ्चनभूषणाः ।
पास्यन्ति रुधिरं गात्राद् बाणशल्यान्तरोत्थितम् ॥ ६२ ॥

'आज तपे हुए सुवर्णसे विभूषित मेरे बाण अपनी नोंकद्वारा किये गये छिद्रसे निकले हुए तेरे शरीरके रक्तका पान करेंगे ॥ ६२ ॥

बालोऽयमिति विज्ञाय न चावज्ञातुमर्हसि ।
बालो वा यदि वा वृद्धो मृत्युं जानीहि संयुगे ॥ ६३ ॥

'तू मुझे बालक जानकर मेरी अवहेलना न कर । मैं बालक होऊँ अथवा वृद्ध, संग्राममें तो तू मुझे अपना काल ही समझ ले ॥ ६३ ॥

बालेन विष्णुना लोकास्त्रयः क्रान्तास्त्रिविक्रमैः । ✓
लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा हेतुमत् परमार्थवत् ।
अतिकायः प्रचुक्रोध बाणं चोत्तममाददे ॥ ६४ ॥

'वामनरूपधारी भगवान् विष्णु देखनेमें बालक ही थे; किंतु अपने तीन ही पगोंसे उन्होंने समूची त्रिलोकी नाप ली थी ।' लक्ष्मणकी वह परम सत्य और युक्तियुक्त बात सुनकर अतिकायके क्रोधकी सीमा न रही । उसने एक उत्तम बाण अपने हाथमें ले लिया ॥ ६४ ॥

ततो विद्याधरा भूता देवा दैत्या महर्षयः ।
गुह्यकाश्च महात्मानस्तद् युद्धं द्रष्टुमागमन् ॥ ६५ ॥

तदनन्तर विद्याधर, भूत, देवता, दैत्य, महर्षि तथा महामना गुह्यकगण उस युद्धको देखनेके लिये आये ॥ ६५ ॥

ततोऽतिकायः कुपितश्चापमारोप्य सायकम् ।
लक्ष्मणाय प्रचिक्षेप संक्षिपन्निव चाम्बरम् ॥ ६६ ॥

उस समय अतिकायने कुपित हो धनुषपर वह उत्तम बाण चढ़ाया और आकाशको अपना ग्रास बनाते हुए-से उसे लक्ष्मणपर चला दिया ॥ ६६ ॥

तमापतन्तं निशितं शरमाशीविषोपमम् ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद लक्ष्मणः परवीरहा ॥ ६७ ॥

किंतु शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले लक्ष्मणने एक अर्धचन्द्राकार बाणके द्वारा अपनी ओर आते हुए उस विषधर सर्पके तुल्य भयंकर एवं तीखे बाणको काट डाला ॥ ६७ ॥

तं निकृत्तं शरं दृष्ट्वा कृत्तभोगमिवोरगम् ।
अतिकायो भृशं क्रुद्धः पञ्च बाणान् समादधे ॥ ६८ ॥

जैसे सर्पका फन कट जाय, उसी प्रकार उस बाणको खण्डित हुआ देख अत्यन्त कुपित हुए अतिकायने पाँच बाणोंको धनुषपर रक्खा ॥ ६८ ॥

ताञ्शरान् सम्प्रचिक्षेप लक्ष्मणाय निशाचरः ।
तानप्राप्ताञ्शितैर्बाणैश्चिच्छेद भरतानुजः ॥ ६९ ॥

फिर उस निशाचरने लक्ष्मणपर ही वे पाँचों बाण चला दिये । वे बाण उनके समीप अभी आने भी नहीं पाये थे कि लक्ष्मणने तीखे सायकोंसे उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥६९॥

स ताञ्छित्त्वा शितैर्बाणैर्लक्ष्मणः परवीरहा ।
आददे निशितं बाणं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ ७० ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले लक्ष्मणने अपने पैने सायकोंसे उन बाणोंका खण्डन करनेके पश्चात् एक तेज बाण हाथमें लिया, जो अपने तेजसे प्रज्वलित-सा हो रहा था ॥७०॥

तमादाय धनुःश्रेष्ठे योजयामास लक्ष्मणः ।
विचकर्ष च वेगेन विससर्ज च सायकम् ॥ ७१ ॥

उसे लेकर लक्ष्मणने अपने श्रेष्ठ धनुषपर रक्खा, उसकी प्रत्यञ्चाको खींचा और बड़े वेगसे वह सायक अतिकायपर छोड़ दिया ॥ ७१ ॥

पूर्णायतविसृष्टेन शरेण नतपर्वणा ।
ललाटे राक्षसश्रेष्ठमाजघान स वीर्यवान् ॥ ७२ ॥

धनुषको पूर्णरूपसे खींचकर छोड़े गये तथा झुकी हुई गाँठवाले उस बाणके द्वारा पराक्रमी लक्ष्मणने राक्षसश्रेष्ठ अतिकायके ललाटमें गहरा आघात किया ॥ ७२ ॥

स ललाटे शरो मग्नस्तस्य भीमस्य रक्षसः ।
ददृशे शोणितेनाक्तः पन्नगेन्द्र इवाचले ॥ ७३ ॥

वह बाण उस भयानक राक्षसके ललाटमें धँस गया और रक्तसे भींगकर पर्वतसे सटे हुए किसी नागराजके समान दिखायी देने लगा ॥ ७३ ॥

राक्षसः प्रचकम्पेऽथ लक्ष्मणेषुप्रपीडितः ।
रुद्रबाणहतं घोरं यथा त्रिपुरगोपुरम् ॥ ७४ ॥
चिन्तयामास चाश्वस्य विमृश्य च महाबलः ।

लक्ष्मणके बाणसे अत्यन्त पीड़ित हो वह राक्षस काँप उठा । ठीक उसी तरह, जैसे भगवान् रुद्रके बाणोंसे आहत हो त्रिपुरका भयंकर गोपुर हिल उठा था । फिर थोड़ी ही देरमें सँभलकर महाबली अतिकाय बड़ी चिन्तामें पड़ गया और कुछ सोच-विचारकर बोला—॥ ७४½ ॥

साधु बाणनिपातेन श्लाघनीयोऽसि मे रिपुः ॥ ७५ ॥
विधायैवं विदार्यास्यं विनम्य च महाभुजौ ।
स रथोपस्थमास्थाय रथेन प्रचचार ह ॥ ७६ ॥

'शाबाश ! इस प्रकार अमोघ बाणका प्रयोग करनेके कारण तुम मेरे स्पृहणीय शत्रु हो ।' मुँह फैलाकर ऐसा कहनेके पश्चात् अतिकाय अपनी दोनों विशाल भुजाओंको काबूमें करके रथके पिछले भागमें बैठकर उस रथके द्वारा ही आगे बढ़ा ॥ ७५-७६ ॥

एवं त्रीन् पञ्च सप्तेति सायकान् राक्षसर्षभः ।
आददे संदधे चापि विचकर्षोत्ससर्ज च ॥ ७७ ॥

उस राक्षसशिरोमणि वीरने क्रमशः एक, तीन, पाँच और सात सायकोंको लेकर उन्हें धनुषपर चढ़ाया और वेगपूर्वक खींचकर चला दिया ॥ ७७ ॥

ते बाणाः कालसंकाशा राक्षसेन्द्रधनुश्च्युताः ।
हेमपुङ्खा रविप्रख्याश्चक्रुर्दीप्तमिवाम्बरम् ॥ ७८ ॥

उस राक्षसराजके धनुषसे छूटे हुए उन सुवर्णभूषित, सूर्यतुल्य तेजस्वी तथा कालके समान भयंकर बाणोंने आकाशको प्रकाशसे पूर्ण-सा कर दिया ॥ ७८ ॥

ततस्तान् राक्षसोत्सृष्टाञ्शरौघान् राघवानुजः ।
असम्भ्रान्तः प्रचिच्छेद निशितैर्बहुभिः शरैः ॥ ७९ ॥

परंतु रघुनाथजीके छोटे भाई लक्ष्मणने बिना किसी घबराहटके उस निशाचरद्वारा चलाये हुए उन बाणसमूहोंको तेज धारवाले बहुसंख्यक सायकोंद्वारा काट गिराया ॥ ७९ ॥

ताञ्शरान् युधि सम्प्रेक्ष्य निकृत्तान् रावणात्मजः ।
चुकोप त्रिदशेन्द्रारिर्जग्राह निशितं शरम् ॥ ८० ॥

उन बाणोंको कटा हुआ देख इन्द्रद्रोही रावणकुमारको बड़ा क्रोध हुआ और उसने एक तीखा बाण हाथमें लिया ॥

स संधाय महातेजास्तं बाणं सहसोत्सृजत् ।
तेन सौमित्रिमायान्तमाजघान स्तनान्तरे ॥ ८१ ॥

उसे धनुषपर रखकर उस महातेजस्वी वीरने सहसा छोड़ दिया और उसके द्वारा सामने आते हुए सुमित्राकुमारकी छातीमें आघात किया ॥ ८१ ॥

अतिकायेन सौमित्रिस्ताडितो युधि वक्षसि ।
सुस्राव रुधिरं तीव्रं मदं मत्त इव द्विपः ॥ ८२ ॥

अतिकायके उस बाणकी चोट खाकर सुमित्राकुमार युद्धस्थलमें अपने वक्षःस्थलसे तीव्रगतिसे रक्त बहाने लगे, मानो कोई मतवाला हाथी मस्तकसे मदकी वर्षा कर रहा हो ॥ ८२ ॥

स चकार तदात्मानं विशल्यं सहसा विभुः ।
जग्राह च शरं तीक्ष्णमस्त्रेणापि समाददे ॥ ८३ ॥

फिर सामर्थ्यशाली लक्ष्मणने सहसा अपनी छातीसे उस बाणको निकाल दिया और एक तीखा सायक हाथमें लेकर उसे दिव्यास्त्रसे संयोजित किया ॥ ८३ ॥

आग्नेयेन तदास्त्रेण योजयामास सायकम् ।
स जज्वाल तदा बाणो धनुष्यस्य महात्मनः ॥ ८४ ॥

उस समय अपने उस सायकको उन्होंने आग्नेयास्त्रसे अभिमन्त्रित किया । अभिमन्त्रित होते ही महात्मा लक्ष्मणके धनुषपर रक्खा हुआ वह बाण तत्काल प्रज्वलित हो उठा ॥

अतिकायोऽतितेजस्वी रौद्रमस्त्रं समाददे ।
तेन बाणं भुजङ्गाभं हेमपुङ्खमयोजयत् ॥ ८५ ॥

उधर अत्यन्त तेजस्वी अतिकायने भी एक सुवर्णमय पंखवाला विषधर सर्पके समान भयंकर बाण हाथमें लिया और उसे धनुषपर रक्खा ॥ ८५ ॥

तदस्त्रं ज्वलितं घोरं लक्ष्मणः शरमाहितम् ।
अतिकायाय चिक्षेप कालदण्डमिवान्तकः ॥ ८६ ॥

इतनेहीमें लक्ष्मणने दिव्यास्त्रकी शक्तिसे सम्पन्न उस प्रज्वलित एवं भयंकर बाणको अतिकायके ऊपर चलाया, मानो यमराजने अपने कालदण्डका प्रयोग किया हो ॥ ८६ ॥

आग्नेयास्त्राभिसंयुक्तं दृष्ट्वा बाणं निशाचरः ।
उत्ससर्ज तदा बाणं रौद्रं सूर्यास्त्रयोजितम् ॥ ८७ ॥

आग्नेयास्त्रसे अभिमन्त्रित हुए उस बाणको अपनी ओर आते देख निशाचर अतिकायने तत्काल ही अपने भयंकर बाणको सूर्यास्त्रसे अभिमन्त्रित करके चलाया ॥ ८७ ॥

तावुभावम्बरे बाणावन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
तेजसा सम्प्रदीप्ताग्रौ क्रुद्धाविव भुजङ्गमौ ॥ ८८ ॥
तावन्योन्यं विनिर्दह्य पेततुः पृथिवीतले ॥ ८९ ॥

उन दोनों सायकोंके अग्रभाग तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे । आकाशमें पहुँचकर वे दोनों कुपित हुए दो सर्पोंकी भाँति आपसमें टकरा गये और एक दूसरेको दग्ध करके पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८८-८९ ॥

निरर्चिषौ भस्मकृतौ न भ्राजेते शरोत्तमौ ।
तावुभौ दीप्यमानौ स्म न भ्राजेते महीतले ॥ ९० ॥

वे दोनों ही बाण उत्तम कोटिके थे और अपनी दीप्तिसे प्रकाशित हो रहे थे, तथापि एक-दूसरेके तेजसे भस्म होकर अपना-अपना तेज खो बैठे । इसलिये भूतलपर निष्प्रभ होनेके कारण उनकी शोभा नहीं हो रही थी ॥ ९० ॥

ततोऽतिकायः संक्रुद्धस्त्वाष्ट्रमैषीकमुत्सृजत् ।
ततश्चिच्छेद सौमित्रिरस्त्रमैन्द्रेण वीर्यवान् ॥ ९१ ॥

तदनन्तर अतिकायने अत्यन्त कुपित हो त्वष्टा देवताके मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके एक सींकका बाण छोड़ा; परंतु पराक्रमी लक्ष्मणने उस अस्त्रको ऐन्द्रास्त्रसे काट दिया ॥ ९१ ॥

ऐषीकं निहतं दृष्ट्वा कुमारो रावणात्मजः ।
याम्येनास्त्रेण संक्रुद्धो योजयामास सायकम् ॥ ९२ ॥
ततस्तदस्त्रं चिक्षेप लक्ष्मणाय निशाचरः ।
वायव्येन तदस्त्रेण निजघान स लक्ष्मणः ॥ ९३ ॥

सींकके बाणको नष्ट हुआ देख रावणपुत्र कुमार अतिकायके क्रोधकी सीमा न रही । उस राक्षसने एक सायकको याम्यास्त्रसे अभिमन्त्रित किया और उसे लक्ष्मणको लक्ष्य करके चला दिया; परंतु लक्ष्मणने वायव्यास्त्रद्वारा उसको भी नष्ट कर दिया ॥ ९२-९३ ॥

अथैनं शरधाराभिर्धाराभिरिव तोयदः ।
अभ्यवर्षत संक्रुद्धो लक्ष्मणो रावणात्मजम् ॥ ९४ ॥

तत्पश्चात् जैसे मेघ जलकी धारा बरसाता है, उसी प्रकार अत्यन्त कुपित हुए लक्ष्मणने रावणकुमार अतिकायपर बाण-धाराकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ९४ ॥

तेऽतिकायं समासाद्य कवचे वज्रभूषिते ।
भग्नाग्रशल्याः सहसा पेतुर्बाणा महीतले ॥ ९५ ॥

अतिकायने एक दिव्य कवच बाँध रक्खा था, जिसमें हीरे जड़े हुए थे । लक्ष्मणके बाण अतिकायतक पहुँचकर

उसके कवचसे टकराते और नोक टूट जानेके कारण सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ते थे ॥ ९५ ॥

तान्मोघानभिसम्प्रेक्ष्य लक्ष्मणः परवीरहा ।
अभ्यवर्षत बाणानां सहस्रेण महायशाः ॥ ९६ ॥

उन बाणोंको असफल हुआ देख शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले महायशस्वी लक्ष्मणने पुनः सहस्रों बाणोंकी वर्षा की॥

स वृष्यमाणो बाणौघैरतिकायो महाबलः ।
अवध्यकवचः संख्ये राक्षसो नैव विव्यथे ॥ ९७ ॥

महाबली अतिकायका कवच अभेद्य था, इसलिये युद्धस्थलमें बाण-समूहोंकी वर्षा होनेपर भी वह राक्षस व्यथित नहीं होता था ॥ ९७ ॥

शरं चाशीविषाकारं लक्ष्मणाय व्यपासृजत् ।
स तेन विद्धः सौमित्रिर्मर्मदेशे शरेण ह ॥ ९८ ॥

उसने लक्ष्मणपर विषधर सर्पके समान भयंकर बाण चलाया । उस बाणसे सुमित्राकुमारके मर्मस्थलमें चोट पहुँची ॥ ९८ ॥

मुहूर्तमात्रं निःसंज्ञो ह्यभवच्छत्रुतापनः ।
ततः संज्ञामुपालभ्य चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥ ९९ ॥
निजघान हयान् संख्ये सारथिं च महाबलः ।
ध्वजस्योन्मथनं कृत्वा शरवर्षैररिंदमः ॥१००॥

अतः शत्रुओंको संताप देनेवाले लक्ष्मण दो घड़ीतक अचेत-अवस्थामें पड़े रहे । फिर होशमें आनेपर उन महाबली शत्रुदमन वीरने बाणोंकी वर्षासे शत्रुके रथकी ध्वजाको नष्ट कर दिया और चार उत्तम सायकोंसे रणभूमिमें उसके घोड़ों तथा सारथिको भी यमलोक पहुँचा दिया ॥ ९९-१०० ॥

असम्भ्रान्तः स सौमित्रिस्ताञ्शरानभिलक्षितान् ।
मुमोच लक्ष्मणो बाणान् वधार्थं तस्य रक्षसः ॥१०१॥
न शशाक रुजं कर्तुं युधि तस्य नरोत्तमः ।

तत्पश्चात् सम्भ्रमरहित नरश्रेष्ठ सुमित्राकुमार लक्ष्मणने उस राक्षसके वधके लिये जाँचे-बूझे हुए बहुत-से अमोघ बाण छोड़े, तथापि वे समराङ्गणमें उस निशाचरके शरीरको वेध न सके ॥

✓**अथैनमभ्युपागम्य वायुर्वाक्यमुवाच ह ॥१०२॥**
ब्रह्मदत्तवरो ह्येष अवध्यकवचावृतः ।
ब्राह्मेणास्त्रेण भिन्ध्येनमेष वध्यो हि नान्यथा ।
अवध्य एष ह्यन्येषामस्त्राणां कवची बली ॥१०३॥

तदनन्तर वायुदेवताने उनके पास आकर कहा—'सुमित्रानन्दन! इस राक्षसको ब्रह्माजीसे वरदान प्राप्त हुआ है। यह अभेद्य कवचसे ढका हुआ है। अतः इसको ब्रह्मास्त्रसे विदीर्ण कर डालो; अन्यथा यह नहीं मारा जा सकेगा। यह कवचधारी बलवान् निशाचर अन्य अस्त्रोंके लिये अवध्य है'॥१०२-१०३॥

ततस्तु वायोर्वचनं निशम्य
सौमित्रिरिन्द्रप्रतिमानवीर्यः ।
समादधे बाणमथोग्रवेगं
तद्ब्राह्ममस्त्रं सहसा नियुज्य ॥१०४॥

लक्ष्मण इन्द्रके समान पराक्रमी थे । उन्होंने वायुदेवताका उपर्युक्त वचन सुनकर एक भयंकर वेगवाले बाणको सहसा ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित करके धनुषपर रक्खा ॥१०४॥

तस्मिन् वरास्त्रे तु नियुज्यमाने
सौमित्रिणा बाणवरे शिताग्रे ।
दिशश्च चन्द्रार्कमहाग्रहाश्च
नभश्च तत्रास ररास चोर्वी ॥१०५॥

सुमित्राकुमार लक्ष्मणके द्वारा तेज धारवाले उस श्रेष्ठ बाणमें ब्रह्मास्त्रकी संयोजना की जानेपर उस समय सम्पूर्ण दिशाएँ, चन्द्रमा और सूर्य आदि बड़े-बड़े ग्रह तथा अन्तरिक्षलोकके प्राणी थर्रा उठे और भूमण्डलमें महान् कोलाहल मच गया ॥ १०५ ॥

✓**तं ब्रह्मणोऽस्त्रेण नियुज्य चापे**
शरं सपुङ्खं यमदूतकल्पम् ।
सौमित्रिरिन्द्रारिसुतस्य तस्य
ससर्ज बाणं युधि वज्रकल्पम् ॥१०६॥

सुमित्राकुमारने धनुषपर रक्खे हुए उस सुन्दर पंखवाले बाणको जब ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित किया, तब वह यमदूतके समान भयंकर और वज्रके समान अमोघ हो गया । उन्होंने युद्धस्थलमें उस बाणको इन्द्रद्रोही रावणके बेटे अतिकायको लक्ष्य करके चला दिया ॥ १०६ ॥

तं लक्ष्मणोत्सृष्टविवृद्धवेगं
समापतन्तं श्वसनोग्रवेगम् ।
सुपर्णवज्रोत्तमचित्रपुङ्खं
तदातिकायः समरे ददर्श ॥ १०७ ॥

लक्ष्मणके चलाये हुए उस बाणका वेग बहुत बढ़ा हुआ था । उसके पंख गरुड़के समान थे और उनमें हीरे जड़े हुए थे; इसलिये उनकी विचित्र शोभा होती थी । अतिकायने समराङ्गणमें उस बाणको उस समय वायुके समान भयंकर वेगसे अपनी ओर आते देखा ॥ १०७ ॥

तं प्रेक्षमाणः सहसातिकायो
जघान बाणैर्निशितैरनेकैः ।
स सायकस्तस्य सुपर्णवेग-
स्तथातिवेगेन जगाम पार्श्वम् ॥ १०८ ॥

उसे देखकर अतिकायने सहसा उसके ऊपर बहुत-से पैने बाण चलाये तो भी वह गरुड़के समान वेगशाली सायक बड़े वेगसे उसके पास जा पहुँचा ॥ १०८ ॥

तमागतं प्रेक्ष्य तदातिकायो
बाणं प्रदीप्तान्तककालकल्पम् ।
जघान शक्त्यृष्टिगदाकुठारैः
शूलैः शरैश्चाप्यविपन्नचेष्टः ॥१०९॥

प्रलयङ्कर कालके समान प्रज्वलित हुए उस बाणको अत्यन्त निकट आया देखकर भी अतिकायकी युद्धविषयक चेष्टा नष्ट नहीं हुई । उसने शक्ति, ऋष्टि, गदा, कुठार, शूल तथा बाणोंद्वारा उसे नष्ट करनेका प्रयत्न किया ॥ १०९ ॥

तान्यायुधान्यद्भुतविग्रहाणि
मोघानि कृत्वा स शरोऽग्निदीप्तः ।
प्रगृह्य तस्यैव किरीटजुष्टं
तदातिकायस्य शिरो जहार ॥११०॥

परंतु अग्निके समान प्रज्वलित हुए उस बाणने उन अद्भुत अस्त्रोंको व्यर्थ करके अतिकायके मुकुटमण्डित मस्तकको धड़से अलग कर दिया ॥ ११० ॥

तच्छिरः सशिरस्त्राणं लक्ष्मणेषुप्रमर्दितम् ।
पपात सहसा भूमौ शृङ्गं हिमवतो यथा ॥१११॥

लक्ष्मणके बाणसे कटा हुआ राक्षसका वह शिरस्त्राणसहित मस्तक हिमालयके शिखरकी भाँति सहसा पृथ्वीपर जा पड़ा ॥ १११ ॥

तं भूमौ पतितं दृष्ट्वा विक्षिप्ताम्बरभूषणम् ।
बभूवुर्व्यथिताः सर्वे हतशेषा निशाचराः ॥११२॥

उसके वस्त्र और आभूषण सब ओर बिखर गये । उसे धरतीपर पड़ा देख मरनेसे बचे हुए समस्त निशाचर व्यथित हो उठे ॥ ११२ ॥

ते विषण्णमुखा दीनाः प्रहारजनितश्रमाः ।
विनेदुरुच्चैर्बहवः सहसा विस्वरैः स्वरैः ॥११३॥

उनके मुखपर विषाद छा गया । उनपर जो मार पड़ी थी, उससे थक जानेके कारण वे और भी दुखी हो गये थे । अतः वे बहुसंख्यक राक्षस सहसा विकृत स्वरमें जोर-जोरसे रोने-चिल्लाने लगे ॥ ११३ ॥

ततस्तत्परितं याता निरपेक्षा निशाचराः ।
पुरीमभिमुखा भीता द्रवन्तो नायके हते ॥११४॥

सेनानायकके मारे जानेपर निशाचरोंका युद्धविषयक उत्साह नष्ट हो गया, अतः वे भयभीत हो तुरंत ही लङ्कापुरीकी ओर भाग चले ॥ ११४ ॥

प्रहर्षयुक्ता बहवस्तु वानराः
प्रफुल्लपद्मप्रतिमाननास्तदा ।
अपूजयँल्लक्ष्मणमिष्टभागिनं
हते रिपौ भीमबले दुरासदे ॥११५॥

इधर उस भयंकर बलशाली दुर्जय शत्रुके मारे जानेपर बहुसंख्यक वानर हर्ष और उत्साहसे भर गये । उनके मुख प्रफुल्ल कमलोंके समान खिल उठे और वे अभीष्ट विजयके भागी वीरवर लक्ष्मणकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥११५॥

अतिबलमतिकायमभ्रकल्पं
युधि विनिपात्य स लक्ष्मणः प्रहृष्टः ।
त्वरितमथ तदा स रामपार्श्वं
कपिनिवहैश्च सुपूजितो जगाम ॥११६॥

युद्धस्थलमें अत्यन्त बलशाली और मेघके समान विशाल अतिकायको धराशायी करके लक्ष्मण बड़े प्रसन्न हुए । वे उस समय वानर-समूहोंसे सम्मानित हो तुरंत ही श्रीरामचन्द्रजीके पास गये ॥ ११६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें इकहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७१ ॥

* * *

द्विसप्ततितमः सर्गः

रावणकी चिन्ता तथा उसका राक्षसोंको पुरीकी रक्षाके लिये सावधान रहनेका आदेश

अतिकायं हतं श्रुत्वा लक्ष्मणेन महात्मना ।
उद्वेगमगमद् राजा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥

महात्मा लक्ष्मणके द्वारा अतिकायको मारा गया सुनकर राजा रावण उद्विग्न हो उठा और इस प्रकार बोला—॥१॥

धूम्राक्षः परमामर्षी सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
अकम्पनः प्रहस्तश्च कुम्भकर्णस्तथैव च ॥ २ ॥

एते महाबला वीरा राक्षसा युद्धकाङ्क्षिणः ।
जेतारः परसैन्यानां परैर्नित्यापराजिताः ॥ ३ ॥

'अत्यन्त अमर्षशील धूम्राक्ष, सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अकम्पन, प्रहस्त तथा कुम्भकर्ण—ये महाबली वीर राक्षस सदा युद्धकी अभिलाषा रखते थे । ये सब-के-सब शत्रुओंकी सेनाओंपर विजय पाते और स्वयं विपक्षियोंसे कभी पराजित नहीं होते थे ॥ २-३ ॥

ससैन्यास्ते हता वीरा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
राक्षसाः सुमहाकाया नानाशस्त्रविशारदाः ॥ ४ ॥

'परंतु अनायास ही महान् कर्म करनेवाले रामने नाना प्रकारके शस्त्रोंके ज्ञानमें निपुण उन विशालकाय वीर राक्षसोंका सेनासहित संहार कर डाला ॥ ४ ॥

अन्ये च बहवः शूरा महात्मानो निपातिताः ।
प्रख्यातबलवीर्येण पुत्रेणेन्द्रजिता मम ॥ ५ ॥
तौ भ्रातरौ तदा बद्धौ घोरैर्दत्तवरैः शरैः ।
यन्न शक्यं सुरैः सर्वैरसुरैर्वा महाबलैः ॥ ६ ॥
मोक्तुं तद्बन्धनं घोरं यक्षगन्धर्वपन्नगैः ।
✓ **तन्न जाने प्रभावैर्वा मायया मोहनेन वा ॥ ७ ॥**
शरबन्धाद् विमुक्तौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।

'और भी बहुत-से महामनस्वी शूरवीर राक्षस उनके द्वारा मार गिराये गये । जिसके बल और पराक्रम सर्वत्र विख्यात हैं, उस मेरे बेटे इन्द्रजित्ने उन दोनों भाइयोंको वरदानप्राप्त घोर नागस्वरूप बाणोंसे बाँध लिया था । वह घोर बन्धन समस्त देवता और महाबली असुर भी नहीं खोल सकते थे । यक्ष, गन्धर्व और नागोंके लिये भी उस बन्धनसे छुटकारा दिलाना असम्भव था, तो भी ये दोनों भाई राम और लक्ष्मण उस बाण-बन्धनसे मुक्त हो गये । न जाने कौन-सा प्रभाव था, कैसी माया थी अथवा किस तरहकी मोहिनी ओषधि आदिका प्रयोग किया गया था, जिससे वे उस बन्धनसे छूट गये ॥

ये योधा निर्गताः शूरा राक्षसा मम शासनात् ॥ ८ ॥
ते सर्वे निहता युद्धे वानरैः सुमहाबलैः ।

'मेरी आज्ञासे जो-जो शूरवीर योद्धा राक्षस युद्धके लिये निकले, उन सबको समराङ्गणमें महाबली वानरोंने मार डाला ॥ ८½ ॥

तं न पश्याम्यहं युद्धे योऽद्य रामं सलक्ष्मणम् ॥ ९ ॥
नाशयेत् सबलं वीरं ससुग्रीवं विभीषणम् । ✓

'मैं आज ऐसे किसी वीरको नहीं देखता, जो युद्धमें लक्ष्मणसहित रामको और सेना तथा सुग्रीवसहित वीर विभीषणको नष्ट कर दे ॥ ९½ ॥

अहो सुबलवान् रामो महदस्त्रबलं च वै ॥ १० ॥
यस्य विक्रममासाद्य राक्षसा निधनं गताः ।

'अहो ! राम बड़े बलवान् हैं, निश्चय ही उनका अस्त्र-बल महान् है; जिनके बल-विक्रमका सामना करके असंख्य राक्षस कालके गालमें चले गये ॥ १०½ ॥

तं मन्ये राघवं वीरं नारायणमनामयम् ॥ ११ ॥ ✓
तद्भयाद्धि पुरी लङ्का पिहितद्वारतोरणा ।

'मैं उन वीर रघुनाथको रोग-शोकसे रहित साक्षात् नारायण-रूप मानता हूँ; क्योंकि उन्हींके भयसे लङ्कापुरीके सभी दरवाजे और सदर फाटक सदा बंद रहते हैं ॥ ११½ ॥

अप्रमत्तैश्च सर्वत्र गुल्मे रक्ष्या पुरी त्वियम् ॥ १२ ॥
अशोकवनिका चैव यत्र सीताभिरक्ष्यते ।

'राक्षसो ! तुमलोग हर समय सावधान रहकर सैनिकसहित इस पुरीकी और जहाँ सीता रक्खी गयी हैं, उस अशोक-शिविर वाटिकाकी भी विशेषरूपसे रक्षा करो ॥ १२½ ॥

निष्क्रमो वा प्रवेशो वा ज्ञातव्यः सर्वदैव नः ॥ १३ ॥
यत्र यत्र भवेद् गुल्मस्तत्र तत्र पुनः पुनः ।
सर्वतश्चापि तिष्ठध्वं स्वैः स्वैः परिवृता बलैः ॥ १४ ॥

'अशोक-वाटिकामें कब कौन प्रवेश करता है और कब वहाँसे बाहर निकलता है, इसकी हमें सदा ही जानकारी रखनी चाहिये । जहाँ-जहाँ सैनिकोंके शिविर हों, वहाँ बारंबार देख-भाल करना, सब ओर अपने-अपने सैनिकोंके साथ पहरेपर रहना ॥ १३-१४ ॥

द्रष्टव्यं च पदं तेषां वानराणां निशाचराः ।
प्रदोषे वार्धरात्रे वा प्रत्यूषे वापि सर्वशः ॥ १५ ॥

'निशाचरो ! प्रदोषकाल, आधी रात तथा प्रातःकालमें भी सर्वथा वानरोंके आने-जानेपर दृष्टि रखना ॥ १५ ॥

नावज्ञा तत्र कर्तव्या वानरेषु कदाचन ।
द्विषतां बलमुद्युक्तमापतत् किं स्थितं यथा ॥ १६ ॥

'वानरोंकी ओरसे कभी उपेक्षाभाव नहीं रखना चाहिये

और सदा इस बातपर दृष्टि रखनी चाहिये कि शत्रुओंकी सेना युद्धके लिये उद्यमशील तो नहीं है ? आक्रमण तो नहीं कर रही है अथवा पूर्ववत् जहाँ-की-तहाँ खड़ी है न ?' ॥ १६ ॥

ततस्ते राक्षसाः सर्वे श्रुत्वा लङ्काधिपस्य तत् ।
वचनं सर्वमातिष्ठन् यथावत् तु महाबलाः ॥ १७ ॥

लङ्कापतिका यह आदेश सुनकर समस्त महाबली राक्षस उन सारी बातोंका यथावत् रूपसे पालन करने लगे ॥ १७ ॥

तान् सर्वान् हि समादिश्य रावणो राक्षसाधिपः ।
मन्युशल्यं वहन् दीनः प्रविवेश स्वमालयम् ॥ १८ ॥

उन सबको पूर्वोक्त आदेश देकर राक्षसराज रावण अपने हृदयमें चुभे हुए दुःख और क्रोधरूपी काँटेकी पीड़ाका भार वहन करता हुआ दीनभावसे अपने महलमें गया ॥ १८ ॥

ततः स संदीपितकोपवह्नि-
र्निशाचराणामधिपो महाबलः ।
तदेव पुत्रव्यसनं विचिन्तयन्
मुहुर्मुहुश्चैव तदा विनिःश्वसन् ॥ १९ ॥

महाबली निशाचरराज रावणकी क्रोधाग्नि भड़क उठी थी । वह अपने पुत्रकी उस मृत्युको ही याद करके उस समय बारंबार लंबी साँस खींच रहा था ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें बहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७२ ॥

* * *

त्रिसप्ततितमः सर्गः

इन्द्रजित्के ब्रह्मास्त्रसे वानरसेनासहित श्रीराम और लक्ष्मणका मूर्च्छित होना

ततो हतान् राक्षसपुङ्गवांस्तान्
देवान्तकादित्रिशिरोऽतिकायान् ।
रक्षोगणास्तत्र हतावशिष्टा-
स्ते रावणाय त्वरिताः शशंसुः ॥ १ ॥

संग्रामभूमिमें जो निशाचर मरनेसे बच गये थे, उन्होंने तुरंत रावणके पास जाकर उसे देवान्तक, त्रिशिरा और अतिकाय आदि राक्षसपुङ्गवोंके मारे जानेका समाचार सुनाया ॥ १ ॥

ततो हतांस्तान् सहसा निशम्य
राजा महाबाष्पपरिप्लुताक्षः ।
पुत्रक्षयं भ्रातृवधं च घोरं
विचिन्त्य राजा विपुलं प्रदध्यौ ॥ २ ॥

उनके वधकी बात सुनकर राजा रावणके नेत्रोंमें सहसा आँसुओंकी बाढ़ आ गयी । पुत्रों और भाइयोंके भयानक वधकी बात सोचकर उसको बड़ी चिन्ता हुई ॥ २ ॥

ततस्तु राजानमुदीक्ष्य दीनं
शोकार्णवे सम्परिपुप्लुवानम् ।
रथर्षभो राक्षसराजसूनु-
स्तमिन्द्रजिद् वाक्यमिदं बभाषे ॥ ३ ॥

राजा रावणको शोकके समुद्रमें निमग्न एवं दीन हुआ देख रथियोंमें श्रेष्ठ राक्षसराजकुमार इन्द्रजित्ने यह बात कही— ॥ ३ ॥

न तात मोहं परिगन्तुमर्हसे
यत्रेन्द्रजिज्जीवति नैर्ऋतेश ।
नेन्द्रारिबाणाभिहतो हि कश्चित्
प्राणान् समर्थः समरेऽभिपातुम् ॥ ४ ॥

'तात ! राक्षसराज ! जबतक इन्द्रजित् जीवित है तबतक आप चिन्ता और मोहमें न पड़िये । इस इन्द्रशत्रुके बाणोंसे घायल होकर कोई भी समराङ्गणमें अपने प्राणोंकी रक्षा नहीं कर सकता ॥ ४ ॥

पश्याद्य रामं सह लक्ष्मणेन
मद्बाणनिर्भिन्नविकीर्णदेहम् ।
गतायुषं भूमितले शयानं
शितैः शरैराचितसर्वगात्रम् ॥ ५ ॥

'देखिये, आज मैं राम और लक्ष्मणके शरीरको बाणोंसे छिन्न-भिन्न करके उनके सारे अङ्गोंको तीखे सायकोंसे भर देता हूँ, और वे दोनों भाई गतायु होकर सदाके लिये धरतीपर सो जाते हैं ॥ ५ ॥

इमां प्रतिज्ञां शृणु शक्रशत्रोः
सुनिश्चितां पौरुषदैवयुक्ताम् ।
अद्यैव रामं सह लक्ष्मणेन
संतर्पयिष्यामि शरैरमोघैः ॥ ६ ॥

'आप मुझ इन्द्रशत्रुकी इस सुनिश्चित प्रतिज्ञाको, जो मेरे पुरुषार्थसे और दैवबल (ब्रह्माजीकी कृपा) से भी सिद्ध होनेवाली है, सुन लीजिये—मैं आज ही लक्ष्मणसहित रामको अपने अमोघ बाणोंसे पूर्णतः तृप्त करूँगा—उनकी युद्धविषयक पिपासाको बुझा दूँगा ॥ ६ ॥

अद्येन्द्रवैवस्वतविष्णुरुद्र-
साध्याश्च वैश्वानरचन्द्रसूर्याः ।
द्रक्ष्यन्ति मे विक्रममप्रमेयं
✓विष्णोरिवोग्रं बलियज्ञवाटे ॥ ७ ॥

'आज इन्द्र, यम, विष्णु, रुद्र, साध्य, अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा बलिके यज्ञमण्डपमें भगवान् विष्णुके भयंकर विक्रमकी भाँति मेरे अपार पराक्रमको देखेंगे' ॥ ७ ॥

स एवमुक्त्वा त्रिदशेन्द्रशत्रु-
रापृच्छ्य राजानमदीनसत्त्वः ।
समारुरोहानिलतुल्यवेगं
रथं खरश्रेष्ठसमाधियुक्तम् ॥ ८ ॥

ऐसा कहकर उदारचेता इन्द्रशत्रु इन्द्रजित्ने राजा रावणसे आज्ञा ली और अच्छे गदहोंसे जुते हुए, युद्धसामग्रीसे सम्पन्न एवं वायुके समान वेगशाली रथपर वह सवार हुआ ॥ ८ ॥

समास्थाय महातेजा रथं हरिरथोपमम् ।
जगाम सहसा तत्र यत्र युद्धमरिंदमः ॥ ९ ॥

उसका रथ इन्द्रके रथके समान जान पड़ता था । उसपर आरूढ़ हो शत्रुओंका दमन करनेवाला वह महातेजस्वी निशाचर सहसा उस स्थानपर जा पहुँचा, जहाँ युद्ध हो रहा था ॥ ९ ॥

तं प्रस्थितं महात्मानमनुजग्मुर्महाबलाः ।
संहर्षमाणा बहवो धनुःप्रवरपाणयः ॥ १० ॥

उस महामनस्वी वीरको प्रस्थान करते देख बहुत-से महाबली राक्षस हाथोंमें श्रेष्ठ धनुष लिये हर्ष और उत्साहके साथ उसके पीछे-पीछे चले ॥ १० ॥

गजस्कन्धगताः केचित् केचित् परमवाजिभिः ।
व्याघ्रवृश्चिकमार्जारखरोष्ट्रैश्च भुजङ्गमैः ॥ ११ ॥
वराहैः श्वापदैः सिंहैर्जम्बुकैः पर्वतोपमैः । ✓
काकहंसमयूरैश्च राक्षसा भीमविक्रमाः ॥ १२ ॥

कोई हाथीपर बैठकर चले तो कोई उत्तम घोड़ोंपर। इनके सिवा बाघ, बिच्छू, बिलाव, गदहे, ऊँट, सर्प, सूअर, अन्य हिंसक जन्तु, सिंह, पर्वताकार गीदड़, कौआ, हंस और मोर आदिकी सवारियोंपर चढ़े हुए भयानक पराक्रमी राक्षस वहाँ युद्धके लिये आये ॥ ११-१२ ॥

प्रासपट्टिशनिस्त्रिंशपरश्वधगदाधराः । ✓
भुशुण्डिमुद्गरायष्टिशतघ्नीपरिघायुधाः ॥ १३ ॥

उन सबने प्रास, पट्टिश, खड्ग, फरसे, गदा, भुशुण्डि, मुद्गर, डंडे, शतघ्नी और परिघ आदि आयुध धारण कर रक्खे थे ॥ १३ ॥

स शङ्खनिनदैः पूर्णैर्भेरीणां चापि निःस्वनैः ।
जगाम त्रिदशेन्द्रारिराजिं वेगेन वीर्यवान् ॥ १४ ॥

शङ्खोंकी ध्वनिके साथ मिली हुई भेरियोंकी भयानक आवाज सब ओर गूँज उठी । उस तुमुलनादके साथ इन्द्रद्रोही पराक्रमी इन्द्रजित्ने बड़े वेगसे रणभूमिकी ओर प्रस्थान किया ॥ १४ ॥

स शङ्खशशिवर्णेन छत्रेण रिपुसूदनः ।
रराज प्रतिपूर्णेन नभश्चन्द्रमसा यथा ॥ १५ ॥

जैसे पूर्ण चन्द्रमासे उपलक्षित आकाशकी शोभा होती है, उसी प्रकार ऊपर तने हुए शङ्ख और शशिके समान वर्णवाले श्वेत छत्रसे वह शत्रुसूदन इन्द्रजित् सुशोभित हो रहा था ॥

वीज्यमानस्ततो वीरो हैमैर्हेमविभूषणः ।
चारुचामरमुख्यैश्च मुख्यः सर्वधनुष्मताम् ॥ १६ ॥

सोनेके आभूषणोंसे विभूषित और समस्त धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ उस वीर निशाचरको दोनों ओरसे सुवर्णनिर्मित उत्तम एवं मनोहर चँवर डुलाये जा रहे थे ॥ १६ ॥

स तु दृष्ट्वा विनिर्यान्तं बलेन महता वृतम् ।
राक्षसाधिपतिः श्रीमान् रावणः पुत्रमब्रवीत् ॥ १७ ॥

विशाल सेनासे घिरे हुए अपने पुत्र इन्द्रजित्को प्रस्थान करते देख राक्षसोंके राजा श्रीमान् रावणने उससे कहा—॥ १७ ॥

त्वमप्रतिरथः पुत्र त्वया वै वासवो जितः ।

किं पुनर्मानुषं धृष्यं निहनिष्यसि राघवम् ॥ १८ ॥

'बेटा ! कोई भी ऐसा प्रतिद्वन्द्वी रथी नहीं है, जो तुम्हारा सामना कर सके । तुमने देवराज इन्द्रको भी पराजित किया है । फिर आसानीसे जीत लेने योग्य एक मनुष्यको परास्त करना तुम्हारे लिये कौन बड़ी बात है ? तुम अवश्य ही रघुवंशी रामका वध करोगे' ॥ १८ ॥

तथोक्तो राक्षसेन्द्रेण प्रत्यगृह्णान्महाशिषः ।
ततस्त्विन्द्रजिता लङ्का सूर्यप्रतिमतेजसा ॥ १९ ॥
रराजाप्रतिवीर्येण द्यौरिवार्केण भास्वता ।

राक्षसराजके ऐसा कहनेपर इन्द्रजित्‌ने उसके उस महान् आशीर्वादको सिर झुकाकर ग्रहण किया । फिर तो जैसे अनुपम तेजस्वी सूर्यसे आकाशकी शोभा होती है, उसी प्रकार अप्रतिम शक्तिशाली और सूर्यतुल्य तेजस्वी इन्द्रजित्‌से लङ्कापुरी सुशोभित होने लगी ॥ १९½ ॥

स सम्प्राप्य महातेजा युद्धभूमिमरिंदमः ॥ २० ॥
स्थापयामास रक्षांसि रथं प्रति समन्ततः ।

महातेजस्वी शत्रुदमन इन्द्रजित्‌ने रणभूमिमें पहुँचकर अपने रथके चारों ओर राक्षसोंको खड़ा कर दिया ॥ २०½ ॥

ततस्तु हुतभोक्तारं हुतभुक्सदृशप्रभः ॥ २१ ॥
जुहुवे राक्षसश्रेष्ठो विधिवन्मन्त्रसत्तमैः ।
स हविर्लाजसत्कारैर्माल्यगन्धपुरस्कृतैः ॥ २२ ॥
जुहुवे पावकं तत्र राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।

फिर बीचमें रथसे उतरकर पृथ्वीपर अग्निकी स्थापना करके अग्नितुल्य तेजस्वी उस राक्षसशिरोमणि वीरने चन्दन, फूल तथा लावा आदिके द्वारा अग्निदेवका पूजन किया । उसके बाद उस प्रतापी राक्षसराजने विधिपूर्वक श्रेष्ठ मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए उस अग्निमें हविष्यकी आहुति दी २१-२२½

शस्त्राणि शरपत्राणि समिधोऽथ बिभीतकाः ॥ २३ ॥
लोहितानि च वासांसि स्रुवं कार्ष्णायसं तथा ।

उस समय शस्त्र ही अग्निवेदीके चारों ओर बिछानेके लिये कुश या कासके पत्ते थे । बहेड़ेकी लकड़ीसे ही समिधाका काम लिया गया था । लाल रंगके वस्त्र उपयोगमें लाये गये और उस आभिचारिक यज्ञमें जो स्रुवा था, वह लोहेका बना हुआ था ॥ २३½ ॥

स तत्राग्निं समास्तीर्य शरपत्रैः सतोमरैः ॥ २४ ॥
छागस्य कृष्णवर्णस्य गलं जग्राह जीवतः ।

उसने वहाँ तोमरसहित शस्त्ररूपी कासके पत्तोंको अग्निके चारों ओर फैलाकर होमके लिये काले रंगके जीवित बकरेका गला पकड़ा ॥ २४½ ॥

सकृदेव समिद्धस्य विधूमस्य महार्चिषः ॥ २५ ॥
बभूवुस्तानि लिङ्गानि विजयं यान्यदर्शयन् ।

एक ही बार दी हुई उस आहुतिसे अग्नि प्रज्वलित हो उठी । उसमें धूम नहीं दिखायी देता था और आगकी बड़ी-बड़ी लपटें उठ रही थीं । उस समय उस अग्निसे वे सभी चिह्न प्रकट हुए, जो पूर्वकालमें उसे अपनी विजय दिखा चुके थे—युद्धस्थलमें उसको विजयकी प्राप्ति करा चुके थे ॥ २५½ ॥

प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तकाञ्चनसंनिभः ॥ २६ ॥
हविस्तत् प्रतिजग्राह पावकः स्वयमुत्थितः ।

अग्निदेवकी शिखा दक्षिणावर्त दिखायी देने लगी । उनका वर्ण तपाये हुए सुवर्णके समान सुन्दर था । इस रूपमें वे स्वयं प्रकट होकर उसके दिये हुए हविष्यको ग्रहण कर रहे थे ॥ २६½ ॥

सोऽस्त्रमाहारयामास ब्राह्ममस्त्रविशारदः ॥ २७ ॥
धनुश्चात्मरथं चैव सर्वं तत्राभ्यमन्त्रयत् ।

तदनन्तर अस्त्रविद्याविशारद इन्द्रजित्‌ने ब्रह्मास्त्रका आवाहन किया और अपने धनुष तथा रथ आदि सब वस्तुओंको वहाँ सिद्ध ब्रह्मास्त्रमन्त्रसे अभिमन्त्रित किया ॥ २७½ ॥

तस्मिन्नाहूयमानेऽस्त्रे हूयमाने च पावके ।
सार्कग्रहेन्दुनक्षत्रं वितत्रास नभस्थलम् ॥ २८ ॥

जब अग्निमें आहुति देकर उसने ब्रह्मास्त्रका आवाहन किया, तब सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह तथा नक्षत्रोंके साथ अन्तरिक्षलोकके सभी प्राणी भयभीत हो गये ॥ २८ ॥

स पावकं पावकदीप्ततेजा
हुत्वा महेन्द्रप्रतिमप्रभावः ।
सचापबाणासिरथाश्वसूतः
खेऽन्तर्दधेऽत्मानमचिन्त्यवीर्यः ॥ २९ ॥

जिसका तेज अग्निके समान उद्दीप्त हो रहा था तथा जो देवराज इन्द्रके समान अनुपम प्रभावसे युक्त था; उस अचिन्त्य

पराक्रमी इन्द्रजित्‌ने अग्निमें आहुति देनेके पश्चात् धनुष, बाण, रथ, खड्ग, घोड़े और सारथिसहित अपने-आपको आकाशमें अदृश्य कर लिया ॥ २९ ॥

ततो हयरथाकीर्णं पताकाध्वजशोभितम् ।
निर्ययौ राक्षसबलं नर्दमानं युयुत्सया ॥ ३० ॥

इसके बाद वह घोड़े और रथोंसे व्याप्त तथा ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित राक्षससेनामें गया, जो युद्धकी इच्छासे गर्जना कर रही थी ॥ ३० ॥

ते शरैर्बहुभिश्चित्रैस्तीक्ष्णवेगैरलंकृतैः ।
तोमरैरङ्कुशैश्चापि वानराञ्जघ्नुराहवे ॥ ३१ ॥

वे राक्षस दुःसह वेगवाले, सुवर्णभूषित, विचित्र एवं बहुसंख्यक बाणों, तोमरों और अङ्कुशोंद्वारा रणभूमिमें वानरोंपर प्रहार कर रहे थे ॥ ३१ ॥

रावणिस्तु सुसंक्रुद्धस्तान् निरीक्ष्य निशाचरान् ।
हृष्टा भवन्तो युध्यन्तु वानराणां जिघांसया ॥ ३२ ॥

रावणपुत्र इन्द्रजित् शत्रुओंके प्रति अत्यन्त क्रोधसे भरा हुआ था। उसने निशाचरोंकी ओर देखकर कहा—'तुम लोग वानरोंको मार डालनेकी इच्छासे हर्ष और उत्साहपूर्वक युद्ध करो' ॥ ३२ ॥

ततस्ते राक्षसाः सर्वे गर्जन्तो जयकाङ्क्षिणः ।
अभ्यवर्षंस्ततो घोरं वानराञ्शरवृष्टिभिः ॥ ३३ ॥

उसके इस प्रकार प्रेरणा देनेपर विजयकी अभिलाषा रखनेवाले वे समस्त राक्षस जोर-जोरसे गर्जना करते हुए वहाँ वानरोंपर बाणोंकी भयंकर वर्षा करने लगे ॥ ३३ ॥

स तु नालीकनाराचैर्गदाभिर्मुसलैरपि ।
रक्षोभिः संवृतः संख्ये वानरान् विचकर्ष ह ॥ ३४ ॥

उस युद्धस्थलमें राक्षसोंसे घिरे रहकर इन्द्रजित्‌ने भी नालीक, नाराच, गदा और मुसल आदि अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा वानरोंका संहार आरम्भ किया ॥ ३४ ॥

ते वध्यमानाः समरे वानराः पादपायुधाः ।
अभ्यवर्षन्त सहसा रावणिं शैलपादपैः ॥ ३५ ॥

समराङ्गणमें उसके अस्त्र-शस्त्रोंसे घायल होनेवाले वानर भी जो वृक्षोंसे ही हथियारका काम लेते थे, सहसा रावणकुमारपर शैल-शिखरों और वृक्षोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३५ ॥

इन्द्रजित् तु तदा क्रुद्धो महातेजा महाबलः ।
वानराणां शरीराणि व्यधमद् रावणात्मजः ॥ ३६ ॥

उस समय कुपित हुए महातेजस्वी महाबली रावणपुत्र इन्द्रजित्‌ने वानरोंके शरीरोंको छिन्न-भिन्न कर डाला ॥ ३६ ॥

शरेणैकेन च हरीन् नव पञ्च च सप्त च ।
बिभेद समरे क्रुद्धो राक्षसान् सम्प्रहर्षयन् ॥ ३७ ॥

रणभूमिमें राक्षसोंका हर्ष बढ़ाता हुआ इन्द्रजित् रोषसे भरकर एक-एक बाणसे पाँच-पाँच, सात-सात तथा नौ-नौ वानरोंको विदीर्ण कर डालता था ॥ ३७ ॥

स शरैः सूर्यसंकाशैः शातकुम्भविभूषणैः ।
वानरान् समरे वीरः प्रममाथ सुदुर्जयः ॥ ३८ ॥

उस अत्यन्त दुर्जय वीरने सुवर्णभूषित सूर्यतुल्य तेजस्वी सायकोंद्वारा समरभूमिमें वानरोंको मथ डाला ॥ ३८ ॥

ते भिन्नगात्राः समरे वानराः शरपीडिताः ।
पेतुर्मथितसंकल्पाः सुरैरिव महासुराः ॥ ३९ ॥

रणक्षेत्रमें देवताओंद्वारा पीड़ित हुए बड़े-बड़े असुरोंकी भाँति इन्द्रजित्‌के बाणोंसे व्यथित हुए वानरोंके शरीर छिन्न-भिन्न हो गये। उनकी विजयकी आशापर तुषारपात हो गया और वे अचेत-से होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३९ ॥

ते तपन्तमिवादित्यं घोरैर्बाणगभस्तिभिः ।
अभ्यधावन्त संक्रुद्धाः संयुगे वानरर्षभाः ॥ ४० ॥

उस समय युद्धस्थलमें बाणरूपी भयंकर किरणोंद्वारा सूर्यके समान तपते हुए इन्द्रजित्‌पर प्रधान-प्रधान वानरोंने बड़े रोषके साथ धावा किया ॥ ४० ॥

ततस्तु वानराः सर्वे भिन्नदेहा विचेतसः ।
व्यथिता विद्रवन्ति स्म रुधिरेण समुक्षिताः ॥ ४१ ॥

परंतु उसके बाणोंसे शरीरके क्षत-विक्षत हो जानेसे वे सब वानर अचेत-से हो गये और खूनसे लथपथ हो व्यथित होकर इधर-उधर भागने लगे ॥ ४१ ॥

रामस्यार्थे पराक्रम्य वानरास्त्यक्तजीविताः ।
नर्दन्तस्तेऽनिवृत्तास्तु समरे सशिलायुधाः ॥ ४२ ॥

वानरोंने भगवान् श्रीरामके लिये अपने जीवनका मोह छोड़ दिया था। वे पराक्रमपूर्वक गर्जना करते हुए हाथमें

शिलाएँ लिये समरभूमिमें डटे रहे—युद्धभूमिसे पीछे न हटे ॥ ४२ ॥

ते द्रुमैः पर्वताग्रैश्च शिलाभिश्च प्लवंगमाः ।
अभ्यवर्षन्त समरे रावणिं समवस्थिताः ॥ ४३ ॥

समराङ्गणमें खड़े हुए वे वानर रावणकुमारपर वृक्षों, पर्वतशिखरों और शिलाओंकी वर्षा करने लगे ॥ ४३ ॥

तं द्रुमाणां शिलानां च वर्षं प्राणहरं महत् ।
व्यपोहत महातेजा रावणिः समितिंजयः ॥ ४४ ॥

वृक्षों और शिलाओंकी वह भारी वृष्टि राक्षसोंके प्राण हर लेनेवाली थी; परंतु समरविजयी महातेजस्वी रावणपुत्रने अपने बाणोंद्वारा उसे दूर हटा दिया ॥ ४४ ॥

ततः पावकसंकाशैः शरैराशीविषोपमैः ।
वानराणामनीकानि बिभेद समरे प्रभुः ॥ ४५ ॥

तत्पश्चात् विषधर सर्पोंके समान भयंकर और अग्नितुल्य तेजस्वी बाणोंद्वारा उस शक्तिशाली वीरने समराङ्गणमें वानर-सैनिकोंको विदीर्ण करना आरम्भ किया ॥ ४५ ॥

अष्टादशशरैस्तीक्ष्णैः स विद्ध्वा गन्धमादनम् ।
विव्याध नवभिश्चैव नलं दूरादवस्थितम् ॥ ४६ ॥

उसने अठारह तीखे बाणोंसे गन्धमादनको घायल करके दूर खड़े हुए नलपर भी नौ बाणोंका प्रहार किया ॥ ४६ ॥

सप्तभिस्तु महावीर्यो मैन्दं मर्मविदारणैः ।
पञ्चभिर्विशिखैश्चैव गजं विव्याध संयुगे ॥ ४७ ॥

इसके बाद महापराक्रमी इन्द्रजित्ने सात मर्मभेदी सायकोंद्वारा मैन्दको और पाँच बाणोंसे गजको भी युद्धस्थलमें बींध डाला ॥ ४७ ॥

जाम्बवन्तं तु दशभिर्नीलं त्रिंशद्भिरेव च ।
सुग्रीवमृषभं चैव सोऽङ्गदं द्विविदं तथा ॥ ४८ ॥
घोरैर्दत्तवरैस्तीक्ष्णैर्निष्प्राणानकरोत् तदा ।

फिर दस बाणोंसे जाम्बवान्‌को और तीस सायकोंसे नीलको घायल कर दिया। तदनन्तर वरदानमें प्राप्त हुए बहुसंख्यक तीखे और भयानक सायकोंका प्रहार करके उस समय उसने सुग्रीव, ऋषभ, अङ्गद और द्विविदको भी निष्प्राण-सा कर दिया ॥ ४८½ ॥

अन्यानपि तथा मुख्यान् वानरान् बहुभिः शरैः ॥ ४९ ॥
अर्दयामास संक्रुद्धः कालाग्निरिव मूर्च्छितः ।

सब ओर फैली हुई प्रलयाग्निके समान अत्यन्त रोषसे भरे हुए इन्द्रजित्ने दूसरे-दूसरे श्रेष्ठ वानरोंको भी बहुसंख्यक बाणोंकी मारसे व्यथित कर दिया ॥ ४९½ ॥

स शरैः सूर्यसंकाशैः सुमुक्तैः शीघ्रगामिभिः ॥ ५० ॥
वानराणामनीकानि निर्ममन्थ महारणे ।

उस महासमरमें रावणकुमारने अच्छी तरह छोड़े हुए सूर्यतुल्य तेजस्वी शीघ्रगामी सायकोंद्वारा वानरोंकी सेनाओंको मथ डाला ॥ ५०½ ॥

आकुलां वानरीं सेनां शरजालेन पीडिताम् ॥ ५१ ॥
हृष्टः स परया प्रीत्या ददर्श क्षतजोक्षिताम् ।

उसके बाणजालसे पीड़ित हो वानरी सेना व्याकुल हो उठी और रक्तसे नहा गयी। उसने बड़े हर्ष और प्रसन्नताके साथ शत्रुसेनाकी इस दुरवस्थाको देखा ॥ ५१½ ॥

पुनरेव महातेजा राक्षसेन्द्रात्मजो बली ॥ ५२ ॥
संसृज्य बाणवर्षं च शस्त्रवर्षं च दारुणम् ।
ममर्द वानरानीकं परितस्त्विन्द्रजिद् बली ॥ ५३ ॥

वह राक्षसराजकुमार इन्द्रजित् बड़ा तेजस्वी, प्रभावशाली एवं बलवान् था। उसने सब ओरसे बाणों तथा अन्यान्य अस्त्र-शस्त्रोंकी भयंकर वर्षा करके पुनः वानर-सेनाको रौंद डाला ॥ ५२-५३ ॥

स्वसैन्यमुत्सृज्य समेत्य तूर्णं
महाहवे वानरवाहिनीषु ।
अदृश्यमानः शरजालमुग्रं
ववर्ष नीलाम्बुधरो यथाम्बु ॥ ५४ ॥

तत्पश्चात् वह अपनी सेनाके ऊपरी भागको छोड़कर उस महासमरमें तुरंत वानर-सेनाके ऊपर जा पहुँचा और स्वयं आकाशमें अदृश्य रहकर भयानक बाणसमूहकी उसी तरह वर्षा करने लगा, जैसे काला मेघ जलकी वृष्टि करता है ॥ ५४ ॥

ते शक्रजिद्बाणविशीर्णदेहा
मायाहता विस्वरमुन्नदन्तः ।
रणे निपेतुर्हरयोऽद्रिकल्पा
यथेन्द्रवज्राभिहता नगेन्द्राः ॥ ५५ ॥

जैसे इन्द्रके वज्रसे आहत हो बड़े-बड़े पर्वत धराशायी हो

जाते हैं, उसी प्रकार वे पर्वताकार वानर रणभूमिमें इन्द्रजित्के बाणोंद्वारा छलसे मारे जाकर शरीरके क्षत-विक्षत हो जानेसे विकृत स्वरमें चीखते-चिल्लाते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५५ ॥

ते केवलं संददृशुः शिताग्रान्
बाणान् रणे वानरवाहिनीषु ।
मायाविगूढं च सुरेन्द्रशत्रुं
✓ **न चात्र तं राक्षसमप्यपश्यन् ॥ ५६ ॥**

रणभूमिमें वानर-सेनाओंपर जो पैनी धारवाले बाण गिर रहे थे, केवल उन्हींको वे वानर देख रहे थे । मायासे छिपे हुए उस इन्द्रद्रोही राक्षसको कहीं नहीं देख पाते थे ॥

ततः स रक्षोधिपतिर्महात्मा
सर्वा दिशो बाणगणैः शिताग्रैः ।
प्रच्छादयामास रविप्रकाशै-
र्विदारयामास च वानरेन्द्रान् ॥ ५७ ॥

उस समय उस महाकाय राक्षसराजने तीखी धारवाले सूर्यतुल्य तेजस्वी बाण-समूहोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको ढक दिया और वानर-सेनापतियोंको घायल कर दिया ॥ ५७ ॥

स शूलनिस्त्रिंशपरश्वधानि
व्याविद्धदीप्तानलसप्रभाणि ।
सविस्फुलिङ्गोज्ज्वलपावकानि
ववर्ष तीव्रं प्लवगेन्द्रसैन्ये ॥ ५८ ॥

वह वानरराजकी सेनामें बढ़े हुए प्रज्वलित पावकके समान दीप्तिमान् तथा चिनगारियोंसहित उज्ज्वल आग प्रकट करनेवाले शूल, खड्ग और फरसोंकी दुःसह वृष्टि करने लगा ॥ ५८ ॥

ततो ज्वलनसंकाशैर्बाणैर्वानरयूथपाः ।
ताडिताः शक्रजिद्बाणैः प्रफुल्ला इव किंशुकाः ॥ ५९ ॥

इन्द्रजित्के चलाये हुए अग्नितुल्य तेजस्वी बाणोंसे घायल हो रक्तसे नहाकर सारे वानर-यूथपति खिले हुए पलाश वृक्षके समान जान पड़ते थे ॥ ५९ ॥

तेऽन्योन्यमभिसर्पन्तो निनदन्तश्च विस्वरम् ।
राक्षसेन्द्रास्त्रनिर्भिन्ना निपेतुर्वानरर्षभाः ॥ ६० ॥

राक्षसराज इन्द्रजित्के बाणोंसे विदीर्ण हो वे श्रेष्ठ वानर एक दूसरेके सामने जाकर विकृत स्वरमें चीत्कार करते हुए धराशायी हो जाते थे ॥ ६० ॥

उद्वीक्षमाणा गगनं केचिन्नेत्रेषु ताडिताः ।
शरैर्विविशुरन्योन्यं पेतुश्च जगतीतले ॥ ६१ ॥

कितने ही वानर आकाशकी ओर देख रहे थे । उसी समय उनके नेत्रोंमें बाणोंकी चोट लगी, अतः वे एक दूसरेके शरीरसे सट गये और पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ६१ ॥

हनूमन्तं च सुग्रीवमङ्गदं गन्धमादनम् ।
जाम्बवन्तं सुषेणं च वेगदर्शिनमेव च ॥ ६२ ॥
मैन्दं च द्विविदं नीलं गवाक्षं गवयं तथा ।
केसरिं हरिलोमानं विद्युद्दंष्ट्रं च वानरम् ॥ ६३ ॥
सूर्याननं ज्योतिर्मुखं तथा दधिमुखं हरिम् ।
पावकाक्षं नलं चैव कुमुदं चैव वानरम् ॥ ६४ ॥
प्रासैः शूलैः शितैर्बाणैरिन्द्रजिन्मन्त्रसंहितैः ।
विव्याध हरिशार्दूलान् सर्वांस्तान् राक्षसोत्तमः ॥ ६५ ॥

राक्षसप्रवर इन्द्रजित्ने दिव्य मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित प्रासों, शूलों और पैने बाणोंद्वारा हनुमान्, सुग्रीव, अगद, गन्धमादन, जाम्बवान्, सुषेण, वेगदर्शी, मैन्द, द्विविद, नील, गवाक्ष, गवय, केसरी, हरिलोमा, विद्युद्दंष्ट्र, सूर्यानन, ज्योतिर्मुख, दधिमुख, पावकाक्ष, नल और कुमुद आदि सभी श्रेष्ठ वानरोंको घायल कर दिया ॥ ६२—६५ ॥

स वै गदाभिर्हरियूथमुख्यान्
निर्भिद्य बाणैस्तपनीयवर्णैः ।
ववर्ष रामं शरवृष्टिजालैः
सलक्ष्मणं भास्कररश्मिकल्पैः ॥ ६६ ॥

गदाओं और सुवर्णके समान कान्तिमान् बाणोंद्वारा वानर-यूथपतियोंको क्षत-विक्षत करके वह लक्ष्मणसहित श्रीरामपर सूर्यकी किरणोंके समान चमकीले बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगा ॥ ६६ ॥

स बाणवर्षैरभिवृष्यमाणो
धारानिपातानिव तानचिन्त्य ।
समीक्षमाणः परमाद्भुतश्री
रामस्तदा लक्ष्मणमित्युवाच ॥ ६७ ॥

उस बाणवर्षाके लक्ष्य बने हुए परम अद्भुत शोभासे सम्पन्न श्रीराम पानीकी धाराके समान गिरनेवाले उन बाणोंकी कोई परवा न करके लक्ष्मणकी ओर देखते हुए बोले—॥ ६७ ॥

असौ पुनर्लक्ष्मण राक्षसेन्द्रो
ब्रह्मास्त्रमाश्रित्य सुरेन्द्रशत्रुः ।
निपातयित्वा हरिसैन्यमस्मा-
ञ्छितैः शरैरर्दयति प्रसक्तम् ॥ ६८ ॥

'लक्ष्मण ! वह इन्द्रद्रोही राक्षसराज इन्द्रजित् प्राप्त हुए ब्रह्मास्त्रका सहारा लेकर वानर-सेनाको धराशायी करनेके पश्चात् अब तीखे बाणोंद्वारा हम दोनोंको भी पीड़ित कर रहा है ॥ ६८ ॥

स्वयंभुवा दत्तवरो महात्मा
समाहितोऽन्तर्हितभीमकायः ।
कथं नु शक्यो युधि नष्टदेहो
निहन्तुमद्येन्द्रजिदुद्यतास्त्रः ॥ ६९ ॥

'ब्रह्माजीसे वरदान पाकर सदा सावधान रहनेवाले इस महामनस्वी वीरने अपने भीषण शरीरको अदृश्य कर लिया है । युद्धमें इस इन्द्रजित्का शरीर तो दिखायी ही नहीं देता, पर यह अस्त्रोंका प्रयोग करता जा रहा है । ऐसी दशामें इसे हमलोग किस तरह मार सकते हैं ? ॥ ६९ ॥

✓ मन्ये स्वयंभूर्भगवानचिन्त्य-
स्तस्यैतदस्त्रं प्रभवश्च योऽस्य ।
बाणावपातं त्वमिहाद्य धीमन्
मया सहाव्यग्रमनाः सहस्व ॥ ७० ॥

'स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माका स्वरूप अचिन्त्य है । वे ही इस जगत्के आदि कारण हैं । मैं समझता हूँ, उन्हींका यह अस्त्र है, अतः बुद्धिमान् सुमित्राकुमार ! तुम मनमें किसी प्रकारकी घबराहट न लाकर मेरे साथ यहाँ चुपचाप खड़े हो इन बाणोंकी मार सहो ॥ ७० ॥

प्रच्छादयत्येष हि राक्षसेन्द्रः
सर्वा दिशः सायकवृष्टिजालैः ।
एतच्च सर्वं पतिताग्र्यशूरं
न भ्राजते वानरराजसैन्यम् ॥ ७१ ॥

'यह राक्षसराज इन्द्रजित् इस समय बाण-समूहोंकी वर्षा करके सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित किये देता है । वानरराज सुग्रीवकी यह सारी सेना, जिसके प्रधान-प्रधान शूरवीर धराशायी हो गये हैं, अब शोभा नहीं पा रही है ॥ ७१ ॥

✓ आवां तु दृष्ट्वा पतितौ विसंज्ञौ
निवृत्तयुद्धौ हतहर्षरोषौ ।
ध्रुवं प्रवेक्ष्यत्यमरारिवास-
मसौ समासाद्य रणाग्र्यलक्ष्मीम् ॥ ७२ ॥

'जब हम दोनों हर्ष एवं रोषसे रहित तथा युद्धसे निवृत्त हो अचेत-से होकर गिर जायँगे, तब हमें उस अवस्थामें देख युद्धके मुहानेपर विजय-लक्ष्मीको पाकर अवश्य ही यह राक्षसपुरी लङ्कामें लौट जायगा' ॥ ७२ ॥

ततस्तु ताविन्द्रजितोऽस्त्रजालै-
र्बभूवतुस्तत्र तदा विशस्तौ ।
स चापि तौ तत्र विषादयित्वा
ननाद हर्षाद् युधि राक्षसेन्द्रः ॥ ७३ ॥

तदनन्तर वे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण वहाँ इन्द्रजित्के बाण-समूहोंसे बहुत घायल हो गये । उस समय उन दोनोंको युद्धमें पीड़ित करके उस राक्षसराजने बड़े हर्षके साथ गर्जना की ॥ ७३ ॥

ततस्तदा वानरसैन्यमेवं
रामं च संख्ये सह लक्ष्मणेन ।
विषादयित्वा सहसा विवेश
पुरीं दशग्रीवभुजाभिगुप्ताम् ।
संस्तूयमानः स तु यातुधानैः
पित्रे च सर्वं हृषितोऽभ्युवाच ॥ ७४ ॥

इस प्रकार संग्राममें वानरोंकी सेना तथा लक्ष्मणसहित श्रीरामको मूर्छित करके इन्द्रजित् सहसा दशमुख रावणकी भुजाओंद्वारा पालित लङ्कापुरीमें चला गया । उस समय समस्त निशाचर उसकी स्तुति कर रहे थे । वहाँ जाकर उसने पितासे प्रसन्नतापूर्वक अपनी विजयका सारा समाचार बताया ॥ ७४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७३ ॥

◆

चतुःसप्ततितमः सर्गः

जाम्बवान्‌के आदेशसे हनुमान्‌जीका हिमालयसे दिव्य ओषधियोंके पर्वतको लाना और उन ओषधियोंकी गन्धसे श्रीराम, लक्ष्मण एवं समस्त वानरोंका पुनः स्वस्थ होना

तयोस्तदासादितयो रणाग्रे
मुमोह सैन्यं हरियूथपानाम् ।
सुग्रीवनीलाङ्गदजाम्बवन्तो
न चापि किंचित् प्रतिपेदिरे ते ॥ १ ॥

युद्धके मुहानेपर जब वे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण निश्चेष्ट होकर पड़ गये, तब वानर-सेनापतियोंकी वह सेना किंकर्तव्यविमूढ हो गयी । सुग्रीव, नील, अंगद और जाम्बवान्‌को भी उस समय कुछ नहीं सूझता था ॥ १ ॥

ततो विषण्णं समवेक्ष्य सर्वं
विभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः ।
उवाच शाखामृगराजवीरा-
नाश्वासयन्नप्रतिमैर्वचोभिः ॥ २ ॥

उस समय सबको विषादमें डूबा हुआ देख बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विभीषणने वानरराजके उन वीर सैनिकोंको आश्वासन देते हुए अनुपम वाणीमें कहा—॥ २ ॥

मा भैष्ट नास्त्यत्र विषादकालो
यदार्यपुत्रौ ह्यवशौ विषण्णौ ।
✓**स्वयंभुवो वाक्यमथोद्वहन्तौ**
यत्सादिताविन्द्रजितास्त्रजालैः ॥ ३ ॥

'वानर वीरो ! आपलोग भयभीत न हों । यहाँ विषादका अवसर नहीं है; क्योंकि इन दोनों आर्यपुत्रोंने ब्रह्माजीके वचनोंका आदर एवं पालन करते हुए स्वयं ही हथियार नहीं उठाये थे; इसीलिये इन्द्रजित्‌ने इन दोनोंको अपने अस्त्र-समूहोंसे आच्छादित कर दिया था । अतएव ये दोनों भाई केवल विषादग्रस्त (मूर्छित) हो गये हैं (इनके प्राणोंपर संकट नहीं आया है) ॥ ३ ॥

✓**तस्मै तु दत्तं परमास्त्रमेतत्**
स्वयंभुवा ब्राह्ममोघवीर्यम् ।
तन्मानयन्तौ युधि राजपुत्रौ
निपातितौ कोऽत्र विषादकालः ॥ ४ ॥

'स्वयम्भू ब्रह्माजीने यह उत्तम अस्त्र इन्द्रजित्‌को दिया था । ब्रह्मास्त्रके नामसे इसकी प्रसिद्धि है और इसका बल अमोघ है । संग्राममें उसका समादर—उसकी मर्यादाकी रक्षा करते हुए ही ये दोनों राजकुमार धराशायी हुए हैं; अतः इसमें खेदकी कौन-सी बात है ?' ॥ ४ ॥

ब्राह्ममस्त्रं ततो धीमान् मानयित्वा तु मारुतिः ।
विभीषणवचः श्रुत्वा हनूमानिदमब्रवीत् ॥ ५ ॥ ✓

विभीषणकी बात सुनकर बुद्धिमान् पवनकुमार हनुमान्‌ने ब्रह्मास्त्रका सम्मान करते हुए उनसे इस प्रकार कहा—॥ ५ ॥

अस्मिन्नस्त्रहते सैन्ये वानराणां तरस्विनाम् ।
यो यो धारयते प्राणांस्तं तमाश्वासयावहे ॥ ६ ॥

'राक्षसराज ! इस अस्त्रसे घायल हुए वेगशाली वानर-सैनिकोंमें जो-जो प्राण धारण करते हों, उन-उनको हमें चलकर आश्वासन देना चाहिये' ॥ ६ ॥

तावुभौ युगपद् वीरौ हनूमद्राक्षसोत्तमौ ।
उल्काहस्तौ तदा रात्रौ रणशीर्षे विचेरतुः ॥ ७ ॥

उस समय रात हो गयी थी, इसलिये हनुमान् और राक्षसप्रवर विभीषण दोनों वीर अपने-अपने हाथमें मसाल लिये एक ही साथ रणभूमिमें विचरने लगे ॥ ७ ॥

भिन्नलाङ्गूलहस्तोरुपादाङ्गुलिशिरोधरैः ।
स्रवद्भिः क्षतजं गात्रैः प्रस्रवद्भिः समन्ततः ॥ ८ ॥
पतितैः पर्वताकारैर्वानरैरभिसंवृताम् ।
शस्त्रैश्च पतितैर्दीप्तैर्ददृशाते वसुंधराम् ॥ ९ ॥

जिनकी पूँछ, हाथ, पैर, जाँघ, अंगुलि और ग्रीवा आदि अङ्ग कट गये थे, अतएव जो अपने शरीरोंसे रक्त बहा रहे थे, ऐसे पर्वताकार वानरोंके गिरनेसे वहाँकी सारी भूमि सब ओरसे पट गयी थी तथा वहाँ गिरे हुए चमकीले अस्त्र-शस्त्रोंसे भी आच्छादित हो गयी थी । हनुमान् और विभीषणने इस अवस्थामें उस युद्धभूमिका निरीक्षण किया ॥ ८-९ ॥

सुग्रीवमङ्गदं नीलं शरभं गन्धमादनम् ।
जाम्बवन्तं सुषेणं च वेगदर्शिनमेव च ॥ १० ॥

मैन्दं नलं ज्योतिर्मुखं द्विविदं चापि वानरम् ।
विभीषणो हनूमांश्च ददृशाते हतान् रणे ॥ ११ ॥

सुग्रीव, अंगद, नील, शरभ, गन्धमादन, जाम्बवान्, सुषेण, वेगदर्शी, मैन्द, नल, ज्योतिर्मुख तथा द्विविद—इन सभी वानरोंको हनुमान् और विभीषणने युद्धमें घायल होकर पड़ा देखा ॥ १०-११ ॥

सप्तषष्टिर्हताः कोट्यो वानराणां तरस्विनाम् ।
अह्नः पञ्चमशेषेण वल्लभेन स्वयंभुवः ॥ १२ ॥

ब्रह्माजीके प्रिय अस्त्र—ब्रह्मास्त्रने दिनके चार भाग व्यतीत होते-होते सरसठ करोड़ वानरोंको हताहत कर दिया था । जब केवल पाँचवाँ भाग—सायाह्नकाल शेष रह गया, तब ब्रह्मास्त्रका प्रयोग बंद हुआ था ॥ १२ ॥

सागरौघनिभं भीमं दृष्ट्वा बाणार्दितं बलम् ।
मार्गते जाम्बवन्तं च हनूमान् सविभीषणः ॥ १३ ॥

समुद्रके समान विशाल एवं भयंकर वानर-सेनाको बाणोंसे पीड़ित देख विभीषणसहित हनुमान्‌जी जाम्बवान्‌को ढूँढ़ने लगे ॥ १३ ॥

स्वभावजरया युक्तं वृद्धं शरशतैश्चितम् ।
प्रजापतिसुतं वीरं शाम्यन्तमिव पावकम् ॥ १४ ॥
दृष्ट्वा समभिसंक्रम्य पौलस्त्यो वाक्यमब्रवीत् ।
3 **कच्चिदार्य शरैस्तीक्ष्णैर्न प्राणा ध्वंसितास्तव ॥ १५ ॥**

ब्रह्माजीके पुत्र वीर जाम्बवान् एक तो स्वाभाविक वृद्धावस्थासे युक्त थे, दूसरे उनके शरीरमें सैकड़ों बाण धँसे हुए थे; अतः वे बुझती हुई आगके समान निस्तेज दिखायी देते थे । उन्हें देखकर विभीषण तुरंत ही उनके पास गये और बोले—'आर्य ! इन तीखे बाणोंके प्रहारसे आपके प्राण निकल तो नहीं गये ?' ॥ १४-१५ ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा जाम्बवानृक्षपुङ्गवः ।
कृच्छ्रादभ्युद्गिरन् वाक्यमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥

विभीषणकी बात सुनकर ऋक्षराज जाम्बवान् बड़ी कठिनाईसे वाक्यका उच्चारण करते हुए इस प्रकार बोले—॥ १६ ॥

✓ **नैर्ऋतेन्द्र महावीर्य स्वरेण त्वाभिलक्षये ।**
विद्धगात्रः शितैर्बाणैर्न त्वां पश्यामि चक्षुषा ॥ १७ ॥

'महापराक्रमी राक्षसराज ! मैं केवल स्वरसे तुम्हें पहचान रहा हूँ । मेरे सभी अङ्ग पैने बाणोंसे बिंधे हुए हैं, अतः मैं आँख खोलकर तुम्हें नहीं देख सकता ॥ १७ ॥

✓ **अञ्जना सुप्रजा येन मातरिश्वा च सुव्रत ।**
हनूमान् वानरश्रेष्ठः प्राणान् धारयते क्वचित् ॥ १८ ॥

'उत्तम व्रतके पालक विभीषण ! यह तो बताओ, जिनको जन्म देनेसे अञ्जनादेवी उत्तम पुत्रकी जननी और वायुदेव श्रेष्ठ पुत्रके जनक माने जाते हैं, वे वानरश्रेष्ठ हनुमान् कहीं जीवित हैं ?' ॥ १८ ॥

श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यमुवाचेदं विभीषणः । ✓
आर्यपुत्रावतिक्रम्य कस्मात् पृच्छसि मारुतिम् ॥ १९ ॥

जाम्बवान्‌का यह प्रश्न सुनकर विभीषणने पूछा—'ऋक्षराज ! आप दोनों महाराजकुमारोंको छोड़कर केवल पवनकुमार हनुमान्‌जीको ही क्यों पूछ रहे हैं ? ॥ १९ ॥

नैव राजनि सुग्रीवे नाङ्गदे नापि राघवे । ✓
आर्य संदर्शितः स्नेहो यथा वायुसुते परः ॥ २० ॥

'आर्य ! आपने न तो राजा सुग्रीवपर, न अंगदपर और न भगवान् श्रीरामपर ही वैसा स्नेह दिखाया है, जैसा पवनपुत्र हनुमान्‌जीके प्रति आपका प्रगाढ़ प्रेम लक्षित हो रहा है' ॥ २० ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा जाम्बवान् वाक्यमब्रवीत् ।
शृणु नैर्ऋतशार्दूल यस्मात् पृच्छामि मारुतिम् ॥ २१ ॥

विभीषणकी यह बात सुनकर जाम्बवान्‌ने कहा—'राक्षसराज ! सुनो । मैं पवनकुमार हनुमान्‌जीको क्यों पूछता हूँ—यह बता रहा हूँ ॥ २१ ॥

अस्मिञ्जीवति वीरे तु हतमप्यहतं बलम् । ✓✓
हनूमत्युज्झितप्राणे जीवन्तोऽपि मृता वयम् ॥ २२ ॥

'यदि वीरवर हनुमान् जीवित हों तो यह मरी हुई सेना भी जीवित ही है—ऐसा समझना चाहिये और यदि उनके प्राण निकल गये हों तो हमलोग जीते हुए भी मृतकके ही तुल्य हैं ॥ २२ ॥

धरते मारुतिस्तात मारुतप्रतिमो यदि । ✓
वैश्वानरसमो वीर्ये जीविताशा ततो भवेत् ॥ २३ ॥

'तात ! यदि वायुके समान वेगशाली और अग्निके

समानं पराक्रमी पवनकुमार हनुमान् जीवित हैं तो हम सबके जीवित होनेकी आशा की जा सकती है' ॥ २३ ॥

ततो वृद्धमुपागम्य विनयेनाभ्यवादयत् ।
गृह्य जाम्बवतः पादौ हनुमान् मारुतात्मजः ॥ २४ ॥

बूढ़े जाम्बवान्के इतना कहते ही पवनपुत्र हनुमान्जी उनके पास आ गये और दोनों पैर पकड़कर उन्होंने विनीत-भावसे उन्हें प्रणाम किया ॥ २४ ॥

श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं तदा विव्यथितेन्द्रियः ।
पुनर्जातमिवात्मानं मन्यते स्मर्क्षपुङ्गवः ॥ २५ ॥

हनुमान्जीकी बात सुनकर उस समय ऋक्षराज जाम्बवान्ने, जिनकी सारी इन्द्रियाँ बाणोंके प्रहारसे पीड़ित थीं, अपना पुनर्जन्म हुआ-सा माना ॥ २५ ॥

ततोऽब्रवीन्महातेजा हनूमन्तं स जाम्बवान् ।
आगच्छ हरिशार्दूल वानरांस्त्रातुमर्हसि ॥ २६ ॥

फिर उन महातेजस्वी जाम्बवान्ने हनुमान्जीसे कहा—'वानरसिंह ! आओ, सम्पूर्ण वानरोंकी रक्षा करो ॥ २६ ॥

नान्यो विक्रमपर्याप्तस्त्वमेषां परमः सखा ।
त्वत्पराक्रमकालोऽयं नान्यं पश्यामि कंचन ॥ २७ ॥

'तुम्हारे सिवा दूसरा कोई पूर्ण पराक्रमसे युक्त नहीं है । तुम्हीं इन सबके परम सहायक हो । यह समय तुम्हारे ही पराक्रमका है । मैं दूसरे किसीको इसके योग्य नहीं देखता ॥

ऋक्षवानरवीराणामनीकानि प्रहर्षय ।
विशल्यौ कुरु चाप्येतौ सादितौ रामलक्ष्मणौ ॥ २८ ॥

'तुम रीछों और वानरवीरोंकी सेनाओंको हर्ष प्रदान करो और बाणोंसे पीड़ित हुए इन दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणके शरीरसे बाण निकालकर इन्हें स्वस्थ करो ॥ २८ ॥

गत्वा परममध्वानमुपर्युपरि सागरम् ।
हिमवन्तं नगश्रेष्ठं हनूमन् गन्तुमर्हसि ॥ २९ ॥

'हनूमन् ! समुद्रके ऊपर-ऊपर उड़कर बहुत दूरका रास्ता तै करके तुम्हें पर्वतश्रेष्ठ हिमालयपर जाना चाहिये ॥ २९ ॥

ततः काञ्चनमत्युग्रमृषभं पर्वतोत्तमम् ।
कैलासशिखरं चात्र द्रक्ष्यस्यरिनिषूदन ॥ ३० ॥

'शत्रुसूदन ! वहाँ पहुँचनेपर तुम्हें बहुत ही ऊँचे सुवर्णमय उत्तम पर्वत ऋषभका तथा कैलास-शिखरका दर्शन होगा ॥ ३० ॥

तयोः शिखरयोर्मध्ये प्रदीप्तमतुलप्रभम् ।
सर्वौषधियुतं वीर द्रक्ष्यस्योषधिपर्वतम् ॥ ३१ ॥

'वीर ! उन दोनों शिखरोंके बीचमें एक ओषधियोंका पर्वत दिखायी देगा, जो अत्यन्त दीप्तिमान् है । उसमें इतनी चमक है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है । वह पर्वत सब प्रकारकी ओषधियोंसे सम्पन्न है ॥ ३१ ॥

तस्य वानरशार्दूल चतस्रो मूर्ध्नि सम्भवाः ।
द्रक्ष्यस्योषधयो दीप्ता दीपयन्तीर्दिशो दश ॥ ३२ ॥

'वानरसिंह ! उसके शिखरपर उत्पन्न चार ओषधियाँ तुम्हें दिखायी देंगी, जो अपनी प्रभासे दसों दिशाओंको प्रकाशित किये रहती हैं ॥ ३२ ॥

मृतसंजीवनीं चैव विशल्यकरणीमपि ।
सुवर्णकरणीं चैव संधानीं च महौषधीम् ॥ ३३ ॥

'उनके नाम इस प्रकार हैं—मृतसंजीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी और संधानी नामक महौषधि ॥ ३३ ॥

ताः सर्वा हनुमन् गृह्य क्षिप्रमागन्तुमर्हसि ।
आश्वासय हरीन् प्राणैर्योज्य गन्धवहात्मज ॥ ३४ ॥

'हनुमन् ! पवनकुमार ! तुम उन सब ओषधियोंको लेकर शीघ्र लौट आओ और वानरोंको प्राणदान देकर आश्वासन दो' ॥ ३४ ॥

श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यं हनूमान् मारुतात्मजः ।
आपूर्यत बलोद्धर्षैर्वायुवेगैरिवार्णवः ॥ ३५ ॥

जाम्बवान्की यह बात सुनकर वायुनन्दन हनुमान्जी उसी तरह असीम बलसे भर गये, जैसे महासागर वायुके वेगसे व्याप्त हो जाता है ॥ ३५ ॥

स पर्वततटाग्रस्थः पीडयन् पर्वतोत्तमम् ।
हनूमान् दृश्यते वीरो द्वितीय इव पर्वतः ॥ ३६ ॥

वीर हनुमान् एक पर्वतके शिखरपर खड़े हो गये और उस उत्तम पर्वतको पैरोंसे दबाते हुए द्वितीय पर्वतके समान दिखायी देने लगे ॥ ३६ ॥

हरिपादविनिर्भग्नो निषसाद स पर्वतः ।
न शशाक तदात्मानं बोढुं भृशनिपीडितः ॥ ३७ ॥

हनुमान्जीके चरणोंके भारसे पीड़ित हो वह पर्वत धरतीमें धँस गया । अधिक दबाव पड़नेके कारण वह अपने शरीरको भी धारण न कर सका ॥ ३७ ॥

तस्य पेतुर्नगा भूमौ हरिवेगाच्च जज्वलुः ।
शृङ्गाणि च व्यकीर्यन्त पीडितस्य हनूमता ॥ ३८ ॥

हनुमान्‌जीके भारसे पीड़ित हुए उस पर्वतके वृक्ष उन्हींके वेगसे टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़े और कितने ही जल उठे । साथ ही उस पहाड़की चोटियाँ भी ढहने लगीं ॥ ३८ ॥

तस्मिन् सम्पीड्यमाने तु भग्नद्रुमशिलातले ।
न शेकुर्वानराः स्थातुं घूर्णमाने नगोत्तमे ॥ ३९॥

हनुमान्‌जीके दबानेपर वह श्रेष्ठ पर्वत हिलने लगा । उसके वृक्ष और शिलाएँ टूट-फूटकर गिरने लगीं; अतः वानर वहाँ ठहर न सके ॥ ३९ ॥

सा घूर्णितमहाद्वारा प्रभग्नगृहगोपुरा ।
लङ्का त्रासाकुला रात्रौ प्रनृत्तेवाभवत् तदा ॥ ४० ॥

लङ्काका विशाल और ऊँचा द्वार भी हिल गया । मकान और दरवाजे ढह गये । समूची नगरी भयसे व्याकुल हो उस रातमें नाचती-सी जान पड़ी ॥ ४० ॥

पृथिवीधरसंकाशो निपीड्य पृथिवीधरम् ।
पृथिवीं क्षोभयामास सार्णवां मारुतात्मजः ॥ ४१ ॥

पर्वताकार पवनकुमार हनुमान्‌जीने उस पर्वतको दबाकर पृथ्वी और समुद्रमें भी हलचल पैदा कर दी ॥ ४१ ॥

आरुरोह तदा तस्माद्धरिर्मलयपर्वतम् ।
मेरुमन्दरसंकाशं नानाप्रस्रवणाकुलम् ॥ ४२ ॥

तदनन्तर वहाँसे आगे बढ़कर वे मेरु और मन्दराचलके समान ऊँचे मलयपर्वतपर चढ़ गये । वह पर्वत नाना प्रकारके झरनोंसे व्याप्त था ॥ ४२ ॥

नानाद्रुमलताकीर्णं विकासिकमलोत्पलम् ।
सेवितं देवगन्धर्वैः षष्टियोजनमुच्छ्रितम् ॥ ४३ ॥

वहाँ भाँति-भाँतिके वृक्ष और लताएँ फैली थीं । कमल और कुमुद खिले हुए थे । देवता और गन्धर्व उस पर्वतका सेवन करते थे तथा वह साठ योजन ऊँचा था ॥ ४३ ॥

विद्याधरैर्मुनिगणैरप्सरोभिर्निषेवितम् ।
नानामृगगणाकीर्णं बहुकन्दरशोभितम् ॥ ४४ ॥

विद्याधर, ऋषि-मुनि तथा अप्सराएँ भी वहाँ निवास करती थीं । अनेक प्रकारके मृगसमूह वहाँ सब ओर फैले हुए थे तथा बहुत-सी कन्दराएँ उस पर्वतकी शोभा बढ़ाती थीं ॥ ४४ ॥

सर्वानाकुलयंस्तत्र यक्षगन्धर्वकिन्नरान् ।
हनूमान् मेघसंकाशो ववृधे मारुतात्मजः ॥ ४५ ॥

पवनकुमार हनुमान्‌जी वहाँ रहनेवाले यक्ष, गन्धर्व और किन्नर आदि सबको व्याकुल करते हुए मेघके समान बढ़ने लगे ॥ ४५ ॥

पद्भ्यां तु शैलमापीड्य वडवामुखवन्मुखम् ।
विवृत्योग्रं ननादोच्चैस्त्रासयन् रजनीचरान् ॥ ४६ ॥

वे दोनों पैरोंसे उस पर्वतको दबाकर और वडवानलके समान अपने भयंकर मुखको फैलाकर निशाचरोंको डराते हुए जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ४६ ॥

तस्य नानद्यमानस्य श्रुत्वा निनदमुत्तमम् ।
लङ्कास्था राक्षसव्याघ्रा न शेकुः स्पन्दितुं क्वचित् ॥ ४७ ॥

उच्च स्वरसे बारंबार गर्जते हुए हनुमान्‌जीका वह महान् सिंहनाद सुनकर लङ्कावासी श्रेष्ठ राक्षस भयके मारे कहीं हिल-डुल भी न सके ॥ ४७ ॥

नमस्कृत्वा समुद्राय मारुतिर्भीमविक्रमः ।
राघवार्थे परं कर्म समीहत परंतपः ॥ ४८ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले भयानक पराक्रमी पवनकुमार हनुमान्‌जीने समुद्रको नमस्कार करके श्रीरामचन्द्रजीके लिये महान् पुरुषार्थ करनेका निश्चय किया ॥ ४८ ॥

स पुच्छमुद्यम्य भुजङ्गकल्पं
विनम्य पृष्ठं श्रवणे निकुच्य ।
विवृत्य वक्त्रं वडवामुखाभ-
मापुप्लुवे व्योम्नि स चण्डवेगः ॥ ४९ ॥

वे अपनी सर्पाकार पूँछको ऊपर उठाकर पीठको झुकाकर दोनों कान सिकोड़कर और वडवामुख अग्निके समान अपना मुख फैलाकर प्रचण्डवेगसे आकाशमें उड़े ॥ ४९ ॥

स वृक्षखण्डांस्तरसा जहार
शैलाञ्छिलाः प्राकृतवानरांश्च ।
बाहूरुवेगोद्धतसम्प्रणुन्ना-
स्ते क्षीणवेगाः सलिले निपेतुः ॥ ५० ॥

हनुमान्‌जी अपने तीव्र वेगसे कितने ही वृक्षों, पर्वत-शिखरों, शिलाओं और वहाँ रहनेवाले साधारण वानरोंको भी साथ-साथ उड़ाते गये । उनकी भुजाओं और जाँघोंके वेगसे

दूर फेंक दिये जानेके कारण जब उनका वेग शान्त हो गया, तब वे वृक्ष आदि समुद्रके जलमें गिर पड़े ॥ ५० ॥

स तौ प्रसार्योरगभोगकल्पौ
भुजौ भुजंगारिनिकाशवीर्यः ।
जगाम शैलं नगराजमग्र्यं
दिशः प्रकर्षन्निव वायुसूनुः ॥ ५१ ॥

सर्पके शरीरकी भाँति दिखायी देनेवाली अपनी दोनों भुजाओंको फैलाकर गरुड़के समान पराक्रमी पवनपुत्र हनुमान्‌जी सम्पूर्ण दिशाओंको खींचते हुए-से श्रेष्ठ पर्वत गिरिराज हिमालयकी ओर चले ॥ ५१ ॥

स सागरं घूर्णितवीचिमालं
तदम्भसा भ्रामितसर्वसत्त्वम् ।
समीक्षमाणः सहसा जगाम
चक्रं यथा विष्णुकराग्रमुक्तम् ॥ ५२ ॥

जिसकी तरंगमालाएँ झूम रही थीं तथा जिसके ज़लके द्वारा समस्त जल-जन्तु इधर-उधर घुमाये जा रहे थे, उस महासागरको देखते हुए हनुमान्‌जी भगवान् विष्णुके हाथसे छूटे हुए चक्रकी भाँति सहसा आगे बढ़ गये ॥ ५२ ॥

स पर्वतान् पक्षिगणान् सरांसि
नदीस्तटाकानि पुरोत्तमानि ।
स्फीताञ्जनांस्तानपि सम्प्रवीक्ष्य
जगाम वेगात् पितृतुल्यवेगः ॥ ५३ ॥

उनका वेग अपने पिता वायुके ही समान था। वे अनेकानेक पर्वतों, पक्षियों, सरोवरों, नदियों, तालाबों, नगरों तथा समृद्धिशाली जनपदोंको देखते हुए बड़े वेगसे आगे बढ़ने लगे ॥ ५३ ॥

आदित्यपथमाश्रित्य जगाम स गतश्रमः ।
हनूमांस्त्वरितो वीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः ॥ ५४ ॥

वीर हनुमान् अपने पिताके ही तुल्य पराक्रमी और तीव्रगामी थे। वे सूर्यके मार्गका आश्रय ले बिना थके-माँदे शीघ्रतापूर्वक अग्रसर हो रहे थे ॥ ५४ ॥

जवेन महता युक्तो मारुतिर्वातरंहसा ।
जगाम हरिशार्दूलो दिशः शब्देन नादयन् ॥ ५५ ॥

वानरसिंह पवनकुमार हनुमान् महान् वेगसे युक्त थे। वे सम्पूर्ण दिशाओंको शब्दायमान करते हुए वायुके समान वेगसे आगे बढ़े ॥ ५५ ॥

स्मरञ्जाम्बवतो वाक्यं मारुतिर्भीमविक्रमः ।
ददर्श सहसा चापि हिमवन्तं महाकपिः ॥ ५६ ॥

महाकपि हनुमान्‌जीका बल-विक्रम बड़ा भयंकर था। उन्होंने जाम्बवान्‌के वचनोंका स्मरण करते हुए सहसा पहुँचकर हिमालय पर्वतका दर्शन किया ॥ ५६ ॥

नानाप्रस्रवणोपेतं बहुकन्दरनिर्झरम् ।
श्वेताभ्रचयसंकाशैः शिखरैश्चारुदर्शनैः ।
शोभितं विविधैर्वृक्षैरगमत् पर्वतोत्तमम् ॥ ५७ ॥

वहाँ अनेक प्रकारके सोते बह रहे थे। बहुत-सी कन्दराएँ और झरने उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। श्वेत बादलोंके समूहकी भाँति मनोहर दिखायी देनेवाले शिखरों और नाना प्रकारके वृक्षोंसे उस श्रेष्ठ पर्वतकी अद्‌भुत शोभा हो रही थी। हनुमान्‌जी उस पर्वतपर पहुँच गये ॥ ५७ ॥

स तं समासाद्य महानगेन्द्र-
मतिप्रवृद्धोत्तमहेमशृङ्गम् ।
ददर्श पुण्यानि महाश्रमाणि
सुरर्षिसङ्घोत्तमसेवितानि ॥ ५८ ॥

उस महापर्वतराजका सबसे ऊँचा श्रेष्ठ शिखर सुवर्णमय दिखायी देता था। वहाँ पहुँचकर हनुमान्‌जीने परम पवित्र बड़े-बड़े आश्रम देखे, जिनमें देवर्षियोंका श्रेष्ठ समुदाय निवास करता था ॥ ५८ ॥

स ब्रह्मकोशं रजतालयं च
शक्रालयं रुद्रशरप्रमोक्षम् ।
हयाननं ब्रह्मशिरश्च दीप्तं
ददर्श वैवस्वतकिंकरांश्च ॥ ५९ ॥

उस पर्वतपर उन्हें हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्माका स्थान, उन्हींके दूसरे स्वरूप रजतनाभिका स्थान, इन्द्रका भवन, जहाँ खड़े होकर रुद्रदेवने त्रिपुरासुरपर बाण छोड़ा था, वह स्थान, भगवान् हयग्रीवका वासस्थान तथा ब्रह्मास्त्र देवताका दीप्तिमान् स्थान—ये सभी दिव्य स्थान दिखायी दिये। साथ ही यमराजके सेवक भी वहाँ दृष्टिगोचर हुए ॥ ५९ ॥

वह्न्यालयं वैश्रवणालयं च
सूर्यप्रभं सूर्यनिबन्धनं च ।

ब्रह्मालयं शंकरकार्मुकं च
ददर्श नाभिं च वसुंधरायाः ॥ ६० ॥

इसके सिवा अग्निका, कुबेरका और द्वादश सूर्योंके समावेशका भी सूर्यतुल्य तेजस्वी स्थान उन्हें दृष्टिगोचर हुआ। चतुर्मुख ब्रह्मा, शंकरजीके धनुष और वसुन्धराकी नाभिके स्थानोंका भी उन्होंने दर्शन किया ॥ ६० ॥

कैलासमग्र्यं हिमवच्छिलां च
तं वै वृषं काञ्चनशैलमग्र्यम् ।
प्रदीप्तसर्वौषधिसम्प्रदीप्तं
ददर्श सर्वौषधिपर्वतेन्द्रम् ॥ ६१ ॥

तत्पश्चात् श्रेष्ठ कैलासपर्वत, हिमालय-शिला, शिवजीके वाहन वृषभ तथा सुवर्णमय श्रेष्ठ पर्वत ऋषभको भी देखा। इसके बाद उनकी दृष्टि सम्पूर्ण ओषधियोंके उत्तम पर्वतपर पड़ी, जो सब प्रकारकी दीप्तिमती ओषधियोंसे देदीप्यमान हो रहा था ॥ ६१ ॥

स तं समीक्ष्यानलराशिदीप्तं
विसिस्मिये वासवदूतसूनुः ।
आप्लुत्य तं चौषधिपर्वतेन्द्रं
तत्रौषधीनां विचयं चकार ॥ ६२ ॥

अग्निराशिके समान प्रकाशित होनेवाले उस पर्वतको देखकर पवनकुमार हनुमान्‌जीको बड़ा विस्मय हुआ। वे कूदकर ओषधियोंसे भरे हुए उस गिरिराजपर चढ़ गये और वहाँ पूर्वोक्त चारों ओषधियोंकी खोज करने लगे ॥ ६२ ॥

स योजनसहस्राणि समतीत्य महाकपिः ।
दिव्यौषधिधरं शैलं व्यचरन्मारुतात्मजः ॥ ६३ ॥

महाकपि पवनपुत्र हनुमान्‌जी सहस्रों योजन लाँघकर वहाँ आये थे और दिव्य ओषधियोंको धारण करनेवाले उस शैल-शिखरपर विचरण कर रहे थे ॥ ६३ ॥

महौषध्यस्ततः सर्वास्तस्मिन् पर्वतसत्तमे ।
विज्ञायार्थिनमायान्तं ततो जग्मुरदर्शनम् ॥ ६४ ॥

उस उत्तम पर्वतपर रहनेवाली सम्पूर्ण महौषधियाँ यह जानकर कि कोई हमें लेनेके लिये आ रहा है, तत्काल अदृश्य हो गयीं ॥ ६४ ॥

स ता महात्मा हनुमानपश्यं-
श्चुकोप रोषाच्च भृशं ननाद।
अमृष्यमाणोऽग्निसमानचक्षु-
र्महीधरेन्द्रं तमुवाच वाक्यम् ॥ ६५ ॥

उन ओषधियोंको न देखकर महात्मा हनुमान्‌जी कुपित हो उठे और रोषके कारण जोर-जोरसे गर्जना करने लगे। ओषधियोंका छिपाना उनके लिये असह्य हो गया। उनकी आँखें अग्निके समान लाल हो गयीं और वे उस पर्वतराजसे इस प्रकार बोले— ॥ ६५ ॥

किमेतदेवं सुविनिश्चितं ते
यद् राघवे नासि कृतानुकम्पः ।
पश्याद्य मद्बाहुबलाभिभूतो
विकीर्णमात्मानमथो नगेन्द्र ॥ ६६ ॥

'नगेन्द्र ! तुम श्रीरघुनाथजीपर भी कृपा नहीं कर सके, ऐसा निश्चय तुमने किस बलपर किया है ? आज मेरे बाहुबलसे पराजित होकर तुम अपने-आपको सब ओर बिखरा हुआ देखो' ॥ ६६ ॥

स तस्य शृङ्गं सनगं सनागं
सकाञ्चनं धातुसहस्रजुष्टम् ।
विकीर्णकूटं ज्वलिताग्रसानुं
प्रगृह्य वेगात् सहसोन्ममाथ ॥ ६७ ॥

ऐसा कहकर उन्होंने वेगसे पकड़कर वृक्षों, हाथियों, सुवर्ण तथा अन्य सहस्रों प्रकारकी धातुओंसे भरे हुए उस पर्वतशिखरको ही सहसा उखाड़ लिया। वेगसे उखाड़े जानेके कारण उसकी बहुत-सी चोटियाँ बिखरकर गिर पड़ीं। उस पर्वतका ऊपरी भाग अपनी प्रभासे प्रज्वलित-सा हो रहा था ॥ ६७ ॥

स तं समुत्पाट्य खमुत्पपात
वित्रास्य लोकान् ससुरासुरेन्द्रान् ।
संस्तूयमानः खचरैरनेकै-
र्जगाम वेगाद् गरुडोग्रवेगः ॥ ६८ ॥

उसे उखाड़कर साथ ले हनुमान्‌जी देवेश्वरों और असुरेश्वरोंसहित सम्पूर्ण लोकोंको भयभीत करते हुए गरुडके समान भयंकर वेगसे आकाशमें उड़ चले। उस समय बहुत-से आकाशचारी प्राणी उनकी स्तुति कर रहे थे ॥ ६८ ॥

स भास्कराध्वानमनुप्रपन्न-
स्तं भास्कराभं शिखरं प्रगृह्य ।

बभौ तदा भास्करसंनिकाशो
रवेः समीपे प्रतिभास्कराभः ॥ ६९ ॥

सूर्यके समान चमकते हुए उस पर्वतशिखरको हाथमें लेकर हनुमान्जी सूर्यके ही पथपर जा पहुँचे थे। उस समय सूर्यदेवके समीप रहकर उन्हींके समान तेजस्वी शरीरवाले वे पवनकुमार दूसरे सूर्यकी भाँति प्रतीत होते थे ॥ ६९ ॥

स तेन शैलेन भृशं रराज
शैलोपमो गन्धवहात्मजस्तु ।
सहस्रधारेण सपावकेन
चक्रेण खे विष्णुरिवार्पितेन ॥ ७० ॥

वायुदेवताके पुत्र हनुमान्जी पर्वतके समान जान पड़ते थे। उस पर्वतशिखरके साथ उनकी वैसी ही विशेष शोभा हो रही थी, जैसे सहस्रधारोंसे सुशोभित और अग्निकी ज्वालासे युक्त चक्र धारण करनेसे भगवान् विष्णु सुशोभित होते हैं ॥

तं वानराः प्रेक्ष्य तदा विनेदुः
स तानपि प्रेक्ष्य मुदा ननाद ।
तेषां समुत्कृष्टरवं निशम्य
लङ्कालया भीमतरं विनेदुः ॥ ७१ ॥

उस समय उन्हें लौटा देख सब वानर जोर-जोरसे गर्जना करने लगे। उन्होंने भी उन सबको देखकर बड़े हर्षसे सिंहनाद किया। उन सबके उस तुमुलनादको सुनकर लङ्कावासी निशाचर और भी भयानक स्वरमें चीत्कार करने लगे ॥७१॥

ततो महात्मा निपपात तस्मिञ्
शैलोत्तमे वानरसैन्यमध्ये ।
हर्युत्तमेभ्यः शिरसाभिवाद्य
विभीषणं तत्र च सस्वजे सः ॥ ७२ ॥

तदनन्तर हनुमान्जी उस उत्तम पर्वत त्रिकूटपर कूद पड़े और वानरसेनाके मध्यमें आकर सभी श्रेष्ठ वानरोंको प्रणाम करके विभीषणसे भी उन्हें गले लगाकर मिले ॥७२॥

तावप्युभौ मानुषराजपुत्रौ
तं गन्धमाघ्राय महौषधीनाम् ।
बभूवतुस्तत्र तदा विशल्या-
वुत्तस्थुरन्ये च हरिप्रवीराः ॥ ७३ ॥
सर्वे विशल्या विरुजाः क्षणेन
हरिप्रवीराश्च हताश्च ये स्युः ।
गन्धेन तासां प्रवरौषधीनां
सुप्ता निशान्तेष्विव सम्प्रबुद्धाः ॥ ७४ ॥

इसके बाद वे दोनों राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण उन महौषधियोंकी सुगंध लेकर स्वस्थ हो गये। उनके शरीरसे बाण निकल गये और घाव भर गये। इसी प्रकार जो दूसरे-दूसरे प्रमुख वानर वीर वहाँ हताहत हुए थे, वे सब-के-सब उन श्रेष्ठ ओषधियोंकी सुगन्धसे रातके अन्तमें सोकर उठे हुए प्राणियोंकी भाँति क्षणभरमें नीरोग हो उठकर खड़े हो गये। उनके शरीरसे बाण निकल गये और उनकी सारी पीड़ा जाती रही ॥ ७३-७४ ॥

यदाप्रभृति लङ्कायां युध्यन्ते हरिराक्षसाः ।
तदाप्रभृति मानार्थमाज्ञया रावणस्य च ॥ ७५ ॥
ये हन्यन्ते रणे तत्र राक्षसाः कपिकुञ्जरैः ।
हता हतास्तु क्षिप्यन्ते सर्व एव तु सागरे ॥ ७६ ॥

लङ्कामें जबसे वानरों और राक्षसोंकी लड़ाई शुरू हुई, तभीसे वानरवीरोंद्वारा रणभूमिमें जो-जो राक्षस मारे जाते थे, वे सभी रावणकी आज्ञाके अनुसार प्रतिदिन मरते-मरते ही समुद्रमें फेंक दिये जाते थे। ऐसा इसलिये होता था कि वानरोंको यह मालूम न हो कि बहुत-से राक्षस मार डाले गये ॥ ७५-७६ ॥

ततो हरिर्गन्धवहात्मजस्तु
तमोषधीशैलमुदग्रवेगः ।
निनाय वेगाद्धिमवन्तमेव
पुनश्च रामेण समाजगाम ॥ ७७ ॥

तत्पश्चात् प्रचण्ड वेगवाले पवनकुमार हनुमान्जीने पुनः ओषधियोंके उस पर्वतको वेगपूर्वक हिमालयपर ही पहुँचा दिया और फिर लौटकर वे श्रीरामचन्द्रजीसे आ मिले ॥ ७७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चौहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७४ ॥

◆

पञ्चसप्ततितमः सर्गः

लङ्कापुरीका दहन तथा राक्षसों और वानरोंका भयंकर युद्ध

ततोऽब्रवीन्महातेजाः सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
अर्थ्यं विज्ञापयंश्चापि हनूमन्तमिदं वचः ॥ १ ॥

तदनन्तर महातेजस्वी वानरराज सुग्रीवने हनुमान्‌जीसे आगेका कर्तव्य सूचित करनेके लिये कहा—॥ १ ॥

यतो हतः कुम्भकर्णः कुमाराश्च निषूदिताः ।
नेदानीमुपनिर्हारं रावणो दातुमर्हति ॥ २ ॥

'कुम्भकर्ण मारा गया । राक्षसराजके पुत्रोंका भी संहार हो गया; अतः अब रावण लङ्कापुरीकी रक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं कर सकता ॥ २ ॥

ये ये महाबलाः सन्ति लघवश्च प्लवंगमाः ।
लङ्कामभिपतन्त्वाशु गृह्योल्काः प्लवगर्षभाः ॥ ३ ॥

'इसलिये अपनी सेनामें जो-जो महाबली और शीघ्रगामी वानर हों, वे सब-के-सब मशाल ले-लेकर शीघ्र ही लङ्कापुरीपर धावा करें' ॥ ३ ॥

ततोऽस्तं गत आदित्ये रौद्रे तस्मिन् निशामुखे ।
लङ्कामभिमुखाः सोल्का जग्मुस्ते प्लवगर्षभाः ॥ ४ ॥

सुग्रीवकी इस आज्ञाके अनुसार सूर्यास्त होनेपर भयंकर प्रदोषकालमें वे सभी श्रेष्ठ वानर मशाल हाथमें ले-लेकर लङ्काकी ओर चले ॥ ४ ॥

उल्काहस्तैर्हरिगणैः सर्वतः समभिद्रुताः ।
आरक्षस्था विरूपाक्षाः सहसा विप्रदुद्रुवुः ॥ ५ ॥

जब उल्काधारी वानरोंने सब ओरसे आक्रमण किया, तब द्वार-रक्षाके काममें नियुक्त हुए राक्षस सहसा भाग खड़े हुए ॥ ५ ॥

गोपुराट्टप्रतोलीषु चर्यासु विविधासु च ।
प्रासादेषु च संहृष्टाः ससृजुस्ते हुताशनम् ॥ ६ ॥

वे गोपुरों (दरवाजों), अट्टालिकाओं,' सड़कों, नाना प्रकारकी गलियों और महलोंमें भी बड़े हर्षके साथ आग लगाने लगे ॥ ६ ॥

तेषां गृहसहस्राणि ददाह हुतभुक् तदा ।
प्रासादाः पर्वताकाराः पतन्ति धरणीतले ॥ ७ ॥

वानरोंकी लगायी हुई वह आग उस समय सहस्रों घरोंको जलाने लगी । पर्वताकार प्रासाद धराशायी होने लगे ॥ ७ ॥

अगुरुर्दह्यते तत्र परं चैव सुचन्दनम् ।
मौक्तिका मणयः स्निग्धा वज्रं चापि प्रवालकम् ॥ ८ ॥

कहीं अगुरु जल रहा था तो कहीं परम उत्तम चन्दन । मोती, स्निग्धमणि, हीरे और मूँगे भी दग्ध हो रहे थे ॥८॥

क्षौमं च दह्यते तत्र कौशेयं चापि शोभनम् ।
आविकं विविधं चौर्णं काञ्चनं भाण्डमायुधम् ॥ ९ ॥

वहाँ क्षौम (अलसी या सनके रेशोंसे बना हुआ वस्त्र) भी जलता था और सुन्दर रेशमी वस्त्र भी । भेड़के रोएँका कम्बल, नाना प्रकारका ऊनी वस्त्र, सोनेके आभूषण और अस्त्र-शस्त्र भी जल रहे थे ॥ ९ ॥

नानाविकृतसंस्थानं वाजिभाण्डपरिच्छदम् ।
गजग्रैवेयकक्ष्याश्च रथभाण्डांश्च संस्कृतान् ॥ १० ॥

घोड़ोंके गहने, जीन आदि उपकरण जो अनेक प्रकार और विचित्र आकारके थे, दग्ध हो रहे थे । हाथीके गलेका आभूषण, उसे कसनेके लिये रस्से तथा रथोंके उपकरण, जो सुन्दर बने हुए थे, सब-के-सब आगमें जलकर भस्म हो रहे थे ॥ १० ॥

तनुत्राणि च योधानां हस्त्यश्वानां च वर्म च ।
खड्गा धनूंषि ज्याबाणास्तोमराङ्कुशशक्तयः ॥ ११ ॥
रोमजं वालजं चर्म व्याघ्रजं चाण्डजं बहु ।
मुक्तामणिविचित्रांश्च प्रासादांश्च समन्ततः ॥ १२ ॥
विविधानस्त्रसंघातानग्निर्दहति तत्र वै ।

योद्धाओंके कवच, हाथी और घोड़ोंके बखतर, खड्ग, धनुष, प्रत्यञ्चा, बाण, तोमर, अंकुश, शक्ति, रोमज (कम्बल आदि), वालज (चँवर आदि), आसनोपयोगी व्याघ्रचर्म, अण्डज (कस्तूरी आदि), मोती और मणियोंसे जटित विचित्र महल तथा नाना प्रकारके अस्त्रसमूह—इन सबको सब ओर फैली हुई आग जला रही थी ॥ ११-१२½ ॥

नानाविधान् गृहांश्चित्रान् ददाह हुतभुक् तदा ॥ १३ ॥

आवासान् राक्षसानां च सर्वेषां गृहगृध्नुनाम् ।
हेमचित्रतनुत्राणां स्रग्भाण्डाम्बरधारिणाम् ॥ १४ ॥

उस समय अग्निदेवने नाना प्रकारके विचित्र गृहोंको दग्ध करना आरम्भ किया । जो घरोंमें आसक्त थे, सोनेके विचित्र कवच धारण किये हुए थे तथा हार, आभूषण और वस्त्रोंसे विभूषित थे, उन सभी राक्षसोंके आवासस्थान आगकी लपटोंमें आ गये ॥ १३-१४ ॥

सीधुपानचलाक्षाणां मदविह्वलगामिनाम् ।
कान्तालम्बितवस्त्राणां शत्रुसंजातमन्युनाम् ॥ १५ ॥
गदाशूलासिहस्तानां खादतां पिबतामपि ।
शयनेषु महार्हेषु प्रसुप्तानां प्रियैः सह ॥ १६ ॥
त्रस्तानां गच्छतां तूर्णं पुत्रानादाय सर्वतः ।
तेषां शतसहस्राणि तदा लङ्कानिवासिनाम् ॥ १७ ॥
अदहत् पावकस्तत्र जज्वाल च पुनः पुनः ।

मदिरापानसे जिनके नेत्र चञ्चल हो रहे थे, जो नशेसे विह्वल हो लड़खड़ाते हुए चलते थे, जिनके वस्त्रोंको उनकी प्रेयसी स्त्रियोंने पकड़ रक्खा था, जो शत्रुओंपर कुपित थे, जिनके हाथोंमें गदा, खड्ग और शूल शोभा पा रहे थे, जो खाने-पीनेमें लगे थे, जो बहुमूल्य शय्याओंपर अपनी प्राणवल्लभाओंके संग शयन कर रहे थे तथा जो आगसे भयभीत हो अपने पुत्रोंको गोदमें लेकर सब ओर तीव्रगतिसे भाग रहे थे, ऐसे लाखों लङ्कानिवासियोंको उस समय अग्निने जलाकर भस्म कर दिया । वह आग वहाँ रह-रहकर पुनः प्रज्वलित हो उठती थी ॥ १५-१७½ ॥

सारवन्ति महार्हाणि गम्भीरगुणवन्ति च ॥ १८ ॥
हेमचन्द्रार्धचन्द्राणि चन्द्रशालोन्नतानि च ।
तत्र चित्रगवाक्षाणि साधिष्ठानानि सर्वशः ॥ १९ ॥
मणिविद्रुमचित्राणि स्पृशन्तीव दिवाकरम् ।
क्रौञ्चबर्हिणवीणानां भूषणानां च निःस्वनैः ॥ २० ॥
नादितान्यचलाभानि वेश्मान्यग्निर्ददाह सः ।

जो बहुत मजबूत और बहुमूल्य बने हुए थे, गाम्भीर्य गुणोंसे युक्त थे—अनेकानेक ड्योढ़ियों, परकोटों, आन्तरिक गृहों, द्वारों और उपद्वारोंके कारण दुर्गम प्रतीत होते थे, जो सुवर्णनिर्मित अर्धचन्द्र अथवा पूर्णचन्द्रके आकारमें बने हुए थे, अट्टालिकाओंके कारण बहुत ऊँचे दिखायी देते थे, विचित्र झरोखे जिनकी शोभा बढ़ाते थे, जिनमें सब ओर सोने-बैठनेके लिये शय्या-आसन आदि सुसज्जित थे, मणियों और मूँगोंसे जटित होनेके कारण जिनकी विचित्र शोभा हो रही थी, जो अपनी ऊँचाईसे सूर्यदेवका स्पर्श-सा कर रहे थे, जिनमें क्रौञ्च और मोरोंके कलरव, वीणाकी मधुर-ध्वनि तथा भूषणोंकी झनकारें गूँज रही थीं और जो पर्वताकार दिखायी देते थे, उन सभी गृहोंको प्रज्वलित आगने जला दिया ॥ १८-२०½ ॥

ज्वलनेन परीतानि तोरणानि चकाशिरे ॥ २१ ॥
विद्युद्भिरिव नद्धानि मेघजालानि घर्मगे ।

आगसे घिरे हुए लङ्काके बाहरी दरवाजे ग्रीष्मऋतुमें विद्युन्मालामण्डित मेघसमूहोंके समान प्रकाशित होते थे ।२१½।

ज्वलनेन परीतानि गृहाणि प्रचकाशिरे ॥ २२ ॥
दावाग्निदीप्तानि यथा शिखराणि महागिरेः ।

अग्निकी लपटोंमें लिपटे हुए लङ्कापुरीके मकान दावाग्निसे दग्ध होते हुए बड़े-बड़े पर्वतोंके शिखरोंके समान जान पड़ते थे ॥ २२½ ॥

विमानेषु प्रसुप्ताश्च दह्यमाना वराङ्गनाः ॥ २३ ॥
त्यक्ताभरणसंयोगा हाहेत्युच्चैर्विचुक्रुशुः ।

सतमहले भवनोंमें सोयी हुई सुन्दरियाँ जब आगसे दग्ध होने लगीं, उस समय सारे आभूषणोंको फेंककर हाय-हाय करती हुई उच्चस्वरसे चीत्कार करने लगीं ॥ २३½ ॥

तत्र चाग्निपरीतानि निपेतुर्भवनान्यपि ॥ २४ ॥
वज्रिवज्रहतानीव शिखराणि महागिरेः ।

वहाँ आगकी लपेटमें आये हुए कितने ही भवन इन्द्रके वज्रके मारे हुए महान् पर्वतोंके शिखरोंके समान धराशायी हो रहे थे ॥ २४½ ॥

तानि निर्दह्यमानानि दूरतः प्रचकाशिरे ॥ २५ ॥
हिमवच्छिखराणीव दह्यमानानि सर्वशः ।

वे जलते हुए गगनचुम्बी भवन दूरसे ऐसे जान पड़ते थे, मानो हिमालयके शिखर सब ओरसे दग्ध हो रहे हों २५½

हर्म्याग्रैर्दह्यमानैश्च ज्वालाप्रज्वलितैरपि ॥ २६ ॥
रात्रौ सा दृश्यते लङ्का पुष्पितैरिव किंशुकैः ।

अट्टालिकाओंके जलते हुए शिखर उठती हुई ज्वालाओंसे आवेष्टित हो रहे थे । रात्रिमें उनसे उपलक्षित हुई लङ्कापुरी

खिले हुए पलाश-पुष्पोंसे युक्त-सी दिखायी देती थी ॥ २६½॥

हस्त्यध्यक्षैर्गजैर्मुक्तैर्मुक्तैश्च तुरगैरपि ।
बभूव लङ्का लोकान्ते भ्रान्तग्राह इवार्णवः ॥ २७ ॥

हाथियोंके अध्यक्षोंने हाथियोंको और अश्वाध्यक्षोंने अश्वोंको भी खोल दिया था । वे वहाँ इधर-उधर भाग रहे थे, इससे लङ्कापुरी प्रलयकालमें भ्रान्त होकर घूमते हुए ग्राहोंसे युक्त महासागरके समान प्रतीत होती थी ॥ २७ ॥

अश्वं मुक्तं गजो दृष्ट्वा क्वचिद् भीतोऽपसर्पति ।
भीतो भीतं गजं दृष्ट्वा क्वचिदश्वो निवर्तते ॥ २८ ॥

कहीं खुले हुए घोड़ेको देखकर हाथी भयभीत होकर भागता था और कहीं डरे हुए हाथीको देखकर भी घोड़ा भागने लगता था ॥ २८ ॥

लङ्कायां दह्यमानायां शुशुभे च महोदधिः ।
छायासंसक्तसलिलो लोहितोद इवार्णवः ॥ २९ ॥

लङ्कापुरीके जलते समय समुद्रमें आगकी ज्वालाका प्रतिबिम्ब पड़ रहा था, जिससे वह महासागर लाल पानीसे युक्त लालसागरके समान शोभा पाता था ॥ २९ ॥

सा बभूव मुहूर्तेन हरिभिर्दीपिता पुरी ।
लोकस्यास्य क्षये घोरे प्रदीप्तेव वसुंधरा ॥ ३० ॥

वानरोंद्वारा जिसमें आग लगायी गयी थी, वह लङ्कापुरी दो ही घड़ीमें संसारके घोर संहारके समय दग्ध हुई पृथ्वीके समान प्रतीत होने लगी ॥ ३० ॥

नारीजनस्य धूमेन व्याप्तस्योच्चैर्विनेदुषः ।
स्वनो ज्वलनतप्तस्य शुश्रुवे शतयोजनम् ॥ ३१ ॥

धूएँसे आच्छादित और आगसे संतप्त होकर उच्चस्वरसे आर्तनाद करती हुई लङ्काकी नारियोंका करुण-क्रन्दन सौ योजन दूरतक सुनायी देता था ॥ ३१ ॥

प्रदग्धकायानपरान् राक्षसान् निर्गतान् बहिः ।
सहसा ह्युत्पतन्ति स्म हरयोऽथ युयुत्सवः ॥ ३२ ॥

जिनके शरीर जल गये थे, ऐसे जो-जो राक्षस नगरसे बाहर निकलते, उनके ऊपर युद्धकी इच्छावाले वानर सहसा टूट पड़ते थे ॥ ३२ ॥

उद्घुष्टं वानराणां च राक्षसानां च निःस्वनम् ।
दिशो दश समुद्रं च पृथिवीं च व्यनादयत् ॥ ३३ ॥

वानरोंकी गर्जना और राक्षसोंके आर्तनादसे दसों दिशाएँ, समुद्र और पृथ्वी गूँज उठीं ॥ ३३ ॥

विशल्यौ च महात्मानौ तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
असम्भ्रान्तौ जगृहतुस्ते उभे धनुषी वरे ॥ ३४ ॥

इधर बाण निकल जानेसे स्वस्थ हुए दोनों भाई महात्मा श्रीराम और लक्ष्मणने बिना किसी घबराहटके अपने श्रेष्ठ धनुष उठाये ॥ ३४ ॥

ततो विस्फारयामास रामश्च धनुरुत्तमम् ।
बभूव तुमुलः शब्दो राक्षसानां भयावहः ॥ ३५ ॥

उस समय श्रीरामने अपने उत्तम धनुषको खींचा, उससे भयंकर टंकार प्रकट हुई, जो राक्षसोंको भयभीत कर देनेवाली थी ॥ ३५ ॥

अशोभत तदा रामो धनुर्विस्फारयन् महत् ।
भगवानिव संक्रुद्धो भवो वेदमयं धनुः ॥ ३६ ॥

श्रीरामचन्द्रजी अपने विशाल धनुषको खींचते हुए उसी तरह शोभा पा रहे थे, जैसे त्रिपुरासुरपर कुपित हो भगवान् शंकर अपने वेदमय धनुषकी टंकार करते हुए सुशोभित हुए थे ॥ ३६ ॥

उद्घुष्टं वानराणां च राक्षसानां च निःस्वनम् ।
ज्याशब्दस्तावुभौ शब्दावति रामस्य शुश्रुवे ॥ ३७ ॥

वानरोंकी गर्जना तथा राक्षसोंके कोलाहल—इन दोनों प्रकारके शब्दोंसे भी ऊपर उठकर श्रीरामके धनुषकी टंकार सुनायी पड़ती थी ॥ ३७ ॥

वानरोद्घुष्टघोषश्च राक्षसानां च निःस्वनः ।
ज्याशब्दश्चापि रामस्य त्रयं व्याप दिशो दश ॥ ३८ ॥

वानरोंकी गर्जना, राक्षसोंका कोलाहल और श्रीरामके धनुषकी टंकार—ये तीनों प्रकारके शब्द दसों दिशाओंमें व्याप्त हो रहे थे ॥ ३८ ॥

तस्य कार्मुकनिर्मुक्तैः शरैस्तत्पुरगोपुरम् ।
कैलासशृङ्गप्रतिमं विकीर्णमभवद् भुवि ॥ ३९ ॥

भगवान् श्रीरामके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा लङ्कापुरीका वह नगरद्वार, जो कैलास-शिखरके समान ऊँचा था, टूट-फूटकर भूतलपर बिखर गया ॥ ३९ ॥

ततो रामशरान् दृष्ट्वा विमानेषु गृहेषु च ।
संनाहो राक्षसेन्द्राणां तुमुलः समपद्यत ॥ ४० ॥

सतमहले मकानों तथा अन्य गृहोंपर गिरते हुए श्रीरामके बाणोंको देखकर राक्षसपतियोंने युद्धके लिये बड़ी भयंकर तैयारी की ॥ ४० ॥

तेषां संनह्यमानानां सिंहनादं च कुर्वताम् ।
शर्वरी राक्षसेन्द्राणां रौद्रीव समपद्यत ॥ ४१ ॥

कमर कसकर और कवच आदि बाँधकर युद्धके लिये तैयार होते तथा सिंहनाद करते हुए उन राक्षसपतियोंके लिये वह रात कालरात्रिके समान प्राप्त हुई थी ॥ ४१ ॥

आदिष्टा वानरेन्द्रास्ते सुग्रीवेण महात्मना ।
आसन्नं द्वारमासाद्य युध्यध्वं च प्लवंगमाः ॥ ४२ ॥

उस समय महात्मा सुग्रीवने प्रधान-प्रधान वानरोंको यह आज्ञा दी—'वानरवीरो ! तुम सब लोग अपने-अपने निकटवर्ती द्वारपर जाकर युद्ध करो ॥ ४२ ॥

यश्च वो वितथं कुर्यात् तत्र तत्राप्युपस्थितः ।
स हन्तव्योऽभिसम्प्लुत्य राजशासनदूषकः ॥ ४३ ॥

'तुमलोगोंमेंसे जो वहाँ-वहाँ युद्धभूमिमें उपस्थित होकर भी मेरे आदेशका पालन न करे—युद्धसे मुँह मोड़कर भाग जाय, उसे तुम सब लोग पकड़कर मार डालना; क्योंकि वह राजाज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाला होगा' ॥ ४३ ॥

तेषु वानरमुख्येषु दीप्तोल्कोज्ज्वलपाणिषु ।
स्थितेषु द्वारमाश्रित्य रावणं क्रोध आविशत् ॥ ४४ ॥

सुग्रीवकी इस आज्ञाके अनुसार जब मुख्य-मुख्य वानर जलते मशाल हाथमें लिये नगरद्वारपर जाकर डट गये, तब रावणको बड़ा क्रोध हुआ ॥ ४४ ॥

तस्य जृम्भितविक्षेपाद् व्यामिश्रा वै दिशो दश ।
रूपवानिव रुद्रस्य मन्युर्गात्रेष्वदृश्यत ॥ ४५ ॥

उसने अँगड़ाई लेकर जो अङ्गोंका संचालन किया, उससे दसों दिशाएँ व्याकुल हो उठीं । वह कालरुद्रके अङ्गोंमें प्रकट हुए मूर्तिमान् क्रोधकी भाँति दिखायी देने लगा ॥४५॥

स कुम्भं च निकुम्भं च कुम्भकर्णात्मजावुभौ ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो राक्षसैर्बहुभिः सह ॥ ४६ ॥

क्रोधसे भरे हुए रावणने कुम्भकर्णके दो पुत्र कुम्भ और निकुम्भको बहुत-से राक्षसोंके साथ भेजा ॥ ४६ ॥

यूपाक्षः शोणिताक्षश्च प्रजङ्घः कम्पनस्तथा ।
निर्ययुः कौम्भकर्णिभ्यां सह रावणशासनात् ॥ ४७ ॥

रावणकी आज्ञासे यूपाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजङ्घ और कम्पन भी कुम्भकर्णके दोनों पुत्रोंके साथ-साथ युद्धके लिये निकले ॥ ४७ ॥

शशास चैव तान् सर्वान् राक्षसान् स महाबलान् ।
राक्षसा गच्छताद्यैव सिंहनादं च नादयन् ॥ ४८ ॥

उस समय सिंहके समान दहाड़ते हुए रावणने उन समस्त महाबली राक्षसोंको आदेश दिया—'वीर निशाचरो ! इसी रातमें तुमलोग युद्धके लिये जाओ' ॥ ४८ ॥

ततस्तु चोदितास्तेन राक्षसा ज्वलितायुधाः ।
लङ्काया निर्ययुर्वीराः प्रणदन्तः पुनः पुनः ॥ ४९ ॥

राक्षसराजकी आज्ञा पाकर वे वीर राक्षस हाथोंमें चमकीले अस्त्र-शस्त्र लिये बारंबार गर्जना करते हुए लङ्कापुरीसे बाहर निकले ॥ ४९ ॥

रक्षसां भूषणस्थाभिर्भाभिः स्वाभिश्च सर्वशः ।
चक्रुस्ते सप्रभं व्योम हरयश्चाग्निभिः सह ॥ ५० ॥

राक्षसोंने अपने आभूषणोंकी तथा अपनी प्रभासे और वानरोंने मशालकी आगसे वहाँके आकाशको प्रकाशसे परिपूर्ण कर दिया था ॥ ५० ॥

तत्र ताराधिपस्याभा ताराणां भा तथैव च ।
तयोराभरणाभा च ज्वलिता द्यामभासयत् ॥ ५१ ॥

चन्द्रमाकी, नक्षत्रोंकी और उन दोनों सेनाओंके आभूषणोंकी प्रज्वलित प्रभाने आकाशको प्रकाशित कर दिया था ॥ ५१ ॥

चन्द्राभा भूषणाभा च ग्रहाणां ज्वलतां च भा ।
हरिराक्षससैन्यानि भ्राजयामास सर्वतः ॥ ५२ ॥

चन्द्रमाकी चाँदनी, आभूषणोंकी प्रभा तथा प्रकाशमान ग्रहोंकी दीप्तिने सब ओरसे राक्षसों और वानरोंकी सेनाओंको उद्भासित कर रक्खा था ॥ ५२ ॥

तत्र चार्धप्रदीप्तानां गृहाणां सागरः पुनः ।
भाभिः संसक्तसलिलश्चलोर्मिः शुशुभेऽधिकम् ॥ ५३ ॥

लङ्काके अधजल गृहोंकी प्रभाका जलमें प्रतिबिम्ब पड़नेसे चञ्चल लहरोंवाला समुद्र अधिक शोभा पा रहा था ॥ ५३ ॥

पताकाध्वजसंयुक्तमुत्तमासिपरश्वधम् ।
भीमाश्वरथमातङ्गं नानापत्तिसमाकुलम् ॥ ५४ ॥
दीप्तशूलगदाखड्गप्रासतोमरकार्मुकम् ।
तद् राक्षसबलं भीमं घोरविक्रमपौरुषम् ॥ ५५ ॥

राक्षसोंकी वह भयंकर सेना ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित थी । सैनिकोंके हाथोंमें उत्तम खड्ग और फरसे चमक रहे थे । भयानक घोड़े, रथ और हाथियोंसे एवं नाना प्रकारके पैदल सैनिकोंसे वह लैस थी । चमकते हुए शूल, गदा, तलवार, भाले, तोमर और धनुष आदिसे युक्त हुई वह सेना भयानक विक्रम एवं पुरुषार्थ प्रकट करनेवाली थी ॥ ५४-५५ ॥

ददृशे ज्वलितप्रासं किङ्किणीशतनादितम् ।

हेमजालाचितभुजं व्यावेष्टितपरश्वधम् ॥ ५६ ॥
व्याघूर्णितमहाशस्त्रं बाणसंसक्तकार्मुकम् ।
गन्धमाल्यमधूत्सेकसम्मोदितमहानिलम् ॥ ५७ ॥
घोरं शूरजनाकीर्णं महाम्बुधरनिःस्वनम् ।

उस सेनामें भाले चमक रहे थे। सैकड़ों घुँघुरुओंका झंकार सुनायी पड़ता था। सैनिकोंकी भुजाओंमें सोनेके आभूषण बँधे हुए थे। उनके द्वारा फरसे चलाये जा रहे थे, बड़े-बड़े शस्त्र घुमाये जाते थे। धनुषपर बाणोंका संधान किया जाता था। चन्दन, पुष्पमाला और मधुकी अधिकतासे वहाँके महान् वातावरणमें अनुपम गन्ध छा रही थी। वह सेना शूरवीरोंसे व्याप्त तथा महान् मेघोंकी गर्जनाके समान सिंहनादसे निनादित होनेके कारण भयंकर दिखायी देती थी ॥५६-५७½॥

तद् दृष्ट्वा बलमायातं राक्षसानां दुरासदम् ॥ ५८ ॥
संचचाल प्लवंगानां बलमुच्चैर्ननाद च ।

राक्षसोंकी उस दुर्जय सेनाको आती देख वानर-सेना आगे बढ़ी और उच्च स्वरसे गर्जना करने लगी ॥ ५८½ ॥

जवेनाप्लुत्य च पुनस्तद् बलं रक्षसां महत् ॥ ५९ ॥
अभ्ययात् प्रत्यरिबलं पतंगा इव पावकम् ।

राक्षसोंकी विशाल सेना भी बड़े वेगसे उछलकर शत्रु-सेनाकी ओर उसी तरह अग्रसर हुई, जैसे पतङ्ग आगपर टूटे पड़ते हैं ॥ ५९½ ॥

तेषां भुजपरामर्शव्यामृष्टपरिघाशनि ॥ ६० ॥
राक्षसानां बलं श्रेष्ठं भूयः परमशोभत ।

सैनिकोंकी भुजाओंके व्यापारसे जहाँ परिघ और अशनि घूम रहे थे, राक्षसोंकी वह उत्तम सेना बड़ी शोभा पा रही थी॥

तथोन्मत्ता इवोत्पेतुर्हरयोऽथ युयुत्सवः ॥ ६१ ॥
तरुशैलैरभिघ्नन्तो मुष्टिभिश्च निशाचरान् ।

वहाँ युद्धकी इच्छावाले वानर उन्मत्त-से होकर वृक्षों, पत्थरों और मुक्कोंसे निशाचरोंको मारते हुए उनपर टूट पड़े ॥ ६१½ ॥

तथैवापततां तेषां हरीणां निशितैः शरैः ॥ ६२ ॥
शिरांसि सहसा जह्रू राक्षसा भीमविक्रमाः ।

इसी प्रकार भयानक पराक्रमी निशाचर भी अपने तीखे बाणोंसे सामने आये हुए वानरोंके मस्तक सहसा काट-काटकर गिराने लगे ॥ ६२½ ॥

दशनैर्हृतकर्णाश्च मुष्टिभिर्भिन्नमस्तकाः ।
शिलाप्रहारभग्नाङ्गा विचेरुस्तत्र राक्षसाः ॥ ६३ ॥

वानरोंने भी दाँतोंसे निशाचरोंके कान काट लिये, मुक्कोंसे मार-मारकर उनके मस्तक विदीर्ण कर दिये और शिलाओंके प्रहारसे उनके अङ्ग-भङ्ग कर दिये। इस अवस्थामें वे राक्षस वहाँ विचर रहे थे ॥ ६३ ॥

तथैवाप्यपरे तेषां कपीनामसिभिः शितैः ।
प्रवरानभितो जघ्नुर्घोररूपा निशाचराः ॥ ६४ ॥

इसी प्रकार घोर रूपधारी निशाचरोंने भी मुख्य-मुख्य वानरोंको अपनी तीखी तलवारोंसे सर्वथा घायल कर दिया था॥

घ्नन्तमन्यं जघानान्यः पातयन्तमपातयत् ।
गर्हमाणं जगर्हान्यो दशन्तमपरोऽदशत् ॥ ६५ ॥

एक वीर जब दूसरे विपक्षी योद्धाको मारने लगता था, तब दूसरा आकर उसे मारने लगता था। इसी प्रकार एकको गिराते हुए योद्धाको दूसरा आकर धराशायी कर देता था। एककी निन्दा करनेवालेकी दूसरा निन्दा करता और एकको दाँतसे काटनेवालेको दूसरा आकर काट लेता था ॥ ६५ ॥

देहीत्यन्यो ददात्यन्यो ददामीत्यपरः पुनः ।
किं क्लेशयसि तिष्ठेति तत्रान्योन्यं बभाषिरे ॥ ६६ ॥

एक आकर कहता कि 'मुझे युद्ध प्रदान करो' तो दूसरा उसे युद्धका अवसर देता था; फिर तीसरा कहता था कि 'तुम क्यों क्लेश उठाते हो? मैं इसके साथ युद्ध करता हूँ।' इस तरह वे एक दूसरेसे बातें करते थे ॥ ६६ ॥

विप्रलम्भितशस्त्रं च विमुक्तकवचायुधम् ।
समुद्यतमहाप्रासं मुष्टिशूलासिकुन्तलम् ॥ ६७ ॥
प्रावर्तत महारौद्रं युद्धं वानररक्षसाम् ।
वानरान् दश सप्तेति राक्षसा जघ्नुराहवे ॥ ६८ ॥
राक्षसान् दश सप्तेति वानराश्चाभ्यपातयन् ।

उस समय वानरों और राक्षसोंमें बड़ा भयंकर युद्ध होने लगा। हथियार गिर जाते, कवच और अस्त्र-शस्त्र छूट जाते, बड़े-बड़े भाले ऊँचे उठे दिखायी देते तथा मुक्कों, शूलों, तलवारों और भालोंकी मार होती थी। उस युद्धस्थलमें राक्षस दस-दस या सात-सात वानरोंको एक साथ मार गिराते थे और वानर भी दस-दस यां सात-सात राक्षसोंको एक साथ धराशायी कर देते थे ॥ ६७-६८½ ॥

विप्रलम्भितवस्त्रं च विमुक्तकवचध्वजम् ।
बलं राक्षसमालम्ब्य वानराः पर्यवारयन् ॥ ६९ ॥

राक्षसोंके वस्त्र खुल गये, कवच और ध्वज टूट गये तथा उस राक्षसी सेनाको रोककर वानरोंने सब ओरसे घेर लिया ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पचहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः

अङ्गदके द्वारा कम्पन और प्रजङ्घका, द्विविदके द्वारा शोणिताक्षका, मैन्दके द्वारा यूपाक्षका और सुग्रीवके द्वारा कुम्भका वध

प्रवृत्ते संकुले तस्मिन् घोरे वीरजनक्षये ।
अङ्गदः कम्पनं वीरमाससाद रणोत्सुकः ॥ १ ॥

जब वीरजनोंका विनाश करनेवाला वह घोर घमासान युद्ध चल रहा था, उस समय अङ्गद संग्रामके लिये उत्सुक होकर वीर कम्पनका सामना करनेके लिये आये ॥ १ ॥

आहूय सोऽङ्गदं कोपात् ताडयामास वेगितः ।
गदया कम्पनः पूर्वं स चचाल भृशाहतः ॥ २ ॥

कम्पनने अङ्गदको क्रोधपूर्वक ललकारकर बड़े वेगसे उनके ऊपर पहले गदाका प्रहार किया । इससे उनको बड़ी चोट पहुँची और वे काँपकर बेहोश हो गये ॥ २ ॥

स संज्ञां प्राप्य तेजस्वी चिक्षेप शिखरं गिरेः ।
अर्दितश्च प्रहारेण कम्पनः पतितो भुवि ॥ ३ ॥

फिर चेत होनेपर तेजस्वी वीर अंगदने एक पर्वतका शिखर उठाकर उस राक्षसपर दे मारा । उस प्रहारसे पीड़ित हो कम्पन पृथ्वीपर गिर पड़ा—उसके प्राण-पखेरू उड़ गये ॥

ततस्तु कम्पनं दृष्ट्वा शोणिताक्षो हतं रणे ।
रथेनाभ्यपतत् क्षिप्रं तत्राङ्गदमभीतवत् ॥ ४ ॥

कम्पनको युद्धमें मारा गया देख शोणिताक्षने रथपर बैठकर तुरंत ही निर्भय हो अङ्गदपर धावा किया ॥ ४ ॥

सोऽङ्गदं निशितैर्बाणैस्तदा विव्याध वेगितः ।
शरीरदारणैस्तीक्ष्णैः कालाग्निसमविग्रहैः ॥ ५ ॥

उसने शरीरको विदीर्ण करनेमें समर्थ और कालाग्निके समान आकारवाले तीखे तथा पैने बाणोंद्वारा बड़े वेगसे उस समय अङ्गदको चोट पहुँचायी ॥ ५ ॥

क्षुरक्षुरप्रनाराचैर्वत्सदन्तैः शिलीमुखैः ।
कर्णिशल्यविपाठैश्च बहुभिर्निशितैः शरैः ॥ ६ ॥
अङ्गदः प्रतिविद्धाङ्गो वालिपुत्रः प्रतापवान् ।
धनुरुग्रं रथं बाणान् ममर्द तरसा बली ॥ ७ ॥

उसके चलाये हुए क्षुर[1], क्षुरप्र[2], नाराच[3], वत्सदन्त[4], शिलीमुख[5], कर्णी[6], शल्य[7] और विपाठ[8] नामक बहुसंख्यक तीखे बाणोंसे जब प्रतापी वालिपुत्र अङ्गदके सारे अङ्ग बिंध गये, तब उन बलवान् वीरने बड़े वेगसे उस राक्षसके भयंकर धनुष, रथ और बाणोंको कुचल डाला ॥ ६-७ ॥

शोणिताक्षस्ततः क्षिप्रमसिचर्म समाददे ।
उत्पपात तदा क्रुद्धो वेगवानविचारयन् ॥ ८ ॥

तदनन्तर वेगवान् निशाचर शोणिताक्षने कुपित हो तत्काल ही ढाल और तलवार हाथमें ले ली तथा वह बिना सोचे-विचारे रथसे कूद पड़ा ॥ ८ ॥

तं क्षिप्रतरमाप्लुत्य परामृश्याङ्गदो बली ।
करेण तस्य तं खड्गं समाच्छिद्य ननाद च ॥ ९ ॥

इतनेहीमें बलवान् अङ्गदने शीघ्रतापूर्वक उछलकर उसे पकड़ लिया और अपने हाथसे उसकी उस तलवारको छीनकर बड़े जोरसे सिंहनाद किया ॥ ९ ॥

तस्यांसफलके खड्गं निजघान ततोऽङ्गदः ।
यज्ञोपवीतवच्चैनं चिच्छेद कपिकुञ्जरः ॥ १० ॥

फिर कपिकुञ्जर अङ्गदने उसके कंधेपर तलवारका वार किया और उसके शरीरको इस तरह चीर दिया मानो उसने यज्ञोपवीत पहन रखा हो ॥ १० ॥

तं प्रगृह्य महाखड्गं विनद्य च पुनः पुनः ।
वालिपुत्रोऽभिदुद्राव रणशीर्षे परानरीन् ॥ ११ ॥

इसके बाद वालिपुत्रने उस विशाल खड्गको लेकर बारंबार गर्जना करते हुए युद्धके मुहानेपर दूसरे शत्रुओंपर धावा किया ॥ ११ ॥

प्रजङ्घसहितो वीरो यूपाक्षस्तु ततो बली ।
रथेनाभिययौ क्रुद्धो वालिपुत्रं महाबलम् ॥ १२ ॥

इतनेहीमें प्रजङ्घको साथ लिये बलवान् वीर यूपाक्षने कुपित हो रथके द्वारा महाबली वालिपुत्रपर आक्रमण किया ॥

आयसीं तु गदां गृह्य स वीरः कनकाङ्गदः ।
शोणिताक्षः समाश्वस्य तमेवानुपपात ह ॥ १३ ॥

इसी बीचमें सोनेके बाजूबद पहने वीर शोणिताक्षने अपने-

---

[1] जिसका अग्रभाग नाईके छुरेके समान हो, उसे 'क्षुर' कहते हैं । [2] अर्द्धचन्द्राकार बाण । [3] पूर्णतः लोहेके बने हुए बाणका नाम 'नाराच' है । उसमें नीचेसे ऊपरतक सब-का-सब लोहा ही होता है । [4] बछड़ेके दाँतके समान जिसका अग्रभाग हो, उसे 'वत्सदन्त' कहा गया है । [5] जिसका मुखभाग कङ्क (बकविशेष) की पाँखोंके समान हो, उस बाणको 'शिलीमुख' कहते हैं ।

[6] जिस बाणके दोनों पार्श्वभागोंमें कानका-सा आकार बना हो, वह 'कर्णी' कहलाता है । [7] जिसका फाल या अग्रभाग बड़ा हो, वह 'शल्य' है । किसी-किसीके मतमें आधे नाराचको 'शल्य' कहते हैं । [8] कनेरके पत्तेके अग्रभागके समान आकारवाले बाणका नाम 'विपाठ' है । ('रामायणतिलकसे)

को सँभालकर लोहेकी गदा उठायी और अङ्गदका ही पीछा किया ॥ १३ ॥

प्रजङ्घस्तु महावीरो यूपाक्षसहितो बली ।
गदयाभिययौ क्रुद्धो वालिपुत्रं महाबलम् ॥ १४ ॥

फिर यूपाक्षसहित बलवान् महावीर प्रजङ्घ कुपित हो महाबली वालिपुत्रपर गदा लेकर चढ़ आया ॥ १४ ॥

तयोर्मध्ये कपिश्रेष्ठः शोणिताक्षप्रजङ्घयोः ।
विशाखयोर्मध्यगतः पूर्णचन्द्र इवाबभौ ॥ १५ ॥

शोणिताक्ष और प्रजङ्घ दोनों राक्षसोंके बीचमें कपिश्रेष्ठ अङ्गद वैसी ही शोभा पा रहे थे, जैसे दोनों विशाखा नक्षत्रोंके बीचमें पूर्ण चन्द्रमा सुशोभित होते हैं ॥ १५ ॥

अङ्गदं परिरक्षन्तौ मैन्दो द्विविद एव च ।
तस्य तस्थतुरभ्याशे परस्परदिदृक्षया ॥ १६ ॥

उस समय मैन्द और द्विविद अङ्गदकी रक्षा करनेके लिये उनके निकट आकर खड़े हो गये । वे दोनों अपने-अपने योग्य विपक्षी योद्धाकी तलाश भी कर रहे थे ॥ १६ ॥

अभिपेतुर्महाकायाः प्रतियत्ता महाबलाः ।
राक्षसा वानरान् रोषादसिबाणगदाधराः ॥ १७ ॥

इतनेहीमें तलवार, बाण और गदा धारण किये बहुत-से महाबली विशालकाय राक्षस रोषपूर्वक वानरोंपर टूट पड़े ॥

त्रयाणां वानरेन्द्राणां त्रिभी राक्षसपुंगवैः ।
संसक्तानां महद् युद्धमभवद् रोमहर्षणम् ॥ १८ ॥

ये तीन वानर-सेनापति उन तीन प्रमुख राक्षसोंके साथ उलझे हुए थे । उस समय उनमें रोंगटे खड़े कर देनेवाला महान् युद्ध छिड़ गया ॥ १८ ॥

ते तु वृक्षान् समादाय सम्प्रचिक्षिपुराहवे ।
खड्गेन प्रतिचिक्षेप तान् प्रजङ्घो महाबलः ॥ १९ ॥

उन तीनों वानरोंने रणभूमिमें वृक्ष ले-लेकर युद्धमें निशाचरोंपर चलाये, परंतु महाबली प्रजङ्घने अपनी तलवारसे उन सब वृक्षोंको काट गिराया ॥ १९ ॥

रथानश्वान् द्रुमाञ्छैलान् प्रतिचिक्षिपुराहवे ।
शरौघैः प्रतिचिच्छेद तान् यूपाक्षो महाबलः ॥ २० ॥

तत्पश्चात् उन्होंने रणभूमिमें उन राक्षसोंके रथों और घोड़ोंपर वृक्ष तथा पर्वतशिखर चलाये; परंतु महाबली यूपाक्षने अपने बाणसमूहोंसे उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ २० ॥

सृष्टान् द्विविदमैन्दाभ्यां द्रुमानुत्पाट्य वीर्यवान् ।
बभञ्ज गदया मध्ये शोणिताक्षः प्रतापवान् ॥ २१ ॥

मैन्द और द्विविदने जिन-जिन वृक्षोंको उखाड़-उखाड़कर उन राक्षसोंपर चलाया था, उन सबको बल-विक्रमशाली और प्रतापी शोणिताक्षने गदा मारकर बीचमें ही तोड़ डाला ॥२१॥

उद्यम्य विपुलं खड्गं परमर्मविदारणम् ।
प्रजङ्घो वालिपुत्राय अभिदुद्राव वेगितः ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् प्रजङ्घने शत्रुओंके मर्मको विदीर्ण करनेवाली एक बहुत बड़ी तलवार उठाकर वालिपुत्र अङ्गदपर वेगपूर्वक आक्रमण किया ॥ २२ ॥

तमभ्याशगतं दृष्ट्वा वानरेन्द्रो महाबलः ।
आजघानाश्वकर्णेन द्रुमेणातिबलस्तदा ॥ २३ ॥
बाहुं चास्य सनिस्त्रिंशमाजघान स मुष्टिना ।
वालिपुत्रस्य घातेन स पपात क्षितावसिः ॥ २४ ॥

उसे निकट आया देख अतिशय शक्तिशाली महाबली वानरराज अङ्गदने अश्वकर्ण नामक वृक्षसे मारा । साथ ही उसकी बाँहपर, जिसमें तलवार थी, उन्होंने एक घूसा मारा । वालिपुत्रके उस आघातसे वह तलवार छूटकर पृथ्वीपर जा गिरी ॥ २३-२४ ॥

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ खड्गं मुसलसंनिभम् ।
मुष्टिं संवर्तयामास वज्रकल्पं महाबलः ॥ २५ ॥

मूसल-जैसी उस तलवारको पृथ्वीपर पड़ी देख महाबली प्रजङ्घने अपना वज्रके समान भयंकर मुक्का घुमाना आरम्भ किया ॥ २५ ॥

स ललाटे महावीर्यमङ्गदं वानरर्षभम् ।
आजघान महातेजाः स मुहूर्तं चचाल ह ॥ २६ ॥

उस महातेजस्वी निशाचरने महापराक्रमी वानरशिरोमणि अङ्गदके ललाटमें बड़े जोरसे मुक्का मारा, जिससे अङ्गदको दो घड़ीतक चक्कर आता रहा ॥ २६ ॥

स संज्ञां प्राप्य तेजस्वी वालिपुत्रः प्रतापवान् ।
प्रजङ्घस्य शिरः कायात् पातयामास मुष्टिना ॥ २७ ॥

इसके बाद होशमें आनेपर तेजस्वी और प्रतापी वालिकुमारने प्रजङ्घको ऐसा घूसा मारा कि उसका सिर धड़से अलग हो गया ॥ २७ ॥

स यूपाक्षोऽश्रुपूर्णाक्षः पितृव्ये निहते रणे ।
अवरुह्य रथात् क्षिप्रं क्षीणेषुः खड्गमाददे ॥ २८ ॥

रणभूमिमें अपने चाचा प्रजङ्घके मारे जानेपर यूपाक्षकी आँखोंमें आँसू भर आये । उसके बाण नष्ट हो चुके थे । इसलिये तुरंत ही रथसे उतरकर उसने तलवार हाथमें ले ली ॥ २८ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य यूपाक्षं द्विविदस्त्वरन् ।
आजघानोरसि क्रुद्धो जग्राह च बलाद् बली ॥ २९ ॥

यूपाक्षको आक्रमण करते देख बलवान् वीर द्विविदने कुपित हो बड़ी फुर्तीके साथ उसकी छातीमें चोट की और उसे बलपूर्वक पकड़ लिया ॥ २९ ॥

गृहीतं भ्रातरं दृष्ट्वा शोणिताक्षो महाबलः ।
आजघान महातेजा वक्षसि द्विविदं ततः ॥ ३० ॥

भाईको पकड़ा गया देख महातेजस्वी एवं महाबली शोणिताक्षने द्विविदकी छातीमें गदा मारी ॥ ३० ॥

स ततोऽभिहतस्तेन चचाल च महाबलः ।
उद्यतां च पुनस्तस्य जहार द्विविदो गदाम् ॥ ३१ ॥

शोणिताक्षकी मार खाकर महाबली द्विविद विचलित हो उठे। तत्पश्चात् जब उसने पुनः गदा उठायी, तब द्विविदने झपटकर उसे छीन लिया ॥ ३१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे मैन्दो द्विविदाभ्याशमागमत् ।
यूपाक्षं ताडयामास तलेनोरसि वीर्यवान् ॥ ३२ ॥

इसी बीचमें पराक्रमी मैन्द भी द्विविदके पास आ गये और उन्होंने यूपाक्षकी छातीमें एक थप्पड़ मारा ॥ ३२ ॥

तौ शोणिताक्षयूपाक्षौ प्लवंगाभ्यां तरस्विनौ ।
चक्रतुः समरे तीव्रमाकर्षोत्पाटनं भृशम् ॥ ३३ ॥

वे दोनों वेगशाली वीर शोणिताक्ष और यूपाक्ष उन दोनों वानर मैन्द और द्विविदके साथ समराङ्गणमें बड़ी तेजीसे छीना-झपटी और पटकापटकी करने लगे ॥ ३३ ॥

द्विविदः शोणिताक्षं तु विददार नखैर्मुखे ।
निष्पिपेष स वीर्येण क्षितावाविध्य वीर्यवान् ॥ ३४ ॥

पराक्रमी द्विविदने अपने नखोंसे शोणिताक्षका मुँह नोच लिया और उसे बलपूर्वक पृथ्वीपर पटककर पीस डाला ॥

यूपाक्षमभिसंक्रुद्धो मैन्दो वानरपुंगवः ।
पीडयामास बाहुभ्यां पपात स हतः क्षितौ ॥ ३५ ॥

तत्पश्चात् अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए वानरपुङ्गव मैन्दने यूपाक्षको अपनी दोनों बाँहोंसे इस तरह दबाया कि वह निष्प्राण होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३५ ॥

हतप्रवीरा व्यथिता राक्षसेन्द्रचमूस्तथा ।
जगामाभिमुखी सा तु कुम्भकर्णात्मजो यतः ॥ ३६ ॥

इन प्रमुख वीरोंके मारे जानेपर राक्षसराजकी सेना व्यथित हो उठी और भागकर उस ओर चली गयी, जहाँ कुम्भकर्णका पुत्र युद्ध कर रहा था ॥ ३६ ॥

आपतन्तीं च वेगेन कुम्भस्तां सान्त्वयच्चमूम् ।
अथोत्कृष्टं महावीर्यैर्लब्धलक्षैः प्लवंगमैः ॥ ३७ ॥

वेगसे भागकर आती हुई उस सेनाको कुम्भने सान्त्वना दी। दूसरी ओर महापराक्रमी वानर युद्धमें सफल होनेके कारण जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ३७ ॥

निपातितमहावीरां दृष्ट्वा रक्षश्चमूं तदा ।
कुम्भः प्रचक्रे तेजस्वी रणे कर्म सुदुष्करम् ॥ ३८ ॥

राक्षससेनाके बड़े-बड़े वीरोंको मारा गया देख तेजस्वी कुम्भने रणभूमिमें अत्यन्त दुष्कर कर्म करना आरम्भ किया ॥

स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठः प्रगृह्य सुसमाहितः ।
मुमोचाशीविषप्रख्याञ्छरान् देहविदारणान् ॥ ३९ ॥

वह धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ था और युद्धमें चित्तको अत्यन्त एकाग्र रखता था। उसने धनुष उठाया और शरीरको विदीर्ण करनेमें समर्थ एवं सर्पके समान विषैले बाणोंको बरसाना आरम्भ किया ॥ ३९ ॥

तस्य तच्छुशुभे भूयः सशरं धनुरुत्तमम् ।
विद्युदैरावतार्चिष्मद्द्वितीयेन्द्रधनुर्यथा ॥ ४० ॥

उसका वह बाणसहित उत्तम धनुष विद्युत् और ऐरावतकी प्रभासे युक्त द्वितीय इन्द्रधनुषके समान अधिक शोभा पा रहा था ॥ ४० ॥

आकर्णकृष्टमुक्तेन जघान द्विविदं तदा ।
तेन हाटकपुङ्खेन पत्रिणा पत्रवाससा ॥ ४१ ॥

उसने सोनेके पङ्ख लगे हुए पत्रयुक्त बाणद्वारा, जो धनुषको कानतक खींचकर छोड़ गया था, द्विविदको घायल कर दिया ॥ ४१ ॥

सहसाभिहतस्तेन विप्रमुक्तपदः स्फुरन् ।
निपपात त्रिकूटाभो विह्वलन् प्लवगोत्तमः ॥ ४२ ॥

उसके बाणसे सहसा आहत होकर त्रिकूट पर्वतके समान विशालकाय वानरश्रेष्ठ द्विविद व्याकुल हो गये और छटपटाते हुए पाँव फैलाकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४२ ॥

मैन्दस्तु भ्रातरं तत्र भग्नं दृष्ट्वा महाहवे ।
अभिदुद्राव वेगेन प्रगृह्य विपुलां शिलाम् ॥ ४३ ॥

उस महासमरमें अपने भाईको घायल होकर गिरा देख मैन्द बहुत बड़ी शिला उठाकर वेगपूर्वक दौड़े ॥ ४३ ॥

तां शिलां तु प्रचिक्षेप राक्षसाय महाबलः ।
बिभेद तां शिलां कुम्भः प्रसन्नैः पञ्चभिः शरैः ॥ ४४ ॥

उन महाबली वीरने वह शिला उस राक्षसपर चला दी; परंतु कुम्भने पाँच चमकीले बाणोंद्वारा उस शिलाको टूक-टूक कर दिया ॥ ४४ ॥

संधाय चान्यं सुमुखं शरमाशीविषोपमम् ।
आजघान महातेजा वक्षसि द्विविदाग्रजम् ॥ ४५ ॥

फिर विषधर सर्पके समान भयंकर और सुन्दर अग्रभागवाला दूसरा बाण धनुषपर रक्खा और उसके द्वारा उस महातेजस्वी वीरने द्विविदके बड़े भाईकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ४५ ॥

स तु तेन प्रहारेण मैन्दो वानरयूथपः ।
मर्मण्यभिहतस्तेन पपात भुवि मूर्च्छितः ॥ ४६ ॥

उसके उस प्रहारसे वानरयूथपति मैन्दके मर्मस्थानमें

भारी आघात पहुँचा और वे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४६ ॥

अङ्गदो मातुलौ दृष्ट्वा मथितौ तु महाबलौ ।
अभिदुद्राव वेगेन कुम्भमुद्यतकार्मुकम् ॥ ४७ ॥

मैन्द और द्विविद अङ्गदके मामा थे। उन दोनों महाबली वीरोंको घायल हुआ देख अङ्गद धनुष लेकर खड़े हुए कुम्भके ऊपर बड़े वेगसे टूटे ॥ ४७ ॥

तमापतन्तं विव्याध कुम्भः पञ्चभिरायसैः ।
त्रिभिश्चान्यैः शितैर्बाणैर्मातंगमिव तोमरैः ।
सोऽङ्गदं बहुभिर्बाणैः कुम्भो विव्याध वीर्यवान् ॥ ४८ ॥

उन्हें आते देख कुम्भने लोहेके बने हुए पाँच बाणोंसे घायल कर दिया। फिर तीन तीखे बाण और मारे। जैसे महावत अङ्कुशसे मतवाले हाथीको मारता है, उसी प्रकार पराक्रमी कुम्भने बहुत-से बाणोंद्वारा अङ्गदको बींध डाला ॥

अकुण्ठधारैर्निशितैस्तीक्ष्णैः कनकभूषणैः ।
अङ्गदः प्रतिविद्धाङ्गो वालिपुत्रो न कम्पते ॥ ४९ ॥

जिनकी धारें कुण्ठित नहीं हुई थीं तथा जो सुवर्णसे विभूषित थे, ऐसे तेज और तीखे बाणोंसे वालिपुत्र अङ्गदका सारा शरीर छिद गया था तो भी वे कम्पित नहीं हुए ॥ ४९ ॥

शिलापादपवर्षाणि तस्य मूर्ध्नि ववर्ष ह ।
स प्रचिच्छेद तान् सर्वान् बिभेद च पुनः शिलाः ॥ ५० ॥
कुम्भकर्णात्मजः श्रीमान् वालिपुत्रसमीरितान् ।

उन्होंने उस राक्षसके मस्तकपर शिलाओं और वृक्षोंकी वर्षा आरम्भ कर दी; किंतु कुम्भकर्णकुमार श्रीमान् कुम्भने वालिपुत्रके चलाये हुए उन समस्त वृक्षोंको काट दिया और शिलाओंको भी तोड़-फोड़ डाला ॥ ५०½ ॥

आपतन्तं च सम्प्रेक्ष्य कुम्भो वानरयूथपम् ॥ ५१ ॥
भ्रुवौ विव्याध बाणाभ्यामुल्काभ्यामिव कुञ्जरम् ।

तत्पश्चात् वानरयूथपति अङ्गदको अपनी ओर आते देख कुम्भने दो बाणोंसे उनकी भौंहोंमें प्रहार किया, मानो दो उल्काओंद्वारा किसी हाथीको मारा गया हो ॥ ५१½ ॥

तस्य सुस्राव रुधिरं पिहिते चास्य लोचने ॥ ५२ ॥
अङ्गदः पाणिना नेत्रे पिधाय रुधिरोक्षिते ।
सालमासन्नमेकेन परिजग्राह पाणिना ॥ ५३ ॥
सम्पीड्योरसि सस्कन्धं करेणाभिनिवेश्य च ।
किंचिदभ्यवनम्यैनमुन्ममाथ महारणे ॥ ५४ ॥

अङ्गदकी भौंहोंसे रक्त बहने लगा और उनकी आँखें बंद हो गयीं। तब उन्होंने एक हाथसे खूनसे भीगी हुई अपनी दोनों आँखोंको ढक लिया और दूसरे हाथसे पास ही खड़े हुए एक सालके वृक्षको पकड़ा। फिर छातीसे दबाकर तनेसहित उस वृक्षको कुछ झुका दिया और उस महासमरमें एक ही हाथसे उसे उखाड़ लिया ॥ ५२-५४ ॥

तमिन्द्रकेतुप्रतिमं वृक्षं मन्दरसंनिभम् ।
समुत्सृजत वेगेन मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥ ५५ ॥

वह वृक्ष इन्द्रध्वज तथा मन्दराचलके समान ऊँचा था। उसे अङ्गदने सब राक्षसोंके देखते-देखते बड़े वेगसे कुम्भपर दे मारा ॥ ५५ ॥

स चिच्छेद शितैर्बाणैः सप्तभिः कायभेदनैः ।
अङ्गदो विव्यथेऽभीक्ष्णं स पपात मुमोह च ॥ ५६ ॥

किंतु शरीरको विदीर्ण कर देनेवाले सात तीखे बाण मारकर कुम्भने उस साल-वृक्षके टुकड़े-टुकड़े कर डाले, इससे अङ्गदको बड़ी व्यथा हुई। वे घायल तो थे ही, गिरे और मूर्च्छित हो गये ॥ ५६ ॥

अङ्गदं पतितं दृष्ट्वा सीदन्तमिव सागरे ।
दुरासदं हरिश्रेष्ठा राघवाय न्यवेदयन् ॥ ५७ ॥

दुर्जय वीर अङ्गदको समुद्रमें डूबते हुएके समान पृथ्वीपर पड़ा देख श्रेष्ठ वानरोंने श्रीरघुनाथजीको इसकी सूचना दी॥

रामस्तु व्यथितं श्रुत्वा वालिपुत्रं महाहवे ।
व्यादिदेश हरिश्रेष्ठाञ्जाम्बवत्प्रमुखांस्ततः ॥ ५८ ॥

श्रीरामने जब सुना कि वालिपुत्र अङ्गद महासमरमें मूर्छित होकर गिरे हैं, तब उन्होंने जाम्बवान् आदि प्रमुख वानर-वीरोंको युद्धके लिये जानेकी आज्ञा दी ॥ ५८ ॥

ते तु वानरशार्दूलाः श्रुत्वा रामस्य शासनम् ।
अभिपेतुः सुसंक्रुद्धाः कुम्भमुद्यतकार्मुकम् ॥ ५९ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका आदेश सुनकर श्रेष्ठ वानर वीर अत्यन्त कुपित हो धनुष उठाये खड़े हुए कुम्भपर सब ओरसे टूट पड़े ॥ ५९ ॥

ततो द्रुमशिलाहस्ताः कोपसंरक्तलोचनाः ।
रिरक्षिषन्तोऽभ्यपतन्नङ्गदं वानरर्षभाः ॥ ६० ॥

वे सभी प्रमुख वानर अङ्गदकी रक्षा करना चाहते थे; अतः क्रोधसे लाल आँखें किये हाथोंमें वृक्ष और शिलाएँ लेकर उस राक्षसकी ओर दौड़े ॥ ६० ॥

जाम्बवांश्च सुषेणश्च वेगदर्शी च वानरः ।
कुम्भकर्णात्मजं वीरं क्रुद्धाः समभिदुद्रुवुः ॥ ६१ ॥

जाम्बवान्, सुषेण और वेगदर्शीने कुपित हो वीर कुम्भकर्णकुमारपर धावा किया ॥ ६१ ॥

समीक्ष्यापततस्तांस्तु वानरेन्द्रान् महाबलान् ।
आववार शरौघेण नगेनेव जलाशयम् ॥ ६२ ॥

उन महाबली वानर-यूथपतियोंको आक्रमण करते देख कुम्भने अपने बाणसमूहोंद्वारा उन सबको उसी तरह रोक

दिया, जैसे आगे बढ़ते हुए जल-प्रवाहको मार्गमें खड़ा हुआ पर्वत रोक देता है ॥ ६२ ॥

तस्य बाणपथं प्राप्य न शेकुरपि वीक्षितुम् ।
वानरेन्द्रा महात्मानो वेलामिव महोदधिः ॥ ६३ ॥

उसके बाणोंके मार्गमें आनेपर वे महामनस्वी वानर-यूथपति आगे बढ़ना तो दूर रहा उसकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं पाते थे। ठीक उसी तरह, जैसे महासागर अपनी तटभूमिको लाँघकर आगे नहीं जा सकता था ॥ ६३ ॥

तांस्तु दृष्ट्वा हरिगणाञ्शरवृष्टिभिरर्दितान् ।
अङ्गदं पृष्ठतः कृत्वा भ्रातृजं प्लवगेश्वरः ॥ ६४ ॥
अभिदुद्राव सुग्रीवः कुम्भकर्णात्मजं रणे ।
शैलसानुचरं नागं वेगवानिव केसरी ॥ ६५ ॥

उन सब वानरसमूहोंको कुम्भकी बाणवर्षासे पीड़ित देख वानरराज सुग्रीवने अपने भतीजे अङ्गदको पीछे करके स्वयं ही रणभूमिमें कुम्भकर्णकुमारपर उसी तरह धावा किया, जैसे पर्वतके शिखरपर विचरनेवाले हाथीके ऊपर वेगवान् सिंह आक्रमण करता है ॥ ६४-६५ ॥

उत्पाट्य च महावृक्षानश्वकर्णादिकान् बहून् ।
अन्यांश्च विविधान् वृक्षांश्चिक्षेप स महाकपिः ॥ ६६ ॥

महाकपि सुग्रीव अश्वकर्ण आदि बड़े-बड़े वृक्ष तथा दूसरे भी नाना प्रकारके वृक्ष उखाड़कर उस राक्षसपर फेंकने लगे ॥

तां छादयन्तीमाकाशं वृक्षवृष्टिं दुरासदाम् ।
कुम्भकर्णात्मजः श्रीमांश्चिच्छेद स्वशरैः शितैः ॥ ६७ ॥

वृक्षोंकी वह वर्षा आकाशको आच्छादित किये देती थी। उसे टालना अत्यन्त कठिन हो रहा था; किंतु श्रीमान् कुम्भकर्णने अपने तीखे बाणोंसे उन सब वृक्षोंको काट डाला ॥

अभिलक्ष्येण तीव्रेण कुम्भेन निशितैः शरैः ।
आचितास्ते द्रुमा रेजुर्यथा घोराः शतघ्नयः ।

लक्ष्य वेधनेमें सफल, तीव्र वेगशाली कुम्भके पैने बाणोंसे व्याप्त हुए वे वृक्ष भयानक शतघ्नियोंके समान सुशोभित होते थे ॥ ६७½ ॥

द्रुमवर्षं तु तद् भिन्नं दृष्ट्वा कुम्भेन वीर्यवान् ॥ ६८ ॥
वानराधिपतिः श्रीमान् महासत्त्वो न विव्यथे ।

उस वृक्ष-वृष्टिको कुम्भके द्वारा खण्डित हुई देख महान् शक्तिशाली पराक्रमी वानरराज सुग्रीव व्यथित नहीं हुए ॥ ६८½ ॥

स विध्यमानः सहसा सहमानस्तु ताञ्छरान् ॥ ६९ ॥
कुम्भस्य धनुराक्षिप्य बभञ्जेन्द्रधनुःप्रभम् ।
अवप्लुत्य ततः शीघ्रं कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ ७० ॥
अब्रवीत् कुपितः कुम्भं भग्नशृङ्गमिव द्विपम् ।

वे उसके बाणोंकी चोट खाते और सहते हुए सहसा उछलकर उसके रथपर चढ़ गये और कुम्भके इन्द्र-धनुषके समान तेजस्वी धनुषको छीनकर उन्होंने उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तत्पश्चात् वे शीघ्र ही वहाँसे नीचे कूद पड़े। यह दुष्कर कर्म करनेके पश्चात् उन्होंने टूटे दाँतवाले हाथीके समान कुम्भसे कुपित होकर कहा—॥ ६९-७०½ ॥

निकुम्भाग्रज वीर्यं ते बाणवेगं तदद्भुतम् ॥ ७१ ॥
संनतिश्च प्रभावश्च तव वा रावणस्य वा ।
प्रह्लादबलिवृत्रघ्नकुबेरवरुणोपम ॥ ७२ ॥

'निकुम्भके बड़े भाई कुम्भ! तुम्हारा पराक्रम और तुम्हारे बाणोंका वेग अद्भुत है। राक्षसोंके प्रति विनय अथवा प्रवणता तथा प्रभाव या तो तुममें है या रावणमें। तुम प्रह्लाद, बलि, इन्द्र, कुबेर और वरुणके समान हो ॥ ७१-७२ ॥

एकस्त्वमनुजातोऽसि पितरं बलवत्तरम् ।
त्वामेवैकं महाबाहुं शूलहस्तमरिंदमम् ॥ ७३ ॥
त्रिदशा नातिवर्तन्ते जितेन्द्रियमिवाधयः ।
विक्रमस्व महाबुद्धे कर्माणि मम पश्य च ॥ ७४ ॥

'केवल तुमने ही अपने अत्यन्त बलशाली पिताका अनुसरण किया है। जैसे जितेन्द्रिय पुरुषको मानसिक व्यथाएँ अभिभूत नहीं करती हैं, उसी प्रकार शत्रुओंका दमन करनेवाले एकमात्र शूलधारी तुझ महाबाहु वीरको ही देवतालोग युद्धमें परास्त नहीं कर पाते हैं। महामते! पराक्रम प्रकट करो और अब मेरे बलको भी देखो ॥ ७३-७४ ॥

वरदानात् पितृव्यस्ते सहते देवदानवान् ।
कुम्भकर्णस्तु वीर्येण सहते च सुरासुरान् ॥ ७५ ॥

'तुम्हारा पितृव्य रावण केवल वरदानके प्रभावसे देवताओं और दानवोंका वेग सहन करता है। तुम्हारा पिता कुम्भकर्ण अपने बल-पराक्रमसे देवताओं और असुरोंका सामना करता था (परंतु तुम वरदान और पराक्रम दोनोंसे सम्पन्न हो) ॥

धनुषीन्द्रजितस्तुल्यः प्रतापे रावणस्य च ।
त्वमद्य रक्षसां लोके श्रेष्ठोऽसि बलवीर्यतः ॥ ७६ ॥

'तुम धनुर्विद्यामें इन्द्रजित्के समान और प्रतापमें रावणके तुल्य हो। राक्षसोंके संसारमें अब बल और पराक्रमकी दृष्टिसे केवल तुम्हीं श्रेष्ठ हो ॥ ७६ ॥

महाविमर्दं समरे मया सह तवाद्भुतम् ।
अद्य भूतानि पश्यन्तु शक्रशम्बरयोरिव ॥ ७७ ॥

'आज सब प्राणी रणभूमिमें इन्द्र और शम्बरासुरकी भाँति मेरे साथ तुम्हारे अद्भुत महायुद्धको देखें ॥ ७७ ॥

कृतमप्रतिमं कर्म दर्शितं चास्त्रकौशलम् ।
पतिता हरिवीराश्च त्वयैते भीमविक्रमाः ॥ ७८ ॥

'तुमने वह पराक्रम किया है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। तुमने अपना अस्त्र-कौशल दिखा दिया। तुम्हारे साथ युद्ध करके ये भयंकर पराक्रमी वानर वीर धराशायी हो गये ॥

उपालम्भभयाच्चैव नासि वीर मया हतः ।
कृतकर्मपरिश्रान्तो विश्रान्तः पश्य मे बलम् ॥ ७९ ॥

'वीर ! अबतक जो मैंने तुम्हारा वध नहीं किया है, उसमें कारण है लोगोंके उपालम्भका भय—लोग यह कहकर मेरी निन्दा करते कि कुम्भ बहुत-से वीरोंके साथ युद्ध करके थक गया था, उस दशामें सुग्रीवने उसे मारा है; अतः अब तुम कुछ विश्राम कर लो, फिर मेरा बल देखो' ॥ ७९ ॥

तेन सुग्रीववाक्येन सावमानेन मानितः ।
अग्नेराज्यहुतस्येव तेजस्तस्याभ्यवर्धत ॥ ८० ॥

सुग्रीवके इस अपमानयुक्त वचनद्वारा सम्मानित हो घीकी आहुति पाये हुए अग्निदेवके समान कुम्भका तेज बढ़ गया ॥ ८० ॥

ततः कुम्भस्तु सुग्रीवं बाहुभ्यां जगृहे तदा ।
गजाविवातीतमदौ निःश्वसन्तौ मुहुर्मुहुः ॥ ८१ ॥
अन्योन्यगात्रग्रथितौ घर्षन्तावितरेतरम् ।
सधूमां मुखतो ज्वालां विसृजन्तौ परिश्रमात् ॥ ८२ ॥

फिर तो कुम्भने सुग्रीवको अपनी दोनों भुजाओंसे पकड़ लिया । तत्पश्चात् वे दोनों वीर मदमत्त गजराजोंकी भाँति बारंबार लंबी साँस खींचते हुए एक-दूसरेसे गुँथ गये । दोनों दोनोंको रगड़ने लगे और दोनों ही अपने मुखसे परिश्रमके कारण धूमयुक्त आगकी ज्वाला-सी उगलने लगे ॥ ८१-८२ ॥

तयोः पादाभिघाताच्च निमग्ना चाभवन्मही ।
व्याघूर्णिततरङ्गश्च चुक्षुभे वरुणालयः ॥ ८३ ॥

उन दोनोंके पैरोंके आघातसे धरती नीचेको धँसने लगी । झूमती हुई तरङ्गोंसे युक्त वरुणालय समुद्रमें ज्वार-सा आ गया ॥ ८३ ॥

ततः कुम्भं समुत्क्षिप्य सुग्रीवो लवणाम्भसि ।
पातयामास वेगेन दर्शयन्नुदधेस्तलम् ॥ ८४ ॥

इतनेहीमें सुग्रीवने कुम्भको उठाकर बड़े वेगसे समुद्रके जलमें फेंक दिया । उसमें गिरते ही कुम्भको समुद्रका निचला तल देखना पड़ा ॥ ८४ ॥

ततः कुम्भनिपातेन जलराशिः समुत्थितः ।
विन्ध्यमन्दरसंकाशो विससर्प समन्ततः ॥ ८५ ॥

कुम्भके गिरनेसे बड़ी भारी जलराशि ऊपरको उठी, जो विन्ध्य और मन्दराचलके समान जान पड़ी और सब ओर फैल गयी ॥ ८५ ॥

ततः कुम्भः समुत्पत्य सुग्रीवमभिपात्य च ।
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥ ८६ ॥

इसके बाद कुम्भ पुनः उछलकर बाहर आया और क्रोधपूर्वक सुग्रीवको पटककर उनकी छातीपर उसने वज्रके समान मुक्केसे प्रहार किया ॥ ८६ ॥

तस्य वर्म च पुस्फोट संजज्ञे चापि शोणितम् ।
तस्य मुष्टिर्महावेगः प्रतिजघ्नेऽस्थिमण्डले ॥ ८७ ॥

इससे वानरराजका कवच टूट गया और छातीसे खून बहने लगा । उसका महान् वेगशाली मुक्का सुग्रीवकी हड्डियोंपर बड़े वेगसे लगा था ॥ ८७ ॥

तस्य वेगेन तत्रासीत् तेजः प्रज्वलितं महत् ।
वज्रनिष्पेषसंजाता ज्वाला मेरोर्यथा गिरेः ॥ ८८ ॥

उसके वेगसे वहाँ बड़ी भारी ज्वाला जल उठी थी, मानो मेरु पर्वतके शिखरपर वज्रके आघातसे आग प्रकट हो गयी हो ॥ ८८ ॥

स तत्राभिहतस्तेन सुग्रीवो वानरर्षभः ।
मुष्टिं संवर्तयामास वज्रकल्पं महाबलः ॥ ८९ ॥
अर्चिःसहस्रविकचरविमण्डलवर्चसम् ।
स मुष्टिं पातयामास कुम्भस्योरसि वीर्यवान् ॥ ९० ॥

कुम्भके द्वारा इस प्रकार आहत होनेपर वानरराज महाबली परम पराक्रमी सुग्रीवने भी अपना वज्रतुल्य मुक्का सँभाला और कुम्भकी छातीमें बलपूर्वक आघात किया । उस मुक्केका तेज सहस्रों किरणोंसे प्रकाशित सूर्यमण्डलके समान उद्दीप्त हो रहा था ॥ ८९-९० ॥

स तु तेन प्रहारेण विह्वलो भृशपीडितः ।
निपपात तदा कुम्भो गतार्चिरिव पावकः ॥ ९१ ॥

उस प्रहारसे कुम्भको बड़ी पीड़ा हुई । वह व्याकुल हो बुझी हुई आगकी तरह गिर पड़ा ॥ ९१ ॥

मुष्टिनाभिहतस्तेन निपपाताशु राक्षसः ।
लोहिताङ्ग इवाकाशाद् दीप्तरश्मिर्यदृच्छया ॥ ९२ ॥

सुग्रीवके मुक्केकी चोट खाकर वह राक्षस आकाशसे अकस्मात् गिरनेवाले मंगलकी भाँति तत्काल धराशायी हो गया ॥ ९२ ॥

कुम्भस्य पततो रूपं भग्नस्योरसि मुष्टिना ।
बभौ रुद्राभिपन्नस्य यथा रूपं गवां पतेः ॥ ९३ ॥

मुक्केकी मारसे जिसका वक्षःस्थल चूर-चूर हो गया था, वह कुम्भ जब नीचे गिरने लगा, तब उसका रूप रुद्रदेवसे अभिभूत हुए सूर्यदेवके समान जान पड़ा ॥ ९३ ॥

तस्मिन् हते भीमपराक्रमेण
प्लवंगमानामृषभेण युद्धे ।
मही सशैला सवना चचाल
भयं च रक्षांस्यधिकं विवेश ॥ ९४ ॥

भयंकर पराक्रमी वानरराज सुग्रीवके द्वारा युद्धमें उस निशाचरके मारे जानेपर पर्वत और वनोंसहित सारी पृथ्वी काँपने लगी और राक्षसोंके हृदयमें अत्यन्त भय समा गया ॥ ९४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें छिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः

हनुमान्‌के द्वारा निकुम्भका वध

निकुम्भो भ्रातरं दृष्ट्वा सुग्रीवेण निपातितम् ।
प्रदहन्निव कोपेन वानरेन्द्रमुदैक्षत ॥ १ ॥

सुग्रीवके द्वारा अपने भाई कुम्भको मारा गया देख निकुम्भने वानरराजकी ओर इस प्रकार देखा, मानो उन्हें अपने क्रोधसे दग्ध कर देगा ॥ १ ॥

ततः स्रग्दामसंनद्धं दत्तपञ्चाङ्गुलं शुभम् ।
आददे परिघं धीरो महेन्द्रशिखरोपमम् ॥ २ ॥

उस धीर-वीरने महेन्द्र पर्वतके शिखर-जैसा एक सुन्दर एवं विशाल परिघ हाथमें लिया, जो फूलोंकी लड़ियोंसे अलंकृत था और जिसमें पाँच-पाँच अंगुलके चौड़े लोहेके पत्र जड़े गये थे ॥ २ ॥

हेमपट्टपरिक्षिप्तं वज्रविद्रुमभूषितम् ।
यमदण्डोपमं भीमं रक्षसां भयनाशनम् ॥ ३ ॥

उस परिघमें सोनेके पत्र भी जड़े थे और उसे हीरे तथा मूँगोंसे भी विभूषित किया गया था। वह परिघ यमदण्डके समान भयंकर तथा राक्षसोंके भयका नाश करनेवाला था ॥ ३ ॥

तमाविध्य महातेजाः शक्रध्वजसमौजसम् ।
निननाद विवृत्तास्यो निकुम्भो भीमविक्रमः ॥ ४ ॥

उस इन्द्रध्वजके समान तेजस्वी परिघको घुमाता हुआ वह महातेजस्वी भयानक पराक्रमी राक्षस निकुम्भ मुँह फैलाकर जोर-जोरसे गर्जना करने लगा ॥ ४ ॥

उरोगतेन निष्केण भुजस्थैरङ्गदैरपि ।
कुण्डलाभ्यां च चित्राभ्यां मालया च सचित्रया ॥ ५ ॥
निकुम्भो भूषणैर्भाति तेन स्म परिघेण च ।
यथेन्द्रधनुषा मेघः सविद्युत्स्तनयित्नुमान् ॥ ६ ॥

उसके वक्षःस्थलमें सोनेका पदक था। भुजाओंमें बाजूबंद शोभा देते थे। कानोंमें विचित्र कुण्डल झलमला रहे थे और गलेमें विचित्र माला जगमगा रही थी। इन सब आभूषणोंसे और उस परिघसे भी निकुम्भकी वैसी ही शोभा हो रही थी, जैसे विद्युत् और गर्जनासे युक्त मेघ इन्द्र-धनुषसे सुशोभित होता है ॥ ५-६ ॥

परिघाग्रेण पुस्फोट वातग्रन्थिर्महात्मनः ।
प्रजज्वाल सघोषश्च विधूम इव पावकः ॥ ७ ॥

उस महाकाय राक्षसके परिघके अग्रभागसे टकराकर प्रवह-आवह आदि सात महावायुओंकी संधि टूट-फूट गयी तथा वह भारी गड़गड़ाहटके साथ धूमरहित अग्निकी भाँति प्रज्वलित हो उठा ॥ ७ ॥

नगर्या विटपावत्या गन्धर्वभवनोत्तमैः ।
सताराग्रणनक्षत्रं सचन्द्रसमहाग्रहम् ।
निकुम्भपरिघाघूर्णं भ्रमतीव नभस्थलम् ॥ ८ ॥

निकुम्भके परिघ घुमानेसे विटपावती नगरी (अलकापुरी), गन्धर्वोंके उत्तम भवन, तारे, नक्षत्र, चन्द्रमा तथा बड़े-बड़े ग्रहोंके साथ समस्त आकाशमण्डल घूमता-सा प्रतीत होता था ॥ ८ ॥

दुरासदश्च संजज्ञे परिघाभरणप्रभः ।
क्रोधेन्धनो निकुम्भाग्निर्युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥ ९ ॥

परिघ और आभूषण ही जिसकी प्रभा थे, क्रोध ही जिसके लिये ईंधनका काम कर रहा था, वह निकुम्भ नामक अग्नि प्रलयकालकी आगके समान उठी और अत्यन्त दुर्जय हो गयी ॥ ९ ॥

राक्षसा वानराश्चापि न शेकुः स्पन्दितुं भयात् ।
हनुमांस्तु विवृत्योरस्तस्थौ प्रमुखतो बली ॥ १० ॥

उस समय राक्षस और वानर भयके मारे हिल-डुल भी न सके। केवल महाबली हनुमान् अपनी छाती खोलकर उस राक्षसके सामने खड़े हो गये ॥ १० ॥

परिघोपमबाहुस्तु परिघं भास्करप्रभम् ।
बली बलवतस्तस्य पातयामास वक्षसि ॥ ११ ॥

निकुम्भकी भुजाएँ परिघके समान थीं। उस महाबली राक्षसने उस सूर्यतुल्य तेजस्वी परिघको बलवान् वीर हनुमान्‌जीकी छातीपर दे मारा ॥ ११ ॥

स्थिरे तस्योरसि व्यूढे परिघः शतधा कृतः ।
विकीर्यमाणः सहसा उल्काशतमिवाम्बरे ॥ १२ ॥

हनुमान्‌जीकी छाती बड़ी सुदृढ़ और विशाल थी। उससे टकराते ही उस परिघके सहसा सैकड़ों टुकड़े होकर बिखर गये, मानो आकाशमें सौ-सौ उल्काएँ एक साथ गिरी हों ॥ १२ ॥

स तु तेन प्रहारेण न चचाल महाकपिः ।
परिघेण समाधूतो यथा भूमिचलेऽचलः ॥ १३ ॥

महाकपि हनुमान्‌जी परिघसे आहत होनेपर भी उस प्रहारसे विचलित नहीं हुए, जैसे भूकम्प होनेपर भी पर्वत नहीं गिरता है ॥ १३ ॥

स तथाभिहतस्तेन हनूमान् प्लवगोत्तमः ।
मुष्टिं संवर्तयामास वलेनातिमहावलः ॥ १४ ॥

अत्यन्त महान् बलशाली वानरशिरोमणि हनुमान्‌जीने इस प्रकार परिघकी मार खाकर बलपूर्वक अपनी मुट्ठी बाँधी ॥ १४ ॥

तमुद्यम्य महातेजा निकुम्भोरसि वीर्यवान् ।
अभिचिक्षेप वेगेन वेगवान् वायुविक्रमः ॥ १५ ॥

वे महान् तेजस्वी, पराक्रमी, वेगवान् और वायुके समान बल-विक्रमसे सम्पन्न थे। उन्होंने मुक्का तानकर बड़े वेगसे निकुम्भकी छातीपर मारा ॥ १५ ॥

तत्र पुस्फोट वर्मास्य प्रसुस्राव च शोणितम्।
मुष्टिना तेन संजज्ञे मेघे विद्युदिवोत्थिता ॥ १६ ॥

उस मुक्केकी चोटसे वहाँ उसका कवच फट गया और छातीसे रक्त बहने लगा; मानो मेघमें बिजली चमक उठी हो ॥ १६ ॥

स तु तेन प्रहारेण निकुम्भो विचचाल च।
स्वस्थश्चापि निजग्राह हनूमन्तं महाबलम् ॥ १७ ॥

उस प्रहारसे निकुम्भ विचलित हो उठा; फिर थोड़ी ही देरमें सँभलकर उसने महाबली हनुमान्जीको पकड़ लिया ॥

चुक्रुशुश्च तदा संख्ये भीमं लङ्कानिवासिनः।
निकुम्भेनोद्यतं दृष्ट्वा हनूमन्तं महाबलम् ॥ १८ ॥

उस समय युद्धस्थलमें निकुम्भके द्वारा महाबली हनुमान्जीका अपहरण होता देख लङ्कानिवासी राक्षस भयानक स्वरमें विजयसूचक गर्जना करने लगे ॥ १८ ॥

स तथा ह्रियमाणोऽपि हनूमांस्तेन रक्षसा।
आजघानानिलसुतो वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥ १९ ॥

उस राक्षसके द्वारा इस प्रकार अपहृत होनेपर भी पवनपुत्र हनुमान्जीने अपने वज्रतुल्य मुक्केसे उसपर प्रहार किया ॥१९॥

आत्मानं मोक्षयित्वाथ क्षितावभ्यवपद्यत।
हनूमानुन्ममाथाशु निकुम्भं मारुतात्मजः ॥ २० ॥

फिर वे अपनेको उसके चंगुलसे छुड़ाकर पृथ्वीपर खड़े हो गये। तदनन्तर वायुपुत्र हनुमान्ने तत्काल ही निकुम्भको पृथ्वीपर दे मारा ॥ २० ॥

निक्षिप्य परमायत्तो निकुम्भं निष्पिपेष च।
उत्पत्य चास्य वेगेन पपातोरसि वेगवान् ॥ २१ ॥
परिगृह्य च बाहुभ्यां परिवृत्य शिरोधराम्।
उत्पाटयामास शिरो भैरवं नदतो महत् ॥ २२ ॥

इसके बाद उन वेगशाली वीरने बड़े प्रयाससे निकुम्भको पृथ्वीपर गिराया और खूब रगड़ा। फिर वेगसे उछलकर वे उसकी छातीपर चढ़ बैठे और दोनों हाथोंसे गला मरोड़कर उन्होंने उसके मस्तकको उखाड़ लिया। गला मरोड़ते समय वह राक्षस भयंकर आर्तनाद कर रहा था ॥ २१-२२ ॥

अथ निनदति सादिते निकुम्भे
पवनसुतेन रणे बभूव युद्धम्।
दशरथसुतराक्षसेन्द्रसून्वो-
र्भृशतरमागतरोषयोः सुभीमम् ॥ २३ ॥

रणभूमिमें वायुपुत्र हनुमान्जीके द्वारा गर्जना करनेवाले निकुम्भके मारे जानेपर एक दूसरेपर अत्यन्त कुपित हुए श्रीराम और मकराक्षमें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ ॥ २३ ॥

व्यपेते तु जीवे निकुम्भस्य हृष्टा
विनेदुः प्लवंगा दिशः सस्वनुश्च।
चचालेव चोर्वी पपातेव सा द्यौ-
र्बलं राक्षसानां भयं चाविवेश ॥ २४ ॥

निकुम्भके प्राणत्याग करनेपर सभी वानर बड़े हर्षके साथ गर्जने लगे। सम्पूर्ण दिशाएँ कोलाहलसे भर गयीं। पृथ्वी चलती-सी जान पड़ी, आकाश मानो फट पड़ा हो, ऐसा प्रतीत होने लगा तथा राक्षसोंकी सेनामें भय समा गया ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सतहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः

रावणकी आज्ञासे मकराक्षका युद्धके लिये प्रस्थान

निकुम्भं निहतं श्रुत्वा कुम्भं च विनिपातितम्।
रावणः परमामर्षी प्रजज्वालानलो यथा ॥ १ ॥

निकुम्भ और कुम्भको मारा गया सुनकर रावणको बड़ा क्रोध हुआ। वह आगके समान जल उठा ॥ १ ॥

नैर्ऋतः क्रोधशोकाभ्यां द्वाभ्यां तु परिमूर्च्छितः।
खरपुत्रं विशालाक्षं मकराक्षमचोदयत् ॥ २ ॥

रावणने क्रोध और शोक दोनोंसे व्याकुल हो विशाल नेत्रोंवाले खरपुत्र मकराक्षसे कहा—॥ २ ॥

गच्छ पुत्र मयाऽऽज्ञप्तो बलेनाभिसमन्वितः।
राघवं लक्ष्मणं चैव जहि तौ सवनौकसौ ॥ ३ ॥

'बेटा! मेरी आज्ञासे विशाल सेनाके साथ जाओ और बंदरोंसहित उन दोनों भाई राम तथा लक्ष्मणको मार डालो' ॥ ३ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा शूरमानी खरात्मजः।
बाढमित्यब्रवीद्धृष्टो मकराक्षो निशाचरम् ॥ ४ ॥
सोऽभिवाद्य दशग्रीवं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्।
निर्जगाम गृहाच्छुभ्राद् रावणस्याज्ञया बली ॥ ५ ॥

रावणकी यह बात सुनकर अपनेको शूरवीर माननेवाले खरपुत्र मकराक्षने हर्षपूर्वक कहा—'बहुत अच्छा'। फिर उस बली वीरने निशाचरराज रावणको प्रणाम करके उसकी

परिक्रमा की और उसकी आज्ञा लेकर वह उज्ज्वल राजभवनसे बाहर निकला ॥ ४-५ ॥

समीपस्थं बलाध्यक्षं खरपुत्रोऽब्रवीद् वचः ।
रथमानीयतां तूर्णं सैन्यं त्वानीयतां त्वरात् ॥ ६ ॥

पास ही सेनाध्यक्ष खड़ा था । खरके पुत्रने उससे कहा—'सेनापते ! शीघ्र रथ ले आओ और तुरंत ही सेनाको भी बुलवाओ' ॥ ६ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा बलाध्यक्षो निशाचरः ।
स्यन्दनं च बलं चैव समीपं प्रत्यपादयत् ॥ ७ ॥

मकराक्षकी यह बात सुनकर निशाचर सेनापतिने रथ और सेना उसके पास लाकर खड़ी कर दी ॥ ७ ॥

प्रदक्षिणं रथं कृत्वा समारुह्य निशाचरः ।
सूतं संचोदयामास शीघ्रं वै रथमावह ॥ ८ ॥

तब मकराक्षने रथकी प्रदक्षिणा की और उसपर आरूढ़ होकर सारथिको आदेश दिया—'रथको शीघ्रतापूर्वक ले चलो' ॥ ८ ॥

अथ तान् राक्षसान् सर्वान् मकराक्षोऽब्रवीदिदम् ।
यूयं सर्वे प्रयुध्यध्वं पुरस्तान्मम राक्षसाः ॥ ९ ॥

इसके बाद मकराक्षने समस्त राक्षसोंसे कहा—'निशाचरो ! तुमलोग मेरे आगे रहकर युद्ध करो ॥ ९ ॥

अहं राक्षसराजेन रावणेन महात्मना ।
आज्ञप्तः समरे हन्तुं तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥ १० ॥

'मुझे महामना राक्षसराज रावणने समरभूमिमें राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको मारनेकी आज्ञा दी है ॥ १० ॥

अद्य रामं वधिष्यामि लक्ष्मणं च निशाचराः ।
शाखामृगं च सुग्रीवं वानरांश्च शरोत्तमैः ॥ ११ ॥

'राक्षसो ! आज मैं राम, लक्ष्मण, वानरराज सुग्रीव तथा दूसरे-दूसरे वानरोंका अपने उत्तम बाणोंद्वारा वध करूँगा ॥

अद्य शूलनिपातैश्च वानराणां महाचमूम् ।
प्रदहिष्यामि सम्प्राप्तां शुष्केन्धनमिवानलः ॥ १२ ॥

'जैसे आग सूखी लकड़ीको जला देती है, उसी प्रकार आज मैं शूलोंकी मारसे सामने आयी हुई वानरोंकी विशाल वाहिनीको दग्ध कर डालूँगा' ॥ १२ ॥

मकराक्षस्य तच्छ्रुत्वा वचनं ते निशाचराः ।
सर्वे नानायुधोपेता बलवन्तः समाहिताः ॥ १३ ॥

मकराक्षका यह वचन सुनकर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न वे समस्त बलवान् निशाचर युद्धके लिये सावधान हो गये ॥ १३ ॥

ते कामरूपिणः क्रूरा दंष्ट्रिणः पिङ्गलेक्षणाः ।
मातंगा इव नर्दन्तो ध्वस्तकेशा भयावहाः ॥ १४ ॥

परिवार्य महाकाया महाकायं खरात्मजम् ।
अभिजग्मुस्ततो हृष्टाश्चालयन्तो वसुन्धराम् ॥ १५ ॥

वे सब-के-सब इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले और क्रूर स्वभावके थे । उनकी दाढ़ें बड़ी-बड़ी और आँखें भूरी थीं । उनके केश सब ओर बिखरे हुए थे; इसलिये वे बड़े भयानक जान पड़ते थे । हाथीके समान चिग्घाड़ते हुए वे विशालकाय निशाचर खरके पुत्र महाकाय मकराक्षको चारों ओरसे घेरकर पृथ्वीको कँपाते हुए बड़े हर्षके साथ युद्धभूमिकी ओर चले ॥ १४-१५ ॥

शङ्खभेरीसहस्राणामाहतानां समन्ततः ।
क्ष्वेलितास्फोटितानां च तत्र शब्दो महानभूत् ॥ १६ ॥

उस समय चारों ओर सहस्रों शङ्खोंकी ध्वनि हो रही थी । हजारों डंके पीटे जाते थे । योद्धाओंके गर्जने और ताल ठोंकनेकी आवाज भी उनके साथ मिली हुई थी । इस प्रकार वहाँ बड़ा भारी कोलाहल मच गया था ॥ १६ ॥

प्रभ्रष्टोऽथ करात् तस्य प्रतोदः सारथेस्तदा ।
पपात सहसा दैवाद् ध्वजस्तस्य तु रक्षसः ॥ १७ ॥

उस समय मकराक्षके सारथिके हाथसे चाबुक छूटकर नीचे गिर पड़ा और दैववश उस राक्षसका ध्वज भी सहसा धराशायी हो गया ॥ १७ ॥

तस्य ते रथसंयुक्ता हया विक्रमवर्जिताः ।
चरणैराकुलैर्गत्वा दीनाः सास्रमुखा ययुः ॥ १८ ॥

उसके रथमें जुते हुए घोड़े विक्रमरहित हो गये—वे अपनी नाना प्रकारकी विचित्र चालें भूल गये । पहले तो कुछ दूरतक आकुल—लड़खड़ाते हुए पैरोंसे गये; फिर ठीकसे चलने लगे । परंतु भीतरसे वे बहुत दुखी थे । उनके मुखपर आँसूकी धारा बह रही थी ॥ १८ ॥

प्रवाति पवनस्तस्मिन् सपांसुः खरदारुणः ।
निर्याणे तस्य रौद्रस्य मकराक्षस्य दुर्मतेः ॥ १९ ॥

दुष्ट बुद्धिवाले उस भयंकर राक्षस मकराक्षकी यात्राके समय धूलसे भरी हुई दारुण एवं प्रचण्ड वायु चलने लगी ॥ १९ ॥

तानि दृष्ट्वा निमित्तानि राक्षसा वीर्यवत्तमाः ।
अचिन्त्य निर्गताः सर्वे यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥ २० ॥

उन सब अपशकुनोंको देखकर भी वे महाबलशाली राक्षस उनकी कोई परवा न करके सब-के-सब उस स्थानपर गये, जहाँ श्रीराम और लक्ष्मण विद्यमान थे ॥ २० ॥

घनगजमहिषाङ्गतुल्यवर्णाः
समरमुखेष्वसकृद्गदासिभिन्नाः ।
अहमहमिति युद्धकौशलास्ते
रजनिचराः परिबभ्रमुर्मुहुस्ते ॥ २१ ॥

उन राक्षसोंकी अङ्गकान्ति मेघ, हाथी और भैंसोंके समान काली थी। वे युद्धके मुहानेपर अनेक बार गदाओं और तलवारोंकी चोटसे घायल हो चुके थे। उनमें युद्धविषयक कौशल विद्यमान था। वे निशाचर 'पहले मैं युद्ध करूँगा, पहले मैं युद्ध करूँगा' ऐसा बार-बार कहते हुए वहाँ सब ओर चक्कर लगाने लगे ॥ २१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें अठहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः

श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा मकराक्षका वध

निर्गतं मकराक्षं ते दृष्ट्वा वानरपुंगवाः ।
आप्लुत्य सहसा सर्वे योद्धुकामा व्यवस्थिताः ॥ १ ॥

प्रधान-प्रधान वानरोंने जब देखा कि मकराक्ष नगरसे निकला आ रहा है, तब वे सब-के-सब सहसा उछलकर युद्धके लिये खड़े हो गये ॥ १ ॥

ततः प्रवृत्तं सुमहत् तद् युद्धं लोमहर्षणम् ।
निशाचरैः प्लवंगानां देवानां दानवैरिव ॥ २ ॥

फिर तो वानरोंका निशाचरोंके साथ बड़ा भारी युद्ध छिड़ गया, जो देव-दानव-संग्रामके समान रोंगटे खड़े कर देनेवाला था ॥ २ ॥

वृक्षशूलनिपातैश्च गदापरिघपातनैः ।
अन्योन्यं मर्दयन्ति स्म तदा कपिनिशाचराः ॥ ३ ॥

वानर और निशाचर वृक्ष, शूल, गदा और परिघोंकी मारसे उस समय एक दूसरेको कुचलने लगे ॥ ३ ॥

शक्तिखड्गगदाकुन्तैस्तोमरैश्च निशाचराः ।
पट्टिशैर्भिन्दिपालैश्च बाणपातैः समन्ततः ॥ ४ ॥
पाशमुद्गरदण्डैश्च निर्घातैश्चापरैस्तथा ।
कदनं कपिसिंहानां चक्रुस्ते रजनीचराः ॥ ५ ॥

निशाचरगण शक्ति, खड्ग, गदा, भाला, तोमर, पट्टिश, भिन्दिपाल, बाणप्रहार, पाश, मुद्गर, दण्ड तथा अन्य प्रकारके शस्त्रोंके आघातसे सब ओर वानरवीरोंका संहार करने लगे ॥ ४-५ ॥

बाणौघैरर्दिताश्चापि खरपुत्रेण वानराः ।
सम्भ्रान्तमनसः सर्वे दुद्रुवुर्भयपीडिताः ॥ ६ ॥

खरपुत्र मकराक्षने अपने बाणसमूहोंसे वानरोंको अत्यन्त घायल कर दिया। उनके मनमें बड़ी घबराहट हुई और वे सब-के-सब भयसे पीड़ित हो इधर-उधर भागने लगे ॥ ६ ॥

तान् दृष्ट्वा राक्षसाः सर्वे द्रवमाणान् वनौकसः ।
नेदुस्ते सिंहवद् दृप्ता राक्षसा जितकाशिनः ॥ ७ ॥

उन सब वानरोंको भागते देख विजयोल्लाससे सुशोभित होनेवाले वे समस्त राक्षस दर्पसे भरकर सिंहके समान गर्जना करने लगे ॥ ७ ॥

विद्रवत्सु तदा तेषु वानरेषु समन्ततः ।
रामस्तान् वारयामास शरवर्षेण राक्षसान् ॥ ८ ॥

वे वानर जब सब ओर भागने-पराने लगे, तब श्रीरामचन्द्रजीने बाणोंकी वर्षा करके राक्षसोंको आगे बढ़नेसे रोका ॥ ८ ॥

वारितान् राक्षसान् दृष्ट्वा मकराक्षो निशाचरः ।
कोपानलसमाविष्टो वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ९ ॥

राक्षसोंको रोका गया देख निशाचर मकराक्ष क्रोधकी आगसे जल उठा और इस प्रकार बोला— ॥ ९ ॥

तिष्ठ राम मया सार्धं द्वन्द्वयुद्धं भविष्यति ।
त्याजयिष्यामि ते प्राणान् धनुर्मुक्तैः शितैः शरैः ॥ १० ॥

'राम! ठहरो, मेरे साथ तुम्हारा द्वन्द्वयुद्ध होगा। आज अपने धनुषसे छूटे हुए पैने बाणोंद्वारा तुम्हारे प्राण हर लूँगा ॥ १० ॥

यत् तदा दण्डकारण्ये पितरं हतवान् मम ।
तदग्रतः स्वकर्मस्थं स्मृत्वा रोषोऽभिवर्धते ॥ ११ ॥

'उन दिनों दण्डकारण्यके भीतर जो तुमने मेरे पिताका वध किया था, तभीसे लेकर अबतक तुम राक्षस-वधके ही कर्ममें लगे हुए थे। इस रूपमें तुम्हारा स्मरण करके मेरा रोष बढ़ता जा रहा है ॥ ११ ॥

दह्यन्ते भृशमङ्गानि दुरात्मन् मम राघव ।
यन्मयासि न दृष्टस्त्वं तस्मिन् काले महावने ॥ १२ ॥

'दुरात्मा राघव! उस समय विशाल दण्डकारण्यमें जो तुम मुझे दिखायी नहीं दिये, इससे मेरे अङ्ग अत्यन्त रोषसे जलते रहते थे ॥ १२ ॥

दिष्ट्यासि दर्शनं राम मम त्वं प्राप्तवानिह ।
काङ्क्षितोऽसि क्षुधार्तस्य सिंहस्येवेतरो मृगः ॥ १३ ॥

'किंतु राम! सौभाग्यकी बात है, जो तुम आज यहाँ मेरी आँखोंके सामने पड़ गये। जैसे भूखसे पीड़ित हुए सिंहको दूसरे वन-जन्तुओंकी अभिलाषा होती है, उसी तरह मैं भी तुम्हें पानेकी इच्छा करता था ॥ १३ ॥

अद्य मद्बाणवेगेन प्रेतराड्विषयं गतः ।

ये त्वया निहताः शूराः सह तैश्च वसिष्यसि ॥ १४ ॥

'आज मेरे बाणोंके वेगसे यमराजके राज्यमें पहुँचकर तुम्हें उन्हीं वीर निशाचरोंके साथ निवास करना पड़ेगा, जो तुम्हारे हाथसे मारे गये हैं ॥ १४ ॥

बहुनात्र किमुक्तेन शृणु राम वचो मम ।
पश्यन्तु सकला लोकास्त्वां मां चैव रणाजिरे ॥ १५ ॥

'राम ! यहाँ बहुत कहनेसे क्या लाभ ? मेरी बात सुनो । सब लोग इस समराङ्गणमें खड़े होकर केवल तुमको और मुझको देखें—तुम्हारे और मेरे युद्धका अवलोकन करें ॥ १५ ॥

अस्त्रैर्वा गदया वापि बाहुभ्यां वा रणाजिरे । ✓
अभ्यस्तं येन वा राम वर्ततां तेन वा मृधम् ॥ १६ ॥

'राम ! तुम्हें रणभूमिमें अस्त्रोंसे, गदासे अथवा दोनों भुजाओंसे--जिससे भी अभ्यास हो, उसीके द्वारा आज तुम्हारे साथ मेरा युद्ध हो' ॥ १६ ॥

मकराक्षवचः श्रुत्वा रामो दशरथात्मजः ।
अब्रवीत् प्रहसन् वाक्यमुत्तरोत्तरवादिनम् ॥ १७ ॥

मकराक्षकी यह बात सुनकर दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम जोर-जोरसे हँसने लगे और उत्तरोत्तर बातें बनानेवाले उस राक्षससे बोले—॥ १७ ॥

कत्थसे किं वृथा रक्षो बहून्यसदृशानि ते ।
न रणे शक्यते जेतुं विना युद्धेन वाग्बलात् ॥ १८ ॥

'निशाचर ! क्यों व्यर्थ डींग हाँकता है । तेरे मुँहसे बहुत-सी ऐसी बातें निकल रही हैं, जो वीर पुरुषोंके योग्य नहीं है । संग्राममें युद्ध किये बिना कोरी बकवासके बलसे विजय नहीं प्राप्त हो सकती ॥ १८ ॥

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां त्वत्पिता च यः ।
त्रिशिरा दूषणश्चापि दण्डके निहतो मया ॥ १९ ॥
स्वाशिताश्चापि मांसेन गृध्रगोमायुवायसाः ।
भविष्यन्त्यद्य वै पाप तीक्ष्णतुण्डनखाङ्कुशाः ॥ २० ॥

'पापी राक्षस ! यह ठीक है कि दण्डकारण्यमें चौदह हजार राक्षसोंके साथ तेरे पिता खरका, त्रिशिराका और दूषणका भी मैंने वध किया था । उस समय तीखी चोंच और अङ्कुशके समान पंजेवाले बहुत-से गीधों, गीदड़ों तथा कौओंको भी उनके मांससे अच्छी तरह तृप्त किया था और अब आज वे तेरे मांससे भरपेट भोजन पायेंगे' ॥ १९-२० ॥

राघवेणैवमुक्तस्तु मकराक्षो महाबलः ।
बाणौघानमुचत् तस्मै राघवाय रणाजिरे ॥ २१ ॥

श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनेपर महाबली मकराक्षने रणभूमिमें उनके ऊपर बाण-समूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥

ताञ्छराञ्छरवर्षेण रामश्चिच्छेद नैकधा ।
निपेतुर्भुवि विच्छिन्ना रुक्मपुङ्खाः सहस्रशः ॥ २२ ॥

परंतु श्रीरामने स्वयं भी बाणोंकी बौछार करके उस राक्षसके बाण टुकड़े-टुकड़े कर डाले । वे कटे हुए सुनहरी पाँखवाले सहस्रों बाण पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २२ ॥

तद् युद्धमभवत् तत्र समेत्यान्योन्यमोजसा ।
खरराक्षसपुत्रस्य सूनोर्दशरथस्य च ॥ २३ ॥

दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम और राक्षस खरके पुत्र मकराक्ष—इन दोनोंमें एक दूसरेके निकट आकर बलपूर्वक युद्ध होने लगा ॥ २३ ॥

जीमूतयोरिवाकाशे शब्दो ज्यातलयोरिव ।
धनुर्मुक्तः स्वनोऽन्योन्यं श्रूयते च रणाजिरे ॥ २४ ॥

उन दोनोंकी प्रत्यञ्चा और हथेलीकी रगड़से धनुषके द्वारा जो टंकार-शब्द प्रकट होता था, वह उस समराङ्गणमें परस्पर मिलकर उसी तरह सुनायी देता था, जैसे आकाशमें दो मेघोंके गर्जनेकी आवाज हो रही हो ॥ २४ ॥

देवदानवगन्धर्वाः किंनराश्च महोरगाः ।
अन्तरिक्षगताः सर्वे द्रष्टुकामास्तदद्भुतम् ॥ २५ ॥

देवता, दानव, गन्धर्व, किन्नर और बड़े-बड़े नाग—ये सब-के-सब उस अद्‌भुत युद्धको देखनेके लिये अन्तरिक्षमें आकर खड़े हो गये ॥ २५ ॥

विद्धमन्योन्यगात्रेषु द्विगुणं वर्धते बलम् ।
कृतप्रतिकृतान्योन्यं कुरुतां तौ रणाजिरे ॥ २६ ॥

दोनोंके शरीर बाणोंसे बिंध गये वे; फिर भी उनका बल दुगुना बढ़ता जाता था । वे दोनों संग्रामभूमिमें एक-दूसरेके अस्त्रोंको काटते हुए लड़ रहे थे ॥ २६ ॥

राममुक्तांस्तु बाणौघान् राक्षसस्त्वच्छिनद् रणे ।
रक्षोमुक्तांस्तु रामो वै नैकधा प्राच्छिनच्छरैः ॥२७॥

श्रीरामचन्द्रजीके छोड़े हुए बाण-समूहोंको वह राक्षस रणभूमिमें काट डालता था और राक्षसके चलाये हुए सायकोंको श्रीरामचन्द्रजी अपने बाणोंद्वारा टूक-टूक कर डालते थे ॥

बाणौघवितताः सर्वा दिशश्च प्रदिशस्तथा ।
संछन्ना वसुधा चैव समन्तान्न प्रकाशते ॥ २८ ॥

सम्पूर्ण दिशा और विदिशाएँ बाण-समूहोंसे आच्छादित हो गयी थीं तथा सारी पृथ्वी ढक गयी थी । चारों ओर कुछ भी दिखायी नहीं देता था ॥ २८ ॥

ततः क्रुद्धो महाबाहुर्धनुश्चिच्छेद संयुगे ।
अष्टाभिरथ नाराचैः सूतं विव्याध राघवः ॥ २९ ॥

तदनन्तर महाबाहु श्रीरामचन्द्रजीने क्रोधमें भरकर उस राक्षसके धनुषको युद्धभूमिमें काट दिया और आठ नाराचोंद्वारा उसके सारथिको भी पीट दिया ॥ २९ ॥

भित्त्वा रथं शरै रामो हत्वा अश्वानपातयत् ।

विरथो वसुधास्थः स मकराक्षो निशाचरः ॥ ३० ॥

फिर अनेक बाणोंसे रथको छिन्न-भिन्न करके श्रीरामने घोड़ोंको भी मार गिराया। रथहीन हो जानेपर निशाचर मकराक्ष भूमिपर खड़ा हो गया ॥ ३० ॥

तत्तिष्ठद् वसुधां रक्षः शूलं जग्राह पाणिना ।
त्रासनं सर्वभूतानां युगान्ताग्निसमप्रभम् ॥ ३१ ॥

पृथ्वीपर खड़े हुए उस राक्षसने शूल हाथमें लिया, जो प्रलयकालकी अग्निके समान दीप्तिमान् तथा समस्त प्राणियोंको भयभीत करनेवाला था ॥ ३१ ॥

दुरवापं महच्छूलं रुद्रदत्तं भयंकरम् ।
जाज्वल्यमानमाकाशे संहारास्त्रमिवापरम् ॥ ३२ ॥

वह परम दुर्लभ और महान् शूल भगवान् शंकरका दिया हुआ था, जो बहुत ही भयंकर था। वह दूसरे संहारास्त्रकी भाँति आकाशमें प्रज्वलित हो उठा ॥ ३२ ॥

यं दृष्ट्वा देवताः सर्वा भयार्ता विद्रुता दिशः ।
विभ्राम्य च महच्छूलं प्रज्वलन्तं निशाचरः ॥ ३३ ॥
स क्रोधात् प्राहिणोत् तस्मै राघवाय महाहवे ।

उसे देखकर सम्पूर्ण देवता भयसे पीड़ित हो सब दिशाओंमें भाग गये। उस निशाचरने प्रज्वलित होते हुए उस महान् शूलको घुमाकर महात्मा श्रीरघुनाथजीके ऊपर क्रोधपूर्वक चलाया ॥ ३३½ ॥

तमापतन्तं ज्वलितं खरपुत्रकराच्च्युतम् ॥ ३४ ॥
बाणैश्चतुर्भिराकाशे शूलं चिच्छेद राघवः ।

खरपुत्र मकराक्षके हाथसे छूटे हुए उस प्रज्वलित शूलको अपनी ओर आते देख श्रीरामचन्द्रजीने चार बाण मारकर आकाशमें ही उसको काट डाला ॥ ३४½ ॥

स भिन्नो नैकधा शूलो दिव्यहाटकमण्डितः ।
व्यशीर्यत महोल्केव रामबाणार्दितो भुवि ॥ ३५ ॥

दिव्य सुवर्णसे विभूषित वह शूल श्रीरामके बाणोंसे खण्डित हो अनेक टुकड़ोंमें बँट गया और बड़ी भारी उल्काके समान भूतलपर बिखर गया ॥ ३५ ॥

तच्छूलं निहतं दृष्ट्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
साधु साध्विति भूतानि व्याहरन्ति नभोगताः ॥ ३६ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामके द्वारा उस शूलको खण्डित हुआ देख आकाशमें स्थित हुए सभी प्राणी उन्हें साधुवाद देने लगे ॥ ३६ ॥

तं दृष्ट्वा निहतं शूलं मकराक्षो निशाचरः ।
मुष्टिमुद्यम्य काकुत्स्थं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ३७ ॥

उस शूलके टुकड़े-टुकड़े हुए देख निशाचर मकराक्षने घूसा तानकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'अरे! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ ३७ ॥

स तं दृष्ट्वा पतन्तं तु प्रहस्य रघुनन्दनः ।
पावकास्त्रं ततो रामः संदधे तु शरासने ॥ ३८ ॥

उसे आक्रमण करते देख श्रीरामचन्द्रजीने हँसकर अपने धनुषपर आग्नेयास्त्रका संधान किया ॥ ३८ ॥

तेनास्त्रेण हतं रक्षः काकुत्स्थेन तदा रणे ।
संछिन्नहृदयं तत्र पपात च ममार च ॥ ३९ ॥

और उस अस्त्रके द्वारा उन्होंने रणभूमिमें तत्काल उस राक्षसपर प्रहार किया। बाणके आघातसे राक्षसका हृदय विदीर्ण हो गया; अतः वह गिरा और मर गया ॥ ३९ ॥

दृष्ट्वा ते राक्षसाः सर्वे मकराक्षस्य पातनम् ।
लङ्कामेव प्रधावन्त रामबाणभयार्दिताः ॥ ४० ॥

मकराक्षका धराशायी होना देख वे सब राक्षस श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंके भयसे व्याकुल हो लङ्कामें ही भाग गये ॥ ४० ॥

दशरथनृपसूनुबाणवेगै
रजनिचरं निहतं खरात्मजं तम् ।
प्रददृशुरथ देवताः प्रहृष्टा
गिरिमिव वज्रहतं यथा विकीर्णम् ॥ ४१ ॥

देवताओंने देखा, जैसे वज्रका मारा हुआ पर्वत बिखर जाता है, उसी प्रकार खरका पुत्र निशाचर मकराक्ष दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंके वेगसे मार डाला गया। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें उनासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः

रावणकी आज्ञासे इन्द्रजित्‌का घोर युद्ध तथा उसके वधके विषयमें श्रीराम और लक्ष्मणकी बातचीत

मकराक्षं हतं श्रुत्वा रावणः समितिंजयः ।
रोषेण महताविष्टो दन्तान् कटकटाय्य च ॥ १ ॥

मकराक्षको मारा गया सुनकर समरविजयी रावण महान् रोषसे भरकर दाँत पीसने लगा ॥ १ ॥

कुपितश्च तदा तत्र किं कार्यमिति चिन्तयन् ।
आदिदेशाथ संक्रुद्धो रणायेन्द्रजितं सुतम् ॥ २ ॥

कुपित हुआ वह निशाचर उस समय वहाँ इस चिन्तामें पड़ गया कि अब क्या करना चाहिये। उसने अत्यन्त क्रोधसे

भरकर अपने पुत्र इन्द्रजित्को युद्धके लिये जानेकी आज्ञा दी॥

जहि वीर महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
अदृश्यो दृश्यमानो वा सर्वथा त्वं बलाधिकः॥ ३॥

वह बोला—'वीर! तुम महापराक्रमी राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको छिपकर या प्रत्यक्षरूपसे मार डालो; क्योंकि तुम बलमें सर्वथा बढ़े-चढ़े हो॥ ३॥

त्वमप्रतिमकर्माणमिन्द्रं जयसि संयुगे।
किं पुनर्मानुषौ दृष्ट्वा न वधिष्यसि संयुगे॥ ४॥

'जिसके पराक्रमकी कहीं तुलना नहीं है, उस इन्द्रको भी तुम युद्धमें परास्त कर देते हो; फिर उन दो मनुष्योंको रणभूमिमें अपने सामने पाकर क्यों नहीं मार सकोगे?'॥ ४॥

तथोक्तो राक्षसेन्द्रेण प्रतिगृह्य पितुर्वचः।
यज्ञभूमौ स विधिवत् पावकं जुहुवेन्द्रजित्॥ ५॥

राक्षसराज रावणके ऐसा कहनेपर इन्द्रजित्ने पिताकी आज्ञा शिरोधार्य की और यज्ञभूमिमें जाकर अग्निकी स्थापना करके उसमें विधिपूर्वक हवन किया॥ ५॥

जुह्वतश्चापि तत्राग्निं रक्तोष्णीषधराः स्त्रियः।
आजग्मुस्तत्र सम्भ्रान्ता राक्षस्यो यत्र रावणिः॥ ६॥

उसके अग्निमें हवन करते समय लाल वस्त्र धारण किये बहुत-सी स्त्रियाँ घबरायी हुई उस स्थानपर आयीं, जहाँ वह रावणपुत्र हवन कर रहा था॥ ६॥

शस्त्राणि शरपत्राणि समिधोऽथ बिभीतकाः।
लोहितानि च वासांसि स्रुवं कार्ष्णायसं तथा॥ ७॥

उसके तलवार आदि शस्त्र ही सरपत—कुशास्तरणका काम दे रहे थे, बहेड़ेकी लकड़ी समिधा थी, लाल वस्त्र और लोहेका स्रुवा—ये सब वस्तुएँ उपयोगमें लायी गयी थीं॥७॥

सर्वतोऽग्निं समास्तीर्य शरपत्रैः सतोमरैः।
छागस्य सर्वकृष्णस्य गलं जग्राह जीवतः॥ ८॥

उसने तोमरसहित शस्त्ररूपी सरपत अग्निके चारों ओर बिछा दिये। उसके बाद काले रंगके जीवित बकरेका गला पकड़कर उसे अग्निमें होम दिया॥ ८॥

सकृद्धोमसमिद्धस्य विधूमस्य महार्चिषः।
बभूवुस्तानि लिङ्गानि विजयं दर्शयन्ति च॥ ९॥

एक ही बार किये गये उस होमसे अग्नि प्रज्वलित हो उठी, उसमें धुआँ नहीं था और बड़ी-बड़ी लपटें उठ रही थीं। उस अग्निमें वे सभी चिह्न प्रकट हुए, जो विजयकी सूचना देते थे॥

प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तहाटकसंनिभः।
हविस्तत् प्रतिजग्राह पावकः स्वयमुत्थितः॥ १०॥

उस समय तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिमान् अग्निदेवने स्वयं प्रकट होकर हविष्य ग्रहण किया। उनकी ज्वाला दक्षिणावर्त होकर निकल रही थी॥ १०॥

हुत्वाग्निं तर्पयित्वाथ देवदानवराक्षसान्।
आरुरोह रथश्रेष्ठमन्तर्धानगतं शुभम्॥ ११॥

अग्निमें आहुति दे आभिचारिक यज्ञ-सम्बन्धी देवता, दानव तथा राक्षसोंको तृप्त करनेके पश्चात् इन्द्रजित् अन्तर्धान होनेकी शक्तिसे सम्पन्न सुन्दर रथपर आरूढ़ हुआ॥ ११॥

स वाजिभिश्चतुर्भिस्तु बाणैस्तु निशितैर्युतः।
आरोपितमहाचापः शुशुभे स्यन्दनोत्तमः॥ १२॥

चार घोड़ों, पैने बाणों तथा अपने भीतर रखे हुए विशाल धनुषसे युक्त वह उत्तम रथ बड़ी शोभा पा रहा था॥

जाज्वल्यमानो वपुषा तपनीयपरिच्छदः।
मृगैश्चन्द्रार्धचन्द्रैश्च स रथः समलंकृतः॥ १३॥

उसके सब सामान सोनेके बने हुए थे, अतः वह रथ अपने स्वरूपसे प्रज्वलित-सा जान पड़ता था। उसमें मृग, अर्धचन्द्र और पूर्णचन्द्र अङ्कित किये गये थे, जिनसे उसकी सजावट आकर्षक दिखायी देती थी॥ १३॥

जाम्बूनदमहाकम्बुर्दीप्तपावकसंनिभः।
बभूवेन्द्रजितः केतुर्वैदूर्यसमलंकृतः॥ १४॥

इन्द्रजित्का ध्वज प्रज्वलित अग्निके समान दीप्तिमान् था। उसमें सोनेके बड़े-बड़े कड़े पहनाये गये थे और उसे नीलमसे अलंकृत किया गया था॥ १४॥

तेन चादित्यकल्पेन ब्रह्मास्त्रेण च पालितः।
स बभूव दुराधर्षो रावणिः सुमहाबलः॥ १५॥

उस सूर्यतुल्य तेजस्वी रथ और ब्रह्मास्त्रसे सुरक्षित हुआ वह महाबली रावणकुमार इन्द्रजित् दूसरोंके लिये दुर्जय हो गया था॥ १५॥

सोऽभिनिर्याय नगरादिन्द्रजित् समितिंजयः।
हुत्वाग्निं राक्षसैर्मन्त्रैरन्तर्धानगतोऽब्रवीत्॥ १६॥

समरविजयी इन्द्रजित् नगरसे निकलकर निर्ऋति-देवता-सम्बन्धी मन्त्रोंसे अग्निमें आहुति दे अन्तर्धानकी शक्तिसे सम्पन्न हो इस प्रकार बोला—॥ १६॥

अद्य हत्वा रणे यौ तौ मिथ्या प्रव्रजितौ वने।
जयं पित्रे प्रदास्यामि रावणाय रणेऽधिकम्॥ १७॥

'जो व्यर्थ ही वनमें आये हैं (अथवा झूठे ही तपस्वीका बाना धारण किये हुए हैं), उन दोनों भाई राम और लक्ष्मणको आज रणभूमिमें मारकर मैं अपने पिता रावणको उत्कृष्ट जय प्रदान करूँगा॥ १७॥

अद्य निर्वानरामुर्वीं हत्वा रामं च लक्ष्मणम्।
करिष्ये परमां प्रीतिमित्युक्त्वान्तरधीयत॥ १८॥

'आज राम और लक्ष्मणको मारकर पृथ्वीको वानरोंसे सूनी करके मैं पिताको परम संतोष दूँगा ।' ऐसा कहकर वह अदृश्य हो गया ॥ १८ ॥

आपपाताथ संक्रुद्धो दशग्रीवेण चोदितः ।
तीक्ष्णकार्मुकनाराचैस्तीक्ष्णस्त्विन्द्ररिपू रणे ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् दशमुख रावणसे प्रेरित हो इन्द्रशत्रु इन्द्रजित् कुपित होकर रणभूमिमें आया । उसके हाथमें धनुष और तीखे नाराच थे ॥ १९ ॥

स ददर्श महावीर्यौ नागौ त्रिशिरसाविव ।
सृजन्ताविषुजालानि वीरौ वानरमध्यगौ ॥ २० ॥

युद्धस्थलमें आकर उस निशाचरने वानरोंके बीचमें खड़े हो बाण-समूहोंकी वर्षा करते हुए महापराक्रमी वीर श्रीराम और लक्ष्मणको वहाँ (ऊँचे और मोटे कंधोंसे युक्त, होनेके कारण) तीन सिरवाले नागोंके समान देखा ॥ २० ॥

इमौ ताविति संचिन्त्य सज्यं कृत्वा च कार्मुकम् ।
संततानेषुधाराभिः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ २१ ॥

'ये ही वे दोनों हैं' ऐसा सोचकर इन्द्रजित्ने अपने धनुष-पर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और जलकी वर्षा करनेवाले मेघकी भाँति अपनी बाण-धाराओंसे सम्पूर्ण दिशाओंको भर दिया ॥

स तु वैहायसरथो युधि तौ रामलक्ष्मणौ ।
अचक्षुर्विषये तिष्ठन् विव्याध निशितैः शरैः ॥ २२ ॥

उसका रथ आकाशमें खड़ा था और श्रीराम तथा लक्ष्मण युद्धभूमिमें विराजमान थे । उन दोनोंकी दृष्टिसे ओझल होकर वह राक्षस उन्हें पैने बाणोंसे बींधने लगा ॥ २२ ॥

तौ तस्य शरवेगेन परीतौ रामलक्ष्मणौ ।
धनुषी सशरे कृत्वा दिव्यमस्त्रं प्रचक्रतुः ॥ २३ ॥

उसके बाणोंके वेगसे व्याप्त हुए श्रीराम और लक्ष्मणने भी अपने-अपने धनुषपर बाणोंका संधान करके दिव्य अस्त्र प्रकट किये ॥ २३ ॥

प्रच्छादयन्तौ गगनं शरजालैर्महाबलौ ।
तमस्त्रैः सूर्यसंकाशैर्नैव पस्पर्शतुः शरैः ॥ २४ ॥

उन महाबली बन्धुओंने सूर्यतुल्य तेजस्वी बाणसमूहोंसे आकाशको आच्छादित करके भी इन्द्रजित्का अपने बाणोंसे स्पर्श नहीं किया ॥ २४ ॥

स हि धूमान्धकारं च चक्रे प्रच्छादयन्नभः ।
दिशश्चान्तर्दधे श्रीमान् नीहारतमसा वृतः ॥ २५ ॥

उस तेजस्वी राक्षसने मायासे धूमजनित अन्धकारकी सृष्टि की और आकाशको ढक दिया । साथ ही कुहरेका अन्धकार फैलाकर दिशाओंको भी ढक दिया ॥ २५ ॥

नैव ज्यातलनिर्घोषो न च नेमिखुरस्वनः ।
शुश्रुवे चरतस्तस्य न च रूपं प्रकाशते ॥ २६ ॥

उसकी प्रत्यञ्चाकी टंकार नहीं सुनायी देती थी । पहियोंकी घर्घराहट तथा घोड़ोंकी टापकी आवाज भी कानोंमें नहीं पड़ती थी और सब ओर विचरते हुए उस राक्षसका रूप भी दृष्टि-गोचर नहीं होता था ॥ २६ ॥

घनान्धकारे तिमिरे शिलावर्षमिवाद्भुतम् ।
स ववर्ष महाबाहुर्नाराचशरवृष्टिभिः ॥ २७ ॥

महाबाहु इन्द्रजित् उस घने अन्धकारमें जहाँ दृष्टि काम नहीं करती थी, पत्थरोंकी अद्भुत वृष्टिके समान नाराच नामक बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २७ ॥

स रामं सूर्यसंकाशैः शरैर्दत्तवरैर्भृशम् ।
विव्याध समरे क्रुद्धः सर्वगात्रेषु रावणिः ॥ २८ ॥

समराङ्गणमें कुपित हुए उस रावणकुमारने वरदानमें प्राप्त हुए सूर्यतुल्य तेजस्वी बाणोंद्वारा श्रीरामचन्द्रजीके सम्पूर्ण अङ्गोंमें घाव कर दिया ॥ २८ ॥

तौ हन्यमानौ नाराचैर्धाराभिरिव पर्वतौ ।
हेमपुङ्खान् नरव्याघ्रौ तिग्मान् मुमुचतुः शरान् ॥ २९ ॥

जैसे दो पर्वतोंपर जलकी धाराएँ बरस रही हों, उसी प्रकार उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंपर नाराचोंकी मार पड़ने लगी । उसी अवस्थामें वे दोनों वीर भी सोनेके पंखोंसे सुशोभित तीखे बाण छोड़ने लगे ॥ २९ ॥

अन्तरिक्षे समासाद्य रावणिं कङ्कपत्रिणः ।
निकृत्य पतगा भूमौ पेतुस्ते शोणिताप्लुताः ॥ ३० ॥

वे कङ्कपत्रयुक्त बाण आकाशमें पहुँचकर रावणकुमार इन्द्रजित्को क्षत-विक्षत करके रक्तमें डूबे हुए पृथ्वीपर गिर पड़ते थे ॥ ३० ॥

अतिमात्रं शरौघेण दीप्यमानौ नरोत्तमौ ।
तानिषून् पततो भल्लैरनेकैर्विचकर्ततुः ॥ ३१ ॥

बाणसमूहोंसे अत्यन्त देदीप्यमान वे दोनों नरश्रेष्ठ वीर अपने ऊपर गिरते हुए सायकोंको अनेक भल्ल मारकर काट गिराते थे ॥ ३१ ॥

यतो हि ददृशाते तौ शरान् निपतिताञ्छितान् ।
ततस्तु तौ दाशरथी ससृजातेऽस्त्रमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

जिस ओरसे तीखे बाण आते दिखायी देते, उसी ओर वे दोनों भाई दशरथकुमार श्रीराम और लक्ष्मण अपने उत्तम अस्त्रोंको चलाया करते थे ॥ ३२ ॥

रावणिस्तु दिशः सर्वा रथेनातिरथोऽपतत् ।
विव्याध तौ दाशरथी लघ्वस्त्रो निशितैः शरैः ॥ ३३ ॥

अतिरथी वीर रावणपुत्र इन्द्रजित् अपने रथके द्वारा सम्पूर्ण दिशाओंमें दौड़ लगाता और बड़ी फुर्तीसे अस्त्र चलाता

था । उसने अपने पैने बाणोंद्वारा उन दोनों दशरथकुमारोंको घायल कर दिया ॥ ३३ ॥

तेनातिविद्धौ तौ वीरौ रुक्मपुङ्खैः सुसंहतैः ।
बभूवतुर्दाशरथी पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ३४ ॥

उसके सोनेके पंखवाले सुदृढ़ सायकोंद्वारा अत्यन्त घायल हुए वे दोनों वीर दशरथकुमार रक्तरञ्जित हो खिले हुए पलाशवृक्षोंके समान प्रतीत होते थे ॥ ३४ ॥

नास्य वेगगतिं कश्चिन्न च रूपं धनुः शरान् ।
न चास्य विदितं किंचित् सूर्यस्येवाभ्रसम्प्लवे ॥ ३५ ॥

इन्द्रजित्की वेगपूर्ण गति, रूप, धनुष और बाणोंको कोई देख नहीं पाता था । मेघोंकी घटामें छिपे हुए सूर्यकी भाँति उसकी कोई भी बात किसीको ज्ञात नहीं हो पाती थी ॥ ३५ ॥

तेन विद्धाश्च हरयो निहताश्च गतासवः ।
बभूवुः शतशस्तत्र पतिता धरणीतले ॥ ३६ ॥

उसके द्वारा घायल और आहत होकर कितने ही वानर अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठे तथा सैकड़ों योद्धा मरकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३६ ॥

लक्ष्मणस्तु ततः क्रुद्धो भ्रातरं वाक्यमब्रवीत् ।
✓ **ब्राह्ममस्त्रं प्रयोक्ष्यामि वधार्थं सर्वरक्षसाम् ॥ ३७ ॥**

तब लक्ष्मणको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने अपने भाईसे कहा—'आर्य ! अब मैं समस्त राक्षसोंके संहारके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करूँगा' ॥ ३७ ॥

तमुवाच ततो रामो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।
✓ **नैकस्य हेतो रक्षांसि पृथिव्यां हन्तुमर्हसि ॥ ३८ ॥**

उनकी यह बात सुनकर श्रीरामने शुभलक्षणसम्पन्न लक्ष्मणसे कहा—'भाई ! एकके कारण भूमण्डलके समस्त राक्षसोंका वध करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है ॥ ३८ ॥

अयुध्यमानं प्रच्छन्नं प्राञ्जलिं शरणागतम् ।
पलायमानं मत्तं वा न हन्तुं त्वमिहार्हसि ॥ ३९ ॥

तस्यैव तु वधे यत्नं करिष्यामि महाभुज ।
आदेक्ष्यावो महावेगानस्त्रानाशीविषोपमान् ॥ ४० ॥

'महाबाहो ! जो युद्ध न करता हो, छिपा हो, हाथ जोड़कर शरणमें आया हो, युद्धसे भाग रहा हो अथवा पागल हो गया हो, ऐसे व्यक्तिको तुम्हें नहीं मारना चाहिये । अब मैं उस इन्द्रजित्के ही वधका प्रयत्न करता हूँ । आओ, हमलोग विषैले सर्पोंकी भाँति भयंकर तथा अत्यन्त वेगशाली अस्त्रोंका प्रयोग करें ॥ ३९-४० ॥

तमेनं मायिनं क्षुद्रमन्तर्हितरथं बलात् ।
राक्षसं निहनिष्यन्ति दृष्ट्वा वानरयूथपाः ॥ ४१ ॥

'यह मायावी राक्षस बड़ा नीच है । इसने अन्तर्धान-शक्तिसे अपने रथको छिपा लिया है । यदि यह दीख जाय तो वानरयूथपति इस राक्षसको अवश्य मार डालेंगे ॥ ४१ ॥

यद्येष भूमिं विशते दिवं वा
रसातलं वापि नभस्तलं वा ।
एवं विगूढोऽपि ममास्त्रदग्धः
पतिष्यते भूमितले गतासुः ॥ ४२ ॥

'यदि यह पृथ्वीमें समा जाय, स्वर्गको चला जाय, रसातलमें प्रवेश करे अथवा आकाशमें ही स्थित रहे तथापि इस तरह छिपे होनेपर भी मेरे अस्त्रोंसे दग्ध होकर प्राणशून्य हो भूतलपर अवश्य गिरेगा' ॥ ४२ ॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं महार्थं
रघुप्रवीरः प्लवगर्षभैर्वृतः ।
वधाय रौद्रस्य नृशंसकर्मण-
स्तदा महात्मा त्वरितं निरीक्षते ॥ ४३ ॥

इस प्रकार महान् अभिप्रायसे युक्त वचन कहकर वानरशिरोमणियोंसे घिरे हुए रघुकुलके प्रमुख वीर महात्मा श्रीरामचन्द्रजी उस क्रूरकर्मा भयानक राक्षसका वध करनेके लिये तत्काल ही इधर-उधर दृष्टिपात करने लगे ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें अस्सीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः

इन्द्रजित्के द्वारा मायामयी सीताका वध

विज्ञाय तु मनस्तस्य राघवस्य महात्मनः ।
✓ **स निवृत्याहवात् तस्मात् प्रविवेश पुरं ततः ॥ १ ॥**

महात्मा रघुनाथजीके मनोभावको समझकर इन्द्रजित् युद्धसे निवृत्त हो लङ्कापुरीमें चला गया ॥ १ ॥

सोऽनुस्मृत्य वधं तेषां राक्षसानां तरस्विनाम् ।
क्रोधताम्रेक्षणः शूरो निर्जगामाथ रावणिः ॥ २ ॥

वहाँ जानेपर बलवान् राक्षसोंके वधका स्मरण हो आनेसे शूरवीर रावणकुमारकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं । वह पुनः युद्धके लिये निकला ॥ २ ॥

स पश्चिमेन द्वारेण निर्ययौ राक्षसैर्वृतः ।

इन्द्रजित् सुमहावीर्यः पौलस्त्यो देवकण्टकः ॥ ३ ॥

पुलस्त्यकुलमें उत्पन्न महापराक्रमी इन्द्रजित् देवताओंके लिये कण्टकरूप था। वह राक्षसोंकी बहुत बड़ी सेना साथ लेकर नगरके पश्चिम द्वारसे पुनः बाहर आया ॥ ३ ॥

इन्द्रजित्तु ततो दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
रणायाभ्युद्यतौ वीरौ मायां प्रादुष्करोत् तदा ॥ ४ ॥

दोनों भाई वीर श्रीराम और लक्ष्मणको युद्धके लिये उद्यत देख इन्द्रजित्ने उस समय माया प्रकट की ॥ ४ ॥

इन्द्रजित्तु रथे स्थाप्य सीतां मायामयीं तदा ।
बलेन महतावृत्य तस्या वधमरोचयत् ॥ ५ ॥

उसने मायामयी सीताका निर्माण करके उसे अपने रथपर बिठा लिया और विशाल सेनाके घेरेमें रखकर उसका वध करनेका विचार किया ॥ ५ ॥

मोहनार्थं तु सर्वेषां बुद्धिं कृत्वा सुदुर्मतिः ।
हन्तुं सीतां व्यवसितो वानराभिमुखो ययौ ॥ ६ ॥

उसकी बुद्धि बहुत ही खोटी थी। उसने सबको मोहमें डालनेका विचार करके मायासे बनी हुई सीताको मारनेका निश्चय किया। इसी अभिप्रायसे वह वानरोंके सामने गया ॥ ६ ॥

तं दृष्ट्वा त्वभिनिर्यान्तं सर्वे ते काननौकसः ।
उत्पेतुरभिसंक्रुद्धाः शिलाहस्ता युयुत्सवः ॥ ७ ॥

उसे युद्धके लिये निकलते देख सभी वानर क्रोधसे भर गये और हाथमें शिला उठाये युद्धकी इच्छासे उसके ऊपर टूट पड़े ॥ ७ ॥

हनूमान् पुरतस्तेषां जगाम कपिकुञ्जरः ।
प्रगृह्य सुमहच्छृङ्गं पर्वतस्य दुरासदम् ॥ ८ ॥

कपिकुञ्जर हनुमान्जी उन सबके आगे-आगे चले। उन्होंने पर्वतका एक बहुत बड़ा शिखर ले रक्खा था, जिसे उठाना दूसरेके लिये नितान्त कठिन था ॥ ८ ॥

स ददर्श हतानन्दां सीतामिन्द्रजितो रथे ।
एकवेणीधरां दीनामुपवासकृशाननाम् ॥ ९ ॥

उन्होंने इन्द्रजित्के रथपर सीताको देखा। उनकी खुशी मारी गयी थी। वे एक वेणी धारण किये बहुत दुखी दिखायी देती थीं और उपवास करनेके कारण उनका मुख दुबला-पतला हो गया था ॥ ९ ॥

परिक्लिष्टैकवसनाममृजां राघवप्रियाम् ।
रजोमलाभ्यामालिप्तैः सर्वगात्रैर्वरस्त्रियम् ॥ १० ॥

उनके शरीरपर एक ही मलिन वस्त्र था। श्रीरघुनाथजीकी प्रिया सीताके अङ्गोंमें उबटन आदि नहीं लगे थे। उनके सारे शरीरमें धूल और मैल भरी थी तो भी वे श्रेष्ठ और सुन्दर दिखायी देती थीं ॥ १० ॥

तां निरीक्ष्य मुहूर्तं तु मैथिलीमध्यवस्य च ।
बभूवाचिरदृष्टा हि तेन सा जनकात्मजा ॥ ११ ॥

हनुमान्जी कुछ देरतक उनकी ओर देखते रहे। अन्तमें यह निश्चय किया कि ये मिथिलेशकुमारी ही हैं। उन्होंने जनककिशोरीको थोड़े ही दिन पहले देखा था; इसलिये वे शीघ्र ही उन्हें पहचान सके थे ॥ ११ ॥

अब्रवीत् तां तु शोकार्तां निरानन्दां तपस्विनीम् ।
दृष्ट्वा रथस्थितां दीनां राक्षसेन्द्रसुताश्रिताम् ॥ १२ ॥

राक्षसराजके पुत्र इन्द्रजित्के पास रथपर बैठी हुई तपस्विनी सीता शोकसे पीड़ित, दीन एवं आनन्दशून्य हो रही थीं ॥ १२ ॥

किं समर्थितमस्येति चिन्तयन् स महाकपिः ।
सह तैर्वानरश्रेष्ठैरभ्यधावत रावणिम् ॥ १३ ॥

सीताको वहाँ देखकर महाकपि हनुमान्जी यह सोचने लगे कि आखिर इस राक्षसका अभिप्राय क्या है? फिर वे मुख्य-मुख्य वानरोंको साथ लेकर रावणपुत्रकी ओर दौड़े ॥ १३ ॥

तद् वानरबलं दृष्ट्वा रावणिः क्रोधमूर्च्छितः ।
कृत्वा विकोशं निस्त्रिंशं मूर्ध्नि सीतामकर्षयत् ॥ १४ ॥

वानरोंकी उस सेनाको अपनी ओर आती देख रावणकुमारके क्रोधकी सीमा न रही। उसने तलवारको म्यानसे बाहर निकाला और सीताके सिरके केश पकड़कर उन्हें घसीटा ॥ १४ ॥

तां स्त्रियं पश्यतां तेषां ताडयामास राक्षसः ।
क्रोशन्तीं राम रामेति मायया योजितां रथे ॥ १५ ॥

मायाद्वारा रथपर बैठायी हुई वह स्त्री 'हा राम, हा राम' कहकर चिल्ला रही थी और वह राक्षस उन सबके देखते-देखते उस स्त्रीको पीट रहा था ॥ १५ ॥

गृहीतमूर्धजां दृष्ट्वा हनूमान् दैन्यमागतः ।
दुःखजं वारि नेत्राभ्यामुत्सृजन् मारुतात्मजः ॥ १६ ॥

सीताका केश पकड़ा गया देख हनुमान्जीको बड़ा दुःख हुआ। वे पवनकुमार हनुमान् अपने नेत्रोंसे दुःखजनित आँसू बहाने लगे ॥ १६ ॥

तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं रामस्य महिषीं प्रियाम् ।
अब्रवीत् परुषं वाक्यं क्रोधाद् रक्षोधिपात्मजम् ॥ १७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी सर्वाङ्गसुन्दरी प्यारी पटरानी सीताको उस अवस्थामें देख हनुमान्जी कुपित हो उठे और उस राक्षसराजकुमार इन्द्रजित्से कठोर वाणीमें बोले— ॥ १७ ॥

दुरात्मन्नात्मनाशाय केशपक्षे परामृशः ।
ब्रह्मर्षीणां कुले जातो राक्षसीं योनिमाश्रितः ॥ १८ ॥

'दुरात्मन्! तू अपने विनाशके लिये ही तुला हुआ है,

तभी सीताके केशोंका स्पर्श कर रहा है। तेरा जन्म ब्रह्मर्षियोंके कुलमें हुआ है तथापि तूने राक्षस-जातिके स्वभावका ही आश्रय लिया है ॥ १८ ॥

धिक् त्वां पापसमाचारं यस्य ते मतिरीदृशी ।
नृशंसानार्य दुर्वृत्त क्षुद्र पापपराक्रम ।
अनार्यस्येदृशं कर्म घृणा ते नास्ति निर्घृण ॥ १९ ॥

'अरे ! तेरी बुद्धि ऐसी बिगड़ी हुई है ? धिक्कार है तुझ-जैसे पापाचारीको । नृशंस ! अनार्य ! दुराचारी तथा पापपूर्ण पराक्रम करनेवाले नीच ! तेरी यह करतूत नीच पुरुषोंके ही योग्य है। निर्दयी ! तेरे हृदयमें तनिक भी दया नहीं है ॥ १९ ॥

च्युता गृहाच्च राज्याच्च रामहस्ताच्च मैथिली ।
किं तवैषापराद्धा हि यदेनां हंसि निर्दय ॥ २० ॥

'बेचारी मिथिलेशकुमारी घरसे, राज्यसे और श्रीरामचन्द्रजीके करकमलोंके आश्रयसे भी बिछुड़ गयी हैं। निष्ठुर ! इन्होंने तेरा क्या अपराध किया है, जो तू इन्हें इतनी निर्दयतासे मार रहा है ? ॥ २० ॥

सीतां हत्वा तु न चिरं जीविष्यसि कथंचन ।
वधार्ह कर्मणा तेन मम हस्तगतो ह्यसि ॥ २१ ॥

'सीताको मारकर तू अधिक कालतक किसी तरह जीवित नहीं रह सकेगा। वधके योग्य नीच ! तू अपने पापकर्मके कारण मेरे हाथमें पड़ गया है (अब तेरा जीना कठिन है)॥

ये च स्त्रीघातिनां लोका लोकवध्यैश्च कुत्सिताः ।
इह जीवितमुत्सृज्य प्रेत्य तान् प्रति लप्स्यसे ॥ २२ ॥

'लोकमें अपने पापके कारण वधके योग्य माने गये जो चोर आदि हैं, वे भी जिन लोकोंकी निन्दा करते हैं तथा जो स्त्री-हत्यारोंको ही मिलते हैं, तू यहाँ अपने प्राणोंका परित्याग करके उन्हीं नरक-लोकोंमें जायगा' ॥ २२ ॥

इति ब्रुवाणो हनुमान् सायुधैर्हरिभिर्वृतः ।
अभ्यधावत् सुसंक्रुद्धो राक्षसेन्द्रसुतं प्रति ॥ २३ ॥

ऐसी बातें कहते हुए हनुमान्‌जी अत्यन्त कुपित हो शिला आदि आयुध धारण करनेवाले वानरवीरोंके साथ राक्षसराजकुमारपर टूट पड़े ॥ २३ ॥

आपतन्तं महावीर्यं तदनीकं वनौकसाम् ।
रक्षसां भीमकोपानामनीकेन न्यवारयत् ॥ २४ ॥

वानरोंके उस महापराक्रमी सैन्य-समुदायको आक्रमण करते देख इन्द्रजित्‌ने भयानक क्रोधवाले राक्षसोंकी सेनाके द्वारा उसे आगे बढ़नेसे रोका ॥ २४ ॥

स तां बाणसहस्रेण विक्षोभ्य हरिवाहिनीम् ।
हनूमन्तं हरिश्रेष्ठमिन्द्रजित् प्रत्युवाच ह ॥ २५ ॥

फिर सहस्रों बाणोंद्वारा उस वानरवाहिनीमें हलचल मचाकर इन्द्रजित्‌ने कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीसे कहा—॥ २५ ॥

सुग्रीवस्त्वं च रामश्च यन्निमित्तमिहागताः ।
तां वधिष्यामि वैदेहीमद्यैव तव पश्यतः ॥ २६ ॥
इमां हत्वा ततो रामं लक्ष्मणं त्वां च वानर ।
सुग्रीवं च वधिष्यामि तं चानार्यं विभीषणम् ॥ २७ ॥

'वानर ! सुग्रीव, राम और तुम सब लोग जिसके लिये यहाँ तक आये हो, उस विदेहकुमारी सीताको मैं अभी तुम्हारे देखते-देखते मार डालूँगा। इसे मारकर मैं क्रमशः राम-लक्ष्मणका, तुम्हारा, सुग्रीवका तथा उस अनार्य विभीषणका भी वध कर डालूँगा ॥ २६-२७ ॥

न हन्तव्याः स्त्रियश्चेति यद् ब्रवीषि प्लवंगम ।
पीडाकरममित्राणां यच्च कर्तव्यमेव तत् ॥ २८ ॥

'बंदर ! तुम जो यह कह रहे थे कि स्त्रियोंको मारना नहीं चाहिये, उसके उत्तरमें मुझे यह कहना है कि जिस कार्यके करनेसे शत्रुओंको अधिक कष्ट पहुँचे, वह कर्तव्य ही माना गया है ॥ २८ ॥

तमेवमुक्त्वा रुदतीं सीतां मायामयीं च ताम् ।
शितधारेण खड्गेन निजघानेन्द्रजित् स्वयम् ॥ २९ ॥

हनुमान्‌जीसे ऐसा कहकर इन्द्रजित्‌ने स्वयं ही तेज धारवाली तलवारसे उस रोती हुई मायामयी सीतापर घातक प्रहार किया ॥ २९ ॥

यज्ञोपवीतमार्गेण छिन्ना तेन तपस्विनी ।
सा पृथिव्यां पृथुश्रोणी पपात प्रियदर्शना ॥ ३० ॥

शरीरमें यज्ञोपवीत धारण करनेका जो स्थान है, उसी जगहसे उस मायामयी सीताके दो टुकड़े हो गये और वह स्थूल कटिप्रदेशवाली प्रियदर्शना तपस्विनी पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ३० ॥

तामिन्द्रजित् स्त्रियं हत्वा हनूमन्तमुवाच ह ।
मया रामस्य पश्येमां प्रियां शस्त्रनिषूदिताम् ।
एषा विशस्ता वैदेही निष्फलो वः परिश्रमः ॥ ३१ ॥

उस स्त्रीका वध करके इन्द्रजित्‌ने हनुमान्‌से कहा—'देख लो, मैंने रामकी इस प्यारी पत्नीको तलवारसे काट डाला। यह रही कटी हुई विदेह-राजकुमारी सीता। अब तुमलोगोंका युद्धके लिये परिश्रम व्यर्थ है' ॥ ३१ ॥

ततः खड्गेन महता हत्वा तामिन्द्रजित्स्वयम् ।
हृष्टः स रथमास्थाय ननाद च महास्वनम् ॥ ३२ ॥

इस प्रकार स्वयं इन्द्रजित् विशाल खड्गसे उस मायामयी स्त्रीका वध करके रथपर बैठा-बैठा बड़े हर्षके साथ जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगा ॥ ३२ ॥

वानराः शुश्रुवुः शब्दमदूरे प्रत्यवस्थिताः ।

व्यादितास्यस्य नदतस्तद्दुर्गं संश्रितस्य तु ॥ ३३ ॥

पास ही खड़े हुए वानरोंने उसकी उस गर्जनाको सुना। वह उस दुर्गम रथपर बैठकर मुँह बाये विकट सिंहनाद करता था ॥ ३३ ॥

तथा तु सीतां विनिहत्य दुर्मतिः
प्रहृष्टचेताः स बभूव रावणिः।
तं हृष्टरूपं समुदीक्ष्य वानरा
विषण्णरूपाः समभिप्रदुद्रुवुः ॥ ३४ ॥

रावणके उस पुत्रकी बुद्धि बड़ी खोटी थी। उसने इस प्रकार मायामयी सीताका वध करके अपने मनमें बड़ी प्रसन्नताका अनुभव किया। उसे हर्षसे उत्फुल्ल देख वानर विषादग्रस्त हो भाग खड़े हुए ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें इक्यासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमः सर्गः

हनुमान्‌जीके नेतृत्वमें वानरों और निशाचरोंका युद्ध, हनुमान्‌जीका श्रीरामके पास लौटना और इन्द्रजित्‌का निकुम्भिला-मन्दिरमें जाकर होम करना

श्रुत्वा तु भीमनिर्ह्रादं शक्राशनिसमस्वनम्।
वीक्ष्यमाणा दिशः सर्वा दुद्रुवुर्वानरा भृशम् ॥ १ ॥

इन्द्रके वज्रकी गड़गड़ाहटके समान उस भयंकर सिंहनादको सुनकर वानर सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखते हुए जोर-जोरसे भागने लगे ॥ १ ॥

तानुवाच ततः सर्वान् हनूमान् मारुतात्मजः।
विषण्णवदनान् दीनांस्त्रस्तान् विद्रवतः पृथक् ॥ २ ॥

उन सबको विषादग्रस्त, दीन एवं भयभीत होकर भागते देख पवनकुमार हनुमान्‌जीने कहा—॥ २ ॥

कस्माद् विषण्णवदना विद्रवध्वं प्लवंगमाः।
त्यक्तयुद्धसमुत्साहाः शूरत्वं क्व नु वो गतम् ॥ ३ ॥

'वानरो! तुम क्यों मुखपर विषाद लिये युद्ध-विषयक उत्साह छोड़कर भागे जा रहे हो? तुम्हारा वह शौर्य कहाँ चला गया? ॥ ३ ॥

पृष्ठतोऽनुव्रजध्वं मामग्रतो यान्तमाहवे।
शूरैरभिजनोपेतैरयुक्तं हि निवर्तितुम् ॥ ४ ॥

'मैं युद्धमें आगे-आगे चलता हूँ। तुम सब लोग मेरे पीछे आ जाओ। उत्तम कुलमें उत्पन्न शूरवीरोंके लिये युद्धमें पीठ दिखाना सर्वथा अनुचित है' ॥ ४ ॥

एवमुक्ताः सुसंक्रुद्धा वायुपुत्रेण धीमता।
शैलशृङ्गान् द्रुमांश्चैव जगृहुर्हृष्टमानसाः ॥ ५ ॥

बुद्धिमान् वायुपुत्रके ऐसा कहनेपर वानरोंका चित्त प्रसन्न हो गया और राक्षसोंके प्रति अत्यन्त कुपित हो उन्होंने हाथोंमें पर्वतशिखर और वृक्ष उठा लिये ॥ ५ ॥

अभिपेतुश्च गर्जन्तो राक्षसान् वानरर्षभाः।
परिवार्य हनूमन्तमन्वयुश्च महाहवे ॥ ६ ॥

वे श्रेष्ठ वानरवीर उस महासमरमें हनुमान्‌जीको चारों ओरसे घेरकर उनके पीछे-पीछे चले और जोर-जोरसे गर्जना करते हुए वहाँ राक्षसोंपर टूट पड़े ॥ ६ ॥

स तैर्वानरमुख्यैस्तु हनूमान् सर्वतो वृतः।
हुताशन इवार्चिष्मानदहच्छत्रुवाहिनीम् ॥ ७ ॥

उन श्रेष्ठ वानरोंद्वारा सब ओरसे घिरे हुए हनुमान्‌जी ज्वालामालाओंसे युक्त प्रज्वलित अग्निकी भाँति शत्रु-सेनाको दग्ध करने लगे ॥ ७ ॥

स राक्षसानां कदनं चकार सुमहाकपिः।
वृतो वानरसैन्येन कालान्तकयमोपमः ॥ ८ ॥

वानर-सैनिकोंसे घिरे हुए उन महाकपि हनुमान्‌जीने प्रलयकालके संहारकारी यमराजके समान राक्षसोंका संहार आरम्भ किया ॥ ८ ॥

स तु शोकेन चाविष्टः कोपेन महता कपिः।
हनूमान् रावणिरथे महतीं पातयच्छिलाम् ॥ ९ ॥

सीताके वधसे उनके मनमें बड़ा शोक हो रहा था और इन्द्रजित्‌का अत्याचार देखकर उनका क्रोध भी बहुत बढ़ गया था; इसलिये हनुमान्‌जीने रावणकुमारके रथपर एक बहुत बड़ी शिला फेंकी ॥ ९ ॥

तामापतन्तीं दृष्ट्वैव रथः सारथिना तदा।
विधेयाश्वसमायुक्तः विदूरमपवाहितः ॥ १० ॥

उसे अपने ऊपर आती देख सारथिने तत्काल ही अपने अधीन रहनेवाले घोड़ोंसे जुते हुए उस रथको बहुत दूर हटा दिया ॥ १० ॥

तमिन्द्रजितमप्राप्य रथस्थं सहसारथिम्।
विवेश धरणीं भित्त्वा सा शिला व्यर्थमुद्यता ॥ ११ ॥

अतः सारथिसहित रथपर बैठे हुए इन्द्रजित्‌के पासतक न पहुँचकर वह शिला धरती फोड़कर उसके भीतर समा गयी। उसके चलानेका सारा उद्योग व्यर्थ हो गया ॥ ११ ॥

पतितायां शिलायां तु व्यथिता रक्षसां चमूः ।
निपतन्त्या च शिलया राक्षसा मथिता भृशम् ॥ १२ ॥

उस शिलाके गिरनेपर उस राक्षस-सेनाको बड़ी पीड़ा हुई । गिरती हुई उस शिलाने बहुतेरे राक्षसोंको कुचल डाला॥

तमभ्यधावञ्छतशो नदन्तः काननौकसः ।
ते द्रुमांश्च महाकाया गिरिशृङ्गाणि चोद्यताः ॥ १३ ॥

तत्पश्चात् सैकड़ों विशालकाय वानर हाथोंमें वृक्ष एवं पर्वतशिखर उठाये गर्जना करते हुए इन्द्रजित्‌की ओर दौड़े ॥

क्षिपन्तीन्द्रजितं संख्ये वानरा भीमविक्रमाः ।
वृक्षशैलमहावर्षं विसृजन्तः प्लवंगमाः ॥ १४ ॥
शत्रूणां कदनं चक्रुर्नेदुश्च विविधैः स्वनैः ।

वे भयानक पराक्रमी वानर वीर युद्धस्थलमें इन्द्रजित्‌पर उन वृक्षों और पर्वत-शिखरोंको फेंकने लगे । वृक्षों और शैलशिखरोंकी बड़ी भारी वृष्टि करते हुए वे वानर शत्रुओंका संहार करने और भाँति-भाँतिकी आवाजमें गर्जने लगे ॥ १४½ ॥

वानरैस्तैर्महाभीमैर्घोररूपा निशाचराः ॥ १५ ॥
वीर्यादभिहता वृक्षैर्व्यचेष्टन्त रणक्षितौ ।

उन महाभयंकर वानरोंने वृक्षोंद्वारा घोररूपधारी निशाचरोंको बलपूर्वक मार गिराया । वे रणभूमिमें गिरकर छटपटाने लगे ॥

स सैन्यमभिवीक्ष्याथ वानरार्दितमिन्द्रजित् ॥ १६ ॥
प्रगृहीतायुधः क्रुद्धः परानभिमुखो ययौ ।

अपनी सेनाको वानरोंद्वारा पीड़ित हुई देख इन्द्रजित् क्रोधपूर्वक अस्त्र-शस्त्र लिये शत्रुओंके सामने गया ॥ १६½ ॥

स शरौघानवसृजन् स्वसैन्येनाभिसंवृतः ॥ १७ ॥
जघान कपिशार्दूलान् सुबहून् दृढविक्रमः ।
शूलैरशनिभिः खड्गैः पट्टिशैः शूलमुद्गरैः ॥ १८ ॥

अपनी सेनासे घिरे हुए उस सुदृढ़ पराक्रमी वीर निशाचरने बाण-समूहोंकी वर्षा करते हुए शूल, वज्र, तलवार, पट्टिश तथा मुद्गरोंकी मारसे बहुत-से वानरवीरोंको हताहत कर दिया ॥

ते चाप्यनुचरांस्तस्य वानरा जघ्नुराहवे ।
सुस्कन्धविटपैः शैलैः शिलाभिश्च महाबलः ॥ १९ ॥
हनूमान् कदनं चक्रे रक्षसां भीमकर्मणाम् ।

वानरोंने भी युद्धस्थलमें इन्द्रजित्‌के अनुचरोंको मारा । महाबली हनुमान्‌जी सुन्दर शाखाओं और डालियोंवाले शाल-वृक्षों तथा शिलाओंद्वारा भीमकर्मा राक्षसोंका संहार करने लगे॥

संनिवार्य परानीकमब्रवीत् तान् वनौकसः ॥ २० ॥
हनूमान् संनिवर्तध्वं न नः साध्यमिदं बलम् ।

इस तरह शत्रुसेनाका वेग रोककर हनुमान्‌जीने वानरोंसे कहा—'बन्धुओ ! अब लौट चलो, अब हमें इस सेनाके संहार करनेकी आवश्यकता नहीं रह गयी है ॥ २०½ ॥

त्यक्त्वा प्राणान् विचेष्टन्तो रामप्रियचिकीर्षवः ॥ २१ ॥
यन्निमित्तं हि युध्यामो हता सा जनकात्मजा ।

'हमलोग जिनके लिये श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय करनेकी इच्छा रखकर प्राणोंका मोह छोड़ पूरी चेष्टाके साथ युद्ध करते थे, वे जनककिशोरी सीता मारी गयीं ॥ २१½ ॥

इममर्थं हि विज्ञाप्य रामं सुग्रीवमेव च ॥ २२ ॥
तौ यत् प्रतिविधास्येते तत् करिष्यामहे वयम् ।

'अब इस बातकी सूचना भगवान् श्रीराम और सुग्रीवको दे देनी चाहिये । फिर वे दोनों इसके लिये जैसा प्रतीकार सोचेंगे, वैसा ही हम भी करेंगे' ॥ २२½ ॥

इत्युक्त्वा वानरश्रेष्ठो वारयन् सर्ववानरान् ॥ २३ ॥
शनैः शनैरसंत्रस्तः सबलः संन्यवर्तत ।

ऐसा कहकर वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जीने सब वानरोंको युद्धसे मना कर दिया और धीरे-धीरे सारी सेनाके साथ निर्भय होकर लौट आये ॥ २३½ ॥

ततः प्रेक्ष्य हनूमन्तं व्रजन्तं यत्र राघवः ॥ २४ ॥
स होतुकामो दुष्टात्मा गतश्चैत्यं निकुम्भिलाम् ।

हनुमान्‌जीको श्रीरामचन्द्रजीके पास जाते देख दुरात्मा इन्द्रजित् होम करनेकी इच्छासे निकुम्भिलादेवीके मन्दिरमें गया॥

निकुम्भिलामधिष्ठाय पावकं जुहवेन्द्रजित् ॥ २५ ॥
यज्ञभूम्यां ततो गत्वा पावकस्तेन रक्षसा ।
हूयमानः प्रजज्वाल होमशोणितभुक् तदा ॥ २६ ॥
सार्चिःपिनद्धो ददृशे होमशोणिततर्पितः ।
संध्यागत इवादित्यः सुतीव्रोऽग्निः समुत्थितः ॥ २७ ॥

निकुम्भिला-मन्दिरमें जाकर उस निशाचर इन्द्रजित्‌ने अग्निमें आहुति दी । तदनन्तर यज्ञभूमिमें भी जाकर उस राक्षसने अग्निदेवको होमके द्वारा तृप्त किया । वे होमशोणित-भोजी आभिचारिक अग्निदेवता आहुति पाते ही होम और शोणितसे तृप्त हो प्रज्वलित हो उठे और ज्वालाओंसे आवृत दिखायी देने लगे । वे तीव्र तेजवाले अग्निदेवता संध्याकालके सूर्यकी भाँति प्रकट हुए थे ॥ २५–२७ ॥

अथेन्द्रजिद् राक्षसभूतये तु
जुहाव हव्यं विधिना विधानवित् ।
दृष्ट्वा व्यतिष्ठन्त च राक्षसास्ते
महासमूहेषु नयानयज्ञाः ॥ २८ ॥

इन्द्रजित् यज्ञके विधानका ज्ञाता था । उसने समस्त राक्षसोंके अभ्युदयके लिये विधिपूर्वक हवन करना आरम्भ किया। उस होमको देखकर महायुद्धके अवसरोंपर नीति-अनीति—कर्तव्याकर्तव्यके ज्ञाता राक्षस खड़े हो गये ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें बयासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमः सर्गः

सीताके मारे जानेकी बात सुनकर श्रीरामका शोकसे मूर्च्छित होना और लक्ष्मणका उन्हें समझाते हुए पुरुषार्थके लिये उद्यत होना

राघवश्चापि विपुलं तं राक्षसवनौकसाम् ।
श्रुत्वा संग्रामनिर्घोषं जाम्बवन्तमुवाच ह ॥ १ ॥

भगवान् श्रीरामने भी राक्षसों और वानरोंके उस महान् युद्धघोषको सुनकर जाम्बवान्से कहा—॥ १ ॥

सौम्य नूनं हनुमता कृतं कर्म सुदुष्करम् ।
श्रूयते च यथा भीमः सुमहानायुधस्वनः ॥ २ ॥

'सौम्य ! निश्चय ही हनुमान्‌जीने अत्यन्त दुष्कर कर्म आरम्भ किया है; क्योंकि उनके आयुधोंका यह महाभयंकर शब्द स्पष्ट सुनायी पड़ता है ॥ २ ॥

तद् गच्छ कुरु साहाय्यं स्वबलेनाभिसंवृतः ।
क्षिप्रमृक्षपते तस्य कपिश्रेष्ठस्य युध्यतः ॥ ३ ॥

'अतः ऋक्षराज ! तुम अपनी सेनाके साथ शीघ्र जाओ और जूझते हुए कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌की सहायता करो' ॥ ३ ॥

ऋक्षराजस्तथेत्युक्त्वा स्वेनानीकेन संवृतः ।
आगच्छत् पश्चिमं द्वारं हनूमान् यत्र वानरः ॥ ४ ॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर अपनी सेनासे घिरे हुए ऋक्षराज जाम्बवान् लङ्काके पश्चिम द्वारपर, जहाँ वानरवीर हनुमान्‌जी विराजमान थे, आये ॥ ४ ॥

अथायान्तं हनूमन्तं ददर्शर्क्षपतिस्तदा ।
वानरैः कृतसंग्रामैः श्वसद्भिरभिसंवृतम् ॥ ५ ॥

वहाँ ऋक्षराजने युद्ध करके लौटे और लंबी साँस खींचते हुए वानरोंके साथ हनुमान्‌जीको आते देखा ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा पथि हनूमांश्च तदृक्षबलमुद्यतम् ।
नीलमेघनिभं भीमं संनिवार्य न्यवर्तत ॥ ६ ॥

हनुमान्‌जीने भी मार्गमें नील मेघके समान भयंकर ऋक्षसेनाको युद्धके लिये उद्यत देख उसे रोका और सबके साथ ही वे लौट आये ॥ ६ ॥

स तेन सह सैन्येन संनिकर्षं महायशाः ।
शीघ्रमागम्य रामाय दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥

महायशस्वी हनुमान्‌जी उस सेनाके साथ शीघ्र भगवान् श्रीरामके निकट आये और दुखी होकर बोले—॥ ७ ॥

समरे युध्यमानानामस्माकं प्रेक्षतां च सः ।
जघान रुदतीं सीतामिन्द्रजिद् रावणात्मजः ॥ ८ ॥

'प्रभो ! हमलोग युद्ध करनेमें लगे थे, उसी समय समरभूमिमें रावणपुत्र इन्द्रजित्‌ने हमारे देखते-देखते रोती हुई सीताको मार डाला है ॥ ८ ॥

उद्भ्रान्तचित्तस्तां दृष्ट्वा विषण्णोऽहमरिंदम ।
तदहं भवतो वृत्तं विज्ञापयितुमागतः ॥ ९ ॥

'शत्रुदमन ! उन्हें उस अवस्थामें देख मेरा चित्त उद्भ्रान्त हो उठा है । मैं विषादमें डूब गया हूँ । इसलिये मैं आपको यह समाचार बतानेके लिये आया हूँ' ॥ ९ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राघवः शोकमूर्च्छितः ।
✓**निपपात तदा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ १० ॥**

हनुमान्‌जीकी यह बात सुनकर श्रीरामजी उस समय शोकसे मूर्छित हो जड़से कटे हुए वृक्षकी भाँति तत्काल पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १० ॥

तं भूमौ देवसंकाशं पतितं दृश्य राघवम् ।
अभिपेतुः समुत्पत्य सर्वतः कपिसत्तमाः ॥ ११ ॥

देवतुल्य तेजस्वी श्रीरघुनाथजीको भूमिपर पड़ा देख समस्त श्रेष्ठ वानर सब ओरसे उछलकर वहाँ आ पहुँचे ॥ ११ ॥

✓**आसिञ्चन् सलिलैश्चैनं पद्मोत्पलसुगन्धिभिः ।**
प्रदहन्तमसंहार्यं सहसाग्निमिवोत्थितम् ॥ १२ ॥

वे कमल और उत्पलकी सुगन्धसे युक्त जल ले आकर उनके ऊपर छिड़कने लगे । उस समय वे सहसा प्रज्वलित होकर दहन-कर्म करनेवाली और बुझायी न जा सकनेवाली अग्निके समान दिखायी देते थे ॥ १२ ॥

तं लक्ष्मणोऽथ बाहुभ्यां परिष्वज्य सुदुःखितः ।
उवाच राममस्वस्थं वाक्यं हेत्वर्थसंयुतम् ॥ १३ ॥

भाईकी यह अवस्था देखकर लक्ष्मणको बड़ा दुःख हुआ । वे उन्हें दोनों भुजाओंमें भरकर बैठ गये और अस्वस्थ हुए श्रीरामसे यह युक्तियुक्त एवं प्रयोजनभरी बात बोले—॥ १३ ॥

शुभे वर्त्मनि तिष्ठन्तं त्वामार्य विजितेन्द्रियम् ।
अनर्थेभ्यो न शक्नोति त्रातुं धर्मो निरर्थकः ॥ १४ ॥

'आर्य ! आप सदा शुभ मार्गपर स्थिर रहनेवाले और जितेन्द्रिय हैं, तथापि धर्म आपको अनर्थोंसे बचा नहीं पाता है । इसलिये वह निरर्थक ही जान पड़ता है ॥ १४ ॥

भूतानां स्थावराणां च जङ्गमानां च दर्शनम् ।
यथास्ति न तथा धर्मस्तेन नास्तीति मे मतिः ॥ १५ ॥

'स्थावरों तथा पशु आदि जङ्गम प्राणियोंको भी सुखका प्रत्यक्ष अनुभव होता है; किंतु उनके सुखमें धर्म कारण नहीं है (क्योंकि न तो उनमें धर्माचरणकी शक्ति है और न धर्ममें उनका अधिकार ही है) । अतः धर्म सुखका साधन नहीं है; ऐसा मेरा विचार है ॥ १५ ॥

यथैव स्थावरं व्यक्तं जङ्गमं च तथाविधम्।
नायमर्थस्तथा युक्तस्त्वद्विधो न विपद्यते ॥ १६ ॥

'जैसे स्थावर भूत धर्माधिकारी न होनेपर भी सुखी देखा जाता है, उसी प्रकार जङ्गम प्राणी (पशु आदि) भी सुखी है, यह बात स्पष्ट ही समझमें आती है। यदि कहें जहाँ धर्म है, वहाँ सुख अवश्य है तो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि उस दशामें आप-जैसे धर्मात्मा पुरुषको विपत्तिमें नहीं पड़ना चाहिये ॥ १६ ॥

✓**यद्यधर्मो भवेद् भूतो रावणो नरकं व्रजेत्।**
भवांश्च धर्मसंयुक्तो नैव व्यसनमाप्नुयात् ॥ १७ ॥

'यदि अधर्मकी भी सत्ता होती अर्थात् अधर्म अवश्य ही दुःखका साधन होता तो रावणको नरकमें पड़े रहना चाहिये था और आप-जैसे धर्मात्मा पुरुषपर संकट नहीं आना चाहिये था ॥ १७ ॥

तस्य च व्यसनाभावाद् व्यसनं चागते त्वयि।
धर्मो भवत्यधर्मश्च परस्परविरोधिनौ ॥ १८ ॥

'रावणपर तो कोई संकट नहीं है और आप संकटमें पड़ गये हैं; अतः धर्म और अधर्म दोनों परस्परविरोधी हो गये हैं—धर्मात्माको दुःख और पापात्माको सुख मिलने लगा है ॥ १८ ॥

धर्मेणोपलभेद् धर्ममधर्मं चाप्यधर्मतः।
यद्यधर्मेण युज्येयुर्येष्वधर्मः प्रतिष्ठितः ॥ १९ ॥
न धर्मेण वियुज्येरन्नाधर्मरुचयो जनाः।
धर्मेणाचरतां तेषां तथा धर्मफलं भवेत् ॥ २० ॥

'यदि धर्मसे धर्मका फल (सुख) और अधर्मसे अधर्मका फल (दुःख) ही मिलनेका नियम होता तो जिन रावण आदिमें अधर्म ही प्रतिष्ठित है, वे अधर्मके फलभूत दुःखसे ही युक्त होते और जो लोग अधर्ममें रुचि नहीं रखते हैं, वे धर्मसे—धर्मके फलभूत सुखसे कभी वञ्चित न होते। धर्ममार्गसे चलनेवाले इन धर्मात्मा पुरुषोंको केवल धर्मका फल—सुख ही प्राप्त होता ॥ १९-२० ॥

✓**यस्मादर्था विवर्धन्ते येष्वधर्मः प्रतिष्ठितः।**
क्लिश्यन्ते धर्मशीलाश्च तस्मादेतौ निरर्थकौ ॥ २१ ॥

'किंतु जिनमें अधर्म प्रतिष्ठित है, उनके तो धन बढ़ रहे हैं और जो स्वभावसे ही धर्माचरण करनेवाले हैं, वे क्लेशमें पड़े हुए हैं। इसलिये ये धर्म और अधर्म—दोनों निरर्थक हैं ॥ २१ ॥

वध्यन्ते पापकर्माणो यद्यधर्मेण राघव।
वधकर्महतोऽधर्मः स हतः कं वधिष्यति ॥ २२ ॥

'रघुनन्दन! यदि पापाचारी पुरुष धर्म या अधर्मसे मारे जाते हैं तो धर्म या अधर्म क्रियारूप होनेके कारण (आदि, मध्य और अन्त) तीन ही क्षणोंतक रह सकता है। चतुर्थ क्षणमें तो वह स्वयं ही नष्ट हो जायगा; फिर नष्ट हुआ वह धर्म या अधर्म किसका वध करेगा? ॥ २२ ॥

अथवा विहितेनायं हन्यते हन्ति चापरम्।
विधिः स लिप्यते तेन न स पापेन कर्मणा ॥ २३ ॥

'अथवा यह जीव यदि विधिपूर्वक किये गये कर्मविशेष (श्येनयाग आदि) के द्वारा मारा जाता है या स्वयं वैसा कर्म करके दूसरेको मारता है तो विधि (विहित कर्मजनित अदृष्ट) को ही हत्याके दोषसे लिप्त होना चाहिये, कर्मका अनुष्ठान करनेवाले पुरुषका उस पापकर्मसे सम्बन्ध नहीं होना चाहिये (क्योंकि पुत्रके किये हुए अपराधका दण्ड पिताको नहीं मिलता है) ॥ २३ ॥

अदृष्टप्रतिकारेण अव्यक्तेनासता सता।
कथं शक्यं परं प्राप्तुं धर्मेणारिविकर्षण ॥ २४ ॥

'शत्रुसूदन! जो चेतन न होनेके कारण प्रतीकार-ज्ञानसे शून्य है, अव्यक्त है और असत्‌के समान विद्यमान है, उस धर्मके द्वारा दूसरे (पापात्मा) को वध्यरूपसे प्राप्त करना कैसे सम्भव है? ॥ २४ ॥

यदि सत् स्यात् सतां मुख्य नासत् स्यात् तव किंचन।
त्वया यदीदृशं प्राप्तं तस्मात् तन्नोपपद्यते ॥ २५ ॥

'सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ रघुवीर! यदि सत्कर्मजनित अदृष्ट सत् या शुभ ही होता तो आपको कुछ भी अशुभ या दुःख नहीं प्राप्त होता। यदि आपको ऐसा दुःख प्राप्त हुआ है तो सत्कर्मजनित अदृष्ट सत् ही है, इस कथनकी सगति नहीं बैठती* ॥

अथवा दुर्बलः क्लीबो बलं धर्मोऽनुवर्तते। ✓
दुर्बलो हतमर्यादो न सेव्य इति मे मतिः ॥ २६ ॥

'यदि दुर्बल और कातर (स्वतः कार्य-साधनमें असमर्थ) होनेके कारण धर्म पुरुषार्थका अनुसरण करता है, तब तो दुर्बल और फलदानकी मर्यादासे रहित धर्मका सेवन ही नहीं करना चाहिये—यह मेरी स्पष्ट राय है ॥ २६ ॥

---

* इस अध्यायके १४ वेंसे २५ वें श्लोकतक लक्ष्मणजीने जो धर्म और अधर्मकी सत्ताका खण्डन किया है, वह श्रीरामको दुखी देखकर स्वयं उनसे भी अधिक दुखी होकर ही किया है। जिस प्रकार परात्पर श्रीरामके लिये अपनी प्रियाकी माया-मूर्तिके वधको देखकर शोकसे अभिभूत हो जाना प्रेमकी लीलामात्र है, उसी प्रकार प्रियतम प्रभुके दुःखको देखकर दुःखावेशकी लीलासे इस प्रकारकी असंगत-सी लगनेवाली बातें कहना भी प्रेमजनित कातरताका ही परिचायक है। आगे चलकर दुःखका आवेश कुछ कम हो जानेपर तो स्वयं लक्ष्मणजीने ही ४४ वें श्लोकमें स्पष्ट कहा है कि श्रीरामका शोकापनोदन करके उन्हें युद्धमें प्रवृत्त करनेके लिये ही उन्होंने वे सब बातें कही थीं।

—सम्पादक

बलस्य यदि चेद् धर्मो गुणभूतः पराक्रमैः ।
धर्ममुत्सृज्य वर्तस्व यथा धर्मे तथा बले ॥ २७ ॥

‘यदि धर्म बल अथवा पुरुषार्थका अङ्ग या उपकरणमात्र है तो धर्मको छोड़कर पराक्रमपूर्ण बर्ताव कीजिये । जैसे आप धर्मको प्रधान मानकर धर्ममें लगे हैं, उसी प्रकार बलको प्रधान मानकर बल या पुरुषार्थमें ही प्रवृत्त होइये ॥ २७ ॥

अथ चेत् सत्यवचनं धर्मः किल परंतप ।
अनृतं त्वय्यकरणे किं न बद्धस्त्वया विना ॥ २८ ॥

‘शत्रुओंको संताप देनेवाले रघुनन्दन ! यदि आप सत्यभाषणरूप धर्मका पालन करते हैं अर्थात् पिताकी आज्ञाको स्वीकार करके उनके सत्यकी रक्षारूप धर्मका अनुष्ठान करते हैं तो आप ज्येष्ठ पुत्रके प्रति युवराजपदपर अभिषिक्त करनेकी जो बात पिताने कही थी, उस सत्यका पालन न करनेपर पिताको जो असत्यरूप अधर्म प्राप्त हुआ, उसीके कारण वे आपसे वियुक्त होकर मर गये । ऐसी दशामें क्या आप राजाके पहले कहे हुए अभिषेक-सम्बन्धी सत्य वचनसे नहीं बँधे हुए थे ? उस सत्यका पालन करनेके लिये बाध्य नहीं थे (यदि आपने पिताके पहले कहे हुए वचनका ही पालन करके युवराजपदपर अपना अभिषेक करा लिया होता तो न पिताकी मृत्यु हुई होती और न सीता-हरण आदि अनर्थ ही संघटित हुए होते) ॥ २८ ॥

यदि धर्मो भवेद् भूत अधर्मो वा परंतप ।
न स्म हत्वा मुनिं वज्री कुर्यादिज्यां शतक्रतुः ॥ २९ ॥

‘शत्रुदमन महाराज ! यदि केवल धर्म अथवा अधर्म ही प्रधानरूपसे अनुष्ठानके योग्य होता तो वज्रधारी इन्द्र पौरुषद्वारा विश्वरूप मुनिकी हत्या (अधर्म) करके फिर यज्ञ (धर्म) का अनुष्ठान नहीं करते ॥ २९ ॥

अधर्मसंश्रितो धर्मो विनाशयति राघव ।
सर्वमेतद् यथाकामं काकुत्स्थ कुरुते नरः ॥ ३० ॥

‘रघुनन्दन ! धर्मसे भिन्न जो पुरुषार्थ है, उससे मिला हुआ धर्म ही शत्रुओंका नाश करता है । अतः काकुत्स्थ ! प्रत्येक मनुष्य आवश्यकता एवं रुचिके अनुसार इन सबका (धर्म एवं पुरुषार्थका) अनुष्ठान करता है ॥ ३० ॥

मम चेदं मतं तात धर्मोऽयमिति राघव ।
धर्ममूलं त्वया छिन्नं राज्यमुत्सृजता तदा ॥ ३१ ॥

‘तात राघव ! इस प्रकार समयानुसार धर्म एवं पुरुषार्थमेंसे किसी एकका आश्रय लेना धर्म ही है; ऐसा मेरा मत है । आपने उस दिन राज्यका त्याग करके धर्मके मूलभूत अर्थका उच्छेद कर डाला ॥ ३१ ॥

अर्थेभ्योऽथ प्रवृद्धेभ्यः संवृत्तेभ्यस्ततस्ततः ।
क्रियाः सर्वाः प्रवर्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगाः ॥ ३२ ॥

‘जैसे पर्वतोंसे नदियाँ निकलती हैं, उसी तरह जहाँ-तहाँसे संग्रह करके लाये और बढ़े हुए अर्थसे सारी क्रियाएँ (चाहे वे योगप्रधान हों या भोगप्रधान) सम्पन्न होती हैं (निष्काम भाव होनेपर सभी क्रियाएँ योगप्रधान हो जाती हैं और सकाम भाव होनेपर भोगप्रधान) ॥ ३२ ॥

अर्थेन हि विमुक्तस्य पुरुषस्याल्पचेतसः ।
विच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वा ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥ ३३ ॥

‘जो मन्दबुद्धि मानव अर्थसे वञ्चित है, उसकी सारी क्रियाएँ उसी तरह छिन्न-भिन्न हो जाती हैं, जैसे ग्रीष्म ऋतुमें छोटी-छोटी नदियाँ सूख जाती हैं ॥ ३३ ॥

सोऽयमर्थं परित्यज्य सुखकामः सुखैधितः ।
पापमाचरते कर्तुं तदा दोषः प्रवर्तते ॥ ३४ ॥

‘जो पुरुष सुखमें पला हुआ है, वह यदि प्राप्त हुए अर्थको त्यागकर सुख चाहता है तो उस अभीष्ट सुखके लिये अन्यायपूर्वक अर्थोपार्जन करनेमें प्रवृत्त होता है; इसलिये उसे ताड़न, बन्धन आदि दोष प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥ ३५ ॥

‘जिसके पास धन है, उसीके अधिक मित्र होते हैं । जिसके पास धनका संग्रह है, उसीके सब लोग भाई-बन्धु बनते हैं। जिसके यहाँ पर्याप्त धन है, वही संसारमें श्रेष्ठ पुरुष कहलाता है और जिसके पास धन है, वही विद्वान् समझा जाता है।३५।

यस्यार्थाः स च विक्रान्तो यस्यार्थाः स च बुद्धिमान् ।
यस्यार्थाः स महाभागो यस्यार्थाः स गुणाधिकः॥३६॥

‘जिसके यहाँ धनराशि एकत्र है, वह पराक्रमी कहा जाता है । जिसके पास धनकी अधिकता है । वह बुद्धिमान् माना जाता है, जिसके यहाँ अर्थसंग्रह है, वह महान् भाग्यशाली कहलाता है तथा जिसके यहाँ धन-सम्पत्ति है, वह गुणोंमें भी बढ़ा-चढ़ा समझा जाता है ॥ ३६ ॥

अर्थस्यैते परित्यागे दोषाः प्रव्याहृता मया ।
राज्यमुत्सृजता धीर येन बुद्धिस्त्वया कृता ॥ ३७ ॥

‘अर्थका त्याग करनेसे जो मित्रका अभाव आदि दोष प्राप्त होते हैं, उनका मैंने स्पष्टरूपसे वर्णन किया है । आपने राज्य छोड़ते समय क्या लाभ सोचकर अपनी बुद्धिमें अर्थत्यागकी भावनाको स्थान दिया, यह मैं नहीं जानता ॥ ३७ ॥

यस्यार्था धर्मकामार्थास्तस्य सर्वं प्रदक्षिणम् ।
अधनेनार्थकामेन नार्थः शक्यो विचिन्वता ॥ ३८ ॥

‘जिसके पास धन है, उसके धर्म और कामरूप सारे प्रयोजन सिद्ध होते हैं । उसके लिये सब कुछ अनुकूल बन जाता है । जो निर्धन है, वह अर्थकी इच्छा रखकर उसका अनुसंधान करनेपर भी पुरुषार्थके बिना उसे नहीं पा सकता ॥ ३८ ॥

हर्षः कामश्च दर्पश्च धर्मः क्रोधः शमो दमः ।
अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते नराधिप ॥ ३९ ॥

'नरेश्वर ! हर्ष, काम, दर्प, धर्म, क्रोध, शम और दम—ये सब धन होनेसे ही सफल होते हैं ॥ ३९ ॥

येषां नश्यत्ययं लोकश्चरतां धर्मचारिणाम् ।
तेऽर्थास्त्वयि न दृश्यन्ते दुर्दिनेषु यथा ग्रहाः ॥ ४० ॥

'जो धर्मका आचरण करनेवाले और तपस्यामें [illegible] हैं, उन पुरुषोंका यह लोक (ऐहिक पुरुषार्थ) अर्थाभावके कारण ही नष्ट हो जाता है; यह स्पष्ट देखा जाता है। वही अर्थ इस दुर्दिनमें आपके पास उसी तरह नहीं दिखायी देता है, जैसे आकाशमें बादल घिर आनेपर ग्रहोंके दर्शन नहीं होते हैं ॥ ४० ॥

त्वयि प्रव्रजिते वीर गुरोश्च वचने स्थिते ।
रक्षसापहृता भार्या प्राणैः प्रियतरा तव ॥ ४१ ॥

'वीर ! आप पूज्य पिताकी आज्ञा पालन करनेके लिये राज्य छोड़कर वनमें चले आये और सत्यके पालनपर ही डटे रहे; परंतु राक्षसने आपकी पत्नीको, जो आपको प्राणोंसे भी अधिक प्यारी थीं, हर लिया ॥ ४१ ॥

तदद्य विपुलं वीर दुःखमिन्द्रजिता कृतम् ।
कर्मणा व्यपनेष्यामि तस्मादुत्तिष्ठ राघव ॥ ४२ ॥

'वीर रघुनन्दन ! आज इन्द्रजित्ने हमलोगोंको जो महान् दुःख दिया है, उसे मैं अपने पराक्रमसे दूर करूँगा; अतः चिन्ता छोड़कर उठिये ॥ ॥ ४२ ॥

उत्तिष्ठ नरशार्दूल दीर्घबाहो धृतव्रत ।
किमात्मानं महात्मानमात्मानं नावबुध्यसे ॥ ४३ ॥

'नरश्रेष्ठ ! उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महाबाहो ! उठिये ! आप [illegible] अपने-आपको क्यों नहीं समझ रहे हैं ? ॥ ४३ ॥

अयमनघ तवोदितः प्रियार्थं
जनकसुतानिधनं निरीक्ष्य रुष्टः ।
सरथगजहयां सराक्षसेन्द्रां
भृशमिषुभिर्विनिपातयामि लङ्काम् ॥४४॥

'निष्पाप रघुवीर ! यह मैंने आपसे जो कुछ कहा है, वह सब आपका प्रिय करनेके लिये—आपका ध्यान शोककी ओरसे हटाकर पुरुषार्थकी ओर आकृष्ट करनेके लिये कहा है। अब जनकनन्दिनीकी मृत्युका वृत्तान्त जानकर मेरा रोष बढ़ गया है, अतः आज अपने बाणोंद्वारा हाथी, घोड़े, रथ और राक्षसराज रावणसहित सारी लङ्काको धूलमें मिला दूँगा' ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तिरासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमः सर्गः

विभीषणका श्रीरामको इन्द्रजित्की मायाका रहस्य बताकर सीताके जीवित होनेका विश्वास दिलाना और लक्ष्मणको सेनासहित निकुम्भिला-मन्दिरमें भेजनेके लिये अनुरोध करना

राममाश्वासमाने तु लक्ष्मणे भ्रातृवत्सले ।
निक्षिप्य गुल्मान् स्वस्थाने तत्रागच्छद् विभीषणः ॥ १ ॥

भ्रातृभक्त लक्ष्मण जब श्रीरामको इस प्रकार आश्वासन दे रहे थे, उसी समय विभीषण वानरसैनिकोंको अपने-अपने स्थानपर स्थापित करके वहाँ आये ॥ १ ॥

नानाप्रहरणैर्वीरैश्चतुर्भिरभिसंवृतः ।
नीलाञ्जनचयाकारैर्मातंगैरिव यूथपैः ॥ २ ॥

नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण किये चार निशाचर वीर, जो काली कजल-राशिके समान काले शरीरवाले यूथपति गजराजोंके समान जान पड़ते थे, चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षा कर रहे थे ॥ २ ॥

सोऽभिगम्य महात्मानं राघवं शोकलालसम् ।
वानरांश्चापि ददृशे बाष्पपर्याकुलेक्षणान् ॥ ३ ॥

वहाँ आकर उन्होंने देखा महात्मा लक्ष्मण शोकमें मग्न हैं तथा वानरोंके नेत्रोंमें भी आँसू भरे हुए हैं ॥ ३ ॥

राघवं च महात्मानमिक्ष्वाकुकुलनन्दनम् ।
ददर्श मोहमापन्नं लक्ष्मणस्याङ्कमाश्रितम् ॥ ४ ॥

साथ ही इक्ष्वाकुकुलनन्दन महात्मा श्रीरघुनाथजीपर भी उनकी दृष्टि पड़ी, जो मूर्च्छित हो लक्ष्मणकी गोदमें लेटे हुए थे ॥ ४ ॥

व्रीडितं शोकसंतप्तं दृष्ट्वा रामं विभीषणः ।
अन्तर्दुःखेन दीनात्मा किमेतदिति सोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीको लजित तथा शोकसे संतप्त देख विभीषणका हृदय आन्तरिक दुःखसे दीन हो गया। उन्होंने पूछा—'यह क्या बात है ?' ॥ ५ ॥

विभीषणमुखं दृष्ट्वा सुग्रीवं तांश्च वानरान् ।
लक्ष्मणोवाच मन्दार्थमिदं बाष्पपरिप्लुतः ॥ ६ ॥

तब लक्ष्मणने विभीषणके मुँहकी ओर देखकर तथा सुग्रीव और दूसरे-दूसरे वानरोंपर दृष्टिपात करके आँसू बहाते हुए मन्दस्वरमें कहा—॥ ६ ॥

हता इन्द्रजिता सीता इति श्रुत्वैव राघवः ।
हनूमद्वचनात् सौम्य ततो मोहमुपाश्रितः ॥ ७ ॥

'सौम्य ! हनुमान्‌जीके मुँहसे यह सुनकर कि 'इन्द्रजित्‌ने सीताजीको मार डाला' श्रीरघुनाथजी तत्काल मूर्च्छित हो गये हैं' ॥ ७ ॥

कथयन्तं तु सौमित्रिं संनिवार्य विभीषणः ।
पुष्कलार्थमिदं वाक्यं [illegible] ॥ ८ ॥

इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मणको विभीषणने रोका और अचेत पड़े हुए श्रीरामचन्द्रजीसे यह निश्चित बात कही—॥ ८ ॥

मनुजेन्द्रार्तरूपेण यदुक्तस्त्वं हनूमता ।
तदयुक्तमहं मन्ये सागरस्येव शोषणम् ॥ ९ ॥

'महाराज ! हनुमान्‌जीने दुखी होकर जो आपको समाचार सुनाया है, उसे मैं समुद्रको सोख लेनेके समान असम्भव मानता हूँ ॥ ९ ॥

अभिप्रायं तु जानामि रावणस्य दुरात्मनः ।
सीतां प्रति महाबाहो न च घातं करिष्यति ॥ १० ॥

'महाबाहो ! दुरात्मा रावणका सीताके प्रति क्या भाव है, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ । वह उनका वध कदापि नहीं करने देगा ॥ १० ॥

याच्यमानः सुबहुशो मया हितचिकीर्षुणा ।
वैदेहीमुत्सृजस्वेति न च तत् कृतवान् वचः ॥ ११ ॥

'मैंने उसका हित करनेकी इच्छासे अनेक बार यह अनुरोध किया कि विदेहकुमारीको छोड़ दो; किंतु उसने मेरी बात नहीं मानी ॥ ११ ॥

नैव साम्ना न दानेन न भेदेन कुतो युधा ।
सा द्रष्टुमपि शक्येत नैव चान्येन केनचित् ॥ १२ ॥

'सीताको दूसरा कोई पुरुष साम, दाम और भेदनीतिके द्वारा भी नहीं देख सकता; फिर युद्धके द्वारा कैसे देख सकता है ! ॥ १२ ॥

वानरान् मोहयित्वा तु प्रतियातः स राक्षसः ।
मायामयीं महाबाहो तां विद्धि जनकात्मजाम् ॥ १३ ॥

'महाबाहो ! राक्षस इन्द्रजित् वानरोंको मोहमें डालकर चला गया है । जिसका उसने वध किया था, वह मायामयी जानकी थीं, ऐसा निश्चित समझिये ॥ १३ ॥

चैत्यं निकुम्भिलामद्य प्राप्य होमं करिष्यति ।
हुतवानुपयातो हि देवैरपि सवासवैः ॥ १४ ॥
दुराधर्षो भवत्येष संग्रामे रावणात्मजः ।

'वह इस समय निकुम्भिला-मन्दिरमें जाकर होम करेगा और जब होम करके लौटेगा, उस समय उस रावणकुमारको संग्राममें परास्त करना इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी कठिन होगा ॥ १४½ ॥

तेन मोहयता नूनमेषा माया प्रयोजिता ॥ १५ ॥
विघ्नमन्विच्छता तत्र वानराणां पराक्रमे ।

'निश्चय ही उसने हमलोगोंको मोहमें डालनेके लिये ही यह मायाका प्रयोग किया है । उसने सोचा होगा—यदि वानरोंका पराक्रम चलता रहा तो मेरे इस कार्यमें विघ्न पड़ेगा (इसीलिये उसने ऐसा किया है) ॥ १५½ ॥

ससैन्यास्तत्र गच्छामो यावत्तन्न समाप्यते ॥ १६ ॥
त्यजैनं नरशार्दूल मिथ्या संतापमागतम् ।

'जबतक उसका होम-कर्म समाप्त नहीं होता, उसके पहले ही हमलोग सेनासहित निकुम्भिला-मन्दिरमें चले चलें । नरश्रेष्ठ ! झूठे ही प्राप्त हुए इस संतापको त्याग दीजिये ॥ १६½ ॥

सीदते हि बलं सर्वं दृष्ट्वा त्वां शोककर्शितम् ॥ १७ ॥
इह त्वं स्वस्थहृदयस्तिष्ठ सत्त्वसमुच्छ्रितः ।
लक्ष्मणं प्रेषयास्माभिः सह सैन्यानुकर्षिभिः ॥ १८ ॥

'प्रभो ! आपको शोकसे संतप्त होते देख सारी सेना दुःखमें पड़ी हुई है । आप तो धैर्यमें सबसे बढ़े-चढ़े हैं; अतः स्वस्थचित्त होकर यहीं रहिये और सेनाको लेकर जाते हुए हम लोगोंके साथ लक्ष्मणजीको भेज दीजिये ॥ १७-१८ ॥

एष तं नरशार्दूलो रावणिं निशितैः शरैः ।
त्याजयिष्यति तत्कर्म ततो वध्यो भविष्यति ॥ १९ ॥

'ये नरश्रेष्ठ लक्ष्मण अपने पैने बाणोंसे मारकर रावण-कुमारको वह होमकर्म त्याग देनेके लिये विवश कर देंगे । इससे वह मारा जा सकेगा ॥ १९ ॥

तस्यैते निशितास्तीक्ष्णाः पत्रिपत्राङ्गवाजिनः ।
पतत्रिण इवासौम्याः शराः पास्यन्ति शोणितम् ॥ २० ॥

'लक्ष्मणके ये पैने बाण जो पक्षियोंके अङ्गभूत परोंसे युक्त होनेके कारण बड़े वेगशाली हैं, कंक आदि क्रूर पक्षियोंके समान इन्द्रजित्‌के रक्तका पान करेंगे ॥ २० ॥

तत् संदिश महाबाहो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।
राक्षसस्य विनाशाय वज्रं वज्रधरो यथा ॥ २१ ॥

'अतः महाबाहो ! जैसे वज्रधारी इन्द्र दैत्योंके वधके लिये वज्रका प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार आप उस राक्षसके विनाशके लिये शुभलक्षण-सम्पन्न लक्ष्मणको जानेकी आज्ञा दीजिये ॥ २१ ॥

मनुजवर न कालविप्रकर्षो
रिपुनिधनं प्रति यत्क्षमोऽद्य कर्तुम् ।
त्वमतिसृज रिपोर्वधाय वज्रं
दिविजरिपोर्मथने यथा महेन्द्रः ॥ २२ ॥

'नरेश्वर ! शत्रुका विनाश करनेमें अब यह कालक्षेप करना उचित नहीं है । इसलिये आप शत्रुवधके लिये उसी तरह लक्ष्मणको भेजिये, जैसे देवद्रोही दैत्योंके विनाशके

लिये देवराज इन्द्र वज्रका प्रयोग करते हैं ॥ २२ ॥

समाप्तकर्मा हि स राक्षसर्षभो
भवत्यदृश्यः समरे सुरासुरैः ।
युयुत्सता तेन समाप्तकर्मणा
भवेत् सुराणामपि संशयो महान् ॥ २३ ॥

'वह राक्षसशिरोमणि इन्द्रजित् जब अपना अनुष्ठान पूरा कर लेगा, तब समराङ्गणमें देवता और असुर भी उसे देख नहीं सकेंगे । अपना कर्म पूरा करके जब वह युद्धकी इच्छासे रणभूमिमें खड़ा होगा, उस समय देवताओंको भी अपने जीवनकी रक्षाके विषयमें महान् संदेह होने लगेगा' ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चौरासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितमः सर्गः

विभीषणके अनुरोधसे श्रीरामचन्द्रजीका लक्ष्मणको इन्द्रजित्के वधके लिये जानेकी आज्ञा देना और सेनासहित लक्ष्मणका निकुम्भिला-मन्दिरके पास पहुँचना

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राघवः शोककर्शितः ।
✓**नोपधारयते व्यक्तं यदुक्तं तेन रक्षसा ॥ १ ॥**

भगवान् श्रीराम शोकसे पीड़ित थे, अतः राक्षस विभीषणने जो कुछ कहा, उनकी उस बातको सुनकर भी वे उसे स्पष्टरूपसे समझ न सके—उसपर पूरा ध्यान न दे सके ॥ १ ॥

ततो धैर्यमवष्टभ्य रामः परपुरंजयः ।
विभीषणमुपासीनमुवाच कपिसंनिधौ ॥ २ ॥

तदनन्तर शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले श्रीराम धैर्य धारण करके हनुमान्जीके समीप बैठे हुए विभीषणसे बोले— ॥ २ ॥

नैर्ऋताधिपते वाक्यं यदुक्तं ते विभीषण ।
✓**भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामि ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥ ३ ॥**

'राक्षसराज विभीषण ! तुमने अभी-अभी जो बात कही है, उसे मैं फिर सुनना चाहता हूँ । बोलो, तुम क्या कहना चाहते हो ?' ॥ ३ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा वाक्यं वाक्यविशारदः ।
यत् तत् पुनरिदं वाक्यं बभाषेऽथ विभीषणः ॥ ४ ॥

श्रीरघुनाथजीकी यह बात सुनकर बातचीतमें कुशल विभीषणने, वह जो बात कही थी, उसे पुनः दुहराते हुए इस प्रकार कहा— ॥ ४ ॥

यथाऽऽज्ञप्तं महाबाहो त्वया गुल्मनिवेशनम् ।
तत् तथानुष्ठितं वीर त्वद्वाक्यसमनन्तरम् ॥ ५ ॥

'महाबाहो ! आपने जो सेनाओंको यथास्थान स्थापित करनेकी आज्ञा दी थी, वीर ! वह काम तो मैंने आपकी आज्ञा होते ही पूरा कर दिया ॥ ५ ॥

तान्यनीकानि सर्वाणि विभक्तानि समन्ततः ।
विन्यस्ता यूथपाश्चैव यथान्यायं विभागशः ॥ ६ ॥

'उन सब सेनाओंको विभक्त करके सब ओरके दरवाजोंपर स्थापित किया और यथोचित रीतिसे वहाँ अलग-अलग यूथपतियोंको भी नियुक्त कर दिया है ॥ ६ ॥

भूयस्तु मम विज्ञाप्यं तच्छृणुष्व महाप्रभो ।
त्वय्यकारणसंतप्ते संतप्तहृदया वयम् ॥ ७ ॥

'महाराज ! अब पुनः मुझे जो बात आपकी सेवामें निवेदन करनी है, उसे भी सुन लीजिये । बिना किसी कारणके आपके संतप्त होनेसे हमलोगोंके हृदयमें भी बड़ा संताप हो रहा है ॥ ७ ॥

त्यज राजन्निमं शोकं मिथ्या संतापमागतम् ।
यदियं त्यज्यतां चिन्ता शत्रुहर्षविवर्धिनी ॥ ८ ॥

'राजन् ! मिथ्या प्राप्त हुए इस शोक और संतापको त्याग दीजिये; साथ ही इस चिन्ताको भी अपने मनसे निकाल दीजिये; क्योंकि यह शत्रुओंका हर्ष बढ़ानेवाली है ॥ ८ ॥

उद्यमः क्रियतां वीर हर्षः समुपसेव्यताम् ।
प्राप्तव्या यदि ते सीता हन्तव्याश्च निशाचराः ॥ ९ ॥

'वीर ! यदि आप सीताको पाना और निशाचरोंका वध करना चाहते हैं तो उद्योग कीजिये; हर्ष और उत्साहका सहारा लीजिये ॥ ९ ॥

रघुनन्दन वक्ष्यामि श्रूयतां मे हितं वचः ।
साध्वयं यातु सौमित्रिर्बलेन महता वृतः ॥ १० ॥
निकुम्भिलायां सम्प्राप्तं हन्तुं रावणिमाहवे ।

'रघुनन्दन ! मैं एक आवश्यक बात बताता हूँ, मेरी इस हितकर बातको सुनिये । रावणकुमार इन्द्रजित् निकुम्भिला-मन्दिरकी ओर गया है, अतः ये सुमित्राकुमार लक्ष्मण विशाल सेना साथ लेकर अभी उसपर आक्रमण करें—युद्धमें उस रावणपुत्रका वध करनेके लिये उसपर चढ़ाई कर दें—यही अच्छा होगा ॥ १०½ ॥

धनुर्मण्डलनिर्मुक्तैराशीविषविषोपमैः ॥ ११ ॥
शरैर्हन्तुं महेष्वासो रावणिं समितिंजयः ।

'युद्धविजयी महाधनुर्धर लक्ष्मण अपने मण्डलाकार धनुषद्वारा छोड़े गये विषधर सर्पोंके तुल्य भयानक बाणोंसे रावणपुत्रका वध करनेमें समर्थ हैं ॥ ११½ ॥

तेन वीरेण तपसा वरदानात् स्वयंभुवः ।
अस्त्रं ब्रह्मशिरः प्राप्तं कामगाश्च तुरङ्गमाः ॥ १२ ॥

'उस वीरने तपस्या करके ब्रह्माजीके वरदानसे ब्रह्मशिर नामक अस्त्र और मनचाही गतिसे चलनेवाले घोड़े प्राप्त किये हैं ॥ १२ ॥

स एष किल सैन्येन प्राप्तः किल निकुम्भिलाम् ।
यद्युत्तिष्ठेत् कृतं कर्म हतान् सर्वांश्च विद्धि नः ॥ १३ ॥

'निश्चय ही इस समय सेनाके साथ वह निकुम्भिलामें गया है । वहाँसे अपना हवन-कर्म समाप्त करके यदि वह उठेगा तो हम सब लोगोंको उसके हाथसे मरा ही समझिये ॥ १३ ॥

निकुम्भिलामसम्प्राप्तमकृताग्निं च यो रिपुः ।
त्वामाततायिनं हन्यादिन्द्रशत्रो स ते वधः ॥ १४ ॥
वरो दत्तो महाबाहो सर्वलोकेश्वरेण वै ।
इत्येवं विहितो राजन् वधस्तस्यैष धीमतः ॥ १५ ॥

'महाबाहो ! सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी ब्रह्माजीने उसे वरदान देते हुए कहा था—'इन्द्रशत्रो ! निकुम्भिला नामक वटवृक्षके पास पहुँचने तथा हवन-सम्बन्धी कार्य पूर्ण करनेके पहले ही जो शत्रु तुझ आततायी (शस्त्रधारी) को मारनेके लिये आक्रमण करेगा, उसीके हाथसे तुम्हारा वध होगा ।' राजन् ! इस प्रकार बुद्धिमान् इन्द्रजित्की मृत्युका विधान किया गया है ॥ १४-१५ ॥

वधायेन्द्रजितो राम संदिशस्व महाबलम् ।
हते तस्मिन् हतं विद्धि रावणं ससुहृद्गणम् ॥ १६ ॥

'इसलिये श्रीराम ! आप इन्द्रजित्का वध करनेके लिये महाबली लक्ष्मणको आज्ञा दीजिये । उसके मारे जानेपर रावणको अपने सुहृदोंसहित मरा ही समझिये' ॥ १६ ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा रामो वाक्यमथाब्रवीत् ।
जानामि तस्य रौद्रस्य मायां सत्यपराक्रम ॥ १७ ॥

विभीषणके वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी शोकका परित्याग करके बोले—'सत्यपराक्रमी विभीषण ! उस भयंकर राक्षसकी मायाको मैं जानता हूँ ॥ १७ ॥

स हि ब्रह्मास्त्रवित् प्राज्ञो महामायो महाबलः ।
करोत्यसंज्ञान् संग्रामे देवान् सवरुणानपि ॥ १८ ॥

'वह ब्रह्मास्त्रका ज्ञाता, बुद्धिमान्, बहुत बड़ा मायावी और महान् बलवान् है । वरुणसहित सम्पूर्ण देवताओंको भी वह युद्धमें अचेत कर सकता है ॥ १८ ॥

तस्यान्तरिक्षे चरतः सरथस्य महायशः ।
न गतिर्ज्ञायते वीर सूर्यस्येवाभ्रसम्प्लवे ॥ १९ ॥
राघवस्तु रिपोर्ज्ञात्वा मायावीर्यं दुरात्मनः ।
लक्ष्मणं कीर्तिसम्पन्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २० ॥

'महायशस्वी वीर ! जब इन्द्रजित् रथसहित आकाशमें विचरने लगता है, उस समय बादलोंमें छिपे हुए सूर्यकी भाँति उसकी गतिका कुछ पता ही नहीं चलता ।' विभीषणसे ऐसा कहकर भगवान् श्रीरामने अपने शत्रु दुरात्मा इन्द्रजित्की मायाशक्तिको जानकर यशस्वी वीर लक्ष्मणसे यह बात कही--१९-२०

यद् वानरेन्द्रस्य बलं तेन सर्वेण संवृतः ।
हनूमत्प्रमुखैश्चैव यूथपैः सह लक्ष्मण ॥ २१ ॥
जाम्बवेनर्क्षपतिना सह सैन्येन संवृतः ।
जहि तं राक्षससुतं मायाबलसमन्वितम् ॥ २२ ॥

'लक्ष्मण ! वानरराज सुग्रीवकी जो भी सेना है, वह सब साथ ले हनुमान् आदि यूथपतियों, ऋक्षराज जाम्बवान् तथा अन्य सैनिकोंसे घिरे रहकर तुम मायाबलसे सम्पन्न राक्षसराजकुमार इन्द्रजित्का वध करो ॥ २१-२२ ॥

अयं त्वां सचिवैः सार्धं महात्मा रजनीचरः ।
अभिज्ञस्तस्य मायानां पृष्ठतोऽनुगमिष्यति ॥ २३ ॥

'ये महामना राक्षसराज विभीषण उसकी मायाओंसे अच्छी तरह परिचित हैं, अतः अपने मन्त्रियोंके साथ ये भी तुम्हारे पीछे-पीछे जायँगे' ॥ २३ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा लक्ष्मणः सविभीषणः ।
जग्राह कार्मुकश्रेष्ठमन्यद् भीमपराक्रमः ॥ २४ ॥

श्रीरघुनाथजीकी यह बात सुनकर विभीषणसहित भयानक पराक्रमी लक्ष्मणने अपना श्रेष्ठ धनुष हाथमें लिया ॥ २४ ॥

संनद्धः कवची खड्गी सशरी वामचापभृत् ।
रामपादावुपस्पृश्य हृष्टः सौमित्रिरब्रवीत् ॥ २५ ॥

वे युद्धकी सब सामग्री लेकर तैयार हो गये । उन्होंने कवच धारण किया, तलवार बाँध ली और उत्तम बाण तथा बायें हाथमें धनुष ले लिये । तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीके चरण छूकर हर्षसे भरे हुए सुमित्राकुमारने कहा— ॥ २५ ॥

अद्य मत्कार्मुकोन्मुक्ताः शरा निर्भिद्य रावणिम् ।
लङ्कामभिपतिष्यन्ति हंसाः पुष्करिणीमिव ॥ २६ ॥

'आर्य ! आज मेरे धनुषसे छूटे हुए बाण रावणकुमारको विदीर्ण करके उसी तरह लङ्कामें गिरेंगे, जैसे हंस कमलोंसे भरे हुए सरोवरमें उतरते हैं ॥ २६ ॥

अद्यैव तस्य रौद्रस्य शरीरं मामकाः शराः ।
विधमिष्यन्ति भित्त्वा तं महाचापगुणच्युताः ॥ २७ ॥

'इस विशाल धनुषसे छूटे हुए मेरे बाण आज ही उस भयंकर राक्षसके शरीरको विदीर्ण करके उसे कालके गालमें डाल देंगे' ॥ २७ ॥

एवमुक्त्वा तु वचनं द्युतिमान् भ्रातुरग्रतः ।
स रावणिवधाकाङ्क्षी लक्ष्मणस्त्वरितं ययौ ॥ २८ ॥

इन्द्रजित्के वधकी अभिलाषा रखनेवाले तेजस्वी लक्ष्मण अपने भाईके सामने ऐसी बात कहकर तुरंत वहाँसे चल दिये ॥

सोऽभिवाद्य गुरोः पादौ कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
निकुम्भिलामभिययौ चैत्यं रावणिपालितम् ॥ २९ ॥

पहले उन्होंने अपने बड़े भाईके चरणोंमें प्रणाम किया, फिर उनकी परिक्रमा करके रावणकुमारद्वारा पालित निकुम्भिला-मन्दिरकी ओर प्रस्थान किया ॥ २९ ॥

विभीषणेन सहितो राजपुत्रः प्रतापवान् ।
कृतस्वस्त्ययनो भ्रात्रा लक्ष्मणस्त्वरितो ययौ ॥ ३० ॥

भाई श्रीरामद्वारा स्वस्तिवाचन किये जानेके पश्चात् विभीषणसहित प्रतापी राजकुमार लक्ष्मण बड़ी उतावलीके साथ चले ॥ ३० ॥

वानराणां सहस्रैस्तु हनूमान् बहुभिर्वृतः ।
विभीषणश्च सामात्यो लक्ष्मणं त्वरितं ययौ ॥ ३१ ॥

कई हजार वानरवीरोंके साथ हनुमान् और मन्त्रियोंसहित विभीषण भी लक्ष्मणके पीछे शीघ्रतापूर्वक प्रस्थित हुए ॥ ३१ ॥

महता हरिसैन्येन सवेगमभिसंवृतः ।
ऋक्षराजबलं चैव ददर्श पथि विष्ठितम् ॥ ३२ ॥

विशाल वानर-सेनासहित घिरे हुए लक्ष्मणने वेगपूर्वक आगे बढ़कर मार्गमें खड़ी हुई ऋक्षराज जाम्बवान्‌की सेनाको देखा ॥ ३२ ॥

स गत्वा दूरमध्वानं सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ।
राक्षसेन्द्रबलं दूरादपश्यद् व्यूहमाश्रितम् ॥ ३३ ॥

दूरतकका रास्ता तै कर लेनेपर मित्रोंको आनन्दित करनेवाले सुमित्राकुमारने कुछ दूरसे ही देखा, राक्षसराज रावणकी सेना मोर्चा बाँधे खड़ी है ॥ ३३ ॥

स सम्प्राप्य धनुष्पाणिर्मायायोगमरिंदमः ।
तस्थौ ब्रह्मविधानेन विजेतुं रघुनन्दनः ॥ ३४ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले रघुकुलनन्दन लक्ष्मण हाथमें धनुष ले ब्रह्माजीके निश्चित किये हुए विधानके अनुसार उस मायावी राक्षसको जीतनेके लिये निकुम्भिला नामक स्थानमें पहुँचकर एक जगह खड़े हो गये ॥ ३४ ॥

विभीषणेन सहितो राजपुत्रः प्रतापवान् ।
अङ्गदेन च वीरेण तथानिलसुतेन च ॥ ३५ ॥

उस समय प्रतापी राजकुमार लक्ष्मणके साथ विभीषण, वीर अङ्गद तथा पवनकुमार हनुमान् भी थे ॥ ३५ ॥

विविधममलशस्त्रभास्वरं तद्
ध्वजगहनं गहनं महारथैश्च ।
प्रतिभयतममप्रमेयवेगं
तिमिरमिव द्विषतां बलं विवेश ॥ ३६ ॥

चमकीले अस्त्र-शस्त्रोंसे जो प्रकाशित हो रही थी, ध्वजों और महारथियोंके कारण गहन दिखायी देती थी, जिसके वेगका कोई माप नहीं था तथा जो अनेक प्रकारकी वेशभूषामें दृष्टिगोचर होती थी, अन्धकारके समान काली उस शत्रुसेनामें विभीषण आदिके साथ लक्ष्मणने प्रवेश किया ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पचासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८५ ॥

षडशीतितमः सर्गः

वानरों और राक्षसोंका युद्ध, हनुमान्‌जीके द्वारा राक्षससेनाका संहार और उनका इन्द्रजित्‌को द्वन्द्वयुद्धके लिये ललकारना तथा लक्ष्मणका उसे देखना

अथ तस्यामवस्थायां लक्ष्मणं रावणानुजः ।
परेषामहितं वाक्यमर्थसाधकमब्रवीत् ॥ १ ॥

उस अवस्थामें रावणके छोटे भाई विभीषणने लक्ष्मणसे ऐसी बात कही, जो उनके अभीष्ट अर्थको सिद्ध करनेवाली तथा शत्रुओंके लिये अहितकर थी ॥ १ ॥

यदेतद् राक्षसानीकं मेघश्यामं विलोक्यते ।
एतदायोध्यतां शीघ्रं कपिभिश्च शिलायुधैः ॥ २ ॥
तस्यानीकस्य महतो भेदने यत लक्ष्मण ।
राक्षसेन्द्रसुतोऽप्यत्र भिन्ने दृश्यो भविष्यति ॥ ३ ॥

वे बोले—'लक्ष्मण ! यह सामने जो मेघोंकी काली घटाके समान राक्षसोंकी सेना दिखायी देती है, उसके साथ शिलारूपी आयुध धारण करनेवाले वानरवीर शीघ्र ही युद्ध छेड़ दें और आप भी इस विशाल वाहिनीके व्यूहका भेदन करनेका प्रयत्न करें। इसका मोर्चा टूटनेपर राक्षसराजका पुत्र इन्द्रजित् भी हमें यहीं दिखायी देगा ॥ २-३ ॥

स त्वमिन्द्राशनिप्रख्यैः शरैरवकिरन् परान् ।
अभिद्रवाशु यावद् वै नैतत् कर्म समाप्यते ॥ ४ ॥

'अतः आप इस हवन-कर्मकी समाप्तिके पहले ही वज्र-तुल्य बाणोंकी वर्षा करते हुए शत्रुओंपर शीघ्र धावा कीजिये ॥

जहि वीर दुरात्मानं मायापरमधार्मिकम् ।
रावणिं क्रूरकर्माणं सर्वलोकभयावहम् ॥ ५ ॥

'वीर ! वह दुरात्मा रावणकुमार बड़ा ही मायावी, अधर्मी, क्रूर कर्म करनेवाला और सम्पूर्ण लोकोंके लिये भयंकर है; अतः इसका वध कीजिये' ॥ ५ ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।
ववर्ष शरवर्षेण राक्षसेन्द्रसुतं प्रति ॥ ६ ॥

विभीषणकी यह बात सुनकर शुभलक्षणसम्पन्न लक्ष्मणने राक्षसराजके पुत्रको लक्ष्य करके बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥

ऋक्षाः शाखामृगाश्चैव द्रुमप्रवरयोधिनः ।
अभ्यधावन्त सहितास्तदनीकमवस्थितम् ॥ ७ ॥

साथ ही बड़े-बड़े वृक्ष लेकर युद्ध करनेवाले वानर और भालू भी वहाँ खड़ी हुई राक्षस-सेनापर एक साथ ही टूट पड़े॥

राक्षसाश्च शितैर्बाणैरसिभिः शक्तितोमरैः ।
अभ्यवर्तन्त समरे कपिसैन्यजिघांसवः ॥ ८ ॥

उधरसे राक्षस भी वानरसेनाको नष्ट करनेकी इच्छासे समराङ्गणमें तीखे बाणों, तलवारों, शक्तियों और तोमरोंका प्रहार करते हुए उनका सामना करने लगे ॥ ८ ॥

स सम्प्रहारस्तुमुलः संजज्ञे कपिरक्षसाम् ।
शब्देन महता लङ्कां नादयन् वै समन्ततः ॥ ९ ॥

इस प्रकार वानरों और राक्षसोंमें घमासान युद्ध होने लगा । उसके महान् कोलाहलसे समूची लङ्कापुरी सब ओरसे गूँज उठी ॥ ९ ॥

शस्त्रैश्च विविधाकारैः शितैर्बाणैश्च पादपैः ।
उद्यतैर्गिरिशृङ्गैश्च घोरैराकाशमावृतम् ॥ १० ॥

नाना प्रकारके शस्त्रों, पैने बाणों, उठे हुए वृक्षों और भयानक पर्वत-शिखरोंसे वहाँका आकाश आच्छादित हो गया॥

राक्षसा वानरेन्द्रेषु विकृताननबाहवः ।
निवेशयन्तः शस्त्राणि चक्रुस्ते सुमहद्भयम् ॥ ११ ॥

विकट मुँह और बाँहोंवाले राक्षसोंने वानर-यूथपतियोंपर (नाना प्रकारके) शस्त्रोंका प्रहार करते हुए उनके लिये महान् भय उपस्थित कर दिया ॥ ११ ॥

तथैव सकलैर्वृक्षैर्गिरिशृङ्गैश्च वानराः ।
अभिजघ्नुर्निजघ्नुश्च समरे सर्वराक्षसान् ॥ १२ ॥

उसी प्रकार वानर भी समराङ्गणमें सम्पूर्ण वृक्षों और पर्वत-शिखरोंद्वारा समस्त राक्षसोंको मारने एवं हताहत करने लगे ॥ १२ ॥

ऋक्षवानरमुख्यैश्च महाकायैर्महाबलैः ।
रक्षसां युध्यमानानां महद्भयमजायत ॥ १३ ॥

मुख्य-मुख्य महाकाय महाबली रीछों और वानरोंसे जूझते हुए राक्षसोंको महान् भय लगने लगा ॥ १३ ॥

स्वमनीकं विषण्णं तु श्रुत्वा शत्रुभिरर्दितम् ।
उदतिष्ठत दुर्धर्षः स कर्मण्यननुष्ठिते ॥ १४ ॥

रावणकुमार इन्द्रजित् बड़ा दुर्धर्ष वीर था । उसने जब सुना कि मेरी सेना शत्रुओंद्वारा पीड़ित होकर बड़े दुःखमें पड़ गयी है, तब अनुष्ठान समाप्त होनेके पहले ही वह युद्धके लिये उठ खड़ा हुआ ॥ १४ ॥

वृक्षान्धकारान्निर्गत्य जातक्रोधः स रावणिः ।
आरुरोह रथं सज्जं पूर्वयुक्तं सुसंयतम् ॥ १५ ॥

उस समय उसके मनमें बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ था । वह वृक्षोंके अन्धकारसे निकलकर एक सुसज्जित रथपर आरूढ़ हुआ, जो पहलेसे ही जोतकर तैयार रक्खा गया था । वह रथ बहुत ही सुदृढ़ था ॥ १५ ॥

स भीमकार्मुकशरः कृष्णाञ्जनचयोपमः ।
रक्तास्यनयनो भीमो बभौ मृत्युरिवान्तकः ॥ १६ ॥

इन्द्रजित्के हाथमें भयंकर धनुष और बाण थे । वह काले कोयलेके ढेर-सा जान पड़ता था । उसके मुँह और नेत्र लाल थे । वह भयंकर राक्षस विनाशकारी मृत्युके समान प्रतीत होता था ॥ १६ ॥

दृष्ट्वैव तु रथस्थं तं पर्यवर्तत तद् बलम् ।
रक्षसां भीमवेगानां लक्ष्मणेन युयुत्सताम् ॥ १७ ॥

इन्द्रजित् रथपर बैठ गया, यह देखते ही लक्ष्मणके साथ युद्धकी इच्छा रखनेवाले भयंकर वेगशाली राक्षसोंकी वह सेना उसके आसपास सब ओर खड़ी हो गयी ॥ १७ ॥

तस्मिंस्तु काले हनुमानरुजत् स दुरासदम् ।
धरणीधरसंकाशो महावृक्षमरिंदमः ॥ १८ ॥

उस समय शत्रुओंका दमन करनेवाले पर्वतके समान विशालकाय हनुमान्‌जीने एक बहुत बड़े वृक्षको, जिसे तोड़ना या उखाड़ना कठिन था, उखाड़ लिया ॥ १८ ॥

स राक्षसानां तत् सैन्यं कालाग्निरिव निर्दहन् ।
चकार बहुभिर्वृक्षैर्निःसंज्ञं युधि वानरः ॥ १९ ॥

फिर तो वे वानरवीर प्रलयाग्निके समान प्रज्वलित हो उठे और युद्धस्थलमें राक्षसोंकी उस सेनाको दग्ध करते हुए बहुसंख्यक वृक्षोंकी मारसे अचेत करने लगे ॥ १९ ॥

विध्वंसयन्तं तरसा दृष्ट्वैव पवनात्मजम् ।
राक्षसानां सहस्राणि हनूमन्तमवाकिरन् ॥ २० ॥

पवनकुमार हनुमान्‌जी बड़े वेगसे राक्षस-सेनाका विध्वंस कर रहे हैं, यह देखते ही सहस्रों राक्षस उनपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ २० ॥

शितशूलधराः शूलैरसिभिश्चासिपाणयः ।
शक्तिहस्ताश्च शक्तीभिः पट्टिशैः पट्टिशायुधाः ॥ २१ ॥

चमकीले शूल धारण करनेवाले राक्षस शूलोंसे, जिनके हाथोंमें तलवारें थीं वे तलवारोंसे, शक्तिधारी शक्तियोंसे और पट्टिशधारी राक्षस पट्टिशोंसे उनपर प्रहार करने लगे ॥ २१ ॥

परिघैश्च गदाभिश्च कुन्तैश्च शुभदर्शनैः ।
शतशश्च शतघ्नीभिरायसैरपि मुद्गरैः ॥ २२ ॥
घोरैः परशुभिश्चैव भिन्दिपालैश्च राक्षसाः ।
मुष्टिभिर्वज्रकल्पैश्च तलैरशनिसंनिभैः ॥ २३ ॥
अभिजघ्नुः समासाद्य समन्तात् पर्वतोपमम् ।
तेषामपि च संक्रुद्धश्चकार कदनं महत् ॥ २४ ॥

बहुत-से परिघों, गदाओं, सुन्दर भालों, सैकड़ों शतघ्नियों, लोहेके बने हुए मुद्गरों, भयानक फरसों, भिन्दिपालों, वज्रके समान मुक्कों और अशनितुल्य थप्पड़ोंसे वे समस्त राक्षस पास आकर सब ओरसे पर्वताकार हनुमान्‌जीपर प्रहार करने लगे । हनुमान्‌जीने कुपित होकर उनका भी महान् संहार किया॥

स ददर्श कपिश्रेष्ठमचलोपममिन्द्रजित् ।
सूदमानमसंत्रस्तममित्रान् पवनात्मजम् ॥ २५ ॥

इन्द्रजित्‌ने देखा, कपिवर पवनकुमार हनुमान् पर्वतके समान अचल हो निःशङ्कभावसे अपने शत्रुओंका संहार कर रहे हैं ॥ २५ ॥

स सारथिमुवाचेदं याहि यत्रैष वानरः ।
क्षयमेव हि नः कुर्याद् राक्षसानामुपेक्षितः ॥ २६ ॥

यह देखकर उसने अपने सारथिसे कहा—'जहाँ यह वानर युद्ध करता है, वहीं चलो । यदि उसकी उपेक्षा की गयी तो यह हम सब राक्षसोंका विनाश ही कर डालेगा' ॥२६॥

इत्युक्तः सारथिस्तेन ययौ यत्र स मारुतिः ।
वहन् परमदुर्धर्षं स्थितमिन्द्रजितं रथे ॥ २७ ॥

उसके ऐसा कहनेपर सारथि रथपर बैठे हुए अत्यन्त दुर्जय वीर इन्द्रजित्‌को ढोता हुआ उस स्थानपर गया, जहाँ पवनपुत्र हनुमान्‌जी विराजमान थे ॥ २७ ॥

सोऽभ्युपेत्य शरान् खड्गान् पट्टिशांश्च परश्वधान् ।
अभ्यवर्षत दुर्धर्षः कपिमूर्धनि राक्षसः ॥ २८ ॥

वहाँ पहुँचकर उस दुर्जय राक्षसने हनुमान्‌जीके मस्तकपर बाणों, तलवारों, पट्टिशों और फरसोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥

तानि शस्त्राणि घोराणि प्रतिगृह्य स मारुतिः ।
रोषेण महताविष्टो वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ २९ ॥

उन भयानक शस्त्रोंको अपने शरीरपर झेलकर पवनपुत्र हनुमान्‌जी महान् रोषसे भर गये और इस प्रकार बोले— ॥

युध्यस्व यदि शूरोऽसि रावणात्मज दुर्मते ।
वायुपुत्रं समासाद्य न जीवन् प्रतियास्यसि ॥ ३० ॥

'दुर्बुद्धि रावणकुमार ! यदि बड़े शूरवीर हो तो आओ, मेरे साथ मल्लयुद्ध करो । इस वायुपुत्रसे भिड़कर जीवित नहीं लौट सकोगे ॥ ३० ॥

बाहुभ्यां सम्प्रयुध्यस्व यदि मे द्वन्द्वमाहवे ।
वेगं सहस्व दुर्बुद्धे ततस्त्वं रक्षसां वरः ॥ ३१ ॥

'दुर्मते ! अपनी भुजाओंद्वारा मेरे साथ द्वन्द्व-युद्ध करो । इस बाहुयुद्धमें यदि मेरा वेग सह लो तो तुम राक्षसोंमें श्रेष्ठ वीर समझे जाओगे' ॥ ३१ ॥

हनूमन्तं जिघांसन्तं समुद्यतशरासनम् ।
रावणात्मजमाचष्टे लक्ष्मणाय विभीषणः ॥ ३२ ॥

रावणकुमार इन्द्रजित् धनुष उठाकर हनुमान्‌जीका वध करना चाहता था । इसी अवस्थामें विभीषणने लक्ष्मणको उसका परिचय दिया— ॥ ३२ ॥

यः स वासवनिर्जेता रावणस्यात्मसम्भवः ।
स एष रथमास्थाय हनूमन्तं जिघांसति ॥ ३३ ॥
तमप्रतिमसंस्थानैः शरैः शत्रुनिवारणैः ।
जीवितान्तकरैर्घोरैः सौमित्रे रावणिं जहि ॥ ३४ ॥

'सुमित्रानन्दन ! रावणका जो पुत्र इन्द्रको भी जीत चुका है, वही यह रथपर बैठकर हनुमान्‌जीका वध करना चाहता है । अतः आप शत्रुओंका विदारण करनेवाले, अनुपम आकार-प्रकारसे युक्त एवं प्राणान्तकारी भयंकर बाणोंद्वारा उस रावणकुमारको मार डालिये' ॥ ३३-३४ ॥

इत्येवमुक्तस्तु तदा महात्मा
विभीषणेनारिविभीषणेन ।
ददर्श तं पर्वतसंनिकाशं
रथस्थितं भीमबलं दुरासदम् ॥ ३५ ॥

शत्रुओंको भयभीत करनेवाले विभीषणके ऐसा कहनेपर उस समय महात्मा लक्ष्मणने रथपर बैठे हुए उस भयंकर बलशाली पर्वताकार दुर्जय राक्षसको देखा ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें छियासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमः सर्गः

इन्द्रजित् और विभीषणकी रोषपूर्ण बातचीत

एवमुक्त्वा तु सौमित्रिं जातहर्षो विभीषणः ।
धनुष्पाणिं तमादाय त्वरमाणो जगाम सः ॥ १ ॥

पूर्वोक्त बात कहकर हर्षसे भरे हुए विभीषण धनुर्धर सुमित्राकुमारको साथ लेकर बड़े वेगसे आगे बढ़े ॥ १ ॥

अविदूरं ततो गत्वा प्रविश्य तु महद् वनम् ।
अदर्शयत तत्कर्म लक्ष्मणाय विभीषणः ॥ २ ॥

थोड़ी ही दूर जानेपर विभीषणने एक महान् वनमें प्रवेश करके लक्ष्मणको इन्द्रजित्‌के कर्मानुष्ठानका स्थान दिखाया । २ ।

नीलजीमूतसंकाशं न्यग्रोधं भीमदर्शनम् ।
तेजस्वी रावणभ्राता लक्ष्मणाय न्यवेदयत् ॥ ३ ॥

वहाँ एक बरगदका वृक्ष था, जो श्याममेघके समान सघन और देखनेमें भयंकर था । रावणके तेजस्वी भ्राता विभीषणने लक्ष्मणको वहाँकी सब वस्तुएँ दिखाकर कहा— ॥ ३ ॥

इहोपहारं भूतानां बलवान् रावणात्मजः ।
उपहृत्य ततः पश्चात् संग्राममभिवर्तते ॥ ४ ॥

'सुमित्रानन्दन ! यह बलवान् रावणकुमार प्रतिदिन यहीं

आकर पहले भूतोंको बलि देता, उसके बाद युद्धमें प्रवृत्त होता है ॥ ४ ॥

अदृश्यः सर्वभूतानां ततो भवति राक्षसः ।
निहन्ति समरे शत्रून् बध्नाति च शरोत्तमैः ॥ ५ ॥

'इसीसे संग्रामभूमिमें यह राक्षस सम्पूर्ण भूतोंके लिये अदृश्य हो जाता है और उत्तम बाणोंसे शत्रुओंको मारता तथा बाँध लेता है ॥ ५ ॥

तमप्रविष्टं न्यग्रोधं बलिनं रावणात्मजम् ।
विध्वंसय शरैर्दीप्तैः सरथं साश्वसारथिम् ॥ ६ ॥

'अतः जबतक यह इस बरगदके नीचे आये, उसके पहले ही आप अपने तेजस्वी बाणोंद्वारा इस बलवान् रावणकुमारको रथ, घोड़े और सारथिसहित नष्ट कर दीजिये' ॥ ६ ॥

तथेत्युक्त्वा महातेजाः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ।
बभूवावस्थितस्तत्र चित्रं विस्फारयन् धनुः ॥ ७ ॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर मित्रोंका आनन्द बढ़ानेवाले महातेजस्वी सुमित्राकुमार अपने विचित्र धनुषकी टंकार करते हुए वहाँ खड़े हो गये ॥ ७ ॥

स रथेनाग्निवर्णेन बलवान् रावणात्मजः ।
इन्द्रजित् कवची खड्गी सध्वजः प्रत्यदृश्यत ॥ ८ ॥

इतनेमें ही बलवान् रावणकुमार इन्द्रजित् अग्निके समान तेजस्वी रथपर बैठा हुआ कवच, खड्ग और ध्वजाके साथ दिखायी पड़ा ॥ ८ ॥

तमुवाच महातेजाः पौलस्त्यमपराजितम् ।
समाह्वये त्वां समरे सम्यग् युद्धं प्रयच्छ मे ॥ ९ ॥

तब महातेजस्वी लक्ष्मणने पराजित न होनेवाले पुलस्त्यकुलनन्दन इन्द्रजित्से कहा—'राक्षसकुमार ! मैं तुम्हें युद्धके लिये ललकारता हूँ । तुम अच्छी तरह सँभलकर मेरे साथ युद्ध करो' ॥ ९ ॥

एवमुक्तो महातेजा मनस्वी रावणात्मजः ।
अब्रवीत् परुषं वाक्यं तत्र दृष्ट्वा विभीषणम् ॥ १० ॥

लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी और मनस्वी रावणकुमारने वहाँ विभीषणको उपस्थित देख कठोर शब्दोंमें कहा—॥ १० ॥

इह त्वं जातसंवृद्धः साक्षाद् भ्राता पितुर्मम ।
कथं द्रुह्यसि पुत्रस्य पितृव्यो मम राक्षस ॥ ११ ॥

'राक्षस ! यहीं तुम्हारा जन्म हुआ और यहीं बढ़कर तुम इतने बड़े हुए । तुम मेरे पिताके सगे भाई और मेरे चाचा हो । फिर तुम अपने पुत्रसे—मुझसे क्यों द्रोह करते हो ?॥ ११ ॥

न ज्ञातित्वं न सौहार्दं न जातिस्तव दुर्मते ।
प्रमाणं न च सौदर्यं न धर्मो धर्मदूषण ॥ १२ ॥

'दुर्मते ! तुममें न तो कुटुम्बीजनोंके प्रति अपनापनका भाव है, न आत्मीयजनोंके प्रति स्नेह है और न अपनी जातिका अभिमान ही है । तुममें कर्तव्य-अकर्तव्यकी मर्यादा, भ्रातृ-प्रेम और धर्म कुछ भी नहीं है । तुम राक्षस-धर्मको कलंकित करनेवाले हो ॥ १२ ॥

शोच्यस्त्वमसि दुर्बुद्धे निन्दनीयश्च साधुभिः ।
यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्वमागतः ॥ १३ ॥

'दुर्बुद्धे ! तुमने स्वजनोंका परित्याग करके दूसरोंकी गुलामी स्वीकार की है । अतः तुम सत्पुरुषोंद्वारा निन्दनीय और शोकके योग्य हो ॥ १३ ॥

नैतच्छिथिलया बुद्ध्या त्वं वेत्सि महदन्तरम् ।
क्व च स्वजनसंवासः क्व च नीच पराश्रयः ॥ १४ ॥

'नीच निशाचर ! तुम अपनी शिथिल बुद्धिके द्वारा इस महान् अन्तरको नहीं समझ पा रहे हो कि कहाँ तो स्वजनोंके साथ रहकर स्वच्छन्दताका आनन्द लेना और कहाँ दूसरोंकी गुलामी करके जीना है ॥ १४ ॥

गुणवान् वा परजनः स्वजनो निर्गुणोऽपि वा ।
निर्गुणः स्वजनः श्रेयान् यः परः पर एव सः ॥ १५ ॥

'दूसरे लोग कितने ही गुणवान् क्यों न हों और स्वजन गुणहीन ही क्यों न हो ? वह गुणहीन स्वजन भी दूसरोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ ही है; क्योंकि दूसरा दूसरा ही होता है (वह कभी अपना नहीं हो सकता) ॥ १५ ॥

यः स्वपक्षं परित्यज्य परपक्षं निषेवते ।
स स्वपक्षे क्षयं याते पश्चात् तैरेव हन्यते ॥ १६ ॥

'जो अपने पक्षको छोड़कर दूसरे पक्षके लोगोंका सेवन करता है, वह अपने पक्षके नष्ट हो जानेपर फिर उन्हींके द्वारा मार डाला जाता है ॥ १६ ॥

निरनुक्रोशता चेयं यादृशी ते निशाचर ।
स्वजनेन त्वया शक्यं पौरुषं रावणानुज ॥ १७ ॥

'रावणके छोटे भाई निशाचर ! तुमने लक्ष्मणको इस स्थानतक ले आकर मेरा वध करानेके लिये प्रयत्न करके यह जैसी निर्दयता दिखायी है, ऐसा पुरुषार्थ तुम्हारे-जैसा स्वजन ही कर सकता है—तुम्हारे सिवा दूसरे किसी स्वजनके लिये ऐसा करना सम्भव नहीं है' ॥ १७ ॥

इत्युक्तो भ्रातृपुत्रेण प्रत्युवाच विभीषणः ।
अजानन्निव मच्छीलं किं राक्षस विकत्थसे ॥ १८ ॥

अपने भतीजेके ऐसा कहनेपर विभीषणने उत्तर दिया—'राक्षस ! तू आज ऐसी शेखी क्यों बघारता है ? जान पड़ता है तुझे मेरे स्वभावका पता ही नहीं है ॥ १८ ॥

राक्षसेन्द्रसुतासाधो पारुष्यं त्यज गौरवात् ।
कुले यद्यप्यहं जातो रक्षसां क्रूरकर्मणाम् ।
गुणो यः प्रथमो नृणां तन्मे शीलमराक्षसम् ॥ १९ ॥

'अधम ! राक्षसराजकुमार ! बड़ोंके बड़प्पनका ख्याल करके तू इस कठोरताका परित्याग कर दे । यद्यपि मेरा जन्म क्रूरकर्मा राक्षसोंके कुलमें ही हुआ है, तथापि मेरा शील-स्वभाव राक्षसोंका-सा नहीं है । सत्पुरुषोंका जो प्रधान गुण सत्त्व है, मैंने उसीका आश्रय ले रक्खा है ॥ १९ ॥

न रमे दारुणेनाहं न चाधर्मेण वै रमे ।
भ्रात्रा विषमशीलोऽपि कथं भ्राता निरस्यते ॥ २० ॥

'क्रूरतापूर्ण कर्ममें मेरा मन नहीं लगता । अधर्ममें मेरी रुचि नहीं होती । यदि अपने भाईका शील-स्वभाव अपनेसे न मिलता हो तो भी बड़ा भाई छोटे भाईको कैसे घरसे निकाल सकता है ? (परंतु मुझे घरसे निकाल दिया गया, फिर मैं दूसरे सत्पुरुषका आश्रय क्यों न लूँ ?) ॥ २० ॥

धर्मात् प्रच्युतशीलं हि पुरुषं पापनिश्चयम् ।
त्यक्त्वा सुखमवाप्नोति हस्तादाशीविषं यथा ॥ २१ ॥

'जिसका शील-स्वभाव धर्मसे भ्रष्ट हो गया हो, जिसने पाप करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया हो, ऐसे पुरुषका त्याग करके प्रत्येक प्राणी उसी प्रकार सुखी होता है, जैसे हाथपर बैठे हुए जहरीले सर्पको त्याग देनेसे मनुष्य निर्भय हो जाता है ॥ २१ ॥

परस्वहरणे युक्तं परदाराभिमर्शकम् ।
त्याज्यमाहुर्दुरात्मानं वेश्म प्रज्वलितं यथा ॥ २२ ॥

'जो दूसरोंका धन लूटता हो और परायी स्त्रीपर हाथ लगाता हो, उस दुरात्माको जलते हुए घरकी भाँति त्याग देने योग्य बताया गया है ॥ २२ ॥

परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम् ।
सुहृदामतिशङ्का च त्रयो दोषाः क्षयावहाः ॥ २३ ॥

'पराये धनका अपहरण, परस्त्रीके साथ संसर्ग और अपने हितैषी सुहृदोंपर अधिक शङ्का—अविश्वास—ये तीन दोष विनाशकारी बताये गये हैं ॥ २३ ॥

महर्षीणां वधो घोरः सर्वदेवैश्च विग्रहः ।
अभिमानश्च रोषश्च वैरत्वं प्रतिकूलता ॥ २४ ॥
एते दोषा मम भ्रातुर्जीवितैश्वर्यनाशनाः ।
गुणान् प्रच्छादयामासुः पर्वतानिव तोयदाः ॥ २५ ॥

'महर्षियोंका भयंकर वध, सम्पूर्ण देवताओंके साथ विरोध, अभिमान, रोष, वैर और धर्मके प्रतिकूल चलना—ये दोष मेरे भाईमें मौजूद हैं, जो उसके प्राण और ऐश्वर्य दोनोंका नाश करनेवाले हैं । जैसे बादल पर्वतोंको आच्छादित कर देते हैं, उसी प्रकार इन दोषोंने मेरे भाईके सारे गुणोंको ढक दिया है ॥ २४-२५ ॥

दोषैरेतैः परित्यक्तो मया भ्राता पिता तव ।
नेयमस्ति पुरी लङ्का न च त्वं न च ते पिता ॥ २६ ॥

'इन्हीं दोषोंके कारण मैंने अपने भाई एवं तेरे पिताका त्याग किया है । अब न तो यह लङ्कापुरी रहेगी, न तू रहेगा और न तेरे पिता ही रह जायँगे ॥ २६ ॥

अतिमानश्च बालश्च दुर्विनीतश्च राक्षस ।
बद्धस्त्वं कालपाशेन ब्रूहि मां यद् यदिच्छसि ॥ २७ ॥

'राक्षस ! तू अत्यन्त अभिमानी, उद्दण्ड और बालक (मूर्ख) है, कालके पाशमें बँधा हुआ है; इसलिये तेरी जो-जो इच्छा हो, मुझे कह ले ॥ २७ ॥

अद्येह व्यसनं प्राप्तं यन्मां परुषमुक्तवान् ।
प्रवेष्टुं न त्वया शक्यं न्यग्रोधं राक्षसाधम ॥ २८ ॥

'नीच राक्षस ! तूने मुझसे जो कठोर बात कही है, उसीका यह फल है कि आज तुझपर यहाँ घोर संकट आया है । अब तू बरगदके नीचेतक नहीं जा सकता ॥ २८ ॥

धर्षयित्वा च काकुत्स्थं न शक्यं जीवितुं त्वया ।
युध्यस्व नरदेवेन लक्ष्मणेन रणे सह ।
हतस्त्वं देवताकार्यं करिष्यसि यमक्षयम् ॥ २९ ॥

'ककुत्स्थकुलभूषण लक्ष्मणका तिरस्कार करके तू जीवित नहीं रह सकता; अतः इन नरदेव लक्ष्मणके साथ रणभूमिमें युद्ध कर । यहाँ मारा जाकर तू यमलोकमें पहुँचेगा और देवताओंका कार्य करेगा (उन्हें संतुष्ट करेगा)॥ २९ ॥

निदर्शयस्वात्मबलं समुद्यतं
कुरुष्व सर्वायुधसायकव्ययम् ।
न लक्ष्मणस्यैत्य हि बाणगोचरं
त्वमद्य जीवन् सबलो गमिष्यसि ॥ ३० ॥

'अब तू अपना बढ़ा हुआ सारा बल दिखा' समस्त आयुधों और सायकोंका व्यय कर ले; परंतु लक्ष्मणके बाणोंका निशाना बनकर आज तू सेनासहित जीवित नहीं लौट सकेगा' ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सतासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमः सर्गः

लक्ष्मण और इन्द्रजित्की परस्पर रोषभरी बातचीत और घोर युद्ध

विभीषणवचः श्रुत्वा रावणिः क्रोधमूर्च्छितः ।
अब्रवीत् परुषं वाक्यं क्रोधेनाभ्युत्पपात च ॥ १ ॥

विभीषणकी यह बात सुनकर रावणकुमार इन्द्रजित् क्रोधसे मूर्च्छित-सा हो उठा । वह रोषपूर्वक कठोर बातें

कहने लगा और उछलकर सामने आ गया ॥ १ ॥

उद्यतायुधनिस्त्रिंशो रथे सुसमलंकृते ।
कालाश्वयुक्ते महति स्थितः कालान्तकोपमः ॥ २ ॥

उसने खड्ग तथा दूसरे आयुध भी उठा रखे थे। काले घोड़ोंसे युक्त, सजे-सजाये विशाल रथपर बैठा हुआ इन्द्रजित् विनाशकारी कालके समान जान पड़ता था ॥ २ ॥

महाप्रमाणमुद्यम्य विपुलं वेगवद् दृढम् ।
धनुर्भीमबलो भीमं शरांश्चामित्रनाशनान् ॥ ३ ॥

वह भयंकर बलशाली निशाचर बहुत बड़े आकारवाले, लंबे, मजबूत, वेगशाली और भयानक धनुषको तथा शत्रुओंका नाश करनेमें समर्थ बाणोंको भी लेकर युद्धके लिये उद्यत था ॥ ३ ॥

तं ददर्श महेष्वासो रथस्थः समलंकृतः ।
अलंकृतममित्रघ्नो रावणस्यात्मजो बली ॥ ४ ॥
हनूमत्पृष्ठमारूढमुदयस्थरविप्रभम् ।

वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत होकर रथपर बैठे हुए उस महाधनुर्धर, शत्रुनाशक बलवान् रावणकुमारने देखा, लक्ष्मण अपने तेजसे ही विभूषित हो हनुमान्‌जीकी पीठपर आरूढ़ होकर उदयाचलपर विराजमान सूर्यदेवके समान प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ४½ ॥

उवाचैनं सुसंरब्धः सौमित्रिं सविभीषणम् ॥ ५ ॥
तांश्च वानरशार्दूलान् पश्यध्वं मे पराक्रमम् ।
अद्य मत्कार्मुकोत्सृष्टं शरवर्षं दुरासदम् ॥ ६ ॥
मुक्तवर्षमिवाकाशे धारयिष्यथ संयुगे ।

देखते ही वह अत्यन्त रोषसे भर गया और विभीषणसहित सुमित्राकुमार तथा अन्य वानरसिंहोंसे कहा—'शत्रुओ! आज मेरा पराक्रम देखना। तुम सब लोग युद्धस्थलमें मेरे धनुषसे छूटे हुए बाणोंकी दुःसह वर्षाको अपने अङ्गोंपर उसी तरह धारण करोगे, जैसे आकाशमें होनेवाली उन्मुक्त वर्षाको भूतलके प्राणी अपने ऊपर धारण करते हैं ॥ ५-६½ ॥

अद्य वो मामका बाणा महाकार्मुकनिःसृताः ।
विधमिष्यन्ति गात्राणि तूलराशिमिवानलः ॥ ७ ॥

'जैसे आग रूईके ढेरको जला देती है, उसी प्रकार इस विशाल धनुषसे छूटे हुए मेरे बाण आज तुम्हारे शरीरोंकी धज्जियाँ उड़ा देंगे ॥ ७ ॥

तीक्ष्णसायकनिर्भिन्नाञ्शूलशक्त्यृष्टितोमरैः ।
अद्य वो गमयिष्यामि सर्वानेव यमक्षयम् ॥ ८ ॥

'आज अपने शूल, शक्ति, ऋष्टि और तोमरोंद्वारा तथा तीखे सायकोंसे छिन्न-भिन्न करके तुम सब लोगोंको यमलोक पहुँचा दूँगा ॥ ८ ॥

सृजतः शरवर्षाणि क्षिप्रहस्तस्य संयुगे ।
जीमूतस्येव नदतः कः स्थास्यति ममाग्रतः ॥ ९ ॥

'युद्धस्थलमें हाथोंको बड़ी फुर्तीसे चलाकर जब मैं मेघके समान गर्जता हुआ बाणोंकी वर्षा आरम्भ करूँगा, उस समय कौन मेरे सामने ठहर सकेगा? ॥ ९ ॥

रात्रियुद्धे तदा पूर्वं वज्राशनिसमैः शरैः ।
शायितौ तौ मया भूयो विसंज्ञौ सपुरःसरौ ॥ १० ॥
स्मृतिर्न तेऽस्ति वा मन्ये व्यक्तं यातो यमक्षयम् ।
आशीविषसमं क्रुद्धं यन्मां योद्धुमुपस्थितः ॥ ११ ॥

'लक्ष्मण! उस दिन रात्रियुद्धमें मैंने वज्र और अशनिके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा जो पहले तुम दोनों भाइयोंको रणभूमिमें सुला दिया था और तुमलोग अपने अग्रगामी सैनिकोंसहित मूर्च्छित होकर पड़े थे, मैं समझता हूँ, उसका इस समय तुम्हें स्मरण नहीं हो रहा है। विषधर सर्पके समान रोषसे भरे हुए मुझ इन्द्रजित्‌के साथ जो तुम युद्ध करनेके लिये उपस्थित हो गये, उससे स्पष्ट जान पड़ता है कि यमलोकमें जानेके लिये उद्यत हो' ॥ १०-११ ॥

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य गर्जितं राघवस्तदा ।
अभीतवदनः क्रुद्धो रावणिं वाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥

राक्षसराजके बेटेकी वह गर्जना सुनकर रघुकुलनन्दन लक्ष्मण कुपित हो उठे। उनके मुखपर भयका कोई चिह्न नहीं था। वे उस रावणकुमारसे बोले—॥ १२ ॥

उक्तश्च दुर्गमः पारः कार्याणां राक्षस त्वया ।
कार्याणां कर्मणा पारं यो गच्छति स बुद्धिमान् ॥ १३ ॥

'निशाचर! तुमने केवल वाणीद्वारा अपने शत्रुवध आदि कार्योंकी पूर्तिके लिये घोषणा कर दी; परंतु उन कार्योंको पूरा करना तुम्हारे लिये बहुत ही कठिन है। जो क्रियाद्वारा कर्तव्यकर्मोंके पार पहुँचता है अर्थात् जो कहता नहीं, काम पूरा करके दिखा देता है, वही पुरुष बुद्धिमान् है ॥ १३ ॥

स त्वमर्थस्य हीनार्थो दुरवापस्य केनचित् ।
वाचा व्याहृत्य जानीषे कृतार्थोऽस्मीति दुर्मते ॥ १४ ॥

'दुर्मते! तुम अपने अभीष्ट कार्यको सिद्ध करनेमें असमर्थ हो। जो कार्य किसीके द्वारा भी सिद्ध होना कठिन है, उसे केवल वाणीके द्वारा कहकर तुम अपनेको कृतार्थ मान रहे हो! ॥ १४ ॥

अन्तर्धानगतेनाजौ यत्त्वया चरितस्तदा ।
तस्कराचरितो मार्गो नैष वीरनिषेवितः ॥ १५ ॥

'उस दिन संग्राममें अपनेको छिपाकर तुमने जिसका आश्रय लिया था, वह चोरोंका मार्ग है। वीर पुरुष उसका सेवन नहीं करते ॥ १५ ॥

यथा बाणपथं प्राप्य स्थितोऽस्मि तव राक्षस ।
दर्शयस्वाद्य तत्तेजो वाचा त्वं किं विकत्थसे ॥ १६ ॥

'राक्षस! इस समय मैं तुम्हारे बाणोंके मार्गमें आकर खड़ा हूँ। आज तुम अपना वह तेज दिखाओ। केवल बढ़-बढ़कर बातें क्यों बना रहे हो?' ॥ १६ ॥

एवमुक्तो धनुर्भीमं परामृश्य महाबलः ।
ससर्ज निशितान् बाणानिन्द्रजित् समितिंजयः ॥१७॥

लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर संग्रामविजयी महाबली इन्द्रजित्ने अपने भयंकर धनुषको दृढ़तापूर्वक पकड़कर पैने बाणोंकी वृष्टि आरम्भ कर दी ॥ १७ ॥

तेन सृष्टा महावेगाः शराः सर्पविषोपमाः ।
सम्प्राप्य लक्ष्मणं पेतुः श्वसन्त इव पन्नगाः ॥१८॥

उसके छोड़े हुए महान् वेगशाली बाण साँपके विषकी तरह जहरीले थे। वे फुफकारते हुए सर्पके समान लक्ष्मणके शरीरपर पड़ने लगे ॥ १८ ॥

शरैरतिमहावेगैर्वेगवान् रावणात्मजः ।
सौमित्रिमिन्द्रजिद् युद्धे विव्याध शुभलक्षणम् ॥ १९ ॥

वेगवान् रावणकुमार इन्द्रजित्ने उन अत्यन्त वेगशाली बाणोंद्वारा युद्धमें शुभलक्षण लक्ष्मणको घायल कर दिया ॥

स शरैरतिविद्धाङ्गो रुधिरेण समुक्षितः ।
शुशुभे लक्ष्मणः श्रीमान् विधूम इव पावकः ॥ २०॥

बाणोंसे उनका शरीर अत्यन्त क्षत-विक्षत हो गया। वे रक्तसे नहा उठे। उस अवस्थामें श्रीमान् लक्ष्मण धूमरहित प्रज्वलित अग्निके समान शोभा पा रहे थे ॥ २० ॥

इन्द्रजित् त्वात्मनः कर्म प्रसमीक्ष्याभिगम्य च ।
विनद्य सुमहानादमिदं वचनमब्रवीत् ॥२१॥

इन्द्रजित् अपना यह पराक्रम देख लक्ष्मणके पास जा बड़े जोरसे गर्जना करके यों बोला—॥ २१ ॥

पत्रिणः शितधारास्ते शरा मत्कार्मुकच्युताः ।
आदास्यन्तेऽद्य सौमित्रे जीवितं जीवितान्तकाः ॥ २२ ॥

'सुमित्राकुमार! मेरे धनुषसे छूटे हुए तेज धारवाले पंखधारी बाण शत्रुके जीवनका अन्त कर देनेवाले हैं। ये आज तुम्हारे प्राण लेकर ही रहेंगे ॥ २२ ॥

अद्य गोमायुसङ्घाश्च श्येनसङ्घाश्च लक्ष्मण ।
गृध्राश्च निपतन्तु त्वां गतासुं निहतं मया ॥ २३ ॥

'लक्ष्मण! आज मेरे द्वारा मारे जाकर जब तुम्हारे प्राण निकल जायँगे, तब तुम्हारी लाशपर झुंड-के-झुंड गीदड़, बाज और गीध टूट पड़ेंगे ॥ २३ ॥

क्षत्रबन्धुं सदानार्यं रामः परमदुर्मतिः ।
भक्तं भ्रातरमद्यैव त्वां द्रक्ष्यति हतं मया ॥ २४ ॥

'परम दुर्बुद्धि राम तुम-जैसे अनार्य, क्षत्रियाधम एवं अपने भक्त भाईको आज ही मेरे द्वारा मारा गया देखेंगे ॥

विस्रस्तकवचं भूमौ व्यपविद्धशरासनम् ।
हृतोत्तमाङ्गं सौमित्रे त्वामद्य निहतं मया ॥ २५ ॥

'सुमित्राकुमार! तुम्हारा कवच खिसककर पृथ्वीपर गिर जायगा, धनुष भी दूर जा पड़ेगा और तुम्हारा मस्तक भी धड़से अलग कर दिया जायगा। इस अवस्थामें राम आज मेरे हाथसे मारे गये तुमको देखेंगे' ॥ २५ ॥

इति ब्रुवाणं संक्रुद्धः परुषं रावणात्मजम् ।
हेतुमद् वाक्यमर्थज्ञो लक्ष्मणः प्रत्युवाच ह ॥ २६ ॥

इस तरह कठोर बातें कहते हुए रावणकुमार इन्द्रजित्से अपने प्रयोजनको जाननेवाले लक्ष्मणने कुपित होकर यह युक्तियुक्त उत्तर दिया—॥ २६ ॥

वाग्बलं त्यज दुर्बुद्धे क्रूरकर्मन् हि राक्षस ।
अथ कस्माद् वदस्येतत् सम्पादय सुकर्मणा ॥ २७ ॥

'क्रूरकर्म करनेवाले दुर्बुद्धि राक्षस! बकवासका बल छोड़ दे। तू ये सब बातें कहता क्यों है? करके दिखा ॥ २७ ॥

अकृत्वा कत्थसे कर्म किमर्थमिह राक्षस ।
कुरु तत् कर्म येनाहं श्रद्धेयं तव कत्थनम् ॥ २८ ॥

'निशाचर! जो काम अभी किया नहीं, उसके लिये यहाँ व्यर्थ डींग क्यों हाँकता है? तू जिसे कहता है, उस कार्यको पूरा कर, जिससे मुझे तेरी इस बढ़ा-चढ़ाकर कही हुई बातपर विश्वास हो ॥ २८ ॥

अनुक्त्वा परुषं वाक्यं किंचिदप्यनवक्षिपन् ।
अविकत्थन् वधिष्यामि त्वां पश्य पुरुषादन ॥ २९ ॥ ✓

'नरभक्षी राक्षस! तू देख लेना, मैं कोई कठोर बात न कहकर तेरे ऊपर किसी तरहका आक्षेप न करके आत्मप्रशंसा किये बिना ही तेरा वध करूँगा' ॥ २९ ॥

इत्युक्त्वा पञ्च नाराचानाकर्णापूरिताञ्शरान् ।
विजघान महावेगाल्लक्ष्मणो राक्षसोरसि ॥ ३० ॥

ऐसा कहकर लक्ष्मणने उस राक्षसकी छातीमें बड़े वेगसे पाँच नाराच मारे, जो धनुषको कानतक खींचकर छोड़े गये थे ॥ ३० ॥

सुपत्रवाजिता बाणा ज्वलिता इव पन्नगाः ।
नैर्ऋतोरस्यभासन्त सवितू रश्मयो यथा ॥ ३१ ॥

सुन्दर पंखोंके कारण अत्यन्त वेगसे जानेवाले और प्रज्वलित सर्पके समान दिखायी देनेवाले वे बाण उस राक्षसकी छातीपर सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ३१ ॥

स शरैराहतस्तेन सरोषो रावणात्मजः ।
सुप्रयुक्तैस्त्रिभिर्बाणैः प्रतिविव्याध लक्ष्मणम् ॥ ३२ ॥

लक्ष्मणके बाणोंसे आहत होकर रावणकुमार रोषसे आग-बबूला हो उठा। उसने अच्छी तरह चलाये हुए तीन बाणोंसे लक्ष्मणको भी घायल करके बदला चुकाया ॥ ३२ ॥

स बभूव महाभीमो नरराक्षससिंहयोः ।
विमर्दस्तुमुलो युद्धे परस्परजयैषिणोः ॥ ३३ ॥

एक ओर पुरुषसिंह लक्ष्मण थे तो दूसरी ओर राक्षससिंह इन्द्रजित्। दोनों युद्धस्थलमें एक-दूसरेपर विजय पाना चाहते थे। उन दोनोंका वह तुमुल संग्राम महाभयंकर था ॥

विक्रान्तौ बलसम्पन्नावुभौ विक्रमशालिनौ ।
उभौ परमदुर्जयावतुल्यबलतेजसौ ॥ ३४ ॥

वे दोनों वीर पराक्रमी, बलसम्पन्न, विक्रमशाली, परम दुर्जय तथा अनुपम बल और तेजसे युक्त होनेके कारण अत्यन्त दुर्जय थे ॥ ३४ ॥

युयुधाते तदा वीरौ ग्रहाविव नभोगतौ ।
बलवृत्राविव हि तौ युधि वै दुष्प्रधर्षणौ ॥ ३५ ॥

जैसे आकाशमें दो ग्रह टकरा गये हों, उसी तरह वे दोनों वीर परस्पर जूझ रहे थे । उस युद्धस्थलमें वे इन्द्र और वृत्रासुरके समान दुर्धर्ष जान पड़ते थे ॥ ३५ ॥

युयुधाते महात्मानौ तदा केसरिणाविव ।
बहूनवसृजन्तौ हि मार्गणौघानवस्थितौ ।
नरराक्षसमुख्यौ तौ प्रहृष्टावभ्ययुध्यताम् ॥ ३६ ॥

वे महामनस्वी नरश्रेष्ठ तथा राक्षसप्रवर वीर जैसे दो सिंह आपसमें लड़ रहे हों उसी प्रकार युद्ध करते थे और बहुत-से बाणोंकी वर्षा करते हुए युद्धभूमिमें डटे हुए थे । दोनों ही बड़े हर्ष और उत्साहके साथ एक-दूसरेका सामना करते थे ॥ ३६ ॥

ततः शरान् दाशरथिः संधायामित्रकर्षणः ।
ससर्ज राक्षसेन्द्राय क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ॥ ३७ ॥

तदनन्तर दशरथनन्दन शत्रुसूदन लक्ष्मणने कुपित हुए सर्पकी भाँति लंबी साँस खींचते हुए अपने धनुषपर अनेक बाण रक्खे और उन सबको राक्षसराज इन्द्रजित्पर चलाया ॥

तस्य ज्यातलनिर्घोषं स श्रुत्वा राक्षसाधिपः ।
विवर्णवदनो भूत्वा लक्ष्मणं समुदैक्षत ॥ ३८ ॥

उनके धनुषकी डोरीसे प्रकट होनेवाली टंकार-ध्वनि सुनकर राक्षसराज इन्द्रजित्का मुँह उदास हो गया और वह चुपचाप लक्ष्मणकी ओर देखने लगा ॥ ३८ ॥

विवर्णवदनं दृष्ट्वा राक्षसं रावणात्मजम् ।
सौमित्रिं युद्धसंयुक्तं प्रत्युवाच विभीषणः ॥ ३९ ॥

रावणकुमार इन्द्रजित्का मुँह उदास देखकर विभीषणने युद्धमें लगे हुए सुमित्राकुमारसे कहा—॥ ३९ ॥

निमित्तान्युप पश्यामि यान्यस्मिन् रावणात्मजे ।
त्वर तेन महाबाहो भग्न एष न संशयः ॥ ४० ॥

'महाबाहो ! इस समय रावणपुत्र इन्द्रजित्में मुझे जो लक्षण दिखायी दे रहे हैं, उनसे जान पड़ता है कि निःसंदेह इसका उत्साह भंग हो गया है; अतः आप इसके वधके लिये शीघ्रता करें' ॥ ४० ॥

ततः संधाय सौमित्रिः शरानाशीविषोपमान् ।
मुमोच विशिखांस्तस्मिन् सर्पानिव विषोल्बणान् ॥ ४१ ॥

तब सुमित्राकुमारने विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाणोंको धनुषपर चढ़ाया और उन्हें इन्द्रजित्को लक्ष्य करके चला दिया । वे बाण क्या थे महाविषैले सर्प थे ॥ ४१ ॥

शक्राशनिसमस्पर्शैर्लक्ष्मणेनाहतः शरैः ।
मुहूर्तमभवन्मूढः सर्वसंक्षुभितेन्द्रियः ॥ ४२ ॥

उन बाणोंका स्पर्श इन्द्रके वज्रकी भाँति दुःसह था । लक्ष्मणके चलाये हुए उन बाणोंकी चोट खाकर इन्द्रजित् दो घड़ीके लिये मूर्छित हो गया । उसकी सारी इन्द्रियाँ विक्षुब्ध हो उठीं ॥ ४२ ॥

उपलभ्य मुहूर्तेन संज्ञां प्रत्यागतेन्द्रियः ।
ददर्शावस्थितं वीरमाजौ दशरथात्मजम् ।
सोऽभिचक्राम सौमित्रिं रोषात् संरक्तलोचनः ॥ ४३ ॥

थोड़ी देरमें जब होश हुआ और इन्द्रियाँ सुस्थिर हुईं, तब उसने रणभूमिमें दशरथकुमार वीर लक्ष्मणको खड़ा देखा । देखते ही उसके नेत्र रोषसे लाल हो गये और वह सुमित्राकुमारके सामने गया ॥ ४३ ॥

अब्रवीच्चैनमासाद्य पुनः स परुषं वचः ।
किं न स्मरसि तद् युद्धे प्रथमे मत्पराक्रमम् ।
निबद्धस्त्वं सह भ्रात्रा यदा युधि विचेष्टसे ॥ ४४ ॥

वहाँ पहुँचकर वह उनसे कठोर वाणीमें बोला—'सुमित्राकुमार ! पहले युद्धमें मैंने जो पराक्रम दिखाया था, उसे क्या तुम भूल गये ? उस दिन तुमको और तुम्हारे भाईको भी मैंने बाँध लिया था । उस समय तुम युद्धभूमिमें पड़े-पड़े छटपटा रहे थे ॥ ४४ ॥

युवां खलु महायुद्धे वज्राशनिसमैः शरैः ।
शायितौ प्रथमं भूमौ विसंज्ञौ सपुरःसरौ ॥ ४५ ॥

'उस महायुद्धमें वज्र एवं अशनिके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा मैंने तुम दोनों भाइयोंको पहले धरतीपर सुला दिया था । तुम दोनों अपने अग्रगामी सैनिकोंके साथ मूर्छित होकर पड़े थे ॥ ४५ ॥

स्मृतिर्वा नास्ति ते मन्ये व्यक्तं वा यमसादनम् ।
गन्तुमिच्छसि यन्मां त्वमाधर्षयितुमिच्छसि ॥ ४६ ॥

'अथवा मालूम होता है कि तुम्हें उन सब बातोंकी याद नहीं आ रही है । यह स्पष्ट जान पड़ता है कि तुम यमलोकमें जाना चाहते हो । इसीलिये तुम मुझे पराजित करनेकी इच्छा रखते हो ॥ ४६ ॥

यदि ते प्रथमे युद्धे न दृष्टो मत्पराक्रमः ।
अद्य त्वां दर्शयिष्यामि तिष्ठेदानीं व्यवस्थितः ॥ ४७ ॥

'यदि पहले युद्धमें तुमने मेरा पराक्रम नहीं देखा है तो आज तुम्हें दिखा दूँगा । इस समय सुस्थिरभावसे खड़े रहो' ॥

इत्युक्त्वा सप्तभिर्बाणैरभिविव्याध लक्ष्मणम् ।
दशभिस्तु हनूमन्तं तीक्ष्णधारैः शरोत्तमैः ॥ ४८ ॥

ऐसा कहकर तीखी धारवाले सात बाणोंसे उसने लक्ष्मणको घायल कर दिया और दस उत्तम सायकोंद्वारा हनुमान्‌जीपर प्रहार किया ॥ ४८ ॥

ततः शरशतेनैव सुप्रयुक्तेन वीर्यवान् ।
क्रोधाद् द्विगुणसंरब्धो निर्बिभेद विभीषणम् ॥ ४९ ॥

तत्पश्चात् दूने रोषसे भरे हुए उस पराक्रमी निशाचरने अच्छी तरहसे छोड़े गये सौ बाणोंद्वारा विभीषणको क्रोधपूर्वक क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ४९ ॥

तद् दृष्ट्वेन्द्रजिता कर्म कृतं रामानुजस्तदा ।
अचिन्तयित्वा प्रहसन्नैतत् किंचिदिति ब्रुवन् ॥ ५० ॥

इन्द्रजित्‌द्वारा किये गये इस पराक्रमको देखकर श्रीरामके छोटे भाई लक्ष्मणने उसकी कोई परवा नहीं की और हँसते-हँसते कहा—'यह तो कुछ नहीं है' ॥ ५० ॥

मुमोच च शरान् घोरान् संगृह्य नरपुंगवः ।
अभीतवदनः क्रुद्धो रावणिं लक्ष्मणो युधि ॥ ५१ ॥

साथ ही उन नरश्रेष्ठ लक्ष्मणने मुखपर भयकी छायातक नहीं आने दी । उन्होंने युद्धस्थलमें कुपित हो भयंकर बाण हाथमें लिये और उन्हें रावणकुमारको लक्ष्य करके चला दिया॥

नैवं रणगताः शूराः प्रहरन्ति निशाचर ।
लघवश्चाल्पवीर्याश्च शरा हीमे सुखास्तव ॥ ५२ ॥

फिर वे बोले—'निशाचर ! रणभूमिमें आये हुए शूरवीर इस तरह प्रहार नहीं करते । तुम्हारे ये बाण बहुत हल्के और कमजोर हैं । इनसे कष्ट नहीं होता—सुख ही मिलता है॥

नैवं शूरास्तु युध्यन्ते समरे युद्धकाङ्क्षिणः ।
इत्येवं तं ब्रुवन् धन्वी शरैरभिववर्ष ह ॥ ५३ ॥

'युद्धकी इच्छा रखनेवाले शूरवीर समराङ्गणमें इस तरह युद्ध नहीं करते हैं ।' ऐसा कहते हुए धनुर्धर वीर लक्ष्मणने उस राक्षसपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ५३ ॥

तस्य बाणैः सुविध्वस्तं कवचं काञ्चनं महत् ।
व्यशीर्यत रथोपस्थे ताराजालमिवाम्बरात् ॥ ५४ ॥

लक्ष्मणके बाणोंसे इन्द्रजित्‌का महान् कवच, जो सोनेका बना हुआ था, टूटकर रथकी बैठकमें बिखर गया, मानो आकाशसे ताराओंका समूह टूटकर गिर पड़ा हो ॥ ५४ ॥

विधूतवर्मा नाराचैर्बभूव स कृतव्रणः ।
इन्द्रजित् समरे वीरः प्रत्यूषे भानुमानिव ॥ ५५ ॥

कवच कट जानेपर नाराचोंके प्रहारसे वीर इन्द्रजित्‌के सारे अङ्गोंमें घाव हो गये । वह समराङ्गणमें रक्तसे रञ्जित हो प्रातःकालके सूर्यकी भाँति दिखायी देने लगा ॥ ५५ ॥

ततः शरसहस्रेण संक्रुद्धो रावणात्मजः ।
बिभेद समरे वीरो लक्ष्मणं भीमविक्रमः ॥ ५६ ॥

तब भयानक पराक्रमी वीर रावणकुमारने अत्यन्त कुपित हो समरभूमिमें लक्ष्मणको सहस्रों बाणोंसे घायल कर दिया ॥

व्यशीर्यत महद्दिव्यं कवचं लक्ष्मणस्य तु ।
कृतप्रतिकृतान्योन्यं बभूवतुररिंदमौ ॥ ५७ ॥

इससे लक्ष्मणका भी दिव्य एवं विशाल कवच छिन्न-भिन्न हो गया । वे दोनों शत्रुदमन वीर एक दूसरेके प्रहारका जवाब देने लगे ॥ ५७ ॥

अभीक्ष्णं निःश्वसन्तौ तौ युध्येतां तुमुलं युधि ।
शरसंकृत्तसर्वाङ्गौ सर्वतो रुधिरोक्षितौ ॥ ५८ ॥

वे बारंबार हाँफते हुए भयानक युद्ध करने लगे । युद्धस्थलमें बाणोंके आघातसे दोनोंके सारे अङ्ग क्षत-विक्षत हो गये थे । अतः वे दोनों सब ओरसे लहूलुहान हो गये ॥ ५८ ॥

सुदीर्घकालं तौ वीरावन्योन्यं निशितैः शरैः ।
ततक्षतुर्महात्मानौ रणकर्मविशारदौ ।
बभूवतुश्चात्मजये यत्तौ भीमपराक्रमौ ॥ ५९ ॥

दोनों वीर दीर्घकालतक एक-दूसरेपर पैने बाणोंका प्रहार करते रहे । दोनों ही महामनस्वी तथा युद्धकी कलामें निपुण थे । दोनों भयंकर पराक्रम प्रकट करते थे और अपनी-अपनी विजयके लिये प्रयत्नशील थे ॥ ५९ ॥

तौ शरौघैस्तथाकीर्णौ निकृत्तकवचध्वजौ ।
सृजन्तौ रुधिरं चोष्णं जलं प्रस्रवणाविव ॥ ६० ॥

दोनोंके शरीर बाण-समूहोंसे व्याप्त थे । दोनोंके ही कवच और ध्वज कट गये थे । जैसे दो झरने जल बहा रहे हों, उसी तरह वे दोनों अपने शरीरसे गरम-गरम रक्त बहा रहे थे ॥

शरवर्षं ततो घोरं मुञ्चतोर्भीमनिःस्वनम् ।
सासारयोरिवाकाशे नीलयोः कालमेघयोः ॥ ६१ ॥

दोनों ही भयंकर गर्जनाके साथ बाणोंकी घोर वर्षा कर रहे थे, मानो प्रलयकालके दो नील मेघ आकाशमें जलकी धारा बरसा रहे हों ॥ ६१ ॥

तयोरथ महान् कालो व्यतीयाद् युध्यमानयोः ।
न च तौ युद्धवैमुख्यं श्रमं चाप्युपजग्मतुः ॥ ६२ ॥

वहाँ जूझते हुए उन दोनों वीरोंका बहुत अधिक समय व्यतीत हो गया; परंतु वे दोनों न तो युद्धसे विमुख हुए और न उन्हें थकावट ही हुई ॥ ६२ ॥

अस्त्राण्यस्त्रविदां श्रेष्ठौ दर्शयन्तौ पुनः पुनः ।
शरानुच्चावचाकारानन्तरिक्षे बबन्धतुः ॥ ६३ ॥

दोनों ही अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे और बारंबार अपने अस्त्रोंका प्रदर्शन करते थे । उन्होंने आकाशमें छोटे-बड़े बाणोंका जाल-सा बाँध दिया ॥ ६३ ॥

व्यपेतदोषमस्यन्तौ लघु चित्रं च सुष्ठु च ।
उभौ तु तुमुलं घोरं चक्रतुर्नरराक्षसौ । ६४

वे मनुष्य और राक्षस—दोनों वीर बड़ी फुर्तीके साथ अद्भुत और सुन्दर ढंगसे बाणोंका प्रहार करते थे। उनके बाण चलानेकी कलामें कोई दोष नहीं दिखायी देता था। वे दोनों घोर घमासान युद्ध कर रहे थे ॥ ६४ ॥

तयोः पृथक् पृथग् भीमः शुश्रुवे तलनिस्वनः।
स कम्पं जनयामास निर्घात इव दारुणः ॥ ६५ ॥

बाण चलाते समय उन दोनोंकी हथेली और प्रत्यञ्चाका भयंकर एवं तुमुल नाद पृथक्-पृथक् सुनायी देता था, जो भयंकर वज्रपातकी आवाजके समान श्रोताओंके हृदयमें कम्प उत्पन्न कर देता था ॥ ६५ ॥

तयोः स भ्राजते शब्दस्तथा समरमत्तयोः।
सुघोरयोर्निष्टनतोर्गगने मेघयोरिव ॥ ६६ ॥

उन दोनों रणोन्मत्त वीरोंका वह शब्द आकाशमें परस्पर टकराते हुए दो महाभयंकर मेघोंकी गड़गड़ाहटके समान सुशोभित होता था ॥ ६६ ॥

सुवर्णपुङ्खैर्नाराचैर्बलवन्तौ कृतव्रणौ।
प्रसुस्रुवाते रुधिरं कीर्तिमन्तौ जये धृतौ ॥ ६७ ॥

वे दोनों बलवान् योद्धा सोनेके पंखवाले नाराचोंसे घायल हो शरीरसे खून बहा रहे थे। दोनों ही यशस्वी थे और अपनी-अपनी विजयके लिये प्रयत्न कर रहे थे ॥ ६७ ॥

ते गात्रयोर्निपतिता रुक्मपुङ्खाः शरा युधि।
असृग्दिग्धा विनिष्पेतुर्विविशुर्धरणीतलम् ॥ ६८ ॥

युद्धमें उन दोनोंके चलाये हुए सुवर्णमय पंखवाले बाण एक दूसरेके शरीरपर पड़ते, रक्तसे भीगकर निकलते और धरतीमें समा जाते थे ॥ ६८ ॥

अन्ये सुनिशितैः शस्त्रैराकाशे संजघट्टिरे।
बभञ्जुश्चिच्छिदुश्चैव तयोर्बाणाः सहस्रशः ॥ ६९ ॥

उनके हजारों बाण आकाशमें तीखे शस्त्रोंसे टकराते और उन्हें तोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर डालते थे ॥ ६९ ॥

स बभूव रणो घोरस्तयोर्बाणमयश्चयः।
अग्निभ्यामिव दीप्ताभ्यां सत्रे कुशमयश्च यः ॥ ७० ॥

वह बड़ा भयंकर युद्ध हो रहा था। उसमें उन दोनोंके बाणोंका समूह यज्ञमें गार्हपत्य और आहवनीय नामक दो प्रज्वलित अग्नियोंके साथ बिछे हुए कुशोंके ढेरकी भाँति जान पड़ता था ॥ ७० ॥

तयोः कृतव्रणौ देहौ शुशुभाते महात्मनोः।
सुपुष्पाविव निष्पत्रौ वने किंशुकशाल्मली ॥ ७१ ॥

उन दोनों महामनस्वी वीरोंके क्षत-विक्षत शरीर वनमें पत्रहीन एवं लाल पुष्पोंसे भरे हुए पलाश और सेमलके वृक्षोंके समान सुशोभित होते थे ॥ ७१ ॥

चक्रतुस्तुमुलं घोरं संनिपातं मुहुर्मुहुः।
इन्द्रजिल्लक्ष्मणश्चैव परस्परजयैषिणौ ॥ ७२ ॥

एक दूसरेको जीतनेकी इच्छावाले इन्द्रजित् और लक्ष्मण रह-रहकर बारंबार भयंकर मार-काट मचाते थे ॥ ७२ ॥

लक्ष्मणो रावणिं युद्धे रावणिश्चापि लक्ष्मणम्।
अन्योन्यं तावभिघ्नन्तौ न श्रमं प्रतिपद्यताम् ॥ ७३ ॥

लक्ष्मण रणभूमिमें रावणकुमारपर चोट करते थे और रावणकुमार लक्ष्मणपर। इस तरह एक दूसरेपर प्रहार करते हुए वे वीर थकते नहीं थे ॥ ७३ ॥

बाणजालैः शरीरस्थैरवगाढैस्तरस्विनौ।
शुशुभाते महावीर्यौ प्ररूढाविव पर्वतौ ॥ ७४ ॥

उन दोनों वेगशाली वीरोंके शरीरमें बाणोंके समूह धँस गये थे, इसलिये वे दोनों महापराक्रमी योद्धा जिनपर बहुत-से वृक्ष उग आये हों, उन दो पर्वतोंके समान शोभा पाते थे ॥ ७४ ॥

तयो रुधिरसिक्तानि संवृतानि शरैर्भृशम्।
बभ्राजुः सर्वगात्राणि ज्वलन्त इव पावकाः ॥ ७५ ॥

बाणोंसे ढके और खूनसे भीगे हुए उन दोनोंके सारे अङ्ग जलती हुई आगके समान उद्दीप्त हो रहे थे ॥ ७५ ॥

तयोरथ महान् कालो व्यतीयाद् युध्यमानयोः।
न च तौ युद्धवैमुख्यं श्रमं चाप्यभिजग्मतुः ॥ ७६ ॥

इस तरह युद्ध करते-करते उन दोनोंका बहुत समय व्यतीत हो गया; परंतु वे दोनों न तो युद्धसे विमुख हुए और न उन्हें थकावट ही हुई ॥ ७६ ॥

अथ समरपरिश्रमं निहन्तुं
समरमुखेष्वजितस्य लक्ष्मणस्य।
प्रियहितमुपपादयन् महात्मा
समरमुपेत्य विभीषणोऽवतस्थे ॥ ७७ ॥

युद्धके मुहानेपर पराजित न होनेवाले लक्ष्मणके युद्धजनित श्रमका निवारण तथा उनके प्रिय एवं हितका सम्पादन करनेके लिये महात्मा विभीषण युद्धभूमिमें आकर खड़े हो गये ॥ ७७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें अट्ठासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८८ ॥

एकोननवतितमः सर्गः

विभीषणका राक्षसोंपर प्रहार, उनका वानरयूथपतियोंको प्रोत्साहन देना, लक्ष्मणद्वारा इन्द्रजित्के सारथिका और वानरोंद्वारा उसके घोड़ोंका वध

युध्यमानौ ततो दृष्ट्वा प्रसक्तौ नरराक्षसौ।
प्रभिन्नाविव मातङ्गौ परस्परजयैषिणौ ॥ १ ॥
तयोर्युद्धं द्रष्टुकामो वरचापधरो बली।
शूरः स रावणभ्राता तस्थौ संग्राममूर्धनि ॥ २ ॥

लक्ष्मण और इन्द्रजित्को दो मदमत्त हाथियोंकी भाँति परस्पर विजय पानेकी इच्छासे युद्धासक्त होकर जूझते देख उन दोनोंके युद्धको देखनेकी इच्छासे रावणके बलवान् भाई शूरवीर विभीषण सुन्दर धनुष धारण किये उस युद्धके मुहानेपर आकर खड़े हो गये ॥ १-२ ॥

ततो विस्फारयामास महद् धनुरवस्थितः।
उत्ससर्ज च तीक्ष्णाग्रान् राक्षसेषु महाशरान् ॥ ३ ॥

वहाँ खड़े होकर उन्होंने अपने विशाल धनुषको खींचा और राक्षसोंपर तेज धारवाले बड़े-बड़े बाणोंको बरसाना आरम्भ किया ॥ ३ ॥

ते शराः शिखिसंस्पर्शा निपतन्तः समाहिताः।
राक्षसान् द्रावयामासुर्वज्राणीव महागिरीन् ॥ ४ ॥

जैसे वज्र नामक अस्त्र बड़े-बड़े पर्वतोंको विदीर्ण कर देते हैं, उसी प्रकार विभीषणके चलाये हुए वे बाण, जिनका स्पर्श आगके समान जलानेवाला था, राक्षसोंपर गिरकर उनके अङ्गोंको चीरने लगे ॥ ४ ॥

विभीषणस्यानुचरास्तेऽपि शूलासिपट्टिशैः।
चिच्छिदुः समरे वीरान् राक्षसान् राक्षसोत्तमाः॥ ५ ॥

विभीषणके अनुचर भी राक्षसोंमें श्रेष्ठ वीर थे; अतः वे भी समराङ्गणमें शूल, खड्ग और पट्टिशोंद्वारा वीर राक्षसोंका संहार करने लगे ॥ ५ ॥

राक्षसैस्तैः परिवृतः स तदा तु विभीषणः।
बभौ मध्ये प्रधृष्टानां कलभानामिव द्विपः ॥ ६ ॥

उन चारों राक्षसोंसे घिरे हुए विभीषण धृष्ट गजशावकोंके बीचमें खड़े हुए गजराजकी भाँति शोभा पाते थे ॥ ६ ॥

ततः संचोदमानो वै हरीन् रक्षोवधप्रियान्।
उवाच वचनं काले कालज्ञो रक्षसां वरः ॥ ७ ॥

राक्षसोंमें श्रेष्ठ विभीषण समयोचित कर्तव्यको जानते थे, इसलिये उन्होंने वानरोंको, जिन्हें राक्षसोंका वध करना प्रिय था, युद्धके लिये प्रेरित करते हुए यह समयके अनुरूप बात कही—॥ ७ ॥

एकोऽयं राक्षसेन्द्रस्य परायणमवस्थितः।
एतच्छेषं बलं तस्य किं तिष्ठत हरीश्वराः ॥ ८ ॥

'वानरेश्वरो! अब खड़े-खड़े क्या देखते हो? राक्षसराज रावणका यह एकमात्र सहारा है, जो तुम्हारे सामने खड़ा है। रावणकी सेनाका इतना ही भाग अब शेष रह गया है ॥ ८ ॥

अस्मिंश्च निहते पापे राक्षसे रणमूर्धनि।
रावणं वर्जयित्वा तु शेषमस्य बलं हतम् ॥ ९ ॥

'इस युद्धके मुहानेपर इस पापी राक्षस इन्द्रजित्के मारे जानेपर रावणको छोड़कर उसकी सारी सेनाको मरी हुई ही समझो ॥ ९ ॥

प्रहस्तो निहतो वीरो निकुम्भश्च महाबलः।
कुम्भकर्णश्च कुम्भश्च धूम्राक्षश्च निशाचरः ॥ १० ॥

'वीर प्रहस्त मारा गया, महाबली निकुम्भ, कुम्भकर्ण, कुम्भ तथा निशाचर धूम्राक्ष भी कालके गालमें चले गये ।१०।

जम्बुमाली महामाली तीक्ष्णवेगोऽशनिप्रभः।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च वज्रदंष्ट्रश्च राक्षसः ॥ ११ ॥
संह्रादी विकटोऽरिघ्नस्तपनो मन्द एव च।
प्रघासः प्रघसश्चैव प्रजङ्घो जङ्घ एव च ॥ १२ ॥
अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च वीर्यवान्।
विद्युज्जिह्वो द्विजिह्वश्च सूर्यशत्रुश्च राक्षसः ॥ १३ ॥
अकम्पनः सुपार्श्वश्च चक्रमाली च राक्षसः।
कम्पनः सत्त्ववन्तौ तौ देवान्तकनरान्तकौ ॥ १४ ॥

'जम्बुमाली, महामाली, तीक्ष्णवेग, अशनिप्रभ, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, राक्षस वज्रदंष्ट्र, संह्रादी, विकट, अरिघ्न, तपन, मन्द, प्रघास, प्रघस, प्रजङ्घ, जङ्घ, दुर्जय अग्निकेतु, पराक्रमी रश्मिकेतु, विद्युज्जिह्व, द्विजिह्व, राक्षस सूर्यशत्रु, अकम्पन, सुपार्श्व, निशाचर चक्रमाली, कम्पन तथा वे दोनों शक्तिशाली वीर देवान्तक और नरान्तक—ये सभी मारे जा चुके हैं ॥ ११—१४ ॥

एतान् निहत्यातिबलान् बहून् राक्षससत्तमान्।
बाहुभ्यां सागरं तीर्त्वा लङ्घ्यतां गोष्पदं लघु ॥ १५ ॥

'इन अत्यन्त बलशाली बहुसंख्यक राक्षसशिरोमणियोंका वध करके तुमलोगोंने हाथोंसे तैरकर समुद्र पार कर लिया है। अब गायकी खुरीके बराबर यह छोटा-सा राक्षस बचा हुआ है। अतः इसे भी शीघ्र ही लाँघ जाओ ॥ १५ ॥

एतावदेव शेषं वो जेतव्यमिति वानराः।
हताः सर्वे समागम्य राक्षसा बलदर्पिताः ॥ १६ ॥

'वानरो! इतनी ही राक्षससेना और शेष रह गयी है, जिसे तुम्हें जीतना है। अपने बलपर घमंड करनेवाले प्रायः सभी राक्षस तुमसे भिड़कर मारे जा चुके हैं ॥ १६ ॥

अयुक्तं निधनं कर्तुं पुत्रस्य जनितुर्मम।

घृणामपास्य रामार्थे निहन्यां भ्रातुरात्मजम् ॥ १७ ॥

'मैं इसके बापका भाई हूँ। इस नाते यह मेरा पुत्र है। अतः मेरे लिये इसका वध करना अनुचित है, तथापि श्रीरामचन्द्रजीके लिये दयाको तिलाञ्जलि दे मैं अपने इस भतीजेको मारनेके लिये उद्यत हूँ ॥ १७ ॥

हन्तुकामस्य मे बाष्पं चक्षुश्चैव निरुध्यति ।
तमेवैष महाबाहुर्लक्ष्मणः शमयिष्यति ॥ १८ ॥

'जब मैं स्वयं मारनेके लिये इसपर हथियार चलाना चाहता हूँ, उस समय आँसू मेरी दृष्टि बंद कर देते हैं; अतः ये महाबाहु लक्ष्मण ही इसका विनाश करेंगे ॥ १८ ॥

वानरा घ्नत सम्भूय भृत्यानस्य समीपगान् ।
इति तेनातियशसा राक्षसेनाभिचोदिताः ॥ १९ ॥
वानरेन्द्रा जहृषिरे लाङ्गूलानि च विव्यधुः ।

'वानरो ! तुमलोग झुंड बनाकर इसके समीपवर्ती सेवकों पर टूट पड़ो और उन्हें मार डालो।' इस प्रकार अत्यन्त यशस्वी राक्षस विभीषणके प्रेरित करनेपर वानरयूथपति हर्ष और उत्साहसे भर गये तथा अपनी पूँछ पटकने लगे ॥ १९½ ॥

ततस्तु कपिशार्दूलाः क्ष्वेडन्तश्च पुनः पुनः ।
मुमुचुर्विविधान् नादान् मेघान् दृष्ट्वेव बर्हिणः ॥ २० ॥

फिर वे सिंहके समान पराक्रमी वानर बारंबार गर्जते हुए उसी तरह नाना प्रकारके शब्द करने लगे, जैसे बादलोंको देखकर मोर अपनी बोली बोलने लगते हैं ॥ २० ॥

जाम्बवानपि तैः सर्वैः स्वयूथ्यैरभिसंवृतः ।
तेऽश्मभिस्ताडयामासुर्नखैर्दन्तैश्च राक्षसान् ॥ २१ ॥

अपने यूथवाले समस्त भालुओंसे घिरे हुए जाम्बवान् तथा वे वानर पत्थरों, नखों और दाँतोंसे वहाँ राक्षसोंको पीटने लगे ॥ २१ ॥

निघ्नन्तमृक्षाधिपतिं राक्षसास्ते महाबलाः ।
परिवव्रुर्भयं त्यक्त्वा तमनेकविधायुधाः ॥ २२ ॥

अपने ऊपर प्रहार करते हुए ऋक्षराज जाम्बवान्को उन महाबली राक्षसोंने भय छोड़कर चारों ओरसे घेर लिया। उनके हाथमें अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र थे ॥ २२ ॥

शरैः परशुभिस्तीक्ष्णैः पट्टिशैर्यष्टितोमरैः ।
जाम्बवन्तं मृधे जघ्नुर्निघ्नन्तं राक्षसीं चमूम् ॥ २३ ॥

वे राक्षस सेनाका संहार करनेवाले जाम्बवान्पर युद्धस्थलमें बाणों, तीखे फरसों, पट्टिशों, डंडों और तोमरोंद्वारा प्रहार करने लगे ॥ २३ ॥

स सम्प्रहारस्तुमुलः संजज्ञे कपिरक्षसाम् ।
देवासुराणां क्रुद्धानां यथा भीमो महास्वनः ॥ २४ ॥

वानरों और राक्षसोंका वह महायुद्ध क्रोधसे भरे हुए देवताओं और असुरोंके संग्रामकी भाँति बड़ा भयंकर हो चला। उसमें बड़े जोर-जोरसे भयानक कोलाहल होने लगा ॥ २४ ॥

हनूमानपि संक्रुद्धः सालमुत्पाट्य पर्वतात् ।
स लक्ष्मणं स्वयं पृष्ठादवरोप्य महामनाः ॥ २५ ॥
रक्षसां कदनं चक्रे दुरासादः सहस्रशः ।

उस समय महामनस्वी हनुमान्जीने लक्ष्मणको अपनी पीठसे उतार दिया और स्वयं भी अत्यन्त कुपित हो पर्वतशिखरसे एक सालवृक्ष उखाड़कर सहस्रों राक्षसोंका संहार करने लगे। शत्रुओंके लिये उन्हें परास्त करना बहुत ही कठिन था ॥ २५½ ॥

स दत्त्वा तुमुलं युद्धं पितृव्यस्येन्द्रजिद् बली ॥ २६ ॥
लक्ष्मणं परवीरघ्नः पुनरेवाभ्यधावत ।

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले बलवान् इन्द्रजित्ने अपने चाचाको भी घोर युद्धका अवसर देकर पुनः लक्ष्मणपर धावा किया ॥ २६½ ॥

तौ प्रयुद्धौ तदा वीरौ मृधे लक्ष्मणराक्षसौ ॥ २७ ॥
शरौघानभिवर्षन्तौ जघ्नतुस्तौ परस्परम् ।

लक्ष्मण और इन्द्रजित् दोनों वीर उस समय रणभूमिमें बड़े वेगसे जूझने लगे। वे दोनों बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए एक दूसरेको चोट पहुँचाने लगे ॥ २७½ ॥

अभीक्ष्णमन्तर्दधतुः शरजालैर्महाबलौ ॥ २८ ॥
चन्द्रादित्याविवोष्णान्ते यथा मेघैस्तरस्विनौ ।

वे महाबली वीर बाणोंका जाल-सा बिछाकर बारंबार एक दूसरेको ढक देते थे। ठीक उसी तरह, जैसे वर्षाकालमें वेगशाली चन्द्रमा और सूर्य बादलोंसे आच्छादित हो जाया करते हैं ॥ २८½ ॥

नह्यादानं न संधानं धनुषो वा परिग्रहः ॥ २९ ॥
न विप्रमोक्षो बाणानां न विकर्षो न विग्रहः ।
न मुष्टिप्रतिसंधानं न लक्ष्यप्रतिपादनम् ॥ ३० ॥
अदृश्यत तयोस्तत्र युध्यतोः पाणिलाघवात् ।

युद्धमें लगे हुए उन दोनों वीरोंके हाथोंमें इतनी फुर्ती थी कि तरकससे बाणोंका निकालना, उनको धनुषपर रखना, धनुषको इस हाथसे उस हाथमें लेना, उसे मुट्ठीमें दृढ़तापूर्वक पकड़ना, कानतक खींचना, बाणोंका विभाग करना, उन्हें छोड़ना और लक्ष्य वेधना आदि कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता था ॥ २९-३०½ ॥

चापवेगप्रयुक्तैश्च बाणजालैः समन्ततः ॥ ३१ ॥
अन्तरिक्षेऽभिसम्पन्ने न रूपाणि चकाशिरे ।

धनुषके वेगसे छोड़े गये बाणसमूहोंद्वारा आकाश सब ओरसे ढक गया। अतः उसमें साकार वस्तुओंका दीखना बंद हो गया ॥ ३१½ ॥

लक्ष्मणो रावणिं प्राप्य रावणिश्चापि लक्ष्मणम् ॥ ३२ ॥
अव्यवस्था भवत्युग्रा ताभ्यामन्योन्यविग्रहे ।

लक्ष्मण रावणकुमारके पास पहुँचकर और रावणकुमार

लक्ष्मणके निकट जाकर दोनों परस्पर जूझने लगे। इस प्रकार युद्ध करते हुए जब वे एक दूसरेपर प्रहार करने लगते, तब भयंकर अव्यवस्था पैदा हो जाती थी। क्षण-क्षणमें यह निश्चय करना कठिन हो जाता था कि अमुककी विजय या पराजय होगी ॥ ३२½ ॥

ताभ्यामुभाभ्यां तरसा प्रसृष्टैर्विशिखैः शितैः ॥ ३३ ॥
निरन्तरमिवाकाशं बभूव तमसा वृतम्।

उन दोनोंके द्वारा वेगपूर्वक छोड़े गये तीखे बाणोंसे आकाश ठसाठस भर गया और वहाँ अँधेरा छा गया ॥ ३३½ ॥

तैः पतद्भिश्च बहुभिस्तयोः शरशतैः शितैः ॥ ३४ ॥
दिशश्च प्रदिशश्चैव बभूवुः शरसंकुलाः।

वहाँ गिरते हुए बहुसंख्यक अस्त्रों और सैकड़ों तीखे सायकोंसे सम्पूर्ण दिशाएँ और विदिशाएँ भी व्याप्त हो गयीं ३४½

तमसा पिहितं सर्वमासीत् प्रतिभयं महत् ॥ ३५ ॥
अस्तं गते सहस्रांशौ संवृते तमसा च वै।
रुधिरौघा महानद्यः प्रावर्तन्त सहस्रशः ॥ ३६ ॥

अतः सब कुछ अन्धकारसे आच्छन्न हो गया और बड़ा भयानक दृश्य दिखायी देने लगा। सूर्य अस्त हो गये, सब ओर अँधेरा फैल गया और रक्तके प्रवाहसे पूर्ण सहस्रों बड़ी-बड़ी नदियाँ बह चलीं ॥ ३५-३६ ॥

क्रव्यादा दारुणा वाग्भिश्चिक्षिपुर्भीमनिःस्वनान्।
न तदानीं ववौ वायुर्न च जज्वाल पावकः ॥ ३७ ॥

मांसभक्षी भयंकर जन्तु अपनी वाणीद्वारा भयानक शब्द प्रकट करने लगे। उस समय न तो वायु चलती थी और न आग ही प्रज्वलित होती थी ॥ ३७ ॥

स्वस्त्यस्तु लोकेभ्य इति जजल्पुस्ते महर्षयः।
सम्पेतुश्चात्र संतप्ता गन्धर्वाः सह चारणैः ॥ ३८ ॥

महर्षिगण बोल उठे—'संसारका कल्याण हो।' उस समय गन्धर्वोंको बड़ा संताप हुआ। वे चारणोंके साथ वहाँसे भाग चले ॥ ३८ ॥

अथ राक्षससिंहस्य कृष्णान् कनकभूषणान्।
शरैश्चतुर्भिः सौमित्रिर्विव्याध चतुरो हयान् ॥ ३९ ॥

तदनन्तर लक्ष्मणने चार बाण मारकर उस राक्षससिंहके सोनेके आभूषणोंसे सजे हुए काले रंगके चारों घोड़ोंको बींध दिया ॥ ३९ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च।
सम्पूर्णायतमुक्तेन सुपत्रेण सुवर्चसा ॥ ४० ॥
महेन्द्राशनिकल्पेन सूतस्य विचरिष्यतः।
स तेन बाणाशनिना तलशब्दानुनादिना ॥ ४१ ॥
लाघवाद् राघवः श्रीमाञ्छिरः कायादपाहरत्।

तत्पश्चात् रघुकुलनन्दन श्रीमान् लक्ष्मणने दूसरे तीखे, पानीदार सुन्दर पंखवाले और चमकीले भल्लसे जो इन्द्रके वज्रकी समानता करता था तथा जिसे कानतक खींचकर छोड़ा गया था, रणभूमिमें विचरते हुए इन्द्रजित्के सारथिका मस्तक शीघ्रतापूर्वक धड़से अलग कर दिया। वह वज्रोपम बाण छूटनेके साथ ही हथेलीके शब्दसे अनुनादित हो सनसनाता हुआ आगे बढ़ा था ॥ ४०-४१½ ॥

स यन्तरि महातेजा हते मन्दोदरीसुतः ॥ ४२ ॥
स्वयं सारथ्यमकरोत् पुनश्च धनुरस्पृशत्।
तदद्भुतमभूत् तत्र सारथ्यं पश्यतां युधि ॥ ४३ ॥

सारथिके मारे जानेपर महातेजस्वी मन्दोदरीकुमार इन्द्रजित् स्वयं ही सारथिका भी काम सँभालता—घोड़ोंको भी काबूमें रखता और फिर धनुषको भी चलाता था। युद्धस्थलमें उसके द्वारा वहाँ सारथिके कार्यका भी सम्पादन होना दर्शकोंकी दृष्टिमें बड़ी अद्भुत बात थी ॥ ४२-४३ ॥

[illegible]षु व्यग्रहस्तं तं विव्याध निशितैः शरैः।
धनुष्यथ पुनर्व्यग्रं हयेषु मुमुचे शरान् ॥ ४४ ॥

इन्द्रजित् जब घोड़ोंको रोकनेके लिये हाथ बढ़ाता, तब लक्ष्मण उसे तीखे बाणोंसे बेधने लगते और जब वह युद्धके लिये धनुष उठाता, तब उसके घोड़ोंपर बाणोंका प्रहार करते थे ॥ ४४ ॥

छिद्रेषु तेषु बाणौघैर्विचरन्तमभीतवत्।
अर्दयामास समरे सौमित्रिः शीघ्रकृत्तमः ॥ ४५ ॥

उन छिद्रों (बाण-प्रहारके अवसरों) में शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले सुमित्राकुमार लक्ष्मणने समराङ्गणमें निर्भयसे विचरते हुए इन्द्रजित्को अपने बाण-समूहोंद्वारा अत्यन्त पीड़ित कर दिया ॥ ४५ ॥

निहतं सारथिं दृष्ट्वा समरे रावणात्मजः।
प्रजहौ समरोद्धर्षं विषण्णः स बभूव ह ॥ ४६ ॥

समरभूमिमें सारथिको मारा गया देख रावणकुमारने युद्धविषयक उत्साह त्याग दिया। वह विषादमें डूब गया ॥

विषण्णवदनं दृष्ट्वा राक्षसं हरियूथपाः।
ततः परमसंहृष्टा लक्ष्मणं चाभ्यपूजयन् ॥ ४७ ॥

उस राक्षसकें मुखपर विषाद छाया हुआ देख वे वानरयूथपति बड़े प्रसन्न हुए और लक्ष्मणकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ ४७ ॥

ततः प्रमाथी रभसः शरभो गन्धमादनः।
अमृष्यमाणाश्चत्वारश्चक्रुर्वेगं हरीश्वराः ॥ ४८ ॥

तत्पश्चात् प्रमाथी, शरभ, रभस और गन्धमादन—इन चार वानरेश्वरोंने अमर्षसे भरकर अपना महान् वेग प्रकट किया ॥ ४८ ॥

ते चास्य हयमुख्येषु तूर्णमुत्पत्य वानराः।
चतुर्षु सुमहावीर्या निपेतुर्भीमविक्रमाः ॥ ४९ ॥

वे चारों वानर महान् बलशाली और भयंकर पराक्रमी थे। वे सहसा उछलकर इन्द्रजित्के चारों घोड़ोंपर कूद पड़े ॥

तेषामधिष्ठितानां तैर्वानरैः पर्वतोपमैः ।
मुखेभ्यो रुधिरं व्यक्तं हयानां समवर्तत ॥ ५० ॥

उन पर्वताकार वानरोंके भारसे दब जानेके कारण उन घोड़ोंके मुखोंसे खून निकलने लगा ॥ ५० ॥

ते हया मथिता भग्ना व्यसवो धरणीं गताः ।
ते निहत्य हयांस्तस्य प्रमथ्य च महारथम् ।
पुनरुत्पत्य वेगेन तस्थुर्लक्ष्मणपार्श्वतः ॥ ५१ ॥

उनसे रौंदे जानेके कारण घोड़ोंके अङ्ग-भङ्ग हो गये और वे प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। इस प्रकार घोड़ोंकी जान ले इन्द्रजित्के विशाल रथको भी तोड़-फोड़कर वे चारों वानर पुनः वेगसे उछले और लक्ष्मणके पास आकर खड़े हो गये ॥ ५१ ॥

स हताश्वादवप्लुत्य रथान्मथितसारथिः ।
शरवर्षेण सौमित्रिमभ्यधावत रावणिः ॥ ५२ ॥

सारथि तो पहले ही मारा गया था। जब घोड़े भी मार डाले गये, तब रावणकुमार रथसे कूद पड़ा और बाणोंकी वर्षा करता हुआ सुमित्राकुमारकी ओर बढ़ा ॥ ५२ ॥

ततो महेन्द्रप्रतिमः स लक्ष्मणः
पदातिनं तं निहतैर्हयोत्तमैः ।
सृजन्तमाजौ निशिताञ्छरोत्तमान्
भृशं तदा बाणगणैर्व्यदारयत् ॥ ५३ ॥

उस समय इन्द्रके समान पराक्रमी लक्ष्मणने श्रेष्ठ घोड़ोंके मारे जानेसे पैदल चलकर युद्धमें तीखे उत्तम बाणोंकी वर्षा करते हुए इन्द्रजित्को अपने बाणसमूहोंकी मारसे अत्यन्त घायल कर दिया ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें नवासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८९ ॥

* * *

नवतितमः सर्गः

इन्द्रजित् और लक्ष्मणका भयंकर युद्ध तथा इन्द्रजित्का वध

स हताश्वो महातेजा भूमौ तिष्ठन् निशाचरः ।
इन्द्रजित् परमक्रुद्धः सम्प्रजज्वाल तेजसा ॥ १ ॥

घोड़ोंके मारे जानेपर पृथ्वीपर खड़े हुए महातेजस्वी निशाचर इन्द्रजित्का क्रोध बहुत बढ़ गया। वह तेजसे प्रज्वलित-सा हो उठा ॥ १ ॥

तौ धन्विनौ जिघांसन्तावन्योन्यमिषुभिर्भृशम् ।
विजयेनाभिनिष्क्रान्तौ वने गजवृषाविव ॥ २ ॥

इन्द्रजित् और लक्ष्मण दोनोंके हाथमें धनुष थे। दोनों ही अपनी-अपनी विजयके लिये एक दूसरेके सम्मुख युद्धमें प्रवृत्त हुए थे। वे अपने बाणोंद्वारा परस्पर वधकी इच्छा रखकर वनमें लड़नेके लिये निकले हुए दो गजराजोंके समान एक दूसरेपर गहरी चोट करने लगे ॥ २ ॥

निबर्हयन्तश्चान्योन्यं ते राक्षसवनौकसः ।
भर्तारं न जहुर्युद्धे सम्पतन्तस्ततस्ततः ॥ ३ ॥

वानर और राक्षस भी परस्पर संहार करते हुए इधर-उधर दौड़ते रहे; परंतु अपने-अपने स्वामीका साथ न छोड़ सके ॥ ३ ॥

ततस्तान् राक्षसान् सर्वान् हर्षयन् रावणात्मजः ।
स्तुवानो हर्षमाणश्च इदं वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥

तदनन्तर रावणकुमारने प्रसन्न हो प्रशंसा करके राक्षसोंका हर्ष बढ़ाते हुए कहा— ॥ ४ ॥

तमसा बहुलेनेमाः संसक्ताः सर्वतो दिशः ।
नेह विज्ञायते स्वो वा परो वा राक्षसोत्तमाः ॥ ५ ॥

'श्रेष्ठ निशाचरो ! चारों दिशाओंमें अन्धकार छा रहा है, अतः यहाँ अपने या परायेकी पहचान नहीं हो रही है ॥

धृष्टं भवन्तो युध्यन्तु हरीणां मोहनाय वै ।
अहं तु रथमास्थाय आगमिष्यामि संयुगे ॥ ६ ॥
तथा भवन्तः कुर्वन्तु यथेमे हि वनौकसः ।
न युध्येयुर्महात्मानः प्रविष्टे नगरं मयि ॥ ७ ॥

'इसलिये मैं जाता हूँ। दूसरे रथपर बैठकर शीघ्र ही युद्धके लिये आऊँगा। तबतक तुमलोग वानरोंको मोहमें डालनेके लिये निर्भय होकर ऐसा युद्ध करो, जिससे ये महामनस्वी वानर नगरमें प्रवेश करते समय मेरा सामना करनेके लिये न आवें' ॥ ६-७ ॥

इत्युक्त्वा रावणसुतो वञ्चयित्वा वनौकसः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां रथहेतोरमित्रहा ॥ ८ ॥

ऐसा कहकर शत्रुहन्ता रावणकुमार वानरोंको चकमा दे रथके लिये लङ्कापुरीमें चला गया ॥ ८ ॥

स रथं भूषयित्वाथ रुचिरं हेमभूषितम् ।
प्रासासिशरसंयुक्तं युक्तं परमवाजिभिः ॥ ९ ॥
अधिष्ठितं हयज्ञेन सूतेनाप्तोपदेशिना ।
आरुरोह महातेजा रावणिः समितिंजयः ॥ १० ॥

उसने एक सुवर्णभूषित सुन्दर रथको सजाकर उसके ऊपर प्रास, खड्ग तथा बाण आदि आवश्यक सामग्री रक्खी,

फिर उसमें उत्तम घोड़े जुतवाये और अश्व हाँकनेकी विद्याके जानकार तथा हितकर उपदेश देनेवाले सारथिको उसपर बिठाकर वह महातेजस्वी समरविजयी रावणकुमार स्वयं भी उस रथपर आरूढ़ हुआ ॥ ९-१० ॥

स राक्षसगणैर्मुख्यैर्वृतो मन्दोदरीसुतः ।
निर्ययौ नगराद् वीरः कृतान्तबलचोदितः ॥ ११ ॥

फिर प्रमुख राक्षसोंको साथ ले वीर मन्दोदरीकुमार कालशक्तिसे प्रेरित हो नगरसे बाहर निकला ॥ ११ ॥

सोऽभिनिष्क्रम्य नगरादिन्द्रजित् परमौजसा ।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्लक्ष्मणं सविभीषणम् ॥ १२ ॥

नगरसे निकलकर इन्द्रजित्ने अपने वेगशाली घोड़ोंद्वारा विभीषणसहित लक्ष्मणपर बलपूर्वक धावा किया ॥ १२ ॥

ततो रथस्थमालोक्य सौमित्री रावणात्मजम् ।
वानराश्च महावीर्या राक्षसश्च विभीषणः ॥ १३ ॥
विस्मयं परमं जग्मुर्लाघवात् तस्य धीमतः ।

रावणकुमारको रथपर बैठा देख सुमित्रानन्दन लक्ष्मण, महापराक्रमी वानरगण तथा राक्षसराज विभीषण—सबको बड़ा विस्मय हुआ । सभी उस बुद्धिमान् निशाचरकी फुर्ती देखकर दंग रह गये ॥ १३½ ॥

रावणिश्चापि संक्रुद्धो रणे वानरयूथपान् ॥ १४ ॥
पातयामास बाणौघैः शतशोऽथ सहस्रशः ।

तत्पश्चात् क्रोधसे भरे हुए रावणपुत्रने अपने बाण-समूहोंद्वारा रणभूमिमें सैकड़ों और हजारों वानर-यूथपतियोंको गिराना आरम्भ किया ॥ १४½ ॥

स मण्डलीकृतधनू रावणिः समितिंजयः ॥ १५ ॥
हरीनभ्यहनत् क्रुद्धः परं लाघवमास्थितः ।

युद्धविजयी रावणकुमारने अपने धनुषको इतना खींचा कि वह मण्डलाकार बन गया । उसने कुपित हो बड़ी शीघ्रताके साथ वानरोंका संहार आरम्भ किया ॥ १५½ ॥

ते वध्यमाना हरयो नाराचैर्भीमविक्रमाः ॥ १६ ॥
सौमित्रिं शरणं प्राप्ताः प्रजापतिमिव प्रजाः ।

उसके नाराचोंकी मार खाते हुए भयानक पराक्रमी वानर सुमित्राकुमार लक्ष्मणकी शरणमें गये, मानो प्रजाने प्रजापतिकी शरण ली हो ॥ १६½ ॥

ततः समरकोपेन ज्वलितो रघुनन्दनः ।
चिच्छेद कार्मुकं तस्य दर्शयन् पाणिलाघवम् ॥ १७ ॥

तब शत्रुके युद्धसे रघुकुलनन्दन लक्ष्मणका क्रोध भड़क उठा । वे रोषसे जल उठे और उन्होंने अपने हाथकी फुर्ती दिखाते हुए उस राक्षसके धनुषको काट दिया ॥ १७ ॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय सज्जं चक्रे त्वरन्निव ।
तदप्यस्य त्रिभिर्बाणैर्लक्ष्मणो निरकृन्तत ॥ १८ ॥

यह देख उस निशाचरने तुरंत ही दूसरा धनुष लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी; परंतु लक्ष्मणने तीन बाण मारकर उसके उस धनुषको भी काट दिया ॥ १८ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानमाशीविषविषोपमैः ।
विव्याधोरसि सौमित्री रावणिं पञ्चभिः शरैः ॥ १९ ॥

धनुष कट जानेपर विषधर सर्पके समान पाँच भयंकर बाणोंद्वारा सुमित्राकुमारने रावणपुत्रकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ १९ ॥

ते तस्य कायं निर्भिद्य महाकार्मुकनिःसृताः ।
निपेतुर्धरणीं बाणा रक्ता इव महोरगाः ॥ २० ॥

उनके विशाल धनुषसे छूटे हुए वे बाण इन्द्रजित्का शरीर छेदकर लाल रंगके बड़े-बड़े सर्पोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २० ॥

स छिन्नधन्वा रुधिरं वमन् वक्त्रेण रावणिः ।
जग्राह कार्मुकश्रेष्ठं दृढज्यं बलवत्तरम् ॥ २१ ॥

धनुष कट जानेपर उन बाणोंकी चोट खाकर मुँहसे रक्त वमन करते हुए रावणपुत्रने पुनः एक मजबूत धनुष हाथमें लिया । उसकी प्रत्यञ्चा भी बहुत ही दृढ़ थी ॥ २१ ॥

स लक्ष्मणं समुद्दिश्य परं लाघवमास्थितः ।
ववर्ष शरवर्षाणि वर्षाणीव पुरंदरः ॥ २२ ॥

फिर तो उसने लक्ष्मणको लक्ष्य करके बड़ी फुर्तीके साथ बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी, मानो देवराज इन्द्र जल बरसा रहे हों ॥ २२ ॥

मुक्तमिन्द्रजिता तत्तु शरवर्षमरिंदमः ।
आवारयदसम्भ्रान्तो लक्ष्मणः सुदुरासदम् ॥ २३ ॥

यद्यपि इन्द्रजित्द्वारा की गयी उस बाणवर्षाको रोकना बहुत ही कठिन था, तो भी शत्रुदमन लक्ष्मणने बिना किसी घबराहटके उसको रोक दिया ॥ २३ ॥

संदर्शयामास तदा रावणिं रघुनन्दनः ।
असम्भ्रान्तो महातेजास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २४ ॥

रघुकुलनन्दन महातेजस्वी लक्ष्मणके मनमें तनिक भी घबराहट नहीं थी । उन्होंने उस रावणकुमारको जो अपना पौरुष दिखाया, वह अद्भुत-सा ही था ॥ २४ ॥

ततस्तान् राक्षसान् सर्वांस्त्रिभिरेकैकमाहवे ।
अविध्यत् परमक्रुद्धः शीघ्रास्त्रं सम्प्रदर्शयन् ।
राक्षसेन्द्रसुतं चापि बाणौघैः समताडयत् ॥ २५ ॥

उन्होंने अत्यन्त कुपित हो अपनी शीघ्र अस्त्र-संचालनकी कलाका प्रदर्शन करते हुए उन समस्त राक्षसोंको प्रत्येकके शरीरमें तीन-तीन बाण मारकर घायल कर दिया तथा राक्षसराजके पुत्र इन्द्रजित्को भी अपने बाण-समूहोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ २५ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुघातिना ।
असक्तं प्रेषयामास लक्ष्मणाय बहूञ्शरान् ॥ २६ ॥

शत्रुहन्ता प्रबल शत्रुके बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर इन्द्रजित्ने लक्ष्मणपर लगातार बहुत बाण बरसाये ॥ २६ ॥

तानप्राप्ताञ्शितैर्बाणैश्चिच्छेद परवीरहा ।
सारथेरस्य च रणे रथिनो रथसत्तमः ॥ २७ ॥
शिरो जहार धर्मात्मा भल्लेनानतपर्वणा ।

परंतु शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले रथियोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा लक्ष्मणने अपने पासतक पहुँचनेसे पहले ही उन बाणोंको अपने तीखे सायकोंद्वारा काट डाला और रणभूमिमें रथी इन्द्रजित्के सारथिका मस्तक भी झुकी हुई गाँठवाले भल्लसे उड़ा दिया ॥ २७½ ॥

असूतास्ते हयास्तत्र रथमूहुरविक्लवाः ॥ २८ ॥
मण्डलान्यभिधावन्ति तदद्भुतमिवाभवत् ।

सारथिके न रहनेपर भी वहाँ उसके घोड़े व्याकुल नहीं हुए । पूर्ववत् शान्तभावसे रथको ढोते रहे और विभिन्न प्रकारके पैंतरे बदलते हुए मण्डलाकार गतिसे दौड़ लगाते रहे । वह एक अद्भुत-सी बात थी ॥ २८½ ॥

अमर्षवशमापन्नः सौमित्रिर्दृढविक्रमः ॥ २९ ॥
प्रत्यविध्यद्धयांस्तस्य शरैर्वित्रासयन् रणे ।

सुदृढ़ पराक्रमी सुमित्राकुमार लक्ष्मण अमर्षके वशीभूत हो रणक्षेत्रमें उसके घोड़ोंको भयभीत करनेके लिये उन्हें बाणोंसे बेधने लगे ॥ २९½ ॥

अमर्षमाणस्तत्कर्म रावणस्य सुतो रणे ॥ ३० ॥
विव्याध दशभिर्बाणैः सौमित्रिं तममर्षणम् ।

रावणकुमार इन्द्रजित् युद्धस्थलमें लक्ष्मणके इस पराक्रमको नहीं सह सका । उसने उन अमर्षशील सुमित्राकुमारको दस बाण मारे ॥ ३०½ ॥

ते तस्य वज्रप्रतिमाः शराः सर्पविषोपमाः ।
विलयं जग्मुरागत्य कवचं काञ्चनप्रभम् ॥ ३१ ॥

उसके वे वज्रतुल्य बाण सर्पके विषकी भाँति प्राणघाती थे, तथापि लक्ष्मणके सुनहरी कान्तिवाले कवचसे टकराकर वहीं नष्ट हो गये ॥ ३१ ॥

अभेद्यकवचं मत्वा लक्ष्मणं रावणात्मजः ।
ललाटे लक्ष्मणं बाणैः सुपुङ्खैस्त्रिभिरिन्द्रजित् ॥ ३२ ॥
अविध्यत् परमक्रुद्धः शीघ्रमस्त्रं प्रदर्शयन् ।
तैः पृषत्कैर्ललाटस्थैः शुशुभे रघुनन्दनः ॥ ३३ ॥
रणाग्रे समरश्लाघी त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ।

लक्ष्मणका कवच[1] अभेद्य है, ऐसा जानकर रावणकुमार इन्द्रजित्ने उनके ललाटमें सुन्दर पंखवाले तीन बाण मारे । उसने अपनी अस्त्र चलानेकी फुर्ती दिखाते हुए अत्यन्त क्रोधपूर्वक उन्हें घायल कर दिया । ललाटमें धँसे हुए उन बाणोंसे युद्धकी श्लाघा रखनेवाले रघुकुलनन्दन लक्ष्मण संग्रामके मुहानेपर तीन शिखरोंवाले पर्वतके समान शोभा पा रहे थे ॥ ३२-३३½ ॥

स तथाप्यर्दितो बाणै राक्षसेन तदा मृधे ॥ ३४ ॥
तमाशु प्रतिविव्याध लक्ष्मणः पञ्चभिः शरैः ।
विकृष्येन्द्रजितो युद्धे वदने शुभकुण्डले ॥ ३५ ॥

उस राक्षसके द्वारा युद्धमें बाणोंसे इस प्रकार पीड़ित किये जानेपर भी लक्ष्मणने उस समय तुरंत पाँच बाणोंका संधान किया और धनुषको खींचकर चलाये हुए उन बाणोंके द्वारा सुन्दर कुण्डलोंसे सुशोभित इन्द्रजित्के मुखमण्डलको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ३४-३५ ॥

लक्ष्मणेन्द्रजितौ वीरौ महाबलशरासनौ ।
अन्योन्यं जघ्नतुर्वीरौ विशिखैर्भीमविक्रमौ ॥ ३६ ॥

लक्ष्मण तथा इन्द्रजित् दोनों वीर महाबलवान् थे । उनके धनुष भी बहुत बड़े थे । भयंकर पराक्रम करनेवाले वे दोनों योद्धा एक दूसरेको बाणोंसे घायल करने लगे ॥ ३६ ॥

ततः शोणितदिग्धाङ्गौ लक्ष्मणेन्द्रजितावुभौ ।
रणे तौ रेजतुर्वीरौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ३७ ॥

इससे लक्ष्मण और इन्द्रजित् दोनोंके शरीर लहूलुहान हो गये । रणभूमिमें वे दोनों वीर फूले हुए पलाशके वृक्षोंकी भाँति शोभा पा रहे थे ॥ ३७ ॥

तौ परस्परमभ्येत्य सर्वगात्रेषु धन्विनौ ।
घोरैर्विव्यधतुर्बाणैः कृतभावावुभौ जये ॥ ३८ ॥

उन दोनों धनुर्धर वीरोंके मनमें विजय पानेके लिये दृढ़ संकल्प था, अतः वे आपसमें भिड़कर एक दूसरेके सभी अङ्गोंको भयंकर बाणोंका निशाना बनाने लगे ॥ ३८ ॥

ततः समरकोपेन संयुतो रावणात्मजः ।
विभीषणं त्रिभिर्बाणैर्विव्याध वदने शुभे ॥ ३९ ॥

इसी बीचमें समरोचित क्रोधसे युक्त हुए रावणकुमारने विभीषणके सुन्दर मुखपर तीन बाणोंका प्रहार किया ॥ ३९ ॥

अयोमुखैस्त्रिभिर्विद्ध्वा राक्षसेन्द्रं विभीषणम् ।
एकैकेनाभिविव्याध तान् सर्वान् हरियूथपान् ॥ ४० ॥

जिनके अग्रभागमें लोहेके फल लगे हुए थे, ऐसे तीन बाणोंसे राक्षसराज विभीषणको घायल करके इन्द्रजित्ने उन सभी वानर-यूथपतियोंपर एक-एक बाणका प्रहार किया ॥ ४० ॥

तस्मै दृढतरं क्रुद्धो जघान गदया हयान् ।
विभीषणो महातेजा रावणेः स दुरात्मनः ॥ ४१ ॥

इससे महातेजस्वी विभीषणको उसपर बड़ा क्रोध आया

---

[1] पहले लक्ष्मणके कवचके टूटनेका वर्णन आ चुका है । उसके बाद लक्ष्मणने फिर अभेद्य कवच धारण किया था । यह इस प्रसंगसे जाना जाता है ।

और उन्होंने अपनी गदासे उस दुरात्मा रावणकुमारके चारों घोड़ोंको मार डाला ॥ ४१ ॥

स हताश्वादवप्लुत्य रथान्निहतसारथेः ।
अथ शक्तिं महातेजाः पितृव्याय मुमोच ह ॥ ४२ ॥

जिसका सारथि पहले ही मारा जा चुका था और अब घोड़े भी मार डाले गये, उस रथसे नीचे कूदकर महातेजस्वी इन्द्रजित्ने अपने चाचापर शक्तिका प्रहार किया ॥ ४२ ॥

तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य सुमित्रानन्दवर्धनः ।
चिच्छेद निशितैर्बाणैर्दशधापातयद् भुवि ॥ ४३ ॥

उस शक्तिको आती देख सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले लक्ष्मणने तीखे बाणोंसे काट डाला और दस टुकड़े करके उसे पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ४३ ॥

तस्मै दृढधनुः क्रुद्धो हताश्वाय विभीषणः ।
वज्रस्पर्शसमान् पञ्च ससर्जोरसि मार्गणान् ॥ ४४ ॥

तत्पश्चात् सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले विभीषणने जिसके घोड़े मारे गये थे, उस इन्द्रजित्पर कुपित हो उसकी छातीमें पाँच बाण मारे, जिनका स्पर्श वज्रके समान दुःसह था ॥४४॥

ते तस्य कायं भित्त्वा तु रुक्मपुङ्खा निमित्तगाः ।
बभूवुर्लोहितादिग्धा रक्ता इव महोरगाः ॥ ४५ ॥

सुनहरे पङ्खोंसे सुशोभित और लक्ष्यतक पहुँचनेवाले वे बाण इन्द्रजित्के शरीरको विदीर्ण करके उसके रक्तमें सन गये और लाल रंगके बड़े-बड़े सर्पोंके समान दिखायी देने लगे ॥ ४५ ॥

स पितृव्यस्य संक्रुद्ध इन्द्रजिच्छरमाददे ।
उत्तमं रक्षसां मध्ये यमदत्तं महाबलः ॥ ४६ ॥

तब महाबली इन्द्रजित्के मनमें अपने चाचाके प्रति बड़ा क्रोध हुआ । उसने राक्षसोंके बीचमें यमराजका दिया हुआ उत्तम बाण हाथमें लिया ॥ ४६ ॥

तं समीक्ष्य महातेजा महेषुं तेन संहितम् ।
लक्ष्मणोऽप्याददे बाणमन्यद् भीमपराक्रमः ॥ ४७ ॥

उस महान् बाणको इन्द्रजित्के द्वारा धनुषपर रक्खा गया देख भयानक पराक्रम करनेवाले महातेजस्वी लक्ष्मणने भी दूसरा बाण उठाया ॥ ४७ ॥

कुबेरेण स्वयं स्वप्ने यद् दत्तममितात्मना ।
दुर्जयं दुर्विषह्यं च सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ ४८ ॥

उस बाणकी शिक्षा महात्मा कुबेरने स्वप्नमें प्रकट होकर स्वयं उन्हें दी थी । वह बाण इन्द्र आदि देवताओं तथा असुरोंके लिये भी असह्य एवं दुर्जय था ॥ ४८ ॥

तयोस्तु धनुषी श्रेष्ठे बाहुभिः परिघोपमैः ।
विकृष्यमाणे बलवत् क्रौञ्चाविव चुकूजतुः ॥ ४९ ॥

उन दोनोंकी परिघके समान मोटी और बलिष्ठ भुजाओंद्वारा जोर-जोरसे खींचे जाते हुए उन दोनोंके श्रेष्ठ धनुष दो क्रौञ्च पक्षियोंके समान शब्द करने लगे ॥ ४९ ॥

ताभ्यां तु धनुषि श्रेष्ठे संहितौ सायकोत्तमौ ।
विकृष्यमाणौ वीराभ्यां भृशं जज्वलतुः श्रिया ॥ ५० ॥

उन वीरोंने अपने-अपने श्रेष्ठ धनुषपर जो उत्तम सायक रक्खे थे, वे खींचे जाते ही अत्यन्त तेजसे प्रज्वलित हो उठे ॥ ५० ॥

तौ भासयन्तावाकाशं धनुर्भ्यां विशिखौ च्युतौ ।
मुखेन मुखमाहत्य संनिपेततुरोजसा ॥ ५१ ॥

दोनोंके बाण एक साथ ही धनुषसे छूटे और अपनी प्रभासे आकाशको प्रकाशित करने लगे । दोनोंके मुखभाग बड़े वेगसे आपसमें टकरा गये ॥ ५१ ॥

संनिपातस्तयोश्चासीच्छरयोर्घोररूपयोः ।
सधूमविस्फुलिङ्गश्च तज्जोऽग्निर्दारुणोऽभवत् ॥ ५२ ॥

उन दोनों भयानक बाणोंकी ज्यों ही टक्कर हुई, उससे दारुण अग्नि प्रकट हो गयी; जिससे धूआँ उठने लगा और चिनगारियाँ दिखायी दीं ॥ ५२ ॥

तौ महाग्रहसंकाशावन्योन्यं संनिपत्य च ।
संग्रामे शतधा यातौ मेदिन्यां चैव पेततुः ॥ ५३ ॥

वे दोनों बाण दो महान् ग्रहोंकी भाँति आपसमें टकराकर सैकड़ों टुकड़े हो संग्रामभूमिमें गिर पड़े ॥ ५३ ॥

शरौ प्रतिहतौ दृष्ट्वा तावुभौ रणमूर्धनि ।
व्रीडितौ जातरोषौ च लक्ष्मणेन्द्रजितौ तदा ॥ ५४ ॥

युद्धके मुहानेपर उन दोनों बाणोंको आपसके आघात-प्रतिघातसे व्यर्थ हुआ देख लक्ष्मण और इन्द्रजित् दोनोंको ही उस समय लज्जा हुई । फिर दोनों एक दूसरेके प्रति अत्यन्त रोषसे भर गये ॥ ५४ ॥

सुसंरब्धस्तु सौमित्रिरस्त्रं वारुणमाददे ।
रौद्रं महेन्द्रजिद् युद्धेऽप्यसृजद् युधि निष्ठितः ॥ ५५ ॥

सुमित्रानन्दन लक्ष्मणने कुपित होकर वारुणास्त्र उठाया । साथ ही उस रणभूमिमें खड़े हुए इन्द्रजित्ने रौद्रास्त्र उठाया और उसे वारुणास्त्रके प्रतीकारके लिये छोड़ दिया ॥ ५५ ॥

तेन तद्विहितं शस्त्रं वारुणं परमाद्भुतम् ।
ततः क्रुद्धो महातेजा इन्द्रजित् समितिंजयः ।
आग्नेयं संदधे दीप्तं स लोकं संक्षिपन्निव ॥ ५६ ॥

उस रौद्रास्त्रसे आहत होकर लक्ष्मणका अत्यन्त अद्भुत वारुणास्त्र शान्त हो गया । तदनन्तर समरविजयी महातेजस्वी इन्द्रजित्ने कुपित होकर दीप्तिमान् आग्नेयास्त्रका संधान किया, मानो वह उसके द्वारा समस्त लोकोंका प्रलय कर देना चाहता हो ॥ ५६ ॥

सौरेणास्त्रेण तद् वीरो लक्ष्मणः पर्यवारयत् ।
अस्त्रं निवारितं दृष्ट्वा रावणिः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ५७ ॥

परंतु वीर लक्ष्मणने सूर्यास्त्रके प्रयोगसे उसे शान्त कर दिया। अपने अस्त्रको प्रतिहत हुआ देख रावणकुमार इन्द्रजित् अचेत-सा हो गया ॥ ५७ ॥

आददे निशितं बाणमासुरं शत्रुदारणम् ।
तस्माच्चापाद् विनिष्पेतुर्भास्वराः कूटमुद्गराः ॥ ५८ ॥
शूलानि च भुशुण्ड्यश्च गदाः खड्गाः परश्वधाः ।

उसने आसुर नामक शत्रुनाशक तीखे बाणका प्रयोग किया, फिर तो उसके उस धनुषसे चमकते हुए कूट, मुद्गर, शूल, भुशुण्डि, गदा, खड्ग और फरसे निकलने लगे ॥ ५८½ ॥

तद् दृष्ट्वा लक्ष्मणः संख्ये घोरमस्त्रमथासुरम् ॥ ५९ ॥
अवार्यं सर्वभूतानां सर्वशस्त्रविदारणम् ।
माहेश्वरेण द्युतिमांस्तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥ ६० ॥

रणभूमिमें उस भयंकर आसुरास्त्रको प्रकट हुआ देख तेजस्वी लक्ष्मणने सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंको विदीर्ण करनेवाले माहेश्वरास्त्रका प्रयोग किया, जिसका समस्त प्राणी मिलकर भी निवारण नहीं कर सकते थे। उस माहेश्वरास्त्रके द्वारा उन्होंने उस आसुरास्त्रको नष्ट कर दिया ॥ ५९-६० ॥

तयोः समभवद् युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् ।
गगनस्थानि भूतानि लक्ष्मणं पर्यवारयन् ॥ ६१ ॥

इस प्रकार उन दोनोंमें अत्यन्त अद्भुत और रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। आकाशमें रहनेवाले प्राणी लक्ष्मणको घेरकर खड़े हो गये ॥ ६१ ॥

भैरवाभिरुते भीमे युद्धे वानररक्षसाम् ।
भूतैर्बहुभिराकाशं विस्मितैरावृतं बभौ ॥ ६२ ॥

भैरव-गर्जनासे गूँजते हुए वानरों और राक्षसोंके उस भयानक युद्धके छिड़ जानेपर आश्चर्यचकित हुए बहुसंख्यक प्राणी आकाशमें आकर खड़े हो गये। उनसे घिरे हुए उस आकाशकी अद्भुत शोभा हो रही थी ॥ ६२ ॥

ऋषयः पितरो देवा गन्धर्वगरुडोरगाः ।
शतक्रतुं पुरस्कृत्य ररक्षुर्लक्ष्मणं रणे ॥ ६३ ॥

ऋषि, पितर, देवता, गन्धर्व, गरुड़ और नाग भी इन्द्रको आगे करके रणभूमिमें सुमित्राकुमारकी रक्षा करने लगे ॥ ६३ ॥

अथान्यं मार्गणश्रेष्ठं संदधे राघवानुजः ।
हुताशनसमस्पर्शं रावणात्मजदारणम् ॥ ६४ ॥

तत्पश्चात् लक्ष्मणने दूसरा उत्तम बाण अपने धनुषपर रक्खा, जिसका स्पर्श आगके समान जलानेवाला था। उसमें रावणकुमारको विदीर्ण कर देनेकी शक्ति थी ॥ ६४ ॥

सुपत्रमनुवृत्ताङ्गं सुपर्वाणं सुसंस्थितम् ।
सुवर्णविकृतं वीरः शरीरान्तकरं शरम् ॥ ६५ ॥
दुरावारं दुर्विषहं राक्षसानां भयावहम् ।
आशीविषविषप्रख्यं देवसंघैः समर्चितम् ॥ ६६ ॥
येन शक्रो महातेजा दानवानजयत् प्रभुः ।
पुरा देवासुरे युद्धे वीर्यवान् हरिवाहनः ॥ ६७ ॥
अथैन्द्रमस्त्रं सौमित्रिः संयुगेष्वपराजितम् ।
शरश्रेष्ठं धनुश्रेष्ठे विकर्षन्निदमब्रवीत् ॥ ६८ ॥
लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणो वाक्यमर्थसाधकमात्मनः ।
✓ **धर्मात्मा सत्यसंधश्च रामो दाशरथिर्यदि ।**
पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वस्तदैनं जहि रावणिम् ॥ ६९ ॥

उसमें सुन्दर पर लगे थे। उस बाणका सारा अङ्ग सुडौल एवं गोल था। उसकी गाँठ भी सुन्दर थी। वह बहुत ही मजबूत और सुवर्णसे भूषित था। उसमें शरीरको चीर डालनेकी क्षमता थी। उसे रोकना अत्यन्त कठिन था। उसके आघातको सह लेना भी बहुत मुश्किल था। वह राक्षसोंको भयभीत करनेवाला तथा विषधर सर्पके विषकी भाँति शत्रुके प्राण लेनेवाला था। देवताओंद्वारा उस बाणकी सदा ही पूजा की गयी थी। पूर्वकालके देवासुर-संग्राममें हरे रंगके घोड़ोंसे युक्त रथवाले, पराक्रमी, शक्तिमान् एवं महातेजस्वी इन्द्रने उसी बाणसे दानवोंपर विजय पायी थी। उसका नाम था ऐन्द्रास्त्र। वह युद्धके अवसरोंपर कभी पराजित या असफल नहीं हुआ था। शोभासम्पन्न वीर सुमित्राकुमार लक्ष्मणने अपने उत्तम धनुषपर उस श्रेष्ठ बाणको रखकर उसे खींचते हुए अपने अभिप्रायको सिद्ध करनेवाली यह बात कही—'यदि दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम धर्मात्मा और सत्यप्रतिज्ञ हैं तथा पुरुषार्थमें उनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई वीर नहीं है तो हे अस्त्र! तुम इस रावणपुत्रका वध कर डालो' ॥ ६५—६९ ॥

इत्युक्त्वा बाणमाकर्णं विकृष्य तमजिह्मगम् ।
लक्ष्मणः समरे वीरः ससर्जेन्द्रजितं प्रति ।
✓ **ऐन्द्रास्त्रेण समायुज्य लक्ष्मणः परवीरहा ॥ ७० ॥**

समराङ्गणमें ऐसा कहकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले वीर लक्ष्मणने सीधे जानेवाले उस बाणको कानतक खींचकर ऐन्द्रास्त्रसे संयुक्त करके इन्द्रजित्‌की ओर छोड़ दिया ॥ ७० ॥

तच्छिरः सशिरस्त्राणं श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् ।
प्रमथ्येन्द्रजितः कायात् पातयामास भूतले ॥ ७१ ॥

धनुषसे छूटते ही ऐन्द्रास्त्रने जगमगाते हुए कुण्डलोंसे युक्त इन्द्रजित्‌के शिरस्त्राणसहित दीप्तिमान् मस्तकको धड़से काटकर धरतीपर गिरा दिया ॥ ७१ ॥

तद् राक्षसतनूजस्य भिन्नस्कन्धं शिरो महत् ।
तपनीयनिभं भूमौ ददृशे रुधिरोक्षितम् ॥ ७२ ॥

राक्षसपुत्र इन्द्रजित्‌का कंधेपरसे कटा हुआ वह विशाल सिर, जो खूनसे लथपथ हो रहा था, भूमिपर सुवर्णके समान दिखायी देने लगा ॥ ७२ ॥

हतः स निपपाताथ धरण्यां रावणात्मजः ।
कवची सशिरस्त्राणो विप्रविद्धशरासनः ॥ ७३ ॥

इस प्रकार मारा जाकर कवच, सिर और शिरस्त्राणसहित रावणकुमार धराशायी हो गया। उसका धनुष दूर जा गिरा ॥ ७३ ॥

चुक्रुशुस्ते ततः सर्वे वानराः सविभीषणाः ।
हृष्यन्ते निहते तस्मिन् देवा वृत्रवधे यथा ॥ ७४ ॥

जैसे वृत्रासुरका वध होनेपर देवता प्रसन्न हुए थे, उसी प्रकार इन्द्रजित्‌के मारे जानेपर विभीषणसहित समस्त वानर हर्षसे भर गये और जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ ७४ ॥

अथान्तरिक्षे देवानामृषीणां च महात्मनाम् ।
जज्ञेऽथ जयसंनादो गन्धर्वाप्सरसामपि ॥ ७५ ॥

आकाशमें देवताओं, महात्मा ऋषियों, गन्धर्वों तथा अप्सराओंका भी विजयजनित हर्षनाद गूँज उठा ॥ ७५ ॥

पतितं समभिज्ञाय राक्षसी सा महाचमूः ।
वध्यमाना दिशो भेजे हरिभिर्जितकाशिभिः ॥ ७६ ॥

इन्द्रजित्‌को धराशायी हुआ जान राक्षसोंकी वह विशाल सेना विजयसे उल्लसित हुए वानरोंकी मार खाकर सम्पूर्ण दिशाओंमें भागने लगी ॥ ७६ ॥

वानरैर्वध्यमानास्ते शस्त्राण्युत्सृज्य राक्षसाः ।
लङ्कामभिमुखाः सस्रुर्भ्रष्टसंज्ञाः प्रधाविताः ॥ ७७ ॥

वानरोंद्वारा मारे जाते हुए राक्षस अपनी सुध-बुध खो बैठे और अस्त्र-शस्त्रोंको छोड़कर तेजीसे भागते हुए लङ्काकी ओर चले गये ॥ ७७ ॥

दुद्रुवुर्बहुधा भीता राक्षसाः शतशो दिशः ।
त्यक्त्वा प्रहरणान् सर्वे पट्टिशासिपरश्वधान् ॥ ७८ ॥

राक्षस बहुत डर गये थे; इसलिये वे सब-के-सब पट्टिश, खड्ग और फरसे आदि शस्त्रोंको त्यागकर सैकड़ोंकी संख्यामें एक साथ ही सब दिशाओंमें भागने लगे ॥ ७८ ॥

केचिल्लङ्कां परित्रस्ताः प्रविष्टा वानरार्दिताः ।
समुद्रे पतिताः केचित् केचित् पर्वतमाश्रिताः ॥ ७९ ॥

वानरोंसे पीड़ित होकर कोई डरके मारे लङ्कामें घुस गये, कोई समुद्रमें कूद पड़े और कोई-कोई पर्वतकी चोटीपर चढ़ गये ॥ ७९ ॥

हतमिन्द्रजितं दृष्ट्वा शयानं च रणक्षितौ ।
राक्षसानां सहस्रेषु न कश्चित् प्रत्यदृश्यत ॥ ८० ॥

इन्द्रजित् मारा गया और रणभूमिमें सो रहा है, यह देख हजारों राक्षसोंमेंसे एक भी वहाँ खड़ा नहीं दिखायी दिया ॥ ८० ॥

यथास्तं गत आदित्ये नावतिष्ठन्ति रश्मयः ।
तथा तस्मिन् निपतिते राक्षसास्ते गता दिशः ॥ ८१ ॥

जैसे सूर्यके अस्त हो जानेपर उसकी किरणें यहाँ नहीं ठहरती हैं, उसी प्रकार इन्द्रजित्‌के धराशायी होनेपर वे राक्षस यहाँ रुक न सके, सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥ ८१ ॥

शान्तरश्मिरिवादित्यो निर्वाण इव पावकः ।
बभूव स महाबाहुर्व्यपास्तगतजीवितः ॥ ८२ ॥

महाबाहु इन्द्रजित् निष्प्राण हो जानेपर शान्त किरणोंवाले सूर्य अथवा बुझी हुई आगके समान निस्तेज हो गया ॥ ८२ ॥

प्रशान्तपीडाबहुलो विनष्टारिः प्रहर्षवान् ।
बभूव लोकः पतिते राक्षसेन्द्रसुते तदा ॥ ८३ ॥

उस समय राक्षसराजकुमार इन्द्रजित्‌के समरभूमिमें गिर जानेपर सारे संसारकी अधिकांश पीडा नष्ट हो गयी। सबका शत्रु मारा गया और सभी हर्षसे भर गये ॥ ८३ ॥

हर्षं च शक्रो भगवान् सह सर्वैर्महर्षिभिः ।
जगाम निहते तस्मिन् राक्षसे पापकर्मणि ॥ ८४ ॥

उस पापकर्मा राक्षसके मारे जानेपर सम्पूर्ण महर्षियोंके साथ भगवान् इन्द्रको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ८४ ॥

आकाशे चापि देवानां शुश्रुवे दुन्दुभिस्वनः ।
नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च गन्धर्वैश्च महात्मभिः ॥ ८५ ॥

आकाशमें नाचती हुई अप्सराओं और गाते हुए महामना गन्धर्वोंके नृत्य और गानकी ध्वनिके साथ देवताओंकी दुन्दुभिका शब्द भी सुनायी देने लगा ॥ ८५ ॥

ववर्षुः पुष्पवर्षाणि तदद्भुतमिवाभवत् ।
प्रशशाम हते तस्मिन् राक्षसे क्रूरकर्मणि ॥ ८६ ॥

देवता आदि वहाँ फूलोंकी वर्षा करने लगे। वह दृश्य अद्भुत-सा प्रतीत हुआ। उस क्रूरकर्मा राक्षसके मारे जानेपर वहाँकी उड़ती हुई धूल शान्त हो गयी ॥ ८६ ॥

शुद्धा आपो नभश्चैव जहृषुर्दैवदानवाः ।
आजग्मुः पतिते तस्मिन् सर्वलोकभयावहे ॥ ८७ ॥
ऊचुश्च सहितास्तुष्टा देवगन्धर्वदानवाः ।
विज्वराः शान्तकलुषा ब्राह्मणा विचरन्त्विति ॥ ८८ ॥

सम्पूर्ण लोकोंको भय देनेवाले इन्द्रजित्‌के धराशायी होनेपर जल स्वच्छ हो गया, आकाश भी निर्मल दिखायी देने लगा और देवता तथा दानव हर्षसे खिल उठे। देवता, गन्धर्व और दानव वहाँ आये और सब एक साथ संतुष्ट होकर बोले—अब ब्राह्मणलोग निश्चिन्त एवं क्लेशशून्य होकर सर्वत्र विचरें ॥

ततोऽभ्यनन्दन् संहृष्टाः समरे हरियूथपाः ।
तमप्रतिबलं दृष्ट्वा हतं नैर्ऋतपुङ्गवम् ॥ ८९ ॥

समराङ्गणमें अप्रतिम बलशाली निशाचरशिरोमणि इन्द्रजित्‌को मारा गया देख हर्षसे भरे हुए वानर-यूथपति लक्ष्मणका अभिनन्दन करने लगे ॥ ८९ ॥

विभीषणो हनूमांश्च जाम्बवांश्चर्क्षयूथपः ।
विजयेनाभिनन्दन्तस्तुष्टुवुश्चापि लक्ष्मणम् ॥ ९० ॥

विभीषण, हनुमान् और रीछ-यूथपति जाम्बवान्—ये इस विजयके लिये लक्ष्मणजीका अभिनन्दन करते हुए उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ ९० ॥

क्ष्वेडन्तश्च प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः ।
लब्धलक्षा रघुसुतं परिवार्योपतस्थिरे ॥ ९१ ॥

हर्ष एवं रक्षाका अवसर पाकर वानर किलकिलाते, कूदते और गर्जते हुए वहाँ रघुकुलनन्दन लक्ष्मणको घेरकर खड़े हो गये ॥ ९१ ॥

लाङ्गूलानि प्रविध्यन्तः स्फोटयन्तश्च वानराः ।
✓**लक्ष्मणो जयतीत्येव वाक्यं विश्रावयंस्तदा ॥ ९२ ॥**

उस समय अपनी पूँछोंको हिलाते और फटकारते हुए वानर वीर 'लक्ष्मणकी जय हो' यह नारा लगाने लगे ॥९२॥

अन्योन्यं च समाश्लिष्य हरयो हृष्टमानसाः ।
चक्रुरुच्चावचगुणा राघवाश्रयसत्कथाः ॥ ९३ ॥

वानरोंका चित्त हर्षसे भरा हुआ था । वे विविध गुणोंवाले वानर एक-दूसरेको हृदयसे लगाकर श्रीरामचन्द्रजीसे सम्बन्ध रखनेवाली कथाएँ कहने लगे ॥ ९३ ॥

तदसुकरमथाभिवीक्ष्य हृष्टाः
प्रियसुहृदो युधि लक्ष्मणस्य कर्म ।
परममुपलभन्मनःप्रहर्षं
विनिहतमिन्द्ररिपुं निशम्य देवाः ॥९४ ॥

युद्धस्थलमें लक्ष्मणके प्रिय सुहृद् वानर उनका वह दुष्कर एवं महान् पराक्रम देख बड़े प्रसन्न हुए । देवता भी उस इन्द्रद्रोही राक्षसका वध हुआ देख मनमें बड़े भारी हर्षका अनुभव करने लगे ॥ ९४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें नब्बेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९० ॥

एकनवतितमः सर्गः

लक्ष्मण और विभीषण आदिका श्रीरामचन्द्रजीके पास आकर इन्द्रजित्‌के वधका समाचार सुनाना, प्रसन्न हुए श्रीरामके द्वारा लक्ष्मणको हृदयसे लगाकर उनकी प्रशंसा तथा सुषेणद्वारा लक्ष्मण आदिकी चिकित्सा

रुधिरक्लिन्नगात्रस्तु लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।
बभूव हृष्टस्तं हत्वा शत्रुजेतारमाहवे ॥ १ ॥

संग्रामभूमिमें शत्रुविजयी इन्द्रजित्‌का वध करके रक्तसे भीगे हुए शरीरवाले शुभलक्षण लक्ष्मण बहुत प्रसन्न हुए ॥ १ ॥

ततः स जाम्बवन्तं च हनूमन्तं च वीर्यवान् ।
संनिपत्य महातेजास्तांश्च सर्वान् वनौकसः ॥ २ ॥
आजगाम ततः शीघ्रं यत्र सुग्रीवराघवौ ।
विभीषणमवष्टभ्य हनूमन्तं च लक्ष्मणः ॥ ३ ॥

बल-विक्रमसे सम्पन्न वे महातेजस्वी सुमित्राकुमार जाम्बवान् और हनुमान्‌जीसे दौड़कर मिले और उन समस्त वानरोंको साथ ले शीघ्रतापूर्वक उस स्थानपर आये, जहाँ वानरराज सुग्रीव और भगवान् श्रीराम विद्यमान थे । उस समय लक्ष्मण विभीषण और हनुमान्‌जीका सहारा लेकर चल रहे थे ॥ २-३ ॥

ततो राममभिक्रम्य सौमित्रिरभिवाद्य च ।
तस्थौ भ्रातृसमीपस्थः शक्रस्येन्द्रानुजो यथा ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके सामने आकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके सुमित्राकुमार अपने उन ज्येष्ठ भ्राताके पास उसी तरह खड़े हो गये, जैसे इन्द्रके पास उपेन्द्र (वामनरूपधारी श्रीहरि) खड़े होते हैं ॥ ४ ॥

निष्टनन्निव चागत्य राघवाय महात्मने ।
आचचक्षे तदा वीरो घोरमिन्द्रजितो वधम् ॥ ५ ॥

उस समय वीर विभीषण प्रसन्नतापूर्वक लौटनेके द्वारा ही शत्रुके मारे जानेकी बात सूचित-सी करते हुए आये और महात्मा श्रीरघुनाथजीसे बोले—'प्रभो ! इन्द्रजित्‌के वधका भयंकर कार्य सम्पन्न हो गया' ॥ ५ ॥

रावणेस्तु शिरश्छिन्नं लक्ष्मणेन महात्मना ।
न्यवेदयत रामाय तदा हृष्टो विभीषणः ॥ ६ ॥

विभीषणने बड़े हर्षके साथ श्रीरामसे यह निवेदन किया कि महात्मा लक्ष्मणने ही रावणकुमार इन्द्रजित्‌का मस्तक काटा है ॥ ६ ॥

श्रुत्वैव तु महावीर्यो लक्ष्मणेनेन्द्रजिद्वधम् ।
प्रहर्षमतुलं लेभे वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ७ ॥

'लक्ष्मणके द्वारा इन्द्रजित्‌का वध हुआ है' यह समाचार सुनते ही महापराक्रमी श्रीरामचन्द्रजीको अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ और वे इस प्रकार बोले—॥ ७ ॥

साधु लक्ष्मण तुष्टोऽस्मि कर्म चासुकरं कृतम् ।
रावणेर्हि विनाशेन जितमित्युपधारय ॥ ८ ॥

'शाबाश ! लक्ष्मण ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ । आज तुमने बड़ा दुष्कर पराक्रम किया । रावणपुत्र इन्द्रजित्‌के मारे जानेसे तुम यह निश्चित समझ लो कि अब हमलोग युद्धमें जीत गये' ॥ ८ ॥

✓**स तं शिरस्युपाघ्राय लक्ष्मणं कीर्तिवर्धनम् ।**
लज्जमानं बलात् स्नेहादङ्कमारोप्य वीर्यवान् ॥ ९ ॥

उपवेश्य तमुत्सङ्गे परिष्वज्यावपीडितम् ।
भ्रातरं लक्ष्मणं स्निग्धं पुनः पुनरुदैक्षत ॥ १० ॥

यशकी वृद्धि करनेवाले लक्ष्मण (उस समय अपनी प्रशंसा सुनकर) लजा रहे थे; किंतु पराक्रमी श्रीरामने उन्हें बलपूर्वक खींचकर गोदमें ले लिया और बड़े स्नेहसे उनका मस्तक सूँघा । शस्त्रोंके आघातसे पीड़ित हुए स्नेही बन्धु लक्ष्मणको गोदमें बिठाकर और हृदयसे लगाकर वे बड़े प्यारसे उनकी ओर बारंबार देखने लगे ॥ ९-१० ॥

शल्यसम्पीडितं शस्तं निःश्वसन्तं तु लक्ष्मणम् ।
रामस्तु दुःखसंतप्तं तं तु निःश्वासपीडितम् ॥ ११ ॥
मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय भूयः संस्पृश्य च त्वरन् ।
उवाच लक्ष्मणं वाक्यमाश्वास्य पुरुषर्षभः ॥ १२ ॥

लक्ष्मण अपने शरीरमें धँसे हुए बाणोंके द्वारा अत्यन्त पीड़ित थे । उनके अङ्गोंमें जगह-जगह घाव हो गया था । वे बारंबार लंबी साँस खींचते थे, आघातजनित क्लेशसे संतप्त हो रहे थे तथा उन्हें साँस लेनेमें भी पीड़ा होती थी । उस अवस्थामें पुरुषोत्तम श्रीरामने स्नेहसे उनका मस्तक सूँघकर पीड़ा दूर करनेके लिये पुनः जल्दी-जल्दी उनके शरीरपर हाथ फेरा और आश्वासन देकर लक्ष्मणसे इस प्रकार कहा—॥

कृतं परमकल्याणं कर्म दुष्करकर्मणा ।
अद्य मन्ये हते पुत्रे रावणं निहतं युधि ॥ १३ ॥
अद्याहं विजयी शत्रौ हते तस्मिन् दुरात्मनि ।
रावणस्य नृशंसस्य दिष्ट्या वीर त्वया रणे ॥ १४ ॥
छिन्नो हि दक्षिणो बाहुः स हि तस्य व्यपाश्रयः ।

'वीर ! तुमने अपने दुष्कर पराक्रमसे परम कल्याणकारी कार्य सम्पन्न किया है । आज बेटेके मारे जानेपर युद्धस्थलमें रावणको भी मैं मारा गया ही मानता हूँ । उस दुरात्मा शत्रुका वध हो जानेसे आज मैं वास्तवमें विजयी हो गया । सौभाग्यकी बात है कि तुमने रणभूमिमें इन्द्रजित्‌का वध करके निर्दयी निशाचर रावणकी दाहिनी बाँह ही काट डाली; क्योंकि वही उसका सबसे बड़ा सहारा था ॥ १३-१४½ ॥

विभीषणहनूमद्भ्यां कृतं कर्म महद् रणे ॥ १५ ॥
अहोरात्रैस्त्रिभिर्वीरः कथंचिद् विनिपातितः ।
निरमित्रः कृतोऽस्म्यद्य निर्यास्यति हि रावणः ॥ १६ ॥

'विभीषण और हनुमान्‌ने भी समरभूमिमें महान् पराक्रम कर दिखाया है । तुम सब लोगोंने मिलकर तीन दिन और तीन रातमें किसी तरह उस वीर राक्षसको मार गिराया तथा मुझे शत्रुहीन बना दिया । अब रावण ही युद्धके लिये निकलेगा ॥

बलव्यूहेन महता निर्यास्यति हि रावणः ।
बलव्यूहेन महता श्रुत्वा पुत्रं निपातितम् ॥ १७ ॥

'महान् सैन्य-समुदायसहित पुत्रको मारा गया सुनकर रावण विशाल सेना साथ लेकर युद्धके लिये आयेगा ॥ १७ ॥

तं पुत्रवधसंतप्तं निर्यान्तं राक्षसाधिपम् ।
बलेनावृत्य महता निहनिष्यामि दुर्जयम् ॥ १८ ॥

'पुत्रके वधसे संतप्त होकर निकले हुए उस दुर्जय राक्षसराज रावणको मैं अपनी बड़ी भारी सेनाके द्वारा घेरकर मार डालूँगा ॥ १८ ॥

त्वया लक्ष्मण नाथेन सीता च पृथिवी च मे ।
न दुष्प्रापा हते तस्मिञ्शक्रजेतरि चाहवे ॥ १९ ॥

'लक्ष्मण ! इन्द्रजित् इन्द्रको भी जीत चुका था । जब उसे भी तुमने युद्धभूमिमें मार गिराया, तब तुम-जैसे रक्षक और सहायकके होते हुए मुझे सीता और भूमण्डलके राज्यको प्राप्त करनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी' ॥ १९ ॥

स तं भ्रातरमाश्वास्य परिष्वज्य च राघवः ।
रामः सुषेणं मुदितः समाभाष्येदमब्रवीत् ॥ २० ॥

इस प्रकार भाईको आश्वासन देकर रघुकुलनन्दन श्रीरामने उन्हें हृदयसे लगा लिया और प्रसन्नतापूर्वक सुषेणको बुलाकर कहा—॥ २० ॥

विशल्योऽयं महाप्राज्ञ सौमित्रिर्मित्रवत्सलः ।
यथा भवति सुस्वस्थस्तथा त्वं समुपाचर ॥ २१ ॥

'परम बुद्धिमान् सुषेण ! तुम शीघ्र ही ऐसा उपचार करो जिससे ये मित्रवत्सल सुमित्राकुमार पूर्णतः स्वस्थ हो जायँ और इनके शरीरसे बाण निकलकर घाव भरनेके साथ ही सारी पीड़ा दूर हो जाय ॥ २१ ॥

विशल्यः क्रियतां क्षिप्रं सौमित्रिः सविभीषणः ।
ऋक्षवानरसैन्यानां शूराणां द्रुमयोधिनाम् ॥ २२ ॥
ये चाप्यन्येऽत्र युध्यन्ति, सशल्या व्रणिनस्तथा ।
तेऽपि सर्वे प्रयत्नेन क्रियन्ते सुखिनस्त्वया ॥ २३ ॥

'सुमित्राकुमार लक्ष्मण और विभीषण दोनोंके शरीरसे तुम शीघ्र ही बाण निकाल दो और घाव अच्छा कर दो । वृक्षोंद्वारा युद्ध करनेवाले जो शूरवीर रीछ तथा वानर सैनिक हैं, उनमें भी जो दूसरे-दूसरे लोग बाणोंसे बिंधे हुए और घायल होकर युद्ध कर रहे हैं, उन सभीको तुम प्रयत्न करके सुखी एवं स्वस्थ कर दो' ॥ २२-२३ ॥

एवमुक्तः स रामेण महात्मा हरियूथपः ।
लक्ष्मणाय ददौ नस्तः सुषेणः परमौषधम् ॥ २४ ॥

महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर वानर-यूथपति सुषेणने लक्ष्मणकी नाकमें एक बहुत ही उत्तम ओषधि लगा दी ॥ २४ ॥

स तस्य गन्धमाघ्राय विशल्यः समपद्यत ।
तदा निर्वेदनश्चैव संरूढव्रण एव च ॥ २५ ॥

उसकी गन्ध सूँघते ही लक्ष्मणके शरीरसे बाण निकल गये और उनकी सारी पीड़ा दूर हो गयी । उनके शरीरमें जितने भी घाव थे, सब भर गये ॥ २५ ॥

विभीषणमुखानां च सुहृदां राघवाज्ञया ।
सर्ववानरमुख्यानां चिकित्सामकरोत् तदा ॥ २६ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे सुषेणने विभीषण आदि सुहृदों तथा समस्त वानरशिरोमणियोंकी तत्काल चिकित्सा की ॥ २६ ॥

ततः प्रकृतिमापन्नो हृतशल्यो गतक्लमः ।
सौमित्रिर्मुमुदे तत्र क्षणेन विगतज्वरः ॥ २७ ॥

फिर तो क्षणभरमें बाण निकल जाने और पीड़ा दूर हो जानेसे सुमित्राकुमार स्वस्थ एवं नीरोग हो हर्षका अनुभव करने लगे ॥ २७ ॥

तदैव रामः प्लवगाधिपस्तथा
विभीषणश्चर्क्षपतिश्च वीर्यवान् ।
अवेक्ष्य सौमित्रिमरोगमुत्थितं
मुदा ससैन्याः सुचिरं जहर्षिरे ॥ २८ ॥

उस समय भगवान् श्रीराम, वानरराज सुग्रीव, विभीषण तथा पराक्रमी ऋक्षराज जाम्बवान् लक्ष्मणको निरोग होकर खड़ा हुआ देख सेनासहित बड़े प्रसन्न हुए ॥ २८ ॥

अपूजयत् कर्म स लक्ष्मणस्य
सुदुष्करं दाशरथिर्महात्मा ।
बभूव हृष्टो युधि वानरेन्द्रो
निशम्य तं शक्रजितं निपातितम् ॥ २९ ॥

दशरथनन्दन महात्मा श्रीरामने लक्ष्मणके उस अत्यन्त दुष्कर पराक्रमकी पुनः भूरि-भूरि प्रशंसा की । इन्द्रजित् युद्धमें मार गिराया गया, यह सुनकर वानरराज सुग्रीवको भी बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें इक्यानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमः सर्गः

रावणका शोक तथा सुपार्श्वके समझानेसे उसका सीता-वधसे निवृत्त होना

ततः पौलस्त्यसचिवाः श्रुत्वा चेन्द्रजितो वधम् ।
आचचक्षुरभिज्ञाय दशग्रीवाय सत्वराः ॥ १ ॥

रावणके मन्त्रियोंने जब इन्द्रजित्‌के वधका समाचार सुना, तब उन्होंने स्वयं भी प्रत्यक्ष देखकर इसका निश्चय कर लेनेके बाद तुरंत जाकर दशमुख रावणसे सारा हाल कह सुनाया ॥

युद्धे हतो महाराज लक्ष्मणेन तवात्मजः ।
विभीषणसहायेन मिषतां नो महाद्युतिः ॥ २ ॥

वे बोले—'महाराज ! युद्धमें विभीषणकी सहायता पाकर लक्ष्मणने आपके महातेजस्वी पुत्रको हमारे सैनिकोंके देखते-देखते मार डाला ॥ २ ॥

शूरः शूरेण संगम्य संयुगेष्वपराजितः ।
लक्ष्मणेन हतः शूरः पुत्रस्ते विबुधेन्द्रजित् ॥ ३ ॥
गतः स परमाँल्लोकाञ्शरैः संतर्प्य लक्ष्मणम् ।

'जिसने देवताओंके राजा इन्द्रको भी परास्त किया था और पहलेके युद्धोंमें जिसकी कभी पराजय नहीं हुई थी, वही आपका शूरवीर पुत्र इन्द्रजित् शौर्यसम्पन्न लक्ष्मणके साथ भिड़कर उनके द्वारा मारा गया । वह अपने बाणोंद्वारा लक्ष्मणको पूर्णतः तृप्त करके उत्तम लोकोंमें गया' ॥ ३½ ॥

स तं प्रतिभयं श्रुत्वा वधं पुत्रस्य दारुणम् ॥ ४ ॥
घोरमिन्द्रजितः संख्ये कश्मलं प्राविशन्महत् ।

युद्धमें अपने पुत्र इन्द्रजित्‌के भयानक वधका घोर एवं दारुण समाचार सुननेपर रावणको बड़ी भारी मूर्च्छाने धर दबाया ॥ ४½ ॥

उपलभ्य चिरात् संज्ञां राजा राक्षसपुंगवः ॥ ५ ॥
पुत्रशोकाकुलो दीनो विललापाकुलेन्द्रियः ।

फिर दीर्घकालके बाद होशमें आकर राक्षसप्रवर राजा रावण पुत्रशोकसे व्याकुल हो गया । उसकी सारी इन्द्रियाँ अकुला उठीं और वह दीनतापूर्वक विलाप करने लगा— ॥

हा राक्षसचमूमुख्य मम वत्स महाबल ॥ ६ ॥
जित्वेन्द्रं कथमद्य त्वं लक्ष्मणस्य वशं गतः ।

'हा पुत्र ! हा राक्षस-सेनाके महाबली कर्णधार ! तुम तो पहले इन्द्रपर भी विजय पा चुके थे; फिर आज लक्ष्मणके वशमें कैसे पड़ गये ? ॥ ६½ ॥

ननु त्वमिषुभिः क्रुद्धो भिन्द्याः कालान्तकावपि ॥ ७ ॥
मन्दरस्यापि शृङ्गाणि किं पुनर्लक्ष्मणं युधि ।

'बेटा ! तुम तो कुपित होनेपर अपने बाणोंसे काल और अन्तकको भी विदीर्ण कर सकते थे, मन्दराचलके शिखरोंको भी तोड़-फोड़ सकते थे; फिर युद्धमें लक्ष्मणको मार गिराना तुम्हारे लिये कौन बड़ी बात थी ? ॥ ७½ ॥

अद्य वैवस्वतो राजा भूयो बहुमतो मम ॥ ८ ॥
येनाद्य त्वं महाबाहो संयुक्तः कालधर्मणा ।

'महाबाहो ! आज सूर्यके पुत्र प्रेतराज यमका महत्त्व मुझे अधिक जान पड़ने लगा है, जिन्होंने तुम्हें भी कालधर्मसे संयुक्त कर दिया ॥ ८½ ॥

एष पन्थाः सुयोधानां सर्वामरगणेष्वपि ।
यः कृते हन्यते भर्तुः स पुमान् स्वर्गमृच्छति ॥ ९ ॥

'समस्त देवताओंमें भी अच्छे योद्धाओंका यही मार्ग है। जो अपने स्वामीके लिये युद्धमें मारा जाता है, वह पुरुष स्वर्गलोकमें जाता है ॥ ९ ॥

अद्य देवगणाः सर्वे लोकपाला महर्षयः ।
हतमिन्द्रजितं श्रुत्वा सुखं स्वप्स्यन्ति निर्भयाः ॥ १० ॥

'आज समस्त देवता, लोकपाल तथा महर्षि इन्द्रजित्‌का मारा जाना सुनकर निडर हो सुखकी नींद सो सकेंगे ॥ १० ॥

अद्य लोकास्त्रयः कृत्स्ना पृथिवी च सकानना ।
एकेनेन्द्रजिता हीना शून्येव प्रतिभाति मे ॥ ११ ॥

'आज तीनों लोक और काननोंसहित यह सारी पृथ्वी भी अकेले इन्द्रजित्‌के न होनेसे मुझे सूनी-सी दिखायी देती है ॥

अद्य नैर्ऋतकन्यानां श्रोष्याम्यन्तःपुरे रवम् ।
करेणुसङ्घस्य यथा निनादं गिरिगह्वरे ॥ १२ ॥

'जैसे गजराजके मारे जानेपर पर्वतकी कन्दरामें हथिनियोंका आर्तनाद सुनायी पड़ता है, उसी प्रकार आज अन्तःपुरमें मुझे राक्षस-कन्याओंका करुण-क्रन्दन सुनना पड़ेगा ॥ १२ ॥

यौवराज्यं च लङ्कां च रक्षांसि च परंतप ।
मातरं मां च भार्याश्च क्व गतोऽसि विहाय नः ॥ १३ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले पुत्र ! आज अपने युवराज-पदको, लङ्कापुरीको, समस्त राक्षसोंको, अपनी माँको, मुझको और अपनी पत्नियोंको—हम सब लोगोंको छोड़कर तुम कहाँ चले गये ? ॥ १३ ॥

मम नाम त्वया वीर गतस्य यमसादनम् ।
प्रेतकार्याणि कार्याणि विपरीते हि वर्तसे ॥ १४ ॥

'वीर ! होना तो यह चाहिये था कि मैं पहले यमलोकमें जाता और तुम यहाँ रहकर मेरे प्रेतकार्य करते; परंतु तुम विपरीत अवस्थामें स्थित हो गये (तुम परलोकवासी हुए और मुझे तुम्हारा प्रेतकार्य करना पड़ेगा) ॥ १४ ॥

स त्वं जीवति सुग्रीवे लक्ष्मणे च सराघवे ।
मम शल्यमनुद्धृत्य क्व गतोऽसि विहाय नः ॥ १५ ॥

'हाय ! राम, लक्ष्मण और सुग्रीव अभी जीवित हैं; ऐसी अवस्थामें मेरे हृदयका काँटा निकाले बिना ही तुम हमें छोड़कर कहाँ चले गये ?' ॥ १५ ॥

एवमादिविलापार्तं रावणं राक्षसाधिपम् ।
आविवेश महान् कोपः पुत्रव्यसनसम्भवः ॥ १६ ॥

इस प्रकार आर्तभावसे विलाप करते हुए राक्षसराज रावणके हृदयमें अपने पुत्रके वधका स्मरण करके महान् क्रोधका आवेश हुआ ॥ १६ ॥

प्रकृत्या कोपनं ह्येनं पुत्रस्य पुनराधयः ।
दीप्तं संदीपयामासुर्घर्मेऽर्कमिव रश्मयः ॥ १७ ॥

एक तो वह स्वभावसे ही क्रोधी था। दूसरे पुत्रकी चिन्ताओंने उसे उत्तेजित कर दिया--जलते हुएको और भी जला दिया। जैसे सूर्यकी किरणें ग्रीष्म ऋतुमें उसे अधिक प्रचण्ड बना देती हैं ॥ १७ ॥

ललाटे भ्रुकुटीभिश्च संगताभिर्व्यरोचत ।
युगान्ते सह नक्रैस्तु महोर्मिभिरिवोदधिः ॥ १८ ॥

ललाटमें टेढ़ी भौंहोंके कारण वह उसी तरह शोभा पाता था, जैसे प्रलयकालमें मगरों और बड़ी-बड़ी लहरोंसे महासागर सुशोभित होता है ॥ १८ ॥

कोपाद् विजृम्भमाणस्य वक्त्राद् व्यक्तमिव ज्वलन् ।
उत्पपात सधूमाग्निर्वृत्रस्य वदनादिव ॥ १९ ॥

जैसे वृत्रासुरके मुखसे धूमसहित अग्नि प्रकट हुई थी, उसी तरह रोषसे जँभाई लेते हुए रावणके मुखसे प्रकटरूपमें धूमयुक्त प्रज्वलित अग्नि निकलने लगी ॥ १९ ॥

स पुत्रवधसंतप्तः शूरः क्रोधवशं गतः ।
समीक्ष्य रावणो बुद्ध्या वैदेह्या रोचयद् वधम् ॥ २० ॥

अपने पुत्रके वधसे संतप्त हुआ शूरवीर रावण सहसा क्रोधके वशीभूत हो गया। उसने बुद्धिसे सोच-विचारकर विदेहकुमारी सीताको मार डालना ही अच्छा समझा ॥ २० ॥

तस्य प्रकृत्या रक्ते च रक्ते क्रोधाग्निनापि च ।
रावणस्य महाघोरे दीप्ते नेत्रे बभूवतुः ॥ २१ ॥

रावणकी आँखें एक तो स्वभावसे ही लाल थीं। दूसरे क्रोधाग्निने उन्हें और भी रक्तवर्णकी बना दिया था। अतः उसके वे दीप्तिमान् नेत्र महान् घोर प्रतीत होते थे ॥ २१ ॥

घोरं प्रकृत्या रूपं तत् तस्य क्रोधाग्निमूर्च्छितम् ।
बभूव रूपं क्रुद्धस्य रुद्रस्येव दुरासदम् ॥ २२ ॥

रावणका रूप स्वभावसे ही भयंकर था। उसपर क्रोधाग्निका प्रभाव पड़नेसे वह और भी भयानक हो चला और कुपित हुए रुद्रके समान दुर्जय प्रतीत होने लगा ॥ २२ ॥

तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः ।
दीपाभ्यामिव दीप्ताभ्यां सार्चिषः स्नेहबिन्दवः ॥ २३ ॥

क्रोधसे भरे हुए उस निशाचरके नेत्रोंसे आँसुओंकी बूँदें गिरने लगीं, मानो जलते हुए दीपकोंसे लौके साथ ही तेलके बिंदु झड़ रहे हों ॥ २३ ॥

दन्तान् विदशतस्तस्य श्रूयते दशनस्वनः ।
यन्त्रस्याकृष्यमाणस्य मथ्नतो दानवैरिव ॥ २४ ॥

वह दाँत पीसने लगा। उस समय उसके दाँतोंके कटकटानेका जो शब्द सुनायी देता था, वह समुद्र-मन्थनके समय दानवोंद्वारा खींचे जाते हुए मन्थन-यन्त्रस्वरूप मन्दराचलकी ध्वनिके समान जान पड़ता था ॥ २४ ॥

कालाग्निरिव संक्रुद्धो यां यां दिशमवैक्षत ।
तस्यां तस्यां भयत्रस्ता राक्षसाः संविलिल्यिरे ॥ २५ ॥

कालाग्निके समान अत्यन्त कुपित हो वह जिस-जिस दिशाकी ओर दृष्टि डालता था, उस-उस दिशामें खड़े हुए राक्षस भयभीत हो खम्भे आदिकी ओटमें छिप जाते थे ॥

तमन्तकमिव क्रुद्धं चराचरचिखादिषुम् ।
वीक्षमाणं दिशः सर्वा राक्षसा नोपचक्रमुः ॥ २६ ॥

चराचर प्राणियोंको ग्रस लेनेकी इच्छावाले कुपित कालके समान सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखते हुए रावणके पास राक्षस नहीं जाते थे—उसके निकट जानेका साहस नहीं करते थे ॥

ततः परमसंक्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ।
अब्रवीद् रक्षसां मध्ये संस्तम्भयिषुराहवे ॥ २७ ॥

तब अत्यन्त कुपित हुआ राक्षसराज रावण युद्धमें राक्षसोंको स्थापित करनेकी इच्छासे उनके बीचमें खड़ा होकर बोला—॥

मया वर्षसहस्राणि चरित्वा परमं तपः ।
तेषु तेष्ववकाशेषु स्वयंभूः परितोषितः ॥ २८ ॥

'निशाचरो ! मैंने सहस्रों वर्षोंतक कठोर तपस्या करके विभिन्न तपस्याओंकी समाप्तिपर स्वयम्भू ब्रह्माजीको संतुष्ट किया है ॥ २८ ॥

तस्यैव तपसो व्युष्ट्या प्रसादाच्च स्वयंभुवः ।
नासुरेभ्यो न देवेभ्यो भयं मम कदाचन ॥ २९ ॥

'उसी तपस्याके फलसे और ब्रह्माजीकी कृपासे मुझे देवताओं और असुरोंकी ओरसे कभी भय नहीं है ॥ २९ ॥

कवचं ब्रह्मदत्तं मे यदादित्यसमप्रभम् ।
देवासुरविमर्देषु न च्छिन्नं वज्रमुष्टिभिः ॥ ३० ॥

'मेरे पास ब्रह्माजीका दिया हुआ कवच है, जो सूर्यके समान दमकता रहता है। देवताओं और असुरोंके साथ घटित हुए मेरे संग्रामके अवसरोंपर वह वज्रके प्रहारसे भी टूट नहीं सका है ॥ ३० ॥

तेन मामद्य संयुक्तं रथस्थमिह संयुगे ।
प्रतीयात् कोऽद्य मामाजौ साक्षादपि पुरंदरः ॥ ३१ ॥

'इसलिये यदि आज मैं युद्धके लिये तैयार हो रथपर बैठकर रणभूमिमें खड़ा होऊँ तो कौन मेरा सामना कर सकता है ? साक्षात् इन्द्र ही क्यों न हो, वह भी मुझसे युद्ध करनेका साहस नहीं कर सकता ॥ ३१ ॥

यत् तदाभिप्रसन्नेन सशरं कार्मुकं महत् ।
देवासुरविमर्देषु मम दत्तं स्वयंभुवा ॥ ३२ ॥
अद्य तूर्यशतैर्भीमं धनुरुत्थाप्यतां मम ।
रामलक्ष्मणयोरेव वधाय परमाहवे ॥ ३३ ॥

'उन दिनों देवासुर-संग्रामोंमें प्रसन्न हुए ब्रह्माजीने मुझे जो बाणसहित विशाल धनुष प्रदान किया था, आज मेरे उसी भयानक धनुषको सैकड़ों मङ्गल-वाद्योंकी ध्वनिके साथ महासमरमें राम और लक्ष्मणका वध करनेके लिये ही उठाया जाय ॥ ३२-३३ ॥

स पुत्रवधसंतप्तः क्रूरः क्रोधवशं गतः ।
समीक्ष्य रावणो बुद्ध्या सीतां हन्तुं व्यवस्यत॥ ३४ ॥

पुत्रके वधसे संतप्त हो क्रोधके वशीभूत हुए क्रूर रावणने अपनी बुद्धिसे सोच-विचारकर सीताको मार डालनेका ही निश्चय किया ॥ ३४ ॥

प्रत्यवेक्ष्य तु ताम्राक्षः सुघोरो घोरदर्शनः ।
दीनो दीनस्वरान् सर्वांस्तानुवाच निशाचरान् ॥ ३५ ॥

उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और आकृति अत्यन्त भयानक दिखायी देने लगी। वह सब ओर दृष्टि डालकर पुत्रके लिये दुखी हो दीनतापूर्ण स्वरवाले सम्पूर्ण निशाचरोंसे बोला—॥ ३५ ॥

मायया मम वत्सेन वञ्चनार्थं वनौकसाम् ।
किंचिदेव हतं तत्र सीतेयमिति दर्शितम् ॥ ३६ ॥

'मेरे बेटेने मायासे केवल वानरोंको चकमा देनेके लिये एक आकृतिको 'यह सीता है' ऐसा कहकर दिखाया और झूठे ही उसका वध किया था ॥ ३६ ॥

तदिदं तथ्यमेवाहं करिष्ये प्रियमात्मनः ।
वैदेहीं नाशयिष्यामि क्षत्रबन्धुमनुव्रताम् ॥ ३७ ॥

'सो आज उस झूठको मैं सत्य ही कर दिखाऊँगा और ऐसा करके अपना प्रिय करूँगा। उस क्षत्रियाधम राममें अनुराग, रखनेवाली सीताका नाश कर डालूँगा' ॥ ३७ ॥

इत्येवमुक्त्वा सचिवान् खड्गमाशु परामृशत् ।
उद्धृत्य गुणसम्पन्नं विमलाम्बरवर्चसम् ॥ ३८ ॥
निष्पपात स वेगेन सभार्यः सचिवैर्वृतः ।
रावणः पुत्रशोकेन भृशमाकुलचेतनः ॥ ३९ ॥

मन्त्रियोंसे ऐसा कहकर उसने शीघ्र ही तलवार हाथमें ले ली, जो खड्गोचित गुणोंसे युक्त और आकाशके समान निर्मल कान्तिवाली थी। उसे म्यानसे निकालकर पत्नी और मन्त्रियोंसे घिरा हुआ रावण बड़े वेगसे आगे बढ़ा। पुत्रके शोकसे उसकी चेतना अत्यन्त आकुल हो रही थी ॥ ३८-३९ ॥

संक्रुद्धः खड्गमादाय सहसा यत्र मैथिली ।
व्रजन्तं राक्षसं प्रेक्ष्य सिंहनादं विचुक्रुशुः ॥ ४० ॥

वह अत्यन्त कुपित हो तलवार लेकर सहसा उस स्थानपर जा पहुँचा, जहाँ मिथिलेशकुमारी सीता मौजूद थीं। उधर जाते हुए उस राक्षसको देखकर उसके मन्त्री सिंहनाद करने लगे ॥ ४० ॥

ऊचुश्चान्योन्यमालिङ्ग्य संक्रुद्धं प्रेक्ष्य राक्षसम् ।
अद्यैनं तावुभौ दृष्ट्वा भ्रातरौ प्रव्यथिष्यतः ॥ ४१ ॥

वे रावणको रोषसे भरा देख एक-दूसरेका आलिङ्गन करके बोले—'आज इसे देखकर वे दोनों भाई राम और लक्ष्मण व्यथित हो उठेंगे ॥ ४१ ॥

लोकपाला हि चत्वारः क्रुद्धेनानेन निर्जिताः ।

बहवः शत्रवश्चान्ये संयुगेष्वभिपातिताः ॥ ४२ ॥

'क्योंकि कुपित होनेपर इस राक्षसराजने इन्द्र आदि चारों लोकपालोंको जीत लिया और दूसरे बहुत-से शत्रुओंको भी युद्धमें मार गिराया था ॥ ४२ ॥

त्रिषु लोकेषु रत्नानि भुङ्क्ते आहृत्य रावणः ।
विक्रमे च बले चैव नास्त्यस्य सदृशो भुवि ॥ ४३ ॥

'तीनों लोकोंमें जो रत्नभूत पदार्थ हैं, उन सबको लाकर रावण भोग रहा है। भूमण्डलमें इसके समान पराक्रमी और बलवान् दूसरा कोई नहीं है' ॥ ४३ ॥

तेषां संजल्पमानानामशोकवनिकां गताम् ।
अभिदुद्राव वैदेहीं रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ४४ ॥

वे इस प्रकार बातचीत कर ही रहे थे कि क्रोधसे अचेत-सा हुआ रावण अशोक-वाटिकामें बैठी हुई विदेहकुमारी सीताका वध करनेके लिये दौड़ा ॥ ४४ ॥

वार्यमाणः सुसंक्रुद्धः सुहृद्भिर्हितबुद्धिभिः ।
अभ्यधावत संक्रुद्धः खे ग्रहो रोहिणीमिव ॥ ४५ ॥

उसके हितका विचार करनेवाले सुहृद् उस रोषभरे रावणको रोकनेकी चेष्टा कर रहे थे; तो भी वह अत्यन्त कुपित हो जैसे आकाशमें कोई क्रूर ग्रह रोहिणी नामक नक्षत्रपर आक्रमण करता हो, उसी प्रकार सीताकी ओर दौड़ा ॥ ४५ ॥

मैथिली रक्ष्यमाणा तु राक्षसीभिरनिन्दिता ।
ददर्श राक्षसं क्रुद्धं निस्त्रिंशवरधारिणम् ॥ ४६ ॥
तं निशाम्य सनिस्त्रिंशं व्यथिता जनकात्मजा ।
निवार्यमाणं बहुशः सुहृद्भिरनिवर्तिनम् ॥ ४७ ॥

उस समय सतीसाध्वी सीता राक्षसियोंके संरक्षणमें थीं। उन्होंने देखा, क्रोधसे भरा हुआ राक्षस एक बहुत बड़ी तलवार लिये मुझे मारनेके लिये आ रहा है। यद्यपि उसके सुहृद् उसे बारंबार रोक रहे हैं तो भी वह लौट नहीं रहा है। इस तरह तलवार ले रावणको आते देख जनकनन्दिनीके मनमें बड़ी व्यथा हुई ॥ ४६-४७ ॥

सीता दुःखसमाविष्टा विलपन्तीदमब्रवीत् ।
यथायं मामभिक्रुद्धः समभिद्रवति स्वयम् ॥ ४८ ॥
वधिष्यति सनाथां मामनाथामिव दुर्मतिः ।

सीता दुःखमें डूब गयीं और विलाप करती हुई इस प्रकार बोलीं—'यह दुर्बुद्धि राक्षस जिस तरह कुपित हो स्वयं मेरी ओर दौड़ा आ रहा है, इससे जान पड़ता है, यह सनाथा होनेपर भी मुझे अनाथाकी भाँति मार डालेगा ॥ ४८½ ॥

बहुशश्चोदयामास भर्तारं मामनुव्रताम् ॥ ४९ ॥
भार्या मम भवस्वेति प्रत्याख्यातो ध्रुवं मया ।

'मैं अपने पतिमें अनुराग रखती हूँ तो भी इसने अनेक बार प्रेरित किया कि 'तुम मेरी भार्या बन जाओ'। उस समय निश्चय ही मैंने इसे ठुकरा दिया था ॥ ४९½ ॥

सोऽयं मामनुपस्थाने व्यक्तं नैराश्यमागतः ॥ ५० ॥
क्रोधमोहसमाविष्टो व्यक्तं मां हन्तुमुद्यतः ।

'मेरे इस तरह ठुकरानेपर निश्चय ही यह निराश हो क्रोध और मोहके वशीभूत हो गया है और अवश्य ही मुझे मार डालनेके लिये उद्यत है ॥ ५०½ ॥

अथवा तौ नरव्याघ्रौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ५१ ॥
मन्निमित्तमनार्येण समरेऽद्य निपातितौ ।

'अथवा इस नीचने आज समराङ्गणमें मेरे ही कारण दोनों भाई पुरुषसिंह श्रीराम और लक्ष्मणको मार गिराया है ॥

भैरवो हि महान् नादो राक्षसानां श्रुतो मया ॥ ५२ ॥
बहूनामिह हृष्टानां तथा विक्रोशतां प्रियम् ।

'क्योंकि इस समय मैंने राक्षसोंका बड़ा भयंकर सिंहनाद सुना है। हर्षसे भरे हुए बहुत-से निशाचर अपने प्रियजनोंको पुकार रहे थे ॥ ५२½ ॥

अहो धिङ्मन्निमित्तोऽयं विनाशो राजपुत्रयोः ॥ ५३ ॥
अथवा पुत्रशोकेन अहत्वा रामलक्ष्मणौ ।
विधमिष्यति मां रौद्रो राक्षसः पापनिश्चयः ॥ ५४ ॥

'अहो! यदि मेरे कारण उन राजकुमारोंका विनाश हुआ तो मेरे जीवनको धिक्कार है अथवा यह भी सम्भव है कि पापपूर्ण विचार रखनेवाला यह भयंकर राक्षस पुत्रशोकसे संतप्त हो श्रीराम और लक्ष्मणको न मार सकनेके कारण मेरा ही वध कर डाले ॥ ५३-५४ ॥

हनूमतस्तु तद् वाक्यं न कृतं क्षुद्रया मया ।
यद्यहं तस्य पृष्ठेन तदायासमनिर्जिता ॥ ५५ ॥
नाद्यैवमनुशोचेयं भर्तुरङ्कगता सती ।

'मुझ क्षुद्र (मूर्ख) नारीने हनुमान्‌की कही हुई वह बात नहीं मानी। यदि श्रीरामद्वारा जीती न जानेपर भी उस समय हनुमान्‌की पीठपर बैठकर चली गयी होती तो पतिके अङ्कमें स्थान पाकर आज इस तरह बारंबार शोक नहीं करती॥

मन्ये तु हृदयं तस्याः कौसल्यायाः फलिष्यति ॥ ५६ ॥
एकपुत्रा यदा पुत्रं विनष्टं श्रोष्यते युधि ।

'मेरी सास कौसल्या एक ही बेटेकी माँ हैं। यदि वे युद्धमें अपने पुत्रके विनाशका समाचार सुनेंगी तो मैं समझती हूँ कि उनका हृदय अवश्य फट जायगा ॥ ५६½ ॥

सा हि जन्म च बाल्यं च यौवनं च महात्मनः ॥ ५७ ॥
धर्मकार्याणि रूपं च रुदती संस्मरिष्यति ।

'वे रोती हुई अपने महात्मा पुत्रके जन्म, बाल्यावस्था, युवावस्था, धर्म-कर्म तथा रूपका स्मरण करेंगी ॥ ५७½ ॥

निराशा निहते पुत्रे दत्त्वा श्राद्धमचेतना ॥ ५८ ॥
अग्निमावेक्ष्यते नूनमपो वापि प्रवेक्ष्यति ।

'अपने पुत्रके मारे जानेपर पुत्र-दर्शनसे निराश एवं अचेत-सी हो वे उनका श्राद्ध करके निश्चय ही जलती आगमें

समा जायँगी अथवा सरयूकी जलधारामें आत्मविसर्जन कर देंगी ॥ ५८½ ॥

धिगस्तु कुब्जामसतीं मन्थरां पापनिश्चयाम् ॥ ५९ ॥
यन्निमित्तमिमं शोकं कौसल्या प्रतिपत्स्यते ।

'पापपूर्ण विचारवाली उस दुष्टा कुबड़ी मन्थराको धिक्कार है, जिसके कारण मेरी सास कौसल्याको यह पुत्रका शोक देखना पड़ेगा' ॥ ५९½ ॥

इत्येवं मैथिलीं दृष्ट्वा विलपन्तीं तपस्विनीम् ॥ ६० ॥
रोहिणीमिव चन्द्रेण बिना ग्रहवशं गताम् ।
एतस्मिन्नन्तरे तस्य अमात्यः शीलवाञ्छुचिः ॥ ६१ ॥
सुपार्श्वो नाम मेधावी रावणं रक्षसां वरम् ।
निवार्यमाणः सचिवैरिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६२ ॥

चन्द्रमासे बिछुड़कर किसी क्रूर ग्रहके वशमें पड़ी हुई रोहिणीकी भाँति तपस्विनी सीताको इस प्रकार विलाप करती देख रावणके सुशील एवं शुद्ध आचार-विचारवाले सुपार्श्व-नामक बुद्धिमान् मन्त्रीने दूसरे सचिवोंके मना करनेपर भी उस समय राक्षसराज रावणसे यह बात कही—॥ ६०-६२ ॥

कथं नाम दशग्रीव साक्षाद्वैश्रवणानुज ।
हन्तुमिच्छसि वैदेहीं क्रोधाद् धर्ममपास्य च ॥ ६३ ॥

'महाराज दशग्रीव ! तुम तो साक्षात् कुबेरके भाई हो; फिर क्रोधके कारण धर्मको तिलाञ्जलि दे विदेहकुमारीके वधकी इच्छा कैसे कर रहे हो ? ॥ ६३ ॥

वेदविद्याव्रतस्नातः स्वकर्मनिरतस्तथा ।
स्त्रियः कस्माद् वधं वीर मन्यसे राक्षसेश्वर ॥ ६४ ॥

'वीर राक्षसराज ! तुम विधिपूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए वेदविद्याका अध्ययन पूरा करके गुरुकुलसे स्नातक होकर निकले थे और तबसे सदा अपने कर्तव्यके पालनमें लगे रहे तो भी आज अपने हाथसे एक स्त्रीका वध करना तुम कैसे ठीक समझते हो ? ॥ ६४ ॥

मैथिलीं रूपसम्पन्नां प्रत्यवेक्षस्व पार्थिव ।
तस्मिन्नेव सहास्माभिराहवे क्रोधमुत्सृज ॥ ६५ ॥

'पृथ्वीनाथ ! इस मिथिलेशकुमारीके दिव्य रूपकी ओर देखो (देखकर इसके ऊपर दया करो) और युद्धमें हमलोगोंके साथ चलकर रामपर ही अपना क्रोध उतारो ॥ ६५ ॥

अभ्युत्थानं त्वमद्यैव कृष्णपक्षचतुर्दशी ।
कृत्वा निर्याह्यमावास्यां विजयाय बलैर्वृतः ॥ ६६ ॥

'आज कृष्णपक्षकी चतुर्दशी है । अतः आज ही युद्धकी तैयारी करके कल अमावास्याके दिन सेनाके साथ विजयके लिये प्रस्थान करो ॥ ६६ ॥

शूरो धीमान् रथी खड्गी रथप्रवरमास्थितः ।
हत्वा दाशरथिं रामं भवान् प्राप्स्यति मैथिलीम् ॥ ६७ ॥

'तुम शूरवीर, बुद्धिमान् और रथी वीर हो । एक श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो खड्ग हाथमें लेकर युद्ध करो । दशरथनन्दन रामका वध करके तुम मिथिलेशकुमारी सीताको प्राप्त कर लोगे' ॥ ६७ ॥

स तद् दुरात्मा सुहृदा निवेदितं
वचः सुधर्म्यं प्रतिगृह्य रावणः ।
गृहं जगामाथ ततश्च वीर्यवान्
पुनः सभां च प्रययौ सुहृद्वृतः ॥ ६८ ॥

मित्रके कहे हुए उस उत्तम धर्मानुकूल वचनको स्वीकार करके बलवान् दुरात्मा रावण महलमें लौट गया और वहाँसे फिर अपने सुहृदोंके साथ उसने राजसभामें प्रवेश किया ।६८।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें बानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमः सर्गः

श्रीरामद्वारा राक्षससेनाका संहार

स प्रविश्य सभां राजा दीनः परमदुःखितः ।
निषसादासने मुख्ये सिंहः क्रुद्ध इव श्वसन् ॥ १ ॥

सभामें पहुँचकर राक्षसराज रावण अत्यन्त दुखी एवं दीन हो श्रेष्ठ सिंहासनपर बैठा और कुपित सिंहकी भाँति लंबी साँस लेने लगा ॥ १ ॥

अब्रवीच्च स तान् सर्वान् बलमुख्यान् महाबलः ।
रावणः प्राञ्जलिर्वाक्यं पुत्रव्यसनकर्शितः ॥ २ ॥

वह महाबली रावण पुत्रशोकसे पीड़ित हो रहा था; अतः अपनी सेनाके प्रधान-प्रधान योद्धाओंसे हाथ जोड़कर बोला—॥ २ ॥

सर्वे भवन्तः सर्वेण हस्त्यश्वेन समावृताः ।
निर्यान्तु रथसङ्घैश्च पादातैश्चोपशोभिताः ॥ ३ ॥
एकं रामं परिक्षिप्य समरे हन्तुमर्हथ ।
वर्षन्तः शरवर्षाणि प्रावृट्काल इवाम्बुदाः ॥ ४ ॥

'वीरो ! तुम सब लोग समस्त हाथी, घोड़े, रथसमुदाय तथा पैदल सैनिकोंसे घिरकर उन सबसे सुशोभित होते हुए नगरसे बाहर निकलो और समरभूमिमें एकमात्र रामको चारों ओरसे घेरकर मार डालो । जैसे वर्षाकालमें बादल जलकी वर्षा करते हैं, उसी प्रकार तुमलोग भी बाणोंकी वृष्टि करते हुए रामको मार डालनेका प्रयत्न करो ॥ ३-४ ॥

अथवाहं शरैस्तीक्ष्णैर्भिन्नगात्रं महाहवे ।
भवद्भिः श्वो निहन्तास्मि रामं लोकस्य पश्यतः ॥ ५ ॥

‘अथवा मैं ही कल महासमरमें तुम्हारे साथ रहकर अपने तीखे बाणोंसे रामके शरीरको छिन्न-भिन्न करके सब लोगोंके देखते-देखते उन्हें मार डालूँगा’ ॥ ५ ॥

इत्येतद् वाक्यमादाय राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः ।
निर्ययुस्ते रथैः शीघ्रैर्नानानीकैश्च संयुताः ॥ ६ ॥

राक्षसराजकी इस आज्ञाको शिरोधार्य करके वे निशाचर शीघ्रगामी रथों तथा नाना प्रकारकी सेनाओंसे युक्त हो लङ्कासे निकले ॥ ६ ॥

परिघान् पट्टिशांश्चैव शरखड्गपरश्वधान् ।
शरीरान्तकरान् सर्वे चिक्षिपुर्वानरान् प्रति ॥ ७ ॥
वानराश्च द्रुमाञ्छैलान् राक्षसान् प्रति चिक्षिपुः ।

वे सब राक्षस वानरोंपर परिघ, पट्टिश, बाण, तलवार तथा फरसे आदि शरीरनाशक अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करने लगे । इसी प्रकार वानर भी राक्षसोंपर पेड़ों और पत्थरोंकी वर्षा करने लगे ॥ ७½ ॥

स संग्रामो महाभीमः सूर्यस्योदयनं प्रति ॥ ८ ॥
रक्षसां वानराणां च तुमुलः समपद्यत ।

सूर्योदयके समय राक्षसों और वानरोंके उस तुमुल युद्धने महाभयंकर रूप धारण किया ॥ ८½ ॥

ते गदाभिश्च चित्राभिः प्रासैः खड्गैः परश्वधैः ॥ ९ ॥
अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तदा वानरराक्षसाः ।

वानर और राक्षस उस युद्धभूमिमें विचित्र गदाओं, भालों, तलवारों और फरसोंसे एक दूसरेको मारने लगे ॥ ९½ ॥

एवं प्रवृत्ते संग्रामे ह्यद्भुतं सुमहद्रजः ॥ १० ॥
रक्षसां वानराणां च शान्तं शोणितविस्रवैः ।

इस प्रकार युद्ध छिड़ जानेपर जो बहुत बड़ी धूलराशि उड़ रही थी, वह राक्षसों और वानरोंके रक्तका प्रवाह जारी होनेसे शान्त हो गयी । यह एक अद्भुत बात थी ॥ १०½ ॥

मातंगरथकूलाश्च शरमत्स्या ध्वजद्रुमाः ॥ ११ ॥
शरीरसंघाटवहाः प्रसस्रुः शोणितापगाः ।

रणभूमिमें खूनकी कितनी ही नदियाँ बह चलीं, जो काष्ठ-समूहकी भाँति शरीरसमुदायको ही बहाये लिये जाती थीं । गिरे हुए हाथी और रथ उन नदियोंके किनारे जान पड़ते थे । बाण मत्स्यके समान प्रतीत होते थे और ऊँचे-ऊँचे ध्वज ही उनके तटवर्ती वृक्ष थे ॥ ११½ ॥

ततस्ते वानराः सर्वे शोणितौघपरिप्लुताः ॥ १२ ॥
ध्वजवर्मरथानश्वान् नानाप्रहरणानि च ।
आप्लुत्याप्लुत्य समरे वानरेन्द्रा बभञ्जिरे ॥ १३ ॥

समस्त वानर खूनसे लथपथ हो रहे थे । वे कूद-कूदकर समराङ्गणमें राक्षसोंके ध्वज, कवच, रथ, घोड़े और नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका विनाश करने लगे ॥ १२-१३ ॥

केशान् कर्णललाटं च नासिकाश्च प्लवंगमाः ।
रक्षसां दशनैस्तीक्ष्णैर्नखैश्चापि व्यकर्तयन् ॥ १४ ॥

वानर अपने तीखे दाँतों और नखोंसे निशाचरोंके केश, कान, ललाट और नाक कुतर डालते थे ॥ १४ ॥

एकैकं राक्षसं संख्ये शतं वानरपुंगवाः ।
अभ्यधावन्त फलिनं वृक्षं शकुनयो यथा ॥ १५ ॥

जैसे फलवाले वृक्षकी ओर सैकड़ों पक्षी दौड़े जाते हैं, उसी प्रकार एक-एक राक्षसपर सौ-सौ वानर टूट पड़े ॥ १५ ॥

तदा गदाभिर्गुर्वीभिः प्रासैः खड्गैः परश्वधैः ।
निर्जघ्नुर्वानरान् घोरान् राक्षसाः पर्वतोपमाः ॥ १६ ॥

उस समय पर्वताकार राक्षस भी भारी गदाओं, भालों, तलवारों और फरसोंसे भयंकर वानरोंको मारने लगे ॥ १६ ॥

राक्षसैर्वध्यमानानां वानराणां महाचमूः ।
शरण्यं शरणं याता रामं दशरथात्मजम् ॥ १७ ॥

राक्षसोंद्वारा मारी जाती हुई वानरोंकी वह विशाल सेना शरणागतवत्सल दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामकी शरणमें गयी ॥ १७ ॥

ततो रामो महातेजा धनुरादाय वीर्यवान् ।
प्रविश्य राक्षसं सैन्यं शरवर्षं ववर्ष च ॥ १८ ॥

तब बल-विक्रमशाली महातेजस्वी श्रीरामने धनुष ले राक्षसोंकी सेनामें प्रवेश करके बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ १८ ॥

प्रविष्टं तु तदा रामं मेघाः सूर्यमिवाम्बरे ।
नाधिजग्मुर्महाघोरा निर्दहन्तं शराग्निना ॥ १९ ॥

जैसे आकाशमें बादल तपते हुए सूर्यपर आक्रमण नहीं कर सकते, उसी प्रकार सेनामें प्रवेश करके अपने बाणरूपी अग्निसे राक्षससेनाको दग्ध करते हुए श्रीरामपर वे महाक्रूर निशाचर धावा न कर सके ॥ १९ ॥

कृतान्येव सुघोराणि रामेण रजनीचराः ।
रणे रामस्य ददृशुः कर्माण्यसुकराणि ते ॥ २० ॥

निशाचर रणभूमिमें श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा किये गये अत्यन्त घोर एवं दुष्कर कर्मोंको ही देख पाते थे, उनके स्वरूपको नहीं ॥ २० ॥

चालयन्तं महासैन्यं विधमन्तं महारथान् ।
ददृशुस्ते न वै रामं वातं वनगतं यथा ॥ २१ ॥

जैसे वनमें चलती हुई हवा बड़े-बड़े वृक्षोंको हिलाती और तोड़ डालती है तो भी वह देखनेमें नहीं आती, उसी प्रकार भगवान् श्रीराम निशाचरोंकी विशाल सेनाको विचलित करते और कितने ही महारथियोंकी धज्जियाँ उड़ा देते थे, तो भी वे राक्षस उन्हें देख नहीं पाते थे ॥ २१ ॥

छिन्नं भिन्नं शरैर्दग्धं प्रभग्नं शस्त्रपीडितम् ।
बलं रामेण ददृशुर्न रामं शीघ्रकारिणम् ॥ २२ ॥

वे अपनी सेनाको श्रीरामके द्वारा बाणोंसे छिन्न-भिन्न, दग्ध, भग्न और पीड़ित होती हुई देखते थे; किंतु शीघ्रतापूर्वक युद्ध करनेवाले श्रीराम उनकी दृष्टिमें नहीं आते थे ॥ २२ ॥

प्रहरन्तं शरीरेषु न ते पश्यन्ति राघवम् ।
इन्द्रियार्थेषु तिष्ठन्तं भूतात्मानमिव प्रजाः ॥ २३ ॥

अपने शरीरोंपर प्रहार करते हुए श्रीरघुनाथजीको वे उसी तरह नहीं देख पाते थे, जैसे शब्दादि विषयोंके भोक्तारूपमें स्थित जीवात्माको प्रजाएँ नहीं देख पाती हैं ॥ २३ ॥

एष हन्ति गजानीकमेष हन्ति महारथान् ।
एष हन्ति शरैस्तीक्ष्णैः पदातीन् वाजिभिः सह ॥२४॥
इति ते राक्षसाः सर्वे रामस्य सदृशान् रणे ।
अन्योन्यं कुपिता जघ्नुः सादृश्याद् राघवस्य तु ॥ २५ ॥

‘ये राम हैं, जो हाथियोंकी सेनाको मार रहे हैं, ये रहे राम, जो बड़े-बड़े रथियोंका संहार कर रहे हैं, नहीं-नहीं ये हैं राम, जो अपने पैने बाणोंसे घोड़ोंसहित पैदल सैनिकोंका वध कर रहे हैं’ इस प्रकार वे सब राक्षस श्रीरघुनाथजीकी किंचित् समानताके कारण सभीको राम समझ लेते और रामके ही भ्रमसे क्रोधमें भरकर आपसमें एक दूसरेको मारने लगते थे॥२४-२५॥

न ते ददृशिरे रामं दहन्तमपि वाहिनीम् ।
मोहिताः परमास्त्रेण गान्धर्वेण महात्मना ॥ २६ ॥

श्रीरामचन्द्रजी राक्षससेनाको दग्ध कर रहे थे तो भी वे राक्षस उन्हें देख नहीं सके। महात्मा श्रीरामने राक्षसोंको गान्धर्वनामक दिव्य अस्त्रसे मोहित कर दिया था ॥ २६ ॥

ते तु रामसहस्राणि रणे पश्यन्ति राक्षसाः ।
पुनः पश्यन्ति काकुत्स्थमेकमेव महाहवे ॥ २७ ॥

अतः वे राक्षस रणभूमिमें कभी तो हजारों राम देखते थे और कभी उन्हें उस महासमरमें एक ही रामका दर्शन होता था ॥ २७ ॥

भ्रमन्तीं काञ्चनीं कोटिं कार्मुकस्य महात्मनः ।
अलातचक्रप्रतिमां ददृशुस्ते न राघवम् ॥ २८ ॥

वे महात्मा श्रीरामके धनुषकी सुनहरी कोटि (नोक या कोणभाग) को अलातचक्रकी भाँति घूमती देखते थे; किंतु साक्षात् श्रीरघुनाथजीको नहीं देख पाते थे ॥ २८ ॥

शरीरनाभि सत्त्वार्चिः शरारं नेमिकार्मुकम् ।
ज्याघोषतलनिर्घोषं तेजोबुद्धिगुणप्रभम् ॥ २९ ॥
दिव्यास्त्रगुणपर्यन्तं निघ्नन्तं युधि राक्षसान् ।
ददृशू रामचक्रं तत् कालचक्रमिव प्रजाः ॥ ३० ॥

युद्धस्थलमें राक्षसोंका संहार करते हुए श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् चक्रके समान जान पड़ते थे। शरीरका मध्यभाग अर्थात् नाभि ही उस चक्रकी नाभि थी, बल ही उससे प्रकट होनेवाली ज्वाला था, बाण ही उसके अरे थे, धनुष ही नेमिका स्थान ग्रहण किये हुए था, धनुषकी टंकार और तल-ध्वनि—ये ही दोनों उस चक्रकी घर्घराहट थीं, तेज-बुद्धि और कान्ति आदि गुण ही उस चक्रकी प्रभा थे तथा दिव्यास्त्रोंके गुणप्रभाव ही उसके प्रान्तभाग अर्थात् धार थे। जैसे प्रजा प्रलयकालमें कालचक्रका दर्शन करती है, उसी प्रकार राक्षस उस समय श्रीरामरूपी चक्रको देख रहे थे ॥ २९-३० ॥

अनीकं दशसाहस्रं रथानां वातरंहसाम् ।
अष्टादश सहस्राणि कुञ्जराणां तरस्विनाम् ॥ ३१ ॥
चतुर्दश सहस्राणि सारोहाणां च वाजिनाम् ।
पूर्णे शतसहस्रे द्वे राक्षसानां पदातिनाम् ॥ ३२ ॥
दिवसस्याष्टभागेन शरैरग्निशिखोपमैः ।
हतान्येकेन रामेण रक्षसां कामरूपिणाम् ॥ ३३ ॥

श्रीरामने अकेले दिनके आठवें भाग (डेढ़ घंटे) में ही आगकी ज्वालाके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले राक्षसोंके वायुके समान वेगशाली दस हजार रथोंकी, अठारह हजार वेगवान् हाथियोंकी, चौदह हजार सवारोंसहित घोड़ोंकी तथा पूरे दो लाख पैदल निशाचरोंकी सेनाका संहार कर डाला ॥ ३१–३३ ॥

ते हताश्वा हतरथाः शान्ता विमथितध्वजाः ।
अभिपेतुः पुरीं लङ्कां हतशेषा निशाचराः ॥ ३४ ॥

जब घोड़े और रथ नष्ट हो गये तथा ध्वज तोड़-फोड़ डाले गये, तब मरनेसे बचे हुए निशाचर शान्त हो लङ्कापुरीमें भाग गये ॥ ३४ ॥

हतैर्गजपदात्यश्वैस्तद् बभूव रणाजिरम् ।
आक्रीडभूमिः क्रुद्धस्य रुद्रस्येव महात्मनः ॥ ३५ ॥

मारे गये हाथियों, घोड़ों और पैदल सैनिकोंकी लाशोंसे भरी हुई वह रणभूमि कुपित हुए महात्मा रुद्रदेवकी क्रीडाभूमि-सी प्रतीत होती थी ॥ ३५ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
साधु साध्विति रामस्य तत् कर्म समपूजयन् ॥ ३६ ॥

तदनन्तर देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षियोंने साधुवाद देकर भगवान् श्रीरामके इस कार्यकी प्रशंसा की ॥ ३६ ॥

अब्रवीच्च तदा रामः सुग्रीवं प्रत्यनन्तरम् ।
विभीषणं च धर्मात्मा हनूमन्तं च वानरम् ॥ ३७ ॥
जाम्बवन्तं हरिश्रेष्ठं मैन्दं द्विविदमेव च ।
एतदस्त्रबलं दिव्यं मम वा त्र्यम्बकस्य वा ॥ ३८ ॥

उस समय धर्मात्मा श्रीरामने अपने पास खड़े हुए सुग्रीव, विभीषण, कपिवर हनुमान्, जाम्बवान्, कपिश्रेष्ठ मैन्द तथा द्विविदसे कहा—‘यह दिव्य अस्त्र-बल मुझमें है या भगवान् शंकरमें’ ॥ ३७-३८ ॥

निहत्य तां राक्षसराजवाहिनीं
रामस्तदा शक्रसमो महात्मा ।
अस्त्रेषु शस्त्रेषु जितक्लमश्च
संस्तूयते देवगणैः प्रहृष्टैः ॥ ३९ ॥

उस अवसरपर इन्द्रतुल्य तेजस्वी महात्मा श्रीराम जो अस्त्र-शस्त्रोंका संचालन करते समय कभी थकते नहीं थे, उस राक्षसराजकी सेनाका संहार करके हर्षभरे देवताओंके समुदाय-द्वारा पूजित एवं प्रशंसित होने लगे ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें तिरानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमः सर्गः

राक्षसियोंका विलाप

तानि नागसहस्राणि सारोहाणि च वाजिनाम् ।
रथानां त्वग्निवर्णानां सध्वजानां सहस्रशः ॥ १ ॥
राक्षसानां सहस्राणि गदापरिघयोधिनाम् ।
काञ्चनध्वजचित्राणां शूराणां कामरूपिणाम् ॥ २ ॥
निहतानि शरैर्दीप्तैस्तप्तकाञ्चनभूषणैः ।
रावणेन प्रयुक्तानि रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ३ ॥
दृष्ट्वा श्रुत्वा च सम्भ्रान्ता हतशेषा निशाचराः ।
राक्षस्यश्च समागम्य दीनाश्चिन्तापरिप्लुताः ॥ ४ ॥

अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले भगवान् श्रीरामके द्वारा उनके तपाये हुए सुवर्णसे विभूषित चमकीले बाणोंसे रावणके भेजे हुए हजारों हाथी, सवारोंसहित सहस्रों घोड़े, अग्निके समान देदीप्यमान एवं ध्वजोंसे सुशोभित सहस्रों रथ तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, सुवर्णमय ध्वजसे विचित्र शोभा पानेवाले और गदा-परिघोंसे युद्ध करनेवाले हजारों शूरवीर राक्षस मारे गये—यह देख-सुनकर मरनेसे बचे हुए निशाचर घबरा उठे और लङ्कामें जा राक्षसियोंसे मिलकर बहुत ही दुखी एवं चिन्तामग्न हो गये ॥ १—४ ॥

विधवा हतपुत्राश्च क्रोशन्त्यो हतबान्धवाः ।
राक्षस्यः सह संगम्य दुःखार्ताः पर्यदेवयन् ॥ ५ ॥

जिनके पति, पुत्र और भाई-बन्धु मारे गये थे, वे अनाथ राक्षसियाँ झुंड-की-झुंड एकत्र होकर दुःखसे पीड़ित हो विलाप करने लगीं—॥ ५ ॥

कथं शूर्पणखा वृद्धा कराला निर्णतोदरी ।
आससाद वने रामं कंदर्पसमरूपिणम् ॥ ६ ॥

'हाय ! जिसका पेट धँसा हुआ और आकार विकराल है, वह बुढ़िया शूर्पणखा वनमें कामदेवके समान रूपवाले श्रीरामके पास कामभाव लेकर कैसे गयी—किस तरह जानेका साहस कर सकी ! ॥ ६ ॥

सुकुमारं महासत्त्वं सर्वभूतहिते रतम् ।
तं दृष्ट्वा लोकवध्या सा हीनरूपा प्रकामिता ॥ ७ ॥

'जो भगवान् राम सुकुमार और महान् बलशाली हैं तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें संलग्न रहते हैं, उन्हें देखकर वह कुरूपा राक्षसी उनके प्रति कामभावसे युक्त हो गयी—यह कैसा दुःसाहस है ? यह दुष्टा तो सबके द्वारा मार डालनेके योग्य है ॥ ७ ॥

कथं सर्वगुणैर्हीना गुणवन्तं महौजसम् ।
सुमुखं दुर्मुखी रामं कामयामास राक्षसी ॥ ८ ॥

'कहाँ सर्वगुणसम्पन्न, महान् बलशाली तथा सुन्दर मुखवाले श्रीराम और कहाँ वह सभी गुणोंसे हीन, दुर्मुखी राक्षसी ! उसने कैसे उनकी कामना की ? ॥ ८ ॥

जनस्यास्याल्पभाग्यत्वाद् वलिनी श्वेतमूर्धजा ।
अकार्यमपहास्यं च सर्वलोकविगर्हितम् ॥ ९ ॥
राक्षसानां विनाशाय दूषणस्य खरस्य च ।
चकाराप्रतिरूपा सा राघवस्य प्रधर्षणम् ॥ १० ॥

'जिसके सारे अङ्गोंमें झुर्रियाँ पड़ गयी हैं, सिरके बाल सफेद हो गये हैं तथा जो किसी भी दृष्टिसे श्रीरामके योग्य नहीं है, उस दुष्टाने हम लङ्कावासियोंके दुर्भाग्यसे ही खर, दूषण तथा अन्य राक्षसोंके विनाशके लिये श्रीरामका धर्षण (उन्हें अपने स्पर्शसे दूषित करनेका प्रयास) किया था ॥ ९-१० ॥

तन्निमित्तमिदं वैरं रावणेन कृतं महत् ।
वधाय सीता साऽऽनीता दशग्रीवेण रक्षसा ॥ ११ ॥

'उसके कारण ही दशमुख राक्षस रावणने यह महान् वैर बाँध लिया और अपने तथा राक्षसकुलके वधके लिये वह सीताजीको हर लाया ॥ ११ ॥

न च सीतां दशग्रीवः प्राप्नोति जनकात्मजाम् ।
बद्धं बलवता वैरमक्षयं राघवेण च ॥ १२ ॥

'दशमुख रावण जनकनन्दिनी सीताको कभी नहीं पा सकेगा; परंतु उसने बलवान् रघुनाथजीसे अमिट वैर बाँध लिया है ॥ १२ ॥

वैदेहीं प्रार्थयानं तं विराधं प्रेक्ष्य राक्षसम् ।
हतमेकेन रामेण पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १३ ॥

'राक्षस विराध विदेहकुमारी सीताको प्राप्त करना चाहता है, यह देख श्रीरामने एक ही बाणसे उसका काम तमाम कर दिया । वह एक ही दृष्टान्त उनकी अजेय शक्तिको समझनेके लिये काफी था ॥ १३ ॥

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
निहतानि जनस्थाने शरैरग्निशिखोपमैः ॥ १४ ॥
खरश्च निहतः संख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा ।
शरैरादित्यसंकाशैः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १५ ॥

'जनस्थानमें भयानक कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको श्रीरामने अग्निशिखाके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा कालके गालमें डाल दिया था और सूर्यके सदृश प्रकाशमान सायकोंसे समराङ्गणमें खर, दूषण तथा त्रिशिराका भी संहार कर डाला था; यह उनकी अजेयताको समझ लेनेके लिये पर्याप्त दृष्टान्त था ॥ १४-१५ ॥

हतो योजनबाहुश्च कबन्धो रुधिराशनः ।
क्रोधान्नादं नदन् सोऽथ पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १६ ॥

'रक्तभोजी राक्षस कबन्धकी बाँहें एक-एक योजन लंबी थीं और वह क्रोधवश बड़े जोर-जोरसे सिंहनाद करता था तो भी वह श्रीरामके हाथसे मारा गया । वह दृष्टान्त ही श्रीरामचन्द्रजीके दुर्जय पराक्रमका ज्ञान करानेके लिये पर्याप्त था ॥ १६ ॥

जघान बलिनं रामः सहस्रनयनात्मजम् ।
वालिनं मेरुसंकाशं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १७ ॥

'मेरुपर्वतके समान महाकाय बलवान् इन्द्रकुमार वालीको श्रीरामचन्द्रजीने एक ही बाणसे मार गिराया । उनकी शक्तिका अनुमान लगानेके लिये वह एक ही उदाहरण काफी है॥१७॥

ऋष्यमूके वसंश्चैव दीनो भग्नमनोरथः ।
सुग्रीवः प्रापितो राज्यं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १८ ॥

'सुग्रीव बहुत ही दुखी और निराश होकर ऋष्यमूक पर्वतपर निवास करते थे; परंतु श्रीरामने उन्हें किष्किन्धाके राजसिंहासनपर बिठा दिया । उनके प्रभावको समझनेके लिये वह एक ही दृष्टान्त पर्याप्त है ॥ १८ ॥

धर्मार्थसहितं वाक्यं सर्वेषां रक्षसां हितम् ।
युक्तं विभीषणेनोक्तं मोहात् तस्य न रोचते ॥ १९ ॥
विभीषणवचः कुर्याद् यदि स धनदानुजः ।
श्मशानभूता दुःखार्ता नेयं लङ्का भविष्यति ॥ २० ॥

'विभीषणने जो धर्म और अर्थसे युक्त बात कही थी, वह सभी राक्षसोंके लिये हितकर तथा युक्तियुक्त थी; परंतु मोहवश रावणको वह अच्छी न लगी । यदि कुबेरका छोटा भाई रावण विभीषणकी बात मान लेता तो यह लङ्कापुरी इस तरह दुःखसे पीड़ित हो श्मशानभूमि नहीं बन जाती ॥१९-२०॥

कुम्भकर्णं हतं श्रुत्वा राघवेण महाबलम् ।
अतिकायं च दुर्मर्षं लक्ष्मणेन हतं तदा ।
प्रियं चेन्द्रजितं पुत्रं रावणो नावबुध्यते ॥ २१ ॥

'महाबली कुम्भकर्ण श्रीरामके हाथसे मारा गया । दुःसह वीर अतिकायको लक्ष्मणने मार गिराया तथा रावणका प्यारा पुत्र इन्द्रजित् भी उन्हींके हाथसे मारा गया तथापि रावण भगवान् श्रीरामके प्रभावको नहीं समझ रहा है ॥ २१ ॥

मम पुत्रो मम भ्राता मम भर्ता रणे हतः ।
इत्येष श्रूयते शब्दो राक्षसीनां कुले कुले ॥ २२ ॥

'हाय, मेरा बेटा मारा गया !' 'मेरे भाईको प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा !' 'रणभूमिमें मेरे पतिदेव मार डाले गये ।' लङ्काके घर-घरमें राक्षसियोंके ये शब्द सुनायी देते हैं ॥ २२ ॥

रथाश्वनागाश्च हतास्तत्र तत्र सहस्रशः ।
रणे रामेण शूरेण हताश्चापि पदातयः ॥ २३ ॥

'समराङ्गणमें शूरवीर श्रीरामने जहाँ-तहाँ सहस्रों रथों, घोड़ों और हाथियोंका संहार कर डाला है । पैदल सैनिकोंको भी मौतके घाट उतार दिया है ॥ २३ ॥

रुद्रो वा यदि वा विष्णुर्महेन्द्रो वा शतक्रतुः ।
हन्ति नो रामरूपेण यदि वा स्वयमन्तकः ॥ २४ ॥

'जान पड़ता है, श्रीरामका रूप धारण करके हमें साक्षात् भगवान् रुद्रदेव, भगवान् विष्णु, शतक्रतु इन्द्र अथवा स्वयं यमराज ही मार रहे हैं ॥ २४ ॥

हतप्रवीरा रामेण निराशा जीविते वयम् ।
अपश्यन्त्यो भयस्यान्तमनाथा विलपामहे ॥ २५ ॥

'हमारे प्रमुख वीर श्रीरामके हाथसे मारे गये । अब हमलोग अपने जीवनसे निराश हो चली हैं । हमें इस भयका अन्त नहीं दिखायी देता, अतएव हम अनाथकी भाँति विलाप कर रही हैं ॥ २५ ॥

रामहस्ताद् दशग्रीवः शूरो दत्तमहावरः ।
इदं भयं महाघोरं समुत्पन्नं न बुद्ध्यते ॥ २६ ॥

'दशमुख रावण शूरवीर है । इसे ब्रह्माजीने महान् वर दिया है । इसी घमंडके कारण यह श्रीरामके हाथसे प्राप्त हुए इस महाघोर भयको नहीं समझ पाता है ॥ २६ ॥

तं न देवा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः ।
उपसृष्टं परित्रातुं शक्ता रामेण संयुगे ॥ २७ ॥

'युद्धस्थलमें श्रीराम जिसे मारनेको तुल जायँ, उसे न तो देवता, न गन्धर्व, न पिशाच और न राक्षस ही बचा सकते हैं ॥ २७ ॥

उत्पाताश्चापि दृश्यन्ते रावणस्य रणे रणे ।
कथयन्ति हि रामेण रावणस्य निबर्हणम् ॥ २८ ॥

'रावणके प्रत्येक युद्धमें जो उत्पात दिखायी देते हैं, वे रामके द्वारा रावणके विनाशकी ही सूचना देते हैं ॥ २८ ॥

पितामहेन प्रीतेन देवदानवराक्षसैः ।
रावणस्याभयं दत्तं मनुष्येभ्यो न याचितम् ॥ २९ ॥

'ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर रावणको देवताओं, दानवों तथा राक्षसोंकी ओरसे अभयदान दे दिया था । मनुष्योंकी ओरसे अभय प्राप्त होनेके लिये इसने याचना ही नहीं की थी ॥२९॥

तदिदं मानुषं मन्ये प्राप्तं निःसंशयं भयम् ।
जीवितान्तकरं घोरं रक्षसां रावणस्य च ॥ ३० ॥

'अतः मुझे ऐसा जान पड़ता है कि यह निःसंदेह मनुष्योंकी ओरसे ही घोर भय प्राप्त हुआ है, जो राक्षसों तथा रावणके जीवनका अन्त कर देनेवाला है ॥ ३० ॥

पीड्यमानास्तु बलिना वरदानेन रक्षसा ।
दीप्तैस्तपोभिर्विबुधाः पितामहमपूजयन् ॥ ३१ ॥

'बलवान् राक्षस रावणने अपनी उद्दीप्त तपस्या तथा वरदानके प्रभावसे जब देवताओंको पीड़ा दी, तब उन्होंने पितामह ब्रह्माजीकी आराधना की ॥ ३१ ॥

देवतानां हितार्थाय महात्मा वै पितामहः ।
उवाच देवतास्तुष्ट इदं सर्वा महद्वचः ॥ ३२ ॥

'इससे महात्मा ब्रह्माजी संतुष्ट हुए और उन्होंने देवताओंके हितके लिये उन सबसे यह महत्त्वपूर्ण बात कही ॥ ३२ ॥

अद्यप्रभृति लोकांस्त्रीन् सर्वे दानवराक्षसाः ।
भयेन प्रभृता नित्यं विचरिष्यन्ति शाश्वतम् ॥ ३३ ॥

'आजसे समस्त दानव तथा राक्षस भयसे युक्त होकर ही नित्य-निरन्तर तीनों लोकोंमें विचरण करेंगे' ॥ ३३ ॥

दैवतैस्तु समागम्य सर्वैश्चेन्द्रपुरोगमैः ।
वृषध्वजस्त्रिपुरहा महादेवः प्रतोषितः ॥ ३४ ॥

'तत्पश्चात् इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंने मिलकर त्रिपुरनाशक वृषभध्वज महादेवजीको संतुष्ट किया ॥ ३४ ॥

प्रसन्नस्तु महादेवो देवानेतद् वचोऽब्रवीत् ।
उत्पत्स्यति हितार्थं वो नारी रक्षःक्षयावहा ॥ ३५ ॥

'संतुष्ट होनेपर महादेवजीने देवताओंसे कहा—'तुम लोगोंके हितके लिये एक दिव्य नारीका आविर्भाव होगा, जो समस्त राक्षसोंके विनाशमें कारण होगी ॥ ३५ ॥

एषा देवैः प्रयुक्ता तु क्षुद् यथा दानवान् पुरा ।
भक्षयिष्यति नः सर्वान् राक्षसघ्नी सरावणान्॥ ३६ ॥

'जैसे पूर्वकल्पमें देवताओंद्वारा प्रयुक्त हुई क्षुधाने दानवोंका भक्षण किया था, उसी प्रकार यह निशाचरनाशिनी सीता रावणसहित हम सब लोगोंको खा जायगी ॥ ३६ ॥

रावणस्यापनीतेन दुर्विनीतस्य दुर्मतेः ।
अयं निष्ठानको घोरः शोकेन समभिप्लुतः ॥ ३७ ॥

'उद्दण्ड और दुर्बुद्धि रावणके अन्यायसे यह शोकसंयुक्त घोर विनाश हम सबको प्राप्त हुआ है ॥ ३७ ॥

तं न पश्यामहे लोके यो नः शरणदो भवेत् ।
राघवेणोपसृष्टानां कालेनेव युगक्षये ॥ ३८ ॥

'जगत्में हम किसी ऐसे पुरुषको नहीं देखती हैं, जो महाप्रलयके समय कालकी भाँति इस समय श्रीरघुनाथजीसे संकटमें पड़ी हुई हम राक्षसियोंको शरण दे सके ॥ ३८ ॥

नास्ति नः शरणं किंचिद् भये महति तिष्ठताम् ।
दावाग्निवेष्टितानां हि करेणूनां यथा वने ॥ ३९ ॥

'हम बड़े भारी भयकी अवस्थामें स्थित हैं। जैसे वनमें दावानलसे घिरी हुई हथिनियोंको कहीं प्राण बचानेके लिये जगह नहीं मिलती, उसी तरह हमारे लिये भी कोई शरण नहीं है ॥ ३९ ॥

प्राप्तकालं कृतं तेन पौलस्त्येन महात्मना ।
यत एव भयं दृष्टं तमेव शरणं गतः ॥ ४० ॥

'महात्मा पुलस्त्यनन्दन विभीषणने समयोचित कार्य किया है। उन्हें जिनसे भय दिखायी दिया, उन्हींकी शरणमें वे चले गये' ॥ ४० ॥

इतीव सर्वा रजनीचरस्त्रियः
परस्परं सम्परिरभ्य बाहुभिः ।
विषेदुरार्तातिभयाभिपीडिता
विनेदुरुच्चैश्च तदा सुदारुणम् ॥ ४१ ॥

इस प्रकार निशाचरोंकी सारी स्त्रियाँ एक दूसरीको भुजाओंमें भरकर आर्तभाव एवं विषादग्रस्त हो गयीं और अत्यन्त भयसे पीड़ित हो अति भयंकर क्रन्दन करने लगीं ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें चौरानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९४ ॥

◆

पञ्चनवतितमः सर्गः

रावणका अपने मन्त्रियोंको बुलाकर शत्रुवधविषयक अपना उत्साह प्रकट करना और सबके साथ रणभूमिमें आकर पराक्रम दिखाना

आर्तानां राक्षसीनां तु लङ्कायां वै कुले कुले ।
रावणः करुणं शब्दं शुश्राव परिदेवितम् ॥ १ ॥

रावणने लङ्काके घर-घरमें शोकमग्न राक्षसियोंका करुणाजनक विलाप सुना ॥ १ ॥

स तु दीर्घं विनिःश्वस्य मुहूर्तं ध्यानमास्थितः ।
बभूव परमक्रुद्धो रावणो भीमदर्शनः ॥ २ ॥

वह लंबी साँस खींचकर दो घड़ीतक ध्यानमग्न हो कुछ सोचता रहा; तत्पश्चात् रावण अत्यन्त कुपित हो बड़ा भयानक दिखायी देने लगा ॥ २ ॥

संदश्य दशनैरोष्ठं क्रोधसंरक्तलोचनः ।

राक्षसैरपि दुर्दर्शः कालाग्निरिव मूर्तिमान् ॥ ३ ॥

उसने दाँतोंसे ओठ दबा लिया। उसकी आँखें रोषसे लाल हो गयीं। वह मूर्तिमान् प्रलयाग्निके समान दिखायी देने लगा। राक्षसोंके लिये भी उसकी ओर देखना कठिन हो गया ॥ ३ ॥

उवाच च समीपस्थान् राक्षसान् राक्षसेश्वरः।
क्रोधाव्यक्तकथस्तत्र निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ ४ ॥

उस राक्षसराजने अपने पास खड़े हुए राक्षसोंसे अस्पष्ट शब्दोंमें वार्तालाप आरम्भ किया। उस समय वहाँ वह इस तरह देख रहा था, मानो अपने नेत्रोंसे दग्ध कर डालेगा ॥

महोदरं महापार्श्वं विरूपाक्षं च राक्षसम्।
शीघ्रं वदत सैन्यानि निर्यातेति ममाज्ञया ॥ ५ ॥

उसने कहा—'निशाचरो! महोदर, महापार्श्व तथा राक्षस विरूपाक्षसे शीघ्र जाकर कहो—'तुमलोग मेरी आज्ञासे शीघ्र ही सेनाओंको कूच करनेका आदेश दो' ॥ ५ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राक्षसास्ते भयार्दिताः।
चोदयामासुरव्यग्रान् राक्षसांस्तान् नृपाज्ञया ॥ ६ ॥

रावणकी यह बात सुनकर भयसे पीड़ित हुए उन राक्षसोंने राजाकी आज्ञाके अनुसार उन निर्भीक निशाचरोंको पूर्वोक्त कार्य करनेके लिये प्रेरित किया ॥ ६ ॥

ते तु सर्वे तथेत्युक्त्वा राक्षसा भीमदर्शनाः।
कृतस्वस्त्ययनाः सर्वे ते रणाभिमुखा ययुः ॥ ७ ॥

तब 'तथास्तु' कहकर भयानक दीखनेवाले उन सभी राक्षसोंने अपने लिये स्वस्तिवाचन करवाया और युद्धके लिये प्रस्थान किया ॥ ७ ॥

प्रतिपूज्य यथान्यायं रावणं ते महारथाः।
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे भर्तुर्विजयकाङ्क्षिणः ॥ ८ ॥

स्वामीकी विजय चाहनेवाले वे सभी महारथी वीर यथोचित रीतिसे रावणका आदर-सम्मान करके उसके सामने हाथ जोड़े खड़े हो गये ॥ ८ ॥

ततोवाच प्रहस्यैतान् रावणः क्रोधमूर्च्छितः।
महोदरमहापार्श्वौ विरूपाक्षं च राक्षसम् ॥ ९ ॥

तत्पश्चात् रावण क्रोधसे मूर्च्छित-सा होकर बड़े जोरसे हँस पड़ा और महोदर, महापार्श्व तथा राक्षस विरूपाक्षसे कहा— ॥ ९ ॥

अद्य बाणैर्धनुर्मुक्तैर्युगान्तादित्यसंनिभैः।
राघवं लक्ष्मणं चैव नेष्यामि यमसादनम् ॥ १० ॥

'आज अपने धनुषसे छूटे हुए तीखे बाणोंद्वारा, जो प्रलयकालके सूर्य-सदृश तेजस्वी हैं, मैं राम और लक्ष्मणको भी यमलोक पहुँचा दूँगा ॥ १० ॥

खरस्य कुम्भकर्णस्य प्रहस्तेन्द्रजितोस्तथा।
करिष्यामि प्रतीकारमद्य शत्रुवधादहम् ॥ ११ ॥

'आज शत्रुका वध करके खर, कुम्भकर्ण, प्रहस्त तथा इन्द्रजित्‌के मारे जानेका भरपूर बदला चुकाऊँगा ॥ ११ ॥

नैवान्तरिक्षं न दिशो न च द्यौर्नापि सागराः।
प्रकाशत्वं गमिष्यन्ति मद्बाणजलदावृताः ॥ १२ ॥

'मेरे बाण मेघोंकी घटाके समान सब ओर छा जायँगे; अतः अन्तरिक्ष, दिशाएँ, आकाश तथा समुद्र—कुछ भी दिखायी न देगा ॥ १२ ॥

अद्य वानरमुख्यानां तानि यूथानि भागशः।
धनुषा शरजालेन वधिष्यामि पतत्रिणा ॥ १३ ॥

'आज अपने धनुषसे पङ्खवाले बाणोंका जाल-सा बिछा दूँगा और वानरोंके मुख्य-मुख्य यूथोंका पृथक्-पृथक् वध करूँगा ॥ १३ ॥

अद्य वानरसैन्यानि रथेन पवनौजसा।
धनुःसमुद्रादुद्भूतैर्मथिष्यामि शरोर्मिभिः ॥ १४ ॥

'आज वायुके समान वेगशाली रथपर आरूढ़ हो मैं अपने धनुषरूपी समुद्रसे उठी हुई बाणमयी तरङ्गोंसे वानर-सेनाओंको मथ डालूँगा ॥ १४ ॥

व्याकोशपद्मवक्त्राणि पद्मकेसरवर्चसाम्।
अद्य यूथतटाकानि गजवत् प्रमथाम्यहम् ॥ १५ ॥

'कमल-केसरकी-सी कान्तिवाले वानरोंके यूथ सरोवरोंके समान हैं। उनके मुख ही उन सरोवरोंके भीतर प्रफुल्ल कमलके समान सुशोभित होते हैं। आज मैं हाथीके समान उनमें प्रवेश करके उन वानर-यूथरूपी सरोवरोंको मथ डालूँगा ॥ १५ ॥

सशरैरद्य वदनैः संख्ये वानरयूथपाः।
मण्डयिष्यन्ति वसुधां सनालैरिव पङ्कजैः ॥ १६ ॥

'आज युद्धस्थलमें गिरे हुए वानर-यूथपति अपने बाण-विद्ध मुखोंद्वारा नालयुक्त कमलोंका भ्रम उत्पन्न करते हुए रणभूमिकी शोभा बढ़ायेंगे ॥ १६ ॥

अद्य यूथप्रचण्डानां हरीणां द्रुमयोधिनाम्।
मुक्तेनैकेषुणा युद्धे भेत्स्यामि च शतं शतम् ॥ १७ ॥

'आज युद्धभूमिमें धनुषसे छूटे हुए एक-एक बाणसे मैं वृक्ष लेकर जूझनेवाले सौ-सौ प्रचण्ड वानरोंको विदीर्ण करूँगा ॥

हतो भ्राता च येषां वै येषां च तनयो हतः।
वधेनाद्य रिपोस्तेषां करोम्यश्रुप्रमार्जनम् ॥ १८ ॥

'आज शत्रुका वध करके मैं उन सब निशाचरोंके आँसू पोछूँगा, जिनके भाई और पुत्र इस युद्धमें मारे गये हैं ॥

अद्य मद्बाणनिर्भिन्नैः प्रस्तीर्णैर्गतचेतनैः।
करोमि वानरैर्युद्धे यत्नावेक्ष्यतलां महीम् ॥ १९ ॥

आज युद्धमें मेरे बाणोंसे विदीर्ण तथा निर्जीव हुए वानर इस तरह बिछ जायँगे कि वहाँकी भूमि बड़े यत्नसे दीख सकेगी ॥ १९ ॥

अथ काकाश्च गृध्राश्च ये च मांसाशिनोऽपरे ।
सर्वांस्तांस्तर्पयिष्यामि शत्रुमांसैः शराहतैः ॥ २० ॥

'आज अपने बाणोंद्वारा मारे गये शत्रुओंके मांसोंसे मैं कौओं, गीधों तथा जो दूसरे मांसभक्षी जन्तु हैं, उन सबको भी तृप्त करूँगा ॥ २० ॥

कल्प्यतां मे रथः शीघ्रं क्षिप्रमानीयतां धनुः ।
अनुप्रयान्तु मां युद्धे येऽत्र शिष्टा निशाचराः ॥ २१ ॥

'जल्दी मेरा रथ तैयार किया जाय, शीघ्र धनुष लाया जाय तथा मरनेसे बचे हुए निशाचर युद्धमें मेरे पीछे-पीछे चलें' ॥ २१ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा महापार्श्वोऽब्रवीद् वचः ।
बलाध्यक्षान् स्थितांस्तत्र बलं संत्वर्यतामिति ॥ २२ ॥

रावणका वह वचन सुनकर महापार्श्वने वहाँ खड़े हुए सेनापतियोंसे कहा—'सेनाको शीघ्र ही कूच करनेकी आज्ञा दो' ॥ २२ ॥

बलाध्यक्षास्तु संयुक्ता राक्षसांस्तान् गृहे गृहे ।
चोदयन्तः परिययुर्लङ्कां लघुपराक्रमाः ॥ २३ ॥

यह आज्ञा पाकर वे शीघ्रपराक्रमी सेनाध्यक्ष घर-घर जाकर उन राक्षसोंको तैयार होनेका आदेश देते हुए सारी लङ्कामें घूमते फिरे ॥ २३ ॥

ततो मुहूर्तान्निष्पेतू राक्षसा भीमदर्शनाः ।
नदन्तो भीमवदना नानाप्रहरणैर्भुजैः ॥ २४ ॥

थोड़ी ही देरमें भयंकर मुख एवं आकारवाले राक्षस गर्जना करते हुए वहाँ आ पहुँचे । उनके हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र थे ॥ २४ ॥

✓ **असिभिः पट्टिशैः शूलैर्गदाभिर्मुसलैर्हलैः ।**
शक्तिभिस्तीक्ष्णधाराभिर्महद्भिः कूटमुद्गरैः ॥ २५ ॥
यष्टिभिर्विविधैश्चक्रैर्निशितैश्च परश्वधैः ।
भिन्दिपालैः शतघ्नीभिरन्यैश्चापि वरायुधैः ॥ २६ ॥

तलवार, पट्टिश, शूल, गदा, मूसल, हल, तीखी धारवाली शक्ति, बड़े-बड़े कूटमुद्गर, डंडे, भाँति-भाँतिके चक्र, तीखे फरसे, भिन्दिपाल, शतघ्नी तथा अन्य प्रकारके उत्तमोत्तम अस्त्र-शस्त्रोंसे वे सम्पन्न थे ॥ २५-२६ ॥

अथानयन् बलाध्यक्षाश्चत्वारो रावणाज्ञया ।
रथानां नियुतं साग्रं नागानां नियुतत्रयम् ॥ २७ ॥
अश्वानां षष्टिकोट्यस्तु खरोष्ट्राणां तथैव च ।
पदातयस्त्वसंख्याता जग्मुस्ते राजशासनात् ॥ २८ ॥

रावणकी आज्ञासे चार सेनापति एक लाखसे कुछ अधिक रथ, तीन लाख हाथी, साठ करोड़ घोड़े, उतने ही गदहे तथा ऊँट और असंख्य पैदल योद्धा लेकर आ पहुँचे । वे सब सैनिक राजाके आदेशसे वहाँ गये ॥ २७-२८ ॥

बलाध्यक्षाश्च संस्थाप्य राज्ञः सेनां पुरःस्थिताम् ।
एतस्मिन्नन्तरे सूतः स्थापयामास तं रथम् ॥ २९ ॥

इस प्रकार विशाल सेना लाकर सेनाध्यक्षोंने राक्षसराज रावणके सामने खड़ी कर दी । इसी बीचमें सारथिने एक रथ लाकर उपस्थित कर दिया ॥ २९ ॥

दिव्यास्त्रवरसम्पन्नं नानालंकारभूषितम् ।
नानायुधसमाकीर्णं किङ्किणीजालसंयुतम् ॥ ३० ॥

उसमें उत्तम दिव्यास्त्र रखे थे, अनेक प्रकारके अलंकारोंसे उस रथको सजाया गया था । उसमें भाँति-भाँतिके हथियार थे और वह रथ घुँघुरूदार झालरोंसे सुशोभित था ॥ ३० ॥

नानारत्नपरिक्षिप्तं रत्नस्तम्भैर्विराजितम् ।
जाम्बूनदमयैश्चैव सहस्रकलशैर्वृतम् ॥ ३१ ॥

उसमें नाना प्रकारके रत्न जड़े हुए थे । रत्नमय खंभे उसकी शोभा बढ़ाते थे और सोनेके बने हुए सहस्रों कलशोंसे वह अलंकृत था ॥ ३१ ॥

तं दृष्ट्वा राक्षसाः सर्वे विस्मयं परमं गताः ।
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ३२ ॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
द्रुतं सूतसमायुक्तं युक्ताष्टतुरगं रथम् ।
आरुरोह तदा भीमं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ ३३ ॥

उस रथको देखकर सब राक्षस अत्यन्त आश्चर्यसे चकित हो उठे । उसपर दृष्टि पड़ते ही राक्षसराज रावण सहसा उठकर खड़ा हो गया । वह रथ करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी तथा प्रज्वलित अग्निके सदृश दीप्तिमान् था । उसमें आठ घोड़े जुते हुए थे । उसपर सारथि बैठा था । वह रथ अपने तेजसे प्रकाशित होता था । रावण तुरंत उस भयकर रथपर आरूढ़ हो गया ॥ ३२-३३ ॥

ततः प्रयातः सहसा राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ।
रावणः सत्त्वगाम्भीर्याद् दारयन्निव मेदिनीम् ॥ ३४ ॥

तदनन्तर बहुत-से राक्षसोंसे घिरा हुआ रावण सहसा युद्धके लिये प्रस्थित हुआ । वह अपने बलकी अधिकतासे पृथ्वीको विदीर्ण-सा करता हुआ जा रहा था ॥ ३४ ॥

ततश्चासीन्महानादस्तूर्याणां च ततस्ततः ।
मृदङ्गैः पटहैः शङ्खैः कलहैः सह रक्षसाम् ॥ ३५ ॥

फिर तो जहाँ-तहाँ सब ओर वाद्योंका महानाद गूँज उठा । मृदङ्ग, पटह, शङ्ख तथा राक्षसोंके कलहकी ध्वनि भी उसमें मिली हुई थी ॥ ३५ ॥

आगतो रक्षसां राजा छत्रचामरसंयुतः ।
सीतापहारी दुर्वृत्तो ब्रह्मघ्नो देवकण्टकः ।
योद्धुं रघुवरेणेति शुश्रुवे कलहध्वनिः ॥ ३६ ॥

'सीताको चुरानेवाला, दुराचारी, ब्रह्महत्यारा तथा देवताओंके लिये कण्टकरूप राक्षसराज रावण छत्र एवं चँवर

लगाये श्रीरघुनाथजीके साथ युद्ध करनेके लिये आ रहा है; इस प्रकारकी कलह-ध्वनि कानोंमें पड़ रही थी ॥ ३६ ॥

तेन नादेन महता पृथिवी समकम्पत ।
तं शब्दं सहसा श्रुत्वा वानरा दुद्रुवुर्भयात् ॥ ३७ ॥

उस महानादसे पृथ्वी काँप उठी । उस भयानक शब्दको सुनकर सब वानर सहसा भयसे भाग चले ॥ ३७ ॥

रावणस्तु महाबाहुः सचिवैः परिवारितः ।
आजगाम महातेजा जयाय विजयं प्रति ॥ ३८ ॥

मन्त्रियोंसे घिरा हुआ महातेजस्वी महाबाहु रावण युद्धमें विजयकी प्राप्तिका उद्देश्य लेकर वहाँ आया ॥ ३८ ॥

रावणेनाभ्यनुज्ञातौ महापार्श्वमहोदरौ ।
विरूपाक्षश्च दुर्धर्षो रथानारुरुहुस्तदा ॥ ३९ ॥

रावणकी आज्ञा पाकर उस समय महापार्श्व, महोदर तथा दुर्जय वीर विरूपाक्ष—तीनों ही रथोंपर आरूढ़ हुए ॥ ३९ ॥

ते तु हृष्टाभिनर्दन्तो भिन्दन्त इव मेदिनीम् ।
नादं घोरं विमुञ्चन्तो निर्ययुर्जयकाङ्क्षिणः ॥ ४० ॥

वे हर्षपूर्वक जोर-जोरसे इस तरह दहाड़ रहे थे, मानो पृथिवीको विदीर्ण कर डालेंगे । वे विजयकी इच्छा मनमें लिये घोर सिंहनाद करते हुए पुरीसे बाहर निकले ॥ ४० ॥

ततो युद्धाय तेजस्वी रक्षोगणबलैर्वृतः ।
निर्ययावुद्यतधनुः कालान्तकयमोपमः ॥ ४१ ॥

तदनन्तर काल, मृत्यु और यमराजके समान भयंकर तेजस्वी रावण धनुष हाथमें ले राक्षसोंकी सेनासे घिरकर युद्धके लिये आगे बढ़ा ॥ ४१ ॥

ततः प्रजविताश्वेन रथेन स महारथः ।
द्वारेण निर्ययौ तेन यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४२ ॥

उसके रथके घोड़े बहुत तेज चलनेवाले थे । उसके द्वारा वह महारथी वीर लङ्काके उसी द्वारसे बाहर निकला, जहाँ श्रीराम और लक्ष्मण मौजूद थे ॥ ४२ ॥

ततो नष्टप्रभः सूर्यो दिशश्च तिमिरावृताः ।
द्विजाश्च नेदुर्घोराश्च संचचाल च मेदिनी ॥ ४३ ॥

उस समय सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी । समस्त दिशाओंमें अन्धकार छा गया, भयंकर पक्षी अशुभ बोली बोलने लगे और धरती डोलने लगी ॥ ४३ ॥

ववर्ष रुधिरं देवश्चस्खलुश्च तुरंगमाः ।
ध्वजाग्रे न्यपतद् गृध्रो विनेदुश्चाशिवं शिवाः ॥ ४४ ॥

बादल रक्तकी वर्षा करने लगे । घोड़े लड़खड़ाकर गिर पड़े । ध्वजके अग्रभागपर गीध आकर बैठ गया और गीदड़ियाँ अमङ्गलसूचक बोली बोलने लगीं ॥ ४४ ॥

नयनं चास्फुरद् वामं वामो बाहुरकम्पत ।
विवर्णवदनश्चासीत् किंचिदभ्रश्यत स्वनः ॥ ४५ ॥

बाँयीं आँख फड़कने लगी । बाँयीं भुजा सहसा काँप उठी । उसके चेहरेका रंग फीका पड़ गया और आवाज कुछ बदल गयी ॥ ४५ ॥

ततो निष्पततो युद्धे दशग्रीवस्य रक्षसः ।
रणे निधनशंसीनि रूपाण्येतानि जज्ञिरे ॥ ४६ ॥

राक्षस दशग्रीव ज्यों ही युद्धके लिये निकला, त्यों ही रणभूमिमें उसकी मृत्युके सूचक लक्षण प्रकट होने लगे ॥ ४६ ॥

अन्तरिक्षात् पपातोल्का निर्घातसमनिःस्वना ।
विनेदुरशिवा गृध्रा वायसैरभिमिश्रिताः ॥ ४७ ॥

आकाशसे उल्कापात हुआ । उससे वज्रपातके समान गड़गड़ाहट पैदा हुई । अमङ्गलसूचक पक्षी गीध कौओंसे मिलकर अशुभ बोली बोलने लगे ॥ ४७ ॥

एतानचिन्तयन् घोरानुत्पातान् समवस्थितान् ।
निर्ययौ रावणो मोहाद् वधार्थं कालचोदितः ॥ ४८ ॥

इन भयंकर उत्पातोंको सामने उपस्थित देखकर भी रावणने उनकी कोई परवा नहीं की । वह कालसे प्रेरित हो मोहवश अपने ही वधके लिये निकल पड़ा ॥ ४८ ॥

तेषां तु रथघोषेण राक्षसानां महात्मनाम् ।
वानराणामपि चमूर्युद्धायैवाभ्यवर्तत ॥ ४९ ॥

उन महाकाय राक्षसोंके रथका गम्भीर घोष सुनकर वानरोंकी सेना भी युद्धके लिये ही उनके सामने आकर डट गयी ॥ ४९ ॥

तेषां तु तुमुलं युद्धं बभूव कपिरक्षसाम् ।
अन्योन्यमाह्वयानानां क्रुद्धानां जयमिच्छताम् ॥ ५० ॥

फिर तो अपनी-अपनी जीत चाहते हुए रोषपूर्वक एक-दूसरेको ललकारनेवाले वानरों और राक्षसोंमें तुमुल युद्ध छिड़ गया ॥ ५० ॥

ततः क्रुद्धो दशग्रीवः शरैः काञ्चनभूषणैः ।
वानराणामनीकेषु चकार कदनं महत् ॥ ५१ ॥

उस समय दशमुख रावण अपने सुवर्णभूषित बाणोंद्वारा वानरोंकी सेनाओंमें रोषपूर्वक बड़ी भारी मार-काट मचाने लगा ॥ ५१ ॥

निकृत्तशिरसः केचिद् रावणेन वलीमुखाः ।
केचिद् विच्छिन्नहृदयाः केचिच्छ्रोत्रविवर्जिताः ॥ ५२ ॥

रावणने कितने ही वानरोंके सिर काट लिये, कितनोंकी छाती छेद डाली और बहुतोंके कान उड़ा दिये ॥ ५२ ॥

निरुच्छ्वासा हताः केचित् केचित् पार्श्वेषु दारिताः ।
केचिद् विभिन्नशिरसः केचिच्चक्षुर्विनाकृताः ॥ ५३ ॥

कितनोंने घायल होकर प्राण त्याग दिये। रावणने कितने ही वानरोंकी पसलियाँ फाड़ डालीं, कितनोंके मस्तक कुचल डाले और कितनोंकी आँखें चौपट कर दीं ॥ ५३ ॥

दशाननः क्रोधविवृत्तनेत्रो
यतो यतोऽभ्येति रथेन संख्ये ।
ततस्ततस्तस्य शरप्रवेगं
सोढुं न शेकुर्हरियूथपास्ते ॥ ५४ ॥

दशमुख रावणके नेत्र क्रोधसे घूम रहे थे। वह अपने रथके द्वारा युद्धस्थलमें जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ वे वानर-यूथपति उसके बाणोंका वेग न सह सके ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें पञ्चानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमः सर्गः

सुग्रीवद्वारा राक्षससेनाका संहार और विरूपाक्षका वध

तथा तैः कृत्तगात्रैस्तु दशग्रीवेण मार्गणैः ।
बभूव वसुधा तत्र प्रकीर्णा हरिभिस्तदा ॥ १ ॥

इस प्रकार जब रावणने अपने बाणोंसे वानरोंके अङ्ग-भङ्ग कर डाले, तब वहाँ धराशायी हुए वानरोंसे वह सारी रणभूमि पट गयी ॥ १ ॥

रावणस्याप्रसह्यं तं शरसम्पातमेकतः ।
न शेकुः सहितुं दीप्तं पतङ्गा ज्वलनं यथा ॥ २ ॥

रावणके उस असह्य बाणप्रहारको वे वानर एक क्षण भी नहीं सह सके; ठीक वैसे ही, जैसे पतंग जलती आगका स्पर्श क्षणभर भी नहीं सह सकते हैं ॥ २ ॥

तेऽर्दिता निशितैर्बाणैः क्रोशन्तो विप्रदुद्रुवुः ।
पावकार्चिःसमाविष्टा दह्यमाना यथा गजाः ॥ ३ ॥

राक्षसराजके तीखे बाणोंकी मारसे पीड़ित हो वे वानर उसी तरह चीखते-चिल्लाते हुए भागे, जैसे दावानलकी ज्वालाओंसे घिरकर जलते हुए हाथी चीत्कार करते हुए भागते हैं ॥ ३ ॥

प्लवंगानामनीकानि महाभ्राणीव मारुतः ।
संययौ समरे तस्मिन् विधमन् रावणः शरैः ॥ ४ ॥

जैसे हवा बड़े-बड़े बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार रावण अपने बाणोंसे वानरसेनाओंका संहार करता हुआ समराङ्गणमें विचरने लगा ॥ ४ ॥

कदनं तरसा कृत्वा राक्षसेन्द्रो वनौकसाम् ।
आससाद ततो युद्धे त्वरितं राघवं रणे ॥ ५ ॥

बड़े वेगसे वानरोंका संहार करके वह राक्षसराज समराङ्गणमें जूझनेके लिये तुरंत ही श्रीरामचन्द्रजीके पास जा पहुँचा ॥ ५ ॥

सुग्रीवस्तान् कपीन् दृष्ट्वा भग्नान् विद्रावितान् रणे ।
गुल्मे सुषेणं निक्षिप्य चक्रे युद्धे द्रुतं मनः ॥ ६ ॥

उधर सुग्रीवने देखा, वानरसैनिक रावणसे खदेड़े जाकर समरभूमिसे भाग रहे हैं, तब उन्होंने सेनाको स्थिर रखनेका भार सुषेणको सौंपकर स्वयं शीघ्र ही युद्ध करनेका विचार किया ॥ ६ ॥

आत्मनः सदृशं वीरं स तं निक्षिप्य वानरम् ।
सुग्रीवोऽभिमुखं शत्रुं प्रतस्थे पादपायुधः ॥ ७ ॥

सुषेणको अपने ही समान पराक्रमी वीर समझकर उन्होंने सेनाकी रक्षाका कार्य सौंपा और स्वयं वृक्ष लेकर शत्रुके सामने प्रस्थान किया ॥ ७ ॥

पार्श्वतः पृष्ठतश्चास्य सर्वे वानरयूथपाः ।
अनुजग्मुर्महाशैलान् विविधांश्च वनस्पतीन् ॥ ८ ॥

उनके अगल-बगलमें और पीछे समस्त वानरयूथपति बड़े-बड़े पत्थर और नाना प्रकारके वृक्ष लेकर चले ॥ ८ ॥

ननर्द युधि सुग्रीवः स्वरेण महता महान् ।
पोथयन् विविधांश्चान्यान् ममन्थोत्तमराक्षसान् ॥ ९ ॥
ममर्द च महाकायो राक्षसान् वानरेश्वरः ।
युगान्तसमये वायुः प्रवृद्धानगमानिव ॥ १० ॥

उस समय सुग्रीवने युद्धमें उच्चस्वरसे गर्जना की और प्रलयकालमें बड़े-बड़े वृक्षोंको उखाड़ फेंकनेवाले वायुदेवकी भाँति उन विशालकाय वानरराजने विभिन्न प्रकारकी आकृति-वाले बड़े-बड़े राक्षसोंको गिरा-गिराकर मथ एवं कुचल डाला ॥ ९-१० ॥

राक्षसानामनीकेषु शैलवर्षं ववर्ष ह ।
अश्मवर्षं यथा मेघः पक्षिसङ्घेषु कानने ॥ ११ ॥

जैसे बादल वनमें पक्षियोंके समुदायपर ओले बरसाता है, उसी प्रकार सुग्रीव राक्षसोंकी सेनाओंपर बड़े-बड़े पत्थरोंकी वर्षा करने लगे ॥ ११ ॥

कपिराजविमुक्तैस्तैः शैलवर्षैस्तु राक्षसाः ।
विकीर्णशिरसः पेतुर्विकीर्णा इव पर्वताः ॥ १२ ॥

वानरराजके चलाये हुए शैलखण्डोंकी वर्षासे राक्षसोंके मस्तक कुचल जाते और वे ढहे हुए पर्वतोंके समान धराशायी हो जाते थे ॥ १२ ॥

अथ संक्षीयमाणेषु राक्षसेषु समन्ततः ।
सुग्रीवेण प्रभग्नेषु नदत्सु च पतत्सु च ॥ १३ ॥
विरूपाक्षः स्वकं नाम धन्वी विश्राव्य राक्षसः ।
रथादाप्लुत्य दुर्धर्षो गजस्कन्धमुपारुहत् ॥ १४ ॥

इस प्रकार सुग्रीवकी मारसे जब सब ओर राक्षसोंका विनाश होने लगा तथा वे भागने और आर्तनाद करते हुए पृथ्वीपर गिरने लगे, तब विरूपाक्ष नामक दुर्जय राक्षस हाथमें धनुष ले अपना नाम घोषित करता हुआ रथसे कूद पड़ा और हाथीकी पीठपर जा चढ़ा ॥ १३-१४ ॥

स तं द्विपमथारुह्य विरूपाक्षो महाबलः ।
ननर्द भीमनिर्ह्रादं वानरानभ्यधावत ॥ १५ ॥

उस हाथीपर चढ़कर महाबली विरूपाक्षने बड़ी भयानक आवाजमें गर्जना की और वानरोंपर वेगपूर्वक धावा किया ॥

सुग्रीवे स शरान् घोरान् विससर्ज चमूमुखे ।
स्थापयामास चोद्विग्नान् राक्षसान् सम्प्रहर्षयन् ॥ १६ ॥

उसने सेनाके मुहानेपर सुग्रीवको लक्ष्य करके बड़े भयंकर बाण छोड़े और डरे हुए राक्षसोंका हर्ष बढ़ाकर उन्हें स्थिरतापूर्वक स्थापित किया ॥ १६ ॥

सोऽतिविद्धः शितैर्बाणैः कपीन्द्रस्तेन रक्षसा ।
चुक्रोश च महाक्रोधो वधे चास्य मनो दधे ॥ १७ ॥

उस राक्षसके पैने बाणोंसे अत्यन्त घायल हुए वानरराज सुग्रीवने महान् क्रोधसे भरकर भीषण गर्जना की और विरूपाक्षको मार डालनेका विचार किया ॥ १७ ॥

ततः पादपमुद्धृत्य शूरः सम्प्रधनो हरिः ।
अभिपत्य जघानास्य प्रमुखे तं महागजम् ॥ १८ ॥

शूरवीर तो वे थे ही, सुन्दर ढंगसे युद्ध करना भी जानते थे; अतः एक वृक्ष उखाड़कर आगे बढ़े और अपने सामने खड़े हुए उसके विशाल हाथीपर उन्होंने उस वृक्षको दे मारा ॥ १८ ॥

स तु प्रहाराभिहतः सुग्रीवेण महागजः ।
अपासर्पद् धनुर्मात्रं निषसाद ननाद च ॥ १९ ॥

सुग्रीवके प्रहारसे घायल हो वह महान् गजराज एक धनुष पीछे हटकर बैठ गया और पीड़ासे आर्तनाद करने लगा ॥ १९ ॥

गजात् तु मथिताद् तूर्णमपक्रम्य स वीर्यवान् ।
राक्षसोऽभिमुखः शत्रुं प्रत्युद्गम्य ततः कपिम् ॥ २० ॥
आर्षभं चर्म खड्गं च प्रगृह्य लघुविक्रमः ।
भर्त्सयन्निव सुग्रीवमाससाद व्यवस्थितम् ॥ २१ ॥

पराक्रमी राक्षस विरूपाक्ष उस घायल हाथीकी पीठसे तुरंत कूद पड़ा और ढाल-तलवार ले शीघ्रतापूर्वक अपने शत्रु सुग्रीवकी ओर बढ़ा । सुग्रीव एक स्थानपर स्थिरतापूर्वक खड़े थे । वह उन्हें फटकारता हुआ-सा उनके पास जा पहुँचा ॥ २०-२१ ॥

स हि तस्याभिसंक्रुद्धः प्रगृह्य विपुलां शिलाम् ।
विरूपाक्षस्य चिक्षेप सुग्रीवो जलदोपमाम् ॥ २२ ॥

यह देख सुग्रीवने एक बहुत बड़ी शिला हाथमें ली, जो मेघके समान काली थी । उसे उन्होंने विरूपाक्षके शरीरपर क्रोधपूर्वक दे मारा ॥ २२ ॥

स तां शिलामापतन्तीं दृष्ट्वा राक्षसपुंगवः ।
अपक्रम्य सुविक्रान्तः खड्गेन प्राहरत् तदा ॥ २३ ॥

उस शिलाको अपने ऊपर आती देख उस परम पराक्रमी राक्षसशिरोमणि विरूपाक्षने पीछे हटकर आत्मरक्षा की और सुग्रीवपर तलवार चलायी ॥ २३ ॥

तेन खड्गप्रहारेण रक्षसा बलिना हतः ।
मुहूर्तमभवद् भूमौ विसंज्ञ इव वानरः ॥ २४ ॥

उस बलवान् निशाचरकी तलवारसे घायल होकर वानरराज सुग्रीव मूर्च्छित होकर थोड़ी देर धरतीपर पड़े रहे ॥ २४ ॥

सहसा स तदोत्पत्य राक्षसस्य महाहवे ।
मुष्टिं संवर्त्य वेगेन पातयामास वक्षसि ॥ २५ ॥

फिर सहसा उछलकर उन्होंने उस महासमरमें मुट्ठी बाँधकर विरूपाक्षकी छातीपर वेगपूर्वक एक मुक्का मारा ॥ २५ ॥

मुष्टिप्रहाराभिहतो विरूपाक्षो निशाचरः ।
तेन खड्गेन संक्रुद्धः सुग्रीवस्य चमूमुखे ॥ २६ ॥
कवचं पातयामास पद्भ्यामभिहतोऽपतत् ।

उनके मुक्केकी चोट खाकर निशाचर विरूपाक्षका क्रोध और बढ़ गया और उसने सेनाके मुहानेपर उसी तलवारसे सुग्रीवके कवचको काट गिराया; साथ ही उसके पैरोंका आघात पाकर वे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २६½ ॥

स समुत्थाय पतितः कपिस्तस्य व्यसर्जयत् ॥ २७ ॥
तलप्रहारमशनेः समानं भीमनिःस्वनम् ।

गिरे हुए सुग्रीव पुनः उठकर खड़े हो गये और उन्होंने उस राक्षसको वज्रके समान भीषण शब्द करनेवाले थप्पड़से मारा ॥ २७½ ॥

तलप्रहारं तद् रक्षः सुग्रीवेण समुद्यतम् ॥ २८ ॥
नैपुण्यान्मोचयित्वैनं मुष्टिनोरसि ताडयत् ।

सुग्रीवके चलाये हुए उस थप्पड़का वार वह राक्षस अपने युद्धकौशलसे बचा गया और उसने सुग्रीवकी छातीपर एक घूसा मारा ॥ २८½ ॥

ततस्तु संक्रुद्धतरः सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥ २९ ॥
मोक्षितं चात्मनो दृष्ट्वा प्रहारं तेन रक्षसा ।
स ददर्शान्तरं तस्य विरूपाक्षस्य वानरः ॥ ३० ॥

अब तो वानरराज सुग्रीवके क्रोधकी सीमा न रही । उन्होंने देखा कि राक्षसने मेरे प्रहारको व्यर्थ कर दिया और

अपने ऊपर उसका स्पर्श नहीं होने दिया। तब वे विरूपाक्षपर प्रहार करनेका अवसर देखने लगे ॥ २९-३० ॥

ततोऽन्यं पातयत् क्रोधाच्छङ्खदेशे महातलम्।
महेन्द्राशनिकल्पेन तलेनाभिहतः क्षितौ ॥ ३१ ॥
पपात रुधिरक्लिन्नः शोणितं हि समुद्गिरन्।
स्रोतोभ्यस्तु विरूपाक्षो जलं प्रस्रवणादिव ॥ ३२ ॥

तदनन्तर सुग्रीवने विरूपाक्षके ललाटपर क्रोधपूर्वक दूसरा महान् थप्पड़ मारा, जिसका स्पर्श इन्द्रके वज्रके समान दुःसह था। उससे आहत होकर विरूपाक्ष पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसका सारा शरीर खूनसे भीग गया और वह समस्त इन्द्रिय-गोलकोंसे उसी प्रकार रक्त वमन करने लगा, जैसे झरनेसे जल गिर रहा हो ॥ ३१-३२ ॥

विवृत्तनयनं क्रोधात् सफेनं रुधिराप्लुतम्।
ददृशुस्ते विरूपाक्षं विरूपाक्षतरं कृतम् ॥ ३३ ॥
स्फुरन्तं परिवर्तन्तं पार्श्वेन रुधिरोक्षितम्।
करुणं च विनर्दन्तं ददृशुः कपयो रिपुम् ॥ ३४ ॥

उस राक्षसकी आँखें क्रोधसे घूम रही थीं। वह फेनयुक्त रुधिरमें डूबा हुआ था। वानरोंने देखा, विरूपाक्ष अत्यन्त विरूपाक्ष (कुरूप नेत्रवाला और भयंकर) हो गया है। खूनसे लथपथ हो छटपटाता करवटें बदलता तथा करुणाजनक आर्तनाद करता है ॥ ३३-३४ ॥

तथा तु तौ संयति सम्प्रयुक्तौ
तरस्विनौ वानरराक्षसानाम्।
बलार्णवौ सस्वनतुश्च भीमौ
महार्णवौ द्वाविव भिन्नसेतू ॥ ३५ ॥

इस प्रकार वे दोनों वेगशाली वानरों और राक्षसोंके सैन्य-समुद्र मर्यादा तोड़कर बहनेवाले दो भयानक महासागरोंके समान परस्पर संयुक्त हो युद्धभूमिमें महान् कोलाहल करने लगे ॥ ३५ ॥

विनाशितं प्रेक्ष्य विरूपनेत्रं
महाबलं तं हरिपार्थिवेन।
बलं समेतं कपिराक्षसाना-
मुद्वृत्तगङ्गाप्रतिमं बभूव ॥ ३६ ॥

वानरराज सुग्रीवके द्वारा महाबली विरूपाक्षका वध हुआ देख वानरों और राक्षसोंकी सेनाएँ एकत्र हो बढ़ी हुई गङ्गाके समान उद्वेलित हो गयीं (एक ओर आनन्दजनित कोलाहल था तो दूसरी ओर शोकके कारण आर्तनाद हो रहा था) ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें छानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९६ ॥

* * *

सप्तनवतितमः सर्गः

सुग्रीवके साथ महोदरका घोर युद्ध तथा वध

हन्यमाने बले तूर्णमन्योन्यं ते महामृधे।
सरसीव महाघर्मे सूपक्षीणे बभूवतुः ॥ १ ॥

उस महासमरमें वे दोनों ओरकी सेनाएँ परस्परकी मार-काटसे प्रचण्ड ग्रीष्मऋतुमें सूखते हुए दो तालाबोंकी तरह शीघ्र ही क्षीण हो चलीं ॥ १ ॥

स्वबलस्य तु घातेन विरूपाक्षवधेन च।
बभूव द्विगुणं क्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ॥ २ ॥

अपनी सेनाके विनाश और विरूपाक्षके वधसे राक्षसराज रावणका क्रोध दूना बढ़ गया ॥ २ ॥

प्रक्षीणं स्वबलं दृष्ट्वा वध्यमानं वलीमुखैः।
बभूवास्य व्यथा युद्धे दृष्ट्वा दैवविपर्ययम् ॥ ३ ॥

वानरोंकी मारसे अपनी सेनाको क्षीण हुई देख दैवके उलट-फेरपर दृष्टिपात करके युद्धस्थलमें उसे बड़ी व्यथा हुई ॥ ३ ॥

उवाच च समीपस्थं महोदरमनन्तरम्।
अस्मिन् काले महाबाहो जयाशा त्वयि मे स्थिता ॥ ४ ॥

उसने पास ही खड़े हुए महोदरसे कहा—'महाबाहो! इस समय मेरी विजयकी आशा तुम्हारे ऊपर ही अवलम्बित है ॥ ४ ॥

जहि शत्रुचमूं वीर दर्शयाद्य पराक्रमम्।
भर्तृपिण्डस्य कालोऽयं निर्वेष्टुं साधु युध्यताम् ॥ ५ ॥

'वीर! आज अपना पराक्रम दिखाओ और शत्रुसेनाका वध करो। यही स्वामीके अन्नका बदला चुकानेका समय है। अतः अच्छी तरह युद्ध करो' ॥ ५ ॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा राक्षसेन्द्रो महोदरः।
प्रविवेशारिसेनां स पतङ्ग इव पावकम् ॥ ६ ॥

रावणके ऐसा कहनेपर राक्षसराज महोदरने 'बहुत अच्छा' कहकर उसकी आज्ञा शिरोधार्य की और जैसे पतङ्ग आगमें कूदता है, उसी प्रकार उसने शत्रुसेनामें प्रवेश किया ॥ ६ ॥

ततः स कदनं चक्रे वानराणां महाबलः।
भर्तृवाक्येन तेजस्वी स्वेन वीर्येण चोदितः ॥ ७ ॥

सेनामें प्रवेश करके तेजस्वी और महाबली महोदरने स्वामीकी आज्ञासे प्रेरित हो अपने पराक्रमद्वारा वानरोंका संहार आरम्भ किया ॥ ७ ॥

वानराश्च महासत्त्वाः प्रगृह्य विपुलाः शिलाः ।
प्रविश्यारिबलं भीमं जघ्नुस्ते सर्वराक्षसान् ॥ ८ ॥

वानर भी बड़े शक्तिशाली थे । वे बड़ी-बड़ी शिलाएँ लेकर शत्रुकी भयंकर सेनामें घुस गये और समस्त राक्षसोंका संहार करने लगे ॥ ८ ॥

महोदरः सुसंक्रुद्धः शरैः काञ्चनभूषणैः ।
चिच्छेद पाणिपादोरु वानराणां महाहवे ॥ ९ ॥

महोदरने अत्यन्त कुपित होकर अपने सुवर्णभूषित बाणोंद्वारा उस महायुद्धमें वानरोंके हाथ-पैर और जाँघें काट डालीं ॥ ९ ॥

ततस्ते वानराः सर्वे राक्षसैरर्दिता भृशम् ।
दिशो दश द्रुताः केचित् केचित् सुग्रीवमाश्रिताः ॥ १० ॥

राक्षसोंद्वारा अत्यन्त पीड़ित हुए वे सब वानर दसों दिशाओंमें भागने लगे । कितने ही सुग्रीवकी शरणमें गये ॥

प्रभग्नं समरे दृष्ट्वा वानराणां महाबलम् ।
अभिदुद्राव सुग्रीवो महोदरमनन्तरम् ॥ ११ ॥

वानरोंकी विशाल सेनाको समरभूमिसे भागती देख सुग्रीवने पास ही खड़े हुए महोदरपर आक्रमण किया ॥ ११ ॥

प्रगृह्य विपुलां घोरां महीधरसमां शिलाम् ।
चिक्षेप च महातेजास्तद्वधाय हरीश्वरः ॥ १२ ॥

वानरराज बड़े तेजस्वी थे । उन्होंने पर्वतके समान विशाल एवं भयंकर शिला उठाकर महोदरके वधके लिये उसपर चलायी ॥ १२ ॥

तामापतन्तीं सहसा शिलां दृष्ट्वा महोदरः ।
असम्भ्रान्तस्ततो बाणैर्निर्बिभेद दुरासदाम् ॥ १३ ॥

उस दुर्जय शिलाको सहसा अपने ऊपर आती देखकर भी महोदरके मनमें घबराहट नहीं हुई । उसने बाणोंद्वारा उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ १३ ॥

रक्षसा तेन बाणौघैर्निकृत्ता सा सहस्रधा ।
निपपात तदा भूमौ गृध्रचक्रमिवाकुलम् ॥ १४ ॥

उस राक्षसके बाणसमूहोंसे कटकर सहस्रों टुकड़ोंमें विभक्त हुई वह शिला उस समय आकुल हुए गृध्रसमुदायकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ १४ ॥

तां तु भिन्नां शिलां दृष्ट्वा सुग्रीवः क्रोधमूर्च्छितः ।
सालमुत्पाट्य चिक्षेप तं स चिच्छेद नैकधा ॥ १५ ॥

उस शिलाको विदीर्ण हुई देख सुग्रीवका क्रोध बहुत बढ़ गया । उन्होंने एक शालका वृक्ष उखाड़कर उस राक्षसके ऊपर फेंका, किंतु राक्षसने उसके भी कई टुकड़े कर डाले ॥ १५ ॥

शरैश्च विददारैनं शूरः परबलार्दनः ।
स ददर्श ततः क्रुद्धः परिघं पतितं भुवि ॥ १६ ॥

साथ ही शत्रुसेनाका दमन करनेवाले उस शूरवीरने इन्हें अपने बाणोंसे घायल कर दिया । इसी समय क्रोधसे भरे हुए सुग्रीवको वहाँ पृथ्वीपर पड़ा हुआ एक परिघ दिखायी दिया ॥ १६ ॥

आविध्य तु स तं दीप्तं परिघं तस्य दर्शयन् ।
परिघेणोग्रवेगेन जघानास्य हयोत्तमान् ॥ १७ ॥

उस तेजस्वी परिघको घुमाकर सुग्रीवने महोदरको अपनी फुर्ती दिखाते हुए उस भयानक वेगशाली परिघके द्वारा उस राक्षसके उत्तम घोड़ोंको मार डाला ॥ १७ ॥

तस्माद्धतहयाद् वीरः सोऽवप्लुत्य महारथात् ।
गदां जग्राह संक्रुद्धो राक्षसोऽथ महोदरः ॥ १८ ॥

घोड़ोंके मारे जानेपर वीर राक्षस महोदर अपने विशाल रथसे कूद पड़ा और अत्यन्त रोषसे भरकर उसने गदा उठा ली ॥ १८ ॥

गदापरिघहस्तौ तौ युधि वीरौ समीयतुः ।
नर्दन्तौ गोवृषप्रख्यौ घनाविव सविद्युतौ ॥ १९ ॥

एकके हाथमें गदा थी और दूसरेके हाथमें परिघ । वे दोनों वीर युद्धस्थलमें दो साँड़ों और बिजलीसहित दो मेघोंके समान गर्जना करते हुए एक दूसरेसे भिड़ गये ॥ १९ ॥

ततः क्रुद्धो गदां तस्मै चिक्षेप रजनीचरः ।
ज्वलन्तीं भास्कराभासां सुग्रीवाय महोदरः ॥ २० ॥

तदनन्तर कुपित हुए राक्षस महोदरने सुग्रीवपर सूर्यतुल्य तेजसे दमकती हुई एक गदा चलायी ॥ २० ॥

गदां तां सुमहाघोरामापतन्तीं महाबलः ।
सुग्रीवो रोषताम्राक्षः समुद्यम्य महाहवे ॥ २१ ॥
आजघान गदां तस्य परिघेण हरीश्वरः ।
पपात तरसा भिन्नः परिघस्तस्य भूतले ॥ २२ ॥

उस महाभयंकर गदाको अपनी ओर आती देख महासमरमें महाबली वानरराज सुग्रीवके नेत्र रोषसे लाल हो गये और उन्होंने परिघ उठाकर उसके द्वारा राक्षसकी गदापर आघात किया । वह गदा गिर पड़ी; किंतु उसके वेगसे टकराकर सुग्रीवका परिघ भी टूटकर पृथ्वीपर जा गिरा ॥ २१-२२ ॥

ततो जग्राह तेजस्वी सुग्रीवो वसुधातलात् ।
आयसं मुसलं घोरं सर्वतो हेमभूषितम् ॥ २३ ॥

तब तेजस्वी सुग्रीवने भूमिपरसे एक लोहेका भयंकर मूसल उठाया, जिसमें सब ओरसे सोना जड़ा हुआ था ॥ २३ ॥

स तमुद्यम्य चिक्षेप सोऽप्यस्य प्राक्षिपद् गदाम् ।
भिन्नावन्योन्यमासाद्य पेततुस्तौ महीतले ॥ २४ ॥

उसे उठाकर उन्होंने राक्षसपर दे मारा । साथ ही उस राक्षसने भी इनके ऊपर गदा फेंकी । गदा और मूसल दोनों आपसमें टकराकर टूट गये और जमीनपर जा गिरे ॥ २४ ॥

ततो भिन्नप्रहरणौ मुष्टिभ्यां तौ समीयतुः।
तेजोबलसमाविष्टौ दीप्ताविव हुताशनौ ॥ २५ ॥

वे दोनों वीर तेज और बलसे सम्पन्न थे और जलती हुई अग्नियोंके समान उद्दीप्त हो रहे थे। अपने-अपने आयुधोंके टूट जानेपर वे घूसोंसे एक दूसरेको मारने लगे ॥ २५ ॥

जघ्नतुस्तौ तदान्योन्यं नदन्तौ च पुनः पुनः।
तलैश्चान्योन्यमासाद्य पेततुश्च महीतले ॥ २६ ॥

उस समय बारंबार गर्जते हुए वे दोनों योद्धा परस्पर मुक्कोंसे प्रहार करने लगे। फिर थप्पड़ोंसे एक दूसरेको मारकर दोनों ही पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २६ ॥

उत्पेततुस्तदा तूर्णं जघ्नतुश्च परस्परम्।
भुजैश्चिक्षिपतुर्वीरावन्योन्यमपराजितौ ॥ २७ ॥

फिर तत्काल ही दोनों उछले और शीघ्र ही एक दूसरेपर चोट करने लगे। वे दोनों वीर हार नहीं मानते थे। दोनों ही दोनोंपर भुजाओंद्वारा प्रहार करते रहे ॥ २७ ॥

जग्मतुस्तौ श्रमं वीरौ बाहुयुद्धे परंतपौ।
आजहार तदा खड्गमदूरपरिवर्तिनम् ॥ २८ ॥
राक्षसश्चर्मणा सार्धं महावेगो महोदरः।
तथैव च महाखड्गं चर्मणा पतितं सह।
जग्राह वानरश्रेष्ठः सुग्रीवो वेगवत्तरः ॥ २९ ॥

शत्रुओंको तपानेवाले वे दोनों वीर बाहुयुद्ध करते-करते थक गये। तब महान् वेगशाली राक्षस महोदरने थोड़ी ही दूरपर पड़ी हुई ढालसहित तलवार उठा ली। उसी तरह अत्यन्त वेगशाली कपिश्रेष्ठ सुग्रीवने भी वहाँ गिरे हुए विशाल खड्गको ढालसहित उठा लिया ॥ २८-२९ ॥

ततो रोषपरीताङ्गौ नदन्तावभ्यधावताम्।
उद्यतासी रणे हृष्टौ युधि शस्त्रविशारदौ ॥ ३० ॥

महोदर और सुग्रीव दोनों युद्धके मैदानमें शस्त्र चलानेकी कलामें चतुर थे तथा दोनोंके शरीर रोषसे प्रभावित थे; अतः रणभूमिमें हर्ष और उत्साहसे युक्त हो वे तलवार उठाये गर्जते हुए एक दूसरेपर टूट पड़े ॥ ३० ॥

दक्षिणं मण्डलं चोभौ सुतूर्णं सम्परीयतुः।
अन्योन्यमभिसंक्रुद्धौ जये प्रणिहितावुभौ ॥ ३१ ॥

वे दोनों बड़ी तेजीसे दायें-बायें पैतरे बदल रहे थे, दोनोंका दोनोंपर क्रोध बढ़ा हुआ था तथा दोनों ही अपनी-अपनी विजयकी आशा लगाये हुए थे ॥ ३१ ॥

स तु शूरो महावेगो वीर्यश्लाघी महोदरः।
महावर्मणि तं खड्गं पातयामास दुर्मतिः ॥ ३२ ॥

अपने बलपर घमंड करनेवाले महान् वेगशाली तथा शौर्यसम्पन्न दुर्बुद्धि महोदरने अपनी वह तलवार सुग्रीवके विशाल कवचपर दे मारी ॥ ३२ ॥

लग्नमुत्कर्षतः खड्गं खड्गेन कपिकुञ्जरः।
जहार सशिरस्त्राणं कुण्डलोपगतं शिरः ॥ ३३ ॥

सुग्रीवके कवचमें लगी हुई तलवारको जब वह राक्षस खींचने लगा, उसी समय कपिकुञ्जर सुग्रीवने महोदरके शिरस्त्राणसहित कुण्डलमण्डित मस्तकको अपने खड्गसे काट लिया ॥ ३३ ॥

निकृत्तशिरसस्तस्य पतितस्य महीतले।
तद् बलं राक्षसेन्द्रस्य दृष्ट्वा तत्र न दृश्यते ॥ ३४ ॥

मस्तक कट जानेपर राक्षसराज महोदर पृथ्वीपर गिर पड़ा। यह देखकर उसकी सेना फिर वहाँ नहीं दिखायी दी ॥ ३४ ॥

हत्वा तं वानरैः सार्धं ननाद मुदितो हरिः।
चुक्रोध च दशग्रीवो बभौ हृष्टश्च राघवः ॥ ३५ ॥

महोदरको मारकर प्रसन्न हुए वानरराज सुग्रीव अन्य वानरोंके साथ गर्जना करने लगे। उस समय दशमुख रावणको बड़ा क्रोध हुआ और श्रीरघुनाथजी हर्षसे खिल उठे ॥ ३५ ॥

विषण्णवदनाः सर्वे राक्षसा दीनचेतसः।
विद्रवन्ति ततः सर्वे भयवित्रस्तचेतसः ॥ ३६ ॥

उस समय समस्त राक्षसोंका मन दुखी हो गया। उन सबके मुखपर विषाद छा गया और वे सभी भयभीतचित्त होकर वहाँसे भाग चले ॥ ३६ ॥

महोदरं तं विनिपात्य भूमौ
महागिरेः कीर्णमिवैकदेशम्।
सूर्यात्मजस्तत्र रराज लक्ष्म्या
सूर्यः स्वतेजोभिरिवाप्रधृष्यः ॥ ३७ ॥

महोदरका शरीर किसी महान् पर्वतके एक टूटे हुए शिखर-सा जान पड़ता था। उसे पृथ्वीपर गिराकर सूर्यपुत्र सुग्रीव वहाँ विजय-लक्ष्मीसे सुशोभित होने लगे, मानो अधर्षणीय सूर्यदेव अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे हों ॥ ३७ ॥

अथ विजयमवाप्य वानरेन्द्रः
समरमुखे सुरसिद्धयक्षसङ्घैः।
अवनितलगतैश्च भूतसङ्घै-
र्हरुषसमाकुलितैर्निरीक्ष्यमाणः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार वानरराज सुग्रीव युद्धके मुहानेपर विजय पाकर बड़ी शोभा पाने लगे। उस समय देवता, सिद्ध और यक्षोंके समुदाय तथा भूतलनिवासी प्राणियोंके समूह भी बड़े हर्षसे उनकी ओर देखने लगे ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सत्तानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९७ ॥

* * *

अष्टनवतितमः सर्गः

अंगदके द्वारा महापार्श्वका वध

महोदरे तु निहते महापार्श्वो महाबलः ।
सुग्रीवेण समीक्ष्याथ क्रोधात् संरक्तलोचनः ॥ १ ॥

सुग्रीवके द्वारा महोदरके मारे जानेपर उनकी ओर देखकर महाबली महापार्श्वके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये ॥ १ ॥

अङ्गदस्य चमूं भीमां क्षोभयामास मार्गणैः ।
स वानराणां मुख्यानामुत्तमाङ्गानि राक्षसः ॥ २ ॥
पातयामास कायेभ्यः फलं वृन्तादिवानिलः ।

उसने अपने बाणोंद्वारा अंगदकी भयंकर सेनामें हलचल मचा दी । वह राक्षस मुख्य-मुख्य वानरोंके मस्तक धड़से काट-काटकर गिराने लगा, मानो वायु वृन्त या डंठलसे फल गिरा रही हो ॥ २½ ॥

केषांचिदिषुभिर्बाहूंश्चिच्छेदाथ स राक्षसः ॥ ३ ॥
वानराणां सुसंरब्धः पार्श्वं केषांचिदाक्षिपत् ।

क्रोधसे भरे हुए महापार्श्वने अपने बाणोंसे कितनोंकी बाँहें काट दीं और कितने ही वानरोंकी पसलियाँ उड़ा दीं ॥ ३½ ॥

तेऽर्दिता बाणवर्षेण महापार्श्वेन वानराः ॥ ४ ॥
विषादविमुखाः सर्वे बभूवुर्गतचेतसः ।

महापार्श्वकी बाणवर्षासे पीड़ित हो बहुत-से वानर युद्धसे विमुख हो गये । सबकी चेतना जाती रही ॥ ४½ ॥

निशाम्य बलमुद्विग्नमङ्गदो राक्षसार्दितम् ॥ ५ ॥
वेगं चक्रे महावेगः समुद्र इव पर्वसु ।

उस राक्षससे पीड़ित वानर-सेनाको उद्विग्न हुई देख महान् वेगशाली अङ्गदने पूर्णिमाके दिन समुद्रकी भाँति अपना भारी वेग प्रकट किया ॥ ५½ ॥

आयसं परिघं गृह्य सूर्यरश्मिसमप्रभम् ॥ ६ ॥
समरे वानरश्रेष्ठो महापार्श्वे न्यपातयत् ।

उन वानरशिरोमणिने सूर्यकी किरणोंके समान दमकनेवाला एक लोहेका परिघ उठाकर महापार्श्वपर दे मारा ॥ ६½ ॥

स तु तेन प्रहारेण महापार्श्वो विचेतनः ॥ ७ ॥
ससूतः स्यन्दनात् तस्माद् विसंज्ञश्चापतद् भुवि ।

उस प्रहारसे महापार्श्वकी सुध-बुध जाती रही और वह मूर्छित हो सारथिसहित रथसे नीचे जा पड़ा ॥ ७½ ॥

तस्यर्क्षराजस्तेजस्वी नीलाञ्जनचयोपमः ॥ ८ ॥
निष्पत्य सुमहावीर्यः स्वयूथान्मेघसंनिभात् ।
प्रगृह्य गिरिशृङ्गाभां क्रुद्धः स विपुलां शिलाम् ॥ ९ ॥
अश्वाञ्जघान तरसा बभञ्ज स्यन्दनं च तम् ।

इसी समय काले कोयलेके ढेरके समान कृष्ण वर्णवाले, महान् पराक्रमी और तेजस्वी ऋक्षराज जाम्बवान्ने मेघोंकी घटाके सदृश अपने यूथसे बाहर निकलकर कुपित हो एक पर्वतशिखरके समान विशाल शिला हाथमें ले ली और उसके द्वारा उस राक्षसके घोड़ोंको मार डाला तथा उसके रथको भी चूर्ण कर दिया ॥ ८-९½ ॥

मुहूर्ताल्लब्धसंज्ञस्तु महापार्श्वो महाबलः ॥ १० ॥
अङ्गदं बहुभिर्बाणैर्भूयस्तं प्रत्यविध्यत ।
जाम्बवन्तं त्रिभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ ११ ॥

दो घड़ीके बाद होशमें आनेपर महाबली महापार्श्वने बहुत-से बाणोंद्वारा पुनः अङ्गदको घायल कर दिया और जाम्बवान्की छातीमें भी तीन बाण मारे ॥ १०-११ ॥

ऋक्षराजं गवाक्षं च जघान बहुभिः शरैः ।
गवाक्षं जाम्बवन्तं च स दृष्ट्वा शरपीडितौ ॥ १२ ॥
जग्राह परिघं घोरमङ्गदः क्रोधमूर्च्छितः ।

इतना ही नहीं, उसने रीछोंके राजा गवाक्षको भी बहुत-से बाणोंद्वारा क्षत-विक्षत कर दिया । गवाक्ष और जाम्बवान्को बाणोंसे पीड़ित देख अङ्गदके क्रोधकी सीमा न रही । उन्होंने भयंकर परिघ हाथमें ले लिया ॥ १२½ ॥

तस्याङ्गदः सरोषाक्षो राक्षसस्य तमायसम् ॥ १३ ॥
दूरस्थितस्य परिघं रविरश्मिसमप्रभम् ।
द्वाभ्यां भुजाभ्यां संगृह्य भ्रामयित्वा च वेगवत् ॥ १४ ॥
महापार्श्वस्य चिक्षेप वधार्थं वालिनः सुतः ।

उनका वह परिघ सूर्यकी किरणोंके समान अपनी प्रभा बिखेर रहा था । वालिपुत्र अङ्गदके नेत्र क्रोधसे लाल हो उठे थे । उन्होंने उस लोहमय परिघको दोनों हाथोंसे पकड़कर घुमाया और दूर खड़े हुए महापार्श्वके वधके लिये वेगपूर्वक चला दिया ॥ १३-१४½ ॥

स तु क्षिप्तो बलवता परिघस्तस्य रक्षसः ॥ १५ ॥
धनुश्च सशरं हस्ताच्छिरस्त्राणं च पातयत् ।

बलवान् वीर अङ्गदके चलाये हुए उस परिघने राक्षस महापार्श्वके हाथसे बाणसहित धनुष और मस्तकसे टोप गिरा दिये ॥ १५½ ॥

तं समासाद्य वेगेन वालिपुत्रः प्रतापवान् ॥ १६ ॥
तलेनाभ्यहनत् क्रुद्धः कर्णमूले सकुण्डले ।

फिर प्रतापी वालिपुत्र अङ्गद बड़े वेगसे उसके पास जा पहुँचे और कुपित होकर उन्होंने उसके कुण्डलयुक्त कानके पास गालमें एक थप्पड़ मारा ॥ १६½ ॥

स तु क्रुद्धो महावेगो महापार्श्वो महाद्युतिः ॥ १७ ॥
करेणैकेन जग्राह सुमहान्तं परश्वधम् ।

तब महान् वेगशाली महातेजस्वी महापार्श्वने कुपित होकर एक हाथमें बहुत बड़ा फरसा ले लिया ॥ १७½ ॥

तं तैलधौतं विमलं शैलसारमयं दृढम् ॥ १८ ॥
राक्षसः परमक्रुद्धो वालिपुत्रे न्यपातयत् ।

उस फरसेको तेलमें डुबोकर साफ किया गया था और वह अच्छे लोहेका बना हुआ एवं सुदृढ़ था । राक्षस महापार्श्वने अत्यन्त कुपित हो वह फरसा वालिपुत्र अङ्गदपर दे मारा॥१८½॥

तेन वामांसफलके भृशं प्रत्यवपातितम् ॥ १९ ॥
अङ्गदो मोक्षयामास सरोषः स परश्वधम् ।

उसने अङ्गदके बायें कंधेपर बड़े वेगसे उस फरसेका प्रहार किया था, परंतु रोषसे भरे हुए अङ्गदने कतराकर अपनेको बचा लिया और उस फरसेको व्यर्थ कर दिया॥१९½॥

स वीरो वज्रसंकाशमङ्गदो मुष्टिमात्मनः ॥ २० ॥
संवर्तयत् सुसंक्रुद्धः पितुस्तुल्यपराक्रमः ।

तत्पश्चात् अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए वीर अङ्गदने, जो अपने पिताके समान ही पराक्रमी थे, वज्रके समान मुट्ठी बाँधी ॥ २०½ ॥

राक्षसस्य स्तनाभ्याशे मर्मज्ञो हृदयं प्रति ॥ २१ ॥
इन्द्राशनिसमस्पर्शं स मुष्टिं विन्यपातयत् ।

वे हृदयके मर्मस्थानसे परिचित थे; अतः उन्होंने उस राक्षसके स्तनोंके निकट छातीमें बड़े वेगसे मुक्का मारा, जिसका स्पर्श इन्द्रके वज्रके समान असह्य था ॥ २१½ ॥

तेन तस्य निपातेन राक्षसस्य महामृधे ॥ २२ ॥
पफाल हृदयं चास्य स पपात हतो भुवि ।

उनका वह घूसा लगते ही उस महासमरमें राक्षस महापार्श्वका हृदय फट गया और वह मरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २२½ ॥

तस्मिन् विनिहते भूमौ तत् सैन्यं सम्प्रचुक्षुभे ॥ २३ ॥
अभवच्च महान् क्रोधः समरे रावणस्य तु ।

उसके मरकर पृथ्वीपर गिर जानेके पश्चात् उसकी सेना विक्षुब्ध हो उठी तथा समरभूमिमें रावणको भी महान् क्रोध हुआ ॥ २३½ ॥

वानराणां प्रहृष्टानां सिंहनादः सुपुष्कलः ॥ २४ ॥
स्फोटयन्निव शब्देन लङ्कां साट्टालगोपुराम् ।
सहेन्द्रेणेव देवानां नादः समभवन्महान् ॥ २५ ॥

उस समय हर्षसे भरे हुए वानरोंका महान् सिंहनाद होने लगा । वह अट्टालिकाओं तथा गोपुरोंसहित लङ्कापुरीको फोड़ता हुआ-सा प्रतीत हुआ । अङ्गदसहित वानरोंका वह महानाद इन्द्रसहित देवताओंके गम्भीर घोष-सा जान पड़ता था ॥ २४-२५ ॥

अथेन्द्रशत्रुस्त्रिदशालयानां
वनौकसां चैव महाप्रणादम् ।
श्रुत्वा सरोषं युधि राक्षसेन्द्रः
पुनश्च युद्धाभिमुखोऽवतस्थे ॥ २६ ॥

युद्धस्थलमें देवताओं और वानरोंकी वह बड़ी भारी गर्जना सुनकर इन्द्रद्रोही राक्षसराज रावण पुनः रोषपूर्वक युद्धके लिये उत्सुक हो वहाँ खड़ा हो गया ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें अट्ठानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९८ ॥

◆

एकोनशततमः सर्गः

श्रीराम और रावणका युद्ध

महोदरमहापार्श्वौ हतौ दृष्ट्वा स रावणः ।
तस्मिंश्च निहते वीरे विरूपाक्षे महाबले ॥ १ ॥
आविवेश महान् क्रोधो रावणं तु महामृधे ।
सूतं संचोदयामास वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ २ ॥

महाबली वीर विरूपाक्ष तो मारा ही गया था; महोदर और महापार्श्व भी कालके गालमें डाल दिये गये—यह देख उस महासमरके भीतर रावणके हृदयमें महान् क्रोधका आवेश हुआ । उसने सारथिको रथ आगे बढ़ानेकी आज्ञा दी और इस प्रकार कहा—॥ १-२ ॥

निहतानाममात्यानां रुद्धस्य नगरस्य च ।
दुःखमेवापनेष्यामि हत्वा तौ रामलक्ष्मणौ ॥ ३ ॥

'सूत ! मेरे मन्त्री मारे गये और लङ्कापुरीपर चारों ओरसे घेरा डाला गया । इसके लिये मुझे बड़ा दुःख है । आज राम और लक्ष्मणका वध करके ही मैं अपने इस दुःखको दूर करूँगा ॥ ३ ॥

रामवृक्षं रणे हन्मि सीतापुष्पफलप्रदम् ।
प्रशाखा यस्य सुग्रीवो जाम्बवान् कुमुदो नलः॥ ४ ॥
द्विविदश्चैव मैन्दश्च अङ्गदो गन्धमादनः ।
हनूमांश्च सुषेणश्च सर्वे च हरियूथपाः ॥ ५ ॥

'रणभूमिमें उस रामरूपी वृक्षको उखाड़ फेंकूँगा, जो सीतारूपी फूलके द्वारा फल देनेवाला है तथा सुग्रीव, जाम्बवान्, कुमुद, नल, द्विविद, मैन्द, अङ्गद, गन्धमादन, हनुमान् और सुषेण आदि समस्त वानरयूथपति जिसकी शाखा-प्रशाखाएँ हैं' ॥ ४-५ ॥

स दिशो दश घोषेण रथस्यातिरथो महान् ।
नादयन् प्रययौ तूर्णं राघवं चाभ्यधावत ॥ ६ ॥

ऐसा कहकर महान् अतिरथी वीर रावण अपने रथकी घर्घराहटसे दसों दिशाओंको गुँजाता हुआ बड़ी तेजीके साथ श्रीरघुनाथजीकी ओर बढ़ा ॥ ६ ॥

पूरिता तेन शब्देन सनदीगिरिकानना ।
संचचाल मही सर्वा त्रस्तसिंहमृगद्विजा ॥ ७ ॥

रथकी आवाजसे नदी, पर्वत और जंगलोंसहित वहाँकी सारी भूमि गूँज उठी, धरती डोलने लगी और वहाँके सारे पशु-पक्षी भयसे थर्रा उठे ॥ ७ ॥

तामसं सुमहाघोरं चकारास्त्रं सुदारुणम् ।
निर्ददाह कपीन् सर्वांस्ते प्रपेतुः समन्ततः ॥ ८ ॥

उस समय रावणने तामस¹ नामवाले अत्यन्त भयंकर महाघोर अस्त्रको प्रकट करके समस्त वानरोंको भस्म करना आरम्भ किया । सब ओर उनकी लाशें गिरने लगीं ॥ ८ ॥

उत्पपात रजो भूमौ तैर्भग्नैः सम्प्रधावितैः ।
नहि तत् सहितुं शेकुर्ब्रह्मणा निर्मितं स्वयम् ॥ ९ ॥

उनके पाँव उखड़ गये और वे इधर-उधर भागने लगे, इससे रणभूमिमें बहुत धूल उड़ने लगी । वह तामस अस्त्र साक्षात् ब्रह्माजीका बनाया हुआ था, इसलिये वानर-योद्धा उसके वेगको सह न सके ॥ ९ ॥

तान्यनीकान्यनेकानि रावणस्य शरोत्तमैः ।
दृष्ट्वा भग्नानि शतशो राघवः पर्यवस्थितः ॥ १० ॥

रावणके उत्तम बाणोंसे आहत हो वानरोंकी सैकड़ों सेनाएँ तितर-बितर हो गयी हैं—यह देख भगवान् श्रीराम युद्धके लिये उद्यत हो सुस्थिरभावसे खड़े हो गये ॥ १० ॥

ततो राक्षसशार्दूलो विद्राव्य हरिवाहिनीम् ।
स ददर्श ततो रामं तिष्ठन्तमपराजितम् ॥ ११ ॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विष्णुना वासवं यथा ।

उधर वानर-सेनाको खदेड़कर राक्षससिंह रावणने देखा कि किसीसे पराजित न होनेवाले श्रीराम अपने भाई लक्ष्मणके साथ उसी तरह खड़े हैं, जैसे इन्द्र अपने छोटे भाई भगवान् विष्णु (उपेन्द्र) के साथ खड़े होते हैं ॥ ११½ ॥

आलिखन्तमिवाकाशमवष्टभ्य महद् धनुः ॥ १२ ॥
पद्मपत्रविशालाक्षं दीर्घबाहुमरिंदमम् ।

वे अपने विशाल धनुषको उठाकर आकाशमें रेखा खींचते-से प्रतीत होते थे । उनके नेत्र विकसित कमलदलके समान विशाल थे, भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं और वे शत्रुओंका दमन करनेमें पूर्णतः समर्थ थे ॥ १२½ ॥

ततो रामो महातेजाः सौमित्रिसहितो बली ॥ १३ ॥
वानरांश्च रणे भग्नानापतन्तं च रावणम् ।
समीक्ष्य राघवो हृष्टो मध्ये जग्राह कार्मुकम् ॥ १४ ॥

तदनन्तर लक्ष्मणसहित खड़े हुए महातेजस्वी महाबली श्रीरामने रणभूमिमें वानरोंको भागते और रावणको आते देख मनमें बड़े हर्षका अनुभव किया और धनुषके मध्यभागको दृढ़ताके साथ पकड़ा ॥ १३-१४ ॥

विस्फारयितुमारेभे ततः स धनुरुत्तमम् ।
महावेगं महानादं निर्भिन्दन्निव मेदिनीम् ॥ १५ ॥

उन्होंने अपने महान् वेगशाली और महानाद प्रकट करनेवाले उत्तम धनुषको इस तरह खींचना और उसकी टङ्कार करना आरम्भ किया, मानो वे पृथ्वीको विदीर्ण कर डालेंगे ॥ १५ ॥

रावणस्य च बाणौघै रामविस्फारितेन च ।
शब्देन राक्षसास्तेन पेतुश्च शतशस्तदा ॥ १६ ॥

रावणके बाण-समूहोंसे तथा श्रीरामचन्द्रजीके धनुषकी टङ्कारसे जो भयंकर शब्द प्रकट हुआ, उससे आतङ्कित होकर सैकड़ों राक्षस तत्काल धराशायी हो गये ॥ १६ ॥

तयोः शरपथं प्राप्य रावणो राजपुत्रयोः ।
स बभौ च यथा राहुः समीपे शशिसूर्ययोः ॥ १७ ॥

उन दोनों राजकुमारोंके बाणोंके मार्गमें आकर रावण चन्द्रमा और सूर्यके समीप स्थित हुए राहुकी भाँति शोभा पाने लगा ॥ १७ ॥

तमिच्छन् प्रथमं योद्धुं लक्ष्मणो निशितैः शरैः ।
मुमोच धनुरायम्य शरानग्निशिखोपमान् ॥ १८ ॥

लक्ष्मण अपने पैने बाणोंके द्वारा रावणके साथ पहले स्वयं ही युद्ध करना चाहते थे; इसलिये धनुष तानकर वे अग्निशिखाके समान तेजस्वी बाण छोड़ने लगे ॥ १८ ॥

तान् मुक्तमात्रानाकाशे लक्ष्मणेन धनुष्मता ।
बाणान् बाणैर्महातेजा रावणः प्रत्यवारयत् ॥ १९ ॥

धनुर्धर लक्ष्मणके धनुषसे छूटते ही उन बाणोंको महातेजस्वी रावणने अपने सायकोंद्वारा आकाशमें ही काट गिराया॥

एकमेकेन बाणेन त्रिभिस्त्रीन् दशभिर्दश ।
लक्ष्मणस्य प्रचिच्छेद दर्शयन् पाणिलाघवम् ॥ २० ॥

वह अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाता हुआ लक्ष्मणके एक बाणको एक बाणसे, तीन बाणोंको तीन बाणसे और दस बाणोंको उतने ही बाणोंसे काट देता था ॥ २० ॥

अभ्यतिक्रम्य सौमित्रिं रावणः समितिंजयः ।
आससाद रणे रामं स्थितं शैलमिवापरम् ॥ २१ ॥

समरविजयी रावण सुमित्राकुमारको लाँघकर रणभूमिमें दूसरे पर्वतकी भाँति अविचल भावसे खड़े हुए श्रीरामके पास जा पहुँचा ॥ २१ ॥

स राघवं समासाद्य क्रोधसंरक्तलोचनः ।
व्यसृजच्छरवर्षाणि रावणो राक्षसेश्वरः ॥ २२ ॥

---

१. इस अस्त्रका देवता तमोग्रह राहु है, इसलिये इसको 'तामस' कहते हैं ।

श्रीरघुनाथजीके निकट जाकर क्रोधसे लाल आँखें किये राक्षसराज रावण उनके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥ २२ ॥

शरधारास्ततो रामो रावणस्य धनुश्च्युताः ।
दृष्ट्वैवापतिताः शीघ्रं भल्लाञ्जग्राह सत्वरम् ॥ २३ ॥

रावणके धनुषसे गिरती हुई उन बाण-धाराओंपर दृष्टिपात करके श्रीरामने बड़ी उतावलीके साथ शीघ्र ही कई भल्ल हाथमें लिये ॥ २३ ॥

ताञ्छरौघांस्ततो भल्लैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद राघवः ।
दीप्यमानान् महाघोराञ्छरानाशीविषोपमान् ॥ २४ ॥

रघुकुलभूषण श्रीरामने रावणके विषधर सर्पोंके समान महाभयंकर एवं दीप्तिमान् बाणसमूहोंको उन तीखे भल्लोंसे काट डाला ॥ २४ ॥

राघवो रावणं तूर्णं रावणो राघवं तथा ।
अन्योन्यं विविधैस्तीक्ष्णैः शरवर्षैर्ववर्षतुः ॥ २५ ॥

फिर श्रीरामने रावणको और रावणने श्रीरामको अपना लक्ष्य बनाया और दोनों ही शीघ्रतापूर्वक एक दूसरेपर भाँति-भाँतिके पैने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २५ ॥

चेरतुश्च चिरं चित्रं मण्डलं सव्यदक्षिणम् ।
बाणवेगात् समुत्क्षिप्तावन्योन्यमपराजितौ ॥ २६ ॥

वे दोनों चिरकालतक वहाँ विचित्र दायें-बायें पैतरेसे विचरते रहे । बाणके वेगसे एक-दूसरेको घायल करते हुए वे दोनों वीर पराजित नहीं होते थे ॥ २६ ॥

तयोर्भूतानि वित्रेसुर्युगपत् सम्प्रयुध्यतोः ।
रौद्रयोः सायकमुचोर्यमान्तकनिकाशयोः ॥ २७ ॥

एक साथ जूझते और सायकोंकी वर्षा करते हुए श्रीराम और रावण यमराज और अन्तकके समान भयंकर जान पड़ते थे । उनके युद्धसे सम्पूर्ण प्राणी थर्रा उठे ॥ २७ ॥

सततं विविधैर्बाणैर्बभूव गगनं तदा ।
घनैरिवातपापाये विद्युन्मालासमाकुलैः ॥ २८ ॥

जैसे वर्षा ऋतुमें विद्युत्-समूहोंसे व्याप्त मेघोंकी घटासे आकाश आच्छादित हो जाता है, उसी प्रकार उस समय नाना प्रकारके बाणोंसे वह ढक गया था ॥ २८ ॥

गवाक्षितमिवाकाशं बभूव शरवृष्टिभिः ।
महावेगैः सुतीक्ष्णाग्रैर्गृध्रपत्रैः सुवाजितैः ॥ २९ ॥

गीधकी पाँखके सुन्दर परोंसे सुशोभित और तेज धारवाले महान् वेगशाली बाणोंकी अनवरत वर्षासे आकाश ऐसा ज्ञान पड़ता था, मानो उसमें बहुत-से झरोखे लग गये हों ॥ २९ ॥

शरान्धकारमाकाशं चक्रतुः परमं तदा ।
गतेऽस्तं तपने चापि महामेघाविवोत्थितौ ॥ ३० ॥

दो बड़े-बड़े मेघोंकी भाँति उठे हुए श्रीराम और रावणने सूर्यके अस्त और उदित होनेपर भी बाणोंके गहन अन्धकारसे आकाशको ढक रक्खा था ॥ ३० ॥

तयोरभून्महायुद्धमन्योन्यवधकाङ्क्षिणोः ।
अनासाद्यमचिन्त्यं च वृत्रवासवयोरिव ॥ ३१ ॥

दोनों एक-दूसरेका वध करना चाहते थे; अतः वृत्रासुर और इन्द्रकी भाँति उन दोनोंमें ऐसा महान् युद्ध होने लगा, जो दुर्लभ तथा अचिन्त्य है ॥ ३१ ॥

उभौ हि परमेष्वासावुभौ युद्धविशारदौ ।
उभावस्त्रविदां मुख्यावुभौ युद्धे विचेरतुः ॥ ३२ ॥

दोनों ही महान् धनुर्धर और दोनों ही युद्धकी कलामें निपुण थे । दोनों ही अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे; अतः दोनों बड़े ही उत्साहसे रणभूमिमें विचरने लगे ॥ ३२ ॥

उभौ हि येन व्रजतस्तेन तेन शरोर्मयः ।
ऊर्मयो वायुना विद्धा जग्मुः सागरयोरिव ॥ ३३ ॥

वे जिस-जिस मार्गसे जाते, उसी-उसीसे बाणोंकी लहर-सी उठने लगती थी । ठीक उसी तरह, जैसे वायुके थपेड़े खाकर दो समुद्रोंके जलमें उत्ताल तरङ्गें उठ रही हों ॥ ३३ ॥

ततः संसक्तहस्तस्तु रावणो लोकरावणः ।
नाराचमालां रामस्य ललाटे प्रत्यमुञ्चत ॥ ३४ ॥

तदनन्तर जिसके हाथ बाण छोड़नेमें ही लगे हुए थे, समस्त लोकोंको रुलानेवाले उस रावणने श्रीरामचन्द्रजीके ललाटमें नाराचोंकी माला-सी पहना दी ॥ ३४ ॥

रौद्रचापप्रयुक्तां तां नीलोत्पलदलप्रभाम् ।
शिरसाधारयद् रामो न व्यथामभ्यपद्यत ॥ ३५ ॥

भयंकर धनुषसे छूटी और नील कमलदलके समान श्याम कान्तिसे प्रकाशित होती हुई उस नाराच-मालाको श्रीरामचन्द्रजीने अपने सिरपर धारण किया; किंतु वे व्यथित नहीं हुए ॥ ३५ ॥

अथ मन्त्रानपि जपन् रौद्रमस्त्रमुदीरयन् ।
शरान् भूयः समादाय रामः क्रोधसमन्वितः ॥ ३६ ॥

तत्पश्चात् क्रोधसे भरे हुए श्रीरामने पुनः बहुत-से बाण लेकर मन्त्रजपपूर्वक रौद्रास्त्रका प्रयोग किया ॥ ३६ ॥

मुमोच च महातेजाश्चापमायम्य वीर्यवान् ।
ताञ्शरान् राक्षसेन्द्राय चिक्षेपाच्छिन्नसायकः ॥ ३७ ॥

फिर उन महातेजस्वी, महापराक्रमी और अविच्छिन्नरूपसे बाणवर्षा करनेवाले श्रीरघुवीरने धनुषको कानतक खींचकर वे सभी बाण राक्षसराज रावणपर छोड़ दिये ॥ ३७ ॥

ते महामेघसंकाशे कवचे पतिताः शराः ।
अवध्ये राक्षसेन्द्रस्य न व्यथां जनयंस्तदा ॥ ३८ ॥

वे बाण राक्षसराज रावणके महामेघके समान काले रंगके

अभेद्य कवचपर गिरे थे; इसलिये उस समय उसे व्यथित न कर सके ॥ ३८ ॥

पुनरेवाथ तं रामो रथस्थं राक्षसाधिपम् ।
ललाटे परमास्त्रेण सर्वास्त्रकुशलोऽभिनत् ॥ ३९ ॥

सम्पूर्ण अस्त्रोंके संचालनमें कुशल भगवान् श्रीरामने पुनः रथपर बैठे हुए राक्षसराज रावणके ललाटमें उत्तम अस्त्रोंका प्रहार करके उसे घायल कर दिया ॥ ३९ ॥

ते भित्त्वा बाणरूपाणि पञ्चशीर्षा इवोरगाः ।
श्वसन्तो विविशुर्भूमिं रावणप्रतिकूलिताः ॥ ४० ॥

श्रीरामके वे उत्तम बाण रावणको घायल करके उसके निवारण करनेपर फुफकारते हुए पाँच सिरवाले सर्पोंके समान धरतीमें समा गये ॥ ४० ॥

निहत्य राघवस्यास्त्रं रावणः क्रोधमूर्च्छितः ।
आसुरं सुमहाघोरमस्त्रं प्रादुश्चकार सः ॥ ४१ ॥

श्रीरघुनाथजीके अस्त्रका निवारण करके क्रोधसे मूर्छित हुए रावणने आसुरनामक दूसरा महाभयंकर अस्त्र प्रकट किया॥

सिंहव्याघ्रमुखांश्चापि कङ्ककोकमुखानपि ।
गृध्रश्येनमुखांश्चापि शृगालवदनांस्तथा ॥ ४२ ॥
ईहामृगमुखांश्चापि व्यादितास्यान् भयावहान् ।
पञ्चास्याँल्लेलिहानांश्च ससर्ज निशिताञ्शरान् ॥ ४३ ॥
शरान् खरमुखांश्चान्यान् वराहमुखसंश्रितान् ।
श्वानकुक्कुटवक्त्रांश्च मकराशीविषाननान् ॥ ४४ ॥
एतांश्चान्यांश्च मायाभिः ससर्ज निशिताञ्छरान् ।
रामं प्रति महातेजाः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ॥ ४५ ॥

उससे सिंह, बाघ, कङ्क, चक्रवाक, गीध, बाज, सियार, भेड़िये, गदहे, सूअर, कुत्ते, मुर्गे, मगर और जहरीले साँपोंके समान मुखवाले बाणोंकी वृष्टि होने लगी । वे बाण मुँह फैलाये, जबड़े चाटते हुए पाँच मुखवाले भयंकर सर्पोंके समान जान पड़ते थे । फुफकारते हुए सर्पकी भाँति कुपित हुए महातेजस्वी रावणने इनका तथा अन्य प्रकारके तीखे बाणोंका भी श्रीरामके ऊपर प्रयोग किया ॥ ४२–४५ ॥

आसुरेण समाविष्टः सोऽस्त्रेण रघुपुङ्गवः ।
ससर्जास्त्रं महोत्साहं पावकं पावकोपमः ॥ ४६ ॥

उस आसुरास्त्रसे आवृत हुए अग्नि-तुल्य तेजस्वी महान् उत्साही रघुकुलतिलक श्रीरामने आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया ॥

अग्निदीप्तमुखान् बाणांस्तत्र सूर्यमुखानपि ।
चन्द्रार्धचन्द्रवक्त्रांश्च धूमकेतुमुखानपि ।
ग्रहनक्षत्रवर्णांश्च महोल्कामुखसंस्थितान् ॥ ४७ ॥
विद्युज्जिह्वोपमांश्चापि ससर्ज विविधाञ्छरान् ।

उसके द्वारा उन्होंने अग्नि, सूर्य, चन्द्र, अर्धचन्द्र, धूमकेतु, ग्रह, नक्षत्र, उल्का तथा बिजलीकी प्रभाके समान प्रज्वलित मुखवाले नाना प्रकारके बाण प्रकट किये ॥ ४७½ ॥

ते रावणशरा घोरा राघवास्त्रसमाहताः ॥ ४८ ॥
विलयं जग्मुराकाशे जघ्नुश्चैव सहस्रशः ।

श्रीरघुनाथजीके आग्नेयास्त्रसे आहत हो रावणके वे भयंकर बाण आकाशमें ही विलीन हो गये, तथापि उमके द्वारा सहस्रों वानर मारे गये थे ॥ ४८½ ॥

तदस्त्रं निहतं दृष्ट्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ४९ ॥
हृष्टा नेदुस्ततः सर्वे कपयः कामरूपिणः ।
सुग्रीवाभिमुखा वीराः सम्परिक्षिप्य राघवम् ॥ ५० ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामने उस आसुरास्त्रको नष्ट कर दिया, यह देख इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले सुग्रीव आदि सभी वीर वानर श्रीरामको चारों ओरसे घेरकर हर्षनाद करने लगे ॥ ४९-५० ॥

ततस्तदस्त्रं विनिहत्य राघवः
प्रसह्य तद् रावणबाहुनिःसृतम् ।
मुदान्वितो दाशरथिर्महात्मा
विनेदुरुच्चैर्मुदिताः कपीश्वराः ॥ ५१ ॥

दशरथनन्दन महात्मा श्रीराम रावणके हाथोंसे छूटे हुए उस आसुरास्त्रका बलपूर्वक विनाश करके बड़े प्रसन्न हुए और वानर-यूथपति आनन्दमग्न हो उच्च स्वरसे सिंहनाद करने लगे॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनशततमः सर्गः ॥ ९९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें निन्यानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९९ ॥

शततमः सर्गः

राम और रावणका युद्ध, रावणकी शक्तिसे लक्ष्मणका मूर्छित होना तथा रावणका युद्धसे भागना

तस्मिन् प्रतिहतेऽस्त्रे तु रावणो राक्षसाधिपः ।
क्रोधं च द्विगुणं चक्रे क्रोधाच्चास्त्रमनन्तरम् ॥ १ ॥
मयेन विहितं रौद्रमन्यदस्त्रं महाद्युतिः ।
उत्स्रष्टुं रावणो भीमं राघवाय प्रचक्रमे ॥ २ ॥

अपने उस अस्त्रके नष्ट हो जानेपर महातेजस्वी राक्षसराज रावणने दूना क्रोध प्रकट किया । उसने क्रोधवश श्रीरामके ऊपर एक दूसरे भयंकर अस्त्रको छोड़नेका आयोजन किया, जिसे मयासुरने बनाया था ॥ १-२ ॥

ततः शूलानि निश्चेरुर्गदाश्च मुसलानि च ।
कार्मुकाद् दीप्यमानानि वज्रसाराणि सर्वशः ॥ ३ ॥
मुद्गराः कूटपाशाश्च दीप्ताश्चाशनयस्तथा ।
निष्पेतुर्विविधास्तीक्ष्णा वाता इव युगक्षये ॥ ४ ॥

उस समय रावणके धनुषसे वज्रके समान दृढ़ और दमकते हुए शूल, गदा, मूसल, मुद्गर, कूटपाश तथा चमचमाती अशनि आदि भाँति-भाँतिके तीखे अस्त्र छूटने लगे, मानो प्रलयकालमें वायुके विविध रूप प्रकट हो रहे हों ॥३-४॥

तदस्त्रं राघवः श्रीमानुत्तमास्त्रविदां वरः ।
जघान परमास्त्रेण गान्धर्वेण महाद्युतिः ॥ ५ ॥

तब उत्तम अस्त्रके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी श्रीमान् रघुनाथजीने गान्धर्वनामक श्रेष्ठ अस्त्रके द्वारा रावणके उस अस्त्रको शान्त कर दिया ॥ ५ ॥

तस्मिन् प्रतिहतेऽस्त्रे तु राघवेण महात्मना ।
रावणः क्रोधताम्राक्षः सौरमस्त्रमुदीरयत् ॥ ६ ॥

महात्मा रघुनाथजीके द्वारा उस अस्त्रके प्रतिहत हो जानेपर रावणके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और उसने सूर्यास्त्रका प्रयोग किया ॥ ६ ॥

ततश्चक्राणि निष्पेतुर्भास्वराणि महान्ति च ।
कार्मुकाद् भीमवेगस्य दशग्रीवस्य धीमतः ॥ ७ ॥

फिर तो भयानक वेगशाली बुद्धिमान् राक्षस दशग्रीवके धनुषसे बड़े-बड़े तेजस्वी चक्र प्रकट होने लगे ॥ ७ ॥

तैरासीद् गगनं दीप्तं सम्पतद्भिः समन्ततः ।
पतद्भिश्च दिशो दीप्ताश्चन्द्रसूर्यग्रहैरिव ॥ ८ ॥

चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रहोंके समान आकारवाले वे दीप्तिमान् अस्त्र-शस्त्र सब ओर प्रकट होते और गिरते थे। उनसे आकाशमें प्रकाश छा गया और सम्पूर्ण दिशाएँ उद्भासित हो उठीं ॥ ८ ॥

तानि चिच्छेद बाणौघैश्चक्राणि तु स राघवः ।
आयुधानि च चित्राणि रावणस्य चमूमुखे ॥ ९ ॥

परंतु श्रीरामचन्द्रजीने अपने बाणसमूहोंद्वारा सेनाके मुहानेपर रावणके उन चक्रों और विचित्र आयुधोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ९ ॥

तदस्त्रं तु हतं दृष्ट्वा रावणो राक्षसाधिपः ।
विव्याध दशभिर्बाणै रामं सर्वेषु मर्मसु ॥ १० ॥

उस अस्त्रको नष्ट हुआ देख राक्षसराज रावणने दस बाणोंद्वारा श्रीरामके सारे मर्मस्थानोंमें गहरी चोट पहुँचायी ॥

स विद्धो दशभिर्बाणैर्महाकार्मुकनिःसृतैः ।
रावणेन महातेजा न प्राकम्पत राघवः ॥ ११ ॥

रावणके विशाल धनुषसे छूटे हुए उन दस बाणोंसे घायल होनेपर भी महातेजस्वी श्रीरघुनाथजी विचलित नहीं हुए॥

ततो विव्याध गात्रेषु सर्वेषु समितिंजयः ।
राघवस्तु सुसंक्रुद्धो रावणं बहुभिः शरैः ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् समरविजयी श्रीरघुवीरने अत्यन्त कुपित हो बहुत-से बाण मारकर रावणके सारे अङ्गोंमें घाव कर दिया ॥

तस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राघवस्यानुजो बली ।
लक्ष्मणः सायकान् सप्त जग्राह परवीरहा ॥ १३ ॥

इसी बीचमें शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले महाबली रामानुज लक्ष्मणने कुपित हो सात सायक हाथमें लिये ॥ १३ ॥

तैः सायकैर्महावेगै रावणस्य महाद्युतिः ।
ध्वजं मनुष्यशीर्षं तु तस्य चिच्छेद नैकधा ॥ १४ ॥

उन महान् वेगशाली सायकोंद्वारा उन महातेजस्वी सुमित्राकुमारने रावणकी ध्वजाके, जिसमें मनुष्यकी खोपड़ीका चिह्न था, कई टुकड़े कर डाले ॥ १४ ॥

सारथेश्चापि बाणेन शिरो ज्वलितकुण्डलम् ।
जहार लक्ष्मणः श्रीमान् नैर्ऋतस्य महाबलः ॥ १५ ॥

इसके बाद महाबली श्रीमान् लक्ष्मणने एक बाणसे उस राक्षसके सारथिका जगमगाते हुए कुण्डलोंमे मण्डित मस्तक भी काट लिया ॥ १५ ॥

तस्य बाणैश्च चिच्छेद धनुर्गजकरोपमम् ।
लक्ष्मणो राक्षसेन्द्रस्य पञ्चभिर्निशितैस्तदा ॥ १६ ॥

इतना ही नहीं; लक्ष्मणने पाँच पैने बाण मारकर उस राक्षसराजके हाथीकी सूँड़के समान मोटे धनुषको भी काट डाला॥

नीलमेघनिभांश्चास्य सदश्वान् पर्वतोपमान् ।
जघानाप्लुत्य गदया रावणस्य विभीषणः ॥ १७ ॥ ✓

तदनन्तर विभीषणने उछलकर अपनी गदासे रावणके नील मेघके समान कान्तिवाले सुन्दर पर्वताकार घोड़ोंको भी मार गिराया ॥ १७ ॥

हताश्वात् तु तदा वेगादवप्लुत्य महारथात् ।
कोपमाहारयत् तीव्रं भ्रातरं प्रति रावणः ॥ १८ ॥

घोड़ोंके मारे जानेपर रावण अपने विशाल रथसे वेगपूर्वक कूद पड़ा और अपने भाईपर उसे बड़ा क्रोध आया ॥

ततः शक्तिं महाशक्तिः प्रदीप्तामशनीमिव ।
विभीषणाय चिक्षेप राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥ १९ ॥ ✓

तब उस महान् शक्तिशाली प्रतापी राक्षसराजने विभीषणको मारनेके लिये एक वज्रके समान प्रज्वलित शक्ति चलायी॥

अप्राप्तामेव तां बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद लक्ष्मणः ।
अथोदतिष्ठत् संनादो वानराणां महारणे ॥ २० ॥

वह शक्ति अभी विभीषण तक पहुँचने भी नहीं पायी थी कि लक्ष्मणने तीन बाण मारकर उसे बीचमें ही काट दिया। यह देख उस महासमरमें वानरोंका महान् हर्षनाद गूँज उठा ॥ २० ॥

सम्पपात त्रिधा छिन्ना शक्तिः काञ्चनमालिनी ।
सविस्फुलिङ्गा ज्वलिता महोल्केव दिवश्च्युता ॥ २१ ॥

सोनेकी मालासे अलंकृत वह शक्ति तीन भागोंमें विभक्त होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी, मानो आकाशसे चिनगारियोंसहित बड़ी भारी उल्का टूटकर गिरी हो ॥ २१ ॥

ततः सम्भाविततरां कालेनापि दुरासदाम् ।
जग्राह विपुलां शक्तिं दीप्यमानां स्वतेजसा ॥ २२ ॥

तदनन्तर रावणने विभीषणको मारनेके लिये एक ऐसी विशाल शक्ति हाथमें ली, जो अपनी अमोघताके लिये विशेष विख्यात थी । काल भी उसके वेगको नहीं सह सकता था । वह शक्ति अपने तेजसे उद्दीप्त हो रही थी ॥ २२ ॥

सा वेगिता बलवता रावणेन दुरात्मना ।
जज्वाल सुमहातेजा दीप्ताशनिसमप्रभा ॥ २३ ॥

दुरात्मा बलवान् रावणके द्वारा हाथमें ली हुई वह वेगशालिनी, महातेजस्विनी और वज्रके समान दीप्तिमती शक्ति अपने दिव्य तेजसे प्रज्वलित हो उठी ॥ २३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणस्तं विभीषणम् ।
प्राणसंशयमापन्नं तूर्णमभ्यवपद्यत ॥ २४ ॥

इसी बीचमें विभीषणको प्राण-संशयकी अवस्थामें पड़ा देख वीर लक्ष्मणने तुरंत उनकी रक्षा की । उन्हें पीछे करके वे स्वयं शक्तिके सामने खड़े हो गये ॥ २४ ॥

तं विमोक्षयितुं वीरश्चापमायम्य लक्ष्मणः ।
रावणं शक्तिहस्तं वै शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २५ ॥

विभीषणको बचानेके लिये वीर लक्ष्मण अपने धनुषको खींचकर हाथमें शक्ति लिये खड़े हुए रावणपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २५ ॥

कीर्यमाणः शरौघेण विसृष्टेन महात्मना ।
न प्रहर्तुं मनश्चक्रे विमुखीकृतविक्रमः ॥ २६ ॥

महात्मा लक्ष्मणके छोड़े हुए बाण-समूहोंका निशाना बनकर रावण अपने भाईको मारनेके पराक्रमसे विमुख हो गया । अब उसके मनमें प्रहार करनेकी इच्छा नहीं रह गयी ॥ २६ ॥

मोक्षितं भ्रातरं दृष्ट्वा लक्ष्मणेन स रावणः ।
लक्ष्मणाभिमुखस्तिष्ठन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ २७ ॥

लक्ष्मणने मेरे भाईको बचा लिया, यह देख रावण उनकी ओर मुँह करके खड़ा हो गया और इस प्रकार बोला—॥ २७ ॥

मोक्षितस्ते बलश्लाघिन् यस्मादेवं विभीषणः ।
विमुच्य राक्षसं शक्तिस्त्वयीयं विनिपात्यते ॥ २८ ॥

'अपने बलपर घमंड रखनेवाले लक्ष्मण ! तुमने ऐसा प्रयास करके विभीषणको बचा लिया है, इसलिये अब उस राक्षसको छोड़कर मैं तुम्हारे ऊपर ही इस शक्तिका प्रहार करता हूँ ॥ २८ ॥

एषा ते हृदयं भित्त्वा शक्तिर्लोहितलक्षणा ।
मद्बाहुपरिघोत्सृष्टा प्राणानादाय यास्यति ॥ २९ ॥

'यह शक्ति स्वभावसे ही शत्रुओंके खूनसे नहानेवाली है, यह मेरे हाथसे छूटते ही तुम्हारे हृदयको विदीर्ण करके प्राणोंको अपने साथ ले जायगी' ॥ २९ ॥

इत्येवमुक्त्वा तां शक्तिमष्टघण्टां महास्वनाम् ।
मयेन मायाविहिताममोघां शत्रुघातिनीम् ॥ ३० ॥
लक्ष्मणाय समुद्दिश्य ज्वलन्तीमिव तेजसा ।
रावणः परमक्रुद्धश्चिक्षेप च ननाद च ॥ ३१ ॥

ऐसा कहकर अत्यन्त कुपित हुए रावणने मयासुरकी मायासे निर्मित, आठ घण्टोंसे विभूषित तथा महाभयंकर शब्द करनेवाली, उस अमोघ एवं शत्रुघातिनी शक्तिको, जो अपने तेजसे प्रज्वलित हो रही थी, लक्ष्मणको लक्ष्य करके चला दिया और बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ३०-३१ ॥

सा क्षिप्ता भीमवेगेन वज्राशनिसमस्वना ।
शक्तिरभ्यपतद् वेगाल्लक्ष्मणं रणमूर्धनि ॥ ३२ ॥

वज्र और अशनिके समान गड़गड़ाहट पैदा करनेवाली वह शक्ति युद्धके मुहानेपर भयानक वेगसे चलायी गयी और लक्ष्मणको वेगपूर्वक लगी ॥ ३२ ॥

तामनुव्याहरच्छक्तिमापतन्तीं स राघवः ।
स्वस्त्यस्तु लक्ष्मणायेति मोघा भव हतोद्यमा ॥ ३३ ॥

लक्ष्मणकी ओर आती हुई उस शक्तिको लक्ष्य करके भगवान् श्रीरामने कहा—'लक्ष्मणका कल्याण हो, तेरा प्राणनाशविषयक उद्योग नष्ट हो; अतएव तू व्यर्थ हो जा' ॥ ३३ ॥

रावणेन रणे शक्तिः क्रुद्धेनाशीविषोपमा ।
मुक्ताऽऽशूरस्यभीतस्य लक्ष्मणस्य ममज्ज सा ॥ ३४ ॥

वह शक्ति विषधर सर्पके समान भयंकर थी । रणभूमिमें कुपित हुए रावणने जब उसे छोड़ा, तब वह तुरंत ही निर्भय वीर लक्ष्मणकी छातीमें डूब गयी ॥ ३४ ॥

न्यपतत् सा महावेगा लक्ष्मणस्य महोरसि ।
जिह्वेवोरगराजस्य दीप्यमाना महाद्युतिः ॥ ३५ ॥
ततो रावणवेगेन सुदूरमवगाढया ।
शक्त्या विभिन्नहृदयः पपात भुवि लक्ष्मणः ॥ ३६ ॥

नागराज वासुकिकी जिह्वाके समान देदीप्यमान वह महातेजस्विनी और महावेगवती शक्ति जब लक्ष्मणके विशाल वक्षःस्थलपर गिरी, तब रावणके वेगसे बहुत गहराई तक धँस गयी । उस शक्तिसे हृदय विदीर्ण हो जानेके कारण लक्ष्मण पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३५-३६ ॥

तदवस्थं समीपस्थो लक्ष्मणं प्रेक्ष्य राघवः ।
भ्रातृस्नेहान्महातेजा विषण्णहृदयोऽभवत् ॥ ३७ ॥

'महातेजस्वी रघुनाथजी पास ही खड़े थे । वे लक्ष्मणको

इस अवस्थामें देखकर भ्रातृस्नेहके कारण मन-ही-मन विषादमें डूब गये ॥ ३७ ॥

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पपर्याकुलेक्षणः ।
बभूव संरब्धतरो युगान्त इव पावकः ॥ ३८ ॥

वे दो घड़ी तक चिन्तामें डूबे रहे । फिर नेत्रोंमें आँसू भरकर प्रलयकालमें प्रज्वलित हुई अग्निके समान अत्यन्त रोषसे उद्दीप्त हो उठे ॥ ३८ ॥

न विषादस्य कालोऽयमिति संचिन्त्य राघवः ।
चक्रे सुतुमुलं युद्धं रावणस्य वधे धृतः ।
सर्वयत्नेन महता लक्ष्मणं परिवीक्ष्य च ॥ ३९ ॥

'यह विषादका समय नहीं है' ऐसा सोचकर श्रीरघुनाथजी रावणके वधका निश्चय करके महान् प्रयत्नके द्वारा सारी शक्ति लगाकर और लक्ष्मणकी ओर देखकर अत्यन्त भयंकर युद्ध करने लगे ॥ ३९ ॥

स ददर्श ततो रामः शक्त्या भिन्नं महाहवे ।
लक्ष्मणं रुधिरादिग्धं सपन्नगमिवाचलम् ॥ ४० ॥

तत्पश्चात् श्रीरामने उस महासमरमें शक्तिसे विदीर्ण हुए लक्ष्मणकी ओर देखा । वे खूनसे लथपथ होकर पड़े थे और सर्पयुक्त पर्वतके समान जान पड़ते थे ॥ ४० ॥

तामपि प्रहितां शक्तिं रावणेन बलीयसा ।
यत्नतस्ते हरिश्रेष्ठा न शेकुरवमर्दितुम् ॥ ४१ ॥

अत्यन्त बलवान् रावणकी चलायी हुई उस शक्तिको लक्ष्मणकी छातीसे निकालनेके लिये बहुत प्रयत्न करनेपर भी वे श्रेष्ठ वानरगण सफल न हो सके ॥ ४१ ॥

अर्दिताश्चैव बाणौघैस्ते प्रवेकेण रक्षसाम् ।
सौमित्रेः सा विनिर्भिद्य प्रविष्टा धरणीतलम् ॥ ४२ ॥

क्योंकि वे वानर भी राक्षसशिरोमणि रावणके बाण-समूहोंसे बहुत पीड़ित थे । वह शक्ति सुमित्राकुमारके शरीरको विदीर्ण करके धरतीतक पहुँच गयी थी ॥ ४२ ॥

तां कराभ्यां परामृश्य रामः शक्तिं भयावहाम् ।
बभञ्ज समरे क्रुद्धो बलवान् विचकर्ष च ॥ ४३ ॥

तब महाबली रघुनाथजीने उस भयंकर शक्तिको अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर लक्ष्मणके शरीरसे निकाला और समराङ्गणमें कुपित हो उसे तोड़ डाला ॥ ४३ ॥

तस्य निष्कर्षतः शक्तिं रावणेन बलीयसा ।
शराः सर्वेषु गात्रेषु पातिता मर्मभेदिनः ॥ ४४ ॥

श्रीरामचन्द्रजी जब लक्ष्मणके शरीरसे शक्ति निकाल रहे थे, उस समय महाबली रावण उनके सम्पूर्ण अङ्गोंपर मर्मभेदी बाणोंकी वर्षा करता रहा ॥ ४४ ॥

अचिन्तयित्वा तान् बाणान् समाश्लिष्य च लक्ष्मणम् ।
अब्रवीच्च हनूमन्तं सुग्रीवं च महाकपिम् ॥ ४५ ॥

परंतु उन बाणोंकी परवा न करके लक्ष्मणको हृदयसे लगाकर भगवान् श्रीराम हनुमान् और महाकपि सुग्रीवसे बोले—॥ ४५ ॥

लक्ष्मणं परिवार्यैवं तिष्ठध्वं वानरोत्तमाः ।
पराक्रमस्य कालोऽयं सम्प्राप्तो मे चिरेप्सितः ॥ ४६ ॥

'कपिवरो ! तुमलोग लक्ष्मणको इसी तरह सब ओरसे घेरकर खड़े रहो । अब मेरे लिये उस पराक्रमका अबसर आया है, जो मुझे चिरकालसे अभीष्ट था ॥ ४६ ॥

पापात्मायं दशग्रीवो वध्यतां पापनिश्चयः ।
काङ्क्षितं चातकस्येव घर्मान्ते मेघदर्शनम् ॥ ४७ ॥

'इस पापात्मा एवं पापपूर्ण विचार रखनेवाले दशमुख रावणको अब मार डाला जाय, यही उचित है । जैसे पपीहेको ग्रीष्म ऋतुके अन्तमें मेघके दर्शनकी इच्छा रहती है, उसी प्रकार मैं भी इसका वध करनेके लिये चिरकालसे इसे देखना चाहता हूँ ॥ ४७ ॥

अस्मिन् मुहूर्ते नचिरात् सत्यं प्रतिशृणोमि वः ।
अरावणमरामं वा जगद् द्रक्ष्यथ वानराः ॥ ४८ ॥

'वानरो ! मैं इस मुहूर्तमें तुम्हारे सामने यह सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि कुछ ही देरमें यह संसार रावणसे रहित दिखायी देगा या रामसे ॥ ४८ ॥

राज्यनाशं वने वासं दण्डके परिधावनम् ।
वैदेह्याश्च परामर्शो रक्षोभिश्च समागमम् ॥ ४९ ॥
प्राप्तं दुःखं महाघोरं क्लेशश्च निरयोपमः ।
अद्य सर्वमहं त्यक्ष्ये निहत्वा रावणं रणे ॥ ५० ॥

'मेरे राज्यका नाश, वनका निवास, दण्डकारण्यकी दौड़-धूप, विदेहकुमारी सीताका राक्षसद्वारा अपहरण तथा राक्षसोंके साथ संग्राम—इन सबके कारण मुझे महाघोर दुःख सहना पड़ा है और नरकके समान कष्ट उठाना पड़ा है; किंतु रणभूमिमें रावणका वध करके आज मैं सारे दुःखोंसे छुटकारा पा जाऊँगा ॥ ४९-५० ॥

यदर्थं वानरं सैन्यं समानीतमिदं मया ।
सुग्रीवश्च कृतो राज्ये निहत्वा वालिनं रणे ।
यदर्थं सागरः क्रान्तः सेतुर्बद्धश्च सागरे ॥ ५१ ॥
सोऽयमद्य रणे पापश्चक्षुर्विषयमागतः ।
चक्षुर्विषयमागत्य नायं जीवितुमर्हति ॥ ५२ ॥

'जिसके लिये मैं वानरोंकी यह विशाल सेना साथ लाया हूँ, जिसके कारण मैंने युद्धमें वालीका वध करके सुग्रीवको राज्यपर बिठाया है तथा जिसके उद्देश्यसे समुद्रपर पुल बाँधा और उसे पार किया, वह पापी रावण आज युद्धमें मेरी आँखोंके सामने उपस्थित है । मेरे दृष्टिपथमें आकर अब यह जीवित रहने योग्य नहीं है ॥ ५१-५२ ॥

दृष्टिं दृष्टिविषस्येव सर्पस्य मम रावणः।
यथा वा वैनतेयस्य दृष्टिं प्राप्तो भुजंगमः॥ ५३॥

'दृष्टिमात्रसे संहारकारी विषका प्रसार करनेवाले सर्पकी आँखोंके सामने आकर जैसे कोई मनुष्य जीवित नहीं बच सकता अथवा जैसे विनतानन्दन गरुड़की दृष्टिमें पड़कर कोई महान् सर्प जीवित नहीं बच सकता, उसी प्रकार आज रावण मेरे सामने आकर जीवित या सकुशल नहीं लौट सकता॥५३॥

सुखं पश्यत दुर्धर्षा युद्धं वानरपुङ्गवाः।
आसीनाः पर्वताग्रेषु ममेदं रावणस्य च॥ ५४॥

'दुर्धर्ष वानरशिरोमणियो! अब तुमलोग पर्वतके शिखरोंपर बैठकर मेरे और रावणके इस युद्धको सुखपूर्वक देखो॥ ५४॥

✓ **अद्य पश्यन्तु रामस्य रामत्वं मम संयुगे।**
त्रयो लोकाः सगन्धर्वाः सदेवाः सर्षिचारणाः॥ ५५॥

'आज संग्राममें देवता, गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि और चारणों सहित तीनों लोकोंके प्राणी रामका रामत्व देखें॥ ५५॥

अद्य कर्म करिष्यामि यल्लोकाः सचराचराः।
✓ **सदेवाः कथयिष्यन्ति यावद् भूमिर्धरिष्यति।**
समागम्य सदा लोके यथा युद्धं प्रवर्तितम्॥ ५६॥

'आज मैं वह पराक्रम प्रकट करूँगा, जिसकी जबतक यह पृथ्वी कायम रहेगी, तबतक चराचर जगत्के जीव और देवता भी सदा लोकमें एकत्र होकर चर्चा करेंगे और जिस प्रकार युद्ध हुआ है, उसे एक दूसरेसे कहेंगे'॥ ५६॥

एवमुक्त्वा शितैर्बाणैस्तप्तकाञ्चनभूषणैः।
आजघान रणे रामो दशग्रीवं समाहितः॥ ५७॥

ऐसा कहकर भगवान् श्रीराम सावधान हो अपने सुवर्णभूषित तीखे बाणोंसे रणभूमिमें दशानन रावणको घायल करने लगे॥ ५७॥

तथा प्रदीप्तैर्नाराचैर्मुसलैश्चापि रावणः।
अभ्यवर्षत् तदा रामं धाराभिरिव तोयदः॥ ५८॥

इसी प्रकार जैसे मेघ जलकी धारा गिराता है; उसी तरह रावण भी श्रीरामपर चमकीले नाराचों और मूसलोंकी वर्षा करने लगा॥ ५८॥

रामरावणमुक्तानामन्योन्यमभिनिघ्नताम्।
शराणां च शराणां च बभूव तुमुलः स्वनः॥ ५९॥

एक दूसरेपर चोट करते हुए राम और रावणके छोड़े हुए श्रेष्ठ बाणोंके परस्पर टकरानेसे बड़ा भयंकर शब्द प्रकट होता था॥ ५९॥

विच्छिन्नाश्च विकीर्णाश्च रामरावणयोः शराः।
अन्तरिक्षात् प्रदीप्ताग्रा निपेतुर्धरणीतले॥ ६०॥

श्रीराम और रावणके बाण परस्पर छिन्न-भिन्न होकर आकाशसे पृथ्वीपर गिर पड़ते थे। उस समय उनके अग्रभाग बड़े उद्दीप्त दिखायी देते थे॥ ६०॥

तयोर्ज्यातलनिर्घोषो रामरावणयोर्महान्।
त्रासनः सर्वभूतानां बभूवाद्भुतोपमः॥ ६१॥

राम और रावणके धनुषकी प्रत्यञ्चासे प्रकट हुई महान् टंकारध्वनि समस्त प्राणियोंके मनमें त्रास उत्पन्न कर देती थी और बड़ी अद्भुत प्रतीत होती थी॥ ६१॥

✓ **स कीर्यमाणः शरजालवृष्टिभि-**
र्महात्मना दीप्तधनुष्मतार्दितः।
✓ **भयात् प्रदुद्राव समेत्य रावणो**
यथानिलेनाभिहतो बलाहकः॥ ६२॥

जैसे वायुके थपेड़े खाकर मेघ छिन्न-भिन्न हो जाता है, उसी प्रकार दीप्तिमान् धनुष धारण करनेवाले महात्मा श्रीरामके बाण-समूहोंकी वर्षासे आहत एवं पीड़ित हुआ रावण भयके मारे वहाँसे भाग गया॥ ६२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे शततमः सर्गः॥ १००॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें सौवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १००॥

एकाधिकशततमः सर्गः

श्रीरामका विलाप तथा हनुमान्जीकी लायी हुई ओषधिके सुषेणद्वारा किये गये प्रयोगसे लक्ष्मणका सचेत हो उठना

शक्त्या निपातितं दृष्ट्वा रावणेन बलीयसा।
लक्ष्मणं समरे शूरं शोणितौघपरिप्लुतम्॥ १॥
स दत्त्वा तुमुलं युद्धं रावणस्य दुरात्मनः।
विसृजन्नेव बाणौघान् सुषेणमिदमब्रवीत्॥ २॥

महाबली रावणने शूरवीर लक्ष्मणको अपनी शक्तिसे युद्धमें धराशायी कर दिया था। वे रक्तके प्रवाहसे नहा उठे थे। यह देख भगवान् श्रीरामने दुरात्मा रावणके साथ घोर युद्ध करके बाण-समूहोंकी वर्षा करते हुए ही सुषेणसे इस प्रकार कहा—॥ १-२॥

एष रावणवीर्येण लक्ष्मणः पतितो भुवि।
सर्पवच्चेष्टते वीरो मम शोकमुदीरयन्॥ ३॥

'ये वीर लक्ष्मण रावणके पराक्रमसे घायल होकर पृथ्वीपर

पडे हैं और चोट खाये हुए सर्पकी भाँति छटपटा रहे हैं। इस अवस्थामें इन्हें देखकर मेरा शोक बढ़ता जा रहा है॥३॥

शोणितार्द्रमिमं वीरं प्राणैः प्रियतरं मम।
पश्यतो मम का शक्तिर्योद्धुं पर्याकुलात्मनः॥ ४॥

'ये वीर सुमित्राकुमार मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं, इन्हें लहूलुहान देखकर मेरा मन व्याकुल हो रहा है, ऐसी दशामें मुझमें युद्ध करनेकी शक्ति क्या होगी?॥ ४॥

अयं स समरश्लाघी भ्राता मे शुभलक्षणः।
यदि पञ्चत्वमापन्नः प्राणैर्मे किं सुखेन वा॥ ५॥

'ये मेरे शुभलक्षण भाई, जो सदा युद्धका हौसला रखते थे, यदि मर गये तो मुझे इन प्राणोंके रखने और सुख भोगनेसे क्या प्रयोजन है?॥ ५॥

लज्जतीव हि मे वीर्यं भ्रश्यतीव कराद् धनुः।
सायका व्यवसीदन्ति दृष्टिर्बाष्पवशं गता॥ ६॥

'इस समय मेरा पराक्रम लज्जित-सा हो रहा है, हाथसे धनुष खसकता-सा जा रहा है, मेरे सायक शिथिल हो रहे हैं और नेत्रोंमें आँसू भर आये हैं॥ ६॥

अवसीदन्ति गात्राणि स्वप्नयाने नृणामिव।
चिन्ता मे वर्धते तीव्रा मुमूर्षापि च जायते॥ ७॥
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा रावणेन दुरात्मना।
विष्टनन्तं तु दुःखार्तं मर्मण्यभिहतं भृशम्॥ ८॥

'जैसे स्वप्नमें मनुष्योंके शरीर शिथिल हो जाते हैं, वही दशा मेरे इन अङ्गोंकी है। मेरी तीव्र चिन्ता बढ़ती जा रही है और दुरात्मा रावणके द्वारा घायल होकर मार्मिक आघातसे अत्यन्त पीड़ित एवं दुःखातुर हुए भाई लक्ष्मणको कराहते देख मुझे मर जानेकी इच्छा हो रही है'॥ ७-८॥

राघवो भ्रातरं दृष्ट्वा प्रियं प्राणं बहिश्चरम्।
दुःखेन महताविष्टो ध्यानशोकपरायणः॥ ९॥

श्रीरघुनाथजी बाहर विचरनेवाले प्राणोंके समान प्रिय भाई लक्ष्मणको इस अवस्थामें देख महान् दुःखसे व्याकुल हो गये, चिन्ता और शोकमें डूब गये॥ ९॥

परं विषादमापन्नो विललापाकुलेन्द्रियः।
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा लक्ष्मणं रणपांसुषु॥ १०॥

उनके मनमें बड़ा विषाद हुआ। इन्द्रियोंमें व्याकुलता छा गयी और वे रणभूमिकी धूलमें घायल होकर पड़े हुए भाई लक्ष्मणकी ओर देखकर विलाप करने लगे—॥ १०॥

विजयोऽपि हि मे शूर न प्रियायोपकल्पते।
अचक्षुर्विषयश्चन्द्रः कां प्रीतिं जनयिष्यति॥ ११॥

'शूरवीर! अब संग्राममें विजय भी मिल जाय तो मुझे प्रसन्नता नहीं होगी। अन्धेके सामने चन्द्रमा अपनी चाँदनी बिखेर दें तो भी वे उसके मनमें कौन-सा आह्लाद पैदा कर सकेंगे?॥ ११॥

किं मे युद्धेन किं प्राणैर्युद्धकार्यं न विद्यते।
यत्रायं निहतः शेते रणमूर्धनि लक्ष्मणः॥ १२॥

'अब इस युद्धसे अथवा प्राणोंकी रक्षासे मुझे क्या प्रयोजन है? अब लड़ने-भिड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जब संग्रामके मुहानेपर मारे जाकर लक्ष्मण ही सदाके लिये सो गये, तब युद्ध जीतनेसे क्या लाभ है?॥ १२॥

यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युतिः।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्॥ १३॥

'वनमें आते समय जैसे महातेजस्वी लक्ष्मण मेरे पीछे-पीछे चले आये थे, उसी तरह यमलोकमें जाते समय मैं भी इनके पीछे-पीछे जाऊँगा॥ १३॥

इष्टबन्धुजनो नित्यं मां स नित्यमनुव्रतः।
इमामवस्थां गमितो राक्षसैः कूटयोधिभिः॥ १४॥

'हाय! जो सदा मुझमें अनुराग रखनेवाले मेरे प्रिय बन्धुजन थे, छलसे युद्ध करनेवाले निशाचरोंने आज उनकी यह दशा कर दी॥ १४॥

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः॥ १५॥

'प्रत्येक देशमें स्त्रियाँ मिल सकती हैं, देश-देशमें जाति-भाई उपलब्ध हो सकते हैं; परंतु ऐसा कोई देश मुझे नहीं दिखायी देता, जहाँ सहोदर भाई मिल सके॥ १५॥

किं नु राज्येन दुर्धर्षलक्ष्मणेन विना मम।
कथं वक्ष्याम्यहं त्वम्बां सुमित्रां पुत्रवत्सलाम्॥ १६॥

'दुर्धर्ष वीर लक्ष्मणके बिना मैं राज्य लेकर क्या करूँगा? पुत्रवत्सला माता सुमित्रासे किस तरह बात कर सकूँगा?॥१६॥

उपालम्भं न शक्ष्यामि सोढुं दत्तं सुमित्रया।
किं नु वक्ष्यामि कौसल्यां मातरं किं नु कैकयीम्॥१७॥

'माता सुमित्राके दिये हुए उलाहनेको कैसे सह सकूँगा? माता कौसल्या और कैकेयीको क्या जवाब दूँगा?॥ १७॥

भरतं किं नु वक्ष्यामि शत्रुघ्नं च महाबलम्।
सह तेन वनं यातो विना तेनागतः कथम्॥ १८॥

'भरत और महाबली शत्रुघ्न जब पूछेंगे कि आप लक्ष्मणके साथ वनमें गये थे, फिर उनके बिना ही कैसे लौट आये तो उन्हें मैं क्या उत्तर दूँगा?॥ १८॥

इहैव मरणं श्रेयो न तु बन्धुविगर्हणम्।
किं मया दुष्कृतं कर्म कृतमन्यत्र जन्मनि॥ १९॥
येन मे धार्मिको भ्राता निहतश्चाग्रतः स्थितः।

'अतः मेरे लिये यहीं मर जाना अच्छा है। भाई-बन्धुओंमें जाकर उनकी कही हुई खोटी-खरी बातें सुनना

अच्छा नहीं। मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा अपराध किया था, जिसके कारण मेरे सामने खड़ा हुआ मेरा धर्मात्मा भाई मारा गया॥ १९½॥

हा भ्रातर्मनुजश्रेष्ठ शूराणां प्रवर प्रभो॥ २०॥
एकाकी किं नु मां त्यक्त्वा परलोकाय गच्छसि।

'हा भाई नरश्रेष्ठ लक्ष्मण! हा प्रभावशाली शूरप्रवर! तुम मुझे छोड़कर अकेले क्यों परलोकमें जा रहे हो?॥ २०½॥

विलपन्तं च मां भ्रातः किमर्थं नावभाषसे॥ २१॥
उत्तिष्ठ पश्य किं शेषे दीनं मां पश्य चक्षुषा।

'भैया! मैं तुम्हारे बिना रो रहा हूँ। तुम मुझसे बोलते क्यों नहीं हो? प्रिय बन्धु! उठो। आँख खोलकर देखो। क्यों सो रहे हो? मैं बहुत दुखी हूँ। मुझपर दृष्टिपात करो॥

शोकार्तस्य प्रमत्तस्य पर्वतेषु वनेषु च॥ २२॥
विषण्णस्य महाबाहो समाश्वासयिता मम।

'महाबाहो! पर्वतों और वनोंमें जब मैं शोकसे पीड़ित हो प्रमत्त एवं विषादग्रस्त हो जाता था, तब तुम्हीं मुझे धैर्य बँधाते थे (फिर इस समय मुझे क्यों नहीं सान्त्वना देते हो?)'॥ २२½॥

राममेवं ब्रुवाणं तु शोकव्याकुलितेन्द्रियम्॥ २३॥
आश्वासयन्नुवाचेदं सुषेणः परमं वचः।

इस तरह विलाप करते हुए भगवान् श्रीरामकी सारी इन्द्रियाँ शोकसे व्याकुल हो उठी थीं। उस समय सुषेणने उन्हें आश्वासन देते हुए यह उत्तम बात कही—॥ २३½॥

त्यजेमां नरशार्दूल बुद्धिं वैक्लव्यकारिणीम्॥ २४॥
शोकसंजननीं चिन्तां तुल्यां बाणैश्चमूमुखे।

'पुरुषसिंह! व्याकुलता उत्पन्न करनेवाली इस चिन्तायुक्त बुद्धिका परित्याग कीजिये; क्योंकि युद्धके मुहानेपर की हुई चिन्ता बाणोंके समान होती है और केवल शोकको जन्म देती है॥ २४½॥

नैव पञ्चत्वमापन्नो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः॥ २५॥
न ह्यस्य विकृतं वक्त्रं न च श्यामत्वमागतम्।
सुप्रभं च प्रसन्नं च मुखमस्य निरीक्ष्यताम्॥ २६॥

'आपके भाई शोभावर्द्धक लक्ष्मण मरे नहीं हैं। देखिये, इनके मुखकी आकृति अभी बिगड़ी नहीं है और न इनके चेहरेपर कालापन ही आया है। इनका मुख प्रसन्न एवं कान्तिमान् दिखायी दे रहा है॥ २५-२६॥

पद्मपत्रतलौ हस्तौ सुप्रसन्ने च लोचने।
नेदृशं दृश्यते रूपं गतासूनां विशां पते॥ २७॥

'इनके हाथोंकी हथेलियाँ कमल-जैसी कोमल हैं, आँखें भी बहुत साफ हैं। प्रजानाथ! मरे हुए प्राणियोंका ऐसा रूप नहीं देखा जाता है॥ २७॥

विषादं मा कृथा वीर सप्राणोऽयमरिंदम।
आख्याति तु प्रसुप्तस्य स्रस्तगात्रस्य भूतले॥ २८॥
सोच्छ्वासं हृदयं वीर कम्पमानं मुहुर्मुहुः।

'शत्रुओंका दमन करनेवाले वीर! आप विषाद न करें। इनके शरीरमें प्राण हैं। वीर! ये सो गये हैं। इनका शरीर शिथिल होकर भूतलपर पड़ा है। साँस चल रही है और हृदय बारंबार कम्पित हो रहा है—उसकी गति बंद नहीं हुई है। यह लक्षण इनके जीवित होनेकी सूचना दे रहा है'॥ २८½॥

एवमुक्त्वा महाप्राज्ञः सुषेणो राघवं वचः॥ २९॥
समीपस्थमुवाचेदं हनूमन्तं महाकपिम्।

श्रीरामचन्द्रजीसे ऐसा कहकर परम बुद्धिमान् सुषेणने पास ही खड़े हुए महाकपि हनुमान्‌जीसे कहा—॥ २९½॥

सौम्य शीघ्रमितो गत्वा पर्वतं हि महोदयम्॥ ३०॥
पूर्वं तु कथितो योऽसौ वीर जाम्बवता तव।
दक्षिणे शिखरे जातां महौषधिमिहानय॥ ३१॥
विशल्यकरणीं नाम्ना सावर्ण्यकरणीं तथा।
संजीवकरणीं वीर संधानीं च महौषधीम्॥ ३२॥
संजीवनार्थं वीरस्य लक्ष्मणस्य त्वमानय।

'सौम्य! तुम शीघ्र ही यहाँसे महोदय पर्वतपर, जिसका पता जाम्बवान् तुम्हें पहले बता चुके हैं, जाओ और उसके दक्षिण शिखरपर उगी हुई विशल्यकरणी[1], सौवर्ण्यकरणी[2], संजीवकरणी[3] तथा संधानी[4] नामसे प्रसिद्ध महौषधियोंको यहाँ ले आओ। वीर! उन्हींसे वीरवर लक्ष्मणके जीवनकी रक्षा होगी'॥

इत्येवमुक्तो हनुमान् गत्वा चौषधिपर्वतम्।
चिन्तामभ्यगमच्छ्रीमानजानंस्ता महौषधीः॥ ३३॥

उनके ऐसा कहनेपर हनुमान्‌जी ओषधिपर्वत (महोदयगिरि) पर गये; परंतु उन महौषधियोंको न पहचाननेके कारण वे चिन्तामें पड़ गये॥ ३३॥

तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना मारुतेरमितौजसः।
इदमेव गमिष्यामि गृहीत्वा शिखरं गिरेः॥ ३४॥

इसी समय अमित तेजस्वी हनुमान्‌जीके हृदयमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि 'मैं पर्वतके इस शिखरको ही ले चलूँ'॥ ३४॥

अस्मिंस्तु शिखरे जातामोषधीं तां सुखावहाम्।
प्रतर्केणावगच्छामि सुषेणो ह्येवमब्रवीत्॥ ३५॥

'इसी शिखरपर वह सुखदायिनी ओषधि उत्पन्न होती होगी, ऐसा मुझे अनुमानतः ज्ञात होता है; क्योंकि सुषेणने ऐसा ही कहा था॥ ३५॥

---

[1] शरीरमें धँसे हुए बाण आदिको निकालकर घाव भरने और पीड़ा दूर करनेवाली। [2] शरीरमें पहलेकी-सी रंगत लानेवाली। [3] मूर्छा दूर कर चेतना प्रदान करनेवाली। [4] टूटी हुई हड्डियोंको जोड़नेवाली।

अगृह्य यदि गच्छामि विशल्यकरणीमहम् ।
कालात्ययेन दोषः स्याद् वैक्लव्यं च महद् भवेत् ॥ ३६ ॥

'यदि विशल्यकरणीको लिये बिना ही लौट जाऊँ तो अधिक समय बीतनेसे दोषकी सम्भावना है और उससे बड़ी भारी घबराहट हो सकती है' ॥ ३६ ॥

इति संचिन्त्य हनुमान् गत्वा क्षिप्रं महाबलः ।
आसाद्य पर्वतश्रेष्ठं त्रिः प्रकम्प्य गिरेः शिरः ॥ ३७ ॥
फुल्लनानातरुगणं समुत्पाट्य महाबलः ।
गृहीत्वा हरिशार्दूलो हस्ताभ्यां समतोलयत् ॥ ३८ ॥

ऐसा सोचकर महाबली हनुमान् तुरंत उस श्रेष्ठ पर्वतके पास जा पहुँचे और उसके शिखरको तीन बार हिलाकर उसे उखाड़ लिया । उसके ऊपर नाना प्रकारके वृक्ष खिले हुए थे । वानरश्रेष्ठ महाबली हनुमान्‌ने उसे दोनों हाथोंपर उठाकर तौला ॥ ३७-३८ ॥

स नीलमिव जीमूतं तोयपूर्णं नभस्तलात् ।
उत्पपात गृहीत्वा तु हनूमाञ्शिखरं गिरेः ॥ ३९ ॥

जलसे भरे हुए नीले मेघके समान उस पर्वतशिखरको लेकर हनुमान्‌जी ऊपरको उछले ॥ ३९ ॥

समागम्य महावेगः संन्यस्य शिखरं गिरेः ।
विश्रम्य किंचिद्धनुमान् सुषेणमिदमब्रवीत् ॥ ४० ॥

उनका वेग महान् था । उस शिखरको सुषेणके पास पहुँचाकर उन्होंने पृथ्वीपर रख दिया और थोड़ी देर विश्राम करके हनुमान्‌जीने सुषेणसे इस प्रकार कहा— ॥ ४० ॥

औषधीर्नावगच्छामि ता अहं हरिपुङ्गव ।
तदिदं शिखरं कृत्स्नं गिरेस्तस्याहृतं मया ॥ ४१ ॥

'कपिश्रेष्ठ ! मैं उन ओषधियोंको पहचानता नहीं हूँ । इसलिये उस पर्वतका सारा शिखर ही लेता आया हूँ' ॥ ४१ ॥

एवं कथयमानं तु प्रशस्य पवनात्मजम् ।
सुषेणो वानरश्रेष्ठो जग्राहोत्पाट्य चौषधीः ॥ ४२ ॥

ऐसा कहते हुए हनुमान्‌जीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करके वानरश्रेष्ठ सुषेणने उन ओषधियोंको उखाड़ लिया ॥ ४२ ॥

विस्मितास्तु बभूवुस्ते सर्वे वानरपुङ्गवाः ।
दृष्ट्वा तु हनुमत्कर्म सुरैरपि सुदुष्करम् ॥ ४३ ॥

हनुमान्‌जीका वह कर्म देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुष्कर था । उसे देखकर समस्त वानरयूथपति बड़े विस्मित हुए ॥ ४३ ॥

ततः संक्षोदयित्वा तामोषधीं वानरोत्तमः ।
लक्ष्मणस्य ददौ नस्तः सुषेणः सुमहाद्युतिः ॥ ४४ ॥

महातेजस्वी कपिश्रेष्ठ सुषेणने उस ओषधिको कूट-पीसकर लक्ष्मणजीकी नाकमें दे दिया ॥ ४४ ॥

सशल्यः स समाघ्राय लक्ष्मणः परवीरहा ।
विशल्यो विरुजः शीघ्रमुदतिष्ठन्महीतलात् ॥ ४५ ॥

शत्रुका संहार करनेवाले लक्ष्मणके सारे शरीरमें बाण धँसे हुए थे । उस अवस्थामें उस ओषधिको सूँघते ही उनके शरीरसे बाण निकल गये और वे नीरोग हो शीघ्र ही भूतलसे उठकर खड़े हो गये ॥ ४५ ॥

तमुत्थितं तु हरयो भूतलात् प्रेक्ष्य लक्ष्मणम् ।
साधुसाध्विति सुप्रीता लक्ष्मणं प्रत्यपूजयन् ॥ ४६ ॥

लक्ष्मणको भूतलसे उठकर खड़ा हुआ देख वे वानर अत्यन्त प्रसन्न हो 'साधु-साधु' कहकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ ४६ ॥

एह्येहीत्यब्रवीद् रामो लक्ष्मणं परवीरहा ।
सस्वजे गाढमालिङ्‌ग्य बाष्पपर्याकुलेक्षणः ॥ ४७ ॥

तब शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'आओ-आओ' ऐसा कहकर उन्होंने उन्हें दोनों भुजाओंमें भर लिया और गाढ़ आलिंगन करके हृदयसे लगा लिया । उस समय उनके नेत्रोंमें आँसू छलक रहे थे ॥ ४७ ॥

अब्रवीच्च परिष्वज्य सौमित्रिं राघवस्तदा ।
दिष्ट्या त्वां वीर पश्यामि मरणात् पुनरागतम् ॥ ४८ ॥

सुमित्राकुमारको हृदयसे लगाकर श्रीरघुनाथजीने कहा—'वीर ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि मैं तुम्हें मृत्युके मुखसे पुनः लौटा हुआ देखता हूँ ॥ ४८ ॥

नहि मे जीवितेनार्थः सीतया च जयेन वा ।
को हि मे जीवितेनार्थस्त्वयि पञ्चत्वमागते ॥ ४९ ॥

'तुम्हारे बिना मुझे जीवनकी रक्षासे, सीतासे अथवा विजयसे भी कोई मतलब नहीं है । जब तुम्हीं नहीं रहोगे, तब मैं इस जीवनको रखकर क्या करूँगा ?' ॥ ४९ ॥

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य राघवस्य महात्मनः ।
खिन्नः शिथिलया वाचा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५० ॥

महात्मा रघुनाथजीके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण खिन्न हो शिथिल वाणीमें धीरे-धीरे बोले— ॥ ५० ॥

तां प्रतिज्ञां प्रतिज्ञाय पुरा सत्यपराक्रम ।
लघुः कश्चिदिवासत्त्वो नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ५१ ॥

'आर्य ! आप सत्यपराक्रमी हैं । आपने पहले रावणका वध करके विभीषणको लङ्काका राज्य देनेकी प्रतिज्ञा की थी । वैसी प्रतिज्ञा करके अब किसी ओछे और निर्बल मनुष्यकी भाँति आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये ॥ ५१ ॥

नहि प्रतिज्ञां कुर्वन्ति वितथां सत्यवादिनः ।
लक्षणं हि महत्त्वस्य प्रतिज्ञापरिपालनम् ॥ ५२ ॥
नैराश्यमुपगन्तुं च नालं ते मत्कृतेऽनघ ।
वधेन रावणस्याद्य प्रतिज्ञामनुपालय ॥ ५३ ॥

'सत्यवादी पुरुष झूठी प्रतिज्ञा नहीं करते हैं । प्रतिज्ञाका

पालन ही बड़प्पनका लक्षण है । निष्पाप रघुवीर ! मेरे लिये आपको इतना निराश नहीं होना चाहिये । आज रावणका वध करके आप अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिये ॥ ५२-५३॥

न जीवन् यास्यते शत्रुस्तव बाणपथं गतः ।
नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्य सिंहस्येव महागजः ॥ ५४ ॥

'आपके बाणोंका लक्ष्य बनकर शत्रु जीवित नहीं लौट सकता । ठीक उसी तरह, जैसे गरजते हुए तीखी दाढ़वाले सिंहके सामने आकर महान् गजराज जीवित नहीं रह सकता ॥ ५४ ॥

✓**अहं तु वधमिच्छामि शीघ्रमस्य दुरात्मनः ।**
यावदस्तं न यात्येष कृतकर्मा दिवाकरः ॥ ५५ ॥

'ये सूर्यदेव अपने दिनभरका भ्रमणकार्य पूरा करके अस्ताचलको नहीं चले जाते, तबतक ही जितना शीघ्र सम्भव हो सके, मैं उस दुरात्मा रावणका वध देखना चाहता हूँ ॥५५॥

✓**यदि वधमिच्छसि रावणस्य संख्ये**
यदि च कृतां हि तवेच्छसि प्रतिज्ञाम् ।
यदि तव राजसुताभिलाष आर्य
कुरु च वचो मम शीघ्रमद्य वीर ॥५६॥

'आर्य ! वीरवर ! यदि आप युद्धमें रावणका वध करना चाहते हैं, यदि आपके मनमें अपनी प्रतिज्ञाको पूरी करनेकी इच्छा है तथा आप राजकुमारी सीताको पानेकी अभिलाषा रखते हैं तो आज शीघ्र ही रावणको मारकर मेरी प्रार्थना सफल करें' ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ एकवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमः सर्गः

इन्द्रके भेजे हुए रथपर बैठकर श्रीरामका रावणके साथ युद्ध करना

लक्ष्मणेन तु तद् वाक्यमुक्तं श्रुत्वा स राघवः ।
संदधे परवीरघ्नो धनुरादाय वीर्यवान् ॥ १ ॥

लक्ष्मणकी कही हुई उस बातको सुनकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले पराक्रमी श्रीरामने धनुष लेकर उसपर बाणोंका संधान किया ॥ १ ॥

रावणाय शरान् घोरान् विससर्ज चमूमुखे ।
अथान्यं रथमास्थाय रावणो राक्षसाधिपः ॥ २ ॥
अभ्यधावत काकुत्स्थं स्वर्भानुरिव भास्करम् ।

उन्होंने सेनाके मुहानेपर रावणको लक्ष्य करके उन भयंकर बाणोंको छोड़ना आरम्भ किया । इतनेमें राक्षसराज रावण भी दूसरे रथपर सवार हो श्रीरामपर उसी तरह चढ़ आया, जैसे राहु सूर्यपर आक्रमण करता है ॥ २½ ॥

दशग्रीवो रथस्थस्तु रामं वज्रोपमैः शरैः ।
आजघान महाशैलं धाराभिरिव तोयदः ॥ ३ ॥

दशमुख रावण रथपर बैठा हुआ था । वह अपने वज्रोपम बाणोंद्वारा श्रीरामको उसी तरह बींधने लगा, जैसे मेघ किसी महान् पर्वतपर जलकी धारावाहिक वृष्टि करता है ॥

दीप्तपावकसंकाशैः शरैः काञ्चनभूषणैः ।
अभ्यवर्षद् रणे रामो दशग्रीवं समाहितः ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजी भी एकाग्रचित्त हो रणभूमिमें दशमुख रावणपर प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी सुवर्णभूषित बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४ ॥

✓**भूमौ स्थितस्य रामस्य रथस्थस्य स रक्षसः ।**
न समं युद्धमित्याहुर्देवगन्धर्वकिंनराः ॥ ५ ॥

'श्रीरघुनाथजी भूमिपर खड़े हैं और वह राक्षस रथपर बैठा हुआ है, ऐसी दशामें इन दोनोंका युद्ध बराबर नहीं है' वहाँ आकाशमें खड़े हुए देवता, गन्धर्व और किंनर इस तरहकी बातें करने लगे ॥ ५ ॥

ततो देववरः श्रीमाञ्श्रुत्वा तेषां वचोऽमृतम् ।
आहूय मातलिं शक्रो वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ६ ॥

उनकी ये अमृतके समान मधुर बातें सुनकर तेजस्वी देवराज इन्द्रने मातलिको बुलाकर कहा—॥ ६ ॥

रथेन मम भूमिष्ठं शीघ्रं याहि रघूत्तमम् ।
आहूय भूतलं यातः कुरु देवहितं महत् ॥ ७ ॥

'सारथे ! रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजी भूमिपर खड़े हैं । मेरा रथ लेकर तुम शीघ्र उनके पास जाओ । भूतलपर पहुँचकर श्रीरामको पुकारकर कहो—'यह रथ देवराजने आपकी सेवामें भेजा है ।' इस तरह उन्हें रथपर बिठाकर तुम देवताओंके महान् हितका कार्य सिद्ध करो' ॥ ७ ॥

इत्युक्तो देवराजेन मातलिर्देवसारथिः ।
प्रणम्य शिरसा देवं ततो वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥

देवराजके इस प्रकार कहनेपर देव-सारथि मातलिने उन्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और यह बात कही—॥ ८ ॥

शीघ्रं यास्यामि देवेन्द्र सारथ्यं च करोम्यहम् ।
ततो हयैश्च संयोज्य हरितैः स्यन्दनोत्तमम् ॥ ९ ॥

'देवेन्द्र ! मैं शीघ्र ही आपके उत्तम रथमें हरे रंगके घोड़े जोतकर उसे साथ लिये जाऊँगा और श्रीरघुनाथजीके सारथिका कार्य भी करूँगा' ॥ ९ ॥

ततः काञ्चनचित्राङ्गः किङ्किणीशतभूषितः ।
तरुणादित्यसंकाशो वैदूर्यमयकूबरः ।
सदश्वैः काञ्चनापीडैर्युक्तः श्वेतप्रकीर्णकैः ॥ १० ॥
हरिभिः सूर्यसंकाशैर्हेमजालविभूषितैः ।
रुक्मवेणुध्वजः श्रीमान् देवराजरथो वरः ॥ ११ ॥
देवराजेन संदिष्टो रथमारुह्य मातलिः ।
अभ्यवर्तत काकुत्स्थमवतीर्य त्रिविष्टपात् ॥ १२ ॥

तदनन्तर देवराज इन्द्रका जो शोभाशाली श्रेष्ठ रथ है, जिसके सभी अवयव सुवर्णमय होनेके कारण विचित्र शोभा धारण करते हैं, जिसे सैकड़ों घुँघुरुओंसे विभूषित किया गया है, जिसकी कान्ति प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुण है, जिसके कूबरमें वैदूर्यमणि (नीलम) जड़ी गयी है, जिसमें सूर्यतुल्य तेजस्वी, हरे रंगवाले, सुवर्णजालसे विभूषित तथा सोनेके साज-बाजसे सजे हुए अच्छे घोड़े जुते हैं और उन घोड़ोंको श्वेत चँवर आदिसे अलंकृत किया गया है तथा जिसके ध्वजका दण्ड सोनेका बना हुआ है, उस रथपर आरूढ़ हो मातलि देवराजका संदेश ले स्वर्गसे भूतलपर उतरकर श्रीरामचन्द्रजीके सामने खड़ा हुआ ॥ १०-१२ ॥

अब्रवीच्च तदा रामं सप्रतोदो रथे स्थितः ।
प्राञ्जलिर्मातलिर्वाक्यं सहस्राक्षस्य सारथिः ॥ १३ ॥

सहस्रलोचन इन्द्रका सारथि मातलि चाबुक लिये रथपर बैठा हुआ हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रजीसे बोला—॥ १३ ॥

सहस्राक्षेण काकुत्स्थ रथोऽयं विजयाय ते ।
दत्तस्तव महासत्त्व श्रीमञ्शत्रुनिबर्हण ॥ १४ ॥

'महाबली शत्रुसूदन श्रीमान् रघुवीर ! सहस्र नेत्रधारी देवराज इन्द्रने विजयके लिये आपको यह रथ समर्पित किया है ॥ १४ ॥

इदमैन्द्रं महच्चापं कवचं चाग्निसंनिभम् ।
शराश्चादित्यसंकाशाः शक्तिश्च विमला शिवा ॥ १५ ॥

'यह इन्द्रका विशाल धनुष है। यह अग्निके समान तेजस्वी कवच है। ये सूर्यसदृश प्रकाशमान बाण हैं तथा यह कल्याणमयी निर्मल शक्ति है ॥ १५ ॥

आरुह्येमं रथं वीर राक्षसं जहि रावणम् ।
मया सारथिना देव महेन्द्र इव दानवान् ॥ १६ ॥

'वीरवर महाराज ! आप इस रथपर आरूढ़ हो मुझ सारथिकी सहायतासे राक्षसराज रावणका उसी तरह वध कीजिये, जैसे महेन्द्र दानवोंका संहार करते हैं' ॥ १६ ॥

इत्युक्तः सम्परिक्रम्य रथं तमभिवाद्य च ।
आरुरोह तदा रामो लोकाँल्लक्ष्म्या विराजयन् ॥ १७ ॥

मातलिके ऐसा कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उस रथकी परिक्रमा की और उसे प्रणाम करके वे उसपर सवार हुए। उस समय अपनी शोभासे वे समस्त लोकोंको प्रकाशित करने लगे ॥ १७ ॥

तद् बभौ चाद्भुतं युद्धं द्वैरथं रोमहर्षणम् ।
रामस्य च महाबाहो रावणस्य च रक्षसः ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् महाबाहु श्रीराम और राक्षस रावणमें द्वैरथ युद्ध प्रारम्भ हुआ, जो बड़ा ही अद्‌भुत और रोंगटे खड़े कर देनेवाला था ॥ १८ ॥

स गान्धर्वेण गान्धर्वं दैवं दैवेन राघवः ।
अस्त्रं राक्षसराजस्य जघान परमास्त्रवित् ॥ १९ ॥

श्रीरामचन्द्रजी उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता थे। उन्होंने राक्षसराजके चलाये हुए गान्धर्व-अस्त्रको गान्धर्व-अस्त्रसे और दैव-अस्त्रको दैव-अस्त्रसे नष्ट कर दिया ॥ १९ ॥

अस्त्रं तु परमं घोरं राक्षसं राक्षसाधिपः ।
ससर्ज परमक्रुद्धः पुनरेव निशाचरः ॥ २० ॥

तब राक्षसोंके राजा निशाचर रावणने अत्यन्त कुपित हो पुनः परम भयानक राक्षसास्त्रका प्रयोग किया ॥ २० ॥

ते रावणधनुर्मुक्ताः शराः काञ्चनभूषणाः ।
अभ्यवर्तन्त काकुत्स्थं सर्पा भूत्वा महाविषाः ॥ २१ ॥

फिर तो रावणके धनुषसे छूटे हुए सुवर्णभूषित बाण महाविषैले सर्प हो-होकर श्रीरामचन्द्रजीके निकट पहुँचने लगे ॥

ते दीप्तवदना दीप्तं वमन्तो ज्वलनं मुखैः ।
राममेवाभ्यवर्तन्त व्यादितास्या भयानकाः ॥ २२ ॥

उन सर्पोंके मुख आगके समान प्रज्वलित होते थे। वे अपने मुखोंसे जलती आग उगल रहे थे और मुँह फैलाये होनेके कारण बड़े भयंकर दिखायी देते थे। वे सब-के-सब श्रीरामके ही सामने आने लगे ॥ २२ ॥

तैर्वासुकिसमस्पर्शैर्दीप्तभोगैर्महाविषैः ।
दिशश्च संतताः सर्वा विदिशश्च समावृताः ॥ २३ ॥

उनका स्पर्श वासुकि नागके समान असह्य था। उनके फन प्रज्वलित हो रहे थे और वे महान् विषसे भरे थे। उन सर्पाकार बाणोंसे व्याप्त होकर सम्पूर्ण दिशाएँ और विदिशाएँ आच्छादित हो गयीं ॥ २३ ॥

तान् दृष्ट्वा पन्नगान् रामः समापतत आहवे ।
अस्त्रं गारुत्मतं घोरं प्रादुश्चक्रे भयावहम् ॥ २४ ॥

युद्धस्थलमें उन सर्पोंको आते देख भगवान् श्रीरामने अत्यन्त भयंकर गारुडास्त्रको प्रकट किया ॥ २४ ॥

ते राघवधनुर्मुक्ता रुक्मपुङ्खाः शिखिप्रभाः ।
सुपर्णाः काञ्चना भूत्वा विचेरुः सर्पशत्रवः ॥ २५ ॥

फिर तो श्रीरघुनाथजीके धनुषसे छूटे हुए सुनहरे पंखवाले अग्नितुल्य तेजस्वी बाण सर्पोंके शत्रुभूत सुवर्णमय गरुड़ बनकर सब ओर विचरने लगे ॥ २५ ॥

ते तान् सर्वाञ्शराञ्जघ्नुः सर्परूपान् महाजवान् ।
सुपर्णरूपा रामस्य विशिखाः कामरूपिणः ॥ २६ ॥

श्रीरामके इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले उन गरुड़ाकार बाणोंने रावणके महान् वेगशाली उन समस्त सर्पाकार सायकोंका संहार कर डाला ॥ २६ ॥

अस्त्रे प्रतिहते क्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ।
अभ्यवर्षत् तदा रामं घोराभिः शरवृष्टिभिः ॥ २७ ॥

इस प्रकार अपने अस्त्रके प्रतिहत हो जानेपर राक्षसराज रावण क्रोधसे जल उठा और उस समय श्रीरघुनाथजीपर भयंकर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २७ ॥

ततः शरसहस्रेण राममक्लिष्टकारिणम् ।
अर्दयित्वा शरौघेण मातलिं प्रत्यविध्यत ॥ २८ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामको सहस्रों बाणोंसे पीड़ित करके उसने मातलिको भी अपने बाण-समूहोंसे घायल कर दिया ॥ २८ ॥

चिच्छेद केतुमुद्दिश्य शरेणैकेन रावणः ।
पातयित्वा रथोपस्थे रथात् केतुं च काञ्चनम् ॥ २९ ॥
ऐन्द्रानपि जघानाश्वाञ्शरजालेन रावणः ।

तत्पश्चात् रावणने इन्द्रके रथकी ध्वजाको लक्ष्य करके एक बाण मारा और उससे उस ध्वजको काट डाला । उस कटे हुए सुवर्णमय ध्वजको रथके ऊपरसे उसके निचले भागमें गिराकर रावणने अपने बाणोंके जालसे इन्द्रके घोड़ोंको भी क्षत-विक्षत कर दिया ॥ २९½ ॥

विषेदुर्देवगन्धर्वचारणा दानवैः सह ॥ ३० ॥
राममार्तं तदा दृष्ट्वा सिद्धाश्च परमर्षयः ।
व्यथिता वानरेन्द्राश्च बभूवुः सविभीषणाः ॥ ३१ ॥

यह देख देवता, गन्धर्व, चारण तथा दानव विषादमें डूब गये । श्रीरामको पीड़ित देख सिद्धों और महर्षियोंके मनमें भी बड़ी व्यथा हुई । विभीषणसहित सारे वानर-यूथपति भी बहुत दुखी हो गये ॥ ३०-३१ ॥

रामचन्द्रमसं दृष्ट्वा ग्रस्तं रावणराहुणा ।
प्राजापत्यं च नक्षत्रं रोहिणीं शशिनः प्रियाम् ॥ ३२ ॥
समाक्रम्य बुधस्तस्थौ प्रजानामहितावहः ।

श्रीरामरूपी चन्द्रमाको रावणरूपी राहुसे ग्रस्त हुआ देख बुध नामक ग्रह जिसके देवता प्रजापति हैं, उस चन्द्र-प्रिया रोहिणी नामक नक्षत्रपर आक्रमण करके प्रजावर्गके लिये अहितकारक हो गया ॥ ३२½ ॥

सधूमपरिवृत्तोर्मिः प्रज्वलन्निव सागरः ॥ ३३ ॥
उत्पपात तदा क्रुद्धः स्पृशन्निव दिवाकरम् ।

समुद्र प्रज्वलित-सा होने लगा । उसकी लहरोंसे धूआँ-सा उठने लगा और वह कुपित-सा होकर ऊपरकी ओर इस प्रकार बढ़ने लगा, मानो सूर्यदेवको छू लेना चाहता है ॥

शस्त्रवर्णः सुपरुषो मन्दरश्मिर्दिवाकरः ॥ ३४ ॥
अदृश्यत कबन्धाङ्कः संसक्तो धूमकेतुना ।

सूर्यकी किरणें मन्द हो गयीं । उसकी कान्ति तलवारकी भाँति काली पड़ गयी । वह अत्यन्त प्रखर कबन्धके चिह्नसे युक्त और धूमकेतुनामक उत्पात ग्रहसे संसक्त दिखायी देने लगा ॥ ३४½ ॥

कोसलानां च नक्षत्रं व्यक्तमिन्द्राग्निदैवतम् ॥ ३५ ॥
आहत्याङ्गारकस्तस्थौ विशाखमपि चाम्बरे ।

आकाशमें इक्ष्वाकुवंशियोंके नक्षत्र विशाखापर, जिसके देवता इन्द्र और अग्नि हैं, आक्रमण करके मंगल जा बैठा ॥

दशास्यो विंशतिभुजः प्रगृहीतशरासनः ॥ ३६ ॥
अदृश्यत दशग्रीवो मैनाक इव पर्वतः ।

उस समय दस मस्तक और बीस भुजाओंसे युक्त दशग्रीव रावण हाथोंमें धनुष लिये मैनाक पर्वतके समान दिखायी देता था ॥ ३६½ ॥

निरस्यमानो रामस्तु दशग्रीवेण रक्षसा ॥ ३७ ॥
नाशक्नोदभिसंधातुं सायकान् रणमूर्धनि ।

राक्षस रावणके बाणोंसे बारंबार निरस्त (आहत) होनेके कारण भगवान् श्रीराम युद्धके मुहानेपर अपने सायकोंका संधान नहीं कर पाते थे ॥ ३७½ ॥

स कृत्वा भ्रुकुटिं क्रुद्धः किंचित् संरक्तलोचनः ॥ ३८ ॥
जगाम सुमहाक्रोधं निर्दहन्निव राक्षसान् ।

तदनन्तर श्रीरघुनाथजीने क्रोधका भाव प्रकट किया । उनकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं, नेत्र कुछ-कुछ लाल हो गये और उन्हें ऐसा महान् क्रोध हुआ, जिससे जान पड़ता था कि वे समस्त राक्षसोंको भस्म कर डालेंगे ॥ ३८½ ॥

तस्य क्रुद्धस्य वदनं दृष्ट्वा रामस्य धीमतः ।
सर्वभूतानि वित्रेसुः प्राकम्पत च मेदिनी ॥ ३९ ॥

उस समय कुपित हुए बुद्धिमान् श्रीरामके मुखकी ओर देखकर समस्त प्राणी भयसे थर्रा उठे और पृथ्वी काँपने लगी ॥

सिंहशार्दूलवाञ्छैलः संचचाल चलद्द्रुमः ।
बभूव चापि क्षुभितः समुद्रः सरितां पतिः ॥ ४० ॥

सिंहों और व्याघ्रोंसे भरा हुआ पर्वत हिल गया । उसके ऊपरके वृक्ष झूमने लगे और सरिताओंके स्वामी समुद्रमें ज्वार आ गया ॥ ४० ॥

खराश्च खरनिर्घोषा गगने परुषा घनाः ।
औत्पातिकाश्च नर्दन्तः समन्तात् परिचक्रमुः ॥ ४१ ॥

आकाशमें सब ओर उत्पातसूचक गर्दभाकार प्रचण्ड गर्जना करनेवाले रूखे बादल गर्जते हुए चक्कर लगाने लगे ॥

रामं दृष्ट्वा सुसंक्रुद्धमुत्पातांश्चैव दारुणान् ।
वित्रेसुः सर्वभूतानि रावणस्याभवद् भयम् ॥ ४२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीको अत्यन्त कुपित और दारुण उत्पातोंका प्राकट्य देखकर समस्त प्राणी भयभीत हो गये तथा रावणके भीतर भी भय समा गया ॥ ४२ ॥

विमानस्थास्तदा देवा गन्धर्वाश्च महोरगाः ।
ऋषिदानवदैत्याश्च गरुत्मन्तश्च खेचराः ॥ ४३ ॥
ददृशुस्ते तदा युद्धं लोकसंवर्तसंस्थितम् ।
नानाप्रहरणैर्भीमैः शूरयोः सम्प्रयुध्यतोः ॥ ४४ ॥

उस समय विमानपर बैठे हुए देवता, गन्धर्व, बड़े-बड़े नाग, ऋषि, दानव, दैत्य तथा गरुड़—ये सब आकाशमें स्थित होकर युद्धपरायण शूरवीर श्रीराम और रावणके समस्त लोकोंके प्रलयकी भाँति उपस्थित हुए नाना प्रकारके भयानक प्रहारोंसे युक्त उस युद्धका दृश्य देखने लगे ॥ ४३-४४ ॥

ऊचुः सुरासुराः सर्वे तदा विग्रहमागताः ।
प्रेक्षमाणा महायुद्धं वाक्यं भक्त्या प्रहृष्टवत् ॥ ४५ ॥

उस अवसरपर युद्ध देखनेके लिये आये हुए समस्त देवता और असुर उस महासमरको देखकर भक्तिभावसे हर्षपूर्वक बात करने लगे ॥ ४५ ॥

दशग्रीवं जयेत्याहुरसुराः समवस्थिताः ।
देवा राममथोचुस्ते त्वं जयेति पुनः पुनः ॥ ४६ ॥

वहाँ खड़े हुए असुर दशग्रीवको सम्बोधित करते हुए बोले—'रावण ! तुम्हारी जय हो ।' उधर देवता श्रीरामको पुकारकर बारंबार कहने लगे—'रघुनन्दन ! आपकी जय हो, जय हो' ॥ ४६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रोधाद् राघवस्य च रावणः ।
प्रहर्तुकामो दुष्टात्मा स्पृशन् प्रहरणं महत् ॥ ४७ ॥

इसी समय दुष्टात्मा रावणने क्रोधमें आकर श्रीरामचन्द्रजीपर प्रहार करनेकी इच्छासे एक बहुत बड़ा हथियार उठाया ॥ ४७ ॥

वज्रसारं महानादं सर्वशत्रुनिबर्हणम् ।
शैलशृङ्गनिभैः कूटैश्चित्तदृष्टिभयावहम् ॥ ४८ ॥
सधूममिव तीक्ष्णाग्रं युगान्ताग्निचयोपमम् ।
अतिरौद्रमनासाद्यं कालेनापि दुरासदम् ॥ ४९ ॥

वह वज्रके समान शक्तिशाली, महान् शब्द करनेवाला तथा सम्पूर्ण शत्रुओंका संहारक था । उसकी शिखाएँ शैल-शिखरोंके समान थीं । वह मन और नेत्रोंको भी भयभीत करनेवाला था। उसके अग्रभाग बहुत तीखे थे । वह प्रलयकालकी धूमयुक्त अग्निराशिके समान अत्यन्त भयंकर जान पड़ता था । उसे पाना या नष्ट करना कालके लिये भी कठिन एवं असम्भव था ॥ ४८-४९ ॥

त्रासनं सर्वभूतानां दारणं भेदनं तथा ।
प्रदीप्त इव रोषेण शूलं जग्राह रावणः ॥ ५० ॥

उसका नाम था शूल । वह समस्त भूतोंको छिन्न-भिन्न करके उन्हें भयभीत करनेवाला था । रोषसे उद्दीप्त हुए रावणने उस शूलको हाथमें ले लिया ॥ ५० ॥

तच्छूलं परमक्रुद्धो जग्राह युधि वीर्यवान् ।
अनीकैः समरे शूरै राक्षसः परिवारितः ॥ ५१ ॥

समरभूमिमें अनेक सेनाओंमें विभक्त शूरवीर राक्षसोंसे घिरे हुए उस पराक्रमी निशाचरने बड़े क्रोधके साथ उस शूलको ग्रहण किया था ॥ ५१ ॥

समुद्यम्य महाकायो ननाद युधि भैरवम् ।
संरक्तनयनो रोषात् स्वसैन्यमभिहर्षयन् ॥ ५२ ॥

उसे ऊपर उठाकर उस विशालकाय राक्षसने युद्धस्थलमें बड़ी भयानक गर्जना की । उस समय उसके नेत्र रोषसे लाल हो रहे थे और वह अपनी सेनाका हर्ष बढ़ा रहा था ॥ ५२ ॥

पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्च प्रदिशस्तथा ।
प्राकम्पयत् तदा शब्दो राक्षसेन्द्रस्य दारुणः ॥ ५३ ॥

राक्षसराज रावणके उस भयंकर सिंहनादने उस समय पृथ्वी, आकाश, दिशाओं और विदिशाओंको भी कम्पित कर दिया ॥ ५३ ॥

अतिकायस्य नादेन तेन तस्य दुरात्मनः ।
सर्वभूतानि वित्रेसुः सागरश्च प्रचुक्षुभे ॥ ५४ ॥

उस महाकाय दुरात्मा निशाचरके भैरवनादसे सम्पूर्ण प्राणी थर्रा उठे और सागर भी विक्षुब्ध हो उठा ॥ ५४ ॥

स गृहीत्वा महावीर्यः शूलं तद् रावणो महत् ।
विनद्य सुमहानादं रामं परुषमब्रवीत् ॥ ५५ ॥

उस विशाल शूलको हाथमें लेकर महापराक्रमी रावणने बड़े जोरसे गर्जना करके श्रीरामसे कठोर वाणीमें कहा—५५

शूलोऽयं वज्रसारस्ते राम रोषान्मयोद्यतः ।
तव भ्रातृसहायस्य सद्यः प्राणान् हरिष्यति ॥ ५६ ॥

'राम ! यह शूल वज्रके समान शक्तिशाली है । इसे मैंने रोषपूर्वक अपने हाथमें लिया है । यह भाईसहित तुम्हारे प्राणोंको तत्काल हर लेगा ॥ ५६ ॥

रक्षसामद्य शूराणां निहतानां चमूमुखे ।
त्वां निहत्य रणश्लाघिन् करोमि तरसा समम् ॥ ५७ ॥

'युद्धकी इच्छा रखनेवाले राघव ! आज तुम्हारा वध करके सेनाके मुहानेपर जो शूरवीर राक्षस मारे गये हैं, उन्हींके समान अवस्थामें तुम्हें भी पहुँचा दूँगा ॥ ५७ ॥

तिष्ठेदानीं निहन्मि त्वामेष शूलेन राघव ।
एवमुक्त्वा स चिक्षेप तच्छूलं राक्षसाधिपः ॥ ५८ ॥

'रघुकुलके राजकुमार ! ठहरो, अभी इस शूलके द्वारा तुम्हें मौतके घाट उतारता हूँ ।' ऐसा कहकर राक्षसराज रावणने श्रीरघुनाथजीके ऊपर उस शूलको चला दिया ॥ ५८ ॥

तद् रावणकरान्मुक्तं विद्युन्मालासमावृतम् ।
अष्टघण्टं महानादं वियद्गतमशोभत ॥ ५९ ॥

रावणके हाथसे छूटते ही वह शूल आकाशमें आकर चमक उठा । वह विद्युन्मालाओंसे व्याप्त-सा जान पड़ता था । आठ घंटोंसे युक्त होनेके कारण उससे गम्भीर घोष प्रकट हो रहा था ॥ ५९ ॥

तच्छूलं राघवो दृष्ट्वा ज्वलन्तं घोरदर्शनम् ।
ससर्ज विशिखान् रामश्चापमायम्य वीर्यवान् ॥ ६० ॥

परम पराक्रमी रघुकुलनन्दन श्रीरामने उस भयंकर एवं प्रज्वलित शूलको अपनी ओर आते देख धनुष तानकर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ६० ॥

आपतन्तं शरौघेण वारयामास राघवः ।
उत्पतन्तं युगान्ताग्निं जलौघैरिव वासवः ॥ ६१ ॥

श्रीरघुनाथजीने बाणसमूहोंद्वारा अपनी ओर आते हुए शूलको उसी तरह रोकनेका प्रयास किया, जैसे देवराज इन्द्र ऊपरकी ओर उठती हुई प्रलयाग्निको संवर्तक मेघोंके बरसाये हुए जलप्रवाहके द्वारा शान्त करनेकी चेष्टा करते हैं ॥ ६१ ॥

निर्ददाह स तान् बाणान् रामकार्मुकनिःसृतान् ।
रावणस्य महाञ्शूलः पतङ्गानिव पावकः ॥ ६२ ॥

परंतु जैसे आग पतंगोंको जला देती है, उसी तरह रावणके उस महान् शूलने श्रीरामचन्द्रजीके धनुषसे छूटे हुए समस्त बाणोंको जलाकर भस्म कर दिया ॥ ६२ ॥

तान् दृष्ट्वा भस्मसाद्भूताञ्शूलसंस्पर्शचूर्णितान् ।
सायकानन्तरिक्षस्थान् राघवः क्रोधमाहरत् ॥ ६३ ॥

श्रीरघुनाथजीने जब देखा मेरे सायक अन्तरिक्षमें उस शूलका स्पर्श होते ही चूर-चूर हो राखके ढेर बन गये हैं, तब उन्हें बड़ा क्रोध हुआ ॥ ६३ ॥

स तां मातलिना नीतां शक्तिं वासवसम्मताम् ।
जग्राह परमक्रुद्धो राघवो रघुनन्दनः ॥ ६४ ॥

अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए रघुकुलनन्दन रघुवीरने मातलिकी लायी हुई देवेन्द्रद्वारा सम्मानित शक्तिको हाथमें ले लिया ॥

सा तोलिता बलवता शक्तिर्घण्टाकृतस्वना ।
नभः प्रज्वालयामास युगान्तोल्केव सप्रभा ॥ ६५ ॥

बलवान् श्रीरामके द्वारा उठायी हुई वह शक्ति प्रलयकालमें प्रज्वलित होनेवाली उल्काके समान प्रकाशमान थी । उसने समस्त आकाशको अपनी प्रभासे उद्भासित कर दिया तथा उससे घंटानाद प्रकट होने लगा ॥ ६५ ॥

सा क्षिप्ता राक्षसेन्द्रस्य तस्मिञ्छूले पपात ह ।
भिन्नः शक्त्या महाञ्शूलो निपपात गतद्युतिः ॥ ६६ ॥

श्रीरामने जब उसे चलाया, तब वह शक्ति राक्षसराजके उस शूलपर ही पड़ी । उसके प्रहारसे टूक-टूक और निस्तेज हो वह महान् शूल पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ६६ ॥

निर्बिभेद ततो बाणैर्हयानस्य महाजवान् ।
रामस्तीक्ष्णैर्महावेगैर्वज्रकल्पैरजिह्मगैः ॥ ६७ ॥

इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने सीधे जानेवाले महावेगवान् वज्रतुल्य पैने बाणोंके द्वारा रावणके अत्यन्त वेगशाली घोड़ोंको घायल कर दिया ॥ ६७ ॥

निर्बिभेदोरसि तदा रावणं निशितैः शरैः ।
राघवः परमायत्तो ललाटे पत्रिभिस्त्रिभिः ॥ ६८ ॥

फिर अत्यन्त सावधान होकर उन्होंने तीन तीखे तीरोंसे रावणकी छाती छेद डाली और तीन पंखदार बाणोंसे उसके ललाटमें भी चोट पहुँचायी ॥ ६८ ॥

स शरैर्भिन्नसर्वाङ्गो गात्रप्रस्रुतशोणितः ।
राक्षसेन्द्रः समूहस्थः फुल्लाशोक इवाबभौ ॥ ६९ ॥

उन बाणोंकी मारसे रावणके सारे अङ्ग क्षत-विक्षत हो गये । उसके सारे शरीरसे खूनकी धारा बहने लगी । उस समय अपने सैन्यसमूहमें खड़ा हुआ राक्षसराज रावण फूलोंसे भरे हुए अशोकवृक्षके समान शोभा पाने लगा ॥ ६९ ॥

स रामबाणैरतिविद्धगात्रो
निशाचरेन्द्रः क्षतजार्द्रगात्रः ।
जगाम खेदं च समाजमध्ये
क्रोधं च चक्रे सुभृशं तदानीम् ॥ ७० ॥

श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे जब सारा शरीर अत्यन्त घायल हो लहूलुहान हो गया, तब निशाचरराज रावणको उस रणभूमिमें बड़ा खेद हुआ । साथ ही उस समय उसने बड़ा भारी क्रोध प्रकट किया ॥ ७० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्व्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ दोवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०२ ॥

त्र्यधिकशततमः सर्गः

श्रीरामका रावणको फटकारना और उनके द्वारा घायल किये गये रावणको सारथिका रणभूमिसे बाहर ले जाना

स तु तेन तदा क्रोधात् काकुत्स्थेनार्दितो भृशम् ।
रावणः समरश्लाघी महाक्रोधमुपागमत् ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा क्रोधपूर्वक अत्यन्त पीड़ित किये जानेपर युद्धकी इच्छा रखनेवाले रावणको महान् क्रोध हुआ ॥

स दीप्तनयनोऽमर्षाच्चापमुद्यम्य वीर्यवान् ।
अभ्यर्दयत् सुसंक्रुद्धो राघवं परमाहवे ॥ २ ॥

उसके नेत्र अग्निके समान प्रज्वलित हो उठे। उस पराक्रमी वीरनें अमर्षपूर्वक धनुष उठाया और अत्यन्त कुपित हो उस महासमरमें श्रीरघुनाथजीको पीड़ित करना आरम्भ किया ॥ २ ॥

बाणधारासहस्रैस्तैः स तोयद इवाम्बरात् ।
राघवं रावणो बाणैस्तटाकमिव पूरयन् ॥ ३ ॥

जैसे बादल आकाशसे जलकी धारा बरसाकर तालाबको भर देता है, उसी प्रकार रावणने सहस्रों बाणधाराओंकी वृष्टि करके श्रीरामचन्द्रजीको आच्छादित कर दिया ॥ ३ ॥

पूरितः शरजालेन धनुर्मुक्तेन संयुगे ।
महागिरिरिवाकम्प्यः काकुत्स्थो न प्रकम्पते ॥ ४ ॥

युद्धस्थलमें रावणके धनुषसे छूटे हुए बाणसमूहोंसे व्याप्त हो जानेपर भी श्रीरघुनाथजी विचलित नहीं हुए; क्योंकि वे महान् पर्वतकी भाँति अचल थे ॥ ४ ॥

स शरैः शरजालानि वारयन् समरे स्थितः ।
गभस्तीनिव सूर्यस्य प्रतिजग्राह वीर्यवान् ॥ ५ ॥

वे समराङ्गणमें अपने बाणोंसे रावणके बाणोंका निवारण करते हुए स्थिरभावसे खड़े रहे। उन पराक्रमी रघुवीरने सूर्यकी किरणोंकी भाँति शत्रुके बाणोंको ग्रहण किया ॥ ५ ॥

ततः शरसहस्राणि क्षिप्रहस्तो निशाचरः ।
निजघानोरसि क्रुद्धो राघवस्य महात्मनः ॥ ६ ॥

तदनन्तर शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले निशाचर रावणने कुपित हो महात्मा राघवेन्द्रकी छातीमें सहस्रों बाण मारे ॥ ६ ॥

स शोणितसमादिग्धः समरे लक्ष्मणाग्रजः ।
दृष्टः फुल्ल इवारण्ये सुमहान् किंशुकद्रुमः ॥ ७ ॥

समरभूमिमें उन बाणोंसे घायल हुए लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीराम रक्तसे नहा उठे और जंगलमें खिले हुए पलाशके महान् वृक्षकी भाँति दिखायी देने लगे ॥ ७ ॥

शराभिघातसंरब्धः सोऽभिजग्राह सायकान् ।
काकुत्स्थः सुमहातेजा युगान्तादित्यवर्चसः ॥ ८ ॥

उन बाणोंके आघातसे कुपित हो महातेजस्वी श्रीरामने प्रलयकालके सूर्यकी भाँति तेजस्वी सायकोंको हाथमें लिया ॥ ८ ॥

ततोऽन्योन्यं सुसंरब्धौ तावुभौ रामरावणौ ।
शरान्धकारे समरे नोपलक्षयतां तदा ॥ ९ ॥

फिर तो वे दोनों परस्पर रोषावेशसे युक्त हो बाण चलाने लगे। समराङ्गणमें बाणोंसे अन्धकार-सा छा गया। उस समय श्रीराम और रावण दोनों एक दूसरेको देख नहीं पाते थे ॥ ९ ॥

ततः क्रोधसमाविष्टो रामो दशरथात्मजः ।
उवाच रावणं वीरः प्रहस्य परुषं वचः ॥ १० ॥

इसी समय क्रोधसे भरे हुए वीर दशरथकुमार श्रीरामने रावणसे हँसते हुए कठोर वाणीमें कहा—॥ १० ॥

मम भार्या जनस्थानादज्ञानाद् राक्षसाधम ।
हृता ते विवशा यस्मात् तस्मात् त्वं नासि वीर्यवान् ॥ ११ ॥

‘नीच राक्षस! तू मेरे अनजानमें जनस्थानसे मेरी असहाय स्त्रीको हर लाया है, इसलिये तू बलवान् या पराक्रमी तो कदापि नहीं है ॥ ११ ॥

मया विरहितां दीनां वर्तमानां महावने ।
वैदेहीं प्रसभं हृत्वा शूरोऽहमिति मन्यसे ॥ १२ ॥

‘विशाल वनमें मुझसे विलग हुई दीन अवस्थामें विद्यमान विदेहराजकुमारीका बलपूर्वक अपहरण करके तू अपनेको शूरवीर समझता है ? ॥ १२ ॥

स्त्रीषु शूर विनाथासु परदाराभिमर्शनम् ।
कृत्वा कापुरुषं कर्म शूरोऽहमिति मन्यसे ॥ १३ ॥

‘असहाय अबलाओंपर वीरता दिखानेवाले निशाचर! परस्त्रीके अपहरण-जैसे कापुरुषोचित कर्म करके तू अपनेको शूरवीर मानता है ? ॥ १३ ॥

भिन्नमर्याद निर्लज्ज चारित्रेष्वनवस्थित ।
दर्पान्मृत्युमुपादाय शूरोऽहमिति मन्यसे ॥ १४ ॥

‘धर्मकी मर्यादा भङ्ग करनेवाले पापी, निर्लज्ज और सदाचारशून्य निशाचर! तूने बलके घमंडसे वैदेहीके रूपमें अपनी मौत बुलायी है। क्या अब भी तू अपनेको शूरवीर समझता है ? ॥ १४ ॥

शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च ।
श्लाघनीयं महत्कर्म यशस्यं च कृतं त्वया ॥ १५ ॥

‘तू बड़ा शूरवीर, बलसम्पन्न और साक्षात् कुबेरका भाई जो है! इसीलिये तूने यह परम प्रशंसनीय और महान् यशोवर्धक कर्म किया है ॥ १५ ॥

उत्सेकेनाभिपन्नस्य गर्हितस्याहितस्य च ।
कर्मणः प्राप्नुहीदानीं तस्याद्य सुमहत् फलम् ॥ ६ ॥

‘अभिमानपूर्वक किये गये उन निन्दित और अहितकर पापकर्मका जो महान् फल है, उसे तू आज अभी प्राप्त कर ले ॥ १६ ॥

शूरोऽहमिति चात्मानमवगच्छसि दुर्मते ।
नैव लज्जास्ति ते सीतां चौरवद् व्यपकर्षतः ॥ १७ ॥

‘खोटी बुद्धिवाले निशाचर! तू अपनेको शूरतासे सम्पन्न समझता है; किंतु सीताको चोरकी तरह चुराते समय तुझे तनिक भी लज्जा नहीं आयी ? ॥ १७ ॥

यदि मत्संनिधौ सीता धर्षिता स्यात् त्वया बलात् ।
भ्रातरं तु खरं पश्येस्तदा मत्सायकैर्हतः ॥ १८ ॥

'यदि मेरे समीप तू सीताका बलपूर्वक अपहरण करता तो अबतक मेरे सायकोंसे मारा जाकर अपने भाई खरका दर्शन करता होता ॥ १८ ॥

दिष्ट्यासि मम मन्दात्मंश्चक्षुर्विषयमागतः ।
अद्य त्वां सायकैस्तीक्ष्णैर्नयामि यमसादनम् ॥ १९ ॥

'मन्दबुद्धे ! सौभाग्यकी बात है कि आज तू मेरी आँखोंके सामने आ गया है । मैं अभी तुझे अपने तीखे बाणोंसे यमलोक पहुँचाता हूँ ॥ १९ ॥

अद्य ते मच्छरैश्छिन्नं शिरो ज्वलितकुण्डलम् ।
क्रव्यादा व्यपकर्षन्तु विकीर्णं रणपांसुषु ॥ २० ॥

'आज मेरे बाणोंसे कटकर रणभूमिकी धूलमें पड़े हुए जगमगाते कुण्डलोंसे युक्त तेरे मस्तकको मांसभक्षी जीवजन्तु घसीटें ॥ २० ॥

निपत्योरसि गृध्रास्ते क्षितौ क्षिप्तस्य रावण ।
पिबन्तु रुधिरं तर्षाद् बाणशल्यान्तरोत्थितम् ॥ २१ ॥

'रावण ! तेरी लाश पृथ्वीपर फेंकी पड़ी हो, उसकी छातीपर बहुत-से गृध्र टूट पड़ें और बाणोंकी नोकसे किये गये छेदके द्वारा प्रवाहित होनेवाले तेरे खूनको बड़ी प्यासके साथ पियें ॥ २१ ॥

अद्य मद्बाणभिन्नस्य गतासोः पतितस्य ते ।
कर्षन्त्वन्त्राणि पतगा गरुत्मन्त इवोरगान् ॥ २२ ॥

'आज मेरे बाणोंसे विदीर्ण और प्राणशून्य होकर पड़े हुए तेरे शरीरकी आँतोंको पक्षी उसी तरह खींचें, जैसे गरुड सर्पोंको खींचते हैं' ॥ २२ ॥

इत्येवं स वदन् वीरो रामः शत्रुनिबर्हणः ।
राक्षसेन्द्रं समीपस्थं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २३ ॥

ऐसा कहते हुए शत्रुओंका नाश करनेवाले वीर श्रीरामने पास ही खड़े हुए राक्षसराज रावणपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ २३ ॥

बभूव द्विगुणं वीर्यं बलं हर्षश्च संयुगे ।
रामस्यास्त्रबलं चैव शत्रोर्निधनकाङ्क्षिणः ॥ २४ ॥

उस समय युद्धस्थलमें शत्रुवधकी इच्छा रखनेवाले श्रीरामका बल, पराक्रम, उत्साह और अस्त्र-बल बढ़कर दूना हो गया ॥ २४ ॥

प्रादुर्बभूवुरस्त्राणि सर्वाणि विदितात्मनः ।
प्रहर्षाच्च महातेजाः शीघ्रहस्ततरोऽभवत् ॥ २५ ॥

आत्मज्ञानी रघुनाथजीके सामने सभी अस्त्र अपने-आप प्रकट होने लगे । हर्ष और उत्साहके कारण महातेजस्वी भगवान् श्रीरामका हाथ बड़ी तेजीसे चलने लगा ॥ २५ ॥

शुभान्येतानि चिह्नानि विज्ञायात्मगतानि सः ।
भूय एवार्दयद् रामो रावणं राक्षसान्तकृत् ॥ २६ ॥

अपनेमें ये शुभ लक्षण प्रकट हुए जान राक्षसोंका अन्त करनेवाले भगवान् श्रीराम पुनः रावणको पीड़ित करने लगे ॥

हरीणां चाश्मनिकरैः शरवर्षैश्च राघवात् ।
हन्यमानो दशग्रीवो विघूर्णहृदयोऽभवत् ॥ २७ ॥

वानरोंके चलाये हुए प्रस्तरसमूहों और श्रीरामचन्द्रजीके छोड़े हुए बाणोंकी वर्षासे आहत होकर रावणका हृदय व्याकुल एवं विभ्रान्त हो उठा ॥ २७ ॥

यदा च शस्त्रं नारेभे न चकर्ष शरासनम् ।
नास्य प्रत्यकरोद् वीर्यं विक्लवेनान्तरात्मना ॥ २८ ॥
क्षिप्ताश्चाशु शरास्तेन शस्त्राणि विविधानि च ।
मरणार्थाय वर्तन्ते मृत्युकालोऽभ्यवर्तत ॥ २९ ॥
सूतस्तु रथनेतास्य तदवस्थं निरीक्ष्य तम् ।
शनैर्युद्धादसम्भ्रान्तो रथं तस्यापवाहयत् ॥ ३० ॥

जब हृदयकी व्याकुलताके कारण उसमें शस्त्र उठाने, धनुषको खींचने और श्रीरामके पराक्रमका सामना करनेकी क्षमता नहीं रह गयी तथा जब श्रीरामके शीघ्रतापूर्वक चलाये हुए बाण एवं भाँति-भाँतिके शस्त्र उसकी मृत्युके साधक बनने लगे और उसका मृत्युकाल समीप आ पहुँचा, तब उसकी ऐसी अवस्था देख उसका रथचालक सारथि बिना किसी घबराहटके उसके रथको रणभूमिसे दूर हटा ले गया २८--३०

रथं च तस्याथ जवेन सारथि-
र्निवार्य भीमं जलदस्वनं तदा ।
जगाम भीत्या समरान्महीपतिं
निरस्तवीर्यं पतितं समीक्ष्य ॥ ३१ ॥

अपने राजाको शक्तिहीन होकर रथपर पड़ा देख रावणका सारथि मेघके समान गम्भीर घोष करनेवाले उसके भयानक रथको लौटाकर उसके साथ ही भयके मारे समरभूमिसे बाहर निकल गया ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्र्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ तीनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०३ ॥

* * *

चतुरधिकशततमः सर्गः

रावणका सारथिको फटकारना और सारथिका अपने उत्तरसे रावणको संतुष्ट करके उसके रथको रणभूमिमें पहुँचाना

स तु मोहात् सुसंक्रुद्धः कृतान्तबलचोदितः ।
क्रोधसंरक्तनयनो रावणः सूतमब्रवीत् ॥ १ ॥

रावण कालकी शक्तिसे प्रेरित हो रहा था, अतः मोहवश अत्यन्त कुपित हो क्रोधसे लाल आँखें करके अपने सारथिसे बोला—॥ १ ॥

हीनवीर्यमिवाशक्तं पौरुषेण विवर्जितम् ।
भीरुं लघुमिवासत्त्वं विहीनमिव तेजसा ॥ २ ॥
विमुक्तमिव मायाभिरस्त्रैरिव बहिष्कृतम् ।
मामवज्ञाय दुर्बुद्धे स्वया बुद्ध्या विचेष्टसे ॥ ३ ॥

'दुर्बुद्धे ! क्या तूने मुझे पराक्रमशून्य, असमर्थ, पुरुषार्थशून्य, डरपोक, ओछा, धैर्यहीन, निस्तेज, मायारहित और अस्त्रोंके ज्ञानसे वञ्चित समझ रक्खा है, जो मेरी अवहेलना करके तू अपनी बुद्धिसे मनमाना काम कर रहा है (तूने मुझसे पूछा क्यों नहीं ?) ॥ २-३ ॥

किमर्थं मामवज्ञाय मच्छन्दमनवेक्ष्य च ।
त्वया शत्रुसमक्षं मे रथोऽयमपवाहितः ॥ ४ ॥

'मेरा अभिप्राय क्या है, यह जाने बिना ही मेरी अवहेलना करके तू किस लिये शत्रुके सामनेसे मेरा यह रथ हटा लाया ? ॥ ४ ॥

त्वयाद्य हि ममानार्य चिरकालमुपार्जितम् ।
यशो वीर्यं च तेजश्च प्रत्ययश्च विनाशितः ॥ ५ ॥

'अनार्य ! आज तूने मेरे चिरकालसे उपार्जित यश, पराक्रम, तेज और विश्वासपर पानी फेर दिया ॥ ५ ॥

✓ शत्रोः प्रख्यातवीर्यस्य रञ्जनीयस्य विक्रमैः ।
पश्यतो युद्धलुब्धोऽहं कृतः कापुरुषस्त्वया ॥ ६ ॥

'मेरे शत्रुका बल-पराक्रम विख्यात है । उसे अपने बल-विक्रमद्वारा संतुष्ट करना मेरे लिये उचित है और मैं युद्धका लोभी हूँ, तो भी तूने रथ हटाकर शत्रुकी दृष्टिमें मुझे कायर सिद्ध कर दिया ॥ ६ ॥

यत् त्वं कथमिदं मोहान्न चेद् वहसि दुर्मते ।
✓ सत्योऽयं प्रतितर्को मे परेण त्वमुपस्कृतः ॥ ७ ॥

'दुर्मते ! यदि तू इस रथको मोहवश किसी तरह भी शत्रुके सामने नहीं ले जाता है तो मेरा यह अनुमान सत्य है कि शत्रुने तुझे घूस देकर फोड़ लिया है ॥ ७ ॥

नहि तद् विद्यते कर्म सुहृदो हितकाङ्क्षिणः ।
रिपूणां सदृशं त्वेतद् यत् त्वयैतदनुष्ठितम् ॥ ८ ॥

'हित चाहनेवाले मित्रका यह काम नहीं है । तूने जो कार्य किया है, वह शत्रुओंके करने योग्य है ॥ ८ ॥

निवर्तय रथं शीघ्रं यावन्नापैति मे रिपुः ।
यदि वाप्युषितोऽसि त्वं स्मर्यते यदि मे गुणः ॥ ९ ॥

'यदि तू मेरे साथ बहुत दिनोंसे रहा है और यदि मेरे गुणोंका तुझे स्मरण है तो मेरे इस रथको शीघ्र लौटा ले चल । कहीं ऐसा न हो कि मेरा शत्रु भाग जाय' ॥ ९ ॥

एवं परुषमुक्तस्तु हितबुद्धिरबुद्धिना ।
अब्रवीद् रावणं सूतो हितं सानुनयं वचः ॥ १० ॥

यद्यपि सारथिकी बुद्धिमें रावणके लिये हितकी ही भावना थी तथापि उस मूर्खने जब उससे ऐसी कठोर बात कही, तब सारथिने बड़ी विनयके साथ यह हितकर वचन कहा—॥ १० ॥

न भीतोऽस्मि न मूढोऽस्मि नोपजप्तोऽस्मि शत्रुभिः ।
न प्रमत्तो न निःस्नेहो विस्मृता न च सत्क्रिया ॥ ११ ॥

'महाराज ! मैं डरा नहीं हूँ । मेरा विवेक भी नष्ट नहीं हुआ है और न मुझे शत्रुओंने ही बहकाया है । मैं असावधान भी नहीं हूँ । आपके प्रति मेरा स्नेह भी कम नहीं हुआ है तथा आपने जो मेरा सत्कार किया है, उसे भी मैं नहीं भूला हूँ ॥ ११ ॥

मया तु हितकामेन यशश्च परिरक्षता ।
स्नेहप्रसन्नमनसा हितमित्यप्रियं कृतम् ॥ १२ ॥

'मैं सदा आपका हित चाहता हूँ और आपके यशकी रक्षाके लिये ही यत्नशील रहता हूँ । मेरा हृदय आपके प्रति स्नेहसे आर्द्र है । इस कार्यसे आपका हित होगा—यह सोचकर ही मैंने इसे किया है । भले ही यह आपको अप्रिय लगा हो ॥

नास्मिन्नर्थे महाराज त्वं मां प्रियहिते रतम् ।
कश्चिल्लघुरिवानार्यो दोषतो गन्तुमर्हसि ॥ १३ ॥

'महाराज ! मैं आपके प्रिय और हितमें तत्पर रहनेवाला हूँ; अतः इस कार्यके लिये आप किसी ओछे और अनार्य पुरुषकी भाँति मुझपर दोषारोपण न करें ॥ १३ ॥

श्रूयतां प्रति दास्यामि यन्निमित्तं मया रथः ।
नदीवेग इवाम्भोभिः संयुगे विनिवर्तितः ॥ १४ ॥

'जैसे चन्द्रोदयके कारण बढ़ा हुआ समुद्रका जल नदीके वेगको पीछे लौटा देता है, उसी प्रकार मैंने जिस कारणसे आपके रथको युद्धभूमिसे पीछे हटाया है, उसे बता रहा हूँ, सुनिये ॥ १४ ॥

श्रमं तवावगच्छामि महता रणकर्मणा ।
नहि ते वीर्यसौमुख्यं प्रकर्षं नोपधारये ॥ १५ ॥

'उस समय मैंने यह समझा था कि आप महान् युद्धके कारण थक गये हैं। शत्रुकी अपेक्षा मैंने आपकी प्रबलता नहीं देखी, आपमें अधिक पराक्रम नहीं पाया ॥ १५ ॥

रथोद्वहनखिन्नाश्च भग्ना मे रथवाजिनः ।
दीना घर्मपरिश्रान्ता गावो वर्षहता इव ॥ १६ ॥

'मेरे घोड़े भी रथको खींचते-खींचते थक गये थे। इनके पाँव लड़खड़ा रहे थे। ये धूपसे पीड़ित हो वर्षाकी मारी हुई गौओंके समान दुखी हो गये थे ॥ १६ ॥

निमित्तानि च भूयिष्ठं यानि प्रादुर्भवन्ति नः ।
तेषु तेष्वभिपन्नेषु लक्षयाम्यप्रदक्षिणम् ॥ १७ ॥

'साथ ही इस समय मेरे सामने जो-जो लक्षण प्रकट हो रहे हैं, यदि वे सफल हुए तो हमें उसमें अपना अमङ्गल ही दिखायी देता है ॥ १७ ॥

देशकालौ च विज्ञेयौ लक्षणानीङ्गितानि च ।
दैन्यं हर्षश्च खेदश्च रथिनश्च बलाबलम् ॥ १८ ॥

'सारथिको देश-कालका, शुभाशुभ लक्षणोंका, रथीकी चेष्टाओंका, उत्साह, अनुत्साह और खेदका तथा बलाबलका भी ज्ञान रखना चाहिये ॥ १८ ॥

स्थलनिम्नानि भूमेश्च समानि विषमाणि च ।
युद्धकालश्च विज्ञेयः परस्यान्तरदर्शनम् ॥ १९ ॥

'धरतीके जो ऊँचे-नीचे, सम-विषम स्थान हों, उनकी भी जानकारी रखनी चाहिये। युद्धका उपयुक्त अवसर कब होगा, इसे जानना और शत्रुकी दुर्बलतापर भी दृष्टि रखनी चाहिये ॥ १९ ॥

उपयानापयाने च स्थानं प्रत्यपसर्पणम् ।
सर्वमेतद् रथस्थेन ज्ञेयं रथकुटुम्बिना ॥ २० ॥

'शत्रुके पास जाने, दूर हटने, युद्धमें स्थिर रहने तथा युद्धभूमिसे अलग हो जानेका उपयुक्त अवसर कब आता है, इन सब बातोंको समझना रथपर बैठे हुए सारथिका कर्तव्य है॥

तव विश्रामहेतोस्तु तथैषां रथवाजिनाम् ।
रौद्रं वर्जयता खेदं क्षमं कृतमिदं मया ॥ २१ ॥

'आपको तथा इन रथके घोड़ोंको थोड़ी देरतक विश्राम देने और खेद दूर करनेके लिये मैंने जो यह कार्य किया है, सर्वथा उचित है ॥ २१ ॥

स्वेच्छया न मया वीर रथोऽयमपवाहितः ।
भर्तुः स्नेहपरीतेन मयेदं यत् कृतं प्रभो ॥ २२ ॥

'वीर ! प्रभो ! मैंने मनमानी करनेके लिये नहीं, स्वामीके स्नेहवश उनकी रक्षाके लिये इस रथको दूर हटाया है ॥२२॥

आज्ञापय यथातत्त्वं वक्ष्यस्यरिनिषूदन ।
तत् करिष्याम्यहं वीर गतानृण्येन चेतसा ॥ २३ ॥

'शत्रुसूदन वीर ! अब आज्ञा दीजिये। आप ठीक समझकर जो कुछ भी कहेंगे, उसे मैं मनमें आपके ऋणसे उऋण होनेकी भावना रखकर करूँगा' ॥ २३ ॥

संतुष्टस्तेन वाक्येन रावणस्तस्य सारथेः ।
प्रशस्यैनं बहुविधं युद्धलुब्धोऽब्रवीदिदम् ॥ २४ ॥

सारथिके इस कथनसे रावण बहुत संतुष्ट हुआ और नाना प्रकारसे उसकी सराहना करके युद्धके लिये लोलुप होकर बोला— ॥ २४ ॥

रथं शीघ्रमिमं सूत राघवाभिमुखं नय ।
नाहत्वा समरे शत्रून् निवर्तिष्यति रावणः ॥ २५ ॥

'सूत ! अब तुम इस रथको शीघ्र रामके सामने ले चलो। रावण समरमें अपने शत्रुओंको मारे बिना घर नहीं लौटेगा' ॥ २५ ॥

एवमुक्त्वा रथस्थस्य रावणो राक्षसेश्वरः ।
ददौ तस्य शुभं ह्येकं हस्ताभरणमुत्तमम् ।
श्रुत्वा रावणवाक्यानि सारथिः संन्यवर्तत ॥ २६ ॥

ऐसा कहकर राक्षसराज रावणने सारथिको पुरस्कारके रूपमें अपने हाथका एक सुन्दर आभूषण उतारकर दे दिया। रावणका आदेश सुनकर सारथिने पुनः रथको लौटाया ॥

ततो द्रुतं रावणवाक्यचोदितः
प्रचोदयामास हयान् स सारथिः ।
स राक्षसेन्द्रस्य ततो महारथः
क्षणेन रामस्य रणाग्रतोऽभवत् ॥ २७ ॥

रावणकी आज्ञासे प्रेरित हो सारथिने तुरंत ही अपने घोड़े हाँके। फिर तो राक्षसराजका वह विशाल रथ क्षणभरमें युद्धके मुहानेपर श्रीरामचन्द्रजीके समीप जा पहुँचा ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुरधिकशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ चारवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०४ ॥

पञ्चाधिकशततमः सर्गः

अगस्त्य मुनिका श्रीरामको विजयके लिये 'आदित्यहृदय'* के पाठकी सम्मति देना

ततो युद्धपरिश्रान्तं समरे चिन्तया स्थितम् ।
रावणं चाग्रतो दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम् ॥ १ ॥

दैवतैश्च समागम्य द्रष्टुमभ्यागतो रणम् ।
उपगम्याब्रवीद् राममगस्त्यो भगवांस्तदा ॥ २ ॥

---

* इस 'आदित्यहृदय' नामक स्तोत्रका विनियोग एवं न्यासविधि इस प्रकार है—

उधर श्रीरामचन्द्रजी युद्धसे थककर चिन्ता करते हुए रणभूमिमें खड़े थे। इतनेमें रावण भी युद्धके लिये उनके सामने उपस्थित हो गया। यह देख भगवान् अगस्त्य मुनि, जो देवताओंके साथ युद्ध देखनेके लिये आये थे, श्रीरामके पास जाकर बोले—॥ १-२ ॥

राम राम महाबाहो शृणु गुह्यं सनातनम्।
येन सर्वानरीन् वत्स समरे विजयिष्यसे ॥ ३ ॥

'सबके हृदयमें रमण करनेवाले महाबाहो राम! यह सनातन गोपनीय स्तोत्र सुनो। वत्स! इसके जपसे तुम युद्धमें अपने समस्त शत्रुओंपर विजय पा जाओगे ॥ ३ ॥

आदित्यहृदयं पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम्।
जयावहं जपं नित्यमक्षय्यं परमं शिवम् ॥ ४ ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
चिन्ताशोकप्रशमनमायुर्वर्धनमुत्तमम् ॥ ५ ॥

'इस गोपनीय स्तोत्रका नाम है 'आदित्यहृदय'। यह परम पवित्र और सम्पूर्ण शत्रुओंका नाश करनेवाला है। इसके जपसे सदा विजयकी प्राप्ति होती है। यह नित्य अक्षय और परम कल्याणमय स्तोत्र है। सम्पूर्ण मङ्गलोंका भी मङ्गल है। इससे सब पापोंका नाश हो जाता है। यह चिन्ता और शोकको मिटाने तथा आयुको बढ़ानेवाला उत्तम साधन है॥

रश्मिमन्तं समुद्यन्तं देवासुरनमस्कृतम्।
पूजयस्व विवस्वन्तं भास्करं भुवनेश्वरम् ॥ ६ ॥

'भगवान् सूर्य अपनी अनन्त किरणोंसे सुशोभित (रश्मिमान्) हैं। ये नित्य उदय होनेवाले (समुद्यन्), देवता और असुरोंसे नमस्कृत, विवस्वान् नामसे प्रसिद्ध, प्रभाका विस्तार करनेवाले (भास्कर) और संसारके स्वामी (भुवनेश्वर) हैं। तुम इनका [रश्मिमते नमः; समुद्यते नमः; देवासुरनमस्कृताय नमः; विवस्वते नमः; भास्कराय नमः; भुवनेश्वराय नमः—इन नाम-मन्त्रोंके द्वारा] पूजन करो ॥

सर्वदेवात्मको ह्येष तेजस्वी रश्मिभावनः।
एष देवासुरगणाँल्लोकान् पाति गभस्तिभिः ॥ ७ ॥

'सम्पूर्ण देवता इन्हींके स्वरूप हैं। ये तेजकी राशि तथा अपनी किरणोंसे जगत्को सत्ता एवं स्फूर्ति प्रदान करनेवाले हैं। ये ही अपनी रश्मियोंका प्रसार करके देवता और असुरोंसहित सम्पूर्ण लोकोंका पालन करते हैं ॥ ७ ॥

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः।
महेन्द्रो धनदः कालो यमः सोमो ह्यपां पतिः ॥ ८ ॥
पितरो वसवः साध्या अश्विनौ मरुतो मनुः।
वायुर्वह्निः प्रजाः प्राण ऋतुकर्ता प्रभाकरः ॥ ९ ॥

'ये ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, स्कन्द, प्रजापति, इन्द्र, कुबेर, काल, यम, चन्द्रमा, वरुण, पितर, वसु, साध्य, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, मनु, वायु, अग्नि, प्रजा, प्राण, ऋतुओंको प्रकट करनेवाले तथा प्रभाके पुञ्ज हैं ॥ ८-९ ॥

आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गभस्तिमान्।
सुवर्णसदृशो भानुर्हिरण्यरेता दिवाकरः ॥ १० ॥
हरिदश्वः सहस्रार्चिः सप्तसप्तिर्मरीचिमान्।
तिमिरोन्मथनः शम्भुस्त्वष्टा मार्तण्डकोंऽशुमान्॥ ११ ॥
हिरण्यगर्भः शिशिरस्तपनोऽहस्करो रविः।

विनियोग

ॐ अस्य आदित्यहृदयस्तोत्रस्यागस्त्यऋषिरनुष्टुप्छन्दः, आदित्यहृदयभूतो भगवान् ब्रह्मा देवता निरस्ताशेषविघ्नतया ब्रह्मविद्यासिद्धौ सर्वत्र जयसिद्धौ च विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास

ॐ अगस्त्यऋषये नमः, शिरसि। अनुष्टुप्छन्दसे नमः, मुखे। आदित्यहृदयभूतब्रह्मदेवतायै नमः, हृदि। ॐ बीजाय नमः, गुह्ये। रश्मिमते शक्तये नमः, पादयोः। ॐ तत्सवितुरित्यादिगायत्रीकीलकाय नमः, नाभौ।

करन्यास

इस स्तोत्रके अङ्गन्यास और करन्यास तीन प्रकारसे किये जाते हैं। केवल प्रणवसे, गायत्रीमन्त्रसे अथवा 'रश्मिमते नमः' इत्यादि छः नाम-मन्त्रोंसे। यहाँ नाम-मन्त्रोंसे किये जानेवाले न्यासका प्रकार बताया जाता है—

ॐ रश्मिमते अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ समुद्यते तर्जनीभ्यां नमः। ॐ देवासुरनमस्कृताय मध्यमाभ्यां नमः। ॐ विवस्वते अनामिकाभ्यां नमः। ॐ भास्कराय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ भुवनेश्वराय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादि अङ्गन्यास

ॐ रश्मिमते हृदयाय नमः। ॐ समुद्यते शिरसे स्वाहा। ॐ देवासुरनमस्कृताय शिखायै वषट्। ॐ विवस्वते कवचाय हुम्। ॐ भास्कराय नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ भुवनेश्वराय अस्त्राय फट्। इस प्रकार न्यास करके निम्नाङ्कित मन्त्रसे भगवान् सूर्यका ध्यान एवं नमस्कार करना चाहिये—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

तत्पश्चात् 'आदित्यहृदय' स्तोत्रका पाठ करना चाहिये।

अग्निगर्भोऽदितेः पुत्रः शङ्खः शिशिरनाशनः ॥ १२ ॥
व्योमनाथस्तमोभेदी ऋग्यजुःसामपारगः ।
घनवृष्टिरपां मित्रो विन्ध्यवीथीप्लवंगमः ॥ १३ ॥
आतपी मण्डली मृत्युः पिङ्गलः सर्वतापनः ।
कविर्विश्वो महातेजा रक्तः सर्वभवोद्भवः ॥ १४ ॥
नक्षत्रग्रहताराणामधिपो विश्वभावनः ।
तेजसामपि तेजस्वी द्वादशात्मन् नमोऽस्तु ते ॥ १५ ॥

'इन्हींके नाम—आदित्य (अदितिपुत्र), सविता (जगत्‌को उत्पन्न करनेवाले), सूर्य (सर्वव्यापक), खग (आकाशमें विचरनेवाले), पूषा (पोषण करनेवाले), गभस्तिमान् (प्रकाशमान), सुवर्णसदृश, भानु (प्रकाशक), हिरण्यरेता (ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके बीज), दिवाकर (रात्रि-का अन्धकार दूर करके दिनका प्रकाश फैलानेवाले), हरिदश्व (दिशाओंमें व्यापक अथवा हरे रंगके घोड़ेवाले), सहस्रार्चि (हजारों किरणोंसे सुशोभित), सप्तसप्ति (सात घोड़ोंवाले), मरीचिमान् (किरणोंसे सुशोभित), तिमिरोन्मथन (अन्धकारका नाश करनेवाले), शम्भु (कल्याणके उद्गमस्थान), त्वष्टा (भक्तोंका दुःख दूर करने अथवा जगत्‌का संहार करनेवाले), मार्तण्डक (ब्रह्माण्डको जीवन प्रदान करनेवाले), अंशुमान् (किरण धारण करनेवाले), हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा), शिशिर (स्वभावसे ही सुख देनेवाले), तपन (गर्मी पैदा करनेवाले), अहस्कर (दिनकर), रवि (सबकी स्तुतिके पात्र), अग्निगर्भ (अग्निको गर्भमें धारण करनेवाले), अदितिपुत्र, शङ्ख (आनन्दस्वरूप एवं व्यापक), शिशिरनाशन (शीतका नाश करनेवाले), व्योमनाथ (आकाशके स्वामी), तमोभेदी (अन्धकारको नष्ट करनेवाले), ऋग्, यजुः और सामवेदके पारगामी, घनवृष्टि (घनी वृष्टिके कारण), अपां मित्र (जलको उत्पन्न करनेवाले), विन्ध्यवीथीप्लवङ्गम (आकाशमें तीव्रवेगसे चलनेवाले), आतपी (घाम उत्पन्न करनेवाले), मण्डली (किरणसमूहको धारण करनेवाले), मृत्यु (मौतके कारण), पिङ्गल (भूरे रंगवाले), सर्वतापन (सबको ताप देनेवाले), कवि (त्रिकालदर्शी), विश्व (सर्वस्वरूप), महातेजस्वी, रक्त (लाल रंगवाले), सर्वभवोद्भव (सबकी उत्पत्तिके कारण), नक्षत्र, ग्रह और तारोंके स्वामी, विश्वभावन (जगत्‌की रक्षा करनेवाले), तेजस्वियोंमें भी अति तेजस्वी तथा द्वादशात्मा (बारह स्वरूपोंमें अभिव्यक्त) हैं। [इन सभी नामोंसे प्रसिद्ध सूर्यदेव!] आपको नमस्कार है ॥ १०—१५ ॥

नमः पूर्वाय गिरये पश्चिमायाद्रये नमः ।
ज्योतिर्गणानां पतये दिनाधिपतये नमः ॥ १६ ॥

'पूर्वगिरि—उदयाचल तथा पश्चिमगिरि—अस्ताचलके रूपमें आपको नमस्कार है। ज्योतिर्गणों (ग्रहों और तारों) के स्वामी तथा दिनके अधिपति आपको प्रणाम है ॥ १६ ॥

जयाय जयभद्राय हर्यश्वाय नमो नमः ।
नमो नमः सहस्रांशो आदित्याय नमो नमः ॥ १७ ॥

'आप जयस्वरूप तथा विजय और कल्याणके दाता हैं। आपके रथमें हरे रंगके घोड़े जुते रहते हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। सहस्रों किरणोंसे सुशोभित भगवान् सूर्य! आपको बारंबार प्रणाम है। आप अदितिके पुत्र होनेके कारण आदित्यनामसे प्रसिद्ध हैं, आपको नमस्कार है। ॥ १७ ॥

नम उग्राय वीराय सारङ्गाय नमो नमः ।
नमः पद्मप्रबोधाय प्रचण्डाय नमोऽस्तु ते ॥ १८ ॥

'उग्र (अभक्तोंके लिये भयंकर), वीर (शक्ति-सम्पन्न) और सारंग (शीघ्रगामी) सूर्यदेवको नमस्कार है। कमलोंको विकसित करनेवाले प्रचण्ड तेजधारी मार्तण्डको प्रणाम है ॥ १८ ॥

ब्रह्मेशानाच्युतेशाय सूरायादित्यवर्चसे ।
भास्वते सर्वभक्षाय रौद्राय वपुषे नमः ॥ १९ ॥

'(परात्पर-रूपमें) आप ब्रह्मा शिव और विष्णुके भी स्वामी हैं। सूर आपकी संज्ञा है, यह सूर्यमण्डल आपका ही तेज है, आप प्रकाशसे परिपूर्ण हैं, सबको स्वाहा कर देनेवाला अग्नि आपका ही स्वरूप है, आप रौद्ररूप धारण करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है ॥ १९ ॥

तमोघ्नाय हिमघ्नाय शत्रुघ्नायामितात्मने ।
कृतघ्नघ्नाय देवाय ज्योतिषां पतये नमः ॥ २० ॥

'आप अज्ञान और अन्धकारके नाशक, जडता एवं शीतके निवारक तथा शत्रुका नाश करनेवाले हैं, आपका स्वरूप अप्रमेय है। आप कृतघ्नोंका नाश करनेवाले, सम्पूर्ण ज्योतियोंके स्वामी और देवस्वरूप हैं; आपको नमस्कार है ॥ २० ॥

तप्तचामीकराभाय हरये विश्वकर्मणे ।
नमस्तमोऽभिनिघ्नाय रुचये लोकसाक्षिणे ॥ २१ ॥

'आपकी प्रभा तपाये हुए सुवर्णके समान है, आप हरि (अज्ञानका हरण करनेवाले) और विश्वकर्मा (संसारकी सृष्टि करनेवाले) हैं; तमके नाशक, प्रकाशस्वरूप और जगत्‌के साक्षी हैं; आपको नमस्कार है ॥ २१ ॥

नाशयत्येष वै भूतं तमेव सृजति प्रभुः ।
पायत्येष तपत्येष वर्षत्येष गभस्तिभिः ॥ २२ ॥

'रघुनन्दन! ये भगवान् सूर्य ही सम्पूर्ण भूतोंका संहार, सृष्टि और पालन करते हैं। ये ही अपनी किरणोंसे गर्मी पहुँचाते और वर्षा करते हैं ॥ २२ ॥

एष सुप्तेषु जागर्ति भूतेषु परिनिष्ठितः ।
एष चैवाग्निहोत्रं च फलं चैवाग्निहोत्रिणाम् ॥ २३ ॥

'ये सब भूतोंमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित होकर उनके सो जानेपर भी जागते रहते हैं। ये ही अग्निहोत्र तथा अग्निहोत्री पुरुषोंको मिलनेवाले फल हैं ॥ २३ ॥

देवाश्च क्रतवश्चैव क्रतूनां फलमेव च ।
यानि कृत्यानि लोकेषु सर्वेषु परमप्रभुः ॥ २४ ॥

'(यज्ञमें भाग ग्रहण करनेवाले) देवता, यज्ञ और यज्ञोंके फल भी ये ही हैं । सम्पूर्ण लोकोंमें जितनी क्रियाएँ होती हैं, उन सबका फल देनेमें ये ही पूर्ण समर्थ हैं ॥ २४ ॥

एनमापत्सु कृच्छ्रेषु कान्तारेषु भयेषु च ।
कीर्तयन् पुरुषः कश्चिन्नावसीदति राघव ॥ २५ ॥

'राघव ! विपत्तिमें, कष्टमें, दुर्गम मार्गमें तथा और किसी भयके अवसरपर जो कोई पुरुष इन सूर्यदेवका कीर्तन करता है, उसे दुःख नहीं भोगना पड़ता ॥ २५ ॥

पूजयस्वैनमेकाग्रो देवदेवं जगत्पतिम् ।
एतत् त्रिगुणितं जप्त्वा युद्धेषु विजयिष्यति ॥ २६ ॥

'इसलिये तुम एकाग्रचित्त होकर इन देवाधिदेव जगदीश्वरकी पूजा करो । इस आदित्यहृदयका तीन बार जप करनेसे तुम युद्धमें विजय पाओगे ॥ २६ ॥

अस्मिन् क्षणे महाबाहो रावणं त्वं जहिष्यसि ।
एवमुक्त्वा ततोऽगस्त्यो जगाम स यथागतम्॥ २७ ॥

महाबाहो ! 'तुम इसी क्षण रावणका वध कर सकोगे ।' यह कहकर अगस्त्यजी जैसे आये थे, उसी प्रकार चले गये ॥२७॥

एतच्छ्रुत्वा महातेजा नष्टशोकोऽभवत् तदा ।
धारयामास सुप्रीतो राघवः प्रयतात्मवान् ॥ २८ ॥

आदित्यं प्रेक्ष्य जप्त्वेदं परं हर्षमवाप्तवान् ।
त्रिराचम्य शुचिर्भूत्वा धनुरादाय वीर्यवान् ॥ २९ ॥
रावणं प्रेक्ष्य हृष्टात्मा जयार्थं समुपागमत् ।
सर्वयत्नेन महता वृतस्तस्य वधेऽभवत् ॥ ३० ॥

उनका उपदेश सुनकर महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीका शोक दूर हो गया । उन्होंने प्रसन्न होकर शुद्धचित्तसे आदित्यहृदयको धारण किया और तीन बार आचमन करके शुद्ध हो भगवान् सूर्यकी ओर देखते हुए इसका तीन बार जप किया । इससे उन्हें बड़ा हर्ष हुआ । फिर परम पराक्रमी रघुनाथजीने धनुष उठाकर रावणकी ओर देखा और उत्साहपूर्वक विजय पानेके लिये वे आगे बढ़े । उन्होंने पूरा प्रयत्न करके रावणके वधका निश्चय किया ॥ २८–३० ॥

अथ रविरवदन्निरीक्ष्य रामं
मुदितमनाः परमं प्रहृष्यमाणः ।
निशिचरपतिसंक्षयं विदित्वा
सुरगणमध्यगतो वचस्त्वरेति ॥ ३१ ॥

उस समय देवताओंके मध्यमें खड़े हुए भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देखा और निशाचरराज रावणके विनाशका समय निकट जानकर हर्षपूर्वक कहा—'रघुनन्दन ! अब जल्दी करो' ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चाधिकशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०५ ॥

षडधिकशततमः सर्गः

रावणके रथको देख श्रीरामका मातलिको सावधान करना, रावणकी पराजयके सूचक उत्पातों तथा रामकी विजय सूचित करनेवाले शुभ शकुनोंका वर्णन

सारथिः स रथं हृष्टः परसैन्यप्रधर्षणम् ।
गन्धर्वनगराकारं समुच्छ्रितपताकिनम् ॥ १ ॥
युक्तं परमसम्पन्नैर्वाजिभिर्हेममालिभिः ।
युद्धोपकरणैः पूर्णं पताकाध्वजमालिनम् ॥ २ ॥
ग्रसन्तमिव चाकाशं नादयन्तं वसुंधराम् ।
प्रणाशं परसैन्यानां स्वसैन्यस्य प्रहर्षणम् ॥ ३ ॥
रावणस्य रथं क्षिप्रं चोदयामास सारथिः ।

रावणके सारथिने हर्ष और उत्साहसे युक्त होकर उसके रथको शीघ्रतापूर्वक हाँका । वह रथ शत्रुसेनाको कुचल डालनेवाला था और गन्धर्वनगरके समान आश्चर्यजनक दिखायी देता था । उसपर बहुत ऊँची पताका फहरा रही थी । उस रथमें उत्तम गुणोंसे सम्पन्न और सोनेके हारोंसे अलंकृत घोड़े जुते हुए थे । रथके भीतर युद्धकी आवश्यक सामग्री भरी पड़ी थी । उस रथने ध्वजा-पताकाओंकी तो माला-सी पहन रक्खी थी । वह आकाशको, अपना ग्रास बनाता हुआ-सा जान पड़ता था । वसुन्धराको अपनी घर्घर-ध्वनिसे निनादित कर रहा था । वह शत्रुकी सेनाओंका नाशक और अपनी सेनाके योद्धाओंका हर्ष बढ़ानेवाला था ॥ १–३½ ॥

तमापतन्तं सहसा स्वनवन्तं महाध्वजम् ॥ ४ ॥
रथं राक्षसराजस्य नरराजो ददर्श ह ।

नरराज श्रीरामचन्द्रजीने सहसा वहाँ आते हुए, विशाल ध्वजसे अलंकृत और घोर घर्घर-ध्वनिसे युक्त राक्षसराज रावणके उस रथको देखा ॥ ४½ ॥

कृष्णवाजिसमायुक्तं युक्तं रौद्रेण वर्चसा ॥ ५ ॥
दीप्यमानमिवाकाशे विमानं सूर्यवर्चसम् ।

उसमें काले रंगके घोड़े जुते हुए थे । उसकी कान्ति

बड़ी भयंकर थी। वह आकाशमें प्रकाशित होनेवाले सूर्यतुल्य तेजस्वी विमानके समान दृष्टिगोचर होता था ॥ ५½ ॥

तडित्पताकागहनं दर्शितेन्द्रायुधप्रभम् ॥ ६ ॥
शरधारा विमुञ्चन्तं धाराधरमिवाम्बुदम् ।

उसपर फहराती हुई पताकाएँ विद्युत्के समान जान पड़ती थीं। वहाँ जो रावणका धनुष था, उसके द्वारा वह रथ इन्द्र-धनुषकी छटा छटकाता था और बाणोंकी धारावाहिक वृष्टि करता था। इससे वह जलधारावर्षी मेघके समान प्रतीत होता था ॥ ६½ ॥

स दृष्ट्वा मेघसंकाशमापतन्तं रथं रिपोः ॥ ७ ॥
गिरेर्वज्राभिमृष्टस्य दीर्यतः सदृशस्वनम् ।
विस्फारयन् वै वेगेन बालचन्द्रानतं धनुः ॥ ८ ॥
उवाच मातलिं रामः सहस्राक्षस्य सारथिम् ।

उसकी आवाज ऐसी मालूम होती थी, मानो वज्रके आघातसे किसी पर्वतके फटनेका शब्द हो रहा हो। मेघके समान प्रतीत होनेवाले शत्रुके उस रथको आता देख श्रीरामचन्द्रजीने बड़े वेगसे अपने धनुषपर टंकार दी। उस समय उनका वह धनुष द्वितीयाके चन्द्रमा-जैसा दिखायी देता था। श्रीरामने इन्द्रसारथि मातलिसे कहा—॥ ७-८½ ॥

मातले पश्य संरब्धमापतन्तं रथं रिपोः ॥ ९ ॥
यथापसव्यं पतता वेगेन महता पुनः ।
समरे हन्तुमात्मानं तथानेन कृता मतिः ॥ १० ॥

'मातले! देखो, मेरे शत्रु रावणका रथ बड़े वेगसे आ रहा है। रावण जिस प्रकार प्रदक्षिणभावसे महान् वेगके साथ पुनः आ रहा है, उससे जान पड़ता है, इसने समरभूमिमें अपने वधका निश्चय कर लिया है ॥ ९-१० ॥

तदप्रमादमातिष्ठ प्रत्युद्गच्छ रथं रिपोः ।
विध्वंसयितुमिच्छामि वायुर्मेघमिवोत्थितम् ॥ ११ ॥

'अतः अब तुम सावधान हो जाओ और शत्रुके रथकी ओर आगे बढ़ो। जैसे हवा उमड़े हुए बादलोंको छिन्न-भिन्न कर डालती है, उसी प्रकार आज मैं शत्रुके रथका विध्वंस करना चाहता हूँ ॥ ११ ॥

अविक्लवमसम्भ्रान्तमव्यग्रहृदयेक्षणम् ।
रश्मिसंचारनियतं प्रचोदय रथं द्रुतम् ॥ १२ ॥

'भय तथा घबराहट छोड़कर मन और नेत्रोंको स्थिर रखते हुए घोड़ोंकी बागडोर काबूमें रक्खो और रथको तेज चलाओ ॥ १२ ॥

कामं न त्वं समाधेयः पुरंदररथोचितः ।
युयुत्सुरहमेकाग्रः स्मारये त्वां न शिक्षये ॥ १३ ॥

'तुम्हें देवराज इन्द्रका रथ हाँकनेका अभ्यास है; अतः तुमको कुछ सिखानेकी आवश्यकता नहीं है। मैं एकाग्रचित्त होकर युद्ध करना चाहता हूँ। इसलिये तुम्हारे कर्तव्यका स्मरणमात्र करा रहा हूँ। तुम्हें शिक्षा नहीं देता हूँ' ॥ १३ ॥

परितुष्टः स रामस्य तेन वाक्येन मातलिः ।
प्रचोदयामास रथं सुरसारथिरुत्तमः ॥ १४ ॥
अपसव्यं ततः कुर्वन् रावणस्य महारथम् ।
चक्रसमुत्थितरजसा रावणं व्यवधूनयत् ॥ १५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके इस वचनसे देवताओंके श्रेष्ठ सारथि मातलिको बड़ा संतोष हुआ और उन्होंने रावणके विशाल रथको दाहिने रखते हुए अपने रथको आगे बढ़ाया। उसके पहियेसे इतनी धूल उड़ी कि रावण उसे देखकर काँप उठा ॥ १४-१५ ॥

ततः क्रुद्धो दशग्रीवस्ताम्रविस्फारितेक्षणः ।
रथप्रतिमुखं रामं सायकैरवधूनयत् ॥ १६ ॥

इससे दशमुख रावणको बड़ा क्रोध हुआ। वह अपनी लाल-लाल आँखें फाड़कर देखता हुआ रथके सामने हुए श्रीरामपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥ १६ ॥

धर्षणामर्षितो रामो धैर्यं रोषेण लम्भयन् ।
जग्राह सुमहावेगमैन्द्रं युधि शरासनम् ॥ १७ ॥

उसके इस आक्रमणसे श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा क्रोध हुआ। फिर रोषके साथ ही धैर्य धारण करके युद्धस्थलमें उन्होंने इन्द्रका धनुष हाथमें लिया, जो बड़ा ही वेगशाली था ॥ १७ ॥

शरांश्च सुमहावेगान् सूर्यरश्मिसमप्रभान् ।
तदुपोढं महद् युद्धमन्योन्यवधकाङ्क्षिणोः ।
परस्पराभिमुखयोर्दृप्तयोरिव सिंहयोः ॥ १८ ॥

साथ ही सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशित होनेवाले महान् वेगशाली बाण भी ग्रहण किये। तत्पश्चात् एक दूसरेके वधकी इच्छा रखकर श्रीराम और रावण दोनोंमें बड़ा भारी युद्ध आरम्भ हुआ। दोनों दर्पसे भरे हुए दो सिंहोंके समान आमने-सामने डटे हुए थे ॥ १८ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
समीयुर्द्वैरथं द्रष्टुं रावणक्षयकाङ्क्षिणः ॥ १९ ॥

उस समय रावणके विनाशकी इच्छा रखनेवाले देवता, सिद्ध, गन्धर्व और महर्षि उन दोनोंके द्वैरथ युद्धको देखनेके लिये वहाँ एकत्र हो गये ॥ १९ ॥

समुत्पेतुरथोत्पाता दारुणा रोमहर्षणाः ।
रावणस्य विनाशाय राघवस्योदयाय च ॥ २० ॥

उस युद्धके समय ऐसे भयकर उत्पात होने लगे, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाले थे। उनसे रावणके विनाश और श्रीरामचन्द्रजीके अभ्युदयकी सूचना मिलती थी ॥ २० ॥

ववर्ष रुधिरं देवो रावणस्य रथोपरि ।
वाता मण्डलिनस्तीव्रा व्यपसव्यं प्रचक्रमुः ॥ २१ ।

मेघ रावणके रथपर रक्तकी वर्षा करने लगे। बड़े वेगसे उठे हुए बवंडर उसकी वामावर्त परिक्रमा करने लगे ॥ २१॥

महद्गृध्रकुलं चास्य भ्रममाणं नभस्थले।
येन येन रथो याति तेन तेन प्रधावति ॥ २२ ॥

जिस-जिस मार्गसे रावणका रथ जाता था, उसी-उसी ओर आकाशमें मँडराता हुआ गीधोंका महान् समुदाय दौड़ा जाता था ॥ २२ ॥

संध्यया चावृता लङ्का जपापुष्पनिकाशया।
दृश्यते सम्प्रदीप्तेव दिवसेऽपि वसुंधरा ॥ २३ ॥

असमयमें ही जपा (अड़हुल) के फूलकी-सी लाल रंगवाली संध्यासे आवृत हुई लङ्कापुरीकी भूमि दिनमें भी जलती हुई-सी दिखायी देती थी ॥ २३ ॥

सनिर्घाता महोल्काश्च सम्प्रपेतुर्महास्वनाः।
विषादयंस्ते रक्षांसि रावणस्य तदाहिताः ॥ २४ ॥

रावणके सामने वज्रपातकी-सी गड़गड़ाहट और बड़ी भारी आवाजके साथ बड़ी-बड़ी उल्काएँ गिरने लगीं, जो उसके अहितकी सूचना दे रही थीं। उन उत्पातोंने राक्षसोंको विषादमें डाल दिया ॥ २४ ॥

रावणश्च यतस्तत्र प्रचचाल वसुंधरा।
रक्षसां च प्रहरतां गृहीता इव बाहवः ॥ २५ ॥

रावण जहाँ-जहाँ जाता, वहाँ-वहाँकी भूमि डोलने लगती थी। प्रहार करते हुए राक्षसोंकी भुजाएँ ऐसी निकम्मी हो गयी थीं, मानो उन्हें किन्हींने पकड़ लिया हो ॥ २५ ॥

ताम्राः पीताः सिताः श्वेताः पतिताः सूर्यरश्मयः।
दृश्यन्ते रावणस्याग्रे पर्वतस्येव धातवः ॥ २६ ॥

रावणके आगे पड़ी हुई सूर्यदेवकी किरणें पर्वतीय धातुओंके समान लाल, पीले, सफेद और काले रंगकी दिखायी देती थीं ॥ २६ ॥

गृध्रैरनुगताश्चास्य वमन्त्यो ज्वलनं मुखैः।
प्रणेदुर्मुखमीक्षन्त्यः संरब्धमशिवं शिवाः ॥ २७ ॥

रावणके रोषावेशसे पूर्ण मुखकी ओर देखती और अपने-अपने मुखोंसे आग उगलती हुई गीदड़ियाँ अमङ्गलसूचक बोली बोलती थीं और उनके पीछे झुंड-के-झुंड गीध मड़राते चलते थे ॥ २७ ॥

प्रतिकूलं ववौ वायू रणे पांसून् समुत्किरन्।
तस्य राक्षसराजस्य कुर्वन् दृष्टिविलोपनम् ॥ २८ ॥

रणभूमिमें धूल उड़ाती वायु राक्षसराज रावणकी आँखें बंद करती हुई प्रतिकूल दिशाकी ओर बह रही थी ॥ २८ ॥

निपेतुरिन्द्राशनयः सैन्ये चास्य समन्ततः।
[illegible]ह्यस्वरा घोरा विना जलधरोदयम् ॥ २९ ॥

उसकी सेनापर सब ओरसे बिना बादलके ही दुःसह एवं कठोर आवाजके साथ भयानक बिजलियाँ गिरीं ॥ २९ ॥

दिशश्च प्रदिशः सर्वा बभूवुस्तिमिरावृताः।
पांसुवर्षेण महता दुर्दर्शं च नभोऽभवत् ॥ ३० ॥

समस्त दिशाएँ और विदिशाएँ अन्धकारसे आच्छन्न हो गयीं। धूलकी बड़ी भारी वर्षाके कारण आकाशका दिखायी देना कठिन हो गया ॥ ३० ॥

कुर्वत्यः कलहं घोरं सारिकास्तद्रथं प्रति।
निपेतुः शतशस्तत्र दारुणा दारुणारुताः ॥ ३१ ॥

भयानक आवाज करनेवाली सैकड़ों दारुण सारिकाएँ आपसमें घोर कलह करती हुई रावणके रथपर गिर पड़ती थीं॥

जघनेभ्यः स्फुलिङ्गांश्च नेत्रेभ्योऽश्रूणि संततम्।
मुमुचुस्तस्य तुरगास्तुल्यमग्निं च वारि च ॥ ३२ ॥

उसके घोड़े अपने जघनस्थलसे आगकी चिनगारियाँ और नेत्रोंसे आँसू बरसा रहे थे। इस प्रकार वे एक ही साथ आग और पानी दोनों प्रकट करते थे ॥ ३२ ॥

एवंप्रकारा बहवः समुत्पाता भयावहाः।
रावणस्य विनाशाय दारुणाः सम्प्रजज्ञिरे ॥ ३३ ॥

इस तरह बहुत-से दारुण एवं भयंकर उत्पात प्रकट हुए, जो रावणके विनाशकी सूचना दे रहे थे ॥ ३३ ॥

रामस्यापि निमित्तानि सौम्यानि च शिवानि च।
बभूवुर्जयशंसीनि प्रादुर्भूतानि सर्वशः ॥ ३४ ॥

श्रीरामके सामने भी अनेक शकुन प्रकट हुए, जो सब प्रकारसे शुभ, मङ्गलमय तथा विजयके सूचक थे ॥ ३४॥

निमित्तानीह सौम्यानि राघवः स्वजयाय वै।
दृष्ट्वा परमसंहृष्टो हतं मेने च रावणम् ॥ ३५ ॥

श्रीरघुनाथजी अपनी विजयकी सूचना देनेवाले इन शुभ शकुनोंको देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने रावणको मरा हुआ ही समझा ॥ ३५ ॥

ततो निरीक्ष्यात्मगतानि राघवो
रणे निमित्तानि निमित्तकोविदः।
जगाम हर्षं च परां च निर्वृतिं
चकार युद्धे ह्यधिकं च विक्रमम् ॥ ३६ ॥

शकुनोंके ज्ञाता भगवान् श्रीराम रणभूमिमें अपनेको प्राप्त होनेवाले शुभ शकुनोंका अवलोकन करके बड़े हर्ष और परम संतोषका अनुभव करने लगे तथा उन्होंने युद्धमें अधिक पराक्रम प्रकट किया ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षडधिकशततमः सर्गः ॥ १०६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ छःवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०६ ॥

सप्ताधिकशततमः सर्गः

श्रीराम और रावणका घोर युद्ध

ततः प्रवृत्तं सुक्रूरं रामरावणयोस्तदा ।
सुमहद् द्वैरथं युद्धं सर्वलोकभयावहम् ॥ १ ॥

तदनन्तर श्रीराम और रावणमें अत्यन्त क्रूरतापूर्वक महान् द्वैरथ युद्ध आरम्भ हुआ, जो समस्त लोकोंके लिये भयंकर था ॥ १ ॥

ततो राक्षससैन्यं च हरीणां च महद्बलम् ।
प्रगृहीतप्रहरणं निश्चेष्टं समवर्तत ॥ २ ॥

उस समय राक्षसों और वानरोंकी विशाल सेनाएँ हाथमें हथियार लिये रहनेपर भी निश्चेष्ट खड़ी रहीं—कोई किसीपर प्रहार नहीं करता था ॥ २ ॥

सम्प्रयुद्धौ तु तौ दृष्ट्वा बलवन्नरराक्षसौ ।
व्याक्षिप्तहृदयाः सर्वे परं विस्मयमागताः ॥ ३ ॥

मनुष्य और निशाचर दोनों वीरोंको बलपूर्वक युद्ध करते देख सबके हृदय उन्हींकी ओर खिंच गये; अतः सभी बड़े आश्चर्यमें पड़ गये ॥ ३ ॥

नानाप्रहरणैर्व्यग्रैर्भुजैर्विस्मितबुद्धयः ।
तस्थुः प्रेक्ष्य च संग्रामं नाभिजग्मुः परस्परम् ॥ ४ ॥

दोनों ओरके सैनिकोंके हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र विद्यमान थे और उनके हाथ युद्धके लिये व्यग्र थे, तथापि उस अद्भुत संग्रामको देखकर उनकी बुद्धि आश्चर्यचकित हो उठी थी; इसलिये वे चुपचाप खड़े थे। एक-दूसरेपर प्रहार नहीं करते थे ॥ ४ ॥

रक्षसां रावणं चापि वानराणां च राघवम् ।
पश्यतां विस्मिताक्षाणां सैन्यं चित्रमिवाबभौ ॥ ५ ॥

राक्षस रावणकी ओर देख रहे थे और वानर श्रीरघुनाथजीकी ओर। उन सबके नेत्र विस्मित थे; अतः निस्तब्ध खड़ी रहनेके कारण उभय पक्षकी सेनाएँ चित्रलिखित-सी जान पड़ती थीं ॥ ५ ॥

तौ तु तत्र निमित्तानि दृष्ट्वा राघवरावणौ ।
कृतबुद्धी स्थिरामर्षौ युयुधाते ह्यभीतवत् ॥ ६ ॥

श्रीराम और रावण दोनोंने वहाँ प्रकट होनेवाले निमित्तोंको देखकर उनके भावी फलका विचार करके युद्धविषयक विचारको स्थिर कर लिया था। उन दोनोंमेंसे एक-दूसरेके प्रति अमर्षका भाव दृढ़ हो गया था; इसलिये वे निर्भय-से होकर युद्ध करने लगे ॥ ६ ॥

जेतव्यमिति काकुत्स्थो मर्तव्यमिति रावणः ।
धृतौ स्ववीर्यसर्वस्वं युद्धेऽदर्शयतां तदा ॥ ७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीको यह विश्वास था कि मेरी ही जीत होगी और रावणको भी यह निश्चय हो गया था कि मुझे अवश्य ही मरना होगा; अतः वे दोनों युद्धमें अपना सारा पराक्रम प्रकट करके दिखाने लगे ॥ ७ ॥

ततः क्रोधाद् दशग्रीवः शरान् संधाय वीर्यवान् ।
मुमोच ध्वजमुद्दिश्य राघवस्य रथे स्थितम् ॥ ८ ॥

उस समय पराक्रमी दशाननने क्रोधपूर्वक बाणोंका संधान करके श्रीरघुनाथजीके रथपर फहराती हुई ध्वजाको निशाना बनाया और उन बाणोंको छोड़ दिया ॥ ८ ॥

ते शरास्तमनासाद्य पुरंदररथध्वजम् ।
रथशक्तिं परामृश्य निपेतुर्धरणीतले ॥ ९ ॥

परंतु उसके चलाये हुए वे बाण इन्द्रके रथकी ध्वजातक न पहुँच सके, केवल रथशक्तिको छूते हुए धरतीपर गिर पड़े॥

ततो रामोऽपि संक्रुद्धश्चापमाकृष्य वीर्यवान् ।
कृतप्रतिकृतं कर्तुं मनसा सम्प्रचक्रमे ॥ १० ॥

तब महाबली श्रीरामचन्द्रजीने भी कुपित होकर अपने धनुषको खींचा और मन-ही-मन रावणके कृत्यका बदला चुकाने—उसके ध्वजको काट गिरानेका विचार किया ॥१०॥

रावणध्वजमुद्दिश्य मुमोच निशितं शरम् ।
महासर्पमिवासह्यं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ॥ ११ ॥

रावणके ध्वजको लक्ष्य करके उन्होंने विशाल सर्पके समान असह्य और अपने तेजसे प्रज्वलित तीखा बाण छोड़ दिया ॥ ११ ॥

रामश्चिक्षेप तेजस्वी केतुमुद्दिश्य सायकम् ।
जगाम स महीं छित्त्वा दशग्रीवध्वजं शरः ॥ १२ ॥

तेजस्वी श्रीरामने उस ध्वजकी ओर निशाना साधकर अपना सायक चलाया और वह दशाननके उस ध्वजको काटकर पृथ्वीमें समा गया ॥ १२ ॥

स निकृत्तोऽपतद् भूमौ रावणस्यन्दनध्वजः ।
ध्वजस्योन्मथनं दृष्ट्वा रावणः स महाबलः ॥ १३ ॥
सम्प्रदीप्तोऽभवत् क्रोधादमर्षात् प्रदहन्निव ।
स रोषवशमापन्नः शरवर्षं ववर्ष ह ॥ १४ ॥

रावणके रथका वह ध्वज कटकर धरतीपर गिर पड़ा। अपने ध्वजका विध्वंस हुआ देख महाबली रावण क्रोधसे जल

---

१. रथकी कलशीपरका वह बाँस जिसमें लड़ाईके रथोंकी ध्वजाएँ लगायी जाती थीं। कुछ विद्वानोंने रथशक्तिका अर्थ—रथकी अद्भुत सामर्थ्य किया है। वैसा अर्थ माननेपर यह भाव निकलता है कि रथके अद्भुत प्रभावका अनुभव करके वे बाण ध्वजतक न पहुँचकर पृथ्वीपर ही गिर पड़े।

उठा और अमर्षके कारण विपक्षीको जलाता हुआ-सा जान पड़ा। वह रोषके वशीभूत होकर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥

रामस्य तुरगान् दीप्तैः शरैर्विव्याध रावणः।
ते दिव्या हरयस्तत्र नास्खलन्नापि बभ्रमुः॥ १५॥
बभूवुः स्वस्थहृदयाः पद्मनालैरिवाहताः।

रावणने अपने तेजस्वी बाणोंसे श्रीरामचन्द्रजीके घोड़ोंको घायल करना आरम्भ किया; परंतु वे घोड़े दिव्य थे, इसलिये न तो लड़खड़ाये और न अपने स्थानसे विचलित ही हुए। वे पूर्ववत् स्वस्थचित्त बने रहे, मानो उनपर कमलकी नालोंसे प्रहार किया गया हो॥ १५½॥

तेषामसम्भ्रमं दृष्ट्वा वाजिनां रावणस्तदा॥ १६॥
भूय एव सुसंक्रुद्धः शरवर्षं मुमोच ह।
गदाश्च परिघांश्चैव चक्राणि मुसलानि च॥ १७॥
गिरिशृङ्गाणि वृक्षांश्च तथा शूलपरश्वधान्।
मायाविहितमेतत् तु शस्त्रवर्षमपातयत्।
सहस्रशस्तदा बाणानश्रान्तहृदयोद्यमः॥ १८॥

उन घोड़ोंका घबराहटमें न पड़ना देख रावणका क्रोध और भी बढ़ गया। वह पुनः बाणोंकी वर्षा करने लगा। गदा, चक्र, परिघ, मूसल, पर्वत-शिखर, वृक्ष, शूल, फरसे तथा मायानिर्मित अन्यान्य शस्त्रोंकी वृष्टि करने लगा। उसने हृदयमें थकावटका अनुभव न करके सहस्रों बाण छोड़े॥ १६—१८॥

तुमुलं त्रासजननं भीमं भीमप्रतिस्वनम्।
तद् वर्षमभवद् युद्धे नैकशस्त्रमयं महत्॥ १९॥

युद्धस्थलमें अनेक शस्त्रोंकी वह विशाल वर्षा बड़ी भयानक, तुमुल, त्रासजनक और भयंकर कोलाहलसे पूर्ण थी॥

विमुच्य राघवरथं समन्ताद् वानरे बले।
सायकैरन्तरिक्षं च चकार सुनिरन्तरम्॥ २०॥
मुमोच च दशग्रीवो निःसङ्गेनान्तरात्मना।

वह शस्त्रवर्षा श्रीरामचन्द्रजीके रथको छोड़कर सब ओरसे वानर-सेनाके ऊपर पड़ने लगी। दशमुख रावणने प्राणोंका मोह छोड़कर बाणोंका प्रयोग किया और अपने सायकोंसे वहाँके आकाशको ठसाठस भर दिया॥ २०½॥

व्यायच्छमानं तं दृष्ट्वा तत्परं रावणं रणे॥ २१॥
प्रहसन्निव काकुत्स्थः संदधे निशिताञ्छरान्।
स मुमोच ततो बाणाञ्छतशोऽथ सहस्रशः॥ २२॥

तदनन्तर रणभूमिमें रावणको बाण चलानेमें अधिक परिश्रम करते देख श्रीरामचन्द्रजीने हँसते हुए-से तीखे बाणोंका संधान किया और उन्हें सैकड़ों तथा हजारोंकी संख्यामें छोड़ा॥ २१-२२॥

तान् दृष्ट्वा रावणश्चक्रे स्वशरैः खं निरन्तरम्।
ताभ्यां नियुक्तेन तदा शरवर्षेण भास्वता॥ २३॥
शरबद्धमिवाभाति द्वितीयं भास्वदम्बरम्।

उन बाणोंको देखकर रावणने पुनः अपने बाण बरसाये और आकाशको इतना भर दिया कि उसमें तिल रखनेकी भी जगह नहीं रह गयी। उन दोनोंके द्वारा की गयी चमकीले बाणोंकी वर्षासे वहाँका प्रकाशमान आकाश बाणोंसे बद्ध होकर किसी और ही आकाश-सा प्रतीत होता था॥ २३½॥

नानिमित्तोऽभवद् बाणो नानिर्भेत्ता न निष्फलः॥ २४॥
अन्योन्यमभिसंहत्य निपेतुर्धरणीतले।
तथा विसृजतोर्बाणान् रामरावणयोर्मृधे॥ २५॥

उनका चलाया हुआ कोई भी बाण लक्ष्यतक पहुँचे बिना नहीं रहता था, लक्ष्यको बेधे या विदीर्ण किये बिना नहीं रुकता था तथा निष्फल भी नहीं होता था। इस तरह युद्धमें शस्त्रवर्षा करते हुए श्रीराम और रावणके बाण जब आपसमें टकराते थे, तब नष्ट होकर पृथ्वीपर गिर जाते थे॥ २४-२५॥

प्रायुध्येतामविच्छिन्नमस्यन्तौ सव्यदक्षिणम्।
चक्रतुश्च शरैर्घोरैर्निरुच्छ्वासमिवाम्बरम्॥ २६॥

वे दोनों योद्धा दायें-बायें प्रहार करते हुए निरन्तर युद्धमें लगे रहे। उन्होंने अपने भयंकर बाणोंसे आकाशको इस तरह भर दिया कि मानो उसमें साँस लेनेकी भी जगह नहीं रह गयी॥ २६॥

रावणस्य हयान् रामो हयान् रामस्य रावणः।
जघ्नतुस्तौ तदान्योन्यं कृतानुकृतकारिणौ॥ २७॥

श्रीरामने रावणके घोड़ोंको और रावणने श्रीरामके घोड़ोंको घायल कर दिया। वे दोनों एक दूसरेके प्रहारका बदला चुकाते हुए परस्पर आघात करते रहे॥ २७॥

एवं तु तौ सुसंक्रुद्धौ चक्रतुर्युद्धमुत्तमम्।
मुहूर्तमभवद् युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्॥ २८॥

इस प्रकार वे दोनों अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए उत्तम रीतिसे युद्ध करने लगे। दो घड़ीतक तो उन दोनोंमें ऐसा भयंकर संग्राम हुआ, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला था॥ २८॥

तौ तथा युध्यमानौ तु समरे रामरावणौ।
ददृशुः सर्वभूतानि विस्मितेनान्तरात्मना॥ २९॥

इस प्रकार युद्धमें लगे हुए श्रीराम तथा रावणको सम्पूर्ण प्राणी चकितचित्तसे निहारने लगे॥ २९॥

अर्दयन्तौ तु समरे तयोस्तौ स्यन्दनोत्तमौ।
परस्परमभिक्रुद्धौ परस्परमभिद्रुतौ॥ ३०॥

उन दोनोंके वे श्रेष्ठ रथ (तथा उसमें बैठे हुए रथी) समरभूमिमें अत्यन्त क्रोधपूर्वक एक दूसरेको पीड़ा देने और परस्पर धावा करने लगे॥ ३०॥

परस्परवधे युक्तौ घोररूपौ बभूवतुः।
मण्डलानि च वीथीश्च गतप्रत्यागतानि च॥ ३१॥
दर्शयन्तौ बहुविधां सूतौ सारथ्यजां गतिम्।

एक दूसरेके वधके प्रयत्नमें लगे हुए वे दोनों वीर बड़े भयानक जान पड़ते थे। उन दोनोंके सारथि कभी रथको चक्कर काटते हुए ले जाते, कभी सीधे मार्गसे दौड़ाते और कभी आगेकी ओर बढ़ाकर पीछेकी ओर लौटाते थे। इस तरह वे दोनों अपने रथ हाँकनेमें विविध प्रकारके ज्ञानका परिचय देने लगे ॥ ३१½ ॥

अर्दयन् रावणं रामो राघवं चापि रावणः ॥ ३२ ॥
गतिवेगं समापन्नौ प्रवर्तननिवर्तने ।

श्रीराम रावणको पीड़ित करने लगे और रावण श्रीरामको पीड़ा देने लगा। इस प्रकार युद्धविषयक प्रवृत्ति और निवृत्तिमें वे दोनों तदनुरूप गतिवेगका आश्रय लेते थे ॥ ३२½ ॥

क्षिपतोः शरजालानि तयोस्तौ स्यन्दनोत्तमौ ॥ ३३ ॥
चेरतुः संयुगमहीं सासारौ जलदाविव ।

बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए उन दोनों वीरोंके वे श्रेष्ठ रथ जलकी धारा गिराते हुए दो जलधरोंके समान युद्धभूमिमें विचर रहे थे ॥ ३३½ ॥

दर्शयित्वा तदा तौ तु गतिं बहुविधां रणे ॥ ३४ ॥
परस्परस्याभिमुखौ पुनरेव च तस्थतुः ।

वे दोनों रथ युद्धस्थलमें भाँति-भाँतिकी गतिका प्रदर्शन करनेके बाद फिर आमने-सामने आकर खड़े हो गये ॥ ३४½ ॥

धुरं धुरेण रथयोर्वक्त्रं वक्त्रेण वाजिनाम् ॥ ३५ ॥
पताकाश्च पताकाभिः समीयुः स्थितयोस्तदा ।

उस समय वहाँ खड़े हुए उन दोनों रथोंके युगन्धर (हरसोंकी संधि) युगन्धरसे, घोड़ोंके मुख विपक्षी घोड़ोंके मुखसे तथा पताकाएँ पताकाओंसे मिल गयीं ॥ ३५½ ॥

रावणस्य ततो रामो धनुर्मुक्तैः शितैः शरैः ॥ ३६ ॥
चतुर्भिश्चतुरो दीप्तान् हयान् प्रत्यपसर्पयत् ।

तत्पश्चात् श्रीरामने अपने धनुषसे छूटे हुए चार पैने बाणोंद्वारा रावणके चारों तेजस्वी घोड़ोंको पीछे हटनेके लिये विवश कर दिया ॥ ३६½ ॥

स क्रोधवशमापन्नो हयानामपसर्पणे ॥ ३७ ॥
मुमोच निशितान् बाणान् राघवाय दशाननः ।

घोड़ोंके पीछे हटनेपर दशमुख रावण क्रोधके वशीभूत हो गया और श्रीरामपर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ३७½ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता दशग्रीवेण राघवः ॥ ३८ ॥
जगाम न विकारं च न चापि व्यथितोऽभवत् ।

बलवान् दशाननके द्वारा अत्यन्त घायल किये जानेपर भी श्रीरघुनाथजीके चेहरेपर शिकनतक न आयी और न उनके मनमें व्यथा ही हुई ॥ ३८½ ॥

चिक्षेप च पुनर्बाणान् वज्रसारसमस्वनान् ॥ ३९ ॥
सारथिं वज्रहस्तस्य समुद्दिश्य दशाननः ।

तत्पश्चात् रावणने इन्द्रके सारथि मातलिको लक्ष्य करके वज्रके समान शब्द करनेवाले बाण छोड़े ॥ ३९½ ॥

मातलेस्तु महावेगाः शरीरे पतिताः शराः ॥ ४० ॥
न सूक्ष्ममपि सम्मोहं व्यथां वा प्रददुर्युधि ।

वे महान् वेगशाली बाण युद्धस्थलमें मातलिके शरीरपर पड़कर उन्हें थोड़ा-सा भी मोह या व्यथा न दे सके ॥ ४०½ ॥

तया धर्षणया क्रुद्धो मातलेर्न तथाऽऽत्मनः ॥ ४१ ॥
चकार शरजालेन राघवो विमुखं रिपुम् ।

रावणद्वारा मातलिके प्रति आक्रमणसे श्रीरामचन्द्रजीको जैसा क्रोध हुआ, वैसा अपनेपर किये गये आक्रमणसे नहीं हुआ था। अतः उन्होंने बाणोंका जाल-सा बिछाकर अपने शत्रुको युद्धसे विमुख कर दिया ॥ ४१½ ॥

विंशतिं त्रिंशतिं षष्टिं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४२ ॥
मुमोच राघवो वीरः सायकान् स्यन्दने रिपोः ।

वीर रघुनाथजीने शत्रुके रथपर बीस, तीस, साठ, सौ और हजार-हजार बाणोंकी वृष्टि की ॥ ४२½ ॥

रावणोऽपि ततः क्रुद्धो रथस्थो राक्षसेश्वरः ॥ ४३ ॥
गदामुसलवर्षेण रामं प्रत्यर्दयद् रणे ।

तब रथपर बैठा हुआ राक्षसराज रावण भी कुपित हो उठा और गदा तथा मूसलोंकी वर्षासे रणभूमिमें श्रीरामको पीड़ा देने लगा ॥ ४३½ ॥

तत् प्रवृत्तं पुनर्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ ४४ ॥
गदानां मुसलानां च परिघाणां च निःस्वनैः ।
शराणां पुङ्खवातैश्च क्षुभिताः सप्त सागराः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार उन दोनोंमें पुनः बड़ा भयंकर और रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। गदाओं, मुसलों और परिघोंकी आवाजसे तथा बाणोंके पंखोंकी सनसनाती हुई हवासे सातों समुद्र विक्षुब्ध हो उठे ॥ ४४-४५ ॥

क्षुब्धानां सागराणां च पातालतलवासिनः ।
व्यथिता दानवाः सर्वे पन्नगाश्च सहस्रशः ॥ ४६ ॥

उन विक्षुब्ध समुद्रोंके पातालतलमें निवास करनेवाले समस्त दानव और सहस्रों नाग व्यथित हो गये ॥ ४६ ॥

चकम्पे मेदिनी कृत्स्ना सशैलवनकानना ।
भास्करो निष्प्रभश्चासीन्न ववौ चापि मारुतः ॥ ४७ ॥

पर्वतों, वनों और काननोंसहित सारी पृथ्वी काँप उठी, सूर्यकी प्रभा लुप्त हो गयी और वायुकी गति भी रुक गयी ॥ ४७ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
चिन्तामापेदिरे सर्वे सकिंनरमहोरगाः ॥ ४८ ॥

देवता, गन्धर्व, सिद्ध, महर्षि, किंनर और बड़े-बड़े नाग सभी चिन्तामें पड़ गये ॥ ४८ ॥

✓ **स्वस्ति गोब्राह्मणेभ्यस्तु लोकास्तिष्ठन्तु शाश्वताः।**
जयतां राघवः संख्ये रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ ४९ ॥

सबके मुँहसे यही बात निकलने लगी—'गौ और ब्राह्मणोंका कल्याण हो, प्रवाहरूपसे सदा रहनेवाले इन लोकोंकी रक्षा हो और श्रीरघुनाथजी युद्धमें राक्षसराज रावणपर विजय पावें, ॥ ४९ ॥

एवं जपन्तोऽपश्यंस्ते देवाः सर्षिगणास्तदा ।
रामरावणयोर्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम् ॥ ५० ॥

इस प्रकार कहते हुए ऋषियोंसहित वे देवगण श्रीराम और रावणके अत्यन्त भयंकर तथा रोमाञ्चकारी युद्धको देखने लगे ॥

गन्धर्वाप्सरसां सङ्घा दृष्ट्वा युद्धमनूपमम् ।
✓ **गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः ॥ ५१ ॥**
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ।
एवं ब्रुवन्तो ददृशुस्तद् युद्धं रामरावणम् ॥ ५२ ॥

गन्धर्वों और अप्सराओंके समुदाय उस अनुपम युद्धको देखकर कहने लगे—'आकाश आकाशके ही तुल्य है, समुद्र समुद्रके ही समान है तथा राम और रावणका युद्ध राम और रावणके युद्धके ही सदृश है'* ऐसा कहते हुए वे सब लोग राम-रावणका युद्ध देखने लगे ॥ ५१-५२ ॥

ततः क्रोधान्महाबाहू रघूणां कीर्तिवर्धनः ।
संधाय धनुषा रामः शरमाशीविषोपमम् ॥ ५३ ॥
रावणस्य शिरोऽच्छिन्दच्छ्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् ।
तच्छिरः पतितं भूमौ दृष्टं लोकैस्त्रिभिस्तदा ॥ ५४ ॥

तदनन्तर रघुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले महाबाहु श्रीरामचन्द्रजीने कुपित होकर अपने धनुषपर एक विषधर सर्पके समान बाणका संधान किया और उसके द्वारा जगमगाते हुए कुण्डलोंसे युक्त रावणका एक सुन्दर मस्तक काट डाला। उसका वह कटा हुआ सिर उस समय पृथ्वीपर गिर पड़ा, जिसे तीनों लोकोंके प्राणियोंने देखा ॥ ५३-५४ ॥

तस्यैव सदृशं चान्यद् रावणस्योत्थितं शिरः।
तत् क्षिप्तं क्षिप्रहस्तेन रामेण क्षिप्रकारिणा ॥ ५५ ॥
द्वितीयं रावणशिरश्छिन्नं संयति सायकैः ।

उसकी जगह रावणके वैसा ही दूसरा नया सिर उत्पन्न हो गया। शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले शीघ्रकारी श्रीरामने युद्धस्थलमें अपने सायकोंद्वारा रावणका वह दूसरा सिर भी शीघ्र ही काट डाला ॥ ५५½ ॥

छिन्नमात्रं च तच्छीर्षं पुनरेव प्रदृश्यते ॥ ५६ ॥
तदप्यशनिसंकाशैश्छिन्नं रामस्य सायकैः ।

उसके कटते ही पुनः नया सिर उत्पन्न दिखायी देने लगा, किंतु उसे भी श्रीरामके वज्रतुल्य सायकोंने काट डाला ॥ ५६½ ॥

एवमेव शतं छिन्नं शिरसां तुल्यवर्चसाम् ॥ ५७ ॥ ✓
न चैव रावणस्यान्तो दृश्यते जीवितक्षये ।

इस प्रकार एक-से तेजवाले उसके सौ सिर काट डाले गये, तथापि उसके जीवनका नाश होनेके लिये उसके मस्तकोंका अन्त होता नहीं दिखायी देता था ॥ ५७½ ॥

ततः सर्वास्त्रविद् वीरः कौसल्यानन्दवर्धनः ॥ ५८ ॥
मार्गणैर्बहुभिर्युक्तश्चिन्तयामास राघवः ।

तदनन्तर कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले, सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता वीर श्रीरामचन्द्रजी अनेक प्रकारके बाणोंसे युक्त होनेपर भी इस प्रकार चिन्ता करने लगे—॥ ५८½ ॥

मारीचो निहतो यैस्तु खरो यैस्तु सदूषणः ॥ ५९ ॥
क्रौञ्चावटे विराधस्तु कबन्धो दण्डकावने ।
यैः साला गिरयो भग्ना वाली च क्षुभितोऽम्बुधिः ॥ ६० ॥
त इमे सायकाः सर्वे युद्धे प्रात्ययिका मम ।
किं नु तत् कारणं येन रावणे मन्दतेजसः ॥ ६१ ॥

'अहो ! मैंने जिन बाणोंसे मारीच, खर और दूषणको मारा, क्रौञ्चवनके गड्ढेमें विराधका वध किया, दण्डकारण्यमें कबन्धको मौतके घाट उतारा, सालवृक्ष और पर्वतोंको विदीर्ण किया, वालीके प्राण लिये और समुद्रको भी क्षुब्ध कर दिया, अनेक बारके संग्राममें परीक्षा करके जिनकी अमोघताका विश्वास कर लिया गया है, वे ही ये मेरे सब सायक आज रावणके ऊपर निस्तेज—कुण्ठित हो गये हैं; इसका क्या कारण हो सकता है ?' ॥ ५९-६१ ॥

इति चिन्तापरश्चासीदप्रमत्तश्च संयुगे ।
ववर्ष शरवर्षाणि राघवो रावणोरसि ॥ ६२ ॥

इस तरह चिन्तामें पड़े होनेपर भी श्रीरघुनाथजी युद्धस्थलमें सतत सावधान रहे। उन्होंने रावणकी छातीपर बाणोंकी झड़ी लगा दी ॥ ६२ ॥

रावणोऽपि ततः क्रुद्धो रथस्थो राक्षसेश्वरः ।
गदामुसलवर्षेण रामं प्रत्यर्दयद् रणे ॥ ६३ ॥

तब रथपर बैठे हुए राक्षसराज रावणने भी कुपित होकर रणभूमिमें श्रीरामको गदा और मूसलोंकी वर्षासे पीड़ित करना आरम्भ किया ॥ ६३ ॥

तत् प्रवृत्तं महद् युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ।
अन्तरिक्षे च भूमौ च पुनश्च गिरिमूर्धनि ॥ ६४ ॥

उस महायुद्धने बड़ा भयंकर रूप धारण किया। उसे

---

* 'गगनं गगनाकारं'से 'रामरावणयोरिव'तकके श्लोकमें अनन्वयालङ्कार है। जहाँ एक ही वस्तु उपमान और उपमेयरूपसे कही जाय, दूसरी कोई उपमा न मिल सके, वहाँ अनन्वयालङ्कार होता है।

देखते ही रोंगटे खड़े हो जाते थे। वह युद्ध कभी आकाशमें, कभी भूतलपर और कभी-कभी पर्वतके शिखरपर होता था ॥ ६४ ॥

देवदानवयक्षाणां पिशाचोरगरक्षसाम्।
पश्यतां तन्महद् युद्धं सर्वरात्रमवर्तत ॥ ६५ ॥

देवता, दानव, यक्ष, पिशाच, नाग और राक्षसोंके देखते-देखते वह महान् संग्राम सारी रात चलता रहा ॥ ६५ ॥

नैव रात्रिं न दिवसं न मुहूर्तं न च क्षणम्।
रामरावणयोर्युद्धं विराममुपगच्छति ॥ ६६ ॥

श्रीराम और रावणका वह युद्ध न रातमें बंद होता था और न दिनमें। दो घड़ी अथवा एक क्षणके लिये भी उसका विराम नहीं हुआ ॥ ६६ ॥

दशरथसुतराक्षसेन्द्रयोस्तयो-
र्जयमनवेक्ष्य रणे स राघवस्य।
सुरवररथसारथिर्महात्मा
रणरतराममुवाच वाक्यमाशु ॥ ६७ ॥

एक ओर दशरथकुमार श्रीराम थे और दूसरी ओर राक्षसराज रावण। उन दोनोंमेंसे श्रीरघुनाथजीकी युद्धमें विजय होती न देख देवराजके सारथि महात्मा मातलिने युद्धपरायण श्रीरामसे शीघ्रतापूर्वक कहा—॥ ६७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्ताधिकशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ सातवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०७ ॥

अष्टाधिकशततमः सर्गः

श्रीरामके द्वारा रावणका वध

अथ संस्मारयामास मातली राघवं तदा।
अजानन्निव किं वीर त्वमेनमनुवर्तसे ॥ १ ॥

मातलिने श्रीरघुनाथजीको कुछ याद दिलाते हुए कहा—'वीरवर! आप अनजानकी तरह क्यों इस राक्षसका अनुसरण कर रहे हैं? (यह जो अस्त्र चलाता है, उसके निवारण करनेवाले अस्त्रका प्रयोगमात्र करके रह जाते हैं) ॥ १ ॥

विसृजास्मै वधाय त्वमस्त्रं पैतामहं प्रभो।
विनाशकालः कथितो यः सुरैः सोऽद्य वर्तते ॥ २ ॥

'प्रभो! आप इसके वधके लिये ब्रह्माजीके अस्त्रका प्रयोग कीजिये। देवताओंने इसके विनाशका जो समय बताया है, वह अब आ पहुँचा है' ॥ २ ॥

ततः संस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातलेः।
जग्राह स शरं दीप्तं निःश्वसन्तमिवोरगम् ॥ ३ ॥

मातलिके इस वाक्यसे श्रीरामचन्द्रजीको उस अस्त्रका स्मरण हो आया। फिर तो उन्होंने फुफकारते हुए सर्पके समान एक तेजस्वी बाण हाथमें लिया ॥ ३ ॥

यं तस्मै प्रथमं प्राद‌ादगस्त्यो भगवानृषिः।
ब्रह्मदत्तं महद् बाणममोघं युधि वीर्यवान् ॥ ४ ॥

यह वही बाण था, जिसे पहले शक्तिशाली भगवान् अगस्त्य ऋषिने रघुनाथजीको दिया था। वह विशाल बाण ब्रह्माजीका दिया हुआ था और युद्धमें अमोघ था ॥ ४ ॥

ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वमिन्द्रार्थममितौजसा।
दत्तं सुरपतेः पूर्वं त्रिलोकजयकाङ्क्षिणः ॥ ५ ॥

अमित तेजस्वी ब्रह्माजीने पहले इन्द्रके लिये उस बाणका निर्माण किया था और तीनों लोकोंपर विजय पानेकी इच्छा रखनेवाले देवेन्द्रको ही पूर्वकालमें अर्पित किया था ॥

यस्य वाजेषु पवनः फले पावकभास्करौ।
शरीरमाकाशमयं गौरवे मेरुमन्दरौ ॥ ६ ॥

उस बाणके वेगमें वायुकी, धारमें अग्नि और सूर्यकी, शरीरमें आकाशकी तथा भारीपनमें मेरु और मन्दराचलकी प्रतिष्ठा की गयी थी ॥ ६ ॥

जाज्वल्यमानं वपुषा सुपुङ्खं हेमभूषितम्।
तेजसा सर्वभूतानां कृतं भास्करवर्चसम् ॥ ७ ॥
सधूममिव कालाग्निं दीप्तमाशीविषोपमम्।
नरनागाश्ववृन्दानां भेदनं क्षिप्रकारिणम् ॥ ८ ॥

वह सम्पूर्ण भूतोंके तेजसे बनाया गया था। उससे सूर्यके समान ज्योति निकलती रहती थी। वह सुवर्णसे भूषित, सुन्दर पंखसे युक्त, स्वरूपसे जाज्वल्यमान, प्रलयकालकी धूमयुक्त अग्निके समान भयंकर, दीप्तिमान्, विषधर सर्पके समान विषैला, मनुष्य, हाथी और घोड़ोंको विदीर्ण कर डालनेवाला तथा शीघ्रतापूर्वक लक्ष्यका भेदन करनेवाला था ॥ ७-८ ॥

द्वाराणां परिघाणां च गिरीणां चापि भेदनम्।
नानारुधिरदिग्धाङ्गं मेदोदिग्धं सुदारुणम् ॥ ९ ॥
वज्रसारं महानादं नानासमितिदारुणम्।
सर्ववित्रासनं भीमं श्वसन्तमिव पन्नगम् ॥ १० ॥
कङ्कगृध्रबकानां च गोमायुगणरक्षसाम्।
नित्यभक्षप्रदं युद्धे यमरूपं भयावहम् ॥ ११ ॥

बड़े-बड़े दरवाजों, परिघों तथा पर्वतोंको भी तोड़-फोड़ देनेकी उसमें शक्ति थी। उसका सारा शरीर नाना प्रकारके रक्तमें नहाया और चर्बीसे परिपुष्ट हुआ था। देखनेमें भी वह बड़ा भयंकर था। वज्रके समान कठोर, महान् शब्दसे युक्त, अनेकानेक युद्धोंमें शत्रुसेनाको विदीर्ण करनेवाला, सबको

त्रास देनेवाला तथा फुफकारते हुए सर्पके समान भयंकर था। युद्धमें वह यमराजका भयावह रूप धारण कर लेता था। समरभूमिमें कौए, गीध, बगले, गीदड़ तथा पिशाचोंको वह सदा भक्ष्य प्रदान करता था॥ ९-११॥

नन्दनं वानरेन्द्राणां रक्षसामवसादनम्।
वाजितं विविधैर्वाजैश्चारुचित्रैर्गरुत्मतः॥ १२॥

वह सायक वानर-यूथपतियोंको आनन्द देनेवाला तथा राक्षसोंको दुःखमें डालनेवाला था। गरुड़के सुन्दर विचित्र और नाना प्रकारके पंख लगाकर वह पंखयुक्त बना हुआ था।

तमुत्तमेषुं लोकानामिक्ष्वाकुभयनाशनम्।
द्विषतां कीर्तिहरणं प्रहर्षकरमात्मनः॥ १३॥
अभिमन्त्र्य ततो रामस्तं महेषुं महाबलः।
वेदप्रोक्तेन विधिना संदधे कार्मुके बली॥ १४॥

वह उत्तम बाण समस्त लोकों तथा इक्ष्वाकुवंशियोंके भयका नाशक था, शत्रुओंकी कीर्तिका अपहरण तथा अपने हर्षकी वृद्धि करनेवाला था। उस महान् सायकको वेदोक्त विधिसे अभिमन्त्रित करके महाबली श्रीरामने अपने धनुषपर रक्खा॥ १३-१४॥

तस्मिन् संधीयमाने तु राघवेण शरोत्तमे।
सर्वभूतानि संत्रेसुश्चचाल च वसुंधरा॥ १५॥

श्रीरघुनाथजी जब उस उत्तम बाणका संधान करने लगे, तब सम्पूर्ण प्राणी थर्रा उठे और धरती डोलने लगी॥ १५॥

स रावणाय संक्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम्।
चिक्षेप परमायत्तः शरं मर्मविदारणम्॥ १६॥

श्रीरामने अत्यन्त कुपित हो बड़े यत्नके साथ धनुषको पूर्णरूपसे खींचकर उस मर्मभेदी बाणको रावणपर चला दिया॥ १६॥

स वज्र इव दुर्धर्षो वज्रिबाहुविसर्जितः।
कृतान्त इव चावार्यो न्यपतद् रावणोरसि॥ १७॥

वज्रधारी इन्द्रके हाथोंसे छूटे हुए वज्रके समान दुर्धर्ष और कालके समान अनिवार्य वह बाण रावणकी छातीपर जा लगा॥ १७॥

स विसृष्टो महावेगः शरीरान्तकरः परः।
बिभेद हृदयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः॥ १८॥

शरीरका अन्त कर देनेवाले उस महान् वेगशाली श्रेष्ठ बाणने छूटते ही दुरात्मा रावणके हृदयको विदीर्ण कर डाला॥ १८॥

रुधिराक्तः स वेगेन शरीरान्तकरः शरः।
रावणस्य हरन् प्राणान् विवेश धरणीतलम्॥ १९॥

शरीरका अन्त करके रावणके प्राण हर लेनेवाला वह बाण उसके खूनसे रँगकर वेगपूर्वक धरतीमें समा गया॥ १९॥

स शरो रावणं हत्वा रुधिरार्द्रकृतच्छविः।
कृतकर्मा निभृतवत् स तूणीं पुनराविशत्॥ २०॥

इस प्रकार रावणका वध करके खूनसे रँगा हुआ वह शोभाशाली बाण अपना काम पूरा करनेके पश्चात् पुनः विनीत सेवककी भाँति श्रीरामचन्द्रजीके तरकसमें लौट आया॥ २०॥

तस्य हस्ताद्धतस्याशु कार्मुकं तत् ससायकम्।
निपपात सह प्राणैर्भ्रश्यमानस्य जीवितात्॥ २१॥

श्रीरामके बाणोंकी चोट खाकर रावण जीवनसे हाथ धो बैठा। उसके प्राण निकलनेके साथ ही हाथसे सायकसहित धनुष भी छूटकर गिर पड़ा॥ २१॥

गतासुर्भीमवेगस्तु नैर्ऋतेन्द्रो महाद्युतिः।
पपात स्यन्दनाद् भूमौ वृत्रो वज्रहतो यथा॥ २२॥

वह भयानक वेगशाली महातेजस्वी राक्षसराज प्राणहीन हो वज्रके मारे हुए वृत्रासुरकी भाँति रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा॥

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ हतशेषा निशाचराः।
हतनाथा भयत्रस्ताः सर्वतः सम्प्रदुद्रुवुः॥ २३॥

रावणको पृथ्वीपर पड़ा देख मरनेसे बचे हुए सम्पूर्ण निशाचर स्वामीके मारे जानेसे भयभीत हो सब ओर भाग गये॥ २३॥

नर्दन्तश्चाभिपेतुस्तान् वानरा द्रुमयोधिनः।
दशग्रीववधं दृष्ट्वा वानरा जितकाशिनः॥ २४॥

दशमुख रावणका वध हुआ देख विजयसे सुशोभित होनेवाले वानर, जो वृक्षोंद्वारा युद्ध करनेवाले थे, गर्जना करते हुए उन राक्षसोंपर टूट पड़े॥ २४॥

अर्दिता वानरैर्हृष्टैर्लङ्कामभ्यपतन् भयात्।
हताश्रयत्वात् करुणैर्बाष्पप्रस्रवणैर्मुखैः॥ २५॥

उन हर्षोल्लासित वानरोंद्वारा पीड़ित किये जानेपर वे राक्षस भयके मारे लङ्कापुरीकी ओर भाग गये; क्योंकि उनका आश्रय नष्ट हो गया था। उनके मुखपर करुणायुक्त आँसुओंकी धारा बह रही थी॥ २५॥

ततो विनेदुः संहृष्टा वानरा जितकाशिनः।
वदन्तो राघवजयं रावणस्य च तद्वधम्॥ २६॥

उस समय वानर विजय-लक्ष्मीसे सुशोभित हो अत्यन्त हर्ष और उत्साहसे भर गये तथा श्रीरघुनाथजीकी विजय और रावणके वधकी घोषणा करते हुए जोर-जोरसे गर्जना करने लगे॥ २६॥

अथान्तरिक्षे व्यनदत् सौम्यस्त्रिदशदुन्दुभिः।
दिव्यगन्धवहस्तत्र मारुतः सुसुखो ववौ॥ २७॥

इसी समय आकाशमें मधुर स्वरसे देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। वायु दिव्य सुगन्ध बिखेरती हुई मन्द-मन्द गतिसे प्रवाहित होने लगी॥ २७॥

निपपातान्तरिक्षाच्च पुष्पवृष्टिस्तदा भुवि।
किरन्ती राघवरथं दुरवापा मनोहरा॥ २८॥

अन्तरिक्षसे भूतलपर श्रीरघुनाथजीके रथके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी, जो दुर्लभ तथा मनोहर थी॥ २८॥

राघवस्तवसंयुक्ता गगने च विशुश्रुवे ।
साधुसाध्विति वागग्र्या देवतानां महात्मनाम् ॥ २९ ॥

आकाशमें महात्मा देवताओंके मुखसे निकली हुई श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुतिसे युक्त साधुवादकी श्रेष्ठ वाणी सुनायी देने लगी ॥ २९ ॥

आविवेश महान् हर्षो देवानां चारणैः सह ।
रावणे निहते रौद्रे सर्वलोकभयंकरे ॥ ३० ॥

सम्पूर्ण लोकोंको भय देनेवाले रौद्र राक्षस रावणके मारे जानेपर देवताओं और चारणोंको महान् हर्ष हुआ ॥ ३० ॥

ततः सकामं सुग्रीवमङ्गदं च विभीषणम् ।
चकार राघवः प्रीतो हत्वा राक्षसपुंगवम् ॥ ३१ ॥

श्रीरघुनाथजीने राक्षसराजको मारकर सुग्रीव, अङ्गद तथा विभीषणको सफलमनोरथ किया और स्वयं भी उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ३१ ॥

ततः प्रजग्मुः प्रशमं मरुद्गणा
दिशः प्रसेदुर्विमलं नभोऽभवत् ।
मही चकम्पे न च मारुतो ववौ
स्थिरप्रभश्चाप्यभवद् दिवाकरः ॥ ३२ ॥

तत्पश्चात् देवताओंको बड़ी शान्ति मिली, सम्पूर्ण दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं—उनमें प्रकाश छा गया, आकाश निर्मल हो गया; पृथ्वीका काँपना बंद हुआ, हवा स्वाभाविक गतिसे चलने लगी तथा सूर्यकी प्रभा भी स्थिर हो गयी ॥ ३२ ॥

ततस्तु सुग्रीवविभीषणाङ्गदाः
सुहृद्विशिष्टाः सहलक्ष्मणस्तदा ।
समेत्य हृष्टा विजयेन राघवं
रणेऽभिरामं विधिनाभ्यपूजयन् ॥ ३३ ॥

सुग्रीव, विभीषण, अङ्गद तथा लक्ष्मण अपने सुहृदोंके साथ युद्धमें श्रीरामचन्द्रजीकी विजयसे बहुत प्रसन्न हुए। इसके बाद उन सबने मिलकर नयनाभिराम श्रीरामकी विधिवत् पूजा की ॥ ३३ ॥

स तु निहतरिपुः स्थिरप्रतिज्ञः
स्वजनबलाभिवृतो रणे बभूव ।
रघुकुलनृपनन्दनो महौजा-
स्त्रिदशगणैरभिसंवृतो महेन्द्रः ॥ ३४ ॥

शत्रुको मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके पश्चात् स्वजनों-सहित सेनासे घिरे हुए महातेजस्वी रघुकुलराजकुमार श्रीराम रणभूमिमें देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रकी भाँति शोभा पाने लगे ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टाधिकशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ आठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०८ ॥

नवाधिकशततमः सर्गः

विभीषणका विलाप और श्रीरामका उन्हें समझाकर रावणके अन्त्येष्टि-संस्कारके लिये आदेश देना

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा शयानं निर्जितं रणे ।
शोकवेगपरीतात्मा विललाप विभीषणः ॥ १ ॥

पराजित हुए भाईको मरकर रणभूमिमें पड़ा देख विभीषणका हृदय शोकके वेगसे व्याकुल हो गया और वे विलाप करने लगे—॥ १ ॥

वीरविक्रान्त विख्यात प्रवीण नयकोविद ।
महार्हशयनोपेत किं शेषे निहतो भुवि ॥ २ ॥

'हा विख्यात पराक्रमी वीर भाई दशानन! हा कार्यकुशल नीतिज्ञ! तुम तो सदा बहुमूल्य बिछौनोंपर सोया करते थे, आज इस तरह मारे जाकर भूमिपर क्यों पड़े हो? ॥ २ ॥

निक्षिप्य दीर्घौ निश्चेष्टौ भुजावङ्गदभूषितौ ।
मुकुटेनापवृत्तेन भास्कराकारवर्चसा ॥ ३ ॥

'हे वीर! तुम्हारी ये बाजूबंदसे विभूषित दोनों विशाल भुजाएँ निश्चेष्ट हो गयी हैं। तुम इन्हें फैलाकर क्यों पड़े हुए हो? तुम्हारे माथेका मुकुट जो सूर्यके समान तेजस्वी है, यहाँ फेंका पड़ा है ॥ ३ ॥

तदिदं वीर सम्प्राप्तं यन्मया पूर्वमीरितम् ।
काममोहपरीतस्य यत् तन्न रुचितं तव ॥ ४ ॥

'वीरवर! आज तुम्हारे ऊपर वही संकट आकर पड़ा है, जिसके लिये मैंने तुम्हें पहलेसे ही आगाह कर दिया था; किंतु उस समय काम और मोहके वशीभूत होनेके कारण तुम्हें मेरी बातें नहीं रुची थीं ॥ ४ ॥

यन्न दर्पात् प्रहस्तो वा नेन्द्रजिन्नापरे जनाः ।
न कुम्भकर्णोऽतिरथो नातिकायो नरान्तकः ।
न स्वयं बहु मन्येथास्तस्योदर्कोऽयमागतः ॥ ५ ॥

'अहङ्कारके कारण न तो प्रहस्तने, न इन्द्रजित्‌ने, न दूसरे लोगोंने, न अतिरथी कुम्भकर्णने, न अतिकायने, न नरान्तकने और न स्वयं तुमने ही मेरी बातोंको अधिक महत्त्व दिया था, उसीका फल यह सामने आया है ॥ ५ ॥

गतः सेतुः सुनीतानां गतो धर्मस्य विग्रहः ।
गतः सत्त्वस्य संक्षेपः सुहस्तानां गतिर्गता ॥ ६ ॥
आदित्यः पतितो भूमौ मग्नस्तमसि चन्द्रमाः ।
चित्रभानुः प्रशान्तार्चिर्व्यवसायो निरुद्यमः ।
अस्मिन् निपतिते वीरे भूमौ शस्त्रभृतां वरे ॥ ७ ॥

'आज शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ इस वीर रावणके धराशायी होनेसे सुन्दर नीतिपर चलनेवाले लोगोंकी मर्यादा टूट गयी,

धर्मका मूर्तिमान् विग्रह चला गया, सत्त्व (बल) के संग्रहका स्थान नष्ट हो गया, सुन्दर हाथ चलानेवाले वीरोंका सहारा चला गया, सूर्य पृथ्वीपर गिर पड़ा, चन्द्रमा अँधेरेमें डूब गया, प्रज्वलित आग बुझ गयी और सारा उत्साह निरर्थक हो गया ॥ ६-७ ॥

किं शेषमिहलोकस्य गतसत्त्वस्य सम्प्रति ।
रणे राक्षसशार्दूले प्रसुप्त इव पांसुषु ॥ ८ ॥

'रणभूमिकी धूलमें राक्षसशिरोमणि रावणके सो जानेसे इस लोकका आधार और बल समाप्त हो गया । अब यहाँ क्या शेष रह गया ? ॥ ८ ॥

✓ **धृतिप्रवालः प्रसभाग्र्यपुष्प-**
स्तपोबलः शौर्यनिबद्धमूलः ।
रणे महान् राक्षसराजवृक्षः
सम्मर्दितो राघवमारुतेन ॥ ९ ॥

'हाय ! धैर्य ही जिसके पत्ते थे, हठ ही सुन्दर फूल था, तपस्या ही बल और शौर्य ही मूल था, उस राक्षसराज रावणरूपी महान् वृक्षको आज रणभूमिमें श्रीराघवेन्द्ररूपी प्रचण्ड वायुने रौंद डाला ! ॥ ९ ॥

✓ **तेजोविषाणः कुलवंशवंशः**
कोपप्रसादापरगात्रहस्तः ।
इक्ष्वाकुसिंहावगृहीतदेहः
सुप्तः क्षितौ रावणगन्धहस्ती ॥ १० ॥

'तेज ही जिसके दाँत थे, वंशपरम्परा ही पृष्ठभाग थी, क्रोध ही नीचेके (पैर आदि) अङ्ग थे और प्रसाद ही शुण्ड-दण्ड था, वह रावणरूपी गन्धहस्ती आज इक्ष्वाकुवंशी श्रीरामरूपी सिंहके द्वारा शरीरके विदीर्ण कर दिये जानेसे सदाके लिये पृथ्वीपर सो गया है ! ॥ १० ॥

✓ **पराक्रमोत्साहविजृम्भितार्चि-**
र्निःश्वासधूमः स्वबलप्रतापः ।
प्रतापवान् संयति राक्षसाग्नि-
र्निर्वापितो रामपयोधरेण ॥ ११ ॥

'पराक्रम और उत्साह जिसकी बढ़ती हुई ज्वालाओंके समान थे, निःश्वास ही धूम था और अपना बल ही प्रताप था, उस राक्षस रावणरूपी प्रतापी अग्निको इस समय युद्धस्थलमें श्रीरामरूपी मेघने बुझा दिया ! ॥ ११ ॥

✓ **सिंहर्क्षलाङ्गूलककुद्विषाणः**
पराभिजिद्गन्धनगन्धवाहः ।
रक्षोवृषश्चापलकर्णचक्षुः
क्षितीश्वरव्याघ्रहतोऽवसन्नः ॥ १२ ॥

'राक्षस सैनिक जिसकी पूँछ, ककुद् और सींग थे, जो शत्रुओंपर विजय पानेवाला था तथा पराक्रम और उत्साह आदि प्रकट करनेमें जो वायुके समान था, चपलतारूपी आँख तथा कानसे युक्त वह राक्षसराज रावणरूपी साँड़ महाराज श्रीरामरूपी व्याघ्रद्वारा मारा जाकर नष्ट हो गया !' ॥ १२ ॥

वदन्तं हेतुमद्वाक्यं परिदृष्टार्थनिश्चयम् ।
रामः शोकसमाविष्टमित्युवाच विभीषणम् ॥ १३ ॥

जिससे अर्थनिश्चय प्रकट हो रहा था, ऐसी युक्तिसंगत बात कहते हुए शोकमग्न विभीषणसे उस समय भगवान् श्रीरामने कहा—॥ १३ ॥

नायं विनष्टो निश्चेष्टः समरे चण्डविक्रमः ।
अत्युन्नतमहोत्साहः पतितोऽयमशङ्कितः ॥ १४ ॥

'विभीषण ! यह रावण समराङ्गणमें असमर्थ होकर नहीं मारा गया है । इसने प्रचण्ड पराक्रम प्रकट किया है, इसका उत्साह बहुत बढ़ा हुआ था । इसे मृत्युसे कोई भय नहीं था । यह दैवात् रणभूमिमें धराशायी हुआ है ॥ १४ ॥

नैवं विनष्टाः शोचन्ते क्षत्रधर्मव्यवस्थिताः ।
वृद्धिमाशंसमाना ये निपतन्ति रणाजिरे ॥ १५ ॥

'जो लोग अपने अभ्युदयकी इच्छासे क्षत्रियधर्ममें स्थित हो समराङ्गणमें मारे जाते हैं, इस तरह नष्ट होनेवाले लोगोंके विषयमें शोक नहीं करना चाहिये ॥ १५ ॥

येन सेन्द्रास्त्रयो लोकास्त्रासिता युधि धीमता ।
तस्मिन् कालसमायुक्ते न कालः परिशोचितुम् ॥ १६ ॥

'जिस बुद्धिमान् वीरने इन्द्रसहित तीनों लोकोंको युद्धमें भयभीत कर रक्खा था, वही यदि इस समय कालके अधीन हो गया तो उसके लिये शोक करनेका अवसर नहीं है ॥ १६ ॥

नैकान्तविजयो युद्धे भूतपूर्वः कदाचन ।
परैर्वा हन्यते वीरः परान् वा हन्ति संयुगे ॥ १७ ॥ ✓

'युद्धमें किसीको सदा विजय-ही-विजय मिले, ऐसा पहले भी कभी नहीं हुआ है । वीर पुरुष संग्राममें या तो शत्रुओंद्वारा मारा जाता है या स्वयं ही शत्रुओंको मार गिराता है ॥

इयं हि पूर्वैः संदिष्टा गतिः क्षत्रियसम्मता ।
क्षत्रियो निहतः संख्ये न शोच्य इति निश्चयः॥ १८ ॥ ✓

'आज रावणको जो गति प्राप्त हुई है, यह पूर्वकालके महापुरुषोंद्वारा बतायी गयी उत्तम गति है । क्षात्र-वृत्तिका आश्रय लेनेवाले वीरोंके लिये तो यह बड़े आदरकी वस्तु है । क्षत्रिय-वृत्तिसे रहनेवाला वीर पुरुष यदि युद्धमें मारा गया हो तो वह शोकके योग्य नहीं है; यही शास्त्रका सिद्धान्त है ॥

तदेवं निश्चयं दृष्ट्वा तत्त्वमास्थाय विज्वरः ।
यदिहानन्तरं कार्यं कल्प्यं तदनुचिन्तय ॥ १९ ॥

'शास्त्रके इस निश्चयपर विचार करके सात्त्विक बुद्धिका आश्रय ले तुम निश्चिन्त हो जाओ और अब आगे जो कुछ (प्रेत-संस्कार आदि) कार्य करना हो, उसके सम्बन्धमें विचार करो' ॥ १९ ॥

तमुक्तवाक्यं विक्रान्तं राजपुत्रं विभीषणः ।
उवाच शोकसंतप्तो भ्रातुर्हितमनन्तरम् ॥ २० ॥

परम पराक्रमी राजकुमार श्रीरामके ऐसा कहनेपर शोक-

संतप्त हुए विभीषणने उनसे अपने भाईके लिये हितकर बात कही—॥ २० ॥

योऽयं विमर्देष्वविभग्नपूर्वः
सुरैः समस्तैरपि वासवेन ।
भवन्तमासाद्य रणे विभग्नो
वेलामिवासाद्य यथा समुद्रः ॥ २१ ॥

'भगवन् ! पूर्वकालमें युद्धके अवसरोंपर समस्त देवताओं तथा इन्द्रने भी जिसे कभी पीछे नहीं हटाया था, वही रावण आज रणभूमिमें आपसे टक्कर लेकर उसी तरह शान्त हो गया, जैसे समुद्र अपनी तट-भूमितक जाकर शान्त हो जाता है ॥ २१ ॥

अनेन दत्तानि वनीपकेषु
भुक्ताश्च भोगा निभृताश्च भृत्याः ।
धनानि मित्रेषु समर्पितानि
वैराण्यमित्रेषु च यापितानि ॥ २२ ॥

'इसने याचकोंको दान दिये, भोग भोगे और भृत्योंका भरण-पोषण किया है । मित्रोंको धन अर्पित किये और शत्रुओंसे वैरका बदला लिया ॥ २२ ॥

एषोऽहिताग्निश्च महातपाश्च
वेदान्तगः कर्मसु चाग्र्यशूरः ।
एतस्य यत् प्रेतगतस्य कृत्यं
तत् कर्तुमिच्छामि तव प्रसादात् ॥ २३ ॥

'यह रावण अग्निहोत्री, महातपस्वी, वेदान्तवेत्ता तथा यज्ञ-यागादि कर्मोंमें श्रेष्ठ शूर—परम कर्मठ रहा है । अब यह प्रेतभावको प्राप्त हुआ है, अतः अब मैं ही आपकी कृपासे इसका प्रेत-कृत्य करना चाहता हूँ' ॥ २३ ॥

स तस्य वाक्यैः करुणैर्महात्मा
सम्बोधितः साधु विभीषणेन ।
आज्ञापयामास नरेन्द्रसूनुः
स्वर्गीयमाधानमदीनसत्त्वः ॥ २४ ॥

विभीषणके करुणाजनक वचनोंद्वारा अच्छी तरह समझाये जानेपर उदारचेता राजकुमार महात्मा श्रीरामने उन्हें रावणके लिये स्वर्गादि उत्तम लोकोंकी प्राप्ति करानेवाला अन्त्येष्टि-कर्म करनेकी आज्ञा दी ॥ २४ ॥

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम् ।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥ २५ ॥

वे बोले—'विभीषण ! वैर जीवन कालतक ही रहता है । मरनेके बाद उस वैरका अन्त हो जाता है । अब हमारा प्रयोजन सिद्ध हो चुका है, अतः अब तुम इसका संस्कार करो । इस समय यह जैसे तुम्हारे स्नेहका पात्र है, उसी तरह मेरा भी स्नेहभाजन है' ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे नवाधिकशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ नवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०९ ॥

दशाधिकशततमः सर्गः

रावणकी स्त्रियोंका विलाप

रावणं निहतं श्रुत्वा राघवेण महात्मना ।
अन्तःपुराद् विनिष्पेतू राक्षस्यः शोककर्शिताः ॥ १ ॥

महात्मा श्रीरघुनाथजीके द्वारा रावणके मारे जानेका समाचार सुनकर शोकसे व्याकुल हुई राक्षसियाँ अन्तःपुरसे निकल पड़ीं ॥ १ ॥

वार्यमाणाः सुबहुशो वेष्टन्त्यः क्षितिपांसुषु ।
विमुक्तकेश्यः शोकार्ता गावो वत्सहता इव ॥ २ ॥

लोगोंके बारंबार मना करनेपर भी वे धरतीकी धूलमें लोटने लगती थीं । उनके केश खुले हुए थे और जिनके बछड़े मर गये हों, उन गौओंके समान वे शोकसे आतुर हो रही थीं ॥ २ ॥

उत्तरेण विनिष्क्रम्य द्वारेण सह राक्षसैः ।
प्रविश्यायोधनं घोरं विचिन्वन्त्यो हतं पतिम् ॥ ३ ॥

राक्षसोंके साथ लङ्काके उत्तर दरवाजेसे निकलकर भयंकर युद्धभूमिमें प्रवेश करके वे अपने मरे हुए पतिको खोजने लगीं ॥ ३ ॥

आर्यपुत्रेति वादिन्यो हा नाथेति च सर्वशः ।
परिपेतुः कबन्धाङ्कां महीं शोणितकर्दमाम् ॥ ४ ॥

'हा आर्यपुत्र ! हा नाथ !' की पुकार मचाती हुई वे सब-की-सब उस रणभूमिमें जहाँ बिना मस्तकके लाशें बिछी हुई थीं तथा रक्तकी कीच जम गयी थी, सब ओर गिरती-पड़ती भटकने लगीं ॥ ४ ॥

ता बाष्पपरिपूर्णाक्ष्यो भर्तृशोकपराजिताः ।
करिण्य इव नर्दन्त्यः करेण्वो हतयूथपाः ॥ ५ ॥

उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी । वे पतिके शोकसे बेसुध हो यूथपतिके मारे जानेपर हथिनियोंकी तरह करुण-क्रन्दन कर रही थीं ॥ ५ ॥

ददृशुस्ता महाकायं महावीर्यं महाद्युतिम् ।
रावणं निहतं भूमौ नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ ६ ॥

उन्होंने महाकाय, महापराक्रमी और महातेजस्वी रावणको देखा, जो काले कोयलेके ढेर-सा पृथ्वीपर मरा पड़ा था ॥ ६ ॥

ताः पतिं सहसा दृष्ट्वा शयानं रणपांसुषु ।

निपेतुस्तस्य गात्रेषु च्छिन्ना वनलता इव ॥ ७ ॥

रणभूमिकी धूलिमें पड़े हुए अपने मृतक पतिपर सहसा दृष्टि पड़ते ही वे कटी हुई वनकी लताओंके समान उसके अङ्गोंपर गिर पड़ीं ॥ ७ ॥

बहुमानात् परिष्वज्य काचिदेनं रुरोद ह ।
चरणौ काचिदालम्ब्य काचित् कण्ठेऽवलम्ब्य च ॥ ८ ॥

उनमेंसे कोई तो बड़े आदरके साथ उसका आलिंगन करके, कोई पैर पकड़कर और कोई गलेसे लगकर रोने लगीं ॥

उत्क्षिप्य च भुजौ काचिद् भूमौ सुपरिवर्तते ।
हतस्य वदनं दृष्ट्वा काचिन्मोहमुपागमत् ॥ ९ ॥

कोई स्त्री अपनी दोनों भुजाएँ ऊपर उठा पछाड़ खाकर गिरी और धरतीपर लोटने लगी तथा कोई मरे हुए स्वामीका मुख देखकर मूर्छित हो गयी ॥ ९ ॥

काचिदङ्के शिरः कृत्वा रुरोद मुखमीक्षती ।
स्नापयन्ती मुखं बाष्पैस्तुषारैरिव पङ्कजम् ॥ १० ॥

कोई पतिका मस्तक गोदमें लेकर उसका मुँह निहारती और ओसकणोंसे कमलकी भाँति अश्रु-विन्दुओंसे पतिके मुखारविन्दको नहलाती हुई रोदन करने लगी ॥ १० ॥

एवमार्ताः पतिं दृष्ट्वा रावणं निहतं भुवि ।
चुक्रुशुर्बहुधा शोकाद् भूयस्ताः पर्यदेवयन् ॥ ११ ॥

इस प्रकार अपने पतिदेवता रावणको धरतीपर मरकर गिरा देख वे सब-की-सब आर्तभावसे उसे पुकारने लगीं और शोकके कारण नाना प्रकारसे विलाप करने लगीं ॥ ११ ॥

येन वित्रासितः शक्रो येन वित्रासितो यमः ।
येन वैश्रवणो राजा पुष्पकेण वियोजितः ॥ १२ ॥
गन्धर्वाणामृषीणां च सुराणां च महात्मनाम् ।
भयं येन रणे दत्तं सोऽयं शेते रणे हतः ॥ १३ ॥

वे बोलीं—'हाय ! जिन्होंने यमराज और इन्द्रको भी भयभीत कर रक्खा था, राजाधिराज कुबेरका पुष्पक विमान छीन लिया था तथा गन्धर्वों, ऋषियों और महामनस्वी देवताओंको भी रणभूमिमें भय प्रदान किया था, वे ही हमारे प्राणनाथ आज इस समराङ्गणमें मारे जाकर सदाके लिये सो गये हैं ॥ १२-१३ ॥

असुरेभ्यः सुरेभ्यो वा पन्नगेभ्योऽपि वा तथा ।
भयं यो न विजानाति तस्येदं मानुषाद् भयम् ॥ १४ ॥

'हाय ! जो असुरों, देवताओं तथा नागोंसे भी भयभीत होना नहीं जानते थे, उन्हींको आज मनुष्यसे यह भय प्राप्त हो गया ॥ १४ ॥

अवध्यो देवतानां यस्तथा दानवरक्षसाम् ।
हतः सोऽयं रणे शेते मानुषेण पदातिना ॥ १५ ॥

'जिन्हें देवता, दानव और राक्षस भी नहीं मार सकते थे, वे ही आज एक पैदल मनुष्यके हाथसे मारे जाकर रणभूमिमें सो रहे हैं ॥ १५ ॥

यो न शक्यः सुरैर्हन्तुं न यक्षैर्नासुरैस्तथा ।
सोऽयं कश्चिदिवासत्त्वो मृत्युं मर्त्येन लम्भितः ॥ १६ ॥

'जो देवताओं, असुरों तथा यक्षोंके लिये भी अवध्य थे, वे ही किसी निर्बल प्राणीके समान एक मनुष्यके हाथसे मृत्युको प्राप्त हुए' ॥ १६ ॥

एवं वदन्त्यो रुरुदुस्तस्य ता दुःखिताः स्त्रियः ।
भूय एव च दुःखार्ता विलेपुश्च पुनः पुनः ॥ १७ ॥

इस तरहकी बातें कहती हुई रावणकी वे दुःखिनी स्त्रियाँ वहाँ फूट-फूटकर रोने लगीं तथा दुःखसे आतुर होकर पुनः बारंबार विलाप करने लगीं ॥ १७ ॥

अशृण्वता तु सुहृदां सततं हितवादिनाम् ।
मरणायाहृता सीता राक्षसाश्च निपातिताः ।
एताः सममिदानीं ते वयमात्मा च पातितः ॥ १८ ॥

वे बोलीं—'प्राणनाथ ! आपने सदा हितकी बात बतानेवाले सुहृदोंकी बातें अनसुनी कर दीं और अपनी मृत्युके लिये सीताका अपहरण किया । इसका फल यह हुआ कि ये राक्षस मार गिराये गये तथा आपने इस समय अपनेको रणभूमिमें और हमलोगोंको महान् दुःखके समुद्रमें गिरा दिया ॥

ब्रुवाणोऽपि हितं वाक्यमिष्टो भ्राता विभीषणः ।
दृष्टं परुषितो मोहात् त्वयाऽऽत्मवधकाङ्क्षिणा ॥ १९ ॥

'आपके प्रिय भाई विभीषण आपको हितकी बात बता रहे थे तो भी आपने अपने वधके लिये उन्हें मोहवश कटु वचन सुनाये । उसीका यह फल प्रत्यक्ष दिखायी दिया है ॥

यदि निर्यातिता ते स्यात् सीता रामाय मैथिली ।
न नः स्याद् व्यसनं घोरमिदं मूलहरं महत् ॥ २० ॥

'यदि आपने मिथिलेशकुमारी सीताको श्रीरामके पास लौटा दिया होता तो जड़-मूलसहित हमारा विनाश करनेवाला यह महाघोर संकट हमपर न आता ॥ २० ॥

वृत्तकामो भवेद् भ्राता रामो मित्रकुलं भवेत् ।
वयं चाविधवाः सर्वाः सकामा न च शत्रवः ॥ २१ ॥

'सीताको लौटा देनेपर आपके भाई विभीषणका भी मनोरथ सफल हो जाता, श्रीराम हमारे मित्र-पक्षमें आ जाते, हम सबको विधवा नहीं होना पड़ता और हमारे शत्रुओंकी कामनाएँ पूरी नहीं होतीं ॥ २१ ॥

त्वया पुनर्नृशंसेन सीतां संरुन्धता बलात् ।
राक्षसा वयमात्मा च त्रयं तुल्यं निपातितम् ॥ २२ ॥

'परंतु आप ऐसे निष्ठुर निकले कि सीताको बलपूर्वक कैद कर लिया तथा राक्षसोंको, हम स्त्रियोंको और अपनेआपको—तीनोंको भी एक साथ नीचे गिरा दिया—विपत्तिमें डाल दिया ॥ २२ ॥

न कामकारः कामं वा तव राक्षसपुंगव ।
दैवं चेष्टयते सर्वं हतं दैवेन हन्यते ॥ २३ ॥

'राक्षसशिरोमणे ! आपका स्वेच्छाचार ही हमारे विनाशमें

कारण हुआ हो, ऐसी बात नहीं है। दैव ही सब कुछ कराता है। दैवका मारा हुआ ही मारा जाता या मरता है ॥ २३॥

वानराणां विनाशोऽयं राक्षसानां च ते रणे।
तव चैव महाबाहो दैवयोगादुपागतः ॥ २४ ॥

'महाबाहो ! इस युद्धमें वानरोंका, राक्षसोंका और आपका भी विनाश दैवयोगसे ही हुआ है ॥ २४ ॥

नैवार्थेन च कामेन विक्रमेण न चाज्ञया।
शक्या दैवगतिर्लोके निवर्तयितुमुद्यता ॥ २५ ॥

'संसारमें फल देनेके लिये उन्मुख हुए दैवके विधानको कोई धनसे, कामनासे, पराक्रमसे, आज्ञासे अथवा शक्तिसे भी नहीं पलट सकता' ॥ २५ ॥

विलेपुरेवं दीनास्ता राक्षसाधिपयोषितः।
कुरर्य इव दुःखार्ता बाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥ २६ ॥

इस प्रकार राक्षसराजकी सभी स्त्रियाँ दुःखसे पीड़ित हो आँखोंमें आँसू भरकर दीनभावसे कुररीकी भाँति विलाप करने लगीं ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे दशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ दसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ११० ॥

एकादशाधिकशततमः सर्गः

मन्दोदरीका विलाप तथा रावणके शवका दाहसंस्कार

तासां विलपमानानां तदा राक्षसयोषिताम्।
ज्येष्ठपत्नी प्रिया दीना भर्तारं समुदैक्षत ॥ १ ॥
दशग्रीवं हतं दृष्ट्वा रामेणाचिन्त्यकर्मणा।
पतिं मन्दोदरी तत्र कृपणा पर्यदेवयत् ॥ २ ॥

उस समय विलाप करती हुई उन राक्षसियोंमें जो रावणकी ज्येष्ठ एवं प्यारी पत्नी मन्दोदरी थी, उसने अचिन्त्यकर्मा भगवान् श्रीरामके द्वारा मारे गये अपने पति दशमुख रावणको देखा। पतिको उस अवस्थामें देखकर वह वहाँ अत्यन्त दीन एवं दुःखी हो गयी और इस प्रकार विलाप करने लगी—॥ १-२ ॥

ननु नाम महाबाहो तव वैश्रवणानुज।
क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं त्रस्यत्यपि पुरंदरः ॥ ३ ॥

'महाराज कुबेरके छोटे भाई ! महाबाहु राक्षसराज ! जब आप क्रोध करते थे, उस समय इन्द्र भी आपके सामने खड़े होनेमें भय खाते थे ॥ ३ ॥

ऋषयश्च महान्तोऽपि गन्धर्वाश्च यशस्विनः।
ननु नाम तवोद्वेगाच्चारणाश्च दिशो गताः ॥ ४ ॥

'बड़े-बड़े ऋषि, यशस्वी गन्धर्व और चारण भी आपके डरसे चारों दिशाओंमें भाग गये थे ॥ ४ ॥

स त्वं मानुषमात्रेण रामेण युधि निर्जितः।
न व्यपत्रपसे राजन् किमिदं राक्षसेश्वर ॥ ५ ॥

'वही आप आज युद्धमें एक मानवमात्र रामसे परास्त हो गये। राजन् ! क्या आपको इससे लज्जा नहीं आती है। राक्षसेश्वर ! बोलिये तो सही, यह क्या बात है ? ॥ ५ ॥

कथं त्रैलोक्यमाक्रम्य श्रिया वीर्येण चान्वितम्।
अविषह्यं जघान त्वां मानुषो वनगोचरः ॥ ६ ॥

'आपने तीनों लोकोंको जीतकर अपनेको सम्पत्तिशाली और पराक्रमी बनाया था। आपके वेगको सह लेना किसीके लिये सम्भव नहीं था; फिर आप-जैसे वीरको एक वनवासी मनुष्यने कैसे मार डाला ? ॥ ६ ॥

मानुषाणामविषये चरतः कामरूपिणः।
विनाशस्तव रामेण संयुगे नोपपद्यते ॥ ७ ॥

'आप ऐसे देशमें विचरते थे, जहाँ मनुष्योंकी पहुँच नहीं हो सकती थी। आप इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ थे तो भी युद्धमें रामके हाथसे आपका विनाश हुआ; यह सम्भव अथवा विश्वासके योग्य नहीं जान पड़ता ॥ ७ ॥

न चैतत् कर्म रामस्य श्रद्दधामि चमूमुखे।
सर्वतः समुपेतस्य तव तेनाभिमर्षणम् ॥ ८ ॥

'युद्धके मुहानेपर सब ओरसे विजय पानेवाले आपकी श्रीरामके द्वारा जो पराजय हुई, यह श्रीरामका काम है—ऐसा मुझे विश्वास नहीं होता (जब कि आप उन्हें निरा मनुष्य समझते रहे) ॥ ८ ॥

अथवा रामरूपेण कृतान्तः स्वयमागतः।
मायां तव विनाशाय विधायाप्रतितर्किताम् ॥ ९ ॥

'अथवा साक्षात् काल ही अतर्कित माया रचकर आपके विनाशके लिये श्रीरामके रूपमें यहाँ आ पहुँचा था ॥ ९ ॥

अथवा वासवेन त्वं धर्षितोऽसि महाबल।
वासवस्य तु का शक्तिस्त्वां द्रष्टुमपि संयुगे ॥ १० ॥
महाबलं महावीर्यं देवशत्रुं महौजसम्।

'महाबली वीर ! अथवा यह भी सम्भव है कि साक्षात् इन्द्रने आपपर आक्रमण किया हो; परंतु इन्द्रकी क्या शक्ति है जो युद्धमें वे आपकी ओर आँख उठाकर देख भी सकें; क्योंकि आप महाबली, महापराक्रमी और महातेजस्वी देवशत्रु थे ॥ १०½ ॥

व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः ॥ ११ ॥
अनादिमध्यनिधनो महतः परमो महान्।
तमसः परमो धाता शङ्खचक्रगदाधरः ॥ १२ ॥
श्रीवत्सवक्षा नित्यश्रीरजय्यः शाश्वतो ध्रुवः।
मानुषं रूपमास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः ॥ १३ ॥
सर्वैः परिवृतो देवैर्वानरत्वमुपागतैः।

सर्वलोकेश्वरः श्रीमाँल्लोकानां हितकाम्यया ॥ १४ ॥
स राक्षसपरीवारं देवशत्रुं भयावहम् ।

'निश्चय ही ये श्रीरामचन्द्रजी महान् योगी एवं सनातन परमात्मा हैं। इनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है। ये महान्‌से भी महान्, अज्ञानान्धकारसे परे तथा सबको धारण करनेवाले परमेश्वर हैं, जो अपने हाथमें शङ्ख, चक्र और गदा धारण करते हैं, जिनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न है, भगवती लक्ष्मी जिनका कभी साथ नहीं छोड़तीं, जिन्हें परास्त करना सर्वथा असम्भव है तथा जो नित्य स्थिर एवं सम्पूर्ण लोकोंके अधीश्वर हैं, उन सत्यपराक्रमी भगवान् विष्णुने ही समस्त लोकोंका हित करनेकी इच्छासे मनुष्यका रूप धारण करके वानररूपमें प्रकट हुए सम्पूर्ण देवताओंके साथ आकर राक्षसोंसहित आपका वध किया है; क्योंकि आप देवताओंके शत्रु और समस्त संसारके लिये भयंकर थे ॥

इन्द्रियाणि पुरा जित्वा जितं त्रिभुवनं त्वया ॥ १५ ॥
स्मरद्भिरिव तद् वैरमिन्द्रियैरेव निर्जितः ।

'नाथ! पहले आपने अपनी इन्द्रियोंको जीतकर ही तीनों लोकोंपर विजय पायी थी, उस वैरको याद रखती हुई-सी इन्द्रियोंने ही अब आपको परास्त किया है ॥ १५½ ॥

यदैव हि जनस्थाने राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥ १६ ॥
खरस्तु निहतो भ्राता तदा रामो न मानुषः ।

'जब मैंने सुना कि जनस्थानमें बहुतेरे राक्षसोंसे घिरे होनेपर भी आपके भाई खरको श्रीरामने मार डाला है, तभी मुझे विश्वास हो गया कि श्रीरामचन्द्रजी कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं ॥ १६½ ॥

यदैव नगरीं लङ्कां दुष्प्रवेशां सुरैरपि ॥ १७ ॥
प्रविष्टो हनुमान् वीर्यात् तदैव व्यथिता वयम् ।

'जिस लङ्का नगरीमें देवताओंका भी प्रवेश होना कठिन था, वहीं जब हनुमान्‌जी बलपूर्वक घुस आये, उसी समय हमलोग भावी अनिष्टकी आशङ्कासे व्यथित हो उठी थीं ॥

क्रियतामविरोधश्च राघवेणेति यन्मया ॥ १८ ॥
उच्यमानो न गृह्णासि तस्येयं व्युष्टिरागता ।

'मैंने बारंबार कहा—प्राणनाथ! आप रघुनाथजीसे वैर-विरोध न कीजिये; परंतु आपने मेरी बात नहीं मानी। उसीका आज यह फल मिला है ॥ १८½ ॥

अकस्माच्चाभिकामोऽसि सीतां राक्षसपुङ्गव ॥ १९ ॥
ऐश्वर्यस्य विनाशाय देहस्य स्वजनस्य च ।

'राक्षसराज! आपने अपने ऐश्वर्यका, शरीरका तथा स्वजनोंका विनाश करनेके लिये ही अकस्मात् सीताकी कामना की थी ॥ १९½ ॥

अरुन्धत्या विशिष्टां तां रोहिण्याश्चापि दुर्मते ॥ २० ॥
सीतां धर्षयता मान्यां त्वया ह्यसदृशं कृतम् ।
वसुधाया हि वसुधां श्रियाः श्रीं भर्तृवत्सलाम् ॥ २१ ॥

'दुर्मते! भगवती सीता अरुन्धती और रोहिणीसे भी बढ़कर पतिव्रता हैं। वे वसुधाकी भी वसुधा और श्रीकी भी श्री हैं। अपने स्वामीके प्रति अनन्य अनुराग रखनेवाली और सबकी पूजनीया उन सीतादेवीका तिरस्कार करके आपने बड़ा अनुचित कार्य किया था ॥ २०-२१ ॥

सीतां सर्वानवद्याङ्गीमरण्ये विजने शुभाम् ।
आनयित्वा तु तां दीनां छद्मनाऽऽत्मस्वदूषणम् ॥ २२ ॥
अप्राप्य तं चैव कामं मैथिलीसंगमे कृतम् ।
पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो ॥ २३ ॥

'मेरे प्राणनाथ! सर्वाङ्गसुन्दरी शुभलक्षणा सीता निर्जन वनमें निवास करती थीं। आप छलसे उन्हें दुःखमें डालकर यहाँ हर लाये। यह आपके लिये बड़े कलङ्ककी बात हुई। मिथिलेशकुमारीके साथ समागमके लिये जो आपके मनमें कामना थी, उसे तो आप पा नहीं सके, उल्टे उन पतिव्रता देवीकी तपस्यासे जलकर भस्म हो गये। अवश्य ऐसी ही बात हुई है ॥ २२-२३ ॥

तदैव यन्न दग्धस्त्वं धर्षयंस्तनुमध्यमाम् ।
देवा बिभ्यति ते सर्वे सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ॥ २४ ॥

'तन्वङ्गी सीताका अपहरण करते समय ही आप जलकर राख नहीं हो गये—यही आश्चर्यकी बात है। आपकी जिस महिमासे इन्द्र और अग्नि आदि सम्पूर्ण देवता आपसे डरते थे, उसीने उस समय आपको दग्ध नहीं होने दिया ॥ २४ ॥

अवश्यमेव लभते फलं पापस्य कर्मणः ।
भर्तः पर्यागते काले कर्ता नास्त्यत्र संशयः ॥ २५ ॥

'प्राणवल्लभ! इसमें कोई संदेह नहीं कि समय आनेपर कर्ताको उसके पाप-कर्मका फल अवश्य मिलता है ॥ २५ ॥

शुभकृच्छुभमाप्नोति पापकृत् पापमश्नुते ।
विभीषणः सुखं प्राप्तस्त्वं प्राप्तः पापमीदृशम् ॥ २६ ॥

'शुभकर्म करनेवालेको उत्तम फलकी प्राप्ति होती है और पापीको पापका फल—दुःख भोगना पड़ता है। विभीषणको अपने शुभ कर्मोंके कारण ही सुख प्राप्त हुआ है और आपको ऐसा दुःख भोगना पड़ा है ॥ २६ ॥

सन्त्यन्याः प्रमदास्तुभ्यं रूपेणाभ्यधिकास्ततः ।
अनङ्गवशमापन्नस्त्वं तु मोहान्न बुद्ध्यसे ॥ २७ ॥

'आपके घरमें सीतादेवीसे भी अधिक सुन्दर रूपवाली दूसरी युवतियाँ मौजूद हैं; परंतु आप कामके वशीभूत हो मोहवश इस बातको समझ नहीं पाते थे ॥ २७ ॥

न कुलेन न रूपेण न दाक्षिण्येन मैथिली ।
मयाधिका वा तुल्या वा तत् तु मोहान्न बुद्ध्यसे ॥ २८ ॥

'मिथिलेशकुमारी सीता न तो कुलमें, न रूपमें और न दाक्षिण्य आदि गुणोंमें ही मुझसे बढ़कर हैं। वे मेरे बराबर भी नहीं हैं; परंतु आप मोहवश इस बातकी ओर नहीं ध्यान देते थे ॥ २८ ॥

सर्वदा सर्वभूतानां नास्ति मृत्युरलक्षणः ।
तव तद्वदयं मृत्युर्मैथिलीकृतलक्षणः ॥ २९ ॥

'संसारमें कभी किसी भी प्राणीकी मृत्यु अकारण नहीं होती है । इस नियमके अनुसार मिथिलेशकुमारी सीता आपकी मृत्युका कारण बन गयीं ॥ २९ ॥

सीतानिमित्तजो मृत्युस्त्वया दूरादुपाहृतः ।
मैथिली सह रामेण विशोका विहरिष्यति ॥ ३० ॥
अल्पपुण्या त्वहं घोरे पतिता शोकसागरे ।

'आपने सीताके कारण होनेवाली मृत्युको स्वयं ही दूरसे बुला लिया । मिथिलेशनन्दिनी सीता अब शोकरहित हो श्रीरामके साथ विहार करेंगी; परंतु मेरा पुण्य बहुत थोड़ा था, इसलिये वह जल्दी समाप्त हो गया और मैं शोकके घोर समुद्रमें गिर पड़ी ॥ ३०½ ॥

कैलासे मन्दरे मेरौ तथा चैत्ररथे वने ॥ ३१ ॥
देवोद्यानेषु सर्वेषु विहृत्य सहिता त्वया ।
✓ **विमानेनानुरूपेण या याम्यतुलया श्रिया ॥ ३२ ॥**
पश्यन्ती विविधान् देशांस्तांस्तांश्चित्रस्रगम्बरा ।
भ्रंशिता कामभोगेभ्यः सास्मि वीर वधात् तव ॥ ३३ ॥

'वीर ! जो मैं विचित्र वस्त्राभूषण धारण करके अनुपम शोभासे सम्पन्न हो मनके अनुरूप विमानद्वारा आपके साथ कैलास, मन्दराचल, मेरुपर्वत, चैत्ररथ वन तथा सम्पूर्ण देवोद्यानोंमें विहार करती हुई नाना प्रकारके देशोंको देखती फिरती थी, वही मैं आज आपका वध हो जानेसे समस्त कामभोगोंसे वञ्चित हो गयी ॥ ३१—३३ ॥

सैवान्येवास्मि संवृत्ता धिग् राज्ञां चञ्चलां श्रियम् ।
हा राजन् सुकुमारं ते सुभ्रु सुत्वक्समुन्नसम् ॥ ३४ ॥
कान्तिश्रीद्युतिभिस्तुल्यमिन्दुपद्मदिवाकरैः ।
किरीटकूटोज्ज्वलितं ताम्रास्यं दीप्तकुण्डलम् ॥ ३५ ॥
मदव्याकुललोलाक्षं भूत्वा यत्पानभूमिषु ।
विविधस्रग्धरं चारु वल्गुस्मितकथं शुभम् ॥ ३६ ॥
तदेवाद्य तवैवं हि वक्त्रं न भ्राजते प्रभो ।
रामसायकनिर्भिन्नं रक्तं रुधिरविस्रवैः ॥ ३७ ॥
विशीर्णमेदोमस्तिष्कं रूक्षं स्यन्दनरेणुभिः ।

'मैं वही रानी मन्दोदरी हूँ, किंतु आज दूसरी स्त्रीके समान हो गयी हूँ । राजाओंकी चञ्चल राजलक्ष्मीको धिक्कार है ! हा राजन् ! आपका जो सुकुमार मुखमण्डल सुन्दर भौंहों, मनोहर त्वचा और ऊँची नासिकासे युक्त था, कान्ति, शोभा और तेजके द्वारा जो क्रमशः चन्द्रमा, सूर्य और कमलको लज्जित करता था, किरीटोंके समूह जिसे जगमग बनाये रहते थे, जिसके अधर ताँबेके समान लाल थे, जिसमें दीप्तिमान् कुण्डल दमकते रहते थे, पान-भूमिमें जिसके नेत्र नशेसे व्याकुल और चञ्चल देखे जाते थे, जो नाना प्रकारके गजरे धारण करता था, मनोहर और सुन्दर था तथा मुस्कराकर मीठी-मीठी बातें किया करता था, वही आपका मुखारविन्द आज शोभा नहीं पा रहा है । प्रभो ! वह श्रीरामके सायकोंसे विदीर्ण हो खूनकी धारासे रँग गया है । इसका मेदा और मस्तिष्क छिन्न-भिन्न हो गया है तथा रथकी धूलोंसे इसमें रूक्षता आ गयी है ॥ ३४—३७½ ॥

हा पश्चिमा मे सम्प्राप्ता दशा वैधव्यदायिनी ॥ ३८ ॥
या मयाऽऽसीन्न सम्बुद्धा कदाचिदपि मन्दया ।

'हाय ! मुझ मन्दभागिनीने कभी जिसके विषयमें सोचा तक नहीं था, वही मुझे वैधव्यका दुःख प्रदान करनेवाली अन्तिम अवस्था (मृत्यु) आपको प्राप्त हो गयी ॥ ३८½ ॥

पिता दानवराजो मे भर्ता मे राक्षसेश्वरः ॥ ३९ ॥
पुत्रो मे शक्रनिर्जेता इत्यहं गर्विता भृशम् ।

'दानवराज मय मेरे पिता, राक्षसराज रावण मेरे पति और इन्द्रपर भी विजय प्राप्त करनेवाला इन्द्रजित् मेरा पुत्र है—यह सोचकर मैं अत्यन्त गर्वसे भरी रहती थी ॥ ३९½ ॥

दृप्तारिमथनाः क्रूराः प्रख्यातबलपौरुषाः ॥ ४० ॥
अकुतश्चिद्भया नाथा ममेत्यासीन्मतिर्ध्रुवा ।

'मेरी यह दृढ़ धारणा बनी हुई थी कि मेरे रक्षक ऐसे लोग हैं जो दर्पसे भरे हुए शत्रुओंको मथ डालनेमें समर्थ, क्रूर, विख्यात बल और पौरुषसे सम्पन्न तथा किसीसे भी भयभीत नहीं होनेवाले हैं ॥ ४०½ ॥

तेषामेवंप्रभावाणां युष्माकं राक्षसर्षभाः ॥ ४१ ॥
कथं भयमसम्बुद्धं मानुषादिदमागतम् ।

'राक्षसशिरोमणियो ! ऐसे प्रभावशाली तुमलोगोंको यह मनुष्यसे अज्ञात भय किस प्रकार प्राप्त हुआ ? ॥ ४१½ ॥

स्निग्धेन्द्रनीलनीलं तु प्रांशुशैलोपमं महत् ॥ ४२ ॥ ✓
केयूराङ्गदवैदूर्यमुक्ताहारस्रगुज्ज्वलम् ।
कान्तं विहारेष्वधिकं दीप्तं संग्रामभूमिषु ॥ ४३ ॥
भात्याभरणभाभिर्यद् विद्युद्भिरिव तोयदः ।
तदेवाद्य शरीरं ते तीक्ष्णैर्नैकशरैश्चितम् ॥ ४४ ॥
पुनर्दुर्लभसंस्पर्शं परिष्वक्तुं न शक्यते ।

'जो चिकने इन्द्रनील-मणिके समान श्याम, ऊँचे शैल-शिखरके समान विशाल तथा केयूर, अङ्गद, नीलम और मोतियोंके हार एवं फूलोंकी मालाओंसे सुसज्जित होनेके कारण अत्यन्त प्रकाशमान दिखायी देता था, विहार-स्थलोंमें अधिक कान्तिमान् तथा संग्राम-भूमियोंमें अतिशय दीप्तिमान् प्रतीत होता था और आभूषणोंकी प्रभासे जिसकी विद्युन्मालामण्डित मेघकी-सी शोभा होती थी, वही आपका शरीर आज अनेक तीखे बाणोंसे भरा हुआ है; अतः यद्यपि आजसे फिर इसका स्पर्श मेरे लिये दुर्लभ हो जायगा, तथापि इन बाणोंके कारण मैं इसका आलिङ्गन नहीं कर पाती हूँ ॥ ४२—४४½ ॥

श्वाविधः शललैर्यद्वद् बाणैर्लग्नैर्निरन्तरम् ॥ ४५ ॥
स्वर्पितैर्मर्मसु भृशं संछिन्नस्नायुबन्धनम् ।
क्षितौ निपतितं राजञ्श्यामं वै रुधिरच्छवि ॥ ४६ ॥
वज्रप्रहाराभिहतो विकीर्ण इव पर्वतः ।

'राजन्! जैसे साहीकी देह काँटोंसे भरी होती है, उसी प्रकार आपके शरीरमें इतने बाण लगे हैं कि कहीं एक अंगुल भी जगह नहीं रह गयी है। वे सभी बाण मर्म-स्थानोंमें धँस गये हैं और उनसे शरीरका स्नायु-बन्धन छिन्न-भिन्न हो गया है। इस अवस्थामें पृथ्वीपर पड़ा हुआ आपका यह श्याम शरीर, जिसपर रक्तकी अरुण छटा छा रही है, वज्रकी मारसे चूर-चूर होकर बिखरे हुए पर्वतके समान जान पड़ता है ॥

हा स्वप्नः सत्यमेवेदं त्वं रामेण कथं हतः ॥ ४७ ॥
त्वं मृत्योरपि मृत्युः स्याः कथं मृत्युवशं गतः ।

'नाथ! यह स्वप्न है या सत्य। हाय! आप श्रीरामके हाथसे कैसे मारे गये? आप तो मृत्युकी भी मृत्यु थे; फिर स्वयं ही मृत्युके अधीन कैसे हो गये? ॥ ४७½ ॥

त्रैलोक्यवसुभोक्तारं त्रैलोक्योद्वेगदं महत् ॥ ४८ ॥
जेतारं लोकपालानां क्षेप्तारं शंकरस्य च ।
दृप्तानां निग्रहीतारमाविष्कृतपराक्रमम् ॥ ४९ ॥

'आपने तीनों लोकोंकी सम्पत्तिका उपभोग किया और त्रिलोकीके प्राणियोंको महान् उद्वेगमें डाल दिया था। आप लोकपालोंपर भी विजय पा चुके थे। आपने कैलास-पर्वतके साथ ही भगवान् शङ्करको भी उठा लिया था तथा बड़े-बड़े अभिमानी वीरोंको युद्धमें बंदी बनाकर अपने पराक्रमको प्रकट किया था ॥ ४८-४९ ॥

लोकक्षोभयितारं च साधुभूतविदारणम् । ✓
ओजसा दृप्तवाक्यानां वक्तारं रिपुसंनिधौ ॥ ५० ॥

'आपने समस्त संसारको क्षोभमें डाला, साधु पुरुषोंकी हिंसा की और शत्रुओंके समीप बलपूर्वक अहंकारपूर्ण बातें कहीं ॥ ५० ॥

स्वयूथभृत्यगोप्तारं हन्तारं भीमकर्मणाम् ।
हन्तारं दानवेन्द्राणां यक्षाणां च सहस्रशः ॥ ५१ ॥

'भयानक पराक्रम करनेवाले विपक्षियोंको मारकर अपने पक्षके लोगों और सेवकोंकी रक्षा की। दानवोंके सरदारों और हजारों यक्षोंको भी मौतके घाट उतारा ॥ ५१ ॥

निवातकवचानां तु निग्रहीतारमाहवे ।
✓ **नैकयज्ञविलोप्तारं त्रातारं स्वजनस्य च ॥ ५२ ॥**

'आपने समराङ्गणमें निवातकवच नामक दानवोंका भी दमन किया, बहुत-से यज्ञ नष्ट कर डाले तथा आत्मीयजनोंकी सदा ही रक्षा की ॥ ५२ ॥

✓ **धर्मव्यवस्थाभेत्तारं मायास्रष्टारमाहवे ।**
देवासुरनृकन्यानामाहर्तारं ततस्ततः ॥ ५३ ॥

'आप धर्मकी व्यवस्थाको तोड़नेवाले तथा संग्राममें मायाकी सृष्टि करनेवाले थे। देवताओं, असुरों और मनुष्योंकी कन्याओंको इधर-उधरसे हर लाते थे ॥ ५३ ॥

शत्रुस्त्रीशोकदातारं नेतारं स्वजनस्य च ।
लङ्काद्वीपस्य गोप्तारं कर्तारं भीमकर्मणाम् ॥ ५४ ॥
अस्माकं कामभोगानां दातारं रथिनां वरम् ।
एवंप्रभावं भर्तारं दृष्ट्वा रामेण पातितम् ॥ ५५ ॥
स्थिरास्मि या देहमिमं धारयामि हतप्रिया ।

'आप शत्रुकी स्त्रियोंको शोक प्रदान करनेवाले, स्वजनोंके नेता, लङ्कापुरीके रक्षक, भयानक कर्म करनेवाले तथा हम सब लोगोंको कामोपभोगका सुख देनेवाले थे। ऐसे प्रभावशाली तथा रथियोंमें श्रेष्ठ अपने प्रियतम पतिको श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा धराशायी किया गया देखकर भी जो मैं अबतक इस शरीरको धारण कर रही हूँ, प्रियतमके मारे जानेपर भी जी रही हूँ—यह मेरी पाषाणहृदयताका परिचायक है ॥५४-५५½॥

शयनेषु महार्हेषु शयित्वा राक्षसेश्वर ॥ ५६ ॥
इह कस्मात् प्रसुप्तोऽसि धरण्यां रेणुगुण्ठितः ।

'राक्षसराज! आप तो बहुमूल्य पलंगोंपर शयन करते थे, फिर यहाँ धरतीपर धूलिमें लिपटे हुए क्यों सो रहे हैं? ५६½

यदा मे तनयः शस्तो लक्ष्मणेनेन्द्रजिद् युधि ॥ ५७ ॥
तदा त्वभिहता तीव्रमद्य त्वस्मिन् निपातिता ।

'जब लक्ष्मणने युद्धमें मेरे बेटे इन्द्रजित्को मारा था, उस समय मुझे गहरा आघात पहुँचा था और आज आपका वध होनेसे तो मैं मार ही डाली गयी ॥ ५७½ ॥

साहं बन्धुजनैर्हीना हीना नाथेन च त्वया ॥ ५८ ॥
विहीना कामभोगैश्च शोचिष्ये शाश्वतीः समाः ।

'अब मैं बन्धुजनोंसे हीन, आप-जैसे स्वामीसे रहित तथा कामभोगोंसे वञ्चित होकर अनन्त वर्षोंतक शोकमें ही डूबी रहूँगी ॥ ५८½ ॥

प्रपन्नो दीर्घमध्वानं राजन्नद्य सुदुर्गमम् ॥ ५९ ॥
नय मामपि दुःखार्तां न वर्तिष्ये त्वया विना ।

'राजन्! आज आप जिस अत्यन्त दुर्गम एवं विशाल मार्गपर गये हैं, वहीं मुझ दुखियाको भी ले चलिये। मैं आपके बिना जीवित नहीं रह सकूँगी ॥ ५९½ ॥

कस्मात् त्वं मां विहायेह कृपणां गन्तुमिच्छसि ॥ ६० ॥
दीनां विलपतीं मन्दां किं च मां नाभिभाषसे ।

'हाय! मुझ असहायाको यहीं छोड़कर आप क्यों अन्यत्र चला जाना चाहते हैं? मैं दीन अभागिनी होकर आपके लिये रो रही हूँ। आप मुझसे बोलते क्यों नहीं? ॥ ६०½ ॥

दृष्ट्वा न खल्वभिक्रुद्धो मामिहानवगुण्ठिताम् ॥ ६१ ॥
निर्गतां नगरद्वारात् पद्भ्यामेवागतां प्रभो ।

'प्रभो! आज मेरे मुँहपर घूँघट नहीं है। मैं नगर-द्वारसे पैदल ही चलकर यहाँ आयी हूँ। इस दशामें मुझे देखकर आप क्रोध क्यों नहीं करते हैं? ॥ ६१½ ॥

पश्येष्टदार दारांस्ते भ्रष्टलज्जावगुण्ठनान् ॥ ६२ ॥
बहिर्निष्पतितान् सर्वान् कथं दृष्ट्वा न कुप्यसि ।

'आप अपनी स्त्रियोंसे बड़ा प्रेम करते थे । आज आपकी सभी स्त्रियाँ लाज छोड़कर, परदा हटाकर बाहर निकल आयी हैं । इन्हें देखकर आपको क्रोध क्यों नहीं होता ? ॥ ६२½ ॥

अयं क्रीडासहायस्तेऽनाथो लालप्यते जनः ॥ ६३ ॥
न चैनमाश्वासयसि किं वा न बहुमन्यसे ।

'नाथ ! आपकी क्रीडासहचरी यह मन्दोदरी आज अनाथ होकर विलाप कर रही है । आप इसे आश्वासन क्यों नहीं देते अथवा अधिक आदर क्यों नहीं करते ? ॥ ६३½ ॥

✓ यास्त्वया विधवा राजन् कृता नैकाः कुलस्त्रियः ॥ ६४ ॥
पतिव्रता धर्मरता गुरुशुश्रूषणे रताः ।
ताभिः शोकाभितप्ताभिः शप्तः परवशं गतः ॥ ६५ ॥
त्वया विप्रकृताभिश्च तदा शप्तस्तदागतम् ।

'राजन् ! आपने बहुत-सी कुलललनाओंको, जो गुरुजनोंकी सेवामें लगी रहनेवाली, धर्मपरायणा तथा पतिव्रता थीं, विधवा बनाया और उनका अपमान किया था; अतः उस समय उन्होंने शोकसे संतप्त होकर आपको शाप दे दिया था, उसीका यह फल है कि आपको शत्रु एवं मृत्युके अधीन होना पड़ा है ॥ ६४-६५½ ॥

✓ प्रवादः सत्यमेवायं त्वां प्रति प्रायशो नृप ॥ ६६ ॥
पतिव्रतानां नाकस्मात् पतन्त्यश्रूणि भूतले ।

'महाराज ! पतिव्रताओंके आँसू इस पृथ्वीपर व्यर्थ नहीं गिरते, यह कहावत आपके ऊपर प्रायः ठीक-ठीक घटी है ॥ ६६½ ॥

कथं च नाम ते राजँल्लोकानाक्रम्य तेजसा ॥ ६७ ॥
✓ नारीचौर्यमिदं क्षुद्रं कृतं शौण्डीर्यमानिना ।

'राजन् ! आप तो अपने तेजसे तीनों लोकोंको आक्रान्त करके अपनेको बड़ा शूरवीर मानते थे; फिर भी परायी स्त्रीको चुरानेका यह नीच काम आपने कैसे किया ? ॥ ६७½ ॥

अपनीयाश्रमाद् रामं यन्मृगच्छद्मना त्वया ॥ ६८ ॥
✓ आनीता रामपत्नी सा अपनीय च लक्ष्मणम् ।

'मायामय मृगके बहाने श्रीरामको आश्रमसे दूर हटाया और लक्ष्मणको भी अलग किया । उसके बाद आप श्रीरामपत्नी सीताको चुराकर यहाँ ले आये; यह कितनी बड़ी कायरता है ॥ ६८½ ॥

कातर्यं च न ते युद्धे कदाचित् संस्मराम्यहम् ॥ ६९ ॥
तत् तु भाग्यविपर्यासान्नूनं ते पक्वलक्षणम् ।

'युद्धमें कभी आपने कायरता दिखायी हो, यह मुझे याद नहीं पड़ता; परंतु भाग्यके फेरसे उस दिन सीताका हरण करते समय निश्चय ही आपमें कायरता आ गयी थी, जो आपके निकट विनाशकी सूचना दे रही थी ॥ ६९½ ॥

✓ अतीतानागतार्थज्ञो वर्तमानविचक्षणः ॥ ७० ॥
मैथिलीमाहृतां दृष्ट्वा ध्यात्वा निःश्वस्य चायतम् ।
सत्यवाक् स महाबाहो देवरो मे यदब्रवीत् ॥ ७१ ॥
अयं राक्षसमुख्यानां विनाशः प्रत्युपस्थितः ।

'महाबाहो ! मेरे देवर विभीषण सत्यवादी, भूत और भविष्यके ज्ञाता तथा वर्तमानको भी समझनेमें कुशल हैं । उन्होंने हरकर लायी हुई मिथिलेशकुमारी सीताको देखकर मन-ही-मन कुछ विचार किया और अन्तमें लंबी साँस छोड़कर कहा—अब प्रधान-प्रधान राक्षसोंके विनाशका समय उपस्थित हो गया है । उनकी यह बात ठीक निकली ॥ ७०-७१½ ॥

कामक्रोधसमुत्थेन व्यसनेन प्रसङ्गिना ॥ ७२ ॥
निवृत्तस्त्वत्कृतेनार्थः सोऽयं मूलहरो महान् ।
त्वया कृतमिदं सर्वमनाथं राक्षसं कुलम् ॥ ७३ ॥

'काम और क्रोधसे उत्पन्न आपके आसक्तिविषयक दोषके कारण यह सारा ऐश्वर्य नष्ट हो गया और जड़मूलका नाश करनेवाला यह महान् अनर्थ प्राप्त हुआ । आज आपने समस्त राक्षसकुलको अनाथ कर दिया ॥ ७२-७३ ॥

नहि त्वं शोचितव्यो मे प्रख्यातबलपौरुषः ।
स्त्रीस्वभावात् तु मे बुद्धिः कारुण्ये परिवर्तते ॥ ७४ ॥

'आप अपने बल और पुरुषार्थके लिये विख्यात थे, अतः आपके लिये शोक करना मेरे लिये उचित नहीं है, तथापि स्त्रीस्वभावके कारण मेरे हृदयमें दीनता आ गयी है ॥

सुकृतं दुष्कृतं च त्वं गृहीत्वा स्वां गतिं गतः ।
आत्मानमनुशोचामि त्वद्विनाशेन दुःखिताम् ॥ ७५ ॥

'आप अपना पुण्य और पाप साथ लेकर अपनी वीरोचित गतिको प्राप्त हुए हैं । आपके विनाशसे मैं महान् दुःखमें पड़ गयी हूँ; इसलिये बारंबार अपने ही लिये शोक करती हूँ ।७५।

सुहृदां हितकामानां न श्रुतं वचनं त्वया ।
भ्रातृणां चैव कार्त्स्न्येन हितमुक्तं दशानन ॥ ७६ ॥

'महाराज दशानन! हित चाहनेवाले सुहृदों तथा बन्धुओंने जो आपसे सम्पूर्णतः हितकी बातें कही थीं, उन्हें आपने अनसुनी कर दिया ॥ ७६ ॥

✓ हेत्वर्थयुक्तं विधिवच्छ्रेयस्करमदारुणम् ।
विभीषणेनाभिहितं न कृतं हेतुमत् त्वया ॥ ७७ ॥

'विभीषणका कथन भी युक्ति और प्रयोजनसे पूर्ण था । विधिपूर्वक आपके सामने प्रस्तुत किया गया था । वह कल्याणकारी तो था ही, बहुत ही सौम्य भाषामें कहा गया था; किंतु उस युक्तियुक्त बातको भी आपने नहीं माना ॥ ७७ ॥

✓ मारीचकुम्भकर्णाभ्यां वाक्यं मम पितुस्तथा ।
न कृतं वीर्यमत्तेन तस्येदं फलमीदृशम् ॥ ७८ ॥

'आप अपने बलके घमंडमें मतवाले हो रहे थे; अतः मारीच, कुम्भकर्ण तथा मेरे पिताकी कही हुई बात भी आपने नहीं मानी । उसीका यह ऐसा फल आपको प्राप्त हुआ है ॥

नीलजीमूतसंकाश पीताम्बर शुभाङ्गद ।

स्वगात्राणि विनिक्षिप्य किं शेषे रुधिरावृतः ॥ ७९ ॥

'प्राणनाथ ! आपका नील मेघके समान श्याम वर्ण है। आप शरीरपर पीत वस्त्र और बाँहोंमें सुन्दर बाजूबंद धारण करनेवाले हैं। आज खूनसे लथपथ हो अपने शरीरको सब ओर छितराकर यहाँ क्यों सो रहे हैं ? ॥ ७९ ॥

प्रसुप्त इव शोकार्तां किं मां न प्रतिभाषसे ।

'मैं शोकसे पीड़ित हो रही हूँ और आप गहरी नींदमें सोये हुए पुरुषकी भाँति मेरी बातका जवाब नहीं दे रहे हैं। नाथ ! ऐसा क्यों हो रहा है ? ॥ ७९½ ॥

महावीर्यस्य दक्षस्य संयुगेष्वपलायिनः ॥ ८० ॥
यातुधानस्य दौहित्रीं किं मां न प्रतिभाषसे ।

'मैं महान् पराक्रमी, युद्धकुशल और समरभूमिसे पीछे न हटनेवाले सुमाली नामक राक्षसकी दौहित्री (नतिनी) हूँ। आप मुझसे बोलते क्यों नहीं हैं ? ॥ ८०½ ॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ किं शेषे नवे परिभवे कृते ॥ ८१ ॥
अद्य वै निर्भया लङ्कां प्रविष्टाः सूर्यरश्मयः ।

'राक्षसराज ! उठिये, उठिये। श्रीरामके द्वारा आपका नूतन पराभव किया गया है तो भी आप सो कैसे रहे हैं ? आज ही ये सूर्यकी किरणें लङ्कामें निर्भय होकर प्रविष्ट हुई हैं ॥ ८१½॥

येन सूदयसे शत्रून् समरे सूर्यवर्चसा ॥ ८२ ॥
वज्रं वज्रधरस्येव सोऽयं ते सततार्चितः ।
रणे बहुप्रहरणो हेमजालपरिष्कृतः ॥ ८३ ॥
परिघो व्यवकीर्णस्ते बाणैश्छिन्नः सहस्रधा ।

'वीरवर ! आप समरभूमिमें जिस सूर्यतुल्य तेजस्वी परिघके द्वारा शत्रुओंका संहार किया करते थे, वज्रधारी इन्द्रके वज्रकी भाँति जो सदा आपके द्वारा पूजित हुआ था, रणभूमिमें बहुसंख्यक शत्रुओंके प्राण लेनेवाला था और जिसे सोनेकी जालीसे विभूषित किया गया था, आपका वह परिघ श्रीरामके बाणोंसे सहस्रों टुकड़ोंमें विभक्त होकर इधर-उधर बिखरा पड़ा है ॥ ८२-८३½ ॥

प्रियामिवोपसंगृह्य किं शेषे रणमेदिनीम् ॥ ८४ ॥
अप्रियामिव कस्माच्च मां नेच्छस्यभिभाषितुम् ।

'प्राणनाथ ! आप अपनी प्यारी पत्नीकी भाँति रणभूमिका आलिंगन करके क्यों सो रहे हैं और किस कारणसे मुझे अप्रिय-सी मानकर मुझसे बोलना तक नहीं चाहते हैं ? ॥ ८४½ ॥

धिगस्तु हृदयं यस्या ममेदं न सहस्रधा ॥ ८५ ॥
त्वयि पञ्चत्वमापन्ने फलते शोकपीडितम् ।

'आपकी मृत्यु हो जानेपर भी मेरे शोकपीड़ित हृदयके हजारों टुकड़े नहीं हो जाते; अतः मुझ पाषाणहृदया नारीको धिक्कार है' ॥ ८५½ ॥

इत्येवं विलपन्ती सा बाष्पपर्याकुलेक्षणा ॥ ८६ ॥
स्नेहोपस्कन्नहृदया तदा मोहमुपागमत् ।
कश्मलाभिहता सन्ना बभौ सा रावणोरसि ॥ ८७ ॥
संध्यानुरक्ते जलदे दीप्ता विद्युदिवोज्ज्वला ।

इस प्रकार विलाप करती हुई मन्दोदरीके नेत्रोंमें आँसू भरे हुए थे। उसका हृदय स्नेहसे द्रवीभूत हो रहा था। वह रोती-रोती सहसा मूर्च्छित हो गयी और उसी अवस्थामें रावणकी छातीपर गिर पड़ी। रावणके वक्षःस्थलपर मन्दोदरीकी वैसी ही शोभा हो रही थी, जैसे संध्याकी लालीसे रँगे हुए बादलमें दीप्तिमती विद्युत् चमक रही हो ॥ ८६-८७½ ॥

तथागतां समुत्थाप्य सपत्न्यस्तां भृशातुराः ॥ ८८ ॥
पर्यवस्थापयामासू रुदत्यो रुदतीं भृशम् ।

उसकी सौतें भी शोकसे अत्यन्त आतुर हो रही थीं, उन्होंने उसे उस अवस्थामें देखकर उठाया और स्वयं भी रोते-रोते जोर-जोरसे विलाप करती हुई मन्दोदरीको धीरज बँधाया ॥ ८८½ ॥

किं ते न विदिता देवि लोकानां स्थितिरध्रुवा ॥ ८९ ॥
दशाविभागपर्याये राज्ञां वै चञ्चलाः श्रियः ।

वे बोलीं—'महारानी ! क्या आप नहीं जानतीं कि संसार-का स्वरूप अस्थिर है। दशा बदल जानेपर राजाओंकी लक्ष्मी स्थिर नहीं रहती' ॥ ८९½ ॥

इत्येवमुच्यमाना सा सशब्दं प्ररुरोद ह ॥ ९० ॥
स्नापयन्ती तदास्रेण स्तनौ वक्त्रं सुनिर्मलम् ।

उनके ऐसा कहनेपर मन्दोदरी फूट-फूटकर रोने लगी। उस समय उसके दोनों स्तन और उज्ज्वल मुख आँसुओंसे नहा उठे थे ॥ ९०½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे रामो विभीषणमुवाच ह ॥ ९१ ॥
संस्कारः क्रियतां भ्रातुः स्त्रीगणः परिसान्त्व्यताम् ।

इसी समय श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणसे कहा—'इन स्त्रियों-को धैर्य बँधाओ और अपने भाईका दाह-संस्कार करो' ॥ ९१½ ॥

तमुवाच ततो धीमान् विभीषण इदं वचः ॥ ९२ ॥
विमृश्य बुद्ध्या प्रश्रितं धर्मार्थसहितं हितम् ।

यह सुनकर बुद्धिमान् विभीषणने (श्रीरामका अभिप्राय जाननेके उद्देश्यसे) बुद्धिसे सोच-विचारकर उनसे यह धर्म और अर्थसे युक्त विनयपूर्ण तथा हितकर बात कही—॥ ९२½ ॥

त्यक्तधर्मव्रतं क्रूरं नृशंसमनृतं तथा ॥ ९३ ॥
नाहमर्हामि संस्कर्तुं परदाराभिमर्शनम् ।

'भगवन् ! जिसने धर्म और सदाचारका त्याग कर दिया था, जो क्रूर, निर्दयी, असत्यवादी तथा परायी स्त्रीका स्पर्श करनेवाला था, उसका दाहसंस्कार करना मैं उचित नहीं समझता हूँ ॥ ९३½ ॥

भ्रातृरूपो हि मे शत्रुरेष सर्वाहिते रतः ॥ ९४ ॥
रावणो नार्हते पूजां पूज्योऽपि गुरुगौरवात् ।

'सबके अहितमें संलग्न रहनेवाला यह रावण भाईके रूपमें

मेरा शत्रु था। यद्यपि ज्येष्ठ होनेसे गुरुजनोचित गौरवके कारण वह मेरा पूज्य था, तथापि वह मुझसे सत्कार पाने योग्य नहीं है ॥ ९४½ ॥

नृशंस इति मां राम वक्ष्यन्ति मनुजा भुवि ॥ ९५ ॥
श्रुत्वा तस्यागुणान् सर्वे वक्ष्यन्ति सुकृतं पुनः ।

'श्रीराम! मेरी यह बात सुनकर संसारके मनुष्य मुझे क्रूर अवश्य कहेंगे; परंतु जब रावणके दुर्गुणोंको भी सुनेंगे, तब सब लोग मेरे इस विचारको उचित ही बतायेंगे' ॥ ९५½ ॥

तच्छ्रुत्वा परमप्रीतो रामो धर्मभृतां वरः ॥ ९६ ॥
विभीषणमुवाचेदं वाक्यज्ञं वाक्यकोविदः ।

यह सुनकर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए। वे बातचीत करनेमें बड़े प्रवीण थे; अतः बातोंका अभिप्राय समझनेवाले विभीषणसे इस प्रकार बोले— ॥ ९६½ ॥

तवापि मे प्रियं कार्यं त्वत्प्रभावान्मया जितम् ॥ ९७ ॥
अवश्यं तु क्षमं वाच्यो मया त्वं राक्षसेश्वर ।

'राक्षसराज! मुझे तुम्हारा भी प्रिय करना है, क्योंकि तुम्हारे ही प्रभावसे मेरी जीत हुई है। अवश्य ही मुझे तुमसे उचित बात कहनी चाहिये; अतः सुनो ॥ ९७½ ॥

✓**अधर्मानृतसंयुक्तः काममेष निशाचरः ॥ ९८ ॥**
तेजस्वी बलवाञ्छूरः संग्रामेषु च नित्यशः ।

'यह निशाचर भले ही अधर्मी और असत्यवादी रहा हो; परंतु संग्राममें सदा ही तेजस्वी, बलवान् तथा शूरवीर रहा है ॥ ९८½ ॥

✓**शतक्रतुमुखैर्देवैः श्रूयते न पराजितः ॥ ९९ ॥**
महात्मा बलसम्पन्नो रावणो लोकरावणः ।

'सुना जाता है—इन्द्र आदि देवता भी इसे परास्त नहीं कर सके थे। समस्त लोकोंको रुलानेवाला रावण बल-पराक्रमसे सम्पन्न तथा महामनस्वी था ॥ ९९½ ॥

✓**मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम् ॥ १०० ॥**
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ।

'वैर मरनेतक ही रहता है। मरनेके बाद उसका अन्त हो जाता है। अब हमारा प्रयोजन भी सिद्ध हो चुका है, अतः इस समय जैसे यह तुम्हारा भाई है, वैसे ही मेरा भी है; इसलिये इसका दाहसंस्कार करो ॥ १००½ ॥

त्वत्सकाशान्महाबाहो संस्कारं विधिपूर्वकम् ॥ १०१ ॥
क्षिप्रमर्हति धर्मेण त्वं यशोभाग् भविष्यसि ।

'महाबाहो! धर्मके अनुसार रावण तुम्हारी ओरसे शीघ्र ही विधिपूर्वक दाह-संस्कार प्राप्त करनेके योग्य है। ऐसा करनेसे तुम यशके भागी होओगे' ॥ १०१½ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा त्वरमाणो विभीषणः ॥ १०२ ॥
संस्कारयितुमारेभे भ्रातरं रावणं हतम् । त

श्रीरामचन्द्रजीके इस वचनको सुनकर विभीषण युद्धमें मारे गये अपने भाई रावणके दाह-संस्कारकी शीघ्रतापूर्वक तैयारी करने लगे ॥ १०२½ ॥

स प्रविश्य पुरीं लङ्कां राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥ १०३ ॥
रावणस्याग्निहोत्रं तु निर्यापयति सत्वरम् । ✓

राक्षसराज विभीषणने लङ्कापुरीमें प्रवेश करके रावणके अग्निहोत्रको शीघ्र ही विधिपूर्वक समाप्त किया ॥ १०३½ ॥

शकटान् दारुरूपाणि अग्नीन् वै याजकांस्तथा ॥ १०४ ॥
तथा चन्दनकाष्ठानि काष्ठानि विविधानि च ।
अगरूणि सुगन्धीनि गन्धांश्च सुरभींस्तथा ॥ १०५ ॥
मणिमुक्ताप्रवालानि निर्यापयति राक्षसः ।

इसके बाद शकट, लकड़ी, अग्निहोत्रकी अग्नियाँ, यज्ञ करानेवाले पुरोहित, चन्दनकाष्ठ, अन्य विविध प्रकारकी लकड़ियाँ, सुगन्धित अगर, अन्यान्य सुन्दर गन्धयुक्त पदार्थ, मणि, मोती और मूँगा—इन सब वस्तुओंको उन्होंने एकत्र किया ॥ १०४-१०५½ ॥

आजगाम मुहूर्तेन राक्षसैः परिवारितः ॥ १०६ ॥
ततो माल्यवता सार्धं क्रियामेव चकार सः ।

फिर दो ही घड़ीमें राक्षसोंसे घिरे हुए वे शीघ्र वहाँसे चले आये। तदनन्तर माल्यवान्‌के साथ मिलकर उन्होंने दाह-संस्कारकी तैयारीका सारा कार्य पूर्ण किया ॥ १०६½ ॥

सौवर्णीं शिबिकां दिव्यामारोप्य क्षौमवाससम् ॥ १०७ ॥
रावणं राक्षसाधीशमश्रुवर्णमुखा द्विजाः ।
तूर्यघोषैश्च विविधैः स्तुवद्भिश्चाभिनन्दितम् ॥ १०८ ॥

भाँति-भाँतिके वाद्यघोषोंद्वारा स्तुति करनेवाले मागधोंने जिसका अभिनन्दन किया था, राक्षसराज रावणके उस शवको रेशमी वस्त्रसे ढककर उसे सोनेके दिव्य विमानमें रखनेके पश्चात् राक्षसजातीय ब्राह्मण वहाँ नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए खड़े हो गये ॥ १०७-१०८ ॥

पताकाभिश्च चित्राभिः सुमनोभिश्च चित्रिताम् ।
उत्क्षिप्य शिबिकां तां तु विभीषणपुरोगमाः ॥ १०९ ॥
दक्षिणाभिमुखाः सर्वे गृह्य काष्ठानि भेजिरे ।

उस शिबिकाको विचित्र पताकाओं तथा फूलोंसे सजाया गया था। जिससे वह विचित्र शोभा धारण करती थी। विभीषण आदि राक्षस उसे कंधेपर उठाकर तथा अन्य सब लोग हाथमें सूखे काठ लिये दक्षिण दिशामें श्मशानभूमिकी ओर चले ॥ १०९½ ॥

अग्नयो दीप्यमानास्ते तदाध्वर्युसमीरिताः ॥ ११० ॥
शरणाभिगताः सर्वे पुरस्तात् तस्य ते ययुः ।

यजुर्वेदीय याजकोंद्वारा ढोयी जाती हुई त्रिविध अग्नियाँ प्रज्वलित हो उठीं। वे सब कुण्डमें रक्खी हुई थीं और पुरोहितगण उन्हें लेकर शवके आगे-आगे चल रहे थे ॥ ११०½

अन्तःपुराणि सर्वाणि रुदमानानि सत्वरम् ॥ १११ ॥
पृष्ठतोऽनुययुस्तानि प्लवमानानि सर्वतः ।

अन्तःपुरकी सारी स्त्रियाँ रोती हुई तुरंत ही शवके पीछे-पीछे चल पड़ीं। वे सब ओर लड़खड़ाती चलती थीं १११½

रावणं प्रयते देशे स्थाप्य ते भृशदुःखिताः ॥११२॥
चितां चन्दनकाष्ठैश्च पद्मकोशीरचन्दनैः ।
ब्राह्म्या संवर्तयामासू राङ्कवास्तरणावृताम् ॥११३॥

आगे जाकर रावणके विमानको एक पवित्र स्थानमें रखकर अत्यन्त दुखी हुए विभीषण आदि राक्षसोंने मलयचन्दन-काष्ठ, पद्मक, उशीर (खस) तथा अन्य प्रकारके चन्दनों-द्वारा वेदोक्त विधिसे चिता बनायी और उसके ऊपर रङ्कु नामक मृगका चर्म बिछाया ॥ ११२-११३ ॥

प्रचक्रू राक्षसेन्द्रस्य पितृमेधमनुत्तमम् ।
वेदिं च दक्षिणाप्राच्यां यथास्थानं च पावकम् ॥११४॥
पृषदाज्येन सम्पूर्णं स्रुवं स्कन्धे प्रचिक्षिपुः ।
पादयोः शकटं प्रापुरूर्वोश्चोलूखलं तदा ॥११५॥

उसके ऊपर राक्षसराजके शवको सुलाकर उन्होंने उत्तम विधिसे उसका पितृमेध (दाहसंस्कार) किया। उन्होंने चिताके दक्षिण-पूर्वमें वेदी बनाकर उसपर यथास्थान अग्निको स्थापित किया था। फिर दधिमिश्रित घीसे भरी हुई स्रुवा रावणके कंधेपर रक्खी। इसके बाद पैरोंपर शकट और जाँघों पर उलूखल रक्खा ॥ ११४-११५ ॥

दारुपात्राणि सर्वाणि अरणिं चोत्तरारणिम् ।
दत्त्वा तु मुसलं चान्यं यथास्थानं विचक्रमुः ॥११६॥

तथा काष्ठके सभी पात्र, अरणि, उत्तरारणि और मूसल आदिको भी यथास्थान रख दिया ॥ ११६ ॥

शास्त्रदृष्टेन विधिना महर्षिविहितेन च ।
तत्र मेध्यं पशुं हत्वा राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः ॥ ११७ ॥
परिस्तरणिकां राज्ञो घृताक्तां समवेशयन् ।
गन्धैर्माल्यैरलंकृत्य रावणं दीनमानसाः ॥११८॥

वेदोक्त विधि और महर्षियोंद्वारा रचित कल्पसूत्रोंमें बतायी गयी प्रणालीसे वहाँ सारा कार्य हुआ। राक्षसोंने (राक्षसोंकी रीतिके अनुसार) मेध्य पशुका हनन करके राजा रावणकी चितापर फैलाये हुए मृगचर्मको घीसे तर कर दिया, फिर रावणके शवको चन्दन और फूलोंसे अलंकृत करके वे राक्षस मन-ही-मन दुःखका अनुभव करने लगे ॥११७-११८॥

विभीषणसहायास्ते वस्त्रैश्च विविधैरपि ।
लाजैरवकिरन्ति स्म बाष्पपूर्णमुखास्तथा ॥११९॥

फिर विभीषणके साथ अन्यान्य राक्षसोंने भी चितापर नाना प्रकारके वस्त्र और लावा बिखेरे। उस समय उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली ॥ ११९ ॥

स ददौ पावकं तस्य विधियुक्तं विभीषणः ।
स्नात्वा चैवार्द्रवस्त्रेण तिलान् दर्भविमिश्रितान् ॥१२०॥
उदकेन च सम्मिश्रान् प्रदाय विधिपूर्वकम् ।
ताः स्त्रियोऽनुनयामास सान्त्वयित्वा पुनः पुनः॥१२१॥

तदनन्तर विभीषणने चितामें विधिके अनुसार आग लगायी। उसके बाद स्नान करके भीगे वस्त्र पहने हुए ही उन्होंने तिल, कुश और जलके द्वारा विधिवत् रावणको जलाञ्जलि दी। तत्पश्चात् रावणकी स्त्रियोंको बारंबार सान्त्वना देकर उनसे घर चलनेके लिये अनुनय-विनय की १२०-१२१

गम्यतामिति ताः सर्वा विविशुर्नगरं ततः ।
प्रविष्टासु पुरीं स्त्रीषु राक्षसेन्द्रो विभीषणः ।
रामपार्श्वमुपागम्य समतिष्ठद् विनीतवत् ॥१२२॥

'महलमें चलो' यह विभीषणका आदेश सुनकर वे सारी स्त्रियाँ नगरमें चली गयीं। स्त्रियोंके पुरीमें प्रवेश कर जानेपर राक्षसराज विभीषण श्रीरामचन्द्रजीके पास आकर विनीतभावसे खड़े हो गये ॥ १२२ ॥

रामोऽपि सह सैन्येन ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ।
हर्षं लेभे रिपुं हत्वा वृत्रं वज्रधरो यथा ॥१२३॥

श्रीराम भी लक्ष्मण, सुग्रीव तथा समस्त सेनाके साथ शत्रुका वध करके बहुत प्रसन्न थे। ठीक उसी तरह, जैसे वज्रधारी इन्द्र वृत्रासुरको मारकर प्रसन्नताका अनुभव करने लगे थे ॥ १२३ ॥

ततो विमुक्त्वा सशरं शरासनं
महेन्द्रदत्तं कवचं स तन्महत् ।
विमुच्य रोषं रिपुनिग्रहात् ततो
रामः स सौम्यत्वमुपागतोऽरिहा॥ १२४॥

तदनन्तर इन्द्रके दिये हुए धनुष, बाण और विशाल कवचको त्यागकर तथा शत्रुका दमन कर देनेके कारण रोषको भी छोड़कर शत्रुसूदन श्रीरामने शान्तभाव धारण कर लिया ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकादशाधिकशततमः सर्गः ॥ १११ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १११ ॥

द्वादशाधिकशततमः सर्गः

विभीषणका राज्याभिषेक और श्रीरघुनाथजीका हनुमान्‌जीके द्वारा सीताके पास संदेश भेजना

ते रावणवधं दृष्ट्वा देवगन्धर्वदानवाः ।
जग्मुः स्वैः स्वैर्विमानैस्ते कथयन्तः शुभाः कथाः॥ १ ॥

देवता, गन्धर्व और दानवगण रावण-वधका दृश्य देखकर उसीकी शुभ चर्चा करते हुए अपने-अपने विमानसे यथास्थान लौट गये ॥ १ ॥

रावणस्य वधं घोरं राघवस्य पराक्रमम् ।

सुयुद्धं वानराणां च सुग्रीवस्य च मन्त्रितम् ॥ २ ॥
अनुरागं च वीर्यं च मारुतेर्लक्ष्मणस्य च ।
पतिव्रतात्वं सीताया हनूमति पराक्रमम् ॥ ३ ॥
कथयन्तो महाभागा जग्मुर्हृष्टा यथागतम् ।

रावणके भयंकर वध, श्रीरघुनाथजीके पराक्रम, वानरोंके उत्तम युद्ध, सुग्रीवकी मन्त्रणा, लक्ष्मण और हनुमान्‌जीकी श्रीरामके प्रति भक्ति, उन दोनोंके पराक्रम, सीताके पातिव्रत्य तथा हनुमान्‌जीके पुरुषार्थकी बातें कहते हुए वे महाभाग देवता आदि जैसे आये थे, उसी तरह प्रसन्नतापूर्वक चले गये ॥ २-३½ ॥

राघवस्तु रथं दिव्यमिन्द्रदत्तं शिखिप्रभम् ॥ ४ ॥
अनुज्ञाप्य महाबाहुर्मातलिं प्रत्यपूजयत् ।

इसके बाद महाबाहु भगवान् श्रीरामने इन्द्रके दिये हुए दिव्य रथको, जो अग्निके समान देदीप्यमान था, ले जानेकी आज्ञा देकर मातलिका बड़ा सम्मान किया ॥ ४½ ॥

राघवेणाभ्यनुज्ञातो मातलिः शक्रसारथिः ॥ ५ ॥
दिव्यं तं रथमास्थाय दिवमेवोत्पपात ह ।

तब इन्द्रसारथि मातलि श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे उस दिव्य रथपर बैठकर, पुनः दिव्य लोकको ही चले गये ॥ ५½ ॥

तस्मिंस्तु दिवमारूढे सरथे रथिनां वरः ॥ ६ ॥
राघवः परमप्रीतः सुग्रीवं परिषस्वजे ।

मातलिके रथसहित देवलोकको चले जानेपर रथियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामने बड़ी प्रसन्नताके साथ सुग्रीवको हृदयसे लगा लिया ६½

परिष्वज्य च सुग्रीवं लक्ष्मणेनाभिवादितः ॥ ७ ॥
पूज्यमानो हरिगणैराजगाम बलालयम् ।

सुग्रीवका आलिङ्गन करनेके पश्चात् जब उन्होंने लक्ष्मणकी ओर दृष्टि डाली, तब लक्ष्मणने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर वानरसैनिकोंसे सम्मानित हो वे सेनाकी छावनीपर लौट आये ॥ ७½ ॥

अथोवाच स काकुत्स्थः समीपपरिवर्तिनम् ॥ ८ ॥
सौमित्रिं सत्त्वसम्पन्नं लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ।
विभीषणमिमं सौम्य लङ्कायामभिषेचय ॥ ९ ॥
अनुरक्तं च भक्तं च तथा पूर्वोपकारिणम् ।

वहाँ आकर रघुनाथजीने अपने समीप खड़े हुए बल एवं उद्दीप्त तेजसे सम्पन्न सुमित्रानन्दन लक्ष्मणसे कहा—'सौम्य ! अब तुम लङ्कामें जाकर इन विभीषणका राज्याभिषेक करो; क्योंकि ये मेरे प्रेमी, भक्त तथा पहले उपकार करनेवाले हैं ॥ ८-९½ ॥

एष मे परमः कामो यदिमं रावणानुजम् ॥ १० ॥
लङ्कायां सौम्य पश्येयमभिषिक्तं विभीषणम् ।

'सौम्य ! यह मेरी बड़ी इच्छा है कि रावणके छोटे भाई इन विभीषणको मैं लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त देखूँ' ॥ १०½ ॥

एवमुक्तस्तु सौमित्री राघवेण महात्मना ॥ ११ ॥
तथेत्युक्त्वा सुसंहृष्टः सौवर्णं घटमाददे ।
तं घटं वानरेन्द्राणां हस्ते दत्त्वा मनोजवान् ॥ १२ ॥
व्यादिदेश महासत्त्वान् समुद्रसलिलं तदा ।

महात्मा श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनेपर सुमित्राकुमार लक्ष्मणको बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने 'बहुत अच्छा' कहकर सोनेका घड़ा हाथमें लिया और उसे वानरयूथपतियोंके हाथमें देकर उन महान् शक्तिशाली तथा मनके समान वेगवाले वानरोंको समुद्रका जल ले आनेकी आज्ञा दी ॥ ११-१२½ ॥

अतिशीघ्रं ततो गत्वा वानरास्ते मनोजवाः ॥ १३ ॥
आगतास्तु जलं गृह्य समुद्राद् वानरोत्तमाः ।

वे मनके समान वेगशाली श्रेष्ठ वानर तुरंत ही गये और समुद्रसे जल लेकर लौट आये ॥ १३½ ॥

ततस्त्वेकं घटं गृह्य संस्थाप्य परमासने ॥ १४ ॥
घटेन तेन सौमित्रिरभ्यषिञ्चद् विभीषणम् ।
लङ्कायां रक्षसां मध्ये राजानं रामशासनात् ॥ १५ ॥
विधिना मन्त्रदृष्टेन सुहृद्गणसमावृतम् ।
अभ्यषिञ्चंस्तदा सर्वे राक्षसा वानरास्तथा ॥ १६ ॥

तदनन्तर लक्ष्मणने एक घट लेकर उसे उत्तम आसनपर स्थापित कर दिया और उस घटके जलसे विभीषणका वेदोक्त विधिके अनुसार लङ्काके राजपदपर अभिषेक किया । यह अभिषेक श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे हुआ था। उस समय राक्षसोंके बीचमें सुहृदोंसे घिरे हुए विभीषण राजसिंहासनपर विराजमान थे । लक्ष्मणके बाद सभी राक्षसों और वानरोंने भी उनका अभिषेक किया ॥ १४–१६ ॥

प्रहर्षमतुलं गत्वा तुष्टुवू राममेव हि ।
तस्यामात्या जहृषिरे भक्ता ये चास्य राक्षसाः ॥ १७ ॥
दृष्ट्वाभिषिक्तं लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् ।
राघवः परमां प्रीतिं जगाम सहलक्ष्मणः ॥ १८ ॥

वे अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीरामकी ही स्तुति करने लगे । राक्षसराज विभीषणको लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त देख उनके मन्त्री और प्रेमी राक्षस बहुत प्रसन्न हुए । साथ ही लक्ष्मण-सहित श्रीरघुनाथजीको भी बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १७-१८ ॥

स तद् राज्यं महत् प्राप्य रामदत्तं विभीषणः ।
सान्त्वयित्वा प्रकृतयस्ततो राममुपागमत् ॥ १९ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके दिये हुए उस विशाल राज्यको पाकर विभीषण अपनी प्रजाको सान्त्वना दे श्रीरामचन्द्रजीके पास आये ॥ १९ ॥

दध्यक्षतान् मोदकांश्च लाजाः सुमनसस्तथा ।
आजह्रुरथ संहृष्टाः पौरास्तस्मै निशाचराः ॥ २० ॥

उस समय हर्षसे भरे हुए नगरनिवासी निशाचर विभीषणको अर्पित करनेके लिये दही, अक्षत, मिठाई, लावा और फूल लाये ॥ २० ॥

स तान् गृहीत्वा दुर्धर्षो राघवाय न्यवेदयत् ।

मङ्गल्यं मङ्गलं सर्वं लक्ष्मणाय च वीर्यवान् ॥ २१ ॥

दुर्धर्ष पराक्रमी विभीषणने वे सब मङ्गलजनक माङ्गलिक वस्तुएँ लेकर श्रीराम और लक्ष्मणको भेंट की ॥ २१ ॥

कृतकार्यं समृद्धार्थं दृष्ट्वा रामो विभीषणम् ।
प्रतिजग्राह तत् सर्वं तस्यैव प्रतिकाम्यया ॥ २२ ॥

श्रीरघुनाथजीने विभीषणको कृतकार्य एवं सफलमनोरथ देख उनकी प्रसन्नताके लिये ही उन सब माङ्गलिक वस्तुओंको ले लिया ॥ २२ ॥

ततः शैलोपमं वीरं प्राञ्जलिं प्रणतं स्थितम् ।
उवाचेदं वचो रामो हनूमन्तं प्लवङ्गमम् ॥ २३ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने हाथ जोड़कर विनीतभावसे खड़े हुए पर्वताकार वीर वानर हनुमान्‌जीसे कहा—॥ २३ ॥

अनुज्ञाप्य महाराजमिमं सौम्य विभीषणम् ।
प्रविश्य नगरीं लङ्कां कौशलं ब्रूहि मैथिलीम् ॥ २४ ॥

'सौम्य ! तुम इन महाराज विभीषणकी आज्ञा ले लङ्कानगरीमें प्रवेश करके मिथिलेशकुमारी सीतासे उनका कुशल-समाचार पूछो ॥ २४ ॥

वैदेह्यै मां च कुशलं सुग्रीवं च सलक्ष्मणम् ।
आचक्ष्व वदतां श्रेष्ठ रावणं च हतं रणे ॥ २५ ॥
प्रियमेतदिहाख्याहि वैदेह्यास्त्वं हरीश्वर ।
प्रतिगृह्य तु संदेशमुपावर्तितुमर्हसि ॥ २६ ॥

'साथ ही उन विदेहराजकुमारीसे सुग्रीव और लक्ष्मणसहित मेरा कुशल-समाचार निवेदन करो । वक्ताओंमें श्रेष्ठ हरीश्वर ! तुम वैदेहीको यह प्रिय समाचार सुना दो कि रावण युद्धमें मारा गया । तत्पश्चात् उनका संदेश लेकर लौट आओ' २५-२६

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्वादशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ११२ ॥

त्रयोदशाधिकशततमः सर्गः

हनुमान्‌जीका सीताजीसे बातचीत करके लौटना और उनका संदेश श्रीरामको सुनाना

इति प्रतिसमादिष्टो हनूमान् मारुतात्मजः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः ॥ १ ॥

भगवान् श्रीरामका यह आदेश पाकर पवनपुत्र हनुमान्‌जीने निशाचरोंसे सम्मानित होते हुए लङ्कापुरीमें प्रवेश किया ॥ १ ॥

प्रविश्य च पुरीं लङ्कामनुज्ञाप्य विभीषणम् ।
ततस्तेनाभ्यनुज्ञातो हनूमान् वृक्षवाटिकाम् ॥ २ ॥

पुरीमें प्रवेश करके उन्होंने विभीषणसे आज्ञा माँगी । उनकी आज्ञा मिल जानेपर हनुमान्‌जी अशोकवाटिकामें गये ॥ २ ॥

सम्प्रविश्य यथान्यायं सीताया विदितो हरिः ।
ददर्श मृजया हीनां सातङ्कां रोहिणीमिव ॥ ३ ॥

अशोकवाटिकामें प्रवेश करके न्यायानुसार उन्होंने सीताजीको अपने आगमनकी सूचना दी । तत्पश्चात् निकट जाकर उनका दर्शन किया । वे स्नान आदिसे हीन होनेके कारण कुछ मलिन दिखायी देती थीं और सशङ्क हुई रोहिणीके समान जान पड़ती थीं ॥ ३ ॥

वृक्षमूले निरानन्दां राक्षसीभिः परीवृताम् ।
निभृतः प्रणतः प्रह्वः सोऽभिगम्याभिवाद्य च ॥ ४ ॥

सीताजी आनन्दशून्य हो वृक्षके नीचे राक्षसियोंसे घिरी बैठी थीं । हनुमान्‌जीने शान्त और विनीतभावसे सामने जाकर उन्हें प्रणाम किया । प्रणाम करके वे चुपचाप खड़े हो गये ॥ ४ ॥

दृष्ट्वा तमागतं देवी हनूमन्तं महाबलम् ।
तूष्णीमास्त तदा दृष्ट्वा स्मृत्वा हृष्टाभवत् तदा ॥ ५ ॥

महाबली हनुमान्‌को आया देख देवी सीता उन्हें पहचानकर मन-ही-मन प्रसन्न हुईं; किंतु कुछ बोल न सकीं । चुपचाप बैठी रहीं ॥ ५ ॥

सौम्यं तस्या मुखं दृष्ट्वा हनूमान् प्लवगोत्तमः ।
रामस्य वचनं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥

सीताके मुखपर सौम्यभाव लक्षित हो रहा था । उसे देखकर कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने श्रीरामचन्द्रजीकी कही हुई सब बातोंको उनसे कहना आरम्भ किया—॥ ६ ॥

वैदेहि कुशली रामः सहसुग्रीवलक्ष्मणः ।
कुशलं चाह सिद्धार्थो हतशत्रुरमित्रजित् ॥ ७ ॥

'विदेहनन्दिनि ! श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मण और सुग्रीवके साथ सकुशल हैं । अपने शत्रुका वध करके सफलमनोरथ हुए उन शत्रुविजयी श्रीरामने आपकी कुशल पूछी है ॥ ७ ॥

विभीषणसहायेन रामेण हरिभिः सह ।
निहतो रावणो देवि लक्ष्मणेन च वीर्यवान् ॥ ८ ॥

'देवि ! विभीषणकी सहायता पाकर वानरों और लक्ष्मणसहित श्रीरामने बल-विक्रमसम्पन्न रावणको युद्धमें मार डाला है ॥ ८ ॥

प्रियमाख्यामि ते देवि भूयश्च त्वां सभाजये ।
तव प्रभावाद् धर्मज्ञे महान् रामेण संयुगे ॥ ९ ॥
लब्धोऽयं विजयः सीते स्वस्था भव गतज्वरा ।
रावणश्च हतः शत्रुर्लङ्का चैव वशीकृता ॥ १० ॥

'धर्मको जाननेवाली देवि सीते ! मैं आपको यह प्रिय

संवाद सुनाता हूँ और अधिक-से-अधिक प्रसन्न देखना चाहता हूँ। आपके पातिव्रत्य धर्मके प्रभावसे ही युद्धमें श्रीरामने यह महान् विजय प्राप्त की है। अब आप चिन्ता छोड़कर स्वस्थ हो जायँ। हमलोगोंका शत्रु रावण मारा गया और लङ्का भगवान् श्रीरामके अधीन हो गयी ॥ ९-१० ॥

मया ह्यलब्धनिद्रेण धृतेन तव निर्जये।
प्रतिज्ञैषा विनिस्तीर्णा बद्ध्वा सेतुं महोदधौ ॥ ११ ॥

'श्रीरामने आपको यह संदेश दिया है—'देवि! मैंने तुम्हारे उद्धारके लिये जो प्रतिज्ञा की थी, उसके लिये निद्रा त्यागकर अथक प्रयत्न किया और समुद्रमें पुल बाँधकर रावण-वधके द्वारा उस प्रतिज्ञाको पूर्ण किया ॥ ११ ॥

सम्भ्रमश्च न कर्तव्यो वर्तन्त्या रावणालये।
विभीषणविधेयं हि लङ्कैश्वर्यमिदं कृतम् ॥ १२ ॥
तदाश्वसिहि विस्रब्धं स्वगृहे परिवर्तसे।
अयं चाभ्येति संहृष्टस्त्वद्दर्शनसमुत्सुकः ॥ १३ ॥

"अब तुम अपनेको रावणके घरमें वर्तमान समझकर भयभीत न होना; क्योंकि लङ्काका सारा ऐश्वर्य विभीषणके अधीन कर दिया गया है। अब तुम अपने ही घरमें हो। ऐसा जानकर निश्चिन्त होकर धैर्य धारण करो।' देवि! ये विभीषण भी हर्षसे भरकर आपके दर्शनके लिये उत्कण्ठित हो अभी यहाँ आ रहे हैं' ॥ १२-१३ ॥

एवमुक्ता तु सा देवी सीता शशिनिभानना।
प्रहर्षेणावरुद्धा सा व्याहर्तुं न शशाक ह ॥ १४ ॥

हनुमान्‌जीके इस प्रकार कहनेपर चन्द्रमुखी सीतादेवीको बड़ा हर्ष हुआ। हर्षसे उनका गला भर आया और वे कुछ बोल न सकीं ॥ १४ ॥

ततोऽब्रवीद्धरिवरः सीतामप्रतिजल्पतीम्।
किं त्वं चिन्तयसे देवि किं च मां नाभिभाषसे ॥ १५ ॥

सीताजीको मौन देख कपिवर हनुमान्‌जी बोले—'देवि! आप क्या सोच रही हैं? मुझसे बोलती क्यों नहीं' ॥ १५ ॥

एवमुक्ता हनुमता सीता धर्मपथे स्थिता।
अब्रवीत् परमप्रीता बाष्पगद्गदया गिरा ॥ १६ ॥

हनुमान्‌जीके इस प्रकार पूछनेपर धर्मपरायणा सीतादेवी अत्यन्त प्रसन्न हो आनन्दके आँसू बहाती हुई गद्गदवाणीमें बोलीं—॥ १६ ॥

प्रियमेतदुपश्रुत्य भर्तुर्विजयसंश्रितम्।
प्रहर्षवशमापन्ना निर्वाक्यास्मि क्षणान्तरम् ॥ १७ ॥

'अपने स्वामीकी विजयसे सम्बन्ध रखनेवाला यह प्रिय संवाद सुनकर मैं आनन्दविभोर हो गयी थी; इसलिये कुछ देरतक मेरे मुँहसे बात नहीं निकल सकी है ॥ १७ ॥

नहि पश्यामि सदृशं चिन्तयन्ती प्लवंगम।
आख्यानकस्य भवतो दातुं प्रत्यभिनन्दनम् ॥ १८ ॥

'वानर वीर! ऐसा प्रिय समाचार सुनानेके कारण मैं तुम्हें कुछ पुरस्कार देना चाहती हूँ; किंतु बहुत सोचनेपर भी मुझे इसके योग्य कोई वस्तु दिखायी नहीं देती ॥ १८ ॥

न हि पश्यामि तत् सौम्य पृथिव्यामपि वानर।
सदृशं यत्प्रियाख्याने तव दत्त्वा भवेत् सुखम् ॥ १९ ॥

'सौम्य वानर वीर! इस भूमण्डलमें मैं कोई ऐसी वस्तु नहीं देखती, जो इस प्रिय संवादके अनुरूप हो और जिसे तुम्हें देकर मैं संतुष्ट हो सकूँ ॥ १९ ॥

हिरण्यं वा सुवर्णं वा रत्नानि विविधानि च।
राज्यं वा त्रिषु लोकेषु नैतदर्हति भाषितम् ॥ २० ॥

'सोना, चाँदी, नाना प्रकारके रत्न अथवा तीनों लोकोंका राज्य भी इस प्रिय समाचारकी बराबरी नहीं कर सकता' ॥ २० ॥

एवमुक्तस्तु वैदेह्या प्रत्युवाच प्लवंगमः।
प्रगृहीताञ्जलिर्हर्षात् सीतायाः प्रमुखे स्थितः ॥ २१ ॥

विदेहनन्दिनीके ऐसा कहनेपर वानरवीर हनुमान्‌जीको बड़ा हर्ष हुआ। वे सीताजीके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये और इस प्रकार बोले—॥ २१ ॥

भर्तुः प्रियहिते युक्ते भर्तुर्विजयकाङ्क्षिणि।
स्निग्धमेवंविधं वाक्यं त्वमेवार्हस्यनिन्दिते ॥ २२ ॥

'पतिकी विजय चाहनेवाली और पतिके ही प्रिय एवं हितमें सदा संलग्न रहनेवाली सती-साध्वी देवि! आपके ही मुँहसे ऐसा स्नेहपूर्ण वचन निकल सकता है (आपके इस वचनसे मैं सब कुछ पा गया) ॥ २२ ॥

तवैतद् वचनं सौम्ये सारवत् स्निग्धमेव च। ✓
रत्नौघाद् विविधाच्चापि देवराज्याद् विशिष्यते ॥ २३ ॥

'सौम्ये! आपका यह वचन सारगर्भित और स्नेहयुक्त है, अतः भाँति-भाँतिकी रत्नराशि और देवताओंके राज्यसे भी बढ़कर है ॥ २३ ॥

अर्थतश्च मया प्राप्ता देवराज्यादयो गुणाः।
हतशत्रुं विजयिनं रामं पश्यामि सुस्थितम् ॥ २४ ॥

'मैं जब यह देखता हूँ कि श्रीरामचन्द्रजी अपने शत्रुका वध करके विजयी हो गये और स्वयं सकुशल हैं, तब मैं यह अनुभव करता हूँ कि मेरे सारे प्रयोजन सिद्ध हो गये—देवताओंके राज्य आदि सभी उत्कृष्ट गुणोंसे युक्त पदार्थ मुझे मिल गये' ॥ २४ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा मैथिली जनकात्मजा।
ततः शुभतरं वाक्यमुवाच पवनात्मजम् ॥ २५ ॥

उनकी बात सुनकर मिथिलेशकुमारी जानकीने उन पवनकुमारसे यह परम सुन्दर वचन कहा—॥ २५ ॥

अतिलक्षणसम्पन्नं माधुर्यगुणभूषणम्।
बुद्ध्या ह्यष्टाङ्गया युक्तं त्वमेवार्हसि भाषितुम् ॥ २६ ॥

'वीरवर! तुम्हारी वाणी उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न, माधुर्य

गुणसे भूषित तथा बुद्धिके आठ[1] अङ्गों (गुणों)से अलंकृत है। ऐसी वाणी केवल तुम्हीं बोल सकते हो ॥ २६ ॥

श्लाघनीयोऽनिलस्य त्वं सुतः परमधार्मिकः।
बलं शौर्यं श्रुतं सत्त्वं विक्रमो दाक्ष्यमुत्तमम् ॥ २७ ॥
तेजः क्षमा धृतिः स्थैर्यं विनीतत्वं न संशयः।
एते चान्ये च बहवो गुणास्त्वय्येव शोभनाः ॥ २८ ॥

'तुम वायुदेवताके प्रशंसनीय पुत्र तथा परम धर्मात्मा हो। शारीरिक बल, शूरता, शास्त्रज्ञान, मानसिक बल, पराक्रम, उत्तम दक्षता, तेज, क्षमा, धैर्य, स्थिरता, विनय तथा अन्य बहुत-से सुन्दर गुण केवल तुम्हींमें एक साथ विद्यमान हैं, इसमें संशय नहीं है' ॥ २७-२८ ॥

अथोवाच पुनः सीतामसम्भ्रान्तो विनीतवत्।
प्रगृहीताञ्जलिर्हर्षात् सीतायाः प्रमुखे स्थितः ॥ २९ ॥

तदनन्तर सीताके सामने बिना किसी घबराहटके हाथ जोड़कर विनीतभावसे खड़े हुए हनुमान्‌जी पुनः हर्षपूर्वक उनसे बोले— ॥ २९ ॥

इमास्तु खलु राक्षस्यो यदि त्वमनुमन्यसे।
हन्तुमिच्छामि ताः सर्वा याभिस्त्वं तर्जिता पुरा ॥ ३० ॥

'देवि ! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं इन समस्त राक्षसियोंको, जो पहले आपको बहुत डराती-धमकाती रही हैं, मार डालना चाहता हूँ ॥ ३० ॥

क्लिश्यन्तीं पतिदेवां त्वामशोकवनिकां गताम्।
घोररूपसमाचाराः क्रूराः क्रूरतरेक्षणाः ॥ ३१ ॥
इह श्रुता मया देवि राक्षस्यो विकृताननाः।
असकृत्परुषैर्वाक्यैर्वदन्त्यो रावणाज्ञया ॥ ३२ ॥

'आप-जैसी पतिव्रता देवी अशोकवाटिकामें बैठकर क्लेश भोग रही थीं और ये भयंकर रूप एवं आचारसे युक्त अत्यन्त क्रूर दृष्टिवाली विकरालमुखी क्रूर राक्षसियाँ आपको बारंबार कठोर वचनोंद्वारा डाँटती-फटकारती रहती थीं। रावणकी आज्ञासे ये जैसी-जैसी बातें आपको सुनाती थीं, उन सबको मैंने यहाँ रहकर सुना है ॥ ३१-३२ ॥

विकृता विकृताकाराः क्रूराः क्रूरकचेक्षणाः।
इच्छामि विविधैर्घातैर्हन्तुमेताः सुदारुणाः ॥ ३३ ॥

'ये सब-की-सब विकराल, विकट आकारवाली, क्रूर और अत्यन्त दारुण हैं। इनके नेत्रों और केशोंसे भी क्रूरता टपकती है। मैं तरह-तरहके आघातोंद्वारा इन सबका वध कर डालना चाहता हूँ ॥ ३३ ॥

राक्षस्यो दारुणकथा वरमेतत् प्रयच्छ मे।
मुष्टिभिः पार्ष्णिघातैश्च विशालैश्चैव बाहुभिः ॥ ३४ ॥
जङ्घाजानुप्रहारैश्च दन्तानां चैव पीडनैः।
कर्तनैः कर्णनासानां केशानां लुञ्चनैस्तथा ॥ ३५ ॥
निपात्य हन्तुमिच्छामि तव विप्रियकारिणीः।
एवं प्रहारैर्बहुभिः सम्प्रहार्य यशस्विनि ॥ ३६ ॥
घातये तीव्ररूपाभिर्याभिस्त्वं तर्जिता पुरा।

'मेरी इच्छा है कि मुक्कों, लातों, विशाल भुजाओं—थप्पड़ों, पिण्डलियों और घुटनोंकी मारसे इन्हें घायल करके इनके दाँत तोड़ दूँ, इनकी नाक और कान काट लूँ तथा इनके सिरके बाल नोचूँ। यशस्विनि ! इस तरह बहुत-से प्रहारोंद्वारा इन सबको पीटकर क्रूरतापूर्ण बातें करनेवाली इन अप्रियकारिणी राक्षसियोंको पटक-पटककर मार डालूँ। जिन-जिन भयानक रूपवाली राक्षसियोंने पहले आपको डाँट बतायी है, उन सबको मैं अभी मौतके घाट उतार दूँगा। इसके लिये आप मुझे केवल वर (आज्ञा) दे दें' ॥ ३४–३६½ ॥

इत्युक्ता सा हनुमता कृपणा दीनवत्सला ॥ ३७ ॥
हनूमन्तमुवाचेदं चिन्तयित्वा विमृश्य च।

हनुमान्‌जीके ऐसा कहनेपर करुणामय स्वभाववाली दीनवत्सला सीताने मन-ही-मन बहुत कुछ सोच-विचार करके उनसे इस प्रकार कहा—॥ ३७½ ॥

राजसंश्रयवश्यानां कुर्वतीनां पराज्ञया ॥ ३८ ॥
विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद् वानरोत्तम।
भाग्यवैषम्यदोषेण पुरस्ताद्दुष्कृतेन च ॥ ३९ ॥
मयैतत् प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते।
मैवं वद महाबाहो दैवी ह्येषा परा गतिः ॥ ४० ॥

'कपिश्रेष्ठ ! ये बेचारी राजाके आश्रयमें रहनेके कारण पराधीन थीं। दूसरोंकी आज्ञासे ही सब कुछ करती थीं, अतः स्वामीकी आज्ञाका पालन करनेवाली इन दासियोंपर कौन क्रोध करेगा ? मेरा भाग्य ही अच्छा नहीं था तथा मेरे पूर्वजन्मके दुष्कर्म अपना फल देने लगे थे, इसीसे मुझे यह सब कष्ट प्राप्त हुआ है; क्योंकि सभी प्राणी अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका ही फल भोगते हैं, अतः महाबाहो ! तुम इन्हें मारनेकी बात न कहो। मेरे लिये दैवका ही ऐसा विधान था ॥ ३८–४० ॥

प्राप्तव्यं तु दशायोगान्मयैतदिति निश्चितम्।
दासीनां रावणस्याहं मर्षयामीह दुर्बला ॥ ४१ ॥

'मुझे अपने पूर्वकर्मजनित दशाके योगसे यह सारा दुःख निश्चितरूपसे भोगना ही था; इसलिये रावणकी दासियोंका यदि कुछ अपराध हो भी तो उसे मैं क्षमा करती हूँ; क्योंकि इनके प्रति दयाके उद्रेकसे मैं दुर्बल हो रही हूँ ॥ ४१ ॥

आज्ञप्ता राक्षसेनेह राक्षस्यस्तर्जयन्ति माम्।
हते तस्मिन् न कुर्वन्ति तर्जनं मारुतात्मज ॥ ४२ ॥

'पवनकुमार ! उस राक्षसकी आज्ञासे ही ये मुझे धमकाया

---

[1] शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा।
ऊहापोहोऽर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः ॥

सुननेकी इच्छा, सुनना, ग्रहण करना, स्मरण रखना, ऊहा (तर्क-वितर्क), अपोह (सिद्धान्तका निश्चय) अर्थका ज्ञान होना तथा तत्त्वको समझना—ये आठ बुद्धिके गुण है।

करती थीं । जबसे वह मारा गया है, तबसे ये बेचारी मुझे कुछ नहीं कहती हैं । इन्होंने डराना-धमकाना छोड़ दिया है ॥

अयं व्याघ्रसमीपे तु पुराणो धर्मसंहितः ।
ऋक्षेण गीतः श्लोकोऽस्ति तं निबोध प्लवंगम ॥ ४३ ॥

'वानरवीर ! इस विषयमें एक पुराना धर्मसम्मत श्लोक है, जिसे किसी व्याघ्रके निकट एक रीछने कहा था* । वह श्लोक मैं बता रही हूँ, सुनो ॥ ४३ ॥

✓ **न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम् ।**
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः ॥ ४४ ॥

'श्रेष्ठ पुरुष दूसरेकी बुराई करनेवाले पापियोंके पापकर्मको नहीं अपनाते हैं—बदलेमें उनके साथ स्वयं भी पापपूर्ण बर्ताव नहीं करना चाहते हैं; अतः अपनी प्रतिज्ञा एवं सदाचारकी रक्षा ही करनी चाहिये; क्योंकि साधुपुरुष अपने उत्तम चरित्रसे ही विभूषित होते हैं । सदाचार ही उनका आभूषण है' ॥

✓ **पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा ।**
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥ ४५ ॥

'श्रेष्ठ पुरुषको चाहिये कि कोई पापी हों या पुण्यात्मा अथवा वे वधके योग्य अपराध करनेवाले ही क्यों न हों, उन सबपर दया करें; क्योंकि ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जिससे कभी अपराध होता ही न हो ॥ ४५ ॥

✓ **लोकहिंसाविहाराणां क्रूराणां पापकर्मणाम् ।**
कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम् ॥ ४६ ॥

'जो लोगोंकी हिंसामें ही रमते और सदा पापका ही आचरण करते हैं, उन क्रूर स्वभाववाले पापियोंका भी कभी अमङ्गल नहीं करना चाहिये' ॥ ४६ ॥

एवमुक्तस्तु हनुमान् सीतया वाक्यकोविदः ।
प्रत्युवाच ततः सीतां रामपत्नीमनिन्दिताम् ॥ ४७ ॥

सीताजीके ऐसा कहनेपर बातचीत करनेमें कुशल हनुमान्‌जीने उन सती-साध्वी श्रीरामपत्नीको इस प्रकार उत्तर दिया—॥

युक्ता रामस्य भवती धर्मपत्नी गुणान्विता ।
प्रतिसंदिश मां देवि गमिष्ये यत्र राघवः ॥ ४८ ॥

'देवि ! आप श्रीरामकी धर्मपत्नी हैं; अतः आपका ऐसे सद्‌गुणोंसे सम्पन्न होना उचित ही है । अब आप अपनी ओरसे मुझे कोई संदेश दें । मैं श्रीरघुनाथजीके पास जाऊँगा' ॥ ४८ ॥

एवमुक्ता हनुमता वैदेही जनकात्मजा ।
साब्रवीद् द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं भक्तवत्सलम् ॥ ४९ ॥

हनुमान्‌जीके ऐसा कहनेपर विदेहनन्दिनी जनकराजकिशोरी बोलीं—'मैं अपने भक्तवत्सल स्वामीका दर्शन करना चाहती हूँ' ॥ ४९ ॥

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा हनूमान् मारुतात्मजः ।
हर्षयन् मैथिलीं वाक्यमुवाचेदं महामतिः ॥ ५० ॥

सीताजीकी यह बात सुनकर परम बुद्धिमान् पवनकुमार हनुमान्‌जी उन मिथिलेशकुमारीका हर्ष बढ़ाते हुए इस प्रकार बोले—॥ ५० ॥

पूर्णचन्द्रमुखं रामं द्रक्ष्यस्यद्य सलक्ष्मणम् ।
स्थितमित्रं हतामित्रं शचीवेन्द्रं सुरेश्वरम् ॥ ५१ ॥

'देवि ! जैसे शची देवराज इन्द्रका दर्शन करती हैं, उसी प्रकार आप पूर्णचन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले उन श्रीराम और लक्ष्मणको आज देखेंगी, जिनके मित्र विद्यमान हैं और शत्रु मारे जा चुके हैं' ॥ ५१ ॥

तामेवमुक्त्वा भ्राजन्तीं सीतां साक्षादिव श्रियम् ।
आजगाम महातेजा हनूमान् यत्र राघवः ॥ ५२ ॥

साक्षात् लक्ष्मीकी भाँति सुशोभित होनेवाली सीतादेवीसे ऐसा कहकर महातेजस्वी हनुमान्‌जी उस स्थानपर लौट आये, जहाँ श्रीरघुनाथजी विराजमान थे ॥ ५२ ॥

सपदि हरिवरस्ततो हनूमान्
प्रतिवचनं जनकेश्वरात्मजायाः ।
कथितमकथयद् यथाक्रमेण
त्रिदशवरप्रतिमाय राघवाय ॥ ५३ ॥

वहाँसे लौटते ही कपिवर हनुमान्‌जीने देवराज इन्द्रके तुल्य तेजस्वी श्रीरघुनाथजीसे जनकराजकिशोरी सीताजीका दिया हुआ उत्तर क्रमशः कह सुनाया ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रयोदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ११३ ॥

◆

---

* पहलेकी बात है एक बाघने किसी व्याधका पीछा किया । व्याध भागकर एक वृक्षपर चढ़ गया । उस वृक्षपर पहलेसे ही कोई रीछ बैठा हुआ था । बाघ वृक्षकी जड़के पास पहुँचकर पेड़पर बैठे हुए रीछसे बोला—'हम और तुम दोनों ही वनके जीव हैं, यह व्याध हम दोनोंका ही शत्रु है; अतः तुम इसे वृक्षसे नीचे गिरा दो ।' रीछने उत्तर दिया—'यह व्याध मेरे निवासस्थानपर आकर एक प्रकारसे मेरी शरण ले चुका है, इसलिये मैं इसे नीचे नहीं गिराऊँगा । यदि गिरा दूँ तो धर्मकी हानि होगी ।' ऐसा कहकर रीछ सो गया । तब बाघने व्याधसे कहा—'देखो, इस सोये हुए रीछको नीचे गिरा दो । मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा ।' उसके ऐसा कहनेपर व्याधने उस रीछको धक्का दे दिया; परंतु रीछ अभ्यासवश दूसरी डाल पकड़कर गिरनेसे बच गया । तब बाघने रीछसे कहा—'यह व्याध तुमको गिराना चाहता था; अतः अपराधी है । इसलिये अब इसको नीचे ढकेल दो ।' बाघके इस प्रकार बारंबार उकसानेपर भी रीछने उस व्याधको नहीं गिराया और 'न परः पापमादत्ते' इस श्लोकका गान करके उसे मुँहतोड़ उत्तर दे दिया । यह प्राचीन कथा है । (रामायणभूषण-टीकासे)

चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः

श्रीरामकी आज्ञासे विभीषणका सीताको उनके समीप लाना और सीताका प्रियतमके मुखचन्द्रका दर्शन करना

तमुवाच महाप्राज्ञः सोऽभिवाद्य प्लवङ्गमः ।
रामं कमलपत्राक्षं वरं सर्वधनुष्मताम् ॥ १ ॥

तदनन्तर परम बुद्धिमान् वानरवीर हनुमान्‌जीने सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ कमलनयन श्रीरामको प्रणाम करके कहा—॥१॥

यन्निमित्तोऽयमारम्भः कर्मणां यः फलोदयः ।
तां देवीं शोकसंतप्तां द्रष्टुमर्हसि मैथिलीम् ॥ २ ॥

'भगवन्! जिनके लिये इन युद्ध आदि कर्मोंका सारा उद्योग आरम्भ किया गया था, उन शोकसंतप्त मिथिलेश-कुमारी सीतादेवीको आप दर्शन दें ॥२॥

सा हि शोकसमाविष्टा बाष्पपर्याकुलेक्षणा ।
मैथिली विजयं श्रुत्वा द्रष्टुं त्वामभिकाङ्क्षति ॥ ३ ॥

'वे शोकमें डूबी रहती हैं। उनके नेत्र आँसुओंसे भरे हुए हैं। आपकी विजयका समाचार सुनकर वे मिथिलेश-कुमारी आपका दर्शन करना चाहती हैं ॥३॥

पूर्वकात् प्रत्ययाच्चाहमुक्तो विश्वस्तया तया ।
द्रष्टुमिच्छामि भर्तारमिति पर्याकुलेक्षणा ॥ ४ ॥

'पहली बार जो मैं आपका संदेश लेकर आया था, तभी से उनका मेरे ऊपर विश्वास हो गया है कि यह मेरे स्वामीका आत्मीयजन है। उसी विश्वाससे युक्त हो उन्होंने नेत्रोंमें आँसू भरकर मुझसे कहा है कि मैं प्राणनाथका दर्शन करना चाहती हूँ' ॥४॥

एवमुक्तो हनुमता रामो धर्मभृतां वरः ।
आगच्छत् सहसा ध्यानमीषद्बाष्पपरिप्लुतः ॥ ५ ॥
स दीर्घमभिनिःश्वस्य जगतीमवलोकयन् ।
उवाच मेघसंकाशं विभीषणमुपस्थितम् ॥ ६ ॥

हनुमान्‌जीके ऐसा कहनेपर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी सहसा ध्यानस्थ हो गये। उनकी आँखें डबडबा आयीं और वे लंबी साँस खींचकर भूमिकी ओर देखते हुए पास ही खड़े मेघके समान श्याम कान्तिवाले विभीषणसे बोले—॥५-६॥

दिव्याङ्गरागां वैदेहीं दिव्याभरणभूषिताम् ।
इह सीतां शिरःस्नातामुपस्थापय मा चिरम् ॥ ७ ॥

'तुम विदेहनन्दिनी सीताको मस्तकपरसे स्नान कराकर दिव्य अङ्गराग तथा दिव्य आभूषणोंसे विभूषित करके शीघ्र मेरे पास ले आओ' ॥७॥

एवमुक्तस्तु रामेण त्वरमाणो विभीषणः ।
प्रविश्यान्तःपुरं सीतां स्त्रीभिः स्वाभिरचोदयत् ॥ ८ ॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर विभीषण बड़ी उतावलीके साथ अन्तःपुरमें गये और पहले अपनी स्त्रियोंको भेजकर उन्होंने सीताको अपने आनेकी खबर दी ॥८॥

ततः सीतां महाभागां दृष्ट्वोवाच विभीषणः ।
मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिः श्रीमान् विनीतो राक्षसेश्वरः ॥ ९ ॥

इसके बाद श्रीमान् राक्षसराज विभीषणने स्वयं ही जाकर महाभाग सीताका दर्शन किया और मस्तकपर अञ्जलि बाँध विनीतभावसे कहा—॥९॥

दिव्याङ्गरागा वैदेहि दिव्याभरणभूषिता ।
यानमारोह भद्रं ते भर्ता त्वां द्रष्टुमिच्छति ॥ १० ॥

'विदेहराजकुमारी! आप स्नान करके दिव्य अङ्गराग तथा दिव्य वस्त्राभूषणोंसे भूषित होकर सवारीपर बैठिये। आपका कल्याण हो। आपके स्वामी आपको देखना चाहते हैं' ॥१०॥

एवमुक्ता तु वैदेही प्रत्युवाच विभीषणम् ।
अस्नात्वा द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं राक्षसेश्वर ॥ ११ ॥

उनके ऐसा कहनेपर वैदेहीने विभीषणको उत्तर दिया—'राक्षसराज! मैं बिना स्नान किये ही अभी पतिदेवका दर्शन करना चाहती हूँ' ॥११॥

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच विभीषणः ।
यथाऽऽह रामो भर्ता ते तत् तथा कर्तुमर्हसि ॥ १२ ॥

सीताकी यह बात सुनकर विभीषण बोले—'देवि! आपके पतिदेव श्रीरामचन्द्रजीने जैसी आज्ञा दी है, आपको वैसा ही करना चाहिये' ॥१२॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा मैथिली पतिदेवता ।
भर्तृभक्त्यावृता साध्वी तथेति प्रत्यभाषत ॥ १३ ॥

उनका यह वचन सुनकर पतिभक्तिसे सुरक्षित तथा पतिको ही देवता माननेवाली सती-साध्वी मिथिलेशकुमारी सीताने 'बहुत अच्छा' कहकर स्वामीकी आज्ञा शिरोधार्य कर ली ॥१३॥

ततः सीतां शिरःस्नातां संयुक्तां प्रतिकर्मणा ।
महार्हाभरणोपेतां महार्हाम्बरधारिणीम् ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् विदेहकुमारीने सिरसे स्नान करके सुन्दर शृङ्गार किया तथा बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण पहनकर वे चलनेको तैयार हो गयीं ॥१४॥

आरोप्य शिबिकां दीप्तां परार्ध्याम्बरसंवृताम् ।
रक्षोभिर्बहुभिर्गुप्तामाजहार विभीषणः ॥ १५ ॥

तब विभीषण बहुमूल्य वस्त्रोंसे आवृत दीप्तिमती सीता देवीको शिबिकामें बिठाकर भगवान् श्रीरामके पास ले आये। उस समय बहुत-से निशाचर चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षा कर रहे थे ॥१५॥

सोऽभिगम्य महात्मानं ज्ञात्वापि ध्यानमास्थितम्।
प्रणतश्च प्रहृष्टश्च प्राप्तां सीतां न्यवेदयत् ॥ १६ ॥

भगवान् श्रीराम ध्यानस्थ हैं, यह जानकर भी विभीषण उनके पास गये और उन्हें प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक बोले—'प्रभो! सीतादेवी आ गयी हैं' ॥ १६ ॥

तामागतामुपश्रुत्य रक्षोगृहचिरोषिताम्।
रोषं हर्षं च दैन्यं च राघवः प्राप शत्रुहा ॥ १७ ॥

राक्षसके घरमें बहुत दिनोंतक निवास करनेके बाद आज सीताजी आयी हैं, यह सोच उनके आगमनका समाचार सुनकर शत्रुसूदन श्रीरघुनाथजीको एक ही समय रोष, हर्ष और दुःख प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥

ततो यानगतां सीतां सविमर्शं विचारयन्।
विभीषणमिदं वाक्यमहृष्टो राघवोऽब्रवीत् ॥ १८ ॥

तदनन्तर 'सीता सवारीपर आयी हैं' इस बातपर तर्क-वितर्कपूर्ण विचार करके श्रीरघुनाथजीको प्रसन्नता नहीं हुई। वे विभीषणसे इस प्रकार बोले— ॥ १८ ॥

राक्षसाधिपते सौम्य नित्यं मद्विजये रत।
वैदेही संनिकर्षं मे क्षिप्रं समभिगच्छतु ॥ १९ ॥

'सदा मेरी विजयके लिये तत्पर रहनेवाले सौम्य राक्षसराज! तुम विदेहकुमारीसे कहो, वे शीघ्र मेरे पास आयें ॥'

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राघवस्य विभीषणः।
तूर्णमुत्सारणं तत्र कारयामास धर्मवित् ॥ २० ॥

श्रीरघुनाथजीकी यह बात सुनकर धर्मज्ञ विभीषणने तुरंत वहाँसे दूसरे लोगोंको हटाना प्रारम्भ किया ॥ २० ॥

कञ्चुकोष्णीषिणस्तत्र वेत्रझर्झरपाणयः।
उत्सारयन्तस्तान् योधान् समन्तात् परिचक्रमुः ॥ २१ ॥

पगड़ी बाँधे और अङ्गा पहिने हुए बहुत-से सिपाही हाथोंमें झाँझकी तरह बजती हुई छड़ी लिये उन वानर-योद्धाओंको हटाते हुए चारों ओर घूमने लगे ॥ २१ ॥

ऋक्षाणां वानराणां च राक्षसानां च सर्वशः।
वृन्दान्युत्सार्यमाणानि दूरमुत्तस्थुरन्ततः ॥ २२ ॥

उनके द्वारा हटाये जाते हुए रीछों, वानरों और राक्षसोंके समुदाय अन्ततोगत्वा दूर जाकर खड़े हो गये ॥ २२ ॥

तेषामुत्सार्यमाणानां निःस्वनः सुमहानभूत्।
वायुनोद्धूयमानस्य सागरस्येव निःस्वनः ॥ २३ ॥

जैसे वायुके थपेड़े खाकर उद्वेलित हुए समुद्रकी गर्जना बढ़ जाती है, उसी प्रकार वहाँसे हटाये जाते हुए उन वानर आदिके हटनेसे वहाँ बड़ा भारी कोलाहल मच गया ॥ २३ ॥

उत्सार्यमाणांस्तान् दृष्ट्वा समन्ताज्जातसम्भ्रमान्।
दाक्षिण्यात्तदमर्षाच्च वारयामास राघवः ॥ २४ ॥

जिन्हें हटाया जाता था, उनके मनमें बड़ा उद्वेग होता था, सब ओर यह उद्वेग देखकर श्रीरघुनाथजीने अपनी सहज उदारताके कारण उन हटानेवालोंको रोषपूर्वक रोका— ॥ २४ ॥

संरम्भाच्चाब्रवीद् रामश्चक्षुषा प्रदहन्निव।
विभीषणं महाप्राज्ञं सोपालम्भमिदं वचः ॥ २५ ॥

उस समय श्रीराम हटानेवाले सिपाहियोंकी ओर इस तरह रोषपूर्ण दृष्टिसे देख रहे थे, मानो उन्हें जलाकर भस्म कर डालेंगे। उन्होंने परम बुद्धिमान् विभीषणको उलहना देते हुए क्रोधपूर्वक कहा— ॥ २५ ॥

किमर्थं मामनादृत्य क्लिश्यतेऽयं त्वया जनः।
निवर्तयैनमुद्वेगं जनोऽयं स्वजनो मम ॥ २६ ॥

'तुम किसलिये मेरा अनादर करके इन सब लोगोंको कष्ट दे रहे हो। रोक दो इस उद्वेगजनक कार्यको। यहाँ जितने लोग हैं सब मेरे आत्मीय जन हैं ॥ २६ ॥

न गृहाणि न वस्त्राणि न प्राकारास्तिरस्क्रिया।
नेदृशा राजसत्कारा वृत्तमावरणं स्त्रियाः ॥ २७ ॥

'घर, वस्त्र (कनात आदि) और चहारदीवारी आदि वस्तुएँ स्त्रीके लिये परदा नहीं हुआ करती हैं। इस तरह लोगोंको दूर हटानेके जो निष्ठुरतापूर्ण व्यवहार हैं, ये भी स्त्रीके लिये आवरण या पर्देका काम नहीं देते हैं। पतिसे प्राप्त होनेवाले सत्कार तथा नारीके अपने सदाचार—ये ही उसके लिये आवरण हैं ॥ २७ ॥

व्यसनेषु न कृच्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयंवरे।
न क्रतौ नो विवाहे वा दर्शनं दूष्यते स्त्रियाः ॥ २८ ॥

'विपत्तिकालमें, शारीरिक या मानसिक पीड़ाके अवसरोंपर, युद्धमें, स्वयंवरमें, यज्ञमें अथवा विवाहमें स्त्रीका दीखना (या दूसरोंकी दृष्टिमें आना) दोषकी बात नहीं है ॥ २८ ॥

सैषा विपद्गता चैव कृच्छ्रेण च समन्विता।
दर्शने नास्ति दोषोऽस्या मत्समीपे विशेषतः ॥ २९ ॥

'यह सीता इस समय विपत्तिमें है। मानसिक कष्टसे भी युक्त है और विशेषतः मेरे पास है; इसलिये इसका परदेके बिना सबके सामने आना दोषकी बात नहीं है ॥ २९ ॥

विसृज्य शिबिकां तस्मात् पद्भ्यामेवापसर्पतु।
समीपे मम वैदेहीं पश्यन्त्वेते वनौकसः ॥ ३० ॥

'अतः जानकी शिबिका (पालकी) छोड़कर पैदल ही मेरे पास आयें और ये सभी वानर उनका दर्शन करें' ॥ ३० ॥

एवमुक्तस्तु रामेण सविमर्शो विभीषणः।
रामस्योपानयत् सीतां संनिकर्षं विनीतवत् ॥ ३१ ॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर विभीषण बड़े विचारमें पड़ गये और विनीतभावसे सीताको उनके समीप ले आये ॥ ३१ ॥

ततो लक्ष्मणसुग्रीवौ हनूमांश्च प्लवङ्गमः।
निशम्य वाक्यं रामस्य बभूवुर्व्यथिता भृशम् ॥ ३२ ॥

उस समय श्रीरामचन्द्रजीका पूर्वोक्त वचन सुनकर लक्ष्मण, सुग्रीव तथा कपिवर हनुमान् तीनों ही अत्यन्त व्यथित हो उठे ॥ ३२ ॥

कलत्रनिरपेक्षैश्च इङ्गितैरस्य दारुणैः।

अप्रीतमिव सीतायां तर्कयन्ति स्म राघवम् ॥ ३३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी भयंकर चेष्टाएँ यह सूचित कर रही थीं कि वे पत्नीकी ओरसे निरपेक्ष हो गये हैं। इसीलिये उन तीनोंने यह अनुमान किया कि श्रीरघुनाथजी सीतापर अप्रसन्न-से जान पड़ते हैं ॥ ३३ ॥

लज्जया त्ववलीयन्ती स्वेषु गात्रेषु मैथिली ।
विभीषणेनानुगता भर्तारं साभ्यवर्तत ॥ ३४ ॥

आगे-आगे सीता थीं और पीछे विभीषण। वे लज्जासे अपने अङ्गोंमें ही सिकुड़ी जा रही थीं। इस तरह वे अपने पतिदेवके सामने उपस्थित हुईं ॥ ३४ ॥

विस्मयाच्च प्रहर्षाच्च स्नेहाच्च पतिदेवता ।
उदैक्षत मुखं भर्तुः सौम्यं सौम्यतरानना ॥ ३५ ॥

सीताजीका मुख अत्यन्त सौम्यभावसे युक्त था। वे पतिको ही देवता माननेवाली थीं। उन्होंने बड़े विस्मय, हर्ष और स्नेहके साथ अपने स्वामीके सौम्य (मनोहर) मुखका दर्शन किया ॥ ३५ ॥

अथ समपनुदन्मनःक्लमं सा
सुचिरमदृष्टमुदीक्ष्य वै प्रियस्य ।
वदनमुदितपूर्णचन्द्रकान्तं
विमलशशाङ्कनिभानना तदाऽऽसीत् ॥ ३६ ॥

उदयकालीन पूर्ण चन्द्रमाको भी लजित करनेवाले प्रियतमके सुन्दर मुखको, जिसके दर्शनसे वे बहुत दिनोंसे वञ्चित थीं, सीताने जी भरकर निहारा और अपने मनकी पीड़ा दूर की। उस समय उनका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा और निर्मल चन्द्रमाके समान शोभा पाने लगा ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ। ११४ ॥

पञ्चदशाधिकशततमः सर्गः

सीताके चरित्रपर संदेह करके श्रीरामका उन्हें ग्रहण करनेसे इन्कार करना और अन्यत्र जानेके लिये कहना

तां तु पार्श्वे स्थितां प्रह्वां रामः सम्प्रेक्ष्य मैथिलीम् ।
हृदयान्तर्गतं भावं व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥

मिथिलेशकुमारी सीताको विनयपूर्वक अपने समीप खड़ी देख श्रीरामचन्द्रजीने अपना हार्दिक अभिप्राय बताना आरम्भ किया—॥ १ ॥

एषासि निर्जिता भद्रे शत्रुं जित्वा रणाजिरे ।
पौरुषाद् यदनुष्ठेयं मयैतदुपपादितम् ॥ २ ॥

'भद्रे ! समराङ्गणमें शत्रुको पराजित करके मैंने तुम्हें उसके चंगुलसे छुड़ा लिया। पुरुषार्थके द्वारा जो कुछ किया जा सकता था, वह सब मैंने किया ॥ २ ॥

गतोऽस्म्यन्तममर्षस्य धर्षणा सम्प्रमार्जिता ।
अवमानश्च शत्रुश्च युगपन्निहतौ मया ॥ ३ ॥

'अब मेरे अमर्षका अन्त हो गया। मुझपर जो कलङ्क लगा था, उसका मैंने मार्जन कर दिया। शत्रुजनित अपमान और शत्रु दोनोंको एक साथ ही नष्ट कर डाला ॥ ३ ॥

अद्य मे पौरुषं दृष्टमद्य मे सफलः श्रमः ।
अद्य तीर्णप्रतिज्ञोऽहं प्रभवाम्यद्य चात्मनः ॥ ४ ॥

'आज सबने मेरा पराक्रम देख लिया। अब मेरा परिश्रम सफल हो गया और इस समय प्रतिज्ञा पूर्ण करके मैं उसके भारसे मुक्त एवं स्वतन्त्र हो गया ॥ ४ ॥

या त्वं विरहिता नीता चलचित्तेन रक्षसा ।
दैवसम्पादितो दोषो मानुषेण मया जितः ॥ ५ ॥

'जब तुम आश्रममें अकेली थीं, उस समय वह चञ्चल चित्तवाला राक्षस तुम्हें हर ले गया। यह दोष मेरे ऊपर दैववश प्राप्त हुआ था, जिसका मैंने मानवसाध्य पुरुषार्थके द्वारा मार्जन कर दिया ॥ ५ ॥

सम्प्राप्तमवमानं यस्तेजसा न प्रमार्जति ।
कस्तस्य पौरुषेणार्थो महताप्यल्पचेतसः ॥ ६ ॥

'जो पुरुष प्राप्त हुए अपमानका अपने तेज या बलसे मार्जन नहीं कर देता है, उस मन्दबुद्धि मानवके महान् पुरुषार्थसे भी क्या लाभ हुआ ? ॥ ६ ॥

लङ्घनं च समुद्रस्य लङ्कायाश्चापि मर्दनम् ।
सफलं तस्य च श्लाघ्यमद्य कर्म हनूमतः ॥ ७ ॥

'हनुमान्‌ने जो समुद्रको लाँघा और लङ्काका विध्वंस किया, उनका वह प्रशंसनीय कर्म आज सफल हो गया ॥ ७ ॥

युद्धे विक्रमतश्चैव हितं मन्त्रयतस्तथा ।
सुग्रीवस्य ससैन्यस्य सफलोऽद्य परिश्रमः ॥ ८ ॥

'सेनासहित सुग्रीवने युद्धमें पराक्रम दिखाया तथा समय-समयपर ये मुझे हितकर सलाह देते रहे हैं, इनका परिश्रम भी अब सार्थक हो गया ॥ ८ ॥

विभीषणस्य च तथा सफलोऽद्य परिश्रमः ।
विगुणं भ्रातरं त्यक्त्वा यो मां स्वयमुपस्थितः ॥ ९ ॥

'ये विभीषण दुर्गुणोंसे भरे हुए अपने भाईका परित्याग करके स्वयं ही मेरे पास उपस्थित हुए थे। अबतकका किया हुआ इनका परिश्रम भी निष्फल नहीं हुआ' ॥ ९ ॥

इत्येवं वदतः श्रुत्वा सीता रामस्य तद् वचः ।
मृगीवोत्फुल्लनयना बभूवाश्रुपरिप्लुता ॥ १० ॥

इस तरह कहते हुए श्रीरामजीकी बातें सुनकर मृगीके

समान विकसित नेत्रोंवाली सीताकी आँखोंमें आँसू भर आया ॥ १० ॥

पश्यतस्तां तु रामस्य समीपे हृदयप्रियाम् ।
जनवादभयाद् राज्ञो बभूव हृदयं द्विधा ॥ ११ ॥

वे अपने स्वामीकी हृदयवल्लभा थीं। उनके प्राणवल्लभ उन्हें अपने समीप देख रहे थे; परंतु लोकापवादके भयसे राजा श्रीरामका हृदय उस समय विदीर्ण हो रहा था ॥ ११ ॥

सीतामुत्पलपत्राक्षीं नीलकुञ्चितमूर्धजाम् ।
अवदद् वै वरारोहां मध्ये वानररक्षसाम् ॥ १२ ॥

वे काले-काले घुँघराले बालोंवाली कमललोचना सुन्दरी सीतासे वानर और राक्षसोंकी भरी सभामें पुनः इस प्रकार कहने लगे—॥ १२ ॥

यत् कर्तव्यं मनुष्येण धर्षणां प्रतिमार्जता ।
तत् कृतं रावणं हत्वा मयेदं मानकाङ्क्षिणा ॥ १३ ॥

'अपने तिरस्कारका बदला चुकानेके लिये मनुष्यका जो कर्तव्य है, वह सब मैंने अपनी मानरक्षाकी अभिलाषासे रावणका वध करके पूर्ण किया ॥ १३ ॥

निर्जिता जीवलोकस्य तपसा भावितात्मना ।
अगस्त्येन दुराधर्षा मुनिना दक्षिणेव दिक् ॥ १४ ॥

'जैसे तपस्यासे भावित अन्तःकरणवाले अथवा तपस्यापूर्वक परमात्मस्वरूपका चिन्तन करनेवाले महर्षि अगस्त्यने वातापि और इल्वलके भयसे जीवजगत्के लिये दुर्गम हुई दक्षिण दिशाको जीता था, उसी प्रकार मैंने रावणके वशमें पड़ी हुई तुमको जीता है ॥ १४ ॥

विदितश्चास्तु भद्रं ते योऽयं रणपरिश्रमः ।
सुतीर्णः सुहृदां वीर्यान्न त्वदर्थं मया कृतः ॥ १५ ॥

'तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मैंने जो यह युद्धका परिश्रम उठाया है तथा इन मित्रोंके पराक्रमसे जो इसमें विजय पायी है, यह सब तुम्हें पानेके लिये नहीं किया गया है ॥ १५ ॥

रक्षता तु मया वृत्तमपवादं च सर्वतः ।
प्रख्यातस्यात्मवंशस्य न्यङ्गं च परिमार्जता ॥ १६ ॥

'सदाचारकी रक्षा, सब ओर फैले हुए अपवादका निवारण तथा अपने सुविख्यात वंशपर लगे हुए कलंकका परिमार्जन करनेके लिये ही यह सब मैंने किया है ॥ १६ ॥

प्राप्तचारित्रसंदेहा मम प्रतिमुखे स्थिता ।
दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि मे दृढा ॥ १७ ॥

'तुम्हारे चरित्रमें संदेहका अवसर उपस्थित है; फिर भी तुम मेरे सामने खड़ी हो। जैसे आँखके रोगीको दीपककी ज्योति नहीं सुहाती, उसी प्रकार आज तुम मुझे अत्यन्त अप्रिय जान पड़ती हो ॥ १७ ॥

तद् गच्छ त्वानुजानेऽद्य यथेष्टं जनकात्मजे ।
एता दश दिशो भद्रे कार्यमस्ति न मे त्वया ॥ १८ ॥

'अतः जनककुमारी! तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, चली जाओ। मैं अपनी ओरसे तुम्हें अनुमति देता हूँ। भद्रे! ये दसों दिशाएँ तुम्हारे लिये खुली हैं। अब तुमसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है ॥ १८ ॥

कः पुमांस्तु कुले जातः स्त्रियं परगृहोषिताम् ।
तेजस्वी पुनरादद्यात् सुहृल्लोभेन चेतसा ॥ १९ ॥

'कौन ऐसा कुलीन पुरुष होगा, जो तेजस्वी होकर भी दूसरेके घरमें रही हुई स्त्रीको, केवल इस लोभसे कि यह मेरे साथ बहुत दिनोंतक रहकर सौहार्द स्थापित कर चुकी है, मनसे भी ग्रहण कर सकेगा ॥ १९ ॥

रावणाङ्कपरिक्लिष्टां दृष्टां दुष्टेन चक्षुषा ।
कथं त्वां पुनरादद्यां कुलं व्यपदिशन्महत् ॥ २० ॥

'रावण तुम्हें अपनी गोदमें उठाकर ले गया और तुमपर अपनी दूषित दृष्टि डाल चुका है, ऐसी दशामें अपने कुलको महान् बताता हुआ मैं फिर तुम्हें कैसे ग्रहण कर सकता हूँ ॥

यदर्थं निर्जिता मे त्वं सोऽयमासादितो मया ।
नास्ति मे त्वय्यभिष्वङ्गो यथेष्टं गम्यतामिति ॥ २१ ॥

'अतः जिस उद्देश्यसे मैंने तुम्हें जीता था, वह सिद्ध हो गया—मेरे कुलके कलंकका मार्जन हो गया। अब मेरी तुम्हारे प्रति ममता या आसक्ति नहीं है; अतः तुम जहाँ जाना चाहो, जा सकती हो ॥ २१ ॥

तदद्य व्याहृतं भद्रे मयैतत् कृतबुद्धिना ।
लक्ष्मणे वाथ भरते कुरु बुद्धिं यथासुखम् ॥ २२ ॥

'भद्रे! मेरा यह निश्चित विचार है। इसके अनुसार ही आज मैंने तुम्हारे सामने ये बातें कही हैं। तुम चाहो तो भरत या लक्ष्मणके संरक्षणमें सुखपूर्वक रहनेका विचार कर सकती हो ॥ २२ ॥

शत्रुघ्ने वाथ सुग्रीवे राक्षसे वा विभीषणे ।
निवेशय मनः सीते यथा वा सुखमात्मना ॥ २३ ॥

'सीते! तुम्हारी इच्छा हो तो तुम शत्रुघ्न, वानरराज सुग्रीव अथवा राक्षसराज विभीषणके पास भी रह सकती हो। जहाँ तुम्हें सुख मिले, वहीं अपना मन लगाओ ॥ २३ ॥

नहि त्वां रावणो दृष्ट्वा दिव्यरूपां मनोरमाम् ।
मर्षयेत चिरं सीते स्वगृहे पर्यवस्थिताम् ॥ २४ ॥

'सीते! तुम-जैसी दिव्यरूप-सौन्दर्यसे सुशोभित मनोरम नारीको अपने घरमें स्थित देखकर रावण चिरकालतक तुमसे दूर रहनेका कष्ट नहीं सह सका होगा' ॥ २४ ॥

ततः प्रियार्हश्रवणा तदप्रियं
प्रियादुपश्रुत्य चिरस्य मानिनी ।
मुमोच बाष्पं रुदती तदा भृशं
गजेन्द्रहस्ताभिहतेव वल्लरी ॥ २५ ॥

जो सदा प्रिय वचन सुननेके ही योग्य थीं, वे मानिनी सीता चिरकालके बाद मिले हुए प्रियतमके मुखसे ऐसी अप्रिय बात सुनकर उस समय हाथीकी सूँड़से आहत हुई लताके समान आँसू बहाने और रोने लगीं ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ पंद्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ११५ ॥

षोडशाधिकशततमः सर्गः

सीताका श्रीरामको उपालम्भपूर्ण उत्तर देकर अपने सतीत्वकी परीक्षा देनेके लिये अग्निमें प्रवेश करना

**एवमुक्ता तु वैदेही परुषं रोमहर्षणम् ।
राघवेण सरोषेण श्रुत्वा प्रव्यथिताभवत् ॥ १ ॥**

श्रीरघुनाथजीने रोषपूर्वक जब इस तरह रोंगटे खड़े कर देनेवाली कठोर बात कही, तब उसे सुनकर विदेहराजकुमारी सीताके मनमें बड़ी व्यथा हुई ॥ १ ॥

**सा तदाश्रुतपूर्वं हि जने महति मैथिली ।
श्रुत्वा भर्तुर्वचो घोरं लज्जयावनताभवत् ॥ २ ॥**

इतने बड़े जनसमुदायमें अपने स्वामीके मुँहसे ऐसी भयंकर बात, जो पहले कभी कानोंमें नहीं पड़ी थी, सुनकर मिथिलेशकुमारी लाजसे गड़ गयीं ॥ २ ॥

**प्रविशन्तीव गात्राणि स्वानि सा जनकात्मजा ।
वाक्शरैस्तैः सशल्येव भृशमश्रूण्यवर्तयत् ॥ ३ ॥**

उन वाग्बाणोंसे पीड़ित होकर वे जनककिशोरी अपने ही अङ्गोंमें विलीन-सी होने लगीं। उनके नेत्रोंसे आँसुओंका अविरल प्रवाह जारी हो गया ॥ ३ ॥

**ततो बाष्पपरिक्लिन्नं प्रमार्जन्ती स्वमाननम् ।
शनैर्गद्गदया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥**

नेत्रोंके जलसे भीगे हुए अपने मुखको अंचलसे पोंछती हुई वे धीरे-धीरे गद्गद वाणीमें पतिदेवसे इस प्रकार बोलीं— ॥ ४ ॥

**किं मामसदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्रदारुणम् ।
रूक्षं श्रावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतामिव ॥ ५ ॥**

'वीर ! आप ऐसी कठोर, अनुचित, कर्णकटु और रूखी बात मुझे क्यों सुना रहे हैं। जैसे कोई निम्न श्रेणीका पुरुष निम्नकोटिकी ही स्त्रीसे न कहने योग्य बातें भी कह डालता है, उसी तरह आप भी मुझसे कह रहे हैं ॥ ५ ॥

**न तथास्मि महाबाहो यथा मामवगच्छसि ।
प्रत्ययं गच्छ मे स्वेन चारित्रेणैव ते शपे ॥ ६ ॥**

'महाबाहो ! आप मुझे अब जैसी समझते हैं, वैसी मैं नहीं हूँ। मुझपर विश्वास कीजिये। मैं अपने सदाचारकी ही शपथ खाकर कहती हूँ कि मैं संदेहके योग्य नहीं हूँ ॥ ६ ॥

**पृथक्स्त्रीणां प्रचारेण जातिं त्वं परिशङ्कसे ।
परित्यजैनां शङ्कां तु यदि तेऽहं परीक्षिता ॥ ७ ॥**

'नीच श्रेणीकी स्त्रियोंका आचरण देखकर यदि आप समूची स्त्री-जातिपर ही संदेह करते हैं तो यह उचित नहीं है। यदि आपने मुझे अच्छी तरह परख लिया हो तो अपने इस संदेहको मनसे निकाल दीजिये ॥ ७ ॥

**यद्यहं गात्रसंस्पर्शं गतास्मि विवशा प्रभो ।
कामकारो न मे तत्र दैवं तत्रापराध्यति ॥ ८ ॥**

'प्रभो ! रावणके शरीरसे जो मेरे इस शरीरका स्पर्श हो गया है, उसमें मेरी विवशता ही कारण है। मैंने स्वेच्छासे ऐसा नहीं किया था। इसमें मेरे दुर्भाग्यका ही दोष है ॥ ८ ॥

**मदधीनं तु यत् तन्मे हृदयं त्वयि वर्तते ।
पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरी ॥ ९ ॥**

'जो मेरे अधीन है, वह मेरा हृदय सदा आपमें ही लगा रहता है (उसपर दूसरा कोई अधिकार नहीं कर सकता); परंतु मेरे अङ्ग तो पराधीन थे। उनका यदि दूसरेसे स्पर्श हो गया तो मैं विवश अबला क्या कर सकती थी ॥ ९ ॥

**सह संवृद्धभावेन संसर्गेण च मानद ।
यदि तेऽहं न विज्ञाता हता तेनास्मि शाश्वतम् ॥ १० ॥**

'दूसरोंको मान देनेवाले प्राणनाथ ! हम दोनोंका परस्पर अनुराग सदा साथ-साथ बढ़ा है। हम सदा एक साथ रहते आये हैं। इतनेपर भी यदि आपने मुझे अच्छी तरह नहीं समझा तो मैं सदाके लिये मारी गयी ॥ १० ॥

**प्रेषितस्ते महावीरो हनुमानवलोककः ।
लङ्कास्थाहं त्वया राजन् किं तदा न विसर्जिता ॥ ११ ॥**

'महाराज ! लङ्कामें मुझे देखनेके लिये जब आपने महावीर हनुमान्‌को भेजा था, उसी समय मुझे क्यों नहीं त्याग दिया ? ॥ ११ ॥

**प्रत्यक्षं वानरस्यास्य तद्वाक्यसमनन्तरम् ।
त्वया संत्यक्तया वीर त्यक्तं स्याज्जीवितं मया ॥ १२ ॥**

'उस समय वानरवीर हनुमान्‌के मुखसे आपके द्वारा अपने त्यागकी बात सुनकर तत्काल इनके सामने ही मैंने अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया होता ॥ १२ ॥

**न वृथा ते श्रमोऽयं स्यात् संशये न्यस्य जीवितम् ।
सुहृज्जनपरिक्लेशो न चायं विफलस्तव ॥ १३ ॥**

'फिर इस प्रकार अपने जीवनको संकटमें डालकर आपको

यह युद्ध आदिका व्यर्थ परिश्रम नहीं करना पड़ता तथा आपके ये मित्र लोग भी अकारण कष्ट नहीं उठाते ॥ १३ ॥

त्वया तु नृपशार्दूल रोषमेवानुवर्तता ।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम् ॥ १४ ॥

'नृपश्रेष्ठ ! आपने ओछे मनुष्यकी भाँति केवल रोषका ही अनुसरण करके मेरे शील-स्वभावका विचार छोड़कर केवल निम्नकोटिकी स्त्रियोंके स्वभावको ही अपने सामने रक्खा है ॥

अपदेशो मे जनकान्नोत्पत्तिर्वसुधातलात् ।
मम वृत्तं च वृत्तज्ञ बहु ते न पुरस्कृतम् ॥ १५ ॥

'सदाचारके मर्मको जाननेवाले देवता ! राजा जनककी यज्ञभूमिसे आविर्भूत होनेके कारण ही मुझे जानकी कहकर पुकारा जाता है। वास्तवमें मेरी उत्पत्ति जनकसे नहीं हुई है। मैं भूतलसे प्रकट हुई हूँ। (साधारण मानव-जातिसे विलक्षण हूँ—दिव्य हूँ। उसी तरह मेरा आचार-विचार भी अलौकिक एवं दिव्य है; मुझमें चारित्रिक बल विद्यमान है, परंतु) आपने मेरी इन विशेषताओंको अधिक महत्त्व नहीं दिया—इन सबको अपने सामने नहीं रखा ॥ १५ ॥

न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये मम निपीडितः ।
मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम् ॥ १६ ॥

'बाल्यावस्थामें आपने मेरा पाणिग्रहण किया है, इसकी ओर भी ध्यान नहीं दिया। आपके प्रति मेरे हृदयमें जो भक्ति है और मुझमें जो शील है, वह सब आपने पीछे ढकेल दिया—एक साथ ही भुला दिया' ॥ १६ ॥

इति ब्रुवन्ती रुदती बाष्पगद्गदभाषिणी ।
उवाच लक्ष्मणं सीता दीनं ध्यानपरायणम् ॥ १७ ॥

इतना कहते-कहते सीताका गला भर आया। वे रोती और आँसू बहाती हुई दुखी एवं चिन्तामग्न होकर बैठे हुए लक्ष्मणसे गद्गद वाणीमें बोलीं—॥ १७ ॥

चितां मे कुरु सौमित्रे व्यसनस्यास्य भेषजम् ।
मिथ्यापवादोपहता नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ १८ ॥

'सुमित्रानन्दन ! मेरे लिये चिता तैयार कर दो। मेरे इस दुःखकी यही दवा है। मिथ्या कलङ्कसे कलङ्कित होकर मैं जीवित नहीं रह सकती ॥ १८ ॥

अप्रीतेन गुणैर्भर्त्रा त्यक्तया जनसंसदि ।
या क्षमा मे गतिर्गन्तुं प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम् ॥ १९ ॥

'मेरे स्वामी मेरे गुणोंसे प्रसन्न नहीं हैं। इन्होंने भरी सभामें मेरा परित्याग कर दिया है। ऐसी दशामें मेरे लिये जो उचित मार्ग है, उसपर जानेके लिये मैं अग्निमें प्रवेश करूँगी' ॥ १९ ॥

एवमुक्तस्तु वैदेह्या लक्ष्मणः परवीरहा ।
अमर्षवशमापन्नो राघवं समुदैक्षत ॥ २० ॥

विदेहनन्दिनीके ऐसा कहनेपर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले लक्ष्मणने अमर्षके वशीभूत होकर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देखा (उनसे सीताजीका वह अपमान सहा नहीं जाता था) ॥ २० ॥

स विज्ञाय मनश्छन्दं रामस्याकारसूचितम् ।
चितां चकार सौमित्रिर्मते रामस्य वीर्यवान् ॥ २१ ॥

परंतु श्रीरामके इशारेसे सूचित होनेवाले उनके हार्दिक अभिप्रायको जानकर पराक्रमी लक्ष्मणने उनकी सम्मतिसे ही चिता तैयार की ॥ २१ ॥

नहि रामं तदा कश्चित् कालान्तकयमोपमम् ।
अनुनेतुमथो वक्तुं द्रष्टुं वाप्यशकत् सुहृत् ॥ २२ ॥

उस समय श्रीरघुनाथजी प्रलयकालीन संहारकारी यमराजके समान लोगोंके मनमें भय उत्पन्न कर रहे थे। उनका कोई भी मित्र उन्हें समझाने, उनसे कुछ कहने अथवा उनकी ओर देखनेका साहस न कर सका ॥ २२ ॥

अधोमुखं स्थितं रामं ततः कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
उपावर्तत वैदेही दीप्यमानं हुताशनम् ॥ २३ ॥

भगवान् श्रीराम सिर झुकाये खड़े थे। उसी अवस्थामें सीताजीने उनकी परिक्रमा की। इसके बाद वे प्रज्वलित अग्निके पास गयीं ॥ २३ ॥

प्रणम्य दैवतेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली ।
बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपतः ॥ २४ ॥

वहाँ देवताओं तथा ब्राह्मणोंको प्रणाम करके मिथिलेशकुमारीने दोनों हाथ जोड़कर अग्निदेवके समीप इस प्रकार कहा—॥ २४ ॥

यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात् ।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥ २५ ॥

'यदि मेरा हृदय कभी एक क्षणके लिये भी श्रीरघुनाथजीसे दूर न हुआ हो तो सम्पूर्ण जगत्के साक्षी अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करें ॥ २५ ॥

यथा मां शुद्धचारित्रां दुष्टां जानाति राघवः ।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥ २६ ॥

'मेरा चरित्र शुद्ध है फिर भी श्रीरघुनाथजी मुझे दूषित समझ रहे हैं। यदि मैं सर्वथा निष्कलङ्क होऊँ तो सम्पूर्ण जगत्के साक्षी अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करें ॥ २६ ॥

कर्मणा मनसा वाचा यथा नातिचराम्यहम् ।
राघवं सर्वधर्मज्ञं तथा मां पातु पावकः ॥ २७ ॥

'यदि मैंने मन, वाणी और क्रियाद्वारा कभी सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता श्रीरघुनाथजीका अतिक्रमण न किया हो तो अग्निदेव मेरी रक्षा करें ॥ २७ ॥

आदित्यो भगवान् वायुर्दिशश्चन्द्रस्तथैव च ।
अहश्चापि तथा संध्ये रात्रिश्च पृथिवी तथा ।
यथान्येऽपि विजानन्ति तथा चारित्रसंयुताम् ॥ २८ ॥

'यदि भगवान् सूर्य, वायु, दिशाएँ, चन्द्रमा, दिन, रात, दोनों संध्याएँ, पृथ्वी देवी तथा अन्य देवता भी मुझे

शुद्ध चरित्रसे युक्त जानते हों तो अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करें' ॥ २८ ॥

एवमुक्त्वा तु वैदेही परिक्रम्य हुताशनम् ।
विवेश ज्वलनं दीप्तं निःशङ्केनान्तरात्मना ॥ २९ ॥

ऐसा कहकर विदेहराजकुमारीने अग्निदेवकी परिक्रमा की और निःशङ्क चित्तसे वे उस प्रज्वलित अग्निमें समा गयीं ॥

जनश्च सुमहांस्तत्र बालवृद्धसमाकुलः ।
ददर्श मैथिलीं दीप्तां प्रविशन्तीं हुताशनम् ॥ ३० ॥

बालकों और वृद्धोंसे भरे हुए वहाँके महान् जनसमुदायने उन दीप्तिमती मिथिलेशकुमारीको जलती आगमें प्रवेश करते देखा ॥ ३० ॥

सा तप्तनवहेमाभा तप्तकाञ्चनभूषणा ।
पपात ज्वलनं दीप्तं सर्वलोकस्य संनिधौ ॥ ३१ ॥

तपाये हुए नूतन सुवर्णकी-सी कान्तिवाली सीता आगमें तपाकर शुद्ध किये गये सुवर्णके आभूषणोंसे विभूषित थीं। वे सब लोगोंके निकट उनके देखते-देखते उस जलती आगमें कूद पड़ीं ॥ ३१ ॥

ददृशुस्तां विशालाक्षीं पतन्तीं हव्यवाहनम् ।
सीतां सर्वाणि रूपाणि रुक्मवेदिनिभां तदा ॥ ३२ ॥

सोनेकी बनी हुई वेदीके समान कान्तिमती विशाललोचना सीतादेवीको उस समय सम्पूर्ण भूतोंने आगमें गिरते देखा ॥

ददृशुस्तां महाभागां प्रविशन्तीं हुताशनम् ।
ऋषयो देवगन्धर्वा यज्ञे पूर्णाहुतीमिव ॥ ३३ ॥

ऋषियों, देवताओं और गन्धर्वोंने देखा, जैसे यज्ञमें पूर्णाहुतिका होम होता है, उसी प्रकार महाभागा सीता जलती आगमें प्रवेश कर रही हैं ॥ ३३ ॥

प्रचुक्रुशुः स्त्रियः सर्वास्तां दृष्ट्वा हव्यवाहने ।
पतन्तीं संस्कृतां मन्त्रैर्वसोर्धारामिवाध्वरे ॥ ३४ ॥

जैसे यज्ञमें मन्त्रोंद्वारा संस्कार की हुई [1]वसुधाराकी आहुति दी जाती है, उसी प्रकार दिव्य आभूषणोंसे विभूषित सीताको आगमें गिरते देख वहाँ आयी हुई सभी स्त्रियाँ चीख उठीं ॥ ३४ ॥

ददृशुस्तां त्रयो लोका देवगन्धर्वदानवाः ।
शप्तां पतन्तीं निरये त्रिदिवाद् देवतामिव ॥ ३५ ॥

तीनों लोकोंके दिव्य प्राणी, ऋषि, देवता, गन्धर्व तथा दानवोंने भी भगवती सीताको आगमें गिरते देखा, मानो स्वर्गसे कोई देवी शापग्रस्त होकर नरकमें गिरी हो ॥ ३५ ॥

तस्यामग्निं विशन्त्यां तु हाहेति विपुलः स्वनः ।
रक्षसां वानराणां च सम्बभूवाद्भुतोपमः ॥ ३६ ॥

उनके अग्निमें प्रवेश करते समय राक्षस और वानर जोर-जोरसे हाहाकार करने लगे। उनका वह अद्भुत आर्तनाद चारों ओर गूँज उठा ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षोडशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ११६ ॥

सप्तदशाधिकशततमः सर्गः

भगवान् श्रीरामके पास देवताओंका आगमन तथा ब्रह्माद्वारा उनकी भगवत्ताका प्रतिपादन एवं स्तवन

ततो हि दुर्मना रामः श्रुत्वैवं वदतां गिरः ।
दध्यौ मुहूर्तं धर्मात्मा बाष्पव्याकुललोचनः ॥ १ ॥

तदनन्तर धर्मात्मा श्रीराम हाहाकार करनेवाले वानर और राक्षसोंकी बातें सुनकर मन-ही-मन बहुत दुखी हुए और आँखोंमें आँसू भरकर दो घड़ीतक कुछ सोचते रहे ॥

ततो वैश्रवणो राजा यमश्च पितृभिः सह ।
सहस्राक्षश्च देवेशो वरुणश्च जलेश्वरः ॥ २ ॥
षडर्धनयनः श्रीमान् महादेवो वृषध्वजः ।
कर्ता सर्वस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ॥ ३ ॥
एते सर्वे समागम्य विमानैः सूर्यसंनिभैः ।
आगम्य नगरीं लङ्कामभिजग्मुश्च राघवम् ॥ ४ ॥

इसी समय विश्रवाके पुत्र यक्षराज कुबेर, पितरोंसहित यमराज, देवताओंके स्वामी सहस्र नेत्रधारी इन्द्र, जलके अधिपति वरुण, त्रिनेत्रधारी श्रीमान् वृषभध्वज महादेव तथा सम्पूर्ण जगत्के स्रष्टा ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजी—ये सब देवता सूर्यतुल्य विमानोंद्वारा लङ्कापुरीमें आकर श्रीरघुनाथजीके पास गये ॥ २–४ ॥

ततः सहस्ताभरणान् प्रगृह्य विपुलान् भुजान् ।
अब्रुवंस्त्रिदशश्रेष्ठा राघवं प्राञ्जलिं स्थितम् ॥ ५ ॥

भगवान् श्रीराम उनके सामने हाथ जोड़े खड़े थे। वे श्रेष्ठ देवता आभूषणोंसे अलंकृत अपनी विशाल भुजाओंको उठाकर उनसे बोले—॥ ५ ॥

कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानविदां विभुः ।
उपेक्षसे कथं सीतां पतन्तीं हव्यवाहने ।
कथं देवगणश्रेष्ठमात्मानं नावबुद्ध्यसे ॥ ६ ॥

'श्रीराम ! आप सम्पूर्ण विश्वके उत्पादक, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ और सर्वव्यापक हैं। फिर इस समय आगमें गिरी हुई सीताकी उपेक्षा कैसे कर रहे हैं? आप समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ विष्णु ही हैं। इस बातको कैसे नहीं समझ रहे हैं ॥ ६ ॥

ऋतधामा वसुः पूर्वं वसूनां च प्रजापतिः ।

---

[1] घीकी अनवच्छिन्न धारा।

त्रयाणामपि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः ॥ ७ ॥

'पूर्वकालमें वसुओंके प्रजापति जो ऋतधामा नामक वसु थे, वे आप ही हैं। आप तीनों लोकोंके आदिकर्ता स्वयंप्रभु हैं ॥ ७ ॥

रुद्राणामष्टमो रुद्रः साध्यानामपि पञ्चमः।
अश्विनौ चापि कर्णौ ते सूर्याचन्द्रमसौ दृशौ ॥ ८ ॥

'रुद्रोंमें आठवें रुद्र और साध्योंमें पाँचवें साध्य भी आप ही हैं। दो अश्विनीकुमार आपके कान हैं और सूर्य तथा चन्द्रमा नेत्र हैं ॥ ८ ॥

अन्ते चादौ च मध्ये च दृश्यसे च परंतप।
उपेक्षसे च वैदेहीं मानुषः प्राकृतो यथा ॥ ९ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले देव! सृष्टिके आदि, अन्त और मध्यमें भी आप ही दिखायी देते हैं। फिर एक साधारण मनुष्यकी भाँति आप सीताकी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं?' ॥ ९ ॥

इत्युक्तो लोकपालैस्तैः स्वामी लोकस्य राघवः।
अब्रवीत् त्रिदशश्रेष्ठान् रामो धर्मभृतां वरः ॥ १० ॥

उन लोकपालोंके ऐसा कहनेपर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ लोकनाथ रघुनाथ श्रीरामने उन श्रेष्ठ देवताओंसे कहा— ॥ १० ॥

आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्।
सोऽहं यश्च यतश्चाहं भगवांस्तद् ब्रवीतु मे ॥ ११ ॥

'देवगण! मैं तो अपनेको मनुष्य दशरथपुत्र राम ही समझता हूँ। भगवन्! मैं जो हूँ और जहाँसे आया हूँ, वह सब आप ही मुझे बताइये' ॥ ११ ॥

इति ब्रुवाणं काकुत्स्थं ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः।
अब्रवीच्छृणु मे वाक्यं सत्यं सत्यपराक्रम ॥ १२ ॥

श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनेपर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने उनसे इस प्रकार कहा—'सत्यपराक्रमी श्रीरघुवीर! आप मेरी सच्ची बात सुनिये ॥ १२ ॥

भवान् नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः।
एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित् ॥ १३ ॥

'आप चक्र धारण करनेवाले सर्वसमर्थ श्रीमान् भगवान् नारायण देव हैं, एक दाढ़वाले पृथ्वीधारी वराह हैं तथा देवताओंके भूत एवं भावी शत्रुओंको जीतनेवाले हैं ॥ १३ ॥

अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः ॥ १४ ॥

'रघुनन्दन! आप अविनाशी परब्रह्म हैं। सृष्टिके आदि, मध्य और अन्तमें सत्यरूपसे विद्यमान हैं। आप ही लोकोंके परम धर्म हैं। आप ही विष्वक्सेन तथा चार भुजाधारी श्रीहरि हैं ॥ १४ ॥

शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः।
अजितः खड्गधृग् विष्णुः कृष्णश्चैव बृहद्बलः ॥ १५ ॥

'आप ही शार्ङ्गधन्वा, हृषीकेश, अन्तर्यामी पुरुष और पुरुषोत्तम हैं। आप किसीसे पराजित नहीं होते। आप नन्दक नामक खड्ग धारण करनेवाले विष्णु एवं महाबली कृष्ण हैं ॥

सेनानीर्ग्रामणीश्च त्वं बुद्धिः सत्त्वं क्षमा दमः।
प्रभवश्चाप्ययश्च त्वमुपेन्द्रो मधुसूदनः ॥ १६ ॥

'आप ही देव-सेनापति तथा गाँवोंके मुखिया अथवा नेता हैं। आप ही बुद्धि, सत्त्व, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह तथा सृष्टि एवं प्रलयके कारण हैं। आप ही उपेन्द्र (वामन) और मधुसूदन हैं ॥ १६ ॥

इन्द्रकर्मा महेन्द्रस्त्वं पद्मनाभो रणान्तकृत्।
शरण्यं शरणं च त्वामाहुर्दिव्या महर्षयः ॥ १७ ॥

'इन्द्रको भी उत्पन्न करनेवाले महेन्द्र और युद्धका अन्त करनेवाले शान्तस्वरूप पद्मनाभ भी आप ही हैं। दिव्य महर्षिगण आपको शरणदाता तथा शरणागतवत्सल बताये हैं ॥

सहस्रशृङ्गो वेदात्मा शतशीर्षो महर्षभः।
त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः ॥ १८ ॥

'आप ही सहस्रों शाखारूप सींग तथा सैकड़ों विधिवाक्यरूप मस्तकोंसे युक्त वेदरूप महावृषभ हैं। आप ही तीनों लोकोंके आदिकर्ता और स्वयंप्रभु (परम स्वतन्त्र) हैं ॥ १८ ॥

सिद्धानामपि साध्यानामाश्रयश्चासि पूर्वजः।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोंकारः परात्परः ॥ १९ ॥

'आप सिद्ध और साध्योंके आश्रय तथा पूर्वज हैं। यज्ञ, वषट्कार और ओंकार भी आप ही हैं। आप श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ परमात्मा हैं ॥ १९ ॥

प्रभवं निधनं चापि नो विदुः को भवानिति।
दृश्यसे सर्वभूतेषु गोषु च ब्राह्मणेषु च ॥ २० ॥

'आपके आविर्भाव और तिरोभावको कोई नहीं जानता। आप कौन हैं—इसका भी किसीको पता नहीं है। समस्त प्राणियोंमें, गौओंमें तथा ब्राह्मणोंमें भी आप ही दिखायी देते हैं ॥ २० ॥

दिक्षु सर्वासु गगने पर्वतेषु नदीषु च।
सहस्रचरणः श्रीमाञ्छतशीर्षः सहस्रदृक् ॥ २१ ॥

'समस्त दिशाओंमें, आकाशमें, पर्वतोंमें और नदियोंमें भी आपकी ही सत्ता है। आपके सहस्रों चरण, सैकड़ों मस्तक और सहस्रों नेत्र हैं ॥ २१ ॥

त्वं धारयसि भूतानि पृथिवीं सर्वपर्वतान्।
अन्ते पृथिव्याः सलिले दृश्यसे त्वं महोरगः ॥ २२ ॥

'आप ही सम्पूर्ण प्राणियोंको, पृथ्वीको और समस्त पर्वतोंको धारण करते हैं। पृथ्वीका अन्त हो जानेपर आप ही जलके ऊपर महान् सर्प—शेषनागके रूपमें दिखायी देते हैं ॥

त्रींल्लोकान् धारयन् राम देवगन्धर्वदानवान्।
अहं ते हृदयं राम जिह्वा देवी सरस्वती ॥ २३ ॥

'श्रीराम! आप ही तीनों लोकोंको तथा देवता, गन्धर्व और दानवोंको धारण करनेवाले विराट् पुरुष नारायण हैं।

सबके हृदयमें रमण करनेवाले परमात्मन् ! मैं ब्रह्मा आपका हृदय हूँ और देवी सरस्वती आपकी जिह्वा हैं ॥ २३ ॥

देवा रोमाणि गात्रेषु ब्रह्मणा निर्मिताः प्रभो ।
निमेषस्ते स्मृता रात्रिरुन्मेषो दिवसस्तथा ॥ २४ ॥

'प्रभो ! मुझ ब्रह्माने जिनकी सृष्टि की है, वे सब देवता आपके विराट् शरीरमें रोम हैं । आपके नेत्रोंका बंद होना रात्रि और खुलना ही दिन है ॥ २४ ॥

संस्कारास्त्वभवन् वेदा नैतदस्ति त्वया विना ।
जगत् सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम् ॥ २५ ॥

'वेद आपके संस्कार हैं । आपके बिना इस जगत्का अस्तित्व नहीं है । सम्पूर्ण विश्व आपका शरीर है । पृथ्वी आपकी स्थिरता है ॥ २५ ॥

अग्निः कोपः प्रसादस्ते सोमः श्रीवत्सलक्षणः ।
त्वया लोकास्त्रयः क्रान्ताः पुरा स्वैर्विक्रमैस्त्रिभिः ॥ २६ ॥

'अग्नि आपका कोप है और चन्द्रमा प्रसन्नता है, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न धारण करनेवाले भगवान् विष्णु आप ही हैं । पूर्वकालमें (वामनावतारके समय) आपने ही अपने तीन पगोंसे तीनों लोक नाप लिये थे ॥ २६ ॥

महेन्द्रश्च कृतो राजा बलिं बद्ध्वा सुदारुणम् ।
सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः ॥ २७ ॥

'आपने अत्यन्त दारुण दैत्यराज बलिको बाँधकर इन्द्रको तीनों लोकोंका राजा बनाया था । सीता साक्षात् लक्ष्मी हैं और आप भगवान् विष्णु हैं । आप ही सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण एवं प्रजापति हैं ॥ २७ ॥

वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ।
तदिदं नस्त्वया कार्यं कृतं. धर्मभृतां वर ॥ २८ ॥

'धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ रघुवीर ! आपने रावणका वध करनेके लिये ही इस लोकमें मनुष्यके शरीरमें प्रवेश किया था । हमलोगोंका कार्य आपने सम्पन्न कर दिया ॥ २८ ॥

निहतो रावणो राम प्रहृष्टो दिवमाक्रम ।
अमोघं देव वीर्यं ते न तेऽमोघाः पराक्रमाः ॥ २९ ॥

'श्रीराम ! आपके द्वारा रावण मारा गया । अब आप प्रसन्नतापूर्वक अपने दिव्य धाममें पधारिये । देव ! आपका बल अमोघ है । आपके पराक्रम भी व्यर्थ होनेवाले नहीं हैं ॥

अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः ।
अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि ॥ ३० ॥

'श्रीराम ! आपका दर्शन अमोघ है । आपका स्तवन भी अमोघ है तथा आपमें भक्ति रखनेवाले मनुष्य भी इस भूमण्डलमें अमोघ ही होंगे ॥ ३० ॥

ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम् ।
प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च ॥ ३१ ॥

'आप पुराणपुरुषोत्तम हैं । दिव्यरूपधारी परमात्मा हैं । जो लोग आपमें भक्ति रक्खेंगे, वे इस लोक और परलोकमें अपने सभी मनोरथ प्राप्त कर लेंगे' ॥ ३१ ॥

इममार्षं स्तवं दिव्यमितिहासं पुरातनम् ।
ये नराः कीर्तयिष्यन्ति नास्ति तेषां पराभवः ॥ ३२ ॥

यह परम ऋषि ब्रह्माका कहा हुआ दिव्य स्तोत्र तथा पुरातन इतिहास है । जो लोग इसका कीर्तन करेंगे, उनका कभी पराभव नहीं होगा ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ११७ ॥

अष्टादशाधिकशततमः सर्गः

मूर्तिमान् अग्निदेवका सीताको लेकर चितासे प्रकट होना और श्रीरामको समर्पित करके उनकी पवित्रताको प्रमाणित करना तथा श्रीरामका सीताको सहर्ष स्वीकार करना

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं पितामहसमीरितम् ।
अङ्केनादाय वैदेहीमुत्पपात विभावसुः ॥ १ ॥

ब्रह्माजीके कहे हुए इन शुभ वचनोंको सुनकर मूर्तिमान् अग्निदेव विदेहनन्दिनी सीताको (पिताकी भाँति) गोदमें लिये चितासे ऊपरको उठे ॥ १ ॥

विधूयाथ चितां तां तु वैदेहीं हव्यवाहनः ।
उत्तस्थौ मूर्तिमानाशु गृहीत्वा जनकात्मजाम् ॥ २ ॥

उस चिताको हिलाकर इधर-उधर बिखराते हुए दिव्य रूपधारी हव्यवाहन अग्निदेव वैदेही सीताको साथ लिये तुरंत ही उठकर खड़े हो गये ॥ २ ॥

तरुणादित्यसंकाशां तप्तकाञ्चनभूषणाम् ।
रक्ताम्बरधरां बालां नीलकुञ्चितमूर्धजाम् ॥ ३ ॥
अक्लिष्टमाल्याभरणां तथारूपामनिन्दिताम् ।
ददौ रामाय वैदेहीमङ्के कृत्वा विभावसुः ॥ ४ ॥

सीताजी प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुण-पीत कान्तिसे प्रकाशित हो रही थीं । तपाये हुए सोनेके आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे थे । उनके श्रीअङ्गोंपर लाल रंगकी रेशमी साड़ी लहरा रही थी । सिरपर काले-काले घुँघराले केश सुशोभित होते थे । उनकी अवस्था नयी थी और उनके द्वारा धारण किये गये फूलोंके हार कुम्हलाये तक नहीं थे । अनिन्द्य सुन्दरी

सती-साध्वी सीताका अग्निमें प्रवेश करते समय जैसा रूप और वेष था, वैसे ही रूप-सौन्दर्यसे प्रकाशित होती हुई उन वैदेहीको गोदमें लेकर अग्निदेवने श्रीरामको समर्पित कर दिया ॥

अब्रवीत् तु तदा रामं साक्षी लोकस्य पावकः ।
एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते ॥ ५ ॥

उस समय लोकसाक्षी अग्निने श्रीरामसे कहा—'श्रीराम ! यह आपकी धर्मपत्नी विदेहराजकुमारी सीता है । इसमें कोई पाप या दोष नहीं है ॥ ५ ॥

नैव वाचा न मनसा नैव बुद्ध्या न चक्षुषा ।
सुवृत्ता वृत्तशौटीर्यं न त्वामत्यचरच्छुभा ॥ ६ ॥

'उत्तम आचारवाली इस शुभलक्षणा सतीने मन, वाणी, बुद्धि अथवा नेत्रोंद्वारा भी आपके सिवा किसी दूसरे पुरुषका आश्रय नहीं लिया । इसने सदा सदाचारपरायण आपका ही आराधन किया है ॥ ६ ॥

रावणेनापनीतैषा वीर्योत्सिक्तेन रक्षसा ।
त्वया विरहिता दीना विवशा निर्जने सती ॥ ७ ॥

'अपने बल-पराक्रमका घमंड रखनेवाले राक्षस रावणने जब इसका अपहरण किया था, उस समय यह बेचारी सती सूने आश्रममें अकेली थी—आप इसके पास नहीं थे; अतः यह वेवश थी (इसका कोई वश नहीं चला) ॥ ७ ॥

रुद्धा चान्तःपुरे गुप्ता त्वच्चित्ता त्वत्परायणा ।
रक्षिता राक्षसीभिश्च घोराभिर्घोरबुद्धिभिः ॥ ८ ॥

'रावणने इसे लाकर अन्तःपुरमें कैद कर लिया । इसपर पहरा बिठा दिया । भयानक विचारोंवाली भीषण राक्षसियाँ इसकी रखवाली करने लगीं । तब भी इसका चित्त आपमें ही लगा रहा । यह आपहीको अपना परम आश्रय मानती रही ॥ ८ ॥

प्रलोभ्यमाना विविधं तर्ज्यमाना च मैथिली ।
नाचिन्तयत तद्रक्षस्त्वद्गतेनान्तरात्मना ॥ ९ ॥

'तत्पश्चात् तरह-तरहके लोभ दिये गये । इस मिथिलेशकुमारीपर डाँट-फटकार भी पड़ी; परंतु इसकी अन्तरात्मा निरन्तर आपके ही चिन्तनमें लगी रही । इसने उस राक्षसके विषयमें कभी एक बार भी नहीं सोचा ॥ ९ ॥

विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृह्णीष्व मैथिलीम् ।
न किंचिदभिधातव्या अहमाज्ञापयामि ते ॥ १० ॥

'अतः इसका भाव सर्वथा शुद्ध है । यह मिथिलेशनन्दिनी सर्वथा निष्पाप है । आप इसे सादर स्वीकार करें । मैं आपको आज्ञा देता हूँ, आप इससे कभी कोई कठोर बात न कहें' ॥

ततः प्रीतमना रामः श्रुत्वैवं वदतां वरः ।
दध्यौ मुहूर्तं धर्मात्मा हर्षव्याकुललोचनः ॥ ११ ॥

अग्निदेवकी यह बात सुनकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा श्रीरामका मन प्रसन्न हो गया । उनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये । वे थोड़ी देरतक विचारमें डूबे रहे ॥ ११ ॥

एवमुक्तो महातेजा धृतिमानुरुविक्रमः ।
उवाच त्रिदशश्रेष्ठं रामो धर्मभृतां वरः ॥ १२ ॥

तदनन्तर महातेजस्वी, धैर्यवान्, महान् पराक्रमी तथा धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामने देवशिरोमणि अग्निदेवसे उनकी पूर्वोक्त बातके उत्तरमें कहा—॥ १२ ॥

अवश्यं चापि लोकेषु सीता पावनमर्हति ।
दीर्घकालोषिता हीयं रावणान्तःपुरे शुभा ॥ १३ ॥

'भगवन् ! लोगोंमें सीताजीकी पवित्रताका विश्वास दिलानेके लिये इनकी यह शुद्धिविषयक परीक्षा आवश्यक थी; क्योंकि शुभलक्षणा सीताको विवश होकर दीर्घकालतक रावणके अन्तःपुरमें रहना पड़ा है ॥ १३ ॥

बालिशो बत कामात्मा रामो दशरथात्मजः ।
इति वक्ष्यति मां लोको जानकीमविशोध्य हि ॥ १४ ॥

'यदि मैं जनकनन्दिनीकी शुद्धिके विषयमें परीक्षा न करता तो लोग यही कहते कि दशरथपुत्र राम बड़ा ही मूर्ख और कामी है ॥ १४ ॥

अनन्यहृदयां सीतां मच्चित्तपरिरक्षिणीम् ।
अहमप्यवगच्छामि मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥ १५ ॥

'यह बात मैं भी जानता हूँ कि मिथिलेशनन्दिनी जनककुमारी सीताका हृदय सदा मुझमें ही लगा रहता है । मुझसे कभी अलग नहीं होता । ये सदा मेरा ही मन रखती—मेरी इच्छाके अनुसार चलती हैं ॥ १५ ॥

इमामपि विशालाक्षीं रक्षितां स्वेन तेजसा ।
रावणो नातिवर्तेत वेलामिव महोदधिः ॥ १६ ॥

'मुझे यह भी विश्वास है कि जैसे महासागर अपनी तटभूमिको नहीं लाँघ सकता, उसी प्रकार रावण अपने ही तेजसे सुरक्षित इन विशाललोचना सीतापर अत्याचार नहीं कर सकता था ॥ १६ ॥

प्रत्ययार्थं तु लोकानां त्रयाणां सत्यसंश्रयः ।
उपेक्षे चापि वैदेहीं प्रविशन्तीं हुताशनम् ॥ १७ ॥

'तथापि तीनों लोकोंके प्राणियोंके मनमें विश्वास दिलानेके लिये एकमात्र सत्यका सहारा लेकर मैंने अग्निमें प्रवेश करती हुई विदेहकुमारी सीताको रोकनेकी चेष्टा नहीं की ॥ १७ ॥

न शक्तः सुदुष्टात्मा मनसापि हि मैथिलीम् ।
प्रधर्षयितुमप्राप्यां दीप्तामग्निशिखामिव ॥ १८ ॥

'मिथिलेशकुमारी सीता प्रज्वलित अग्निशिखाके समान दुर्धर्ष तथा दूसरेके लिये अलभ्य है । दुष्टात्मा रावण मनके द्वारा भी इनपर अत्याचार करनेमें समर्थ नहीं हो सकता था ॥

नेयमर्हति वैक्लव्यं रावणान्तःपुरे सती ।
अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा ॥ १९ ॥

'ये सती-साध्वी देवी रावणके अन्तःपुरमें रहकर भी व्याकुलता या घबराहटमें नहीं पड़ सकती थीं; क्योंकि ये मुझसे उसी तरह अभिन्न हैं, जैसे सूर्यदेवसे उनकी प्रभा ॥

विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा । ✓
न विहातुं मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा ॥ २० ॥

'मिथिलेशकुमारी जानकी तीनों लोकोंमें परम पवित्र हैं । जैसे मनस्वी पुरुष कीर्तिका त्याग नहीं कर सकता, उसी तरह मैं भी इन्हें नहीं छोड़ सकता ॥ २० ॥

अवश्यं च मया कार्यं सर्वेषां वो वचो हितम् ।
स्निग्धानां लोकनाथानामेवं च वदतां हितम् ॥ २१ ॥

'आप सभी लोकपाल मेरे हितकी ही बात कह रहे हैं और आपलोगोंका मुझपर बड़ा स्नेह है; अतः आप सभी देवताओंके हितकर वचनका मुझे अवश्य पालन करना चाहिये' ॥ २१ ॥

इत्येवमुक्त्वा विजयी महाबलः
प्रशस्यमानः स्वकृतेन कर्मणा ।
समेत्य रामः प्रियया महायशाः
सुखं सुखार्होऽनुबभूव राघवः ॥ २२ ॥

ऐसा कहकर अपने किये हुए पराक्रमसे प्रशंसित होनेवाले महाबली, महायशस्वी, विजयी वीर रघुकुलनन्दन श्रीराम अपनी प्रिया सीतासे मिले और मिलकर बड़े सुखका अनुभव करने लगे; क्योंकि वे सुख भोगनेके ही योग्य हैं ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टादशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ११८ ॥

एकोनविंशत्यधिकशततमः सर्गः

महादेवजीकी आज्ञासे श्रीराम और लक्ष्मणका विमानद्वारा आये हुए राजा दशरथको प्रणाम करना और दशरथका दोनों पुत्रों तथा सीताको आवश्यक संदेश दे इन्द्रलोकको जाना

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं राघवेणानुभाषितम् ।
ततः शुभतरं वाक्यं व्याजहार महेश्वरः ॥ १ ॥

श्रीरघुनाथजीके कहे हुए इन शुभ वचनोंको सुनकर श्रीमहादेवजी और भी शुभतर वचन बोले— ॥ १ ॥

पुष्कराक्ष महाबाहो महावक्षः परंतप ।
दिष्ट्या कृतमिदं कर्म त्वया धर्मभृतां वर ॥ २ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले, विशाल वक्षःस्थलसे सुशोभित, महाबाहु कमलनयन ! आप धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हैं । आपने रावण-वधरूप कार्य सम्पन्न कर दिया—यह बड़े सौभाग्यकी बात है ॥ २ ॥

दिष्ट्या सर्वस्य लोकस्य प्रवृद्धं दारुणं तमः ।
अपवृत्तं त्वया संख्ये राम रावणजं भयम् ॥ ३ ॥

'श्रीराम ! रावणजनित भय और दुःख सारे लोकोंके लिये बढ़े हुए घोर अन्धकारके समान था, जिसे आपने युद्धमें मिटा दिया ॥ ३ ॥

आश्वास्य भरतं दीनं कौसल्यां च यशस्विनीम् ।
कैकेयीं च सुमित्रां च दृष्ट्वा लक्ष्मणमातरम् ॥ ४ ॥
प्राप्य राज्यमयोध्यायां नन्दयित्वा सुहृज्जनम् ।
इक्ष्वाकूणां कुले वंशं स्थापयित्वा महाबल ॥ ५ ॥
इष्ट्वा तुरगमेधेन प्राप्य चानुत्तमं यशः ।
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा त्रिदिवं गन्तुमर्हसि ॥ ६ ॥

'महाबली वीर ! अब दुखी भरतको धीरज बँधाकर, यशस्विनी कौसल्या, कैकेयी तथा लक्ष्मणजननी सुमित्रासे मिलकर, अयोध्याका राज्य पाकर, सुहृदोंको आनन्द देकर, इक्ष्वाकु-कुलमें अपना वंश स्थापित करके, अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान कर, सर्वोत्तम यशका उपार्जन करके तथा ब्राह्मणोंको धन देकर आपको अपने परम धाममें जाना चाहिये ॥ ४–६ ॥

एष राजा दशरथो विमानस्थः पिता तव ।
काकुत्स्थ मानुषे लोके गुरुस्तव महायशाः ॥ ७ ॥

'ककुत्स्थकुलनन्दन ! देखिये, ये आपके पिता राजा दशरथ विमानपर बैठे हुए हैं । मनुष्यलोकमें ये ही आपके महायशस्वी गुरु थे ॥ ७ ॥

इन्द्रलोकं गतः श्रीमांस्त्वया पुत्रेण तारितः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा त्वमेनमभिवादय ॥ ८ ॥

'ये श्रीमान् नरेश इन्द्रलोकको प्राप्त हुए हैं । आप-जैसे सुपुत्रने इन्हें तार दिया । आप भाई लक्ष्मणके साथ इन्हें नमस्कार करें' ॥ ८ ॥

महादेववचः श्रुत्वा राघवः सहलक्ष्मणः ।
विमानशिखरस्थस्य प्रणाममकरोत् पितुः ॥ ९ ॥

महादेवजीकी यह बात सुनकर लक्ष्मणसहित श्रीरघुनाथजीने विमानमें उच्चस्थानपर बैठे हुए अपने पिताजीको प्रणाम किया ॥ ९ ॥

दीप्यमानं स्वया लक्ष्म्या विरजोऽम्बरधारिणम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा ददर्श पितरं प्रभुः ॥ १० ॥ ✓

भाई लक्ष्मणसहित भगवान् श्रीरामने पिताको अच्छी तरह देखा । वे निर्मल वस्त्र धारण करके अपनी दिव्य शोभासे देदीप्यमान थे ॥ १० ॥

हर्षेण महताऽऽविष्टो विमानस्थो महीपतिः ।
प्राणैः प्रियतरं दृष्ट्वा पुत्रं दशरथस्तदा ॥ ११ ॥

विमानपर बैठे हुए महाराज दशरथ अपने प्राणोंसे भी प्यारे पुत्र श्रीरामको देखकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ ११ ॥

आरोप्याङ्के महाबाहुर्वरासनगतः प्रभुः ।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य ततो वाक्यं समाददे ॥ १२ ॥

श्रेष्ठ आसनपर बैठे हुए उन महाबाहु नरेशने उन्हें गोदमें बिठाकर दोनों बाँहोंमें भर लिया और इस प्रकार कहा—॥ १२ ॥

न मे स्वर्गो बहु मतः सम्मानश्च सुरर्षभैः ।
त्वया राम विहीनस्य सत्यं प्रतिशृणोमि ते ॥ १३ ॥

'राम ! मैं तुमसे सच कहता हूँ, तुमसे बिलग होकर मुझे स्वर्गका सुख तथा देवताओंद्वारा प्राप्त हुआ सम्मान भी अच्छा नहीं लगता ॥ १३ ॥

अद्य त्वां निहतामित्रं दृष्ट्वा सम्पूर्णमानसम् ।
निस्तीर्णवनवासं च प्रीतिरासीत् परा मम ॥ १४ ॥

'आज तुम शत्रुओंका वध करके पूर्णमनोरथ हो गये और तुमने वनवासकी अवधि भी पूरी कर ली, यह सब देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है ॥ १४ ॥

कैकेय्या यानि चोक्तानि वाक्यानि वदतां वर ।
तव प्रव्राजनार्थानि स्थितानि हृदये मम ॥ १५ ॥

'वक्ताओंमें श्रेष्ठ रघुनन्दन ! तुम्हें वनमें भेजनेके लिये कैकेयीने जो-जो बातें कही थीं, वे सब आज भी मेरे हृदयमें बैठी हुई हैं ॥ १५ ॥

त्वां तु दृष्ट्वा कुशलिनं परिष्वज्य सलक्ष्मणम् ।
अद्य दुःखाद् विमुक्तोऽस्मि नीहारादिव भास्करः ॥ १६ ॥

'आज लक्ष्मणसहित तुमको सकुशल देखकर और हृदयसे लगाकर मैं समस्त दुःखोंसे छुटकारा पा गया हूँ । ठीक उसी तरह, जैसे चन्द्रमा कुहरेसे निकल आये हों ॥ १६ ॥

तारितोऽहं त्वया पुत्र सुपुत्रेण महात्मना ।
अष्टावक्रेण धर्मात्मा कहोलो ब्राह्मणो यथा ॥ १७ ॥

'बेटा ! जैसे अष्टावक्रने अपने धर्मात्मा पिता कहोल नामक ब्राह्मणको तार दिया था, वैसे ही तुम-जैसे महात्मा पुत्रने मेरा उद्धार कर दिया ॥ १७ ॥

इदानीं च विजानामि यथा सौम्य सुरेश्वरैः ।
वधार्थं रावणस्येह पिहितं पुरुषोत्तमम् ॥ १८ ॥

'सौम्य ! आज इन देवताओंके द्वारा मुझे मालूम हुआ कि रावणका वध करनेके लिये स्वयं पुरुषोत्तम भगवान् ही तुम्हारे रूपमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ १८ ॥

सिद्धार्था खलु कौसल्या या त्वां राम गृहं गतम् ।
वनान्निवृत्तं संहृष्टा द्रक्ष्यते शत्रुसूदनम् ॥ १९ ॥

'श्रीराम ! कौसल्याका जीवन सार्थक है, जो वनसे लौटनेपर तुम-जैसे शत्रुसूदन वीर पुत्रको अपने घरमें हर्ष और उल्लासके साथ देखेंगी ॥ १९ ॥

सिद्धार्थाः खलु ते राम नरा ये त्वां पुरीं गतम् ।
राज्ये चैवाभिषिक्तं च द्रक्ष्यन्ते वसुधाधिपम् ॥ २० ॥

'रघुनन्दन ! वे प्रजाजन भी कृतार्थ हैं, जो अयोध्या पहुँचनेपर तुम्हें राज्यसिंहासनपर भूमिपालके रूपमें अभिषिक्त होते देखेंगे ॥ २० ॥

अनुरक्तेन बलिना शुचिना धर्मचारिणा ।
इच्छेयं त्वामहं द्रष्टुं भरतेन समागतम् ॥ २१ ॥

'भरत बड़ा ही धर्मात्मा, पवित्र और बलवान् है । वह तुममें सच्चा अनुराग रखता है । मैं उसके साथ तुम्हारा शीघ्र ही मिलन देखना चाहता हूँ ॥ २१ ॥

चतुर्दश समाः सौम्य वने निर्यातितास्त्वया ।
वसता सीतया सार्धं मत्प्रीत्या लक्ष्मणेन च ॥ २२ ॥

'सौम्य ! तुमने मेरी प्रसन्नताके लिये लक्ष्मण और सीताके साथ रहते हुए वनमें चौदह वर्ष व्यतीत किये ॥ २२ ॥

निवृत्तवनवासोऽसि प्रतिज्ञा पूरिता त्वया ।
रावणं च रणे हत्वा देवताः परितोषिताः ॥ २३ ॥

'अब तुम्हारे वनवासकी अवधि पूरी हो गयी । मेरी प्रतिज्ञा भी तुमने पूर्ण कर दी तथा संग्राममें रावणको मारकर देवताओंको भी संतुष्ट कर दिया ॥ २३ ॥

कृतं कर्म यशः श्लाघ्यं प्राप्तं ते शत्रुसूदन ।
भ्रातृभिः सह राज्यस्थो दीर्घमायुरवाप्नुहि ॥ २४ ॥

'शत्रुसूदन ! ये सभी काम तुम कर चुके । इससे तुम्हें स्पृहणीय यश प्राप्त हुआ है । अब तुम भाइयोंके साथ राज्यपर प्रतिष्ठित हो दीर्घ आयु प्राप्त करो' ॥ २४ ॥

इति ब्रुवाणं राजानं रामः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
कुरु प्रसादं धर्मज्ञ कैकेय्या भरतस्य च ॥ २५ ॥

जब राजा इस प्रकार कह चुके, तब श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोड़कर उनसे बोले—'धर्मज्ञ महाराज ! आप कैकेयी और भरतपर प्रसन्न हों—उन दोनोंपर कृपा करें ॥ २५ ॥

सपुत्रां त्वां त्यजामीति यदुक्ता केकयी त्वया ।
स शापः केकयीं घोरः सपुत्रां न स्पृशेत् प्रभो ॥ २६ ॥

'प्रभो ! आपने जो कैकेयीसे कहा था कि मैं पुत्रसहित तेरा त्याग करता हूँ, आपका वह घोर शाप पुत्रसहित कैकेयीका स्पर्श न करे' ॥ २६ ॥

तथेति स महाराजो राममुक्त्वा कृताञ्जलिम् ।
लक्ष्मणं च परिष्वज्य पुनर्वाक्यमुवाच ह ॥ २७ ॥

तब श्रीरामसे 'बहुत अच्छा' कहकर महाराज दशरथने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और हाथ जोड़े खड़े हुए लक्ष्मणको हृदयसे लगाकर फिर यह बात कही—॥ २७ ॥

रामं शुश्रूषता भक्त्या वैदेह्या सह सीतया ।
कृता मम महाप्रीतिः प्राप्तं धर्मफलं च ते ॥ २८ ॥

'वत्स ! तुमने विदेहनन्दिनी सीताके साथ श्रीरामकी भक्तिपूर्वक सेवा करके मुझे बहुत प्रसन्न किया है । तुम्हें धर्मका फल प्राप्त हुआ है ॥ २८ ॥

धर्मं प्राप्स्यसि धर्मज्ञ यशश्च विपुलं भुवि ।
रामे प्रसन्ने स्वर्गं च महिमानं तथोत्तमम् ॥ २९ ॥

'धर्मज्ञ ! भविष्यमें भी तुम्हें धर्मका फल प्राप्त होगा और भूमण्डलमें महान् यशकी उपलब्धि होगी । श्रीरामकी प्रसन्नता-

से तुम्हें उत्तम स्वर्ग और महत्त्व प्राप्त होगा ॥ २९ ॥

रामं शुश्रूष भद्रं ते सुमित्रानन्दवर्धन ।
रामः सर्वस्य लोकस्य हितेष्वभिरतः सदा ॥ ३० ॥

'सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले लक्ष्मण ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम श्रीरामकी निरन्तर सेवा करते रहो । ये श्रीराम सदा सम्पूर्ण लोकोंके हितमें तत्पर रहते हैं ॥ ३० ॥

एते सेन्द्रास्त्रयो लोकाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
अभिवाद्य महात्मानमर्चन्ति पुरुषोत्तमम् ॥ ३१ ॥

'देखो, इन्द्रसहित ये तीनों लोक, सिद्ध और महर्षि भी परमात्मस्वरूप पुरुषोत्तम रामको प्रणाम करके इनका पूजन कर रहे हैं ॥ ३१ ॥

एतत् तदुक्तमव्यक्तमक्षरं ब्रह्मसम्मितम् ।
देवानां हृदयं सौम्य गुह्यं रामः परंतपः ॥ ३२ ॥

'सौम्य ! शत्रुओंको संताप देनेवाले ये श्रीराम देवताओंके हृदय और परम गुह्य तत्त्व हैं । ये ही वेदोंद्वारा प्रतिपादित अव्यक्त एवं अविनाशी ब्रह्म हैं ॥ ३२ ॥

अवाप्तधर्माचरणं यशश्च विपुलं त्वया ।
एवं शुश्रूषताव्यग्रं वैदेह्या सह सीतया ॥ ३३ ॥

'विदेहनन्दिनी सीताके साथ शान्तभावसे इनकी सेवा करते हुए तुमने सम्पूर्ण धर्माचरणका फल और महान् यश प्राप्त किया है' ॥ ३३ ॥

इत्युक्त्वा लक्ष्मणं राजा स्नुषां बद्धाञ्जलिं स्थिताम् ।
पुत्रीत्याभाष्य मधुरं शनैरेनामुवाच ह ॥ ३४ ॥

लक्ष्मणसे ऐसा कहकर राजा दशरथने हाथ जोड़कर खड़ी हुई पुत्रवधू सीताको 'बेटी' कहकर पुकारा और धीरे-धीरे मधुर वाणीमें कहा—॥ ३४ ॥

कर्तव्यो न तु वैदेहि मन्युस्त्यागमिमं प्रति ।
रामेणेदं विशुद्ध्यर्थं कृतं वै त्वद्धितैषिणा ॥ ३५ ॥

'विदेहनन्दिनि ! तुम्हें इस त्यागको लेकर श्रीरामपर कुपित नहीं होना चाहिये; क्योंकि ये तुम्हारे हितैषी हैं और संसारमें तुम्हारी पवित्रता प्रकट करनेके लिये ही इन्होंने ऐसा व्यवहार किया है ॥ ३५ ॥

सुदुष्करमिदं पुत्रि तव चारित्रलक्षणम् ।
कृतं यत् तेऽन्यनारीणां यशो ह्यभिभविष्यति ॥ ३६ ॥

'बेटी ! तुमने अपने विशुद्ध चरित्रको परिलक्षित करानेके लिये जो अग्निप्रवेशरूप कार्य किया है, यह दूसरी स्त्रियोंके लिये अत्यन्त दुष्कर है । तुम्हारा यह कर्म अन्य नारियोंके यशको ढक लेगा ॥ ३६ ॥

न त्वं कामं समाधेया भर्तृशुश्रूषणं प्रति ।
अवश्यं तु मया वाच्यमेष ते दैवतं परम् ॥ ३७ ॥

'पति-सेवाके सम्बन्धमें भले ही तुम्हें कोई उपदेश देनेकी आवश्यकता न हो; किंतु इतना तो मुझे अवश्य बता देना चाहिये कि ये श्रीराम ही तुम्हारे सबसे बड़े देवता हैं' ॥ ३७ ॥

इति प्रतिसमादिश्य पुत्रौ सीतां च राघवः ।
इन्द्रलोकं विमानेन ययौ दशरथो नृपः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार दोनों पुत्रों और सीताको आदेश एवं उपदेश देकर रघुवंशी राजा दशरथ विमानके द्वारा इन्द्रलोकको चले गये ॥ ३८ ॥

विमानमास्थाय महानुभावः
श्रिया च संहृष्टतनुर्नृपोत्तमः ।
आमन्त्र्य पुत्रौ सह सीतया च
जगाम देवप्रवरस्य लोकम् ॥ ३९ ॥

नृपश्रेष्ठ महानुभाव दशरथ अद्भुत शोभासे सम्पन्न थे । उनका शरीर हर्षसे पुलकित हो रहा था । वे विमानपर बैठकर सीतासहित दोनों पुत्रोंसे बिदा ले देवराज इन्द्रके लोकमें चले गये ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ ११९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ११९ ॥

* * *

विंशत्यधिकशततमः सर्गः

श्रीरामके अनुरोधसे इन्द्रका मरे हुए वानरोंको जीवित करना, देवताओंका प्रस्थान और वानरसेनाका विश्राम

प्रतिप्रयाते काकुत्स्थे महेन्द्रः पाकशासनः ।
अब्रवीत् परमप्रीतो राघवं प्राञ्जलिं स्थितम् ॥ १ ॥

महाराज दशरथके लौट जानेपर पाकशासन इन्द्रने अत्यन्त प्रसन्न हो हाथ जोड़े खड़े हुए श्रीरघुनाथजीसे कहा—॥ १ ॥

अमोघं दर्शनं राम तवास्माकं नरर्षभ ।
प्रीतियुक्ताः स्म तेन त्वं ब्रूहि यन्मनसेप्सितम् ॥ २ ॥

'नरश्रेष्ठ श्रीराम ! तुम्हें जो हमारा दर्शन हुआ, वह व्यर्थ नहीं जाना चाहिये और हम तुमपर बहुत प्रसन्न हैं ।' इसलिये तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, वह मुझसे कहो' ॥ २ ॥

एवमुक्तो महेन्द्रेण प्रसन्नेन महात्मना ।
सुप्रसन्नमना हृष्टो वचनं प्राह राघवः ॥ ३ ॥

महात्मा इन्द्रने जब प्रसन्न होकर ऐसी बात कही, तब श्रीरघुनाथजीके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने हर्षसे भरकर कहा—॥ ३ ॥

यदि प्रीतिः समुत्पन्ना मयि ते विबुधेश्वर ।
वक्ष्यामि कुरु मे सत्यं वचनं वदतां वर ॥ ४ ॥

'वक्ताओंमें श्रेष्ठ देवेश्वर ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं आपसे एक प्रार्थना करूँगा। आप मेरी उस प्रार्थनाको सफल करें ॥ ४ ॥

मम हेतोः पराक्रान्ता ये गता यमसादनम्।
ते सर्वे जीवितं प्राप्य समुत्तिष्ठन्तु वानराः ॥ ५ ॥

'मेरे लिये युद्धमें पराक्रम करके जो यमलोकको चले गये हैं, वे सब वानर नया जीवन पाकर उठ खड़े हों ॥ ५ ॥

मत्कृते विप्रयुक्ता ये पुत्रैर्दारैश्च वानराः।
तान् प्रीतमनसः सर्वान् द्रष्टुमिच्छामि मानद ॥ ६ ॥

'मानद ! जो वानर मेरे लिये अपने स्त्री-पुत्रोंसे बिछुड़ गये हैं, उन सबको मैं प्रसन्नचित्त देखना चाहता हूँ ॥६॥

विक्रान्ताश्चापि शूराश्च न मृत्युं गणयन्ति च।
कृतयत्ना विपन्नाश्च जीवयैतान् पुरंदर ॥ ७ ॥

'पुरंदर ! वे पराक्रमी और शूरवीर थे तथा मृत्युको कुछ भी नहीं गिनते थे। उन्होंने मेरे लिये बड़ा प्रयत्न किया है और अन्तमें कालके गालमें चले गये हैं। आप उन सबको जीवित कर दें ॥ ७ ॥

मत्प्रियेष्वभिरक्ताश्च न मृत्युं गणयन्ति ये।
त्वत्प्रसादात् समेयुस्ते वरमेतमहं वृणे ॥ ८ ॥

'जो वानर सदा मेरा प्रिय करनेमें लगे रहते थे और मौतको कुछ नहीं समझते थे, वे सब आपकी कृपासे फिर मुझसे मिलें—यह वर मैं चाहता हूँ ॥ ८ ॥

नीरुजो निर्व्रणांश्चैव सम्पन्नबलपौरुषान्।
गोलाङ्गूलांस्तथर्क्षांश्च द्रष्टुमिच्छामि मानद ॥ ९ ॥

'दूसरोंको मान देनेवाले देवराज ! मैं उन वानर, लंगूर और भालुओंको नीरोग, व्रणहीन और बल-पौरुषसे सम्पन्न देखना चाहता हूँ ॥ ९ ॥

✓ **अकाले चापि पुष्पाणि मूलानि च फलानि च।**
नद्यश्च विमलास्तत्र तिष्ठेयुर्यत्र वानराः ॥ १० ॥

'ये वानर जिस स्थानपर रहें, वहाँ असमयमें भी फल-मूल और पुष्पोंकी भरमार रहे तथा निर्मल जलवाली नदियाँ बहती रहें' ॥ १० ॥

श्रुत्वा तु वचनं तस्य राघवस्य महात्मनः।
महेन्द्रः प्रत्युवाचेदं वचनं प्रीतिसंयुतम् ॥ ११ ॥

महात्मा श्रीरघुनाथजीकी यह बात सुनकर महेन्द्रने प्रसन्नतापूर्वक यों उत्तर दिया—॥ ११ ॥

महानयं वरस्तात यस्त्वयोक्तो रघूत्तम।
द्विर्मया नोक्तपूर्वं च तस्मादेतद् भविष्यति ॥ १२ ॥

'तात ! रघुवंशविभूषण ! आपने जो वर माँगा है, यह बहुत बड़ा है, तथापि मैंने कभी दो तरहकी बात नहीं की है; इसलिये यह वर अवश्य सफल होगा ॥ १२ ॥

समुत्तिष्ठन्तु ते सर्वे हता ये युधि राक्षसैः।
ऋक्षाश्च सह गोपुच्छैर्निकृत्ताननबाहवः ॥ १३ ॥

'जो युद्धमें मारे गये हैं और राक्षसोंने जिनके मस्तक तथा भुजाएँ काट डाली हैं, वे सब वानर, भालू और लंगूर जी उठें ॥ १३ ॥

नीरुजो निर्व्रणाश्चैव सम्पन्नबलपौरुषाः।
समुत्थास्यन्ति हरयः सुप्ता निद्राक्षये यथा ॥ १४ ॥

'नींद टूटनेपर सोकर उठे हुए मनुष्योंकी भाँति वे सभी वानर नीरोग, व्रणहीन तथा बल-पौरुषसे सम्पन्न होकर उठ बैठेंगे ॥ १४ ॥

सुहृद्भिर्बान्धवैश्चैव ज्ञातिभिः स्वजनेन च।
सर्व एव समेष्यन्ति संयुक्ताः परया मुदा ॥ १५ ॥

'सभी परमानन्दसे युक्त हो अपने सुहृदों, बान्धवों, जाति-भाइयों तथा स्वजनोंसे मिलेंगे ॥ १५ ॥

अकाले पुष्पशबलाः फलवन्तश्च पादपाः।
भविष्यन्ति महेष्वास नद्यश्च सलिलायुताः ॥ १६ ॥

'महाधनुर्धर वीर ! ये वानर जहाँ रहेंगे, वहाँ असमयमें भी वृक्ष फल-फूलोंसे लद जायँगे और नदियाँ जलसे भरी रहेंगी' ॥ १६ ॥

सव्रणैः प्रथमं गात्रैरिदानीं निर्व्रणैः समैः।
ततः समुत्थिताः सर्वे सुप्त्वेव हरिसत्तमाः ॥ १७ ॥

इन्द्रके इस प्रकार कहनेपर वे सब श्रेष्ठ वानर जिनके सब अङ्ग पहले घावोंसे भरे थे, उस समय घावरहित हो गये और सभी सोकर जगे हुएकी भाँति सहसा उठकर खड़े हो गये ॥

बभूवुर्वानराः सर्वे किं त्वेतदिति विस्मिताः।
काकुत्स्थं परिपूर्णार्थं दृष्ट्वा सर्वे सुरोत्तमाः ॥ १८ ॥
अब्रुवन् परमप्रीताः स्तुत्वा रामं सलक्ष्मणम्।
गच्छायोध्यामितो राजन् विसर्जय च वानरान् ॥ १९ ॥

उन्हें इस प्रकार जीवित होते देख सब वानर आश्चर्यचकित होकर कहने लगे कि यह क्या बात हो गयी ? श्रीरामचन्द्रजीको सफलमनोरथ हुआ देख समस्त श्रेष्ठ देवता अत्यन्त प्रसन्न हो लक्ष्मणसहित श्रीरामकी स्तुति करके बोले—'राजन् ! अब आप यहाँसे अयोध्याको पधारें और समस्त वानरोंको बिदा कर दें ॥ १८-१९ ॥

मैथिलीं सान्त्वयस्वैनामनुरक्तां यशस्विनीम्।
भ्रातरं भरतं पश्य त्वच्छोकाद् व्रतचारिणम् ॥ २० ॥

'ये मिथिलेशकुमारी यशस्विनी सीता सदा आपमें अनुराग रखती हैं। इन्हें सान्त्वना दीजिये और भाई भरत आपके शोकसे पीड़ित हो व्रत कर रहे हैं, अतः उनसे जाकर मिलिये ॥ २० ॥

शत्रुघ्नं च महात्मानं मातॄः सर्वाः परंतप।
अभिषेचय चात्मानं पौरान् गत्वा प्रहर्षय ॥ २१ ॥

'परंतप ! आप महात्मा शत्रुघ्नसे और समस्त माताओंसे भी जाकर मिलें, अपना अभिषेक करावें और पुरवासियोंको हर्ष प्रदान करें' ॥ २१ ॥

एवमुक्त्वा सहस्राक्षो रामं सौमित्रिणा सह ।
विमानैः सूर्यसंकाशैर्ययौ हृष्टः सुरैः सह ॥ २२ ॥

श्रीराम और लक्ष्मणसे ऐसा कहकर देवराज इन्द्र सब देवताओंके साथ सूर्यतुल्य तेजस्वी विमानोंद्वारा बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने लोकको चले गये ॥ २२ ॥

अभिवाद्य च काकुत्स्थः सर्वांस्तांस्त्रिदशोत्तमान् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वासमाज्ञापयत् तदा ॥ २३ ॥

उन समस्त श्रेष्ठ देवताओंको नमस्कार करके भाई लक्ष्मण-सहित श्रीरामने सबको विश्राम करनेकी आज्ञा दी ॥ २३ ॥

ततस्तु सा लक्ष्मणरामपालिता
महाचमूर्हृष्टजना यशस्विनी ।
श्रिया ज्वलन्ती विरराज सर्वतो
निशा प्रणीतेव हि शीतरश्मिना ॥ २४ ॥

श्रीराम और लक्ष्मणके द्वारा सुरक्षित तथा हृष्ट-पुष्ट सैनिकोंसे भरी हुई वह यशस्विनी विशाल सेना चन्द्रमाकी चाँदनीसे प्रकाशित होनेवाली रात्रिके समान अद्भुत शोभासे उद्भासित होती हुई विराज रही थी ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे विंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२० ॥

एकविंशत्यधिकशततमः सर्गः

श्रीरामका अयोध्या जानेके लिये उद्यत होना और उनकी आज्ञासे विभीषणका पुष्पकविमानको मँगाना

तां रात्रिमुषितं रामं सुखोदितमरिंदमम् ।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं जयं पृष्ट्वा विभीषणः ॥ १ ॥

उस रात्रिको विश्राम करके जब शत्रुसूदन श्रीराम दूसरे दिन प्रातःकाल सुखपूर्वक उठे, तब कुशल-प्रश्नके पश्चात् विभीषणने हाथ जोड़कर कहा—॥ १ ॥

स्नानानि चाङ्गरागाणि वस्त्राण्याभरणानि च ।
चन्दनानि च माल्यानि दिव्यानि विविधानि च ॥ २ ॥

'रघुनन्दन ! स्नानके लिये जल, अङ्गराग, वस्त्र, आभूषण, चन्दन और भाँति-भाँतिकी दिव्य मालाएँ आपकी सेवामें उपस्थित हैं ॥ २ ॥

अलंकारविदश्चैता नार्यः पद्मनिभेक्षणाः ।
उपस्थितास्त्वां विधिवत् स्नापयिष्यन्ति राघव ॥ ३ ॥

'रघुवीर ! शृंगारकलाको जाननेवाली ये कमलनयनी नारियाँ भी सेवाके लिये प्रस्तुत हैं, जो आपको विधिपूर्वक स्नान करायेंगी' ॥ ३ ॥

एवमुक्तस्तु काकुत्स्थः प्रत्युवाच विभीषणम् ।
हरीन् सुग्रीवमुख्यांस्त्वं स्नानेनोपनिमन्त्रय ॥ ४ ॥

विभीषणके ऐसा कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उनसे कहा—'मित्र ! तुम सुग्रीव आदि वानरवीरोंसे स्नानके लिये अनुरोध करो ॥ ४ ॥

स तु ताम्यति धर्मात्मा मम हेतोः सुखोचितः ।
सुकुमारो महाबाहुर्भरतः सत्यसंश्रयः ॥ ५ ॥

'मेरे लिये तो इस समय सत्यका आश्रय लेनेवाले धर्मात्मा महाबाहु भरत बहुत कष्ट सह रहे हैं । वे सुकुमार हैं और सुख पानेके योग्य हैं ॥ ५ ॥

तं विना कैकयीपुत्रं भरतं धर्मचारिणम् ।
न मे स्नानं बहु मतं वस्त्राण्याभरणानि च ॥ ६ ॥

'उन धर्मपरायण कैकेयीकुमार भरतसे मिले बिना न तो मुझे स्नान अच्छा लगता है, न वस्त्र और आभूषणोंको धारण करना ही ॥ ६ ॥

एतत् पश्य यथा क्षिप्रं प्रतिगच्छाम तां पुरीम् ।
अयोध्यां गच्छतो ह्येष पन्थाः परमदुर्गमः ॥ ७ ॥

'अब तो तुम इस बातकी ओर ध्यान दो कि हम किस तरह जल्दी-से-जल्दी अयोध्यापुरीको लौट सकेंगे; क्योंकि वहाँ तक पैदल यात्रा करनेवालेके लिये यह मार्ग बहुत ही दुर्गम है' ॥ ७ ॥

एवमुक्तस्तु काकुत्स्थं प्रत्युवाच विभीषणः ।
अह्ना त्वां प्रापयिष्यामि तां पुरीं पार्थिवात्मज ॥ ८ ॥

उनके ऐसा कहनेपर विभीषणने श्रीरामचन्द्रजीको इस प्रकार उत्तर दिया—'राजकुमार ! आप इसके लिये चिन्तित न हों । मैं एक ही दिनमें आपको उस पुरीमें पहुँचा दूँगा ॥

पुष्पकं नाम भद्रं ते विमानं सूर्यसंनिभम् ।
मम भ्रातुः कुबेरस्य रावणेन बलीयसा ॥ ९ ॥
हृतं निर्जित्य संग्रामे कामगं दिव्यमुत्तमम् ।
त्वदर्थं पालितं चेदं तिष्ठत्यतुलविक्रम ॥ १० ॥

'आपका कल्याण हो । मेरे यहाँ मेरे बड़े भाई कुबेरका सूर्यतुल्य तेजस्वी पुष्पकविमान मौजूद है, जिसे महाबली रावणने संग्राममें कुबेरको हराकर छीन लिया था । अतुल पराक्रमी श्रीराम ! वह इच्छानुसार चलनेवाला, दिव्य एवं उत्तम विमान मैंने यहाँ आपहीके लिये रख छोड़ा है ॥ ९-१० ॥

तदिदं मेघसंकाशं विमानमिह तिष्ठति ।
येन यास्यसि यानेन त्वमयोध्यां गतज्वरः ॥ ११ ॥

'मेघ-जैसा दिखायी देनेवाला वह दिव्य विमान यहाँ विद्यमान है, जिसके द्वारा निश्चिन्त होकर आप अयोध्यापुरीको जा सकेंगे ॥ ११ ॥

अहं ते यद्यनुग्राह्यो यदि स्मरसि मे गुणान् ।
वस तावदिह प्राज्ञ यद्यस्ति मयि सौहृदम् ॥ १२ ॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या भार्यया सह ।
अर्चितः सर्वकामैस्त्वं ततो राम गमिष्यसि ॥ १३ ॥

'श्रीराम ! यदि मुझे आप अपना कृपापात्र समझते हैं, मुझमें कुछ गुण देखते या मानते हैं और मेरे प्रति आपका सौहार्द है तो अभी भाई लक्ष्मण तथा पत्नी सीताजीके साथ कुछ दिन यहीं विराजिये । मैं सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओं-द्वारा आपका सत्कार करूँगा । मेरे उस सत्कारको ग्रहण कर लेनेके पश्चात् अयोध्याको पधारियेगा ॥ १२-१३ ॥

प्रीतियुक्तस्य विहितां ससैन्यः ससुहृद्गणः ।
सत्क्रियां राम मे तावद् गृहाण त्वं मयोद्यताम् ॥ १४ ॥

'रघुनन्दन ! मैं प्रसन्नतापूर्वक आपका सत्कार करना चाहता हूँ । मेरे द्वारा प्रस्तुत किये गये उस सत्कारको आप सुहृदों तथा सेनाओंके साथ ग्रहण करें ॥ १४ ॥

प्रणयाद् बहुमानाच्च सौहार्देन च राघव ।
प्रसादयामि प्रेष्योऽहं न खल्वाज्ञापयामि ते ॥ १५ ॥

'रघुवीर ! मैं केवल प्रेम, सम्मान और सौहार्दके कारण ही आपसे यह प्रार्थना कर रहा हूँ । आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ । मैं आपका सेवक हूँ । इसलिये आपसे विनय करता हूँ, आपको आज्ञा नहीं देता हूँ' ॥ १५ ॥

एवमुक्तस्ततो रामः प्रत्युवाच विभीषणम् ।
रक्षसां वानराणां च सर्वेषामेव शृण्वताम् ॥ १६ ॥

जब विभीषणने ऐसी बात कही, तब श्रीराम समस्त राक्षसों और वानरोंके सुनते हुए ही उनसे बोले—॥ १६ ॥

पूजितोऽस्मि त्वया वीर साचिव्येन परेण च ।
सर्वात्मना च चेष्टाभिः सौहार्देन परेण च ॥ १७ ॥

'वीर ! मेरे परम सुहृद् और उत्तम सचिव बनकर तुमने सब प्रकारकी चेष्टाओंद्वारा मेरा सम्मान और पूजन किया है ॥ १७ ॥

न खल्वेतन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर ।
तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः ॥ १८ ॥
मां निवर्तयितुं योऽसौ चित्रकूटमुपागतः ।
शिरसा याचतो यस्य वचनं न कृतं मया ॥ १९ ॥

'राक्षसेश्वर ! तुम्हारी इस बातको मैं निश्चय ही अस्वीकार नहीं कर सकता हूँ; परंतु इस समय मेरा मन अपने उन भाई भरतको देखनेके लिये उतावला हो उठा है, जो मुझे लौटा ले जानेके लिये चित्रकूटतक आये थे और मेरे चरणोंमें सिर झुकाकर याचना करनेपर भी जिनकी बात मैंने नहीं मानी थी ॥ १८-१९ ॥

कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम् ।
गुहं च सुहृदं चैव पौराञ्जानपदैः सह ॥ २० ॥

'उनके सिवा माता कौसल्या, सुमित्रा, यशस्विनी कैकेयी, मित्रवर गुह और नगर एवं जनपदके लोगोंको देखनेके लिये भी मुझे बड़ी उत्कण्ठा हो रही है ॥ २० ॥

अनुजानीहि मां सौम्य पूजितोऽस्मि विभीषण ।
मन्युर्न खलु कर्तव्यः सखे त्वां चानुमानये ॥ २१ ॥

'सौम्य विभीषण ! अब तो तुम मुझे जानेकी ही अनुमति दो । मैं तुम्हारेद्वारा बहुत सम्मानित हो चुका हूँ । सखे ! मेरे इस हठके कारण मुझपर क्रोध न करना । इसके लिये मैं तुमसे बार-बार प्रार्थना करता हूँ ॥ २१ ॥

उपस्थापय मे शीघ्रं विमानं राक्षसेश्वर ।
कृतकार्यस्य मे वासः कथं स्यादिह सम्मतः ॥ २२ ॥

'राक्षसराज ! अब शीघ्र मेरे लिये पुष्पकविमानको यहाँ मँगाओ । जब मेरा यहाँ कार्य समाप्त हो गया, तब यहाँ ठहरना मेरे लिये कैसे ठीक हो सकता है ?' ॥ २२ ॥

एवमुक्तस्तु रामेण राक्षसेन्द्रो विभीषणः ।
विमानं सूर्यसंकाशमाजुहाव त्वरान्वितः ॥ २३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर राक्षसराज विभीषणने बड़ी उतावलीके साथ उस सूर्यतुल्य तेजस्वी विमानका आवाहन किया ॥ २३ ॥

ततः काञ्चनचित्राङ्गं वैदूर्यमणिवेदिकम् ।
कूटागारैः परिक्षिप्तं सर्वतो रजतप्रभम् ॥ २४ ॥

उस विमानका एक-एक अङ्ग सोनेसे जड़ा हुआ था; जिससे उसकी विचित्र शोभा होती थी । उसके भीतर वैदूर्य मणि (नीलम) की वेदियाँ थीं, जहाँ-तहाँ गुप्त गृह बने हुए थे और वह सब ओर चाँदीके समान चमकीला था ॥ २४ ॥

पाण्डुराभिः पताकाभिर्ध्वजैश्च समलंकृतम् ।
शोभितं काञ्चनैर्हर्म्यैर्हेमपद्मविभूषितैः ॥ २५ ॥

वह श्वेत-पीत वर्णवाली पताकाओं तथा ध्वजोंसे अलंकृत था । उसमें सोनेके कमलोंसे सुसज्जित स्वर्णमयी अट्टालिकाएँ थीं, जो उस विमानकी शोभा बढ़ाती थीं ॥ २५ ॥

प्रकीर्णं किङ्किणीजालैर्मुक्तामणिगवाक्षकम् ।
घण्टाजालैः परिक्षिप्तं सर्वतो मधुरस्वनम् ॥ २६ ॥

सारा विमान छोटी-छोटी घंटियासे युक्त झालरोंसे व्याप्त था । उसमें मोती और मणियोंकी खिड़कियाँ लगी थीं । सब ओर घंटे बँधे थे, जिससे मधुर ध्वनि होती रहती थी ॥ २६ ॥

तं मेरुशिखराकारं निर्मितं विश्वकर्मणा ।
बृहद्भिर्भूषितं हर्म्यैर्मुक्तारजतशोभितैः ॥ २७ ॥

वह विश्वकर्माका बनाया हुआ विमान सुमेरु-शिखरके समान ऊँचा तथा मोती और चाँदीसे सुसज्जित बड़े-बड़े कमरोंसे विभूषित था ॥ २७ ॥

तलैः स्फटिकचित्राङ्गैर्वैदूर्यैश्च वरासनैः ।
महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्नं महाधनैः ॥ २८ ॥

उसकी फर्श विचित्र स्फटिकमणिसे जड़ी हुई थी । उसमें

नीलमके बहुमूल्य सिंहासन थे, जिनपर महामूल्यवान् बिस्तर बिछे हुए थे ॥ २८ ॥

उपस्थितमनाधृष्यं तद् विमानं मनोजवम् ।
निवेदयित्वा रामाय तस्थौ तत्र विभीषणः ॥ २९ ॥

उसका मनके समान वेग था और उसकी गति कहीं रुकती नहीं थी। वह विमान सेवामें उपस्थित हुआ। विभीषण श्रीरामको उसके आनेकी सूचना देकर वहाँ खड़े हो गये ॥

तत् पुष्पकं कामगमं विमान-
मुपस्थितं भूधरसंनिकाशम् ।
दृष्ट्वा तदा विस्मयमाजगाम
रामः ससौमित्रिरुदारसत्त्वः ॥ ३० ॥

पर्वतके समान ऊँचे और इच्छानुसार चलनेवाले उस पुष्पकविमानको तत्काल उपस्थित देख लक्ष्मणसहित उदारचेता भगवान् श्रीरामको बड़ा विस्मय हुआ ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२१ ॥

द्वाविंशत्यधिकशततमः सर्गः

श्रीरामकी आज्ञासे विभीषणद्वारा वानरोंका विशेष सत्कार तथा सुग्रीव और विभीषणसहित वानरोंको साथ लेकर श्रीरामका पुष्पकविमानद्वारा अयोध्याको प्रस्थान करना

उपस्थितं तु तं कृत्वा पुष्पकं पुष्पभूषितम् ।
अविदूरे स्थितो राममित्युवाच विभीषणः ॥ १ ॥

फूलोंसे सजे हुए पुष्पकविमानको वहाँ उपस्थित करके पास ही खड़े हुए विभीषणने श्रीरामसे कुछ कहनेका विचार किया ॥ १ ॥

स तु बद्धाञ्जलिपुटो विनीतो राक्षसेश्वरः ।
अब्रवीत् त्वरयोपेतः किं करोमीति राघवम् ॥ २ ॥

राक्षसराज विभीषणने दोनों हाथ जोड़कर बड़ी विनय और उतावलीके साथ श्रीरघुनाथजीसे पूछा—'प्रभो ! अब मैं क्या सेवा करूँ ?' ॥ २ ॥

तमब्रवीन्महातेजा लक्ष्मणस्योपशृण्वतः ।
विमृश्य राघवो वाक्यमिदं स्नेहपुरस्कृतम् ॥ ३ ॥

तब महातेजस्वी श्रीरघुनाथजीने कुछ सोचकर लक्ष्मणके सुनते हुए यह स्नेहयुक्त वचन कहा— ॥ ३ ॥

कृतप्रयत्नकर्माणः सर्व एव वनौकसः ।
रत्नैरर्थैश्च विविधैः सम्पूज्यन्तां विभीषण ॥ ४ ॥

'विभीषण ! इन सारे वानरोंने युद्धमें बड़ा यत्न एवं परिश्रम किया है; अतः तुम नाना प्रकारके रत्न और धन आदिके द्वारा इन सबका सत्कार करो ॥ ४ ॥

सहामीभिस्त्वया लङ्का निर्जिता राक्षसेश्वर ।
हृष्टैः प्राणभयं त्यक्त्वा संग्रामेष्वनिवर्तिभिः ॥ ५ ॥

'राक्षसेश्वर ! ये वीर वानर संग्रामसे कभी पीछे नहीं हटते हैं और सदा हर्ष एवं उत्साहसे भरे रहते हैं। प्राणोंका भय छोड़कर लड़नेवाले इन वानरोंके सहयोगसे तुमने लङ्कापर विजय पायी है ॥ ५ ॥

त इमे कृतकर्माणः सर्व एव वनौकसः ।
धनरत्नप्रदानैश्च कर्मैषां सफलं कुरु ॥ ६ ॥

'ये सभी वानर इस समय अपना काम पूरा कर चुके हैं, अतः इन्हें रत्न और धन आदि देकर तुम इनके इस कर्मको सफल करो ॥ ६ ॥

एवं सम्मानिताश्चैते नन्द्यमाना यथा त्वया ।
भविष्यन्ति कृतज्ञेन निर्वृता हरियूथपाः ॥ ७ ॥

'तुम कृतज्ञ होकर जब इनका इस प्रकार सम्मान और अभिनन्दन करोगे, तब ये वानरयूथपति बहुत संतुष्ट होंगे ॥७॥

त्यागिनं संग्रहीतारं सानुक्रोशं जितेन्द्रियम् ।
सर्वे त्वामभिगच्छन्ति ततः सम्बोधयामि ते ॥ ८ ॥

'ऐसा करनेसे सब लोग यह जानेंगे कि विभीषण उचित अवसरपर धनका त्याग एवं दान करते हैं, यथासमय न्यायोचित रीतिसे धन और रत्न आदिका संग्रह करते रहते हैं, दयालु हैं और जितेन्द्रिय हैं; इसलिये तुम्हें ऐसा करनेके लिये समझा रहा हूँ ॥ ८ ॥

हीनं रतिगुणैः सर्वैरभिहन्तारमाहवे ।
सेना त्यजति संविग्ना नृपतिं तं नरेश्वर ॥ ९ ॥

'नरेश्वर ! जो राजा सेवकोंमें प्रेम उत्पन्न करनेवाले दान-मान आदि सब गुणोंसे रहित होता है, उसे युद्धके अवसरपर उद्विग्न हुई सेना छोड़कर चल देती है, वह समझती है कि यह व्यर्थ ही हमारा वध करा रहा है—हमारे भरण-पोषणका या योग-क्षेमकी चिन्ता इसे बिल्कुल नहीं है' ॥ ९ ॥

एवमुक्तस्तु रामेण वानरांस्तान् विभीषणः ।
रत्नार्थसंविभागेन सर्वानेवाभ्यपूजयत् ॥ १० ॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर विभीषणने उन सब वानरोंको रत्न और धन देकर सभीका पूजन (सत्कार) किया ॥१०॥

ततस्तान् पूजितान् दृष्ट्वा रत्नार्थैर्हरियूथपान् ।
आरुरोह तदा रामस्तद् विमानमनुत्तमम् ॥ ११ ॥
अङ्केनादाय वैदेहीं लज्जमानां मनस्विनीम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विक्रान्तेन धनुष्मता ॥ १२ ॥

उन वानरयूथपतियोंको रत्न और धनसे पूजित हुआ देख उस समय भगवान् श्रीराम लजाती हुई मनस्विनी विदेहकुमारीको अङ्कमें लेकर पराक्रमी धनुर्धर बन्धु लक्ष्मणके साथ उस उत्तम विमानपर आरूढ़ हुए ॥ ११-१२ ॥

अब्रवीत् स विमानस्थः पूजयन् सर्ववानरान् ।
सुग्रीवं च महावीर्यं काकुत्स्थः सविभीषणम् ॥ १३ ॥

विमानपर बैठकर समस्त वानरोंका समादर करते हुए. उन ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामने विभीषणसहित महापराक्रमी सुग्रीवसे कहा—॥ १३ ॥

मित्रकार्यं कृतमिदं भवद्भिर्वानरर्षभाः ।
अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं प्रतिगच्छत ॥ ४ ॥

'वानरश्रेष्ठ वीरो ! आपलोगोंने अपने इस मित्रका कार्य मित्रोचित रीतिसे ही भलीभाँति सम्पन्न किया । अब आप सब अपने-अपने अभीष्ट स्थानोंको चले जायँ ॥ १४ ॥

यत् तु कार्यं वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च ।
कृतं सुग्रीव तत् सर्वं भवताधर्मभीरुणा ॥ १५ ॥

'सखे सुग्रीव ! एक हितैषी एवं प्रेमी मित्रको जो काम करना चाहिये, वह सब तुमने पूरा-पूरा कर दिखाया; क्योंकि तुम अधर्मसे डरनेवाले हो ॥ १५ ॥

किष्किन्धां प्रति याह्याशु स्वसैन्येनाभिसंवृतः ।
स्वराज्ये वस लङ्कायां मया दत्ते विभीषण ।
न त्वां धर्षयितुं शक्ताः सेन्द्रा अपि दिवौकसः ॥ १६ ॥

'वानरराज ! अब तुम अपनी सेनाके साथ शीघ्र ही किष्किन्धापुरीको चले जाओ । विभीषण ! तुम भी लङ्कामें मेरे दिये हुए अपने राज्यपर स्थिर रहो; अब इन्द्र आदि देवता भी तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते हैं ॥ १६ ॥

अयोध्यां प्रति यास्यामि राजधानीं पितुर्मम ।
अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि सर्वानामन्त्रयामि वः ॥ १७ ॥

'अब इस समय मैं अपने पिताकी राजधानी अयोध्याको जाऊँगा । इसके लिये आप सब लोगोंसे पूछता हूँ और सबकी अनुमति चाहता हूँ' ॥ १७ ॥

एवमुक्तास्तु रामेण हरीन्द्रा हरयस्तथा ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे राक्षसश्च विभीषणः ॥ १८ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर सभी वानर-सेनापति तथा राक्षसराज विभीषण हाथ जोड़कर कहने लगे—॥ १८ ॥

अयोध्यां गन्तुमिच्छामः सर्वान् नयतु नो भवान् ।
मुद्युक्ता विचरिष्यामो वनान्युपवनानि च ॥ १९ ॥

'भगवन् ! हम भी अयोध्यापुरीको चलना चाहते हैं, आप हमें भी अपने साथ ले चलिये। वहाँ हम प्रसन्नतापूर्वक वनों और उपवनोंमें विचरेंगे ॥ १९ ॥

दृष्ट्वा त्वामभिषेकार्द्रं कौसल्यामभिवाद्य च ।
अचिरादागमिष्यामः स्वगृहान् नृपसत्तम ॥ २० ॥

'नृपश्रेष्ठ ! राज्याभिषेकके समय मन्त्रपूत जलसे भीगे हुए आपके श्रीविग्रहकी झाँकी करके माता कौसल्याके चरणोंमें मस्तक झुकाकर हम शीघ्र अपने घर लौट आयेंगे' ॥ २० ॥

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा वानरैः सविभीषणैः ।
अब्रवीद् वानरान् रामः ससुग्रीवविभीषणान् ॥ २१ ॥

विभीषणसहित वानरोंके इस प्रकार अनुरोध करनेपर श्रीरामने सुग्रीव तथा विभीषणसहित उन वानरोंसे कहा—॥ २१ ॥

प्रियात् प्रियतरं लब्धं यदहं ससुहृज्जनः ।
सर्वैर्भवद्भिः सहितः प्रीतिं लप्स्ये पुरीं गतः ॥ २२ ॥

'मित्रो ! यह तो मेरे लिये प्रियसे भी प्रिय बात होगी—परम प्रिय वस्तुका लाभ होगा, यदि मैं आप सभी सुहृदोंके साथ अयोध्यापुरीको चल सकूँ । इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता प्राप्त होगी ॥ २२ ॥

क्षिप्रमारोह सुग्रीव विमानं सह वानरैः ।
त्वमप्यारोह सामात्यो राक्षसेन्द्र विभीषण ॥ २३ ॥

'सुग्रीव ! तुम सब वानरोंके साथ शीघ्र ही इस विमानपर चढ़ जाओ । राक्षसराज विभीषण ! तुम भी मन्त्रियोंके साथ विमानपर आरूढ़ हो जाओ' ॥ २३ ॥

ततः स पुष्पकं दिव्यं सुग्रीवः सह वानरैः ।
आरुरोह मुदा युक्तः सामात्यश्च विभीषणः ॥ २४ ॥

तब वानरोंसहित सुग्रीव और मन्त्रियोंसहित विभीषण बड़ी प्रसन्नताके साथ उस दिव्य पुष्पकविमानपर चढ़ गये ॥

तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौबेरं परमासनम् ।
राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसम् ॥ २५ ॥

उन सबके चढ़ जानेपर कुबेरका वह उत्तम आसन पुष्पकविमान श्रीरघुनाथजीकी आज्ञा पाकर आकाशको उड़ चला ॥ २५ ॥

खगतेन विमानेन हंसयुक्तेन भास्वता ।
प्रहृष्टश्च प्रतीतश्च बभौ रामः कुबेरवत् ॥ २६ ॥

आकाशमें पहूँचे हुए उस हंसयुक्त तेजस्वी विमानसे यात्रा करते हुए पुलकित एवं प्रसन्नचित्त श्रीराम साक्षात् कुबेरके समान शोभा पा रहे थे ॥ २६ ॥

ते सर्वे वानरर्क्षाश्च राक्षसाश्च महाबलाः ।
यथासुखमसम्बाधं दिव्ये तस्मिन्नुपाविशन् ॥ २७ ॥

वे सब वानर, भालू और महाबली राक्षस उस दिव्य विमानमें बड़े सुखसे फैलकर बैठे हुए थे । किसीको किसीसे धक्का नहीं खाना पड़ता था ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्वाविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ बाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२२ ॥

त्रयोविंशत्यधिकशततमः सर्गः

अयोध्याकी यात्रा करते समय श्रीरामका सीताजीको मार्गके स्थान दिखाना

अनुज्ञातं तु रामेण तद् विमानमनुत्तमम् ।
हंसयुक्तं महानादमुत्पपात विहायसम् ॥ १ ॥

श्रीरामकी आज्ञा पाकर वह हंसयुक्त उत्तम विमान महान् शब्द करता हुआ आकाशमें उड़ने लगा ॥ १ ॥

पातयित्वा ततश्चक्षुः सर्वतो रघुनन्दनः ।
अब्रवीन्मैथिलीं सीतां रामः शशिनिभाननाम् ॥ २ ॥

उस समय रघुकुलनन्दन श्रीरामने सब ओर दृष्टि डालकर चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली मिथिलेशकुमारी सीतासे कहा— ॥ २ ॥

कैलासशिखराकारे त्रिकूटशिखरे स्थिताम् ।
लङ्कामीक्षस्व वैदेहि निर्मितां विश्वकर्मणा ॥ ३ ॥

'विदेहराजनन्दिनि ! कैलास-शिखरके समान सुन्दर त्रिकूट पर्वतके विशाल शृङ्गपर बसी हुई विश्वकर्माकी बनायी लङ्कापुरीको देखो, कैसी सुन्दर दिखायी देती है ! ॥ ३ ॥

एतदायोधनं पश्य मांसशोणितकर्दमम् ।
हरीणां राक्षसानां च सीते विशसनं महत् ॥ ४ ॥

'इधर इस युद्धभूमिको देखो । यहाँ रक्त और मांसकी कीच जमी हुई है । सीते ! इस युद्धक्षेत्रमें वानरों और राक्षसोंका महान् संहार हुआ है ॥ ४ ॥

एष दत्तवरः शेते प्रमाथी राक्षसेश्वरः ।
तव हेतोर्विशालाक्षि निहतो रावणो मया ॥ ५ ॥

'विशाललोचने ! यह राक्षसराज रावण राखका ढेर बनकर सो रहा है । यह बड़ा भारी हिंसक था और इसे ब्रह्माजीने वरदान दे रक्खा था; किंतु तुम्हारे लिये मैंने इसका वध कर डाला है ॥ ५ ॥

कुम्भकर्णोऽत्र निहतः प्रहस्तश्च निशाचरः ।
धूम्राक्षश्चात्र निहतो वानरेण हनूमता ॥ ६ ॥

'यहींपर मैंने कुम्भकर्णको मारा था, यहीं निशाचर प्रहस्त मारा गया है और इसी समराङ्गणमें वानरवीर हनुमान्ने धूम्राक्षका वध किया है ॥ ६ ॥

विद्युन्माली हतश्चात्र सुषेणेन महात्मना ।
लक्ष्मणेनेन्द्रजिच्चात्र रावणिर्निहतो रणे ॥ ७ ॥

'यहीं महामना सुषेणने विद्युन्मालीको मारा था और इसी रणभूमिमें लक्ष्मणने रावणपुत्र इन्द्रजित्‌का संहार किया था ॥ ७ ॥

अङ्गदेनात्र निहतो विकटो नाम राक्षसः ।
विरूपाक्षश्च दुष्प्रेक्ष्यो महापार्श्वमहोदरौ ॥ ८ ॥

'यहीं अङ्गदने विकटनामक राक्षसका वध किया था । जिसकी ओर देखना भी कठिन था, वह विरूपाक्ष तथा महापार्श्व और महोदर भी यहीं मारे गये हैं ॥ ८ ॥

अकम्पनश्च निहतो बलिनोऽन्ये च राक्षसाः ।
त्रिशिराश्चातिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ ॥ ९ ॥

'अकम्पन तथा दूसरे बलवान् राक्षस यहीं मौतके घाट उतारे गये थे । त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक और नरान्तक भी यहीं मार डाले गये थे ॥ ९ ॥

युद्धोन्मत्तश्च मत्तश्च राक्षसप्रवरावुभौ ।
निकुम्भश्चैव कुम्भश्च कुम्भकर्णात्मजौ बली ॥ १० ॥

'युद्धोन्मत्त और मत्त—ये दोनों श्रेष्ठ राक्षस तथा बलवान् कुम्भ और निकुम्भ—ये कुम्भकर्णके दोनों पुत्र भी यहीं मृत्युको प्राप्त हुए ॥ १० ॥

वज्रदंष्ट्रश्च दंष्ट्रश्च बहवो राक्षसा हताः ।
मकराक्षश्च दुर्धर्षो मया युधि निपातितः ॥ ११ ॥

'वज्रदंष्ट्र और दंष्ट्र आदि बहुत-से राक्षस यहीं कालके ग्रास बन गये । दुर्धर्ष वीर मकराक्षको इसी युद्धस्थलमें मैंने मार गिराया था ॥ ११ ॥

अकम्पनश्च निहतः शोणिताक्षश्च वीर्यवान् ।
यूपाक्षश्च प्रजङ्घश्च निहतौ तु महाहवे ॥ १२ ॥

'अकम्पन और पराक्रमी शोणिताक्षका भी यहीं काम तमाम हुआ था । यूपाक्ष और प्रजङ्घ भी इसी महासमरमें मारे गये थे ॥ १२ ॥

विद्युज्जिह्वोऽत्र निहतो राक्षसो भीमदर्शनः ।
यज्ञशत्रुश्च निहतः सुप्तघ्नश्च महाबलः ॥ १३ ॥

'जिसकी ओर देखनेसे भी भय होता था, वह राक्षस विद्युजिह्व यहीं मौतका ग्रास बन गया । यज्ञशत्रु और महाबली सुप्तघ्नको भी यहीं मारा गया था ॥ १३ ॥

सूर्यशत्रुश्च निहतो ब्रह्मशत्रुस्तथापरः ।
अत्र मन्दोदरी नाम भार्या तं पर्यदेवयत् ॥ १४ ॥
सपत्नीनां सहस्रेण साग्रेण परिवारिता ।

'सूर्यशत्रु और ब्रह्मशत्रु नामक निशाचरोंका भी यहीं वध किया गया था । यहीं रावणकी भार्या मन्दोदरीने उसके लिये विलाप किया था । उस समय वह अपनी हजारोंसे भी अधिक सौतोंसे घिरी हुई थी ॥ १४½ ॥

एतत् तु दृश्यते तीर्थं समुद्रस्य वरानने ॥ १५ ॥
यत्र सागरमुत्तीर्य तां रात्रिमुषिता वयम् ।

'सुमुखि ! यह समुद्रका तीर्थ दिखायी देता है, जहाँ समुद्रको पार करके हमलोगोंने वह रात बितायी थी ॥ १५½ ॥

एष सेतुर्मया बद्धः सागरे लवणार्णवे ॥ १६ ॥
तव हेतोर्विशालाक्षि नलसेतुः सुदुष्करः ।

'विशाललोचने ! खारे पानीके समुद्रमें यह मेरा बँधवाया हुआ पुल है, जो नलसेतुके नामसे विख्यात है । देवि ! तुम्हारे

लिये ही यह अत्यन्त दुष्कर सेतु बाँधा गया था ॥ १६½ ॥

पश्य सागरमक्षोभ्यं वैदेहि वरुणालयम् ॥ १७ ॥
अपारमिव गर्जन्तं शङ्खशुक्तिसमाकुलम् ।

'विदेहनन्दिनि ! इस अक्षोभ्य वरुणालय समुद्रको तो देखो, जो अपार-सा दिखायी देता है । शङ्ख और सीपियोंसे भरा हुआ यह सागर कैसी गर्जना कर रहा है ॥ १७½ ॥

हिरण्यनाभं शैलेन्द्रं काञ्चनं पश्य मैथिलि ॥ १८ ॥
विश्रमार्थं हनुमतो भित्त्वा सागरमुत्थितम् ।

'मिथिलेशकुमारी ! इस सुवर्णमय पर्वतराज हिरण्यनाभको तो देखो, जो हनुमान्‌जीको विश्राम देनेके लिये समुद्रकी जलराशिको चीरकर ऊपरको उठ गया था ॥ १८½ ॥

एतत् कुक्षौ समुद्रस्य स्कन्धावारनिवेशनम् ॥ १९ ॥
अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद् विभुः ।

'यह समुद्रके उदरमें ही विशाल टापू है, जहाँ मैंने सेनाका पड़ाव डाला था । यहीं पूर्वकालमें भगवान् महादेवने मुझपर कृपा की थी—सेतु बाँधनेसे पहले मेरे द्वारा स्थापित होकर वे यहाँ विराजमान हुए थे ॥ १९½ ॥

एतत् तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ॥ २० ॥
सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम् ।

'इस पुण्यस्थलमें विशालकाय समुद्रका तीर्थ दिखायी देता है, जो सेतुनिर्माणका मूलप्रदेश होनेके कारण सेतुबन्ध नामसे विख्यात तथा तीनों लोकोंद्वारा पूजित होगा ॥ २०½ ॥

एतत् पवित्रं परमं महापातकनाशनम् ॥ २१ ॥
अत्र राक्षसराजोऽयमाजगाम विभीषणः ।

'यह तीर्थ परम पवित्र और महान् पातकोंका नाश करनेवाला होगा । यहीं ये राक्षसराज विभीषण आकर मुझसे मिले थे ॥ २१½ ॥

एषा सा दृश्यते सीते किष्किन्धा चित्रकानना ॥ २२ ॥
सुग्रीवस्य पुरी रम्या यत्र वाली मया हतः ।

'सीते ! यह विचित्र वनप्रान्तसे सुशोभित किष्किन्धा दिखायी देती है, जो वानरराज सुग्रीवकी सुरम्य नगरी है । यहीं मैंने वालीका वध किया था' ॥ २२½ ॥

अथ दृष्ट्वा पुरीं सीता किष्किन्धां वालिपालिताम् ॥ २३ ॥
अब्रवीत् प्रश्रितं वाक्यं रामं प्रणयसाध्वसा ।

तदनन्तर वालिपालित किष्किन्धापुरीका दर्शन करके सीताने प्रेमसे विह्वल हो श्रीरामसे विनयपूर्वक कहा—॥ २३½ ॥

सुग्रीवप्रियभार्याभिस्ताराप्रमुखतो नृप ॥ २४ ॥
अन्येषां वानरेन्द्राणां स्त्रीभिः परिवृता ह्यहम् ।
गन्तुमिच्छे सहायोध्यां राजधानीं त्वया सह ॥ २५ ॥

'महाराज ! मैं सुग्रीवकी तारा आदि प्रिय भार्याओं तथा अन्य वानरेश्वरोंकी स्त्रियोंको साथ लेकर आपके साथ अपनी राजधानी अयोध्यामें चलना चाहती हूँ' * ॥ २४-२५ ॥

एवमुक्तोऽथ वैदेह्या राघवः प्रत्युवाच ताम् ।
एवमस्त्विति किष्किन्धां प्राप्य संस्थाप्य राघवः ॥ २६ ॥
विमानं प्रेक्ष्य सुग्रीवं वाक्यमेतदुवाच ह ।

विदेहनन्दिनी सीताके ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजीने कहा—'ऐसा ही हो ।' फिर किष्किन्धामें पहुँचनेपर उन्होंने विमान ठहराया और सुग्रीवकी ओर देखकर कहा—॥ २६½ ॥

ब्रूहि वानरशार्दूल सर्वान् वानरपुङ्गवान् ॥ २७ ॥
स्त्रीभिः परिवृताः सर्वे ह्ययोध्यां यान्तु सीतया ।
तथा त्वमपि सर्वाभिः स्त्रीभिः सह महाबल ॥ २८ ॥
अभित्वरय सुग्रीव गच्छामः प्लवगाधिप ।

'वानरश्रेष्ठ ! तुम समस्त वानरयूथपतियोंसे कहो कि वे सब लोग अपनी-अपनी स्त्रियोंको साथ लेकर सीताके साथ अयोध्या चलें तथा महाबली वानरराज सुग्रीव ! तुम भी अपनी सब स्त्रियोंके साथ शीघ्र चलनेकी तैयारी करो, जिससे हम सब लोग जल्दी वहाँ पहुँचें' ॥ २७-२८½ ॥

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामेणामिततेजसा ॥ २९ ॥
वानराधिपतिः श्रीमांस्तैश्च सर्वैः समावृतः ।
प्रविश्यान्तःपुरं शीघ्रं तारामुद्वीक्ष्य सोऽब्रवीत् ॥ ३० ॥

अमित तेजस्वी श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनेपर उन सब वानरोंसे घिरे हुए श्रीमान् वानरराज सुग्रीवने शीघ्र ही अन्तःपुरमें प्रवेश करके तारासे भेंट की और इस प्रकार कहा—॥ २९-३० ॥

प्रिये त्वं सह नारीभिर्वानराणां महात्मनाम् ।
राघवेणाभ्यनुज्ञाता मैथिलीप्रियकाम्यया ॥ ३१ ॥
त्वर त्वमभिगच्छामो गृह्य वानरयोषितः ।
अयोध्यां दर्शयिष्यामः सर्वा दशरथस्त्रियः ॥ ३२ ॥

'प्रिये ! तुम मिथिलेशकुमारी सीताका प्रिय करनेकी इच्छासे श्रीरघुनाथजीकी आज्ञाके अनुसार सभी प्रधान-प्रधान महात्मा वानरोंकी स्त्रियोंके साथ शीघ्र चलनेकी तैयारी करो । हमलोग इन वानर-पत्नियोंको साथ लेकर चलेंगे और उन्हें

---

* 'सीताजीने जो यहाँ वानरोंकी स्त्रियोंको साथ ले चलनेकी इच्छा प्रकट की है, इसके लिये किष्किन्धामें विमानको रोककर सबको एक दिन रुकना पड़ा । ऐसा रामायण-तिलककारका मत है । उनके कथनानुसार आश्विन शुक्ला चतुर्थीको किष्किन्धामें रहकर पञ्चमीको वहाँसे प्रस्थान किया गया था । भगवान् रामने वहाँ रुककर उसी दिन अङ्गदका किष्किन्धाके युवराजपदपर अभिषेक करवाया था, जैसा कि महाभारत, वनपर्व अध्याय २९१ श्लोक ५८-५९ से सूचित होता है ।

अयोध्यापुरी तथा महाराज दशरथकी सब रानियोंका दर्शन करायेंगे' ॥ ३१-३२ ॥

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा तारा सर्वाङ्गशोभना ।
आहूय चाब्रवीत् सर्वा वानराणां तु योषितः ॥ ३३ ॥

सुग्रीवकी यह बात सुनकर सर्वाङ्गसुन्दरी ताराने समस्त वानर-पत्नियोंको बुलाकर कहा—॥ ३३ ॥

सुग्रीवेणाभ्यनुज्ञाता गन्तुं सर्वैश्च वानरैः ।
मम चापि प्रियं कार्यमयोध्यादर्शनेन च ॥ ३४ ॥
प्रवेशं चैव रामस्य पौरजानपदैः सह ।
विभूतिं चैव सर्वासां स्त्रीणां दशरथस्य च ॥ ३५ ॥

'सखियो ! सुग्रीवकी आज्ञाके अनुसार तुम सब लोग अपने पतियों—समस्त वानरोंके साथ अयोध्या चलनेके लिये शीघ्र तैयार हो जाओ । अयोध्याका दर्शन करके तुमलोग मेरा भी प्रिय कार्य करोगी । वहाँ पुरवासियों तथा जनपदके लोगोंके साथ श्रीरामका जो अपने नगरमें प्रवेश होगा, वह उत्सव हमें देखनेको मिलेगा । हम वहाँ महाराज दशरथकी समस्त रानियों-के वैभवका भी दर्शन करेंगी' ॥ ३४-३५ ॥

तारया चाभ्यनुज्ञाताः सर्वा वानरयोषितः ।
नेपथ्यविधिपूर्वं तु कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥ ३६ ॥
अध्यारोहन् विमानं तत् सीतादर्शनकाङ्क्षया ।

ताराकी यह आज्ञा पाकर सारी वानर-पत्नियोंने शृङ्गार करके उस विमानकी परिक्रमा की और सीताजीके दर्शनकी इच्छासे वे उसपर चढ़ गयीं ॥ ३६½ ॥

ताभिः सहोत्थितं शीघ्रं विमानं प्रेक्ष्य राघवः ॥ ३७ ॥
ऋष्यमूकसमीपे तु वैदेहीं पुनरब्रवीत् ।

उन सबके साथ विमानको शीघ्र ही ऊपर उठा देख श्रीरघुनाथजीने ऋष्यमूकके निकट आनेपर पुनः विदेहनन्दिनीसे कहा—॥ ३७½ ॥

दृश्यतेऽसौ महान् सीते सविद्युदिव तोयदः ॥ ३८ ॥
ऋष्यमूको गिरिवरः काञ्चनैर्धातुभिर्वृतः ।

'सीते ! वह जो बिजलीसहित मेघके समान सुवर्णमय धातुओंसे युक्त श्रेष्ठ एवं महान् पर्वत दिखायी देता है, उसका नाम ऋष्यमूक है ॥ ३८½ ॥

अत्राहं वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण समागतः ॥ ३९ ॥
समयश्च कृतः सीते वधार्थं वालिनो मया ।

'सीते ! यहीं मैं वानरराज सुग्रीवसे मिला था और मित्रता करनेके पश्चात् वालीका वध करनेके लिये प्रतिज्ञा की थी ॥ ३९½ ॥

एषा सा दृश्यते पम्पा नलिनी चित्रकानना ॥ ४० ॥
त्वया विहीनो यत्राहं विललाप सुदुःखितः ।

'यही वह पम्पा नामक पुष्करिणी है, जो तटवर्ती विचित्र काननोंसे सुशोभित हो रही है । यहाँ तुम्हारे वियोगसे अत्यन्त दुखी होकर मैंने विलाप किया था ॥ ४०½ ॥

अस्यास्तीरे मया दृष्टा शबरी धर्मचारिणी ॥ ४१ ॥
अत्र योजनबाहुश्च कबन्धो निहतो मया ।

'इसी पम्पाके तटपर मुझे धर्मपरायणा शबरीका दर्शन हुआ था । इधर वह स्थान है, जहाँ एक योजन लंबी भुजावाले कबन्ध नामक असुरका मैंने वध किया था ॥ ४१½ ॥

दृश्यतेऽसौ जनस्थाने श्रीमान् सीते वनस्पतिः ॥ ४२ ॥
जटायुश्च महातेजास्तव हेतोर्विलासिनि ।
रावणेन हतो यत्र पक्षिणां प्रवरो बली ॥ ४३ ॥

'विलासशालिनी सीते ! जनस्थानमें वह शोभाशाली विशाल वृक्ष दिखायी दे रहा है, जहाँ बलवान् एवं महातेजस्वी पक्षिप्रवर जटायु तुम्हारी रक्षा करनेके कारण रावणके हाथसे मारे गये थे ॥ ४२-४३ ॥

खरश्च निहतो यत्र दूषणश्च निपातितः ।
त्रिशिराश्च महावीर्यो मया बाणैरजिह्मगैः ॥ ४४ ॥

'यह वह स्थान है, जहाँ मेरे सीधे जानेवाले बाणोंद्वारा खर मारा गया, दूषण धराशायी किया गया और महापराक्रमी त्रिशिराको भी मौतके घाट उतार दिया गया ॥ ४४ ॥

एतत् तदाश्रमपदमस्माकं वरवर्णिनि ।
पर्णशाला तथा चित्रा दृश्यते शुभदर्शने ॥ ४५ ॥
यत्र त्वं राक्षसेन्द्रेण रावणेन हृता बलात् ।

'वरवर्णिनि ! शुभदर्शने ! यह हमलोगोंका आश्रम है तथा वह विचित्र पर्णशाला दिखायी देती है, जहाँ आकर राक्षसराज रावणने बलपूर्वक तुम्हारा अपहरण किया था ॥ ४५½ ॥

एषा गोदावरी रम्या प्रसन्नसलिला शुभा ॥ ४६ ॥
अगस्त्यस्याश्रमश्चैव दृश्यते कदलीवृतः ।

'यह स्वच्छ जलराशिसे सुशोभित मङ्गलमयी रमणीय गोदावरी नदी है तथा वह केलेके कुञ्जोंसे घिरा हुआ महर्षि अगस्त्यका आश्रम दिखायी देता है ॥ ४६½ ॥

दीप्तश्चैवाश्रमो ह्येष सुतीक्ष्णस्य महात्मनः ॥ ४७ ॥
दृश्यते चैव वैदेहि शरभङ्गाश्रमो महान् ।
उपयातः सहस्राक्षो यत्र शक्रः पुरंदरः ॥ ४८ ॥

'यह महात्मा सुतीक्ष्णका दीप्तिमान् आश्रम है और विदेहनन्दिनि ! वह शरभङ्ग मुनिका महान् आश्रम दिखायी देता है, जहाँ सहस्रनेत्रधारी पुरंदर इन्द्र पधारे थे ॥ ४७-४८ ॥

अस्मिन् देशे महाकायो विराधो निहतो मया ।
एते ते तापसा देवि दृश्यन्ते तनुमध्यमे ॥ ४९ ॥

'यह वह स्थान है, जहाँ मैंने विशालकाय विराधका वध

किया था। देवि ! तनुमध्यमे ! ये वे तापस दिखायी देते हैं, जिनका दर्शन हमलोगोंने पहले किया था ॥ ४९ ॥

अत्रिः कुलपतिर्यत्र सूर्यवैश्वानरोपमः ।
अत्र सीते त्वया दृष्टा तापसी धर्मचारिणी ॥ ५० ॥

सीते ! इस तापसाश्रमपर ही सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी कुलपति अत्रि मुनि निवास करते हैं ।यहीं तुमने धर्मपरायणा तपस्विनी अनसूयादेवीका दर्शन किया था॥५०॥

असौ सुतनु शैलेन्द्रश्चित्रकूटः प्रकाशते ।
अत्र मां कैकयीपुत्रः प्रसादयितुमागतः ॥ ५१ ॥

'सुतनु ! वह गिरिराज चित्रकूट प्रकाशित हो रहा है। वहीं कैकेयीकुमार भरत मुझे प्रसन्न करके लौटा लेनेके लिये आये थे ॥ ५१ ॥

एषा सा यमुना रम्या दृश्यते चित्रकानना ।
भरद्वाजाश्रमः श्रीमान् दृश्यते चैष मैथिलि ॥ ५२ ॥

'मिथिलेशकुमारी ! यह विचित्र काननोंसे सुशोभित रमणीय यमुना नदी दिखायी देती है और यह शोभाशाली भरद्वाजाश्रम दृष्टिगोचर हो रहा है ॥ ५२ ॥

इयं च दृश्यते गङ्गा पुण्या त्रिपथगा नदी ।
नानाद्विजगणाकीर्णा सम्प्रपुष्पितकानना ॥ ५३ ॥

'ये पुण्यसलिला त्रिपथगा गङ्गा नदी दीख रही हैं,जिनके तटपर नाना प्रकारके पक्षी कलरव करते हैं और द्विजवृन्द पुण्यकर्मोंमें रत हैं। इनके तटवर्ती वनके वृक्ष सुन्दर फूलोंसे भरे हुए हैं ॥ ५३ ॥

शृङ्गवेरपुरं चैतद् गुहो यत्र सखा मम ।
एषा सा दृश्यते सीते सरयूर्यूपमालिनी ॥ ५४ ॥
एषा सा दृश्यते सीते राजधानी पितुर्मम ।
अयोध्यां कुरु वैदेहि प्रणामं पुनरागता ॥ ५५ ॥

'यह शृङ्गवेरपुर है, जहाँ मेरा मित्र गुह रहता है। सीते ! यह यूपमालाओंसे अलंकृत सरयू दिखायी देती है, जिसके तटपर मेरे पिताजीकी राजधानी है। विदेहनन्दिनि ! तुम वनवासके बाद फिर लौटकर अयोध्याको आयी हो। इसलिये इस पुरीको प्रणाम करो' ॥ ५४-५५ ॥

ततस्ते वानराः सर्वे राक्षसाः सविभीषणाः ।
उत्पत्योत्पत्य संहृष्टास्तां पुरीं ददृशुस्तदा ॥ ५६ ॥

तब विभीषणसहित वे सब राक्षस और वानर अत्यन्त हर्षसे उल्लसित हो उछल-उछलकर उस पुरीका दर्शन करने लगे ॥ ५६ ॥

ततस्तु तां पाण्डुरहर्म्यमालिनीं
विशालकक्ष्यां गजवाजिभिर्वृताम् ।
पुरीमपश्यन् प्लवगाः सराक्षसाः
पुरीं महेन्द्रस्य यथामरावतीम् ॥ ५७ ॥

तत्पश्चात् वे वानर और राक्षस श्वेत अट्टालिकाओंसे अलंकृत और विशाल भवनोंसे विभूषित अयोध्यापुरीको, जो हाथी-घोड़ोंसे भरी थी और देवराज इन्द्रकी अमरावतीपुरीके समान शोभित होती थी, देखने लगे ॥ ५७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रयोविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ तेईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२३ ॥

चतुर्विंशत्यधिकशततमः सर्गः

श्रीरामका भरद्वाज-आश्रमपर उतरकर महर्षिसे मिलना और उनसे वर पाना

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां लक्ष्मणाग्रजः ।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम् ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होनेपर पञ्चमी तिथिको भरद्वाज आश्रममें पहुँचकर मनको वशमें रखते हुए मुनिको प्रणाम किया ॥ १ ॥

सोऽपृच्छदभिवाद्यैनं भरद्वाजं तपोधनम् ।
शृणोषि कच्चिद् भगवन् सुभिक्षानामयं पुरे ।
कच्चित् स युक्तो भरतो जीवन्त्यपि च मातरः ॥ २ ॥

तपस्याके धनी भरद्वाज मुनिको प्रणाम करके श्रीरामने उनसे पूछा—'भगवन् ! आपने अयोध्यापुरीके विषयमें भी कुछ सुना है ? वहाँ सुकाल और कुशल-मङ्गल तो है न ? भरत प्रजापालनमें तत्पर रहते हैं न ? मेरी माताएँ जीवित हैं न ?' ॥ २ ॥

एवमुक्तस्तु रामेण भरद्वाजो महामुनिः ।
प्रत्युवाच रघुश्रेष्ठं स्मितपूर्वं प्रहृष्टवत् ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार पूछनेपर महामुनि भरद्वाजने मुस्कराकर उन रघुश्रेष्ठ श्रीरामसे प्रसन्नतापूर्वक कहा—॥ ३ ॥

आज्ञावशत्वे भरतो जटिलस्त्वां प्रतीक्षते ।
पादुके ते पुरस्कृत्य सर्वं च कुशलं गृहे ॥ ४ ॥

'रघुनन्दन ! भरत आपकी आज्ञाके अधीन हैं। वे जटा

बढ़ाये आपके आगमनकी प्रतीक्षा करते हैं। आपकी चरण-पादुकाओंको सामने रखकर सारा कार्य करते हैं। आपके घरपर और नगरमें भी सब कुशल है ॥ ४ ॥

त्वां पुरा चीरवसनं प्रविशन्तं महावनम्।
स्त्रीतृतीयं च्युतं राज्याद् धर्मकामं च केवलम् ॥ ५ ॥
पदातिं त्यक्तसर्वस्वं पितृनिर्देशकारिणम्।
सर्वभोगैः परित्यक्तं स्वर्गच्युतमिवामरम् ॥ ६ ॥
दृष्ट्वा तु करुणापूर्वं ममासीत् समितिंजय।
कैकेयीवचने युक्तं वन्यमूलफलाशिनम् ॥ ७ ॥

'पहले जब आप महान् वनकी यात्रा कर रहे थे, उस समय आपने चीरवस्त्र धारण कर रक्खा था और आप दोनों भाइयोंके साथ तीसरी केवल आपकी स्त्री थी। आप राज्यसे वञ्चित किये गये थे और केवल धर्मपालनकी इच्छा मनमें ले सर्वस्व त्यागकर पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये पैदल ही जा रहे थे। सारे भोगोंसे दूर हो स्वर्गसे भूतलपर गिरे हुए देवताके समान जान पड़ते थे। शत्रुविजयी वीर! आप कैकेयीके आदेशके पालनमें तत्पर हो जंगली फल-मूलका आहार करते थे, उस समय आपको देखकर मेरे मनमें बड़ी करुणा हुई थी ॥ ५—७ ॥

साम्प्रतं तु समृद्धार्थं समित्रगणबान्धवम्।
समीक्ष्य विजितारिं च ममाभूत् प्रीतिरुत्तमा ॥ ८ ॥

'परंतु इस समय तो सारी स्थिति ही बदल गयी है। आप शत्रुपर विजय पाकर सफलमनोरथ हो मित्रों तथा बान्धवोंके साथ लौट रहे हैं। इस रूपमें आपको देखकर मुझे बड़ा सुख मिला—मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ८ ॥

सर्वं च सुखदुःखं ते विदितं मम राघव।
यत् त्वया विपुलं प्राप्तं जनस्थाननिवासिना ॥ ९ ॥

'रघुवीर! आपने जनस्थानमें रहकर जो विपुल सुख-दुःख उठाये हैं, वे सब मुझे मालूम हैं ॥ ९ ॥

ब्राह्मणार्थे नियुक्तस्य रक्षतः सर्वतापसान्।
रावणेन हृता भार्या बभूवेयमनिन्दिता ॥ १० ॥

'वहाँ रहकर आप ब्राह्मणोंके कार्यमें संलग्न हो समस्त तपस्वी मुनियोंकी रक्षा करते थे। उस समय रावण आपकी इस सती-साध्वी भार्याको हर ले गया ॥ १० ॥

मारीचदर्शनं चैव सीतोन्मथनमेव च।
कबन्धदर्शनं चैव पम्पाभिगमनं तथा ॥ ११ ॥
सुग्रीवेण च ते सख्यं यत्र वाली हतस्त्वया।
मार्गणं चैव वैदेह्याः कर्म वातात्मजस्य च ॥ १२ ॥
विदितायां च वैदेह्यां नलसेतुर्यथा कृतः।
यथा चादीपिता लङ्का प्रहृष्टैर्हरियूथपैः ॥ १३ ॥
सपुत्रबान्धवामात्यः सबलः सहवाहनः।
यथा च निहतः संख्ये रावणो बलदर्पितः ॥ १४ ॥
यथा च निहते तस्मिन् रावणे देवकण्टके।
समागमश्च त्रिदशैर्यथा दत्तश्च ते वरः ॥ १५ ॥
सर्वं ममैतद् विदितं तपसा धर्मवत्सल।

'धर्मवत्सल! मारीचका कपटमृगके रूपमें दिखायी देना, सीताका बलपूर्वक अपहरण होना, इनकी खोज करते समय आपके मार्गमें कबन्धका मिलना, आपका पम्पासरोवरके तटपर जाना, सुग्रीवके साथ आपकी मैत्रीका होना, आपके हाथसे वालीका मारा जाना, सीताकी खोज, पवनपुत्र हनुमान्‌का अद्‌भुत कर्म, सीताका पता लग जानेपर नलके द्वारा समुद्रपर सेतुका निर्माण, हर्ष और उत्साहसे भरे हुए वानर-यूथपतियों-द्वारा लङ्कापुरीका दहन, पुत्र, बन्धु, मन्त्री, सेना और सवारियों-सहित बलाभिमानी रावणका आपके द्वारा युद्धमें वध होना, उस देवकण्टक रावणके मारे जानेपर देवताओंके साथ आपका समागम होना तथा उनका आपको वर देना—ये सारी बातें मुझे तपके प्रभावसे ज्ञात हैं ॥ ११—१५½ ॥

सम्पतन्ति च मे शिष्याः प्रवृत्त्याख्याः पुरीमितः ॥ १६ ॥
अहमप्यत्र ते दद्मि वरं शस्त्रभृतां वर।
अर्घ्यं प्रतिगृहाणेदमयोध्यां श्वो गमिष्यसि ॥ १७ ॥

'मेरे प्रवृत्ति नामक शिष्य यहाँसे अयोध्यापुरीको जाते रहते हैं (अतः मुझे वहाँका वृत्तान्त मालूम होता रहता है), शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीराम! यहाँ मैं भी आपको एक वर देता हूँ (आपकी जो इच्छा हो, उसे माँग ले)। आज मेरा अर्घ्य और आतिथ्य-सत्कार ग्रहण करें। कल सबेरे अयोध्याको जाइयेगा' ॥ १६-१७ ॥

तस्य तच्छिरसा वाक्यं प्रतिगृह्य नृपात्मजः।
बाढमित्येव संहृष्टः श्रीमान् वरमयाचत ॥ १८ ॥

मुनिके उस वचनको शिरोधार्य करके हर्षसे भरे हुए श्रीमान् राजकुमार श्रीरामने कहा—'बहुत अच्छा'। फिर उन्होंने उनसे यह वर माँगा— ॥ १८ ॥

अकालफलिनो वृक्षाः सर्वे चापि मधुस्रवाः।
फलान्यमृतगन्धीनि बहूनि विविधानि च ॥ १९ ॥
भवन्तु मार्गे भगवन्नयोध्यां प्रति गच्छतः।

'भगवन्! यहाँसे अयोध्या जाते समय मार्गके सब वृक्षोंमें समय न होनेपर भी फल उत्पन्न हो जायँ और वे सब-के-सब मधुकी धारा टपकानेवाले हों। उनमें नाना प्रकारके बहुत-से अमृतोपम सुगन्धित फल लग जायँ' ॥ १९½ ॥

तथेति च प्रतिज्ञाते वचनात् समनन्तरम् ॥ २० ॥
अभवन् पादपास्तत्र स्वर्गपादपसंनिभाः।

भरद्वाजजीने कहा—'ऐसा ही होगा' । उनके इस प्रकार प्रतिज्ञा करते ही—उनकी उस वाणीके निकलते ही तत्काल वहाँके सारे वृक्ष स्वर्गीय वृक्षोंके समान हो गये ॥ २०½ ॥

निष्फलाः फलिनश्चासन् विपुष्पाः पुष्पशालिनः ॥ २१ ॥
शुष्काः समग्रपत्रास्ते नगाश्चैव मधुस्रवाः ।
सर्वतो योजनास्तिस्रो गच्छतामभवंस्तदा ॥ २२ ॥

जिनमें फल नहीं थे, उनमें फल आ गये । जिनमें फूल नहीं थे, वे फूलोंसे सुशोभित होने लगे । सूखे हुए वृक्षोंमें भी हरे-हरे पत्ते निकल आये और सभी वृक्ष मधुकी धारा बहाने लगे । अयोध्या जानेका जो मार्ग था, उसके आस-पास तीन योजनतकके वृक्ष ऐसे ही हो गये ॥ २१-२२ ॥

ततः प्रहृष्टाः प्लवगर्षभास्ते
बहूनि दिव्यानि फलानि चैव ।
कामादुपाश्नन्ति सहस्रशस्ते
मुदान्विताः स्वर्गजितो यथैव ॥ २३ ॥

फिर तो वे सहस्रों श्रेष्ठ वानर हर्षसे भरकर स्वर्गवासी देवताओंके समान अपनी रुचिके अनुसार प्रसन्नतापूर्वक उन बहुसंख्यक दिव्य फलोंका आस्वादन करने लगे ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुर्विंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२४ ॥

पञ्चविंशत्यधिकशततमः सर्गः

हनुमान्जीका निषादराज गुह तथा भरतजीको श्रीरामके आगमनकी सूचना देना और प्रसन्न हुए भरतका उन्हें उपहार देनेकी घोषणा करना

अयोध्यां तु समालोक्य चिन्तयामास राघवः ।
प्रियकामः प्रियं रामस्ततस्त्वरितविक्रमः ॥ १ ॥

(भरद्वाज-आश्रमपर उतरनेसे पहले) विमानसे ही अयोध्यापुरीका दर्शन करके अयोध्यावासियों तथा सुग्रीव आदिका प्रिय करनेकी इच्छावाले शीघ्रपराक्रमी रघुकुलनन्दन श्रीरामने यह विचार किया कि कैसे इन सबका प्रिय हो ? ॥ १ ॥

चिन्तयित्वा ततो दृष्टिं वानरेषु न्यपातयत् ।
उवाच धीमांस्तेजस्वी हनूमन्तं प्लवंगमम् ॥ २ ॥

विचार करके तेजस्वी एवं बुद्धिमान् श्रीरामने वानरोंपर दृष्टि डाली और वानर-वीर हनुमान्जीसे कहा— ॥ २ ॥

अयोध्यां त्वरितो गत्वा शीघ्रं प्लवगसत्तम ।
जानीहि कच्चित् कुशली जनो नृपतिमन्दिरे ॥ ३ ॥

'कपिश्रेष्ठ ! तुम शीघ्र ही अयोध्यामें जाकर पता लो कि राजभवनमें सब लोग सकुशल तो हैं न ? ॥ ३ ॥

शृङ्गवेरपुरं प्राप्य गुहं गहनगोचरम् ।
निषादाधिपतिं ब्रूहि कुशलं वचनान्मम ॥ ४ ॥

'शृङ्गवेरपुरमें पहुँचकर वनवासी निषादराज गुहसे भी मिलना और मेरी ओरसे कुशल कहना ॥ ४ ॥

श्रुत्वा तु मां कुशलिनमरोगं विगतज्वरम् ।
भविष्यति गुहः प्रीतः स ममात्मसमः सखा ॥ ५ ॥

'मुझे सकुशल, नीरोग और चिन्तारहित सुनकर निषादराज गुहको बड़ी प्रसन्नता होगी; क्योंकि वह मेरा मित्र है। मेरे लिये आत्माके समान है ॥ ५ ॥

अयोध्यायाश्च ते मार्गं प्रवृत्तिं भरतस्य च ।
निवेदयिष्यति प्रीतो निषादाधिपतिर्गुहः ॥ ६ ॥

'निषादराज गुह प्रसन्न होकर तुम्हें अयोध्याका मार्ग और भरतका समाचार बतायेगा ॥ ६ ॥

भरतस्तु त्वया वाच्यः कुशलं वचनान्मम ।
सिद्धार्थं शंस मां तस्मै सभार्यं सहलक्ष्मणम् ॥ ७ ॥

'भरतके पास जाकर तुम मेरी ओरसे उनका कुशल पूछना और उन्हें सीता एवं लक्ष्मणसहित मेरे सफलमनोरथ होकर लौटनेका समाचार बताना ॥ ७ ॥

हरणं चापि वैदेह्या रावणेन बलीयसा ।
सुग्रीवेण च संवादं वालिनश्च वधं रणे ॥ ८ ॥
मैथिल्यन्वेषणं चैव यथा चाधिगता त्वया ।
लङ्घयित्वा महातोयमापगापतिमव्ययम् ॥ ९ ॥
उपयानं समुद्रस्य सागरस्य च दर्शनम् ।
यथा च कारितः सेतू रावणश्च यथा हतः ॥ १० ॥
वरदानं महेन्द्रेण ब्रह्मणा वरुणेन च ।
महादेवप्रसादाच्च पित्रा मम समागमम् ॥ ११ ॥

'बलवान् रावणके द्वारा सीताजीके हरे जानेका, सुग्रीवसे बातचीत होनेका, रणभूमिमें वालीके वधका, सीताजीके खोजका, तुमने जो महान् जलराशिसे भरे हुए अपार महासागरको लाँघकर जिस तरह सीताका पता लगाया था उसका, फिर समुद्रतटपर मेरे जानेका, सागरके दर्शन देनेका, उसपर पुल बनानेका, रावणके वधका, इन्द्र, ब्रह्मा और वरुणसे मिलने

एवं वरदान पानेका और महादेवजीके प्रसादसे पिताजीके दर्शन होनेका वृत्तान्त उन्हें सुनाना ॥ ८–११ ॥

उपयातं च मां सौम्य भरताय निवेदय ।
सह राक्षसराजेन हरीणामीश्वरेण च ॥ १२ ॥
जित्वा शत्रुगणान् रामः प्राप्य चानुत्तमं यशः ।
उपायाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः ॥ १३ ॥

'सौम्य ! फिर भरतसे यह भी निवेदन करना कि श्रीराम शत्रुओंको जीतकर परम उत्तम यश पाकर, सफलमनोरथ हो राक्षसराज विभीषण, वानरराज सुग्रीव तथा अपने अन्य महाबली मित्रोंके साथ आ रहे हैं और प्रयागतक आ पहुँचे हैं १२-१३

एतच्छ्रुत्वा यमाकारं भजते भरतस्ततः ।
स च ते वेदितव्यः स्यात् सर्वं यच्चापि मां प्रति॥ १४ ॥

'यह बात सुनकर भरतकी जैसी मुख-मुद्रा हो, उसपर ध्यान रखना और समझना तथा भरतका मेरे प्रति जो कर्तव्य या बर्ताव हो, उसको भी जाननेका प्रयत्न करना ॥ १४ ॥

ज्ञेयाः सर्वे च वृत्तान्ता भरतस्येङ्गितानि च ।
तत्त्वेन मुखवर्णेन दृष्ट्या व्याभाषितेन च ॥ १५ ॥

'वहाँके सारे वृत्तान्त तथा भरतकी चेष्टाएँ तुम्हें यथार्थरूपसे जाननी चाहिये । मुखकी कान्ति, दृष्टि और बातचीतसे उनके मनोभावको समझनेकी चेष्टा करनी चाहिये ॥ १५ ॥

सर्वकामसमृद्धं हि हस्त्यश्वरथसंकुलम् ।
पितृपैतामहं राज्यं कस्य नावर्तयेन्मनः ॥ १६ ॥

'समस्त मनोवाञ्छित भोगोंसे सम्पन्न तथा हाथी, घोड़े और रथोंसे भरपूर बाप-दादोंका राज्य सुलभ हो तो वह किसके मनको नहीं पलट देता ! ॥ १६ ॥

संगत्या भरतः श्रीमान् राज्येनार्थी स्वयं भवेत् ।
प्रशास्तु वसुधां सर्वामखिलां रघुनन्दनः ॥ १७ ॥

'यदि कैकेयीकी संगति अथवा चिरकालतक राज्यवैभवका संसर्ग होनेसे श्रीमान् भरत स्वयं ही राज्य पानेकी इच्छा रखते हों तो वे रघुकुलनन्दन भरत बेखटके समस्त भूमण्डलका राज्य करें (मुझे उस राज्यको नहीं लेना है । उस दशामें हम कहीं अन्यत्र रहकर तपस्वी जीवन व्यतीत करेंगे) ॥ १७ ॥

तस्य बुद्धिं च विज्ञाय व्यवसायं च वानर ।
यावन्न दूरं याताः स्मः क्षिप्रमागन्तुमर्हसि ॥ १८ ॥

'वानरवीर ! तुम भरतके विचार और निश्चयको जानकर जबतक हमलोग इस आश्रमसे दूर न चले जायँ तभीतक शीघ्र लौट आओ' ॥ १८ ॥

इति प्रतिसमादिष्टो हनूमान् मारुतात्मजः ।
मानुषं धारयन् रूपमयोध्यां त्वरितो ययौ ॥ १९ ॥

श्रीरघुनाथजीके इस प्रकार आदेश देनेपर पवनपुत्र हनुमान्‌जी मनुष्यका रूप धारण करके तीव्रगतिसे अयोध्याकी ओर चल दिये ॥ १९ ॥

अथोत्पपात वेगेन हनूमान् मारुतात्मजः ।
गरुत्मानिव वेगेन जिघृक्षन्नुरगोत्तमम् ॥ २० ॥

जैसे गरुड़ किसी श्रेष्ठ सर्पको पकड़नेके लिये बड़े वेगसे झपट्टा मारते हैं, उसी तरह पवनपुत्र हनुमान् तीव्र वेगसे उड़ चले ॥ २० ॥

लङ्घयित्वा पितृपथं विहगेन्द्रालयं शुभम् ।
गङ्गायमुनयोर्भीमं समतीत्य समागमम् ॥ २१ ॥
शृङ्गवेरपुरं प्राप्य गुहमासाद्य वीर्यवान् ।
स वाचा शुभया हृष्टो हनूमानिदमब्रवीत् ॥ २२ ॥

अपने पिता वायुके मार्ग—अन्तरिक्षको, जो पक्षिराज गरुड़का सुन्दर गृह है, लाँघकर गङ्गा और यमुनाके वेगशाली संगमको पार करके शृङ्गवेरपुरमें पहुँचकर पराक्रमी हनुमान्‌जी निषादराज गुहसे मिले और बड़े हर्षके साथ सुन्दर वाणीमें बोले—॥ २१-२२ ॥

सखा तु तव काकुत्स्थो रामः सत्यपराक्रमः ।
ससीतः सह सौमित्रिः स त्वां कुशलमब्रवीत् ॥ २३ ॥
पञ्चमीमद्य रजनीमुषित्वा वचनान्मुनेः ।
भरद्वाजाभ्यनुज्ञातं द्रक्ष्यस्यत्रैव राघवम् ॥ २४ ॥

'तुम्हारे मित्र ककुत्स्थकुलभूषण सत्यपराक्रमी श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ आ रहे हैं और उन्होंने तुम्हें अपना कुशल-समाचार कहलाया है । वे प्रयागमें हैं और भरद्वाजमुनिके कहनेसे उन्हींके आश्रममें आज पञ्चमीकी रात बिताकर कल उनकी आज्ञा ले वहाँसे चलेंगे । तुम्हें यहीं श्रीरघुनाथजीका दर्शन होगा' ॥ २३-२४ ॥

एवमुक्त्वा महातेजाः सम्प्रहृष्टतनूरुहः ।
उत्पपात महावेगाद् वेगवानविचारयन् ॥ २५ ॥

गुहसे यों कहकर महातेजस्वी और वेगशाली हनुमान्‌जी बिना कोई सोच-विचार किये बड़े वेगसे आगेको उड़ चले । उस समय उनके सारे अङ्गोंमें हर्षजनित रोमाञ्च हो आया था ॥ २५ ॥

सोऽपश्यद् रामतीर्थं च नदीं वालुकिनीं तथा ।
वरूथीं गोमतीं चैव भीमं शालवनं तथा ॥ २६ ॥

मार्गमें उन्हें परशुराम-तीर्थ, बालुकिनी नदी, वरूथी, गोमती और भयानक सालवनके दर्शन हुए ॥ २६ ॥

प्रजाश्च बहुसाहस्रीः स्फीताञ्जनपदानपि ।
स गत्वा दूरमध्वानं त्वरितः कपिकुञ्जरः ॥ २७ ॥
आससाद द्रुमान् फुल्लान् नन्दिग्रामसमीपगान् ।
सुराधिपस्योपवने यथा चैत्ररथे द्रुमान् ॥ २८ ॥

कई सहस्र प्रजाओं तथा समृद्धिशाली जनपदोंको देखते हुए कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी तीव्रगतिसे दूरतकका रास्ता लाँघ गये और नन्दिग्रामके समीपवर्ती खिले हुए वृक्षोंके पास जा पहुँचे । वे वृक्ष देवराज इन्द्रके नन्दनवन और कुबेरके चैत्ररथ वनके वृक्षोंके समान सुशोभित होते थे ॥ २७-२८ ॥

स्त्रीभिः सपुत्रैः पौत्रैश्च रममाणैः स्वलंकृतैः ।
क्रोशमात्रे त्वयोध्यायाश्चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ॥ २९ ॥
ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम् ।
जटिलं मलदिग्धाङ्गं भ्रातृव्यसनकर्शितम् ॥ ३० ॥
फलमूलाशिनं दान्तं तापसं धर्मचारिणम् ।
समुन्नतजटाभारं वल्कलाजिनवाससम् ॥ ३१ ॥
नियतं भावितात्मानं ब्रह्मर्षिसमतेजसम् ।
पादुके ते पुरस्कृत्य प्रशासन्तं वसुंधराम् ॥ ३२ ॥

उनके आस-पास बहुत-सी स्त्रियाँ अपने उन पुत्रों और पौत्रोंके साथ, जो वस्त्राभूषणोंसे भलीभाँति अलंकृत थे, विचरती और उनके पुष्पोंका चयन करती थीं । अयोध्यासे एक कोसकी दूरीपर उन्होंने आश्रमवासी भरतको देखा, जो चीर-वस्त्र और काला मृगचर्म धारण किये दुखी एवं दुर्बल दिखायी देते थे । उनके सिरपर जटा बढ़ी हुई थी, शरीरपर मैल जम गयी थी, भाईके वनवासके दुःखने उन्हें बहुत ही कृश कर दिया था, फल-मूल ही उनका भोजन था, वे इन्द्रियोंका दमन करके तपस्यामें लगे हुए थे और धर्मका आचरण करते थे । सिरपर जटाका भार बहुत ही ऊँचा दिखायी देता था, वल्कल और मृगचर्मसे उनका शरीर ढका था । वे बड़े नियमसे रहते थे । उनका अन्तःकरण शुद्ध था और वे ब्रह्मर्षिके समान तेजस्वी जान पड़ते थे । रघुनाथजीकी दोनों चरणपादुकाओंको आगे रखकर वे पृथ्वीका शासन करते थे ॥ २९-३२ ॥

चातुर्वर्ण्यस्य लोकस्य त्रातारं सर्वतो भयात् ।
उपस्थितममात्यैश्च शुचिभिश्च पुरोहितैः ॥ ३३ ॥
बलमुख्यैश्च युक्तैश्च काषायाम्बरधारिभिः ।

भरतजी चारों वर्णोंकी प्रजाओंको सब प्रकारके भयसे सुरक्षित रखते थे । उनके पास मन्त्री, पुरोहित और सेनापति भी योगयुक्त होकर रहते और गेरुए वस्त्र पहनते थे ॥ ३३½ ॥

नहि ते राजपुत्रं तं चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ॥ ३४ ॥
परिभोक्तुं व्यवस्यन्ति पौरा वै धर्मवत्सलाः ।

अयोध्याके वे धर्मानुरागी पुरवासी भी उन चीर और काला मृगचर्म धारण करनेवाले राजकुमार भरतको उस दशामें छोड़कर स्वयं भोग भोगनेकी इच्छा नहीं करते थे ॥ ३४½ ॥

तं धर्ममिव धर्मज्ञं देहबन्धमिवापरम् ॥ ३५ ॥
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं हनूमान् मारुतात्मजः ।

मनुष्य देह धारण करके आये हुए दूसरे धर्मकी भाँति उन धर्मज्ञ भरतके पास पहुँचकर पवनकुमार हनुमान्‌जी हाथ जोड़कर बोले—॥ ३५½ ॥

वसन्तं दण्डकारण्ये यं त्वं चीरजटाधरम् ॥ ३६ ॥
अनुशोचसि काकुत्स्थं स त्वां कौशलमब्रवीत् ।
प्रियमाख्यामि ते देव शोकं त्यज सुदारुणम् ॥ ३७ ॥
अस्मिन् मुहूर्ते भ्रात्रा त्वं रामेण सह संगतः ।

'देव ! आप दण्डकारण्यमें चीर-वस्त्र और जटा धारण करके रहनेवाले जिन श्रीरघुनाथजीके लिये निरन्तर चिन्तित रहते हैं, उन्होंने आपको अपना कुशल-समाचार कहलाया है और आपका भी पूछा है । अब आप इस अत्यन्त दारुण शोकको त्याग दीजिये । मैं आपको बड़ा प्रिय समाचार सुना रहा हूँ । आप शीघ्र ही अपने भाई श्रीरामसे मिलेंगे ॥

निहत्य रावणं रामः प्रतिलभ्य च मैथिलीम् ॥ ३८ ॥
उपयाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः ।
लक्ष्मणश्च महातेजा वैदेही च यशस्विनी ।
सीता समग्रा रामेण महेन्द्रेण शची यथा ॥ ३९ ॥

'भगवान् श्रीराम रावणको मारकर मिथिलेशकुमारीको वापस ले सफलमनोरथ हो अपने महाबली मित्रोंके साथ आ रहे हैं । उनके साथ महातेजस्वी लक्ष्मण और यशस्विनी विदेहराजकुमारी सीता भी हैं । जैसे देवराज इन्द्रके साथ शची शोभा पाती हैं, उसी प्रकार श्रीरामके साथ पूर्णकामा सीताजी सुशोभित हो रही हैं' ॥ ३८-३९ ॥

एवमुक्तो हनुमता भरतः कैकयीसुतः ।
पपात सहसा हृष्टो हर्षान्मोहमुपागमत् ॥ ४० ॥

हनुमान्‌जीके ऐसा कहते ही कैकेयी-कुमार भरत सहसा आनन्दविभोर हो पृथ्वीपर गिर पड़े और हर्षसे मूर्च्छित हो गये ॥ ४० ॥

ततो मुहूर्तादुत्थाय प्रत्याश्वस्य च राघवः ।
हनूमन्तमुवाचेदं भरतः प्रियवादिनम् ॥ ४१ ॥
अशोकजैः प्रीतिमयैः कपिमालिङ्ग्य सम्भ्रमात् ।
सिषेच भरतः श्रीमान् विपुलैरश्रुबिन्दुभिः ॥ ४२ ॥

तत्पश्चात् दो घड़ीके बाद उन्हें होश हुआ और वे उठकर खड़े हो गये । उस समय रघुकुलभूषण श्रीमान् भरतने प्रियवादी हनुमान्‌जीको बड़े वेगसे पकड़कर दोनों भुजाओंमें भर लिया और शोक-संसर्गसे शून्य परमानन्दजनित विपुल अश्रु-बिन्दुओंसे वे उन्हें नहलाने लगे । फिर इस प्रकार बोले—॥

देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिहागतः ।
प्रियाख्यानस्य ते सौम्य ददामि ब्रुवतः प्रियम् ॥ ४३ ॥

'भैया ! तुम कोई देवता हो या मनुष्य, जो मुझपर

कृपा करके यहाँ पधारे हो ? सौम्य ! तुमने जो यह प्रिय संवाद सुनाया है, इसके बदले मैं तुम्हें कौन-सी प्रिय वस्तु प्रदान करूँ ? (मुझे तो कोई ऐसा बहुमूल्य उपहार नहीं दिखायी देता, जो इस प्रिय संवादके तुल्य हो) ॥ ४३ ॥

गवां शतसहस्रं च ग्रामाणां च शतं परम् ।
✓ **सकुण्डलाः शुभाचारा भार्याः कन्यास्तु षोडश ॥ ४४ ॥**
हेमवर्णाः सुनासोरूः शशिसौम्याननाः स्त्रियः ।
सर्वाभरणसम्पन्नाः सम्पन्नाः कुलजातिभिः ॥ ४५ ॥

'(तथापि) मैं तुम्हें इसके लिये एक लाख गौएँ, सौ उत्तम गाँव तथा उत्तम आचार-विचारवाली सोलह कुमारी कन्याएँ पत्नीरूपमें समर्पित करता हूँ । उन कन्याओंके कानोंमें सुन्दर कुण्डल जगमगाते होंगे । उनकी अङ्ग-कान्ति सुवर्णके समान होगी । उनकी नासिका सुघड़, ऊरु मनोहर और मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर होंगे । वे कुलीन होनेके साथ ही सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित होंगी' ॥ ४४-४५ ॥

निशम्य रामागमनं नृपात्मजः
कपिप्रवीरस्य तदाद्भुतोपमम् ।
प्रहर्षितो रामदिदृक्षयाभवत्
पुनश्च हर्षादिदमब्रवीद् वचः ॥ ४६ ॥

उस प्रमुख वानर-वीर हनुमान्जीके मुखसे श्रीरामचन्द्रजीके आगमनका अद्भुत समाचार सुनकर राजकुमार भरतको श्रीरामके दर्शनकी इच्छासे अत्यन्त हर्ष हुआ और उस हर्षातिरेकसे ही वे फिर इस प्रकार बोले— ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ पचीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२५ ॥

षड्विंशत्यधिकशततमः सर्गः

हनुमान्जीका भरतको श्रीराम, लक्ष्मण और सीताके वनवाससम्बन्धी सारे वृत्तान्तोंको सुनाना

बहूनि नाम वर्षाणि गतस्य सुमहद्वनम् ।
शृणोम्यहं प्रीतिकरं मम नाथस्य कीर्तनम् ॥ १ ॥

'मेरे स्वामी श्रीरामको विशाल वनमें गये बहुत वर्ष बीत गये । इतने वर्षोंके बाद आज मुझे उनकी आनन्ददायिनी चर्चा सुननेको मिली है ॥ १ ॥

✓ **कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति माम् ।**
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥ २ ॥

'आज यह कल्याणमयी लौकिक गाथा मुझे यथार्थ जान पड़ती है—मनुष्य यदि जीता रहे तो उसे कभी-न-कभी हर्ष और आनन्दकी प्राप्ति होती ही है, भले ही वह सौ वर्षों बाद हो ॥ २ ॥

राघवस्य हरीणां च कथमासीत् समागमः ।
कस्मिन् देशे किमाश्रित्य तत्त्वमाख्याहि पृच्छतः ॥ ३ ॥

'सौम्य ! श्रीरघुनाथजीका और वानरोंका यह मेल-जोल कैसे हुआ ? किस देशमें और किस कारणको लेकर हुआ ? यह मैं जानना चाहता हूँ । तुम मुझे ठीक-ठीक बताओ' ॥

स पृष्टो राजपुत्रेण बृस्यां समुपवेशितः ।
आचचक्षे ततः सर्वं रामस्य चरितं वने ॥ ४ ॥

राजकुमार भरतके इस प्रकार पूछनेपर कुशासनपर बैठाये हुए हनुमान्जीने श्रीरामका वनवासविषयक सारा चरित्र उनसे कह सुनाया— ॥ ४ ॥

यथा प्रव्राजितो रामो मातुर्दत्तौ वरौ तव ।
यथा च पुत्रशोकेन राजा दशरथो मृतः ॥ ५ ॥
यथा दूतैस्त्वमानीतस्तूर्णं राजगृहात् प्रभो ।
त्वयायोध्यां प्रविष्टेन यथा राज्यं न चेप्सितम् ॥ ६ ॥
चित्रकूटगिरिं गत्वा राज्येनामित्रकर्शनः ।
निमन्त्रितस्त्वया भ्राता धर्ममाचरता सताम् ॥ ७ ॥
स्थितेन राज्ञो वचने यथा राज्यं विसर्जितम् ।
आर्यस्य पादुके गृह्य यथासि पुनरागतः ॥ ८ ॥
सर्वमेतन्महाबाहो यथावद् विदितं तव ।
त्वयि प्रतिप्रयाते तु यद् वृत्तं तन्निबोध मे ॥ ९ ॥

'प्रभो ! महाबाहो ! जिस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीको वनवास दिया गया, जिस तरह आपकी माताको दो वर प्रदान किये गये, जैसे पुत्रशोकसे राजा दशरथकी मृत्यु हुई, जिस प्रकार आप राजगृहसे दूतोंद्वारा शीघ्र ही बुलाये गये, जिस तरह अयोध्यामें प्रवेश करके आपने राज्य लेनेकी इच्छा नहीं की और सत्पुरुषोंके धर्मका आचरण करते हुए चित्रकूट-पर्वतपर जाकर अपने शत्रुसूदन भाईको आपने राज्य लेनेके लिये

निमन्त्रित किया, फिर उन्होंने जिस प्रकार राजा दशरथके वचनका पालन करनेमें दृढ़तापूर्वक स्थित होकर राज्यको त्याग दिया तथा जिस प्रकार अपने बड़े भाईकी चरण-पादुकाएँ लेकर आप फिर लौट आये—ये सब बातें तो आपको यथावत् रूपसे विदित ही हैं । आपके लौट आनेके बाद जो वृत्तान्त घटित हुआ, वह बता रहा हूँ, मुझसे सुनिये—॥ ५-९ ॥

अपयाते त्वयि तदा समुद्भ्रान्तमृगद्विजम् ।
परिद्यूनमिवात्यर्थं तद् वनं समपद्यत ॥ १० ॥
तद्धस्तिमृदितं घोरं सिंहव्याघ्रमृगाकुलम् ।
प्रविवेशाथ विजनं स महद् दण्डकावनम् ॥ ११ ॥

'आपके लौट आनेपर वह वन सब ओरसे अत्यन्त क्षीण-सा हो चला । वहाँके पशु-पक्षी भयसे घबरा उठे थे, तब उस वनको छोड़कर श्रीरामने विशाल दण्डकारण्यमें प्रवेश किया, जो निर्जन था । उस घोर वनको हाथियोंने रौंद डाला था । उसमें सिंह, व्याघ्र और मृग भरे हुए थे ॥ १०-११ ॥

तेषां पुरस्ताद् बलवान् गच्छतां गहने वने ।
विनदन् सुमहानादं विराधः प्रत्यदृश्यत ॥ १२ ॥

'उस गहन वनमें जाते हुए इन तीनोंके आगे महान् गर्जना करता हुआ बलवान् राक्षस विराध दिखायी दिया ॥

तमुत्क्षिप्य महानादमूर्ध्वबाहुमधोमुखम् ।
निखाते प्रक्षिपन्ति स्म नदन्तमिव कुञ्जरम् ॥ १३ ॥

'ऊपर बाँह और नीचे मुँह किये चिग्घाड़ते हुए हाथीके समान जोर-जोरसे गर्जना करनेवाले उस राक्षसको उन तीनोंने मारकर गड्ढेमें फेंक दिया ॥ १३ ॥

तत् कृत्वा दुष्करं कर्म भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
सायाह्ने शरभङ्गस्य रम्यमाश्रममीयतुः ॥ १४ ॥

'वह दुष्कर कर्म करके दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण सायंकालमें शरभङ्ग मुनिके रमणीय आश्रमपर जा पहुँचे ॥ १४ ॥

शरभङ्गे दिवं प्राप्ते रामः सत्यपराक्रमः ।
अभिवाद्य मुनीन् सर्वाञ्जनस्थानमुपागमत् ॥ १५ ॥

'शरभंग मुनि श्रीरामके समक्ष स्वर्गलोकको चले गये । तब सत्यपराक्रमी श्रीराम सब मुनियोंको प्रणाम करके जनस्थानमें आये ॥ १५ ॥

पश्चाच्छूर्पणखा नाम रामपार्श्वमुपागता ।
ततो रामेण संदिष्टो लक्ष्मणः सहसोत्थितः ॥ १६ ॥
प्रगृह्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासं महाबलः ।

'जनस्थानमें आनेके बाद शूर्पणखा नामवाली एक राक्षसी (मनमें कामभाव लेकर) श्रीरामचन्द्रजीके पास आयी । तब श्रीरामने लक्ष्मणको उसे दण्ड देनेका आदेश दिया । महाबली लक्ष्मणने सहसा उठकर तलवार उठायी और उस राक्षसीके नाक-कान काट लिये ॥ १६½ ॥

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥ १७ ॥
हतानि वसता तत्र राघवेण महात्मना ।

'वहाँ रहते हुए महात्मा श्रीरघुनाथजीने अकेले ही शूर्पणखाकी प्रेरणासे आये हुए भयानक कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंका वध किया ॥ १७½ ॥

एकेन सह संगम्य रामेण रणमूर्धनि ॥ १८ ॥
अह्नश्चतुर्थभागेन निःशेषा राक्षसाः कृताः ।

'युद्धके मुहानेपर एकमात्र श्रीरामके साथ भिड़कर वे समस्त राक्षस पहरभरमें ही समाप्त हो गये ॥ १८½ ॥

महाबला महावीर्यास्तपसो विघ्नकारिणः ॥ १९ ॥
निहता राघवेणाजौ दण्डकारण्यवासिनः ।

'तपस्यामें विघ्न डालनेवाले उन दण्डकारण्यनिवासी महाबली और महापराक्रमी राक्षसोंको श्रीरघुनाथजीने युद्धमें मार डाला ॥ १९½ ॥

राक्षसाश्च विनिष्पिष्टाः खरश्च निहतो रणे ॥ २० ॥
दूषणं चाग्रतो हत्वा त्रिशिरास्तदनन्तरम् ।

'उस रणभूमिमें वे चौदह हजार राक्षस पीस डाले गये, खर मारा गया, फिर दूषणका काम तमाम हुआ । तदनन्तर त्रिशिराको भी मौतके घाट उतार दिया गया ॥ २०½ ॥

ततस्तेनार्दिता बाला रावणं समुपागता ॥ २१ ॥
रावणानुचरो घोरो मारीचो नाम राक्षसः ।
लोभयामास वैदेहीं भूत्वा रत्नमयो मृगः ॥ २२ ॥

'इस घटनासे पीड़ित होकर वह मूर्ख राक्षसी लङ्कामें रावणके पास गयी । रावणके कहनेसे उसके अनुचर मारीच नामक भयंकर राक्षसने रत्नमय मृगका रूप धारण करके विदेहराजकुमारी सीताको लुभाया ॥ २१-२२ ॥

सा राममब्रवीद् दृष्ट्वा वैदेही गृह्यतामिति ।
अयं मनोहरः कान्त आश्रमो नो भविष्यति ॥ २३ ॥

'उस मृगको देखकर सीताने श्रीरामसे कहा—'आर्यपुत्र! इस मृगको पकड़ लीजिये । इसके रहनेसे मेरा यह आश्रम कान्तिमान् एवं मनोहर हो जायगा' ॥ २३ ॥

ततो रामो धनुष्पाणिर्मृगं तमनुधावति ।
स तं जघान धावन्तं शरेणानतपर्वणा ॥ २४ ॥

'तब श्रीरामने हाथमें धनुष लेकर उस मृगका पीछा किया और झुकी हुई गाँठवाले एक बाणसे उस भागते हुए मृगको मार डाला ॥ २४ ॥

अथ सौम्य दशग्रीवो मृगं याति तु राघवे ।
लक्ष्मणे चापि निष्क्रान्ते प्रविवेशाश्रमं तदा ॥ २५ ॥

'सौम्य ! जब श्रीरघुनाथजी मृगके पीछे जा रहे थे और लक्ष्मण भी उन्हींका समाचार लेनेके लिये पर्णशालासे बाहर निकल गये, तब रावणने उस आश्रममें प्रवेश किया ॥ २५ ॥

जग्राह तरसा सीतां ग्रहः खे रोहिणीमिव ।
त्रातुकामं ततो युद्धे हत्वा गृध्रं जटायुषम् ॥ २६ ॥
प्रगृह्य सहसा सीतां जगामाशु स राक्षसः ।

'उसने बलपूर्वक सीताको पकड़ लिया, मानो आकाशमें मंगलने रोहिणीपर आक्रमण किया हो । उस समय उनकी रक्षाके लिये आये हुए गृध्रराज जटायुको युद्धमें मारकर वह राक्षस सहसा सीताको साथ ले वहाँसे जल्दी ही चम्पत हो गया ॥

ततस्त्वद्भुतसंकाशाः स्थिताः पर्वतमूर्धनि ॥ २७ ॥
सीतां गृहीत्वा गच्छन्तं वानराः पर्वतोपमाः ।
ददृशुर्विस्मिताकारा रावणं राक्षसाधिपम् ॥ २८ ॥

'तदनन्तर एक पर्वत-शिखरपर रहनेवाले पर्वतोंके समान ही अद्भुत एवं विशाल शरीरवाले वानरोंने आश्चर्यचकित हो सीताको लेकर जाते हुए राक्षसराज रावणको देखा ॥ २७-२८ ॥

ततः शीघ्रतरं गत्वा तद् विमानं मनोजवम् ।
आरुह्य सह वैदेह्या पुष्पकं स महाबलः ॥ २९ ॥
प्रविवेश तदा लङ्कां रावणो राक्षसेश्वरः ।

'वह महाबली राक्षसराज रावण बड़ी शीघ्रताके साथ मनके समान वेगशाली पुष्पक विमानके पास जा पहुँचा और सीताके साथ उसपर आरूढ़ हो उसने लङ्कामें प्रवेश किया ॥

तां सुवर्णपरिष्कारे शुभे महति वेश्मनि ॥ ३० ॥
प्रवेश्य मैथिलीं वाक्यैः सान्त्वयामास रावणः ।

'वहाँ सुवर्णभूषित विशाल भवनमें मिथिलेशकुमारीको ठहराकर रावण चिकनी-चुपड़ी बातोंसे उन्हें सान्त्वना देने लगा ॥

तृणवद् भाषितं तस्य तं च नैर्ऋतपुङ्गवम् ॥ ३१ ॥
अचिन्तयन्ती वैदेही ह्यशोकवनिकां गता ।

'अशोकवाटिकामें रहती हुई विदेहनन्दिनीने रावणकी बातोंको तथा स्वयं उस राक्षसराजको भी तिनकेके समान मानकर ठुकरा दिया और कभी उसका चिन्तन नहीं किया ॥

न्यवर्तत तदा रामो मृगं हत्वा तदा वने ॥ ३२ ॥
निवर्तमानः काकुत्स्थो दृष्ट्वा गृध्रं स विव्यथे ।
गृध्रं हतं तदा दृष्ट्वा रामः प्रियतरं पितुः ॥ ३३ ॥

'उधर वनमें श्रीरामचन्द्रजी मृगको मारकर लौटे । लौटते समय जब उन्होंने पितासे भी अधिक प्रिय गृध्रराजको मारा गया देखा, तब उनके मनमें बड़ी व्यथा हुई ॥

मार्गमाणस्तु वैदेहीं राघवः सहलक्ष्मणः ।
गोदावरीमनुचरन् वनोद्देशांश्च पुष्पितान् ॥ ३४ ॥

'लक्ष्मणसहित श्रीरघुनाथजी विदेहराजकुमारी सीताकी खोज करते हुए गोदावरीतटके पुष्पित वनप्रान्तमें विचरने लगे ॥ ३४ ॥

आसेदतुर्महारण्ये कबन्धं नाम राक्षसम् ।
ततः कबन्धवचनाद् रामः सत्यपराक्रमः ॥ ३५ ॥
ऋष्यमूकगिरिं गत्वा सुग्रीवेण समागतः ।

'खोजते-खोजते वे दोनों भाई उस विशाल वनमें कबन्ध नामक राक्षसके पास जा पहुँचे । तदनन्तर सत्यपराक्रमी रामने कबन्धका उद्धार किया और उसीके कहनेसे वे ऋष्यमूक पर्वतपर जाकर सुग्रीवसे मिले ॥ ३५½ ॥

तयोः समागमः पूर्वं प्रीत्या हार्दो व्यजायत ॥ ३६ ॥
भ्रात्रा निरस्तः क्रुद्धेन सुग्रीवो वालिना पुरा ।
इतरेतरसंवादात् प्रगाढः प्रणयस्तयोः ॥ ३७ ॥

'उन दोनोंमें एक दूसरेके साक्षात्कारसे पहले ही हार्दिक मित्रता हो गयी थी । पूर्वकालमें क्रुद्ध हुए बड़े भाई वालीने सुग्रीवको घरसे निकाल दिया था । श्रीराम और सुग्रीवमें जब परस्पर बातें हुईं, तब उनमें और भी प्रगाढ़ प्रेम हो गया ॥ ३६-३७ ॥

रामः स्वबाहुवीर्येण स्वराज्यं प्रत्यपादयत् ।
वालिनं समरे हत्वा महाकायं महाबलम् ॥ ३८ ॥

'श्रीरामने अपने बाहुबलसे समराङ्गणमें महाकाय, महाबली वालीका वध करके सुग्रीवको उनका राज्य दिला दिया ॥ ३८ ॥

सुग्रीवः स्थापितो राज्ये सहितः सर्ववानरैः ।
रामाय प्रतिजानीते राजपुत्र्यास्तु मार्गणम् ॥ ३९ ॥

'श्रीरामने समस्त वानरोंसहित सुग्रीवको अपने राज्यपर स्थापित कर दिया और सुग्रीवने श्रीरामके समक्ष यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं राजकुमारी सीताकी खोज करूँगा ॥ ३९ ॥

आदिष्टा वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण महात्मना ।
दश कोट्यः प्लवङ्गानां सर्वाः प्रस्थापिता दिशः ॥ ४० ॥

'तदनुसार महात्मा वानरराज सुग्रीवने दस करोड़ वानरोंको सीताका पता लगानेकी आज्ञा देकर सम्पूर्ण दिशाओंमें भेजा ॥ ४० ॥

तेषां नो विप्रकृष्टानां विन्ध्ये पर्वतसत्तमे ।
भृशं शोकाभितप्तानां महान् कालोऽत्यवर्तत ॥ ४१ ॥

'उन्हीं वानरोंमें हमलोग भी थे । गिरिराज विन्ध्यकी गुफामें प्रवेश कर जानेके कारण हमारे लौटनेका नियत समय बीत गया । हमने बहुत विलम्ब कर दिया । हमारे अत्यन्त शोकमें पड़े-पड़े दीर्घकाल व्यतीत हो गया ॥ ४१ ॥

भ्राता तु गृध्रराजस्य सम्पातिर्नाम वीर्यवान् ।
समाख्याति स वसतीं सीतां रावणमन्दिरे ॥ ४२ ॥

'तदनन्तर गृध्रराज जटायुके एक पराक्रमी भाई मिल

गये, जिनका नाम था सम्पाति। उन्होंने हमें बताया कि सीता लङ्कामें रावणके भवनमें निवास करती हैं ॥ ४२ ॥

सोऽहं दुःखपरीतानां दुःखं तज्ज्ञातिनां नुदन्।
आत्मवीर्यं समास्थाय योजनानां शतं प्लुतः।
तत्राहमेकामद्राक्षमशोकवनिकां गताम् ॥ ४३ ॥

‘तब दुःखमें डूबे हुए अपने भाई-बन्धुओंके कष्टका निवारण करनेके लिये मैं अपने बल-पराक्रमका सहारा ले सौ योजन समुद्रको लाँघ गया और लङ्कामें अशोकवाटिकाके भीतर अकेली बैठी हुई सीतासे मिला ॥ ४३ ॥

कौशेयवस्त्रां मलिनां निरानन्दां दृढव्रताम्।
तया समेत्य विधिवत् पृष्ट्वा सर्वमनिन्दिताम् ॥ ४४ ॥
अभिज्ञानं मया दत्तं रामनामाङ्गुलीयकम्।
अभिज्ञानं मणिं लब्ध्वा चरितार्थोऽहमागतः ॥ ४५ ॥

‘वे एक रेशमी साड़ी पहने हुए थीं। शरीरसे मलिन और आनन्दशून्य जान पड़ती थीं तथा पातिव्रत्यके पालनमें दृढ़तापूर्वक लगी थीं। उनसे मिलकर मैंने उन सती-साध्वी देवीसे विधिपूर्वक सारा समाचार पूछा और पहचानके लिये श्रीरामनामसे अङ्कित अँगूठी उन्हें दे दी। साथ ही उनकी ओरसे पहचानके तौरपर चूड़ामणि लेकर मैं कृतकृत्य होकर लौट आया ॥ ४४-४५ ॥

मया च पुनरागम्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
अभिज्ञानं मया दत्तमर्चिष्मान् स महामणिः ॥ ४६ ॥

‘अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामके पास पुनः लौटकर मैंने वह तेजस्वी महामणि पहचानके रूपमें उन्हें दे दी ॥ ४६ ॥

श्रुत्वा तां मैथिलीं रामस्त्वाशशंसे च जीवितम्।
जीवितान्तमनुप्राप्तः पीत्वामृतमिवातुरः ॥ ४७ ॥

‘जैसे मृत्युके निकट पहुँचा हुआ रोगी अमृत पीकर पुनः जी उठता है, उसी प्रकार सीताके वियोगमें मरणासन्न हुए श्रीरामने उनका शुभ समाचार पाकर जीवित रहनेकी आशा की ॥ ४७ ॥

उद्योजयिष्यन्नुद्योगं दध्रे लङ्कावधे मनः।
जिघांसुरिव लोकान्ते सर्वाँल्लोकान् विभावसुः॥ ४८ ॥

‘फिर जैसे प्रलयकालमें संवर्तकनामक अग्निदेव सम्पूर्ण लोकोंको भस्म कर डालनेके लिये उद्यत हो जाते हैं, उसी प्रकार सेनाको प्रोत्साहन देते हुए श्रीरामने लङ्कापुरीको नष्ट कर डालनेका विचार किया ॥ ४८ ॥

ततः समुद्रमासाद्य नलं सेतुमकारयत्।
अतरत् कपिवीराणां वाहिनी तेन सेतुना ॥ ४९ ॥

‘इसके बाद समुद्रतटपर आकर श्रीरामने नल नामक वानरसे समुद्रपर पुल बँधवाया और उस पुलसे वानरवीरोंकी सारी सेना सागरके पार जा पहुँची ॥ ४९ ॥

प्रहस्तमवधीन्नीलः कुम्भकर्णं तु राघवः।
लक्ष्मणो रावणसुतं स्वयं रामस्तु रावणम् ॥ ५० ॥

‘वहाँ युद्धमें नीलने प्रहस्तको, लक्ष्मणने रावणपुत्र इन्द्रजित्को तथा साक्षात् रघुकुलनन्दन श्रीरामने कुम्भकर्ण एवं रावणको मार डाला ॥ ५० ॥

स शक्रेण समागम्य यमेन वरुणेन च।
महेश्वरस्वयंभूभ्यां तथा दशरथेन च ॥ ५१ ॥

‘तत्पश्चात् श्रीरघुनाथजी क्रमशः इन्द्र, यम, वरुण, महादेवजी, ब्रह्माजी तथा महाराज दशरथसे मिले ॥ ५१ ॥

तैश्च दत्तवरः श्रीमानृषिभिश्च समागतैः।
सुरर्षिभिश्च काकुत्स्थो वराँल्लेभे परंतपः ॥ ५२ ॥

‘वहाँ पधारे हुए ऋषियों तथा देवर्षियोंने शत्रुसंतापी श्रीमान् रघुवीरको वरदान दिया। उनसे श्रीरामने वर प्राप्त किया ॥ ५२ ॥

स तु दत्तवरः प्रीत्या वानरैश्च समागतैः।
पुष्पकेण विमानेन किष्किन्धामभ्युपागमत् ॥ ५३ ॥

‘वर पाकर प्रसन्नतासे भरे हुए श्रीरामचन्द्रजी वानरोंके साथ पुष्पकविमानद्वारा किष्किन्धा आये ॥ ५३ ॥

तां गङ्गां पुनरासाद्य वसन्तं मुनिसंनिधौ।
अविघ्नं पुष्ययोगेन श्वो रामं द्रष्टुमर्हसि ॥ ५४ ॥

‘वहाँसे फिर गङ्गातटपर आकर प्रयागमें भरद्वाजमुनिके समीप वे ठहरे हुए हैं। कल पुष्य नक्षत्रके योगमें आप बिना किसी विघ्न-बाधाके श्रीरामका दर्शन करेंगे’ ॥ ५४ ॥

ततः स वाक्यैर्मधुरैर्हनूमतो
निशम्य हृष्टो भरतः कृताञ्जलिः।
उवाच वाणीं मनसः प्रहर्षिणीं
चिरस्य पूर्णः खलु मे मनोरथः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार हनुमान्‌जीके मधुर वाक्योंद्वारा सारी बातें सुनकर भरतजी बड़े प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर मनको हर्ष प्रदान करनेवाली वाणीमें बोले—‘आज चिरकालके बाद मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ’ ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षड्विंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२६ ॥

सप्तविंशत्यधिकशततमः सर्गः

अयोध्यामें श्रीरामके स्वागतकी तैयारी, भरतके साथ सबका श्रीरामकी अगवानीके लिये नन्दिग्राममें पहुँचना, श्रीरामका आगमन, भरत आदिके साथ उनका मिलाप तथा पुष्पकविमानको कुबेरके पास भेजना

श्रुत्वा तु परमानन्दं भरतः सत्यविक्रमः ।
हृष्टमाज्ञापयामास शत्रुघ्नं परवीरहा ॥ १ ॥

यह परमानन्दमय समाचार सुनकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सत्यपराक्रमी भरतने शत्रुघ्नको हर्षपूर्वक आज्ञा दी—॥

दैवतानि च सर्वाणि चैत्यानि नगरस्य च ।
सुगन्धमाल्यैर्वादित्रैरर्चन्तु शुचयो नराः ॥ २ ॥

'शुद्धाचारी पुरुष कुलदेवताओंका तथा नगरके सभी देवस्थानोंका गाजे-बाजेके साथ सुगन्धित पुष्पोंद्वारा पूजन करें ॥ २ ॥

सूताः स्तुतिपुराणज्ञाः सर्वे वैतालिकास्तथा ।
सर्वे वादित्रकुशला गणिकाश्चैव सर्वशः ॥ ३ ॥
राजदारास्तथामात्याः सैन्याः सेनाङ्गनागणाः ।
ब्राह्मणाश्च सराजन्याः श्रेणीमुख्यास्तथा गणाः ॥ ४ ॥
अभिनिर्यान्तु रामस्य द्रष्टुं शशिनिभं मुखम् ।

'स्तुति और पुराणोंके जानकार सूत, समस्त वैतालिक (भाँट), बाजे बजानेमें कुशल सब लोग, सभी गणिकाएँ, राजरानियाँ, मन्त्रीगण, सेनाएँ, सैनिकोंकी स्त्रियाँ, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा व्यवसायी संघके मुखिया लोग श्रीरामचन्द्रजीके मुखचन्द्रका दर्शन करनेके लिये नगरसे बाहर चलें' ॥३-४½॥

भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नः परवीरहा ॥ ५ ॥
विष्टीरनेकसाहस्रीश्चोदयामास भागशः ।
समीकुरुत निम्नानि विषमाणि समानि च ॥ ६ ॥

भरतजीकी यह बात सुनकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले शत्रुघ्नने कई हजार मजदूरोंकी अलग-अलग टोलियाँ बनाकर उन्हें आज्ञा दी—'तुमलोग ऊँची-नीची भूमियोंको समतल बना दो ॥ ५-६ ॥

स्थानानि च निरस्यन्तां नन्दिग्रामादितः परम् ।
सिञ्चन्तु पृथिवीं कृत्स्नां हिमशीतेन वारिणा ॥ ७ ॥

'अयोध्यासे नन्दिग्रामतकका मार्ग साफ कर दो, आसपासकी सारी भूमिपर बर्फकी तरह ठंडे जलका छिड़काव कर दो ॥ ७ ॥

ततोऽभ्यवकिरन्त्वन्ये लाजैः पुष्पैश्च सर्वतः ।
समुच्छ्रितपताकास्तु रथ्याः पुरवरोत्तमे ॥ ८ ॥

'तत्पश्चात् दूसरे लोग रास्तेमें सब ओर लावा और फूल बिखेर दें । इस श्रेष्ठ नगरकी सड़कोंके अगल-बगलमें ऊँची पताकाएँ फहरा दी जायँ ॥ ८ ॥

शोभयन्तु च वेश्मानि सूर्यस्योदयनं प्रति ।
स्रग्दाममुक्तपुष्पैश्च सुवर्णैः पञ्चवर्णकैः ॥ ९ ॥

'कल सूर्योदयतक लोग नगरके सब मकानोंको सुनहरी पुष्पमालाओं, घनीभूत फूलोंके मोटे गजरों, सूतके बन्धनसे रहित कमल आदिके पुष्पों तथा पंचरंगे अलङ्कारोंसे सजा दें ॥ ९ ॥

राजमार्गमसम्बाधं किरन्तु शतशो नराः ।
ततस्तच्छासनं श्रुत्वा शत्रुघ्नस्य मुदान्विताः ॥ १० ॥

'राजमार्गपर अधिक भीड़ न हो, इसकी व्यवस्थाके लिये सैकड़ों मनुष्य सब ओर लग जायँ ।' शत्रुघ्नका वह आदेश सुनकर सब लोग बड़ी प्रसन्नताके साथ उसके पालनमें लग गये ॥ १० ॥

धृष्टिर्जयन्तो विजयः सिद्धार्थश्चार्थसाधकः ।
अशोको मन्त्रपालश्च सुमन्त्रश्चापि निर्ययुः ॥ ११ ॥
मत्तैर्नागसहस्रैश्च सध्वजैः सुविभूषितैः ।

धृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, अर्थसाधक, अशोक, मन्त्रपाल और सुमन्त्र—ये आठों मन्त्री ध्वजा और आभूषणोंसे विभूषित मतवाले हाथियोंपर चढ़कर चले ॥ ११½ ॥

अपरे हेमकक्षाभिः सगजाभिः करेणुभिः ॥ १२ ॥
निर्ययुस्तुरगाक्रान्ता रथैश्च सुमहारथाः ।

दूसरे बहुतसे महारथी वीर सुनहरे रस्सोंसे कसी हुई हथिनियों, हाथियों, घोड़ों और रथोंपर सवार होकर निकले १२½

शक्त्यृष्टिपाशहस्तानां सध्वजानां पताकिनाम् ॥ १३ ॥
तुरगाणां सहस्रैश्च मुख्यैर्मुख्यतरान्वितैः ।
पदातीनां सहस्रैश्च वीराः परिवृता ययुः ॥ १४ ॥

ध्वजा-पताकाओंसे विभूषित हजारों अच्छे-अच्छे घोड़ों और घुड़सवारों तथा हाथोंमें शक्ति, ऋष्टि और पाश धारण करनेवाले सहस्रों पैदल योद्धाओंसे घिरे हुए वीर पुरुष श्रीरामकी अगवानीके लिये गये ॥ १३-१४ ॥

ततो यानान्युपारूढाः सर्वा दशरथस्त्रियः ।
कौसल्यां प्रमुखे कृत्वा सुमित्रां चापि निर्ययुः ॥ १५ ॥
कैकेय्या सहिताः सर्वा नन्दिग्राममुपागमन् ॥ १६ ॥

तदनन्तर राजा दशरथकी सभी रानियाँ सवारियोंपर चढ़कर कौसल्या और सुमित्राको आगे करके निकलीं तथा कैकेयीसहित सब-की-सब नन्दिग्राममें आ पहुँचीं ॥ १५-१६ ॥

द्विजातिमुख्यैर्धर्मात्मा श्रेणीमुख्यैः सनैगमैः ।
माल्यमोदकहस्तैश्च मन्त्रिभिर्भरतो वृतः ॥ १७ ॥
शङ्खभेरीनिनादैश्च बन्दिभिश्चाभिनन्दितः ।
आर्यपादौ गृहीत्वा तु शिरसा धर्मकोविदः ॥ १८ ॥

धर्मात्मा एवं धर्मज्ञ भरत मुख्य-मुख्य ब्राह्मणों, व्यवसायी वर्गके प्रधानों, वैश्यों तथा हाथोंमें माला और मिठाई लिये मन्त्रियोंसे घिरकर अपने बड़े भाईकी चरणपादुकाओंको सिरपर धारण किये शङ्खों और भेरियोंकी गम्भीर ध्वनिके साथ चले । उस समय बन्दीजन उनका अभिनन्दन कर रहे थे ॥ १७–१८ ॥

पाण्डुरं छत्रमादाय शुक्लमाल्योपशोभितम् ।
शुक्ले च वालव्यजने राजार्हे हेमभूषिते ॥ १९ ॥

श्वेत मालाओंसे सुशोभित सफेद रंगका छत्र तथा राजाओंके योग्य सोनेसे मढ़े हुए दो श्वेत चँवर भी उन्होंने अपने साथ ले रक्खे थे ॥ १९ ॥

उपवासकृशो दीनश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः ।
भ्रातुरागमनं श्रुत्वा तत्पूर्वं हर्षमागतः ॥ २० ॥

भरतजी उपवासके कारण दीन और दुर्बल हो रहे थे । वे चीर-वस्त्र और कृष्णमृगचर्म धारण किये थे । भाईका आगमन सुनकर पहले-पहल उन्हें महान् हर्ष हुआ था ॥ २० ॥

प्रत्युद्ययौ यदा रामं महात्मा सचिवैः सह ।
अश्वानां खुरशब्दैश्च रथनेमिस्वनेन च ॥ २१ ॥
शङ्खदुन्दुभिनादेन संचचालेव मेदिनी ।
गजानां बृंहितैश्चापि शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ २२ ॥

महात्मा भरत उस समय श्रीरामकी अगवानीके लिये आगे बढ़े । घोड़ोंकी टापों, रथके पहियोंकी नेमियों और शङ्खों एवं दुन्दुभियोंके गम्भीर नादोंसे सारी पृथ्वी हिलती-सी जान पड़ती थी । शङ्खों और दुन्दुभियोंकी ध्वनियोंसे मिले हुए हाथियोंके गर्जन-शब्द भी भूतलको कम्पित-सा किये देते थे ॥ २१-२२ ॥

कृत्स्नं तु नगरं तत् तु नन्दिग्राममुपागमत् ।
समीक्ष्य भरतो वाक्यमुवाच पवनात्मजम् ॥ २३ ॥

भरतजीने जब देखा कि अयोध्यापुरीके सभी नागरिक नन्दिग्राममें आ गये हैं, तब उन्होंने पवनपुत्र हनुमान्‌जीसे कहा—॥ २३ ॥

कच्चिन्न खलु कापेयी सेव्यते चलचित्तता ।
नहि पश्यामि काकुत्स्थं राममार्यं परंतपम् ॥ २४ ॥
कच्चिन्न चानुदृश्यन्ते कपयः कामरूपिणः ।

'वानर-वीर ! वानरोंका चित्त स्वभावतः चञ्चल होता है । कहीं आपने भी उसी गुणका सेवन तो नहीं किया है—श्रीरामके आनेकी झूठी ही खबर तो नहीं उड़ा दी है; क्योंकि मुझे अभीतक शत्रुओंको संताप देनेवाले ककुत्स्थकुलभूषण आर्य श्रीरामके दर्शन नहीं हो रहे हैं तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानर भी कहीं दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं?' ॥ २४½ ॥

अथैवमुक्ते वचने हनूमानिदमब्रवीत् ॥ २५ ॥
अर्थ्यं विज्ञापयन्नेव भरतं सत्यविक्रमम् ।

भरतजीके ऐसा कहनेपर हनुमान्‌जीने सार्थक एवं सत्य बात बतानेके लिये उन सत्यपराक्रमी भरतजीसे कहा—॥ २५½ ॥

सदाफलान् कुसुमितान् वृक्षान् प्राप्य मधुस्रवान् ॥ २६ ॥
भरद्वाजप्रसादेन मत्तभ्रमरनादितान् ।

'मुनिवर भरद्वाजजीकी कृपासे रास्तेके सभी वृक्ष सदा फूलने-फलनेवाले हो गये हैं और उनसे मधुकी धाराएँ गिरती हैं । उन वृक्षोंपर मतवाले भ्रमर निरन्तर गूँजते रहते हैं । उन्हें पाकर वानरलोग अपनी भूख-प्यास मिटाने लगे हैं ॥

तस्य चैव वरो दत्तो वासवेन परंतप ॥ २७ ॥
ससैन्यस्य तदातिथ्यं कृतं सर्वगुणान्वितम् ।

'परंतप ! देवराज इन्द्रने भी श्रीरामचन्द्रजीको ऐसा ही वरदान दिया था । अतएव भरद्वाजजीने सेनासहित श्रीरामचन्द्रजीका सर्वगुणसम्पन्न—साङ्गोपाङ्ग आतिथ्य-सत्कार किया है ॥ २७½ ॥

निःस्वनः श्रूयते भीमः प्रहृष्टानां वनौकसाम् ॥ २८ ॥
मन्ये वानरसेना सा नदीं तरति गोमतीम् ।

'किंतु देखिये, अब हर्षसे भरे हुए वानरोंका भयंकर कोलाहल सुनायी देता है । मालूम होता है इस समय वानरसेना गोमतीको पार कर रही है ॥ २८½ ॥

रजोवर्षं समुद्भूतं पश्य सालवनं प्रति ॥ २९ ॥
मन्ये सालवनं रम्यं लोलयन्ति प्लवंगमाः ।

'उधर सालवनकी ओर देखिये, कैसी धूलकी वर्षा हो रही है ? मैं समझता हूँ वानरलोग रमणीय सालवनको आन्दोलित कर रहे हैं ॥ २९½ ॥

तदेतद् दृश्यते दूराद् विमानं चन्द्रसंनिभम् ॥ ३० ॥
विमानं पुष्पकं दिव्यं मनसा ब्रह्मनिर्मितम् ।
रावणं बान्धवैः सार्धं हत्वा लब्धं महात्मना ॥ ३१ ॥

'लीजिये, यह रहा पुष्पक विमान, जो दूरसे चन्द्रमाके समान दिखायी देता है । इस दिव्य पुष्पक-विमानको विश्वकर्माने अपने मनके संकल्पसे ही रचा था । महात्मा श्रीरामने रावणको बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर इसे प्राप्त किया है ॥

तरुणादित्यसंकाशं विमानं रामवाहनम् ।
धनदस्य प्रसादेन दिव्यमेतन्मनोजवम् ॥ ३२ ॥

'श्रीरामका वाहन बना हुआ यह विमान प्रातःकालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो रहा है। इसका वेग मनके समान है। यह दिव्य विमान ब्रह्माजीकी कृपासे कुबेरको प्राप्त हुआ था ॥ ३२ ॥

एतस्मिन् भ्रातरौ वीरौ वैदेह्या सह राघवौ ।
सुग्रीवश्च महातेजा राक्षसश्च विभीषणः ॥ ३३ ॥

'इसीमें विदेहराजकुमारी सीताके साथ वे दोनों रघुवंशी वीर बन्धु बैठे हैं और इसीमें महातेजस्वी सुग्रीव तथा राक्षस विभीषण भी विराजमान हैं' ॥ ३३ ॥

ततो हर्षसमुद्भूतो निःस्वनो दिवमस्पृशत् ।
स्त्रीबालयुववृद्धानां रामोऽयमिति कीर्तिते ॥ ३४ ॥

हनुमान्‌जीके इतना कहते ही स्त्रियों, बालकों, नौजवानों और बूढ़ों—सभी पुरवासियोंके मुखसे यह वाणी फूट पड़ी—'अहो ! ये श्रीरामचन्द्रजी आ रहे हैं।' उन नागरिकोंका वह हर्षनाद स्वर्गलोकतक गूँज उठा ॥ ३४ ॥

रथकुञ्जरवाजिभ्यस्तेऽवतीर्य महीं गताः ।
ददृशुस्तं विमानस्थं नराः सोममिवाम्बरे ॥ ३५ ॥

सब लोग हाथी, घोड़ों और रथोंसे उतर पड़े तथा पृथ्वीपर खड़े हो विमानपर विराजमान श्रीरामचन्द्रजीका उसी तरह दर्शन करने लगे, जैसे लोग आकाशमें प्रकाशित होनेवाले चन्द्रदेवका दर्शन करते हैं ॥ ३५ ॥

प्राञ्जलिर्भरतो भूत्वा प्रहृष्टो राघवोन्मुखः ।
यथार्थेनार्घ्यपाद्याद्यैस्ततो राममपूजयत् ॥ ३६ ॥

भरतजी श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दृष्टि लगाये हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उनका शरीर हर्षसे पुलकित था। उन्होंने दूरसे ही अर्घ्य-पाद्य आदिके द्वारा श्रीरामका विधिवत् पूजन किया ॥ ३६ ॥

मनसा ब्रह्मणा सृष्टे विमाने भरताग्रजः ।
रराज पृथुदीर्घाक्षो वज्रपाणिरिवामरः ॥ ३७ ॥

विश्वकर्माद्वारा मनसे रचे गये उस विमानपर बैठे हुए विशाल नेत्रोंवाले भगवान् श्रीराम वज्रधारी देवराज इन्द्रके समान शोभा पा रहे थे ॥ ३७ ॥

ततो विमानाग्रगतं भरतो भ्रातरं तदा ।
ववन्दे प्रणतो रामं मेरुस्थमिव भास्करम् ॥ ३८ ॥

विमानके ऊपरी भागमें बैठे हुए भाई श्रीरामपर दृष्टि पड़ते ही भरतने विनीतभावसे उन्हें उसी तरह प्रणाम किया, जैसे मेरुके शिखरपर उदित सूर्यदेवको द्विजलोग नमस्कार करते हैं ॥ ३८ ॥

ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद् विमानमनुत्तमम् ।
हंसयुक्तं महावेगं निपपात महीतलम् ॥ ३९ ॥

इतनेहीमें श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर वह महान् वेगशाली हंसयुक्त उत्तम विमान पृथ्वीपर उतर आया ॥ ३९ ॥

आरोपितो विमानं तद् भरतः सत्यविक्रमः ।
राममासाद्य मुदितः पुनरेवाभ्यवादयत् ॥ ४० ॥

भगवान् श्रीरामने सत्यपराक्रमी भरतजीको विमानपर चढ़ा लिया और उन्होंने श्रीरघुनाथजीके पास पहुँचकर आनन्दविभोर हो पुनः उनके श्रीचरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥

तं समुत्थाय काकुत्स्थश्चिरस्याक्षिपथं गतम् ।
अङ्के भरतमारोप्य मुदितः परिषस्वजे ॥ ४१ ॥

दीर्घकालके पश्चात् दृष्टिपथमें आये हुए भरतको उठाकर श्रीरघुनाथजीने अपनी गोदमें बिठा लिया और बड़े हर्षके साथ उन्हें हृदयसे लगाया ॥ ४१ ॥

ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं च परंतपः ।
अथाभ्यवादयत् प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत् ॥ ४२ ॥

तत्पश्चात् शत्रुओंको संताप देनेवाले भरतने लक्ष्मणसे मिलकर—उनका प्रणाम ग्रहण करके विदेह-राजकुमारी सीताको बड़ी प्रसन्नताके साथ प्रणाम किया और अपना नाम भी बताया ॥ ४२ ॥

सुग्रीवं कैकयीपुत्रो जाम्बवन्तमथाङ्गदम् ।
मैन्दं च द्विविदं नीलमृषभं चैव सस्वजे ॥ ४३ ॥
सुषेणं च नलं चैव गवाक्षं गन्धमादनम् ।
शरभं पनसं चैव परितः परिषस्वजे ॥ ४४ ॥

इसके बाद कैकेयीकुमार भरतने सुग्रीव, जाम्बवान्, अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नील, ऋषभ, सुषेण, नल, गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ और पनसका पूर्णरूपसे आलिङ्गन किया ॥

ते कृत्वा मानुषं रूपं वानराः कामरूपिणः ।
कुशलं पर्यपृच्छंस्ते प्रहृष्टा भरतं तदा ॥ ४५ ॥

वे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानर मानवरूप धारण करके भरतजीसे मिले और उन सबने महान् हर्षसे उल्लसित होकर उस समय भरतजीका कुशल-समाचार पूछा ॥ ४५ ॥

अथाब्रवीद् राजपुत्रः सुग्रीवं वानरर्षभम् ।
परिष्वज्य महातेजा भरतो धर्मिणां वरः ॥ ४६ ॥

धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी राजकुमार भरतने वानरराज सुग्रीवको हृदयसे लगाकर उनसे कहा— ॥ ४६ ॥

त्वमस्माकं चतुर्णां वै भ्राता सुग्रीव पञ्चमः ।
सौहृदाज्जायते मित्रमपकारोऽरिलक्षणम् ॥ ४७ ॥

'सुग्रीव ! तुम हम चारोंके पाँचवें भाई हो; क्योंकि स्नेहपूर्वक उपकार करनेसे ही कोई भी मित्र होता है (और मित्र अपना भाई ही होता है)। अपकार करना ही शत्रुका लक्षण है' ॥ ४७ ॥

विभीषणं च भरतः सान्त्ववाक्यमथाब्रवीत् ।
दिष्ट्या त्वया सहायेन कृतं कर्म सुदुष्करम् ॥ ४८ ॥

इसके बाद भरतने विभीषणको सान्त्वना देते हुए उनसे कहा—'राक्षसराज ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपकी सहायता पाकर श्रीरघुनाथजीने अत्यन्त दुष्कर कार्य पूरा किया है' ॥ ४८ ॥

शत्रुघ्नश्च तदा राममभिवाद्य सलक्ष्मणम् ।
सीतायाश्चरणौ वीरो विनयादभ्यवादयत् ॥ ४९ ॥

इसी समय वीर शत्रुघ्नने भी श्रीराम और लक्ष्मणको प्रणाम करके सीताजीके चरणोंमें विनयपूर्वक मस्तक झुकाया ॥

रामो मातरमासाद्य विवर्णां शोककर्शिताम् ।
जग्राह प्रणतः पादौ मनो मातुः प्रहर्षयन् ॥ ५० ॥

माता कौसल्या शोकके कारण अत्यन्त दुर्बल और कान्तिहीन हो गयी थीं । उनके पास पहुँचकर श्रीरामने प्रणत हो उनके दोनों पैर पकड़ लिये और माताके मनको अत्यन्त हर्ष प्रदान किया ॥ ५० ॥

अभिवाद्य सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम् ।
स मातृश्च ततः सर्वाः पुरोहितमुपागमत् ॥ ५१ ॥

फिर सुमित्रा और यशस्विनी कैकेयीको प्रणाम करके उन्होंने सम्पूर्ण माताओंका अभिवादन किया, इसके बाद वे राजपुरोहित वसिष्ठजीके पास आये ॥ ५१ ॥

स्वागतं ते महाबाहो कौसल्यानन्दवर्धन ।
इति प्राञ्जलयः सर्वे नागरा राममब्रुवन् ॥ ५२ ॥

उस समय अयोध्याके समस्त नागरिक हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रजीसे एक साथ बोल उठे—'माता कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले महाबाहु श्रीराम ! आपका स्वागत है, स्वागत है' ॥ ५२ ॥

तान्यञ्जलिसहस्राणि प्रगृहीतानि नागरैः ।
व्याकोशानीव पद्मानि ददर्श भरताग्रजः ॥ ५३ ॥

भरतके बड़े भाई श्रीरामने देखा, खिले हुए कमलोंके समान नागरिकोंकी सहस्रों अञ्जलियाँ उनकी ओर उठी हुई हैं ॥ ५३ ॥

पादुके ते तु रामस्य गृहीत्वा भरतः स्वयम् ।
चरणाभ्यां नरेन्द्रस्य योजयामास धर्मवित् ॥ ५४ ॥
अब्रवीच्च तदा रामं भरतः स कृताञ्जलिः ।

तदनन्तर धर्मज्ञ भरतने स्वयं ही श्रीरामकी वे चरणपादुकाएँ लेकर उन महाराजके चरणोंमें पहना दीं और हाथ जोड़कर उस समय उनसे कहा— ॥ ५४½ ॥

एतत् ते सकलं राज्यं न्यासं निर्यातितं मया ॥ ५५ ॥
अद्य जन्म कृतार्थं मे संवृत्तश्च मनोरथः ।
यत् त्वां पश्यामि राजानमयोध्यां पुनरागतम् ॥ ५६ ॥

'प्रभो ! मेरे पास धरोहरके रूपमें रक्खा हुआ आपका यह सारा राज्य आज मैंने आपके श्रीचरणोंमें लौटा दिया । आज मेरा जन्म सफल हो गया । मेरा मनोरथ पूरा हुआ, जो अयोध्यानरेश आप श्रीरामको पुनः अयोध्यामें लौटा हुआ देख रहा हूँ ॥ ५५-५६ ॥

अवेक्षतां भवान् कोशं कोष्ठागारं गृहं बलम् ।
भवतस्तेजसा सर्वं कृतं दशगुणं मया ॥ ५७ ॥

'आप राज्यका खजाना, कोठार, घर और सेना सब देख लें । आपके प्रतापसे ये सारी वस्तुएँ पहलेसे दसगुनी हो गयी हैं' ॥ ५७ ॥

तथा ब्रुवाणं भरतं दृष्ट्वा तं भ्रातृवत्सलम् ।
मुमुचुर्वानरा बाष्पं राक्षसश्च विभीषणः ॥ ५८ ॥

भ्रातृवत्सल भरतको इस प्रकार कहते देख समस्त वानर तथा राक्षसराज विभीषण नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे ॥ ५८ ॥

ततः प्रहर्षाद् भरतमङ्कमारोप्य राघवः ।
ययौ तेन विमानेन ससैन्यो भरताश्रमम् ॥ ५९ ॥

इसके पश्चात् श्रीरघुनाथजी भरतको बड़े हर्ष और स्नेहके साथ गोदमें बैठाकर विमानके द्वारा ही सेनासहित उनके आश्रमपर गये ॥ ५९ ॥

भरताश्रममासाद्य ससैन्यो राघवस्तदा ।
अवतीर्य विमानाग्रादवतस्थे महीतले ॥ ६० ॥

भरतके आश्रममें पहुँचकर सेनासहित श्रीरघुनाथजी विमानसे उतरकर भूतलपर खड़े हो गये ॥ ६० ॥

अब्रवीत् तु तदा रामस्तद् विमानमनुत्तमम् ।
वह वैश्रवणं देवमनुजानामि गम्यताम् ॥ ६१ ॥

उस समय श्रीरामने उस उत्तम विमानसे कहा—'विमानराज ! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, अब तुम यहाँसे देवप्रवर कुबेरके ही पास चले जाओ और उन्हींकी सवारीमें रहो' ॥ ६१ ॥

ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद् विमानमनुत्तमम् ।
उत्तरां दिशमुद्दिश्य जगाम धनदालयम् ॥ ६२ ॥

श्रीरामकी आज्ञा पाकर वह परम उत्तम विमान उत्तर दिशाको लक्ष्य करके कुबेरके स्थानपर चला गया ॥ ६२ ॥

विमानं पुष्पकं दिव्यं संगृहीतं तु रक्षसा ।
अगमद् धनदं वेगाद् रामवाक्यप्रचोदितम् ॥ ६३ ॥

राक्षस रावणने जिस दिव्य पुष्पक विमानपर बलपूर्वक अधिकार कर लिया था, वही अब श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे प्रेरित हो वेगपूर्वक कुबेरकी सेवामें चला गया ॥ ६३ ॥

पुरोहितस्यात्मसखस्य राघवो
बृहस्पतेः शक्र इवामराधिपः ।
निपीड्य पादौ पृथगासने शुभे
सहैव तेनोपविवेश वीर्यवान् ॥ ६४ ॥

तत्पश्चात् पराक्रमी श्रीरघुनाथजीने अपने सखा पुरोहित वसिष्ठपुत्र सुयज्ञके (अथवा अपने परम सहायक पुरोहित वसिष्ठजीके) उसी प्रकार चरण छुए, जैसे देवराज इन्द्र बृहस्पतिजीके चरणोंका स्पर्श करते हैं। फिर उन्हें एक सुन्दर पृथक् आसनपर विराजमान करके उनके साथ ही दूसरे आसनपर वे स्वयं भी बैठे ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ सत्ताईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२७ ॥

अष्टाविंशत्यधिकशततमः सर्गः

भरतका श्रीरामको राज्य लौटाना, श्रीरामकी नगरयात्रा, राज्याभिषेक, वानरोंकी विदाई तथा ग्रन्थका माहात्म्य

शिरस्यञ्जलिमाधाय कैकेयीनन्दिवर्धनः।
बभाषे भरतो ज्येष्ठं रामं सत्यपराक्रमम् ॥ १ ॥

तत्पश्चात् कैकेयीनन्दन भरतने मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर अपने बड़े भाई सत्यपराक्रमी श्रीरामसे कहा—॥ १ ॥

पूजिता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम।
तद् ददामि पुनस्तुभ्यं यथा त्वमददा मम ॥ २ ॥

'आपने मेरी माताका सम्मान किया और यह राज्य मुझे दे दिया। जैसे आपने मुझे दिया, उसी तरह मैं अब फिर आपको वापस दे रहा हूँ ॥ २ ॥

धुरमेकाकिना न्यस्तां वृषभेण बलीयसा।
किशोरवद् गुरुं भारं न वोढुमहमुत्सहे ॥ ३ ॥

'अत्यन्त बलवान् बैल जिस बोझेको अकेला उठाता है, उसे बछड़ा नहीं उठा सकता; उसी तरह मैं भी इस भारी भारको उठानेमें असमर्थ हूँ ॥ ३ ॥

वारिवेगेन महता भिन्नः सेतुरिव क्षरन्। ✓
दुर्बन्धनमिदं मन्ये राज्यच्छिद्रमसंवृतम् ॥ ४ ॥

'जैसे जलके महान् वेगसे टूटे या फटे हुए बाँधको, जब कि उससे जलका प्रखर प्रवाह बह रहा हो, बाँधना अत्यन्त कठिन होता है, उसी प्रकार राज्यके खुले हुए छिद्रको ढक पाना मैं अपने लिये असम्भव मानता हूँ ॥ ४ ॥

गतिं खर इवाश्वस्य हंसस्येव च वायसः।
नान्वेतुमुत्सहे वीर तव मार्गमरिंदम ॥ ५ ॥

'शत्रुदमन वीर! जैसे गदहा घोड़ेकी और कौवा हंसकी गतिका अनुसरण नहीं कर सकता, उसी तरह मैं आपके मार्गका—रक्षणीय-रक्षणरूपी कौशलका अनुकरण नहीं कर सकता ॥ ५ ॥

यथा चारोपितो वृक्षो जातश्चान्तर्निवेशने।
महानपि दुरारोहो महास्कन्धः प्रशाखवान् ॥ ६ ॥
शीर्येत पुष्पितो भूत्वा न फलानि प्रदर्शयन्।
तस्य नानुभवेदर्थं यस्य हेतोः स रोपितः ॥ ७ ॥
एषोपमा महाबाहो त्वमर्थं वेत्तुमर्हसि।
यद्यस्मान् मनुजेन्द्र त्वं भर्ता भृत्यान् न शाधि हि ॥ ८ ॥

'महाबाहो! नरेन्द्र! जैसे घरके भीतरके बगीचेमें एक वृक्ष लगाया गया। वह जमा और जमकर बहुत बड़ा हो गया। इतना बड़ा कि उसपर चढ़ना कठिन हो रहा था। उसका तना बहुत बड़ा और मोटा था तथा उसमें बहुत-सी शाखाएँ थीं। उस वृक्षमें फूल लगे; किंतु वह अपने फल नहीं दिखा सका था। इसी दशामें टूटकर धराशायी हो गया। लगानेवालोंने जिन फलोंके उद्देश्यसे उस वृक्षको लगाया था, उनका अनुभव वे नहीं कर सके। यही उपमा उस राजाके लिये भी हो सकती है, जिसे प्रजाने अपनी रक्षाके लिये पाल-पोसकर बड़ा किया और बड़े होनेपर वह उनकी रक्षासे मुँह मोड़ने लगे। इस कथनके तात्पर्यको आप समझें। यदि भर्त्ता होकर भी आप हम भृत्योंका भरण-पोषण नहीं करेंगे तो आप भी उस निष्फल वृक्षके समान ही समझे जायँगे ॥ ६—८ ॥

जगदद्याभिषिक्तं त्वामनुपश्यतु राघव।
प्रतपन्तमिवादित्यं मध्याह्ने दीप्ततेजसम् ॥ ९ ॥

'रघुनन्दन! अब तो हमारी यही इच्छा है कि जगत्के सब लोग आपका राज्याभिषेक देखें। मध्याह्नकालके सूर्यकी भाँति आपका तेज और प्रताप बढ़ता रहे ॥ ९ ॥

तूर्यसंघातनिर्घोषैः काञ्चीनूपुरनिःस्वनैः।
मधुरैर्गीतशब्दैश्च प्रतिबुध्यस्व शेष्व च ॥ १० ॥

'आप विविध वाद्योंकी मधुर ध्वनि, काञ्ची तथा नूपुरोंकी झनकार और गीतके मनोहर शब्द सुनकर सोयें और जागें ॥

यावदावर्तते चक्रं यावती च वसुंधरा।
तावत् त्वमिह लोकस्य स्वामित्वमनुवर्तय ॥ ११ ॥

'जबतक नक्षत्रमण्डल घूमता है और जबतक यह पृथ्वी स्थित है तबतक आप इस संसारके स्वामी बने रहें' ॥ ११ ॥

भरतस्य वचः श्रुत्वा रामः परपुरंजयः।

तथेति प्रतिजग्राह निषसादासने शुभे ॥ १२ ॥

भरतकी यह बात सुनकर शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले भगवान् श्रीरामने 'तथास्तु' कहकर उसे मान लिया और वे एक सुन्दर आसनपर विराजमान हुए ॥ १२ ॥

ततः शत्रुघ्नवचनान्निपुणाः श्मश्रुवर्धनाः।
सुखहस्ताः सुशीघ्राश्च राघवं पर्यवारयन् ॥ १३ ॥

फिर शत्रुघ्नजीकी आज्ञासे निपुण नाई बुलाये गये, जिनके हाथ हल्के और तेज चलनेवाले थे। उन सबने श्रीरघुनाथजीको घेर लिया ॥ १३ ॥

पूर्वं तु भरते स्नाते लक्ष्मणे च महाबले।
सुग्रीवे वानरेन्द्रे च राक्षसेन्द्रे विभीषणे ॥ १४ ॥
विशोधितजटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः।
महार्हवसनोपेतस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन् ॥ १५ ॥

पहले भरतने स्नान किया फिर महाबली लक्ष्मणने। तत्पश्चात् वानरराज सुग्रीव और राक्षसराज विभीषणने भी स्नान किया। तदनन्तर जटाका शोधन करके श्रीरामने स्नान किया, फिर विचित्र पुष्पमाला, सुन्दर अनुलेपन और बहुमूल्य पीताम्बर धारण करके आभूषणोंकी शोभासे प्रकाशित होते हुए वे सिंहासनपर विराजमान हुए ॥ १४-१५ ॥

प्रतिकर्म च रामस्य कारयामास वीर्यवान्।
लक्ष्मणस्य च लक्ष्मीवानिक्ष्वाकुकुलवर्धनः ॥ १६ ॥

इक्ष्वाकुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले शोभाशाली, पराक्रमी और शत्रुघ्नने श्रीराम और लक्ष्मणको श्रृङ्गार धारण कराया ॥

प्रतिकर्म च सीतायाः सर्वा दशरथस्त्रियः।
आत्मनैव तदा चक्रुर्मनस्विन्यो मनोहरम् ॥ १७ ॥

उस समय राजा दशरथकी सभी मनस्विनी रानियोंने स्वयं अपने हाथोंसे सीताजीका मनोहर श्रृङ्गार किया ॥ १७ ॥

ततो वानरपत्नीनां सर्वासामेव शोभनम्।
चकार यत्नात् कौसल्या प्रहृष्टा पुत्रवत्सला ॥ १८ ॥

पुत्रवत्सला कौसल्याने अत्यन्त हर्ष और उत्साहके साथ बड़े यत्नसे समस्त वानरपत्नियोंका सुन्दर श्रृङ्गार किया ॥ १८ ॥

ततः शत्रुघ्नवचनात् सुमन्त्रो नाम सारथिः।
योजयित्वाभिचक्राम रथं सर्वाङ्गशोभनम् ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् शत्रुघ्नजीकी आज्ञासे सारथि सुमन्त्रजी एक सर्वाङ्गसुन्दर रथ जोतकर ले आये ॥ १९ ॥

अग्न्यर्कामलसंकाशं दिव्यं दृष्ट्वा रथं स्थितम्।
आरुरोह महाबाहु रामः परपुरंजयः ॥ २० ॥

अग्नि और सूर्यके समान देदीप्यमान उस दिव्य रथको खड़ा देख शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले महाबाहु श्रीराम उसपर आरूढ़ हुए ॥ २० ॥

सुग्रीवो हनुमांश्चैव महेन्द्रसदृशद्युती।
स्नातौ दिव्यनिभैर्वस्त्रैर्जग्मतुः शुभकुण्डलौ ॥ २१ ॥

सुग्रीव और हनुमान्‌जी दोनों देवराज इन्द्रके समान कान्तिमान् थे। दोनोंके कानोंमें सुन्दर कुण्डल शोभा पा रहे थे। वे दोनों ही स्नान करके दिव्य वस्त्रोंसे विभूषित हो नगरकी ओर चले ॥ २१ ॥

सर्वाभरणजुष्टाश्च ययुस्ताः शुभकुण्डलाः।
सुग्रीवपत्न्यः सीता च द्रष्टुं नगरमुत्सुकाः ॥ २२ ॥

सुग्रीवकी पत्नियाँ और सीताजी समस्त आभूषणोंसे विभूषित और सुन्दर कुण्डलोंसे अलंकृत हो नगर देखनेकी उत्सुकता मनमें लिये सवारियोंपर चलीं ॥ २२ ॥

अयोध्यायां च सचिवा राज्ञो दशरथस्य च।
पुरोहितं पुरस्कृत्य मन्त्रयामासुरर्थवत् ॥ २३ ॥

अयोध्यामें राजा दशरथके मन्त्री पुरोहित वसिष्ठजीको आगे करके श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकके विषयमें आवश्यक विचार करने लगे ॥ २३ ॥

अशोको विजयश्चैव सिद्धार्थश्च समाहिताः।
मन्त्रयन् रामवृद्ध्यर्थमृद्ध्यर्थं नगरस्य च ॥ २४ ॥

अशोक, विजय और सिद्धार्थ—ये तीनों मन्त्री एकाग्रचित्त हो श्रीरामचन्द्रजीके अभ्युदय तथा नगरकी समृद्धिके लिये परस्पर मन्त्रणा करने लगे ॥ २४ ॥

सर्वमेवाभिषेकार्थं जयार्हस्य महात्मनः।
कर्तुमर्हथ रामस्य यद् यन्मङ्गलपूर्वकम् ॥ २५ ॥

उन्होंने सेवकोंसे कहा—'विजयके योग्य जो महात्मा श्रीरामचन्द्रजी हैं, उनके अभिषेकके लिये जो-जो आवश्यक कार्य करना है, वह सब मङ्गलपूर्वक तुम सब लोग करो' ॥ २५ ॥

इति ते मन्त्रिणः सर्वे संदिश्य च पुरोहितः।
नगरान्निर्ययुस्तूर्णं रामदर्शनबुद्धयः ॥ २६ ॥

इस प्रकार आदेश देकर वे मन्त्री और पुरोहितजी श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लिये तत्काल नगरसे बाहर निकले ॥ २६ ॥

हरियुक्तं सहस्राक्षो रथमिन्द्र इवानघः।
प्रययौ रथमास्थाय रामो नगरमुत्तमम् ॥ २७ ॥

जैसे सहस्र नेत्रधारी इन्द्र हरे रंगके घोड़ोंसे जुते हुए रथपर बैठकर यात्रा करते हैं, उसी प्रकार निष्पाप श्रीराम एक श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो अपने उत्तम नगरकी ओर चले ॥ २७ ॥

जग्राह भरतो रश्मीञ्शत्रुघ्नश्छत्रमाददे।
लक्ष्मणो व्यजनं तस्य मूर्ध्नि संवीजयंस्तदा ॥ २८ ॥

उस समय भरतने सारथि बनकर घोड़ोंकी बागडोर अपने हाथमें ले रक्खी थी। शत्रुघ्नने छत्र लगा रक्खा था और

लक्ष्मण उस समय श्रीरामचन्द्रजीके मस्तकपर चँवर डुला रहे थे ॥ २८ ॥

श्वेतं च वालव्यजनं जगृहे परितः स्थितः ।
अपरं चन्द्रसंकाशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥ २९ ॥

एक ओर लक्ष्मण थे और दूसरी ओर राक्षसराज विभीषण खड़े थे । उन्होंने चन्द्रमाके समान कान्तिमान् दूसरा श्वेत चँवर हाथमें ले रक्खा था ॥ २९ ॥

ऋषिसङ्घैस्तदाऽऽकाशे देवैश्च समरुद्गणैः ।
स्तूयमानस्य रामस्य शुश्रुवे मधुरध्वनिः ॥ ३० ॥

उस समय आकाशमें खड़े हुए ऋषियों तथा मरुद्गणोंसहित देवताओंके समुदाय श्रीरामचन्द्रजीके स्तवनकी मधुर ध्वनि सुन रहे थे ॥ ३० ॥

ततः शत्रुंजयं नाम कुञ्जरं पर्वतोपमम् ।
आरुरोह महातेजाः सुग्रीवः प्लवगर्षभः ॥ ३१ ॥

तदनन्तर महातेजस्वी वानरराज सुग्रीव शत्रुञ्जयनामक पर्वताकार गजराजपर आरूढ़ हुए ॥ ३१ ॥

नव नागसहस्राणि ययुरास्थाय वानराः ।
मानुषं विग्रहं कृत्वा सर्वाभरणभूषिताः ॥ ३२ ॥

वानरलोग नौ हजार हाथियोंपर चढ़कर यात्रा कर रहे थे । वे उस समय मानवरूप धारण किये हुए थे और सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित थे ॥ ३२ ॥

शङ्खशब्दप्रणादैश्च दुन्दुभीनां च निःस्वनैः ।
प्रययौ पुरुषव्याघ्रस्तां पुरीं हर्म्यमालिनीम् ॥ ३३ ॥

पुरुषसिंह श्रीराम शङ्खध्वनि तथा दुन्दुभियोंके गम्भीर नादके साथ प्रासादमालाओंसे अलंकृत अयोध्यापुरीकी ओर प्रस्थित हुए ॥ ३३ ॥

ददृशुस्ते समायान्तं राघवं सपुरःसरम् ।
विराजमानं वपुषा रथेनातिरथं तदा ॥ ३४ ॥

अयोध्यावासियोंने अतिरथी श्रीरघुनाथजीको रथपर बैठकर आते देखा । उनका श्रीविग्रह दिव्यकान्तिसे प्रकाशित हो रहा था और उनके आगे-आगे अग्रगामी सैनिकोंका जत्था चल रहा था ॥ ३४ ॥

ते वर्धयित्वा काकुत्स्थं रामेण प्रतिनन्दिताः ।
अनुजग्मुर्महात्मानं भ्रातृभिः परिवारितम् ॥ ३५ ॥

उन सबने आगे बढ़कर श्रीरघुनाथजीको बधाई दी और श्रीरामने भी बदलेमें उनका अभिनन्दन किया । फिर वे सब पुरवासी भाइयोंसे घिरे हुए महात्मा श्रीरामके पीछे-पीछे चलने लगे ॥ ३५ ॥

अमात्यैर्ब्राह्मणैश्चैव तथा प्रकृतिभिर्वृतः ।
श्रिया विरुरुचे रामो नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥ ३६ ॥

जैसे नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमा सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार मन्त्रियों, ब्राह्मणों तथा प्रजाजनोंसे घिरे हुए श्रीरामचन्द्रजी अपनी दिव्यकान्तिसे उद्भासित हो रहे थे ॥ ३६ ॥

स पुरोगामिभिस्तूर्यैस्तालस्वस्तिकपाणिभिः ।
प्रव्याहरद्भिर्मुदितैर्मङ्गलानि वृतो ययौ ॥ ३७ ॥

सबसे आगे बाजेवाले थे । वे आनन्दमग्न हो तुरही, करताल और स्वस्तिक बजाते तथा माङ्गलिक गीत गाते थे । उन सबके साथ श्रीरामचन्द्रजी नगरकी ओर बढ़ने लगे ॥ ३७ ॥

अक्षतं जातरूपं च गावः कन्याः सहद्विजाः ।
नरा मोदकहस्ताश्च रामस्य पुरतो ययुः ॥ ३८ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके आगे अक्षत और सुवर्णसे युक्त पात्र, गौ, ब्राह्मण, कन्याएँ तथा हाथमें मिठाई लिये अनेकानेक मनुष्य चल रहे थे ॥ ३८ ॥

सख्यं च रामः सुग्रीवे प्रभावं चानिलात्मजे ।
वानराणां च तत् कर्म ह्याचचक्षेऽथ मन्त्रिणाम् ॥ ३९ ॥

श्रीरामचन्द्रजी अपने मन्त्रियोंसे सुग्रीवकी मित्रता, हनुमान्‌जीके प्रभाव तथा अन्य वानरोंके अद्भुत पराक्रमकी चर्चा करते जा रहे थे ॥ ३९ ॥

श्रुत्वा च विस्मयं जग्मुरयोध्यापुरवासिनः ।
वानराणां च तत् कर्म राक्षसानां च तद् बलम् ।
विभीषणस्य संयोगमाचचक्षेऽथ मन्त्रिणाम् ॥ ४० ॥

वानरोंके पुरुषार्थ और राक्षसोंके बलकी बातें सुनकर अयोध्यावासियोंको बड़ा विस्मय हुआ । श्रीरामने विभीषणसे मिलनका प्रसंग भी अपने मन्त्रियोंको बताया ॥ ४० ॥

द्युतिमानेतदाख्याय रामो वानरसंयुतः ।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णामयोध्यां प्रविवेश सः ॥ ४१ ॥

यह सब बताकर वानरोंसहित तेजस्वी श्रीरामने हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरी हुई अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया ॥ ४१ ॥

ततो ह्यभ्युच्छ्रयन् पौराः पताकाश्च गृहे गृहे । ✓
ऐक्ष्वाकाध्युषितं रम्यमाससाद पितुर्गृहम् ॥ ४२ ॥

उस समय पुरवासियोंने अपने-अपने घरपर लगी हुई पताकाएँ ऊँची कर दीं । फिर श्रीरामचन्द्रजी इक्ष्वाकुवंशी राजाओंके उपयोगमें आये हुए पिताके रमणीय भवनमें गये ॥ ४२ ॥

अथाब्रवीद् राजपुत्रो भरतं धर्मिणां वरम् ।
अर्थोपहितया वाचा मधुरं रघुनन्दनः ॥ ४३ ॥
पितुर्भवनमासाद्य प्रविश्य च महात्मनः ।
कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीमभिवाद्य च ॥ ४४ ॥

उस समय रघुकुलनन्दन राजकुमार श्रीरामने महात्मा पिताजीके भवनमें प्रवेश करके माता कौसल्या, सुमित्रा और

कैकेयीके चरणोंमें मस्तक झुकाकर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भरतसे अर्थयुक्त मधुर वाणीमें कहा—॥ ४३-४४ ॥

तच्च मद्भवनं श्रेष्ठं साशोकवनिकं महत्।
मुक्तावैदूर्यसंकीर्णं सुग्रीवाय निवेदय ॥ ४५ ॥

'भरत! मेरा जो अशोकवाटिकासे घिरा हुआ मुक्ता एवं वैदूर्य मणियोंसे जटित विशाल भवन है, वह सुग्रीवको दे दो' ॥ ४५ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा भरतः सत्यविक्रमः।
हस्ते गृहीत्वा सुग्रीवं प्रविवेश तमालयम् ॥ ४६ ॥

उनकी आज्ञा सुनकर सत्यपराक्रमी भरतने सुग्रीवका हाथ पकड़कर उस भवनमें प्रवेश किया ॥ ४६ ॥

ततस्तैलप्रदीपांश्च पर्यङ्कास्तरणानि च।
गृहीत्वा विविशुः क्षिप्रं शत्रुघ्नेन प्रचोदिताः ॥ ४७ ॥

फिर शत्रुघ्नजीकी आज्ञासे अनेकानेक सेवक उसमें तिलके तेलसे जलनेवाले बहुत-से दीपक, पलंग और बिछौने लेकर शीघ्र ही गये ॥ ४७ ॥

उवाच च महातेजाः सुग्रीवं राघवानुजः।
अभिषेकाय रामस्य दूतानाज्ञापय प्रभो ॥ ४८ ॥

तत्पश्चात् महातेजस्वी भरतने सुग्रीवसे कहा—'प्रभो! भगवान् श्रीरामके अभिषेकके निमित्त जल लानेके लिये आप अपने दूतोंको आज्ञा दीजिये' ॥ ४८ ॥

सौवर्णान् वानरेन्द्राणां चतुर्णां चतुरो घटान्।
ददौ क्षिप्रं स सुग्रीवः सर्वरत्नविभूषितान् ॥ ४९ ॥

तब सुग्रीवने उसी समय चार श्रेष्ठ वानरोंको सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित चार सोनेके घड़े देकर कहा—॥ ४९ ॥

तथा प्रत्यूषसमये चतुर्णां सागराम्भसाम्।
पूर्णैर्घटैः प्रतीक्षध्वं तथा कुरुत वानराः ॥ ५० ॥

'वानरो! तुमलोग कल प्रातःकाल ही चारों समुद्रोंके जलसे भरे हुए घड़ोंके साथ उपस्थित रहकर आवश्यक आदेशकी प्रतीक्षा करो' ॥ ५० ॥

एवमुक्ता महात्मानो वानरा वारणोपमाः।
उत्पेतुर्गगनं शीघ्रं गरुडा इव शीघ्रगाः ॥ ५१ ॥

सुग्रीवके इस प्रकार आदेश देनेपर हाथीके समान विशालकाय महामनस्वी वानर, जो गरुड़के समान शीघ्रगामी थे, तत्काल आकाशमें उड़ चले ॥ ५१ ॥

जाम्बवांश्च हनूमांश्च वेगदर्शी च वानरः।
ऋषभश्चैव कलशाञ्जलपूर्णानथानयन् ॥ ५२ ॥
नदीशतानां पञ्चानां जलं कुम्भैरुपाहरन्।

जाम्बवान्, हनुमान्, वेगदर्शी (गवय) और ऋषभ—ये सभी वानर चारों समुद्रोंसे और पाँच सौ नदियोंसे भी सोनेके बहुत-से कलश भर लाये ॥ ५२½ ॥

पूर्वात् समुद्रात् कलशं जलपूर्णमथानयत् ॥ ५३ ॥
सुषेणः सत्त्वसम्पन्नः सर्वरत्नविभूषितम्।

जिनके पास रीछोंकी बहुत-सी सुन्दर सेना है वे शक्तिशाली जाम्बवान् सम्पूर्ण रत्नोंसे विभूषित सुवर्णमय कलश लेकर गये और उसमें पूर्वसमुद्रका जल भरकर ले आये ५३½

ऋषभो दक्षिणात्तूर्णं समुद्राज्जलमानयत् ॥ ५४ ॥
रक्तचन्दनकर्पूरैः संवृतं काञ्चनं घटम्।

ऋषभ दक्षिण समुद्रसे शीघ्र ही एक सोनेका घड़ा भर लाये। वह लाल चन्दन और कपूरसे ढका हुआ था ॥ ५४½ ॥

गवयः पश्चिमात् तोयमाजहार महार्णवात् ॥ ५५ ॥
रत्नकुम्भेन महता शीतं मारुतविक्रम।

वायुके समान वेगशाली गवय एक रत्ननिर्मित विशाल कलशके द्वारा पश्चिम दिशाके महासागरसे शीतल जल भर लाये ॥ ५५½ ॥

उत्तराच्च जलं शीघ्रं गरुडानिलविक्रमः ॥ ५६ ॥
आजहार स धर्मात्मानिलः सर्वगुणान्वितः।

गरुड़ तथा वायुके समान तीव्र गतिसे चलनेवाले, धर्मात्मा सर्वगुणसम्पन्न पवनपुत्र हनुमान्‌जी भी उत्तरवर्ती महासागरसे शीघ्र जल ले आये ॥ ५६½ ॥

ततस्तैर्वानरश्रेष्ठैरानीतं प्रेक्ष्य तज्जलम् ॥ ५७ ॥
अभिषेकाय रामस्य शत्रुघ्नः सचिवैः सह ॥ ।
पुरोहिताय श्रेष्ठाय सुहृद्भ्यश्च न्यवेदयत् ॥ ५८ ॥

उन श्रेष्ठ वानरोंके द्वारा लाये हुए उस जलको देखकर मन्त्रियोंसहित शत्रुघ्नने वह सारा जल श्रीरामजीके अभिषेकके लिये पुरोहित वसिष्ठजी तथा अन्य सुहृदोंको समर्पित कर दिया ॥ ५७-५८ ॥

ततः स प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणैः सह।
रामं रत्नमये पीठे ससीतं संन्यवेशयत् ॥ ५९ ॥

तदनन्तर ब्राह्मणोंसहित शुद्धचेता वृद्ध वसिष्ठजीने सीतासहित श्रीरामचन्द्रजीको रत्नमयी चौकीपर बैठाया ॥ ५९ ॥

वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ काश्यपः।
कात्यायनः सुयज्ञश्च गौतमो विजयस्तथा ॥ ६० ॥
अभ्यषिञ्चन्नरव्याघ्रं प्रसन्नेन सुगन्धिना।
सलिलेन सहस्राक्षं वसवो वासवं यथा ॥ ६१ ॥

तत्पश्चात् जैसे आठ वसुओंने देवराज इन्द्रका अभिषेक कराया था, उसी प्रकार वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, कात्यायन, सुयज्ञ, गौतम और विजय—इन आठ मन्त्रियोंने स्वच्छ एवं सुगन्धित जलके द्वारा सीतासहित पुरुषप्रवर श्रीरामचन्द्रजीका अभिषेक कराया ॥ ६०-६१ ॥

ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः पूर्वं कन्याभिर्मन्त्रिभिस्तथा।
योधैश्चैवाभ्यषिञ्चंस्ते सम्प्रहृष्टैः सनैगमैः ॥ ६२ ॥
सर्वौषधिरसैश्चापि दैवतैर्नभसि स्थितैः।
चतुर्भिर्लोकपालैश्च सर्वैर्देवैश्च संगतैः ॥ ६३ ॥

(किनके द्वारा कराया? यह बताते हैं—) सबसे पहले उन्होंने सम्पूर्ण ओषधियोंके रसों तथा पूर्वोक्त जलसे ऋत्विग्

ब्राह्मणोंद्वारा, फिर सोलह कन्याओंद्वारा तत्पश्चात् मन्त्रियोंद्वारा अभिषेक करवाया। इसके बाद अन्यान्य योद्धाओं और हर्षसे भरे हुए श्रेष्ठ व्यवसायियोंको भी अभिषेकका अवसर दिया। उस समय आकाशमें खड़े हुए समस्त देवताओं और एकत्र हुए चारों लोकपालोंने भी भगवान् श्रीरामका अभिषेक किया ॥ ६२-६३ ॥

ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वं किरीटं रत्नशोभितम्।
अभिषिक्तः पुरा येन मनुस्तं दीप्ततेजसम् ॥ ६४ ॥
तस्यान्ववाये राजानः क्रमाद् येनाभिषेचिताः।
सभायां हेमक्लृप्तायां शोभितायां महाधनैः ॥ ६५ ॥
रत्नैर्नानाविधैश्चैव चित्रितायां सुशोभनैः।
नानारत्नमये पीठे कल्पयित्वा यथाविधि ॥ ६६ ॥
किरीटेन ततः पश्चाद् वसिष्ठेन महात्मना।
ऋत्विग्भिर्भूषणैश्चैव समयोक्ष्यत राघवः ॥ ६७ ॥

तदनन्तर ब्रह्माजीका बनाया हुआ रत्नशोभित एवं दिव्य तेजसे देदीप्यमान किरीट, जिसके द्वारा पहले-पहल मनुजीका और फिर क्रमशः उनके सभी वंशधर राजाओंका अभिषेक हुआ था, भाँति-भाँतिके रत्नोंसे चित्रित, सुवर्णनिर्मित एवं महान् वैभवसे शोभायमान सभाभवनमें अनेक रत्नोंसे बनी हुई चौकीपर विधिपूर्वक रखा गया। फिर महात्मा वसिष्ठजीने अन्य ऋत्विज ब्राह्मणोंके साथ उस किरीटसे और अन्यान्य आभूषणोंसे भी श्रीरघुनाथजीको विभूषित किया ॥ ६४—६७ ॥

छत्रं तस्य च जग्राह शत्रुघ्नः पाण्डुरं शुभम्।
श्वेतं च वालव्यजनं सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥ ६८ ॥
अपरं चन्द्रसंकाशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः।

उस समय शत्रुघ्नजीने उनपर सुन्दर श्वेत रंगका छत्र लगाया। एक ओर वानरराज सुग्रीवने श्वेत चँवर हाथमें लिया तो दूसरी ओर राक्षसराज विभीषणने चन्द्रमाके समान चमकीला चँवर लेकर डुलाना आरम्भ किया ॥ ६८½ ॥

मालां ज्वलन्तीं वपुषा काञ्चनीं शतपुष्कराम् ॥ ६९ ॥
राघवाय ददौ वायुर्वासवेन प्रचोदितः।
सर्वरत्नसमायुक्तं मणिभिश्च विभूषितम् ॥ ७० ॥
मुक्ताहारं नरेन्द्राय ददौ शक्रप्रचोदितः।

उस अवसरपर देवराज इन्द्रकी प्रेरणासे वायुदेवने सौ सुवर्णमय कमलोंसे बनी हुई एक दीप्तिमती माला और सब प्रकारके रत्नोंसे युक्त मणियोंसे विभूषित मुक्ताहार राजा रामचन्द्रजीको भेंट किया ॥ ६९-७०½ ॥

प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ७१ ॥
अभिषेके तदर्हस्य तदा रामस्य धीमतः।

बुद्धिमान् श्रीरामके अभिषेककालमें देवगन्धर्व गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। भगवान् श्रीराम इस सम्मानके सर्वथा योग्य थे ॥ ७१½ ॥

भूमिः सस्यवती चैव फलवन्तश्च पादपाः ॥ ७२ ॥
गन्धवन्ति च पुष्पाणि बभूवू राघवोत्सवे।

श्रीरघुनाथजीके राज्याभिषेकोत्सवके समय पृथ्वी खेतीसे हरी-भरी हो गयी, वृक्षोंमें फल आ गये और फूलोंमें सुगन्ध छा गयी ॥ ७२½ ॥

सहस्रशतमश्वानां धेनूनां च गवां तथा ॥ ७३ ॥
ददौ शतवृषान् पूर्वं द्विजेभ्यो मनुजर्षभः।
त्रिंशत्कोटीर्हिरण्यस्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुनः ॥ ७४ ॥
नानाभरणवस्त्राणि महार्हाणि च राघवः।

महाराज श्रीरामने उस समय पहले ब्राह्मणोंको एक लाख घोड़े उतनी ही दूध देनेवाली गौएँ तथा सौ साँड़ दान किये। यही नहीं, श्रीरघुनाथजीने तीस करोड़ अशर्फियाँ तथा नाना प्रकारके बहुमूल्य आभूषण और वस्त्र भी ब्राह्मणोंको बाँटे ॥ ७३-७४½ ॥

अर्करश्मिप्रतीकाशां काञ्चनीं मणिविग्रहाम् ॥ ७५ ॥
सुग्रीवाय स्रजं दिव्यां प्रायच्छन्मनुजाधिपः।

तत्पश्चात् राजा श्रीरामने अपने मित्र सुग्रीवको सोनेकी एक दिव्य माला भेंट की, जो सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशित हो रही थी। उसमें बहुत-सी मणियोंका संयोग था ॥ ७५½ ॥

वैदूर्यमयचित्रे च चन्द्ररश्मिविभूषिते ॥ ७६ ॥
वालिपुत्राय धृतिमानङ्गदायाङ्गदे ददौ।

इसके बाद धैर्यशाली श्रीरघुवीरने प्रसन्न हो वालिपुत्र अङ्गदको दो अङ्गद (बाजूबन्द) भेंट किये, जो नीलमसे जटित होनेके कारण विचित्र दिखायी देते थे। वे चन्द्रमाकी किरणोंसे विभूषित-से जान पड़ते थे ॥ ७६½ ॥

मणिप्रवरजुष्टं तं मुक्ताहारमनुत्तमम् ॥ ७७ ॥
सीतायै प्रददौ रामश्चन्द्ररश्मिसमप्रभम्।
अरजे वाससी दिव्ये शुभान्याभरणानि च ॥ ७८ ॥

उत्तम मणियोंसे युक्त उस परम उत्तम मुक्ताहारको (जिसे वायुदेवताने भेंट किया था तथा) जो चन्द्रमाकी किरणोंके समान प्रकाशित होता था श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीके गलेमें डाल दिया। साथ ही उन्हें कभी मैले न होनेवाले दो दिव्य वस्त्र तथा और भी बहुत-से सुन्दर आभूषण अर्पित किये ॥ ७७-७८ ॥

अवेक्षमाणा वैदेही प्रददौ वायुसूनवे।
अवमुच्यात्मनः कण्ठाद्धारं जनकनन्दिनी ॥ ७९ ॥
अवैक्षत हरीन् सर्वान् भर्तारं च मुहुर्मुहुः।

विदेहनन्दिनी सीताने पतिकी ओर देखकर वायुपुत्र हनुमान्‌को कुछ भेंट देनेका विचार किया। वे जनकनन्दिनी अपने गलेसे उस मुक्ताहारको निकालकर बारंबार समस्त वानरों तथा पतिकी ओर देखने लगीं ॥ ७९½ ॥

तामिङ्गितज्ञः सम्प्रेक्ष्य बभाषे जनकात्मजाम् ॥ ८० ॥
प्रदेहि सुभगे हारं यस्य तुष्टासि भामिनि।

उनकी उस चेष्टाको समझकर श्रीरामचन्द्रजीने जानकीजी-

की ओर देखकर कहा—'सौभाग्यशालिनि ! भामिनि ! तुम जिसपर संतुष्ट हो, उसे यह हार दे दो' ॥ ८०½ ॥

अथ सा वायुपुत्राय तं हारमसितेक्षणा ॥ ८१ ॥
तेजो धृतिर्यशो दाक्ष्यं सामर्थ्यं विनयो नयः ।
पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि नित्यदा ॥ ८२ ॥

तब कजरारे नेत्रोंवाली माता सीताने वायुपुत्र हनुमान्‌को, जिनमें तेज, धृति, यश, चतुरता, शक्ति, विनय, नीति, पुरुषार्थ, पराक्रम और उत्तम बुद्धि—ये सद्‌गुण सदा विद्यमान रहते हैं, वह हार दे दिया ॥ ८१-८२ ॥

हनूमांस्तेन हारेण शुशुभे वानरर्षभः ।
चन्द्रांशुचयगौरेण श्वेताभ्रेण यथाचलः ॥ ८३ ॥

उस हारसे कपिश्रेष्ठ हनुमान् उसी तरह शोभा पाने लगे, जैसे चन्द्रमाकी किरणोंके समूह-सदृश श्वेत बादलोंकी मालासे कोई पर्वत सुशोभित हो रहा हो ॥ ८३ ॥

सर्वे वानरवृद्धाश्च ये चान्ये वानरोत्तमाः ।
वासोभिर्भूषणैश्चैव यथार्हं प्रतिपूजिताः ॥ ८४ ॥

इसी प्रकार जो प्रधान-प्रधान एवं श्रेष्ठ वानर थे, उन सबका वस्त्रों और आभूषणोंद्वारा यथायोग्य सत्कार किया गया ॥ ८४ ॥

विभीषणोऽथ सुग्रीवो हनूमाञ्जाम्बवांस्तथा ।
सर्वे वानरमुख्याश्च रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ८५ ॥
यथार्हं पूजिताः सर्वे कामै रत्नैश्च पुष्कलैः ।
प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुरेव यथागतम् ॥ ८६ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामने विभीषण, सुग्रीव, हनुमान् तथा जाम्बवान् आदि सभी श्रेष्ठ वानरवीरोंका मनोवाञ्छित वस्तुओं एवं प्रचुर रत्नोंद्वारा यथायोग्य सत्कार किया । वे सब-के-सब प्रसन्नचित्त होकर जैसे आये थे, उसी तरह अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ ८५-८६ ॥

ततो द्विविदमैन्दाभ्यां नीलाय च परंतपः ।
सर्वान् कामगुणान् वीक्ष्य प्रददौ वसुधाधिपः ॥ ८७ ॥

तत्पश्चात् शत्रुओंको संताप देनेवाले राजा श्रीरघुनाथजीने द्विविद, मैन्द और नीलकी ओर देखकर उन सबको मनोवाञ्छापूरक गुणोंसे युक्त सब प्रकारके उत्तम रत्न आदि भेंट किये ॥ ८७ ॥

दृष्ट्वा सर्वे महात्मानस्ततस्ते वानरर्षभाः ।
विसृष्टाः पार्थिवेन्द्रेण किष्किन्धां समुपागमन् ॥ ८८ ॥

इस प्रकार भगवान् श्रीरामका राज्याभिषेक देखकर सभी महामनस्वी श्रेष्ठ वानर महाराज श्रीरामसे बिदा ले किष्किन्धाको चले गये ॥ ८८ ॥

सुग्रीवो वानरश्रेष्ठो दृष्ट्वा रामाभिषेचनम् ।
पूजितश्चैव रामेण किष्किन्धां प्राविशत् पुरीम् ॥ ८९ ॥

वानरश्रेष्ठ सुग्रीवने भी श्रीरामके राज्याभिषेकका उत्सव देखकर उनसे पूजित हो किष्किन्धापुरीमें प्रवेश किया ॥ ८९ ॥

विभीषणोऽपि धर्मात्मा सह तैर्नैर्ऋतर्षभैः ।
लब्ध्वा कुलधनं राजा लङ्कां प्रायान्महायशाः ॥ ९० ॥

महायशस्वी धर्मात्मा विभीषण भी अपने कुलका वैभव—अपना राज्य पाकर अपने साथी श्रेष्ठ निशाचरोंके साथ लङ्कापुरीको चले गये ॥ ९० ॥

स राज्यमखिलं शासन्निहतारिर्महायशाः ।
राघवः परमोदारः शशास परया मुदा ।
उवाच लक्ष्मणं रामो धर्मज्ञं धर्मवत्सलः ॥ ९१ ॥

अपने शत्रुओंका वध करके परम उदार महायशस्वी श्रीरघुनाथजी बड़े आनन्दसे समस्त राज्यका शासन करने लगे । उन धर्मवत्सल श्रीरामने धर्मज्ञ लक्ष्मणसे कहा— ॥ ९१ ॥

आतिष्ठ धर्मज्ञ मया सहेमां
गां पूर्वराजाध्युषितां बलेन ।
तुल्यं मया त्वं पितृभिर्धृता या
तां यौवराज्ये धुरमुद्वहस्व ॥ ९२ ॥

'धर्मज्ञ लक्ष्मण ! पूर्ववर्ती राजाओंने चतुरङ्गिणी सेनाके साथ जिसका पालन किया था, उसी इस भूमण्डलके राज्यपर तुम मेरे साथ प्रतिष्ठित होओ । अपने पिता, पितामह और प्रपितामहोंने जिस राज्यभारको पहले धारण किया था, उसीको मेरे ही समान तुम भी युवराज-पदपर स्थित होकर धारण करो' ॥ ९२ ॥

सर्वात्मना पर्यनुनीयमानो
यदा न सौमित्रिरुपैति योगम् ।
नियुज्यमानो भुवि यौवराज्ये
ततोऽभ्यषिञ्चद् भरतं महात्मा ॥ ९३ ॥

परंतु श्रीरामचन्द्रजीके सब तरहसे समझाने और नियुक्त किये जानेपर भी जब सुमित्राकुमार लक्ष्मणने उस पदको नहीं स्वीकार किया, तब महात्मा श्रीरामने भरतको युवराज-पदपर अभिषिक्त किया ॥ ९३ ॥

पौण्डरीकाश्वमेधाभ्यां वाजपेयेन चासकृत् ।
अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरयजत् पार्थिवात्मजः ॥ ९४ ॥

राजकुमार महाराज श्रीरामने अनेक बार पौण्डरीक, अश्वमेध, वाजपेय तथा अन्य नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया ॥ ९४ ॥

राज्यं दशसहस्राणि प्राप्य वर्षाणि राघवः ।
शताश्वमेधानाजह्रे सदश्वान् भूरिदक्षिणान् ॥ ९५ ॥

श्रीरघुनाथजीने राज्य पाकर ग्यारह[1] सहस्र वर्षोंतक उसका पालन और सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया । उन यज्ञोंमें उत्तम अश्व छोड़े गये थे तथा ऋत्विजोंको बहुत अधिक दक्षिणाएँ बाँटी गयी थीं ॥ ९५ ॥

---

[1] १. अन्यत्र 'दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च' कहा गया है, उनसे एक वाक्यताके लिये यहाँ दसको ग्यारहका बोधक समझना चाहिये ।

आजानुलम्बिबाहुः स महावक्षाः प्रतापवान्।
लक्ष्मणानुचरो रामः शशास पृथिवीमिमाम् ॥ ९६ ॥

उनकी भुजाएँ घुटनों तक लंबी थीं। उनका वक्षःस्थल विशाल एवं विस्तृत था। वे बड़े प्रतापी नरेश थे। लक्ष्मणको साथ लेकर श्रीरामने इस पृथ्वीका शासन किया ॥ ९६ ॥

राघवश्चापि धर्मात्मा प्राप्य राज्यमनुत्तमम्।
ईजे बहुविधैर्यज्ञैः ससुहृज्ज्ञातिबान्धवः ॥९७॥

अयोध्याके परम उत्तम राज्यको पाकर धर्मात्मा श्रीरामने सुहृदों, कुटुम्बीजनों तथा भाई-बन्धुओंके साथ अनेक प्रकारके यज्ञ किये ॥ ९७ ॥

न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम्।
न व्याधिजं भयं चासीद् रामे राज्यं प्रशासति ॥९८॥

श्रीरामके राज्य-शासनकालमें कभी विधवाओंका विलाप नहीं सुनायी पड़ता था। सर्प आदि दुष्ट जन्तुओंका भय नहीं था और रोगोंकी भी आशङ्का नहीं थी ॥ ९८ ॥

निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थं कश्चिदस्पृशत्।
न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते ॥ ९९ ॥

सम्पूर्ण जगत्में कहीं चोरों या लुटेरोंका नाम भी नहीं सुना जाता था। कोई भी मनुष्य अनर्थकारी कार्योंमें हाथ नहीं डालता था और बूढ़ोंको बालकोंके अन्त्येष्टि-संस्कार नहीं करने पड़ते थे ॥ ९९ ॥

सर्वं मुदितमेवासीत् सर्वो धर्मपरोऽभवत्।
राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन् परस्परम् ॥१००॥

सब लोग सदा प्रसन्न ही रहते थे। सभी धर्मपरायण थे और श्रीरामपर ही बारंबार दृष्टि रखते हुए वे कभी एक दूसरेको कष्ट नहीं पहुँचाते थे ॥ १०० ॥

आसन् वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिणः।
निरामया विशोकाश्च रामे राज्यं प्रशासति ॥१०१॥

श्रीरामके राज्य-शासन करते समय लोग सहस्रों वर्षोंतक जीवित रहते थे, सहस्रों पुत्रोंके जनक होते थे और उन्हें किसी प्रकारका रोग या शोक नहीं होता था ॥ १०१ ॥

रामो रामो राम इति प्रजानामभवन् कथाः।
रामभूतं जगदभूद् रामे राज्यं प्रशासति ॥१०२॥

श्रीरामके राज्यशासनकालमें प्रजावर्गके भीतर केवल राम, राम, रामकी ही चर्चा होती थी। सारा जगत् श्रीराममय हो रहा था ॥ १०२ ॥

नित्यमूला नित्यफलास्तरवस्तत्र पुष्पिताः।
कामवर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः ॥१०३॥

श्रीरामके राज्यमें वृक्षोंकी जड़ें सदा मजबूत रहती थीं। वे वृक्ष सदा फूलों और फलोंसे लदे रहते थे। मेघ प्रजाकी इच्छा और आवश्यकताके अनुसार ही वर्षा करते थे। वायु मन्द गतिसे चलती थी, जिससे उसका स्पर्श सुखद जान पड़ता था ॥ १०३ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा लोभविवर्जिताः।
स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः ॥१०४॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णोंके लोग लोभरहित होते थे। सबको अपने ही वर्णाश्रमोचित कर्मोंसे संतोष था और सभी उन्हींके पालनमें लगे रहते थे ॥१०४॥

आसन् प्रजा धर्मपरा रामे शासति नानृताः।
सर्वे लक्षणसम्पन्नाः सर्वे धर्मपरायणाः ॥१०५॥

श्रीरामके शासनकालमें सारी प्रजा धर्ममें तत्पर रहती थी। झूठ नहीं बोलती थी। सब लोग उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न थे और सबने धर्मका आश्रय ले रक्खा था ॥ १०५ ॥

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
भ्रातृभिः सहितः श्रीमान् रामो राज्यमकारयत्॥१०६॥

भाइयोंसहित श्रीमान् रामने ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य किया था ॥ १०६ ॥

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं राज्ञां च विजयावहम्।
आदिकाव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥१०७॥

यह ऋषिप्रोक्त आदिकाव्य रामायण है, जिसे पूर्वकालमें महर्षि वाल्मीकिने बनाया था। यह धर्म, यश तथा आयुकी वृद्धि करनेवाला एवं राजाओंको विजय देनेवाला है ॥ १०७॥

यः शृणोति सदा लोके नरः पापात् प्रमुच्यते।
पुत्रकामश्च पुत्रान् वै धनकामो धनानि च ॥१०८॥
लभते मनुजो लोके श्रुत्वा रामाभिषेचनम्।
महीं विजयते राजा रिपूंश्चाप्यधितिष्ठति ॥१०९॥

संसारमें जो मानव सदा इसका श्रवण करता है, वह पापसे मुक्त हो जाता है। श्रीरामके राज्याभिषेकके प्रसंगको सुनकर मनुष्य इस जगत्में यदि पुत्रका इच्छुक हो तो पुत्र और धनका अभिलाषी हो तो धन पाता है। राजा इस काव्यका श्रवण करनेसे पृथ्वीपर विजय पाता और शत्रुओंको अपने अधीन कर लेता है ॥ १०८-१०९ ॥

राघवेण यथा माता सुमित्रा लक्ष्मणेन च।
भरतेन च कैकेयी जीवपुत्रास्तथा स्त्रियः ॥११०॥
भविष्यन्ति सदानन्दाः पुत्रपौत्रसमन्विताः।

जैसे माता कौसल्या श्रीरामको, सुमित्रा लक्ष्मणको और कैकेयी भरतको पाकर जीवित पुत्रोंकी माता कहलायीं, उसी प्रकार संसारकी दूसरी स्त्रियाँ भी इस आदिकाव्यके पाठ और श्रवणसे जीवित पुत्रोंकी जननी, सदा आनन्दमग्न तथा पुत्र-पौत्रोंसे सम्पन्न होंगी ॥ ११०½ ॥

श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुश्च विन्दति ॥१११॥
रामस्य विजयं चेमं सर्वमक्लिष्टकर्मणः।

क्लेशरहित कर्म करनेवाले श्रीरामकी विजय-कथारूप इस सम्पूर्ण रामायण-काव्यको सुनकर मनुष्य दीर्घकालतक स्थिर रहनेवाली आयु पाता है ॥ १११½ ॥

शृणोति य इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ११२॥

श्रद्धानो जितक्रोधो दुर्गाण्यतितरत्यसौ ।

पूर्वकालमें महर्षि वाल्मीकिने जिसकी रचना की थी, वही यह आदिकाव्य है। जो क्रोधको जीतकर श्रद्धापूर्वक इसे सुनता है, वह बड़े-बड़े संकटोंसे पार हो जाता है ॥ ११२½॥

समागम्य प्रवासान्ते रमन्ते सह बान्धवैः ॥११३॥
शृण्वन्ति य इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ।
ते प्रार्थितान् वरान् सर्वान् प्राप्नुवन्तीह राघवात् ॥११४॥

जो लोग पूर्वकालमें महर्षि वाल्मीकिद्वारा निर्मित इस काव्यको सुनते हैं, वे परदेशसे लौटकर अपने भाई-बन्धुओंके साथ मिलते और आनन्दका अनुभव करते हैं। वे इस जगत्में श्रीरघुनाथजीसे समस्त मनोवाञ्छित फलोंको प्राप्त कर लेते हैं ॥ ११३-११४ ॥

श्रवणेन सुराः सर्वे प्रीयन्ते सम्प्रशृण्वताम् ।
विनायकाश्च शाम्यन्ति गृहे तिष्ठन्ति यस्य वै ॥११५॥

इसके श्रवणसे समस्त देवता श्रोताओंपर प्रसन्न होते हैं तथा जिसके घरमें विघ्नकारी ग्रह होते हैं, उसके वे सारे ग्रह शान्त हो जाते हैं ॥ ११५ ॥

विजयेत महीं राजा प्रवासी स्वस्तिमान् भवेत् ।
स्त्रियो रजस्वलाः श्रुत्वा पुत्रान् सूयुरनुत्तमान् ॥११६॥

राजा इसके श्रवणसे भूमण्डलपर विजय पाता है। परदेशमें निवास करनेवाला पुरुष सकुशल रहता और रजस्वला स्त्रियाँ (स्नानके अनन्तर सोलह दिनोंके भीतर) इसे सुनकर श्रेष्ठ पुत्रोंको जन्म देती हैं ॥ ११६ ॥

पूजयंश्च पठंश्चैनमितिहासं पुरातनम् ।
सर्वपापैः प्रमुच्येत दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥११७॥

जो इस प्राचीन इतिहासका पूजन और पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होता और बड़ी आयु पाता है ॥११७॥

प्रणम्य शिरसा नित्यं श्रोतव्यं क्षत्रियैर्द्विजात् ।
ऐश्वर्यं पुत्रलाभश्च भविष्यति न संशयः ॥११८॥

क्षत्रियोंको चाहिये कि वे प्रतिदिन मस्तक झुकाकर प्रणाम करके ब्राह्मणके मुखसे इस ग्रन्थका श्रवण करें। इससे उन्हें ऐश्वर्य और पुत्रकी प्राप्ति होगी, इसमें संशय नहीं है ॥११८॥

रामायणमिदं कृत्स्नं शृण्वतः पठतः सदा ।
प्रीयते सततं रामः स हि विष्णुः सनातनः ॥११९॥

जो नित्य इस सम्पूर्ण रामायणका श्रवण एवं पाठ करता है, उसपर सनातन विष्णुस्वरूप भगवान् श्रीराम सदा प्रसन्न रहते हैं ॥ ११९ ॥

आदिदेवो महाबाहुर्हरिर्नारायणः प्रभुः । ✓
साक्षाद् रामो रघुश्रेष्ठः शेषो लक्ष्मण उच्यते ॥१२०॥

साक्षात् आदिदेव महाबाहु पापहारी प्रभु नारायण ही रघुकुलतिलक श्रीराम हैं तथा भगवान् शेष ही लक्ष्मण कहलाते हैं ॥ १२० ॥

एवमेतत् पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः ।
प्रव्याहरत विस्रब्धं बलं विष्णोः प्रवर्धताम् ॥१२१॥

(लवकुश कहते हैं—) श्रोताओ ! आपलोगोंका कल्याण हो। यह पूर्वघटित आख्यान ही इस प्रकार रामायण-काव्यके रूपमें वर्णित हुआ है। आपलोग पूर्ण विश्वासके साथ इसका पाठ करें। इससे आपके वैष्णव बलकी वृद्धि होगी ॥ १२१ ॥

देवाश्च सर्वे तुष्यन्ति ग्रहणाच्छ्रवणात् तथा ।
रामायणस्य श्रवणे तृप्यन्ति पितरः सदा ॥१२२॥

रामायणको हृदयमें धारण करने और सुननेसे सब देवता संतुष्ट होते हैं। इसके श्रवणसे पितरोंको भी सदा तृप्ति मिलती है ॥ १२२ ॥

भक्त्या रामस्य ये चेमां संहितामृषिणा कृताम् ।
ये लिखन्तीह च नरास्तेषां वासस्त्रिविष्टपे ॥१२३॥

जो लोग श्रीरामचन्द्रजीमें भक्तिभाव रखकर महर्षि वाल्मीकिनिर्मित इस रामायण-संहिताको लिखते हैं, उनका स्वर्गमें निवास होता है ॥ १२३ ॥

कुटुम्बवृद्धिं धनधान्यवृद्धिं
स्त्रियश्च मुख्याः सुखमुत्तमं च ।
श्रुत्वा शुभं काव्यमिदं महार्थं
प्राप्नोति सर्वां भुवि चार्थसिद्धिम् ॥१२४॥

इस शुभ और गम्भीर अर्थसे युक्त काव्यको सुनकर मनुष्यके कुटुम्ब और धन-धान्यकी वृद्धि होती है। उसे श्रेष्ठ गुणवाली सुन्दरी स्त्रियाँ सुलभ होती हैं तथा इस भूतलपर वह अपने सारे मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है ॥ १२४ ॥

आयुष्यमारोग्यकरं यशस्यं
सौभ्रातृकं बुद्धिकरं शुभं च ।
श्रोतव्यमेतन्नियमेन सद्भि-
राख्यानमोजस्करमृद्धिकामैः ॥१२५॥

यह काव्य आयु, आरोग्य, यश तथा भ्रातृप्रेमको बढ़ानेवाला है। यह उत्तम बुद्धि प्रदान करनेवाला और मङ्गलकारी है; अतः समृद्धिकी इच्छा रखनेवाले सत्पुरुषोंको इस उत्साहवर्द्धक इतिहासका नियमपूर्वक श्रवण करना चाहिये ॥ १२५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टाविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ अट्ठाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२८ ॥

युद्धकाण्डं सम्पूर्णम्

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्

उत्तरकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

श्रीरामके दरबारमें महर्षियोंका आगमन, उनके साथ उनकी बातचीत तथा श्रीरामके प्रश्न

प्राप्तराज्यस्य रामस्य राक्षसानां वधे कृते ।
आजग्मुर्मुनयः सर्वे राघवं प्रतिनन्दितुम् ॥ १ ॥

राक्षसोंका संहार करनेके अनन्तर जब भगवान् श्रीरामने अपना राज्य प्राप्त कर लिया, तब सम्पूर्ण ऋषि-महर्षि श्रीरघुनाथजीका अभिनन्दन करनेके लिये अयोध्यापुरीमें आये॥

कौशिकोऽथ यवक्रीतो गार्ग्यो गालव एव च ।
कण्वो मेधातिथेः पुत्रः पूर्वस्यां दिशि ये श्रिताः ॥ २ ॥

जो मुख्यतः पूर्व दिशामें निवास करते हैं, वे कौशिक, यवक्रीत, गार्ग्य, गालव और मेधातिथिके पुत्र कण्व वहाँ पधारे ॥ २ ॥

स्वस्त्यात्रेयश्च भगवान् नमुचिः प्रमुचिस्तथा ।
अगस्त्योऽत्रिश्च भगवान् सुमुखो विमुखस्तथा ॥ ३ ॥
आजग्मुस्ते सहागस्त्या ये श्रिता दक्षिणां दिशम् ।

स्वस्त्यात्रेय, भगवान् नमुचि, प्रमुचि, अगस्त्य, भगवान् अत्रि, सुमुख और विमुख—ये दक्षिण दिशामें रहनेवाले महर्षि अगस्त्यजीके साथ वहाँ आये ॥ ३½ ॥

नृषङ्गुः कवषो धौम्यः कौशेयश्च महानृषिः ॥ ४ ॥
तेऽप्याजग्मुः सशिष्या वै ये श्रिताः पश्चिमां दिशम् ।

जो प्रायः पश्चिम दिशाका आश्रय लेकर रहते हैं, वे नृषङ्गु, कवष, धौम्य और महर्षि कौशेय भी अपने शिष्योंके साथ वहाँ आये ॥ ४½ ॥

वसिष्ठः कश्यपोऽथात्रिर्विश्वामित्रः सगौतमः ॥ ५ ॥
जमदग्निर्भरद्वाजस्तेऽपि सप्तर्षयस्तथा ।
उदीच्यां दिशि सप्तैते नित्यमेव निवासिनः ॥ ६ ॥

इसी तरह उत्तर दिशाके नित्य-निवासी वसिष्ठ,* कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज—ये सात ऋषि जो सप्तर्षि कहलाते हैं, अयोध्यापुरीमें पधारे ॥ ५-६ ॥

सम्प्राप्यैते महात्मानो राघवस्य निवेशनम् ।
विष्ठिताः प्रतिहारार्थं हुताशनसमप्रभाः ॥ ७ ॥
वेदवेदाङ्गविदुषो, नानाशास्त्रविशारदाः ।

ये सभी अग्निके समान तेजस्वी, वेद-वेदाङ्गोंके विद्वान् तथा नाना प्रकारके शास्त्रोंका विचार करनेमें प्रवीण थे । वे महात्मा मुनि श्रीरघुनाथजीके राजभवनके पास पहुँचकर अपने आगमनकी सूचना देनेके लिये ड्योढ़ीपर खड़े हो गये ॥७½॥

द्वाःस्थं प्रोवाच धर्मात्मा अगस्त्यो मुनिसत्तमः ॥ ८ ॥
निवेद्यतां दाशरथेर्ऋषयो वयमागताः ।

उस समय धर्मपरायण मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने द्वारपालसे कहा——'तुम दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामको जाकर सूचना दो कि हम अनेक ऋषि-मुनि आपसे मिलनेके लिये आये हैं' ८½

प्रतीहारस्ततस्तूर्णमगस्त्यवचनाद् द्रुतम् ॥ ९ ॥
समीपं राघवस्याशु प्रविवेश महात्मनः ।
नयेङ्गितज्ञः सद्वृत्तो दक्षो धैर्यसमन्वितः ॥ १० ॥

महर्षि अगस्त्यकी आज्ञा पाकर द्वारपाल तुरंत महात्मा श्रीरघुनाथजीके समीप गया । वह नीतिज्ञ, इशारेसे बातको समझनेवाला, सदाचारी, चतुर और धैर्यवान् था ॥ ९-१० ॥

स रामं दृश्य सहसा पूर्णचन्द्रसमद्युतिम् ।
अगस्त्यं कथयामास सम्प्राप्तमृषिसत्तमम् ॥ ११ ॥

पूर्ण चन्द्रमाके समान कान्तिमान् श्रीरामका दर्शन करके उसने सहसा बताया—'प्रभो ! मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य अनेक ऋषियोंके साथ पधारे हुए हैं' ॥ ११ ॥

श्रुत्वा प्राप्तान् मुनींस्तांस्तु बालसूर्यसमप्रभान् ।
प्रत्युवाच ततो द्वाःस्थं प्रवेशय यथासुखम् ॥ १२ ॥

प्रातःकालके सूर्यकी भाँति दिव्य तेजसे प्रकाशित होनेवाले उन मुनीश्वरोंके पदार्पणका समाचार सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने द्वारपालसे कहा——'तुम जाकर उन सब लोगोंको यहाँ सुखपूर्वक ले आओ' ॥ १२ ॥

दृष्ट्वा प्राप्तान् मुनींस्तांस्तु प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ।
पाद्यार्घ्यादिभिरानर्च गां निवेद्य च सादरम् ॥ १३ ॥

(आज्ञा पाकर द्वारपाल गया और सबको साथ ले आया ।) उन मुनीश्वरोंको उपस्थित देख श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोड़कर खड़े हो गये । फिर पाद्य-अर्घ्य आदिके द्वारा उनका आदरपूर्वक पूजन किया । पूजनसे पहले उन सबके लिये एक-एक गाय भेंट की ॥ १३ ॥

---

* वसिष्ठमुनि एक शरीरसे अयोध्यामें रहते हुए भी दूसरे शरीरसे सप्तर्षिमण्डलमें रहते थे । उसी दूसरे शरीरसे उनके आनेकी बात यहाँ कही गयी है——ऐसा समझना चाहिये ।

रामोऽभिवाद्य प्रयत आसनान्यादिदेश ह ।
तेषु काञ्चनचित्रेषु महत्सु च वरेषु च ॥ १४ ॥
कुशान्तर्धानदत्तेषु मृगचर्मयुतेषु च ।
यथार्हमुपविष्टास्ते आसनेष्वृषिपुङ्गवाः ॥ १५ ॥

श्रीरामने शुद्धभावसे उन सबको प्रणाम करके उन्हें बैठनेके लिये आसन दिये । वे आसन सोनेके बने हुए और विचित्र आकार-प्रकारवाले थे । सुन्दर होनेके साथ ही वे विशाल और विस्तृत भी थे । उनपर कुशके आसन रखकर ऊपरसे मृगचर्म बिछाये गये थे । उन आसनोंपर वे श्रेष्ठ मुनि यथायोग्य बैठ गये ॥ १४-१५ ॥

रामेण कुशलं पृष्टाः सशिष्याः सपुरोगमाः ।
महर्षयो वेदविदो रामं वचनमब्रुवन् ।

तब श्रीरामने शिष्यों और गुरुजनोंसहित उन सबका कुशल-समाचार पूछा । उनके पूछनेपर वे वेदवेत्ता महर्षि इस प्रकार बोले—॥ १५½ ॥

कुशलं नो महाबाहो सर्वत्र रघुनन्दन ॥ १६ ॥
त्वां तु दिष्ट्या कुशलिनं पश्यामो हतशात्रवम् ।
दिष्ट्या त्वया हतो राजन् रावणो लोकरावणः ॥ १७ ॥

'महाबाहु रघुनन्दन ! हमारे लिये तो सर्वत्र कुशल-ही-कुशल है । सौभाग्यकी बात है कि हम आपको सकुशल देख रहे हैं और आपके सारे शत्रु मारे जा चुके हैं । राजन् ! आपने सम्पूर्ण लोकोंको रुलानेवाले रावणका वध किया, यह सबके लिये बड़े सौभाग्यकी बात है ॥ १६-१७ ॥

नहि भारः स ते राम रावणः पुत्रपौत्रवान् ।
सधनुस्त्वं हि लोकांस्त्रीन् विजयेथा न संशयः ॥ १८ ॥

'श्रीराम ! पुत्र-पौत्रोंसहित रावण आपके लिये कोई भार नहीं था । आप धनुष लेकर खड़े हो जायँ तो तीनों लोकोंपर विजय पा सकते हैं; इसमें संशय नहीं है ॥ १८ ॥

दिष्ट्या त्वया हतो राम रावणो राक्षसेश्वरः ।
दिष्ट्या विजयिनं त्वाद्य पश्यामः सह सीतया ॥ १९ ॥

'रघुनन्दन राम ! आपने राक्षसराज रावणका वध कर दिया और सीताके साथ आप विजयी वीरोंको आज हम सकुशल देख रहे हैं, यह कितने आनन्दकी बात है ॥ १९ ॥

लक्ष्मणेन च धर्मात्मन् भ्रात्रा त्वद्धितकारिणा ।
मातृभिर्भ्रातृसहितं पश्यामोऽद्य वयं नृप ॥ २० ॥

'धर्मात्मा नरेश ! आपके भाई लक्ष्मण सदा आपके हितमें लगे रहनेवाले हैं । आप इनके, भरत-शत्रुघ्नके तथा माताओंके साथ अब यहाँ सानन्द विराज रहे हैं और इस रूपमें हमें आपका दर्शन हो रहा है, यह हमारा अहोभाग्य है ॥ २० ॥

दिष्ट्या प्रहस्तो विकटो विरूपाक्षो महोदरः ।
अकम्पनश्च दुर्धर्षो निहतास्ते निशाचराः ॥ २१ ॥

'प्रहस्त, विकट, विरूपाक्ष, महोदर तथा दुर्धर्ष अकम्पन-जैसे निशाचर आपलोगोंके हाथसे मारे गये, यह बड़े आनन्दकी बात है ॥ २१ ॥

यस्य प्रमाणाद् विपुलं प्रमाणं नेह विद्यते ।
दिष्ट्या ते समरे राम कुम्भकर्णो निपातितः ॥ २२ ॥

'श्रीराम ! शरीरकी ऊँचाई और स्थूलतामें जिससे बढ़कर दूसरा कोई है ही नहीं, उस कुम्भकर्णको भी आपने समराङ्गणमें मार गिराया, यह हमारे लिये परम सौभाग्यकी बात है ॥ २२ ॥

त्रिशिराश्चातिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ ।
दिष्ट्या ते निहता राम महावीर्या निशाचराः ॥ २३ ॥

'श्रीराम ! त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक तथा नरान्तक—ये महापराक्रमी निशाचर भी हमारे सौभाग्यसे ही आपके हाथों मारे गये ॥ २३ ॥

कुम्भश्चैव निकुम्भश्च राक्षसौ भीमदर्शनौ ।
दिष्ट्या तौ निहतौ राम कुम्भकर्णसुतौ मृधे ॥ २४ ॥

'रघुवीर ! जो देखनेमें भी बड़े भयंकर थे, वे कुम्भकर्णके दोनों पुत्र कुम्भ और निकुम्भ नामक राक्षस भी भाग्यवश युद्धमें मारे गये ॥ २४ ॥

युद्धोन्मत्तश्च मत्तश्च कालान्तकयमोपमौ ।
यज्ञकोपश्च बलवान् धूम्राक्षो नाम राक्षसः ॥ २५ ॥

'प्रलयकालके संहारकारी यमराजकी भाँति भयानक युद्धोन्मत्त और मत्त भी कालके गालमें चले गये । बलवान् यज्ञकोप और धूम्राक्ष नामक राक्षस भी यमलोकके अतिथि हो गये ॥ २५ ॥

कुर्वन्तः कदनं घोरमेते शस्त्रास्त्रपारगाः ।
अन्तकप्रतिमैर्बाणैर्दिष्ट्या विनिहतास्त्वया ॥ २६ ॥

'ये समस्त निशाचर अस्त्र-शस्त्रोंके पारंगत विद्वान् थे । इन्होंने जगत्में भयंकर संहार मचा रक्खा था; परंतु आपने अन्तकतुल्य बाणोंद्वारा इन सबको मौतके घाट उतार दिया; यह कितने हर्षकी बात है ॥ २६ ॥

दिष्ट्या त्वं राक्षसेन्द्रेण द्वन्द्वयुद्धमुपागतः ।
देवतानामवध्येन विजयं प्राप्तवानसि ॥ २७ ॥

'राक्षसराज रावण देवताओंके लिये भी अवध्य था, उसके साथ आप द्वन्द्वयुद्धमें उतर आये और विजय भी आपको ही मिली; यह बड़े सौभाग्यकी बात है ॥ २७ ॥

संख्ये तस्य न किंचित् तु रावणस्य पराभवः ।
द्वन्द्वयुद्धमनुप्राप्तो दिष्ट्या ते रावणिर्हतः ॥ २८ ॥

'युद्धमें आपके द्वारा जो रावणका पराभव (संहार) हुआ, वह कोई बड़ी बात नहीं है; परंतु द्वन्द्वयुद्धमें लक्ष्मणके द्वारा जो रावणपुत्र इन्द्रजित्का वध हुआ है, वही सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात है ॥ २८ ॥

दिष्ट्या तस्य महाबाहो कालस्येवाभिधावतः ।
मुक्तः सुररिपोर्वीर प्राप्तश्च विजयस्त्वया ॥ २९ ॥

'महाबाहु वीर ! कालके समान आक्रमण करनेवाले उस देवद्रोही राक्षसके नागपाशसे मुक्त होकर आपने विजय प्राप्त की, यह महान् सौभाग्यकी बात है ॥ २९ ॥

अभिनन्दाम ते सर्वे संश्रुत्येन्द्रजितो वधम् ।
अवध्यः सर्वभूतानां महामायाधरो युधि ॥ ३० ॥
विस्मयस्त्वेष चास्माकं तं श्रुत्वेन्द्रजितं हतम् ।

'इन्द्रजित्के वधका समाचार सुनकर हम सब लोग बहुत प्रसन्न हुए हैं और इसके लिये आपका अभिनन्दन करते हैं। वह महामायावी राक्षस युद्धमें सभी प्राणियोंके लिये अवध्य था। वह इन्द्रजित् भी मारा गया, यह सुनकर हमें अधिक आश्चर्य हुआ है ॥ ३०½ ॥

एते चान्ये च बहवो राक्षसाः कामरूपिणः ॥ ३१ ॥
दिष्ट्या त्वया हता वीरा रघूणां कुलवर्धन ।

'रघुकुलकी वृद्धि करनेवाले श्रीराम ! ये तथा और भी बहुत-से इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वीर राक्षस आपके द्वारा मारे गये, यह बड़े आनन्दकी बात है ॥ ३१½ ॥

दत्त्वा पुण्यामिमां वीर सौम्यामभयदक्षिणाम् ॥ ३२ ॥
दिष्ट्या वर्धसि काकुत्स्थ जयेनामित्रकर्शन ।

'वीर ! ककुत्स्थकुलभूषण ! शत्रुसूदन श्रीराम ! आप संसारको यह परम पुण्यमय सौम्य अभयदान देकर अपनी विजयके कारण वधाईके पात्र हो गये हैं—निरन्तर बढ़ रहे हैं, यह कितने हर्षकी बात है !' ॥ ३२½ ॥

श्रुत्वा तु वचनं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ३३ ॥
विस्मयं परमं गत्वा रामः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।

उन पवित्रात्मा मुनियोंकी वह बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे हाथ जोड़कर पूछने लगे—३३½

भगवन्तः कुम्भकर्णं रावणं च निशाचरम् ॥ ३४ ॥
अतिक्रम्य महावीर्यौ किं प्रशंसथ रावणिम् ।

'पूज्यपाद महर्षियो ! निशाचर रावण तथा कुम्भकर्ण दोनों ही महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे। उन दोनोंको लाँघकर आप रावणपुत्र इन्द्रजित्की ही प्रशंसा क्यों करते हैं ? ३४½

महोदरं प्रहस्तं च विरूपाक्षं च राक्षसम् ॥ ३५ ॥
मत्तोन्मत्तौ च दुर्धर्षौ देवान्तकनरान्तकौ ।
अतिक्रम्य महावीरान् किं प्रशंसथ रावणिम् ॥ ३६ ॥

'महोदर, प्रहस्त, विरूपाक्ष, मत्त, उन्मत्त तथा दुर्धर्ष वीर देवान्तक और नरान्तक—इन महान् वीरोंका उल्लङ्घन करके आपलोग रावणकुमार इन्द्रजित्की ही प्रशंसा क्यों कर रहे हैं ? ॥ ३५-३६ ॥

अतिकायं त्रिशिरसं धूम्राक्षं च निशाचरम् ।
अतिक्रम्य महावीर्यान् किं प्रशंसथ रावणिम् ॥ ३७ ॥

'अतिकाय, त्रिशिरा तथा निशाचर धूम्राक्ष—इन महापराक्रमी वीरोंका अतिक्रमण करके आप रावणपुत्र इन्द्रजित्की ही प्रशंसा क्यों करते हैं ? ॥ ३७ ॥

कीदृशो वै प्रभावोऽस्य किं बलं कः पराक्रमः ।
केन वा कारणेनैष रावणादतिरिच्यते ॥ ३८ ॥

'उसका प्रभाव कैसा था ? उसमें कौन-सा बल और पराक्रम था ? अथवा किस कारणसे यह रावणसे भी बढ़कर सिद्ध होता है ॥ ३८ ॥

शक्यं यदि मया श्रोतुं न खल्वाज्ञापयामि वः ।
यदि गुह्यं न चेद् वक्तुं श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम् ॥

'यदि यह मेरे सुनने योग्य हो, गोपनीय न हो तो मैं इसे सुनना चाहता हूँ। आपलोग बतानेकी कृपा करें। यह मेरा विनम्र अनुरोध है। मैं आपलोगोंको आज्ञा नहीं दे रहा हूँ ॥ ३९ ॥

शक्रोऽपि विजितस्तेन कथं लब्धवरश्च सः ।
कथं च बलवान् पुत्रो न पिता तस्य रावणः ॥ ४० ॥

'उस रावणपुत्रने इन्द्रको भी किस तरह जीत लिया ? कैसे वरदान प्राप्त किया ? पुत्र किस प्रकार महाबलवान् हो गया और उसका पिता रावण क्यों वैसा बलवान् नहीं हुआ ? ४०

कथं पितुश्चाप्यधिको महाहवे
शक्रस्य जेता हि कथं स राक्षसः ।
वरांश्च लब्धाः कथयस्व मेऽद्य
पाप्रच्छतश्चास्य मुनीन्द्र सर्वम् ॥ ४१ ॥

'मुनीश्वर ! वह राक्षस इन्द्रजित् महासमरमें किस तरह पितासे भी अधिक शक्तिशाली एवं इन्द्रपर भी विजय पानेवाला हो गया ? तथा किस तरह उसने बहुत-से वर प्राप्त कर लिये ? इन सब बातोंको मैं जानना चाहता हूँ; इसलिये बारंबार पूछता हूँ। आज आप ये सारी बातें मुझे बताइये' ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पहला सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

महर्षि अगस्त्यके द्वारा पुलस्त्यके गुण और तपस्याका वर्णन तथा उनसे विश्रवा मुनिकी उत्पत्तिका कथन

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः ।
कुम्भयोनिर्महातेजा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥

महात्मा रघुनाथजीका वह प्रश्न सुनकर महातेजस्वी कुम्भयोनि अगस्त्यने उनसे इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

शृणु राम तथा वृत्तं तस्य तेजोबलं महत् ।
जघान शत्रून् येनासौ न च वध्यः स शत्रुभिः ॥ २ ॥

'श्रीराम ! इन्द्रजित्‌के महान् बल और तेजके उद्देश्यसे जो वृत्तान्त घटित हुआ है, उसे बताता हूँ, सुनो । जिस बलके कारण वह तो शत्रुओंको मार गिराता था, परंतु स्वयं किसी शत्रुके हाथसे मारा नहीं जाता था; उसका परिचय दे रहा हूँ ॥ २ ॥

तावत् ते रावणस्येदं कुलं जन्म च राघव ।
वरप्रदानं च तथा तस्मै दत्तं ब्रवीमि ते ॥ ३ ॥

'रघुनन्दन ! इस प्रस्तुत विषयका वर्णन करनेके लिये मैं पहले आपको रावणके कुल, जन्म तथा वरदान-प्राप्ति आदिका प्रसङ्ग सुनाता हूँ ॥ ३ ॥

पुरा कृतयुगे राम प्रजापतिसुतः प्रभुः ।
पुलस्त्यो नाम ब्रह्मर्षिः साक्षादिव पितामहः ॥ ४ ॥

'श्रीराम ! प्राचीनकाल--सत्ययुगकी बात है, प्रजापति ब्रह्माजीके एक प्रभावशाली पुत्र हुए, जो ब्रह्मर्षि पुलस्त्यके नामसे प्रसिद्ध हैं । वे साक्षात् ब्रह्माजीके समान ही तेजस्वी हैं॥

नानुकीर्त्या गुणास्तस्य धर्मतः शीलतस्तथा ।
प्रजापतेः पुत्र इति वक्तुं शक्यं हि नामतः ॥ ५ ॥

'उनके गुण, धर्म और शीलका पूरा-पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता । उनका इतना ही परिचय देना पर्याप्त होगा कि वे प्रजापतिके पुत्र हैं ॥ ५ ॥

प्रजापतिसुतत्वेन देवानां वल्लभो हि सः ।
इष्टः सर्वस्य लोकस्य गुणैः शुभ्रैर्महामतिः ॥ ६ ॥

'प्रजापति ब्रह्माके पुत्र होनेके कारण ही देवतालोग उनसे बहुत प्रेम करते हैं । वे बड़े बुद्धिमान् हैं और अपने उज्ज्वल गुणोंके कारण ही सब लोगोंके प्रिय हैं ॥ ६ ॥

स तु धर्मप्रसङ्गेन मेरोः पार्श्वे महागिरेः ।
तृणबिन्द्वाश्रमं गत्वाप्यवसन्मुनिपुङ्गवः ॥ ७ ॥

'एक बार मुनिवर पुलस्त्य धर्माचरणके प्रसङ्गसे महागिरि मेरुके निकटवर्ती राजर्षि तृणबिन्दुके आश्रममें गये और वहीं रहने लगे ॥ ७ ॥

तपस्तेपे स धर्मात्मा स्वाध्यायनियतेन्द्रियः ।
गत्वाऽऽश्रमपदं तस्य विघ्नं कुर्वन्ति कन्यकाः ॥ ८ ॥
ऋषिपन्नगकन्याश्च राजर्षितनयाश्च याः ।
क्रीडन्त्योऽप्सरसश्चैव तं देशमुपपेदिरे ॥ ९ ॥

'उनका मन सदा धर्ममें ही लगा रहता था । वे इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए प्रतिदिन वेदोंका स्वाध्याय करते और तपस्यामें लगे रहते थे । परंतु कुछ कन्याएँ उनके आश्रममें जाकर उनकी तपस्यामें विघ्न डालने लगीं । ऋषियों, नागों तथा राजर्षियोंकी कन्याएँ और जो अप्सराएँ हैं, वे भी प्रायः क्रीड़ा करती हुई उनके आश्रमकी ओर आ जाती थीं ॥८-९॥

सर्वर्तुषूपभोग्यत्वाद् रम्यत्वात् काननस्य च ।
नित्यशस्तास्तु तं देशं गत्वा क्रीडन्ति कन्यकाः ॥ १० ॥

'वहाँका वन सभी ऋतुओंमें उपभोगमें लानेके योग्य और रमणीय था, इसलिये वे कन्याएँ प्रतिदिन उस प्रदेशमें जाकर भाँति-भाँतिकी क्रीडाएँ करती थीं ॥ १० ॥

देशस्य रमणीयत्वात् पुलस्त्यो यत्र स द्विजः ।
गायन्त्यो वादयन्त्यश्च लासयन्त्यस्तथैव च ॥ ११ ॥
मुनेस्तपस्विनस्तस्य विघ्नं चक्रुरनिन्दिताः ।

'जहाँ ब्रह्मर्षि पुलस्त्य रहते थे, वह स्थान तो और भी रमणीय था; इसलिये वे सती-साध्वी कन्याएँ प्रतिदिन वहाँ आकर गाती, बजाती तथा नाचती थीं । इस प्रकार उन तपस्वी मुनिके तपमें विघ्न डाला करती थीं ॥ ११½ ॥

अथ रुष्टो महातेजा व्याजहार महामुनिः ॥ १२ ॥
या मे दर्शनमागच्छेत् सा गर्भं धारयिष्यति ।

'इससे वे महातेजस्वी महामुनि पुलस्त्य कुछ रुष्ट हो गये और बोले--'कलसे जो लड़की यहाँ मेरे दृष्टिपथमें आयेगी, वह निश्चय ही गर्भ धारण कर लेगी' ॥ १२½ ॥

तास्तु सर्वाः प्रतिश्रुत्य तस्य वाक्यं महात्मनः ॥ १३ ॥
ब्रह्मशापभयाद् भीतास्तं देशं नोपचक्रमुः ।

'उन महात्माकी यह बात सुनकर वे सब कन्याएँ ब्रह्मशापके भयसे डर गयीं और उन्होंने उस स्थानपर आना छोड़ दिया ॥ १३½ ॥

तृणबिन्दोस्तु राजर्षेस्तनया न शृणोति तत् ॥ १४ ॥
गत्वाऽऽश्रमपदं तत्र विचचार सुनिर्भया ।

'परंतु राजर्षि तृणबिन्दुकी कन्याने इस शापको नहीं सुना था; इसलिये वह दूसरे दिन भी बेखटके आकर उस आश्रममें विचरने लगी ॥ १४½ ॥

न चापश्यच्च सा तत्र कांचिदभ्यागतां सखीम्॥ १५ ॥
तस्मिन् काले महातेजाः प्राजापत्यो महानृषिः ।
स्वाध्यायमकरोत् तत्र तपसा भावितः स्वयम् ॥ १६ ॥

'वहाँ उसने अपनी किसी सखीको आयी हुई नहीं देखा । उस समय प्रजापतिके पुत्र महातेजस्वी महर्षि पुलस्त्य अपनी तपस्यासे प्रकाशित हो वहाँ वेदोंका स्वाध्याय कर रहे थे ॥

सा तु वेदश्रुतिं श्रुत्वा दृष्ट्वा वै तपसो निधिम् ।
अभवत् पाण्डुदेहा सा सुव्यञ्जितशरीरजा ॥ १७ ॥

'उस वेदध्वनिको सुनकर वह कन्या उसी ओर गयी और उसने तपोनिधि पुलस्त्यजीका दर्शन किया । महर्षिकी दृष्टि पड़ते ही उसके शरीरपर पीलापन छा गया और गर्भके लक्षण प्रकट हो गये ॥ १७ ॥

बभूव च समुद्विग्ना दृष्ट्वा तद्दोषमात्मनः ।
इदं मे किंत्विति ज्ञात्वा पितुर्गत्वाऽऽश्रमे स्थिता ॥ १८ ॥

'अपने शरीरमें यह दोष देखकर वह घबरा उठी और 'मुझे यह क्या हो गया ?' इस प्रकार चिन्ता करती हुई पिताके आश्रमपर जाकर खड़ी हुई ॥ १८ ॥

तां तु दृष्ट्वा तथाभूतां तृणबिन्दुरथाब्रवीत् ।
किं त्वमेतत्त्वसदृशं धारयस्यात्मनो वपुः ॥ १९ ॥

'अपनी कन्याको उस अवस्थामें देखकर तृणबिन्दुने पूछा—'तुम्हारे शरीरकी ऐसी अवस्था कैसे हुई ? तुम अपने शरीरको जिस रूपमें धारण कर रही हो, यह तुम्हारे लिये सर्वथा अयोग्य एवं अनुचित है' ॥ १९ ॥

सा तु कृत्वाञ्जलिं दीना कन्योवाच तपोधनम् ।
न जाने कारणं तात येन मे रूपमीदृशम् ॥ २० ॥

'वह बेचारी कन्या हाथ जोड़कर उन तपोधन मुनिसे बोली—'पिताजी ! मैं उस कारणको नहीं समझ पाती, जिससे मेरा रूप ऐसा हो गया है ॥ २० ॥

किं तु पूर्वं गतास्म्येका महर्षेर्भावितात्मनः ।
पुलस्त्यस्याश्रमं दिव्यमन्वेष्टुं स्वसखीजनम् ॥ २१ ॥

''अभी थोड़ी देर पहले मैं पवित्र अन्तःकरणवाले महर्षि पुलस्त्यके दिव्य आश्रमपर अपनी सखियोंको खोजनेके लिये अकेली गयी थी ॥ २१ ॥

न च पश्याम्यहं तत्र कांचिदभ्यागतां सखीम् ।
रूपस्य तु विपर्यासं दृष्ट्वा त्रासादिहागता ॥ २२ ॥

''वहाँ देखती हूँ तो कोई भी सखी उपस्थित नहीं है । साथ ही मेरा रूप पहलेसे विपरीत अवस्थामें पहुँच गया है; यह सब देखकर मैं भयभीत हो यहाँ आ गयी हूँ' ॥ २२ ॥

तृणबिन्दुस्तु राजर्षिस्तपसा द्योतितप्रभः ।
ध्यानं विवेश तच्चापि अपश्यदृषिकर्मजम् ॥ २३ ॥

'राजर्षि तृणबिन्दु अपनी तपस्यासे प्रकाशमान थे । उन्होंने ध्यान लगाकर देखा तो ज्ञात हुआ कि यह सब कुछ महर्षि पुलस्त्यके ही करनेसे हुआ है ॥ २३ ॥

स तु विज्ञाय तं शापं महर्षेर्भावितात्मनः ।
गृहीत्वा तनयां गत्वा पुलस्त्यमिदमब्रवीत् ॥ २४ ॥

'उन पवित्रात्मा महर्षिके उस शापको जानकर वे अपनी पुत्रीको साथ लिये पुलस्त्यजीके पास गये और इस प्रकार बोले—॥ २४ ॥

भगवंस्तनयां मे त्वं गुणैः स्वैरेव भूषिताम् ।
भिक्षां प्रतिगृहाणेमां महर्षे स्वयमुद्यताम् ॥ २५ ॥

''भगवन् ! मेरी यह कन्या अपने गुणोंसे ही विभूषित है । महर्षे ! आप इसे स्वयं प्राप्त हुई भिक्षाके रूपमें ग्रहण कर लें ॥ २५ ॥

तपश्चरणयुक्तस्य श्राम्यमाणेन्द्रियस्य ते ।
शुश्रूषणपरा नित्यं भविष्यति न संशयः ॥ २६ ॥

''आप तपस्यामें लगे रहनेके कारण थक जाते होंगे; अतः यह सदा साथ रहकर आपकी सेवा-शुश्रूषा किया करेगी, इसमें संशय नहीं है' ॥ २६ ॥

तं ब्रुवाणं तु तद् वाक्यं राजर्षिं धार्मिकं तदा ।
जिघृक्षुरब्रवीत् कन्यां बाढमित्येव स द्विजः ॥ २७ ॥

'ऐसी बात कहते हुए उन धर्मात्मा राजर्षिको देखकर उनकी कन्याको ग्रहण करनेकी इच्छासे उन ब्रह्मर्षिने कहा—'बहुत अच्छा' ॥ २७ ॥

दत्त्वा तु तनयां राजा स्वमाश्रमपदं गतः ।
सापि तत्रावसत् कन्या तोषयन्ती पतिं गुणैः ॥ २८ ॥

'तब उन महर्षिको अपनी कन्या देकर राजर्षि तृणबिन्दु अपने आश्रमपर लौट आये और वह कन्या अपने गुणोंसे पतिको संतुष्ट करती हुई वहीं रहने लगी ॥ २८ ॥

तस्यास्तु शीलवृत्ताभ्यां तुतोष मुनिपुङ्गवः ।
प्रीतः स तु महातेजा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २९ ॥

'उसके शील और सदाचारसे वे महातेजस्वी मुनिवर पुलस्त्य बहुत संतुष्ट हुए और प्रसन्नतापूर्वक यों बोले—॥

परितुष्टोऽस्मि सुश्रोणि गुणानां सम्पदा भृशम् ।
तस्माद् देवि ददाम्यद्य पुत्रमात्मसमं तव ॥ ३० ॥
उभयोर्वंशकर्तारं पौलस्त्य इति विश्रुतम् ।

''सुन्दरि ! मैं तुम्हारे गुणोंके वैभवसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ । देवि ! इसीलिये आज मैं तुम्हें अपने समान पुत्र प्रदान करता हूँ, जो माता और पिता दोनोंके कुलकी प्रतिष्ठा बढ़ायेगा और पौलस्त्य नामसे विख्यात होगा ॥ ३०½ ॥

यस्मात्तु विश्रुतो वेदस्त्वयेहाध्ययतो मम ॥ ३१ ॥
तस्मात् स विश्रवा नाम भविष्यति न संशयः ।

''देवि ! मैं यहाँ वेदका स्वाध्याय कर रहा था, उस समय तुमने आकर उसका विशेषरूपसे श्रवण किया, इसलिये तुम्हारा वह पुत्र विश्रवा या विश्रवण कहलायेगा; इसमें संशय नहीं है' ॥ ३१½ ॥

एवमुक्ता तु सा देवी प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ३२ ॥
अचिरेणैव कालेनासूत विश्रवसं सुतम् ।
त्रिषु लोकेषु विख्यातं यशोधर्मसमन्वितम् ॥ ३३ ॥

'पतिके प्रसन्नचित्त होकर ऐसी बात कहनेपर उस देवीने बड़े हर्षके साथ थोड़े ही समयमें विश्रवा नामक पुत्रको जन्म दिया, जो यश और धर्मसे सम्पन्न होकर तीनों लोकोंमें विख्यात हुआ ॥ ३२-३३ ॥

श्रुतिमान् समदर्शी च व्रताचाररतस्तथा ।
पितेव तपसा युक्तो ह्यभवद् विश्रवा मुनिः ॥ ३४ ॥

'विश्रवा मुनि वेदके विद्वान्, समदर्शी, व्रत और आचारका पालन करनेवाले तथा पिताके समान ही तपस्वी हुए' ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें दूसरा सर्ग पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

विश्रवासे वैश्रवण (कुबेर) की उत्पत्ति, उनकी तपस्या, वरप्राप्ति तथा लङ्कामें निवास

अथ पुत्रः पुलस्त्यस्य विश्रवा मुनिपुङ्गवः ।
अचिरेणैव कालेन पितेव तपसि स्थितः ॥ १ ॥

पुलस्त्यके पुत्र मुनिवर विश्रवा थोड़े ही समयमें पिताकी भाँति तपस्यामें संलग्न हो गये ॥ १ ॥

सत्यवाङ्शीलवान् दान्तः स्वाध्यायनिरतः शुचिः ।
सर्वभोगेष्वसंसक्तो नित्यं धर्मपरायणः ॥ २ ॥

वे सत्यवादी, शीलवान्, जितेन्द्रिय, स्वाध्यायपरायण, बाहर-भीतरसे पवित्र, सम्पूर्ण भोगोंमें अनासक्त तथा सदा ही धर्ममें तत्पर रहनेवाले थे ॥ २ ॥

ज्ञात्वा तस्यतु तद् वृत्तं भरद्वाजो महामुनिः ।
ददौ विश्रवसे भार्यां स्वसुतां देववर्णिनीम् ॥ ३ ॥

विश्रवाके इस उत्तम आचरणको जानकर महामुनि भरद्वाजने अपनी कन्याका, जो देवाङ्गनाके समान सुन्दरी थी, उनके साथ विवाह कर दिया ॥ ३ ॥

प्रतिगृह्य तु धर्मेण भरद्वाजसुतां तदा ।
प्रजान्वीक्षिकया बुद्ध्या श्रेयो ह्यस्य विचिन्तयन् ॥ ४ ॥
मुदा परमया युक्तो विश्रवा मुनिपुङ्गवः ।
स तस्यां वीर्यसम्पन्नमपत्यं परमाद्भुतम् ॥ ५ ॥
जनयामास धर्मज्ञः सर्वैर्ब्रह्मगुणैर्वृतम् ।
तस्मिञ्जाते तु संहृष्टः स बभूव पितामहः ॥ ६ ॥

धर्मके ज्ञाता मुनिवर विश्रवाने बड़ी प्रसन्नताके साथ धर्मानुसार भरद्वाजकी कन्याका पाणिग्रहण किया और प्रजाका हित-चिन्तन करनेवाली बुद्धिके द्वारा लोककल्याणका विचार करते हुए उन्होंने उसके गर्भसे एक अद्भुत और पराक्रमी पुत्र उत्पन्न किया। उसमें सभी ब्राह्मणोचित गुण विद्यमान थे। उसके जन्मसे पितामह पुलस्त्य मुनिको बड़ी प्रसन्नता हुई॥

दृष्ट्वा श्रेयस्करीं बुद्धिं धनाध्यक्षो भविष्यति ।
नाम चास्याकरोत् प्रीतः सार्धं देवर्षिभिस्तदा ॥ ७ ॥

उन्होंने दिव्य दृष्टिसे देखा—'इस बालकमें संसारका कल्याण करनेकी बुद्धि है तथा यह आगे चलकर धनाध्यक्ष होगा' तब उन्होंने बड़े हर्षसे भरकर देवर्षियोंके साथ उसका नामकरण-संस्कार किया ॥ ७ ॥

यस्माद् विश्रवसोऽपत्यं सादृश्याद् विश्रवा इव ।
तस्माद् वैश्रवणो नाम भविष्यत्येष विश्रुतः ॥ ८ ॥

वे बोले—'विश्रवाका यह पुत्र विश्रवाके ही समान उत्पन्न हुआ है; इसलिये यह वैश्रवण नामसे विख्यात होगा'॥

स तु वैश्रवणस्तत्र तपोवनगतस्तदा ।
अवर्धताहुतिहुतो महातेजा यथानलः ॥ ९ ॥

कुमार वैश्रवण वहाँ तपोवनमें रहकर उस समय आहुति डालनेसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान बढ़ने लगे और महान् तेजसे सम्पन्न हो गये ॥ ९ ॥

तस्याश्रमपदस्थस्य बुद्धिर्जज्ञे महात्मनः ।
चरिष्ये परमं धर्मं धर्मो हि परमा गतिः ॥ १० ॥

आश्रममें रहनेके कारण उन महात्मा वैश्रवणके मनमें भी यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं उत्तम धर्मका आचरण करूँ; क्योंकि धर्म ही परमगति है ॥ १० ॥

स तु वर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने ।
यन्त्रितो नियमैरुग्रैश्चकार सुमहत्तपः ॥ ११ ॥

यह सोचकर उन्होंने तपस्याका निश्चय करनेके पश्चात् महान् वनके भीतर सहस्रों वर्षोंतक कठोर नियमोंसे बँधकर बड़ी भारी तपस्या की ॥ ११ ॥

पूर्णे वर्षसहस्रान्ते तं तं विधिमकल्पयत् ।
जलाशी मारुताहारो निराहारस्तथैव च ॥ १२ ॥
एवं वर्षसहस्राणि जग्मुस्तान्येकवर्षवत् ।

वे एक-एक सहस्र वर्ष पूर्ण होनेपर तपस्याकी नयी-नयी विधि ग्रहण करते थे। पहले तो उन्होंने केवल जलका आहार किया। तत्पश्चात् वे हवा पीकर रहने लगे; फिर आगे चलकर उन्होंने उसका भी त्याग कर दिया और वे एकदम निराहार रहने लगे। इस तरह उन्होंने कई सहस्र वर्षोंको एक वर्षके समान बिता दिया ॥ १२½ ॥

अथ प्रीतो महातेजाः सेन्द्रैः सुरगणैः सह ॥ १३ ॥
गत्वा तस्याश्रमपदं ब्रह्मेदं वाक्यमब्रवीत् ।

तब उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर महातेजस्वी ब्रह्माजी इन्द्र आदि देवताओंके साथ उनके आश्रमपर पधारे और इस प्रकार बोले—॥ १३½ ॥

परितुष्टोऽस्मि ते वत्स कर्मणानेन सुव्रत ॥ १४ ॥
वरं वृणीष्व भद्रं ते वरार्हस्त्वं महामते ।

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले वत्स! मैं तुम्हारे इस कर्मसे—तपस्यासे बहुत संतुष्ट हूँ। महामते! तुम्हारा भला हो। तुम कोई वर माँगो; क्योंकि वर पानेके योग्य हो' ॥ १४½ ॥

अथाब्रवीद् वैश्रवणः पितामहमुपस्थितम् ॥ १५ ॥
भगवंल्लोकपालत्वमिच्छेयं लोकरक्षणम् ।

यह सुनकर वैश्रवणने अपने निकट खड़े हुए पितामहसे कहा—'भगवन्! मेरा विचार लोककी रक्षा करनेका है, अतः मैं लोकपाल होना चाहता हूँ' ॥ १५½ ॥

अथाब्रवीद् वैश्रवणं परितुष्टेन चेतसा ॥ १६ ॥
ब्रह्मा सुरगणैः सार्धं बाढमित्येव हृष्टवत् ।

वैश्रवणकी इस बातसे ब्रह्माजीके चित्तको और भी संतोष हुआ। उन्होंने सम्पूर्ण देवताओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक कहा—'बहुत अच्छा' ॥ १६½ ॥

अहं वै लोकपालानां चतुर्थं स्रष्टुमुद्यतः ॥ १७ ॥
यमेन्द्रवरुणानां च पदं यत् तव चेप्सितम् ।

इसके बाद वे फिर बोले—'बेटा! मैं चौथे लोकपालकी सृष्टि करनेके लिये उद्यत था। यम, इन्द्र और वरुणको जो पद प्राप्त है, वैसा ही लोकपाल-पद तुम्हें भी प्राप्त होगा, जो तुमको अभीष्ट है ॥ १७½ ॥

तद् गच्छ बत धर्मज्ञ निधीशत्वमवाप्नुहि ॥ १८ ॥
शक्राम्बुपयमानां च चतुर्थस्त्वं भविष्यसि ।

'धर्मज्ञ! तुम प्रसन्नतापूर्वक उस पदको ग्रहण करो और अक्षय निधियोंके स्वामी बनो। इन्द्र, वरुण और यमके साथ तुम चौथे लोकपाल कहलाओगे ॥ १८½ ॥

एतच्च पुष्पकं नाम विमानं सूर्यसंनिभम् ॥ १९ ॥
प्रतिगृह्णीष्व यानार्थं त्रिदशैः समतां व्रज ।

'यह सूर्यतुल्य तेजस्वी पुष्पकविमान है। इसे अपनी सवारीके लिये ग्रहण करो और देवताओंके समान हो जाओ ॥ १९½ ॥

स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामः सर्व एव यथागतम् ॥ २० ॥
कृतकृत्या वयं तात दत्त्वा तव वरद्वयम् ।

'तात! तुम्हारा कल्याण हो। अब हम सब लोग जैसे आये हैं, वैसे लौट जायँगे। तुम्हें ये दो वर देकर हम अपनेको कृतकृत्य समझते हैं' ॥ २०½ ॥

इत्युक्त्वा स गतो ब्रह्मा स्वस्थानं त्रिदशैः सह ॥ २१ ॥
गतेषु ब्रह्मपूर्वेषु देवेष्वथ नभस्तलम् ।
धनेशः पितरं प्राह प्राञ्जलिः प्रयतात्मवान् ॥ २२ ॥
भगवँल्लब्धवानस्मि वरमिष्टं पितामहात् ।

ऐसा कहकर ब्रह्माजी देवताओंके साथ अपने स्थानको चले गये। ब्रह्मा आदि देवताओंके आकाशमें चले जानेपर अपने मनको संयममें रखनेवाले धनाध्यक्षने पितासे हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! मैंने पितामह ब्रह्माजीसे मनोवाञ्छित फल प्राप्त किया है ॥ २१-२२½ ॥

निवासनं न मे देवो विदधे स प्रजापतिः ॥ २३ ॥
तं पश्य भगवन् कंचिन्निवासं साधु मे प्रभो ।
न च पीडा भवेद् यत्र प्राणिनो यस्य कस्यचित् ॥ २४ ॥

'परंतु उन प्रजापतिदेवने मेरे लिये कोई निवास-स्थान नहीं बताया। अतः भगवन्! अब आप ही मेरे रहनेके योग्य किसी ऐसे स्थानकी खोज कीजिये, जो सभी दृष्टियोंसे अच्छा हो। प्रभो! वह स्थान ऐसा होना चाहिये, जहाँ रहनेसे किसी भी प्राणीको कष्ट न हो' ॥ २३-२४ ॥

एवमुक्तस्तु पुत्रेण विश्रवा मुनिपुंगवः ।
वचनं प्राह धर्मज्ञ श्रूयतामिति सत्तम ॥ २५ ॥
दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः ।
तस्याग्रे तु विशाला सा महेन्द्रस्य पुरी यथा ॥ २६ ॥

अपने पुत्रके ऐसा कहनेपर मुनिवर विश्रवा बोले—'धर्मज्ञ! साधुशिरोमणे! सुनो—दक्षिण समुद्रके तटपर एक त्रिकूट नामक पर्वत है। उसके शिखरपर एक विशाल पुरी है, जो देवराज इन्द्रकी अमरावती पुरीके समान शोभा पाती है ॥

लङ्का नाम पुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा ।
राक्षसानां निवासार्थं यथेन्द्रस्यामरावती ॥ २७ ॥

'उसका नाम लङ्का है। इन्द्रकी अमरावतीके समान उस रमणीय पुरीका निर्माण विश्वकर्माने राक्षसोंके रहनेके लिये किया है ॥ २७ ॥

तत्र त्वं वस भद्रं ते लङ्कायां नात्र संशयः ।
हेमप्राकारपरिखा यन्त्रशस्त्रसमावृता ॥ २८ ॥

'बेटा! तुम्हारा कल्याण हो। तुम निःसंदेह उस लङ्कापुरीमें ही जाकर रहो। उसकी चहारदीवारी सोनेकी बनी हुई है। उसके चारों ओर चौड़ी खाइयाँ खुदी हुई हैं और वह अनेकानेक यन्त्रों तथा शस्त्रोंसे सुरक्षित है ॥ २८ ॥

रमणीया पुरी सा हि रुक्मवैदूर्यतोरणा ।
राक्षसैः सा परित्यक्ता पुरा विष्णुभयार्दितैः ॥ २९ ॥

'वह पुरी बड़ी ही रमणीय है। उसके फाटक सोने और नीलमके बने हुए हैं। पूर्वकालमें भगवान् विष्णुके भयसे पीड़ित हुए राक्षसोंने उस पुरीका त्याग दिया था ॥ २९ ॥

शून्या रक्षोगणैः सर्वै रसातलतलं गतैः ।
शून्या सम्प्रति लङ्का सा प्रभुस्तस्या न विद्यते ॥ ३० ॥

'वे समस्त राक्षस रसातलको चले गये थे, इसलिये लङ्कापुरी सूनी हो गयी। इस समय भी लङ्कापुरी सूनी ही है, उसका कोई स्वामी नहीं है ॥ ३० ॥

स त्वं तत्र निवासाय गच्छ पुत्र यथासुखम् ।
निर्दोषस्तत्र ते वासो न बाधस्तत्र कस्यचित् ॥ ३१ ॥

'अतः बेटा! तुम वहाँ निवास करनेके लिये सुखपूर्वक जाओ। वहाँ रहनेमें किसी प्रकारका दोष या खटका नहीं है। वहाँ किसीकी ओरसे कोई विघ्न-बाधा नहीं आ सकती' ॥ ३१ ॥

एतच्छ्रुत्वा स धर्मात्मा धर्मिष्ठं वचनं पितुः ।
निवासयामास तदा लङ्कां पर्वतमूर्धनि ॥ ३२ ॥

अपने पिताके इस धर्मयुक्त वचनको सुनकर धर्मात्मा वैश्रवणने त्रिकूट पर्वतके शिखरपर बनी हुई लङ्कापुरीमें निवास किया ॥ ३२ ॥

नैर्ऋतानां सहस्रैस्तु हृष्टैः प्रमुदितैः सदा ।
अचिरेणैव कालेन सम्पूर्णा तस्य शासनात् ॥ ३३ ॥

उनके निवास करनेपर थोड़े ही दिनोंमें वह पुरी सहस्रों हृष्टपुष्ट राक्षसोंसे भर गयी। उनकी आज्ञासे वे राक्षस वहाँ आकर आनन्दपूर्वक रहने लगे ॥ ३३ ॥

स तु तत्रावसत् प्रीतो धर्मात्मा नैर्ऋतर्षभः ।
समुद्रपरिखायां स लङ्कायां विश्रवात्मजः ॥ ३४ ॥

समुद्र जिसके लिये खाईका काम देता था, उस लङ्कानगरीमें विश्रवाके धर्मात्मा पुत्र वैश्रवण राक्षसोंके राजा हो बड़ी प्रसन्नताके साथ निवास करने लगे ॥ ३४ ॥

काले काले तु धर्मात्मा पुष्पकेण धनेश्वरः ।

अभ्यागच्छद् विनीतात्मा पितरं मातरं च हि ॥ ३५ ॥

धर्मात्मा धनेश्वर समय-समयपर पुष्पकविमानके द्वारा आकर अपने माता-पितासे मिल जाया करते थे। उनका हृदय बड़ा ही विनीत था ॥ ३५ ॥

स देवगन्धर्वगणैरभिष्टुत-
स्तथाप्सरोनृत्यविभूषितालयः।
गभस्तिभिः सूर्य इवावभासयन्
पितुः समीपं प्रययौ स वित्तपः ॥ ३६ ॥

देवता और गन्धर्व उनकी स्तुति करते थे। उनका भव्य भवन अप्सराओंके नृत्यसे सुशोभित होता था। वे धनपति कुबेर अपनी किरणोंसे प्रकाशित होनेवाले सूर्यकी भाँति सब ओर प्रकाश बिखेरते हुए अपने पिताके समीप गये ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण-आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तीसरा सर्ग पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

राक्षसवंशका वर्णन—हेति, विद्युत्केश और सुकेशकी उत्पत्ति

श्रुत्वागस्त्येरितं वाक्यं रामो विस्मयमागतः।
कथमासीत् तु लङ्कायां सम्भवो रक्षसां पुरा ॥ १ ॥

अगस्त्यजीकी कही हुई इस बातको सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने मन ही-मन सोचा, राक्षसकुलकी उत्पत्ति तो मुनिवर विश्रवासे ही मानी जाती है। यदि उनसे भी पहले लङ्कापुरीमें राक्षस रहते थे तो उनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई थी ॥ १ ॥

ततः शिरः कम्पयित्वा त्रेताग्निसमविग्रहम्।
तमगस्त्यं मुहुर्दृष्ट्वा स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ २ ॥

इस प्रकार आश्चर्य होनेके अनन्तर सिर हिलाकर श्रीरामचन्द्रजीने त्रिविध अग्नियोंके समान तेजस्वी शरीरवाले अगस्त्यजीकी ओर बारंबार देखा और मुस्कराकर पूछा—॥

भगवन् पूर्वमप्येषा लङ्काऽऽसीत् पिशिताशिनाम्।
श्रुत्वेदं भगवद्वाक्यं जातो मे विस्मयः परः ॥ ३ ॥

'भगवन्! कुबेर और रावणसे पहले भी यह लङ्कापुरी मांसभक्षी राक्षसोंके अधिकारमें थी; यह आपके मुँहसे सुनकर मुझे बड़ा विस्मय हुआ है ॥ ३ ॥

पुलस्त्यवंशादुद्भूता राक्षसा इति नः श्रुतम्।
इदानीमन्यतश्चापि सम्भवः कीर्तितस्त्वया ॥ ४ ॥

'हमने तो यही सुन रखा है कि राक्षसोंकी उत्पत्ति पुलस्त्यजीके कुलसे हुई है; किंतु इस समय आपने किसी दूसरेके कुलसे भी राक्षसोंके प्रादुर्भावकी बात कही है ॥ ४ ॥

रावणात् कुम्भकर्णाच्च प्रहस्ताद् विकटादपि।
रावणस्य च पुत्रेभ्यः किं नु ते बलवत्तराः ॥ ५ ॥

'क्या वे पहलेके राक्षस रावण, कुम्भकर्ण, प्रहस्त, विकट तथा रावणपुत्रोंसे भी बढ़कर बलवान् थे? ॥ ५ ॥

क एषां पूर्वको ब्रह्मन् किंनामा च बलोत्कटः।
अपराधं च कं प्राप्य विष्णुना द्राविताः कथम् ॥ ६ ॥

'ब्रह्मन्! उनका पूर्वज कौन था और उस उत्कट बलशाली पुरुषका नाम क्या था? भगवान् विष्णुने उन राक्षसोंका कौन-सा अपराध पाकर किस तरह उन्हें लङ्कासे मार भगाया? ॥

एतद् विस्तरतः सर्वं कथयस्व ममानघ।
कुतूहलमिदं मह्यं नुद भानुर्यथा तमः ॥ ७ ॥

'निष्पाप महर्षे! ये सब बातें आप मुझे विस्तारसे बताइये। इनके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है। जैसे सूर्यदेव अन्धकारको दूर करते हैं, उसी तरह आप मेरे इस कौतूहलका निवारण कीजिये' ॥ ७ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा संस्कारालंकृतं शुभम्।
अथ विस्मयमानस्तमगस्त्यः प्राह राघवम् ॥ ८ ॥

श्रीरघुनाथजीकी वह सुन्दर वाणी पदसंस्कार, वाक्यसंस्कार और अर्थसंस्कारसे अलंकृत थी। उसे सुनकर अगस्त्यजीको यह सोचकर विस्मय हुआ कि ये सर्वज्ञ होकर भी मुझसे अनजानकी भाँति पूछ रहे हैं। तत्पश्चात् उन्होंने श्रीरामसे कहा—॥ ८ ॥

प्रजापतिः पुरा सृष्ट्वा अपः सलिलसम्भवः।
तासां गोपायने सत्त्वानसृजत् पद्मसम्भवः ॥ ९ ॥

'रघुनन्दन! जलसे प्रकट हुए कमलसे उत्पन्न प्रजापति ब्रह्माजीने पूर्वकालमें समुद्रगत जलकी सृष्टि करके उसकी रक्षाके लिये अनेक प्रकारके जल-जन्तुओंको उत्पन्न किया ॥ ९ ॥

ते सत्त्वाः सत्त्वकर्तारं विनीतवदुपस्थिताः।
किं कुर्म इति भाषन्तः क्षुत्पिपासाभयार्दिताः ॥ १० ॥

'वे जन्तु भूख-प्यासके भयसे पीड़ित हो 'अब हम क्या करें' ऐसी बातें करते हुए अपने जन्मदाता ब्रह्माजीके पास विनीतभावसे गये ॥ १० ॥

प्रजापतिस्तु तान् सर्वान् प्रत्याह प्रहसन्निव।
आभाष्य वाचा यत्नेन रक्षध्वमिति मानद ॥ ११ ॥

'दूसरोंको मान देनेवाले रघुवीर! उन सबको आया देख प्रजापतिने उन्हें वाणीद्वारा सम्बोधित करके हँसते हुए-से कहा—'जल-जन्तुओ! तुम यत्नपूर्वक इस जलकी रक्षा करो' ॥ ११ ॥

रक्षाम इति तत्रान्यैर्यक्षाम इति चापरैः।
भुक्षिताभुक्षितैरुक्तस्ततस्तानाह भूतकृत् ॥ १२ ॥

'वे सब जन्तु भूखे-प्यासे थे। उनमेंसे कुछने कहा—

'हम इस जलकी रक्षा करेंगे' और दूसरेने कहा—'हम इसका यक्षण (पूजन) करेंगे'; तब उन भूतोंकी सृष्टि करनेवाले प्रजापतिने उनसे कहा—॥ १२ ॥

रक्षाम इति यैरुक्तं राक्षसास्ते भवन्तु वः ।
यक्षाम इति यैरुक्तं यक्षा एव भवन्तु वः ॥ १३ ॥

''तुममेंसे जिन लोगोंने रक्षा करनेकी बात कही है, वे राक्षस नामसे प्रसिद्ध हों और जिन्होंने यक्षण (पूजन) करना स्वीकार किया है, वे लोग यक्ष नामसे ही विख्यात हों'(इस प्रकार वे जीव राक्षस और यक्ष—इन दो जातियोंमें विभक्त हो गये)॥ १३ ॥

तत्र हेतिः प्रहेतिश्च भ्रातरौ राक्षसाधिपौ ।
मधुकैटभसंकाशौ बभूवतुररिंदमौ ॥ १४ ॥

'उन राक्षसोंमें हेति और प्रहेति नामवाले दो भाई थे, जो समस्त राक्षसोंके अधिपति थे। शत्रुओंका दमन करनेमें समर्थ वे दोनों वीर मधु और कैटभके समान शक्तिशाली थे ॥

प्रहेतिर्धार्मिकस्तत्र तपोवनगतस्तदा ।
हेतिर्दारक्रियार्थं तु परं यत्नमथाकरोत् ॥ १५ ॥

'उनमें प्रहेति धर्मात्मा था; अतः वह तत्काल तपोवनमें जाकर तपस्या करने लगा। परंतु हेतिने विवाहके लिये बड़ा प्रयत्न किया ॥ १५ ॥

स कालभगिनीं कन्यां भयां नाम महाभयाम् ।
उदावहदमेयात्मा स्वयमेव महामतिः ॥ १६ ॥

'वह अमेय आत्मबलसे सम्पन्न और बड़ा बुद्धिमान् था। उसने स्वयं ही याचना करके कालकी कुमारी भगिनी भयाके साथ विवाह किया। भया बड़ी भयानक थी ॥ १६ ॥

स तस्यां जनयामास हेती राक्षसपुंगवः ।
पुत्रं पुत्रवतां श्रेष्ठो विद्युत्केशमिति श्रुतम् ॥ १७ ॥

'राक्षसराज हेतिने भयाके गर्भसे एक पुत्रको उत्पन्न किया, जो विद्युत्केशके नामसे प्रसिद्ध था। उसे जन्म देकर हेति पुत्रवानोंमें श्रेष्ठ समझा जाने लगा ॥ १७ ॥

विद्युत्केशो हेतिपुत्रः स दीप्तार्कसमप्रभः ।
व्यवर्धत महातेजास्तोयमध्य इवाम्बुजम् ॥ १८ ॥

'हेति-पुत्र विद्युत्केश दीप्तिमान् सूर्यके समान प्रकाशित होता था। वह महातेजस्वी बालक जलमें कमलकी भाँति दिनों-दिन बढने लगा ॥ १८ ॥

स यदा यौवनं भद्रमनुप्राप्तो निशाचरः ।
ततो दारक्रियां तस्य कर्तुं व्यवसितः पिता ॥ १९ ॥

'निशाचर विद्युत्केश जब बढ़कर उत्तम युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब उसके पिता राक्षसराज हेतिने अपने पुत्रका ब्याह कर देनेका निश्चय किया ॥ १९ ॥

संध्यादुहितरं सोऽथ संध्यातुल्यां प्रभावतः ।
वरयामास पुत्रार्थं हेती राक्षसपुंगवः ॥ २० ॥

'राक्षसराजशिरोमणि हेतिने अपने पुत्रको ब्याह देनेके लिये संध्याकी पुत्रीका, जो प्रभावमें अपनी माता संध्याके ही समान थी, वरण किया ॥ २० ॥

अवश्यमेव दातव्या परस्मै सेति संध्यया ।
चिन्तयित्वा सुता दत्ता विद्युत्केशाय राघव ॥ २१ ॥

'रघुनन्दन ! संध्याने सोचा—'कन्याका किसी दूसरेके साथ ब्याह तो अवश्य ही करना पड़ेगा; अतः इसीके साथ क्यों न कर दूँ ?' यह विचारकर उसने अपनी पुत्री विद्युत्केशको ब्याह दी ॥ २१ ॥

संध्यायास्तनयां लब्ध्वा विद्युत्केशो निशाचरः ।
रमते स तया सार्धं पौलोम्या मघवानिव ॥ २२ ॥

'संध्याकी उस पुत्रीको पाकर निशाचर विद्युत्केश उसके साथ उसी तरह रमण करने लगा, जैसे देवराज इन्द्र पुलोम-पुत्री शचीके साथ विहार करते हैं ॥ २२ ॥

केनचित्त्वथ कालेन राम सालकटङ्कटा ।
विद्युत्केशाद् गर्भमाप घनराजिरिवार्णवात् ॥ २३ ॥

'श्रीराम ! संध्याकी उस पुत्रीका नाम सालकटङ्कटा था। कुछ कालके पश्चात् उसने विद्युत्केशसे उसी तरह गर्भ धारण किया; जैसे मेघोंकी पंक्ति समुद्रसे जल ग्रहण करती है ॥ २३॥

ततः सा राक्षसी गर्भं घनगर्भसमप्रभम् ।
प्रसूता मन्दरं गत्वा गङ्गा गर्भमिवाग्निजम् ।
समुत्सृज्य तु सा गर्भं विद्युत्केशरतार्थिनी ॥ २४ ॥

तदनन्तर उस राक्षसीने मन्दराचलपर जाकर विद्युत्के समान कान्तिमान् बालकको जन्म दिया, मानो गङ्गाने अग्निके छोड़े हुए भगवान् शिवके तेजःस्वरूप गर्भ (कुमार कार्तिकेय) को उत्पन्न किया हो। उस नवजात शिशुको वहीं छोड़कर वह विद्युत्केशके साथ रति-क्रीडाके लिये चली गयी ॥ २४ ॥

रेमे तु सार्धं पतिना विस्मृत्य सुतमात्मजम् ।
उत्सृष्टस्तु तदा गर्भो घनशब्दसमस्वनः ॥ २५ ॥

'अपने बेटेको भुलाकर सालकटङ्कटा पतिके साथ रमण करने लगी। उधर उसका छोड़ा हुआ वह गर्भ मेघकी गम्भीर गर्जनाके समान शब्द करने लगा ॥ २५ ॥

तयोत्सृष्टः स तु शिशुः शरदर्कसमद्युतिः ।
निधायास्ये स्वयं मुष्टिं रुरोद शनकैस्तदा ॥ २६ ॥

उसके शरीरकी कान्ति शरत्कालके सूर्यकी भाँति उद्भासित होती थी। माताका छोड़ा हुआ वह शिशु स्वयं ही अपनी मुट्ठी मुँहमें डालकर धीरे-धीरे रोने लगा ॥ २६ ॥

ततो वृषभमास्थाय पार्वत्या सहितः शिवः ।
वायुमार्गेण गच्छन् वै शुश्राव रुदितस्वनम् ॥ २७ ॥

'उस समय भगवान् शंकर पार्वतीजीके साथ बैलपर चढ़कर वायुमार्ग (आकाश) से जा रहे थे। उन्होंने उस बालकके रोनेकी आवाज सुनी ॥ २७ ॥

अपश्यदुमया सार्धं रुदन्तं राक्षसात्मजम् ।
कारुण्यभावात् पार्वत्या भवस्त्रिपुरसूदनः ॥ २८ ॥

तं राक्षसात्मजं चक्रे मातुरेव वयःसमम् ।

'सुनकर पार्वतीसहित शिवने उस रोते हुए राक्षस-कुमारकी ओर देखा। उसकी दयनीय अवस्थापर दृष्टिपात करके माता पार्वतीके हृदयमें करुणाका स्रोत उमड़ उठा और उनकी प्रेरणासे त्रिपुरसूदन भगवान् शिवने उस राक्षस-बालकको उसकी माताकी अवस्थाके समान ही नौजवान बना दिया॥

अमरं चैव तं कृत्वा महादेवोऽक्षरोऽव्ययः ॥ २९ ॥
पुरमाकाशगं प्रादात् पार्वत्याः प्रियकाम्यया ।

'इतना ही नहीं, पार्वतीजीका प्रिय करनेकी इच्छासे अविनाशी एवं निर्विकार भगवान् महादेवने उस बालकको अमर बनाकर उसके रहनेके लिये एक आकाशचारी नगराकार विमान दे दिया ॥ २९½ ॥

उमयापि वरो दत्तो राक्षसीनां नृपात्मज ॥ ३० ॥
सद्योपलब्धिर्गर्भस्य प्रसूतिः सद्य एव च ।
सद्य एव वयःप्राप्तिं मातुरेव वयःसमम् ॥ ३१ ॥

'राजकुमार! तत्पश्चात् पार्वतीजीने भी यह वरदान दिया कि आजसे राक्षसियाँ जल्दी ही गर्भ धारण करेंगी; फिर शीघ्र ही उसका प्रसव करेंगी और उनका पैदा किया हुआ बालक तत्काल बढ़कर माताके ही समान अवस्थाका हो जायगा ॥ ३०-३१ ॥

ततः सुकेशो वरदानगर्वितः
श्रियं प्रभोः प्राप्य हरस्य पार्श्वतः ।
चचार सर्वत्र महान् महामतिः
खगं पुरं प्राप्य पुरंदरो यथा ॥ ३२ ॥

'विद्युत्केशका वह पुत्र सुकेशके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह बड़ा बुद्धिमान् था। भगवान् शंकरका वरदान पानेसे उसे बड़ा गर्व हुआ और वह उन परमेश्वरके पाससे अद्भुत सम्पत्ति एवं आकाशचारी विमान पाकर देवराज इन्द्रकी भाँति सर्वत्र अबाध-गतिसे विचरने लगा ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौथा सर्ग पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

सुकेशके पुत्र माल्यवान्, सुमाली और मालीकी संतानोंका वर्णन

सुकेशं धार्मिकं दृष्ट्वा वरलब्धं च राक्षसम् ।
ग्रामणीर्नाम गन्धर्वो विश्वावसुसमप्रभः ॥ १ ॥
तस्य देववती नाम द्वितीया श्रीरिवात्मजा ।
त्रिषु लोकेषु विख्याता रूपयौवनशालिनी ॥ २ ॥
तां सुकेशाय धर्मात्मा ददौ रक्षःश्रियं यथा ।

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) तदनन्तर एक दिन विश्वावसुके समान तेजस्वी ग्रामणी नामक गन्धर्वने राक्षस सुकेशको धर्मात्मा तथा वरप्राप्त वैभवसे सम्पन्न देख अपनी देववती नामक कन्याका उसके साथ ब्याह कर दिया। वह कन्या दूसरी लक्ष्मीके समान दिव्य रूप और यौवनसे सुशोभित एवं तीनों लोकोंमें विख्यात थी। धर्मात्मा ग्रामणीने राक्षसोंकी मूर्तिमती राजलक्ष्मीके समान देववतीका हाथ सुकेशके हाथमें दे दिया ॥ १-२½ ॥

वरदानकृतैश्वर्यं सा तं प्राप्य पतिं प्रियम् ॥ ३ ॥
आसीद् देववती तुष्टा धनं प्राप्येव निर्धनः ।

वरदानमें मिले हुए ऐश्वर्यसे सम्पन्न प्रियतम पतिको पाकर देववती बहुत संतुष्ट हुई, मानो किसी निर्धनको धनकी राशि मिल गयी हो ॥ ३½ ॥

स तया सह संयुक्तो रराज रजनीचरः ॥ ४ ॥
अञ्जनादभिनिष्क्रान्तः करेण्वेव महागजः ।

जैसे अञ्जन नामक दिग्गजसे उत्पन्न कोई महान् गज किसी हथिनीके साथ शोभा पा रहा हो, उसी तरह वह राक्षस गन्धर्व-कन्या देववतीके साथ रहकर अधिक शोभा पाने लगा॥

ततः काले सुकेशस्तु जनयामास राघव ॥ ५ ॥
त्रीन् पुत्राञ्जनयामास त्रेताग्निसमविग्रहान् ।

रघुनन्दन! तदनन्तर समय आनेपर सुकेशने देववतीके गर्भसे तीन पुत्र उत्पन्न किये, जो तीन[1] अग्नियोंके समान तेजस्वी थे ॥ ५½ ॥

माल्यवन्तं सुमालिं च मालिं च बलिनां वरम् ॥ ६ ॥
त्रींस्त्रिनेत्रसमान् पुत्रान् राक्षसान् राक्षसाधिपः ।

उनके नाम थे—माल्यवान्, सुमाली और माली। माली बलवानोंमें श्रेष्ठ था। वे तीनों त्रिनेत्रधारी महादेवजीके समान शक्तिशाली थे। उन तीनों राक्षसपुत्रोंको देखकर राक्षसराज सुकेश बड़ा प्रसन्न हुआ ॥ ६½ ॥

त्रयो लोका इवाव्यग्राः स्थितास्त्रय इवाग्नयः ॥ ७ ॥
त्रयो मन्त्रा इवात्युग्रास्त्रयो घोरा इवामयाः ।

वे तीनों लोकोंके समान सुस्थिर, तीन अग्नियोंके समान तेजस्वी, तीन मन्त्रों (शक्तियों[2] अथवा वेदों[3]) के समान उग्र तथा तीन रोगों[4] के समान अत्यन्त भयंकर थे ॥ ७½ ॥

---

[1] गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि।

[2] प्रभु-शक्ति, उत्साह-शक्ति तथा मन्त्र-शक्ति—ये तीन शक्तियाँ हैं।

[3] ऋग्, यजु और साम—ये तीन वेद हैं।

[4] वात, पित्त और कफ—इनके प्रकोपसे उत्पन्न होनेवाले तीन प्रकारके रोग हैं।

त्रयः सुकेशस्य सुतास्त्रेताग्निसमतेजसः ॥ ८ ॥
विवृद्धिमगमंस्तत्र व्याधयोपेक्षिता इव ।

सुकेशके वे तीनों पुत्र त्रिविध अग्नियोंके समान तेजस्वी थे। वे वहाँ उसी तरह बढ़ने लगे, जैसे उपेक्षावश दवा न करनेसे रोग बढ़ते हैं ॥ ८$\frac{1}{2}$ ॥

वरप्राप्तिं पितुस्ते तु ज्ञात्वैश्वर्यं तपोबलात् ॥ ९ ॥
तपस्तप्तुं गता मेरुं भ्रातरः कृतनिश्चयाः ।

उन्हें जब यह मालूम हुआ कि हमारे पिताको तपोबलके द्वारा बरदान एवं ऐश्वर्यकी प्राप्ति हुई है, तब वे तीनों भाई तपस्या करनेका निश्चय करके मेरुपर्वतपर चले गये ॥ ९$\frac{1}{2}$ ॥

प्रगृह्य नियमान् घोरान् राक्षसा नृपसत्तम ॥ १० ॥
विचेरुस्ते तपो घोरं सर्वभूतभयावहम् ।

नृपश्रेष्ठ ! वे राक्षस वहाँ भयंकर नियमोंको ग्रहण करके घोर तपस्या करने लगे। उनकी वह तपस्या समस्त प्राणियोंको भय देनेवाली थी ॥ १०$\frac{1}{2}$ ॥

सत्यार्जवशमोपेतैस्तपोभिर्भुवि दुर्लभैः ॥ ११ ॥
संतापयन्तस्त्रींल्लोकान् सदेवासुरमानुषान् ।

सत्य, सरलता एवं शम-दम आदिसे युक्त तपके द्वारा, जो भूतलपर दुर्लभ है, वे देवताओं, असुरों और मनुष्यों-सहित तीनों लोकोंको संतप्त करने लगे ॥ ११$\frac{1}{2}$ ॥

ततो विभुश्चतुर्वक्त्रो विमानवरमाश्रितः ॥ १२ ॥
सुकेशपुत्रानामन्त्य वरदोऽस्मीत्यभाषत ।

तब चार मुखवाले भगवान् ब्रह्मा एक श्रेष्ठ विमानपर बैठकर वहाँ गये और सुकेशके पुत्रोंको सम्बोधित करके बोले—'मैं तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ' ॥ १२$\frac{1}{2}$ ॥

ब्रह्माणं वरदं ज्ञात्वा सेन्द्रैर्देवगणैर्वृतम् ॥ १३ ॥
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे वेपमाना इव द्रुमाः ।

इन्द्र आदि देवताओंसे घिरे हुए वरदायक ब्रह्माजीको आया जान वे सब-के-सब वृक्षोंके समान काँपते हुए हाथ जोड़कर बोले—॥ १३$\frac{1}{2}$ ॥

तपसाऽऽराधितो देव यदि नो दिशसे वरम् ॥ १४ ॥
अजेयाः शत्रुहन्तारस्तथैव चिरजीविनः ।
प्रभविष्णवो भवामेति परस्परमनुव्रताः ॥ १५ ॥

'देव ! यदि आप हमारी तपस्यासे आराधित एवं संतुष्ट होकर हमें वर देना चाहते हैं तो ऐसी कृपा कीजिये, जिससे हमें कोई परास्त न कर सके। हम शत्रुओंका वध करनेमें समर्थ, चिरजीवी तथा प्रभावशाली हों। साथ ही हमलोगोंमें परस्पर प्रेम बना रहे' ॥ १४-१५ ॥

एवं भविष्यथेत्युक्त्वा सुकेशतनयान् विभुः ।
स ययौ ब्रह्मलोकाय ब्रह्मा ब्राह्मणवत्सलः ॥ १६ ॥

यह सुनकर ब्रह्माजीने कहा—'तुम ऐसे ही होओगे'। सुकेशके पुत्रोंसे ऐसा कहकर ब्राह्मणवत्सल ब्रह्माजी ब्रह्मलोकको चले गये ॥ १६ ॥

वरं लब्ध्वा तु ते सर्वे राम रात्रिंचरास्तदा ।
सुरासुरान् प्रबाधन्ते वरदानसुनिर्भयाः ॥ १७ ॥

श्रीराम ! वर पाकर वे सब निशाचर उस वरदानसे अत्यन्त निर्भय हो देवताओं तथा असुरोंको भी बहुत कष्ट देने लगे ॥ १७ ॥

तैर्बाध्यमानास्त्रिदशाः सर्षिसङ्घाः सचारणाः ।
त्रातारं नाधिगच्छन्ति निरयस्था यथा नराः ॥ १८ ॥

उनके द्वारा सताये जाते हुए देवता, ऋषि-समुदाय और चारण नरकमें पड़े हुए मनुष्योंके समान किसीको अपना रक्षक या सहायक नहीं पाते थे ॥ १८ ॥

अथ ते विश्वकर्माणं शिल्पिनां वरमव्ययम् ।
ऊचुः समेत्य संहृष्टा राक्षसा रघुसत्तम ॥ १९ ॥

रघुवंशशिरोमणे ! एक दिन शिल्प-कर्मके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ अविनाशी विश्वकर्माके पास जाकर वे राक्षस हर्ष और उत्साहसे भरकर बोले—॥ १९ ॥

ओजस्तेजोबलवतां महतामात्मतेजसा ।
गृहकर्ता भवानेव देवानां हृदयेप्सितम् ॥ २० ॥
अस्माकमपि तावत् त्वं गृहं कुरु महामते ।
हिमवन्तमुपाश्रित्य मेरुं मन्दरमेव वा ॥ २१ ॥
महेश्वरगृहप्रख्यं गृहं नः क्रियतां महत् ।

'महामते ! जो ओज, बल और तेजसे सम्पन्न होनेके कारण महान् हैं, उन देवताओंके लिये आप ही अपनी शक्तिसे मनोवाञ्छित भवनका निर्माण करते हैं; अतः हमारे लिये भी आप हिमालय, मेरु अथवा मन्दराचलपर चलकर भगवान् शंकरके दिव्य भवनकी भाँति एक विशाल निवासस्थानका निर्माण कीजिये' ॥ २०-२१$\frac{1}{2}$ ॥

विश्वकर्मा ततस्तेषां राक्षसानां महाभुजः ॥ २२ ॥
निवासं कथयामास शक्रस्येवामरावतीम् ।

यह सुनकर महाबाहु विश्वकर्माने उन राक्षसोंको एक ऐसे निवासस्थानका पता बताया, जो इन्द्रकी अमरावतीको भी लज्जित करनेवाला था ॥ २२$\frac{1}{2}$ ॥

दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः ॥ २३ ॥
सुवेल इति चाप्यन्यो द्वितीयो राक्षसेश्वरः ।

(वे बोले—) 'राक्षसपतियो ! दक्षिण समुद्रके तटपर एक त्रिकूट नामक पर्वत है और दूसरा सुवेल नामसे विख्यात शैल है ॥ २३$\frac{1}{2}$ ॥

शिखरे तस्य शैलस्य मध्यमेऽम्बुदसंनिभे ॥ २४ ॥
शकुनैरपि दुष्प्रापे टङ्कच्छिन्नचतुर्दिशि ।
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा शतयोजनमायता ॥ २५ ॥
स्वर्णप्राकारसंवीता हेमतोरणसंवृता ।
मया लङ्केति नगरी शक्राज्ञप्तेन निर्मिता ॥ २६ ॥

'उस त्रिकूटपर्वतके मझले शिखरपर जो हरा-भरा होनेके कारण मेघके समान नीला दिखायी देता है तथा जिसके चारों

ओरके आश्रय टाँकीसे काट दिये गये हैं, अतएव जहाँ पक्षियोंके लिये भी पहुँचना कठिन है, मैंने इन्द्रकी आज्ञासे लङ्का नामक नगरीका निर्माण किया है। वह तीस योजन चौड़ी और सौ योजन लंबी है। उसके चारों ओर सोनेकी चहारदीवारी है और उसमें सोनेके ही फाटक लगे हैं ॥ २४–२६ ॥

तस्यां वसत दुर्धर्षा यूयं राक्षसपुंगवाः।
अमरावतीं समासाद्य सेन्द्रा इव दिवौकसः ॥ २७ ॥

'दुर्धर्ष राक्षसशिरोमणियो! जैसे इन्द्र आदि देवता अमरावतीपुरीका आश्रय लेकर रहते हैं, उसी प्रकार तुम लोग भी उस लङ्कापुरीमें जाकर निवास करो ॥ २७ ॥

लङ्कादुर्गं समासाद्य राक्षसैर्बहुभिर्वृताः।
भविष्यथ दुराधर्षाः शत्रूणां शत्रुसूदनाः ॥ २८ ॥

'शत्रुसूदन-वीरो! लङ्काके दुर्गका आश्रय लेकर बहुत-से राक्षसोंके साथ जब तुम निवास करोगे, उस समय शत्रुओंके लिये तुमपर विजय पाना अत्यन्त कठिन होगा' ॥ २८ ॥

विश्वकर्मवचः श्रुत्वा ततस्ते राक्षसोत्तमाः।
सहस्रानुचरा भूत्वा गत्वा तामवसन् पुरीम् ॥ २९ ॥

विश्वकर्माकी यह बात सुनकर वे श्रेष्ठ राक्षस सहस्रों अनुचरोंके साथ उस पुरीमें जाकर बस गये ॥ २९ ॥

दृढप्राकारपरिखां हैमैर्गृहशतैर्वृताम्।
लङ्कामवाप्य ते हृष्टा न्यवसन् रजनीचराः ॥ ३० ॥

उसकी खाई और चहारदीवारी बड़ी मजबूत बनी थी। सोनेके सैकड़ों महल उस नगरीकी शोभा बढ़ा रहे थे। उस लङ्कापुरीमें पहुँचकर वे निशाचर बड़े हर्षके साथ वहाँ रहने लगे ॥ ३० ॥

एतस्मिन्नेव काले तु यथाकामं च राघव।
नर्मदा नाम गन्धर्वी बभूव रघुनन्दन ॥ ३१ ॥
तस्याः कन्यात्रयं ह्यासीद्ध्रीश्रीकीर्तिसमद्युति।
ज्येष्ठक्रमेण सा तेषां राक्षसानामराक्षसी ॥ ३२ ॥
कन्यास्ताः प्रददौ हृष्टाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः।

रघुकुलनन्दन श्रीराम! इन्हीं दिनों नर्मदा नामकी एक गन्धर्वी थी। उसके तीन कन्याएँ हुईं, जो ह्री, श्री और कीर्ति* के समान शोभासम्पन्न थीं। इनकी माता यद्यपि राक्षसी नहीं थी तो भी उसने अपनी रुचिके अनुसार सुकेशके उन तीनों राक्षसजातीय पुत्रोंके साथ अपनी कन्याओंका ज्येष्ठ आदि अवस्थाके अनुसार विवाह कर दिया। वे कन्याएँ बहुत प्रसन्न थीं। उनके मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर थे ॥

त्रयाणां राक्षसेन्द्राणां तिस्रो गन्धर्वकन्यकाः ॥ ३३ ॥
दत्ता मात्रा महाभागा नक्षत्रे भगदैवते।

माता नर्मदाने उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें उन तीनों महाभाग्यवती गन्धर्व-कन्याओंको उन तीनों राक्षसराजोंके हाथमें दे दिया ॥ ३३½ ॥

कृतदारास्तु ते राम सुकेशतनयास्तदा ॥ ३४ ॥
चिक्रीडुः सह भार्याभिरप्सरोभिरिवामराः।

श्रीराम! जैसे देवता अप्सराओंके साथ क्रीड़ा करते हैं, उसी प्रकार सुकेशके पुत्र विवाहके पश्चात् अपनी उन पत्नियोंके साथ रहकर लौकिक सुखका उपभोग करने लगे ॥ ३४½ ॥

ततो माल्यवतो भार्या सुन्दरी नाम सुन्दरी ॥ ३५ ॥
स तस्यां जनयामास यदपत्यं निबोध तत्।

उनमें माल्यवान्‌की स्त्रीका नाम सुन्दरी था। वह अपने नामके अनुरूप ही परम सुन्दरी थी। माल्यवान्‌ने उसके गर्भसे जिन संतानोंको जन्म दिया, उन्हें बता रहा हूँ; सुनिये ॥

वज्रमुष्टिर्विरूपाक्षो दुर्मुखश्चैव राक्षसः ॥ ३६ ॥
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च मत्तोन्मत्तौ तथैव च।
अनला चाभवत् कन्या सुन्दर्यां राम सुन्दरी ॥ ३७ ॥

वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, राक्षस दुर्मुख, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, मत्त और उन्मत्त—ये सात पुत्र थे। श्रीराम! इनके अतिरिक्त सुन्दरीके गर्भसे अनला नामवाली एक सुन्दरी कन्या भी उत्पन्न हुई थी ॥ ३६-३७ ॥

सुमालिनोऽपि भार्याऽऽसीत् पूर्णचन्द्रनिभानना।
नाम्ना केतुमती राम प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥ ३८ ॥

सुमालीकी पत्नी भी बड़ी सुन्दरी थी। उसका मुख पूर्णचन्द्रमाके समान मनोहर और नाम केतुमती था। सुमालीको वह प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी ॥ ३८ ॥

सुमाली जनयामास यदपत्यं निशाचरः।
केतुमत्यां महाराज तन्निबोधानुपूर्वशः ॥ ३९ ॥

महाराज! निशाचर सुमालीने केतुमतीके गर्भसे जो संतानें उत्पन्न की थीं, उनका भी क्रमशः परिचय दिया जा जा रहा है, सुनिये ॥ ३९ ॥

प्रहस्तोऽकम्पनश्चैव विकटः कालिकामुखः।
धूम्राक्षश्चैव दण्डश्च सुपार्श्वश्च महाबलः ॥ ४० ॥
संह्रादिः प्रघसश्चैव भासकर्णश्च राक्षसः।
राका पुष्पोत्कटा चैव कैकसी च शुचिस्मिताः ॥ ४१ ॥
कुम्भीनसी च इत्येते सुमालेः प्रसवाः स्मृताः ॥ ४२ ॥

प्रहस्त, अकम्पन, विकट, कालिकामुख, धूम्राक्ष, दण्ड, महाबली सुपार्श्व, संह्रादि, प्रघस तथा राक्षस भासकर्ण—ये सुमालीके पुत्र थे और राका, पुष्पोत्कटा, कैकसी और कुम्भीनसी—ये चार पवित्र मुस्कानवाली उसकी कन्याएँ थीं। ये सब सुमालीकी संतानें बतायी गयी हैं ॥ ४०–४२ ॥

मालेस्तु वसुदा नाम गन्धर्वी रूपशालिनी।
भार्यासीत् पद्मपत्राक्षी स्वक्षी यक्षीवरोपमा ॥ ४३ ॥

मालीकी पत्नी गन्धर्वकन्या वसुदा थी, जो अपने रूप-सौन्दर्यसे सुशोभित होती थी। उसके नेत्र प्रफुल्ल कमलके

---

* ये तीन देवियाँ हैं, जो क्रमशः लज्जा, शोभा-सम्पत्ति और कीर्तिकी अधिष्ठात्री मानी गयी हैं।

समान विशाल एवं सुन्दर थे। वह श्रेष्ठ यक्ष-पत्नियोंके समान सुन्दरी थी ॥ ४३ ॥

सुमालेरनुजस्तस्यां जनयामास यत् प्रभो।
अपत्यं कथ्यमानं तु मया त्वं शृणु राघव ॥ ४४ ॥

प्रभो! रघुनन्दन! सुमालीके छोटे भाई मालीने वसुदाके गर्भसे जो संतति उत्पन्न की थी, उसका मैं वर्णन कर रहा हूँ; आप सुनिये ॥ ४४ ॥

✓**अनलश्चानिलश्चैव हरः सम्पातिरेव च।**
एते विभीषणामात्या मालेयास्ते निशाचराः ॥ ४५ ॥

अनल, अनिल, हर और सम्पाति—ये चार निशाचर मालीके ही पुत्र थे, जो इस समय विभीषणके मन्त्री हैं ॥ ४५ ॥

ततस्तु ते राक्षसपुङ्गवास्त्रयो
निशाचरैः पुत्रशतैश्च संवृताः।
सुरान् सहेन्द्रानृषिनागयक्षान्
बबाधिरे तान् बहुवीर्यदर्पिताः ॥ ४६ ॥

माल्यवान् आदि तीनों श्रेष्ठ राक्षस अपने सैकड़ों पुत्रों तथा अन्यान्य निशाचरोंके साथ रहकर अपने बाहुबलके अभिमानसे युक्त हो इन्द्र आदि देवताओं, ऋषियों, नागों तथा यक्षोंको पीड़ा देने लगे ॥ ४६ ॥

जगद् भ्रमन्तोऽनिलवद् दुरासदा
रणेषु मृत्युप्रतिमानतेजसः।
वरप्रदानादपि गर्विता भृशं
क्रतुक्रियाणां प्रशमंकराः सदा ॥ ४७ ॥

वे वायुकी भाँति सारे संसारमें विचरनेवाले थे। युद्धमें उन्हें जीतना बहुत ही कठिन था। वे मृत्युके तुल्य तेजस्वी थे। वरदान मिल जानेसे भी उनका घमंड बहुत बढ़ गया था; अतः वे यज्ञादि क्रियाओंका सदा अत्यन्त विनाश किया करते थे ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

देवताओंका भगवान् शङ्करकी सलाहसे राक्षसोंके वधके लिये भगवान् विष्णुकी शरणमें जाना और उनसे आश्वासन पाकर लौटना, राक्षसोंका देवताओंपर आक्रमण और भगवान् विष्णुका उनकी सहायताके लिये आना

तैर्वध्यमाना देवाश्च ऋषयश्च तपोधनाः।
भयार्ताः शरणं जग्मुर्देवदेवं महेश्वरम् ॥ १ ॥

(महर्षि अगस्त्य कहते हैं—रघुनन्दन!) इन राक्षसोंसे पीड़ित होते हुए देवता तथा तपोधन ऋषि भयसे व्याकुल हो देवाधिदेव महादेवजीकी शरणमें गये ॥ १ ॥

जगत्सृष्ट्यन्तकर्तारमजमव्यक्तरूपिणम्।
आधारं सर्वलोकानामाराध्यं परमं गुरुम् ॥ २ ॥
ते समेत्य तु कामारिं त्रिपुरारिं त्रिलोचनम्।
ऊचुः प्राञ्जलयो देवा भयगद्गदभाषिणः ॥ ३ ॥

जो जगत्की सृष्टि और संहार करनेवाले, अजन्मा, अव्यक्त रूपधारी, सम्पूर्ण जगत्के आधार, आराध्य देव और परम गुरु हैं, उन कामनाशक, त्रिपुरविनाशक, त्रिनेत्रधारी भगवान् शिवके पास जाकर वे सब देवता हाथ जोड़ भयसे गद्गदवाणीमें बोले—॥ २-३ ॥

सुकेशपुत्रैर्भगवन् पितामहवरोद्धतैः।
प्रजाध्यक्ष प्रजाः सर्वा बाध्यन्ते रिपुबाधनैः ॥ ४ ॥

'भगवन्! प्रजानाथ! ब्रह्माजीके वरदानसे उन्मत्त हुए सुकेशके पुत्र शत्रुओंको पीड़ा देनेवाले साधनोंद्वारा सम्पूर्ण प्रजाको बड़ा कष्ट पहुँचा रहे हैं ॥ ४ ॥

शरण्यान्यशरण्यानि ह्याश्रमाणि कृतानि नः।
स्वर्गाच्च देवान् प्रच्याव्य स्वर्गे क्रीडन्ति देववत् ॥ ५ ॥

'सबको शरण देने योग्य जो हमारे आश्रम थे, उन्हें उन राक्षसोंने निवासके योग्य नहीं रहने दिया है—उजाड़ डाला है। देवताओंको स्वर्गसे हटाकर वे स्वयं ही वहाँ अधिकार जमाये बैठे हैं और देवताओंकी भाँति स्वर्गमें विहार करते हैं ॥ ५ ॥

अहं विष्णुरहं रुद्रो ब्रह्माहं देवराडहम्।
अहं यमश्च वरुणश्चन्द्रोऽहं रविरप्यहम् ॥ ६ ॥
इति माली सुमाली च माल्यवांश्चैव राक्षसाः।
बाधन्ते समरोद्धर्षा ये च तेषां पुरःसराः ॥ ७ ॥

'माली, सुमाली और माल्यवान्—ये तीनों राक्षस कहते हैं—'मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही रुद्र हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ तथा मैं ही देवराज इन्द्र, यमराज, वरुण, चन्द्रमा और सूर्य हूँ' इस प्रकार अहंकार प्रकट करते हुए वे रणदुर्जय निशाचर तथा उनके अग्रगामी सैनिक हमें बड़ा कष्ट दे रहे हैं ॥ ६-७ ॥

तन्नो देव भयार्तानामभयं दातुमर्हसि।
अशिवं वपुरास्थाय जहि वै देवकण्टकान् ॥ ८ ॥

'देव! उनके भयसे हम बहुत घबराये हुए हैं, इसलिये आप हमें अभयदान दीजिये तथा रौद्र रूप धारण करके देवताओंके लिये कण्टक बने हुए उन राक्षसोंका संहार कीजिये' ॥ ८ ॥

इत्युक्तस्तु सुरैः सर्वैः कपर्दी नीललोहितः।
सुकेशं प्रति सापेक्षः प्राह देवगणान् प्रभुः ॥ ९ ॥

समस्त देवताओंके ऐसा कहनेपर नील एवं लोहित वर्णवाले जटाजूटधारी भगवान् शंकर सुकेशके प्रति घनिष्ठता रखनेके कारण उनसे इस प्रकार बोले—॥ ९ ॥

अहं तान् न हनिष्यामि ममावध्या हि तेऽसुराः ।
किं तु मन्त्रं प्रदास्यामि यो वै तान् निहनिष्यति ॥ १० ॥

'देवगण ! मैंने सुकेशके जीवनकी रक्षा की है । वे असुर सुकेशके ही पुत्र हैं; इसलिये मेरे द्वारा मारे जाने योग्य नहीं हैं । अतः मैं तो उनका वध नहीं करूँगा; परंतु तुम्हें एक ऐसे पुरुषके पास जानेकी सलाह दूँगा, जो निश्चय ही उन निशाचरोंका वध करेंगे ॥ १० ॥

एतमेव समुद्योगं पुरस्कृत्य महर्षयः ।
गच्छध्वं शरणं विष्णुं हनिष्यति स तान् प्रभुः ॥ ११ ॥

'देवताओ और महर्षियो ! तुम इसी उद्योगको सामने रखकर तत्काल भगवान् विष्णुकी शरणमें जाओ । वे प्रभु अवश्य उनका नाश करेंगे' ॥ ११ ॥

ततस्तु जयशब्देन प्रतिनन्द्य महेश्वरम् ।
विष्णोः समीपमाजग्मुर्निशाचरभयार्दिताः ॥ १२ ॥

यह सुनकर सब देवता जय-जयकारके द्वारा महेश्वरका अभिनन्दन करके उन निशाचरोंके भयसे पीड़ित हो भगवान् विष्णुके समीप आये ॥ १२ ॥

शङ्खचक्रधरं देवं प्रणम्य बहुमान्य च ।
ऊचुः सम्भ्रान्तवद् वाक्यं सुकेशतनयान् प्रति ॥ १३ ॥

शङ्ख, चक्र धारण करनेवाले उन नारायणदेवको नमस्कार करके देवताओंने उनके प्रति बहुत अधिक सम्मानका भाव प्रकट किया और सुकेशके पुत्रोंके विषयमें बड़ी घबराहटके साथ इस प्रकार कहा—॥ १३ ॥

सुकेशतनयैर्देव त्रिभिस्त्रेताग्निसंनिभैः ।
आक्रम्य वरदानेन स्थानान्यपहृतानि नः ॥ १४ ॥

'देव ! सुकेशके तीन पुत्र त्रिविध अग्नियोंके तुल्य तेजस्वी हैं । उन्होंने वरदानके बलसे आक्रमण करके हमारे स्थान छीन लिये हैं ॥ १४ ॥

लङ्का नाम पुरी दुर्गा त्रिकूटशिखरे स्थिता ।
तत्र स्थिताः प्रबाधन्ते सर्वान् नः क्षणदाचराः ॥ १५ ॥

'त्रिकूटपर्वतके शिखरपर जो लङ्का नामवाली दुर्गम नगरी है, वहीं रहकर वे निशाचर हम सभी देवताओंको क्लेश पहुँचाते रहते हैं ॥ १५ ॥

स त्वमस्मद्धितार्थाय जहि तान् मधुसूदन ।
शरणं त्वां वयं प्राप्ता गतिर्भव सुरेश्वर ॥ १६ ॥

'मधुसूदन ! आप हमारा हित करनेके लिये उन असुरोंका वध करें । देवेश्वर ! हम आपकी शरणमें आये हैं । आप हमारे आश्रयदाता हों ॥ १६ ॥

चक्रकृत्तास्यकमलान् निवेदय यमाय वै ।
भयेष्वभयदोऽस्माकं नान्योऽस्ति भवता विना ॥ १७ ॥

'अपने चक्रसे उनका कमलोपम मस्तक काटकर आप यमराजको भेंट कर दीजिये । आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो इस भयके अवसरपर हमें अभय दान दे सके ॥ १७ ॥

राक्षसान् समरे हृष्टान् सानुबन्धान् मदोद्धतान् ।
नुद त्वं नो भयं देव नीहारमिव भास्करः ॥ १८ ॥

'देव ! वे राक्षस मदसे मतवाले हो रहे हैं । हमें कष्ट देकर हर्षसे फूले नहीं समाते हैं; अतः आप समराङ्गणमें सगे-सम्बन्धियोंसहित उनका वध करके हमारे भयको उसी तरह दूर कर दीजिये, जैसे सूर्यदेव कुहरेको नष्ट कर देते हैं' ॥ १८ ॥

इत्येवं दैवतैरुक्तो देवदेवो जनार्दनः ।
अभयं भयदोऽरीणां दत्त्वा देवानुवाच ह ॥ १९ ॥

देवताओंके ऐसा कहनेपर शत्रुओंको भय देनेवाले देवाधिदेव भगवान् जनार्दन उन्हें अभय दान देकर बोले—॥ १९ ॥

सुकेशं राक्षसं जाने ईशानवरदर्पितम् ।
तांश्चास्य तनयाञ्जाने येषां ज्येष्ठः स माल्यवान् ॥ २० ॥
तानहं समतिक्रान्तमर्यादान् राक्षसाधमान् ।
निहनिष्यामि संक्रुद्धः सुरा भवत विज्वराः ॥ २१ ॥

'देवताओ ! मैं सुकेश नामक राक्षसको जानता हूँ । वह भगवान् शङ्करका वर पाकर अभिमानसे उन्मत्त हो उठा है । इसके उन पुत्रोंको भी जानता हूँ, जिनमें माल्यवान् सबसे बड़ा है । वे नीच राक्षस धर्मकी मर्यादाका उल्लङ्घन कर रहे हैं, अतः मैं क्रोधपूर्वक उनका विनाश करूँगा । तुमलोग निश्चिन्त हो जाओ' ॥ २०-२१ ॥

इत्युक्तास्ते सुराः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना ।
यथावासं ययुर्हृष्टाः प्रशंसन्तो जनार्दनम् ॥ २२ ॥

सब कुछ करनेमें समर्थ भगवान् विष्णुके इस प्रकार आश्वासन देनेपर देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ । वे उन जनार्दनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ २२ ॥

विबुधानां समुद्योगं माल्यवांस्तु निशाचरः ।
श्रुत्वा तौ भ्रातरौ वीराविदं वचनमब्रवीत् ॥ २३ ॥

देवताओंके इस उद्योगका समाचार सुनकर निशाचर माल्यवान्ने अपने दोनों वीर भाइयोंसे इस प्रकार कहा—२३

अमरा ऋषयश्चैव संगम्य किल शङ्करम् ।
अस्मद्वधं परीप्सन्त इदं वचनमब्रुवन् ॥ २४ ॥

'सुननेमें आया है कि देवता और ऋषि मिलकर हमलोगोंका वध करना चाहते हैं । इसके लिये उन्होंने भगवान् शङ्करके पास जाकर यह बात कही ॥ २४ ॥

सुकेशतनया देव वरदानबलोद्धताः ।
बाधन्तेऽस्मान् समुद्दृप्ता घोररूपाः पदे पदे ॥ २५ ॥

''देव ! सुकेशके पुत्र आपके वरदानके बलसे उद्दण्ड

और अभिमानसे उन्मत्त हो उठे हैं। वे भयंकर राक्षस पग पगपर हमलोगोंको सता रहे हैं ॥ २५ ॥

राक्षसैरभिभूताः स्मो न शक्ताः स्म प्रजापते।
स्वेषु सद्मसु संस्थातुं भयात् तेषां दुरात्मनाम् ॥ २६॥

''प्रजानाथ! राक्षसोंसे पराजित होकर हम उन दुष्टोंके भयसे अपने घरोंमें नहीं रहने पाते हैं ॥ २६ ॥

तदस्माकं हितार्थाय जहि तांश्च त्रिलोचन।
राक्षसान् हुंकृतेनैव दह प्रदहतां वर ॥ २७॥

''त्रिलोचन! आप हमारे हितके लिये उन असुरोंका वध कीजिये। दाहकोंमें श्रेष्ठ रुद्रदेव! आप अपने हुंकारसे ही राक्षसोंको जलाकर भस्म कर दीजिये' ॥ २७ ॥

इत्येवं त्रिदशैरुक्तो निशम्यान्धकसूदनः।
शिरः करं च धुन्वान इदं वचनमब्रवीत् ॥ २८॥

'देवताओंके ऐसा कहनेपर अन्धकशत्रु भगवान् शिवने अस्वीकृति सूचित करनेके लिये अपने सिर और हाथको हिलाते हुए इस प्रकार कहा—॥ २८ ॥

अवध्या मम ते देवाः सुकेशतनया रणे।
मन्त्रं तु वः प्रदास्यामि यस्तान् वै निहनिष्यति ॥ २९ ॥

''देवताओ! सुकेशके पुत्र रणभूमिमें मेरे हाथसे मारे जाने योग्य नहीं है, परंतु मैं तुम्हें ऐसे पुरुषके पास जानेकी सलाह दूँगा, जो निश्चय ही उन सबका वध कर डालेंगे ॥२९॥

योऽसौ चक्रगदापाणिः पीतवासा जनार्दनः।
हरिर्नारायणः श्रीमाञ्शरणं तं प्रपद्यथ ॥ ३० ॥

''जिनके हाथमें चक्र और गदा सुशोभित है, जो पीताम्बर धारण करते हैं, जिन्हें जनार्दन और हरि कहते हैं तथा जो श्रीमान् नारायणके नामसे विख्यात हैं, उन्हीं भगवान्‌की शरणमें तुम सब लोग जाओ' ॥ ३० ॥

हरादवाप्य ते मन्त्रं कामारिमभिवाद्य च।
नारायणालयं प्राप्य तस्मै सर्वं न्यवेदयन् ॥ ३१ ॥

'भगवान् शङ्करसे यह सलाह पाकर उन कामदाहक महादेवजीको प्रणाम करके देवता नारायणके धाममें जा पहुँचे और वहाँ उन्होंने उनसे सब बातें बतायीं ॥ ३१ ॥

ततो नारायणेनोक्ता देवा इन्द्रपुरोगमाः।
सुरारींस्तान् हनिष्यामि सुरा भवत निर्भयाः ॥ ३२ ॥

'तब उन नारायणदेवने इन्द्र आदि देवताओंसे कहा—'देवगण! मैं उन देवद्रोहियोंका नाश कर डालूँगा, अतः तुम लोग निर्भय हो जाओ' ॥ ३२ ॥

देवानां भयभीतानां हरिणा राक्षसर्षभौ।
प्रतिज्ञातो वधोऽस्माकं चिन्त्यतां यदिह क्षमम् ॥ ३३ ॥

'राक्षसशिरोमणियो! इस प्रकार भयभीत देवताओंके समक्ष श्रीहरिने हमें मारनेकी प्रतिज्ञा की है; अतः अब इस विषयमें हमलोगोंके लिये जो उचित कर्तव्य हो, उसका विचार करना चाहिये ॥ ३३ ॥

हिरण्यकशिपोर्मृत्युरन्येषां च सुरद्विषाम्।
नमुचिः कालनेमिश्च संह्रादो वीरसत्तमः ॥ ३४ ॥
राधेयो बहुमायी च लोकपालोऽथ धार्मिकः।
यमलार्जुनौ च हार्दिक्यः शुम्भश्चैव निशुम्भकः ॥ ३५ ॥
असुरा दानवाश्चैव सत्त्ववन्तो महाबलाः।
सर्वे समरमासाद्य न श्रूयन्तेऽपराजिताः ॥ ३६ ॥

'हिरण्यकशिपु तथा अन्य देवद्रोही दैत्योंकी मृत्यु इन्हीं विष्णुके हाथसे हुई है। नमुचि, कालनेमि, वीरशिरोमणि संह्राद, नाना प्रकारकी माया जाननेवाला राधेय, धर्मनिष्ठ लोकपाल, यमल-अर्जुन, हार्दिक्य, शुम्भ और निशुम्भ आदि महाबली शक्तिशाली समस्त असुर और दानव समरभूमिमें भगवान् विष्णुका सामना करके पराजित न हुए हों, ऐसा नहीं सुना जाता ॥ ३४—३६ ॥

सर्वैः क्रतुशतैरिष्टं सर्वे मायाविदस्तथा।
सर्वे सर्वास्त्रकुशलाः सर्वे शत्रुभयंकराः ॥ ३७ ॥

'उन सभी असुरोंने सैकड़ों यज्ञ किये थे। वे सब-के-सब माया जानते थे। सभी सम्पूर्ण अस्त्रोंमें कुशल तथा शत्रुओंके लिये भयंकर थे ॥ ३७ ॥

नारायणेन निहताः शतशोऽथ सहस्रशः।
एतज्ज्ञात्वा तु सर्वेषां क्षमं कर्तुमिहार्हथ।
दुःखं नारायणं जेतुं यो नो हन्तुमिहेच्छति ॥ ३८ ॥

'ऐसे सैकड़ों और हजारों असुरोंको नारायणदेवने मौतके घाट उतार दिया है। इस बातको जानकर हम सबके लिये जो उचित कर्तव्य हो, वही करना चाहिये। जो नारायणदेव हमारा वध करना चाहते हैं, उन्हें जीतना अत्यन्त दुष्कर कार्य है' ॥ ३८ ॥

ततः सुमाली माली च श्रुत्वा माल्यवतो वचः।
ऊचतुर्भ्रातरं ज्येष्ठमश्विनाविव वासवम् ॥ ३९ ॥

माल्यवान्‌की यह बात सुनकर सुमाली और माली अपने उस बड़े भाईसे उसी प्रकार बोले, जैसे दोनों अश्विनीकुमार देवराज इन्द्रसे वार्तालाप कर रहे हों ॥ ३९ ॥

स्वधीतं दत्तमिष्टं च ऐश्वर्यं परिपालितम्।
आयुर्निरामयं प्राप्तं सुधर्मः स्थापितः पथि ॥ ४० ॥

वे बोले—राक्षसराज! हमलोगोंने स्वाध्याय, दान और यज्ञ किये हैं। ऐश्वर्यकी रक्षा तथा उसका उपभोग भी किया है। हमें रोग-व्याधिसे रहित आयु प्राप्त हुई है और हमने कर्तव्य-मार्गमें उत्तम धर्मकी स्थापना की है ॥ ४० ॥

देवसागरमक्षोभ्यं शस्त्रैः समवगाह्य च।
जिता द्विषो ह्यप्रतिमास्तन्नो मृत्युकृतं भयम् ॥ ४१ ॥

'यही नहीं, हमने अपने शस्त्रोंके बलसे देवसेनारूपी अगाध समुद्रमें प्रवेश करके ऐसे-ऐसे शत्रुओंपर विजय पायी है, जो वीरतामें अपना सानी नहीं रखते थे; अतः हमें मृत्युसे कोई भय नहीं है ॥ ४१ ॥

नारायणश्च रुद्रश्च शक्रश्चापि यमस्तथा ।
अस्माकं प्रमुखे स्थातुं सर्वे बिभ्यति सर्वदा ॥ ४२ ॥

'नारायण, रुद्र, इन्द्र तथा यमराज ही क्यों न हों, सभी सदा हमारे सामने खड़े होनेमें डरते हैं ॥ ४२ ॥

विष्णोर्द्वेषस्य नास्त्येव कारणं राक्षसेश्वर ।
देवानामेव दोषेण विष्णोः प्रचलितं मनः ॥ ४३ ॥

'राक्षसेश्वर ! विष्णुके मनमें भी हमारे प्रति द्वेषका कोई कारण तो नहीं है । (क्योंकि हमने उनका कोई अपराध नहीं किया है) केवल देवताओंके चुगली खानेसे उनका मन हमारी ओरसे फिर गया है ॥ ४३ ॥

तस्मादद्यैव सहिताः सर्वेऽन्योन्यसमावृताः ।
देवानेव जिघांसामो येभ्यो दोषः समुत्थितः ॥ ४४ ॥

'इसलिये हम सब लोग एकत्र हो एक दूसरेकी रक्षा करते हुए साथ-साथ चलें और आज ही देवताओंका वध कर डालनेकी चेष्टा करें, जिनके कारण यह उपद्रव खड़ा हुआ है' ॥

एवं सम्मन्त्र्य बलिनः सर्वसैन्यसमावृताः ।
उद्योगं घोषयित्वा तु सर्वे नैर्ऋतपुंगवाः ॥ ४५ ॥
युद्धाय निर्ययुः क्रुद्धा जम्भवृत्रादयो यथा ।

ऐसा निश्चय करके उन सभी महाबली राक्षसपतियोंने युद्धके लिये अपने उद्योगकी घोषणा कर दी और समूची सेना साथ ले जम्भ एवं वृत्र आदिकी भाँति कुपित हो वे युद्धके लिये निकले ॥ ४५½ ॥

इति ते राम सम्मन्त्र्य सर्वोद्योगेन राक्षसाः ॥ ४६ ॥
युद्धाय निर्ययुः सर्वे महाकाया महाबलाः ।

श्रीराम ! पूर्वोक्त मन्त्रणा करके उन सभी महाबली विशालकाय राक्षसोंने पूरी तैयारी की और युद्धके लिये कूच कर दिया ॥ ४६½ ॥

स्यन्दनैर्वारणैश्चैव हयैश्च करिसंनिभैः ॥ ४७ ॥
खरैर्गोभिरथोष्ट्रैश्च शिशुमारैर्भुजंगमैः ।
मकरैः कच्छपैर्मीनैर्विहंगैर्गरुडोपमैः ॥ ४८ ॥
सिंहैर्व्याघ्रैर्वराहैश्च सृमरैश्चमरैरपि ।
त्यक्त्वा लङ्कां गताः सर्वे राक्षसा बलगर्विताः ॥ ४९ ॥
प्रयाता देवलोकाय योद्धुं दैवतशत्रवः ।

अपने बलका घमंड रखनेवाले वे समस्त देवद्रोही राक्षस रथ, हाथी, हाथी-जैसे घोड़े, गदहे, बैल, ऊँट, शिशुमार, सर्प, मगर, कछुआ, मत्स्य, गरुड़-तुल्य पक्षी, सिंह, बाघ, सूअर, मृग और नीलगाय आदि वाहनोंपर सवार हो लङ्का छोड़कर युद्धके लिये देवलोककी ओर चल दिये ॥

लङ्काविपर्ययं दृष्ट्वा यानि लङ्कालयान्यथ ॥ ५० ॥
भूतानि भयदर्शीनि विमनस्कानि सर्वशः ।

लङ्कामें रहनेवाले जो प्राणी अथवा ग्रामदेवता आदि थे, वे सब अपशकुन आदिके द्वारा लङ्काके भावी विध्वंसको देखकर भयका अनुभव करते हुए मन-ही-मन खिन्न हो उठे ॥

रथोत्तमैरुह्यमानाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५१ ॥
प्रयाता राक्षसास्तूर्णं देवलोकं प्रयत्नतः ।
रक्षसामेव मार्गेण दैवतान्यपचक्रमुः ॥ ५२ ॥

उत्तम रथोंपर बैठे हुए सैकड़ों और हजारों राक्षस तुरत ही प्रयत्नपूर्वक देवलोककी ओर बढ़ने लगे । उस नगरके देवता राक्षसोंके मार्गसे ही पुरी छोड़कर निकल गये ॥५१-५२॥

भौमाश्चैवान्तरिक्षाश्च कालाज्ञप्ता भयावहाः ।
उत्पाता राक्षसेन्द्राणामभावाय समुत्थिताः ॥ ५३ ॥

उस समय कालकी प्रेरणासे पृथ्वी और आकाशमें अनेक भयंकर उत्पात प्रकट होने लगे, जो राक्षसोंके विनाशकी सूचना दे रहे थे ॥ ५३ ॥

अस्थीनि मेघा ववृषुरुष्णं शोणितमेव च ।
वेलां समुद्राश्चोत्क्रान्ताश्चेलुश्चाप्यथ भूधराः ॥ ५४ ॥

बादल गरम-गरम रक्त और हड्डियोंकी वर्षा करने लगे, समुद्र अपनी सीमाका उल्लङ्घन करके आगे बढ़ गये और पर्वत हिलने लगे ॥ ५४ ॥

अट्टहासान् विमुञ्चन्तो घननादसमस्वनाः ।
वाश्यन्त्यश्च शिवास्तत्र दारुणं घोरदर्शनाः ॥ ५५ ॥

मेघके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले प्राणी विकट अट्टहास करने लगे और भयंकर दिखायी देनेवाली गीदड़ियाँ कठोर आवाजमें चीत्कार करने लगीं ॥ ५५ ॥

सम्पतन्त्यथ भूतानि दृश्यन्ते च यथाक्रमम् ।
गृध्रचक्रं महच्चात्र प्रज्वालोद्गारिभिर्मुखैः ॥ ५६ ॥
रक्षोगणस्योपरिष्टात् परिभ्रमति कालवत् ।

पृथ्वी आदि भूत क्रमशः गिरते—विलीन होते-से दिखायी देने लगे, गीधोंका विशाल समूह मुखसे आगकी ज्वाला उगलता हुआ राक्षसोंके ऊपर कालके समान मड़राने लगा ॥

कपोता रक्तपादाश्च सारिका विद्रुता ययुः ॥ ५७ ॥
काका वाश्यन्ति तत्रैव विडाला वै द्विपादयः ।

कबूतर, तोते और मैने लङ्का छोड़कर भाग चले । कौए वहीं काँव-काँव करने लगे । बिल्लियाँ भी वहीं गुर्राने लगीं तथा हाथी आदि पशु आर्तनाद करने लगे ॥ ५७½ ॥

उत्पातांस्ताननादृत्य राक्षसा बलदर्पिताः ॥ ५८ ॥
यान्त्येव न निवर्तन्ते मृत्युपाशावपाशिताः ।

राक्षस बलके घमंडमें मतवाले हो रहे थे । वे कालके पाशमें बँध चुके थे । इसलिये उन उत्पातोंकी अवहेलना करके युद्धके लिये चलते ही गये, लौटे नहीं ॥ ५८½ ॥

माल्यवांश्च सुमाली च माली च सुमहाबलः ॥ ५९ ॥
पुरःसरा राक्षसानां ज्वलिता इव पावकाः ।

माल्यवान्, सुमाली और महाबली माली—ये तीनों प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी शरीरसे समस्त राक्षसोंके आगे-आगे चल रहे थे ॥ ५९½ ॥

माल्यवन्तं तु ते सर्वे माल्यवन्तमिवाचलम् ॥ ६० ॥

निशाचरा आश्रयन्ति धातारमिव देवताः ।

जैसे देवता ब्रह्माजीका आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार उन सब निशाचरोंने माल्यवान् पर्वतके समान अविचल माल्यवान्का ही आश्रय ले रक्खा था ॥ ६०½ ॥

तद् बलं राक्षसेन्द्राणां महाभ्रघननादितम् ॥ ६१ ॥
जयेप्सया देवलोकं ययौ मालिवशे स्थितम् ।

राक्षसोंकी वह सेना महान् मेघोंकी गर्जनाके समान कोलाहल करती हुई विजय पानेकी इच्छासे देवलोककी ओर बढ़ती जा रही थी । उस समय वह सेनापति मालीके नियन्त्रणमें थी ॥ ६१½ ॥

राक्षसानां समुद्योगं तं तु नारायणः प्रभुः ॥ ६२ ॥
देवदूतादुपश्रुत्य चक्रे युद्धे तदा मनः ।

देवताओंके दूतसे राक्षसोंके उस युद्धविषयक उद्योगकी बात सुनकर भगवान् नारायणने भी युद्ध करनेका विचार किया ॥ ६२½ ॥

स सज्जायुधतूणीरो वैनतेयोपरि स्थितः ॥ ६३ ॥
आसाद्य कवचं दिव्यं सहस्रार्कसमद्युति ।

वे सहस्रों सूर्योंके समान दीप्तिमान् दिव्य कवच धारण करके बाणोंसे भरा तरकस लिये गरुड़पर सवार हुए ॥ ६३½ ॥

आबद्ध्य शरसम्पूर्णे इषुधी विमले तदा ॥ ६४ ॥
श्रोणिसूत्रं च खड्गं च विमलं कमलेक्षणः ।

इसके अतिरिक्त भी उन्होंने सायकोंसे पूर्ण दो चमचमाते हुए तूणीर बाँध रक्खे थे । उन कमलनयन श्रीहरिने अपनी कमरमें पट्टी बाँधकर उसमें चमकती हुई तलवार भी लटका ली थी ॥ ६४½ ॥

शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गांश्चैव वरायुधान् ॥ ६५ ॥
सुपर्णं गिरिसंकाशं वैनतेयमथास्थितः ।
राक्षसानामभावाय ययौ तूर्णतरं प्रभुः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष और खड्ग आदि उत्तम आयुधोंको धारण किये सुन्दर पंखवाले पर्वताकार गरुड़पर आरूढ़ हो वे प्रभु उन राक्षसोंका संहार करनेके लिये तुरंत चल दिये ॥ ६५-६६ ॥

सुपर्णपृष्ठे स बभौ श्यामः पीताम्बरो हरिः ।
काञ्चनस्य गिरेः शृङ्गे सतडित्तोयदो यथा ॥ ६७ ॥

गरुड़की पीठपर बैठे हुए वे पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर श्रीहरि सुवर्णमय मेरुपर्वतके शिखरपर स्थित हुए विद्युत्सहित मेघके समान शोभा पा रहे थे ॥ ६७ ॥

स सिद्धदेवर्षिमहोरगैश्च
गन्धर्वयक्षैरुपगीयमानः ।
समाससादासुरसैन्यशत्रु-
श्चक्रासिशार्ङ्गायुधशङ्खपाणिः ॥ ६८ ॥

उस समय सिद्ध, देवर्षि, बड़े-बड़े नाग, गन्धर्व और यक्ष उनके गुण गा रहे थे । असुरोंकी सेनाके शत्रु वे श्रीहरि हाथोंमें शङ्ख, चक्र, खड्ग और शार्ङ्गधनुष लिये सहसा वहाँ आ पहुँचे ॥ ६८ ॥

सुपर्णपक्षानिलनुन्नपक्षं
भ्रमत्पताकं प्रविकीर्णशस्त्रम् ।
चचाल तद्राक्षसराजसैन्यं
चलोपलं नीलमिवाचलाग्रम् ॥ ६९ ॥

गरुड़के पंखोंकी तीव्र वायुके झोंके खाकर वह सेना क्षुब्ध हो उठी । सैनिकोंके रथोंकी पताकाएँ चक्कर खाने लगीं और सबके हाथोंसे अस्त्र-शस्त्र गिर गये । इस प्रकार राक्षसराज माल्यवान्की समूची सेना काँपने लगी । उसे देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो पर्वतका नील शिखर अपनी शिलाओंको बिखेरता हुआ हिल रहा हो ॥ ६९ ॥

ततः शितैः शोणितमांसरूषितै-
र्युगान्तवैश्वानरतुल्यविग्रहैः ।
निशाचराः सम्परिवार्य माधवं
वरायुधैर्निर्बिभिदुः सहस्रशः ॥ ७० ॥

राक्षसोंके उत्तम अस्त्र-शस्त्र तीखे, रक्त और मांसमें सने हुए तथा प्रलयकालीन अग्निके समान दीप्तिमान् थे । उनके द्वारा वे सहस्रों निशाचर भगवान् लक्ष्मीपतिको चारों ओरसे घेरकर उनपर चोट करने लगे ॥ ७० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छठा सर्ग पूरा हुआ ॥ ६ ॥

◆

सप्तमः सर्गः

भगवान् विष्णुद्वारा राक्षसोंका संहार और पलायन

नारायणगिरिं ते तु गर्जन्तो राक्षसाम्बुदाः ।
अर्दयन्तोऽस्त्रवर्षेण वर्षेणेवाद्रिमम्बुदाः ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन !) जैसे बादल जलकी वर्षासे किसी पर्वतको आप्लावित करते हैं; उसी प्रकार गर्जना करते हुए वे राक्षसरूपी मेघ अस्त्ररूपी जलकी वर्षासे नारायणरूपी पर्वतको पीड़ित करने लगे ॥ १ ॥

श्यामावदातस्तैर्विष्णुर्नीलैर्नक्तंचरोत्तमैः ।
वृतोऽञ्जनगिरीवायं वर्षमाणैः पयोधरैः ॥ २ ॥

भगवान् विष्णुका श्रीविग्रह उज्ज्वल श्यामवर्णसे सुशोभित था और अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए वे श्रेष्ठ निशाचर नीले रंगके दिखायी देते थे; इसलिये ऐसा जान पड़ता था, मानो

अञ्जनगिरिको चारों ओरसे घेरकर मेघ उसपर जलकी धारा बरसा रहे हों ॥ २ ॥

शलभा इव केदारं मशका इव पावकम् ।
यथामृतघटं दंशा मकरा इव चार्णवम् ॥ ३ ॥
तथा रक्षोधनुर्मुक्ता वज्रानिलमनोजवाः ।
हरिं विशन्ति स्म शरा लोका इव विपर्यये ॥ ४ ॥

जैसे टिड्डीदल धान आदिके खेतोंमें, पतिंगे आगमें, डंक मारनेवाली मक्खियाँ मधुसे भरे हुए घड़ेमें और मगर समुद्रमें घुस जाते हैं, उसी प्रकार राक्षसोंके धनुषसे छूटे हुए वज्र, वायु तथा मनके समान वेगवाले बाण भगवान् विष्णुके शरीरमें प्रवेश करके इस प्रकार लीन हो जाते थे, जैसे प्रलय-कालमें समस्त लोक उन्हींमें प्रवेश कर जाते हैं ॥ ३-४ ॥

स्यन्दनैः स्यन्दनगता गजैश्च गजमूर्धगाः ।
अश्वारोहास्तथाश्वैश्च पादाताश्चाम्बरे स्थिताः ॥ ५ ॥

रथपर बैठे हुए योद्धा रथोंसहित, हाथीसवार हाथियोंके साथ, घुड़सवार घोड़ोंसहित तथा पैदल पाँव-पयादे ही आकाशमें खड़े थे ॥ ५ ॥

राक्षसेन्द्रा गिरिनिभाः शरैः शक्त्यृष्टितोमरैः ।
निरुच्छ्वासं हरिं चक्रुः प्राणायामा इव द्विजम् ॥ ६ ॥

उन राक्षसराजोंके शरीर पर्वतके समान विशाल थे । उन्होंने सब ओरसे शक्ति, ऋष्टि, तोमर और बाणोंकी वर्षा करके भगवान् विष्णुका साँस लेना बंद कर दिया । ठीक उसी तरह, जैसे प्राणायाम द्विजके श्वासको रोक देते हैं ॥ ६ ॥

निशाचरैस्ताड्यमानो मीनैरिव महोदधिः ।
शार्ङ्गमायम्य दुर्धर्षो राक्षसेभ्योऽसृजच्छरान् ॥ ७ ॥

जैसे मछली महासागरपर प्रहार करे, उसी तरह वे निशाचर अपने अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा श्रीहरिपर चोट करते थे । उस समय दुर्जय देवता भगवान् विष्णुने अपने शार्ङ्ग-धनुषको खींचकर राक्षसोंपर बाण बरसाना आरम्भ किया ॥ ७ ॥

शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्वज्रकल्पैर्मनोजवैः ।
चिच्छेद विष्णुर्निशितैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८ ॥

वे बाण धनुषको पूर्णरूपसे खींचकर छोड़े गये थे; अतः वज्रके समान असह्य और मनके समान वेगवान् थे । उन पैने बाणोंद्वारा भगवान् विष्णुने सैकड़ों और हजारों निशाचरोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ८ ॥

विद्राव्य शरवर्षेण वर्षं वायुरिवोत्थितम् ।
पाञ्चजन्यं महाशङ्खं प्रदध्मौ पुरुषोत्तमः ॥ ९ ॥

जैसे हवा उमड़ी हुई बदली एवं वर्षाको उड़ा देती है, उसी प्रकार अपनी बाणवर्षासे राक्षसोंको भगाकर पुरुषोत्तम श्रीहरिने अपने पाञ्चजन्य नामक महान् शङ्खको बजाया ॥ ९ ॥

सोऽम्बुजो हरिणा ध्मातः सर्वप्राणेन शङ्खराट् ।
ररास भीमनिर्ह्रादस्त्रैलोक्यं व्यथयन्निव ॥ १० ॥

सम्पूर्ण प्राणशक्तिसे श्रीहरिके द्वारा बजाया गया वह जलजनित शङ्खराज भयंकर आवाजसे तीनों लोकोंको व्यथित करता हुआ-सा गूँजने लगा ॥ १० ॥

शङ्खराजरवः सोऽथ त्रासयामास राक्षसान् ।
मृगराज इवारण्ये समदानिव कुञ्जरान् ॥ ११ ॥

जैसे वनमें दहाड़ता हुआ सिंह मतवाले हाथियोंको भयभीत कर देता है, उसी प्रकार उस शङ्खराजकी ध्वनिने समस्त राक्षसोंको भय और घबराहटमें डाल दिया ॥ ११ ॥

न शेकुरश्वाः संस्थातुं विमदाः कुञ्जराऽभवन् ।
स्यन्दनेभ्यश्च्युता वीराः शङ्खरावितदुर्बलाः ॥ १२ ॥

वह शङ्ख-ध्वनि सुनकर शक्ति और साहससे हीन हुए घोड़े युद्धभूमिमें खड़े न रह सके, हाथियोंके मद उतर गये और वीर सैनिक रथोंसे नीचे गिर पड़े ॥ १२ ॥

शार्ङ्गचापविनिर्मुक्ता वज्रतुल्याननाः शराः ।
विदार्य तानि रक्षांसि सुपुङ्खा विविशुः क्षितिम् ॥ १३ ॥

सुन्दर पंखवाले उन बाणोंके मुखभाग वज्रके समान कठोर थे । वे शार्ङ्ग धनुषसे छूटकर राक्षसोंको विदीर्ण करते हुए पृथ्वीमें घुस जाते थे ॥ १३ ॥

भिद्यमानाः शरैः संख्ये नारायणकरच्युतैः ।
निपेतू राक्षसा भूमौ शैला वज्रहता इव ॥ १४ ॥

संग्रामभूमिमें भगवान् विष्णुके हाथसे छूटे हुए उन बाणोंद्वारा छिन्न-भिन्न हुए निशाचर वज्रके मारे हुए पर्वतोंकी भाँति धराशायी होने लगे ॥ १४ ॥

व्रणानि परगात्रेभ्यो विष्णुचक्रकृतानि हि ।
असृक् क्षरन्ति धाराभिः स्वर्णधारा इवाचलाः ॥ १५ ॥

श्रीहरिके चक्रके आघातसे शत्रुओंके शरीरोंमें जो घाव हो गये थे, उनसे उसी तरह रक्तकी धारा बह रही थी, मानो पर्वतोंसे गेरुमिश्रित जलका झरना गिर रहा हो ॥ १५ ॥

शङ्खराजरवश्चापि शार्ङ्गचापरवस्तथा ।
राक्षसानां रवांश्चापि ग्रसते वैष्णवो रवः ॥ १६ ॥

शङ्खराजकी ध्वनि, शार्ङ्ग-धनुषकी टंकार तथा भगवान् विष्णुकी गर्जना—इन सबके तुमुल नादने राक्षसोंके कोलाहलको दबा दिया ॥ १६ ॥

तेषां शिरोधरान् धूताञ्छरध्वजधनूंषि च ।
रथान् पताकास्तूणीरांश्चिच्छेद स हरिः शरैः ॥ १७ ॥

भगवान्ने राक्षसोंके काँपते हुए मस्तकों, बाणों, ध्वजाओं, धनुषों, रथों, पताकाओं और तरकसोंको अपने बाणोंसे काट डाला ॥ १७ ॥

सूर्यादिव करा घोरा वार्योघा इव सागरात् ।
पर्वतादिव नागेन्द्रा धारौघा इव चाम्बुदात् ॥ १८ ॥
तथा शार्ङ्गविनिर्मुक्ताः शरा नारायणेरिताः ।
निर्धावन्तीषवस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १९ ॥

जैसे सूर्यसे भयंकर किरणें, समुद्रसे जलके प्रवाह, पर्वतसे बड़े-बड़े सर्प और मेघसे जलकी धाराएँ प्रकट होती हैं, उसी

प्रकार भगवान् नारायणके चलाये और शार्ङ्गधनुषसे छूटे हुए सैकड़ों और हजारों बाण तत्काल इधर-उधर दौड़ने लगे ॥ १८-१९ ॥

शरभेण यथा सिंहाः सिंहेन द्विरदा यथा ।
द्विरदेन यथा व्याघ्रा व्याघ्रेण द्वीपिनो यथा ॥ २० ॥
द्वीपिनेव यथा श्वानः शुना मार्जारको यथा ।
मार्जारेण यथा सर्पाः सर्पेण च यथाखवः ॥ २१ ॥
तथा ते राक्षसाः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना ।
द्रवन्ति द्राविताश्चान्ये शायिताश्च महीतले ॥ २२ ॥

जैसे शरभसे सिंह, सिंहसे हाथी, हाथीसे बाघ, बाघसे चीते, चीतेसे कुत्ते, कुत्तेसे बिलाव, बिलावसे साँप और साँपसे चूहे डरकर भागते हैं; उसी प्रकार वे सब राक्षस प्रभावशाली भगवान् विष्णुकी मार खाकर भागने लगे। उनके भगाये हुए बहुत-से राक्षस धराशायी हो गये ॥ २०–२२ ॥

राक्षसानां सहस्राणि निहत्य मधुसूदनः ।
वारिजं पूरयामास तोयदं सुरराडिव ॥ २३ ॥

सहस्रों राक्षसोंका वध करके भगवान् मधुसूदनने अपने शङ्ख पाञ्चजन्यको उसी तरह गम्भीर ध्वनिसे पूर्ण किया, जैसे देवराज इन्द्र मेघको जलसे भर देते हैं ॥ २३ ॥

नारायणशरत्रस्तं शङ्खनादसुविह्वलम् ।
ययौ लङ्कामभिमुखं प्रभग्नं राक्षसं बलम् ॥ २४ ॥

भगवान् नारायणके बाणोंसे भयभीत और शङ्खनादसे व्याकुल हुई राक्षस-सेना लङ्काकी ओर भाग चली ॥ २४ ॥

प्रभग्ने राक्षसबले नारायणशराहते ।
सुमाली शरवर्षेण निववार रणे हरिम् ॥ २५ ॥

नारायणके सायकोंसे आहत हुई राक्षससेना जब भागने लगी; तब सुमालीने रणभूमिमें बाणोंकी वर्षा करके उन श्रीहरिको आगे बढ़नेसे रोका ॥ २५ ॥

स तु तं छादयामास नीहार इव भास्करम् ।
राक्षसाः सत्त्वसम्पन्नाः पुनर्धैर्यं समादधुः ॥ २६ ॥

जैसे कुहरा सूर्यदेवको ढक लेता है, उसी तरह सुमालीने बाणोंसे भगवान् विष्णुको आच्छादित कर दिया। यह देख शक्तिशाली राक्षसोंने पुनः धैर्य धारण किया ॥ २६ ॥

अथ सोऽभ्यपतद् रोषाद् राक्षसो बलदर्पितः ।
महानादं प्रकुर्वाणो राक्षसाञ्जीवयन्निव ॥ २७ ॥

उस बलाभिमानी निशाचरने बड़े जोरसे गर्जना करके राक्षसोंमें नूतन जीवनका संचार करते हुए-से रोषपूर्वक आक्रमण किया ॥ २७ ॥

उत्क्षिप्य लम्बाभरणं धुन्वन् करमिव द्विपः ।
ररास राक्षसो हर्षात् सतडित्तोयदो यथा ॥ २८ ॥

जैसे हाथी सूँड़को उठाकर हिलाता हो, उसी तरह लटकते हुए आभूषणसे युक्त हाथको ऊपर उठाकर हिलाता हुआ वह राक्षस विद्युत्सहित सजल जलधरके समान बड़े हर्षसे गर्जना करने लगा ॥ २८ ॥

सुमालेर्नर्दतस्तस्य शिरो ज्वलितकुण्डलम् ।
चिच्छेद यन्तुरश्वाश्च भ्रान्तास्तस्य तु रक्षसः ॥ २९ ॥

तब भगवान्ने अपने बाणोंद्वारा गर्जते हुए सुमालीके सारथिका जगमगाते हुए कुण्डलोंसे मण्डित मस्तक काट डाला। इससे उस राक्षसके घोड़े बेलगाम होकर चारों ओर चक्कर काटने लगे ॥ २९ ॥

तैरश्वैर्भ्राम्यते भ्रान्तैः सुमाली राक्षसेश्वरः ।
इन्द्रियाश्वैः परिभ्रान्तैर्धृतिहीनो यथा नरः ॥ ३० ॥

उन घोड़ोंके चक्कर काटनेसे उनके साथ ही राक्षसराज सुमाली भी चक्कर काटने लगा। ठीक उसी तरह, जैसे अजितेन्द्रिय मनुष्य विषयोंमें भटकनेवाली इन्द्रियोंके साथ-साथ स्वयं भी भटकता फिरता है ॥ ३० ॥

ततो विष्णुं महाबाहुं प्रपतन्तं रणाजिरे ।
हृते सुमालेरश्वैश्च रथे विष्णुरथं प्रति ॥ ३१ ॥
माली चाभ्यद्रवद् युक्तः प्रगृह्य सशरं धनुः ।

जब घोड़े रणभूमिमें सुमालीके रथको इधर-उधर लेकर भागने लगे, तब माली नामक राक्षसने युद्धके लिये उद्यत हो धनुष लेकर गरुड़की ओर धावा किया। राक्षसोंपर टूटते हुए महाबाहु विष्णुपर आक्रमण किया ॥ ३१½ ॥

मालेर्धनुश्च्युता बाणाः कार्तस्वरविभूषिताः ॥ ३२ ॥
विविशुर्हरिमासाद्य क्रौञ्चं पत्ररथा इव ।

मालीके धनुषसे छूटे हुए सुवर्णभूषित बाण भगवान् विष्णुके शरीरमें उसी तरह घुसने लगे, जैसे पक्षी क्रौञ्चपर्वतके छिद्रमें प्रवेश करते हैं ॥ ३२½ ॥

अर्द्यमानः शरैः सोऽथ मालिमुक्तैः सहस्रशः ॥ ३३ ॥
चुक्षुभे न रणे विष्णुर्जितेन्द्रिय इवाधिभिः ।

जैसे जितेन्द्रिय पुरुष मानसिक व्यथाओंसे विचलित नहीं होता, उसी प्रकार रणभूमिमें भगवान् विष्णु मालीके छोड़े हुए सहस्रों बाणोंसे पीड़ित होनेपर भी क्षुब्ध नहीं हुए ॥ ३३½ ॥

अथ मौर्वीस्वनं श्रुत्वा भगवान् भूतभावनः ॥ ३४ ॥
मालिनं प्रति बाणौघान् ससर्जासिगदाधरः ।

तदनन्तर खड्ग और गदा धारण करनेवाले भूतभावन भगवान् विष्णुने अपने धनुषकी टङ्कार करके मालीके ऊपर बाण-समूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३४½ ॥

ते मालिदेहमासाद्य वज्रविद्युत्प्रभाः शराः ॥ ३५ ॥
पिबन्ति रुधिरं तस्य नागा इव सुधारसम् ।

वज्र और बिजलीके समान प्रकाशित होनेवाले वे बाण मालीके शरीरमें घुसकर उसका रक्त पीने लगे, मानो सर्प अमृत-रसका पान कर रहे हों ॥ ३५½ ॥

मालिनं विमुखं कृत्वा शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ३६ ॥

मालिमौलिं ध्वजं चापं वाजिनश्चाप्यपातयत् ।

अन्तमें मालीको पीठ दिखानेके लिये विवश करके शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीहरिने उस राक्षसके मुकुट, ध्वज और धनुषको काटकर घोड़ोंको भी मार गिराया ॥ ३६½ ॥

विरथस्तु गदां गृह्य माली नक्तंचरोत्तमः ॥ ३७ ॥
आपुप्लुवे गदापाणिर्गिर्यग्रादिव केसरी ।

रथहीन हो जानेपर राक्षसप्रवर माली गदा हाथमें लेकर कूद पड़ा, मानो कोई सिंह पर्वतके शिखरसे छलाँग मारकर नीचे आ गया हो ॥ ३७½ ॥

गदया गरुडेशानमीशानमिव चान्तकः ॥ ३८ ॥
ललाटदेशेऽभ्यहनद् वज्रेणेन्द्रो यथाचलम् ।

जैसे यमराजने भगवान् शिवपर गदाका और इन्द्रने पर्वतपर वज्रका प्रहार किया हो, उसी तरह मालीने पक्षिराज गरुड़के ललाटमें अपनी गदाद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३८½ ॥

गदयाभिहतस्तेन मालिना गरुडो भृशम् ॥ ३९ ॥
रणात् पराङ्मुखं देवं कृतवान् वेदनातुरः ।

मालीकी गदासे अत्यन्त आहत हुए गरुड़ वेदनासे व्याकुल हो उठे । उन्होंने स्वयं युद्धसे विमुख होकर भगवान् विष्णुको भी विमुख-सा कर दिया ॥ ३९½ ॥

पराङ्मुखे कृते देवे मालिना गरुडेन वै ॥ ४० ॥
उदतिष्ठन्महाञ्शब्दो रक्षसामभिनर्दताम् ।

मालीने गरुड़के साथ ही जब भगवान् विष्णुको भी युद्धसे विमुख-सा कर दिया, तब वहाँ जोर-जोरसे गर्जते हुए राक्षसोंका महान् शब्द गूँज उठा ॥ ४०½ ॥

रक्षसां रुवतां रावं श्रुत्वा हरिहयानुजः ॥ ४१ ॥
तिर्यगास्थाय संक्रुद्धः पक्षीशे भगवान् हरिः ।
पराङ्मुखोऽप्युत्ससर्ज मालेश्चक्रं जिघांसया ॥ ४२ ॥

गर्जते हुए राक्षसोंका वह सिंहनाद सुनकर इन्द्रके छोटे भाई भगवान् विष्णु अत्यन्त कुपित हो पक्षिराजकी पीठपर तिरछे होकर बैठ गये । (इससे वह राक्षस उन्हें दीखने लगा) उस समय पराङ्मुख होनेपर भी श्रीहरिने मालीके वधकी इच्छासे पीछेकी ओर मुड़कर अपना सुदर्शनचक्र चलाया ॥ ४१-४२ ॥

तत् सूर्यमण्डलाभासं स्वभासा भासयन् नभः ।
कालचक्रनिभं चक्रं मालेः शीर्षमपातयत् ॥ ४३ ॥

सूर्यमण्डलके समान उद्दीप्त होनेवाले कालचक्र-सदृश उस चक्रने अपनी प्रभासे आकाशको उद्भासित करते हुए वहाँ मालीके मस्तकको काट गिराया ॥ ४३ ॥

तच्छिरो राक्षसेन्द्रस्य चक्रोत्कृत्तं विभीषणम् ।
पपात रुधिरोद्गारि पुरा राहुशिरो यथा ॥ ४४ ॥

चक्रसे कटा हुआ राक्षसराज मालीका वह भयंकर मस्तक पूर्वकालमें कटे हुए राहुके सिरकी भाँति रक्तकी धारा बहाता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४४ ॥

ततः सुरैः सम्प्रहृष्टैः सर्वप्राणसमीरितः ।
सिंहनादरवो मुक्तः साधु देवेतिवादिभिः ॥ ४५ ॥

इससे देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई । वे 'साधु भगवन् ! साधु !' ऐसा कहते हुए सारी शक्ति लगाकर जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ ४५ ॥

मालिनं निहतं दृष्ट्वा सुमाली माल्यवानपि ।
सबलौ शोकसंतप्तौ लङ्कामेव प्रधावितौ ॥ ४६ ॥

मालीको मारा गया देख सुमाली और माल्यवान् दोनों राक्षस शोकसे व्याकुल हो सेनासहित लङ्काकी ओर ही भागे ॥ ४६ ॥

गरुडस्तु समाश्वस्तः संनिवृत्य यथा पुरा ।
राक्षसान् द्रावयामास पक्षवातेन कोपितः ॥ ४७ ॥

इतनेहीमें गरुड़की पीड़ा कम हो गयी, वे पुनः सँभलकर लौटे और कुपित हो पूर्ववत् अपने पंखोंकी हवासे राक्षसोंको खदेड़ने लगे ॥ ४७ ॥

चक्रकृत्तास्यकमला गदासंचूर्णितोरसः ।
लाङ्गलग्लपितग्रीवा मुसलैर्भिन्नमस्तकाः ॥ ४८ ॥

कितने ही राक्षसोंके मुखकमल चक्रके प्रहारसे कट गये । गदाओंके आघातसे बहुतोंके वृक्षःस्थल चूर-चूर हो गये । हलके फालसे कितनोंकी गर्दनें उतर गयीं । मुसलोंकी मारसे बहुतोंके मस्तकोंकी धज्जियाँ उड़ गयीं ॥ ४८ ॥

केचिच्चैवासिना छिन्नास्तथान्ये शरताडिताः ।
निपेतुरम्बरात् तूर्णं राक्षसाः सागराम्भसि ॥ ४९ ॥

तलवारका हाथ पड़नेसे कितने ही राक्षस टुकड़े-टुकड़े हो गये । बहुतेरे बाणोंसे पीड़ित हो तुरंत ही आकाशसे समुद्रके जलमें गिर पड़े ॥ ४९ ॥

नारायणोऽपीषुवराशनीभि-
र्विदारयामास धनुर्विमुक्तैः ।
नक्तंचरान् धूतविमुक्तकेशान्
यथाशनीभिः सतडिन्महाभ्रः ॥ ५० ॥

भगवान् विष्णु भी अपने धनुषसे छूटे हुए श्रेष्ठ बाणों और अशनियोंद्वारा राक्षसोंको विदीर्ण करने लगे । उस समय उन निशाचरोंके खुले हुए केश हवासे उड़ रहे थे और पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर श्रीहरि विद्युन्मालामण्डित महान् मेघके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ५० ॥

भिन्नातपत्रं पतमानशस्त्रं
शरैरपध्वस्तविनीतवेषम् ।
विनिःसृतान्त्रं भयलोलनेत्रं
बलं तदुन्मत्ततरं बभूव ॥ ५१ ॥

राक्षसोंकी वह सारी सेना अत्यन्त उन्मत्त-सी प्रतीत होती थी । बाणोंसे उसके छत्र कट गये थे, अस्त्र-शस्त्र गिर गये थे

सौम्य वेष दूर हो गया था, आँतें बाहर निकल आयी थीं और सबके नेत्र भयसे चञ्चल हो रहे थे ॥ ५१ ॥

सिंहार्दितानामिव कुञ्जराणां
निशाचराणां सह कुञ्जराणाम्।
रवाश्च वेगाश्च समं बभूवुः
पुराणसिंहेन विमर्दितानाम् ॥ ५२ ॥

जैसे सिंहोंद्वारा पीड़ित हुए हाथियोंके चीत्कार और वेग एक साथ ही प्रकट होते हैं, उसी प्रकार उन पुराणप्रसिद्ध नृसिंहरूपधारी श्रीहरिके द्वारा रौंदे गये उन निशाचररूपी गजराजोंके हाहाकार और वेग साथ-साथ प्रकट हो रहे थे ॥

ते वार्यमाणा हरिबाणजालैः
स्वबाणजालानि समुत्सृजन्तः।
धावन्ति नक्तंचरकालमेघा
वायुप्रणुन्ना इव कालमेघाः ॥ ५३ ॥

भगवान् विष्णुके बाणसमूहोंसे आवृत हो अपने सायकोंका परित्याग करके वे निशाचररूपी काले मेघ उसी प्रकार भागे जा रहे थे, जैसे हवाके उड़ाये हुए वर्षाकालीन मेघ आकाशमें भागते देखे जाते हैं ॥ ५३ ॥

चक्रप्रहारैर्विनिकृत्तशीर्षाः
संचूर्णिताङ्गाश्च गदाप्रहारैः।
असिप्रहारैर्द्विविधाविभिन्नाः
पतन्ति शैला इव राक्षसेन्द्राः ॥ ५४ ॥

चक्रके प्रहारोंसे राक्षसोंके मस्तक कट गये थे, गदाओंकी मारसे उनके शरीर चूर-चूर हो रहे थे तथा तलवारोंके आघातसे उनके दो-दो टुकड़े हो गये थे। इस तरह वे राक्षसराज पर्वतोंके समान धराशायी हो रहे थे ॥ ५४ ॥

विलम्बमानैर्मणिहारकुण्डलै-
र्निशाचरैर्नीलबलाहकोपमैः।
निपात्यमानैर्ददृशे निरन्तरं
निपात्यमानैरिव नीलपर्वतैः ॥ ५५ ॥

लटकते हुए मणिमय हारों और कुण्डलोंके साथ गिराये जाते हुए नील मेघ-सदृश उन निशाचरोंकी लाशोंसे वह रणभूमि पट गयी थी। वहाँ धराशायी हुए वे राक्षस नीलपर्वतोंके समान जान पड़ते थे। उनसे वहाँका भूभाग इस तरह आच्छादित हो गया था कि कहीं तिल रखनेकी भी जगह नहीं दिखायी देती थी ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सातवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

माल्यवान्‌का युद्ध और पराजय तथा सुमाली आदि सब राक्षसोंका रसातलमें प्रवेश

हन्यमाने बले तस्मिन् पद्मनाभेन पृष्ठतः।
माल्यवान् संनिवृत्तोऽथ वेलामेत्य इवार्णवः ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) पद्मनाभ भगवान् विष्णुने जब भागती हुई राक्षसोंकी सेनाको पीछेकी ओरसे मारना आरम्भ किया, तब माल्यवान् लौट पड़ा, मानो महासागर अपनी तटभूमितक जाकर निवृत्त हो गया हो ॥ १ ॥

संरक्तनयनः क्रोधाच्चलन्मौलिर्निशाचरः।
पद्मनाभमिदं प्राह वचनं पुरुषोत्तमम् ॥ २ ॥

उसके नेत्र क्रोधसे लाल हो रहे थे और मुकुट हिल रहा था। उस निशाचरने पुरुषोत्तम भगवान् पद्मनाभसे इस प्रकार कहा—॥ २ ॥

नारायण न जानीषे क्षात्रधर्मं पुरातनम्।
अयुद्धमनसो भीतानस्मान् हंसि यथेतरः ॥ ३ ॥

'नारायणदेव! जान पड़ता है पुरातन क्षात्रधर्मको बिल्कुल नहीं जानते हो, तभी तो साधारण मनुष्यकी भाँति तुम जिनका मन युद्धसे विरत हो गया है तथा जो डरकर भागे जा रहे हैं, ऐसे हम राक्षसोंको भी मार रहे हो ॥ ३ ॥

पराङ्मुखवधं पापं यः करोति सुरेश्वर।
स हन्ता न गतः स्वर्गं लभते पुण्यकर्मणाम् ॥ ४ ॥

'सुरेश्वर! जो युद्धसे विमुख हुए सैनिकोंके वधका पाप करता है, वह घातक इस शरीरका त्याग करके परलोकमें जानेपर पुण्यकर्मा पुरुषोंको मिलनेवाले स्वर्गको नहीं पाता है ॥ ४ ॥

युद्धश्रद्धाथवा तेऽस्ति शङ्खचक्रगदाधर।
अहं स्थितोऽस्मि पश्यामि बलं दर्शय यत् तव ॥ ५ ॥

'शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले देवता! यदि तुम्हारे हृदयमें युद्धका हौसला है तो मैं खड़ा हूँ। देखता हूँ, तुममें कितना बल है? दिखाओ अपना पराक्रम' ॥ ५ ॥

माल्यवन्तं स्थितं दृष्ट्वा माल्यवन्तमिवाचलम्।
उवाच राक्षसेन्द्रं तं देवराजानुजो बली ॥ ६ ॥

माल्यवान् पर्वतके समान अविचलभावसे खड़े हुए राक्षसराज माल्यवान्‌को देखकर देवराज इन्द्रके छोटे भाई महाबली भगवान् विष्णुने उससे कहा—॥ ६ ॥

युष्मत्तो भयभीतानां देवानां वै मयाभयम्।
राक्षसोत्सादनं दत्तं तदेतदनुपाल्यते ॥ ७ ॥

'देवताओंको तुमलोगोंसे बड़ा भय उपस्थित हुआ है, मैंने राक्षसोंके संहारकी प्रतिज्ञा करके उन्हें अभय दान दिया है; अतः इस रूपमें मेरे द्वारा उस प्रतिज्ञाका ही पालन किया जा रहा है ॥ ७ ॥

प्राणैरपि प्रियं कार्यं देवानां हि सदा मया।
सोऽहं वो निहनिष्यामि रसातलगतानपि ॥ ८ ॥

'मुझे अपने प्राण देकर भी सदा ही देवताओंका प्रिय कार्य करना है; इसलिये तुमलोग भागकर रसातलमें चले जाओ तो भी मैं तुम्हारा वध किये बिना नहीं रहूँगा' ॥ ८ ॥

देवदेवं ब्रुवाणं तं रक्ताम्बुरुहलोचनम् ।
शक्त्या बिभेद संक्रुद्धो राक्षसेन्द्रो भुजान्तरे ॥ ९ ॥

लाल कमलके समान नेत्रवाले देवाधिदेव भगवान् विष्णु जब इस प्रकार कह रहे थे, उस समय अत्यन्त कुपित हुए राक्षसराज माल्यवानने अपनी शक्तिके द्वारा प्रहार करके भगवान् विष्णुका वक्षःस्थल विदीर्ण कर दिया ॥ ९ ॥

माल्यवद्भुजनिर्मुक्ता शक्तिर्घण्टाकृतस्वना ।
हरेरुरसि बभ्राज मेघस्थेव शतह्रदा ॥ १० ॥

माल्यवान्के हाथसे छूटकर घंटानाद करती हुई वह शक्ति श्रीहरिकी छातीमें जा लगी और मेघके अङ्कमें प्रकाशित होनेवाली बिजलीके समान शोभा पाने लगी ॥ १० ॥

ततस्तामेव चोत्कृष्य शक्तिं शक्तिधरप्रियः ।
माल्यवन्तं समुद्दिश्य चिक्षेपाम्बुरुहेक्षणः ॥ ११ ॥

शक्तिधारी कार्तिकेय जिन्हें प्रिय हैं अथवा जो शक्तिधर स्कन्दके प्रियतम हैं, उन भगवान् कमलनयन विष्णुने उसी शक्तिको अपनी छातीसे खींचकर माल्यवान्पर दे मारा ॥ ११ ॥

स्कन्दोत्सृष्टेव सा शक्तिर्गोविन्दकरनिःसृता ।
काङ्क्षन्ती राक्षसं प्रायान्महोल्केवाञ्जनाचलम् ॥ १२ ॥

स्कन्दकी छोड़ी हुई शक्तिके समान गोविन्दके हाथसे निकली हुई वह शक्ति उस राक्षसको लक्ष्य करके चली, मानो अञ्जनगिरिपर कोई बड़ी भारी उल्का गिर रही हो ॥ १२ ॥

सा तस्योरसि विस्तीर्णे हारभारावभासिते ।
आपतद् राक्षसेन्द्रस्य गिरिकूट इवाशनिः ॥ १३ ॥

हारोंके समूहसे प्रकाशित होनेवाले उस राक्षसराजके विशाल वक्षःस्थलपर वह शक्ति गिरी मानो किसी पर्वतके शिखरपर वज्रपात हुआ हो ॥ १३ ॥

तया भिन्नतनुत्राणः प्राविशद् विपुलं तमः ।
माल्यवान् पुनराश्वस्तस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ १४ ॥

उससे माल्यवान्का कवच कट गया तथा वह गहरी मूर्छामें डूब गया; किंतु थोड़ी ही देरमें पुनः सँभलकर माल्यवान् पर्वतकी भाँति अविचलभावसे खड़ा हो गया ॥ १४ ॥

ततः कालायसं शूलं कण्टकैर्बहुभिश्चितम् ।
प्रगृह्याभ्यहनद् देवं स्तनयोरन्तरे दृढम् ॥ १५ ॥

तत्पश्चात् उसने काले लोहेके बने हुए और बहुसंख्यक काँटोंसे जड़े हुए शूलको हाथमें लेकर भगवान्की छातीमें गहरा आघात किया ॥ १५ ॥

तथैव रणरक्तस्तु मुष्टिना वासवानुजम् ।
ताडयित्वा धनुर्मात्रमपक्रान्तो निशाचरः ॥ १६ ॥

इसी प्रकार वह युद्धप्रेमी राक्षस भगवान् विष्णुको मुक्केसे मारकर एक धनुष पीछे हट गया ॥ १६ ॥

ततोऽम्बरे महाञ्छब्दः साधुसाध्विति चोत्थितः ।
आहत्य राक्षसो विष्णुं गरुडं चाप्यताडयत् ॥ १७ ॥

उस समय आकाशमें राक्षसोंका महान् हर्षनाद गूँज उठा—वे एक साथ बोल उठे—'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' । भगवान् विष्णुको घूसा मारकर उस राक्षसने गरुड़पर भी प्रहार किया ॥ १७ ॥

वैनतेयस्ततः क्रुद्धः पक्षवातेन राक्षसम् ।
व्यपोहद् बलवान् वायुः शुष्कपर्णचयं यथा ॥ १८ ॥

यह देख विनतानन्दन गरुड़ कुपित हो उठे और उन्होंने अपने पंखोंकी हवासे उस राक्षसको उसी तरह उड़ा दिया, जैसे प्रबल आँधी सूखे पत्तोंके ढेरको उड़ा देती है ॥

द्विजेन्द्रपक्षवातेन द्रावितं दृश्य पूर्वजम् ।
सुमाली स्वबलैः सार्धं लङ्कामभिमुखो ययौ ॥ १९ ॥

अपने बड़े भाईको पक्षिराजके पंखोंकी हवासे उड़ा हुआ देख सुमाली अपने सैनिकोंके साथ लङ्काकी ओर चल दिया ॥

पक्षवातबलोद्धूतो माल्यवानपि राक्षसः ।
स्वबलेन समागम्य ययौ लङ्कां ह्रिया वृतः ॥ २० ॥

गरुड़के पंखोंकी हवाके बलसे उड़ा हुआ राक्षस माल्यवान् भी लज्जित होकर अपनी सेनासे जा मिला और लङ्काकी ओर चला गया ॥ २० ॥

एवं ते राक्षसा राम हरिणा कमलेक्षण ।
बहुशः संयुगे भग्ना हतप्रवरनायकाः ॥ २१ ॥

कमलनयन श्रीराम ! इस प्रकार उन राक्षसोंका भगवान् विष्णुके साथ अनेक बार युद्ध हुआ और प्रत्येक संग्राममें प्रधान-प्रधान नायकोंके मारे जानेपर उन सबको भागना पड़ा ॥

अशक्नुवन्तस्ते विष्णुं प्रतियोद्धुं बलार्दिताः ।
त्यक्त्वा लङ्कां गता वस्तुं पातालं सहपत्नयः ॥ २२ ॥

वे किसी प्रकार भगवान् विष्णुका सामना नहीं कर सके । सदा ही उनके बलसे पीड़ित होते रहे । अतः समस्त निशाचर लङ्का छोड़कर अपनी स्त्रियोंके साथ पातालमें रहनेके लिये चले गये ॥ २२ ॥

सुमालिनं समासाद्य राक्षसं रघुसत्तम ।
स्थिताः प्रख्यातवीर्यास्ते वंशे सालकटङ्कटे ॥ २३ ॥

रघुश्रेष्ठ ! वे विख्यात पराक्रमी निशाचर सालकटङ्कट-वंशमें विद्यमान राक्षस सुमालीका आश्रय लेकर रहने लगे ॥

ये त्वया निहतास्ते तु पौलस्त्या नाम राक्षसाः ।
सुमाली माल्यवान् माली ये च तेषां पुरःसराः ।
सर्व एते महाभागा रावणाद् बलवत्तराः ॥ २४ ॥

श्रीराम ! आपने पुलस्त्यवंशके जिन-जिन राक्षसोंका विनाश किया है, उनकी अपेक्षा प्राचीम राक्षसोंका पराक्रम अधिक था । सुमाली, माल्यवान् और माली तथा उनके आगे चलनेवाले योद्धा—ये सभी महाभाग निशाचर रावणसे बढ़कर बलवान् थे ॥ २४ ॥

न चान्यो राक्षसान् हन्ता सुरारीन् देवकण्टकान्।
ऋते नारायणं देवं शङ्खचक्रगदाधरम्॥ २५॥

देवताओंके लिये कण्टकरूप उन देवद्रोही राक्षसोंका वध शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् नारायणदेवके सिवा दूसरा कोई नहीं कर सकता॥ २५॥

भवान् नारायणो देवश्चतुर्बाहुः सनातनः।
राक्षसान् हन्तुमुत्पन्नो ह्यजय्यः प्रभुरव्ययः॥ २६॥

आप चार भुजाधारी सनातन देव भगवान् नारायण ही हैं। आपको कोई परास्त नहीं कर सकता। आप अविनाशी प्रभु हैं और राक्षसोंका वध करनेके लिये इस लोकमें अवतीर्ण हुए हैं॥ २६॥

नष्टधर्मव्यवस्थानां काले काले प्रजाकरः।
उत्पद्यते दस्युवधे शरणागतवत्सलः॥ २७॥

आप ही इन प्रजाओंके स्रष्टा हैं और शरणागतोंपर दया रखते हैं। जब-जब धर्मकी व्यवस्थाको नष्ट करनेवाले दस्यु पैदा हो जाते हैं, तब-तब उन दस्युओंका वध करनेके लिये आप समय-समयपर अवतार लेते रहते हैं॥ २७॥

एषा मया तव नराधिप राक्षसाना-
मुत्पत्तिरद्य कथिता सकला यथावत्।
भूयो निबोध रघुसत्तम रावणस्य
जन्मप्रभावमतुलं ससुतस्य सर्वम्॥ २८॥

नरेश्वर! इस प्रकार मैंने आपको राक्षसोंकी उत्पत्तिका यह पूरा प्रसंग ठीक-ठीक सुना दिया। रघुवंशशिरोमणे! अब आप रावण तथा उसके पुत्रोंके जन्म और अनुपम प्रभावका सारा वर्णन सुनिये॥ २८॥

चिरात् सुमाली व्यचरद् रसातलं
स राक्षसो विष्णुभयार्दितस्तदा।
पुत्रैश्च पौत्रैश्च समन्वितो बली
ततस्तु लङ्कामवसद् धनेश्वरः॥ २९॥

भगवान् विष्णुके भयसे पीड़ित होकर राक्षस सुमाली सुदीर्घ कालतक अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ रसातलमें विचरता रहा। इसी बीचमें धनाध्यक्ष कुबेरने लङ्काको अपना निवासस्थान बनाया॥ २९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टमः सर्गः॥ ८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें आठवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८॥

* * *

नवमः सर्गः

रावण आदिका जन्म और उनका तपके लिये गोकर्ण-आश्रममें जाना

कस्यचित् त्वथ कालस्य सुमाली नाम राक्षसः।
रसातलान्मर्त्यलोकं सर्वं वै विचचार ह॥ १॥
नीलजीमूतसंकाशस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः।
कन्यां दुहितरं गृह्य विना पद्ममिव श्रियम्॥ २॥

कुछ कालके पश्चात् नील मेघके समान श्याम वर्णवाला राक्षस सुमाली तपाये हुए सोनेके कुण्डलोंसे अलंकृत हो अपनी सुन्दरी कन्याको, जो बिना कमलकी लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी, साथ ले रसातलसे निकला और सारे मर्त्यलोकमें विचरने लगा॥ १-२॥

राक्षसेन्द्रः स तु तदा विचरन् वै महीतले।
तदापश्यत् स गच्छन्तं पुष्पकेण धनेश्वरम्॥ ३॥
गच्छन्तं पितरं द्रष्टुं पुलस्त्यतनयं विभुम्।
तं दृष्ट्वामरसंकाशं गच्छन्तं पावकोपमम्॥ ४॥
रसातलं प्रविष्टः सन्मर्त्यलोकात् सविस्मयः।

उस समय भूतलपर विचरते हुए उस राक्षसराजने अग्निके समान तेजस्वी तथा देवतुल्य शोभा धारण करनेवाले धनेश्वर कुबेरको देखा, जो पुष्पक विमानद्वारा अपने पिता पुलस्त्यनन्दन विश्रवाका दर्शन करनेके लिये जा रहे थे। उन्हें देखकर वह अत्यन्त विस्मित हो मर्त्यलोकसे रसातलमें प्रविष्ट हुआ॥ ३-४½॥

इत्येवं चिन्तयामास राक्षसानां महामतिः॥ ५॥
किं कृत्वा श्रेय इत्येवं वर्धेमहि कथं वयम्।

सुमाली बड़ा बुद्धिमान् था। वह सोचने लगा, क्या करनेसे हम राक्षसोंका भला होगा? कैसे हमलोग उन्नति कर सकेंगे?॥ ५½॥

अथाब्रवीत् सुतां रक्षः कैकसीं नाम नामतः॥ ६॥
पुत्रि प्रदानकालोऽयं यौवनं व्यतिवर्तते।
प्रत्याख्यानाच्च भीतैस्त्वं न वरैः प्रतिगृह्यसे॥ ७॥

ऐसा विचार करके उस राक्षसने अपनी पुत्रीसे, जिसका नाम कैकसी था, कहा—'बेटी! अब तुम्हारे विवाहके योग्य समय आ गया है; क्योंकि इस समय तुम्हारी युवावस्था बीत रही है। तुम कहीं इन्कार न कर दो, इसी भयसे श्रेष्ठ वर तुम्हारा वरण नहीं कर रहे हैं॥ ६-७॥

त्वत्कृते च वयं सर्वे यन्त्रिता धर्मबुद्धयः।
त्वं हि सर्वगुणोपेता श्रीः साक्षादिव पुत्रिके॥ ८॥

'पुत्री! तुम्हें विशिष्ट वरकी प्राप्ति हो, इसके लिये हम लोगोंने बहुत प्रयास किया है; क्योंकि कन्यादानके विषयमें हम धर्मबुद्धि रखनेवाले हैं। तुम तो साक्षात् लक्ष्मीके समान सर्वगुणसम्पन्न हो (अतः तुम्हारा वर भी सर्वथा तुम्हारे योग्य ही होना चाहिये)॥ ८॥

कन्यापितृत्वं दुःखं हि सर्वेषां मानकाङ्क्षिणाम्।
न ज्ञायते च कः कन्यां वरयेदिति कन्यके॥ ९॥

'बेटी ! सम्मानकी इच्छा रखनेवाले सभी लोगोंके लिये कन्याका पिता होना दुःखका ही कारण होता है; क्योंकि यह पता नहीं चलता कि कौन और कैसा पुरुष कन्याका वरण करेगा ? ॥ ९ ॥

मातुः कुलं पितृकुलं यत्र चैव च दीयते ।
कुलत्रयं सदा कन्या संशये स्थाप्य तिष्ठति ॥ १० ॥

'माताके, पिताके और जहाँ कन्या दी जाती है, उस पतिके कुलको भी कन्या सदा संशयमें डाले रहती है ॥ १० ॥

सा त्वं मुनिवरं श्रेष्ठं प्रजापतिकुलोद्भवम् ।
भज विश्रवसं पुत्रि पौलस्त्यं वरय स्वयम् ॥ ११ ॥

'अतः बेटी ! तुम प्रजापतिके कुलमें उत्पन्न, श्रेष्ठ गुण-सम्पन्न, पुलस्त्यनन्दन मुनिवर विश्रवाका स्वयं चलकर पतिके रूपमें वरण करो और उनकी सेवामें रहो ॥ ११ ॥

ईदृशास्ते भविष्यन्ति पुत्राः पुत्रि न संशयः ।
तेजसा भास्करसमो तादृशोऽयं धनेश्वरः ॥ १२ ॥

'पुत्री ! ऐसा करनेसे निःसंदेह तुम्हारे पुत्र भी ऐसे ही होंगे, जैसे ये धनेश्वर कुबेर हैं । तुमने तो देखा ही था; वे कैसे अपने तेजसे सूर्यके समान उद्दीप्त हो रहे थे ?' ॥ १२ ॥

सा तु तद् वचनं श्रुत्वा कन्यका पितृगौरवात् ।
तत्र गत्वा च सा तस्थौ विश्रवा यत्र तप्यते ॥ १३ ॥

पिताकी यह बात सुनकर उनके गौरवका ख्याल करके कैकसी उस स्थानपर गयी, जहाँ मुनिवर विश्रवा तप करते थे । वहाँ जाकर वह एक जगह खड़ी हो गयी ॥ १३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राम पुलस्त्यतनयो द्विजः ।
अग्निहोत्रमुपातिष्ठच्चतुर्थ इव पावकः ॥ १४ ॥

श्रीराम ! इसी बीचमें पुलस्त्यनन्दन ब्राह्मण विश्रवा सायंकालका अग्निहोत्र करने लगे । वे तेजस्वी मुनि उस समय तीन अग्नियोंके साथ स्वयं भी चतुर्थ अग्निके समान देदीप्यमान हो रहे थे ॥ १४ ॥

अविचिन्त्य तु तां वेलां दारुणां पितृगौरवात् ।
उपसृत्याग्रतस्तस्य चरणाधोमुखी स्थिता ॥ १५ ॥

पिताके प्रति गौरवबुद्धि होनेके कारण कैकसीने उस भयंकर वेलाका विचार नहीं किया और निकट जा उनके चरणोंपर दृष्टि लगाये नीचा मुँह किये वह सामने खड़ी हो गयी ॥ १५ ॥

विलिखन्ती मुहुर्भूमिमङ्गुष्ठाग्रेण भामिनी ।
स तु तां वीक्ष्य सुश्रोणीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥ १६ ॥
अब्रवीत् परमोदारो दीप्यमानां स्वतेजसा ।

वह भामिनी अपने पैरके अँगूठेसे बारंबार धरतीपर रेखा खींचने लगी । पूर्ण चन्द्रमाके समान मुख तथा सुन्दर कटि-प्रदेशवाली उस सुन्दरीको जो अपने तेजसे उद्दीप्त हो रही थी, देखकर उन परम उदार महर्षिने पूछा—॥ १६½ ॥

भद्रे कस्यासि दुहिता कुतो वा त्वमिहागता ॥ १७ ॥
किं कार्यं कस्य वा हेतोस्तत्त्वतो ब्रूहि शोभने ॥ १८ ॥

'भद्रे ! तुम किसकी कन्या हो, कहाँसे यहाँ आयी हो, मुझसे तुम्हारा क्या काम है अथवा किस उद्देश्यसे यहाँ तुम्हारा आना हुआ है ? शोभने ! ये सब बातें मुझे ठीक-ठीक बताओ' ॥ १७-१८ ॥

एवमुक्ता तु सा कन्या कृताञ्जलिरथाब्रवीत् ।
आत्मप्रभावेण मुने ज्ञातुमर्हसि मे मतम् ॥ १९ ॥
किं तु मां विद्धि ब्रह्मर्षे शासनात् पितुरागताम् ।
कैकसी नाम नाम्नाहं शेषं त्वं ज्ञातुमर्हसि ॥ २० ॥

विश्रवाके इस प्रकार पूछनेपर उस कन्याने हाथ जोड़कर कहा—'मुने ! आप अपने ही प्रभावसे मेरे मनोभावको समझ सकते हैं; किंतु ब्रह्मर्षे ! मेरे मुखसे इतना अवश्य जान लें कि मैं अपने पिताकी आज्ञासे आपकी सेवामें आयी हूँ और मेरा नाम कैकसी है । बाकी सब बातें आपको स्वतः जान लेनी चाहिये (मुझसे न कहलावें)' ॥ १९-२० ॥

स तु गत्वा मुनिर्ध्यानं वाक्यमेतदुवाच ह ।
विज्ञातं ते मया भद्रे कारणं यन्मनोगतम् ॥ २१ ॥
सुताभिलाषो मत्तस्ते मत्तमातङ्गगामिनि ।
दारुणायां तु वेलायां यस्मात् त्वं मामुपस्थिता ॥ २२ ॥
शृणु तस्मात् सुतान् भद्रे यादृशाञ्जनयिष्यसि ।
दारुणान् दारुणाकारान् दारुणाभिजनप्रियान् ॥ २३ ॥
प्रसविष्यसि सुश्रोणि राक्षसान् क्रूरकर्मणः ।

यह सुनकर मुनिने थोड़ी देरतक ध्यान लगाया और उसके बाद कहा—'भद्रे ! तुम्हारे मनका भाव मालूम हुआ । मतवाले गजराजकी भाँति मन्दगतिसे चलनेवाली सुन्दरी ! तुम मुझसे पुत्र प्राप्त करना चाहती हो; परंतु इस दारुण वेलामें मेरे पास आयी हो, इसलिये यह भी सुन लो कि तुम कैसे पुत्रोंको जन्म दोगी । सुश्रोणि ! तुम्हारे पुत्र क्रूर स्वभाववाले और शरीरसे भी भयंकर होंगे तथा उनका क्रूरकर्मा राक्षसोंके साथ ही प्रेम होगा । तुम क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले राक्षसोंको ही पैदा करोगी' ॥ २१–२३½ ॥

सा तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रणिपत्याब्रवीद् वचः ॥ २४ ॥
भगवन्नीदृशान् पुत्रांस्त्वत्तोऽहं ब्रह्मवादिनः ।
नेच्छामि सुदुराचारान् प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ २५ ॥

मुनिका यह वचन सुनकर कैकसी उनके चरणोंपर गिर पड़ी और इस प्रकार बोली—'भगवन् ! आप ब्रह्मवादी महात्मा हैं । मैं आपसे ऐसे दुराचारी पुत्रोंको पानेकी अभिलाषा नहीं रखती; अतः आप मुझपर कृपा कीजिये' ॥ २४-२५ ॥

कन्यया त्वेवमुक्तस्तु विश्रवा मुनिपुङ्गवः ।
उवाच कैकसीं भूयः पूर्णेन्दुरिव रोहिणीम् ॥ २६ ॥

उस राक्षसकन्याके इस प्रकार कहनेपर पूर्णचन्द्रमाके

समान मुनिवर विश्रवा रोहिणी-जैसी सुन्दरी कैकसीसे फिर बोले—॥ २६ ॥

पश्चिमो यस्तव सुतो भविष्यति शुभानने ।
मम वंशानुरूपः स धर्मात्मा च न संशयः ॥ २७ ॥

'शुभानने ! तुम्हारा जो सबसे छोटा एवं अन्तिम पुत्र होगा, वह मेरे वंशके अनुरूप धर्मात्मा होगा; इसमें संशय नहीं है' ॥ २७ ॥

एवमुक्ता तु सा कन्या राम कालेन केनचित् ।
जनयामास बीभत्सं रक्षोरूपं सुदारुणम् ॥ २८ ॥
दशग्रीवं महादंष्ट्रं नीलाञ्जनचयोपमम् ।
ताम्रोष्ठं विंशतिभुजं महास्यं दीप्तमूर्धजम् ॥ २९ ॥

श्रीराम ! मुनिके ऐसा कहनेपर कैकसीने कुछ कालके अनन्तर अत्यन्त भयानक और क्रूर स्वभाववाले एक राक्षसको जन्म दिया, जिसके दस मस्तक, बड़ी-बड़ी दाढ़ें, ताँबे-जैसे ओठ, बीस भुजाएँ, विशाल मुख और चमकीले केश थे। उसके शरीरका रंग कोयलेके पहाड़-जैसा काला था ॥ २८-२९ ॥

तस्मिञ्जाते ततस्तस्मिन् सज्वालकवलाः शिवाः ।
क्रव्यादाश्चापसव्यानि मण्डलानि प्रचक्रमुः ॥ ३० ॥

उसके पैदा होते ही मुँहमें अङ्गारोंके कौर लिये गीदड़ियाँ और मांसभक्षी गृध्र आदि पक्षी दायीं ओर मण्डलाकार घूमने लगे ॥

ववर्ष रुधिरं देवो मेघाश्च खरनिःस्वनाः ।
प्रबभौ न च सूर्यो वै महोल्काश्चापतन् भुवि ॥ ३१ ॥
चकम्पे जगती चैव ववुर्वाताः सुदारुणाः ।
अक्षोभ्यः क्षुभितश्चैव समुद्रः सरितां पतिः ॥ ३२ ॥

इन्द्रदेव रुधिरकी वर्षा करने लगे, मेघ भयंकर स्वरमें गर्जने लगे, सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी, पृथ्वीपर उल्कापात होने लगा, धरती काँप उठी, भयानक आँधी चलने लगी तथा जो किसीके द्वारा क्षुब्ध नहीं किया जा सकता, वह सरिताओंका स्वामी समुद्र विक्षुब्ध हो उठा ॥ ३१-३२ ॥

अथ नामाकरोत् तस्य पितामहसमः पिता ।
दशग्रीवः प्रसूतोऽयं दशग्रीवो भविष्यति ॥ ३३ ॥

उस समय ब्रह्माजीके समान तेजस्वी पिता विश्रवा मुनिने पुत्रका नाम-करण किया—'यह दस ग्रीवाएँ लेकर उत्पन्न हुआ है, इसलिये 'दशग्रीव' नामसे प्रसिद्ध होगा' ॥ ३३ ॥

तस्य त्वनन्तरं जातः कुम्भकर्णो महाबलः ।
प्रमाणाद् यस्य विपुलं प्रमाणं नेह विद्यते ॥ ३४ ॥

उसके बाद महाबली कुम्भकर्णका जन्म हुआ, जिसके शरीरसे बड़ा शरीर इस जगत्में दूसरे किसीका नहीं है ॥ ३४ ॥

ततः शूर्पणखा नाम संजज्ञे विकृतानना ।
विभीषणश्च धर्मात्मा कैकस्याः पश्चिमः सुतः ॥ ३५ ॥

इसके बाद विकराल मुखवाली शूर्पणखा उत्पन्न हुई। तदनन्तर धर्मात्मा विभीषणका जन्म हुआ, जो कैकसीके अन्तिम पुत्र थे ॥ ३५ ॥

तस्मिन् जाते महासत्त्वे पुष्पवर्षं पपात ह ।
नभःस्थाने दुन्दुभयो देवानां प्राणदंस्तथा ।
वाक्यं चैवान्तरिक्षे च साधु साध्विति तत् तदा ॥ ३६ ॥

उस महान् सत्त्वशाली पुत्रका जन्म होनेपर आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई और आकाशमें देवोंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। उस समय अन्तरिक्षमें 'साधु-साधु' की ध्वनि सुनायी देने लगी ॥ ३६ ॥

तौ तु तत्र महारण्ये ववृधाते महौजसौ ।
कुम्भकर्णदशग्रीवौ लोकोद्वेगकरौ तदा ॥ ३७ ॥

कुम्भकर्ण और दशग्रीव वे दोनों महाबली राक्षस लोकमें उद्वेग पैदा करनेवाले थे। वे दोनों ही उस विशाल वनमें पालित होने और बढ़ने लगे ॥ ३७ ॥

कुम्भकर्णः प्रमत्तस्तु महर्षीन् धर्मवत्सलान् ।
त्रैलोक्ये नित्यासंतुष्टो भक्षयन् विचचार ह ॥ ३८ ॥

कुम्भकर्ण बड़ा ही उन्मत्त निकला। वह भोजनसे कभी तृप्त ही नहीं होता था; अतः तीनों लोकोंमें घूम-घूमकर धर्मात्मा महर्षियोंको खाता फिरता था ॥ ३८ ॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मव्यवस्थितः ।
स्वाध्यायनियताहार उवास विजितेन्द्रियः ॥ ३९ ॥

विभीषण बचपनसे ही धर्मात्मा थे। वे सदा धर्ममें स्थित रहते, स्वाध्याय करते और नियमित आहार करते हुए इन्द्रियोंको अपने काबूमें रखते थे ॥ ३९ ॥

अथ वैश्रवणो देवस्तत्र कालेन केनचित् ।
आगतः पितरं द्रष्टुं पुष्पकेण धनेश्वरः ॥ ४० ॥

कुछ काल बीतनेपर धनके स्वामी वैश्रवण पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो अपने पिताका दर्शन करनेके लिये वहाँ आये ॥ ४० ॥

तं दृष्ट्वा कैकसी तत्र ज्वलन्तमिव तेजसा ।
आगम्य राक्षसी तत्र दशग्रीवमुवाच ह ॥ ४१ ॥

वे अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे थे। उन्हें देखकर राक्षस-कन्या कैकसी अपने पुत्र दशग्रीवके पास आयी और इस प्रकार बोली—॥ ४१ ॥

पुत्र वैश्रवणं पश्य भ्रातरं तेजसा वृतम् ।
भ्रातृभावे समे चापि पश्यात्मानं त्वमीदृशम् ॥ ४२ ॥

'बेटा ! अपने भाई वैश्रवणकी ओर तो देखो। वे कैसे तेजस्वी जान पड़ते हैं ? भाई होनेके नाते तुम भी इन्हींके समान हो। परंतु अपनी अवस्था देखो, कैसी है ? ॥ ४२ ॥

दशग्रीव तथा यत्नं कुरुष्वामितविक्रम ।
यथा त्वमपि मे पुत्र भवेर्वैश्रवणोपमः ॥ ४३ ॥

'अमित पराक्रमी दशग्रीव ! मेरे बेटे ! तुम भी ऐसा कोई यत्न करो, जिससे वैश्रवणकी ही भाँति तेज और वैभवसे सम्पन्न हो जाओ' ॥ ४३ ॥

मातुस्तद् वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान् ।
अमर्षमतुलं लेभे प्रतिज्ञां चाकरोत् तदा ॥ ४४ ॥

माताकी यह बात सुनकर प्रतापी दशग्रीवको अनुपम अमर्ष हुआ । उसने तत्काल प्रतिज्ञा की—॥ ४४ ॥

सत्यं ते प्रतिजानामि भ्रातृतुल्योऽधिकोऽपि वा ।
भविष्याम्योजसा चैव संतापं त्यज हृद्गतम् ॥ ४५ ॥

'माँ ! तुम अपने हृदयकी चिन्ता छोड़ो । मैं तुमसे सच्ची प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि अपने पराक्रमसे भाई वैश्रवणके समान या उनसे भी बढ़कर हो जाऊँगा' ॥ ४५ ॥

ततः क्रोधेन तेनैव दशग्रीवः सहानुजः ।
चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म तपसे धृतमानसः ॥ ४६ ॥
प्राप्स्यामि तपसा काममिति कृत्वाध्यवस्य च ।
आगच्छदात्मसिद्ध्यर्थं गोकर्णस्याश्रमं शुभम् ॥ ४७ ॥

तदनन्तर उसी क्रोधके आवेशमें भाइयोंसहित दशग्रीवने दुष्कर कर्मकी इच्छा मनमें लेकर सोचा—'मैं तपस्यासे ही अपना मनोरथ पूर्ण कर सकूँगा, ऐसा विचारकर उसने मनमें तपस्याका ही निश्चय किया और अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये वह गोकर्णके पवित्र आश्रमपर गया ॥ ४६-४७ ॥

स राक्षसस्तत्र सहानुजस्तदा
तपश्चचारातुलमुग्रविक्रमः ।
अतोषयच्चापि पितामहं विभुं
ददौ स तुष्टश्च वराञ्जयावहान् ॥ ४८ ॥

भाइयोंसहित उस भयंकर पराक्रमी राक्षसने अनुपम तपस्या आरम्भ की । उस तपस्याद्वारा उसने भगवान् ब्रह्माजीको संतुष्ट किया और उन्होंने प्रसन्न होकर उसे विजय दिलानेवाले वरदान दिये ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें नवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः

रावण आदिकी तपस्या और वर-प्राप्ति

अथाब्रवीन्मुनिं रामः कथं ते भ्रातरो वने ।
कीदृशं तु तदा ब्रह्मंस्तपस्तेपुर्महाबलाः ॥ १ ॥

इतनी कथा सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने अगस्त्य मुनिसे पूछा—'ब्रह्मन् ! उन तीनों महाबली भाइयोंने वनमें किस प्रकार और कैसी तपस्या की ?' ॥ १ ॥

अगस्त्यस्त्वब्रवीत् तत्र रामं सुप्रीतमानसम् ।
तांस्तान् धर्मविधींस्तत्र भ्रातरस्ते समाविशन् ॥ २ ॥

तब अगस्त्यजीने अत्यन्त प्रसन्नचित्तवाले श्रीरामसे कहा—'रघुनन्दन ! उन तीनों भाइयोंने वहाँ पृथक्-पृथक् धर्मविधियोंका अनुष्ठान किया ॥ २ ॥

कुम्भकर्णस्ततो यत्तो नित्यं धर्मपथे स्थितः ।
ततापं ग्रीष्मकाले तु पञ्चाग्नीन् परितः स्थितः ॥ ३ ॥

'कुम्भकर्ण अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखकर प्रतिदिन धर्मके मार्गमें स्थित हो गर्मीके दिनोंमें अपने चारों ओर आग जला धूपमें बैठक [illegible]ग्निका सेवन करने लगा ॥ ३ ॥

मेघाम्बुसिक्तो वर्षासु वीरासनमसेवत ।
नित्यं च शिशिरे काले जलमध्यप्रतिश्रयः ॥ ४ ॥

'फिर वर्षाऋतुमें खुले मैदानमें वीरासनसे बैठकर मेघोंके बरसाये हुए जलसे भीगता रहा और जाड़ेके दिनोंमें प्रतिदिन जलके भीतर रहने लगा ॥ ४ ॥

एवं वर्षसहस्राणि दश तस्यापचक्रमुः ।
धर्मे प्रयतमानस्य सत्पथे निष्ठितस्य च ॥ ५ ॥

'इस प्रकार सन्मार्गमें स्थित हो धर्मके लिये प्रयत्नशील हुए उस कुम्भकर्णके दस हजार वर्ष बीत गये ॥ ५ ॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मपरः शुचिः ।
पञ्चवर्षसहस्राणि पादेनैकेन तस्थिवान् ॥ ६ ॥

'विभीषण तो सदासे ही धर्मात्मा थे । वे नित्यधर्मपरायण रहकर शुद्ध आचार-विचारका पालन करते हुए पाँच हजार वर्षोंतक एक पैरसे खड़े रहे ॥ ६ ॥

समाप्ते नियमे तस्य ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
पपात पुष्पवर्षं च तुष्टुवुश्चापि देवताः ॥ ७ ॥

'उनका नियम समाप्त होनेपर अप्सराएँ नृत्य करने लगीं । उनके ऊपर आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई और देवताओं-ने उनकी स्तुति की ॥ ७ ॥

पञ्चवर्षसहस्राणि सूर्यं चैवान्ववर्तत ।
तस्थौ चोर्ध्वशिरोबाहुः स्वाध्याये धृतमानसः ॥ ८ ॥

'तदनन्तर विभीषणने अपनी दोनों बाँहें और मस्तक ऊपर उठाकर स्वाध्यायपरायण हो पाँच हजार वर्षोंतक सूर्यदेव-की आराधना की ॥ ८ ॥

एवं विभीषणस्यापि स्वर्गस्थस्येव नन्दने ।
दशवर्षसहस्राणि गतानि नियतात्मनः ॥ ९ ॥

'इस प्रकार मनको वशमें रखनेवाले विभीषणके भी दस हजार वर्ष बड़े सुखसे बीते, मानो वे स्वर्गके नन्दनवनमें निवास करते हों ॥ ९ ॥

दशवर्षसहस्रं तु निराहारो दशाननः ।
पूर्णे वर्षसहस्रे तु शिरश्चाग्नौ जुहाव सः ॥ १० ॥

'दशमुख रावणने दस हजार वर्षोंतक लगातार उपवास किया । प्रत्येक सहस्र वर्षके पूर्ण होनेपर वह अपना एक मस्तक काटकर आगमें होम देता था ॥ १० ॥

एवं वर्षसहस्राणि नव तस्यातिचक्रमुः ।

शिरांसि नव चाप्यस्य प्रविष्टानि हुताशनम् ॥ ११ ॥

'इस तरह एक-एक करके उसके नौ हजार वर्ष बीत गये और नौ मस्तक भी अग्निदेवके भेंट हो गये ॥ ११ ॥

अथ वर्षसहस्रे तु दशमे दशमं शिरः ।
छेत्तुकामे दशग्रीवे प्राप्तस्तत्र पितामहः ॥ १२ ॥

'जब दसवाँ सहस्र पूरा हुआ और दशग्रीव अपना दसवाँ मस्तक काटनेको उद्यत हुआ, इसी समय पितामह ब्रह्माजी वहाँ आ पहुँचे ॥ १२ ॥

पितामहस्तु सुप्रीतः सार्धं देवैरुपस्थितः ।
तव तावद् दशग्रीव प्रीतोऽस्मीत्यभ्यभाषत ॥ १३ ॥

'पितामह ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न होकर देवताओंके साथ वहाँ पहुँचे थे । उन्होंने आते ही कहा—'दशग्रीव ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ ॥ १३ ॥

शीघ्रं वरय धर्मज्ञ वरो यस्तेऽभिकाङ्क्षितः ।
कं ते कामं करोम्यद्य न वृथा ते परिश्रमः ॥ १४ ॥

''धर्मज्ञ ! तुम्हारे मनमें जिस वरको पानेकी इच्छा हो, उसे शीघ्र माँगो । बोलो, आज मैं तुम्हारी किस अभिलाषाको पूर्ण करूँ ? तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ नहीं होना चाहिये' ॥ १४ ॥

अथाब्रवीद् दशग्रीवः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
प्रणम्य शिरसा देवं हर्षगद्गदया गिरा ॥ १५ ॥

'यह सुनकर दशग्रीवकी अन्तरात्मा प्रसन्न हो गयी । उसने मस्तक झुकाकर भगवान् ब्रह्माको प्रणाम किया और हर्ष-गद्गदवाणीमें कहा—॥ १५ ॥

भगवन् प्राणिनां नित्यं नान्यत्र मरणाद् भयम् ।
नास्ति मृत्युसमः शत्रुरमरत्वमहं वृणे ॥ १६ ॥

''भगवन् ! प्राणियोंके लिये मृत्युके सिवा और किसीका सदा भय नहीं रहता है; अतएव मैं अमर होना चाहता हूँ; क्योंकि मृत्युके समान दूसरा कोई शत्रु नहीं है' ॥ १६ ॥

एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा दशग्रीवमुवाच ह ।
नास्ति सर्वामरत्वं ते वरमन्यं वृणीष्व मे ॥ १७ ॥

'उसके ऐसा कहनेपर ब्रह्माजीने दशग्रीवसे कहा—'तुम्हें सर्वथा अमरत्व नहीं मिल सकता; इसलिये दूसरा कोई वर माँगो' ॥ १७ ॥

एवमुक्ते तदा राम ब्रह्मणा लोककर्तृणा ।
दशग्रीव उवाचेदं कृताञ्जलिरथाग्रतः ॥ १८ ॥

'श्रीराम ! लोकस्रष्टा ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर दशग्रीवने उनके सामने हाथ जोड़कर कहा—॥ १८ ॥

सुपर्णनागयक्षाणां दैत्यदानवरक्षसाम् ।
अवध्योऽहं प्रजाध्यक्ष देवतानां च शाश्वत ॥ १९ ॥

''सनातन प्रजापते ! मैं गरुड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस तथा देवताओंके लिये अवध्य हो जाऊँ ॥ १९ ॥

नहि चिन्ता ममान्येषु प्राणिष्वमरपूजित ।
तृणभूता हि ते मन्ये प्राणिनो मानुषादयः ॥ २० ॥

''देववन्द्य पितामह ! अन्य प्राणियोंसे मुझे तनिक भी चिन्ता नहीं है । मनुष्य आदि अन्य जीवोंको तो मैं तिनकेके समान समझता हूँ' ॥ २० ॥

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा दशग्रीवेण रक्षसा ।
उवाच वचनं देवः सह देवैः पितामहः ॥ २१ ॥

''राक्षस दशग्रीवके ऐसा कहनेपर देवताओंसहित भगवान् ब्रह्माजीने कहा—॥ २१ ॥

भविष्यत्येवमेतत् ते वचो राक्षसपुङ्गव ।
एवमुक्त्वा तु तं राम दशग्रीवं पितामहः ॥ २२ ॥

''राक्षसप्रवर ! तुम्हारा यह वचन सत्य होगा ।' श्रीराम ! दशग्रीवसे ऐसा कहकर पितामह फिर बोले—॥ २२ ॥

शृणु चापि वरो भूयः प्रीतस्येह शुभो मम ।
हुतानि यानि शीर्षाणि पूर्वमग्नौ त्वयानघ ॥ २३ ॥
पुनस्तानि भविष्यन्ति तथैव तव राक्षस ।
वितरामीह ते सौम्य वरं चान्यं दुरासदम् ॥ २४ ॥
छन्दतस्तव रूपं च मनसा यद् यथेप्सितम् ।

''निष्पाप राक्षस ! सुनो—मैं प्रसन्न होकर पुनः तुम्हें यह शुभ वर प्रदान करता हूँ—तुमने पहले अग्निमें अपने जिन-जिन मस्तकोंका हवन किया है, वे सब तुम्हारे लिये फिर पूर्ववत् प्रकट हो जायँगे । सौम्य ! इसके सिवा एक और भी दुर्लभ वर मैं तुम्हें यहाँ दे रहा हूँ—तुम अपने मनसे जब जैसा रूप धारण करना चाहोगे, तुम्हारी इच्छाके अनुसार उस समय तुम्हारा वैसा ही रूप हो जायगा' ॥ २३-२४½ ॥

एवं पितामहोक्तस्य दशग्रीवस्य रक्षसः ॥ २५ ॥
अग्नौ हुतानि शीर्षाणि पुनस्तान्युत्थितानि वै ।

'पितामह ब्रह्माके इतना कहते ही राक्षस दशग्रीवके वे मस्तक, जो पहले आगमें होम दिये गये थे, फिर नये रूपमें प्रकट हो गये ॥ २५½ ॥

एवमुक्त्वा तु तं राम दशग्रीवं पितामहः ॥ २६ ॥
विभीषणमथोवाच वाक्यं लोकपितामहः ।

'श्रीराम ! दशग्रीवसे पूर्वोक्त बात कहकर लोकपितामह ब्रह्माजी विभीषणसे बोले—॥ २६½ ॥

विभीषण त्वया वत्स धर्मसंहितबुद्धिना ॥ २७ ॥
परितुष्टोऽस्मि धर्मात्मन् वरं वरय सुव्रत ।

''बेटा विभीषण ! तुम्हारी बुद्धि सदा धर्ममें लगी रहनेवाली है, अतः मैं तुमसे बहुत संतुष्ट हूँ । उत्तम व्रतका पालन करनेवाले धर्मात्मन् ! तुम भी अपनी रुचिके अनुसार कोई वर माँगो' ॥ २७½ ॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा वचनं प्राह साञ्जलिः ॥ २८ ॥
वृतः सर्वगुणैर्नित्यं चन्द्रमा रश्मिभिर्यथा ।
भगवन् कृतकृत्योऽहं यन्मे लोकगुरुः स्वयम् ॥ २९ ॥
प्रीतेन यदि दातव्यो वरो मे शृणु सुव्रत ।

'तब किरणमालामण्डित चन्द्रमाकी भाँति सदा समस्त गुणोंसे सम्पन्न धर्मात्मा विभीषणने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन् ! यदि साक्षात् लोकगुरु आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं कृतार्थ हूँ। मुझे कुछ भी पाना शेष नहीं रहा। उत्तम व्रतको धारण करनेवाले पितामह ! यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वर देना ही चाहते हैं तो सुनिये ॥ २८-२९½ ॥

परमापद्गतस्यापि धर्मे मम मतिर्भवेत् ॥ ३० ॥
अशिक्षितं च ब्रह्मास्त्रं भगवन् प्रतिभातु मे ।

''भगवन् ! बड़ी-से-बड़ी आपत्तिमें पड़नेपर भी मेरी बुद्धि धर्ममें ही लगी रहे—उससे विचलित न हो और बिना सीखे ही मुझे ब्रह्मास्त्रका ज्ञान हो जाय ॥ ३०½ ॥

या या मे जायते बुद्धिर्येषु येष्वाश्रमेषु च ॥ ३१ ॥
सा सा भवतु धर्मिष्ठा तं तं धर्मं च पालये ।
एष मे परमोदारो वरः परमको मतः ॥ ३२ ॥

''जिस-जिस आश्रमके विषयमें मेरा जो-जो विचार हो, वह धर्मके अनुकूल ही हो और उस-उस धर्मका मैं पालन करूँ; यही मेरे लिये सबसे उत्तम और अभीष्ट वरदान है ॥ ३१-३२ ॥

नहि धर्माभिरक्तानां लोके किंचन दुर्लभम् ।
पुनः प्रजापतिः प्रीतो विभीषणमुवाच ह ॥ ३३ ॥

''क्योंकि जो धर्ममें अनुरक्त हैं, उनके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है' यह सुनकर प्रजापति ब्रह्मा पुनः प्रसन्न हो विभीषणसे बोले—॥ ३३ ॥

धर्मिष्ठस्त्वं यथा वत्स तथा चैतद् भविष्यति ।
यस्माद् राक्षसयोनौ ते जातस्यामित्रनाशन ॥ ३४ ॥
नाधर्मे जायते बुद्धिरमरत्वं ददामि ते ।

''वत्स ! तुम धर्ममें स्थित रहनेवाले हो; अतः जो कुछ चाहते हो, वह सब पूर्ण होगा। शत्रुनाशन ! राक्षस-योनिमें उत्पन्न होकर भी तुम्हारी बुद्धि अधर्ममें नहीं लगती है; इसलिये मैं तुम्हें अमरत्व प्रदान करता हूँ' ॥ ३४½ ॥

इत्युक्त्वा कुम्भकर्णाय वरं दातुमवस्थितम् ॥ ३५ ॥
प्रजापतिं सुराः सर्वे वाक्यं प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ।

'विभीषणसे ऐसा कहकर जब ब्रह्माजी कुम्भकर्णको वर देनेके लिये उद्यत हुए, तब सब देवता उनसे हाथ जोड़कर बोले—॥ ३५½ ॥

न तावत् कुम्भकर्णाय प्रदातव्यो वरस्त्वया ॥ ३६ ॥
जानीषे हि यथा लोकांस्त्रासयत्येष दुर्मतिः ।

''प्रभो ! आप कुम्भकर्णको वरदान न दीजिये; क्योंकि आप जानते हैं कि यह दुर्बुद्धि निशाचर किस तरह समस्त लोकोंको त्रास देता है ॥ ३६½ ॥

नन्दनेऽप्सरसः सप्त महेन्द्रानुचरा दश ॥ ३७ ॥
अनेन भक्षिता ब्रह्मन्नृषयो मानुषास्तथा ।

''ब्रह्मन् ! इसने नन्दनवनकी सात अप्सराओं, देवराज इन्द्रके दस अनुचरों तथा बहुत-से ऋषियों और मनुष्योंको भी खा लिया है ॥ ३७½ ॥

अलब्धवरपूर्वेण यत् कृतं राक्षसेन तु ॥ ३८ ॥
यद्येष वरलब्धः स्याद् भक्षयेद् भुवनत्रयम् ।

''पहले वर न पानेपर भी इस राक्षसने जब इस प्रकार प्राणियोंके भक्षणका क्रूरतापूर्ण कर्म कर डाला है, तब यदि इसे वर प्राप्त हो जाय, उस दशामें तो यह तीनों लोकोंको खा जायगा ॥ ३८½ ॥

वरव्याजेन मोहोऽस्मै दीयताममितप्रभ ॥ ३९ ॥
लोकानां स्वस्ति चैवं स्याद् भवेदस्य च सम्मतिः ।

''अमिततेजस्वी देव ! आप वरके बहाने इसको मोह प्रदान कीजिये। इससे समस्त लोकोंका कल्याण होगा और इसका भी सम्मान हो जायगा' ॥ ३९½ ॥

एवमुक्तः सुरैर्ब्रह्माचिन्तयत् पद्मसम्भवः ॥ ४० ॥
चिन्तिता चोपतस्थेऽस्य पार्श्वं देवी सरस्वती ।

'देवताओंके ऐसा कहनेपर कमलयोनि ब्रह्माजीने सरस्वतीका स्मरण किया। उनके चिन्तन करते ही देवी सरस्वती पास आ गयीं ॥ ४०½ ॥

प्राञ्जलिः सा तु पार्श्वस्था प्राह वाक्यं सरस्वती॥ ४१ ॥
इयमस्म्यागता देव किं कार्यं करवाण्यहम् ।

उनके पार्श्वभागमें खड़ी हो सरस्वतीने हाथ जोड़कर कहा—'देव ! यह मैं आ गयी। मेरे लिये क्या आज्ञा है ? मैं कौन-सा कार्य करूँ ?' ॥ ४१½ ॥

प्रजापतिस्तु तां प्राप्तां प्राह वाक्यं सरस्वतीम् ॥ ४२ ॥
वाणि त्वं राक्षसेन्द्रस्य भव वाग्देवतेप्सिता ।

'तब प्रजापतिने वहाँ आयी हुई सरस्वतीदेवीसे कहा—'वाणि ! तुम राक्षसराज कुम्भकर्णकी जिह्वापर विराजमान हो देवताओंके अनुकूल वाणीके रूपमें प्रकट होओ' ॥ ४२½ ॥

तथेत्युक्त्वा प्रविष्टा सा प्रजापतिरथाब्रवीत् ॥ ४३ ॥
कुम्भकर्ण महाबाहो वरं वरय यो मतः ।

'तब 'बहुत अच्छा' कहकर सरस्वती कुम्भकर्णके मुखमें समा गयीं। इसके बाद प्रजापतिने उस राक्षससे कहा—'महाबाहु कुम्भकर्ण ! तुम भी अपने मनके अनुकूल कोई वर माँगो' ॥ ४३½ ॥

कुम्भकर्णस्तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वचनमब्रवीत् ॥ ४४ ॥
स्वप्तुं वर्षाण्यनेकानि देवदेव ममेप्सितम् ।
एवमस्त्विति तं चोक्त्वा प्रायाद् ब्रह्मा सुरैः समम्॥ ४५॥

'उनकी बात सुनकर कुम्भकर्ण बोला—'देवदेव ! मैं अनेकानेक वर्षोंतक सोता रहूँ। यही मेरी इच्छा है।' तब 'एवमस्तु (ऐसा ही हो)' कहकर ब्रह्माजी देवताओंके साथ चले गये ॥ ४४-४५ ॥

देवी सरस्वती चैव राक्षसं तं जहौ पुनः ।
ब्रह्मणा सह देवेषु गतेषु च नभःस्थलम् ॥ ४६ ॥

विमुक्तोऽसौ सरस्वत्या स्वां संज्ञां च ततो गतः ।
कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा चिन्तयामास दुःखितः ॥ ४७ ॥

'फिर सरस्वतीदेवीने भी उस राक्षसको छोड़ दिया । ब्रह्माजीके साथ देवताओंके आकाशमें चले जानेपर जब सरस्वतीजी उसके ऊपरसे उतर गयीं, तब दुष्टात्मा कुम्भकर्णको चेत हुआ और वह दुखी होकर इस प्रकार चिन्ता करने लगा ॥ ४६-४७ ॥

ईदृशं किमिदं वाक्यं ममाद्य वदनाच्च्युतम् ।
अहं व्यामोहितो देवैरिति मन्ये तदागतैः ॥ ४८ ॥

''अहो ! आज मेरे मुँहसे ऐसी बात क्यों निकल गयी । मैं समझता हूँ, ब्रह्माजीके साथ आये हुए देवताओंने ही उस समय मुझे मोहमें डाल दिया था' ॥ ४८ ॥

एवं लब्धवराः सर्वे भ्रातरो दीप्ततेजसः ।
श्लेष्मातकवनं गत्वा तत्र ते न्यवसन् सुखम् ॥ ४९ ॥

'इस प्रकार वे तीनों तेजस्वी भ्राता वर पाकर श्लेष्मातकवन (लसोड़ेके जंगल)में गये और वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें दसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः

रावणका संदेश सुनकर पिताकी आज्ञासे कुबेरका लङ्काको छोड़कर कैलासपर जाना, लङ्कामें रावणका राज्याभिषेक तथा राक्षसोंका निवास

सुमाली वरलब्धांस्तु ज्ञात्वा चैतान् निशाचरान् ।
उदतिष्ठद् भयं त्यक्त्वा सानुगः स रसातलात् ॥ १ ॥

रावण आदि निशाचरोंको वर प्राप्त हुआ है, यह जानकर सुमाली नामक राक्षस अपने अनुचरोंसहित भय छोड़कर रसातलसे निकला ॥ १ ॥

मारीचश्च प्रहस्तश्च विरूपाक्षो महोदरः ।
उदतिष्ठन् सुसंरब्धाः सचिवास्तस्य रक्षसः ॥ २ ॥

साथ ही मारीच, प्रहस्त, विरूपाक्ष और महोदर—ये उस राक्षसके चार मन्त्री भी रसातलसे ऊपरको उठे । वे सब-के-सब रोषावेशसे भरे हुए थे ॥ २ ॥

सुमाली सचिवैः सार्धं वृतो राक्षसपुङ्गवैः ।
अभिगम्य दशग्रीवं परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥

श्रेष्ठ राक्षसोंसे घिरा हुआ सुमाली अपने सचिवोंके साथ दशग्रीवके पास गया और उसे छातीसे लगाकर इस प्रकार बोला—॥ ३ ॥

दिष्ट्या ते वत्स सम्प्राप्तश्चिन्तितोऽयं मनोरथः ।
यस्त्वं त्रिभुवनश्रेष्ठाल्लब्धवान् वरमुत्तमम् ॥ ४ ॥

'वत्स ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुमने त्रिभुवनश्रेष्ठ ब्रह्माजीसे उत्तम वर प्राप्त किया, जिससे तुम्हें यह चिरकालसे चिन्तित मनोरथ उपलब्ध हो गया ॥ ४ ॥

यत्कृते च वयं लङ्कां त्यक्त्वा याता रसातलम् ।
तद्गतं नो महाबाहो महद्विष्णुकृतं भयम् ॥ ५ ॥

'महाबाहो ! जिसके कारण हम सब राक्षस लङ्का छोड़कर रसातलमें चले गये थे, भगवान् विष्णुसे प्राप्त होनेवाला हमारा यह महान् भय दूर हो गया ॥ ५ ॥

असकृत् तद्भयाद् भग्नाः परित्यज्य स्वमालयम् ।
विद्रुताः सहिताः सर्वे प्रविष्टाः स्म रसातलम् ॥ ६ ॥

'हम सब लोग बारंबार भगवान् विष्णुके भयसे पीड़ित होनेके कारण अपना घर छोड़ भाग निकले और सब-के-सब एक साथ ही रसातलमें प्रविष्ट हो गये ॥ ६ ॥

अस्मदीया च लङ्केयं नगरी राक्षसोषिता ।
निवेशिता तव भ्रात्रा धनाध्यक्षेण धीमता ॥ ७ ॥

'यह लङ्कानगरी जिसमें तुम्हारे बुद्धिमान् भाई धनाध्यक्ष कुबेर निवास करते हैं, हमलोगोंकी है । पहले इसमें राक्षस ही रहा करते थे ॥ ७ ॥

यदि नामात्र शक्यं स्यात् साम्ना दानेन वानघ ।
तरसा वा महाबाहो प्रत्यानेतुं कृतं भवेत् ॥ ८ ॥

'निष्पाप महाबाहो ! यदि साम, दान अथवा बलप्रयोगके द्वारा भी पुनः लङ्काको वापस लिया जा सके तो हमलोगोंका काम बन जाय ॥ ८ ॥

त्वं च लङ्केश्वरस्तात भविष्यसि न संशयः ।
त्वया राक्षसवंशोऽयं निमग्नोऽपि समुद्धृतः ॥ ९ ॥

'तात ! तुम्हीं लङ्काके स्वामी होओगे, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि तुमने इस राक्षसवंशका जो रसातलमें डूब गया था, उद्धार किया है ॥ ९ ॥

सर्वेषां नः प्रभुश्चैव भविष्यसि महाबल ।
अथाब्रवीद् दशग्रीवो मातामहमुपस्थितम् ॥ १० ॥
वित्तेशो गुरुरस्माकं नार्हसे वक्तुमीदृशम् ।

'महाबली वीर ! तुम्हीं हम सबके राजा होओगे ।' यह सुनकर दशग्रीवने पास खड़े हुए अपने मातामहसे कहा—'नानाजी ! धनाध्यक्ष कुबेर हमारे बड़े भाई हैं, अतः उनके सम्बन्धमें आपको मुझसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये' ॥

साम्ना हि राक्षसेन्द्रेण प्रत्याख्यातो गरीयसा ॥ ११ ॥
किंचिन्नाह तदा रक्षो ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितम् ।

उस श्रेष्ठ राक्षसराजके द्वारा शान्तभावसे ही ऐसा कोरा उत्तर पाकर सुमाली समझ गया कि रावण क्या करना चाहता

है, इसलिये वह राक्षस चुप हो गया। फिर कुछ कहनेका साहस न कर सका ॥ ११½ ॥

कस्यचित् त्वथ कालस्य वसन्तं रावणं ततः ॥ १२ ॥
उक्तवन्तं तथा वाक्यं दशग्रीवं निशाचरः।
प्रहस्तः प्रश्रितं वाक्यमिदमाह सकारणम् ॥ १३ ॥

तदनन्तर कुछ काल व्यतीत होनेपर अपने स्थानपर निवास करते हुए दशग्रीव रावणसे जो सुमालीको पहले पूर्वोक्त उत्तर दे चुका था, निशाचर प्रहस्तने विनयपूर्वक यह युक्तियुक्त बात कही—॥ १२-१३ ॥

दशग्रीव महाबाहो नार्हसे वक्तुमीदृशम्। ✓
सौभ्रात्रं नास्ति शूराणां शृणु चेदं वचो मम ॥ १४ ॥

'महाबाहु दशग्रीव! आपने अपने नानासे जो कुछ कहा है, वैसा नहीं कहना चाहिये; क्योंकि वीरोंमें इस तरहके भ्रातृभावका निर्वाह होता नहीं देखा जाता। आप मेरी यह बात सुनिये ॥ १४ ॥

अदितिश्च दितिश्चैव भगिन्यौ सहिते हि ते। ✓
भार्ये परमरूपिण्यौ कश्यपस्य प्रजापतेः ॥ १५ ॥

'अदिति और दिति दोनों सगी बहनें हैं। वे दोनों ही प्रजापति कश्यपकी परम सुन्दरी पत्नियाँ हैं ॥ १५ ॥

अदितिर्जनयामास देवांस्त्रिभुवनेश्वरान्। ✓
दितिस्त्वजनयद् दैत्यान् कश्यपस्यात्मसम्भवान् ॥ १६ ॥

'अदितिने देवताओंको जन्म दिया है, जो इस समय त्रिभुवनके स्वामी हैं और दितिने दैत्योंको उत्पन्न किया है। देवता और दैत्य दोनों ही महर्षि कश्यपके औरस पुत्र हैं ॥

दैत्यानां किल धर्मज्ञ पुरेयं सवनार्णवा। ✓
सपर्वता मही वीर तेऽभवन् प्रभविष्णवः ॥ १७ ॥

'धर्मज्ञ वीर! पहले पर्वत, वन और समुद्रोंसहित यह सारी पृथ्वी दैत्योंके ही अधिकारमें थी; क्योंकि वे बड़े प्रभावशाली थे ॥ १७ ॥

निहत्य तांस्तु समरे विष्णुना प्रभविष्णुना। ✓
देवानां वशमानीतं त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥ १८ ॥

'किंतु सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णुने युद्धमें दैत्योंको मारकर त्रिलोकीका यह अक्षय राज्य देवताओंके अधिकारमें दे दिया ॥ १८ ॥

नैतदेको भवानेव करिष्यति विपर्ययम्।
सुरासुरैराचरितं तत् कुरुष्व वचो मम ॥ १९ ॥

'इस तरहका विपरीत आचरण केवल आप ही नहीं करेंगे। देवताओं और असुरोंने भी पहले इस नीतिसे काम लिया है; अतः आप मेरी बात मान लें' ॥ १९ ॥

एवमुक्तो दशग्रीवः प्रहस्तेनान्तरात्मना।
चिन्तयित्वा मुहूर्तं वै बाढमित्येव सोऽब्रवीत् ॥ २० ॥

प्रहस्तके ऐसा कहनेपर दशग्रीवका चित्त प्रसन्न हो गया। उसने दो घड़ीतक सोच-विचारकर कहा—'बहुत अच्छा (तुम जैसा कहते हो, वैसा ही करूँगा)' ॥ २० ॥

स तु तेनैव हर्षेण तस्मिन्नहनि वीर्यवान्।
वनं गतो दशग्रीवः सह तैः क्षणदाचरैः ॥ २१ ॥

तदनन्तर उसी दिन उसी हर्षके साथ पराक्रमी दशग्रीव उन निशाचरोंको साथ ले लङ्काके निकटवर्ती वनमें गया ॥

त्रिकूटस्थः स तु तदा दशग्रीवो निशाचरः।
प्रेषयामास दौत्येन प्रहस्तं वाक्यकोविदम् ॥ २२ ॥

उस समय त्रिकूट पर्वतपर जाकर निशाचर दशग्रीव ठहर गया और बातचीत करनेमें कुशल प्रहस्तको उसने दूत बनाकर भेजा ॥ २२ ॥

प्रहस्त शीघ्रं गच्छ त्वं ब्रूहि नैर्ऋतपुङ्गवम्। ✓
वचसा मम वित्तेशं सामपूर्वमिदं वचः ॥ २३ ॥

वह बोला—'प्रहस्त! तुम शीघ्र जाओ और मेरे कथनानुसार धनके स्वामी राक्षसराज कुबेरसे शान्तिपूर्वक यह बात कहो ॥ २३ ॥

इयं लङ्का पुरी राजन् राक्षसानां महात्मनाम्।
त्वया निवेशिता सौम्य नैतद् युक्तं तवानघ ॥ २४ ॥

'राजन्! यह लङ्कापुरी महामना राक्षसोंकी है, जिसमें आप निवास कर रहे हैं। सौम्य! निष्पाप यक्षराज! यह आपके लिये उचित नहीं है ॥ २४ ॥

तद् भवान् यदि नो ह्यद्य दद्यादतुलविक्रम।
कृता भवेन्मम प्रीतिर्धर्मश्चैवानुपालितः ॥ २५ ॥

'अतुल पराक्रमी धनेश्वर! यदि आप हमें यह लङ्कापुरी लौटा दें तो इससे हमें बड़ी प्रसन्नता होगी और आपके द्वारा धर्मका पालन हुआ समझा जायगा' ॥ २५ ॥

स तु गत्वा पुरीं लङ्कां धनदेन सुरक्षिताम्।
अब्रवीत् परमोदारं वित्तपालमिदं वचः ॥ २६ ॥

तब प्रहस्त कुबेरके द्वारा सुरक्षित लङ्कापुरीमें गया और उन वित्तपालसे बड़ी उदारतापूर्ण वाणीमें बोला—॥ २६ ॥

प्रेषितोऽहं तव भ्रात्रा दशग्रीवेण सुव्रत।
त्वत्समीपं महाबाहो सर्वशस्त्रभृतां वर ॥ २७ ॥
तच्छ्रूयतां महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
वचनं मम वित्तेश यद् ब्रवीति दशाननः ॥ २८ ॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले, सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, सर्वशास्त्रविशारद, महाबाहु, महाप्राज्ञ धनेश्वर! आपके भाई दशग्रीवने मुझे आपके पास भेजा है।' दशमुख रावण आपसे जो कुछ कहना चाहते हैं, वह बता रहा हूँ। आप मेरी बात सुनिये ॥ २७-२८ ॥

इयं किल पुरी रम्या सुमालिप्रमुखैः पुरा।
भुक्तपूर्वा विशालाक्ष राक्षसैर्भीमविक्रमैः ॥ २९ ॥
तेन विज्ञाप्यते सोऽयं साम्प्रतं विश्रवात्मज। ✓
तदेषा दीयतां तात याचतस्तस्य सामतः ॥ ३० ॥

'विशाललोचन वैश्रवण! यह रमणीय लङ्कापुरी पहले

भयानक पराक्रमी सुमाली आदि राक्षसोंके अधिकारमें रही है। उन्होंने बहुत समयतक इसका उपभोग किया है। अतः वे दशग्रीव इस समय यह सूचित कर रहे हैं कि 'यह लङ्का जिनकी वस्तु है, उन्हें लौटा दी जाय।' तात! शान्तिपूर्वक याचना करनेवाले दशग्रीवको आप यह पुरी लौटा दें'॥

प्रहस्तादपि संश्रुत्य देवो वैश्रवणो वचः।
प्रत्युवाच प्रहस्तं तं वाक्यं वाक्यविदां वरः॥ ३१॥

प्रहस्तके मुखसे यह बात सुनकर वाणीका मर्म समझनेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् वैश्रवणने प्रहस्तको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ ३१॥

दत्ता ममेयं पित्रा तु लङ्का शून्या निशाचरैः।
निवेशिता च मे रक्षो दानमानादिभिर्गुणैः॥ ३२॥

'राक्षस! यह लङ्का पहले निशाचरोंसे सूनी थी। उस समय पिताजीने मुझे इसमें रहनेकी आज्ञा दी और मैंने इसमें दान, मान आदि गुणोंद्वारा प्रजाजनोंको बसाया॥ ३२॥

ब्रूहि गच्छ दशग्रीवं पुरी राज्यं च यन्मम।
तत्राप्येतन्महाबाहो भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम्॥ ३३॥

'दूत! तुम जाकर दशग्रीवसे कहो— महाबाहो! यह पुरी तथा यह निष्कण्टक राज्य जो कुछ भी मेरे पास है, वह सब तुम्हारा भी है। तुम इसका उपभोग करो॥ ३३॥

अविभक्तं त्वया सार्धं राज्यं यच्चापि मे वसु।
एवमुक्त्वा धनाध्यक्षो जगाम पितुरन्तिकम्॥ ३४॥

'मेरा राज्य तथा सारा धन तुमसे बँटा हुआ नहीं है' ऐसा कहकर धनाध्यक्ष कुबेर अपने पिता विश्रवा मुनिके पास चले गये॥ ३४॥

अभिवाद्य गुरुं प्राह रावणस्य यदीप्सितम्।
एष तात दशग्रीवो दूतं प्रेषितवान् मम॥ ३५॥
दीयतां नगरी लङ्का पूर्वं रक्षोगणोषिता।
मयात्र यदनुष्ठेयं तन्ममाचक्ष्व सुव्रत॥ ३६॥

वहाँ पिताको प्रणाम करके उन्होंने रावणकी जो इच्छा थी, उसे इस प्रकार बताया—'तात! आज दशग्रीवने मेरे पास दूत भेजा और कहलाया है कि इस लङ्का नगरीमें पहले राक्षस रहा करते थे, अतः इसे राक्षसोंको लौटा दीजिये। सुव्रत! अब मुझे इस विषयमें क्या करना चाहिये, बतानेकी कृपा करें'॥ ३५-३६॥

ब्रह्मर्षिस्त्वेवमुक्तोऽसौ विश्रवा मुनिपुङ्गवः।
प्राञ्जलिं धनदं प्राह शृणु पुत्र वचो मम॥ ३७॥

उनके ऐसा कहनेपर ब्रह्मर्षि मुनिवर विश्रवा हाथ जोड़कर खड़े हुए धनद कुबेरसे बोले—'बेटा! मेरी बात सुनो॥

दशग्रीवो महाबाहुरुक्तवान् मम संनिधौ।
मया निर्भर्त्सितश्चासीद् बहुशोक्तः सुदुर्मतिः॥ ३८॥
स क्रोधेन मया चोक्तो ध्वंससे च पुनः पुनः।

'महाबाहु दशग्रीवने मेरे निकट भी यह बात कही थी। इसके लिये मैंने उस दुर्बुद्धिको बहुत फटकारा, डाँट बतायी और बारंबार क्रोधपूर्वक कहा—'अरे! ऐसा करनेसे तेरा पतन हो जायगा' किंतु इसका कुछ फल नहीं हुआ॥ ३८½॥

श्रेयोऽभियुक्तं धर्म्यं च शृणु पुत्र वचो मम॥ ३९॥
वरप्रदानसम्मूढो मान्यामान्यं सुदुर्मतिः।
न वेत्ति मम शापाच्च प्रकृतिं दारुणां गतः॥ ४०॥

'बेटा! अब तुम्हीं मेरे धर्मानुकूल एवं कल्याणकारी वचनको ध्यान देकर सुनो। रावणकी बुद्धि बहुत ही खोटी है। वह वर पाकर मदमत्त हो उठा है—विवेक खो बैठा है। मेरे शापके कारण भी उसकी प्रकृति क्रूर हो गयी है॥

तस्माद् गच्छ महाबाहो कैलासं धरणीधरम्।
निवेशय निवासार्थं त्यक्त्वा लङ्कां सहानुगः॥ ४१॥

'इसलिये महाबाहो! अब तुम अनुचरोंसहित लङ्का छोड़कर कैलास पर्वतपर चले जाओ और अपने रहनेके लिये वहीं दूसरा नगर बसाओ॥ ४१॥

तत्र मन्दाकिनी रम्या नदीनामुत्तमा नदी।
काञ्चनैः सूर्यसंकाशैः पङ्कजैः संवृतोदका॥ ४२॥
कुमुदैरुत्पलैश्चैव अन्यैश्चैव सुगन्धिभिः।

'वहाँ नदियोंमें श्रेष्ठ रमणीय मन्दाकिनी नदी बहती है, जिसका जल सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले सुवर्णमय कमलों, कुमुदों, उत्पलों और दूसरे-दूसरे सुगन्धित कुसुमोंसे आच्छादित है॥ ४२½॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः साप्सरोरगकिंनराः॥ ४३॥
विहारशीलाः सततं रमन्ते सर्वदाश्रिताः।
नहि क्षमं तवानेन वैरं धनद रक्षसा॥ ४४॥
जानीषे हि यथानेन लब्धः परमको वरः॥ ४५॥

'उस पर्वतपर देवता, गन्धर्व, अप्सरा, नाग और किंनर आदि दिव्य प्राणी, जिन्हें स्वभावसे ही घूमना-फिरना अधिक प्रिय है, सदा रहते हुए निरन्तर आनन्दका अनुभव करते हैं। धनद! इस राक्षसके साथ तुम्हारा वैर करना उचित नहीं है। तुम तो जानते ही हो कि इसने ब्रह्माजीसे कैसा उत्कृष्ट वर प्राप्त किया है'॥ ४३—४५॥

एवमुक्तो गृहीत्वा तु तद्वचः पितृगौरवात्।
सदारपुत्रः सामात्यः सवाहनधनो गतः॥ ४६॥

मुनिके ऐसा कहनेपर कुबेरने पिताका मान रखते हुए उनकी बात मान ली और स्त्री, पुत्र, मन्त्री, वाहन तथा धन साथ लेकर वे लङ्कासे कैलासको चले गये॥ ४६॥

प्रहस्तोऽथ दशग्रीवं गत्वा वचनमब्रवीत्।
प्रहृष्टात्मा महात्मानं सहामात्यं सहानुजम्॥ ४७॥

तदनन्तर प्रहस्त प्रसन्न होकर मन्त्री और भाइयोंके साथ बैठे हुए महामना दशग्रीवके पास जाकर बोला—॥ ४७॥

शून्या सा नगरी लङ्का त्यक्त्वैनां धनदो गतः।
प्रविश्य तां सहास्माभिः स्वधर्मं तत्र पालय॥ ४८॥

'लङ्का नगरी खाली हो गयी। कुबेर उसे छोड़कर चले गये। अब आप हमलोगोंके साथ उसमें प्रवेश करके अपने धर्मका पालन कीजिये' ॥ ४८ ॥

एवमुक्तो दशग्रीवः प्रहस्तेन महाबलः।
विवेश नगरीं लङ्कां भ्रातृभिः सबलानुगैः ॥ ४९ ॥
धनदेन परित्यक्तां सुविभक्तमहापथाम्।
आरुरोह स देवारिः स्वर्गं देवाधिपो यथा ॥ ५० ॥

प्रहस्तके ऐसा कहनेपर महाबली दशग्रीवने अपनी सेना, अनुचर तथा भाइयोंसहित कुबेरद्वारा त्यागी हुई लङ्कापुरीमें प्रवेश किया। उस नगरीमें सुन्दर विभागपूर्वक बड़ी-बड़ी सड़कें बनी थीं। जैसे देवराज इन्द्र स्वर्गके सिंहासनपर आरूढ़ हुए थे, उसी प्रकार देवद्रोही रावणने लङ्कामें पदार्पण किया ॥

स चाभिषिक्तः क्षणदाचरैस्तदा
निवेशयामास पुरीं दशाननः।
निकामपूर्णा च बभूव सा पुरी
निशाचरैर्नीलबलाहकोपमैः ॥ ५१ ॥

उस समय निशाचरोंने दशमुख रावणका राज्याभिषेक किया। फिर रावणनें उस पुरीको बसाया। देखते-देखते समूची लङ्कापुरी नील मेघके समान वर्णवाले राक्षसोंसे पूर्णतः भर गयी ॥ ५१ ॥

धनेश्वरस्त्वथ पितृवाक्यगौरवा-
न्न्यवेशयच्छशिविमले गिरौ पुरीम्।
स्वलंकृतैर्भवनवरैर्विभूषितां
पुरंदरः स्वरिव यथामरावतीम् ॥ ५२ ॥

धनके स्वामी कुबेरने पिताकी आज्ञाको आदर देकर चन्द्रमाके समान निर्मल कान्तिवाले कैलास पर्वतपर शोभाशाली श्रेष्ठ भवनोंसे विभूषित अलकापुरी बसायी, ठीक वैसे ही जैसे देवराज इन्द्रने स्वर्गलोकमें अमरावती पुरी बसायी थी ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः

शूर्पणखा तथा रावण आदि तीनों भाइयोंका विवाह और मेघनादका जन्म

राक्षसेन्द्रोऽभिषिक्तस्तु भ्रातृभिः सहितस्तदा।
ततः प्रदानं राक्षस्या भगिन्याः समचिन्तयत् ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—श्रीराम !) अपना अभिषेक हो जानेपर जब राक्षसराज रावण भाइयोंसहित लङ्कापुरीमें रहने लगा, तब उसे अपनी बहिन राक्षसी शूर्पणखाके ब्याहकी चिन्ता हुई ॥ १ ॥

स्वसारं कालकेयाय दानवेन्द्राय राक्षसीम्।
ददौ शूर्पणखां नाम विद्युज्जिह्वाय राक्षसः ॥ २ ॥

उस राक्षसने दानवराज विद्युजिह्वको, जो कालकाका पुत्र था, अपनी बहन शूर्पणखा ब्याह दी ॥ २ ॥

अथ दत्त्वा स्वयं रक्षो मृगयामटते स्म तत्।
तत्रापश्यत् ततो राम मयं नाम दितेः सुतम् ॥ ३ ॥
कन्यासहायं तं दृष्ट्वा दशग्रीवो निशाचरः।
अपृच्छत् को भवानेको निर्मनुष्यमृगे वने ॥ ४ ॥
अनया मृगशावाक्ष्या किमर्थं सह तिष्ठसि।

श्रीराम ! बहिनका ब्याह करके राक्षस रावण एक दिन स्वयं शिकार खेलनेके लिये वनमें घूम रहा था। वहाँ उसने दितिके पुत्र मयको देखा। उसके साथ एक सुन्दरी कन्या भी थी। उसे, देखकर निशाचर दशग्रीवने पूछा—'आप कौन हैं, जो मनुष्यों और पशुओंसे रहित इस सूने वनमें अकेले घूम रहे हैं ? इस मृगनयनी कन्याके साथ आप यहाँ किस उद्देश्यसे निवास करते हैं ?' ॥ ३-४½ ॥

मयस्तदाब्रवीद् राम पृच्छन्तं तं निशाचरम् ॥ ५ ॥
श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये यथावृत्तमिदं तव।

श्रीराम ! इस प्रकार पूछनेवाले उस निशाचरसे मय बोला—'सुनो, मैं अपना सारा वृत्तान्त तुम्हें यथार्थरूपसे बता रहा हूँ ॥ ५½ ॥

हेमा नामाप्सरास्तात श्रुतपूर्वा यदि त्वया ॥ ६ ॥
दैवतैर्मम सा दत्ता पौलोमीव शतक्रतोः।
तस्यां सक्तमना ह्यासं दशवर्षशतान्यहम् ॥ ७ ॥
सा च दैवतकार्येण गता वर्षाश्चतुर्दश।
तस्याः कृते च हेमायाः सर्वं हेममयं पुरम् ॥ ८ ॥
वज्रवैदूर्यचित्रं च मायया निर्मितं मया।
तत्राहमवसं दीनस्तया हीनः सुदुःखितः ॥ ९ ॥

'तात ! तुमने पहले कभी सुना होगा, स्वर्गमें हेमा नामसे प्रसिद्ध एक अप्सरा रहती है। उसे देवताओंने उसी प्रकार मुझे अर्पित कर दिया था, जैसे पुलोम दानवकी कन्या शची देवराज इन्द्रको दी गयी थीं। मैं उसीमें आसक्त होकर एक सहस्र वर्षोंतक उसके साथ रहा हूँ। एक दिन वह देवताओंके कार्यसे स्वर्गलोकको चली गयी, तबसे चौदह वर्ष बीत गये। मैंने उस हेमाके लिये मायासे एक नगरका निर्माण किया था, जो सम्पूर्णतः सोनेका बना है। हीरे और नीलमके संयोगसे वह विचित्र शोभा धारण करता है। उसीमें मैं अबतक उसके वियोगसे अत्यन्त दुखी एवं दीन होकर रहता था ॥ ६–९ ॥

तस्मात् पुराद् दुहितरं गृहीत्वा वनमागतः।
इयं ममात्मजा राजंस्तस्याः कुक्षौ विवर्धिता ॥ १० ॥

'उसी नगरसे इस कन्याको साथ लेकर मैं वनमें आया हूँ। राजन्! यह मेरी पुत्री है, जो हेमाके गर्भमें ही पली है और उससे उत्पन्न होकर मेरे द्वारा पालित हो बड़ी हुई है ॥

भर्तारमनया सार्धमस्याः प्राप्तोऽस्मि मार्गितुम्।
कन्यापितृत्वं दुःखं हि सर्वेषां मानकाङ्क्षिणाम् ॥ ११ ॥
कन्या हि द्वे कुले नित्यं संशये स्थाप्य तिष्ठति।

'इसके साथ मैं इसके योग्य पतिकी खोज करनेके लिये आया हूँ। मानकी अभिलाषा रखनेवाले प्रायः सभी लोगोंके लिये कन्याका पिता होना कष्टकारक होता है। (क्योंकि इसके लिये कन्याके पिताको दूसरोंके सामने झुकना पड़ता है।) कन्या सदा दो कुलोंको संशयमें डाले रहती है ॥ ११½ ॥

पुत्रद्वयं ममाप्यस्यां भार्यायां सम्बभूव ह ॥ १२ ॥
मायावी प्रथमस्तात दुन्दुभिस्तदनन्तरः।

'तात! मेरी इस भार्या हेमाके गर्भसे दो पुत्र भी हुए हैं, जिनमें प्रथम पुत्रका नाम मायावी और दूसरेका दुन्दुभि है ॥ १२½ ॥

एवं ते सर्वमाख्यातं याथातथ्येन पृच्छतः ॥ १३ ॥
त्वामिदानीं कथं तात जानीयां को भवानिति।

तात! तुमने पूछा था, इसलिये मैंने इस तरह अपनी सारी बातें तुम्हें यथार्थरूपसे बता दीं। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम कौन हो? यह मुझे किस तरह ज्ञात हो सकेगा?' ॥ १३½ ॥

एवमुक्तं तु तद् रक्षो विनीतमिदमब्रवीत् ॥ १४ ॥
अहं पौलस्त्यतनयो दशग्रीवश्च नामतः।
मुनेर्विश्रवसो यस्तु तृतीयो ब्रह्मणोऽभवत् ॥ १५ ॥

मयासुरके इस प्रकार कहनेपर राक्षस रावण विनीतभावसे यों बोला—'मैं पुलस्त्यके पुत्र विश्रवाका बेटा हूँ। मेरा नाम दशग्रीव है। मैं जिन विश्रवा मुनिसे उत्पन्न हुआ हूँ, वे ब्रह्माजीसे तीसरी पीढ़ीमें पैदा हुए हैं' ॥ १४-१५ ॥

एवमुक्तस्तदा राम राक्षसेन्द्रेण दानवः।
महर्षेस्तनयं ज्ञात्वा मयो हर्षमुपागतः ॥ १६ ॥
दातुं दुहितरं तस्मै रोचयामास तत्र वै।

श्रीराम! राक्षसराजके ऐसा कहनेपर दानव मय महर्षि विश्रवाके उस पुत्रका परिचय पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसके साथ वहाँ उसने अपनी पुत्रीका विवाह कर देनेकी इच्छा की ॥ १६½ ॥

करेण तु करं तस्या ग्राहयित्वा मयस्तदा ॥ १७ ॥
प्रहसन् प्राह दैत्येन्द्रो राक्षसेन्द्रमिदं वचः।

इसके बाद दैत्यराज मय अपनी बेटीका हाथ रावणके हाथमें देकर हँसता हुआ उस राक्षसराजसे इस प्रकार बोला—॥ १७½ ॥

इयं ममात्मजा राजन् हेमयाप्सरसा धृता ॥ १८ ॥
कन्या मन्दोदरी नाम पत्न्यर्थं प्रतिगृह्यताम्।

'राजन्! यह मेरी बेटी है, जिसे हेमा अप्सराने अपने गर्भमें धारण किया था। इसका नाम मन्दोदरी है। इसे तुम अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार करो' ॥ १८½ ॥

बाढमित्येव तं राम दशग्रीवोऽभ्यभाषत ॥ १९ ॥
प्रज्वाल्य तत्र चैवाग्निमकरोत् पाणिसंग्रहम्।

श्रीराम! तब दशग्रीवने 'बहुत अच्छा' कहकर मयासुरकी बात मान ली। फिर वहाँ उसने अग्निको प्रज्वलित करके मन्दोदरीका पाणिग्रहण किया ॥ १९½ ॥

स हि तस्य मयो राम शापाभिज्ञस्तपोधनात् ॥ २० ॥
विदित्वा तेन सा दत्ता तस्य पैतामहं कुलम्।

रघुनन्दन! यद्यपि तपोधन विश्रवासे रावणको जो क्रूर-प्रकृति होनेका शाप मिला था, उसे मयासुर जानता था; तथापि रावणको ब्रह्माजीके कुलका बालक समझकर उसने उसको अपनी कन्या दे दी ॥ २०½ ॥

अमोघां तस्य शक्तिं च प्रददौ परमाद्भुताम् ॥ २१ ॥
परेण तपसा लब्धां जघ्निवाँल्लक्ष्मणं यया।

साथ ही उत्कृष्ट तपस्यासे प्राप्त हुई एक परम अद्भुत अमोघ शक्ति भी प्रदान की, जिसके द्वारा रावणने लक्ष्मणको घायल किया था ॥ २१½ ॥

एवं स कृत्वा दारान् वै लङ्काया ईश्वरः प्रभुः ॥ २२ ॥
गत्वा तु नगरीं भार्ये भ्रातृभ्यां समुपाहरत्।

इस प्रकार दारपरिग्रह (विवाह) करके प्रभावशाली लङ्केश्वर रावण लङ्कापुरीमें गया और अपने दोनों भाइयोंके लिये भी दो भार्याएँ उनका विवाह कराकर ले आया ॥ २२½ ॥

वैरोचनस्य दौहित्रीं वज्रज्वालेति नामतः ॥ २३ ॥
तां भार्यां कुम्भकर्णस्य रावणः समकल्पयत्।

विरोचनकुमार बलिकी दौहित्रीको, जिसका नाम वज्रज्वाला था, रावणने कुम्भकर्णकी पत्नी बनाया ॥ २३½ ॥

गन्धर्वराजस्य सुतां शैलूषस्य महात्मनः ॥ २४ ॥
सरमां नाम धर्मज्ञां लेभे भार्यां विभीषणः।

गन्धर्वराज महात्मा शैलूषकी कन्या सरमाको, जो धर्मके तत्त्वको जाननेवाली थी, विभीषणने अपनी पत्नीके रूपमें प्राप्त किया ॥ २४½ ॥

तीरे तु सरसो वै तु संजज्ञे मानसस्य हि ॥ २५ ॥
सरस्तदा मानसं तु ववृधे जलदागमे।
मात्रा तु तस्याः कन्यायाः स्नेहेनाक्रन्दितं वचः ॥ २६ ॥
सरो मा वर्धयस्वेति ततः सा सरमाभवत्।

वह मानसरोवरके तटपर उत्पन्न हुई थी। जब उसका जन्म हुआ, उस समय वर्षा ऋतुका आगमन होनेसे मानसरोवर बढ़ने लगा। तब उस कन्याकी माताने पुत्रीके स्नेहसे करुणक्रन्दन करते हुए उस सरोवरसे कहा—'सरो मा वर्धयस्व (हे सरोवर! तुम अपने जलको बढ़ने न दो)।' उसने

घबराहटमें 'सरः मा' ऐसा कहा था; इसलिये उस कन्याका नाम सरमा हो गया ॥ २५-२६½ ॥

एवं ते कृतदारा वै रेमिरे तत्र राक्षसाः ॥ २७ ॥
स्वां स्वां भार्यामुपादाय गन्धर्वा इव नन्दने ।

इस प्रकार वे तीनों राक्षस विवाहित होकर अपनी-अपनी स्त्रीको साथ ले नन्दनवनमें विहार करनेवाले गन्धर्वोंके समान लङ्कामें सुखपूर्वक रमण करने लगे ॥ २७½ ॥

ततो मन्दोदरी पुत्रं मेघनादमजीजनत् ॥ २८ ॥
स एष इन्द्रजिन्नाम युष्माभिरभिधीयते ।

तदनन्तर कुछ कालके बाद मन्दोदरीने अपने पुत्र मेघनादको जन्म दिया, जिसे आपलोग इन्द्रजित्के नामसे पुकारते थे ॥ २८½ ॥

जातमात्रेण हि पुरा तेन रावणसूनुना ॥ २९ ॥
रुदता सुमहान् मुक्तो नादो जलधरोपमः ।

पूर्वकालमें उस रावणपुत्रने पैदा होते ही रोते-रोते मेघके समान गम्भीर नाद किया था ॥ २९½ ॥

जडीकृता च सा लङ्का तस्य नादेन राघव ॥ ३० ॥
पिता तस्याकरोन्नाम मेघनाद इति स्वयम् ।

रघुनन्दन ! उस मेघतुल्य नादसे सारी लङ्का जडवत् स्तब्ध रह गयी थी; इसलिये पिता रावणने स्वयं ही उसका नाम मेघनाद रक्खा ॥ ३०½ ॥

सोऽवर्धत तदा राम रावणान्तःपुरे शुभे ॥ ३१ ॥
रक्ष्यमाणो वरस्त्रीभिश्छन्नः काष्ठैरिवानलः ।
मातापित्रोर्महाहर्षं जनयन् रावणात्मजः ॥ ३२ ॥

श्रीराम ! उस समय वह रावणकुमार रावणके सुन्दर अन्तःपुरमें माता-पिताको महान् हर्ष प्रदान करता हुआ श्रेष्ठ नारियोंसे सुरक्षित हो काष्ठसे आच्छादित हुई अग्निके समान बढ़ने लगा ॥ ३१-३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२ ॥

◆

त्रयोदशः सर्गः

रावणद्वारा बनवाये गये शयनागारमें कुम्भकर्णका सोना, रावणका अत्याचार, कुबेरका दूत भेजकर उसे समझाना तथा कुपित हुए रावणका उस दूतको मार डालना

अथ लोकेश्वरोत्सृष्टा तत्र कालेन केनचित् ।
निद्रा समभवत् तीव्रा कुम्भकर्णस्य रूपिणी ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन !) तदनन्तर कुछ काल बीतनेपर लोकेश्वर ब्रह्माजीकी भेजी हुई निद्रा जँभाई आदिके रूपमें मूर्तिमती हो कुम्भकर्णके भीतर तीव्र वेगसे प्रकट हुई ॥ १ ॥

ततो भ्रातरमासीनं कुम्भकर्णोऽब्रवीद् वचः ।
निद्रा मां बाधते राजन् कारयस्व ममालयम् ॥ २ ॥

तब कुम्भकर्णने पास ही बैठे हुए अपने भाई रावणसे कहा—'राजन् ! मुझे नींद सता रही है; अतः मेरे लिये शयन करनेके योग्य घर बनवा दें' ॥ २ ॥

विनियुक्तास्ततो राज्ञा शिल्पिनो विश्वकर्मवत् ।
विस्तीर्णं योजनं स्निग्धं ततो द्विगुणमायतम् ॥ ३ ॥
दर्शनीयं निराबाधं कुम्भकर्णस्य चक्रिरे ।
स्फाटिकैः काञ्चनैश्चित्रैः स्तम्भैः सर्वत्र शोभितम् ॥

यह सुनकर राक्षसराजने विश्वकर्माके समान सुयोग्य शिल्पियोंको घर बनानेके लिये आज्ञा दे दी । उन शिल्पियोंने दो योजन लंबा और एक योजन चौड़ा चिकना घर बनाया, जो देखने ही योग्य था । उसमें किसी प्रकारकी बाधाका अनुभव नहीं होता था । उसमें सर्वत्र स्फटिकमणि एवं सुवर्णके बने हुए खम्भे लगे थे, जो उस भवनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ ३-४ ॥

वैदूर्यकृतसोपानं किङ्किणीजालकं तथा ।
दान्ततोरणविन्यस्तं वज्रस्फटिकवेदिकम् ॥ ५ ॥

उसमें नीलमकी सीढ़ियाँ बनी थीं । सब ओर घुघुरूदार झालरें लगायी गयी थीं । उसका सदर फाटक हाथी-दाँतका बना हुआ था और हीरे तथा स्फटिकमणिकी वेदी एवं चबूतरे शोभा दे रहे थे ॥ ५ ॥

मनोहरं सर्वसुखं कारयामास राक्षसः ।
सर्वत्र सुखदं नित्यं मेरोः पुण्यां गुहामिव ॥ ६ ॥

वह भवन सब प्रकारसे सुखद एवं मनोहर था । मेरुकी पुण्यमयी गुफाके समान सदा सर्वत्र सुख प्रदान करनेवाला था । राक्षसराज रावणने कुम्भकर्णके लिये ऐसा सुन्दर एवं सुविधाजनक शयनागार बनवाया ॥ ६ ॥

तत्र निद्रां समाविष्टः कुम्भकर्णो महाबलः ।
बहून्यब्दसहस्राणि शयानो न च बुध्यते ॥ ७ ॥

महाबली कुम्भकर्ण उस घरमें जाकर निद्राके वशीभूत हो कई हजार वर्षोंतक सोता रहा । जाग नहीं पाता था ॥ ७ ॥

निद्राभिभूते तु तदा कुम्भकर्णे दशाननः ।
देवर्षियक्षगन्धर्वान् संजघ्ने हि निरङ्कुशः ॥ ८ ॥

जब कुम्भकर्ण निद्रासे अभिभूत होकर सो गया, तब दशमुख रावण उच्छृङ्खल हो देवताओं, ऋषियों, यक्षों और गन्धर्वोंके समूहोंको मारने तथा पीड़ा देने लगा ॥ ८ ॥

उद्यानानि विचित्राणि नन्दनादीनि यानि च ।
तानि गत्वा सुसंक्रुद्धो भिनत्ति स दशाननः ॥ ९ ॥

देवताओंके नन्दनवन आदि जो विचित्र उद्यान थे, उनमें जाकर दशानन अत्यन्त कुपित हो उन सबको उजाड़ देता था ॥ ९ ॥

नदीं गज इव क्रीडन् वृक्षान् वायुरिव क्षिपन् ।
नगान् वज्र इवोत्सृष्टो विध्वंसयति राक्षसः ॥ १० ॥

वह राक्षस नदीमें हाथीकी भाँति क्रीडा करता हुआ उसकी धाराओंको छिन्न-भिन्न कर देता था । वृक्षोंको वायुकी भाँति झकझोरता हुआ उखाड़ फेंकता था और पर्वतोंको इन्द्रके हाथसे छूटे हुए वज्रकी भाँति तोड़-फोड़ डालता था ॥ १० ॥

तथावृत्तं तु विज्ञाय दशग्रीवं धनेश्वरः ।
कुलानुरूपं धर्मज्ञो वृत्तं संस्मृत्य चात्मनः ॥ ११ ॥
सौभ्रात्रदर्शनार्थं तु दूतं वैश्रवणस्तदा ।
लङ्कां सम्प्रेषयामास दशग्रीवस्य वै हितम् ॥ १२ ॥

दशग्रीवके इस निरंकुश बर्तावका समाचार पाकर धनके स्वामी धर्मज्ञ कुबेरने अपने कुलके अनुरूप आचार-व्यवहारका विचार करके उत्तम भ्रातृप्रेमका परिचय देनेके लिये लङ्कामें एक दूत भेजा । उनका उद्देश्य यह था कि मैं रावणको उसके हितकी बात बताकर राहपर लाऊँ ॥ ११-१२ ॥

स गत्वा नगरीं लङ्कामाससाद विभीषणम् ।
मानितस्तेन धर्मेण पृष्टश्चागमनं प्रति ॥ १३ ॥

वह दूत लङ्कापुरीमें जाकर पहले विभीषणसे मिला । विभीषणने धर्मके अनुसार उसका सत्कार किया और लङ्कामें आनेका कारण पूछा ॥ १३ ॥

पृष्ट्वा च कुशलं राज्ञो ज्ञातीनां च विभीषणः ।
सभायां दर्शयामास तमासीनं दशाननम् ॥ १४ ॥

फिर बन्धु-बान्धवोंका कुशल-समाचार पूछकर विभीषणने उस दूतको ले जाकर राजसभामें बैठे हुए रावणसे मिलाया॥१४॥

स दृष्ट्वा तत्र राजानं दीप्यमानं स्वतेजसा ।
जयेति वाचा सम्पूज्य तूष्णीं समभिवर्तत ॥ १५ ॥

राजा रावण सभामें अपने तेजसे उद्दीप्त हो रहा था, उसे देखकर दूतने 'महाराजकी जय हो,' ऐसा कहकर वाणीद्वारा उसका सत्कार किया और फिर वह कुछ देरतक चुपचाप खड़ा रहा ॥ १५ ॥

स तत्रोत्तमपर्यङ्के वरास्तरणशोभिते ।
उपविष्टं दशग्रीवं दूतो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् उत्तम बिछौनेसे सुशोभित एक श्रेष्ठ पलंगपर बैठे हुए दशग्रीवसे उस दूतने इस प्रकार कहा—॥१६॥

राजन् वदामि ते सर्वं भ्राता तव यदब्रवीत् ।
उभयोः सदृशं वीर वृत्तस्य च कुलस्य च ॥ १७ ॥

'वीर महाराज ! आपके भाई धनाध्यक्ष कुबेरने आपके पास जो संदेश भेजा है, वह माता-पिता दोनोंके कुल तथा सदाचारके अनुरूप है, मैं उसे पूर्णरूपसे आपको बता रहा हूँ; सुनिये—॥ १७ ॥

साधु पर्याप्तमेतावत् कृत्यश्चारित्रसंग्रहः ।
साधु धर्मे व्यवस्थानं क्रियतां यदि शक्यते ॥ १८ ॥

'दशग्रीव ! तुमने अबतक जो कुछ कुकृत्य किया है, इतना ही बहुत है । अब तो तुम्हें भलीभाँति सदाचारका संग्रह करना चाहिये । यदि हो सके तो धर्मके मार्गपर स्थित रहो; यही तुम्हारे लिये अच्छा होगा ॥ १८ ॥

दृष्टं मे नन्दनं भग्नमृषयो निहताः श्रुताः ।
देवतानां समुद्योगस्त्वत्तो राजन् मया श्रुतः ॥ १९ ॥

'तुमने नन्दनवनको उजाड़ दिया—यह मैंने अपनी आँखों देखा है । तुम्हारे द्वारा बहुत-से ऋषियोंका वध हुआ है, यह भी मेरे सुननेमें आया है । राजन् ! (इससे तंग आकर देवता तुमसे बदला लेना चाहते हैं) मैंने सुना है कि तुम्हारे विरुद्ध देवताओंका उद्योग आरम्भ हो गया है ॥ १९ ॥

निराकृतश्च बहुशस्त्वयाहं राक्षसाधिप ।
सापराधोऽपि बालो हि रक्षितव्यः स्वबान्धवैः ॥ २० ॥

'राक्षसराज ! तुमने कई बार मेरा भी तिरस्कार किया है; तथापि यदि बालक अपराध कर दे तो भी अपने बन्धु-बान्धवोंको तो उसकी रक्षा ही करनी चाहिये (इसीलिये तुम्हें हितकारक सलाह दे रहा हूँ) ॥ २० ॥

अहं तु हिमवत्पृष्ठं गतो धर्ममुपासितुम् ।
रौद्रं व्रतं समास्थाय नियतो नियतेन्द्रियः ॥ २१ ॥

'मैं शौच-संतोषादि नियमोंके पालन और इन्द्रियसंयमपूर्वक 'रौद्र-व्रत'का आश्रय ले धर्मका अनुष्ठान करनेके लिये हिमालयके एक शिखरपर गया था ॥ २१ ॥

तत्र देवो मया दृष्ट उमया सहितः प्रभुः ।
सव्यं चक्षुर्मया दैवात् तत्र देव्यां निपातितम् ॥ २२ ॥
का न्वेषेति महाराज न खल्वन्येन हेतुना ।
रूपं चानुपमं कृत्वा रुद्राणी तत्र तिष्ठति ॥ २३ ॥

'वहाँ मुझे उमासहित भगवान् महादेवजीका दर्शन हुआ। महाराज ! उस समय मैंने केवल यह जाननेके लिये कि देखूँ ये कौन हैं ? दैववश देवी पार्वतीपर अपनी बायीं दृष्टि डाली थी । निश्चय ही मैंने दूसरे किसी हेतुसे (विकारयुक्त भावनासे) उनकी ओर नहीं देखा था । उस वेलामें देवी रुद्राणी अनुपम रूप धारण करके वहाँ खड़ी थीं ॥२२-२३॥

देव्या दिव्यप्रभावेण दग्धं सव्यं ममेक्षणम् ।
रेणुध्वस्तमिव ज्योतिः पिङ्गलत्वमुपागतम् ॥ २४ ॥

'देवीके दिव्य प्रभावसे उस समय मेरी बायीं आँख जल गयी और दूसरी (दायीं आँख) भी धूलसे भरी हुई-सी पिङ्गल वर्णकी हो गयी ॥ २४ ॥

ततोऽहमन्यद् विस्तीर्णं गत्वा तस्य गिरेस्तटम्।
तूष्णीं वर्षशतान्यष्टौ समधारं महाव्रतम् ॥ २५ ॥

'तदनन्तर मैंने पर्वतके दूसरे विस्तृत तटपर जाकर आठ सौ वर्षोंतक मौनभावसे उस महान् व्रतको धारण किया ॥

समाप्ते नियमे तस्मिंस्तत्र देवो महेश्वरः।
ततः प्रीतेन मनसा प्राह वाक्यमिदं प्रभुः ॥ २६ ॥

'उस नियमके समाप्त होनेपर भगवान् महेश्वरदेवने मुझे दर्शन दिया और प्रसन्न मनसे कहा—॥ २६ ॥

प्रीतोऽस्मि तव धर्मज्ञ तपसानेन सुव्रत।
मया चैतद् व्रतं चीर्णं त्वया चैव धनाधिप ॥ २७ ॥

''उत्तम व्रतका पालन करनेवाले धर्मज्ञ धनेश्वर! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे बहुत संतुष्ट हूँ। एक तो मैंने इस व्रतका आचरण किया है और दूसरे तुमने ॥ २७ ॥

तृतीयः पुरुषो नास्ति यश्चरेद् व्रतमीदृशम्।
व्रतं सुदुष्करं ह्येतन्मयैवोत्पादितं पुरा ॥ २८ ॥

''तीसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो ऐसे कठोर व्रतका पालन कर सके। इस अत्यन्त दुष्कर व्रतको पूर्वकालमें मैंने ही प्रकट किया था ॥ २८ ॥

तत्सखित्वं मया सौम्य रोचयस्व धनेश्वर।
तपसा निर्जितश्चैव सखा भव ममानघ ॥ २९ ॥

''अतः सौम्य धनेश्वर! अब तुम मेरे साथ मित्रताका सम्बन्ध स्थापित करो, यह सम्बन्ध तुम्हें पसंद आना चाहिये। अनघ! तुमने अपने तपसे मुझे जीत लिया है; अतः मेरा मित्र बनकर रहो ॥ २९ ॥

देव्या दग्धं प्रभावेण यच्च सव्यं तवेक्षणम्।
पैङ्गल्यं यदवाप्तं हि देव्या रूपनिरीक्षणात् ॥ ३० ॥
एकाक्षिपिङ्गलीत्येव नाम स्थास्यति शाश्वतम्।
एवं तेन सखित्वं च प्राप्यानुज्ञां च शङ्करात् ॥ ३१ ॥
आगतेन मया चैवं श्रुतस्ते पापनिश्चयः।

'देवी पार्वतीके रूपपर दृष्टिपात करनेसे देवीके प्रभावसे जो तुम्हारा बायाँ नेत्र जल गया और दूसरा नेत्र भी पिङ्गलवर्णका हो गया, इससे सदा स्थिर रहनेवाला तुम्हारा 'एकाक्षिपिङ्गली' यह नाम चिरस्थायी होगा।' इस प्रकार भगवान् शङ्करके साथ मैत्री स्थापित करके उनकी आज्ञा लेकर जब मैं घर लौटा हूँ, तब मैंने तुम्हारे पापपूर्ण निश्चयकी बात सुनी है ॥ ३०-३१½ ॥

तदधर्मिष्ठसंयोगान्निवर्त कुलदूषणात् ॥ ३२ ॥
चिन्त्यते हि वधोपायः सर्षिसङ्घैः सुरैस्तव।

'अतः अब तुम अपने कुलमें कलंक लगानेवाले पापकर्मके संसर्गसे दूर हट जाओ; क्योंकि ऋषि-समुदायसहित देवता तुम्हारे वधका उपाय सोच रहे हैं' ॥ ३२½ ॥

एवमुक्तो दशग्रीवः कोपसंरक्तलोचनः ॥ ३३ ॥
हस्तान् दन्तांश्च सम्पिष्य वाक्यमेतदुवाच ह।

दूतके मुँहसे ऐसी बात सुनकर दशग्रीव रावणके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। वह हाथ मलता हुआ दाँत पीसकर बोला—॥ ३३½ ॥

विज्ञातं ते मया दूत वाक्यं यत् त्वं प्रभाषसे ॥ ३४ ॥
नैव त्वमसि नैवासौ भ्राता येनासि चोदितः।

'दूत! तू जो कुछ कह रहा है, उसका अभिप्राय मैंने समझ लिया। अब तो न तू जीवित रह सकता है और न वह भाई ही, जिसने तुझे यहाँ भेजा है ॥ ३४½ ॥

हितं नैष ममैतद्धि ब्रवीति धनरक्षकः ॥ ३५ ॥
महेश्वरसखित्वं तु मूढः श्रावयते किल।

'धनरक्षक कुबेरने जो संदेश दिया है, वह मेरे लिये हितकर नहीं है। वह मूढ मुझे (डरानेके लिये) महादेवजीके साथ अपनी मित्रताकी कथा सुना रहा है ! ॥ ३५½ ॥

नैवेदं क्षमणीयं मे यदेतद् भाषितं त्वया ॥ ३६ ॥
यदेतावन्मया कालं दूत तस्य तु मर्षितम्।
न हन्तव्यो गुरुर्ज्येष्ठो मयायमिति मन्यते ॥ ३७ ॥

'दूत! तूने जो बात यहाँ कही है, यह मेरे लिये सहन करनेयोग्य नहीं है। कुबेर मेरे बड़े भाई हैं, अतः उनका वध करना उचित नहीं है—ऐसा समझकर ही मैंने आजतक उन्हें क्षमा किया है ॥ ३६-३७ ॥

तस्य त्विदानीं श्रुत्वा मे वाक्यमेषा कृता मतिः।
त्रींल्लोकानपि जेष्यामि बाहुवीर्यमुपाश्रितः ॥ ३८ ॥

'किंतु इस समय उनकी बात सुनकर मैंने यह निश्चय किया है कि मैं अपने बाहुबलका भरोसा करके तीनों लोकोंको जीतूँगा ॥ ३८ ॥

एतन्मुहूर्तमेवाहं तस्यैकस्य तु वै कृते।
चतुरो लोकपालांस्तान् नयिष्यामि यमक्षयम् ॥ ३९ ॥

'इसी मुहूर्तमें मैं एकके ही अपराधसे उन चारों लोकपालोंको यमलोक पहुँचाऊँगा' ॥ ३९ ॥

एवमुक्त्वा तु लङ्केशो दूतं खड्गेन जघ्निवान्।
ददौ भक्षयितुं ह्येनं राक्षसानां दुरात्मनाम् ॥ ४० ॥

ऐसा कहकर लङ्केश रावणने तलवारसे उस दूतके दो टुकड़े कर डाले और उसकी लाश उसने दुरात्मा राक्षसोंको खानेके लिये दे दी ॥ ४० ॥

ततः कृतस्वस्त्ययनो रथमारुह्य रावणः।
त्रैलोक्यविजयाकाङ्क्षी ययौ यत्र धनेश्वरः ॥ ४१ ॥

तत्पश्चात् रावण स्वस्तिवाचन करके रथपर चढ़ा और तीनों लोकोंपर विजय पानेकी इच्छासे उस स्थानपर गया, जहाँ धनपति कुबेर रहते थे ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः

मन्त्रियोंसहित रावणका यक्षोंपर आक्रमण और उनकी पराजय

ततः स सचिवैः सार्धं षड्भिर्नित्यबलोद्धतः।
✓महोदरप्रहस्ताभ्यां मारीचशुकसारणैः॥ १ ॥
धूम्राक्षेण च वीरेण नित्यं समरगर्द्धिना।
वृतः सम्प्रययौ श्रीमान् क्रोधाल्लोकान् दहन्निव॥ २ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन !) तदनन्तर बलके अभिमानसे सदा उन्मत्त रहनेवाला रावण महोदर, प्रहस्त, मारीच, शुक, सारण तथा सदा ही युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले वीर धूम्राक्ष—इन छः मन्त्रियोंके साथ लङ्कासे प्रस्थित हुआ। उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो अपने क्रोधसे सम्पूर्ण लोकोंको भस्म कर डालेगा॥ १-२ ॥

पुराणि स नदीः शैलान् वनान्युपवनानि च।
अतिक्रम्य मुहूर्तेन कैलासं गिरिमागमत्॥ ३ ॥

बहुत-से नगरों, नदियों, पर्वतों, वनों और उपवनोंको लाँघकर वह दो ही घड़ीमें कैलास पर्वतपर जा पहुँचा॥३॥

संनिविष्टं गिरौ तस्मिन् राक्षसेन्द्रं निशम्य तु।
युद्धेप्सुं तं कृतोत्साहं दुरात्मानं समन्त्रिणम्॥ ४ ॥
यक्षा न शेकुः संस्थातुं प्रमुखे तस्य रक्षसः।
राज्ञो भ्रातेति विज्ञाय गता यत्र धनेश्वरः॥ ५ ॥

यक्षोंने जब सुना कि दुरात्मा राक्षसराज रावणने युद्धके लिये उत्साहित होकर अपने मन्त्रियोंके साथ कैलास पर्वतपर डेरा डाला है, तब वे उस राक्षसके सामने खड़े न हो सके। यह राजाका भाई है, ऐसा जानकर यक्षलोग उस स्थानपर गये, जहाँ धनके स्वामी कुबेर विद्यमान थे॥ ४-५ ॥

ते गत्वा सर्वमाचख्युर्भ्रातुस्तस्य चिकीर्षितम्।
अनुज्ञाता ययुर्हृष्टा युद्धाय धनदेन ते॥ ६ ॥

वहाँ जाकर उन्होंने उनके भाईका सारा अभिप्राय कह सुनाया। तब कुबेरने युद्धके लिये यक्षोंको आज्ञा दे दी; फिर तो यक्ष बड़े हर्षसे भरकर चल दिये॥ ६ ॥

ततो बलानां संक्षोभो व्यवर्धत इवोदधेः।
तस्य नैर्ऋतराजस्य शैलं संचालयन्निव॥ ७ ॥

उस समय यक्षराजकी सेनाएँ समुद्रके समान क्षुब्ध हो उठीं। उनके वेगसे वह पर्वत हिलता-सा जान पड़ा॥ ७ ॥

ततो युद्धं समभवद् यक्षराक्षससंकुलम्।
व्यथिताश्चाभवंस्तत्र सचिवा राक्षसस्य ते॥ ८ ॥

तदनन्तर यक्षों और राक्षसोंमें घमासान युद्ध छिड़ गया। वहाँ रावणके वे सचिव व्यथित हो उठे॥ ८ ॥

स दृष्ट्वा तादृशं सैन्यं दशग्रीवो निशाचरः।
हर्षनादान् बहून् कृत्वा स क्रोधादभ्यधावत॥ ९ ॥

अपनी सेनाकी वैसी दुर्दशा देख निशाचर दशग्रीव बारंबार हर्षवर्धक सिंहनाद करके रोषपूर्वक यक्षोंकी ओर दौड़ा॥ ९ ॥

ये तु ते राक्षसेन्द्रस्य सचिवा घोरविक्रमाः।
तेषां सहस्रमेकैको यक्षाणां समयोधयत्॥ १० ॥

राक्षसराजके जो सचिव थे, वे बड़े भयंकर पराक्रमी थे। उनमेंसे एक-एक सचिव हजार-हजार यक्षोंसे युद्ध करने लगा॥ १० ॥

ततो गदाभिर्मुसलैरसिभिः शक्तितोमरैः।
हन्यमानो दशग्रीवस्तत्सैन्यं समगाहत॥ ११ ॥
स निरुच्छ्वासवत् तत्र वध्यमानो दशाननः।
वर्षद्भिरिव जीमूतैर्धाराभिरवरुध्यत॥ १२ ॥

उस समय यक्ष जलकी धारा गिरानेवाले मेघोंके समान गदाओं, मूसलों, तलवारों, शक्तियों और तोमरोंकी वर्षा करने लगे। उनकी चोट सहता हुआ दशग्रीव शत्रुसेनामें घुसा। वहाँ उसपर इतनी मार पड़ने लगी कि उसे दम मारनेकी भी फुरसत नहीं मिली। यक्षोंने उसका वेग रोक दिया॥ ११-१२ ॥

न चकार व्यथां चैव यक्षशस्त्रैः समाहतः।
महीधर इवाम्भोदैर्धाराशतसमुक्षितः॥ १३ ॥

यक्षोंके शस्त्रोंसे आहत होनेपर भी उसने अपने मनमें दुःख नहीं माना; ठीक उसी तरह, जैसे मेघोंद्वारा बरसायी हुई सैकड़ों जलधाराओंसे अभिषिक्त होनेपर भी पर्वत विचलित नहीं होता है॥ १३ ॥

स महात्मा समुद्यम्य कालदण्डोपमां गदाम्।
प्रविवेश ततः सैन्यं नयन् यक्षान् यमक्षयम्॥ १४ ॥

उस महाकाय निशाचरने कालदण्डके समान भयंकर गदा उठाकर यक्षोंकी सेनामें प्रवेश किया और उन्हें यमलोक पहुँचाना आरम्भ कर दिया॥ १४ ॥

स कक्षमिव विस्तीर्णं शुष्केन्धनमिवाकुलम्।
वातेनाग्निरिवादीप्तो यक्षसैन्यं ददाह तत्॥ १५ ॥

वायुसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान रावणने तिनकोंके समान फैली और सूखे ईंधनकी भाँति आकुल हुई यक्षोंकी सेनाको जलाना आरम्भ किया॥ १५ ॥

तैस्तु तत्र महामात्यैर्महोदरशुकादिभिः।
अल्पावशेषास्ते यक्षाः कृता वातैरिवाम्बुदाः॥ १६ ॥

जैसे हवा बादलोंको उड़ा देती है, उसी तरह उन महोदर और शुक आदि महामन्त्रियोंने वहाँ यक्षोंका संहार कर डाला। अब वे थोड़ी ही संख्यामें बच रहे॥ १६ ॥

केचित् समाहता भग्नाः पतिताः समरे क्षितौ।
ओष्ठांश्च दशनैस्तीक्ष्णैरदशन् कुपिता रणे॥ १७ ॥

कितने ही यक्ष शस्त्रोंके आघातसे अङ्ग-भङ्ग हो जानेके कारण समराङ्गणमें धराशायी हो गये। कितने ही रणभूमिमें कुपित हो अपने तीखे दाँतोंसे ओठ दबाये हुए थे॥ १७ ॥

भग्नाश्चान्योन्यमालिङ्ग्य भ्रष्टशस्त्रा रणाजिरे।
सीदन्ति च तदा यक्षाः कूला इव जलेन ह ॥ १८ ॥

कोई थककर एक-दूसरेसे लिपट गये। उनके अस्त्र-शस्त्र गिर गये और वे समराङ्गणमें उसी तरह शिथिल होकर गिरे जैसे जलके वेगसे नदीके किनारे टूट पड़ते हैं ॥ १८ ॥

हतानां गच्छतां स्वर्गं युध्यतामथ धावताम्।
प्रेक्षतामृषिसङ्घानां न बभूवान्तरं दिवि ॥ १९ ॥

मर-मरकर स्वर्गमें जाते, जूझते और दौड़ते हुए यक्षोंकी तथा आकाशमें खड़े होकर युद्ध देखनेवाले ऋषिसमूहोंकी संख्या इतनी बढ़ गयी थी कि आकाशमें उन सबके लिये जगह नहीं अँटती थी ॥ १९ ॥

भग्नांस्तु तान् समालक्ष्य यक्षेन्द्रांस्तु महाबलान्।
धनाध्यक्षो महाबाहुः प्रेषयामास यक्षकान् ॥ २० ॥

महाबाहु धनाध्यक्षने उन यक्षोंको भागते देख दूसरे महाबली यक्षराजोंको युद्धके लिये भेजा ॥ २० ॥

एतस्मिन्नन्तरे राम विस्तीर्णबलवाहनः।
प्रेषितो न्यपतद् यक्षो नाम्ना संयोधकण्टकः ॥ २१ ॥

श्रीराम! इसी बीचमें कुबेरका भेजा हुआ संयोधकण्टक नामक यक्ष वहाँ आ पहुँचा। उसके साथ बहुत-सी सेना और सवारियाँ थीं ॥ २१ ॥

तेन चक्रेण मारीचो विष्णुनेव रणे हतः।
पतितो भूतले शैलात् क्षीणपुण्य इव ग्रहः ॥ २२ ॥

उसने आते ही भगवान् विष्णुकी भाँति चक्रसे रणभूमिमें मारीचपर प्रहार किया। उससे घायल होकर वह राक्षस कैलाससे नीचे पृथ्वीपर उसी तरह गिर पड़ा, जैसे पुण्य क्षीण होनेपर स्वर्गवासी ग्रह वहाँसे भूतलपर गिर पड़ा हो ॥ २२ ॥

ससंज्ञस्तु मुहूर्तेन स विश्रम्य निशाचरः।
तं यक्षं योधयामास स च भग्नः प्रदुद्रुवे ॥ २३ ॥

दो घड़ीके बाद होशमें आनेपर निशाचर मारीच विश्राम करके लौटा और उस यक्षके साथ युद्ध करने लगा। तब वह यक्ष भाग खड़ा हुआ ॥ २३ ॥

ततः काञ्चनचित्राङ्गं वैदूर्यरजतोक्षितम्।
मर्यादां प्रतिहाराणां तोरणान्तरमाविशत् ॥ २४ ॥

तदनन्तर रावणने कुबेरपुरीके फाटकमें, जिसके प्रत्येक अङ्गमें सुवर्ण जड़ा हुआ था तथा जो नीलम और चाँदीसे भी विभूषित था, प्रवेश किया। यहाँ द्वारपालोंका पहरा लगता था। वह फाटक ही सीमा था। उससे आगे दूसरे लोग नहीं जा सकते थे ॥ २४ ॥

तं तु राजन् दशग्रीवं प्रविशन्तं निशाचरम्।
सूर्यभानुरिति ख्यातो द्वारपालो न्यवारयत् ॥ २५ ॥

महाराज श्रीराम! जब निशाचर दशग्रीव फाटकके भीतर प्रवेश करने लगा, तब सूर्यभानु नामक द्वारपालने उसे रोका ॥ २५ ॥

स वार्यमाणो यक्षेण प्रविवेश निशाचरः।
यदा तु वारितो राम न व्यतिष्ठत् स राक्षसः ॥ २६ ॥
ततस्तोरणमुत्पाट्य तेन यक्षेण ताडितः।
रुधिरं प्रस्रवन् भाति शैलो धातुस्रवैरिव ॥ २७ ॥

जब यक्षके रोकनेपर भी वह निशाचर न रुका और भीतर प्रविष्ट हो गया, तब द्वारपालने फाटकमें लगे हुए एक खंभेको उखाड़कर उसे दशग्रीवके ऊपर दे मारा। उसके शरीरसे रक्तकी धारा बहने लगी, मानो किसी पर्वतसे गेरूमिश्रित जलका झरना गिर रहा हो ॥ २६-२७ ॥

स शैलशिखराभेण तोरणेन समाहतः।
जगाम न क्षतिं वीरो वरदानात् स्वयम्भुवः ॥ २८ ॥

पर्वतशिखरके समान प्रतीत होनेवाले उस खंभेकी चोट खाकर भी वीर दशग्रीवकी कोई क्षति नहीं हुई। वह ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसे उस यक्षके द्वारा मारा न जा सका ॥ २८ ॥

तेनैव तोरणेनाथ यक्षस्तेनाभिताडितः।
नादृश्यत तदा यक्षो भस्मीकृततनुस्तदा ॥ २९ ॥

तब उसने भी वही खंभ उठाकर उसके द्वारा यक्षपर प्रहार किया, इससे यक्षका शरीर चूर-चूर हो गया। फिर उसकी शकल नहीं दिखायी दी ॥ २९ ॥

ततः प्रदुद्रुवुः सर्वे दृष्ट्वा रक्षःपराक्रमम्।
ततो नदीर्गुहाश्चैव विविशुर्भयपीडिताः।
त्यक्तप्रहरणाः श्रान्ता विवर्णवदनास्तदा ॥ ३० ॥

उस राक्षसका यह पराक्रम देखकर सभी यक्ष भाग गये। कोई नदियोंमें कूद पड़े और कोई भयसे पीड़ित हो गुफाओंमें घुस गये। सबने अपने हथियार त्याग दिये थे। सभी थक गये थे और सबके मुखोंकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः

माणिभद्र तथा कुबेरकी पराजय और रावणद्वारा पुष्पक विमानका अपहरण

ततस्ताँल्लक्ष्य वित्रस्तान् यक्षेन्द्रांश्च सहस्रशः।
धनाध्यक्षो महायक्षं माणिभद्रमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) धनाध्यक्षने देखा, हजारों यक्षप्रवर भयभीत होकर भाग रहे हैं; तब उन्होंने माणिभद्र नामक एक महायक्षसे कहा— ॥ १ ॥

रावणं जहि यक्षेन्द्र दुर्वृत्तं पापचेतसम्।

शरणं भव वीराणां यक्षाणां युद्धशालिनाम् ॥ २ ॥

'यक्षप्रवर ! रावण पापात्मा एवं दुराचारी है, तुम उसे मार डालो और युद्धमें शोभा पानेवाले वीर यक्षोंको शरण दो—उनकी रक्षा करो' ॥ २ ॥

एवमुक्तो महाबाहुर्माणिभद्रः सुदुर्जयः ।
वृतो यक्षसहस्रैस्तु चतुर्भिः समयोधयत् ॥ ३ ॥

महाबाहु माणिभद्र अत्यन्त दुर्जय वीर थे । कुबेरकी उक्त आज्ञा पाकर वे चार हजार यक्षोंकी सेना साथ ले फाटकपर गये और राक्षसोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ ३ ॥

ते गदामुसलप्रासैः शक्तितोमरमुद्‍गरैः ।
अभिघ्नन्तस्तदा यक्षा राक्षसान् समुपाद्रवन् ॥ ४ ॥

उस समय यक्षयोद्धा गदा, मूसल, प्रास, शक्ति, तोमर तथा मुद्गरोंका प्रहार करते हुए राक्षसोंपर टूट पड़े ॥ ४ ॥

कुर्वन्तस्तुमुलं युद्धं चरन्तः श्येनवल्लघु ।
बाढं प्रयच्छ नेच्छामि दीयतामिति भाषिणः ॥ ५ ॥

वे घोर युद्ध करते हुए बाज पक्षीकी तरह तीव्र गतिसे सब ओर विचरने लगे । कोई कहता 'मुझे युद्धका अवसर दो ।' दूसरा बोलता—'मैं यहाँसे पीछे हटना नहीं चाहता ।' फिर तीसरा बोल उठता—'मुझे अपना हथियार दो' ॥५॥

ततो देवाः सगन्धर्वा ऋषयो ब्रह्मवादिनः ।
दृष्ट्वा तत् तुमुलं युद्धं परं विस्मयमागमन् ॥ ६ ॥

उस तुमुल युद्धको देखकर देवता, गन्धर्व तथा ब्रह्मवादी ऋषि भी बड़े आश्चर्यमें पड़ गये थे ॥ ६ ॥

यक्षाणां तु प्रहस्तेन सहस्रं निहतं रणे ।
महोदरेण चानिन्द्यं सहस्रमपरं हतम् ॥ ७ ॥

उस रणभूमिमें प्रहस्तने एक हजार यक्षोंका संहार कर डाला । फिर महोदरने दूसरे एक सहस्र प्रशंसनीय यक्षोंका विनाश किया ॥ ७ ॥

क्रुद्धेन च तदा राजन् मारीचेन युयुत्सुना ।
निमेषान्तरमात्रेण द्वे सहस्रे निपातिते ॥ ८ ॥

राजन् ! उस समय कुपित हुए रणोत्सुक मारीचने पलक मारते मारते शेष दो हजार यक्षोंको धराशायी कर दिया ॥ ८ ॥

✓**क्व च यक्षार्जवं युद्धं क्व च मायाबलाश्रयम् ।**
रक्षसां पुरुषव्याघ्र तेन तेऽभ्यधिका युधि ॥ ९ ॥

पुरुषसिंह ! कहाँ यक्षोंका सरलतापूर्वक युद्ध ? और कहाँ राक्षसोंका मायामय संग्राम ? वे अपने मायाबलके भरोसे ही यक्षोंकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुए ॥ ९ ॥

धूम्राक्षेण समागम्य माणिभद्रो महारणे ।
मुसलेनोरसि क्रोधात् ताडितो न च कम्पितः ॥ १० ॥

उस महासमरमें धूम्राक्षने आकर क्रोधपूर्वक माणिभद्रकी छातीमें मूसलका प्रहार किया; किंतु इससे वे विचलित नहीं हुए ॥ १० ॥

ततो गदां समाविध्य माणिभद्रेण राक्षसः ।
धूम्राक्षस्ताडितो मूर्ध्नि विह्वलः स पपात ह ॥ ११ ॥

फिर माणिभद्रने भी गदा घुमाकर उसे राक्षस धूम्राक्षके मस्तकपर दे मारा । उसकी चोटसे व्याकुल हो धूम्राक्ष धरतीपर गिर पड़ा ॥ ११ ॥

धूम्राक्षं ताडितं दृष्ट्वा पतितं शोणितोक्षितम् ।
अभ्यधावत संग्रामे माणिभद्रं दशाननः ॥ १२ ॥

धूम्राक्षको गदाकी चोटसे घायल एवं खूनसे लथपथ होकर पृथ्वीपर पड़ा देख दशमुख रावणने रणभूमिमें माणिभद्रपर धावा किया ॥ १२ ॥

संक्रुद्धमभिधावन्तं माणिभद्रो दशाननम् ।
शक्तिभिस्ताडयामास तिसृभिर्यक्षपुङ्गवः ॥ १३ ॥

दशाननको क्रोधमें भरकर धावा करते देख यक्षप्रवर माणिभद्रने उसके ऊपर तीन शक्तियोंद्वारा प्रहार किया ॥१३॥

ताडितो माणिभद्रस्य मुकुटे प्राहरद् रणे ।
तस्य तेन प्रहारेण मुकुटं पार्श्वमागतम् ॥ १४ ॥

चोट खाकर रावणने रणभूमिमें माणिभद्रके मुकुटपर वार किया । उसके उस प्रहारसे उनका मुकुट खिसककर बगलमें आ गया ॥ १४ ॥

ततःप्रभृति यक्षोऽसौ पार्श्वमौलिरभूत् किल ।
तस्मिंस्तु विमुखीभूते माणिभद्रे महात्मनि ।
संनादः सुमहान् राजंस्तस्मिन् शैले व्यवर्धत ॥ १५ ॥

तबसे माणिभद्र यक्ष पार्श्वमौलिके नामसे प्रसिद्ध हुए । महामना माणिभद्र यक्ष युद्धसे भाग चले । राजन् ! उनके युद्धसे विमुख होते ही उस पर्वतपर राक्षसोंका महान् सिंहनाद सब ओर फैल गया ॥ १५ ॥

ततो दूरात् प्रददृशे धनाध्यक्षो गदाधरः ।
शुक्रप्रौष्ठपदाभ्यां च पद्मशङ्खसमावृतः ॥ १६ ॥

इसी समय धनके स्वामी गदाधारी कुबेर दूरसे आते दिखायी दिये । उनके साथ शुक्र और प्रौष्ठपद नामक मन्त्री तथा शङ्ख और पद्मनामक धनके अधिष्ठाता देवता भी थे ॥ १६ ॥

स दृष्ट्वा भ्रातरं संख्ये शापाद् विभ्रष्टगौरवम् ।
उवाच वचनं धीमान् युक्तं पैतामहे कुले ॥ १७ ॥

विश्रवा मुनिके शापसे क्रूर प्रकृति हो जानेके कारण जो गुरुजनोंके प्रति प्रणाम आदि व्यवहार भी नहीं कर पाता था गुरुजनोचित शिष्टाचारसे भी वञ्चित था, उस अपने भाई रावणको युद्धमें उपस्थित देख बुद्धिमान् कुबेरने ब्रह्माजीके कुलमें उत्पन्न हुए पुरुषके योग्य बात कही—॥ १७ ॥

यन्मया वार्यमाणस्त्वं नावगच्छसि दुर्मते ।
पश्चादस्य फलं प्राप्य ज्ञास्यसे निरयं गतः ॥ १८ ॥

'दुर्बुद्धि दशग्रीव ! मेरे मना करनेपर भी इस समय तुम समझ नहीं रहे हो, किंतु आगे चलकर जब इस कुकर्मका

फल पाओगे और नरकमें पड़ोगे, उस समय मेरी बात तुम्हारी समझमें आयेगी ॥ १८ ॥

यो हि मोहाद् विषं पीत्वा नावगच्छति दुर्मतिः ।
स तस्य परिणामान्ते जानीते कर्मणः फलम् ॥ १९ ॥

'जो खोटी बुद्धिवाला पुरुष मोहवश विषको पीकर भी उसे विष नहीं समझता है, उसे उसका परिणाम प्राप्त हो जानेपर अपने किये हुए उस कर्मके फलका ज्ञान होता है ॥ १९ ॥

दैवतानि न नन्दन्ति धर्मयुक्तेन केनचित् ।
येन त्वमीदृशं भावं नीतस्तच्च न बुद्ध्यसे ॥ २० ॥

'तुम्हारे किसी व्यापारसे, वह तुम्हारी मान्यताके अनुसार धर्मयुक्त ही क्यों न हो, देवता प्रसन्न नहीं होते हैं; इसीलिये तुम ऐसे क्रूरभावको प्राप्त हो गये हो, परंतु यह बात तुम्हारी समझमें नहीं आती है ॥ २० ॥

मातरं पितरं विप्रमाचार्यं चावमन्यते ।
स पश्यति फलं तस्य प्रेतराजवशं गतः ॥ २१ ॥

'जो माता, पिता, ब्राह्मण और आचार्यका अपमान करता है, वह यमराजके वशमें पड़कर उस पापका फल भोगता है ॥ २१ ॥

अध्रुवे हि शरीरे यो न करोति तपोऽर्जनम् ।
स पश्चात् तप्यते मूढो मृतो गत्वाऽऽत्मनो गतिम् ॥ २२ ॥

'यह शरीर क्षणभङ्गुर है । इसे पाकर जो तपका उपार्जन नहीं करता, वह मूर्ख मरनेके बाद जब उसे अपने दुष्कर्मोंका फल मिलता है, पश्चात्ताप करता है ॥ २२ ॥

धर्माद् राज्यं धनं सौख्यमधर्माद् दुःखमेव च ।
तस्माद् धर्मं सुखार्थाय कुर्यात् पापं विसर्जयेत् ॥ २३ ॥

'धर्मसे राज, धन और सुखकी प्राप्ति होती है । अधर्मसे केवल दुःख ही भोगना पड़ता है, अतः सुखके लिये धर्मका आचरण करे, पापको सर्वथा त्याग दे ॥ २३ ॥

पापस्य हि फलं दुःखं तद् भोक्तव्यमिहात्मना ।
तस्मादात्मापघातार्थं मूढः पापं करिष्यति ॥ २४ ॥

'पापका फल केवल दुःख है और उसे स्वयं ही यहाँ भोगना पड़ता है; इसलिये जो मूढ़ पाप करेगा, वह मानो स्वयं ही अपना वध कर लेगा ॥ २४ ॥

कस्यचिन्न हि दुर्बुद्धेश्छन्दतो जायते मतिः ।
यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमश्नुते ॥ २५ ॥

'किसी भी दुर्बुद्धि पुरुषको (शुभ कर्मका अनुष्ठान और गुरुजनोंकी सेवा किये बिना) स्वेच्छामात्रसे उत्तम बुद्धिकी प्राप्ति नहीं होती । वह जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल भोगता है ॥ २५ ॥

ऋद्धिं रूपं बलं पुत्रान् वित्तं शूरत्वमेव च ।
प्राप्नुवन्ति नरा लोके निर्जितं पुण्यकर्मभिः ॥ २६ ॥

'संसारके पुरुषोंको समृद्धि, सुन्दर रूप, बल, वैभव, वीरता तथा पुत्र आदिकी प्राप्ति पुण्यकर्मोंके अनुष्ठानसे ही होती है ॥ २६ ॥

एवं निरयगामी त्वं यस्य ते मतिरीदृशी ।
न त्वां समभिभाषिष्येऽसद्वृत्तेष्वेव निर्णयः ॥ २७ ॥

'इसी प्रकार अपने दुष्कर्मोंके कारण तुम्हें भी नरकमें जाना पड़ेगा; क्योंकि तुम्हारी बुद्धि ऐसी पापासक्त हो रही है । दुराचारियोंसे बात नहीं करना चाहिये, यही शास्त्रोंका निर्णय है; अतः मैं भी अब तुमसे कोई बात नहीं करूँगा' ॥ २७ ॥

एवमुक्तास्ततस्तेन तस्यामात्याः समाहताः ।
मारीचप्रमुखाः सर्वे विमुखा विप्रदुद्रुवुः ॥ २८ ॥

इसी तरहकी बात उन्होंने रावणके मन्त्रियोंसे भी कही । फिर उनपर शस्त्रोंद्वारा प्रहार किया । इससे आहत होकर वे मारीच आदि सब राक्षस युद्धसे मुँह मोड़कर भाग गये ॥ २८ ॥

ततस्तेन दशग्रीवो यक्षेन्द्रेण महात्मना ।
गदयाभिहतो मूर्ध्नि न च स्थानात् प्रकम्पितः ॥ २९ ॥

तदनन्तर महामना यक्षराज कुबेरने अपनी गदासे रावणके मस्तकपर प्रहार किया । उससे आहत होकर भी वह अपने स्थानसे विचलित नहीं हुआ ॥ २९ ॥

ततस्तौ राम निघ्नन्तौ तदान्योन्यं महामृधे ।
न विह्वलौ न च श्रान्तौ तावुभौ यक्षराक्षसौ ॥ ३० ॥

श्रीराम ! तत्पश्चात् वे दोनों यक्ष और राक्षस—कुबेर तथा रावण दोनों उस महासमरमें एक दूसरेपर प्रहार करने लगे; परंतु दोनोंमेंसे कोई भी न तो घबराता था न थकता ही था ॥

आग्नेयमस्त्रं तस्मै स मुमोच धनदस्तदा ।
राक्षसेन्द्रो वारुणेन तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥ ३१ ॥

उस समय कुबेरने रावणपर आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया, परंतु राक्षसराज रावणने वारुणास्त्रके द्वारा उनके उस अस्त्रको शान्त कर दिया ॥ ३१ ॥

ततो मायां प्रविष्टोऽसौ राक्षसीं राक्षसेश्वरः ।
रूपाणां शतसाहस्रं विनाशाय चकार च ॥ ३२ ॥

तत्पश्चात् उस राक्षसराजने राक्षसी मायाका आश्रय लिया और कुबेरका विनाश करनेके लिये लाखों रूप धारण कर लिये ॥ ३२ ॥

व्याघ्रो वराहो जीमूतः पर्वतः सागरो द्रुमः ।
यक्षो दैत्यस्वरूपी च सोऽदृश्यत दशाननः ॥ ३३ ॥

उस समय दशमुख रावण बाघ, सूअर, मेघ, पर्वत, समुद्र, वृक्ष, यक्ष और दैत्य सभी रूपोंमें दिखायी देने लगा ॥ ३३ ॥

बहूनि च करोति स्म दृश्यन्ते न त्वसौ ततः ।
प्रतिगृह्य ततो राम महदस्त्रं दशाननः ॥ ३४ ॥
जघान मूर्ध्नि धनदं व्याविद्ध्य महतीं गदाम् ।

इस प्रकार वह बहुत-से रूप प्रकट करता था । वे रूप ही दिखायी देते थे, वह स्वयं दृष्टिगोचर नहीं होता था ।

श्रीराम! तदनन्तर दशमुखने एक बहुत बड़ी गदा हाथमें ली और उसे घुमाकर कुबेरके मस्तकपर दे मारा ॥ ३४½ ॥

एवं स तेनाभिहतो विह्वलः शोणितोक्षितः ॥ ३५ ॥
कृत्तमूल इवाशोको निपपात धनाधिपः ।

इस प्रकार रावणद्वारा आहत हो धनके स्वामी कुबेर रक्तसे नहा उठे और व्याकुल हो जड़से कटे हुए अशोककी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३५½ ॥

ततः पद्मादिभिस्तत्र निधिभिः स तदा वृतः ॥ ३६ ॥
धनदोच्छ्वासितस्तैस्तु वनमानीय नन्दनम् ।

तत्पश्चात् पद्म आदि निधियोंके अधिष्ठाता देवताओंने उन्हें घेरकर उठा लिया और नन्दनवनमें ले जाकर चेत कराया ॥ ३६½ ॥

निर्जित्य राक्षसेन्द्रस्तं धनदं हृष्टमानसः ॥ ३७ ॥
पुष्पकं तस्य जग्राह विमानं जयलक्षणम् ।

इस तरह कुबेरको जीतकर राक्षसराज रावण अपने मनमें बहुत प्रसन्न हुआ और अपनी विजयके चिह्नके रूपमें उसने उनका पुष्पकविमान अपने अधिकारमें कर लिया ॥ ३७½ ॥

काञ्चनस्तम्भसंवीतं वैदूर्यमणितोरणम् ॥ ३८ ॥
मुक्ताजालप्रतिच्छन्नं सर्वकालफलद्रुमम् ।

उस विमानमें सोनेके खम्भे और वैदूर्यमणिके फाटक लगे थे। वह सब ओरसे मोतियोंकी जालीसे ढका हुआ था। उसके भीतर ऐसे-ऐसे वृक्ष लगे थे, जो सभी ऋतुओंमें फल देनेवाले थे ॥ ३८½ ॥

मनोजवं कामगमं कामरूपं विहंगमम् ॥ ३९ ॥
मणिकाञ्चनसोपानं तप्तकाञ्चनवेदिकम् ।

उसका वेग मनके समान तीव्र था। वह अपने ऊपर बैठे हुए लोगोंकी इच्छाके अनुसार सब जगह जा सकता था तथा चालक जैसा चाहे, वैसा छोटा या बड़ा रूप धारण कर लेता था। उस आकाशचारी विमानमें मणि और सुवर्णकी सीढ़ियाँ तथा तपाये हुए सोनेकी वेदियाँ बनी थीं ॥ ३९½ ॥

देवोपवाह्यमक्षय्यं सदा दृष्टिमनःसुखम् ॥ ४० ॥
बह्वाश्चर्यं भक्तिचित्रं ब्रह्मणा परिनिर्मितम् ।

वह देवताओंका ही वाहन था और टूटने-फूटनेवाला नहीं था। सदा देखनेमें सुन्दर और चित्तको प्रसन्न करनेवाला था। उसके भीतर अनेक प्रकारके आश्चर्यजनक चित्र थे। उसकी दीवारोंपर तरह-तरहके बेल-बूटे बने थे, जिनसे उनकी विचित्र शोभा हो रही थी। ब्रह्मा (विश्वकर्मा) ने उसका निर्माण किया था ॥ ४०½ ॥

निर्मितं सर्वकामैस्तु मनोहरमनुत्तमम् ॥ ४१ ॥
न तु शीतं न चोष्णं च सर्वर्तुसुखदं शुभम् ।
स तं राजा समारुह्य कामगं वीर्यनिर्जितम् ॥ ४२ ॥
जितं त्रिभुवनं मेने दर्पोत्सेकात् सुदुर्मतिः ।
जित्वा वैश्रवणं देवं कैलासात् समवातरत् ॥ ४३ ॥

वह सब प्रकारकी मनोवाञ्छित वस्तुओंसे सम्पन्न, मनोहर और परम उत्तम था। न अधिक ठंडा था और न अधिक गरम। सभी ऋतुओंमें आराम पहुँचानेवाला तथा मङ्गलकारी था। अपने पराक्रमसे जीते हुए उस इच्छानुसार चलनेवाले विमानपर आरूढ़ हो अत्यन्त खोटी बुद्धिवाला राजा रावण अहंकारकी अधिकतासे ऐसा मानने लगा कि मैंने तीनों लोकोंको जीत लिया। इस प्रकार वैश्रवणदेवको पराजित करके वह कैलाससे नीचे उतरा ॥ ४१-४३ ॥

स तेजसा विपुलमवाप्य तं जयं
प्रतापवान् विमलकिरीटहारवान् ।
रराज वै परमविमानमास्थितो
निशाचरः सदसि गतो यथानलः ॥ ४४ ॥

निर्मल किरीट और हारसे विभूषित वह प्रतापी निशाचर अपने तेजसे उस महान् विजयको पाकर उस उत्तम विमानपर आरूढ़ हो यज्ञमण्डपमें प्रज्वलित होनेवाले अग्निदेवकी भाँति शोभा पाने लगा ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पंद्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः

नन्दीश्वरका रावणको शाप, भगवान् शङ्करद्वारा रावणका मान-भङ्ग तथा उनसे चन्द्रहास नामक खड्गकी प्राप्ति

स जित्वा धनदं राम भ्रातरं राक्षसाधिपः ।
महासेनप्रसूतिं तद् ययौ शरवणं महत् ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—) रघुकुलनन्दन राम! अपने भाई कुबेरको जीतकर राक्षसराज दशग्रीव 'शरवण' नामसे प्रसिद्ध सरकंडोंके विशाल वनमें गया, जहाँ महासेन कार्तिकेयजीकी उत्पत्ति हुई थी ॥ १ ॥

अथापश्यद् दशग्रीवो रौक्मं शरवणं महत् ।
गभस्तिजालसंवीतं द्वितीयमिव भास्करम् ॥ २ ॥

वहाँ पहुँचकर दशग्रीवने सुवर्णमयी कान्तिसे युक्त उस विशाल शरवण (सरकंडोंके जंगल) को देखा, जो किरण-समूहोंसे व्याप्त होनेके कारण दूसरे सूर्यदेवके समान प्रकाशित हो रहा था ॥ २ ॥

स पर्वतं समारुह्य कंचिद् रम्यवनान्तरम् ।
प्रेक्षते पुष्पकं तत्र राम विष्टम्भितं तदा ॥ ३ ॥

उसके पास ही कोई पर्वत था, जहाँकी वनस्थली बड़ी रमणीय थी । श्रीराम ! जब वह उसपर चढ़ने लगा, तब देखता है कि पुष्पक विमानकी गति रुक गयी ॥ ३ ॥

विष्टब्धं किमिदं कस्मान्नागमत् कामगं कृतम् ।
अचिन्तयद् राक्षसेन्द्रः सचिवैस्तैः समावृतः ॥ ४ ॥
किंनिमित्तमिच्छया मे नेदं गच्छति पुष्पकम् ।
पर्वतस्योपरिष्ठस्य कर्मेदं कस्यचिद् भवेत् ॥ ५ ॥

तब वह राक्षसराज अपने उन मन्त्रियोंके साथ मिलकर विचार करने लगा—'क्या कारण है कि यह पुष्पक विमान रुक गया ? यह तो स्वामीकी इच्छाके अनुसार चलनेवाला बनाया गया है । फिर आगे क्यों नहीं बढ़ता ? कौन-सा ऐसा कारण बन गया, जिससे यह पुष्पक विमान मेरी इच्छाके अनुसार नहीं चल रहा है ? सम्भव है, इस पर्वतके ऊपर कोई रहता हो, उसीका यह कर्म हो सकता है ?' ॥ ४-५ ॥

ततोऽब्रवीत् तदा राम मारीचो बुद्धिकोविदः ।
नेदं निष्कारणं राजन् पुष्पकं यन्न गच्छति ॥ ६ ॥

श्रीराम ! तब बुद्धिकुशल मारीचने कहा—'राजन् ! यह पुष्पक विमान जो आगे नहीं बढ़ रहा है, इसमें कुछ-न-कुछ कारण अवश्य है । अकारण ही ऐसी घटना घटित हो गयी हो, यह बात नहीं है ॥ ६ ॥

अथवा पुष्पकमिदं धनदान्नान्यवाहनम् ।
अतो निस्पन्दमभवद् धनाध्यक्षविनाकृतम् ॥ ७ ॥

'अथवा यह पुष्पक विमान कुबेरके सिवा दूसरेका वाहन नहीं हो सकता, इसीलिये उनके बिना यह निश्चेष्ट हो गया है' ॥ ७ ॥

इति वाक्यान्तरे तस्य करालः कृष्णपिङ्गलः ।
वामनो विकटो मुण्डी नन्दी ह्रस्वभुजो बली ॥ ८ ॥
ततः पार्श्वमुपागम्य भवस्यानुचरोऽब्रवीत् ।
नन्दीश्वरो वचश्चेदं राक्षसेन्द्रमशङ्कितः ॥ ९ ॥

उसकी इस बातके बीचमें ही भगवान् शङ्करके पार्षद नन्दीश्वर रावणके पास आ पहुँचे, जो देखनेमें बड़े विकराल थे । उनकी अङ्गकान्ति काले एवं पिङ्गल वर्णकी थी । वे नाटे कदके विकट रूपवाले थे । उनका मस्तक मुण्डित और भुजाएँ छोटी-छोटी थीं । वे बड़े बलवान् थे । नन्दीने निःशङ्क होकर राक्षसराज दशग्रीवसे इस प्रकार कहा—॥ ८-९ ॥

निवर्तस्व दशग्रीव शैले क्रीडति शंकरः ।
सुपर्णनागयक्षाणां देवगन्धर्वरक्षसाम् ॥ १० ॥
सर्वेषामेव भूतानामगम्यः पर्वतः कृतः ।

'दशग्रीव ! लौट जाओ । इस पर्वतपर भगवान् शङ्कर क्रीडा करते हैं । यहाँ सुपर्ण, नाग, यक्ष, देवता, गन्धर्व और राक्षस सभी प्राणियोंका आना-जाना बंद कर दिया गया है' ॥

इति नन्दिवचः श्रुत्वा क्रोधात् कम्पितकुण्डलः ॥ ११ ॥
रोषात् तु ताम्रनयनः पुष्पकादवरुह्य सः ।
कोऽयं शङ्कर इत्युक्त्वा शैलमूलमुपागतः ॥ १२ ॥

नन्दीकी यह बात सुनकर दशग्रीव कुपित हो उठा । उसके कानोंके कुण्डल हिलने लगे । आँखें रोषसे लाल हो गयीं और वह पुष्पकसे उतरकर बोला—'कौन है यह शङ्कर ?' ऐसा कहकर वह पर्वतके मूलभागमें आ गया ॥ ११-१२ ॥

सोऽपश्यन्नन्दिनं तत्र देवस्यादूरतः स्थितम् ।
दीप्तं शूलमवष्टभ्य द्वितीयमिव शङ्करम् ॥ १३ ॥

वहाँ पहुँचकर उसने देखा, भगवान् शङ्करसे थोड़ी ही दूरपर चमचमाता हुआ शूल हाथमें लिये नन्दी दूसरे शिवकी भाँति खड़े हैं ॥ १३ ॥

तं दृष्ट्वा वानरमुखमवज्ञाय स राक्षसः ।
प्रहासं मुमुचे तत्र सतोय इव तोयदः ॥ १४ ॥

उनका मुँह वानरके समान था । उन्हें देखकर वह निशाचर उनका तिरस्कार करता हुआ सजल जलधरके समान गम्भीर स्वरमें ठहाका मारकर हँसने लगा ॥ १४ ॥

तं क्रुद्धो भगवान् नन्दी शङ्करस्यापरा तनुः ।
अब्रवीत् तत्र तद् रक्षो दशाननमुपस्थितम् ॥ १५ ॥

यह देख शिवके दूसरे स्वरूप भगवान् नन्दी कुपित हो वहाँ पास ही खड़े हुए निशाचर दशमुखसे इस प्रकार बोले—॥

यस्माद् वानररूपं मामवज्ञाय दशानन ।
अशनीपातसंकाशमपहासं प्रमुक्तवान् ॥ १६ ॥
तस्मान्मद्वीर्यसंयुक्ता मद्रूपसमतेजसः ।
उत्पत्स्यन्ति वधार्थं हि कुलस्य तव वानराः ॥ १७ ॥

'दशानन ! तुमने वानररूपमें मुझे देखकर मेरी अवहेलना की है और वज्रपातके समान भयानक अट्टहास किया है; अतः तुम्हारे कुलका विनाश करनेके लिये मेरे ही समान पराक्रम, रूप और तेजसे सम्पन्न वानर उत्पन्न होंगे ॥

नखदंष्ट्रायुधाः क्रूर मनःसम्पातरंहसः ।
युद्धोन्मत्ता बलोद्रिक्ताः शैला इव विसर्पिणः ॥ १८ ॥

'क्रूर निशाचर ! नख और दाँत ही उन वानरोंके अस्त्र होंगे तथा मनके समान उनका तीव्र वेग होगा । वे युद्धके लिये उन्मत्त रहनेवाले और अतिशय बलशाली होंगे तथा चलते-फिरते पर्वतोंके समान जान पड़ेंगे ॥ १८ ॥

ते तव प्रबलं दर्पमुत्सेधं च पृथग्विधम् ।
व्यपनेष्यन्ति सम्भूय सहामात्यसुतस्य च ॥ १९ ॥

'वे एकत्र होकर मन्त्री और पुत्रोंसहित तुम्हारे प्रबल अभिमानको और विशालकाय होनेके गर्वको चूर-चूर कर देंगे ॥ १९ ॥

किं त्विदानीं मया शक्यं हन्तुं त्वां हे निशाचर ।
न हन्तव्यो हतस्त्वं हि पूर्वमेव स्वकर्मभिः ॥ २० ॥

'ओ निशाचर ! मैं तुम्हें अभी मार डालनेकी शक्ति रखता हूँ, तथापि तुम्हें मारना नहीं है; क्योंकि अपने कुत्सित

कर्मोंद्वारा तुम पहलेसे ही मारे जा चुके हो (अतः मरे हुए-को मारनेसे क्या लाभ !)’ ॥ २० ॥

इत्युदीरितवाक्ये तु देवे तस्मिन् महात्मनि ।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खाच्च्युता ॥ २१ ॥

महामना भगवान् नन्दीके इतना कहते ही देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी॥

अचिन्तयित्वा स तदा नन्दिवाक्यं महाबलः ।
पर्वतं तु समासाद्य वाक्यमाह दशाननः ॥ २२ ॥

परंतु महाबली दशाननने उस समय नन्दीके उन वचनों-की कोई परवा नहीं की और उस पर्वतके निकट जाकर कहा—॥ २२ ॥

पुष्पकस्य गतिश्छिन्ना यत्कृते मम गच्छतः ।
तमिमं शैलमुन्मूलं करोमि तव गोपते ॥ २३ ॥

‘पशुपते ! जिसके कारण यात्रा करते समय मेरे पुष्पक विमानकी गति रुक गयी, तुम्हारे उस पर्वतको, जो यह मेरे सामने खड़ा है, मैं जड़से उखाड़ फेंकता हूँ ॥ २३ ॥

केन प्रभावेण भवो नित्यं क्रीडति राजवत् ।
विज्ञातव्यं न जानीते भयस्थानमुपस्थितम् ॥ २४ ॥

‘किस प्रभावसे शङ्कर प्रतिदिन यहाँ राजाकी भाँति क्रीडा करते हैं ? इन्हें इस जानने योग्य बातका भी पता नहीं है कि इनके समक्ष भयका स्थान उपस्थित है’ ॥ २४ ॥

एवमुक्त्वा ततो राम भुजान् विक्षिप्य पर्वते ।
तोलयामास तं शीघ्रं स शैलः समकम्पत ॥ २५ ॥

श्रीराम ! ऐसा कहकर दशग्रीवने पर्वतके निचले भागमें अपनी भुजाएँ लगायीं और उसे शीघ्र उठा लेनेका प्रयत्न किया । वह पर्वत हिलने लगा ॥ २५ ॥

चालनात् पर्वतस्यैव गणा देवस्य कम्पिताः ।
चचाल पार्वती चापि तदाश्लिष्टा महेश्वरम् ॥ २६ ॥

पर्वतके हिलनेसे भगवान् शङ्करके सारे गण काँप उठे । पार्वती देवी भी विचलित हो उठीं और भगवान् शङ्करसे लिपट गयीं ॥ २६ ॥

ततो राम महादेवो देवानां प्रवरो हरः ।
पादाङ्गुष्ठेन तं शैलं पीडयामास लीलया ॥ २७ ॥

श्रीराम ! तब देवताओंमें श्रेष्ठ पापहारी महादेवने उस पर्वतको अपने पैरके अँगूठेसे खिलवाड़में ही दबा दिया ॥

पीडितास्तु ततस्तस्य शैलस्तम्भोपमा भुजाः ।
विस्मिताश्चाभवंस्तत्र सचिवास्तस्य रक्षसः ॥ २८ ॥

फिर तो दशग्रीवकी वे भुजाएँ, जो पर्वतके खंभोंके समान जान पड़ती थीं, उस पहाड़के नीचे दब गयीं । यह देख वहाँ खड़े हुए उस राक्षसके मन्त्री बड़े आश्चर्यमें पड़ गये ॥

रक्षसा तेन रोषाच्च भुजानां पीडनात् तथा ।
मुक्तो विरावः सहसा त्रैलोक्यं येन कम्पितम् ॥ २९ ॥

उस राक्षसने रोष तथा अपनी बाँहोंकी पीड़ाके कारण सहसा बड़े जोरसे विराव—रोदन अथवा आर्तनाद किया, जिससे तीनों लोकोंके प्राणी काँप उठे ॥ २९ ॥

मेनिरे वज्रनिष्पेषं तस्यामात्या युगक्षये ।
तदा वर्त्मसु चलिता देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ ३० ॥

उसके मन्त्रियोंने समझा, अब प्रलयकाल आ गया और विनाशकारी वज्रपात होने लगा है । उस समय इन्द्र आदि देवता मार्गमें विचलित हो उठे ॥ ३० ॥

समुद्राश्चापि संक्षुब्धाश्चलिताश्चापि पर्वताः ।
यक्षा विद्याधराः सिद्धाः किमेतदिति चाब्रुवन् ॥ ३१ ॥

समुद्रोंमें ज्वार आ गया । पर्वत हिलने लगे और यक्ष, विद्याधर तथा सिद्ध एक दूसरे-से पूछने लगे—‘यह क्या हो गया ?’ ॥ ३१ ॥

तोषयस्व महादेवं नीलकण्ठमुमापतिम् ।
तमृते शरणं नान्यं पश्यामोऽत्र दशानन ॥ ३२ ॥

तदनन्तर दशग्रीवके मन्त्रियोंने उससे कहा—‘महाराज दशानन! अब आप नीलकण्ठ उमावल्लभ महादेवजीको संतुष्ट कीजिये । उनके सिवा दूसरे किसीको हम ऐसा नहीं देखते, जो यहाँ आपको शरण दे सके ॥ ३२ ॥

स्तुतिभिः प्रणतो भूत्वा तमेव शरणं व्रज ।
कृपालुः शङ्करस्तुष्टः प्रसादं ते विधास्यति ॥ ३३ ॥

‘आप स्तुतियोंद्वारा उन्हें प्रणाम करके उन्हींकी शरणमें जाइये । भगवान् शङ्कर बड़े दयालु हैं । वे संतुष्ट होकर आप-पर कृपा करेंगे’ ॥ ३३ ॥

एवमुक्तस्तदामात्यैस्तुष्टाव वृषभध्वजम् ।
सामभिर्विविधैः स्तोत्रैः प्रणम्य स दशाननः ।
संवत्सरसहस्रं तु रुदतो रक्षसो गतम् ॥ ३४ ॥

मन्त्रियोंके ऐसा कहनेपर दशमुख रावणने भगवान् वृषभध्वजको प्रणाम करके नाना प्रकारके स्तोत्रों तथा साम-वेदोक्त मन्त्रोंद्वारा उनका स्तवन किया । इस प्रकार हाथोंकी पीड़ासे रोते और स्तुति करते हुए उस राक्षसके एक हजार वर्ष बीत गये ॥ ३४ ॥

ततः प्रीतो महादेवः शैलाग्रे विष्ठितः प्रभुः ।
मुक्त्वा चास्य भुजान् राम प्राह वाक्यं दशाननम्॥ ३५॥

श्रीराम ! तत्पश्चात् उस पर्वतके शिखरपर स्थित हुए भगवान् महादेव प्रसन्न हो गये । उन्होंने दशग्रीवकी भुजाओं-को उस संकटसे मुक्त करके उससे कहा—॥ ३५ ॥

प्रीतोऽस्मि तव वीरस्य शौटीर्याच्च दशानन ।
शैलाक्रान्तेन यो मुक्तस्त्वया रावः सुदारुणः ॥ ३६ ॥
यस्माल्लोकत्रयं चैतद् रावितं भयमागतम् ।
तस्मात् त्वं रावणो नाम नाम्ना राजन् भविष्यसि॥ ३७॥

‘दशानन ! तुम वीर हो । तुम्हारे पराक्रमसे मैं प्रसन्न हूँ । तुमने पर्वतसे दब जानेके कारण जो अत्यन्त भयानक राव (आर्तनाद) किया था, उससे भयभीत होकर तीनों

लोकोंके प्राणी रो उठे थे, इसलिये राक्षसराज ! अब तुम रावणके नामसे प्रसिद्ध होओगे ॥ ३६-३७ ॥

देवता मानुषा यक्षा ये चान्ये जगतीतले ।
एवं त्वामभिधास्यन्ति रावणं लोकरावणम् ॥ ३८ ॥

'देवता, मनुष्य, यक्ष तथा दूसरे जो लोग भूतलपर निवास करते हैं, वे सब इस प्रकार समस्त लोकोंको रुलानेवाले तुझ दशग्रीवको रावण कहेंगे ॥ ३८ ॥

गच्छ पौलस्त्य विस्रब्धं पथा येन त्वमिच्छसि ।
मया चैवाभ्यनुज्ञातो राक्षसाधिप गम्यताम् ॥ ३९ ॥

'पुलस्त्यनन्दन ! अब तुम जिस मार्गसे जाना चाहो, बेखटके जा सकते हो । राक्षसपते ! मैं भी तुम्हें अपनी ओरसे जानेकी आज्ञा देता हूँ, जाओ' ॥ ३९ ॥

एवमुक्तस्तु लङ्केशः शम्भुना स्वयमब्रवीत् ।
प्रीतो यदि महादेव वरं मे देहि याचतः ॥ ४० ॥

भगवान् शङ्करके ऐसा कहनेपर लङ्केश्वर बोला—'महादेव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो वर दीजिये । मैं आपसे वरकी याचना करता हूँ ॥ ४० ॥

अवध्यत्वं मया प्राप्तं देवगन्धर्वदानवैः ।
राक्षसैर्गुह्यकैर्नागैर्ये चान्ये बलवत्तराः ॥ ४१ ॥

'मैंने देवता, गन्धर्व, दानव, राक्षस, गुह्यक, नाग तथा अन्य महाबलशाली प्राणियोंसे अवध्य होनेका वर प्राप्त किया है ॥ ४१ ॥

मानुषान् न गणे देव स्वल्पास्ते मम सम्मताः ।
दीर्घमायुश्च मे प्राप्तं ब्रह्मणस्त्रिपुरान्तक ॥ ४२ ॥
वाञ्छितं चायुषः शेषं शस्त्रं त्वं च प्रयच्छ मे ।

'देव ! मनुष्योंको तो मैं कुछ गिनता ही नहीं । मेरी मान्यताके अनुसार उनकी शक्ति बहुत थोड़ी है । त्रिपुरान्तक ! मुझे ब्रह्माजीके द्वारा दीर्घ आयु भी प्राप्त हुई है । ब्रह्माजीकी दी हुई आयुका जितना अंश बच गया है, वह भी पूरा-का-पूरा प्राप्त हो जाय (उसमें किसी कारणसे कमी न हो) । ऐसी मेरी इच्छा है । इसे आप पूर्ण कीजिये । साथ ही अपनी ओरसे मुझे एक शस्त्र भी दीजिये' ॥ ४२½ ॥

एवमुक्तस्ततस्तेन रावणेन स शङ्करः ॥ ४३ ॥
ददौ खड्गं महादीप्तं चन्द्रहासमिति श्रुतम् ।
आयुषश्चावशेषं च ददौ भूतपतिस्तदा ॥ ४४ ॥

रावणके ऐसा कहनेपर भूतनाथ भगवान शङ्करने उसे एक अत्यन्त दीप्तिमान् चन्द्रहास नामक खड्ग दिया और उसकी आयुका जो अंश बीत गया था, उसको भी पूर्ण कर दिया ॥ ४३-४४ ॥

दत्त्वोवाच ततः शम्भुर्नावज्ञेयमिदं त्वया ।
अवज्ञातं यदि हि ते मामेवैष्यत्यसंशयः ॥ ४५ ॥

उस खड्गको देकर भगवान् शिवने कहा—'तुम्हें कभी इसका तिरस्कार नहीं करना चाहिये । यदि तुम्हारे द्वारा कभी इसका तिरस्कार हुआ तो यह फिर मेरे ही पास लौट आयेगा; इसमें संशय नहीं है' ॥ ४५ ॥

एवं महेश्वरेणैव कृतनामा स रावणः ।
अभिवाद्य महादेवमारुरोहाथ पुष्पकम् ॥ ४६ ॥

इस प्रकार भगवान् शङ्करसे नूतन नाम पाकर रावणने उन्हें प्रणाम किया । तत्पश्चात् वह पुष्पक विमानपर आरूढ़ हुआ ॥

ततो महीतलं राम पर्यक्रामत रावणः ।
क्षत्रियान् सुमहावीर्यान् बाधमानस्ततस्ततः ॥ ४७ ॥

श्रीराम ! इसके बाद रावण समूची पृथ्वीपर दिग्विजयके लिये भ्रमण करने लगा । उसने इधर-उधर जाकर बहुत-से महापराक्रमी क्षत्रियोंको पीड़ा पहुँचायी ॥ ४७ ॥

केचित् तेजस्विनः शूराः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ।
तच्छासनमकुर्वन्तो विनेशुः सपरिच्छदाः ॥ ४८ ॥

कितने ही तेजस्वी क्षत्रिय जो बड़े ही शूरवीर और रणोन्मत्त थे, रावणकी आज्ञा न माननेके कारण सेना और परिवार-सहित नष्ट हो गये ॥ ४८ ॥

अपरे दुर्जयं रक्षो जानन्तः प्राज्ञसम्मताः ।
जिताः स्म इत्यभाषन्त राक्षसं बलदर्पितम् ॥ ४९ ॥

दूसरे क्षत्रियोंने, जो बुद्धिमान् माने जाते थे और उस राक्षसको अजेय समझते थे, उस बलाभिमानी निशाचरके सामने अपनी पराजय स्वीकार कर ली ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः

रावणसे तिरस्कृत ब्रह्मर्षि कन्या वेदवतीका उसे शाप देकर अग्निमें प्रवेश करना और दूसरे जन्ममें सीताके रूपमें प्रादुर्भूत होना

अथ राजन् महाबाहुर्विचरन् पृथिवीतले ।
हिमवद्वनमासाद्य परिचक्राम रावणः ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—) राजन् ! तत्पश्चात् महाबाहु रावण भूतलपर विचरता हुआ हिमालयके वनमें आकर वहाँ सब ओर चक्कर लगाने लगा ॥ १ ॥

तत्रापश्यत् स वै कन्यां कृष्णाजिनजटाधराम् ।
आर्षेण विधिना चैनां दीप्यन्तीं देवतामिव ॥ २ ॥

वहाँ उसने एक तपस्विनी कन्याको देखा, जो अपने अङ्गोंमें काले रंगका मृगचर्म तथा सिरपर जटा धारण किये हुए थी ।

वह ऋषिप्रोक्त विधिसे तपस्यामें संलग्न हो देवाङ्गनाके समान उद्दीप्त हो रही थी ॥ २ ॥

स दृष्ट्वा रूपसम्पन्नां कन्यां तां सुमहाव्रताम् ।
काममोहपरीतात्मा पप्रच्छ प्रहसन्निव ॥ ३ ॥

उत्तम एवं महान् व्रतका पालन करनेवाली तथा रूप-सौन्दर्यसे सुशोभित उस कन्याको देखकर रावणका चित्त काम-जनित मोहके वशीभूत हो गया । उसने अट्टहास करते हुए-से पूछा—॥ ३ ॥

किमिदं वर्तसे भद्रे विरुद्धं यौवनस्य ते ।
नहि युक्ता तवैतस्य रूपस्यैवं प्रतिक्रिया ॥ ४ ॥

'भद्रे ! तुम अपनी इस युवावस्थाके विपरीत यह कैसा बर्ताव कर रही हो ? तुम्हारे इस दिव्य रूपके लिये ऐसा आचरण कदापि उचित नहीं है ॥ ४ ॥

रूपं तेऽनुपमं भीरु कामोन्मादकरं नृणाम् ।
न युक्तं तपसि स्थातुं निर्गतो ह्येष निर्णयः ॥ ५ ॥

'भीरु ! तुम्हारे इस रूपकी कहीं तुलना नहीं है । यह पुरुषोंके हृदयमें कामजनित उन्माद पैदा करनेवाला है । अतः तुम्हारा तपमें संलग्न होना उचित नहीं है । तुम्हारे लिये हमारे हृदयसे यही निर्णय प्रकट हुआ है ॥ ५ ॥

कस्यासि किमिदं भद्रे कश्च भर्ता वरानने ।
येन सम्भुज्यसे भीरु स नरः पुण्यभाग् भुवि ॥ ६ ॥
पृच्छतः शंस मे सर्वं कस्य हेतोः परिश्रमः ।

'भद्रे ! तुम किसकी पुत्री हो ? यह कौन-सा व्रत कर रही हो ? सुमुखि ! तुम्हारा पति कौन है ? भीरु ! जिसके साथ तुम्हारा सम्बन्ध है, वह मनुष्य इस भूलोकमें महान् पुण्यात्मा है । मैं जो कुछ पूछता हूँ, वह सब मुझे बताओ । किस फलके लिये यह परिश्रम किया जा रहा है ?' ॥ ६½ ॥

एवमुक्ता तु सा कन्या रावणेन यशस्विनी ॥ ७ ॥
अब्रवीद् विधिवत् कृत्वा तस्यातिथ्यं तपोधना ।

रावणके इस प्रकार पूछनेपर वह यशस्विनी तपोधना कन्या उसका विधिवत् आतिथ्य-सत्कार करके बोली—॥ ७½ ॥

कुशध्वजो नाम पिता ब्रह्मर्षिरमितप्रभः ॥ ८ ॥
बृहस्पतिसुतः श्रीमान् बुद्ध्या तुल्यो बृहस्पतेः ।

'अमिततेजस्वी ब्रह्मर्षि श्रीमान् कुशध्वज मेरे पिता थे, जो बृहस्पतिके पुत्र थे और बुद्धिमें भी उन्हींके समान माने जाते थे ॥ ८½ ॥

तस्याहं कुर्वतो नित्यं वेदाभ्यासं महात्मनः ॥ ९ ॥
सम्भूता वाङ्मयी कन्या नाम्ना वेदवती स्मृता ।

'प्रतिदिन वेदाभ्यास करनेवाले उन महात्मा पितासे वाङ्मयी कन्याके रूपमें मेरा प्रादुर्भाव हुआ था । मेरा नाम वेदवती है ॥ ९½ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥ १० ॥
ते चापि गत्वा पितरं वरणं रोचयन्ति मे ।

'जब मैं बड़ी हुई, तब देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और नाग भी पिताजीके पास जा-जाकर उनसे मुझे माँगने लगे ॥ १०½ ॥

न च मां स पिता तेभ्यो दत्तवान् राक्षसेश्वर ॥ ११ ॥
कारणं तद् वदिष्यामि निशामय महाभुज ।

'महाबाहु राक्षसेश्वर ! पिताजीने उनके हाथमें मुझे नहीं सौंपा । इसका क्या कारण था, मैं बता रही हूँ, सुनिये ॥ ११½ ॥

पितुस्तु मम जामाता विष्णुः किल सुरेश्वरः ॥ १२ ॥
अभिप्रेतस्त्रिलोकेशस्तस्मान्नान्यस्य मे पिता ।
दातुमिच्छति तस्मै तु तच्छ्रुत्वा बलदर्पितः ॥ १३ ॥
शम्भुर्नाम ततो राजा दैत्यानां कुपितोऽभवत् ।
तेन रात्रौ शयानो मे पिता पापेन हिंसितः ॥ १४ ॥

'पिताजीकी इच्छा थी कि तीनों लोकोंके स्वामी देवेश्वर भगवान् विष्णु मेरे दामाद हों । इसीलिये वे दूसरे किसीके हाथमें मुझे नहीं देना चाहते थे । उनके इस अभिप्रायको सुनकर बलाभिमानी दैत्यराज शम्भु उनपर कुपित हो उठा और उस पापीने रातमें सोते समय मेरे पिताजीकी हत्या कर डाली ॥ १२—१४ ॥

ततो मे जननी दीना तच्छरीरं पितुर्मम ।
परिष्वज्य महाभागा प्रविष्टा हव्यवाहनम् ॥ १५ ॥

'इससे मेरी महाभागा माताको बड़ा दुःख हुआ और वे पिताजीके शवको हृदयसे लगाकर चिताकी आगमें प्रविष्ट हो गयीं ॥ १५ ॥

ततो मनोरथं सत्यं पितुर्नारायणं प्रति ।
करोमीति तमेवाहं हृदयेन समुद्वहे ॥ १६ ॥

'तबसे मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि भगवान् नारायणके प्रति पिताजीका जो मनोरथ था, उसे मैं सफल करूँगी । इसलिये मैं उन्हींको अपने हृदय-मन्दिरमें धारण करती हूँ ॥ १६ ॥

इति प्रतिज्ञामारुह्य चरामि विपुलं तपः ।
एतत् ते सर्वमाख्यातं मया राक्षसपुङ्गव ॥ १७ ॥

'यही प्रतिज्ञा करके मैं यह महान् तप कर रही हूँ । राक्षसराज ! आपके प्रश्नके अनुसार यह सब बात मैंने आपको बता दी ॥ १७ ॥

नारायणो मम पतिर्न त्वन्यः पुरुषोत्तमात् ।
आश्रये नियमं घोरं नारायणपरीप्सया ॥ १८ ॥

'नारायण ही मेरे पति हैं । उन पुरुषोत्तमके सिवा दूसरा कोई मेरा पति नहीं हो सकता । उन नारायणदेवको प्राप्त करनेके लिये ही मैंने इस कठोर व्रतका आश्रय लिया है ॥ १८ ॥

विज्ञातस्त्वं हि मे राजन् गच्छ पौलस्त्यनन्दन ।
जानामि तपसा सर्वं त्रैलोक्ये यद्धि वर्तते ॥ १९ ॥

'राजन् ! पौलस्त्यनन्दन ! मैंने आपको पहचान लिया है । आप जाइये । त्रिलोकीमें जो कोई भी वस्तु विद्यमान है, वह सब मैं तपस्याद्वारा जानती हूँ' ॥ १९ ॥

सोऽब्रवीद् रावणो भूयस्तां कन्यां सुमहाव्रताम् ।

अवरुह्य विमानाग्रात् कन्दर्पशरपीडितः ॥ २० ॥

यह सुनकर रावण कामबाणसे पीड़ित हो विमानसे उतर गया और उस उत्तम एवं महान् व्रतका पालन करनेवाली कन्यासे फिर बोला—॥ २० ॥

अवलिप्तासि सुश्रोणि यस्यास्ते मतिरीदृशी ।
वृद्धानां मृगशावाक्षि भ्राजते पुण्यसंचयः ॥ २१ ॥

'सुश्रोणि ! तुम गर्वीली जान पड़ती हो, तभी तो तुम्हारी बुद्धि ऐसी हो गयी है । मृगशावकलोचने ! इस तरह पुण्यका संग्रह बूढ़ी स्त्रियोंको ही शोभा देता है, तुम-जैसी युवतीको नहीं ॥ २१ ॥

त्वं सर्वगुणसम्पन्ना नार्हसे वक्तुमीदृशम् ।
त्रैलोक्यसुन्दरी भीरु यौवनं तेऽतिवर्तते ॥ २२ ॥

'तुम तो सर्वगुणसम्पन्न एवं त्रिलोकीकी अद्वितीय सुन्दरी हो । तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये । भीरु ! तुम्हारी जवानी बीती जा रही है ॥ २२ ॥

अहं लङ्कापतिर्भद्रे दशग्रीव इति श्रुतः ।
तस्य मे भव भार्या त्वं भुङ्क्ष्व भोगान् यथासुखम् ॥ २३ ॥

'भद्रे ! मैं लङ्काका राजा हूँ । मेरा नाम दशग्रीव है । तुम मेरी भार्या हो जाओ और सुखपूर्वक उत्तम भोग भोगो ॥ २३ ॥

कश्च तावदसौ यं त्वं विष्णुरित्यभिभाषसे ।
वीर्येण तपसा चैव भोगेन च बलेन च ॥ २४ ॥
स मया नो समो भद्रे यं त्वं कामयसेऽङ्गने ।

'पहले यह तो बताओ, तुम जिसे विष्णु कहती हो, वह कौन है ? अङ्गने ! भद्रे ! तुम जिसे चाहती हो, वह बल, पराक्रम, तप और भोग-वैभवके द्वारा मेरी समानता नहीं कर सकता' ॥ २४½ ॥

इत्युक्तवति तस्मिंस्तु वेदवत्यथ साब्रवीत् ॥ २५ ॥
मा मैवमिति सा कन्या तमुवाच निशाचरम् ।

उसके ऐसा कहनेपर कुमारी वेदवती उस निशाचरसे बोली—'नहीं, नहीं, ऐसा न कहो ॥ २५½ ॥

त्रैलोक्याधिपतिं विष्णुं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ २६ ॥
त्वदृते राक्षसेन्द्रान्यः कोऽवमन्येत बुद्धिमान् ।

'राक्षसराज ! भगवान् विष्णु तीनों लोकोंके अधिपति हैं । सारा संसार उनके चरणोंमें मस्तक झुकाता है । तुम्हारे सिवा दूसरा कौन पुरुष है, जो बुद्धिमान् होकर भी उनकी अवहेलना करेगा' ॥ २६½ ॥

एवमुक्तस्तया तत्र वेदवत्या निशाचरः ॥ २७ ॥
मूर्धजेषु तदा कन्यां कराग्रेण परामृशत् ।

वेदवतीके ऐसा कहनेपर उस राक्षसने अपने हाथसे उस कन्याके केश पकड़ लिये ॥ २७½ ॥

ततो वेदवती क्रुद्धा केशान् हस्तेन साच्छिनत् ॥ २८ ॥
असिर्भूत्वा करस्तस्याः केशांश्छिन्नांस्तदाकरोत् ।

इससे वेदवतीको बड़ा क्रोध हुआ । उसने अपने हाथसे उन केशोंको काट दिया । उसके हाथने तलवार बनकर तत्काल उसके केशोंको मस्तकसे अलग कर दिया ॥ २८½ ॥

सा ज्वलन्तीव रोषेण दहन्तीव निशाचरम् ॥ २९ ॥
उवाचाग्निं समाधाय मरणाय कृतत्वरा ।

वेदवती रोषसे प्रज्वलित-सी हो उठी । वह जल मरनेके लिये उतावली हो अग्निकी स्थापना करके उस निशाचरको दग्ध करती हुई-सी बोली—॥ २९½ ॥

धर्षितायास्त्वयानार्य न मे जीवितमिष्यते ॥ ३० ॥
रक्षस्तस्मात् प्रवेक्ष्यामि पश्यतस्ते हुताशनम् ।

'नीच राक्षस ! तूने मेरा तिरस्कार किया है; अतः अब इस जीवनको सुरक्षित रखना मुझे अभीष्ट नहीं है । इसलिये तेरे देखते-देखते मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगी ॥ ३०½ ॥

यस्मात् तु धर्षिता चाहं त्वया पापात्मना वने ॥ ३१ ॥
तस्मात् तव वधार्थं हि समुत्पत्स्ये ह्यहं पुनः ।

'तुझ पापात्माने इस वनमें मेरा अपमान किया है । इसलिये मैं तेरे वधके लिये फिर उत्पन्न होऊँगी ॥ ३१½ ॥

नहि शक्यः स्त्रिया हन्तुं पुरुषः पापनिश्चयः ॥ ३२ ॥
शापे त्वयि मयोत्सृष्टे तपसश्च व्ययो भवेत् ।

'स्त्री अपनी शारीरिक शक्तिसे किसी पापाचारी पुरुषका वध नहीं कर सकती । यदि मैं तुझे शाप दूँ तो मेरी तपस्या क्षीण हो जायगी ॥ ३२½ ॥

यदि त्वस्ति मया किंचित् कृतं दत्तं हुतं तथा ॥ ३३ ॥
तस्मात् त्वयोनिजा साध्वी भवेयं धर्मिणः सुता ।

'यदि मैंने कुछ भी सत्कर्म, दान और होम किये हों तो अगले जन्ममें मैं सती-साध्वी अयोनिजा कन्याके रूपमें प्रकट होऊँ तथा किसी धर्मात्मा पिताकी पुत्री बनूँ' ॥ ३३½ ॥

एवमुक्त्वा प्रविष्टा सा ज्वलितं जातवेदसम् ॥ ३४ ॥
पपात च दिवो दिव्या पुष्पवृष्टिः समन्ततः ।

ऐसा कहकर वह प्रज्वलित अग्निमें समा गयी । उस समय उसके चारों ओर आकाशसे दिव्य पुष्पोंकी वर्षा होने लगी ॥ ३४½ ॥

पुनरेव समुद्भूता पद्मे पद्मसमप्रभा ॥ ३५ ॥
तस्मादपि पुनः प्राप्ता पूर्ववत् तेन रक्षसा ।

तदनन्तर दूसरे जन्ममें वह कन्या पुनः एक कमलसे प्रकट हुई । उस समय उसकी कान्ति कमलके समान ही सुन्दर थी । उस राक्षसने पहलेकी ही भाँति फिर वहाँसे भी उस कन्याको प्राप्त कर लिया ॥ ३५½ ॥

कन्यां कमलगर्भाभां प्रगृह्य स्वगृहं ययौ ॥ ३६ ॥
प्रगृह्य रावणस्त्वेतां दर्शयामास मन्त्रिणे ।

कमलके भीतरी भागके समान सुन्दर कान्तिवाली उस कन्याको लेकर रावण अपने घर गया । वहाँ उसने मन्त्रीको वह कन्या दिखायी ॥ ३६½ ॥

लक्षणज्ञो निरीक्ष्यैव रावणं चैवमब्रवीत् ॥ ३७ ॥
गृहस्थैषा हि सुश्रोणी त्वद्वधायैव दृश्यते ।

मन्त्री बालक-बालिकाओंके लक्षणोंको जाननेवाला था। उसने उसे अच्छी तरह देखकर रावणसे कहा—'राजन् ! यह सुन्दरी कन्या यदि घरमें रही तो आपके वधका ही कारण होगी, ऐसा लक्षण देखा जाता है' ॥ ३७½ ॥

एतच्छ्रुत्वार्णवे राम तां प्रचिक्षेप रावणः ॥ ३८ ॥
सा चैव क्षितिमासाद्य यज्ञायतनमध्यगा ।
राज्ञो हलमुखोत्कृष्टा पुनरप्युत्थिता सती ॥ ३९ ॥

श्रीराम ! यह सुनकर रावणने उसे समुद्रमें फेंक दिया। तत्पश्चात् वह भूमिको प्राप्त होकर राजा जनकके यज्ञमण्डपके मध्यवर्ती भूभागमें जा पहुँची। वहाँ राजाके हलके मुखभागसे उस भूभागके जोते जानेपर वह सती साध्वी कन्या फिर प्रकट हो गयी ॥ ३८-३९ ॥

सैषा जनकराजस्य प्रसूता तनया प्रभो ।
तव भार्या महाबाहो विष्णुस्त्वं हि सनातनः ॥ ४० ॥

प्रभो ! वही यह वेदवती महाराज जनककी पुत्रीके रूपमें प्रादुर्भूत हो आपकी पत्नी हुई है। महाबाहो ! आप ही सनातन विष्णु हैं ॥ ४० ॥

पूर्वं क्रोधहतः शत्रुर्ययासौ निहतस्त्वया ।
उपाश्रयित्वा शैलाभस्तव वीर्यममानुषम् ॥ ४१ ॥

उस वेदवतीने पहले ही अपने रोषजनित शापके द्वारा आपके उस पर्वताकार शत्रुको मार डाला था, जिसे अब आपने आक्रमण करके मौतके घाट उतारा है। प्रभो ! आपका पराक्रम अलौकिक है ॥ ४१ ॥

एवमेषा महाभागा मर्त्येषूत्पत्स्यते पुनः ।
क्षेत्रे हलमुखोत्कृष्टे वेद्यामग्निशिखोपमा ॥ ४२ ॥

इस प्रकार यह महाभागा देवी विभिन्न कल्पोंमें पुनः रावणवधके उद्देश्यसे मर्त्यलोकमें अवतीर्ण होती रहेगी। यज्ञवेदीपर अग्निशिखाके समान हलसे जोते गये क्षेत्रमें इसका आविर्भाव हुआ है ॥ ४२ ॥

एषा वेदवती नाम पूर्वमासीत् कृते युगे ।
त्रेतायुगमनुप्राप्य वधार्थं तस्य रक्षसः ॥ ४३ ॥
उत्पन्ना मैथिलकुले जनकस्य महात्मनः ।
सीतोत्पन्ना तु सीतेति मानुषैः पुनरुच्यते ॥ ४४ ॥

यह वेदवती पहले सत्ययुगमें प्रकट हुई थी। फिर त्रेतायुग आनेपर उस राक्षस रावणके वधके लिये मिथिलावर्ती राजा जनकके कुलमें सीतारूपसे अवतीर्ण हुई। सीता (हल जोतनेसे भूमिपर बनी हुई रेखा) से उत्पन्न होनेके कारण मनुष्य इस देवीको सीता कहते हैं ॥ ४३-४४ ॥

इत्यार्षे **श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥**

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १७ ॥

* * *

अष्टादशः सर्गः

रावणद्वारा मरुत्तकी पराजय तथा इन्द्र आदि देवताओंका मयूर आदि पक्षियोंको वरदान देना

प्रविष्टायां हुताशं तु वेदवत्यां स रावणः ।
पुष्पकं तु समारुह्य परिचक्राम मेदिनीम् ॥ १ ॥

अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन ! वेदवतीके अग्निमें प्रवेश कर जानेपर रावण पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो पृथ्वीपर सब ओर भ्रमण करने लगा ॥ १ ॥

ततो मरुत्तं नृपतिं यजन्तं सह दैवतैः ।
उशीरबीजमासाद्य ददर्श स तु रावणः ॥ २ ॥

उसी यात्रामें उशीरबीज नामक देशमें पहुँचकर रावणने देखा, राजा मरुत्त देवताओंके साथ बैठकर यज्ञ कर रहे हैं ॥ २ ॥

संवर्तो नाम ब्रह्मर्षिः साक्षाद् भ्राता बृहस्पतेः ।
याजयामास धर्मज्ञः सर्वैर्देवगणैर्वृतः ॥ ३ ॥

उस समय साक्षात् बृहस्पतिके भाई तथा धर्मके मर्मको जाननेवाले ब्रह्मर्षि संवर्त सम्पूर्ण देवताओंसे घिरे रहकर वह यज्ञ करा रहे थे ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा देवास्तु तद् रक्षो वरदानेन दुर्जयम् ।
तिर्यग्योनिं समाविष्टास्तस्य धर्षणभीरवः ॥ ४ ॥

ब्रह्माजीके वरदानसे जिसको जीतना कठिन हो गया था, उस राक्षस रावणको वहाँ देखकर उसके आक्रमणसे भयभीत हो देवतालोग तिर्यग्योनिमें प्रवेश कर गये ॥ ४ ॥

इन्द्रो मयूरः संवृत्तो धर्मराजस्तु वायसः ।
कृकलासो धनाध्यक्षो हंसश्च वरुणोऽभवत् ॥ ५ ॥

इन्द्र मोर, धर्मराज कौआ, कुबेर गिरगिट और वरुण हंस हो गये ॥ ५ ॥

अन्येष्वपि गतेष्वेवं देवेष्वरिनिषूदन ।
रावणः प्राविशद् यज्ञं सारमेय इवाशुचिः ॥ ६ ॥

शत्रुसूदन श्रीराम ! इसी तरह दूसरे-दूसरे देवता भी जब विभिन्न रूपोंमें स्थित हो गये, तब रावणने उस यज्ञमण्डपमें प्रवेश किया, मानो कोई अपवित्र कुत्ता वहाँ आ गया हो ॥ ६ ॥

तं च राजानमासाद्य रावणो राक्षसाधिपः ।
प्राह युद्धं प्रयच्छेति निर्जितोऽस्मीति वा वद ॥ ७ ॥

राजा मरुत्तके पास पहुँचकर राक्षसराज रावणने कहा—'मुझसे युद्ध करो या अपने मुँहसे यह कह दो कि मैं पराजित हो गया' ॥ ७ ॥

ततो मरुत्तो नृपतिः को भवानित्युवाच तम् ।

अवहासं ततो मुक्त्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥

तब राजा मरुत्तने पूछा—'आप कौन हैं ?' उनका प्रश्न सुनकर रावण हँस पड़ा और बोला—॥ ८ ॥

अकुतूहलभावेन प्रीतोऽस्मि तव पार्थिव ।
धनदस्यानुजं यो मां नावगच्छसि रावणम् ॥ ९ ॥

'भूपाल ! मैं कुबेरका छोटा भाई रावण हूँ। फिर भी तुम मुझे नहीं जानते और मुझे देखकर भी तुम्हारे मनमें न तो कौतूहल हुआ, न भय ही; इससे मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ९ ॥

त्रिषु लोकेषु कोऽन्योऽस्ति यो न जानाति मे बलम् ।
भ्रातरं येन निर्जित्य विमानमिदमाहृतम् ॥ १० ॥

'तीनों लोकोंमें तुम्हारे सिवा दूसरा कौन ऐसा राजा होगा, जो मेरे बलको न जानता हो । मैं वह रावण हूँ, जिसने अपने भाई कुबेरको जीतकर यह विमान छीन लिया है' ॥ १० ॥

ततो मरुत्तः स नृपस्तं रावणमथाब्रवीत् ।
धन्यः खलु भवान् येन ज्येष्ठो भ्राता रणे जितः ॥ ११ ॥

तब राजा मरुत्तने रावणसे कहा—'तुम धन्य हो, जिसने अपने बड़े भाईको रणभूमिमें पराजित कर दिया ॥ ११ ॥

न त्वया सदृशः श्लाघ्यस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
कं त्वं प्राक्केवलं धर्मं चरित्वा लब्धवान् वरम् ॥ १२ ॥

'तुम्हारे-जैसा स्पृहणीय पुरुष तीनों लोकोंमें दूसरा कोई नहीं है । तुमने पूर्वकालमें किस शुद्ध धर्मका आचरण करके वर प्राप्त किया है ॥ १२ ॥

श्रुतपूर्वं हि न मया भाषसे यादृशं स्वयम् ।
तिष्ठेदानीं न मे जीवन् प्रतियास्यसि दुर्मते ॥ १३ ॥
अद्य त्वां निशितैर्बाणैः प्रेषयामि यमक्षयम् ।

'तुम स्वयं जो कुछ कह रहे हो, ऐसी बात मैंने पहले कभी नहीं सुनी है । दुर्बुद्धे ! इस समय खड़े तो रहो । मेरे हाथसे जीवित बचकर नहीं जा सकोगे । आज अपने पैने बाणोंसे मारकर तुम्हें यमलोक पहुँचाये देता हूँ' ॥ १३½ ॥

ततः शरासनं गृह्य सायकांश्च नराधिपः ॥ १४ ॥
रणाय निर्ययौ क्रुद्धः संवर्तो मार्गमावृणोत् ।

तदनन्तर राजा मरुत्त धनुष-बाण लेकर बड़े रोषके साथ युद्धके लिये निकले, परंतु महर्षि संवर्तने उनका रास्ता रोक लिया ॥ १४½ ॥

सोऽब्रवीत् स्नेहसंयुक्तं मरुत्तं तं महानृषिः ॥ १५ ॥
श्रोतव्यं यदि मद्वाक्यं सम्प्रहारो न ते क्षमः ।

उन महर्षिने महाराज मरुत्तसे स्नेहपूर्वक कहा—'राजन् ! यदि मेरी बात सुनना और उसपर ध्यान देना उचित समझो तो सुनो । तुम्हारे लिये युद्ध करना उचित नहीं है ॥ १५½ ॥

माहेश्वरमिदं सत्रमसमाप्तं कुलं दहेत् ॥ १६ ॥
दीक्षितस्य कुतो युद्धं क्रोधित्वं दीक्षिते कुतः ।

'यह माहेश्वर यज्ञ आरम्भ किया गया है । यदि पूरा न हुआ तो तुम्हारे समस्त कुलको दग्ध कर डालेगा । जो यज्ञकी दीक्षा ले चुका है, उसके लिये युद्धका अवसर ही कहाँ है ! यज्ञदीक्षित पुरुषमें क्रोधके लिये स्थान ही कहाँ है ? ॥ १६½ ॥

संशयश्च जये नित्यं राक्षसश्च सुदुर्जयः ॥ १७ ॥
स निवृत्तो गुरोर्वाक्यान्मरुत्तः पृथिवीपतिः ।
विसृज्य सशरं चापं स्वस्थो मखमुखोऽभवत् ॥ १८ ॥

'युद्धमें किसकी विजय होगी, इस प्रश्नको लेकर सदा संशय ही बना रहता है । उधर वह राक्षस अत्यन्त दुर्जय है ।' अपने आचार्यके इस कथनसे पृथ्वीपति मरुत्त युद्धसे निवृत्त हो गये । उन्होंने धनुष-बाण त्याग दिया और स्वस्थभावसे वे यज्ञके लिये उन्मुख हो गये ॥ १७-१८ ॥

ततस्तं निर्जितं मत्वा घोषयामास वै शुकः ।
रावणो जयतीत्युच्चैर्हर्षान्नादं विमुक्तवान् ॥ १९ ॥

तब उन्हें पराजित हुआ मानकर शुकने यह घोषणा कर दी कि महाराज रावणकी विजय हुई और वह बड़े हर्षके साथ उच्चस्वरसे सिंहनाद करने लगा ॥ १९ ॥

तान् भक्षयित्वा तत्रस्थान् महर्षीन् यज्ञमागतान् । ✓
वितृप्तो रुधिरैस्तेषां पुनः सम्प्रययौ महीम् ॥ २० ॥

उस यज्ञमें आकर बैठे हुए महर्षियोंको खाकर उनके रक्तसे पूर्णतः तृप्त हो रावण फिर पृथ्वीपर विचरने लगा ॥ २० ॥

रावणे तु गते देवाः सेन्द्राश्चैव दिवौकसः ।
ततः स्वां योनिमासाद्य तानि सत्त्वानि चाब्रुवन् ॥ २१ ॥

रावणके चले जानेपर इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता पुनः अपने स्वरूपमें प्रकट हो उन-उन प्राणियोंको (जिनके रूपमें वे स्वयं प्रकट हुए थे) वरदान देते हुए बोले ॥ २१ ॥

हर्षात् तदाब्रवीदिन्द्रो मयूरं नीलबर्हिणम् ।
प्रीतोऽस्मि तव धर्मज्ञ भुजङ्गाद्धि न ते भयम् ॥ २२ ॥

सबसे पहले इन्द्रने हर्षपूर्वक नीले पंखवाले मोरसे कहा—'धर्मज्ञ ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ । तुम्हें सर्पसे भय नहीं होगा ॥

इदं नेत्रसहस्रं तु यत् तद् बर्हे भविष्यति ।
वर्षमाणे मयि मुदं प्राप्स्यसे प्रीतिलक्षणाम् ॥ २३ ॥
एवमिन्द्रो वरं प्रादान्मयूरस्य सुरेश्वरः ॥ २४ ॥

'मेरे जो ये सहस्र नेत्र हैं, इनके समान चिह्न तुम्हारी पाँखमें प्रकट होंगे । जब मैं मेघरूप होकर वर्षा करूँगा, उस समय तुम्हें बड़ी प्रसन्नता प्राप्त होगी । वह प्रसन्नता मेरी प्रीतिको लक्षित करानेवाली होगी ।' इस प्रकार देवराज इन्द्रने मोरको वरदान दिया ॥ २३-२४ ॥

नीलाः किल पुरा बर्हा मयूराणां नराधिप ।
सुराधिपाद् वरं प्राप्य गताः सर्वेऽपि बर्हिणः ॥ २५ ॥

नरेश्वर श्रीराम ! इस वरदानके पहले मोरोंके पंख केवल नीले रंगके ही होते थे । देवराजसे उक्त वर पाकर सब मयूर वहाँसे चले गये ॥ २५ ॥

धर्मराजोऽब्रवीद् राम प्राग्वंशे वायसं प्रति ।
पक्षिस्त्वयास्मि सुप्रीतः प्रीतस्य वचनं शृणु ॥ २६ ॥

श्रीराम ! तदनन्तर धर्मराजने प्राग्वंशकी[1] छतपर बैठे हुए कौएसे कहा—'पक्षी ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ । प्रसन्न होकर जो कुछ कहता हूँ, मेरे इस वचनको सुनो ॥ २६ ॥

यथान्ये विविधै रोगैः पीड्यन्ते प्राणिनो मया ।
ते न ते प्रभविष्यन्ति मयि प्रीते न संशयः ॥ २७ ॥

'जैसे दूसरे प्राणियोंको मैं नाना प्रकारके रोगोंद्वारा पीड़ित करता हूँ, वे रोग मेरी प्रसन्नताके कारण तुमपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकेंगे; इसमें संशय नहीं है ॥ २७ ॥

मृत्युतस्ते भयं नास्ति वरान् मम विहंगम ।
यावत् त्वां न वधिष्यन्ति नरास्तावद् भविष्यसि ॥ २८ ॥

'विहङ्गम ! मेरे वरदानसे तुम्हें मृत्युका भय नहीं होगा । जबतक मनुष्य आदि प्राणी तुम्हारा वध नहीं करेंगे, तबतक तुम जीवित रहोगे ॥ २८ ॥

ये च मद्विषयस्था वै मानवाः क्षुधयार्दिताः ।
त्वयि भुक्ते सुतृप्तास्ते भविष्यन्ति सबान्धवाः ॥ २९ ॥

'मेरे राज्य—यमलोकमें स्थित रहकर जो मानव भूखसे पीड़ित हैं, उनके पुत्र आदि इस भूतलपर जब तुम्हें भोजन करावेंगे, तब वे बन्धु-बान्धवोंसहित परम तृप्त होंगे' ॥ २९ ॥

वरुणस्त्वब्रवीद्धंसं गङ्गातोयविचारिणम् ।
श्रूयतां प्रीतिसंयुक्तं वचः पत्ररथेश्वर ॥ ३० ॥

तत्पश्चात् वरुणने गङ्गाजीके जलमें विचरनेवाले हंसको सम्बोधित करके कहा—'पक्षिराज ! मेरा प्रेमपूर्ण वचन सुनो— ॥ ३० ॥

वर्णो मनोरमः सौम्यश्चन्द्रमण्डलसंनिभः ।
भविष्यति तवोदग्रः शुद्धफेनसमप्रभः ॥ ३१ ॥

'तुम्हारे शरीरका रंग चन्द्रमण्डल तथा शुद्ध फेनके समान परम उज्ज्वल, सौम्य एवं मनोरम होगा ॥ ३१ ॥

मच्छरीरं समासाद्य कान्तो नित्यं भविष्यसि ।
प्राप्स्यसे चातुलां प्रीतिमेतन्मे प्रीतिलक्षणम् ॥ ३२ ॥

'मेरे अङ्गभूत जलका आश्रय लेकर तुम सदा कान्तिमान् बने रहोगे और तुम्हें अनुपम प्रसन्नता प्राप्त होगी । यही मेरे प्रेमका परिचायक चिह्न होगा' ॥ ३२ ॥

हंसानां हि पुरा राम न वर्णः सर्वपाण्डुरः ।
पक्षा नीलाग्रसंवीताः क्रोडाः शष्पाग्रनिर्मलाः ॥ ३३ ॥

श्रीराम ! पूर्वकालमें हंसोंका रंग पूर्णतः श्वेत नहीं था । उनकी पाँखोंका अग्रभाग नीला और दोनों भुजाओंके बीचका भाग नूतन दूर्वादलके अग्रभाग-सा कोमल एवं श्याम वर्णसे युक्त होता था ॥ ३३ ॥

अथाब्रवीद् वैश्रवणः कृकलासं गिरौ स्थितम् ।
हैरण्यं सम्प्रयच्छामि वर्णं प्रीतस्तवाप्यहम् ॥ ३४ ॥

तदनन्तर विश्रवाके पुत्र कुबेरने पर्वतशिखरपर बैठे हुए कृकलास (गिरगिट) से कहा—'मैं प्रसन्न होकर तुम्हें सुवर्णके समान सुन्दर रंग प्रदान करता हूँ ॥ ३४ ॥

सद्रव्यं च शिरो नित्यं भविष्यति तवाक्षयम् ।
एष काञ्चनको वर्णो मत्प्रीत्या ते भविष्यति ॥ ३५ ॥

'तुम्हारा सिर सदा ही सुवर्णके समान रंगका एवं अक्षय होगा । मेरी प्रसन्नतासे तुम्हारा यह (काला) रंग सुनहरे रंगमें परिवर्तित हो जायगा' ॥ ३५ ॥

एवं दत्त्वा वरांस्तेभ्यस्तस्मिन् यज्ञोत्सवे सुराः ।
निवृत्ते सह राज्ञा ते पुनः स्वभवनं गताः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार उन्हें उत्तम वर देकर वे सब देवता वह यज्ञोत्सव समाप्त होनेपर राजा मरुत्तके साथ पुनः अपने भवन—स्वर्गलोकको चले गये ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः

रावणके द्वारा अनरण्यका वध तथा उनके द्वारा उसे शापकी प्राप्ति

अथ जित्वा मरुत्तं स प्रययौ राक्षसाधिपः ।
नगराणि नरेन्द्राणां युद्धकाङ्क्षी दशाननः ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन !) पूर्वोक्त रूपसे राजा मरुत्तको जीतनेके पश्चात् राक्षसराज दशग्रीव क्रमशः अन्य नरेशोंके नगरोंमें भी युद्धकी इच्छासे गया ॥ १ ॥

समासाद्य तु राजेन्द्रान् महेन्द्रवरुणोपमान् ।
अब्रवीद् राक्षसेन्द्रस्तु युद्धं मे दीयतामिति ॥ २ ॥
निर्जिताः स्मेति वा ब्रूत एष मे हि सुनिश्चयः ।
अन्यथा कुर्वतामेवं मोक्षो नैवोपपद्यते ॥ ३ ॥

महेन्द्र और वरुणके समान पराक्रमी उन महाराजोंके पास जाकर वह राक्षसराज उनसे कहता—'राजाओ ! तुम मेरे साथ युद्ध करो अथवा यह कह दो कि 'हम हार गये ।' यही मेरा अच्छी तरह किया हुआ निश्चय है । इसके विपरीत करनेसे तुम्हें छुटकारा नहीं मिलेगा' ॥ २-३ ॥

ततस्त्वभीरवः प्राज्ञाः पार्थिवा धर्मनिश्चयाः ।
मन्त्रयित्वा ततोऽन्योन्यं राजानः सुमहाबलाः ॥ ४ ॥

---

[1] यज्ञशालाके पूर्वभागमें यजमान और उसकी पत्नी आदिके ठहरनेके लिये बने हुए गृहको प्राग्वंश कहते हैं । यह घर हविर्गृहके पूर्व ओर होता है ।

निर्जिताः स्मेत्यभाषन्त ज्ञात्वा वरबलं रिपोः ।

तब निर्भय, बुद्धिमान् तथा धर्मपूर्ण विचार रखनेवाले बहुत-से महाबली राजा परस्पर सलाह करके शत्रुकी प्रबलताको समझकर बोले—'राक्षसराज ! हम तुमसे हार मान लेते हैं' ॥

दुष्यन्तः सुरथो गाधिर्गयो राजा पुरूरवाः ॥ ५ ॥
एते सर्वेऽब्रुवंस्तात निर्जिताः स्मेति पार्थिवाः ।

दुष्यन्त, सुरथ, गाधि, गय, राजा पुरूरवा—इन सभी भूपालोंने अपने-अपने राजत्वकालमें रावणके सामने अपनी पराजय स्वीकार कर ली ॥ ५½ ॥

अथायोध्यां समासाद्य रावणो राक्षसाधिपः ॥ ६ ॥
सुगुप्तामनरण्येन शक्रेणेवामरावतीम् ।
स तं पुरुषशार्दूलं पुरंदरसमं बले ॥ ७ ॥
प्राह राजानमासाद्य युद्धं देहीति रावणः ।
निर्जितोऽस्मीति वा ब्रूहि त्वमेवं मम शासनम् ॥ ८ ॥

इसके बाद राक्षसोंका राजा रावण इन्द्रद्वारा सुरक्षित अमरावतीकी भाँति महाराज अनरण्यद्वारा पालित अयोध्या पुरीमें आया । वहाँ पुरन्दर (इन्द्र)के समान पराक्रमी पुरुष-सिंह राजा अनरण्यसे मिलकर बोला—'राजन् ! तुम मुझसे युद्ध करनेका वचन दो अथवा कह दो कि 'मैं हार गया ।' यही मेरा आदेश है' ॥ ६–८ ॥

अयोध्याधिपतिस्तस्य श्रुत्वा पापात्मनो वचः ।
अनरण्यस्तु संक्रुद्धो राक्षसेन्द्रमथाब्रवीत् ॥ ९ ॥

उस पापात्माकी वह बात सुनकर अयोध्यानरेश अनरण्यको बड़ा क्रोध हुआ और वे उस राक्षसराजसे बोले—॥

दीयते द्वन्द्वयुद्धं ते राक्षसाधिपते मया ।
संतिष्ठ क्षिप्रमायत्तो भव चैवं भवाम्यहम् ॥ १० ॥

'निशाचरपते ! मैं तुम्हें द्वन्द्वयुद्धका अवसर देता हूँ । ठहरो, शीघ्र युद्धके लिये तैयार हो जाओ । मैं भी तैयार हो रहा हूँ' ॥ १० ॥

अथ पूर्वं श्रुतार्थेन निर्जितं सुमहद् बलम् ।
निष्क्रामत् तन्नरेन्द्रस्य बलं रक्षोवधोद्यतम् ॥ ११ ॥

राजाने रावणकी दिग्विजयकी बात पहलेसे ही सुन रक्खी थी; इसलिये उन्होंने बहुत बड़ी सेना इकट्ठी कर ली थी । नरेशकी वह सारी सेना उस समय राक्षसके वधके लिये उत्साहित हो नगरसे बाहर निकली ॥ ११ ॥

नागानां दशसाहस्रं वाजिनां नियुतं तथा ।
रथानां बहुसाहस्रं पत्तीनां च नरोत्तम ॥ १२ ॥
महीं संछाद्य निष्क्रान्तं सपदातिरथं रणे ।

नरश्रेष्ठ श्रीराम ! दस हजार हाथीसवार, एक लाख घुड़सवार, कई हजार रथी और पैदल सैनिक पृथ्वीको आच्छादित करके युद्धके लिये आगे बढ़े । रथों और पैदलों-सहित सारी सेना रणक्षेत्रमें जा पहुँची ॥ १२½ ॥

ततः प्रवृत्तं सुमहद् युद्धं युद्धविशारद ॥ १३ ॥
अनरण्यस्य नृपते राक्षसेन्द्रस्य चाद्भुतम् ।

युद्धविशारद रघुवीर ! फिर तो राजा अनरण्य और निशाचर रावणमें बड़ा अद्भुत संग्राम होने लगा ॥ १३½ ॥

तद् रावणबलं प्राप्य बलं तस्य महीपतेः ॥ १४ ॥
प्राणश्यत तदा सर्वं हव्यं हुतमिवानले ।

उस समय राजाकी सारी सेना रावणकी सेनाके साथ टक्कर लेकर उसी तरह नष्ट होने लगी, जैसे अग्निमें दी हुई आहुति पूर्णतः भस्म हो जाती है ॥ १४½ ॥

युद्ध्वा च सुचिरं कालं कृत्वा विक्रममुत्तमम् ॥ १५ ॥
प्रज्वलन्तं तमासाद्य क्षिप्रमेवावशेषितम् ।
प्राविशत् संकुलं तत्र शलभा इव पावकम् ॥ १६ ॥

उस सेनाने बहुत देरतक युद्ध किया, बड़ा पराक्रम दिखाया; परंतु तेजस्वी रावणका सामना करके वह बहुत थोड़ी संख्यामें शेष रह गयी और अन्ततोगत्वा जैसे पतिङ्गे आगमें जलकर भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार कालके गालमें चली गयी ॥ १५-१६ ॥

सोऽपश्यत् तन्नरेन्द्रस्तु नश्यमानं महाबलम् ।
महार्णवं समासाद्य वनापगशतं यथा ॥ १७ ॥

राजाने देखा, मेरी विशाल सेना उसी प्रकार नष्ट होती चली जा रही है, जैसे जलसे भरी हुई सैकड़ों नदियाँ महासागरके पास पहुँचकर उसीमें विलीन हो जाती हैं ॥ १७ ॥

ततः शक्रधनुःप्रख्यं धनुर्विस्फारयन् स्वयम् ।
आससाद नरेन्द्रस्तं रावणं क्रोधमूर्च्छितः ॥ १८ ॥

तब महाराज अनरण्य क्रोधसे मूर्छित हो अपने इन्द्र-धनुषके समान महान् शरासनको टंकारते हुए रावणका सामना करनेके लिये आये ॥ १८ ॥

अनरण्येन तेऽमात्या मारीचशुकसारणाः ।
प्रहस्तसहिता भग्ना व्यद्रवन्त मृगा इव ॥ १९ ॥

फिर तो जैसे सिंहको देखकर मृग भाग जाते हैं, उसी प्रकार मारीच, शुक, सारण तथा प्रहस्त—ये चारों राक्षस मन्त्री राजा अनरण्यसे परास्त होकर भाग खड़े हुए ॥ १९ ॥

ततो बाणशतान्यष्टौ पातयामास मूर्धनि ।
तस्य राक्षसराजस्य इक्ष्वाकुकुलनन्दनः ॥ २० ॥

तत्पश्चात् इक्ष्वाकुवंशको आनन्दित करनेवाले राजा अनरण्यने राक्षसराज रावणके मस्तकपर आठ सौ बाण मारे ॥

तस्य बाणाः पतन्तस्ते चक्रिरे न क्षतं क्वचित् ।
वारिधारा इवाभ्रेभ्यः पतन्त्यो गिरिमूर्धनि ॥ २१ ॥

परंतु जैसे बादलोंसे पर्वतशिखरपर गिरती हुई जल-धाराएँ उसे क्षति नहीं पहुँचातीं, उसी प्रकार वे बरसते हुए बाण उस निशाचरके शरीरपर कहीं घाव न कर सके ॥ २१ ॥

ततो राक्षसराजेन क्रुद्धेन नृपतिस्तदा ।
तलेनाभिहतो मूर्ध्नि स रथान्निपपात ह ॥ २२ ॥

इसके बाद राक्षसराजने कुपित होकर राजाके मस्तकपर

एक तमाचा मारा। इससे आहत होकर राजा रथसे नीचे गिर पड़े ॥ २२ ॥

स राजा पतितो भूमौ विह्वलः प्रविवेपितः।
वज्रदग्ध इवारण्ये सालो निपतितो यथा ॥ २३ ॥

जैसे वनमें वज्रपातसे दग्ध हुआ साखूका वृक्ष धराशायी हो जाता है, उसी प्रकार राजा अनरण्य व्याकुल हो भूमिपर गिरे और थर-थर काँपने लगे ॥ २३ ॥

तं प्रहस्याब्रवीद् रक्ष इक्ष्वाकुं पृथिवीपतिम्।
किमिदानीं फलं प्राप्तं त्वया मां प्रति युध्यता ॥ २४ ॥

यह देख रावण जोर-जोरसे हँस पड़ा और उन इक्ष्वाकुवंशी नरेशसे बोला—'इस समय मेरे साथ युद्ध करके तुमने क्या फल प्राप्त किया है?'॥ २४ ॥

त्रैलोक्ये नास्ति यो द्वन्द्वं मम दद्यान्नराधिप।
शङ्के प्रसक्तो भोगेषु न शृणोषि बलं मम ॥ २५ ॥

'नरेश्वर! तीनों लोकोंमें कोई ऐसा वीर नहीं है, जो मुझे द्वन्द्वयुद्ध दे सके। जान पड़ता है तुमने भोगोंमें अधिक आसक्त रहनेके कारण मेरे बल-पराक्रमको नहीं सुना था'॥

तस्यैवं ब्रुवतो राजा मन्दासुर्वाक्यमब्रवीत्।
किं शक्यमिह कर्तुं वै कालो हि दुरतिक्रमः ॥ २६ ॥

राजाकी प्राणशक्ति क्षीण हो रही थी। उन्होंने इस प्रकार बातें करनेवाले रावणका वचन सुनकर कहा—'राक्षसराज! अब यहाँ क्या किया जा सकता है? क्योंकि कालका उल्लङ्घन करना अत्यन्त दुष्कर है ॥ २६ ॥

✓ **नह्यहं निर्जितो रक्षस्त्वया चात्मप्रशंसिना।**
कालेनैव विपन्नोऽहं हेतुभूतस्तु मे भवान् ॥ २७ ॥

'राक्षस! तू अपने मुँहसे अपनी प्रशंसा कर रहा है; किंतु तूने जो आज मुझे पराजित किया है, इसमें काल ही कारण है। वास्तवमें कालने ही मुझे मारा है। तू तो मेरी मृत्युमें निमित्तमात्र बन गया है ॥ २७ ॥

निव

किं त्विदानीं मया शक्यं कर्तुं प्राणपरिक्षये।
नह्यहं विमुखो रक्षो युद्ध्यमानस्त्वया हतः ॥ २८ ॥

'मेरे प्राण जा रहे हैं, अतः इस समय मैं क्या कर सकता हूँ? निशाचर! मुझे संतोष है कि मैंने युद्धसे मुँह नहीं मोड़ा। युद्ध करता हुआ ही मैं तेरे हाथसे मारा गया हूँ ॥ २८ ॥

इक्ष्वाकुपरिभावित्वाद् वचो वक्ष्यामि राक्षस।
यदि दत्तं यदि हुतं यदि मे सुकृतं तपः।
यदि गुप्ताः प्रजाः सम्यक् तदा सत्यं वचोऽस्तु मे ॥ २९ ॥

'परंतु राक्षस! तूने अपने व्यङ्ग्यपूर्ण वचनसे इक्ष्वाकुकुलका अपमान किया है, इसलिये मैं तुझे शाप दूँगा—तेरे लिये अमङ्गलजनक बात कहूँगा। यदि मैंने दान, पुण्य, होम और तप किये हों, यदि मेरे द्वारा धर्मके अनुसार प्रजाजनोंका ठीक-ठीक पालन हुआ हो तो मेरी बात सत्य होकर रहे ॥ २९ ॥

उत्पत्स्यते कुले ह्यस्मिन्निक्ष्वाकूणां महात्मनाम्।
रामो दाशरथिर्नाम स ते प्राणान् हरिष्यति ॥ ३० ॥

'महात्मा इक्ष्वाकुवंशी नरेशोंके इस वंशमें ही दशरथनन्दन श्रीराम प्रकट होंगे, जो तेरे प्राणोंका अपहरण करेंगे'॥

ततो जलधरोदग्रस्ताडितो देवदुन्दुभिः।
तस्मिन्नुदाहृते शापे पुष्पवृष्टिश्च खाच्च्युता ॥ ३१ ॥

राजाके इस प्रकार शाप देते ही मेघके समान गम्भीर स्वरमें देवताओंकी दुन्दुभि बज उठी और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ३१ ॥

ततः स राजा राजेन्द्र गतः स्थानं त्रिविष्टपम्।
स्वर्गते च नृपे तस्मिन् राक्षसः सोऽपसर्पत ॥ ३२ ॥

राजाधिराज श्रीराम! तदनन्तर राजा अनरण्य स्वर्गलोकको सिधारे। उनके स्वर्गगामी हो जानेपर राक्षस रावण वहाँसे अन्यत्र चला गया ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः

नारदजीका रावणको समझाना, उनके कहनेसे रावणका युद्धके लिये यमलोकको जाना तथा नारदजीका इस युद्धके विषयमें विचार करना

ततो वित्रासयन् मर्त्यान् पृथिव्यां राक्षसाधिपः।
आससाद घने तस्मिन् नारदं मुनिपुङ्गवम् ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) इसके बाद राक्षसराज रावण मनुष्योंको भयभीत करता हुआ पृथ्वीपर विचरने लगा। एक दिन पुष्पक विमानसे यात्रा करते समय उसे बादलोंके बीचमें मुनिश्रेष्ठ देवर्षि नारदजी मिले ॥ १ ॥

तस्याभिवादनं कृत्वा दशग्रीवो निशाचरः।
अब्रवीत् कुशलं पृष्ट्वा हेतुमागमनस्य च ॥ २ ॥

निशाचर दशग्रीवने उनका अभिवादन करके कुशल-समाचारकी जिज्ञासा की और उनके आगमनका कारण पूछा—॥

नारदस्तु महातेजा देवर्षिरमितप्रभः।
अब्रवीन्मेघपृष्ठस्थो रावणं पुष्पके स्थितम् ॥ ३ ॥

तब बादलोंकी पीठपर खड़े हुए अमित कान्तिमान्

महातेजस्वी देवर्षि नारदने पुष्पक विमानपर बैठे हुए रावणसे कहा—॥ ३ ॥

राक्षसाधिपते सौम्य तिष्ठ विश्रवसः सुत ।
प्रीतोऽस्म्यभिजनोपेत विक्रमैरूर्जितैस्तव ॥ ४ ॥

'उत्तम कुलमें उत्पन्न विश्रवणकुमार राक्षसराज रावण ! सौम्य! ठहरो, मैं तुम्हारे बढ़े हुए बल-विक्रमसे बहुत प्रसन्न हूँ॥

विष्णुना दैत्यघातैश्च गन्धर्वोरगधर्षणैः ।
त्वया समं विमर्दैश्च भृशं हि परितोषितः ॥ ५ ॥

'दैत्योंका विनाश करनेवाले अनेक संग्राम करके भगवान् विष्णुने तथा गन्धर्वों और नागोंको पददलित करनेवाले युद्धोंद्वारा तुमने मुझे समानरूपसे संतुष्ट किया है ॥ ५ ॥

किंचिद् वक्ष्यामि तावत् तु श्रोतव्यं श्रोष्यसे यदि ।
तन्मे निगदतस्तात समाधिं श्रवणे कुरु ॥ ६ ॥

'इस समय यदि तुम सुनोगे तो मैं तुमसे कुछ सुननेयोग्य बात कहूँगा । तात ! मेरे मुँहसे निकली हुई उस बातको सुननेके लिये तुम अपने चित्तको एकाग्र करो ॥ ६ ॥

किमयं वध्यते तात त्वयावध्येन दैवतैः ।
हत एव ह्ययं लोको यदा मृत्युवशं गतः ॥ ७ ॥

'तात ! तुम देवताओंके लिये भी अवध्य होकर इस भूलोकके निवासियोंका वध क्यों कर रहे हो ? यहाँके प्राणी तो मृत्युके अधीन होनेके कारण स्वयं ही मरे हुए हैं; फिर तुम भी इन मरे हुओंको क्यों मार रहे हो ? ॥ ७ ॥

देवदानवदैत्यानां यक्षगन्धर्वरक्षसाम् ।
अवध्येन त्वया लोकः क्लेष्टुं योग्यो न मानुषः ॥ ८ ॥

'देवता, दानव, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व और राक्षस भी जिसे नहीं मार सकते, ऐसे विख्यात वीर होकर भी तुम इस मनुष्यलोकको क्लेश पहुँचाओ, यह कदापि तुम्हारे योग्य नहीं है ॥ ८ ॥

नित्यं श्रेयसि सम्मूढं महद्भिर्व्यसनैर्वृतम् ।
हन्यात् कस्तादृशं लोकं जराव्याधिशतैर्युतम् ॥ ९ ॥

'जो सदा अपने कल्याण-साधनमें मूढ़ हैं, बड़ी-बड़ी विपत्तियोंसे घिरे हुए हैं और बुढ़ापा तथा सैकड़ों रोगोंसे युक्त हैं, ऐसे लोगोंको कोई भी वीर पुरुष कैसे मार सकता है ?॥

तैस्तैरनिष्टोपगमैरजस्रं यत्र कुत्र कः ।
मतिमान् मानुषे लोके युद्धेन प्रणयी भवेत् ॥ १० ॥

'जो नाना प्रकारके अनिष्टोंकी प्राप्तिसे जहाँ कहीं भी पीड़ित है, उस मनुष्यलोकमें आकर कौन बुद्धिमान् वीर पुरुष युद्धके द्वारा मनुष्योंके वधमें अनुरक्त होगा ? ॥ १० ॥

क्षीयमाणं दैवहतं क्षुत्पिपासाजरादिभिः ।
विषादशोकसम्मूढं लोकं त्वं क्षपयस्व मा ॥ ११ ॥

'यह लोक तो यों ही भूख, प्यास और जरा आदिसे क्षीण हो रहा है तथा विषाद और शोकमें डूबकर अपनी विवेक-शक्ति खो बैठा है । दैवके मारे हुए इस मर्त्यलोकका तुम विनाश न करो ॥ ११ ॥

पश्य तावन्महाबाहो राक्षसेश्वर मानुषम् ।
मूढमेवं विचित्रार्थं यस्य न ज्ञायते गतिः ॥ १२ ॥

'महाबाहु राक्षसराज ! देखो तो सही, यह मनुष्यलोक ज्ञानशून्य होनेके कारण मूढ़ होनेपर भी किस तरह नाना प्रकारके क्षुद्र पुरुषार्थोंमें आसक्त है ? इसे इस बातका भी पता नहीं है कि कब दुःख और सुख आदि भोगनेका अवसर आयेगा ? ॥ १२ ॥

क्वचिद् वादित्रनृत्यादि सेव्यते मुदितैर्जनैः ।
रुद्यते चापरैरार्तैर्धाराश्रुनयनाननैः ॥ १३ ॥

'यहाँ कहीं कुछ मनुष्य तो आनन्दमग्न होकर गाजे-बाजे और नाच आदिका सेवन करते हैं—उनके द्वारा मन बहलाते हैं तथा कहीं कितने ही लोग दुःखसे पीड़ित हो नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए रोते रहते हैं ॥ १३ ॥

मातापितृसुतस्नेहभार्याबन्धुमनोरमैः ।
मोहितोऽयं जनो ध्वस्तः क्लेशं स्वं नावबुध्यते ॥ १४ ॥

'माता, पिता तथा पुत्रके स्नेहसे और पत्नी तथा भाईके सम्बन्धमें नाना प्रकारके मनसूबे बाँधनेके कारण यह मनुष्यलोक मोहग्रस्त हो परमार्थसे भ्रष्ट हो रहा है । इसे अपने बन्धनजनित क्लेशका अनुभव ही नहीं होता है ॥ १४ ॥

तत्किमेवं परिक्लिश्य लोकं मोहनिराकृतम् ।
जित एव त्वया सौम्य मर्त्यलोको न संशयः ॥ १५ ॥

'इस प्रकार जो मोह (अज्ञान) के कारण परम पुरुषार्थसे वञ्चित हो गया है, ऐसे मनुष्य-लोकको क्लेश पहुँचाकर तुम्हें क्या मिलेगा ? सौम्य ! तुमने मनुष्य-लोकको तो जीत ही लिया है, इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥ १५ ॥

अवश्यमेभिः सर्वैश्च गन्तव्यं यमसादनम् ।
तन्निगृह्णीष्व पौलस्त्य यमं परपुरंजय ॥ १६ ॥
तस्मिञ्जिते जितं सर्वं भवत्येव न संशयः ।

'शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले पुलस्त्यनन्दन ! इन सब मनुष्योंको यमलोकमें अवश्य जाना पड़ता है । अतः यदि शक्ति हो तो तुम यमराजको अपने काबूमें करो । उन्हें जीत लेनेपर तुम सबको जीत सकते हो; इसमें संशय नहीं है' ॥१६½॥

एवमुक्तस्तु लङ्केशो दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ १७ ॥
अब्रवीन्नारदं तत्र सम्प्रहस्याभिवाद्य च ।

नारदजीके ऐसा कहनेपर लङ्कापति रावण अपने तेजसे उद्दीप्त होनेवाले उन देवर्षिको प्रणाम करके हँसता हुआ बोला—॥ १७½ ॥

महर्षे देवगन्धर्वविहार समरप्रिय ॥ १८ ॥
अहं समुद्यतो गन्तुं विजयार्थं रसातलम् ।

'महर्षे ! आप देवताओं और गन्धर्वोंके लोकमें विहार करनेवाले हैं । युद्धके दृश्य देखना आपको बहुत ही प्रिय है । मैं इस समय दिग्विजयके लिये रसातलमें जानेको उद्यत हूँ ॥ १८½ ॥

ततो लोकत्रयं जित्वा स्थाप्य नागान् सुरान् वशे॥ १९॥
समुद्रममृतार्थं च मथिष्यामि रसालयम्।

'फिर तीनों लोकोंको जीतकर नागों और देवताओंको अपने वशमें करके अमृतकी प्राप्तिके लिये रसनिधि समुद्रका मन्थन करूँगा' ॥ १९½ ॥

अथाब्रवीद् दशग्रीवं नारदो भगवानृषिः॥ २०॥
क्व खल्विदानीं मार्गेण त्वयेहान्येन गम्यते।
अयं खलु सुदुर्गम्यः प्रेतराजपुरं प्रति॥ २१॥
मार्गो गच्छति दुर्धर्ष यमस्यामित्रकर्शन।

यह सुनकर देवर्षि भगवान् नारदने कहा—'शत्रुसूदन! यदि तुम रसातलको जाना चाहते हो तो इस समय उसका मार्ग छोड़कर दूसरे रास्तेसे कहाँ जा रहे हो? दुर्धर्ष वीर! रसातलका यह मार्ग अत्यन्त दुर्गम है और यमराजकी पुरीसे होकर ही जाता है' ॥ २०-२१½ ॥

स तु शारदमेघाभं हासं मुक्त्वा दशाननः॥ २२॥
उवाच कृतमित्येव वचनं चेदमब्रवीत्।

नारदजीके ऐसा कहनेपर दशमुख रावण शरद् ऋतुके बादलकी भाँति अपना उज्ज्वल हास बिखेरता हुआ बोला—'देवर्षे! मैंने आपकी बात स्वीकार कर ली।' इसके बाद उसने यों कहा—॥ २२½ ॥

तस्मादेवमहं ब्रह्मन् वैवस्वतवधोद्यतः॥ २३॥
गच्छामि दक्षिणामाशां यत्र सूर्यात्मजो नृपः।

'ब्रह्मन्! अब यमराजका वध करनेके लिये उद्यत होकर मैं उस दक्षिण दिशाको जाता हूँ, जहाँ सूर्यपुत्र राजा यम निवास करते हैं ॥ २३½ ॥

मया हि भगवन् क्रोधात् प्रतिज्ञातं रणार्थिना॥ २४॥
अवजेष्यामि चतुरो लोकपालानिति प्रभो।

'प्रभो! भगवन्! मैंने युद्धकी इच्छासे क्रोधपूर्वक प्रतिज्ञा की है कि चारों लोकपालोंको परास्त करूँगा ॥ २४½ ॥

तदिह प्रस्थितोऽहं वै पितृराजपुरं प्रति॥ २५॥
प्राणिसंक्लेशकर्तारं योजयिष्यामि मृत्युना।

'अतः मैं यहाँसे यमपुरीको प्रस्थान कर रहा हूँ। संसारके प्राणियोंको मौतका कष्ट देनेवाले सूर्यपुत्र यमको स्वयं ही मृत्युसे संयुक्त कर दूँगा' ॥ २५½ ॥

एवमुक्त्वा दशग्रीवो मुनिं तमभिवाद्य च॥ २६॥
प्रययौ दक्षिणामाशां प्रविष्टः सह मन्त्रिभिः।

ऐसा कहकर दशग्रीवने मुनिको प्रणाम किया और मन्त्रियोंके साथ वह दक्षिण दिशाकी ओर चल दिया ॥ २६½ ॥

नारदस्तु महातेजा मुहूर्तं ध्यानमास्थितः॥ २७॥
चिन्तयामास विप्रेन्द्रो विधूम इव पावकः।

उसके चले जानेपर धूमरहित अग्निके समान महातेजस्वी विप्रवर नारदजी दो घड़ीतक ध्यानमग्न हो इस प्रकार विचार करने लगे—॥ २७½ ॥

येन लोकास्त्रयः सेन्द्राः क्लिश्यन्ते सचराचराः॥ २८॥
क्षीणे चायुषि धर्मेण स कालो जेष्यते कथम्।

'आयु क्षीण होनेपर जिनके द्वारा धर्मपूर्वक इन्द्रसहित तीनों लोकोंके चराचर प्राणी क्लेशमें डाले जाते—दण्डित होते हैं, वे कालस्वरूप यमराज इस रावणके द्वारा कैसे जीते जायँगे? ॥ २८½ ॥

स्वदत्तकृतसाक्षी यो द्वितीय इव पावकः॥ २९॥
लब्धसंज्ञा विचेष्टन्ते लोका यस्य महात्मनः।
यस्य नित्यं त्रयो लोका विद्रवन्ति भयार्दिताः॥ ३०॥
तं कथं राक्षसेन्द्रोऽसौ स्वयमेव गमिष्यति।

'जो जीवोंके दान और कर्मके साक्षी हैं, जिनका तेज द्वितीय अग्निके समान है, जिन महात्मासे चेतना पाकर सम्पूर्ण जीव नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करते हैं, जिनके भयसे पीड़ित हो तीनों लोकोंके प्राणी उनसे दूर भागते हैं, उन्हींके पास यह राक्षसराज स्वयं ही कैसे जायगा? ॥ २९-३०½ ॥

यो विधाता च धाता च सुकृतं दुष्कृतं तथा॥ ३१॥
त्रैलोक्यं विजितं येन तं कथं विजयिष्यते।
अपरं किं तु कृत्वैवं विधानं संविधास्यति॥ ३२॥

'जो त्रिलोकीको धारण-पोषण करनेवाले तथा पुण्य और पापके फल देनेवाले हैं और जिन्होंने तीनों लोकोंपर विजय पायी है, उन्हीं कालदेवको यह राक्षस कैसे जीतेगा? काल ही सबका साधन है। यह राक्षस कालके अतिरिक्त दूसरे किस साधनका सम्पादन करके उस कालपर विजय प्राप्त करेगा? ॥ ३१-३२ ॥

कौतूहलं समुत्पन्नो यास्यामि यमसादनम्।
विमर्दं द्रष्टुमनयोर्यमराक्षसयोः स्वयम्॥ ३३॥

'अब तो मेरे मनमें बड़ा कौतूहल उत्पन्न हो गया है, अतः इन यमराज और राक्षसराजका युद्ध देखनेके लिये मैं स्वयं भी यमलोकको जाऊँगा' ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे विंशः सर्गः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः

रावणका यमलोकपर आक्रमण और उसके द्वारा यमराजके सैनिकोंका संहार

एवं संचिन्त्य विप्रेन्द्रो जगाम लघुविक्रमः।
आख्यातुं तद् यथावृत्तं यमस्य सदनं प्रति॥ १॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) ऐसा विचारकर शीघ्र चलनेवाले विप्रवर नारदजी रावणके आक्रमणका समाचार बतानेके लिये यमलोकमें गये ॥ १ ॥

अपश्यत् स यमं तत्र देवमग्निपुरस्कृतम् ।
विधानमनुतिष्ठन्तं प्राणिनो यस्य यादृशम् ॥ २ ॥

वहाँ जाकर उन्होंने देखा, यमदेवता अग्निको साक्षीके रूपमें सामने रखकर बैठे हैं और जिस प्राणीका जैसा कर्म है, उसीके अनुसार फल देनेकी व्यवस्था कर रहे हैं ॥ २ ॥

स तु दृष्ट्वा यमः प्राप्तं महर्षिं तत्र नारदम् ।
अब्रवीत् सुखमासीनमर्घ्यमावेद्य धर्मतः ॥ ३ ॥

महर्षि नारदको वहाँ आया देख यमराजने आतिथ्य-धर्मके अनुसार उनके लिये अर्घ्य आदि निवेदन करके कहा—॥ ३ ॥

कच्चित् क्षेमं नु देवर्षे कच्चिद् धर्मो न नश्यति ।
किमागमनकृत्यं ते देवगन्धर्वसेवित ॥ ४ ॥

'देवताओं और गन्धर्वोंसे सेवित देवर्षे ! कुशल तो है न ? धर्मका नाश तो नहीं हो रहा है ? आज यहाँ आपके शुभागमनका क्या उद्देश्य है ?' ॥ ४ ॥

अब्रवीत् तु तदा वाक्यं नारदो भगवानृषिः ।
श्रूयतामभिधास्यामि विधानं च विधीयताम् ॥ ५ ॥
एष नाम्ना दशग्रीवः पितृराज निशाचरः ।
उपयाति वशं नेतुं विक्रमैस्त्वां सुदुर्जयम् ॥ ६ ॥

तब भगवान् नारद मुनि बोले—'पितृराज ! सुनिये—मैं एक अवश्यक बात बता रहा हूँ, आप सुनकर उसके प्रतीकारका भी कोई उपाय कर लें। यद्यपि आपको जीतना अत्यन्त कठिन है, तथापि यह दशग्रीव नामक निशाचर अपने पराक्रमोंद्वारा आपको वशमें करनेके लिये यहाँ आ रहा है ॥

एतेन कारणेनाहं त्वरितो ह्यागतः प्रभो ।
दण्डप्रहरणस्याद्य तव किं नु भविष्यति ॥ ७ ॥

'प्रभो ! इसी कारणसे मैं तुरंत यहाँ आया हूँ कि आपको इस सङ्कटकी सूचना दे दूँ, परंतु आप तो कालदण्डरूपी आयुधको धारण करनेवाले हैं, आपकी उस राक्षसके आक्रमणसे क्या हानि होगी ?' ॥ ७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे दूरादंशुमन्तमिवोदितम् ।
ददृशुर्दीप्तमायान्तं विमानं तस्य रक्षसः ॥ ८ ॥

इस प्रकारकी बातें हो ही रही थीं कि उस राक्षसका उदित हुए सूर्यके समान तेजस्वी विमान दूरसे आता दिखायी दिया ॥ ८ ॥

तं देशं प्रभया तस्य पुष्पकस्य महाबलः ।
कृत्वा वितिमिरं सर्वं समीपमभ्यवर्तत ॥ ९ ॥

महाबली रावण पुष्पककी प्रभासे उस समस्त प्रदेशको अन्धकारशून्य करके अत्यन्त निकट आ गया ॥ ९ ॥

सोऽपश्यत् स महाबाहुर्दशग्रीवस्ततस्ततः ।
प्राणिनः सुकृतं चैव भुञ्जानांश्चैव दुष्कृतम् ॥ १० ॥

महाबाहु दशग्रीवने यमलोकमें आकर देखा कि यहाँ बहुत-से प्राणी अपने-अपने पुण्य तथा पापका फल भोग रहे हैं ॥ १० ॥

अपश्यत् सैनिकांश्चास्य यमस्यानुचरैः सह ।
यमस्य पुरुषैरुग्रैर्घोररूपैर्भयानकैः ॥ ११ ॥
ददर्श वध्यमानांश्च क्लिश्यमानांश्च देहिनः ।
क्रोशतश्च महानादं तीव्रनिष्टनतत्परान् ॥ १२ ॥

उसने यमराजके सेवकोंके साथ उनके सैनिकोंको भी देखा। उसकी दृष्टिमें यमयातनाका दृश्य भी आया। घोर रूपधारी उग्र प्रकृतिवाले भयानक यमदूत कितने ही प्राणियोंको मारते और क्लेश पहुँचाते थे, जिससे वे बड़े जोर-जोरसे चीखते और चिल्लाते थे ॥ ११-१२ ॥

कृमिभिर्भक्ष्यमाणांश्च सारमेयैश्च दारुणैः ।
श्रोत्रायासकरा वाचो वदतश्च भयावहाः ॥ १३ ॥

किन्हींको कीड़े खा रहे थे और कितनोंको भयङ्कर कुत्ते नोच रहे थे। वे सब-के-सब दुखी हो-होकर कानोंको पीड़ा देनेवाला भयानक चीत्कार करते थे ॥ १३ ॥

संतार्यमाणान् वैतरणीं बहुशः शोणितोदकाम् ।
वालुकासु च तप्तासु तप्यमानान् मुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥

किन्हींको बारंबार रक्तसे भरी हुई वैतरणी नदी पार करनेके लिये विवश किया जाता था और कितनोंको तपायी हुई बालुकाओंपर बार-बार चलाकर संतप्त किया जाता था ॥

असिपत्रवने चैव भिद्यमानानधार्मिकान् ।
रौरवे क्षारनद्यां च क्षुरधारासु चैव हि ॥ १५ ॥
पानीयं याचमानांश्च तृषितान् क्षुधितानपि ।
शवभूतान् कृशान् दीनान् विवर्णान् मुक्तमूर्धजान् ॥ १६ ॥
मलपङ्कधरान् दीनान् रूक्षांश्च परिधावतः ।
ददर्श रावणो मार्गे शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १७ ॥

कुछ पापी असिपत्र-वनमें, जिसके पत्ते तलवारकी धारके समान तीखे थे, विदीर्ण किये जा रहे थे। किन्हींको रौरव नरकमें डाला जाता था। कितनोंको खारे जलसे भरी हुई नदियोंमें डुबाया जाता था और बहुतोंको छुरोंकी धारोंपर दौड़ाया जाता था। कई प्राणी भूख और प्याससे तड़प रहे थे और थोड़े-से जलकी याचना कर रहे थे। कोई शवके समान कङ्काल, दीन, दुर्बल, उदास और खुले बालोंसे युक्त दिखायी देते थे। कितने ही प्राणी अपने अङ्गोंमें मैल और कीचड़ लगाये दयनीय तथा रूखे शरीरसे चारों ओर भाग रहे थे। इस तरहके सैकड़ों और हजारों जीवोंको रावणने मार्गमें यातना भोगते देखा ॥ १५—१७ ॥

कांश्चिच्च गृहमुख्येषु गीतवादित्रनिःस्वनैः ।
प्रमोदमानानद्राक्षीद् रावणः सुकृतैः स्वकैः ॥ १८ ॥

दूसरी ओर रावणने देखा कुछ पुण्यात्मा जीव अपने पुण्यकर्मोंके प्रभावसे अच्छे-अच्छे घरोंमें रहकर संगीत और वाद्योंकी मनोहर ध्वनिसे आनन्दित हो रहे हैं ॥ १८ ॥

गोरसं गोप्रदातारो ह्यन्नं चैवान्नदायिनः ।
गृहांश्च गृहदातारः स्वकर्मफलमश्नतः ॥ १९ ॥

गोदान करनेवाले गोरसको, अन्न देनेवाले अन्नको और गृह प्रदान करनेवाले लोग गृहको पाकर अपने सत्कर्मोंका फल भोग रहे हैं ॥ १९ ॥

सुवर्णमणिमुक्ताभिः प्रमदाभिरलंकृतान् ।
धार्मिकानपरांस्तत्र दीप्यमानान् स्वतेजसा ॥ २० ॥

दूसरे धर्मात्मा पुरुष वहाँ सुवर्ण, मणि और मुक्ताओंसे अलंकृत हो यौवनके मदसे मत्त रहनेवाली सुन्दरी स्त्रियोंके साथ अपनी अङ्गकान्तिसे प्रकाशित हो रहे हैं ॥ २० ॥

ददर्श स महाबाहू रावणो राक्षसाधिपः ।
ततस्तान् भिद्यमानांश्च कर्मभिर्दुष्कृतैः स्वकैः ॥ २१ ॥
रावणो मोचयामास विक्रमेण बलाद् बली ।
प्राणिनो मोक्षितास्तेन दशग्रीवेण रक्षसा ॥ २२ ॥

महाबाहु राक्षसराज रावणने इन सबको देखा । देखकर बलवान् राक्षस दशग्रीवने अपने पाप-कर्मोंके कारण यातना भोगनेवाले प्राणियोंको पराक्रमद्वारा बलपूर्वक मुक्त कर दिया ॥ २१-२२ ॥

सुखमापुर्मुहूर्तं ते ह्यतर्कितमचिन्तितम् ।
प्रेतेषु मुच्यमानेषु राक्षसेन महीयसा ॥ २३ ॥
प्रेतगोपाः सुसंक्रुद्धा राक्षसेन्द्रमभिद्रवन् ।

इससे थोड़ी देरतक उन पापियोंको बड़ा सुख मिला, उसके मिलनेकी न तो उन्हें सम्भावना थी और न उसके विषयमें वे कुछ सोच ही सके थे । उस महान् राक्षसके द्वारा जब सभी प्रेत यातनासे मुक्त कर दिये गये, तब उन प्रेतोंकी रक्षा करनेवाले यमदूत अत्यन्त कुपित हो राक्षसराजपर टूट पड़े ॥ २३½ ॥

ततो हलहलाशब्दः सर्वदिग्भ्यः समुत्थितः ॥ २४ ॥
धर्मराजस्य योधानां शूराणां सम्प्रधावताम् ।

फिर तो सम्पूर्ण दिशाओंकी ओरसे धावा करनेवाले धर्मराजके शूरवीर योद्धाओंका महान् कोलाहल प्रकट हुआ ॥

ते प्रासैः परिघैः शूलैर्मुसलैः शक्तितोमरैः ॥ २५ ॥
पुष्पकं समधर्षन्त शूराः शतसहस्रशः ।
तस्यासनानि प्रासादान् वेदिकास्तोरणानि च ॥ २६ ॥
पुष्पकस्य बभञ्जुस्ते शीघ्रं मधुकरा इव ।

जैसे फूलपर झुंड-के-झुंड भौंरे जुट जाते हैं, उसी प्रकार पुष्पक विमानपर सैकड़ों, हजारों शूरवीर यमदूत चढ़ आये और प्रासों, परिघों, शूलों, मूसलों, शक्तियों तथा तोमरोंद्वारा उसे तहस-नहस करने लगे । उन्होंने पुष्पक विमानके आसन, प्रासाद, वेदी और फाटक शीघ्र ही तोड़ डाले ॥२५-२६½॥

देवनिष्ठानभूतं तद् विमानं पुष्पकं मृधे ॥ २७ ॥
भज्यमानं तथैवासीदक्षयं ब्रह्मतेजसा ।

देवताओंका अधिष्ठानभूत वह पुष्पकविमान उस युद्धमें तोड़ा जानेपर भी ब्रह्माजीके प्रभावसे ज्यों-का-त्यों हो जाता था; क्योंकि वह नष्ट होनेवाला नहीं था ॥ २७½ ॥

असंख्या सुमहत्यासीत् तस्य सेना महात्मनः ॥ २८ ॥
शूराणामग्रयातॄणां सहस्राणि शतानि च ।

महामना यमकी विशाल सेना असंख्य थी । उसमें सैकड़ों-हजारों शूरवीर आगे बढ़कर युद्ध करनेवाले थे ॥ २८½ ॥

ततो वृक्षैश्च शैलैश्च प्रासादानां शतैस्तथा ॥ २९ ॥
ततस्ते सचिवास्तस्य यथाकामं यथाबलम् ।
अयुध्यन्त महावीराः स च राजा दशाननः ॥ ३० ॥

यमदूतोंके आक्रमण करनेपर रावणके वे महावीर मन्त्री तथा स्वयं राजा दशग्रीव भी वृक्षों, पर्वत-शिखरों तथा यमलोकके सैकड़ों प्रासादोंको उखाड़कर उनके द्वारा पूरी शक्ति लगाकर इच्छानुसार युद्ध करने लगे ॥ २९—३० ॥

ते तु शोणितदिग्धाङ्गाः सर्वशस्त्रसमाहताः ।
अमात्या राक्षसेन्द्रस्य चक्रुरायोधनं महत् ॥ ३१ ॥

राक्षसराजके मन्त्रियोंके सारे अङ्ग रक्तसे नहा उठे थे । सम्पूर्ण शस्त्रोंके आघातसे वे घायल हो चुके थे । फिर भी उन्होंने बड़ा भारी युद्ध किया ॥ ३१ ॥

अन्योन्यं ते महाभागा जघ्नुः प्रहरणैर्भृशम् ।
यमस्य च महाबाहो रावणस्य च मन्त्रिणः ॥ ३२ ॥

महाबाहु श्रीराम ! यमराज तथा रावणके वे महाभाग मन्त्री एक दूसरेपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा बड़े जोरसे आघात-प्रत्याघात करने लगे ॥ ३२ ॥

अमात्यांस्तांस्तु संत्यज्य यमयोधा महाबलाः ।
तमेव चाभ्यधावन्त शूलवर्षैर्दशाननम् ॥ ३३ ॥

तत्पश्चात् यमराजके महाबली योद्धाओंने रावणके मन्त्रियोंको छोड़कर उस दशग्रीवके ही ऊपर शूलोंकी वर्षा करते हुए धावा किया ॥ ३३ ॥

ततः शोणितदिग्धाङ्गः प्रहारैर्जर्जरीकृतः ।
फुल्लाशोक इवाभाति पुष्पके राक्षसाधिपः ॥ ३४ ॥

रावणका सारा शरीर शस्त्रोंकी मारसे जर्जर हो गया । वह खूनसे लथपथ हो गया और पुष्पकविमानके ऊपर फूले हुए अशोक वृक्षके समान प्रतीत होने लगा ॥ ३४ ॥

स तु शूलगदाप्रासाञ्छक्तितोमरसायकान् ।
मुसलानि शिलावृक्षान् मुमोचास्त्रबलाद् बली ॥ ३५ ॥

तब बलवान् रावणने अपने अस्त्र-बलसे यमराजके सैनिकोंपर शूल, गदा, प्रास, शक्ति, तोमर, बाण, मूसल, पत्थर और वृक्षोंकी वर्षा आरम्भ की ॥ ३५ ॥

तरूणां च शिलानां च शस्त्राणां चातिदारुणम् ।
यमसैन्येषु तद् वर्षं पपात धरणीतले ॥ ३६ ॥

वृक्षों, शिलाखण्डों और शस्त्रोंकी वह अत्यन्त भयंकर वृष्टि भूतलपर खड़े हुए यमराजके सैनिकोंपर पड़ने लगी ॥

तांस्तु सर्वान् विनिर्भिद्य तदस्त्रमपहत्य च ।
जघ्नुस्ते राक्षसं घोरमेकं शतसहस्रशः ॥ ३७ ॥

वे सैनिक भी सैकड़ों-हजारोंकी संख्यामें एकत्र हो उसके

सारे आयुधोंको छिन्न-भिन्न करके उसके द्वारा छोड़े हुए दिव्यास्त्रका भी निवारण कर एकमात्र उस भयंकर राक्षसको ही मारने लगे ॥ ३७ ॥

परिवार्य च तं सर्वे शैलं मेघोत्करा इव ।
भिन्दिपालैश्च शूलैश्च निरुच्छ्वासमपोथयन् ॥ ३८ ॥

जैसे बादलोंके समूह पर्वतपर सब ओरसे जलकी धाराएँ गिराते हैं, उसी प्रकार यमराजके समस्त सैनिकोंने रावणको चारों ओरसे घेरकर उसे भिन्दिपालों और शूलोंसे छेदना आरम्भ कर दिया । उसको दम लेनेकी भी फुरसत नहीं दी ॥

विमुक्तकवचः क्रुद्धः सिक्तः शोणितविस्रवैः ।
ततः स पुष्पकं त्यक्त्वा पृथिव्यामवतिष्ठत ॥ ३९ ॥

रावणका कवच कटकर गिर पड़ा । उसके शरीरसे रक्तकी धारा बहने लगी । वह उस रक्तसे नहा उठा और कुपित हो पुष्पकविमान छोड़कर पृथ्वीपर खड़ा हो गया ॥ ३९ ॥

ततः स कार्मुकी बाणी समरे चाभिवर्धत ।
लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन क्रुद्धस्तस्थौ यथान्तकः ॥ ४० ॥

वहाँ दो घड़ीके बाद उसने अपने-आपको सँभाला । फिर तो वह धनुष और बाण हाथमें ले बढ़े हुए उत्साहसे सम्पन्न हो समराङ्गणमें कुपित हुए यमराजके समान खड़ा हुआ ॥ ४० ॥

ततः पाशुपतं दिव्यमस्त्रं संधाय कार्मुके ।
तिष्ठ तिष्ठेति तानुक्त्वा तच्चापं व्यपकर्षत ॥ ४१ ॥

उसने अपने धनुषपर पाशुपत नामक दिव्य अस्त्रका संधान किया और उन सैनिकोंसे 'ठहरो-ठहरो' कहते हुए उस धनुषको खींचा ॥ ४१ ॥

आकर्णात् स विकृष्याथ चापमिन्द्रारिराहवे ।
मुमोच तं शरं क्रुद्धस्त्रिपुरे शंकरो यथा ॥ ४२ ॥

जैसे भगवान् शङ्करने त्रिपुरासुरपर पाशुपतास्त्रका प्रयोग किया था, उसी प्रकार उस इन्द्रद्रोही रावणने अपने धनुषको कानतक खींचकर वह बाण छोड़ दिया ॥ ४२ ॥

तस्य रूपं शरस्यासीत् सधूमज्वालमण्डलम् ।
वनं दहिष्यतो घर्मे दावाग्नेरिव मूर्च्छतः ॥ ४३ ॥

उस समय उसके बाणका रूप धूम और ज्वालाओंके मण्डलसे युक्त हो ग्रीष्म ऋतुमें जंगलको जलानेके लिये चारों ओर फैलते हुए दावानलके समान प्रतीत होने लगा ॥

ज्वालामाली स तु शरः क्रव्यादानुगतो रणे ।
मुक्तो गुल्मान् द्रुमांश्चापि भस्म कृत्वा प्रधावति ॥ ४४ ॥

रणभूमिमें ज्वालामालाओंसे घिरा हुआ वह बाण धनुषसे छूटते ही वृक्षों और झाड़ियोंको जलाता हुआ तीव्र गतिसे आगे बढ़ा और उसके पीछे-पीछे मांसाहारी जीव-जन्तु चलने लगे ॥ ४४ ॥

ते तस्य तेजसा दग्धाः सैन्या वैवस्वतस्य तु ।
रणे तस्मिन् निपतिता माहेन्द्रा इव केतवः ॥ ४५ ॥

उस युद्धस्थलमें यमराजके वे सारे सैनिक पाशुपतास्त्रके तेजसे दग्ध हो इन्द्रध्वजके समान नीचे गिर पड़े ॥ ४५ ॥

ततस्तु सचिवैः सार्धं राक्षसो भीमविक्रमः ।
ननाद सुमहानादं कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ ४६ ॥

तदनन्तर अपने मन्त्रियोंके साथ वह भयानक पराक्रमी राक्षस पृथ्वीको कम्पित करता हुआ-सा बड़े जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगा ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २१॥

द्वाविंशः सर्गः

यमराज और रावणका युद्ध, यमका रावणके वधके लिये उठाये हुए कालदण्डको ब्रह्माजीके कहनेसे लौटा लेना, विजयी रावणका यमलोकसे प्रस्थान

स तस्य तु महानादं श्रुत्वा वैवस्वतः प्रभुः ।
शत्रुं विजयिनं मेने स्वबलस्य च संक्षयम् ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन !) रावणके उस महानादको सुनकर सूर्यपुत्र भगवान् यमने यह समझ लिया कि 'शत्रु विजयी हुआ और मेरी सेना मारी गयी' ॥ १ ॥

स हि योधान् हतान् मत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः ।
अब्रवीत् त्वरितः सूतं रथो मे उपनीयताम् ॥ २ ॥

'मेरे योद्धा मारे गये'—यह जानकर यमराजके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और वे उतावले होकर सारथिसे बोले—'मेरा रथ ले आओ' ॥ २ ॥

तस्य सूतस्तदा दिव्यमुपस्थाप्य महारथम् ।
स्थितः स च महातेजा अध्यारोहत तं रथम् ॥ ३ ॥

तब उनके सारथिने तत्काल एक दिव्य एवं विशाल रथ वहाँ उपस्थित कर दिया और वह सामने विनीतभावसे खड़ा हो गया । फिर वे महातेजस्वी यम देवता उस रथपर आरूढ़ हुए ॥ ३ ॥

प्राससुद्गरहस्तश्च मृत्युस्तस्याग्रतः स्थितः ।
येन संक्षिप्यते सर्वं त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥ ४ ॥

उनके आगे प्रास और मुद्गर हाथमें लिये साक्षात् मृत्यु देवता खड़े थे, जो प्रवाहरूपसे सदा बने रहनेवाले इस समस्त त्रिभुवनका संहार करते हैं ॥ ४ ॥

कालदण्डस्तु पार्श्वस्थो मूर्तिमानस्य चाभवत् ।

यमप्रहरणं दिव्यं तेजसा ज्वलदग्निवत् ॥ ५ ॥

उनके पार्श्वभागमें कालदण्ड मूर्तिमान् होकर खड़ा हुआ, जो उनका मुख्य एवं दिव्य आयुध है। वह अपने तेजसे अग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था ॥ ५ ॥

तस्य पार्श्वेषु निच्छिद्राः कालपाशाः प्रतिष्ठिताः ।
पावकस्पर्शसंकाशः स्थितो मूर्तश्च मुद्गरः ॥ ६ ॥

उनके दोनों बगलमें छिद्ररहित कालपाश खड़े थे और जिसका स्पर्श अग्निके समान दुःसह है; वह मुद्गर भी मूर्तिमान् होकर उपस्थित था ॥ ६ ॥

ततो लोकत्रयं क्षुब्धमकम्पन्त दिवौकसः ।
कालं दृष्ट्वा तथा क्रुद्धं सर्वलोकभयावहम् ॥ ७ ॥

समस्त लोकोंको भय देनेवाले साक्षात् कालको कुपित हुआ देख तीनों लोकोंमें हलचल मच गयी । समस्त देवता काँप उठे ॥ ७ ॥

ततस्त्वचोदयत् सूतस्तानश्वान् रुचिरप्रभान् ।
प्रययौ भीमसंनादो यत्र रक्षःपतिः स्थितः ॥ ८ ॥

तदनन्तर सारथिने सुन्दर कान्तिवाले घोड़ोंको हाँका और वह रथ भयानक आवाज करता हुआ उस स्थानपर जा पहुँचा, जहाँ राक्षसराज रावण खड़ा था ॥ ८ ॥

मुहूर्तेन यमं ते तु हया हरिहयोपमाः ।
प्रापयन् मनसस्तुल्या यत्र तत् प्रस्तुतं रणम् ॥ ९ ॥

इन्द्रके घोड़ोंके समान तेजस्वी और मनके समान शीघ्रगामी उन घोड़ोंने यमराजको क्षणभरमें उस स्थानपर पहुँचा दिया, जहाँ वह युद्ध चल रहा था ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा तथैव विकृतं रथं मृत्युसमन्वितम् ।
सचिवा राक्षसेन्द्रस्य सहसा विप्रदुद्रुवुः ॥ १० ॥

मृत्युदेवताके साथ उस विकराल रथको आया देख राक्षसराजके सचिव सहसा वहाँसे भाग खड़े हुए ॥ १० ॥

लघुसत्त्वतया ते हि नष्टसंज्ञा भयार्दिताः ।
नेह योद्धुं समर्थाः स इत्युक्त्वा प्रययुर्दिशः ॥ ११ ॥

उनकी शक्ति थोड़ी थी । इसलिये वे भयसे पीड़ित हो अपना होश-हवाश खो बैठे और 'हम यहाँ युद्ध करनेमें समर्थ नहीं हैं' ऐसा कहकर विभिन्न दिशाओंमें भाग गये ॥ ११ ॥

स तु तं तादृशं दृष्ट्वा रथं लोकभयावहम् ।
नाक्षुभ्यत दशग्रीवो न चापि भयमाविशत् ॥ १२ ॥

परंतु समस्त संसारको भयभीत करनेवाले वैसे विकराल रथको देखकर भी दशग्रीवके मनमें न तो क्षोभ हुआ और न भय ही ॥ १२ ॥

स तु रावणमासाद्य व्यसृजच्छक्तितोमरान् ।
यमो मर्माणि संक्रुद्धो रावणस्य न्यकृन्तत ॥ १३ ॥

अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए यमराजने रावणके पास पहुँचकर शक्ति और तोमरोंका प्रहार किया तथा रावणके मर्मस्थानोंको छेद डाला ॥ १३ ॥

रावणस्तु ततः स्वस्थः शरवर्षं मुमोच ह ।
तस्मिन् वैवस्वतरथे तोयवर्षमिवाम्बुदः ॥ १४ ॥

तब रावणने भी सँभलकर यमराजके रथपर बाणोंकी झड़ी लगा दी, मानो मेघ जलकी वर्षा कर रहा हो ॥ १४ ॥

ततो महाशक्तिशतैः पात्यमानैर्महोरसि ।
नाशक्नोत् प्रतिकर्तुं स राक्षसः शल्यपीडितः ॥ १५ ॥

तदनन्तर उसकी विशाल छातीपर सैकड़ों महाशक्तियोंकी मार पड़ने लगी । वह राक्षस शल्योंके प्रहारसे इतना पीड़ित हो चुका था कि यमराजसे बदला लेनेमें समर्थ न हो सका ॥ १५ ॥

एवं नानाप्रहरणैर्यमेनामित्रकर्षिणा ।
सप्तरात्रं कृतः संख्ये विसंज्ञो विमुखो रिपुः ॥ १६ ॥

इस प्रकार शत्रुसूदन यमने नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए रणभूमिमें लगातार सात रातोंतक युद्ध किया। इससे उनका शत्रु रावण अपनी सुध-बुध खोकर युद्धसे विमुख हो गया ॥ १६ ॥

तदाऽऽसीत् तुमुलं युद्धं यमराक्षसयोर्द्वयोः ।
जयमाकाङ्क्षतोर्वीर समरेष्वनिवर्तिनोः ॥ १७ ॥

वीर रघुनन्दन ! वे दोनों योद्धा समरभूमिसे पीछे हटनेवाले नहीं थे और दोनों ही अपनी विजय चाहते थे; इसलिये उन यमराज और राक्षस दोनोंमें उस समय घोर युद्ध होने लगा ॥ १७ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
प्रजापतिं पुरस्कृत्य समेतास्तद्रणाजिरे ॥ १८ ॥

तब देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षिगण प्रजापतिको आगे करके उस समराङ्गणमें एकत्र हुए ॥ १८ ॥

संवर्त इव लोकानां युध्यतोरभवत् तदा ।
राक्षसानां च मुख्यस्य प्रेतानामीश्वरस्य च ॥ १९ ॥

उस समय राक्षसोंके राजा रावण तथा प्रेतराज यमके युद्धपरायण होनेपर समस्त लोकोंके प्रलयका समय उपस्थित हुआ-सा जान पड़ता था ॥ १९ ॥

राक्षसेन्द्रोऽपि विस्फार्य चापमिन्द्राशनिप्रभम् ।
निरन्तरमिवाकाशं कुर्वन् बाणांस्ततोऽसृजत् ॥ २० ॥

राक्षसराज रावण भी इन्द्रकी अशनिके सदृश अपने धनुषको खींचकर बाणोंकी वर्षा करने लगा, इससे आकाश ठसाठस भर गया—उसमें तिलभर भी खाली जगह नहीं रह गयी ॥ २० ॥

मृत्युं चतुर्भिर्विशिखैः सूतं सप्तभिरार्दयत् ।
यमं शतसहस्रेण शीघ्रं मर्मस्वताडयत् ॥ २१ ॥

उसने चार बाण मारकर मृत्युको और सात बाणोंसे यमके सारथिको भी पीड़ित कर दिया । फिर जल्दी-जल्दी लाख बाण मारकर यमराजके मर्मस्थानोंमें गहरी चोट पहुँचायी ॥

ततः क्रुद्धस्य वदनाद् यमस्य समजायत ।

ज्वालामाली सनिःश्वासः सधूमः कोपपावकः ॥ २२ ॥

तब यमराजके क्रोधकी सीमा न रही। उनके मुखसे वह रोष अग्नि बनकर प्रकट हुआ। वह आग ज्वाला-मालाओंसे मण्डित, श्वासवायुसे संयुक्त तथा धूमसे आच्छन्न दिखायी देती थी ॥ २२ ॥

तदाश्चर्यमथो दृष्ट्वा देवदानवसंनिधौ।
प्रहर्षितौ सुसंरब्धौ मृत्युकालौ बभूवतुः ॥ २३ ॥

देवताओं तथा दानवोंके समीप यह आश्चर्यजनक घटना देखकर रोषावेशसे भरे हुए मृत्यु एवं कालको बड़ा हर्ष हुआ २३

ततो मृत्युः क्रुद्धतरो वैवस्वतमभाषत।
मुञ्च मां समरे यावद्धन्मीमं पापराक्षसम् ॥ २४ ॥

तत्पश्चात मृत्युदेवने अत्यन्त कुपित होकर वैवस्वत यमसे कहा—'आप मुझे छोड़िये—आज्ञा दीजिये, मैं समराङ्गणमें इस पापी राक्षसको अभी मारे डालता हूँ ॥ २४ ॥

नैषा रक्षो भवेदद्य मर्यादा हि निसर्गतः।
हिरण्यकशिपुः श्रीमान् नमुचिः शम्बरस्तथा ॥ २५ ॥
निसन्दिर्धूमकेतुश्च बलिर्वैरोचनोऽपि च।
शम्भुर्दैत्यो महाराजो वृत्रो बाणस्तथैव च ॥ २६ ॥
राजर्षयः शास्त्रविदो गन्धर्वाः समहोरगाः।
ऋषयः पन्नगा दैत्या यक्षाश्च ह्यप्सरोगणाः ॥ २७ ॥
युगान्तपरिवर्ते च पृथिवी समहार्णवा।
क्षयं नीता महाराज सपर्वतसरिद्द्रुमा ॥ २८ ॥
एते चान्ये च बहवो बलवन्तो दुरासदाः।
विनिपन्ना मया दृष्टाः किमुतायं निशाचरः ॥ २९ ॥

'महाराज! यह मेरी स्वभावसिद्ध मर्यादा है कि मुझसे भिड़कर यह राक्षस जीवित नहीं रह सकता। श्रीमान् हिरण्यकशिपु, नमुचि, शम्बर, निसन्दि, धूमकेतु, विरोचनकुमार बलि, शम्भुनामक दैत्य, महाराज वृत्र तथा बाणासुर, कितने ही शास्त्रवेत्ता राजर्षि, गन्धर्व, बड़े-बड़े नाग, ऋषि, सर्प, दैत्य, यक्ष, अप्सराओंके समुदाय, युगान्तकालमें समुद्रों, पर्वतों, सरिताओं और वृक्षोंसहित पृथ्वी—ये सब मेरे द्वारा क्षयको प्राप्त हुए हैं। ये तथा दूसरे बहुतेरे बलवान् एवं दुर्जय वीर भी मेरे द्वारा विनाशको प्राप्त हो चुके हैं, फिर यह निशाचर किस गिनतीमें है? ॥ २५-२९ ॥

मुञ्च मां साधु धर्मज्ञ यावदेनं निहन्म्यहम्।
नहि कश्चिन्मया दृष्टो बलवानपि जीवति ॥ ३० ॥

'धर्मज्ञ! आप मुझे छोड़ दीजिये। मैं इसे अवश्य मार डालूँगा। जिसे मैं देख लूँ, वह कोई बलवान् होनेपर भी जीवित नहीं रह सकता ॥ ३० ॥

बलं मम न खल्वेतन्मर्यादैषा निसर्गतः।
स दृष्टो न मया काल मुहूर्तमपि जीवति ॥ ३१ ॥

'काल! मेरी दृष्टि पड़नेपर वह रावण दो घड़ी भी जीवन धारण नहीं कर सकेगा। मेरे इस कथनका तात्पर्य केवल अपने बलको प्रकाशित करना मात्र नहीं है; अपितु यह स्वभावसिद्ध मर्यादा है' ॥ ३१ ॥

तस्यैवं वचनं श्रुत्वा धर्मराजः प्रतापवान्।
अब्रवीत् तत्र तं मृत्युं त्वं तिष्ठैनं निहन्म्यहम् ॥ ३२ ॥

मृत्युकी यह बात सुनकर प्रतापी धर्मराजने उससे कहा—'तुम ठहरो, मैं ही इसे मारे डालता हूँ' ॥ ३२ ॥

ततः संरक्तनयनः क्रुद्धो वैवस्वतः प्रभुः।
कालदण्डममोघं तु तोलयामास पाणिना ॥ ३३ ॥

तदनन्तर क्रोधसे लाल आँखें करके सामर्थ्यशाली वैवस्वत यमने अपने अमोघ कालदण्डको हाथसे उठाया ॥ ३३ ॥

यस्य पार्श्वेषु निहिताः कालपाशाः प्रतिष्ठिताः।
पावकाशनिसंकाशो मुद्गरो मूर्तिमान् स्थितः ॥ ३४ ॥

उस कालदण्डके पार्श्वभागोंमें कालपाश प्रतिष्ठित थे और वज्र एवं अग्नितुल्य तेजस्वी मुद्गर भी मूर्तिमान् होकर स्थित था ॥ ३४ ॥

दर्शनादेव यः प्राणान् प्राणिनामपि कर्षति।
किं पुनः स्पृशमानस्य पात्यमानस्य वा पुनः ॥ ३५ ॥

वह कालदण्ड दृष्टिमें आनेमात्रसे प्राणियोंके प्राणोंका अपहरण कर लेता था। फिर जिससे उसका स्पर्श हो जाय अथवा जिसके ऊपर उसकी मार पड़े, उस पुरुषके प्राणोंका संहार करना उसके लिये कौन बड़ी बात है? ॥ ३५ ॥

स ज्वालापरिवारस्तु निर्दहन्निव राक्षसम्।
तेन स्पृष्टो बलवता महाप्रहरणोऽस्फुरत् ॥ ३६ ॥

ज्वालाओंसे घिरा हुआ वह कालदण्ड उस राक्षसको दग्ध-सा कर देनेके लिये उद्यत था। बलवान् यमराजके हाथमें लिया हुआ वह महान् आयुध अपने तेजसे प्रकाशित हो उठा ॥ ३६ ॥

ततो विदुद्रुवुः सर्वे तस्मात् त्रस्ता रणाजिरे।
सुराश्च क्षुभिताः सर्वे दृष्ट्वा दण्डोद्यतं यमम् ॥ ३७ ॥

उसके उठते ही समराङ्गणमें खड़े हुए समस्त सैनिक भयभीत होकर भाग चले। कालदण्ड उठाये यमराजको देखकर समस्त देवता भी क्षुब्ध हो उठे ॥ ३७ ॥

तस्मिन् प्रहर्तुकामे तु यमे दण्डेन रावणम्।
यमं पितामहः साक्षाद् दर्शयित्वेदमब्रवीत् ॥ ३८ ॥

यमराज उस दण्डसे रावणपर प्रहार करना ही चाहते थे कि साक्षात् पितामह ब्रह्मा वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने दर्शन देकर इस प्रकार कहा—॥ ३८ ॥

वैवस्वत महाबाहो न खल्वमितविक्रम।
न हन्तव्यस्त्वयैतेन दण्डेनैष निशाचरः ॥ ३९ ॥

'अमित पराक्रमी महाबाहु वैवस्वत! तुम इस कालदण्डके द्वारा निशाचर रावणका वध न करो ॥ ३९ ॥

वरः खलु मयैतस्मै दत्तस्त्रिदशपुङ्गव।
स त्वया नानृतः कार्यो यन्मया व्याहृतं वचः ॥ ४० ॥

'देवप्रवर! मैंने इसे देवताओंद्वारा न मारे जा सकनेका

वर दिया है। मेरे मुँहसे जो बात निकल चुकी है, उसे तुम्हें असत्य नहीं करना चाहिये ॥ ४० ॥

यो हि मामनृतं कुर्याद् देवो वा मानुषोऽपि वा ।
त्रैलोक्यमनृतं तेन कृतं स्यान्नात्र संशयः ॥ ४१ ॥

'जो देवता अथवा मनुष्य मुझे असत्यवादी बना देगा, उसे समस्त त्रिलोकीको मिथ्याभाषी बनानेका दोष लगेगा, इसमें संशय नहीं है ॥ ४१ ॥

क्रुद्धेन विप्रमुक्तोऽयं निर्विशेषं प्रियाप्रिये ।
प्रजाः संहरते रौद्रो लोकत्रयभयावहः ॥ ४२ ॥

'यह कालदण्ड तीनों लोकोंके लिये भयंकर तथा रौद्र है। तुम्हारे द्वारा क्रोधपूर्वक छोड़ा जानेपर यह प्रिय और अप्रिय जनोंमें भेदभाव न रखता हुआ सामने पड़ी हुई समस्त प्रजाका संहार कर डालेगा ॥ ४२ ॥

अमोघो ह्येष सर्वेषां प्राणिनाममितप्रभः ।
कालदण्डो मया सृष्टः पूर्वं मृत्युपुरस्कृतः ॥ ४३ ॥

'इस अमित तेजस्वी कालदण्डको भी पूर्वकालमें मैंने ही बनाया था। यह किसी भी प्राणीपर व्यर्थ नहीं होता है। इसके प्रहारसे सबकी मृत्यु हो जाती है ॥ ४३ ॥

तन्न खल्वेष ते सौम्य पात्यो रावणमूर्धनि ।
न ह्यस्मिन् पतिते कश्चिन्मुहूर्तमपि जीवति ॥ ४४ ॥

'अतः सौम्य! तुम इसे रावणके मस्तकपर न गिराओ। इसकी मार पड़नेपर कोई एक मुहूर्त भी जीवित नहीं रह सकता ॥ ४४ ॥

यदि ह्यस्मिन् निपतिते न म्रियेतैष राक्षसः ।
म्रियते वा दशग्रीवस्तदाप्युभयतोऽनृतम् ॥ ४५ ॥

'कालदण्ड पड़नेपर यदि यह राक्षस रावण न मरा तो अथवा मर गया तो—दोनों ही दशाओंमें मेरी बात असत्य होगी ॥ ४५ ॥

तन्निवर्तय लङ्केशाद् दण्डमेतं समुद्यतम् ।
सत्यं च मां कुरुष्वाद्य लोकांस्त्वं यद्यवेक्षसे ॥ ४६ ॥

'इसलिये हाथमें उठाये हुए इस कालदण्डको तुम लङ्कापति रावणकी ओरसे हटा लो। यदि समस्त लोकोंपर तुम्हारी दृष्टि है तो आज रावणकी रक्षा करके मुझे सत्यवादी बनाओ' ॥ ४६ ॥

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा प्रत्युवाच यमस्तदा ।
एष व्यावर्तितो दण्डः प्रभविष्णुर्हि नो भवान् ॥ ४७ ॥

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा यमराजने उत्तर दिया—'यदि ऐसी बात है तो लीजिये मैंने इस दण्डको हटा लिया। आप हम सब लोगोंके प्रभु हैं (अतः आपकी आज्ञाका पालन करना हमारा कर्तव्य है) ॥ ४७ ॥

किं त्विदानीं मया शक्यं कर्तुं रणगतेन हि ।
न मया यद्ययं शक्यो हन्तुं वरपुरस्कृतः ॥ ४८ ॥

'परंतु वरदानसे युक्त होनेके कारण यदि मेरे द्वारा इस निशाचरका वध नहीं हो सकता तो इस समय इसके साथ युद्ध करके ही मैं क्या करूँगा? ॥ ४८ ॥

एष तस्मात् प्रणश्यामि दर्शनादस्य रक्षसः ।
इत्युक्त्वा सरथः साश्वस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४९ ॥

'इसलिये अब मैं इसकी दृष्टिसे ओझल होता हूँ' यों कहकर यमराज रथ और घोड़ोंसहित वहीं अन्तर्धान हो गये ।४९।

दशग्रीवस्तु तं जित्वा नाम विश्राव्य चात्मनः ।
आरुह्य पुष्पकं भूयो निष्क्रान्तो यमसादनात् ॥ ५० ॥

इस प्रकार यमराजको जीतकर अपने नामकी घोषणा करके दशग्रीव रावण पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो यमलोकसे चला गया ॥ ५० ॥

स तु वैवस्वतो देवैः सह ब्रह्मपुरोगमैः ।
जगाम त्रिदिवं हृष्टो नारदश्च महामुनिः ॥ ५१ ॥

तदनन्तर सूर्यपुत्र यमराज तथा महामुनि नारदजी ब्रह्म आदि देवताओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गमें गये ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः

रावणके द्वारा निवातकवचोंसे मैत्री, कालकेयोंका वध तथा वरुणपुत्रोंकी पराजय

ततो जित्वा दशग्रीवो यमं त्रिदशपुङ्गवम् ।
रावणस्तु रणश्लाघी स्वसहायान् ददर्श ह ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) देवेश्वर यमको पराजित करके युद्धका हौसला रखनेवाला दशग्रीव रावण अपने सहायकोंसे मिला ॥ १ ॥

ततो रुधिरसिक्ताङ्गं प्रहारैर्जर्जरीकृतम् ।
रावणं राक्षसा दृष्ट्वा विस्मयं समुपागमन् ॥ २ ॥

उसके सारे अङ्ग रक्तसे नहा उठे थे और प्रहारोंसे जर्जर हो गये थे। इस अवस्थामें रावणको देखकर उन राक्षसोंको बड़ा विस्मय हुआ ॥ २ ॥

जयेन वर्धयित्वा च मारीचप्रमुखास्ततः ।
पुष्पकं भेजिरे सर्वे सान्त्विता रावणेन तु ॥ ३ ॥

'महाराजकी जय हो' ऐसा कहकर रावणकी अभ्युदय कामना करके वे मारीच आदि सब राक्षस पुष्पकविमानपर बैठे। उस समय रावणने उन सबको सान्त्वना दी ॥ ३ ॥

ततो रसातलं रक्षः प्रविष्टः पयसां निधिम् ।
दैत्योरगगणाध्युष्टं वरुणेन सुरक्षितम् ॥ ४ ॥

तदनन्तर वह राक्षस रसातलमें जानेकी इच्छासे दैत्यों और नागोंसे सेवित तथा वरुणके द्वारा सुरक्षित जलनिधि समुद्रमें प्रविष्ट हुआ ॥ ४ ॥

स तु भोगवतीं गत्वा पुरीं वासुकिपालिताम् ।
कृत्वा नागान् वशे हृष्टो ययौ मणिमयीं पुरीम् ॥ ५ ॥

नागराज वासुकिद्वारा पालित भोगवती पुरीमें प्रवेश करके उसने नागोंको अपने वशमें कर लिया और वहाँसे हर्षपूर्वक मणिमयीपुरीको प्रस्थान किया ॥ ५ ॥

निवातकवचास्तत्र दैत्या लब्धवरा वसन् ।
राक्षसस्तान् समागम्य युद्धाय समुपाह्वयत् ॥ ६ ॥

उस पुरीमें निवातकवच नामक दैत्य रहते थे, जिन्हें ब्रह्माजीसे उत्तम वर प्राप्त थे । उस राक्षसने वहाँ जाकर उन सबको युद्धके लिये ललकारा ॥ ६ ॥

ते तु सर्वे सुविक्रान्ता दैतेया बलशालिनः ।
नानाप्रहरणास्तत्र प्रहृष्टा युद्धदुर्मदाः ॥ ७ ॥

वे सब दैत्य बड़े पराक्रमी और बलशाली थे । नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करते थे तथा युद्धके लिये सदा उत्साहित एवं उन्मत्त रहते थे ॥ ७ ॥

शूलैस्त्रिशूलैः कुलिशैः पट्टिशासिपरश्वधैः ।
अन्योन्यं बिभिदुः क्रुद्धा राक्षसा दानवास्तथा ॥ ८ ॥

उनका राक्षसोंके साथ युद्ध आरम्भ हो गया । वे राक्षस और दानव कुपित हो एक दूसरेको शूल, त्रिशूल, वज्र, पट्टिश, खड्ग और फरसोंसे घायल करने लगे ॥ ८ ॥

तेषां तु युध्यमानानां साग्रः संवत्सरो गतः ।
न चान्यतरतस्तत्र विजयो वा क्षयोऽपि वा ॥ ९ ॥

उनके युद्ध करते हुए एक वर्षसे अधिक समय व्यतीत हो गया; किंतु उनमेंसे किसी भी पक्षकी विजय या पराजय नहीं हुई ॥ ९ ॥

ततः पितामहस्तत्र त्रैलोक्यगतिरव्ययः ।
आजगाम द्रुतं देवो विमानवरमास्थितः ॥ १० ॥

तब त्रिभुवनके आश्रयभूत अविनाशी पितामह भगवान् ब्रह्मा एक उत्तम विमानपर बैठकर वहाँ शीघ्र आये ॥ १० ॥

निवातकवचानां तु निवार्य रणकर्म तत् ।
वृद्धः पितामहो वाक्यमुवाच विदितार्थवत् ॥ ११ ॥

बूढ़े पितामहने निवातकवचोंके उस युद्ध-कर्मको रोक दिया और उनसे स्पष्ट शब्दोंमें यह बात कही—॥ ११ ॥

न ह्ययं रावणो युद्धे शक्यो जेतुं सुरासुरैः ।
न भवन्तः क्षयं नेतुमपि सामरदानवैः ॥ १२ ॥

'दानवो ! समस्त देवता और असुर मिलकर भी युद्धमें इस रावणको परास्त नहीं कर सकते । इसी तरह समस्त देवता और दानव एक साथ आक्रमण करें तो भी वे तुम लोगोंका संहार नहीं कर सकते ॥ १२ ॥

राक्षसस्य सखित्वं च भवद्भिः सह रोचते ।
अविभक्ताश्च सर्वार्थाः सुहृदां नात्र संशयः ॥ १३ ॥

'(तुम दोनोंमें वरदानजनित शक्ति एक-सी है) इसलिये मुझे तो यह अच्छा लगता है कि तुमलोगोंके साथ इस राक्षसकी मैत्री हो जाय; क्योंकि सुहृदोंके सभी अर्थ (भोग्य-पदार्थ) एक दूसरेके लिये समान होते हैं—पृथक्-पृथक् बँटे नहीं रहते हैं । निःसंदेह ऐसी ही बात है' ॥ १३ ॥

ततोऽग्निसाक्षिकं सख्यं कृतवांस्तत्र रावणः ।
निवातकवचैः सार्धं प्रीतिमानभवत् तदा ॥ १४ ॥

तब वहाँ रावणने अग्निको साक्षी बनाकर निवातकवचोंके साथ मित्रता कर ली । इससे उसको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १४ ॥

अर्चितस्तैर्यथान्यायं संवत्सरमथोषितः ।
स्वपुरान्निर्विशेषं च प्रियं प्राप्तो दशाननः ॥ १५ ॥

फिर निवातकवचोंसे उचित आदर पाकर वह एक वर्षतक वहीं टिका रहा । उस स्थानपर दशाननको अपने नगरके समान ही प्रिय भोग प्राप्त हुए ॥ १५ ॥

तत्रोपधार्य मायानां शतमेकं समाप्तवान् ।
सलिलेन्द्रपुरान्वेषी भ्रमति स्म रसातलम् ॥ १६ ॥

उसने निवातकवचोंसे सौ प्रकारकी मायाओंका ज्ञान प्राप्त किया । उसके बाद वह वरुणके नगरका पता लगाता हुआ रसातलमें सब ओर घूमने लगा ॥ १६ ॥

ततोऽश्मनगरं नाम कालकेयैरधिष्ठितम् ।
गत्वा तु कालकेयांश्च हत्वा तत्र बलोत्कटान् ॥ १७ ॥
शूर्पणख्याश्च भर्तारमसिना प्राच्छिनत् तदा ।
श्यालं च बलवन्तं च विद्युज्जिह्वं बलोत्कटम् ॥ १८ ॥
जिह्वया संलिहन्तं च राक्षसं समरे तदा ।

घूमते-घूमते वह अश्मनामक नगरमें जा पहुँचा, जहाँ कालकेय नामक दानव निवास करते थे । कालकेय बड़े बलवान् थे । रावणने वहाँ उन सबका संहार करके शूर्पणखाके पति उत्कट बलशाली अपने बहनोई महाबली विद्युज्जिह्वको, जो उस राक्षसको समराङ्गणमें चाट जाना चाहता था, तलवारसे काट डाला ॥ १७-१८½ ॥

तं विजित्य मुहूर्तेन जघ्ने दैत्यांश्चतुःशतम् ॥ १९ ॥
ततः पाण्डुरमेघाभं कैलासमिव भास्वरम् ।
वरुणस्यालयं दिव्यमपश्यद् राक्षसाधिपः ॥ २० ॥

उसे परास्त करके रावणने दो ही घड़ीमें चार सौ दैत्योंको मौतके घाट उतार दिया । तत्पश्चात् उस राक्षसराजने वरुणका दिव्य भवन देखा, जो श्वेत बादलोंके समान उज्ज्वल और कैलास पर्वतके समान प्रकाशमान था ॥ १९-२० ॥

क्षरन्तीं च पयस्तत्र सुरभिं गामवस्थिताम् ।
यस्याः पयोऽभिनिष्पन्दात् क्षीरोदो नाम सागरः ॥ २१ ॥

वहीं सुरभि नामकी गौ भी खड़ी थी, जिसके थनोंसे दूध झर रहा था । कहते हैं, सुरभिके ही दूधकी धारासे क्षीरसागर भरा हुआ है ॥ २१ ॥

ददर्श रावणस्तत्र गोवृषेन्द्रवरारणिम् ।
यस्माच्चन्द्रः प्रभवति शीतरश्मिर्निशाकरः ॥ २२ ॥

रावणने महादेवजीके वाहनभूत महावृषभकी जननी सुरभिदेवीका दर्शन किया, जिससे शीतल किरणोंवाले निशाकर चन्द्रमाका प्रादुर्भाव हुआ है (सुरभिसे क्षीरसमुद्र और क्षीरसमुद्रसे चन्द्रमाका आविर्भाव हुआ है) ॥ २२ ॥

यं समाश्रित्य जीवन्ति फेनपाः परमर्षयः ।
अमृतं यत्र चोत्पन्नं स्वधा च स्वधभोजिनाम् ॥ २३ ॥

उन्हीं चन्द्रदेवके उत्पत्तिस्थान क्षीरसमुद्रका आश्रय लेकर फेन पीनेवाले महर्षि जीवन धारण करते हैं । उस क्षीरसागरसे ही सुधा तथा स्वधाभोजी पितरोंकी स्वधा प्रकट हुई है ॥ २३ ॥

यां ब्रुवन्ति नरा लोके सुरभिं नाम नामतः ।
प्रदक्षिणं तु तां कृत्वा रावणः परमाद्भुताम् ।
प्रविवेश महाघोरं गुप्तं बहुविधैर्बलैः ॥ २४ ॥

लोकमें जिनको सुरभि नामसे पुकारा जाता है, उन परम अद्भुत गोमाताकी परिक्रमा करके रावणने नाना प्रकारकी सेनाओंसे सुरक्षित महाभयंकर वरुणालयमें प्रवेश किया ॥२४॥

ततो धाराशताकीर्णं शारदाभ्रनिभं तदा ।
नित्यप्रहृष्टं ददृशे वरुणस्य गृहोत्तमम् ॥ २५ ॥

वहाँ प्रवेश करके उसने वरुणके उत्तम भवनको देखा, जो सदा ही आनन्दमय उत्सवसे परिपूर्ण, अनेक जलधाराओं (फौवारों) से व्याप्त तथा शरत्कालके बादलोंके समान उज्ज्वल था ॥ २५ ॥

ततो हत्वा बलाध्यक्षान् समरे तैश्च ताडितः ।
अब्रवीच्च ततो योधान् राजा शीघ्रं निवेद्यताम् ॥ २६ ॥

तदनन्तर वरुणके सेनापतियोंने समरभूमिमें रावणपर प्रहार किया । फिर रावणने भी उन सबको घायल करके वहाँके योद्धाओंसे कहा—'तुमलोग राजा वरुणसे शीघ्र जाकर मेरी यह बात कहो—॥ २६ ॥

युद्धार्थी रावणः प्राप्तस्तस्य युद्धं प्रदीयताम् ।
वद वा न भयं तेऽस्ति निर्जितोऽस्मीति साञ्जलिः॥२७॥

'राजन्! राक्षसराज रावण युद्धके लिये आया है, आप चलकर उससे युद्ध कीजिये अथवा हाथ जोड़कर अपनी पराजय स्वीकार कीजिये । फिर आपको कोई भय नहीं रहेगा' ॥ २७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धा वरुणस्य महात्मनः ।
पुत्राः पौत्राश्च निष्क्रामन् गौश्च पुष्कर एव च ॥ २८ ॥

इसी बीचमें सूचना पाकर महात्मा वरुणके पुत्र और पौत्र क्रोधसे भरे हुए निकले । उनके साथ 'गौ' और 'पुष्कर' नामक सेनाध्यक्ष भी थे ॥ २८ ॥

ते तु तत्र गुणोपेता बलैः परिवृताः स्वकैः ।
युक्त्वा रथान् कामगमानुद्यद्भास्करवर्चसः ॥ २९ ॥

वे सब-के-सब सर्वगुणसम्पन्न तथा उगते हुए सूर्यके तुल्य तेजस्वी थे । इच्छानुसार चलनेवाले रथोंपर आरूढ़ हो अपनी सेनाओंसे घिरकर वे वहाँ युद्धस्थलमें आये ॥ २९ ॥

ततो युद्धं समभवद् दारुणं रोमहर्षणम् ।
सलिलेन्द्रस्य पुत्राणां रावणस्य च धीमतः ॥ ३० ॥

फिर तो वरुणके पुत्रों और बुद्धिमान् रावणमें बड़ा भयंकर युद्ध छिड़ गया, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला था ॥

अमात्यैश्च महावीर्यैर्दशग्रीवस्य रक्षसः ।
वारुणं तद् बलं सर्वं क्षणेन विनिपातितम् ॥ ३१ ॥

राक्षस दशग्रीवके महापराक्रमी मन्त्रियोंने एक ही क्षणमें वरुणकी सारी सेनाको मार गिराया ॥ ३१ ॥

समीक्ष्य स्वबलं संख्ये वरुणस्य सुतास्तदा ।
अर्दिताः शरजालेन निवृत्ता रणकर्मणः ॥ ३२ ॥

युद्धमें अपनी सेनाकी यह अवस्था देख वरुणके पुत्र उस समय बाण-समूहोंसे पीड़ित होनेके कारण कुछ देरके लिये युद्ध-कर्मसे हट गये ॥ ३२ ॥

महीतलगतास्ते तु रावणं दृश्य पुष्पके ।
आकाशमाशु विविशुः स्यन्दनैः शीघ्रगामिभिः ॥ ३३ ॥

भूतलपर स्थित होकर उन्होंने जब रावणको पुष्पक विमानपर बैठा देखा, तब वे भी शीघ्रगामी रथोंद्वारा तुरंत ही आकाशमें जा पहुँचे ॥ ३३ ॥

महदासीत् ततस्तेषां तुल्यं स्थानमवाप्य तत् ।
आकाशयुद्धं तुमुलं देवदानवयोरिव ॥ ३४ ॥

अब बराबरका स्थान मिल जानेसे रावणके साथ उनका भारी युद्ध छिड़ गया । उनका वह आकाश-युद्ध देव-दानव-संग्रामके समान भयंकर जान पड़ता था ॥ ३४ ॥

ततस्ते रावणं युद्धे शरैः पावकसंनिभैः ।
विमुखीकृत्य संहृष्टा विनेदुर्विविधान् रवान् ॥ ३५ ॥

उन वरुण-पुत्रोंने अपने अग्नितुल्य तेजस्वी बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें रावणको विमुख करके बड़े हर्षके साथ नाना प्रकारके स्वरोंमें महान् सिंहनाद किया ॥ ३५ ॥

ततो महोदरः क्रुद्धो राजानं वीक्ष्य धर्षितम् ।
त्यक्त्वा मृत्युभयं वीरो युद्धाकाङ्क्षी व्यलोकयत्॥३६॥

राजा रावणको तिरस्कृत हुआ देख महोदरको बड़ा क्रोध हुआ । उसने मृत्युका भय छोड़कर युद्धकी इच्छासे वरुण-पुत्रोंकी ओर देखा ॥ ३६ ॥

तेन ते वारुणा युद्धे कामगाः पवनोपमाः ।
महोदरेण गदया हयास्ते प्रययुः क्षितिम् ॥ ३७ ॥

वरुणके घोड़े युद्धमें हवासे बातें करनेवाले थे और स्वामीकी इच्छाके अनुसार चलते थे । महोदरने उनपर गदासे आघात किया । गदाकी चोट खाकर वे घोड़े धराशायी हो गये ॥ ३७ ॥

तेषां वरुणसूनूनां हत्वा योधान् हयांश्च तान् ।

मुमोचाशु महानादं विरथान् प्रेक्ष्य तान् स्थितान्॥ ३८॥

वरुण-पुत्रोंके योद्धाओं और घोड़ोंको मारकर उन्हें रथ-हीन हुआ देख महोदर तुरंत ही जोर-जोरसे गर्जना करने लगा॥

ते तु तेषां रथाः साश्वाः सह सारथिभिर्वरैः।
महोदरेण निहताः पतिताः पृथिवीतले॥ ३९॥

महोदरकी गदाके आघातसे वरुण-पुत्रोंके वे रथ घोड़ों और श्रेष्ठ सारथियोंसहित चूर-चूर हो पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ३९॥

ते तु त्यक्त्वा रथान् पुत्रा वरुणस्य महात्मनः।
आकाशे विष्ठिताः शूराः स्वप्रभावान्न विव्यथुः॥ ४०॥

महात्मा वरुणके वे शूरवीर पुत्र उन रथोंको छोड़कर अपने ही प्रभावसे आकाशमें खड़े हो गये। उन्हें तनिक भी व्यथा नहीं हुई॥ ४०॥

धनूंषि कृत्वा सज्जानि विनिर्भिद्य महोदरम्।
रावणं समरे क्रुद्धाः सहिताः समवारयन्॥ ४१॥

उन्होंने धनुषोंपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और महोदरको क्षत-विक्षत करके एक साथ कुपित हो रावणको घेर लिया॥ ४१॥

सायकैश्चापविभ्रष्टैर्वज्रकल्पैः सुदारुणैः।
दारयन्ति स्म संक्रुद्धा मेघा इव महागिरिम्॥ ४२॥

फिर वे अत्यन्त कुपित हो किसी महान् पर्वतपर जलकी धारा गिरानेवाले मेघोंके समान धनुषसे छूटे हुए वज्र-तुल्य भयंकर सायकोंद्वारा रावणको विदीर्ण करने लगे॥ ४२॥

ततः क्रुद्धो दशग्रीवः कालाग्निरिव मूर्च्छितः।
शरवर्षं महाघोरं तेषां मर्मस्वपातयत्॥ ४३॥

यह देख दशग्रीव प्रलयकालकी अग्निके समान रोषसे प्रज्वलित हो उठा और उन वरुण-पुत्रोंके मर्मस्थानोंपर महाघोर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ ४३॥

मुसलानि विचित्राणि ततो भल्लशतानि च।
पट्टिशांश्चैव शक्तीश्च शतघ्नीर्महतीरपि॥ ४४॥
पातयामास दुर्धर्षस्तेषामुपरि विष्ठितः।

पुष्पक विमानपर बैठे हुए उस दुर्धर्ष वीरने उन सबके ऊपर विचित्र मूसलों, सैकड़ों भल्लों, पट्टिशों, शक्तियों और बड़ी-बड़ी शतघ्नियोंका प्रहार किया॥ ४४½॥

अपविद्धास्तु ते वीरा विनिष्पेतुः पदातयः॥ ४५॥
ततस्तेनैव सहसा सीदन्ति स्म पदातिनः।
महापङ्कमिवासाद्य कुञ्जराः षष्टिहायनाः॥ ४६॥

उन अस्त्र-शस्त्रोंसे घायल हो वे पैदल वीर पुनः युद्धके लिये आगे बढ़े; परंतु पैदल होनेके कारण रावणकी उस अस्त्र-वर्षासे ही सहसा संकटमें पड़कर बड़ी भारी कीचड़में फँसे हुए साठ वर्षके हाथीके समान कष्ट पाने लगे॥ ४५-४६॥

सीदमानान् सुतान् दृष्ट्वा विह्वलान् स महाबलः।
ननाद रावणो हर्षान्महानम्बुधरो यथा॥ ४७॥

वरुणके पुत्रोंको दुखी एवं व्याकुल देख महाबली रावण महान् मेघके समान बड़े हर्षसे गर्जना करने लगा॥

ततो रक्षो महानादान् मुक्त्वा हन्ति स्म वारुणान्।
नानाप्रहरणोपेतैर्धारापातैरिवाम्बुदः॥ ४८॥

जोर-जोरसे सिंहनाद करके वह निशाचर पुनः नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा वरुण-पुत्रोंको मारने लगा, मानो बादल अपनी धारावाहिक वृष्टिसे वृक्षोंको पीड़ित कर रहा हो॥

ततस्ते विमुखाः सर्वे पतिता धरणीतले।
रणात् स्वपुरुषैः शीघ्रं गृहाण्येव प्रवेशिताः॥ ४९॥

फिर तो वे सभी वरुण-पुत्र युद्धसे विमुख हो पृथ्वीपर गिर पड़े। तत्पश्चात् उनके सेवकोंने उन्हें रणभूमिसे हटाकर शीघ्र ही घरोंमें पहुँचा दिया॥ ४९॥

तानब्रवीत् ततो रक्षो वरुणाय निवेद्यताम्।
रावणं त्वब्रवीन्मन्त्री प्रहासो नाम वारुणः॥ ५०॥

तदनन्तर उस राक्षसने वरुणके सेवकोंसे कहा—'अब वरुणसे जाकर कहो कि वे स्वयं युद्धके लिये आवें।' तब वरुणके मन्त्री प्रभासने रावणसे कहा—॥ ५०॥

गतः खलु महाराजो ब्रह्मलोकं जलेश्वरः।
गान्धर्वं वरुणः श्रोतुं यं त्वमाह्वयसे युधि॥ ५१॥

'राक्षसराज! जिन्हें तुम युद्धके लिये बुला रहे हो, वे जलके स्वामी महाराज वरुण संगीत सुननेके लिये ब्रह्मलोकमें गये हुए हैं॥ ५१॥

तत् किं तव यथा वीर परिश्रम्य गते नृपे।
ये तु संनिहिता वीराः कुमारास्ते पराजिताः॥ ५२॥

'वीर! राजा वरुणके चले जानेपर यहाँ युद्धके लिये व्यर्थ परिश्रम करनेसे तुम्हें क्या लाभ? उनके जो वीर पुत्र यहाँ मौजूद थे, वे तो तुमसे परास्त हो ही गये'॥ ५२॥

राक्षसेन्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा नाम विश्राव्य चात्मनः।
हर्षान्नादं विमुञ्चन् वै निष्क्रान्तो वरुणालयात्॥ ५३॥

मन्त्रीकी यह बात सुनकर राक्षसराज रावण वहाँ अपने नामकी घोषणा करके बड़े हर्षसे सिंहनाद करता हुआ वरुणालयसे बाहर निकल गया॥ ५३॥

आगतस्तु पथा येन तेनैव विनिवृत्य सः।
लङ्कामभिमुखो रक्षो नभस्तलगतो ययौ॥ ५४॥

वह जिस मार्गसे आया था, उसीसे लौटकर आकाश-मार्गसे लङ्काकी ओर चल दिया॥ ५४॥*

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः॥ २३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तेईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २३॥

* * *

---

* कुछ प्रतियोंमें तेईसवें सर्गके बाद पाँच प्रक्षिप्त सर्ग उपलब्ध होते हैं, जिनमें रावणकी दिग्विजय-यात्राका विस्तारपूर्वक वर्णन है। अनावश्यक विस्तारके भयसे यहाँ उनको नहीं लिया गया है।

चतुर्विंशः सर्गः

रावणद्वारा अपहृत हुई देवता आदिकी कन्याओं और स्त्रियोंका विलाप एवं शाप, रावणका रोती हुई शूर्पणखाको आश्वासन देना और उसे खरके साथ दण्डकारण्यमें भेजना

निवर्तमानः संहृष्टो रावणः स दुरात्मवान्।
जह्रे पथि नरेन्द्रर्षिदेवदानवकन्यकाः ॥ १ ॥

लौटते समय दुरात्मा रावण बड़े हर्षमें भरा था। उसने मार्गमें अनेकानेक नरेशों, ऋषियों, देवताओं और दानवोंकी कन्याओंका अपहरण किया ॥ १ ॥

दर्शनीयां हि यां रक्षः कन्यां स्त्रीं वाथ पश्यति।
हत्वा बन्धुजनं तस्या विमाने तां रुरोध सः ॥ २ ॥

वह राक्षस जिस कन्या अथवा स्त्रीको दर्शनीय रूप-सौन्दर्यसे युक्त देखता, उसके रक्षक बन्धुजनोंका वध करके उसे विमानपर बिठाकर रोक लेता था ॥ २ ॥

एवं पन्नगकन्याश्च राक्षसासुरमानुषीः।
यक्षदानवकन्याश्च विमाने सोऽध्यरोपयत् ॥ ३ ॥

इस प्रकार उसने नागों, राक्षसों, असुरों, मनुष्यों, यक्षों और दानवोंकी भी बहुत-सी कन्याओंको हरकर विमानपर चढ़ा लिया ॥ ३ ॥

ता हि सर्वाः समं दुःखान्मुमुचुर्बाष्पजं जलम्।
तुल्यमग्न्यर्चिषां तत्र शोकाग्निभयसम्भवम् ॥ ४ ॥

उन सबने एक साथ ही दुःखके कारण नेत्रोंसे आँसू बहाना आरम्भ किया। शोकाग्नि और भयसे प्रकट होनेवाले उनके आँसुओंकी एक-एक बूँद वहाँ आगकी चिनगारी-सी जान पड़ती थी ॥ ४ ॥

ताभिः सर्वानवद्याभिर्नदीभिरिव सागरः।
आपूरितं विमानं तद् भयशोकाशिवाश्रुभिः ॥ ५ ॥

जैसे नदियाँ सागरको भरती हैं, उसी प्रकार उन समस्त सुन्दरियोंने भय और शोकसे उत्पन्न हुए अमङ्गलजनक अश्रुओंसे उस विमानको भर दिया ॥ ५ ॥

नागगन्धर्वकन्याश्च महर्षितनयाश्च याः।
दैत्यदानवकन्याश्च विमाने शतशोऽरुदन् ॥ ६ ॥

नाग, गन्धर्वों, महर्षियों, दैत्यों और दानवोंकी सैकड़ों कन्याएँ उस विमानपर रो रही थीं ॥ ६ ॥

दीर्घकेश्यः सुचार्वङ्ग्यः पूर्णचन्द्रनिभाननाः।
पीनस्तनतटा मध्ये वज्रवेदिसमप्रभाः ॥ ७ ॥
रथकूबरसंकाशैः श्रोणिदेशैर्मनोहराः।
स्त्रियः सुराङ्गनाप्रख्या निष्टप्तकनकप्रभाः ॥ ८ ॥

उनके केश बड़े-बड़े थे। सभी अङ्ग सुन्दर एवं मनोहर थे। उनके मुखकी कान्ति पूर्ण चन्द्रमाकी छविको लज्जित करती थी। उरोजोंके तटप्रान्त उभरे हुए थे। शरीरका मध्यभाग हीरेके चबूतरेके समान प्रकाशित होता था। नितम्बदेश रथके कूबर-जैसे जान पड़ते थे और उनके कारण उनकी मनोहरता बढ़ रही थी। वे सभी स्त्रियाँ देवाङ्गनाओंके समान कान्तिमती और तपाये हुए सुवर्णके समान सुनहरी आभासे उद्भासित होती थीं ॥ ७-८ ॥

शोकदुःखभयत्रस्ता विह्वलाश्च सुमध्यमाः।
तासां निःश्वासवातेन सर्वतः सम्प्रदीपितम् ॥ ९ ॥
अग्निहोत्रमिवाभाति संनिरुद्धाग्नि पुष्पकम्।

सुन्दर मध्यभागवाली वे सभी सुन्दरियाँ शोक, दुःख और भयसे त्रस्त एवं विह्वल थीं। उनकी गरम-गरम निःश्वास-वायुसे वह पुष्पक विमान सब ओरसे प्रज्वलित-सा हो रहा था और जिसके भीतर अग्निकी स्थापना की गयी हो, उस अग्निहोत्रगृहके समान जान पड़ता था ॥ ९½ ॥

दशग्रीववशं प्राप्तास्तास्तु शोकाकुलाः स्त्रियः ॥ १० ॥
दीनवक्त्रेक्षणाः श्यामा मृग्यः सिंहवशा इव।

दशग्रीवके वशमें पड़ी हुई वे शोकाकुल अबलाएँ सिंहके पंजेमें पड़ी हुई हरिणियोंके समान दुखी हो रही थीं। उनके मुख और नेत्रोंमें दीनता छा रही थी और उन सबकी अवस्था सोलह वर्षके लगभग थी ॥ १०½ ॥

काचिच्चिन्तयती तत्र किं नु मां भक्षयिष्यति ॥ ११ ॥
काचिद् दध्यौ सुदुःखार्ता अपि मां मारयेदयम्।

कोई सोचती थी, क्या यह राक्षस मुझे खा जायगा? कोई अत्यन्त दुःखसे आर्त हो इस चिन्तामें पड़ी थी कि क्या यह निशाचर मुझे मार डालेगा? ॥ ११½ ॥

इति मातॄः पितॄन् स्मृत्वा भर्तॄन् भ्रातॄंस्तथैव च ॥ १२ ॥
दुःखशोकसमाविष्टा विलेपुः सहिताः स्त्रियः।

वे स्त्रियाँ माता, पिता, भाई तथा पतिकी याद करके दुःख-शोकमें डूब जातीं और एक साथ करुणाजनक विलाप करने लगती थीं ॥ १२½ ॥

कथं नु खलु मे पुत्रो भविष्यति मया विना ॥ १३ ॥
कथं माता कथं भ्राता निमग्नाः शोकसागरे।

'हाय! मेरे बिना मेरा नन्हा-सा बेटा कैसे रहेगा। मेरी माँकी क्या दशा होगी और मेरे भाई कितने चिन्तित होंगे' ऐसा कहकर वे शोकके सागरमें डूब जाती थीं ॥ १३½ ॥

हा कथं नु करिष्यामि भर्तुस्तस्मादहं विना ॥ १४ ॥
मृत्यो प्रसादयामि त्वां नय मां दुःखभागिनीम्।
किं नु तद् दुष्कृतं कर्म पुरा देहान्तरे कृतम् ॥ १५ ॥
एवं स्म दुःखिताः सर्वाः पतिताः शोकसागरे।
न खल्विदानीं पश्यामो दुःखस्यास्यान्तमात्मनः ॥ १६ ॥

'हाय! अपने उन पतिदेवसे बिछुड़कर मैं क्या करूँगी? (कैसे रहूँगी)। हे मृत्युदेव! मेरी प्रार्थना है कि तुम प्रसन्न

हो जाओ और मुझ दुखियाको इस लोकसे उठा ले चलो। हाय ! पूर्व-जन्ममें दूसरे शरीरद्वारा हमने कौन-सा ऐसा पाप किया था, जिससे हम सब-की-सब दुःखसे पीड़ित हो शोकके समुद्रमें गिर पड़ी हैं। निश्चय ही इस समय हमें अपने इस दुःखका अन्त होता नहीं दिखायी देता ॥ १४-१६ ॥

अहो धिङ्मानुषं लोकं नास्ति खल्वधमः परः ।
यद् दुर्बला बलवता भर्तारो रावणेन नः ॥ १७ ॥
सूर्येणोदयता काले नक्षत्राणीव नाशिताः ।

'अहो ! इस मनुष्यलोकको धिक्कार है ! इससे बढ़कर अधम दूसरा कोई लोक नहीं होगा; क्योंकि यहाँ इस बलवान् रावणने हमारे दुर्बल पतियोंको उसी तरह नष्ट कर दिया, जैसे सूर्यदेव उदय लेनेके साथ ही नक्षत्रोंको अदृश्य कर देते हैं ॥ १७½ ॥

अहो सुबलवद् रक्षो वधोपायेषु रज्यते ॥ १८ ॥
अहो दुर्वृत्तमास्थाय नात्मानं वै जुगुप्सते ।

'अहो ! यह अत्यन्त बलवान् राक्षस वधके उपायोंमें ही आसक्त रहता है। अहो ! यह पापी दुराचारके पथपर चलकर भी अपने आपको धिक्कारता नहीं है ॥ १८½ ॥

सर्वथा सदृशस्तावद् विक्रमोऽस्य दुरात्मनः ॥ १९ ॥
इदं त्वसदृशं कर्म परदाराभिमर्शनम् ।

'इस दुरात्माका पराक्रम इसकी तपस्याके सर्वथा अनुरूप है, परंतु यह परायी स्त्रियोंके साथ जो बलात्कार कर रहा है, यह दुष्कर्म इसके योग्य कदापि नहीं है ॥ १९½ ॥

यस्मादेष परक्यासु रमते राक्षसाधमः ॥ २० ॥
तस्माद् वै स्त्रीकृतेनैव वधं प्राप्स्यति दुर्मतिः ।

'यह नीच निशाचर परायी स्त्रियोंके साथ रमण करता है, इसलिये स्त्रीके कारण ही इस दुर्बुद्धि राक्षसका वध होगा' ॥

सतीभिर्वरनारीभिरेवं वाक्येऽभ्युदीरिते ॥ २१ ॥
नेदुर्दुन्दुभयः खस्थाः पुष्पवृष्टिः पपात च ।

उन श्रेष्ठ सती-साध्वी नारियोंने जब ऐसी बातें कह दीं, उस समय आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और वहाँ फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ २१½ ॥

शप्तः स्त्रीभिः स तु समं हतौजा इव निष्प्रभः ॥ २२ ॥
पतिव्रताभिः साध्वीभिर्बभूव विमना इव ।

पतिव्रता साध्वी स्त्रियोंके इस तरह शाप देनेपर रावणकी शक्ति घट गयी, वह निस्तेज-सा हो गया और उसके मनमें उद्वेग-सा होने लगा ॥ २२½ ॥

एवं विलपितं तासां शृण्वन् राक्षसपुङ्गवः ॥ २३ ॥
प्रविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः ।

इस प्रकार उनका विलाप सुनते हुए राक्षसराज रावणने निशाचरोंद्वारा सत्कृत हो लङ्कापुरीमें प्रवेश किया ॥ २३½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे घोरा राक्षसी कामरूपिणी ॥ २४ ॥
सहसा पतिता भूमौ भगिनी रावणस्य सा ।

इसी समय इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली भयंकर राक्षसी शूर्पणखा, जो रावणकी बहिन थी, सहसा सामने आकर पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ २४½ ॥

तां स्वसारं समुत्थाप्य रावणः परिसान्त्वयन् ॥ २५ ॥
अब्रवीत् किमिदं भद्रे वक्तुकामासि मां द्रुतम् ।

रावणने अपनी उस बहिनको उठाकर सान्त्वना दी और पूछा—'भद्रे ! तुम अभी मुझसे शीघ्रतापूर्वक कौन-सी बात कहना चाहती थी ?' ॥ २५½ ॥

सा बाष्पपरिरुद्धाक्षी रक्ताक्षी वाक्यमब्रवीत् ॥ २६ ॥
कृतास्मि विधवा राजंस्त्वया बलवता बलात् ।

शूर्पणखाके नेत्रोंमें आँसू भरे थे, उसकी आँखें रोते-रोते लाल हो गयी थीं। वह बोली—'राजन् ! तुम बलवान् हो, इसीलिये न तुमने मुझे बलपूर्वक विधवा बना दिया है ? ॥

एते राजंस्त्वया वीर्याद् दैत्या विनिहता रणे ॥ २७ ॥
कालकेया इति ख्याताः सहस्राणि चतुर्दश ।

'राक्षसराज ! तुमने रणभूमिमें अपने बल-पराक्रमसे चौदह हजार कालकेय नामक दैत्योंका वध कर दिया है ॥ २७½ ॥

प्राणेभ्योऽपि गरीयान् मे तत्र भर्ता महाबलः ॥ २८ ॥
सोऽपि त्वया हतस्तात रिपुणा भ्रातृगन्धिना ।

'तात ! उन्हींमें मेरे लिये प्राणोंसे भी बढ़कर आदरणीय मेरे महाबली पति भी थे। तुमने उन्हें भी मार डाला। तुम नाममात्रके भाई हो। वास्तवमें मेरे शत्रु निकले ! ॥ २८½ ॥

त्वयास्मि निहता राजन् स्वयमेव हि बन्धुना ॥ २९ ॥
राजन् वैधव्यशब्दं च भोक्ष्यामि त्वत्कृतं ह्यहम् ।

'राजन् ! सगे भाई होकर भी तुमने स्वयं ही अपने हाथों मेरा (मेरे पतिदेवका) वध कर डाला। अब तुम्हारे कारण मैं 'वैधव्य' शब्दका उपभोग करूँगी—विधवा कहलाऊँगी ॥

ननु नाम त्वया रक्ष्यो जामाता समरेष्वपि ॥ ३० ॥
स त्वया निहतो युद्धे स्वयमेव न लज्जसे ।

'भैया ! तुम मेरे पिताके तुल्य हो। मेरे पति तुम्हारे दामाद थे, क्या तुम्हें युद्धमें अपने दामाद या बहनोईकी भी रक्षा नहीं करनी चाहिये थी ? तुमने स्वयं ही युद्धमें अपने दामादका वध किया है; क्या अब भी तुम्हें लज्जा नहीं आती ?' ॥ ३०½ ॥

एवमुक्तो दशग्रीवो भगिन्या क्रोशमानया ॥ ३१ ॥
अब्रवीत् सान्त्वयित्वा तां सामपूर्वमिदं वचः ।

रोती और कोसती हुई बहिनके ऐसा कहनेपर दशग्रीवने उसे सान्त्वना देकर समझाते हुए मधुर वाणीमें कहा—॥

अलं वत्से रुदित्वा ते न भेतव्यं च सर्वशः ॥ ३२ ॥
दानमानप्रसादैस्त्वां तोषयिष्यामि यत्नतः ।

'बेटी ! अब रोना व्यर्थ है, तुम्हें किसी तरह भयभीत नहीं होना चाहिये। मैं दान, मान और अनुग्रहद्वारा यत्नपूर्वक तुम्हें संतुष्ट करूँगा ॥ ३२½ ॥

युद्धप्रमत्तो व्याक्षिप्तो जयाकाङ्क्षी क्षिपञ्शरान् ॥ ३३ ॥
नाहमज्ञासिषं युध्यन् स्वान् परान् वापि संयुगे ।
जामातरं न जाने स्म प्रहरन् युद्धदुर्मदः ॥ ३४ ॥

'मैं युद्धमें उन्मत्त हो गया था, मेरा चित्त ठिकाने नहीं था, मुझे केवल विजय पानेकी धुन थी, इसलिये लगातार बाण चलाता रहा । समराङ्गणमें जूझते समय मुझे अपने-परायेका ज्ञान नहीं रह जाता था । मैं रणोन्मत्त होकर प्रहार कर रहा था, इसलिये 'दामाद' को पहचान न सका ॥३३-३४ ॥

तेनासौ निहतः संख्ये मया भर्ता तव स्वसः ।
अस्मिन् काले तु यत् प्राप्तं तत् करिष्यामि ते हितम् ॥ ३५ ॥

'बहिन ! यही कारण है जिससे युद्धमें तुम्हारे पति मेरे हाथसे मारे गये । अब इस समय जो कर्तव्य प्राप्त है, उसके अनुसार मैं सदा तुम्हारे हितका ही साधन करूँगा ॥३५॥

भ्रातुरैश्वर्ययुक्तस्य खरस्य वस पार्श्वतः ।
चतुर्दशानां भ्राता ते सहस्राणां भविष्यति ॥ ३६ ॥
प्रभुः प्रयाणे दाने च राक्षसानां महाबलः ।

'तुम ऐश्वर्यशाली भाई खरके पास चलकर रहो । तुम्हारा भाई महाबली खर चौदह हजार राक्षसोंका अधिपति होगा । वह उन सबको जहाँ चाहेगा, भेजेगा और उन सबको अन्न, पान एवं वस्त्र देनेमें समर्थ होगा ॥ ३६½ ॥

तत्र मातृष्वसेयस्ते भ्रातायं वै खरः प्रभुः ॥ ३७ ॥
भविष्यति त्वदादेशं सदा कुर्वन् निशाचरः ।

'यह तुम्हारा मौसेरा भाई निशाचर खर सब कुछ करनेमें समर्थ है और आदेशका सदा पालन करता रहेगा ॥३७½॥

शीघ्रं गच्छत्वयं वीरो दण्डकान् परिरक्षितुम् ॥ ३८ ॥
दूषणोऽस्य बलाध्यक्षो भविष्यति महाबलः ।

'यह वीर (मेरी आज्ञासे) शीघ्र ही दण्डकारण्यकी रक्षामें जानेवाला है; महाबली दूषण इसका सेनापति होगा ॥३८½॥

तत्र ते वचनं शूरः करिष्यति सदा खरः ॥ ३९ ॥
रक्षसां कामरूपाणां प्रभुरेष भविष्यति ।

'वहाँ शूरवीर खर सदा तुम्हारी आज्ञाका पालन करेगा और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले राक्षसोंका स्वामी होगा' ॥ ३९½ ॥

एवमुक्त्वा दशग्रीवः सैन्यमस्यादिदेश ह ॥ ४० ॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां वीर्यशालिनाम् ।
स तैः परिवृतः सर्वै राक्षसैर्घोरदर्शनैः ॥ ४१ ॥
आगच्छत खरः शीघ्रं दण्डकानकुतोभयः ।
स तत्र कारयामास राज्यं निहतकण्टकम् ।
सा च शूर्पणखा तत्र न्यवसद् दण्डके वने ॥ ४२ ॥

ऐसा कहकर दशग्रीवने चौदह हजार पराक्रमशाली राक्षसोंकी सेनाको खरके साथ जानेकी आज्ञा दी । उन भयङ्कर राक्षसोंसे घिरा हुआ खर शीघ्र ही दण्डकारण्यमें आया और निर्भय होकर वहाँका अकण्टक राज्य भोगने लगा । उसके साथ शूर्पणखा भी वहाँ दण्डकवनमें रहने लगी ॥४०-४२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पञ्चविंशः सर्गः

यज्ञोंद्वारा मेघनादकी सफलता, विभीषणका रावणको पर-स्त्री-हरणके दोष बताना, कुम्भीनसीको आश्वासन दे मधुको साथ ले रावणका देवलोकपर आक्रमण करना

स तु दत्त्वा दशग्रीवो बलं घोरं खरस्य तत् ।
भगिनीं च समाश्वास्य हृष्टः स्वस्थतरोऽभवत् ॥ १ ॥

खरको राक्षसोंकी भयङ्कर सेना देकर और बहिनको धीरज बँधाकर रावण बहुत ही प्रसन्न और स्वस्थचित्त हो गया ॥१॥

ततो निकुम्भिला नाम लङ्कोपवनमुत्तमम् ।
तद् राक्षसेन्द्रो बलवान् प्रविवेश सहानुगः ॥ २ ॥

तदनन्तर बलवान् राक्षसराज रावण लङ्काके निकुम्भिला नामक उत्तम उपवनमें गया । उसके साथ बहुत-से सेवक भी थे ॥ २ ॥

ततो यूपशताकीर्णं सौम्यचैत्योपशोभितम् ।
ददर्श विष्ठितं यज्ञं श्रिया सम्प्रज्वलन्निव ॥ ३ ॥

रावण अपनी शोभा एवं तेजसे अग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था । उसने निकुम्भिलामें पहुँचकर देखा, एक यज्ञ हो रहा है, जो सैकड़ों यूपोंसे व्याप्त और सुन्दर देवालयोंसे सुशोभित है ॥ ३ ॥

ततः कृष्णाजिनधरं कमण्डलुशिखाध्वजम् ।
ददर्श स्वसुतं तत्र मेघनादं भयावहम् ॥ ४ ॥

फिर वहाँ उसने अपने पुत्र मेघनादको देखा, जो काला मृगचर्म पहने हुए तथा कमण्डलु, शिखा और ध्वज धारण किये बड़ा भयङ्कर जान पड़ता था ॥ ४ ॥

तं समासाद्य लङ्केशः परिष्वज्याथ बाहुभिः ।
अब्रवीत् किमिदं वत्स वर्तसे ब्रूहि तत्त्वतः ॥ ५ ॥

उसके पास पहुँचकर लङ्केश्वरने अपनी भुजाओंद्वारा उसका आलिङ्गन किया और पूछा—'बेटा ! यह क्या कर रहे हो ? ठीक-ठीक बताओ' ॥ ५ ॥

उशना त्वब्रवीत् तत्र यज्ञसम्पत्समृद्धये ।
रावणं राक्षसश्रेष्ठं द्विजश्रेष्ठो महातपाः ॥ ६ ॥

(मेघनाद यज्ञके नियमानुसार मौन रहा) उस समय पुरोहित महातपस्वी द्विजश्रेष्ठ शुक्राचार्यने, जो यज्ञ-सम्पत्तिकी समृद्धिके लिये वहाँ आये थे, राक्षसशिरोमणि रावणसे कहा—॥६॥

अहमाख्यामि ते राजञ्छ्रूयतां सर्वमेव तत्।
यज्ञास्ते सप्त पुत्रेण प्राप्तास्ते बहुविस्तराः ॥ ७ ॥

'राजन्! मैं सब बातें बता रहा हूँ, ध्यान देकर सुनिये—आपके पुत्रने बड़े विस्तारके साथ सात यज्ञोंका अनुष्ठान किया है ॥ ७ ॥

✓अग्निष्टोमोऽश्वमेधश्च यज्ञो बहुसुवर्णकः।
राजसूयस्तथा यज्ञो गोमेधो वैष्णवस्तथा ॥ ८ ॥
माहेश्वरे प्रवृत्ते तु यज्ञे पुम्भिः सुदुर्लभे।
वरांस्ते लब्धवान् पुत्रः साक्षात् पशुपतेरिह ॥ ९ ॥

'अग्निष्टोम, अश्वमेध, बहुसुवर्णक, राजसूय, गोमेध तथा वैष्णव—ये छः यज्ञ पूर्ण करके जब इसने सातवाँ माहेश्वर यज्ञ, जिसका अनुष्ठान दूसरोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है, आरम्भ किया; तब आपके इस पुत्रको साक्षात् भगवान् पशुपतिसे बहुत-से वर प्राप्त हुए ॥ ८-९ ॥

✓कामगं स्यन्दनं दिव्यमन्तरिक्षचरं ध्रुवम्।
मायां च तामसीं नाम यया सम्पद्यते तमः ॥ १० ॥

'साथ ही इच्छानुसार चलनेवाला एक दिव्य आकाशचारी रथ भी प्राप्त हुआ है, इसके सिवा तामसी नामकी माया उत्पन्न हुई है, जिससे अन्धकार उत्पन्न किया जाता है ॥ १० ॥

✓एतया किल संग्रामे मायया राक्षसेश्वर।
प्रयुक्तया गतिः शक्या नहि ज्ञातुं सुरासुरैः ॥ ११ ॥

'राक्षसेश्वर! संग्राममें इस मायाका प्रयोग करनेपर देवता और असुरोंको भी प्रयोग करनेवाले पुरुषकी गतिविधिका पता नहीं लग सकता ॥ ११ ॥

✓अक्षयाविषुधी बाणैश्चापं चापि सुदुर्जयम्।
अस्त्रं च बलवद् राजञ्छत्रुविध्वंसनं रणे ॥ १२ ॥

'राजन्! बाणोंसे भरे हुए दो अक्षय तरकस, अटूट धनुष तथा रणभूमिमें शत्रुका विध्वंस करनेवाला प्रबल अस्त्र—इन सबकी प्राप्ति हुई है ॥ १२ ॥

एतान् सर्वान् वराँल्लब्ध्वा पुत्रस्तेऽयं दशानन।
अद्य यज्ञसमाप्तौ च त्वां दिदृक्षन् स्थितो ह्यहम् ॥ १३ ॥

'दशानन! तुम्हारा यह पुत्र इन सभी मनोवाञ्छित वरोंको पाकर आज यज्ञकी समाप्तिके दिन तुम्हारे दर्शनकी इच्छासे यहाँ खड़ा है' ॥ १३ ॥

ततोऽब्रवीद् दशग्रीवो न शोभनमिदं कृतम्।
✓पूजिताः शत्रवो यस्माद् द्रव्यैरिन्द्रपुरोगमाः ॥ १४ ॥

यह सुनकर दशग्रीवने कहा—'बेटा! तुमने यह अच्छा नहीं किया है; क्योंकि इस यज्ञसम्बन्धी द्रव्योंद्वारा मेरे शत्रुभूत इन्द्र आदि देवताओंका पूजन हुआ है ॥ १४ ॥

एहीदानीं कृतं यद्धि सुकृतं तन्न संशयः।
आगच्छ सौम्य गच्छामः स्वमेव भवनं प्रति ॥ १५ ॥

'अस्तु, जो कर दिया, सो अच्छा ही किया; इसमें संशय नहीं है। सौम्य! अब आओ, चलो। हमलोग अपने घरको चलें' ॥ १५ ॥

ततो गत्वा दशग्रीवः सपुत्रः सविभीषणः।
स्त्रियोऽवतारयामास सर्वास्ता बाष्पगद्गदाः ॥ १६ ॥

तदनन्तर दशग्रीवने अपने पुत्र और विभीषणके साथ जाकर पुष्पक विमानसे उन सब स्त्रियोंको उतारा, जिन्हें हरकर ले आया था। वे अब भी आँसू बहाती हुई गद्गदकण्ठसे विलाप कर रही थीं ॥ १६ ॥

लक्षिण्यो रत्नभूताश्च देवदानवरक्षसाम्।
तस्य तासु मतिं ज्ञात्वा धर्मात्मा वाक्यमब्रवीत् ॥ १७ ॥

वे उत्तम लक्षणोंसे सुशोभित होती थीं और देवताओं, दानवों तथा राक्षसोंके घरकी रत्न थीं। उनमें रावणकी आसक्ति जानकर धर्मात्मा विभीषणने कहा— ॥ १७ ॥

ईदृशैस्त्वं समाचारैर्यशोऽर्थकुलनाशनैः। ✓
धर्षणं प्राणिनां ज्ञात्वा स्वमतेन विचेष्टसे ॥ १८ ॥

'राजन्! ये आचरण यश, धन और कुलका नाश करनेवाले हैं। इनके द्वारा जो प्राणियोंको पीड़ा दी जाती है, उससे बड़ा पाप होता है। इस बातको जानते हुए भी आप सदाचारका उल्लङ्घन करके स्वेच्छाचारमें प्रवृत्त हो रहे हैं ॥ १८ ॥

ज्ञातींस्तान् धर्षयित्वेमास्त्वयाऽऽनीता वराङ्गनाः।
त्वामतिक्रम्य मधुना राजन् कुम्भीनसी हृता ॥ १९ ॥

'महाराज! इन बेचारी अबलाओंके बन्धु-बान्धवोंको मारकर आप इन्हें हर लाये हैं और इधर आपका उल्लङ्घन करके—आपके सिरपर लात रखकर मधुने मौसेरी बहिन कुम्भीनसीका अपहरण कर लिया' ॥ १९ ॥

रावणस्त्वब्रवीद् वाक्यं नावगच्छामि किं त्विदम्।
कोऽयं यस्तु त्वयाऽऽख्यातो मधुरित्येव नामतः ॥ २० ॥

रावण बोला—'मैं नहीं समझता कि तुम क्या कह रहे हो। जिसका नाम तुमने मधु बताया है, वह कौन है?' ॥ २० ॥

विभीषणस्तु संक्रुद्धो भ्रातरं वाक्यमब्रवीत्।
श्रूयतामस्य पापस्य कर्मणः फलमागतम् ॥ २१ ॥

तब विभीषणने अत्यन्त कुपित होकर भाई रावणसे कहा—'सुनिये, आपके इस पापकर्मका फल हमें बहिनके अपहरणके रूपमें प्राप्त हुआ है ॥ २१ ॥

मातामहस्य योऽस्माकं ज्येष्ठो भ्राता सुमालिनः। ✓
माल्यवानिति विख्यातो वृद्धः प्राज्ञो निशाचरः ॥ २२ ॥
पिता ज्येष्ठो जनन्या नो ह्यस्माकं चार्यकोऽभवत्।
तस्य कुम्भीनसी नाम दुहितुर्दुहिताभवत् ॥ २३ ॥
मातृष्वसुरथास्माकं सा च कन्यानलोद्भवा।
भवत्यस्माकमेवैषा भ्रातॄणां धर्मतः स्वसा ॥ २४ ॥

'हमारे नाना सुमालीके जो बड़े भाई माल्यवान् नामसे विख्यात, बुद्धिमान् और बड़े-बूढ़े निशाचर हैं, वे हमारी माता कैकसीके ताऊ हैं। इसी नाते वे हमलोगोंके भी बड़े नाना हैं। उनकी पुत्री अनला हमारी मौसी हैं। उन्हींकी पुत्री

कुम्भीनसी है। हमारी मौसी अनलाकी बेटी होनेसे ही यह कुम्भीनसी हम सब भाइयोंकी धर्मतः बहिन होती है ॥ २२–२४ ॥

सा हृता मधुना राजन् राक्षसेन बलीयसा ।
यज्ञप्रवृत्ते पुत्रे तु मयि चान्तर्जलोषिते ॥ २५ ॥
कुम्भकर्णो महाराज निद्रामनुभवत्यथ ।
निहत्य राक्षसश्रेष्ठानमात्यानिह सम्मतान् ॥ २६ ॥

'राजन्! आपका पुत्र मेघनाद जब यज्ञमें तत्पर हो गया, मैं तपस्याके लिये पानीके भीतर रहने लगा और महाराज! भैया कुम्भकर्ण भी जब नींदका आनन्द लेने लगे, उस समय महाबली राक्षस मधुने यहाँ आकर हमारे आदरणीय मन्त्रियोंको, जो राक्षसोंमें श्रेष्ठ थे, मार डाला और कुम्भीनसीका अपहरण कर लिया ॥ २५-२६ ॥

धर्षयित्वा हृता सा तु गुप्ताप्यन्तःपुरे तव ।
श्रुत्वापि तन्महाराज क्षान्तमेव हतो न सः ॥ २७ ॥
यस्मादवश्यं दातव्या कन्या भर्त्रे हि भ्रातृभिः ।

'महाराज! यद्यपि कुम्भीनसी अन्तःपुरमें भलीभाँति सुरक्षित थी तो भी उसने आक्रमण करके बलपूर्वक उसका अपहरण किया। पीछे इस घटनाको सुनकर भी हमलोगोंने क्षमा ही की। मधुका वध नहीं किया; क्योंकि जब कन्या विवाहके योग्य हो जाय तो उसे किसी योग्य पतिके हाथमें सौंप देना ही उचित है। हम भाइयोंको अवश्य यह कार्य पहले कर देना चाहिये था ॥ २७½ ॥

तदेतत् कर्मणो ह्यस्य फलं पापस्य दुर्मतेः ॥ २८ ॥
अस्मिन्नेवाभिसम्प्राप्तं लोके विदितमस्तु ते ।

'हमारे यहाँसे जो बलपूर्वक कन्याका अपहरण हुआ है, यह आपकी इस दूषित बुद्धि एवं पापकर्मका फल है, जो आपको इसी लोकमें प्राप्त हो गया। यह बात आपको भलीभाँति विदित हो जानी चाहिये' ॥ २८½ ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रः स रावणः ॥ २९ ॥
दौरात्म्येनात्मनोद्भूतस्तप्ताम्भा इव सागरः ।
ततोऽब्रवीद् दशग्रीवः क्रुद्धः संरक्तलोचनः ॥ ३० ॥

विभीषणकी यह बात सुनकर राक्षसराज रावण अपनी की हुई दुष्टतासे पीड़ित हो तपे हुए जलवाले समुद्रके समान संतप्त हो उठा। वह रोषसे जलने लगा और उसके नेत्र लाल हो गये। वह बोला—॥ २९-३० ॥

कल्प्यतां मे रथः शीघ्रं शूराः सज्जीभवन्तु नः ।
भ्राता मे कुम्भकर्णश्च ये च मुख्या निशाचराः ॥ ३१ ॥
वाहनान्यधिरोहन्तु नानाप्रहरणायुधाः ।
अद्य तं समरे हत्वा मधुं रावणनिर्भयम् ॥ ३२ ॥
सुरलोकं गमिष्यामि युद्धाकाङ्क्षी सुहृद्वृतः ।

'मेरा रथ शीघ्र ही जोतकर आवश्यक सामग्रीसे सुसज्जित कर दिया जाय। मेरे शूरवीर सैनिक रणयात्राके लिये तैयार हो जायँ। भाई कुम्भकर्ण तथा अन्य मुख्य-मुख्य निशाचर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो सवारियोंपर बैठें। आज रावणका भय न माननेवाले मधुका समराङ्गणमें वध करके मित्रोंको साथ लिये युद्धकी इच्छासे देवलोककी यात्रा करूँगा' ॥ ३१-३२½ ॥

अक्षौहिणीसहस्राणि चत्वार्यग्र्याणि रक्षसाम् ॥ ३३ ॥
नानाप्रहरणान्याशु निर्ययुर्युद्धकाङ्क्षिणाम् ।

रावणकी आज्ञासे युद्धमें उत्साह रखनेवाले श्रेष्ठ राक्षसोंकी चार हजार अक्षौहिणी सेना नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये शीघ्र लङ्कासे बाहर निकली ॥ ३३½ ॥

इन्द्रजित् त्वग्रतः सैन्यात् सैनिकान् परिगृह्य च ॥ ३४ ॥
जगाम रावणो मध्ये कुम्भकर्णश्च पृष्ठतः ।

मेघनाद समस्त सैनिकोंको साथ लेकर सेनाके आगे-आगे चला। रावण बीचमें था और कुम्भकर्ण पीछे-पीछे चलने लगा ॥ ३४½ ॥

विभीषणश्च धर्मात्मा लङ्कायां धर्ममाचरन् ॥ ३५ ॥
शेषाः सर्वे महाभागा ययुर्मधुपुरं प्रति ।

विभीषण धर्मात्मा थे। इसलिये वे लङ्कामें ही रहकर धर्मका आचरण करने लगे। शेष सभी महाभाग निशाचर मधुपुरकी ओर चल दिये ॥ ३५½ ॥

खरैरुष्ट्रैर्हयैर्दीप्तैः शिशुमारैर्महोरगैः ॥ ३६ ॥
राक्षसाः प्रययुः सर्वे कृत्वाऽऽकाशं निरन्तरम् ।

गदहे, ऊँट, घोड़े, शिशुमार (सूँस) और बड़े-बड़े नाग आदि दीप्तिमान् वाहनोंपर आरूढ़ हो सब राक्षस आकाशको अवकाशरहित करते हुए चले ॥ ३६½ ॥

दैत्याश्च शतशस्तत्र कृतवैराश्च दैवतैः ॥ ३७ ॥
रावणं प्रेक्ष्य गच्छन्तमन्वगच्छन् हि पृष्ठतः ।

रावणको देवलोकपर आक्रमण करते देख सैकड़ों दैत्य भी उसके पीछे-पीछे चले, जिनका देवताओंके साथ वैर बँध गया था ॥ ३७½ ॥

स तु गत्वा मधुपुरं प्रविश्य च दशाननः ॥ ३८ ॥
न ददर्श मधुं तत्र भगिनीं तत्र दृष्टवान् ।

मधुपुरमें पहुँचकर दशमुख रावणने वहाँ कुम्भीनसीको तो देखा, किंतु मधुका दर्शन उसे नहीं हुआ ॥ ३८½ ॥

सा च प्रह्वाञ्जलिर्भूत्वा शिरसा चरणौ गता ॥ ३९ ॥
तस्य राक्षसराजस्य त्रस्ता कुम्भीनसी तदा ।

उस समय कुम्भीनसीने भयभीत हो हाथ जोड़कर राक्षसराजके चरणोंपर मस्तक रख दिया ॥ ३९½ ॥

तां समुत्थापयामास न भेतव्यमिति ब्रुवन् ॥ ४० ॥
रावणो राक्षसश्रेष्ठः किं चापि करवाणि ते ।

तब राक्षसप्रवर रावणने कहा—'डरो मत'; फिर उसने कुम्भीनसीको उठाया और कहा—'मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?' ॥ ४०½ ॥

साब्रवीद् यदि मे राजन् प्रसन्नस्त्वं महाभुज ॥ ४१ ॥

भर्तारं न ममेहाद्य हन्तुमर्हसि मानद।
नहीदृशं भयं किंचित् कुलस्त्रीणामिहोच्यते ॥ ४२ ॥
भयानामपि सर्वेषां वैधव्यं व्यसनं महत्।

वह बोली—'दूसरोंको मान देनेवाले राक्षसराज ! महाबाहो ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो आज यहाँ मेरे पतिका वध न कीजिये; क्योंकि कुलवधुओंके लिये वैधव्यके समान दूसरा कोई भय नहीं बताया जाता है। वैधव्य ही नारीके लिये सबसे बड़ा भय और सबसे महान् संकट है ॥ ४१-४२½ ॥

सत्यवाग् भव राजेन्द्र मामवेक्षस्व याचतीम् ॥ ४३ ॥
त्वयाप्युक्तं महाराज न भेतव्यमिति स्वयम्।

'राजेन्द्र ! आप सत्यवादी हों—अपनी बात सच्ची करें। मैं आपसे पतिके जीवनकी भीख माँगती हूँ, आप मुझ दुखिया बहिनकी ओर देखिये, मुझपर कृपा कीजिये। महाराज ! आपने स्वयं भी मुझे आश्वासन देते हुए कहा था कि 'डरो मत।' अतः अपनी उसी बातकी लाज रखिये' ॥ ४३½ ॥

रावणस्त्वब्रवीद् धृष्टः स्वसारं तत्र संस्थिताम् ॥ ४४ ॥
क्व चासौ तव भर्ता वै मम शीघ्रं निवेद्यताम्।
सह तेन गमिष्यामि सुरलोकं जयाय हि ॥ ४५ ॥

यह सुनकर रावण प्रसन्न हो गया। वह वहाँ खड़ी हुई अपनी बहिनसे बोला—'तुम्हारे पति कहाँ हैं? उन्हें शीघ्र मुझे सौंप दो। मैं उन्हें साथ लेकर देवलोकपर विजयके लिये जाऊँगा ॥ ४४-४५ ॥

तव कारुण्यसौहार्दान्निवृत्तोऽस्मि मधोर्वधात्।
इत्युक्ता सा समुत्थाप्य प्रसुप्तं तं निशाचरम् ॥ ४६ ॥
अब्रवीत् सम्प्रहृष्टेव राक्षसी सा पतिं वचः।

'तुम्हारे प्रति करुणा और सौहार्दके कारण मैंने मधुके वधका विचार छोड़ दिया है।' रावणके ऐसा कहनेपर राक्षस-कन्या कुम्भीनसी अत्यन्त प्रसन्न-सी होकर अपने सोये हुए पतिके पास गयी और उस निशाचरको उठाकर बोली—४६½

एष प्राप्तो दशग्रीवो मम भ्राता महाबलः ॥ ४७ ॥
सुरलोकजयाकाङ्क्षी साहाय्ये त्वां वृणोति च।
तदस्य त्वं सहायार्थं सबन्धुर्गच्छ राक्षस ॥ ४८ ॥

'राक्षसप्रवर ! ये मेरे भाई महाबली दशग्रीव पधारे हैं और देवलोकपर विजय पानेकी इच्छा लेकर वहाँ जा रहे हैं। इस कार्यके लिये ये आपको भी सहायक बनाना चाहते हैं; अतः आप अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ इनकी सहायताके लिये जाइये ॥ ४७-४८ ॥

स्निग्धस्य भजमानस्य युक्तमर्थाय कल्पितुम्।
तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा तथेत्याह मधुर्वचः ॥ ४९ ॥

'मेरे नाते आपपर इनका स्नेह है, आपको जामाता मानकर ये आपके प्रति अनुराग रखते हैं; अतः आपको इनके कार्यकी सिद्धिके लिये अवश्य सहायता करनी चाहिये।' पत्नीकी यह बात सुनकर मधुने 'तथास्तु' कहकर सहायता देना स्वीकार कर लिया ॥ ४९ ॥

ददर्श राक्षसश्रेष्ठं यथान्यायमुपेत्य सः।
पूजयामास धर्मेण रावणं राक्षसाधिपम् ॥ ५० ॥

फिर वह न्यायोचित रीतिसे निकट जाकर निशाचर-शिरोमणि राक्षसराज रावणसे मिला। मिलकर उसने धर्मके अनुसार उसका स्वागत-सत्कार किया ॥ ५० ॥

प्राप्य पूजां दशग्रीवो मधुवेश्मनि वीर्यवान्।
तत्र चैकां निशामुष्य गमनायोपचक्रमे ॥ ५१ ॥

मधुके भवनमें यथोचित आदर-सत्कार पाकर पराक्रमी दशग्रीव वहाँ एक रात रहा, फिर सबेरे उठकर वहाँसे जानेको उद्यत हुआ ॥ ५१ ॥

ततः कैलासमासाद्य शैलं वैश्रवणालयम्।
राक्षसेन्द्रो महेन्द्राभः सेनामुपनिवेशयत् ॥ ५२ ॥

मधुपुरसे यात्रा करके महेन्द्रके तुल्य पराक्रमी राक्षसराज रावण सायंकालतक कुबेरके निवास-स्थान कैलास पर्वतपर जा पहुँचा। वहाँ उसने अपनी सेनाका पड़ाव डालनेका विचार किया ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पचीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः

रावणका रम्भापर बलात्कार करना और नलकूबरका रावणको भयंकर शाप देना

स तु तत्र दशग्रीवः सह सैन्येन वीर्यवान्।
अस्तं प्राप्ते दिनकरे निवासं समरोचयत् ॥ १ ॥

जब सूर्य अस्ताचलको चले गये, तब पराक्रमी दशग्रीवने अपनी सेनाके साथ कैलासपर ही रातमें ठहर जाना ठीक समझा ॥ १ ॥

उदिते विमले चन्द्रे तुल्यपर्वतवर्चसि।
प्रसुप्तं सुमहत् सैन्यं नानाप्रहरणायुधम् ॥ २ ॥

(उसने वहीं छावनी डाल दी) फिर, कैलासके ही समान श्वेत कान्तिवाले निर्मल चन्द्रदेवका उदय हुआ और नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित निशाचरोंकी वह विशाल सेना गाढ़ निद्रामें निमग्न हो गयी ॥ २ ॥

रावणस्तु महावीर्यो निषण्णः शैलमूर्धनि।
स ददर्श गुणांस्तत्र चन्द्रपादपशोभितान् ॥ ३ ॥

परंतु महापराक्रमी रावण उस पर्वतके शिखरपर चुपचाप

बैठकर चन्द्रमाकी चाँदनीसे सुशोभित होनेवाले उस पर्वतके विभिन्न स्थानोंकी (जो सम्पूर्ण कामभोगके उपयुक्त थे) नैसर्गिक छटा निहारने लगा ॥ ३ ॥

कर्णिकारवनैर्दीप्तैः कदम्बबकुलैस्तथा ।
पद्मिनीभिश्च फुल्लाभिर्मन्दाकिन्या जलैरपि ॥ ४ ॥
चम्पकाशोकपुंनागमन्दारतरुभिस्तथा ।
चूतपाटललोध्रैश्च प्रियङ्ग्वर्जुनकेतकैः ॥ ५ ॥
तगरैर्नारिकेलैश्च प्रियालपनसैस्तथा ।
एतैरन्यैश्च तरुभिरुद्भासितवनान्तरे ॥ ६ ॥

कहीं कनेरके दीप्तिमान् कानन शोभा पाते थे, कहीं कदम्ब और बकुल (मौलसिरी) वृक्षोंके समूह अपनी रमणीयता बिखेर रहे थे, कहीं मन्दाकिनीके जलसे भरी हुई और प्रफुल्ल कमलोंसे अलकृत पुष्करिणियाँ शोभा दे रही थीं, कहीं चम्पा, अशोक, पुंनाग (नागकेसर), मन्दार, आम, पाड़र, लोध, प्रियङ्गु, अर्जुन, केतक, तगर, नारियल, प्रियाल और पनस आदि वृक्ष अपने पुष्प आदिकी शोभासे उस पर्वत-शिखरके वन्यप्रान्तको उद्भासित कर रहे थे ॥ ४—६ ॥

किंनरा मदनेनार्ता रक्ता मधुरकण्ठिनः ।
समं सम्प्रजगुर्यत्र मनस्तुष्टिविवर्धनम् ॥ ७ ॥

मधुर कण्ठवाले कामार्त किंनर अपनी कामिनियोंके साथ वहाँ रागयुक्त गीत गा रहे थे, जो कानोंमें पड़कर मनका आनन्द-वर्धन करते थे ॥ ७ ॥

विद्याधरा मदक्षीबा मदरक्तान्तलोचनाः ।
योषिद्भिः सह संक्रान्ताश्चिक्रीडुर्जहृषुश्च वै ॥ ८ ॥

जिनके नेत्र-प्रान्त मदसे कुछ लाल हो गये थे, वे मद-मत्त विद्याधर युवतियोंके साथ क्रीडा करते और हर्षमग्न होते थे ॥ ८ ॥

घण्टानामिव संनादः शुश्रुवे मधुरस्वनः ।
अप्सरोगणसङ्घानां गायतां धनदालये ॥ ९ ॥

वहाँसे कुबेरके भवनमें गाती हुई अप्सराओंके गीतकी मधुर ध्वनि घण्टानादके समान सुनायी पड़ती थी ॥ ९ ॥

पुष्पवर्षाणि मुञ्चन्तो नगाः पवनताडिताः ।
शैलं तं वासयन्तीव मधुमाधवगन्धिनः ॥ १० ॥

वसन्त ऋतुके सभी पुष्पोंकी गन्धसे युक्त वृक्ष हवाके थपेड़े खाकर फूलोंकी वर्षा करते हुए उस समूचे पर्वतको सुवासित-सा कर रहे थे ॥ १० ॥

मधुपुष्परजःपृक्तं गन्धमादाय पुष्कलम् ।
प्रववौ वर्धयन् कामं रावणस्य सुखोऽनिलः ॥ ११ ॥

विविध कुसुमोंके मधुर मकरन्द तथा परागसे मिश्रित प्रचुर सुगन्ध लेकर मन्द-मन्द बहती हुई सुखद वायु रावण-की काम-वासनाको बढ़ा रही थी ॥ ११ ॥

गेयात् पुष्पसमृद्ध्या च शैत्याद् वायोर्गिरेर्गुणात् ।
प्रवृत्तायां रजन्यां च चन्द्रस्योदयनेन च ॥ १२ ॥
रावणः स महावीर्यः कामस्य वशमागतः ।
विनिःश्वस्य विनिःश्वस्य शशिनं समवैक्षत ॥ १३ ॥

सङ्गीतकी मीठी तान, भाँति-भाँतिके पुष्पोंकी समृद्धि, शीतल वायुका स्पर्श, पर्वतके (रमणीयता आदि) आकर्षक गुण, रजनीकी मधुवेला और चन्द्रमाका उदय—उद्दीपनके इन सभी उपकरणोंके कारण वह महापराक्रमी रावण कामके अधीन हो गया और बारंबार लंबी साँस खींचकर चन्द्रमाकी ओर देखने लगा ॥ १२-१३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र दिव्याभरणभूषिता ।
सर्वाप्सरोवरा रम्भा पूर्णचन्द्रनिभानना ॥ १४ ॥

इसी बीचमें समस्त अप्सराओंमें श्रेष्ठ सुन्दरी, पूर्ण-चन्द्र-मुखी रम्भा दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो उस मार्गसे आ निकली ॥ १४ ॥

दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गी मन्दारकृतमूर्धजा ।
दिव्योत्सवकृतारम्भा दिव्यपुष्पविभूषिता ॥ १५ ॥

उसके अङ्गोंमें दिव्य चन्दनका अनुलेप लगा था और केशपाशमें पारिजातके पुष्प गुँथे हुए थे । दिव्य पुष्पोंसे अपना शृङ्गार करके वह प्रिय-समागमरूप दिव्य उत्सवके लिये जा रही थी ॥ १५ ॥

चक्षुर्मनोहरं पीनं मेखलादामभूषितम् ।
समुद्वहन्ती जघनं रतिप्राभृतमुत्तमम् ॥ १६ ॥ १

मनोहर नेत्र तथा काञ्चीकी लड़ियोंसे विभूषित पीन जघन-स्थलको वह रतिके उत्तम उपहारके रूपमें धारण किये हुए थी ॥ १६ ॥

कृतैर्विशेषकैरार्द्रैः षडर्तुकुसुमोद्भवैः ।
बभावन्यतमेव श्रीः कान्तिश्रीद्युतिकीर्तिभिः ॥ १७ ॥

उसके कपोल आदिपर हरिचन्दनसे चित्र-रचना की गयी थी । वह छहों ऋतुओंमें होनेवाले नूतन पुष्पोंके आर्द्र हारोंसे विभूषित थी और अपनी अलौकिक कान्ति, शोभा, द्युति एवं कीर्तिसे युक्त हो उस समय दूसरी लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी ॥ १७ ॥

नीलं सतोयमेघाभं वस्त्रं समवगुण्ठिता ।
यस्या वक्त्रं शशिनिभं भ्रुवौ चापनिभे शुभे ॥ १८ ॥

उसका मुख चन्द्रमाके समान मनोहर था और दोनों सुन्दर भौंहें कमान सी दिखायी देती थीं । वह सजल जलधर-के समान नील रंगकी साड़ीसे अपने अङ्गोंको ढके हुए थी ॥ १८ ॥

ऊरू करिकराकारौ करौ पल्लवकोमलौ ।
सैन्यमध्येन गच्छन्ती रावणेनोपलक्षिता ॥ १९ ॥

उसकी जाँघोंका चढ़ाव-उतार हाथीकी सूँड़के समान था । दोनों हाथ ऐसे कोमल थे, मानो (देहरूपी रसालकी डालके) नये-नये पल्लव हों । वह सेनाके बीचसे होकर जा रही थी, अतः रावणने उसे देख लिया ॥ १९ ॥

तां समुत्थाय गच्छन्तीं कामबाणवशं गतः ।
करे गृहीत्वा लज्जन्तीं स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ २० ॥

देखते ही वह कामदेवके बाणोंका शिकार हो गया और खड़ा होकर उसने अन्यत्र जाती हुई रम्भाका हाथ पकड़ लिया। बेचारी अबला लाजसे गड़ गयी; परंतु वह निशाचर मुसकराता हुआ उससे बोला—॥ २० ॥

क्व गच्छसि वरारोहे कां सिद्धिं भजसे स्वयम् ।
कस्याभ्युदयकालोऽयं यस्त्वां समुपभोक्ष्यते ॥ २१ ॥

'वरारोहे ! कहाँ जा रही हो ? किसकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये स्वयं चल पड़ी हो ? किसके भाग्योदयका समय आया है, जो तुम्हारा उपभोग करेगा ? ॥ २१ ॥

त्वदाननरसस्याद्य पद्मोत्पलसुगन्धिनः ।
सुधामृतरसस्येव कोऽद्य तृप्तिं गमिष्यति ॥ २२ ॥

'कमल और उत्पलकी सुगन्ध धारण करनेवाले तुम्हारे इस मनोहर मुखारविन्दका रस अमृतका भी अमृत है। आज इस अमृत-रसका आस्वादन करके कौन तृप्त होगा ? ॥ २२ ॥

स्वर्णकुम्भनिभौ पीनौ शुभौ भीरु निरन्तरौ ।
कस्योरःस्थलसंस्पर्शं दास्यतस्ते कुचाविमौ ॥ २३ ॥

'भीरु ! परस्पर सटे हुए तुम्हारे ये सुवर्णमय कलशोंके सदृश सुन्दर पीन उरोज किसके वक्षःस्थलोंको अपना स्पर्श प्रदान करेंगे ? ॥ २३ ॥

सुवर्णचक्रप्रतिमं स्वर्णदामचितं पृथु ।
अध्यारोक्ष्यति कस्तेऽद्य जघनं स्वर्गरूपिणम् ॥ २४ ॥

'सोनेकी लड़ियोंसे विभूषित तथा सुवर्णमय चक्रके समान विपुल विस्तारसे युक्त तुम्हारे पीन जघनस्थलपर जो मूर्तिमान् स्वर्ग-सा जान पड़ता है, आज कौन आरोहण करेगा ? ॥२४॥

मद्विशिष्टः पुमान् कोऽद्य शक्रो विष्णुरथाश्विनौ ।
मामतीत्य हि यत्र त्वं यासि भीरु न शोभनम् ॥ २५ ॥

'इन्द्र, उपेन्द्र अथवा अश्विनीकुमार ही क्यों न हों, इस समय कौन पुरुष मुझसे बढ़कर है ? भीरु ! तुम मुझे छोड़कर अन्यत्र जा रही हो, यह अच्छा नहीं है ॥ २५ ॥

विश्रम त्वं पृथुश्रोणि शिलातलमिदं शुभम् ।
त्रैलोक्ये यः प्रभुश्चैव मदन्यो नैव विद्यते ॥ २६ ॥

'स्थूल नितम्बवाली सुन्दरी ! यह सुन्दर शिला है, इसपर बैठकर विश्राम करो। इस त्रिभुवनका जो स्वामी है, वह मुझसे भिन्न नहीं है—मैं ही सम्पूर्ण लोकोंका अधिपति हूँ ॥२६॥

तदेवं प्राञ्जलिः प्रह्वो याचते त्वां दशाननः ।
भर्तुर्भर्ता विधाता च त्रैलोक्यस्य भजस्व माम् ॥२७॥

'तीनों लोकोंके स्वामीका भी स्वामी तथा विधाता यह दशमुख रावण आज इस प्रकार विनीतभावसे हाथ जोड़कर तुमसे याचना करता है। सुन्दरी ! मुझे स्वीकार करो' ॥२७॥

एवमुक्ताब्रवीद् रम्भा वेपमाना कृताञ्जलिः ।
प्रसीद नार्हसे वक्तुमीदृशं त्वं हि मे गुरुः ॥ २८ ॥

रावणके ऐसा कहनेपर रम्भा काँप उठी और हाथ जोड़कर बोली—'प्रभो ! प्रसन्न होइये—मुझपर कृपा कीजिये। आपको ऐसी बात मुँहसे नहीं निकालनी चाहिये; क्योंकि आप मेरे गुरुजन हैं—पिताके तुल्य हैं ॥ २८ ॥

अन्येभ्योऽपि त्वया रक्ष्या प्राप्नुयां धर्षणं यदि ।
तद्धर्मतः स्नुषा तेऽहं तत्त्वमेतद् ब्रवीमि ते ॥ २९ ॥

'यदि दूसरे कोई पुरुष मेरा तिरस्कार करनेपर उतारू हों तो उनसे भी आपको मेरी रक्षा करनी चाहिये। मैं धर्मतः आपकी पुत्रवधू हूँ—यह आपसे सच्ची बात बता रही हूँ' ॥

अथाब्रवीद् दशग्रीवश्चरणाधोमुखीं स्थिताम् ।
रोमहर्षमनुप्राप्तां दृष्टमात्रेण तां तदा ॥ ३० ॥

रम्भा अपने चरणोंकी ओर देखती हुई नीचे मुँह किये खड़ी थी। रावणकी दृष्टि पड़नेमात्रसे भयके कारण उसके रोंगटे खड़े हो गये थे। उस समय उससे रावणने कहा—॥३०॥

सुतस्य यदि मे भार्या ततस्त्वं हि स्नुषा भवेः ।
बाढमित्येव सा रम्भा प्राह रावणमुत्तरम् ॥ ३१ ॥

'रम्भे ! यदि यह सिद्ध हो जाय कि तुम मेरे बेटेकी बहू हो, तभी मेरी पुत्र-वधू हो सकती हो, अन्यथा नहीं।' तब रम्भाने 'बहुत अच्छा' कहकर रावणको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ ३१ ॥

धर्मतस्ते सुतस्याहं भार्या राक्षसपुङ्गव ।
पुत्रः प्रियतरः प्राणैर्भ्रातुर्वैश्रवणस्य ते ॥ ३२ ॥

'राक्षसशिरोमणे ! धर्मके अनुसार मैं आपके पुत्रकी ही भार्या हूँ। आपके बड़े भाई कुबेरके पुत्र मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं ॥ ३२ ॥

विख्यातस्त्रिषु लोकेषु नलकूबर इत्ययम् ।
धर्मतो यो भवेद् विप्रः क्षत्रियो वीर्यतो भवेत् ॥ ३३ ॥

'वे तीनों लोकोंमें 'नलकूबर' नामसे विख्यात हैं तथा धर्मानुष्ठानकी दृष्टिसे ब्राह्मण और पराक्रमकी दृष्टिसे क्षत्रिय हैं ॥

क्रोधाद् यश्च भवेदग्निः क्षान्त्या च वसुधासमः ।
तस्यास्मि कृतसंकेता लोकपालसुतस्य वै ॥ ३४ ॥

'वे क्रोधमें अग्नि और क्षमामें पृथ्वीके समान हैं। उन्हीं लोकपालकुमार प्रियतम नलकूबरको आज मैंने मिलनेके लिये संकेत दिया है ॥ ३४ ॥

तमुद्दिश्य तु मे सर्वं विभूषणमिदं कृतम् ।
यथा तस्य हि नान्यस्य भावो मां प्रति तिष्ठति ॥ ३५ ॥

'यह सारा श्रृङ्गार मैंने उन्हींके लिये धारण किया है; जैसे उनका मेरे प्रति अनुराग है, उसी प्रकार मेरा भी उन्हींके प्रति प्रगाढ़ प्रेम है, दूसरे किसीके प्रति नहीं ॥ ३५ ॥

तेन सत्येन मां राजन् मोक्तुमर्हस्यरिंदम ।
स हि तिष्ठति धर्मात्मा मां प्रतीक्ष्य समुत्सुकः ॥ ३६ ॥

'शत्रुओंका दमन करनेवाले राक्षसराज ! इस सत्यको

दृष्टिमें रखकर आप इस समय मुझे छोड़ दीजिये; वे मेरे धर्मात्मा प्रियतम उत्सुक होकर मेरी प्रतीक्षा करते होंगे ॥ ३६ ॥

तत्र विघ्नं तु तस्येह कर्तुं नार्हसि मुञ्च माम् ।
सद्भिराचरितं मार्गं गच्छ राक्षसपुङ्गव ॥ ३७ ॥

'उनकी सेवाके इस कार्यमें आपको यहाँ विघ्न नहीं डालना चाहिये । मुझे छोड़ दीजिये । राक्षसराज ! आप सत्पुरुषोंद्वारा आचरित धर्मके मार्गपर चलिये ॥ ३७ ॥

माननीयो मम त्वं हि पालनीया तथास्मि ते ।
एवमुक्तो दशग्रीवः प्रत्युवाच विनीतवत् ॥ ३८ ॥

'आप मेरे माननीय गुरुजन हैं, अतः आपको मेरी रक्षा करनी चाहिये ।' यह सुनकर दशग्रीवने उसे नम्रतापूर्वक उत्तर दिया— ॥ ३८ ॥

स्नुषास्मि यदवोचस्त्वमेकपत्नीष्वयं क्रमः ।
देवलोकस्थितिरियं सुराणां शाश्वती मता ॥ ३९ ॥
पतिरप्सरसां नास्ति न चैकस्त्रीपरिग्रहः ।

'रम्भे ! तुम अपनेको जो मेरी पुत्रवधू बता रही हो, वह ठीक नहीं जान पड़ता । यह नाता-रिश्ता उन स्त्रियोंके लिये लागू होता है, जो किसी एक पुरुषकी पत्नी हों । तुम्हारे देवलोककी तो स्थिति ही दूसरी है । वहाँ सदासे यही नियम चला आ रहा है कि अप्सराओंका कोई पति नहीं होता । वहाँ कोई एक स्त्रीके साथ विवाह करके नहीं रहता है' ॥

एवमुक्त्वा स तां रक्षो निवेश्य च शिलातले ॥ ४० ॥
कामभोगाभिसंरक्तो मैथुनायोपचक्रमे ।

ऐसा कहकर उस राक्षसने रम्भाको बलपूर्वक शिलापर बैठा लिया और कामभोगमें आसक्त हो उसके साथ समागम किया ॥ ४०½ ॥

सा विमुक्ता ततो रम्भा भ्रष्टमाल्यविभूषणा ॥ ४१ ॥
गजेन्द्राक्रीडमथिता नदीवाकुलतां गता ।

उसके पुष्पहार टूटकर गिर गये, सारे आभूषण अस्त-व्यस्त हो गये । उपभोगके बाद रावणने रम्भाको छोड़ दिया । उसकी दशा उस नदीके समान हो गयी जिसे किसी गजराजने क्रीडा करके मथ डाला हो; वह अत्यन्त व्याकुल हो उठी ॥

लुलिताकुलकेशान्ता करवेपितपल्लवा ॥ ४२ ॥
पवनेनावधूतेव लता कुसुमशालिनी ।

वेणी-बन्ध टूट जानेसे उसके खुले हुए केश हवामें उड़ने लगे—उसका शृङ्गार बिगड़ गया । कर-पल्लव काँपने लगे । वह ऐसी लगती थी—मानो फूलोंसे सुशोभित होनेवाली किसी लताको हवाने झकझोर दिया हो ॥ ४२½ ॥

सा वेपमाना लज्जन्ती भीता करकृताञ्जलिः ॥ ४३ ॥
नलकूबरमासाद्य पादयोर्निपपात ह ।

लज्जा और भयसे काँपती हुई वह नलकूबरके पास गयी और हाथ जोड़कर उनके पैरोंपर गिर पड़ी ॥ ४३½ ॥

तदवस्थां च तां दृष्ट्वा महात्मा नलकूबरः ॥ ४४ ॥
अब्रवीत् किमिदं भद्रे पादयोः पतितासि मे ।

रम्भाको इस अवस्थामें देखकर महामना नलकूबरने पूछा—'भद्रे ! क्या बात है ? तुम इस तरह मेरे पैरोंपर क्यों पड़ गयीं ?' ॥ ४४½ ॥

सा वै निःश्वसमाना तु वेपमाना कृताञ्जलिः ॥ ४५ ॥
तस्मै सर्वं यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ।

वह थर-थर काँप रही थी । उसने लंबी साँस खींचकर हाथ जोड़ लिये और जो कुछ हुआ था, वह सब ठीक-ठीक बताना आरम्भ किया ।—४५½ ॥

एष देव दशग्रीवः प्राप्तो गन्तुं त्रिविष्टपम् ॥ ४६ ॥
तेन सैन्यसहायेन निशेयं परिणामिता ।

'देव ! यह दशमुख रावण स्वर्गलोकपर आक्रमण करनेके लिये आया है । इसके साथ बहुत बड़ी सेना है । उसने आजकी रातमें यहीं डेरा डाला है ॥ ४६½ ॥

आयान्ती तेन दृष्टास्मि त्वत्सकाशमरिंदम ॥ ४७ ॥
गृहीता तेन पृष्टास्मि कस्य त्वमिति रक्षसा ।

'शत्रुदमन वीर ! मैं आपके पास आ रही थी, किंतु उस राक्षसने मुझे देख लिया और मेरा हाथ पकड़ लिया । फिर पूछा—'तुम किसकी स्त्री हो ?' ॥ ४७½ ॥

मया तु सर्वं यत् सत्यं तस्मै सर्वं निवेदितम् ॥ ४८ ॥
काममोहाभिभूतात्मा नाश्रौषीत् तद् वचो मम ।

'मैंने उसे सब कुछ सच-सच बता दिया, किंतु उसका हृदय कामजनित मोहसे आक्रान्त था, इसलिये मेरी वह बात नहीं सुनी ॥ ४८½ ॥

याच्यमानो मया देव स्नुषा तेऽहमिति प्रभो ॥ ४९ ॥
तत् सर्वं पृष्ठतः कृत्वा बलात् तेनास्मि धर्षिता ।

'देव ! मैं बारंबार प्रार्थना करती ही रह गयी कि प्रभो ! मैं आपकी पुत्रवधू हूँ, मुझे छोड़ दीजिये; किंतु उसने मेरी सारी बातें अनसुनी कर दीं और बलपूर्वक मेरे साथ अत्याचार किया ॥ ४९½ ॥

एवं त्वमपराधं मे क्षन्तुमर्हसि सुव्रत ॥ ५० ॥
नहि तुल्यं बलं सौम्य स्त्रियाश्च पुरुषस्य हि ।

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले प्रियतम ! इस बेबसीकी दशामें मुझसे जो अपराध बन गया है, उसे आप क्षमा करें । सौम्य ! नारी अबला होती है, उसमें पुरुषके बराबर शारीरिक बल नहीं होता है (इसीलिये उस दुष्टसे अपनी रक्षा मैं नहीं कर सकी)' ॥ ५०½ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु संक्रुद्धस्तदा वैश्रवणात्मजः ॥ ५१ ॥
धर्षणां तां परां श्रुत्वा ध्यानं सम्प्रविवेश ह ।

यह सुनकर वैश्रवणकुमार नलकूबरको बड़ा क्रोध हुआ । रम्भापर किये गये उस महान् अत्याचारको सुनकर उन्होंने ध्यान लगाया ॥ ५१½ ॥

तस्य तत् कर्म विज्ञाय तदा वैश्रवणात्मजः ॥ ५२ ॥

मुहूर्तात् क्रोधताम्राक्षस्तोयं जग्राह पाणिना ।

उस समय दो ही घड़ीमें रावणकी उस करतूतको जानकर वैश्रवणपुत्र नलकूबरके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और उन्होंने अपने हाथमें जल लिया ॥ ५२½ ॥

गृहीत्वा सलिलं सर्वमुपस्पृश्य यथाविधि ॥ ५३ ॥
उत्ससर्ज तदा शापं राक्षसेन्द्राय दारुणम् ।

जल लेकर पहले विधिपूर्वक आचमन करके नेत्र आदि सारी इन्द्रियोंका स्पर्श करनेके अनन्तर उन्होंने राक्षसराजको बड़ा भयंकर शाप दिया ॥ ५३½ ॥

अकामा तेन यस्मात् त्वं बलाद् भद्रे प्रधर्षिता ॥ ५४ ॥
तस्मात् स युवतीमन्यां नाकामामुपयास्यति ।

वे बोले—'भद्रे ! तुम्हारी इच्छा न रहनेपर भी रावणने तुमपर बलपूर्वक अत्याचार किया है। अतः वह आजसे दूसरी किसी ऐसी युवतीसे समागम नहीं कर सकेगा जो उसे चाहती न हो ॥ ५४½ ॥

यदा ह्यकामां कामार्तो धर्षयिष्यति योषितम् ॥ ५५ ॥
मूर्धा तु सप्तधा तस्य शकलीभविता तदा ।

'यदि वह कामपीड़ित होकर उसे न चाहनेवाली युवतीपर बलात्कार करेगा तो तत्काल उसके मस्तकके सात टुकड़े हो जायँगे' ॥ ५५½ ॥

तस्मिन्नुदाहृते शापे ज्वलिताग्निसमप्रभे ॥ ५६ ॥
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खाच्च्युता ।

नलकूबरके मुखसे प्रज्वलित अग्निके समान दग्ध कर देनेवाले इस शापके निकलते ही देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ५६½ ॥

पितामहमुखाश्चैव सर्वे देवाः प्रहर्षिताः ॥ ५७ ॥
ज्ञात्वा लोकगतिं सर्वां तस्य मृत्युं च रक्षसः ।
ऋषयः पितरश्चैव प्रीतिमापुरनुत्तमाम् ॥ ५८ ॥

ब्रह्मा आदि सभी देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ । रावणके द्वारा की गयी लोककी सारी दुर्दशाको और उस राक्षसकी मृत्युको भी जानकर ऋषियों तथा पितरोंको बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई ॥ ५७-५८ ॥

श्रुत्वा तु स दशग्रीवस्तं शापं रोमहर्षणम् ।
नारीषु मैथुनीभावं नाकामास्वभ्यरोचयत्॥ ५९ ॥

उस रोमाञ्चकारी शापको सुनकर दशग्रीवने अपनेको न चाहनेवाली स्त्रियोंके साथ बलात्कार करना छोड़ दिया ॥ ५९ ॥

तेन नीताः स्त्रियः प्रीतिमापुः सर्वाः पतिव्रताः ।
नलकूबरनिर्मुक्तं शापं श्रुत्वा मनःप्रियम् ॥ ६० ॥

वह जिन-जिन पतिव्रता स्त्रियोंको हरकर ले गया था, उन सबके मनको नलकूबरका दिया वह शाप बड़ा प्रिय लगा। उसे सुनकर वे सब-की-सब बहुत प्रसन्न हुईं ॥ ६० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः

सेनासहित रावणका इन्द्रलोकपर आक्रमण, इन्द्रकी भगवान् विष्णुसे सहायताके लिये प्रार्थना, भविष्यमें रावण-वधकी प्रतिज्ञा करके विष्णुका इन्द्रको लौटाना, देवताओं और राक्षसोंका युद्ध तथा वसुके द्वारा सुमालीका वध

कैलासं लङ्घयित्वा तु ससैन्यबलवाहनः ।
आससाद महातेजा इन्द्रलोकं दशाननः ॥ १ ॥

कैलास पर्वतको पार करके महातेजस्वी दशमुख रावण सेना और सवारियोंके साथ इन्द्रलोकमें जा पहुँचा ॥ १ ॥

तस्य राक्षससैन्यस्य समन्तादुपयास्यतः ।
देवलोके बभौ शब्दो भिद्यमानार्णवोपमः ॥ २ ॥

सब ओरसे आती हुई राक्षस-सेनाका कोलाहल देवलोकमें ऐसा जान पड़ता था, मानो महासागरके मथे जानेका शब्द प्रकट हो रहा हो ॥ २ ॥

श्रुत्वा तु रावणं प्राप्तमिन्द्रश्चलित आसनात्।
देवानथाब्रवीत् तत्र सर्वानेव समागतान् ॥ ३ ॥

रावणका आगमन सुनकर इन्द्र अपने आसनसे उठ गये और अपने पास आये हुए समस्त देवताओंसे बोले—॥

आदित्यांश्च वसून् रुद्रान् साध्यांश्च समरुद्गणान् ।
सज्जा भवत युद्धार्थं रावणस्य दुरात्मनः ॥ ४ ॥

उन्होंने आदित्यों, वसुओं, रुद्रों, साध्यों तथा मरुद्गणोंसे भी कहा—'तुम सब लोग दुरात्मा रावणके साथ युद्ध करनेके लिये तैयार हो जाओ' ॥ ४ ॥

एवमुक्तास्तु शक्रेण देवाः शक्रसमा युधि ।
संनह्य सुमहासत्त्वा युद्धश्रद्धासमन्विताः ॥ ५ ॥

इन्द्रके ऐसा कहनेपर युद्धमें उन्हींके समान पराक्रम प्रकट करनेवाले महाबली देवता कवच आदि धारण करके युद्धके लिये उत्सुक हो गये ॥ ५ ॥

स तु दीनः परित्रस्तो महेन्द्रो रावणं प्रति ।
विष्णोः समीपमागत्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ६ ॥

देवराज इन्द्रको रावणसे भय हो गया था। अतः वे दुखी हो भगवान् विष्णुके पास आये और इस प्रकार बोले—॥

विष्णो कथं करिष्यामि रावणं राक्षसं प्रति।
अहोऽतिबलवद् रक्षो युद्धार्थमभिवर्तते ॥ ७ ॥

'विष्णुदेव ! मैं राक्षस रावणके लिये क्या करूँ ? अहो !

वह अत्यन्त बलशाली निशाचर मेरे साथ युद्ध करनेके लिये आ रहा है ॥ ७ ॥

वरप्रदानाद् बलवान् न खल्वन्येन हेतुना।
तत् तु सत्यं वचः कार्यं यदुक्तं पद्मयोनिना ॥ ८ ॥

'वह केवल ब्रह्माजीके वरदानके कारण प्रबल हो गया है; दूसरे किसी हेतुसे नहीं। कमलयोनि ब्रह्माजीने जो वर दे दिया है, उसे सत्य करना हम सब लोगोंका काम है ॥ ८ ॥

तद् यथा नमुचिर्वृत्रो बलिर्नरकशम्बरौ।
त्वद्बलं समवष्टभ्य मया दग्धास्तथा कुरु ॥ ९ ॥

'अतः जैसे पहले आपके बलका आश्रय लेकर मैंने नमुचि, वृत्रासुर, बलि, नरक और शम्बर आदि असुरोंको दग्ध कर डाला है, उसी प्रकार इस समय भी इस असुरका अन्त हो जाय, ऐसा कोई उपाय आप ही कीजिये ॥ ९ ॥

नह्यन्यो देवदेवेश त्वदृते मधुसूदन।
गतिः परायणं चापि त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ १० ॥

'मधुसूदन! आप देवताओंके भी देवता एवं ईश्वर हैं। इस चराचर त्रिभुवनमें आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो हम देवताओंको सहारा दे सके। आप ही हमारे परम आश्रय हैं ॥ १० ॥

त्वं हि नारायणः श्रीमान् पद्मनाभः सनातनः।
त्वयेमे स्थापिता लोकाः शक्रश्चाहं सुरेश्वरः ॥ ११ ॥

'आप पद्मनाभ हैं—आपहीके नाभिकमलसे जगत्की उत्पत्ति हुई है। आप ही सनातनदेव श्रीमान् नारायण हैं। आपने ही इन तीनों लोकोंको स्थापित किया है और आपने ही मुझे देवराज इन्द्र बनाया है ॥ ११ ॥

त्वया सृष्टमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
त्वामेव भगवन् सर्वे प्रविशन्ति युगक्षये ॥ १२ ॥

'भगवन्! आपने ही स्थावर-जङ्गम प्राणियोंसहित इस समस्त त्रिलोकीकी सृष्टि की है और प्रलयकालमें सम्पूर्ण भूत आपमें ही प्रवेश करते हैं ॥ १२ ॥

तदाचक्ष्व यथातत्त्वं देवदेव मम स्वयम्।
असिचक्रसहायस्त्वं योत्स्यसे रावणं प्रति ॥ १३ ॥

'इसलिये देवदेव! आप ही मुझे कोई ऐसा अमोघ उपाय बताइये, जिससे मेरी विजय हो। क्या आप स्वयं चक्र और तलवार लेकर रावणसे युद्ध करेंगे?' ॥ १३ ॥

एवमुक्तः स शक्रेण देवो नारायणः प्रभुः।
अब्रवीन्न परित्रासः कर्तव्यः श्रूयतां च मे ॥ १४ ॥

इन्द्रके ऐसा कहनेपर भगवान् नारायणदेव बोले—'देवराज! तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। मेरी बात सुनो— ॥

न तावदेष दुष्टात्मा शक्यो जेतुं सुरासुरैः।
हन्तुं चापि समासाद्य वरदानेन दुर्जयः ॥ १५ ॥

'पहली बात तो यह है इस दुष्टात्मा रावणको सम्पूर्ण देवता और असुर मिलकर भी न तो मार सकते हैं और न परास्त ही कर सकते हैं; क्योंकि वरदान पानेके कारण यह इस समय दुर्जय हो गया है ॥ १५ ॥

सर्वथा तु महत् कर्म करिष्यति बलोत्कटः।
राक्षसः पुत्रसहितो दृष्टमेतन्निसर्गतः ॥ १६ ॥

'अपने पुत्रके साथ आया हुआ यह उत्कट बलशाली राक्षस सब प्रकारसे महान् पराक्रम प्रकट करेगा। यह बात मुझे अपनी स्वाभाविक ज्ञानदृष्टिसे दिखायी दे रही है ॥ १६ ॥

यत् तु मां त्वमभाषिष्ठा युध्यस्वेति सुरेश्वर।
नाहं तं प्रतियोत्स्यामि रावणं राक्षसं युधि ॥ १७ ॥'

'सुरेश्वर! दूसरी बात जो मुझे कहनी है, इस प्रकार है—तुम जो मुझसे कह रहे थे कि 'आप ही उसके साथ युद्ध कीजिये' उसके उत्तरमें निवेदन है कि मैं इस समय युद्धस्थलमें राक्षस रावणका सामना करनेके लिये नहीं जाऊँगा ॥

नाहत्वा समरे शत्रुं विष्णुः प्रतिनिवर्तते।
दुर्लभश्चैव कामोऽद्य वरगुप्ताद्धि रावणात् ॥ १८ ॥

'मुझ विष्णुका यह स्वभाव है कि मैं संग्राममें शत्रुका वध किये बिना पीछे नहीं लौटता; परंतु इस समय रावण वरदानसे सुरक्षित है, इसलिये उसकी ओरसे मेरी इस विजय-सम्बन्धिनी इच्छाकी पूर्ति होनी कठिन है ॥ १८ ॥

प्रतिजाने च देवेन्द्र त्वत्समीपे शतक्रतो।
भवितास्मि यथास्याहं रक्षसो मृत्युकारणम् ॥ १९ ॥

'परंतु देवेन्द्र! शतक्रतो! मैं तुम्हारे समीप इस बातकी प्रतिज्ञा करता हूँ कि समय आनेपर मैं ही इस राक्षसकी मृत्युका कारण बनूँगा ॥ १९ ॥

अहमेव निहन्तास्मि रावणं सपुरःसरम्।
देवता नन्दयिष्यामि ज्ञात्वा कालमुपागतम् ॥ २० ॥

'मैं ही रावणको उसके अग्रगामी सैनिकोंसहित मारूँगा और देवताओंको आनन्दित करूँगा; परंतु यह तभी होगा जब मैं जान लूँगा कि इसकी मृत्युका समय आ पहुँचा है ॥

एतत् ते कथितं तत्त्वं देवराज शचीपते।
युद्ध्यस्व विगतत्रासः सुरैः सार्धं महाबल ॥ २१ ॥

'देवराज! ये सब बातें मैंने तुम्हें ठीक-ठीक बता दीं। महाबलशाली शचीवल्लभ! इस समय तो तुम्हीं देवताओंसहित जाकर उस राक्षसके साथ निर्भय हो युद्ध करो' ॥ २१ ॥

ततो रुद्राः सहादित्या वसवो मरुतोऽश्विनौ।
संनद्धा निर्ययुस्तूर्णं राक्षसानभितः पुरात् ॥ २२ ॥

तदनन्तर रुद्र, आदित्य, वसु, मरुद्गण और अश्विनीकुमार आदि देवता युद्धके लिये तैयार होकर तुरंत अमरावतीपुरीसे बाहर निकले और राक्षसोंका सामना करनेके लिये आगे बढे ॥ २२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे नादः शुश्रुवे रजनीक्षये।
तस्य रावणसैन्यस्य प्रयुद्धस्य समन्ततः ॥ २३ ॥

इसी बीचमें रात बीतते-बीतते सब ओरसे युद्धके लिये

उत्पन्न हुई रावणकी सेनाका महान् कोलाहल सुनायी देने लगा ॥ २३ ॥

ते प्रबुद्धा महावीर्या अन्योन्यमभिवीक्ष्य वै ।
संग्राममेवाभिमुखा अभ्यवर्तन्त हृष्टवत् ॥ २४ ॥

वे महापराक्रमी राक्षससैनिक सबेरे जागनेपर एक दूसरेकी ओर देखते हुए बड़े हर्ष और उत्साहके साथ युद्धके लिये ही आगे बढ़ने लगे ॥ २४ ॥

ततो दैवतसैन्यानां संक्षोभः समजायत ।
तदक्षयं महासैन्यं दृष्ट्वा समरमूर्धनि ॥ २५ ॥

तदनन्तर युद्धके मुहानेपर राक्षसोंकी उस अनन्त एवं विशाल सेनाको देखकर देवताओंकी सेनामें बड़ा क्षोभ हुआ ॥ २५ ॥

ततो युद्धं समभवद् देवदानवरक्षसाम् ।
घोरं तुमुलनिर्ह्रादं नानाप्रहरणोद्यतम् ॥ २६ ॥

फिर तो देवताओंका दानवों और राक्षसोंके साथ भयंकर युद्ध छिड़ गया । भयंकर कोलाहल होने लगा और दोनों ओरसे नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी बौछार आरम्भ हो गयी ॥ २६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शूरा राक्षसा घोरदर्शनाः ।
युद्धार्थं समवर्तन्त सचिवा रावणस्य ते ॥ २७ ॥

इसी समय रावणके मन्त्री शूरवीर राक्षस, जो बड़े भयंकर दिखायी देते थे, युद्धके लिये आगे बढ़ आये ॥ २७ ॥

✓**मारीचश्च प्रहस्तश्च महापार्श्वमहोदरौ ।**
अकम्पनो निकुम्भश्च शुकः सारण एव च ॥ २८ ॥
संह्रादो धूमकेतुश्च महादंष्ट्रो घटोदरः ।
जम्बुमाली महाह्रादो विरूपाक्षश्च राक्षसः ॥ २९ ॥
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च दुर्मुखो दूषणः खरः ।
त्रिशिराः करवीराक्षः सूर्यशत्रुश्च राक्षसः ॥ ३० ॥
महाकायोऽतिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ ।
एतैः सर्वैः परिवृतो महावीर्यैर्महाबलः ॥ ३१ ॥
रावणस्यार्यकः सैन्यं सुमाली प्रविवेश ह ।

मारीच, प्रहस्त, महापार्श्व, महोदर, अकम्पन, निकुम्भ, शुक, सारण, संह्राद, धूमकेतु, महादंष्ट्र, घटोदर, जम्बुमाली, महाह्राद, विरूपाक्ष, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, दुर्मुख, दूषण, खर, त्रिशिरा, करवीराक्ष, सूर्यशत्रु, महाकाय, अतिकाय, देवान्तक तथा नरान्तक—इन सभी महापराक्रमी राक्षसोंसे घिरे हुए महाबली सुमालीने, जो रावणका नाना था, देवताओंकी सेनामें प्रवेश किया ॥ २८–३१½ ॥

स दैवतगणान् सर्वान् नानाप्रहरणैः शितैः ॥ ३२ ॥
व्यध्वंसयत् समं क्रुद्धो वायुर्जलधरानिव ।

उसने कुपित हो नाना प्रकारके पैने अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा समस्त देवताओंको उसी तरह मार भगाया, जैसे वायु बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है ॥ ३२½ ॥

तद् दैवतबलं राम हन्यमानं निशाचरैः ॥ ३३ ॥
प्रणुन्नं सर्वतो दिग्भ्यः सिंहनुन्ना मृगा इव ।

श्रीराम ! निशाचरोंकी मार खाकर देवताओंकी वह सेना सिंहद्वारा खदेड़े गये मृगोंकी भाँति सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग चली ॥ ३३½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शूरो वसूनामष्टमो वसुः ॥ ३४ ॥
सावित्र इति विख्यातः प्रविवेश रणाजिरम् ।

इसी समय वसुओंमेंसे आठवें वसुने, जिनका नाम सावित्र है, समराङ्गणमें प्रवेश किया ॥ ३४½ ॥

सैन्यैः परिवृतो हृष्टैर्नानाप्रहरणोद्यतैः ॥ ३५ ॥
त्रासयञ्शत्रुसैन्यानि प्रविवेश रणाजिरम् ।

वे नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित एवं उत्साहित सैनिकोंसे घिरे हुए थे । उन्होंने शत्रुसेनाओंको संत्रस्त करते हुए रणभूमिमें पदार्पण किया ॥ ३५½ ॥

तथादित्यौ महावीर्यौ त्वष्टा पूषा च तौ समम् ॥ ३६ ॥
निर्भयौ सह सैन्येन तदा प्राविशतां रणे ।

इनके सिवा अदितिके दो महापराक्रमी पुत्र त्वष्टा और पूषाने अपनी सेनाके साथ एक ही समय युद्धस्थलमें प्रवेश किया, वे दोनों वीर निर्भय थे ॥ ३६½ ॥

ततो युद्धं समभवत् सुराणां सह राक्षसैः ॥ ३७ ॥
क्रुद्धानां रक्षसां कीर्तिं समरेष्वनिवर्तिनाम् ।

फिर तो देवताओंका राक्षसोंके साथ घोर युद्ध होने लगा । युद्धसे पीछे न हटनेवाले राक्षसोंकी बढ़ती हुई कीर्ति देख-सुनकर देवता उनके प्रति बहुत कुपित थे ॥ ३७½ ॥

ततस्ते राक्षसाः सर्वे विबुधान् समरे स्थितान् ॥ ३८ ॥
नानाप्रहरणैर्घोरैर्जघ्नुः शतसहस्रशः ।

तत्पश्चात् समस्त राक्षस समरभूमिमें खड़े हुए लाखों देवताओंको नाना प्रकारके घोर अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा मारने लगे ॥ ३८½ ॥

देवाश्च राक्षसान् घोरान् महाबलपराक्रमान् ॥ ३९ ॥
समरे विमलैः शस्त्रैरुपनिन्युर्यमक्षयम् ।

इसी तरह देवता भी महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न घोर राक्षसोंको समराङ्गणमें चमकीले अस्त्र-शस्त्रोंसे मार-मारकर यमलोक भेजने लगे ॥ ३९½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राम सुमाली नाम राक्षसः ॥ ४० ॥
नानाप्रहरणैः क्रुद्धस्तत्सैन्यं सोऽभ्यवर्तत ।
स दैवतबलं सर्वं नानाप्रहरणैः शितैः ॥ ४१ ॥
व्यध्वंसयत संक्रुद्धो वायुर्जलधरं यथा ।

श्रीराम ! इसी बीचमें सुमाली नामक राक्षसने कुपित होकर नाना प्रकारके आयुधोंद्वारा देवसेनापर आक्रमण किया । उसने अत्यन्त क्रोधसे भरकर बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देनेवाली वायुके समान अपने भाँति-भाँतिके तीखे अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा समस्त देवसेनाको तितर-बितर कर दिया ॥ ४०-४१½ ॥

ते महाबाणवर्षैश्च शूलप्रासैः सुदारुणैः ॥ ४२ ॥
हन्यमानाः सुराः सर्वे न व्यतिष्ठन्त संहताः ।

उसके महान् बाणों और भयंकर शूलों एवं प्रासोंकी वर्षासे मारे जाते हुए सभी देवता युद्धक्षेत्रमें संगठित होकर खड़े न रह सके ॥ ४२½ ॥

ततो विद्राव्यमाणेषु दैवतेषु सुमालिना ॥ ४३ ॥
वसूनामष्टमः क्रुद्धः सावित्रो वै व्यवस्थितः ।
संवृतः स्वैरथानीकैः प्रहरन्तं निशाचरम् ॥ ४४ ॥

सुमालीद्वारा देवताओंके भगाये जानेपर आठवें वसु सावित्रको बड़ा क्रोध हुआ । वे अपनी रथसेनाओंके साथ आकर उस प्रहार करनेवाले निशाचरके सामने खड़े हो गये ॥ ४३-४४ ॥

विक्रमेण महातेजा वारयामास संयुगे ।
ततस्तयोर्महद् युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ॥ ४५ ॥
सुमालिनो वसोश्चैव समरेष्वनिवर्तिनोः ।

महातेजस्वी सावित्रने युद्धस्थलमें अपने पराक्रमद्वारा सुमालीको आगे बढ़नेसे रोक दिया । सुमाली और वसु दोनोंमेंसे कोई भी युद्धसे पीछे हटनेवाला नहीं था; अतः उन दोनोंमें महान् एवं रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया ॥ ४५½ ॥

ततस्तस्य महाबाणैर्वसुना सुमहात्मना ॥ ४६ ॥
निहतः पन्नगरथः क्षणेन विनिपातितः ।

तदनन्तर महात्मा वसुने अपने विशाल बाणोंद्वारा सुमालीके सर्प जुते हुए रथको क्षणभरमें तोड़-फोड़कर गिरा दिया ॥ ४६½ ॥

हत्वा तु संयुगे तस्य रथं बाणशतैश्चितम् ॥ ४७ ॥
गदां तस्य वधार्थाय वसुर्जग्राह पाणिना ।
ततः प्रगृह्य दीप्ताग्रां कालदण्डोपमां गदाम् ॥ ४८ ॥
तां मूर्ध्नि पातयामास सावित्रो वै सुमालिनः ।

युद्धस्थलमें सैकड़ों बाणोंसे छिदे हुए सुमालीके रथको नष्ट करके वसुने उस निशाचरके वधके लिये कालदण्डके समान एक भयंकर गदा हाथमें ली, जिसका अग्रभाग अग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था । उसे लेकर सावित्रने सुमालीके मस्तकपर दे मारा ॥ ४७-४८½ ॥

सा तस्योपरि चोल्काभा पतन्ती विबभौ गदा ॥ ४९ ॥
इन्द्रप्रमुक्ता गर्जन्ती गिराविव महाशनिः ।

उसके ऊपर गिरती हुई वह गदा उल्काके समान चमक उठी, मानो इन्द्रके द्वारा छोड़ी गयी विशाल अशनि भारी गड़गड़ाहटके साथ किसी पर्वतके शिखरपर गिर रही हो ।४९½॥

तस्य नैवास्थि न शिरो न मांसं ददृशे तदा ॥ ५० ॥
गदया भस्मतां नीतं निहतस्य रणाजिरे ।

उसकी चोट लगते ही समराङ्गणमें सुमालीका काम तमाम हो गया । न उसकी हड्डीका पता लगा, न मस्तकका और न कहीं उसका मांस हो दिखायी दिया । वह सब कुछ उस गदाकी आगसे भस्म हो गया ॥ ५०½ ॥

तं दृष्ट्वा निहतं संख्ये राक्षसास्ते समन्ततः ॥ ५१ ॥
व्यद्रवन् सहिताः सर्वे क्रोशमानाः परस्परम् ।
विद्राव्यमाणा वसुना राक्षसा नावतस्थिरे ॥ ५२ ॥

युद्धमें सुमालीको मारा गया देख वे सब राक्षस एक दूसरेको पुकारते हुए एक साथ चारों ओर भाग खड़े हुए । वसुके द्वारा खदेड़े जानेवाले वे राक्षस समरभूमिमें खड़े न रह सके ॥ ५१-५२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सत्ताईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २७ ॥

* * *

अष्टाविंशः सर्गः

मेघनाद और जयन्तका युद्ध, पुलोमाका जयन्तको अन्यत्र ले जाना, देवराज इन्द्रका युद्धभूमिमें पदार्पण, रुद्रों तथा मरुद्गणोंद्वारा राक्षससेनाका संहार और इन्द्र तथा रावणका युद्ध

सुमालिनं हतं दृष्ट्वा वसुना भस्मसात्कृतम् ।
स्वसैन्यं विद्रुतं चापि लक्षयित्वार्दितं सुरैः ॥ १ ॥
ततः स बलवान् क्रुद्धो रावणस्य सुतस्तदा ।
निवर्त्य राक्षसान् सर्वान् मेघनादो व्यवस्थितः ॥२॥

सुमाली मारा गया, वसुने उसके शरीरको भस्म कर दिया और देवताओंसे पीड़ित होकर मेरी सेना भागी जा रही है, यह देख रावणका बलवान् पुत्र मेघनाद कुपित हो समस्त राक्षसोंको लौटाकर देवताओंसे लोहा लेनेके लिये स्वयं खड़ा हुआ ॥ १-२ ॥

स रथेनाग्निवर्णेन कामगेन महारथः ।
अभिदुद्राव सेनां तां वनान्यग्निरिव ज्वलन् ॥ ३ ॥

वह महारथी वीर इच्छानुसार चलनेवाले अग्नितुल्य तेजस्वी रथपर आरूढ़ हो वनमें फैलनेवाले प्रज्वलित दावानलके समान उस देवसेनाकी ओर दौड़ा ॥ ३ ॥

ततः प्रविशतस्तस्य विविधायुधधारिणः ।
विदुद्रुवुर्दिशः सर्वा दर्शनादेव देवताः ॥ ४ ॥

नाना प्रकारके आयुध धारण करके अपनी सेनामें प्रवेश करनेवाले उस मेघनादको देखते ही सब देवता सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर भाग चले ॥ ४ ॥

न बभूव तदा कश्चिद् युयुत्सोरस्य सम्मुखे ।
सर्वानाविध्य वित्रस्तांस्ततः शक्रोऽब्रवीत् सुरान्॥५॥

उस समय युद्धकी इच्छावाले मेघनादके सामने कोई भी

खड़ा न हो सका। तब भयभीत हुए उन समस्त देवताओंको फटकारकर इन्द्रने उनसे कहा—॥ ५ ॥

न भेतव्यं न गन्तव्यं निवर्तध्वं रणे सुराः।
एष गच्छति पुत्रो मे युद्धार्थमपराजितः॥ ६ ॥

'देवताओ! भय न करो, युद्ध छोड़कर न जाओ और रणक्षेत्रमें लौट आओ। यह मेरा पुत्र जयन्त, जो कभी किसीसे परास्त नहीं हुआ है, युद्धके लिये जा रहा है'॥ ६ ॥

ततः शक्रसुतो देवो जयन्त इति विश्रुतः।
रथेनाद्भुतकल्पेन संग्रामे सोऽभ्यवर्तत॥ ७ ॥

तदनन्तर इन्द्रपुत्र जयन्तदेव अद्भुत सजावटसे युक्त रथपर आरूढ़ हो युद्धके लिये आया॥ ७ ॥

ततस्ते त्रिदशाः सर्वे परिवार्य शचीसुतम्।
रावणस्य सुतं युद्धे समासाद्य प्रजघ्निरे॥ ८ ॥

फिर तो सब देवता शचीपुत्र जयन्तको चारों ओरसे घेरकर युद्धस्थलमें आये और रावणके पुत्रपर प्रहार करने लगे॥ ८ ॥

तेषां युद्धं समभवत सदृशं देवरक्षसाम्।
महेन्द्रस्य च पुत्रस्य राक्षसेन्द्रसुतस्य च॥ ९ ॥

उस समय देवताओंका राक्षसोंके साथ और महेन्द्रकुमारका रावणपुत्रके साथ उनके बल-पराक्रमके अनुरूप युद्ध होने लगा॥ ९ ॥

ततो मातलिपुत्रस्य गोमुखस्य स रावणिः।
सारथेः पातयामास शरान् कनकभूषणान्॥ १० ॥

रावणकुमार मेघनाद जयन्तके सारथि मातलिपुत्र गोमुखपर सुवर्णभूषित बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ १० ॥

शचीसुतश्चापि तथा जयन्तस्तस्य सारथिम्।
तं चापि रावणिः क्रुद्धः समन्तात् प्रत्यविध्यत॥ ११ ॥

शचीपुत्र जयन्तने भी मेघनादके सारथिको घायल कर दिया। तब कुपित हुए मेघनादने जयन्तको भी सब ओरसे क्षत-विक्षत कर दिया॥ ११ ॥

स हि क्रोधसमाविष्टो बली विस्फारितेक्षणः।
रावणिः शक्रतनयं शरवर्षैरवाकिरत्॥ १२ ॥

उस समय क्रोधसे भरा हुआ बलवान् मेघनाद इन्द्रपुत्र जयन्तको आँखें फाड़-फाड़कर देखने और बाणोंकी वर्षासे पीड़ित करने लगा॥ १२ ॥

ततो नानाप्रहरणाञ्छितधारान् सहस्रशः।
पातयामास संक्रुद्धः सुरसैन्येषु रावणिः॥ १३ ॥

अत्यन्त कुपित हुए रावणकुमारने देवताओंकी सेनापर भी तीखी धारवाले नाना प्रकारके सहस्रों अस्त्र-शस्त्र बरसाये॥

शतघ्नीमुसलप्रासगदाखड्गपरश्वधान्।
महान्ति गिरिशृङ्गाणि पातयामास रावणिः॥ १४ ॥

उसने शतघ्नी, मूसल, प्रास, गदा, खड्ग और फरसे गिराये तथा बड़े-बड़े पर्वत-शिखर भी चलाये॥ १४ ॥

ततः प्रव्यथिता लोकाः संजज्ञे च तमस्ततः।
तस्य रावणपुत्रस्य शत्रुसैन्यानि निघ्नतः॥ १५ ॥

शत्रुसेनाओंके संहारमें लगे हुए रावणकुमारकी मायासे उस समय चारों ओर अन्धकार छा गया; अतः समस्त लोक व्यथित हो उठे॥ १५ ॥

ततस्तद् दैवतबलं समन्तात् तं शचीसुतम्।
बहुप्रकारमस्वस्थमभवच्छरपीडितम्॥ १६ ॥

तब शचीकुमारके चारों ओर खड़ी हुई देवताओंकी वह सेना बाणोंद्वारा पीड़ित हो अनेक प्रकारसे अस्वस्थ हो गयी॥

नाभ्यजानन्त चान्योन्यं रक्षो वा देवताथवा।
तत्र तत्र विपर्यस्तं समन्तात् परिधावत॥ १७ ॥

राक्षस और देवता आपसमें किसीको पहचान न सके। वे जहाँ-तहाँ बिखरे हुए चारों ओर चक्कर काटने लगे॥ १७॥

देवा देवान् निजघ्नुस्ते राक्षसान् राक्षसास्तथा।
सम्मूढास्तमसाच्छन्ना व्यद्रवन्नपरे तथा॥ १८ ॥

अन्धकारसे आच्छादित होकर वे विवेकशक्ति खो बैठे थे। अतः देवता देवताओंको और राक्षस राक्षसोंको ही मारने लगे तथा बहुतेरे योद्धा युद्धसे भाग खड़े हुए॥ १८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरः पुलोमा नाम वीर्यवान्। ✓
दैत्येन्द्रस्तेन संगृह्य शचीपुत्रोऽपवाहितः॥ १९ ॥

इसी बीचमें पराक्रमी वीर दैत्यराज पुलोमा युद्धमें आया और शचीपुत्र जयन्तको पकड़कर वहाँसे दूर हटा ले गया॥

संगृह्य तं तु दौहित्रं प्रविष्टः सागरं तदा। ✓
आर्यकः स हि तस्यासीत् पुलोमा येन सा शची॥ २०॥

वह शचीका पिता और जयन्तका नाना था, अतः अपने दौहित्रको लेकर समुद्रमें घुस गया॥ २० ॥

ज्ञात्वा प्रणाशं तु तदा जयन्तस्याथ देवताः।
अप्रहृष्टास्ततः सर्वा व्यथिताः सम्प्रदुद्रुवुः॥ २१ ॥

देवताओंको जब जयन्तके गायब होनेकी बात मालूम हुई, तब उनकी सारी खुशी छिन गयी और वे दुखी होकर चारों ओर भागने लगे॥ २१ ॥

रावणिस्त्वथ संक्रुद्धो बलैः परिवृतः स्वकैः।
अभ्यधावत देवांस्तान् मुमोच च महास्वनम्॥ २२ ॥

उधर अपनी सेनाओंसे घिरे हुए रावणकुमार मेघनादने अत्यन्त कुपित हो देवताओंपर धावा किया और बड़े जोरसे गर्जना की॥ २२ ॥

दृष्ट्वा प्रणाशं पुत्रस्य दैवतेषु च विद्रुतम्।
मातलिं चाह देवेशो रथः समुपनीयताम्॥ २३ ॥

पुत्र लापता हो गया और देवताओंकी सेनामें भगदड़ मच गयी है—यह देखकर देवराज इन्द्रने मातलिसे कहा—'मेरा रथ ले आओ'॥ २३ ॥

स तु दिव्यो महाभीमः सज्ज एव महारथः।
उपस्थितो मातलिना वाह्यमानो महाजवः॥ २४॥

मातलिने एक सजा-सजाया महाभयङ्कर, दिव्य एवं विशाल रथ लाकर उपस्थित कर दिया। उसके द्वारा हाँका जानेवाला वह रथ बड़ा ही वेगशाली था ॥ २४ ॥

ततो मेघा रथे तस्मिंस्तडित्वन्तो महाबलाः ।
अग्रतो वायुचपला नेदुः परमनिःस्वनाः ॥ २५ ॥

तदनन्तर उस रथपर बिजलीसे युक्त महाबली मेघ उसके अग्रभागमें वायुसे चञ्चल हो बड़े जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ २५ ॥

नानावाद्यानि वाद्यन्त गन्धर्वाश्च समाहिताः ।
ननृतुश्चाप्सरःसङ्घा निर्याते त्रिदशेश्वरे ॥ २६ ॥

देवेश्वर इन्द्रके निकलते ही नाना प्रकारके बाजे बज उठे, गन्धर्व एकाग्र हो गये और अप्सराओंके समूह नृत्य करने लगे ॥ २६ ॥

रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां समरुद्गणैः ।
वृतो नानाप्रहरणैर्निर्ययौ त्रिदशाधिपः ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् रुद्रों, वसुओं, आदित्यों, अश्विनीकुमारों और मरुद्गणोंसे घिरे हुए देवराज इन्द्र नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र साथ लिये पुरीसे बाहर निकले ॥ २७ ॥

निर्गच्छतस्तु शक्रस्य परुषः पवनो ववौ ।
भास्करो निष्प्रभश्चैव महोल्काश्च प्रपेदिरे ॥ २८ ॥

इन्द्रके निकलते ही प्रचण्ड वायु चलने लगी। सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी और आकाशसे बड़ी-बड़ी उल्काएँ गिरने लगीं ॥ २८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शूरो दशग्रीवः प्रतापवान् ।
आरुरोह रथं दिव्यं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ २९ ॥

इसी बीचमें प्रतापी वीर दशग्रीव भी विश्वकर्माके बनाये हुए दिव्य रथपर सवार हुआ ॥ २९ ॥

पन्नगैः सुमहाकायैर्वेष्टितं लोमहर्षणैः ।
येषां निःश्वासवातेन प्रदीप्तमिव संयुगे ॥ ३० ॥

उस रथमें रोंगटे खड़े कर देनेवाले विशालकाय सर्प लिपटे हुए थे। उनकी निःश्वास-वायुसे वह रथ उस युद्धस्थलमें ज्वलित-सा जान पड़ता था ॥ ३० ॥

दैत्यैर्निशाचरैश्चैव स रथः परिवारितः ।
समराभिमुखो दिव्यो महेन्द्रं सोऽभ्यवर्तत ॥ ३१ ॥

दैत्यों और निशाचरोंने उस रथको सब ओरसे घेर रक्खा था। समराङ्गणकी ओर बढ़ता हुआ रावणका वह दिव्य रथ महेन्द्रके सामने जा पहुँचा ॥ ३१ ॥

पुत्रं तं वारयित्वा तु स्वयमेव व्यवस्थितः ।
सोऽपि युद्धाद् विनिष्क्रम्य रावणिः समुपाविशत् ॥ ३२ ॥

रावण अपने पुत्रको रोककर स्वयं ही युद्धके लिये खड़ा हुआ। तब रावणपुत्र मेघनाद युद्धस्थलसे निकलकर चुपचाप अपने रथपर जा बैठा ॥ ३२ ॥

ततो युद्धं प्रवृत्तं तु सुराणां राक्षसैः सह ।
शस्त्राणि वर्षतां तेषां मेघानामिव संयुगे ॥ ३३ ॥

फिर तो देवताओंका राक्षसोंके साथ घोर युद्ध होने लगा। जलकी वर्षा करनेवाले मेघोंके समान देवता युद्धस्थलमें अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३३ ॥

कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा नानाप्रहरणोद्यतः ।
नाज्ञायत तदा राजन् युद्धं केनाभ्यपद्यत ॥ ३४ ॥

राजन्! दुष्टात्मा कुम्भकर्ण नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये किसके साथ युद्ध करता था, इसका पता नहीं लगता था (अर्थात् मतवाला होनेके कारण अपने और पराये सभी सैनिकोंके साथ जूझने लगता था) ॥ ३४ ॥

दन्तैः पादैर्भुजैर्हस्तैः शक्तितोमरमुद्गरैः ।
येन तेनैव संक्रुद्धस्ताडयामास देवताः ॥ ३५ ॥

वह अत्यन्त कुपित हो दाँत, लात, भुजा, हाथ, शक्ति, तोमर और मुद्गर आदि जो ही पाता उसीसे देवताओंको पीटता था ॥ ३५ ॥

स तु रुद्रैर्महाघोरैः संगम्याथ निशाचरः ।
प्रयुद्धस्तैश्च संग्रामे क्षतः शस्त्रैर्निरन्तरम् ॥ ३६ ॥

वह निशाचर महाभयङ्कर रुद्रोंके साथ भिड़कर घोर युद्ध करने लगा। संग्राममें रुद्रोंने अपने अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा उसे ऐसा क्षत-विक्षत कर दिया था कि उसके शरीरमें थोड़ी-सी भी जगह बिना घावके नहीं रह गयी थी ॥ ३६ ॥

बभौ शस्त्राचिततनुः कुम्भकर्णः क्षरन्नसृक् ।
विद्युत्स्तनितनिर्घोषो धारावानिव तोयदः ॥ ३७ ॥

कुम्भकर्णका शरीर शस्त्रोंसे व्याप्त हो खूनकी धारा बहा रहा था। उस समय वह बिजली तथा गर्जनासे युक्त जलकी धारा गिरानेवाले मेघके समान जान पड़ता था ॥ ३७ ॥

ततस्तद् राक्षसं सैन्यं प्रयुद्धं समरुद्गणैः ।
रणे विद्रावितं सर्वं नानाप्रहरणैस्तदा ॥ ३८ ॥

तदनन्तर घोर युद्धमें लगी हुई उस सारी राक्षससेनाको रणभूमिमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले रुद्रों और मरुद्गणोंने मार भगाया ॥ ३८ ॥

केचिद् विनिहताः कृत्ताश्चेष्टन्ति स्म महीतले ।
वाहनेष्ववसक्ताश्च स्थिता एवापरे रणे ॥ ३९ ॥

कितने ही निशाचर मारे गये। कितने ही कटकर धरतीपर लोटने और छटपटाने लगे और बहुत-से राक्षस प्राणहीन हो जानेपर भी उस रणभूमिमें अपने वाहनोंपर ही चिपटे रहे ॥ ३९ ॥

रथान् नागान् खरानुष्ट्रान् पन्नगांस्तुरगांस्तथा ।
शिशुमारान् वराहांश्च पिशाचवदनानपि ॥ ४० ॥
तान् समालिङ्ग्य बाहुभ्यां विष्टब्धाः केचिदुत्थिताः ।
देवैस्तु शस्त्रसंभिन्ना मम्रिरे च निशाचराः ॥ ४१ ॥

कुछ राक्षस रथों, हाथियों, गदहों, ऊँटों, सर्पों, घोड़ों, शिशुमारों, वराहों तथा पिशाचमुख वाहनोंको दोनों भुजाओंसे

पकड़कर उनसे लिपटे हुए निश्चेष्ट हो गये थे। कितने ही जो पहलेसे मूर्छित होकर पड़े थे, मूर्छा दूर होनेपर उठे, किंतु देवताओंके शस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न हो मौतके मुखमें चले गये ॥ ४०-४१ ॥

चित्रकर्म इवाभाति सर्वेषां रणसम्प्लवः ।
निहतानां प्रसुप्तानां राक्षसानां महीतले ॥ ४२ ॥

प्राणोंसे हाथ धोकर धरतीपर पड़े हुए उन समस्त राक्षसोंका इस तरह युद्धमें मारा जाना जादू-सा आश्चर्यजनक जान पड़ता था ॥ ४२ ॥

शोणितोदकनिष्पन्दा काकगृध्रसमाकुला ।
प्रवृत्ता संयुगमुखे शस्त्रग्राहवती नदी ॥ ४३ ॥

युद्धके मुहानेपर खूनकी नदी बह चली, जिसके भीतर अनेक प्रकारके शस्त्र ग्राहोंका भ्रम उत्पन्न करते थे। उस नदीके तटपर चारों ओर गीध और कौए छा गये थे ॥४३॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो दशग्रीवः प्रतापवान् ।
निरीक्ष्य तु बलं सर्वं दैवतैर्विनिपातितम् ॥ ४४ ॥

इसी बीचमें प्रतापी दशग्रीवने जब देखा कि देवताओंने हमारे समस्त सैनिकोंको मार गिराया है, तब उसके क्रोधकी सीमा न रही ॥ ४४ ॥

स तं प्रतिविगाह्याशु प्रवृद्धं सैन्यसागरम् ।
त्रिदशान् समरे निघ्नञ्शक्रमेवाभ्यवर्तत ॥ ४५ ॥

वह समुद्रके समान दूरतक फैली हुई देवसेनामें घुस गया और समराङ्गणमें देवताओंको मारता एवं धराशायी करता हुआ तुरंत ही इन्द्रके सामने जा पहुँचा ॥ ४५ ॥

ततः शक्रो महच्चापं विस्फार्य सुमहास्वनम् ।
यस्य विस्फारनिर्घोषैः स्तनन्ति स्म दिशो दश ॥ ४६ ॥

तब इन्द्रने जोर-जोरसे टङ्कार करनेवाले अपने विशाल धनुषको खींचा। उसकी टङ्कार-ध्वनिसे दसों दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठीं ॥ ४६ ॥

तद् विकृष्य महच्चापमिन्द्रो रावणमूर्धनि ।
पातयामास स शरान् पावकादित्यवर्चसः ॥ ४७ ॥

उस विशाल धनुषको खींचकर इन्द्रने रावणके मस्तकपर अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी बाण मारे ॥ ४७ ॥

तथैव च महाबाहुर्दशग्रीवो निशाचरः ।
शक्रं कार्मुकविभ्रष्टैः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ४८ ॥

इसी प्रकार महाबाहु निशाचर दशग्रीवने भी अपने धनुषसे छूटे हुए बाणोंकी वर्षासे इन्द्रको ढक दिया ॥ ४८ ॥

प्रयुध्यतोरथ तयोर्बाणवर्षैः समन्ततः ।
नाज्ञायत तदा किंचित् सर्वं हि तमसा वृतम् ॥ ४९ ॥

वे दोनों घोर युद्धमें तत्पर हो जब बाणोंकी वृष्टि करने लगे, उस समय सब ओर सब कुछ अन्धकारसे आच्छादित हो गया। किसीको किसी भी वस्तुकी पहचान नहीं हो पाती थी ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अट्ठाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः

रावणका देवसेनाके बीचसे होकर निकलना, देवताओंका उसे कैद करनेके लिये प्रयत्न, मेघनादका मायाद्वारा इन्द्रको बंदी बनाना तथा विजयी होकर सेनासहित लङ्काको लौटना

ततस्तमसि संजाते सर्वे ते देवराक्षसाः ।
अयुद्ध्यन्त बलोन्मत्ताः सूदयन्तः परस्परम् ॥ १ ॥

जब सब ओर अन्धकार छा गया, तब बलसे उन्मत्त हुए वे समस्त देवता और राक्षस एक दूसरेको मारते हुए परस्पर युद्ध करने लगे ॥ १ ॥

ततस्तु देवसैन्येन राक्षसानां बृहद् बलम् ।
दशांशं स्थापितं युद्धे शेषं नीतं यमक्षयम् ॥ २ ॥

उस समय देवताओंकी सेनाने राक्षसोंके विशाल सैन्य-समूहका केवल दसवाँ हिस्सा युद्धभूमिमें खड़ा रहने दिया। शेष सब राक्षसोंको यमलोक पहुँचा दिया ॥ २ ॥

तस्मिंस्तु तामसे युद्धे सर्वे ते देवराक्षसाः ।
अन्योन्यं नाभ्यजानन्त युध्यमानाः परस्परम् ॥ ३ ॥

उस तामस युद्धमें समस्त देवता और राक्षस परस्पर जूझते हुए एक दूसरेको पहचान नहीं पाते थे ॥ ३ ॥

इन्द्रश्च रावणश्चैव रावणिश्च महाबलः ।
तस्मिंस्तमोजालवृते मोहमीयुर्न ते त्रयः ॥ ४ ॥

इन्द्र, रावण और रावणपुत्र महाबली मेघनाद—ये तीन ही उस अन्धकाराच्छन्न समराङ्गणमें मोहित नहीं हुए थे ॥

स तु दृष्ट्वा बलं सर्वं रावणो निहतं क्षणात् ।
क्रोधमभ्यगमत् तीव्रं महानादं च मुक्तवान् ॥ ५ ॥

रावणने देखा: मेरी सारी सेना क्षणभरमें मारी गयी, तब उसके मनमें बड़ा क्रोध हुआ और उसने बड़ी भारी गर्जना की ॥ ५ ॥

क्रोधात् सूतं च दुर्धर्षः स्यन्दनस्थमुवाच ह ।
परसैन्यस्य मध्येन यावदन्तो नयस्व माम् ॥ ६ ॥

उस दुर्जय निशाचरने रथपर बैठे हुए अपने सारथिसे क्रोधपूर्वक कहा—'सूत! शत्रुओंकी इस सेनाका जहाँतक अन्त है, वहाँतक तुम इस सेनाके मध्य-भागसे होकर मुझे ले चलो ॥ ६ ॥

अद्यैतान् त्रिदशान् सर्वान् विक्रमैः समरे स्वयम् ।

नानाशस्त्रमहासारैर्नयामि यमसादनम् ॥ ७ ॥

'आज मैं स्वयं अपने पराक्रमद्वारा नाना प्रकारके शस्त्रोंकी महान् धारावाहिक वृष्टि करके इन सब देवताओंको यमलोक पहुँचा दूँगा ॥ ७ ॥

अहमिन्द्रं वधिष्यामि धनदं वरुणं यमम् ।
त्रिदशान् विनिहत्याशु स्वयं स्थास्याम्यथोपरि ॥ ८ ॥

'मैं इन्द्र, कुबेर, वरुण और यमका भी वध करूँगा । सब देवताओंका शीघ्र ही संहार करके स्वयं सबके ऊपर स्थित होऊँगा ॥ ८ ॥

विषादो नैव कर्तव्यः शीघ्रं वाहय मे रथम् ।
द्विः खलु त्वां ब्रवीम्यद्य यावदन्तं नयस्व माम् ॥ ९ ॥

'तुम्हें विषाद नहीं करना चाहिये । शीघ्र मेरे रथको ले चलो । मैं तुमसे दो बार कहता हूँ, देवताओंकी सेनाका जहाँतक अन्त है, वहाँतक मुझे अभी ले चलो ॥ ९ ॥

अयं स नन्दनोद्देशो यत्र वर्तावहे वयम् ।
नय मामद्य तत्र त्वमुदयो यत्र पर्वतः ॥ १० ॥

'यह नन्दनवनका प्रदेश है, जहाँ इस समय हम दोनों मौजूद हैं । यहींसे देवताओंकी सेनाका आरम्भ होता है । अब तुम मुझे उस स्थानतक ले चलो, जहाँ उदयाचल है (नन्दनवनसे उदयाचलतक देवताओंकी सेना फैली हुई है)' ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा तुरगान् स मनोजवान् ।
आदिदेशाथ शत्रूणां मध्येनैव च सारथिः ॥ ११ ॥

रावणकी यह बात सुनकर सारथिने मनके समान वेगशाली घोड़ोंको शत्रुसेनाके बीचसे हाँक दिया ॥ ११ ॥

तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा शक्रो देवेश्वरस्तदा ।
रथस्थः समरस्थस्तान् देवान् वाक्यमथाब्रवीत् ॥ १२ ॥

रावणके इस निश्चयको जानकर समरभूमिमें रथपर बैठे हुए देवराज इन्द्रने उन देवताओंसे कहा— ॥ १२ ॥

सुराः शृणुत मद्वाक्यं यत् तावन्मम रोचते ।
जीवन्नेव दशग्रीवः साधु रक्षो निगृह्यताम् ॥ १३ ॥

'देवगण ! मेरी बात सुनो । मुझे तो यही अच्छा लगता है कि इस निशाचर दशग्रीवको जीवित अवस्थामें ही भलीभाँति कैद कर लिया जाय ॥ १३ ॥

एष ह्यतिबलः सैन्ये रथेन पवनौजसा ।
गमिष्यति प्रवृद्धोर्मिः समुद्र इव पर्वणि ॥ १४ ॥

'यह अत्यन्त बलशाली राक्षस वायुके समान वेगशाली रथके द्वारा इस सेनाके बीचमें होकर उसी तरह तीव्रगतिसे आगे बढ़ेगा, जैसे पूर्णिमाके दिन उत्ताल तरङ्गोंसे युक्त समुद्र बढ़ता है ॥ १४ ॥

नह्येष हन्तुं शक्योऽद्य वरदानात् सुनिर्भयः ।
तद् ग्रहीष्यामहे रक्षो यत्ता भवत संयुगे ॥ १५ ॥

'यह आज मारा नहीं जा सकता; क्योंकि ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसे पूर्णतः निर्भय हो चुका है । इसलिये हमलोग इस राक्षसको पकड़कर कैद कर लेंगे । तुमलोग युद्धमें इस बातके लिये पूरा प्रयत्न करो ॥ १५ ॥

यथा बलौ निरुद्धे च त्रैलोक्यं भुज्यते मया ।
एवमेतस्य पापस्य निरोधो मम रोचते ॥ १६ ॥

'जैसे राजा बलिके बाँध लिये जानेपर ही मैं तीनों लोकोंके राज्यका उपभोग कर रहा हूँ, उसी प्रकार इस पापी निशाचरको बंदी बना लिया जाय, यही मुझे अच्छा लगता है' ॥ १६ ॥

ततोऽन्यं देशमास्थाय शक्रः संत्यज्य रावणम् ।
अयुध्यत महाराज राक्षसांस्त्रासयन् रणे ॥ १७ ॥

महाराज श्रीराम ! ऐसा कहकर इन्द्रने रावणके साथ युद्ध करना छोड़ दिया और दूसरी ओर जाकर समराङ्गणमें राक्षसोंको भयभीत करते हुए वे उनके साथ युद्ध करने लगे ॥

उत्तरेण दशग्रीवः प्रविवेशानिवर्तकः ।
दक्षिणेन तु पार्श्वेन प्रविवेश शतक्रतुः ॥ १८ ॥

युद्धसे पीछे न हटनेवाले रावणने उत्तरकी ओरसे देवसेनामें प्रवेश किया और देवराज इन्द्रने दक्षिणकी ओरसे राक्षससेनामें ॥ १८ ॥

ततः स योजनशतं प्रविष्टो राक्षसाधिपः ।
देवतानां बलं सर्वं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १९ ॥

देवताओंकी सेना चार सौ कोसतक फैली हुई थी । राक्षसराज रावणने उसके भीतर घुसकर समूची देवसेनाको बाणोंकी वर्षासे ढक दिया ॥ १९ ॥

ततः शक्रो निरीक्ष्याथ प्रणष्टं तु स्वकं बलम् ।
न्यवर्तयदसम्भ्रान्तः समावृत्य दशाननम् ॥ २० ॥

अपनी विशाल सेनाको नष्ट होती देख इन्द्रने बिना किसी घबराहटके दशमुख रावणका सामना किया और उसे चारों ओरसे घेरकर युद्धसे विमुख कर दिया ॥ २० ॥

एतस्मिन्नन्तरे नादो मुक्तो दानवराक्षसैः ।
हा हताः स्म इति ग्रस्तं दृष्ट्वा शक्रेण रावणम् ॥ २१ ॥

इसी समय रावणको इन्द्रके चंगुलमें फँसा हुआ देख दानवों तथा राक्षसोंने 'हाय ! हम मारे गये' ऐसा कहकर बड़े जोरसे आर्तनाद किया ॥ २१ ॥

ततो रथं समास्थाय रावणिः क्रोधमूर्च्छितः ।
तत् सैन्यमतिसंक्रुद्धः प्रविवेश सुदारुणम् ॥ २२ ॥

तब रावणका पुत्र मेघनाद क्रोधसे अचेत-सा हो गया और रथपर बैठकर अत्यन्त कुपित हो उसने शत्रुकी भयंकर सेनामें प्रवेश किया ॥ २२ ॥

तां प्रविश्य महामायां प्राप्तां पशुपतेः पुरा ।
प्रविवेश सुसंरब्धस्तत् सैन्यं समभिद्रवत् ॥ २३ ॥

पूर्वकालमें पशुपति महादेवजीसे उसको जो तमोमयी महामाया प्राप्त हुई थी, उसमें प्रवेश करके उसने अपनेको छिपा लिया और अत्यन्त क्रोधपूर्वक शत्रुसेनामें घुसकर उसे खदेड़ना आरम्भ किया ॥ २३ ॥

स सर्वा देवतास्त्यक्त्वा शक्रमेवाभ्यधावत ।
महेन्द्रश्च महातेजा नापश्यच्च सुतं रिपोः ॥ २४ ॥

वह सब देवताओंको छोड़कर इन्द्रपर ही टूट पड़ा, परंतु महातेजस्वी इन्द्र अपने शत्रुके उस पुत्रको देख न सके॥

विमुक्तकवचस्तत्र वध्यमानोऽपि रावणिः ।
त्रिदशैः सुमहावीर्यैर्न चकार च किंचन ॥ २५ ॥

महापराक्रमी देवताओंकी मार खानेसे यद्यपि वहाँ रावण-कुमारका कवच नष्ट हो गया था, तथापि उसने अपने मनमें तनिक भी भय नहीं किया ॥ २५ ॥

स मातलिं समायान्तं ताडयित्वा शरोत्तमैः ।
महेन्द्रं बाणवर्षेण भूय एवाभ्यवाकिरत् ॥ २६ ॥

उसने अपने सामने आते हुए मातलिको उत्तम बाणोंसे घायल करके सायकोंकी झड़ी लगाकर पुनः देवराज इन्द्रको भी ढक दिया ॥ २६ ॥

ततस्त्यक्त्वा रथं शक्रो विससर्ज च सारथिम् ।
ऐरावतं समारुह्य मृगयामास रावणिम् ॥ २७ ॥

तब इन्द्रने रथको छोड़कर सारथिको बिदा कर दिया और ऐरावत हाथीपर आरूढ़ हो वे रावणकुमारकी खोज करने लगे ॥ २७ ॥

✓ **स तत्र मायाबलवानदृश्योऽथान्तरिक्षगः ।**
इन्द्रं मायापरिक्षिप्तं कृत्वा स प्राद्रवच्छरैः ॥ २८ ॥

मेघनाद अपनी मायाके कारण बहुत प्रबल हो रहा था। वह अदृश्य होकर आकाशमें विचरने लगा और इन्द्रको मायासे व्याकुल करके बाणोंद्वारा उनपर आक्रमण किया ॥

स तं यदा परिश्रान्तमिन्द्रं जज्ञेऽथ रावणिः ।
✓ **तदैनं मायया बद्ध्वा स्वसैन्यमभितोऽनयत् ॥ २९ ॥**

रावणकुमारको जब अच्छी तरह मालूम हो गया कि इन्द्र बहुत थक गये हैं, तब उन्हें मायासे बाँधकर अपनी सेनामें ले आया ॥ २९ ॥

तं तु दृष्ट्वा बलात् तेन नीयमानं महारणात् ।
महेन्द्रममराः सर्वे किं नु स्यादित्यचिन्तयन् ॥ ३० ॥

महेन्द्रको उस महासमरसे मेघनादद्वारा बलपूर्वक ले जाये जाते देख सब देवता यह सोचने लगे कि 'अब क्या होगा ?॥ ३० ॥

✓ **दृश्यते न स मायावी शक्रजित् समितिंजयः ।**
विद्यावानपि येनेन्द्रो माययापहृतो बलात् ॥ ३१ ॥

'यह युद्धविजयी मायावी राक्षस स्वयं तो दिखायी देता नहीं, इसीलिये इन्द्रपर विजय पानेमें सफल हुआ है। यद्यपि देवराज इन्द्र राक्षसी मायाका संहार करनेकी विद्या जानते हैं, तथापि इस राक्षसने मायाद्वारा बलपूर्वक इनका अपहरण किया है' ॥ ३१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धाः सर्वे सुरगणास्तदा ।
रावणं विमुखीकृत्य शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ३२ ॥

ऐसा सोचते हुए वे सब देवता उस समय रोषसे भर गये और रावणको युद्धसे विमुख करके उसपर बाणोंकी झड़ी लगाने लगे ॥ ३२ ॥

रावणस्तु समासाद्य आदित्यांश्च वसूंस्तदा । ✓
न शशाक स संग्रामे योद्धुं शत्रुभिरर्दितः ॥ ३३ ॥

रावण आदित्यों और वसुओंका सामना पड़ जानेपर युद्धमें उनके सम्मुख ठहर न सका; क्योंकि शत्रुओंने उसे बहुत पीड़ित कर दिया था ॥ ३३ ॥

स तं दृष्ट्वा परिम्लानं प्रहारैर्जर्जरीकृतम् । ✓
रावणिः पितरं युद्धेऽदर्शनस्थोऽब्रवीदिदम् ॥ ३४ ॥

मेघनादने देखा पिताका शरीर बाणोंके प्रहारसे जर्जर हो गया है और वे युद्धमें उदास दिखायी देते हैं। तब वह अदृश्य रहकर ही रावणसे इस प्रकार बोला—॥ ३४ ॥

आगच्छ तात गच्छामो रणकर्म निवर्तताम् ।
जितं नो विदितं तेऽस्तु स्वस्थो भव गतज्वरः ॥ ३५ ॥

'पिताजी ! चले आइये । अब हमलोग घर चलें । युद्ध बंद कर दिया जाय । हमारी जीत हो गयी; अतः आप स्वस्थ, निश्चिन्त एवं प्रसन्न हो जाइये ॥ ३५ ॥

अयं हि सुरसैन्यस्य त्रैलोक्यस्य च यः प्रभुः ।
स गृहीतो देवबलाद् भग्नदर्पाः सुराः कृताः ॥ ३६ ॥

'ये जो देवताओंकी सेना तथा तीनों लोकोंके स्वामी इन्द्र हैं, इन्हें मैं देवसेनाके बीचसे कैद कर लाया हूँ । ऐसा करके मैंने देवताओंका घमंड चूर कर दिया है ॥ ३६ ॥

यथेष्टं भुङ्क्ष्व लोकांस्त्रीन् निगृह्यारातिमोजसा ।
वृथा किं ते श्रमेणेह युद्धमद्य तु निष्फलम् ॥ ३७ ॥

'आप अपने शत्रुको बलपूर्वक कैद करके इच्छानुसार तीनों लोकोंका राज्य भोगिये । यहाँ व्यर्थ श्रम करनेसे आपको क्या लाभ है ? अब युद्धसे कोई प्रयोजन नहीं है' ॥ ३७ ॥

ततस्ते दैवतगणा निवृत्ता रणकर्मणः ।
तच्छ्रुत्वा रावणेर्वाक्यं शक्रहीनाः सुरा गताः ॥ ३८ ॥

मेघनादकी यह बात सुनकर सब देवता युद्धसे निवृत्त हो गये और इन्द्रको साथ लिये बिना ही लौट गये ॥ ३८ ॥

अथ रणविगतः स उत्तमौजा-
स्त्रिदशरिपुः प्रथितो निशाचरेन्द्रः ।
स्वसुतवचनमादृतः प्रियं तत्
समनुनिशम्य जगाद चैव सूनुम् ॥ ३९ ॥

अपने पुत्रके उस प्रिय वचनको आदरपूर्वक सुनकर महान् बलशाली देवद्रोही तथा सुविख्यात राक्षसराज रावण युद्धसे निवृत्त हो गया और अपने बेटेसे बोला—॥ ३९ ॥

✓ **अतिबलसदृशैः पराक्रमैस्त्वं**
मम कुलवंशविवर्धनः प्रभो । ✓
यदयमतुल्यबलस्त्वयाद्य वै
त्रिदशपतिस्त्रिदशाश्च निर्जिताः ॥ ४० ॥

'सामर्थ्यशाली पुत्र ! अपने अत्यन्त बलके अनुरूप पराक्रम प्रकट करके आज तुमने जो इन अनुपम बलशाली देवराज इन्द्रको जीता और देवताओंको भी परास्त किया है, इससे यह निश्चय हो गया कि तुम मेरे कुल और वंशके यश और सम्मानकी वृद्धि करनेवाले हो ॥ ४० ॥

नय रथमधिरोप्य वासवं नगर-
मितो व्रज सेनया वृतस्त्वम् ।
अहमपि तव पृष्ठतो द्रुतं
सह सचिवैरनुयामि हृष्टवत् ॥ ४१ ॥

'बेटा ! इन्द्रको रथपर बैठाकर तुम सेनाके साथ यहाँसे लङ्कापुरीको चलो । मैं भी अपने मन्त्रियोंके साथ शीघ्र ही प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारे पीछे-पीछे आ रहा हूँ' ॥ ४१ ॥

अथ स बलवृतः सवाहन-
स्त्रिदशपतिं परिगृह्य रावणिः ।
स्वभवनमधिगम्य वीर्यवान्
कृतसमरान् विससर्ज राक्षसान् ॥ ४२ ॥

पिताकी यह आज्ञा पाकर पराक्रमी रावणकुमार मेघनाद देवराजको साथ ले सेना और सवारियोंसहित अपने निवास-स्थानको लौटा । वहाँ पहुँचकर उसने युद्धमें भाग लेनेवाले निशाचरोंको विदा कर दिया ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें उन्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्गः

ब्रह्माजीका इन्द्रजित्को वरदान देकर इन्द्रको उसकी कैदसे छुड़ाना और उनके पूर्वकृत पापकर्मको याद दिलाकर उनसे वैष्णव यज्ञका अनुष्ठान करनेके लिये कहना, उस यज्ञको पूर्ण करके इन्द्रका स्वर्गलोकमें जाना

जिते महेन्द्रेऽतिबले रावणस्य सुतेन वै ।
प्रजापतिं पुरस्कृत्य ययुर्लङ्कां सुरास्तदा ॥ १ ॥

रावणपुत्र मेघनाद जब अत्यन्त बलशाली इन्द्रको जीतकर अपने नगरमें ले गया, तब सम्पूर्ण देवता प्रजापति ब्रह्माजीको आगे करके लङ्कामें पहुँचे ॥ १ ॥

तत्र रावणमासाद्य पुत्रभ्रातृभिरावृतम् ।
अब्रवीद् गगने तिष्ठन् सामपूर्वं प्रजापतिः ॥ २ ॥

ब्रह्माजी आकाशमें खड़े-खड़े ही पुत्रों और भाइयोंके साथ बैठे हुए रावणके निकट जा उसे कोमल वाणीमें समझाते हुए बोले—॥ २ ॥

वत्स रावण तुष्टोऽस्मि पुत्रस्य तव संयुगे ।
अहोऽस्य विक्रमौदार्यं तव तुल्योऽधिकोऽपि वा ॥ ३ ॥

'वत्स रावण ! युद्धमें तुम्हारे पुत्रकी वीरता देखकर मैं बहुत संतुष्ट हुआ हूँ । अहो ! इसका उदार पराक्रम तुम्हारे समान या तुमसे भी बढ़कर है ॥ ३ ॥

जितं हि भवता सर्वं त्रैलोक्यं स्वेन तेजसा ।
कृता प्रतिज्ञा सफला प्रीतोऽस्मि ससुतस्य ते ॥ ४ ॥

'तुमने अपने तेजसे समस्त त्रिलोकीपर विजय पायी है और अपनी प्रतिज्ञा सफल कर ली है । इसलिये पुत्रसहित तुमपर मैं बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ४ ॥

अयं च पुत्रोऽतिबलस्तव रावण वीर्यवान् ।
जगतीन्द्रजिदित्येव परिख्यातो भविष्यति ॥ ५ ॥

'रावण ! तुम्हारा यह पुत्र अतिशय बलशाली और पराक्रमी है । आजसे यह संसारमें इन्द्रजित्‌के नामसे विख्यात होगा ॥ ५ ॥

बलवान् दुर्जयश्चैव भविष्यत्येव राक्षसः ।
यं समाश्रित्य ते राजन् स्थापितास्त्रिदशा वशे ॥ ६ ॥

'राजन् ! यह राक्षस बड़ा बलवान् और दुर्जय होगा, जिसका आश्रय लेकर तुमने समस्त देवताओंको अपने अधीन कर लिया ॥ ६ ॥

तन्मुच्यतां महाबाहो महेन्द्रः पाकशासनः ।
किं चास्य मोक्षणार्थाय प्रयच्छन्तु दिवौकसः ॥ ७ ॥

'महाबाहो ! अब तुम पाकशासन इन्द्रको छोड़ दो और बताओ इन्हें छोड़नेके बदलेमें देवता तुम्हें क्या दें' ॥ ७ ॥

अथाब्रवीन्महातेजा इन्द्रजित् समितिंजयः ।
अमरत्वमहं देव वृणे यद्येष मुच्यते ॥ ८ ॥

तब युद्धविजयी महातेजस्वी इन्द्रजित्‌ने स्वयं ही कहा—'देव ! यदि इन्द्रको छोड़ना है तो मैं इसके बदलेमें अमरत्व लेना चाहता हूँ' ॥ ८ ॥

ततोऽब्रवीन्महातेजा मेघनादं प्रजापतिः ।
नास्ति सर्वामरत्वं हि कस्यचित् प्राणिनो भुवि ॥ ९ ॥
पक्षिणश्चतुष्पदो वा भूतानां वा महौजसाम् ।

यह सुनकर महातेजस्वी प्रजापति ब्रह्माजीने मेघनादसे कहा—'बेटा ! इस भूतलपर पक्षियों, चौपायों तथा महातेजस्वी मनुष्य आदि प्राणियोंमेंसे कोई भी प्राणी सर्वथा अमर नहीं हो सकता' ॥ ९½ ॥

श्रुत्वा पितामहेनोक्तमिन्द्रजित्प्रभुणाव्ययम् ॥ १० ॥
अथाब्रवीत् स तत्रस्थं मेघनादो महाबलः ।

भगवान् ब्रह्माजीकी कही हुई यह बात सुनकर इन्द्रविजयी महाबली मेघनादने वहाँ खड़े हुए अविनाशी ब्रह्माजीसे कहा—॥ १०½ ॥

श्रूयतां था भवेत् सिद्धिः शतक्रतुविमोक्षणे ॥ ११ ॥
ममेष्टं नित्यशो हव्यैर्मन्त्रैः सम्पूज्य पावकम् ।
संग्राममवतर्तुं च शत्रुनिर्जयकाङ्क्षिणः ॥ १२ ॥
अश्वयुक्तो रथो मह्यमुत्तिष्ठेत् तु विभावसोः ।
तत्स्थस्यामरता स्यान्मे एष मे निश्चितो वरः ॥ १३ ॥

‘भगवन् ! (यदि सर्वथा अमरत्व प्राप्त होना असम्भव है) तब इन्द्रको छोड़नेके सम्बन्धमें जो मेरी दूसरी शर्त है—जो दूसरी सिद्धि प्राप्त करना मुझे अभीष्ट है, उसे सुनिये । मेरे विषयमें यह सदाके लिये नियम हो जाय कि जब मैं शत्रुपर विजय पानेकी इच्छासे संग्राममें उतरना चाहूँ और मन्त्रयुक्त हव्यकी आहुतिसे अग्निदेवकी पूजा करूँ, उस समय अग्निसे मेरे लिये एक ऐसा रथ प्रकट हो जाया करे, जो घोड़ोंसे जुता-जुताया तैयार हो और उसपर जबतक मैं बैठा रहूँ, तबतक मुझे कोई भी मार न सके, यही मेरा निश्चित वर है ॥ ११–१३ ॥

तस्मिन् यद्यसमाप्ते च जप्यहोमे विभावसौ ।
युध्येयं देव संग्रामे तदा मे स्याद् विनाशनम् ॥ १४ ॥

‘यदि युद्धके निमित्त किये जानेवाले जप और होमको पूर्ण किये बिना ही मैं समराङ्गणमें युद्ध करने लगूँ, तभी मेरा विनाश हो ॥ १४ ॥

सर्वो हि तपसा देव वृणोत्यमरतां पुमान् ।
विक्रमेण मया त्वेतदमरत्वं प्रवर्तितम् ॥ १५ ॥

‘देव ! सब लोग तपस्या करके अमरत्व प्राप्त करते हैं; परंतु मैंने पराक्रमद्वारा इस अमरत्वका वरण किया है’ ॥१५॥

एवमस्त्विति तं चाह वाक्यं देवः पितामहः ।
मुक्तश्चेन्द्रजिता शक्रो गताश्च त्रिदिवं सुराः ॥ १६ ॥

यह सुनकर भगवान् ब्रह्माजीने कहा—‘एवमस्तु (ऐसा ही हो)’ । इसके बाद इन्द्रजित्ने इन्द्रको मुक्त कर दिया और सब देवता उन्हें साथ लेकर स्वर्गलोकको चले गये ॥

एतस्मिन्नन्तरे राम दीनो भ्रष्टामरद्युतिः ।
इन्द्रश्चिन्तापरीतात्मा ध्यानतत्परतां गतः ॥ १७ ॥

श्रीराम ! उस समय इन्द्रका देवोचित तेज नष्ट हो गया था । वे दुःखी हो चिन्तामें डूबकर अपनी पराजयका कारण सोचने लगे ॥ १७ ॥

तं तु दृष्ट्वा तथाभूतं प्राह देवः पितामहः ।
शतक्रतो किमु पुरा करोति स्म सुदुष्कृतम् ॥ १८ ॥

भगवान् ब्रह्माजीने उनकी इस अवस्थाको लक्ष्य किया और कहा—‘शतक्रतो ! यदि आज तुम्हें इस अपमानसे शोक और दुःख हो रहा है तो बताओ पूर्वकालमें तुमने बड़ा भारी दुष्कर्म क्यों किया था ? ॥ १८ ॥

अमरेन्द्र मया बुद्ध्या प्रजाः सृष्टास्तथा प्रभो ।
एकवर्णाः समाभाषा एकरूपाश्च सर्वशः ॥ १९ ॥

‘प्रभो ! देवराज ! पहले मैंने अपनी बुद्धिसे जिन प्रजाओंको उत्पन्न किया था, उन सबकी अङ्गकान्ति, भाषा, रूप और अवस्था सभी बातें एक-जैसी थीं ॥ १९ ॥

तासां नास्ति विशेषो हि दर्शने लक्षणेऽपि वा ।
ततोऽहमेकाग्रमनास्ताः प्रजाः समचिन्तयम् ॥ २० ॥

‘उनके रूप और रंग आदिमें परस्पर कोई विलक्षणता नहीं थी । तब मैं एकाग्रचित्त होकर उन प्रजाओंके विषयमें विशेषता लानेके लिये कुछ विचार करने लगा ॥ २० ॥

सोऽहं तासां विशेषार्थं स्त्रियमेकां विनिर्ममे ।
यद् यत् प्रजानां प्रत्यङ्गं विशिष्टं तत् तदुद्धृतम् ॥ २१ ॥

‘विचारके पश्चात् उन सब प्रजाओंकी अपेक्षा विशिष्ट प्रजाको प्रस्तुत करनेके लिये मैंने एक नारीकी सृष्टि की । प्रजाओंके प्रत्येक अङ्गमें जो-जो अद्भुत विशिष्टता—सारभूत सौन्दर्य था, उसे मैंने उसके अङ्गोंमें प्रकट किया ॥ २१ ॥

ततो मया रूपगुणैरहल्या स्त्री विनिर्मिता ।
हलं नामेह वैरूप्यं हल्यं तत्प्रभवं भवेत् ॥ २२ ॥
यस्या न विद्यते हल्यं तेनाहल्येति विश्रुता ।
अहल्येत्येव च मया तस्या नाम प्रकीर्तितम् ॥ २३ ॥

‘उन अद्भुत रूप-गुणोंसे उपलक्षित जिस नारीका मेरे द्वारा निर्माण हुआ था, उसका नाम हुआ अहल्या । इस जगत्में हल कहते हैं कुरूपताको, उससे जो निन्दनीयता प्रकट होती है उसका नाम हल्य है । जिस नारीमें हल्य (निन्दनीय रूप) न हो, वह अहल्या कहलाती है; इसीलिये वह नवनिर्मित नारी अहल्या नामसे विख्यात हुई । मैंने ही उसका नाम अहल्या रख दिया था ॥ २२-२३ ॥

निर्मितायां च देवेन्द्र तस्यां नार्यां सुरर्षभ ।
भविष्यतीति कस्यैषा मम चिन्ता ततोऽभवत् ॥ २४ ॥

‘देवेन्द्र ! सुरश्रेष्ठ ! जब उस नारीका निर्माण हो गया, तब मेरे मनमें यह चिन्ता हुई कि यह किसकी पत्नी होगी ? ॥

त्वं तु शक्र तदा नारीं जानीषे मनसा प्रभो ।
स्थानाधिकतया पत्नी ममैषेति पुरंदर ॥ २५ ॥

‘प्रभो ! पुरंदर ! देवेन्द्र ! उन दिनों तुम अपने स्थान और पदकी श्रेष्ठताके कारण मेरे अनुमतिके बिना ही मन-ही-मन यह समझने लगे थे कि यह मेरी ही पत्नी होगी ॥ २५ ॥

सा मया न्यासभूता तु गौतमस्य महात्मनः ।
न्यस्ता बहूनि वर्षाणि तेन निर्यातिता च ह ॥ २६ ॥

‘मैंने धरोहरके रूपमें महर्षि गौतमके हाथमें उस कन्याको सौंप दिया । वह बहुत वर्षोंतक उनके यहाँ रही । फिर गौतमने उसे मुझे लौटा दिया ॥ २६ ॥

ततस्तस्य परिज्ञाय महास्थैर्यं महामुनेः ।
ज्ञात्वा तपसि सिद्धिं च पत्न्यर्थं स्पर्शिता तदा ॥ २७ ॥

‘‘महामुनि गौतमके उस महान् स्थैर्य (इन्द्रिय-संयम) तथा तपस्याविषयक सिद्धिको जानकर मैंने वह कन्या पुनः उन्हींको पत्नीरूपमें दे दी ॥ २७ ॥

स तया सह धर्मात्मा रमते स्म महामुनिः ।
आसन्निराशा देवास्तु गौतमे दत्तया तया ॥ २८ ॥

'धर्मात्मा महामुनि गौतम उसके साथ सुखपूर्वक रहने लगे । जब अहल्या गौतमको दे दी गयी, तब देवता निराश हो गये ॥ २८ ॥

त्वं क्रुद्धस्त्विह कामात्मा गत्वा तस्याश्रमं मुनेः।
दृष्टवांश्च तदा तां स्त्रीं दीप्तामग्निशिखामिव ॥ २९ ॥

'तुम्हारे तो क्रोधकी सीमा न रही । तुम्हारा मन कामके अधीन हो चुका था; इसलिये तुमने मुनिके आश्रमपर जाकर अग्निशिखाके समान प्रज्वलित होनेवाली उस दिव्य सुन्दरीको देखा ॥ २९ ॥

सा त्वया धर्षिता शक्र कामार्तेन समन्युना ।
दृष्टस्त्वं स तदा तेन आश्रमे परमर्षिणा ॥ ३० ॥

'इन्द्र ! तुमने कुपित और कामसे पीड़ित होकर उसके साथ बलात्कार किया । उस समय उन महर्षिने अपने आश्रममें तुम्हें देख लिया ॥ ३० ॥

ततः क्रुद्धेन तेनासि शप्तः परमतेजसा ।
गतोऽसि येन देवेन्द्र दशाभागविपर्ययम् ॥ ३१ ॥

'देवेन्द्र ! इससे उन परम तेजस्वी महर्षिको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने तुम्हें शाप दे दिया । उसी शापके कारण तुमको इस विपरीत दशामें आना पड़ा है—शत्रुका बंदी बनना पड़ा है ॥ ३१ ॥

यस्मान्मे धर्षिता पत्नी त्वया वासव निर्भयात् ।
तस्मात् त्वं समरे शक्र शत्रुहस्तं गमिष्यसि ॥ ३२ ॥

'उन्होंने शाप देते हुए कहा—'वासव ! शक्र ! तुमने निर्भय होकर मेरी पत्नीके साथ बलात्कार किया है; इसलिये तुम युद्धमें जाकर शत्रुके हाथमें पड़ जाओगे ॥ ३२ ॥

अयं तु भावो दुर्बुद्धे यस्त्वयेह प्रवर्तितः ।
मानुषेष्वपि लोकेषु भविष्यति न संशयः ॥ ३३ ॥

''दुर्बुद्धे ! तुम-जैसे राजाके दोषसे मनुष्यलोकमें भी यह जारभाव प्रचलित हो जायगा, जिसका तुमने स्वयं यहाँ सूत्रपात किया है; इसमें संशय नहीं है ॥ ३३ ॥

तत्राधं तस्य यः कर्ता त्वय्यर्धं निपतिष्यति ।
न च ते स्थावरं स्थानं भविष्यति न संशयः ॥ ३४ ॥

''जो जारभावसे पापाचार करेगा, उस पुरुषपर उस पापका आधा भाग पड़ेगा और आधा तुमपर पड़ेगा; क्योंकि इसके प्रवर्तक तुम्हीं हो । निःसंदेह तुम्हारा यह स्थान स्थिर नहीं होगा ॥ ३४ ॥

यश्च यश्च सुरेन्द्रः स्याद् ध्रुवः स न भविष्यति ।
एष शापो मया मुक्त इत्यसौ त्वां तदाब्रवीत् ॥ ३५ ॥

''जो कोई भी देवराजके पदपर प्रतिष्ठित होगा, वह वहाँ स्थिर नहीं रहेगा । यह शाप मैंने इन्द्रमात्रके लिये दे दिया है ।' यह बात मुनिने तुमसे कही थी ॥ ३५ ॥

तां तु भार्यां सुनिर्भर्त्स्य सोऽब्रवीत् सुमहातपाः।
दुर्विनीते विनिध्वंस ममाश्रमसमीपतः ॥ ३६ ॥
रूपयौवनसम्पन्ना यस्मात् त्वमनवस्थिता ।
तस्माद् रूपवती लोके न त्वमेका भविष्यति ॥ ३७ ॥

'फिर उन महातपस्वी मुनिने अपनी उस पत्नीको भी भलीभाँति डाँट-फटकारकर कहा—'दुष्टे ! तू मेरे आश्रमके पास ही अदृश्य होकर रह और अपने रूप-सौन्दर्यसे भ्रष्ट हो जा । रूप और यौवनसे सम्पन्न होकर मर्यादामें स्थित नहीं रह सकी है, इसलिये अब लोकमें तू अकेली ही रूपवती नहीं रहेगी (बहुत-सी रूपवती स्त्रियाँ उत्पन्न हो जायँगी) ॥ ३६-३७ ॥

रूपं च ते प्रजाः सर्वा गमिष्यन्ति न संशयः ।
यत् तदेकं समाश्रित्य विभ्रमोऽयमुपस्थितः ॥ ३८ ॥

''जिस एक रूप-सौन्दर्यको लेकर इन्द्रके मनमें यह काम-विकार उत्पन्न हुआ था, तेरे उस रूप-सौन्दर्यको समस्त प्रजाएँ प्राप्त कर लेंगी; इसमें संशय नहीं है' ॥ ३८ ॥

तदाप्रभृति भूयिष्ठं प्रजा रूपसमन्विता ।
सा तं प्रसादयामास महर्षिं गौतमं तदा ॥ ३९ ॥
अज्ञानाद् धर्षिता विप्र त्वद्रूपेण दिवौकसा ।
न कामकाराद् विप्रर्षे प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ४० ॥

'तभीसे अधिकांश प्रजा रूपवती होने लगी । अहल्याने उस समय विनीत-वचनोंद्वारा महर्षि गौतमको प्रसन्न किया और कहा—'विप्रवर ! ब्रह्मर्षे ! देवराजने आपका ही रूप धारण करके मुझे कलंकित किया है । मैं उसे पहचान न सकी थी । अतः अनजानमें मुझसे यह अपराध हुआ है, स्वेच्छाचारवश नहीं । इसलिये आपको मुझपर कृपा करनी चाहिये' ॥ ३९-४० ॥

अहल्यया त्वेवमुक्तः प्रत्युवाच स गौतमः ।
उत्पत्स्यति महातेजा इक्ष्वाकूणां महारथः ॥ ४१ ॥
रामो नाम श्रुतो लोके वनं चाप्युपयास्यति ।
ब्राह्मणार्थे महाबाहुर्विष्णुर्मानुषविग्रहः ॥ ४२ ॥
तं द्रक्ष्यसि यदा भद्रे ततः पूता भविष्यसि ।
स हि पावयितुं शक्तस्त्वया यद् दुष्कृतं कृतम् ॥ ४३ ॥

'अहल्याके ऐसा कहनेपर गौतमने उत्तर दिया—'भद्रे ! इक्ष्वाकुवंशमें एक महातेजस्वी महारथी वीरका अवतार होगा, जो संसारमें श्रीरामके नामसे विख्यात होंगे । महाबाहु श्रीरामके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु ही मनुष्य-शरीर धारण करके प्रकट होंगे । वे ब्राह्मण (विश्वामित्र आदि) के कार्यसे तपोवनमें पधारेंगे । जब तुम उनका दर्शन करोगी, तब पवित्र हो जाओगी । तुमने जो पाप किया है, उससे तुम्हें वे ही पवित्र कर सकते हैं ॥ ४१-४३ ॥

तस्यातिथ्यं च कृत्वा वै मत्समीपं गमिष्यसि ।
वत्स्यसि त्वं मया सार्धं तदा हि वरवर्णिनि ॥ ४४ ॥

'वरवर्णिनि ! उनका आतिथ्य-सत्कार करके तुम मेरे पास आ जाओगी और फिर मेरे ही साथ रहने लगोगी' ॥ ४४ ॥

एवमुक्त्वा स विप्रर्षिराजगाम स्वमाश्रमम् ।
तपश्चचार सुमहत् सा पत्नी ब्रह्मवादिनः ॥ ४५ ॥

'ऐसा कहकर ब्रह्मर्षि गौतम अपने आश्रमके भीतर आ गये और उन ब्रह्मवादी मुनिकी पत्नी वह अहल्या बड़ी भारी तपस्या करने लगी ॥ ४५ ॥

शापोत्सर्गाद्धि तस्येदं मुनेः सर्वमुपस्थितम् ।
तत् स्मर त्वं महाबाहो दुष्कृतं यत् त्वया कृतम् ॥ ४६ ॥

'महाबाहो ! उन महर्षि गौतमके शाप देनेसे ही तुमपर यह सारा संकट उपस्थित हुआ है । अतः तुमने जो पाप किया था, उसको याद करो ॥ ४६ ॥

तेन त्वं ग्रहणं शत्रोर्यातो नान्येन वासव ।
शीघ्रं वै यज यज्ञं त्वं वैष्णवं सुसमाहितः ॥ ४७ ॥

'वासव ! उस शापके ही कारण तुम शत्रुकी कैदमें पड़े हो, दूसरे किसी कारणसे नहीं । अतः अब एकाग्रचित्त हो शीघ्र ही वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान करो ॥ ४७ ॥

पावितस्तेन यज्ञेन यास्यसे त्रिदिवं ततः ।
पुत्रश्च तव देवेन्द्र न विनष्टो महारणे ॥ ४८ ॥
नीतः संनिहितश्चैव आर्यकेण महोदधौ ।

'देवेन्द्र ! उस यज्ञसे पवित्र होकर तुम पुनः स्वर्गलोक प्राप्त कर लोगे । तुम्हारा पुत्र जयन्त उस महासमरमें मारा नहीं गया है । उसका नाना पुलोमा उसे महासागरमें ले गया है । इस समय वह उसीके पास है' ॥ ४८½ ॥

एतच्छ्रुत्वा महेन्द्रस्तु यज्ञमिष्ट्वा च वैष्णवम् ॥ ४९ ॥
पुनस्त्रिदिवमाक्रामदन्वशासच्च देवराट् ।

ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर देवराज इन्द्रने वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान किया । वह यज्ञ पूरा करके देवराज स्वर्गलोकमें गये और वहाँ देवराज्यका शासन करने लगे ॥ ४९½ ॥

एतदिन्द्रजितो नाम बलं यत् कीर्तितं मया ॥ ५० ॥
निर्जितस्तेन देवेन्द्रः प्राणिनोऽन्ये तु किं पुनः ।

रघुनन्दन ! यह है इन्द्रविजयी मेघनादका बल, जिसका मैंने आपसे वर्णन किया है । उसने देवराज इन्द्रको भी जीत लिया था; फिर दूसरे प्राणियोंकी तो बिसात ही क्या थी ५०½

आश्चर्यमिति रामश्च लक्ष्मणश्चाब्रवीत् तदा ॥ ५१ ॥
अगस्त्यवचनं श्रुत्वा वानरा राक्षसास्तदा ।

अगस्त्यजीकी यह बात सुनकर श्रीराम और लक्ष्मण तत्काल बोल उठे—'आश्चर्य है !' साथ ही वानरों और राक्षसोंको भी इस बातसे बड़ा विस्मय हुआ ॥ ५१½ ॥

विभीषणस्तु रामस्य पार्श्वस्थो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५२ ॥
आश्चर्यं स्मारितोऽस्म्यद्य यत् तद् दृष्टं पुरातनम् ।

उस समय श्रीरामके बगलमें बैठे हुए विभीषणने कहा—'मैंने पूर्वकालमें जो आश्चर्यकी बातें देखी थीं, उनका आज महर्षिने स्मरण दिला दिया है' ॥ ५२½ ॥

अगस्त्यं त्वब्रवीद् रामः सत्यमेतच्छ्रुतं च मे ॥ ५३ ॥
एवं राम समुद्भूतो रावणो लोककण्टकः ।
सपुत्रो येन संग्रामे जितः शक्रः सुरेश्वरः ॥ ५४ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने अगस्त्यजीसे कहा—'आपकी बात सत्य है । मैंने भी विभीषणके मुखसे यह बात सुनी थी ।' फिर अगस्त्यजी बोले—'श्रीराम ! इस प्रकार पुत्रसहित रावण सम्पूर्ण जगत्के लिये कण्टकरूप था, जिसने देवराज इन्द्रको भी संग्राममें जीत लिया था' ॥ ५३-५४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः

रावणका माहिष्मतीपुरीमें जाना और वहाँके राजा अर्जुनको न पाकर मन्त्रियोंसहित उसका विन्ध्यगिरिके समीप नर्मदामें नहाकर भगवान् शिवकी आराधना करना

ततो रामो महातेजा विस्मयात् पुनरेव हि ।
उवाच प्रणतो वाक्यमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ १ ॥

तदनन्तर महातेजस्वी श्रीरामने मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यको प्रणाम करके पुनः विस्मयपूर्वक पूछा—॥ १ ॥

भगवन् राक्षसः क्रूरो यदाप्रभृति मेदिनीम् ।
पर्यटत् किं तदा लोकाः शून्या आसन् द्विजोत्तम ॥ २ ॥

'भगवन् ! द्विजश्रेष्ठ ! जब क्रूर निशाचर रावण पृथ्वीपर विजय करता घूम रहा था, उस समय क्या यहाँके सभी लोग शौर्य-सम्बन्धी गुणोंसे शून्य ही थे ? ॥ २ ॥

राजा वा राजमात्रो वा किं तदा नात्र कश्चन ।
धर्षणं यत्र न प्राप्तो रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ३ ॥

'क्या उन दिनों यहाँ कोई भी क्षत्रिय नरेश अथवा क्षत्रियेतर राजा अधिक बलवान् नहीं था, जिससे इस भूतलपर पहुँचकर राक्षसराज रावणको पराजित या अपमानित होना नहीं पड़ा ॥ ३ ॥

उताहो हतवीर्यास्ते बभूवुः पृथिवीक्षितः ।
बहिष्कृता वरास्त्रैश्च बहवो निर्जिता नृपाः ॥ ५ ॥

'अथवा उस समयके सभी राजा पराक्रमशून्य तथा शस्त्रज्ञानसे हीन थे, जिसके कारण उन बहुसंख्यक श्रेष्ठ नरपालोंको रावणसे परास्त होना पड़ा' ॥ ४ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा अगस्त्यो भगवानृषिः ।
उवाच रामं प्रहसन् पितामह इवेश्वरम् ॥ ५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी यह बात सुनकर भगवान् अगस्त्यमुनि ठठाकर हँस पड़े और जैसे ब्रह्माजी महादेवजीसे कोई बात कहते हों, इसी तरह वे श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—॥ ५ ॥

इत्येवं बाधमानस्तु पार्थिवान् पार्थिवर्षभ ।
चचार रावणो राम पृथिवीं पृथिवीपते ॥ ६ ॥

'पृथ्वीनाथ ! भूपालशिरोमणे ! श्रीराम ! इसी प्रकार सब राजाओंको सताता और पराजित करता हुआ रावण इस पृथ्वीपर विचरने लगा ॥ ६ ॥

ततो माहिष्मतीं नाम पुरीं स्वर्गपुरीप्रभाम् ।
सम्प्राप्तो यत्र सांनिध्यं सदासीद् वसुरेतसः ॥ ७ ॥

'घूमते-घूमते वह स्वर्गपुरी अमरावतीके समान सुशोभित होनेवाली माहिष्मती नामक नगरीमें जा पहुँचा, जहाँ अग्निदेव सदा विद्यमान रहते थे ॥ ७ ॥

तुल्य आसीन्नृपस्तस्य प्रभावाद् वसुरेतसः ।
अर्जुनो नाम यत्राग्निः शरकुण्डेशयः सदा ॥ ८ ॥

'उन अग्निदेवके प्रभावसे वहाँ अग्निके ही समान तेजस्वी अर्जुन नामक राजा राज्य करता था, जिसके राज्यकालमें कुशास्तरणसे युक्त अग्निकुण्डमें सदा अग्निदेवता निवास करते थे ॥ ८ ॥

तमेव दिवसं सोऽथ हैहयाधिपतिर्बली ।
अर्जुनो नर्मदां रन्तुं गतः स्त्रीभिः सहेश्वरः ॥ ९ ॥

'जिस दिन रावण वहाँ पहुँचा, उसी दिन बलवान् हैहयराज राजा अर्जुन अपनी स्त्रियोंके साथ नर्मदा नदीमें जल-क्रीड़ा करनेके लिये चला गया था ॥ ९ ॥

तमेव दिवसं सोऽथ रावणस्तत्र आगतः ।
रावणो राक्षसेन्द्रस्तु तस्यामात्यानपृच्छत ॥ १० ॥

'उसी दिन रावण माहिष्मतीपुरीमें आया । वहाँ आकर राक्षसराज रावणने राजाके मन्त्रियोंसे पूछा—॥ १० ॥

क्वार्जुनो नृपतिः शीघ्रं सम्यगाख्यातुमर्हथ ।
रावणोऽहमनुप्राप्तो युद्धेप्सुर्नृवरेण ह ॥ ११ ॥

''मन्त्रियो ! जल्दी और ठीक-ठीक बताओ, राजा अर्जुन कहाँ हैं ? मैं रावण हूँ और तुम्हारे महाराजसे युद्ध करनेके लिये आया हूँ ॥ ११ ॥

ममागमनमप्यग्रे युष्माभिः संनिवेद्यताम् ।
इत्येवं रावणेनोक्तास्तेऽमात्याः सुविपश्चितः ॥ १२ ॥
अब्रुवन् राक्षसपतिमसांनिध्यं महीपतेः ।

''तुमलोग पहले ही जाकर उन्हें मेरे आगमनकी सूचना दे दो ।' रावणके ऐसा कहनेपर राजाके विद्वान् मन्त्रियोंने राक्षसराजको बताया कि हमारे महाराज इस समय राजधानीमें नहीं हैं ॥ १२½ ॥

श्रुत्वा विश्रवसः पुत्रः पौराणामर्जुनं गतम् ॥ १३ ॥
अपसृत्यागतो विन्ध्यं हिमवत्संनिभं गिरिम् ।

'पुरवासियोंके मुखसे राजा अर्जुनके बाहर जानेकी बात सुनकर विश्रवाका पुत्र रावण वहाँसे हटकर हिमालयके समान विशाल विन्ध्यगिरिपर आया ॥ १३½ ॥

स तमभ्रमिवाविष्टमुद्भ्रान्तमिव मेदिनीम् ॥ १४ ॥
अपश्यद् रावणो विन्ध्यमालिखन्तमिवाम्बरम् ।
सहस्रशिखरोपेतं सिंहाध्युषितकन्दरम् ॥ १५ ॥

'वह इतना ऊँचा था कि उसका शिखर बादलोंमें समाया हुआ-सा जान पड़ता था तथा वह पर्वत पृथ्वी फोड़कर ऊपरको उठा हुआ-सा प्रतीत होता था । विन्ध्यके गगनचुम्बी शिखर आकाशमें रेखा खींचते-से जान पड़ते थे । रावणने उस महान् शैलको देखा । वह अपने सहस्रों शृङ्गोंसे सुशोभित हो रहा था और उसकी कन्दराओंमें सिंह निवास करते थे ॥ १४-१५ ॥

प्रपातपतितैः शीतैः साट्टहासमिवाम्बुभिः ।
देवदानवगन्धर्वैः साप्सरोभिः सकिंनरैः ॥ १६ ॥
स्वस्त्रीभिः क्रीडमानैश्च स्वर्गभूतं महोच्छ्रयम् ।

'उसके सर्वोच्च शिखरके तटसे जो शीतल जलकी धाराएँ गिर रही थीं, उनके द्वारा वह पर्वत अट्टहास करता-सा प्रतीत होता था । देवता, दानव, गन्धर्व और किन्नर अपनी-अपनी स्त्रियों और अप्सराओंके साथ वहाँ क्रीड़ा कर रहे थे । वह अत्यन्त ऊँचा पर्वत अपनी सुरम्य सुषमासे स्वर्गके समान सुशोभित हो रहा था ॥ १६½ ॥

नदीभिः स्यन्दमानाभिः स्फटिकप्रतिमं जलम् ॥ १७ ॥
फणाभिश्चलजिह्वाभिरनन्तमिव विष्ठितम् ।
उत्क्रामन्तं दरीवन्तं हिमवत्संनिभं गिरिम् ॥ १८ ॥

'स्फटिकके समान निर्मल जलका स्रोत बहानेवाली नदियोंके कारण वह विन्ध्यगिरि चञ्चल जिह्वावाले फनोंसे उपलक्षित शेषनागके समान स्थित था । अधिक ऊँचाईके कारण वह ऊर्ध्वलोकको जाता-सा जान पड़ता था । हिमालयके समान विशाल एवं विस्तृत विन्ध्यगिरि बहुत-सी गुफाओंसे युक्त दिखायी देता था ॥ १७-१८ ॥

पश्यमानस्ततो विन्ध्यं रावणो नर्मदां ययौ ।
चलोपलजलां पुण्यां पश्चिमोदधिगामिनीम् ॥ १९ ॥
महिषैः सृमरैः सिंहैः शार्दूलर्क्षगजोत्तमैः ।
उष्णाभितप्तैस्तृषितैः संक्षोभितजलाशयाम् ॥ २० ॥

'विन्ध्याचलकी शोभाको देखता हुआ रावण पुण्यसलिला नर्मदा नदीके तटपर गया, जिसमें शिलाखण्डोंसे युक्त चञ्चल जल प्रवाहित हो रहा था । वह नदी पश्चिम समुद्रकी ओर चली जा रही थी । धूपसे तपे हुए प्यासे भैंसे, हिरन, सिंह, व्याघ्र, रीछ और गजराज उसके जलाशयको विक्षुब्ध कर रहे थे ॥ १९-२० ॥

चक्रवाकैः सकारण्डैः सहंसजलकुक्कुटैः ।
सारसैश्च सदा मत्तैः कूजद्भिः सुसमावृताम् ॥ २१ ॥

'सदा मतवाले होकर कलरव करनेवाले चक्रवाक, कारण्डव-

हंस, जलकुक्कुट और सारस आदि जलपक्षी नर्मदाकी जल राशिपर छा रहे थे ॥ २१ ॥

फुल्लद्रुमकृतोत्तंसां चक्रवाकयुगस्तनीम् ।
विस्तीर्णपुलिनश्रोणीं हंसावलिसुमेखलाम् ॥ २२ ॥
पुष्परेण्वनुलिप्ताङ्गीं जलफेनामलांशुकाम् ।
जलावगाहसुस्पर्शां फुल्लोत्पलशुभेक्षणाम् ॥ २३ ॥
पुष्पकादवरुह्याशु नर्मदां सरितां वराम् ।
इष्टामिव वरां नारीमवगाह्य दशाननः ॥ २४ ॥
स तस्याः पुलिने रम्ये नानामुनिनिषेविते ।
उपोपविष्टः सचिवैः सार्धं राक्षसपुङ्गवः ॥ २५ ॥

'सरिताओंमें श्रेष्ठ नर्मदा परम सुन्दरी प्रियतमा नारीके समान प्रतीत होती थी । खिले हुए तटवर्ती वृक्ष मानो उसके आभूषण थे । चक्रवाकके जोड़े उसके दोनों स्तनोंका स्थान ले रहे थे । ऊँचे और विस्तृत पुलिन नितम्बके समान जान पड़ते थे । हंसोंकी पङ्क्ति मोतियोंकी बनी हुई मेखला (करधनी) के समान शोभा दे रही थी । पुष्पोंके पराग ही अङ्गराग बनकर उसके अङ्ग-अङ्गमें अनुलिप्त हो रहे थे । जलका उज्ज्वल फेन ही उसकी स्वच्छ, श्वेत साड़ीका काम दे रहा था । जलमें गोता लगाना ही उसका सुखद संस्पर्श था और खिले हुए कमल ही उसके सुन्दर नेत्र जान पड़ते थे । राक्षसशिरोमणि दशमुख रावणने शीघ्र ही पुष्पकविमानसे उतरकर नर्मदाके जलमें डुबकी लगायी और बाहर निकलकर वह नाना मुनियोंसे सेवित उसके रमणीय तटपर अपने मन्त्रियोंके साथ बैठा ॥ २२—२५ ॥

प्रख्याय नर्मदां सोऽथ गङ्गेयमिति रावणः ।
नर्मदादर्शने हर्षमाप्तवान् स दशाननः ॥ २६ ॥

''ये साक्षात् गङ्गा हैं' ऐसा कहकर दशानन रावणने नर्मदाकी प्रशंसा की और उसके दर्शनसे हर्षका अनुभव किया ॥ २६ ॥

उवाच सचिवांस्तत्र सलीलं शुकसारणौ ।
एष रश्मिसहस्रेण जगत् कृत्वेव काञ्चनम् ॥ २७ ॥
तीक्ष्णतापकरः सूर्यो नभसो मध्यमास्थितः ।

'फिर वहाँ उसने शुक, सारण तथा अन्य मन्त्रियोंसे लीलापूर्वक कहा—'ये सूर्यदेव अपनी सहस्रों किरणोंसे सम्पूर्ण जगत्को मानो काञ्चनमय बनाकर प्रचण्ड ताप देते हुए इस समय आकाशके मध्यभागमें विराज रहे हैं ॥ २७½ ॥

मामासीनं विदित्वैव चन्द्रायति दिवाकरः ॥ २८ ॥
नर्मदाजलशीतश्च सुगन्धिः श्रमनाशनः ।
मद्भयादनिलो ह्येष वात्यसौ सुसमाहितः ॥ २९ ॥

''किंतु मुझे यहाँ बैठा जानकर ही चन्द्रमाके समान शीतल हो गये हैं । मेरे ही भयसे वायु भी नर्मदाके जलसे शीतल, सुगन्धित और श्रमनाशक होकर बड़ी सावधानीके साथ मन्दगतिसे बह रही है ॥ २८-२९ ॥

इयं चापि सरिच्छ्रेष्ठा नर्मदा नर्मवर्धिनी ।
नक्रमीनविहंगोर्मिः सभयेवाङ्गना स्थिता ॥ ३० ॥

''सरिताओंमें श्रेष्ठ यह नर्मदा भी क्रीड़ारस एवं प्रीतिको बढ़ा रही है । इसकी लहरोंमें मगर, मत्स्य और जलपक्षी खेल रहे हैं और यह भयभीत नारीके समान स्थित है ॥ ३० ॥

तद्भवन्तः क्षताः शस्त्रैर्नृपैरिन्द्रसमैर्युधि ।
चन्दनस्य रसेनेव रुधिरेण समुक्षिताः ॥ ३१ ॥

''तुमलोग युद्धस्थलमें इन्द्रतुल्य पराक्रमी नरेशोंद्वारा अस्त्र-शस्त्रोंसे घायल कर दिये गये हो और रक्तसे इस प्रकार नहा उठे हो कि तुम्हारे अङ्गोंमें लालचन्दन रसका लेप-सा लगा हुआ जान पड़ता है ॥ ३१ ॥

ते यूयमवगाहध्वं नर्मदां शर्मदां शुभाम् ।
सार्वभौममुखा मत्ता गङ्गामिव महागजाः ॥ ३२ ॥

''अतः तुम सब-के-सब सुख देनेवाली इस मङ्गलकारिणी नर्मदा नदीमें स्नान करो । ठीक उसी तरह, जैसे सार्वभौम आदि महान् दिग्गज मतवाले होकर गङ्गामें अवगाहन करते हैं ॥ ३२ ॥

अस्यां स्नात्वा महानद्यां पाप्मनो विप्रमोक्ष्यथ ।
अहमप्यद्य पुलिने शरदिन्दुसमप्रभे ॥ ३३ ॥
पुष्पोपहारं शनकैः करिष्यामि कपर्दिनः ।

''इस महानदीमें स्नान करके तुम पाप-तापसे मुक्त हो जाओगे । मैं भी आज शरद्‌ऋतुके चन्द्रमाकी भाँति उज्ज्वल नर्मदा-तटपर धीरे-धीरे जटाजूटधारी महादेवजीको फूलोंका उपहार समर्पित करूँगा' ॥ ३३½ ॥

रावणेनैवमुक्तास्तु प्रहस्तशुकसारणाः ॥ ३४ ॥
समहोदरधूम्राक्षा नर्मदां विजगाहिरे ।

'रावणके ऐसा कहनेपर प्रहस्त, शुक, सारण, महोदर और धूम्राक्षने नर्मदामें स्नान किया ॥ ३४½ ॥

राक्षसेन्द्रगजैस्तैस्तु क्षोभिता नर्मदा नदी ॥ ३५ ॥
वामनाञ्जनपद्माद्यैर्गङ्गा इव महागजैः ।

'राक्षसराजकी सेनाके हाथियोंने नर्मदा नदीमें उतरकर उसके जलको मथ डाला, मानो वामन, अञ्जन, पद्म आदि बड़े-बड़े दिग्गजोंने गङ्गाजीके जलको विक्षब्ध कर डाला हो ॥ ३५½ ॥

ततस्ते राक्षसाः स्नात्वा नर्मदायां महाबलाः ॥ ३६ ॥
उत्तीर्य पुष्पाण्याजह्रुर्बल्यर्थं रावणस्य तु ।

'तदनन्तर वे महाबली राक्षस गङ्गामें स्नान करके बाहर आये और रावणके शिवपूजनके लिये फूल जुटाने लगे ॥ ३६½ ॥

नर्मदापुलिने हृद्ये शुभ्राभ्रसदृशप्रभे ॥ ३७ ॥
राक्षसैस्तु मुहूर्तेन कृतः पुष्पमयो गिरिः ।

'श्वेत बादलोंके समान शुभ्र एवं मनोरम नर्मदा-पुलिनपर उन राक्षसोंने दो ही घड़ीमें फूलोंका पहाड़-जैसा ढेर लगा दिया ॥ ३७½ ॥

पुष्पेषूपहृतेष्वेवं रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ३८ ॥
अवतीर्णो नदीं स्नातुं गङ्गामिव महागजः ।

'इस प्रकार पुष्पोंका संचय हो जानेपर राक्षसराज रावण स्वयं स्नान करनेके लिये नर्मदा नदीमें उतरा, मानो कोई महान् गजराज गङ्गामें अवगाहन करनेके लिये घुसा हो।३८½।

तत्र स्नात्वा च विधिवज्जप्त्वा जप्यमनुत्तमम् ॥ ३९ ॥
नर्मदासलिलात् तस्मादुत्ततार स रावणः ।

'वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके रावणने परम उत्तम जपनीय मन्त्रका जप किया । इसके बाद वह नर्मदाके जलसे बाहर निकला ॥ ३९½ ॥

ततः क्लिन्नाम्बरं त्यक्त्वा शुक्लवस्त्रसमावृतः ॥ ४० ॥
रावणं प्राञ्जलिं यान्तमन्वयुः सर्वराक्षसाः ।
तद्गतीवशमापन्ना मूर्तिमन्त इवाचलाः ॥ ४१ ॥

'फिर भीगे कपड़ेको उतारकर उसने श्वेत वस्त्र धारण किया । इसके बाद वह हाथ जोड़े महादेवजीकी पूजाके लिये चला । उस समय और सब राक्षस भी उसके पीछे हो लिये, मानो मूर्तिमान् पर्वत उसकी गतिके अधीन हो खिंचे चले जा रहे हों ॥ ४०-४१ ॥

यत्र यत्र च याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः ।
जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्र स्म नीयते ॥ ४२ ॥

'राक्षसराज रावण जहाँ-जहाँ भी जाता था, वहाँ-वहाँ एक सुवर्णमय शिवलिङ्ग अपने साथ लिये जाता था ॥ ४२ ॥

वालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः ।
अर्चयामास गन्धैश्च पुष्पैश्चामृतगन्धिभिः ॥ ४३ ॥

'रावणने बालूकी वेदीपर उस शिवलिङ्गको स्थापित कर दिया और चन्दन तथा अमृतके समान सुगन्धवाले पुष्पोंसे उसका पूजन किया ॥ ४३ ॥

ततः सतामार्तिहरं परं वरं
वरप्रदं चन्द्रमयूखभूषणम् ।
समर्चयित्वा स निशाचरो जगौ
प्रसार्य हस्तान् प्रणनर्त चाग्रतः ॥४४ ॥

'जो अपने ललाटमें चन्द्रकिरणोंको आभूषणरूपसे धारण करते हैं, सत्पुरुषोंकी पीड़ा हर लेते हैं तथा भक्तोंको मनोवाञ्छित वर प्रदान करते हैं, उन श्रेष्ठ एवं उत्कृष्ट देवता भगवान् शङ्करका भलीभाँति पूजन करके वह निशाचर उनके सामने गाने और हाथ फैलाकर नाचने लगा ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें इकतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः

अर्जुनकी भुजाओंसे नर्मदाके प्रवाहका अवरुद्ध होना, रावणके पुष्पोपहारका बह जाना, फिर रावण आदि निशाचरोंका अर्जुनके साथ युद्ध तथा अर्जुनका रावणको कैद करके अपने नगरमें ले जाना

नर्मदापुलिने यत्र राक्षसेन्द्रः स दारुणः ।
पुष्पोपहारं कुरुते तस्माद् देशाददूरतः ॥ १ ॥
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो माहिष्मत्याः पतिः प्रभुः ।
क्रीडते सह नारीभिर्नर्मदातोयमाश्रितः ॥ २ ॥

'नर्मदाजीके तटपर जहाँ क्रूर राक्षसराज रावण महादेवजीको फूलोंका उपहार अर्पित कर रहा था, उस स्थानसे थोड़ी दूरपर विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ माहिष्मतीपुरीका शक्तिशाली राजा अर्जुन अपनी स्त्रियोंके साथ नर्मदाके जलमें उतरकर क्रीडा कर रहा था ॥ १-२ ॥

तासां मध्यगतो राजा रराज च तदार्जुनः ।
करेणूनां सहस्रस्य मध्यस्थ इव कुञ्जरः ॥ ३ ॥

'उन सुन्दरियोंके बीचमें विराजमान राजा अर्जुन सहस्रों हथिनियोंके मध्यभागमें स्थित हुए गजराजके समान शोभा पाता था ॥ ३ ॥

जिज्ञासुः स तु बाहूनां सहस्रस्योत्तमं बलम् ।
रुरोध नर्मदावेगं बाहुभिर्बहुभिर्वृतः ॥ ४ ॥

'अर्जुनके हजार भुजाएँ थीं । उनके उत्तम बलको जाँचनेके लिये उसने उन बहुसंख्यक भुजाओंद्वारा नर्मदाके वेगको रोक दिया ॥ ४ ॥

कार्तवीर्यभुजासक्तं तज्जलं प्राप्य निर्मलम् ।
कूलोपहारं कुर्वाणं प्रतिस्रोतः प्रधावति ॥ ५ ॥

'कृतवीर्य-पुत्र अर्जुनकी भुजाओंद्वारा रोका हुआ नर्मदाका वह निर्मल जल तटपर पूजा करते हुए रावणके पासतक पहुँच गया और उसी ओर उल्टी गतिसे बहने लगा ॥ ५ ॥

समीननक्रमकरः सपुष्पकुशसंस्तरः ।
स नर्मदाम्भसो वेगः प्रावृट्काल इवाबभौ ॥ ६ ॥

'नर्मदाके जलका वह वेग मत्स्य, नक्र, मगर, फूल और कुशास्तरणके साथ बढ़ने लगा । उसमें वर्षाकालके समान बाढ़ आ गयी ॥ ६ ॥

स वेगः कार्तवीर्येण सम्प्रेषित इवाम्भसः ।
पुष्पोपहारं सकलं रावणस्य जहार ह ॥ ७ ॥

'जलका वह वेग, जिसे मानो कार्तवीर्य अर्जुनने ही भेजा हो, रावणके समस्त पुष्पोपहारको बहा ले गया ॥ ७ ॥

रावणोऽर्धसमाप्तं तमुत्सृज्य नियमं तदा ।
नर्मदां पश्यते कान्तां प्रतिकूलां यथा प्रियाम् ॥ ८ ॥

'रावणका वह पूजन-सम्बन्धी नियम अभी आधा ही समाप्त हुआ था, उसी दशामें उसे छोड़कर वह प्रतिकूल हुई

कमनीय कान्तिवाली प्रेयसीकी भाँति नर्मदाकी ओर देखने लगा ॥ ८ ॥

पश्चिमेन तु तं दृष्ट्वा सागरोद्गारसंनिभम् ।
वर्धन्तमम्भसो वेगं पूर्वामाशां प्रविश्य तु ॥ ९ ॥

'पश्चिमसे आते और पूर्व दिशामें प्रवेश करके बढ़ते हुए जलके उस वेगको उसने देखा । वह ऐसा जान पड़ता था, मानो समुद्रमें ज्वार आ गया हो ॥ ९ ॥

ततोऽनुद्भ्रान्तशकुनां स्वभावे परमे स्थिताम् ।
निर्विकाराङ्गनाभासामपश्यद् रावणो नदीम् ॥ १० ॥

'उसके तटवर्ती वृक्षोंपर रहनेवाले पक्षियोंमें कोई घबराहट नहीं थी । वह नदी अपनी परम उत्तम स्वाभाविक स्थितिमें स्थित थी—उसका जल पहले ही-जैसा स्वच्छ एवं निर्मल दिखायी देता था । उसमें वर्षाकालिक बाढ़के समय जो मलिनता आदि विकार होते थे, उनका उस समय सर्वथा अभाव था । रावणने उस नदीको विकारशून्य हृदयवाली नारीके समान देखा ॥ १० ॥

सव्येतरकराङ्गुल्या ह्यशब्दास्यो दशाननः ।
वेगप्रभवमन्वेष्टुं सोऽदिशच्छुकसारणौ ॥ ११ ॥

'उसके मुखसे एक शब्द भी नहीं निकला । उसने मौन-व्रतकी रक्षाके लिये बिना बोले ही दाहिने हाथकी अङ्गुलीसे संकेतमात्र करके बाढ़के कारणका पता लगानेके निमित्त शुक और सारणको आदेश दिया ॥ ११ ॥

तौ तु रावणसंदिष्टौ भ्रातरौ शुकसारणौ ।
व्योमान्तरगतौ वीरौ प्रस्थितौ पश्चिमामुखौ ॥ १२ ॥

'रावणका आदेश पाकर दोनों वीर भ्राता शुक और सारण आकाशमार्गसे पश्चिम दिशाकी ओर प्रस्थित हुए ॥ १२ ॥

अर्धयोजनमात्रं तु गत्वा तौ रजनीचरौ ।
पश्येतां पुरुषं तोये क्रीडन्तं सहयोषितम् ॥ १३ ॥

'केवल आधा योजन जानेपर ही उन दोनों निशाचरोंने एक पुरुषको स्त्रियोंके साथ जलमें क्रीडा करते देखा ॥ १३ ॥

बृहत्सालप्रतीकाशं तोयव्याकुलमूर्धजम् ।
मदरक्तान्तनयनं मदव्याकुलचेतसम् ॥ १४ ॥

'उसका शरीर विशाल सालवृक्षके समान ऊँचा था । उसके केश जलसे ओतप्रोत हो रहे थे । नेत्रप्रान्तमें मदकी लाली दिखायी दे रही थी और चित्त भी मदसे व्याकुल जान पड़ता था ॥ १४ ॥

नदीं बाहुसहस्रेण रुन्धन्तमरिमर्दनम् ।
गिरिं पादसहस्रेण रुन्धन्तमिव मेदिनीम् ॥ १५ ॥

'वह शत्रुमर्दन वीर अपनी सहस्र भुजाओंसे नदीके वेगको रोककर सहस्रों चरणोंसे पृथ्वीको थामे रखनेवाले पर्वतके समान शोभा पाता था ॥ १५ ॥

बालानां वरनारीणां सहस्रेण समावृतम् ।
समदानां करेणूनां सहस्रेणेव कुञ्जरम् ॥ १६ ॥

'नयी अवस्थाकी सहस्रों सुन्दरियाँ उसे घेरे हुए ऐसी जान पड़ती थीं, मानो सहस्रों मदमत्त हथिनियोंने किसी गजराजको घेर रक्खा हो ॥ १६ ॥

तमद्भुततरं दृष्ट्वा राक्षसौ शुकसारणौ ।
संनिवृत्तावुपागम्य रावणं तमथोचतुः ॥ १७ ॥

'उस परम अद्भुत दृश्यको देखकर राक्षस शुक और सारण लौट आये और रावणके पास जाकर बोले—॥ १७ ॥

बृहत्सालप्रतीकाशः कोऽप्यसौ राक्षसेश्वर ।
नर्मदां रोधवद् रुद्ध्वा क्रीडापयति योषितः ॥ १८ ॥

''राक्षसराज ! यहाँसे थोड़ी ही दूरपर कोई सालवृक्षके समान विशालकाय पुरुष है, जो बाँधकी तरह नर्मदाके जलको रोककर स्त्रियोंके साथ क्रीडा कर रहा है ॥ १८ ॥

तेन बाहुसहस्रेण संनिरुद्धजला नदी ।
सागरोद्गारसंकाशानुद्गारान् सृजते मुहुः ॥ १९ ॥

''उसकी सहस्र भुजाओंसे नदीका जल रुक गया है । इसीलिये यह बारंबार समुद्रके ज्वारकी भाँति जलके उद्गारकी सृष्टि कर रही है' ॥ १९ ॥

इत्येवं भाष्यमाणौ तौ निशम्य शुकसारणौ ।
रावणोऽर्जुन इत्युक्त्वा स ययौ युद्धलालसः ॥ २० ॥

'इस प्रकार कहते हुए शुक और सारणकी बातें सुनकर रावण बोल उठा—'वही अर्जुन है' ऐसा कहकर वह युद्धकी लालसासे उसी ओर चल दिया ॥ २० ॥

अर्जुनाभिमुखे तस्मिन् रावणे राक्षसाधिपे ।
चण्डः प्रवाति पवनः सनादः सरजस्तथा ॥ २१ ॥

'राक्षसराज रावण जब अर्जुनकी ओर चला, तब धूल और भारी कोलाहलके साथ वायु प्रचण्ड वेगसे चलने लगी ॥ २१ ॥

सकृदेव कृतो रावः सरक्तपृषतो घनैः ।
महोदरमहापार्श्वधूम्राक्षशुकसारणैः ॥ २२ ॥
संवृतो राक्षसेन्द्रस्तु तत्रागाद् यत्र चार्जुनः ।

'बादलोंने रक्तबिन्दुओंकी वर्षा करके एक बार ही बड़े जोरसे गर्जना की । इधर राक्षसराज रावण महोदर, महापार्श्व, धूम्राक्ष, शुक और सारणको साथ ले उस स्थानकी ओर चला, जहाँ अर्जुन क्रीडा कर रहा था ॥ २२½ ॥

अदीर्घेणैव कालेन स तदा राक्षसो बली ॥ २३ ॥
तं नर्मदाह्रदं भीममाजगामाञ्जनप्रभः ।

'काजल या कोयलेके समान काला वह बलवान् राक्षस थोड़ी ही देरमें नर्मदाके उस भयंकर जलाशयके पास जा पहुँचा ॥ २३½ ॥

स तत्र स्त्रीपरिवृतं वासिताभिरिव द्विपम् ॥ २४ ॥
नरेन्द्रं पश्यते राजा राक्षसानां तदार्जुनम् ।

'वहाँ पहुँचकर राक्षसोंके राजा रावणने मैथुनकी इच्छावाली हथिनियोंसे घिरे हुए गजराजके समान सुन्दरी स्त्रियोंसे परिवेष्टित महाराज अर्जुनको देखा ॥ २४½ ॥

स रोषाद् रक्तनयनो राक्षसेन्द्रो बलोद्धतः ॥ २५ ॥
इत्येवमर्जुनामात्यानाह गम्भीरया गिरा ।

'उसे देखते ही रावणके नेत्र रोषसे लाल हो गये । अपने बलके घमंडसे उद्दण्ड हुए राक्षसराजने अर्जुनके मन्त्रियोंसे गम्भीर वाणीमें इस प्रकार कहा—॥ २५½ ॥

अमात्याः क्षिप्रमाख्यात हैहयस्य नृपस्य वै ॥ २६ ॥
युद्धार्थं समनुप्राप्तो रावणो नाम नामतः ।

''मन्त्रियो ! तुम हैहयराजसे जल्दी जाकर कहो कि रावण तुमसे युद्ध करनेके लिये आया है' ॥ २६½ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा मन्त्रिणोऽथार्जुनस्य ते ॥ २७ ॥
उत्तस्थुः सायुधास्तं च रावणं वाक्यमब्रुवन् ।

'रावणकी बात सुनकर अर्जुनके वे मन्त्री हथियार लेकर खड़े हो गये और रावणसे इस प्रकार बोले—॥ २७½ ॥

युद्धस्य कालो विज्ञातः साधु भो साधु रावण ॥ २८ ॥
यः क्षीबं स्त्रीगतं चैव योद्धुमुत्सहसे नृपम् ।

''वाह रे रावण ! वाह ! तुम्हें युद्धके अवसरका अच्छा ज्ञान है । हमारे महाराज जब मदमत्त होकर स्त्रियोंके बीचमें क्रीडा कर रहे हैं, ऐसे समयमें तुम उनके साथ युद्ध करनेके लिये उत्साहित हो रहे हो ॥ २८½ ॥

स्त्रीसमक्षगतं यत् त्वं योद्धुमुत्सहसे नृप ॥ २९ ॥
वासितामध्यगं मत्तं शार्दूल इव कुञ्जरम् ।

''जैसे कोई व्याघ्र कामवासनासे वासित हथिनियोंके बीचमें खड़े हुए गजराजसे जूझना चाहता हो, उसी प्रकार तुम स्त्रियोंके समक्ष क्रीडा-विलासमें तत्पर हुए राजा अर्जुनके साथ युद्ध करनेका हौसला दिखा रहे हो ॥ २९½ ॥

क्षमस्वाद्य दशग्रीव उष्यतां रजनी त्वया ।
३ युद्धे श्रद्धा तु यद्यस्ति श्वस्तात समरेऽर्जुनम् ॥ ३० ॥

'तात ! दशग्रीव ! यदि तुम्हारे हृदयमें युद्धके लिये उत्साह है, तो रातभर क्षमा करो और आजकी रातमें यहीं ठहरो । फिर कल सबेरे तुम राजा अर्जुनको समराङ्गणमें उपस्थित देखोगे ॥ ३० ॥

यदि वापि त्वरा तुभ्यं युद्धतृष्णासमावृत ।
निपात्यास्मान् रणे युद्धमर्जुनेनोपयास्यसि ॥ ३१ ॥

''युद्धकी तृष्णासे घिरे हुए राक्षसराज ! यदि तुम्हें जूझनेके लिये बड़ी जल्दी लगी हो तो पहले रणभूमिमें हम सबको मार गिराओ । उसके बाद महाराज अर्जुनके साथ युद्ध करने पाओगे' ॥ ३१ ॥

ततस्तै रावणामात्यैरमात्यास्ते नृपस्य तु ।
सूदिताश्चापि ते युद्धे भक्षिताश्च बुभुक्षितैः ॥ ३२ ॥

'यह सुनकर रावणके भूखे मन्त्री युद्धस्थलमें अर्जुनके अमात्योंको मार-मारकर खाने लगे ॥ ३२ ॥

ततो हलहलाशब्दो नर्मदातीरगो बभौ ।
अर्जुनस्यानुयात्राणां रावणस्य च मन्त्रिणाम् ॥ ३३ ॥

'इससे अर्जुनके अनुयायियों तथा रावणके मन्त्रियोंका नर्मदाके तटपर बड़ा कोलाहल होने लगा ॥ ३३ ॥

इषुभिस्तोमरैः प्रासैस्त्रिशूलैर्वज्रकर्षणैः ।
सरावणानर्दयन्तः समन्तात् समभिद्रुताः ॥ ३४ ॥

'अर्जुनके योद्धा बाणों, तोमरों, भालों, त्रिशूलों और वज्र-कर्षण नामक शस्त्रोंद्वारा चारों ओरसे धावा करके रावणसहित समस्त राक्षसोंको घायल करने लगे ॥ ३४ ॥

हैहयाधिपयोधानां वेग आसीत् सुदारुणः ।
सनक्रमीनमकरसमुद्रस्येव निःस्वनः ॥ ३५ ॥

'हैहयराजके योद्धाओंका वेग नाकों, मत्स्यों और मगरोंसहित समुद्रकी भीषण गर्जनाके समान अत्यन्त भयंकर जान पड़ता था ॥ ३५ ॥

रावणस्य तु तेऽमात्याः प्रहस्तशुकसारणाः ।
कार्तवीर्यबलं क्रुद्धा निहन्ति स्म स्वतेजसा ॥ ३६ ॥

'रावणके वे मन्त्री प्रहस्त, शुक और सारण आदि कुपित हो अपने बल-पराक्रमसे कार्तवीर्य अर्जुनकी सेनाका संहार करने लगे ॥ ३६ ॥

अर्जुनाय तु तत्कर्म रावणस्य समन्त्रिणः ।
क्रीडमानाय कथितं पुरुषैर्भयविह्वलैः ॥ ३७ ॥

'तब अर्जुनके सेवकोंने भयसे विह्वल होकर क्रीडामें लगे हुए अर्जुनसे मन्त्रीसहित रावणके उस क्रूर कर्मका समाचार सुनाया ॥ ३७ ॥

श्रुत्वा न भेतव्यमिति स्त्रीजनं स तदार्जुनः ।
उत्ततार जलात् तस्माद् गङ्गातोयादिवाञ्जनः ॥ ३८ ॥

'सुनकर अर्जुनने अपनी स्त्रियोंसे कहा—'तुम सब लोग डरना मत ।' फिर उन सबके साथ वह नर्मदाके जलसे उसी तरह बाहर निकला, जैसे कोई दिग्गज (हथिनियोंके साथ) गङ्गाजीके जलसे बाहर निकला हो ॥ ३८ ॥

क्रोधदूषितनेत्रस्तु स तदार्जुनपावकः ।
प्रजज्वाल महाघोरो युगान्त इव पावकः ॥ ३९ ॥

'उसके नेत्र रोषसे रक्तवर्णके हो गये । वह अर्जुनरूपी अनल प्रलयकालके महाभयंकर पावककी भाँति प्रज्वलित हो उठा ॥ ३९ ॥

स तूर्णतरमादाय वरहेमाङ्गदो गदाम् ।
अभिदुद्राव रक्षांसि तमांसीव दिवाकरः ॥ ४० ॥

'सुन्दर सोनेका बाजूबंद धारण करनेवाले वीर अर्जुनने तुरंत ही गदा उठा ली और उन राक्षसोंपर आक्रमण किया, मानो सूर्यदेव अन्धकार-समूहपर टूट पड़े हों ॥ ४० ॥

बाहुविक्षेपकरणां समुद्यम्य महागदाम् ।
गारुडं वेगमास्थाय आपपातैव सोऽर्जुनः ॥ ४१ ॥

'जो भुजाओंद्वारा घुमायी जाती थी उस विशाल गदाको ऊपर उठाकर गरुडके समान तीव्र वेगका आश्रय ले राजा अर्जुन तत्काल ही उन निशाचरोंपर टूट पड़ा ॥ ४१ ॥

तस्य मार्गं समारुद्ध्य विन्ध्योऽर्कस्येव पर्वतः ।
स्थितो विन्ध्य इवाकम्प्यः प्रहस्तो मुसलायुधः ॥ ४२ ॥

'उस समय मूसलधारी प्रहस्त, जो विन्ध्य-गिरिके समान अविचल था; उसका मार्ग रोककर खड़ा हो गया। ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें विन्ध्याचलने सूर्यदेवका मार्ग रोक लिया था ॥ ४२ ॥

ततोऽस्य मुसलं घोरं लोहबद्धं मदोद्धतः ।
प्रहस्तः प्रेषयन् क्रुद्धो ररास च यथान्तकः ॥ ४३ ॥

'मदसे उद्दण्ड हुए प्रहस्तने कुपित हो अर्जुनपर लोहेसे मढ़ा हुआ एक भयंकर मूसल चलाया और कालके समान भीषण गर्जना की ॥ ४३ ॥

तस्याग्रे मुसलस्याग्निरशोकापीडसंनिभः ।
प्रहस्तकरमुक्तस्य बभूव प्रदहन्निव ॥ ४४ ॥

'प्रहस्तके हाथसे छूटे हुए उस मूसलके अग्रभागमें अशोक-पुष्पके समान लाल रंगकी आग प्रकट हो गयी, ज जलाती हुई-सी जान पड़ती थी ॥ ४४ ॥

आधावमानं मुसलं कार्तवीर्यस्तदार्जुनः ।
निपुणं वञ्चयामास गदया गतविक्लवः ॥ ४५ ॥

'किंतु कार्तवीर्य अर्जुनको इससे तनिक भी भय नहीं हुआ। उसने अपनी ओर वेगपूर्वक आते हुए उस मूसलको गदा मारकर पूर्णतः विफल कर दिया ॥ ४५ ॥

ततस्तमभिदुद्राव सगदो हैहयाधिपः ।
भ्रामयाणो गदां गुर्वीं पञ्चबाहुशतोच्छ्रयाम् ॥ ४६ ॥

'तत्पश्चात् गदाधारी हैहयराज, जिसे पाँच सौ भुजाओंसे उठाकर चलाया जाता था, उस भारी गदाको घुमाता हुआ प्रहस्तकी ओर दौड़ा ॥ ४६ ॥

ततो हतोऽतिवेगेन प्रहस्तो गदया तदा ।
निपपात स्थितः शैलो वज्रिवज्रहतो यथा ॥ ४७ ॥

'उस गदासे अत्यन्त वेगपूर्वक आहत होकर प्रहस्त तत्काल पृथ्वीपर गिर पड़ा, मानो कोई पर्वत वज्रधारी इन्द्रके वज्रका आघात पाकर ढह गया हो ॥ ४७ ॥

✓ **प्रहस्तं पतितं दृष्ट्वा मारीचशुकसारणाः ।**
समहोदरधूम्राक्षा अपसृष्टा रणाजिरात् ॥ ४८ ॥

'प्रहस्तको धराशायी हुआ देख मारीच, शुक, सारण, महोदर और धूम्राक्ष समराङ्गणसे भाग खड़े हुए ॥ ४८ ॥

अपक्रान्तेष्वमात्येषु प्रहस्ते च निपातिते ।
रावणोऽभ्यद्रवत् तूर्णमर्जुनं नृपसत्तमम् ॥ ४९ ॥

'प्रहस्तके गिरने और अमात्योंके भाग जानेपर रावणने नृपश्रेष्ठ अर्जुनपर तत्काल धावा किया ॥ ४९ ॥

सहस्रबाहोस्तद् युद्धं विंशद्बाहोश्च दारुणम् ।
नृपराक्षसयोस्तत्र आरब्धं रोमहर्षणम् ॥ ५० ॥

'फिर तो हजार भुजाओंवाले नरनाथ और बीस भुजाओंवाले निशाचरनाथमें वहाँ भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला था ॥ ५० ॥

सागराविव संक्षुब्धौ चलमूलाविवाचलौ ।
तेजोयुक्ताविवादित्यौ प्रदहन्ताविवानलौ ॥ ५१ ॥
बलोद्धतौ यथा नागौ वासितार्थे यथा वृषौ ।
मेघाविव विनर्दन्तौ सिंहाविव बलोत्कटौ ॥ ५२ ॥
रुद्रकालाविव क्रुद्धौ तौ तदा राक्षसार्जुनौ ।
परस्परं गदां गृह्य ताडयामासतुर्भृशम् ॥ ५३ ॥

'विक्षुब्ध हुए दो समुद्रों, जिनकी जड़ हिल रही हो ऐसे दो पर्वतों, दो तेजस्वी आदित्यों, दो दाहक अग्नियों, बलसे उन्मत्त हुए दो गजराजों, काम-वासनावाली गायके लिये लड़नेवाले दो साँड़ों, जोर-जोरसे गर्जनेवाले दो मेघों, उत्कट बलशाली दो सिंहों तथा क्रोधसे भरे हुए रुद्र और कालदेवके समान वे रावण और अर्जुन गदा लेकर एक दूसरेपर गहरी चोटें करने लगे ॥ ५१—५३ ॥

वज्रप्रहारानचला यथा घोरान् विषेहिरे ।
गदाप्रहारांस्तौ तत्र सेहाते नरराक्षसौ ॥ ५४ ॥

'जैसे पूर्वकालमें पर्वतोंने वज्रके भयंकर आघात सहे थे, उसी प्रकार वे अर्जुन और रावण वहाँ गदाओंके प्रहार सहन करते थे ॥ ५४ ॥

यथाशनिरवेभ्यस्तु जायतेऽथ प्रतिश्रुतिः । ५
तथा तयोर्गदापोथैर्दिशः सर्वाः प्रतिश्रुताः ॥ ५५ ॥

'जैसे बिजलीकी कड़कसे सम्पूर्ण दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठती हैं, उसी प्रकार उन दोनों वीरोंकी गदाओंके आघातोंसे सभी दिशाएँ गूँजने लगीं ॥ ५५ ॥

अर्जुनस्य गदा सा तु पात्यमानाहितोरसि ।
काञ्चनाभं नभश्चक्रे विद्युत्सौदामनी यथा ॥ ५६ ॥

'जैसे बिजली चमककर आकाशको सुनहरे रंगसे युक्त कर देती है, उसी प्रकार रावणकी छातीपर गिरायी जाती हुई अर्जुनकी गदा उसके वक्षःस्थलको सुवर्णकी-सी प्रभासे पूर्ण कर देती थी ॥ ५६ ॥

तथैव रावणेनापि पात्यमाना मुहुर्मुहुः ।
अर्जुनोरसि निर्भाति गदोल्केव महागिरौ ॥ ५७ ॥

'उसी प्रकार रावणके द्वारा भी अर्जुनकी छातीपर बारंबार गिरायी जाती हुई गदा किसी महान् पर्वतपर गिरनेवाली उल्काके समान प्रकाशित हो उठती थी ॥ ५७ ॥

नार्जुनः खेदमायाति न राक्षसगणेश्वरः । ✓
सममासीत् तयोर्युद्धं यथा पूर्वं बलीन्द्रयोः ॥ ५८ ॥

'उस समय न तो अर्जुन थकता था और न राक्षसगणोंका राजा रावण ही। पूर्वकालमें परस्पर जूझनेवाले इन्द्र और बलिकी भाँति उन दोनोंका युद्ध एक समान जान पड़ता था ॥

शृङ्गैरिव वृषायुध्यन् दन्ताग्रैरिव कुञ्जरौ ।
परस्परं विनिघ्नन्तौ नरराक्षससत्तमौ ॥ ५९ ॥

'जैसे साँड़ अपने सींगोंसे और हाथी अपने दाँतोंके अग्रभागसे परस्पर प्रहार करते हैं, उसी प्रकार वे नरेश और

निशाचरराज एक दूसरेपर गदाओंसे चोट करते थे ॥ ५९ ॥

ततोऽर्जुनेन क्रुद्धेन सर्वप्राणेन सा गदा ।
स्तनयोरन्तरे मुक्ता रावणस्य महोरसि ॥ ६० ॥

'इसी बीचमें अर्जुनने कुपित होकर रावणके विशाल वक्षःस्थलपर दोनों स्तनोंके बीचमें अपनी पूरी शक्तिसे गदाका प्रहार किया ॥ ६० ॥

वरदानकृतत्राणे सा गदा रावणोरसि ।
दुर्बलेव यथावेगं द्विधाभूतापतत् क्षितौ ॥ ६१ ॥

'परंतु रावण तो वरके प्रभावसे सुरक्षित था, अतः रावणकी छातीपर वेगपूर्वक चोट करके भी वह गदा किसी दुर्बल गदाकी भाँति उसके वक्षकी टक्करसे दो टूक होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ६१ ॥

स त्वर्जुनप्रयुक्तेन गदाघातेन रावणः ।
अपासर्पद् धनुर्मात्रं निषसाद च निष्टनन् ॥ ६२ ॥

'तथापि अर्जुनकी चलायी हुई गदाके आघातसे पीड़ित हो रावण एक धनुष पीछे हट गया और आर्तनाद करता हुआ बैठ गया ॥ ६२ ॥

स विह्वलं तदालक्ष्य दशग्रीवं ततोऽर्जुनः ।
सहसोत्पत्य जग्राह गरुत्मानिव पन्नगम् ॥ ६३ ॥

'दशग्रीवको व्याकुल देख अर्जुनने सहसा उछलकर उसे पकड़ लिया, मानो गरुड़ने झपट्टा मारकर किसी सर्पको धर दबाया हो ॥ ६३ ॥

स तु बाहुसहस्रेण बलाद् गृह्य दशाननम् ।
बबन्ध बलवान् राजा बलिं नारायणो यथा ॥ ६४ ॥

'जैसे पूर्वकालमें भगवान् नारायणने बलिको बाँधा था, उसी तरह बलवान् राजा अर्जुनने दशाननको बलपूर्वक पकड़कर अपने हजार हाथोंके द्वारा उसे मजबूत रस्सोंसे बाँध दिया ॥ ६४ ॥

बध्यमाने दशग्रीवे सिद्धचारणदेवताः ।
साध्वीति वादिनः पुष्पैः किरन्त्यर्जुनमूर्धनि ॥ ६५ ॥

'दशग्रीवके बाँधे जानेपर सिद्ध, चारण और देवता 'शाबाश ! शाबाश !' कहते हुए अर्जुनके सिरपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ६५ ॥

व्याघ्रो मृगमिवादाय मृगराडिव कुञ्जरम् ।
ररास हैहयो राजा हर्षादम्बुदवन्मुहुः ॥ ६६ ॥

'जैसे व्याघ्र किसी हिरणको दबोच लेता है अथवा सिंह हाथीको धर दबाता है, उसी प्रकार रावणको अपने वशमें करके हैहयराज अर्जुन हर्षातिरेकसे मेघके समान बारंबार गर्जना करने लगा ॥ ६६ ॥

प्रहस्तस्तु समाश्वस्तो दृष्ट्वा बद्धं दशाननम् ।
सहसा राक्षसः क्रुद्धो ह्यभिदुद्राव हैहयम् ॥ ६७ ॥

'इसके बाद प्रहस्तने होश सँभाला । दशमुख रावणको बँधा हुआ देख वह राक्षस सहसा कुपित हो हैहयराजकी ओर दौड़ा ॥ ६७ ॥

नक्तंचराणां वेगस्तु तेषामापततां बभौ ।
उद्धूत आतपापाये पयोदानामिवाम्बुधौ ॥ ६८ ॥

'जैसे वर्षाकाल आनेपर समुद्रमें बादलोंका वेग बढ़ जाता है, उसी प्रकार वहाँ आक्रमण करते हुए उन निशाचरोंका वेग बढ़ा हुआ प्रतीत होता था ॥ ६८ ॥

मुञ्चमुञ्चेति भाषन्तस्तिष्ठतिष्ठेति चासकृत् ।
मुसलानि च शूलानि सोत्ससर्ज तदा रणे ॥ ६९ ॥

''छोड़ो, छोड़ो, ठहरो, ठहरो' ऐसा बारंबार कहते हुए राक्षस अर्जुनकी ओर दौड़े । उस समय प्रहस्तने रणभूमिमें अर्जुनपर मूसल और शूलके प्रहार किये ॥ ६९ ॥

अप्राप्तान्येव तान्याशु असम्भ्रान्तस्तदार्जुनः ।
आयुधान्यमरारीणां जग्राहारिनिषूदनः ॥ ७० ॥

'परंतु अर्जुनको उस समय घबराहट नहीं हुई । उस शत्रुसूदन वीरने प्रहस्त आदि देवद्रोही निशाचरोंके छोड़े हुए उन अस्त्रोंको अपने शरीरतक आनेसे पहले ही पकड़ लिया॥

ततस्तैरेव रक्षांसि दुर्धरैः प्रवरायुधैः ।
भित्त्वा विद्रावयामास वायुरम्बुधरानिव ॥ ७१ ॥

'फिर उन्हीं दुर्धर एवं श्रेष्ठ आयुधोंसे उन सब राक्षसोंको घायल करके उसी तरह भगा दिया, जैसे हवा बादलोंको छिन्न-भिन्न करके उड़ा ले जाती है ॥ ७१ ॥

राक्षसांस्त्रासयामास कार्तवीर्यार्जुनस्तदा ।
रावणं गृह्य नगरं प्रविवेश सुहृद्वृतः ॥ ७२ ॥

'उस समय कार्तवीर्य अर्जुनने समस्त राक्षसोंको भयभीत कर दिया और रावणको लेकर वह अपने सुहृदोंके साथ नगरमें आया ॥ ७२ ॥

स कीर्यमाणः कुसुमाक्षतोत्करै-
र्द्विजैः सपौरैः पुरुहूतसंनिभः ।
ततोऽर्जुनः स्वां प्रविवेश तां पुरीं
बलिं निगृह्येव सहस्रलोचनः ॥ ७३ ॥

'नगरके निकट आनेपर ब्राह्मणों और पुरवासियोंने अपने इन्द्रतुल्य तेजस्वी नरेशपर फूलों और अक्षतोंकी वर्षा की और सहस्र नेत्रधारी इन्द्र जैसे बलिको बंदी बनाकर ले गये थे, उसी प्रकार उस राजा अर्जुनने बँधे हुए रावणको साथ लेकर अपनी पुरीमें प्रवेश किया ॥' ७३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः

पुलस्त्यजीका रावणको अर्जुनकी कैदसे छुटकारा दिलाना

रावणग्रहणं तत् तु वायुग्रहणसंनिभम्।
ततः पुलस्त्यः शुश्राव कथितं दिवि दैवतैः॥ १ ॥

रावणको पकड़ लेना वायुको पकड़नेके समान था। धीरे-धीरे यह बात स्वर्गमें देवताओंके मुखसे पुलस्त्यजीने सुनी॥ १ ॥

ततः पुत्रकृतस्नेहात् कम्पमानो महाधृतिः। ✓
माहिष्मतीपतिं द्रष्टुमाजगाम महानृषिः॥ २ ॥

यद्यपि वे महर्षि महान् धैर्यशाली थे तो भी संतानके प्रति होनेवाले स्नेहके कारण कृपापरवश हो गये और माहिष्मती-नरेशसे मिलनेके लिये भूतलपर चले आये॥ २ ॥

स वायुमार्गमास्थाय वायुतुल्यगतिर्द्विजः।
पुरीं माहिष्मतीं प्राप्तो मनःसम्पातविक्रमः॥ ३ ॥

उनका वेग वायुके समान था और गति मनके समान, वे ब्रह्मर्षि वायुपथका आश्रय ले माहिष्मतीपुरीमें आ पहुँचे॥

सोऽमरावतिसंकाशां हृष्टपुष्टजनावृताम्।
प्रविवेश पुरीं ब्रह्मा इन्द्रस्येवामरावतीम्॥ ४ ॥

जैसे ब्रह्माजी इन्द्रकी अमरावतीपुरीमें प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार पुलस्त्यजीने हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरी हुई और अमरावतीके समान शोभासे सम्पन्न माहिष्मती नगरीमें प्रवेश किया॥ ४ ॥

पादचारमिवादित्यं निष्पतन्तं सुदुर्दृशम्।
ततस्ते प्रत्यभिज्ञाय अर्जुनाय न्यवेदयन्॥ ५ ॥

आकाशसे उतरते समय वे पैरोंसे चलकर आते हुए सूर्यके समान जान पड़ते थे। अत्यन्त तेजके कारण उनकी ओर देखना बहुत ही कठिन जान पड़ता था। अर्जुनके सेवकोंने उन्हें पहचानकर राजा अर्जुनको उनके शुभागमनकी सूचना दी॥ ५ ॥

पुलस्त्य इति विज्ञाय वचनाद्धैहयाधिपः।
शिरस्यञ्जलिमाधाय प्रत्युद्गच्छत् तपस्विनम्॥ ६ ॥

सेवकोंके कहनेसे जब हैहयराजको यह पता चला कि पुलस्त्यजी पधारे हैं, तब वे सिरपर अञ्जलि बाँधे उन तपस्वी मुनिकी अगवानीके लिये आगे बढ़ आये॥ ६ ॥

पुरोहितोऽस्य गृह्यार्घ्यं मधुपर्कं तथैव च।
पुरस्तात् प्रययौ राज्ञः शक्रस्येव बृहस्पतिः॥ ७ ॥

राजा अर्जुनके पुरोहित अर्घ्य और मधुपर्क आदि लेकर उनके आगे-आगे चले, मानो इन्द्रके आगे बृहस्पति चल रहे हों॥ ७ ॥

ततस्तमृषिमायान्तमुद्यन्तमिव भास्करम्।
अर्जुनो दृश्य सम्भ्रान्तो ववन्देन्द्र इवेश्वरम्॥ ८ ॥

वहाँ आते हुए वे महर्षि उदित होते हुए सूर्यके समान तेजस्वी दिखायी देते थे। उन्हें देखकर राजा अर्जुन चकित रह गया। उसने उन ब्रह्मर्षिके चरणोंमें उसी तरह आदरपूर्वक प्रणाम किया, जैसे इन्द्र ब्रह्माजीके आगे मस्तक झुकाते हैं॥

स तस्य मधुपर्कं गां पाद्यमर्घ्यं निवेद्य च।
पुलस्त्यमाह राजेन्द्रो हर्षगद्गदया गिरा॥ ९ ॥

ब्रह्मर्षिको पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क और गौ समर्पित करके राजाधिराज अर्जुनने हर्षगद्गद वाणीमें पुलस्त्यजीसे कहा—॥९॥

अद्यैवममरावत्या तुल्या माहिष्मती कृता। ✓
अद्याहं तु द्विजेन्द्र त्वां यस्मात् पश्यामि दुर्दृशम्॥ १० ॥

‘द्विजेन्द्र! आपका दर्शन परम दुर्लभ है, तथापि आज मैं आपके दर्शनका सुख उठा रहा हूँ। इस प्रकार यहाँ पधारकर आपने इस माहिष्मतीपुरीको अमरावतीपुरीके समान गौरव-शालिनी बना दिया॥ १० ॥

अद्य मे कुशलं देव अद्य मे कुशलं व्रतम्। ✓
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः॥ ११ ॥
यत् ते देवगणैर्वन्द्यौ वन्देऽहं चरणौ तव।
इदं राज्यमिमे पुत्रा इमे दारा इमे वयम्।
ब्रह्मन् किं कुर्मः किं कार्यमाज्ञापयतु नो भवान्॥ १२ ॥

‘देव! आज मैं आपके देववन्द्य चरणोंकी वन्दना कर रहा हूँ; अतः आज ही मैं वास्तवमें सकुशल हूँ। आज मेरा व्रत निर्विघ्न पूर्ण हो गया। आज ही मेरा जन्म सफल हुआ और तपस्या भी सार्थक हो गयी। ब्रह्मन्! यह राज्य, ये स्त्री-पुत्र और हम सब लोग आपके ही हैं। आप आज्ञा दीजिये। हम आपकी क्या सेवा करें?’॥ ११-१२॥

तं धर्मेऽग्निषु पुत्रेषु शिवं पृष्ट्वा च पार्थिवम्।
पुलस्त्योवाच राजानं हैहयानां तथार्जुनम्॥ १३ ॥

तब पुलस्त्यजी हैहयराज अर्जुनके धर्म, अग्नि और पुत्रोंका कुशल-समाचार पूछकर उससे इस प्रकार बोले—॥ १३ ॥

नरेन्द्राम्बुजपत्राक्ष पूर्णचन्द्रनिभानन।
अतुलं ते बलं येन दशग्रीवस्त्वया जितः॥ १४ ॥

‘पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले कमलनयन नरेश! तुम्हारे बलकी कहीं तुलना नहीं है; क्योंकि तुमने दशग्रीवको जीत लिया॥ १४ ॥

भयाद् यस्योपतिष्ठेतां निष्पन्दौ सागरानिलौ।
सोऽयं मृधे त्वया बद्धः पौत्रो मे रणदुर्जयः॥ १५ ॥

‘जिसके भयसे समुद्र और वायु भी चञ्चलता छोड़कर सेवामें उपस्थित होते हैं, उस मेरे रणदुर्जय पौत्रको तुमने संग्राममें बाँध लिया॥ १५ ॥

पुत्रकस्य यशः पीतं नाम विश्रावितं त्वया।
मद्वाक्याद् याच्यमानोऽद्य मुञ्च वत्स दशाननम्॥१६॥

'ऐसा करके तुम मेरे इस बच्चेका यश पी गये और सर्वत्र अपने नामका ढिंढोरा पीट दिया। वत्स! अब मेरे कहनेसे तुम दशाननको छोड़ दो। यह तुमसे मेरी याचना है' ॥ १६ ॥

पुलस्त्याज्ञां प्रगृह्योचे न किंचन वचोऽर्जुनः।
मुमोच वै पार्थिवेन्द्रो राक्षसेन्द्रं प्रहृष्टवत् ॥ १७ ॥

पुलस्त्यजीकी इस आज्ञाको शिरोधार्य करके अर्जुनने इसके विपरीत कोई बात नहीं कही। उस राजाधिराजने बड़ी प्रसन्नताके साथ राक्षसराज रावणको बन्धनसे मुक्त कर दिया ॥ १७ ॥

स तं प्रमुच्य त्रिदशारिमर्जुनः
प्रपूज्य दिव्याभरणस्रगम्बरैः।
अहिंसकं सख्यमुपेत्य साग्निकं
प्रणम्य तं ब्रह्मसुतं गृहं ययौ ॥ १८ ॥

उस देवद्रोही राक्षसको बन्धनमुक्त करके अर्जुनने दिव्य आभूषण, माला और वस्त्रोंसे उसका पूजन किया और अग्निको साक्षी बनाकर उसके साथ ऐसी मित्रताका सम्बन्ध स्थापित किया, जिसके द्वारा किसीकी हिंसा न हो (अर्थात् उन दोनोंने यह प्रतिज्ञा की कि हमलोग अपनी मैत्रीका उपयोग दूसरे प्राणियोंकी हिंसामें नहीं करेंगे)। इसके बाद ब्रह्मपुत्र पुलस्त्यजीको प्रणाम करके राजा अर्जुन अपने घरको लौट गया ॥ १८ ॥

पुलस्त्येनापि संत्यक्तो राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्।
परिष्वक्तः कृतातिथ्यो लज्जमानो विनिर्जितः ॥ १९ ॥

इस प्रकार अर्जुनद्वारा आतिथ्य-सत्कार करके छोड़े गये प्रतापी राक्षसराज रावणको पुलस्त्यजीने हृदयसे लगा लिया, परंतु वह पराजयके कारण लज्जित ही रहा ॥ १९ ॥

पितामहसुतश्चापि पुलस्त्यो मुनिपुङ्गवः।
मोचयित्वा दशग्रीवं ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥ २० ॥

दशग्रीवको छुड़ाकर ब्रह्माजीके पुत्र मुनिवर पुलस्त्यजी पुनः ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २० ॥

एवं स रावणः प्राप्तः कीर्तवीर्यात् प्रधर्षणम्।
पुलस्त्यवचनाच्चापि पुनर्मुक्तो महाबलः ॥ २१ ॥

इस प्रकार रावणको कार्तवीर्य अर्जुनके हाथसे पराजित होना पड़ा था और फिर पुलस्त्यजीके कहनेसे उस महाबली राक्षसको छुटकारा मिला था ॥ २१ ॥

एवं बलिभ्यो बलिनः सन्ति राघवनन्दन।
नावज्ञा हि परे कार्या य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ २२ ॥

रघुकुलनन्दन! इस प्रकार संसारमें बलवान्-से-बलवान् वीर पड़े हुए हैं; अतः जो अपना कल्याण चाहे उसे दूसरेकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये ॥ २२ ॥

ततः स राजा पिशिताशनानां
सहस्रबाहोरुपलभ्य मैत्रीम्।
पुनर्नृपाणां कदनं चकार
चचार सर्वां पृथिवीं च दर्पात् ॥ २३ ॥

सहस्रबाहुकी मैत्री पाकर राक्षसोंका राजा रावण पुनः घमंडसे भरकर सारी पृथ्वीपर विचरने और नरेशोंका संहार करने लगा ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः

वालीके द्वारा रावणका पराभव तथा रावणका उन्हें अपना मित्र बनाना

अर्जुनेन विमुक्तस्तु रावणो राक्षसाधिपः।
चचार पृथिवीं सर्वामनिर्विण्णस्तथा कृतः ॥ १ ॥

अर्जुनसे छुटकारा पाकर राक्षसराज रावण निर्वेदरहित हो पुनः सारी पृथ्वीपर विचरण करने लगा ॥ १ ॥

राक्षसं वा मनुष्यं वा शृणुते यं बलाधिकम्।
रावणस्तं समासाद्य युद्धे ह्वयति दर्पितः ॥ २ ॥

राक्षस हो या मनुष्य, जिसको भी वह बलमें बढ़ा-चढ़ा सुनता था, उसीके पास पहुँचकर अभिमानी रावण उसे युद्धके लिये ललकारता था ॥ २ ॥

ततः कदाचित् किष्किन्धां नगरीं वालिपालिताम्।
गत्वाऽऽह्वयति युद्धाय वालिनं हेममालिनम् ॥ ३ ॥

तदनन्तर एक दिन वह वालीद्वारा पालित किष्किन्धापुरीमें जाकर सुवर्णमालाधारी वालीको युद्धके लिये ललकारने लगा ॥ ३ ॥

ततस्तु वानरामात्यास्तारस्तारापिता प्रभुः।
उवाच वानरो वाक्यं युद्धप्रेप्सुमुपागतम् ॥ ४ ॥

उस समय युद्धकी इच्छासे आये हुए रावणसे वालीके मन्त्री तार, ताराके पिता सुषेण तथा युवराज अङ्गद एवं सुग्रीवने कहा— ॥ ४ ॥

राक्षसेन्द्र गतो वाली यस्ते प्रतिबलो भवेत्।
कोऽन्यः प्रमुखतः स्थातुं तव शक्तः प्लवङ्गमः ॥ ५ ॥

'राक्षसराज! इस समय वाली तो बाहर गये हुए हैं। वे ही आपकी जोड़के हो सकते हैं। दूसरा कौन वानर आपके सामने ठहर सकता है ॥ ५ ॥

चतुर्भ्योऽपि समुद्रेभ्यः संध्यामन्वास्य रावण।
इदं मुहूर्तमायाति वाली तिष्ठ मुहूर्तकम् ॥ ६ ॥

'रावण! चारों समुद्रोंसे संध्योपासन करके वाली अब आते ही होंगे। आप दो घड़ी ठहर जाइये ॥ ६ ॥

एतानस्थिचयान् पश्य य एते शङ्खपाण्डुराः ।
युद्धार्थिनामिमे राजन् वानराधिपतेजसा ॥ ७ ॥

'राजन् ! देखिये, ये जो शङ्खके समान उज्ज्वल हड्डियोंके ढेर लग रहे हैं, ये वालीके साथ युद्धकी इच्छासे आये हुए आप-जैसे वीरोंके ही हैं । वानरराज वालीके तेजसे ही इन सबका अन्त हुआ है ॥ ७ ॥

यद्वामृतरसः पीतस्त्वया रावण राक्षस ।
तदा वालिनमासाद्य तदन्तं तव जीवितम् ॥ ८ ॥

'राक्षस रावण ! यदि आपने अमृतका रस पी लिया हो तो भी जब आप वालीसे टक्कर लेंगे, तब वही आपके जीवनका अन्तिम क्षण होगा ॥ ८ ॥

पश्येदानीं जगच्चित्रमिमं विश्रवसः सुत ।
इदं मुहूर्तं तिष्ठस्व दुर्लभं ते भविष्यति ॥ ९ ॥

'विश्रवाकुमार ! वाली सम्पूर्ण आश्चर्यके भण्डार हैं । आप इस समय इनका दर्शन करेंगे । केवल इसी मुहूर्ततक उनकी प्रतिक्षाके लिये ठहरिये; फिर तो आपके लिये जीवन दुर्लभ हो जायगा ॥ ९ ॥

अथवा त्वरसे मर्तुं गच्छ दक्षिणसागरम् ।
वालिनं द्रक्ष्यसे तत्र भूमिष्ठमिव पावकम् ॥ १० ॥

'अथवा यदि आपको मरनेके लिये बहुत जल्दी लगी हो तो दक्षिण समुद्रके तटपर चले जाइये । वहाँ आपको पृथ्वीपर स्थित हुए अग्निदेवके समान वालीका दर्शन होगा' ॥ १० ॥

स तु तारं विनिर्भर्त्स्य रावणो लोकरावणः ।
पुष्पकं तत् समारुह्य प्रययौ दक्षिणार्णवम् ॥ ११ ॥

तब लोकोंको रुलानेवाले रावणने तारको भला-बुरा कहकर पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो दक्षिण समुद्रकी ओर प्रस्थान किया ॥ ११ ॥

तत्र हेमगिरिप्रख्यं तरुणार्कनिभाननम् ।
रावणो वालिनं दृष्ट्वा संध्योपासनतत्परम् ॥ १२ ॥

वहाँ रावणने सुवर्णगिरिके समान ऊँचे वालीको संध्योपासन करते हुए देखा । उनका मुख प्रभातकालके सूर्यकी भाँति अरुण प्रभासे उद्भासित हो रहा था ॥ १२ ॥

पुष्पकादवरुह्याथ रावणोऽञ्जनसंनिभः ।
ग्रहीतुं वालिनं तूर्णं निःशब्दपदमव्रजत् ॥ १३ ॥

उन्हें देखकर काजलके समान काला रावण पुष्पकसे उतर पड़ा और वालीको पकड़नेके लिये जल्दी-जल्दी उनकी ओर बढ़ने लगा । उस समय वह अपने पैरोंकी आहट नहीं होने देता था ॥ १३ ॥

यदृच्छया तदा दृष्टो वालिनापि स रावणः ।
पापाभिप्रायकं दृष्ट्वा चकार न तु सम्भ्रमम् ॥ १४ ॥

दैवयोगसे वालीने भी रावणको देख लिया; किंतु वे उसके पापपूर्ण अभिप्रायको जानकर भी घबराये नहीं ॥ १४ ॥

शशमालक्ष्य सिंहो वा पन्नगं गरुडो यथा ।
न चिन्तयति तं वाली रावणं पापनिश्चयम् ॥ १५ ॥

जैसे सिंह खरगोशको और गरुड़ सर्पको देखकर भी उसकी परवा नहीं करता, उसी प्रकार वालीने पापपूर्ण विचार रखनेवाले रावणको देखकर भी चिन्ता नहीं की ॥ १५ ॥

जिघृक्षमाणमायान्तं रावणं पापचेतसम् ।
कक्षावलम्बिनं कृत्वा गमिष्ये त्रीन् महार्णवान् ॥ १६ ॥

उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि जब पापात्मा रावण मुझे पकड़नेकी इच्छासे निकट आयेगा, तब मैं इसे काँखमें दबाकर लटका लूँगा और इसे लिये-दिये शेष तीन महासागरोंपर भी हो आऊँगा ॥ १६ ॥

द्रक्ष्यन्त्यरिं ममाङ्कस्थं स्रंसदूरुकराम्बरम् ।
लम्बमानं दशग्रीवं गरुडस्येव पन्नगम् ॥ १७ ॥

इसकी जाँघ, हाथ-पैर और वस्त्र खिसकते होंगे । यह मेरी काँखमें दबा होगा और उस दशामें लोग मेरे शत्रुको गरुड़के पंजेमें दबे हुए सर्पके समान लटकते देखेंगे ॥ १७ ॥

इत्येवं मतिमास्थाय वाली मौनमुपास्थितः ।
जपन् वै नैगमान् मन्त्रांस्तस्थौ पर्वतराडिव ॥ १८ ॥

ऐसा निश्चय करके वाली मौन ही रहे और वैदिक मन्त्रोंका जप करते हुए गिरिराज सुमेरुकी भाँति खड़े रहे ॥ १८ ॥

तावन्योन्यं जिघृक्षन्तौ हरिराक्षसपार्थिवौ ।
प्रयत्नवन्तौ तत् कर्म ईहतुर्बलदर्पितौ ॥ १९ ॥

इस प्रकार बलके अभिमानसे भरे हुए वे वानरराज और राक्षसराज दोनों एक दूसरेको पकड़ना चाहते थे । दोनों ही इसके लिये प्रयत्नशील थे और दोनों ही वह काम बनानेकी घातमें लगे थे ॥ १९ ॥

हस्तग्राहं तु तं मत्वा पादशब्देन रावणम् ।
पराङ्मुखोऽपि जग्राह वाली सर्पमिवाण्डजः ॥ २० ॥

रावणके पैरोंकी हल्की-सी आहटसे वाली यह समझ गये कि अब रावण हाथ बढ़ाकर मुझे पकड़ना चाहता है । फिर तो दूसरी ओर मुँह किये होनेपर भी वालीने उसे उसी तरह सहसा पकड़ लिया, जैसे गरुड़ सर्पको दबोच लेता है ॥ २० ॥

ग्रहीतुकामं तं गृह्य रक्षसामीश्वरं हरिः ।
खमुत्पपात वेगेन कृत्वा कक्षावलम्बिनम् ॥ २१ ॥

पकड़नेकी इच्छावाले उस राक्षसराजको वालीने स्वयं ही पकड़कर अपनी काँखमें लटका लिया और बड़े वेगसे वे आकाशमें उछले ॥ २१ ॥

तं च पीडयमानं तु वितुदन्तं नखैर्मुहुः ।
जहार रावणं वाली पवनस्तोयदं यथा ॥ २२ ॥

रावण अपने नखोंसे बारंबार वालीको बकोटता और पीड़ा देता रहा, तो भी जैसे वायु बादलोंको उड़ा ले जाती है, उसी प्रकार वाली रावणको बगलमें दबाये लिये फिरते थे ॥ २२ ॥

अथ ते राक्षसामात्या ह्रियमाणे दशानने ।

मुमोक्षयिषवो वालिं रवमाणा अभिद्रुताः ॥ २३ ॥

इस प्रकार रावणके हर लिये जानेपर उसके मन्त्री उसे वालीसे छुड़ानेके लिये कोलाहल करते हुए उनके पीछे-पीछे दौड़ते रहे ॥ २३ ॥

अन्वीयमानस्तैर्वाली भ्राजतेऽम्बरमध्यगः ।
अन्वीयमानो मेघौघैरम्बरस्थ इवांशुमान् ॥ २४ ॥

पीछे-पीछे राक्षस चलते थे और आगे-आगे वाली। इस अवस्थामें वे आकाशके मध्यभागमें पहुँचकर मेघसमूहोंसे अनुगत हुए आकाशवर्ती अंशुमाली सूर्यके समान शोभा पाते थे ॥ २४ ॥

तेऽशक्नुवन्तः सम्प्राप्तुं वालिनं राक्षसोत्तमाः ।
तस्य बाहूरुवेगेन परिश्रान्ता व्यवस्थिताः ॥ २५ ॥

वे श्रेष्ठ राक्षस बहुत प्रयत्न करनेपर भी वालीके पासतक न पहुँच सके। उनकी भुजाओं और जाँघोंके वेगसे उत्पन्न हुई वायुके थपेड़ोंसे थककर वे खड़े हो गये ॥ २५ ॥

वालिमार्गादपाक्रामन् पर्वतेन्द्रापि गच्छतः ।
किं पुनर्जीवनप्रेप्सुर्बिभ्रद् वै मांसशोणितम् ॥ २६ ॥

वालीके मार्गसे उड़ते हुए बड़े-बड़े पर्वत भी हट जाते थे; फिर रक्त-मांसमय शरीर धारण करनेवाला और जीवनकी रक्षा चाहनेवाला प्राणी उनके मार्गसे हट जाय, इसके लिये तो कहना ही क्या है ॥ २६ ॥

अपक्षिगणसम्पातान् वानरेन्द्रो महाजवः ।
क्रमशः सागरान् सर्वान् संध्याकालमवन्दत ॥ २७ ॥

जितनी देरमें वाली समुद्रोंतक पहुँचते थे, उतनी देरमें तीव्रगामी पक्षियोंके समूह भी नहीं पहुँच पाते थे। उन महावेगशाली वानरराजने क्रमशः सभी समुद्रोंके तटपर पहुँचकर संध्या-वन्दन किया ॥ २७ ॥

सम्पूज्यमानो यातस्तु खचरैः खचरोत्तमः ।
पश्चिमं सागरं वाली आजगाम सरावणः ॥ २८ ॥

समुद्रोंकी यात्रा करते हुए आकाशचारियोंमें श्रेष्ठ वालीकी सभी खेचर प्राणी पूजा एवं प्रशंसा करते थे। वे रावणको बगलमें दबाये हुए पश्चिम समुद्रके तटपर आये ॥ २८ ॥

तस्मिन् संध्यामुपासित्वा स्नात्वा जप्त्वा च वानरः ।
उत्तरं सागरं प्रायाद् वहमानो दशाननम् ॥ २९ ॥

वहाँ स्नान, संध्योपासन और जप करके वे वानरवीर दशाननको लिये-दिये उत्तर समुद्रके तटपर जा पहुँचे ॥ २९ ॥

बहुयोजनसाहस्रं वहमानो महाहरिः ।
वायुवच्च मनोवच्च जगाम सह शत्रुणा ॥ ३० ॥

वायु और मनके समान वेगवाले वे महावानर वाली कई सहस्र योजनतक रावणको ढोते रहे। फिर अपने उस शत्रुके साथ ही वे उत्तर समुद्रके किनारे गये ॥ ३० ॥

उत्तरे सागरे संध्यामुपासित्वा दशाननम् ।
वहमानोऽगमद् वाली पूर्वं वै स महोदधिम् ॥ ३१ ॥

उत्तरसागरके तटपर संध्योपासना करके दशाननका भार वहन करते हुए वाली पूर्व दिशावर्ती महासागरके किनारे गये ॥ ३१ ॥

तत्रापि संध्यामन्वास्य वासविः स हरीश्वरः ।
किष्किन्धामभितो गृह्य रावणं पुनरागमत् ॥ ३२ ॥

वहाँ भी संध्योपासना सम्पन्न करके वे इन्द्रपुत्र वानरराज वाली दशमुख रावणको बगलमें दबाये फिर किष्किन्धापुरीके निकट आये ॥ ३२ ॥

चतुर्ष्वपि समुद्रेषु संध्यामन्वास्य वानरः ।
रावणोद्वहनश्रान्तः किष्किन्धोपवनेऽपतत् ॥ ३३ ॥

इस तरह चारों समुद्रोंमें संध्योपासनाका कार्य पूरा करके रावणको ढोनेके कारण थके हुए वानरराज वाली किष्किन्धाके उपवनमें आ पहुँचे ॥ ३३ ॥

रावणं तु मुमोचाथ स्वकक्षात् कपिसत्तमः ।
कुतस्त्वमिति चोवाच प्रहसन् रावणं मुहुः ॥ ३४ ॥

वहाँ आकर उन कपिश्रेष्ठने रावणको अपनी काँखसे छोड़ दिया और बारंबार हँसते हुए पूछा—'कहो जी, तुम कहाँसे आये हो' ॥ ३४ ॥

विस्मयं तु महद् गत्वा श्रमलोलनिरीक्षणः ।
राक्षसेन्द्रो हरीन्द्रं तमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

रावणकी आँखें श्रमके कारण चञ्चल हो रही थीं। वालीके इस अद्‌भुत पराक्रमको देखकर उसे महान् आश्चर्य हुआ और उस राक्षसराजने उन वानरराजसे इस प्रकार कहा— ॥

वानरेन्द्र महेन्द्राभ राक्षसेन्द्रोऽस्मि रावणः ।
युद्धेप्सुरिह सम्प्राप्तः स चाद्यासादितस्त्वया ॥ ३६ ॥

'महेन्द्रके समान पराक्रमी वानरेन्द्र ! मैं राक्षसेन्द्र रावण हूँ और युद्ध करनेकी इच्छासे यहाँ आया था, सो वह युद्ध तो आपसे मिल ही गया ॥ ३६ ॥

अहो बलमहो वीर्यमहो गाम्भीर्यमेव च । ✓
येनाहं पशुवद् गृह्य भ्रामितश्चतुरोऽर्णवान् ॥ ३७ ॥

'अहो ! आपमें अद्‌भुत बल है, अद्‌भुत पराक्रम है और आश्चर्यजनक गम्भीरता है। आपने मुझे पशुकी तरह पकड़कर चारों समुद्रोंपर घुमाया है ॥ ३७ ॥

एवमश्रान्तवद् वीर शीघ्रमेव च वानर ।
मां चैवोद्वहमानस्तु कोऽन्यो वीरो भविष्यति ॥ ३८ ॥

'वानरवीर ! तुम्हारे सिवा दूसरा कौन ऐसा शूरवीर होगा, जो मुझे इस प्रकार बिना थके-माँदे शीघ्रतापूर्वक ढो सके ॥ ३८ ॥

त्रयाणामेव भूतानां गतिरेषा प्लवङ्गम ।
मनोऽनिलसुपर्णानां तव चात्र न संशयः ॥ ३९ ॥

'वानरराज ! ऐसी गति तो मन, वायु और गरुड़—इन तीन भूतोंकी ही सुनी गयी है। निःसंदेह इस जगत्‌में चौथे आप भी ऐसे तीव्र वेगवाले हैं ॥ ३९ ॥

सोऽहं दृष्टबलस्तुभ्यमिच्छामि हरिपुङ्गव ।
त्वया सह चिरं सख्यं सुस्निग्धं पावकाग्रतः ॥ ४० ॥

'कपिश्रेष्ठ ! मैंने आपका बल देख लिया। अब मैं अग्निको साक्षी बनाकर आपके साथ सदाके लिये स्नेहपूर्ण मित्रता कर लेना चाहता हूँ ॥ ४० ॥

✓**दाराः पुत्राः पुरं राष्ट्रं भोगाच्छादनभोजनम् ।**
सर्वमेवाविभक्तं नौ भविष्यति हरीश्वर ॥ ४१ ॥

'वानरराज ! स्त्री, पुत्र, नगर, राज्य, भोग, वस्त्र और भोजन—इन सभी वस्तुओंपर हम दोनोंका साझेका अधिकार होगा' ॥ ४१ ॥

ततः प्रज्वालयित्वाग्निं तावुभौ हरिराक्षसौ ।
भ्रातृत्वमुपसम्पन्नौ परिष्वज्य परस्परम् ॥ ४२ ॥

तब वानरराज और राक्षसराज दोनोंने अग्नि प्रज्वलित करके एक दूसरेको हृदयसे लगाकर आपसमें भाईचारेका सम्बन्ध जोड़ा ॥ ४२ ॥

अन्योन्यं लम्बितकरौ ततस्तौ हरिराक्षसौ ।
किष्किन्धां विशतुर्हृष्टौ सिंहौ गिरिगुहामिव ॥ ४३ ॥

फिर वे दोनों वानर और राक्षस एक दूसरेका हाथ पकड़े बड़ी प्रसन्नताके साथ किष्किन्धापुरीके भीतर गये, मानो दो सिंह किसी गुफामें प्रवेश कर रहे हों ॥ ४३ ॥

स तत्र मासमुषितः सुग्रीव इव रावणः ।
अमात्यैरागतैर्नीतस्त्रैलोक्योत्सादनार्थिभिः ॥ ४४ ॥

रावण वहाँ सुग्रीवकी तरह सम्मानित हो महीनेभर रहा। फिर तीनों लोकोंको उखाड़ फेंकनेकी इच्छा रखनेवाले उसके मन्त्री आकर उसे लिवा ले गये ॥ ४४ ॥

एवमेतत् पुरा वृत्तं वालिना रावणः प्रभो ।
धर्षितश्च वृतश्चापि भ्राता पावकसंनिधौ ॥ ४५ ॥

प्रभो ! इस प्रकार यह घटना पहले घटित हो चुकी है। वालीने रावणको हराया और फिर अग्निके समीप उसे अपना भाई बना लिया ॥ ४५ ॥

बलमप्रतिमं राम वालिनोऽभवदुत्तमम् ।
सोऽपि त्वया विनिर्दग्धः शलभो वह्निना यथा ॥ ४६ ॥

श्रीराम ! वालीमें बहुत अधिक और अनुपम बल था, परंतु आपने उसको भी अपनी बाणाग्निसे उसी तरह दग्ध कर डाला, जैसे आग पतिंगेको जला देती है ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशः सर्गः

हनुमान्जीकी उत्पत्ति, शैशवावस्थामें इनका सूर्य, राहु और ऐरावतपर आक्रमण, इन्द्रके वज्रसे इनकी मूर्छा, वायुके कोपसे संसारके प्राणियोंको कष्ट और उन्हें प्रसन्न करनेके लिये देवताओंसहित ब्रह्माजीका उनके पास जाना

अपृच्छत तदा रामो दक्षिणाशाश्रयं मुनिम् ।
प्राञ्जलिर्विनयोपेत इदमाह वचोऽर्थवत् ॥ १ ॥

तब भगवान् श्रीरामने हाथ जोड़कर दक्षिण दिशामें निवास करनेवाले अगस्त्य मुनिसे विनयपूर्वक यह अर्थयुक्त बात कही— ॥ १ ॥

अतुलं बलमेतद् वै वालिनो रावणस्य च ।
न त्वेताभ्यां हनुमता समं त्विति मतिर्मम ॥ २ ॥

'महर्षे ! इसमें संदेह नहीं कि वाली और रावणके इस बलकी कहीं तुलना नहीं थी; परंतु मेरा ऐसा विचार है कि इन दोनोंका बल भी हनुमान्जीके बलकी बराबरी नहीं कर सकता था ॥ २ ॥

✓**शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम् ।**
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः ॥ ३ ॥

'शूरता, दक्षता, बल, धैर्य, बुद्धिमत्ता, नीति, पराक्रम और प्रभाव—इन सभी सद्गुणोंने हनुमान्जीके भीतर घर कर रक्खा है ॥ ३ ॥

दृष्ट्वैव सागरं वीक्ष्य सीदन्तीं कपिवाहिनीम् ।
समाश्वास्य महाबाहुर्योजनानां शतं प्लुतः ॥ ४ ॥

'समुद्रको देखते ही वानर-सेना घबरा उठी है—यह देख ये महाबाहु वीर उसे धैर्य बँधाकर एक ही छलाँगमें सौ योजन समुद्रको लाँघ गये ॥ ४ ॥

धर्षयित्वा पुरीं लङ्कां रावणान्तःपुरं तदा ।
दृष्टा सम्भाषिता चापि सीता ह्याश्वासिता तथा ॥ ५ ॥

'फिर लङ्कापुरीके आधिदैविक रूपको परास्त कर रावणके अन्तःपुरमें गये, सीताजीसे मिले, उनसे बातचीत की और उन्हें धैर्य बँधाया ॥ ५ ॥

सेनाग्रगा मन्त्रिसुताः किंकरा रावणात्मजः ।
एते हनुमता तत्र एकेन विनिपातिताः ॥ ६ ॥

'वहाँ अशोकवनमें इन्होंने अकेले ही रावणके सेनापतियों, मन्त्रिकुमारों, किंकरों तथा रावणपुत्र अक्षको मार गिराया ॥ ६ ॥

भूयो बन्धाद् विमुक्तेन भाषयित्वा दशाननम् ।
लङ्का भस्मीकृता येन पावकेनेव मेदिनी ॥ ७ ॥

'फिर ये मेघनादके नागपाशसे बँधे और स्वयं ही मुक्त हो गये। तत्पश्चात् इन्होंने रावणसे वार्तालाप किया। जैसे प्रलय-

कालकी आगने यह सारी पृथ्वी जलायी थी, उसी प्रकार लङ्कापुरीको जलाकर भस्म कर दिया ॥ ७ ॥

न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च ।
कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनूमतः ॥ ८ ॥

'युद्धमें हनुमान्‌जीके जो पराक्रम देखे गये हैं, वैसे वीरतापूर्ण कर्म न तो कालके, न इन्द्रके, न भगवान् विष्णुके और न वरुणके ही सुने जाते हैं ॥ ८ ॥

एतस्य बाहुवीर्येण लङ्का सीता च लक्ष्मणः ।
प्राप्ता मया जयश्चैव राज्यं मित्राणि बान्धवाः ॥ ९ ॥

'मुनीश्वर ! मैंने तो इन्हींके बाहु-बलसे विभीषणके लिये लङ्का, शत्रुओंपर विजय, अयोध्याका राज्य तथा सीता, लक्ष्मण, मित्र और बन्धुजनोंको प्राप्त किया है ॥ ९ ॥

हनूमान् यदि मे न स्याद् वानराधिपतेः सखा ।
प्रवृत्तिमपि को वेत्तुं जानक्याः शक्तिमान् भवेत् ॥ १० ॥

'यदि मुझे वानरराज सुग्रीवके सखा हनुमान् न मिलते तो जानकीका पता लगानेमें भी कौन समर्थ हो सकता था ? ॥

किमर्थं वाली चैतेन सुग्रीवप्रियकाम्यया ।
तदा वैरे समुत्पन्ने न दग्धो वीरुधो यथा ॥ ११ ॥

'जिस समय वाली और सुग्रीवमें विरोध हुआ, उस समय सुग्रीवका प्रिय करनेके लिये इन्होंने जैसे दावानल वृक्षको जला देता है, उसी प्रकार वालीको क्यों नहीं भस्म कर डाला ? यह समझमें नहीं आता ॥ ११ ॥

नहि वेदितवान् मन्ये हनूमानात्मनो बलम् ।
यद् दृष्टवाञ्जीवितेष्टं क्लिश्यन्तं वानराधिपम् ॥ १२ ॥

'मैं तो ऐसा मानता हूँ कि उस समय हनुमान्‌जीको अपने बलका पता ही नहीं था । इसीसे ये अपने प्राणोंसे भी प्रिय वानरराज सुग्रीवको कष्ट उठाते देखते रहे ॥ १२ ॥

एतन्मे भगवन् सर्वं हनूमति महामुने ।
विस्तरेण यथातत्त्वं कथयामरपूजित ॥ १३ ॥

'देववन्द्य महामुने ! भगवन् ! आप हनुमान्‌जीके विषयमें ये सब बातें यथार्थरूपसे विस्तारपूर्वक बताइये' ॥ १३ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा हेतुयुक्तमृषिस्ततः ।
हनूमतः समक्षं तमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ये युक्तियुक्त वचन सुनकर महर्षि अगस्त्यजी हनुमान्‌जीके सामने ही उनसे इस प्रकार बोले—॥

सत्यमेतद् रघुश्रेष्ठ यद् ब्रवीषि हनूमति ।
न बले विद्यते तुल्यो न गतौ न मतौ परः ॥ १५ ॥

'रघुकुलतिलक श्रीराम ! हनुमान्‌जीके विषयमें आप जो कुछ कहते हैं, यह सब सत्य ही है । बल, बुद्धि और गतिमें इनकी बराबरी करनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥ १५ ॥

अमोघशापैः शापस्तु दत्तोऽस्य मुनिभिः पुरा ।
न वेत्ता हि बलं सर्वं बली सन्नरिमर्दन ॥ १६ ॥

'शत्रुसूदन रघुनन्दन ! जिनका शाप कभी व्यर्थ नहीं जाता, ऐसे मुनियोंने पूर्वकालमें इन्हें यह शाप दे दिया था कि बल रहनेपर भी इनको अपने पूरे बलका पता नहीं रहेगा ॥

बाल्येऽप्येतेन यत् कर्म कृतं राम महाबल ।
तन्न वर्णयितुं शक्यमिति बाल्यतयास्यते ॥ १७ ॥

'महाबली श्रीराम ! इन्होंने बचपनमें भी जो महान् कर्म किया था, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । उन दिनों ये बालभावसे—अनजानकी तरह रहते थे ॥ १७ ॥

यदि वास्ति त्वभिप्रायः संश्रोतुं तव राघव ।
समाधाय मतिं राम निशामय वदाम्यहम् ॥ १८ ॥

'रघुनन्दन ! यदि हनुमान्‌जीका चरित्र सुननेके लिये आपकी हार्दिक इच्छा हो तो चित्तको एकाग्र करके सुनिये । मैं सारी बातें बता रहा हूँ ॥ १८ ॥

सूर्यदत्तवरस्वर्णः सुमेरुर्नाम पर्वतः ।
यत्र राज्यं प्रशास्त्यस्य केसरी नाम वै पिता ॥ १९ ॥

'भगवान् सूर्यके वरदानसे जिसका स्वरूप सुवर्णमय हो गया है, ऐसा एक सुमेरु नामसे प्रसिद्ध पर्वत है, जहाँ हनुमान्‌जीके पिता केसरी राज्य करते हैं ॥ १९ ॥

तस्य भार्या बभूवेष्टा अञ्जनेति परिश्रुता ।
जनयामास तस्यां वै वायुरात्मजमुत्तमम् ॥ २० ॥

'उनकी अञ्जना नामसे विख्यात प्रियतमा पत्नी थी । उसके गर्भसे वायुदेवने एक उत्तम पुत्रको जन्म दिया ॥ २० ॥

शालिशूकनिभाभासं प्रासूतेमं तदाञ्जना ।
फलान्याहर्तुकामा वै निष्क्रान्ता गहने वरा ॥ २१ ॥

'अञ्जनाने जब इनको जन्म दिया, उस समय इनकी अङ्ग-कान्ति जाड़ेमें पैदा होनेवाले धानके अग्रभागकी भाँति पिंगल वर्णकी थी । एक दिन माता अञ्जना फल लानेके लिये आश्रमसे निकलीं और गहन वनमें चली गयीं ॥ २१ ॥

एष मातुर्वियोगाच्च क्षुधया च भृशार्दितः ।
रुरोद शिशुरत्यर्थं शिशुः शरवणे यथा ॥ २२ ॥

'उस समय मातासे बिछुड़ जाने और भूखसे अत्यन्त पीड़ित होनेके कारण शिशु हनुमान् उसी तरह जोर-जोरसे रोने लगे, जैसे पूर्वकालमें सरकंडोंके वनके भीतर कुमार कार्तिकेय रोये थे ॥ २२ ॥

तदोद्यन्तं विवस्वन्तं जपापुष्पोत्करोपमम् ।
ददर्श फललोभाच्च ह्युत्पपात रविं प्रति ॥ २३ ॥

'इतनेहीमें इन्हें जपाकुसुमके समान लाल रंगवाले सूर्यदेव उदित होते दिखायी दिये । हनुमान्‌जीने उन्हें कोई फल समझा और ये उस फलके लोभसे सूर्यकी ओर उछले ॥ २३ ॥

बालार्काभिमुखो बालो बालार्क इव मूर्तिमान् ।
ग्रहीतुकामो बालार्कं प्लवतेऽम्बरमध्यगः ॥ २४ ॥

'बालसूर्यकी ओर मुँह किये मूर्तिमान् बालसूर्यके समान बालक हनुमान् बालसूर्यको पकड़नेकी इच्छासे आकाशमें उड़ते चले जा रहे थे ॥ २४ ॥

एतस्मिन् प्लवमाने तु शिशुभावे हनूमति ।
देवदानवयक्षाणां विस्मयः सुमहानभूत् ॥ २५ ॥

‘शैशवावस्थामें हनुमान्‌जी जब इस तरह उड़ रहे थे, उस समय उन्हें देखकर देवताओं, दानवों तथा यक्षोंको बड़ा विस्मय हुआ ॥ २५ ॥

नाप्येवं वेगवान् वायुर्गरुडो न मनस्तथा ।
यथायं वायुपुत्रस्तु क्रमतेऽम्बरमुत्तमम् ॥ २६ ॥

‘वे सोचने लगे—‘यह वायुका पुत्र जिस प्रकार ऊँचे आकाशमें वेगपूर्वक उड़ रहा है, ऐसा वेग न तो वायुमें है, न गरुड़में है और न मनमें ही है ॥ २६ ॥

यदि तावच्छिशोरस्य ईदृशो गतिविक्रमः ।
यौवनं बलमासाद्य कथं वेगो भविष्यति ॥ २७ ॥

‘‘यदि बाल्यावस्थामें ही इस शिशुका ऐसा वेग और पराक्रम है तो यौवनका बल पाकर इसका वेग कैसा होगा’ ॥

तमनुप्लवते वायुः प्लवन्तं पुत्रमात्मनः ।
सूर्यदाहभयाद् रक्षंस्तुषारचयशीतलः ॥ २८ ॥

‘अपने पुत्रको सूर्यकी ओर जाते देख उसे दाहके भयसे बचानेके लिये उस समय वायुदेव भी बर्फके ढेरकी भाँति शीतल होकर उसके पीछे-पीछे चलने लगे ॥ २८ ॥

बहुयोजनसाहस्रं क्रामन्नेव गतोऽम्बरम् ।
पितुर्बलाच्च बाल्याच्च भास्कराभ्याशमागतः ॥ २९ ॥

‘इस प्रकार बालक हनुमान् अपने और पिताके बलसे कई सहस्र योजन आकाशको लाँघते चले गये और सूर्यदेवके समीप पहुँच गये ॥ २९ ॥

शिशुरेष त्वदोषज्ञ इति मत्वा दिवाकरः ।
कार्यं चास्मिन् समायत्तमित्येवं न ददाह सः ॥ ३० ॥

‘सूर्यदेवने यह सोचकर कि अभी यह बालक है, इसे गुण-दोषका ज्ञान नहीं है और इसके अधीन देवताओंका भी बहुत-सा भावी कार्य है—इन्हें जलाया नहीं ॥ ३० ॥

यमेव दिवसं ह्येष ग्रहीतुं भास्करं प्लुतः ।
तमेव दिवसं राहुर्जिघृक्षति दिवाकरम् ॥ ३१ ॥

‘जिस दिन हनुमान्‌जी सूर्यदेवको पकड़नेके लिये उछले थे, उसी दिन राहु सूर्यदेवपर ग्रहण लगाना चाहता था ।३१।

अनेन च परामृष्टो राहुः सूर्यरथोपरि ।
अपक्रान्तस्ततस्त्रस्तो राहुश्चन्द्रार्कमर्दनः ॥ ३२ ॥

‘हनुमान्‌जीने सूर्यके रथके ऊपरी भागमें जब राहुका स्पर्श किया, तब चन्द्रमा और सूर्यका मर्दन करनेवाला राहु भयभीत हो वहाँसे भाग खड़ा हुआ ॥ ३२ ॥

इन्द्रस्य भवनं गत्वा सरोषः सिंहिकासुतः ।
अब्रवीद् भ्रुकुटिं कृत्वा देवं देवगणैर्वृतम् ॥ ३३ ॥

‘सिंहिकाका वह पुत्र रोषसे भरकर इन्द्रके भवनमें गया और देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रके सामने भौंहें टेढ़ी करके बोला—॥ ३३ ॥

बुभुक्षापनयं दत्त्वा चन्द्रार्कौ मम वासव ।
किमिदं तत् त्वया दत्तमन्यस्य बलवृत्रहन् ॥ ३४ ॥

‘‘बल और वृत्रासुरका वध करनेवाले वासव ! आपने चन्द्रमा और सूर्यको मुझे अपनी भूख दूर करनेके साधनके रूपमें दिया था; किंतु अब आपने उन्हें दूसरेके हवाले कर दिया है । ऐसा क्यों हुआ ? ॥ ३४ ॥

अद्याहं पर्वकाले तु जिघृक्षुः सूर्यमागतः ।
अथान्यो राहुरासाद्य जग्राह सहसा रविम् ॥ ३५ ॥

‘‘आज पर्व (अमावास्या) के समय मैं सूर्यदेवको ग्रस्त करनेकी इच्छासे गया था । इतनेहीमें दूसरे राहुने आकर सहसा सूर्यको पकड़ लिया’ ॥ ३५ ॥

स राहोर्वचनं श्रुत्वा वासवः सम्भ्रमान्वितः ।
उत्पपातासनं हित्वा उद्वहन् काञ्चनीं स्रजम् ॥ ३६ ॥

‘राहुकी यह बात सुनकर देवराज इन्द्र घबरा गये और सोनेकी माला पहने अपना सिंहासन छोड़कर उठ खड़े हुए ॥

ततः कैलासकूटाभं चतुर्दन्तं मदस्रवम् ।
शृङ्गारधारिणं प्रांशुं स्वर्णघण्टाट्टहासिनम् ॥ ३७ ॥
इन्द्रः करीन्द्रमारुह्य राहुं कृत्वा पुरःसरम् ।
प्रायाद् यत्राभवत् सूर्यः सहानेन हनूमता ॥ ३८ ॥

‘फिर कैलास-शिखरके समान उज्ज्वल, चार दाँतोंसे विभूषित, मदकी धारा बहानेवाले, भाँति-भाँतिके शृङ्गारसे युक्त, बहुत ही ऊँचे और सुवर्णमयी घण्टाके नादरूप अट्टहास करनेवाले गजराज ऐरावतपर आरूढ़ हो देवराज इन्द्र राहुको आगे करके उस स्थानपर गये, जहाँ हनुमान्‌जीके साथ सूर्यदेव विराजमान थे ॥ ३७-३८ ॥

अथातिरभसेनागाद् राहुरुत्सृज्य वासवम् ।
अनेन च स वै दृष्टः प्रधावञ्शैलकूटवत् ॥ ३९ ॥

‘इधर राहु इन्द्रको छोड़कर बड़े वेगसे आगे बढ़ गया । इसी समय पर्वत-शिखरके समान आकारवाले दौड़ते हुए राहुको हनुमान्‌जीने देखा ॥ ३९ ॥

ततः सूर्यं समुत्सृज्य राहुं फलमवेक्ष्य च ।
उत्पपात पुनर्व्योम ग्रहीतुं सिंहिकासुतम् ॥ ४० ॥

‘तब राहुको ही फलके रूपमें देखकर बालक हनुमान् सूर्यदेवको छोड़ उस सिंहिकापुत्रको ही पकड़नेके लिये पुनः आकाशमें उछले ॥ ४० ॥

उत्सृज्यार्कमिमं राम प्रधावन्तं प्लवङ्गमम् ।
अवेक्ष्यैवं परावृत्तो मुखशेषः पराङ्मुखः ॥ ४१ ॥

‘श्रीराम ! सूर्यको छोड़कर अपनी ओर धावा करनेवाले इन वानर हनुमान्‌को देखते ही राहु जिसका मुखमात्र ही शेष था, पीछेकी ओर मुड़कर भागा ॥ ४१ ॥

इन्द्रमाशंसमानस्तु त्रातारं सिंहिकासुतः ।
इन्द्र इन्द्रेति संत्रासान्मुहुर्मुहुरभाषत ॥ ४२ ॥

‘उस समय सिंहिकापुत्र राहु अपने रक्षक इन्द्रसे ही

अपनी रक्षाके लिये कहता हुआ भयके मारे बारंबार 'इन्द्र ! इन्द्र !' की पुकार मचाने लगा ॥ ४२ ॥

राहोर्विक्रोशमानस्य प्रागेवालक्षितं स्वरम्।
श्रुत्वेन्द्रोवाच मा भैषीरहमेनं निषूदये ॥ ४३ ॥

'चीखते हुए राहुके स्वरको जो पहलेका पहचाना हुआ था, सुनकर इन्द्र बोले—'डरो मत। मैं इस आक्रमणकारीको मार डालूँगा' ॥ ४३ ॥

ऐरावतं ततो दृष्ट्वा महत्तदिदमित्यपि।
फलं तं हस्तिराजानमभिदुद्राव मारुतिः ॥ ४४ ॥

'तत्पश्चात् ऐरावतको देखकर इन्होंने उसे भी एक विशाल फल समझा और उस गजराजको पकड़नेके लिये ये उसकी ओर दौड़े ॥ ४४ ॥

तथास्य धावतो रूपमैरावतजिघृक्षया।
मुहूर्तमभवद् घोरमिन्द्राग्न्योरिव भास्वरम् ॥ ४५ ॥

'ऐरावतको पकड़नेकी इच्छासे दौड़ते हुए हनुमान्‌जीका रूप दो घड़ीके लिये इन्द्र और अग्निके समान प्रकाशमान एवं भयंकर हो गया ॥ ४५ ॥

एवमाधावमानं तु नातिक्रुद्धः शचीपतिः।
हस्तान्तादतिमुक्तेन कुलिशेनाभ्यताडयत् ॥ ४६ ॥

'बालक हनुमान्‌को देखकर शचीपति इन्द्रको अधिक क्रोध नहीं हुआ। फिर भी इस प्रकार धावा करते हुए इन बालक वानरपर उन्होंने अपने हाथसे छूटे हुए वज्रके द्वारा प्रहार किया ॥ ४६ ॥

ततो गिरौ पपातैष इन्द्रवज्राभिताडितः।
पतमानस्य चैतस्य वामा हनुरभज्यत ॥ ४७ ॥

'इन्द्रके वज्रकी चोट खाकर ये एक पहाड़पर गिरे। वहाँ गिरते समय इनकी बायीं ठुड्डी टूट गयी ॥ ४७ ॥

तस्मिंस्तु पतिते चापि वज्रताडनविह्वले।
चुक्रोधेन्द्राय पवनः प्रजानामहिताय सः ॥ ४८ ॥

'वज्रके आघातसे व्याकुल होकर इनके गिरते ही वायुदेव इन्द्रपर कुपित हो उठे। उनका यह क्रोध प्रजाजनोंके लिये अहितकारक हुआ ॥ ४८ ॥

प्रचारं स तु संगृह्य प्रजास्वन्तर्गतः प्रभुः।
गुहां प्रविष्टः स्वसुतं शिशुमादाय मारुतः ॥ ४९ ॥

'सामर्थ्यशाली मारुतने समस्त प्रजाके भीतर रहकर भी वहाँ अपनी गति समेट ली—श्वास आदिके रूपमें संचार रोक दिया और अपने शिशुपुत्र हनुमान्‌को लेकर वे पर्वतकी गुफामें घुस गये ॥ ४९ ॥

विण्मूत्राशयमावृत्य प्रजानां परमार्तकृत्।
रुरोध सर्वभूतानि यथा वर्षाणि वासवः ॥ ५० ॥

'जैसे इन्द्र वर्षा रोक देते हैं, उसी प्रकार वे वायुदेव प्रजाजनोंके मलाशय और मूत्राशयको रोककर उन्हें बड़ी पीड़ा देने लगे। उन्होंने सम्पूर्ण भूतोंके प्राण-संचारका अवरोध कर दिया ॥ ५० ॥

वायुप्रकोपाद् भूतानि निरुच्छ्वासानि सर्वतः।
संधिभिर्भिद्यमानैश्च काष्ठभूतानि जज्ञिरे ॥ ५१ ॥

'वायुके प्रकोपसे समस्त प्राणियोंकी साँस बंद होने लगी। उनके सभी अङ्गोंके जोड़ टूटने लगे और वे सब-के-सब काठके समान चेष्टाशून्य हो गये ॥ ५१ ॥

निःस्वाध्यायवषट्कारं निष्क्रियं धर्मवर्जितम्।
वायुप्रकोपात् त्रैलोक्यं निरयस्थमिवाभवत् ॥ ५२ ॥

'तीनों लोकोंमें न कहीं वेदोंका स्वाध्याय होता था और न यज्ञ। सारे धर्म-कर्म बंद हो गये। त्रिभुवनके प्राणी ऐसे कष्ट पाने लगे, मानो नरकमें गिर गये हों ॥ ५२ ॥

ततः प्रजाः सगन्धर्वाः सदेवासुरमानुषाः।
प्रजापतिं समाधावन् दुःखिताश्च सुखेच्छया ॥ ५३ ॥

'तब गन्धर्व, देवता, असुर और मनुष्य आदि सभी प्रजा व्यथित हो सुख पानेकी इच्छासे प्रजापति ब्रह्माजीके पास दौड़ी गयी ॥ ५३ ॥

ऊचुः प्राञ्जलयो देवा महोदरनिभोदराः।
त्वया तु भगवन् सृष्टाः प्रजा नाथ चतुर्विधाः ॥ ५४ ॥
त्वया दत्तोऽयमस्माकमायुषः पवनः पतिः।
सोऽस्मान् प्राणेश्वरो भूत्वा कस्मादेषोऽद्य सत्तम ॥ ५५ ॥
रुरोध दुःखं जनयन्नन्तःपुर इव स्त्रियः।

'उस समय देवताओंके पेट इस तरह फूल गये थे, मानो उन्हें महोदरका रोग हो गया हो। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! स्वामिन्! आपने चार प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टि की है। आपने हम सबको हमारी आयुके अधिपतिके रूपमें वायुदेवको अर्पित किया है। साधुशिरोमणे! ये पवन-देव हमारे प्राणोंके ईश्वर हैं तो भी क्या कारण है कि आज इन्होंने अन्तःपुरमें स्त्रियोंकी भाँति हमारे शरीरके भीतर अपने संचारको रोक दिया है और इस प्रकार ये हमारे लिये दुःखजनक हो गये हैं ॥ ५४-५५½ ॥

तस्मात् त्वां शरणं प्राप्ता वायुनोपहता वयम् ॥ ५६ ॥
वायुसंरोधजं दुःखमिदं नो नुद दुःखहन्।

''वायुसे पीड़ित होकर आज हमलोग आपकी शरणमें आये हैं। दुःखहारी प्रजापते! आप हमारे इस वायुरोधजनित दुःखको दूर कीजिये' ॥ ५६½ ॥

एतत् प्रजानां श्रुत्वा तु प्रजानाथः प्रजापतिः ॥ ५७ ॥
कारणादिति चोक्त्वासौ प्रजाः पुनरभाषत।

'प्रजाजनोंकी यह बात सुनकर उनके पालक और रक्षक ब्रह्माजीने कहा—'इसमें कुछ कारण है' ऐसा कहकर वे प्रजाजनोंसे फिर बोले—॥ ५७½ ॥

यस्मिंश्च कारणे वायुश्चुक्रोध च रुरोध च ॥ ५८ ॥
प्रजाः शृणुध्वं तत् सर्वं श्रोतव्यं चात्मनः क्षमम्।

''प्रजाओ! जिस कारणको लेकर वायुदेवताने क्रोध और अपनी गतिका अवरोध किया है, उसे बताता हूँ, सुनो। वह कारण तुम्हारे सुनने योग्य और उचित है ॥ ५८½ ॥

पुत्रस्तस्यामरेशेन इन्द्रेणाद्य निपातितः ॥ ५९ ॥
राहोर्वचनमास्थाय ततः स कुपितोऽनिलः ।

''आज देवराज इन्द्रने राहुकी बात सुनकर वायुके पुत्रको मार गिराया है, इसीलिये वे कुपित हो उठे हैं ॥ ५९½ ॥

अशरीरः शरीरेषु वायुश्चरति पालयन् ॥ ६० ॥
शरीरं हि विना वायुं समतां याति दारुभिः ।

''वायुदेव स्वयं शरीर धारण न करके समस्त शरीरोंमें उनकी रक्षा करते हुए विचरते हैं। वायुके बिना यह शरीर सूखे काठके समान हो जाता है ॥ ६०½ ॥

वायुः प्राणः सुखं वायुर्वायुः सर्वमिदं जगत् ॥ ६१ ॥
वायुना सम्परित्यक्तं न सुखं विन्दते जगत् ।

''वायु ही सबका प्राण है। वायु ही सुख है और वायु ही यह सम्पूर्ण जगत् है। वायुसे परित्यक्त होकर जगत् कभी सुख नहीं पा सकता ॥ ६१½ ॥

अद्यैव च परित्यक्तं वायुना जगदायुषा ॥ ६२ ॥
अद्यैव ते निरुच्छ्वासाः काष्ठकुड्योपमाः स्थिताः ।

''वायु ही जगत्‌की आयु है। इस समय वायुने संसारके प्राणियोंको त्याग दिया है, इसलिये वे सब-के-सब निष्प्राण होकर काठ और दीवारके समान हो गये हैं ॥ ६२½ ॥

तद् यामस्तत्र यत्रास्ते मारुतो रुक्प्रदो हि नः ।
मा विनाशं गमिष्याम अप्रसाद्यादितेः सुताः ॥ ६३ ॥

''अदिति-पुत्रो! अतः अब हमें उस स्थानपर चलना चाहिये, जहाँ हम सबको पीड़ा देनेवाले वायुदेव छिपे बैठे हैं। कहीं ऐसा न हो कि उन्हें प्रसन्न किये बिना हम सबका विनाश हो जाय' ॥ ६३ ॥

ततः प्रजाभिः सहितः प्रजापतिः
सदेवगन्धर्वभुजङ्गगुह्यकैः ।
जगाम तत्रास्यति यत्र मारुतः
सुतं सुरेन्द्राभिहतं प्रगृह्य सः ॥ ६४ ॥

'तदनन्तर देवता, गन्धर्व, नाग और गुह्यक आदि प्रजाओंको साथ ले प्रजापति ब्रह्माजी उस स्थानपर गये, जहाँ वायुदेव इन्द्रद्वारा मारे गये अपने पुत्रको लेकर बैठे हुए थे ॥ ६४ ॥

ततोऽर्कवैश्वानरकाञ्चनप्रभं
सुतं तदोत्सङ्गगतं सदागतेः ।
चतुर्मुखो वीक्ष्य कृपामथाकरोत्
सदेवगन्धर्वऋषियक्षराक्षसैः ॥ ६५ ॥

'तत्पश्चात् चतुर्मुख ब्रह्माजीने देवताओं, गन्धर्वों, ऋषियों तथा यक्षोंके साथ वहाँ पहुँचकर वायुदेवताकी गोदमें सोये हुए उनके पुत्रको देखा, जिसकी अङ्गकान्ति सूर्य, अग्नि और सुवर्णके समान प्रकाशित हो रही थी। उसकी वैसी दशा देखकर ब्रह्माजीको उसपर बड़ी दया आयी' ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः

ब्रह्मा आदि देवताओंका हनुमान्‌जीको जीवित करके नाना प्रकारके वरदान देना और वायुका उन्हें लेकर अञ्जनाके घर जाना, ऋषियोंके शापसे हनुमान्‌जीको अपने बलकी विस्मृति, श्रीरामका अगस्त्य आदि ऋषियोंसे अपने यज्ञमें पधारनेके लिये प्रस्ताव करके उन्हें विदा देना

ततः पितामहं दृष्ट्वा वायुः पुत्रवधार्दितः ।
शिशुकं तं समादाय उत्तस्थौ धातुरग्रतः ॥ १ ॥

'पुत्रके मारे जानेसे वायुदेवता बहुत दुखी थे। ब्रह्माजीको देखकर वे उस शिशुको लिये हुए ही उनके आगे खड़े हो गये ॥ १ ॥

चलकुण्डलमौलिस्रक् तपनीयविभूषणः ।
पादयोर्न्यपतद् वायुस्त्रिरुपस्थाय वेधसे ॥ २ ॥

'उनके कानोंमें कुण्डल हिल रहे थे, माथेपर मुकुट और कण्ठमें हार शोभा दे रहे थे और वे सोनेके आभूषणोंसे विभूषित थे। वायुदेवता तीन बार उपस्थान करके ब्रह्माजीके चरणोंमें गिर पड़े ॥ २ ॥

तं तु वेदविदा तेन लम्बाभरणशोभिना ।
वायुमुत्थाप्य हस्तेन शिशुं तं परिमृष्टवान् ॥ ३ ॥

'वेदवेत्ता ब्रह्माजीने अपने लम्बे, फैले हुए और आभरण-भूषित हाथसे वायुदेवताको उठाकर खड़ा किया तथा उनके उस शिशुपर भी हाथ फेरा ॥ ३ ॥

स्पृष्टमात्रस्ततः सोऽथ सलीलं पद्मजन्मना ।
जलसिक्तं यथा सस्यं पुनर्जीवितमाप्तवान् ॥ ४ ॥

'जैसे पानीसे सींच देनेपर सूखती हुई खेती हरी हो जाती है, उसी प्रकार कमलयोनि ब्रह्माजीके हाथका लीलापूर्वक स्पर्श पाते ही शिशु हनुमान् पुनः जीवित हो गये ॥

प्राणवन्तमिमं दृष्ट्वा प्राणो गन्धवहो मुदा ।
चचार सर्वभूतेषु संनिरुद्धं यथा पुरा ॥ ५ ॥

'हनुमान्‌को जीवित हुआ देख जगत्‌के प्राणस्वरूप गन्ध-

वाहन वायुदेव समस्त प्राणियोंके भीतर अवरुद्ध हुए प्राण आदिका पूर्ववत् प्रसन्नतापूर्वक संचार करने लगे ॥ ५ ॥

मरुद्रोधाद् विनिर्मुक्तास्ताः प्रजा मुदिताऽभवन् ।
शीतवातविनिर्मुक्ताः पद्मिन्य इव साम्बुजाः ॥ ६ ॥

वायुके अवरोधसे छूटकर सारी प्रजा प्रसन्न हो गयी। ठीक उसी तरह, जैसे हिमयुक्त वायुके आघातसे मुक्त होकर खिले हुए कमलोंसे युक्त पुष्करिणियाँ सुशोभित होने लगती हैं ॥ ६ ॥

ततस्त्रियुग्मस्त्रिककुत् त्रिधामा त्रिदशार्चितः ।
उवाच देवता ब्रह्मा मारुतप्रियकाम्यया ॥ ७ ॥

तदनन्तर तीन युग्मोंसे सम्पन्न, प्रधानतः तीन मूर्ति धारण करनेवाले, त्रिलोकरूपी गृहमें रहनेवाले तथा तीन दशाओंसे युक्त देवताओंद्वारा पूजित ब्रह्माजी वायुदेवताका प्रिय करनेकी इच्छासे देवगणोंसे बोले—॥ ७ ॥

भो महेन्द्राग्निवरुणा महेश्वरधनेश्वराः ।
जानतामपि वः सर्वं वक्ष्यामि श्रूयतां हितम् ॥ ८ ॥

'इन्द्र, अग्नि, वरुण, महादेव और कुबेर आदि देवताओ! यद्यपि आप सब लोग जानते हैं तथापि मैं आपलोगोंके हितकी सारी बातें बताऊँगा; सुनिये ॥ ८ ॥

अनेन शिशुना कार्यं कर्तव्यं वो भविष्यति ।
तद् ददध्वं वरान् सर्वे मारुतस्यास्य तुष्टये ॥ ९ ॥

'इस बालकके द्वारा भविष्यमें आपलोगोंके बहुत-से कार्य सिद्ध होंगे, अतः वायुदेवताकी प्रसन्नताके लिये आप सब लोग इसे वर दें' ॥ ९ ॥

ततः सहस्रनयनः प्रीतियुक्तः शुभाननः ।
कुशेशयमयीं मालामुत्क्षिप्येदं वचोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

तब सुन्दर मुखवाले सहस्र नेत्रधारी इन्द्रने शिशु हनुमान्‌के गलेमें बड़ी प्रसन्नताके साथ कमलोंकी माला पहना दी और यह बात कही—॥ १० ॥

मत्करोत्सृष्टवज्रेण हनुरस्य यथा हतः ।
नाम्ना वै कपिशार्दूलो भविता हनुमानिति ॥ ११ ॥

'मेरे हाथसे छूटे हुए वज्रके द्वारा इस बालककी हनु (ठुड्डी) टूट गयी थी; इसलिये इस कपिश्रेष्ठका नाम 'हनुमान्' होगा ॥ ११ ॥

अहमस्य प्रदास्यामि परमं वरमद्भुतम् ।
इतःप्रभृति वज्रस्य ममावध्यो भविष्यति ॥ १२ ॥

'इसके सिवा मैं इसे दूसरा अद्भुत वर यह देता हूँ कि आजसे यह मेरे वज्रके द्वारा भी नहीं मारा जा सकेगा' ॥

मार्तण्डस्त्वब्रवीत् तत्र भगवांस्तिमिरापहः ।
तेजसोऽस्य मदीयस्य ददामि शतिकां कलाम् ॥ १३ ॥

इसके बाद वहाँ अन्धकारनाशक भगवान् सूर्यने कहा—'मैं इसे अपने तेजका सौवाँ भाग देता हूँ ॥ १३ ॥

यदा च शास्त्राण्यध्येतुं शक्तिरस्य भविष्यति ।
तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति ।
न चास्य भविता कश्चित् सदृशः शास्त्रदर्शने ॥ १४ ॥ ✓

'इसके सिवा जब इसमें शास्त्राध्ययन करनेकी शक्ति आ जायगी, तब मैं ही इसे शास्त्रोंका ज्ञान प्रदान करूँगा, जिससे यह अच्छा वक्ता होगा। शास्त्रज्ञानमें कोई भी इसकी समानता करनेवाला न होगा' ॥ १४ ॥

वरुणश्च वरं प्रादान्नास्य मृत्युर्भविष्यति ।
वर्षायुतशतेनापि मत्पाशादुदकादपि ॥ १५ ॥

तत्पश्चात् वरुणने वर देते हुए कहा—दस लाख वर्षोंकी आयु हो जानेपर भी मेरे पाश और जलसे इस बालककी मृत्यु नहीं होगी' ॥ १५ ॥

यमो दण्डादवध्यत्वमरोगत्वं च दत्तवान् ।
वरं ददामि संतुष्ट अविषादं च संयुगे ॥ १६ ॥
गदेयं मामिका नैनं संयुगेषु वधिष्यति ।
इत्येवं धनदः प्राह तदा ह्येकाक्षिपिङ्गलः ॥ १७ ॥

फिर यमने वर दिया—'यह मेरे दण्डसे अवध्य और नीरोग होगा।' तदनन्तर पिंगलवर्णकी एक आँखवाले कुबेरने कहा—'मैं संतुष्ट होकर यह वर देता हूँ कि युद्धमें कभी इसे विषाद न होगा तथा मेरी यह गदा संग्राममें इसका वध न कर सकेगी' ॥ १६-१७ ॥

मत्तो मदायुधानां च अवध्योऽयं भविष्यति ।
इत्येवं शंकरेणापि दत्तोऽस्य परमो वरः ॥ १८ ॥

इसके बाद भगवान् शंकरने यह उत्तम वर दिया कि 'यह मेरे और मेरे आयुधोंके द्वारा भी अवध्य होगा' ॥ १८ ॥

विश्वकर्मा च दृष्ट्वेमं बालसूर्योपमं शिशुम् ।
शिल्पिनां प्रवरः प्रादाद् वरमस्य महामतिः ॥ १९ ॥

शिल्पियोंमें श्रेष्ठ परम बुद्धिमान् विश्वकर्माने बालसूर्यके समान अरुण कान्तिवाले उस शिशुको देखकर उसे इस प्रकार वर दिया—॥ १९ ॥

मत्कृतानि च शस्त्राणि यानि दिव्यानि तानि च ।
तैरवध्यत्वमापन्नश्चिरजीवी भविष्यति ॥ २० ॥

'मेरे बनाये हुए जितने दिव्य अस्त्र-शस्त्र हैं, उनसे अवध्य होकर यह बालक चिरंजीवी होगा' ॥ २० ॥

दीर्घायुश्च महात्मा च ब्रह्मा तं प्राब्रवीद् वचः ।
सर्वेषां ब्रह्मदण्डानामवध्योऽयं भविष्यति ॥ २१ ॥

अन्तमें ब्रह्माजीने उस बालकको लक्ष्य करके कहा—'यह दीर्घायु, महात्मा तथा सब प्रकारके ब्रह्मदण्डोंसे अवध्य होगा' ॥ २१ ॥

---

१. तीन युग्मोंका तात्पर्य यहाँ छः प्रकारके ऐश्वर्यसे है। ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—ये ही छः प्रकारके ऐश्वर्य हैं।

२. ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये ही तीन मूर्तियाँ हैं।

३. बाल्य, पौगण्ड तथा कैशोर—ये ही देवताओंकी तीन अवस्थाएँ हैं।

ततः सुराणां तु वरैर्दृष्ट्वा ह्येनमलंकृतम् ।
चतुर्मुखस्तुष्टमना वायुमाह जगद्गुरुः ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् हनुमान्‌जीको इस प्रकार देवताओंके वरोंसे अलंकृत देख चार मुखोंवाले जगद्गुरु ब्रह्माजीका मन प्रसन्न हो गया और वे वायुदेवसे बोले—॥ २२ ॥

अमित्राणां भयकरो मित्राणामभयंकरः ।
अजेयो भविता पुत्रस्तव मारुत मारुतिः ॥ २३ ॥

'मारुत ! तुम्हारा यह पुत्र मारुति शत्रुओंके लिये भयंकर और मित्रोंके लिये अभयदाता होगा । युद्धमें कोई भी इसे जीत न सकेगा ॥ २३ ॥

कामरूपः कामचारी कामगः प्लवता वरः ।
भवत्यव्याहतगतिः कीर्तिमांश्च भविष्यति ॥ २४ ॥

'यह इच्छानुसार रूप धारण कर सकेगा, जहाँ चाहेगा जा सकेगा । इसकी गति इसकी इच्छाके अनुसार तीव्र या मन्द होगी तथा वह कहीं भी रुक नहीं सकेगी । यह कपिश्रेष्ठ बड़ा यशस्वी होगा ॥ २४ ॥

रावणोत्सादनार्थानि रामप्रीतिकराणि च ।
रोमहर्षकराण्येव कर्ता कर्माणि संयुगे ॥ २५ ॥

'यह युद्धस्थलमें रावणका संहार और भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्नताका सम्पादन करनेवाले अनेक अद्भुत एवं रोमाञ्चकारी कर्म करेगा' ॥ २५ ॥

एवमुक्त्वा तमामन्त्र्य मारुतं त्वमरैः सह ।
यथागतं ययुः सर्वे पितामहपुरोगमाः ॥ २६ ॥

इस प्रकार हनुमान्‌जीको वर देकर वायुदेवताकी अनुमति ले ब्रह्मा आदि सब देवता जैसे आये थे, उसी तरह अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ २६ ॥

सोऽपि गन्धवहः पुत्रं प्रगृह्य गृहमानयत् ।
अञ्जनायास्तमाख्याय वरदत्तं विनिर्गतः ॥ २७ ॥

गन्धवाहन वायु भी पुत्रको लेकर अञ्जनाके घर आये और उसे देवताओंके दिये हुए वरदानकी बात बताकर चले गये ॥ २७ ॥

प्राप्य राम वरानेष वरदानबलान्वितः ।
जवेनात्मनि संस्थेन सोऽसौ पूर्ण इवार्णवः ॥ २८ ॥

श्रीराम ! इस प्रकार ये हनुमान्‌जी बहुत-से वर पाकर वरदानजनित शक्तिसे सम्पन्न हो गये और अपने भीतर विद्यमान अनुपम वेगसे पूर्ण हो भरे हुए महासागरके समान शोभा पाने लगे ॥ २८ ॥

तरसा पूर्यमाणोऽपि तदा वानरपुङ्गवः ।
आश्रमेषु महर्षीणामपराध्यति निर्भयः ॥ २९ ॥

उन दिनों वेगसे भरे हुए ये वानरशिरोमणि हनुमान् निर्भय हो महर्षियोंके आश्रमोंमें जा-जाकर उपद्रव किया करते थे ॥ २९ ॥

स्रुग्भाण्डान्यग्निहोत्राणि वल्कलानां च संचयान् ।
भग्नविच्छिन्नविध्वस्तान् संशान्तानां करोत्ययम् ॥ ३० ॥

ये शान्तचित्त महात्माओंके यज्ञोपयोगी पात्र फोड़ डालते, अग्निहोत्रके साधनभूत स्रुक्, स्रुवा आदिको तोड़ डालते और ढेर-के-ढेर रखे गये वल्कलोंको चीर-फाड़ देते थे ॥ ३० ॥

एवंविधानि कर्माणि प्रावर्तत महाबलः ।
सर्वेषां ब्रह्मदण्डानामवध्यः शम्भुना कृतः ॥ ३१ ॥
जानन्त ऋषयः सर्वे सहन्ते तस्य शक्तितः ।

महाबली पवनकुमार इस तरहके उपद्रवपूर्ण कार्य करने लगे । कल्याणकारी भगवान् ब्रह्माने इन्हें सब प्रकारके ब्रह्मदण्डोंसे अवध्य कर दिया है—यह बात सभी ऋषि जानते थे; अतः इनकी शक्तिसे विवश हो वे इनके सारे अपराध चुपचाप सह लेते थे ॥ ३१½ ॥

तथा केसरिणा त्वेष वायुना सोऽञ्जनीसुतः ॥ ३२ ॥
प्रतिषिद्धोऽपि मर्यादां लङ्घयत्येव वानरः ।

यद्यपि केसरी तथा वायुदेवताने भी इन अञ्जनीकुमारको बारंबार मना किया तो भी ये वानरवीर मर्यादाका उल्लङ्घन कर ही देते थे ॥ ३२½ ॥

ततो महर्षयः क्रुद्धा भृग्वङ्गिरसवंशजाः ॥ ३३ ॥
शेपुरेनं रघुश्रेष्ठ नातिक्रुद्धातिमन्यवः ।

इससे भृगु और अङ्गिराके वंशमें उत्पन्न हुए महर्षि कुपित हो उठे । रघुश्रेष्ठ ! उन्होंने अपने हृदयमें अधिक खेद पा दुःखको स्थान न देकर इन्हें शाप देते हुए कहा—॥

बाधसे यत् समाश्रित्य बलमस्मान् प्लवङ्गम ॥ ३४ ॥
तद् दीर्घकालं वेत्तासि नास्माकं शापमोहितः ।
यदा ते स्मार्यते कीर्तिस्तदा ते वर्धते बलम् ॥ ३५ ॥

'वानरवीर ! तुम जिस बलका आश्रय लेकर हमें सता रहे हो, उसे हमारे शापसे मोहित होकर तुम दीर्घकालतक भूले रहोगे—तुम्हें अपने बलका पता ही नहीं चलेगा । जब कोई तुम्हें तुम्हारी कीर्तिका स्मरण दिला देगा, तभी तुम्हारा बल बढ़ेगा' ॥ ३४-३५ ॥

ततस्तु हृततेजौजा महर्षिवचनौजसा ।
एषोऽऽश्रमाणि तान्येव मृदुभावं गतोऽचरत् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार महर्षियोंके इस वचनके प्रभावसे इनका तेज और ओज घट गया । फिर ये उन्हीं आश्रमोंमें मृदुल प्रकृतिके होकर विचरने लगे ॥ ३६ ॥

अथर्क्षरजसो नाम वालिसुग्रीवयोः पिता ।
सर्ववानरराजासीत् तेजसा इव भास्करः ॥ ३७ ॥

वाली और सुग्रीवके पिताका नाम ऋक्षरजा था । वे सूर्यके समान तेजस्वी तथा समस्त वानरोंके राजा थे ॥ ३७ ॥

स तु राज्यं चिरं कृत्वा वानराणां महेश्वरः ।
ततस्त्वृक्षरजा नाम कालधर्मेण योजितः ॥ ३८ ॥

वे वानरराज ऋक्षरजा चिरकालतक वानरोंके राज्यका शासन करके अन्तमें कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्त हुए ॥

तस्मिन्नस्तमिते चाथ मन्त्रिभिर्मन्त्रकोविदैः ।
पित्र्ये पदे कृतो वाली सुग्रीवो वालिनः पदे ॥ ३९ ॥ ✓

उनका देहावसान हो जानेपर मन्त्रवेत्ता मन्त्रियोंने पिताके स्थानपर वालीको राजा और वालीके स्थानपर सुग्रीवको युवराज बनाया ॥ ३९ ॥

सुग्रीवेण समं त्वस्य अद्वैधं छिद्रवर्जितम् ।
आबाल्यं सख्यमभवदनिलस्याग्निना यथा ॥ ४० ॥

जैसे अग्निके साथ वायुकी स्वाभाविक मित्रता है, उसी प्रकार सुग्रीवके साथ वालीका बचपनसे ही सख्यभाव था। उन दोनोंमें परस्पर किसी प्रकारका भेदभाव नहीं था। उनमें अटूट प्रेम था ॥ ४० ॥

एष शापवशादेव न वेद बलमात्मनः ।
वालिसुग्रीवयोर्वैरं यदा राम समुत्थितम् ॥ ४१ ॥
न ह्येष राम सुग्रीवो भ्राम्यमाणोऽपि वालिना ।
देव जानाति न ह्येष बलमात्मनि मारुतिः ॥ ४२ ॥

श्रीराम ! फिर जब वाली और सुग्रीवमें वैर उठ खड़ा हुआ, उस समय ये हनुमान्‌जी शापवश ही अपने बलको न जान सके । देव ! वालीके भयसे भटकते रहनेपर भी न तो इन सुग्रीवको इनके बलका स्मरण हुआ और न स्वयं ये पवनकुमार ही अपने बलका पता पा सके ॥ ४१-४२ ॥

ऋषिशापाहृतबलस्तदैव कपिसत्तमः ।
सिंहः कुञ्जररुद्धो वा आस्थितः सहितो रणे ॥ ४३ ॥

सुग्रीवके ऊपर जब वह विपत्ति आयी थी, उन दिनों ऋषियोंके शापके कारण इनको अपने बलका ज्ञान भूल गया था, इसीलिये जैसे कोई सिंह हाथीके द्वारा अवरुद्ध होकर चुपचाप खड़ा रहे, उसी प्रकार ये वाली और सुग्रीवके युद्धमें चुपचाप खड़े-खड़े तमाशा देखते रहे, कुछ कर न सके ॥

पराक्रमोत्साहमतिप्रताप-
सौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च ।
गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यै-
र्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके ॥ ४४ ॥

संसारमें ऐसा कौन है जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति-अनीतिके विवेक, गम्भीरता, चतुरता, उत्तम बल और धैर्यमें हनुमान्‌जीसे बढ़कर हो ॥४४॥

असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहीष्यन्
सूर्योन्मुखः प्रष्टुमनाः कपीन्द्रः ।
उद्यद्गिरेरस्तगिरिं जगाम
ग्रन्थं महद्धारयनप्रमेयः ॥ ४५ ॥ ✓

ये असीम शक्तिशाली कपिश्रेष्ठ हनुमान् व्याकरणका अध्ययन करनेके लिये शङ्काएँ पूछनेकी इच्छासे सूर्यकी ओर मुँह रखकर महान् ग्रन्थ धारण किये उनके आगे-आगे उदयाचलसे अस्ताचलतक जाते थे ॥ ४५ ॥

ससूत्रवृत्त्यर्थपदं महार्थं
ससंग्रहं सिद्ध्यति वै कपीन्द्रः ।
नह्यस्य कश्चित् सदृशोऽस्ति शास्त्रे
वैशारदे छन्दगतौ तथैव ॥ ४६ ॥

इन्होंने सूत्र, वृत्ति, वार्तिक, महाभाष्य और संग्रह—इन सबका अच्छी तरह अध्ययन किया है। अन्यान्य शास्त्रोंके ज्ञान तथा छन्दःशास्त्रके अध्ययनमें भी इनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई विद्वान् नहीं है ॥ ४६ ॥

सर्वासु विद्यासु तपोविधाने
प्रस्पर्धतेऽयं हि गुरुं सुराणाम् ।
सोऽयं नवव्याकरणार्थवेत्ता
ब्रह्मा भविष्यत्यपि ते प्रसादात् ॥ ४७ ॥ ✓

सम्पूर्ण विद्याओंके ज्ञान तथा तपस्याके अनुष्ठानमें ये देवगुरु बृहस्पतिकी बराबरी करते हैं । नव व्याकरणोंके सिद्धान्तको जाननेवाले ये हनुमान्‌जी आपकी कृपासे साक्षात् ब्रह्माके समान आदरणीय होंगे ॥ ४७ ॥

प्रवीविविक्षोरिव सागरस्य
लोकान् दिधक्षोरिव पावकस्य ।
लोकक्षयेष्वेव यथान्तकस्य
हनूमतः स्थास्यति कः पुरस्तात् ॥ ४८ ॥

प्रलयकालमें भूतलको आप्लावित करनेके लिये भूमिके भीतर प्रवेश करनेकी इच्छावाले महासागर, सम्पूर्ण लोकोंको दग्ध कर डालनेके लिये उद्यत हुए संवर्तक अग्नि तथा लोकसंहारके लिये उठे हुए कालके समान प्रभावशाली इन हनुमान्‌जीके सामने कौन ठहर सकेगा ॥ ४८ ॥

एषेव चान्ये च महाकपीन्द्राः
सुग्रीवमैन्दद्विविदाः सनीलाः ।
सतारतारेयनलाः सरम्भा-
स्त्वत्कारणाद् राम सुरैर्हि सृष्टाः ॥ ४९ ॥

श्रीराम ! वास्तवमें ये तथा इन्हींके समान दूसरे-दूसरे जो सुग्रीव, मैन्द, द्विविद, नील, तार, तारेय (अङ्गद), नल तथा रम्भ आदि महाकपीश्वर हैं; इन सबकी सृष्टि देवताओंने आपकी सहायताके लिये ही की है ॥ ४९ ॥

गजो गवाक्षो गवयः सुदंष्ट्रो
मैन्दः प्रभो ज्योतिमुखो नलश्च ।
एते च ऋक्षाः सह वानरेन्द्रै-
स्त्वत्कारणाद् राम सुरैर्हि सृष्टाः ॥ ५० ॥

श्रीराम ! गज, गवाक्ष, गवय, सुदंष्ट्र, मैन्द, प्रभ, ज्योतिमुख और नल—इन सब वानरेश्वरों तथा रीछोंकी सृष्टि देवताओंने आपके सहयोगके लिये ही की है ॥ ५० ॥

तदेतत् कथितं सर्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
हनूमतो बालभावे कर्मैतत् कथितं मया ॥ ५१ ॥

रघुनन्दन ! आपने मुझसे जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने कह सुनाया । हनुमान्‌जीकी बाल्यावस्थाके इस चरित्रका भी वर्णन कर दिया ॥ ५१ ॥

श्रुत्वागस्त्यस्य कथितं रामः सौमित्रिरेव च ।
विस्मयं परमं जग्मुर्वानरा राक्षसैः सह ॥ ५२ ॥

अगस्त्यजीका यह कथन सुनकर श्रीराम और लक्ष्मण बड़े विस्मित हुए । वानरों और राक्षसोंको भी बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ५२ ॥

अगस्त्यस्त्वब्रवीद् रामं सर्वमेतच्छ्रुतं त्वया ।
दृष्टः सम्भाषितश्चासि राम गच्छामहे वयम् ॥ ५३ ॥

तत्पश्चात् अगस्त्यजीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'योगियोंके हृदयमें रमण करनेवाले श्रीराम ! आप यह सारा प्रसङ्ग सुन चुके । हमलोगोंने आपका दर्शन और आपके साथ वार्तालाप कर लिया ! इसलिये अब हम जा रहे हैं' ॥ ५३ ॥

श्रुत्वैतद् राघवो वाक्यमगस्त्यस्योग्रतेजसः ।
प्राञ्जलिः प्रणतश्चापि महर्षिमिदमब्रवीत् ॥ ५४ ॥

उग्र तेजस्वी अगस्त्यजीकी यह बात सुनकर श्रीरघुनाथजीने हाथ जोड़ विनयपूर्वक उन महर्षिसे इस प्रकार कहा—॥५४॥

अद्य मे देवतास्तुष्टाः पितरः प्रपितामहाः ।
युष्माकं दर्शनादेव नित्यं तुष्टाः सबान्धवाः ॥ ५५ ॥

'मुनीश्वर ! आज मुझपर देवता, पितर और पितामह आदि विशेषरूपसे संतुष्ट हैं । बन्धु-बान्धवोंसहित हमलोगोंको तो आप-जैसे महात्माओंके दर्शनसे ही सदा संतोष है ॥ ५५ ॥

विज्ञाप्यं तु ममैतद्धि यद् वदाम्यागतस्पृहः ।
तद् भवद्भिर्मम कृते कर्तव्यमनुकम्पया ॥ ५६ ॥

'मेरे मनमें एक इच्छाका उदय हुआ है, अतः मैं यह सूचित करने योग्य बात आपकी सेवामें निवेदन कर रहा हूँ । मुझपर अनुग्रह करके आपलोगोंको मेरे उस अभीष्ट कार्यको पूरा करना होगा ॥ ५६ ॥

पौरजानपदान् स्थाप्य स्वकार्येष्वहमागतः ।
क्रतूनहं करिष्यामि प्रभावाद् भवतां सताम् ॥ ५७ ॥

'मेरी इच्छा है कि पुरवासी और देशवासियोंको अपने-अपने कार्योंमें लगाकर मैं आप सत्पुरुषोंके प्रभावसे यज्ञोंका अनुष्ठान करूँ ॥ ५७ ॥

सदस्या मम यज्ञेषु भवन्तो नित्यमेव तु ।
भविष्यथ महावीर्या ममानुग्रहकाङ्क्षिणः ॥ ५८ ॥

'मेरे उन यज्ञोंमें आप महान् शक्तिशाली महात्मा मुझपर अनुग्रह करनेके लिये नित्य सदस्य बने रहें ॥ ५८ ॥

अहं युष्मान् समाश्रित्य तपोनिर्धूतकल्मषान् ।
अनुगृहीतः पितृभिर्भविष्यामि सुनिर्वृतः ॥ ५९ ॥

'आप तपस्यासे निष्पाप हो चुके हैं । मैं आपलोगोंका आश्रय लेकर सदा संतुष्ट एवं पितरोंसे अनुगृहीत होऊँगा ॥

तदागन्तव्यमनिशं भवद्भिरिह संगतैः ।
अगस्त्याद्यास्तु तच्छ्रुत्वा ऋषयः संशितव्रताः ॥ ६० ॥
एवमस्त्विति तं प्रोच्य प्रयातुमुपचक्रमुः ।

'यज्ञ-आरम्भके समय सब लोग एकत्र होकर निरन्तर यहाँ आते रहें ।' श्रीरामचन्द्रजीका यह वचन सुनकर कठोर व्रतका पालन करनेवाले अगस्त्य आदि महर्षि उनसे 'एवमस्तु (ऐसा ही होगा)' कहकर वहाँसे जानेको उद्यत हुए ॥६०½॥

एवमुक्त्वा गताः सर्वे ऋषयस्ते यथागतम् ॥ ६१ ॥
राघवश्च तमेवार्थं चिन्तयामास विस्मितः ।

इस प्रकार बातचीत करके सब ऋषि जैसे आये थे, वैसे चले गये । इधर श्रीरामचन्द्रजी विस्मित होकर उन्हीं बातोंपर विचार करते रहे ॥ ६१½ ॥

ततोऽस्तं भास्करे याते विसृज्य नृपवानरान् ॥ ६२ ॥
संध्यामुपास्य विधिवत् तदा नरवरोत्तमः ।
प्रवृत्तायां रजन्यां तु सोऽन्तःपुरचरोऽभवत् ॥ ६३ ॥

तदनन्तर सूर्यास्त होनेपर राजाओं और वानरोंको विदा करके नरेशोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने विधिपूर्वक संध्योपासना की और रात होनेपर वे अन्तःपुरमें पधारे ॥ ६२-६३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः

श्रीरामका सभासदोंके साथ राजसभामें बैठना

अभिषिक्ते तु काकुत्स्थे धर्मेण विदितात्मनि ।
व्यतीता या निशा पूर्वा पौराणां हर्षवर्धिनी ॥ १ ॥

ककुत्स्थकुलभूषण आत्मज्ञानी श्रीरामचन्द्रजीका धर्मपूर्वक राज्याभिषेक हो जानेपर पुरवासियोंका हर्ष बढ़ानेवाली उनकी पहली रात्रि व्यतीत हुई ॥ १ ॥

तस्यां रजन्यां व्युष्टायां प्रातर्नृपतिबोधकाः ।
बन्दिनः समुपातिष्ठन् सौम्या नृपतिवेश्मनि ॥ २ ॥

वह रात बीतनेपर जब सवेरा हुआ, तब प्रातःकाल महाराज श्रीरामको जगानेवाले सौम्य वन्दीजन राजमहलमें उपस्थित हुए ॥ २ ॥

ते रक्तकण्ठिनः सर्वे किन्नरा इव शिक्षिताः ।
तुष्टुवुर्नृपतिं वीरं यथावत् सम्प्रहर्षिणः ॥ ३ ॥

उनके कण्ठ बड़े मधुर थे । वे संगीतकी कलामें किन्नरोंके समान सुशिक्षित थे । उन्होंने बड़े हर्षमें भरकर यथावत्‌रूपसे वीर नरेश श्रीरघुनाथजीका स्तवन आरम्भ किया ॥ ३ ॥

वीर सौम्य प्रबुध्यस्व कौसल्याप्रीतिवर्धन ।
जगद्धि सर्वं स्वपिति त्वयि सुप्ते नराधिप ॥ ४ ॥

'श्रीकौसल्याजीका आनन्द बढ़ानेवाले सौम्य-स्वरूप वीर श्रीरघुवीर ! आप जागिये । महाराज ! आपके सोये रहनेपर

तो सारा जगत् ही सोया रहेगा (ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर धर्मानुष्ठानमें नहीं लग सकेगा) ॥ ४ ॥

विक्रमस्ते यथा विष्णो रूपं चैवाश्विनोरिव ।
बुद्ध्या बृहस्पतेस्तुल्यः प्रजापतिसमो ह्यसि ॥ ५ ॥

'आपका पराक्रम भगवान् विष्णुके समान तथा रूप अश्विनीकुमारोंके समान है । बुद्धिमें आप बृहस्पतिके तुल्य हैं और प्रजा-पालनमें साक्षात् प्रजापतिके सदृश हैं ॥ ५ ॥

क्षमा ते पृथिवीतुल्या तेजसा भास्करोपमः ।
वेगस्ते वायुना तुल्यो गाम्भीर्यमुदधेरिव ॥ ६ ॥

'आपकी क्षमा पृथ्वीके समान और तेज भगवान् भास्करके समान है । वेग वायुके तुल्य और गम्भीरता समुद्रके सदृश है ॥ ६ ॥

अप्रकम्प्यो यथा स्थाणुश्चन्द्रे सौम्यत्वमीदृशम् ।
नेदृशाः पार्थिवाः पूर्वं भवितारो नराधिप ॥ ७ ॥

'नरेश्वर ! आप भगवान् शंकरके समान युद्धमें अविचल हैं । आपकी-सी सौम्यता चन्द्रमामें ही पायी जाती है । आपके समान राजा न पहले थे और न भविष्यमें होंगे ॥ ७ ॥

यथा त्वमसि दुर्धर्षो धर्मनित्यः प्रजाहितः ।
न त्वां जहाति कीर्तिश्च लक्ष्मीश्च पुरुषर्षभ ॥ ८ ॥

'पुरुषोत्तम ! आपको परास्त करना कठिन ही नहीं, असम्भव है । आप सदा धर्ममें संलग्न रहते हुए प्रजाके हित-साधनमें तत्पर रहते हैं, अतः कीर्ति और लक्ष्मी आपको कभी नहीं छोड़ती हैं ॥ ८ ॥

श्रीश्च धर्मश्च काकुत्स्थ त्वयि नित्यं प्रतिष्ठितौ ।
एताश्चान्याश्च मधुरा बन्दिभिः परिकीर्तिताः ॥ ९ ॥

'ककुत्स्थकुलनन्दन ! ऐश्वर्य और धर्म आपमें नित्य प्रतिष्ठित हैं ।' वन्दीजनोंने ये तथा और भी बहुत-सी सुमधुर स्तुतियाँ सुनायीं ॥ ९ ॥

सूताश्च संस्तवैर्दिव्यैर्बोधयन्ति स्म राघवम् ।
स्तुतिभिः स्तूयमानाभिः प्रत्यबुध्यत राघवः ॥ १० ॥

सूत भी दिव्य स्तुतियोंद्वारा श्रीरघुनाथजीको जगाते रहे । इस प्रकार सुनायी जाती हुई स्तुतियोंके द्वारा भगवान् श्रीराम जागे ॥ १० ॥

स तद्विहाय शयनं पाण्डुराच्छादनास्तृतम् ।
उत्तस्थौ नागशयनाद्धरिर्नारायणो यथा ॥ ११ ॥

जैसे पापहारी भगवान् नारायण सर्पशय्यासे उठते हैं, उसी प्रकार वे भी श्वेत बिछौनोंसे ढकी हुई शय्याको छोड़कर उठ बैठे ॥ ११ ॥

तमुत्थितं महात्मानं प्रह्वाः प्राञ्जलयो नराः ।
सलीलं भाजनैः शुभ्रैरुपतस्थुः सहस्रशः ॥ १२ ॥

महाराजके शय्यासे उठते ही सहस्रों सेवक विनयपूर्वक हाथ जोड़ उज्ज्वल पात्रोंमें जल लिये उनकी सेवामें उपस्थित हुए ॥ १२ ॥

कृतोदकः शुचिर्भूत्वा काले हुतहुताशनः ।
देवागारं जगामाशु पुण्यमिक्ष्वाकुसेवितम् ॥ १३ ॥

स्नान आदि करके शुद्ध हो उन्होंने समयपर अग्निमें आहुति दी और शीघ्र ही इक्ष्वाकुवंशियोंद्वारा सेवित पवित्र देवमन्दिरमें वे पधारे ॥ १३ ॥

तत्र देवान् पितॄन् विप्रानर्चयित्वा यथाविधि ।
बाह्यकक्षान्तरं रामो निर्जगाम जनैर्वृतः ॥ १४ ॥

वहाँ देवताओं, पितरों और ब्राह्मणोंका विधिवत् पूजन करके वे अनेक कर्मचारियोंके साथ बाहरकी ड्योढ़ीमें आये ॥ १४ ॥

उपतस्थुर्महात्मानो मन्त्रिणः सपुरोहिताः ।
वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे दीप्यमाना इवाग्नयः ॥ १५ ॥

इसी समय प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी वसिष्ठ आदि सभी महात्मा मन्त्री और पुरोहित वहाँ उपस्थित हुए ॥ १५ ॥

क्षत्रियाश्च महात्मानो नानाजनपदेश्वराः ।
रामस्योपाविशन् पार्श्वे शक्रस्येव यथामराः ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् अनेकानेक जनपदोंके स्वामी महामनस्वी क्षत्रिय श्रीरामचन्द्रजीके पास उसी तरह आकर बैठे, जैसे इन्द्रके समीप देवतालोग आकर बैठा करते हैं ॥ १६ ॥

भरतो लक्ष्मणश्चात्र शत्रुघ्नश्च महायशाः ।
उपासांचक्रिरे हृष्टा वेदास्त्रय इवाध्वरम् ॥ १७ ॥

महायशस्वी भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न—ये तीनों भाई बड़े हर्षके साथ उसी तरह भगवान् श्रीरामकी सेवामें उपस्थित रहते थे, जैसे तीनों वेद यज्ञकी ॥ १७ ॥

याताः प्राञ्जलयो भूत्वा किंकरा मुदिताननाः ।
मुदिता नाम पार्श्वस्था बहवः समुपाविशन् ॥ १८ ॥

इसी समय मुदित नामसे प्रसिद्ध बहुत-से सेवक भी, जिनके मुखपर प्रसन्नता खेलती रहती थी, हाथ जोड़े सभाभवनमें आये और श्रीरघुनाथजीके पास बैठ गये ॥ १८ ॥

वानराश्च महावीर्या विंशतिः कामरूपिणः ।
सुग्रीवप्रमुखा राममुपासन्ते महौजसः ॥ १९ ॥

फिर महापराक्रमी महातेजस्वी तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले सुग्रीव आदि बीस[1] वानर भगवान् श्रीरामके समीप आकर बैठे ॥ १९ ॥

विभीषणश्च रक्षोभिश्चतुर्भिः परिवारितः ।
उपासते महात्मानं धनेशमिव गुह्यकाः ॥ २० ॥

अपने चार राक्षस मन्त्रियोंसे घिरे हुए विभीषण भी उसी प्रकार महात्मा श्रीरामकी सेवामें उपस्थित हुए, जैसे गुह्यकगण धनपति कुबेरकी सेवामें उपस्थित होते हैं ॥२०॥

तथा निगमवृद्धाश्च कुलीना ये च मानवाः ।

---

[1] १. सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान्, जाम्बवान्, सुषेण, तार, नील, नल, मैन्द, द्विविद, कुमुद, शरभ, शतबलि, गन्धमादन, गज, गवाक्ष, गवय, धूम्र, रम्भ तथा ज्योतिमुख—ये प्रधान-प्रधान वानर-वीर बीसकी संख्यामें उपस्थित थे ।

शिरसा वन्द्य राजानमुपासन्ते विचक्षणाः ॥ २१ ॥

जो लोग शास्त्रज्ञानमें बढ़े-चढ़े और कुलीन थे, वे चतुर मनुष्य भी महाराजको मस्तक झुकाकर प्रणाम करके वहाँ बैठ गये ॥ २१ ॥

तथा परिवृतो राजा श्रीमद्भिर्ऋषिभिर्वरैः ।
राजभिश्च महावीर्यैर्वानरैश्च सराक्षसैः ॥ २२ ॥

इस प्रकार बहुत-से श्रेष्ठ एवं तेजस्वी महर्षि, महापराक्रमी राजा, वानर और राक्षसोंसे घिरे राजसभामें बैठे हुए श्रीरघुनाथजी बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ २२ ॥

यथा देवेश्वरो नित्यमृषिभिः समुपास्यते ।
अधिकस्तेन रूपेण सहस्राक्षाद् विरोचते ॥ २३ ॥

जैसे देवराज इन्द्र सदा ऋषियोंसे सेवित होते हैं, उसी तरह महर्षि-मण्डलीसे घिरे हुए श्रीरामचन्द्रजी उस समय सहस्रलोचन इन्द्रसे भी अधिक शोभा पा रहे थे ॥ २३ ॥

तेषां समुपविष्टानां तास्ताः सुमधुराः कथाः ।
कथ्यन्ते धर्मसंयुक्ताः पुराणज्ञैर्महात्मभिः ॥ २४ ॥

जब सब लोग यथास्थान बैठ गये, तब पुराणवेत्ता महात्मा लोग भिन्न-भिन्न धर्म-कथाएँ कहने लगे* ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंशः सर्गः

श्रीरामके द्वारा राजा जनक, युधाजित्, प्रतर्दन तथा अन्य नरेशोंकी विदाई

एवमास्ते महाबाहुरहन्यहनि राघवः ।
प्रशासत् सर्वकार्याणि पौरजानपदेषु च ॥ १ ॥

महाबाहु श्रीरघुनाथजी इसी प्रकार प्रतिदिन राजसभामें बैठकर पुरवासियों और जनपदवासियोंके सारे कार्योंकी देखभाल करते हुए शासनका कार्य चलाते थे ॥ १ ॥

ततः कतिपयाहःसु वैदेहं मिथिलाधिपम् ।
राघवः प्राञ्जलिर्भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २ ॥

तदनन्तर कुछ दिन बीतनेपर श्रीरामचन्द्रजीने मिथिला-नरेश विदेहराज जनकजीसे हाथ जोड़कर यह बात कही—॥

भवान् हि गतिरव्यग्रा भवता पालिता वयम् ।
भवतस्तेजसोग्रेण रावणो निहतो मया ॥ ३ ॥

'महाराज ! आप ही हमारे सुस्थिर आश्रय हैं। आपने सदा हमलोगोंका लालन-पालन किया है। आपके ही बढ़े हुए तेजसे मैंने रावणका वध किया है ॥ ३ ॥

इक्ष्वाकूणां च सर्वेषां मैथिलानां च सर्वशः ।
अतुलाः प्रीतयो राजन् सम्बन्धकपुरोगमाः ॥ ४ ॥

'राजन् ! समस्त इक्ष्वाकुवंशी और मैथिल नरेशोंमें आपसके सम्बन्धके कारण सब प्रकारसे जो प्रेम बढ़ा है, उसकी कहीं तुलना नहीं है ॥ ४ ॥

तद् भवान् स्वपुरं यातु रत्नान्यादाय पार्थिव ।
भरतश्च सहायार्थं पृष्ठतश्चानुयास्यति ॥ ५ ॥

'पृथ्वीनाथ ! अब आप हमारे द्वारा भेंट किये गये ये रत्न लेकर अपनी राजधानीको पधारें। भरत (तथा उनके साथ-साथ शत्रुघ्न भी) आपकी सहायताके लिये आपके पीछे-पीछे जायँगे' ॥ ५ ॥

स तथेति ततः कृत्वा राघवं वाक्यमब्रवीत् ।
प्रीतोऽस्मि भवता राजन् दर्शनेन नयेन च ॥ ६ ॥

तब जनकजी 'बहुत अच्छा' कहकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—'राजन् ! मैं आपके दर्शन तथा न्यायानुसार व्यवहारसे बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ६ ॥

यान्येतानि तु रत्नानि मदर्थं संचितानि वै ।
दुहित्रे तान्यहं राजन् सर्वाण्येव ददामि वै ॥ ७ ॥

'आपने मेरे लिये जो रत्न एकत्र किये हैं, वह सब मैं अपनी सीता आदि पुत्रियोंको देता हूँ' ॥ ७ ॥

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थं जनको हृष्टमानसः ।
प्रययौ मिथिलां श्रीमांस्तमनुज्ञाय राघवम् ॥ ८ ॥

श्रीरामचन्द्रजीसे ऐसा कहकर श्रीमान् राजा जनक प्रसन्नचित्त हो श्रीरामकी अनुमति ले मिथिलापुरीको चल दिये ॥

ततः प्रयाते जनके केकयं मातुलं प्रभुम् ।
राघवः प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयाद् वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥

जनकजीके चले जानेके पश्चात् श्रीरघुनाथजीने हाथ जोड़कर अपने मामा केकय-नरेश युधाजित्‌से, जो बड़े सामर्थ्यशाली थे, विनयपूर्वक कहा—॥ ९ ॥

इदं राज्यमहं चैव भरतश्च सलक्ष्मणः ।
आयत्तस्त्वं हि नो राजन् गतिश्च पुरुषर्षभ ॥ १० ॥

'राजन् ! पुरुषप्रवर ! यह राज्य, मैं, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न—सब आपके अधीन हैं। आप ही हमारे आश्रय हैं ॥ १० ॥

राजा हि वृद्धः संतापं त्वदर्थमुपयास्यति ।
तस्माद् गमनमद्यैव रोचते तव पार्थिव ॥ ११ ॥

---

* इस सर्गके बाद कुछ प्रतियोंमें प्रक्षिप्तरूपसे पाँच सर्ग और उपलब्ध होते हैं, जिनमें वाली और सुग्रीवकी उत्पत्तिका तथा रावणके श्वेतद्वीपमें गमनका इतिहास वर्णित है। इस इतिहासके वक्ता भी अगस्त्यजी ही हैं। परंतु इसके पहले सर्गमें ही अगस्त्यजीके विदा होनेका वर्णन आ गया है; अतः यहाँ इन सर्गोंका उल्लेख असङ्गत प्रतीत होता है। इसीलिये ये सर्ग यहाँ नहीं लिये गये हैं।

'महाराज केकयराज वृद्ध हैं। वे आपके लिये बहुत चिन्तित होंगे। इसलिये पृथ्वीनाथ! आपका आज ही जाना मुझे अच्छा जान पड़ता है॥ ११॥

लक्ष्मणेनानुयात्रेण पृष्ठतोऽनुगमिष्यते।
धनमादाय बहुलं रत्नानि विविधानि च॥ १२॥

'आप बहुत-सा धन तथा नाना प्रकारके रत्न लेकर पधारें। मार्गमें सहायताके लिये लक्ष्मण आपके साथ जायँगे'॥

युधाजित् तु तथेत्याह गमनं प्रति राघव।
रत्नानि च धनं चैव त्वय्येवाक्षय्यमस्त्विति॥ १३॥

तब युधाजित्ने 'तथास्तु' कहकर श्रीरामचन्द्रजीकी बात मान ली और कहा—'रघुनन्दन! ये रत्न और धन सब तुम्हारे ही पास अक्षयरूपसे रहें'॥ १३॥

प्रदक्षिणं च राजानं कृत्वा केकयवर्धनः।
रामेण च कृतः पूर्वमभिवाद्य प्रदक्षिणम्॥ १४॥

फिर पहले श्रीरघुनाथजीने प्रणामपूर्वक अपने मामाकी परिक्रमा की, इसके बाद केकयकुलकी वृद्धि करनेवाले राजकुमार युधाजित्ने भी राजा श्रीरामकी प्रदक्षिणा की॥ १४॥

लक्ष्मणेन सहायेन प्रयातः केकयेश्वरः।
हतेऽसुरे यथा वृत्रे विष्णुना सह वासवः॥ १५॥

इसके बाद केकयराजने लक्ष्मणजीके साथ उसी तरह अपने देशको प्रस्थान किया, जैसे वृत्रासुरके मारे जानेपर इन्द्रने भगवान् विष्णुके साथ अमरावतीकी यात्रा की थी॥

तं विसृज्य ततो रामो वयस्यमकुतोभयम्।
प्रतर्दनं काशिपतिं परिष्वज्येदमब्रवीत्॥ १६॥

मामाको विदा करके रघुनाथजीने किसीसे भी भय न माननेवाले अपने मित्र काशिराज प्रतर्दनको हृदयसे लगाकर कहा—॥ १६॥

दर्शिता भवता प्रीतिर्दर्शितं सौहृदं परम्।
उद्योगश्च त्वया राजन् भरतेन कृतः सह॥ १७॥

'राजन्! आपने राज्याभिषेकके कार्यमें भरतके साथ पूरा उद्योग किया है और ऐसा करके अपने महान् प्रेम तथा परम सौहार्दका परिचय दिया है॥ १७॥

तद् भवानद्य काशेय पुरीं वाराणसीं व्रज।
रमणीयां त्वया गुप्तां सुप्राकारां सुतोरणाम्॥ १८॥

'काशिराज! अब आप सुन्दर परकोटों तथा मनोहर फाटकोंसे सुशोभित और अपने ही द्वारा सुरक्षित रमणीय पुरी वाराणसीको पधारिये'॥ १८॥

एतावदुक्त्वा चोत्थाय काकुत्स्थः परमासनात्।
पर्यष्वजत धर्मात्मा निरन्तरमुरोगतम्॥ १९॥

ऐसा कहकर धर्मात्मा श्रीरामने पुनः अपने उत्तम आसनसे उठकर प्रतर्दनको छातीसे लगा उनका गाढ़ आलिङ्गन किया॥ १९॥

विसर्जयामास तदा कौसल्याप्रीतिवर्धनः।
राघवेण कृतानुज्ञः काशेयो ह्यकुतोभयः॥ २०॥
वाराणसीं ययौ तूर्णं राघवेण विसर्जितः।

इस प्रकार कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले श्रीरामने उस समय काशिराजको विदा किया। श्रीरघुनाथजीकी अनुमति पाकर उनसे विदा ले निर्भय काशिराज तत्काल वाराणसीपुरीकी ओर चल दिये॥ २०½॥

विसृज्य तं काशिपतिं त्रिशतं पृथिवीपतीन्॥ २१॥
प्रहसन् राघवो वाक्यमुवाच मधुराक्षरम्।

काशिराजको विदा करके श्रीरघुनाथजी हँसते हुए अन्य तीन सौ भूपालोंसे मधुर वाणीमें बोले—॥ २१½॥

भवतां प्रीतिरव्यग्रा तेजसा परिरक्षिता॥ २२॥
धर्मश्च नियतो नित्यं सत्यं च भवतां सदा।

'मेरे ऊपर आपलोगोंका अविचल प्रेम है, जिसकी रक्षा आपने अपने ही तेजसे की है। आपलोगोंमें सत्य और धर्म नियतरूपसे नित्य-निरन्तर निवास करते हैं॥ २२½॥

युष्माकं चानुभावेन तेजसा च महात्मनाम्॥ २३॥
हतो दुरात्मा दुर्बुद्धी रावणो राक्षसाधमः।

'आप महापुरुषोंके प्रभाव और तेजसे ही मेरेद्वारा दुर्बुद्धि दुरात्मा राक्षसाधम रावण मारा गया है॥ २३½॥

हेतुमात्रमहं तत्र भवतां तेजसा हतः॥ २४॥
रावणः सगणो युद्धे सपुत्रामात्यबान्धवः।

'मैं तो उसके वधमें निमित्तमात्र बना हूँ। वास्तवमें तो आपलोगोंके तेजसे ही पुत्र, मन्त्री, बन्धु-बान्धव तथा सेवकगणोंके सहित रावण युद्धमें मारा गया है॥ २४½॥

भवन्तश्च समानीता भरतेन महात्मना॥ २५॥
श्रुत्वा जनकराजस्य काननात् तनयां हृताम्।

'वनसे जनकराजनन्दिनी सीताके अपहरणका समाचार सुनकर महात्मा भरतने आपलोगोंको यहाँ बुलाया था॥

उद्युक्तानां च सर्वेषां पार्थिवानां महात्मनाम्॥ २६॥
कालोऽप्यतीतः सुमहान् गमनं रोचयाम्यतः।

'आप सभी महामना भूपाल राक्षसोंपर आक्रमण करनेके लिये उद्योगशील थे। तबसे आजतक यहाँ आपलोगोंका बहुत समय व्यतीत हो गया है। अतः अब मुझे आपलोगोंका अपने नगरको लौट जाना ही उचित जान पड़ता है'॥

प्रत्यूचुस्तं च राजानो हर्षेण महता वृताः॥ २७॥
दिष्ट्या त्वं विजयी राम स्वराज्येऽपि प्रतिष्ठितः।

इसपर राजाओंने अत्यन्त हर्षसे भरकर कहा—'श्रीराम! आप विजयी हुए और अपने राज्यपर भी प्रतिष्ठित हो गये, यह बड़े सौभाग्यकी बात है॥ २७½॥

दिष्ट्या प्रत्याहृता सीता दिष्ट्या शत्रुः पराजितः॥ २८॥
एष नः परमः काम एषा नः प्रीतिरुत्तमा।
यत् त्वां विजयिनं राम पश्यामो हतशात्रवम्॥ २९॥

'हमारे सौभाग्यसे ही आप सीताको लौटा लाये और उस प्रबल शत्रुको परास्त कर दिया। श्रीराम! यही हमारा सबसे बड़ा मनोरथ है और यही हमारे लिये सबसे बढ़कर प्रसन्नताकी बात है कि आज हमलोग आपको विजयी देख रहे हैं तथा आपकी शत्रु-मण्डली मारी जा चुकी है॥२८-२९॥

एतत् त्वय्युपपन्नं च यदस्मांस्त्वं प्रशंससे।
प्रशंसार्हं न जानीमः प्रशंसां वक्तुमीदृशीम्॥३०॥

'प्रशंसनीय श्रीराम! आप जो हमलोगोंकी प्रशंसा कर रहे हैं, यह आपहीके योग्य है। हम ऐसी प्रशंसा करनेकी कला नहीं जानते हैं॥३०॥

आपृच्छामो गमिष्यामो हृदिस्थो नः सदा भवान्।
वर्तामहे महाबाहो प्रीत्यात्र महता वृताः॥३१॥
भवेच्च ते महाराज प्रीतिरस्मासु नित्यदा।
बाढमित्येव राजानो हर्षेण परमान्विताः॥३२॥

'अब हम आज्ञा चाहते हैं। अपनी पुरीको जायँगे। जिस प्रकार आप सदा हमारे हृदयमें विराजमान रहते हैं, उसी प्रकार हे महाबाहो! जिसमें हमलोग आपके प्रति प्रेमसे युक्त रहकर आपके हृदयमें बसे रहें, ऐसी प्रीति आपकी हमपर सदा बनी रहनी चाहिये।' तब श्रीरघुनाथजीने हर्षसे भरे हुए उन राजाओंसे कहा—'अवश्य ऐसा ही होगा'॥३१-३२॥

ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे राघवं गमनोत्सुकाः।
पूजितास्ते च रामेण जग्मुर्देशान् स्वकान् स्वकान्॥३३॥

तत्पश्चात् जानेके लिये उत्सुक हो सबने हाथ जोड़कर श्रीरघुनाथजीसे कहा—'भगवन्! अब हम जा रहे हैं।' इस तरह श्रीरामसे सम्मानित हो वे सब राजा अपने-अपने देशको चले गये॥३३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे अष्टात्रिंशः सर्गः॥३८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अड़तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥३८॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः

राजाओंका श्रीरामके लिये भेंट देना और श्रीरामका वह सब लेकर अपने मित्रों, वानरों, रीछों और राक्षसोंको बाँट देना तथा वानर आदिका वहाँ सुखपूर्वक रहना

ते प्रयाता महात्मानः पार्थिवास्ते प्रहृष्टवत्।
गजवाजिसहस्रौघैः कम्पयन्तो वसुंधराम्॥१॥

अयोध्यासे प्रस्थित हो वे महामना भूपाल सहस्रों हाथी, घोड़े तथा पैदल-समूहोंसे पृथ्वीको कम्पित करते हुए-से हर्षपूर्वक आगे बढ़ने लगे॥१॥

अक्षौहिण्यो हि तत्रासन् राघवार्थे समुद्यताः।
भरतस्याज्ञयानेकाः प्रहृष्टबलवाहनाः॥२॥

भरतकी आज्ञासे श्रीरामचन्द्रजीकी सहायताके लिये वहाँ कई अक्षौहिणी सेनाएँ युद्धके लिये उद्यत होकर आयी थीं। उन सबके सैनिक और वाहन हर्ष एवं उत्साहसे भरे हुए थे॥२॥

ऊचुस्ते च महीपाला बलदर्पसमन्विताः।
न रामं रावणं युद्धे पश्यामः पुरतः स्थितम्॥३॥

वे सभी भूपाल बलके घमंडमें भरकर आपसमें इस तरहकी बातें करने लगे—'हमलोगोंने युद्धमें श्रीराम और रावणको आमने-सामने खड़ा नहीं देखा॥३॥

भरतेन वयं पश्चात् समानीता निरर्थकम्।
हता हि राक्षसाः क्षिप्रं पार्थिवैः स्युर्न संशयः॥४॥

'भरतने (पहले तो सूचना नहीं दी) पीछे युद्ध समाप्त हो जानेपर हमें व्यर्थ ही बुला लिया। यदि सब राजा गये होते तो उनके द्वारा समस्त राक्षसोंका संहार बहुत जल्दी हो गया होता, इसमें संशय नहीं है॥४॥

रामस्य बाहुवीर्येण रक्षिता लक्ष्मणस्य च।
सुखं पारे समुद्रस्य युध्येम विगतज्वराः॥५॥

'श्रीराम और लक्ष्मणके बाहुबलसे सुरक्षित एवं निश्चिन्त हो हमलोग समुद्रके उस पार सुखपूर्वक युद्ध कर सकते थे'॥५॥

एताश्चान्याश्च राजानः कथास्तत्र सहस्रशः।
कथयन्तः स्वराज्यानि जग्मुर्हर्षसमन्विताः॥६॥

ये तथा और भी बहुत-सी बातें कहते हुए वे सहस्रों नरेश बड़े हर्षके साथ अपने-अपने राज्यको गये॥६॥

स्वानि राज्यानि मुख्यानि ऋद्धानि मुदितानि च।
समृद्धधनधान्यानि पूर्णानि वसुमन्ति च॥७॥
यथापुराणि ते गत्वा रत्नानि विविधान्यथ।
रामस्य प्रियकामार्थमुपहारं नृपा ददुः॥८॥
अश्वान् यानानि रत्नानि हस्तिनश्च मदोत्कटान्।
चन्दनानि च मुख्यानि दिव्यान्याभरणानि च॥९॥
मणिमुक्ताप्रवालांस्तु दास्यो रूपसमन्विताः।
अजाविकं च विविधं रथांस्तु विविधान् बहून्॥१०॥

उनके अपने-अपने प्रसिद्ध राज्य समृद्धिशाली, सुख और आनन्दसे परिपूर्ण, धन-धान्यसे सम्पन्न तथा रत्न आदिसे भरे-पूरे थे। उन राज्यों तथा नगरोंमें जाकर उन नरेशोंने श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय करनेकी इच्छासे नाना प्रकारके रत्न और उपहार भेजे। घोड़े, सवारियाँ, रत्न, मतवाले हाथी, उत्तम चन्दन, दिव्य आभूषण, मणि, मोती, मूँगे, रूपवती दासियाँ, नाना प्रकारकी बकरियाँ और भेड़ें तथा तरह-तरहके बहुत-से रथ भेंट किये॥७-१०॥

भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः।
आदाय तानि रत्नानि स्वां पुरीं पुनरागताः॥ ११॥
आगम्य च पुरीं रम्यामयोध्यां पुरुषर्षभाः।
तानि रत्नानि चित्राणि रामाय समुपानयन्॥ १२॥

महाबली भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न उन रत्नोंको लेकर पुनः अपनी पुरीमें लौट आये। रमणीय पुरी अयोध्यामें आकर उन तीनों पुरुषप्रवर बन्धुओंने ये विचित्र रत्न श्रीरामको समर्पित कर दिये॥ ११-१२॥

प्रतिगृह्य च तत् सर्वं रामः प्रीतिसमन्वितः।
सुग्रीवाय ददौ राज्ञे महात्मा कृतकर्मणे॥ १३॥
विभीषणाय च ददौ तथान्येभ्योऽपि राघवः।
राक्षसेभ्यः कपिभ्यश्च यैर्वृतो जयमाप्तवान्॥ १४॥

उन सबको ग्रहण करके महात्मा श्रीरामने बड़ी प्रसन्नताके साथ उपकारी वानरराज सुग्रीव और विभीषणको तथा अन्य राक्षसों और वानरोंको भी बाँट दिया; क्योंकि उन्हींसे घिरे रहकर भगवान् श्रीरामने युद्धमें विजय प्राप्त की थी॥१३-१४॥

ते सर्वे रामदत्तानि रत्नानि कपिराक्षसाः।
शिरोभिर्धारयामासुर्भुजेषु च महाबलाः॥ १५॥

उन सभी महाबली वानरों और राक्षसोंने श्रीरामचन्द्रजीके दिये हुए वे रत्न अपने मस्तक और भुजाओंमें धारण कर लिये॥ १५॥

हनूमन्तं च नृपतिरिक्ष्वाकूणां महारथः।
अङ्गदं च महाबाहुमङ्कमारोप्य वीर्यवान्॥ १६॥
रामः कमलपत्राक्षः सुग्रीवमिदमब्रवीत्।
अङ्गदस्ते सुपुत्रोऽयं मन्त्री चाप्यनिलात्मजः॥ १७॥
सुग्रीवमन्त्रिते युक्तौ मम चापि हिते रतौ।
अर्हतो विविधां पूजां त्वत्कृते वै हरीश्वर॥ १८॥

तत्पश्चात् इक्ष्वाकुनरेश महापराक्रमी महारथी कमलनयन श्रीरामने महाबाहु हनुमान् और अङ्गदको गोदमें बिठाकर सुग्रीवसे इस प्रकार कहा—'सुग्रीव! अङ्गद तुम्हारे सुपुत्र हैं और पवनकुमार हनुमान् मन्त्री। वानरराज! ये दोनों मेरे लिये मन्त्रीका भी काम देते थे और सदा मेरे हित-साधनमें लगे रहते थे। इसलिये और विशेषतः तुम्हारे नाते ये मेरी ओरसे विविध आदर-सत्कार एवं भेंट पानेके योग्य हैं' १६—१८

इत्युक्त्वा व्यपमुच्याङ्गाद् भूषणानि महायशाः।
स बबन्ध महार्हाणि तदाङ्गदहनूमतोः॥ १९॥

ऐसा कहकर महायशस्वी श्रीरामने अपने शरीरसे बहुमूल्य आभूषण उतारकर उन्हें अङ्गद तथा हनुमान्के अङ्गोंमें बाँध दिया॥ १९॥

आभाष्य च महावीर्यान् राघवो यूथपर्षभान्।
नीलं नलं केसरिणं कुमुदं गन्धमादनम्॥ २०॥
सुषेणं पनसं वीरं मैन्दं द्विविदमेव च।
जाम्बवन्तं गवाक्षं च विनतं धूम्रमेव च॥ २१॥
बलीमुखं प्रजङ्घं च संनादं च महाबलम्।
दरीमुखं दधिमुखमिन्द्रजानुं च यूथपम्॥ २२॥
मधुरं श्लक्ष्णया वाचा नेत्राभ्यामापिबन्निव।
सुहृदो मे भवन्तश्च शरीरं भ्रातरस्तथा॥ २३॥
युष्माभिरुद्धृतश्चाहं व्यसनात् काननौकसः।
धन्यो राजा च सुग्रीवो भवद्भिः सुहृदां वरैः॥ २४॥

इसके बाद श्रीरघुनाथजीने महापराक्रमी वानरयूथपतियों—नील, नल, केसरी, कुमुद, गन्धमादन, सुषेण, पनस, वीर मैन्द, द्विविद, जाम्बवान्, गवाक्ष, विनत, धूम्र, बलीमुख, प्रजङ्घ, महाबली संनाद, दरीमुख, दधिमुख और यूथप इन्द्रजानुको बुलाकर उनकी ओर दोनों नेत्रोंसे इस प्रकार देखा, मानो वे उन्हें नेत्रपुटोंद्वारा पी रहे हों। उन्होंने स्नेहयुक्त मधुर वाणीमें उनसे कहा—'वानरवीरो! आपलोग मेरे सुहृद्, शरीर और भाई हैं। आपने ही मुझे संकटसे उबारा है। आप-जैसे श्रेष्ठ सुहृदोंको पाकर राजा सुग्रीव धन्य हैं'॥ २०—२४॥

एवमुक्त्वा ददौ तेभ्यो भूषणानि यथार्हतः।
वज्राणि च महार्हाणि सस्वजे च नरर्षभः॥ २५॥

ऐसा कहकर नरश्रेष्ठ रघुनाथजीने उन्हें यथायोग्य आभूषण और बहुमूल्य हीरे दिये तथा उनका आलिङ्गन किया॥२५॥

ते पिबन्तः सुगन्धीनि मधूनि मधुपिङ्गलाः।
मांसानि च सुमृष्टानि मूलानि च फलानि च॥ २६॥

मधुके समान पिङ्गल वर्णवाले वे वानर वहाँ सुगन्धित मधु पीते, राजभोग वस्तुओंका उपभोग करते और स्वादिष्ट फल-मूल खाते थे॥ २६॥

एवं तेषां निवसतां मासः साग्रो ययौ तदा।
मुहूर्तमिव ते सर्वे रामभक्त्या च मेनिरे॥ २७॥

इस प्रकार निवास करते हुए उन वानरोंका वहाँ एक महीनेसे अधिक समय बीत गया; परंतु श्रीरघुनाथजीके प्रति भक्तिके कारण उन्हें वह समय एक मुहूर्तके समान ही जान पड़ा॥ २७॥

रामोऽपि रेमे तैः सार्धं वानरैः कामरूपिभिः।
राक्षसैश्च महावीर्यैर्ऋक्षैश्चैव महाबलैः॥ २८॥

श्रीराम भी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले उन वानरों, महापराक्रमी राक्षसों तथा महाबली रीछोंके साथ बड़े आनन्दसे समय बिताते थे॥ २८॥

एवं तेषां ययौ मासो द्वितीयः शिशिरः सुखम्।
वानराणां प्रहृष्टानां राक्षसानां च सर्वशः॥ २९॥
इक्ष्वाकुनगरे रम्ये परां प्रीतिमुपासताम्।
रामस्य प्रीतिकरणैः कालस्तेषां सुखं ययौ॥ ३०॥

इस तरह उनका शिशिर ऋतुका दूसरा महीना भी सुख-

पूर्वक बीत गया। इक्ष्वाकुवंशी नरेशोंकी उस सुरम्य राजधानीमें वे वानर और राक्षस बड़े हर्ष और प्रेमसे रहते थे। श्रीरामके प्रेमपूर्वक सत्कारसे उनका वह समय सुखपूर्वक बीत रहा था ॥ २९-३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें उन्तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशः सर्गः

वानरों, रीछों और राक्षसोंकी विदाई

तथा स्म तेषां वसतामृक्षवानररक्षसाम् ।
राघवस्तु महातेजाः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

इस तरह वहाँ सुखपूर्वक निवास करते हुए रीछों, वानरों और राक्षसोंमेंसे सुग्रीवको सम्बोधित करके महातेजस्वी श्रीरघुनाथजीने इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

गम्यतां सौम्य किष्किन्धां दुराधर्षां सुरासुरैः ।
पालयस्व सहामात्यै राज्यं निहतकण्टकम् ॥ २ ॥

'सौम्य ! अब तुम देवताओं तथा असुरोंके लिये भी दुर्जय किष्किन्धापुरीको जाओ और वहाँ मन्त्रियोंके साथ रहकर अपने निष्कण्टक राज्यका पालन करो ॥ २ ॥

अङ्गदं च महाबाहो प्रीत्या परमया युतः ।
पश्य त्वं हनुमन्तं च नलं च सुमहाबलम् ॥ ३ ॥
सुषेणं श्वशुरं वीरं तारं च बलिनां वरम् ।
कुमुदं चैव दुर्धर्षं नीलं चैव महाबलम् ॥ ४ ॥
वीरं शतबलिं चैव मैन्दं द्विविदमेव च ।
गजं गवाक्षं गवयं शरभं च महाबलम् ॥ ५ ॥
ऋक्षराजं च दुर्धर्षं जाम्बवन्तं महाबलम् ।
पश्य प्रीतिसमायुक्तो गन्धमादनमेव च ॥ ६ ॥

'महाबाहो ! अङ्गद और हनुमान्‌को भी तुम अत्यन्त प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखना। महाबली नल, अपने श्वशुर वीर सुषेण, बलवानोंमें श्रेष्ठ तार, दुर्धर्ष वीर कुमुद, महाबली नील, वीर शतबलि, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, गवय, महाबली शरभ, महान् बल-पराक्रमसे युक्त दुर्जय वीर ऋक्षराज जाम्बवान् तथा गन्धमादनपर भी तुम प्रेमपूर्ण दृष्टि रखना ॥ ३—६ ॥

ऋषभं च सुविक्रान्तं प्लवङ्गं च सुपाटलम् ।
केसरिं शरभं शुम्भं शङ्खचूडं महाबलम् ॥ ७ ॥

'परम पराक्रमी ऋषभ, वानर सुपाटल, केसरी, शरभ, शुम्भ तथा महाबली शंखचूडको भी प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखना ॥

ये ये मे सुमहात्मानो मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
पश्य त्वं प्रीतिसंयुक्तो मा चैषां विप्रियं कृथाः ॥ ८ ॥

'इनके सिवा जिन-जिन महामनस्वी वानरोंने मेरे लिये अपने प्राणोंकी बाजी लगा दी थी, उन सबपर तुम प्रेमदृष्टि रखना। कभी उनका अप्रिय न करना' ॥ ८ ॥

एवमुक्त्वा च सुग्रीवमाश्लिष्य च पुनः पुनः ।
विभीषणमुवाचाथ रामो मधुरया गिरा ॥ ९ ॥

ऐसा कहकर श्रीरामने सुग्रीवको बारंबार हृदयसे लगाया और फिर मधुर वाणीमें विभीषणसे कहा—॥ ९ ॥

लङ्कां प्रशाधि धर्मेण धर्मज्ञस्त्वं मतो मम ।
पुरस्य राक्षसानां च भ्रातुर्वैश्रवणस्य च ॥ १० ॥

'राक्षसराज ! तुम धर्मपूर्वक लङ्काका शासन करो। मैं तुम्हें धर्मज्ञ मानता हूँ। तुम्हारे नगरके लोग, सब राक्षस तथा तुम्हारे भाई कुबेर भी तुम्हें धर्मज्ञ ही समझते हैं ॥ १० ॥

मा च बुद्धिमधर्मे त्वं कुर्या राजन् कथंचन ।
बुद्धिमन्तो हि राजानो ध्रुवमश्नन्ति मेदिनीम् ॥ ११ ॥

'राजन् ! तुम किसी तरह भी अधर्ममें मन न लगाना। जिनकी बुद्धि ठीक है, वे राजा निश्चय ही दीर्घकालतक पृथ्वीका राज्य भोगते हैं ॥ ११ ॥

अहं च नित्यशो राजन् सुग्रीवसहितस्त्वया ।
स्मर्तव्यः परया प्रीत्या गच्छ त्वं विगतज्वरः ॥ १२ ॥

'राजन् ! तुम सुग्रीवसहित मुझे सदा याद रखना। अब निश्चिन्त होकर प्रसन्नतापूर्वक यहाँसे जाओ' ॥ १२ ॥

रामस्य भाषितं श्रुत्वा ऋक्षवानरराक्षसाः ।
साधुसाध्विति काकुत्स्थं प्रशशंसुः पुनः पुनः ॥ १३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह भाषण सुनकर रीछों, वानरों और राक्षसोंने 'धन्य-धन्य' कहकर उनकी बारंबार प्रशंसा की ॥

तव बुद्धिर्महाबाहो वीर्यमद्भुतमेव च ।
माधुर्यं परमं राम स्वयम्भोरिव नित्यदा ॥ १४ ॥

वे बोले—'महाबाहु श्रीराम ! स्वयम्भू ब्रह्माजीके समान आपके स्वभावमें सदा परम मधुरता रहती है। आपकी बुद्धि और पराक्रम अद्‌भुत हैं' ॥ १४ ॥

तेषामेवं ब्रुवाणानां वानराणां च रक्षसाम् ।
हनुमान् प्रणतो भूत्वा राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १५ ॥

वानर और राक्षस जब ऐसा कह रहे थे, उसी समय हनुमान्‌जी विनम्र होकर श्रीरघुनाथजीसे बोले—॥ १५ ॥

स्नेहो मे परमो राजंस्त्वयि तिष्ठतु नित्यदा ।
भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छतु ॥ १६ ॥

'महाराज ! आपके प्रति मेरा महान् स्नेह सदा बना रहे। वीर ! आपमें ही मेरी निश्चल भक्ति रहे। आपके सिवा और कहीं मेरा आन्तरिक अनुराग न हो ॥ १६ ॥

यावद् रामकथा वीर चरिष्यति महीतले ।

तावच्छरीरे वत्स्यन्तु प्राणा मम न संशयः ॥ १७ ॥

'वीर श्रीराम ! इस पृथ्वीपर जबतक रामकथा प्रचलित रहे, तबतक निःसंदेह मेरे प्राण इस शरीरमें ही बसे रहें ॥

यच्चैतच्चरितं दिव्यं कथा ते रघुनन्दन ।
तन्ममाप्सरसो राम श्रावयेयुर्नरर्षभ ॥ १८ ॥

'रघुकुलनन्दन नरश्रेष्ठ श्रीराम! आपका जो यह दिव्य चरित्र और कथा है, इसे अप्सराएँ मुझे गाकर सुनाया करें ॥१८॥

तच्छ्रुत्वाहं ततो वीर तव चर्यामृतं प्रभो ।
उत्कण्ठां तां हरिष्यामि मेघलेखामिवानिलः ॥ १९ ॥

'वीर प्रभो ! आपके उस चरितामृतको सुनकर मैं अपनी उत्कण्ठाको उसी तरह दूर करता रहूँगा, जैसे वायु बादलोंकी पंक्तिको उड़ाकर दूर ले जाती है' ॥ १९ ॥

एवं ब्रुवाणं रामस्तु हनूमन्तं वरासनात् ।
उत्थाय सस्वजे स्नेहाद् वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २० ॥

हनुमान्‌जीके ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजीने श्रेष्ठ सिंहासनसे उठकर उन्हें हृदयसे लगा लिया और स्नेहपूर्वक इस प्रकार कहा—॥ २० ॥

एवमेतत् कपिश्रेष्ठ भविता नात्र संशयः ।
चरिष्यति कथा यावदेषा लोके च मामिका ॥ २१ ॥
तावत् ते भविता कीर्तिः शरीरेऽप्यसवस्तथा ।
लोका हि यावत्स्थास्यन्ति तावत् स्थास्यन्ति मे कथाः ॥

'कपिश्रेष्ठ ! ऐसा ही होगा, इसमें संशय नहीं है। संसारमें मेरी कथा जबतक प्रचलित रहेगी, तबतक तुम्हारी कीर्ति अमिट रहेगी और तुम्हारे शरीरमें प्राण भी रहेंगे ही। जबतक ये लोक बने रहेंगे, तबतक मेरी कथाएँ भी स्थिर रहेंगी ॥ २१-२२ ॥

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे ।
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम् ॥ २३ ॥

'कपे ! तुमने जो उपकार किये हैं, उनमेंसे एक-एकके लिये मैं अपने प्राण निछावर कर सकता हूँ । तुम्हारे शेष उपकारोंके लिये तो मैं ऋणी ही रह जाऊँगा ॥ २३ ॥

✓ **मदङ्गे जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं कपे ।**
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम् ॥ २४ ॥

'कपिश्रेष्ठ ! मैं तो यही चाहता हूँ कि तुमने जो-जो उपकार किये हैं, वे सब मेरे शरीरमें ही पच जायँ । उनका बदला चुकानेका मुझे कभी अवसर न मिले; क्योंकि पुरुषमें उपकारका बदला पानेकी योग्यता आपत्तिकालमें ही आती है (मैं नहीं चाहता कि तुम भी संकटमें पड़ो और मैं तुम्हारे उपकारका बदला चुकाऊँ)' ॥२४ ॥

ततोऽस्य हारं चन्द्राभं मुच्य कण्ठात् स राघवः ।
वैदूर्यतरलं कण्ठे बबन्ध च हनूमतः ॥ २५ ॥

इतना कहकर श्रीरघुनाथजीने अपने कण्ठसे एक चन्द्रमाके समान उज्ज्वल हार निकाला, जिसके मध्यभागमें वैदूर्यमणि थी । उसे उन्होंने हनुमान्‌जीके गलेमें बाँध दिया ॥२५॥

तेनोरसि निबद्धेन हारेण महता कपिः ।
रराज हेमशैलेन्द्रश्चन्द्रेणाक्रान्तमस्तकः ॥ २६ ॥

वक्षःस्थलसे सटे हुए उस विशाल हारसे हनुमान्‌जी उसी तरह सुशोभित हुए, जैसे सुवर्णमय गिरिराज सुमेरुके शिखरपर चन्द्रमाका उदय हुआ हो ॥ २६ ॥

श्रुत्वा तु राघवस्यैतदुत्थायोत्थाय वानराः ।
प्रणम्य शिरसा पादौ निर्जग्मुस्ते महाबलाः ॥ २७ ॥

श्रीरघुनाथजीके ये बिदाईके शब्द सुनकर वे महाबली वानर एक-एक करके उठे और उनके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम करके वहाँसे चल दिये ॥ २७ ॥

सुग्रीवः स च रामेण निरन्तरमुरोगतः ।
विभीषणश्च धर्मात्मा सर्वे ते बाष्पविक्लवाः ॥ २८ ॥

सुग्रीव और धर्मात्मा विभीषण श्रीरामके हृदयसे लग गये और उनका गाढ़ आलिंगन करके बिदा हुए । उस समय वे सब-के-सब नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए श्रीरामके भावी विरहसे व्यथित हो उठे थे ॥ २८॥

सर्वे च ते बाष्पकलाः साश्रुनेत्रा विचेतसः ।
सम्मूढा इव दुःखेन त्यजन्तो राघवं तदा ॥ २९ ॥

श्रीरामको छोड़कर जाते समय वे सभी दुःखसे किंकर्तव्यविमूढ़ तथा अचेत-से हो रहे थे । किसीके गलेसे आवाज नहीं निकलती थी और सभीके नेत्रोंसे अश्रु झर रहे थे ॥ २९ ॥

कृतप्रसादास्तेनैवं राघवेण महात्मना ।
जग्मुः स्वं स्वं गृहं सर्वे देही देहमिव त्यजन् ॥ ३० ॥

महात्मा श्रीरघुनाथजीके इस प्रकार कृपा एवं प्रसन्नतापूर्वक बिदा देनेपर वे सब वानर विवश हो उसी प्रकार अपने-अपने घरको गये, जैसे जीवात्मा विवशतापूर्वक शरीर छोड़कर परलोकको जाता है ॥ ३० ॥

ततस्तु ते राक्षसऋक्षवानराः
प्रणम्य रामं रघुवंशवर्धनम् ।
वियोगजाश्रुप्रतिपूर्णलोचनाः
प्रतिप्रयातास्तु यथानिवासिनः ॥ ३१ ॥

वे राक्षस, रीछ और वानर रघुवंशवर्धन श्रीरामको प्रणाम करके नेत्रोंमें वियोगके आँसू लिये अपने-अपने निवासस्थानको लौट गये ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः

कुबेरके भेजे हुए पुष्पकविमानका आना और श्रीरामसे पूजित एवं अनुगृहीत होकर अदृश्य हो जाना, भरतके द्वारा श्रीरामराज्यके विलक्षण प्रभावका वर्णन

विसृज्य च महाबाहुर्ऋक्षवानरराक्षसान् ।
भ्रातृभिः सहितो रामः प्रमुमोद सुखं सुखी ॥ १ ॥

रीछों, वानरों और राक्षसोंको बिदा करके भाइयोंसहित सुखस्वरूप महाबाहु श्रीराम सुख और आनन्दपूर्वक वहाँ रहने लगे ॥ १ ॥

अथापराह्णसमये भ्रातृभिः सह राघवः ।
शुश्राव मधुरां वाणीमन्तरिक्षान्महाप्रभुः ॥ २ ॥

एक दिन अपराह्णकालमें (दोपहरके बाद) अपने भाइयोंके साथ बैठे हुए महाप्रभु श्रीरघुनाथजीने आकाशसे यह मधुर वाणी सुनी—॥ २ ॥

सौम्य राम निरीक्षस्व सौम्येन वदनेन माम् ।
कुबेरभवनात् प्राप्तं विद्धि मां पुष्पकं प्रभो ॥ ३ ॥

'सौम्य श्रीराम ! आप मेरी ओर प्रसन्नतापूर्ण मुखसे दृष्टिपात करनेकी कृपा करें । प्रभो ! आपको विदित होना चाहिये कि मैं कुबेरके भवनसे लौटा हुआ पुष्पकविमान हूँ ॥

तव शासनमाज्ञाय गतोऽस्मि भवनं प्रति ।
उपस्थातुं नरश्रेष्ठ स च मां प्रत्यभाषत ॥ ४ ॥

'नरश्रेष्ठ ! आपकी आज्ञा मानकर मैं कुबेरकी सेवाके लिये उनके भवनमें गया था; परंतु उन्होंने मुझसे कहा—॥

निर्जितस्त्वं नरेन्द्रेण राघवेण महात्मना ।
निहत्य युधि दुर्धर्षं रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ ५ ॥

''विमान ! महात्मा महाराज श्रीरामने युद्धमें दुर्धर्ष राक्षसराज रावणको मारकर तुम्हें जीता है ॥ ५ ॥

ममापि परमा प्रीतिर्हते तस्मिन् दुरात्मनि ।
रावणे सगणे चैव सपुत्रे सहबान्धवे ॥ ६ ॥

''पुत्रों, बन्धु-बान्धवों तथा सेवकगणोंसहित उस दुरात्मा रावणके मारे जानेसे मुझे भी बड़ी प्रसन्नता हुई है ॥ ६ ॥

स त्वं रामेण लङ्कायां निर्जितः परमात्मना ।
वह सौम्य तमेव त्वमहमाज्ञापयामि ते ॥ ७ ॥

''सौम्य ! इस तरह परमात्मा श्रीरामने लङ्कामें रावणके साथ-साथ तुमको भी जीत लिया है; अतः मैं आज्ञा देता हूँ, तुम उन्हींकी सवारीमें रहो ॥ ७ ॥

परमो ह्येष मे कामो यत् त्वं राघवनन्दनम् ।
वहेर्लोकस्य संयानं गच्छस्व विगतज्वरः ॥ ८ ॥

''रघुकुलको आनन्दित करनेवाले श्रीराम सम्पूर्ण जगत्के आश्रय हैं । तुम उनकी सवारीके काम आओ—यह मेरी सबसे बड़ी कामना है । इसलिये तुम निश्चिन्त होकर जाओ' ॥ ८ ॥

सोऽहं शासनमाज्ञाय धनदस्य महात्मनः ।
त्वत्सकाशमनुप्राप्तो निर्विशङ्कः प्रतीच्छ माम् ॥ ९ ॥

'इस प्रकार मैं महात्मा कुबेरकी आज्ञा पाकर ही आपके पास आया हूँ; अतः आप मुझे निःशङ्क होकर ग्रहण करें ॥९॥

अधृष्यः सर्वभूतानां सर्वेषां धनदाज्ञया ।
चराम्यहं प्रभावेण तवाज्ञां परिपालयन् ॥ १० ॥

'मैं सभी प्राणियोंके लिये अजेय हूँ और कुबेरकी आज्ञाके अनुसार मैं आपके आदेशका पालन करता हुआ अपने प्रभावसे समस्त लोकोंमें विचरण करूँगा' ॥ १० ॥

एवमुक्तस्तदा रामः पुष्पकेण महाबलः ।
उवाच पुष्पकं दृष्ट्वा विमानं पुनरागतम् ॥ ११ ॥

पुष्पकके ऐसा कहनेपर महाबली श्रीरामने उस विमानको पुनः आया देख उससे कहा—॥ ११ ॥

यद्येवं स्वागतं तेऽस्तु विमानवर पुष्पक ।
आनुकूल्याद् धनेशस्य वृत्तदोषो न नो भवेत् ॥ १२ ॥

'विमानराज पुष्पक ! यदि ऐसी बात है तो मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ । कुबेरकी अनुकूलता होनेसे हमें मर्यादा-भङ्गका दोष नहीं लगेगा' ॥ १२ ॥

लाजैश्चैव तथा पुष्पैर्धूपैश्चैव सुगन्धिभिः ।
पूजयित्वा महाबाहू राघवः पुष्पकं तदा ॥ १३ ॥

ऐसा कहकर महाबाहु श्रीरामने लावा, फूल, धूप और चन्दन आदिके द्वारा पुष्पकका पूजन किया ॥ १३ ॥

गम्यतामिति चोवाच आगच्छ त्वं स्मरे यदा ।
सिद्धानां च गतौ सौम्य मा विषादेन योजय ॥ १४ ॥
प्रतिघातश्च ते मा भूद् यथेष्टं गच्छतो दिशः ।

और कहा—'अब तुम जाओ । जब मैं स्मरण करूँ, तब आ जाना । आकाशमें रहना और अपनेको मेरे वियोगसे दुखी न होने देना (मैं यथासमय तुम्हारा उपयोग करता रहूँगा) । स्वेच्छासे सम्पूर्ण दिशाओंमें जाते समय तुम्हारी किसीसे टक्कर न हो अथवा तुम्हारी गति कहीं प्रतिहत न हो' ॥ १४½ ॥

एवमस्त्विति रामेण पूजयित्वा विसर्जितम् ॥ १५ ॥
अभिप्रेतां दिशं तस्मात् प्रायात् तत् पुष्पकं तदा ।

पुष्पकने 'एवमस्तु' कहकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर ली । इस प्रकार श्रीरामने उसका पूजन करके जब उसे जानेकी आज्ञा दे दी, तब वह पुष्पक वहाँसे अपनी अभीष्ट दिशाको चला गया ॥ १५½ ॥

एवमन्तर्हिते तस्मिन् पुष्पके सुकृतात्मनि ॥ १६ ॥
भरतः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच रघुनन्दनम् ।

इस प्रकार पुण्यमय पुष्पकविमानके अदृश्य हो जानेपर भरतजीने हाथ जोड़कर श्रीरघुनाथजीसे कहा—॥ १६½ ॥

विबुधात्मनि दृश्यन्ते त्वयि वीर प्रशासति ॥ १७ ॥
अमानुषाणि सत्त्वानि व्याहृतानि मुहुर्मुहुः ।

'वीरवर ! आप देवस्वरूप हैं। इसीलिये आपके शासनकालमें मनुष्येतर प्राणी भी बारंबार मनुष्योंके समान सम्भाषण करते देखे जाते हैं ॥ १७½ ॥

अनामयश्च मर्त्यानां साग्रो मासो गतो·ह्ययम् ॥ १८ ॥
जीर्णानामपि सत्त्वानां मृत्युर्नायाति राघव ।
अरोगप्रसवा नार्यो वपुष्मन्तो हि मानवाः ॥ १९ ॥

'आपके राज्यपर अभिषिक्त हुए एक माससे अधिक हो गया, तबसे सभी लोग नीरोग दिखायी देते हैं। बूढ़े प्राणियोंके पास भी मृत्यु नहीं फटकती है। स्त्रियाँ बिना कष्ट सहे प्रसव करती हैं। सभी मनुष्योंके शरीर हृष्ट-पुष्ट दिखायी देते हैं ॥ १८-१९ ॥

हर्षश्चाभ्यधिको राजञ्जनस्य पुरवासिनः ।
काले वर्षति पर्जन्यः पातयन्नमृतं पयः ॥ २० ॥

'राजन् ! पुरवासियोंमें बड़ा हर्ष छा रहा है। मेघ अमृतके समान जल गिराते हुए समयपर वर्षा करते हैं ॥२०॥

वाताश्चापि प्रवान्त्येते स्पर्शयुक्ताः सुखाः शिवाः ।
ईदृशो नश्चिरं राजा भवेदिति नरेश्वरः ॥ २१ ॥
कथयन्ति पुरे राजन् पौरजानपदास्तथा ।

'हवा ऐसी चलती है कि इसका स्पर्श शीतल एवं सुखद जान पड़ता है। राजन् ! नगर और जनपदके लोग इस पुरीमें कहते हैं कि हमारे लिये चिरकालतक ऐसे ही प्रभावशाली राजा रहें' ॥ २१½ ॥

एता वाचः सुमधुरा भरतेन समीरिताः ।
श्रुत्वा रामो मुदा युक्तो बभूव नृपसत्तमः ॥ २२ ॥

भरतकी कही हुई ये सुमधुर बातें सुनकर नृपश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें इकतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

* * *

द्विचत्वारिंशः सर्गः

अशोकवनिकामें श्रीराम और सीताका विहार, गर्भिणी सीताका तपोवन देखनेकी इच्छा प्रकट करना और श्रीरामका इसके लिये स्वीकृति देना

स विसृज्य ततो रामः पुष्पकं हेमभूषितम् ।
प्रविवेश महाबाहुरशोकवनिकां तदा ॥ १ ॥

सुवर्णभूषित पुष्पक विमानको बिदा करके महाबाहु श्रीरामने अशोक-वनिका (अन्तःपुरके विहार योग्य उपवन) में प्रवेश किया ॥ १ ॥

चन्दनागुरुचूतैश्च तुङ्गकालेयकैरपि ।
देवदारुवनैश्चापि समन्तादुपशोभिताम् ॥ २ ॥

चन्दन, अगुरु, आम, तुङ्ग, (नारियल), कालेयक (रक्तचन्दन) तथा देवदारु-वन सब ओरसे उसकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ २ ॥

चम्पकाशोकपुंनागमधूकपनसासनैः ।
शोभितां पारिजातैश्च विधूमज्वलनप्रभैः ॥ ३ ॥

चम्पा, अशोक, पुंनाग, महुआ, कटहल, असन तथा धूमरहित अग्निके समान प्रकाशित होनेवाले पारिजातसे वह वाटिका सुशोभित थी ॥ ३ ॥

लोध्रनीपार्जुनैर्नागैः सप्तपर्णातिमुक्तकैः ।
मन्दारकदलीगुल्मलताजालसमावृताम् ॥ ४ ॥

लोध, कदम्ब, अर्जुन, नागकेसर, छितवन, अतिमुक्तक, मन्दार, कदली तथा गुल्मों और लताओंके समूह उसमें सब ओर व्याप्त थे ॥ ४ ॥

प्रियङ्गुभिः कदम्बैश्च तथा च बकुलैरपि ।
जम्बूभिर्दाडिमैश्चैव कोविदारैश्च शोभिताम् ॥ ५ ॥

प्रियङ्गु, धूलिकदम्ब, बकुल, जामुन, अनार और कोविदार आदि वृक्ष उस उपवनको सुशोभित करते थे ॥ ५॥

सर्वदा कुसुमै रम्यैः फलवद्भिर्मनोरमैः ।
दिव्यगन्धरसोपेतैस्तरुणाङ्कुरपल्लवैः ॥ ६ ॥

सदा फूल और फल देनेवाले रमणीय, मनोरम, दिव्य रस और गन्धसे युक्त तथा नूतन अङ्कुर-पल्लवोंसे अलंकृत वृक्ष भी उस अशोक-वनिकाकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ ६ ॥

तथैव तरुभिर्दिव्यैः शिल्पिभिः परिकल्पितैः ।
चारुपल्लवपुष्पाढ्यैर्मत्तभ्रमरसंकुलैः ॥ ७ ॥

वृक्ष लगानेकी कलामें कुशल मालियोंद्वारा तैयार किये गये दिव्य वृक्ष, जिनमें मनोहर पल्लव तथा पुष्प शोभा पाते थे और जिनके ऊपर मतवाले भ्रमर छा रहे थे, उस उपवनकी श्री-वृद्धि कर रहे थे ॥ ७ ॥

कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च नानावर्णैश्च पक्षिभिः ।
शोभितां शतशश्चित्रां चूतवृक्षावतंसकैः ॥ ८ ॥

कोकिल, भृङ्गराज आदि रंग-बिरंगे सैकड़ों पक्षी उस वाटिकाकी शोभा थे, जो आम्रकी डालियोंके अग्रभागपर बैठकर वहाँ विचित्र सुषुमाकी सृष्टि कर रहे थे ॥ ८ ॥

शातकुम्भनिभाः केचित् केचिदग्निशिखोपमाः ।
नीलाञ्जननिभाश्चान्ये भान्ति तत्र स्म पादपाः ॥ ९ ॥

कोई वृक्ष सुवर्णके समान पीले, कोई अग्नि-शिखाके समान उज्ज्वल और कोई नीले अञ्जनके समान श्याम थे,

जो स्वयं सुशोभित होकर उस उपवनकी शोभा बढ़ाते थे ॥ ९॥

सुरभीणि च पुष्पाणि माल्यानि विविधानि च ।
दीर्घिका विविधाकाराः पूर्णाः परमवारिणा ॥ १० ॥

वहाँ अनेक प्रकारके सुगन्धित पुष्प और गुच्छ दृष्टिगोचर होते थे । उत्तम जलसे भरी हुई भाँति-भाँतिकी बावड़ियाँ देखी जाती थीं ॥ १० ॥

माणिक्यकृतसोपानाः स्फाटिकान्तरकुट्टिमाः ।
फुल्लपद्मोत्पलवनाश्चक्रवाकोपशोभिताः ॥ ११ ॥

जिनमें माणिक्यकी सीढ़ियाँ बनी थीं । सीढ़ियोंके बाद कुछ दूरतक जलके भीतरकी भूमि स्फटिक मणिसे बँधी हुई थी । उन बावड़ियोंके भीतर खिले हुए कमल और कुमुदोंके समूह शोभा पाते थे, चक्रवाक भी उनकी शोभा बढ़ा रहे थे॥

दात्यूहशुकसंघुष्टा हंससारसनादिताः ।
तरुभिः पुष्पशबलैस्तीरजैरुपशोभिताः ॥ १२ ॥

पपीहे और तोते वहाँ मीठी बोली बोल रहे थे । हंसों और सारसोंके कलरव गूँज रहे थे । फूलोंसे चितकबरे दिखायी देनेवाले तटवर्ती वृक्ष उन्हें शोभासम्पन्न बना रहे थे ॥१२॥

प्राकारैर्विविधाकारैः शोभिताश्च शिलातलैः ।
तत्रैव च वनोद्देशे वैदूर्यमणिसंनिभैः ॥ १३ ॥
शाद्वलैः परमोपेतां पुष्पितद्रुमकाननाम् ।

वे भाँति-भाँतिके परकोटों और शिलाओंसे भी सुशोभित थीं । वहीं वनप्रान्तमें नीलमके समान रंगवाली हरी-हरी घासें उस वाटिकाका शृङ्गार कर रही थीं । वहाँके वृक्षोंका समुदाय फूलोंके भारसे लदा हुआ था ॥ १३½ ॥

तत्र संघर्षजातानां वृक्षाणां पुष्पशालिनाम् ॥ १४ ॥
प्रस्तराः पुष्पशबला नभस्तारागणैरिव ।

वहाँ मानो परस्पर होड़ लगाकर खिले हुए पुष्पशाली वृक्षोंके झड़े हुए फूलोंसे काले-काले प्रस्तर उसी तरह चितकबरे दिखायी देते थे, जैसे तारोंके समुदायसे अलंकृत आकाश ॥ १४½ ॥

नन्दनं हि यथेन्द्रस्य ब्राह्मं चैत्ररथं यथा ॥ १५ ॥
तथाभूतं हि रामस्य काननं संनिवेशनम् ।

जैसे इन्द्रका नन्दन और ब्रह्माजीका बनाया हुआ कुबेरका चैत्ररथ वन सुशोभित होता है, उसी प्रकार सुन्दर भवनोंसे विभूषित श्रीरामका वह क्रीडा-कानन शोभा पा रहा था ॥

बह्वासनगृहोपेतां लतागृहसमावृताम् ॥ १६ ॥
अशोकवनिकां स्फीतां प्रविश्य रघुनन्दनः ।
आसने च शुभाकारे पुष्पप्रकरभूषिते ॥ १७ ॥
कुथास्तरणसंस्तीर्णे रामः संनिषसाद ह ।

वहाँ अनेक ऐसे भवन बने थे, जिनके भीतर बैठनेके लिये बहुत-से आसन सजाये गये थे । वह वाटिका अनेक लतामण्डपोंसे सम्पन्न दिखायी देती थी । उस समृद्धिशालिनी अशोक-वनिकामें प्रवेश करके रघुकुलनन्दन श्रीराम पुष्पराशिसे विभूषित एक सुन्दर आसनपर बैठे; जिसपर कालीन बिछा था ॥ १६-१७½ ॥

सीतामादाय हस्तेन मधु मैरेयकं शुचि ॥ १८ ॥
पाययामास काकुत्स्थः शचीमिव पुरंदरः ।

जैसे देवराज इन्द्र शचीको सुधापान कराते हैं, उसी प्रकार ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामने अपने हाथसे पवित्र पेय मधु लेकर सीताजीको पिलाया ॥ १८½ ॥

मांसानि च सुमृष्टानि फलानि विविधानि च ॥ १९ ॥
रामस्याभ्यवहारार्थं किंकरास्तूर्णमाहरन् ।

सेवकगण श्रीरामके भोजनके लिये वहाँ तुरंत ही राजोचित भोग्य पदार्थ (भाँति-भाँतिकी रसोई) तथा नाना प्रकारके फल ले आये ॥ १९½ ॥

उपानृत्यंश्च राजानं नृत्यगीतविशारदाः ॥ २० ॥
अप्सरोरगसंघाश्च किंनरीपरिवारिताः ।

उस समय राजा रामके समीप नृत्य और गीतकी कलामें निपुण अप्सराएँ और नाग-कन्याएँ किन्नरियोंके साथ मिलकर नृत्य करने लगीं ॥ २०½ ॥

दक्षिणा रूपवत्यश्च स्त्रियः पानवशं गताः ॥ २१ ॥
उपानृत्यन्त काकुत्स्थं नृत्यगीतविशारदाः ।

नाचने-गानेमें कुशल और चतुर बहुत-सी रूपवती स्त्रियाँ मधुपानजनित मदके वशीभूत हो श्रीरामचन्द्रजीके निकट अपनी नृत्य-कलाका प्रदर्शन करने लगीं ॥ २१½ ॥

मनोऽभिरामा रामास्ता रामो रमयतां वरः ॥ २२ ॥
रमयामास धर्मात्मा नित्यं परमभूषिताः ।

दूसरोंके मनको रमानेवाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा श्रीराम सदा उत्तम वस्त्राभूषणोंसे भूषित हुई उन मनोऽभिराम रमणियोंको उपहार आदि देकर संतुष्ट रखते थे ॥ २२½ ॥

स तया सीतया सार्धमासीनो विरराज ह ॥ २३ ॥
अरुन्धत्या इवासीनो वसिष्ठ इव तेजसा ।

उस समय भगवान् श्रीराम सीतादेवीके साथ सिंहासनपर विराजमान हो अपने तेजसे अरुन्धतीके साथ बैठे हुए वसिष्ठजीके समान शोभा पाते थे ॥ २३½ ॥

एवं रामो मुदा युक्तः सीतां सुरसुतोपमाम् ॥ २४ ॥
रमयामास वैदेहीमहन्यहनि देववत् ।

यों श्रीराम प्रतिदिन देवताके समान आनन्दित रहकर देवकन्याके समान सुन्दरी विदेहनन्दिनी सीताके साथ रमण करते थे ॥ २४½ ॥

तथा तयोर्विहरतोः सीताराघवयोश्चिरम् ॥ २५ ॥
अत्यक्रामच्छुभः कालः शैशिरो भोगदः सदा ।
प्राप्तयोर्विविधान् भोगानतीतः शिशिरागमः ॥ २६ ॥

इस प्रकार सीता और रघुनाथजी चिरकालतक विहार करते रहे । इतनेहीमें सदा भोग प्रदान करनेवाला शिशिर-ऋतुका सुन्दर समय व्यतीत हो गया । भाँति-भाँतिके भोगोंका

उपभोग करते हुए उन राजदम्पतिका वह शिशिरकाल बीत गया ॥ २५-२६ ॥

पूर्वाह्णे धर्मकार्याणि कृत्वा धर्मेण धर्मवित् ।
शेषं दिवसभागार्धमन्तःपुरगतोऽभवत् ॥ २७ ॥

धर्मज्ञ श्रीराम दिनके पूर्वभागमें धर्मके अनुसार धार्मिक कृत्य करते थे और शेष आधे दिन अन्तःपुरमें रहते थे ॥

सीतापि देवकार्याणि कृत्वा पौर्वाह्णिकानि वै ।
श्वश्रूणामकरोत् पूजां सर्वासामविशेषतः ॥ २८ ॥

सीताजी भी पूर्वाह्णकालमें देवपूजन आदि करके सब सासुओंकी समानरूपसे सेवा-पूजा करती थीं ॥ २८ ॥

अभ्यगच्छत् ततो रामं विचित्राभरणाम्बरा ।
त्रिविष्टपे सहस्राक्षमुपविष्टं यथा शची ॥ २९ ॥

तत्पश्चात् विचित्र वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो श्रीरामचन्द्रजीके पास चली जाती थीं । ठीक उसी तरह, जैसे स्वर्गमें शची सहस्राक्ष इन्द्रकी सेवामें उपस्थित होती हैं ॥ २९ ॥

दृष्ट्वा तु राघवः पत्नीं कल्याणेन समन्विताम् ।
प्रहर्षमतुलं लेभे साधुसाध्विति चाब्रवीत् ॥ ३० ॥

इन्हीं दिनों श्रीरामचन्द्रजीने अपनी पत्नीको गर्भके मङ्गलमय चिह्नसे युक्त देखकर अनुपम हर्ष प्राप्त किया और कहा—'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' ॥ ३० ॥

अब्रवीच्च वरारोहां सीतां सुरसुतोपमाम् ।
अपत्यलाभो वैदेहि त्वय्ययं समुपस्थितः ॥ ३१ ॥
किमिच्छसि वरारोहे कामः किं क्रियतां तव ।

फिर वे देवकन्याके समान सुन्दरी सीतासे बोले—'विदेहनन्दिनि ! तुम्हारे गर्भसे पुत्र प्राप्त होनेका यह समय उपस्थित है । वरारोहे ! बताओ, तुम्हारी क्या इच्छा है ? मैं तुम्हारा कौन-सा मनोरथ पूर्ण करूँ ?' ॥ ३१½ ॥

स्मितं कृत्वा तु वैदेही रामं वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ३२ ॥
तपोवनानि पुण्यानि द्रष्टुमिच्छामि राघव ।
गङ्गातीरोपविष्टानामृषीणामुग्रतेजसाम् ॥ ३३ ॥
फलमूलाशिनां देव पादमूलेषु वर्तितुम् ।
एष मे परमः कामो यन्मूलफलभोजिनाम् ॥ ३४ ॥
अप्येकरात्रिं काकुत्स्थ निवसेयं तपोवने ।

इसपर सीताजीने मुसकराकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'रघुनन्दन ! मेरी इच्छा एक बार उन पवित्र तपोवनोंको देखनेकी हो रही है । देव ! गङ्गातटपर रहकर फल-मूल खानेवाले जो उग्र तेजस्वी महर्षि हैं, उनके समीप (कुछ दिन) रहना चाहती हूँ । काकुत्स्थ ! फल-मूलका आहार करनेवाले महात्माओंके तपोवनमें एक रात निवास करूँ, यही मेरी इस समय सबसे बड़ी अभिलाषा है' ॥ ३२–३४½ ॥

तथेति च प्रतिज्ञातं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
विस्रब्धा भव वैदेहि श्वो गमिष्यस्यसंशयम् ॥ ३५ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामने सीताकी इस इच्छाको पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा की और कहा—'विदेहनन्दिनि ! निश्चिन्त रहो । कल ही वहाँ जाओगी, इसमें संशय नहीं है' ॥ ३५ ॥

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थो मैथिलीं जनकात्मजाम् ।
मध्यकक्षान्तरं रामो निर्जगाम सुहृद्वृतः ॥ ३६ ॥

मिथिलेशकुमारी जानकीसे ऐसा कहकर ककुत्स्थकुलनन्दन श्रीराम अपने मित्रोंके साथ बीचके खण्डमें चले गये ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बयालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः

भद्रका पुरवासियोंके मुखसे सीताके विषयमें सुनी हुई अशुभ चर्चासे श्रीरामको अवगत कराना

तत्रोपविष्टं राजानमुपासन्ते विचक्षणाः ।
कथानां बहुरूपाणां हास्यकाराः समन्ततः ॥ १ ॥

वहाँ बैठे हुए महाराज श्रीरामके पास अनेक प्रकारकी कथाएँ कहनेमें कुशल हास्यविनोद करनेवाले सखा सब ओरसे आकर बैठते थे ॥ १ ॥

विजयो मधुमत्तश्च काश्यपो मङ्गलः कुलः ।
सुराजिः कालियो भद्रो दन्तवक्त्रः सुमागधः ॥ २ ॥

उन सखाओंके नाम इस प्रकार हैं—विजय, मधुमत्त, काश्यप, मङ्गल, कुल, सुराजि, कालिय, भद्र, दन्तवक्त्र और सुमागध ॥ २ ॥

एते कथा बहुविधाः परिहाससमन्विताः ।
कथयन्ति स्म संहृष्टा राघवस्य महात्मनः ॥ ३ ॥

ये सब लोग बड़े हर्षसे भरकर महात्मा श्रीरघुनाथजीके सामने अनेक प्रकारकी हास्य-विनोदपूर्ण कथाएँ कहा करते थे ॥

ततः कथायां कस्यांचिद् राघवः समभाषत ।
काः कथा नगरे भद्र वर्तन्ते विषयेषु च ॥ ४ ॥

इसी समय किसी कथाके प्रसङ्गमें श्रीरघुनाथजीने पूछा—'भद्र ! आजकल नगर और राज्यमें किस बातकी चर्चा विशेषरूपसे होती है ? ॥ ४ ॥

मामाश्रितानि कान्याहुः पौरजानपदा जनाः ।
किं च सीतां समाश्रित्य भरतं किं च लक्ष्मणम् ॥ ५ ॥
किं नु शत्रुघ्नमुद्दिश्य कैकेयीं किं नु मातरम् ।
वक्तव्यतां च राजानो वने राज्ये व्रजन्ति च ॥ ६ ॥

'नगर और जनपदके लोग मेरे, सीताके, भरतके, लक्ष्मणके तथा शत्रुघ्न और माता कैकेयीके विषयमें क्या-क्या बातें करते हैं ? क्योंकि राजा यदि आचार-विचारसे हीन हों तो वे अपने राज्यमें तथा वनमें (ऋषि-मुनियोंके आश्रममें) भी

निन्दाके विषय बन जाते हैं—सर्वत्र उन्हींकी बुराइयोंकी चर्चा होती है' ॥ ५-६ ॥

एवमुक्ते तु रामेण भद्रः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
स्थिताः शुभाः कथा राजन् वर्तन्ते पुरवासिनाम् ॥ ७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर भद्र हाथ जोड़कर बोला—'महाराज ! आजकल पुरवासियोंमें आपको लेकर सदा अच्छी ही चर्चाएँ चलती हैं' ॥ ७ ॥

अमुं तु विजयं सौम्य दशग्रीववधार्जितम् ।
भूयिष्ठं स्वपुरे पौरैः कथ्यन्ते पुरुषर्षभ ॥ ८ ॥

'सौम्य ! पुरुषोत्तम ! दशग्रीव-वधसम्बन्धी जो आपकी विजय है, उसको लेकर नगरमें सब लोग अधिक बातें किया करते हैं' ॥ ८ ॥

एवमुक्तस्तु भद्रेण राघवो वाक्यमब्रवीत् ।
कथयस्व यथातत्त्वं सर्वं निरवशेषतः ॥ ९ ॥
शुभाशुभानि वाक्यानि कान्याहुः पुरवासिनः ।
श्रुत्वेदानीं शुभं कुर्यां न कुर्यामशुभानि च ॥ १० ॥

भद्रके ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजीने कहा—'पुरवासी मेरे विषयमें कौन-कौन-सी शुभ या अशुभ बातें कहते हैं, उन सबको यथार्थरूपसे पूर्णतः बताओ । इस समय उनकी शुभ बातें सुनकर जिन्हें वे शुभ मानते हैं उनका मैं आचरण करूँगा और अशुभ बातें सुनकर जिन्हें वे अशुभ समझते हैं, उन कृत्योंको त्याग दूँगा ॥ ९-१० ॥

कथयस्व च विस्रब्धो निर्भयं विगतज्वरः ।
कथयन्ति यथा पौराः पापा जनपदेषु च ॥ ११ ॥

'तुम विश्वस्त और निश्चिन्त होकर बेखटके कहो । पुरवासी और जनपदके लोग मेरे विषयमें किस प्रकार अशुभ चर्चाएँ करते हैं' ॥ ११ ॥

राघवेणैवमुक्तस्तु भद्रः सुरुचिरं वचः ।
प्रत्युवाच महाबाहुं प्राञ्जलिः सुसमाहितः ॥ १२ ॥

श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनेपर भद्रने हाथ जोड़कर एकाग्रचित्त हो उन महाबाहु श्रीरामसे यह परम सुन्दर बात कही—॥ १२ ॥

शृणु राजन् यथा पौराः कथयन्ति शुभाशुभम् ।
चत्वरापणरथ्यासु वनेषूपवनेषु च ॥ १३ ॥

'राजन् ! सुनिये, पुरवासी मनुष्य चौराहोंपर, बाजारमें, सड़कोंपर तथा वन और उपवनमें भी आपके विषयमें किस प्रकार शुभ और अशुभ बातें कहते हैं ? यह बता रहा हूँ।१३।

दुष्करं कृतवान् रामः समुद्रे सेतुबन्धनम् ।
अश्रुतं पूर्वकैः कैश्चिद् देवैरपि सदानवैः ॥ १४ ॥

'वे कहते हैं 'श्रीरामने समुद्रपर पुल बाँधकर दुष्कर कर्म किया है । ऐसा कर्म तो पहलेके किन्हीं देवताओं और दानवोंने भी नहीं सुना होगा ॥ १४ ॥

रावणश्च दुराधर्षो हतः सबलवाहनः ।
वानराश्च वशं नीता ऋक्षाश्च सह राक्षसैः ॥ १५ ॥

''श्रीरामद्वारा दुर्धर्ष रावण सेना और सवारियोंसहित मारा गया तथा राक्षसोंसहित रीछ और वानर भी वशमें कर लिये गये ॥ १५ ॥

हत्वा च रावणं संख्ये सीतामाहृत्य राघवः ।
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा स्ववेश्म पुनरानयत् ॥ १६ ॥

''परंतु एक बात खटकती है, युद्धमें रावणको मारकर श्रीरघुनाथजी सीताको अपने घर ले आये । उनके मनमें सीताके चरित्रको लेकर रोष या अमर्ष नहीं हुआ ॥ १६ ॥

कीदृशं हृदये तस्य सीतासम्भोगजं सुखम् ।
अङ्कमारोप्य तु पुरा रावणेन बलाद्धृताम् ॥ १७ ॥
लङ्कामपि पुरा नीतामशोकवनिकां गताम् ।
रक्षसां वशमापन्नां कथं रामो न कुत्स्यति ॥ १८ ॥
अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति ।
यथा हि कुरुते राजा प्रजास्तमनुवर्तते ॥ १९ ॥

''उनके हृदयमें सीता-सम्भोगजनित सुख कैसा लगता होगा ? पहले रावणने बलपूर्वक सीताको गोदमें उठाकर उनका अपहरण किया था; फिर वह उन्हें लङ्कामें भी ले गया और वहाँ उसने अन्तःपुरके क्रीडा-कानन अशोकवनिकामें रक्खा । इस प्रकार राक्षसोंके वशमें होकर वे बहुत दिनोंतक रहीं तो भी श्रीराम उनसे घृणा क्यों नहीं करते हैं । अब हमलोगोंको भी स्त्रियोंकी ऐसी बातें सहनी पड़ेंगी; क्योंकि राजा जैसा करता है, प्रजा भी उसीका अनुकरण करने लगती है' ॥१७-१९॥

एवं बहुविधा वाचो वदन्ति पुरवासिनः ।
नगरेषु च सर्वेषु राजन् जनपदेषु च ॥ २० ॥

'राजन् ! इस प्रकार सारे नगर और जनपदमें पुरवासी मनुष्य बहुत-सी बातें कहते हैं' ॥ २० ॥

तस्यैवं भाषितं श्रुत्वा राघवः परमार्तवत् ।
उवाच सुहृदः सर्वान् कथमेतद् वदन्तु माम् ॥ २१ ॥

भद्रकी यह बात सुनकर श्रीरघुनाथजीने अत्यन्त पीड़ित होकर समस्त सुहृदोंसे पूछा—'आपलोग भी मुझे बतावें, यह कहाँतक ठीक है' ॥ २१ ॥

सर्वे तु शिरसा भूमावभिवाद्य प्रणम्य च ।
प्रत्यूचू राघवं दीनमेवमेतन्न संशयः ॥ २२ ॥

तब सबने धरतीपर मस्तक टेककर श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके दीनतापूर्ण वाणीमें कहा—'प्रभो ! भद्रका यह कथन ठीक है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है' ॥२२ ॥

श्रुत्वा तु वाक्यं काकुत्स्थः सर्वेषां समुदीरितम् ।
विसर्जयामास तदा वयस्याञ्छत्रुसूदनः ॥ २३ ॥

सबके मुखसे यह बात सुनकर शत्रुसूदन श्रीरामने तत्काल उन सब सुहृदोंको बिदा कर दिया ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः

श्रीरामके बुलानेसे सब भाइयोंका उनके पास आना

विसृज्य तु सुहृद्वर्गं बुद्ध्या निश्चित्य राघवः ।
समीपे द्वाःस्थमासीनमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

मित्रमण्डलीको विदा करके श्रीरघुनाथजीने बुद्धिसे विचारकर अपना कर्तव्य निश्चित किया और निकटवर्ती द्वारपालसे इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

शीघ्रमानय सौमित्रिं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।
भरतं च महाभागं शत्रुघ्नमपराजितम् ॥ २ ॥

'तुम जाकर शीघ्र ही महाभाग भरत, सुमित्राकुमार शुभलक्षण लक्ष्मण तथा अपराजित वीर शत्रुघ्नको भी यहाँ बुला लाओ' ॥ २ ॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा द्वाःस्थो मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ।
लक्ष्मणस्य गृहं गत्वा प्रविवेशानिवारितः ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह आदेश सुनकर द्वारपालने मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर उन्हें प्रणाम किया और लक्ष्मणके घर जाकर बेरोक-टोक उसके भीतर प्रवेश किया ॥ ३ ॥

उवाच सुमहात्मानं वर्धयित्वा कृताञ्जलिः ।
द्रष्टुमिच्छति राजा त्वां गम्यतां तत्र मा चिरम् ॥ ४ ॥

वहाँ हाथ जोड़ जय-जयकार करते हुए उसने महात्मा लक्ष्मणसे कहा—'कुमार ! महाराज आपसे मिलना चाहते हैं । अतः शीघ्र चलिये, विलम्ब न कीजिये' ॥ ४ ॥

बाढमित्येव सौमित्रिः कृत्वा राघवशासनम् ।
प्राद्रवद् रथमारुह्य राघवस्य निवेशनम् ॥ ५ ॥

तब सुमित्राकुमार लक्ष्मणने 'बहुत अच्छा' कहकर श्रीरामचन्द्रजीके आदेशको शिरोधार्य किया और तत्काल रथपर बैठकर वे श्रीरघुनाथजीके महलकी ओर तीव्रगतिसे चले ॥

प्रयान्तं लक्ष्मणं दृष्ट्वा द्वाःस्थो भरतमन्तिकात् ।
उवाच भरतं तत्र वर्धयित्वा कृताञ्जलिः ॥ ६ ॥
विनयावनतो भूत्वा राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति ।

लक्ष्मणको जाते देख द्वारपाल भरतके पास गया और उन्हें हाथ जोड़ वहाँ जय-जयकार करके विनीतभावसे बोला—'प्रभो ! महाराज आपसे मिलना चाहते हैं' ॥ ६½ ॥

भरतस्तु वचः श्रुत्वा द्वाःस्थाद् रामसमीरितम् ॥ ७ ॥
उत्पपातासनात् तूर्णं पद्भ्यामेव महाबलः ।

श्रीरामके भेजे हुए द्वारपालके मुखसे यह बात सुनकर महाबली भरत तुरंत अपने आसनसे उठ खड़े हुए और पैदल ही चल दिये ॥ ७½ ॥

दृष्ट्वा प्रयान्तं भरतं त्वरमाणः कृताञ्जलिः ॥ ८ ॥
शत्रुघ्नभवनं गत्वा ततो वाक्यमुवाच ह ।

भरतको जाते देख द्वारपाल बड़ी उतावलीके साथ शत्रुघ्नके भवनमें गया और हाथ जोड़कर बोला—॥ ८½ ॥

एह्यागच्छ रघुश्रेष्ठ राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति ॥ ९ ॥
गतो हि लक्ष्मणः पूर्वं भरतश्च महायशाः ।

'रघुश्रेष्ठ ! आइये, चलिये, राजा श्रीराम आपको देखना चाहते हैं । श्रीलक्ष्मणजी और महायशस्वी भरतजी पहले ही जा चुके हैं' ॥ ९½ ॥

श्रुत्वा तु वचनं तस्य शत्रुघ्नः परमासनात् ॥ १० ॥
शिरसा वन्द्य धरणीं प्रययौ यत्र राघवः ।

द्वारपालकी बात सुनकर शत्रुघ्न अपने उत्तम आसनसे उठे और धरतीपर माथा टेककर मन-ही-मन श्रीरामकी वन्दना करके तुरंत उनके निवासस्थानकी ओर चल दिये ॥ १०½ ॥

द्वाःस्थस्त्वागम्य रामाय सर्वानेव कृताञ्जलिः ॥ ११ ॥
निवेदयामास तथा भ्रातॄन् स्वान् समुपस्थितान् ।

द्वारपालने आकर श्रीरामसे हाथ जोड़कर निवेदन किया कि 'प्रभो ! आपके सभी भाई द्वारपर उपस्थित हैं' ॥ ११½ ॥

कुमारानागतांश्छ्रुत्वा चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियः ॥ १२ ॥
अवाङ्मुखो दीनमना द्वाःस्थं वचनमब्रवीत् ।
प्रवेशय कुमारांस्त्वं मत्समीपं त्वरान्वितः ॥ १३ ॥
एतेषु जीवितं मह्यमेते प्राणाः प्रिया मम ।

कुमारोंका आगमन सुनकर चिन्तासे व्याकुल इन्द्रियवाले श्रीरामने नीचे मुख किये दुखी मनसे द्वारपालको आदेश दिया—'तुम तीनों राजकुमारोंको जल्दी मेरे पास ले आओ । मेरा जीवन इन्हींपर अवलम्बित है । ये मेरे प्यारे प्राणस्वरूप हैं' ॥ १२-१३½ ॥

आज्ञप्तास्तु नरेन्द्रेण कुमाराः शुक्लवाससः ॥ १४ ॥
प्रह्वाः प्राञ्जलयो भूत्वा विविशुस्ते समाहिताः ।

महाराजकी आज्ञा पाकर वे श्वेत वस्त्रधारी कुमार सिर झुकाये हाथ जोड़े एकाग्रचित्त हो भवनके भीतर गये ॥ १४½ ॥

ते तु दृष्ट्वा मुखं तस्य सग्रहं शशिनं यथा ॥ १५ ॥
संध्यागतमिवादित्यं प्रभया परिवर्जितम् ।

उन्होंने श्रीरामका मुख इस तरह उदास देखा, मानो चन्द्रमापर ग्रह लग गया हो । वह संध्याकालके सूर्यकी भाँति प्रभाशून्य हो रहा था ॥ १५½ ॥

बाष्पपूर्णे च नयने दृष्ट्वा रामस्य धीमतः ।
हतशोभं यथा पद्मं मुखं वीक्ष्य च तस्य ते ॥ १६ ॥

उन्होंने बारंबार देखा बुद्धिमान् श्रीरामके दोनों नेत्रोंमें आँसू भर आये थे और उनके मुखारविन्दकी शोभा छिन गयी थी ॥ १६ ॥

ततोऽभिवाद्य त्वरिताः पादौ रामस्य मूर्धभिः ।
तस्थुः समाहिताः सर्वे रामस्त्वश्रूण्यवर्तयत् ॥ १७ ॥

तदनन्तर उन तीनों भाइयोंने तुरंत श्रीरामके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया । फिर वे सब-के-सब प्रेममें

समाधिस्थ-से होकर पड़ गये । उस समय श्रीराम आँसू बहा रहे थे ॥ १७ ॥

तान् परिष्वज्य बाहुभ्यामुत्थाप्य च महाबलः ।
आसनेष्वासतेत्युक्त्वा ततो वाक्यं जगाद ह ॥ १८ ॥

महाबली रघुनाथजीने दोनों भुजाओंसे उठाकर उन सबका आलिङ्गन किया और कहा—'इन आसनोंपर बैठो ।' जब वे बैठ गये, तब उन्होंने फिर कहा—॥ १८ ॥

भवन्तो मम सर्वस्वं भवन्तो जीवितं मम ।
भवद्भिश्च कृतं राज्यं पालयामि नरेश्वराः ॥ १९ ॥

'राजकुमारो ! तुमलोग मेरे सर्वस्व हो । तुम्हीं मेरे जीवन हो और तुम्हारे द्वारा सम्पादित इस राज्यका मैं पालन करता हूँ ॥ १९ ॥

भवन्तः कृतशास्त्रार्था बुद्ध्या च परिनिष्ठिताः ।
सम्भूय च मदर्थोऽयमन्वेष्टव्यो नरेश्वराः ॥ २० ॥

'नरेश्वरो ! तुम सभी शास्त्रोंके ज्ञाता और उनमें बताये कर्तव्यका पालन करनेवाले हो । तुम्हारी बुद्धि भी परिपक्व है । इस समय मैं जो कार्य तुम्हारे सामने उपस्थित करनेवाला हूँ, उसका तुम सबको मिलकर सम्पादन करना चाहिये' ॥ २० ॥

तथा वदति काकुत्स्थे अवधानपरायणाः ।
उद्विग्नमनसः सर्वे किं नु राजाभिधास्यति ॥ २१ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर सभी भाई चौकन्ने हो गये । सबका चित्त उद्विग्न हो गया और सभी सोचने लगे—'न जाने महाराज हमसे क्या कहेंगे ?' ॥ २१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौवालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः

श्रीरामका भाइयोंके समक्ष सर्वत्र फैले हुए लोकापवादकी चर्चा करके सीताको वनमें छोड़ आनेके लिये लक्ष्मणको आदेश देना

तेषां समुपविष्टानां सर्वेषां दीनचेतसाम् ।
उवाच वाक्यं काकुत्स्थो मुखेन परिशुष्यता ॥ १ ॥

इस प्रकार सब भाई दुखी मनसे वहाँ बैठे हुए थे । उस समय श्रीरामने सूखे मुखसे उनके सामने यह बात कही—॥

सर्वे शृणुत भद्रं वो मा कुरुध्वं मनोऽन्यथा ।
पौराणां मम सीतायां यादृशी वर्तते कथा ॥ २ ॥

'बन्धुओ ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम सब लोग मेरी बात सुनो । मनको इधर-उधर न ले जाओ । पुरवासियोंके यहाँ मेरे और सीताके विषयमें जैसी चर्चा चल रही है, उसीको बता रहा हूँ ॥ २ ॥

पौरापवादः सुमहांस्तथा जनपदस्य च ।
वर्तते मयि बीभत्सा सा मे मर्माणि कृन्तति ॥ ३ ॥

'इस समय पुरवासियों और जनपदके लोगोंमें सीताके सम्बन्धमें महान् अपवाद फैला हुआ है । मेरे प्रति भी उनका बड़ा घृणापूर्ण भाव है । उन सबकी वह घृणा मेरे मर्मस्थलको विदीर्ण किये देती है ॥ ३ ॥

अहं किल कुले जात इक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ।
सीतापि सत्कुले जाता जनकानां महात्मनाम् ॥ ४ ॥

'मैं इक्ष्वाकुवंशी महात्मा नरेशोंके कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ । सीताने भी महात्मा जनकोंके उत्तम कुलमें जन्म लिया है ॥ ४ ॥

जानासि त्वं यथा सौम्य दण्डके विजने वने ।
रावणेन हृता सीता स च विध्वंसितो मया ॥ ५ ॥

'सौम्य लक्ष्मण ! तुम तो यह जानते ही हो कि किस प्रकार रावण निर्जन दण्डकारण्यसे उन्हें हरकर ले गया था और मैंने उसका विध्वंस भी कर डाला ॥ ५ ॥

तत्र मे बुद्धिरुत्पन्ना जनकस्य सुतां प्रति ।
अत्रोषितामिमां सीतामानयेयं कथं पुरीम् ॥ ६ ॥

'उसके बाद लङ्कामें ही जानकीके विषयमें मेरे अन्तःकरणमें यह विचार उत्पन्न हुआ था कि इनके इतने दिनोंतक यहाँ रह लेनेपर भी मैं इन्हें राजधानीमें कैसे ले जा सकूँगा ॥ ६ ॥

प्रत्ययार्थं ततः सीता विवेश ज्वलनं तदा ।
प्रत्यक्षं तव सौमित्रे देवानां हव्यवाहनः ॥ ७ ॥
अपापां मैथिलीमाह वायुश्चाकाशगोचरः ।
चन्द्रादित्यौ च शंसेते सुराणां संनिधौ पुरा ॥ ८ ॥
ऋषीणां चैव सर्वेषामपापां जनकात्मजाम् ।

'सुमित्राकुमार ! उस समय अपनी पवित्रताका विश्वास दिलानेके लिये सीताने तुम्हारे सामने ही अग्निमें प्रवेश किया था और देवताओंके समक्ष स्वयं अग्निदेवने उन्हें निर्दोष बताया था । आकाशचारी वायु, चन्द्रमा और सूर्यने भी पहले देवताओं तथा समस्त ऋषियोंके समीप जनकनन्दिनीको निष्पाप घोषित किया था ॥ ७-८$\frac{१}{२}$ ॥

एवं शुद्धसमाचारा देवगन्धर्वसंनिधौ ॥ ९ ॥
लङ्काद्वीपे महेन्द्रेण मम हस्ते निवेशिता ।

'इस प्रकार विशुद्ध आचारवाली सीताको देवताओं और गन्धर्वोंके समीप साक्षात् देवराज इन्द्रने लङ्काद्वीपके अंदर मेरे हाथमें सौंपा था ॥ ९$\frac{१}{२}$ ॥

अन्तरात्मा च मे वेत्ति सीतां शुद्धां यशस्विनीम् ॥ १० ॥

ततो गृहीत्वा वैदेहीमयोध्यामहमागतः ।

'मेरी अन्तरात्मा भी यशस्विनी सीताको शुद्ध समझती है। इसीलिये मैं इन विदेहनन्दिनीको साथ लेकर अयोध्या आया था ॥ १०½ ॥

अयं तु मे महान् वादः शोकश्च हृदि वर्तते ॥ ११ ॥
पौरापवादः सुमहांस्तथा जनपदस्य च ।

'परंतु अब यह महान् अपवाद फैलने लगा है। पुरवासियों और जनपदके लोगोंमें मेरी बड़ी निन्दा हो रही है। इसके लिये मेरे हृदयमें बड़ा शोक है ॥ ११½ ॥

अकीर्तिर्यस्य गीयेत लोके भूतस्य कस्यचित् ॥ १२ ॥
पतत्येवाधमाँल्लोकान् यावच्छब्दः प्रकीर्त्यते ।

'जिस किसी भी प्राणीकी अपकीर्ति लोकमें सबकी चर्चाका विषय बन जाती है, वह अधम लोकों (नरकों) में गिर जाता है और जबतक उस अपयशकी चर्चा होती है तबतक वहीं पड़ा रहता है ॥ १२½ ॥

अकीर्तिर्निन्द्यते देवैः कीर्तिर्लोकेषु पूज्यते ॥ १३ ॥
कीर्त्यर्थं तु समारम्भः सर्वेषां सुमहात्मनाम् ।

'देवगण लोकोंमें अपकीर्तिकी निन्दा और कीर्तिकी प्रशंसा करते हैं। समस्त श्रेष्ठ महात्माओंका सारा शुभ आयोजन उत्तम कीर्तिकी स्थापनाके लिये ही होता है ॥ १३½ ॥

✓ **अप्यहं जीवितं जह्यां युष्मान् वा पुरुषर्षभाः ॥ १४ ॥**
अपवादभयाद् भीतः किं पुनर्जनकात्मजाम् ।

'नरश्रेष्ठ बन्धुओ ! मैं लोकनिन्दाके भयसे अपने प्राणोंको और तुम सबको भी त्याग सकता हूँ । फिर सीताको त्यागना कौन बड़ी बात है ? ॥ १४½ ॥

तस्माद् भवन्तः पश्यन्तु पतितं शोकसागरे ॥ १५ ॥
नहि पश्याम्यहं भूतं किंचिद् दुःखमतोऽधिकम् ।

'अतः तुमलोग मेरी ओर देखो। मैं शोकके समुद्रमें गिर गया हूँ । इससे बढ़कर कभी कोई दुःख मुझे उठाना पड़ा हो, इसकी मुझे याद नहीं है ॥ १५½ ॥

श्वस्त्वं प्रभाते सौमित्रे सुमन्त्राधिष्ठितं रथम् ॥ १६ ॥
✓ **आरुह्य सीतामारोप्य विषयान्ते समुत्सृज ।**

'अतः सुमित्राकुमार ! कल सबेरे तुम सारथि सुमन्त्रके द्वारा संचालित रथपर आरूढ़ हो सीताको भी उसीपर चढ़ाकर इस राज्यकी सीमाके बाहर छोड़ दो ॥ १६½ ॥

✓ **गङ्गायास्तु परे पारे वाल्मीकेस्तु महात्मनः ॥ १७ ॥**
आश्रमो दिव्यसंकाशस्तमसातीरमाश्रितः ।

'गङ्गाके उस पार तमसाके तटपर महात्मा वाल्मीकिमुनिका दिव्य आश्रम है ॥ १७½ ॥

तत्रैतां विजने देशे विसृज्य रघुनन्दन ॥ १८ ॥
शीघ्रमागच्छ सौमित्रे कुरुष्व वचनं मम ।
न चास्मि प्रतिवक्तव्यः सीतां प्रति कथंचन ॥ १९ ॥

'रघुनन्दन ! उस आश्रमके निकट निर्जन वनमें तुम सीताको छोड़कर शीघ्र लौट आओ । सुमित्रानन्दन ! मेरी इस आज्ञाका पालन करो । सीताके विषयमें मुझसे किसी तरह कोई दूसरी बात तुम्हें नहीं कहनी चाहिये ॥ १८-१९ ॥

तस्मात् त्वं गच्छ सौमित्रे नात्र कार्या विचारणा ।
अप्रीतिर्हि परा मह्यं त्वयैतत् प्रतिवारिते ॥ २० ॥

'इसलिये लक्ष्मण ! अब तुम जाओ । इस विषयमें कोई सोच-विचार न करो । यदि मेरे इस निश्चयमें तुमने किसी प्रकारकी अड़चन डाली तो मुझे महान् कष्ट होगा ॥ २० ॥

शापिता हि मया यूयं पादाभ्यां जीवितेन च ।
ये मां वाक्यान्तरे ब्रूयुरनुनेतुं कथंचन ॥ २१ ॥
अहिता नाम ते नित्यं मदभीष्टविघातनात् ।

'मैं तुम्हें अपने चरणों और जीवनकी शपथ दिलाता हूँ, मेरे निर्णयके विरुद्ध कुछ न कहो। जो मेरे इस कथनके बीचमें कूदकर किसी प्रकार मुझसे अनुनय-विनय करनेके लिये कुछ कहेंगे, वे मेरे अभीष्ट कार्यमें बाधा डालनेके कारण सदाके लिये मेरे शत्रु होंगे ॥ २१½ ॥

मानयन्तु भवन्तो मां यदि मच्छासने स्थिताः ॥ २२ ॥
इतोऽद्य नीयतां सीता कुरुष्व वचनं मम ।

'यदि तुमलोग मेरा सम्मान करते हो और मेरी आज्ञामें रहना चाहते हो तो अब सीताको यहाँसे वनमें ले जाओ । मेरी इस आज्ञाका पालन करो ॥ २२½ ॥

पूर्वमुक्तोऽहमनया गङ्गातीरेऽहमाश्रमान् ॥ २३ ॥
पश्येयमिति तस्याश्च कामः संवर्त्यतामयम् ।

'सीताने पहले मुझसे कहा था कि मैं गङ्गातटपर ऋषियोंके आश्रम देखना चाहती हूँ; अतः उनकी यह इच्छा भी पूर्ण की जाय' ॥ २३½ ॥

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थो बाष्पेण पिहितेक्षणः ॥ २४ ॥
संविवेश स धर्मात्मा भ्रातृभिः परिवारितः ।
शोकसंविग्नहृदयो निशश्वास यथा द्विपः ॥ २५ ॥

इस प्रकार कहते-कहते श्रीरघुनाथजीके दोनों नेत्र आँसुओंसे भर गये । फिर वे धर्मात्मा श्रीराम अपने भाइयोंके साथ महलमें चले गये । उस समय उनका हृदय शोकसे व्याकुल था और वे हाथीके समान लंबी साँस खींच रहे थे ॥ २४-२५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः

लक्ष्मणका सीताको रथपर बिठाकर उन्हें वनमें छोड़नेके लिये ले जाना और गङ्गाजीके तटपर पहुँचना

ततो रजन्यां व्युष्टायां लक्ष्मणो दीनचेतनः ।
सुमन्त्रमब्रवीद् वाक्यं मुखेन परिशुष्यता ॥ १ ॥

तदनन्तर जब रात बीती और सबेरा हुआ, तब लक्ष्मणने मन-ही-मन दुखी हो सूखे मुखसे सुमन्त्रसे कहा—॥ १ ॥

सारथे तुरगाञ्शीघ्रान् योजयस्व रथोत्तमे ।
स्वास्तीर्णं राजवचनात् सीतायाश्चासनं शुभम्॥ २ ॥
सीता हि राजवचनादाश्रमं पुण्यकर्मणाम् ।
मया नेया महर्षीणां शीघ्रमानीयतां रथः ॥ ३ ॥

'सारथे ! एक उत्तम रथमें शीघ्रगामी घोड़ोंको जोतो और उस रथमें सीताजीके लिये सुन्दर आसन बिछा दो । मैं महाराजकी आज्ञासे सीतादेवीको पुण्यकर्मा महर्षियोंके आश्रमपर पहुँचा दूँगा । तुम शीघ्र रथ ले आओ' ॥ २-३ ॥

सुमन्त्रस्तु तथेत्युक्त्वा युक्तं परमवाजिभिः ।
रथं सुरुचिरप्रख्यं स्वास्तीर्णं सुखशय्यया ॥ ४ ॥

तब सुमन्त्र 'बहुत अच्छा' कहकर तुरंत ही उत्तम घोड़ोंसे जुता हुआ एक सुन्दर रथ ले आये, जिसपर सुखद शय्यासे युक्त सुन्दर बिछावन बिछा हुआ था ॥ ४ ॥

आनीयोवाच सौमित्रिं मित्राणां मानवर्धनम् ।
रथोऽयं समनुप्राप्तो यत्कार्यं क्रियतां प्रभो ॥ ५ ॥

उसे लाकर वे मित्रोंका मान बढ़ानेवाले सुमित्राकुमारसे बोले—'प्रभो ! यह रथ आ गया । अब जो कुछ करना हो कीजिये' ॥ ५ ॥

एवमुक्तः सुमन्त्रेण राजवेश्मनि लक्ष्मणः ।
प्रविश्य सीतामासाद्य व्याजहार नरर्षभः ॥ ६ ॥

सुमन्त्रके ऐसा कहनेपर नरश्रेष्ठ लक्ष्मण राजमहलमें गये और सीताजीके पास जाकर बोले—॥ ६ ॥

त्वया किलैष नृपतिर्वरं वै याचितः प्रभुः ।
नृपेण च प्रतिज्ञातमाज्ञप्तश्चाश्रमं प्रति ॥ ७ ॥

'देवि ! आपने महाराजसे मुनियोंके आश्रमोंपर जानेके लिये वर माँगा था और महाराजने आपको आश्रमपर पहुँचानेके लिये प्रतिज्ञा की थी ॥ ७ ॥

गङ्गातीरे मया देवि ऋषीणामाश्रमाञ्शुभान् ।
शीघ्रं गत्वा तु वैदेहि शासनात् पार्थिवस्य नः ॥ ८ ॥
अरण्ये मुनिभिर्जुष्टे अवनेया भविष्यसि ।

'देवि ! विदेहनन्दिनि ! उस बातचीतके अनुसार मैं राजाकी आज्ञासे शीघ्र ही गङ्गातटपर ऋषियोंके सुन्दर आश्रमोंतक चलूँगा और आपको मुनिजनसेवित वनमें पहुँचाऊँगा' ।८½।

एवमुक्ता तु वैदेही लक्ष्मणेन महात्मना ॥ ९ ॥
प्रहर्षमतुलं लेभे गमनं चाप्यरोचयत् ।

महात्मा लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर विदेहनन्दिनी सीताको अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ । वे चलनेको तैयार हो गयीं ॥ ९½॥

वासांसि च महार्हाणि रत्नानि विविधानि च ॥ १० ॥
गृहीत्वा तानि वैदेही गमनायोपचक्रमे ।
इमानि मुनिपत्नीनां दास्याम्याभरणान्यहम् ॥ ११ ॥
वस्त्राणि च महार्हाणि धनानि विविधानि च ।

बहुमूल्य वस्त्र और नाना प्रकारके रत्न लेकर वैदेही सीता वनकी यात्राके लिये उद्यत हो गयीं और लक्ष्मणसे बोलीं—'ये सब बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण और नाना प्रकारके रत्न-धन मैं मुनि-पत्नियोंको दूँगी' ॥ १०-११½ ॥

सौमित्रिस्तु तथेत्युक्त्वा रथमारोप्य मैथिलीम् ॥ १२ ॥
प्रययौ शीघ्रतुरगं रामस्याज्ञामनुस्मरन् ।

लक्ष्मणने 'बहुत अच्छा' कहकर मिथिलेशकुमारी सीताको रथपर चढ़ाया और श्रीरघुनाथजीकी आज्ञाको ध्यानमें रखते हुए उस तेज घोड़ोंवाले रथपर चढ़कर वे वनकी ओर चल दिये॥ १२½ ॥

अब्रवीच्च तदा सीता लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥ १३ ॥
अशुभानि बहून्येव पश्यामि रघुनन्दन ।
नयनं मे स्फुरत्यद्य गात्रोत्कम्पश्च जायते ॥ १४ ॥

उस समय सीताने लक्ष्मीवर्धन लक्ष्मणसे कहा 'रघुनन्दन ! मुझे बहुत-से अपशकुन दिखायी देते हैं । आज मेरी दायीं आँख फड़कती है और मेरे शरीरमें कम्प हो रहा है ।१३-१४।

हृदयं चैव सौमित्रे अस्वस्थमिव लक्षये ।
औत्सुक्यं परमं चापि अधृतिश्च परा मम ॥ १५ ॥

'सुमित्राकुमार ! मैं अपने हृदयको अस्वस्थ-सा देख रही हूँ । मनमें बड़ी उत्कण्ठा हो रही है और मेरी अधीरता पराकाष्ठाको पहुँची हुई है ॥ १५ ॥

शून्यामेव च पश्यामि पृथिवीं पृथुलोचन ।
अपि स्वस्ति भवेत् तस्य भ्रातुस्ते भ्रातृवत्सल ॥ १६ ॥

'विशाललोचन लक्ष्मण ! मुझे पृथ्वी सूनी-सी ही दिखायी देती है । भ्रातृवत्सल ! तुम्हारे भाई कुशलसे रहें ॥ १६ ॥

श्वश्रूणां चैव मे वीर सर्वासामविशेषतः ।
पुरे जनपदे चैव कुशलं प्राणिनामपि ॥ १७ ॥

'वीर ! मेरी सब सासुएँ समान रूपसे सानन्द रहें । नगर और जनपदमें भी समस्त प्राणी सकुशल रहें' ॥ १७ ॥

इत्यञ्जलिकृता सीता देवता अभ्ययाचत ।
लक्ष्मणोऽर्थं ततः श्रुत्वा शिरसा वन्द्य मैथिलीम् ॥ १८ ॥
शिवमित्यब्रवीद्धृष्टो हृदयेन विशुष्यता ।

ऐसा कहती हुई सीताने हाथ जोड़कर देवताओंसे प्रार्थना

की । सीताकी बात सुनकर लक्ष्मणने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और ऊपरसे प्रसन्न हो मुर्झाये हुए हृदयसे कहा—'सबका कल्याण हो' ॥ १८½ ॥

ततो वासमुपागम्य गोमतीतीर आश्रमे ॥ १९ ॥
प्रभाते पुनरुत्थाय सौमित्रिः सूतमब्रवीत् ।

तदनन्तर गोमतीके तटपर पहुँचकर एक आश्रममें उन सबने रात बितायी । फिर प्रातःकाल उठकर सुमित्राकुमारने सारथिसे कहा—॥ १९½ ॥

योजयस्व रथं शीघ्रमद्य भागीरथीजलम् ॥ २० ॥
शिरसा धारयिष्यामि त्र्यम्बक इवौजसा ।

'सारथे ! जल्दी रथ जोतो । आज मैं भागीरथीके जलको उसी प्रकार सिरपर धारण करूँगा; जैसे भगवान् शङ्करने अपने तेजसे उसे मस्तकपर धारण किया था' ॥ २०½ ॥

सोऽश्वान् विचारयित्वा तु रथे युक्तान् मनोजवान् ॥ २१ ॥
आरोहस्वेति वैदेहीं सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।

सारथिने मनके समान वेगशाली चारों घोड़ोंको टहलाकर रथमें जोता और विदेहनन्दिनी सीतासे हाथ जोड़कर कहा—'देवि ! रथपर आरूढ़ होइये' ॥ २१½ ॥

सा तु सूतस्य वचनादारुरोह रथोत्तमम् ॥ २२ ॥
सीता सौमित्रिणा सार्धं सुमन्त्रेण च धीमता ।
आससाद विशालाक्षी गङ्गां पापविनाशिनीम् ॥ २३ ॥

सूतके कहनेसे देवी सीता उस उत्तम रथपर सवार हुईं । इस प्रकार सुमित्राकुमार लक्ष्मण और बुद्धिमान् सुमन्त्रके साथ विशाललोचना सीतादेवी पापनाशिनी गङ्गाके तटपर जा पहुँचीं ॥ २२-२३ ॥

अथार्धदिवसे गत्वा भागीरथ्या जलाशयम् ।
निरीक्ष्य लक्ष्मणो दीनः प्ररुरोद महास्वनः ॥ २४ ॥

दोपहरके समय भागीरथीकी जलधारातक पहुँचकर लक्ष्मण उसकी ओर देखते हुए दुखी हो उच्चस्वरसे फूट-फूटकर रोने लगे ॥ २४ ॥

सीता तु परमायत्ता दृष्ट्वा लक्ष्मणमातुरम् ।
उवाच वाक्यं धर्मज्ञा किमिदं रुद्यते त्वया ॥ २५ ॥
जाह्नवीतीरमासाद्य चिराभिलषितं मम ।
हर्षकाले किमर्थं मां विषादयसि लक्ष्मण ॥ २६ ॥

लक्ष्मणको शोकसे आतुर देख धर्मज्ञा सीता अत्यन्त चिन्तित हो उनसे बोलीं—'लक्ष्मण ! यह क्या ? तुम रोते क्यों हो ? गङ्गाके तटपर आकर तो मेरी चिरकालकी अभिलाषा पूर्ण हुई है । इस हर्षके समय तुम रोकर मुझे दुखी क्यों करते हो ? ॥ २५-२६ ॥

नित्यं त्वं रामपार्श्वेषु वर्तसे पुरुषर्षभ ।
कच्चिद् विनाकृतस्तेन द्विरात्रं शोकमागतः ॥ २७ ॥

'पुरुषप्रवर ! श्रीरामके पास तो तुम सदा ही रहते हो । क्या दो दिन तक उनसे बिछुड़ जानेके कारण तुम इतने शोकाकुल हो गये हो ? ॥ २७ ॥

ममापि दयितो रामो जीवितादपि लक्ष्मण ।
न चाहमेवं शोचामि मैवं त्वं बालिशो भव ॥ २८ ॥

'लक्ष्मण ! श्रीराम तो मुझे भी अपने प्राणोंसे बढ़कर प्रिय हैं; परंतु मैं तो इस प्रकार शोक नहीं कर रही हूँ । तुम ऐसे नादान न बनो ॥ २८ ॥

तारयस्व च मां गङ्गां दर्शयस्व च तापसान् ।
ततो मुनिभ्यो वासांसि दास्याम्याभरणानि च ॥ २९ ॥

'मुझे गङ्गाके उस पार ले चलो और तपस्वी मुनियोंके दर्शन कराओ । मैं उन्हें वस्त्र और आभूषण दूँगी ॥ २९ ॥

ततः कृत्वा महर्षीणां यथार्हमभिवादनम् ।
तत्र चैकां निशामुष्य यास्यामस्तां पुरीं पुनः ॥ ३० ॥

'तत्पश्चात् उन महर्षियोंका यथायोग्य अभिवादन करके वहाँ एक रात ठहरकर हम पुनः अयोध्यापुरीको लौट चलेंगे ॥ ३० ॥

ममापि पद्मपत्राक्षं सिंहोरस्कं कृशोदरम् ।
त्वरते हि मनो द्रष्टुं रामं रमयतां वरम् ॥ ३१ ॥

'मेरा मन भी सिंहके समान वक्षःस्थल, कृश उदर और कमलके समान नेत्रवाले श्रीरामको, जो मनको रमानेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, देखनेके लिये उतावला हो रहा है' ॥ ३१ ॥

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा प्रमृज्य नयने शुभे ।
नाविकानाह्वयामास लक्ष्मणः परवीरहा ।
इयं च सज्जा नौश्चेति दाशाः प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ॥ ३२ ॥

सीताजीका यह वचन सुनकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले लक्ष्मणने अपनी दोनों सुन्दर आँखें पोंछ लीं और नाविकोंको बुलाया । उन मल्लाहोंने हाथ जोड़कर कहा—'प्रभो ! यह नाव तैयार है' ॥ ३२ ॥

तितीर्षुर्लक्ष्मणो गङ्गां शुभां नावमुपारुहत् ।
गङ्गां संतारयामास लक्ष्मणस्तां समाहितः ॥ ३३ ॥

लक्ष्मण गङ्गाजीको पार करनेके लिये सीताजीके साथ उस सुन्दर नौकापर बैठे और बड़ी सावधानीके साथ उन्होंने सीताको गङ्गाजीके उस पार पहुँचाया ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छियालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

◆

सप्तचत्वारिंशः सर्गः

लक्ष्मणका सीताजीको नावसे गङ्गाजीके उस पार पहुँचाकर बड़े दुःखसे उन्हें उनके त्यागे जानेकी बात बताना

अथ नावं सुविस्तीर्णां नैषादीं राघवानुजः ।
आरुरोह समायुक्तां पूर्वमारोप्य मैथिलीम् ॥ १ ॥

मल्लाहोंकी वह नाव विस्तृत और सुसज्जित थी । लक्ष्मणने उसपर पहले सीताजीको चढ़ाया, फिर स्वयं चढ़े ॥

सुमन्त्रं चैव सरथं स्थीयतामिति लक्ष्मणः ।
उवाच शोकसंतप्तः प्रयाहीति च नाविकम् ॥ २ ॥

उन्होंने रथसहित सुमन्त्रको वहीं ठहरनेके लिये कह दिया और शोकसे संतप्त होकर नाविकसे कहा—'चलो' ॥ २ ॥

ततस्तीरमुपागम्य भागीरथ्याः स लक्ष्मणः ।
उवाच मैथिलीं वाक्यं प्राञ्जलिर्बाष्पसंवृतः ॥ ३ ॥

तदनन्तर भागीरथीके उस तटपर पहुँचकर लक्ष्मणके नेत्रोंमें आँसू भर आये और उन्होंने मिथिलेशकुमारी सीतासे हाथ जोड़कर कहा—॥ ३ ॥

हृद्गतं मे महच्छल्यं यस्मादार्येण धीमता ।
अस्मिन्निमित्ते वैदेहि लोकस्य वचनीकृतः ॥ ४ ॥

'विदेहनन्दिनि ! मेरे हृदयमें सबसे बड़ा काँटा यही खटक रहा है कि आज रघुनाथजीने बुद्धिमान् होकर भी मुझे वह काम सौंपा है, जिसके कारण लोकमें मेरी बड़ी निन्दा होगी ॥

श्रेयो हि मरणं मेऽद्य मृत्युर्वा यत्परं भवेत् ।
न चास्मिन्नीदृशे कार्ये नियोज्यो लोकनिन्दिते ॥ ५ ॥

'इस दशामें यदि मुझे मृत्युके समान यन्त्रणा प्राप्त होती अथवा मेरी साक्षात् मृत्यु ही हो जाती तो वह मेरे लिये परम कल्याणकारक होती । परंतु इस लोकनिन्दित कार्यमें मुझे लगाना उचित नहीं था ॥ ५ ॥

प्रसीद च न मे पापं कर्तुमर्हसि शोभने ।
इत्यञ्जलिकृतो भूमौ निपपात स लक्ष्मणः ॥ ६ ॥

'शोभने ! आप प्रसन्न हों । मुझे कोई दोष न दें' ऐसा कहकर हाथ जोड़े हुए लक्ष्मण पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ६ ॥

रुदन्तं प्राञ्जलिं दृष्ट्वा काङ्क्षन्तं मृत्युमात्मनः ।
मैथिली भृशसंविग्ना लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥

लक्ष्मण हाथ जोड़कर रो रहे हैं और अपनी मृत्यु चाह रहे हैं, यह देखकर मिथिलेशकुमारी सीता अत्यन्त उद्विग्न हो उठीं और लक्ष्मणसे बोलीं—॥ ७ ॥

किमिदं नावगच्छामि ब्रूहि तत्त्वेन लक्ष्मण ।
पश्यामि त्वां न च स्वस्थमपि क्षेमं महीपतेः ॥ ८ ॥

'लक्ष्मण ! यह क्या बात है ? मैं कुछ समझ नहीं पाती हूँ । ठीक-ठीक बताओ । महाराज कुशलसे तो हैं न । मैं देखती हूँ तुम्हारा मन स्वस्थ नहीं है ॥ ८ ॥

शापितोऽसि नरेन्द्रेण यत् त्वं संतापमागतः ।
तद् ब्रूयाः संनिधौ मह्यमहमाज्ञापयामि ते ॥ ९ ॥

'मैं महाराजकी शपथ दिलाकर पूछती हूँ, जिस बातसे तुम्हें इतना संताप हो रहा है, वह मेरे निकट सच-सच बताओ । मैं इसके लिये तुम्हें आज्ञा देती हूँ' ॥ ९ ॥

वैदेह्या चोद्यमानस्तु लक्ष्मणो दीनचेतनः ।
अवाङ्मुखो बाष्पगलो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १० ॥

विदेहनन्दिनीके इस प्रकार प्रेरित करनेपर लक्ष्मण दुखी मनसे नीचे मुँह किये अश्रुगद्गद कण्ठद्वारा इस प्रकार बोले—॥

श्रुत्वा परिषदो मध्ये ह्यपवादं सुदारुणम् ।
पुरे जनपदे चैव त्वत्कृते जनकात्मजे ॥ ११ ॥
रामः संतप्तहृदयो मां निवेद्य गृहं गतः ।

'जनकनन्दिनि ! नगर और जनपदमें आपके विषयमें जो अत्यन्त भयंकर अपवाद फैला हुआ है, उसे राजसभामें सुनकर श्रीरघुनाथजीका हृदय संतप्त हो उठा और वे मुझसे सब बातें बताकर महलमें चले गये ॥ ११½ ॥

न तानि वचनीयानि मया देवि तवाग्रतः ॥ १२ ॥
यानि राज्ञा हृदि न्यस्तान्यमर्षात्पृष्ठतः कृतः ।

'देवि ! राजा श्रीरामने जिन अपवादवचनोंको दुःख न सह सकनेके कारण अपने हृदयमें रख लिया है, उन्हें मैं आपके सामने बता नहीं सकता । इसीलिये मैंने उनकी चर्चा छोड़ दी है ॥ १२½ ॥

सा त्वं त्यक्ता नृपतिना निर्दोषा मम संनिधौ ॥ १३ ॥
पौरापवादभीतेन ग्राह्यं देवि न तेऽन्यथा ।
आश्रमान्तेषु च मया त्यक्तव्या त्वं भविष्यसि ॥ १४ ॥
राज्ञः शासनमादाय तथैव किल दौर्हृदम् ।

'आप मेरे सामने निर्दोष सिद्ध हो चुकी हैं तो भी महाराजने लोकापवादसे डरकर आपको त्याग दिया है । देवि ! आप कोई और बात न समझें । अब महाराजकी आज्ञा मानकर तथा आपकी भी ऐसी ही इच्छा समझकर मैं आश्रमोंके पास ले जाकर आपको वहीं छोड़ दूँगा ॥ १३-१४½ ॥

तदेतज्जाह्नवीतीरे ब्रह्मर्षीणां तपोवनम् ॥ १५ ॥
पुण्यं च रमणीयं च मा विषादं कृथाः शुभे ।

'शुभे ! यह रहा गङ्गाजीके तटपर ब्रह्मर्षियोंका पवित्र एवं रमणीय तपोवन । आप विषाद न करें ॥ १५½ ॥

राज्ञो दशरथस्यैव पितुर्मे मुनिपुङ्गवः ॥ १६ ॥
सखा परमको विप्रो वाल्मीकिः सुमहायशाः ।
पादच्छायामुपागम्य सुखमस्य महात्मनः ।
उपवासपरैकाग्रा वस त्वं जनकात्मजे ॥ १७ ॥

'यहाँ मेरे पिता राजा दशरथके घनिष्ठ मित्र महायशस्वी

ब्रह्मर्षि मुनिवर वाल्मीकि रहते हैं, आप उन्हीं महात्माके चरणोंकी छायाका आश्रय ले यहाँ सुखपूर्वक रहें। जनकात्मजे! आप यहाँ उपवासपरायण और एकाग्र हो निवास करें ॥ १६-१७ ॥

पतिव्रतात्वमास्थाय रामं कृत्वा सदा हृदि।
श्रेयस्ते परमं देवि तथा कृत्वा भविष्यति ॥ १८ ॥

'देवि! आप सदा श्रीरघुनाथजीको हृदयमें रखकर पातिव्रत्यका अवलम्बन करें। ऐसा करनेसे आपका परम कल्याण होगा' ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

* * *

अष्टचत्वारिंशः सर्गः

सीताका दुःखपूर्ण वचन, श्रीरामके लिये उनका संदेश, लक्ष्मणका जाना और सीताका रोना

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा दारुणं जनकात्मजा।
परं विषादमागम्य वैदेही निपपात ह ॥ १ ॥

लक्ष्मणजीका यह कठोर वचन सुनकर जनककिशोरी सीताको बड़ा दुःख हुआ। वे मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ १ ॥

सा मुहूर्तमिवासंज्ञा बाष्पपर्याकुलेक्षणा।
लक्ष्मणं दीनया वाचा उवाच जनकात्मजा ॥ २ ॥

दो घड़ीतक उन्हें होश नहीं हुआ। उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी अजस्र धारा बहती रही। फिर होशमें आनेपर जनककिशोरी दीन वाणीमें लक्ष्मणसे बोलीं— ॥ २ ॥

मामिकेयं तनुर्नूनं सृष्टा दुःखाय लक्ष्मण।
धात्रा यस्यास्तथा मेऽद्य दुःखमूर्तिः प्रदृश्यते ॥ ३ ॥

'लक्ष्मण! निश्चय ही विधाताने मेरे शरीरको केवल दुःख भोगनेके लिये ही रचा है। इसीलिये आज सारे दुःखोंका समूह मूर्तिमान् होकर मुझे दर्शन दे रहा है ॥ ३ ॥

किं नु पापं कृतं पूर्वं को वा दारैर्वियोजितः।
याहं शुद्धसमाचारा त्यक्ता नृपतिना सती ॥ ४ ॥

'मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा ऐसा पाप किया था अथवा किसका स्त्रीसे विछोह कराया था, जो शुद्ध आचरणवाली होनेपर भी महाराजने मुझे त्याग दिया है ॥ ४ ॥

पुराहमाश्रमे वासं रामपादानुवर्तिनी।
अनुरुध्यापि सौमित्रे दुःखे च परिवर्तिनी ॥ ५ ॥

'सुमित्रानन्दन! पहले मैंने वनवासके दुःखमें पड़कर भी उसे सहकर श्रीरामके चरणोंका अनुसरण करते हुए आश्रममें रहना पसंद किया था ॥ ५ ॥

सा कथं ह्याश्रमे सौम्य वत्स्यामि विजनीकृता।
आख्यास्यामि च कस्याहं दुःखं दुःखपरायणा ॥ ६ ॥

'किंतु सौम्य! अब मैं अकेली प्रियजनोंसे रहित हो किस तरह आश्रममें निवास करूँगी? और दुःखमें पड़नेपर किससे अपना दुःख कहूँगी ॥ ६ ॥

किं नु वक्ष्यामि मुनिषु कर्म चासत्कृतं प्रभो।
कस्मिन् वा कारणे त्यक्ता राघवेण महात्मना ॥ ७ ॥

'प्रभो! यदि मुनिजन मुझसे पूछेंगे कि महात्मा श्रीरघुनाथजीने किस अपराधपर तुम्हें त्याग दिया है तो मैं उन्हें अपना कौन-सा अपराध बताऊँगी ॥ ७ ॥

न खल्वद्यैव सौमित्रे जीवितं जाह्नवीजले।
त्यजेयं राजवंशस्तु भर्तुर्मे परिहास्यते ॥ ८ ॥

'सुमित्राकुमार! मैं अपने जीवनको अभी गङ्गाजीके जलमें विसर्जन कर देती; किंतु इस समय ऐसा अभी नहीं कर सकूँगी; क्योंकि ऐसा करनेसे मेरे पतिदेवका राजवंश नष्ट हो जायगा ॥ ८ ॥

यथाज्ञं कुरु सौमित्रे त्यज्य मां दुःखभागिनीम्।
निदेशे स्थीयतां राज्ञः शृणु चेदं वचो मम ॥ ९ ॥

'किंतु सुमित्रानन्दन! तुम तो वही करो, जैसी महाराजने तुम्हें आज्ञा दी है। तुम मुझ दुखियाको यहाँ छोड़कर महाराजकी आज्ञाके पालनमें ही स्थिर रहो और मेरी यह बात सुनो— ॥ ९ ॥

श्वश्रूणामविशेषेण प्राञ्जलिप्रग्रहेण च।
शिरसा वन्द्य चरणौ कुशलं ब्रूहि पार्थिवम् ॥ १० ॥

'मेरी सब सासुओंको समानरूपसे हाथ जोड़कर मेरी ओरसे उनके चरणोंमें प्रणाम करना। साथ ही महाराजके भी चरणोंमें मस्तक नवाकर मेरी ओरसे उनकी कुशल पूछना ॥

शिरसाभिनतो ब्रूयाः सर्वासामेव लक्ष्मण।
वक्तव्यश्चापि नृपतिर्धर्मेषु सुसमाहितः ॥ ११ ॥

'लक्ष्मण! तुम अन्तःपुरकी सभी वन्दनीया स्त्रियोंको मेरी ओरसे प्रणाम करके मेरा समाचार उन्हें सुना देना तथा जो सदा धर्म-पालनके लिये सावधान रहते हैं, उन महाराजको भी मेरा यह संदेश सुना देना ॥ ११ ॥

जानासि च यथा शुद्धा सीता तत्त्वेन राघव।
भक्त्या च परया युक्ता हिता च तव नित्यशः ॥ १२ ॥

'रघुनन्दन ! वास्तवमें तो आप जानते ही हैं कि सीता शुद्धचरित्रा है । सर्वदा ही आपके हितमें तत्पर रहती है और आपके प्रति परम प्रेमभक्ति रखनेवाली है ॥ १२ ॥

अहं त्यक्ता च ते वीर अयशोभीरुणा जने ।
यच्च ते वचनीयं स्यादपवादः समुत्थितः ॥ १३ ॥
मया च परिहर्तव्यं त्वं हि मे परमा गतिः ।

'वीर ! आपने अपयशसे डरकर ही मुझे त्यागा है; अतः लोगोंमें आपकी जो निन्दा हो रही है अथवा मेरे कारण जो अपवाद फैल रहा है, उसे दूर करना मेरा भी कर्तव्य है; क्योंकि मेरे परम आश्रय आप ही हैं ॥ १३½ ॥

वक्तव्यश्चैव नृपतिर्धर्मेण सुसमाहितः ॥ १४ ॥
यथा भ्रातृषु वर्तेथास्तथा पौरेषु नित्यदा ।
परमो ह्येष धर्मस्ते तस्मात् कीर्तिरनुत्तमा ॥ १५ ॥

'लक्ष्मण ! तुम महाराजसे कहना कि आप धर्मपूर्वक बड़ी सावधानीसे रहकर पुरवासियोंके साथ वैसा ही बर्ताव करें, जैसा अपने भाइयोंके साथ करते हैं । यही आपका परम धर्म है और इसीसे आपको परम उत्तम यशकी प्राप्ति हो सकती है ॥ १४-१५ ॥

यत्तु पौरजने राजन् धर्मेण समवाप्नुयात् ।
अहं तु नानुशोचामि स्वशरीरं नरर्षभ ॥ १६ ॥

'राजन् ! पुरवासियोंके प्रति धर्मानुकूल आचरण करनेसे जो पुण्य प्राप्त होगा, वही आपके लिये उत्तम धर्म और कीर्ति है । पुरुषोत्तम ! मुझे अपने शरीरके लिये कुछ भी चिन्ता नहीं है ॥ १६ ॥

यथापवादं पौराणां तथैव रघुनन्दन ।
पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः ॥ १७ ॥
प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः ।

'रघुनन्दन ! जिस तरह पुरवासियोंके अपवादसे बचकर रहा जा सके, उसी तरह आप रहें । स्त्रीके लिये तो पति ही देवता है, पति ही बन्धु है और पति ही गुरु है । इसलिये उसे प्राणोंकी बाजी लगाकर भी विशेषरूपसे पतिका प्रिय करना चाहिये ॥ १७½ ॥

इति मद्वचनाद् रामो वक्तव्यो मम संग्रहः ॥ १८ ॥
निरीक्ष्य माद्य गच्छ त्वमृतुकालातिवर्तिनीम् ।

'मेरी ओरसे सारी बातें तुम श्रीरघुनाथजीसे कहना और आज तुम भी मुझे देख जाओ । मैं इस समय ऋतुकालका उल्लङ्घन करके गर्भवती हो चुकी हूँ' ॥ १८½ ॥

एवं ब्रुवन्त्यां सीतायां लक्ष्मणो दीनचेतनः ॥ १९ ॥
शिरसा वन्द्य धरणीं व्याहर्तुं न शशाक ह ।

सीताके इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मणका मन बहुत दुखी हो गया । उन्होंने धरतीपर माथा टेककर प्रणाम किया । उस समय उनके मुखसे कोई भी बात नहीं निकल सकी ॥ १९½ ॥

प्रदक्षिणं च तां कृत्वा रुदन्नेव महास्वनः ॥ २० ॥
ध्यात्वा मुहूर्तं तामाह किं मां वक्ष्यसि शोभने ।

उन्होंने जोर-जोरसे रोते हुए ही सीता माताकी परिक्रमा की और दो घड़ीतक सोच विचारकर उनसे कहा—'शोभने ! आप यह मुझसे क्या कह रही हैं ? ॥ २०½ ॥

दृष्टपूर्वं न ते रूपं पादौ दृष्टौ तवानघे ॥ २१ ॥
कथमत्र हि पश्यामि रामेण रहितां वने ।

'निष्पाप पतिव्रते ! मैंने पहले भी आपका सम्पूर्ण रूप कभी नहीं देखा है । केवल आपके चरणोंके ही दर्शन किये हैं । फिर आज यहाँ वनके भीतर श्रीरामचन्द्रजीकी अनुपस्थितिमें मैं आपकी ओर कैसे देख सकता हूँ' ॥ २१½ ॥

इत्युक्त्वा तां नमस्कृत्य पुनर्नावमुपारुहत् ॥ २२ ॥
आरुरोह पुनर्नावं नाविकं चाभ्यचोदयत् ।

यह कहकर उन्होंने सीताजीको पुनः प्रणाम किया और फिर वे नावपर चढ़ गये । नावपर चढ़कर उन्होंने मल्लाहको उसे चलानेकी आज्ञा दी ॥ २२½ ॥

स गत्वा चोत्तरं तीरं शोकभारसमन्वितः ॥ २३ ॥
सम्मूढ इव दुःखेन रथमध्यारुहद् द्रुतम् ।

शोकके भारसे दबे हुए लक्ष्मण गङ्गाजीके उत्तरी तटपर पहुँचकर दुःखके कारण अचेत-से हो गये और उसी अवस्थामें जल्दीसे रथपर चढ़ गये ॥ २३½ ॥

मुहुर्मुहुः परावृत्य दृष्ट्वा सीतामनाथवत् ॥ २४ ॥
चेष्टन्तीं परतीरस्थां लक्ष्मणः प्रययावथ ।

सीता गङ्गाजीके दूसरे तटपर अनाथकी तरह रोती हुई धरतीपर लोट रही थीं । लक्ष्मण बार-बार मुँह घुमाकर उनकी ओर देखते हुए चल दिये ॥ २४½ ॥

दूरस्थं रथमालोक्य लक्ष्मणं च मुहुर्मुहुः ।
निरीक्ष्यमाणां तूद्विग्नां सीतां शोकः समाविशत् ॥ २५ ॥

रथ और लक्ष्मण क्रमशः दूर होते गये । सीता उनकी ओर बारंबार देखकर उद्विग्न हो उठीं । उनके अदृश्य होते ही उनपर गहरा शोक छा गया ॥ २५ ॥

सा दुःखभारावनता यशस्विनी
यशोधरा नाथमपश्यती सती ।
रुरोद सा बर्हिणनादिते वने
महास्वनं दुःखपरायणा सती ॥ २६ ॥

अब उन्हें कोई भी अपना रक्षक नहीं दिखायी दिया । अतः यशको धारण करनेवाली वे यशस्विनी सती सीता दुःखके भारी भारसे दबकर चिन्तामग्न हो मयूरोंके कलनादसे गूँजते हुए उस वनमें जोर-जोरसे रोने लगीं ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अड़तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

* * *

एकोनपञ्चाशः सर्गः

मुनिकुमारोंसे समाचार पाकर वाल्मीकिका सीताके पास आ उन्हें सान्त्वना देना और आश्रममें लिवा ले जाना

सीतां तु रुदतीं दृष्ट्वा ते तत्र मुनिदारकाः ।
प्राद्रवन् यत्र भगवानास्ते वाल्मीकिरुग्रधीः ॥ १ ॥

जहाँ सीता रो रही थीं, वहाँसे थोड़ी ही दूरपर ऋषियोंके कुछ बालक थे। वे उन्हें रोते देख अपने आश्रमकी ओर दौड़े, जहाँ उग्र तपस्यामें मन लगानेवाले भगवान् वाल्मीकि मुनि विराजमान थे ॥ १ ॥

अभिवाद्य मुनेः पादौ मुनिपुत्रा महर्षये ।
सर्वे निवेदयामासुस्तस्यास्तु रुदितस्वनम् ॥ २ ॥

उन सब मुनिकुमारोंने महर्षिके चरणोंमें अभिवादन करके उनसे सीताजीके रोनेका समाचार सुनाया ॥ २ ॥

अदृष्टपूर्वा भगवन् कस्याप्येषा महात्मनः ।
पत्नी श्रीरिव सम्मोहाद् विरौति विकृतानना ॥ ३ ॥

वे बोले—'भगवन्! गङ्गातटपर किन्हीं महात्मा नरेशकी पत्नी हैं, जो साक्षात् लक्ष्मीके समान जान पड़ती हैं। इन्हें हमलोगोंने पहले कभी नहीं देखा था। वे मोहके कारण विकृतमुख होकर रो रही हैं ॥ ३ ॥

भगवन् साधु पश्येस्त्वं देवतामिव खाच्च्युताम् ।
नद्यास्तु तीरे भगवन् वरस्त्री कापि दुःखिता ॥ ४ ॥

'भगवन्! आप स्वयं चलकर अच्छी तरह देख लें। वे आकाशसे उतरी हुई किसी देवी-सी दिखायी देती हैं। प्रभो! गङ्गाजीके तटपर जो वे कोई श्रेष्ठ सुन्दरी स्त्री बैठी हैं, बहुत दुखी हैं ॥ ४ ॥

दृष्टास्माभिः प्ररुदिता दृढं शोकपरायणा ।
अनर्हा दुःखशोकाभ्यामेका दीना अनाथवत् ॥ ५ ॥

'हमने अपनी आँखों देखा है, वे बड़े जोर-जोरसे रोती हैं और गहरे शोकमें डूबी हुई हैं। वे दुःख और शोक भोगनेके योग्य नहीं हैं। अकेली हैं, दीन हैं और अनाथकी तरह बिलख रही हैं ॥ ५ ॥

न ह्येनां मानुषीं विद्मः सत्क्रियास्याः प्रयुज्यताम् ।
आश्रमस्याविदूरे च त्वामियं शरणं गता ॥ ६ ॥

'हमारी समझमें ये मानवी स्त्री नहीं हैं। आपको इनका सत्कार करना चाहिये। इस आश्रमसे थोड़ी ही दूरपर होनेके कारण ये वास्तवमें आपकी शरणमें आयी हैं ॥ ६ ॥

त्रातारमिच्छते साध्वी भगवंस्त्रातुमर्हसि ।
तेषां तु वचनं श्रुत्वा बुद्ध्या निश्चित्य धर्मवित् ॥ ७ ॥
तपसा लब्धचक्षुष्मान् प्राद्रवद् यत्र मैथिली ।

'भगवन्! ये साध्वी देवी अपने लिये कोई रक्षक ढूँढ़ रही हैं। अतः आप इनकी रक्षा करें।' उन मुनिकुमारोंकी यह बात सुनकर धर्मज्ञ महर्षिने बुद्धिसे निश्चित करके असली बातको जान लिया; क्योंकि उन्हें तपस्याद्वारा दिव्य दृष्टि प्राप्त थी। जानकर वे उस स्थानपर दौड़े हुए आये, जहाँ मिथिलेशकुमारी सीता विराजमान थीं ॥ ७½ ॥

तं प्रयान्तमभिप्रेत्य शिष्या ह्येनं महामतिम् ॥ ८ ॥
तं तु देशमभिप्रेत्य किंचित् पद्भ्यां महामतिः ।
अर्घ्यमादाय रुचिरं जाह्नवीतीरमागमत् ।
ददर्श राघवस्येष्टां सीतां पत्नीमनाथवत् ॥ ९ ॥

उन परम बुद्धिमान् महर्षिको जाते देख उनके शिष्य भी उनके साथ हो लिये। कुछ पैदल चलकर वे महामति महर्षि सुन्दर अर्घ्य लिये गङ्गातटवर्ती उस स्थानपर आये। वहाँ आकर उन्होंने श्रीरघुनाथजीकी प्रिय पत्नी सीताको अनाथकी-सी दशामें देखा ॥ ८-९ ॥

तां सीतां शोकभारार्तां वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः ।
उवाच मधुरां वाणीं ह्लादयन्निव तेजसा ॥ १० ॥

शोकके भारसे पीड़ित हुई सीताको अपने तेजसे आह्लादित-सी करते हुए मुनिवर वाल्मीकि मधुर वाणीमें बोले—॥ १० ॥

स्नुषा दशरथस्य त्वं रामस्य महिषी प्रिया ।
जनकस्य सुता राज्ञः स्वागतं ते पतिव्रते ॥ ११ ॥

'पतिव्रते! तुम राजा दशरथकी पुत्रवधू, महाराज श्रीरामकी प्यारी पटरानी और मिथिलाके राजा जनककी पुत्री हो। तुम्हारा स्वागत है ॥ ११ ॥

आयान्ती चासि विज्ञाता मया धर्मसमाधिना ।
कारणं चैव सर्वं मे हृदयेनोपलक्षितम् ॥ १२ ॥

'जब तुम यहाँ आ रही थीं, तभी अपनी धर्मसमाधिके द्वारा मुझे इसका पता लग गया था। तुम्हारे परित्यागका जो सारा कारण है, उसे मैंने अपने मनसे ही जान लिया है ॥

तव चैव महाभागे विदितं मम तत्त्वतः ।
सर्वं च विदितं मह्यं त्रैलोक्ये यद्धि वर्तते ॥ १३ ॥

'महाभागे! तुम्हारा सारा वृत्तान्त मैंने ठीक-ठीक जान लिया है। त्रिलोकीमें जो कुछ हो रहा है, वह सब मुझे विदित है ॥ १३ ॥

अपापां वेद्मि सीते ते तपोलब्धेन चक्षुषा ।
विस्रब्धा भव वैदेहि साम्प्रतं मयि वर्तसे ॥ १४ ॥

'सीते ! मैं तपस्याद्वारा प्राप्त हुई दिव्य-दृष्टिसे जानता हूँ कि तुम निष्पाप हो। अतः विदेहनन्दिनि ! अब निश्चिन्त हो जाओ। इस समय तुम मेरे पास हो ॥ १४ ॥

आश्रमस्याविदूरे मे तापस्यस्तपसि स्थिताः ।
तास्त्वां वत्से यथा वत्सं पालयिष्यन्ति नित्यशः ॥१५॥

'बेटी ! मेरे आश्रमके पास ही कुछ तापसी स्त्रियाँ रहती हैं, जो तपस्यामें संलग्न हैं। वे अपनी बच्चीके समान सदा तुम्हारा पालन करेंगी ॥ १५ ॥

इदमर्घ्यं प्रतीच्छ त्वं विस्रब्धा विगतज्वरा ।
यथा स्वगृहमभ्येत्य विषादं चैव मा कृथाः ॥ १६ ॥

'यह मेरा दिया हुआ अर्घ्य ग्रहण करो और निश्चिन्त एवं निर्भय हो जाओ। अपने ही घरमें आ गयी हो, ऐसा समझकर विषाद न-करो' ॥ १६ ॥

श्रुत्वा तु भाषितं सीता मुनेः परममद्भुतम् ।
शिरसा वन्द्य चरणौ तथेत्याह कृताञ्जलिः ॥ १७ ॥

महर्षिका यह अत्यन्त अद्भुत भाषण सुनकर सीताने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—'जो आज्ञा' ॥ १७ ॥

तं प्रयान्तं मुनिं सीता प्राञ्जलिः पृष्ठतोऽन्वगात् ।
तं दृष्ट्वा मुनिमायान्तं वैदेह्या मुनिपत्नयः ।
उपाजग्मुर्मुदा युक्ता वचनं चेदमब्रुवन् ॥ १८ ॥

तब मुनि आगे-आगे चले और सीता हाथ जोड़े उनके पीछे हो लीं। विदेहनन्दिनीक साथ महर्षिको आते देख मुनि-पत्नियाँ उनके पास आयीं और बड़ी प्रसन्नताके साथ इस प्रकार बोलीं—॥ १८ ॥

स्वागतं ते मुनिश्रेष्ठ चिरस्यागमनं च ते ।
अभिवादयामस्त्वां सर्वा उच्यतां किं च कुर्महे ॥ १९ ॥

'मुनिश्रेष्ठ ! आपका स्वागत है। बहुत दिनोंके बाद यहाँ आपका शुभागमन हुआ है। हम सभी आपको अभिवादन करती हैं। बताइये, हम आपकी क्या सेवा करें' ॥ १९ ॥

तासां तद् वचनं श्रुत्वा वाल्मीकिरिदमब्रवीत् ।
सीतेयं समनुप्राप्ता पत्नी रामस्य धीमतः ॥ २० ॥

उनका यह वचन सुनकर वाल्मीकिजी बोले—'ये परम बुद्धिमान् राजा श्रीरामकी धर्मपत्नी सीता यहाँ आयी हैं ॥

स्नुषा दशरथस्यैषा जनकस्य सुता सती ।
अपापा पतिना त्यक्ता परिपाल्या मया सदा ॥ २१ ॥

'सती सीता राजा दशरथकी पुत्रवधू और जनककी पुत्री हैं। निष्पाप होनेपर भी पतिने इनका परित्याग कर दिया है। अतः मुझे ही इनका सदा लालन-पालन करना है ॥ २१ ॥

इमां भवत्यः पश्यन्तु स्नेहेन परमेण हि ।
गौरवान्मम वाक्याच्च पूज्या वोऽस्तु विशेषतः ॥ २२ ॥

'अतः आप सब लोग इनपर अत्यन्त स्नेह-दृष्टि रक्खें। मेरे कहनेसे तथा अपने ही गौरवसे भी ये आपकी विशेष आदरणीया हैं' ॥ २२ ॥

मुहुर्मुहुश्च वैदेहीं परिदाय महायशाः ।
स्वमाश्रमं शिष्यवृतः पुनरायान्महातपाः ॥ २३ ॥

इस प्रकार बारंबार सीताजीको मुनिपत्नियोंके हाथमें सौंपकर महायशस्वी एवं महातपस्वी वाल्मीकिजी शिष्योंके साथ फिर अपने आश्रमपर लौट आये ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें उनचासवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

◆

पञ्चाशः सर्गः

लक्ष्मण और सुमन्त्रकी बातचीत

दृष्ट्वा तु मैथिलीं सीतामाश्रमे सम्प्रवेशिताम् ।
संतापमगद् घोरं लक्ष्मणो दीनचेतनः ॥ १ ॥

मिथिलेशकुमारी सीताका मुनिके आश्रममें प्रवेश हो गया, यह देखकर लक्ष्मण मन-ही-मन बहुत दुखी हुए। उन्हें घोर संताप हुआ ॥ १ ॥

अब्रवीच्च महातेजाः सुमन्त्रं मन्त्रसारथिम् ।
सीतासंतापजं दुःखं पश्य रामस्य सारथे ॥ २ ॥

उस समय महातेजस्वी लक्ष्मण मन्त्रणामें सहायता देनेवाले सारथि सुमन्त्रसे बोले—'सूत ! देखो तो सही, श्रीरामको अभीसे सीताजीके विरहजनित संतापका कष्ट भोगना पड़ रहा है ॥ २ ॥

ततो दुःखतरं किं नु राघवस्य भविष्यति ।
पत्नीं शुद्धसमाचारां विसृज्य जनकात्मजाम् ॥ ३ ॥

'भला, श्रीरघुनाथजीको इससे बढ़कर दुःख क्या होगा कि उन्हें अपनी पवित्र आचरणवाली धर्मपत्नी जनककिशोरी सीताका परित्याग करना पड़ा ॥ ३ ॥

व्यक्तं दैवादहं मन्ये राघवस्य विनाभवम् ।
वैदेह्या सारथे नित्यं दैवं हि दुरतिक्रमम् ॥ ४ ॥

'सारथे ! रघुनाथजीको सीताका जो यह नित्य वियोग

प्राप्त हुआ है, इसमें मैं दैवको ही कारण मानता हूँ; क्योंकि दैवका विधान दुर्लङ्घ्य होता है ॥ ४॥

यो हि देवान् सगन्धर्वानसुरान् सह राक्षसैः ।
निहन्याद् राघवः क्रुद्धः स दैवं पर्युपासते ॥ ५ ॥

'जो श्रीरघुनाथजी कुपित होनेपर देवताओं, गन्धर्वों तथा राक्षसोंसहित असुरोंका भी संहार कर सकते हैं, वे ही दैवकी उपासना कर रहे हैं (उसका निवारण नहीं कर पा रहे हैं)॥

पुरा रामः पितुर्वाक्याद् दण्डके विजने वने ।
उषित्वा नव वर्षाणि पञ्च चैव महावने ॥ ६ ॥

'पहले श्रीरामचन्द्रजीको पिताके कहनेसे चौदह वर्षोंतक विशाल एवं निर्जन दण्डकवनमें रहना पड़ा है ॥ ६ ॥

ततो दुःखतरं भूयः सीताया विप्रवासनम् ।
पौराणां वचनं श्रुत्वा नृशंसं प्रतिभाति मे ॥ ७ ॥

'अब उससे भी बढ़कर दुःखकी बात यह हुई कि उन्हें सीताजीको निर्वासित करना पड़ा । परंतु पुरवासियोंकी बात सुनकर ऐसा कर बैठना मुझे अत्यन्त निर्दयतापूर्ण कर्म जान पड़ता है ॥ ७ ॥

को नु धर्माश्रयः सूत कर्मण्यस्मिन् यशोहरे ।
मैथिलीं समनुप्राप्तः पौरैर्हीनार्थवादिभिः ॥ ८ ॥

'सूत ! सीताजीके विषयमें अन्यायपूर्ण बात कहनेवाले इन पुरवासियोंके कारण ऐसे कीर्तिनाशक कर्ममें प्रवृत्त होकर श्रीरामचन्द्रजीने किस धर्मराशिका उपार्जन कर लिया है ?' ॥

एता वाचो बहुविधाः श्रुत्वा लक्ष्मणभाषिताः ।
सुमन्त्रः श्रद्धया प्राज्ञो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ९ ॥

लक्ष्मणकी कही हुई इन अनेक प्रकारकी बातोंको सुनकर बुद्धिमान् सुमन्त्रने श्रद्धापूर्वक ये वचन कहे—॥ ९ ॥

न संतापस्त्वया कार्यः सौमित्रे मैथिलीं प्रति ।
दृष्टमेतत् पुरा विप्रैः पितुस्ते लक्ष्मणाग्रतः ॥ १० ॥

'सुमित्रानन्दन ! मिथिलेशकुमारी सीताके विषयमें आपको संतप्त नहीं होना चाहिये । लक्ष्मण ! यह बात ब्राह्मणोंने आपके पिताजीके सामने ही जान ली थी ॥ १०॥

भविष्यति दृढं रामो दुःखप्रायो विसौख्यभाक् ।
प्राप्स्यते च महाबाहुर्विप्रयोगं प्रियैर्द्रुतम् ॥ ११ ॥

'उन दिनों दुर्वासाजीने कहा था कि 'श्रीराम निश्चय ही अधिक दुःख उठायेंगे । प्रायः उनका सौख्य छिन जायगा । महाबाहु श्रीरामको शीघ्र ही अपने प्रियजनोंसे वियोग प्राप्त होगा ॥

त्वां चैव मैथिलीं चैव शत्रुघ्नभरतौ तथा ।
स त्यजिष्यति धर्मात्मा कालेन महता महान् ॥ १२ ॥

'सुमित्राकुमार ! धर्मात्मा महापुरुष श्रीराम दीर्घकाल बीतते-बीतते तुमको, मिथिलेशकुमारीको तथा भरत और शत्रुघ्नको भी त्याग देंगे ॥ १२ ॥

इदं त्वयि न वक्तव्यं सौमित्रे भरतेऽपि वा ।
राज्ञा वो व्याहृतं वाक्यं दुर्वासा यदुवाच ह ॥ १३ ॥

'दुर्वासाने जो बात कही थी, उसे महाराज दशरथने तुमसे, शत्रुघ्नसे और भरतसे भी कहनेकी मनाही कर दी थी ॥

महाजनसमीपे च मम चैव नरर्षभ ।
ऋषिणा व्याहृतं वाक्यं वसिष्ठस्य च संनिधौ ॥ १४ ॥

'नरश्रेष्ठ ! दुर्वासामुनिने बहुत बड़े जनसमुदायके समीप मेरे समक्ष तथा महर्षि वसिष्ठके निकट वह बात कही थी ॥

ऋषेस्तु वचनं श्रुत्वा मामाह पुरुषर्षभः ।
सूत न क्वचिदेवं ते वक्तव्यं जनसंनिधौ ॥ १५ ॥

'दुर्वासा मुनिकी वह बात सुनकर पुरुषप्रवर दशरथने मुझसे कहा था कि 'सूत ! तुम्हें दूसरे लोगोंके सामने इस तरहकी बात नहीं कहनी चाहिये' ॥ १५ ॥

तस्याहं लोकपालस्य वाक्यं तत्सुसमाहितः ।
नैव जात्वनृतं कुर्यामिति मे सौम्य दर्शनम् ॥ १६ ॥

'सौम्य ! उन लोकपालक दशरथके उस वाक्यको मैं झूठा न करूँ' यह मेरा संकल्प है । इसके लिये मैं सदा सावधान रहता हूँ ॥ १६ ॥

सर्वथैव न वक्तव्यं मया सौम्य तवाग्रतः ।
यदि ते श्रवणे श्रद्धा श्रूयतां रघुनन्दन ॥ १७ ॥

'सौम्य रघुनन्दन ! यद्यपि यह बात मुझे आपके सामने सर्वथा ही नहीं कहनी चाहिये, तथापि यदि आपके मनमें यह सुननेके लिये श्रद्धा (उत्सुकता) हो तो सुनिये ॥ १७ ॥

यद्यप्यहं नरेन्द्रेण रहस्यं श्रावितं पुरा ।
तथाप्युदाहरिष्यामि दैवं हि दुरतिक्रमम् ॥ १८ ॥
येनेदमीदृशं प्राप्तं दुःखं शोकसमन्वितम् ।
न त्वया भरतस्याग्रे शत्रुघ्नस्यापि संनिधौ ॥ १९ ॥

'यद्यपि पूर्वकालमें महाराजने इस रहस्यको दूसरोंपर प्रकट न करनेके लिये आदेश दिया था, तथापि आज मैं वह बात कहूँगा । दैवके विधानको लाँघना बहुत कठिन है; जिससे यह दुःख और शोक प्राप्त हुआ है । भैया ! तुम्हें भी भरत और शत्रुघ्नके सामने यह बात नहीं कहनी चाहिये' ॥ १८-१९ ॥

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य गम्भीरार्थपदं महत् ।
तथ्यं ब्रूहीति सौमित्रिः सूतं तं वाक्यमब्रवीत् ॥ २० ॥

सुमन्त्रका यह गम्भीर भाषण सुनकर सुमित्राकुमार लक्ष्मणने कहा—'सुमन्त्रजी ! जो सच्ची बात हो, उसे आप अवश्य कहिये' ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चाशः सर्गः ॥ ५० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पचासवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशः सर्गः

मार्गमें सुमन्त्रका दुर्वासाके मुखसे सुनी हुई भृगुऋषिके शापकी कथा कहकर तथा भविष्यमें होनेवाली कुछ बातें बताकर दुखी लक्ष्मणको शान्त करना

तथा संचोदितः सूतो लक्ष्मणेन महात्मना।
तद् वाक्यमृषिणा प्रोक्तं व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥

तब महात्मा लक्ष्मणकी प्रेरणासे सुमन्त्रजी दुर्वासाजीकी कही हुई बात उन्हें सुनाने लगे—॥ १ ॥

पुरा नाम्ना हि दुर्वासा अत्रेः पुत्रो महामुनिः।
वसिष्ठस्याश्रमे पुण्ये वार्षिक्यं समुवास ह ॥ २ ॥

'लक्ष्मण ! पहलेकी बात है, अत्रिके पुत्र महामुनि दुर्वासा वसिष्ठजीके पवित्र आश्रमपर रहकर वर्षाके चार महीने बिता रहे थे ॥ २ ॥

तमाश्रमं महातेजाः पिता ते सुमहायशाः।
पुरोहितं महात्मानं दिदृक्षुरगमत् स्वयम् ॥ ३ ॥

'एक दिन आपके महातेजस्वी और महान् यशस्वी पिता उस आश्रमपर अपने पुरोहित महात्मा वसिष्ठजीका दर्शन करनेके लिये स्वयं ही गये ॥ ३ ॥

स दृष्ट्वा सूर्यसंकाशं ज्वलन्तमिव तेजसा।
उपविष्टं वसिष्ठस्य सव्यपार्श्वे महामुनिम् ॥ ४ ॥

'वहाँ उन्होंने वसिष्ठजीके वामभागमें बैठे हुए एक महामुनिको देखा, जो अपने तेजसे मानो सूर्यके समान देदीप्यमान हो रहे थे ॥ ४ ॥

तौ मुनी तापसश्रेष्ठौ विनीतो ह्यभ्यवादयत्।
स ताभ्यां पूजितो राजा स्वागतेनासनेन च ॥ ५ ॥
पाद्येन फलमूलैश्च उवास मुनिभिः सह।

'तब राजाने उन दोनों तापसशिरोमणि महर्षियोंका विनयपूर्वक अभिवादन किया। उन दोनोंने भी स्वागतपूर्वक आसन देकर पाद्य एवं फल-मूल समर्पित करके राजाका सत्कार किया। फिर वे वहाँ मुनियोंके साथ बैठे ॥ ५½ ॥

तेषां तत्रोपविष्टानां तास्ताः सुमधुराः कथाः ॥ ६ ॥
बभूवुः परमर्षीणां मध्यादित्यगतेऽहनि।

'वहाँ बैठे हुए महर्षियोंकी दोपहरके समय तरह-तरहकी अत्यन्त मधुर कथाएँ हुईं ॥ ६½ ॥

ततः कथायां कस्यांचित् प्राञ्जलिः प्रग्रहो नृपः ॥ ७ ॥
उवाच तं महात्मानमत्रेः पुत्रं तपोधनम्।

'तदनन्तर किसी कथाके प्रसङ्गमें महाराजने हाथ जोड़कर अत्रिके तपोधन पुत्र महात्मा दुर्वासाजीसे विनयपूर्वक पूछा—॥ ७½ ॥

भगवन् किंप्रमाणेन मम वंशो भविष्यति ॥ ८ ॥
किमायुश्च हि मे रामः पुत्राश्चान्ये किमायुषः।

''भगवन् ! मेरा वंश कितने समयतक चलेगा ? मेरे रामकी कितनी आयु होगी तथा अन्य सब पुत्रोंकी भी आयु कितनी होगी ? ॥ ८½ ॥

रामस्य च सुता ये स्युस्तेषामायुः कियद् भवेत्॥ ९ ॥
काम्यया भगवन् ब्रूहि वंशस्यास्य गतिं मम।

''श्रीरामके जो पुत्र होंगे, उनकी आयु कितनी होगी ? भगवन्! आप इच्छानुसार मेरे वंशकी स्थिति बताइये'॥९½॥

तच्छ्रुत्वा व्याहृतं वाक्यं राज्ञो दशरथस्य तु ॥ १० ॥
दुर्वासाः सुमहातेजा व्याहर्तुमुपचक्रमे।

'राजा दशरथका यह वचन सुनकर महातेजस्वी दुर्वासा मुनि कहने लगे—॥ १०½ ॥

शृणु राजन् पुरा वृत्तं तदा देवासुरे युधि ॥ ११ ॥
दैत्याः सुरैर्भर्त्स्यमाना भृगुपत्नीं समाश्रिताः।
तया दत्ताभयास्तत्र न्यवसन्नभयास्तदा ॥ १२ ॥

''राजन् ! सुनिये, प्राचीन कालकी बात है, एक बार देवासुर-संग्राममें देवताओंसे पीड़ित हुए दैत्योंने महर्षि भृगुकी पत्नीकी शरण ली। भृगुपत्नीने उस समय दैत्योंको अभय दिया और वे उनके आश्रमपर निर्भय होकर रहने लगे ११ १२

तया परिगृहीतांस्तान् दृष्ट्वा क्रुद्धः सुरेश्वरः।
चक्रेण शितधारेण भृगुपत्न्याः शिरोऽहरत् ॥ १३ ॥

''भृगुपत्नीने दैत्योंको आश्रय दिया है, यह देखकर कुपित हुए देवेश्वर भगवान् विष्णुने तीखी धारवाले चक्रसे उनका सिर काट लिया ॥ १३ ॥

ततस्तां निहतां दृष्ट्वा पत्नीं भृगुकुलोद्वहः।
शशाप सहसा क्रुद्धो विष्णुं रिपुकुलार्दनम् ॥ १४ ॥

''अपनी पत्नीका वध हुआ देख भार्गववंशके प्रवर्तक भृगुजीने सहसा कुपित हो शत्रुकुलनाशन भगवान् विष्णुको शाप दिया ॥ १४ ॥

यस्मादवध्यां मे पत्नीमवधीः क्रोधमूर्च्छितः।
तस्मात् त्वं मानुषे लोके जनिष्यसि जनार्दन ॥ १५ ॥
तत्र पत्नीवियोगं त्वं प्राप्स्यसे बहुवार्षिकम्।

''जनार्दन ! मेरी पत्नी वधके योग्य नहीं थी। परंतु आपने क्रोधसे मूर्छित होकर उसका वध किया है, इसलिये आपको मनुष्यलोकमें जन्म लेना पड़ेगा और वहाँ बहुत वर्षोंतक आपको पत्नी-वियोगका कष्ट सहना पड़ेगा' ॥ १५½ ॥

शापाभिहतचेतास्तु स्वात्मना भावितोऽभवत् ॥ १६ ॥
अर्चयामास तं देवं भृगुः शापेन पीडितः ।

''परंतु इस प्रकार शाप देकर उनके चित्तमें बड़ा पश्चात्ताप हुआ । उनकी अन्तरात्माने भगवान्‌से उस शापको स्वीकार करानेके लिये उन्हींकी आराधना करनेको प्रेरित किया । इस तरह शापकी विफलताके भयसे पीड़ित हुए भृगुने तपस्याद्वारा भगवान् विष्णुकी आराधना की ॥ १६½ ॥

तपसाऽऽराधितो देवो ह्यब्रवीद् भक्तवत्सलः ॥ १७ ॥
लोकानां सम्प्रियार्थं तु तं शापं गृह्यमुक्तवान् ।

'तपस्याद्वारा उनके आराधना करनेपर भक्तवत्सल भगवान् विष्णुने संतुष्ट होकर कहा—'महर्षे ! सम्पूर्ण जगत्‌का प्रिय करनेके लिये मैं उस शापको ग्रहण कर लूँगा' ॥ १७½ ॥

इति शप्तो महातेजा भृगुणा पूर्वजन्मनि ॥ १८ ॥
इहागतो हि पुत्रत्वं तव पार्थिवसत्तम ।
राम इत्यभिविख्यातस्त्रिषु लोकेषु मानद ॥ १९ ॥

''इस तरह पूर्वजन्ममें (विष्णु-नामधारी वामन अवतारके समय) महातेजस्वी भगवान् विष्णुको भृगु ऋषिका शाप प्राप्त हुआ था । दूसरोंको मान देनेवाले नृपश्रेष्ठ ! वे ही इस भूतलपर आकर तीनों लोकोंमें राम-नामसे विख्यात आपके पुत्र हुए हैं ॥ १८-१९ ॥

तत् फलं प्राप्स्यते चापि भृगुशापकृतं महत् ।
अयोध्यायाः पती रामो दीर्घकालं भविष्यति ॥ २० ॥

''भृगुके शापसे होनेवाला पत्नी-वियोगरूप जो महान् फल है, वह उन्हें अवश्य प्राप्त होगा । श्रीराम दीर्घकालतक अयोध्याके राजा होकर रहेंगे ॥ २० ॥

सुखिनश्च समृद्धाश्च भविष्यन्त्यस्य येऽनुगाः ।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ २१ ॥
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं गमिष्यति ।

''उनके अनुयायी भी बहुत सुखी और धन-धान्यसे सम्पन्न होंगे । श्रीराम ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करके अन्तमें ब्रह्मलोक (वैकुण्ठ या साकेत-धाम) को पधारेंगे ॥

समृद्धैश्चाश्वमेधैश्च इष्ट्वा परमदुर्जयः ॥ २२ ॥
राजवंशांश्च बहुशो बहून् संस्थापयिष्यति ।
द्वौ पुत्रौ तु भविष्येते सीतायां राघवस्य तु ॥ २३ ॥

''परम दुर्जय वीर श्रीराम समृद्धिशाली अश्वमेध-यज्ञोंका बारंबार अनुष्ठान करके बहुत-से राजवंशोंकी स्थापना करेंगे । श्रीरघुनाथजीको सीताके गर्भसे दो पुत्र प्राप्त होंगे' ॥२२-२३॥

स सर्वमखिलं राज्ञो वंशस्याह गतागतम् ।
आख्याय सुमहातेजास्तूष्णीमासीन्महामुनिः ॥ २४ ॥

'ये सब बातें कहकर उन महातेजस्वी महामुनिने राजवंशके विषयमें भूत और भविष्यकी सारी बातें बतायीं । इसके बाद वे चुप हो गये ॥ २४ ॥

तूष्णींभूते तदा तस्मिन् राजा दशरथो मुनौ ।
अभिवाद्य महात्मानौ पुनरायात् पुरोत्तमम् ॥ २५ ॥

'उन दुर्वासा मुनिके चुप हो जानेपर महाराज दशरथ भी दोनों महात्माओंको प्रणाम करके फिर अपने उत्तम नगरमें लौट आये ॥ २५ ॥

एतद् वचो मया तत्र मुनिना व्याहृतं पुरा ।
श्रुतं हृदि च निक्षिप्तं नान्यथा तद् भविष्यति ॥ २६ ॥

'इस प्रकार पूर्वकालसे दुर्वासा मुनिकी कही हुई ये सब बातें मैंने वहाँ सुनीं और अपने हृदयमें धारण कर लीं (उन्हें किसीपर प्रकट नहीं किया)। वे बातें असत्य नहीं होंगी ॥२६॥

सीतायाश्च ततः पुत्रावभिषेक्ष्यति राघवः ।
अन्यत्र न त्वयोध्यायां मुनेस्तु वचनं यथा ॥ २७ ॥

'जैसा दुर्वासा मुनिका वचन है, उसके अनुसार श्रीरघुनाथजी सीताके दोनों पुत्रोंका अयोध्यासे बाहर अभिषेक करेंगे, अयोध्यामें नहीं ॥ २७ ॥

एवं गते न संतापं कर्तुमर्हसि राघव ।
सीतार्थे राघवार्थे वा दृढो भव नरोत्तम ॥ २८ ॥

'नरश्रेष्ठ रघुनन्दन ! विधाताका ऐसा ही विधान होनेके कारण आपको सीता तथा रघुनाथजीके लिये संताप नहीं करना चाहिये । आप धैर्य धारण करें' ॥ २८ ॥

श्रुत्वा तु व्याहृतं वाक्यं सूतस्य परमाद्भुतम् ।
प्रहर्षमतुलं लेभे साधु साध्विति चाब्रवीत् ॥ २९ ॥

सूत सुमन्त्रके मुखसे यह अत्यन्त अद्भुत बात सुनकर लक्ष्मणको अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ । वे बोले—'बहुत ठीक, बहुत ठीक' ॥ २९ ॥

ततः संवदतोरेवं सूतलक्ष्मणयोः पथि ।
अस्तमर्के गते वासं केशिन्यां तावथोषतुः ॥ ३० ॥

मार्गमें सुमन्त्र और लक्ष्मण इस प्रकारकी बातें कर ही रहे थे कि सूर्य अस्ताचलको चले गये । तब उन दोनोंने केशिनी नदीके तटपर रात बितायी ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें इक्यावनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशः सर्गः

अयोध्याके राजभवनमें पहुँचकर लक्ष्मणका दुखी श्रीरामसे मिलना और उन्हें सान्त्वना देना

तत्र तां रजनीमुष्य केशिन्यां रघुनन्दनः ।
प्रभाते पुनरुत्थाय लक्ष्मणः प्रययौ तदा ॥ १ ॥

केशिनीके तटपर वह रात बिताकर रघुनन्दन लक्ष्मण प्रातःकाल उठे और फिर वहाँसे आगे बढ़े ॥ १ ॥

ततोऽर्धदिवसे प्राप्ते प्रविवेश महारथः ।
अयोध्यां रत्नसम्पूर्णां हृष्टपुष्टजनावृताम् ॥ २ ॥

दोपहर होते-होते उनके उस विशाल रथने रत्न-धनसे सम्पन्न तथा हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरी हुई अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया ॥ २ ॥

सौमित्रिस्तु परं दैन्यं जगाम सुमहामतिः ।
रामपादौ समासाद्य वक्ष्यामि किमहं गतः ॥ ३ ॥

वहाँ पहुँचकर परम बुद्धिमान् सुमित्राकुमारको बड़ा दुःख हुआ । वे सोचने लगे—'मैं श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके समीप जाकर क्या कहूँगा ?' ॥ ३ ॥

तस्यैवं चिन्तयानस्य भवनं शशिसंनिभम् ।
रामस्य परमोदारं पुरस्तात् समदृश्यत ॥ ४ ॥

वे इस प्रकार सोच-विचार कर ही रहे थे कि चन्द्रमाके समान उज्ज्वल श्रीरामका विशाल राजभवन सामने दिखायी दिया ॥ ४ ॥

राज्ञस्तु भवनद्वारि सोऽवतीर्य नरोत्तमः ।
अवाङ्मुखो दीनमनाः प्रविवेशानिवारितः ॥ ५ ॥

राजमहलके द्वारपर रथसे उतरकर वे नरश्रेष्ठ लक्ष्मण नीचे मुख किये दुखी मनसे बेरोक-टोक भीतर चले गये ॥

स दृष्ट्वा राघवं दीनमासीनं परमासने ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां ददर्शाग्रजमग्रतः ॥ ६ ॥
जग्राह चरणौ तस्य लक्ष्मणो दीनचेतनः ।
उवाच दीनया वाचा प्राञ्जलिः सुसमाहितः ॥ ७ ॥

उन्होंने देखा श्रीरघुनाथजी दुखी होकर एक सिंहासनपर बैठे हैं और उनके दोनों नेत्र आँसुओंसे भरे हैं । इस अवस्थामें बड़े भाईको सामने देख दुखी मनसे लक्ष्मणने उनके दोनों पैर पकड़ लिये और हाथ जोड़ चित्तको एकाग्र करके वे दीन वाणीमें बोले—॥ ६-७ ॥

आर्यस्याज्ञां पुरस्कृत्य विसृज्य जनकात्मजाम् ।
गङ्गातीरे यथोद्दिष्टे वाल्मीकेराश्रमे शुभे ॥ ८ ॥
तत्र तां च शुभाचारामाश्रमान्ते यशस्विनीम् ।
पुनरप्यागतो वीर पादमूलमुपासितुम् ॥ ९ ॥

'वीर महाराजकी आज्ञा शिरोधार्य करके मैं उन शुभ आचारवाली, यशस्विनी जनककिशोरी सीताको गङ्गातटपर वाल्मीकिके शुभ आश्रमके समीप निर्दिष्ट स्थानमें छोड़कर पुनः आपके श्रीचरणोंकी सेवाके लिये यहाँ लौट आया हूँ ॥

मा शुचः पुरुषव्याघ्र कालस्य गतिरीदृशी ।
त्वद्विधा नहि शोचन्ति बुद्धिमन्तो मनस्विनः ॥ १० ॥

'पुरुषसिंह ! आप शोक न करें । कालकी ऐसी ही गति है । आप-जैसे बुद्धिमान् और मनस्वी मनुष्य शोक नहीं करते हैं ॥ १० ॥

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः । ✓
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥ ११ ॥

'संसारमें जितने संचय हैं, उन सबका अन्त विनाश है, उत्थानका अन्त पतन है, संयोगका अन्त वियोग है और जीवनका अन्त मरण है ॥ ११ ॥

तस्मात् पुत्रेषु दारेषु मित्रेषु च धनेषु च । ✓
नातिप्रसङ्गः कर्तव्यो विप्रयोगो हि तैर्ध्रुवम् ॥ १२ ॥

'अतः स्त्री, पुत्र, मित्र और धनमें विशेष आसक्ति नहीं करनी चाहिये; क्योंकि उनसे वियोग होना निश्चित है ॥ १२ ॥

शक्तस्त्वमात्मनाऽऽत्मानं विनेतुं मनसा मनः ।
लोकान् सर्वांश्च काकुत्स्थ किं पुनः शोकमात्मनः ॥ १३ ॥

'ककुत्स्थकुलभूषण ! आप आत्मासे आत्माको, मनसे मनको तथा सम्पूर्ण लोकोंको भी संयत रखनेमें समर्थ हैं; फिर अपने शोकको काबूमें रखना आपके लिये कौन बड़ी बात है ? ॥

नेदृशेषु विमुह्यन्ति त्वद्विधाः पुरुषर्षभाः ।
अपवादः स किल ते पुनरेष्यति राघव ॥ १४ ॥

'आप-जैसे श्रेष्ठ पुरुष इस तरहके प्रसङ्ग आनेपर मोहित नहीं होते । रघुनन्दन ! यदि आप दुखी रहेंगे तो वह अपवाद आपके ऊपर फिर आ जायगा ॥ १४ ॥

यदर्थं मैथिली त्यक्ता अपवादभयान्नृप ।
सोऽपवादः पुरे राजन् भविष्यति न संशयः ॥ १५ ॥

'नरेश्वर ! जिस अपवादके भयसे आपने मिथिलेशकुमारीका त्याग किया है, निःसंदेह वह अपवाद इस नगरमें फिर होने लगेगा (लोग कहेंगे कि दूसरेके घरमें रही हुई स्त्रीका त्याग करके ये रात-दिन उसीकी चिन्तासे दुखी रहते हैं) ॥

स त्वं पुरुषशार्दूल धैर्येण सुसमाहितः ।
त्यजेमां दुर्बलां बुद्धिं संतापं मा कुरुष्व ह ॥ १६ ॥

'अतः पुरुषसिंह ! आप धैर्यसे चित्तको एकाग्र करके इस दुर्बल शोक-बुद्धिका त्याग करें—संतप्त न हों' ॥ १६ ॥

एवमुक्तः स काकुत्स्थो लक्ष्मणेन महात्मना ।
उवाच परया प्रीत्या सौमित्रिं मित्रवत्सलः ॥ १७ ॥

महात्मा लक्ष्मणके इस प्रकार कहनेपर मित्रवत्सल श्रीरघुनाथजीने बड़ी प्रसन्नताके साथ उन सुमित्राकुमारसे कहा—॥ १७ ॥

एवमेतन्नरश्रेष्ठ यथा वदसि लक्ष्मण ।
परितोषश्च मे वीर मम कार्यानुशासने ॥ १८ ॥

'नरश्रेष्ठ वीर लक्ष्मण ! तुम जैसा कहते हो, ठीक ऐसी ही बात है। तुमने मेरे आदेशका पालन किया, इससे मुझे बड़ा संतोष है ॥ १८ ॥

निवृत्तिश्चागता सौम्य संतापश्च निराकृतः ।
भवद्वाक्यैः सुरुचिरैरनुनीतोऽस्मि लक्ष्मण ॥ १९ ॥

'सौम्य लक्ष्मण ! अब मैं दुःखसे निवृत्त हो गया। संतापको मैंने हृदयसे निकाल दिया और तुम्हारे सुन्दर वचनोंसे मुझे बड़ी शान्ति मिली है' ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बावनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशः सर्गः

श्रीरामका कार्यार्थी पुरुषोंकी उपेक्षासे राजा नृगको मिलनेवाली शापकी कथा सुनाकर लक्ष्मणको देखभालके लिये आदेश देना

लक्ष्मणस्य तु तद् वाक्यं निशम्य परमाद्भुतम् ।
सुप्रीतश्चाभवद् रामो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥

लक्ष्मणके उस अत्यन्त अद्भुत वचनको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए और इस प्रकार बोले—॥ १ ॥

दुर्लभस्त्वीदृशो बन्धुरस्मिन् काले विशेषतः ।
यादृशस्त्वं महाबुद्धिर्मम सौम्य मनोऽनुगः ॥ २ ॥

'सौम्य ! तुम बड़े बुद्धिमान् हो। जैसे तुम मेरे मनका अनुसरण करनेवाले हो, ऐसा भाई विशेषतः इस समय मिलना कठिन है ॥ २ ॥

यच्च मे हृदये किंचिद् वर्तते शुभलक्षण
तन्निशामय च श्रुत्वा कुरुष्व वचनं मम ॥ ३ ॥

'शुभलक्षण लक्ष्मण ! अब मेरे मनमें जो बात है, उसे सुनो और सुनकर वैसा ही करो ॥ ३ ॥

चत्वारो दिवसाः सौम्य कार्यं पौरजनस्य च ।
अकुर्वाणस्य सौमित्रे तन्मे मर्माणि कृन्तति ॥ ४ ॥

'सौम्य ! सुमित्राकुमार ! मुझे पुरवासियोंका काम किये बिना चार दिन बीत चुके हैं, यह बात मेरे मर्मस्थलको विदीर्ण कर रही है ॥ ४ ॥

आहूयन्तां प्रकृतयः पुरोधा मन्त्रिणस्तथा ।
कार्यार्थिनश्च पुरुषाः स्त्रियो वा पुरुषर्षभ ॥ ५ ॥

'पुरुषप्रवर ! तुम प्रजा, पुरोहित और मन्त्रियोंको बुलाओ। जिन पुरुषों अथवा स्त्रियोंको कोई काम हो, उनको उपस्थित करो ॥ ५ ॥

पौरकार्याणि यो राजा न करोति दिने दिने ।
संवृते नरके घोरे पतितो नात्र संशयः ॥ ६ ॥

'जो राजा प्रतिदिन पुरवासियोंके कार्य नहीं करता, वह निस्संदेह सब ओरसे निश्छिद्र अतएव वायुसंचारसे रहित घोर नरकमें पड़ता है ॥ ६ ॥

श्रूयते हि पुरा राजा नृगो नाम महायशाः ।
बभूव पृथिवीपालो ब्रह्मण्यः सत्यवाक् शुचिः ॥ ७ ॥

'सुना जाता है पहले इस पृथ्वीपर नृगनामसे प्रसिद्ध एक महायशस्वी राजा राज्य करते थे। वे भूपाल बड़े ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी तथा आचार-विचारसे पवित्र थे ॥ ७ ॥

स कदाचिद् गवां कोटीः सवत्साः स्वर्णभूषिताः ।
नृदेवो भूमिदेवेभ्यः पुष्करेषु ददौ नृपः ॥ ८ ॥

'उन नरदेवने किसी समय पुष्कर तीर्थमें जाकर ब्राह्मणोंको सुवर्णसे भूषित तथा बछड़ोंसे युक्त एक करोड़ गौएँ दान कीं ॥ ८ ॥

ततः सङ्गाद् गता धेनुः सवत्सा स्पर्शितानघ ।
ब्राह्मणस्याहिताग्नेस्तु दरिद्रस्योञ्छवर्तिनः ॥ ९ ॥

'निष्पाप लक्ष्मण ! उस समय दूसरी गौओंके साथ-साथ एक दरिद्र, उञ्छवृत्तिसे जीवन निर्वाह करनेवाले एवं अग्निहोत्री ब्राह्मणकी बछड़ेसहित गाय वहाँ चली गयी और राजाने संकल्प करके उसे किसी ब्राह्मणको दे दिया ॥ ९ ॥

स नष्टां गां क्षुधार्तो वै अन्विषंस्तत्र तत्र ह ।
नापश्यत् सर्वराष्ट्रेषु संवत्सरगणान् बहून् ॥ १० ॥

'वह बेचारा ब्राह्मण भूखसे पीड़ित हो उस खोयी हुई गायको बहुत वर्षोंतक सारे राज्योंमें जहाँ-तहाँ ढूँढ़ता फिरा; परंतु वह उसे नहीं दिखायी दी ॥ १० ॥

ततः कनखलं गत्वा जीर्णवत्सां निरामयाम् ।
ददर्श तां स्विकां धेनुं ब्राह्मणस्य निवेशने ॥ ११ ॥

'अन्तमें एक दिन कनखल पहुँचकर उसने अपनी गाय

एक ब्राह्मणके घरमें देखी। वह नीरोग और हृष्ट-पुष्ट थी, किंतु उसका बछड़ा बहुत बड़ा हो गया था ॥ ११ ॥

अथ तां नामधेयेन स्वकेनोवाच ब्राह्मणः।
आगच्छ शबलेत्येवं सा तु शुश्राव गौः स्वरम् ॥ १२ ॥

'ब्राह्मणने अपने रक्खे हुए 'शबला' नामसे उसको पुकारा—'शबले! आओ! आओ।' गौने उस स्वरको सुना ॥ १२ ॥

तस्य तं स्वरमाज्ञाय क्षुधार्तस्य द्विजस्य वै।
अन्वगात् पृष्ठतः सा गौर्गच्छन्तं पावकोपमम् ॥ १३ ॥

'भूखसे पीड़ित हुए उस ब्राह्मणके उस परिचित स्वरको पहचानकर वह गौ आगे-आगे जाते हुए उस अग्नितुल्य तेजस्वी ब्राह्मणके पीछे हो ली ॥ १३ ॥

योऽपि पालयते विप्रः सोऽपि गामन्वगाद् द्रुतम्।
गत्वा च तमृषिं चष्टे मम गौरिति सत्वरम् ॥ १४ ॥
स्पर्शिता राजसिंहेन मम दत्ता नृगेण ह।

'जो ब्राह्मण उन दिनों उसका पालन करता था, वह भी तुरंत उस गायका पीछा करता हुआ गया और जाकर उन ब्रह्मर्षिसे बोला—'ब्रह्मन्! यह गौ मेरी है। मुझे राजाओंमें श्रेष्ठ नृगने इसे दानमें दिया है' ॥ १४$\frac{१}{२}$ ॥

तयोर्ब्राह्मणयोर्वादो महानासीद् विपश्चितोः ॥ १५ ॥
विवदतौ ततोऽन्योन्यं दातारमभिजग्मतुः।

'फिर तो उन दोनों विद्वान् ब्राह्मणोंमें उस गौको लेकर महान् विवाद खड़ा हो गया। वे दोनों परस्पर लड़ते-झगड़ते हुए उन दानी नरेश नृगके पास गये ॥ १५$\frac{३}{२}$ ॥

तौ राजभवनद्वारि न प्राप्तौ नृगशासनम् ॥ १६ ॥
अहोरात्राण्यनेकानि वसन्तौ क्रोधमीयतुः।

'वहाँ राजभवनके दरवाजेपर जाकर वे कई दिनोंतक टिके रहे, परंतु उन्हें राजाका न्याय नहीं प्राप्त हुआ (वे उनसे मिले ही नहीं)। इससे उन दोनोंको बड़ा क्रोध हुआ ॥ १६$\frac{१}{२}$ ॥

ऊचतुश्च महात्मानौ तावुभौ द्विजसत्तमौ ॥ १७ ॥
क्रुद्धौ परमसंतप्तौ वाक्यं घोराभिसंहितम्।

'वे दोनों श्रेष्ठ महात्मा ब्राह्मण अत्यन्त संतप्त और कुपित हो राजाको शाप देते हुए यह घोर वाक्य बोले—॥ १७$\frac{१}{२}$ ॥

अर्थिनां कार्यसिद्ध्यर्थं यस्मात्त्वं नैषि दर्शनम् ॥ १८ ॥
अदृश्यः सर्वभूतानां कृकलासो भविष्यसि।
बहुवर्षसहस्राणि बहुवर्षशतानि च ॥ १९ ॥
श्वभ्रे त्वं कृकलीभूतो दीर्घकालं निवत्स्यसि।

''राजन्! अपने विवादका निर्णय करानेकी इच्छासे आये हुए प्रार्थी पुरुषोंके कार्यकी सिद्धिके लिये तुम उन्हें दर्शन नहीं देते हो; इसलिये तुम सब प्राणियोंसे छिपकर रहनेवाले गिरगिट हो जाओगे और सहस्रों वर्षोंके दीर्घकालतक गड्ढेमें गिरगिट होकर ही पड़े रहोगे ॥ १८-१९$\frac{१}{२}$ ॥

उत्पत्स्यते हि लोकेऽस्मिन् यदूनां कीर्तिवर्धनः ॥ २० ॥
वासुदेव इति ख्यातो विष्णुः पुरुषविग्रहः।
स ते मोक्षयिता शापाद् राजंस्तस्माद् भविष्यसि ॥ २१ ॥
कृता च तेन कालेन निष्कृतिस्ते भविष्यति।
भारावतरणार्थं हि नरनारायणावुभौ ॥ २२ ॥
उत्पत्स्येते महावीर्यौ कलौ युग उपस्थिते।

''जब यदुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले वासुदेवनामसे विख्यात भगवान् विष्णु पुरुषरूपसे इस जगत्में अवतार लेंगे, उस समय वे ही तुम्हें इस शापसे छुड़ायेंगे, इसलिये इस समय तो तुम गिरगिट हो ही जाओगे, फिर श्रीकृष्णावतारके समयमें ही तुम्हारा उद्धार होगा। कलियुग उपस्थित होनेसे कुछ ही पहले महापराक्रमी नर और नारायण दोनों इस पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतीर्ण होंगे' ॥ २०—२२$\frac{१}{२}$ ॥

एवं तौ शापमुत्सृज्य ब्राह्मणौ विगतज्वरौ ॥ २३ ॥
तां गां हि दुर्बलां वृद्धां ददतुर्ब्राह्मणाय वै।

'इस प्रकार शाप देकर वे दोनों ब्राह्मण शान्त हो गये। उन्होंने वह बूढ़ी और दुबली गाय किसी ब्राह्मणको दे दी २३

एवं स राजा तं शापमुपभुङ्क्ते सुदारुणम् ॥ २४ ॥
कार्यार्थिनां विमर्दो हि राज्ञां दोषाय कल्पते।

'इस प्रकार राजा नृग उस अत्यन्त दारुण शापका उपभोग कर रहे हैं। अतः कार्यार्थी पुरुषोंका विवाद यदि निर्णीत न हो तो वह राजाओंके लिये महान् दोषकी प्राप्ति करानेवाला होता है ॥ २४$\frac{१}{२}$ ॥

तच्छीघ्रं दर्शनं मह्यमभिवर्तन्तु कार्यिणः ॥ २५ ॥
सुकृतस्य हि कार्यस्य फलं नावैति पार्थिवः।
तस्माद् गच्छ प्रतीक्षस्व सौमित्रे कार्यवाञ्जनः ॥ २६ ॥

'अतः कार्यार्थी मनुष्य शीघ्र मेरे सामने उपस्थित हों। प्रजापालनरूप पुण्यकर्मका फल क्या राजाको नहीं मिलता है? अवश्य प्राप्त होता है। अतः सुमित्रानन्दन! तुम जाओ, राजद्वारपर प्रतीक्षा करो कि कौन कार्यार्थी पुरुष आ रहा है' ॥ २५-२६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तिरपनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशः सर्गः

राजा नृगका एक सुन्दर गड्ढा बनवाकर अपने पुत्रको राज्य दे स्वयं उसमें प्रवेश करके शाप भोगना

रामस्य भाषितं श्रुत्वा लक्ष्मणः परमार्थवित्।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं राघवं दीप्ततेजसम् ॥ १ ॥

श्रीरामका यह भाषण सुनकर परमार्थवेत्ता लक्ष्मण दोनों हाथ जोड़कर उद्दीप्त तेजवाले श्रीरघुनाथजीसे बोले—॥ १ ॥

अल्पापराधे काकुत्स्थ द्विजाभ्यां शाप ईदृशः ।
महान् नृगस्य राजर्षेर्यमदण्ड इवापरः ॥ २ ॥

'ककुत्स्थकुलभूषण ! उन दोनों ब्राह्मणोंने थोड़ेसे ही अपराधपर राजर्षि नृगको द्वितीय यमदण्डके समान ऐसा महान् शाप दे दिया ॥ २ ॥

श्रुत्वा तु पापसंयुक्तमात्मानं पुरुषर्षभ ।
किमुवाच नृगो राजा द्विजौ क्रोधसमन्वितौ ॥ ३ ॥

'पुरुषप्रवर ! अपनेको शापरूपी पापसे संयुक्त हुआ सुनकर राजा नृगने उन क्रोधी ब्राह्मणोंसे क्या कहा ?' ॥ ३ ॥

लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तु राघवः पुनरब्रवीत्।
शृणु सौम्य यथा पूर्वं स राजा शापविक्षतः ॥ ४ ॥

लक्ष्मणके इस प्रकार पूछनेपर श्रीरघुनाथजी फिर बोले—'सौम्य ! पूर्वकालमें शापग्रस्त होकर राजा नृगने जो कुछ कहा, उसे बताता हूँ, सुनो ॥ ४ ॥

अथाध्वनि गतौ विप्रौ विज्ञाय स नृपस्तदा ।
आहूय मन्त्रिणः सर्वान् नैगमान् सपुरोधसः ॥ ५ ॥
तानुवाच नृगो राजा सर्वांश्च प्रकृतीस्तथा ।
दुःखेन सुसमाविष्टः श्रूयतां मे समाहिताः ॥ ६ ॥

'जब राजा नृगको यह पता लगा कि वे दोनों ब्राह्मण चले गये और कहीं रास्तेमें होंगे, तब उन्होंने मन्त्रियोंको, समस्त पुरवासियोंको, पुरोहितोंको तथा समस्त प्रकृतियोंको भी बुलाकर दुःखसे पीड़ित होकर कहा—'आपलोग सावधान होकर मेरी बात सुनें—॥ ५-६ ॥

नारदः पर्वतश्चैव मम दत्त्वा महद्भयम् ।
गतौ त्रिभुवनं भद्रौ वायुभूतावनिन्दितौ ॥ ७ ॥

''नारद और पर्वत—ये दोनों कल्याणकारी और अनिन्द्य देवर्षि मेरे पास आये थे । वे दोनों ब्राह्मणोंके दिये हुए शापकी बात बताकर मुझे महान् भय दे वायुके समान तीव्र गतिसे ब्रह्मलोकको चले गये ॥ ७ ॥

कुमारोऽयं वसुर्नाम स चेहाद्याभिषिच्यताम् ।
श्वभ्रं च यत् सुखस्पर्शं क्रियतां शिल्पिभिर्मम ॥ ८ ॥

''ये जो वसु नामक राजकुमार हैं, इन्हें इस राज्यपर अभिषिक्त कर दिया जाय और कारीगर मेरे लिये एक ऐसा गड्ढा तैयार करें, जिसका स्पर्श सुखद हो ॥ ८ ॥

यत्राहं संक्षयिष्यामि शापं ब्राह्मणनिःसृतम् ।
वर्षघ्नमेकं श्वभ्रं तु हिमघ्नमपरं तथा ॥ ९ ॥
ग्रीष्मघ्नं तु सुखस्पर्शमेकं कुर्वन्तु शिल्पिनः ।

''ब्राह्मणके मुखसे निकले हुए उस शापको वहीं रहकर मैं बिताऊँगा । एक गड्ढा ऐसा होना चाहिये, जो वर्षाके कष्टका निवारण करनेवाला हो । दूसरा सर्दीसे बचानेवाला हो और शिल्पी लोग तीसरा एक ऐसा गड्ढा तैयार करें जो गर्मीका निवारण करे और जिसका स्पर्श सुखदायक हो ॥ ९½ ॥

फलवन्तश्च ये वृक्षाः पुष्पवत्यश्च या लताः ॥ १० ॥
विरोप्यन्तां बहुविधाश्छायावन्तश्च गुल्मिनः ।
क्रियतां रमणीयं च श्वभ्राणां सर्वतोदिशम् ॥ ११ ॥
सुखमत्र वसिष्यामि यावत्कालस्य पर्ययः ।
पुष्पाणि च सुगन्धीनि क्रियन्तां तेषु नित्यशः ॥ १२ ॥
परिवार्य यथा मे स्युरध्यर्धं योजनं तथा ।

''जो फल देनेवाले वृक्ष हैं और फूल देनेवाली लताएँ हैं, उन्हें उन गड्ढोंमें लगाया जाय । घनी छायावाले अनेक प्रकारके वृक्षोंका वहाँ आरोपण किया जाय । उन गड्ढोंके चारों ओर डेढ़-डेढ़ योजन (छः-छः कोस) की भूमि घेरकर खूब रमणीय बना दी जाय । जबतक शापका समय बीतेगा, तबतक मैं वहीं सुखपूर्वक रहूँगा । उन गड्ढोंमें प्रतिदिन सुगन्धित पुष्प संचित किये जायँ' ॥ १०–१२½ ॥

एवं कृत्वा विधानं स संनिवेश्य वसुं तदा ॥ १३ ॥
धर्मनित्यः प्रजाः पुत्र क्षत्रधर्मेण पालय ।

'ऐसी व्यवस्था करके राजकुमार वसुको राजसिंहासनपर बिठाकर राजाने उस समय उनसे कहा—'बेटा ! तुम प्रतिदिन धर्मपरायण रहकर क्षत्रिय-धर्मके अनुसार प्रजाका पालन करो ॥ १३½ ॥

प्रत्यक्षं ते तथा शापो द्विजाभ्यां मयि पातितः॥ १४ ॥
नरश्रेष्ठ सरोषाभ्यामपराधेऽपि तादृशे ।

'दोनों ब्राह्मणोंने मुझपर जिस प्रकार शापद्वारा प्रहार किया है, वह तुम्हारी आँखोंके सामने है । नरश्रेष्ठ ! वैसे थोड़ेसे अपराधपर भी रुष्ट होकर उन्होंने मुझे शाप दे दिया है॥

मा कृथास्त्वनुसंतापं मत्कृते हि नरर्षभ ॥ १५ ॥
कृतान्तः कुशलः पुत्र येनास्मि व्यसनीकृतः ।

''पुरुषप्रवर ! तुम मेरे लिये संताप न करो । बेटा ! जिसने मुझे व्यसनी बनाया—संकटमें डाला है, अपना किया हुआ वह प्राचीन कर्म ही अनुकूल-प्रतिकूल फल देनेमें समर्थ होता है ॥ १५½ ॥

प्राप्तव्यान्येव प्राप्नोति गन्तव्यान्येव गच्छति ॥ १६ ॥
लब्धव्यान्येव लभते दुःखानि च सुखानि च ।
पूर्वे जात्यन्तरे वत्स मा विषादं कुरुष्व ह ॥ १७ ॥

''वत्स ! पूर्वजन्ममें किये गये कर्मके अनुसार मनुष्य उन्हीं वस्तुओंको पाता है, जिन्हें पानेका वह अधिकारी है। उन्हीं स्थानोंपर जाता है, जहाँ जाना उसके लिये अनिवार्य है तथा उन्हीं दुःखों और सुखोंको उपलब्ध करता है, जो उसके लिये नियत हैं; अतः तुम विषाद न करो' ॥१६-१७॥

एवमुक्त्वा नृपस्तत्र सुतं राजा महायशाः ।
श्वभ्रं जगाम सुकृतं वासाय पुरुषर्षभ ॥ १८ ॥

'नरश्रेष्ठ ! अपने पुत्रसे ऐसा कहकर महायशस्वी नरपाल राजा नृगने अपने रहनेके लिये सुन्दर ढंगसे तैयार किये गये गड्ढेमें प्रवेश किया ॥ १८ ॥

एवं प्रविश्यैव नृपस्तदानीं
श्वभ्रं महद्रत्नविभूषितं तत् ।
सम्पादयामास तदा महात्मा
शापं द्विजाभ्यां हि रुषा विमुक्तम् ॥ १९ ॥

'इस तरह उस रत्नविभूषित महान् गर्तमें प्रवेश करके उस समय महात्मा राजा नृगने ब्राह्मणोंद्वारा रोषपूर्वक दिये गये उस शापको भोगना आरम्भ किया' ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौवनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

* * *

पञ्चपञ्चाशः सर्गः

राजा निमि और वसिष्ठका एक दूसरेके शापसे देहत्याग

एष ते नृगशापस्य विस्तरोऽभिहितो मया ।
यद्यस्ति श्रवणे श्रद्धा शृणुष्वेहापरां कथाम् ॥ १ ॥

(श्रीरामने कहा—) 'लक्ष्मण ! इस तरह मैंने तुम्हें राजा नृगके शापका प्रसङ्ग विस्तारपूर्वक बताया है । यदि सुननेकी इच्छा हो तो दूसरी कथा भी सुनो' ॥ १ ॥

एवमुक्तस्तु रामेण सौमित्रिः पुनरब्रवीत् ।
तृप्तिराश्चर्यभूतानां कथानां नास्ति मे नृप ॥ २ ॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर सुमित्राकुमार फिर बोले—'नरेश्वर ! इन आश्चर्यजनक कथाओंके सुननेसे मुझे कभी तृप्ति नहीं होती है' ॥ २ ॥

लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तु राम इक्ष्वाकुनन्दनः ।
कथां परमधर्मिष्ठां व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ ३ ॥

लक्ष्मणके इस प्रकार कहनेपर इक्ष्वाकुकुलनन्दन श्रीरामने पुनः उत्तम धर्मसे युक्त कथा कहनी आरम्भ की—॥ ३ ॥

आसीद् राजा निमिर्नाम इक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ।
पुत्रो द्वादशमो वीर्ये धर्मे च परिनिष्ठितः ॥ ४ ॥

'सुमित्रानन्दन ! महात्मा इक्ष्वाकु-पुत्रोंमें निमि नामक एक राजा हो गये हैं, जो इक्ष्वाकुके बारहवें* पुत्र थे । वे पराक्रम और धर्ममें पूर्णतः स्थिर रहनेवाले थे ॥ ४ ॥

स राजा वीर्यसम्पन्नः पुरं देवपुरोपमम् ।
निवेशयामास तदा अभ्याशे गौतमस्य तु ॥ ५ ॥

'उन पराक्रमसम्पन्न नरेशने उन दिनों गौतम-आश्रमके निकट देवपुरीके समान एक नगर बसाया ॥ ५ ॥

पुरस्य सुकृतं नाम वैजयन्तमिति श्रुतम् ।
निवेशं यत्र राजर्षिर्निमिश्चक्रे महायशाः ॥ ६ ॥

'महायशस्वी राजर्षि निमिने जिस नगरमें अपना निवास-स्थान बनाया, उसका सुन्दर नाम रक्खा गया वैजयन्त । इसी नामसे उस नगरकी प्रसिद्धि हुई (देवराज इन्द्रके प्रासादका नाम वैजयन्त है, उसीकी समतासे निमिके नगरका भी यही नाम रक्खा गया था) ॥ ६ ॥

तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना निवेश्य सुमहापुरम् ।
यजेयं दीर्घसत्रेण पितुः प्रह्लादयन् मनः ॥ ७ ॥

'उस महान् नगरको बसाकर राजाके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं पिताके हृदयको आह्लाद प्रदान करनेके लिये एक ऐसे यज्ञका अनुष्ठान करूँ, जो दीर्घकालतक चालू रहनेवाला हो ॥ ७ ॥

ततः पितरमामन्त्र्य इक्ष्वाकुं हि मनोः सुतम् ।
वसिष्ठं वरयामास पूर्वं ब्रह्मर्षिसत्तमम् ॥ ८ ॥
अनन्तरं स राजर्षिर्निमिरिक्ष्वाकुनन्दनः ।
अत्रिमङ्गिरसं चैव भृगुं चैव तपोनिधिम् ॥ ९ ॥

'तदनन्तर इक्ष्वाकुनन्दन राजर्षि निमिने अपने पिता मनुपुत्र इक्ष्वाकुसे पूछकर अपना यज्ञ करानेके लिये सबसे पहले ब्रह्मर्षिशिरोमणि वसिष्ठजीका वरण किया । उसके बाद अत्रि, अङ्गिरा तथा तपोनिधि भृगुको भी आमन्त्रित किया ॥

तमुवाच वसिष्ठस्तु निमिं राजर्षिसत्तमम् ।
वृतोऽहं पूर्वमिन्द्रेण अन्तरं प्रतिपालय ॥ १० ॥

'उस समय महर्षि वसिष्ठने राजर्षियोंमें श्रेष्ठ निमिसे कहा—'देवराज इन्द्रने एक यज्ञके लिये पहलेसे ही मेरा वरण कर लिया है; अतः वह यज्ञ जबतक समाप्त न हो जाय तबतक तुम मेरे आगमनकी प्रतीक्षा करो' ॥ १० ॥

---

* श्रीमद्भागवत (नवम स्कन्ध ६ । ४) में, विष्णुपुराण (४ । २ । ११) में तथा महाभारत (अनुशासनपर्व २ । ५) में इक्ष्वाकुके सौ पुत्र बताये गये हैं । इनमें प्रधान थे—विकुक्षि, निमि और दण्ड । इस दृष्टिसे निमि द्वितीय पुत्र सिद्ध होते हैं; परंतु यहाँ मूलमें इनको बारहवाँ बताया गया है । सम्भव है गुण-विशेषके कारण ये तीन प्रधान कहे गये हों और अवस्था-क्रमसे बारहवें ही हों ।

अनन्तरं महाविप्रो गौतमः प्रत्यपूरयत् ।
✓वसिष्ठोऽपि महातेजा इन्द्रयज्ञमथाकरोत् ॥ ११ ॥

'वसिष्ठजीके चले जानेके बाद महान् ब्राह्मण महर्षि गौतमने आकर उनके कामको पूरा कर दिया । उधर महातेजस्वी वसिष्ठ भी इन्द्रका यज्ञ पूरा कराने लगे ॥ ११ ॥

निमिस्तु राजा विप्रांस्तान् समानीय नराधिपः ।
अयजद्धिमवत्पार्श्वे स्वपुरस्य समीपतः ।
पञ्चवर्षसहस्राणि राजा दीक्षामथाकरोत् ॥ १२ ॥

'नरेश्वर राजा निमिने उन ब्राह्मणोंको बुलाकर हिमालयके पास अपने नगरके निकट ही यज्ञ आरम्भ कर दिया, राजा निमिने पाँच हजार वर्षोंतकके लिये यज्ञकी दीक्षा ली ॥१२॥

इन्द्रयज्ञावसाने तु वसिष्ठो भगवानृषिः ।
सकाशमागतो राज्ञो हौत्रं कर्तुमनिन्दितः ॥ १३ ॥
तदन्तरमथापश्यद् गौतमेनाभिपूरितम् ।

उधर इन्द्र-यज्ञकी समाप्ति होनेपर अनिन्द्य भगवान् वसिष्ठ ऋषि राजा निमिके पास होतृकर्म करनेके लिये आये । वहाँ आकर उन्होंने देखा कि जो समय प्रतीक्षाके लिये दिया था, उसे गौतमने आकर पूरा कर दिया ॥ १३½ ॥

कोपेन महताविष्टो वसिष्ठो ब्रह्मणः सुतः ॥ १४ ॥
स राज्ञो दर्शनाकाङ्क्षी मुहूर्तं समुपाविशत् ।
तस्मिन्नहनि राजर्षिर्निद्रयापहृतो भृशम् ॥ १५ ॥

'यह देख ब्रह्मकुमार वसिष्ठ महान् क्रोधसे भर गये और राजासे मिलनेके लिये दो घड़ी वहाँ बैठे रहे । परंतु उस दिन राजर्षि निमि अत्यन्त निद्राके वशीभूत हो सो गये थे ॥

ततो मन्युर्वसिष्ठस्य प्रादुरासीन्महात्मनः ।
अदर्शनेन राजर्षेर्व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १६ ॥

'राजा मिले नहीं, इस कारण महात्मा वसिष्ठ मुनिको बड़ा क्रोध हुआ । वे राजर्षिको लक्ष्य करके बोलने लगे—॥

यस्मात् त्वमन्यं वृतवान् मामवज्ञाय पार्थिव ।
चेतनेन विनाभूतो देहस्ते पार्थिवैष्यति ॥ १७ ॥

''भूपाल निमे ! तुमने मेरी अवहेलना करके दूसरे पुरोहितका वरण कर लिया है, इसलिये तुम्हारा यह शरीर अचेतन होकर गिर जायगा' ॥ १७ ॥

ततः प्रबुद्धो राजा तु श्रुत्वा शापमुदाहृतम् ।
ब्रह्मयोनिमथोवाच स राजा क्रोधमूर्च्छितः ॥ १८ ॥

'तदनन्तर राजाकी नींद खुली । वे उनके दिये हुए शापकी बात सुनकर क्रोधसे मूर्छित हो गये और ब्रह्मयोनि वसिष्ठसे बोले—॥ १८ ॥

अजानतः शयानस्य क्रोधेन कलुषीकृतः ।
उक्तवान् मम शापाग्निं यमदण्डमिवापरम् ॥ १९ ॥

''मुझे आपके आगमनकी बात मालूम नहीं थी, इसलिये सो रहा था । परंतु आपने क्रोधसे कलुषित होकर मेरे ऊपर दूसरे यमदण्डकी भाँति शापाग्निका प्रहार किया है ॥ १९ ॥

तस्मात् तवापि ब्रह्मर्षे चेतनेन विनाकृतः ।
देहः स सुचिरप्रख्यो भविष्यति न संशयः ॥ २० ॥

''अतः ब्रह्मर्षे ! चिरन्तन शोभासे युक्त जो आपका शरीर है, वह भी अचेतन होकर गिर जायगा—इसमें संशय नहीं है' ॥ २० ॥

इति रोषवशादुभौ तदानी-
मन्योन्यं शपितौ नृपद्विजेन्द्रौ ।
सहसैव बभूवतुर्विदेहौ
तत्तुल्याधिगतप्रभाववन्तौ ॥ २१ ॥

'इस प्रकार उस समय रोषके वशीभूत हुए वे दोनों नृपेन्द्र और द्विजेन्द्र परस्पर शाप दे सहसा विदेह हो गये । उन दोनोंके प्रभाव ब्रह्माजीके समान थे' ॥ २१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पचपनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशः सर्गः

ब्रह्माजीके कहनेसे वसिष्ठका वरुणके वीर्यमें आवेश, वरुणका उर्वशीके समीप एक कुम्भमें अपने वीर्यका आधान तथा मित्रके शापसे उर्वशीका भूतलमें राजा पुरूरवाके पास रहकर पुत्र उत्पन्न करना

रामस्य भाषितं श्रुत्वा लक्ष्मणः परवीरहा ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा राघवं दीप्ततेजसम् ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे कही गयी यह कथा सुनकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले लक्ष्मण उद्दीप्त तेजवाले श्रीरघुनाथजीसे हाथ जोड़कर बोले—॥ १ ॥

निक्षिप्य देहौ काकुत्स्थ कथं तौ द्विजपार्थिवौ ।
पुनर्देहेन संयोगं जग्मतुर्देवसम्मतौ ॥ २ ॥

'ककुत्स्थकुलभूषण ! वे ब्रह्मर्षि और वे भूपाल दोनों देवताओंके भी सम्मानपात्र थे । उन्होंने अपने शरीरोंका त्याग करके फिर नूतन शरीर कैसे ग्रहण किया ?' ॥ २ ॥

लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तु राम इक्ष्वाकुनन्दनः ।
प्रत्युवाच महातेजा लक्ष्मणं पुरुषर्षभः' ॥ ३ ॥

लक्ष्मणके इस प्रकार पूछनेपर इक्ष्वाकुकुलनन्दन महातेजस्वी पुरुषप्रवर श्रीरामने उनसे इस प्रकार कहा—॥ ३ ॥

तौ परस्परशापेन देहमुत्सृज्य धार्मिकौ ।
अभूतां नृपविप्रर्षी वायुभूतौ तपोधनौ ॥ ४ ॥

'सुमित्रानन्दन ! एक दूसरेके शापसे देह त्याग करके तपस्याके धनी वे धर्मात्मा राजर्षि और ब्रह्मर्षि वायुरूप हो गये ॥ ४ ॥

अशरीरः शरीरस्य कृतेऽन्यस्य महामुनिः ।
वसिष्ठस्तु महातेजा जगाम पितुरन्तिकम् ॥ ५ ॥

'महातेजस्वी महामुनि वसिष्ठ शरीररहित हो जानेपर दूसरे शरीरकी प्राप्तिके लिये अपने पिता ब्रह्माजीके पास गये ॥ ५ ॥

सोऽभिवाद्य ततः पादौ देवदेवस्य धर्मवित् ।
पितामहमथोवाच वायुभूत इदं वचः ॥ ६ ॥

'धर्मके ज्ञाता वायुरूप वसिष्ठजीने देवाधिदेव ब्रह्माजीके चरणोंमें प्रणाम करके उन पितामहसे इस प्रकार कहा—॥ ६ ॥

भगवन् निमिशापेन विदेहत्वमुपागमम् ।
देवदेव महादेव वायुभूतोऽहमण्डज ॥ ७ ॥

''ब्रह्माण्डकटाहसे प्रकट हुए देवाधिदेव महादेव ! भगवन् ! मैं राजा निमिके शापसे देहहीन हो गया हूँ; अतः वायुरूपमें रह रहा हूँ ॥ ७ ॥

सर्वेषां देहहीनानां महद् दुःखं भविष्यति ।
लुप्यन्ते सर्वकार्याणि हीनदेहस्य वै प्रभो ॥ ८ ॥
देहस्यान्यस्य सद्भावे प्रसादं कर्तुमर्हसि ।

''प्रभो ! समस्त देहहीनोंको महान् दुःख होता है और होता रहेगा; क्योंकि देहहीन प्राणीके सभी कार्य लुप्त हो जाते हैं । अतः दूसरे शरीरकी प्राप्तिके लिये आप मुझपर कृपा करें' ॥ ८½ ॥

तमुवाच ततो ब्रह्मा स्वयंभूरमितप्रभः ॥ ९ ॥
मित्रावरुणजं तेज आविश त्वं महायशः ।
अयोनिजस्त्वं भविता तत्रापि द्विजसत्तम ।
धर्मेण महता युक्तः पुनरेष्यसि मे वशम् ॥ १० ॥

'तब अमित तेजस्वी स्वयम्भू ब्रह्माने उनसे कहा—'महायशस्वी द्विजश्रेष्ठ ! तुम मित्र और वरुणके छोड़े हुए तेज (वीर्य) में प्रविष्ट हो जाओ । वहाँ जानेपर भी तुम अयोनिज रूपसे ही उत्पन्न होओगे और महान् धर्मसे युक्त हो पुत्ररूपसे मेरे वशमें आ जाओगे (मेरे पुत्र होनेके कारण तुम्हें पूर्ववत् प्रजापतिका पद प्राप्त होगा ।)' ॥ ९-१० ॥

एवमुक्तस्तु देवेन अभिवाद्य प्रदक्षिणम् ।
कृत्वा पितामहं तूर्णं प्रययौ वरुणालयम् ॥ ११ ॥

'ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर उनके चरणोंमें प्रणाम तथा उनकी परिक्रमा करके वायुरूप वसिष्ठजी वरुणलोकको चले गये ॥ ११ ॥

तमेव कालं मित्रोऽपि वरुणत्वमकारयत् ।
क्षीरोदेन सहोपेतः पूज्यमानः सुरेश्वरैः ॥ १२ ॥

'उन्हीं दिनों मित्रदेवता भी वरुणके अधिकारका पालन करते रहे थे । वे वरुणके साथ रहकर समस्त देवेश्वरोंद्वारा पूजित होते थे ॥ १२ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु उर्वशी परमाप्सराः ।
यदृच्छया तमुद्देशमागता सखिभिर्वृता ॥ १३ ॥

'इसी समय अप्सराओंमें श्रेष्ठ उर्वशी सखियोंसे घिरी हुई अकस्मात् उस स्थानपर आ गयी ॥ १३ ॥

तां दृष्ट्वा रूपसम्पन्नां क्रीडन्तीं वरुणालये ।
तदाविशत् परो हर्षो वरुणं चोर्वशीकृते ॥ १४ ॥

'उस परम सुन्दरी अप्सराको क्षीरसागरमें नहाती और जलक्रीडा करती देख वरुणके मनमें उर्वशीके लिये अत्यन्त उल्लास प्रकट हुआ ॥ १४ ॥

स तां पद्मपलाशाक्षीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
वरुणो वरयामास मैथुनायाप्सरोवराम् ॥ १५ ॥

'उन्होंने प्रफुल्ल कमलके समान नेत्र और पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली उस सुन्दरी अप्सराको समागमके लिये आमन्त्रित किया ॥ १५ ॥

प्रत्युवाच ततः सा तु वरुणं प्राञ्जलिः स्थिता ।
मित्रेणाहं वृता साक्षात् पूर्वमेव सुरेश्वर ॥ १६ ॥

'तब उर्वशीने हाथ जोड़कर वरुणसे कहा—'सुरेश्वर ! साक्षात् मित्रदेवताने पहलेसे ही मेरा वरण कर लिया है' ॥ १६ ॥

वरुणस्त्वब्रवीद् वाक्यं कन्दर्पशरपीडितः ।
इदं तेजः समुत्स्रक्ष्ये कुम्भेऽस्मिन् देवनिर्मिते ॥ १७ ॥
एवमुत्सृज्य सुश्रोणि त्वय्यहं वरवर्णिनि ।
कृतकामो भविष्यामि यदि नेच्छसि सङ्गमम् ॥ १८ ॥

'यह सुनकर वरुणने कामदेवके बाणोंसे पीड़ित होकर कहा—'सुन्दर रूप रंगवाली सुश्रोणि ! यदि तुम मुझसे समागम करना नहीं चाहतीं तो मैं तुम्हारे समीप इस देवनिर्मित कुम्भमें अपना यह वीर्य छोड़ दूँगा और इस प्रकार छोड़कर ही सफलमनोरथ हो जाऊँगा' ॥ १७-१८ ॥

तस्य तल्लोकनाथस्य वरुणस्य सुभाषितम् ।
उर्वशी परमप्रीता श्रुत्वा वाक्यमुवाच ह ॥ १९ ॥

'लोकनाथ वरुणका यह मनोहर वचन सुनकर उर्वशीको बड़ी प्रसन्नता हुई और वह बोली- ॥ १९ ॥

काममेतद् भवत्वेवं हृदयं मे त्वयि स्थितम् ।
भावश्चाप्यधिकं तुभ्यं देहो मित्रस्य तु प्रभो ॥ २० ॥

''प्रभो ! आपकी इच्छाके अनुसार ऐसा ही हो । मेरा हृदय विशेषतः आपमें अनुरक्त है और आपका अनुराग भी मुझमें अधिक है; इसलिये आप मेरे उद्देश्यसे उस कुम्भमें वीर्याधान कीजिये । इस शरीरपर तो इस समय मित्रका अधिकार हो चुका है' ॥ २० ॥

उर्वश्या एवमुक्तस्तु रेतस्तन्महदद्भुतम् ।
ज्वलदग्निसमप्रख्यं तस्मिन् कुम्भे न्यवासृजत् ॥ २१ ॥

'उर्वशीके ऐसा कहनेपर वरुणने प्रज्वलित अग्निके समान

प्रकाशमान अपने अत्यन्त अद्भुत तेज (वीर्य) को उस कुम्भमें डाल दिया ॥ २१ ॥

उर्वशी त्वगमत् तत्र मित्रो वै यत्र देवता ।
तां तु मित्रः सुसंक्रुद्ध उर्वशीमिदमब्रवीत् ॥ २२ ॥

'तदनन्तर उर्वशी उस स्थानपर गयी, जहाँ मित्रदेवता विराजमान थे । उस समय मित्र अत्यन्त कुपित हो उस उर्वशीसे इस प्रकार बोले—॥ २२ ॥

मयाभिमन्त्रिता पूर्वं कस्मात् त्वमवसर्जिता ।
पतिमन्यं वृतवती किमर्थं दुष्टचारिणि ॥ २३ ॥

''दुराचारिणि ! पहले मैंने तुझे समागमके लिये आमन्त्रित किया था; फिर किसलिये तूने मेरा त्याग किया और क्यों दूसरे पतिका वरण कर लिया ? ॥ २३ ॥

अनेन दुष्कृतेन त्वं मत्क्रोधकलुषीकृता ।
मनुष्यलोकमास्थाय कंचित् कालं निवत्स्यसि ॥ २४ ॥

''अपने इस पापके कारण मेरे क्रोधसे कलुषित हो तू कुछ कालतक मनुष्यलोकमें जाकर निवास करेगी ॥ २४ ॥

बुधस्य पुत्रो राजर्षिः काशिराजः पुरूरवाः । ✓
तमभ्यागच्छ दुर्बुद्धे स ते भर्ता भविष्यति ॥ २५ ॥

''दुर्बुद्धे ! बुधके पुत्र राजर्षि पुरूरवा, जो काशिदेशके राजा हैं, उनके पास चली जा, वे ही तेरे पति होंगे' ॥२५॥

ततः सा शापदोषेण पुरूरवसमभ्यगात् ।
प्रतिष्ठाने पुरूरवं बुधस्यात्मजमौरसम् ॥ २६ ॥

'तब वह शाप-दोषसे दूषित हो प्रतिष्ठानपुर (प्रयाग-झूसी) में बुधके औरस पुत्र पुरूरवाके पास गयी ॥ २६ ॥

तस्य जज्ञे ततः श्रीमानायुः पुत्रो महाबलः ।
नहुषो यस्य पुत्रस्तु बभूवेन्द्रसमद्युतिः ॥ २७ ॥

'पुरूरवाके उर्वशीके गर्भसे श्रीमान् आयु नामक महाबली पुत्र हुआ, जिसके पुत्र इन्द्रतुल्य तेजस्वी महाराज नहुष थे ॥

वज्रमुत्सृज्य वृत्राय श्रान्तेऽथ त्रिदिवेश्वरे ।
शतं वर्षसहस्राणि येनेन्द्रत्वं प्रशासितम् ॥ २८ ॥

'वृत्रासुरपर वज्रका प्रहार करके जब देवराज इन्द्र ब्रह्महत्याके भयसे दुखी हो छिप गये थे, तब नहुषने ही एक लाख वर्षोंतक 'इन्द्र' पदपर प्रतिष्ठित हो त्रिलोकीके राज्यका शासन किया था ॥ २८ ॥

सा तेन शापेन जगाम भूमिं
तदोर्वशी चारुदती सुनेत्रा ।
बहूनि वर्षाण्यवसच्च सुभ्रूः
शापक्षयादिन्द्रसदो ययौ च ॥ २९ ॥

'मनोहर दाँत और सुन्दर नेत्रवाली उर्वशी मित्रके दिये हुए उस शापसे भूतलपर चली गयी । वहाँ वह सुन्दरी बहुत वर्षोंतक रही । फिर शापका क्षय होनेपर इन्द्रसभामें चली गयी' ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षट्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छप्पनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशः सर्गः

वसिष्ठका नूतन शरीर-धारण और निमिका प्राणियोंके नयनोंमें निवास

तां श्रुत्वा दिव्यसंकाशां कथामद्भुतदर्शनाम् ।
लक्ष्मणः परमप्रीतो राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

उस दिव्य एवं अद्भुत कथाको सुनकर लक्ष्मणको बड़ी प्रसन्नता हुई । वे श्रीरघुनाथजीसे बोले—॥ १ ॥

निक्षिप्तदेहौ काकुत्स्थ कथं तौ द्विजपार्थिवौ ।
पुनर्देहेन संयोगं जग्मतुर्देवसम्मतौ ॥ २ ॥

'काकुत्स्थ ! वे ब्रह्मर्षि वसिष्ठ तथा राजर्षि निमि जो देवताओंद्वारा भी सम्मानित थे, अपने-अपने शरीरको छोड़कर फिर नूतन शरीरसे किस प्रकार संयुक्त हुए ?' ॥ २ ॥

तस्य तद् भाषितं श्रुत्वा रामः सत्यपराक्रमः ।
तां कथां कथयामास वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ ३ ॥

उनका यह प्रश्न सुनकर सत्यपराक्रमी श्रीरामने महात्मा वसिष्ठके शरीर-ग्रहणसे सम्बन्ध रखनेवाली उस कथाको पुनः कहना आरम्भ किया—॥ ३ ॥

यः स कुम्भो रघुश्रेष्ठ तेजःपूर्णो महात्मनोः । ✓
तस्मिंस्तेजोमयौ विप्रौ सम्भूतावृषिसत्तमौ ॥ ४ ॥

'रघुश्रेष्ठ ! महामना मित्र और वरुणदेवताके तेज (वीर्य) से युक्त जो वह प्रसिद्ध कुम्भ था, उससे दो तेजस्वी ब्राह्मण प्रकट हुए । वे दोनों ही ऋषियोंमें श्रेष्ठ थे ॥ ४ ॥

पूर्वं समभवत् तत्र अगस्त्यो भगवानृषिः ।
नाहं सुतस्तवेत्युक्त्वा मित्रं तस्मादपाक्रमत् ॥ ५ ॥

'पहले उस घटसे महर्षि भगवान् अगस्त्य उत्पन्न हुए और मित्रसे यह कहकर कि 'मैं आपका पुत्र नहीं हूँ' वहाँसे अन्यत्र चले गये ॥ ५ ॥

तद्धि तेजस्तु मित्रस्य उर्वश्याः पूर्वमाहितम् ।
तस्मिन् समभवत् कुम्भे तत्तेजो यत्र वारुणम् ॥ ६ ॥

'वह मित्रका तेज था, जो उर्वशीके निमित्तसे पहले ही उस कुम्भमें स्थापित किया गया था । तत्पश्चात् उस कुम्भमें वरुणदेवताका तेज भी सम्मिलित हो गया था ॥ ६ ॥

कस्यचित् त्वथ कालस्य मित्रावरुणसम्भवः ।
वसिष्ठस्तेजसा युक्तो जज्ञे इक्ष्वाकुदैवतम् ॥ ७ ॥

'तत्पश्चात् कुछ कालके बाद मित्रावरुणके उस वीर्यसे

तेजस्वी वसिष्ठमुनिका प्रादुर्भाव हुआ । जो इक्ष्वाकुकुलके देवता (गुरु या पुरोहित) हुए ॥ ७ ॥

तमिक्ष्वाकुर्महातेजा जातमात्रमनिन्दितम् ।
वव्रे पुरोधसं सौम्य वंशस्यास्य हिताय नः ॥ ८ ॥

'सौम्य लक्ष्मण ! महातेजस्वी राजा इक्ष्वाकुने उनके वहाँ जन्म ग्रहण करते ही उन अनिन्द्य मुनि वसिष्ठका हमारे इस कुलके हितके लिये पुरोहितके पदपर वरण कर लिया ॥ ८ ॥

एवं त्वपूर्वदेहस्य वसिष्ठस्य महात्मनः ।
कथितो निर्गमः सौम्य निमेः शृणु यथाभवत् ॥ ९ ॥

'सौम्य ! इस प्रकार नूतन शरीरसे युक्त वसिष्ठमुनिकी उत्पत्तिका प्रकार बताया गया । अब निमिका जैसा वृत्तान्त है, वह सुनो ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा विदेहं राजानमृषयः सर्व एव ते ।
तं च ते याजयामासुर्यज्ञदीक्षां मनीषिणः ॥ १० ॥

'राजा निमिको देहसे पृथक् हुआ देख उन सभी मनीषी ऋषियोंने स्वयं ही यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करके उस यज्ञको पूरा किया ॥ १० ॥

तं च देहं नरेन्द्रस्य रक्षन्ति स्म द्विजोत्तमाः ।
गन्धैर्माल्यैश्च वस्त्रैश्च पौरभृत्यसमन्विताः ॥ ११ ॥

'उन श्रेष्ठ ब्रह्मर्षियोंने पुरवासियों और सेवकोंके साथ रहकर गन्ध, पुष्प और वस्त्रोंसहित राजा निमिके उस शरीरको तेलके कड़ाह आदिमें सुरक्षित रक्खा ॥ ११ ॥

ततो यज्ञे समाप्ते तु भृगुस्तत्रेदमब्रवीत् ।
आनयिष्यामि ते चेतस्तुष्टोऽस्मि तव पार्थिव ॥ १२ ॥

'तदनन्तर जब यज्ञ समाप्त हुआ, तब वहाँ भृगुने कहा—'राजन् ! (राजाके शरीरके अभिमानी जीवात्मन् !) मैं तुमपर बहुत संतुष्ट हूँ, अतः यदि तुम चाहो तो तुम्हारे जीव-चैतन्यको मैं पुनः इस शरीरमें ला दूँगा' ॥ १२ ॥

सुप्रीताश्च सुराः सर्वे निमेश्चेतस्तदाब्रुवन् ।
वरं वरय राजर्षे क्व ते चेतो निरूप्यताम् ॥ १३ ॥

'भृगुके साथ ही अन्य सब देवताओंने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर निमिके जीवात्मासे कहा—'राजर्षे ! वर माँगो । तुम्हारे जीव-चैतन्यको कहाँ स्थापित किया जाय' ॥ १३ ॥

एवमुक्तः सुरैः सर्वैर्निमेश्चेतस्तदाब्रवीत् ।
नेत्रेषु सर्वभूतानां वसेयं सुरसत्तमाः ॥ १४ ॥

'समस्त देवताओंके ऐसा कहनेपर निमिके जीवात्माने उस समय उनसे कहा—'सुरश्रेष्ठ ! मैं समस्त प्राणियोंके नेत्रोंमें निवास करना चाहता हूँ' ॥ १४ ॥

बाढमित्येव विबुधा निमेश्चेतस्तदाब्रुवन् ।
नेत्रेषु सर्वभूतानां वायुभूतश्चरिष्यसि ॥ १५ ॥

'तब देवताओंने निमिके जीवात्मासे कहा—''बहुत अच्छा, तुम वायुरूप होकर समस्त प्राणियोंके नेत्रोंमें विचरते रहोगे ॥ १५ ॥

त्वत्कृते च निमिष्यन्ति चक्षूंषि पृथिवीपते । ✓
वायुभूतेन चरता विश्रामार्थं मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥

''पृथ्वीनाथ ! वायुरूपसे विचरते हुए आपके सम्बन्धसे जो थकावट होगी, उसका निवारण करके विश्राम पानेके लिये प्राणियोंके नेत्र बारंबार बंद हो जाया करेंगे' ॥ १६ ॥

एवमुक्त्वा तु विबुधाः सर्वे जग्मुर्यथागतम् ।
ऋषयोऽपि महात्मानो निमेर्देहं समाहरन् ॥ १७ ॥
अरणिं तत्र निक्षिप्य मथनं चक्रुरोजसा ।

'ऐसा कहकर सब देवता जैसे आये थे, वैसे चले गये; फिर महात्मा ऋषियोंने निमिके शरीरको पकड़ा और उसपर अरणि रखकर उसे बलपूर्वक मथना आरम्भ किया ॥ १७½ ॥

मन्त्रहोमैर्महात्मानः पुत्रहेतोर्निमेस्तदा ॥ १८ ॥
अरण्यां मथ्यमानायां प्रादुर्भूतो महातपाः ।
मथनान्मिथिरित्याहुर्जननाज्जनकोऽभवत् ॥ १९ ॥
यस्माद् विदेहात् सम्भूतो वैदेहस्तु ततः स्मृतः ।
एवं विदेहराजश्च जनकः पूर्वकोऽभवत् ।
मिथिर्नाम महातेजास्तेनायं मैथिलोऽभवत् ॥ २० ॥

'पूर्ववत् मन्त्रोच्चारणपूर्वक होम करते हुए उन महात्माओंने जब निमिके पुत्रकी उत्पत्तिके लिये अरणि-मन्थन आरम्भ किया, तब उस मन्थनसे महातपस्वी मिथि उत्पन्न हुए । इस अद्भुत जन्मका हेतु होनेके कारण वे जनक कहलाये तथा विदेह (जीव रहित शरीर) से प्रकट होनेके कारण उन्हें वैदेह भी कहा गया । इस प्रकार पहले विदेहराज जनकका नाम महातेजस्वी मिथि हुआ, जिससे यह जनकवंश मैथिल कहलाया ॥ १८-२० ॥

इति सर्वमशेषतो मया
कथितं सम्भवकारणं तु सौम्य ।
नृपपुङ्गवशापजं द्विजस्य
द्विजशापाच्च यदद्भुतं नृपस्य ॥ २१ ॥

'सौम्य लक्ष्मण ! राजाओंमें श्रेष्ठ निमिके शापसे ब्राह्मण वसिष्ठका और ब्राह्मण वसिष्ठके शापसे राजा निमिका जो अद्भुत जन्म घटित हुआ, उसका सारा कारण मैंने तुम्हें कह सुनाया' ॥ २१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सत्तावनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशः सर्गः

ययातिको शुक्राचार्यका शाप

एवं ब्रुवति रामे तु लक्ष्मणः परवीरहा ।
प्रत्युवाच महात्मानं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ १ ॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले लक्ष्मणने तेजसे प्रज्वलित होते हुए-से महात्मा श्रीरामको सम्बोधित करके इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

महदद्भुतमाश्चर्यं विदेहस्य पुरातनम् ।
निर्वृत्तं राजशार्दूल वसिष्ठस्य मुनेश्च ह ॥ २ ॥

'नृपश्रेष्ठ ! राजा विदेह (निमि) तथा वसिष्ठ मुनिका पुरातन वृत्तान्त अत्यन्त अद्भुत और आश्चर्यजनक है ॥ २ ॥

निमिस्तु क्षत्रियः शूरो विशेषेण च दीक्षितः ।
न क्षमं कृतवान् राजा वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ ३ ॥

'परंतु राजा निमि क्षत्रिय, शूरवीर और विशेषतः यज्ञकी दीक्षा लिये हुए थे; अतः उन्होंने महात्मा वसिष्ठके प्रति उचित बर्ताव नहीं किया' ॥ ३ ॥

एवमुक्तस्तु तेनायं रामः क्षत्रियपुङ्गवः ।
उवाच लक्ष्मणं वाक्यं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ ४ ॥
रामो रमयतां श्रेष्ठो भ्रातरं दीप्ततेजसम् ।

लक्ष्मणके इस तरह कहनेपर दूसरोंके मनको रमाने (प्रसन्न रखने) वालोंमें श्रेष्ठ क्षत्रियशिरोमणि श्रीरामने सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता और उद्दीप्त तेजस्वी भ्राता लक्ष्मणसे कहा—॥ ४½ ॥

न सर्वत्र क्षमा वीर पुरुषेषु प्रदृश्यते ॥ ५ ॥
सौमित्रे दुःसहो रोषो यथा क्षान्तो ययातिना ।
सत्त्वानुगं पुरस्कृत्य तन्निबोध समाहितः ॥ ६ ॥

'वीर सुमित्राकुमार ! सभी पुरुषोंमें वैसी क्षमा नहीं दिखायी देती, जैसी राजा ययातिमें थी । राजा ययातिने सत्त्वगुणके अनुकूल मार्गका आश्रय ले दुःसह रोषको क्षमा कर लिया था । वह प्रसंग बताता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ ५-६ ॥

नहुषस्य सुतो राजा ययातिः पौरवर्धनः ।
तस्य भार्याद्वयं सौम्य रूपेणाप्रतिमं भुवि ॥ ७ ॥

'सौम्य ! नहुषके पुत्र राजा ययाति पुरवासियों, प्रजाजनोंकी वृद्धि करनेवाले थे । उनके दो पत्नियाँ थीं, जिनके रूपकी इस भूतलपर कहीं तुलना नहीं थी ॥ ७ ॥

एका तु तस्य राजर्षेर्नाहुषस्य पुरस्कृता ।
शर्मिष्ठा नाम दैतेयी दुहिता वृषपर्वणः ॥ ८ ॥

'नहुषनन्दन राजर्षि ययातिकी एक पत्नीका नाम शर्मिष्ठा था, जो राजाके द्वारा बहुत ही सम्मानित थी । शर्मिष्ठा दैत्यकुलकी कन्या और वृषपर्वाकी पुत्री थी ॥ ८ ॥

अन्या ‘तूशनसः पत्नी ययातेः पुरुषर्षभ ।
न तु सा दयिता राज्ञो देवयानी सुमध्यमा ॥ ९ ॥
तयोः पुत्रौ तु सम्भूतौ रूपवन्तौ समाहितौ ।
शर्मिष्ठाजनयत् पूरुं देवयानी यदुं तदा ॥ १० ॥

'पुरुषप्रवर ! उनकी दूसरी पत्नी शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानी थी । देवयानी सुन्दरी होनेपर भी राजाको अधिक प्रिय नहीं थी । उन दोनोंके ही पुत्र बड़े रूपवान् हुए । शर्मिष्ठाने पूरुको जन्म दिया और देवयानीने यदुको । वे दोनों बालक अपने चित्तको एकाग्र रखनेवाले थे ॥ ९-१० ॥

पूरुस्तु दयितो राज्ञो गुणैर्मातृकृतेन च ।
ततो दुःखसमाविष्टो यदुर्मातरमब्रवीत् ॥ ११ ॥

'अपनी माताके प्रेमयुक्त व्यवहारसे और अपने गुणोंसे पूरु राजाको अधिक प्रिय था । इससे यदुके मनमें बड़ा दुःख हुआ । वे मातासे बोले—॥ ११ ॥

भार्गवस्य कुले जाता देवस्याक्लिष्टकर्मणः ।
सहसे हृद्गतं दुःखमवमानं च दुःसहम् ॥ १२ ॥

''मा ! तुम अनायास ही महान् कर्म करनेवाले देवस्वरूप शुक्राचार्यके कुलमें उत्पन्न हुई हो तो भी यहाँ हार्दिक दुःख और दुःसह अपमान सहती हो ॥ १२ ॥

आवां च सहितौ देवि प्रविशाव हुताशनम् ।
राजा तु रमतां सार्धं दैत्यपुत्र्या बहुक्षपाः ॥ १३ ॥

''अतः देवि ! हम दोनों एक साथ ही अग्निमें प्रवेश कर जायँ । राजा दैत्यपुत्री शर्मिष्ठाके साथ अनन्त रात्रियोंतक रमते रहें ॥ १३ ॥

यदि वा सहनीयं ते मामनुज्ञातुमर्हसि ।
क्षम त्वं न क्षमिष्येऽहं मरिष्यामि न संशयः ॥ १४ ॥

''यदि तुम्हें यह सब कुछ सहन करना है तो मुझे ही प्राणत्यागकी आज्ञा दे दो । तुम्हीं सहो । मैं नहीं सहूँगा । मैं निःसंदेह मर जाऊँगा' ॥ १४ ॥

पुत्रस्य भाषितं श्रुत्वा परमार्तस्य रोदतः ।
देवयानी तु संक्रुद्धा सस्मार पितरं तदा ॥ १५ ॥

'अत्यन्त आर्त होकर रोते हुए अपने पुत्र यदुकी यह बात सुनकर देवयानीको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने तत्काल अपने पिता शुक्राचार्यजीका स्मरण किया ॥ १५ ॥

इङ्गितं तदभिज्ञाय दुहितुर्भार्गवस्तदा ।
आगतस्त्वरितं तत्र देवयानी स्म यत्र सा ॥ १६ ॥

'शुक्राचार्य अपनी पुत्रीकी उस चेष्टाको जानकर तत्काल उस स्थानपर आ पहुँचे, जहाँ देवयानी विद्यमान थी ॥ १६ ॥

दृष्ट्वा चाप्रकृतिस्थां तामप्रहृष्टामचेतनाम् ।
पिता दुहितरं वाक्यं किमेतदिति चाब्रवीत् ॥ १७ ॥

'बेटीको अस्वस्थ, अप्रसन्न और अचेत-सी देखकर पिताने पूछा—'वत्से ! यह क्या बात है ?' ॥ १७ ॥

पृच्छन्तमसकृत् तं वै भार्गवं दीप्ततेजसम् ।
देवयानी तु संक्रुद्धा पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥
अहमग्निं विषं तीक्ष्णमपो वा मुनिसत्तम ।
भक्षयिष्ये प्रवेक्ष्ये वा न तु शक्ष्यामि जीवितुम् ॥ १९ ॥

'उद्दीप्त तेजवाले पिता भृगुनन्दन शुक्राचार्य जब बारंबार इस प्रकार पूछने लगे, तब देवयानीने अत्यन्त कुपित होकर उनसे कहा—'मुनिश्रेष्ठ! मैं प्रज्वलित अग्नि या अगाध जलमें प्रवेश कर जाऊँगी अथवा विष खा लूँगी; किंतु इस प्रकार अपमानित होकर जीवित नहीं रह सकूँगी ॥ १८-१९ ॥

न मां त्वमवजानीषे दुःखितामवमानिताम् ।
वृक्षस्यावज्ञया ब्रह्मंश्छिद्यन्ते वृक्षजीविनः ॥ २० ॥

''आपको पता नहीं है कि मैं यहाँ कितनी दुखी और अपमानित हूँ। ब्रह्मन्! वृक्षके प्रति अवहेलना होनेसे उसके आश्रित फूलों और पत्तोंको ही तोड़ा और नष्ट किया जाता है (इसी तरह आपके प्रति राजाकी अवहेलना होनेसे ही मेरा यहाँ अपमान हो रहा है) ॥ २० ॥

अवज्ञया च राजर्षिः परिभूय च भार्गव ।
मय्यवज्ञां प्रयुङ्क्ते हि न च मां बहु मन्यते ॥ २१ ॥

''भृगुनन्दन! राजर्षि ययाति आपके प्रति अनादरका भाव रखनेके कारण मेरी भी अवहेलना करते हैं और मुझे अधिक आदर नहीं देते हैं' ॥ २१ ॥

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा कोपेनाभिपरीवृतः ।
व्याहर्तुमुपचक्राम भार्गवो नहुषात्मजम् ॥ २२ ॥

'देवयानीकी यह बात सुनकर भृगुनन्दन शुक्राचार्यको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने नहुषपुत्र ययातिको लक्ष्य करके इस प्रकार कहना आरम्भ किया—॥ २२ ॥

यस्मान्मामवजानीषे नाहुष त्वं दुरात्मवान् ।
वयसा जरया जीर्णः शैथिल्यमुपयास्यसि ॥ २३ ॥

''नहुषकुमार! तुम दुरात्मा होनेके कारण मेरी अवहेलना करते हो, इसलिये तुम्हारी अवस्था जरा-जीर्ण वृद्धके समान हो जायगी—तुम सर्वथा शिथिल हो जाओगे' ॥ २३ ॥

एवमुक्त्वा दुहितरं समाश्वास्य स भार्गवः ।
पुनर्जगाम ब्रह्मर्षिर्भवनं स्वं महायशाः ॥ २४ ॥

'राजासे ऐसा कहकर पुत्रीको आश्वासन दे महायशस्वी ब्रह्मर्षि शुक्राचार्य पुनः अपने घरको चले गये ॥ २४ ॥

स एवमुक्त्वा द्विजपुङ्गवाग्र्यः
सुतां समाश्वास्य च देवयानीम् ।
पुनर्ययौ सूर्यसमानतेजा
दत्त्वा च शापं नहुषात्मजाय ॥ २५ ॥

'सूर्यके समान तेजस्वी तथा ब्राह्मणशिरोमणियोंमें अग्रगण्य शुक्राचार्य देवयानीको आश्वासन दे नहुषपुत्र ययातिको ऐसा कहकर उन्हें पूर्वोक्त शाप दे फिर चले गये' ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अट्ठावनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः

ययातिका अपने पुत्र पूरुको अपना बुढ़ापा देकर बदलेमें उसका यौवन लेना और भोगोंसे तृप्त होकर पुनः दीर्घकालके बाद उसे उसका यौवन लौटा देना, पूरुका अपने पिताकी गद्दीपर अभिषेक तथा यदुको शाप

श्रुत्वा तूशनसं क्रुद्धं तदार्तो नहुषात्मजः ।
जरां परमिकां प्राप्य यदुं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

शुक्राचार्यके कुपित होनेका समाचार सुनकर नहुषकुमार ययातिको बड़ा दुःख हुआ। उन्हें ऐसी वृद्धावस्था प्राप्त हुई, जो दूसरेकी जवानीसे बदली जा सकती थी। उस विलक्षण जरावस्थाको पाकर राजाने यदुसे कहा—॥ १ ॥

यदो त्वमसि धर्मज्ञो मदर्थं प्रतिगृह्यताम् ।
जरा परमिका पुत्र भोगै रंस्ये महायशः ॥ २ ॥

'यदो! तुम धर्मके ज्ञाता हो। मेरे महायशस्वी पुत्र! तुम मेरे लिये दूसरेके शरीरमें संचारित करनेके योग्य इस जरावस्थाको ले लो। मैं भोगोंद्वारा रमण करूँगा—अपनी भोगविषयक इच्छाको पूर्ण करूँगा ॥ २ ॥

न तावत् कृतकृत्योऽस्मि विषयेषु नरर्षभ ।
अनुभूय तदा कामं ततः प्राप्स्याम्यहं जराम् ॥ ३ ॥

'नरश्रेष्ठ! अभीतक मैं विषयभोगोंसे तृप्त नहीं हुआ हूँ। इच्छानुसार विषयसुखका अनुभव करके फिर अपनी वृद्धावस्था मैं तुमसे ले लूँगा' ॥ ३ ॥

यदुस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच नरर्षभम् ।
पुत्रस्ते दयितः पूरुः प्रतिगृह्णातु वै जराम् ॥ ४ ॥

उनकी यह बात सुनकर यदुने नरश्रेष्ठ ययातिको उत्तर दिया—'आपके लाड़ले बेटे पूरु ही इस वृद्धावस्थाको ग्रहण करें ॥ ४ ॥

बहिष्कृतोऽहमर्थेषु संनिकर्षाच्च पार्थिव । ✓
प्रतिगृह्णातु वै राजन् यैः सहाश्नासि भोजनम् ॥ ५ ॥

'पृथ्वीनाथ! मुझे तो आपने धनसे तथा पास रहकर लाड़-प्यार पानेके अधिकारसे भी वञ्चित कर दिया है; अतः जिनके साथ बैठकर आप भोजन करते हैं, उन्हीं लोगोंसे युवावस्था ग्रहण कीजिये' ॥ ५ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राजा पूरुमथाब्रवीत् ।
इयं जरा महाबाहो मदर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ ६ ॥

यदुकी यह बात सुनकर राजाने पूरुसे कहा—'महाबाहो! मेरी सुख-सुविधाके लिये तुम इस वृद्धावस्थाको ग्रहण कर लो' ॥ ६ ॥

नाहुषेणैवमुक्तस्तु पूरुः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि शासनेऽस्मि तव स्थितः ॥

नहुष-पुत्र ययातिके ऐसा कहनेपर पूरु हाथ जोड़कर बोले—'पिताजी! आपकी सेवाका अवसर पाकर मैं धन्य हो गया। यह आपका मेरे ऊपर महान् अनुग्रह है। आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये मैं हर तरहसे तैयार हूँ' ॥७॥

पूरोर्वचनमाज्ञाय नाहुषः परया मुदा ।
प्रहर्षमतुलं लेभे जरां संक्रामयच्च ताम् ॥ ८ ॥

पूरुका यह स्वीकारसूचक वचन सुनकर नहुषकुमार ययातिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्हें अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ और उन्होंने अपनी वृद्धावस्था पूरुके शरीरमें संचारित कर दी ॥ ८ ॥

ततः स राजा तरुणः प्राप्य यज्ञान् सहस्रशः ।
बहुवर्षसहस्राणि पालयामास मेदिनीम् ॥ ९ ॥

तदनन्तर तरुण हुए राजा ययातिने सहस्रों यज्ञोंका अनुष्ठान करते हुए कई हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीका पालन किया ॥ ९ ॥

अथ दीर्घस्य कालस्य राजा पूरुमथाब्रवीत् ।
आनयस्व जरां पुत्र न्यासं निर्यातयस्व मे ॥ १० ॥

इसके बाद दीर्घकाल व्यतीत होनेपर राजाने पूरुसे कहा—'बेटा! तुम्हारे पास धरोहरके रूपमें रक्खी हुई मेरी वृद्धावस्थाको मुझे लौटा दो ॥ १० ॥

न्यासभूता मया पुत्र त्वयि संक्रामिता जरा ।
ग्रा **तस्मात् प्रतिगृहीष्यामि तां जरां मा व्यथां कृथाः ॥ ११ ॥**

'पुत्र! मैंने वृद्धावस्थाको धरोहरके रूपमें ही तुम्हारे शरीरमें संचारित किया था; इसलिये उसे वापस ले लूँगा। तुम अपने मनमें दुःख न मानना ॥ ११ ॥

प्रीतश्चास्मि महाबाहो शासनस्य प्रतिग्रहात् ।
त्वां चाहमभिषेक्ष्यामि प्रीतियुक्तो नराधिपम् ॥ १२ ॥

'महाबाहो! तुमने मेरी आज्ञा मान ली, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अब मैं बड़े प्रेमसे राजाके पदपर तुम्हारा अभिषेक करूँगा' ॥ १२ ॥

एवमुक्त्वा सुतं पूरुं ययातिर्नहुषात्मजः ।
देवयानीसुतं क्रुद्धो राजा वाक्यमुवाच ह ॥ १३ ॥

अपने पुत्र पूरुसे ऐसा कहकर नहुषकुमार राजा ययाति देवयानीके बेटेसे कुपित होकर बोले— ॥ १३ ॥

राक्षसस्त्वं मया जातः क्षत्ररूपो दुरासदः ।
प्रतिहंसि ममाज्ञां त्वं प्रजार्थे विफलो भव ॥ १४ ॥

'यदो! मैंने दुर्जय क्षत्रियके रूपमें तुम-जैसे राक्षसको जन्म दिया। तुमने मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन किया है, अतः तुम अपनी संतानोंको राज्याधिकारी बनानेके विषयमें विफल-मनोरथ हो जाओ ॥ १४ ॥

पितरं गुरुभूतं मां यस्मात् त्वमवमन्यसे ।
राक्षसान् यातुधानांस्त्वं जनयिष्यसि दारुणान् ॥ १५ ॥

'मैं पिता हूँ, गुरु हूँ; फिर भी तुम मेरा अपमान करते हो, इसलिये भयंकर राक्षसों और यातुधानोंको तुम जन्म दोगे ॥ १५ ॥

न तु सोमकुलोत्पन्ने वंशे स्थास्यति दुर्मतेः ।
वंशोऽपि भवतस्तुल्यो दुर्विनीतो भविष्यति ॥ १६ ॥

'तुम्हारी बुद्धि बहुत खोटी है। अतः तुम्हारी संतान सोमकुलमें उत्पन्न वंशपरम्परामें राजाके रूपसे प्रतिष्ठित नहीं होगी। तुम्हारी संतति भी तुम्हारे ही समान उद्दण्ड होगी' ॥

तमेवमुक्त्वा राजर्षिः पूरुं राज्यविवर्धनम् ।
अभिषेकेण सम्पूज्य आश्रमं प्रविवेश ह ॥ १७ ॥

यदुसे ऐसा कहकर राजर्षि ययातिने राज्यकी वृद्धि करनेवाले पूरुको अभिषेकके द्वारा सम्मानित करके वानप्रस्थ-आश्रममें प्रवेश किया ॥ १७ ॥

ततः कालेन महता दिष्टान्तमुपजग्मिवान् ।
त्रिदिवं स गतो राजा ययातिर्नहुषात्मजः ॥ १८ ॥

तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् प्रारब्ध-भोगका क्षय होनेपर नहुषपुत्र राजा ययातिने शरीरको त्याग दिया और स्वर्गलोकको प्रस्थान किया ॥ १८ ॥

पूरुश्चकार तद् राज्यं धर्मेण महता वृतः ।
प्रतिष्ठाने पुरवरे काशिराज्ये महायशाः ॥ १९ ॥

उसके बाद महायशस्वी पूरुने महान् धर्मसे संयुक्त हो काशिराजकी श्रेष्ठ राजधानी प्रतिष्ठानपुरमें रहकर उस राज्यका पालन किया ॥ १९ ॥

यदुस्तु जनयामास यातुधानान् सहस्रशः ।
पुरे क्रौञ्चवने दुर्गे राजवंशबहिष्कृतः ॥ २० ॥

राजकुलसे बहिष्कृत यदुने नगरमें तथा दुर्गम क्रौञ्चवनमें सहस्रों यातुधानोंको जन्म दिया ॥ २० ॥

एष तूशनसा मुक्तः शापोत्सर्गो ययातिना ।
धारितः क्षत्रधर्मेण यं निमिश्चक्षमे न च ॥ २१ ॥

शुक्राचार्यके दिये हुए इस शापको राजा ययातिने क्षत्रिय-धर्मके अनुसार धारण कर लिया। परंतु राजा निमिने वसिष्ठजीके शापको नहीं सहन किया ॥ २१ ॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं दर्शनं सर्वकारिणाम् ।
अनुवर्तामहे सौम्य दोषो न स्याद् यथा नृगे ॥ २२ ॥

सौम्य! यह सारा प्रसंग मैंने तुम्हें सुना दिया। समस्त कृत्योंका पालन करनेवाले सत्पुरुषोंकी दृष्टि (विचार) का ही हम अनुसरण करते हैं, जिससे राजा

नृगकी भाँति हमें भी दोष न प्राप्त हो ॥ २२ ॥

इति कथयति रामे चन्द्रतुल्याननेन
प्रविरलतरतारं व्योम यज्ञे तदानीम् ।
अरुणकिरणरक्ता दिग् बभौ चैव पूर्वा
कुसुमरसविमुक्तं वस्त्रमागुण्ठितेव ॥२३॥

चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले श्रीराम जब इस प्रकार कथा कह रहे थे, उस समय आकाशमें दो-ही-एक तारे रह गये । पूर्व दिशा अरुण किरणोंसे रञ्जित हो लाल दिखायी देने लगी, मानो कुसुमरंगमें रँगे हुए अरुण वस्त्रसे उसने अपने अङ्गोंको ढक लिया हो ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें उनसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५९ ॥

प्रक्षिप्तः सर्गः १*

श्रीरामके द्वारपर कार्यार्थी कुत्तेका आगमन और श्रीरामका उसे दरबारमें लानेका आदेश

ततः प्रभाते विमले कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम् ।
धर्मासनगतो राजा रामो राजीवलोचनः ॥ १ ॥
राजधर्मानवेक्षन् वै ब्राह्मणैर्नैगमैः सह ।
पुरोधसा वसिष्ठेन ऋषिणा कश्यपेन च ॥ २ ॥

तदनन्तर निर्मल प्रभातकालमें पूर्वाह्णकालोचित संध्या-वन्दन आदि नित्य कर्म करके कमलनयन राजा श्रीराम राजधर्मोंका पालन (प्रजाजनोंके विवादका निपटारा) करनेके लिये वेदवेत्ता ब्राह्मणों, पुरोहित वसिष्ठ तथा कश्यप मुनिके साथ राजसभामें उपस्थित हो धर्म (न्याय) के आसनपर विराजमान हुए ॥ १-२ ॥

मन्त्रिभिर्व्यवहारज्ञैस्तथान्यैर्धर्मपाठकैः ।
नीतिज्ञैरथ सभ्यैश्च राजभिः सा सभा वृता ॥ ३ ॥

वह सभा व्यवहारका ज्ञान रखनेवाले मन्त्रियों, धर्मशास्त्रोंका पाठ करनेवाले विद्वानों, नीतिज्ञों, राजाओं तथा अन्य सभासदोंसे भरी हुई थी ॥ ३ ॥

सभा यथा महेन्द्रस्य यमस्य वरुणस्य च ।
शुशुभे राजसिंहस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ४ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले राजसिंह श्रीरामकी वह सभा इन्द्र, यम और वरुणकी सभाके समान शोभा पाती थी ॥ ४ ॥

अथ रामोऽब्रवीत् तत्र लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।
निर्गच्छ त्वं महाबाहो सुमित्रानन्दवर्धन ॥ ५ ॥
कार्यार्थिनश्च सौमित्रे व्याहर्तुं त्वमुपाक्रम ।

वहाँ बैठे हुए भगवान् श्रीरामने शुभलक्षणसम्पन्न लक्ष्मणसे कहा—'माता सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले महाबाहु वीर ! तुम बाहर निकलो और देखो कि कौन-कौन-से कार्यार्थी उपस्थित हैं । सुमित्राकुमार ! तुम उन कार्यार्थियोंको बारी-बारीसे बुलाना आरम्भ करो' ॥ ५½ ॥

रामस्य भाषितं श्रुत्वा लक्ष्मणः शुभलक्षणः ॥ ६ ॥
द्वारदेशमुपागम्य कार्यिणश्चाह्वयत् स्वयम् ।
न कश्चिदब्रवीत् तत्र मम कार्यमिहाद्य वै ॥ ७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह आदेश सुनकर शुभलक्षण लक्ष्मणने द्वारदेशपर आकर स्वयं ही कार्यार्थियोंको पुकारा; परंतु कोई भी वहाँ यह न कह सका कि मुझे यहाँ कोई कार्य है ॥६-७॥

नाधयो व्याधयश्चैव रामे राज्यं प्रशासति ।
पक्वसस्या वसुमती सर्वौषधिसमन्विता ॥ ८ ॥

श्रीरामके राज्य-शासन करते समय न तो कहीं किसीको शारीरिक रोग होते थे और न मानसिक चिन्ताएँ ही सताती थीं । पृथ्वीपर सब प्रकारकी ओषधियाँ (अन्न-फल आदि) उत्पन्न होती थीं और पकी हुई खेती शोभा पाती थी ॥ ८ ॥

न बालो म्रियते तत्र न युवा न च मध्यमः ।
धर्मेण शासितं सर्वं न च बाधा विधीयते ॥ ९ ॥

श्रीरामके राज्यमें न तो बालककी मृत्यु होती थी न युवककी और न मध्यम अवस्थाके पुरुषकी ही । सबका धर्मपूर्वक शासन होता था । किसीके सामने कभी कोई बाधा नहीं आती थी ॥ ९ ॥

दृश्यते न च कार्यार्थी रामे राज्यं प्रशासति ।
लक्ष्मणः प्राञ्जलिर्भूत्वा रामायैवं न्यवेदयत् ॥ १० ॥

श्रीरामके राज्य-शासनकालमें कभी कोई कार्यार्थी (अभियोग लेकर आनेवाला पुरुष) दिखायी नहीं देता था । लक्ष्मणने हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रजीको राज्यकी ऐसी स्थिति बतायी ॥

अथ रामः प्रसन्नात्मा सौमित्रिमिदमब्रवीत् ।
भूय एव तु गच्छ त्वं कार्यिणः प्रविचारय ॥ ११ ॥

तदनन्तर प्रसन्नचित्त हुए श्रीरामने सुमित्राकुमारसे पुनः इस प्रकार कहा—'लक्ष्मण ! तुम फिर जाओ और कार्यार्थी पुरुषोंका पता लगाओ ॥ ११ ॥

सम्यक्प्रणीतया नीत्या नाधर्मो विद्यते क्वचित् ।
तस्माद् राजभयात् सर्वे रक्षन्तीह परस्परम् ॥ १२ ॥

'भलीभाँति उत्तम नीतिका प्रयोग करनेसे राज्यमें कहीं अधर्म नहीं रह जाता है । अतः सभी लोग राजाके भयसे यहाँ एक दूसरेकी रक्षा करते हैं ॥ १२ ॥

---

* कुछ प्रतियोंमें यहाँ तीन सर्ग और मिलते हैं, जिनपर संस्कृत-टीकाकारोंकी व्याख्या न मिलनेसे इन्हें प्रक्षिप्त बताया गया है । इनमेंसे दो सर्ग उपयोगी होनेके कारण यहाँ अनुवादसहित दिये जा रहे हैं ।

बाणा इव मया मुक्ता इह रक्षन्ति मे प्रजाः ।
तथापि त्वं महाबाहो प्रजा रक्षस्व तत्परः ॥ १३ ॥

'यद्यपि राजकर्मचारी मेरे छोड़े हुए बाणोंके समान यहाँ प्रजाकी रक्षा करते हैं, तथापि महाबाहो ! तुम स्वयं भी तत्पर रहकर प्रजाका पालन किया करो' ॥ १३ ॥

एवमुक्तस्तु सौमित्रिर्निर्जगाम नृपालयात् ।
अपश्यद् द्वारदेशे वै श्वानं तावदवस्थितम् ॥ १४ ॥
तमेव वीक्षमाणं वै विक्रोशन्तं मुहुर्मुहुः ।
दृष्ट्वाथ लक्ष्मणस्तं वै स पप्रच्छाथ वीर्यवान् ॥ १५ ॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर सुमित्राकुमार लक्ष्मण राजभवनसे बाहर निकले । बाहर आकर उन्होंने देखा, द्वारपर एक कुत्ता खड़ा है, जो उन्हींकी ओर देखता हुआ बारंबार भूँक रहा है । उसे इस प्रकार देखकर पराक्रमी लक्ष्मणने उससे पूछा—॥ १४-१५ ॥

किं ते कार्यं महाभाग ब्रूहि विस्रब्धमानसः ।
लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा सारमेयोऽभ्यभाषत ॥ १६ ॥

'महाभाग ! तुम निर्भय होकर बताओ, तुम्हारा क्या काम है ?' लक्ष्मणका यह वचन सुनकर कुत्तेने कहा—॥ १६ ॥

सर्वभूतशरण्याय रामायाक्लिष्टकर्मणे ।
भयेष्वभयदात्रे च तस्मै वक्तुं समुत्सहे ॥ १७ ॥

'जो समस्त भूतोंको शरण देनेवाले और क्लेशरहित कर्म करनेवाले हैं, जो भयके अवसरोंपर भी अभय देते हैं, उन भगवान् श्रीरामके समक्ष ही मैं अपना काम बता सकता हूँ' ॥

एतच्छ्रुत्वा च वचनं सारमेयस्य लक्ष्मणः ।
राघवाय तदाख्यातुं प्रविवेशालयं शुभम् ॥ १८ ॥

कुत्तेका यह कथन सुनकर लक्ष्मणने श्रीरघुनाथजीको इसकी सूचना देनेके लिये सुन्दर राजभवनमें प्रवेश किया ॥

निवेद्य रामस्य पुनर्निर्जगाम नृपालयात् ।
वक्तव्यं यदि ते किंचित् तत्त्वं ब्रूहि नृपाय वै ॥ १९ ॥

श्रीरामको उसकी बात बताकर लक्ष्मण पुनः राजभवनसे बाहर निकल आये और उससे बोले—'यदि तुम्हें कुछ कहना है तो चलकर राजासे ही कहो' ॥ १९ ॥

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा सारमेयोऽभ्यभाषत ।
देवागारे नृपागारे द्विजवेश्मसु वै तथा ॥ २० ॥
✓**वह्निः शतक्रतुश्चैव सूर्यो वायुश्च तिष्ठति ।**
नात्र योग्यास्तु सौमित्रे योनीनामधमा वयम् ॥ २१ ॥

लक्ष्मणकी वह बात सुनकर कुत्ता बोला—'सुमित्रानन्दन ! देवालयमें, राजभवनमें तथा ब्राह्मणके घरोंमें अग्नि, इन्द्र, सूर्य और वायुदेवता सदा स्थित रहते हैं; अतः हम अधमयोनिके जीव स्वेच्छासे वहाँ जानेके योग्य नहीं हैं ॥

प्रवेष्टुं नात्र शक्ष्यामि धर्मो विग्रहवान् नृपः ।
सत्यवादी रणपटुः सर्वसत्त्वहिते रतः ॥ २२ ॥

'मैं इस राजभवनमें प्रवेश नहीं कर सकूँगा; क्योंकि राजा श्रीराम धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप हैं । वे सत्यवादी, संग्रामकुशल और समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले हैं ॥ २२ ॥

षाड्गुण्यस्य पदं वेत्ति नीतिकर्ता स राघवः ।
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च रामो रमयतां वरः ॥ २३ ॥

'वे संधि-विग्रह आदि छहों गुणोंके प्रयोगके अवसरोंको जानते हैं । श्रीरघुनाथजी न्याय करनेवाले हैं । वे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं । श्रीराम दूसरोंके मनको रमानेवाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ २३ ॥

स सोमः स च मृत्युश्च स यमो धनदस्तथा ।
वह्निः शतक्रतुश्चैव सूर्यो वै वरुणस्तथा ॥ २४ ॥

'वे ही चन्द्रमा हैं, वे ही मृत्यु हैं, वे ही यम, कुबेर, अग्नि, इन्द्र, सूर्य और वरुण हैं ॥ २४ ॥

तस्य त्वं ब्रूहि सौमित्रे प्रजापालः स राघवः ।
अनाज्ञप्तस्तु सौमित्रे प्रवेष्टुं नेच्छयाम्यहम् ॥ २५ ॥

'सुमित्रानन्दन ! श्रीरघुनाथजी प्रजापालक हैं । आप उनसे कहिये । मैं उनकी आज्ञा प्राप्त किये बिना इस भवनमें प्रवेश करना नहीं चाहता' ॥ २५ ॥

आनृशंस्यान्महाभागः प्रविवेश महाद्युतिः ।
नृपालयं प्रविश्याथ लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥ २६ ॥

यह सुनकर महातेजस्वी महाभाग लक्ष्मणने दयावश राजभवनमें प्रवेश करके कहा—॥ २६ ॥

श्रूयतां मम विज्ञाप्यं कौसल्यानन्दवर्धन ।
यन्मयोक्तं महाबाहो तव शासनजं विभो ॥ २७ ॥

'कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले महाबाहु श्रीरघुनाथजी ! मेरा यह निवेदन सुनिये । आपने जो आदेश दिया था, उसके अनुसार मैंने बाहर जाकर कार्यार्थीको पुकारा ॥ २७ ॥

श्वा वै ते तिष्ठते द्वारि कार्यार्थी समुपागतः ।
लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा रामो वचनमब्रवीत् ।
सम्प्रवेशय वै क्षिप्रं कार्यार्थी योऽत्र तिष्ठति ॥ २८ ॥

'इस समय आपके द्वारपर एक कुत्ता खड़ा है, जो कार्यार्थी होकर आया है ।' लक्ष्मणकी यह बात सुनकर श्रीरामने कहा—'यहाँ जो भी कार्यार्थी होकर खड़ा है, उसे शीघ्र इस सभाके भीतर ले आओ' ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे प्रक्षिप्तः सर्गः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें प्रक्षिप्त सर्ग १ पूरा हुआ ॥

प्रक्षिप्तः सर्गः २

कुत्तेके प्रति श्रीरामका न्याय, उसकी इच्छाके अनुसार उसे मारनेवाले ब्राह्मणको मठाधीश बना देना और कुत्तेका मठाधीश होनेका दोष बताना

श्रुत्वा रामस्य वचनं लक्ष्मणस्त्वरितस्तदा ।
श्वानमाहूय मतिमान् राघवाय न्यवेदयत् ॥ १ ॥

श्रीरामका यह वचन सुनकर बुद्धिमान् लक्ष्मणने तत्काल उस कुत्तेको बुलाया और श्रीरामको उसके आनेकी सूचना दी॥

दृष्ट्वा समागतं श्वानं रामो वचनमब्रवीत् ।
विवक्षितार्थं मे ब्रूहि सारमेय न ते भयम् ॥ २ ॥

वहाँ आये हुए कुत्तेकी ओर देखकर श्रीरामने कहा—'सारमेय ! तुम्हें जो कुछ कहना है, उसे मेरे सामने कहो। यहाँ तुम्हें कोई भय नहीं है' ॥ २ ॥

अथापश्यत तत्रस्थं रामं श्वा भिन्नमस्तकः ।
ततो दृष्ट्वा स राजानं सारमेयोऽब्रवीद् वचः ॥ ३ ॥

कुत्तेका मस्तक फट गया था। उसने राजसभामें बैठे हुए महाराज श्रीरामकी ओर देखा और देखकर इस प्रकार कहा—॥ ३ ॥

राजैव कर्ता भूतानां राजा चैव विनायकः ।
राजा सुप्तेषु जागर्ति राजा पालयति प्रजाः ॥ ४ ॥

'राजा ही समस्त प्राणियोंका उत्पादक और नायक है। राजा सबके सोते रहनेपर भी जागता है और प्रजाओंका पालन करता है ॥ ४ ॥

नीत्या सुनीतया राजा धर्मं रक्षति रक्षिता ।
यदा न पालयेद् राजा क्षिप्रं नश्यन्ति वै प्रजाः ॥ ५ ॥

'राजा सबका रक्षक है। वह उत्तम नीतिका प्रयोग करके सबकी रक्षा करता है। यदि राजा पालन न करे तो समस्त प्रजाएँ शीघ्र नष्ट हो जाती हैं ॥ ५ ॥

राजा कर्ता च गोप्ता च सर्वस्य जगतः पिता ।
राजा कालो युगं चैव राजा सर्वमिदं जगत् ॥ ६ ॥

'राजा कर्ता, राजा रक्षक और राजा सम्पूर्ण जगत्‌का पिता है। राजा काल और युग है तथा राजा यह सम्पूर्ण जगत् है ॥ ६ ॥

धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः ।
यस्माद् धारयते सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ७ ॥

'धर्म सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करता है, इसीलिये उसका नाम धर्म है। धर्मने ही समस्त प्रजाको धारण कर रक्खा है; क्योंकि वही चराचर प्राणियोंसहित सारी त्रिलोकीका आधार है॥

धारणाद् विद्विषां चैव धर्मेणारञ्जयन् प्रजाः ।
तस्माद् धारणमित्युक्तं स धर्म इति निश्चयः ॥ ८ ॥

'राजा अपने द्रोहियोंको भी धारण करता है (अथवा वह दुष्टोंको भी मर्यादामें स्थापित करता है) तथा वह धर्मके द्वारा प्रजाको प्रसन्न रखता है; इसलिये उसके शासनरूप कर्मको धारण कहा गया है और धारण ही धर्म है, यह शास्त्रका सिद्धान्त है ॥ ८ ॥

एष राजन् परो धर्मः फलवान् प्रेत्य राघव ।
नहि धर्माद् भवेत् किंचिद् दुष्प्रापमिति मे मतिः ॥९॥

'रघुनन्दन ! यह प्रजापालनरूप परम धर्म राजाको परलोकमें उत्तम फल देनेवाला होता है। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि धर्मसे कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥ ९ ॥

दानं दया सतां पूजा व्यवहारेषु चार्जवम् ।
एष राम परो धर्मो रक्षणात् प्रेत्य चेह च ॥ १० ॥

'श्रीराम ! दान, दया, सत्पुरुषोंका सम्मान और व्यवहारमें सरलता यह परम धर्म है। प्रजाजनोंकी रक्षासे होनेवाला उत्कृष्ट धर्म इहलोक और परलोकमें भी सुख देनेवाला होता है॥

त्वं प्रमाणं प्रमाणानामसि राघव सुव्रत ।
विदितश्चैव ते धर्मः सद्भिराचरितस्तु वै ॥ ११ ॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले रघुनन्दन ! आप समस्त प्रमाणोंके भी प्रमाण हैं। सत्पुरुषोंने जिस धर्मका आचरण किया है, वह आपको भलीभाँति विदित ही है ॥ ११ ॥

धर्माणां त्वं परं धाम गुणानां सागरोपमः ।
अज्ञानाच्च मया राजन्नुक्तस्त्वं राजसत्तम ॥ १२ ॥

'राजन् ! आप धर्मोंके परम धाम और गुणोंके सागर हैं। नृपश्रेष्ठ ! मैंने अज्ञानवश ही आपके सामने धर्मकी व्याख्या की है ॥ १२ ॥

प्रसादयामि शिरसा न त्वं क्रोद्धुमिहार्हसि ।
शुनः स वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥

'इसके लिये मैं आपके चरणोंमें मस्तक रखकर क्षमा चाहता और आपसे प्रसन्न होनेके लिये प्रार्थना करता हूँ। आप यहाँ मुझपर कुपित न हों।' कुत्तेकी यह बात सुनकर श्रीरघुनाथजी बोले—॥ १३ ॥

किं ते कार्यं करोम्यद्य ब्रूहि विस्रब्ध मा चिरम् ।
रामस्य वचनं श्रुत्वा सारमेयोऽब्रवीदिदम् ॥ १४ ॥

'तुम निर्भय होकर बताओ। आज मैं तुम्हारा कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ। अपना काम बतानेमें विलम्ब न करो।' श्रीरामकी यह बात सुनकर कुत्ता बोला—॥ १४ ॥

धर्मेण राष्ट्रं विन्देत धर्मेणैवानुपालयेत् ।
धर्माच्छरण्यतां याति राजा सर्वभयापहः ॥ १५ ॥
इदं विज्ञाय यत् कृत्यं श्रूयतां मम राघव ।

'रघुनन्दन ! राजा धर्मसे ही राज्य प्राप्त करे और धर्मसे ही निरन्तर उसका पालन करे। धर्मसे ही राजा सबको शरण देनेवाला और सबका भय दूर करनेवाला होता है।

ऐसा जानकर आप मेरा जो कार्य है, उसे सुनिये ॥ १५½ ॥

भिक्षुः सर्वार्थसिद्धश्च ब्राह्मणावसथे वसन् ॥ १६ ॥
तेन दत्तः प्रहारो मे निष्कारणमनागसः ।

'प्रभो ! सर्वार्थसिद्ध नामसे प्रसिद्ध एक भिक्षु है, जो ब्राह्मणोंके घरमें रहा करता है । उसने आज अकारण मुझपर प्रहार किया है । मैंने उसका कोई अपराध नहीं किया था' ॥

एतच्छ्रुत्वा तु रामेण द्वाःस्थः सम्प्रेषितस्तदा ॥ १७ ॥
आनीतश्च द्विजस्तेन सर्वसिद्धार्थकोविदः ।

कुत्तेकी यह बात सुनकर श्रीरामने तत्काल एक द्वारपाल भेजा और उस सर्वार्थसिद्ध नामक विद्वान् भिक्षु ब्राह्मणको बुलवाया ॥ १७½ ॥

अथ द्विजवरस्तत्र रामं दृष्ट्वा महाद्युतिः ॥ १८ ॥
किं ते कार्यं मया राम तद् ब्रूहि त्वं ममानघ ।

श्रीरामको देखकर उस महातेजस्वी श्रेष्ठ ब्राह्मणने पूछा—'निष्पाप रघुनन्दन ! मुझसे आपको क्या काम है ?' ॥ १८½ ॥

एवमुक्तस्तु विप्रेण रामो वचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥
त्वया दत्तः प्रहारोऽयं सारमेयस्य वै द्विज ।
किं तवापकृतं विप्र दण्डेनाभिहतो यतः ॥ २० ॥

ब्राह्मणके इस प्रकार पूछनेपर श्रीराम बोले—'ब्रह्मन् ! आपने इस कुत्तेके सिरपर जो यह प्रहार किया है, उसका क्या कारण है ? विप्रवर ! इसने आपका क्या अपराध किया था, जिसके कारण आपने इसे डंडा मारा है ? ॥ १९-२० ॥

✓ **क्रोधः प्राणहरः शत्रुः क्रोधो मित्रमुखो रिपुः ।**
क्रोधो ह्यसिर्महातीक्ष्णः सर्वं क्रोधोऽपकर्षति ॥ २१ ॥

'क्रोध प्राणहारी शत्रु है । क्रोधको मित्रमुख[1] शत्रु बताया गया है । क्रोध अत्यन्त तीखी तलवार है तथा क्रोध सारे सद्‌गुणोंको खींच लेता है ॥ २१ ॥

तपते यजते चैव यच्च दानं प्रयच्छति ।
क्रोधेन सर्वं हरति तस्मात् क्रोधं विसर्जयेत् ॥ २२ ॥

'मनुष्य जो तप करता, यज्ञ करता और दान देता है, उन सबके पुण्यको वह क्रोधके द्वारा नष्ट कर देता है। इसलिये क्रोधको त्याग देना चाहिये ॥ २२ ॥

इन्द्रियाणां प्रदुष्टानां हयानामिव धावताम् । ✓
कुर्वीत धृत्या सारथ्यं संहृत्येन्द्रियगोचरम् ॥ २३ ॥

'दुष्ट घोड़ोंकी तरह विषयोंकी ओर दौड़नेवाली इन्द्रियोंको उन विषयोंकी ओरसे हटाकर धैर्यपूर्वक उन्हें नियन्त्रणमें रक्खे ॥ २३ ॥

मनसा कर्मणा वाचा चक्षुषा च समाचरेत् ।
श्रेयो लोकस्य चरतो न द्वेष्टि न च लिप्यते ॥ २४ ॥

'मनुष्यको चाहिये कि वह अपने पास विचरनेवाले लोगोंकी मन, वाणी, क्रिया और दृष्टिद्वारा भलाई ही करे । किसीसे द्वेष न रक्खे । ऐसा करनेसे वह पापसे लिप्त नहीं होता ॥

न तत् कुर्यादसिस्तीक्ष्णः सर्पो वा व्याहतः पदा ।
अरिर्वा नित्यसंक्रुद्धो यथाऽऽत्मा दुरनुष्ठितः ॥ २५ ॥ ✓

'अपना दुष्ट मन जो अनिष्ट या अनर्थ कर सकता है, वैसा तीखी तलवार, पैरोंतले कुचला हुआ सर्प अथवा सदा क्रोधसे भरा रहनेवाला शत्रु भी नहीं कर सकता ॥ २५ ॥

विनीतविनयस्यापि प्रकृतिर्न विधीयते ।
प्रकृतिं गूहमानस्य निश्चयेन कृतिर्ध्रुवा ॥ २६ ॥

'जिसे विनयकी शिक्षा मिली हो, उसकी भी प्रकृति नयी नहीं बनती है । कोई अपनी दुष्ट प्रकृतिको कितना ही क्यों न छिपाये, उसके कार्यमें उसकी दुष्टता निश्चय ही प्रकट हो जाती है' ॥ २६ ॥

एवमुक्तः स विप्रो वै रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
द्विजः सर्वार्थसिद्धस्तु अब्रवीद् रामसंनिधौ ॥ २७ ॥

क्लेशरहित कर्म करनेवाले श्रीरामके ऐसा कहनेपर सर्वार्थसिद्ध नामक ब्राह्मणने उनके निकट इस प्रकार कहा—॥

मया दत्तप्रहारोऽयं क्रोधेनाविष्टचेतसा ।
भिक्षार्थमटमानेन काले विगतभैक्षके ॥ २८ ॥
रथ्यास्थितस्त्वयं श्वा वै गच्छ गच्छेति भाषितः ।
अथ स्वैरेण गच्छंस्तु रथ्यान्ते विषमं स्थितः ॥ २९ ॥

'प्रभो ! मेरा मन क्रोधसे भर गया था, इसलिये मैंने इसे डंडेसे मारा है । भिक्षाका समय बीत चुका था, तथापि भूखे रहनेके कारण भिक्षा माँगनेके लिये मैं द्वार-द्वार घूम रहा था । यह कुत्ता बीच रास्तेमें खड़ा था । मैंने बार-बार कहा—'तुम रास्तेसे हट जाओ, हट जाओ' फिर यह अपनी मौजसे चला और सड़कके बीचमें बेढंगे खड़ा हो गया ॥ २८-२९ ॥

क्रोधेन क्षुधयाविष्टस्ततो दत्तोऽस्य राघव ।
प्रहारो राजराजेन्द्र शाधि मामपराधिनम् ॥ ३० ॥
त्वया शस्तस्य राजेन्द्र नास्ति मे नरकाद्भयम् ।

'मैं भूखा तो था ही, क्रोध चढ़ आया । राजाधिराज रघुनन्दन ! उस क्रोधसे ही प्रेरित होकर मैंने इसके सिरपर डंडा मार दिया । मैं अपराधी हूँ । आप मुझे दण्ड दीजिये । राजेन्द्र ! आपसे दण्ड मिल जानेपर मुझे नरकमें पड़नेका डर नहीं रहेगा' ॥ ३०½ ॥

अथ रामेण सम्पृष्टाः सर्व एव सभासदः ॥ ३१ ॥
किं कार्यमस्य वै ब्रूत दण्डो वै कोऽस्य पात्यताम् ।
सम्यक्प्रणिहिते दण्डे प्रजा भवति रक्षिता ॥ ३२ ॥

तब श्रीरामने सभी सभासदोंसे पूछा—'आपलोग बतावें, इसके लिये क्या करना चाहिये ? इसे कौन-सा दण्ड दिया जाय ? क्योंकि भलीभाँति दण्डका प्रयोग होनेपर प्रजा सुरक्षित रहती है' ॥ ३१-३२ ॥

---

[1] जो ऊपरसे मित्र जान पड़े किंतु परिणाममें शत्रु सिद्ध हो, वह 'मित्रमुख' शत्रु है । क्रोध अपने प्रतिद्वन्द्वीको सतानेमें सहायक-सा बनकर आता है, इसीलिये इसे मित्रमुख कहा गया है ।

भृग्वाङ्गिरसकुत्साद्या वसिष्ठश्च सकाश्यपः।
धर्मपाठकमुख्याश्च सचिवा नैगमास्तथा ॥ ३३ ॥
एते चान्ये च बहवः पण्डितास्तत्र संगताः।
अवध्यो ब्राह्मणो दण्डैरिति शास्त्रविदो विदुः ॥ ३४ ॥
ब्रुवते राघवं सर्वे राजधर्मेषु निष्ठिताः।

उस सभामें भृगु, आङ्गिरस, कुत्स, वसिष्ठ और काश्यप आदि मुनि थे। धर्मशास्त्रोंका पाठ करनेवाले मुख्य-मुख्य विद्वान् उपस्थित थे। मन्त्री और महाजन मौजूद थे—ये तथा और बहुत-से पण्डित वहाँ एकत्र हुए थे। राजधर्मोंके ज्ञान-में परिनिष्ठित वे सभी विद्वान् श्रीरघुनाथजीसे बोले—'भगवन्! ब्राह्मण दण्डद्वारा अवध्य है, उसे शारीरिक दण्ड नहीं मिलना चाहिये, यही समस्त शास्त्रज्ञोंका मत है' ॥ ३३-३४½ ॥

अथ ते मुनयः सर्वे राममेवाब्रुवंस्तदा ॥ ३५ ॥
राजा शास्ता हि सर्वस्य त्वं विशेषेण राघव।
त्रैलोक्यस्य भवाञ्शास्ता देवो विष्णुः सनातनः ॥ ३६ ॥

तदनन्तर वे सब मुनि उस समय श्रीरामसे ही बोले—'रघुनन्दन! राजा सबका शासक होता है। विशेषतः आप तो तीनों लोकोंपर शासन करनेवाले साक्षात् सनातन देवता भगवान् विष्णु हैं' ॥ ३५-३६ ॥

एवमुक्ते तु तैः सर्वैः श्वा वै वचनमब्रवीत्।
यदि तुष्टोऽसि मे राम यदि देयो वरो मम ॥ ३७ ॥

उन सबके ऐसा कहनेपर कुत्ता बोला—'श्रीराम! यदि आप मुझपर संतुष्ट हैं, यदि आपको मुझे इच्छानुसार वर देना है तो मेरी बात सुनिये ॥ ३७ ॥

प्रतिज्ञातं त्वया वीर किं करोमीति विश्रुतम्।
प्रयच्छ ब्राह्मणस्यास्य कौलपत्यं नराधिप ॥ ३८ ॥
कालञ्जरे महाराज कौलपत्यं प्रदीयताम्।

'वीर नरेश्वर! आपने प्रतिज्ञापूर्वक पूछा है कि मैं आपका कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ। इस प्रकार आप मेरी इच्छा पूर्ण करनेको प्रतिज्ञाबद्ध हो चुके हैं। अतः मैं कहता हूँ कि इस ब्राह्मणको कुलपति (महन्त) बना दीजिये। महाराज! इसे कालञ्जरमें एक मठका आधिपत्य (वहाँकी महन्थी) प्रदान कर दीजिये' ॥ ३८½ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु रामेण कौलपत्येऽभिषेचितः ॥ ३९ ॥
प्रययौ ब्राह्मणो हृष्टो गजस्कन्धेन सोऽर्चितः।

यह सुनकर श्रीरामने उसका कुलपतिके पदपर अभिषेक कर दिया। इस प्रकार पूजित हुआ वह ब्राह्मण हाथीकी पीठ-पर बैठकर बड़े हर्षके साथ वहाँसे चला गया ॥ ३९½ ॥

अथ ते रामसचिवाः स्मयमाना वचोऽब्रुवन् ॥ ४० ॥
वरोऽयं दत्त एतस्य नायं शापो महाद्युते।

तब श्रीरामचन्द्रजीके मन्त्री मुस्कराते हुए बोले—'महातेजस्वी महाराज! यह तो इसे वर दिया गया है, शाप या दण्ड नहीं' ॥ ४०½ ॥

एवमुक्तस्तु सचिवै रामो वचनमब्रवीत् ॥ ४१ ॥
न यूयं गतितत्त्वज्ञाः श्वा वै जानाति कारणम्।

मन्त्रियोंके ऐसा कहनेपर श्रीरामने कहा—'किस कर्मका क्या परिणाम होता है अथवा उससे जीवकी कैसी गति होती है, इसका तत्त्व तुमलोग नहीं जानते। ब्राह्मणको मठाधीशका पद क्यों दिया गया? इसका कारण यह कुत्ता जानता है' ॥ ४१½ ॥

अथ पृष्टस्तु रामेण सारमेयोऽब्रवीदिदम् ॥ ४२ ॥
अहं कुलपतिस्तत्र आसं शिष्टान्नभोजनः।
देवद्विजातिपूजायां दासीदासेषु राघव ॥ ४३ ॥
संविभागी शुभरतिर्देवद्रव्यस्य रक्षिता।
विनीतः शीलसम्पन्नः सर्वसत्त्वहिते रतः ॥ ४४ ॥

तत्पश्चात् श्रीरामके पूछनेपर कुत्तेने इस प्रकार कहा—'रघुनन्दन! मैं पहले जन्ममें कालञ्जरके मठमें कुलपति (मठाधीश) था। वहाँ यज्ञशिष्ट अन्नका भोजन करता, देवता और ब्राह्मणोंकी पूजामें तत्पर रहता, दास-दासियोंको उनका न्यायोचित भाग बाँट देता, शुभ कर्मोंमें अनुरक्त रहता, देवसम्पत्तिकी रक्षा करता तथा विनय और शीलसे सम्पन्न होकर समस्त प्राणियोंके हित-साधनमें संलग्न रहता था ॥ ४२-४४ ॥

सोऽहं प्राप्त इमां घोरामवस्थामधमां गतिम्।
एवं क्रोधान्वितो विप्रस्त्यक्तधर्माहिते रतः ॥ ४५ ॥
क्रुद्धो नृशंसः परुष अविद्वांश्चाप्यधार्मिकः।
कुलानि पातयत्येव सप्त सप्त च राघव ॥ ४६ ॥

'तो भी मुझे यह घोर अवस्था एवं अधम गति प्राप्त हुई। फिर जो ऐसा क्रोधी है, धर्मको छोड़ चुका है, दूसरोंके अहितमें लगा हुआ है तथा क्रोध करनेवाला, क्रूर, कठोर, मूर्ख और अधर्मी है, वह ब्राह्मण तो मठाधीश होकर अपने साथ ही ऊपर और नीचेकी सात-सात पीढ़ियोंको भी नरकमें गिराकर ही रहेगा ॥ ४५-४६ ॥

तस्मात् सर्वास्ववस्थासु कौलपत्यं न कारयेत्।
यमिच्छेन्नरकं नेतुं सपुत्रपशुबान्धवम् ॥ ४७ ॥ ✓
देवेष्वधिष्ठितं कुर्याद् गोषु च ब्राह्मणेषु च।

'इसलिये किसी भी दशामें मठाधीशका पद नहीं ग्रहण करना चाहिये। जिसे पुत्र, पशु और बन्धु-बान्धवोंसहित नरकमें गिरा देनेकी इच्छा हो, उसे देवताओं, गौओं और ब्राह्मणोंका अधिष्ठाता बना दे ॥ ४७½ ॥

ब्रह्मस्वं देवताद्रव्यं स्त्रीणां बालधनं च यत् ॥ ४८ ॥
दत्तं हरति यो भूय इष्टैः सह विनश्यति।

'जो ब्राह्मणका, देवताका, स्त्रियोंका और बालकोंका धन हर लेता है तथा जो अपनी दान की हुई सम्पत्तिको फिर वापस ले लेता है, वह इष्टजनोंसहित नष्ट हो जाता है ॥ ४८½ ॥

ब्राह्मणद्रव्यमादत्ते देवानां चैव राघव ॥ ४९ ॥

सद्यः पतति घोरे वै नरकेऽवीचिसंज्ञके ।

'रघुनन्दन ! जो ब्राह्मणों और देवताओंका द्रव्य हड़प लेता है, वह शीघ्र ही अवीचि नामक घोर नरकमें गिर जाता है ॥ ४९½ ॥

मनसापि हि देवस्वं ब्रह्मस्वं च हरेत्तु यः ॥ ५० ॥
निरयान्निरयं चैव पतत्येव नराधमः ।

'जो देवता और ब्राह्मणकी सम्पत्तिको हर लेनेका विचार भी मनमें लाता है, वह नराधम निश्चय ही एक नरकसे दूसरे नरकमें गिरता रहता है' ॥ ५०½ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं रामो विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ ५१ ॥
श्वाप्यगच्छन्महातेजा यत एवागतस्ततः ।

कुत्तेका यह वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे और वह महातेजस्वी कुत्ता भी जिधरसे आया था, उधर ही चला गया ॥ ५१½ ॥

मनस्वी पूर्वजात्या स जातिमात्रोऽपदूषितः ।
वाराणस्यां महाभागः प्रायं चोपविवेश ह ॥ ५२ ॥

वह पूर्वजन्ममें बड़ा मनस्वी था, परंतु इस जन्ममें वह कुत्तेकी योनिमें उत्पन्न होनेके कारण दूषित हो गया था। उस महाभाग कुत्तेने काशीमें जाकर प्रायोपवेशन कर लिया (अन्न-जल छोड़कर अपने प्राण त्याग दिये) ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे प्रक्षिप्तः सर्गः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें प्रक्षिप्त सर्ग २ पूरा हुआ ॥

षष्टितमः सर्गः

श्रीरामके दरबारमें च्यवन आदि ऋषियोंका शुभागमन, श्रीरामके द्वारा उनका सत्कार करके उनके अभीष्ट कार्यको पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा तथा ऋषियोंद्वारा उनकी प्रशंसा

तयोः संवदतोरेवं रामलक्ष्मणयोस्तदा ।
वासन्तिकी निशा प्राप्ता न शीता न च घर्मदा ॥ १ ॥

श्रीराम और लक्ष्मण परस्पर इस प्रकार कथा-वार्ता करते हुए प्रतिदिन प्रजापालनके कार्यमें लगे रहते थे। एक समय वसन्तऋतुकी रात आयी, जो न अधिक सर्दी लानेवाली थी और न गर्मी ॥ १ ॥

ततः प्रभाते विमले कृतपूर्वाह्णिकक्रियः ।
अभिचक्राम काकुत्स्थो दर्शनं पौरकार्यवित् ॥ २ ॥

वह रात बीतनेपर जब निर्मल प्रभातकाल आया, तब पुरवासियोंके कार्योंको जाननेवाले श्रीरघुनाथजी पूर्वाह्णकालके नित्यकर्म—संध्या-वन्दन आदिसे निवृत्त हो बाहर निकलकर प्रजाजनोंके दृष्टिपथमें आये ॥ २ ॥

ततः सुमन्त्रस्त्वागम्य राघवं वाक्यमब्रवीत् ।
एते प्रतिहता राजन् द्वारि तिष्ठन्ति तापसाः ॥ ३ ॥
भार्गवं च्यवनं चैव पुरस्कृत्य महर्षयः ।
दर्शनं ते महाराज चोदयन्ति कृतत्वराः ॥ ४ ॥

उसी समय सुमन्त्रने आकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'राजन् ! ये तपस्वी महर्षि भृगुपुत्र च्यवन मुनिको आगे करके द्वारपर खड़े हैं। द्वारपालोंने इनका भीतर आना रोक दिया है। महाराज ! इन्हें आपके दर्शनकी जल्दी लगी हुई है और ये अपने आगमनकी सूचना देनेके लिये हमें बारंबार प्रेरित करते हैं ॥ ३-४ ॥

प्रीयमाणा नरव्याघ्र यमुनातीरवासिनः ।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा रामः प्रोवाच धर्मवित् ॥ ५ ॥
प्रवेश्यन्तां महाभागा भार्गवप्रमुखा द्विजाः ।

'पुरुषसिंह ! ये सब महर्षि यमुनातटपर निवास करते हैं और आपसे विशेष प्रेम रखते हैं।' सुमन्त्रकी यह बात सुनकर धर्मज्ञ श्रीरामने कहा—'सूत ! भार्गव च्यवन आदि सभी महाभाग ब्रह्मर्षियोंको भीतर बुलाया जाय' ॥ ५½ ॥

राज्ञस्त्वाज्ञां पुरस्कृत्य द्वाःस्थो मूर्ध्ना कृताञ्जलिः ॥ ६ ॥
प्रवेशयामास तदा तापसान् सुदुरासदान् ।

राजाकी यह आज्ञा शिरोधार्य करके द्वारपालने मस्तकपर दोनों हाथ जोड़ लिये और उन अत्यन्त दुर्जय तेजस्वी तापसोंको वह राजभवनके भीतर ले आया ॥ ६½ ॥

शतं समधिकं तत्र दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ ७ ॥
प्रविष्टं राजभवनं तापसानां महात्मनाम् ।
ते द्विजाः पूर्णकलशैः सर्वतीर्थाम्बुसत्कृतैः ॥ ८ ॥
गृहीत्वा फलमूलं च रामस्याभ्याहरन् बहु ।

उन तपस्वी महात्माओंकी संख्या सौसे अधिक थी। वे सब-के-सब अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे थे। उन सबने राजभवनमें प्रवेश किया और समस्त तीर्थोंके जलसे भरे हुए घड़ोंके साथ बहुत-से फल-मूल लेकर श्रीरामचन्द्रजीको भेंट किये ॥ ७-८½ ॥

प्रतिगृह्य तु तत् सर्वं रामः प्रीतिपुरस्कृतः ॥ ९ ॥
तीर्थोदकानि सर्वाणि फलानि विविधानि च ।
उवाच च महाबाहुः सर्वानेव महामुनीन् ॥ १० ॥

महाबाहु श्रीरामने बड़ी प्रसन्नताके साथ वह सारा उपहार—वे सारे तीर्थजल और नाना प्रकारके फल लेकर उन सभी महामुनियोंसे कहा—॥ ९-१० ॥

इमान्यासनमुख्यानि यथार्हमुपविश्यताम् ।
रामस्य भाषितं श्रुत्वा सर्व एव महर्षयः ॥ ११ ॥
बृसीषु रुचिराख्यासु निषेदुः काञ्चनीषु ते ।

'महात्माओ ! ये उत्तमोत्तम आसन प्रस्तुत हैं। आपलोग यथायोग्य इन आसनोंपर बैठ जायँ।' श्रीरामचन्द्रजीका यह वचन सुनकर वे सभी महर्षि रुचिर शोभासे सम्पन्न उन सुवर्णमय आसनोंपर बैठे ॥ ११½ ॥

उपविष्टानृषींस्तत्र दृष्ट्वा परपुरंजयः ।
प्रयतः प्राञ्जलिर्भूत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥

उन महर्षियोंको वहाँ आसनोंपर विराजमान देख शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले श्रीरघुनाथजीने हाथ जोड़ संयतभावसे कहा—॥ १२ ॥

किमागमनकार्यं वः किं करोमि समाहितः ।
आज्ञाप्योऽहं महर्षीणां सर्वकामकरः सुखम् ॥ १३ ॥

'महर्षियो ! किस कामसे यहाँ आपलोगोंका शुभागमन हुआ है ? मैं एकाग्रचित्त होकर आपकी क्या सेवा करूँ ? यह सेवक आपकी आज्ञा पानेके योग्य है। आदेश मिलनेपर मैं बड़े सुखसे आपकी सभी इच्छाओंको पूर्ण कर सकता हूँ॥ १३॥

इदं राज्यं च सकलं जीवितं च हृदि स्थितम् ।
सर्वमेतद् द्विजार्थं मे सत्यमेतद् ब्रवीमि वः ॥ १४ ॥

'यह सारा राज्य, इस हृदयकमलमें विराजमान यह जीवात्मा तथा यह मेरा सारा वैभव ब्राह्मणोंकी सेवाके लिये ही है, मैं आपके समक्ष यह सच्ची बात कहता हूँ' ॥ १४ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा साधुकारो महानभूत् ।
ऋषीणामुग्रतपसां यमुनातीरवासिनाम् ॥ १५ ॥

श्रीरघुनाथजीके ये वचन सुनकर उन यमुनातीर-निवासी उग्र तपस्वी महर्षियोंने उच्चस्वरसे उन्हें साधुवाद दिया ॥ १५ ॥

ऊचुश्चैव महात्मानो हर्षेण महता वृताः ।
उपपन्नं नरश्रेष्ठ तवैव भुवि नान्यतः ॥ १६ ॥

फिर वे महात्मा बड़े हर्षके साथ बोले—'नरश्रेष्ठ ! इस भूमण्डलमें ऐसी बातें आपके ही योग्य हैं। दूसरे किसीके मुखसे इस तरहकी बात नहीं निकलती ॥ १६ ॥

बहवः पार्थिवा राजन्नतिक्रान्ता महाबलाः ।
कार्यस्य गौरवं मत्वा प्रतिज्ञां नाभ्यरोचयन् ॥ १७ ॥

'राजन् ! हम बहुत-से महाबली राजाओंके पास गये; परंतु उन्होंने कार्यके गौरवको समझकर उसे सुननेके बाद भी 'करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा करनेकी रुचि नहीं दिखायी ॥ १७ ॥

त्वया पुनर्ब्राह्मणगौरवादियं
कृता प्रतिज्ञा ह्यनवेक्ष्य कारणम् ।
ततश्च कर्ता ह्यसि नात्र संशयो
महाभयात् त्रातुमृषींस्त्वमर्हसि ॥ १८ ॥

'परंतु आपने हमारे आनेका कारण जाने बिना ही केवल ब्राह्मणोंके प्रति आदरका भाव होनेसे हमारा काम करनेकी प्रतिज्ञा कर डाली है; इसलिये आप अवश्य यह काम कर सकेंगे, इसमें संशय नहीं है। आप ही महान् भयसे ऋषियोंको बचा सकेंगे' ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें साठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६० ॥

* * *

एकषष्टितमः सर्गः

ऋषियोंका मधुको प्राप्त हुए वर तथा लवणासुरके बल और अत्याचारका वर्णन करके उससे प्राप्त होनेवाले भयको दूर करनेके लिये श्रीरघुनाथजीसे प्रार्थना करना

ब्रुवद्भिरेवमृषिभिः काकुत्स्थो वाक्यमब्रवीत् ।
किं कार्यं ब्रूत मुनयो भयं तावदपैतु वः ॥ १ ॥

इस प्रकार कहते हुए ऋषियोंसे प्रेरित हो श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'महर्षियो ! बताइये, आपका कौन सा कार्य मुझे सिद्ध करना है ! आपलोगोंका भय तो अभी दूर हो जाना चाहिये' ॥ १ ॥

तथा ब्रुवति काकुत्स्थे भार्गवो वाक्यमब्रवीत् ।
भयानां शृणु यन्मूलं देशस्य च नरेश्वर ॥ २ ॥

श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनेपर भृगुपुत्र च्यवन बोले—'नरेश्वर ! समूचे देशपर और हमलोगोंपर जो भय प्राप्त हुआ है, उसका मूल कारण क्या है, सुनिये ॥ २ ॥

पूर्वं कृतयुगे राजन् दैतेयः सुमहामतिः ।
लोलापुत्रोऽभवज्ज्येष्ठो मधुर्नाम महासुरः ॥ ३ ॥

'राजन् ! पहले सत्ययुगमें एक बड़ा बुद्धिमान् दैत्य था। वह लोलाका ज्येष्ठ पुत्र था। उस महान् असुरका नाम था मधु ॥ ३ ॥

ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च बुद्ध्या च परिनिष्ठितः ।
सुरैश्च परमोदारैः प्रीतिस्तस्यातुलाभवत् ॥ ४ ॥

'वह बड़ा ही ब्राह्मण-भक्त और शरणागतवत्सल था। उसकी बुद्धि सुस्थिर थी। अत्यन्त उदार स्वभाववाले देवताओंके साथ भी उसकी ऐसी गहरी मित्रता थी, जिसकी कहीं तुलना नहीं थी ॥ ४ ॥

स मधुर्वीर्यसम्पन्नो धर्मे च सुसमाहितः ।
बहुमानाच्च रुद्रेण दत्तस्तस्याद्भुतो वरः ॥ ५ ॥

'मधु बल-विक्रमसे सम्पन्न था और एकाग्रचित्त होकर धर्मके अनुष्ठानमें लगा रहता था। उसने भगवान् शिवकी बड़ी आराधना की थी, जिससे उन्होंने उसे अद्भुत वर प्रदान किया था ॥ ५ ॥

शूलं शूलाद् विनिष्कृष्य महावीर्यं महाप्रभम् ।
ददौ महात्मा सुप्रीतो वाक्यं चैतदुवाच ह ॥ ६ ॥

'महामना भगवान् शिवने अत्यन्त प्रसन्न हो अपने शूलसे एक चमचमाता हुआ परम शक्तिशाली शूल प्रकट करके उसे मधुको दिया और यह बात कही—॥ ६ ॥

त्वयायमतुलो धर्मो मत्प्रसादकरः कृतः ।
प्रीत्या परमया युक्तो ददाम्यायुधमुत्तमम् ॥ ७ ॥

''तुमने मुझे प्रसन्न करनेवाला यह बड़ा अनुपम धर्म किया है; अतः मैं अत्यन्त प्रसन्न होकर तुम्हें यह उत्तम आयुध प्रदान करता हूँ ॥ ७ ॥

यावत् सुरैश्च विप्रैश्च न विरुध्येर्महासुर ।
तावच्छूलं तवेदं स्यादन्यथा नाशमेष्यति ॥ ८ ॥

''महान् असुर ! जबतक तुम ब्राह्मणों और देवताओंसे विरोध नहीं करोगे, तभीतक यह शूल तुम्हारे पास रहेगा, अन्यथा अदृश्य हो जायगा ॥ ८ ॥

यश्च त्वामभियुञ्जीत युद्धाय विगतज्वरः ।
तं शूलो भस्मसात्कृत्वा पुनरेष्यति ते करम् ॥ ९ ॥

''जो पुरुष निःशङ्क होकर तुम्हारे सामने युद्धके लिये आयेगा, उसे भस्म करके यह शूल पुनः तुम्हारे हाथमें लौट आयेगा' ॥ ९ ॥

एवं रुद्राद् वरं लब्ध्वा भूय एव महासुरः ।
प्रणिपत्य महादेवं वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १० ॥

''भगवान् रुद्रसे ऐसा वर पाकर वह महान् असुर महादेवजीको प्रणाम करके फिर इस प्रकार बोला—॥ १० ॥

भगवन् मम वंशस्य शूलमेतदनुत्तमम् ।
भवेत् तु सततं देव सुराणामीश्वरो ह्यसि ॥ ११ ॥

''भगवन् ! देवाधिदेव ! आप समस्त देवताओंके स्वामी हैं; अतः आपसे प्रार्थना है कि परम उत्तम शूल मेरे वंशजोंके पास भी सदा रहे' ॥ ११ ॥

तं ब्रुवाणं मधुं देवः सर्वभूतपतिः शिवः ।
प्रत्युवाच महादेवो नैतदेवं भविष्यति ॥ १२ ॥

'ऐसी बात कहनेवाले उस मधुसे समस्त प्राणियोंके अधिपति महान् देवता भगवान् शिवने इस प्रकार कहा—'ऐसा तो नहीं हो सकता ॥ १२ ॥

मा भूत् ते विफला वाणी मत्प्रसादकृता शुभा ।
भवतः पुत्रमेकं तु शूलमेतद् भविष्यति ॥ १३ ॥

''परंतु मुझे प्रसन्न जानकर तुम्हारे मुखसे जो शुभ वाणी निकली है, वह भी निष्फल न हो; इसलिये मैं वर देता हूँ कि तुम्हारे एक पुत्रके पास यह शूल रहेगा ॥ १३ ॥

यावत् करस्थः शूलोऽयं भविष्यति सुतस्य ते ।
अवध्यः सर्वभूतानां शूलहस्तो भविष्यति ॥ १४ ॥

''यह शूल जबतक तुम्हारे पुत्रके हाथमें मौजूद रहेगा, तबतक वह समस्त प्राणियोंके लिये अवध्य बना रहेगा' ॥ १४ ॥

एवं मधुर्वरं लब्ध्वा देवात् सुमहदद्भुतम् ।
भवनं सोऽसुरश्रेष्ठः कारयामास सुप्रभम् ॥ १५ ॥

'महादेवजीसे इस प्रकार अत्यन्त अद्भुत वर पाकर असुरश्रेष्ठ मधुने एक सुन्दर भवन तैयार कराया, जो अत्यन्त दीप्तिमान् था ॥ १५ ॥

तस्य पत्नी महाभागा प्रिया कुम्भीनसीति या ।
विश्वावसोरपत्यं साप्यनलायां महाप्रभा ॥ १६ ॥

'उसकी प्रिय पत्नी महाभागा कुम्भीनसी थी, जो विश्वावसुकी संतान थी। उसका जन्म अनलाके गर्भसे हुआ था। कुम्भीनसी बड़ी कान्तिमती थी ॥ १६ ॥

तस्याः पुत्रो महावीर्यो लवणो नाम दारुणः ।
बाल्यात्प्रभृति दुष्टात्मा पापान्येव समाचरत् ॥ १७ ॥

'उसका पुत्र महापराक्रमी लवण है, जिसका स्वभाव बड़ा भयंकर है। वह दुष्टात्मा बचपनसे ही केवल पापाचारमें प्रवृत्त रहा है ॥ १७ ॥

तं पुत्रं दुर्विनीतं तु दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः ।
मधुः स शोकमापेदे न चैनं किंचिदब्रवीत् ॥ १८ ॥

'अपने पुत्रको उद्दण्ड हुआ देख मधु क्रोधसे जलता रहता था। उसे बेटेकी दुष्टता देखकर बड़ा शोक हुआ, तथापि वह इससे कुछ नहीं बोला ॥ १८ ॥

स विहाय इमं लोकं प्रविष्टो वरुणालयम् ।
शूलं निवेश्य लवणे वरं तस्मै न्यवेदयत् ॥ १९ ॥

'अन्तमें वह इस देशको छोड़कर समुद्रमें रहनेके लिये चला गया। चलते समय उसने वह शूल लवणको दे दिया और उसे वरदानकी बात भी बता दी ॥ १९ ॥

स प्रभावेण शूलस्य दौरात्म्येनात्मनस्तथा ।
संतापयति लोकांस्त्रीन् विशेषेण च तापसान् ॥ २० ॥

'अब वह दुष्ट उस शूलके प्रभावसे तथा अपनी दुष्टताके कारण तीनों लोकोंको विशेषतः तपस्वी मुनियोंको बड़ा संताप दे रहा है ॥ २० ॥

एवंप्रभावो लवणः शूलं चैव तथाविधम् ।
श्रुत्वा प्रमाणं काकुत्स्थ त्वं हि नः परमा गतिः ॥ २१ ॥

'उस लवणासुरका ऐसा प्रभाव है और उसके पास वैसा शक्तिशाली शूल भी है। रघुनन्दन ! यह सब सुनकर यथोचित कार्य करनेमें आप ही प्रमाण हैं और आप ही हमारी परम गति हैं ॥ २१ ॥

बहवः पार्थिवा राम भयार्तैर्ऋषिभिः पुरा ।
अभयं याचिता वीर त्रातारं न च विद्महे ॥ २२ ॥

'श्रीराम ! आजसे पहले भयसे पीड़ित हुए ऋषि अनेक राजाओंके पास जा-जाकर अभयकी भिक्षा माँग चुके हैं; परंतु वीर रघुवीर ! अबतक हमें कोई रक्षक नहीं मिला ॥

ते वयं रावणं श्रुत्वा हतं सबलवाहनम् ।
त्रातारं विद्महे तात नान्यं भुवि नराधिपम् ।
तत् परित्रातुमिच्छामो लवणाद् भयपीडितान् ॥ २३ ॥

'तात ! हमने सुना है कि आपने सेना और सवारियों-सहित रावणका संहार कर डाला है; इसलिये हम आपहीको अपनी रक्षा करनेमें समर्थ समझते हैं, भूतलपर दूसरे किसी राजाको नहीं । अतः हमारी इच्छा है कि आप भयसे पीड़ित हुए महर्षियोंकी लवणासुरसे रक्षा करें ॥ २३ ॥

इति राम निवेदितं तु ते
भयजं कारणमुत्थितं च यत् ।
विनिवारयितुं भवान् क्षमः
कुरु तं काममहीनविक्रम ॥ २४ ॥

'बल-विक्रमसे सम्पन्न श्रीराम ! इस प्रकार हमारे सामने जो भयका कारण उपस्थित हो गया है, वह हमने आपके आगे निवेदन कर दिया । आप इसे दूर करनेमें समर्थ हैं, अतः हमारी यह अभिलाषा पूर्ण करें' ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें इकसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः

श्रीरामका ऋषियोंसे लवणासुरके आहार-विहारके विषयमें पूछना और शत्रुघ्नकी रुचि जानकर उन्हें लवण-वधके कार्यमें नियुक्त करना

तथोक्ते तानृषीन् रामः प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ।
किमाहारः किमाचारो लवणः क्व च वर्तते ॥ १ ॥

ऋषियोंके इस प्रकार कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उनसे हाथ जोड़कर पूछा—'लवणासुर क्या खाता है ? उसका आचार-व्यवहार कैसा है—रहने-सहनेका ढंग क्या है ? और वह कहाँ रहता है ?' ॥ १ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा ऋषयः सर्व एव ते ।
ततो निवेदयामासुर्लवणो ववृधे यथा ॥ २ ॥

श्रीरघुनाथजीकी यह बात सुनकर उन सभी ऋषियोंने जिस तरहके आहार-व्यवहारसे लवणासुर पला था, वह सब कह सुनाया ॥ २ ॥

आहारः सर्वसत्त्वानि विशेषेण च तापसाः ।
आचारो रौद्रता नित्यं वासो मधुवने तथा ॥ ३ ॥

वे बोले—'प्रभो ! उसका आहार तो सभी प्राणी हैं; परंतु विशेषतः वह तपस्वी मुनियोंको खाता है । उसके आचार-व्यवहारमें बड़ी क्रूरता और भयानकता है और वह सदा मधुवनमें निवास करता है ॥ ३ ॥

हत्वा बहुसहस्राणि सिंहव्याघ्रमृगाण्डजान् ।
मानुषांश्चैव कुरुते नित्यमाहारमाह्निकम् ॥ ४ ॥

'वह प्रतिदिन कई सहस्र सिंह, व्याघ्र, मृग, पक्षी और मनुष्योंको मारकर खा जाता है ॥ ४ ॥

ततोऽन्तराणि सत्त्वानि खादते स महाबलः ।
संहारे समनुप्राप्ते व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ५ ॥

'संहारकाल आनेपर मुँह बाकर खड़े हुए यमराजके समान वह महाबली असुर दूसरे-दूसरे जीवोंको भी खाता रहता है' ॥ ५ ॥

तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्यमुवाच स महामुनीन् ।
घातयिष्यामि तद् रक्षो व्यपगच्छतु वो भयम् ॥ ६ ॥

उनका यह कथन सुनकर श्रीरघुनाथजीने उन महामुनियोंसे कहा—'महर्षियो ! मैं उस राक्षसको मरवा डालूँगा । आपलोगोंका भय दूर हो जाना चाहिये' ॥ ६ ॥

प्रतिज्ञाय तथा तेषां मुनीनामुग्रतेजसाम् ।
स भ्रातॄन् सहितान् सर्वानुवाच रघुनन्दनः ॥ ७ ॥

इस प्रकार उन उग्र तेजस्वी मुनियोंके समक्ष प्रतिज्ञा करके रघुकुलनन्दन श्रीरामने वहाँ एकत्र हुए अपने सब भाइयोंसे पूछा— ॥ ७ ॥

को हन्ता लवणं वीरः कस्यांशः स विधीयताम् ।
भरतस्य महाबाहोः शत्रुघ्नस्य च धीमतः ॥ ८ ॥

'बन्धुओ ! लवणको कौन वीर मारेगा ? उसे किसके हिस्सेमें रक्खा जाय—महाबाहु भरतके या बुद्धिमान् शत्रुघ्नके' ॥

राघवेणैवमुक्तस्तु भरतो वाक्यमब्रवीत् ।
अहमेनं वधिष्यामि ममांशः स विधीयताम् ॥ ९ ॥

रघुनाथजीके इस प्रकार पूछनेपर भरतजी बोले—'भैया ! मैं इस लवणका वध करूँगा । इसे मेरे हिस्सेमें रक्खा जाय' ॥

भरतस्य वचः श्रुत्वा धैर्यशौर्यसमन्वितम् ।
लक्ष्मणावरजस्तस्थौ हित्वा सौवर्णमासनम् ॥ १० ॥
शत्रुघ्नस्त्वब्रवीद् वाक्यं प्रणिपत्य नराधिपम् ।
कृतकर्मा महाबाहुर्मध्यमो रघुनन्दन ॥ ११ ॥

भरतजीके ये धीरता और वीरतापूर्ण शब्द सुनकर शत्रुघ्नजी सोनेका सिंहासन छोड़कर खड़े हो गये और महाराज श्रीरामको प्रणाम करके बोले—'रघुनन्दन ! महाबाहु मझले भैया तो बहुत-से कार्य कर चुके हैं ॥ १०-११ ॥

आर्येण हि पुरा शून्या त्वयोध्या परिपालिता ।
संतापं हृदये कृत्वा आर्यस्यागमनं प्रति ॥ १२ ॥

'पहले जब अयोध्यापुरी आपसे सूनी हो गयी थी, उस समय आपके आगमन-कालतक हृदयमें अत्यन्त संताप

लिये इन्होंने अयोध्यापुरीका पालन किया था ॥ १२ ॥

दुःखानि च बहूनीह अनुभूतानि पार्थिव ।
शयानो दुःखशय्यासु नन्दिग्रामे महायशाः ॥ १३ ॥
फलमूलाशनो भूत्वा जटी चीरधरस्तथा ।

'पृथ्वीनाथ ! महायशस्वी भरतने नन्दिग्राममें दुःखद शय्यापर सोते हुए पहले बहुत-से दुःख भोगे हैं । ये फल-मूल खाकर रहते थे और सिरपर जटा बढ़ाये चीर वस्त्र धारण करते थे ॥ १३½ ॥

अनुभूयेदृशं दुःखमेष राघवनन्दनः ॥ १४ ॥
प्रेष्ये मयि स्थिते राजन् न भूयः क्लेशमाप्नुयात् ।

'महाराज ! ऐसे-ऐसे दुःख भोगकर ये रघुकुलनन्दन भरत मुझ सेवकके रहते हुए अब फिर अधिक क्लेश न उठावें' ॥ १४½ ॥

तथा ब्रुवति शत्रुघ्ने राघवः पुनरब्रवीत् ॥ १५ ॥
एवं भवतु काकुत्स्थ क्रियतां मम शासनम् ।
राज्ये त्वामभिषेक्ष्यामि मधोस्तु नगरे शुभे ॥ १६ ॥

शत्रुघ्नके ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजी फिर बोले—'काकुत्स्थ ! तुम जैसा कहते हो; वैसा ही हो । तुम्हीं मेरे इस आदेशका पालन करो । मैं तुम्हें मधुके सुन्दर नगरमें राजाके पदपर अभिषिक्त करूँगा ॥ १५-१६ ॥

निवेशय महाबाहो भरतं यद्यवेक्षसे ।
शूरस्त्वं कृतविद्यश्च समर्थश्च निवेशने ॥ १७ ॥

'महाबाहो ! यदि तुम भरतको क्लेश देना ठीक नहीं समझते तो इनको यहीं रहने दो । तुम शूरवीर हो, अस्त्र-विद्याके ज्ञाता हो तथा तुममें नूतन नगर निर्माण करनेकी शक्ति है ॥ १७ ॥

नगरं यमुनाजुष्टं तथा जनपदाञ्शुभान् ।
यो हि वंशं समुत्पाट्य पार्थिवस्य निवेशने ॥ १८ ॥
न विधत्ते नृपं तत्र नरकं स हि गच्छति ।

'तुम यमुनाजीके तटपर सुन्दर नगर बसा सकते हो और उत्तमोत्तम जनपदोंकी स्थापना कर सकते हो । जो किसी राजाके वंशका उच्छेद करके उसकी राजधानीमें दूसरे राजाको स्थापित नहीं करता, वह नरकमें पड़ता है ॥ १८½ ॥

स त्वं हत्वा मधुसुतं लवणं पापनिश्चयम् ॥ १९ ॥
राज्यं प्रशाधि धर्मेण वाक्यं मे यद्यवेक्षसे ।
उत्तरं च न वक्तव्यं शूर वाक्यान्तरे मम ॥ २० ॥
बालेन पूर्वजस्याज्ञा कर्तव्या नात्र संशयः ।
अभिषेकं च काकुत्स्थ प्रतीच्छस्व ममोद्यतम् ।
वसिष्ठप्रमुखैर्विप्रैर्विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ॥ २१ ॥

'अतः तुम मधुके पुत्र पापात्मा लवणासुरको मारकर धर्मपूर्वक वहाँके राज्यका शासन करो । शूरवीर ! यदि तुम मेरी बात मानने योग्य समझो तो मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे चुपचाप स्वीकार करो । बीचमें बात काटकर कोई उत्तर तुम्हें नहीं देना चाहिये ! बालकको अवश्य ही अपने बड़ोंकी आज्ञाका पालन करना चाहिये । शत्रुघ्न ! वसिष्ठ आदि मुख्य-मुख्य ब्राह्मण विधि और मन्त्रोच्चारणके साथ तुम्हारा अभिषेक करेंगे । मेरी आज्ञासे प्राप्त हुए इस अभिषेकको तुम स्वीकार करो' ॥ १९–२१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बासठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः

श्रीरामद्वारा शत्रुघ्नका राज्याभिषेक तथा उन्हें लवणासुरके शूलसे बचनेके उपायका प्रतिपादन

एवमुक्तस्तु रामेण परां व्रीडामुपागमत् ।
शत्रुघ्नो वीर्यसम्पन्नो मन्दं मन्दमुवाच ह ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर बल-विक्रमसे सम्पन्न शत्रुघ्न बड़े लज्जित हुए और धीरे-धीरे बोले—॥ १ ॥

अधर्मं विद्म काकुत्स्थ अस्मिन्नर्थे नरेश्वर ।
कथं तिष्ठत्सु ज्येष्ठेषु कनीयानभिषिच्यते ॥ २ ॥

'ककुत्स्थकुलभूषण नरेश्वर ! इस अभिषेकको स्वीकार करनेमें तो मुझे अधर्म जान पड़ता है । भला, बड़े भाइयोंके रहते हुए छोटेका अभिषेक कैसे किया जा सकता है ? ॥२॥

अवश्यं करणीयं च शासनं पुरुषर्षभ ।
तव चैव महाभाग शासनं दुरतिक्रमम् ॥ ३ ॥

'तथापि पुरुषप्रवर ! महाभाग ! आपकी आज्ञाका पालन तो मुझे अवश्य करना ही चाहियें । आपका शासन किसीके लिये भी दुर्लङ्घ्य है ॥ ३ ॥

त्वत्तो मया श्रुतं वीर श्रुतिभ्यश्च मया श्रुतम् ।
नोत्तरं हि मया वाच्यं मध्यमे प्रतिजानति ॥ ४ ॥

'वीर ! मैंने आपसे तथा वेदवाक्योंसे भी यह बात सुनी है । वास्तवमें मझले भैयाके प्रतिज्ञा कर लेनेपर मुझे कुछ नहीं बोलना चाहिये था ॥ ४ ॥

व्याहृतं दुर्वचो घोरं हन्तास्मि लवणं मृधे ।
तस्यैवं मे दुरुक्तस्य दुर्गतिः पुरुषर्षभ ॥ ५ ॥

'मेरे मुँहसे ये बड़े ही अनुचित शब्द निकल गये कि मैं लवणको मारूँगा । पुरुषोत्तम ! उस अनुचित कथनका ही परिणाम है कि मेरी इसप्रकार दुर्गति हो रही है (मुझे बड़ोंके होते हुए अभिषिक्त होना पड़ता है) ॥ ५ ॥

उत्तरं नहि वक्तव्यं ज्येष्ठेनाभिहिते पुनः ।
अधर्मसहितं चैव परलोकविवर्जितम् ॥ ६ ॥

'बड़े भाईके बोलनेपर मुझे फिर कुछ उत्तर नहीं देना

चाहिये था; (अर्थात् भैया भरतने जब लवणको मारनेका निर्णय कर लिया, तब मुझे उसमें दखल नहीं देना चाहिये था) परंतु मैंने इस नियमका उल्लङ्घन किया, इसीलिये आपने ऐसा (राज्याभिषेकविषयक) आदेश दे दिया। जो स्वीकार कर लेनेपर मेरे लिये अधर्मयुक्त होनेके कारण परलोकके लाभसे भी वञ्चित करनेवाला है। तथापि आपकी आज्ञा मेरे लिये दुर्लङ्घ्य है; अतः मुझे इसको स्वीकार करना ही पड़ेगा ॥ ६ ॥

सोऽहं द्वितीयं काकुत्स्थ न वक्ष्यामीति चोत्तरम्।
मा द्वितीयेन दण्डो वै निपतेन्मयि मानद ॥ ७ ॥

'काकुत्स्थ! अब आपकी जो आज्ञा हो चुकी, उसके विरुद्ध मैं दूसरा कोई उत्तर नहीं दूँगा। मानद! कहीं ऐसा न हो कि दूसरा कोई उत्तर देनेपर मुझे इससे भी कठोर दण्ड भोगना पड़े ॥ ७ ॥

कामकारो ह्यहं राजंस्तवास्मि पुरुषर्षभ।
अधर्मं जहि काकुत्स्थ मत्कृते रघुनन्दन ॥ ८ ॥

'राजन्! पुरुषप्रवर रघुनन्दन! मैं आपकी इच्छाके अनुसार ही कार्य करूँगा। किंतु इसमें मेरे लिये जो अधर्म प्राप्त होता हो, उसका नाश आप करें' ॥ ८ ॥

एवमुक्ते तु शूरेण शत्रुघ्नेन महात्मना।
उवाच रामः संहृष्टो भरतं लक्ष्मणं तथा ॥ ९ ॥

शूरवीर महात्मा शत्रुघ्नके ऐसा कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए और भरत तथा लक्ष्मण आदिसे बोले— ॥ ९ ॥

सम्भारानभिषेकस्य आनयध्वं समाहिताः।
अद्यैव पुरुषव्याघ्रमभिषेक्ष्यामि राघवम् ॥ १० ॥

'तुम सब लोग बड़ी सावधानीके साथ राज्याभिषेककी सामग्री जुटाकर ले आओ। मैं अभी रघुकुलनन्दन पुरुषसिंह शत्रुघ्नका अभिषेक करूँगा ॥ १० ॥

पुरोधसं च काकुत्स्थ नैगमानृत्विजस्तथा।
मन्त्रिणश्चैव तान् सर्वानानयध्वं ममाज्ञया ॥ ११ ॥

'काकुत्स्थ! मेरी आज्ञासे पुरोहित, वैदिक विद्वानों, ऋत्विजों तथा समस्त मन्त्रियोंको बुला लाओ' ॥ ११ ॥

राज्ञः शासनमाज्ञाय तथाकुर्वन्महारथाः।
अभिषेकसमारम्भं पुरस्कृत्य पुरोधसम् ॥ १२ ॥
प्रविष्टा राजभवनं राजानो ब्राह्मणास्तथा।

महाराजकी आज्ञा पाकर महारथी भरत और लक्ष्मण आदिने वैसा ही किया। वे पुरोहितजीको आगे करके अभिषेककी सामग्री साथ लिये राजभवनमें आये। उनके साथ ही बहुत-से राजा और ब्राह्मण भी वहाँ आ पहुँचे ॥ १२½ ॥

ततोऽभिषेको ववृधे शत्रुघ्नस्य महात्मनः ॥ १३ ॥
सम्प्रहर्षकरः श्रीमान् राघवस्य पुरस्य च।

तदनन्तर महात्मा शत्रुघ्नका वैभवशाली अभिषेक आरम्भ हुआ, जो श्रीरघुनाथजी तथा समस्त पुरवासियोंके हर्षको बढ़ानेवाला था ॥ १३½ ॥

अभिषिक्तस्तु काकुत्स्थो बभौ चादित्यसंनिभः ॥ १४ ॥
अभिषिक्तः पुरा स्कन्दः सेन्द्रैरिव दिवौकसैः।

जैसे पूर्वकालमें इन्द्र आदि देवताओंने स्कन्दका देवसेनापतिके पदपर अभिषेक किया था, उसी तरह श्रीराम आदिने वहाँ शत्रुघ्नका राजाके पदपर अभिषेक किया। इस प्रकार अभिषिक्त होकर शत्रुघ्नजी सूर्यके समान सुशोभित हुए १४½

अभिषिक्ते तु शत्रुघ्ने रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ १५ ॥
पौराः प्रमुदिताश्चासन् ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः।

क्लेशरहित कर्म करनेवाले श्रीरामके द्वारा जब शत्रुघ्नका राज्याभिषेक हुआ, तब उस नगरके निवासियों और बहुश्रुत ब्राह्मणोंको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १५½ ॥

कौसल्या च सुमित्रा च मङ्गलं केकयी तथा ॥ १६ ॥
चक्रुस्ता राजभवने याश्चान्या राजयोषितः।

इस समय कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी तथा राज्यभवनकी अन्य राजमहिलाओंने मिलकर मङ्गलकार्य सम्पन्न किया ॥ १६½ ॥

ऋषयश्च महात्मानो यमुनातीरवासिनः ॥ १७ ॥
हतं लवणमाशंसुः शत्रुघ्नस्याभिषेचनात्।

शत्रुघ्नजीका राज्याभिषेक होनेसे यमुनातीरनिवासी महात्मा ऋषियोंको यह निश्चय हो गया कि अब लवणासुर मारा गया ॥ १७½ ॥

ततोऽभिषिक्तं शत्रुघ्नमङ्कमारोप्य राघवः।
उवाच मधुरां वाणीं तेजस्तस्याभिपूरयन् ॥ १८ ॥

अभिषेकके पश्चात् शत्रुघ्नको गोदमें बिठाकर श्रीरघुनाथजीने उनका तेज बढ़ाते हुए मधुर वाणीमें कहा— ॥ १८ ॥

अयं शरस्त्वमोघस्ते दिव्यः परपुरंजयः।
अनेन लवणं सौम्य हन्तासि रघुनन्दन ॥ १९ ॥

'रघुनन्दन! सौम्य शत्रुघ्न! मैं तुम्हें यह दिव्य अमोघ बाण दे रहा हूँ। तुम इसके द्वारा लवणासुरको अवश्य मार डालोगे ॥ १९ ॥

सृष्टः शरोऽयं काकुत्स्थ यदा शेते महार्णवे।
स्वयंभूरजितो दिव्यो यं नापश्यन् सुरासुराः ॥ २० ॥
अदृश्यः सर्वभूतानां तेनायं हि शरोत्तमः।
सृष्टः क्रोधाभिभूतेन विनाशार्थं दुरात्मनोः ॥ २१ ॥
मधुकैटभयोर्वीर विघाते सर्वरक्षसाम्।
स्रष्टुकामेन लोकांस्त्रींस्तौ चानेन हतौ युधि ॥ २२ ॥
तौ हत्वा जनभोगार्थं कैटभं तु मधुं तथा।
अनेन शरमुख्येन ततो लोकांश्चकार सः ॥ २३ ॥

'काकुत्स्थ! पिछले प्रलयकालमें जब किसीसे भी पराजित न होनेवाले अजन्मा एवं दिव्य रूपधारी भगवान् विष्णु महान् एकार्णवके जलमें शयन करते थे, उस समय उन्हें देवता और

असुर कोई नहीं देख पाते थे। वे सम्पूर्ण भूतोंके लिये अदृश्य थे। वीर! उसी समय उन भगवान् नारायणने ही कुपित हो दुरात्मा मधु और कैटभके विनाश तथा समस्त राक्षसोंके संहारके लिये इस दिव्य, उत्तम एवं अमोघ बाणकी सृष्टि की थी। उस समय वे तीनों लोकोंकी सृष्टि करना चाहते थे और मधु, कैटभ तथा अन्य सब राक्षस उसमें विघ्न उपस्थित कर रहे थे। अतः भगवान्‌ने इसी बाणसे मधु और कैटभ दोनोंको युद्धमें मारा था। इस मुख्य बाणसे मधु और कैटभ दोनोंको मारकर भगवान्‌ने जीवोंके कर्मफल-भोगकी सिद्धिके लिये विभिन्न लोकोंकी रचना की ॥ २०—२३ ॥

नायं मया शरः पूर्वं रावणस्य वधार्थिना ।
मुक्तः शत्रुघ्न भूतानां महान् ह्रासो भवेदिति ॥ २४ ॥

'शत्रुघ्न! पहले मैंने रावणका वध करनेके लिये भी इस बाणका प्रयोग नहीं किया था; क्योंकि इसके द्वारा बहुत-से प्राणियोंके नष्ट हो जानेकी आशङ्का थी ॥ २४ ॥

यच्च तस्य महच्छूलं त्र्यम्बकेण महात्मना ।
दत्तं शत्रुविनाशाय मधोरायुधमुत्तमम् ॥ २५ ॥
तत् संनिक्षिप्य भवने पूज्यमानं पुनः पुनः ।
दिशः सर्वाः समासाद्य प्राप्नोत्याहारमुत्तमम् ॥ २६ ॥

'लवणके पास जो महात्मा महादेवजीका शत्रुविनाशके लिये दिया हुआ मधुका दिव्य, उत्तम एवं महान् शूल है, उसका वह प्रतिदिन बारंबार पूजन करता है और उसे महलमें ही गुप्तरूपसे रखकर समस्त दिशाओंमें जा-जाकर अपने लिये उत्तम आहारका संग्रह करता है ॥ २५-२६ ॥

यदा तु युद्धमाकाङ्क्षन् कश्चिदेनं समाह्वयेत् ।
तदा शूलं गृहीत्वा तु भस्म रक्षः करोति हि ॥ २७ ॥

'जब कोई युद्धकी इच्छा रखकर उसे ललकारता है, तब वह राक्षस उस शूलको लेकर अपने विपक्षीको भस्म कर देता है ॥ २७ ॥

स त्वं पुरुषशार्दूल तमायुधविनाकृतम् ।
अप्रविष्टं पुरं पूर्वं द्वारि तिष्ठ धृतायुधः ॥ २८ ॥

'पुरुषसिंह! जिस समय वह शूल उसके पास न हो और वह नगरमें भी न पहुँच सका हो, उसी समय पहलेसे ही नगरके द्वारपर जाकर अस्त्र-शस्त्र धारण किये उसकी प्रतीक्षामें डटे रहो ॥ २८ ॥

अप्रविष्टं च भवनं युद्धाय पुरुषर्षभ ।
आह्वयेथा महाबाहो ततो हन्तासि राक्षसम् ॥ २९ ॥

'महाबाहु पुरुषोत्तम! यदि उस राक्षसको महलमें घुसनेसे पहले ही तुम युद्धके लिये ललकारोगे, तब अवश्य उसका वध कर सकोगे ॥ २९ ॥

अन्यथा क्रियमाणे तु ह्यवध्यः स भविष्यति ।
यदि त्वेवं कृतं वीर विनाशमुपयास्यति ॥ ३० ॥

'ऐसा न करनेपर वह अवध्य हो जायगा। वीर! यदि तुमने ऐसा किया तो उस राक्षसका विनाश होकर ही रहेगा ॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं शूलस्य च विपर्ययः ।
श्रीमतः शितिकण्ठस्य कृत्यं हि दुरतिक्रमम् ॥ ३१ ॥

'इस प्रकार मैंने तुम्हें उस शूलसे बचनेका उपाय तथा अन्य सब आवश्यक बातें बता दीं; क्योंकि श्रीमान् भगवान् नीलकण्ठके विधानको पलटना बड़ा कठिन काम है' ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तिरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः

श्रीरामकी आज्ञाके अनुसार शत्रुघ्नका सेनाको आगे भेजकर एक मासके पश्चात् स्वयं भी प्रस्थान करना

एवमुक्त्वा च काकुत्स्थं प्रशस्य च पुनः पुनः ।
पुनरेवापरं वाक्यमुवाच रघुनन्दनः ॥ १ ॥

शत्रुघ्नजीको इस प्रकार समझाकर और उनकी बारंबार प्रशंसा करके रघुकुलनन्दन श्रीरामने पुनः यह बात कही—॥

इमान्यश्वसहस्राणि चत्वारि पुरुषर्षभ ।
रथानां द्वे सहस्रे च गजानां शतमुत्तमम् ॥ २ ॥
अन्तरापणवीथ्यश्च नानापण्योपशोभिताः ।
अनुगच्छन्तु काकुत्स्थं तथैव नटनर्तकाः ॥ ३ ॥

'पुरुषप्रवर! ये चार हजार घोड़े, दो हजार रथ, सौ हाथी और रास्तेमें तरह-तरहके सामानकी दूकानें लगानेवाले बनिये लोग विक्रयकी आवश्यक वस्तुओंके साथ तुम्हारे साथ जायँगे। साथ ही मनोरञ्जनके लिये नट और नर्तक भी रहेंगे ॥ २-३ ॥

हिरण्यस्य सुवर्णस्य नियुतं पुरुषर्षभ ।
आदाय गच्छ शत्रुघ्न पर्याप्तधनवाहनः ॥ ४ ॥

'पुरुषश्रेष्ठ शत्रुघ्न! तुम दस लाख स्वर्णमुद्रा लेकर जाओ। इस तरह पर्याप्त धन और सवारियाँ अपने साथ रक्खो ॥ ४ ॥

बलं च सुभृतं वीर हृष्टतुष्टमनुद्धतम् ।
सम्भाषासम्प्रदानेन रञ्जयस्व नरोत्तम ॥ ५ ॥

'इस सेनाका भलीभाँति भरण-पोषण किया गया है। यह हर्ष तथा उत्साहसे पूर्ण, संतुष्ट और उद्दण्डतासे रहित होकर आज्ञा-

के अधीन रहनेवाली है। नरश्रेष्ठ ! इसे मधुर भाषणसे और धन देकर प्रसन्न रखना ॥ ५ ॥

नह्यर्थास्तत्र तिष्ठन्ति न दारा न च बान्धवाः ।
सुप्रीतो भृत्यवर्गस्तु यत्र तिष्ठति राघव ॥ ६ ॥

'रघुनन्दन ! अत्यन्त प्रसन्न रक्खे गये सेवक-समूह (सैनिक) जहाँ (जिस संकटकालमें) खड़े होते या साथ देते हैं, वहाँ न तो धन टिक पाता है, न स्त्री ठहर सकती है और न भाई-बन्धु ही खड़े हो सकते हैं (अतः उन सबको सदा संतुष्ट रखना चाहिये) ॥ ६ ॥

अतो हृष्टजनाकीर्णां प्रस्थाप्य महतीं चमूम् ।
एक एव धनुष्पाणिर्गच्छ त्वं मधुनो वनम् ॥ ७ ॥
यथा त्वां न प्रजानाति गच्छन्तं युद्धकाङ्क्षिणम् ।
लवणस्तु मधोः पुत्रस्तथा गच्छेरशङ्कितम् ॥ ८ ॥

'इसलिये हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरी हुई इस विशाल सेनाको आगे भेजकर तुम पीछेसे अकेले ही केवल धनुष हाथमें लेकर मधुवनको जाना और इस तरह यात्रा करना, जिससे मधुपुत्र लवणको यह संदेह न हो कि तुम युद्धकी इच्छासे वहाँ जा रहे हो। तुम्हारी गति-विधिका उसे पता नहीं चलना चाहिये ॥ ७-८ ॥

न तस्य मृत्युरन्योऽस्ति कश्चिद्धि पुरुषर्षभ ।
दर्शनं योऽभिगच्छेत स वध्यो लवणेन हि ॥ ९ ॥

'पुरुषोत्तम ! मैंने जो बताया है, उसके सिवा उसकी मृत्युका दूसरा कोई उपाय नहीं है; क्योंकि जो भी शूलसहित लवणासुरके दृष्टिपथमें आ जाता है, वह अवश्य उसके द्वारा मारा जाता है॥ ९ ॥

स ग्रीष्मे अपयाते तु वर्षारात्र उपागते ।
हन्यास्त्वं लवणं सौम्य स हि कालोऽस्य दुर्मतेः ॥ १० ॥

'सौम्य ! जब ग्रीष्म-ऋतु निकल जाय और वर्षाकाल आ जाय, उस समय तुम लवणासुरका वध करना; क्योंकि उस दुर्बुद्धि राक्षसके नाशका वही समय है ॥ १० ॥

महर्षींस्तु पुरस्कृत्य प्रयान्तु तव सैनिकाः ।
यथा ग्रीष्मावशेषेण तरेयुर्जाह्नवीजलम् ॥ ११ ॥

'तुम्हारे सैनिक महर्षियोंको आगे करके यहाँसे यात्रा करें, जिससे ग्रीष्म ऋतु बीतते-बीतते वे गङ्गाजीको पार कर जायँ ॥ ११ ॥

तत्र स्थाप्य बलं सर्वं नदीतीरे समाहितः ।
अग्रतो धनुषा सार्धं गच्छ त्वं लघुविक्रम ॥ १२ ॥

'शीघ्रपराक्रमी वीर ! फिर सारी सेनाको वहीं गङ्गाजीके तटपर ठहराकर तुम धनुषमात्र लेकर पूरी सावधानीके साथ अकेले ही आगे जाना' ॥ १२ ॥

एवमुक्तस्तु रामेण शत्रुघ्नस्तान् महाबलान् ।
सेनामुख्यान् समानीय ततो वाक्यमुवाच ह ॥ १३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर शत्रुघ्नजीने अपने प्रधान सेनापतियोंको बुलाया और इस प्रकार कहा—॥ १३ ॥

एते वो गणिता वासा यत्र तत्र निवत्स्यथ ।
स्थातव्यं चाविरोधेन यथा बाधा न कस्यचित् ॥ १४ ॥

'देखो, मार्गमें जहाँ-जहाँ डेरा डालना है, उन पड़ावोंका निश्चय कर लिया गया है। तुम्हें वहीं निवास करना होगा। जहाँ भी ठहरो, विरोधभावको मनसे निकाल दो, जिससे किसीको कष्ट न पहुँचे' ॥ १४ ॥

तथा तांस्तु समाज्ञाप्य प्रस्थाप्य च महद्बलम् ।
कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं चाभ्यवादयत् ॥ १५ ॥

इस प्रकार उन सेनापतियोंको आज्ञा दे अपनी विशाल सेनाको आगे भेजकर शत्रुघ्नने कौसल्या, सुमित्रा तथा कैकेयीको प्रणाम किया ॥ १५ ॥

रामं प्रदक्षिणीकृत्य शिरसाभिप्रणम्य च ।
लक्ष्मणं भरतं चैव प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् श्रीरामकी परिक्रमा करके उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया । फिर हाथ जोड़कर भरत और लक्ष्मणकी भी वन्दना की ॥ १६ ॥

पुरोहितं वसिष्ठं च शत्रुघ्नः प्रयतात्मवान् ।
रामेण चाभ्यनुज्ञातः शत्रुघ्नः शत्रुतापनः ।
प्रदक्षिणमथो कृत्वा निर्जगाम महाबलः ॥ १७ ॥

तदनन्तर मनको संयममें रखकर शत्रुघ्नने पुरोहित वसिष्ठको नमस्कार किया। फिर श्रीरामकी आज्ञा ले उनकी परिक्रमा करके शत्रुओंको संताप देनेवाले महाबली शत्रुघ्न अयोध्यासे निकले ॥ १७ ॥

प्रस्थाप्य सेनामथ सोऽग्रतस्तदा
गजेन्द्रवाजिप्रवरौघसंकुलाम् ।
उवास मासं तु नरेन्द्रपार्श्वत-
स्त्वथ प्रयातो रघुवंशवर्धनः ॥ १८ ॥

गजराजों और श्रेष्ठ अश्वोंके समुदायसे भरी हुई विशाल सेनाको आगे भेजकर रघुवंशकी वृद्धि करनेवाले शत्रुघ्न एक मासतक महाराज श्रीरामके पास ही रहे। उसके बाद उन्होंने वहाँसे प्रस्थान किया ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमः सर्गः

महर्षि वाल्मीकिका शत्रुघ्नको सुदासपुत्र कल्माषपादकी कथा सुनाना

प्रस्थाप्य च बलं सर्वं मासमात्रोषितः पथि ।
एक एवाशु शत्रुघ्नो जगाम त्वरितं तदा ॥ १ ॥

अपनी सेनाको आगे भेजकर अयोध्यामें एक माह रहनेके पश्चात् शत्रुघ्न अकेले ही वहाँसे मधुवनके मार्गपर प्रस्थित हुए । वे बड़ी तेजीके साथ आगे बढ़ने लगे ॥ १ ॥

द्विरात्रमन्तरे शूर उष्य राघवनन्दनः ।
वाल्मीकेराश्रमं पुण्यमगच्छद् वासमुत्तमम् ॥ २ ॥

रघुकुलको आनन्दित करनेवाले शूरवीर शत्रुघ्न रास्तेमें दो रात बिताकर तीसरे दिन महर्षि वाल्मीकिके पवित्र आश्रमपर जा पहुँचे । वह सबसे उत्तम वासस्थान था ॥ २ ॥

सोऽभिवाद्य महात्मानं वाल्मीकिं मुनिसत्तमम् ।
कृताञ्जलिरथो भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ३ ॥

वहाँ उन्होंने हाथ जोड़ मुनिश्रेष्ठ महात्मा वाल्मीकिको प्रणाम करके यह बात कही—॥ ३ ॥

भगवन् वस्तुमिच्छामि गुरोः कृत्यादिहागतः ।
श्वः प्रभाते गमिष्यामि प्रतीचीं वारुणीं दिशम् ॥ ४ ॥

'भगवन् ! मैं अपने बड़े भाई श्रीरघुनाथजीके कार्यसे इधर आया हूँ । आज रातको यहाँ ठहरना चाहता हूँ और कल सवेरे वरुणदेवद्वारा पालित पश्चिम दिशाको चला जाऊँगा' ॥ ४ ॥

शत्रुघ्नस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः ।
प्रत्युवाच महात्मानं स्वागतं ते महायशः ॥ ५ ॥

शत्रुघ्नकी यह बात सुनकर मुनिवर वाल्मीकिने उन महात्माको हँसते हुए उत्तर दिया—'महायशस्वी वीर ! तुम्हारा स्वागत है ॥ ५ ॥

स्वमाश्रममिदं सौम्य राघवाणां कुलस्य वै । ✓
आसनं पाद्यमर्घ्यं च निर्विशङ्कः प्रतीच्छ मे ॥ ६ ॥

'सौम्य ! यह आश्रम रघुवंशियोंके लिये अपना ही घर है । तुम निःशङ्क होकर मेरी ओरसे आसन, पाद्य और अर्घ्य स्वीकार करो' ॥ ६ ॥

प्रतिगृह्य तदा पूजां फलमूलं च भोजनम् ।
भक्षयामास काकुत्स्थस्तृप्तिं च परमां गतः ॥ ७ ॥

तब वह सत्कार ग्रहण करके शत्रुघ्नने फल-मूलका भोजन किया । इससे उन्हें बड़ी तृप्ति हुई ॥ ७ ॥

स भुक्त्वा फलमूलं च महर्षिं तमुवाच ह ।
पूर्वा यज्ञविभूतीयं कस्याश्रमसमीपतः ॥ ८ ॥

फल-मूल खाकर वे महर्षिसे बोले—'मुने ! इस आश्रमके निकट जो यह प्राचीनकालका यज्ञ-वैभव (यूप आदि उपकरण) दिखायी देता है, किसका है—किस यजमान नरेशने यहाँ यज्ञ किया था ?' ॥ ८ ॥

तत् तस्य भाषितं श्रुत्वा वाल्मीकिर्वाक्यमब्रवीत् ।
शत्रुघ्न शृणु यस्येदं बभूवायतनं पुरा ॥ ९ ॥

उनका यह प्रश्न सुनकर वाल्मीकिजीने कहा—'शत्रुघ्न ! पूर्वकालमें जिस यजमान नरेशका यह यज्ञमण्डप रहा है, उसे बताता हूँ, सुनो ॥ ९ ॥

युष्माकं पूर्वको राजा सुदासस्तस्य भूपतेः ।
पुत्रो वीरसहो नाम वीर्यवानतिधार्मिकः ॥ १० ॥

'तुम्हारे पूर्वज राजा सुदास इस भूमण्डलके स्वामी हो गये हैं । उन भूपालके वीरसह (मित्रसह) नामक एक पुत्र हुआ, जो बड़ा पराक्रमी और अत्यन्त धर्मात्मा था ॥ १० ॥

स बाल एव सौदासो मृगयामुपचक्रमे ।
चञ्चूर्यमाणं ददृशे स शूरो राक्षसद्वयम् ॥ ११ ॥

'सुदासका वह शूरवीर पुत्र बाल्यावस्थामें ही एक दिन शिकार खेलनेके लिये वनमें गया । वहाँ उसने दो राक्षस देखे, जो सब ओर बारंबार विचर रहे थे ॥ ११ ॥

शार्दूलरूपिणौ घोरौ मृगान् बहुसहस्रशः ।
भक्षमाणावसंतुष्टौ पर्याप्तिं नैव जग्मतुः ॥ १२ ॥

'वे दोनों घोर राक्षस बाघका रूप धारण करके कई हजार मृगोंको मारकर खा गये । फिर भी संतुष्ट नहीं हुए । उनके पेट नहीं भरे ॥ १२ ॥

स तु तौ राक्षसौ दृष्ट्वा निर्मृगं च वनं कृतम् ।
क्रोधेन महताविष्टो जघानैकं महेषुणा ॥ १३ ॥

'सौदासने उन दोनों राक्षसोंको देखा । साथ ही उनके द्वारा मृगशून्य किये गये उस वनकी अवस्थापर दृष्टिपात किया । इससे वे महान् क्रोधसे भर गये और उनमेंसे एकको विशाल बाणसे मार डाला ॥ १३ ॥

विनिपात्य तमेकं तु सौदासः पुरुषर्षभः ।
विज्वरो विगतामर्षो हतं रक्षो ह्युदैक्षत ॥ १४ ॥

'एकको धराशायी करके वे पुरुषप्रवर सौदास निश्चिन्त हो गये । उनका अमर्ष जाता रहा और वे उस मरे हुए राक्षसको देखने लगे ॥ १४ ॥

निरीक्षमाणं तं दृष्ट्वा सहायं तस्य रक्षसः ।
संतापमकरोद् घोरं सौदासं चेदमब्रवीत् ॥ १५ ॥

'उस राक्षसके मरे हुए साथीको जब सौदास देख रहे थे, उस समय उनकी ओर दृष्टिपात करके उस दूसरे राक्षसने मन-ही-मन घोर संताप किया और सौदाससे इस प्रकार कहा—॥

यस्मादनपराधं तं सहायं मम जघ्निवान् ।
तस्मात् तवापि पापिष्ठ प्रदास्यामि प्रतिक्रियाम् ॥ १६ ॥

''महापापी नरेश ! तूने मेरे निरपराध साथीको मार डाला है, इसलिये मैं तुझसे भी इसका बदला लूँगा' ॥ १६ ॥

एवमुक्त्वा तु तद् रक्षस्तत्रैवान्तरधीयत ।
कालपर्याययोगेन राजा मित्रसहोऽभवत् ॥ १७ ॥

'ऐसा कहकर वह राक्षस वहीं अन्तर्धान हो गया और

दीर्घकालके पश्चात् सुदासकुमार मित्रसह अयोध्याके राजा हो गये ॥ १७ ॥

राजापि यजते यज्ञमस्याश्रमसमीपतः ।
अश्वमेधं महायज्ञं तं वसिष्ठोऽप्यपालयत् ॥ १८ ॥

'उन्हीं राजा मित्रसहने इस आश्रमके समीप अश्वमेध नामक महायज्ञका अनुष्ठान किया । महर्षि वसिष्ठ अपने तपोबलसे उस यज्ञकी रक्षा करते थे ॥ १८ ॥

तत्र यज्ञो महानासीद् बहुवर्षगणायुतः ।
समृद्धः परया लक्ष्म्या देवयज्ञसमोऽभवत् ॥ १९ ॥

'उनका वह महान् यज्ञ बहुत वर्षोंतक यहाँ चलता रहा । वह भारी धन-सम्पत्तिसे सम्पन्न यज्ञ देवताओंके यज्ञकी समानता करता था ॥ १९ ॥

अथावसाने यज्ञस्य पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
वसिष्ठरूपी राजानमिति होवाच राक्षसः ॥ २० ॥

'उस यज्ञकी समाप्ति होनेपर पहलेके वैरका स्मरण करनेवाला वह राक्षस वसिष्ठजीका रूप धारण करके राजाके पास आया और इस प्रकार बोला—॥ २० ॥

अद्य यज्ञावसानान्ते सामिषं भोजनं मम ।
दीयतामतिशीघ्रं वै नात्र कार्या विचारणा ॥ २१ ॥

''राजन् ! आज यज्ञकी समाप्तिका दिन है, अतः आज मुझे तुम शीघ्र ही मांसयुक्त भोजन दो । इस विषयमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये' ॥ २१ ॥

तच्छ्रुत्वा व्याहृतं वाक्यं रक्षसा ब्रह्मरूपिणा ।
सूदान् संस्कारकुशलानुवाच पृथिवीपतिः ॥ २२ ॥

'ब्राह्मणरूपधारी राक्षसकी कही हुई बात सुनकर राजाने रसोई बनानेमें कुशल रसोइयोंसे कहा—॥ २२ ॥

हविष्यं सामिषं स्वादु यथा भवति भोजनम् ।
तथा कुरुत शीघ्रं वै परितुष्येद् यथा गुरुः ॥ २३ ॥

''तुमलोग आज शीघ्र ही मांसयुक्त हविष्य तैयार करो और उसे ऐसा बनाओ, जिससे स्वादिष्ट भोजन हो सके तथा मेरे गुरुदेव उससे संतुष्ट हो सकें' ॥ २३ ॥

शासनात् पार्थिवेन्द्रस्य सूदः सम्भ्रान्तमानसः ।
तच्च रक्षः पुनस्तत्र सूदवेषमथाकरोत् ॥ २४ ॥

'महाराजकी इस आज्ञाको सुनते ही रसोइयेके मनमें बड़ी घबराहट पैदा हो गयी (वह सोचने लगा, आज गुरुजी अभक्ष्य-भक्षणमें कैसे प्रवृत्त होंगे) । यह देख फिर उस राक्षसने ही रसोइयेका वेष बना लिया ॥ २४ ॥

स मानुषमथो मांसं पार्थिवाय न्यवेदयत् ।
इदं स्वादु हविष्यं च सामिषं चान्नमाहृतम् ॥ २५ ॥

'उसने मनुष्यका मांस लाकर राजाको दे दिया और कहा—'यह मांसयुक्त अन्न एवं हविष्य लाया हूँ । यह बड़ा ही स्वादिष्ट है' ॥ २५ ॥

स भोजनं वसिष्ठाय पत्न्या सार्धमुपाहरत् ।
मदयन्त्या नरश्रेष्ठ सामिषं रक्षसा हृतम् ॥ २६ ॥

'नरश्रेष्ठ ! अपनी पत्नी रानी मदयन्तीके साथ राजा मित्रसहने राक्षसके लाये हुए उस मांसयुक्त भोजनको वसिष्ठजीके सामने रक्खा ॥ २६ ॥

ज्ञात्वा तदामिषं विप्रो मानुषं भाजनं गतम् ।
क्रोधेन महताविष्टो व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ २७ ॥

'थालीमें मानव-मांस परोसा गया है, यह जानकर ब्रह्मर्षि वसिष्ठ महान् क्रोधसे भर गये और इस प्रकार बोले—॥२७॥

यस्मात् त्वं भोजनं राजन् ममैतद् दातुमिच्छसि ।
तस्माद् भोजनमेतत् ते भविष्यति न संशयः ॥ २८ ॥

''राजन् ! तुम मुझे ऐसा भोजन देना चाहते हो, इसलिये यही तुम्हारा भोजन होगा; इसमें संशय नहीं है (अर्थात् तुम मनुष्यभक्षी राक्षस हो जाओगे)' ॥ २८ ॥

ततः क्रुद्धस्तु सौदासस्तोयं जग्राह पाणिना ।
वसिष्ठं शप्तुमारेभे भार्या चैनमवारयत् ॥ २९ ॥

'यह सुनकर सौदासने भी कुपित हो हाथमें जल ले लिया और वसिष्ठ मुनिको शाप देना आरम्भ किया । तबतक उनकी पत्नीने उन्हें रोक दिया ॥ २९ ॥

राजन् प्रभुर्यतोऽस्माकं वसिष्ठो भगवानृषिः ।
प्रतिशप्तुं न शक्तस्त्वं देवतुल्यं पुरोधसम् ॥ ३० ॥

'वे बोलीं—'राजन् ! भगवान् वसिष्ठ मुनि हम सबके स्वामी हैं; अतः आप अपने देवतुल्य पुरोहितको बदलेमें शाप नहीं दे सकते' ॥ ३० ॥

ततः क्रोधमयं तोयं तेजोबलसमन्वितम् ।
व्यसर्जयत धर्मात्मा ततः पादौ सिषेच च ॥ ३१ ॥

'तब धर्मात्मा राजाने तेज और बलसे सम्पन्न उस क्रोधमय जलको नीचे डाल दिया । उससे अपने दोनों पैरोंको ही सींच लिया ॥ ३१ ॥

तेनास्य राज्ञस्तौ पादौ तदा कल्माषतां गतौ ।
तदाप्रभृति राजासौ सौदासः सुमहायशाः ॥ ३२ ॥
कल्माषपादः संवृत्तः ख्यातश्चैव तथा नृपः ।

ऐसा करनेसे राजाके दोनों पैर तत्काल चितकबरे हो गये । तभीसे महायशस्वी राजा सौदास कल्माषपाद (चितकबरे पैरवाले) हो गये और उसी नामसे उनकी ख्याति हुई ॥ ३२½ ॥

स राजा सह पत्न्या वै प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः ।
पुनर्वसिष्ठं प्रोवाच यदुक्तं ब्रह्मरूपिणा ॥ ३३ ॥

'तदनन्तर पत्नीसहित राजाने बारंबार प्रणाम करके फिर वसिष्ठसे कहा—'ब्रह्मर्षे ! आपहीका रूप धारण करके किसीने मुझे ऐसा भोजन देनेके लिये प्रेरित किया था' ॥ ३३ ॥

तच्छ्रुत्वा पार्थिवेन्द्रस्य रक्षसा विकृतं च तत् ।
पुनः प्रोवाच राजानं वसिष्ठः पुरुषर्षभम् ॥ ३४ ॥

'राजाधिराज मित्रसहकी वह बात सुनकर और उसे

राक्षसकी करतूत जानकर वसिष्ठने पुनः उन नरश्रेष्ठ नरेशसे कहा—॥ ३४ ॥

मया रोषपरीतेन यदिदं व्याहृतं वचः ।
नैतच्छक्यं वृथा कर्तुं प्रदास्यामि च ते वरम् ॥ ३५ ॥

''राजन् ! मैंने रोषसे भरकर जो बात कह दी है, इसे व्यर्थ नहीं किया जा सकता; परंतु इससे छूटनेके लिये मैं तुम्हें एक वर दूँगा ॥ ३५ ॥

कालो द्वादशवर्षाणि शापस्यान्तो भविष्यति ।
मत् प्रसादाच्च राजेन्द्र अतीतं न स्मरिष्यसि ॥ ३६ ॥

''राजेन्द्र ! वह वर इस प्रकार है—यह शाप बारह वर्षोंतक रहेगा । उसके बाद इसका अन्त हो जायगा । मेरी कृपासे तुम्हें बीती हुई बातका स्मरण नहीं रहेगा' ॥ ३६ ॥

एवं स राजा तं शापमुपभुज्यारिसूदनः ।
प्रतिलेभे पुना राज्यं प्रजाश्चैवान्वपालयत् ॥ ३७ ॥

'इस प्रकार उस शत्रुसूदन राजाने बारह वर्षोंतक उस शापको भोगकर पुनः अपना राज्य पाया और प्रजाजनोंका निरन्तर पालन किया ॥ ३७ ॥

तस्य कल्माषपादस्य यज्ञस्यायतनं शुभम् ।
आश्रमस्य समीपेऽस्य यन्मां पृच्छसि राघव ॥ ३८ ॥

'रघुनन्दन ! उन्हीं राजा कल्माषपादके यज्ञका यह सुन्दर स्थान मेरे इस आश्रमके समीप दिखायी देता है, जिसके विषयमें तुम पूछ रहे थे' ॥ ३८ ॥

तस्य तां पार्थिवेन्द्रस्य कथां श्रुत्वा सुदारुणाम् ।
विवेश पर्णशालायां महर्षिमभिवाद्य च ॥ ३९ ॥

महाराज मित्रसहकी उस अत्यन्त दारुण कथाको सुनकर शत्रुघ्नने महर्षिको प्रणाम करके पर्णशालामें प्रवेश किया ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पैंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः

सीताके दो पुत्रोंका जन्म, वाल्मीकिद्वारा उनकी रक्षाकी व्यवस्था और इस समाचारसे प्रसन्न हुए शत्रुघ्नका वहाँसे प्रस्थान करके यमुनातटपर पहुँचना

यामेव रात्रिं शत्रुघ्नः पर्णशालां समाविशत् ।
तामेव रात्रिं सीतापि प्रसूता दारकद्वयम् ॥ १ ॥

जिस रातको शत्रुघ्नने पर्णशालामें प्रवेश किया था, उसी रातमें सीताजीने दो पुत्रोंको जन्म दिया ॥ १ ॥

ततोऽर्धरात्रसमये बालका मुनिदारकाः ।
वाल्मीकेः प्रियमाचख्युः सीतायाः प्रसवं शुभम् ॥ २ ॥

तदनन्तर आधी रातके समय कुछ मुनिकुमारोंने वाल्मीकिजीके पास आकर उन्हें सीताजीके प्रसव होनेका शुभ एवं प्रिय समाचार सुनाया—॥ २ ॥

भगवन् रामपत्नी सा प्रसूता दारकद्वयम् ।
ततो रक्षां महातेजः कुरु भूतविनाशिनीम् ॥ ३ ॥

'भगवन् ! श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नीने दो पुत्रोंको जन्म दिया है; अतः महातेजस्वी महर्षे ! आप उनकी बालग्रहजनित बाधा निवृत्त करनेवाली रक्षा करें' ॥ ३ ॥

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा महर्षिः समुपागमत् ।
बालचन्द्रप्रतीकाशौ देवपुत्रौ महौजसौ ॥ ४ ॥

उन कुमारोंकी वह बात सुनकर महर्षि उस स्थानपर गये । सीताके वे दोनों पुत्र बालचन्द्रमाके समान सुन्दर तथा देवकुमारोंके समान महातेजस्वी थे ॥ ४ ॥

जगाम तत्र हृष्टात्मा ददर्श च कुमारकौ ।
भूतघ्नीं चाकरोत् ताभ्यां रक्षां रक्षोविनाशिनीम् ॥ ५ ॥

वाल्मीकिजीने प्रसन्नचित्त होकर सूतिकागारमें प्रवेश किया और उन दोनों कुमारोंको देखा तथा उनके लिये भूतों और राक्षसोंका विनाश करनेवाली रक्षाकी व्यवस्था की ॥ ५ ॥

कुशमुष्टिमुपादाय लवं चैव तु स द्विजः ।
वाल्मीकिः प्रददौ ताभ्यां रक्षां भूतविनाशिनीम् ॥ ६ ॥

ब्रह्मर्षि वाल्मीकिने एक कुशाओंका मुट्ठा और उनके लव लेकर उनके द्वारा उन दोनों बालकोंकी भूत-बाधाका निवारण करनेके लिये रक्षा-विधिका उपदेश दिया—॥ ६ ॥

यस्तयोः पूर्वजो जातः स कुशैर्मन्त्रसत्कृतैः ।
निर्मार्जनीयस्तु तदा कुश इत्यस्य नाम तत् ॥ ७ ॥
यश्चावरो भवेत् ताभ्यां लवेन सुसमाहितः ।
निर्मार्जनीयो वृद्धाभिर्लवेति च स नामतः ॥ ८ ॥

'वृद्धा स्त्रियोंको चाहिये कि इन दोनों बालकोंमें जो पहले उत्पन्न हुआ है, उसका मन्त्रोंद्वारा संस्कार किये हुए इन कुशोंसे मार्जन करें । ऐसा करनेपर उस बालकका नाम 'कुश' होगा और उनमें जो छोटा है, उसका लवसे मार्जन करें । इससे उसका नाम 'लव' होगा ॥ ७-८ ॥

एवं कुशलवौ नाम्ना तावुभौ यमजातकौ ।
मत्कृताभ्यां च नामभ्यां ख्यातियुक्तौ भविष्यतः ॥ ९ ॥

'इस प्रकार जुड़वें उत्पन्न हुए ये दोनों बालक क्रमशः कुश और लव नाम धारण करेंगे और मेरे द्वारा निश्चित किये गये इन्हीं नामोंसे भूमण्डलमें विख्यात होंगे' ॥ ९ ॥

तां रक्षां जगृहुस्तां च मुनिहस्तात् समाहिताः ।
अकुर्वंश्च ततो रक्षां तयोर्विगतकल्मषाः ॥ १० ॥

यह सुनकर निष्पाप वृद्धा स्त्रियोंने एकाग्रचित्त हो मुनिके

हाथसे रक्षाके साधनभूत उन कुशोंको ले लिया और उनके द्वारा उन दोनों बालकोंका मार्जन एवं संरक्षण किया ॥ १० ॥

तथा तां क्रियमाणां च वृद्धाभिर्गोत्रनाम च ।
संकीर्तनं च रामस्य सीतायाः प्रसवौ शुभौ ॥ ११ ॥
अर्धरात्रे तु शत्रुघ्नः शुश्राव सुमहत् प्रियम् ।
पर्णशालां ततो गत्वा मातर्दिष्ट्येति चाब्रवीत् ॥ १२ ॥

जब वृद्धा स्त्रियाँ इस प्रकार रक्षा करने लगीं, उस समय आधी रातको श्रीराम और सीताके नाम, गोत्रके उच्चारणकी ध्वनि शत्रुघ्नजीके कानोंमें पड़ी। साथ ही उन्हें सीताके दो सुन्दर पुत्र होनेका संवाद प्राप्त हुआ। तब वे सीताजीकी पर्णशालामें गये और बोले—'माताजी! यह बड़े सौभाग्यकी बात है' ॥ ११-१२ ॥

तदा तस्य प्रहृष्टस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः ।
व्यतीता वार्षिकी रात्रिः श्रावणी लघुविक्रमा ॥ १३ ॥

महात्मा शत्रुघ्न उस समय इतने प्रसन्न थे कि उनकी वह वर्षाकालिक सावनकी रात बात-की-बातमें बीत गयी ॥

प्रभाते सुमहावीर्यः कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम् ।
मुनिं प्राञ्जलिरामन्त्र्य ययौ पश्चान्मुखः पुनः ॥ १४ ॥

सबेरा होनेपर पूर्वाह्णकालका कार्य संध्या-वन्दन आदि करके महापराक्रमी शत्रुघ्न हाथ जोड़ मुनिसे विदा ले पश्चिम दिशाकी ओर चल दिये ॥ १४ ॥

स गत्वा यमुनातीरं सप्तरात्रोषितः पथि ।
ऋषीणां पुण्यकीर्तीनामाश्रमे वासमभ्ययात् ॥ १५ ॥

मार्गमें सात रात बिताकर वे यमुना-तटपर जा पहुँचे और वहाँ पुण्यकीर्ति महर्षियोंके आश्रममें रहने लगे ॥ १५ ॥

स तत्र मुनिभिः सार्धं भार्गवप्रमुखैर्नृपः ।
कथाभिरभिरूपाभिर्वासं चक्रे महायशाः ॥ १६ ॥

महायशस्वी राजा शत्रुघ्नने वहाँ च्यवन आदि मुनियोंके साथ सुन्दर कथा-वार्ताद्वारा कालक्षेप करते हुए निवास किया॥

स काञ्चनाद्यैर्मुनिभिः समेतै-
र्रघुप्रवीरो रजनीं तदानीम् ।
कथाप्रकारैर्बहुभिर्महात्मा
विरामयामास नरेन्द्रसूनुः ॥ १७ ॥

इस प्रकार रघुकुलके प्रमुख वीर महात्मा राजकुमार शत्रुघ्न वहाँ एकत्र हुए च्यवन आदि मुनियोंके साथ नाना प्रकारकी कथाएँ सुनते हुए उन दिनों यमुनातटपर रात बिताने लगे ॥ १७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छाछठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः

च्यवन मुनिका शत्रुघ्नको लवणासुरके शूलकी शक्तिका परिचय देते हुए राजा मान्धाताके वधका प्रसंग सुनाना

अथ रात्र्यां प्रवृत्तायां शत्रुघ्नो भृगुनन्दनम् ।
पप्रच्छ च्यवनं विप्रं लवणस्य यथाबलम् ॥ १ ॥
शूलस्य च बलं ब्रह्मन् के च पूर्वं विनाशिताः ।
अनेन शूलमुख्येन द्वन्द्वयुद्धमुपागताः ॥ २ ॥

एक दिन रातके समय शत्रुघ्नने भृगुनन्दन ब्रह्मर्षि च्यवनसे पूछा—'ब्रह्मन्! लवणासुरमें कितना बल है? उसके शूलमें कितनी शक्ति है? उस उत्तम शूलके द्वारा उसने द्वन्द्व-युद्धमें आये हुए किन-किन योद्धाओंका वध किया है?' ॥ १-२ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा शत्रुघ्नस्य महात्मनः ।
प्रत्युवाच महातेजाश्च्यवनो रघुनन्दनम् ॥ ३ ॥

महात्मा शत्रुघ्नजीका यह वचन सुनकर महातेजस्वी च्यवनने उन रघुकुलनन्दन राजकुमारसे कहा—॥ ३ ॥

असंख्येयानि कर्माणि यान्यस्य रघुनन्दन ।
इक्ष्वाकुवंशप्रभवे यद् वृत्तं तच्छृणुष्व मे ॥ ४ ॥

'रघुनन्दन! इस लवणासुरके कर्म असंख्य हैं। उनमेंसे एक ऐसे कर्मका वर्णन किया जाता है, जो इक्ष्वाकुवंशी राजा मान्धाताके ऊपर घटित हुआ था। तुम उसे मेरे मुँहसे सुनो ॥ ४ ॥

अयोध्यायां पुरा राजा युवनाश्वसुतो बली । ✓
मांधाता इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु वीर्यवान् ॥ ५ ॥

'पूर्वकालकी बात है अयोध्यापुरीमें युवनाश्वके पुत्र राजा मान्धाता राज्य करते थे। वे बड़े बलवान्, पराक्रमी तथा तीनों लोकोंमें विख्यात थे ॥ ५ ॥

स कृत्वा पृथिवीं कृत्स्नां शासने पृथिवीपतिः ।
सुरलोकमितो जेतुमुद्योगमकरोन्नृपः ॥ ६ ॥ ✓

'उन पृथिवीपति नरेशने सारी पृथ्वीको अपने अधिकारमें करके यहाँसे देवलोकपर विजय पानेका उद्योग आरम्भ किया ॥ ६ ॥

इन्द्रस्य च भयं तीव्रं सुराणां च महात्मनाम् ।
मांधातरि कृतोद्योगे देवलोकजिगीषया ॥ ७ ॥

'राजा मान्धाताने जब देवलोकपर विजय पानेकी इच्छासे उद्योग आरम्भ किया, तब इन्द्र तथा महामनस्वी देवताओंको बड़ा भय हुआ ॥ ७ ॥

अर्धासनेन शक्रस्य राज्यार्धेन च पार्थिवः ।
वन्द्यमानः सुरगणैः प्रतिज्ञामध्यरोहत ॥ ८ ॥

''मैं इन्द्रका आधा सिंहासन और उनका आधा राज्य

लेकर भूमण्डलका राजा हो देवताओंसे वन्दित होकर रहूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा करके वे स्वर्गलोकपर जा चढ़े ॥ ८ ॥

तस्य पापमभिप्रायं विदित्वा पाकशासनः ।
सान्त्वपूर्वमिदं वाक्यमुवाच युवनाश्वजम् ॥ ९ ॥

'उनके खोटे अभिप्रायको जानकर पाकशासन इन्द्र उन युवनाश्व पुत्र मान्धाताके पास गये और उन्हें शान्तिपूर्वक समझाते हुए इस प्रकार बोले—॥ ९ ॥

राजा त्वं मानुषे लोके न तावत् पुरुषर्षभ ।
अकृत्वा पृथिवीं वश्यां देवराज्यमिहेच्छसि ॥ १० ॥

''पुरुषप्रवर ! अभी तुम सारे मर्त्यलोकके भी राजा नहीं हो । समूची पृथ्वीको वशमें किये बिना ही देवताओंका राज्य कैसे लेना चाहते हो ॥ १० ॥

यदि वीर समग्रा ते मेदिनी निखिला वशे ।
देवराज्यं कुरुष्वेह सभृत्यबलवाहनः ॥ ११ ॥

''वीर ! यदि सारी पृथ्वी तुम्हारे वशमें हो जाय तो तुम सेवकों, सेनाओं और सवारियोंसहित यहाँ देवलोकका राज्य करना' ॥ ११ ॥

इन्द्रमेवं ब्रुवाणं तं मांधाता वाक्यमब्रवीत् ।
क मे शक्र प्रतिहतं शासनं पृथिवीतले ॥ १२ ॥

'ऐसी बातें कहते हुए इन्द्रसे मान्धाताने पूछा—'देवराज ! बताइये तो सही, इस पृथ्वीपर कहाँ मेरे आदेशकी अवहेलना होती है' ॥ १२ ॥

तमुवाच सहस्राक्षो लवणो नाम राक्षसः ।
मधुपुत्रो मधुवने न तेऽऽज्ञां कुरुतेऽनघ ॥ १३ ॥

'तब इन्द्रने कहा—'निष्पाप नरेश ! मधुवनमें मधुका पुत्र लवणासुर रहता है । वह तुम्हारी आज्ञा नहीं मानता' ॥

तच्छ्रुत्वा विप्रियं घोरं सहस्राक्षेण भाषितम् ।
व्रीडितोऽवाङ्मुखो राजा व्याहर्तुं न शशाक ह ॥ १४ ॥

'इन्द्रकी कही हुई यह घोर अप्रिय बात सुनकर राजा मान्धाताका मुख लज्जासे झुक गया । वे कुछ बोल न सके ॥ १४ ॥

आमन्त्र्य तु सहस्राक्षं प्रायात् किंचिदवाङ्मुखः ।
पुनरेवागमच्छ्रीमानिमं लोकं नरेश्वरः ॥ १५ ॥

'वे नरेश इन्द्रसे विदा ले मुँह लटकाये वहाँसे चल दिये और पुनः इस मर्त्यलोकमें ही आ पहुँचे ॥ १५ ॥

स कृत्वा हृदयेऽमर्षं सभृत्यबलवाहनः ।
आजगाम मधोः पुत्रं वशे कर्तुमरिंदमः ॥ १६ ॥

'उन्होंने अपने हृदयमें अमर्ष भर लिया । फिर वे शत्रुदमन मान्धाता मधुके पुत्रको वशमें करनेके लिये सेवक, सेना और सवारियोंसहित उसकी राजधानीके समीप आये ॥ १६ ॥

स काङ्क्षमाणो लवणं युद्धाय पुरुषर्षभः ।
दूतं सम्प्रेषयामास सकाशं लवणस्य सः ॥ १७ ॥

'उन पुरुषप्रवर नरेशने युद्धकी इच्छासे लवणके पास अपना दूत भेजा ॥ १७ ॥

स गत्वा विप्रियाण्याह बहूनि मधुनः सुतम् ।
वदन्तमेवं तं दूतं भक्षयामास राक्षसः ॥ १८ ॥

'दूतने वहाँ जाकर मधुके पुत्रको बहुत-से कटुवचन सुनाये । इस तरह कठोर बातें कहते हुए उस दूतको वह राक्षस तुरंत खा गया ॥ १८ ॥

चिरायमाणे दूते तु राजा क्रोधसमन्वितः ।
अर्दयामास तद् रक्षः शरवृष्ट्या समन्ततः ॥ १९ ॥

'जब दूतके लौटनेमें विलम्ब हुआ, तब राजा बड़े क्रुद्ध हुए और बाणोंकी वर्षा करके उस राक्षसको सब ओरसे पीड़ित करने लगे ॥ १९ ॥

ततः प्रहस्य तद् रक्षः शूलं जग्राह पाणिना ।
वधाय सानुबन्धस्य मुमोचायुधमुत्तमम् ॥ २० ॥

'तब लवणासुरने हँसकर हाथसे वह शूल उठाया और सेवकोंसहित राजा मान्धाताका वध करनेके लिये उस उत्तम अस्त्रको उनके ऊपर छोड़ दिया ॥ २० ॥

तच्छूलं दीप्यमानं तु सभृत्यबलवाहनम् ।
भस्मीकृत्वा नृपं भूयो लवणस्यागमत् करम् ॥ २१ ॥

'वह चमचमाता हुआ शूल सेवक, सेना और सवारियोंसहित राजा मान्धाताको भस्म करके फिर लवणासुरके हाथमें आ गया ॥ २१ ॥

एवं स राजा सुमहान् हतः सबलवाहनः ।
शूलस्य तु बलं सौम्य अप्रमेयमनुत्तमम् ॥ २२ ॥

'इस प्रकार सारी सेना और सवारियोंके साथ महाराज मान्धाता मारे गये । सौम्य ! उस शूलकी शक्ति असीम और सबसे बढ़ी-चढ़ी है ॥ २२ ॥

श्वः प्रभाते तु लवणं वधिष्यसि न संशयः ।
अगृहीतायुधं क्षिप्रं ध्रुवो हि विजयस्तव ॥ २३ ॥

'राजन् ! कल सबेरे जबतक वह राक्षस उस अस्त्रको न ले, तबतक ही शीघ्रता करनेपर तुम निःसंदेह उसका वध कर सकोगे और इस प्रकार निश्चय ही तुम्हारी विजय होगी ॥ २३ ॥

लोकानां स्वस्ति चैवं स्यात् कृते कर्मणि च त्वया ।
एतत् ते सर्वमाख्यातं लवणस्य दुरात्मनः ॥ २४ ॥
शूलस्य च बलं घोरमप्रमेयं नरर्षभ ।
विनाशश्चैव मांधातुर्यत्नेनाभूच्च पार्थिव ॥ २५ ॥

'तुम्हारे द्वारा यह कार्य सम्पन्न होनेपर समस्त लोकोंका कल्याण होगा । नरश्रेष्ठ ! इस तरह मैंने तुम्हें दुरात्मा लवणका सारा बल बता दिया और उसके शूलकी भी घोर एवं असीम शक्तिका परिचय दे दिया । पृथ्वीनाथ ! इन्द्रके प्रयत्नसे उसी शूलके द्वारा राजा मान्धाताका विनाश हुआ था ॥ २४-२५ ॥

त्वं श्वः प्रभाते लवणं महात्मन्
वधिष्यसे नात्र तु संशयो मे ।

शूलं विना निर्गतमामिषार्थे
ध्रुवो जयस्ते भविता नरेन्द्र ॥ २६ ॥

'महात्मन् ! कल सवेरे जब वह शूल लिये बिना ही मांसका संग्रह करनेके लिये निकलेगा, तभी तुम उसका वध कर डालोगे, इसमें संशय नहीं है । नरेन्द्र ! अवश्य तुम्हारी विजय होगी' ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे **सप्तषष्टितमः सर्गः** ॥ ६७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः

लवणासुरका आहारके लिये निकलना, शत्रुघ्नका मधुपुरीके द्वारपर डट जाना और लौटे हुए लवणासुरके साथ उनकी रोषभरी बातचीत

कथां कथयतां तेषां जयं चाकाङ्क्षतां शुभम् ।
व्यतीता रजनी शीघ्रं शत्रुघ्नस्य महात्मनः ॥ १ ॥

इस प्रकार कथा कहते और शुभ विजयकी आकाङ्क्षा रखते हुए उन मुनियोंकी बातें सुनते-सुनते महात्मा शत्रुघ्नकी वह रात बात-की-बातमें बीत गयी ॥ १ ॥

ततः प्रभाते विमले तस्मिन् काले स राक्षसः ।
निर्गतस्तु पुराद् वीरो भक्ष्याहारप्रचोदितः ॥ २ ॥

तदनन्तर निर्मल प्रभातकाल होनेपर भक्ष्य पदार्थ एवं भोजनके संग्रहकी इच्छासे प्रेरित हो वह वीर राक्षस अपने नगरसे बाहर निकला ॥ २ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरः शत्रुघ्नो यमुनां नदीम् ।
तीर्त्वा मधुपुरद्वारि धनुष्पाणिरतिष्ठत ॥ ३ ॥

इसी बीचमें वीर शत्रुघ्न यमुना नदीको पार करके हाथमें धनुष लिये मधुपुरीके द्वारपर खड़े हो गये ॥ ३ ॥

ततोऽर्धदिवसे प्राप्ते क्रूरकर्मा स राक्षसः ।
आगच्छद् बहुसाहस्रं प्राणिनां भारमुद्वहन् ॥ ४ ॥

तत्पश्चात् मध्याह्न होनेपर वह क्रूरकर्मा राक्षस हजारों प्राणियोंका बोझा लिये वहाँ आया ॥ ४ ॥

ततो ददर्श शत्रुघ्नं स्थितं द्वारि धृतायुधम् ।
तमुवाच ततो रक्षः किमनेन करिष्यसि ॥ ५ ॥
ईदृशानां सहस्राणि सायुधानां नराधम ।
भक्षितानि मया रोषात् कालेनानुगतो ह्यसि ॥ ६ ॥

उस समय उसने शत्रुघ्नको अस्त्र-शस्त्र लिये द्वारपर खड़ा देखा । देखकर वह राक्षस उनसे बोला—'नराधम ! इस हथियारसे तू मेरा क्या कर लेगा । तेरे-जैसे हजारों अस्त्र-शस्त्रधारी मनुष्योंको मैं रोषपूर्वक खा चुका हूँ । जान पड़ता है काल तेरे सिरपर नाच रहा है ॥ ५-६ ॥

आहारश्चाप्यसम्पूर्णो ममायं पुरुषाधम ।
स्वयं प्रविष्टोऽद्य मुखं कथमासाद्य दुर्मते ॥ ७ ॥

'पुरुषाधम ! आजका यह मेरा आहार भी पूरा नहीं है । दुर्मते ! तू स्वयं ही मेरे मुँहमें कैसे आ पड़ा ?' ॥ ७ ॥

तस्यैवं भाषमाणस्य हसतश्च मुहुर्मुहुः ।
शत्रुघ्नो वीर्यसम्पन्नो रोषादश्रूण्यवासृजत् ॥ ८ ॥

वह राक्षस इस प्रकारकी बातें कहता हुआ बारंबार हँस रहा था । यह देख पराक्रमी शत्रुघ्नके नेत्रोंसे रोषके कारण अश्रुपात होने लगा ॥ ८ ॥

तस्य रोषाभिभूतस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः ।
तेजोमया मरीच्यस्तु सर्वगात्रैर्विनिष्पतन् ॥ ९ ॥

रोषके वशीभूत हुए महामनस्वी शत्रुघ्नके सभी अङ्गोंसे तेजोमयी किरणें छिटकने लगीं ॥ ९ ॥

उवाच च सुसंक्रुद्धः शत्रुघ्नः स निशाचरम् ।
योद्धुमिच्छामि दुर्बुद्धे द्वन्द्वयुद्धं त्वया सह ॥ १० ॥

उस समय अत्यन्त कुपित हुए शत्रुघ्न उस निशाचरसे बोले—'दुर्बुद्धे ! मैं तेरे साथ द्वन्द्वयुद्ध करना चाहता हूँ ॥

पुत्रो दशरथस्याहं भ्राता रामस्य धीमतः ।
शत्रुघ्नो नाम शत्रुघ्नो वधाकाङ्क्षी तवागतः ॥ ११ ॥

'मैं महाराज दशरथका पुत्र और परम बुद्धिमान् राजा श्रीरामका भाई हूँ । मेरा नाम शत्रुघ्न है और मैं कामसे भी शत्रुघ्न (शत्रुओंका संहार करनेवाला) ही हूँ । इस समय तेरा वध करनेके लिये यहाँ आया हूँ ॥ ११ ॥

तस्य मे युद्धकामस्य द्वन्द्वयुद्धं प्रदीयताम् ।
शत्रुस्त्वं सर्वभूतानां न मे जीवन् गमिष्यसि ॥ १२ ॥

'मैं युद्ध करना चाहता हूँ । इसलिये तू मुझे द्वन्द्वयुद्धका अवसर दे । तू सम्पूर्ण प्राणियोंका शत्रु है; इसलिये अब मेरे हाथसे जीवित बचकर नहीं जा सकेगा' ॥ १२ ॥

तस्मिंस्तथा ब्रुवाणे तु राक्षसः प्रहसन्निव ।
प्रत्युवाच नरश्रेष्ठं दिष्ट्या प्राप्तोऽसि दुर्मते ॥ १३ ॥

उनके ऐसा कहनेपर वह राक्षस उन नरश्रेष्ठ शत्रुघ्नसे हँसता हुआ-सा बोला—'दुर्मते ! सौभाग्यकी बात है कि आज तू स्वयं ही मुझे मिल गया ॥ १३ ॥

मम मातृष्वसुर्भ्राता रावणो नाम राक्षसः ।
हतो रामेण दुर्बुद्धे स्त्रीहेतोः पुरुषाधम ॥ १४ ॥

'खोटी बुद्धिवाले नराधम ! रावण नामक राक्षस मेरी मौसी शूर्पणखाका भाई था, जिसे तेरे भाई रामने एक स्त्रीके लिये मार डाला ॥ १४ ॥

तच्च सर्वं मया क्षान्तं रावणस्य कुलक्षयम् ।

अवज्ञां पुरतः कृत्वा मया यूयं विशेषतः ॥ १५ ॥

'इतना ही नहीं, उन्होंने रावणके कुलका संहार कर दिया, तथापि मैंने वह सब कुछ सह लिया। तुमलोगोंके द्वारा की गयी अवहेलनाको सामने रखकर—प्रत्यक्ष देखकर भी तुम सबके प्रति मैंने विशेषरूपसे क्षमाभावका परिचय दिया ॥ १५ ॥

निहताश्च हि ते सर्वे परिभूतास्तृणं यथा।
भूताश्चैव भविष्याश्च यूयं च पुरुषाधमाः ॥ १६ ॥

'जो नराधम भूतकालमें मेरा सामना करनेके लिये आये थे, उन सबको मैंने तिनकोंके समान तुच्छ समझकर तिरस्कृत किया और मार डाला। जो भविष्यमें आयेंगे, उनकी भी यही दशा होगी और वर्तमानकालमें आनेवाले तुझ-जैसे नराधम भी मेरे हाथसे मरे हुए ही हैं ॥ १६ ॥

तस्य ते युद्धकामस्य युद्धं दास्यामि दुर्मते।
तिष्ठ त्वं च मुहूर्तं तु यावदायुधमानये ॥ १७ ॥

'दुर्मते! तुझे युद्धकी इच्छा है न? मैं अभी तुझे युद्धका अवसर दूँगा। तू दो घड़ी ठहर जा। तबतक मैं भी अपना अस्त्र ले आता हूँ ॥ १७ ॥

ईप्सितं यादृशं तुभ्यं सज्जये यावदायुधम्।
तमुवाचाशु शत्रुघ्नः क्व मे जीवन् गमिष्यसि ॥ १८ ॥

'तेरे वधके लिये जैसे अस्त्रका होना मुझे अभीष्ट है, वैसे अस्त्रको पहले सुसज्जित कर लूँ; फिर युद्धका अवसर दूँगा।' यह सुनकर शत्रुघ्न तुरंत बोल उठे—'अब तू मेरे हाथसे जीवित बचकर कहाँ जायगा? ॥ १८ ॥

स्वयमेवागतः शत्रुर्न मोक्तव्यः कृतात्मना।
यो हि विक्लवया बुद्ध्या प्रसरं शत्रवे दिशेत्।
स हतो मन्दबुद्धिः स्याद् यथा कापुरुषस्तथा ॥ १९ ॥

'किसी भी बुद्धिमान् पुरुषको अपने सामने आये हुए शत्रुको छोड़ना नहीं चाहिये। जो अपनी घबरायी हुई बुद्धिके कारण शत्रुको निगल जानेका अवसर दे देता है, वह मन्दबुद्धि पुरुष कायरके समान मारा जाता है ॥ १९ ॥

तस्मात् सुदृष्टं कुरु जीवलोकं
शरैः शितैस्त्वां विविधैर्नयामि।
यमस्य गेहाभिमुखं हि पापं
रिपुं त्रिलोकस्य च राघवस्य ॥ २० ॥

'अतः राक्षस! अब तू इस जीव-जगत्‌को अच्छी तरह देख ले। मैं नाना प्रकारके तीखे बाणोंद्वारा तुझ पापीको अभी यमराजके घरकी ओर भेजता हूँ; क्योंकि तू तीनों लोकोंका तथा श्रीरघुनाथजीका भी शत्रु है' ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अड़सठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६८ ॥

◆

एकोनसप्ततितमः सर्गः

शत्रुघ्न और लवणासुरका युद्ध तथा लवणका वध

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः।
क्रोधमाहारयत् तीव्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ १ ॥

महामना शत्रुघ्नका वह भाषण सुनकर लवणासुरको बड़ा क्रोध हुआ और बोला—'अरे! खड़ा रह; खड़ा रह' ॥ १ ॥

पाणौ पाणिं स निष्पिष्य दन्तान् कटकटाय्य च।
लवणो रघुशार्दूलमाह्वयामास चासकृत् ॥ २ ॥

वह हाथ-पर-हाथ रगड़ता और दाँत कटकटाता हुआ रघुकुलके सिंह शत्रुघ्नको बारंबार ललकारने लगा ॥ २ ॥

तं ब्रुवाणं तथा वाक्यं लवणं घोरदर्शनम्।
शत्रुघ्नो देवशत्रुघ्न इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥

भयंकर दिखायी देनेवाले लवणको इस प्रकार बोलते देख देवशत्रुओंका नाश करनेवाले शत्रुघ्नने यह बात कही—॥ ३ ॥

शत्रुघ्नो न तदा जातो यदान्ये निर्जितास्त्वया।
तदद्य बाणाभिहतो व्रज त्वं यमसादनम् ॥ ४ ॥

'राक्षस! जब तूने दूसरे वीरोंको पराजित किया था, उस समय शत्रुघ्नका जन्म नहीं हुआ था। अतः आज मेरे इन बाणोंकी चोट खाकर तू सीधे यमलोककी राह ले ॥ ४ ॥

ऋषयोऽप्यद्य पापात्मन् मया त्वां निहतं रणे।
पश्यन्तु विप्रा विद्वांसस्त्रिदशा इव रावणम् ॥ ५ ॥

'पापात्मन्! जैसे देवताओंने रावणको धराशायी हुआ देखा था, उसी तरह विद्वान् ब्राह्मण और ऋषि आज रणभूमिमें मेरेद्वारा मारे गये तुझ दुराचारी राक्षसको भी देखें ॥ ५ ॥

त्वयि मद्बाणनिर्दग्धे पतितेऽद्य निशाचर।
पुरे जनपदे चापि क्षेममेव भविष्यति ॥ ६ ॥

'निशाचर! आज मेरे बाणोंसे दग्ध होकर जब तू धरतीपर गिर जायगा, उस समय इस नगर और जनपदमें भी सबका कल्याण ही होगा ॥ ६ ॥

अद्य मद्बाहुनिष्क्रान्तः शरो वज्रनिभाननः।
प्रवेक्ष्यते ते हृदयं पद्ममंशुरिवार्कजः ॥ ७ ॥

'आज मेरी भुजाओंसे छूटा हुआ वज्रके समान मुखवाला बाण उसी तरह तेरी छातीमें धँस जायगा, जैसे सूर्यकी किरण कमलकोशमें प्रविष्ट हो जाती है' ॥ ७ ॥

एवमुक्तो महावृक्षं लवणः क्रोधमूर्च्छितः।
शत्रुघ्नोरसि चिक्षेप स च तं शतधाच्छिनत् ॥ ८ ॥

शत्रुघ्नके ऐसा कहनेपर लवण क्रोधसे मूर्छित-सा हो गया और एक महान् वृक्ष लेकर उसने शत्रुघ्नकी छातीपर दे मारा; परंतु शत्रुघ्नने उसके सैकड़ों टुकड़े कर दिये ॥ ८ ॥

तद् दृष्ट्वा विफलं कर्म राक्षसः पुनरेव तु ।
पादपान् सुबहून् गृह्य शत्रुघ्नायासृजद् बली ॥ ९ ॥

वह वार खाली गया देख उस बलवान् राक्षसने पुनः बहुत-से वृक्ष ले-लेकर शत्रुघ्नपर चलाये ॥ ९ ॥

शत्रुघ्नश्चापि तेजस्वी वृक्षानापततो बहून् ।
त्रिभिश्चतुर्भिरेकैकं चिच्छेद नतपर्वभिः ॥ १० ॥

परंतु शत्रुघ्न भी बड़े तेजस्वी थे । उन्होंने अपने ऊपर आते हुए उन बहुसंख्यक वृक्षोंमेंसे प्रत्येकको झुकी हुई गाँठ-वाले तीन-तीन या चार-चार बाण मारकर काट डाला ॥ १० ॥

ततो बाणमयं वर्षं व्यसृजद् राक्षसोपरि ।
शत्रुघ्नो वीर्यसम्पन्नो विव्यथे न स राक्षसः ॥ ११ ॥

फिर पराक्रमी शत्रुघ्नने उस राक्षसपर बाणोंकी झड़ी लगा दी, किंतु वह निशाचर इससे व्यथित या विचलित नहीं हुआ ॥

ततः प्रहस्य लवणो वृक्षमुद्यम्य वीर्यवान् ।
शिरस्यभ्यहनच्छूरं स्रस्ताङ्गः स मुमोह वै ॥ १२ ॥

तब बल-विक्रमशाली लवणने हँसकर एक वृक्ष उठाया और उसे शूरवीर शत्रुघ्नके सिरपर दे मारा । उसकी चोट खाकर शत्रुघ्नके सारे अङ्ग शिथिल हो गये और उन्हें मूर्छा आ गयी ॥ १२ ॥

तस्मिन् निपतिते वीरे हाहाकारो महानभूत् ।
ऋषीणां देवसंघानां गन्धर्वाप्सरसां तथा ॥ १३ ॥

वीर शत्रुघ्नके गिरते ही ऋषियों, देवसमूहों, गन्धर्वों और अप्सराओंमें महान् हाहाकार मच गया ॥ १३ ॥

तमवज्ञाय तु हतं शत्रुघ्नं भुवि पातितम् ।
रक्षो लब्धान्तरमपि न विवेश स्वमालयम् ॥ १४ ॥
नापि शूलं प्रजग्राह तं दृष्ट्वा भुवि पातितम् ।
ततो हत इति ज्ञात्वा तान् भक्षान् समुदावहत् ॥ १५ ॥

शत्रुघ्नजीको भूमिपर गिरा देख लवणने समझा ये मर गये, इसलिये अवसर मिलनेपर भी वह राक्षस अपने घरमें नहीं गया और न शूल ही ले आया । उन्हें धराशायी हुआ देख सर्वथा मरा हुआ समझकर ही वह अपनी उस भोजनसामग्रीको एकत्र करने लगा ॥ १४-१५ ॥

मुहूर्तात्लब्धसंज्ञस्तु पुनस्तस्थौ धृतायुधः ।
शत्रुघ्नो वै पुरद्वारि ऋषिभिः सम्प्रपूजितः ॥ १६ ॥

दो ही घड़ीमें शत्रुघ्नको होश आ गया । वे अस्त्र-शस्त्र लेकर उठे और फिर नगरद्वारपर खड़े हो गये । उस समय ऋषियोंने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ १६ ॥

ततो दिव्यममोघं तं जग्राह शरमुत्तमम् ।
ज्वलन्तं तेजसा घोरं पूरयन्तं दिशो दश ॥ १७ ॥

तदनन्तर शत्रुघ्नने उस दिव्य, अमोघ और उत्तम बाणको हाथमें लिया, जो अपने घोर तेजसे प्रज्वलित हो दसों दिशाओंमे व्याप्त-सा हो रहा था ॥ १७ ॥

वज्राननं वज्रवेगं मेरुमन्दरसंनिभम् ।
नतं पर्वसु सर्वेषु संयुगेष्वपराजितम् ॥ १८ ॥

उसका मुख और वेग वज्रके समान था । वह मेरु और मन्दराचलके समान भारी था । उसकी गाँठें झुकी हुई थीं तथा वह किसी भी युद्धमें पराजित होनेवाला नहीं था ॥ १८ ॥

असृक्चन्दनदिग्धाङ्गं चारुपत्रं पतत्त्रिणम् ।
दानवेन्द्राचलेन्द्राणामसुराणां च दारुणम् ॥ १९ ॥

उसका सारा अङ्ग रक्तरूपी चन्दनसे चर्चित था । पंख बड़े सुन्दर थे । वह बाण दानवराजरूपी पर्वतराजों एवं असुरोंके लिये बड़ा भयंकर था ॥ १९ ॥

तं दीप्तमिव कालाग्निं युगान्ते समुपस्थिते ।
दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि परित्रासमुपागमन् ॥ २० ॥

वह प्रलयकाल उपस्थित होनेपर प्रज्वलित हुई कालाग्निके समान उद्दीप्त हो रहा था । उसे देखकर समस्त प्राणी त्रस्त हो गये ॥ २० ॥

सदेवासुरगन्धर्वं मुनिभिः साप्सरोगणम् ।
जगद्धि सर्वमस्वस्थं पितामहमुपस्थितम् ॥ २१ ॥

देवता, असुर, गन्धर्व, मुनि और अप्सराओंके साथ सारा जगत् अस्वस्थ हो ब्रह्माजीके पास पहुँचा ॥ २१ ॥

उवाच देवदेवेशं वरदं प्रपितामहम् ।
देवानां भयसम्मोहो लोकानां संक्षयं प्रति ॥ २२ ॥

जगत्के उन सभी प्राणियोंने वर देनेवाले देवदेवेश्वर प्रपितामह ब्रह्माजीसे कहा—'भगवन् ! समस्त लोकोंके संहारकी सम्भावनासे देवताओंपर भी भय और मोह छा गया है ॥

कच्चिल्लोकक्षयो देव सम्प्राप्तो वा युगक्षयः ।
नेदृशं दृष्टपूर्वं च न श्रुतं प्रपितामह ॥ २३ ॥

'देव ! कहीं लोकोंका संहार तो नहीं होगा अथवा प्रलयकाल तो नहीं आ पहुँचा है ? प्रपितामह ! संसारकी ऐसी अवस्था न तो पहले कभी देखी गयी थी और न सुननेमें ही आयी थी' ॥ २३ ॥

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
भयकारणमाचष्ट देवानामभयंकरः ॥ २४ ॥

उनकी यह बात सुनकर देवताओंका भय दूर करनेवाले लोकपितामह ब्रह्माने प्रस्तुत भयका कारण बताते हुए कहा ॥

उवाच मधुरां वाणीं शृणुध्वं सर्वदेवताः ।
वधाय लवणस्याजौ शरः शत्रुघ्नधारितः ॥ २५ ॥
तेजसा तस्य सम्मूढाः सर्वे स्मः सुरसत्तमाः ।

वे मधुर वाणीमें बोले—'सम्पूर्ण देवताओ ! मेरी बात सुनो । आज शत्रुघ्नने युद्धस्थलमें लवणासुरका वध करनेके लिये जो बाण हाथमें लिया है, उसीके तेजसे हम सब लोग मोहित हो रहे हैं । ये श्रेष्ठ देवता भी उसीसे घबराये हुए हैं ॥ २५½ ॥

एष पूर्वस्य देवस्य लोककर्तुः सनातनः ॥ २६ ॥
शरस्तेजोमयो वत्सा येन वै भयमागतम् ।

'पुत्रो ! यह तेजोमय सनातन बाण आदिपुरुष लोककर्ता भगवान् विष्णुका है। जिससे तुम्हें भय प्राप्त हुआ है ॥ २६½ ॥

एष वै कैटभस्यार्थे मधुनश्च महाशरः ॥ २७ ॥
सृष्टो महात्मना तेन वधार्थे दैत्ययोस्तयोः ।

'परमात्मा श्रीहरिने मधु और कैटभ—इन दोनों दैत्योंका वध करनेके लिये इस महान् बाणकी सृष्टि की थी ॥ २७½ ॥

एक एव प्रजानाति विष्णुस्तेजोमयं शरम् ॥ २८ ॥
एषा एव तनुः पूर्वा विष्णोस्तस्य महात्मनः ।

'एकमात्र भगवान् विष्णु ही इस तेजोमय बाणको जानते हैं; क्योंकि यह बाण साक्षात् परमात्मा विष्णुकी ही प्राचीन मूर्ति है ॥ २८½ ॥

इतो गच्छत पश्यध्वं वध्यमानं महात्मना ॥ २९ ॥
रामानुजेन वीरेण लवणं राक्षसोत्तमम् ।

'अब तुमलोग यहाँसे जाओ और श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई महामनस्वी वीर शत्रुघ्नके हाथसे राक्षसप्रवर लवणासुरका वध होता देखो' ॥ २९½ ॥

तस्य ते देवदेवस्य निशम्य वचनं सुराः ॥ ३० ॥
आजग्मुर्यत्र युध्येते शत्रुघ्नलवणावुभौ ।

देवाधिदेव ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर देवतालोग उस स्थानपर आये, जहाँ शत्रुघ्नजी और लवणासुर दोनोंका युद्ध हो रहा था ॥ ३०½ ॥

तं शरं दिव्यसंकाशं शत्रुघ्नकरधारितम् ॥ ३१ ॥
ददृशुः सर्वभूतानि युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ।

शत्रुघ्नजीके द्वारा हाथमें लिये गये उस दिव्य बाणको सभी प्राणियोंने देखा। वह प्रलयकालके अग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था ॥ ३१½ ॥

आकाशमावृतं दृष्ट्वा देवैर्हि रघुनन्दनः ॥ ३२ ॥
सिंहनादं भृशं कृत्वा ददर्श लवणं पुनः ।

आकाशको देवताओंसे भरा हुआ देख रघुकुलनन्दन शत्रुघ्नने बड़े जोरसे सिंहनाद करके लवणासुरकी ओर देखा ॥ ३२½ ॥

आहूतश्च पुनस्तेन शत्रुघ्नेन महात्मना ॥ ३३ ॥
लवणः क्रोधसंयुक्तो युद्धाय समुपस्थितः ।

महात्मा शत्रुघ्नके पुनः ललकारनेपर लवणासुर क्रोधसे भर गया और फिर युद्धके लिये उनके सामने आया ॥ ३३½ ॥

आकर्णात् स विकृष्याथ तद् धनुर्धन्विनां वरः ॥ ३४ ॥
स मुमोच महाबाणं लवणस्य महोरसि ।

तब धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ शत्रुघ्नजीने अपने धनुषको कानतक खींचकर उस महाबाणको लवणासुरके विशाल वक्षःस्थलपर चलाया ॥ ३४½ ॥

उरस्तस्य विदार्याशु प्रविवेश रसातलम् ॥ ३५ ॥
गत्वा रसातलं दिव्यः शरो विबुधपूजितः ।
पुनरेवागमत् तूर्णमिक्ष्वाकुकुलनन्दनम् ॥ ३६ ॥

वह देवपूजित दिव्य बाण तुरंत ही उस राक्षसके हृदयको विदीर्ण करके रसातलमें घुस गया तथा रसातलमें जाकर वह फिर तत्काल ही इक्ष्वाकुकुलनन्दन शत्रुघ्नजीके पास आ गया ॥ ३५-३६ ॥

शत्रुघ्नशरनिर्भिन्नो लवणः स निशाचरः ।
पपात सहसा भूमौ वज्राहत इवाचलः ॥ ३७ ॥

शत्रुघ्नजीके बाणसे विदीर्ण होकर निशाचर लवण वज्रके मारे हुए पर्वतके समान सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३७ ॥

तच्च शूलं महद् दिव्यं हते लवणराक्षसे ।
पश्यतां सर्वदेवानां रुद्रस्य वशमन्वगात् ॥ ३८ ॥

लवणासुरके मारे जाते ही वह दिव्य एवं महान् शूल सब देवताओंके देखते-देखते भगवान् रुद्रके पास आ गया ॥ ३८ ॥

एकेषुपातेन भयं निपात्य
लोकत्रयस्यास्य रघुप्रवीरः ।
विनिर्बभावुत्तमचापबाण-
स्तमः प्रणुद्येव सहस्ररश्मिः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार उत्तम धनुष-बाण धारण करनेवाले रघुकुलके प्रमुख वीर शत्रुघ्न एक ही बाणके प्रहारसे तीनों लोकोंके भयको नष्ट करके उसी प्रकार सुशोभित हुए, जैसे त्रिभुवनका अन्धकार दूर करके सहस्र किरणधारी सूर्यदेव प्रकाशित हो उठते हैं ॥ ३९ ॥

ततो हि देवा ऋषिपन्नगाश्च
प्रपूजिरे ह्यप्सरसश्च सर्वाः ।
दिष्ट्या जयो दाशरथेरवाप्त-
स्त्यक्त्वा भयं सर्प इव प्रशान्तः ॥ ४० ॥

'सौभाग्यकी बात है कि दशरथनन्दन शत्रुघ्नने भय छोड़कर विजय प्राप्त की और सर्पके समान लवणासुर मर गया' ऐसा कहकर देवता, ऋषि, नाग और समस्त अप्सराएँ उस समय शत्रुघ्नजीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगीं ॥ ४० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें उनहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ६९ ॥

* * *

सप्ततितमः सर्गः

देवताओंसे वरदान पा शत्रुघ्नका मधुरापुरीको बसाकर बारहवें वर्षमें वहाँसे श्रीरामके पास जानेका विचार करना

हते तु लवणे देवाः सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः।
ऊचुः सुमधुरां वाणीं शत्रुघ्नं शत्रुतापनम् ॥ १ ॥

लवणासुरके मारे जानेपर इन्द्र और अग्नि आदि देवता आकर शत्रुओंको संताप देनेवाले शत्रुघ्नसे अत्यन्त मधुर वाणीमें बोले—॥ १ ॥

दिष्ट्या ते विजयो वत्स दिष्ट्या लवणराक्षसः।
हतः पुरुषशार्दूल वरं वरय सुव्रत ॥ २ ॥

'वत्स! सौभाग्यकी बात है कि तुम्हें विजय प्राप्त हुई और लवणासुर मारा गया। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले पुरुषसिंह! तुम वर माँगो ॥ २ ॥

वरदास्तु महाबाहो सर्व एव समागताः।
विजयाकाङ्क्षिणस्तुभ्यममोघं दर्शनं हि नः ॥ ३ ॥

'महाबाहो! हम सब लोग तुम्हें वर देनेके लिये यहाँ आये हैं। हम तुम्हारी विजय चाहते थे। हमारा दर्शन अमोघ है (अतएव तुम कोई वर माँगो)' ॥ ३ ॥

देवानां भाषितं श्रुत्वा शूरो मूर्ध्नि कृताञ्जलिः।
प्रत्युवाच महाबाहुः शत्रुघ्नः प्रयतात्मवान् ॥ ४ ॥

देवताओंका यह वचन सुनकर मनको वशमें रखनेवाले शूरवीर महाबाहु शत्रुघ्न मस्तकपर अञ्जलि बाँध इस प्रकार बोले—॥ ४ ॥

इयं मधुपुरी रम्या मधुरा देवनिर्मिता।
निवेशं प्राप्नुयाच्छीघ्रमेष मेऽस्तु वरः परः ॥ ५ ॥

'देवताओ! यह देवनिर्मित रमणीय मधुपुरी शीघ्र ही मनोहर राजधानीके रूपमें बस जाय। यही मेरे लिये श्रेष्ठ वर है' ॥ ५ ॥

तं देवाः प्रीतमनसो बाढमित्येव राघवम्।
भविष्यति पुरी रम्या शूरसेना न संशयः ॥ ६ ॥

तब देवताओंने उन रघुकुलनन्दन शत्रुघ्नसे प्रसन्न होकर कहा—'बहुत अच्छा ऐसा ही हो। यह रमणीय पुरी निःसंदेह शूर-वीरोंकी सेनासे सम्पन्न हो जायगी' ॥ ६ ॥

ते तथोक्त्वा महात्मानो दिवमारुरुहुस्तदा।
शत्रुघ्नोऽपि महातेजास्तां सेनां समुपानयत् ॥ ७ ॥

ऐसा कहकर महामनस्वी देवता उस समय स्वर्गको चले गये। महातेजस्वी शत्रुघ्नने भी गङ्गातटसे अपनी उस सेनाको बुलवाया ॥ ७ ॥

सा सेना शीघ्रमागच्छच्छ्रुत्वा शत्रुघ्नशासनम्।
निवेशनं च शत्रुघ्नः श्रावणेन समारभत् ॥ ८ ॥

शत्रुघ्नजीका आदेश पाकर वह सेना शीघ्र चली आयी। शत्रुघ्नने श्रावणमाससे उस पुरीको बसाना आरम्भ किया ॥

स पुरा दिव्यसंकाशो वर्षे द्वादशमे शुभे।
निविष्टः शूरसेनानां विषयश्चाकुतोभयः ॥ ९ ॥

तबसे बारहवें वर्षतक वह पुरी तथा वह शूरसेन जनपद पूर्णरूपसे बस गया। वहाँ कहीं किसीसे भय नहीं था। वह देश दिव्य सुख-सुविधाओंसे सम्पन्न था ॥ ९ ॥

क्षेत्राणि सस्ययुक्तानि काले वर्षति वासवः।
अरोगवीरपुरुषा शत्रुघ्नभुजपालिता ॥ १० ॥

वहाँके खेत खेतीसे हरे-भरे हो गये। इन्द्र वहाँ समयपर वर्षा करने लगे। शत्रुघ्नजीके बाहुबलसे सुरक्षित मधुपुरी नीरोग तथा वीर पुरुषोंसे भरी थी ॥ १० ॥

अर्धचन्द्रप्रतीकाशा यमुनातीरशोभिता।
शोभिता गृहमुख्यैश्च चत्वरापणवीथिकैः।
चातुर्वर्ण्यसमायुक्ता नानावाणिज्यशोभिता ॥ ११ ॥

वह पुरी यमुनाके तटपर अर्धचन्द्राकार बसी थी और अनेकानेक सुन्दर गृहों, चौराहों, बाजारों तथा गलियोंसे सुशोभित होती थी। उसमें चारों वर्णोंके लोग निवास करते थे तथा नाना प्रकारके वाणिज्य-व्यवसाय उसकी शोभा बढ़ाते थे॥

यच्च तेन पुरा शुभ्रं लवणेन कृतं महत्।
तच्छोभयति शत्रुघ्नो नानावर्णोपशोभिताम् ॥ १२ ॥

पूर्वकालमें लवणासुरने जिन विशाल गृहोंका निर्माण कराया था, उनमें सफेदी कराकर उन्हें नाना प्रकारके चित्रोंसे सुसज्जित करके शत्रुघ्नजी उनकी शोभा बढ़ाने लगे ॥ १२ ॥

आरामैश्च विहारैश्च शोभमानां समन्ततः।
शोभितां शोभनीयैश्च तथान्यैर्दैवमानुषैः ॥ १३ ॥

अनेकानेक उद्यान और विहारस्थल सब ओरसे उस पुरीको सुशोभित करते थे। देवताओं और मनुष्योंसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य शोभनीय पदार्थ भी उस नगरीकी शोभा-वृद्धि करते थे ॥ १३ ॥

तां पुरीं दिव्यसंकाशां नानापण्योपशोभिताम्।
नानादेशगतैश्चापि वणिग्भिरुपशोभिताम् ॥ १४ ॥

नाना प्रकारकी क्रय-विक्रय योग्य वस्तुओंसे सुशोभित वह दिव्य पुरी अनेकानेक देशोंसे आये हुए वणिग्जनोंसे शोभा पा रही थी ॥ १४ ॥

तां समृद्धां समृद्धार्थः शत्रुघ्नो भरतानुजः।
निरीक्ष्य परमप्रीतः परं हर्षमुपागमत् ॥ १५ ॥

उसे पूर्णतः समृद्धिशालिनी देख सफलमनोरथ हुए भरतानुज शत्रुघ्न अत्यन्त प्रसन्न हो बड़े हर्षका अनुभव करने लगे ॥ १५ ॥

तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना निवेश्य मधुरां पुरीम्।
रामपादौ निरीक्षेऽहं वर्षे द्वादश आगते ॥ १६ ॥

मधुरापुरीको बसाकर उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि अयोध्यासे आये बारहवाँ वर्ष हो गया, अब मुझे वहाँ चलकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दोंका दर्शन करना चाहिये ॥ १६ ॥

ततः स साममरपुरोपमां पुरीं
निवेश्य वै विविधजनाभिसंवृताम् ।
नराधिपो रघुपतिपाददर्शने
दधे मतिं रघुकुलवंशवर्धनः ॥ १७ ॥

इस प्रकार नाना प्रकारके मनुष्योंसे भरी हुई उस देवपुरीके समान मनोहर मधुरापुरीको बसाकर रघुवंशकी वृद्धि करनेवाले राजा शत्रुघ्नने श्रीरघुनाथजीके चरणोंके दर्शनका विचार किया ॥ १७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः

शत्रुघ्नका थोड़ेसे सैनिकोंके साथ अयोध्याको प्रस्थान, मार्गमें वाल्मीकिके आश्रममें रामचरितका गान सुनकर उन सबका आश्चर्यचकित होना

ततो द्वादशमे वर्षे शत्रुघ्नो रामपालिताम् ।
अयोध्यां चकमे गन्तुमल्पभृत्यबलानुगः ॥ १ ॥

तदनन्तर बारहवें वर्षमें थोड़ेसे सेवकों और सैनिकोंको साथ ले शत्रुघ्नने श्रीरामपालित अयोध्याको जानेका विचार किया ॥ १ ॥

ततो मन्त्रिपुरोगांश्च बलमुख्यान् निवर्त्य च ।
जगाम हयमुख्येन रथानां च शतेन सः ॥ २ ॥

अतः अपने मुख्य-मुख्य मन्त्रियों तथा सेनापतियोंको लौटाकर—पुरीकी रक्षाके लिये वहीं छोड़कर वे अच्छे-अच्छे घोड़ेवाले सौ रथ साथ ले अयोध्याकी ओर चल पड़े ॥ २ ॥

स गत्वा गणितान् वासान् सप्providedाष्टौ रघुनन्दनः ।
वाल्मीकाश्रममागत्य वासं चक्रे महायशाः ॥ ३ ॥

महायशस्वी रघुकुलनन्दन शत्रुघ्न यात्रा करनेके पश्चात् मार्गमें सात-आठ परिगणित स्थानोंपर पड़ाव डालते हुए वाल्मीकि मुनिके आश्रमपर आ पहुँचे और रातमें वहीं ठहरे ॥ ३ ॥

सोऽभिवाद्य ततः पादौ वाल्मीकेः पुरुषर्षभः ।
पाद्यमर्घ्यं तथातिथ्यं जग्राह मुनिहस्ततः ॥ ४ ॥

उन पुरुषप्रवर रघुवीरने वाल्मीकिजीके चरणोंमें प्रणाम करके उनके हाथसे पाद्य और अर्घ्य आदि आतिथ्य-सत्कारकी सामग्री ग्रहण की ॥ ४ ॥

बहुरूपाः सुमधुराः कथास्तत्र सहस्रशः ।
कथयामास स मुनिः शत्रुघ्नाय महात्मने ॥ ५ ॥

वहाँ महर्षि वाल्मीकिने महात्मा शत्रुघ्नको सुनानेके लिये भाँति भाँतिकी सहस्रों सुमधुर कथाएँ कहीं ॥ ५ ॥

उवाच च मुनिर्वाक्यं लवणस्य वधाश्रितम् ।
सुदुष्करं कृतं कर्म लवणं निघ्नता त्वया ॥ ६ ॥

फिर वे लवणवधके विषयमें बोले—'लवणासुरको मारकर तुमने अत्यन्त दुष्कर कर्म किया है ॥ ६ ॥

बहवः पार्थिवाः सौम्य हताः सबलवाहनाः ।
लवणेन महाबाहो युध्यमाना महाबलाः ॥ ७ ॥

'सौम्य ! महाबाहो ! लवणासुरके साथ युद्ध करके बहुत-से महाबली भूपाल सेना और सवारियोंसहित मारे गये हैं ॥ ७ ॥

स त्वया निहतः पापो लीलया पुरुषर्षभ ।
जगतश्च भयं तत्र प्रशान्तं तव तेजसा ॥ ८ ॥

'पुरुषश्रेष्ठ ! वही पापी लवणासुर तुम्हारे द्वारा अनायास ही मार डाला गया । उसके कारण जगत्‌में जो भय छा गया था, वह तुम्हारे तेजसे शान्त हो गया ॥ ८ ॥

रावणस्य वधो घोरो यत्नेन महता कृतः ।
इदं च सुमहत्कर्म त्वया कृतमयत्नतः ॥ ९ ॥

'रावणका घोर वध महान् प्रयत्नसे किया गया था; परंतु यह महान् कर्म तुमने बिना यत्नके ही सिद्ध कर दिया ॥ ९ ॥

प्रीतिश्चास्मिन् परा जाता देवानां लवणे हते ।
भूतानां चैव सर्वेषां जगतश्च प्रियं कृतम् ॥ १० ॥

'लवणासुरके मारे जानेसे देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई है । तुमने समस्त प्राणियों और सारे जगत्‌का प्रिय कार्य किया है ॥ १० ॥

तच्च युद्धं मया दृष्टं यथावत् पुरुषर्षभ ।
सभायां वासवस्याथ उपविष्टेन राघव ॥ ११ ॥

'नरश्रेष्ठ ! मैं इन्द्रकी सभामें बैठा था । जब वह विमानाकार सभा युद्ध देखनेके लिये आयी, तब वहीं बैठे-बैठे मैंने भी तुम्हारे और लवणके युद्धको भलीभाँति देखा था ॥ ११ ॥

ममापि परमा प्रीतिर्हृदि शत्रुघ्न वर्तते ।
उपाघ्रास्यामि ते मूर्ध्नि स्नेहस्यैषा परा गतिः ॥ १२ ॥

'शत्रुघ्न ! मेरे हृदयमें भी तुम्हारे लिये बड़ा प्रेम है । अतः मैं तुम्हारा मस्तक सूँघूँगा । यही स्नेहकी पराकाष्ठा है' ॥ १२ ॥

इत्युक्त्वा मूर्ध्नि शत्रुघ्नमुपाघ्राय महामतिः ।
आतिथ्यमकरोत् तस्य ये च तस्य पदानुगाः ॥ १३ ॥

ऐसा कहकर परम बुद्धिमान् वाल्मीकिने शत्रुघ्नका मस्तक सूँघा और उनका तथा उनके साथियोंका आतिथ्य-सत्कार किया ॥ १३ ॥

स भुक्तवान् नरश्रेष्ठो गीतमाधुर्यमुत्तमम् ।
शुश्राव रामचरितं तस्मिन् काले यथाक्रमम् ॥ १४ ॥

नरश्रेष्ठ शत्रुघ्नने भोजन किया और उस समय श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रका क्रमशः वर्णन सुना; जो गीतकी मधुरताके कारण बड़ा ही प्रिय एवं उत्तम जान पड़ता था ॥ १४ ॥

तन्त्रीलयसमायुक्तं त्रिस्थानकरणान्वितम् ।
संस्कृतं लक्षणोपेतं समतालसमन्वितम् ॥ १५ ॥
शुश्राव रामचरितं तस्मिन् काले पुरा कृतम् ।

उस वेलामें उन्हें जो रामचरित सुननेको मिला, वह पहले ही काव्यबद्ध कर लिया गया था। वह काव्यगान वीणाकी लयके साथ हो रहा था। हृदय, कण्ठ और मूर्धा—इन तीन स्थानोंमें मन्द्र, मध्यम और तार स्वरके भेदसे उच्चारित हो रहा था। संस्कृत भाषामें निर्मित होकर व्याकरण, छन्द, काव्य और संगीत-शास्त्रके लक्षणोंसे सम्पन्न था और गानोचित तालके साथ गाया गया था ॥ १५½ ॥

तान्यक्षराणि सत्यानि यथावृत्तानि पूर्वशः ॥ १६ ॥
श्रुत्वा पुरुषशार्दूलो विसंज्ञो बाष्पलोचनः ।

उस काव्यके सभी अक्षर एवं वाक्य सच्ची घटनाका प्रतिपादन करते थे और पहले जो वृत्तान्त घटित हो चुके थे, उनका यथार्थ परिचय दे रहे थे। वह अद्भुत काव्यगान सुनकर पुरुषसिंह शत्रुघ्न मूर्छित-से हो गये। उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी ॥ १६½ ॥

स मुहूर्तमिवासंज्ञो विनिःश्वस्य मुहुर्मुहुः ॥ १७ ॥
तस्मिन् गीते यथावृत्तं वर्तमानमिवाशृणोत् ।

वे दो घड़ीतक अचेत-से होकर बारंबार लंबी साँस खींचते रहे। उस गानमें उन्होंने बीती हुई बातोंको वर्तमानकी भाँति सुना ॥ १७½ ॥

पदानुगाश्च ये राज्ञस्तां श्रुत्वा गीतिसम्पदम् ॥ १८ ॥
अवाङ्मुखाश्च दीनाश्च ह्याश्चर्यमिति चाब्रुवन् ।

राजा शत्रुघ्नके जो साथी थे, वे भी उस गीत-सम्पत्तिको सुनकर दीन और नतमस्तक हो बोले—'यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है' ॥ १८½ ॥

परस्परं च ये तत्र सैनिकाः सम्बभाषिरे ॥ १९ ॥
किमिदं क्व च वर्तामः किमेतत् स्वप्नदर्शनम् ।
अर्थो यो नः पुरा दृष्टस्तमाश्रमपदे पुनः ॥ २० ॥

शत्रुघ्नके जो सैनिक वहाँ मौजूद थे, वे परस्पर कहने लगे—'यह क्या बात है? हमलोग कहाँ हैं? यह कोई स्वप्न तो नहीं देख रहे हैं। जिन बातोंको हम पहले देख चुके हैं, उन्हींको इस आश्रमपर ज्यों-की-त्यों सुन रहे हैं ॥ १९-२० ॥

शृणुमः किमिदं स्वप्ने गीतबन्धनमुत्तमम् ।
विस्मयं ते परं गत्वा शत्रुघ्नमिदमब्रुवन् ॥ २१ ॥

'क्या इस उत्तम गीतबन्धको हमलोग स्वप्नमें सुन रहे हैं।' फिर अत्यन्त विस्मयमें पड़कर वे शत्रुघ्नसे बोले— ॥ २१ ॥

साधु पृच्छ नरश्रेष्ठ वाल्मीकिं मुनिपुङ्गवम् ।
शत्रुघ्नस्त्वब्रवीत् सर्वान् कौतूहलसमन्वितान् ॥ २२ ॥
सैनिकानक्षमोऽस्माकं परिप्रष्टुमिहेदृशः ।
आश्चर्याणि बहूनीह भवन्त्यस्याश्रमे मुनेः ॥ २३ ॥

'नरश्रेष्ठ! आप इस विषयमें मुनिवर वाल्मीकिजीसे भलीभाँति पूछें।' शत्रुघ्नने कौतूहलमें भरे हुए उन सब सैनिकोंसे कहा—'मुनिके इस आश्रममें ऐसी अनेक आश्चर्यजनक घटनाएँ होती रहती हैं। उनके विषयमें उनसे कुछ पूछताछ करना हमारे लिये उचित नहीं है ॥ २२-२३ ॥

न तु कौतूहलाद् युक्तमन्वेष्टुं तं महामुनिम् ।
एवं तद् वाक्यमुक्त्वा तु सैनिकान् रघुनन्दनः ।
अभिवाद्य महर्षिं तं स्वं निवेशं ययौ तदा ॥ २४ ॥

'कौतूहलवश महामुनि वाल्मीकिसे इन बातोंके विषयमें जानना या पूछना उचित न होगा।' अपने सैनिकोंसे ऐसा कहकर रघुकुलनन्दन शत्रुघ्न महर्षिको प्रणाम करके अपने खेमेमें चले गये ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें इकहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः

वाल्मीकिजीसे विदा ले शत्रुघ्नजीका अयोध्यामें जाकर श्रीराम आदिसे मिलना और सात दिनोंतक वहाँ रहकर पुनः मधुपुरीको प्रस्थान करना

तं शयानं नरव्याघ्रं निद्रा नाभ्यागमत् तदा ।
चिन्तयानमनेकार्थं रामगीतमनुत्तमम् ॥ १ ॥

सोते समय पुरुषसिंह शत्रुघ्न उस उत्तम श्रीरामचरित्र-सम्बन्धी गानके विषयमें अनेक प्रकारकी बातें सोचते रहे। इसलिये रातमें उन्हें बहुत देरतक नींद नहीं आयी ॥ १ ॥

तस्य शब्दं सुमधुरं तन्त्रीलयसमन्वितम् ।
श्रुत्वा रात्रिर्जगामाशु शत्रुघ्नस्य महात्मनः ॥ २ ॥

वीणाके लयके साथ उस रामचरित-गानका सुमधुर शब्द सुनकर महात्मा शत्रुघ्नकी शेष रात बहुत जल्दी बीत गयी ॥

तस्यां रजन्यां व्युष्टायां कृत्वा पौर्वाह्णिकक्रमम् ।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं शत्रुघ्नो मुनिपुङ्गवम् ॥ ३ ॥

जब वह रात बीती और प्रातःकाल आया, तब पूर्वाह्ण-कालोचित नित्यकर्म करके शत्रुघ्नने हाथ जोड़कर मुनिवर वाल्मीकिसे कहा— ॥ ३ ॥

भगवन् द्रष्टुमिच्छामि राघवं रघुनन्दनम् ।
त्वयानुज्ञातुमिच्छामि सहैभिः संशितव्रतैः ॥ ४ ॥

'भगवन्! अब मैं रघुकुलनन्दन श्रीरघुनाथजीका दर्शन करना चाहता हूँ। अतः यदि आपकी आज्ञा हो तो कठोर व्रतका पालन करनेवाले इन साथियोंके साथ मेरी अयोध्या जानेकी इच्छा है' ॥ ४ ॥

इत्येवंवादिनं तं तु शत्रुघ्नं शत्रुसूदनम् ।
वाल्मीकिः सम्परिष्वज्य विससर्ज स राघवम् ॥ ५ ॥

इस तरहकी बात कहते हुए रघुकुलभूषण शत्रुसूदन शत्रुघ्नको वाल्मीकिजीने हृदयसे लगा लिया और जानेकी आज्ञा दे दी ॥ ५ ॥

सोऽभिवाद्य मुनिश्रेष्ठं रथमारुह्य सुप्रभम् ।
अयोध्यामगमत् तूर्णं राघवोत्सुकदर्शनः ॥ ६ ॥

शत्रुघ्न श्रीरघुनाथजीके दर्शनके लिये उत्कण्ठित थे, इसलिये मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिको प्रणाम करके वे एक सुन्दर दीप्तिमान् रथपर आरूढ़ हो तुरंत अयोध्याकी ओर चल दिये ॥ ६ ॥

स प्रविष्टः पुरीं रम्यां श्रीमानिक्ष्वाकुनन्दनः ।
प्रविवेश महाबाहुर्यत्र रामो महाद्युतिः ॥ ७ ॥

इक्ष्वाकुकुलको आनन्दित करनेवाले महाबाहु श्रीमान् शत्रुघ्न रमणीय अयोध्यापुरीमें प्रवेश करके सीधे उस राजमहलमें गये, जहाँ महातेजस्वी श्रीराम विराजमान थे ॥ ७ ॥

स रामं मन्त्रिमध्यस्थं पूर्णचन्द्रनिभाननम् ।
पश्यन्नमरमध्यस्थं सहस्रनयनं यथा ॥ ८ ॥
सोऽभिवाद्य महात्मानं ज्वलन्तमिव तेजसा ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा रामं सत्यपराक्रमम् ॥ ९ ॥

जैसे सहस्रनेत्रधारी इन्द्र देवताओंके बीचमें बैठते हैं, उसी प्रकार पूर्णचन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले भगवान् श्रीराम मन्त्रियोंके मध्यभागमें विराजमान थे। शत्रुघ्नने अपने तेजसे प्रज्वलित होनेवाले सत्यपराक्रमी महात्मा श्रीरामको देखा, प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—॥ ८-९ ॥

यदाज्ञप्तं महाराज सर्वं तत् कृतवानहम् ।
हतः स लवणः पापः पुरी चास्य निवेशिता ॥ १० ॥

'महाराज! आपने मुझे जिस कामके लिये आज्ञा दी थी, वह सब मैं कर आया हूँ। पापी लवण मारा गया और उसकी पुरी भी बस गयी ॥ १० ॥

द्वादशैतानि वर्षाणि त्वां विना रघुनन्दन ।
नोत्सहेयमहं वस्तुं त्वया विरहितो नृप ॥ ११ ॥

'रघुनन्दन! आपका दर्शन किये बिना ये बारह वर्ष तो किसी प्रकार बीत गये; किंतु नरेश्वर! अब और अधिक कालतक आपसे दूर रहनेका मुझमें साहस नहीं है ॥ ११ ॥

स मे प्रसादं काकुत्स्थ कुरुष्वामितविक्रम ।
मातृहीनो यथा वत्सो न चिरं प्रवसाम्यहम् ॥ १२ ॥

'अमित पराक्रमी काकुत्स्थ! जैसे छोटा बच्चा अपनी माँसे अलग नहीं रह सकता, उसी प्रकार मैं चिरकालतक आपसे दूर नहीं रह सकूँगा। इसलिये आप मुझपर कृपा करें' ॥ १२ ॥

एवं ब्रुवाणं शत्रुघ्नं परिष्वज्येदमब्रवीत् ।
मा विषादं कृथाः शूर नैतत् क्षत्रियचेष्टितम् ॥ १३ ॥

ऐसी बातें कहते हुए शत्रुघ्नको हृदयसे लगाकर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'शूरवीर! विषाद न करो। इस तरह कातर होना क्षत्रियोचित चेष्टा नहीं है ॥ १३ ॥

नावसीदन्ति राजानो विप्रवासेषु राघव ।
प्रजा च परिपाल्या हि क्षात्रधर्मेण राघव ॥ १४ ॥

'रघुकुलभूषण! राजालोग परदेशमें रहनेपर भी दुखी नहीं होते हैं। रघुवीर! राजाको क्षत्रिय-धर्मके अनुसार प्रजाका भलीभाँति पालन करना चाहिये ॥ १४ ॥

काले काले तु मां वीर अयोध्यामवलोकितुम् ।
आगच्छ त्वं नरश्रेष्ठ गन्तासि च पुरं तव ॥ १५ ॥

'नरश्रेष्ठ वीर! समय-समयपर मुझसे मिलनेके लिये अयोध्या आया करो और फिर अपनी पुरीको लौट जाया करो ॥ १५ ॥

ममापि त्वं सुदयितः प्राणैरपि न संशयः ।
अवश्यं करणीयं च राज्यस्य परिपालनम् ॥ १६ ॥

'निःसंदेह तुम मुझे भी प्राणोंसे बढ़कर प्रिय हो। परंतु राज्यका पालन करना भी तो आवश्यक कर्तव्य है ॥ १६ ॥

तस्मात् त्वं वस काकुत्स्थ सप्तरात्रं मया सह ।
ऊर्ध्वं गन्तासि मधुरां सभृत्यबलवाहनः ॥ १७ ॥

'अतः काकुत्स्थ! अभी सात दिन तो तुम मेरे साथ रहो। उसके बाद सेवक, सेना और सवारियोंके साथ मधुरापुरीको चले जाना' ॥ १७ ॥

रामस्यैतद् वचः श्रुत्वा धर्मयुक्तं मनोऽनुगम् ।
शत्रुघ्नो दीनया वाचा बाढमित्येव चाब्रवीत् ॥ १८ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी यह बात धर्मयुक्त होनेके साथ ही मनके अनुकूल थी। इसे सुनकर शत्रुघ्नने श्रीरामवियोगके भयसे दीन वाणीद्वारा कहा—'जैसी प्रभुकी आज्ञा' ॥ १८ ॥

सप्तरात्रं च काकुत्स्थो राघवस्य यथाज्ञया ।
उष्य तत्र महेष्वासो गमनायोपचक्रमे ॥ १९ ॥

श्रीरघुनाथजीकी आज्ञासे सात दिन अयोध्यामें ठहरकर महाधनुर्धर ककुत्स्थकुलभूषण शत्रुघ्न वहाँसे जानेको तैयार हो गये ॥ १९ ॥

आमन्त्र्य तु महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् ।
भरतं लक्ष्मणं चैव महारथमुपारुहत् ॥ २० ॥

सत्यपराक्रमी महात्मा श्रीराम, भरत और लक्ष्मणसे विदा ले शत्रुघ्न एक विशाल रथपर आरूढ़ हुए ॥ २० ॥

दूरं पद्भ्यामनुगतो लक्ष्मणेन महात्मना ।

भरतेन च शत्रुघ्नो जगामाशु पुरीं तदा ॥ २१ ॥

महात्मा लक्ष्मण और भरत पैदल ही उन्हें पहुँचानेके लिये बहुत दूरतक पीछे-पीछे गये । तत्पश्चात् शत्रुघ्न रथके द्वारा शीघ्र ही अपनी राजधानीकी ओर चल दिये ॥ २१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः

एक ब्राह्मणका अपने मरे हुए बालकको राजद्वारपर लाना तथा राजाको ही दोषी बताकर विलाप करना

प्रस्थाप्य तु स शत्रुघ्नं भ्रातृभ्यां सह राघवः ।
प्रमुमोद सुखी राज्यं धर्मेण परिपालयन् ॥ १ ॥

शत्रुघ्नको मथुरा भेजकर भगवान् श्रीराम भरत और लक्ष्मण दोनों भाइयोंके साथ धर्मपूर्वक राज्यका पालन करते हुए बड़े सुख और आनन्दसे रहने लगे ॥ १ ॥

ततः कतिपयाहःसु वृद्धो जानपदो द्विजः ।
मृतं बालमुपादाय राजद्वारमुपागमत् ॥ २ ॥

तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद उस जनपदके भीतर रहनेवाला एक बूढ़ा ब्राह्मण अपने मरे हुए बालकका शव लेकर राजद्वारपर आया ॥ २ ॥

रुदन् बहुविधा वाचः स्नेहदुःखसमन्वितः ।
असकृत् पुत्रपुत्रेति वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ३ ॥

वह स्नेह और दुःखसे आकुल हो नाना प्रकारकी बातें कहता हुआ रो रहा था और बार-बार 'बेटा ! बेटा !' की पुकार मचाता हुआ इस प्रकार विलाप करता था— ॥ ३ ॥

किं नु मे दुष्कृतं कर्म पुरा देहान्तरे कृतम् ।
यदहं पुत्रमेकं तु पश्यामि निधनं गतम् ॥ ४ ॥

'हाय ! मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा ऐसा पाप किया था, जिसके कारण आज इन आँखोंसे मैं अपने इकलौते बेटेकी मृत्यु देख रहा हूँ ॥ ४ ॥

अप्राप्तयौवनं बालं पञ्चवर्षसहस्रकम् ।
अकाले कालमापन्नं मम दुःखाय पुत्रक ॥ ५ ॥

'बेटा ! अभी तो तू बालक था । जवान भी नहीं होने पाया था । केवल पाँच हजार दिन * (तेरह वर्ष दस महीने बीस दिन) की तेरी अवस्था थी । तो भी तू मुझे दुःख देनेके लिये असमयमें ही कालके गालमें चला गया ॥ ५ ॥

अल्पैरहोभिर्निधनं गमिष्यामि न संशयः ।
अहं च जननी चैव तव शोकेन पुत्रक ॥ ६ ॥

'वत्स ! तेरे शोकसे मैं और तेरी माता—दोनों थोड़े ही दिनोंमें मर जायँगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ६ ॥

न स्मराम्यनृतं ह्युक्तं न च हिंसां स्मराम्यहम् ।
सर्वेषां प्राणिनां पापं न स्मरामि कदाचन ॥ ७ ॥

'मुझे याद नहीं पड़ता कि कभी मैंने झूठ बात मुँहसे निकाली हो । किसीकी हिंसा की हो अथवा समस्त प्राणियोंमेंसे किसीको भी कभी कष्ट पहुँचाया हो ॥ ७ ॥

केनाद्य दुष्कृतेनायं बाल एव ममात्मजः ।
अकृत्वा पितृकार्याणि गतो वैवस्वतक्षयम् ॥ ८ ॥

'फिर आज किस पापसे मेरा यह बेटा पितृकर्म किये बिना इस बाल्यावस्थामें ही यमराजके घर चला गया ॥ ८ ॥

नेदृशं दृष्टपूर्वं मे श्रुतं वा घोरदर्शनम् ।
मृत्युरप्राप्तकालानां रामस्य विषये ह्ययम् ॥ ९ ॥

'श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें तो अकाल-मृत्युकी ऐसी भयंकर घटना न पहले कभी देखी गयी थी और न सुननेमें ही आयी थी ॥ ९ ॥

रामस्य दुष्कृतं किञ्चिन्महदस्ति न संशयः ।
यथा हि विषयस्थानां बालानां मृत्युरागतः ॥ १० ॥

'निस्संदेह श्रीरामका ही कोई महान् दुष्कर्म है, जिससे इनके राज्यमें रहनेवाले बालकोंकी मृत्यु होने लगी ॥ १० ॥

नह्यन्यविषयस्थानां बालानां मृत्युतो भयम् ।
स राजञ्जीवयस्वैनं बालं मृत्युवशं गतम् ॥ ११ ॥
राजद्वारि मरिष्यामि पत्न्या सार्धमनाथवत् ।
ब्रह्महत्यां ततो राम समुपेत्य सुखी भव ॥ १२ ॥

'दूसरे राज्यमें रहनेवाले बालकोंको मृत्युसे भय नहीं है; अतः राजन् ! मृत्युके वशमें पड़े हुए इस बालकको जीवित कर दो, नहीं तो मैं अपनी स्त्रीके साथ इस राजद्वारपर अनाथकी भाँति प्राण दे दूँगा । श्रीराम ! फिर ब्रह्महत्याका पाप लेकर तुम सुखी होना ॥ ११-१२ ॥

भ्रातृभिः सहितो राजन् दीर्घमायुरवाप्स्यसि ।
उषिताः स्म सुखं राज्ये तवास्मिन् सुमहाबल ॥ १३ ॥

'महाबली नरेश ! हम तुम्हारे राज्यमें बड़े सुखसे रहे हैं, इसलिये तुम अपने भाइयोंके साथ दीर्घजीवी होओगे ॥ १३ ॥

इदं तु पतितं तस्मात् तव राम वशे स्थितान् ।
कालस्य वशमापन्नाः स्वल्पं हि नहि नः सुखम् ॥ १४ ॥

'श्रीराम ! तुम्हारे अधीन रहनेवाले हमलोगोंपर यह

---

* मूलमें जो 'पञ्चवर्षसहस्रकम्' पद आया है, इसमें वर्ष शब्दका अर्थ दिन समझना चाहिये । जैसे 'सहस्रसंवत्सरं सत्रमुपासीत' इत्यादि विधि-वाक्योंमें 'संवत्सर' शब्द दिवसका वाचक माना गया है ।

बालक-मरणरूपी दुःख सहसा आ पड़ा है, जिससे हम स्वयं भी कालके अधीन हो गये हैं; अतः तुम्हारे इस राज्यमें हमें थोड़ा-सा भी सुख नहीं मिला ॥ १४ ॥

सम्प्रत्यनाथो विषय इक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ।
रामं नाथमिहासाद्य बालान्तकरणं ध्रुवम् ॥ १५ ॥

'महात्मा इक्ष्वाकुवंशी नरेशोंका यह राज्य अब अनाथ हो गया है । श्रीरामको स्वामीके रूपमें पाकर यहाँ बालकोंकी मृत्यु अटल है ॥ १५ ॥

राजदोषैर्विपद्यन्ते प्रजा ह्यविधिपालिताः ।
असद्वृत्ते हि नृपतावकाले म्रियते जनः ॥ १६ ॥

'राजाके दोषसे जब प्रजाका विधिवत् पालन नहीं होता, तभी प्रजावर्गको ऐसी विपत्तियोंका सामना करना पड़ता है । राजाके दुराचारी होनेपर ही प्रजाकी अकाल-मृत्यु होती है ॥

यद् वा पुरेष्वयुक्तानि जना जनपदेषु च ।
कुर्वते न च रक्षास्ति तदा कालकृतं भयम् ॥ १७ ॥

'अथवा नगरों तथा जनपदोंमें रहनेवाले लोग जब अनुचित कर्म—पापाचार करते हैं और वहाँ रक्षाकी कोई व्यवस्था नहीं होती, उन्हें अनुचित कर्मसे रोकनेके लिये कोई उपाय नहीं किया जाता, तभी देशकी प्रजामें अकाल-मृत्युका भय प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

सुव्यक्तं राजदोषो हि भविष्यति न संशयः ।
पुरे जनपदे चापि तथा बालवधो ह्ययम् ॥ १८ ॥

'अतः यह स्पष्ट है कि नगर या राज्यमें कहीं राजासे ही कोई अपराध हुआ होगा; तभी इस तरह बालककी मृत्यु हुई है, इसमें कोई संशय नहीं है' ॥ १८ ॥

एवं बहुविधैर्वाक्यैरुपरुध्य मुहुर्मुहुः ।
राजानं दुःखसंतप्तः सुतं तमुपगूहति ॥ १९ ॥

इस तरह अनेक प्रकारके वाक्योंसे उसने बारंबार राजाके सामने अपना दुःख निवेदन किया और बारंबार शोकसे संतप्त होकर वह अपने मरे हुए पुत्रको उठा-उठाकर हृदयसे लगाता रहा ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः

नारदजीका श्रीरामसे एक तपस्वी शूद्रके अधर्माचरणको ब्राह्मण-बालककी मृत्युमें कारण बताना

तथा तु करुणं तस्य द्विजस्य परिदेवनम् ।
शुश्राव राघवः सर्वं दुःखशोकसमन्वितम् ॥ १ ॥

महाराज श्रीरामने उस ब्राह्मणका इस तरह दुःख और शोकसे भरा हुआ वह सारा करुण-क्रन्दन सुना ॥ १ ॥

स दुःखेन च संतप्तो मन्त्रिणस्तानुपाह्वयत् ।
वसिष्ठं वामदेवं च भ्रातॄंश्च सह नैगमान् ॥ २ ॥

इससे वे दुःखसे संतप्त हो उठे । उन्होंने अपने मन्त्रियोंको बुलाया तथा वसिष्ठ और वामदेवको एवं महाजनोंसहित अपने भाइयोंको भी आमन्त्रित किया ॥ २ ॥

ततो द्विजा वसिष्ठेन सार्धमष्टौ प्रवेशिताः ।
राजानं देवसंकाशं वर्धस्वेति ततोऽब्रुवन् ॥ ३ ॥

तदनन्तर वसिष्ठजीके साथ आठ ब्राह्मणोंने राजसभामें प्रवेश किया और उन देवतुल्य नरेशसे कहा—'महाराज ! आपकी जय हो' ॥ ३ ॥

मार्कण्डेयोऽथ मौद्गल्यो वामदेवश्च काश्यपः ।
कात्यायनोऽथ जाबालिर्गौतमो नारदस्तथा ॥ ४ ॥

उन आठोंके नाम इस प्रकार हैं—मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, काश्यप, कात्यायन, जाबालि, गौतम तथा नारद ॥

एते द्विजर्षभाः सर्वे आसनेषूपवेशिताः ।
महर्षीन् समनुप्राप्तानभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥ ५ ॥

इन सब श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको उत्तम आसनोंपर बैठाया गया । वहाँ पधारे हुए उन महर्षियोंको श्रीरघुनाथजीने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और वे स्वयं भी अपने स्थानपर बैठ गये ॥ ५ ॥

मन्त्रिणो नैगमाश्चैव यथार्हमनुकूलतः ।
तेषां समुपविष्टानां सर्वेषां दीप्ततेजसाम् ॥ ६ ॥
राघवः सर्वमाचष्टे द्विजोऽयमुपरोधते ।

फिर मन्त्री और महाजनोंके साथ यथायोग्य शिष्टाचारका उन्होंने निर्वाह किया । उद्दीप्त तेजवाले वे सब लोग जब यथा-स्थान बैठ गये, तब श्रीरघुनाथजीने उनसे सब बातें बतायीं और कहा—'यह ब्राह्मण राजद्वारपर धरना दिये पड़ा है' ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राज्ञो दीनस्य नारदः ॥ ७ ॥
प्रत्युवाच शुभं वाक्यमृषीणां संनिधौ स्वयम् ।

ब्राह्मणके दुःखसे दुखी हुए उन महाराजका यह वचन सुनकर अन्य सब ऋषियोंके समीप स्वयं नारदजीने यह शुभ बात कही—॥ ७½ ॥

शृणु राजन् यथाकाले प्राप्तो बालस्य संक्षयः ॥ ८ ॥
श्रुत्वा कर्तव्यतां राजन् कुरुष्व रघुनन्दन ।

'राजन् ! जिस कारणसे इस बालककी अकाल-मृत्यु हुई है, वह बताता हूँ, सुनिये । रघुकुलनन्दन नरेश ! मेरी बात सुनकर जो उचित कर्तव्य हो उसका पालन कीजिये ॥ ८½ ॥

पुरा कृतयुगे राजन् ब्राह्मणा वै तपस्विनः ॥ ९ ॥
अब्राह्मणस्तदा राजन् न तपस्वी कथंचन ।

'राजन् ! पहले सत्ययुगमें केवल ब्राह्मण ही तपस्वी हुआ

करते थे । महाराज ! उस समय ब्राह्मणेतर मनुष्य किसी तरह तपस्यामें प्रवृत्त नहीं होता था ॥ ९½ ॥

तस्मिन् युगे प्रज्वलिते ब्रह्मभूते त्वनावृते ॥ १० ॥
अमृत्यवस्तदा सर्वे जज्ञिरे दीर्घदर्शिनः ।

'वह युग तपस्याके तेजसे प्रकाशित होता था । उसमें ब्राह्मणोंकी ही प्रधानता थी । उस समय अज्ञानका वातावरण नहीं था । इसलिये उस युगके सभी मनुष्य अकाल-मृत्युसे रहित तथा त्रिकालदर्शी होते थे ॥ १०½ ॥

ततस्त्रेतायुगं नाम मानवानां वपुष्मताम् ॥ ११ ॥
क्षत्रिया यत्र जायन्ते पूर्वेण तपसान्विताः ।

'सत्ययुगके बाद त्रेतायुग आया । इसमें सुदृढ़ शरीरवाले क्षत्रियोंकी प्रधानता हुई और वे क्षत्रिय भी उसी प्रकारकी तपस्या करने लगे ॥ ११½ ॥

वीर्येण तपसा चैव तेऽधिकाः पूर्वजन्मनि ॥ १२ ॥
मानवा ये महात्मानस्तत्र त्रेतायुगे युगे ।

'परंतु त्रेतायुगमें जो महात्मा पुरुष हैं, उनकी अपेक्षा सत्ययुगके लोग तप और पराक्रमकी दृष्टिसे बढ़े-चढ़े थे ॥

ब्रह्म क्षत्रं च तत् सर्वं यत् पूर्वमवरं च यत् ॥ १३ ॥
युगयोरुभयोरासीत् समवीर्यसमन्वितम् ।

'इस प्रकार दोनों युगोंमेंसे पूर्व युगमें जहाँ ब्राह्मण उत्कृष्ट और क्षत्रिय अपकृष्ट थे, वहाँ त्रेतायुगमें वे समान-शक्तिशाली हो गये ॥ १३½ ॥

अपश्यन्तस्तु ते सर्वे विशेषमधिकं ततः ॥ १४ ॥
स्थापनं चक्रिरे तत्र चातुर्वर्ण्यस्य सम्मतम् ।

'तब मनु आदि सभी धर्मप्रवर्तकोंने ब्राह्मण और क्षत्रियमें एककी अपेक्षा दूसरेमें कोई विशेषता या न्यूनाधिकता न देखकर सर्वलोकसम्मत चातुर्वर्ण्य-व्यवस्थाकी स्थापना की ॥

तस्मिन् युगे प्रज्वलिते धर्मभूते ह्यनावृते ॥ १५ ॥
अधर्मः पादमेकं तु पातयत् पृथिवीतले ।
अधर्मेण हि संयुक्तस्तेजो मन्दं भविष्यति ॥ १६ ॥

'त्रेतायुग वर्णाश्रम-धर्म-प्रधान है । वह धर्मके प्रकाशसे प्रकाशित होता है । वह धर्ममें बाधा डालनेवाले पापसे रहित है । इस युगमें अधर्मने भूतलपर अपना एक पैर रक्खा है । अधर्मसे युक्त होनेके कारण यहाँ लोगोंका तेज धीरे-धीरे घटता जायगा ॥ १५-१६ ॥

आमिषं यच्च पूर्वेषां राजसं च मलं भृशम् ।
अनृतं नाम तद् भूतं पादेन पृथिवीतले ॥ १७ ॥

'सत्ययुगमें जीविकाका साधनभूत कृषि आदि रजोगुण-मूलक कर्म 'अनृत' कहलाता था और मलके समान अत्यन्त त्याज्य था । वह अनृत ही अधर्मका एक पाद होकर त्रेतामें इस भूतलपर स्थित हुआ ॥ १७ ॥

अनृतं पातयित्वा तु पादमेकमधर्मतः ।
ततः प्रादुष्कृतं पूर्वमायुषः परिनिष्ठितम् ॥ १८ ॥

'इस प्रकार अनृत (असत्य) रूपी एक पैरको भूतलपर रखकर अधर्मने त्रेतामें सत्ययुगकी अपेक्षा आयुको सीमित कर दिया ॥ १८ ॥

पातिते त्वनृते तस्मिन्नधर्मेण महीतले ।
शुभान्येवाचरँल्लोकः सत्यधर्मपरायणः ॥ १९ ॥

'अतः पृथ्वीपर अधर्मके इस अनृतरूपी चरणके पड़नेपर सत्यधर्मपरायण पुरुष उस अनृतके कुपरिणामसे बचनेके लिये शुभकर्मोंका ही आचरण करते हैं ॥ १९ ॥

त्रेतायुगे च वर्तन्ते ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्च ये ।
तपोऽतप्यन्त ते सर्वे शुश्रूषामपरे जनाः ॥ २० ॥

'तथापि त्रेतायुगमें जो ब्राह्मण और क्षत्रिय हैं, वे ही सब तपस्या करते हैं । अन्य वर्णके लोग सेवा-कार्य किया करते हैं ॥

स्वधर्मः परमस्तेषां वैश्यशूद्रं तदागमत् ।
पूजां च सर्ववर्णानां शूद्राश्चक्रुर्विशेषतः ॥ २१ ॥

'उन चारों वर्णोंमेंसे वैश्य और शूद्रको सेवारूपी उत्कृष्ट धर्म स्वधर्मके रूपमें प्राप्त हुआ (वैश्य कृषि आदिके द्वारा ब्राह्मण आदिकी सेवा करने लगे और) शूद्र सब वर्णोंकी (तीनों वर्णोंके लोगोंकी) विशेषरूपसे पूजा—आदर-सत्कार करने लगे ॥ २१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तेषामधर्मे चानृते च ह ।
ततः पूर्वे पुनर्ह्रासमगमन्नृपसत्तम ॥ २२ ॥

'नृपश्रेष्ठ ! इसी बीचमें जब त्रेतायुगका अवसान होता है और वैश्यों तथा शूद्रोंको अधर्मके एक-पादरूप अनृतकी प्राप्ति होने लगती है, तब पूर्व वर्णवाले ब्राह्मण और क्षत्रिय फिर ह्रासको प्राप्त होने लगते हैं (क्योंकि उन दोनोंको अन्तिम दो वर्णोंका संसर्गजनित दोष प्राप्त हो जाता है) ॥ २२ ॥

ततः पादमधर्मस्य द्वितीयमवतारयत् ।
ततो द्वापरसंख्या सा युगस्य समजायत ॥ २३ ॥

'तदनन्तर अधर्म अपने दूसरे चरणको पृथ्वीपर उतारता है । द्वितीय पैर उतारनेके कारण ही उस युगकी 'द्वापर' संज्ञा हो गयी है ॥ २३ ॥

तस्मिन् द्वापरसंख्ये तु वर्तमाने युगक्षये ।
अधर्मश्चानृतं चैव ववृधे पुरुषर्षभ ॥ २४ ॥

'पुरुषोत्तम ! उस द्वापरनामक युगमें जो अधर्मके दो चरणोंका आश्रय है—अधर्म और अनृत दोनोंकी वृद्धि होने लगती है ॥ २४ ॥

अस्मिन् द्वापरसंख्याने तपो वैश्यान् समाविशत् ।
त्रिभ्यो युगेभ्यस्त्रीन् वर्णान् क्रमाद् वै तप आविशत् ॥ २५ ॥

'इस द्वापर युगमें तपस्यारूप कर्म वैश्योंको भी प्राप्त होता है । इस तरह तीन युगोंमें क्रमशः तीन वर्णोंको तपस्याका अधिकार प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

त्रिभ्यो युगेभ्यस्त्रीन् वर्णान् धर्मश्च परिनिष्ठितः ।
न शूद्रो लभते धर्मं युगतस्तु नरर्षभ ॥ २६ ॥

'तीन युगोंमें तीन वर्णोंका ही आश्रय लेकर तपस्यारूपी धर्म प्रतिष्ठित होता है; किंतु नरश्रेष्ठ ! शूद्रको इन तीनों ही युगोंमें तपरूपी धर्मका अधिकार नहीं प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

हीनवर्णो नृपश्रेष्ठ तप्यते सुमहत्तपः ।
भविष्यच्छूद्रयोन्यां हि तपश्चर्या कलौ युगे ॥ २७ ॥

'नृपशिरोमणे ! एक समय ऐसा आयगा, जब हीन वर्णका मनुष्य भी बड़ी भारी तपस्या करेगा । कलियुग आनेपर भविष्यमें होनेवाली शूद्रयोनिमें उत्पन्न मनुष्योंके समुदायमें तपश्चर्याकी प्रवृत्ति होगी ॥ २७ ॥

अधर्मः परमो राजन् द्वापरे शूद्रजन्मनः ।
स वै विषयपर्यन्ते तव राजन् महातपाः ॥ २८ ॥
अद्य तप्यति दुर्बुद्धिस्तेन बालवधो ह्ययम् ।

'राजन् ! द्वापरमें भी शूद्रका तपमें प्रवृत्त होना महान् अधर्म माना गया है । (फिर त्रेताके लिये तो कहना ही क्या है !) महाराज ! निश्चय ही आपके राज्यकी किसी सीमापर कोई खोटी बुद्धिवाला शूद्र महान् तपका आश्रय ले तपस्या कर रहा है, उसीके कारण इस बालककी मृत्यु हुई है ॥

यो ह्यधर्ममकार्यं वा विषये पार्थिवस्य तु ॥ २९ ॥
करोति चाश्रीमूलं तत्पुरे वा दुर्मतिर्नरः ।
क्षिप्रं च नरकं याति स च राजा न संशयः ॥ ३० ॥

'जो कोई भी दुर्बुद्धि मानव जिस किसी भी राजाके राज्य अथवा नगरमें अधर्म या न करने योग्य काम करता है, उसका वह कार्य उस राज्यके अनैश्वर्य (दरिद्रता) का कारण बन जाता है और वह राजा शीघ्र ही नरकमें पड़ता है, इसमें संशय नहीं ॥ २९-३० ॥

अधीतस्य च तप्तस्य कर्मणः सुकृतस्य च ।
षष्ठं भजति भागं तु प्रजा धर्मेण पालयन् ॥ ३१ ॥

'इसी प्रकार जो राजा धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करता है, वह प्रजाके वेदाध्ययन, तप और शुभ कर्मोंके पुण्यका छठा भाग प्राप्त कर लेता है ॥ ३१ ॥

षड्भागस्य च भोक्तासौ रक्षते न प्रजाः कथम् ।
स त्वं पुरुषशार्दूल मार्गस्व विषयं स्वकम् ॥ ३२ ॥
दुष्कृतं यत्र पश्येथास्तत्र यत्नं समाचर ।

'पुरुषसिंह ! जो प्रजाके शुभ-कर्मोंके छठे भागका उपभोक्ता है, वह प्रजाकी रक्षा कैसे नहीं करेगा ? अतः आप अपने राज्यमें खोज कीजिये और जहाँ कोई दुष्कर्म दिखायी दे, वहाँ उसके रोकनेका प्रयत्न कीजिये ॥ ३२½ ॥

एवं चेद् धर्मवृद्धिश्च नृणां चायुर्विवर्धनम् ।
भविष्यति नरश्रेष्ठ बालस्यास्य च जीवितम् ॥ ३३ ॥

'नरश्रेष्ठ ! ऐसा करनेसे धर्मकी वृद्धि होगी और मनुष्योंकी आयु बढ़ेगी । साथ ही इस बालकको भी नया जीवन प्राप्त होगा' ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमः सर्गः

श्रीरामका पुष्पक विमानद्वारा अपने राज्यकी सभी दिशाओंमें घूमकर दुष्कर्मका पता लगाना, किंतु सर्वत्र सत्कर्म ही देखकर दक्षिण दिशामें एक शूद्र तपस्वीके पास पहुँचना

नारदस्य तु तद् वाक्यं श्रुत्वामृतमयं यथा ।
प्रहर्षमतुलं लेभे लक्ष्मणं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥

नारदजीके ये अमृतमय वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको अपार आनन्द प्राप्त हुआ और उन्होंने लक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥

गच्छ सौम्य द्विजश्रेष्ठं समाश्वासय सुव्रत ।
बालस्य च शरीरं तत् तैलद्रोण्यां निधापय ॥ २ ॥
गन्धैश्च परमोदारैस्तैलैश्च सुसुगन्धिभिः ।
यथा न क्षीयते बालस्तथा सौम्य विधीयताम् ॥ ३ ॥

'सौम्य ! जाओ । उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ! इन द्विजश्रेष्ठको सान्त्वना दो और इनके बालकका शरीर उत्तम गन्ध एवं सुगन्धसे युक्त तेलसे भरे हुए काठके बड़े कठौते या डोंगीमें डुबाकर रखवा दो और ऐसी व्यवस्था कर दो, जिससे बालकका शरीर विकृत या नष्ट न होने पाये ॥ २-३ ॥

यथा शरीरो बालस्य गुप्तः सन् क्लिष्टकर्मणः ।
विपत्तिः परिभेदो वा न भवेच्च तथा कुरु ॥ ४ ॥

'शुभ कर्म करनेवाले इस बालकका शरीर जिस प्रकार सुरक्षित रहे, नष्ट या खण्डित न हो, वैसा प्रबन्ध करो' ॥४॥

एवं संदिश्य काकुत्स्थो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।
मनसा पुष्पकं दध्यावागच्छेति महायशाः ॥ ५ ॥

शुभलक्षण लक्ष्मणको ऐसा संदेश दे महायशस्वी श्रीरघुनाथजीने मन-ही-मन पुष्पकका चिन्तन किया और कहा—'आ जाओ' ॥ ५ ॥

इङ्गितं स तु विज्ञाय पुष्पको हेमभूषितः ।
आजगाम मुहूर्तेन समीपे राघवस्य वै ॥ ६ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका अभिप्राय समझकर सुवर्णभूषित पुष्पक-विमान एक ही मुहूर्तमें उनके पास आ गया ॥ ६ ॥

सोऽब्रवीत् प्रणतो भूत्वा अयमस्मि नराधिप ।
वश्यस्तव महाबाहो किंकरः समुपस्थितः ॥ ७ ॥

आकर नतमस्तक हो वह बोला—'नरेश्वर ! यह रहा मैं । महाबाहो ! मैं सदा आपके अधीन रहनेवाला किंकर हूँ और सेवाके लिये उपस्थित हुआ हूँ' ॥ ७ ॥

भाषितं रुचिरं श्रुत्वा पुष्पकस्य नराधिपः ।
अभिवाद्य महर्षीन् स विमानं सोऽध्यरोहत ॥ ८ ॥

पुष्पकविमानका यह मनोहर वचन सुनकर वे महाराज श्रीराम महर्षियोंको प्रणाम करके उस विमानपर आरूढ़ हुए॥

धनुर्गृहीत्वा तूणी च खड्गं च रुचिरप्रभम् ।
निक्षिप्य नगरे चैतौ सौमित्रिभरतावुभौ ॥ ९ ॥

उन्होंने धनुष, बाणोंसे भरे हुए दो तरकस और एक चमचमाती हुई तलवार हाथमें ले ली और लक्ष्मण तथा भरत—इन दोनों भाइयोंको नगरकी रक्षामें नियुक्त करके वहाँसे प्रस्थान किया ॥ ९ ॥

प्रायात् प्रतीचीं हरितं विचिन्वंश्च ततस्ततः ।
उत्तरामगमच्छ्रीमान् दिशं हिमवतावृताम् ॥ १० ॥

श्रीमान् राम पहले तो इधर-उधर खोजते हुए पश्चिम दिशाकी ओर गये । फिर हिमालयसे घिरी हुई उत्तर दिशामें जा पहुँचे ॥ १० ॥

अपश्यमानस्तत्रापि स्वल्पमप्यथ दुष्कृतम् ।
पूर्वामपि दिशं सर्वामथापश्यन्नराधिपः ॥ ११ ॥

जब उन दोनों दिशाओंमें कहीं थोड़ा-सा भी दुष्कर्म नहीं दिखायी दिया, तब नरेश्वर श्रीरामने समूची पूर्व दिशाका भी निरीक्षण किया ॥ ११ ॥

प्रविशुद्धसमाचारामादर्शतलनिर्मलाम् ।
पुष्पकस्थो महाबाहुस्तदापश्यन्नराधिपः ॥ १२ ॥

पुष्पकपर बैठे हुए महाबाहु राजा श्रीरामने वहाँ भी शुद्ध सदाचारका पालन होता देखा । वह दिशा भी दर्पणके समान निर्मल दिखायी दी ॥ १२ ॥

दक्षिणां दिशमाक्रामत् ततो राजर्षिनन्दनः ।
शैवलस्योत्तरे पार्श्वे ददर्श सुमहत्सरः ॥ १३ ॥

तब राजर्षिनन्दन रघुनाथजी दक्षिण दिशाकी ओर गये । वहाँ शैवल पर्वतके उत्तर भागमें उन्हें एक महान् सरोवर दिखायी दिया ॥ १३ ॥

तस्मिन् सरसि तप्यन्तं तापसं सुमहत्तपः ।
ददर्श राघवः श्रीमाँल्लम्बमानमधोमुखम् ॥ १४ ॥

उस सरोवरके तटपर एक तपस्वी बड़ी भारी तपस्या कर रहा था । वह नीचेको मुख किये लटका हुआ था । रघुकुलनन्दन श्रीरामने उसे देखा ॥ १४ ॥

राघवस्तमुपागम्य तप्यन्तं तप उत्तमम् ।
उवाच च नृपो वाक्यं धन्यस्त्वमसि सुव्रत ॥ १५ ॥
कस्यां योन्यां तपोवृद्ध वर्तसे दृढविक्रम ।
कौतूहलात् त्वां पृच्छामि रामो दाशरथिर्ह्यहम् ॥ १६ ॥

देखकर राजा श्रीरघुनाथजी उग्र तपस्या करते हुए उस तपस्वीके पास आये और बोले—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले तापस ! तुम धन्य हो । तपस्यामें बढ़े-चढ़े सुदृढ़ पराक्रमी पुरुष ! तुम किस जातिमें उत्पन्न हुए हो ? मैं दशरथकुमार राम तुम्हारा परिचय जाननेके कौतूहलसे ये बातें पूछ रहा हूँ ॥

कोऽर्थो मनीषितस्तुभ्यं स्वर्गलाभोऽपरोऽथवा ।
वराश्रयो यदर्थं त्वं तपस्यन्यैः सुदुश्चरम् ॥ १७ ॥

'तुम्हें किस वस्तुको पानेकी इच्छा है ? तपस्याद्वारा संतुष्ट हुए इष्टदेवतासे वरके रूपमें तुम क्या पाना चाहते हो—स्वर्ग या दूसरी कोई वस्तु ? कौन-सा ऐसा पदार्थ है, जिसके लिये तुम ऐसी कठोर तपस्या करते हो, जो दूसरोंके लिये दुष्कर है ? ॥ १७ ॥

यमाश्रित्य तपस्तप्तं श्रोतुमिच्छामि तापस ।
ब्राह्मणो वासि भद्रं ते क्षत्रियो वासि दुर्जयः ।
वैश्यस्तृतीयो वर्णो वा शूद्रो वा सत्यवाग् भव ॥ १८ ॥

'तापस ! जिस वस्तुके लिये तुम तपस्यामें लगे हुए हो, उसे मैं सुनना चाहता हूँ । इसके सिवा यह भी बताओ कि तुम ब्राह्मण हो या दुर्जय क्षत्रिय ? तीसरे वर्णके वैश्य हो अथवा शूद्र ? तुम्हारा भला हो । ठीक-ठीक बताना' ॥ १८ ॥

इत्येवमुक्तः स नराधिपेन
अवाक्शिरा दाशरथाय तस्मै ।
उवाच जातिं नृपपुङ्गवाय
यत्कारणं चैव तपःप्रयत्नः ॥ १९ ॥

महाराज श्रीरामके इस प्रकार पूछनेपर नीचे सिर किये लटके हुए उस तपस्वीने उन नृपश्रेष्ठ दशरथनन्दन श्रीरामको अपनी जातिका परिचय दिया और जिस उद्देश्यसे उसने तपस्याके लिये प्रयास किया था, वह भी बताया ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पचहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः

श्रीरामके द्वारा शम्बूकका वध, देवताओंद्वारा उनकी प्रशंसा, अगस्त्याश्रमपर महर्षि अगस्त्यके द्वारा उनका सत्कार और उनके लिये आभूषण-दान

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
अवाक्शिरास्तथाभूतो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥

क्लेशरहित कर्म करनेवाले भगवान् रामका यह वचन सुनकर नीचे मस्तक किये लटका हुआ वह तथाकथित तपस्वी इस प्रकार बोला—॥ १ ॥

शूद्रयोन्यां प्रजातोऽस्मि तप उग्रं समास्थितः ।

देवत्वं प्रार्थये राम सशरीरो महायशः ॥ २ ॥

'महायशस्वी श्रीराम ! मैं शूद्रयोनिमें उत्पन्न हुआ हूँ और सदेह स्वर्गलोकमें जाकर देवत्व प्राप्त करना चाहता हूँ। इसीलिये ऐसा उग्र तप कर रहा हूँ ॥ २ ॥

न मिथ्याहं वदे राम देवलोकजिगीषया ।
शूद्रं मां विद्धि काकुत्स्थ शम्बूकं नाम नामतः ॥ ३ ॥

'ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम ! मैं झूठ नहीं बोलता । देवलोकपर विजय पानेकी इच्छासे ही तपस्यामें लगा हूँ । आप मुझे शूद्र समझिये । मेरा नाम शम्बूक है' ॥ ३ ॥

भाषतस्तस्य शूद्रस्य खड्गं सुरुचिरप्रभम् ।
निष्कृष्य कोशाद् विमलं शिरश्चिच्छेद राघवः ॥ ४ ॥

वह इस प्रकार कह ही रहा था कि श्रीरामचन्द्रजीने म्यानसे चमचमाती हुई तलवार खींच ली और उसीसे उसका सिर काट लिया ॥ ४ ॥

तस्मिञ्शूद्रे हते देवाः सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ।
साधु साध्विति काकुत्स्थं ते शशंसुर्मुहुर्मुहुः ॥ ५ ॥

उस शूद्रका वध होते ही इन्द्र और अग्निसहित सम्पूर्ण देवता 'बहुत ठीक, बहुत ठीक' कहकर भगवान् श्रीरामकी बारंबार प्रशंसा करने लगे ॥ ५ ॥

पुष्पवृष्टिर्महत्यासीद् दिव्यानां सुसुगन्धिनाम् ।
पुष्पाणां वायुमुक्तानां सर्वतः प्रपपात ह ॥ ६ ॥

उस समय उनके ऊपर सब ओरसे वायुदेवताद्वारा बिखेरे गये दिव्य एवं परम सुगन्धित पुष्पोंकी बड़ी भारी वर्षा होने लगी ॥ ६ ॥

सुप्रीताश्चाब्रुवन् रामं देवाः सत्यपराक्रमम् ।
सुरकार्यमिदं देव सुकृतं ते महामते ॥ ७ ॥

वे सब देवता अत्यन्त प्रसन्न होकर सत्यपराक्रमी श्रीरामसे बोले—'देव ! महामते ! आपने यह देवताओंका ही कार्य सम्पन्न किया है ॥ ७ ॥

गृहाण च वरं सौम्य यं त्वमिच्छस्यरिंदम ।
स्वर्गभाङ् नहि शूद्रोऽयं त्वत्कृते रघुनन्दन ॥ ८ ॥

'शत्रुओंका दमन करनेवाले रघुकुलनन्दन सौम्य श्रीराम ! आपके इस सत्कर्मसे ही यह शूद्र सशरीर स्वर्गलोकमें नहीं जा सका है । अतः आप जो वर चाहें माँग लें' ॥ ८ ॥

देवानां भाषितं श्रुत्वा रामः सत्यपराक्रमः ।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं सहस्राक्षं पुरंदरम् ॥ ९ ॥

देवताओंका यह वचन सुनकर सत्यपराक्रमी श्रीरामने दोनों हाथ जोड़ सहस्रनेत्रधारी देवराज इन्द्रसे कहा—॥ ९ ॥

यदि देवाः प्रसन्ना मे द्विजपुत्रः स जीवतु ।
दिशन्तु वरमेतं मे ईप्सितं परमं मम ॥ १० ॥

'यदि देवता मुझपर प्रसन्न हैं तो वह ब्राह्मणपुत्र जीवित हो जाय । यही मेरे लिये सबसे उत्तम और अभीष्ट वर है । देवतालोग मुझे यही वर दें ॥ १० ॥

ममापचाराद् बालोऽसौ ब्राह्मणस्यैकपुत्रकः ।
अप्राप्तकालः कालेन नीतो वैवस्वतक्षयम् ॥ ११ ॥

'मेरे ही किसी अपराधसे ब्राह्मणका वह इकलौता बालक असमयमें ही कालके गालमें चला गया है ॥ ११ ॥

तं जीवयत भद्रं वो नानृतं कर्तुमर्हथ ।
द्विजस्य संश्रुतोऽर्थो मे जीवयिष्यामि ते सुतम् ॥ १२ ॥

'मैंने ब्राह्मणके सामने यह प्रतिज्ञा की है कि 'मैं आपके पुत्रको जीवित कर दूँगा ।' अतः आपलोगोंका कल्याण हो । आप उस ब्राह्मण-बालकको जीवित कर दें । मेरी बातको झूठी न करें' ॥ १२ ॥

राघवस्य तु तद् वाक्यं श्रुत्वा विबुधसत्तमाः ।
प्रत्यूचू राघवं प्रीता देवाः प्रीतिसमन्वितम् ॥ १३ ॥

श्रीरघुनाथजीकी यह बात सुनकर वे विबुधशिरोमणि देवता उनसे प्रसन्नतापूर्वक बोले—॥ १३ ॥

निर्वृतो भव काकुत्स्थ सोऽस्मिन्नहनि बालकः ।
जीवितं प्राप्तवान् भूयः समेतश्चापि बन्धुभिः ॥ १४ ॥

'ककुत्स्थकुलभूषण ! आप संतुष्ट हों । वह बालक आज फिर जीवित हो गया और अपने भाई-बन्धुओंसे जा मिला ॥

यस्मिन् मुहूर्ते काकुत्स्थ शूद्रोऽयं विनिपातितः ।
तस्मिन् मुहूर्ते बालोऽसौ जीवेन समयुज्यत ॥ १५ ॥

'काकुत्स्थ ! आपने जिस मुहूर्तमें इस शूद्रको धराशायी किया है, उसी मुहूर्तमें वह बालक जी उठा है ॥ १५ ॥

स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते साधु याम नरर्षभ ।
अगस्त्यस्याश्रमपदं द्रष्टुमिच्छाम राघव ॥ १६ ॥
तस्य दीक्षा समाप्ता हि ब्रह्मर्षेः सुमहाद्युतेः ।
द्वादशं हि गतं वर्षं जलशय्यां समासतः ॥ १७ ॥

'नरश्रेष्ठ ! आपका कल्याण हो । भला हो । अब हम अगस्त्याश्रमको जा रहे हैं । रघुनन्दन ! हम महर्षि अगस्त्यका दर्शन करना चाहते हैं । उन्हें जलशय्या लिये पूरे बारह वर्ष बीत चुके हैं । अब उन महातेजस्वी ब्रह्मर्षिकी वह जलशयन-सम्बन्धी व्रतकी दीक्षा समाप्त हुई है ॥१६-१७ ॥

काकुत्स्थ तद् गमिष्यामो मुनिं समभिनन्दितुम् ।
त्वं चापि गच्छ भद्रं ते द्रष्टुं तमृषिसत्तमम् ॥ १८ ॥

'रघुनन्दन ! इसीलिये हमलोग उन महर्षिका अभिनन्दन करनेके लिये जायँगे । आपका कल्याण हो । आप भी उन मुनिश्रेष्ठका दर्शन करनेके लिये चलिये' ॥ १८ ॥

स तथेति प्रतिज्ञाय देवानां रघुनन्दनः ।
आरुरोह विमानं तं पुष्पकं हेमभूषितम् ॥ १९ ॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर रघुकुलनन्दन श्रीराम देवताओंके सामने वहाँ जानेकी प्रतिज्ञा करके उस सुवर्णभूषित पुष्पकविमानपर चढ़े ॥ १९ ॥

ततो देवाः प्रयातास्ते विमानैर्बहुविस्तरैः ।
रामोऽप्यनुजगामाशु कुम्भयोनेस्तपोवनम् ॥ २० ॥

तत्पश्चात् देवता बहुसंख्यक विमानोंपर आरूढ़ हो वहाँसे प्रस्थित हुए । फिर श्रीराम भी उन्हींके साथ शीघ्रतापूर्वक कुम्भज ऋषिके तपोवनको चल दिये ॥ २० ॥

दृष्ट्वा तु देवान् सम्प्राप्तानगस्त्यस्तपसां निधिः ।
अर्चयामास धर्मात्मा सर्वांस्तानविशेषतः ॥ २१ ॥

देवताओंको आया देख तपस्याकी निधि धर्मात्मा अगस्त्यने उन सबकी समानरूपसे पूजा की ॥ २१ ॥

प्रतिगृह्य ततः पूजां सम्पूज्य च महामुनिम् ।
जग्मुस्ते त्रिदशा हृष्टा नाकपृष्ठं सहानुगाः ॥ २२ ॥

उनकी पूजा ग्रहण करके उन महामुनिका अभिनन्दन कर वे सब देवता अनुचरोंसहित बड़े हर्षके साथ स्वर्गको चले गये ॥ २२ ॥

गतेषु तेषु काकुत्स्थः पुष्पकादवरुह्य च ।
ततोऽभिवादयामास अगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ २३ ॥

उनके चले जानेपर श्रीरघुनाथजीने पुष्पकविमानसे उतरकर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यको प्रणाम किया ॥ २३ ॥

सोऽभिवाद्य महात्मानं ज्वलन्तमिव तेजसा ।
आतिथ्यं परमं प्राप्य निषसाद नराधिपः ॥ २४ ॥

अपने तेजसे प्रज्वलित-से होनेवाले महात्मा अगस्त्यका अभिवादन करके उनसे उत्तम आतिथ्य पाकर नरेश्वर श्रीराम आसनपर बैठे ॥ २४ ॥

तमुवाच महातेजाः कुम्भयोनिर्महातपाः ।
स्वागतं ते नरश्रेष्ठ दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव ॥ २५ ॥

उस समय महातेजस्वी महातपस्वी कुम्भज मुनिने कहा—'नरश्रेष्ठ रघुनन्दन ! आपका स्वागत है । आप यहाँ पधारे, यह मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात है ॥ २५ ॥

त्वं मे बहुमतो राम गुणैर्बहुभिरुत्तमैः ।
अतिथिः पूजनीयश्च मम राजन् हृदि स्थितः ॥ २६ ॥

'महाराज श्रीराम ! बहुत से उत्तम गुणोंके कारण आपके लिये मेरे हृदयमें बड़ा सम्मान है । आप मेरे आदरणीय अतिथि हैं और सदा मेरे मनमें बसे रहते हैं ॥ २६ ॥

सुरा हि कथयन्ति त्वामागतं शूद्रघातिनम् ।
ब्राह्मणस्य तु धर्मेण त्वया जीवापितः सुतः ॥ २७ ॥

'देवतालोग कहते थे कि 'आप अधर्मपरायण शूद्रका वध करके आ रहे हैं तथा धर्मके बलसे आपने ब्राह्मणके उस मरे हुए पुत्रको जीवित कर दिया है' ॥२७॥

उष्यतां चेह रजनीं सकाशे मम राघव ।
प्रभाते पुष्पकेण त्वं गन्तासि पुरमेव हि ॥ २८ ॥
त्वं हि नारायणः श्रीमांस्त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
त्वं प्रभुः सर्वदेवानां पुरुषस्त्वं सनातनः ॥ २९ ॥

'रघुनन्दन ! आज रातको आप मेरे ही पास इस आश्रममें निवास कीजिये । कल सबेरे पुष्पकविमानद्वारा अपने नगरको जाइयेगा । आप साक्षात् श्रीमान् नारायण हैं । सारा जगत् आपमें ही प्रतिष्ठित है और आप ही समस्त देवताओंके स्वामी तथा सनातन पुरुष हैं ॥ २८-२९ ॥

इदं चाभरणं सौम्य निर्मितं विश्वकर्मणा ।
दिव्यं दिव्येन वपुषा दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ ३० ॥

'सौम्य ! यह विश्वकर्माका बनाया हुआ दिव्य आभूषण है, जो अपने दिव्य रूप और तेजसे प्रकाशित हो रहा है ॥

प्रतिगृह्णीष्व काकुत्स्थ मत्प्रियं कुरु राघव ।
दत्तस्य हि पुनर्दाने सुमहत् फलमुच्यते ॥ ३१ ॥

'ककुत्स्थकुलभूषण रघुनन्दन ! आप इसे लीजिये और मेरा प्रिय कीजिये; क्योंकि किसीकी दी हुई वस्तुका पुनः दान कर देनेसे महान् फलकी प्राप्ति बतायी जाती है ॥ ३१ ॥

भरणे हि भवाञ्शक्तः फलानां महतामपि ।
त्वं हि शक्तस्तारयितुं सेन्द्रानपि दिवौकसः ॥ ३२ ॥
तस्मात् प्रदास्ये विधिवत् तत् प्रतीच्छ नराधिप ।

'इस आभूषणको धारण करनेमें केवल आप ही समर्थ हैं तथा बड़े-से-बड़े फलोंकी प्राप्ति करानेकी शक्ति भी आपमें ही है । आप इन्द्र आदि देवताओंको भी तारनेमें समर्थ हैं, इसलिये नरेश्वर ! यह भूषण भी मैं आपको ही दूँगा । आप इसे विधिपूर्वक ग्रहण करें' ॥ ३२½ ॥

अथोवाच महात्मानमिक्ष्वाकूणां महारथः ॥ ३३ ॥
रामो मतिमतां श्रेष्ठः क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ।
प्रतिग्रहोऽयं भगवन् ब्राह्मणस्याविगर्हितः ॥ ३४ ॥

तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ और इक्ष्वाकुकुलके महारथी वीर श्रीरामने क्षत्रियधर्मका विचार करते हुए वहाँ महात्मा अगस्त्यजीसे कहा—'भगवन् ! दान लेनेका काम तो केवल ब्राह्मणके लिये ही निन्दित नहीं है ॥ ३३-३४॥

क्षत्रियेण कथं विप्र प्रतिग्राह्यं भवेत् ततः ।
प्रतिग्रहो हि विप्रेन्द्र क्षत्रियाणां सुगर्हितः ॥ ३५ ॥
ब्राह्मणेन विशेषेण दत्तं तद् वक्तुमर्हसि ।

'विप्रवर ! क्षत्रियोंके लिये तो प्रतिग्रह स्वीकार करना अत्यन्त निन्दित बताया गया है । फिर क्षत्रिय प्रतिग्रह—विशेषतः ब्राह्मणका दिया हुआ दान कैसे ले सकता है ? यह बतानेकी कृपा करें' ॥ ३५½ ॥

एवमुक्तस्तु रामेण प्रत्युवाच महानृषिः ॥ ३६ ॥
आसन् कृतयुगे राम ब्रह्मभूते पुरायुगे ।
अपार्थिवाः प्रजाः सर्वाः सुराणां तु शतक्रतुः ॥ ३७ ॥

श्रीरामके इस प्रकार पूछनेपर महर्षि अगस्त्यने उत्तर दिया—'रघुनन्दन ! पहले ब्रह्मस्वरूप सत्ययुगमें सारी प्रजा बिना राजाके ही थी, आगे चलकर इन्द्र देवताओंके राजा बनाये गये ॥ ३६-३७ ॥

ताः प्रजा देवदेवेशं राजार्थं समुपाद्रवन् ।
सुराणां स्थापितो राजा त्वया देव शतक्रतुः ॥ ३८ ॥
प्रयच्छास्मासु लोकेश पार्थिवं नरपुङ्गवम् ।

यस्मै पूजां प्रयुञ्जाना धूतपापाश्चरेमहि ॥ ३९ ॥

'तब सारी प्रजाएँ देवदेवेश्वर ब्रह्माजीके पास राजाके लिये गयीं और बोलीं—'देव ! आपने इन्द्रको देवताओंके राजाके पदपर स्थापित किया है । इसी तरह हमारे लिये भी किसी श्रेष्ठ पुरुषको राजा बना दीजिये, जिसकी पूजा करके हम पापरहित हो इस भूतलपर विचरें ॥ ३८-३९ ॥

न वसामो विना राज्ञा एष नो निश्चयः परः ।
ततो ब्रह्मा सुरश्रेष्ठो लोकपालान् सवासवान् ॥ ४० ॥
समाहूयाब्रवीत् सर्वांस्तेजोभागान् प्रयच्छत ।
ततो ददुर्लोकपालाः सर्वे भागान् स्वतेजसः ॥ ४१ ॥

''हम बिना राजाके नहीं रहेंगी। यह हमारा उत्तम निश्चय है ।' तब सुरश्रेष्ठ ब्रह्माने इन्द्रसहित समस्त लोकपालोंको बुलाकर कहा—'तुम सब लोग अपने तेजका एक-एक भाग दो ।' तब समस्त लोकपालोंने अपने-अपने तेजका भाग अर्पित किया ॥ ४०-४१ ॥

अक्षुपच्च ततो ब्रह्मा यतो जातः क्षुपो नृपः ।
तं ब्रह्मा लोकपालानां समांशैः समयोजयत् ॥ ४२ ॥

'उसी समय ब्रह्माजीको छींक आयी, जिससे क्षुप नामक राजा उत्पन्न हुआ । ब्रह्माजीने उस राजाको लोकपालोंके दिये हुए तेजके उन सभी भागोंसे संयुक्त कर दिया ॥ ४२ ॥

ततो ददौ नृपं तासां प्रजानामीश्वरं क्षुपम् ।
तत्रैन्द्रेण च भागेन महीमाज्ञापयन्नृपः ॥ ४३ ॥

'तत्पश्चात् उन्होंने क्षुपको ही उन प्रजाजनोंके लिये उनके शासक नरेशके रूपमें समर्पित किया । क्षुपने वहाँ राजा होकर इन्द्रके दिये हुए तेजोभागसे पृथ्वीका शासन किया ॥ ४३ ॥

वारुणेन तु भागेन वपुः पुष्यति पार्थिवः ।
कौबेरेण तु भागेन वित्तपाभां ददौ तदा ॥ ४४ ॥
यस्तु याम्योऽभवद् भागस्तेन शास्ति स्म स प्रजाः ।

'वरुणके तेजोभागसे वे भूपाल प्रजाके शरीरका पोषण करने लगे । कुबेरके तेजोभागसे उन्होंने उन्हें धनपतिकी आभा प्रदान की तथा उनमें जो यमराजका तेजोभाग था, उससे वे प्रजाजनोंको अपराध करनेपर दण्ड देते थे ॥ ४४½ ॥

तत्रैन्द्रेण नरश्रेष्ठ भागेन रघुनन्दन ॥ ४५ ॥
प्रतिगृह्णीष्व भद्रं ते तारणार्थं मम प्रभो ।

'नरश्रेष्ठ रघुनन्दन ! आप भी राजा होनेके कारण सभी लोकपालोंके तेजसे सम्पन्न हैं । अतः प्रभो ! इन्द्र-सम्बन्धी तेजोभागके द्वारा आप मेरे उद्धारके लिये यह आभूषण ग्रहण कीजिये । आपका भला हो' ॥ ४५½ ॥

तद् रामः प्रतिजग्राह मुनेस्तस्य महात्मनः ॥ ४६ ॥
दिव्यमाभरणं चित्रं प्रदीप्तमिव भास्करम् ।
प्रतिगृह्य ततो रामस्तदाभरणमुत्तमम् ॥ ४७ ॥
आगमं तस्य दीप्तस्य प्रष्टुमेवोपचक्रमे ।

तब भगवान् श्रीराम उन महात्मा मुनिके दिये हुए उस सूर्यके समान दीप्तिमान्, दिव्य, विचित्र एवं उत्तम आभूषणको ग्रहण करके उसकी उपलब्धिके विषयमें पूछने लगे—४६-४७½

अत्यद्भुतमिदं दिव्यं वपुषा युक्तमद्भुतम् ॥ ४८ ॥
कथं वा भवता प्राप्तं कुतो वा केन वाऽऽहृतम् ।
कौतूहलतया ब्रह्मन् पृच्छामि त्वां महायशः ॥ ४९ ॥ कौतूहल
आश्चर्याणां बहूनां हि निधिः परमको भवान् ।

'महायशस्वी मुने ! यह अत्यन्त अद्भुत तथा दिव्य आकारसे युक्त आभूषण आपको कैसे प्राप्त हुआ, अथवा इसे कौन कहाँसे ले आया ? ब्रह्मन् ! मैं कौतूहलवश ये बातें आपसे पूछ रहा हूँ; क्योंकि आप बहुत-से आश्चर्योंकी उत्तम निधि हैं' ॥ ४८-४९½ ॥

एवं ब्रुवति काकुत्स्थे मुनिर्वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ५० ॥
श्रृणु राम यथावृत्तं पुरा त्रेतायुगे युगे ॥ ५१ ॥

'ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामके इस प्रकार पूछनेपर मुनिवर अगस्त्यने कहा—'श्रीराम! पूर्व चतुर्युगीके त्रेतायुगमें जैसा वृत्तान्त घटित हुआ था, उसे बताता हूँ सुनिये' ॥ ५०-५१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः

महर्षि अगस्त्यका एक स्वर्गीय पुरुषके शवभक्षणका प्रसंग सुनाना

पुरा त्रेतायुगे राम बभूव बहुविस्तरम् ।
समन्ताद् योजनशतं विमृगं पक्षिवर्जितम् ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—) श्रीराम ! प्राचीनकालके त्रेतायुगकी बात है, एक बहुत ही विस्तृत वन था, जो चारों ओर सौ योजनतक फैला हुआ था; परंतु उस वनमें न तो कोई पशु था और न पक्षी ही ॥ १ ॥

तस्मिन् निर्मानुषेऽरण्ये कुर्वाणस्तप उत्तमम् ।
अहमाक्रमितुं सौम्य तदरण्यमुपागमम् ॥ २ ॥

सौम्य ! उस निर्जन वनमें उत्तम तपस्या करनेके लिये घूम-घूमकर उपयुक्त स्थानका पता लगानेके निमित्त मैं वहाँ गया ॥ २ ॥

तस्य रूपमरण्यस्य निर्देष्टुं न शशाक ह ।
फलमूलैः सुखास्वादैर्बहुरूपैश्च पादपैः ॥ ३ ॥

उस वनका स्वरूप कितना सुखदायी था, यह बतानेमें मैं असमर्थ हूँ । सुखद स्वादिष्ट फल-मूल तथा अनेक रूप-रंगके वृक्ष उसकी शोभा बढ़ाते थे ॥ ३ ॥

तस्यारण्यस्य मध्ये तु सरो योजनमायतम् ।
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ ४ ॥

उस वनके मध्यभागमें एक सरोवर था, जिसकी लंबाई-चौड़ाई एक-एक योजनकी थी । उसमें हंस और कारण्डव आदि जलपक्षी फैले हुए थे और चक्रवाकोंके जोड़े उसकी शोभा बढ़ाते थे ॥ ४ ॥

पद्मोत्पलसमाकीर्णं समतिक्रान्तशैवलम् ।
तदाश्चर्यमिवात्यर्थं सुखास्वाद्यमनुत्तमम् ॥ ५ ॥

उसमें कमल और उत्पल छा रहे थे । सेवारका कहीं नाम भी नहीं था । वह परम उत्तम सरोवर अत्यन्त आश्चर्यमय-सा जान पड़ता था । उसका जल पीनेमें अत्यन्त सुखद एवं स्वादिष्ट था ॥ ५ ॥

अरजस्कं तदक्षोभ्यं श्रीमत्पक्षिगणायुतम् ।
तस्मिन् सरःसमीपे तु महदद्भुतमाश्रमम् ॥ ६ ॥
पुराणं पुण्यमत्यर्थं तपस्विजनवर्जितम् ।

उसमें कीचड़ नहीं था, वह सर्वथा निर्मल था । उसे कोई पार नहीं कर सकता था । उसके भीतर सुन्दर पक्षी कलरव कर रहे थे । उस सरोवरके पास ही एक विशाल, अद्भुत एवं अत्यन्त पवित्र पुराना आश्रम था; जिसमें एक भी तपस्वी नहीं था ॥ ६½ ॥

तत्राहमवसं रात्रिं नैदाघीं पुरुषर्षभ ॥ ७ ॥
प्रभाते कल्यमुत्थाय सरस्तदुपचक्रमे ।

पुरुषप्रवर ! जेठकी रातमें मैं उस आश्रमके भीतर एक रात रहा और प्रातःकाल सबेरे उठकर स्नान आदिके लिये उस सरोवरके तटपर जाने लगा ॥ ७½ ॥

अथापश्यं शवं तत्र सुपुष्टमरजः क्वचित् ॥ ८ ॥
तिष्ठन्तं परया लक्ष्म्या तस्मिंस्तोयाशये नृप ।

उसी समय मुझे वहाँ एक शव दिखायी दिया जो हृष्ट-पुष्ट होनेके साथ ही अत्यन्त निर्मल था । उसमें कहीं कोई मलिनता नहीं थी । नरेश्वर ! वह शव उस जलाशयके तटपर बड़ी शोभासे सम्पन्न होकर पड़ा था ॥ ८½ ॥

तमर्थं चिन्तयानोऽहं मुहूर्तं तत्र राघव ॥ ९ ॥
विष्ठितोऽस्मि सरस्तीरे किं न्विदं स्यादिति प्रभो ।

प्रभो ! रघुनन्दन ! मैं उस शवके विषयमें यह सोचता हुआ कि 'यह क्या है ?' वहाँ दो घड़ी तक उस तालाबके किनारे बैठा रहा ॥ ९½ ॥

अथापश्यं मुहूर्तात् तु दिव्यमद्भुतदर्शनम् ॥ १० ॥
विमानं परमोदारं हंसयुक्तं मनोजवम् ।
अत्यर्थं स्वर्गिणं तत्र विमाने रघुनन्दन ॥ ११ ॥
उपास्तेऽप्सरसां वीर सहस्रं दिव्यभूषणम् ।

दो घड़ी बीतते ही मैंने वहाँ एक दिव्य, अद्भुत, अत्यन्त उत्तम, हंसयुक्त और मनके समान वेगशाली विमान उतरता देखा । रघुनन्दन ! उस विमानपर एक स्वर्गवासी देवता बैठे थे, जो अत्यन्त रूपवान् थे । वीर ! वहाँ उनकी सेवामें सहस्रों अप्सराएँ बैठी थीं, जो दिव्य आभूषणोंसे विभूषित थीं ॥

गायन्ति काश्चिद् रम्याणि वादयन्ति तथापराः ॥ १२ ॥
मृदङ्गवीणापणवान् नृत्यन्ति च तथापराः ।
अपराश्चन्द्ररश्म्याभैर्हेमदण्डैर्महाधनैः ॥ १३ ॥
दोधूयुर्वदनं तस्य पुण्डरीकनिभेक्षणाः ।

उनमेंसे कुछ मनोहर गीत गा रही थीं, दूसरी मृदङ्ग, वीणा और पणव आदि बाजे बजा रही थीं । अन्य बहुत-सी अप्सराएँ नृत्य करती थीं तथा प्रफुल्ल कमल-जैसे नेत्रोंवाली अन्य कितनी ही अप्सराएँ सुवर्णमय दण्डसे विभूषित एवं चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल बहुमूल्य चवँर लेकर उन स्वर्गवासी देवताके मुखपर हवा कर रही थीं ॥ १२-१३½ ॥

ततः सिंहासनं हित्वा मेरुकूटमिवांशुमान् ॥ १४ ॥
पश्यतो मे तदा राम विमानादवरुह्य च ।
तं शवं भक्षयामास स स्वर्गी रघुनन्दन ॥ १५ ॥

रघुकुलनन्दन श्रीराम ! तदनन्तर जैसे अंशुमाली सूर्य मेरु-पर्वतके शिखरको छोड़कर नीचे उतरते हैं, उसी प्रकार उन स्वर्गवासी पुरुषने विमानसे उतरकर मेरे देखते-देखते उस शवका भक्षण किया ॥ १४-१५ ॥

ततो भुक्त्वा यथाकामं मांसं बहु सुपीवरम् ।
अवतीर्य सरः स्वर्गी संस्प्रष्टुमुपचक्रमे ॥ १६ ॥

इच्छानुसार उस सुपुष्ट एवं प्रचुर मांसको खाकर वे स्वर्गीय देवता सरोवरमें उतरे और हाथ-मुँह धोने लगे ॥ १६ ॥

उपस्पृश्य यथान्यायं स स्वर्गी रघुनन्दन ।
आरोढुमुपचक्राम विमानवरमुत्तमम् ॥ १७ ॥

रघुनन्दन ! यथोचित रीतिसे कुल्ला-आचमन करके वे स्वर्गवासी पुरुष उस उत्तम एवं श्रेष्ठ विमानपर चढ़नेको उद्यत हुए ॥ १७ ॥

तमहं देवसंकाशमारोहन्तमुदीक्ष्य वै ।
अथाहमब्रुवं वाक्यं तमेव पुरुषर्षभ ॥ १८ ॥

पुरुषोत्तम ! उन देवतुल्य पुरुषको विमानपर चढ़ते देख मैंने उनसे यह बात पूछी—॥ १८ ॥

को भवान् देवसंकाश आहारश्च विगर्हितः ।
त्वयेदं भुज्यते सौम्य किमर्थं वक्तुमर्हसि ॥ १९ ॥

'सौम्य ! देवोपम पुरुष ! आप कौन हैं और किसलिये ऐसा घृणित आहार ग्रहण करते हैं ? यह बतानेका कष्ट करें ॥

कस्य स्यादीदृशो भाव आहारो देवसम्मतः ।
आश्चर्यं वर्तते सौम्य श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
नाहमौपयिकं मन्ये तव भक्ष्यमिमं शवम् ॥ २० ॥

'देवतुल्य तेजस्वी पुरुष ! ऐसा दिव्य स्वरूप और ऐसा घृणित आहार किसका हो सकता है ! सौम्य ! आपमें ये दोनों

आश्चर्यजनक बातें हैं; अतः मैं इसका यथार्थ रहस्य सुनना चाहता हूँ; क्योंकि मैं इस शवको आपके योग्य आहार नहीं मानता हूँ' ॥ २० ॥

इत्येवमुक्तः स नरेन्द्र नाकी
कौतूहलात् सूनृतया गिरा च ।
श्रुत्वा च वाक्यं मम सर्वमेतत्
सर्वं तथा चाकथयन्ममेति ॥ २१ ॥

नरेश्वर ! जब कौतूहलवश मैंने मधुर वाणीमें उन स्वर्गीय पुरुषसे इस प्रकार पूछा, तब मेरी बातें सुनकर उन्होंने यह सब कुछ मेरे सामने बताया ॥ २१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सतहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः

राजा श्वेतका अगस्त्यजीको अपने लिये घृणित आहारकी प्राप्तिका कारण बताते हुए ब्रह्माजीके साथ हुए अपनी वार्ताको उपस्थित करना और उन्हें दिव्य आभूषणका दान दे भूख-प्यासके कष्टसे मुक्त होना

श्रुत्वा तु भाषितं वाक्यं मम राम शुभाक्षरम् ।
प्राञ्जलिः प्रत्युवाचेदं स स्वर्गी रघुनन्दन ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—) रघुकुलनन्दन राम ! मेरी कही हुई शुभ अक्षरोंसे युक्त बात सुनकर उन स्वर्गीय पुरुषने हाथ जोड़कर इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १ ॥

शृणु ब्रह्मन् पुरा वृत्तं ममैतत् सुखदुःखयोः ।
अनतिक्रमणीयं च यथा पृच्छसि मां द्विज ॥ २ ॥

'ब्रह्मन् ! आप जो कुछ पूछ रहे हैं, वह मेरे सुख-दुःखका अलङ्घनीय कारण, जो पूर्वकालमें घटित हो चुका है, यहाँ बताया जाता है, सुनिये ॥ २ ॥

पुरा वैदर्भको राजा पिता मम महायशाः ।
सुदेव इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु वीर्यवान् ॥ ३ ॥

'पूर्वकालमें मेरे महायशस्वी पिता विदर्भ देशके राजा थे । उनका नाम सुदेव था । वे तीनों लोकोंमें विख्यात पराक्रमी थे ॥ ३ ॥

तस्य पुत्रद्वयं ब्रह्मन् द्वाभ्यां स्त्रीभ्यामजायत ।
अहं श्वेत इति ख्यातो यवीयान् सुरथोऽभवत् ॥ ४ ॥

'ब्रह्मन् ! उनके दो पत्नियाँ थीं, जिनके गर्भसे उन्हें दो पुत्र प्राप्त हुए । उनमें ज्येष्ठ मैं था । मेरी श्वेतके नामसे प्रसिद्धि हुई और मेरे छोटे भाईका नाम सुरथ था ॥ ४ ॥

ततः पितरि स्वर्याते पौरा मामभ्यषेचयन् ।
तत्राहं कृतवान् राज्यं धर्म्यं च सुसमाहितः ॥ ५ ॥

'पिताके स्वर्गलोकमें चले जानेपर पुरवासियोंने राजाके पदपर मेरा अभिषेक कर दिया । वहाँ परम सावधान रहकर मैंने धर्मके अनुकूल राज्यका पालन किया ॥ ५ ॥

एवं वर्षसहस्राणि समतीतानि सुव्रत ।
राज्यं कारयतो ब्रह्मन् प्रजा धर्मेण रक्षतः ॥ ६ ॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ब्रह्मर्षे ! इस तरह धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा तथा राज्यका शासन करते हुए मेरे एक सहस्र वर्ष बीत गये ॥ ६ ॥

सोऽहं निमित्ते कस्मिंश्चिद् विज्ञातायुर्द्विजोत्तम ।
कालधर्मं हृदि न्यस्य ततो वनमुपागमम् ॥ ७ ॥

'द्विजश्रेष्ठ ! एक समय मुझे किसी निमित्तसे अपनी आयुका पता लग गया और मैंने मृत्यु-तिथिको हृदयमें रखकर वहाँसे वनको प्रस्थान किया ॥ ७ ॥

सोऽहं वनमिदं दुर्गं मृगपक्षिविवर्जितम् ।
तपश्चर्तुं प्रविष्टोऽस्मि समीपे सरसः शुभे ॥ ८ ॥

'उस समय मैं इसी दुर्गम वनमें आया, जिसमें न पशु हैं न पक्षी । वनमें प्रवेश करके मैं इसी सरोवरके सुन्दर तटके निकट तपस्या करनेके लिये बैठा ॥ ८ ॥

भ्रातरं सुरथं राज्ये अभिषिच्य महीपतिम् ।
इदं सरः समासाद्य तपस्तप्तं मया चिरम् ॥ ९ ॥

'राज्यपर अपने भाई राजा सुरथका अभिषेक करके इस सरोवरके समीप आकर मैंने दीर्घकालतक तपस्या की ॥ ९ ॥

सोऽहं वर्षसहस्राणि तपस्त्रीणि महावने ।
तप्त्वा सुदुष्करं प्राप्तो ब्रह्मलोकमनुत्तमम् ॥ १० ॥

'इस विशाल वनमें तीन हजार वर्षोंतक अत्यन्त दुष्कर तपस्या करके मैं परम उत्तम ब्रह्मलोकको प्राप्त हुआ ॥ १० ॥

तस्येमे स्वर्गभूतस्य क्षुत्पिपासे द्विजोत्तम ।
बाधेते परमोदार ततोऽहं व्यथितेन्द्रियः ॥ ११ ॥

'द्विजश्रेष्ठ ! परम उदार महर्षे ! ब्रह्मलोकमें पहुँच जानेपर भी मुझे भूख और प्यास बड़ा कष्ट देते हैं । उससे मेरी सारी इन्द्रियाँ व्यथित हो उठती हैं ॥ ११ ॥

गत्वा त्रिभुवनश्रेष्ठं पितामहमुवाच ह ।
भगवन् ब्रह्मलोकोऽयं क्षुत्पिपासाविवर्जितः ॥ १२ ॥
कस्यायं कर्मणः पाकः क्षुत्पिपासानुगो ह्यहम् ।
आहारः कश्च मे देव तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १३ ॥

'एक दिन मैंने त्रिलोकीके श्रेष्ठ देवता भगवान् ब्रह्माजीसे कहा—'भगवन् ! यह ब्रह्मलोक तो भूख-प्यासके कष्टसे रहित है, किंतु यहाँ भी क्षुधा-पिपासाका क्लेश मेरा पीछा नहीं

छोड़ता है । यह मेरे किस कर्मका परिणाम है ? देव ! पितामह ! मेरा आहार क्या है ? यह मुझे बताइये' ॥ १२-१३ ॥

पितामहस्तु मामाह तवाहारः सुदेवज ।
स्वादूनि स्वानि मांसानि तानि भक्षय नित्यशः ॥ १४ ॥

'यह सुनकर ब्रह्माजी मुझसे बोले—'सुदेवनन्दन ! तुम मर्त्यलोकमें स्थित अपने ही शरीरका सुस्वादु मांस प्रतिदिन खाया करो; यही तुम्हारा आहार है ॥ १४ ॥

✓ **स्वशरीरं त्वया पुष्टं कुर्वता तप उत्तमम् ।**
अनुप्तं रोहते श्वेत न कदाचिन्महामते ॥ १५ ॥

''श्वेत ! तुमने उत्तम तप करते हुए केवल अपने शरीरका ही पोषण किया है । महामते ! दानरूपी बीज बोये बिना कहीं कुछ भी नहीं जमता—कोई भी भोज्य-पदार्थ उपलब्ध नहीं होता है ॥ १५ ॥

✓ **दत्तं न तेऽस्ति सूक्ष्मोऽपि तप एव निषेवसे ।**
तेन स्वर्गगतो वत्स बाध्यसे क्षुत्पिपासया ॥ १६ ॥

''तुमने देवताओं, पितरों एवं अतिथियोंके लिये कभी कुछ थोड़ा-सा भी दान किया हो, ऐसा नहीं दिखायी देता । तुम केवल तपस्या करते थे । वत्स ! इसीलिये ब्रह्मलोकमें आकर भी भूख-प्याससे पीड़ित हो रहे हो ॥ १६ ॥

स त्वं सुपुष्टमाहारैः स्वशरीरमनुत्तमम् ।
भक्षयित्वामृतरसं तेन वृत्तिर्भविष्यति ॥ १७ ॥

''नाना प्रकारके आहारोंसे भलीभाँति पोषित हुआ तुम्हारा परम उत्तम शरीर अमृतरससे युक्त होगा और उसीका भक्षण करनेसे तुम्हारी क्षुधा-पिपासाका निवारण हो जायगा ॥ १७ ॥

यदा तु तद्वनं श्वेत अगस्त्यः स महानृषिः ।
आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा कृच्छ्राद् विमोक्ष्यसे ॥ १८ ॥

''श्वेत ! जब उस वनमें दुर्धर्ष महर्षि अगस्त्य पधारेंगे, तब तुम इस कष्टसे छुटकारा पा जाओगे ॥ १८ ॥

✓ **स हि तारयितुं सौम्य शक्तः सुरगणानपि ।**
किं पुनस्त्वां महाबाहो क्षुत्पिपासावशं गतम् ॥ १९ ॥

''सौम्य ! महाबाहो ! वे देवताओंका भी उद्धार करनेमें समर्थ हैं, फिर भूख-प्यासके वशमें पड़े हुए तुम-जैसे पुरुषको संकटसे छुड़ाना उनके लिये कौन बड़ी बात है ?' ॥ १९ ॥

सोऽहं भगवतः श्रुत्वा देवदेवस्य निश्चयम् ।
आहारं गर्हितं कुर्मि स्वशरीरं द्विजोत्तम ॥ २० ॥

'द्विजश्रेष्ठ ! देवाधिदेव भगवान् ब्रह्माका यह निश्चय सुनकर मैं अपने शरीरका ही घृणित आहार ग्रहण करने लगा ॥

बहून् वर्षगणान् ब्रह्मन् भुज्यमानमिदं मया ।
क्षयं नाभ्येति ब्रह्मर्षे तृप्तिश्चापि ममोत्तमा ॥ २१ ॥

'ब्रह्मन् ! ब्रह्मर्षे ! बहुत वर्षोंसे मेरे द्वारा उपभोगमें लाये जानेपर भी यह शरीर नष्ट नहीं होता है और मुझे पूर्णतः तृप्ति प्राप्त होती है ॥ २१ ॥

तस्य मे कृच्छ्रभूतस्य कृच्छ्रादस्माद् विमोक्षय ।
अन्येषां न गतिर्ह्यत्र कुम्भयोनिमृते द्विजम् ॥ २२ ॥

'मुने ! इस प्रकार मैं संकटमें पड़ा हूँ । आप मेरे दृष्टिपथमें आ गये हैं, इसलिये इस कष्टसे मेरा उद्धार कीजिये । आप ब्रह्मर्षि कुम्भजके सिवा दूसरोंकी इस निर्जन वनमें पहुँच नहीं हो सकती (इसलिये आप अवश्य कुम्भयोनि अगस्त्य ही हैं) ॥ २२ ॥

इदमाभरणं सौम्य तारणार्थं द्विजोत्तम ।
प्रतिगृह्णीष्व भद्रं ते प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ २३ ॥

'सौम्य ! विप्रवर ! आपका कल्याण हो । आप मेरा उद्धार करनेके लिये मेरे इस आभूषणका दान ग्रहण करें और आपका कृपाप्रसाद मुझे प्राप्त हो ॥ २३ ॥

इदं तावत् सुवर्णं च धनं वस्त्राणि च द्विज ।
भक्ष्यं भोज्यं च ब्रह्मर्षे ददात्याभरणानि च ॥ २४ ॥

'ब्रह्मन् ! ब्रह्मर्षे ! यह दिव्य आभूषण सुवर्ण, धन, वस्त्र, भक्ष्य, भोज्य तथा अन्य नाना प्रकारके आभरण भी देता है ॥ २४ ॥

सर्वान् कामान् प्रयच्छामि भोगांश्च मुनिपुङ्गव ।
तारणे भगवन् मह्यं प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ २५ ॥

'मुनिश्रेष्ठ ! इस आभूषणके द्वारा मैं समस्त कामनाओं (मनोवाञ्छित पदार्थों) और भोगोंको भी दे रहा हूँ । भगवन् ! आप मेरे उद्धारके लिये मुझपर कृपा करें' ॥ २५ ॥

तस्याहं स्वर्गिणो वाक्यं श्रुत्वा दुःखसमन्वितम् ।
तारणायोपजग्राह तदाभरणमुत्तमम् ॥ २६ ॥

स्वर्गीय राजा श्वेतकी यह दुःखभरी बात सुनकर मैंने उनका उद्धार करनेके लिये वह उत्तम आभूषण ले लिया ॥

मया प्रतिगृहीते तु तस्मिन्नाभरणे शुभे ।
मानुषः पूर्वको देहो राजर्षेर्विननाश ह ॥ २७ ॥

ज्यों ही मैंने उस शुभ आभूषणका दान ग्रहण किया, त्यों ही राजर्षि श्वेतका वह पूर्व-शरीर (शव) अदृश्य हो गया ॥

प्रणष्टे तु शरीरेऽसौ राजर्षिः परया मुदा ।
तृप्तः प्रमुदितो राजा जगाम त्रिदिवं सुखम् ॥ २८ ॥

उस शरीरके अदृश्य हो जानेपर राजर्षि श्वेत परमानन्दसे तृप्त हो प्रसन्नतापूर्वक सुखमय ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २८ ॥

तेनेदं शक्रतुल्येन दिव्यमाभरणं मम ।
तस्मिन्निमित्ते काकुत्स्थ दत्तमद्भुतदर्शनम् ॥ २९ ॥ ✓

काकुत्स्थ ! उन इन्द्रतुल्य तेजस्वी राजा श्वेतने उस भूख-प्यासके निवारणरूप पूर्वोक्त निमित्तसे यह अद्भुत दिखायी देनेवाला दिव्य आभूषण मुझे दिया था ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अठहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः

इक्ष्वाकुपुत्र राजा दण्डका राज्य

तदद्भुततमं वाक्यं श्रुत्वागस्त्यस्य राघवः ।
गौरवाद् विस्मयाच्चैव भूयः प्रष्टुं प्रचक्रमे ॥ १ ॥

अगस्त्यजीका यह अत्यन्त अद्भुत वचन सुनकर श्रीरघुनाथजीके मनमें उनके प्रति विशेष गौरवका उदय हुआ और उन्होंने विस्मित होकर पुनः उनसे पूछना आरम्भ किया—॥ १ ॥

भगवंस्तद् वनं घोरं तपस्तप्यति यत्र सः ।
श्वेतो वैदर्भको राजा कथं तदमृगद्विजम् ॥ २ ॥

'भगवन् ! वह भयंकर वन, जिसमें विदर्भदेशके राजा श्वेत घोर तपस्या करते थे, पशु-पक्षियोंसे रहित क्यों हो गया था ? ॥ २ ॥

तद् वनं स कथं राजा शून्यं मनुजवर्जितम् ।
तपश्चर्तुं प्रविष्टः स श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ३ ॥

'वे विदर्भराज उस सूने निर्जन वनमें तपस्या करनेके लिये क्यों गये ? यह मैं यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ' ॥ ३ ॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा कौतूहलसमन्वितम् ।
वाक्यं परमतेजस्वी वक्तुमेवोपचक्रमे ॥ ४ ॥

श्रीरामका कौतूहलयुक्त वचन सुनकर वे परम तेजस्वी महर्षि पुनः इस प्रकार कहने लगे—॥ ४ ॥

पुरा कृतयुगे राम मनुर्दण्डधरः प्रभुः ।
तस्य पुत्रो महानासीदिक्ष्वाकुः कुलनन्दनः ॥ ५ ॥

'श्रीराम ! पूर्वकालके सत्ययुगकी बात है, दण्डधारी राजा मनु इस भूतलपर शासन करते थे । उनके एक श्रेष्ठ पुत्र हुआ, जिसका नाम इक्ष्वाकु था । राजकुमार इक्ष्वाकु अपने कुलको आनन्दित करनेवाले थे ॥ ५ ॥

तं पुत्रं पूर्वकं राज्ये निक्षिप्य भुवि दुर्जयम् ।
पृथिव्यां राजवंशानां भव कर्तेत्युवाच तम् ॥ ६ ॥

'अपने उन ज्येष्ठ एवं दुर्जय पुत्रको भूमण्डलके राज्यपर स्थापित करके मनुने उनसे कहा—'बेटा ! तुम भूतलपर राजवंशोंकी सृष्टि करो' ॥ ६ ॥

तथैव च प्रतिज्ञातं पितुः पुत्रेण राघव ।
ततः परमसंतुष्टो मनुः पुत्रमुवाच ह ॥ ७ ॥

'रघुनन्दन ! पुत्र इक्ष्वाकुने पिताके सामने वैसा ही करनेकी प्रतिज्ञा की । इससे मनु बहुत संतुष्ट हुए और अपने पुत्रसे बोले—॥ ७ ॥

प्रीतोऽस्मि परमोदार कर्ता चासि न संशयः ।
दण्डेन च प्रजा रक्ष मा च दण्डमकारणे ॥ ८ ॥

''परम उदार पुत्र ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ । तुम राजवंशकी सृष्टि करोगे, इसमें संशय नहीं है । तुम दण्डके द्वारा दुष्टोंका दमन करते हुए प्रजाकी रक्षा करो, परंतु बिना अपराधके ही किसीको दण्ड न देना ॥ ८ ॥

अपराधिषु यो दण्डः पात्यते मानवेषु वै ।
स दण्डो विधिवन्मुक्तः स्वर्गं नयति पार्थिवम् ॥ ९ ॥

''अपराधी मनुष्योंपर जो दण्डका प्रयोग किया जाता है, वह विधिपूर्वक दिया हुआ दण्ड राजाको स्वर्गलोकमें पहुँचा देता है ॥ ९ ॥

तस्माद् दण्डे महाबाहो यत्नवान् भव पुत्रक ।
धर्मो हि परमो लोके कुर्वतस्ते भविष्यति ॥ १० ॥

''इसलिये महाबाहु पुत्र ! तुम दण्डका समुचित प्रयोग करनेके लिये प्रयत्नशील रहना । ऐसा करनेसे तुम्हें संसारमें परम धर्मकी प्राप्ति होगी' ॥ १० ॥

इति तं बहु संदिश्य मनुः पुत्रं समाधिना ।
जगाम त्रिदिवं हृष्टो ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ ११ ॥

''इस प्रकार पुत्रको बहुत-सा संदेश दे मनु समाधि लगाकर बड़े हर्षके साथ स्वर्गको—सनातन ब्रह्मलोकको चले गये॥

प्रयाते त्रिदिवं तस्मिन्निक्ष्वाकुरमितप्रभः ।
जनयिष्ये कथं पुत्रानिति चिन्तापरोऽभवत् ॥ १२ ॥

'उनके ब्रह्मलोकवासी हो जानेपर अमित तेजस्वी राजा इक्ष्वाकु इस चिन्तामें पड़े कि मैं किस प्रकार पुत्रोंको उत्पन्न करूँ ? ॥ १२ ॥

कर्मभिर्बहुरूपैश्च तैस्तैर्मनुसुतस्तदा ।
जनयामास धर्मात्मा शतं देवसुतोपमान् ॥ १३ ॥

'तब यज्ञ, दान और तपस्यारूप विविध कर्मोंद्वारा धर्मात्मा मनुपुत्रने सौ पुत्र उत्पन्न किये, जो देवकुमारोंके समान तेजस्वी थे ॥ १३ ॥

तेषामवरजस्तात सर्वेषां रघुनन्दन ।
मूढश्चाकृतविद्यश्च न शुश्रूषति पूर्वजान् ॥ १४ ॥

'तात रघुनन्दन ! उनमें जो सबसे छोटा पुत्र था, वह मूढ़ और विद्याविहीन था, इसलिये अपने बड़े भाइयोंकी सेवा नहीं करता था ॥ १४ ॥

नाम तस्य च दण्डेति पिता चक्रेऽल्पमेधसः ।
अवश्यं दण्डपतनं शरीरेऽस्य भविष्यति ॥ १५ ॥

'इसके शरीरपर अवश्य दण्डपात होगा, ऐसा सोचकर पिताने उस मन्दबुद्धि पुत्रका नाम दण्ड रख दिया ॥ १५ ॥

अपश्यमानस्तं देशं घोरं पुत्रस्य राघव ।
विन्ध्यशैवलयोर्मध्ये राज्यं प्रादादरिंदम ॥ १६ ॥

'श्रीराम ! शत्रुदमन नरेश ! उस पुत्रके योग्य दूसरा कोई भयकर देश न देखकर राजाने उसे विन्ध्य और शैवल पर्वतके बीचका राज्य दे दिया ॥ १६ ॥

स दण्डस्तत्र राजाभूद् रम्ये पर्वतरोधसि ।

पुरं चाप्रतिमं राम न्यवेशयदनुत्तमम् ॥ १७ ॥

'श्रीराम ! पर्वतके उस रमणीय तटप्रान्तमें दण्ड राजा हुआ। उसने अपने रहनेके लिये एक बहुत ही अनुपम और उत्तम नगर बसाया ॥ १७ ॥

पुरस्य चाकरोन्नाम मधुमन्तमिति प्रभो।
पुरोहितं तूशनसं वरयामास सुव्रतम् ॥ १८ ॥

'प्रभो ! उसने उस नगरका नाम रखा मधुमन्त और उत्तम व्रतका पालन करनेवाले शुक्राचार्यको अपना पुरोहित बनाया ॥ १८ ॥

एवं स राजा तद् राज्यमकरोत् सपुरोहितः।
प्रहृष्टमनुजाकीर्णं देवराजो यथा दिवि ॥ १९ ॥

'इस प्रकार स्वर्गमें देवराजकी भाँति भूतलपर राजा दण्डने पुरोहितके साथ रहकर हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरे हुए उस राज्यका पालन आरम्भ किया ॥ १९ ॥

ततः स राजा मनुजेन्द्रपुत्रः
सार्धं च तेनोशनसा तदानीम्।
चकार राज्यं सुमहान्महात्मा
शक्रो दिवीवोशनसा समेतः ॥ २० ॥

'उस समय वह महामनस्वी महाराजकुमार तथा महान् राजा दण्ड शुक्राचार्यके साथ रहकर अपने राज्यका उसी तरह पालन करने लगा जैसे स्वर्गमें देवराज इन्द्र देवगुरु बृहस्पतिके साथ रहकर अपने राज्यका पालन करते हैं' ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें उनासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः

राजा दण्डका भार्गव-कन्याके साथ बलात्कार

एतदाख्याय रामाय महर्षिः कुम्भसम्भवः।
अस्यामेवापरं वाक्यं कथायामुपचक्रमे ॥ १ ॥

महर्षि कुम्भज श्रीरामसे इतनी कथा कहकर फिर इसीका अवशिष्ट अंश इस तरह कहने लगे—॥ १ ॥

ततः स दण्डः काकुत्स्थ बहुवर्षगणायुतम्।
अकरोत् तत्र दान्तात्मा राज्यं निहतकण्टकम् ॥ २ ॥

'काकुत्स्थ ! तदनन्तर राजा दण्डने मन और इन्द्रियोंको काबूमें रखकर बहुत वर्षोंतक वहाँ अकण्टक राज्य किया ॥ २ ॥

अथ काले तु कस्मिंश्चिद् राजा भार्गवमाश्रमम्।
रमणीयमुपाक्रामच्चैत्रे मासि मनोरमे ॥ ३ ॥

'तत्पश्चात् किसी समय राजा मनोरम चैत्रमासमें शुक्राचार्यके रमणीय आश्रमपर आया ॥ ३ ॥

तत्र भार्गवकन्यां स रूपेणाप्रतिमां भुवि।
विचरन्तीं वनोद्देशे दण्डोऽपश्यदनुत्तमाम् ॥ ४ ॥

'वहाँ शुक्राचार्यकी सर्वोत्तम सुन्दरी कन्या, जिसके रूपकी इस भूतलपर कहीं तुलना नहीं थी, वनप्रान्तमें विचर रही थी। दण्डने उसे देखा ॥ ४ ॥

स दृष्ट्वा तां सुदुर्मेधा अनङ्गशरपीडितः।
अभिगम्य सुसंविग्नां कन्यां वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥

'उसे देखते ही वह अत्यन्त खोटी बुद्धिवाला राजा कामदेवके बाणोंसे पीड़ित हो पास जाकर उस डरी हुई कन्यासे बोला—॥ ५ ॥

कुतस्त्वमसि सुश्रोणि कस्य वासि सुता शुभे।
पीडितोऽहमनङ्गेन पृच्छामि त्वां शुभानने ॥ ६ ॥

''सुश्रोणि ! तुम कहाँसे आयी हो अथवा शुभे ! तुम किसकी पुत्री हो ? शुभानने ! मैं कामदेवसे पीड़ित हूँ; इसलिये तुम्हारा परिचय पूछता हूँ' ॥ ६ ॥

तस्य त्वेवं ब्रुवाणस्य मोहोन्मत्तस्य कामिनः।
भार्गवी प्रत्युवाचेदं वचः सानुनयं त्विदम् ॥ ७ ॥

'मोहसे उन्मत्त होकर वह कामी राजा जब इस प्रकार पूछने लगा, तब भृगुकन्याने विनयपूर्वक उसे इस प्रकार उत्तर दिया—॥ ७ ॥

भार्गवस्य सुतां विद्धि देवस्याक्लिष्टकर्मणः।
अरजां नाम राजेन्द्र ज्येष्ठामाश्रमवासिनीम् ॥ ८ ॥

''राजेन्द्र ! तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि मैं पुण्यकर्मा शुक्रदेवताकी ज्येष्ठ पुत्री हूँ। मेरा नाम अरजा है। मैं इसी आश्रममें निवास करती हूँ ॥ ८ ॥

मा मां स्पृश बलाद् राजन् कन्या पितृवशा ह्यहम्।
गुरुः पिता मे राजेन्द्र त्वं च शिष्यो महात्मनः ॥ ९ ॥

''राजन् ! बलपूर्वक मेरा स्पर्श न करो। मैं पिताके अधीन रहनेवाली कुमारी कन्या हूँ। राजेन्द्र ! मेरे पिता तुम्हारे गुरु हैं और तुम उन महात्माके शिष्य हो ॥ ९ ॥

व्यसनं सुमहत् क्रुद्धः स ते दद्यान्महातपाः।
यदि वान्यन्मया कार्यं धर्मदृष्टेन सत्पथा ॥ १० ॥
वरयस्व नरश्रेष्ठ पितरं मे महाद्युतिम्।
अन्यथा तु फलं तुभ्यं भवेद् घोराभिसंहितम् ॥ ११ ॥

''नरश्रेष्ठ ! वे महातपस्वी हैं। यदि कुपित हो जायँ तो तुम्हें बड़ी भारी विपत्तिमें डाल सकते हैं। यदि मुझसे तुम्हें दूसरा ही काम लेना हो (अर्थात् यदि तुम मुझे अपनी भार्या बनाना चाहते हो) तो धर्मशास्त्रोक्त सन्मार्गसे चलकर मेरे महातेजस्वी पितासे मुझको माँग लो। अन्यथा तुम्हें अपने स्वेच्छाचारका बड़ा भयानक फल भोगना पड़ेगा ॥ १०-११ ॥

क्रोधेन हि पिता मेऽसौ त्रैलोक्यमपि निर्दहेत्।
दास्यते चानवद्याङ्ग तव मा याचितः पिता ॥ १२ ॥

‘‘मेरे पिता अपनी क्रोधाग्निसे सारी त्रिलोकीको भी दग्ध कर सकते हैं; अतः सुन्दर अङ्गोंवाले नरेश ! तुम बलात्कार न करो। तुम्हारे याचना करनेपर पिताजी मुझे अवश्य तुम्हारे हाथमें सौंप देंगे’ ॥ १२ ॥

एवं ब्रुवाणामरजां दण्डः कामवशं गतः ।
प्रत्युवाच मदोन्मत्तः शिरस्याधाय चाञ्जलिम् ॥ १३ ॥

‘जब अरजा ऐसी बातें कह रही थी, उस समय कामके अधीन हुए दण्डने मदोन्मत्त होकर दोनों हाथ सिरपर जोड़ लिये और इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १३ ॥

प्रसादं कुरु सुश्रोणि न कालं क्षेप्तुमर्हसि ।
त्वत्कृते हि मम प्राणा विदीर्यन्ते वरानने ॥ १४ ॥

‘‘सुन्दरी ! कृपा करो। समय न बिताओ। वरानने ! तुम्हारे लिये मेरे प्राण निकले जा रहे हैं ॥ १४॥

त्वां प्राप्य तु वधो वापि पापं वापि सुदारुणम् ।
भक्तं भजस्व मां भीरु भजमानं सुविह्वलम् ॥ १५ ॥

‘‘तुम्हें प्राप्त कर लेनेपर मेरा वध हो जाय अथवा मुझे अत्यन्त दारुण दुःख प्राप्त हो तो भी कोई चिन्ता नहीं है। भीरु ! मैं तुम्हारा भक्त हूँ। अत्यन्त व्याकुल हुए मुझ अपने सेवकको स्वीकार करो’ ॥ १५ ॥

एवमुक्त्वा तु तां कन्यां दोर्भ्यां प्राप्य बलाद् बली ।
विस्फुरन्तीं यथाकामं मैथुनायोपचक्रमे ॥ १६ ॥

‘ऐसा कहकर उस बलवान् नरेशने उस भार्गव-कन्याको बलपूर्वक दोनों भुजाओंमें भर लिया। वह उसकी पकड़से छूटनेके लिये छटपटाने लगी तो भी उसने अपनी इच्छाके अनुसार उसके साथ समागम किया ॥ १६ ॥

तमनर्थं महाघोरं दण्डः कृत्वा सुदारुणम् ।
नगरं प्रययावाशु मधुमन्तमनुत्तमम् ॥ १७ ॥

‘वह अत्यन्त दारुण एवं महाभयंकर अनर्थ करके दण्ड तुरंत ही अपने उत्तम नगर मधुमन्तको चला गया ॥ १७ ॥

अरजापि रुदन्ती सा आश्रमस्याविदूरतः ।
प्रतीक्षते सुसंत्रस्ता पितरं देवसंनिभम् ॥ १८ ॥

‘अरजा भी भयभीत हो रोती हुई आश्रमके पास ही अपने देवतुल्य पिताके आनेकी राह देखने लगी’ ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अस्सीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः

शुक्रके शापसे सपरिवार राजा दण्ड और उनके राज्यका नाश

स मुहूर्तादुपश्रुत्य देवर्षिरमितप्रभः ।
स्वमाश्रमं शिष्यवृतः क्षुधार्तः संन्यवर्तत ॥ १ ॥

दो घड़ी बाद किसी शिष्यके मुँहसे अरजाके ऊपर किये गये बलात्कारकी बात सुनकर अमित तेजस्वी देवर्षि शुक्र भूखसे पीड़ित हो शिष्योंसे घिरे हुए अपने आश्रमको लौट आये ॥

सोऽपश्यदरजां दीनां रजसा समभिप्लुताम् ।
ज्योत्स्नामिव ग्रहग्रस्तां प्रत्यूषे न विराजतीम् ॥ २ ॥

उन्होंने देखा, अरजा दुखी होकर रो रही है। उसके शरीरमें धूल लिपटी हुई है तथा वह प्रातःकाल राहुग्रस्त चन्द्रमाकी शोभाहीन चाँदनीके समान सुशोभित नहीं हो रही है ॥

तस्य रोषः समभवत् क्षुधार्तस्य विशेषतः ।
निर्दहन्निव लोकांस्त्रीञ्शिष्यांश्चैतदुवाच ह ॥ ३ ॥

यह देख विशेषतः भूखसे पीड़ित होनेके कारण देवर्षि शुक्रका रोष बढ़ गया और वे तीनों लोकोंको दग्ध-से करते हुए अपने शिष्योंसे इस प्रकार बोले—॥ ३ ॥

पश्यध्वं विपरीतस्य दण्डस्याविदितात्मनः ।
विपत्तिं घोरसंकाशां क्रुद्धादग्निशिखामिव ॥ ४ ॥

‘देखो, शास्त्रविपरीत आचरण करनेवाले अज्ञानी राजा दण्डको कुपित हुए मेरी ओरसे अग्नि-शिखाके समान कैसी घोर विपत्ति प्राप्त होती है ॥ ४ ॥

क्षयोऽस्य दुर्मतेः प्राप्तः सानुगस्य दुरात्मनः ।
यः प्रदीप्तां हुताशस्य शिखां वै स्प्रष्टुमर्हति ॥ ५ ॥

‘सेवकोंसहित इस दुर्बुद्धि एवं दुरात्मा राजाके विनाशका समय आ गया है, जो प्रज्वलित आगकी दहकती हुई ज्वालाको गले लगाना चाहता है ॥ ५ ॥

यस्मात् स कृतवान् पापमीदृशं घोरसंहितम् ।
तस्मात् प्राप्स्यति दुर्मेधाः फलं पापस्य कर्मणः ॥ ६ ॥

‘उस दुर्बुद्धिने जब ऐसा घोर पाप किया है, तब इसे उस पापकर्मका फल अवश्य प्राप्त होगा ॥ ६ ॥

सप्तरात्रेण राजासौ सपुत्रबलवाहनः ।
पापकर्मसमाचारो वधं प्राप्स्यति दुर्मतिः ॥ ७ ॥

‘पापकर्मका आचरण करनेवाला वह दुर्बुद्धि नरेश सात रातके भीतर ही पुत्र, सेना और सवारियोंसहित नष्ट हो जायगा ॥ ७ ॥

समन्ताद् योजनशतं विषयं चास्य दुर्मतेः ।
धक्ष्यते पांसुवर्षेण महता पाकशासनः ॥ ८ ॥

‘खोटे विचारवाले इस राजाके राज्यको जो सब ओरसे सौ योजन लंबा-चौड़ा है, देवराज इन्द्र भारी धूलकी वर्षा करके नष्ट कर देंगे ॥ ८ ॥

सर्वसत्त्वानि यानीह स्थावराणि चराणि च ।
महता पांसुवर्षेण विलयं सर्वतोऽगमन् ॥ ९ ॥

'यहाँ जो सब प्रकारके स्थावर-जङ्गम जीव निवास करते हैं, इस धूलकी भारी वर्षासे सब ओर विलीन हो जायँगे ॥ ९ ॥

दण्डस्य विषयो यावत् तावत् सर्वं समुच्छ्रयम् ।
पांसुवर्षमिवालक्ष्यं सप्तरात्रं भविष्यति ॥ १० ॥

'जहाँतक दण्डका राज्य है, वहाँतकके समस्त चराचर प्राणी सात राततक केवल धूलिकी वर्षा पाकर अदृश्य हो जायँगे' ॥ १० ॥

इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षस्तमाश्रमनिवासिनम् ।
जनं जनपदान्तेषु स्थीयतामिति चाब्रवीत् ॥ ११ ॥

ऐसा कहकर क्रोधसे लाल आँखें किये शुक्रने उस आश्रममें निवास करनेवाले लोगोंसे कहा—'दण्डके राज्यकी सीमाके अन्तमें जो देश हैं, उनमें जाकर निवास करो' ॥ ११ ॥

श्रुत्वा तूशनसो वाक्यं सोऽऽश्रमावसथो जनः ।
निष्क्रान्तो विषयात् तस्मात् स्थानं चक्रेऽथ बाह्यतः ।१२।

शुक्राचार्यकी यह बात सुनकर आश्रमवासी मनुष्य उस राज्यसे निकल गये और सीमासे बाहर जाकर निवास करने लगे ॥ १२ ॥

स तथोक्त्वा मुनिजनमरजामिदमब्रवीत् ।
इहैव वस दुर्मेधे आश्रमे सुसमाहिता ॥ १३ ॥

आश्रमवासी मुनियोंसे ऐसी बात कहकर शुक्रने अरजासे कहा—'खोटी बुद्धिवाली लड़की ! तू यहीं इस आश्रममें मनको परमात्माके ध्यानमें एकाग्र करके रह ॥ १३ ॥

इदं योजनपर्यन्तं सरः सुरुचिरप्रभम् ।
अरजे विज्वरा भुङ्क्ष्व कालश्चात्र प्रतीक्ष्यताम् ॥ १४ ॥

'अरजे ! यह जो एक योजन फैला हुआ सुन्दर तालाब है, इसका तू निश्चिन्त होकर उपभोग कर और अपने अपराधकी निवृत्तिके लिये यहाँ समयकी प्रतीक्षा करती रह ॥ १४ ॥

त्वत्समीपे च ये सत्त्वा वासमेष्यन्ति तां निशाम् ।
अवध्याः पांसुवर्षेण ते भविष्यन्ति नित्यदा ॥ १५ ॥

'जो जीव उन रात्रियोंमें तुम्हारे समीप रहेंगे, वे कभी भी धूलकी वर्षासे मारे नहीं जायँगे—सदा बने रहेंगे' ॥ १५ ॥

श्रुत्वा नियोगं ब्रह्मर्षेः सारजा भार्गवी तदा ।
तथेति पितरं प्राह भार्गवं भृशदुःखिता ॥ १६ ॥

ब्रह्मर्षिका यह आदेश सुनकर वह भृगुकन्या अरजा अत्यन्त दुःखित होनेपर भी अपने पिता भार्गवसे बोली—'बहुत अच्छा' ॥ १६ ॥

इत्युक्त्वा भार्गवो वासमन्यत्र समकारयत् ।
तच्च राज्यं नरेन्द्रस्य सभृत्यबलवाहनम् ॥ १७ ॥
सप्ताहाद् भस्मसाद् भूतं यथोक्तं ब्रह्मवादिना ।

ऐसा कहकर शुक्रने दूसरे राज्यमें जाकर निवास किया तथा उन ब्रह्मवादीके कथनानुसार राजा दण्डका वह राज्य सेवक, सेना और सवारियोंसहित सात दिनमें भस्म हो गया ॥ १७½ ॥

तस्यासौ दण्डविषयो विन्ध्यशैवलयोर्नृप ॥ १८ ॥
शप्तो ब्रह्मर्षिणा तेन वैधर्म्ये सहिते कृते ।
ततः प्रभृति काकुत्स्थ दण्डकारण्यमुच्यते ॥ १९ ॥

नरेश्वर ! विन्ध्य और शैवलगिरिके मध्यभागमें दण्डका राज्य था । काकुत्स्थ ! धर्मयुग कृतयुगमें धर्मविरुद्ध आचरण करनेपर उन ब्रह्मर्षिने राजा और उनके देशको शाप दे दिया । तभीसे वह भूभाग दण्डकारण्य कहलाता है ॥ १८-१९ ॥

तपस्विनः स्थिता ह्यत्र जनस्थानमतोऽभवत् ।
एतत् ते सर्वमाख्यातं यन्मां पृच्छसि राघव ॥ २० ॥

इस स्थानपर तपस्वीलोग आकर बस गये; इसलिये इसका नाम जनस्थान हो गया । रघुनन्दन ! आपने जिसके विषयमें मुझसे पूछा था, यह सब मैंने कह सुनाया ॥ २० ॥

संध्यामुपासितुं वीर समयो ह्यतिवर्तते ।
एते महर्षयः सर्वे पूर्णकुम्भाः समन्ततः ॥ २१ ॥
कृतोदका नरव्याघ्र आदित्यं पर्युपासते ।

वीर ! अब संध्योपासनाका समय बीता जा रहा है । पुरुषसिंह ! सब ओर ये सब महर्षि स्नान कर चुकनेके बाद भरे हुए घड़े लेकर सूर्यदेवकी उपासना कर रहे हैं ॥ २१½ ॥

स तैर्ब्राह्मणमभ्यस्तं सहितैर्ब्रह्मवित्तमैः ।
रविरस्तंगतो राम गच्छोदकमुपस्पृश ॥ २२ ॥

श्रीराम ! वे सूर्य वहाँ एकत्र हुए उन उत्तम ब्रह्मवेत्ताओंद्वारा पढ़े गये ब्राह्मणमन्त्रोंको सुनकर और उसी रूपमें पूजा पाकर अस्ताचलको चले गये । अब आप भी जायँ और आचमन एवं स्नान आदि करें ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें इक्यासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमः सर्गः

श्रीरामका अगस्त्य-आश्रमसे अयोध्यापुरीको लौटना

ऋषेर्वचनमाज्ञाय रामः संध्यामुपासितुम् ।
उपाक्रामत् सरः पुण्यमप्सरोगणसेवितम् ॥ १ ॥

ऋषिका यह आदेश पाकर श्रीरामचन्द्रजी संध्योपासना करनेके लिये अप्सराओंसे सेवित उस पवित्र सरोवरके तटपर गये ॥ १ ॥

तत्रोदकमुपस्पृश्य संध्यामन्वास्य पश्चिमाम् ।

आश्रमं प्राविशद् रामः कुम्भयोनेर्महात्मनः ॥ २ ॥

वहाँ आचमन और सायंकालकी संध्योपासना करके श्रीरामने पुनः महात्मा कुम्भजके आश्रममें प्रवेश किया ॥

तस्यागस्त्यो बहुगुणं कन्दमूलं तथौषधम् ।
शाल्यादीनि पवित्राणि भोजनार्थमकल्पयत् ॥ ३ ॥

अगस्त्यजीने उनके भोजनके लिये अनेक गुणोंसे युक्त कन्द, मूल, जरावस्थाको निवारण करनेवाली दिव्य ओषधि, पवित्र भात आदि वस्तुएँ अर्पित कीं ॥ ३ ॥

स भुक्तवान् नरश्रेष्ठस्तदन्नममृतोपमम् ।
प्रीतश्च परितुष्टश्च तां रात्रिं समुपाविशत् ॥ ४ ॥

नरश्रेष्ठ श्रीराम वह अमृततुल्य स्वादिष्ट भोजन करके परम तृप्त और प्रसन्न हुए और वह रात्रि उन्होंने बड़े संतोषसे बितायी ॥ ४ ॥

प्रभाते काल्यमुत्थाय कृत्वाऽऽह्निकमरिंदमः ।
ऋषिं समुपचक्राम गमनाय रघूत्तमः ॥ ५ ॥

सबेरे उठकर शत्रुओंका दमन करनेवाले रघुकुलभूषण श्रीराम नित्यकर्म करके वहाँसे जानेकी इच्छासे महर्षिके पास गये ॥ ५ ॥

अभिवाद्याब्रवीद् रामो महर्षिं कुम्भसम्भवम् ।
आपृच्छे त्वां पुरीं गन्तुं मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ ६ ॥

वहाँ महर्षि कुम्भजको प्रणाम करके श्रीरामने कहा—'महर्षे ! अब मैं अपनी पुरीको जानेके लिये आपकी आज्ञा चाहता हूँ । कृपया मुझे आज्ञा प्रदान करें ॥ ६ ॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि दर्शनेन महात्मनः ।
द्रष्टुं चैवागमिष्यामि पावनार्थमिहात्मनः ॥ ७ ॥

'आप महात्माके दर्शनसे मैं धन्य और अनुगृहीत हुआ । अब अपने आपको पवित्र करनेके लिये फिर कभी आपके दर्शनकी इच्छासे यहाँ आऊँगा' ॥ ७ ॥

तथा वदति काकुत्स्थे वाक्यमद्भुतदर्शनम् ।
उवाच परमप्रीतो धर्मनेत्रस्तपोधनः ॥ ८ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार अद्भुत वचन कहनेपर धर्मचक्षु तपोधन अगस्त्यजी बड़े प्रसन्न हुए और उनसे बोले—॥

अत्यद्भुतमिदं वाक्यं तव राम शुभाक्षरम् ।
पावनः सर्वभूतानां त्वमेव रघुनन्दन ॥ ९ ॥

'श्रीराम ! आपके ये सुन्दर वचन बड़े अद्भुत हैं । रघुनन्दन ! समस्त प्राणियोंको पवित्र करनेवाले तो आप ही हैं ॥ ९ ॥

मुहूर्तमपि राम त्वां येऽनुपश्यन्ति केचन ।
पाविताः स्वर्गभूताश्च पूज्यास्ते त्रिदिवेश्वरैः ॥ १० ॥

'श्रीराम ! जो कोई एक मुहूर्तके लिये भी आपका दर्शन पा जाते हैं, वे पवित्र, स्वर्गके अधिकारी तथा देवताओंके लिये भी पूजनीय हो जाते हैं ॥ १० ॥

ये च त्वां घोरचक्षुर्भिः पश्यन्ति प्राणिनो भुवि ।
हतास्ते यमदण्डेन सद्यो निरयगामिनः ॥ ११ ॥

'इस भूतलपर जो प्राणी आपको क्रूर दृष्टिसे देखते हैं, वे यमराजके दण्डसे पीटे जाकर तत्काल नरकमें गिरते हैं ॥

ईदृशस्त्वं रघुश्रेष्ठ पावनः सर्वदेहिनाम् ।
भुवि त्वां कथयन्तो हि सिद्धिमेष्यन्ति राघव ॥ १२ ॥

'रघुश्रेष्ठ ! ऐसे माहात्म्यशाली आप समस्त देहधारियोंको पवित्र करनेवाले हैं । रघुनन्दन ! पृथ्वीपर जो लोग आपकी कथाएँ कहते हैं, वे सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं ॥ १२ ॥

त्वं गच्छारिष्टमव्यग्रः पन्थानमकुतोभयम् ।
प्रशाधि राज्यं धर्मेण गतिर्हि जगतो भवान् ॥ १३ ॥

'आप निश्चिन्त होकर कुशलपूर्वक पधारिये । आपके मार्गमें कहींसे कोई भय न रहे । आप धर्मपूर्वक राज्यका शासन करें; क्योंकि आप ही संसारके परम आश्रय हैं' ॥

एवमुक्तस्तु मुनिना प्राञ्जलिः प्रग्रहो नृपः ।
अभ्यवादयत प्राज्ञस्तमृषिं सत्यशीलिनम् ॥ १४ ॥

मुनिके ऐसा कहनेपर बुद्धिमान् राजा श्रीरामने भुजाएँ ऊपर उठा हाथ जोड़कर उन सत्यशील महर्षिको प्रणाम किया॥

अभिवाद्य ऋषिश्रेष्ठं तांश्च सर्वांस्तपोधनान् ।
अध्यारोहत् तदव्यग्रः पुष्पकं हेमभूषितम् ॥ १५ ॥

इस प्रकार मुनिवर अगस्त्य तथा अन्य सब तपोधन ऋषियोंका भी यथोचित अभिवादन कर वे बिना किसी व्यग्रताके उस सुवर्णभूषित पुष्पक विमानपर चढ़ गये ॥१५॥

तं प्रयान्तं मुनिगणा आशीर्वादैः समन्ततः ।
अपूजयन् महेन्द्राभं सहस्राक्षमिवामराः ॥ १६ ॥

जैसे देवता सहस्रनेत्रधारी इन्द्रकी पूजा करते हैं, उसी प्रकार जाते समय उन महेन्द्रतुल्य तेजस्वी श्रीरामको ऋषिसमूहोंने सब ओरसे आशीर्वाद दिया ॥ १६ ॥

खस्थः स ददृशे रामः पुष्पके हेमभूषिते ।
शशी मेघसमीपस्थो यथा जलधरागमे ॥ १७ ॥

उस सुवर्णभूषित पुष्पकविमानपर आकाशमें स्थित हुए श्रीराम वर्षाकालमें मेघोंके समीपवर्ती चन्द्रमाके समान दिखायी देते थे ॥ १७ ॥

ततोऽर्धदिवसे प्राप्ते पूज्यमानस्ततस्ततः ।
अयोध्यां प्राप्य काकुत्स्थो मध्यकक्षामवातरत् ॥ १८ ॥

तदनन्तर जगह-जगह सम्मान पाते हुए वे श्रीरघुनाथजी मध्याह्नके समय अयोध्यामें पहुँचकर मध्यम कक्षा (बीचकी ड्योढ़ी) में उतरे ॥ १८ ॥

ततो विसृज्य रुचिरं पुष्पकं कामगामिनम् ।
विसर्जयित्वा गच्छेति स्वस्ति तेऽस्त्विति च प्रभुः ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् इच्छानुसार चलनेवाले उस सुन्दर पुष्पकविमानको वहीं छोड़कर भगवान्ने उससे कहा—'अब तुम जाओ । तुम्हारा कल्याण हो' ॥ १९ ॥

कक्षान्तरस्थितं क्षिप्रं द्वाःस्थं रामोऽब्रवीद् वचः ।

लक्ष्मणं भरतं चैव गत्वा तौ लघुविक्रमौ ।
ममागमनमाख्याय शब्दापयत मा चिरम् ॥ २० ॥

फिर श्रीरामने ड्योढ़ीके भीतर खड़े हुए द्वारपालसे शीघ्रतापूर्वक कहा—'तुम अभी जाकर शीघ्रपराक्रमी भरत और लक्ष्मणको मेरे आनेकी सूचना दो और उन्हें जल्दी बुला लाओ' ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बयासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमः सर्गः

भरतके कहनेसे श्रीरामका राजसूय यज्ञ करनेके विचारसे निवृत्त होना

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
द्वाःस्थः कुमारावाहूय राघवाय न्यवेदयत् ॥ १ ॥

क्लेशरहित कर्म करनेवाले श्रीरामका यह कथन सुनकर द्वारपालने कुमार भरत और लक्ष्मणको बुलाकर श्रीरघुनाथजीकी सेवामें उपस्थित कर दिया ॥ १ ॥

दृष्ट्वा तु राघवः प्राप्तावुभौ भरतलक्ष्मणौ ।
परिष्वज्य ततो रामो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २ ॥

भरत और लक्ष्मणको आया देख रघुकुलतिलक श्रीरामने उन्हें हृदयसे लगा लिया और यह बात कही—॥ २ ॥

कृतं मया यथा तथ्यं द्विजकार्यमनुत्तमम् ।
धर्मसेतुमथो भूयः कर्तुमिच्छामि राघवौ ॥ ३ ॥

'रघुवंशी राजकुमारो ! मैंने ब्राह्मणका वह परम उत्तम कार्य यथावत्‌रूपसे सिद्ध कर दिया । अब मैं पुनः राजधर्मकी चरम सीमारूप राजसूय यज्ञका अनुष्ठान करना चाहता हूँ ॥

अक्षयश्चाव्ययश्चैव धर्मसेतुर्मतो मम ।
धर्मप्रवचनं चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ४ ॥

'मेरी रायमें धर्मसेतु (राजसूय) अक्षय एवं अविनाशी फल देनेवाला है तथा वह धर्मका पोषक एवं समस्त पापोंका नाश करनेवाला है ॥ ४ ॥

युवाभ्यामात्मभूताभ्यां राजसूयमनुत्तमम् ।
सहितो यष्टुमिच्छामि तत्र धर्मस्तु शाश्वतः ॥ ५ ॥

'तुम दोनों मेरे आत्मा ही हो, अतः मेरी इच्छा तुम्हारे साथ इस उत्तम राजसूय यज्ञका अनुष्ठान करनेकी है; क्योंकि उसमें राजाका शाश्वत धर्म प्रतिष्ठित है ॥ ५ ॥

इष्ट्वा तु राजसूयेन मित्रः शत्रुनिबर्हणः ।
सुहुतेन सुयज्ञेन वरुणत्वमुपागमत् ॥ ६ ॥

'शत्रुओंका संहार करनेवाले मित्रदेवताने उत्तम आहुतिसे युक्त राजसूय नामक श्रेष्ठ यज्ञद्वारा परमात्माका यजन करके वरुणका पद प्राप्त किया था ॥ ६ ॥

सोमश्च राजसूयेन इष्ट्वा धर्मेण धर्मवित् ।
प्राप्तश्च सर्वलोकेषु कीर्तिं स्थानं च शाश्वतम् ॥ ७ ॥

'धर्मज्ञ सोमदेवताने धर्मपूर्वक राजसूय यज्ञका अनुष्ठान करके सम्पूर्ण लोकोंमें कीर्ति तथा शाश्वत स्थानको प्राप्त कर लिया ॥७॥

अस्मिन्नहनि यच्छ्रेयश्चिन्त्यतां तन्मया सह ।
हितं चायतियुक्तं च प्रयतौ वक्तुमर्हथः ॥ ८ ॥

'इसलिये आजके दिन मेरे साथ बैठकर तुमलोग यह विचार करो कि हमारे लिये कौन-सा कर्म लोक और परलोकमें कल्याणकारी होगा तथा संयत-चित्त होकर तुम दोनों इस विषयमें मुझे सलाह दो' ॥ ८ ॥

श्रुत्वा तु राघवस्यैतद् वाक्यं वाक्यविशारदः ।
भरतः प्राञ्जलिर्भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ९ ॥

श्रीरघुनाथजीके ये वचन सुनकर वाक्यविशारद भरतजीने हाथ जोड़कर यह बात कही—॥ ९ ॥

त्वयि धर्मः परः साधो त्वयि सर्वा वसुंधरा ।
प्रतिष्ठिता महाबाहो यशश्चामितविक्रम ॥ १० ॥

'साधो ! अमित पराक्रमी महाबाहो ! आपमें उत्तम धर्म प्रतिष्ठित है । यह सारी पृथ्वी भी आपपर ही आधारित है तथा आपमें ही यशकी प्रतिष्ठा है ॥ १० ॥

महीपालाश्च सर्वे त्वां प्रजापतिमिवामराः ।
निरीक्षन्ते महात्मानं लोकनाथं यथा वयम् ॥ ११ ॥

'देवतालोग जैसे प्रजापति ब्रह्माको ही महात्मा एवं लोकनाथ समझते हैं, उसी प्रकार हमलोग और समस्त भूपाल आपको ही महापुरुष तथा समस्त लोकोंका स्वामी मानते हैं—उसी दृष्टिसे आपको देखते हैं ॥ ११ ॥

पुत्राश्च पितृवद् राजन् पश्यन्ति त्वां महाबल ।
पृथिव्या गतिभूतोऽसि प्राणिनामपि राघव ॥ १२ ॥

'राजन् ! महाबली रघुनन्दन ! पुत्र जैसे पिताको देखते हैं, उसी प्रकार आपके प्रति सब राजाओंका भाव है । आप ही समस्त पृथ्वी और सम्पूर्ण प्राणियोंके भी आश्रय हैं ॥१२॥

स त्वमेवंविधं यज्ञमाहर्तासि कथं नृप । ✓
पृथिव्यां राजवंशानां विनाशो यत्र दृश्यते ॥ १३ ॥

'नरेश्वर ! फिर आप ऐसा यज्ञ कैसे कर सकते हैं, जिसमें भूमण्डलके समस्त राजवंशोंका विनाश दिखायी देता है ॥१३॥

पृथिव्यां ये च पुरुषा राजन् पौरुषमागताः ।
सर्वेषां भविता तत्र संक्षयः सर्वकोपजः ॥ १४ ॥

'राजन् ! पृथ्वीपर जो पुरुषार्थी पुरुष हैं, उन सबका सभीके कोपसे उस यज्ञमें संहार हो जायगा ॥ १४ ॥

सर्वे पुरुषशार्दूल गुणैरतुलविक्रम ।

पृथिवीं नार्हसे हन्तुं वशे हि तव वर्तते ॥ १५ ॥

'पुरुषसिंह ! अतुल पराक्रमी वीर ! आपके सद्‌गुणोंके कारण सारा जगत् आपके वशमें है। आपके लिये इस भूतलके निवासियोंका विनाश करना उचित न होगा' ॥ १५ ॥

भरतस्य तु तद् वाक्यं श्रुत्वामृतमयं यथा।
प्रहर्षमतुलं लेभे रामः सत्यपराक्रमः ॥ १६ ॥

भरतका यह अमृतमय वचन सुनकर सत्यपराक्रमी श्रीरामको अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥

उवाच च शुभं वाक्यं कैकेय्यानन्दवर्धनम्।
प्रीतोऽस्मि परितुष्टोऽस्मि तवाद्य वचनेऽनघ ॥ १७ ॥

उन्होंने कैकेयीनन्दन भरतसे यह शुभ बात कही—'निष्पाप भरत ! आज तुम्हारी बात सुनकर मैं बहुत प्रसन्न एवं संतुष्ट हुआ हूँ ॥ १७ ॥

इदं वचनमक्लीबं त्वया धर्मसमागतम्।
व्याहृतं पुरुषव्याघ्र पृथिव्याः परिपालनम् ॥ १८ ॥

'पुरुषसिंह ! तुम्हारे मुखसे निकला हुआ यह उदार एवं धर्मसंगत वचन सारी पृथ्वीकी रक्षा करनेवाला है ॥ १८ ॥

एष्यदस्मदभिप्रायाद् राजसूयात् क्रतूत्तमात्।
निवर्तयामि धर्मज्ञ तव सुव्याहृतेन च ॥ १९ ॥

'धर्मज्ञ ! मेरे हृदयमें राजसूय यज्ञका संकल्प उठ रहा था; किंतु आज तुम्हारे इस सुन्दर भाषणको सुनकर मैं उस उत्तम यज्ञकी ओरसे अपने मनको हटाये लेता हूँ ॥ १९ ॥

लोकपीडाकरं कर्म न कर्तव्यं विचक्षणैः।
बालानां तु शुभं वाक्यं ग्राह्यं लक्ष्मणपूर्वज।
तस्माच्छृणोमि ते वाक्यं साधु युक्तं महाबल ॥ २० ॥

'लक्ष्मणके बड़े भाई ! बुद्धिमान् पुरुषोंको ऐसा कर्म नहीं करना चाहिये, जो सम्पूर्ण जगत्‌को पीड़ा देनेवाला हो। बालकोंकी कही हुई बात भी यदि अच्छी हो तो उसे ग्रहण करना ही उचित है; अतः महाबली वीर ! मैंने तुम्हारी उत्तम एवं युक्तिसंगत बातको बड़े ध्यानसे सुना है' ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तिरासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८३ ॥

◆

चतुरशीतितमः सर्गः

लक्ष्मणका अश्वमेध यज्ञका प्रस्ताव करते हुए इन्द्र और वृत्रासुरकी कथा सुनाना, वृत्रासुरकी तपस्या और इन्द्रका भगवान् विष्णुसे उसके वधके लिये अनुरोध

तथोक्तवति रामे तु भरते च महात्मनि।
लक्ष्मणोऽथ शुभं वाक्यमुवाच रघुनन्दनम् ॥ १ ॥

श्रीराम और महात्मा भरतके इस प्रकार बातचीत करनेपर लक्ष्मणने रघुकुलनन्दन श्रीरामसे यह शुभ बात कही— ॥

अश्वमेधो महायज्ञः पावनः सर्वपाप्मनाम्।
पावनस्तव दुर्धर्षो रोचतां रघुनन्दन ॥ २ ॥

'रघुनन्दन ! अश्वमेध नामक महान् यज्ञ समस्त पापोंको दूर करनेवाला, परमपावन और दुष्कर है। अतः इसका अनुष्ठान आप पसंद करें ॥ २ ॥

श्रूयते हि पुरावृत्तं वासवे सुमहात्मनि।
ब्रह्महत्यावृतः शक्रो हयमेधेन पावितः ॥ ३ ॥

'महात्मा इन्द्रके विषयमें यह प्राचीन वृत्तान्त सुननेमें आता है कि इन्द्रको जब ब्रह्महत्या लगी थी, तब वे अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करके ही पवित्र हुए थे ॥ ३ ॥

पुरा किल महाबाहो देवासुरसमागमे।
वृत्रो नाम महानासीद् दैतेयो लोकसम्मतः ॥ ४ ॥

'महाबाहो ! पहलेकी बात है; जब देवता और असुर परस्पर मिलकर रहते थे, उन दिनों वृत्रनामसे प्रसिद्ध एक बहुत बड़ा असुर रहता था। लोकमें उसका बड़ा आदर था ॥ ४ ॥

विस्तीर्णो योजनशतमुच्छ्रितस्त्रिगुणं ततः।
अनुरागेण लोकांस्त्रीन् स्नेहात् पश्यति सर्वतः ॥ ५

'वह सौ योजन चौड़ा और तीन सौ योजन ऊँचा था। वह तीनों लोकोंको आत्मीय समझकर प्यार करता था और सबको स्नेहभरी दृष्टिसे देखता था ॥ ५ ॥

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च बुद्ध्या च परिनिष्ठितः।
शशास पृथिवीं स्फीतां धर्मेण सुसमाहितः ॥ ६ ॥

'उसे धर्मका यथार्थ ज्ञान था। वह कृतज्ञ और स्थिरप्रज्ञ था तथा पूर्णतः सावधान रहकर धन-धान्यसे भरी-पूरी पृथ्वीका धर्मपूर्वक शासन करता था ॥ ६ ॥

तस्मिन् प्रशासति तदा सर्वकामदुघा मही।
रसवन्ति प्रसूनानि मूलानि च फलानि च ॥ ७ ॥

'उसके शासनकालमें पृथ्वी सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली थी। यहाँ फल, फूल और मूल सभी सरस होते थे ॥ ७ ॥

अकृष्टपच्या पृथिवी सुसम्पन्ना महात्मनः।
स राज्यं तादृशं भुङ्क्ते स्फीतमद्भुतदर्शनम् ॥ ८ ॥

'महात्मा वृत्रासुरके राज्यमें यह भूमि बिना जोते-बोये ही अन्न उत्पन्न करती तथा धन-धान्यसे भलीभाँति सम्पन्न रहती थी। इस प्रकार वह असुर समृद्धिशाली एवं अद्भुत राज्यका उपभोग करता था ॥ ८ ॥

तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना तपः कुर्यामनुत्तमम्।
तपो हि परमं श्रेयः सम्मोहमितरत् सुखम् ॥ ९

'एक समय वृत्रासुरके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं परम उत्तम तप करूँ; क्योंकि तप ही परम कल्याणका साधन है। दूसरा सारा सुख तो मोहमात्र ही है ॥ ९ ॥

स निक्षिप्य सुतं ज्येष्ठं पौरेषु मधुरेश्वरम्।
तप उग्रं समातिष्ठत् तापयन् सर्वदेवताः ॥ १० ॥

'उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र मधुरेश्वरको[1] राजा बना पुरवासियोंको सौंप दिया और सम्पूर्ण देवताओंको ताप देता हुआ वह कठोर तपस्या करने लगा ॥ १० ॥

तपस्तप्यति वृत्रे तु वासवः परमार्तवत्।
विष्णुं समुपसंक्रम्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ११ ॥

'वृत्रासुरके तपस्यामें लग जानेपर इन्द्र बड़े दुखी-से होकर भगवान् विष्णुके पास गये और इस प्रकार बोले— ॥ ११ ॥

तपस्यता महाबाहो लोकाः सर्वे विनिर्जिताः।
बलवान् स हि धर्मात्मा नैनं शक्ष्यामि शासितुम् ॥ १२ ॥

''महाबाहो! तपस्या करते हुए वृत्रासुरने समस्त लोक जीत लिये। वह धर्मात्मा असुर बलवान् हो गया है; अतः अब उसपर मैं शासन नहीं कर सकता ॥ १२ ॥

यद्यसौ तप आतिष्ठेद् भूय एव सुरेश्वर।
यावल्लोका धरिष्यन्ति तावदस्य वशानुगाः ॥ १३ ॥

''सुरेश्वर! यदि वह फिर इसी प्रकार तपस्या करता रहा तो जबतक ये तीनों लोक रहेंगे, तबतक हम सब देवताओंको उसके अधीन रहना पड़ेगा ॥ १३ ॥

तं चैनं परमोदारमुपेक्षसि महाबल।
क्षणं हि न भवेद् वृत्रः क्रुद्धे त्वयि सुरेश्वर ॥ १४ ॥

''महाबली देवेश्वर! उस परम उदार असुरकी आप उपेक्षा कर रहे हैं (इसीलिये वह शक्तिशाली होता जा रहा है)। यदि आप कुपित हो जायँ तो वह क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता ॥ १४ ॥

यदा हि प्रीतिसंयोगं त्वया विष्णो समागतः।
तदाप्रभृति लोकानां नाथत्वमुपलब्धवान् ॥ १५ ॥

''विष्णो! जबसे आपके साथ उसका प्रेम हो गया है, तभीसे उसने सम्पूर्ण लोकोंका आधिपत्य प्राप्त कर लिया है ॥

स त्वं प्रसादं लोकानां कुरुष्व सुसमाहितः।
त्वत्कृतेन हि सर्वं स्यात् प्रशान्तमरुजं जगत् ॥ १६ ॥

''अतः आप अच्छी तरह ध्यान देकर सम्पूर्ण लोकोंपर कृपा कीजिये। आपके रक्षा करनेसे ही सारा जगत् शान्त एवं नीरोग हो सकता है ॥ १६ ॥

इमे हि सर्वे विष्णो त्वां निरीक्षन्ते दिवौकसः।
वृत्रघातेन महता तेषां साह्यं कुरुष्व ह ॥ १७ ॥

''विष्णो! ये सब देवता आपकी ओर देख रहे हैं। वृत्रासुरका वध एक महान् कार्य है। उसे करके आप उन देवताओंका उपकार कीजिये ॥ १७ ॥

त्वया हि नित्यशः साह्यं कृतमेषां महात्मनाम्।
असह्यमिदमन्येषामगतीनां गतिर्भवान् ॥ १८ ॥

''प्रभो! आपने सदा ही इन महात्मा देवताओंकी सहायता की है। यह असुर दूसरोंके लिये अजेय है; अतः आप हम निराश्रित देवताओंके आश्रयदाता हों'' ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौरासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितमः सर्गः

भगवान् विष्णुके तेजका इन्द्र और वज्र आदिमें प्रवेश, इन्द्रके वज्रसे वृत्रासुरका वध तथा ब्रह्महत्याग्रस्त इन्द्रका अन्धकारमय प्रदेशमें जाना

लक्ष्मणस्य तु तद् वाक्यं श्रुत्वा शत्रुनिबर्हणः।
वृत्रघातमशेषेण कथयेत्याह सुव्रत ॥ १ ॥

लक्ष्मणका यह कथन सुनकर शत्रुओंका संहार करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले सुमित्राकुमार! वृत्रासुरके वधकी पूरी कथा कह सुनाओ'॥

राघवेणैवमुक्तस्तु सुमित्रानन्दवर्धनः।
भूय एव कथां दिव्यां कथयामास सुव्रतः ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार आदेश देनेपर उत्तम व्रतके पालक सुमित्रानन्दन लक्ष्मणने पुनः उस दिव्य कथाको सुनाना आरम्भ किया— ॥ २ ॥

सहस्राक्षवचः श्रुत्वा सर्वेषां च दिवौकसाम्।
विष्णुर्देवानुवाचेदं सर्वानिन्द्रपुरोगमान् ॥ ३ ॥

''प्रभो! सहस्रनेत्रधारी इन्द्र तथा सम्पूर्ण देवताओंकी वह प्रार्थना सुनकर भगवान् विष्णुने इन्द्र आदि सब देवताओंसे इस प्रकार कहा— ॥ ३ ॥

पूर्वं सौहृदबद्धोऽस्मि वृत्रस्येह महात्मनः।
तेन युष्मत्प्रियार्थं हि नाहं हन्मि महासुरम् ॥ ४ ॥

''देवताओ! तुम्हारी इस प्रार्थनाके पहलेसे ही मैं महामना वृत्रासुरके स्नेह-बन्धनमें बँधा हुआ हूँ। इसलिये तुम्हारा प्रिय करनेके उद्देश्यसे मैं उस महान् असुरका वध नहीं करूँगा ॥

---

[1] मधुरेश्वरका अर्थ तिलककारने मधुर नामक राजा किया है। रामायणशिरोमणिकारने मधुर वक्ताओंका ईश्वर किया है तथा रामायणभूषणकारने 'मधुर—सौम्य स्वभावका राजा अथवा मधुरा नगरीका स्वामी किया है

अवश्यं करणीयं च भवतां सुखमुत्तमम् ।
तस्मादुपायमाख्यास्ये सहस्राक्षो वधिष्यति ॥ ५ ॥

''परंतु तुम सबके उत्तम सुखकी व्यवस्था करना मेरा आवश्यक कर्तव्य है; इसलिये मैं ऐसा उपाय बताऊँगा, जिससे देवराज इन्द्र उसका वध कर सकेंगे ॥ ५ ॥

त्रेधाभूतं करिष्यामि आत्मानं सुरसत्तमाः ।
तेन वृत्रं सहस्राक्षो वधिष्यति न संशयः ॥ ६ ॥

''सुरश्रेष्ठगण ! मैं अपने स्वरूपभूत तेजको तीन भागोंमें विभक्त करूँगा, जिससे इन्द्र निस्संदेह वृत्रासुरका वध कर डालेंगे ॥ ६ ॥

एकांशो वासवं यातु द्वितीयो वज्रमेव तु ।
तृतीयो भूतलं यातु तदा वृत्रं हनिष्यति ॥ ७ ॥

''मेरे तेजका एक अंश इन्द्रमें प्रवेश करे; दूसरा वज्रमें व्याप्त हो जाय और तीसरा भूतलको चला जाय,* तब इन्द्र वृत्रासुरका वध कर सकेंगे' ॥ ७ ॥

तथा ब्रुवति देवेशे देवा वाक्यमथाब्रुवन् ।
एवमेतन्न संदेहो यथा वदसि दैत्यहन् ॥ ८ ॥
भद्रं तेऽस्तु गमिष्यामो वृत्रासुरवधैषिणः ।
भजस्व परमोदार वासवं स्वेन तेजसा ॥ ९ ॥

'देवेश्वर भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर देवता बोले—'दैत्यविनाशन ! आप जो कहते हैं, ठीक ऐसी ही बात है, इसमें संदेह नहीं । आपका कल्याण हो । हमलोग वृत्रासुरके वधकी इच्छा मनमें लिये यहाँसे लौट जायँगे । परम उदार प्रभो ! आप अपने तेजके द्वारा देवराज इन्द्रको अनुगृहीत करें'॥

ततः सर्वे महात्मानः सहस्राक्षपुरोगमाः ।
तदरण्यमुपाक्रामन् यत्र वृत्रो महासुरः ॥ १० ॥

'तत्पश्चात् इन्द्र आदि सभी महामनस्वी देवता उस वनमें गये, जहाँ महान् असुर वृत्र तपस्या करता था ॥ १० ॥

तेऽपश्यंस्तेजसा भूतं तप्यन्तमसुरोत्तमम् ।
पिबन्तमिव लोकांस्त्रीन् निर्दहन्तमिवाम्बरम् ॥ ११ ॥

'उन्होंने देखा, असुरश्रेष्ठ वृत्रासुर अपने तेजसे सब ओर व्याप्त हो रहा है और ऐसी तपस्या कर रहा है, मानो उसके द्वारा तीनों लोकोंको पी जायगा और आकाशको भी दग्ध कर डालेगा ॥ ११ ॥

दृष्ट्वैव चासुरश्रेष्ठं देवास्त्रासमुपागमन् ।
कथमेनं वधिष्यामः कथं न स्यात् पराजयः ॥ १२ ॥

'उस असुरश्रेष्ठ वृत्रको देखते ही देवतालोग घबरा गये और सोचने लगे—'हम कैसे इसका वध करेंगे ? और किस उपायसे हमारी पराजय नहीं होने पायेगी ?' ॥ १२ ॥

तेषां चिन्तयतां तत्र सहस्राक्षः पुरंदरः ।
वज्रं प्रगृह्य पाणिभ्यां प्राहिणोद् वृत्रमूर्धनि ॥ १३ ॥

'वे लोग वहाँ इस प्रकार सोच ही रहे थे कि सहस्रनेत्रधारी इन्द्रने दोनों हाथोंसे वज्र उठाकर उसे वृत्रासुरके मस्तकपर दे मारा ॥ १३ ॥

कालाग्निनेव घोरेण दीप्तेनेव महार्चिषा ।
पतता वृत्रशिरसा जगत् त्रासमुपागमत् ॥ १४ ॥

'इन्द्रका वह वज्र प्रलयकालकी अग्निके समान भयंकर और दीप्तिमान् था । उससे बड़ी भारी लपटें उठ रही थीं । उसकी चोटसे कटकर जब वृत्रासुरका मस्तक गिरा, तब सारा संसार भयभीत हो उठा ॥ १४ ॥

असम्भाव्यं वधं तस्य वृत्रस्य विबुधाधिपः ।
चिन्तयानो जगामाशु लोकस्यान्तं महायशाः ॥ १५ ॥

'निरपराध वृत्रासुरका वध करना उचित नहीं था, अतः उसके कारण महायशस्वी देवराज इन्द्र बहुत चिन्तित हुए और तुरंत ही सब लोकोंके अन्तमें लोकालोक पर्वतसे परवर्ती अन्धकारमय प्रदेशमें चले गये ॥ १५ ॥

तमिन्द्रं ब्रह्महत्याऽऽशु गच्छन्तमनुगच्छति ।
अपतच्चास्य गात्रेषु तमिन्द्रं दुःखमाविशत् ॥ १६ ॥

'जानेके समय ब्रह्महत्या तत्काल उनके पीछे लग गयी और उनके अङ्गोंपर टूट पड़ी । इससे इन्द्रके मनमें बड़ा दुःख हुआ ॥ १६ ॥

हतारयः प्रणष्टेन्द्रा देवाः साग्निपुरोगमाः ।
विष्णुं त्रिभुवनेशानं मुहुर्मुहुरपूजयन् ॥ १७ ॥

'देवताओंका शत्रु मारा गया । इसलिये अग्नि आदि सब देवता त्रिभुवनके स्वामी भगवान् विष्णुकी बारबार स्तुति-पूजा करने लगे । परंतु उनके इन्द्र अदृश्य हो गये थे (इसके कारण उन्हें बड़ा दुःख हो रहा था) ॥ १७ ॥

त्वं गतिः परमेशान पूर्वजो जगतः पिता ।
रक्षार्थं सर्वभूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ॥ १८ ॥

''(देवता बोले—) 'परमेश्वर ! आप ही जगत्‌के आश्रय और आदि पिता हैं । आपने सम्पूर्ण प्राणियोंकी रक्षाके लिये विष्णुरूप धारण किया है ॥ १८ ॥

हतश्चायं त्वया वृत्रो ब्रह्महत्या च वासवम् ।
बाधते सुरशार्दूल मोक्षं तस्य विनिर्दिश ॥ १९ ॥

''आपने ही इस वृत्रासुरका वध किया है । परंतु ब्रह्महत्या इन्द्रको कष्ट दे रही है; अतः सुरश्रेष्ठ ! आप उनके उद्धारका कोई उपाय बताइये' ॥ १९ ॥

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा देवानां विष्णुरब्रवीत् ।
मामेव यजतां शक्रः पावयिष्यामि वज्रिणम् ॥ २० ॥

'देवताओंकी यह बात सुनकर भगवान् विष्णु बोले—'इन्द्र मेरा ही यजन करें । मैं उन वज्रधारी देवराज इन्द्रको पवित्र कर दूँगा ॥ २० ॥

---

* वृत्र-वधके पश्चात् इन्द्रको लगी हुई ब्रह्महत्याकी निवृत्तिके समय तक इस भूतलकी रक्षा करनेके लिये तथा वृत्रके धराशायी होनेपर उसके भारी शरीरको धारण करनेकी शक्ति देनेके लिये भगवान्‌के तेजके तीसरे अंशका भूतलपर आना आवश्यक था; इसलिये ऐसा हुआ ।

पुण्येन हयमेधेन मामिष्ट्वा पाकशासनः ।
पुनरेष्यति देवानामिन्द्रत्वमकुतोभयः ॥ २१ ॥

''पवित्र अश्वमेध यज्ञके द्वारा मुझ यज्ञ-पुरुषकी आराधना करके पाकशासन इन्द्र पुनः देवेन्द्र पदको प्राप्त कर लेंगे और फिर उन्हें किसीसे भय नहीं रहेगा' ॥ २१ ॥

एवं संदिश्य तां वाणीं देवानां चामृतोपमाम् ।
जगाम विष्णुर्देवेशः स्तूयमानस्त्रिविष्टपम् ॥ २२ ॥

'देवताओंके समक्ष अमृतमयी वाणीद्वारा उक्त संदेश देकर देवेश्वर भगवान् विष्णु अपनी स्तुति सुनते हुए परम धामको चले गये ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पचासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८५ ॥

षडशीतितमः सर्गः

इन्द्रके बिना जगत्‌में अशान्ति तथा अश्वमेधके अनुष्ठानसे इन्द्रका ब्रह्महत्यासे मुक्त होना

तदा वृत्रवधं सर्वमखिलेन स लक्ष्मणः ।
कथयित्वा नरश्रेष्ठः कथाशेषं प्रचक्रमे ॥ १ ॥

उस समय वृत्रासुरके वधकी पूरी कथा सुनाकर नरश्रेष्ठ लक्ष्मणने शेष कथाको इस प्रकार कहना आरम्भ किया—॥ १ ॥

ततो हते महावीर्ये वृत्रे देवभयंकरे ।
ब्रह्महत्यावृतः शक्रः संज्ञां लेभे न वृत्रहा ॥ २ ॥

'देवताओंको भय देनेवाले महापराक्रमी वृत्रासुरके मारे जानेपर ब्रह्महत्यासे घिरे हुए वृत्रनाशक इन्द्रको बहुत देरतक होश नहीं हुआ ॥ २ ॥

सोऽन्तमाश्रित्य लोकानां नष्टसंज्ञो विचेतनः ।
कालं तत्रावसत् कंचिद् वेष्टमान इवोरगः ॥ ३ ॥

'लोकोंकी अन्तिम सीमाका आश्रय ले वे सर्पके समान लोटते हुए कुछ कालतक वहाँ अचेत और संज्ञाशून्य होकर पड़े रहे ॥ ३ ॥

अथ नष्टे सहस्राक्षे उद्विग्नमभवज्जगत् ।
भूमिश्च ध्वस्तसंकाशा निःस्नेहा शुष्ककानना ॥ ४ ॥
निःस्रोतसस्ते सर्वे तु ह्रदाश्च सरितस्तथा ।
संक्षोभश्चैव सत्त्वानामनावृष्टिकृतोऽभवत् ॥ ५ ॥

'इन्द्रके अदृश्य हो जानेसे सारा संसार व्याकुल हो उठा । धरती उजाड़-सी हो गयी । इसकी आर्द्रता नष्ट हो गयी और वन सूख गये । समस्त सरों और सरिताओंमें जलस्रोतका अभाव हो गया और वर्षा न होनेसे सब जीवोंमें बड़ी घबराहट फैल गयी ॥ ४-५ ॥

क्षीयमाणे तु लोकेऽस्मिन् सम्भ्रान्तमनसः सुराः ।
यदुक्तं विष्णुना पूर्वं तं यज्ञं समुपानयन् ॥ ६ ॥

'समस्त लोक क्षीण होने लगे । इससे देवताओंके हृदयमें व्याकुलता छा गयी और उन्होंने उसी यज्ञका स्मरण किया, जिसे पहले भगवान् विष्णुने बताया था ॥ ६ ॥

ततः सर्वे सुरगणाः सोपाध्यायाः सहर्षिभिः ।
तं देशं समुपाजग्मुर्यत्रेन्द्रो भयमोहितः ॥ ७ ॥

'तदनन्तर बृहस्पतिजीको साथ ले ऋषियोंसहित सब देवता उस स्थानपर गये, जहाँ इन्द्र भयसे मोहित होकर छिपे हुए थे ॥ ७ ॥

ते तु दृष्ट्वा सहस्राक्षमावृतं ब्रह्महत्यया ।
तं पुरस्कृत्य देवेशमश्वमेधं प्रचक्रिरे ॥ ८ ॥

'वे इन्द्रको ब्रह्महत्यासे आवेष्टित देख उन्हीं देवेश्वरको आगे करके अश्वमेध यज्ञ करने लगे ॥ ८ ॥

ततोऽश्वमेधः सुमहान् महेन्द्रस्य महात्मनः ।
ववृते ब्रह्महत्यायाः पावनार्थं नरेश्वर ॥ ९ ॥

'नरेश्वर ! फिर तो महामनस्वी महेन्द्रका वह महान् अश्वमेध यज्ञ आरम्भ हो गया । उसका उद्देश्य था ब्रह्महत्याकी निवृत्ति करके इन्द्रको पवित्र बनाना ॥ ९ ॥

ततो यज्ञे समाप्ते तु ब्रह्महत्या महात्मनः ।
अभिगम्याब्रवीद् वाक्यं क्व मे स्थानं विधास्यथ ॥ १० ॥

'तत्पश्चात् जब वह यज्ञ समाप्त हुआ, तब ब्रह्महत्याने महामनस्वी देवताओंके निकट आकर पूछा—'मेरे लिये कहाँ स्थान बनाओगे' ॥ १० ॥

ते तामूचुस्ततो देवास्तुष्टाः प्रीतिसमन्विताः ।
चतुर्धा विभजात्मानमात्मनैव दुरासदे ॥ ११ ॥

'यह सुनकर संतुष्ट एवं प्रसन्न हुए देवताओंने उससे कहा—'दुर्जय शक्तिवाली ब्रह्महत्ये ! तू अपने आपको स्वयं ही चार भागोंमें विभक्त कर दे' ॥ ११ ॥

देवानां भाषितं श्रुत्वा ब्रह्महत्या महात्मनाम् ।
संदधौ स्थानमन्यत्र वरयामास दुर्वसा ॥ १२ ॥

'महामनस्वी देवताओंका यह कथन सुनकर महेन्द्रके शरीरमें दुःखपूर्वक निवास करनेवाली ब्रह्महत्याने अपना चार भाग कर दिया और इन्द्रके शरीरसे अन्यत्र रहनेके लिये स्थान माँगा ॥ १२ ॥

एकेनांशेन वत्स्यामि पूर्णोदासु नदीषु वै ।
चतुरो वार्षिकान् मासान् दर्पघ्नी कामचारिणी ॥ १३ ॥

'(वह बोली—) 'मैं अपने एक अंशसे वर्षाके चार महीनोंतक जलसे भरी हुई नदियोंमें निवास करूँगी । उस समय मैं इच्छानुसार विचरनेवाली और दूसरोंके दर्पका दलन करनेवाली होऊँगी ॥ १३ ॥

भूम्यामहं सर्वकालमेकेनांशेन सर्वदा ।
वसिष्यामि न संदेहः सत्येनैतद् ब्रवीमि वः ॥ १४ ॥

''दूसरे भागसे मैं सदा सब समय भूमिपर निवास करूँगी, इसमें संदेह नहीं है, यह मैं आपलोगोंसे सच्ची बात कहती हूँ॥

योऽयमंशस्तृतीयो मे स्त्रीषु यौवनशालिषु।
त्रिरात्रं दर्पपूर्णासु वसिष्ये दर्पघातिनी॥ १५॥

''और मेरा जो यह तीसरा अंश है, इसके साथ मैं युवावस्थासे सुशोभित होनेवाली गर्वीली स्त्रियोंमें प्रतिमास तीन राततक निवास करूँगी और उनके दर्पको नष्ट करती रहूँगी॥

हन्तारो ब्राह्मणान् ये तु मृषापूर्वमदूषकान्।
तांश्चतुर्थेन भागेन संश्रयिष्ये सुरर्षभाः॥ १६॥

''सुरश्रेष्ठगण! जो झूठ बोलकर किसीको कलंकित नहीं करते, ऐसे ब्राह्मणोंका जो लोग वध करते हैं, उनपर मैं अपने चौथे भागसे आक्रमण करूँगी' ॥ १६॥

प्रत्यूचुस्तां ततो देवा यथा वदसि दुर्वसे।
तथा भवतु तत् सर्वं साधयस्व यदीप्सितम्॥ १७॥

'तब देवताओंने उससे कहा—'दुर्वसे! तू जैसा कहती है, वह सब वैसा ही हो। जाओ अपना अभीष्ट साधन करो'॥

ततः प्रीत्यान्विता देवाः सहस्राक्षं ववन्दिरे।
विज्वरः पूतपाप्मा च वासवः समपद्यत॥ १८॥

'तब देवताओंने बड़ी प्रसन्नताके साथ सहस्रलोचन इन्द्रकी वन्दना की। इन्द्र निश्चिन्त, निष्पाप एवं विशुद्ध हो गये॥

प्रशान्तं च जगत् सर्वं सहस्राक्षे प्रतिष्ठिते।
यज्ञं चाद्भुतसंकाशं तदा शक्रोऽभ्यपूजयत्॥ १९॥

'इन्द्रके अपने पदपर प्रतिष्ठित होते ही सम्पूर्ण जगत्में शान्ति छा गयी। उस समय इन्द्रने उस अद्भुत शक्तिशाली यज्ञकी भूरि-भूरि प्रशंसा की॥ १९॥

ईदृशो ह्यश्वमेधस्य प्रभावो रघुनन्दन।
यजस्व सुमहाभाग हयमेधेन पार्थिव॥ २०॥

'रघुनन्दन! अश्वमेध यज्ञका ऐसा ही प्रभाव है। अतः महाभाग! पृथ्वीनाथ! आप अश्वमेध यज्ञके द्वारा यजन कीजिये'॥ २०॥

इति लक्ष्मणवाक्यमुत्तमं
नृपतिरतीव मनोहरं महात्मा।
परितोषमवाप हृष्टचेताः
स निशम्येन्द्रसमानविक्रमौजाः॥ २१॥

लक्ष्मणके उस उत्तम और अत्यन्त मनोहर वचनको सुनकर महात्मा राजा श्रीरामचन्द्रजी, जो इन्द्रके समान पराक्रमी और बलशाली थे, मन-ही-मन बड़े प्रसन्न एवं संतुष्ट हुए॥ २१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षडशीतितमः सर्गः॥ ८६॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छियासीवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ८६॥

सप्ताशीतितमः सर्गः

श्रीरामका लक्ष्मणको राजा इलकी कथा सुनाना—इलको एक-एक मासतक स्त्रीत्व और पुरुषत्वकी प्राप्ति

तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणेनोक्तं वाक्यं वाक्यविशारदः।
प्रत्युवाच महातेजाः प्रहसन् राघवो वचः॥ १॥

लक्ष्मणकी कही हुई यह बात सुनकर बातचीतकी कलामें निपुण महातेजस्वी श्रीरघुनाथजी हँसते हुए बोले—॥ १॥

एवमेव नरश्रेष्ठ यथा वदसि लक्ष्मण।
वृत्रघातमशेषेण वाजिमेधफलं च यत्॥ २॥

'नरश्रेष्ठ लक्ष्मण! वृत्रासुरका सारा प्रसंग और अश्वमेध यज्ञका जो फल तुमने जैसा बताया है, वह सब उसी रूपमें ठीक है॥ २॥

श्रूयते हि पुरा सौम्य कर्दमस्य प्रजापतेः।
पुत्रो बाह्लीश्वरः श्रीमानिलो नाम सुधार्मिकः॥ ३॥

'सौम्य! सुना जाता है कि पूर्वकालमें प्रजापति कर्दमके पुत्र श्रीमान् इल बाह्लिकदेशके राजा थे। वे बड़े धर्मात्मा नरेश थे॥ ३॥

स राजा पृथिवीं सर्वां वशे कृत्वा महायशाः।
राज्यं चैव नरव्याघ्र पुत्रवत् पर्यपालयत्॥ ४॥

'पुरुषसिंह! वे महायशस्वी भूपाल सारी पृथ्वीको वशमें करके अपने राज्यकी प्रजाका पुत्रकी भाँति पालन करते थे॥

सुरैश्च परमोदारैर्दैतेयैश्च महाधनैः।
नागराक्षसगन्धर्वैर्यक्षैश्च सुमहात्मभिः॥ ५॥
पूज्यते नित्यशः सौम्य भयार्तै रघुनन्दन।
अबिभ्यंश्च त्रयो लोकाः सरोषस्य महात्मनः॥ ६॥

'सौम्य! रघुनन्दन! परम उदार देवता, महाधनी दैत्य तथा नाग, राक्षस, गन्धर्व और महामनस्वी यक्ष—ये सब भयभीत होकर सदा राजा इलकी स्तुति-पूजा करते थे तथा उन महामना नरेशके रुष्ट हो जानेपर तीनों लोकोंके प्राणी भयसे थर्रा उठते थे॥ ५-६॥

स राजा तादृशोऽप्यासीद् धर्मे वीर्ये च निष्ठितः।
बुद्ध्या च परमोदारो बाह्लीकेशो महायशाः॥ ७॥

'ऐसे प्रभावशाली होनेपर भी बाह्लीक देशके स्वामी महायशस्वी परम उदार राजा इल धर्म और पराक्रममें दृढ़तापूर्वक स्थित रहते थे और उनकी बुद्धि भी स्थिर थी॥ ७॥

स प्रचक्रे महाबाहुर्मृगयां रुचिरे वने।
चैत्रे मनोरमे मासे सभृत्यबलवाहनः॥ ८॥

'एक समयकी बात है सेवक, सेना और सवारियोंसहित उन महाबाहु नरेशने मनोरम चैत्रमासमें एक सुन्दर वनके तर शिकार खेलना आरम्भ किया ॥ ८ ॥

प्रजघ्ने स नृपोऽरण्ये मृगाञ्शतसहस्रशः।
हत्वैव तृप्तिर्नाभूच्च राज्ञस्तस्य महात्मनः ॥ ९ ॥

'राजाने उस वनमें सैकड़ों-हजारों हिंसक जन्तुओंका वध किया, किंतु इतने ही जन्तुओंका वध करके उन महामनस्वी नरेशको तृप्ति नहीं हुई ॥ ९ ॥

नानामृगाणामयुतं वध्यमानं महात्मना।
यत्र जातो महासेनस्तं देशमुपचक्रमे ॥ १० ॥

'फिर उन महामना इलके हाथसे नाना प्रकारके दस हजार हिंसक पशु मारे गये। तत्पश्चात् वे उस प्रदेशमें गये, जहाँ महासेन (स्वामी कार्तिकेय) का जन्म हुआ था ॥१०॥

तस्मिन् प्रदेशे देवेशः शैलराजसुतां हरः।
रमयामास दुर्धर्षः सर्वैरनुचरैः सह ॥ ११ ॥

'उस स्थानमें देवताओंके स्वामी दुर्जय देवता भगवान् शिव अपने समस्त सेवकोंके साथ रहकर गिरिराजकुमारी उमाका मनोरञ्जन करते थे ॥ ११ ॥

कृत्वा स्त्रीरूपमात्मानमुमेशो गोपतिध्वजः।
देव्याः प्रियचिकीर्षुः संस्तस्मिन् पर्वतनिर्झरे ॥ १२ ॥

'जिनकी ध्वजापर वृषभका चिह्न सुशोभित होता है, वे भगवान् उमावल्लभ अपने-आपको भी स्त्रीरूपमें प्रकट करके देवी पार्वतीका प्रिय करनेकी इच्छासे वहाँके पर्वतीय झरनेके पास उनके साथ विहार करते थे ॥ १२ ॥

यत्र यत्र वनोद्देशे सत्त्वाः पुरुषवादिनः।
वृक्षाः पुरुषनामानस्ते सर्वे स्त्रीजना भवन् ॥ १३ ॥

'उस वनके विभिन्न भागोंमें जहाँ-जहाँ पुँल्लिङ्ग नामधारी जन्तु अथवा वृक्ष थे, वे सब-के-सब स्त्रीलिंगमें परिणत हो गये थे ॥ १३ ॥

यच्च किंचन तत् सर्वं नारीसंज्ञं बभूव ह।
एतस्मिन्नन्तरे राजा स इलः कर्दमात्मजः ॥ १४ ॥
निघ्नन् मृगसहस्राणि तं देशमुपचक्रमे।

'वहाँ जो कुछ भी चराचर प्राणियोंका समूह था, वह सब स्त्रीनामधारी हो गया था। इसी समय कर्दमके पुत्र राजा इल सहस्रों हिंसक पशुओंका वध करते हुए उस देशमें आ गये ॥ १४½ ॥

स दृष्ट्वा स्त्रीकृतं सर्वं सव्यालमृगपक्षिणम् ॥ १५ ॥
आत्मानं स्त्रीकृतं चैव सानुगं रघुनन्दन।

'वहाँ आकर उन्होंने देखा, सर्प, पशु और पक्षियोंसहित उस वनका सारा प्राणिसमुदाय स्त्रीरूप हो गया है। रघुनन्दन! सेवकोंसहित अपने आपको भी उन्होंने स्त्रीरूपमें परिणत हुआ देखा ॥ १५½ ॥'

तस्य दुःखं महच्चासीद् दृष्ट्वाऽऽत्मानं तथागतम् ॥ १६ ॥
उमापतेश्च तत् कर्म ज्ञात्वा त्रासमुपागमत्।

'अपनेको उस अवस्थामें देखकर राजाको बड़ा दुःख हुआ। यह सारा कार्य उमावल्लभ महादेवजीकी इच्छासे हुआ है, ऐसा जानकर वे भयभीत हो उठे ॥ १६½ ॥

ततो देवं महात्मानं शितिकण्ठं कपर्दिनम् ॥ १७ ॥
जगाम शरणं राजा सभृत्यबलवाहनः।

'तदनन्तर सेवक, सेना और सवारियोंसहित राजा इल जटाजूटधारी महात्मा भगवान् नीलकण्ठकी शरणमें गये ॥ १७½ ॥

ततः प्रहस्य वरदः सह देव्या महेश्वरः ॥ १८ ॥
प्रजापतिसुतं वाक्यमुवाच वरदः स्वयम्।

'तब पार्वतीदेवीके साथ विराजमान वरदायक देवता महेश्वर हँसकर प्रजापतिपुत्र इलसे स्वयं बोले—॥ १८½ ॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजर्षे कार्दमेय महाबल ॥ १९ ॥
पुरुषत्वमृते सौम्य वरं वरय सुव्रत।

''कर्दमकुमार महाबली राजर्षे! उठो-उठो। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले सौम्य नरेश! पुरुषत्व छोड़कर जो चाहो, वह वर माँग लो' ॥ १९½ ॥

ततः स राजा शोकार्तः प्रत्याख्यातो महात्मना ॥२०॥
स्त्रीभूतोऽसौ न जग्राह वरमन्यं सुरोत्तमात्।

'महात्मा भगवान् शङ्करके इस प्रकार पुरुषत्व देनेसे इन्कार कर देनेपर स्त्रीरूप हुए राजा इल शोकसे व्याकुल हो गये। उन्होंने उन सुरश्रेष्ठ महादेवजीसे दूसरा कोई वर नहीं ग्रहण किया ॥ २०½ ॥

ततः शोकेन महता शैलराजसुतां नृपः ॥ २१ ॥
प्रणिपत्य उमां देवीं सर्वेणैवान्तरात्मना।
ईशे वराणां वरदे लोकानामसि भामिनी ॥ २२ ॥
अमोघदर्शने देवि भज सौम्येन चक्षुषा।

'तदनन्तर महान् शोकसे पीड़ित हो राजाने गिरिराजकुमारी उमादेवीके चरणोंमें सम्पूर्ण हृदयसे प्रणाम करके यह प्रार्थना की—'सम्पूर्ण वरोंकी अधीश्वरी देवि! आप मानिनी हैं। समस्त लोकोंको वर देनेवाली हैं। देवि! आपका दर्शन कभी निष्फल नहीं होता। अतः आप अपनी सौम्य दृष्टिसे मुझपर अनुग्रह कीजिये' ॥ २१-२२½ ॥

हृद्गतं तस्य राजर्षेर्विज्ञाय हरसंनिधौ ॥ २३ ॥
प्रत्युवाच शुभं वाक्यं देवी रुद्रस्य सम्मता।

'राजर्षि इलके हार्दिक अभिप्रायको जानकर रुद्रप्रिया देवी पार्वतीने महादेवजीके समीप यह शुभ बात कही—॥ २३½ ॥

अर्धस्य देवो वरदो वरार्धस्य तव ह्यहम् ॥ २४ ॥
तस्मादर्धं गृहाण त्वं स्त्रीपुंसोर्यावदिच्छसि।

''राजन्! तुम पुरुषत्व-प्राप्तिरूप जो वर चाहते हो, उसके आधे भागके दाता तो महादेवजी हैं और आधा वर तुम्हें मैं दे सकती हूँ (अर्थात् तुम्हें सम्पूर्ण जीवनके लिये जो स्त्रीत्व मिल गया है, उसे मैं आधे जीवनके लिये पुरुषत्वमें परिवर्तित

कर सकती हूँ)। इसलिये तुम मेरा दिया हुआ आधा वर स्वीकार करो। तुम जितने-जितने कालतक स्त्री और पुरुष रहना चाहो, उसे मेरे सामने कहो' ॥ २४½ ॥

तदद्भुततरं श्रुत्वा देव्या वरमनुत्तमम् ॥ २५ ॥
सम्प्रहृष्टमना भूत्वा राजा वाक्यमथाब्रवीत्।
यदि देवि प्रसन्ना मे रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ २६ ॥
मासं स्त्रीत्वमुपासित्वा मासं स्यां पुरुषः पुनः।

'देवी पार्वतीका वह परम उत्तम और अत्यन्त अद्भुत वर सुनकर राजाके मनमें बड़ा हर्ष हुआ और वे इस प्रकार बोले—'देवि! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं एक मासतक भूतलपर अनुपम रूपवती स्त्रीके रूपमें रहकर फिर एक मासतक पुरुष होकर रहूँ' ॥ २५-२६½ ॥

ईप्सितं तस्य विज्ञाय देवी सुरुचिरानना ॥ २७ ॥
प्रत्युवाच शुभं वाक्यमेवमेव भविष्यति।
राजन् पुरुषभूतस्त्वं स्त्रीभावं न स्मरिष्यसि ॥ २८ ॥
स्त्रीभूतश्च परं मासं न स्मरिष्यसि पौरुषम्।

'राजाके मनोभावको जानकर सुन्दर मुखवाली पार्वतीदेवीने यह शुभ वचन कहा—'ऐसा ही होगा। राजन्! जब तुम पुरुषरूपमें रहोगे, उस समय तुम्हें अपने स्त्रीजीवनकी याद नहीं रहेगी और जब तुम स्त्रीरूपमें रहोगे, उस समय तुम्हें एक मासतक अपने पुरुषभावका स्मरण नहीं होगा' २७-२८½

एवं स राजा पुरुषो मासं भूत्वाथ कार्दमिः।
त्रैलोक्यसुन्दरी नारी मासमेकमिलाभवत् ॥ २९ ॥

'इस प्रकार कर्दमकुमार राजा इल एक मासतक पुरुष रहकर फिर एक मास त्रिलोकसुन्दरी नारी इलाके रूपमें रहने लगे' ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सतासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमः सर्गः

इला और बुधका एक दूसरेको देखना तथा बुधका उन सब स्त्रियोंको किंपुरुषी नाम देकर पर्वतपर रहनेके लिये आदेश देना

तां कथामैलसम्बद्धां रामेण समुदीरिताम्।
लक्ष्मणो भरतश्चैव श्रुत्वा परमविस्मितौ ॥ १ ॥

श्रीरामकी कही हुई इलके चरित्रसे सम्बन्ध रखनेवाली उस कथाको सुनकर लक्ष्मण और भरत दोनों ही बड़े विस्मित हुए ॥ १ ॥

तौ रामं प्राञ्जली भूत्वा तस्य राज्ञो महात्मनः।
विस्तरं तस्य भावस्य तदा पप्रच्छतुः पुनः ॥ २ ॥

उन दोनों भाइयोंने हाथ जोड़कर श्रीरामसे महामना राजा इलके स्त्री-पुरुषभावके विस्तृत वृत्तान्तके विषयमें पुनः पूछा—॥ २ ॥

कथं स राजा स्त्रीभूतो वर्तयामास दुर्गतिः।
पुरुषः स यदा भूतः कां वृत्तिं वर्तयत्यसौ ॥ ३ ॥

'प्रभो! राजा इल स्त्री होकर तो बड़ी दुर्गतिमें पड़ गये होंगे। उन्होंने वह समय कैसे बिताया? और जब वे पुरुषरूपमें रहते थे, तब किस वृत्तिका आश्रय लेते थे?' ॥ ३ ॥

तयोस्तद् भाषितं श्रुत्वा कौतूहलसमन्वितम्।
कथयामास काकुत्स्थस्तस्य राज्ञो यथागमम् ॥ ४ ॥

लक्ष्मण और भरतका वह कौतूहलपूर्ण वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने राजा इलके वृत्तान्तको, जैसा वह उपलब्ध था, उसी रूपमें पुनः सुनाना आरम्भ किया—॥ ४ ॥

तमेव प्रथमं मासं स्त्री भूत्वा लोकसुन्दरी।
ताभिः परिवृता स्त्रीभिर्येऽस्य पूर्वं पदानुगाः ॥ ५ ॥
तत्काननं विगाह्याशु विजह्रे लोकसुन्दरी।
द्रुमगुल्मलताकीर्णं पद्भ्यां पद्मदलेक्षणा ॥ ६ ॥

'तदनन्तर उस प्रथम मासमें ही इला त्रिभुवनसुन्दरी नारी होकर वनमें विचरने लगी। जो पहले उसके चरणसेवक थे, वे भी स्त्रीरूपमें परिणत हो गये थे; उन्हीं स्त्रियोंसे घिरी हुई लोकसुन्दरी कमललोचना इला वृक्षों, झाड़ियों और लताओंसे भरे हुए एक वनमें शीघ्र प्रवेश करके पैदल ही सब ओर घूमने लगी ॥ ५-६ ॥

वाहनानि च सर्वाणि संत्यक्त्वा वै समन्ततः।
पर्वताभोगविवरे तस्मिन् रेमे इला तदा ॥ ७ ॥

'उस समय सारे वाहनोंको सब ओर छोड़कर इला विस्तृत पर्वतमालाओंके मध्यभागमें भ्रमण करने लगी ॥ ७ ॥

अथ तस्मिन् वनोद्देशे पर्वतस्याविदूरतः।
सरः सुरुचिरप्रख्यं नानापक्षिगणायुतम् ॥ ८ ॥

'उस वनप्रान्तमें पर्वतके पास ही एक सुन्दर सरोवर था, जिसमें नाना प्रकारके पक्षी कलरव कर रहे थे ॥ ८ ॥

ददर्श सा इला तस्मिन् बुधं सोमसुतं तदा।
ज्वलन्तं स्वेन वपुषा पूर्णं सोममिवोदितम् ॥ ९ ॥

'उस सरोवरमें सोमपुत्र बुध तपस्या करते थे, जो अपने तेजस्वी शरीरसे उदित हुए पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशित हो रहे थे। इलाने उन्हें देखा* ॥ ९ ॥

---

* यह सरोवर उस सीमासे बाहर था, जहाँतकके प्राणी भगवान् शिवके आदेशसे स्त्रीरूप हो गये थे। इसीलिये बुधको स्त्रीत्वकी प्राप्ति नहीं हुई थी।

तपन्तं च तपस्तीव्रमम्भोमध्ये दुरासदम् ।
यशस्करं कामकरं तारुण्ये पर्यवस्थितम् ॥ १० ॥

'वे जलके भीतर तीव्र तपस्यामें संलग्न थे । उन्हें पराभूत करना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन था । वे यशस्वी, पूर्णकाम और तरुण-अवस्थामें स्थित थे ॥ १० ॥

स तं जलाशयं सर्वं क्षोभयामास विस्मिता ।
सह तैः पूर्वपुरुषैः स्त्रीभूतै रघुनन्दन ॥ ११ ॥

'रघुनन्दन ! उन्हें देखकर इला चकित हो उठी और जो पहले पुरुष थीं, उन स्त्रियोंके साथ जलमें उतरकर उसने सारे जलाशयको क्षुब्ध कर दिया ॥ ११ ॥

बुधस्तु तां समीक्ष्यैव कामबाणवशं गतः ।
नोपलेभे तदात्मानं स चचाल तदाम्भसि ॥ १२ ॥

'इलापर दृष्टि पड़ते ही बुध कामदेवके बाणोंका निशाना बन गये । उन्हें अपने तन-मनकी सुध न रही और वे उस समय जलमें विचलित हो उठे ॥ १२ ॥

इलां निरीक्षमाणस्तु त्रैलोक्यादधिकां शुभाम् ।
चित्तं समभ्यतिक्रामत् का न्वियं देवताधिका ॥ १३ ॥

'इला त्रिलोकीमें सबसे अधिक सुन्दरी थी । उसे देखते हुए बुधका मन उसीमें आसक्त हो गया और वे सोचने लगे, 'यह कौन-सी स्त्री है, जो देवाङ्गनाओंसे भी बढ़कर रूपवती है ॥ १३ ॥

न देवीषु न नागीषु नासुरीष्वप्सरःसु च ।
दृष्टपूर्वा मया काचिद् रूपेणानेन शोभिता ॥ १४ ॥

''न देववनिताओंमें, न नागवधुओंमें, न असुरोंकी स्त्रियोंमें और न अप्सराओंमें ही मैंने पहले कभी कोई ऐसे मनोहर रूपसे सुशोभित होनेवाली स्त्री देखी है ॥ १४ ॥

सदृशीयं मम भवेद् यदि नान्यपरिग्रहः ।
इति बुद्धिं समास्थाय जलात् कूलमुपागमत् ॥ १५ ॥

''यदि यह दूसरेको ब्याही न गयी हो तो सर्वथा मेरी पत्नी बनने योग्य है ।' ऐसा विचार वे जलसे निकलकर किनारे आये ॥ १५ ॥

आश्रमं समुपागम्य ततस्ताः प्रमदोत्तमाः ।
शब्दापयत धर्मात्मा ताश्चैनं च ववन्दिरे ॥ १६ ॥

'फिर आश्रममें पहुँचकर उन धर्मात्माने पूर्वोक्त सभी सुन्दरियोंको आवाज देकर बुलाया और उन सबने आकर उन्हें प्रणाम किया ॥ १६ ॥

स ताः पप्रच्छ धर्मात्मा कस्यैषा लोकसुन्दरी ।
किमर्थमागता चैव सर्वमाख्यात मा चिरम् ॥ १७ ॥

'तब धर्मात्मा बुधने उन सब स्त्रियोंसे पूछा—'यह लोकसुन्दरी नारी किसकी पत्नी है और किसलिये यहाँ आयी है ? ये सब बातें तुम शीघ्र मुझे बताओ' ॥ १७ ॥

शुभं तु तस्य तद् वाक्यं मधुरं मधुराक्षरम् ।
श्रुत्वा स्त्रियश्च ताः सर्वा ऊचुर्मधुरया गिरा ॥ १८ ॥

'बुधके मुखसे निकला हुआ वह शुभ वचन मधुर पदावलीसे युक्त तथा मीठा था । उसे सुनकर उन सब स्त्रियोंने मधुर वाणीमें कहा—॥ १८ ॥

अस्माकमेषा सुश्रोणी प्रभुत्वे वर्तते सदा ।
अपतिः काननान्तेषु सहास्माभिश्चरत्यसौ ॥ १९ ॥

''ब्रह्मन् ! यह सुन्दरी हमारी सदाकी स्वामिनी है । इसका कोई पति नहीं है । यह हम लोगोंके साथ अपनी इच्छाके अनुसार वनप्रान्तमें विचरती रहती है' ॥ १९ ॥

तद् वाक्यमाव्यक्तपदं तासां स्त्रीणां निशम्य च ।
विद्यामावर्तनीं पुण्यामावर्तयत स द्विजः ॥ २० ॥

'उन स्त्रियोंका वचन सब प्रकारसे सुस्पष्ट था । उसे सुनकर ब्राह्मण बुधने पुण्यमयी आवर्तनी विद्याका आवर्तन (स्मरण) किया ॥ २० ॥

सोऽर्थं विदित्वा सकलं तस्य राज्ञो यथा तथा ।
सर्वा एव स्त्रियस्ताश्च बभाषे मुनिपुङ्गवः ॥ २१ ॥

'उस राजाके विषयकी सारी बातें यथार्थरूपसे जानकर मुनिवर बुधने उन सभी स्त्रियोंसे कहा—॥ २१ ॥

अत्र किंपुरुषीर्भूत्वा शैलरोधसि वत्स्यथ ।
आवासस्तु गिरावस्मिञ्शीघ्रमेव विधीयताम् ॥ २२ ॥

''तुम सब लोग किंपुरुषी (किन्नरी) होकर पर्वतके किनारे रहोगी । इस पर्वतपर शीघ्र ही अपने लिये निवासस्थान बना लो ॥ २२ ॥

मूलपत्रफलैः सर्वा वर्तयिष्यथ नित्यदा ।
स्त्रियः किंपुरुषान्नाम भर्तॄन् समुपलप्स्यथ ॥ २३ ॥

''पत्र और फल-मूलसे ही तुम सबको सदा जीवन-निर्वाह करना होगा । आगे चलकर तुम सभी स्त्रियाँ किंपुरुष नामक पतियोंको प्राप्त कर लोगी' ॥ २३ ॥

ताः श्रुत्वा सोमपुत्रस्य स्त्रियः किंपुरुषीकृताः ।
उपासांचक्रिरे शैलं वध्वस्ता बहुलास्तदा ॥ २४ ॥

'किंपुरुषी नामसे प्रसिद्ध हुई वे स्त्रियाँ सोमपुत्र बुधकी उपर्युक्त बात सुनकर उस पर्वतपर रहने लगीं । उन स्त्रियोंकी संख्या बहुत अधिक थी' ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अठासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८८ ॥

एकोननवतितमः सर्गः

बुध और इलाका समागम तथा पुरूरवाकी उत्पत्ति

श्रुत्वा किंपुरुषोत्पत्तिं लक्ष्मणो भरतस्तथा ।
आश्चर्यमिति च ब्रूतामुभौ रामं जनेश्वरम् ॥ १ ॥

किंपुरुषजातिकी उत्पत्तिका यह प्रसंग सुनकर लक्ष्मण और भरत दोनोंने महाराज श्रीरामसे कहा—'यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है' ॥ १ ॥

अथ रामः कथामेतां भूय एव महायशाः ।
कथयामास धर्मात्मा प्रजापतिसुतस्य वै ॥ २ ॥

तदनन्तर महायशस्वी धर्मात्मा श्रीरामने प्रजापति कर्दमके पुत्र इलकी इस कथाको फिर इस प्रकार कहना आरम्भ किया—॥ २ ॥

सर्वास्ता विद्रुता दृष्ट्वा किन्नरीर्ऋषिसत्तमः ।
उवाच रूपसम्पन्नां तां स्त्रियं प्रहसन्निव ॥ ३ ॥

'वे सब किन्नरियाँ पर्वतके किनारे चली गयीं । यह देख मुनिश्रेष्ठ बुधने उस रूपवती स्त्रीसे हँसते हुए-से कहा——॥ ३ ॥

सोमस्याहं सुदयितः सुतः सुरुचिरानने ।
भजस्व मां वरारोहे भक्त्या स्निग्धेन चक्षुषा ॥ ४ ॥

''सुमुखि ! मैं सोमदेवताका परम प्रिय पुत्र हूँ । वरारोहे ! मुझे अनुराग और स्नेहभरी दृष्टिसे देखकर अपनाओ' ॥ ४ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा शून्ये स्वजनवर्जिते ।
इला सुरुचिरप्रख्यं प्रत्युवाच महाप्रभम् ॥ ५ ॥

'स्वजनोंसे रहित उस सूने स्थानमें बुधकी यह बात सुनकर इला उन परम सुन्दर महातेजस्वी बुधसे इस प्रकार बोली—॥ ५ ॥

अहं कामचरी सौम्य तवास्मि वशवर्तिनी ।
प्रशाधि मां सोमसुत यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६ ॥

''सौम्य सोमकुमार ! मैं अपनी इच्छाके अनुसार विचरनेवाली (स्वतन्त्र) हूँ, किंतु इस समय आपकी आज्ञाके अधीन हो रही हूँ; अतः मुझे उचित सेवाके लिये आदेश दीजिये और जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा कीजिये' ॥ ६ ॥

तस्यास्तदद्भुतप्रख्यं श्रुत्वा हर्षमुपागतः ।
स वै कामी सह तया रेमे चन्द्रमसः सुतः ॥ ७ ॥

'इलाका यह अद्‌भुत वचन सुनकर कामासक्त सोमपुत्रको बड़ा हर्ष हुआ । वे उसके साथ रमण करने लगे ॥ ७ ॥

बुधस्य माधवो मासस्तामिलां रुचिराननाम् ।
गतो रमयतोऽत्यर्थं क्षणवत् तस्य कामिनः ॥ ८ ॥

'मनोहर मुखवाली इलाके साथ अतिशय रमण करनेवाले कामासक्त बुधका वैशाख मास एक क्षणके समान बीत गया ॥

अथ मासे तु सम्पूर्णे पूर्णेन्दुसदृशाननः ।
प्रजापतिसुतः श्रीमाञ्शयने प्रत्यबुध्यत ॥ ९ ॥

'एक मास पूर्ण होनेपर पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले प्रजापति-पुत्र श्रीमान् इल अपनी शय्यापर जाग उठे ॥ ९ ॥

सोऽपश्यत् सोमजं तत्र तपन्तं सलिलाशये ।
ऊर्ध्वबाहुं निरालम्बं तं राजा प्रत्यभाषत ॥ १० ॥

'उन्होंने देखा, सोमपुत्र बुध वहाँ जलाशयमें तप कर रहे हैं । उनकी भुजाएँ ऊपरको उठी हुई हैं और वे निराधार खड़े हैं । उस समय राजाने बुधसे पूछा——॥ १० ॥

भगवन् पर्वतं दुर्गं प्रविष्टोऽस्मि सहानुगः ।
न च पश्यामि तत् सैन्यं क्व नु ते मामका गताः ॥ ११ ॥

''भगवन् ! मैं अपने सेवकोंके साथ दुर्गम पर्वतपर आ गया था, परंतु यहाँ मुझे अपनी वह सेना नहीं दिखायी देती है । पता नहीं, वे मेरे सैनिक कहाँ चले गये ?' ॥ ११ ॥

तच्छ्रुत्वा तस्य राजर्षेर्नष्टसंज्ञस्य भाषितम् ।
प्रत्युवाच शुभं वाक्यं सान्त्वयन् परया गिरा ॥ १२ ॥

'राजर्षि इलकी स्त्रीत्व-प्राप्तिविषयक स्मृति नष्ट हो गयी थी । उनकी बात सुनकर बुध उत्तम वाणीद्वारा उन्हें सान्त्वना देते हुए यह शुभ वचन बोले——॥ १२ ॥

अश्मवर्षेण महता भृत्यास्ते विनिपातिताः ।
त्वं चाश्रमपदे सुप्तो वातवर्षभयार्दितः ॥ १३ ॥

''राजन् ! आपके सारे सेवक ओलोंकी भारी वर्षासे मारे गये । आप भी आँधी-पानीके भयसे पीड़ित हो इस आश्रममें आकर सो गये थे ॥ १३ ॥

समाश्वसिहि भद्रं ते निर्भयो विगतज्वरः ।
फलमूलाशनो वीर निवसेह यथासुखम् ॥ १४ ॥

''वीर ! अब आप धैर्य धारण करें । आपका कल्याण हो । आप निर्भय और निश्चिन्त होकर फल-मूलका आहार करते हुए यहाँ सुखपूर्वक निवास कीजिये' ॥ १४ ॥

स राजा तेन वाक्येन प्रत्याश्वस्तो महामतिः ।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं दीनो भृत्यजनक्षयात् ॥ १५ ॥

'बुधके इस वचनसे परम बुद्धिमान् राजा इलको बड़ा आश्वासन मिला, परंतु अपने सेवकोंके नष्ट होनेसे वे बहुत दुखी थे; इसलिये उनसे इस प्रकार बोले——॥ १५ ॥

त्यक्ष्याम्यहं स्वकं राज्यं नाहं भृत्यैर्विनाकृतः ।
वर्तयेयं क्षणं ब्रह्मन् समनुज्ञातुमर्हसि ॥ १६ ॥

''ब्रह्मन् ! मैं सेवकोंसे रहित हो जानेपर भी राज्यका परित्याग नहीं करूँगा । अब क्षणभर भी मुझसे यहाँ नहीं रहा जायगा; अतः मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये ॥ १६ ॥

सुतो धर्मपरो ब्रह्मन् ज्येष्ठो मम महायशाः ।
शशबिन्दुरिति ख्यातः स मे राज्यं प्रपत्स्यते ॥ १७ ॥

''ब्रह्मन् मेरे धर्मपरायण ज्येष्ठ पुत्र बड़े यशस्वी हैं ।

उनका नाम शशबिन्दु है। जब मैं वहाँ जाकर उनका अभिषेक करूँगा, तभी वे मेरा राज्य ग्रहण करेंगे ॥ १७ ॥

नहि शक्ष्याम्यहं हित्वा भृत्यदारान् सुखान्वितान्।
प्रतिवक्तु महातेजाः किंचिदप्यशुभं वचः ॥ १८ ॥

''महातेजस्वी मुने! देशमें जो मेरे सेवक और स्त्री, पुत्र आदि परिवारके लोग सुखसे रह रहे हैं, उन सबको छोड़कर मैं यहाँ नहीं ठहर सकूँगा। अतः मुझसे ऐसी कोई अशुभ बात आप न कहें, जिससे स्वजनोंसे बिछुड़कर मुझे यहाँ दुःखपूर्वक रहनेके लिये विवश होना पड़े' ॥ १८ ॥

तथा ब्रुवति राजेन्द्रे बुधः परममद्भुतम्।
सान्त्वपूर्वमथोवाच वासस्त इह रोचताम् ॥ १९ ॥
न संतापस्त्वया कार्यः कार्दमेय महाबल।
संवत्सरोषितस्येह कारयिष्यामि ते हितम् ॥ २० ॥

'राजेन्द्र इलके ऐसा कहनेपर बुधने उन्हें सान्त्वना देते हुए अत्यन्त अद्भुत बात कही—'राजन्! तुम प्रसन्नतापूर्वक यहाँ रहना स्वीकार करो। कर्दमके महाबली पुत्र! तुम्हें संताप नहीं करना चाहिये। जब तुम एक वर्षतक यहाँ निवास कर लोगे, तब मैं तुम्हारा हित साधन करूँगा' ॥ १९-२० ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा बुधस्याक्लिष्टकर्मणः।
वासाय विदधे बुद्धिं यदुक्तं ब्रह्मवादिना ॥ २१ ॥

'पुण्यकर्मा बुधका यह वचन सुनकर उन ब्रह्मवादी महात्माके कथनानुसार राजाने वहाँ रहनेका निश्चय किया ॥

मासं स स्त्री तदा भूत्वा रमयत्यनिशं सदा।
मासं पुरुषभावेन धर्मबुद्धिं चकार सः ॥ २२ ॥

'वे एक मासतक स्त्री होकर निरन्तर बुधके साथ रमण करते और फिर एक मासतक पुरुष होकर धर्मानुष्ठानमें मन लगाते थे ॥ २२ ॥

ततः सा नवमे मासि इला सोमसुतात् सुतम्।
जनयामास सुश्रोणी पुरूरवसमूर्जितम् ॥ २३ ॥

'तदनन्तर नवें मासमें सुन्दरी इलाने सोमपुत्र बुधसे एक पुत्रको जन्म दिया, जो बड़ा ही तेजस्वी और बलवान् था। उसका नाम था पुरूरवा ॥ २३ ॥

जातमात्रे तु सुश्रोणी पितुर्हस्ते न्यवेशयत्।
बुधस्य समवर्णं च इला पुत्रं महाबलम् ॥ २४ ॥

'उसके उस महाबली पुत्रकी अङ्गकान्ति बुधके ही समान थी। वह जन्म लेते ही उपनयनके योग्य अवस्थाका बालक हो गया, इसलिये सुन्दरी इलाने उसे पिताके हाथमें सौंप दिया ॥ २४ ॥

बुधस्तु पुरुषीभूतं स वै संवत्सरान्तरम्।
कथाभी रमयामास धर्मयुक्ताभिरात्मवान् ॥ २५ ॥

'वर्ष पूरा होनेमें जितने मास शेष थे, उतने समयतक जब-जब राजा पुरुष होते थे, तब-तब मनको वशमें रखनेवाले बुध धर्मयुक्त कथाओंद्वारा उनका मनोरञ्जन करते थे' ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें नवासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८९ ॥

* * *

नवतितमः सर्गः

अश्वमेधके अनुष्ठानसे इलाको पुरुषत्वकी प्राप्ति

तथोक्तवति रामे तु तस्य जन्म तदद्भुतम्।
उवाच लक्ष्मणो भूयो भरतश्च महायशाः ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजी जब पुरूरवाके जन्मकी अद्भुत कथा कह गये, तब लक्ष्मण तथा महायशस्वी भरतने पुनः पूछा—॥१॥

इला सा सोमपुत्रस्य संवत्सरमथोषिता।
अकरोत् किं नरश्रेष्ठ तत्त्वं शंसितुमर्हसि ॥ २ ॥

'नरश्रेष्ठ! सोमपुत्र बुधके यहाँ एक वर्षतक निवास करनेके पश्चात् इलाने क्या किया, यह ठीक-ठीक बतानेकी कृपा करें' ॥ २ ॥

तयोस्तद् वाक्यमाधुर्यं निशम्य परिपृच्छतोः।
रामः पुनरुवाचेमां प्रजापतिसुते कथाम् ॥ ३ ॥

प्रश्न करते समय उन दोनों भाइयोंकी वाणीमें बड़ा माधुर्य था। उसे सुनकर श्रीरामने प्रजापतिपुत्र इलके विषयमें फिर इस प्रकार कथा आरम्भ की—॥ ३ ॥

पुरुषत्वं गते शूरे बुधः परमबुद्धिमान्।
संवर्तं परमोदारमाजुहाव महायशाः ॥ ४ ॥

'शूरवीर इल जब एक मासके लिये पुरुषभावको प्राप्त हुए, तब परम बुद्धिमान् महायशस्वी बुधने परम उदार महात्मा संवर्तको बुलाया ॥ ४ ॥

च्यवनं भृगुपुत्रं च मुनिं चारिष्टनेमिनम्।
प्रमोदनं मोदकरं ततो दुर्वाससं मुनिम् ॥ ५ ॥

'भृगुपुत्र च्यवन मुनि, अरिष्टनेमि, प्रमोदन, मोदकर और दुर्वासा मुनिको भी आमन्त्रित किया ॥ ५ ॥

एतान् सर्वान् समानीय वाक्यज्ञस्तत्त्वदर्शनः।
उवाच सर्वान् सुहृदो धैर्येण सुसमाहितान् ॥ ६ ॥

'इन सबको बुलाकर बातचीतकी कला जाननेवाले तत्त्वदर्शी बुधने धैर्यसे एकाग्रचित्त रहनेवाले इन सभी सुहृदोंसे कहा—॥ ६ ॥

अयं राजा महाबाहुः कर्दमस्य इलः सुतः।
जानीतैनं यथाभूतं श्रेयो ह्यत्र विधीयताम् ॥ ७ ॥

''ये महाबाहु राजा इल प्रजापति कर्दमके पुत्र हैं। इनकी जैसी स्थिति है, इसे आप सब लोग जानते हैं। अतः इस

विषयमें ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे इनका कल्याण हो'॥

तेषां संवदतामेव द्विजैः सह महात्मभिः।
कर्दमस्तु महातेजास्तदाश्रममुपागमत्॥ ८॥

'वे सब इस प्रकार बातचीत कर ही रहे थे कि महात्मा द्विजोंके साथ महातेजस्वी प्रजापति कर्दम भी उस आश्रमपर आ पहुँचे॥ ८॥

पुलस्त्यश्च क्रतुश्चैव वषट्कारस्तथैव च।
ओङ्कारश्च महातेजास्तमाश्रममुपागमन्॥ ९॥

'साथ ही पुलस्त्य, क्रतु, वषट्कार तथा महातेजस्वी ओंकार भी उस आश्रमपर पधारे॥ ९॥

ते सर्वे हृष्टमनसः परस्परसमागमे।
हितैषिणो बाह्लिपतेः पृथग्वाक्यान्यथाब्रुवन्॥ १०॥

'परस्पर मिलनेपर वे सभी महर्षि प्रसन्नचित्त हो बाह्लिकदेशके स्वामी राजा इलका हित चाहते हुए भिन्न-भिन्न प्रकारकी राय देने लगे॥ १०॥

कर्दमस्त्वब्रवीद् वाक्यं सुतार्थं परमं हितम्।
द्विजाः शृणुत मद्वाक्यं यच्छ्रेयः पार्थिवस्य हि॥ ११॥

'तब कर्दमने पुत्रके लिये अत्यन्त हितकर बात कही—'ब्राह्मणो! आपलोग मेरी बात सुनें, जो इस राजाके लिये कल्याणकारिणी होगी॥ ११॥

नान्यं पश्यामि भैषज्यमन्तरा वृषभध्वजम्।
नाश्वमेधात् परो यज्ञः प्रियश्चैव महात्मनः॥ १२॥

''मैं भगवान् शङ्करके सिवा दूसरे किसीको ऐसा नहीं देखता, जो इस रोगकी दवा कर सके तथा अश्वमेध यज्ञसे बढ़कर दूसरा कोई ऐसा यज्ञ नहीं है, जो महात्मा महादेवजीको प्रिय हो॥ १२॥

तस्माद् यजामहे सर्वे पार्थिवार्थे दुरासदम्।
कर्दमेनैवमुक्तास्तु सर्व एव द्विजर्षभाः॥ १३॥
रोचयन्ति स्म तं यज्ञं रुद्रस्याराधनं प्रति।

''अतः हम सब लोग राजा इलके हितके लिये उस दुष्कर यज्ञका अनुष्ठान करें।' कर्दमके ऐसा कहनेपर उन सभी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने भगवान् रुद्रकी आराधनाके लिये उस यज्ञका अनुष्ठान ही अच्छा समझा॥ १३½॥

संवर्तस्य तु राजर्षिः शिष्यः परपुरंजयः॥ १४॥
मरुत्त इति विख्यातस्तं यज्ञं समुपाहरत्।

'संवर्तके शिष्य तथा शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले सुप्रसिद्ध राजर्षि मरुत्तने उस यज्ञका आयोजन किया॥ १४½॥

ततो यज्ञो महानासीद् बुधाश्रमसमीपतः॥ १५॥
रुद्रश्च परमं तोषमाजगाम महायशाः।

'फिर तो बुधके आश्रमके निकट वह महान् यज्ञ सम्पन्न हुआ तथा उससे महायशस्वी रुद्रदेवको बड़ा संतोष प्राप्त हुआ॥ १५½॥

अथ यज्ञे समाप्ते तु प्रीतः परमया मुदा॥ १६॥
उमापतिर्द्विजान् सर्वानुवाच इलसंनिधौ।

'यज्ञ समाप्त होनेपर परमानन्दसे परिपूर्णचित्त हुए भगवान् उमापतिने इलके पास ही उन सब ब्राह्मणोंसे कहा—॥ १६½॥

प्रीतोऽस्मि हयमेधेन भक्त्या च द्विजसत्तमाः॥ १७॥
अस्य बाह्लिपतेश्चैव किं करोमि प्रियं शुभम्।

''द्विजश्रेष्ठगण! मैं तुम्हारी भक्ति तथा इस अश्वमेध यज्ञके अनुष्ठानसे बहुत प्रसन्न हूँ। बताओ, मैं बाह्लिकनरेश इलका कौन-सा शुभ एवं प्रिय कार्य करूँ?'॥ १७½॥

तथा वदति देवेशे द्विजास्ते सुसमाहिताः॥ १८॥
प्रसादयन्ति देवेशं यथा स्यात् पुरुषस्त्विला।

'देवेश्वर शिवके ऐसा कहनेपर वे सब ब्राह्मण एकाग्रचित्त हो उन देवाधिदेवको इस तरह प्रसन्न करनेकी चेष्टा करने लगे, जिससे नारी इला सदाके लिये पुरुष इल हो जाय १८½

ततः प्रीतो महादेवः पुरुषत्वं ददौ पुनः॥ १९॥
इलायै सुमहातेजा दत्त्वा चान्तरधीयत।

'तब प्रसन्न हुए महातेजस्वी महादेवजीने इलाको सदाके लिये पुरुषत्व प्रदान कर दिया और ऐसा करके वे वहीं अन्तर्धान हो गये॥ १९½॥

निवृत्ते हयमेधे च गते चादर्शनं हरे॥ २०॥
यथागतं द्विजाः सर्वे तेऽगच्छन् दीर्घदर्शिनः।

'अश्वमेध यज्ञ समाप्त होनेपर जब महादेवजी दर्शन देकर अदृश्य हो गये, तब वे सब दीर्घदर्शी ब्राह्मण जैसे आये थे, वैसे लौट गये॥ २०½॥

राजा तु बाह्लिमुत्सृज्य मध्यदेशे ह्यनुत्तमम्॥ २१॥
निवेशयामास पुरं प्रतिष्ठानं यशस्करम्।

'राजा इलने बाह्लिक देशको छोड़कर मध्यदेशमें (गङ्गा-यमुनाके संगमके निकट) एक परम उत्तम एवं यशस्वी नगर बसाया, जिसका नाम था प्रतिष्ठान[१]पुर॥ २१½॥

शशबिन्दुश्च राजर्षिर्बाह्लिं परपुरंजयः॥ २२॥
प्रतिष्ठाने इलो राजा प्रजापतिसुतो बली।

'शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले राजर्षि शशबिन्दुने बाह्लिकदेशका राज्य ग्रहण किया और प्रजापति कर्दमके पुत्र बलवान् राजा इल प्रतिष्ठानपुरके शासक हुए॥ २२½॥

स काले प्राप्तवाँल्लोकमिलो ब्राह्ममनुत्तमम्॥ २३॥
ऐलः पुरूरवा राजा प्रतिष्ठानमवाप्तवान्।

'समय आनेपर राजा इल शरीर छोड़कर परम उत्तम ब्रह्मलोकको प्राप्त हुए और इलाके पुत्र राजा पुरूरवाने प्रतिष्ठानपुरका राज्य प्राप्त किया॥ २३½॥

ईदृशो ह्यश्वमेधस्य प्रभावः पुरुषर्षभौ।
स्त्रीभूतः पौरुषं लेभे यच्चान्यदपि दुर्लभम्॥ २४॥

---

[१] प्रयागसे पूर्व गङ्गाके तटपर बसा हुआ वर्तमान झूँसीनामक स्थान ही प्राचीनकालका प्रतिष्ठानपुर है।

'पुरुषश्रेष्ठ भरत और लक्ष्मण ! अश्वमेध यज्ञका ऐसा ही प्रभाव है। जो स्त्रीरूप हो गये थे, उन राजा इलने इस यज्ञके प्रभावसे पुरुषत्व प्राप्त कर लिया तथा और भी दुर्लभ वस्तुएँ हस्तगत कर लीं' ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें नब्बेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९० ॥

एकनवतितमः सर्गः

श्रीरामके आदेशसे अश्वमेध यज्ञकी तैयारी

एतदाख्याय काकुत्स्थो भ्रातृभ्याममितप्रभः ।
लक्ष्मणं पुनरेवाह धर्मयुक्तमिदं वचः ॥ १ ॥

अपने दोनों भाइयोंको यह कथा सुनाकर अमिततेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे पुनः यह धर्मयुक्त बात कही—॥

वसिष्ठं वामदेवं च जाबालिमथ काश्यपम् ।
द्विजांश्च सर्वप्रवरानश्वमेधपुरस्कृतान् ॥ २ ॥
एतान् सर्वान् समानीय मन्त्रयित्वा च लक्ष्मण ।
हयं लक्षणसम्पन्नं विमोक्ष्यामि समाधिना ॥ ३ ॥

'लक्ष्मण ! मैं अश्वमेध यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणोंमें अग्रगण्य एवं सर्वश्रेष्ठ वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि और काश्यप आदि सभी द्विजोंको बुलाकर और उनसे सलाह लेकर पूरी सावधानीके साथ शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न घोड़ा छोड़ूँगा' ॥ २-३ ॥

तद् वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वा त्वरितविक्रमः ।
द्विजान् सर्वान् समाहूय दर्शयामास राघवम् ॥ ४ ॥

रघुनाथजीके कहे हुए इस वचनको सुनकर शीघ्रगामी लक्ष्मणने समस्त ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें श्रीरामचन्द्रजीसे मिलाया ॥ ४ ॥

ते दृष्ट्वा देवसंकाशं कृतपादाभिवन्दनम् ।
राघवं सुदुराधर्षमाशीर्भिः समपूजयन् ॥ ५ ॥

उन ब्राह्मणोंने देखा, देवतुल्य तेजस्वी और अत्यन्त दुर्जय श्रीराघवेन्द्र हमारे चरणोंमें प्रणाम करके खड़े हैं, तब उन्होंने शुभ आशीर्वादोंद्वारा उनका सत्कार किया ॥ ५ ॥

प्राञ्जलिः स तदा भूत्वा राघवो द्विजसत्तमान् ।
उवाच धर्मसंयुक्तमश्वमेधाश्रितं वचः ॥ ६ ॥

उस समय रघुकुलभूषण श्रीराम हाथ जोड़कर उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे अश्वमेध यज्ञके विषयमें धर्मयुक्त श्रेष्ठ वचन बोले ॥ ६ ॥

तेऽपि रामस्य तच्छ्रुत्वा नमस्कृत्वा वृषध्वजम् ।
अश्वमेधं द्विजाः सर्वे पूजयन्ति स्म सर्वशः ॥ ७ ॥

वे सब ब्राह्मण भी श्रीरामकी वह बात सुनकर भगवान् शंकरको प्रणाम करके सब प्रकारसे अश्वमेध यज्ञकी सराहना करने लगे ॥ ७ ॥

स तेषां द्विजमुख्यानां वाक्यमद्भुतदर्शनम् ।
अश्वमेधाश्रितं श्रुत्वा भृशं प्रीतोऽभवत् तदा ॥ ८ ॥

अश्वमेध यज्ञके विषयमें उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका अद्भुत ज्ञानसे युक्त वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी प्रसन्नता हुई॥

विज्ञाय कर्म तत् तेषां रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
प्रेषयस्व महाबाहो सुग्रीवाय महात्मने ॥ ९ ॥
यथा महद्भिर्हरिभिर्बहुभिश्च वनौकसाम् ।
सार्धमागच्छ भद्रं ते अनुभोक्तुं महोत्सवम् ॥ १० ॥

उस कर्मके लिये उन ब्राह्मणोंकी स्वीकृति जानकर श्रीराम लक्ष्मणसे बोले—'महाबाहो ! तुम महात्मा वानरराज सुग्रीवके पास यह संदेश भेजो कि 'कपिश्रेष्ठ ! तुम बहुत-से विशालकाय वनवासी वानरोंके साथ यहाँ यज्ञ-महोत्सवका आनन्द लेनेके लिये आओ। तुम्हारा कल्याण हो' ॥ ९-१० ॥

विभीषणश्च रक्षोभिः कामगैर्बहुभिर्वृतः ।
अश्वमेधं महायज्ञमायात्वतुलविक्रमः ॥ ११ ॥

'साथ ही अतुल-पराक्रमी विभीषणको भी यह सूचना दो कि 'वे इच्छानुसार चलनेवाले बहुत-से राक्षसोंके साथ हमारे महान् अश्वमेध यज्ञमें पधारें' ॥ ११ ॥

राजानश्च महाभागा ये मे प्रियचिकीर्षवः ।
सानुगाः क्षिप्रमायान्तु यज्ञं भूमिनिरीक्षकाः ॥ १२ ॥

'इनके सिवा मेरा प्रिय करनेकी इच्छावाले जो महाभाग राजा हैं, वे भी यज्ञ-भूमि देखनेके लिये सेवकोंसहित शीघ्र यहाँ आवें ॥ १२ ॥

देशान्तरगता ये च द्विजा धर्मसमाहिताः ।
आमन्त्रयस्व तान् सर्वानश्वमेधाय लक्ष्मण ॥ १३ ॥

'लक्ष्मण ! जो धर्मनिष्ठ ब्राह्मण कार्यवश दूसरे-दूसरे देशोंमें चले गये हैं, उन सबको अपने अश्वमेध यज्ञके लिये आमन्त्रित करो ॥ १३ ॥

ऋषयश्च महाबाहो आहूयन्तां तपोधनाः ।
देशान्तरगताः सर्वे सदाराश्च द्विजातयः ॥ १४ ॥

'महाबाहो ! तपोधन ऋषियोंको तथा अन्य राज्यमें रहनेवाले स्त्रियोंसहित समस्त ब्रह्मर्षियोंको भी बुला लो ॥ १४ ॥

तथैव तालावचरास्तथैव नटनर्तकाः ।
यज्ञवाटश्च सुमहान् गोमत्या नैमिषे वने ॥ १५ ॥
आज्ञाप्यतां महाबाहो तद्धि पुण्यमनुत्तमम् ।

'महाबाहो ! ताल लेकर रंगभूमिमें संचरण करनेवाले सूत्रधार तथा नट और नर्तक भी बुला लिये जायँ। नैमिषारण्यमें गोमतीके तटपर विशाल यज्ञमण्डप बनानेकी आज्ञा दो; क्योंकि वह वन बहुत ही उत्तम और पवित्र स्थान है ॥ १५½ ॥

शान्तयश्च महाबाहो प्रवर्तन्तां समन्ततः ॥ १६ ॥
शतशश्चापि धर्मज्ञाः क्रतुमुख्यमनुत्तमम् ।
अनुभूय महायज्ञं नैमिषे रघुनन्दन ॥ १७ ॥

'महाबाहु रघुनन्दन ! वहाँ यज्ञकी निर्विघ्न-समाप्तिके लिये सर्वत्र शान्ति-विधान प्रारम्भ करा दो । नैमिषारण्यमें सैकड़ों धर्मज्ञ पुरुष उस परम उत्तम और श्रेष्ठ महायज्ञको देखकर कृतार्थ हों ॥ १६-१७ ॥

तुष्टः पुष्टश्च सर्वोऽसौ मानितश्च यथाविधि ।
प्रतियास्यति धर्मज्ञ शीघ्रमामन्त्र्यतां जनः ॥ १८ ॥

'धर्मज्ञ लक्ष्मण ! शीघ्र लोगोंको आमन्त्रित करो और जो लोग आवें, वे सब विधिपूर्वक तुष्ट, पुष्ट एव सम्मानित होकर लौटें ॥ १८ ॥

शतं वाहसहस्राणां तण्डुलानां वपुष्मताम् ।
अयुतं तिलमुद्गस्य प्रयात्वग्रे महाबल ॥ १९ ॥
चणकानां कुलित्थानां माषाणां लवणस्य च ।

'महाबली सुमित्राकुमार ! लाखों बोझ ढोनेवाले पशु खड़े दानेवाले चावल लेकर और दस हजार पशु तिल, मूँग, चना, कुल्थी, उड़द और नमकके बोझ लेकर आगे चलें ॥

अतोऽनुरूपं स्नेहं च गन्धं संक्षिप्तमेव च ॥ २० ॥
सुवर्णकोट्यो बहुला हिरण्यस्य शतोत्तराः ।
अग्रतो भरतः कृत्वा गच्छत्वग्रे समाधिना ॥ २१ ॥

'इसीके अनुरूप घी, तेल, दूध, दही तथा बिना घिसे हुए चन्दन और बिना पिसे हुए सुगन्धित पदार्थ भी भेजे जाने चाहिये । भरत सौ करोड़से भी अधिक सोने-चाँदीके सिक्के साथ लेकर पहले ही जायँ और बड़ी सावधानीके साथ यात्रा करें ॥ २०-२१ ॥

अन्तरापणवीथ्यश्च सर्वे च नटनर्तकाः ।
सूदा नार्यश्च बहवो नित्यं यौवनशालिनः ॥ २२ ॥

'मार्गमें आवश्यक वस्तुओंके क्रय-विक्रयके लिये जगह-जगह बाजारें भी लगनी चाहिये; अतः इसके प्रवर्तक वणिक् एवं व्यवसायीलोग भी यात्रा करें । समस्त नट और नर्तक भी जायँ । बहुत-से रसोइये तथा सदा युवावस्थासे सुशोभित होनेवाली स्त्रियाँ भी यात्रा करें ॥ २२ ॥

भरतेन तु सार्धं ते यान्तु सैन्यानि चाग्रतः ।
नैगमान् बालवृद्धांश्च द्विजांश्च सुसमाहितान् ॥ २३ ॥
कर्मान्तिकान् वर्धकिनः कोशाध्यक्षांश्च नैगमान् ।
मम मातॄस्तथा सर्वाः कुमारान्तःपुराणि च ॥ २४ ॥
काञ्चनीं मम पत्नीं च दीक्षायां ज्ञांश्च कर्मणि ।
अग्रतो भरतः कृत्वा गच्छत्वग्रे महायशाः ॥ २५ ॥

'भरतके साथ आगे-आगे सेनाएँ भी जायँ । महायशस्वी भरत शास्त्रवेत्ता विद्वानों, बालकों, वृद्धों, एकाग्र चित्तवाले ब्राह्मणों, काम करनेवाले नौकरों, बढ़इयों, कोषाध्यक्षों, वैदिकों, मेरी सब माताओं, कुमारोंके अन्तःपुरों (भरत आदिकी स्त्रियों), मेरी पत्नीकी सुवर्णमयी प्रतिमा तथा यज्ञ-कर्मकी दीक्षाके जानकार ब्राह्मणोंको आगे करके पहले ही यात्रा करें' ॥

उपकार्या महार्हांश्च पार्थिवानां महौजसाम् ।
सानुगानां नरश्रेष्ठो व्यादिदेश महाबलः ॥ २६ ॥
अन्नपानानि वस्त्राणि अनुगानां महात्मनाम् ।

तत्पश्चात् महाबली नरश्रेष्ठ श्रीरामने सेवकोंसहित महातेजस्वी नरेशोंके ठहरनेके लिये बहुमूल्य वासस्थान बनाने (खेमे आदि लगाने) के लिये आदेश दिया तथा सेवकोंसहित उन महात्मा नरेशोंके लिये अन्न-पान एवं वस्त्र आदिकी भी व्यवस्था करायी ॥ २६½ ॥

भरतः स तदा यातः शत्रुघ्नसहितस्तदा ॥ २७ ॥
वानराश्च महात्मानः सुग्रीवसहितास्तदा ।
विप्राणां प्रवराः सर्वे चक्रुश्च परिवेषणम् ॥ २८ ॥

तदनन्तर शत्रुघ्नसहित भरतने नैमिषारण्यको प्रस्थान किया । उस समय वहाँ सुग्रीवसहित महात्मा वानर जितने भी श्रेष्ठ ब्राह्मण वहाँ उपस्थित थे, उन सबको रसोई परोसनेका काम करते थे ॥ २७-२८ ॥

विभीषणश्च रक्षोभिः स्त्रीभिश्च बहुभिर्वृतः ।
ऋषीणामुग्रतपसां पूजां चक्रे महात्मनाम् ॥ २९ ॥

स्त्रियों तथा बहुत-से राक्षसोंके साथ विभीषण उग्र तपस्वी महात्मा मुनियोंके स्वागत-सत्कारका काम सँभालते थे ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें इक्यानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमः सर्गः

श्रीरामके अश्वमेध-यज्ञमें दान-मानकी विशेषता

तत् सर्वमखिलेनाशु प्रस्थाप्य भरताग्रजः ।
हयं लक्षणसम्पन्नं कृष्णसारं मुमोच ह ॥ १ ॥

इस प्रकार सब सामग्री पूर्णरूपसे भेजकर भरतके बड़े भाई श्रीरामने उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न तथा कृष्णसार मृगके समान काले रंगवाले एक घोड़ेको छोड़ा ॥ १ ॥

ऋत्विग्भिर्लक्ष्मणं सार्धमश्वे च विनियुज्य च ।
ततोऽभ्यगच्छत् काकुत्स्थः सह सैन्येन नैमिषम् ॥ २ ॥

ऋत्विजोंसहित लक्ष्मणको उस अश्वकी रक्षाके लिये नियुक्त करके श्रीरघुनाथजी सेनाके साथ नैमिषारण्यको गये ॥ २ ॥

यज्ञवाटं महाबाहुर्दृष्ट्वा परममद्भुतम् ।
प्रहर्षमतुलं लेभे श्रीमानिति च सोऽब्रवीत् ॥ ३ ॥

वहाँ बने हुए अत्यन्त अद्भुत यज्ञ-मण्डपको देखकर

महाबाहु श्रीरामको अनुपम प्रसन्नता प्राप्त हुई और वे बोले—'बहुत सुन्दर है' ॥ ३ ॥

नैमिषे वसतस्तस्य सर्व एव नराधिपाः ।
आनिन्युरुपहारांश्च तान् रामः प्रत्यपूजयत् ॥ ४ ॥

नैमिषारण्यमें निवास करते समय श्रीरामचन्द्रजीके पास भूमण्डलके सभी नरेश भाँति-भाँतिके उपहार ले आये और श्रीरामचन्द्रजीने उन सबका स्वागत-सत्कार किया ॥ ४ ॥

अन्नपानादि वस्त्राणि सर्वोपकरणानि च ।
भरतः सहशत्रुघ्नो नियुक्तो राजपूजने ॥ ५ ॥

उन्हें अन्न, पान, वस्त्र तथा अन्य सब आवश्यक सामान दिये गये । शत्रुघ्नसहित भरत उन राजाओंके स्वागत-सत्कारमें नियुक्त किये गये थे ॥ ५ ॥

वानराश्च महात्मानः सुग्रीवसहितास्तदा ।
परिवेषणं च विप्राणां प्रयताः सम्प्रचक्रिरे ॥ ६ ॥

सुग्रीवसहित महामनस्वी वानर परम पवित्र एवं संयतचित्त हो उस समय वहाँ ब्राह्मणोंको भोजन परोसते थे ॥ ६ ॥

विभीषणश्च रक्षोभिर्बहुभिः सुसमाहितः ।
ऋषीणामुग्रतपसां किंकरः समपद्यत ॥ ७ ॥

बहुतेरे राक्षसोंसे घिरे हुए विभीषण अत्यन्त सावधान रहकर उग्र तपस्वी ऋषियोंके सेवाकार्यमें संलग्न थे ॥ ७ ॥

उपकार्या महार्हाश्च पार्थिवानां महात्मनाम् ।
सानुगानां नरश्रेष्ठो व्यादिदेश महाबलः ॥ ८ ॥

महाबली नरश्रेष्ठ श्रीरामने सेवकोंसहित महामनस्वी भूपालोंको ठहरनेके लिये बहुमूल्य वासस्थान (खेमे) दिये ॥

एवं सुविहितो यज्ञो ह्यश्वमेधो ह्यवर्तत ।
लक्ष्मणेन सुगुप्ता सा हयचर्या प्रवर्तत ॥ ९ ॥

इस प्रकार सुन्दर ढंगसे अश्वमेध यज्ञका कार्य प्रारम्भ हुआ और लक्ष्मणके संरक्षणमें रहकर घोड़ेके भूमण्डलमें भ्रमणका कार्य भी भलीभाँति सम्पन्न हो गया ॥ ९ ॥

ईदृशं राजसिंहस्य यज्ञप्रवरमुत्तमम् ।
नान्यः शब्दोऽभवत् तत्र हयमेधे महात्मनः ॥ १० ॥
छन्दतो देहि देहीति यावत् तुष्यन्ति याचकाः ।
तावत् सर्वाणि दत्तानि क्रतुमुख्ये महात्मनः ॥ ११ ॥
विविधानि च गौडानि खाण्डवानि तथैव च ।

राजाओंमें सिंहके समान पराक्रमी महात्मा श्रीरघुनाथजीका वह श्रेष्ठ यज्ञ इस प्रकार उत्तम विधिसे होने लगा । उस अश्वमेध यज्ञमें केवल एक ही बात सब ओर सुनायी पड़ती थी—जबतक याचक संतुष्ट न हों, तबतक उनकी इच्छाके अनुसार सब वस्तुएँ दिये जाओ, इसके सिवा दूसरी बात नहीं सुनायी देती थी । इस प्रकार महात्मा श्रीरामके श्रेष्ठ यज्ञमें नाना प्रकारके गुड़के बने हुए खाद्य पदार्थ और खाण्डव आदि तबतक निरन्तर दिये जाते थे जबतक कि पानेवाले पूर्णतः संतुष्ट होकर बस न कर दें ॥ १०-११½ ॥

न निःसृतं भवत्योष्ठाद् वचनं यावदर्थिनाम् ॥ १२ ॥
तावद् वानररक्षोभिर्दत्तमेवाभ्यदृश्यत ।

जबतक याचकोंके मनकी बात ओठसे बाहर नहीं निकलने पाती थी, तबतक ही राक्षस और वानर उन्हें उनकी अभीष्ट वस्तुएँ दे देते थे । यह बात सबने देखी ॥ १२½ ॥

न कश्चिन्मलिनो वापि दीनो वाप्यथवा कृशः ॥ १३ ॥
तस्मिन् यज्ञवरे राज्ञो हृष्टपुष्टजनावृते ।

राजा श्रीरामके उस श्रेष्ठ यज्ञमें हृष्ट-पुष्ट मनुष्य भरे हुए थे, वहाँ कोई भी मलिन, दीन अथवा दुर्बल नहीं दिखायी देता था ॥ १३½ ॥

ये च तत्र महात्मानो मुनयश्चिरजीविनः ॥ १४ ॥
नास्मरंस्तादृशं यज्ञं दानौघसमलंकृतम् ।

उस यज्ञमें जो चिरजीवी महात्मा मुनि पधारे थे, उन्हें ऐसे किसी भी यज्ञका स्मरण नहीं था, जिसमें दानकी ऐसी धूम रही हो । वह यज्ञ दानराशिसे पूर्णतः अलंकृत दिखायी देता था ॥ १४½ ॥

यः कृत्यवान् सुवर्णेन सुवर्णं लभते स्म सः ॥ १५ ॥
वित्तार्थी लभते वित्तं रत्नार्थी रत्नमेव च ।

जिसे सुवर्णकी आवश्यकता थी, वह सुवर्ण पाता था, धन चाहनेवालेको धन मिलता था और रत्नकी इच्छावालेको रत्न ॥ १५½ ॥

हिरण्यानां सुवर्णानां रत्नानामथ वाससाम् ॥ १६ ॥
अनिशं दीयमानानां राशिः समुपदृश्यते ।

वहाँ निरन्तर दिये जानेवाले चाँदी, सोने, रत्न और वस्त्रोंके ढेर लगे दिखायी देते थे ॥ १६½ ॥

न शक्रस्य न सोमस्य यमस्य वरुणस्य च ॥ १७ ॥
ईदृशो दृष्टपूर्वो न एवमूचुस्तपोधनाः ।

वहाँ आये हुए तपस्वी मुनि कहते थे कि ऐसा यज्ञ तो पहले कभी इन्द्र, चन्द्रमा, यम और वरुणके यहाँ भी नहीं देखा गया ॥ १७½ ॥

सर्वत्र वानरास्तस्थुः सर्वत्रैव च राक्षसाः ॥ १८ ॥
वासोधनान्नकामेभ्यः पूर्णहस्ता ददुर्भृशम् ।

वानर और राक्षस सर्वत्र हाथोंमें देनेकी सामग्री लिये खड़े रहते थे और वस्त्र, धन तथा अन्नकी इच्छा रखनेवाले याचकोंको अधिक-से-अधिक देते थे ॥ १८½ ॥

ईदृशो राजसिंहस्य यज्ञः सर्वगुणान्वितः ।
संवत्सरमथो साग्रं वर्तते न च हीयते ॥ १९ ॥

राजसिंह भगवान् श्रीरामका ऐसा सर्वगुणसम्पन्न यज्ञ एक वर्षसे भी अधिक कालतक चलता रहा । उसमें कभी किसी बातकी कमी नहीं हुई ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९२ ॥

* * *

त्रिनवतितमः सर्गः

श्रीरामके यज्ञमें महर्षि वाल्मीकिका आगमन और उनका रामायण-गानके लिये कुश और लवको आदेश

वर्तमाने तथाभूते यज्ञे च परमाद्भुते ।
सशिष्य आजगामाशु वाल्मीकिर्भगवानृषिः ॥ १ ॥

इस प्रकार वह अत्यन्त अद्भुत यज्ञ जब चालू हुआ, उस समय भगवान् वाल्मीकि मुनि अपने शिष्योंके साथ उसमें शीघ्रतापूर्वक पधारे ॥ १ ॥

स दृष्ट्वा दिव्यसंकाशं यज्ञमद्भुतदर्शनम् ।
एकान्त ऋषिवाटानां चकार उटजाञ्शुभान् ॥ २ ॥

उन्होंने उस दिव्य एवं अद्भुत यज्ञका दर्शन किया और ऋषियोंके लिये जो बाड़े बने थे, उनके पास ही उन्होंने अपने लिये भी सुन्दर पर्णशालाएँ बनवायीं ॥ २ ॥

शकटांश्च बहून् पूर्णान् फलमूलांश्च शोभनान् ।
वाल्मीकिवाटे रुचिरे स्थापयन्नविदूरतः ॥ ३ ॥

वाल्मीकिजीके सुन्दर बाड़ेके समीप अन्न आदिसे भरे-पूरे बहुत-से छकड़े खड़े कर दिये गये थे । साथ ही अच्छे-अच्छे फल और मूल भी रख दिये गये थे ॥ ३ ॥

आसीत् सुपूजितो राज्ञा मुनिभिश्च महात्मभिः ।
वाल्मीकिः सुमहातेजा न्यवसत् परमात्मवान् ॥ ४ ॥

राजा श्रीराम तथा बहुसंख्यक महात्मा मुनियोंद्वारा भलीभाँति पूजित एवं सम्मानित हो महातेजस्वी आत्मज्ञानी वाल्मीकि मुनिने बड़े सुखसे वहाँ निवास किया ॥ ४ ॥

स शिष्यावब्रवीद्धृष्टौ युवां गत्वा समाहितौ ।
कृत्स्नं रामायणं काव्यं गायतां परया मुदा ॥ ५ ॥

उन्होंने अपने हृष्ट-पुष्ट दो शिष्योंसे कहा—'तुम दोनों भाई एकाग्रचित्त हो सब ओर घूम-फिरकर बड़े आनन्दके साथ सम्पूर्ण रामायण-काव्यका गान करो ॥ ५ ॥

ऋषिवाटेषु पुण्येषु ब्राह्मणावसथेषु च ।
रथ्यासु राजमार्गेषु पार्थिवानां गृहेषु च ॥ ६ ॥

'ऋषियों और ब्राह्मणोंके पवित्र स्थानोंपर, गलियोंमें, राजमार्गोंपर तथा राजाओंके वासस्थानोंमें भी इस काव्यका गान करना ॥ ६ ॥

रामस्य भवनद्वारि यत्र कर्म च कुर्वते ।
ऋत्विजामग्रतश्चैव तत्र गेयं विशेषतः ॥ ७ ॥

'श्रीरामचन्द्रजीका जो गृह बना है, उसके दरवाजेपर, जहाँ ब्राह्मणलोग यज्ञकार्य कर रहे हैं, वहाँ तथा ऋत्विजोंके आगे भी इस काव्यका विशेषरूपसे गान करना चाहिये ॥ ७ ॥

इमानि च फलान्यत्र स्वादूनि विविधानि च ।
जातानि पर्वताग्रेषु आस्वाद्यास्वाद्य गायताम् ॥ ८ ॥

'यहाँ पर्वतके शिखरोंपर नाना प्रकारके स्वादिष्ट एवं मीठे फल लगे हैं, (भूख लगनेपर) उनका स्वाद ले-लेकर इस काव्यका गान करते रहना ॥ ८ ॥

न यास्यथः श्रमं वत्सौ भक्षयित्वा फलान्यथ ।
मूलानि च सुमृष्टानि न रागात् परिहास्यथः ॥ ९ ॥

'बच्चो ! यहाँके सुमधुर फल-मूलोंका भक्षण करनेसे न तो तुम्हें कभी थकावट होगी और न तुम्हारे गलेकी मधुरता ही नष्ट होने पायेगी ॥ ९ ॥

यदि शब्दापयेद् रामः श्रवणाय महीपतिः ।
ऋषीणामुपविष्टानां यथायोगं प्रवर्तताम् ॥ १० ॥

'यदि महाराज श्रीराम तुम दोनोंको गान सुननेके लिये बुलावें तो तुम उनसे तथा वहाँ बैठे हुए ऋषि-मुनियोंसे यथायोग्य विनयपूर्ण बर्ताव करना ॥ १० ॥

दिवसे विंशतिः सर्गा गेया मधुरया गिरा ।
प्रमाणैर्बहुभिस्तत्र यथोद्दिष्टं मया पुरा ॥ ११ ॥

'मैंने पहले भिन्न-भिन्न संख्यावाले श्लोकोंसे युक्त रामायण काव्यके सर्गोंका जिस तरह तुम्हें उपदेश दिया है, उसीके अनुसार प्रतिदिन बीस-बीस सर्गोंका मधुर स्वरसे गान करना ॥

लोभश्चापि न कर्तव्यः स्वल्पोऽपि धनवाञ्छया ।
किं धनेनाश्रमस्थानां फलमूलाशिनां सदा ॥ १२ ॥

'धनकी इच्छासे थोड़ा-सा भी लोभ न करना, आश्रममें रहकर फल-मूल भोजन करनेवाले वनवासियोंको धनसे क्या काम ! ॥ १२ ॥

यदि पृच्छेत् स काकुत्स्थो युवां कस्येति दारकौ ।
वाल्मीकेरथ शिष्यौ द्वौ ब्रूतमेवं नराधिपम् ॥ १३ ॥

'यदि श्रीरघुनाथजी पूछें—'बच्चो ! तुम दोनों किसके पुत्र हो ?' तो तुम दोनों महाराजसे इतना ही कह देना कि हम दोनों भाई महर्षि वाल्मीकिके शिष्य हैं ॥ १३ ॥

इमास्तन्त्रीः सुमधुराः स्थानं वापूर्वदर्शनम् ।
मूर्च्छयित्वा सुमधुरं गायतां विगतज्वरौ ॥ १४ ॥

'ये वीणाके सात तार हैं । इनसे बड़ी मधुर आवाज निकलती है । इसमें अपूर्व स्वरोंका प्रदर्शन करनेवाले ये स्थान बने हैं । इनके स्वरोंको झंकृत करके—मिलाकर सुमधुर स्वरमें तुम दोनों भाई काव्यका गान करो और सर्वथा निश्चिन्त रहो ॥ १४ ॥

आदिप्रभृति गेयं स्यान्न चावज्ञाय पार्थिवम् ।
पिता हि सर्वभूतानां राजा भवति धर्मतः ॥ १५ ॥

'आरम्भसे ही इस काव्यका गान करना चाहिये । तुमलोग ऐसा कोई बर्ताव न करना, जिससे राजाका अपमान हो; क्योंकि राजा धर्मकी दृष्टिसे सम्पूर्ण प्राणियोंका पिता होता है ॥

तद् युवां हृष्टमनसौ श्वः प्रभाते समाहितौ ।
गायतं मधुरं गेयं तन्त्रीलयसमन्वितम् ॥ १६ ॥

'अतएव तुम दोनों भाई प्रसन्न और एकाग्रचित्त होकर कल सबेरेसे ही वीणाके लयपर मधुर स्वरसे रामायण-गान आरम्भ कर दो' ॥ १६ ॥

इति संदिश्य बहुशो मुनिः प्राचेतसस्तदा ।
वाल्मीकिः परमोदारस्तूष्णीमासीन्महामुनिः॥ १७ ॥

इस तरह बहुत कुछ आदेश देकर वरुणके पुत्र परम उदार महामुनि वाल्मीकि चुप हो गये ॥ १७ ॥

संदिष्टौ मुनिना तेन तावुभौ मैथिलीसुतौ ।
तथैव करवावेति निर्जग्मतुररिंदमौ ॥ १८ ॥

मुनिके इस प्रकार आदेश देनेपर मिथिलेशकुमारी सीताके वे दोनों शत्रुदमन पुत्र 'बहुत अच्छा, हम ऐसा ही करेंगे' यह कहकर वहाँसे चल दिये ॥ १८ ॥

तामद्भुतां तौ हृदये कुमारौ
निवेश्य वाणीमृषिभाषितां तदा ।
समुत्सुकौ तौ सुखमूषतुर्निशां
यथाश्विनौ भार्गवनीतिसंहिताम्॥ १९॥

शुक्राचार्यकी बनायी हुई नीतिसंहिताको धारण करनेवाले अश्विनीकुमारोंकी भाँति ऋषिकी कही हुई उस अद्भुत वाणीको हृदयमें धारण करके वे दोनों कुमार मन-ही-मन उत्कण्ठित हो वहाँ रातभर सुखसे रहे ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तिरानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमः सर्गः

लव-कुशद्वारा रामायण-काव्यका गान तथा श्रीरामका उसे भरी सभामें सुनना

तौ रजन्यां प्रभातायां स्नातौ हुतहुताशनौ ।
यथोक्तमृषिणा पूर्वं सर्वं तत्रोपगायताम् ॥ १ ॥

रात बीतनेपर जब सबेरा हुआ, तब स्नान-संध्याके पश्चात् समिधा-होमका कार्य पूरा करके वे दोनों भाई ऋषिके बताये अनुसार वहाँ सम्पूर्ण रामायणका गान करने लगे ॥ १ ॥

तां स शुश्राव काकुत्स्थः पूर्वाचार्यविनिर्मिताम् ।
अपूर्वां पाठ्यजातिं च गेयेन समलंकृताम् ॥ २ ॥

श्रीरघुनाथजीने भी वह गान सुना, जो पूर्ववर्ती आचार्योंके बताये हुए नियमोंके अनुकूल था । संगीतकी विशेषताओंसे युक्त स्वरोंके अलापनेकी अपूर्व शैली थी ॥ २ ॥

प्रमाणैर्बहुभिर्बद्धां तन्त्रीलयसमन्विताम् ।
बालाभ्यां राघवः श्रुत्वा कौतूहलपरोऽभवत् ॥ ३ ॥

बहुसंख्यक प्रमाणों—ध्वनिपरिच्छेदके साधनभूत द्रुत, मध्य और विलम्बित—इन तीनोंकी आवृत्तियों अथवा सप्तविध स्वरोंके भेदकी सिद्धिके लिये बने हुए स्थानोंसे बँधा और वीणाकी लयसे मिलता हुआ उन दोनों बालकोंका वह मधुर गान सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा कौतूहल हुआ ॥ ३ ॥

अथ कर्मान्तरे राजा समाहूय महामुनीन् ।
पार्थिवांश्च नरव्याघ्रः पण्डितान् नैगमांस्तथा ॥ ४ ॥
पौराणिकाञ्शब्दविदो ये वृद्धाश्च द्विजातयः ।
स्वराणां लक्षणज्ञांश्च उत्सुकान् द्विजसत्तमान् ॥ ५ ॥
लक्षणज्ञांश्च गान्धर्वान् नैगमांश्च विशेषतः ।
पादाक्षरसमासज्ञांश्छन्दःसु परिनिष्ठितान् ॥ ६ ॥
कलामात्राविशेषज्ञाञ्ज्यौतिषे च परं गतान् ।
क्रियाकल्पविदश्चैव तथा कार्यविशारदान् ॥ ७ ॥
भाषाज्ञानिङ्गितज्ञांश्च नैगमांश्चाप्यशेषतः ।

तदनन्तर पुरुषसिंह राजा श्रीरामने कर्मानुष्ठानसे अवकाश मिलनेपर बड़े-बड़े मुनियों, राजाओं, वेदवेत्ता पण्डितों, पौराणिकों, वैयाकरणों, बड़े-बूढ़े ब्राह्मणों, स्वरों और लक्षणोंके ज्ञाताओं, गीत सुननेके लिये उत्सुक द्विजों, सामुद्रिक लक्षणों तथा संगीत-विद्याके जानकारों, विशेषतः निगमागमके विद्वानों, अथवा पुरवासियों, भिन्न-भिन्न छन्दोंके चरणों, उनके गुरु-लघु अक्षरों तथा उनके सम्बन्धोंका ज्ञान रखनेवाले पण्डितों, वैदिक छन्दोंके परिनिष्ठित विद्वानों, स्वरोंकी ह्रस्व, दीर्घ आदि मात्राओंके विशेषज्ञों, ज्योतिष विद्याके पारंगत पण्डितों, कर्मकाण्डियों, कार्यकुशल पुरुषों, विभिन्न भाषाओं और चेष्टा तथा संकेतोंको समझनेवाले पुरुषों एवं सारे महाजनोंको बुलवाया ॥ ४–७½ ॥

हेतूपचारकुशलान् हैतुकांश्च बहुश्रुतान् ॥ ८ ॥
छन्दोविदः पुराणज्ञान् वैदिकान् द्विजसत्तमान् ।
चित्रज्ञान् वृत्तसूत्रज्ञान् गीतनृत्यविशारदान् ॥ ९ ॥
शास्त्रज्ञान् नीतिनिपुणान् वेदान्तार्थप्रबोधकान् ।
एतान् सर्वान् समानीय गातारौ समवेशयत् ॥ १० ॥

इतना ही नहीं, तर्कके प्रयोगमें निपुण नैयायिकों, युक्तिवादी एवं बहुज्ञ विद्वानों, छन्दों, पुराणों और वेदोंके ज्ञाता द्विजवरों, चित्रकलाके जानकारों, धर्मशास्त्रके अनुकूल सदाचारके ज्ञाताओं, दर्शन एवं कल्पसूत्रके विद्वानों, नृत्य और गीतमें प्रवीण पुरुषों, विभिन्न शास्त्रोंके ज्ञाताओं, नीतिनिपुण पुरुषों तथा वेदान्तके अर्थको प्रकाशित करनेवाले ब्रह्मवेत्ताओंको भी वहाँ बुलवाया । इन सबको एकत्र करके भगवान् श्रीरामने रामायण-गान करनेवाले उन दोनों बालकोंको सभामें बुलाकर बिठाया ॥ ८—१० ॥

तेषां संवदतां तत्र श्रोतृणां हर्षवर्धनम् ।
गेयं प्रचक्रतुस्तत्र तावुभौ मुनिदारकौ ॥ ११ ॥

सभासदोंमें श्रोताओंका हर्ष बढ़ानेवाली बातें होने लगीं। उसी समय दोनों मुनिकुमारोंने गाना आरम्भ किया ॥ ११ ॥

ततः प्रवृत्तं मधुरं गान्धर्वमतिमानुषम् ।
न च तृप्तिं ययुः सर्वे श्रोतारो गेयसम्पदा ॥ १२ ॥

फिर तो मधुर संगीतका तार बँध गया। बड़ा अलौकिक गान था। गेय वस्तुकी विशेषताओंके कारण सभी श्रोता मुग्ध होकर सुनने लगे। किसीको तृप्ति नहीं होती थी ॥ १२ ॥

हृष्टा मुनिगणाः सर्वे पार्थिवाश्च महौजसः ।
पिबन्त इव चक्षुर्भिः पश्यन्ति स्म मुहुर्मुहुः ॥ १३ ॥

मुनियोंके समुदाय और महापराक्रमी भूपाल सभी आनन्दमग्न होकर उन दोनोंकी ओर बारंबार इस तरह देख रहे थे, मानो उनकी रूपमाधुरीको नेत्रोंसे पी रहे हैं ॥ १३ ॥

ऊचुः परस्परं चेदं सर्व एव समाहिताः ।
उभौ रामस्य सदृशौ बिम्बाद् बिम्बमिवोत्थितौ ॥ १४ ॥

वे सब एकाग्रचित्त हो परस्पर इस प्रकार कहने लगे—'इन दोनों कुमारोंकी आकृति श्रीरामचन्द्रजीसे बिल्कुल मिलती-जुलती है। ये बिम्बसे प्रकट हुए प्रतिबिम्बके समान जान पड़ते हैं ॥ १४ ॥

जटिलौ यदि न स्यातां न वल्कलधरौ यदि ।
विशेषं नाधिगच्छामो गायतो राघवस्य च ॥ १५ ॥

'यदि इनके सिरपर जटा न होती और ये वल्कल न पहने होते तो हमें श्रीरामचन्द्रजीमें तथा गान करनेवाले इन दोनों कुमारोंमें कोई अन्तर नहीं दिखायी देता' ॥ १५ ॥

एवं प्रभाषमाणेषु पौरजानपदेषु च ।
प्रवृत्तमादितः पूर्वसर्गं नारददर्शितम् ॥ १६ ॥

नगर और जनपदमें निवास करनेवाले मनुष्य जब इस प्रकार बातें कर रहे थे, उसी समय नारदजीके द्वारा प्रदर्शित प्रथम सर्ग—मूल-रामायणका आरम्भसे ही गान प्रारम्भ हुआ॥

ततः प्रभृति सर्गांश्च यावद् विंशत्यगायताम् ।
ततोऽपराह्णसमये राघवः समभाषत ॥ १७ ॥
श्रुत्वा विंशतिसर्गांस्तान् भ्रातरं भ्रातृवत्सलः ।
अष्टादश सहस्राणि सुवर्णस्य महात्मनोः ॥ १८ ॥
प्रयच्छ शीघ्रं काकुत्स्थ यदन्यदभिकाङ्क्षितम् ।

वहाँसे लेकर बीस सर्गोंतकका उन्होंने गान किया। तत्पश्चात् अपराह्णका समय हो गया। उतनी देरमें बीस सर्गोंका गान सुनकर भ्रातृवत्सल श्रीरघुनाथजीने भाई भरतसे कहा—'काकुत्स्थ ! तुम इन दोनों महात्मा बालकोंको अठारह हजार स्वर्ण-मुद्राएँ पुरस्कारके रूपमें शीघ्र प्रदान करो। इसके सिवा यदि और किसी वस्तुके लिये इनकी इच्छा हो तो उसे भी शीघ्र ही दे दो' ॥ १७-१८½ ॥

ददौ स शीघ्रं काकुत्स्थो बालयोर्वै पृथक् पृथक् ॥ १९ ॥
दीयमानं सुवर्णं तु नागृह्णीतां कुशीलवौ ।

आज्ञा पाकर भरत शीघ्र ही उन दोनों बालकोंको अलग-अलग स्वर्णमुद्राएँ देने लगे; किंतु उस दिये जाते हुए सुवर्णको कुश और लवने नहीं ग्रहण किया ॥ १९½ ॥

ऊचतुश्च महात्मानौ किमनेनेति विस्मितौ ॥ २० ॥
वन्येन फलमूलेन निरतौ वनवासिनौ ।
सुवर्णेन हिरण्येन किं करिष्यावहे वने ॥ २१ ॥

वे दोनों महामनस्वी बन्धु विस्मित होकर बोले—'इस धनकी क्या आवश्यकता है। हम वनवासी हैं। जंगली फल-मूलसे जीवन-निर्वाह करते हैं। सोना-चाँदी वनमें ले जाकर क्या करेंगे ?' ॥ २०-२१ ॥

तथा तयोः प्रब्रुवतोः कौतूहलसमन्विताः ।
श्रोतारश्चैव रामश्च सर्व एव सुविस्मिताः ॥ २२ ॥

उनके ऐसा कहनेपर सब श्रोताओंके मनमें बड़ा कौतूहल हुआ। श्रोता और श्रीराम सभी आश्चर्यचकित हो गये ॥

तस्य चैवागमं रामः काव्यस्य श्रोतुमुत्सुकः ।
पप्रच्छ तौ महातेजास्तावुभौ मुनिदारकौ ॥ २३ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजी यह सुननेके लिये उत्सुक हुए कि इस काव्यकी उपलब्धि कहाँसे हुई है। फिर उन महातेजस्वी रघुनाथजीने दोनों मुनिकुमारोंसे पूछा—॥ २३ ॥

किंप्रमाणमिदं काव्यं का प्रतिष्ठा महात्मनः ।
कर्ता काव्यस्य महतः क्व चासौ मुनिपुङ्गवः ॥ २४ ॥

'इस महाकाव्यकी श्लोक-संख्या कितनी है ? इसके रचयिता महात्मा कविका आवासस्थान कौन-सा है ? इस महान् काव्यके कर्ता कौन मुनीश्वर हैं और वे कहाँ हैं ?' ॥ २४ ॥

पृच्छन्तं राघवं वाक्यमूचतुर्मुनिदारकौ ।
वाल्मीकिर्भगवान् कर्ता सम्प्राप्तो यज्ञसंविधम् ।
येनेदं चरितं तुभ्यमशेषं सम्प्रदर्शितम् ॥ २५ ॥

इस प्रकार पूछते हुए श्रीरघुनाथजीसे वे दोनों मुनिकुमार बोले—'महाराज ! जिस काव्यके द्वारा आपके इस सम्पूर्ण चरित्रका प्रदर्शन कराया गया है, उसके रचयिता भगवान् वाल्मीकि हैं और वे इस यज्ञस्थलमें पधारे हुए हैं ॥ २५ ॥

संनिबद्धं हि श्लोकानां चतुर्विंशत्सहस्रकम् । ✓
उपाख्यानशतं चैव भार्गवेण तपस्विना ॥ २६ ॥

'उन तपस्वी कविके बनाये हुए इस महाकाव्यमें चौबीस हजार श्लोक और एक सौ उपाख्यान हैं ॥ २६ ॥

आदिप्रभृति वै राजन् पञ्चसर्गशतानि च । ✓
काण्डानि षट्कृतानीह सोत्तराणि महात्मना ॥ २७ ॥

'राजन् ! उन महात्माने आदिसे लेकर अन्ततक पाँच सौ सर्ग तथा छः काण्डोंका निर्माण किया है। इनके सिवा उन्होंने उत्तरकाण्डकी भी रचना की है ॥ २७ ॥

कृतानि गुरुणास्माकमृषिणा चरितं तव ।
प्रतिष्ठा जीवितं यावत् तावत् सर्वस्य वर्तते ॥ २८ ॥

'हमारे गुरु महर्षि वाल्मीकिने ही उन सबका निर्माण किया है। उन्होंने आपके चरित्रको महाकाव्यका रूप दिया

है। इसमें आपके जीवनतककी सारी बातें आ गयी हैं ॥ २८॥

यदि बुद्धिः कृता राजञ्छ्रवणाय महारथ।
कर्मान्तरे क्षणीभूतस्तच्छृणुष्व सहानुजः॥ २९॥

'महारथी नरेश! यदि आपने इसे सुननेका विचार किया हो तो यज्ञ-कर्मसे अवकाश मिलनेपर इसके लिये निश्चित समय निकालिये और अपने भाइयोंके साथ बैठकर इसे नियमित रूपसे सुनिये' ॥ २९ ॥

बाढमित्यब्रवीद् रामस्तौ चानुज्ञाप्य राघवम्।
प्रहृष्टौ जग्मतुः स्थानं यत्रास्ते मुनिपुङ्गवः॥ ३०॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'बहुत अच्छा। हम इस काव्यको सुनेंगे।' तत्पश्चात् श्रीरघुनाथजीकी आज्ञा ले दोनों भाई कुश और लव प्रसन्नतापूर्वक उस स्थानपर गये, जहाँ मुनिवर वाल्मीकिजी ठहरे हुए थे॥ ३०॥

रामोऽपि मुनिभिः सार्धं पार्थिवैश्च महात्मभिः।
श्रुत्वा तद् गीतिमाधुर्यं कर्मशालामुपागमत्॥ ३१॥

श्रीरामचन्द्रजी भी महात्मा मुनियों और राजाओंके साथ उस मधुर संगीतको सुनकर कर्मशाला (यज्ञमण्डप) में चले गये॥ ३१॥

शुश्राव तत्ताललयोपपन्नं
सर्गान्वितं सुस्वरशब्दयुक्तम्।
तन्त्रीलयव्यञ्जनयोगयुक्तं
कुशीलवाभ्यां परिगीयमानम्॥ ३२॥

इस प्रकार प्रथम दिन कतिपय सर्गोंसे युक्त सुन्दर स्वर एवं मधुर शब्दोंसे पूर्ण, ताल और लयसे सम्पन्न तथा वीणाके लयकी व्यञ्जनासे युक्त वह काव्यगान, जिसे कुश और लवने गाया था; श्रीरामने सुना॥ ३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुर्नवतितमः सर्गः॥ ९४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौरानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ९४॥

पञ्चनवतितमः सर्गः

श्रीरामका सीतासे उनकी शुद्धता प्रमाणित करनेके लिये शपथ करानेका विचार

रामो बहून्यहान्येव तद् गीतं परमं शुभम्।
शुश्राव मुनिभिः सार्धं पार्थिवैः सह वानरैः॥ १॥

इस प्रकार श्रीरघुनाथजी ऋषियों, राजाओं और वानरोंके साथ कई दिनोंतक वह उत्तम रामायण-गान सुनते रहे॥ १॥

तस्मिन् गीते तु विज्ञाय सीतापुत्रौ कुशीलवौ।
तस्याः परिषदो मध्ये रामो वचनमब्रवीत्॥ २॥
दूतान्शुद्धसमाचारानाहूयात्ममनीषया।
मद् वचो ब्रूत गच्छध्वमितो भगवतोऽन्तिके॥ ३॥

उस कथासे ही उन्हें यह मालूम हुआ कि 'कुश और लव दोनों कुमार सीताके ही सुपुत्र हैं।' यह जानकर सभाके बीचमें बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीने शुद्ध आचार-विचारवाले दूतोंको बुलाया और अपनी बुद्धिसे विचारकर कहा—'तुमलोग यहाँसे भगवान् वाल्मीकिमुनिके पास जाओ और उनसे मेरा यह संदेश कहो॥ २-३॥

यदि शुद्धसमाचारा यदि वा वीतकल्मषा।
करोत्विहात्मनः शुद्धिमनुमान्य महामुनिम्॥ ४॥

'यदि सीताका चरित्र शुद्ध है और यदि उनमें किसी तरहका पाप नहीं है तो वे आप महामुनिकी अनुमति ले यहाँ आकर जनसमुदायमें अपनी शुद्धता प्रमाणित करें'॥ ४॥

छन्दं मुनेश्च विज्ञाय सीतायाश्च मनोगतम्।
प्रत्ययं दातुकामायास्ततः शंसत मे लघु॥ ५॥

'तुम इस विषयमें महर्षि वाल्मीकि तथा सीताके भी हार्दिक अभिप्रायको जानकर शीघ्र मुझे सूचित करो कि क्या वे यहाँ आकर अपनी शुद्धिका विश्वास दिलाना चाहती हैं॥

श्वः प्रभाते तु शपथं मैथिली जनकात्मजा।
करोतु परिषन्मध्ये शोधनार्थं ममैव च॥ ६॥

'कल सबेरे मिथिलेशकुमारी जानकी भरी सभामें आवें और मेरा कलंक दूर करनेके लिये शपथ करें'॥ ६॥

श्रुत्वा तु राघवस्यैतद् वचः परममद्भुतम्।
दूताः सम्प्रययुर्वाढं यत्र वै मुनिपुङ्गवः॥ ७॥

श्रीरघुनाथजीका यह अत्यन्त अद्भुत वचन सुनकर दूत उस बाड़ेमें गये, जहाँ मुनिवर वाल्मीकि विराजमान थे॥ ७॥

ते प्रणम्य महात्मानं ज्वलन्तममितप्रभम्।
ऊचुस्ते रामवाक्यानि मृदूनि मधुराणि च॥ ८॥

महात्मा वाल्मीकि अमित तेजस्वी थे और अपने तेजसे अग्निके समान प्रज्वलित हो रहे थे। उन दूतोंने उन्हें प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रजीके वचन मधुर एवं कोमल शब्दोंमें कह सुनाये॥ ८॥

तेषां तद् भाषितं श्रुत्वा रामस्य च मनोगतम्।
विज्ञाय सुमहातेजा मुनिर्वाक्यमथाब्रवीत्॥ ९॥

उन दूतोंकी वह बात सुनकर और श्रीरामके हार्दिक अभिप्रायको समझकर वे महातेजस्वी मुनि इस प्रकार बोले—॥

एवं भवतु भद्रं वो यथा वदति राघवः।
तथा करिष्यते सीता दैवतं हि पतिः स्त्रियाः॥ १०॥

'ऐसा ही होगा, तुमलोगोंका भला हो। श्रीरघुनाथजी जो आज्ञा देते हैं, सीता वही करेगी; क्योंकि पति स्त्रीके लिये देवता है'॥ १०॥

तथोक्ता मुनिना सर्वे राजदूता महौजसम्।

प्रत्येत्य राघवं सर्वे मुनिवाक्यं बभाषिरे ॥ ११ ॥

मुनिके ऐसा कहनेपर वे सब राजदूत महातेजस्वी श्रीरघुनाथजीके पास लौट आये। उन्होंने मुनिकी कही हुई सारी बातें ज्यों-की-त्यों कह सुनायीं ॥ ११ ॥

ततः प्रहृष्टः काकुत्स्थः श्रुत्वा वाक्यं महात्मनः ।
ऋषींस्तत्र समेतांश्च राज्ञश्चैवाभ्यभाषत ॥ १२ ॥

महात्मा वाल्मीकिकी बातें सुनकर श्रीरघुनाथजीको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने वहाँ आये हुए ऋषियों तथा राजाओंसे कहा—॥ १२ ॥

भगवन्तः सशिष्या वै सानुगाश्च नराधिपाः ।
पश्यन्तु सीताशपथं यश्चैवान्योऽपि काङ्क्षते ॥ १३ ॥

'आप सब पूज्यपाद मुनि शिष्योंसहित सभामें पधारें। सेवकोंसहित राजालोग भी उपस्थित हों तथा दूसरा भी जो कोई सीताकी शपथ सुनना चाहता हो, वह आ जाय। इस प्रकार सब लोग एकत्र होकर सीताका शपथ-ग्रहण देखें' १३

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः ।
सर्वेषामृषिमुख्यानां साधुवादो महानभूत् ॥ १४ ॥

महात्मा राघवेन्द्रका यह वचन सुनकर समस्त महर्षियोंके मुखसे महान् साधुवादकी ध्वनि गूँज उठी ॥ १४ ॥

राजानश्च महात्मानं प्रशंसन्ति स्म राघवम् ।
उपपन्नं नरश्रेष्ठ त्वय्येव भुवि नान्यतः ॥ १५ ॥

राजालोग भी महात्मा रघुनाथजीकी प्रशंसा करते हुए बोले—'नरश्रेष्ठ ! इस पृथ्वीपर सभी उत्तम बातें केवल आपमें ही सम्भव हैं, दूसरे किसीमें नहीं' ॥ १६ ॥

एवं विनिश्चयं कृत्वा श्वोभूत इति राघवः ।
विसर्जयामास तदा सर्वांस्ताञ्छत्रुसूदनः ॥ १६ ॥

इस प्रकार दूसरे दिन सीतासे शपथ लेनेका निश्चय करके शत्रुसूदन श्रीरामने उस समय सबको बिदा कर दिया ॥ १६ ॥

इति सम्प्रविचार्य राजसिंहः
श्वोभूते शपथस्य निश्चयम् ।
विससर्ज मुनीन् नृपांश्च सर्वान्
स महात्मा महतो महानुभावः ॥ १७ ॥

इस प्रकार दूसरे दिन सबेरे सीतासे शपथ लेनेका निश्चय करके महानुभाव महात्मा राजसिंह श्रीरामने उन सब मुनियों और नरेशोंको अपने-अपने स्थानपर जानेकी अनुमति दे दी ॥ १७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पंचानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमः सर्गः

महर्षि वाल्मीकिद्वारा सीताकी शुद्धताका समर्थन

तस्यां रजन्यां व्युष्टायां यज्ञवाटं गतो नृपः ।
ऋषीन् सर्वान् महातेजाः शब्दापयति राघवः ॥ १ ॥

रात बीती, सबेरा हुआ और महातेजस्वी राजा श्रीरामचन्द्रजी यज्ञशालामें पधारे। उस समय उन्होंने समस्त ऋषियोंको बुलवाया ॥ १ ॥

वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ काश्यपः ।
विश्वामित्रो दीर्घतमा दुर्वासाश्च महातपाः ॥ २ ॥
पुलस्त्योऽपि तथा शक्तिर्भार्गवश्चैव वामनः ।
मार्कण्डेयश्च दीर्घायुर्मौद्गल्यश्च महायशाः ॥ ३ ॥
गर्गश्च च्यवनश्चैव शतानन्दश्च धर्मवित् ।
भरद्वाजश्च तेजस्वी अग्निपुत्रश्च सुप्रभः ॥ ४ ॥
नारदः पर्वतश्चैव गौतमश्च महायशाः ।
कात्यायनः सुयज्ञश्च ह्यगस्त्यस्तपसां निधिः ॥ ५ ॥
एते चान्ये च बहवो मुनयः संशितव्रताः ।
कौतूहलसमाविष्टाः सर्व एव समागताः ॥ ६ ॥

वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, विश्वामित्र, दीर्घतमा, महातपस्वी दुर्वासा, पुलस्त्य, शक्ति, भार्गव, वामन, दीर्घजीवी मार्कण्डेय, महायशस्वी मौद्गल्य, गर्ग, च्यवन, धर्मज्ञ शतानन्द, तेजस्वी भरद्वाज, अग्निपुत्र सुप्रभ, नारद, पर्वत, महायशस्वी गौतम, कात्यायन, सुयज्ञ और तपोनिधि अगस्त्य—ये तथा दूसरे कठोर व्रतका पालन करनेवाले सभी बहुसंख्यक महर्षि कौतूहलवश वहाँ एकत्र हुए ॥ २—६ ॥

राक्षसाश्च महावीर्या वानराश्च महाबलाः ।
सर्व एव समाजग्मुर्महात्मानः कुतूहलात् ॥ ७ ॥

महापराक्रमी राक्षस और महाबली वानर—ये सभी महामना कौतूहलवश वहाँ आये ॥ ७ ॥

क्षत्रिया ये च शूद्राश्च वैश्याश्चैव सहस्रशः ।
नानादेशगताश्चैव ब्राह्मणाः संशितव्रताः ॥ ८ ॥

नाना देशोंसे पधारे हुए तीक्ष्ण व्रतधारी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सहस्रोंकी संख्यामें वहाँ उपस्थित हुए ॥ ८ ॥

ज्ञाननिष्ठाः कर्मनिष्ठा योगनिष्ठास्तथापरे ।
सीताशपथवीक्षार्थं सर्व एव समागताः ॥ ९ ॥

सीताजीका शपथ-ग्रहण देखनेके लिये ज्ञाननिष्ठ, कर्मनिष्ठ और योगनिष्ठ सभी तरहके लोग पधारे थे ॥ ९ ॥

तदा समागतं सर्वमश्मभूतमिवाचलम् ।
श्रुत्वा मुनिवरस्तूर्णं ससीतः समुपागमत् ॥ १० ॥

राजसभामें एकत्र हुए सब लोग पत्थरकी भाँति निश्चल

होकर बैठे हैं—यह सुनकर मुनिवर वाल्मीकि सीताजीको साथ लेकर तुरंत वहाँ आये ॥ १० ॥

तमृषिं पृष्ठतः सीता अन्वगच्छदवाङ्मुखी।
कृताञ्जलिर्बाष्पकला कृत्वा रामं मनोगतम् ॥ ११ ॥

महर्षिके पीछे सीता सिर झुकाये चली आ रही थीं। उनके दोनों हाथ जुड़े थे और नेत्रोंसे आँसू झर रहे थे। वे अपने हृदयमन्दिरमें बैठे हुए श्रीरामका चिन्तन कर रही थीं ॥ ११ ॥

तां दृष्ट्वा श्रुतिमायान्तीं ब्रह्माणमनुगामिनीम्।
वाल्मीकेः पृष्ठतः सीतां साधुवादो महानभूत् ॥ १२ ॥

वाल्मीकिके पीछे-पीछे आती हुई सीता ब्रह्माजीका अनुसरण करनेवाली श्रुतिके समान जान पड़ती थीं। उन्हें देखकर वहाँ धन्य-धन्यकी भारी आवाज गूँज उठी ॥ १२ ॥

ततो हलहलाशब्दः सर्वेषामेवमाबभौ।
दुःखजन्मविशालेन शोकेनाकुलितात्मनाम् ॥ १३ ॥

उस समय समस्त दर्शकोंका हृदय दुःख देनेवाले महान् शोकसे व्याकुल था। उन सबका कोलाहल सब ओर व्याप्त हो गया ॥ १३ ॥

साधु रामेति केचित् तु साधु सीतेति चापरे।
उभावेव च तत्रान्ये प्रेक्षकाः सम्प्रचुक्रुशुः ॥ १४ ॥

कोई कहते थे—'श्रीराम! तुम धन्य हो।' दूसरे कहते थे—'देवि सीते! तुम धन्य हो' तथा वहाँ कुछ अन्य दर्शक भी ऐसे थे, जो सीता और राम दोनोंको उच्चस्वरसे साधुवाद दे रहे थे ॥ १४ ॥

ततो मध्ये जनौघस्य प्रविश्य मुनिपुङ्गवः।
सीतासहायो वाल्मीकिरिति होवाच राघवम् ॥ १५ ॥

तब उस जनसमुदायके बीचमें सीतासहित प्रवेश करके मुनिवर वाल्मीकि श्रीरघुनाथजीसे इस प्रकार बोले—॥ १५ ॥

इयं दाशरथे सीता सुव्रता धर्मचारिणी।
अपवादात् परित्यक्ता ममाश्रमसमीपतः ॥ १६ ॥

'दशरथनन्दन! यह सीता उत्तम व्रतका पालन करनेवाली और धर्मपरायणा है। आपने लोकापवादसे डरकर इसे मेरे आश्रमके समीप त्याग दिया था ॥ १६ ॥

लोकापवादभीतस्य तव राम महाव्रत।
प्रत्ययं दास्यते सीता तामनुज्ञातुमर्हसि ॥ १७ ॥

'महान् व्रतधारी श्रीराम! लोकापवादसे डरे हुए आपको सीता अपनी शुद्धताका विश्वास दिलायेगी। इसके लिये आप इसे आज्ञा दें ॥ १७ ॥

इमौ तु जानकीपुत्रावुभौ च यमजातकौ।
सुतौ तवैव दुर्धर्षौ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ १८ ॥

'ये दोनों कुमार कुश और लव जानकीके गर्भसे जुड़वे पैदा हुए हैं। ये आपके ही पुत्र हैं और आपके ही समान दुर्धर्ष वीर हैं, यह मैं आपको सच्ची बात बता रहा हूँ ॥ १८ ॥

प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन।
न स्मराम्यनृतं वाक्यमिमौ तु तव पुत्रकौ ॥ १९ ॥

'रघुकुलनन्दन! मैं प्रचेता (वरुण) का दसवाँ पुत्र हूँ। मेरे मुँहसे कभी झूठ बात निकली हो, इसकी याद मुझे नहीं है। मैं सत्य कहता हूँ ये दोनों आपके ही पुत्र हैं ॥ १९ ॥

बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता।
नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली ॥ २० ॥

'मैंने कई हजार वर्षोंतक भारी तपस्या की है। यदि मिथिलेशकुमारी सीतामें कोई दोष हो तो मुझे उस तपस्याका फल न मिले ॥ २० ॥

मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्वं न किल्बिषम्।
तस्याहं फलमश्नामि अपापा मैथिली यदि ॥ २१ ॥

'मैंने मन, वाणी और क्रियाद्वारा भी पहले कभी कोई पाप नहीं किया है। यदि मिथिलेशकुमारी सीता निष्पाप हों, तभी मुझे अपने उस पापशून्य पुण्यकर्मका फल प्राप्त हो ॥ २१ ॥

अहं पञ्चसु भूतेषु मनःषष्ठेषु राघव।
विचिन्त्य सीता शुद्धेति जग्राह वननिर्झरे ॥ २२ ॥

'रघुनन्दन! मैंने अपनी पाँचों इन्द्रियों और मन-बुद्धिके द्वारा सीताकी शुद्धताका भलीभाँति निश्चय करके ही इसे अपने संरक्षणमें लिया था। यह मुझे जंगलमें एक झरनेके पास मिली थी ॥ २२ ॥

इयं शुद्धसमाचारा अपापा पतिदेवता।
लोकापवादभीतस्य प्रत्ययं तव दास्यति ॥ २३ ॥

'इसका आचरण सर्वथा शुद्ध है। पाप इसे छू भी नहीं सका है तथा यह पतिको ही देवता मानती है। अतः लोकापवादसे डरे हुए आपको अपनी शुद्धताका विश्वास दिलायेगी॥

तस्मादियं नरवरात्मज शुद्धभावा
दिव्येन दृष्टिविषयेण मया प्रविष्टा।
लोकापवादकलुषीकृतचेतसा या
त्यक्ता त्वया प्रियतमा विदितापि शुद्धा॥ २४ ॥

'राजकुमार! मैंने दिव्य दृष्टिसे यह जान लिया था कि सीताका भाव और विचार परम पवित्र है; इसलिये यह मेरे आश्रममें प्रवेश पा सकी है। आपको भी यह प्राणोंसे अधिक प्यारी है और आप यह भी जानते हैं कि सीता सर्वथा शुद्ध है तथापि लोकापवादसे कलुषितचित्त होकर आपने इसका त्याग किया है' ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९६ ॥

* * *

सप्तनवतितमः सर्गः

सीताका शपथ-ग्रहण और रसातलमें प्रवेश

वाल्मीकिनैवमुक्तस्तु राघवः प्रत्यभाषत ।
प्राञ्जलिर्जगतो मध्ये दृष्ट्वा तां वरवर्णिनीम् ॥ १ ॥

महर्षि वाल्मीकिके ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजी सुन्दरी सीतादेवीकी ओर एक बार दृष्टि डालकर उस जनसमुदायके बीच हाथ जोड़कर बोले—॥ १ ॥

एवमेतन्महाभाग यथा वदसि धर्मवित् ।
प्रत्ययस्तु मम ब्रह्मंस्तव वाक्यैरकल्मषैः ॥ २ ॥

'महाभाग ! आप धर्मके ज्ञाता हैं । सीताके सम्बन्धमें आप जैसा कह रहे हैं, वह सब ठीक है । ब्रह्मन् ! आपके इन निर्दोष वचनोंसे मुझे जनकनन्दिनीकी शुद्धतापर पूरा विश्वास हो गया है ॥ २ ॥

प्रत्ययश्च पुरा वृत्तो वैदेह्याः सुरसंनिधौ ।
शपथश्च कृतस्तत्र तेन वेश्म प्रवेशिता ॥ ३ ॥

'एक बार पहले भी देवताओंके समीप विदेहकुमारीकी शुद्धताका विश्वास मुझे प्राप्त हो चुका है । उस समय सीताने अपनी शुद्धिके लिये शपथ की थी, जिसके कारण मैंने इन्हें अपने भवनमें स्थान दिया ॥ ३ ॥

लोकापवादो बलवान् येन त्यक्ता हि मैथिली ।
सेयं लोकभयाद् ब्रह्मन्नपापेत्यभिजानता ।
परित्यक्ता मया सीता तद् भवान् क्षन्तुमर्हति ॥ ४ ॥

'किंतु आगे चलकर फिर बड़े जोरका लोकापवाद उठा, जिससे विवश होकर मुझे मिथिलेशकुमारीका त्याग करना पड़ा । ब्रह्मन् ! यह जानते हुए भी कि सीता सर्वथा निष्पाप हैं, मैंने केवल समाजके भयसे इन्हें छोड़ दिया था; अतः आप मेरे इस अपराधको क्षमा करें ॥ ४ ॥

जानामि चेमौ पुत्रौ मे यमजातौ कुशीलवौ ।
शुद्धायां जगतो मध्ये मैथिल्यां प्रीतिरस्तु मे ॥ ५ ॥

'मैं यह भी जानता हूँ कि ये जुड़वे उत्पन्न हुए कुमार कुश और लव मेरे ही पुत्र हैं, तथापि जनसमुदायमें शुद्ध प्रमाणित होनेपर ही मिथिलेशकुमारीमें मेरा प्रेम हो सकता है'॥

अभिप्रायं तु विज्ञाय रामस्य सुरसत्तमाः ।
सीतायाः शपथे तस्मिन् महेन्द्राद्या महौजसः ॥ ६ ॥
पितामहं पुरस्कृत्य सर्व एव समागताः ।

श्रीरामचन्द्रजीके अभिप्रायको जानकर सीताके शपथके समय महेन्द्र आदि सभी मुख्य-मुख्य महातेजस्वी देवता पितामह ब्रह्माजीको आगे करके वहाँ आ गये ॥ ६½ ॥

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ॥ ७ ॥
साध्याश्च देवाः सर्वे ते सर्वे च परमर्षयः ।
नागाः सुपर्णाः सिद्धाश्च ते सर्वे हृष्टमानसाः ॥ ८ ॥
सीताशपथसम्भ्रान्ताः सर्व एव समागताः ।

आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, समस्त साध्यदेव, सभी महर्षि, नाग, गरुड़ और सम्पूर्ण सिद्धगण प्रसन्नचित्त हो सीताजीके शपथ-ग्रहणको देखनेके लिये घबराये हुए-से वहाँ आ पहुँचे ॥ ७-८½ ॥

दृष्ट्वा देवानृषींश्चैव राघवः पुनरब्रवीत ॥ ९ ॥
प्रत्ययो मे सुरश्रेष्ठ ऋषिवाक्यैरकल्मषैः ।
शुद्धायां जगतो मध्ये वैदेह्यां प्रीतिरस्तु मे ॥ १० ॥

देवताओं तथा ऋषियोंको उपस्थित देख श्रीरघुनाथजी फिर बोले—'सुरश्रेष्ठगण ! यद्यपि मुझे महर्षि वाल्मीकिके निर्दोष वचनोंसे ही पूरा विश्वास हो गया है, तथापि जनसमाजके बीच विदेहकुमारीकी विशुद्धता प्रमाणित हो जानेपर मुझे अधिक प्रसन्नता होगी' ॥ ९-१० ॥

ततो वायुः शुभः पुण्यो दिव्यगन्धो मनोरमः ।
तं जनौघं सुरश्रेष्ठो ह्लादयामास सर्वतः ॥ ११ ॥

तदनन्तर दिव्य सुगन्धसे परिपूर्ण, मनको आनन्द देनेवाले परम पवित्र एवं शुभकारक सुरश्रेष्ठ वायुदेव मन्दगतिसे प्रवाहित हो सब ओरसे वहाँके जनसमुदायको आह्लाद प्रदान करने लगे ॥ ११ ॥

तदद्भुतमिवाचिन्त्यं निरैक्षन्त समाहिताः ।
मानवाः सर्वराष्ट्रेभ्यः पूर्वं कृतयुगे यथा ॥ १२ ॥

समस्त राष्ट्रोंसे आये हुए मनुष्योंने एकाग्रचित्त हो प्राचीन कालके सत्ययुगकी भाँति यह अद्भुत और अचिन्त्य-सी घटना अपनी आँखों देखी ॥ १२ ॥

सर्वान् समागतान् दृष्ट्वा सीता काषायवासिनी ।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यमधोदृष्टिरवाङ्मुखी ॥ १३ ॥

उस समय सीताजी तपस्विनियोंके अनुरूप गेरुआ वस्त्र धारण किये हुए थीं । सबको उपस्थित जानकर वे हाथ जोड़े, दृष्टि और मुखको नीचे किये बोलीं—॥ १३ ॥

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ १४ ॥

'मैं श्रीरघुनाथजीके सिवा दूसरे किसी पुरुषका (स्पर्श तो दूर रहा) मनसे चिन्तन भी नहीं करती; यदि यह सत्य है तो भगवती पृथ्वीदेवी मुझे अपनी गोदमें स्थान दें ॥ १४ ॥

मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ १५ ॥

'यदि मैं मन, वाणी और क्रियाके द्वारा केवल श्रीरामकी ही आराधना करती हूँ तो भगवती पृथ्वीदेवी मुझे अपनी गोदमें स्थान दें ॥ १५ ॥

यथैतत् सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात् परं न च ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ १६ ॥

'भगवान् श्रीरामको छोड़कर मैं दूसरे किसी पुरुषको नहीं जानती, मेरी कही हुई यह बात यदि सत्य हो तो भगवती पृथ्वीदेवी मुझे अपनी गोदमें स्थान दें' ॥ १६ ॥

तथा शपन्त्यां वैदेह्यां प्रादुरासीत् तदद्भुतम् ।
भूतलादुत्थितं दिव्यं सिंहासनमनुत्तमम् ॥ १७ ॥

विदेहकुमारी सीताके इस प्रकार शपथ करते ही भूतलसे एक अद्भुत सिंहासन प्रकट हुआ, जो बड़ा ही सुन्दर और दिव्य था ॥ १७ ॥

ध्रियमाणं शिरोभिस्तु नागैरमितविक्रमैः ।
दिव्यं दिव्येन वपुषा दिव्यरत्नविभूषितैः ॥ १८ ॥

दिव्य रत्नोंसे विभूषित महापराक्रमी नागोंने दिव्य रूप धारण करके उस दिव्य सिंहासनको अपने सिरपर धारण कर रक्खा था ॥ १८ ॥

तस्मिंस्तु धरणी देवी बाहुभ्यां गृह्य मैथिलीम् ।
स्वागतेनाभिनन्द्यैनामासने चोपवेशयत् ॥ १९ ॥

सिंहासनके साथ ही पृथ्वीकी अधिष्ठात्री देवी भी दिव्य रूपसे प्रकट हुईं। उन्होंने मिथिलेशकुमारी सीताको अपनी दोनों भुजाओंसे गोदमें उठा लिया और स्वागतपूर्वक उनका अभिनन्दन करके उन्हें उस सिंहासनपर बिठा दिया ॥ १९ ॥

तामासनगतां दृष्ट्वा प्रविशन्तीं रसातलम् ।
पुष्पवृष्टिरविच्छिन्ना दिव्या सीतामवाकिरत् ॥ २० ॥

सिंहासनपर बैठकर जब सीतादेवी रसातलमें प्रवेश करने लगीं, उस समय देवताओंने उनकी ओर देखा। फिर तो आकाशसे उनके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी लगातार वर्षा होने लगी॥

साधुकारश्च सुमहान् देवानां सहसोत्थितः ।
साधुसाध्विति वै सीते यस्यास्ते शीलमीदृशम् ॥ २१ ॥

देवताओंके मुँहसे सहसा 'धन्य-धन्य' का महान् शब्द प्रकट हुआ। वे कहने लगे—'सीते ! तुम धन्य हो, धन्य हो। तुम्हारा शील-स्वभाव इतना सुन्दर और ऐसा पवित्र है' ॥

एवं बहुविधा वाचो ह्यन्तरिक्षगताः सुराः ।
व्याजह्रुर्हृष्टमनसो दृष्ट्वा सीताप्रवेशनम् ॥ २२ ॥

सीताका रसातलमें प्रवेश देखकर आकाशमें खड़े हुए देवता प्रसन्नचित्त हो इस तरहकी बहुत-सी बातें कहने लगे ॥

यज्ञवाटगताश्चापि मुनयः सर्व एव ते ।
राजानश्च नरव्याघ्रा विस्मयान्नोपरेमिरे ॥ २३ ॥

यज्ञमण्डपमें पधारे हुए सभी मुनि और नरश्रेष्ठ नरेश भी आश्चर्यसे भर गये ॥ २३ ॥

अन्तरिक्षे च भूमौ च सर्वे स्थावरजङ्गमाः ।
दानवाश्च महाकायाः पाताले पन्नगाधिपाः ॥ २४ ॥

अन्तरिक्षमें और भूतलपर सभी चराचर प्राणी तथा पातालमें विशालकाय दानव और नागराज भी आश्चर्यचकित हो उठे ॥ २४ ॥

केचिद् विनेदुः संहृष्टाः केचिद् ध्यानपरायणाः ।
केचिद् रामं निरीक्षन्ते केचित् सीतामचेतसः ॥ २५ ॥

कोई हर्षनाद करने लगे, कोई ध्यानमग्न हो गये, कोई श्रीरामकी ओर देखने लगे और कोई हक्के-बक्के-से होकर सीताजीकी ओर निहारने लगे ॥ २५ ॥

सीताप्रवेशनं दृष्ट्वा तेषामासीत् समागमः ।
तन्मुहूर्तमिवात्यर्थं समं सम्मोहितं जगत् ॥ २६ ॥

सीताका भूतलमें प्रवेश देखकर वहाँ आये हुए सब लोग हर्ष, शोक आदिमें डूब गये। दो घड़ी तक वहाँका सारा जनसमुदाय अत्यन्त मोहाच्छन्न-सा हो गया ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सत्तानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमः सर्गः

सीताके लिये श्रीरामका खेद, ब्रह्माजीका उन्हें समझाना और उत्तरकाण्डका शेष अंश सुननेके लिये प्रेरित करना

रसातलं प्रविष्टायां वैदेह्यां सर्ववानराः ।
चुक्रुशुः साधुसाध्वीति मुनयो रामसंनिधौ ॥ १ ॥

विदेहकुमारी सीताके रसातलमें प्रवेश कर जानेपर श्रीरामके समीप बैठे हुए सम्पूर्ण वानर तथा ऋषि-मुनि कहने लगे—'साध्वी सीते ! तुम धन्य हो' ॥ १ ॥

✓ **दण्डकाष्ठमवष्टभ्य बाष्पव्याकुलितेक्षणः ।**
अवाक्शिरा दीनमना रामो ह्यासीत् सुदुःखितः ॥ २ ॥

किंतु स्वयं भगवान् श्रीराम बहुत दुखी हुए। उनका मन उदास हो गया और वे गूलरके दण्डेका सहारा लिये खड़े हो सिर झुकाये नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे ॥ २ ॥

स रुदित्वा चिरं कालं बहुशो बाष्पमुत्सृजन् । ✓
क्रोधशोकसमाविष्टो रामो वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥

बहुत देरतक रोकर बारंबार आँसू बहाते हुए क्रोध और शोकसे युक्त हो श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार बोले—॥ ३ ॥

अभूतपूर्वं शोकं मे मनः स्प्रष्टुमिवेच्छति ।
पश्यतो मे यथा नष्टा सीता श्रीरिव रूपिणी ॥ ४ ॥

'आज मेरा मन अभूतपूर्व शोकमें डूबना चाहता है; क्योंकि इस समय मेरी आँखोंके सामनेसे मूर्तिमती लक्ष्मीके समान सीता अदृश्य हो गयीं ॥ ४ ॥

सादर्शनं पुरा सीता लङ्कां पारे महोदधेः ।

ततश्चापि मयाऽऽनीता किं पुनर्वसुधातलात् ॥ ५ ॥

'पहली बार सीता समुद्रके उस पार लङ्कामें जाकर मेरी आँखोंसे ओझल हुई थीं। किंतु जब मैं वहाँसे भी उन्हें लौटा लाया, तब पृथ्वीके भीतरसे ले आना कौन बड़ी बात है?'॥५॥

वसुधे देवि भवति सीता निर्यात्यतां मम।
दर्शयिष्यामि वा रोषं यथा मामवगच्छसि ॥ ६ ॥

(यों कहकर वे पृथ्वीसे बोले—) 'पूजनीये भगवति वसुन्धरे! मुझे सीताको लौटा दो; अन्यथा मैं अपना क्रोध दिखाऊँगा। मेरा प्रभाव कैसा है? यह तुम जानती हो॥६॥

कामं श्वश्रूर्ममैव त्वं त्वत्सकाशात् तु मैथिली।
कर्षता फालहस्तेन जनकेनोद्धृता पुरा ॥ ७ ॥

'देवि! वास्तवमें तुम्हीं मेरी सास हो। राजा जनक हाथमें फाल लिये तुम्हींको जोत रहे थे, जिससे तुम्हारे भीतरसे सीताका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ७ ॥

तस्मान्निर्यात्यतां सीता विवरं वा प्रयच्छ मे। ✓
पाताले नाकपृष्ठे वा वसेयं सहितस्तया ॥ ८ ॥

'अतः या तो तुम सीताको लौटा दो अथवा मेरे लिये भी अपनी गोदमें जगह दो; क्योंकि पाताल हो या स्वर्ग, मैं सीताके साथ ही रहूँगा ॥ ८ ॥

आनय त्वं हि तां सीतां मत्तोऽहं मैथिलीकृते।
न मे दास्यसि चेत् सीतां यथारूपां महीतले ॥ ९ ॥
सपर्वतवनां कृत्स्नां विधमिष्यामि ते स्थितिम्।
नाशयिष्याम्यहं भूमिं सर्वमापो भवन्त्विह ॥ १० ॥

'तुम मेरी सीताको लाओ! मैं मिथिलेशकुमारीके लिये मतवाला (बेसुध) हो गया हूँ। यदि इस पृथ्वीपर तुम उसी रूपमें सीताको मुझे लौटा नहीं दोगी तो मैं पर्वत और वनसहित तुम्हारी स्थितिको नष्ट कर दूँगा। सारी भूमिका विनाश कर डालूँगा। फिर भले ही सब कुछ जलमय ही हो जाय'॥९-१०॥

एवं ब्रुवाणे काकुत्स्थे क्रोधशोकसमन्विते।
ब्रह्मा सुरगणैः सार्धमुवाच रघुनन्दनम् ॥ ११ ॥

श्रीरघुनाथजी जब क्रोध और शोकसे युक्त हो इस प्रकारकी बातें कहने लगे, तब देवताओंसहित ब्रह्माजीने उन रघुकुलनन्दन श्रीरामसे कहा—॥ ११ ॥

राम राम न संतापं कर्तुमर्हसि सुव्रत।
स्मर त्वं पूर्वकं भावं मन्त्रं चामित्रकर्शन ॥ १२ ॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले श्रीराम! आप मनमें संताप न करें। शत्रुसूदन! अपने पूर्व स्वरूपका स्मरण करें॥

न खलु त्वां महाबाहो स्मारयेयमनुत्तमम्।
इमं मुहूर्तं दुर्धर्ष स्मर त्वं जन्म वैष्णवम् ॥ १३ ॥

'महाबाहो! मैं आपको आपके परम उत्तम स्वरूपका स्मरण नहीं दिला रहा हूँ। दुर्धर्ष वीर! केवल यह अनुरोध कर रहा हूँ कि इस समय आप ध्यानके द्वारा अपने वैष्णव स्वरूपका स्मरण करें ॥ १३ ॥

सीता हि विमला साध्वी तव पूर्वपरायणा।
नागलोकं सुखं प्रायात् त्वदाश्रयतपोबलात् ॥ १४ ॥

'साध्वी सीता सर्वथा शुद्ध हैं। वे पहलेसे ही आपके ही परायण रहती हैं। आपका आश्रय लेना ही उनका तपोबल है। उसके द्वारा वे सुखपूर्वक नागलोकके बहाने आपके परमधाममें चली गयी हैं ॥ १४ ॥

स्वर्गे ते संगमो भूयो भविष्यति न संशयः।
अस्यास्तु परिषन्मध्ये यद् ब्रवीमि निबोध तत् ॥ १५ ॥

'अब पुनः साकेतधाममें आपकी उनसे भेंट होगी; इसमें संशय नहीं है। अब इस सभामें मैं आपसे जो कुछ कहता हूँ, उसपर ध्यान दीजिये ॥ १५ ॥

एतदेव हि काव्यं ते काव्यानामुत्तमं श्रुतम्।
सर्वं विस्तरतो राम व्याख्यास्यति न संशयः ॥ १६ ॥

'आपके चरित्रसे सम्बन्ध रखनेवाला यह काव्य, जिसे आपने सुना है, सब काव्योंमें उत्तम है। श्रीराम! यह आपके सारे जीवन-वृत्तका विस्तारसे ज्ञान करायेगा, इसमें संदेह नहीं है ॥ १६ ॥

जन्मप्रभृति ते वीर सुखदुःखोपसेवनम्।
भविष्यदुत्तरं चेह सर्वं वाल्मीकिना कृतम् ॥ १७ ॥

'वीर! आविर्भावकालसे ही जो आपके द्वारा सुख-दुःखोंका (स्वेच्छासे) सेवन हुआ है, उसका तथा सीताके अन्तर्धान होनेके बाद जो भविष्यमें होनेवाली बातें हैं, उनका भी महर्षि वाल्मीकिने इसमें पूर्णरूपसे वर्णन कर दिया है॥१७॥

आदिकाव्यमिदं राम त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
नह्यन्योऽर्हति काव्यानां यशोभाग् राघवादृते ॥ १८ ॥

'श्रीराम! यह आदिकाव्य है। इस सम्पूर्ण काव्यकी आधारशिला आप ही हैं—आपके ही जीवनवृत्तान्तको लेकर इस काव्यकी रचना हुई है। रघुकुलकी शोभा बढ़ानेवाले आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा यशस्वी पुरुष नहीं है, जो काव्योंका नायक होनेका अधिकारी हो ॥ १८ ॥

श्रुतं ते पूर्वमेतद्धि मया सर्वं सुरैः सह।
दिव्यमद्भुतरूपं च सत्यवाक्यमनावृतम् ॥ १९ ॥

'देवताओंके साथ मैंने पहले आपसे सम्बन्धित इस सम्पूर्ण काव्यका श्रवण किया है। यह दिव्य और अद्भुत है। इसमें कोई भी बात छिपायी नहीं गयी है। इसमें कही गयी सारी बातें सत्य हैं ॥ १९ ॥

स त्वं पुरुषशार्दूल धर्मेण सुसमाहितः।
शेषं भविष्यं काकुत्स्थ काव्यं रामायणं शृणु ॥ २० ॥

'पुरुषसिंह रघुनन्दन! आप धर्मपूर्वक एकाग्रचित्त हो भविष्यकी घटनाओंसे युक्त शेष रामायण काव्यको भी सुन लीजिये ॥ २० ॥

उत्तरं नाम काव्यस्य शेषमत्र महायशाः।
तच्छृणुष्व महातेज ऋषिभिः सार्धमुत्तमम् ॥ २१ ॥

'महायशस्वी एवं महातेजस्वी श्रीराम ! इस काव्यके अन्तिम भागका नाम उत्तरकाण्ड है। उस उत्तम भागको आप ऋषियोंके साथ सुनिये ॥ २१ ॥

न खल्वन्येन काकुत्स्थ श्रोतव्यमिदमुत्तमम्।
परमर्षिणा वीर त्वयैव रघुनन्दन ॥ २२ ॥

'काकुत्स्थवीर रघुनन्दन ! आप सर्वोत्कृष्ट राजर्षि हैं। अतः पहले आपको ही यह उत्तम काव्य सुनना चाहिये, दूसरेको नहीं' ॥ २२ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं ब्रह्मा त्रिभुवनेश्वरः।
जगाम त्रिदिवं देवो देवैः सह सबान्धवैः ॥ २३ ॥

इतना कहकर तीनों लोकोंके स्वामी ब्रह्माजी देवताओं एवं उनके बन्धु-बान्धवोंके साथ अपने लोकको चले गये ॥

ये च तत्र महात्मान ऋषयो ब्राह्मलौकिकाः।
ब्रह्मणा समनुज्ञाता न्यवर्तन्त महौजसः ॥ २४ ॥
उत्तरं श्रोतुमनसो भविष्यं यच्च राघवे।

वहाँ जो ब्रह्मलोकमें रहनेवाले महातेजस्वी महात्मा ऋषि विद्यमान थे, वे ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर भावी वृत्तान्तोंसे युक्त उत्तरकाण्डको सुननेकी इच्छासे लौट आये (उनके साथ ब्रह्मलोकमें नहीं गये) ॥ २४½ ॥

ततो रामः शुभां वाणीं देवदेवस्य भाषिताम् ॥ २५ ॥
श्रुत्वा परमतेजस्वी वाल्मीकिमिदमब्रवीत्।

तत्पश्चात् देवाधिदेव ब्रह्माजीकी कही हुई उस शुभ वाणीको याद करके परम तेजस्वी श्रीरामजीने महर्षि वाल्मीकिसे इस प्रकार कहा—॥ २५½ ॥

भगवञ्श्रोतुमनस ऋषयो ब्राह्मलौकिकाः ॥ २६ ॥
भविष्यदुत्तरं यन्मे श्वोभूते सम्प्रवर्तताम्।

'भगवन् ! ये ब्रह्मलोकके निवासी महर्षि मेरे भावी चरित्रोंसे युक्त उत्तरकाण्डका शेष अंश सुनना चाहते हैं। अतः कल सवेरेसे ही उसका गान आरम्भ हो जाना चाहिये' ॥ २६½ ॥

एवं विनिश्चयं कृत्वा सम्प्रगृह्य कुशीलवौ ॥ २७ ॥
तं जनौघं विसृज्याथ पर्णशालामुपागमत्।
तामेव शोचतः सीतां सा व्यतीता च शर्वरी ॥ २८ ॥

ऐसा निश्चय करके श्रीरघुनाथजीने जनसमुदायको बिदा कर दिया और कुश तथा लवको साथ लेकर वे अपनी पर्णशालामें आये। वहाँ सीताका ही चिन्तन करते-करते उन्होंने रात व्यतीत की ॥ २७-२८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अट्ठानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९८ ॥

एकोनशततमः सर्गः

सीताके रसातल-प्रवेशके पश्चात् श्रीरामकी जीवनचर्या, रामराज्यकी स्थिति तथा माताओंके परलोक-गमन आदिका वर्णन

रजन्यां तु प्रभातायां समानीय महामुनीन्।
गीयतामविशङ्काभ्यां रामः पुत्रावुवाच ह ॥ १ ॥

रात बीतनेपर जब सबेरा हुआ, तब श्रीरामचन्द्रजीने बड़े-बड़े मुनियोंको बुलाकर अपने दोनों पुत्रोंसे कहा—'अब तुम निःशङ्क होकर शेष रामायणका गान आरम्भ करो' ॥ १ ॥

ततः समुपविष्टेषु महर्षिषु महात्मसु।
भविष्यदुत्तरं काव्यं जगतुस्तौ कुशीलवौ ॥ २ ॥

महात्मा महर्षियोंके यथास्थान बैठ जानेपर कुश और लवने भगवान्‌के भविष्य जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले उत्तरकाण्डका, जो उस महाकाव्यका एक अंश था, गान आरम्भ किया ॥ २ ॥

प्रविष्टायां तु सीतायां भूतलं सत्यसम्पदा।
तस्यावसाने यज्ञस्य रामः परमदुर्मनाः ॥ ३ ॥

इधर अपनी सत्यरूप सम्पत्तिके बलसे सीताजीके रसातलमें प्रवेश कर जानेपर उस यज्ञके अन्तमें भगवान् श्रीरामका मन बहुत दुखी हुआ ॥ ३ ॥

अपश्यमानो वैदेहीं मेने शून्यमिदं जगत्।
शोकेन परमायस्तो न शान्तिं मनसागमत् ॥ ४ ॥

विदेहकुमारीको न देखनेसे उन्हें यह सारा संसार सूना जान पड़ने लगा। शोकसे व्यथित होनेके कारण उनके मनको शान्ति नहीं मिली ॥ ४ ॥

विसृज्य पार्थिवान् सर्वानृक्षवानरराक्षसान्।
जनौघं विप्रमुख्यानां वित्तपूर्वं विसृज्य च ॥ ५ ॥
एवं समाप्य यज्ञं तु विधिवत् स तु राघवः।
ततो विसृज्य तान् सर्वान् रामो राजीवलोचनः ॥ ६ ॥
हृदि कृत्वा तदा सीतामयोध्यां प्रविवेश ह।

तदनन्तर श्रीरघुनाथजीने सब राजाओंको, रीछों, वानरों और राक्षसोंको, जनसमुदायको तथा मुख्य-मुख्य ब्राह्मणोंको भी धन देकर बिदा किया। इस प्रकार विधिपूर्वक यज्ञको समाप्त करके कमलनयन श्रीरामने सबको बिदा करनेके पश्चात् उस समय सीताका मन-ही-मन स्मरण करते हुए अयोध्यामें प्रवेश किया ॥ ५-६½ ॥

इष्टयज्ञो नरपतिः पुत्रद्वयसमन्वितः ॥ ७ ॥
न सीतायाः परां भार्यां वव्रे स रघुनन्दनः।
यज्ञे यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी काञ्चनीभवत् ॥ ८ ॥

यज्ञ पूरा करके रघुकुलनन्दन राजा श्रीराम अपने दोनों

पुत्रोंके साथ रहने लगे। उन्होंने सीताके सिवा दूसरी किसी स्त्रीमे विवाह नहीं किया। प्रत्येक यज्ञमें जब-जब धर्मपत्नीकी आवश्यकता होती, श्रीरघुनाथजी सीताकी स्वर्णमयी प्रतिमा बनवा लिया करते थे ॥ ७-८ ॥

दशवर्षसहस्राणि वाजिमेधानथाकरोत् ।
वाजपेयान् दशगुणांस्तथा बहुसुवर्णकान् ॥ ९ ॥

उन्होंने दस हजार वर्षोंतक यज्ञ किये। कितने ही अश्वमेघ यज्ञों और उनसे दसगुने वाजपेय यज्ञोंका अनुष्ठान किया, जिसमें असंख्य स्वर्णमुद्राओंकी दक्षिणाएँ दी गयी थीं ॥ ९ ॥

अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां गोसवैश्च महाधनैः ।
ईजे क्रतुभिरन्यैश्च स श्रीमानाप्तदक्षिणैः ॥ १० ॥

श्रीमान् रामने पर्याप्त दक्षिणाओंमे युक्त अग्निष्टोम, अतिरात्र, गोसव तथा अन्य बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया, जिनमें अपार धनराशि खर्च की गयी ॥ १० ॥

एवं स कालः सुमहान् राज्यस्थस्य महात्मनः ।
धर्मे प्रयतमानस्य व्यतीयाद् राघवस्य च ॥ ११ ॥

इस प्रकार राज्य करते हुए महात्मा भगवान् श्रीरघुनाथजीका बहुत बड़ा समय धर्मपालनके प्रयत्नमें ही बीता ॥ ११ ॥

ऋक्षवानररक्षांसि स्थिता रामस्य शासने ।
अनुरञ्जन्ति राजानो ह्यहन्यहनि राघवम् ॥ १२ ॥

रीछ, वानर और राक्षस भी श्रीरामकी आज्ञाके अधीन रहते थे। भूमण्डलके सभी राजा प्रतिदिन श्रीरघुनाथजीको प्रसन्न रखते थे ॥ १२ ॥

काले वर्षति पर्जन्यः सुभिक्षं विमला दिशः ।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णं पुरं जनपदास्तथा ॥ १३ ॥

श्रीरामके राज्यमें मेघ समयपर वर्षा करते थे। सदा सुकाल ही रहता था—कभी अकाल नहीं पड़ता था। सम्पूर्ण दिशाएँ प्रसन्न दिखायी देती थीं तथा नगर और जनपद हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरे रहते थे ॥ १३ ॥

नाकाले म्रियते कश्चिन्न व्याधिः प्राणिनां तथा ।
नानर्थो विद्यते कश्चिद् रामे राज्यं प्रशासति ॥ १४ ॥

श्रीरामके राज्यशासन करते समय किसीकी अकाल-मृत्यु नहीं होती थी। प्राणियोंको कोई रोग नहीं सताता था और संसारमें कोई उपद्रव खड़ा नहीं होता था ॥ १४ ॥

अथ दीर्घस्य कालस्य राममाता यशस्विनी ।
पुत्रपौत्रैः परिवृता कालधर्ममुपागमत् ॥ १५ ॥

इसके बाद दीर्घकाल व्यतीत होनेपर पुत्र-पौत्रोंसे घिरी हुई परम यशस्विनी श्रीराममाता कौसल्या कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्त हुईं ॥ १५ ॥

अन्वियाय सुमित्रा च कैकेयी च यशस्विनी ।
धर्मं कृत्वा बहुविधं त्रिदिवे पर्यवस्थिता ॥ १६ ॥
सर्वाः प्रमुदिताः स्वर्गे राज्ञा दशरथेन च ।
समागता महाभागाः सर्वधर्मं च लेभिरे ॥ १७ ॥

सुमित्रा और यशस्विनी कैकेयीने भी उन्हींके पथका अनुसरण किया। ये सभी रानियाँ जीवनकालमें नाना प्रकारके धर्मका अनुष्ठान करके अन्तमें साकेतधामको प्राप्त हुईं और बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ राजा दशरथसे मिलीं। उन महाभागा रानियोंको सब धर्मोंका पूरा-पूरा फल प्राप्त हुआ १६-१७

तासां रामो महादानं काले काले प्रयच्छति ।
मातृणामविशेषेण ब्राह्मणेषु तपस्विषु ॥ १८ ॥

श्रीरघुनाथजी समय-समयपर अपनी सभी माताओंके निमित्त बिना किसी भेदभावके तपस्वी ब्राह्मणोंको बड़े-बड़े दान दिया करते थे ॥ १८ ॥

पित्र्याणि ब्रह्मरत्नानि यज्ञान् परमदुस्तरान् ।
चकार रामो धर्मात्मा पितॄन् देवान् विवर्धयन् ॥ १९ ॥

धर्मात्मा श्रीराम श्राद्धमें उपयोगी उत्तमोत्तम वस्तुएँ ब्राह्मणोंको देते तथा पितरों और देवताओंको संतुष्ट करनेके लिये बड़े-बड़े दुस्तर यज्ञों (पिण्डात्मक पितृयज्ञों) का अनुष्ठान करते थे ॥ १९ ॥

एवं वर्षसहस्राणि बहून्यथ ययुः सुखम् ।
यज्ञैर्बहुविधं धर्मं वर्धयानस्य सर्वदा ॥ २० ॥

इस प्रकार यज्ञोंके द्वारा सर्वदा विविध धर्मोंका पालन करते हुए श्रीरघुनाथजीके कई हजार वर्ष सुखपूर्वक बीत गये ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनशततमः सर्गः ॥ ९९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें निन्यानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९९ ॥

शततमः सर्गः

केकयदेशसे ब्रह्मर्षि गार्ग्यका भेंट लेकर आना और उनके संदेशके अनुसार श्रीरामकी आज्ञासे कुमारोंसहित भरतका गन्धर्वदेशपर आक्रमण करनेके लिये प्रस्थान

कस्यचित् त्वथ कालस्य युधाजित् केकयो नृपः ।
स्वगुरुं प्रेषयामास राघवाय महात्मने ॥ १ ॥
गार्ग्यमङ्गिरसः पुत्रं ब्रह्मर्षिममितप्रभम् ।

कुछ कालके पश्चात् केकयदेशके राजा युधाजित्ने अपने पुरोहित अमित तेजस्वी ब्रह्मर्षि गार्ग्यको, जो अङ्गिराके पुत्र थे, महात्मा श्रीरघुनाथजीके पास भेजा ॥ १½ ॥

दश चाश्वसहस्राणि प्रीतिदानमनुत्तमम् ॥ २ ॥
कम्बलानि च रत्नानि चित्रवस्त्रमथोत्तमम् ।

रामाय प्रददौ राजा शुभान्याभरणानि च ॥ ३ ॥

उनके साथ श्रीरामचन्द्रजीको परम उत्तम प्रेमोपहारके रूपमें अर्पण करनेके लिये उन्होंने दस हजार घोड़े, बहुत-से कम्बल (कालीन और शाल आदि), नाना प्रकारके रत्न, विचित्र-विचित्र सुन्दर वस्त्र तथा मनोहर आभूषण भी दिये थे ॥ २-३ ॥

श्रुत्वा तु राघवो धीमान् महर्षिं गार्ग्यमागतम् ।
मातुलस्याश्वपतिनः प्रहितं तन्महाधनम् ॥ ४ ॥
प्रत्युद्गम्य च काकुत्स्थः क्रोशमात्रं सहानुजः ।
गार्ग्यं सम्पूजयामास यथा शक्रो बृहस्पतिम् ॥ ५ ॥

परम बुद्धिमान् श्रीमान् राघवेन्द्रने जब सुना कि मामा अश्वपति-पुत्र युधाजित्के भेजे हुए महर्षि गार्ग्य बहुमूल्य भेंट-सामग्री लिये अयोध्यामें पधार रहे हैं, तब उन्होंने भाइयोंके साथ एक कोस आगे बढ़कर उनकी अगवानी की और जैसे इन्द्र बृहस्पतिकी पूजा करते हैं, उसी प्रकार महर्षि गार्ग्यका पूजन (स्वागत-सत्कार) किया ॥ ४-५ ॥

तथा सम्पूज्य तमृषिं तद् धनं प्रतिगृह्य च ।
पृष्ट्वा प्रतिपदं सर्वं कुशलं मातुलस्य च ॥ ६ ॥
उपविष्टं महाभागं रामः प्रष्टुं प्रचक्रमे ।

इस प्रकार महर्षिका आदर-सत्कार करके उस धनको ग्रहण करनेके पश्चात् उन्होंने उनका तथा मामाके घरका सारा कुशल-समाचार पूछा । फिर जब वे महाभाग ब्रह्मर्षि सुन्दर आसनपर विराजमान हो गये, तब श्रीरामने उनसे इस प्रकार पूछना आरम्भ किया—॥ ६½ ॥

किमाह मातुलो वाक्यं यदर्थं भगवानिह ॥ ७ ॥
प्राप्तो वाक्यविदां श्रेष्ठः साक्षादिव बृहस्पतिः ।

'ब्रह्मर्षे ! मेरे मामाने क्या संदेश दिया है, जिसके लिये साक्षात् बृहस्पतिके समान वाक्यवेत्ताओंमें श्रेष्ठ आप पूज्यपाद महर्षिने यहाँ पधारनेका कष्ट किया है' ॥ ७½ ॥

रामस्य भाषितं श्रुत्वा महर्षिः कार्यविस्तरम् ॥ ८ ॥
वक्तुमद्भुतसंकाशं राघवायोपचक्रमे ।

श्रीरामका यह प्रश्न सुनकर महर्षिने उनसे अद्भुत कार्य-विस्तारका वर्णन आरम्भ किया—॥ ८½ ॥

मातुलस्ते महाबाहो वाक्यमाह नरर्षभः ॥ ९ ॥
युधाजित् प्रीतिसंयुक्तं श्रूयतां यदि रोचते ।

'महाबाहो ! आपके मामा नरश्रेष्ठ युधाजित्ने जो प्रेमपूर्वक संदेश दिया है, उसे यदि रुचिकर जान पड़े तो सुनिये ॥ ९½ ॥

अयं गन्धर्वविषयः फलमूलोपशोभितः ॥ १० ॥
सिन्धोरुभयतः पार्श्वे देशः परमशोभनः ।

'उन्होंने कहा है कि यह जो फल-मूलोंसे सुशोभित गन्धर्वदेश सिन्धु नदीके दोनों तटोंपर बसा हुआ है, बड़ा सुन्दर प्रदेश है ॥ १०½ ॥

तं च रक्षन्ति गन्धर्वाः सायुधा युद्धकोविदाः ॥ ११ ॥
शैलूषस्य सुता वीर तिस्रः कोट्यो महाबलाः ।

'वीर रघुनन्दन ! गन्धर्वराज शैलूषकी संतानें तीन करोड़ महाबली गन्धर्व, जो युद्धकी कलामें कुशल और अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न हैं, उस देशकी रक्षा करते हैं ॥ ११½ ॥

तान् विनिर्जित्य काकुत्स्थ गन्धर्वनगरं शुभम् ॥ १२ ॥
निवेशय महाबाहो स्वे पुरे सुसमाहिते ।
अन्यस्य न गतिस्तत्र देशः परमशोभनः ।
रोचतां ते महाबाहो नाहं त्वामहितं वदे ॥ १३ ॥

'काकुत्स्थ ! महाबाहो ! आप उन गन्धर्वोंको जीतकर वहाँ सुन्दर गन्धर्वनगर बसाइये । अपने लिये उत्तम साधनोंसे सम्पन्न दो नगरोंका निर्माण कीजिये । वह देश बहुत सुन्दर है । वहाँ दूसरे किसीकी गति नहीं है । आप उसे अपने अधिकारमें लेना स्वीकार करें । मैं आपको ऐसी सलाह नहीं देता, जो अहितकारक हो' ॥ १२-१३ ॥

तच्छ्रुत्वा राघवः प्रीतो महर्षेर्मातुलस्य च ।
उवाच बाढमित्येव भरतं चान्ववैक्षत ॥ १४ ॥

महर्षि और मामाका वह कथन सुनकर श्रीरघुनाथजीको बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने 'बहुत अच्छा' कहकर भरतकी ओर देखा ॥ १४ ॥

सोऽब्रवीद् राघवः प्रीतः साञ्जलिप्रग्रहो द्विजम् ।
इमौ कुमारौ तं देशं ब्रह्मर्षे विचरिष्यतः ॥ १५ ॥
भरतस्यात्मजौ वीरौ तक्षः पुष्कल एव च ।
मातुलेन सुगुप्तौ तु धर्मेण सुसमाहितौ ॥ १६ ॥

तदनन्तर श्रीराघवेन्द्रने उन ब्रह्मर्षिसे प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़कर कहा—'ब्रह्मर्षे ! ये दोनों कुमार तक्ष और पुष्कल, जो भरतके वीर पुत्र हैं, उस देशमें विचरेंगे और मामासे सुरक्षित रहकर धर्मपूर्वक एकाग्रचित्त हो उस देशका शासन करेंगे ॥ १५-१६ ॥

भरतं चाग्रतः कृत्वा कुमारौ सबलानुगौ ।
निहत्य गन्धर्वसुतान् द्वे पुरे विभजिष्यतः ॥ १७ ॥

'ये दोनों कुमार भरतको आगे करके सेना और सेवकोंके साथ वहाँ जायँगे तथा उन गन्धर्वपुत्रोंका संहार करके अलग-अलग दो नगर बसायेंगे ॥ १७ ॥

निवेश्य ते पुरवरे आत्मजौ संनिवेश्य च ।
आगमिष्यति मे भूयः सकाशमतिधार्मिकः ॥ १८ ॥

'उन दोनों श्रेष्ठ नगरोंको बसाकर उनमें अपने दोनों पुत्रोंको स्थापित करके अत्यन्त धर्मात्मा भरत फिर मेरे पास लौट आयेंगे' ॥ १८ ॥

ब्रह्मर्षिमेवमुक्त्वा तु भरतं सबलानुगम् ।
आज्ञापयामास तदा कुमारौ चाभ्यषेचयत् ॥ १९ ॥

ब्रह्मर्षिसे ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजीने भरतको वहाँ सेनाके साथ जानेकी आज्ञा दी और दोनों कुमारोंका पहले ही राज्याभिषेक कर दिया ॥ १९ ॥

नक्षत्रेण च सौम्येन पुरस्कृत्याङ्गिरःसुतम् ।
भरतः सह सैन्येन कुमाराभ्यां विनिर्ययौ ॥ २० ॥

तत्पश्चात् सौम्य नक्षत्र (मृगशिरा) में अङ्गिराके पुत्र महर्षि गार्ग्यको आगे करके सेना और कुमारोंके साथ भरतने यात्रा की ॥ २० ॥

सा सेना शक्रयुक्तेव नगरान्निर्ययावथ ।
राघवानुगता दूरं दुराधर्षा सुरैरपि ॥ २१ ॥

इन्द्रद्वारा प्रेरित हुई देवसेनाके समान वह सेना नगरसे बाहर निकली । भगवान् श्रीराम भी दूरतक उसके साथ-साथ गये । वह देवताओंके लिये भी दुर्जय थी ॥ २१ ॥

मांसाशिनश्च ये सत्त्वा रक्षांसि सुमहान्ति च ।
अनुजग्मुर्हि भरतं रुधिरस्य पिपासया ॥ २२ ॥

मांसाहारी जन्तु और बड़े-बड़े राक्षस युद्धमें रक्तपानकी इच्छासे भरतके पीछे-पीछे गये ॥ २२ ॥

भूतग्रामाश्च बहवो मांसभक्षाः सुदारुणाः ।
गन्धर्वपुत्रमांसानि भोक्तुकामाः सहस्रशः ॥ २३ ॥

अत्यन्त भयंकर कई हजार मांसभक्षी भूतसमूह गन्धर्वपुत्रोंका मांस खानेके लिये उस सेनाके साथ-साथ गये ॥२३॥

सिंहव्याघ्रवराहाणां खेचराणां च पक्षिणाम् ।
बहूनि वै सहस्राणि सेनाया ययुरग्रतः ॥ २४ ॥

सिंह, बाघ, सूअर और आकाशचारी पक्षी कई हजारकी संख्यामें सेनाके आगे आगे चले ॥ २४ ॥

अध्यर्धमासमुषिता पथि सेना निरामया ।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णा केकयं समुपागमत् ॥ २५ ॥

मार्गमें डेढ़ महीने बिताकर हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरी हुई वह सेना कुशलपूर्वक केकयदेशमें जा पहुँची ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सौवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०० ॥

एकाधिकशततमः सर्गः

भरतका गन्धर्वोंपर आक्रमण और उनका संहार करके वहाँ दो सुन्दर नगर बसाकर अपने दोनों पुत्रोंको सौंपना और फिर अयोध्याको लौट आना

श्रुत्वा सेनापतिं प्राप्तं भरतं केकयाधिपः ।
युधाजिद् गार्ग्यसहितं परां प्रीतिमुपागमत् ॥ १ ॥

केकयराज युधाजित्ने जब सुना कि महर्षि गार्ग्यके साथ स्वयं भरत सेनापति होकर आ रहे हैं, तब उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १ ॥

स निर्ययौ जनौघेन महता केकयाधिपः ।
त्वरमाणोऽभिचक्राम गन्धर्वान् कामरूपिणः ॥ २ ॥

वे केकयनरेश भारी जनसमुदायके साथ निकले और भरतसे मिलकर बड़ी उतावलीके साथ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले गन्धर्वोंके देशकी ओर चले ॥ २ ॥

भरतश्च युधाजिच्च समेतौ लघुविक्रमैः ।
गन्धर्वनगरं प्राप्तौ सबलौ सपदानुगौ ॥ ३ ॥

भरत और युधाजित् दोनोंने मिलकर बड़ी तीव्रगतिसे सेना और सवारियोंके साथ गन्धर्वोंकी राजधानीपर धावा किया ॥ ३ ॥

श्रुत्वा तु भरतं प्राप्तं गन्धर्वास्ते समागताः ।
योद्धुकामा महावीर्या व्यनदंस्ते समन्ततः ॥ ४ ॥

भरतका आगमन सुनकर वे महापराक्रमी गन्धर्व युद्धकी इच्छासे एकत्र हो सब ओर जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥४॥

ततः समभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
सप्तरात्रं महाभीमं न चान्यतरयोर्जयः ॥ ५ ॥

फिर तो दोनों ओरकी सेनाओंमें बड़ा भयंकर और रोंगटे खड़े कर देनेवाला युद्ध छिड़ गया । वह महाभयंकर संग्राम लगातार सात राततक चलता रहा, परंतु दोनोंमेंसे किसी भी एक पक्षकी विजय नहीं हुई ॥ ५ ॥

खड्गशक्तिधनुर्ग्राहा नद्यः शोणितसंस्रवाः ।
नृकलेवरवाहिन्यः प्रवृत्ताः सर्वतोदिशम् ॥ ६ ॥

चारों ओर खूनकी नदियाँ बह चलीं । तलवार, शक्ति और धनुष उस नदीमें विचरनेवाले ग्राहोंके समान जान पड़ते थे, उनकी धारामें मनुष्योंकी लाशें बह जाती थीं ॥ ६ ॥

ततो रामानुजः क्रुद्धः कालस्यास्त्रं सुदारुणम् ।
संवर्तं नाम भरतो गन्धर्वेष्वभ्यचोदयत् ॥ ७ ॥

तब रामानुज भरतने कुपित होकर गन्धर्वोंपर कालदेवताके अत्यन्त भयंकर अस्त्रका, जो संवर्त नामसे प्रसिद्ध है, प्रयोग किया ॥ ७ ॥

ते बद्धाः कालपाशेन संवर्तेन विदारिताः ।
क्षणेनाभिहतास्तेन तिस्रः कोट्यो महात्मना ॥ ८ ॥

इस प्रकार महात्मा भरतने क्षणभरमें तीन करोड़ गन्धर्वोंका संहार कर डाला । वे गन्धर्व कालपाशसे बद्ध हो संवर्तास्त्रसे विदीर्ण कर डाले गये ॥ ८ ॥

तद् युद्धं तादृशं घोरं न स्मरन्ति दिवौकसः ।
निमेषान्तरमात्रेण तादृशानां महात्मनाम् ॥ ९ ॥
हतेषु तेषु सर्वेषु भरतः केकयीसुतः ।
निवेशयामास तदा समृद्धे द्वे पुरोत्तमे ॥ १० ॥

ऐसा भयंकर युद्ध देवताओंने भी कभी देखा हो, यह उन्हें याद नहीं आता था । पलक मारते-मारते वैसे पराक्रमी

महामनस्वी समस्त गन्धर्वोंका संहार हो जानेपर कैकेयीकुमार भरतने उस समय वहाँ दो समृद्धिशाली सुन्दर नगर बसाये ॥ ९-१० ॥

तक्षं तक्षशिलायां तु पुष्कलं पुष्कलावते ।
गन्धर्वदेशे रुचिरे गान्धारविषये च सः ॥ ११ ॥

मनोहर गन्धर्वदेशमें तक्षशिला नामकी नगरी बसाकर उसमें उन्होंने तक्षको राजा बनाया और गान्धारदेशमें पुष्कलावत नगर बसाकर उसका राज्य पुष्कलको सौंप दिया ॥ ११ ॥

धनरत्नौघसंकीर्णे काननैरुपशोभिते ।
अन्योन्यसंघर्षकृते स्पर्धया गुणविस्तरैः ॥ १२ ॥

वे दोनों नगर धन-धान्य एवं रत्नसमूहोंसे भरे थे । अनेकानेक कानन उनकी शोभा बढ़ाते थे । गुणविस्तारकी दृष्टिसे वे मानो परस्पर होड़ लगाकर संघर्षपूर्वक आगे बढ़ रहे थे ॥ १२ ॥

उभे सुरुचिरप्रख्ये व्यवहारैरकिल्बिषैः ।
उद्यानयानसम्पूर्णे सुविभक्तान्तरापणे ॥ १३ ॥

दोनों नगरोंकी शोभा परम मनोहर थी । दोनों स्थानोंका व्यवहार (व्यापार) निष्कपट, शुद्ध एवं सरल था । दोनों ही नगर उद्यानों (बाग-बगीचों) तथा नाना प्रकारकी सवारियोंसे भरे-पूरे थे । उनके भीतर अलग-अलग कई बाजार थे ॥ १३ ॥

उभे पुरवरे रम्ये विस्तरैरुपशोभिते ।
गृहमुख्यैः सुरुचिरैर्विमानैर्बहुभिर्वृते ॥ १४ ॥

दोनों श्रेष्ठ पुरोंकी रमणीयता देखते ही बनती थी । अनेक ऐसे विस्तृत पदार्थ उनकी शोभा बढ़ाते थे, जिनका नाम अभीतक नहीं लिया गया है । सुन्दर श्रेष्ठ गृह तथा बहुत-से सतमहले मकान वहाँकी श्रीवृद्धि कर रहे थे ॥ १४ ॥

शोभिते शोभनीयैश्च देवायतनविस्तरैः ।
तालैस्तमालैस्तिलकैर्बकुलैरुपशोभिते ॥ १५ ॥

अनेकानेक शोभासम्पन्न देवमन्दिरों तथा ताल, तमाल, तिलक और मौलसिरी आदिके वृक्षोंसे भी उन दोनों नगरोंकी शोभा एवं रमणीयता बढ़ गयी थी ॥ १५ ॥

निवेश्य पञ्चभिर्वर्षैर्भरतो राघवानुजः ।
पुनरायान्महाबाहुरयोध्यां केकयीसुतः ॥ १६ ॥

पाँच वर्षोंमें उन राजधानियोंको अच्छी तरह आबाद करके श्रीरामके छोटे भाई कैकेयीकुमार महाबाहु भरत फिर अयोध्यामें लौट आये ॥ १६ ॥

सोऽभिवाद्य महात्मानं साक्षाद्धर्ममिवापरम् ।
राघवं भरतः श्रीमान् ब्रह्माणमिव वासवः ॥ १७ ॥

वहाँ पहुँचकर श्रीमान् भरतने द्वितीय धर्मराजके समान महात्मा श्रीरघुनाथजीको उसी तरह प्रणाम किया, जैसे इन्द्र ब्रह्माजीको प्रणाम करते हैं ॥ १७ ॥

शशंस च यथावृत्तं गन्धर्ववधमुत्तमम् ।
निवेशनं च देशस्य श्रुत्वा प्रीतोऽस्य राघवः ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने गन्धर्वोंके वध और उस देशको अच्छी तरह आबाद करनेका यथावत् समाचार कह सुनाया । सुनकर श्रीरघुनाथजी उनपर बहुत प्रसन्न हुए ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ एकवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०१ ॥

* * *

द्व्यधिकशततमः सर्गः

श्रीरामकी आज्ञासे भरत और लक्ष्मणद्वारा कुमार अङ्गद और चन्द्रकेतुकी कारुपथ देशके विभिन्न राज्योंपर नियुक्ति

तच्छ्रुत्वा हर्षमापेदे राघवो भ्रातृभिः सह ।
वाक्यं चाद्भुतसंकाशं भ्रातॄन् प्रोवाच राघवः ॥ १ ॥

भरतके मुँहसे गन्धर्वदेशका समाचार सुनकर भाइयोंसहित श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी प्रसन्नता हुई । तत्पश्चात् श्रीराघवेन्द्र अपने भाइयोंसे यह अद्भुत वचन बोले—॥ १ ॥

इमौ कुमारौ सौमित्रे तव धर्मविशारदौ ।
अङ्गदश्चन्द्रकेतुश्च राज्यार्थे दृढविक्रमौ ॥ २ ॥

'सुमित्रानन्दन ! तुम्हारे ये दोनों कुमार अङ्गद और चन्द्रकेतु धर्मके ज्ञाता हैं । इनमें राज्यकी रक्षाके लिये उपयुक्त दृढ़ता और पराक्रम है ॥ २ ॥

इमौ राज्येऽभिषेक्ष्यामि देशः साधु विधीयताम् ।
रमणीयो ह्यसम्बाधो रमतां यत्र धन्विनौ ॥ ३ ॥

'अतः मैं इनका भी राज्याभिषेक करूँगा । तुम इनके लिये किसी अच्छे देशका चुनाव करो, जो रमणीय होनेके साथ ही विघ्न बाधाओंसे रहित हो और जहाँ ये दोनों धनुर्धर वीर आनन्दपूर्वक रह सकें ॥ ३ ॥

✓ **न राज्ञां यत्र पीडा स्यान्नाश्रमाणां विनाशनम् ।**
स देशो दृश्यतां सौम्य नापराध्यामहे यथा ॥ ४ ॥

'सौम्य ! ऐसा देश देखो, जहाँ निवास करनेसे दूसरे राजाओंको पीड़ा या उद्वेग न हो, आश्रमोंका भी नाश न करना पड़े और हमलोगोंको किसीकी दृष्टिमें अपराधी भी न बनना पड़े' ॥ ४ ॥

तथोक्तवति रामे तु भरतः प्रत्युवाच ह ।
अयं कारुपथो देशो रमणीयो निरामयः ॥ ५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर भरतने उत्तर दिया—

आर्य ! यह कारुपथ नामक देश बड़ा सुन्दर है। वहाँ किसी प्रकारकी रोग-व्याधिका भय नहीं है ॥ ५ ॥

निवेश्यतां तत्र पुरमङ्गदस्य महात्मनः ।
चन्द्रकेतोः सुरुचिरं चन्द्रकान्तं निरामयम् ॥ ६ ॥

'वहाँ महात्मा अङ्गदके लिये नयी राजधानी बसायी जाय तथा चन्द्रकेतु (या चन्द्रकान्त)के रहनेके लिये 'चन्द्रकान्त' नामक नगरका निर्माण कराया जाय, जो सुन्दर और आरोग्यवर्द्धक हो' ॥ ६ ॥

तद् वाक्यं भरतेनोक्तं प्रतिजग्राह राघवः ।
तं च कृत्वा वशे देशमङ्गदस्य न्यवेशयत् ॥ ७ ॥

भरतकी कही हुई इस बातको श्रीरघुनाथजीने स्वीकार किया और कारुपथ देशको अपने अधिकारमें करके अङ्गदको वहाँका राजा बना दिया ॥ ७ ॥

अङ्गदीया पुरी रम्याप्यङ्गदस्य निवेशिता ।
रमणीया सुगुप्ता च रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ८ ॥

क्लेशरहित कर्म करनेवाले भगवान् श्रीरामने अङ्गदके लिये 'अङ्गदीया' नामक रमणीय पुरी बसायी, जो परम सुन्दर होनेके साथ ही सब ओरसे सुरक्षित भी थी ॥ ८ ॥

चन्द्रकेतोश्च मल्लस्य मल्लभूम्यां निवेशिता ।
चन्द्रकान्तेति विख्याता दिव्या स्वर्गपुरी यथा ॥ ९ ॥

चन्द्रकेतु अपने शरीरसे मल्लके समान हृष्ट-पुष्ट थे; उनके लिये मल्ल देशमें 'चन्द्रकान्ता' नामसे विख्यात दिव्य पुरी बसायी गयी, जो स्वर्गकी अमरावती नगरीके समान सुन्दर थी ॥ ९ ॥

ततो रामः परां प्रीतिं लक्ष्मणो भरतस्तथा ।
ययुर्युद्धे दुराधर्षा अभिषेकं च चक्रिरे ॥ १० ॥

इससे श्रीराम, लक्ष्मण और भरत तीनोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन सभी रणदुर्जय वीरोंने स्वयं उन कुमारोंका अभिषेक किया ॥ १० ॥

अभिषिच्य कुमारौ द्वौ प्रस्थाप्य सुसमाहितौ ।
अङ्गदं पश्चिमां भूमिं चन्द्रकेतुमुदङ्मुखम् ॥ ११ ॥

एकाग्रचित्त तथा सावधान रहनेवाले उन दोनों कुमारोंका अभिषेक करके अङ्गदको पश्चिम तथा चन्द्रकेतुको उत्तर दिशामें भेजा गया ॥ ११ ॥

अङ्गदं चापि सौमित्रिर्लक्ष्मणोऽनुजगाम ह ।
चन्द्रकेतोस्तु भरतः पार्ष्णिग्राहो बभूव ह ॥ १२ ॥

अङ्गदके साथ तो स्वयं सुमित्राकुमार लक्ष्मण गये और चन्द्रकेतुके सहायक या पार्श्वक भरतजी हुए ॥ १२ ॥

लक्ष्मणस्त्वङ्गदीयायां संवत्सरमथोषितः ।
पुत्रे स्थिते दुराधर्षे अयोध्यां पुनरागमत् ॥ १३ ॥

लक्ष्मण अङ्गदीया पुरीमें एक वर्षतक रहे और उनका दुर्धर्ष पुत्र अङ्गद जब दृढ़तापूर्वक राज्य सँभालने लगा, तब वे पुनः अयोध्याको लौट आये ॥ १३ ॥

भरतोऽपि तथैवोष्य संवत्सरमतोऽधिकम् ।
अयोध्यां पुनरागम्य रामपादावुपास्त सः ॥ १४ ॥

इसी प्रकार भरत भी चन्द्रकान्ता नगरीमें एक वर्षसे कुछ अधिक कालतक ठहरे रहे और चन्द्रकेतुका राज्य जब दृढ़ हो गया, तब वे पुनः अयोध्यामें आकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी सेवा करने लगे ॥ १४ ॥

उभौ सौमित्रिभरतौ रामपादावनुव्रतौ ।
कालं गतमपि स्नेहान्न जज्ञातेऽतिधार्मिकौ ॥ १५ ॥

लक्ष्मण और भरत दोनोंका श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें अनन्य अनुराग था। दोनों ही अत्यन्त धर्मात्मा थे। श्रीरामकी सेवामें रहते उन्हें बहुत समय बीत गया, परंतु स्नेहाधिक्यके कारण उनको कुछ भी ज्ञात न हुआ ॥ १५ ॥

एवं वर्षसहस्राणि दश तेषां ययुस्तदा ।
धर्मे प्रयतमानानां पौरकार्येषु नित्यदा ॥ १६ ॥

वे तीनों भाई पुरवासियोंके कार्यमें सदा संलग्न रहते और धर्मपालनके लिये प्रयत्नशील रहा करते थे। इस प्रकार उनके दस हजार वर्ष बीत गये ॥ १६ ॥

विहृत्य कालं परिपूर्णमानसाः
श्रिया वृता धर्मपुरे च संस्थिताः ।
त्रयः समिद्धाहुतिदीप्ततेजसो
हुताग्नयः साधुमहाध्वरे त्रयः ॥ १७ ॥

धर्म साधनके स्थानभूत अयोध्यापुरीमें वैभवसम्पन्न होकर रहते हुए वे तीनों भाई यथासमय घूम-फिरकर प्रजाकी देखभाल करते थे। उनके सारे मनोरथ पूर्ण हो गये थे तथा वे महायज्ञमें आहुति पाकर प्रज्वलित हुए दीप्त तेजस्वी गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण नामक त्रिविध अग्नियोंके समान प्रकाशित होते थे ॥ १७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्व्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ दोवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०२ ॥

त्र्यधिकशततमः सर्गः

श्रीरामके यहाँ कालका आगमन और एक कठोर शर्तके साथ उनका वार्ताके लिये उद्यत होना

कस्यचित् त्वथ कालस्य रामे धर्मपरे स्थिते ।
कालस्तापसरूपेण राजद्वारमुपागमत् ॥ १ ॥

तदनन्तर कुछ समय और बीत जानेपर जब कि भगवान् श्रीराम धर्मपूर्वक अयोध्याके राज्यका पालन कर रहे थे, साक्षात् काल तपस्वीके रूपमें राजभवनके द्वारपर आया ॥ १ ॥

सोऽब्रवील्लक्ष्मणं वाक्यं धृतिमन्तं यशस्विनम् ।

मां निवेदय रामाय सम्प्राप्तं कार्यगौरवात् ॥ २ ॥

उसने द्वारपर खड़े हुए धैर्यवान् एवं यशस्वी लक्ष्मणसे कहा—'मैं एक भारी कार्यसे आया हूँ । तुम श्रीरामचन्द्रजीसे मेरे आगमनकी सूचना दे दो ॥ २ ॥

दूतो ह्यतिबलस्याहं महर्षेरमितौजसः ।
रामं दिदृक्षुरायातः कार्येण हि महाबल ॥ ३ ॥

'महाबली लक्ष्मण ! मैं अमित तेजस्वी महर्षि अतिबलका दूत हूँ और एक आवश्यक कार्यवश श्रीरामचन्द्रजीसे मिलने आया हूँ' ॥ ३ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सौमित्रिस्त्वरयान्वितः ।
न्यवेदयत रामाय तापसं तं समागतम् ॥ ४ ॥

उसकी वह बात सुनकर सुमित्राकुमार लक्ष्मणने बड़ी उतावलीके साथ भीतर जाकर श्रीरामचन्द्रजीसे उस तापसके आगमनकी सूचना दी—॥ ४ ॥

जयस्व राजधर्मेण उभौ लोकौ महाद्युते ।
दूतस्त्वां द्रष्टुमायातस्तपसा भास्करप्रभः ॥ ५ ॥

'महातेजस्वी महाराज ! आप अपने राजधर्मके प्रभावसे इहलोक और परलोकपर भी विजयी हों । एक महर्षि दूतके रूपमें आपसे मिलने आये हैं । वे तपस्याजनित तेजसे सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे हैं' ॥ ५ ॥

तद् वाक्यं लक्ष्मणोक्तं वै श्रुत्वा राम उवाच ह ।
प्रवेश्यतां मुनिस्तात महौजास्तस्य वाक्यधृक् ॥ ६ ॥

लक्ष्मणकी कही हुई वह बात सुनकर श्रीरामने कहा—'तात ! उन महातेजस्वी मुनिको भीतर ले आओ, जो कि अपने स्वामीके संदेश लेकर आये हैं' ॥ ६ ॥

सौमित्रिस्तु तथेत्युक्त्वा प्रावेशयत तं मुनिम् ।
ज्वलन्तमेव तेजोभिः प्रदहन्तमिवांशुभिः ॥ ७ ॥

तब 'जो आज्ञा' कहकर सुमित्राकुमार उन मुनिको भीतर ले आये । वे तेजसे प्रज्वलित होते और अपनी प्रखर किरणोंसे दग्ध करते हुए-से जान पड़ते थे ॥ ७ ॥

सोऽभिगम्य रघुश्रेष्ठं दीप्यमानं स्वतेजसा ।
ऋषिर्मधुरया वाचा वर्धस्वेत्याह राघवम् ॥ ८ ॥

अपने तेजसे दीप्तिमान् रघुकुलतिलक श्रीरामके पास पहुँचकर ऋषिने उनसे मधुर वाणीमें कहा—'रघुनन्दन ! आपका अभ्युदय हो' ॥ ८ ॥

तस्मै रामो महातेजाः पूजामर्घ्यपुरोगमाम् ।
ददौ कुशलमव्यग्रं प्रष्टुं चैवोपचक्रमे ॥ ९ ॥

महातेजस्वी श्रीरामने उन्हें पाद्य-अर्घ्य आदि पूजनोपचार समर्पित किया और शान्तभावसे उनका कुशल-समाचार पूछना आरम्भ किया ॥ ९ ॥

पृष्टश्च कुशलं तेन रामेण वदतां वरः ।
आसने काञ्चने दिव्ये निषसाद महायशाः ॥ १० ॥

श्रीरामके पूछनेपर वक्ताओंमें श्रेष्ठ महायशस्वी मुनि कुशल-समाचार बताकर दिव्य सुवर्णमय आसनपर विराजमान हुए ॥

तमुवाच ततो रामः स्वागतं ते महामते ।
प्रापयास्य च वाक्यानि यतो दूतस्त्वमागतः ॥ ११ ॥

तदनन्तर श्रीरामने उनसे कहा—'महामते ! आपका स्वागत है । आप जिनके दूत होकर यहाँ पधारे हैं, उनका संदेश सुनाइये' ॥ ११ ॥

चोदितो राजसिंहेन मुनिर्वाक्यमभाषत ।
द्वन्द्वे ह्येतत् प्रवक्तव्यं हितं वै यद्यवेक्षसे ॥ १२ ॥

राजसिंह श्रीरामके द्वारा इस प्रकार प्रेरित होनेपर मुनि बोले—'यदि आप हमारे हितपर दृष्टि रक्खें तो जहाँ हम और आप दो ही आदमी रहें, वहीं इस बातको कहना उचित है ॥

यः शृणोति निरीक्षेद् वा स वध्यो भविता तव ।
भवेद् वै मुनिमुख्यस्य वचनं यद्यवेक्षसे ॥ १३ ॥

'यदि आप मुनिश्रेष्ठ अतिबलके वचनपर ध्यान दें तो आपको यह भी घोषित करना होगा कि जो कोई मनुष्य हम दोनोंकी बातचीत सुन ले अथवा हमें वार्तालाप करते देख ले, वह आप (श्रीराम) का वध्य होगा' ॥ १३ ॥

तथेति च प्रतिज्ञाय रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
द्वारि तिष्ठ महाबाहो प्रतिहारं विसर्जय ॥ १४ ॥

श्रीरामने 'तथास्तु' कहकर इस बातके लिये प्रतिज्ञा की और लक्ष्मणसे कहा—'महाबाहो ! द्वारपालको बिदा कर दो और स्वयं ड्योढ़ीपर खड़े होकर पहरा दो ॥ १४ ॥

स मे वध्यः खलु भवेद् वाचं द्वन्द्वसमीरितम् ।
ऋषेर्मम च सौमित्रे पश्येद् वा शृणुयाच्च यः ॥ १५ ॥

'सुमित्रानन्दन ! जो ऋषि और मेरी—दोनोंकी कही हुई बात सुन लेगा या बात करते हमें देख लेगा, वह मेरेद्वारा मारा जायगा' ॥ १५ ॥

ततो निक्षिप्य काकुत्स्थो लक्ष्मणं द्वारि संग्रहम् ।
तमुवाच मुने वाक्यं कथयस्वेति राघवः ॥ १६ ॥
तत् ते मनीषितं वाक्यं येन वासि समाहितः ।
कथयस्वाविशङ्कस्त्वं ममापि हृदि वर्तते ॥ १७ ॥

इस प्रकार अपनी बात ग्रहण करनेवाले लक्ष्मणको दरवाजेपर तैनात करके श्रीरघुनाथजीने समागत महर्षिसे कहा—'मुने ! अब आप निःशङ्क होकर वह बात कहिये, जिसे कहना आपको अभीष्ट है अथवा जिसे कहनेके लिये ही आप यहाँ भेजे गये हैं । मेरे हृदयमें भी उसे सुननेके लिये उत्कण्ठा है' ॥ १६-१७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्र्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ तीनवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०३ ॥

* * *

चतुरधिकशततमः सर्गः

कालका श्रीरामचन्द्रजीको ब्रह्माजीका संदेश सुनाना और श्रीरामका उसे स्वीकार करना

श्रृणु राजन् महासत्त्व यदर्थमहमागतः ।
पितामहेन देवेन प्रेषितोऽस्मि महाबल ॥ १ ॥

महाबली महान् सत्त्वशाली महाराज ! पितामह भगवान् ब्रह्माने जिस उद्देश्यसे मुझे यहाँ भेजा है और जिसके लिये मैं यहाँ आया हूँ; वह सब बताता हूँ; सुनिये ॥ १ ॥

तवाहं पूर्वके भावे पुत्रः परपुरंजय ।
मायासम्भावितो वीर कालः सर्वसमाहरः ॥ २ ॥

शत्रु-नगरीपर विजय पानेवाले वीर ! पूर्वावस्थामें अर्थात् हिरण्यगर्भकी उत्पत्तिके समय मैं मायाद्वारा आपसे उत्पन्न हुआ था, इसलिये आपका पुत्र हूँ । मुझे सर्वसंहारकारी काल कहते हैं ॥ २ ॥

पितामहश्च भगवानाह लोकपतिः प्रभुः ।
समयस्ते कृतः सौम्य लोकान् सम्परिरक्षितुम् ॥ ३ ॥

लोकनाथ प्रभु भगवान् पितामहने कहा है कि 'सौम्य ! आपने लोकोंकी रक्षाके लिये जो प्रतिज्ञा की थी, वह पूरी हो गयी ॥ ३ ॥

संक्षिप्य हि पुरा लोकान् मायया स्वयमेव हि ।
महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः ॥ ४ ॥

'पूर्वकालमें समस्त लोकोंको मायाके द्वारा स्वयं ही अपनेमें लीन करके आपने महासमुद्रके जलमें शयन किया था। फिर इस सृष्टिके प्रारम्भमें सबसे पहले मुझे उत्पन्न किया ॥४॥

भोगवन्तं ततो नागमनन्तमुदकेशयम् ।
मायया जनयित्वा त्वं द्वौ च सत्त्वौ महाबलौ ॥ ५ ॥
मधुं च कैटभं चैव ययोरस्थिचयैर्वृता ।
इयं पर्वतसम्बाधा मेदिनी चाभवत् तदा ॥ ६ ॥

'इसके बाद विशाल फण और शरीरसे युक्त एवं जलमें शयन करनेवाले 'अनन्त' संज्ञक नागको मायाद्वारा प्रकट करके आपने दो महाबली जीवोंको जन्म दिया, जिनका नाम था मधु और कैटभ; इन्हींके अस्थि-समूहोंसे भरी हुई यह पर्वतोंसहित पृथिवी तत्काल प्रकट हुई, जो 'मेदिनी' कहलायी ॥ ५-६ ॥

पद्मे दिव्येऽर्कसंकाशे नाभ्यामुत्पाद्य मामपि ।
प्राजापत्यं त्वया कर्म मयि सर्वं निवेशितम् ॥ ७ ॥

'आपकी नाभिसे सूर्य-तुल्य तेजस्वी दिव्य कमल प्रकट हुआ, जिसमें आपने मुझको भी उत्पन्न किया और प्रजाकी सृष्टि रचनेका सारा कार्यभार मुझपर ही रख दिया ॥ ७ ॥

सोऽहं संन्यस्तभारो हि त्वामुपास्य जगत्पतिम् ।
रक्षां विधत्स्व भूतेषु मम तेजस्करो भवान् ॥ ८ ॥

'जब मुझपर यह भार रख दिया गया, तब मैंने आप जगदीश्वरकी उपासना करके प्रार्थना की—'प्रभो ! आप सम्पूर्ण भूतोंमें रहकर उनकी रक्षा कीजिये; क्योंकि आप ही मुझे तेज (ज्ञान और क्रिया-शक्ति) प्रदान करनेवाले हैं' ॥८॥

ततस्त्वमसि दुर्धर्षात् तस्माद् भावात् सनातनात् ।
रक्षां विधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ॥ ९ ॥

'तब आप मेरा अनुरोध स्वीकार करके प्राणियोंकी रक्षाके लिये अपरिमेय सनातन पुरुषरूपसे जगत्पालक विष्णुके रूपमें प्रकट हुए ॥ ९ ॥

अदित्यां वीर्यवान् पुत्रो भ्रातॄणां वीर्यवर्धनः ।
समुत्पन्नेषु कृत्येषु तेषां साह्याय कल्पसे ॥ १० ॥

'फिर आपने ही अदितिके गर्भसे परम पराक्रमी वामनरूपमें अवतार लिया । तबसे आप अपने भाई इन्द्रादि देवताओंकी शक्ति बढ़ाते और आवश्यकता पड़नेपर उनकी रक्षाके लिये उद्यत रहते हैं ॥ १० ॥

स त्वमुज्जास्यमानासु प्रजासु जगतां वर ।
रावणस्य वधाकाङ्क्षी मानुषेषु मनोऽदधाः ॥ ११ ॥

'जगदीश्वर ! जब रावणके द्वारा प्रजाका विनाश होने लगा, उस समय आपने उस निशाचरका वध करनेकी इच्छासे मनुष्य-शरीरमें अवतार लेनेका निश्चय किया ॥ ११ ॥

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
कृत्वा वासस्य नियमं स्वयमेवात्मना पुरा ॥ १२ ॥

'और स्वयं ही ग्यारह हजार वर्षोंतक मर्त्यलोकमें निवास करनेकी अवधि निश्चित की थी ॥ १२ ॥

स त्वं मनोमयः पुत्रः पूर्णायुर्मानुषेष्विह ।
कालोऽयं ते नरश्रेष्ठ समीपमुपवर्तितुम् ॥ १३ ॥

'नरश्रेष्ठ ! आप मनुष्य-लोकमें अपने संकल्पसे ही किसीके पुत्ररूपमें प्रकट हुए हैं । इस अवतारमें आपने अपनी जितने समय तककी आयु निश्चित की थी, वह पूरी हो गयी; अतः अब आपके लिये यह हमलोगोंके समीप आनेका समय है ॥

यदि भूयो महाराज प्रजा इच्छस्युपासितुम् ।
वस वा वीर भद्रं ते एवमाह पितामहः ॥ १४ ॥
अथ वा विजिगीषा ते सुरलोकाय राघव ।
सनाथा विष्णुना देवा भवन्तु विगतज्वराः ॥ १५ ॥

'वीर महाराज ! यदि और अधिक कालतक यहाँ रहकर प्रजाजनोंका पालन करनेकी इच्छा हो तो आप रह सकते हैं । आपका कल्याण हो । रघुनन्दन ! अथवा यदि परमधाममें पधारनेका विचार हो तो अवश्य आवें । आप विष्णुदेवके स्वधाममें प्रतिष्ठित होनेपर सम्पूर्ण देवता सनाथ एवं निश्चिन्त हो जायँ—ऐसा पितामहने कहा है' ॥ १४-१५ ॥

श्रुत्वा पितामहेनोक्तं वाक्यं कालसमीरितम् ।
राघवः प्रहसन् वाक्यं सर्वसंहारमब्रवीत् ॥ १६ ॥

कालके मुखसे कहे गये पितामह ब्रह्माके संदेशको सुनकर श्रीरघुनाथजी हँसते हुए उस सर्वसंहारी कालसे बोले—॥ १६॥

श्रुत्वा मे देवदेवस्य वाक्यं परममद्भुतम्।
प्रीतिर्हि महती जाता तवागमनसम्भवा॥ १७॥

'काल! देवाधिदेव ब्रह्माजीका यह परम अद्भुत वचन सुननेको मिला; इसलिये तुम्हारे आनेसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है॥ १७॥

त्रयाणामपि लोकानां कार्यार्थं मम सम्भवः।
भद्रं तेऽस्तु गमिष्यामि यत एवाहमागतः॥ १८॥

'तीनों लोकोंके प्रयोजनकी सिद्धिके लिये ही मेरा यह अवतार हुआ था, वह उद्देश्य अब पूरा हो गया; इसलिये तुम्हारा कल्याण हो; अब मैं जहाँसे आया था वहीं चलूँगा॥

हृद्गतो ह्यसि सम्प्राप्तो न मे तत्र विचारणा।
मया हि सर्वकृत्येषु देवानां वशवर्तिना।
स्थातव्यं सर्वसंहार यथा ह्याह पितामहः॥ १९॥

'काल! मैंने मनसे तुम्हारा चिन्तन किया था। उसीके अनुसार तुम यहाँ आये हो; अतः इस विषयको लेकर मेरे मनमें कोई विचार नहीं है। सर्वसंहारकारी काल! मुझे सभी कार्योंमें सदा देवताओंका वशवर्ती होकर ही रहना चाहिये, जैसा कि पितामहका कथन है'॥ १९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुरधिकशततमः सर्गः॥ १०४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ चारवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १०४॥

पञ्चाधिकशततमः सर्गः

दुर्वासाके शापके भयसे लक्ष्मणका नियम भङ्ग करके श्रीरामके पास इनके आगमनका समाचार देनेके लिये जाना, श्रीरामका दुर्वासा मुनिको भोजन कराना और उनके चले जानेपर लक्ष्मणके लिये चिन्तित होना

तथा तयोः संवदतोर्दुर्वासा भगवानृषिः।
रामस्य दर्शनाकाङ्क्षी राजद्वारमुपागमत्॥ १॥

इन दोनोंमें इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि महर्षि दुर्वासा राजद्वारपर आ पहुँचे। वे श्रीरामचन्द्रजीसे मिलना चाहते थे॥ १॥

सोऽभिगम्य तु सौमित्रिमुवाच ऋषिसत्तमः।
रामं दर्शय मे शीघ्रं पुरा मेऽर्थोऽतिवर्तते॥ २॥

उन मुनिश्रेष्ठने सुमित्राकुमार लक्ष्मणके पास जाकर कहा—'तुम शीघ्र ही मुझे श्रीरामचन्द्रजीसे मिला दो। उनसे मिले बिना मेरा एक काम बिगड़ रहा है'॥ २॥

मुनेस्तु भाषितं श्रुत्वा लक्ष्मणः परवीरहा।
अभिवाद्य महात्मानं वाक्यमेतदुवाच ह॥ ३॥

मुनिकी यह बात सुनकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले लक्ष्मणने उन महात्माको प्रणाम करके यह बात कही—॥ ३॥

किं कार्यं ब्रूहि भगवन् को ह्यर्थः किं करोम्यहम्।
व्यग्रो हि राघवो ब्रह्मन् मुहूर्तं परिपाल्यताम्॥ ४॥

'भगवन्! बताइये, आपका कौन-सा काम है? क्या प्रयोजन है? और मैं आपकी कौन-सी सेवा करूँ? ब्रह्मन्! इस समय श्रीरघुनाथजी दूसरे कार्यमें संलग्न हैं; अतः दो घड़ीतक उनकी प्रतीक्षा कीजिये'॥ ४॥

तच्छ्रुत्वा ऋषिशार्दूलः क्रोधेन कलुषीकृतः।
उवाच लक्ष्मणं वाक्यं निर्दहन्निव चक्षुषा॥ ५॥

यह सुनकर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा रोषसे तमतमा उठे और लक्ष्मणकी ओर इस प्रकार देखने लगे, मानो अपनी नेत्राग्निसे उन्हें भस्म कर डालेंगे। साथ ही उनसे इस प्रकार बोले—॥ ५॥

अस्मिन् क्षणे मां सौमित्रे रामाय प्रतिवेदय।
अस्मिन् क्षणे मां सौमित्रे न निवेदयसे यदि।
विषयं त्वां पुरं चैव शपिष्ये राघवं तथा॥ ६॥
भरतं चैव सौमित्रे युष्माकं या च संततिः।
न हि शक्ष्याम्यहं भूयो मन्युं धारयितुं हृदि॥ ७॥

'सुमित्राकुमार! इसी क्षण श्रीरामको मेरे आगमनकी सूचना दो। यदि अभी-अभी उनसे मेरे आगमनका समाचार नहीं निवेदन करोगे तो मैं इस राज्यको, नगरको, तुमको, श्रीरामको, भरतको और तुमलोगोंकी जो संतति है, उसको भी शाप दे दूँगा। मैं पुनः इस क्रोधको अपने हृदयमें धारण नहीं कर सकूँगा'॥ ६-७॥

तच्छ्रुत्वा घोरसंकाशं वाक्यं तस्य महात्मनः।
चिन्तयामास मनसा तस्य वाक्यस्य निश्चयम्॥ ८॥

उन महात्माका यह घोर वचन सुनकर लक्ष्मणने उनकी वाणीसे जो निश्चय प्रकट हो रहा था, उसपर मन-ही-मन विचार किया॥ ८॥

एकस्य मरणं मेऽस्तु मा भूत् सर्वविनाशनम्।
इति बुद्ध्या विनिश्चित्य राघवाय न्यवेदयत्॥ ९॥

'अकेले मेरी ही मृत्यु हो, यह अच्छा है; किंतु सबका विनाश नहीं होना चाहिये' अपनी बुद्धिद्वारा ऐसा निश्चय करके लक्ष्मणने श्रीरघुनाथजीसे दुर्वासाके आगमनका समाचार निवेदन किया॥ ९॥

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा रामः कालं विसृज्य च।
निःसृत्य त्वरितो राजा अत्रेः पुत्रं ददर्श ह॥ १०॥

लक्ष्मणकी बात सुनकर राजा श्रीराम कालको बिदा करके

तुरंत ही निकले और अत्रिपुत्र दुर्वासासे मिले ॥ १० ॥

सोऽभिवाद्य महात्मानं ज्वलन्तमिव तेजसा ।
किं कार्यमिति काकुत्स्थः कृताञ्जलिरभाषत ॥ ११ ॥

अपने तेजसे प्रज्वलित-से होते हुए महात्मा दुर्वासाको प्रणाम करके श्रीरघुनाथजीने हाथ जोड़कर पूछा—'महर्षे ! मेरे लिये क्या आज्ञा है ?' ॥ ११ ॥

तद् वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वा मुनिवरः प्रभुः ।
प्रत्याह रामं दुर्वासाः श्रूयतां धर्मवत्सल ॥ १२ ॥

श्रीरघुनाथजीकी कही हुई उस बातको सुनकर प्रभावशाली मुनिवर दुर्वासा उनसे बोले—'धर्मवत्सल ! सुनिये ॥ १२ ॥

अद्य वर्षसहस्रस्य समाप्तिर्मम राघव ।
सोऽहं भोजनमिच्छामि यथासिद्धं तवानघ ॥ १३ ॥

'निष्पाप रघुनन्दन ! मैंने एक हजार वर्षोंतक उपवास किया । आज मेरे उस व्रतकी समाप्तिका दिन है, इसलिये इस समय आपके यहाँ जो भी भोजन तैयार हो, उसे मैं ग्रहण करना चाहता हूँ' ॥ १३ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं राजा राघवः प्रीतमानसः ।
भोजनं मुनिमुख्याय यथासिद्धमुपाहरत् ॥ १४ ॥

यह सुनकर राजा श्रीरघुनाथजी मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उन मुनिश्रेष्ठको तैयार भोजन परोसा ॥ १४ ॥

स तु भुक्त्वा मुनिश्रेष्ठस्तदन्नममृतोपमम् ।
साधु रामेति सम्भाष्य स्वमाश्रममुपागमत् ॥ १५ ॥

वह अमृतके समान अन्न ग्रहण करके दुर्वासा मुनि तृप्त हुए और श्रीरघुनाथजीको साधुवाद दे अपने आश्रमपर चले आये ॥ १५ ॥

तस्मिन् गते मुनिवरे स्वाश्रमं लक्ष्मणाग्रजः ।
संस्मृत्य कालवाक्यानि ततो दुःखमुपागमत् ॥ १६ ॥

मुनिवर दुर्वासाके अपने आश्रमको चले जानेपर लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीराम कालके वचनोंका स्मरण करके दुखी हो गये ॥ १६ ॥

दुःखेन च सुसंतप्तः स्मृत्वा तद्घोरदर्शनम् ।
अवाङ्मुखो दीनमना व्याहर्तुं न शशाक ह ॥ १७ ॥

भयंकर भावी भ्रातृवियोगके दृश्यको दृष्टिपथमें लानेवाले कालके उस वचनपर विचार करके श्रीरामके मनमें बड़ा दुःख हुआ । उनका मुँह नीचेको झुक गया और वे कुछ बोल न सके ॥ १७ ॥

ततो बुद्ध्या विनिश्चित्य कालवाक्यानि राघवः ।
नैतदस्तीति निश्चित्य तूष्णीमासीन्महायशाः ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् कालके वचनोंपर बुद्धिपूर्वक सोच-विचार करके महायशस्वी श्रीरघुनाथजी इस निर्णयपर पहुँचे कि 'अब यह सब कुछ भी न रहेगा ।' ऐसा सोचकर वे चुप हो रहे ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चाधिकशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०५ ॥

षडधिकशततमः सर्गः

श्रीरामके त्याग देनेपर लक्ष्मणका सशरीर स्वर्गगमन

अवाङ्मुखमथो दीनं दृष्ट्वा सोममिवाप्लुतम् ।
राघवं लक्ष्मणो वाक्यं हृष्टो मधुरमब्रवीत् ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजी राहुग्रस्त चन्द्रमाके समान दीन हो गये थे, उन्हें सिर झुकाये खेद करते देख लक्ष्मणने बड़े हर्षके साथ मधुर वाणीमें कहा— ॥ १ ॥

न संतापं महाबाहो मदर्थं कर्तुमर्हसि ।
पूर्वनिर्माणबद्धा हि कालस्य गतिरीदृशी ॥ २ ॥

'महाबाहो ! आपको मेरे लिये संताप नहीं करना चाहिये; क्योंकि पूर्वजन्मके कर्मोंसे बँधी हुई कालकी गति ऐसी ही है ॥

जहि मां सौम्य विस्रब्धं प्रतिज्ञां परिपालय ।
हीनप्रतिज्ञाः काकुत्स्थ प्रयान्ति नरकं नराः ॥ ३ ॥

'सौम्य ! आप निश्चिन्त होकर मेरा वध कर डालें और ऐसा करके अपनी प्रतिज्ञाका पालन करें । काकुत्स्थ ! प्रतिज्ञा भङ्ग करनेवाले मनुष्य नरकमें पड़ते हैं ॥ ३ ॥

यदि प्रीतिर्महाराज यद्यनुग्राह्यता मयि ।
जहि मां निर्विशङ्कस्त्वं धर्मं वर्धय राघव ॥ ४ ॥

'महाराज ! यदि आपका मुझपर प्रेम है और यदि आप मुझे कृपापात्र समझते हैं तो निःशङ्क होकर मुझे प्राणदण्ड दें । रघुनन्दन ! आप अपने धर्मकी वृद्धि करें' ॥ ४ ॥

लक्ष्मणेन तथोक्तस्तु रामः प्रचलितेन्द्रियः ।
मन्त्रिणः समुपानीय तथैव च पुरोधसम् ॥ ५ ॥
अब्रवीच्च तदा वृत्तं तेषां मध्ये स राघवः ।
दुर्वासोऽभिगमं चैव प्रतिज्ञां तापसस्य च ॥ ६ ॥

लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर श्रीरामकी इन्द्रियाँ चञ्चल हो उठीं—वे धैर्यसे विचलित-से हो गये और मन्त्रियों तथा पुरोहितजीको बुलाकर उन सबके बीचमें वह सारा वृत्तान्त बताने लगे । श्रीरघुनाथजीने दुर्वासाके आगमन और तापसरूपधारी कालके समक्ष की हुई प्रतिज्ञाकी बात भी बतायी ॥

तच्छ्रुत्वा मन्त्रिणः सर्वे सोपाध्यायाः समासत ।
वसिष्ठस्तु महातेजा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ७ ॥

यह सुनकर सब मन्त्री और उपाध्याय चुपचाप बैठे रह

गये (कोई कुछ बोल न सका) । तब महातेजस्वी वसिष्ठजीने यह बात कही—॥ ७ ॥

दृष्टमेतन्महाबाहो क्षयं ते रोमहर्षणम् ।
लक्ष्मणेन वियोगश्च तव राम महायशः ॥ ८ ॥

'महाबाहो ! महायशस्वी श्रीराम ! इस समय जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला विकट विनाश आनेवाला है (तुम्हारे साथ ही बहुत-से प्राणियोंका जो साकेत-गमन होनेवाला है) और लक्ष्मणके साथ जो वियोग हो रहा है, यह सब मैंने तपोबल-द्वारा पहलेसे ही देख लिया है ॥ ८ ॥

त्यजैनं बलवान् कालो मा प्रतिज्ञां वृथा कृथाः ।
प्रतिज्ञायां हि नष्टायां धर्मो हि विलयं व्रजेत् ॥ ९ ॥

'काल बड़ा प्रबल है । तुम लक्ष्मणका परित्याग कर दो। प्रतिज्ञा झूठी न करो; क्योंकि प्रतिज्ञाके नष्ट होनेपर धर्मका लोप हो जायगा ॥ ९ ॥

ततो धर्मे विनष्टे तु त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
सदेवर्षिगणं सर्वं विनश्येत् तु न संशयः ॥ १० ॥

'धर्मका लोप होनेपर चराचर प्राणियों, देवताओं तथा ऋषियोंसहित सारी त्रिलोकी नष्ट हो जायगी । इसमें संशय नहीं है ॥ १० ॥

स त्वं पुरुषशार्दूल त्रैलोक्यस्याभिपालनात् ।
लक्ष्मणेन विना चाद्य जगत् स्वस्थं कुरुष्व ह ॥ ११ ॥

'अतः पुरुषसिंह ! तुम त्रिभुवनकी रक्षापर दृष्टि रखते हुए लक्ष्मणको त्याग दो और उनके बिना अब धर्मपूर्वक स्थित रहकर सम्पूर्ण जगत्‌को स्वस्थ एवं सुखी बनाओ' ॥

तेषां तत् समवेतानां वाक्यं धर्मार्थसंहितम् ।
श्रुत्वा परिषदो मध्ये रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १२ ॥

वहाँ एकत्र हुए मन्त्री, पुरोहित आदि सब सभासदोंकी उस सभाके बीच वसिष्ठ मुनिकी कही हुई वह बात सुनकर श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—॥ १२ ॥

विसर्जये त्वां सौमित्रे मा भूद् धर्मविपर्ययः ।
त्यागो वधो वा विहितः साधूनां ह्युभयं समम् ॥ १३ ॥

'सुमित्रानन्दन ! मैं तुम्हारा परित्याग करता हूँ, जिससे धर्मका लोप न हो । साधु पुरुषोंका त्याग किया जाय अथवा वध—दोनों समान ही हैं' ॥ १३ ॥

रामेण भाषिते वाक्ये बाष्पव्याकुलितेन्द्रियः ।
लक्ष्मणस्त्वरितं प्रायात् स्वगृहं न विवेश ह ॥ १४ ॥

श्रीरामके इतना कहते ही लक्ष्मणके नेत्रोंमें आँसू भर आये । वे तुरंत वहाँसे चल दिये । अपने घर तक नहीं गये ॥ १४ ॥

स गत्वा सरयूतीरमुपस्पृश्य कृताञ्जलिः ।
निगृह्य सर्वस्रोतांसि निःश्वासं न मुमोच ह ॥ १५ ॥

सरयूके किनारे जाकर उन्होंने आचमन किया और हाथ जोड़ सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें करके प्राणवायुको रोक लिया ॥ १५ ॥

अनिःश्वसन्तं युक्तं तं सशक्राः साप्सरोगणाः ।
देवाः सर्षिगणाः सर्वे पुष्पैरभ्यकिरंस्तदा ॥ १६ ॥

लक्ष्मणने योगयुक्त होकर श्वास लेना बंद कर दिया है—यह देख इन्द्र आदि सब देवता, ऋषि और अप्सराएँ उस समय उनपर फूलोंकी वर्षा करने लगीं ॥ १६ ॥

अदृश्यं सर्वमनुजैः सशरीरं महाबलम् ।
प्रगृह्य लक्ष्मणं शक्रस्त्रिदिवं संविवेश ह ॥ १७ ॥

महाबली लक्ष्मण अपने शरीरके साथ ही सब मनुष्योंकी दृष्टिसे ओझल हो गये । उस समय देवराज इन्द्र उन्हें साथ लेकर स्वर्गमें चले गये ॥ १७ ॥

ततो विष्णोश्चतुर्भागमागतं सुरसत्तमाः ।
हृष्टाः प्रमुदिताः सर्वे पूजयन्ति स्म राघवम् ॥ १८ ॥

भगवान् विष्णुके चतुर्थ अंश लक्ष्मणको आया देख सभी देवता हर्षसे भर गये और उन सबने प्रसन्नतापूर्वक लक्ष्मणकी पूजा की ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षडधिकशततमः सर्गः ॥ १०६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ छवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०६ ॥

सप्ताधिकशततमः सर्गः

वसिष्ठजीके कहनेसे श्रीरामका पुरवासियोंको अपने साथ ले जानेका विचार तथा कुश और लवका राज्याभिषेक करना

विसृज्य लक्ष्मणं रामो दुःखशोकसमन्वितः ।
पुरोधसं मन्त्रिणश्च नैगमांश्चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥

लक्ष्मणका त्याग करके श्रीराम दुःख शोकमें मग्न हो गये तथा पुरोहित, मन्त्री और महाजनोंसे इस प्रकार बोले—॥ १ ॥

अद्य राज्येऽभिषेक्ष्यामि भरतं धर्मवत्सलम् ।
अयोध्यायाः पतिं वीरं ततो यास्याम्यहं वनम् ॥ २ ॥

'आज मैं अयोध्याके राज्यपर धर्मवत्सल वीर भाई भरतका राजाके पदपर अभिषेक करूँगा । उसके बाद वनको चला जाऊँगा ॥ २ ॥

प्रवेशयत सम्भारान् मा भूत् कालात्ययो यथा ।
अद्यैवाहं गमिष्यामि लक्ष्मणेन गतां गतिम् ॥ ३ ॥

'शीघ्र ही सब सामग्री जुटाकर ले आओ । अब अधिक समय नहीं बीतना चाहिये । मैं आज ही लक्ष्मणके पथका अनुसरण करूँगा' ॥ ३ ॥

तच्छ्रुत्वा राघवेणोक्तं सर्वाः प्रकृतयो भृशम्।
मूर्धभिः प्रणता भूमौ गतसत्त्वा इवाभवन्॥ ४॥

श्रीरामचन्द्रजीकी यह बात सुनकर प्रजावर्गके सभी लोग धरतीपर माथा टेककर पड़ गये और प्राणहीन-से हो गये ॥४॥

भरतश्च विसंज्ञोऽभूच्छ्रुत्वा राघवभाषितम्।
राज्यं विगर्हयामास वचनं चेदमब्रवीत्॥ ५॥

श्रीरघुनाथजीकी वह बात सुनकर भरतका तो होश ही उड़ गया। वे राज्यकी निन्दा करने लगे और इस प्रकार बोले—॥ ५॥

सत्येनाहं शपे राजन् स्वर्गभोगेन चैव हि।
न कामये यथा राज्यं त्वां विना रघुनन्दन॥ ६॥

'राजन्! रघुनन्दन! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि आपके बिना मुझे राज्य नहीं चाहिये, स्वर्गका भोग भी नहीं चाहिये॥ ६॥

इमौ कुशीलवौ राजन्नभिषिच्य नराधिप।
कोशलेषु कुशं वीरमुत्तरेषु तथा लवम्॥ ७॥

'राजन्! नरेश्वर! आप इन कुश और लवका राज्याभिषेक कीजिये। दक्षिण कोशलमें कुशको और उत्तर कोशलमें लवको राजा बनाइये॥ ७॥

शत्रुघ्नस्य च गच्छन्तु दूतास्त्वरितविक्रमाः।
इदं गमनमस्माकं शीघ्रमाख्यातु मा चिरम्॥ ८॥

'तेज चलनेवाले दूत शीघ्र ही शत्रुघ्नके पास भी जायँ और उन्हें हमलोगोंकी इस महायात्राका वृत्तान्त सुनायें। इसमें विलम्ब नहीं होना चाहिये'॥ ८॥

तच्छ्रुत्वा भरतेनोक्तं दृष्ट्वा चापि ह्यधोमुखान्।
पौरान् दुःखेन संतप्तान् वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत्॥ ९॥

भरतकी बात सुनकर तथा पुरवासियोंको नीचे मुख किये दुःखसे संतप्त होते देख महर्षि वसिष्ठने कहा—॥ ९॥

वत्स राम इमाः पश्य धरणिं प्रकृतीर्गताः।
ज्ञात्वैषामीप्सितं कार्यं मा चैषां विप्रियं कृथाः॥ १०॥

'वत्स श्रीराम! पृथ्वीपर पड़े हुए इन प्रजाजनोंकी ओर देखो। इनका अभिप्राय जानकर इसीके अनुसार कार्य करो। इनकी इच्छाके विपरीत करके इन बेचारोंका दिल न दुखाओ'॥ १०॥

वसिष्ठस्य तु वाक्येन उत्थाप्य प्रकृतीजनम्।
किं करोमीति काकुत्स्थः सर्वान् वचनमब्रवीत्॥ ११॥

वसिष्ठजीके कहनेसे श्रीरघुनाथजीने प्रजाजनोंको उठाया और सबसे पूछा—'मैं आपलोगोंका कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ?'॥ ११॥

ततः सर्वाः प्रकृतयो रामं वचनमब्रुवन्।
गच्छन्तमनुगच्छामो यत्र राम गमिष्यसि॥ १२॥

तब प्रजावर्गके सभी लोग श्रीरामसे बोले—'रघुनन्दन! आप जहाँ भी जायँगे, आपके पीछे-पीछे हम भी वहीं चलेंगे॥ १२॥

पौरेषु यदि ते प्रीतिर्यदि स्नेहो ह्यनुत्तमः।
सपुत्रदाराः काकुत्स्थ समं गच्छाम सत्पथम्॥ १३॥

'काकुत्स्थ! यदि पुरवासियोंपर आपका प्रेम है, यदि हमपर आपका परम उत्तम स्नेह है तो हमें साथ चलनेकी आज्ञा दीजिये। हम अपने स्त्री-पुत्रोंसहित आपके साथ ही सन्मार्गपर चलनेको उद्यत हैं॥ १३॥

तपोवनं वा दुर्गं वा नदीमम्भोनिधिं तथा।
वयं ते यदि न त्याज्याः सर्वान्नो नय ईश्वर॥ १४॥

'स्वामिन्! आप तपोवनमें या किसी दुर्गम स्थानमें अथवा नदी या समुद्रमें—जहाँ कहीं भी जायँ, हम सबको साथ ले चलें। यदि आप हमें त्याग देने योग्य नहीं मानते हैं तो ऐसा ही करें॥ १४॥

एषा नः परमा प्रीतिरेष नः परमो वरः।
हृद्गता नः सदा प्रीतिस्तवानुगमने नृप॥ १५॥

'यही हमारे ऊपर आपकी सबसे बड़ी कृपा होगी और यही हमारे लिये आपका परम उत्तम वर होगा। आपके पीछे चलनेमें ही हमें सदा हार्दिक प्रसन्नता होगी'॥ १५॥

पौराणां दृढभक्तिं च बाढमित्येव सोऽब्रवीत्।
स्वकृतान्तं चान्ववेक्ष्य तस्मिन्नहनि राघवः॥ १६॥
कोशलेषु कुशं वीरमुत्तरेषु तथा लवम्।
अभिषिच्य महात्मानावुभौ रामः कुशीलवौ॥ १७॥
अभिषिक्तौ सुतावङ्के प्रतिष्ठाप्य पुरे ततः।
परिष्वज्य महाबाहुर्मूर्ध्न्युपाघ्राय चासकृत्॥ १८॥

पुरवासियोंकी दृढ़ भक्ति देख श्रीरामने 'तथास्तु' कहकर उनकी इच्छाका अनुमोदन किया और अपने कर्तव्यका निश्चय करके श्रीरघुनाथजीने उसी दिन दक्षिण कोशलके राज्यपर वीर कुशको और उत्तर कोशलके राजसिंहासनपर लवको अभिषिक्त कर दिया। अभिषिक्त हुए अपने उन दोनों महामनस्वी पुत्र कुश और लवको गोदमें बिठाकर उनका गाढ आलिङ्गन करके महाबाहु श्रीरामने बारंबार उन दोनोंके मस्तक सूँघे; फिर उन्हें अपनी-अपनी राजधानीमें भेज दिया १६—१८

रथानां तु सहस्राणि नागानामयुतानि च।
दशायुतानि चाश्वानामेकैकस्य धनं ददौ॥ १९॥

उन्होंने अपने एक-एक पुत्रको कई हजार रथ, दस हजार हाथी और एक लाख घोड़े दिये॥ १९॥

बहुरत्नौ बहुधनौ हृष्टपुष्टजनावृतौ।
स्वे पुरे प्रेषयामास भ्रातरौ तौ कुशीलवौ॥ २०॥

दोनों भाई कुश और लव प्रचुर रत्न और धनसे सम्पन्न हो गये। वे हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे घिरे रहने लगे। उन दोनोंको श्रीरामने उनकी राजधानियोंमें भेज दिया॥ २०॥

अभिषिच्य ततो वीरौ प्रस्थाप्य स्वपुरे तदा।

दूतान् सम्प्रेषयामास शत्रुघ्नाय महात्मने ॥ २१ ॥

इस प्रकार उन दोनों वीरोंको अभिषिक्त करके अपने-अपने नगरमें भेजकर श्रीरघुनाथजीने महात्मा शत्रुघ्नके पास दूत भेजे ॥ २१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्ताधिकशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ सातवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०७ ॥

* * *

अष्टाधिकशततमः सर्गः

श्रीरामचन्द्रजीका भाइयों, सुग्रीव आदि वानरों तथा रीछोंके साथ परमधाम जानेका निश्चय और विभीषण, हनुमान्, जाम्बवान्, मैन्द एवं द्विविदको इस भूतलपर ही रहनेका आदेश देना

ते दूता रामवाक्येन चोदिता लघुविक्रमाः ।
प्रजग्मुर्मधुरां शीघ्रं चक्रुर्वासं न चाध्वनि ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर शीघ्रगामी दूत शीघ्र ही मधुरापुरीको चल दिये । उन्होंने मार्गमें कहीं भी पड़ाव नहीं डाला ॥ १ ॥

ततस्त्रिभिरहोरात्रैः सम्प्राप्य मधुरामथ ।
शत्रुघ्नाय यथातत्त्वमाचख्युः सर्वमेव तत् ॥ २ ॥

लगातार तीन दिन और तीन रात चलकर वे मधुरा पहुँचे और अयोध्याकी सारी बातें उन्होंने शत्रुघ्नसे यथार्थतः कह सुनायीं ॥ २ ॥

लक्ष्मणस्य परित्यागं प्रतिज्ञां राघवस्य च ।
पुत्रयोरभिषेकं च पौरानुगमनं तथा ॥ ३ ॥
कुशस्य नगरी रम्या विन्ध्यपर्वतरोधसि ।
कुशावतीति नाम्ना सा कृता रामेण धीमता ॥ ४ ॥

श्रीरामकी प्रतिज्ञा, लक्ष्मणका परित्याग, श्रीरामके दोनों पुत्रोंका राज्याभिषेक और पुरवासियोंका श्रीरामके साथ जानेका निश्चय आदि सब बातें बताकर दूतोंने यह भी कहा कि 'परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामने कुशके लिये विन्ध्यपर्वतके किनारे कुशावती नामक रमणीय नगरीका निर्माण कराया है ॥ ३-४ ॥

श्रावस्तीति पुरी रम्या श्राविता च लवस्य ह ।
अयोध्यां विजनां कृत्वा राघवो भरतस्तथा ॥ ५ ॥
स्वर्गस्य गमनोद्योगं कृतवन्तौ महारथौ ।
एवं सर्वं निवेद्याशु शत्रुघ्नाय महात्मने ॥ ६ ॥
विरेमुस्ते ततो दूतास्त्वर राजेति चाब्रुवन् ।

'इसी तरह लवके लिये श्रावस्ती नामसे प्रसिद्ध सुन्दर पुरी बसायी है । श्रीरघुनाथजी और भरतजी दोनों महारथी वीर अयोध्याको सूनी करके साकेतधामको जानेके लिये उद्योग कर रहे हैं ।' इस प्रकार महात्मा शत्रुघ्नको शीघ्रतापूर्वक सब बातें बताकर दूतोंने कहा—'राजन् ! शीघ्रता कीजिये' इतना कहकर वे चुप हो गये ॥ ५—६½ ॥

तच्छ्रुत्वा घोरसंकाशं कुलक्षयमुपस्थितम् ॥ ७ ॥
प्रकृतीस्तु समानीय काञ्चनं च पुरोधसम् ।
तेषां सर्वं यथावृत्तमब्रवीद् रघुनन्दनः ॥ ८ ॥

अपने कुलका भयंकर संहार उपस्थित हुआ सुनकर रघुनन्दन शत्रुघ्नने समस्त प्रजा तथा काञ्चन नामक पुरोहितको बुलाया और उनसे सब बातें यथावत् कह सुनायीं ॥ ७-८ ॥

आत्मनश्च विपर्यासं भविष्यं भ्रातृभिः सह ।
ततः पुत्रद्वयं वीरः सोऽभ्यषिञ्चन्नराधिपः ॥ ९ ॥

उन्होंने यह भी बताया कि भाइयोंके साथ मेरे शरीरका भी वियोग होनेवाला है । इसके बाद वीर राजा शत्रुघ्नने अपने दोनों पुत्रोंका राज्याभिषेक किया ॥ ९ ॥

सुबाहुर्मधुरां लेभे शत्रुघाती च वैदिशम् ।
द्विधा कृत्वा तु तां सेनां माधुरीं पुत्रयोर्द्वयोः ।
धनं च युक्तं कृत्वा वै स्थापयामास पार्थिवः ॥ १० ॥

सुबाहुने मधुराका राज्य पाया और शत्रुघातीने विदिशाका । मधुराकी सेनाके दो भाग करके राजा शत्रुघ्नने दोनों पुत्रोंको बाँट दिये तथा बाँटनेके योग्य धनका भी विभाजन करके उन दोनोंको दे दिया और उन्हें अपनी-अपनी राजधानीमें स्थापित कर दिया ॥ १० ॥

सुबाहुं मधुरायां च वैदिशे शत्रुघातिनम् ।
ययौ स्थाप्य तदायोध्यां रथेनैकेन राघवः ॥ ११ ॥

इस प्रकार सुबाहुको मधुरामें तथा शत्रुघातीको विदिशामें स्थापित करके रघुकुलनन्दन शत्रुघ्न एकमात्र रथके द्वारा अयोध्याके लिये प्रस्थित हुए ॥ ११ ॥

स ददर्श महात्मानं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
सूक्ष्मक्षौमाम्बरधरं मुनिभिः सार्धमक्षयैः ॥ १२ ॥

वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा महात्मा श्रीराम अपने तेजसे प्रज्वलित अग्निके समान उद्दीप्त हो रहे हैं । उनके शरीरपर महीन रेशमी वस्त्र शोभा पा रहा है तथा वे अविनाशी महर्षियोंके साथ विराजमान हैं ॥ १२ ॥

सोऽभिवाद्य ततो रामं प्राञ्जलिः प्रयतेन्द्रियः ।
उवाच वाक्यं धर्मज्ञं धर्ममेवानुचिन्तयन् ॥ १३ ॥

निकट जा हाथ जोड़कर उन्होंने श्रीरघुनाथजीको प्रणाम किया और धर्मका चिन्तन करते हुए इन्द्रियोंको काबूमें करके वे धर्मके ज्ञाता श्रीरामसे बोले— ॥ १३ ॥

कृत्वाभिषेकं सुतयोर्द्वयो राघवनन्दन।
तवानुगमने राजन् विद्धि मां कृतनिश्चयम् ॥ १४ ॥

'रघुकुलनन्दन! मैं अपने दोनों पुत्रोंका राज्याभिषेक करके आया हूँ। राजन्! आप मुझे भी अपने साथ चलनेके दृढ़ निश्चयसे युक्त समझें ॥ १४ ॥

न चान्यदद्य वक्तव्यमतो वीर न शासनम्।
विहन्यमानमिच्छामि मद्विधेन विशेषतः ॥ १५ ॥

'वीर! आज इसके विपरीत आप मुझसे और कुछ न कहियेगा; क्योंकि उससे बढ़कर मेरे लिये दूसरा कोई दण्ड न होगा। मैं नहीं चाहता कि किसीके विशेषतः मुझ-जैसे सेवकके द्वारा आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन हो' ॥ १५ ॥

तस्य तां बुद्धिमक्लीबां विज्ञाय रघुनन्दनः।
बाढमित्येव शत्रुघ्नं रामो वाक्यमुवाच ह ॥ १६ ॥

शत्रुघ्नका यह दृढ़ विचार जानकर श्रीरघुनाथजीने उनसे कहा—'बहुत अच्छा' ॥ १६ ॥

तस्य वाक्यस्य वाक्यान्ते वानराः कामरूपिणः।
ऋक्षराक्षससङ्घाश्च समापेतुरनेकशः ॥ १७ ॥

उनकी यह बात समाप्त होते ही इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानर, रीछ और राक्षसोंके समुदाय बहुत बड़ी संख्यामें वहाँ आ पहुँचे ॥ १७ ॥

सुग्रीवं ते पुरस्कृत्य सर्व एव समागताः।
तं रामं द्रष्टुमनसः स्वर्गायाभिमुखं स्थितम् ॥ १८ ॥

साकेत-धामको जानेके लिये उद्यत हुए श्रीरामके दर्शनकी इच्छा मनमें लिये वे सभी वानर सुग्रीवको आगे करके वहाँ पधारे थे ॥ १८ ॥

देवपुत्रा ऋषिसुता गन्धर्वाणां सुतास्तथा।
रामक्षयं विदित्वा ते सर्व एव समागताः ॥ १९ ॥
ते राममभिवाद्योचुः सर्वे वानरराक्षसाः।

उनमेंसे कितने ही देवताओंके पुत्र थे, कितने ही ऋषियोंके बालक थे और कितने ही गन्धर्वोंसे उत्पन्न हुए थे। श्रीरघुनाथजीके लीलासंवरणका समय जानकर वे सब-के-सब वहाँ आये थे। उक्त सभी वानर और राक्षस श्रीरामको प्रणाम करके बोले—॥ १९½ ॥

तवानुगमने राजन् सम्प्राप्ताः स्म समागताः ॥ २० ॥
यदि राम विनास्माभिर्गच्छेस्त्वं पुरुषोत्तम।
यमदण्डमिवोद्यम्य त्वया स्म विनिपातिताः ॥ २१ ॥

'राजन्! हम भी आपके साथ चलनेका निश्चय लेकर यहाँ आये हैं। पुरुषोत्तम श्रीराम! यदि आप हमें साथ लिये बिना ही चले जायँगे तो हम यह समझेंगे कि आपने यमदण्ड उठाकर हमें मार गिराया है' ॥ २०-२१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे रामं सुग्रीवोऽपि महाबलः।
प्रणम्य विधिवद् वीरं विज्ञापयितुमुद्यतः ॥ २२ ॥

इसी बीचमें महाबली सुग्रीव भी वीर श्रीरामको विधिपूर्वक प्रणाम करके अपना अभिप्राय निवेदन करनेके लिये उद्यत हो बोले—॥ २२ ॥

अभिषिच्याङ्गदं वीरमागतोऽस्मि नरेश्वर।
तवानुगमने राजन् विद्धि मां कृतनिश्चयम् ॥ २३ ॥

'नरेश्वर! मैं वीर अङ्गदका राज्याभिषेक करके आया हूँ। आप समझ लें कि मेरा भी आपके साथ चलनेका दृढ़ निश्चय है' ॥ २३ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा रामो रमयतां वरः।
वानरेन्द्रमथोवाच मैत्रं तस्यानुचिन्तयन् ॥ २४ ॥

उनकी यह बात सुनकर मनको रमानेवाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ श्रीरामने वानरराज सुग्रीवकी मित्रताका विचार करके उनसे कहा—॥ २४ ॥

सखे शृणुष्व सुग्रीव न त्वयाहं विनाकृतः।
गच्छेयं देवलोकं वा परमं वा पदं महत् ॥ २५ ॥

'सखे सुग्रीव! मेरी बात सुनो। मैं तुम्हारे बिना देवलोकमें और महान् परमपद या परमधाममें भी नहीं जा सकता' ॥ २५ ॥

तैरेवमुक्तः काकुत्स्थो बाढमित्यब्रवीत् स्मयन्।
विभीषणमथोवाच राक्षसेन्द्रं महायशाः ॥ २६ ॥

पूर्वोक्त वानरों और राक्षसोंकी भी बात सुनकर महायशस्वी श्रीरघुनाथजी 'बहुत अच्छा' कहकर मुस्कराये और राक्षसराज विभीषणसे बोले—॥ २६ ॥

यावत् प्रजा धरिष्यन्ति तावत् त्वं वै विभीषण।
राक्षसेन्द्र महावीर्य लङ्कास्थः स्वं धरिष्यसि ॥ २७ ॥

'महापराक्रमी राक्षसराज विभीषण! जबतक संसारकी प्रजा जीवन धारण करेगी, तबतक तुम भी लङ्कामें रहकर अपने शरीरको धारण करोगे ॥ २७ ॥

यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत् तिष्ठति मेदिनी।
यावच्च मत्कथा लोके तावद् राज्यं तवास्त्विह ॥ २८ ॥

'जबतक चन्द्रमा और सूर्य रहेंगे, जबतक पृथ्वी रहेगी और जबतक संसारमें मेरी कथा प्रचलित रहेगी, तबतक इस भूतलपर तुम्हारा राज्य बना रहेगा' ॥ २८ ॥

शासितश्च सखित्वेन कार्यं ते मम शासनम् ।
प्रजाः संरक्ष धर्मेण नोत्तरं वक्तुमर्हसि ॥ २९ ॥

‘मैंने मित्रभावसे ये बातें तुमसे कही हैं । तुम्हें मेरी आज्ञाका पालन करना चाहिये । तुम धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा करो । इस समय मैंने जो कुछ कहा है, तुम्हें उसका प्रतिवाद नहीं करना चाहिये ॥ २९ ॥

किंचान्यद् वक्तुमिच्छामि राक्षसेन्द्र महाबल ।
आराधय जगन्नाथमिक्ष्वाकुकुलदैवतम् ॥ ३० ॥
आराधनीयमनिशं देवैरपि सवासवैः ।

‘महाबली राक्षसराज ! इसके सिवा मैं तुमसे एक बात और कहना चाहता हूँ । हमारे इक्ष्वाकुकुलके देवता हैं भगवान् जगन्नाथ (श्रीशेषशायी भगवान् विष्णु) । इन्द्र आदि देवता भी उनकी निरन्तर आराधना करते रहते हैं । तुम भी सदा उनकी पूजा करते रहना’ ॥ ३०½ ॥

तथेति प्रतिजग्राह रामवाक्यं विभीषणः ॥ ३१ ॥
राजा राक्षसमुख्यानां राघवाज्ञामनुस्मरन् ।

राक्षसराज विभीषणने श्रीरघुनाथजीकी इस आज्ञाको अपने हृदयमें धारण किया और ‘बहुत अच्छा’ कहकर उसका पालन स्वीकार किया ॥ ३१½ ॥

तमेवमुक्त्वा काकुत्स्थो हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ ३२ ॥
जीविते कृतबुद्धिस्त्वं मा प्रतिज्ञां वृथा कृथाः ।

विभीषणसे ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्‌जीसे बोले—‘तुमने दीर्घकालतक जीवित रहनेका निश्चय किया है । अपनी इस प्रतिज्ञाको व्यर्थ न करो ॥ ३२½ ॥

मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर ॥ ३३ ॥
तावद् रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन् ।

‘हरीश्वर ! जबतक संसारमें मेरी कथाओंका प्रचार रहे, तबतक तुम भी मेरी आज्ञाका पालन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक विचरते रहो’ ॥ ३३½ ॥

एवमुक्तस्तु हनुमान् राघवेण महात्मना ॥ ३४ ॥
वाक्यं विज्ञापयामास परं हर्षमवाप च ।

महात्मा श्रीरघुनाथजीके ऐसा कहनेपर हनुमान्‌जीको बड़ा हर्ष हुआ और वे इस प्रकार बोले—॥ ३४½ ॥

यावत् तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी ॥ ३५ ॥
तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन् ।

‘भगवन् ! संसारमें जबतक आपकी पावन कथाका प्रचार रहेगा, तबतक आपके आदेशका पालन करता हुआ मैं इस पृथ्वीपर ही रहूँगा’ ॥ ३५½ ॥

जाम्बवन्तं तथोक्त्वा तु वृद्धं ब्रह्मसुतं तदा ॥ ३६ ॥
मैन्दं च द्विविदं चैव पञ्च जाम्बवता सह ।
यावत् कलिश्च सम्प्राप्तस्तावज्जीवत सर्वदा ॥ ३७ ॥

इसके बाद भगवान्‌ने ब्रह्माजीके पुत्र बूढ़े जाम्बवान् तथा मैन्द और द्विविदसे भी कहा—‘जाम्बवान्‌सहित तुम पाँचों व्यक्ति (जाम्बवान्, विभीषण, हनुमान्, मैन्द और द्विविद) तबतक जीवित रहो, जबतक कि प्रलय एवं कलियुग न आ जाय’ (इनमेंसे हनुमान् और विभीषण तो प्रलयकालतक रहनेवाले हैं और शेष तीन व्यक्ति कलि और द्वापरकी संधिमें श्रीकृष्णावतारके समय मारे गये या मर गये) ॥ ३६-३७ ॥

तानेवमुक्त्वा काकुत्स्थः सर्वांस्तानृक्षवानरान् ।
उवाच बाढं गच्छध्वं मया सार्धं यथोदितम् ॥ ३८ ॥

उन सबसे ऐसा कहकर श्रीरघुनाथजीने शेष सभी रीछों और वानरोंसे कहा—‘बहुत अच्छा, तुमलोगोंकी बातें मुझे स्वीकार हैं । तुम सब अपने कथनानुसार मेरे साथ चलो’ ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टाधिकशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ आठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०८ ॥

* * *

नवाधिकशततमः सर्गः

परमधाम जानेके लिये निकले हुए श्रीरामके साथ समस्त अयोध्यावासियोंका प्रस्थान

प्रभातायां तु शर्वर्यां पृथुवक्षा महायशाः ।
रामः कमलपत्राक्षः पुरोधसमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

तदनन्तर रात बीतनेपर जब सबेरा हुआ, तब विशाल वक्षःस्थलवाले महायशस्वी कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी पुरोहितसे बोले—॥ १ ॥

अग्निहोत्रं व्रजत्वग्रे दीप्यमानं सह द्विजैः ।

वाजपेयातपत्रं च शोभमानं महापथे ॥ २ ॥

'मेरे 'अग्निहोत्रकी प्रज्वलित आग ब्राह्मणोंके साथ आगे-आगे चले । महाप्रयाणके पथपर इस यात्राके समय मेरे वाजपेय यज्ञका सुन्दर छत्र भी चलना चाहिये' ॥ २ ॥

ततो वसिष्ठस्तेजस्वी सर्वं निरवशेषतः ।
चकार विधिवद् धर्मं माहाप्रास्थानिकं विधिम् ॥ ३ ॥

उनके इस प्रकार कहनेपर तेजस्वी वसिष्ठ मुनिने महाप्रस्थानकालके लिये उचित समस्त धार्मिक क्रियाओंका विधिपूर्वक पूर्णतः अनुष्ठान किया ॥ ३ ॥

ततः सूक्ष्माम्बरधरो ब्रह्ममावर्तयन् परम् ।
कुशान् गृहीत्वा पाणिभ्यां सरयूं प्रययावथ ॥ ४ ॥

फिर भगवान् श्रीराम सूक्ष्म वस्त्र धारण किये दोनों हाथोंमें कुश लेकर परब्रह्मके प्रतिपादक वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए सरयूनदीके तटपर चले ॥ ४ ॥

अव्याहरन् क्वचित् किंचिन्निश्चेष्टो निःसुखः पथि ।
निर्जगाम गृहात् तस्माद् दीप्यमानो यथांशुमान् ॥ ५ ॥

उस समय वे वेदपाठके सिवा कहीं किसीसे और कोई बात नहीं करते थे । चलनेके अतिरिक्त उनमें कोई दूसरी चेष्टा नहीं दिखायी देती थी तथा वे लौकिक सुखका परित्याग करके देदीप्यमान सूर्यकी भाँति प्रकाशित होते हुए घरसे निकले थे और गन्तव्य पथपर बढ़ रहे थे ॥ ५ ॥

रामस्य दक्षिणे पार्श्वे सपद्मा श्रीरुपाश्रिता ।
सव्येऽपि च मही देवी व्यवसायस्तथाग्रतः ॥ ६ ॥

भगवान् श्रीरामके दाहिने पार्श्वमें कमल हाथमें लिये श्रीदेवी उपस्थित थीं । वामभागमें भूदेवी विराजमान थीं तथा आगे-आगे उनकी व्यवसाय (संहार)-शक्ति चल रही थी ॥

शरा नानाविधाश्चापि धनुरायत्तमुत्तमम् ।
तथायुधाश्च ते सर्वे ययुः पुरुषविग्रहाः ॥ ७ ॥

नाना प्रकारके बाण, विशाल एवं उत्तम धनुष तथा दूसरे-दूसरे अस्त्र-शस्त्र—सभी पुरुष-शरीर धारण करके भगवान्के साथ चले ॥ ७ ॥

वेदा ब्राह्मणरूपेण गायत्री सर्वरक्षिणी ।
ओङ्कारोऽथ वषट्कारः सर्वे राममनुव्रताः ॥ ८ ॥

चारों वेद ब्राह्मणका रूप धारण करके चल रहे थे । सबकी रक्षा करनेवाली गायत्री देवी, ओंकार और वषट्कार सभी भक्तिभावसे श्रीरामका अनुसरण करते थे ॥ ८ ॥

ऋषयश्च महात्मानः सर्व एव महीसुराः ।
अन्वगच्छन् महात्मानं स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥ ९ ॥

महात्मा ऋषि तथा समस्त ब्राह्मण भी ब्रह्मलोकके खुले हुए द्वारस्वरूप परमात्मा श्रीरामके पीछे-पीछे गये ॥ ९ ॥

तं यान्तमनुगच्छन्ति ह्यन्तःपुरचराः स्त्रियः ।
सवृद्धबालदासीकाः सवर्षवरकिंकराः ॥ १० ॥

अन्तःपुरकी स्त्रियाँ भी बालकों, वृद्धों, दासियों, खोजों और सेवकोंके साथ निकलकर सरयूतटकी ओर जाते हुए श्रीरामके पीछे-पीछे जा रही थीं ॥ १० ॥

सान्तःपुरश्च भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ ।
रामं गतिमुपागम्य साग्निहोत्रमनुव्रताः ॥ ११ ॥

भरत और शत्रुघ्न अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ अपने आश्रयस्वरूप भगवान् श्रीरामके, जो अग्निहोत्रके साथ जा रहे थे, पीछे-पीछे गये ॥ ११ ॥

ते च सर्वे महात्मानः साग्निहोत्राः समागताः ।
सपुत्रदाराः काकुत्स्थमनुजग्मुर्महामतिम् ॥ १२ ॥

वे सब महामनस्वी श्रेष्ठ पुरुष एवं ब्राह्मण अग्निहोत्रकी अग्नि तथा स्त्री-पुत्रोंके साथ इस महायात्रामें सम्मिलित हो परम बुद्धिमान् श्रीरघुनाथजीका अनुगमन कर रहे थे ॥ १२ ॥

मन्त्रिणो भृत्यवर्गाश्च सपुत्रपशुबान्धवाः ।
सर्वे सहानुगा राममन्वगच्छन् प्रहृष्टवत् ॥ १३ ॥

समस्त मन्त्री और भृत्यवर्ग भी अपने पुत्रों, पशुओं, बन्धुओं तथा अनुचरोंसहित हर्षपूर्वक श्रीरामके पीछे-पीछे जा रहे थे ॥ १३ ॥

ततः सर्वाः प्रकृतयो हृष्टपुष्टजनावृताः ।
गच्छन्तमनुगच्छन्ति राघवं गुणरञ्जिताः ॥ १४ ॥
ततः सस्त्रीपुमांसस्ते सपक्षिपशुबान्धवाः ।
राघवस्यानुगाः सर्वे हृष्टा विगतकल्मषाः ॥ १५ ॥

हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरे हुए समस्त प्रजाजन श्रीरघुनाथजीके गुणोंपर मुग्ध थे; इसलिये वे स्त्री, पुरुष, पशु-पक्षी तथा बन्धु-बान्धवोंसहित उस महायात्रामें श्रीरामके अनुगामी हुए । उन सबके हृदयमें प्रसन्नता थी और वे सभी पापसे रहित थे ॥ १४-१५ ॥

स्नाताः प्रमुदिताः सर्वे हृष्टपुष्टाश्च वानराः ।
दृढं किलकिलाशब्दैः सर्वं राममनुव्रतम् ॥ १६ ॥

सम्पूर्ण हृष्ट-पुष्ट वानरगण भी स्नान करके बड़ी प्रसन्नताके साथ किलकारियाँ मारते हुए भगवान् श्रीरामके साथ जा रहे थे, वह सारा समुदाय ही श्रीरामका भक्त था ॥ १६ ॥

न तत्र कश्चिद् दीनो वा व्रीडितो वापि दुःखितः।
हृष्टं समुदितं सर्वं बभूव परमाद्भुतम् ॥ १७ ॥

उनमें कोई भी ऐसा नहीं था, जो दीन-दुखी अथवा लज्जित हो। वहाँ एकत्र हुए सब लोगोंके हृदयमें महान् हर्ष छा रहा था और इस प्रकार वह जनसमुदाय अत्यन्त आश्चर्यजनक जान पड़ता था ॥ १७ ॥

द्रष्टुकामोऽथ निर्यान्तं रामं जानपदो जनः ।
यः प्राप्तः सोऽपि दृष्ट्वैव स्वर्गायानुगतो जनः ॥ १८ ॥

जनपदके लोगोंमेंसे जो श्रीरामकी यात्रा देखनेके लिये आये थे, वे भी यह सब समारोह देखते ही भगवान्‌के साथ परमधाम जानेको तैयार हो गये ॥ १८ ॥

ऋक्षवानररक्षांसि जनाश्च पुरवासिनः ।
आगच्छन् परया भक्त्या पृष्ठतः सुसमाहिताः॥ १९ ॥

रीछ, वानर, राक्षस और पुरवासी मनुष्य बड़ी भक्तिके साथ श्रीरामचन्द्रजीके पीछे-पीछे एकाग्रचित्त होकर चले आ रहे थे ॥ १९ ॥

यानि भूतानि नगरेऽप्यन्तर्धानगतानि च ।
राघवं तान्यनुययुः स्वर्गाय समुपस्थितम् ॥ २० ॥

अयोध्यानगरमें जो अदृश्य प्राणी रहते थे, वे भी साकेतधाम जानेके लिये उद्यत हुए श्रीरघुनाथजीके पीछे-पीछे चल दिये ॥ २० ॥

यानि पश्यन्ति काकुत्स्थं स्थावराणि चराणि च ।
सर्वाणि रामगमने अनुजग्मुर्हि तान्यपि ॥ २१ ॥

चराचर प्राणियोंमेंसे जो-जो श्रीरघुनाथजीको जाते देखते थे, वे सभी उस यात्रामें उनके पीछे-पीछे चल देते थे ॥ २१॥

नोच्छ्वसत् तदयोध्यायां सुसूक्ष्ममपि दृश्यते ।
तिर्यग्योनिगताश्चैव सर्वे राममनुव्रताः ॥ २२ ॥

उस समय उस अयोध्यामें साँस लेनेवाला कोई छोटे-से-छोटा प्राणी भी रह गया हो, ऐसा नहीं देखा जाता था। तिर्यग्योनिके समस्त जीव भी श्रीराममें भक्तिभाव रखकर उनके पीछे-पीछे चले जा रहे थे ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे नवाधिकशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ नवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०९ ॥

* * *

दशाधिकशततमः सर्गः

भाइयोंसहित श्रीरामका विष्णुस्वरूपमें प्रवेश तथा साथ आये हुए सब लोगोंको संतानक-लोककी प्राप्ति

अध्यर्धयोजनं गत्वा नदीं पश्चान्मुखाश्रिताम् ।
सरयूं पुण्यसलिलां ददर्श रघुनन्दनः ॥ १ ॥

अयोध्यासे डेढ़ योजन दूर जाकर रघुकुलनन्दन भगवान् श्रीरामने पश्चिमाभिमुख हो निकट प्राप्त हुई पुण्यसलिला सरयूका दर्शन किया ॥ १ ॥

तां नदीमाकुलावर्तां सर्वत्रानुसरन् नृपः ।
आगतः सप्रजो रामस्तं देशं रघुनन्दनः ॥ २ ॥

सरयूनदीमें सब ओर भँवरें उठ रही थीं। वहाँ सब ओर घूम-फिरकर रघुनन्दन राजा श्रीराम प्रजाजनोंके साथ एक उत्तम स्थानपर आये ॥ २ ॥

अथ तस्मिन् मुहूर्ते तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
सर्वैः परिवृतो देवैर्ऋषिभिश्च महात्मभिः ॥ ३ ॥
आययौ यत्र काकुत्स्थः स्वर्गाय समुपस्थितः ।
विमानशतकोटीभिर्दिव्याभिरभिसंवृतः ॥ ४ ॥

उसी समय लोकपितामह ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवताओं तथा महात्मा ऋषि-मुनियोंसे घिरे हुए उस स्थानपर आ पहुँचे, जहाँ श्रीरघुनाथजी परमधाम पधारनेके लिये उपस्थित थे। उनके साथ करोड़ों दिव्य विमान शोभा पा रहे थे ॥ ३-४ ॥

दिव्यतेजोवृतं व्योम ज्योतिर्भूतमनुत्तमम् ।
स्वयंप्रभैः स्वतेजोभिः स्वर्गिभिः पुण्यकर्मभिः ॥ ५ ॥

सारा आकाशमण्डल दिव्य तेजसे व्याप्त हो अत्यन्त उत्तम ज्योतिर्मय हो रहा था। पुण्यकर्म करनेवाले स्वर्गवासी स्वयं

प्रकाशित होनेवाले अपने तेजसे उस स्थानको उद्भासित कर रहे थे ॥ ५ ॥

पुण्या वाता ववुश्चैव गन्धवन्तः सुखप्रदाः ।
पपात पुष्पवृष्टिश्च देवैर्मुक्ता महौघवत् ॥ ६ ॥

परम पवित्र, सुगन्धित एवं सुखदायिनी हवा चलने लगी। देवताओंद्वारा गिराये गये राशि-राशि दिव्य पुष्पोंकी भारी वर्षा होने लगी ॥ ६ ॥

तस्मिंस्तूर्यशतैः कीर्णे गन्धर्वाप्सरसंकुले ।
सरयूसलिलं रामः पद्भ्यां समुपचक्रमे ॥ ७ ॥

उस समय सैकड़ों प्रकारके बाजे बजने लगे और गन्धर्वों तथा अप्सराओंसे वहाँका स्थान भर गया। इतनेमें ही श्रीरामचन्द्रजी सरयूके जलमें प्रवेश करनेके लिये दोनों पैरोंसे आगे बढ़ने लगे ॥ ७ ॥

ततः पितामहो वाणीं त्वन्तरिक्षादभाषत ।
आगच्छ विष्णो भद्रं ते दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव ॥ ८ ॥

तब ब्रह्माजी आकाशसे ही बोले—'श्रीविष्णुस्वरूप रघुनन्दन ! आइये, आपका कल्याण हो। हमारा बड़ा सौभाग्य है, जो आप अपने परमधामको पधार रहे हैं ॥ ८ ॥

भ्रातृभिः सह देवाभैः प्रविशस्व स्विकां तनुम् ।
यामिच्छसि महाबाहो तां तनुं प्रविश स्विकाम् ॥ ९ ॥

'महाबाहो ! आप देवतुल्य तेजस्वी भाइयोंके साथ अपने स्वरूपभूत लोकमें प्रवेश करें। आप जिस स्वरूपमें प्रवेश करना चाहें, अपने उसी स्वरूपमें प्रवेश करें ॥ ९ ॥

वैष्णवीं तां महातेजो यद्वाऽऽकाशं सनातनम् ।
त्वं हि लोकगतिर्देव न त्वां केचित् प्रजानते ॥ १० ॥
ऋते मायां विशालाक्षीं तव पूर्वपरिग्रहाम् ।
त्वामचिन्त्यं महद् भूतमक्षयं चाजरं तथा ।
यामिच्छसि महातेजस्तां तनुं प्रविश स्वयम् ॥ ११ ॥

'महातेजस्वी परमेश्वर ! आपकी इच्छा हो तो चतुर्भुज विष्णुरूपमें ही प्रवेश करें अथवा अपने सनातन आकाशमय अव्यक्त ब्रह्मरूपमें ही विराजमान हों । देव ! आप ही सम्पूर्ण लोकोंके आश्रय हैं। आपकी पुरातन पत्नी योगमाया (ह्लादिनी शक्ति)-स्वरूपा जो विशाललोचना सीतादेवी हैं, उनको छोड़कर दूसरे कोई आपको यथार्थरूपसे नहीं जानते हैं; क्योंकि आप अचिन्त्य, अविनाशी तथा जरा आदि अवस्थाओंसे रहित परब्रह्म हैं, अतः महातेजस्वी राघवेन्द्र ! आप जिसमें चाहें, अपने उसी स्वरूपमें प्रवेश करें (प्रतिष्ठित हों)' ॥ १०-११ ॥

पितामहवचः श्रुत्वा विनिश्चित्य महामतिः ।
विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः ॥ १२ ॥

पितामह ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर परम बुद्धिमान् श्रीरघुनाथजीने कुछ निश्चय करके भाइयोंके साथ शरीरसहित अपने वैष्णव तेजमें प्रवेश किया ॥ १२ ॥

ततो विष्णुमयं देवं पूजयन्ति स्म देवताः ।
साध्या मरुद्गणाश्चैव सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ॥ १३ ॥

फिर तो इन्द्र और अग्नि आदि सब देवता, साध्य तथा मरुद्गण भी विष्णुस्वरूपमें स्थित हुए भगवान् श्रीरामकी पूजा (स्तुति-प्रशंसा) करने लगे ॥ १३ ॥

ये च दिव्या ऋषिगणा गन्धर्वाप्सरसश्च याः ।
सुपर्णनागयक्षाश्च दैत्यदानवराक्षसाः ॥ १४ ॥

तदनन्तर जो दिव्य ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, गरुड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव और राक्षस थे, वे भी भगवान्‌का गुणगान करने लगे ॥ १४ ॥

सर्वं पुष्टं प्रमुदितं सुसम्पूर्णमनोरथम् ।
साधुसाध्विति तैर्देवैस्त्रिदिवं गतकल्मषम् ॥ १५ ॥

(वे बोले—) 'प्रभो ! यहाँ आपके पदार्पण करनेसे देवलोकवासियोंका यह सारा समुदाय सफलमनोरथ होनेके कारण हृष्ट-पुष्ट एवं आनन्दमग्न हो गया है। सबके पाप-ताप नष्ट हो गये हैं। प्रभो ! आपको हमारा शतशः साधुवाद है।' ऐसा उन देवताओंने कहा ॥ १५ ॥

अथ विष्णुर्महातेजाः पितामहमुवाच ह ।
एषां लोकं जनौघानां दातुमर्हसि सुव्रत ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् विष्णुरूपमें विराजमान महातेजस्वी श्रीराम ब्रह्माजीसे बोले—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले पितामह ! इस सम्पूर्ण जनसमुदायको भी आप उत्तम लोक प्रदान करें ॥

इमे हि सर्वे स्नेहान्मामनुयाता यशस्विनः ।
भक्ता हि भजितव्याश्च त्यक्तात्मानश्च मत्कृते ॥ १७ ॥

'ये सब लोग स्नेहवश मेरे पीछे आये हैं। ये सब-के-सब यशस्वी और मेरे भक्त हैं। इन्होंने मेरे लिये अपने लौकिक सुखोंका परित्याग कर दिया है, अतः ये सर्वथा मेरे अनुग्रहके पात्र हैं' ॥ १७ ॥

तच्छ्रुत्वा विष्णुवचनं ब्रह्मा लोकगुरुः प्रभुः ।
लोकान् संतानकान् नाम यास्यन्तीमे समागताः ॥ १८ ॥

भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर लोकगुरु भगवान् ब्रह्माजी बोले—'भगवन्! यहाँ आये हुए ये सब लोग 'संतानक' नामक लोकोंमें जायँगे ॥ १८ ॥

यच्च तिर्यग्गतं किंचित् त्वामेवमनुचिन्तयत् ।
प्राणांस्त्यक्ष्यति भक्त्या तत् संतानेषु निवत्स्यति ॥ १९ ॥
सर्वैर्ब्रह्मगुणैर्युक्ते ब्रह्मलोकादनन्तरे ।

'पशु-पक्षियोंकी योनिमें पड़े हुए जीवोंमेंसे भी जो कोई आपका ही भक्तिभावसे चिन्तन करता हुआ प्राणोंका परित्याग करेगा, वह भी संतानक-लोकोंमें ही निवास करेगा । यह संतानक-लोक ब्रह्मलोकके ही निकट है (साकेत-धामका ही अङ्ग है) । वह ब्रह्माके सत्य-संकल्पत्व आदि सभी उत्तम गुणोंसे युक्त है। उसीमें ये आपके भक्तजन निवास करेंगे' १९½ ॥

वानराश्च स्विकां योनिमृक्षाश्चैव तथा ययुः ॥ २० ॥
येभ्यो विनिःसृताः सर्वे सुरेभ्यः सुरसम्भवाः ।
तेषु प्रविविशे चैव सुग्रीवः सूर्यमण्डलम् ॥ २१ ॥
पश्यतां सर्वदेवानां स्वान् पितॄन् प्रतिपेदिरे ।

जिन वानरों और रीछोंकी देवताओंसे उत्पत्ति हुई थी, वे अपनी-अपनी योनिमें ही मिल गये—जिन-जिन देवताओंसे प्रकट हुए थे, उन्हींमें प्रविष्ट हो गये । सुग्रीवने सूर्यमण्डलमें प्रवेश किया । इसी प्रकार अन्य वानर भी सब देवताओंके देखते-देखते अपने-अपने पिताके स्वरूपको प्राप्त हो गये ॥ २०-२१½ ॥

तथा ब्रुवति देवेशे गोप्रतारमुपागताः ॥ २२ ॥
भेजिरे सरयूं सर्वे हर्षपूर्णाश्रुविक्लवाः ।

देवेश्वर ब्रह्माजीने जब संतानक-लोकोंकी प्राप्तिकी घोषणा की, तब सरयूके गोप्रतारघाटपर आये हुए उन सब लोगोंने आनन्दके आँसू बहाते हुए सरयूके जलमें डुबकी लगायी ॥ २२½ ॥

अवगाह्याप्सु यो यो वै प्राणांस्त्यक्त्वा प्रहृष्टवत् ॥ २३ ॥
मानुषं देहमुत्सृज्य विमानं सोऽध्यरोहत ।

जिसने-जिसने जलमें गोता लगाया, वही-वही बड़े हर्षके साथ प्राणों और मनुष्य-शरीरको त्यागकर विमानपर जा बैठा ॥ २३½ ॥

तिर्यग्योनिगतानां च शतानि सरयूजलम् ॥ २४ ॥
सम्प्राप्य त्रिदिवं जग्मुः प्रभासुरवपूंषि तु ।
दिव्या दिव्येन वपुषा देवा दीप्ता इवाभवन् ॥ २५ ॥

पशु-पक्षीकी योनिमें पड़े हुए सैकड़ों प्राणी सरयूके जलमें गोता लगाकर तेजस्वी शरीर धारण करके दिव्यलोकमें जा पहुँचे । वे दिव्य शरीर धारण करके दिव्य अवस्थामें स्थित हो देवताओंके समान दीप्तिमान् हो गये ॥ २४-२५ ॥

गत्वा तु सरयूतोयं स्थावराणि चराणि च ।
प्राप्य तत्तोयविक्लेदं देवलोकमुपागमन् ॥ २६ ॥

स्थावर और जङ्गम सभी तरहके प्राणी सरयूके जलमें प्रवेश करके उस जलसे अपने शरीरको भिगोकर दिव्य लोकमें जा पहुँचे ॥ २६ ॥

तस्मिन् येऽपि समापन्ना ऋक्षवानरराक्षसाः ।
तेऽपि स्वर्गं प्रविविशुर्देहान् निक्षिप्य चाम्भसि ॥ २७ ॥

उस समय जो कोई भी रीछ, वानर या राक्षस वहाँ आ गये, वे सभी अपने शरीरको सरयूके जलमें डालकर भगवान्के परमधाममें जा पहुँचे ॥ २७ ॥

ततः समागतान् सर्वान् स्थाप्य लोकगुरुर्दिवि ।
हृष्टैः प्रमुदितैर्देवैर्जगाम त्रिदिवं महत् ॥ २८ ॥

इस प्रकार वहाँ आये हुए सब प्राणियोंको संतानक-लोकोंमें स्थान देकर लोकगुरु ब्रह्माजी हर्ष और आनन्दसे भरे हुए देवताओंके साथ अपने महान् धाममें चले गये ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे दशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ दसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ११० ॥

एकादशाधिकशततमः सर्गः

रामायण-काव्यका उपसंहार और इसकी महिमा

एतावदेतदाख्यानं सोत्तरं ब्रह्मपूजितम् ।
रामायणमिति ख्यातं मुख्यं वाल्मीकिना कृतम् ॥ १ ॥

(कुश और लव कहते हैं—) महर्षि वाल्मीकिद्वारा निर्मित यह रामायण नामक श्रेष्ठ आख्यान उत्तरकाण्डसहित इतना ही है । ब्रह्माजीने भी इसका आदर किया है ॥ १ ॥

ततः प्रतिष्ठितो विष्णुः स्वर्गलोके यथा पुरा ।

येन व्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ २ ॥

इस प्रकार भगवान् श्रीराम पहलेकी ही भाँति अपने विष्णुस्वरूपसे परमधाममें प्रतिष्ठित हुए । उनके द्वारा चराचर प्राणियोंसहित यह समस्त त्रिलोकी व्याप्त है ॥ २ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
नित्यं शृण्वन्ति संहृष्टाः काव्यं रामायणं दिवि ॥ ३ ॥

उन भगवान्‌के पावन चरित्रसे युक्त होनेके कारण देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि सदा प्रसन्नतापूर्वक देवलोकमें इस रामायणकाव्यका श्रवण करते हैं ॥ ३ ॥

इदमाख्यानमायुष्यं सौभाग्यं पापनाशनम् ।
रामायणं वेदसमं श्राद्धेषु श्रावयेद् बुधः ॥ ४ ॥

यह प्रबन्धकाव्य आयु तथा सौभाग्यको बढ़ाता और पापोंका नाश करता है । रामायण वेदके समान है । विद्वान् पुरुषको श्राद्धोंमें इसे पढ़कर सुनाना चाहिये ॥ ४ ॥

अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम् ।
सर्वपापैः प्रमुच्येत पादमप्यस्य यः पठेत् ॥ ५ ॥

इसके पाठसे पुत्रहीनको पुत्र और धनहीनको धन मिलता है । जो प्रतिदिन इसके श्लोकके एक चरणका भी पाठ करता है, वह सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है ॥ ५ ॥

पापान्यपि च यः कुर्यादहन्यहनि मानवः ।
पठत्येकमपि श्लोकं पापात् स परिमुच्यते ॥ ६ ॥

जो मनुष्य प्रतिदिन पाप करता है, वह भी यदि इसके एक श्लोकका भी नित्य पाठ करे तो वह सारी पापराशिसे मुक्त हो जाता है ॥ ६ ॥

वाचकाय च दातव्यं वस्त्रं धेनुर्हिरण्यकम् ।
वाचके परितुष्टे तु तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥ ७ ॥

इसकी कथा सुनानेवाले वाचकको वस्त्र, गौ और सुवर्णकी दक्षिणा देनी चाहिये । वाचकके संतुष्ट होनेपर सभी देवता संतुष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥

एतदाख्यानमायुष्यं पठन् रामायणं नरः ।
सपुत्रपौत्रो लोकेऽस्मिन् प्रेत्य चेह महीयते ॥ ८ ॥

यह रामायण नामक प्रबन्धकाव्य आयुकी वृद्धि करनेवाला है । जो मनुष्य प्रतिदिन इसका पाठ करता है, उसे इस लोकमें पुत्र-पौत्रकी प्राप्ति होती है और मृत्युके पश्चात् परलोकमें भी उसका बड़ा सम्मान होता है ॥ ८ ॥

रामायणं गोविसर्गे मध्याह्ने वा समाहितः ।
सायाह्ने वापराह्ने च वाचयन् नावसीदति ॥ ९ ॥

जो प्रतिदिन एकाग्रचित्त हो प्रातःकाल, मध्याह्न, अपराह्न अथवा सायंकालमें रामायणका पाठ करता है, उसे कभी कोई दुःख नहीं होता है ॥ ९ ॥

अयोध्यापि पुरी रम्या शून्या वर्षगणान् बहून् ।
ऋषभं प्राप्य राजानं निवासमुपयास्यति ॥ १० ॥

(श्रीरघुनाथजीके परमधाम पधारनेके पश्चात्) रमणीय अयोध्यापुरी भी बहुत वर्षोंतक सूनी पड़ी रहेगी । फिर राजा ऋषभके समय यह आबाद होगी ॥ १० ॥

एतदाख्यानमायुष्यं सभविष्यं सहोत्तरम् ।
कृतवान् प्रचेतसः पुत्रस्तद् ब्रह्माप्यन्वमन्यत ॥ ११ ॥

प्रचेताके पुत्र महर्षि वाल्मीकिजीने अश्वमेध यज्ञकी समाप्तिके बादकी कथा एवं उत्तरकाण्डसहित रामायण नामक इस ऐतिहासिक काव्यका निर्माण किया है । ब्रह्माजीने भी इसका अनुमोदन किया था ॥ ११ ॥

अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयायुतस्य च ।
लभते श्रवणादेव सर्गस्यैकस्य मानवः ॥ १२ ॥

इस काव्यके एक सर्गका श्रवण करनेमात्रसे ही मनुष्य एक हजार अश्वमेध और दस हजार वाजपेय यज्ञोंका फल पा लेता है ॥ १२ ॥

प्रयागादीनि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ।
नैमिषादीन्यरण्यानि कुरुक्षेत्रादिकान्यपि ॥ १३ ॥
गतानि तेन लोकेऽस्मिन् येन रामायणं श्रुतम् ।

जिसने इस लोकमें रामायणकी कथा सुन ली, उसने मानो प्रयाग आदि तीर्थों, गङ्गा आदि पवित्र नदियों, नैमिषारण्य आदि वनों और कुरुक्षेत्र आदि पुण्यक्षेत्रोंकी यात्रा पूरी कर ली ॥ १३½ ॥

हेमभारं कुरुक्षेत्रे ग्रस्ते भानौ प्रयच्छति ॥ १४ ॥
यश्च रामायणं लोके शृणोति सदृशावुभौ ।

जो सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें एक भार सुवर्णका दान करता है और जो लोकमें प्रतिदिन रामायण सुनता है, वे दोनों समान पुण्यके भागी होते हैं ॥ १४½ ॥

सम्यक्श्रद्धासमायुक्तः शृणुते राघवीं कथाम् ॥ १५ ॥
सर्वपापात् प्रमुच्येत विष्णुलोकं स गच्छति ।

जो उत्तम श्रद्धासे सम्पन्न हो श्रीरघुनाथजीकी कथा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त होता और विष्णुलोकमें जाता है १५½

आदिकाव्यमिदं त्वार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥ १६ ॥
यः शृणोति सदा भक्त्या स गच्छेद् वैष्णवीं तनुम् ।

जो पूर्वकालमें वाल्मीकिद्वारा निर्मित इस आर्षरामायण आदिकाव्यका सदा भक्तिभावसे श्रवण करता है, वह भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त कर लेता है ॥ १६½ ॥

पुत्रदाराश्च वर्धन्ते सम्पदः संततिस्तथा ॥ १७ ॥
सत्यमेतद् विदित्वा तु श्रोतव्यं नियतात्मभिः ।
गायत्र्याश्च स्वरूपं तद् रामायणमनुत्तमम् ॥ १८ ॥

इसके श्रवणसे स्त्री-पुत्रोंकी प्राप्ति होती है, धन और संतति बढ़ती है। इसे पूर्णतः सत्य समझकर मनको वशमें रखते हुए इसका श्रवण करना चाहिये। यह परम उत्तम रामायणकाव्य गायत्रीका स्वरूप है ॥ १७-१८ ॥

यः पठेच्छृणुयान्नित्यं चरितं राघवस्य ह ।
भक्त्या निष्कल्मषो भूत्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ १९ ॥

जो पुरुष प्रतिदिन भक्तिभावसे श्रीरघुनाथजीके इस चरित्रको सुनता या पढ़ता है, वह निष्पाप होकर दीर्घ आयु प्राप्त कर लेता है ॥ १९ ॥

चिन्तयेद् राघवं नित्यं श्रेयः प्राप्तुं य इच्छति ।
भावयेदिदमाख्यानं ब्राह्मणेभ्यो दिने दिने ॥ २० ॥

जो कल्याण-प्राप्तिकी इच्छा रखता है, उसे नित्य-निरन्तर श्रीरघुनाथजीका चिन्तन करना चाहिये। ब्राह्मणोंको प्रतिदिन यह प्रबन्धकाव्य सुनाना चाहिये ॥ २० ॥

यस्त्विदं रघुनाथस्य चरितं सकलं पठेत् ।
सोऽसुक्षये विष्णुलोकं गच्छत्येव न संशयः ॥ २१ ॥

जो इस श्रीरघुनाथ-चरित्रका पाठ पूर्ण कर लेता है, वह प्राणान्त होनेपर भगवान् विष्णुके ही धाममें जाता है; इसमें संशय नहीं है ॥ २१ ॥

पिता पितामहस्तस्य तथैव प्रपितामहः ।
तत्पिता तत्पिता चैव विष्णुं यान्ति न संशयः ॥ २२ ॥

इतना ही नहीं, उसके पिता, पितामह, प्रपितामह, वृद्ध प्रपितामह तथा उनके भी पिता भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ २२ ॥

चतुर्वर्गप्रदं नित्यं चरितं राघवस्य तु ।
तस्माद् यत्नवता नित्यं श्रोतव्यं परमं सदा ॥ २३ ॥

श्रीराघवेन्द्रका यह चरित्र सदा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। इसलिये प्रतिदिन यत्नपूर्वक निरन्तर इस उत्तम काव्यका श्रवण करना चाहिये ॥ २३ ॥

शृण्वन् रामायणं भक्त्या यः पादं पदमेव वा ।
स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्रह्मणा पूज्यते सदा ॥ २४ ॥

जो रामायणकाव्यके श्लोकके एक चरण या एक पदका भक्तिभावसे श्रवण करता है, वह ब्रह्माजीके धाममें जाता है और सदा उनके द्वारा पूजित होता है ॥ २४ ॥

एवमेतत् पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः ।
प्रव्याहरत विस्रब्धं बलं विष्णोः प्रवर्धताम् ॥ २५ ॥

इस प्रकार इस पुरातन आख्यानका आपलोग विश्वासपूर्वक पाठ करें। आपका कल्याण हो और भगवान् विष्णुके बलकी जय हो ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकादशाधिकशततमः सर्गः ॥ १११ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १११ ॥

उत्तरकाण्डं सम्पूर्णम्

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणं सम्पूर्णम्

मिलनेका पता

गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)